कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

स्कन्दमहापुराणम्

मूल तथा भाषानुवाद

द्वितीयं वैष्णवखण्डम्

भाषाभाष्यकार

एस. एन. खण्डेलवाल

चौखम्बा संस्कृत सीरीज
१५६
****

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

स्कन्दमहापुराणम्

मूल तथा भाषानुवाद

भाषाभाष्यकार
एस. एन. खण्डेलवाल

द्वितीयं वैष्णवखण्डम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
वाराणसी

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES
156
*****

SKANDAMAHĀPURĀṆAM

of

Shrimanmaharshi Krishnadwaipayan Vedvyasa

Text with Hindi translation

By

S. N. Khandelwal

SECOND VAIṢṆAVAKHAṆḌAM

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI

निवेदन

स्कन्दपुराण का यह द्वितीय भाग यद्यपि अधिकांशतः तीर्थ पर ही आधारित है, तथापि तीर्थों का वर्णन करते हुये इस द्वितीय भाग में समापन के समय महर्षि वेदव्यास द्वारा एक विशेष तथ्य वहां अंकित किया गया है। तदनुसार इन पार्थिव तीर्थों की अपेक्षा गुरुसेवा तथा उनका आज्ञापालन, सत्शास्त्रानुशीलन, पिता-माता की सेवा, दया, करुणा आदि भी तीर्थ हैं। सर्वोत्तम तीर्थ है आत्मतीर्थ। परमेश्वर का ध्यान भी तीर्थ रूप है। तीर्थ का यथार्थ लाभ उनको ही मिलता है, जो इन्द्रियनिग्रह युक्त हैं, क्रोधादि आवेग से जो विचलित नहीं होते तथा जो सभी प्राणियों के हित में तत्पर रहते हैं। ये सब जंगम तीर्थ हैं।

पार्थिव तीर्थ वे स्थल हैं, जहां कभी किसी काल में कोई अविस्मरणीय तथा पवित्र घटना घटित हो चुकी है। उस पवित्र घटना के अणु (सूक्ष्मतत्व) आज भी वहां विद्यमान हैं। आज भी वहां उस घटना का साक्षीरूप स्पन्दन (Vibration) विद्यमान है। वहां श्रद्धा तथा भाव के साथ जाने पर उस सूक्ष्मतत्व तथा स्पन्दन की ऊर्जा के द्वारा व्यक्ति पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। प्रायशः सभी तीर्थ जलयुक्त हैं। यह जल "नार" ही परमेश्वर का 'अयन' विश्रामस्थल है। यही नार + अयन = नारायण है। यही 'रस' है। इस रस रूप जल में अवगाहन द्वारा व्यक्ति पापरूपी नकारात्मक तत्व एवं प्रभाव से मुक्त हो जाता है। तीर्थों का जल अपने में किसी पूर्वकाल में घटित किसी परम महत्वपूर्ण तथा लोककल्याणप्रद घटना के सकारात्मक प्रभाव से परिव्याप्त रहता है। उस घटना का सूक्ष्मतत्व आज भी वहां के वायुमण्डल में ओत-प्रोत रहता है। यही वहां जाने वाले व्यक्ति के अस्तित्व में प्रवेश करके उसका कल्याण साधन करता है। जिनको आत्मतीर्थ का संधान नहीं मिला है, जो अपने अन्तर्जगत् से अपना सम्बन्ध नहीं बना सके हैं, ऐसे व्यक्ति का उद्धार मार्ग तीर्थ सेवन से उन्मुक्त हो जाता है।

प्रकृति की निकटता भी तीर्थतत्व का एक प्रमुख तत्व है। यह नील गगन, श्यामला धरती, शान्त निर्मल स्वच्छ जल राशि अथवा वायु प्रताड़ित होने पर उसमें उठती तरंग तो परमेश्वर की अपार सत्ता का संकेत है। विज्ञजन कहते हैं कि प्रकृति हमें आबद्ध कदापि नहीं करती। वह हमें अपने अंगुलि निर्देश द्वारा परमेश्वर के प्रेम तथा ऐश्वर्य का उन्मुक्त प्रदर्शन कराती है। जो प्रकृति की प्रेममयी अन्तरात्मा को, सुन्दरतम, आनन्दमग्न प्रकृति को नहीं देख पाते, वे तो अभिशप्त जीव हैं। प्रकृति से निकटता, प्रकृति से अन्तरंगता, प्रकृति के संवाद को सुन सकने का अवसर तीर्थ सेवन से ही मिलता है। वेद क्या है, इस पर ऋषि कहते हैं प्रकृति ही वेद है। जो प्रकृति के संवाद को सुनता, समझता, देखता है, वही मन्त्रद्रष्टा ऋषि है। प्रकृति अनन्त है, अतः वेद भी अनन्त है। इसी कारण प्रकृति के घनीभूत रूप तीर्थ भी अनन्त फलप्रद हो जाते हैं। यही तीर्थ का यथार्थ रहस्य है।

नदी तीर्थ हैं, पर्वत तीर्थ हैं। जहां नदियों का संगम है, वह तीर्थ है। जहां सुरम्य और सघन वृक्षों से युक्त तट वाले जलाशय, वापी, कूप, तड़ाग हैं, वे तीर्थ हैं। प्रकृति के क्रोड़ में जहां लोक कल्याण कामनारत तपस्वियों ने तप किया है, वह पुण्यस्थली तीर्थ है। शास्त्रों में है कि देवमन्दिर तो जलाशय तथा उपवन, वाटिकायुक्त हों। उनकी पृष्ठभूमि में प्रकृति की यह छटा विराजमान हो। सम्पन्न लोग मन्दिरों को वाटिका, उपवन, जलाशय से शोभित करें। यही तीर्थ का स्वरूप है। अर्थात् प्रकारान्तर से जहां प्रकृति की सुरम्य छटा हो, साथ ही वहां सत्कार्य, दान, दया तथा परोपकार रूप यजन-यज्ञ होता हो, वह तीर्थ है। स्कन्दपुराण के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि उस समय सर्वत्र ऐसे उत्तम प्रकृति माता की गोद में बसे तीर्थ थे। लेकिन आज जो स्थिति है,

वहां तो तीर्थ भूमियों का व्यापक संहार-सा परिलक्षित हो रहा है। सभी तीर्थ प्रकृति विहीन, जलाशय से विहीन, वनस्पति से विहीन केवल पत्थर, सीमेंट, कंक्रीट की निर्जीव इमारत ही रह गये हैं। वहां प्रकृति की जीवन्तता समाप्त होती जा रही है। फलतः 'तीर्थत्प लोप' होता जा रहा है। अब वृन्दावन में वन कहां! रमणरेती में रेत कहां! गोकुल में गोचारण कहां!

स्कन्दपुराण के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि तीर्थ तथा प्रकृति का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। तीर्थों के प्रति उस समय जो श्रद्धापूर्ण भावना का आधार मानव के अन्तर्मन में दृढ़ था, वह भावना तीर्थ का सर्वतोभावेन संरक्षण कर रही थी। वहां का प्राकृतिक परिवेश अक्षुण्ण बना रहता था। जिस तीर्थ को प्रकृति से वियुक्त किया गया, वहां की जीवन्तता समाप्त हो गयी। भौतिक साज-सज्जा, स्वर्णगुम्बज आदि अलंकारों से उनको कितना भी सज्जित किया जाये, प्रकृति की जीवनदायिनी ऊर्जा के अभाव में वे निर्जीव से हो जाते हैं। यह एक सत्य उक्ति है।

तीर्थ जल प्रधान होते हैं। जल ही रस है। रस ही प्रेम है। तीर्थस्नान अर्थात् भगवद् प्रेम रस से सराबोर हो जाना। यह जलमय प्रेमरस (जलहीनता) न होना ही विरह है। जिसके हृदय में भगवत् प्रेमरूपी रसधारा बह रही है, उसका हृदय भी तीर्थ है। जो परदुःख कातर है, उसका यह भाव भी तीर्थ है। जिसकी दृष्टि करुणार्द्र है, जो सबके अन्दर एक ही तत्व का दर्शन करते हैं, उनकी दृष्टि भी तीर्थ है। यह स्कन्दपुराण का उद्घोष है।

तीर्थों के प्रसंग में एक लोकोक्ति सुनी गई थी। हो सकता है, यह लोकोक्ति किसी पुराण अथवा प्राचीन ग्रंथों में वर्णित हो! भगवान् शंकर मातापार्वती के साथ बैल पर बैठे जा रहे थे। हठात् वे वाहन से उतरे तथा एक वृक्ष के नीचे बने चबूतरे को प्रणाम किया। पार्वती ने इसका कारण जानना चाहा। भगवान् त्रिपुरारि ने कहा कि "यहां दो शताब्दी पहले एक महापुरुष ने तप किया था। अतः मैं इस पुण्यस्थल को प्रणाम कर रहा हूं।" तदनन्तर कुछ आगे बढ़ने पर शंकर ने बैल से उतर कर एक वृक्ष के नीचे की भूमि को प्रणाम किया। पार्वती द्वारा पूछे जाने पर भगवान् शंकर ने कहा "यहां आज से दो हजार वर्ष के पश्चात् एक महापुरुष आकर कुछ समय विश्राम करेंगे। तभी मैं इस पुण्यभूमि को प्रणाम कर रहा हूं।"

इस कथा से यह स्पष्ट होता है कि कोई भी सामान्य स्थान किसी महान् आत्मा की सन्निधि के कारण तीर्थ हो जाता है। जो स्थान आज तीर्थ नहीं है, वह आसन्न भविष्य में तीर्थक्षेत्र बन सकता है। इसमें भूमि कारण नहीं है। महापुरुष ही तीर्थ बनाते हैं। उनकी सन्निधि के कारण सामान्य भूमि भी सदियों तक वन्दनीय बनी रहती है। वहां का शुभ स्पन्दन दीर्घकाल तक मनुष्य के लिये शान्तिप्रद हो जाता है।

तीर्थतत्व अगम-अपार है। यहां सब भावना का ही खेल है। उत्तम भावना का संचार होने में प्रभुकृपा ही कारण है। भाव की प्रेरणा से ही कर्म विकसित होता है। भाव का तो कणमात्र ही मानव अस्तित्व में व्यक्त हो पाता है। बाकी भाव एक महासागर जैसा अन्तर्लीन ही रह जाता है। प्रभुकृपा से भावुकों में ही यह भाव विकसित तथा व्यक्त हो पाता है। भावमयता के अभाव के कारण सामान्य मनुष्य की बुद्धि में स्कन्दपुराण में वर्णित तीर्थरहस्य व्यक्त हो सकना दुष्कर है।

शारदीय नवरात्र, सन् २०१४ ई.

निवेदक

एस. एन. खण्डेलवाल

।। श्रीगणेशायनमः।।

स्कन्दपुराण के द्वितीयवैष्णवखण्ड के विषय में

श्री परब्रह्म सच्चिदानन्दघन परात्परतर की असीम अनुकम्पा से संस्कृतप्रेमी पुराणानुसन्धानकर्त्ता ज्ञानसर्वस्व विद्वद्वर्ग की सेवा में स्कन्दपुराण के द्वितीय श्रीवैष्णवखण्ड को प्रस्तुत करते हुए विशेष हार्दिक आनन्द अनुभव होता है। इस विशाल-काय महापुराण के प्रकाशन का दायित्व लेते हुए महती कठिनाईयाँ उपस्थित हुयी हैं। कुछ हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रहालयों को बार-बार इसमें अनुपलब्ध ग्रन्थभाग के लिये प्रार्थना करते रहने पर भी जो प्रकाशनीय सामग्री इसमें नहीं आ सकी है उसकी ओर विद्वत्समुदाय का ध्यान आकर्षित करना परमकर्त्तव्य है जिससे भविष्य में उन विशेष स्थलोंको पुस्तकाकारही परिशिष्ट में त्रुटिपरिमार्जन के रूप में प्रकाशित किया जा सके।

प्रथम भूमिवाराहखण्ड के अनन्तर पुरुषोत्तमक्षेत्र माहात्म्य में ४९वीं अध्याय के आरम्भ से अन्तिम ६०वीं अध्याय के ४९वें श्लोक तक का पाठ कलकत्ता के बङ्गवासी मुद्रणालय के बङ्गाक्षर मुद्रितग्रन्थ में अधिक मिलने से उसे प्रस्तुत ग्रन्थ में सम्मिलित किया गया है। इसे उपलब्ध ग्रन्थसंस्करणों से विशेष पाठ समझकर ही कृपालु विद्वान इसे ग्रहण करने की कृपा करेंगे।

कुछ विशेष पाठ जो तीनों संस्करणों में सम्मिलित नहीं हैं और नारदीय पुराणोक्त स्कन्दपुराणके कार्त्तिकमाहात्म्यकी विषयसूचीमें जिस मदनालसमाहात्म्य और धूम्रकोशाख्यान का निरूपण आया है, वह इसमें अप्राप्य होने से नहीं गया है साथ ही मार्गशीर्षमाहात्म्य के बाद द्वादशवनमाहात्म्य भी सम्मिलित नहीं हुआ है। जैसे-जैसे हस्तलिखितग्रन्थों में अथवा स्वतंत्र उपलब्धपुस्तकों से ये भाग मिलते जावेंगे इन्हें परिशिष्ट में स्थान दिया जाता रहेगा।

इसीप्रकार भागवतमाहात्म्य के अनन्तर माघमासमाहात्म्य की १०अध्यायों का उल्लेख आता है जो अप्राप्य है। उपर्युक्त स्कन्दपुराण की विषयानुक्रमणिका के अनुसार माहेश्वरखण्ड के महाकाल की आविर्भावाध्याय के साथ वर्णन आता है उसका केवल वृद्धवासुदेव[१] नाम से थोड़ा-सा प्रसङ्गोपात्त निरूपण कियाजाकर सविशेष सम्पूर्ण प्रकरण छूट गया था; उसे अविकल श्रीवेङ्कटेश्वर मुद्रणालय के स्कन्दपुराण में वैष्णवखण्ड में मुद्रण प्राप्त होने से इस भाग में प्रस्तुत किया जा सका है। यह सम्पूर्ण प्रकरण ही अध्यायानुगत है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के माहेश्वर एवं वैष्णव खण्डों की विषयानुक्रमणिका देखने से उपर्युक्त अबतक प्राप्त एवं अप्राप्त ग्रन्थस्थल का पूर्णविवरण आपलोगों की सेवा में प्रस्तुत हो सकेगा। अतः नारदपुराण के पूर्वभागस्थ बृहदुपाख्यान चतुर्थपाद के १०४ की अध्याय में प्रतिपादित अंश इस संदर्भ में अविकलरूप से प्रस्तुत है :—

ब्रह्माबोले—हे मरीचे! जिसके प्रत्येक पद में महादेव जी साक्षात् स्थित हैं ऐसे स्कन्द नाम के पुराण को मैं कहता हूं तुम ध्यान से सुनो शतकोटिप्रविस्तर पुराणमें जो शिव की महिमा का मैंने वर्णन किया, उसके सारांशको विस्तार से कह दिया है सम्पूर्णपाप को नाश करने वाले प्रायः इक्यासी हजार श्लोकों के स्कन्दपुराण

---

१. समस्त क्षेपक अलग खण्ड में संयोजित किया जायेगा।

को यहाँ पर सात ही खण्ड में वर्णन किया है जिस पुराण में सम्पूर्ण सिद्धियों को देनेवाले शिव जी के चरित्र तथा माहेश्वर धर्मतत्पुरुषकल्पमें जो कार्त्तिकेय जी के द्वारा प्रकाशित किये गये वृत्त हैं। ऐसे स्कन्दपुराण को जो सुनता है अथवा पढ़ता है वह साक्षात् शिव ही है।

प्रथम माहेश्वरखण्ड में प्रतिपादित :—

उस स्कन्दपुराण का पहला माहेश्वरखण्ड है। जिसमें प्रायः १२ हजार से न्यून श्लोक हैं ये सब बहुत पुण्यदायक हैं अनेक पापोंके नाशक तथा बहुत शिक्षाप्रद कथाओंसे युक्त हैं और साथही असंङ्ख्य सच्चरित्र कथाओं से परिपूर्ण तथा स्वामी कार्त्तिकेय के माहात्म्य के सूचक हैं।

इसमें सर्वप्रथम केदारमाहात्म्य में पुराण का उपक्रम वर्णित है। उसके बाद दक्षप्रजापति के यज्ञ की कथा है। तदनन्तर शिवलिंङ्गकी पूजा करने से जो फल मिलता है उसका वर्णन है। तत्पश्चात् समुद्रमन्थन का वृत्तान्त है फिर देवेन्द्र (इन्द्र) का चरित्र वर्णित है। इसके अनन्तर पार्वती जी का वृत्तान्त उनका विवाह, कार्त्तिकेय की उत्पत्ति का वर्णन फिर स्कन्दका तारकासुर के साथ हुए युद्ध का वर्णन है।

तदनन्तर चण्डाख्यान से संयुक्त शिव जी का वृत्तान्त वर्णित है। फिर द्यूतप्रवर्त्तनाख्यान तथा नारद जी का समागम कहा गया है।

इसके बाद कुमारमाहात्म्य में पञ्चतीर्थ की कथा धर्मवर्मा राजा का चरित्र, नदीसागर कीर्तन किया गया है इसके पश्चात् नाड़ीजङ्घ की कथा सहित इन्द्रद्युम्न की कथा है। फिर पृथ्वी का प्रादुर्भाव, दमनक की कथा, पृथ्वी-सागर सङ्गम तीर्थ और कुमारेश की कथा वर्णित है। तदनन्तर अनेक कथाओं से परिपूर्ण तारकासुर का युद्ध फिर तारकासुर का वध और पञ्चलिंग की स्थापना कही गयी है।

इसके अनन्तर अत्यन्त पुण्यप्रद ऊर्ध्वलोक के वर्णन सहित सब द्वीपों का वर्णन है, फिर ब्रह्माण्ड की स्थिति तथा परिमाण और वर्करेश की कथा वर्णित की गयी है। पुनः महाकाल की उत्पत्ति तथा उसकी महती अद्भुत कथा कही गयी है। फिर भगवान् वासुदेव का माहात्म्य और कोरितीर्थ का प्रसंङ्ग सविस्तर निरूपित है।

पश्चात् गुप्तक्षेत्रमें अनेक तीर्थों का वर्णन है और अत्यन्त पवित्रपाण्डवों की कथा और महाविद्या के प्रसाधन का वर्णन है।

फिर तीर्थयात्राकी समाप्ति, अद्भुतरूपसे वर्णितकुमार (कार्त्तिकेय) का अपूर्व चरित्र तथा अरुणाचल के माहात्म्य में सनक और ब्रह्मा की कथा का वर्णन है।

इसकेबाद पार्वतीजी की तपश्चर्या का वर्णन और उन सब तीर्थों का निरूपण फिर आश्चर्यजनक महिषासुरके पुत्रका चरित्र और उसका वध कहा गया है।

तदनन्तर शोणाचल पर पार्वती का तपोवास और नित्यदा का परिकीर्तन इत्यादि स्कन्दपुराण के माहेश्वरखण्ड में कहा गया है।

दूसरे वैष्णवखण्ड में वर्णित :—

ब्रह्मा जी कहते हैं :—

उस स्कन्दपुराण का दूसरा वैष्णवखण्ड है। उसका कथाख्यान मैं कहता हूँ सुनो :—

सर्वप्रथम वाराह भगवान् के द्वारा पृथ्वी के उद्धार का वर्णन है। जिसमें अनेक पापों के नाशक वेंङ्कटगिरि का माहात्म्य कहा गया है फिर लक्ष्मी की पवित्र कथा, श्रीनिवास और उनकी स्थिति का वर्णन है।

यहाँ पर कुलालाख्यान, सुवर्णमुखरीकथा तथा अनेक कथाओं से संयुक्त भारद्वाज की अद्भुत कथा कही गयी है। तत्पश्चात् अनन्त कीर्त्ति को देने वाला तथा सम्पूर्ण पापों का संहार करने वाला मतङ्ग और अञ्जना का सम्वाद कहा गया है। इसके बाद उत्कल देश में पुरुषोत्तम का माहात्म्य वर्णित है। फिर मार्कण्डेयमुनि, अम्बरीष राजा, इन्द्रद्युम्न और विद्यापति के शुभकथाओं का वर्णन है। हे वाड़व! फिर जैमनी का चरित्र, नारद का वृत्तान्त, नीलकण्ठ का समाख्यान और नरसिंह भगवान् का वर्णन है। पुनः इन्द्रद्युम्न राजा के अश्वमेध की कथा और उसकी ब्रह्मलोक यात्रा तथा रथयात्रा विधि इसके बाद जन्म स्नान विधि का वर्णन है।

तत्पश्चात् दक्षिणा मूर्त्ति का प्रसङ्ग तथा गुण्डिचाख्यान वर्णित है, इसके बाद रथरक्षाविधान और शयनोत्सव का वर्णन है।

इसकेबाद ही श्वेतोपाख्यान और वह्न्युत्सव का निरूपण किया गया है तथा दोलोत्सव नामक भगवान् के वार्षिकव्रत को कहा गया है।

अपरञ्च कामनाओं की प्राप्ति करने वाले जनों से विष्णु पूजा एवं उद्दालक नियोग का आख्यान मोक्षसाधन व नाना योगों का निरूपण व दशावतार कथा स्नानादि का वर्णन यह उत्कल खण्ड में वर्णित है। इसके बाद बदरिकाश्रम का माहात्म्य जो पापों का नाश करने वाला तथा अग्नि आदि तीर्थों का माहात्म्य वैनतेय शिलामाहात्म्य भगवान् के वासस्थान का कारण कापालमोचनतीर्थ पञ्चधारा एवं मेरुसंस्थापन तीर्थ का वर्णन है।

इसके आगे कार्त्तिकमास माहात्म्य मदनालसमाहात्म्य एवं धूम्रकोशाख्यान का वर्णन है कार्त्तिक मास में सम्पूर्ण दिनकृत्योंका वर्णन, भुक्ति-मुक्ति एवं कीर्त्तिको देने वाले पञ्चभीष्माख्यान व्रत का माहात्म्य व स्नान का विधान; मार्गशीर्षमाहात्म्य में पुण्ड्रादिकों का कीर्त्तन, मालाधारण का पुण्य, पञ्चामृत स्नान का पुण्य, घण्टा-नादादिकोंका फल, नाना पुष्पोंसे पूजाफल, तुलसी दलका फल, नैवेद्यका माहात्म्य, हरिवासर कीर्त्तन, अखण्डैकादशी का पुण्य तथा जागरण का फल मत्स्योत्सव विधान, नाम माहात्म्य का वर्णन ध्यानादि का पुण्यकथन मथुरामाहात्म्य और मथुरातीर्थ का माहात्म्य वर्णित है।

इसके आगे द्वादशवन-माहात्म्य फिर श्रीमद्भागवत माहात्म्य में अन्तर्लीला का प्रकाशन करने वाला वज्रशाण्डिल्य का सम्वाद वर्णित है। इसके बाद माघमाहात्म्य जिसमें स्नान दान जप का फल एवं नाना आख्यानों का वर्णन दश अध्याय में किया है। तदनन्तर वैशाखमाहात्म्य में शय्यादानादि का फल, जलदानादिविधि, कामदेवाख्यान, श्रुतदेवचरित्र, व्याध का उपाख्यान एवं अक्षयतृतीया आदि का विशेष पुण्यवर्णन किया है।

फिर अयोध्यामाहात्म्य में चक्रब्रह्माह्वतीर्थ, ऋणपापविमोक्षाख्यतीर्थ, सहस्रधारातीर्थ, स्वर्गद्वार, चन्द्रहरि व धर्महरिका वर्णन, स्वर्णवृष्टि, तिलोदा, सरयू युति, सीताकुण्ड, गुप्तहरि, सरयूघर्घरासङ्गम, गोप्रचारतीर्थ, दुग्धोद, गुरुकुण्डादि-पञ्चतीर्थ, घोषार्कादितेरहतीर्थ और गयाकूप का माहात्म्य तथा माण्डव्य आदि आश्रमों का माहात्म्य एवं अजित आदिमानस तीर्थों का वर्णन है इसतरह वैष्णवखण्ड का सुन्दर वर्णन किया गया है।

इस महत्तर कार्य को सम्पादन करने में व्याकरणाचार्य श्री पं० ब्रह्मदत्तजी त्रिवेदी एम०ए० (लक्ष्मणगढ़-सीकर) और शास्त्री श्रीरामनाथदाधीच मिश्र पुराण-सांख्य-स्मृतितीर्थ(नवलगढ़-जयपुर) ने परिश्रम किया है। यह

संस्था के अभिन्न अङ्ग हैं। उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन और धन्यवाद प्रदर्शन उनकी गुरुतर दायिता को लघु बनाने जैसा है।

इस महान् कार्य के सम्पादन में जो अशुद्धियाँ मानव सुलभ अभिनिवेशादि दोष दृष्टियों से तथा प्रेस के कार्यकर्त्ताओं से अनवधानतावश रह गयी है उनके लिये मैं साञ्जलि क्षमा प्रार्थी हूँ।

अन्त में, लक्ष्मणगढ़ (सीकर) की प्रसिद्ध संस्था श्री शारदा सदन पुस्तकालय का मैं साभार कृतज्ञ हूं। यदि श्री वेंङ्कटेश्वरप्रेस, बम्बई से मुद्रित ग्रन्थ के अविकल भाग वहाँसे प्राप्त नहीं होते तो तुलनात्मक दृष्टिसे पाठभेदादिमें यथाशक्ति विशेष कठिनाइयाँ अनुभव होतीं। तदर्थ वहाँ की प्रबन्धकारिणीसमिति के स्थानीय सभापति श्री पण्डित गङ्गाधरजी जोशी साहित्य वेदान्त गणितभूषण, श्रीशारदासदनके पुस्तकालयाध्यक्ष पं. श्री महावीरप्रसादजी जोशी हिन्दी विशारद और सभी पुस्तकालय के सम्मान्य सदस्यों का आभार मानता हूं। हमें आशा है भविष्य में इसीप्रकार विशेष सहायता प्राप्त होती रहेगी तथा उत्साह वर्धन किया जाता रहेगा।

पुराणप्रेमी विद्वद्वृन्दसे पुनः अपनी अपूर्णताओंके लिये क्षमाप्रार्थी हूं। मैं आशा करता हूं कि इस अमित ज्ञान भाण्डागार महापुराण ग्रन्थराशिका अविकल पारायण कर आप सब जनता जनार्दन की सेवा में अपनी अमूल्य विश्वजनीन ज्ञानविभूति को प्रवचन, भाषण एवं सतत् इसी प्रकार की सेवाओं द्वारा ज्ञानवर्द्धन करते हुए यथार्थ में "सर्वभूतहितेरताः" का आदर्श प्रस्तुत करेंगे।

"कामये दुःखतप्तानाम्प्राणिनामार्त्तिनाशनम्"

शुभमिति मार्गशीर्षशुक्ला ११
गीताजयन्ती भौमवार
२०१७ विक्रमसम्वत्

भवदीय
मनसुखराय मोर
५, क्लाइव रो,
कलकत्ता-१

श्री नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे १०४ अध्याये प्रतिपादिता विषयानुक्रमणिका

ब्रह्मोवाच

शृणु वक्ष्ये मरीचे! च पुराणं स्कन्दसञ्ज्ञितम्। यस्मिन्प्रतिपदं साक्षान्महादेवो व्यवस्थित:।।
पुराणेशतकोटौ तु यच्छैवंवर्णितंमया। लक्षितस्याऽथंजातस्यसारोव्यासेनकीर्त्तित:।।
स्कन्दाह्वस्याऽत्रखण्डा:सप्तैव परिकीर्तिता:। एकाशातिसहस्त्रन्तु स्कान्दं सर्वाघकृन्तनम्।।
य: शृणोति पठेद्वाऽपि स तु साक्षाच्छिव: स्थित:। यत्र माहेश्वराधर्मा षण्मुखेन प्रकाशिता:।।
कल्पे तत्पुरुषे वृत्ता: सर्वसिद्धिविधायका:।

तत्रप्रथमेमाहेश्वरखण्डे :—

तत्रमाहेश्वरश्चाऽऽद्य:खण्ड:पापप्रणाशन:। किञ्चिन्न्यूनार्कसाहस्त्रोबहुपुण्योबृहत्कथ:।।
सुचरित्रशतैर्युक्त: स्कन्दमाहात्म्यसूचक:। यत्रकेदारमाहात्म्ये पुराणोपक्रम: पुरा।।
दक्षयज्ञकथा पश्चाच्छिवलिङ्गार्चने फलम्। समुद्रमथनाख्यानं देवेन्द्रचरितं तत:।।
पार्वत्या:समुपाख्यानं विवाहस्तदनन्तरम्। कुमारोत्पत्तिकथनं ततस्तारकसङ्गर:।।
तत: पशुपताख्यानं चण्डाख्यानसमाचितम्। द्यूतप्रवर्तनाख्यानं नारदेन समागम:।।
तत: कुमारमाहात्म्ये पञ्चतीर्थकथानकम्। धर्म्मवर्म्मनृपाख्यानं नदीसागरकीर्तनम्।।
इन्द्रद्युम्नकथा पश्चान्नाडीजङ्घकथाचिता। प्रादुर्भावस्ततोमह्या:कथा दमनकस्य च।।
महीसागरसंयोग:कुमारेशकथा तत:। ततस्तारकयुद्धञ्च नानाख्यानसमाचितम्।।
वधश्च तारकस्याऽथपञ्चलिङ्गनिवेशनम्। द्वीपाख्यानंतत: पुण्यंऊर्ध्वलोकव्यवस्थित:।।
ब्रह्माण्डस्थितिमानञ्च वर्करेशकथानकम्। महाकालसमुद्भूति:कथाचाऽस्यमहाद्भुता।।
वासुदेवस्य माहात्म्यं कोरितीर्थं तत:परम्। नानातीर्थसमाख्यानंगुप्तक्षेत्रेप्रकीर्तितम्।।
पाण्डवानांकथापुण्या महाविद्याप्रसाधनम्। तीर्थयात्रासमाप्तिश्चकौमारमिदमद्भुतम्।।
अरुणाचलमाहात्म्ये सनकब्रह्मसंकथा। गौरीतप: समाख्यानं तत्तत्तीर्थनिरूपणम्।।
महिषासुरजाख्यानंवधश्चास्यमहाद्भुत:। शोणाचलेशिवास्थानंनित्यदापरिकीर्त्तितम्।।
इत्येष कथित: स्कान्दे खण्डो माहेश्वरोऽद्भुत:।।

द्वितीये वैष्णवखण्डे :—

ब्रह्मोवाच

द्वितीयो वैष्णव: खण्डस्तस्याख्यानानि मे शृणु। प्रथमं भूमिवाराहं समाख्यानं प्रकीर्त्तितम्।।
यत्र वोचककुध्रस्य माहात्म्यं पापनाशनम्। कमलाया: कथापुण्या श्रीनिवासस्थितिस्तत:।।
कुलालाख्यानकञ्चाऽत्र सुवर्णमुखरीकथा। नानाख्यानसमायुक्ता भारद्वाज कथाऽद्भुता:।।
मतङ्गाञ्जनसम्वाद: कीर्तित: पापनाशन:। पुरुषोत्तममाहात्म्यं कीर्त्तितंचोत्कले तत:।।
मार्कण्डेयसमाख्यानमम्बरीषस्य भूपते:। इन्द्रद्युम्नस्यचाख्यानंविद्यापतिकथा शुभा।।

जैमिनेःसमुपाख्यानं नारदस्याऽपि बाडव!। नीलकण्ठसमाख्यानंनारसिंहोपवर्णनम्।।
अश्वमेधकथा राज्ञोब्रह्मलोकगतिस्तथा। रथयात्राविधिः पश्चाज्जन्मस्नानविधिस्तथा।।
दक्षिणामूर्त्त्यु पाख्यानं गुण्डिचाख्यानकं ततः। रथरक्षाविधानञ्च शयनोत्सवकीर्त्तनम्।।
श्वेतोपाख्यानमत्रोक्तं बह्न्युत्सवनिरूपणम्। दोलोत्सवो भगवतो व्रतं साम्वत्सराभिधम्।।
पूजा च कामिभिर्विष्णोरुद्दालकनियोगकः। मोक्षसाधनमत्रोक्तंनानायोगनिरूपणम्।।
दशावतारकथनं स्नानादिपरिकीर्त्तनम्। ततोबदरिकायाश्च माहात्म्यं पापनाशनम्।।
अग्नयादितीर्थमाहात्म्यं वैनतेयशिलाभवम्। कारणंभगवद्वासे तीर्थंकापालमोचनम्।।
पञ्चधाराभिधं तीर्थं मेरुसंस्थापनं तथा।ततः कार्त्तिकमाहात्म्येमाहात्म्यंमदनालसम्।।
धूम्रकोशसमाख्यानंदिनकृत्यानिकार्त्तिके। पञ्चभीष्मव्रताख्यानंकीर्त्तिदंभुक्तिमुक्तिदम्।।
तद्व्रतस्य च माँहात्म्ये विधानं स्नानजं तथा। पुण्ड्रादिकीर्तनञ्चाऽत्र मालाधारणपुण्यकम्।।
पञ्चामृतस्नानपुण्यं घण्टानादादिजंफलम्। नानापुष्पार्च्चनफलं तुलसीदलजम्फलम्।।
नैवेद्यस्य च माहात्म्यं हरिवासन (र) कीर्तनम्। अखण्डैकादशीपुण्यं तथा जागरणस्य च।।
मत्स्योत्सवविधानञ्च नाममाहात्म्यकीर्तनम्। ध्यानादिपुण्यकथनं माहात्म्यं मथुराभवम्।।
मथुरातीर्थमाहात्म्यं पृथगुक्तं ततः परम्। वनानांद्वादशानाञ्चमाहात्म्यं कीर्त्तितं ततः।।
श्रीमद्भागवतस्याऽत्र माहात्म्यं कीर्तितम्परम्। वज्रशाण्डिल्यसम्वादमन्तर्लीलाप्रकाशकम्।।
ततोमाघस्यमाहात्म्यंस्नानदानजपोद्भवम्। नानाख्यानसमायुक्तंदशाध्यायेनिरूपितम्।।
ततोवैशाखमाहात्म्येशय्यादानादिजम्फलम्। जलदानादिविधयःकामाख्यानमतः परम्।।
श्रुतदेवस्यचरितं व्याधोपाख्यानमद्भुतम्। तथाक्षयतृतीयादेर्विशेषात्पुण्यकीर्त्तनम्।।
ततस्त्वयोध्यामाहात्म्ये चक्रब्रह्माह्वतीर्थके। ऋणपापविमोक्षाख्येतथाधारसहस्रकम्।
स्वर्गद्वारं चन्द्रहरिर्धर्मर्य्युपवर्णनम्।।
स्वर्णवृष्टेरुपाख्यानं तिलोदासरयूयुतिः। सीताकुण्डंगुप्तहरिःसरयूर्घर्घराचयः।।
गोप्रचारञ्च दुग्धोदं गुरुकुण्डादिपञ्चकम्। घोषार्कादीनितीर्थानित्रयोदशततः परम्।।
गयाकूपस्य माहात्म्यं सर्व्वाघविनिवर्त्तकम्। माण्डव्याश्रमपूर्व्वाणि तीर्थानि तदनन्तरम्।।
अजितादि मानसादितीर्थानिगदितानिच। इत्येषवैष्णवः खण्डोद्वितीयःपरिकीर्तितः।।

शुभमिति मार्गशीर्षशुक्ला ११
गीताजयन्ती भौमवार
२०१७ विक्रमसम्वत्

भवदीय
मनसुखराय मोर
५, क्लाइव रो,
कलकत्ता-१
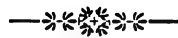
विषयानुक्रमणिका

अध्याय पृष्ठांक

वेंकटाचलमाहात्म्य

पुरुषोत्तम (जगन्नाथ) क्षेत्रमाहात्म्य

अध्याय | **पृष्ठांक**

श्रीबदरिकाश्रममाहात्म्य

कार्त्तिकमासमाहात्म्य

मार्गशीर्षमाहात्म्य

अध्याय पृष्ठांक

भागवतमाहात्म्य

वैशाखमासमाहात्म्य

अयोध्यामाहात्म्य

।। श्रीगणेशायनमः।।

।।ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।।

श्रीमन्महर्षिवेदव्यासप्रणीतम्

स्कन्दमहापुराणम्

तस्येदं द्वितीयंवैष्णवखण्डप्रारभ्यते

वेङ्कटाचलमाहात्म्यम्

प्रथमोऽध्यायः

नारद द्वारा सुमेरु पर यज्ञ वराह का दर्शन, शेषाचल पर्वत महिमा, वेंकटाचल वर्णन

व्यास उवाच

पावनेनैमिषारण्ये शौनकाद्या महर्षयः। चक्रिरे लोकरक्षार्थं सत्रं द्वादशवार्षिकम्।।१।।
तानभ्यगच्छत्कथको व्यासशिष्यो महामतिः। मुनिरुग्रश्रवा नाम रोमहर्षणसम्भवः।।२।।
सम्यगभ्यर्चितस्तेषांसूतः पौराणिकोत्तमः। कथयामास तद्दिव्यंपुराणंस्कन्दनामकम्।।३।।
सृष्टिसंहारवंशानांवंशानुचरितस्य च। कथांमन्वन्तराणां च विस्तरात्स न्यवेदयत्।।४।।
कथास्तीर्थप्रभावाणां श्रुत्वा ते मुनिपुङ्गवाः। ऊचिरे वशिनंसूतंकथाश्रवणकाङ्क्षया।।५।।

व्यास जी कहते हैं—शौनकादि महर्षिगण लोकरक्षार्थ पुण्यतीर्थ नैमिषारण्य में द्वादश वार्षिक यज्ञ कर रहे थे। व्यासशिष्य वाग्मी महामति रोमहर्षण मुनि उग्रश्रवा वहां उनके पास आये। पौराणिकोत्तम सूत ने शौनकादि द्वारा पूजित होकर स्कन्द नामक दिव्यपुराण का वर्णन किया। सूत जी ने पुराण वर्णन प्रसंग में सृष्टिलय, वंश, वंशानुचरित, मन्वन्तर तथा तीर्थमहिमा का विस्तार से वर्णन किया। तत्पश्चात् मुनिश्रेष्ठगण ने उनके मुख से तीर्थमाहात्म्य श्रवण करके उन जितेन्द्रिय सूत से तीर्थविषयक अन्यान्य कथा का श्रवण करना चाहा।।१-५।।

ऋषय ऊचुः

रोमहर्षण सर्वज्ञ पुराणार्थविशारदः !। माहात्म्यंश्रोतुमिच्छामोगिरीन्द्राणां महीतले।
बूहि त्वं नो महाभाग ! के प्रधाना महीधराः।।६।।

ऋषिगण कहते हैं—हे सर्वज्ञ! हे पुराणार्थ विशारद रोमहर्षण! हम महीतलस्थ गिरीन्द्रगण के माहात्म्य को सुनने की अभिलाषा करते हैं। हे महाभाग! पर्वतों में कौन श्रेष्ठ है, आप यह कहें।।६।।

श्रीसूत उवाच

एतमेव पुरा प्रश्नमपृच्छं जाह्नवीतटे। व्यासं मुनिवरश्रेष्ठं सोऽब्रवीन्मे गुरूत्तमः॥७॥

सूत जी कहते हैं—पूर्वकाल में मैंने जाह्नवी तीर पर बैठे अपने गुरु व्यासदेव से वाराणसी में प्रश्न किया था। मेरे प्रश्न के उत्तर में गुरुप्रवर व्यास ने मुझसे जो कहा था, उसे सुने।।७।।

व्यास उवाच

पुरा देवयुगे सूत नारदो मुनिसत्तमः। सुमेरुशिखरं गत्वा नानारत्नसुशोभितम्॥८॥
तन्मध्येविपुलं दीप्तं ब्रह्मणो दिव्यमालयम्। दृष्ट्वा तस्योत्तरे देशे पिप्पलद्रुममुत्तमम्॥९॥
सहस्त्रयोजनोच्छ्रायं विस्तीर्णं द्विगुणंतथा। तन्मूलेमण्डपंदिव्यंनानारत्नसमन्वितम्॥१०॥
पद्मरागमणिस्तम्भैःसहस्त्रैःसमलंकृतम्। वैडूर्यमुक्तामणिभिःकृतस्वस्तिकमालिकम्॥११॥
नवरत्नसमाकीर्णं दिव्यतोरणशोभितम्। मृगपक्षिभिराकीर्णं नवरत्नमयैः शुभैः॥१२॥
पुष्परागमहाद्वारं सप्तभूमिकगोपुरम्। सन्दीप्तवज्रसुकृतकवाटद्वयशोभितम्॥१३॥

व्यासदेव कहते हैं—हे सूत! पूर्व के देवयुग में मुनिश्रेष्ठ नारद ने नानारत्नों से शोभित सुमेरुशिखर जाकर वहां विपुल प्रभाशाली दिव्य ब्रह्मालय का दर्शन किया था तथा उसके तीर के उत्तर की ओर एक उत्तम पीपल वृक्ष देखा। इस वृक्ष की उच्चता १००० योजन तथा विस्तृति उसकी दूनी थी। पिप्पलतरु मूल में नानारत्न समन्वित एक दिव्य मण्डप था। यह मण्डप १००० पद्मराग मणि से अलंकृत था। वैदूर्य, मुक्ता तथा मणियों से उसकी स्वस्तिक मालिका (अल्पना) विरचित थी। वह नवरत्न समाकीर्ण तथा दिव्य तोरणों से शोभित था। उसमें हजारों मृग तथा पक्षीगण शुभ नवरत्न से बने थे। इस मण्डप का द्वार पुष्पराग मणि का था तथा गोपुर सप्तभूमिक थे।।८-१३।।

प्रविश्याऽसौ ददर्शान्तर्दिव्यमौक्तिकमण्डपम्। वैडूर्यवेदिकं तुङ्गमारुरोह महामुनिः॥१४॥
तन्मध्ये तुङ्गमतुलं वसुपादविराजितम्। ददर्श मुक्तासङ्कीर्णं सिंहासनं महाद्युति॥१५॥
तन्मध्ये पुष्करंदिव्यंसहस्त्रदलशोभितम्। श्वेतंचन्द्रसहस्त्राभंकर्णिकाकेसरोज्ज्वलम्॥१६॥
तस्य मध्ये समासीनं पूर्णचन्द्रायुतप्रभम्। कैलासपर्वताकारं सुन्दरं पुरुषाकृतिम्॥१७॥
चतुर्बाहुमुदाराङ्गं वराहवदनं शुभम्। शङ्खचक्राभयवरान्बिभ्राणं पुरुषोत्तमम्॥१८॥
पीताम्बरधरं देवं पुंडरीकायतेक्षणम्। पूर्णेन्दुसौम्यवदनं धूपगन्धिमुखाम्बुजम्॥१९॥
सामध्वनिं यज्ञमूर्तिं स्त्रुक्तुण्डं स्त्रुवनासिकम्।
क्षीरसागरसङ्काशं किरीटोज्ज्वलिताननम्॥२०॥
श्रीवत्सवक्षसं शुभ्रयज्ञसूत्रविराजितम्। कौस्तुभश्रीसमुद्दचोतं समुन्नतमहोरसम्॥२१॥

महामुनि नारद ने इस दिव्य मुक्तानिर्मित मण्डप में प्रवेश करके वैदूर्य निर्मित उच्च वेदी पर आरोहण

किया तथा उसमें अष्टपाद युक्त वैदूर्यनिर्मित उच्च वेदी पर आरोहण किया तथा उसके ऊपर भी एक अष्टपाद युक्त मुक्ता जड़ित महाद्युतिवान् अतीव उच्च सिंहासन देखा। इस सिंहासन पर उज्वल कर्णिकायुक्त सहस्रदलशोभित हजारों चन्द्रप्रभा के समान एक श्वेतपद्म विराजित था। उसमें १०००० पूर्णचन्द्र के समान प्रभावाले कैलास पर्वताकार एक सुन्दर पुरुष आसीन थे। उनके शरीर पर चारबाहु थी तथा मुख मनोहर वराह के समान था। इनकी चारों बाहु में शंख, चक्र, अभय तथा वर मुद्रा विराजित थी। इन्होंने पीतवस्त्र धारण किया था। ये आयत लोचन, कमलतुल्य तथा पूर्णचन्द्र के समान सौम्यदर्शन थे। इनका मुखकमल धूपगन्धमय था। इन देव की ध्वनि साममयी, मूर्त्ति यज्ञरूप, तुण्ड स्रुक् रूप तथा नासिका स्रुवरूप थी। इनके शिर पर क्षीरसागर के समान उज्वल किरीट विराजित था, जो मुख को और भी कान्तिमय बना रहा था। उनका वक्षप्रदेश श्रीवत्स से शोभित था तथा उस पर शुभ्र यज्ञसूत्र विराजमान था। उनका वक्ष समुन्नत तथा कौस्तुभमणि की कान्ति से उद्भासित हो रहा था।।१४-२१।।

जाम्बूनदमयैर्दिव्यैः सुरत्नाभरणैर्युतम्। विद्युन्मालापरिक्षिप्तशरन्मेघमिषोज्ज्वलम्।।२२।।
वामपादतलाक्रान्तपादपीठविराजितम्। कटकाङ्गदकेयूरकुण्डलोज्ज्वलितं सदा।।२३।।
चतुर्मुखवसिष्ठात्रिमार्कण्डेयैर्मुनीश्वरैः। भृग्वादिभिरनेकैश्च सेव्यमानमहर्निशम्।।२४।।
इन्द्रादिलोकपालैश्च गन्धर्वाप्सरसां गणैः। सेवितं देवदेवेशं प्रणिपत्याऽभिगम्य च।।२५।।
दिव्यैरुपनिषद्भागैरभिष्टूय धराधरम्। नारदः परमप्रीतः स्थितो देवस्य सन्निधौ।।२६।।

ये देवदेव जाम्बूनदोत्पन्न दिव्य स्वर्णयुक्त रत्न आभूषणों से भूषित थे। विद्युत्माला की चमक से परिक्षिप्त शरत्कालीन मेघ के समान इन देवता की उज्वलता से भुवन-समूह भी उज्वल हो रहा था। उनका चरण एक पीठ पर स्थित था। इन देव ने कटक, अंगद, कुण्डलादि से उज्वल रूप धारण किया था। चतुर्मुख ब्रह्मा, वसिष्ठ, अत्रि, मार्कण्डेय, भृगु आदि अनेक मुनीश्वरगण इनकी निरन्तर सेवा कर रहे थे। इन्द्रादि लोकपाल, गन्धर्व, अप्सरागण इनके पास आकर विविध प्रणिपात द्वारा इनका सन्तोष साधन कर रहे थे। देवर्षि नारद ने इस धराधारी देवता का दर्शन किया तथा दिव्य उपनिषदों द्वारा उनका स्तव करके अत्यन्त प्रेमपूर्वक उनके समीप बैठ गये।।२२-२६।।

एतस्मिन्नन्तरेचाभूद्दिव्यदुन्दुभिनिःस्वनः ।।२७।।
ततस्समागता देवी धरणी सखिसंयुता। सरत्नसागराकारदिव्याम्बरसमुज्ज्वला।।२८।।
सुमेरुमन्दराकारस्तनभारावनामिता। नवदूर्वादलश्यामा सर्वाभरणभूषिता।।२९।।
इलया वै पिङ्गलया सखीभ्यां च समन्विता।
ततस्ताभ्यां समानीतं पुष्पाणां निचयं मही।।३०।।
श्रीमद्वराहदेवस्य पादमूले विकीर्य च। प्रणम्य देवदेवेशं कृताञ्जलिपुटा स्थिता।।३१।।
तां देवीं श्रीवराहोऽपि ह्यालिङ्ग्याऽङ्के निधाय च।।३२।।
पप्रच्छ कुशलं पृथ्वीं प्रीतिप्रवणमानसः।।३३।।

इसी समय दिव्य दुन्दुभि निनादित होने लगी तथा सखियों के साथ धरती देवी इन देवता के समीप

आईं। ये धरती देवी रत्न जड़े सागराकार दिव्य वस्त्रों से शोभित थीं। सुमेरु तथा मन्दर के समान स्तनद्वय के भार से वे नम्र थीं। (स्तनभार के कारण आगे झुकी हुई थीं) इला तथा पिंगला नाम्नी दो सखियां भी धरती देवी के साथ वहीं पर आई थीं। वे नाना पुष्प चयन करके लाईं तथा धरती देवी को प्रणाम किया। उन देवी ने यह समस्त पुष्प वराहदेव के चरणों में अर्पित किया तथा वहीं हाथ जोड़कर खड़ी हो गयीं। तब वराहदेव ने धरती देवी का आलिंगन करके उनको अपनी गोद में बैठा लिया। उन धरती देवी की कुशल पूछकर प्रेमपूर्वक वराहदेव कहने लगे।।२७-३३।।

श्रीवराह उवाच

त्वां निवेश्यमहीदेवि ! शेषशीर्षेसुखावहे। लोकंत्वयिनिवेश्यैवत्वत्सहायान्धराधरान्।
इहाऽऽगतोऽस्म्यहं देवि ! किमर्थं त्वमिहाऽऽगता॥३४॥

श्री वराहदेव कहते हैं—हे देवी! तुमको सुखवाहन शेषनाग के मस्तक पर स्थापित करके तथा त्रिलोक एवं तुम्हारे सहायक दिग्गजों (धराधरों को) को रक्षित करके मैं यहां आ गया। हे महादेवी! तुम्हारे यहां आगमन का कारण क्या है?।।३४।।

पृथिव्युवाच

मां समुद्धृत्य पातालात्सहस्त्रफणशोभिते। रत्नपीठ इवोत्तुङ्गे सरत्नेऽनन्तमूर्धनि।
कृत्वा मां सुस्थिरां देव ! भूधरान्संनिवेश्य च॥३५॥
मद्धारणक्षमान्पुण्यांस्त्वन्मयान्पुरुषोत्तम्। तेषु मुख्यान्महाबाहो मदाधारान्वदस्व मे॥३६॥

पृथिवी देवी कहती हैं—हे देव! पाताल से मेरा उद्धार करके आपने मुझे उच्च रत्नपीठ के समान सहस्त्रफणों से शोभित रत्नसमन्वित अनन्त के मस्तक पर स्थापित किया। हे पुरुषोत्तम! आपने मेरे धारण योग्य अनेक पवित्र पर्वतों को मुझ पर सन्निवेशित भी किया यह बात भी सत्य ही है। हे महाबाहो! इन पर्वतों में से मेरा श्रेष्ठ आधार कौन है? यह कहें।।३५-३६।।

श्रीवराह उवाच

सुमेरुर्हिमवान्विंध्योमन्दरो गन्धमादनः। सालग्रामश्चित्रकूटो माल्यवान्पारियात्रकः॥३७॥
महेन्द्रो मलयःसह्यः सिंहाद्रिरपि रैवतः। मेरुपुत्रोऽञ्जनो नाम शैलः स्वर्णमयो महान्॥३८॥
एते शैलवराः सर्वे त्वदाधारा वसुन्धरे। ये मया देवसङ्घैश्च ऋषिसङ्घैश्च सेविताः॥३९॥
एतेषु प्रवरान्वक्ष्ये तत्त्वतः शृणु माधवि !। सालग्रामश्चसिंहाद्रिश्शैलेन्द्रोगन्धमादनः॥४०॥
एते शैलवरा देवि दिशं हैमवतीं श्रिताः। दक्षिणस्यां प्रतीतांस्तुवक्ष्येशैलान्वसुन्धरे॥४१॥
अरुणाद्रिहंस्तिशैलो गृध्राद्रिर्घटिकाचलः। एते शैलवराः सर्वे क्षीरनद्यास्समीपगाः॥४२॥
हस्तिशैलादुत्तरतः पञ्चयोजनमात्रतः। सुवर्णमुखरीनाम नदीनाम्प्रवरा नदी॥४३॥
तस्या एवोत्तरे तीरे कमलाख्यं सरोवरम्।
तत्तीरे भगवानास्ते शुकस्य वरदो हरिः॥४४॥

वराहदेव कहते हैं—सुमेरु, हिमवान्, विन्ध्य, मन्दर, गन्धमादन, शालग्राम, चित्रकूट, माल्यवान्, पारीयात्रक, महेन्द्र, मलय, सत्य, सिंहपर्वत, रैवत, मेरुपुत्र श्रेष्ठ स्वर्णमय अंजन पर्वत, ये उत्तम पर्वत हैं। ये सभी तुम्हारे आधार हैं। हे वसुन्धरे, माधवी! देव तथा ऋषिमण्डली के साथ मैं इनकी सेवा करता हूं। अब इनमें से प्रधान शैलों का वर्णन करता हूं। सुनो! शालग्राम, सिंहाद्रि तथा गन्धमान पर्वतों में श्रेष्ठ हैं। जिधर हिमालय स्थित है, वहीं पर ये भी स्थित रहते हैं। हे वसुन्धरे! अब दक्षिणस्थ शैलसमूह का वर्णन करता हूं। अरुणाचल, हस्तिशैल तथा गृध्र श्रेष्ठ पर्वत क्षीरनदी के समीप हैं। हस्तिशैल के उत्तर में पांच योजन आयत स्वर्णमुखरी नामक श्रेष्ठ नदी है। उसके उत्तर तट पर कमलाख्य सरोवर विद्यमान है। इस सरोवर तट पर भगवान् हरि विराजित रहते हैं। इन्होंने ही शुक को वरदान दिया था।।३७-४४।।

बलभद्रेण संयुक्तः कृष्णोभक्तार्तिनाशनः। वैखानसैर्मुनिगणैर्नित्यमाराधितोऽमलैः।।४५।।
कमलाख्यस्य सरस उत्तरे काननोत्तमे। क्रोशद्वयार्धमात्रे तु हरिचन्दनशोभिते।
श्रीवेङ्कटाचलो नाम वासुदेवालयो महान्।।४६।।
सप्तयोजनविस्तीर्णः शैलेन्द्रोयोजनोच्छ्रितः। अस्तिस्वर्णमयोदेविरत्नसानुभृदायतः।।४७।।

यहां श्रीहरि कृष्ण-बलराम के साथ भक्तों की पीड़ा हरण करते हैं। निर्मल वैखानस मुनिगण यहीं पर नित्य इनकी आराधना में तत्पर रहते हैं। कमलाख्य सरोवर के उत्तर में एक मनोरम कानन भूमि है। यह दो कोश परिमाण की तथा हरिचन्दन शोभिता है। यहीं पर श्री वेंकटाचल नामक वासुदेव का एक उत्तम आलय विद्यमान है। इस शैलेन्द्र का विस्तार सात योजन तथा ऊंचाई एक योजन है। हे देवी! इसका आयत सानुदेश (घाटी-पठार) स्वर्णरत्नमय है।।४५-४७।।

इन्द्राद्या दैवतगणा वसिष्ठाद्यामुनीश्वराः। सिद्धाः साध्याश्चमरुतोदानवादैत्यराक्षसाः।
रम्भाद्या अप्सरःसङ्घा वसन्ति नियतं धरे !।।४८।।
तपश्चरन्ति नागाश्च गरुडाः किन्नरास्तथा।।४९।।
एतैरधिष्ठितास्तत्रसरितःपुण्यदर्शनाः। सरांसिविविधान्यत्रसन्ति दिव्यानिमाधवि।
तीर्थानाञ्चैव सर्वेषां शृणुष्व प्रवराणि वै।।५०।।
चक्रतीर्थन्दैवतीर्थं वियद्गङ्गा तथैव च। कुमारधारिका तीर्थम्पापनाशनमेव च।
पाण्डवं नामतीर्थञ्च स्वामिपुष्करिणी तथा।।५१।।
सप्तैतानि वराण्याहुर्नारायणगिरौ शुभे। एतेषु प्रवरा देवि स्वामिपुष्करिणी शुभा।।५२।।
अस्यास्तु पश्चिमे तीरे निवसामि त्वया सह।
आस्तेऽस्या दक्षिणे तीरे श्रीनिवासो जगत्पतिः।।५३।।
गङ्गाद्यैःसकलैस्तीर्थैःसमासासागराम्बरे। त्रैलोक्येयानितीर्थानिसरांसिसरितस्तथा।
तेषां स्वामित्वमापन्नं धरे ! स्वामिसरोवरे।।५४।।
स्वामिपुष्करिणींपुण्यांसेवितुंदिव्यभूधरे। वसन्तिसर्वतीर्थानितेषांसंख्यांवदामिते।।५५।।

षट्षष्टिकोटितीर्थानि पुण्येऽस्मिन्भूधरोत्तमे।
तेषु चात्यन्तमुख्यानि षट् तीर्थानि वसुन्धरे !॥५६॥
पञ्चानां तीर्थराजानां तुम्बोगर्भसमोमहान्। गर्भवासभयध्वंसी स्नातानाम्भूधरोत्तमे॥५७॥

इन्द्रादि देवता, वसिष्ठ आदि समस्त मुनिगण, सिद्ध, साध्य, मरुत्, दानव, दैत्य, राक्षस, रम्भा आदि अप्सरायें नित्य इस पर्वत पर निवास करती हैं। नाग, गरुड़, किन्नर, यहां सतत् रहकर तप करते हैं। हे माधवी! यहां पुण्यदर्शन विविध दिव्य सरोवर विराजित हैं। हे देवी! यहां सभी तीर्थों में जो प्रधान हैं, उनका वर्णन सुनो। चक्रतीर्थ, दैवतीर्थ, आकाशगंगा, पापनाशन, कुमारधारिका, पाण्डवतीर्थ, स्वामिपुष्करिणी, नारायणगिरि के ये ७ तीर्थ उत्तम कहे गये हैं। हे देवी! इन सातों में से स्वामिपुष्करिणी सर्वोत्तम है। इसके पश्चिम तीर पर मैं तुम्हारे साथ निवास करता हूं। इसके दक्षिण तट पर जगत्पति श्रीनिवास का निवास है। हे सागररूपी वस्त्र धारण करने वाली! यह स्वामिपुष्करिणी तीर्थ गंगा आदि तीर्थ के तुल्य है। त्रिलोक में जितने सरोवर नदी-तीर्थ विद्यमान हैं, स्वामिपुष्करिणी तीर्थ ने उन सभी का प्रभुत्व प्राप्त किया है। पुण्य स्वामिपुष्करिणी की सेवा के लिये इस पवित्र भूतल पर जितने तीर्थों का निवास है, सम्प्रति उनकी संख्या कहता हूं। इस पावन पर्वतश्रेष्ठ पर ६६ करोड़ तीर्थ विद्यमान हैं। हे वसुन्धरे! इनमें छः अतीव प्रधान हैं। बाकी पांच तीर्थराज में मेरे गर्भ के समान तुम्बतीर्थ श्रेष्ठ है। इस श्रेष्ठ भूधर पर स्नान करने से पुनः गर्भवास का भय (पुनर्जन्म का भय) नहीं होता!।।४८-५७।।

धरण्युवाच

षट्तीर्थानिमहाबाहो ! त्वयोक्तानि महीधरे। माहात्म्यंवदतेषांमे यथाकालंयथाविधि।
फलानि तेषु स्नातानां नराणाम्वद भूधर !॥५८॥

धरणी देवी कहती हैं—हे महाबाहो! आपने इन पर्वतों में से जिन छः का वर्णन किया है, अब उनके माहात्म्य, तीर्थ सेवा कितने काल करना चाहिये, तीर्थ सेवा विधि क्या है—यह कहें। हे भूधर! इन तीर्थों में मनुष्यों को स्नान करने का जो फल लाभ होता है, वह कहें।।५८।।

श्रीवराह उवाच

नारायणाद्रिमाहात्म्यं वदामि शृणु माधवि। देवाश्चऋषयश्चैव योगिनः सनकादयः॥५९॥
कृतेऽञ्जनाद्रिं त्रेतायां नारायणगिरिं तथा॥६०॥
द्वापरे सिंहशैलञ्च कलौ श्रीवेङ्कटाचलम्। प्रवदन्तीह विद्वांसः परमात्मालयंगिरिम्॥६१॥
योजनानां सहस्रान्ते द्वीपान्तरगतोऽपि वा। यो नमेद्भूधरेन्द्रंतद्दिशमुद्दिश्यभक्तितः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥६२॥
तस्मिन्षटतीर्थमाहात्म्यं यथाकालम्वदामि ते॥६३॥
शृणुष्वावहिताभद्रेसर्वपापप्रणाशनम्। कुम्भसंस्थरवौमाघे पौर्णमास्याम्महातिथौ॥६४॥
मघानक्षत्रयुक्तायां भूधरेन्द्रे वसुन्धरे। कुमारधारिकानाम सरसी लोकपावनी॥६५॥

श्रीवराह कहते हैं—हे महादेवी! माधवी! नारायणपर्वत का माहात्म्य कहता हूं। सुनो! देव-ऋषि-सनकादि विद्वान् योगी कहते हैं कि सत्ययुग में अंजनपर्वत, त्रेता में नारायण पर्वत, द्वापर में सिंहशैल तथा कलि में वेंकटाचल परमात्मा का गृह हो जाता है। भले ही एक हजार योजन दूर से किंवा अन्यद्वीप में रहते हुये भी जो मानव भक्ति के साथ इन पर्वतराज के उद्देश्य से प्रणाम करता है, वह सर्वपाप रहित होकर विष्णुलोक प्राप्त कर लेता है। अब इस पर्वतस्थ छ तीर्थों की महिमा तथा उनके सेवन काल को कहता हूं। हे भद्रे! सावधान होकर सर्वपाप प्रणाशन इस तीर्थकथा का श्रवण करो। हे वसुन्धरे! जब सूर्य कुम्भराशि में स्थित हों तब फाल्गुनी पूर्णिमा किंवा मघा नक्षत्र युक्त माघीपूर्णिमा महातिथि के दिन इस निर्मल भूधरेन्द्र स्थित कुमारधारिका नामक सरोवर अतीव पावन हो जाता है।।५९-६५।।

यत्रास्तेपार्वतीसूनुःकार्तिकेयोऽग्निसम्भवः ।
देवसेनासमायुक्तःश्रीनिवासार्चकोऽमले ।।६६।।

तस्यां यः स्नातिमध्याह्नेतस्यपुण्यफलंशृणु। गङ्गादिसर्वतीर्थेषु यः स्नातिनियमाद्धरे।।६७।।

द्वादशाब्दं जगद्धांत्रि! तत्फलं समवाप्नुयात्।
योऽन्नं ददाति तत्तीर्थे शक्त्या दक्षिणयान्वितम्।
स तावत्फलमाप्नोति स्नाने तूक्तं फलं यथा।।६८।।

मीनसंस्थे सवितरि पौर्णमासीतिथौ धरे। उत्तराफाल्गुनी युक्ते चतुर्थे कालउत्तमे।।६९।।
पञ्चानामपि तीर्थानां तुम्बेऽथ गिरिगह्वरे। यः स्नाति मनुजो देवि पुनर्गर्भे न जायते।।७०।।
अग्निवाहस्थितो भानौ चित्रानक्षत्रसंयुते। पूर्णिमाख्येतिथौपुण्ये प्रातःकालेतथैवच।।७१।।

आकाशगङ्गासरितिस्नातो मोक्षवाप्नुयात्।।७२।।

वृषभस्थे रवौ राधे द्वादश्यांरविवासरे। शुक्लेवाप्यऽथवा कृष्णे पक्षेभौमसमन्विते।।७३।।
शुक्ले वाप्यथवा कृष्णे भानुवारेण संयुते। पुष्यनक्षत्रसंयुक्ते हस्तर्क्षेण युतेऽपिवा।।७४।।
तीर्थे पाण्डवनाम्न्यत्र सङ्गवे स्नाति यो नरः। नेहदुःखमवाप्नोति परत्र सुखमश्नुते।।७५।।

यहां अग्नि से उत्पन्न पार्वतीपुत्र कार्तिकेय श्रीनिवास से पूजित होकर देव सैन्य के साथ विराजमान हैं। जो व्यक्ति मध्याह्नकाल में यहां स्नान करता है, उसका पुण्यफल सुनो। हे जगद्धात्री ! द्वादश वर्ष नियमतः गंगादि तीर्थों में स्नान का जो फल है, यहां स्नान द्वारा वही तीर्थफल मिलता है। जो व्यक्ति यहां दक्षिणा के साथ (शक्ति के अनुसार दक्षिणा दान करके, अन्नदान करता है, वह स्नानफल के समान ही फल प्राप्त करता है। हे देवी! जो व्यक्ति सूर्य के मीनराशि में स्थित रहते उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रयुता पौर्णमासी के चतुर्थकाल (कुतपादि काल) में वेंकट गिरि गुहास्थित पंचतीर्थ में से श्रेष्ठ तुम्बतीर्थ में स्नान करता है, उसे गर्भवास नहीं होता। जो व्यक्ति मेषस्थ सूर्य काल में चित्रानक्षत्रयुत पूर्णिमा तिथि पर प्रातः (यहां स्थित) आकाशगंगा नदी में स्नान करता है, उसे मोक्ष प्राप्ति होती है। भास्कर तब वृषस्थ (वृषराशि) हों तब, अथवा रविवारयुक्त वैशाखी द्वादशी के दिन, अथवा कृष्णपक्षीय मंगलवार युक्त द्वादशी तिथि, किंवा शुक्ल अथवा कृष्णपक्ष की रविवासरी द्वादशी तिथि के पुष्य अथवा हस्तनक्षत्रयुक्त होने पर जो संगव (प्रातः स्नान के पश्चात् तृतीय मुहूर्त्त) काल में

पाण्डवतीर्थ में स्नान करता है, उसका इहकाल में दुःख दूर हो जाता है तथा परकाल में वह सुख प्राप्त करता है।।६६-७५।।

शुक्ले पक्षेऽथवा कृष्णे याऽर्कवारेण सप्तमी। पुष्यनक्षत्रसंयुक्ताहस्तर्क्षेणयुतापिवा।।७६।।
तस्यां तिथौ महाभागे पापनाशनसंज्ञके। तीर्थेयःस्नाति नियमाद्भूधरेन्द्रस्य मस्तके।
कोटिजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते स नरोत्तमः।।७७।।

हे महाभाग! शुक्ल किंवा कृष्णपक्ष में रविवासरी सप्तमी जब पुष्य किंवा हस्तनक्षत्र युता हो तब जो व्यक्ति नियमतः भूधरेन्द्र वेंकटाचल के मस्तकस्थ पापनाशन तीर्थ में स्नान करता है, वह नरोत्तम कोटि जन्मार्जित पातक से रहित हो जाता है।।७६-७७।।

शृणु देवि परङ्गुह्यमनन्ताख्ये महागिरौ। मद्दिव्यालयवायव्ये शिखरे गिरिगह्वरे।
देवतीर्थमितिख्यातं तटाकमतिशोभनम्।।७८।।
तस्मिन्पुण्यतमे देवि ! स्नानकालम्वदामि ते।।७९।।
गुरुपुष्ये व्यतीपाते सोमश्रवणके तथा। दिनेष्वेतेषु यः स्नाति तस्यपुण्यफलं शृणु।।८०।।
यानि कानीह पापानिज्ञानाज्ञानकृतानिच।
तानि सर्वाणिनश्यन्ति देवतीर्थेऽतिपावने।।८१।।
पुण्यान्यपि च वर्धन्ते देवतीर्थनिमज्जनात्। दीर्घमायुरवाप्नोति पुत्रपौत्रसमन्वितः।
अन्ते स्वर्गं समासाद्य चन्द्रलोके महीयते।।८२।।
तद्दिनेष्वन्नदो देवि यावज्जीवान्नदो भवेत्। अति गुह्यतमं देवि प्रोक्तन्तुभ्यं वसुन्धरे।।४३।।

हे देवी! अब अनन्त महापर्वत के परम गोपनीय दैवतीर्थ का प्रकरण सुनो। इस पर्वत पर मेरा एक दिव्य आलय (निवास) है। इस आलय के वायव्य कोणस्थ शिखर पर गुहागह्वर में यह विख्यात दैवतीर्थ विद्यमान है। इसका छोटा तट विशेष शोभन है। हे देवी! इस पुण्यतम तीर्थ में स्नान करने का काल तुमसे कहता हूं। गुरुवार के दिन जब पुष्यनक्षत्र हो, व्यतिपात योग हो, किंवा सोमवार को श्रवण नक्षत्र पड़े, तब यहां स्नान से फल मिलता है। अब उन फलों को सुनो। यहां स्नान करने वाले का ज्ञानकृत अथवा अज्ञानकृत समस्त पाप नष्ट हो जाता है। उसके अन्य पुण्य वर्द्धित हो जाते हैं। वह व्यक्ति पुत्र-पौत्र समन्वित होकर दीर्घायु लाभ करता है तथा अन्त में स्वर्ग गमन करके चन्द्रलोक जाता है। हे देवी! इस तिथि पर जो यहां अन्नदान करता है, वह चिरकाल तक अन्न देने की समृद्धि वाला हो जाता है। हे वसुन्धरे! मैंने तुमसे जो सब वृत्तान्त कहा, वह अतीव गुप्त है।।७८-८३।।

व्यास उवाच

श्रुत्वाऽथ पृथिवी देवी प्रीतिप्रवणमानसा। इष्टाभिर्वाग्भिरतुलं तुष्टाव धरणीधरम्।।८४।।

व्यासदेव कहते हैं—यह सब श्रवण करके पृथिवी देवी अतीव दीप्तिमती हो गयीं। उन्होंने अनेक इष्ट वाक्य से धरणीधर भगवान् वराह की आराधना किया।।८४।।

धरण्युवाच

नमस्ते देवदेवेश ! वराहवदनाऽच्युत। क्षीरसागरसङ्काश वज्रश्रृङ्ग ! महाभुज !॥८५॥
उद्धृताऽस्मि त्वया देव ! कल्पादौ सागराम्भसः।
सहस्त्रबाहुना विष्णो ! धारयामि जगन्त्यहम्॥८६॥
अनेकदिव्याभरणयज्ञसूत्रविराजित !। अरुणारुणाम्बरधर दिव्यरत्नविभूषित॥८७॥
उद्यद्भानुप्रतीकाश पादपद्म नमोनमः। बालचन्द्राभ दंष्ट्राग्रमहाबल पराक्रम !॥८८॥
दिव्यचन्दनलिप्ताङ्ग ! तप्तकाञ्चनकुण्डल !। इन्द्रनीलमणिद्योति हेमाङ्गदविभूषित !॥८९॥
वज्रदंष्ट्राग्रनिर्भिन्न हिरण्याक्ष महाबल। पुण्डरीकाभिरामाक्ष ! सामस्वनमनोहर॥९०॥
श्रुतिसीमन्त भूषात्मन्सर्वात्मंश्चारुविक्रम !। चतुराननशम्भुभ्यां वन्दिताऽऽयतलोचन॥९१॥
सर्वविद्यामयाकार शब्दातीत नमो नमः। आनन्दविग्रहाऽनन्त कालकाल नमोनमः॥९२॥

धरणीदेवी कहती हैं—हे देवदेव ! वराहवदन, अच्युत! आपको प्रणाम! हे क्षीरसागरप्रभ! वज्रश्रृङ्ग, महाभुज! आपने कल्प के आदि में सागरजल से मेरा उद्धार किया था। तब मैं सहस्त्रबाहु द्वारा जगत् को धारण करती हूं। हे विष्णु! आप नाना दिव्य आभूषणों से भूषित हैं। आपके वक्षस्थल पर यज्ञोपवीत विराजित है। आपने अरुणवर्ण वस्त्र धारण किया है। आप दिव्यरत्नभूषित हैं। आपके चरणकमल उदीयमान भास्कर के समान आभायुक्त हैं। हे देव! आपको प्रणाम! आपकी दाढ़ का अग्रभाग बालचन्द्रवत् आभायुक्त है। आप महाबली पराक्रमी हैं। आपका सम्पूर्ण अंग दिव्य चन्दन से लिप्त रहता है। आपके दोनों कुण्डल तप्त स्वर्ण के समान प्रभायुक्त हैं। आपकी द्युति इन्द्रनीलमणि के समान है तथा आपका शरीर स्वर्ण के आभरणों से भूषित है। हे महाबली! आपने अपने वज्र के समान दंष्ट्राग्र भाग से हिरण्याक्ष को विदीर्ण कर दिया। आपके नेत्र कमल के समान मनोरम हैं। आप साम ध्वनि से मन का हरण कर लेते हैं। हे सर्वात्मन्! वेद का जो शीर्षस्थान है, उसके आप ही भूषण हैं। आपका विक्रम मन का हरण करने वाला है। हे सर्वात्मन्! हे आयतनेत्र! आप की पूजा चतुरानन ब्रह्मा तथा शंभु करते रहते हैं। आपका आकार सर्वविद्यामय है। आप शब्दातीत को प्रणाम! आपको नमस्कार! पुनः नमस्कार! आप आनन्दधाम हैं। आप काल के भी काल हैं। आपको प्रणाम!।।८५-९२।।

इति स्तुत्वाऽचला देवी ववन्दे पादयोर्विभुम्।
वन्दमानां समुद्वीक्ष्य देवः फुल्लविलोचनः॥९३॥
उद्धृत्य धरणीं देवीमालिलिङ्गेऽथबाहुभिः। आघ्रायधरणीवक्त्रंवामाङ्केसन्निवेश्यच॥९४॥
आरुह्य गरुडेशानं जगाम वृषभाचलम्। मुनीन्द्रैर्नारदाद्यैश्च स्तूयमानो महीपतिः॥९५॥
स्वामिपुष्करिणीतीरे पश्चिमे लोकपूजिते। आस्ते वराहवदनोमुनीन्द्रैस्तत्रपूजितः।
वैखानसैर्महाभागैर्ब्रह्मतुल्यैर्महात्मभिः॥९६॥

अचला पृथिवी देवी ने इस प्रकार से स्तव करके (वराहरूपी) विभु विष्णु के पादद्वय की वन्दना किया।

तब देवी पृथिवी को वन्दना करते देखकर विभु विष्णु के नेत्र प्रफुल्ल हो उठे। उन्होंने पृथिवी देवी को अपनी बाहु से ऊपर उठाया, उनका शिर सूंघ कर उनको अपनी बायीं गोद में बैठाया। तत्पश्चात् महीपति विष्णु (वराहरूपी) नारदादि मुनियों द्वारा स्तुत होने के पश्चात् गरुड़ पर आसीन होकर वृषभाचल चले गये।

स्वामीपुष्करिणी के लोकपूजित पश्चिमतट पर वराहमुख देव विष्णु विराजित रहते हैं। वहां पर ब्रह्मतुल्य महाभाग महात्मा वैखानस मुनिगण द्वारा वे प्रभु वराहवदन पूजित होते रहते हैं।।९३-९६।।

व्यास उवाच

तं दृष्ट्वा नारदः सूत ! मुनीनामुक्तवान्पुरा। तदेतदहमश्रौषं तत्र वै मुनिसंसदि॥९७॥
यत्पृष्टोऽहं त्वयासूतमाहात्म्यंधरणीभृताम्। मया तूक्तं यथांवद्धि नारदाच्चपुराश्रुतम्॥९८॥
य इदं धर्मसम्वादमावयोः सूत ! पावनम्। पठेद्वा देवपुरतो ब्राह्मणानां पुरस्तथा॥९९॥
सर्वेषामपिवर्णानांश्रृण्वतांभक्तिपूर्वकम्। स प्रतिष्ठामवाप्नोति पुत्रपौत्रैःसमन्वितः॥१००॥
श्रृण्वतामपि सर्वेषां यदिष्टं तद्भविष्यति॥१०१॥

व्यासदेव कहते हैं—हे सूत! पूर्वकाल में नारद ने इस स्थान का दर्शन पाकर मुनिगण से जो कहा था, वह तुमसे मैंने कह दिया। मैंने वह सब मुनियों की उस सभा में स्वयं सुना था। हे सूत ! तुमने जो मुझसे धरणीधर अचलगण का माहात्म्य पूछा था, इस विषय में महर्षिनारद द्वारा कहा गया वृत्तान्त मैंने यथावत् कह दिया। हे सूत! जो व्यक्ति इस पुण्य संवाद को देवता, ब्रह्मज्ञ किंवा भक्ति के साथ सुनने वाले किसी भी जाति के मानव को सुनाता है, वह पुत्र-पौत्र समन्वित होकर प्रतिष्ठालाभार्थ समर्थ हो जाता है। जो इस वृत्तान्त को सुनते हैं, वे भी अभीष्ट लाभ करते हैं।।९७-१०१।।

सूत उवाच

इति मे भगवान्व्यासःप्रोवाच मुनिसेवितः। यथाश्रुतं मया पूर्वं कृष्णद्वैपायनाद्गुरोः॥१०२॥
तत्तथासर्वमेवाऽऽत्र मयाप्युक्तंमुनीश्वराः। श्रुत्वासूतवचस्त्वित्थंते प्रीतमनसोऽभवन्॥१०३॥

सूत जी कहते हैं—मुनिगण सेवित भगवान् व्यास ने मुझसे इसी प्रकार कहा था। हे मुनीश्वरगण! पुराकाल में गुरु कृष्ण द्वैपायन से मैंने जैसा सुना था, मैंने आप से उसी प्रकार कह दिया। तदनन्तर नैमिषवासी मुनियों ने सूत के मुख से यह प्रसंग सुनकर प्रसन्न मन से सूत से प्रश्न किया।।१०२-१०३।।

ऋषय ऊचुः

सूत ! त्वयोक्तं भुवि पर्वतेषु पुण्येषु पुण्यस्य महीधरस्य।
माहात्म्यमस्माकमहीन्द्रनाम्नः पापापहं मोक्षफलप्रदायकम्॥१०४॥
ततो वृषाद्रिं सम्प्राप्य वराहोधरणीयुतः। किमुक्तवान्धरण्यै स तन्नो ब्रूहि महामते॥१०५॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्येधरणी-वराहसम्वादे नारदस्य सुमेरुशिखरस्थयज्ञवराहदर्शनप्राप्त्यादिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

ऋषिगण कहते हैं—हे सूत! इस पृथिवी पर जितने भी पुण्यप्रद पर्वत हैं, उनमें अतिपवित्र महीन्द्र नामक पर्वत का पापहर मोक्षफल प्रदायक माहात्म्य आपने हमसे कहा। हे महामति! अब वराहदेव ने पृथिवी देवी के साथ वृषाचल जाकर उनसे क्या कहा, वह आप कहें।।१०४-१०५।।

।।प्रथम अध्याय समाप्त।।

द्वितीयोऽध्यायः

वराहमन्त्र से धर्म आदि की अभीष्ट सिद्धि प्राप्ति

श्रीसूत उवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्वे कथाम्पुण्यां पुरातनीम्। वैवस्वतेऽन्तरे पूर्वं कृते पुण्यतमे युगे॥१॥
नारायणाद्रौ देवेशं निससन्तं क्षमापतिम्। वाराहरूपिणं देवं धरणी सखिभिर्वृता॥२॥
प्रणम्य परिपप्रच्छ रक्तपद्मायतेक्षणम्॥३॥

सूत जी कहते हैं—हे मुनिगण! पुरातनी पुण्यकथा को सुनें। पूर्वकाल में सत्ययुग के वैवस्वतमन्वन्तर में पृथिवीपति देवदेव विष्णु ने वराहरूप धारण किया तथा नारायण पर्वत पर निवास करने लगे। तब सखियों से घिरी पृथिवी ने पद्म के समान रक्ताभ आयतनेत्र वराहरूपी विष्णु को प्रणाम करके पूछा।।१-३।।

धरण्युवाच

आराध्यःकेन मन्त्रेणभवान्प्रीतोभविष्यति। तं मे वद त्वं देवेश यःप्रियो भवतःसदा॥४॥
जपतां सर्वसम्पत्तिकारकं पुत्रपौत्रदम्। सार्वभौमत्वदञ्चैव कामिनां कामदं सदा॥५॥
अन्ते यस्त्वत्पदप्राप्तिं ददाति नियमात्मनाम्। एवम्भूतं वद प्रीत्यामयिवाराहमानद॥६॥

धरणी कहती हैं—आप किस मन्त्र से आराधित होकर प्रसन्न होते हैं? हे देवेश! आपको जो सतत् प्रिय है, वह मुझसे कहें। हे मानद, वराह! कामनापूर्वक जप करने से आपका जो मन्त्र सतत् सम्पतप्रद होता है, जो पुत्र-पौत्रप्रद-कामद तथा सार्वभौमत्व देता है तथा आत्मरत व्यक्त व्यक्ति को सर्वान्त में आपके चरणकमल को प्राप्त कराता है, आप प्रीतिपूर्वक मुझसे ऐसे मन्त्र को कहिये।।४-६।।

श्रीसूत उवाच

इति पृष्टस्तया भूम्या प्राह प्रीतिस्मिताननः॥७॥

सूत जी कहते हैं—वराहदेव से धरिणी देवी ने जब यह कहा तब भगवान् ने इस प्रकार से प्रसन्न होकर स्तिमित नेत्रों से उनको उत्तर दिया।।७।।

श्रीवराह उवाच

शृणु देवि परं गुह्यं सद्यः सम्पत्तिकारकम्। भूमिदं पुत्रदं गोप्यमप्रकाश्यंकदाचन॥८॥

किं च शुश्रूषवे वाच्यं भक्ताय नियतात्मने॥९॥
ॐ नमः श्रीवराहाय धरण्युद्धरणाय च। वह्निजायासमायुक्तः सदाजप्योमुमुक्षुभिः॥१०॥
अयं मन्त्रो धरादेवि सर्वसिद्धिप्रदायकः।
ऋषिः सङ्कर्षणः प्रोक्तोदेवता त्वहमेव हि॥११॥
छन्दः पङ्क्ति समाख्याता श्रींबीजं समुदाहृतम्।
चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रं सद्गुरोर्लब्धतन्मनुः॥१२॥
जुहुयात्पायसान्नम्वैक्षौद्रसर्पिःसमन्वितम्। अथध्यानम्प्रवक्ष्यामिमनःशुद्धिप्रदायकम्॥१३॥
शुद्धिस्फटिकशैलाभं रक्तपद्मदलेक्षणम्। वराहवदनं सौम्यञ्चतुर्बाहुं किरीटिनम्॥१४॥
श्रीवत्सवक्षसं चक्रशङ्खाभयकराम्बुजम्। वामोरुस्थितयायुक्तं त्वया मां सागराम्बरे॥१५॥
रक्तपीताम्बरधरं रक्ताभरणभूषितम्। श्रीकूर्मपृष्टमध्यस्थशेषमूर्त्यब्जसंस्थितम्॥१६॥
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं सदा चाऽष्टोत्तरं शतम्।
सर्वान्कामानवाप्नोति मोक्षञ्चाऽन्ते व्रजेद् ध्रुवम्॥१७॥
प्रोक्तंमया ते धरणियत्पृष्टोऽहंत्वयाऽमले। अतः किन्ते व्यवसितम्ब्रूहि तद्विमलानने॥१८॥

वराहदेव कहते हैं—हे देवी! सद्यः सम्पतिकारक, भूमिप्रद, पुत्रप्रद तथा परम गुप्त मन्त्र को सुनो। लेकिन इसे सुश्रूषाशील नियतात्मा भक्त से ही कहे। मुमुक्षुगण "ॐ नमः श्री वराहाय" के साथ वह्निजाया (स्वाहा) का योग करें। अतएव मन्त्रोद्धार होगा "ॐ नमः वराहाय स्वाहा"। इसका सतत् जप करें। हे धरादेवी! यह मन्त्र सर्वसिद्धिदायक है। इसके ऋषि हैं संकर्षण। देवता हूं मैं वराहदेव! छन्दः है पंक्ति। बीज है श्रीं। इसको सद्गुरु से प्राप्त करके चार लाख जप करे तथा मधु-घृत मिश्रित पायसान्न से (दशांश) होम करे। तदनन्तर मनः शुद्धिदायक वराहदेव का ध्यान करे। वराहदेव भी देहप्रभा शुद्ध स्फटिक जैसी है। नेत्र लाल कमलवत् हैं। मुख वराहमुख के समान तथा सौम्य है। इनकी चार बाहु है। मस्तक पर मुकुट है, वक्ष पर श्रीवत्समणि, चारों बाहुओं में चक्र, शंख, अभयमुद्रा तथा पद्म है। हे सागररूपी वस्त्र धारण करने वाली! तुम मेरे वाम उरु पर सदा मिलित रूप से स्थित हो।

वाराहदेव का परिधान रक्त-पीत वस्त्र है। वे रक्तवर्ण आभरणों से भूषित हैं। वे कूर्मपृष्ठ पर स्थित शेषनाग के मस्तकस्थ कमल पर स्थित हैं। यह ध्यान करके सर्वदा १०८ मन्त्र जप करें। ऐसा करने से सभी कामनायें प्राप्त होती हैं तथा अन्त में मोक्ष मिलता है। यह ध्रुव सत्य है। हे अमलानने! धरणी! तुमने जो कुछ प्रश्न किया था, उसका मैंने उत्तर प्रदान किया। अब जो मुझसे जानना चाहती हो वह कहो।" वराहदेव का यह वाक्य सुनकर पृथिवी देवी पुनः कहने लगीं।।८-१८।।

श्रीसूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा ततो भूमिः पप्रच्छपुनरेवतम्। केनवाऽनुष्ठितन्देव पुराप्राप्तम्फलञ्च किम्॥१९॥
इति पृष्टः पुनर्देवः श्रीवराहोऽब्रवीदिदम्। पुरा कृतयुगे देवि धर्मोनाम मनुर्महान्॥२०॥

ब्रह्मणोऽमुं मनुं लब्ध्वा जप्त्वाऽस्मिन्धरणीधरे।
माञ्च दृष्ट्वा वरं लब्ध्वा प्राप्तोऽभून्मामकम्पदम्॥२१॥
इन्द्रोदुर्वाससःशापात्पुराभ्रष्टस्त्रिविष्टपात्। अनेनेष्ट्वाऽत्र मां देवि पुनःप्राप्तिस्त्रिविष्टपम्॥२२॥
अन्येऽपि मुनयो भूमे ! जप्त्वा प्राप्ताः पराङ्गतिम्।
अनन्तः पन्नगाधीशो ह्यमुं लब्ध्वाऽथ कश्यपात्॥२३॥
श्वेतद्वीपे जपित्वैव बभूव धरणीधरः। तस्माज्जप्यः सदा चेह मनुष्यैश्च धरार्थिभिः॥२४॥

सूत जी कहते हैं—वराह देव से धरती कहती हैं—"हे देव! पूर्वकाल में किसने इसका अनुष्ठान किया था तथा उनको क्या फल मिला? तब पुनः प्रश्न करने पर वराहदेव कहने लगे—"हे देवी! पूर्वकाल में धर्म नामक श्रेष्ठ मनु थे। उन्होंने ब्रह्मा से यह मन्त्र पाकर जप किया था। हे देवी! तदनन्तर उन्होंने मेरा दर्शन पाकर मुझसे वरलाभ भी किया। हे देवी! पूर्वकाल में इन्द्र दुर्वासा के श्राप के कारण स्वर्ग से भ्रष्ट हो गये। हे देवी! उन्होंने भी इसी मन्त्र से मेरी पूजा की थी। उनको इस मन्त्र प्रभाव से पुनः स्वर्गराज्य मिला। हे देवी! और भी अनेक मुनि इस वराहमन्त्र का जप करके परमगति को प्राप्त कर गये। नागराज अनन्त ने कश्यप ऋषि से इस मन्त्र को प्राप्त किया। उन्होंने श्वेतद्वीप में रहकर इसका जप किया। इसके प्रभाव से वे पृथिवी धारण में समर्थ हो गये। अतः इस समय भुक्तिकामी (भोगार्थी) मानव इस मन्त्र का सतत् जप करें।।१९-२४।।

श्रीसूत उवाच

एतच्छ्रुत्वाऽथ सुप्रीता पुनः प्राह धराधरम्॥२५॥

श्री सूत कहते हैं— यह सुनकर धरणी ने पुनः धराधरनाथ से प्रश्न किया।।२५।।

धरण्युवाच

वेङ्कटाख्येमहाशैले श्रीनिवासोजगत्पतिः। कदाह्यायातिदेवेश श्रीभूमिसहितोऽमलः॥२६॥
कथं कल्पान्तरस्थायी भविष्यति जनार्दनः। एतद्ब्रूहि वराहात्मन्महत्कौतूहलं मम॥२७॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसम्वादे श्रीवराहमन्त्राराधनविध्यादि
वर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

धरणी कहती हैं—श्रीनिवास, जगत्पति देवेश विमल वराह ने धरती के साथ वेंकटाचल पर किस समय आगमन किया तथा वहां जनार्दन कल्पान्तकाल में भी स्थायी थे, हे वराहात्मन! यह सब सुनने हेतु मुझे अत्यन्त कुतूहल हो रहा है। अतः कहिये।।२६-२७।।

।।द्वितीय अध्याय समाप्त।।

तृतीयोऽध्यायः

भगवान् का सर्वजन गोचरत्व, वसुदानोत्पत्ति

श्रीवराह उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि पुरावृत्तं वरानने !। श्रृणु पुण्यं महादेवि सभविष्यं सहोत्तरम्।।१।।
वैवस्वतेऽन्तरे देवि ! पूर्वे कृतयुगेऽन्तरे। वायोस्तपो महद् दृष्ट्वा श्रीभूमिसहितोऽनघे।
आगच्छच्छ्रीनिवासश्च स्वामिपुष्करिणीतटे।।२।।
दक्षिणेऽस्मिन्पुण्यतम आनन्दाख्यविमानके।
वसिष्यति च श्रीकान्तो वायोः प्रियकरो हरिः।।३।।
तदारभ्य हृषीकेशः सेनान्याराधितोऽनिशम्।
आकल्पान्तमदृश्योऽस्मिन्विमानेऽसौ वसिष्यति।।४।।

श्री वराहदेव कहते हैं—अहो! वरानने! मैं तुमसे प्राचीन आख्यान कहता हूं। हे महादेवी! तुम भूतकाल में अतीत हो गये तथा भविष्य में आने वाले सभी वृत्तान्त को सुनो। हे निष्पापे! पूर्वकाल में सत्ययुग के वैवस्वत मन्वन्तर में वायु की महान् तपस्या को देखकर श्रीनिवास देव पृथिवी के साथ स्वामिपुष्करिणी तीर्थ आये। वायु का प्रिय करने वाले श्रीपति हरी स्वामिपुष्करिणी में परम-पावन आनन्द नामक विमान में निवास करते थे तथा तब वे हृषिकेश हरि कार्त्तिकेय द्वारा निरन्तर आराधित होकर कल्पान्त कालपर्यन्त इसी विंमान में अदृश्य होकर निवास करते हैं।।१-४।।

धरण्युवाच

अदृश्यो भगवान्मर्त्यैः कथं दृश्यो भविष्यति।।५।।
श्रीनिवासोऽपि देवेशो भवद्दक्षिणपार्श्वगः। एतद्वद सुराधीश ! जनैराराध्यते कथम्।।६।।

धरणी कहती हैं—मनुष्यों से अदृश्य देवेश भगवान् श्रीनिवास आपके दक्षिण पार्श्वग होकर कैसे दृश्य हुये थे तथा मनुष्यों ने उनकी आराधना किस प्रकार से किया था? हे देवेश! यह सब कहें।।५-६।।

श्रीवराह उवाच

अगस्त्योऽस्मिन्समासाद्यदृष्ट्वादेवंसनातनम्। आराध्यद्वादशाब्दंतंप्रीणयित्वापुनःपुनः।।७।।
ययाचे तत्र सान्निध्यंभवान्दृश्योभवत्विति। एवमुक्तोहृषीकेशः श्रीभूमिसहितो धरे।।८।।

वराहदेव कहते हैं—हे महर्षि! अगस्त्य ने यहां आकर सनातन वराह देव का दर्शन किया था तथा द्वादश वर्ष पर्यन्त पुनः आराधना द्वारा उनको प्रसन्न किया। उन्होंने "भगवान् दिखाई पड़ें" यह कहकर उनके सान्निध्य की कामना किया। हे धरती! तब ऋषि अगस्त्य ने हृषीकेश तथा धरणी की प्रार्थना किया। इस पर भगवान् कहने लगे।।७-८।।

श्रीभगवानुवाच

अहं दृश्यो भविष्यामित्वत्कृते सर्वदेहिनाम्। एतद्विमानंदेवर्षे न दृश्यं स्न्यात्कदाचन्।।९।।
आकल्पान्तं मुनीन्द्राऽस्मिन्दृश्योऽहं नाऽत्र संशयः।
मुनिस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रीतः प्रायात्स्वमाश्रमम्।।१०।।
ततश्चतुर्भुजो देवः स दृश्योऽभून्नरादिभिः।
विमाने मुनिचिन्त्येऽस्मिन्नासिता च तथोत्तरम्।।११।।
आराध्यमानः स्कन्देन वायुना सेवितः सदा। एवं गते महाकाले चतुयुगसमन्विते।।१२।।
अष्टाविंशे तु सञ्जाते द्वापरान्ते वसुन्धरे। युद्धे च भारतेऽतीते तिष्ये सतियुगे तथा।।१३।।
विक्रमार्कादयो भूपाःशकाः शूद्रादयस्तथा। गमिष्यन्तिस्वर्गलोकं मामज्ञात्वावरानने।।१४।।

श्री भगवान् कहते हैं—तुम्हारी प्रार्थना द्वारा मैं शरीरधारियों को दृश्य अवश्य रहूंगा, तथापि हे देवर्षि! यह विमान कभी भी कोई देख नहीं सकेगा। मैं कल्पान्तपर्यन्त मुनिगण को दिखलाई पडूंगा, तथापि वायु एवं कार्त्तिकेय द्वारा सतत् आराधित होकर, वे इन मुनियों द्वारा चिन्तित विमान पर बैठ नहीं सकेगें। हे वसुन्धरे! इस प्रकार से चतुर्युग समन्वित दीर्घकाल व्यतीत हो जाने पर द्वापर युगावसान होने पर २८वें युग में महाभारत युद्ध समाप्त होने के समय तिष्ययुग आयेगा। हे वरानने! तब विक्रम तथा अर्क आदि राजा एवं शक तथा शूद्र मुझे न जानने के कारण स्वर्ग प्रस्थान करेगें।।९-१४।।

ततः सोमकुलोद्भूतो मित्रवर्मा महारथः। तुण्डीरमण्डले राजा नारायणपुरे वसन्।।१५।।
भविष्यति वरारोहेमहाभाग्योदयो महान्। तस्मिञ्छासतिभूलोकं धर्मेणपृथिवीपतौ।।१६।।
अकृष्टपच्या पृथिवी सर्वसस्यविभूषणा। निरीतिकोऽभवत्सर्वो जनोधर्मसमन्वितः।।१७।।
तस्य पत्नी समभवत्पाण्ड्यकन्यामनोरमा।
तस्य जज्ञे कुलोत्तंसो वियन्नामासुतोऽस्यवै।।१८।।
तस्य पत्नीतुधरणीनाम्नासीच्छकवंशजा। तस्मिन्राज्यंविनिक्षिप्यमित्रवर्मानृपोत्तमः।।१९।।
ययौ तपोवनं पुण्यं वेङ्कटाद्रेः समीपतः।।२०।।

हे वरारोहे! तब चन्द्रवंशोत्पन्न महाभाग्ययुक्त महारथी चित्रवर्मा तुण्डीरमण्डल के नारायणपुर का राजा होकर श्रेष्ठत्व लाभ करेगा। यह धर्मात्मा राजा धर्मतः भूलोक का शासन करेगा, इस कारण से बिना वर्षा के ही पृथिवी सर्वशस्यभूषित रहेगी। उसके राज्य में कहीं भी अनावृष्टि अथवा अतिवृष्टि नहीं होगी। सभी मानव धार्मिक रहेंगे। उस समय मनोरमा पाण्ड्यराजपुत्री उसकी पत्नी होगी तथा आकाश नामक उसका कुलभूषण पुत्र जन्म लेगा। इस आकाश की पत्नी शक वंश में उत्पन्न धरणी नाम वाली होगी। तत्पश्चात् नृपप्रवर चित्रवर्मा अपने पुत्र आकाश को राज्यभार देकर वेंकटाचल के निकट एक पवित्र तपोवन में चले जायेंगे।।१५-२०।।

आकाशनामा तु महान्राजाऽभूत्सार्वभौमकः। एकदारव्रतो राजाधरणीसक्तचेतनः।।२१।।
यज्ञार्थं शोधयामास भुवमारणितीरतः। काञ्चनेन हलेनैव कृष्यमाणे धरातले।।२२।।

बीजमुष्टिं विकिरता दृष्टा कन्या धरोद्गता। पद्मशय्यागता रम्या सर्वलक्षणक्षिता॥२३॥
तप्तजाम्बूनदमयी पुत्रिकेव विराजती। तां दृष्टा स महीपालो विस्मयोत्फुल्ललोचनः॥२४॥
आदाय तनयाचेयं ममैवेति पुनःपुनः। जहर्ष मन्त्रिभिश्चैनं प्राह वागशरीरिणी॥२५॥

राजा आकाश द्वितीय विवाह नहीं करेगा। वह सदा अपनी पत्नी में ही निरत रहा करेगा। यह आकाश सार्वभौम राजा होगा। वह यज्ञ के लिये आरणी नदी के तटभाग की भूमि का शोधन करेगा। तदनन्तर वह स्वर्णमय हल से भूमि जोतकर बीज की मुट्ठी भर-भर कर छिड़केगा। तब वह भूतल पर एक कन्या देखेगा। यह कन्या कमलशय्या पर लेटी होगी। वह रमणीया एवं सर्वलक्षणसम्पन्ना भी होगी। वह मानो तप्तस्वर्ण की पुतली जैसी शोभित होकर विराजमान रहेगा। इस कन्या को देखकर आकाश राजा के नेत्र विस्मय से उत्फुल्ल होगा तथा उसे लेकर राजा कहेगा—"ये मेरी ही कन्या है।" यह कहते-कहते वे मन्त्रीगण के साथ अह्लादित होगा। तभी एक आकाशवाणी राजा को सम्बोधित करके कहा।।२१-२५।।

सत्यं तवैव तनया वर्धयस्व सुलोचनाम्। ततः प्रीतमना राजा स्वपुरं प्रविवेश ह॥२६॥
आहूय धरणीं देवीमिदमाह महीपतिः। देवदत्तामिमां पश्य भूतलादुत्थितां मम॥२७॥
आवाभ्यां तदपुत्राभ्यां पुत्रीयं भविता ध्रुवम्।
इत्युक्त्वा प्रददौ देव्या हस्ते प्रीत्या वियन्नृपः॥२८॥
तस्यांगृहं प्रविष्टायांधरणीगर्भमादधौ। वियन्नृपश्चसुप्रीतोवीक्ष्यस्निग्धविलोचनाम्॥२९॥
उवाच फलिता सुभ्रर्लता सान्तानिकी च मे॥३०॥

(यद्यपि यहां भविष्यकालीन घटना का वर्णन भगवान् ने किया था, तथापि पाठकों की सुविधार्थ उसे अनुवाद में भूतकाल में लिख रहा हूं।) "यह वास्तव में तुम्हारी कन्या है। तुम इस सुलोचना कन्या का पालन करो।" तदनन्तर महीपति ने प्रसन्न मन से अपने पुर में प्रवेश किया तथा सहधर्मिणी देवी धरणी से कहा "हे देवी! यह पृथिवी से निकली देवदत्ता कन्या है। इसे देखो। मुझे पुत्र-कन्या नहीं है। ये निश्चय ही मेरी कन्या के रूप में विराजित रहेगी।" राजा आकाश ने यह कहकर प्रेमपूर्वक उस कन्या को अपनी पत्नी के हाथों में सौंप दिया। तदनन्तर इस शुभलक्षणा कन्या ने इस प्रकार राजा के गृह में प्रवेश किया। तब रानी को कुछ दिनों पश्चात् गर्भ रह गया! राजा आकाश ने स्निग्ध नेत्रों वाली अपनी पत्नी को देखकर प्रसन्न मन से कहा—"हे सुभ्रु! आज मेरी सन्तानप्रदा लता में फल लग गया।"।।२६-३०।।

अथ सा धरणी देवी काले कमललोचना। सुप्रशस्ते मुहूर्ते च स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु।
ग्रहेषु सुषुवे पुत्रं मेषस्थे च दिवाकरे॥३१॥
देवदुन्दुभयो नेदुःपुष्पवृष्टिर्गृहेऽपतत्। ववौ वायुः सुखस्पर्शस्तज्जन्मदिवसे तदा॥३२॥
पुत्रसूतिप्रवक्तॄणां सुप्रीतः पुत्रजन्मनि। सर्वस्वदानमकरोच्छत्रचामरवर्जितम्॥३३॥
कपिलाकोटिदानंचबृषभणां शताधिकम्। दिवसेद्वादशे पुण्येजातकर्मादिकाःक्रियाः।
चकार नामधेयं च वसुदान इति स्वयम्॥३४॥

तदनन्तर यथाकाल कमललोचना देवी धरणी ने एक पुत्र को जन्म दिया। उस पुत्र के जन्मकाल के समय पांच ग्रह उच्चस्थ थे। तब सूर्य मेष राशि में स्थित थे। अतः यह मुहूर्त्त अत्यन्त प्रशस्त था। देव दुन्दुभि निनादित हो रही थी तथा गृह में पुष्पवृष्टि होने लगी। वायु भी सुखस्पर्श पूर्वक बहने लगी। पुत्रजन्म से हर्षित राजा के पास जो-जो आकर पुत्रजन्म वृत्तान्त कहता गया, राजा ने अपना छत्र-चामर छोड़कर सर्वस्व उन लोगों को दान कर दिया। उन्होंने करोड़ों कपिला गौदान करने के साथ १०० वृष भी दान किया। पुत्र का बारहवें दिन जातकर्म आदि सम्पादित किया। उन्होंने स्वयं अपने पुत्र का नाम 'वसुदान' रखा।।३१-३४।।

श्रीवराह उवाच

आकाशतनयो देवि वसुदानो मनोरमः। ववृधे दिवसैर्बालः शुक्लपक्ष इवोडुराट्।।३५।।
उपनीतोविनीतोऽसौगुरुभिर्ब्रह्मपारगैः। पितुरस्त्राणिशस्त्राणिमन्त्रवत्सोऽप्यशिक्षत।।३६।।
चतुष्पादं धनुर्वेदं साङ्गोपाङ्गमधीतवान्। पिता तेनाऽतिबलिना दुराधर्षः परैरभूत्।।३७।।
आकाश इव निष्पङ्को ग्रीष्मेभानुमता युतः। वैशाख इव मध्याह्ने दुःसहोदुर्निरीक्षकः।।३८।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणी-वराहसम्वादेऽगस्त्यप्रार्थनयाभगवतः सर्वजनदृग्गोचरत्वादिवर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः।।३।।

श्रीवराहदेव कहते हैं—हे देवी! मनोरम आकाशनन्दन बालक वसुमान शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की तरह दिनों-दिन वर्द्धित होने लगे। ब्रह्मपारंगत गुरुगण ने विनीत वसुमान का यज्ञोपवीत संस्कार किया तथा पिता के पास उसने मन्त्रयुक्त अस्त्र-शस्त्र का शिक्षण ग्रहण किया। उन्होंने पिता से चतुष्पाद धनुर्वेद का अध्ययन किया। पिता आकाश वसुदान के प्रभाव से शत्रुओं के लिये अवध्य हो गये। वह वसुदान ग्रीष्मकालीन सूर्ययुक्त निर्मल मध्याह्न आकाश के समान दुःसह तथा दुर्निरीक्ष्य हो गये।।३५-३८।।

।।तृतीय अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुर्थोऽध्यायः

पद्मावती के पास नारद का आगमन, नारद द्वारा पद्मावती शरीर लक्षण कथन

धरण्युवाच

उक्तं भगवता तस्य वियत्पुत्रस्य नाम च।
अयोनिजायास्तत्पुत्र्याः किं नाम च तदाऽकरोत्।।१।।

धरणी कहती हैं—हे भगवान्! आपने आकाशनन्दन का नाम कहा तथापि आकाश राजा की उस अयोनिज कन्या का क्या नामकरण हुआ?।।१।।

श्रीसूत उवाच

इति पृष्टः पुनः प्राह श्रीवराहो जगत्पतिः॥२॥

सूत जी कहते हैं—धरणी के प्रश्न करने पर भगवान् पुनः कहने लगे।।२।।

श्रीवराह उवाच

आकाशराजो मतिमांस्तां दृष्ट्वा कमलेक्षणाम्॥३॥
पद्मिनीति च नाम्ना वै चकार वसुधासुताम्।
तां तु यौवनसम्पन्नां सखीभिःपरिवारिताम्॥४॥
आरामे विहरन्तीं च शुककोकिलानादिते। यदृच्छयाऽऽगतस्तत्रनारदो मुनिसत्तमः॥५॥
वनलक्ष्मीमिवाऽऽलोक्य विस्मयादिदमब्रवीत्॥६॥

श्रीवराह कहते हैं—मतिमान आकाशराज ने धरणी की कमललोचना कन्या को पद्म पर शायित देखकर उसका नाम रक्खा था पद्मिनी। यौवन सम्पन्ना पद्मिनी एक दिन सखीगण से परिवृत होकर शुक-कोकिल नादित गृह में विहार कर रही थी। तभी मुनिश्रेष्ठ नारद अपनी इच्छा से वहां आये तथा वनलक्ष्मी के समान उस कन्या को देखकर कहने लगे।।३-६।।

नारद उवाच

काऽसि कस्य सुता भीरु! हस्तं दर्शय मे तव।
इत्युक्ता सा सुचार्वङ्गी स्वात्मानं मुनयेऽब्रवीत्॥७॥
वियद्राजसुता ब्रह्मल्लक्षणानि वदस्व मे। इत्युक्तः स तदा प्राह नारदो मुनिसत्तमः॥८॥

नारद कहते हैं—"हे भीरु! तुम किसकी कन्या हो तथा तुम कौन हो? मुझे अपना हाथ दिखाओ।" नारद द्वारा यह पूछने पर मनोहर अंगों वाली कन्या ने मुनि से आत्मपरिचय दिया तथा कहा—"हे ब्रह्मन्! मैं राजा आकाश की कन्या हूं। अब आप मेरी हस्तरेखा देखकर हस्तलक्षण कहिये।" तब कन्या की प्रार्थना सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारद कहने लगे।।७-८।।

नारद उवाच

शृणु त्वं चारुवदने! लक्षणानि वदामि ते।
पादौ प्रतिष्ठितौ सुभ्रुरक्तपद्मदलान्वितौ॥९॥
पादाङ्गुल्यः समा रक्ता रक्ततुङ्गनखान्विताः। गुल्फौ गूढौ समावेतौजङ्घेचारोमशेशुभे॥१०॥
जानुनीसमसुस्निग्धे समावूरू क्रमादुरू। नितम्बौ पृथुलौ पीनौ जघनंचिन्त्यमेव हि॥११॥
नाभिर्मण्डलवान्निम्नःपार्श्वौते मेदुरावुभौ। त्रिम्वलीललितंमध्यंरोमराजिविराजितम्॥१२॥

स्तनौ पीनौ घनौ स्निग्धावुन्नतौ मग्नचूचुकौ। करौतेरक्तपद्माभौपद्मरेखासमन्वितौ।
सुसूक्ष्मौ रक्तसत्पर्व निरन्तरसमाङ्गुली॥१३॥
शुकतुण्डसमाकारानखपङ्क्तिविराजितौ। दीर्घौच कोमलौ भद्रे भुजौतेपुष्पदण्डवत्॥१४॥

नारद कहते हैं—हे सुन्दरमुखवाली ! मैं लक्षणों को कहता हूं। सुनो। हे सुभ्रु ! तुम्हारा चरणतल तो पद्मदल की तरह है। पैर की उगलियां सटी हुई हैं। नख उच्च तथा रक्तवर्ण हैं। गुल्फद्वय दृढ़ तथा परस्परतः समान हैं। जंघाद्वय रोमरहित तथा सुन्दर हैं। जानुद्वय समान तथा स्निग्ध हैं। उरुद्वय समान हैं तथा क्रमशः स्थूल होते गये हैं। नाभि निम्न तथा मण्डलयुक्त है। पार्श्वद्वय कोमल हैं। मध्यदेश त्रिवलीरेखा द्वारा मनोहर तथा रोमावलि से युक्त है एवं स्तनद्वय घन, पीन, स्निग्ध, उन्नत तथा सुन्दर चुचुक वाले हैं। ये सभी शुभलक्षण होते हैं। हे भद्रे! तुम्हारी हथेलियां रक्तपद्मवर्णवाली तथा सुसूक्ष्म रेखा से शोभायमान हैं। उंगलिया परस्परतः सटी हैं। अंगुलियों का पर्व रक्ताभ है। वे निरन्तर समान तथा सुन्दर है। नखर पंक्ति सभी तोते के चोंच जैसी है। बाहुद्वय पुष्पदण्ड के समान दीर्घ है।।९-१४।।

पृष्ठं ते वेदिवद्भाति विलग्नमृजु मध्यमम्। कण्ठस्तु रक्तोदीर्घश्चस्कन्धौचावनतौशुभे॥१५॥
मुखं प्रसन्नं सततमकलङ्कशशिप्रभम्। कपोलौ कनकादर्शसदृशौकुण्डलोज्ज्वलौ॥१६॥
तिलपुष्पसमाकारा नासिका ते शुभानने। अकलङ्काष्टमीचन्द्रसदृशोऽतिमनोहरः॥१७॥
दृश्यतेऽयं ललाटस्ते नीलालकसुशोभितः। मूर्धा तेसमघृत्तश्चस्निग्धायतकचान्वितः॥१८॥
स्मितसंशोभिदशनं बिम्बाधरसमन्वितम्।
मुखं ते विष्णुयोग्यं स्यादिति मे निश्चिता मतिः॥१९॥
नाभिस्ते दक्षिणावर्त आवर्तइवगाङ्गजः। त्वंहिक्षीराब्धिसम्भूतालक्ष्मीरिवहिदृश्यसे॥२०॥

हे शुभे! तुम्हारा पृष्ठदेश वेद की तरह शोभायमान है। मध्यदेश विलग्न तथा सीधा है। कण्ठ रक्तवर्ण तथा दीर्घ है। स्कन्ध (कंधे) अवनत सा है। मुख निष्कलङ्क चन्द्रमा के समान सदा प्रसन्न मुद्रायुक्त है। कपोल स्वर्ण दर्पण की तरह शोभित हो रहे हैं। वे कुण्डकलाकृति तथा उज्वल हैं। नासिका तिल पुष्प जैसी है। हे शुभानने ! नील अलकों से शोभित ललाट अष्टमी के निष्कलंक चन्द्रमा के समान मनोहर है। तुम्हारी मूर्द्धा समवृत्ताकार स्निग्ध तथा दीर्घ केश समन्वित है। तुम्हारे दांत ईषत् हास्य एवं बिम्बफल वर्णवत् अधरों से समन्वित होकर शोभित हो रहे हैं। तुम्हारा मुख देखकर यही प्रतीत हो रहा है कि तुम तो विष्णु के योग्य पात्री हो। तुम्हारी नाभी गंगा के आवर्त्त के समान दक्षिणावर्त्त है। इसलिये तो तुम क्षीरसमुद्र की कन्या लक्ष्मी लग रही हो।।१५-२०।।

श्रीवाराह उवाच

इत्युक्त्वा पूजितस्ताभिर्नारदोऽन्तर्दधे तदा।
एतच्छ्रुत्वाऽथ तत्सख्यस्तामूचुः पद्मिनीं सखीम्॥२१॥
वनं गच्छाम? पुष्पार्थं वसन्तःसमुपागतः। कर्णिकाराश्चचूताश्चचम्पकाःपारिभद्रकाः॥२२॥
पलाशाः पाटलाः कुन्दा रक्ताशोकाश्च पुष्पिकाः।
पद्मिन्यः सिन्धुवाराश्च मालत्यो यूथिका लताः॥२३॥

कह्लारकरवीराश्च सङ्घर्षादिव पुष्पिताः। पुष्पावचनयनं कुर्मो वनेऽस्मिन्सुमनोहरे॥२४॥
इत्युक्त्वा ता वनंजग्मुराकाशतनयायुताः। पुष्पाण्याहरमाणास्तुविचरन्त्यस्ततस्ततः॥२५॥

श्रीवराह देव कहते हैं—नारद ऋषि ने सखियों के सामने पद्मिनी से यह कहा। तदनन्तर उन्होंने वहां उनकी पूजा ग्रहण किया तथा अन्तर्हित् हो गये। तत्पश्चात् नारद के वाक्य का स्मरण करके सखियों ने पद्मिनी से कहा—"हे राजकुमारी! वसन्तकाल आ गया है। चलो! हम सब पुष्प चयन करने वन में जायें। हे सखी! यह देखो! कर्णिकार, आम्र, चम्पा, पारिभद्रक, पलाश, पाटल, कुन्द, लाल अशोक, पद्मिनी, सिन्धुवार, मालती, यूथिका लता, कल्हार तथा कनेर पुष्प कामदेव के शरीर संघर्ष से पुष्पित हो रहे हैं। चलो! हम सभी मनोहर कानन में जाकर पुष्प एकत्र करें। सखियां यह कहकर आकाशराज पुत्री पद्मिनी के साथ वन में गईं। वे वहां इधर-उधर विचरती पुष्प चयन करने लगीं।।२१-२५।।

कञ्चिद्गजेन्द्रंददृशुःशुभ्रदन्तद्वयोज्ज्वलम्। गण्डभित्तितलोद्भूतमदधाराद्वयोज्ज्वलम्॥२६॥
उन्नतं करिणीयूथैः समुपेतं रजोज्ज्वलम्। फूत्कारिपुष्करप्रोद्यच्छीकरापूरिताननम्॥२७॥

तब उन्होंने वहां एक जंगली गजराज को देखा। इस गज के दोनों दांत शुभ्र तथा उज्वल थे। उसके गण्डदेश के दोनों ओर से दो मद्धारा क्षरित हो रही थी। वह गज हथिनियों के झुण्ड से मिलित होकर उनके उज्वल रज से रंजित हो रहा था। वह अपनी सूंड़ ऊपर उठाकर फूत्कार कर रहा था, जिसके सूड़ से निकले जलकण से उसका मुख आच्छन्न हो गया था।।२६-२७।।

दृष्टा चोद्विग्नहृदया वनस्पतिमुपाश्रिताः। एतस्मिन्नन्तरे चाऽऽशु ददृशुर्हयमुत्तमम्॥२८॥
अकलङ्केन्दुधवलं जाम्बूनदपरिष्कृतम्। स्फुरद्विद्युल्लतायुक्तशरन्मेघमिवोन्नतम्॥२९॥
तस्मिंस्तु पुरुषं कृष्णं मदनाकारवर्चसम्। पुण्डरीकदलाकारर्णान्तायतलोचनम्॥३०॥
सुसूक्ष्मक्षौमसम्वीतनीलचूलिकयोज्ज्वलम्।
पद्मरागमणिद्योतिस्फुरत्कुण्डलमण्डितम्॥३१॥
सुवर्णरत्नखचितशार्ङ्गदिव्यधनुर्धरम्। अपरेण करेणैव वहन्तं काञ्चनं शरम्॥३२॥
पीतकक्षौमसम्वीतकटिदेशं सुमध्यमम्। रत्नकङ्कणकेयूरकटिसूत्रविराजितम्॥३३॥
विशालवक्षः संशोभिदक्षिणावर्तसंयुक्तम्। स्वर्णयज्ञोपवीतेनस्फुरत्स्कन्धंमनोरम्॥३४॥
ईहामृगं समुदृश्य महावेगादनुदुतम्। तं दृष्टा विस्मिता नार्यः सस्मितास्तस्थुरत्रवै॥३५॥

इस भीषण गज को देखकर वे सभी उद्विग्न हो उठीं तथा उन्होंने एक झाड़ी के आश्रय में जाकर स्वयं को छिपाया। तभी उन सब को वहां एक उन्नत उत्तम अश्व दिखलाई पड़ा। वह अश्व निष्कलंक चन्द्रमा के समान धवलवर्ण तथा स्वर्णालंकार भूषित होने के कारण चमकती विद्युल्लता जालयुक्त शरत्कालीन मेघ के समान शोभायमान हो रहा था। इस अश्व पर मदन (काम) के समान कमनीय एक कृष्णवर्ण पुरुष सवार था। उसके दोनों नेत्र पद्मदल के समान तथा कान तक विस्तृत थे। उसका वस्त्र सूक्ष्म रेशम का था। मस्तक पर उज्वल कृष्णवर्ण की शिखा थी। उसकी कान्ति पद्मराग मणि के समान थी तथा कानों में उज्वल कुन्तल लटक रहे थे। उसके एक हाथ में रत्नजड़ित दिव्य शार्ङ्गधनुष था। दूसरे हाथों में स्वर्णमय बाण उसने धारण किया था।

उसका सुमध्यम कटिप्रदेश पीत वर्ण के रेशमी वस्त्र से ढका था। उसने बाहु में रत्न कंकण, कानों में केयूर तथा कमर में कटिसूत्र पहन रखा था। उसके विशाल वक्ष पर दक्षिणावर्त्त यज्ञोपवीत शोभित होने से उसके मनोहर कंधे उज्वल लग रहे थे। वह एक शार्दूल की ओर शरसन्धान करते तीव्रंगति से घोड़ा दौड़ा रहा था। वे स्त्रियां उसे देखकर विस्मित हो गयीं तथा वे जहां छिपी थीं, वहीं खड़ी रह गयीं।।२८-३५।।

तं दृष्टा हयमारूढं गजेन्द्रोनम्रमस्तकः। तुण्डमुद्धृत्य गर्जन्वै विनिर्वृत्यययौवनम्।।३६।।
तस्मिन्गातेगजेतत्र हयारूढः समाययौ। ईहामृगं विचिन्वानः पुष्पलावीसमीपतः।।३७।।
ताः समेत्य स चोवाच तुरगोपरिसंस्थितः। अत्रागतोमृगःकश्चिदीहामृगइतीरितः।।३८।।
दृष्टो वा भवतीभिः स ब्रूत मे कन्यका इति।।३९।।

वह गजराज इस घुड़सवार को देखकर अपनी सूंड़ उठाकर मस्तक नत करके गर्जन करता अरण्य में चला गया। तदनन्तर हाथी से छुटकारा पाने पर वह अश्वारूढ़ पुरुष शार्दूल (व्याघ्र) को खोजते हुये इन पुष्प चयन करने वाली स्त्रियों के समीप आया तथा घोड़े पर ही बैंठे हुये उनसे पूछा—"हे कन्याओं! इधर एक शार्दूल आया था, क्या तुमलोगों ने उसे देखा था ? यदि देखा हो तब मुझे बतलाओ।।३६-३९।।

श्रीवराह उवाच

प्रत्यूचुस्तास्तु तं कन्या दृष्टोऽस्माभिर्न कश्चन।।४०।।
किमर्थमागतोऽस्माकं वनम्वरधनुर्धरः। अत्रावध्या मृगाः सर्वे वर्तमाना निषादप !।।४१।।
आशु गच्छ वनादस्मादाकाशनृपपालितात्। इति तासाम्वचःश्रुत्वाहयादवरुरोहसः।।४२।।
कास्तु यूयमियञ्चापि कन्यकाम्बुजसन्निभा। सुभगाचारुसर्वाङ्गीपीनोन्नतपयोधरा।
ब्रूत मेऽहं गमिष्यामि श्रुत्वा स्वस्याऽऽलयङ्गिरिम्।।४३।।

श्रीवराहदेव कहते हैं—उस पुरुष की बात का इन कन्यागण ने उत्तर देते हुये कहा—"हमने कुछ भी नहीं देखा। हे धनुर्धरश्रेष्ठ! हमारे वन में क्यों आये हो? हे निषादपति! इस वन में जितने भी पशु विचरण करते हैं, वे सभी अवध्य हैं। वे राजा आकाश द्वारा पालित हैं। तुम इस वन से शीघ्र चले जाओ।" वह पुरुष यह कथन सुनकर घोड़े से नीचे उतरा तथा उसने सखीगण को सम्बोधित करके कहा—"हे कमलकान्ति कन्याओं! तुम सब कौन हो? यह सुभगा, मनोहर अंगों वाली उन्नत तथा पीन स्तनों वाली कन्या कौन है? यह सब सुनकर मैं अपने पर्वत स्थित गृह में चला जाऊंगा।।४०-४३।।

इति तस्या वचः श्रुत्वाधरण्यात्मजयेरिता। सखीपद्मावतीप्राह निषादम्पर्वतालयम्।।४४।।
आकाशराजतनया वसुधातलसम्भवा। अस्माकं नायिका शूर ! पद्मिनीनाम नामतः।।४५।।
ब्रूहि त्वं सुभगाकार ! किन्नामा कस्य वा सुतः।
जातिः का कुत्र ते वासः किमर्थन्त्वमिहाऽऽगतः।
इति पृष्टः स ताः प्राह मन्दस्मितमुखाम्बुजः।।४६।।

उसका वाक्य सुनकर रानी धरणी की पुत्री के संकेतानुसार उसकी सखी पद्मावती उस पर्वत निवासी निषाद से कहने लगी—"हे शूर! ये राजा आकाश की कन्या हैं, जो पृथिवी से निकली हैं। ये हमारी नायिका

हैं। इनका नाम है पद्मिनी। हे सौम्यदर्शन! अब यह कहो कि तुम कौन हो? किसके पुत्र हो, क्या नाम है? क्या जाति है? कहां निवास है? इस वन में आने का क्या कारण है?'' वह अश्वारोही वीर यह सुनकर अपने मन्द मुस्कान युक्त मुखकमल से कहने लगा।।४४-४६।।

दिवाकरकुलम्प्राहुरस्माकन्तुपुराविदः। तस्य नामान्यनन्वाति पावनानिमनीपिणाम्।।४७।।
वर्णतो नामतश्चापि कृष्णं प्राहुतपस्विनः। ब्रह्मद्विषां सुरारीणांयस्यचक्रंभयावहम्।।४८।।
यस्यशङ्खध्वनिं श्रुत्वामोहमीयुर्हि वैरिणः। यस्य वै धनुषस्तुल्यं धनुर्नैवाऽमरेष्वपि।।४९।।
तं मां वीरपतिं प्राहुर्वेङ्कटाद्रिनिवासिनम्। तस्मादद्रितटात्सोऽहं निषादैरनुगैर्वृतः।।५०।।
मृगयार्थं हयारूढो युष्माकं वनमागतः। मयाऽप्यनुद्रुतः कश्चिन्मृगो वायुगतिर्ययौ।।५१।।
तमदृष्ट्वावनं पश्यन्दृष्टवान्सुभगामिमाम्।
कामादिहागतोऽहंवोमयाकिंलभ्यतेत्वियम्।।५२।।

वह अश्वारोही कहता है—हे ललनाओं! पुराविदपण्डितगण मेरे वंश को सूर्यवंश कहते हैं। जिसका नाम अनन्त है, जिनका नाम मनीषीगण के लिये भी पवित्र है, तपस्वीगण जिसका वर्ण भी कृष्ण कहते हैं तथा जिसका नाम भी कृष्ण ही है, जिसका चक्र ब्रह्मद्वेषी दैत्यों के लिये भयावह है, वैरीगण जिसकी शंखध्वनि सुनकर मोहित हो जाते हैं, देवताओं के पास भी जिसके धनुष ऐसा धनुष नहीं है, वैसे मुझको विद्वान् लोग वेंकटाचलवासी वीरपति कहते हैं। मैं उस वेंकटाचल पर्वत की घाटी से निषादों के साथ अश्वारोहण करके आखेट के लिये तुम्हारे वन में आ गया। मैं वन में प्रवेश करते ही एक पशु का पीछा करने लगा। तब वह पशु भी द्रुतवेग से भाग गया। तब मैं उसे न पाकर इस वन में विचरण करते-करते यहां आ गया। तदनन्तर मैंने यहां इस सौम्यमुखी कामिनी को देखा जिसे देखकर कामार्त्त हो गया हूं। क्या मैं इसे प्राप्त कर सकता हूं?।।४७-५२।।

इति कृष्णवचः श्रुत्वाक्रुद्धास्ताःपुनरब्रुवन्। आकाशराजोदृष्ट्वात्वांकृत्वानिगडबन्धनम्।
यावन्नयति तावत्त्वं गच्छ शीघ्रं स्वमालयम्।।५३।।
तर्जितस्ताभिरेवं स हयमारुह्यशीघ्रगम्। युक्तः स्वानुचरैः सर्वैर्ययौ द्रुततरं गिरिम्।।५४।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचल-
माहात्म्ये धरणीवराहसम्वादे उद्यानवासिन्याः पद्मावत्याःसमीपे नारदगमन-
श्रीनिवासमृगयादिवर्णनंनामचतुर्थोऽध्यायः।।४।।

वे कुमारीगण इन कृष्ण का कथन सुनते ही क्रोधित हो गयीं तथा वे पुनः कहने लगीं—''इससे पहले कि आकाशराज यहां आकर तुमको जंजीर से बांधकर ले न जाये, उससे पहले तुम यहां से अपने घर भाग जाओ। इस प्रकार कुमारीगण से लांछित होकर कृष्ण अपने तेजगति वाले अश्व पर बैठा तथा अनुचरों के साथ गिरिगुहा में चला गया।।५३-५४।।

।।चतुर्थ अध्याय समाप्त।।

पञ्चमोऽध्यायः

पद्मावती के दर्शन से श्रीनिवास को मोह प्राप्ति, बकुलमालिका का वियद्राजपुर गमन, बकुलमालिका की उक्ति का वर्णन

श्रीवराह उवाच

सम्प्राप्यंचालयदिव्यमवतीर्यहयोत्तमात्। विसृज्यसोऽनुगान्सर्वान्देवान्कैरातरूपकान्॥१॥
विश्रमध्वमिति प्रोच्यविवेशमणिमण्डपम्। आरुह्य मणिसोपानंपञ्चकक्षाअतीत्य च॥२॥
मुक्तागृहं समासाद्य तस्मिँल्लोलायिते शुभे। नवरत्नमये मञ्चे सम्विवेशावशो हरिः॥३॥
संस्मरन्पद्मगर्भाभांतामेवायतलोचनाम्। तनुमध्यांपीनकुचांमन्दस्मितमुखाम्बुजाम्॥४॥
क्षीराब्धितनयामेव मेने पद्मोद्भवां शुभाम्। तस्यां गतमना देवः श्रीनिवासो मुमोह च॥५॥

श्रीवराहदेव कहते हैं—वह कृष्ण अपने गृह जाकर अश्व से उतरे तथा अनुरागपूर्ण होकर अपने अनुचर किरात वेशधारी देवताओं से कहा—"तुम सब विश्राम करो।" यह कहकर कृष्ण मणिमण्डप में प्रवेश कर गये। तत्पश्चात् वे श्रीहरि मणिमण्डप की मणिसोपान से पांच कक्षा ऊपर गये तथा मुक्तागृह में पहुंचकर क्रमशः मणिमण्डपस्थ शोभित मनोज्ञ नवरत्नमय मंच पर बैठ गये। रत्नमंच पर आसीन होकर उन्होंने पद्मगर्भ के समान आरक्त तथा आयतनेत्रों वाली क्षीणकटि पीनपयोधरा मन्द हास्ययुता उस कमलमुखी को स्मरण करके मन ही मन सोचा "यह पद्मोद्भवा शोभमाना कन्या निश्चित रूप से क्षीरसमुद्र की पुत्री लक्ष्मी ही है।" श्रीनिवास हरि इस प्रकार विचार करते-करते बैठे थे। उनका मन उस कन्या के प्रति आसक्त होने के कारण मोहग्रस्त हो गया।।१-५।।

ततो मध्याह्नसमये कृत्वान्नं दिव्यमुत्तमम्। सूपदंशं सुगन्धं च देवार्हमतिशोभनम्॥६॥
शुद्धान्नं पायसान्नं च गौढं मुद्गान्नमेव च। कृत्वा पञ्चविधापूपान्पूरिकावटकानपि॥७॥

तत्पश्चात् उनकी दिव्य सखी बकुलमालिका दिव्य अन्न, उत्तम गन्धयुक्त उपदंश, देवभोज्य अत्युत्तम शुद्ध गुड़युक्त पायस, मुग्दान्न, पंचविध पिष्टक, पूरी, वटक लेकर मध्याह्न काल में उनके दर्शनार्थ शीघ्रता से आई।।६-७।।

देवं द्रष्टुं ययौ शीघ्रं सखी बकुलमालिका। पद्मावती पद्मपत्रा चित्ररेखासमन्विता॥८॥
निवेश्य द्वारि देवस्यताः सर्वाः प्रमदोत्तमाः। निवेशतत्समीपंसास्वयंबकुलमालिका॥९॥
गत्वा समीपं देवस्य ववन्दे भक्तिभावतः। दृष्टाऽथ देवं विवशं पर्यङ्के रत्नभूषिते॥१०॥
पादसंवाहनं कृत्वा निमीलितविलोचनम्। तंध्यायन्तंचकिमपिव्याजहारशुचिस्मिता॥११॥
उत्तिष्ठ देवदेवेश किं शेषे पुरुषोत्तम !। परमान्नं कृतं देव ! भोक्तुमागच्छ माधव !॥१२॥

किं वा त्वमार्तवच्छेषे सर्वलोकार्तिनाशन। मृगयामटता देव किं दृष्टं भवता वने॥१३॥

अवस्थाते विशालाक्ष ! कामुकस्येवदृश्यते।
कादृष्टादेवकन्यावामानुषीवाऽहिकन्यका ॥१४॥
ब्रूहि मे त्वमचिन्त्यात्मन्कन्यां तां चित्तहारिणीम्॥१५॥

बकुलमालिका ने भगवान् के गृह में जाने के पूर्व प्रमदाओं में श्रेष्ठ पद्मावती, पद्मपत्रा तथा चित्रलेखा को द्वार पर छोड़ दिया तथा वह अकेले भगवान् के पास गई। उसने भगवान् के पास जाकर भक्तिभाव से उनकी वन्दना किया, तथापि उसने देखा कि भगवान् रत्नभूषित पलंग पर विवश होकर शयन कर रहे हैं। तदनन्तर सखी वकुलमालिका ने उनका चरण दबाया जिससे उन्होंने नेत्रों को कुछ खोला अवश्य तथापि लगा कि वे ध्यान कर रहे हैं। वकुलमालिका ने उनकी यह अवस्था देखी तब कहने लगी "हे पुरुषोत्तम! देवदेव! आप किस लिये लेटे हैं? अब उठें। हे कमलाक्ष! आपकी स्थिति देखकर प्रतीत होता है कि मानो आप कामपीड़ित जैसे हो रहे हैं। क्या आपने किसी मानुषी कन्या-नागकन्या अथवा देवकन्या को देखा है क्या? आपके मन का हरण किसने किया है? हे अचिन्त्यात्मन्! उस कन्या का विवरण आप कहें।।८-१५।।

श्रीवराह उवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा निःश्वासमकरोद्विभुः। निःश्वसन्तंपुनःप्राहप्रीताबकुलमालिका॥१६॥
एवं मनोहरा का सा तवापि पुरुषोत्तम !। तामवोचद्धृषीकेशोवक्ष्यामि शृणु तत्त्वतः॥१७॥

श्रीभगवानुवाच

पुरा त्रेतायुगे पुण्ये रावणं हतवानहम्। तदा वेदवती कन्या साहाय्यमकरोच्छ्रियः॥१८॥

श्री वराहदेव कहते हैं—सखी का यह कथन सुनकर भगवान् ने दीर्घ निःश्वास लिया। उनको यह निःश्वास लेते देखकर प्रेमवशात् वकुलमालिका ने पुनः उनसे कहा—"हे पुरुषोत्तम! वह कौन कन्या है, जिसने आपका मन हर लिया?" सखी का कथन सुनकर हृषीकेश ने उत्तर दिया "तुमसे वास्तविक बात कहता हूं। श्रवण करो। पूर्व त्रेतायुग में जब मैंने रावण का वध किया था तब कन्या वेदवती ने लक्ष्मीरूप से मेरी सहायता किया था।।१६-१८।।

सीतारूपाऽभवल्लक्ष्मीर्जनकस्य महीतलात्। गते मयि तु मारीचं हन्तुं पञ्चवटीवने॥१९॥
ममानुजोऽपिमामेवसीतया चोदितोऽन्वयात्। तदन्तरेराक्षसेन्द्रोहर्त्तुं सीतामुपाययौ॥२०॥

अग्निहोत्रगतो वह्निस्तं ज्ञात्वा रावणोद्यमम्।
आदाय सीतां पाताले स्वाहायां सन्निवेश्य च॥२१॥

तेनैव रक्षसा स्पृष्टां पुरा वेदवतीं शुभाम्। अग्नौ विसृष्टदेहां तां संहर्तुं रावणं पुनः॥२२॥
सीताया रूपसदृशीं कृत्वा चैवोत्ससर्ज ह। सा रावणहृताभूत्वालङ्कायांचनिवेशिता॥२३॥
हते तु रावणे पश्चात्पुनरग्निंविवेशसा। अग्निस्तुरक्षितांलक्ष्मींस्वाहायांममजानकीम्॥२४॥

दत्त्वा हस्ते च मामाह सीतया सहितां सखीम्।
इयं वेदवती देव सीतायाः प्रियकारिणी॥२५॥

सीतार्थं राक्षसपुरे तेन बन्दीकृता स्थिता। तस्मादेनां वरेणैव प्रीणय त्वं श्रिया सह॥२६॥
इति वह्निवचः श्रुत्वा सीता मामवदच्छुभा। मम प्रीतिकरीनित्यमियंवेदवतीविभो !॥२७॥
तस्मात्परां भागवतीं देवैनां वरय प्रभो !॥२८॥

तब लक्ष्मी ही सीतारूपेण पृथिवी से उत्पन्न होकर जनक की कन्या बनी थीं। मैंने मायामृगरूपधारी मारीच का संहार करने के लिये पंचवटी वन में गमन किया। मेरे अनुज लक्ष्मण ने भी सीता का आदेश पाकर मेरा अनुगमन किया। तभी राक्षसराज रावण सीताहरण के लिये उसके समीप आया। अग्निहोत्रगत अग्नि ने सीता को ग्रहण किया तथा पाताल में उसे स्वाहा की रक्षा में रख दिया। पूर्वकाल में राक्षस से स्पृष्ट कन्या शोभना वेदवती ने अपना शरीर अग्नि में रक्षित किया तथा सीता के समान रूप धारण किया था। रावण ने तो उसका ही हरण किया था। उसने रावण से अपहृत होकर लंका में निवास किया था। तत्पश्चात् उसने रावण वधोपरान्त पुनः अग्नि में प्रवेश किया था। अग्नि ने तब स्वाहार्पिता लक्ष्मी जानकी को मुझे अर्पित करते हुये कहा—"हे देव! यह वेदवती ही सीता की प्रियकारिणी है। सीता के सतित्व रक्षणार्थ ये वन्दीरूपेण रावणपुरी में रह रहीं थी। अतएव वर देकर लक्ष्मी के साथ इसे ग्रहण करके प्रसन्न करें।।१९-२८।।

श्रीभगवानुवाच

तथा देवि करिष्यामि ह्यष्टाविंशे कलौ युगे। तावदेषा ब्रह्मलोके वसत्वमरपूजिता॥२९॥
पश्चात्त भूमितनया भविष्यति वियत्सुता। इति दत्तवरा पूर्वं मया लक्ष्म्याचसुन्दरी॥३०॥
अद्य नारायणपुरे सम्भूता धरणीतलात्। पद्मासमा पद्मनेत्री पद्मा दत्तवरा सती॥३१॥
सखीभिनुरूपाभिर्वने पुष्पाणि चिन्वती। मृगयामटता तत्र मया दृष्टा मनोरमा॥३२॥
तस्यारूपं मया वक्तुं न शक्यं शतहायनैः। लक्ष्म्येव च तयामेऽद्यसङ्गमोभवितायदि॥३३॥
प्राणाः स्थिरा भविष्यन्ति सत्यमित्यवधारय॥३४॥
त्वं तत्र गत्वातांकन्यांदृष्ट्वाबकुलमालिके। जानीहिरूपलावण्यादियंयोग्येतिचास्य वै।
अनवद्या विशालाक्षी पद्मेन्दीवरलोचना॥३५॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे देवी! कलि के अट्ठाईसवें युग में मैं इस प्रकार कार्य करूंगा। इस समय के आने तक ये देवगण द्वारा पूजित होकर ब्रह्मलोक में निवास करें। तदनन्तर ये पृथिवी से उत्पन्न होकर आकाशराज के गृह में रहेंगी। हे सुन्दरी! मैंने तथा लक्ष्मी ने पूर्वकाल में सुन्दरी को यह वर दिया था। सम्प्रति नारायणपुर में धरणीतल से ऐसी पद्ममुखी पद्मतनया सती वेदवती उत्पन्न होकर सखियों के साथ पुष्प चयनार्थ आई हैं। मैंने मृगयार्थ वन में भ्रमण करते-करते इस मनोहर कन्या को देखा था। उसके रूप का कैसे वर्णन करूं। १०० वर्षों में भी मैं उसका रूपवर्णन नहीं कर सकता। हे सखी! तुम सत्य-सत्य जानो। लक्ष्मीरूपा इस कन्या के साथ यदि मेरा संगम हो जाये तभी मेरा प्राण स्थिर होगा। हे बकुलमालिके! तुम नारायणपुर जाकर इस कन्या का दर्शन करो तथा यह देखो कि कमलारण्य में यह कन्या मेरे योग्य है अथवा नहीं।" "अहा! यह कन्या अनिन्दिता कमलपुष्प जैसी विशाल नयना है।" यह कहकर वे पुनः मोहग्रस्त हो गये।।२९-३५।।

इयुत्त्वामोहमापन्नं तं प्राह बकुला पुनः। इतो गच्छामि देवेश ! मनोज्ञा तव यत्र सा॥३६॥

मार्गं वद रमाधीश ! गमिष्ये येन तां प्रति। एवमुक्तो रमाधीशस्तांप्राह बकुलस्त्रजम्।।३७।।

इतो गच्छ महाभागे ! श्रीनृसिंह गुहायतः।
तन्मार्गेणाऽवतीर्याऽस्माद् भूधरेन्द्रान्मनोरमात्।।३८।।

अगस्त्याश्रममासाद्य दृष्ट्वा लिङ्गं तदर्चितम्। अगस्त्येश इतिख्यातं सुवर्णमुखरीतटे।।३९।।
तीरेणैव ततो गच्छ शुकब्रह्म ऋषेर्वनम्। पश्यन्ती स्वर्णमुखरींतत्रकल्लोलमालिनीम्।।४०।।
तत्र पद्म सरोनाम पावनं पद्मसंयुतम्। तत्र स्नात्वाऽथ तत्तीरे तपन्तं मुनिसत्तमम्।।४१।।
छायाशुकं नमस्कृत्य कृष्णं च बलसंयुतम्। आराध्यमानं मुनिनाशुकेन सततं शुभे।।४२।।

तब सखी बकुलमालिका ने पुनः भगवान् से कहा—"हे देव! जहां आपके मन का हरण करने वाली वह नारी विराजमान है, अभी मैं वहां जाती हूं। हे रमापति! मैं किस पथ से उसके पास जा सकती हूं, वह पथ बतलाने की कृपा करें।" यह कहने पर भगवान् रमानाथ ने बकुलमालिका से कहा—"हे महाभागे! तुम यह जो श्री नृसिंह गृह (मन्दिर) देखती हो, तुम पहले उसी दिशा में जाओ। तदनन्तर उस पथ से जाते-जाते मनोरम पर्वत का अतिक्रमण करके अगस्त्याश्रम दिखाई पड़ेगा। वहां सुवर्णमुखरी तट पर एक प्रसिद्ध लिंग प्रतिष्ठित हैं। उसका नाम है "अगस्त्येश"। तुम उस पूज्य लिंग का दर्शन करके सुवर्णपुरी तीर से जाओ, तब तुमको ब्रह्मर्षि शुक का आश्रम मिलेगा। तुम कल्लोलयुक्त सुवर्णमुखरी का दर्शन करके जब आगे जाओगी, तब कमलमाला समन्वित पूतपद्म सरोवर का दर्शन करोगी। इस पद्मसरोवर के तट पर छायाशुक नामक एक मुनि तपःश्चरण कर रहे हैं। तुम सरोवर में स्नान करके मुनिप्रवर छायाशुक तथा बलराम के साथ कृष्ण को प्रणाम करना।।३६-४२।।

इन्द्रनीलमणिश्यामं पीतनिर्मलवाससम्। तीर्थयात्रां गमिष्यन्तंबलभद्रंसिताकृतिम्।।४३।।
उपासयन्तम्मन्त्राणि मुक्तान्वितकरद्वयम्। उद्यन्तम्पादुकायुक्तम्बलभद्रम्प्रणम्य च।।४४।।
आदाय स्वर्णकमलं सरसोऽस्माद्वरानने। तीर्त्वा सुवर्णमुखरीं वनान्युपवनानि च।।४५।।
अरणीतीरमासाद्य विश्रम्य च वनान्तरे। नारायणपुरीं दृष्ट्वा विस्मयं च गमिष्यसि।।४६।।

तस्याश्चोपवने वृक्षान्पुष्पाढ्यान्फलसंयुतान्।
पनसाऽऽम्रशिरीषांश्च कुन्दतिन्दुकपाटलान्।।४७।।

पुन्नागनागवरणरसालाङ्कोलचम्पकान्। बकुलामलकान्सालांस्तालहिन्तालपद्मकान्।।४८।।
जम्बूनिम्बकदम्बैलापिप्पलीमधुकार्जुनान्। प्रियङ्गुहिङ्गुखर्जूरमायूराशोकलोध्रकान्।।४९।।
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षबदरीभूर्जकीचकान्। चिञ्चाकिंशुकमन्दारशाल्मलीबीजपूरकान्।।५०।।
पूगनारङ्गलिकुचनारिकेलवनाकुलान्। मल्लिकामालतीकुन्दयूथिकाकेतकीयुतान्।।५१।।
करवीराब्जसम्पन्नान्राजरम्भाविराजितान्। मयूरकीरगरुडशुकसारससङ्कुलान्।।५२।।
भृङ्गभङ्गारनिबिडानारामान्सुमनोहरान्। पश्यन्ती परमं हर्षमवाप्य च नदीतटे।।५३।।

हे शुभे! कृष्ण तथा हलधर बलदेव ने तीर्थयात्रा प्रसंग में यहां आगमन किया था। मुनिसत्तम शुक

इन्द्रनील मणि के समान श्यामवर्ण एवं निर्मल पीत वसनधारी कृष्ण की उपासना करते हैं जो मुक्तन्वित दो हाथ वाले तथा वरप्रद भी हैं। हे वरानने! तुम पादुकायुक्त उदीयमान सूर्यवत् बलभद्र को प्रणाम करना तथा पद्मसरोवर से एक स्वर्णकमल लेकर सुवर्णमुखरी नदी पार करना। इसी प्रकार विविध वन तथा उपवन पार करते हुये, जब अरिणीनदी आये तब उसके तट पर विश्राम करना तथा उसके पश्चात् जब नारायणपुरी पहुंचोगी, तब तुमको विस्मय होगा। इस नारायण पुरी के उपवन पुष्प-फल वाले तथा रसयुक्त हैं। जैसे कटहल, आम, शिरीष, कुन्द, तिन्दुक, पाटल, पुन्नाग, नाग, वरुण, रसाल, अंकोल, चम्पा, बकुल (मौलसरी), आमलक, शाल, ताल, हिन्ताल, पद्म, जामुन, नीम, कदम्ब, इलायची, पिप्पली, मधूक, अर्जुन, प्रियंगु, हिंगु, खजूर, मायूर, अशोक, लोध, अश्वत्थ, गूलर, पाकड़, बेर, भोजपत्र, कीचक, चिञ्चा, किंशुक, मदार, सेमल, बीजपूर, सुपारी, नागरंग, लीची, नीरियल से ये उपवन भरे हैं। साथ ही ये उपवन मल्लिका, मालती, कुन्द, यूथिका, केतकी, कनेर, कमल, राजरम्भा आदि पुष्प तरुओं से समाकीर्ण हैं।

हे बकुलमालिके! तुम वहां मयूर, करी, गरुड़, शुक, सारस, प्रभृति पक्षियों से पूर्ण एवं भौरों की झंकार से परिपूर्ण उस स्थान को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो जाओगी। तब नदी तट पड़ेगा।।४३-५३।।

गत्वा पूर्वोत्तरे मार्गे पुरीमिन्द्रपुरीसमाम्। गङ्गयेवाऽऽवृतांनित्यं सरितारणिनामया।।५४।।
आकाशराजनगरीं गत्वा तत्रोचितं कुरु।।५५।।

तब तुम नदीतट के उत्तरपूर्व पथ पर जाकर सुरनदी गंगा से परिवेष्ठिता इन्द्रपुरी अमरावती के समान अरणी नामक प्रसिद्ध सरिता से घिरी राजा आकाश की राजधानी पहुंचकर यथोचित कार्य करो।।५४-५५।।

श्रीवराह उवाच

इत्यादिश्य सुराधीशः सखीं तां बकुलाभिधाम्।
विसृज्य शयने शुभ्रे स शिश्ये श्रीसमन्वितः।।५६।।
प्रणम्य देवदेवेशं सखी बकुलमालिका। गुञ्जामणिसमाकारं रक्ताश्वमधिरुह्य सा।।५७।।
यथोक्तमार्गेण ययौ पश्यन्ती विविधान्मृगान्।
मत्तेभान्पर्वताकाराञ्छ्वेतदन्तविभूषितान् ।।५८।।
करिणीयूथसहिताञ्जलदादानतत्परान्। सिंहाञ्छतघनप्रख्यान्सिंहीयूथैरनुद्रुतान्।।५९।।
शार्दूलर्क्षांश्च खड्गांश्च शरभान्गवयान्मृगान्।
कृष्णसारांश्च गोमायूञ्छशांश्च प्रियकानपि।।६०।।
सारसांश्च मयूरांश्चमार्जारान्वनगोचरान्। वृकाञ्छुकान्सूकरांश्चसुवाचःपक्षिणस्तथा।।६१।।
पश्यन्ती विविधाकारांस्तुष्यन्ती च मुहुर्मुहुः।
आससादाऽरणीतीरं पश्चिमं पादपाकुलम्।।६२।।
अवतीर्याऽरुणादश्वादगस्त्येशमीपतः। दृष्ट्वाऽगस्त्येश्वरं लिङ्गमगस्त्येन सुपूजितम्।।६३।।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च विशश्राम नदीतटे।।६४।।

तत्राऽऽगताराजगृहाद्योषितोदेवसन्निधौ ।
सखीःपद्मालयायास्ता दृष्ट्वा बकुलमालिका॥६५॥
गत्वा समीपे तासां सा किंवदन्ती स्म पृच्छति॥६६॥

वराह कहते हैं—सुरपति भगवान् कृष्ण ने सखी बकुलमालिका को इस प्रकार का आदेश प्रदान करके विदा किया तथा वे शुभ्रशय्या पर लक्ष्मी के साथ शयनरत हो गये। तदनन्तर सखी बकुलमालिका ने देवदेव को प्रणाम किया तथा गुञ्जामणि ऐसे वर्ण वाले घोड़े पर बैठकर पूर्वोक्त पथ से विविध दृश्य देखते-देखते राजा आकाश की राजधानी की ओर चल पड़ी। आगे जाकर उसने देखा कि कहीं श्वेत दांतों से भूषित हथिनियों के झुण्ड के साथ मेघजल का आनन्द उठाने में तत्पर मत्त हाथी विचरण कर रहे हैं। कहीं बृहदाकाय सैकड़ों-सैकड़ों सिंह सिंहिनीयूथ के पीछे-पीछे दौड़ रहे हैं। इसके अतिरिक्त अनेक शार्दूल, गैड़े, शरभ, गवय, मृग, कृष्णसार मृग, कृकलास, गोह, शक, मनोरम सारस, मयूर, वन्य बिलाव, भेड़िया, तोता, शूकर तथा अनेक मधुवाणी बोलने वाले पक्षी को देखकर उसे पुनः-पुनः हर्ष होता था। तदनन्तर वह अरणी नदी के पश्चिम तट तक पहुंची, जो वृक्षों से भरा था। वहां वह अपने अरुणवर्ण अश्व से उतर कर अगस्त्याश्रम के समीप गई। वहां उसने अगस्त्य ऋषिपूजित अगस्त्येश्वर लिंग का दर्शन, अरणी नदी में स्नान तथा जलपान करके नदीतट पर विश्राम किया। तभी वहां राजगृह से अगस्त्येश के यहां पुरस्त्रीगण ने आगमन किया। बकुलमलिका ने वहीं पद्मलोचना की सखियों को देखा। वह वहां जाकर किंवदन्ती के सम्बन्ध में जानने हेतु पूछने लगी।।५६-६६।।

बकुलमालिकोवाच

कायूयं योषितो ब्रूत विचित्राभरणस्त्रजः। कुतः समागता ह्यत्रकिंकार्यंवोऽमलाननाः॥६७॥
तास्तु तस्यावचःश्रुत्वास्मितपूर्वमथाऽब्रुवन्। शृणुष्वावहितादेविवयंवक्ष्यामहेऽधुना॥६८॥

इति श्रीस्कन्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्येधरणीवराहसम्वादेपद्मावतीदर्शनेनश्रीनिवासस्य मोहप्राप्त्यादिवर्णनंनाम पञ्चमोऽध्यायः।।५।।

बकुलमालिका कहती है— "हे नारीगण! तुमलोग नाना विचित्र आभरण तथा मालाभूषित होकर यहां आई हो। अब कहो कि तुम कौन हो? हे अमलानना नारीगण! तुम सब कहां से आ रही हो? तथा यहां तुमको क्या कार्य है?" राजस्त्रीगण ने उसका वाक्य सुनकर हंसते हुये उत्तर दिया—"हे देवी! सम्प्रति हम कहते हैं। सावधानी से सुनो"।।६७-६८।।

।।पंचम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षष्ठोऽध्यायः

बकुलमालिका का सखी संवाद

योषित ऊचुः

वयमाकाशराजस्य शुद्धान्तनिलयाः स्त्रियः। सख्यः पद्मालयाया वै दुहितुर्वसुधापतेः॥१॥
राजपुत्रीं पुरस्कृत्य गताः पूर्वं वनान्तरम्। कुर्वन्त्यः पुष्पावचयं राजपुत्र्यर्थमाकुलाः॥२॥
वृक्षमूले समासीनास्तत्रपश्यामपूरुषम्। इन्द्रनीलमणिश्यामंमिन्दिरामन्दिरोरसम्॥३॥
ईषत्स्मितमुखं चारुपीनदीर्घभुजद्वयम्। मृष्टपीताम्बरं हेमबाणबाणासनोज्ज्वलम्॥४॥
सुवर्णमुकुटं हारकेयूरादिविभूषितम्। तं तु पद्मालया दृष्ट्वा सखी कमललोचना॥५॥
द्रुतहेमनिभाकारा पश्य पश्येति साऽब्रवीत्।
पश्यन्तीनां तदाऽस्माकं गतोऽन्तर्धानमाशु सः॥६॥
सा सखी मूर्च्छिताऽस्माभिर्नीता राजगृहं ततः॥७॥

स्त्रियां कहती हैं—हम आकाशराज के पुर की नारियां हैं। हम वसुधाधिप आकाशराजपुत्री पद्मालया की सखियां हैं। हम राजपुत्री को आगे करके वन में गई थीं। वहां पुष्पचयन करते समय हम राजपुत्री के लिये व्याकुल हो गयीं। हम वहां वृक्ष के नीचे बैठी थीं, तभी एक पुरुष हमें दिखाई पड़ा। उसका वर्ण इन्द्रनील के समान श्याम था। वक्षस्थल लक्ष्मी के आवास की तरह लगता था। उसका मुखमण्डल किंचित् हास्यपूर्ण था तथा उसकी दोनों बाहु दीर्घ, पीन तथा सुन्दर थी। उसने पीतवस्त्र पहन रखे थे। उसके हाथों में स्वर्ण के सुन्दर बाण तथा स्वर्ण का श्रेष्ठ धनुष था। मस्तक पर स्वर्ण मुकुट था। वह हार-केयूर आदि से भूषित था। तप्तकांचन के समान सखी कमललोचना पद्मालया ने उसे देखकर हमसे हंसते हुये कहा—''सखियों देखो, सखियों देखो!'' जैसे ही हमने उसकी ओर देखा, वह पुरुष अन्तर्हित् हो गया। तब सखी पद्मालया मूर्च्छित हो गयीं। हमलोग उसे राजगृह लाये।।१-७।।

दृष्ट्वाऽस्वस्थांनृपः पुत्रीमपृच्छद्दैवचिन्तकम्। वदविप्रेन्द्र पुत्र्या मे ग्रहचारफलं मुने॥८॥

तदनन्तर राजा ने पद्मालया की अवस्था देखकर दैवज्ञ से प्रश्न किया—'' विप्रेन्द्र, मुनिवर! कृपया मेरी कन्या का ग्रहचार कहिये।।८।।

बृहस्पतिसमोविप्रोविचार्याऽऽत्मनि खेचरान्। अनुकूला ग्रहाःसर्वे तवपुत्र्यानृपोत्तम्॥९॥
किन्तु नित्यं ग्रहफलं किञ्चिद्भ्रान्तिकरं नृप। तमुवाच पुनर्धीमान्प्रश्नकालंविचार्यच॥१०॥
छायां गुणित्वा लग्नञ्चतत्फलानिविचार्यच। लग्नेलग्नाधिपश्चन्द्रःकेन्द्रेचैवबृहस्पतिः॥११॥
निद्राति दिनपक्षी तु प्रश्नपक्षीतुराज्यगः। श्रृणुराजन्फलंतस्यस्वास्थ्यमेवभविष्यति॥१२॥
उत्तमः पुरुषः कश्चिदागतः कन्यकाम्प्रति। तं दृष्ट्वा मूर्च्छिता पुत्रीतेनयोगंसमेष्यति॥१३॥
तेनैव प्रेषिताः काचिदागमिष्यतिकन्यका। सातुवक्ष्यतियद्वाक्यंतद्धितंतेभविष्यति॥१४॥

तत्कुरुष्व महाराज ! सत्यंसत्यं वदाम्यहम्। किंचसर्वार्थदंयत्तुसर्वव्याधिविनाशनम्।।१५।।
वक्ष्यामि तत्कुरुष्वाऽद्य पुत्र्यास्तव सुखावहम्।
कारयाऽगस्त्यलिङ्गस्य ब्राह्मणैरभिषेचनम्।।१६।।

उन बृहस्पति तुल्य विप्र ने मन ही मन खेचरगण (ग्रह) की गति का चिन्तन करके कहा—"हे नृपोत्तम! मैं देख रहा हूं कि आपकी कन्या के सभी ग्रह अनुकूल हैं। हे नृप! सभी ग्रहगण तब भी कुछ भ्रान्तिपूर्ण हो गये हैं।" तदनन्तर उन श्रीमान् विप्र ने प्रश्नकाल का विचार किया तब कहने के पूर्व उन्होंने छाया को गुणित करके क्रमशः लग्न स्थिर करके फल विचार आरंभ किया। उन्होंने देखा कि लग्न में लग्नपति चन्द्र तथा केन्द्रस्थ बृहस्पति दिनपक्षी निद्रित हैं तथा प्रश्नपक्षी राज्यग है। यह सब देखकर वे कहने लगे—हे राजन्! अब फल सुने। आपकी कन्या स्वस्थ होगी। कोई एक पुरुष आपकी कन्या हेतु आगमन करेंगे। उसे देखकर आपकी कन्या मूर्च्छित होगी। इसका विवाह उसी पुरुष से होगा। वह पुरुष एक कन्या को यहां भेजेगा। वह जो कहेगी, उसी में आपका हित है। सत्य कहता हूं। आप वही करिये। मैं और भी एक सर्वार्थप्रद एवं सर्वरोग निवारक अनुष्ठान कहता हूं। वह आप करें। यही कन्या के लिये सुखप्रद होगा। आप ब्राह्मण द्वारा अगस्त्येश्वर लिंग का अभिषेक करायें।।९-१६।।

इत्युक्त्वाऽथ गृहं यातो राजानं दैवचिन्तकः।।१७।।
आकाशराजोऽपि तदा विप्रानाहूय वैदिकान्।
अभ्यर्च्याऽऽज्ञापयामास गत्वा देवालयं द्विजाः।।१८।।
महाभिषेकं शम्भोश्च कुरुध्वं मन्त्रपूर्वकम्। इत्यनुज्ञाप्य तानस्मानाहूयाऽभ्यवदच्छुभे।।१९।।
महाभिषेकसम्भारान्सम्पादयत कन्यकाः। इत्याज्ञप्ता नृपेणैव वयं देवालयं गताः।।२०।।
ब्रूहि त्वं सुभगेऽस्माकं त्वदाऽऽगमनमञ्जसा।
कुतोऽसि कस्य वाऽर्थेन क्व वा जिगमिषा हि ते !।।२१।।
दिव्याश्वमधिरुह्येमं देवलोकादिवाऽऽगता।।२२।।

दैवज्ञ ब्राह्मण राजा से यह कहकर अपने गृह चले गये। राजा आकाश ने भी वैदिक ब्राह्मण को बुलाकर उनको पूजन का आदेश प्रदान किया। राजा ने कहा—"हे विप्रगण! आप देवालय जाकर मन्त्र द्वारा शंभु का महाभिषेक करिये। राजा ने ब्राह्मणों को यह आदेश करके हमसे कहा—"हे कन्यागण! तुम सब महाभिषेक के लिये आवश्यक द्रव्यों की व्यवस्था करो।" राजा द्वारा यह आज्ञा पाकर हम सभी देवालय आई हैं। हे सुभगे! अब तुम हमें बताओ कि तुम कौन हो? तुम्हारे आगमन का क्या कारण है? देखती हूं कि दिव्य अश्व पर आरोहण करके मानो तुम स्वर्गलोक से आई हो! तुम्हारा यहां क्या प्रयोजन है? कहां से आई हो? यह सव कहो।।१७-२२।।

श्रीवराह उवाच

इति ताभिस्तदा पृष्टा हृष्टा बकुलमालिका। प्रोवाचवाचंमधुरांहर्षयन्तीवबालिका:।।२३।।

श्रीवराह देव कहते हैं—राजा के अन्तःपुर की कन्याओं द्वारा यह पूछे जाने पर बकुलमालिका प्रसन्न हो गयी तथा उन कन्यागण को प्रमुदित करने के लिये वह यह बात कहने लगी।।२३।।

बकुलमालिकोवाच

श्रीवेङ्कटाद्रेः प्राप्ताऽहं नाम्ना बकुलमालिका। धरणींद्रष्टुकामाऽहमारुह्येमं तुरङ्गमम्॥२४॥
द्रष्टुं शक्या भवेद्देवी किमु तत्रनृपालये। इतितस्यावचःश्रुत्वाताःप्रोचुर्नृपकन्यकाः॥२५॥
अस्माभिः सहिता त्वम्वै द्रक्ष्यसे धरणीं शुभे !।
इत्युक्ता सा ततस्ताभिरागता नृपमन्दिरम्॥२६॥
आगच्छन्तीषु तास्वेवं धरणी तु पुलिन्दिनीम्॥२७॥
आयान्तीं वीथिकायां सा सगुञ्जाशङ्खभूषिताम्।
शिशुं स्तनन्धयं पृष्ठे बद्ध्वा वस्त्राञ्चलेन वै॥२८॥
वदामि सत्यं श्रृणुतभूतंभव्यंभविष्यकम्। वदन्तीवीथिवीथीषुतामाहूयशुचिस्मिता॥२९॥
स्वर्णशूर्पं समादाय तस्मिन्मुक्ता निधाय च।
त्रिप्रस्थमात्रांस्त्रीन्राशीन्कृत्वा तस्यै निधाय च॥३०॥
वदसत्यंपुलिन्दे ! त्वमेष्यद्वाभूतमेववा। इत्येवंधरणीदेवी पृच्छन्तीतांस्थिताऽभवत्॥३१॥
पृष्टा साऽवददस्यास्तु मनसा यद्विचिन्तितम्।
मध्यराशौ चिन्तितं ते वद कल्याणि ! मे ऋजु॥३२॥
ओमित्याहाऽद्य धरणी पुलिन्दां राजवल्लभा।

बकुलमालिका कहती हैं—मैं वेंकटपर्वत से आई हूं। मेरा नाम बकुलमालिका है। (पृथिवी) धरणी का दर्शन करने की इच्छा से इस अश्व पर आरोहण करके मैं यहां पहुंची। क्या मैं राजा के भवन में उस देवी को देख सकूंगी, जिनका वर्णन तुम लोगों ने किया है?

राजभवन की कन्यागण ने बकुलमालिका का वाक्य सुनकर कहा—"हे शुभे! हमारे साथ चलो। तभी तुम उस रमणी को देख सकोगी।" यह कहकर सभी राजभवन वापस आयीं। जब ये सब राजभवन आ रही थी तब रानी धरणी ने देखा कि मार्ग में गुंजा तथा शंख से सजी एक पुलिन्द कामिनी (पहाड़ी स्त्री) स्त्री एक स्तनपायी शिशु को पीठ पर बांध कर चली आ रही है। वह मार्ग में कहती जा रही थी कि—"हे नारीगण! मैं भूत-भविष्य-वर्तमान जानती हूं। सत्य कहती हूं।" तदनन्तर शुचिस्मिता धरणी ने उसे पास बुलाया। रानी धरणी ने स्वर्ण का सूप लाकर उसमें मोती रक्खा। उन मोतियों का तीन ढेर बनाकर उस पहाड़ी औरत से कहा—"हे पुलिन्दे! तुम भूत-भविष्य-भव्य-जो ज्ञान है, उसे सत्य बतलाओ।" यह कह कर रानी उस पहाड़ी स्त्री के बगल में बैठ गयीं। उस स्त्री ने गणना करके रानी को उसके मन के प्रश्न के सम्बन्ध में बतलाया। तदनन्तर पूछा—"हे कल्याणी! तुम इस सूप में स्थित मुक्ता के बीच वाले ढेर के सम्बन्ध में सोच रही थीं। इस बार सरल मन से कहो, क्या मैंने ठीक कहा है?" राजवल्लभा धरणी ने उस पुलिन्द स्त्री की बात को स्वीकार करके उस पुलिन्दा से पुनः पूछा।।२४-३२।।

धरण्युवाच

राशिरुक्तः फलम्बूहि धनराशिं ददामि ते॥३३॥

धरणी देवी कहती हैं—हे पुलिन्दे! अभी तुमने पूर्णतः सत्य कहा है। जो मैं सोच रही थी, उसे तुमने बतला दिया। अब अन्य फल कहो। मैं तुमको प्रचुर धन प्रदान करूंगी।।३३।।

पुलिन्दोवाच

सत्यम्वदामि ते सुभ्रु शिशोरन्नं प्रयच्छ मे। इत्युक्तासातु धरणीस्वर्णपात्रेऽन्नमाददे॥३४॥
दत्त्वातस्यैपुलिन्दिन्यैसत्यंब्रूहीतिसाऽवदत्। सक्षीरमन्नमादाय दत्त्वापुत्रायभामिनी॥३५॥
सा सत्यमवदत्सुभ्रूर्दुहितुर्देहशोषणम्। पुरुषादागतं भीरु ! तद्रूपाऽदर्शनादियम्॥३६॥
अङ्गतापं समापन्ना ह्यनङ्गशरपीडिता। स तु देवादिदेवो वै वैकुण्ठादागतः स्वयम्॥३७॥
श्रीवेङ्कटाद्रिशिखरे स्वामिपुष्करिणीतटे। मायावी परमानन्दः श्रिया सह रमापतिः॥३८॥
कामरूपी विहरते भक्ताभीष्टप्रदो हरिः। स तुरङ्गं समारुह्य विरहन्काननान्तरे॥३९॥
आगत्योपवनं राज्ञि तव कन्यां स दृष्टवान्। रमासमामिमां दृष्ट्वास्वयं कामवशंगतः॥४०॥
स्वसखीं ललितां देवः प्रेषयिष्यति तेऽन्तिकम्।
रमेव तं समेत्यैषा रमिष्यति सुखं चिरम्॥४१॥
एतत्सत्यं मम वचः पश्याद्यैवनृपात्मजे !। पुत्रस्यान्नंप्रयच्छेतितूष्णीमासपुलिन्दिनी॥४२॥

पुलिन्दा कहती है—"हे सुभ्रु! मैं तुम्हारा सटीक फलाफल कहती हूं। तुम मेरे शिशु को कुछ अन्न प्रदान करो।" रानी के स्वर्ण थाल में अन्न लाकर पुलिन्दा को प्रदान करके कहा "सत्य फल कहो।" तदनन्तर पुलिन्दा ने क्षीरयुक्त अन्न लेकर पुत्र को प्रदान किया तथा कहा—"हे सुभ्रु! तुम्हारी कन्या का शरीर शीर्ण हो गया है। उसे किसी पुरुष के प्रति आकर्षण हो गया है। हे भीरु! तुम्हारी कन्या किसी पुरुष का रूप दर्शन करके काम पीड़ित हो गयी है। उसके अंगताप का यही कारण है। वे अन्य कोई नहीं, स्वयं देवदेव विष्णु हैं। वे वैकुण्ठ से आकर वेंकटाचल पर्वत शिखर पर स्थित स्वामिपुष्करिणी के तट पर रमा के साथ विहार कर रहे हैं। मायावी परमानन्द कामरूपी भक्तों को वांछित फलप्रदाता रमापति अश्वारोहण करके वन के अन्दर घूम रहे थे। हे रानी! उन्होंने वहां अगस्त्य उपवन में तुम्हारी कन्या को देखा। देखकर वे भी काम के वशीभूत हो गये। सम्प्रति इन देव विष्णु ने अपनी प्रिय सखी को तुम्हारे पास भेजा है। तुम्हारी कन्या भी उनके साथ सम्बन्धित होकर लक्ष्मी की तरह सुखपूर्वक विचरण करेगी। हे नृपात्मजे! तुम अभी मेरी बात की सच्चाई जान लोगी। तुम मेरे पुत्र को अन्न प्रदान करो।" यह कहकर पुलिन्दिनी मौन हो गयी।।३४-४२।।

अन्नं दत्त्वापुनर्भूरितस्यैतांविससर्जह। तस्यांविनिर्गतायान्तुपुलिन्दिन्यामनिन्दिता॥४३॥
उत्थाय चाऽङ्गणात्तस्माद्विवेशान्तःपुरं शुभम्।
यत्र पद्मालया कन्या समास्ते स्वसखीवृता॥४४॥
गत्वा पुत्री समीपस्था कन्यां कामातुरां सुताम्।
पुत्रि ! किं ते करिष्यामि वस्तु किम्वा प्रियं शुभे !॥४५॥

इति मात्राऽभिपृष्टा सा मसन्दमाह मनस्विनी॥४६॥

रानी ने उसे प्रचुर अन्न प्रदान करके विदा किया। पुलिन्दिनी के जाने के पश्चात् अनिन्दित धरणी आंगन से उठीं तथा अपनी सखियों से घिरी पुत्री पद्मालया जहां बैठी थी, उस सुशोभन अन्तःपुर में रानी ने प्रवेश किया। उन्होंने कामातुरा पुत्री के पास जाकर उससे कहा—"हे शुभे पुत्री! तुमको क्या प्रिय है? (वह प्रदान करके) मैं तुम्हारा क्या हित साधन करूं?" माता द्वारा यह पूछे जाने पर वह मनस्विनी कन्या मृदु भाव से कहने लगी।।४३-४६।।

नेत्राभिरामं यल्लोके सतामपि मनःप्रियम्। यद्द्रष्टुकामा ब्रह्माद्या यत्तुसर्वगतं महत्॥४७॥
तेजसामपि तेजस्वि देवानामपि दैवतम्। भक्तैस्सद्भिरिह प्राप्यमभक्तैर्न कदाचन॥४८॥
तस्मिन्नेव मनो मेऽम्ब वस्तुनीह प्रवर्तते। तदेवाऽन्विष्यतांमातर्भक्तानांसर्वकामदम्॥४९॥

कन्या कहती है—हे माता! जो त्रैलोक्य में नयनाभिराम हैं, साधुओं के मन को प्रिय लगने वाले हैं, जिनका अवलोकन करने के लिये ब्रह्मादि देवता कामना करते रहते हैं, जो सर्वगत् तथा महत् हैं, जो तेजपुंजों में भी तेजस्वी हैं, देवगण के भी जो देवता हैं, जिनकी प्राप्ति साधु ही कर पाते हैं, जिनको भक्ति रहित लोग कभी देख नहीं पाते, वही वस्तु मेरे मन में समा गयी है। हे माता! भक्तों को निखिल काम प्रदान करने वाले उस पुरुष का आप अन्वेषण करें।।४७-४९।।

श्रीवराह उवाच

एतच्छ्रुत्वाऽथ धरणी तामपृच्छत्पुनःसुताम्। तद्भक्तलक्षणम्ब्रूहियैःप्राप्यन्तत्सुलोचने॥५०॥

श्रीवराहदेव कहते हैं—कन्या का कथन सुनकर रानीधरणी ने उससे पुनः पूछा—"हे सुलोचने! जो सब भक्तगण उनको प्राप्त करते हैं, उनके लक्षणों को कहो।।५०।।

पद्मालयोवाच

भक्तानां लक्षणं मातः ! श्रृणु गुह्यं समाहिता। शङ्खचक्राङ्कितानित्यंभुजयुग्मेवसुन्धरे॥५१॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रं सान्तरालं तेषामेव विशेषतः। पुण्ड्रानि द्वादश पुनर्धारयन्ति तथाऽपरे॥५२॥
ललाटोदरहृत्कण्ठे जठरे पार्श्वयोरपि। कूर्परयोर्भुजद्वन्द्वे च पृष्ठे च गलपृष्ठके॥५३॥
केशवादीनि नामानिद्वादशाङ्गेषुद्वादश। वासुदेवेति तन्मूर्ध्निनधारयन्तिनमोऽस्त्विति॥५४॥

पद्मालया कहती है—हे माता! आप समाहित मन से विष्णुभक्तों के गुप्त लक्षणों को सुनिये। हे वसुन्धरे! उन भक्तों की भुजाओं पर शंख-चक्र चिह्न रहेगा। वे अन्तरालयुक्त ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करते हैं। अब ऊर्ध्वपुण्ड्र की विशेषता सुने। भक्तगण ललाट, उदर, हृदय, कण्ठ, जठर, दोनों पार्श्व, दोनों केहुनी, पीठ, गण्डपार्श्व तथा दोनों बाहु, इन १२ स्थान पर १२ पुण्ड्रधारी होते हैं। वे भक्तगण इन १२ पुण्ड्रों को विष्णु के केशव आदि १२ नामों में से एक-एक नाम लेते हुये क्रमशः धारण करते हैं। वे पहले "वासुदेव नमोस्तुते" मन्त्र से मस्तक पर तिलक लगाते हैं।।५१-५४।।

तेषान्तुनियमान्वक्ष्ये मातः! श्रृणु मनोरमान्। वेदपारायणरताःकर्म कुर्वन्तिवैदिकम्॥५५॥

सत्यम्वदन्ति ये देवि नासूयन्तिपरान्कचित्। परनिन्दां न कुर्वन्तिपरस्वंनहरन्तिच॥५६॥

न स्मरन्ति न पश्यन्ति न स्पृशन्ति कदाचन।

परदारान्सुरूपांश्च ये च तान्विद्धि वैष्णवान्॥५७॥

सर्वभूतदयावन्तः सर्वभूतहितेरताः। सदा गायन्ति देवेशमेतान्भक्तानवेहि वै॥५८॥

हे माता! अब तिलकधारण का मनोरम नियम कहती हूं। सुनें। जो वेदपाठरत होकर वैदिक कर्माचरण करते हैं, जो सत्य बात कहते हैं, कभी दूसरे से ईर्ष्या नहीं करते,, जो परनिन्दा अथवा परधनहरण नहीं करते, परनारी भले ही रूपवती हो, कभी भी उसका चिन्तन-दर्शन-स्पर्श नहीं करते, वे ही वैष्णव हैं। जो समस्त प्राणीगण के प्रति दयालु हैं, सर्वभूत हितकारी हैं, जो अहर्निश देवेश हृषीकेश का नाम कीर्त्तन करते हैं, वे ही भक्त हैं। वे ही वैष्णव हैं।।५५-५८।।

येन केनचसन्तुष्टाःस्वदारनिरताश्च ये। वीतरागभयक्रोधास्तान्भक्तान्विद्धिवैष्णवान्॥५९॥

एवंविधैर्गुणैर्युक्ताःपञ्चायुधधरा अपि। पित्रा चाऽऽचार्यरूपेणशिष्टेनाऽन्येन वा पुनः॥६०॥

स्वगृह्योक्तविधानेन वह्निमादाय वै बुधः। चक्राद्यायुधमन्त्रेणजुहुयात्षोडशाहुतीः॥६१॥

मूलमन्त्रेण सूक्तेन पौरुषेण ततः परम्। जातवेदः सुमन्त्रेणपश्चादष्टोत्तरं शतम्॥६२॥

हुत्वा महाव्याहृतिभिश्चक्रादींस्तत्रतापयेत्। सह्यान्सुतप्तान्गुरुणामन्त्रवद्धारयेद्बुधः॥६३॥

भुजद्वये शङ्खचक्रे मूर्ध्नि शार्ङ्गशरौ तथा। ललाटे तु गदा धार्या हृदये शङ्गमेव च॥६४॥

एवं धार्याणि पञ्चैव विष्णुभक्तैर्मुमुक्षुभिः। अथवा भुजयोश्चक्रशङ्खौचैव सुलक्षणौ॥६५॥

एवंलाञ्छनयुक्ता ये भक्तास्तेवैष्णवाःस्मृताः। तैरेवलभ्यंतद्ब्रह्म सदाचारसमन्वितैः॥६६॥

जो यथालाभ सन्तुष्ट, अपनी पत्नी में निरत हैं, जिन्होंने राग-भय-क्रोध त्याग दिया है, वे ही केशवभक्त हैं। हे माता! इन गुणयुक्त शंख-चक्रादि पांच आयुध धारण करने वाले ही वैष्णव भक्त हैं। (इन आयुधों का चिह्न धारण करने वाले से तात्पर्य है)। हे माता! बुद्धिमान मनुष्य आचार्यरूपी पिता अथवा किसी शान्त व्यक्तिद्वारा स्वगृहोक्त विधान से अग्निग्रहण करके चक्रादि आयुधमन्त्र से षोडश आहुति प्रदान करें। तदनन्तर मूलमन्त्र, पुरुषसूक्त, जातवेदा मन्त्र तथा महाव्याहृतिमन्त्र से १०८ होम करके चक्रादि अस्त्रों को तप्त करें, जब तक उष्णता सहन की जा सके, तब तक गुरु द्वारा इन अस्त्रों को मन्त्रपूत कराकर धारण करे। हे माता! कोई भक्त केवल भुजद्वय में ही सुलक्षण शंख-चक्र धारण करे। हे जननी! ऐसे लक्षणान्वित मानव ही विष्णुभक्त कहे जाते हैं। ये ही सदाचारनिष्ठ होकर उस ब्रह्मवस्तु को प्राप्त करते हैं।।५९-६६।।

तस्मिन्नेव मम प्रीतिस्तत्प्राप्तिं वाञ्छते (काङ्क्षते) मनः।

मातर्विष्णुं विनाऽन्येषु वाञ्छा काचिन्न जायते॥६७॥

स्मरामि श्यामलं विष्णुं वदामि हरिमच्युतम्।

तेनैव मातर्जीवामि तद्योगे चिन्त्यतां विधिः॥६८॥

हे माता! मुझे भी उसी वस्तु से प्रेम है। मेरा मन अन्य कामना नहीं करता। मुझे अन्य वस्तु की इच्छा

भी नहीं है। मुझे केवल विष्णु की कामना है। मैं उन श्यामल विष्णु का ही स्मरण तथा उन अच्युत का ही नाम स्मरण कीर्त्तन करती हूं। हे माता! मैं उन विष्णु को पाने की आशा से ही जीवित हूं। अतः उनके साथ मेरे मिलन का उपाय करो।।६७-६८।।

श्रीवराह उवाच

इत्युक्त्वा मातरं दीना विररामाऽम्बुजानना।
तच्छुक्त्वा चिन्तयामास विष्णुः प्रीतः कथम्भवेत्।।६९।।
एतस्मिन्नन्तरे कन्या अगस्त्येशं समर्च्यच। आगताधरणीं द्रष्टुं सहैव बकुलस्त्रजा।।७०।।
आगतान्ब्राह्मणान्साऽथ पूजयित्वा सुभोजनैः।
दत्त्वाऽथ दक्षिणाः पूर्णा वस्त्रालङ्कारसंयुताः।।७१।।
आशिषो वाचयित्वाऽथ वाञ्छितार्थस्य सिद्धये।
विसृज्य ब्राह्मणान्सर्वानथाऽपृच्छत्स्वयोषितः।।७२।।
पूजयित्वा ह्यगस्त्येशमागतास्ता मनस्विनीः।।७३।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचल-माहात्म्येधरणीवाराहसम्वादेबकुलमालिकांप्रतिसखीविनिवेदितपद्मावत्युदन्त-विष्णुभक्तलक्षणादिवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः।।६।।

श्रीवराहदेव कहते हैं—उस कमल नयनादीना पद्मालया ने माता से यह कहा तथा चुप हो गई। तब रानी धरणी विचार करने लगीं—"अब क्या करने से विष्णु प्रसन्न होंगे।" रानी यह चिन्ता कर रहीं थीं तभी राजपुर की कन्यायें अगस्त्येश्वर की अर्चना, विविध उत्तम भोज्य से ब्राह्मणों की पूजा, उनको वस्त्रालंकार युक्त दक्षिणा दान, उनसे अभीष्ट सिद्धि का आशीर्वाद ग्रहण करके उनको विदा करने के पश्चात् बकुलमाला के साथ रानी धरणी के दर्शनार्थ वहां आईं। धरणी ने अपनी सखियों को देखकर पूछा—"मनस्विनी राजकन्यायें अगस्त्येश्वर की पूजा करके क्या घर वापस आ गईं ?।।६९-७३।।

।।षष्ठ अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

सप्तमोऽध्यायः

बकुलमालिनी-धरणी संवाद, विष्णु वनगमन वर्णन, शुक के साथ बकुलमालिनी का विष्णु के पास आना

धरण्युवाच

कैषा ब्रूत वरा कन्या युष्माभिः सङ्गता कुतः। किमर्थमागताचेह पूज्यैषाप्रतिभातिमे॥१॥

तदनन्तर रानी धरणी ने पुरकन्याओं के साथ एक अभिनवा कामिनी को देखकर (बकुलमालिका को देखकर) पूछा "यह उत्तमा कन्या कौन है? कहां से तुम्हारे साथ आई है? इसके यहां आने का प्रयोजन क्या है? इसे देखकर लगता है कि यह मेरी पूज्या है।।१।।

कन्यका ऊचुः

एषा दिव्याङ्गना देवी त्वयि कार्यार्थमागता। देवालयेसङ्गतेयमस्माभिःशिवसन्निधौ॥२॥

पृष्टाऽवदच्च भवतीं द्रष्टुमेवाऽऽगतेति वै। शक्ता द्रष्टुं राजगृहे मया राज्ञी सुखेन वा॥३॥

एवं पृष्टास्ततो ब्रूमः सहाऽस्माभिश्च गम्यताम्।
वयं तु धरणीदास्यो गमिष्यामो नृपालयम्॥४॥
इत्युक्ताऽस्माभिरायाता त्वत्समीपं वसुन्धरे !।
भवत्या पृच्छ्यतामेषा किमित्याऽऽगमनं तव॥५॥

कन्यायें कहती हैं—"ये दिव्याङ्गना देवी किसी कार्य से आपके पास आई हैं। हम लोग से ये देवालय में शिवलिंग के निकट मिली थीं। जब इनको हमने पहली बार देखा था, तब इन्होंने हमारे प्रश्न के उत्तर में कहा" मैं रानी धरणी के दर्शनार्थ यहां आई हूं। क्या मैं सुखपूर्वक रानी का दर्शन प्राप्त कर सकूंगी?" इनके इस प्रश्न को सुनकर हमने इनसे कहा—"हम सभी उन रानी धरणी की ही सेविका हैं। हम भी राजा की पुरी में जा रही हैं। अतः तुम हमलोगों के साथ चलो। हे वसुन्धरे! इस प्रकार ये आश्वस्त होकर हम लोगों के साथ आपके यहां आईं। अब आप ही इनसे पूछें कि इनके आने का प्रयोजन क्या है?।।२-५।।

श्रीवाराह उवाच

इति तासां वचः श्रुत्वा तामपृच्छद्वसुन्धरा॥६॥

श्री वराहदेव कहते हैं—तदनन्तर धरणी ने परिचारिकाओं का वाक्य सुनकर बकुलमालिका से पूछा।।६।।

धरण्युवाच

कुतस्त्वमागतादेवि ! किं वा कार्यंमयातव। ब्रूहिसत्यंकरिष्यामित्वदागमनकारणम्॥७॥

धरणी कहती हैं—"हे देवी! तुम कहां से आई हो? मेरे पास किस प्रयोजन से आई हो? अपने आने के कारण को कहो। मैं सत्य कहती हूं। तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगी।।७।।

बकुलमालिकोवाच

वेङ्कटाद्रेः समायाता नाम्ना बकुलमालिका॥८॥

स्वामी नारायणोऽस्माकमास्तेश्रीवेङ्कटाचले। कदाचिद्धयमारुह्यहंसशुक्लंमनोजवम्॥९॥

मृगयार्थं गतो राज्ञो वेङ्कटाद्रेः समीपतः। वनानि विचरन्काले शोभने कुसुमाकरे॥१०॥

पश्यन्मृगान्गजान्सिंहान्गवयाञ्छरभान्रुरून्। शुकान्पारावतान्हंसान्पत्रिणोऽन्यान्वनान्तरे॥११॥

गजराजं तत्र कञ्चिद्यूथपं मदवर्षिणम्। करेणुसहितं तुङ्गमन्वगच्छत्सुरोत्तमः॥१२॥

वनाद्वनान्तरं गत्वा नृपं शङ्गमुपागमत्। तपस्यन्तं बृहच्छैले प्रतिष्ठाप्य जनार्दनम्॥१३॥

श्रीभूमिसहितं नित्यमर्चयन्तं च भक्तितः। शङ्खनागबिलन्नाम सरः पावनमुत्तमम्॥१४॥

बकुलमालिका ने उत्तर दिया—"मैं वेंकटाचल से आ रही हूं। मेरा नाम बकुलमालिका है। मेरे स्वामी विष्णु हैं। वे वेंकटाचल में रहते हैं। एक बार वे मन की गति से चलने वाले हंसवत् शुक्लवर्ण अश्व पर आरोहण करके पर्वतराज वेंकटाचल के समीप मृगया के लिये विचरण कर रहे थे। तभी विचरण करते-करते वे सुशोभन कुसुमाकर वन में पहुंचे। उन सुरोत्तम ने वहां मृग, गज, सिंह, गवय, शरभ, रुरु आदि अनेक पशु तथा शुक-पारावत, हंस तथा अनेक पक्षियों का अवलोकन करते-करते वन में प्रवेश किया। वहां उन्होंने उत्युच्च तथा मदरज से परिवेष्ठित यूथप मत्त गजराज को देखा। तब वे उसके पीछे दौड़ पड़े। तदनन्तर वे वन से वनान्तर में घूमते-घूमते राजा शंख के पास आये। राजा शंख ने गिरिराज में भूमि देवी के साथ जनार्दन को प्रतिष्ठित किया था तथा भक्तिभाव से उनकी पूजा करते थे। साथ ही वे तपःश्चरण भी कर रहे थे। उनके आश्रम के सन्निकट शंखनाग बिल नामक एक पवित्र अत्युत्तम सरोवर विराजित था।।८-१४।।

तत्सरस्तीरमासाद्य तुरङ्गादवरुह्य च। राजवेषं समासाद्य तमपृच्छन्नृपोत्तमम्॥१५॥

क्रियते किं नृपश्रेष्ठ! पादेऽस्मिञ्छेषभूभृतः॥१६॥

विष्णु उस सरोवर तीर पर पहुंचकर घोड़े से उतरे तथा राजवेश धारण करके शंख के निकट आये तथा उनसे पूछा—"हे नृपप्रवर! आप इस पर्वतराज की घाटी में यह तप किसलिये कर रहे हैं?।।१५-१६।।

शङ्ख उवाच

अहं हैहयदेशीयःपुत्रः श्वेतस्य भूभृतः। महाविष्णोः प्रीतयेऽत्र कृतवानखिलान्क्रतुन्॥१७॥

अनर्शनान्महाविष्णोर्निर्विण्णोऽहं नृपात्मज!।

तदानीमवदद्दिव्या त्राणी सर्वार्त्तिनाशिनी॥१८॥

राजन्नाऽत्र भविष्यामि प्रत्यक्षस्ते वचः श्रृणु।

गच्छ नारायणाद्रिं त्वं तपः कुर्विति मां स्फुटम्॥१९॥

ततो देशमहं त्यक्त्वा तपसाऽऽराधयाम्यहम्।

अत्र देवं नृपाऽचिन्त्यं प्रतिष्ठाप्य श्रियः पतिम्॥२०॥

अगस्त्यानुग्रहान्नित्यमर्चयामिविधानतः। इतितस्य वचःश्रुत्वासोत्प्रासंप्राहतंविभुम्॥२१॥

शंख कहते हैं—मैं हैहयवंशीय राजा श्वेत का पुत्र हूं। महाविष्णु की प्रसन्नता हेतु अखिल यज्ञ सम्पादित किया था। हे नृपात्मज! मैं उनका दर्शन न पाकर निर्विण्ण हो गया। तभी सब की आर्त्ति का नाश करने वाली एक आकाशवाणी सुनाई पड़ी। उस आकाशवाणी ने कहा—"हे राजन्! मैं यहां दर्शन नहीं दूंगा। मेरी बात सुनो। तुम नारायण पर्वत जाकर प्रफुल्लचित्त हो मेरी आराधना करो।" मैं तभी से राज्य छोड़कर तप से विष्णु की आराधना कर रहा हूं। हे नृप! मैं महर्षि अगस्त्य की कृपा से यहां उन अचिन्त्य कमलापति की प्रतिष्ठा करके विधिवत् नित्य पूजा कर रहा हूं। विभु विष्णु ने राजा का यह कथन सुनकर उत्साहपूर्वक उनसे कहा।।१७-२१।।

गच्छ नारायणाद्रिंत्वमस्यपादेकिमास्यते। आरुह्याऽनेनमार्गेणपश्चिमेशिखरेस्थितम्॥२२॥

प्रणम्य विष्वक्सेनं त्वं बालं न्यग्रोधमूलतः।
स्वामिपुष्करिणीं गत्वा स्नात्वा तीरेऽथ पश्चिमे॥२३॥

अश्वत्थं तत्र वल्मीकं द्रक्ष्यसे नृपनन्दन !। तयोर्मध्यंसमासाद्य तपः कुर्वित्यचोदयत्॥२४॥

कश्चिच्छ्वेतो वराहोऽस्मिन्वल्मीके चरति ध्रुवम्। सतुपुण्यवतामेवदर्शनंयातिभूपते॥२५॥

विष्णु कहते हैं—हे राजन्! तुम नारायण पर्वत जाओ। यहां की घाटी में क्यों बैठे हो? इस अद्रि (पर्वत) के पश्चिम शिखरस्थ वटवृक्ष के नीचे बालकरूपी विष्वक्सेन अवस्थान करते हैं। तुम इस मार्ग से जाकर उनको प्रणाम करो। हे नृपनन्दन! तुम स्वामिपुष्करिणी में स्नान करो। तुमको वहां पुष्करिणी के पश्चिम तट पर एक पीपल का पेड़ दिखलाई पड़ेगा। वहीं एक विशाल दीमक की बांबी है। तुम उसमें प्रवेश करके वहीं तप करो। हे भूपति! इस विशाल वल्मीक में एक श्वेत वाराह विचरण करते हैं। मैं निश्चित कहता हूं वे पुण्यात्माओं को ही दर्शन देते हैं।।२२-२५।।

श्रीवाराह उवाच

इत्यादिश्य हयारूढो जगाम मृगयाम्विभुः। चरन्वनाद्वनंसुभ्रुः समासाद्यारणींनदीम्॥२६॥

अवरुह्य हयात्तत्र विचचार तटे शुभे। वनान्तादागतो वायुः पद्मकह्लारशीतलः।
श्रमापनयनो मन्दं लिषेवे पुरुषोत्ततमम्॥२७॥

तरवः पुष्पवर्षाणि विकिरन्तः सिषेविरे। एवं स विचरन्देवः पुष्पभारानतांस्तरून्॥२८॥

विचिन्वन्गजराजन्तं पुष्पलावीर्ददर्श ह। कन्याः सुवेषा रुचिरा मेघेष्विव शतह्रदाः॥२९॥

तासां मध्यगतां तन्वीं ददर्शाऽतिमनोहराम्।
लक्ष्मीसमां हेमवर्णां तस्यां सक्तमना अभूत्॥३०॥

वराह कहते हैं—विभु विष्णु यह आदेश देकर अश्व पर आरूढ़ होकर मृगयार्थ गये। हे सुभ्रु! तदनन्तर वे एक वन से अन्य वन में इस प्रकार विचरते हुये अरणि नदी के तट पर पहुंचे। वहां वे अश्व से उतरे तथा सुशोभन तटभूमि में घूमने लगे। तदनन्तर पद्म कल्हारपुष्पों के स्पर्श से सुशीतल श्रमहारी वायु एक

वन से दूसरे वन में बहने लगी। मन्द-मन्द प्रवाहित यह वायु उन परमेश्वर की सेवा कर रही थी। वृक्षों ने इतःस्ततः पुष्पवर्षण प्रारंभ कर दिया यह प्रभु के लिये प्रीतिकारक होने लगा। वे विष्णु इस प्रकार पुष्प भार से झुके वृक्षों के मध्य विचरण करते-करते उस गजराज की खोज में लग गये, तभी उनको सुवेशा-मनोज्ञा-मेघमालवत् रुचित विद्युत् के समान कतिपय कन्या दिखाई पड़ीं। वे कन्यायें वहां पुष्प बीनते हुये आ पहुंची थीं। प्रभु विष्णु ने कन्याओं के बीच में स्थित कमला के समान मनोहर स्वर्णवर्णा एक देवी को देखा।।२६-३०।।

तां गृध्नुराह ताःकन्याःकेयमित्येवपूरुषः। उक्तस्तामिरियं कन्या वियद्राज्ञोमहाबल॥३१॥

इदं श्रुत्वा वचस्तासां हयमारुह्य वेगवान्।
आजगामाऽऽशु भगवान्स्ववालयं रुचिरं गिरिम्॥३२॥

तत्र स्वालयमासाद्य स्वामिपुष्करिणीतटे। मायाहूयाऽवदद्देवो हलावकुलमालिके॥३३॥

वियद्राजपुरङ्गत्वाप्रविश्याऽन्तःपुरं सखि। तत्पत्नीं धरणीम्प्राप्य पृष्ट्वा कुशलमेव च॥३४॥

याचस्वतनयांतस्यारुचिराङ्कमलालयाम् ।
राज्ञोऽभिमतमाज्ञायशीघ्रमागच्छभागिनि !॥३५॥

उसे देखकर उनका मन कन्या में आसक्त हो गया। वे उस सुन्दरी को देखकर उसे ग्रहण करने के अभिलाषी हो गये तथा उन्होंने अन्य कन्यागण से प्रश्न किया—"यह कौन है?" तब कन्यागण ने उत्तर दिया—"ये महात्मा आकाशराज की कन्या हैं।" तब वे भगवान् कन्याओं का वाक्य सुनकर अश्व पर बैठे तथा द्रुतवेग से वहां से जाकर तेजी से अपनी उत्तम गिरिपुरी में चले गये। वे स्वामिपुष्करिणी के तटस्थ अपने गृह में आये तथा मुझे बुलाकर कहा—"हे सखी! बकुलमालिके! तुम आकाशराज के गृह में जाकर अन्तःपुर में प्रवेश करके उनकी पत्नी धरणी के पास जाना तथा कुशल प्रश्न पूछने के अनन्तर मनोहरा कमलालया उस कुमारी की याचना करना। हे भामिनी! तुम इस विषय में राजा का भी मत लेकर मेरे पास शीघ्रता से लौटना।"।।३१-३५।।

इत्थं देवेन चाज्ञप्ता देवित्वद्गृहमागता। यथोचितं कुरुष्वेह राज्ञा मन्त्रियुतेन च॥३६॥
कन्यया च विचार्यैव प्रोच्यतामुत्तरम्वचः॥३७॥

हे देवी! मैं अपने प्रभु का आदेश पाकर आपके घर आई हूं। अब राजा के साथ मन्त्रणा करके आप जो उचित हो, वह करिये। इस सम्बन्ध में आप कन्या के साथ भी मन्त्रणा करें। तदनन्तर मुझे यथोचित उत्तर प्रदान करें।।३६-३७।।

श्रीवराह उवाच

अथ तस्या वचःश्रुत्वाप्रीता राज्ञी बभूवह। आहूयाऽऽकाशराजंतमुपेत्यकमलालयाम्॥३८॥

मन्त्रिमध्येऽवदद्देवीवचनम्बकुलस्त्रजः। श्रुत्वा प्रीतोऽवदद्राजामन्त्रिणःसपुरोहितान्॥३९॥

वराहदेव कहते हैं—बकुलमालिका की उक्ति सुनकर धरणी प्रसन्न हो गयीं। वे राजा के साथ अपनी पुत्री पद्मालया के पास गईं। तभी मन्त्रीगण भी आ गये। उनके समक्ष रानी ने बकुलमालिका कां संवाद पूर्णतः कहा। रानी की बात सुनकर आकाशराज ने पुरोहित तथा मन्त्रीगण से प्रसन्नता के साथ कहा।।३८-३९।।

आकाशराज उवाच

कन्या त्वयोनिजा दिव्या सुभगा कमलालया। अर्थिता देवदेनेनवेङ्कटाद्रिनिवासिना॥४०॥
पूर्णोमनोरथोमेऽद्य ब्रूत किं सम्मतं तु वः। श्रुत्वा मन्त्रिगणाःसर्वेराज्ञोवचनमुत्तमम्॥४१॥
प्रोचुः सुप्रीतमनसो वियद्राजं महीपतिम्। वयं कृतार्था राजेन्द्र ! कुलं सर्वोन्नतम्भवेत्॥४२॥
भवत्कन्येयमतुला श्रिया सह रमिष्यति। दीयतां देवदेवाय शार्ङ्गिणे परमात्मने॥४३॥
अयं वसन्तः श्रीमांश्च शुभं शीघ्रं विधीयताम्॥४४॥
आहूय धिषणं लग्नं विवाहार्थं विधीयताम्॥४५॥
तथाऽस्त्वित्याह्वयामाससुरलोकाद्बृहस्पतिम्। पप्रच्छकन्यावरयोर्विवाहार्थनरेश्वरः॥४६॥

आकाशराज कहते हैं—मेरी कन्या पद्मालया अयोनिजा है। वह देखने में भी रमणीया है। उसके प्रार्थी भी वेंकटाचल निवासी देवाधिदेव विष्णु हैं। इसलिये मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। यह विवाह करने में आप सबकी सम्मति तो है न! मन्त्रीगण राजा का यह उत्तम वाक्य सुनकर प्रीतिपूर्वक राजा आकाश से कहने लगे—''राजन्! हम कृतार्थ हो गये। इससे आपका वंश भी समुन्नत होगा। आपकी यह अनुपम कन्या लक्ष्मी के साथ विहार करेगी। श्रीमान् वसन्त ऋतु समागत है। अतः देवदेव शार्ङ्गधनुषधारी परमात्मा विष्णु को शीघ्र यह कन्या प्रदान करें। हे नृप! सुराचार्य बृहस्पति को बुलाकर विवाह लग्न का निश्चय करिये। तब राजा ने कहा—''यही हो।'' उन्होंने देवलोक से बृहस्पति को बुलाकर वरकन्या सम्बन्धित विषय उनसे कहा।।४०-४६।।

राजोवाच

कन्याया जन्मनक्षत्रं मृगशीर्षमितिस्मृतम्। देवस्यश्रवणर्क्षन्तुतयोर्योगोविचार्यताम्॥४७॥
श्रुत्वाऽब्रवीत्सधिषणस्तयोरुत्तरफल्गुनी। सम्मतासुखवृद्ध्यर्थंप्रोच्यतेदैवचिन्तकैः॥४८॥
तयोरुत्तरफल्गुन्यां विवाहः क्रियतामिति।
वैशखमासे विधिवत्क्रियतामिति सोऽब्रवीत्॥४९॥

राजा कहते हैं—हे देवगुरु! कन्या का जन्म नक्षत्र है मृगशीर्ष तथा वर देवदेव का नक्षत्र है श्रवण। अब विचारपूर्वक वरकन्या का उत्तम योग निर्णय करिये। राजा का वाक्य सुनकर बृहस्पति ने कहा—''इनके जन्मनक्षत्रानुसार उत्तरफाल्गुनी ही उत्तम योग प्रतीत हो रहा है। वर-कन्या की सुख-समृद्धि वृद्धि के सम्बन्ध में दैवज्ञगण यही कहते हैं। अतः वैशाखमासीय उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र में ही इनकी विवाह क्रिया सम्पन्न करिये''।।४७-४९।।

श्रीवराह उवाच

राजा तु धिषणं तत्र सम्पूज्याऽथ विसृज्य च। देवस्यदतिकामाहगच्छर्देवालयंशुभे॥५०॥
वैशाखे देवदेवाय कल्याणं वदसुव्रते। वैवाहिकविधानं तु कृत्वा चाऽऽगम्यतामिति॥५१॥
ततो देव्याःप्रियकरंशुकं दूतं तया सह। विसृज्य वायुंस्वसुतमिन्द्राद्यानयनेऽसृजत्॥५२॥

श्रीवराहदेव कहते हैं—तदनन्तर राजा ने बृहस्पति का पूजन करके उनको विदा किया तथा देवदूती

बकुलमालिका से कहा—"हे शुभे! तुम अब यहां से देवदेव हरि के पास जाओ। हे सुव्रते! वैशाखमास में विवाह सम्पन्न होगा। यह कल्याणवाणी देवदेव को बतलाकर कहना "विवाहयोग विधान के अनुसार वे यहां यथाकाल आयें।" तदनन्तर आकाशराज ने अपने प्रिय शुक को दूतरूप से बकुलमालिका के साथ भेजा। इसके साथ ही राजा ने वायु-इन्द्र आदि देवगण को निमन्त्रित करने हेतु अपने पुत्र पवन को आदेश प्रदान किया।।५०-५२।।

आहूय विश्वकर्माणं पुरालङ्कारकर्मणि। नियोजयामास सोऽपिनिर्ममेनिमिषान्तरात्।।५३।।
इन्द्रोऽसृजत्पुष्पवृष्टिं ननृतुश्चाप्सरोगणाः। धनदो धनधान्याद्यैः पूरयामास वेश्मतत्।।५४।।
यमस्तु रोगरहितांश्चकार मनुजान्भुवि। वरुणो रत्नजालानि मौक्तिकादीन्यपूरयत्।।५५।।
एवं सम्पाद्य सर्वाणि ययुर्देवा वृषाचलम्।।५६।।

तदनंतर राजा ने विश्वकर्मा को बुलाकर पुर का संस्कार तथा अलंकार आदि के निर्माणार्थ समस्त आदेश प्रदान किया। विश्वकर्मा ने निमेषमात्र में समस्त निर्माण कर दिया। शचीपति इन्द्र ने पुष्पवर्षण किया। अप्सरायें नृत्य करने लगी। धनद कुबेर ने धन-धान्यादि से घर भर दिया। यम ने उस राज्य के प्रजावर्ग को रोगरहित कर दिया। वरुण ने मौक्तिक आदि विभिन्न रत्नों के ढेर से राजभवन को भर दिया। देवताओं ने इस प्रकार उपहारोपकरण से सब सम्पन्न करके वृषाचल गमन किया।।५३-५६।।

श्रीवराह उवाच

ततः सा हयमारुह्य शुकेन सहिता ययौ। श्रीवेङ्कटाद्रिमासाद्यदेवालयसमीपतः।।५७।।
अवरुह्य तुरङ्गात्सा सशुकाऽभ्यन्तरं ययौ। दृष्ट्वा देवं रत्नपीठे श्रिया सह सुलोचनम्।।५८।।
प्रणम्य ह्यवदत्प्रीता कृत्यं तत्र कृतं विभो। माङ्गल्यवार्तां वक्तुं वै शुक एष समागतः।
वदेति देवेनाऽऽज्ञप्तः शुको नत्वा तमब्रवीत्।।५९।।

वराहदेव कहते हैं—शुक के साथ बकुलमालिका अश्वारूढ़ होकर वेंकटाचल देवालय पहुंची। वहां देवालय के निकट घोड़े से नीचे उतरी। उसने शुक के साथ देवालय के अन्दर प्रवेश किया। सखी बकुलमालिका ने रत्नपीठ पर लक्ष्मी के साथ सुलोचन देव हरि को देखकर प्रणाम किया तथा वह प्रीतिपूर्वक कहने लगी—"हे विभु! आप द्वारा आदेश दिया गया कार्य मैंने सम्पन्न कर दिया। उस मंगल वार्त्ता को कहने यह शुक मेरे साथ आया है।" तदनन्तर विष्णु का आदेश पाकर उस मंगलवार्त्ता कथन के पूर्व शुक ने भगवान् को प्रणाम किया तथा कहने लगा।।५७-५९।।

शुक उवाच

त्वां प्रत्याह सुता भूमेर्मामङ्गीकुरु माधव !।।६०।।
वदामि तव नामानि स्मरामि त्वद्वपुस्सदा। ध्रियन्ते तवचिह्नानिभुजाद्यङ्गे रमापते।।६१।।
त्वद्भक्तानर्चयामीह पञ्चसंस्कारसंयुतान्। त्वत्प्रीतये हि कर्माणि करोमि मधुसूदन।।६२।।
एवं सदैवाचारन्त्याः पित्रोरनुमते मम। कुरु प्रसादं देवेश मामङ्गीकुरु माधव।।६३।।
इति विज्ञापयामास कमलस्था धरासुता। शुकस्य वचनं श्रुत्वासुप्रियंत्वात्मनोहरिः।।६४।।

शुक कहता है—धरणी की पुत्री ने आपसे प्रार्थना किया है—"हे माधव! मुझे अंगीकार करें। हे रमापति! मैं आपके नाम का जप करती रहती हूं। सतत् आपके शरीर का स्मरण करती रहती हूं। बाहु प्रभृति अंगों में आपका ही चिह्न धारण करती हूं। पंचसंस्कार वाले आपके भक्तों का पूजन करती हूं। हे मधुसूदन! मैं इन सभी कार्य का अनुष्ठान करती हूं। यह सब आपको प्रसन्न करने के लिये करती हूं। हे माधव! पिता-माता की अनुमति क्रम से इस प्रकार मुझ आचार परायणा के प्रति प्रसन्न हो जायें तथा मेरा अंगीकार करें। हे देवेश! धरणीपुत्री पद्मालया ने यह निवेदन किया है। तदनन्तर भगवान् आत्महितकारी शुक के वाक्य को सुनकर उससे कहने लगे।।६०-६४।।

श्रीभगवानुवाच

कर्तुं कल्याणमुद्वाहमागमिष्यामि चाऽमरैः। शुकगच्छवदैवंतामित्थंदेवोऽब्रवीदिति।।६५।।
शुकः श्रुत्वा देववाक्यमादाय वनमालिकाम्। देवदत्तांययौ शीघ्रं वियद्राजसुतां प्रति।।६६।।
तुलसीमालिकांदत्त्वामृगनाभिसुगन्धिनीम्। प्रणम्यदेवीमवदच्छुकोदेववचः शुभम्।।६७।।
श्रुत्वा तन्मालिकांगृह्यभूमिजाशिरसादधौ। चक्रेऽलङ्कारमुचितंदेवागमनकाङ्क्षिणी।।६८।।

श्रीभगवान् कहते हैं—"हे शुक! मैं इस मंगलमय विवाहक्रिया सम्पादित करने हेतु देवगण के साथ आऊंगा। तुम स्वस्थान जाओ। वहां जाकर पद्मालया से कहना कि देवदेव ने यह कहा है।" शुक ने देवदेव के कार्य को सुना तथा उनके द्वारा प्रदत्त वनमाला लेकर शीघ्रता से आकाशराजकन्या के पास आया तथा उसे कस्तूरी सौरभयुक्त तुलसीमाला दिया। शुक ने प्रमाणोपरान्त विष्णु का वाक्य उससे कहा। धरिणीतनया पद्मालया ने देवदेव का वाक्य सुना तथा उस वनमाला को मस्तक पर रखा। तदनन्तर वह देवदेव के पास जाने की इच्छा से आभूषणों से अलंकृत हो गयी।।६५-६८।।

वियद्राजोऽपि सानन्दमिन्दुमाहूय सादरम्। अन्नंविधीयतांराजन्विविधंरससंयुतम्।।६९।।
विष्णोर्नैवेद्ययोग्यं यत्परमान्नं विधीयताम्। देवानाञ्च ऋषीणाञ्च नराणामपि सम्मतम्।।७०।।
चतुर्विधं सुगन्धाढ्यममृतांशैः सुधाकर !। एवं कृत्वासविधानं प्रतीक्ष्याऽऽगमनं विभोः।।७१।।
सभायां मन्त्रिसहितःसमास्तप्रीतमानसः। पुत्रीमलङ्कृतां कृत्वा धरणीसहितोनृपः।।७२।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकादशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसम्वादे धरणीदेव्यैबकुमालिकानिवेदितश्रीनिवासोदन्तकमलालयाकल्याण-विध्यादि वृत्तान्तवर्णनंनाम सप्तमोऽध्यायः।।

तब आकाशराज ने चन्द्रमा को सानन्द बुलाकर आदरपूर्वक कहा—"हे सुधाकर! नाना रसयुक्त अन्न, विष्णु के नैवेद्य योग्य पायसान्न तथा देव-ऋषि-मानवगण सम्मत चतुर्विध रसयुक्त सुगंधित अन्न सब अपने अमृतांश से प्रस्तुत करें।" इस प्रकार से सभी वैवाहिक विधि साधित करके कन्या को अलंकृत किया गया तथा प्रेम से गद्गद् राजा, मन्त्री तथा रानी धरणी सभा में बैठकर विभु विष्णु के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे।।६९-७२।।

।।सप्तम अध्याय समाप्त।।

अष्टमोऽध्यायः

विष्णु तथा पद्मालया विवाह आदि का वर्णन

श्रीवराह उवाच

ततोदेवाधिदेवोऽपिलक्ष्मीमाहूयभामिनीम्। किंकार्यंवदकल्याणिविवाहार्थंसुलोचने॥१॥
आज्ञापयस्व स्वसखी रमे कार्यं कुरु प्रियम्।
श्रीस्तु कृष्णवचः श्रुत्वा सखीराहूय चोदयत्॥२॥
श्रियाऽऽज्ञप्तातत:प्रीतिःसुगन्धंतैलमाददौ। श्रुतिःक्षौमंसमादायतस्थौदेवस्यसन्निधौ॥३॥

श्री वराहदेव कहते हैं—तदनन्तर देवाधिदेव विष्णु ने भी अपनी भामिनी लक्ष्मी को बुलाकर कहा—"हे सुलोचने! कल्याणी! अब यह कहो कि विवाह के लिये क्या करना उचित है? हे रमा! तुम अपनी सखियों को आदेश करके मेरे इस प्रियकार्य की व्यवस्था करो। वे आकर मेरी वेशभूषा सजायें।"

तब लक्ष्मी ने कृष्ण के वाक्य को सुनकर सखियों को बुलाया तथा भगवान् विष्णु (कृष्ण) को सज्जित करने का आदेश प्रदान किया। तदनन्तर सखि प्रीति ने विष्णु के शरीर में सुगन्धतैल लगाया। सखि श्रुति ने आकर विष्णु को रेशमी वस्त्र अर्पित किया तथा उनके समक्ष खड़ी हो गयी।।१-३।।

भूषणानि समादाय स्मृतिरप्यमाययौ मुदा। धृतिरादर्शमाधत्त शान्तिर्मृगमदं दधौ॥४॥
यक्षकर्दममादाय ह्रीः स्थिता पुरतो हरेः। कीर्तिः कनकपट्टं च सरत्नं मुकुटं दधौ॥५॥
छत्रं दधौ तदेन्द्राणी चामरं तु सरस्वती। द्वितीयं चापरं गौरी व्यजनेविजयाजये॥६॥
आगतास्ताः समालोक्यश्रीरुत्थायाऽथसत्वरा। सुगन्धंतैलमादायदेवमभ्यज्यशीर्षतः॥७॥
उद्वर्तितं गन्धचूर्णैर्देवाङ्गं परिमृत्य च। आनीतान्करिभिस्तोयकलशान्काञ्चनाञ्छतम्॥८॥
वियद्गङ्गादितीर्थेभ्यः कर्पूरादिसुवासितान्। एकमेकं समादाय त्वभ्यषिञ्चद्रमा हरिम्॥९॥

मुदित स्मृति भूषणादि लाकर भगवान् के सामने उपस्थित हो गयी। धृति दर्पण लेकर खड़ी थी। शान्ति हाथों में कस्तूरी लेकर उपस्थित थी। सखि ह्री यक्षकर्दम लेकर हरि के समक्ष खड़ी थी। कीर्ति रत्नयुक्त कनकपट्ट मुकुट हाथों में लेकर वहां आई। इन्द्राणी ने छत्र धारण किया। दो चामरों को क्रमशः सरस्वती तथा गौरी हाथ में लेकर खड़ी थीं। जया-विजया ने पंखा धारण किया था। लक्ष्मी ने भी देववधूगण को आते देखा। वे तत्काल उठकर खड़ी हो गईं तथा उन्होंने सुगन्धित तैल विष्णु को शिर से पैर तक लगाया। मुदित मन से लक्ष्मी ने गन्धचूर्ण द्वारा प्रभु को उपटन लगाकर धोया एवं हाथियों द्वारा लाये गये कर्पूर आदि से सुवासित जलपूर्ण सैकड़ों कलसों के गंगा आदि तीर्थजल से एक-एक करके हरि का अभिषेक किया।।४-९।।

सन्धूप्य केशान्धूपेनतानाश्यामान्बबन्ध च। सुगन्धेनानुलिप्याङ्गंस्वर्णवर्णेनतद्विभोः॥१०॥
पीतकौशयेकंबद्ध्वाकट्यांकाञ्चीसमन्वितम्।
मुकुटादिविभूषाभिर्भूषयामास चेन्दिरा॥११॥

अङ्गुलीयकरत्नानि सर्वास्वेवाऽङ्गुलीषु च। आदर्शं दर्शयामास धृतिर्देवस्य सन्निधौ।।१२।।
दृष्ट्वाऽऽदर्शंदेवदेवोह्यूर्ध्वपुण्ड्रं स्वयंदधौ। आरुह्यगरुडंपश्चात्स्वयं लक्ष्मीसमन्वितः।।१३।।
ब्रह्मेशवज्रिवरुणयमयक्षेशसेवितः। वसिष्ठाद्यैर्मुनीन्द्रैश्च सनकाद्यैश्च योगिभिः।।१४।।
भक्तैर्भागवतैर्युक्तो नारायणपुरीं ययौ। जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाऽप्सरोगणाः।।१५।।

तत्पश्चात् उनके सिक्त हो गये केश को धूप प्रदान करके संकुचित किया तथा केशों का सुचारु रूप से बन्धन किया। तदनन्तर स्वर्णवर्ण सुगन्ध से उन विभु के देह को लिप्त किया। तदनन्तर कटि में काञ्ची समन्वित पीत कौशेय वसन बन्धन से एवं मुकुटादि भूषण से उनको भूषित किया। तत्पश्चात् सखी धृति ने आकर अंगुलियों में अंगूठी प्रदान करके सामने से भगवान् को दर्पण दिखलाया। देवदेव विष्णु ने दर्पण में मुख देखकर स्वयं ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण किया। इसके पश्चात् लक्ष्मी के साथ भगवान् ने गरुड़ पर आरोहण किया। तदनन्तर ब्रह्मा, ईशान (शिव), इन्द्र, वरुण, यम, यक्षेश, कुबेर प्रभृति देवता, वसिष्ठ आदि मुनिगण, सनकादि योगीगण तथा भागवत भक्तगण से घिर कर प्रभु ने नारायणपुर गमन किया। तब भगवान् विष्णु के समीप गन्धर्वपतिगण गायन करने लगे तथा अप्सरागण नृत्य करने लगीं।।१०-१५।।

देवदुन्दुभयो नेदुस्तदा देवस्य सन्निधौ। जपन्तः स्वस्तिसूक्तानिमुनयस्तंसमन्वयुः।।१६।।
देवो देवगणैर्युक्तो विष्वक्सेनादिपार्षदैः। सखीभिस्स्यन्दनस्थाभिर्बकुलाद्याभिरन्वितः।
आकाशराजस्य पुरमाससाद स्वलङ्कृतम्।।१७।।
देवमागतमालोक्य कन्यामैरावतस्थिताम्। पुरीं प्रदक्षिणीकृत्य गोपुरद्वारमागताम्।।१८।।
आलोक्याऽऽकाशराजोऽपिसमानीयवधूवरौ ।
बन्धुभिःसहितस्तस्थौदेवमालोक्यकेशवम् ।।१९।।

देवदुन्दुभि निनादित होने लगी। मुनिगण स्वस्तिसूक्त का पाठ करने लगे। पाठ करते हुये इन्होंने भगवान् का अनुगमन किया। विष्वक्सेन आदि पार्षद तथा अन्य देवताओं के साथ भगवान् विष्णु रथ कर बैठी बकुलमालिका आदि सखियों के साथ आकाशराज के अलंकृत सुन्दरपुर पहुंचे। तदनन्तर देवदेव विष्णु को आया देखकर आकाशराज ने कन्या पद्मालया को ऐरावत हाथी की पीठ पर बैठाया। उन्होंने पुरी प्रदक्षिणा कराकर वर-वधु को गोपुर के समीप पहुंचाया तथा वहां बन्धुओं के साथ खड़े होकर देवदेव केशव को देखने लगे।।१६-१९।।

विष्णोर्मालां स्वकण्ठस्थां हस्तेनाऽऽदाय सस्मितः।
कमलायाः स्कन्धदेशे मुमोच सुमनश्चिताम्।।२०।।
आदाय मल्लिकामालां साऽस्य कण्ठेसमर्पयत्। एवं त्रिवारं तौकृत्वावाहनादवरुह्यच।।२१।।
स्थित्वा पीठे क्षणंपश्चाद्गृहं विविशतुः शुभम्। ब्रह्मादिदेवयूथैश्चसहितौभूमिजाहरी।।२२।।
माङ्गल्यसूत्रबन्धादि साङ्कुरार्पणमब्जजः। वैवाहिकं कारयित्वा लाजहोमान्तमेव च।।२३।।
व्रतादेशं समाज्ञाय सहितौ कमलाहरी। चतुर्थेदिवसे सर्वं समापय्य चतुर्मुखः।।२४।।

अनुज्ञाप्य विजयद्राजमारोप्य गरुडे हरिम्। देवीभ्यां सहितं देवं देवैर्गन्तुं प्रचक्रमे॥२५॥
दिव्यदुन्दुभिनिर्घोषैः सम्प्राप्य वृषभाचलम्। तुष्टुवुर्देवदेवेशं ब्रह्माद्या देवतागणाः॥२६॥

तदनन्तर विष्णु ने ईषत् हास्य के साथ अपने कण्ठ की माला उतार कर प्रेमपूर्वक कमला के कन्धों पर रखा। कमला ने भी एक मल्लिकामाला लेकर केशव के कण्ठ में पहनाया। कमला (पद्मालया) तथा हरि ने परस्पर ३ बार माल्यार्पण सम्पन्न किया तथा अपने-अपने वाहन से उतरे। कुछ क्षण उन्होंने वहां पीठ पर बैठकर ब्रह्मादि देवताओं के साथ सुशोभन पुरी में प्रवेश किया। तत्पश्चात् पद्मयोनि ब्रह्मा ने माङ्गल्यसूत्र बंधन आदि तथा लाजाहोम प्रभृति वैवाहिक विधान को सम्पन्न कराया तथा कमला एवं हरि ने व्रतादेश से अवगत होकर वरशय्या पर शयन किया। तदनन्तर ब्रह्मा ने समस्त चतुर्थदिवसीय कार्य सम्पन्न किया तथा आकाशराज की अनुमति लेकर उन्होंने हरि को गरुड़ पर बैठाया तथा पद्मालया, लक्ष्मी तथा देवताओं के साथ वृषाचल प्रस्थान किया।।२०-२६।।

शुकादयो मुनिगणास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम्। स्तूयमानोऽथ देवोऽपि विवेश मणिमण्डपम्॥२७॥
रमाधरणिजाभ्यां च तत्र सिंहासनं ययौ॥२८॥
आकाशराजोऽपि तथा महेन्द्रादिसुरैः सह। पुत्रीविष्णवोः प्रियार्थं तु प्राभृतं कर्तुमुद्यतः॥२९॥
सौवर्णेषु कटाहेषु तडुलाञ्छालिसम्भवान्। मुद्गपात्राण्यनेकानि घृतकुम्भशतानि च॥३०॥
पयोघटसहस्राणि दधिभाण्डान्यनेकशः। दिव्यानि चूतकदलीनारिकेलफलानि च॥३१॥
धात्रीफलानि कूष्माण्डराजरम्भाफलानि च।
पनसान्मातुलुङ्गांश्च शर्करापूरितान्घटान्॥३२॥
सुवर्णमणिमुक्ताश्च क्षौमकोट्यम्बराणि च।
दासीदाससहस्राणि कोटिशो गास्तथैव च॥३३॥
हंसेन्दुशुक्लवर्णानां हयानामयुतं ददौ। दुङ्गानां नित्यमत्तानां गजानामधिकं शतात्॥३४॥
अन्तःपुरचरा नारीर्नृत्तगीतविशारदाः। ददौ चतुःसहस्राणि श्रीनिवासाय विष्णवे।
दत्त्वा चैतानि सर्वाणि तस्थौ देवपुरो विभुः॥३५॥

उनके गमन काल में दिव्य दुन्दुभि का निनाद हुआ था। ब्रह्मादि देवता उनका स्तव कर रहे थे। शुक प्रभृति मुनिगण भी पुरुषोत्तम की स्तुति किये जा रहे थे। भगवान् श्रीहरि ने इस प्रकार स्तुत होकर मण्डप में प्रवेश किया तथा रमा एवं पद्मालया के साथ मण्डपस्थ सिंहासन पर बैठ गये। आकाशराज ने भी महेन्द्रादि देवताओं के साथ पद्मालया की प्रीति हेतु, उपटोकन क्रिया को सम्पन्न करना चाहा। उन्होंने स्वर्ण कड़ाही भर कर शालि तण्डुल, अनेक मुद्गपात्र, सैकड़ों घृतकुंभ, हजारों कलस जल, अनेक दधिभाण्ड, दिव्य आम्र-कदली-नारियल-आमलकी-कोहड़ा-राजरम्भा-कटहल-मातुलुंग आदि फल, शर्करा भरे अनेक घट, स्वर्ण, मणि-मुक्ता, कोटि-कोटि क्षौमवस्त्र, हजारों दास-दासी, १ कोटि गौ, हंस, चन्द्रमा के वर्ण वाले १०००० अश्व, नित्यमत्त अत्युच्च सैकड़ों हाथी, नृत्यगीत विशारद ४००० अजःपुरचारिणी नारी श्रीनिवास विष्णु को प्रदान किया। उन्होंने विष्णु को सब प्रदान किया तथा देवगृह में निवास करने लगे।।२७-३५।।

दृष्ट्वा देवोऽपि तत्सर्वं देवीभ्यां सहितो हरिः॥३६॥
सुप्रीतः प्राह राजनं श्वशुरं वेङ्कटेश्वरः। वरं वृणीष्व हे राजन्गुरो मत्तोयदीच्छसि॥३७॥
इति श्रीशवचः श्रुत्वा वियद्राजोऽवदद्विभुम्।
त्वत्सेवैवेह देवैवं भूयादव्यभिचारिणी॥३८॥
मनस्त्वत्पादकमले त्वयि भक्तिर्ममाऽस्तु वै॥३९॥

देवी के साथ वेंकटपति यह सब देखकर प्रसन्न हो गये। उन्होंने अपने श्वसुर आकाशराज से कहा—"हे गुरो! राजन्! मुझसे अभीष्ट वर ग्रहण करें।" श्रीपति का यह अनुग्रहात्मक वाक्य सुनकर आकाशराज ने विष्णु से प्रार्थना किया—"हे देव! मेरी भक्ति सदैव आपके चरणकमल में बनी रहे। मैं आपकी सेवा करता रहूं। आपके प्रति मेरी ऐसी अव्यभिचारिणी भक्ति बनी रहे।।३६-३९।।

श्रीभगवानुवाच

त्वया यदुक्तं राजेन्द्र ! सर्वमेतद्भविष्यति। इतिदत्त्वावरंतस्मैसम्मान्यैवयथोचितम्॥४०॥
ब्रह्मेशादिसुरान्सर्वान्समभ्यर्च्य यथोचितम्। स्वर्लोकगमनायैवमनुमेने मुद्रा हरिः।
गतेषु तेषु सर्वेषु श्रिया भूमिजया युतः॥४१॥
विहरन्स यथापूर्वं स्वामिपुष्करिणीतटे।
आस्ते दिव्यालये देवोऽप्यर्च्यमानो गुहेन वै॥४२॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसम्वादे ब्रह्मादिभिः साकं श्रीनिवासस्यवियद्राजपुरगमन-कमलालयापरिणयादिवर्णनंनामाऽष्टमोऽध्यायः।।८।।

—❀❀❀—

श्रीभगवान् कहते हैं—"हे राजेन्द्र! आपने जो प्रार्थना किया है, वह सब आपको प्राप्त हो।" तदनन्तर श्रीहरि ने राजा के प्रति सम्मान प्रदर्शन के साथ वर प्रदान किया तथा ब्रह्मा, ईशान आदि देवताओं की यथायोग्य पूजा करके प्रफुल्ल मन से उनको स्वर्ग जाने की अनुमति प्रदान किया। देवगण के जाने के उपरान्त लक्ष्मी तथा पद्मालया के साथ वे पूर्वकाल की तरह स्वामीपुष्करिणी तट पर विहार करते हुये कार्त्तिकेय द्वारा अर्चित होकर देवालय में रहने लगे।।४०-४२।।

।।अष्टम अध्याय समाप्त।।

नवमोऽध्यायः

वसुनिषाद का वृत्तान्त, पञ्चवर्ण शुकविषय में तोण्ड राजा का वर्णन

धरण्युवाच

कलौ युगे भूमिधर ! केनत्वंद्रक्ष्यसे प्रिय !। विमानं केन ते देव कार्यतेऽस्मिन्महीधरे॥१॥
श्रीनिवासोऽपि केनैव द्रक्ष्यते सुभगाकृतिः।
एतद् ब्रूहि मम प्रीत्या श्रोतुं कौतूहलं विभो !॥२॥

धरणी देवी कहती हैं—हे प्रिय भूमिधर! क्या करने से कलिकाल के मनुष्य आपको देख सकते हैं? किस प्रयोजन से महाधर ने विमान निर्माण कराया था और आप सुभगाकृति को कौन मनुष्य देख सकता है? हे विभो! यह सब जानने के लिये मुझे महान् कुतूहल हो रहा है। आप मेरी प्रसन्नता के लिये यह सब कहिये।।१-२।।

श्रीवराह उवाच

वक्ष्यामि शृणु हे देवि ! भविष्यद्यद्वदामि ते। अस्मिन्महीधरे पुण्ये निषादो वसुनामकः॥३॥
श्यामाकवनपालोऽभूद्भक्तिमान्पुरुषोत्तमे ।
श्यामाकतण्डुलान्पक्त्वामधुना परिषिच्य च॥४॥
निवेद्य देवदेवाय श्रीभूमिसहिताय च। एवं भक्तिमतस्तस्य भार्या चित्रवती शुभा॥५॥
असूत तनयं बाला वीरनामामुत्तमम्। वसुः पुत्रेण सहितो भार्यया पतिभक्तया॥६॥
कस्मिंश्चिद्दिवसे पुत्रं श्यामाकं पालयेति च। विसृज्य पत्न्या सहितो मध्वन्वेषणतत्परः॥७॥

श्री वराहदेव कहते हैं—हे देवी! भविष्य की बातें कालान्तर में कहूंगा। अभी एक उपाख्यान सुनो। महीधर वसु नामक एक निषाद पुरुषोत्तम के प्रति भक्तिमान् होकर श्यामाक वन पालन में नियुक्त था। एक बार उसने श्यामक तण्डुल को पकाया तथा उसे मधु से सिक्त करके लक्ष्मी तथा भूमिसुता पद्मालया तथा देवदेव को निवेदित किया। इस भक्त निषाद की पत्नी चारुरूपा ने बाला चित्रवती देवता की कृपा से वीर नामक एक उत्तम पुत्र को जन्म दिया। एक बार वसु निषाद ने पत्नी तथा पुत्र को बैठाया तथा पुत्र को सम्बोधित करके कहने लगा—"हे पुत्र! तुम इस श्यामाक वन की देखभाल करो" यह कहकर उसने पुत्र को श्यामाक वन पालन का भार अर्पित किया और पत्नी के साथ मधु खोजने तथा शहद के छत्ते को देखने के लिये अन्य वन में चला गया।।३-७।।

गतो वनान्तरंशीघ्रं मधुच्छत्रदिदृक्षया। बालःश्यामाकपक्वानिगृहीत्वाऽग्नौनिधायच॥८॥
पिष्टा निवेदयामास वृक्षमूले श्रियः पतेः। नैवेद्यं भक्षयित्वैव वीरस्त्वास सुखेन वै॥९॥

तदन्तरेवसुश्चापि मध्वादाय समागतः। श्यामाकान्भक्षितान्दृष्ट्वासन्तर्ज्यसुतमात्मनः॥१०॥
खड्गमादाय तं हन्तुं त्वरया हस्तमुद्दधौ॥११॥
तद्वृक्षस्थस्तदा विष्णुः खड्गं जग्राह पाणिना।
गङ्गो गृहीतः केनेति पश्यन्वृक्षं ददर्श सः॥१२॥

तदनन्तर उसके शिशु पुत्र ने पका श्यामाक लाकर उसे अग्नि में छोड़ा तथा पुनः उसे पीसकर भगवान् को निवेदित करके उस नैवेद्य का भक्षण करके वृक्षमूल में बैठ गया। इसी बीच वसु निषाद ने भी मधु एकत्र किया तथा गृह वापस आया। उसने पुत्र द्वारा समस्त श्यामाक खाया गया देख कर पुत्र पर गुस्सा तथा तर्जन भी किया। तदनन्तर वसु ने पुत्र का क्रोध में वध करने के लिये शीघ्रता से खड्ग उठाया ही था कि वृक्ष शाखा स्थित भगवान् विष्णु ने उससे खड्ग छीन लिया! तब निषाद वसु इस बात से चिन्तित हो गया कि उससे खड्ग किसने छीना तथा उसने वृक्ष की ओर देखा।।८-१२।।

शङ्खचक्रगदापाणिं वृक्षारूढार्धविग्रहम्। मुक्त्वा वसुश्च तं खड्गं प्रणम्योवाच केशवम्॥१३॥
किमिदं देवदेवेश ! चेष्टितं क्रियते त्वया॥१४॥

उसने देखा कि वृक्ष शाखा पर शंख-चक्र तथा गदाधारी एक पुरुष वहां बैठे हैं। तब खड्ग का विचार त्यागकर वसु ने प्रणाम करके प्रभु से कहा—"हे देवदेवेश! आपने किस कारण से मेरे खड्ग को लेकर मुझे रोक दिया?।।१३-१४।।

श्रीभगवानुवाच

वसोश्रृणुवचोमेत्वंपुत्रस्तेभक्तिमान्मयि। त्वत्तोऽपिमेप्रियतमस्तस्मात्प्रत्यक्षमागतः॥१५॥
अस्य सर्वत्रतिष्ठामि तव स्वामिसरस्तटे। इति देववचः श्रुत्वा प्रीतिमानभवद्वसुः॥१६॥
एतस्मिन्नेव काले तु पाण्ड्यदेशात्समागतः।
बाल्यात्प्रभृति शूद्रोऽपि विष्णुभक्तिसमन्वितः॥१७॥
नारायणपुरीं प्राप्य श्रीवराहम्प्रणम्य च। तत्र श्रुत्वाश्रीनिवासंवेङ्कटाद्रिनिवासिनम्॥१८॥
स्वयम्भुवं देवदेवसेवितं प्रययौ ततः। सुवर्णमुखरीं प्राप्य स्नात्वा चोत्तीर्य तत्तटे॥१९॥
कमलाख्ये सरसि च स्नात्वा पुण्यप्रदायिनि। तत्तीरवासिनंदेवंकृष्णंरामेणसंयुतम्॥२०॥
नमस्कृत्य ततः प्रायाद्वनंगजघटायुतम्। शनैः सम्प्राप्य शेषाद्रिंनिर्झरं सन्ददर्श ह॥२१॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे वसु! मेरा कथन सुनो। तुम्हारा पुत्र मेरे प्रति पूर्ण भक्तिमान् है तथा इस कारण वह तुमसे भी अधिक प्रिय है। इसी कारण से मैं तुम्हारे समक्ष प्रत्यक्ष दर्शन दे रहा हूं। मैं इस स्वामिपुष्करिणी के तट पर निवास करता हूं।" निषाद वसु ने देवाधिदेव का यह वाक्य सुना तथा अत्यन्त प्रसन्न हो गया तभी बाल्यकाल से ही विष्णुभक्ति परायण होने वाला एक रंगदास नामक शूद्र वहां आया। रंगदास ने भगवान् का दर्शन करने की इच्छा से नारायणपुर आकर श्री वराहदेव को प्रणाम किया था। वहां श्री वराहदेव को प्रणामोपरान्त वह श्रीनिवास वेंकटाचल आया। वहां वराहदेव को प्रणाम करने के उपरान्त ही वह देवदेव सेवित

स्वयम्भु वेंकटाचल पहुंचा था। इसके उपरान्त रंगदास ने सुवर्णमुखरी के तट पर आकर सुवर्णमुखरी में स्नान किया तथा वहां स्नान के पश्चात् उसने कमलाख्य सरोवर में स्नान किया तथा उसके तीर पर स्थित बलराम तथा कृष्ण मूर्त्ति का दर्शन किया। इसके पश्चात् वह रंगदास हाथियों से भरे वन में पहुंचा तथा वहां से चलता हुआ शेषपर्वत आया जहां उसने एक झरना देखा।।१५-२१।।

तत्समीपं समासाद्य कपिलापूजितं शिवम्। तत्पुरश्चक्रतीर्थं तदगाधम्पापनाशनम्।।२२।।
तत्र स्नात्वा ततोऽगच्छद्वेङ्कटाद्रिं शनैःशनैः। आराद्ध्रुंगच्छतामार्गेयुक्तोवैखानसेनच।।२३।।
रङ्गदासस्त्वारुरोह बालो द्वादशवार्षिकः।
स्वामिपुष्करिणीम्प्राप्य स्नात्वा भक्तिसमन्वितः।।२४।।
वैखानसेन मुनिना गोपीनाथेन पूजितम्। वनमध्ये तरोर्मूले स्वामिपुष्करिणीतटे।।२५।।
तिष्ठन्तंपुण्डरीकाक्षंश्रीभूमिसहितंहरिम्। आकाशस्थं सन्ददर्श पीननीलाकृतिंशुभम्।।२६।।
पार्श्वस्थशङ्खचक्राभ्यां गदासिभ्यां निषेवितम्।
पक्षौ विस्तार्य चाऽऽकाशे देवमूर्ध्नि वितानवत्।।२७।।
स्थितञ्च गरुडेशानम्पश्चाच्छार्ङ्गं शरन्तथा।।२८।।

वहां शूद्र रंगदास ने झरने के निकट कपिला द्वारा पूजित शिव का दर्शन किया और इन शिव के सामने स्थित अगाध पापहारी चक्रतीर्थ में स्नानोपरान्त धीरे-धीरे वेंकटाचल की ओर चल पड़ा। उसी समय वैखानस तपस्वीगण भी तपार्थ इसी पथ से जा रहे थे। द्वादश वर्षीय बालक रंगदास ने भी उनका साथ पकड़ा तथा भक्ति के साथ स्वामिपुष्करिणी में स्नान करके स्वामिपुष्करिणी के तट पर स्थित वन में पेड़ के नीचे अवस्थित वैखानसगण पूजित पीत-नील-कृष्ण वर्ण वाले सुशोभित हरि को पद्मालया के साथ आकाशस्थ देखा। रंगदास ने और भी देखा कि शंख-चक्र-गदा एवं तलवार नामक प्रभु के आयुध मूर्त्तिमान होकर भगवान् की सेवा कर रहे हैं। उनके पीछे शार्ङ्गधनुष तथा बाण रखे हुये हैं तथा आकाशस्थ गरुड़ अपने पंखों को फैलाकर भगवान् पर चंदोंवा ताने हुये हैं।।२२-२८।।

एवंदृष्ट्वाश्रीनिवासंविस्मितोरङ्गदासकः। अस्यदेवस्यचारामं करिष्यामीत्यचिन्तयत्।।२९।।
निश्चित्य मनसा सर्वं तरुमूलेऽवसत्सुधीः। कृत्वावैखानसाद्विष्णोर्नैवेद्यञ्च दिनेदिने।।३०।।
शनैश्छित्त्वा वनं घोरं वृक्षांश्चिच्छेद पार्श्वगान्।
आस्थानचिह्नां देवस्य रमायाश्चम्पकं तरुम्।।३१।।
देवाज्ञप्तां वर्जयित्वा तावुभौ देवसेवितौ। देवस्यपरितोभूमौशिलाकुड्यन्तदाकरोत्।।३२।।
तत्कुड्यस्यैव परितः पुष्पारामांश्चकारह। मल्लिकाकरवीराब्जकुन्दमन्दारमालतीः।।३३।।
तुलसी चम्पकानान्तु वनान्येव चकार है। खनित्वा तत्र कूपन्तुवर्धयंस्तज्जलैर्वनम्।।३४।।
आरामपुष्पाण्यादायस्वयंदामान्यथाकरोत्। विचित्राणितदाबद्ध्वापूजकस्यकरेददौ।।३५।।

रङ्गदास इस प्रकार श्रीनिवास का दर्शन करके विस्मित मन से विचार करने लगा—"इन देव श्रीनिवास

का एक मनोहर स्थान निर्माण करूंगा। धीमान् रंगदास ने यह निश्चय करके वृक्षमूल में आश्रय ग्रहण किया तथा वह नित्य हरिपूजार्थ नैवेद्यादि वैखानसगण के हाथों सौंपता रहता। तदनन्तर रंगदास धीरे-धीरे समस्त वन का छेदन करता हुआ केवल चिञ्चा एवं चम्पक वृक्ष को छोड़कर पार्श्वस्थ वृक्षों का कर्त्तन करने लगा। चिञ्चा तथा चम्पक वृक्ष देवसेवित हैं। उनका कर्त्तन वर्जित है। उसने देव के सम्मुखस्थ भूमि पर शिला की दीवार बनाया। उसके आगे वाटिका बनाई। उसमें रंगदास ने मल्लिका, कनेर, अज, कुन्दं, मन्दार, मालती, तुलसी तथा चम्पा के पादपों का रोपण किया। उसने इस वाटिका के समीप कूप खोदा तथा उसके जल से वृक्षों को पुष्ट एवं वर्द्धित करने लगा। जब इनमें पुष्प फूलने लगे, तब उन पुष्पों की विचित्र मालायें गूंथ कर श्रीनिवास हेतु पूजकों को अर्पित करता था।।२९-३५।।

आदायपूजकस्तानिस्कन्धेमूर्ध्निबबन्धच। श्रीनिवासस्यदेवस्यश्रीभूमिसहित स्यच।।३६।।
एवं देवस्य कैङ्कर्यं कुर्वंस्तस्थावुदारधीः। तस्यैवम्वर्तमानस्यसमास्त्वा सप्ततेर्गताः।।३७।।
कुर्वाणे पुष्पावचयं रङ्गदासे महात्मनि।।३८।।
आरामेसरसिस्नातुंगन्धर्वःकश्चिदाययौ। गन्धर्वराजकन्याभिस्तरुणीभिः समन्वितः।।३९।।
जलक्रीडांकरोतिस्मदिविस्थाप्यविमानकम्। सुरूपाभिश्चसहितं क्रीडन्तंकमलाकरे।।४०।।
पश्यञ्छ्रीरङ्गदासोऽयं व्यस्मरन्माल्यसञ्चयम्।
जितेन्द्रियोऽपि तत्क्रीडां पश्यव्रेतः ससर्ज ह।।४१।।
पश्यतस्तस्य सरसः समुत्तीर्य मनोहरम्।
दिव्यवस्त्राणि चाऽऽच्छाद्य कान्ताभिः सह सस्मितम्।।४२।।
अधिरुह्यविमानन्तु ययौ स धनदालयम्। गते गन्धर्वराजे तु रङ्गदासो विमोहितः।।४३।।
त्यक्त्वाचतानिमाल्यानिस्नात्वा सरसि लज्जितः।
पुनराहृत्यपुष्पाणिशनैर्देवालयंययौ ।।४४।।
वैखानसस्तु तं दृष्ट्वा पूजाकालमतीत्य च। आगतं किमितिप्राहसखेऽतिक्रम्यचागतः।।४५।।
न बद्धा मालिकाश्चाऽपि त्वयाऽऽरामे च किं कृतम्।।४६।।

पूजक इन मालाओं को लेकर भगवान् तथा भूदेवी के मस्तक तथा कन्धे पर बद्ध कर देते थे। इस प्रकार हरि के दासरूप में स्वतः नियुक्त उदारमना रंगदास को एक वर्ष व्यतीत हो गया। एक बार रंगदास वाटिका में पुष्प चयन कर रहा था। तभी तरुणी गन्धर्व राजकन्या के साथ एक गन्धर्व वहां स्नानार्थ पहुंचा जिसने विमान आकाश में खड़ा किया और सुरूपा स्त्रियों के साथ वहां कमलकानन में क्रीड़ा करने लगा। यद्यपि रंगदास जितेन्द्रिय था, तथापि गन्धर्वनारियों की क्रीड़ा देखकर वह माला बनाना भूल गया तथा सहसा उसका वीर्यपात हो गया। तदनन्तर देखते-देखते रंगदास के सामने ही गंधर्वराज उस मनोरम सरोवर से स्नान करके बाहर आया। उसने दिव्य वस्त्रों से शरीर आच्छादित किया और पत्नियों के साथ सहास्य मुख विमान पर बैठकर कुबेरधाम चला गया। तदनन्तर गन्धर्वों के चले जाने पर रंगदास ने विमोहित स्थिति में लज्जित मन वाला होकर हाथ की माला फेंक दिया और सरोवर में स्नान के उपरान्त पुनः पुष्प चयन करके देवालय पहुंचा। तब वैखानसों

ने रंगदास को देखकर पूछा—''हे सखे! आज तो तुम पूजाकाल व्यतीत करके फूल लाये हो। तुम माला निर्माण न करके बाग में क्या कर रहे थे?।।३६-४६।।

श्रीवराह उवाच

इत्थम्पृष्टो रङ्गदासो नाऽवदल्लज्जया ततः। लज्जितं रङ्गदासं तं प्रोवाच मधुसूदनः।।४७।।

श्री वराहदेव कहते हैं—जब रंगदास से यह पूछा गया, तब उसने लज्जावशात कुछ भी नहीं कहा। उसे लज्जित देख मधुसूदन कहने लगे।।४७।।

श्रीभगवानुवाच

लज्जयाकिं रङ्गदास ! मया त्वंमोहितोह्यसि। त्वंतावज्जितकामोऽसिधीरोभवमहामते।।४८।।
गन्धर्वराजवद्राजा भवितासि महीतले। तत्र भुक्त्वा महाभोगान्भक्तिमान्मयिसर्वदा।।४९।।
प्राकारञ्चविमानञ्चकारयिष्यसि मेतदा। तत्र मुक्तिम्प्रदास्यामि प्रीत्या परमया यतः।।५०।।
अत्रैव कुरु सेवां त्वमाशरीरविमोक्षणात्। मद्भक्तानांसकामानामेवं मुक्तिर्भविष्यति।।५१।।
इत्युक्त्वाभगवान्विष्णुःपुनर्नोवाचकिञ्चन। श्रुत्वातद्रङ्गदासोऽपि चकारारामसुत्तमम्।।५२।।

श्री भगवान् कहते हैं—''हे रंगदास! तुम मेरी माया से ही मोहित हो गये थे। लज्जा क्यों करते हो? हे महामते! अब तुम कामजित् हो गये। सुस्थिर हो जाओ। तुम पृथिवी पर गन्धर्वराज के समान राजा होगे। तुम वहां मेरे प्रति सतत् भक्तिमान रह कर विविध भोगों का उपभोग करोगे। तुमने मेरे निवास की दीवार तथा विमान (विमान = कमरा-कक्ष देखे-आप्टेशब्दकोष) निर्माण करके सतत् प्रीति प्रदान किया है। इससे मैं मुदित होकर तुमको मुक्ति दूंगा। अब से शरीर त्याग पर्यन्त यहीं रह कर मेरी सेवा करो। हे वत्स! मेरे सकाम भक्तों को भी ऐसी ही मुक्ति प्राप्त होती है।'' भगवान् यह कहकर मौन हो गये। भगवान् का वचन सुनकर उस रंगदास ने एक अत्युत्तम आराम (गृह) भगवान् के लिये निर्मित किया।।४८-५२।।

साग्रं शताब्दं सेवित्वा गतः स्वर्गममन्दधीः।
जातः सोमकुले तुङ्गे तोण्डमानिति विश्रुतः।।५३।।
सुधीरतनयो वीरो नन्दिनीगर्भसम्भवः। सपञ्चवर्षादुद्भूतविष्णुभक्तिः स्वयंसुधीः।
सौशील्यशौर्यवीर्यादिगुणानामाकरो महान्।।५४।।
पाण्ड्यस्य तत्तयांपद्मामुपयेमे मनोहराम्।
ततोराजाशतंकन्यानानादेश्याः स्वयम्वराः।।५५।।
रेमे देवेन्द्रवद्भूमौ नारायणपुरे वसन्। अनुज्ञाम्प्राप्य पितृतः पुत्रः पञ्चास्यविक्रमः।।५६।।
उद्दिश्य मृगयाम्वीरो वेङ्कटाद्रेः समीपतः।।५७।।
पादचारेण चिरन्परिवारैः समन्वितः। मदधाराम्विमुञ्चन्तं ददर्श गजयूथपम्।।५८।।
तं दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा ग्रहीतुं तमनुद्रुतः। सुवर्णमुखरीं तीर्त्वा ब्रह्मर्षिशुकमुत्तमम्।।५९।।

वहां रंगदास ने १०० वर्ष विष्णु की सेवा किया तथा मृत होकर स्वर्ग चला गया। तदनन्तर उत्तम

उच्च चन्द्रवंश में राजा सुवीर की पत्नी नन्दिनी के गर्भ से तोण्डमान् नामक एक विख्यात वीरपुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ। जब धीमान् तोण्डमान् ५० वर्ष का हो गया तथा विष्णुभक्ति ने स्वयं ही उसका आश्रय लिया। शौर्य-वीर्य- सौशील्य प्रभृति गुणों के खान स्वरूप महान् तोण्डमान् राजा ने पाण्ड्य राजा की मनोहर कन्या से विवाह किया तथा नारायणपुर में स्थित होकर नानादेशीय सैकड़ों स्वयंवरा कन्याओं के साथ भूतल पर इन्द्र के समान रमण करता रहता था। तदनन्तर सिंहविक्रमी वीर तोण्डमान् पिता की अनुमति लेकर मृगया (शिकार) के लिये वेंकटाचल के समीप गया। वहां परिवार से परिवृत होकर पैदल चलते-चलते उसने मस्तक से मदक्षरण करते एक महान् गजराज के यूथ को देखा। राजा तोण्डमान् विस्मित होकर इस वन हस्ती को पकड़ने हेतु उसके पीछे दौड़ने लगा। तदनन्तर उसने सुवर्णमुखरी को पार किया तथा अत्युत्तम ब्रह्मर्षि शुक के आश्रम पहुंचा।।५३-५९।।

नमस्कृत्याऽभ्यनुज्ञातस्ततोऽगच्छद्वनाद्वनम्। ददर्श रेणुकां देवीं वल्मीकाकारसंस्थिताम्।।६०।।
इष्टदामिष्टभक्तानां दिव्यारामनिवासिनीम्। परिवारैः सदोपेतां पूजितांत्रिदशैरपि।।६१।।
तोण्डमानपि तां नत्वा ततः पश्चान्मुखो ययौ।।६२।।
पञ्चवर्णशुकं दृष्ट्वा तं जिघृक्षुरनुद्रुतः। सवदञ्छ्रीनिवासेति गिरिं शीघ्रतरं ययौ।।६३।।
अनुद्रवन्सराजाऽपिगिरिराजं समारुहत्। दरीश्चविविधाःपश्यञ्छिखराणिसमन्ततः।।६४।।
शुकमन्वेषमाणोऽसौ श्यामार्कवनमेयिवान्। समदृष्ट्वाशुकवरं वनपालं ददर्श ह।।६५।।
तं तु राजानमायान्तं प्रत्युद्गच्छन्स सत्वरः।
प्रणम्य विनयोपेतः कृताञ्जलिपुटः स्थितः।।६६।।

वहां उन्होंने ब्रह्मर्षि शुक को प्रणाम किया तथा उनकी आज्ञा लेकर वन से वनान्तर में विचरने लगे। तत्पश्चात् तोण्डमान् ने कानन भूमि में घूमते हुये वल्मीकाकृति में स्थिता, भक्तों को अभीष्ट देने वाली आरामनिवासिनी सतत् परिवार गण से मिलिता, अमरगण पूजिता रेणुका देवी का दर्शन किया। वे उनको प्रणाम करके पीछे लौटे। तत्पश्चात् उन्होंने एक पांच रंग वाले शुक को देखा तथा उसे पकड़ने उसके पीछे चल पड़े। वह शुक भी "श्रीनिवास-श्रीनिवास" का उच्चारण करता शीघ्रता से एक पर्वत के अन्दर प्रवेश कर गया। राजा तोण्डमान् भी उसका पीछा करते उस पहाड़ पर चढ़े और उस पर्वत के चारों ओर नाना गुहा एवं शिखर पर उस शुक को खोजते हुये श्यामाक वन जा पहुंचे तथापि वे उस शुक को नहीं खोज पाये। वहां एक वनपालक उनको दिखलाई पड़ा। वनपाल राजा को देखते ही उठकर उनके स्वागत के लिये आया तथा राजा को प्रणाम द्वारा विनय प्रदर्शित करते उनके सामने हाथ जोड़े खड़ा हो गया।।६०-६६।।

तोण्डमानपि सम्पूज्य तं पप्रच्छ वनेचरम्।
पञ्चवर्णः शुकः कश्चिद् दृष्टश्चात्राऽऽगतस्त्वया।।६७।।
श्रीनिवासेति च वदन्क गतौऽसौ वनेचर !।।६८।।

राजा तोण्डमान् ने भी उस वनेचर का सत्कार करके उससे पूछा "हे वनेचर! यहां एक पंचवर्ण तोता आया है। वह 'श्रीनिवास' शब्दोचारण करता पता नहीं कहां चला गया, क्या तुमने उसे देखा है?।।६७-६८।।

वनेचर उवाच

सपञ्चवर्णाराजेन्द्र ! श्रीनिवासप्रियःसदा। पार्श्ववर्तीसदातस्यश्रीभूमिभ्यांविवर्धितः॥६९॥
स्वामिपुष्करिणीतीरे सदास्ते देवसन्निधौ। ग्रहीतुं स शुकःश्रीमान्नतुकेनापिशक्यते॥७०॥
विहृत्य स्वेच्छयानित्यमस्मिन्गिरिवरेशुभे। दिनान्तेदेवमासाद्यतत्समीपेवसत्ययम्॥७१॥

वनेचर कहता है—हे राजेन्द्र! वह पञ्चवर्ण शुक सदा प्रभु श्रीनिवास को प्रिय है तथा वह पृथिवी तथा लक्ष्मी द्वारा लालित एवं वर्द्धित होकर श्रीनिवास के बगल में निवास करता है। हे श्रीमान्! वह शुक सतत् स्वामिपुष्करिणी तट पर देवता के सन्निधान में निवास करता है। अतः कोई भी पकड़ने में समर्थ नहीं है। वह शुक सतत् इस सुशोभन गिरिराज पर इच्छानुरूप विहार करता है। दिन समाप्त होने पर देवदेव के पास आता है तथा उनके निकट ही रहता है।।६९-७१।।

तं देवमाराधयितुं गमिष्यामि नृपात्मज!। विश्रम्यतां वृक्षमूले यावदागमनं मम॥७२॥
पुत्रेणाऽनेन सहितो विहर त्वं यथासुखम्॥७३॥

हे नृपात्मज! मैं उन श्रीनिवास की आराधना हेतु जा रहा हूं। जब तक मैं वापस आता हूं, आप इस वृक्ष के नीचे बैठकर मेरे पुत्र के साथ यथेच्छ बातचीत करें।।७२-७३।।

राजोवाच

त्वया सहगमिष्यामि द्रष्टुं देवं जनार्दनम्। त्वं मे दर्शय देवेशं वेङ्कटाद्रिनिवासिनम्॥७४॥
तस्य राज्ञो वचः रुत्वा श्यामाकं मधुमिश्रितम्।
चूतपत्रपुटे क्षिप्त्वा राज्ञा सह ययौ हरिम्॥७५॥
गत्वा सुदूरमध्वानं पश्यन्तौ तौ शिलातलम्।
मुहूर्तादेव सम्प्राप्तौ स्वामिपुष्करिणीं शुभाम्॥७६॥
स्नात्वा तत्र विधानेन राज्ञा सह निषादपः। दर्शयामास देवेशं राज्ञस्तस्यमहात्मनः॥७७॥
स्वामिपुष्करिणीतीरे स्थितं श्रीवृक्षमूलके। अतसीपुष्पसङ्काशम्बुजायतलोचनम्॥७८॥
चतुर्भुजमुदाराङ्गमीषत्स्मितमुखाग्बुजम्। दिव्यपीताम्बरधरं किरीटकटकोज्ज्वलम्॥७९॥
पार्श्वस्थाभ्यां सुरूपाभ्यां श्रीभूमिभ्यां समन्वितम्।
परितः सङ्खचक्रासिगदाशार्ङ्गेषुसेवितम्॥८०॥
अन्यैर्दिव्यायुधैश्चाऽपि दिव्यमाल्यैर्निषेवितम्।
स्कन्देनाऽऽराध्यमानं तं त्रिसन्ध्यं पुरुषोत्तमम्॥८१॥
वल्मीकगूढपादाब्जमाजानुपुरुषोत्तमम्। ततो दृष्ट्वा मुदा देवं प्रणेमतुरुभौ तदा॥८२॥

राजा कहते हैं—"हे वनेचर! मेरी इच्छा तुम्हारे साथ देव जनार्दन के दर्शन की है। तुम मुझे वेंकटाचलवासी देवेश का दर्शन कराओ।" वह वनेचर राजा का वाक्य सुनकर आम्रपत्रों के सम्पुट में रखा मधुयुक्त श्यामाक लेकर राजा के साथ हरि के पास जाने हेतु चल पड़ा। राजा तथा वनेचर ने दूर तक जाने के

पश्चात् एक शिलातल देखा। तदनन्तर वे मुहूर्त्तमात्र में शोभमान स्वामिपुष्करिणी तट पर पहुंचे। वहां उन्होंने विधिपूर्वक स्नान सम्पन्न किया। तदनन्तर उन महात्मा राजा को निषादपति वनेचर ने तट पर स्थित बिल्ववृक्ष के मूल में देवेश श्रीनिवास का दर्शन कराया। उन्होंने देखा कि इन श्रीनिवास की कान्ति तीसी के पुष्प के समान है. आयत नेत्र हैं, जो कमल ऐसे रक्ताभ हैं। वे चतुर्भुज उदार देह हैं। उनका मुख कमल मुस्कानयुक्त हैं। उन्होंने दिव्य पीतांबर धारण किया है। उनके मस्तक का किरीटकटक उज्वल है। पार्श्व में सुरूपा लक्ष्मी तथा पृथिवी देवी स्थित हैं। उनके चारों ओर शंख-चक्र-तलवार-गदा-शार्ङ्गधनु तथा अन्य दिव्य आयुध विराजित हैं। वे पुरुषोत्तम दिव्य माला से शोभित होकर कार्त्तिकेय द्वारा तीनों सन्ध्याओं में आराधित हो रहे हैं। उनकी मूर्त्ति के पादपद्म वल्मीक से आच्छादित हैं। वे आजानुबाहु हैं। तदनन्तर वनेचर तथा राजा ने श्रीनिवास का दर्शन करके उनको प्रणाम किया।।७४-८२।।

राजा तु प्राञ्जलिर्भूत्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनः। आनन्दलहरीं प्राप्यनप्राज्ञायतकिञ्चन।।८३।।
निषादोऽपि निवेद्यैव श्यामाकंमधुमिश्रितम्। राज्ञेतदर्धंदत्त्वैवशिष्टार्धंभुक्तवान्स्वयम्।।८४।।
पीत्वा पुष्करिणीतोयं तेन राज्ञा समन्वितः। स पुनःश्यामकवनेपुण्यांपर्णकुटींययौ।।८५।।
उषित्वा चैकरात्रं तु प्रातरुत्थाय भूमिपः। स्वसैन्येन समायुक्तो निवृत्तःस्वपुरंययौ।।८६।।
पुनर्देवीवनं गत्वा हयादवततार ह। चैत्रशुद्धनवम्यां तु पूजयामास रेणुकाम्।।८७।।
हविष्यं परमान्नं च सोपस्करमनेकशः। पशूपहारसहितं धूपदीपसमन्वितम्।।८८।।
सुराघटीशतं दत्त्वा जातीकेसरवासितम्। एवं सम्पूजिता देवी प्रीता राज्ञे वरं ददौ।।८९।।

विस्मय से उत्फुल्ल नेत्रों वाले राजा आनंदलहरी में डूबते उतराते इतने तन्मय हो गये कि उस समय उसे कुछ भी भान नहीं रहा। निषादराज ने भी भगवान् को मधुमिश्रित श्यामाक निवेदन करके उस प्रसाद का आधा राजा को दिया तथा आधे का स्वयं भोजन किया। उन्होंने स्वामिपुष्करिणी का जल पान किया तथा राजा के साथ वह निषाद पुनः श्यामाक वन की पर्णकुटी लौटा। वहां राजा ने एक रात्रि निवास किया तथा प्रातः पुनः अपनी नगरी में लौट आये। तदनन्तर राजा चैत्रमास की शुक्लानवमी के दिन, देवीवन जाकर अश्व से उतरे तथा वहां रेणुका की पूजा सम्पन्न किया। उन्होंने परम हविष्यान्न, अनेक उपकरण, धूप-दीप, पशु का उपहार तथा जातीपुष्प केसर सदृश सौरभयुक्त १०० सुरा कलस देवी को प्रदान किया। तदनन्तर देवी का पूजन किया। इससे देवी रेणुका राजा के प्रति प्रसन्न हो गयीं तथा राजा को वर प्रदान किया।।८३-८९।।

आविष्टः पुरुषः कश्चिदवदन्नृपसत्तमम्। शृणु राजन्भविष्यं ते राज्यं निहतकण्टकम्।।९०।।
राजंस्तवैव नाम्नाऽत्र राजधानीभविष्यति। मत्समीपे महाराजचिरंराज्यंकरिष्यसि।।९१।।
देवदेवप्रसादश्च भविष्यति तवाऽनघ !। इति दत्त्वा वरं तस्मा आविष्टः प्रकृतिं ययौ।।९२।।
ततो लब्धवरो राजा ययौ शुकमुनिं पुनः।।९३।।
अभिवाद्य मुनिं तेनपूजितोमुदितोऽभवत्। माहात्म्यंसरसोब्रूहिकमलाख्यस्य मे मुने।।९४।।

इसके कुछ क्षणों पश्चात् एक पुरुष राजा के समक्ष आविर्भूत होकर कहने लगा—"हे राजन! तुम्हारे भविष्य का मैं फलाफल कहता हूं। सुनो! हे राजन्! तुम्हारा राज्य कण्टकरहित होगा। तुम्हारे नाम से राजधानी

का नाम प्रख्यात होगा। हे निष्पाप महाराज! देवाधिदेव श्रीनिवास की कृपा से तुम मेरे समीप चिरकाल तक राज्यपालन करोगे।'' वह पुरुष यह वर देकर अपनी प्रकृति में लीन हो गया। वर प्राप्त राजा शुकमुनि के पास गये। उन्होंने मुनि का अभिवादन तथा पूजन करके मुनि से पूछा ''हे मुनिवर! कृपया कमलाख्य सरोवर के माहात्म्य का वर्णन करिये।''।।९०-९४।।

श्रीशुक उवाच

पुरा दुर्वाससः शपादवतीर्णा सुरालयात्। पद्मापद्माक्षदयिता विष्णुना सहिता नृप॥९५॥
सरः काञ्चनपद्माढ्यमिदं प्राप्य महेश्वरी। तपश्चकार वर्षाणां दिव्यानामयुतं रमा॥९६॥
ततो देवाविचिन्वन्तःश्रियंविष्णुसमन्विताम्। पुरन्दरेणसंयुक्ताराजन्नस्मिन्सरोवरे॥९७॥
स्थितां सुवर्णकमले पुण्डरीकाक्षसंयुताम्।
दृष्ट्वा प्रीतिसमायुक्ताः प्रणम्याम्बुजधारिणीम्।
कृताञ्जलिपुटाः सेन्द्रास्तुष्टुवुर्लोकमातरम्॥९८॥

मुनिवर शुक कहते हैं—हे नृप! पूर्वकाल में दुर्वासा के शाप के कारण राजीवलोचन विष्णु की पत्नी कमला देवलोक से विष्णु के साथ आकर स्वर्णकमलों से युक्त इस सरोवर में आई तथा महेश्वरी रमा (लक्ष्मी ने) दिव्यमान वाले १०००० वर्ष पर्यन्त यहां तप किया। हे राजन्! तत्पश्चात् सुरगण विष्णु तथा लक्ष्मी को खोजते-खोजते इन्द्र के साथ इस सरोवर तक आये। यहां उन्होंने लक्ष्मी को पुण्डरीकनयन श्रीहरि के साथ स्वर्णकमल में विराजमान देखा। इससे प्रसन्न होकर सभी ने इन्द्र के साथ भगवान् को प्रणाम किया तथा हाथ जोड़कर कमलधारिणी लोकमाता का स्तव करने लगे।।९५-९८।।

देवा ऊचुः

नमः श्रियै लोकधात्र्यै ब्रह्ममात्रे नमोनमः। नमस्ते पद्मनेत्रायै पद्ममुख्यै नमोनमः॥९९॥
प्रसन्नमुखपद्मायै पद्मकान्त्यै नमोनमः।
नमो बिल्ववनस्थायै विष्णुपत्न्यै नमोनमः॥१००॥
विचित्रक्षौमधारिण्यै पृथुश्रोण्यै नमोनमः। पक्वबिल्वफलापीनतुङ्गस्तन्यै नमोनमः॥१०१॥
सुरक्तपद्मपत्राभकरपादतले शुभे। सुरत्नाङ्गदकेयूरकाञ्चीनूपुरशोभिते।
यक्षकर्दमसंल्लिप्तसर्वाङ्गे कटकोज्ज्वले॥१०२॥
माङ्गल्याभरणैश्चित्रैर्मुक्ताहारैर्विभूषिते। ताटङ्कैरवतंसैश्च शोभमानमुखाम्बुजे॥१०३॥

देवगण कहते हैं—लक्ष्मी को प्रणाम! लोकधात्री ब्रह्म माता को नमस्कार, नमस्कार। हे पद्मनेत्रे! पद्मवदने! आपको प्रणाम! जिनका मुखकमल प्रफुल्ल है, उन पद्मकान्ति लक्ष्मी को प्रणाम! आप बिल्ववनवासिनी हैं। हे विष्णुपत्नी! आपको प्रणाम! विचित्र क्षौमधारी पृथुश्रोणि लक्ष्मी को प्रणाम! जिनके स्तनद्वय पके बिम्बफल के समान पीन तथा उन्नत हैं, उन कमला को प्रणाम! हे शुभे! आपकी हथेली तथा तलवों की आभा रक्तिम पद्मपत्रवत् है। आप उत्तम रत्न, अंगद, केयूर, काञ्ची, नूपुर से शोभिता हैं। आप सदा यक्षकर्दम से लिप्त हैं।

आप हाथों में उज्वल कटक तथा विचित्र मांगल्य आभरण एवं कण्ठ में मुक्ताहार से शोभिता हैं। ताटङ्क नामक आभूषण से आपका मुखकमल उपशोभित हो रहा है।।९९-१०३।।

पद्महस्ते नमस्तुभ्यं प्रसीदं हरिवल्लभे !। ऋग्यजुःसामरूपायै विद्यायै ते नमोनमः।।१०४।।

प्रसीदास्मान्कृपादृष्टिपातैरालोकयाऽब्धिजे। ये दृष्टास्तेत्वयाब्रह्मरुद्रेन्द्रत्वंसमाप्नुयुः।।१०५।।

हे हरिवल्लभे! हे पद्मकरे! आप प्रसन्न हों। आपको प्रणाम! आप ऋक्, यजुः तथा सामरूपी विद्या हैं। आपको प्रणाम! आप हमारे प्रति कृपाकटाक्ष प्रदान करें। तभी हमने रुद्रत्व, ब्रह्मत्व तथा इन्द्रत्व पद पाया है। हे अब्धिजे! कृपादृष्टिपात से हमें देखकर हमारे ऊपर प्रसन्न हों।।१०४-१०५।।

श्रीशुक उवाच

इति स्तुता तदा दैवैर्विष्णुवक्षःस्थलालया।
विष्णुना सह संदृश्या रमा प्रीताऽवदत्सुरान्।।१०६।।

शुक कहते हैं—तदनन्तर सुरगण द्वारा स्तुति किये जाने पर विष्णु हृदयवासिनी रमा ने विष्णु के साथ सुरगण को दर्शन दिया तथा उनसे प्रीतिपूर्वक यह कहने लगीं।।१०६।।

श्रीरुवाच

सुरारीन्सहसा हत्वा स्वपदानि गमिष्यथ।
ये स्थानहीनाः स्वस्थानाद् भ्रंशिता ये नरा भुवि।।१०७।।
ते मामनेन स्तोत्रेण स्तुत्वा स्थानमवाप्नुयुः।
अखण्डैर्बिल्वपत्रैर्मामर्चयन्तिनराभुवि ।।१०८।।

स्तोत्रेणाऽनेन ये देवा नरा युष्मत्कृतेन वै। धर्मार्थकाममोक्षाणामाकरास्तेभवन्ति वै।।१०९।।

इदं पद्मसरो देवा ये केचननराभुवि। प्राप्यस्नानंकरिष्यन्तिमांस्तुत्वाविष्णुवल्लभाम्।।११०।।

तेऽपि श्रियं दीर्घमायुर्विद्यां पुत्रान्सुवर्चसः।
लब्ध्वा भोगांश्च भुक्त्वाऽन्ते नरा मोक्षमवाप्नुयुः।।१११।।

इति दत्त्वा वरं देवीं देवेन सह विष्णुना। आरुह्य गरुडेशानं वैकुण्ठस्थानमाययौ।।११२।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसंवादे वसुनामकनिषादवृत्तान्तपद्म-
सरोमाहात्म्यादिवर्णनंनाम नवमोऽध्यायः।।९।।

लक्ष्मी कहती हैं—"जो सब देवता अपने स्थान से च्युत हो गये हैं, वे शीघ्र असुरों का नाश करके अपने-अपने पदों की प्राप्ति करें तथा जो पृथिवी से भी स्वस्थान भ्रष्ट हो गये हैं, वे भी स्तव द्वारा मेरी आराधना करके अपने-अपने स्थानों का लाभ करें। हे देवगण! पृथिवी में जो मानव अखण्ड बिल्वपत्र से मेरी पूजा करें

तथा तुमलोगों द्वारा कहे गये इस स्तव से मेरी स्तुति करेंगे वे सभी धर्मार्थ काममोक्ष के आलय होंगे। हे देवगण! मर्त्यलोक में जो मनुष्य इस कमल सरोवर में आकर स्नान करेंगे तथा मुझ विष्णुप्रिया का स्तव करेंगे, वे श्री, दीर्घायु, विद्या तथा तेजस्वी पुत्रलाभ करेंगे तथा नाना भोग्य वस्तु का उपभोग करके अन्त में मोक्ष लाभ करेंगे।'' तदनन्तर देवी लक्ष्मी ने देवगण को यह वर प्रदान किया तथा विष्णु के साथ गरुड़ पर बैठकर अपने स्थान वैकुण्ठ में चली गयीं।।१०७-११२।।

।।नवम अध्याय समाप्त।।

दशमोऽध्यायः

तोण्डमान् द्वारा पिता से राज्यप्राप्ति, वसुकथित वराह दन्त-वर्णन, वीरशर्मा चरित वर्णन, भीमनामक कुलाल के वृत्तान्त का वर्णन

श्रीशुक उवाच

इदं पद्मसरोनाम राजन्पापप्रणाशनम्। कीर्तनात्स्मरणात्स्नानान्नृणांलक्ष्मीप्रदम्भुवि।
कृत्वा स्नानं त्वमप्यस्मिन्व्रज स्वपितुरन्तिकम्।।१।।

श्री शुक कहते हैं—हे राजन्! भूतल पर पाप प्रणाशन कमला सरोवर के कीर्त्तन तथा स्मरण से एवं वहां स्नान करने से मनुष्य को लक्ष्मीलाभ होता है। तुम भी इस सरोवर में स्नान करके अपने पिता के निकट जाओ।।१।।

श्रीवराह उवाच

एतच्छुकवचः श्रुत्वा स्नात्वा पद्मसरोवरे।।२।।
तं नत्वा हयमारुह्य तोण्डमान्स्वपुरंययौ। तं पितायुवराजानं कृत्वा त्रीनवत्सरानथ।।३।।
रञ्जकत्वञ्च सामर्थ्यं शौर्यं वीर्यं सुशीलताम्।
भक्तिम्विप्रेषु पुत्रस्य वीक्ष्य राजा स्वमन्त्रिभिः।।४।।
स्वपदेस्थापयामासस्वभिषिच्यविधानतः। अनुनीय सुतं पत्न्या सार्धंराजावनंययौ।।५।।

श्री वराहदेव कहते हैं—राजा तोण्डमान् ने मुनि प्रवर शुक का वाक्य सुनकर कमलसरोवर में स्नान करके उसे प्रणाम किया तथा अश्व पर बैठकर अपने नगर लौट आये। तीन वर्ष व्यतीत हो जाने पर उनके पिता ने तोण्डमान् की प्रजावत्सलता, शौर्य, वीर्य, शील, विप्रभक्ति देखकर तथा उनके राजोचित गुण देखकर मंत्रियों के मतानुसार उसे विधिपूर्वक अभिषिक्त करके अपने पद पर प्रतिष्ठित किया। तदनन्तर उन्होंने पुत्र को विविध नीतिशिक्षा देकर पत्नी के साथ स्वयं वानप्रस्थ का अवलम्बन ले लिया।।२-५।।

तोण्डमानपिसाम्राज्यंलब्ध्वाराज्यसञ्चकार ह। निषादस्यवनेदेवो वाराहंरूपमास्थितः॥६॥
श्यामाकपक्कम्भक्षित्वा रात्रौरात्रौचचारह। पदानि स वराहस्यचान्वियेषदिवादिवा॥७॥
अदृष्ट्वा तं वराहं स रात्रौ जाग्रद्धनुर्धरः। स्थितोऽपश्यच्चरन्तन्तं चन्द्रकोटिसमप्रभम्॥८॥
वराहं सुभगाकारं श्यामाकवनमध्यतः। तं दृष्ट्वा धनुरादाय सिंहनादञ्चकार ह॥९॥
वराहस्तद्ध्वनिं श्रुत्वा वनान्निष्क्रम्य सत्वरम्। ययौतञ्चाप्यनुययौवराहंसनिषादपः॥१०॥
रात्रिशेषमनुद्रुत्य वने चन्द्रसमप्रभम्। वल्मीकं प्रविशन्तं च ददर्श स निषादपः॥११॥
गच्छन्तं पूर्णिमाचन्द्रमस्तं गिरिवरं यथा।
विस्मितोऽखानयत्कोपाद्वल्मीकं स निषादपः॥१२॥
धरावराहौददृशेमूर्च्छितोऽयंपपातह। पितरम्मूर्च्छितं दृष्ट्वा तत्पुत्रोभक्तिमांस्तदा॥१३॥
वराहदेवन्तुष्टाव तेन प्रीतोऽभवद्धरिः। आविश्य पितरन्तस्य प्रोवाच मधुसूदनः॥१४॥

तोण्डमान् भी साम्राज्य प्राप्त करके प्रजागण का पालन करने लगे। तत्पश्चात् श्रीहरि भी वराहरूप धारण करके प्रति रात्रि निषादपालित पक्व श्यामक का भोजन करते विचरण करते थे। निषाद ने भी (श्यामक खाया देखकर) दिन में वराहदेव के पदचिह्नों को देखकर उनका अन्वेषण प्रारंभ किया। वह दिन में वराह को न देख पाने के कारण धनुष धारण करके रात्रि में जागा तथा श्यामक वन में कोटिचन्द्रतुल्य प्रभावान् वराह को देखा। निषादपति ने वराह को देखकर धनुष लेकर सिंहनाद किया।

वराह इस ध्वनि को सुनकर उस वन से पलायित होने लगा। तब निषादपति भी उसका पीछा करने लगा। निषादपति ने समस्त रात्रि पर्यन्त उस वराह का पीछा किया, तदनन्तर रात्रि के अन्त में उसने उस चन्द्रमा के समान कान्तिवाले वराह को वल्मीकि में प्रवेश करते देखा। निषादपति अस्ताचलगामी पूर्णचन्द्र के समान वराह को दीमक की उस विशाल बांबी में प्रविष्ट होते देखकर विस्मित हो गया। उसने क्रोधवशात् उस वल्मीकि को खोदना प्रारंभ कर दिया। निषाद ने वल्मीकि जब खोद लिया तब अन्दर वराह का दर्शन करके मूर्च्छाग्रस्त होकर गिर पड़ा। उसके भक्तिमान् पुत्र ने पिता को मूर्च्छित पड़ा देखकर वराह को स्तव द्वारा सन्तुष्ट किया, तब मधुसूदन निषाद के शरीर को आविष्ट करके कहने लगे।।६-१४।।

श्रीभगवानुवाच

अहम्वराह देवेशो नित्यमस्मिन्वसाम्यहम्। राज्ञे त्वमुक्त्वा मामत्र प्रतिष्ठाप्यैवपूजय॥१५॥
वल्मीकं कृष्णगोक्षीरैः क्षालयित्वा तदुत्थिते।
शिलातले च वाराहमुद्धृत्य धरणीस्थितम्॥१६॥
कारयित्वा प्रतिष्ठाप्य विप्रैर्वैखानसैश्च माम्। पूजयेद्विविधैर्भोगैतोण्डमान्राजसत्तमः॥१७॥
इत्युक्त्वा तं जहौ देवः स च स्वस्थो बभूव ह।
सुखासीनन्तु पितरं नमस्कृत्य निषादजः॥१८॥
न्ययवेदयद्देवचःपित्रेसर्वंयथातथम्। सश्रुत्वाविस्मितोभूत्वा कृत्स्नं पुत्रवचःशुभम्॥१८॥

राज्ञे वक्तुं ययौ शीघ्रं निषादः स्वानुगैः सह। वसुर्निषादाधिपती राजद्वारमुपागमत्॥१९॥
निषादाधिपमाज्ञाय द्वारपालैर्नृपोत्तमः। आहूय तन्निषादेशं सभायाम्मन्त्रिभिः सह॥२०॥
सत्कृत्य तं वसुंराजा सपुत्रंसपरिच्छदम्। पप्रच्छ प्रीतिमान्राजा वसुं तंवनगोचरम्॥२१॥
किमागमनकृत्यन्ते वद त्वं वनगोचर !॥२२॥

श्री भगवान् कहते हैं—मैं वराहरूपेण सतत् इस वल्मीक में निवास करता हूं। तुम राजा को यह बतलाकर मुझे प्रतिष्ठित करके पूजन करो। उन्होंने और भी कहा—"हे नृपश्रेष्ठ! जब तोण्डमान् इस वल्मीक का खनन कृष्ण गौ के दुग्ध से करेंगे, तब इस वल्मीक से पृथिवी स्थित वराह शिलातल से उत्थित होंगे। तदनन्तर उस प्रतिमा की प्रतिष्ठा वैखानस विप्रों द्वारा कराकर भोग्य वस्तु से पूजा करें।" श्री वराहदेव यह कहकर अन्तर्हित् हो गये, तब निषाद ने चैतन्य लाभ किया। निषादपुत्र ने पिता को सुखपूर्वक समासीन देखकर सब वृत्तान्त यथायथ रूप से कहा। निषादपति ने पुत्रकथित शोभन वाक्यों को सुना तथा वह विस्मित हो गया। वह निषाद अपने अनुचरों के साथ यह समाचार राजा को बतलाने के लिये तेजी से चल पड़ा। तत्पश्चात् निषादपति को राजद्वार पर उपस्थित जानकर नृपश्रेष्ठ तोण्डमान् ने द्वारपालगण को आदेश देकर निषादपति वसु को राज्यसभा में बुलवाया। राजा ने मन्त्रियों के साथ प्रेमपूर्वक निषादपति का स्वागत करके वनेचर वसु से पूछा "हे वनेचर! तुम्हारा आगमन किसलिये हुआ है?"।।१५-२२।।

वसुरुवाच

राजन्मम वने दृष्टमाश्चर्यं शृणु भूषते !॥२३॥
कश्चिच्छ्वेतवराहस्तु श्यामाकमचरन्निशि। तम्बराहं धनुष्पाणिरन्वधावमहं नृप॥२४॥
अनुद्रुतो वायुवेगोगत्वावल्मीकमाविशत्। स्वामिपुष्करिणीतीरेपश्यतो मम भूपते॥२५॥
वल्मीकमखनं क्रोधान्मूर्च्छितो न्यपतम्भुवि।
मत्पुत्रोऽयं समागत्य मां दृष्ट्वा मूर्च्छितम्भुवि॥२६॥
शुचिर्भूत्वा देवदेवं तुष्टाव मधुसूदनम्। ततो मयि समाविश्य वराहोऽध्यवदत्सुतम्॥२७॥
राज्ञे निवेदय क्षिप्रं मच्चरित्रं निषादप। कृष्णगोक्षीरसेकेन वल्मीकं क्षालयेन्नृपः॥२८॥
दृश्यते च शिला काचिद्वल्मीकस्था सुशोभना।
वामाङ्कस्थभुवं माञ्च वराहवदनं स्थितम्॥२९॥
कारयित्वा शिल्पिनाऽथप्रतिष्ठाप्य मुनीश्वरैः। वैखानसैर्मुनिवरैरर्चयेत्तोण्डमानपि॥३०॥
अथ गत्वाश्रीनिवासंवल्मीकावृतपदद्वयम्। कपिलाकृष्णगोक्षीरसेचनैःक्षालयेच्छनैः॥३१॥
आपादपीठपर्यन्तं क्षालयित्वा दिनेदिने। कुर्यात्प्राकारमुभयोरुत्तरे दक्षिणेतथा॥३२॥
इत्युक्त्वा चैव माऽमुञ्चद्देवःस्वस्थोऽभवन्नृप। इदन्तेवक्तुमायातोदेवदेवचिकीर्षितम्॥३३॥

निषादराज वसु कहता है—हे भूपति! वन में मैंने एक आश्चर्य घटना देखा है। सुनें। हे राजन्! रात्रिकाल में कोई एक श्वेतवराह श्यामाकवन में विचरण कर रहा था। हे नृप! मैंने धनुष लेकर उसका पीछा

किया। तदनन्तर मैं वायुवेग से वराह के पीछे दौड़ता हुआ स्वामिपुष्करिणी तीर की एक वल्मीकि में प्रविष्ट हो गया। हे भूपति! मैं वल्मीकि देखकर क्रुद्ध होकर उसका खनन करते हुये मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़ा। तत्पश्चात् मेरे पुत्र ने वहां मुझे मूर्च्छित तथा पृथिवी पर गिरा देखकर पवित्र भाव से देवदेव मधुसूदन का स्तव किया। तब वराह मेरे शरीर में प्रविष्ट होकर मेरे मुख द्वारा पुत्र से कहने लगा—"हे निषादपति! शीघ्र राजा के पास जाकर उनको मेरा चरित सुनाओ। राजा काली गौ के दुग्ध द्वारा वल्मीकि को प्रक्षालित करें। तब उनको वल्मीकि में एक शोभन शिला लक्षित होगी। तदनन्तर शिल्पी से उस शिलाद्वारा मेरी मूर्त्ति बनवाकर प्रतिष्ठित करें। इस मूर्त्ति के वाम क्रोड़ में भूमिदेवी रहें। राजा इस मूर्त्ति की प्रतिष्ठा वैखानस मुनिगण द्वारा करायें तथा अर्चना करें। हे निषादपुत्र! और भी सुनो "राजा तोण्डमान् श्रीनिवास के यहां जाये तथा वल्मीकि से आवृत उनके दोनों पैर देखें। तदनन्तर कपिला कृष्णागौ के दुग्ध से प्रतिदिन पैरों से पीठ पर्यन्त धीरे-धीरे धुलाई करे। इस वल्मीकि के उत्तर-पश्चिम कोण पर एक प्राकार निर्माण करायें।" हे राजन्! मधुसूदन इतना कहकर अन्तर्हित् हो गये। मैं भी स्वस्थ हो गया। सम्प्रति देवदेव श्रीनिवास का जो अभीष्ट है, वही कहने आया हूं।।२३-३३।।

श्रीवराह उवाच

तोण्डमानपि तच्छ्रुत्वा सुप्रीतो विस्मतोऽभवत्।
ततः कार्यं विनिश्चित्य मन्त्रिभिः पुष्करादिभिः।।३४।।
वेङ्कटाद्रिं जिगमिषुर्गोपानाहूय सर्वशः।
कृष्णाश्च कपिला गावो याः काश्चित्सन्ति मामिकाः।।३५।।
ताः सवत्सा आनयध्वं वेङ्कटाद्रिसमीपतः।
इत्याऽऽज्ञाप्य नृपो गोपाञ्छ्वो यात्रेति च मन्त्रिणः।।३६।।
विसृज्य प्रकृतीः सर्वा विवेशान्तःपुरम्वशी।
उक्त्वा कथां तां पत्नीभ्यः सुष्वाप निशि पार्थिवः।।३७।।
तं स्वप्ने श्रीनिवासोऽपि बिलमार्गंह्यदर्शयत्। स्वपुरादाबिलंमार्गेपल्लवानसृजद्धरिः।।३८।।
एवं स्वप्नं नृपोदृष्ट्वा प्रातरुत्थाय सत्वरः। आहूय मन्त्रिणः सर्वान्प्रकृतीब्राह्मणानपि।।३९।।
स्वप्नन्तथाविधं चोक्त्वाऽपश्यद्द्वारेऽथ पल्लवान्।
युक्ते मुहूर्ते प्रययौ हयमारुह्य तोण्डमान्।।४०।।
पश्यन्पल्लवभङ्गाश्च शनैः प्रीतो ययौ बिलम्। दृष्टा विस्मयमापन्नो निर्ममेतत्रपत्तनम्।।४१।।
विलमन्तःपुरे कृत्वा प्राकारञ्चाऽप्यकारयत्।
वसंस्तत्र नृपेन्द्रोऽसौ निर्जित्य पृथिवीमिमाम्।।४२।।
यथोक्तं देवदेवेन क्षीरप्रक्षालनादिकम्। कृत्वा प्राकारनिर्माणं कर्तुमुद्योगमाययौ।।४३।।

श्री वराहदेव कहते हैं—तदनन्तर राजा यह वाक्य सुनकर विस्मित तथा प्रसन्न हो गये। उन्होंने पुष्कर

आदि मन्त्रिगण के साथ यह निश्चित करके वेंकटाचल जाने की इच्छा किया। राजा ने गोपों को बुलाकर कहा—"मेरे पास जितनी भी कपिल कृष्णा गौये हैं, उन सबको वेंकटाचल ले चलो।" वशी राजा ने गोपगण को यह आदेश दिया तथा कहने लगा—"हे मन्त्रीगण! मैं परसों यात्रा करूंगा।" इस प्रकार कहकर उसने प्रजाओं को विदा किया तथा अन्तःपुर में प्रवेश कर गये तथा पत्नियों से यह वृत्तान्त कहकर रात्रि में शयन किया। तदनन्तर स्वप्न में देखा कि श्रीनिवास उनके समक्ष खड़े होकर सुरंग मार्ग दिखला रहे हैं। साथ ही उन्होंने हरिपुर से सुरंगपथ तक पल्लव विछाया था। राजा ने सुबह उठकर शीघ्रता से मन्त्री, प्रजा तथा ब्राह्मणों को बुलाकर इस स्वप्न वृत्तान्त को कहा तथा यह सत्य भी देखा कि स्वप्न के अनुसार द्वार पर पल्लव पड़े हैं। तदनन्तर राजेन्द्र तोण्डमान् ने शुभमुहूर्त्त में यात्रा प्रारंभ किया। वे अश्व पर बैठकर पल्लव का अनुसरण करते-करते श्रीनिवासपुर पहुंचे। वे पुर दर्शन से विस्मयापन्न हो गये तथा अन्तःपुर, पत्तन, प्राकारादि निर्माण करके वहां निवास करने लगे। तदनन्तर राजा ने देवदेव द्वारा बताये गये क्षीर प्रक्षालन तथा प्राचीर निर्माण का कार्य सम्पन्न किया तथा जाने के लिये तैयार हो गये।।३४-४३।।

तदानीं देवदेवेन स्वयमाज्ञापितो नृपः। तिन्तिणींचम्पकञ्चोभौपालयैतौ नगोत्तमौ॥४४॥

मम चाऽऽस्थानकी चिञ्चा लक्ष्म्याः स्थानञ्च चम्पकः।

नमस्कार्यौ नृपैस्तौ हि ऋषिदेवनरैः सदा॥४५॥

संस्थाप्यैतौनृपश्रेष्ठच्छेदयान्यान्नगोत्तमान्। प्राकारमात्रं कुरु मे द्वारगोपुरसंयुतम् ॥४६॥

विमानन्तु भवद्वंश्योनाम्नानारायणोनृपः। कारयिष्यतिमद्भक्तः स्वर्णेनाऽलङ्करिष्यति॥४७॥

तब देवदेव ने स्वयं राजा को आज्ञा दिया। कहा—"हे नृपोत्तम! यह जो पर्वतोत्तम तिन्तिड़ी तथा चम्पा देखते हो, यह मेरा तथा लक्ष्मी का अधिष्ठान है। राजा, ऋषि, देवता तथा मनुष्य सदा इन पर्वतद्वय को प्रणाम करते हैं। हे नृपश्रेष्ठ! अन्य वृक्षों का छेदन तथा प्राचीर निर्माण करके इनका पालन करो। हे नृप! तुम्हारे वंशोत्पन्न राजा नारायण नाम से प्रसिद्ध मेरा एक भक्त विमान निर्माण करके स्वर्ण से इस विमान को अलंकृत करेगा"।।४४-४७।।

श्रीवराह उवाच

एवमुक्त्वा तोण्डमानं विरराम श्रियःपतिः। एवं देववचःश्रुत्वा कृत्वा प्राकारमेव च॥४८॥

पूजयामास मुनिभिर्वैखानसकुलोद्भवैः॥४९॥

नित्यंबिलेन चाऽऽगत्य देवं नत्वानृपोत्तमः। राज्यञ्चकारधर्मेणभुञ्जानोभोगमुत्तमम्॥५०॥

एतस्मिन्नेव काले तु दाक्षिणात्यो द्विजोत्तमः॥५१॥

गङ्गास्नानायगच्छन्वैसदारःप्रययौपुरात्। मार्गेऽथगर्भिणीजाता ब्राह्मणी ब्राह्मणःसच॥५२॥

तांतुगर्भवतींदृष्ट्वास्वात्मानुगमनेऽक्षमाम्। राजानं द्रष्टुकामोऽसौ राजद्वारमुपागमत्॥५३॥

द्वाःस्थेनाऽऽज्ञापितो राजा तमाहूय द्विजोत्तमम्।

पूजयित्वा तु विधिवत्पप्रच्छ कुशलं द्विजम्॥५४॥

वराहदेव कहते हैं—रमापति राजा से यह कहकर मौन हो गये। राजा तोण्डमान् ने देववाक्य सुनकर प्राकार बनवाया तथा वैखानस वंश में उत्पन्न मुनिगण द्वारा श्रीनिवास की पूजा कराया तथा नृपोत्तम नित्य सुरंगपथ से आकर देवता को प्रणाम करते तथा उत्तम भोग्यों का उपभोग करके धर्मानुरूप राज्य पालन करने लगे। इसी समय दक्षिणापथवासी द्विजोत्तम वीरशर्मा गंगास्नान के अभिलाषी होकर पत्नी के साथ चल पड़े। तदनन्तर पथगमन काल में उनकी पत्नी गर्भवती हो गयी। ब्राह्मण ने गर्भवती को साथ चल सकने में अक्षम देखा तब वे राजा का दर्शन करने की इच्छा से राजद्वार आये। तदनन्तर जब राजा ने द्वारपाल से किसी ब्राह्मण के आने का वृत्तान्त सुना, तब उन्होंने उन द्विजश्रेष्ठ को सभा में ले आने का आदेश द्वारपाल को दिया। उनके सभा में आगमन करने पर राजा ने उनका यथाविधि पूजन सत्कार करके कुशल प्रश्न किया।।४८-५४।।

राजोवाच

किमागमनकृत्यन्ते किंकरिष्याम्यहं द्विज !।।५५।।

राजा कहते हैं—हे द्विज! आपके आगमन का क्या कारण है? मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूं।।५५।।

ब्राह्मण उवाच

वासिष्ठो वीरशर्माऽहं सामवेदी नृपोत्तम !।
सदारोनिर्गतोराजन्गङ्गास्नानाय सादरः। मार्गेच गर्भिणीचेयंकौशिकीपुण्यशालिनी।।५६।।
नाम्ना लक्ष्मीरिति ख्याता सुशीला च पतिव्रता।
संस्थाप्यैनां तव गृहे व्रतं निर्वर्तयाम्यहम्।।५७।।
तस्माद्राजन्प्रयच्छाऽस्यै यथेष्टं भक्तवेतने। तावच्च रक्ष्यतां लक्ष्मीर्यावदागमनं मम।।५८।।

ब्राह्मण कहते हैं—"हे नृपोत्तम! मेरा जन्म वसिष्ठ वंश में हुआ है। मेरा नाम है वीरशर्मा। मैं सामवेदी ब्राह्मण हूं। हे राजन्! मैं आदर के साथ पत्नी के साथ गंगा स्नानार्थ जा रहा था, तभी मेरी पत्नी गर्भवती हो गयीं। वे पुण्यात्मा नारी कौशिक वंश में जन्मी सुशीला, पतिव्रता हैं। उनका नाम है लक्ष्मी। मैं उनको आपके यहां रखकर व्रतादि का निर्वाह करना चाहता हूं। इसी कारण मैं यहां आया हूं। हे राजन्! जब तक मैं वापस नहीं लौटता तब तक आप मेरी पत्नी को यथाभिलाषित भोजन तथा वेतन देकर उसकी रक्षा करें।।५६-५८।

श्रीवराह उवाच

राजा तस्य वचः श्रुत्वा तण्डुलानि धनान्यपि। दत्त्वाषणमासपर्यन्तंगृहमन्तःपुरेददौ।।५९।।
तां न्यस्यब्राह्मणःप्रीतोगङ्गास्नानायनिर्ययौ। गत्वाभागीरथीं गङ्गां प्रयागेक्षेत्रउत्तमे।।६०।।
स्नात्वा काशीं ततो गत्वा तत्रोषित्वा दिनत्रयम्।
गयाम्प्रात्य पितृश्राद्धमकरोद् ब्राह्मणोत्तमः।।६१।।
गत्वाऽयोध्यामपिपुरींप्रययौबदरीवनम्। सालग्रामं ततो गत्वा स्वदेशम्प्रतिनिर्ययौ।।६२।।
सम्वत्सरद्वयेऽतीते चैत्रे मासि शुभे दिने। निवृत्तोऽसौद्विजश्रेष्ठः शनैरागत्यमाधवे।।६३।।

एकादश्यां शुक्लपक्षे पुना राजानमाययौ। राजा तु विस्मृत्यतदाब्राह्मणीनास्मरन्नृपः॥६४॥
ब्राह्मणी मानिनी गेहे मृता शुष्का बभूव ह। वीरशर्मा ततो विप्रो गङ्गातोयकरण्डकम्॥६५॥
विमुच्य बन्धनं त्वेकं गङ्गाम्भःकरकं शुभम्। प्रादायराज्ञे पप्रच्छ पत्नी कुशलिनीतिमे॥६६॥

श्री वराहदेव कहते हैं—राजा ने ब्राह्मण का वचन सुनकर लक्ष्मी को अन्तःपुर में निवास-स्थान प्रदान किया तथा छः मास पर्यन्त उपभोगार्थ तण्डुल तथा धन आदि प्रदान किया। ब्राह्मण ने भी पत्नी की राजभवन में व्यवस्था करके प्रसन्नमन से गंगास्नानार्थ वहां से बहिर्गत होकर प्रस्थान किया। इसके पश्चात् वह ब्राह्मणप्रवर उत्तम प्रयाग क्षेत्र में गया तथा वहां भागीरथी में स्नान करके काशी गया। वह तीन दिन काशी में रहकर पितरों के श्राद्ध हेतु गया आया तथा वहां पितरों का श्राद्ध सम्पन्न किया। तदनन्तर वह ब्राह्मण अयोध्या, बदरीवन, शालग्राम तीर्थ का दर्शन करके अपने देश के लिये चल पड़ा। इस प्रकार दो वर्ष व्यतीत होने पर चैत्रमास के शुभ दिवस पर इन सब कार्य से निवृत्त हो गया। तदनन्तर चैत्र मास व्यतीत करने के पश्चात् वैशाख शुक्ला एकादशी के दिन राजा के पास पहुंचा। इधर राजा भी ब्राह्मणी के सम्बन्ध में सब भूल गया था। उसने ब्राह्मणी का कोई संवाद नहीं लिया। मानिनी ब्राह्मणी अनाहार से मृत हो गई। उसकी देंह भी शुष्क हो गयी। विप्र वीरशर्मा ने राजा के यहां आकर अपना पिटारा खोला तथा उसमें से गंगाजल पूर्ण एक कमण्डल राजा के हाथों में अर्पित करके पत्नी की कुशलता के सम्बन्ध में पूछा।।५९-६६।।

स्मृत्वाऽथ राजा विप्रन्तं स्थीयतामीतिचाऽब्रवीत्।
अन्तःपुरं ततो गत्वा तामपश्यन्मृतां गृहे॥६७॥
अनुक्त्वा ब्रह्मणे तस्मै प्रविश्य बिलमुत्तमम्।
श्रीनृसिंहं नमस्कृत्य पुनः प्राप्य बिलोत्तमम्॥६८॥

श्रीनिवासं ययौ द्रष्टुंश्रीभूमिसहितम्परम्। तं दृष्ट्वा सहसायान्तं जुगूहाते धरारमे॥६९॥
प्रणमन्तमवोचत्तं किमकाले नृपागतः। नृपोऽवदत्प्रणम्येशं भीतोऽथब्राह्मणींमृताम्॥७०॥

तच्छुक्त्वा देवदेवोऽपि मा भै राजन्द्विजोत्तमात्।
आन्दोलितां तामारोप्य स्त्रीभिः स्वाभिः समन्विताम्॥७१॥

मदालयात्पूर्वभागेः द्वादश्यां स्नापयप्रभो। अस्थिनाम्निसरस्यस्मिन्नपमृत्युनिवारणे॥७२॥
प्राप्तजीवासमं स्त्रीभिर्ब्राह्मणेन च योक्ष्यते। शीघ्रं याहि नृपश्रेष्ठ यथोक्तं वचनं कुरु॥७३॥

जब राजा ने विप्र वीरशर्मा का वाक्य सुना, तब उसने ब्राह्मण से कहा कि आप कुछ प्रतीक्षा करें। यह उत्तर देकर राजा अन्तःपुर में गया। वहां देखा कि ब्राह्मणी अपने कक्ष में मृत पड़ी है। राजा ने यह देखकर ब्राह्मण से कुछ भी नहीं कहा। वह तत्काल सुरंग के मार्ग से गया तथा श्री नृसिंहदेव को प्रणाम किया। तत्पश्चात् सुरंग से ही राजा ने आगे पृथिवीदेवी के साथ श्रीनिवास देव के दर्शनार्थ प्रस्थान किया। राजा को आते देखकर भगवती लक्ष्मी तथा पृथिवी छिप गईं। राजा ने वहां पहुंचकर देवेश श्रीनिवास को प्रणाम किया। तब प्रभु विष्णु (श्रीनिवास) ने राजा से पूछा—"हे नृप! तुम सहसा अकाल में कैसे आये हो?" भयभीत राजा ने भगवान् को प्रणाम करने के उपरान्त मृत ब्राह्मणी के सम्बन्ध में उनसे कहा। देवाधिदेव ने राजा का कथन सुनकर कहा—

"राजन्! ब्राह्मण से भय की कोई आवश्यकता नहीं है। हे नृप! मेरे आलय के पूर्व भाग में अस्थि नामक एक सरोवर है। वह अपमृत्यु निवारणकारी है। तुम अपनी पुरस्त्रीगण के साथ मृत ब्राह्मणपत्नी का शव झूले पर रखकर द्वादशी के दिन वहां उस सरोवर पर ले जाओ तथा उस मृत देह को वहां स्नान कराओ। इस प्रक्रिया द्वारा ब्राह्मणपत्नी जीवित हो जायेगी। हे नृपश्रेष्ठ! तुम शीघ्र जैसा मैंने कहा है, उसका पालन करो।।६७-७३।।

इति देववचः श्रुत्वाप्रययौस्वपुरंनृपः। आन्दोलिकासुरम्यासुस्त्रियआरोप्यतामपि॥७४॥
ब्राह्मणञ्चपुरःस्कृत्यद्रष्टुंदेवंययौनृपः। अस्थिकूटसरःप्राप्य स्नापयामास ताः स्त्रियः॥७५॥
त्वगस्थिरूपा ता चापि ताभिः क्षिप्तासरोवरे। प्राप्तजीवायथापूर्वसुव्यञ्जिरशरीरजा॥७६॥
उत्थिता सरसःस्नात्वा राज्ञीभिःसहमङ्गला। प्राप्ताच ब्राह्मणम्प्रीता भर्तारंपुनरागतम्॥७७॥
राजा हरिं पूजयित्वा ब्राह्मणाय धनन्ददौ। सहस्त्रनिष्कपर्यन्तंवस्त्राणिविविधानिच॥७८॥
स्वदेशगमनायैव सादरम्बिससर्ज हः। विप्रः श्रुत्वा स्त्रियो वृत्तंप्रभाम्वं वेङ्कटेशितुः॥७९॥
आशीः प्रयुज्य राज्ञेऽथ स्वदेशं प्रययौ द्विजः।
विप्रे गते श्रीनिवासो राजानम्पुनरब्रवीत्॥८०॥
दिनेदिनेच मध्याह्ने नैवेद्याऽनन्तरं नृप। आगत्य मामार्चयित्वा यथेष्टं स्वर्णपङ्कजैः॥८१॥
गत्वा पुरीं स्वधर्मेण राज्यं कुरु नराधिप !। यद्यदिष्टन्तव नृप भविष्यति न संशयः॥८२॥
नागन्तव्यमकाले तु त्वया नृप कदाचन। एवं कालार्चनं कृत्वा गत्वा त्वं स्वपुरेवस॥८३॥

तदनन्तर भगवान् के आदेश का पालन करते हुये राजा पहले अपनी नगरी गया। उसने एक मनोरम झूले पर अपनी पुरस्त्री को तथा ब्राह्मणी के शव को रखा तथा उस ब्राह्मण को आगे करके अस्थिकूट सरोवर पहुंचा और स्त्रियों को वहां स्नान करवाया। तदनन्तर पुरनारीगण ने ब्राह्मण पत्नी का कंकाल अस्थि सरोवर में छोड़ा। छोड़ते ही ब्राह्मणी ने जीवन लाभ किया। उस ब्राह्मणी का पहले जैसा शरीर था, अब भी उसी प्रकार सुव्यञ्जित शरीर हो गया। ब्राह्मणी ने जीवित होकर रानियों के साथ स्नान किया तथा सरोवर से बाहर आईं। उसने मंगलयुक्त होकर पुनः स्वामी के पास जाकर अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त किया। तब राजा ने भी श्रीहरि का पूजन सम्पन्न करके ब्राह्मण को सहस्र निष्कधन तथा विविध वस्त्रादि प्रदान करके स्वदेश गमनार्थ सादर विदा कर दिया। विप्र वीरशर्मा ने मार्ग में पत्नी का वृत्तान्त सुना। उसने वेंकटेश्वर के प्रभाव का दर्शन किया और राजा को आशीर्वाद देकर स्वदेश गमन किया। विप्र के प्रस्थान के उपरान्त श्रीनिवास देव ने पुनः राजा से कहा—"हे राजन्! तुम नित्य मध्याह्न काल में यहां आकर नाना नैवेद्य तथा स्वर्ण कमल से मेरा पूजन करना। पुनः अपनी नगरी जाकर धर्मतः राज्य पालन करना। हे राजन्! ऐसा करने पर तुम्हें जो कुछ भी अभीष्ट है, वह सब प्राप्त होगा। इसमें सन्देह नहीं है। हे राजन्! यहां अकाल में कभी नहीं आना तथा यथाकाल अर्चना करने से स्वर्ग प्राप्ति होगी।।७४-८३।।

राजोवाच

तथा करिष्ये दवेश ! मध्याह्ने चार्चयाम्यहम्। इति देवाज्ञया नित्यमर्चयन्स्वणपङ्कजैः॥८४॥
तदूर्ध्वं तुलसीपुष्पं जात्वपश्यत्स मृण्मयम्। विस्मितो देवदेवेशमपृच्छन्नृपसत्तमः॥८५॥

राजोवाच

केनाऽर्च्यसे मृण्मयैश्च कमलैस्तुलसीसमैः॥८६॥

राजा कहते हैं—"हे देवेश! आपके आदेशानुसार मैं मध्याह्न में ही पूजा करूंगा।" यह कहकर राजा श्रीनिवास के आदेशानुरूप सतत् स्वर्ण कमल द्वारा भगवान् की पूजा करने लगे। एक बार राजा ने मृण्मय तुलसी देखकर विस्मय के साथ देवदेव से पूछा "हे प्रभो! आप मृण्मय कमल तथा तुलसीपुष्प से कैसे पूजित होते हैं?"।।८४-८६।।

राज्ञा पृष्टो देवदेवः स्मृत्वा राजानमब्रवीत्। कश्चित्कुलालोमद्भक्तःकुर्वग्रामेवसत्यसौ॥८७॥
स्वगृहेऽर्चयते राजंस्तदङ्गीक्रियते मया। इति देववचः श्रुत्वा तं द्रष्टुं प्रययौ नृपः॥८८॥
गत्वा कुर्वपुरं तस्य कुलालस्य गृहं ययौ। राजानमागतं दृष्ट्वा प्रणम्यै वाग्रतःस्थितः।
स्थितन्तं भीमनामानं पप्रच्छ नृपसत्तमः॥८९॥

राजा का प्रश्न सुनकर देवदेव कहते हैं—"कूर्वग्राम में मेरा एक भक्त कुम्भकार निवास करता है। हे राजन्! वह कुंभकार अपने गृह में ही रहकर जो अर्चना करता है, मैं उसे यहां अंगीकार कर लेता हूं।" देवता का यह वाक्य सुनकर राजा इस कुंभकार का दर्शन करने की इच्छा से कूर्वपुरस्थ उस कुम्भकार के गृह में गया। कुंभकार राजा को देखकर प्रणाम करके उनके सामने खड़ा हो गया। तब नृपश्रेष्ठ तोण्डमान् ने भीम नामक कुंभकार को इस प्रकार से अपने सामने खड़ा देखकर उससे प्रश्न किया।।८७-८९।।

तोण्डमानुवाच

भीम ! पूजयसे देवं कथम्वद कुलोत्तम !॥९०॥

राजा तोण्डमान् कहते हैं—हे भीम! तुम श्रीनिवास की पूजा कैसे करते हो? मुझे बताओ।।९०।।

श्रीवाराह उवाच

पृष्टः प्राह कुलालोऽपि जातु जाने न चाऽर्चनम्।
केनोक्तं नृपतिश्रेष्ठ ! कुलालोऽर्चयतीति हि॥९१॥

श्री वराहदेव कहते हैं—नृप तोण्डमान् द्वारा पूछे जाने पर कुम्भकार ने कहा—"मैं कदापि अर्चना करना नहीं जानता। हे नृपतिश्रेष्ठ! आपसे किसने कहा कि कुम्हार पूजा करता है?"।।९१।।

तोण्डमानुवाच

देवेन श्रीनिवासेन ममोक्तं हि त्वदर्चनम्। स तु श्रुत्वा नृपवचः स्मृत्वा देववरम्पुरा॥९२॥

तोण्डमान् कहते हैं—श्रीनिवास देव ने मुझसे तुम्हारी पूजा के सम्बन्ध में कहा था। राजा का कथन सुनकर कुमार को पूर्वकाल में विष्णु के वर का स्मरण हो गया।।९२।।

भीम उवाच

यदाप्रकाशितापूजायदाराजा समागतः। तोण्डमांस्तेन संवादस्तदामोक्षंगमिष्यसि॥९३॥

इति पूर्वम्वरं देवो दत्तवान्वेङ्कटेश्वरः॥९४॥

भीम कुम्हार कहने लगा—"पूर्वकाल में वेंकटपति भगवान् ने मुझे यह वर दिया था। जब तक तोण्डमान् यहां आकर पूजा का आविष्कार करेंगे तथा जब तुम्हारा राजा के साथ यह संवाद होगा। तभी तुम्हारी मुक्ति होगी"।।९३-९४।।

इत्युत्त्वाऽथ कुलालोऽपि पत्न्यासार्धं तथैव च।
विमानमागतंदृष्ट्वादेवंदृष्टाजनार्दनम् ॥९५॥
प्रणमन्प्रजहौप्राणान्सदारो भक्तसत्तमः। पश्यतो राजराजस्य विमानमधिरुह्य च॥९६॥
दिव्यरूपधरो देव्या सार्धं विष्णुपदं ययौ। दृष्ट्वा राजाऽद्भुतं तत्र स्वपुरं प्राप्यहर्षितः॥९७॥
स्वपुत्रं श्रीनिवासाख्यमभिषिच्यविधानतः। परिपालय धर्मेण मानवांश्चवसुन्धराम्॥९८॥
इत्याज्ञाप्य सुतं धीमांस्तताप परमं तपः। तप्यतस्तस्य देवोऽपि प्रत्यक्षमभवद्धरिः॥९९॥
आरुह्य गरुडं देवो रमाभूमिसमन्वितः॥१००॥

भीम द्वारा राजा से यह वाक्य कहते ही वहां एक विमान आ गया। भक्तप्रवर भीम कुम्हार ने अपनी पत्नी के साथ जनार्दन का दर्शन किया तथा उनको प्रणाम करके प्राण त्याग दिया। वह राजा के सामने ही दिव्यरूप धारण करके विमान पर बैठा तथा विष्णुपुर चला गया। धीमान् राजा यह अदभुद् घटना देखकर प्रसन्न चित्त से अपनी पुरी लौट गया। उसने अपने श्रीनिवास नामक पुत्र का यथाविधि अभिषेक करके उसे आदेश दिया—"हे पुत्र! धर्म के अनुरूप पृथिवी का तथा प्रजाजन का पालन करो।" पुत्र को यह आदेश देकर धीमान् तोण्डमान् दुष्कर तप करने लगा। तब भगवान् देवदेव श्रीहरि लक्ष्मी तथा पृथिवी देवी के साथ गरुड़ पर बैठकर वहां आये। उन्होंने राजा को प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा।।९५-१००।।

श्रीभगवानुवाच

किं करोमि नृपश्रेष्ठ तपसा तोषितस्तव। इत्युक्तो देवदेवेन तोण्डमानपि राजराट्॥१०१॥
प्रीतिमान्प्राञ्जलिर्भूत्वा सगद्गदमुवाच ह। त्वल्लोके वस्तुमिच्छामि जरामरणवर्जिते॥१०२॥
इदमेव वरं देहि माधवैतन्ममेप्सितम्॥१०३॥

श्रीभगवान् कहते हैं—"हे नृपश्रेष्ठ! मैं तुम्हारे तप से प्रसन्न हो गया। अब तुम्हारा क्या प्रियकार्य करूं?" देवाधिदेव के यह कहने पर तोण्डमान् ने प्रीतिपूर्वक अंजलि बद्ध होकर गद्‌गद् वाणी से प्रभु से कहा—"हे माधव! जरामरण रहित आपके वैकुण्ठलोक गमन की इच्छा है। यही मेरा अभीष्ट वर है। आप मुझे यही वर प्रदान करिये।।१०१-१०३।।

श्रीवराह उवाच

इत्युत्त्वानिपपातोर्व्यांसाष्टाङ्गं देवसन्निधौ। तदाकलेवरं मुत्त्वा विमानं त्वारुरोहच॥१०४॥
गन्धर्वैः स्तूयमानोऽसौसारूप्यंप्राप्यशार्ङ्गिणः। यच्छोकमोहरहितंजरामरणवर्जितम्॥१०५॥
पुनरावृत्तिरहितं तद्विष्णोः पदमाययौ॥१०६॥

श्री वराहदेव कहते हैं—राजा ने यह कह कर श्रीनिवास के सामने भूमि पर गिरकर साष्टांग प्रणाम किया तथा तत्काल देह त्याग करके विमान पर आरोहण किया। तदनन्तर तोण्डमान् ने शार्ङ्गधारी देव विष्णु का सारूप्य प्राप्त किया। वे गन्धर्वगण द्वारा स्तुत होकर शोक-मोह रहित, जरा-मरण वर्जित, पुनरावृत्ति से भी मुक्त विष्णु के परमपद में प्रविष्ट हो गये।।१०४-१०६।।

एतद्भविष्यं दवेशि मयोक्तं वरवर्णिनि !।
यः श्रावयेद्यः शृणुयाद्विष्णुलोकंसगच्छति।।१०७।।

श्रीसूत उवाच

इत्युक्तं देवदेवन सभविष्यं सहोत्तरम्। शृणुयाद्यः पठेद्भक्त्या कथां पुण्यांपुरातनीम्।।१०८।।
स तु भुक्त्वाऽखिलान्कामानन्ते विष्णुपदं व्रजेत्।।१०९।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसम्वादे भविष्यद्वर्णने तोण्डमांसश्चक्रवर्तिवृत्तवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः।।१०।।

श्री वराहदेव कहते हैं—हे देवेशि! मैंने तुमसे यह भविष्य का इतिहास कहा है। जो व्यक्ति इसको सुनता है अथवा लोगों को सुनाता है, उसे विष्णुलोक की प्राप्ति होती है।।१०७।।

सूत जी कहते हैं—देवाधिदेव श्रीनिवास ने इस प्रकार से अत्युत्तम भविष्य वृत्तान्त कहा था। जो भक्ति के साथ इस पुरातन पुण्य कथा को सुनता है, किंवा पाठ करता है, उसकी समस्त कामनायें पूरी हो जाती हैं तथा अन्त में उसे विष्णुलोक की प्राप्ति होती है।।१०८-१०९।।

।।दशम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

एकादशोऽध्यायः

काश्यप का स्वामिपुष्करिणी स्नान से महापातकनाश, परीक्षित् राजा का वृत्तान्त, काश्यप-शाकल्य संवाद

श्रीसूत उवाच

अथातःसंप्रवक्ष्यामिस्वामिपुष्करिणींशुभाम्। लक्षीकृत्यकथामेकांपवित्रांद्विजसत्तमाः।।१।।
काश्यपाख्यो द्विजःपूर्वमस्मिंस्तीर्थवरेशुभे। स्नात्वातिमहतःपापाद्विमुक्तोनरकप्रदात्।।२।।

सूत जी कहते हैं—हे द्विजश्रेष्ठगण! अब सुशोभना स्वामिपुष्करिणी के सम्बन्ध में एक पावन

उपाख्यान कहता हूं। पूर्वकाल में कश्यप नामक एक द्विज इस पुण्यतीर्थ में स्नान करके महान् नरकप्रद पाप से मुक्त हो गये थे।।१-२।

ऋषय ऊचुः

मुने ! काश्यपनामासावकरोत्किं हि पातकम्।
स्नात्वा तीर्थवरे ह्यत्र यस्मान्मुक्तोऽभवत्क्षणात्।।३।।
एतन्नः श्रद्दधानानांब्रहि सूत ! कृपाबलात्। त्वद्वचोऽमृततृप्तानांनपिपासाऽपि विद्यते।।४।।

ऋषिगण कहते हैं—हे मुनिवर! द्विज कश्यप ने ऐसा क्या पाप किया था, जिससे वे तीर्थश्रेष्ठ स्वामिपुष्करिणी में स्नान करके इस पातक से मुक्त हो गये? हे सूत! इसे सुनने हेतु, हममें श्रद्धा हो रही है। इसलिये कृपापूर्वक इस प्रसंग को कहें। विशेषतः आपके वाक्यामृत को सुनकर हमारी अन्य वस्तु की कामना दूरीभूत हो रही है। हमें अब अन्य बातों की पिपासा नहीं रह गयी है।।३-४।।

श्रीसूत उवाच

श्रीस्वामिपुष्करिण्याश्च माहात्म्यप्रतिपादकम्। इतिहासं प्रवक्ष्यामि पठताम्पापनाशनम्।।५।।
अभिमन्युसुतो राजा परिक्षिन्नाम नामतः। अध्यास्तहास्तिनपुरंपालयन्धर्मतोमहीम्।।६।।
स राजा जातु विपिने चचार मृगयारतः। षष्टिवर्षवया भूपः क्षत्तृष्णापरिपीडितः।।७।।
नष्टमेकं स विपिने मार्गयन्मृगमादरात्। ध्यानारूढं मुनिं दृष्ट्वा प्राह भूपालकोत्तमः।।८।।
मया बाणेन विपिनेमृगो विद्धोऽधुनामुने। दृष्टःस किं त्वयाविद्वन्विद्रुतोभयकातरः।।९।।
समाधिनिष्ठो मौनित्वानन किञ्चिदपि सोऽब्रवीत्।
ततो धनुरटन्या स स्कन्धे तस्य महामुनेः।।१०।।
निधाय मृतसर्पं तु कुपितः स्वपुरं ययौ। मुनेस्तस्य सुतः कश्चिच्छृङ्गीनामबभूववै।।११।।

सूत जी कहते हैं—मैं स्वामिपुष्करिणी के माहात्म्य का प्रतिपादन करने वाला इतिहास कहता हूं। इसे पाठ करने से मानव के सभी पाप दूरीभूत हो जाते हैं। अभिमन्यु के पुत्र राजा परीक्षित हस्तीनापुर में निवास करते थे। वे धर्मानुरूप प्रजापालन करते थे। ६० वर्षीय वयस्क मृगयारत राजा कभी वन में विचरण करते-करते क्षुधा तथा पिपासा से व्याकुल हो गये तथा अपने बाण से आहत एक मृग को खोज रहे थे। तदनन्तर राजा ने एक ध्यानरत मुनि को देखकर प्रश्न किया—"हे मुने! मैंने वन में एक मृग को विद्ध किया है। बाण से विद्ध वह भयकातर मृग तीव्रगति से भागा है। क्या आपने उसे देखा है?" लेकिन समाधिनिष्ठ मौनी मुनि ने उसे कोई उत्तर नहीं दिया। तब राजा क्रोधित हो गये तथा धनुष की नोक से एक मरे सांप को उठाया तथा उसे मुनि के कंधे पर फेंककर अपनी नगरी लौट गये। उन मुनि का शृङ्गी नामक एक पुत्र था।।५-११।।

सखा तस्य कृशाख्योऽभूच्छृङ्गिणो द्विजसत्तमः।
सखायं शृङ्गिणं प्राह कृशाख्यः स सखा ततः।।१२।।
पिता तव मृतं सर्पं स्कन्धेन वहतेऽधुना। मा भूद्दर्पस्तव सखेमाक्रुध्यस्त्वमिदंवृथा।।१३।।

सोऽभवत्कुपितः शृङ्गी दित्सुःशापंनृपाय वै। मत्तातेशवसर्पंयोन्यस्तवान्मूढचेतनः॥१४॥
स सप्तरात्रान्म्रियतां सन्दष्टस्तक्षकाहिना। शशापैवं मुनिसुतः औत्तरेयं परीक्षितम्॥१५॥
शमीकाख्यः पिता तस्य शप्तं श्रुत्वा सुतेन तम्। नृपंप्रोवाचतनयंशृङ्गिणंमुनिपुङ्गवः॥१६॥

उसका सखा था द्विजोत्तम कुश। कुश ने शृंगी से कहा—"सम्प्रति तुम्हारे पिता के कंधे पर एक मृत सर्प लटक रहा है। इसलिये तुम मेरे प्रति दर्प का प्रदर्शन न करो। तुम्हारा दर्प व्यर्थ है।" यह सखा वाक्य सुनकर शृंगी मतृसर्प फेंकने वाले राजा के प्रति क्रोधित हो गया। शाप देने के लिये उद्यत होकर उसने कहा— "जिस हतज्ञान ने मोह के कारण मेरे पिता के कन्धे पर मरा सर्प छोड़ा है, वह आज से सातवें दिन तक्षक सर्प के डसने से मृत हो जाये।" मुनिपुत्र शृंगी ने सुभद्रातनय राजा परिक्षित को यह अभिशाप दे दिया। उसके पिता मुनिप्रवर शमीक ने पुत्र से यह सुनकर राजा की कथा का उल्लेख करके पुत्र को उपदेश दिया।।१२-१६।।

रक्षकं सर्वलोकानां नृपं किं शप्तवानसि।
अराजके वयं लोके स्थास्यामःकथमञ्जसा॥१७॥
क्रोधेन पातकं भूयाद्दयया प्राप्यते सुखम्। यः समुत्पादितं कोपं क्षमयैवनिरस्यति॥१८॥
इह लोके परत्रासावत्यन्तं सुखमश्नुते। क्षमायुक्ता हि पुरुषा लभन्ते श्रेय उत्तमम्॥१९॥
ततः शमीकः स्वं शिष्यं प्राह गौरमुखाभिधम्।
भो गौरमुख ! गत्वा त्वं वद भूपं परीक्षितम्॥२०॥
इमं शापं मत्सुतोक्तं तक्षकाधिपदंशनम्। पुनरायादि शीघ्रं त्वं मत्समीपं महामते !॥२१॥
एवमुक्तः शमीकेन ययौ गौरमुखो नृपम्। समेत्यचाऽब्रवीद्भूपमौत्तरेयं परीक्षितम्॥२२॥
द्रष्टा सर्पं पितुः स्कन्धे त्वया विनिहितं मृतम्।
शमीकस्य सुतः शृङ्गी शशाप त्वां रुषान्वितः॥२३॥
एतद्दिनात्सप्तमेऽह्नि तक्षकेण महाहिना। दष्टो विषाग्निना दग्धो भूयादाश्वभिमन्युजः॥२४॥
एवंशशापत्वांराजञ्छृङ्गीतस्यमुनेः सुतः। एतद्वक्तुंपितातस्यप्राहिणोन्मांत्वदन्तिकम्॥२५॥
इतीरयित्वा तं भूपमाशु गौरमुखो ययौ। गते गौरमुखे पश्चाद्राजा शोकपरायणः॥२६॥

मुनि कहते हैं—हे पुत्र! तुमने सर्वलोकरक्षक राजा को शाप क्यों दिया? अब अराजक राज्य में हम निर्भय होकर कैसे निवास करेंगे? देखो, क्रोध से पाप होता है। दया से ही सुख-प्राप्ति होती है। जब क्रोध का उद्रेक होता है, तब क्षमा द्वारा उसे निष्फल कर देना उचित है। जो ऐसा करता है, वह इहलोक एवं परलोक में अत्यन्त सुखलाभ करता है। क्षमावान् को ही उत्तम श्रेयः मिलता है।" तत्पश्चात् शमीक ऋषि ने गौरमुख नामक अपने शिष्य से कहा—"हे गौरमुख! तुम शीघ्र राजा परीक्षित के पास जाओ तथा मेरे पुत्र के द्वारा कही गयी शापवाणी से उसे अवगत कराओ। हे महामति! ऐसा कहकर तुम शीघ्र मेरे यहां लौट आना।" शमीक द्वारा आदेश पाकर गौरमुख तत्काल राजा के पास गया और सुभद्रानन्दन राजा परीक्षित से कहा—"हे राजन! शमीकपुत्र शृंगी ने अपने पिता के कन्धे पर आप द्वारा फेंका गया मृत सर्प देखकर क्रोध पूर्वक कहा था कि "अभिमन्युनन्दन परीक्षित आज से सातवें दिन तक्षक द्वारा डंसा जाकर प्राण त्याग करेगा।" यह अभिशाप शृंगी

ने आपको दिया है। उसके पिता ऋषि शमीक ने मुझे आपसे यह संवाद कहने भेजा है।" राजा से यह कहकर गौरमुख वहां से वापस चला गया। यह शाप संवाद सुनकर राजा शोककातर हो गया।।१७-२६।।

अभ्रंलिमहथोत्तुङ्गमेकस्तम्भं सुविस्तृतम्। मध्येगङ्गं व्यतनुत मण्डपं नृपपुङ्गवः॥२७॥
महागारुडमन्त्रज्ञैरोषधिज्ञैश्चिकित्सकैः। तक्षकस्य बिषं हन्तुं यत्नं कुर्वन्समाहितः॥२८॥
अनेकदेवब्रह्मर्षिराजर्षिप्रवरान्वितः। आस्ते तस्मिन्नृपस्तुङ्गे मण्डपेविष्णुभक्तिमान्॥२९॥
तस्मिन्नवसरे विप्रःकाश्यपोमान्त्रिकोत्तमः। राजानंरक्षितुंप्रायात्तक्षकस्यमहाविषात्॥३०॥
सप्तमेऽहनि विप्रेन्द्रो दरिद्रो धनकामुकः। अत्रान्तरे तक्षकोऽपिविप्ररूपीसमाययौ॥३१॥
मध्येमार्गं विलोक्याऽथ काश्यपं प्रत्यभाषत।
ब्राह्मण ! त्वंकुत्र यासिवदमेऽद्यमहामुने॥३२॥

नृपपुंगव परीक्षित ने आत्मरक्षार्थ गंगा के बीच एक अत्यन्त उच्च आकाशस्पर्शी एक ही स्तम्भ के ऊपर स्थित विस्तृत मण्डप का निर्माण कराया। विष्णुभक्त राजा परीक्षित ने तक्षक नाशक विचार करके नाना यत्न द्वारा महागारुड़ मन्त्र तथा औषधि के ज्ञाता चिकित्सकों, देव, ब्रह्मर्षि तथा राजर्षिगण के साथ इस उच्च मंच पर निवास करना प्रारंभ किया। तदनन्तर सातवें दिन विप्रश्रेष्ठ सर्पमन्त्रवेत्ता धनार्थी दरिद्र ब्राह्मण काश्यप तक्षक के महाविष से राजा के रक्षा के लिये चला आ रहा था। उसी समय तक्षक भी विप्रवेश धारण करके आ रहा था। मार्ग में दोनों की एक दूसरे से भेंट हो गयी। विप्रवेषधारी तक्षक ने काश्यप को देखकर प्रश्न किया—"हे महामुनि ब्रह्मन्! आप अभी कहां जा रहे हैं, मुझे बतलायें।"।।२७-३२।।

इति पृष्टस्तदाऽवादीत्काश्यपस्तक्षकं द्विजः। परीक्षितं महाराजं तक्षकोऽद्य विषाग्निना॥३३॥
धक्ष्यते तं शमयितुं तत्समीपमुपैम्यहम्। इत्युक्तः स च तं विप्रं तक्षकः पुनरब्रवीत्॥३४॥
तक्षकोऽद्विजश्रेष्ठ ! मयादष्टश्चिकित्सितुम्। नशक्योऽब्दशतेनाऽपिमहामन्त्रायुतैरपि॥३५॥
चिकित्सितुं चेन्मद्दष्टं शक्तिरस्ति तवाऽधुना।
अनेकयोजनोच्छ्रायं दशाम्युज्जीवय द्रुमम्॥३६॥
ततो भवान्समर्थो हीत्येवम्मे भाति हे द्विज !। इतीरयित्वा तं वृक्षमदशत्तक्षकस्तदा॥३७॥
अभवद्भस्मसात्सोऽपि वृक्षोऽत्यन्तसमुच्छ्रितः। पूर्वमेवनरःकश्चित्तंवृक्षमधिरूढवान्॥३८॥
तक्षकस्य विषोल्काभिःसोऽपिदग्धोऽभवत्तदा। तन्नरंनविजज्ञातेतौचकाश्यपतक्षकौ॥३९॥

तक्षक द्वारा यह पूछे जाने पर द्विज काश्यप ने उत्तर देते हुये कहा—"मैं परीक्षित राजा को तक्षक की विषाग्नि से दग्ध किये जाने की आशंका को सुनकर, वहां जा रहा हूं। मैं तक्षक के विष का नाश करूंगा। इसीलिये राजा के निकट जा रहा हूं।" काश्यप की उक्ति सुनकर तक्षक ने कहा—"हे द्विजप्रवर! मैं ही तक्षक नाग हूं। मैं जिसका दंशन करता हूं, उसे आप १०००० वर्ष तक के प्रयत्न से सैकड़ों महामन्त्र से भी ठीक नहीं कर सकते। यदि आपको यह सामर्थ्य है, तब मैं इस अनेक योजन उच्च वृक्ष का दंशन करता हूं। आप इसे पुनः जीवित करें। यदि आप इसे जीवित कर सकें, हे विप्र! तभी मैं समझूंगा कि आपमें मेरे विष के नाश का सामर्थ्य है।" ऐसा कहकर तक्षक ने उस वृक्ष को डस लिया। देखते-देखते वह अत्युच्च वृक्ष भी तत्क्षण

भस्म हो गया। तक्षक एवं काश्यप के वार्त्तालाप के पहले से एक व्यक्ति उस वृक्ष पर बैठा था। वृक्ष सहित वह व्यक्ति भी भस्मीभूत हो गया, तथापि तक्षक एवं काश्यप को उस व्यक्ति के वृक्ष पर होने की जानकारी नहीं थी।।३३-३९।।

काश्यपः प्रतिजज्ञेऽथतक्षकस्यापिशृण्वतः। मन्मन्त्रशक्तिंपश्यन्तुसर्वेविप्रादयोऽधुना।।४०।।
इतीरयित्वातंवृक्षंभस्मीभूतंविषाग्निना। आजीवयन्मन्त्रशक्त्याकाश्यपोमान्त्रिकोत्तमः।।४१।।
स नरस्तेन वृक्षेण साकमुज्जीवितोऽभवत्।
अथाऽब्रवीत्तक्षकस्तं काश्यपं मन्त्रकोविदम्।।४२।।
यथा न मुनिवाङ्मिथ्याभवेदेवं कुरु द्विज !। यत्ते राजाधनंदद्यात्ततोऽपिद्विगुणंधनम्।।४३।।
ददाम्यहंनिवर्तस्य शीघ्रमेव द्विजोत्तम !। इतयुक्त्वाऽनर्घरत्नानितस्मैदत्त्वा स तक्षकः।।४४।।
न्यवर्तयत्काश्यपं तं ब्राह्मणंमन्त्रकोविदम्। अल्पायुषं नृपं मत्वाज्ञानदृष्ट्यासकाश्यपः।।४५।।
स्वाश्रमं प्रययौ तूष्णींलब्धरत्नश्चतक्षकात्। सोऽब्रवीत्तक्षकःसर्पान्सर्वानाहूयतत्क्षणे।।४६।।
यूयं तं नृपतिं प्राप्य मुनीनां वेषधारिणः। उपहारफलान्याशु प्रयच्छत परीक्षिते।।४७।।

तक्षक की गर्वोक्ति सुनकर मन्त्रकोविद काश्यप ने प्रतिज्ञापूर्वक कहा—"सम्प्रति ब्राह्मण आदि सभी लोग मेरी मन्त्रशक्ति को देखें।" उसने विषाग्नि से दग्ध वृक्ष की भस्म लेकर अपनी मन्त्रशक्ति के बल से वृक्ष को जीवित कर दिया। वृक्ष के साथ ही वह वृक्षारूढ़ व्यक्ति भी जीवित हो गया। यह घटना देखकर तक्षक ने मन्त्रकोविद काश्यप से कहा—"हे द्विज! जिससे मुनि वाक्य मिथ्या न हो, वही करिये। हे द्विजोत्तम! राजा जितना धन आपको देगा, मैं उससे दूना दे रहा हूं। आप शीघ्र इस कार्य से अलग हो जायें।" तत्पश्चात् तक्षक ने यह कहकर मन्त्रज्ञ द्विज काश्यप को महामूल्य अनेक रत्न प्रदान किया। काश्यप ज्ञानदृष्टि द्वारा राजा को अल्पायु जानकर वापस लौट गया। वह तक्षक से धनरत्न लेकर चुपचाप वहां से चला गया। तदनन्तर तक्षक ने तत्क्षण सर्पों को बुलाकर आदेश दिया—"हे सर्पगण! तुम सब मुनिवेश धारण करके राजा के पास जाओ तथा उसे विविध फल का उपहार प्रदान करो।"।।४०-४७।।

तथेत्युक्त्वा सर्वसर्पा ददू राज्ञे फलान्यमी। तक्षकोऽपि तथातत्रकस्मिंश्चिद्बदरीफले।।४८।।
कृमिवेषधरो भूत्वा व्यतिष्ठद्दंशितुं नृपम्। अथ राजा प्रदत्तानि सर्पैर्ब्राह्मणरूपकैः।।४९।।
परीक्षिन्मन्त्रिवृद्धेभ्यो दत्त्वा सर्वफलान्यपि।।५०।।
कौतूहलेन जग्राह स्थूलमेकं करे फलम्। तस्मिन्नवसरे सूर्योऽप्यस्ताचलमगाहत।।५१।।
मिथ्या ऋषिवचो मा भूदिति तत्रत्यमानवाः।
अन्योऽन्यमवदन्सर्वे ब्राह्मणाश्चनृपास्तदा।।५२।।
एवं वदत्सु सर्वेषु फलेतस्मिन्नदृश्यत। साधु रक्तःकृमिः सवैं राज्ञा चाऽपिपरीक्षिता।।५३।।
अयं किं मां दशेदद्य क्रिमिरित्युक्तवान्नृपः। निदधे तत्फलंकण्ठेसकृमिद्विजसत्तमाः।।५४।।
तक्षकोऽस्मिन्स्थितः कण्ठे कृमिरूपीफलेतदा। निर्गत्यतत्फलादाशुनृपदेहमवेष्टयत्।।५५।।

तक्षकावेष्टिते भूपे पार्श्वस्था दुदुवुर्भयात्। अनन्तरं नृपोविप्रास्तक्षकस्यविषाग्निना॥५६॥
दग्धोऽभूद्भस्मसादाशु सप्रासादोबलीयसा। कृत्वौर्ध्वदेहिकंतस्यनृपस्यसपुराहिताः॥५७॥

तक्षक का आदेश पाकर वे कपट मुनिवेषधारी सर्पगण राजा के पास गये तथा राजा को उपहार दिया। तक्षक भी राजा को डसने हेतु कीड़े का रूप धारण करके बेर के फल में बैठ गया था। राजा परीक्षित को विप्ररूपी सर्पगण ने जो फल दिया था राजा उसे लेकर अपने वृद्धमंत्रीगण को अर्पित करने लगा, तथापि कुतूहलवशात् उन सब फलों में से एक स्थूल फल हाथों से ग्रहण किया। तभी सूर्यदेव अस्ताचल गमनोन्मुख थे, वहां ब्राह्मण, राजा तथा अन्य मनुष्यगण परस्परतः बातचीत करने लगे ''ब्राह्मण वाक्य मिथ्या नहीं होता।'' उनको इस प्रकार बोलते देखकर राजा तथा अन्य सभी ने राजा के हाथ में स्थित फल में एक रक्तवर्ण कीट स्पष्टतः देखा। राजा परीक्षित ने कीट के प्रति दृष्टि निःक्षेप करके कहा—''क्या यही कीट अब मुझे डसेगा?'' राजा ने यह कहकर उस फल को कण्ठ में धारण किया। हे द्विजश्रेष्ठगण! कण्ठस्थ फल में स्थित, कीटरूपी तक्षक तब शीघ्रता से फल से बाहर आया तथा राजा के शरीर में लिपट गया। पार्श्वस्थ लोकगण भयभीत होकर पलायन कर गये। हे विप्रगण! तदनन्तर राजा बलवान् तक्षक की विषाग्नि से दग्ध होकर उस प्रासाद सहित भस्मीभूत हो गये। राजा के पुरोहितों तथा मंत्रीगण ने उनका और्ध्वदैहिक संस्कार किया।।४८-५७।।

मन्त्रिणस्तत्सुतं राज्ये जनमेजयनामकम्। राजानमभ्यषिञ्चन्वै जगद्रक्षणवाञ्छया॥५८॥
तक्षकाद्रक्षितुं भूपमायातः काश्यपाभिधः। यो ब्राह्मणोमुनिश्रेष्ठःससर्वैर्निन्दितोजनैः॥५९॥
बभ्राम सकलान्देशाञ्छिष्टैः सर्वैश्च दूषितः। अवस्थानंन लेभेसग्रामेवाप्याश्रमेऽपिवा॥६०॥
यान्यान्देशानसौ यातस्तत्र तत्रमहाजनैः। तत्तद्देशान्निरस्तः सञ्छाकल्यं शरणं ययौ॥६१॥
प्रणम्य शाकल्यमुनिं काश्यपोनिन्दितो जनैः। इदं विज्ञापयामासशाकल्यायमहात्मने॥६२॥

पृथिवी की रक्षा के विचार से मन्त्रीगण तथा पुरोहित ने परीक्षित के पुत्र जन्मेजय को राजा के पद पर अभिषिक्त किया। राजा की रक्षा के लिये आने वाले मुनिप्रवर काश्यप धनलाभ में वापस लौट गये, इसलिये वे समस्त जनगण के निन्दा-पात्र हो गये। वे इस निन्दा के कारण नाना देशों में भ्रमण करने लगे तथापि उनको किसी ग्राम, आश्रम आदि में कहीं भी आश्रय नहीं मिला। वे जहां भी जाते, वहां के मनुष्यों द्वारा ताड़ित होकर अन्त में शाकल्य मुनि के आश्रम गये। वहां उन्होंने शाकल्य मुनि को प्रणाम करके अपने प्रति निन्दा की घटना का ज्ञापन किया।।५८-६२।।

काश्यप उवाच

भगवन्सवधर्मज्ञशाकल्य! हरिवल्लभ। मुनयो ब्राह्मणाश्चाऽन्ये मां निन्दन्ति सुहृज्जनाः॥६३॥
नास्याऽहं कारणं जाने किंमांनिन्दन्ति मानवाः। ब्रह्महत्यासुरापानंगुरुस्त्रीगमनंतथा॥६४॥
स्तेयं संसर्गदोषो वः मयानाऽऽचरितंक्वचित्। अन्यान्यपिचपापानिनकृतानिमयामुने॥६५॥
तथाऽपि निन्दन्ति जना वृथामांबान्धवादयः। जानासिचेत्त्वंशाकल्यमयादोषंकृतंवद॥६६॥
उक्तोऽथकाश्यपेनैवशाकल्याख्योमहामुनिः। क्षणंध्यात्वाबभाषेतंकाश्यपंद्विजसत्तमाः॥६७॥

काश्यप कहते हैं—''सर्वधर्मज्ञ हरिवल्लभ शाकल्य! मुनिगण, अन्यांन्य ब्राह्मणगण, यहां तक कि मेरे

सुहृदगण भी हमारी निन्दा करते हैं, तथापि हे भगवान्! मानवगण क्यों मेरी निन्दा करते हैं, इसका कारण मुझे पता नहीं। हे मुनिवर! ब्रह्महत्या, सुरापान, गुरुपत्नीगमन, चोरी, संसर्ग दोष तथा अन्यान्य जो पाप हैं, उन सब को मैंने कभी नहीं किया, तथापि बान्धवगण मेरी निन्दा करते हैं! हे शाकल्य! मैंने क्या दोष किया है? यदि आप जानते हैं, तब कहें!'' काश्यप द्वारा यह पूछे जाने पर महामुनि शाकल्य ने कुछ क्षण ध्यानस्थ होकर काश्यप को उत्तर देना प्रारंभ किया।।६३-६७।।

शाकल्य उवाच

परीक्षितं महाराजं तक्षकाद्रक्षितुं भवान्। आयासीदर्धमार्गे तु तक्षकेण निवारितः।।६८।।

चिकित्सितुं समर्थोऽपि विषरोगादिपीडितम्।
यो न रक्षति लोकेस्मिंस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम्।।६९।।

क्रोधात्कामाद्भयल्लोभान्मात्सर्यान्मोहतोऽपिवा। योनरक्षतिविप्रेन्द्रविषरोगातुरंनरम्।।७०।।

ब्रह्महा च सुरापी वा स्तेयी च गुरुतल्पगः। संसर्गदोषदुष्टश्चनापितस्यविनिष्कृतिः।।७१।।

कन्याविक्रयिणश्चापि हयविक्रयिणस्तथा। कृतघ्नस्याऽपिशास्त्रेषुप्रायश्चित्तंतुविद्यते।।७२।।

विषरोगातुरं यस्तु समर्थोऽपि न रक्षति। नतस्यनिष्कृतिःप्रोक्ताप्रायश्चित्तायुतैरपि।।७३।।

न तेन सह पङ्क्तौ च भुञ्जीत सुकृती जनः। न तेन सह भाषेत न पश्येत्तंनरंक्वचित्।।७४।।

शाकल्य मुनि कहते हैं—हे विप्रेन्द्र! तुम तक्षक से महाराज परीक्षित के रक्षार्थ आ रहे थे। आधे रास्ते में तुम तक्षक द्वारा रोक दिये गये तथापि नियम यह है कि विषरोगी की चिकित्सा में समर्थ जो व्यक्ति उसे नहीं बचाता, त्रैलोक्य में उसे ब्रह्मघाती कहा जाता है। क्रोध-काम-भय-लोभ-मात्सर्य तथा मोह के कारण जो मन्त्रज्ञ चिकित्सक विषरोगातुर मनुष्य की रक्षा नहीं करता, वह ब्रह्मघ्न, सुरापानकर्त्ता, स्तेयी (चोर), गुरुपत्नीगामी, पापी संसर्ग से युक्त होता है। उसकी कहीं भी बचत नहीं है। कन्या विक्रेता, अश्वविक्रेता तथा कृतघ्न के लिये तो शास्त्रों में प्रायश्चित्त है, तथापि जो विषचिकित्सा जानकर भी विषातुर की रक्षा नहीं करता १०००० प्रायश्चित्तों द्वारा भी उसकी पाप मुक्ति नहीं होती। सुकृति व्यक्ति उसके साथ एक पंक्ति में भोजन न करें। उससे संभाषण तथा उसका दर्शन भी न करें।।६८-७४।।

तत्सम्भाषणमात्रेण महापातकभाग्भवेत्। परीक्षित्समहाराजः पुण्यश्लोकश्चधार्मिकः।।७५।।

विष्णुभक्तोमहायोगीचातुर्वर्ण्यस्यरक्षिता। व्यासपुत्राद्धरिकथांश्रुतवान्भक्तिपूर्वकम्।।७६।।

अरक्षित्वा नृपं तं तु वचसा तक्षकस्य यत्। निवृत्तस्तेन विप्रेन्द्रैर्बान्धवैरपि दूष्यसे।।७७।।

स परीक्षिन्महाराजो यद्यपिक्षणजीवितः। तथापियावन्मरणंबुधैःकार्यंचिकित्सितम्।।७८।।

यावत्कण्ठगताः प्राणा मुमूर्षोर्मानवस्य हि।
तावच्चिकित्सा कर्तव्या कालस्य कुटिला गतिः।।७९।।

इतिप्राहुःपुराश्लोकंभिषग्विद्याब्धिपारगाः। ततश्चिकित्साशक्तोऽपियस्मादकृतभेषजः।।८०।।

अर्धमार्गनिवृत्तश्च तेन त्वं गर्हितो ह्यसि। शाकल्येनैवमुदितः काश्यपः प्रत्यभाषत।।८१।।

"ऐसे व्यक्ति से यदि कोई बात भी करता है, तब वह भी बात करने मात्र से महापातकी हो जाता है। महाराज परीक्षित विष्णुभक्त, धार्मिक, पुण्यश्लोक, महायोगी, ब्राह्मणादि चारों वर्ण के रक्षक थे। उन्होंने भक्ति के साथ व्यासपुत्र शुकदेव से हरिकथा सुनी थी। तुमने उनकी रक्षा न करके तक्षक की बात को मानी तथा लौट गये, इसीलिये विप्रेन्द्रगण तथा बान्धव तुम्हारी निन्दा करते हैं। महाराज क्षणकाल भी जीवित रहें, इस प्रकार से सोचकर पण्डितगण को मरण पर्यन्त उनकी चिकित्सा करनी चाहिये थी। यही उचित था। मुमूर्षु मानव का प्राण जब तक कण्ठगत है, तब तक चिकित्सा करते रहना कर्त्तव्य है। क्योंकि काल की गति अतीव कुटिल होती है। इन श्लोकों का कीर्त्तन चिकित्सा पारंगत व्यक्ति सदा करते रहते हैं। तुमने चिकित्सा निपुण होकर भी चिकित्सा नहीं किया तथा आधे मार्ग से (लोभवश) वापस चले आये। तभी तुम सर्वत्र निन्दित हो। शाकल्य का वचन सुनकर काश्यप कहने लगे।।७५-८१।।

काश्यप उवाच

ममैतद्दोषशान्त्यर्थमुपायं वद सुव्रत!। येन मां प्रतिगृह्णीयुर्बान्धवाः ससुहृज्जनाः।।८२।।
कृपां मयि कुरुष्वत्वं शाकल्यहरिवल्लभ।
काश्यपेनैवमुक्तस्तुशाकल्योऽपि मुनीश्वरः।।८३।।
क्षणं ध्यात्वा जगादैवं काश्यपं कृपया तदा।।८४।।

काश्यप कहते हैं—"हे सुव्रत! आप मेरे कृत इस दोष की शान्तिं का उपाय बतायें। हे शाकल्य! जैसा प्रायश्चित्त करने पर मेरे सुहृद बन्धुगण मुझे पुनः ग्रहण करें, हे हरवल्लभ! मुझ पर कृपा करके आप मुझे विहित उपाय बताइये।" तब मुनि शाकल्य ने काश्यप का निवेदन सुनकर कुछ क्षण ध्यान किया, तदनन्तर कहने लगे।।८२-८४।।

शाकल्य उवाच

अस्यपापस्यशान्त्यर्थमुपायं प्रवदामि ते। तत्कर्तव्यंत्वयाशीघ्रं विलम्बंमाकृथाद्विज।।८५।।
सुवर्णमुखरीतीरे लक्ष्मीपतिनिवासभूः। वेङ्कटाद्रिरिति ख्यातः सर्वलोकेषु पूजितः।।८६।।
तस्मिञ्छेषगिरौ पुण्ये सुरासुरनमस्कृते। ब्रह्महत्यासुरापानस्वर्णस्तेयादिनाशके।।८७।।
स्वामिपुष्करिणी चेति सर्वपापापनोदिनी। उत्तरे श्रीनिवासस्य वर्तते मङ्गलप्रदा।।८८।।
तं गत्वा वेङ्कटं शैलं स्वामिपुष्करिणीं शुभाम्।
स्नात्वा सङ्कल्पपूर्वं तु वराहस्वामिनं हरिम्।।८९।।
सेवित्वा पश्चिमेतीरेनिर्गत्यहरिमन्दिरम्। गत्वातत्रविधानेनस्वर्णाजलनिवासिनम्।।९०।।
श्रीनिवासं परं देवं भक्तानामभयप्रदम्। शङ्खचक्रधरं देवं वनमालाविभूषितम्।।९१।।
दृष्ट्वानिर्धूतपापोऽसि संशयं मा कृथा द्विज।
शाकल्येनैवमुक्तस्तकाश्यपो मुनिपुङ्गवः।।९२।।
गत्वा वेङ्कटशैलेन्द्रं सुरासुरनमस्कृतम्। पुष्करिण्यांशुभायां तु स्नातोनियमपूर्वकम्।।९३।।

स्वस्थोऽभूत्काश्यपो विप्रोभिषग्विद्याब्धिपारगः।
सर्वे बन्धुजना विप्रा काश्यपं ब्राह्मणोत्तमम्॥९४॥
पूजयित्वा विधानेन पूज्योऽसि न च संशयः। एवम्वःकथितंविप्रावेङ्कटाचलवैभवम्॥९५॥
यः श्रृणोति नरोभक्त्या विष्णुलोके महीयते॥९६॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलस्थ-
स्वामिपुष्करिणीमाहात्म्ये काश्यपदोषनिवृत्तिर्नामैकादशोऽध्यायः।।११।।
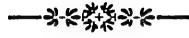
शाकल्य कहते हैं—''हे द्विज! मैं तुम्हारे पापनाशार्थ उपाय कहता हूं। तुम शीघ्र उसका पालन करो। विलम्ब नहीं करें। सुवर्णमुखरी तट पर सर्वलोकपूज्य वेंकटाचल पर्वत है। यह रमापति विष्णु का निवास स्थल है। इसका अन्य नाम है शेषपर्वत। यह सुर-असुर पूजित शेषपर्वत ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्ण चोरी जनित समस्त पापों का नाश कर देता है। वहीं पर सर्वपापनाशिनी प्रसिद्धा स्वामिपुष्करिणी है। मंगलप्रद स्वामिपुष्करिणी श्रीनिवास प्रभु के आवास के उत्तर में विराजमान है। तुम इस वेंकटाचल शैल पर जाओ तथा संकल्प के साथ स्वामिपुष्करिणी में स्नान करके वराहरूपी श्रीहरि की सेवा करके पश्चिम तीर पर भी जाओ। वहां भी एक श्रीहरि का मन्दिर है। वहां जाकर भक्तों को अभय देने वाले शंखचक्रधारी, वनमालामण्डित स्वर्णाचलवासी परमदेव श्रीनिवास का सविधि दर्शन करके सभी पापों से रहित हो जाओ। हे द्विज! इसमें संदेह नहीं करना।'' शाकल्य का वचन सुनकर मुनिप्रवर काश्यप वेंकटाचल गये। वहां शोभन स्वामिपुष्करिणी में नियमतः स्नान करके स्वस्थ हो गये। तब उनके बन्धुगण ने इस ब्राह्मणोत्तम काश्यप की पूजा करके कहा—हे काश्यप! तुम पूज्य हो, इसमें सन्देह नहीं है।'' हे विप्रों! मैंने आपसे वेंकटाचल की विभूति को कह दिया। जो भक्तिपूर्वक वेंकटाचल माहात्म्य का श्रवण करता है, उसे विष्णुलोक की प्राप्ति होती है।।८५-९६।।

।।एकादश अध्याय समाप्त।।

द्वादशोऽध्यायः

स्वामिपुष्करिणी स्नान द्वारा नरक से छुटकारा, स्वामितीर्थ महिमा

ऋषय ऊचुः

सूत ! सर्वार्थतत्त्वज्ञ ! वेदवेदाङ्गपारग !। श्रीस्वामिपुष्करिण्याश्च वैभवं वद नः प्रभो॥१॥
यस्याः स्मरणमात्रेण मुक्तः स्नान्मानवो भुवि॥२॥

ऋषिगण कहते हैं—हे सर्वतत्त्वज्ञ वेदवेदांग पारंगत हे प्रभो! सूत जी! जिसके स्मरणमात्र से मनुष्य को मुक्ति मिल जाती है, आप उस स्वामिपुष्करिणी के ऐश्वर्य को कहें।।१-२।।

सूत उवाच

स्वामितीर्थं प्रशंसन्तिस्नान्ति वा कथयन्तिये। अष्टाविंशतिभेदांस्तेनरकान्नोपभुञ्जते॥३॥
तामिस्त्रमन्धतामिस्त्रं महारौरवरौरवौ। कुम्भीपाकं कालसूत्रमसिपत्रवनं तथा॥४॥
कृमिभक्षोऽन्धकूपश्च सन्दंशःशाल्मली तथा। लालाभक्षोह्यवीचिश्चसारमेयादनंतथा॥५॥
तथैववज्रकणकः क्षारकर्दमपातनम्। रक्षोगणासनं चाऽपिशूलप्रोतनिरोधनम्॥६॥
तिरोधानाभिधं विप्रास्तथा सूचीमुखाभिधम्। पूयशोणितभक्षञ्च विषाग्निपरिपीडनम्॥७॥
अष्टाविंशतिसङ्ख्यातमेतन्नरकसञ्चयम् ।
न याति मनुजो विप्राः स्वामितीर्थनिमज्जनात्॥८॥

सूतजी कहते हैं—हे विप्रगण! जो स्वामिपुष्करिणी का वर्णन, प्रशंसा, किंवा वहां स्नान करते हैं, उनको अष्टादश प्रकार का नरकभोग नहीं करना पड़ता। तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, कुंभीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, कृमिभक्ष, अन्धकूप, सन्दंश, शाल्मली, लालभक्ष, अवीचि, सारमेयादन, वज्रकणक, क्षारपातन, कर्दमपतन, रक्षोगणाशन, शूलनिरोधन, प्रोतनिरोधन, तिरोधान, सूचीमुख, पूयभक्ष, शोणितभक्ष, विषाग्नि परिपीड़न, नरक समूह के ये २८ भेद हैं। हे विप्रगण! जो मुनष्य इस स्वामिपुष्करिणी में स्नान करता है, वह इन २८ नरकों में नहीं जाता।।३-८।।

वित्तापत्यकलत्राणां योऽन्येषामपहारकः। सकालपाशबद्धोऽयं यमदूतैर्भयानकैः॥९॥
तामिस्त्रे नरकेघोरे पात्यते बहुवत्सरम्।
स्नाति चेत्स्वामितीर्थे स तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते॥१०॥
मातरं पितरंविप्रान्योद्वेष्टिपुरुषाधमः। स कालसूत्रनरके विस्तृतायुतयोजने॥११॥
अधस्तादग्निसन्तप्ते उपर्यर्कमरीचिभिः। खलेताम्रमयेविप्राः पात्यतेक्षुधयार्दितः॥१२॥
स्नाति चेत्पुष्करिण्यां वै तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते।
यो वेदमार्गमुल्लङ्घ्य वर्तते कुपथे नरः॥१३॥
सोऽसिपत्रवने घोरे पात्यते यमकिङ्करैः।
स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते॥१४॥

जो व्यक्ति वित्त, पुत्र, कलत्र किंवा अन्य किसी वस्तु का हरण करता है, भीषण यमदूत उसे कालपाश में बांधकर घोर तामिस्रनरक में अनेक वर्ष गिराते हैं। किन्तु ऐसा पातकी भी यदि स्वामिपुष्करिणी में स्नान कर लेता है, तब उसे ऐसे तामिस्र नरक में नहीं जाना पड़ता। जो पुरुषाधम माता-पिता किंवा विप्रों से द्वेष करता है, उसका पतन १०००० योजन विस्तार वाले कालसूत्र नरक में होता है। ये यमदूत उस क्षुधार्त्त नारकी को अधोदिक् में अग्नि से तथा ऊर्ध्वदिक् में रविकिरण द्वारा तप्त करके तपाये गये ताम्रमय खल में गिरा देते हैं।

ऐसा नारकीय व्यक्ति भी यदि स्वामिपुष्करिणी में स्नान कर लेता है, तब उसका नरक में पतन नहीं होता। जो वेदमार्ग का उल्लंघन करके कुपथगामी होता है, यमकिंकर उसे घोर असिपत्रवन में फेंक देते हैं। किन्तु स्वामिपुष्करिणी में स्नान करने से ऐसा पतन नहीं होता।।९-१४।।

योऽश्नाति पङ्क्तिभेदेनपक्वंसूपादिकं नरः।
अकृत्वापञ्चयज्ञान्वाभुङ्क्तेमोहेनसद्विजाः ॥१५॥
पात्यतेऽयं यमभटैर्नरके कृमिभोजने। भष्यमाणः कृमिशतैर्भक्षयन्कृमिसञ्चयान्॥१६॥
स्वयञ्च कृमिभूतः संस्तिष्ठेद्यावदघक्षयम्।
स्नाति चेत्स्वामितीर्थे वै तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते॥१७॥
योहरेद्विप्रवित्तानि स्नेहेन बलतोऽपि वा। अन्येषामपिवित्तानिराजातत्पुरुषोऽपिवा॥१८॥
अयोमयाग्निकुण्डेषु सन्दंशैः सोऽपिपीडितः। सन्दंशे नरकेघोरे पात्यते यमपूरुषैः॥१९॥
स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते।
अगम्यां योऽभिगच्छेत स्त्रियम्वै पुरुषाधमः॥२०॥
अगम्यं पुरुषं योषिदभिगच्छेत वा द्विजाः। तावयोमयनारीं च पुरुषंचाऽप्ययोमयम्॥२१॥
तप्ता वालिङ्ग्यतिष्ठन्तौयावच्चन्द्रदिवाकरम्। सूच्याख्येनरकेघोरे पात्येतेयमकिङ्करैः॥२२॥

हे द्विजगण! जो मानव पंक्तिभेद करके पक्व सूपादि अलग से भक्षण करता है, अथवा बिना पंचयज्ञ सम्पन्न किये मोहवश भोजन कर लेता है, यमदूतगण उसे कृमिभोजन नरक में गिरा देते हैं। वह पातकी वहां कभी कृमियों को खाता है, तो कभी कृमि उसका भक्षण करते हैं। जब तक पापक्षय नहीं हो जाता, तब तक पातकी कृमि होकर निवास करते हैं, तथापि स्वामितीर्थ में स्नान करने के उपरान्त ऐसे नरक में पतन नहीं होता। प्रेम प्रदर्शन पूर्वक किंवा बलपूर्वक विप्र का, अथवा अन्य का धन हरण करने वाले राजा अथवा राजकर्मचारी को लौहमय तप्तकुण्ड में गिराया जाता है तथा दंश द्वारा पीड़ित करके यमदूतों द्वार संदंश नरक में गिराया जाता है, तथापि स्वामितीर्थ में स्नान करने वाला ऐसे नरक में नहीं गिराया जाता।

जो पुरुष अगम्यागमन करता है, अथवा जो निन्दिता स्त्री अगम्य पुरुष की सेवा करती है, ऐसे पुरुष तथा स्त्री दोनों को यथाक्रमेण लौह की तप्त नारी तथा पुरुष मूर्त्ति से आलिंगित कराया जाता है। जब तक चन्द्र सूर्य की स्थिति है, तब तक इनको इसी प्रकार रक्खा जाता है। यमकिंकर इनको सूचीनामक नरक में गिराते हैं।।१५-२२।।

स्नाति चेत्स्वामितीर्थेचतस्मिन्नासौनिपात्यते। बाधतेसर्वजन्तून्योनानोपायैरुपद्रवैः॥२३॥
शाल्मलीनरके घोरे पात्यते बहुकण्टके।
स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते॥२४॥
राजा वा राजभृत्यो वा यः पाषण्डमनुद्रुतः। भेदको धर्मसेतूनांवैतरण्यांनिपात्यते॥२५॥
स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नासौ निपात्यते।
वृषलीसङ्गदुष्टो वा शौचाद्याचारवर्जितः॥२६॥

त्यक्तलज्जस्त्यक्तवेदःपशुचर्यारतः सदा। सपूयविष्ठामूत्रासृक्श्लेष्मपित्तादिपूरिते॥२७॥
अतिबीभत्सनरके पात्यते यमकिङ्करैः।
स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते॥२८॥
यःश्वभिर्मृगयुर्वन्यान्बाणैर्वा बाधतेमृगान्। सविध्यमानोबाणौघैःपरत्र यमकिङ्करैः॥२९॥
प्राणरोधाख्यनरके पात्यते यमकिङ्करैः।
स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते॥३०॥

तथापि यदि ऐसे पापी जीवनकाल में स्वामितीर्थ में स्नान कर लेते हैं, तब उनका ऐसा पतन नहीं होता। विविध उपद्रव द्वारा जो मनुष्य निखिल प्राणीगण को पीड़ित करते हैं, उनका पतन नाना कण्टकाकीर्ण शाल्मलि नरक में हो जाता है, तथापि शाल्मली तीर्थ में स्नान करने वाला पातकी भी इन नरकों में नहीं फेंका जाता। वृषली स्त्री के संग से दूषित, शौचचार रहित, निर्लज्ज, वेदत्यागी तथा सतत् पशुचर्यारत व्यक्ति को यमकिंकर मवाद, विष्ठा, शोणित, श्लेष्मा तथा पित्तादि भरे अति वीभत्स नरकों में गिराते हैं, तथापि स्वामिपुष्करिणी में स्नात व्यक्ति का ऐसे नरकों में पतन नहीं होता। जो व्यक्ति (व्याध) कुत्ते किंवा बाणों से मृगगण को पीड़ा पहुंचाता है, अन्तकाल में यमकिंकर उसे बाणों से बेधते ले जाकर प्राणरोध नामक नरक में फेंक देते हैं। ऐसे नारकीय भी यदि स्वामिपुष्करिणी में स्नान सम्पन्न कर लेते हैं, तब उनको ऐसे नरकों में नहीं जाना पड़ता।।२३-३०।।

दाम्भिको यः पशून्यज्ञे विध्यनुष्ठानवर्जितः। हन्त्यसौ परलोकेषु वैशसेनरके द्विजाः॥३१॥
कर्त्यमानो यमभटैः पात्यते यमकिङ्करैः।
स्नाति चेत्पुष्करिण्याम्वै तस्मिन्नाऽसौ निषात्यते॥३२॥
आत्मभार्यां सवर्णां यो रेतः पांययते यदि। परत्र रेतःपायी स रेतःकुण्डेनिपात्यते॥३३॥
स्नाति चेत्पुष्करिण्याम्वै तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते।
यो तस्युर्मार्गमाश्रित्य गंरदो ग्रामदाहकः॥३४॥
वणिग्द्रव्यापहारी च स परत्र द्विजोत्तमाः। वज्रदंष्ट्राभिधेघोरे पात्यते नरके चिरम्॥३५॥
स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते।
विद्यन्ते यानि चाऽन्यानि नरकाणि परत्र वै॥३६॥
तानि नाऽऽप्नोति मनुजः स्वामितीर्थनिमज्जनात्।
पुष्करिण्यां सकृत्स्नानादश्वमेधफलं लभेत्॥३७॥

हे द्विजगण! अनुष्ठान तथा विधिवर्जित होकर जो दाम्भिक यज्ञ में पशुवध करता है, यमकिंकर उसके टुकड़े कर-करके वैशास नरक में फेंक देते हैं, तथापि स्वामिपुष्करिणी में स्नान करने वाला ऐसे नरक भोग को प्राप्त नहीं करता।

जो व्यक्ति अपनी सवर्णा पत्नी को रेतःपान कराता है, वह नरक में वीर्यपायी होता है तथा उसे

यमदूतगण रेतःकुण्ड में फेंक देते हैं, तथापि स्वामिपुष्करिणी में स्नान करने से ऐसा नरक भोग नहीं होता। हे द्विजोत्तमगण! जो दस्यु मार्ग में लूटने हेतु विष देता है, ग्रामदाह करता है, किंवा वणिकों के द्रव्य का हरण करता है, वह मृत्यु के पश्चात् वज्रदंष्ट्र नामक नरक में चिरकाल हेतु गिराया जाता है, तथापि स्वामितीर्थ में स्नान करने से वह मृत्यु के उपरान्त ऐसे नरकों का दर्शन नहीं करता। जो स्वामिपुष्करिणी में मात्र एक बार स्नान करता है, उसे अश्वमेध यज्ञफल की प्राप्ति होती है।।३१-३७।।

आत्मविद्या भवेत्साक्षान्मुक्तिश्चापि चतुर्विधा। न पापे रमते बुद्धिर्नभवेद्दुःखमेववा।।३८।।
तुलापुरुषदानेन यत्फलंलभ्यते नरैः। तत्फलं लभ्यते पुम्भिः स्वामितीर्थनिमज्जनात्।।३९।।
गोसहस्रप्रदानेनयत्पुण्यंहिभवेन्नृणाम्। तत्पुण्यंलभते मर्त्यःस्वामितीर्थनिमज्जनात्।।४०।।

धर्मार्थकाममोक्षाणां यं यमिच्छति पूरुषः।
तं तं सद्यः समाप्नोति स्वामितीर्थनिमज्जनात्।।४१।।

महापातकयुक्तोवायुक्तोवासर्वपातकैः। सद्यः पूतो भवेद्विप्राःस्वामितीर्थनिमज्जनात्।।४२।।

प्रज्ञालक्ष्मीर्यशःसम्पज्ज्ञानं धर्मो विरक्तता।
मनः शुद्धिर्भवेन्नृणां स्वामितीर्थनिषेवणात्।।४३।।

ब्रह्महत्याऽयुतञ्चापि सुरापानायुतन्तथा। अयुतं गुरुदाराणां गमनम्पापकारिणाम्।।४४।।

स्तेयायुतं सुवर्णानां तत्संसर्गाश्च कोटिशः।
शीघ्रं विलयमायान्ति स्वामितीर्थनिमज्जनात्।।४५।।

ब्रह्महत्यासमानानिसुरापानसमानि च। गुरुस्त्रीगमनेनाऽपियानितुल्यानिचास्तिकाः।।४६।।

सुवर्णस्तेयतुल्यानि तत्संसर्गसमानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति स्वामितीर्थनिमज्जनात्।।४७।।

उक्तेष्वेतेषु सन्देहो न कर्त्तव्यः कदाचन। जिह्वाग्रेपरशुं तप्तं प्रक्षिपन्ति चकिङ्कराः।।४८।।
अर्थवादमिमं सर्वं ब्रुवन्वैनरकं व्रजेत्। सूकरः स हि विज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः।।४९।।

अहो मौर्ख्यमहो मौर्ख्यमहो मौर्ख्यं द्विजोत्तमाः!।
स्वामितीर्थाभिधे तीर्थे सर्वपातकनाशने।।५०।।

अद्वैतज्ञानदे पुंसाम्भुक्तिमुक्तिप्रदायिनि। इष्टकामप्रदे नित्यं तथैवाज्ञाननाशने।।५१।।
स्थितेऽपि तद्विहायायं रमतेऽन्यत्रवैजनः। अहो मोहस्य माहात्म्यंमयावक्तुंनशक्यते।।५२।।

स्नानस्य स्वामितीर्थे तु नाऽन्तकाद्भयमस्ति वै।
स्वामितीर्थञ्च पश्यन्ति तत्र स्नान्ति च ये नराः।।५३।।
स्तुवन्ति च प्रशंसन्ति स्पृशन्ति च नमन्ति च।
न पिबन्ति हि ते स्तन्यं मातॄणां द्विजपुङ्गवाः!।।५४।।

एवम्वःकथतंविप्राःस्वामितीर्थस्यवैभवम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां सर्वपापनिबर्हणम्।।५५।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये श्रीस्वामिपुष्करिणीतीर्थमहिमानुवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः।।१२।।

उसे आत्म विद्या का साक्षात्कार मिलता है तथा चतुर्विध मुक्ति मिलती है। उसकी बुद्धि पापरत नहीं होता। उसे कभी दुःख नहीं होता। तुलापुरुष दान द्वारा मानव जो फललाभ करते हैं, स्वामिपुष्करिणी में स्नान द्वारा भी वह फल मिलता है। सहस्र गोदान से मानव को जो फल मिलता है, मानव स्वामितीर्थ स्नान से वही फल प्राप्त करता है। स्वामिपुष्करिणी में स्नान द्वारा व्यक्ति जो कुछ भी धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष में से जो भी इच्छा करता है, उसे वह तत्काल प्राप्त हो जाता है। हे विप्रगण! महापातकयुक्त किंवा सर्वपातकयुक्त मानव भी स्वामितीर्थ में स्नान करके सदा पवित्र हो जाता है। ब्रह्महत्यायुक्त हो, सुरापायी हो, किंवा १०००० बार गुरुपत्नीगमन किया हो, १०००० बार सोना चुराया हो, कोटि-कोटि स्वर्ण चोर का संसर्ग किया हो, स्वामिपुष्करिणीतीर्थ स्नान से वे पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। आस्तिकगण का कथन है कि ब्रह्महत्या तथा सुरापान से जो पाप संचय होता है, मात्र एक बार गुरुपत्नीगमन जन्य पाप उसके समान है। स्वर्णचौर तथा उसका संसर्ग करने वाले समान पापी होते हैं, तथापि एकमात्र स्वामितीर्थ स्नान से ऐसे सभी पापों का नाश हो जाता है। स्वामितीर्थ की महिमा में अश्रद्धा रखने वाले महानरकगामी होते हैं। यह जो कहा गया, इसके प्रति सन्देह उचित नहीं है। इसके माहात्म्य के प्रति जो श्रद्धाहीन होते हैं, यमदूतगण उसकी जिह्वा को तप्त परशु से दागते हैं। जो व्यक्ति इन सब विषय में हेतुवाद प्रदर्शित करता है वह तो महान् मूर्ख है। हे द्विजश्रेष्ठगण! वह तो महान् मूर्खता है! मानव को अद्वैतज्ञानप्रद सर्वपाप नाशक-भुक्ति-मुक्तिदायक अभीष्ट कामदाता तथा नित्य अज्ञान नाशक स्वामितीर्थ पृथिवी पर रहने पर भी जो अन्यत्र तीर्थ भक्ति करता है, वह तो मोह की ही महिमा है! मैं उसे कहने में समर्थ नहीं हूं। इस तीर्थ में स्नान करने वाले को यमभय नहीं रह जाता। हे द्विजोत्तमगण! जो लोग स्वामितीर्थ का दर्शन, स्पर्शन, प्रशंसा अथवा वहां स्नान किंवा स्तव करते हैं, उनको पुनः जन्म लेकर मातृस्तनपान नहीं करना पड़ता। हे विप्रगण! मैंने आपसे स्वामितीर्थ की महिमा कहा। यह तीर्थ मनुष्य को भुक्ति-मुक्ति देने वाला है तथा सभी पापों को दूर कर देता है।।३८-५५।।

।।द्वादश अध्याय समाप्त।।

त्रयोदशोऽध्यायः

धर्मगुप्त चरित्र, सिंह-ॠक्ष संवाद

श्रीसूत उवाच

भूयोऽपि सम्प्रवक्ष्यामि स्वामितीर्थस्य वैभवम्।
युष्माकमादरेणाऽहं नैमिषारण्यवासिनः॥१॥

नन्दोनाममहाराजः सोमवंशसमुद्भवः। धर्मेण पालयामास सागरान्तां धरामिमाम्॥२॥
तस्यपुत्रःसमभवद्धर्मगुप्त इति स्मृतः। राज्यरक्षाधुरं नन्दो निजपुत्रे निधाय सः॥३॥
जितेन्द्रियो जिताहारः प्रविवेशतपोवनम्। ताते तपोवनं याते धर्मगुप्ताभिधो नृपः॥४॥
मेदिनीं पालयामास धर्मज्ञो नीतितत्परः। ईजे बहुविधैर्यज्ञैर्देवानिन्द्र पुरोगमान्॥५॥
ब्राह्मणानांददौवित्तंक्षेत्राणिचबहूनि सः। सर्वेस्वधर्मनिरतास्तस्मिन्राजनि शासति॥६॥
कदाचिन्नाभवन्पीडातस्मिंश्चोरादिसम्भवाः। कदाचिद्धर्मगुप्तोऽयमारुह्यतुरगोत्तम्॥७॥
वनं निवेश विप्रेन्द्रा मृगयारसकौतुकी। तमालतालहिन्तालकुरबाकुलदिङ्मुखे॥८॥
विचचार वनेतस्मिन्सिंहव्याघ्रभयानके। मत्तालिकुलसन्नादसम्मूर्च्छितदिगन्तरे॥९॥
पद्मकल्हारकुमुदनीलोत्पलवनाकुले। तटाके रससम्पूर्णे तपस्विजनमण्डिते॥१०॥

सूत जी कहते हैं—हे नैमिषारण्यवासी ॠषिगण! आपलोगों के मेरे प्रति श्रद्धादर्शन से मैं पुनः स्वामीतीर्थ की विभूति का कीर्त्तन करता हूं। सोमवंश में उत्पन्न राजा नन्द ने धर्मानुसार सागर पर्यन्त वसुधरा का पालन किया था। उनका एक पुत्र था धर्मगुप्त। जितेन्द्रिय तथा आहारविजयी राजा नन्द ने अपने पुत्र धर्मगुप्त को राज्यभार सौंपा तथा स्वयं तपोवन गमन किया। वह नीतिज्ञ तथा धर्मात्मा पुत्र पृथिवी पालन करने लगा। राजा ने नाना यज्ञों द्वारा इन्द्रादि प्रधान देवगण का पूजन किया था। उन्होंने ब्राह्मणों को धन तथा अनेक भूमि प्रदान किया था। उनके शासनकाल में सभी स्वधर्मरत थे। उनको कभी भी चौर्यजनित पीड़ा राजा के प्रभाव के कारण नहीं होती थी। हे विप्रेन्द्रगण! तदनन्तर मृगयारसकौतुक वाले राजा धर्मगुप्त एक बार उत्तम अश्व पर सवार होकर वन में गये। वहां तमाल, ताल, हिन्ताल, कुरव तथा बकुल के वृक्ष भरे पड़े थे। वहां भीषण सिंह-व्याघ्रादि हिंस्रजन्तु विचरण कर रहे थे। वहां का दिग्-दिगन्त मत्त भ्रमरों के गुंजार से सम्मूर्च्छित हो रहा था। कमल, कल्हार, कुमुद, नीलोत्पल प्रभृति से वह वन सर्वत्र व्याप्त था। उसकी रसपूर्ण तटभूमि तपस्वी जनों से शोभित थी।।१-१०।।

तस्मिन्वने सञ्चरतो धर्मगुप्तस्य भूपतेः। अभूद्विभावरी विप्रास्तमसावृतदिङ्मुखा॥११॥
राजाऽपि पश्चिमां सन्ध्यामुपास्य विनयान्वितः।
जजाप च वने तत्र गायत्रीं वेदमातरम्॥१२॥
सिंहव्याघ्रादिभीत्याऽस्मिन्वृक्षमेकंसमाश्रिते। राजपुत्रेतदभ्याशमृक्षःसिंहभयार्दितः॥१३॥

अन्वधावत वृक्षं तमेकः सिंहो वनेचरः। अनुद्रुतः स सिंहेन ऋक्षो वृक्षमुपारुहत्॥१४॥

आरुह्य ऋक्षो वृक्षं तं ददर्श जगतीपतिम्। वृक्षस्थितं महात्मानं महाबलपराक्रमम्॥१५॥

उवाच भूपतिं दृष्ट्वा ऋक्षोऽयं वनगोचरः।
मा भीतिं कुरु राजेन्द्र! वत्स्यावो रजनीमिह॥१६॥

महासत्त्वो महाकायो महादंष्ट्रासमाकुलः। वृक्षमूलं समायातःसिंहोऽयमतिभीषणः॥१७॥

रात्र्यर्धं भज निद्रां त्वं रक्ष्यमाणो मयोद्यतः। ततः प्रसुप्तं मां रक्ष शर्वर्यर्धं महामते !॥१८॥

इस प्रकार वह वन अपूर्व शोभायुक्त था। हे विप्रगण! राजा धर्मगुप्त वन में विचरण कर रहे थे तभी रात्रि हो गयी। हठात् अन्धकार से सभी दिशायें घिर गयीं। तदनन्तर विनयी राजा सायं सन्ध्योपासना करके उसी वन में वेदमाता गायत्री का जप करने लगे। राजा ने सिंह-व्याघ्रादि हिंस्र जन्तु से भीत होकर एक वृक्ष का आश्रय लिया। तभी देखते हैं कि सिंह से भयभीत होकर एक भालू भी वृक्षारोहण कर रहा है। उसने भी राजा को देखा। तदनन्तर महात्मा महाबली पराक्रमी राजा को वृक्षस्थ देखकर ऋक्ष ने कहा—"हे राजेन्द्र! आप भयग्रस्त न हों। हम दोनों रात्रि में इस वृक्ष पर ही रहेंगे। यह महासत्व, महाकाय, महादंष्ट्रा युक्त अतीव भीषण सिंह वृक्ष के नीचे हैं। हे महामते! आप मुझसे रक्षित होकर रात्रि में अर्द्धनिद्रित हो जायें। अपरार्द्ध रात्रि में मैं अर्द्धनिद्रित हो जाऊंगा। आप तब जागकर मेरी रक्षा करियेगा"।।११-१८।।

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य सुप्ते नन्दसुते हरिः।
प्रोवाच ऋक्षं सुप्तोऽयं नृपो मे त्यज्यमामिति॥१९॥

तं सिंहमब्रवीदृक्षो धर्मज्ञो द्विजसत्तमाः। भवान्धर्मं न जानीते मृगराज ! वनेचर !॥२०॥

विश्वासघातिनां लोके महाकष्टम्भवत्यहो। न हि मित्रद्रुहां पापं नश्येद्यज्ञायुतैरपि॥२१॥

ब्रह्महत्यादिपापानां कथञ्चिन्निष्कृतिर्भवेत्।
विश्वासघातिनां पापं न नश्येज्जन्मकोटिभिः॥२२॥

नाऽहं मेरुं महाभारंमन्ये पञ्चास्य ! भूतले। महाभारमिमं मन्ये लोकविश्वासघातकम्॥२३॥

एवमुक्तोऽथ ऋक्षेण सिंहस्तूष्णीं बभूव ह। धर्मगुप्ते प्रबुद्धे तु ऋक्षः सुष्वाप भूरुहे॥२४॥

राजा तथा रीछ के बीच यह कथनोपकथन होने पर राजा निद्रित हो गया। तब सिंह ने ऋक्ष से कहा—"हे रीछ! राजा निद्रित हो गया है, उसे नीचे ढकेल दो।" हे द्विजश्रेष्ठगण! धर्मज्ञ ऋक्ष ने सिंह की बात का उत्तर दिया—"हे वनेचर! तुम धर्म नहीं जानते। त्रैलोक्य में विश्वासघाती महाकष्ट पाता है। १०००० यज्ञ से भी मित्रघाती का पाप दूर नहीं होता। ब्रह्महत्या जनित पाप से कभी भले छुटकारा मिले तथापि विश्वासघाती का पाप करोड़ों जन्म में भी नष्ट नहीं होता। हे पञ्चास्य! पृथिवी पर मैं मेरु पर्वत को भारी नहीं मानता, केवल विश्वासघातक ही भारी लगता है।" ऋक्ष की बात सुनकर सिंह मौनी हो गया। जब धर्मगुप्त जागा, तब ऋक्ष ने वृक्ष शाखा पर शयन किया।।१९-२४।।

ततः सिंहोऽब्रवीद्भूपमेनवृक्षं त्यजस्व मे। एवमुक्तोऽथ सिंहेन राजासुप्तमशङ्कितः॥२५॥

स्वाङ्कन्यस्तशिरस्कं तमृक्षं तत्याज भूतले।
पात्यमानास्ततो राज्ञा समालम्बितपादपः॥२६॥

ऋक्षः पुण्यवशाद्वृक्षान्न पपात महीतले। स ऋक्षोनृपमभ्येत्यकोपाद्वाक्यमभाषत॥२७॥
कामरूपधरो राजन्नहं भृगुकुलोद्भवः। ध्यानकाष्ठाभिधो नाम्ना ऋक्षरूपमधारयम्॥२८॥
कस्मादनागसं सुप्तमत्याक्षीन्मांभवान्नृप। मच्छापादतिशीघ्रं त्वमुन्मत्तश्चर भूतले॥२९॥

सिंह पूर्ववत् राजा से बोला—"हे भूप! ऋक्ष को त्यागो।" सिंह की बात सुनकर राजा ने निडरतापूर्वक अपने गोद में शिर रखे सुप्त ऋक्ष को नीचे ढकेल दिया। राजा ने उसे ढकेला जरूर लेकिन उसने अपने पुण्यबल से वृक्ष को पकड़ लिया, अतः भूतल पर नहीं गिरा। ऋक्ष तब क्रोधित होकर राजा के पास आकर क्रोधपूर्वक कहने लगा—"हे राजन्! मैं ऋक्ष नहीं हूं। मैं भृगुवंश में उत्पन्न ध्यानकाष्ठ नामक ऋषि हूं। मैं इच्छानुरूप रूपधारी हूं। मैं ऋक्षरूपेण आपके पास आया था। हे राजन्! मैं निरपराध था, तथापि आपने मुझे सिंह मुख में क्यों फेंकने का उपक्रम किया? आप मेरे शाप से उन्मत्त होकर पृथिवी पर विचरण करें।"॥२५-२९॥

इतिशप्त्वा मुनिर्भूपं ततः सिंहमभाषत। न सिंहस्त्वं महायक्षःकुबेरसचिवः पुरा॥३०॥
हिमवद्गिरिमासाद्य कदाचित्त्वं वधूसखः। अज्ञानाद्गौतमाभ्याशे विहारमतनोर्मुदा॥३१॥
गौतमोऽप्युटजाद्दैवात्समिदाहरणाय वै। निर्गतस्त्वां विवसनंदृष्ट्वा शापमुदाहरत्॥३२॥
यस्मान्ममाश्रमेऽद्य त्वं विवस्त्रः स्थितवानसि।
अतः सिंहत्वमद्यैव भविता ते न संशयः॥३३॥

उस कामरूपी ऋक्ष ने राजा को अभिशाप देकर सिंह से कहा—"हे सिंहरूपी! तुम भी सिंह नहीं हो। पूर्वकाल में तुम कुबेर के मन्त्री थे। तुम महायक्ष हो। तुम एक बार पत्नी के साथ विचरण करते-करते महर्षि गौतम के आश्रम में आये। तुम आनन्दविभोर होकर उसी आश्रम में विहार करने लगे। दैववशात् तब गौतम समिघ् लाने के लिये पर्णकुटी से बाहर निकले तथा तुमको वस्त्र रहित देखा। इससे क्रोधित होकर उन्होंने शाप दिया—"तुम मेरे आश्रम आकर विवस्त्र हो गये, अतः तुम अभी सिंहत्व प्राप्त करो। इसमें सन्देह नहीं है"॥३०-३३॥

इति गौतमशापेन सिंहत्त्वमगमत्पुरा। कुबेरसचिवो यक्षो भद्रनामा भवान्पुरा॥३४॥
कुबेरो धर्मशीलो हि तद्भृत्याश्च तथैव हि। अतःकिमर्थं त्वंहंसिमामृषिंवनगोचरम्॥३५॥
एतत्सर्वमहं ध्यानाज्जानामिहिमृगाधिप। इत्युक्तोध्यानकाष्ठेनत्यक्त्वासिंहत्वमाशुसः॥३६॥
यक्षरूपं गतो दिव्यं कुबेरसचिवात्मकम्। ध्यानकाष्ठमसावाहप्राञ्जलिः प्रणतोमुनिम्॥३७॥
अद्य ज्ञातं मया सर्वं पूर्ववृत्तं महामुने!।
गौतमः शापकाले मे शापान्तमपि चोक्तवान्॥३८॥

ध्यानकाष्ठेन सम्वादं ऋक्षरूपेण ते यदा। तदा निर्धूय सिंहत्वं यक्षरूपमवाप्स्यसि॥३९॥

इति मामब्रवीद्ब्रह्मन्गौतमो मुनिपुङ्गवः। अद्य सिंहत्वनाशान्मेजानामि त्वाम्महामुने॥४०॥
ध्यानकाष्ठाभिधंशुद्धंकामरूपधरं सदा। इत्युक्त्वा तं प्रणम्याऽथ ध्यानकाष्ठंसयक्षराट्॥४१॥

"पूर्वकाल में महर्षि गौतम के यह शाप देने के कारण तुमने सिंहत्व प्राप्त किया। तुम कुबेर के सचिव भद्रनामक यक्ष हो। कुबेर धार्मिक हैं। उनके अनुचर भी धर्मात्मा होते हैं। मैं वनवासी ऋषि हूं। तुम धार्मिक होकर भी क्यों मेरी हिंसा करते हो? हे मृगाधिप! मैं ध्यान बल से यह सब जान सकता हूं।"

ऋषि ध्यानकाष्ठ के यह कहते ही सिंह ने सिंह रूप त्याग दिया। उसने कुबेर के सचिव जैसा दिव्य यक्षरूप धारण किया। उसने हाथ जोड़ कर तथा प्रणत होकर मुनि ध्यानकाष्ठ से कहा—"हे महामुनि! अब मुझे अपना समस्त पूर्व इतिहास स्मरण हो गया है। आपने जो कहा है, सब सत्य है। महर्षि गौतम ने शाप देकर शापान्त भी कर दिया। उन्होंने कहा था रीछरूपधारी ध्यानकाष्ठ जब तुम्हारा पूर्ववृत्तान्त तुमसे कहेंगे, तब तुम सिंहत्व त्याग करके यक्षत्व पुनः प्राप्त करोगे। हे ब्रह्मन्! मुनिपुंगव गौतम ने मुझसे ऐसा ही कहा था। अब मैं अपना सिंहत्व विनष्ट हो जाने के कारण यह जान गया कि आप विशुद्ध स्वभाव वाले तथा इच्छानुरूप वेष धारण सक्षम ध्यानकाष्ठ ऋषि ही हैं।" यह कहने के पश्चात् उसने ध्यानकाष्ठ ऋषि को प्रणाम किया।।३४-४१।।

विमानवरमारुह्य प्रययावलकापुरीम्। उन्मत्तरूपं तं दृष्ट्वा मन्त्रिणस्तु नृपोत्तमम्॥४२॥
पितुः सकाशमानिन्यू रेवातीरे नृपोत्तमम्। तस्मै निवेदयामासुर्मतिभ्रंशं सुतस्य च॥४३॥
ज्ञात्वा तु पुत्रवृत्तान्तं पिता वै नन्दनस्तदा॥४४॥
पुत्रमादाय सहसा जैमिनेरन्तिकं ययौ। तस्मै निवेदयामास पुत्रवृत्तान्तमादितः॥४५॥

वह यक्ष विमान पर बैठकर अलकापुरी चला गया। इधर उन्मत्तवत् राजा अपने राज्य वापस आया। उसकी हालत देखकर उसके मन्त्रीगण उसे रेवातीर पर तपस्यारत उसके पिता के पास ले गये तथा उसने पुत्र धर्मगुप्त के चित्तवैकल्य का हाल उन पिता से कहा। राजा अपने पुत्र धर्मगुप्त का हाल जानकर उसको महर्षि जैमिनि के पास ले गये तथा समस्त वृत्तान्त से उन महर्षि को अवगत कराया।।४२-४५।।

भगवञ्जैमिने! पुत्रो ममाद्योन्मत्ततां गतः। अस्योन्मादविनाशाय ब्रूह्युपायं महामुने॥४६॥
इति पृष्टश्चिरं दध्यौ जैमिनिर्मुनिपुङ्गवः। ध्यात्वा तु सुचिरं कालंनृपनन्दनमब्रवीत्॥४७॥
ध्यानकाष्ठस्य शापेन ह्युन्मत्तस्ते सुतोऽभवत्। तस्यशापस्यमोक्षार्थमुपायंप्रब्रवीमिते॥४८॥
सुवर्णमुखरीतीरे वेङ्कटे नामपर्वते। सर्वपापहरे पुण्ये नानाधातुविनिर्मिते॥४९॥
स्वामिपुष्करिणी चेतितीर्थमस्तिमहत्तरम्। पवित्राणांपवित्रंहिमङ्गलानांचमङ्गलम्॥५०॥
श्रुतिसिद्धं महापुण्यं ब्रह्महत्यादिशोधकम्। नीत्वा तत्र सुतं तेऽद्यस्नापयस्वमहामते॥५१॥
उन्मादस्तत्क्षणादेवतस्यनश्येन्न संशयः। इत्युक्तस्तं प्रणम्याऽसौजैमिनिंमुनिपुङ्गवम्॥५२॥

राजा ने महर्षि से कहा—"हे भगवान् जैमिनि! सम्प्रति मेरा पुत्र उन्मत्त हो गया है। आप इसकी उन्मत्तता दूर करने का उपाय कहिये।" मुनिश्रेष्ठ जैमिनी ने राजा की प्रार्थना सुना तथा कई क्षण ध्यानस्थ होकर कहने लगे—"हे नृप! ध्यानकाष्ठ मुनि के शाप के कारण यह उन्मत्त हो गया है। इसके शापमोचन का विधान कहता हूं। सुवर्णमुखरी के तट पर सर्वपापापहारी नानाधातु विनिर्मित पवित्र वेंकटाचल का अवस्थान है। वहां

स्वामिपुष्करिणी नामक एक महान् तीर्थ है। देवसम्मत महापुण्य ब्रह्महत्यादि शोधक यह स्वामितीर्थ मंगल का भी मंगलरूप है। यह पवित्र से भी पवित्रतम है। हे महामति! तुम अभी अपने पुत्र को लेकर वहां जाओ तथा उसे वहां स्नान कराओ। ऐसा करते ही तत्काल उसकी उन्मत्तता दूर होगी। इसमें संशय नहीं है।'' राजा ने मुनि जैमिनी का आदेश सुनकर उनको प्रणाम किया।।४६-५२।।

नन्दः पुत्रं समादाय स्वमिपुष्करिणीं ययौ। तत्र च स्नापयामास पुत्रं नियमपूर्वकम्।।५३।।
स्नानमात्रात्ततः सद्यो नष्टोन्मादोऽभवत्सुतः।
स्वयं सस्नौ स नन्दोऽपि स्वामिपुष्करिणीजले।।५४।।
उषित्वा दिनमेकं तु सहपुत्रः पिता तदा। सेवित्वा वेङ्कटेशंचश्रीनिवासंकृपानिधिम्।।५५।।
पुत्रमापृच्छ्य नन्दस्तं प्रययौ तपसेवनम्। गते पितरि पुत्रोऽपिधर्मगुप्तोनृपोद्विजाः।।५६।।
प्रददौ वेङ्ककटेशस्य बहुवित्तानि भक्तितः। ब्राह्मणेभ्यो धनंधान्यंक्षेत्राणिचददौतदा।।५७।।
प्रययौ मन्त्रिभिः सार्धं स्वांपुरींतदनन्तरम्। धर्मेणपालयामासराज्यंनिहतकण्टकम्।।५८।।

मुनि को प्रणाम करने के पश्चात् राजा नंद ने धर्मगुप्त को लेकर तत्काल स्वामीपुष्करिणी के लिये प्रस्थान किया। तदनन्तर वहां पहुंचकर अपने पुत्र को नियमपूर्वक स्नान कराया। स्नान मात्र से धर्मगुप्त की उन्मत्तता नष्ट हो गई। पिता नन्द ने भी स्वामिपुष्करिणी में स्नान किया और पुत्र के साथ वहां एक रात निवास करके कृपानिधि वेंकटपति श्रीनिवास की सेवा किया तथा पुत्र को बतलाकर राजा नन्द पुनः तपस्या हेतु वन प्रान्तर में चला गया। हे द्विजगण! तत्पश्चात् पिता के चले जाने पर धर्मगुप्त ने भक्तिपूर्वक वेंकटपति के उद्देश्य से प्रचुर धन, धान्य, क्षेत्र आदि ब्राह्मणों को दान दिया। तदनन्तर वह मन्त्रियों के साथ अपने नगर चला गया। हे विप्रगण! धर्मात्मा धर्मगुप्त निष्कंटक धर्मतः राज्य पालन करने लगा।।५३-५८।।

पितृपैतामहं विप्रा धर्मगुप्तोऽतिधार्मिकः। उन्मादैरप्यपस्मारैर्ग्रहैर्दुष्टैश्च ये नराः।।५९।।
ग्रस्ता भवन्ति विप्रेन्द्रास्तेऽपि चाऽत्र निमज्जनात्।
पुष्करिण्यां विमुक्ताः स्युः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।६०।।
स्वामिपुष्करिणीं त्यक्त्वा तीर्थमन्यद् व्रजेत्तु यः।
स्निग्धं सगोपयस्त्यक्त्वा स स्नुहीक्षीरं प्रयाचते।।६१।।
स्वामितीर्थं स्वामितीर्थं स्वामितीर्थमितिद्विजाः।
त्रिः पठन्तो नरा एवं यत्र क्काऽपि जलाशये।।६२।।
स्नान्तिसर्वे नरास्ते वै यास्यन्ति ब्रह्मणःपदम्। एवंवःकथिताविप्राधर्मगुप्तकथाशुभा।।६३।।
यस्याः श्रवणमात्रेण ब्रह्महत्या विनश्यति।।६४।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचल-माहात्म्येस्वामिपुष्करिणीमहिमानुवर्णनंनाम त्रयोदशोऽध्यायः।।१३।।

अतिधार्मिक धर्मगुप्त पिता-पितामह के राज्य का पालन करता था। हे विप्रों! जो व्यक्ति उन्माद, अपस्मार अथवा दुष्टग्रह ग्रस्त हों, वे भी स्वामिपुष्करिणी तीर्थ में स्नान करने से कष्ट मुक्त हो जाते हैं। यह सत्य है, सत्य है, सत्य है। जो इस स्वामितीर्थ का त्याग करके अन्य तीर्थ जाते हैं, वे वैसे ही हैं जो गोदुग्ध का त्याग करके स्नूही वृक्ष से टपकने वाले दुग्ध को ग्रहण करते हैं। हे द्विजगण! जो व्यक्ति किसी भी जलाशय में "स्वामितीर्थ" शब्द का तीन बार उच्चारण करके स्नान करते हैं, वे भी ब्रह्मपद प्राप्त करते हैं। हे विप्रगण! मैंने आप लोगों से धर्मगुप्त का पुण्य वृत्तान्त कह दिया। इसके पश्चात् श्रवणमात्र से ब्रह्महत्याजनित पातक दूर हो जाता है।।५९-६४।।

।।त्रयोदश अध्याय समाप्त।।

चतुर्दशोऽध्यायः

सुमति आख्यान, किरात के ससंर्ग से उनको महापातक प्राप्ति, ब्रह्महत्या मुक्ति उपाय वर्णन

श्रीसूत उवाच

भोभोस्तपोधनाः! सर्वे नैमिषारण्यवासिनः!। स्वामितीर्थस्य माहात्म्यं भूयोऽपि प्रवदाम्यहम्।।१।।
पुरा किरातीसंसर्गात्सुमतिर्ब्राह्मणः सुराम्।
पीतवान्पुष्करिण्यां स स्नात्वा पापाद्विमोचितः।।२।।

सूत जी कहते हैं—हे नैमिषवासी तपोधनगण! मैं पुनः स्वामितीर्थ माहात्म्य कहता हूं। पूर्वकाल में सुमति नामक ब्राह्मण ने किरा तस्त्री के संसर्ग के कारण सुरापान किया। वे स्वामिपुष्करिणी में स्नान करके पापमुक्त हो गये।।१-२।।

ऋषय ऊचुः

सुमतिः कस्य पुत्रोऽसौ कथं स च सुरां पपौ?।
कथं किरात्यासक्तोऽभूत्सूतपोरोणिकोत्तम !।।३।।
सर्वेषां विस्तरादेतद्वद त्वं कृपयाऽधुना।।४।।

ऋषिगण कहते हैं—हे पौराणिकों में श्रेष्ठ! यह सुमति किसका पुत्र था? उसने सुरापान क्यों किया? वह किस कारण से किरात स्त्री के प्रति आकृष्ट हो गया? हे सूत जी! हम पर कृपा करके इन सब का विस्तृत वर्णन करिये।।३-४।।

श्रीसूत उवाच

महाराष्ट्राभिधे देशे ब्राह्मणः कश्चिदास्तिकः। यज्ञदेव इतिख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः॥५॥
दयालुरातिथेयश्च शिवनारायणार्चकः। सुमतिर्नाम पुत्रोऽभूद्यज्ञदेवस्य तस्य वै॥६॥
पितरं स परित्यज्य भार्यामपि पतिव्रताम्। प्रययावुत्कले देशे विटगोष्ठीपरायणः॥७॥
काचित्किराती तद्देशे वसन्ती युवमोहिनी। यूनां समस्त द्रव्याणि प्रलोभ्य जगृहे चिरम्॥८॥
तस्या गृहं स प्रययौ सुमतिर्ब्राह्मणाधमः। सुमतिं सा चजग्राहकिरातीनिर्धनंद्विजम्॥९॥
तया युक्तोऽथ सुमतिस्तत्संयोगैकतत्परः। इतस्ततश्चोरयित्वाबहुद्रव्याणिसन्ततम्॥१०॥
दत्त्वा तया चिरं रेमे तद्गृहे बुभुजे च सः। एकेन चषकेणाऽसौ तयासह सुरां पपौ॥११॥

सूतजी कहते हैं—महाराष्ट्र देश में यज्ञदेव नाम से प्रख्यात आस्तिक वेद-वेदाङ्गविद्, दयालु, अतिथि तथा शिव एवं नारायण पूजक एक ब्राह्मण रहता था। सुमति इस ब्राह्मण का पुत्र था। लम्पटों के संसर्ग में रहने वाले सुमति ने पिता एवं पतिव्रता पत्नी का त्याग कर दिया तथा उत्कल देश चला गया। यहां युवाओं का मन हरने वाली एक किरातिनी रहती थी। यह किराती अत्यल्प काल में ही युवाओं को नाना प्रकार से मोहित करके उनका धन-रत्न ले लेती थी। ब्राह्मण सुमति उसके ही घर चला गया। उस किरात रमणी ने भी उस निर्द्धन ब्राह्मण का वरण कर लिया। सुमति सदा उस रमणी में अनुरक्त रहता था। कभी उसे नहीं छेड़ता था। सुमति नित्य चारों ओर से प्रचुर धन-रत्न हरण करके किरातिनी को देता तथा उसके साथ रति विहार करता था। यहां तक कि उसी के यहां भोजन करता तथा उसी के ही साथ सुरापान भी करता रहता था।।५-११।।

एवं स बहुकालं वै रममाणस्तया सह। पितरौ निजपत्नीं च नाऽस्मरद्विषयातुरः॥१२॥
स कदाचित्किरातैस्तु चौर्यं कर्तुं ययौ सह।
विप्रस्य कस्यचिद्गेहे सोऽपि कैरातवेषभृत्॥१३॥
ययौ चोरयितुं द्रव्यंसाहसीखड्गहस्तवान्। तद्गृहस्वामिनंविप्रंहत्वाखड्गेनसाहसात्॥१४॥
समादाय बहु द्रव्यं किरातीभवनं ययौ। तं यान्तमनुयाति स्म ब्रह्महत्या भयङ्करी॥१५॥
नीलवस्त्रधरा भीमा भृशं रक्तशिरोरुहा। गर्जन्ती साट्टहासं सा कम्पयन्तीचरोदसि॥१६॥
अनुद्रुतस्तया सोऽयं बभ्राम जगतीतले। एवं भ्रमन्भुवं सर्वांकदाचित्सुमतिःस्वयम्॥१७॥
स्वग्रामं प्रययौ भीत्या विप्रबन्धुर्दुरात्मवान्। अनुद्रुतस्तयाभीतःप्रययौस्वगृहंप्रति॥१८॥
ब्रह्महत्याऽप्यनुद्रुत्य तेन साकं गृहं ययौ। पितरं रक्षरक्षेति सुमतिः शरणं ययौ॥१९॥
माभैषीरिति तं प्रोच्य पिता रक्षितमुद्यतः। तदानीं ब्रह्महत्येयं तत्तातं प्रत्यभाषत॥२०॥

रूप-रसादि विषयों से प्रमत्त सुमति दीर्घकाल पर्यन्त उससे रमणरत रहकर पिता-माता तथा अपनी पत्नी का भी स्मरण नहीं करता था। तदनन्तर सुमति ने एक दिन किरात का वेष धारण किया और एक ब्राह्मण के घर चोरी करने गया। उस दुःसाहसी सुमति ने हाथ में तलवार लेकर ब्राह्मणगृह में प्रवेश किया तथा उसके द्रव्य का हरण किया। उसने गृहस्वामी ब्राह्मण का वध कर दिया तथा प्रचुर द्रव्य लेकर किरातिनी के घर के पास

पहुंचा। जब सुमति लौट रहा था तभी नीलवस्त्रधारिणी, लोहितवर्ण के केशोंवाली, भीममुखी भयंकर ब्रह्महत्या पृथिवी को कंपाती हुई, अट्टहास करती और गरजती सुमति के पीछे-पीछे आई। इसलिये सुमति किरातिनी के गृह में प्रवेश नहीं कर सका। वह ब्रह्महत्या द्वारा पीछा किये जाने के कारण पृथिवी का चक्रमण करता रहा। इस प्रकार से वह दुरात्मा भागते-भागते अपने ग्राम आ पहुंचा। तब भी ब्रह्महत्या ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। जैसे ही भयभीत सुमति ने अपने पैतृक आवास में प्रवेश किया, ब्रह्महत्या भी उसके पीछे-पीछे वहां पहुंच गयी। तब सुमति "मेरी रक्षा करो" कहते हुये अपने पिता की शरण में आ पहुंचा। पिता ने कहा "भय नहीं करो" इस प्रकार से सुमति से कहकर वे सुमति के रक्षार्थ उद्यत हो गये। तब ब्रह्महत्या ने सुमति के पिता से कहा।।१२-२०।।

ब्रह्महत्योवाच

मैनं त्वं प्रतिगृह्णीष्व यज्ञदेवद्विजोत्तम। असौसुरापीस्तेयीच ब्रह्महा चाऽतिपातकी॥२१॥
मातृद्रोही पितृद्रोही भार्यात्यागीच पातकी। किरातीसङ्गदुष्टश्चह्येनंमुञ्चदुरात्मकम्॥२२॥
गृह्णासि चेदिमं विप्र! महापातकिनं सुतम्।
त्वद्भार्यामस्य भार्यां च त्वां च पुत्रमिमं द्विज !॥२३॥
भक्षयिष्यामि वंशं च तस्मान्मुञ्च सुतं त्विमम्।
इमं त्यजसि चेत्पुत्रं युष्मान्मुञ्चामि साम्प्रतम्॥२४॥
नैकस्याऽर्थे कुलंहन्तुमर्हसि त्वं महामते !।
इत्युक्तः स तया तत्रयज्ञदेवोऽब्रवीच्चताम्॥२५॥

ब्रह्महत्या कहती है—"हे द्विजश्रेष्ठ यज्ञदेव! आप इसे स्वीकार न करें। यह पापी सुमति मद्य पीने वाला, चोर, ब्रह्महत्यारा, मातृ-पितृद्रोही, पत्नीत्यागी तथा किराती संसर्ग से अपवित्र है। अतः इस दुरात्मा अतिपापी सुमति का त्याग करें। हे विप्र! यदि आप इसे शरण देते हैं, तब मैं आपकी पत्नी को, आपको, आपकी पुत्रवधु तथा सुमति को, सब को खा जाऊंगी। हे द्विज! आप इसे त्याग दीजिये। यदि आप इसे त्याग देते हैं, तब मैं भी आप सब को छोड़ दूंगा। हे महामति! आप एक के लिये समस्त कुल का नाश न करें।" ब्रह्महत्या का कथन सुनकर यज्ञदेव उससे कहने लगे।।२१-२५।।

यज्ञदेव उवाच

बाधते मां सुतस्नेहः कथमेनं परित्यजे। ब्रह्महत्या तदाकर्ण्यद्विजोक्तं तमभाषत॥२६॥

यज्ञदेव कहते हैं—"मुझे तो पुत्रस्नेह पीड़ित कर रहा है। मैं इसका त्याग कैसे करूं?" यह सुनकर ब्रह्महत्या कहने लगी।।२६।।

ब्रह्महत्योवाच

अयंहिपतितोभूत्वावर्णाश्रमबहिष्कृतः। पुत्रेऽस्मिन्माकुरुस्नेहंनिन्दितंचास्यदर्शनम्॥२७॥
इत्युक्त्वा ब्रह्महत्या सा यज्ञदेवस्य पश्यतः। तलेन प्रजहाराऽस्यपुत्रं सुमतिनामकम्॥२८॥

रुरोद तातततातेति पितरं प्रब्रुवन्मुहुः॥२९॥
रुरुदुर्जनको माता भार्याऽपि सुमतेस्तदा।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र दुर्वासाः शङ्करांशकः॥३०॥

ब्रह्महत्या ने कहा—"यह सुमति पतित होकर वर्णाश्रम बहिःष्कृत है। इसे देखना भी निन्दनीय है। इसलिए इस पुत्र के प्रति स्नेह न करें। "यह कहकर उसने यज्ञदत्त के सामने ही तल (थप्पड़) द्वारा सुमति पर प्रहार किया। तब सुमति "हा तात! हा तात!" कहता रुदन करने लगा। उसे रुदनरत देख कर उसके माता-पिता तथा पत्नी भी रुदन करने लगे। सुमति ने रोते हुये यह भी देखा। तभी धार्मिक योगी शंकर के अंश मुनिप्रवर दुर्वासा वहां पहुंच गये।।२७-३०।।

दृष्ट्या समाययौ योगी धार्मिककोमुनिसत्तमः।
यज्ञदेवोऽथ तं दृष्ट्वामुनिंरुद्रावतारकम्॥३१॥
स्तुत्वा प्रणम्य शरणं ययाचे पुत्रकारणात्।
दुर्वासस्त्वं महायोगिन्साक्षाद्वै शङ्करांशकः॥३२॥
त्वद्दर्शनमपुण्यानांभविता न कदाचन। ब्रह्महा च सुरापी च स्तेयीचाऽभूत्सुतो मम॥३३॥
एनं प्रहर्तुमायाता ब्रह्महत्याऽपि वर्तते। भूयाद्यथा मे पुत्रोऽयं महापातकमोचितः॥३४॥
घोरा च ब्रह्महत्येयं यथाशीघ्रं लयं व्रजेत्।
तमुपायं वदस्वाऽद्य मम पुत्रे दयां कुरु॥३५॥
अयमेव हि पुत्रो मे नान्योऽस्ति तनयो मुने !।
अस्मिन्मृते तु वंशो मे समुच्छिद्येत मूलतः॥३६॥
ततः पितृभ्यः पिण्डानां दाताऽपि न भवेद् ध्रुवम्।
ततः कृपां कुरुष्व त्वमस्मासु भगवन्मुने !॥३७॥
इत्युक्तः स तदोवाचदुर्वासाःशङ्करांशकः। ध्यात्वाऽथसुचिरंकालंयज्ञदेवंद्विजोत्तमम्॥३८॥

उन धार्मिक मुनिसत्तम योगी को सबने वहां आया देखा। यज्ञदेव रुद्रावतार ऋषि दुर्वासा को देखकर स्तुति एवं प्रणाम द्वारा उनके शरणागत हो गये। यज्ञदेव ने पुत्र रक्षा हेतु प्रार्थना करते हुये कहा—"हे दुर्वासा! आप महायोगी हैं। आप साक्षात् शंकर के अंश हैं। पुण्यरहित व्यक्ति आपका दर्शन कभी भी नहीं कर सकता। मेरा पुत्र सुमति ब्रह्मघ्न, मद्यप तथा चोर है। इसका वध करने ब्रह्महत्या आई है। वह अभी भी यहीं है। हे मुनिवर! जिस उपाय से मेरा पुत्र महापातकरहित हो सके तथा वह भयंकरी ब्रह्महत्या भी शीघ्र लयीभूत हो जाये, वह उपाय मेरे पुत्र के प्रति कृपा करके बतायें। हे मुनिवर! इस एक पुत्र के अतिरिक्त मुझे अन्य पुत्र नहीं है। इसकी मृत्यु होने पर मेरा वंश समूल उच्छिन्न हो जायेगा। इस प्रकार इसके अनन्तर मेरे पितरों का पिण्डदान भी कोई नहीं कर सकेगा। हे भगवान्! इसलिये मुझ पर कृपा करिये।" विप्र यज्ञदेव द्वारा प्रार्थना करने पर शंकरांश दुर्वासा ने कुछ क्षण ध्यानस्थ होकर यज्ञदेव से कहा।।३१-३८।।

दुर्वासा उवाच

यज्ञदेवकृतं पापमतिक्रूरं सुतेन ते। नाऽस्य पापस्य शान्तिःस्यात्प्रायश्चित्तायुतैरपि।।३९।।
तथाऽपितेसुतस्याऽहंतस्यपापस्यशान्तये। प्रायश्चित्तंवदिष्यामिश्रृणुनान्यमनाद्विज।।४०।।
वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने। स्वामिपुष्करिणी चेति वर्तते मङ्गलप्रदा।।४१।।
स्नातिचेत्तव पुत्रोऽयं पातकान्मुच्यते क्षणात्। एवंश्रुत्वामुनेर्वाक्यंयज्ञदेवोमहामतिः।।४२।।
पुत्रमादाय सुमतिं स्वामिपुष्करिणीं गतः। स्नापयामाससुमतिंहत्ययापीडितंसुतम्।।४३।।
आकाशवाणी तं विप्रमुवाच मधुरस्वरा। यज्ञदेव ! महाभाग ! स्नानेनाऽनेन सुव्रत !।।४४।।
पूतोऽभवत्तव सुतः संशयं मा कृथा द्विज !। एवम्प्रभावं तत्तीर्थं पापवृक्षकुठारकम्।।४५।।
एवम्वः कथितं विप्रा इतिहासं पुरातनम्। श्रृण्वतां पठतां चाऽपिवाजपेयफलंलभेत्।।४६।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये स्वामिपुष्करिणीतीर्थमहिमानुवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः।।१४।।

दुर्वासा कहते हैं—"हे यज्ञदेव! तुम्हारे पुत्र ने तो अतीव दुष्कर पाप किया है। दसों हजार प्रायश्चित्त से भी इसके पापों का शमन नहीं हो सकता, तथापि तुम्हारे पुत्र की पापशान्ति हेतु मैं एक प्रायश्चित्त का वर्णन करता हूं। तुम एकाग्रता पूर्वक उसे सुनो। महापुण्यप्रद तथा सर्वपातकनाशक वेंकटाचल में मंगलप्रदा स्वामिपुष्करिणी विद्यमान है। यदि तुम्हारा पुत्र वहां जाकर स्नान कर सके तब वह तत्काल पापरहित हो जायेगा।" महामति यज्ञदेव ने दुर्वासा का यह कथन सुना तथा वे पुत्र सुमति को लकेर स्वामिपुष्करिणी गये। उन्होंने ब्रह्महत्या पीड़ित पुत्र को स्वामितीर्थ में स्नान कराया। तभी एक मधुरस्वरा आकाशवाणी ने यज्ञदेव को सम्बोधित करके कहा—"हे महाभाग सुव्रत यज्ञेश्वर! स्वामिपुष्करिणी में स्नान द्वारा तुम्हारा पुत्र पवित्र हो गया। हे द्विज! तुम इसमें सन्देह मत करो।"

सूत जी कहते हैं—पाप वृक्ष के लिये कुठाररूप स्वामिपुष्करिणी तीर्थ की यही महिमा है। हे विप्रगण! मैंने आपलोगों से पुरातन इतिहास कह दिया। जो व्यक्ति इस पुण्यमय इतिहास को सुनता है अथवा पाठ करता है, उसे बाजपेय यज्ञफल की प्राप्ति निश्चित है।।३९-४६।।

।।चतुर्दश अध्याय समाप्त।।

पञ्चदशोऽध्यायः

रामकृष्ण तीर्थ माहात्म्य

सूत उवाच

वेङ्कटाख्ये महापुण्ये सर्वपातकनाशने। कृष्णतीर्थस्यमाहात्म्यं शृणुध्वं सुसमाहिताः।।१।।
यत्र मज्जनमात्रेण कृतघ्नोऽपिविमुच्यते। पितृन्मातृर्गुरूंश्चाऽवमन्यन्तेमोहमोहिताः।।२।।
ये चाऽप्यन्ये दुरात्मानः कृतघ्ना निरपत्रपाः।
ते सर्वे कृष्णतीर्थेऽस्मिञ्छुद्ध्यन्ति स्नानमात्रतः।।३।।
कृष्णनामा मुनिः पूर्वं वेङ्कटाह्वयभूधरे। अवर्तत तपः कुर्वन्विष्णुंध्यायन्समाहितः।।४।।
स तत्र कल्पयामासस्नानार्थंतीर्थमुत्तमम्। तत्रस्नात्वासकृन्मर्त्यःकृतघ्नोऽपिविमुच्यते।।५।।
अत्रेतिहासं वक्ष्यामि पुराणं पापनाशनम्। यस्यश्रवणमात्रेण नरोमुक्तिमवाप्नुयात्।।६।।
पुरा बभूव विप्रेन्द्रो रामकृष्णो महामुनिः। सत्यवाञ्छीलवान्वाग्मी सर्वभूतदयान्वितः।।७।।
शत्रुमित्रसमो दान्तस्तपस्वीविजितेन्द्रियः। परे ब्रह्मणिनिष्णातोब्रह्मतत्त्वैकसंश्रयः।।८।।
एवम्प्रभावः स मुनिस्तपस्तेपे सुदारुणम्। स वै निश्चलसर्वाङ्गस्तिष्ठन्सर्वत्र भूतले।।९।।

सूत जी कहते हैं— जहां स्नानमात्र से कृतघ्न भी पापमुक्त हो जाता है, अब मैं उस महापुण्यमय, सर्वपापनाशक वेंकटाचल के कृष्णतीर्थ का माहात्म्य कहता हूं। आप सब समाहित चित्त से सुनें। जो व्यक्ति मोहग्रस्त होकर पिता-माता-गुरु का अपमान करता है, जो निर्लज्ज, कृतघ्न तथा दुरात्मा है, वह कृष्णतीर्थ में स्नान करके शुद्ध हो जाता है। पूर्वकाल में कृष्ण नामक एक मुनि ने वेंकटाचल पर रह कर समाहित चित्त से विष्णु ध्यान के साथ तप किया था। उन्होंने ही स्नानार्थ इस तीर्थ को प्रतिष्ठित किया था। कृतघ्न व्यक्ति भी यहां मात्र एक बार स्नान करने से ही पापमुक्त हो जाता है। इस पापनाशन कृष्णतीर्थ का पुरातन इतिहास कहता हूं। पूर्व काल में सत्यवादी, चरित्रवान्, वाग्मी, समस्त प्राणीगण के प्रति दयावान्, शत्रु-मित्र के प्रति समदर्शी, दान्त, तपशील तथा जितेन्द्रिय महामुनि विप्रेन्द्र राम-कृष्ण ने परब्रह्म के प्रति निष्ठावान् होकर तथा एकमात्र ब्रह्मतत्व का आश्रय लेकर यहां दारुण तप किया था। उन्होंने तप के लिये धरती पर बैठकर स्वयं को पूर्णतः निश्चल कर लिया था।।१-९।।

परमाण्वन्तरं वाऽपि न स्वस्थानाच्चचाल सः।
स्थित्वा तत्र तपस्यन्तमनेकशतवत्सरान्।।१०।।
तं चाऽऽक्रमत वल्मीकं छादिताङ्गं चकार वै।
वल्मीकाक्रान्तदेहोऽपि रामकृष्णो महामुनिः।।११।।
अकरोत्तप एवाऽसौ वल्मीकंन त्ववुध्यत। तस्मिंश्चतप्यतितपो वासवो मुनिपुङ्गवे।।१२।।
विसृज्य मेघजालानि वर्षयामास वेगवान्। एवं दिनानि सप्ताऽयं ववर्ष चनिरन्तरम्।।१३।।

धारावर्षेण महता वृष्यमाणोऽपि वै मुनिः। तद्वर्षं प्रतिजग्राह निमीलितविलोचनः॥१४॥

तप करते हुये वे एक परमाणु इतना भी अपने स्थान से हटे नहीं थे। इस प्रकार से एक ही स्थान पर स्थित होकर तप करते हुये उनको कई सौ वर्ष व्यतीत हो गये। दीमकों की बांबी से उनका पूरा शरीर आच्छादित हो गया। वे इतने तन्मय थे कि उनका शरीर दीमक की बांबी से आच्छादित है, यह भी नहीं जान सके। वे एकमात्र तपःश्चरण में रत थे।

उनकी तीव्र तपस्या देखकर इन्द्र भयग्रस्त हो गये। उन्होंने मेघमाला का सृजन करके उन मुनिपुंगव रामकृष्ण के शरीर पर सवेग सात दिन एक ही प्रकार से जलवर्षण किया, तथापि इस महान् धारापूर्ण जलवर्षा से अभिषिक्त होकर भी उन महामुनि रामकृष्ण का मुख अम्लन था। उस वारिवर्षण में भी उनके ध्यानस्थ नेत्र बंद ही थे।।१०-१४।।

महता स्तनितेनाऽऽशु तदा बधिरयञ्छ्रुतीः। वल्मीकस्योपरिष्टाद्वै निपपात महाशनिः॥१५॥
तस्मिन्वर्षति पर्जन्ये शीतवातादिदुःसहे॥१६॥
वल्मीकशिखरं ध्वस्तं बभूवाऽशनिताडितम्। तदाप्रादुरभूद्देवः शङ्खचक्रगदाधरः॥१७॥
विनतानन्दनारूढो वनमालाविभषितः। रामकृष्णस्यतपसा तोषितो वाक्यमब्रवीत्॥१८॥

तब इस वल्मीक पर इन्द्र ने एक महान् अशनि (विद्युताग्नि) को छोड़ा। इसके गिरने के शब्द से जगत् के लोग वधिर हो गये। क्रमशः इससे आहत होकर मुनि के देह पर बनी दीमक की बांबी का शिखर ध्वस्त हो गया तथा मुनि के मस्तक पर भी वल्मीकि टूट जाने के कारण उस पर शीत-वातादि से दुःसह जलवर्षण होने लगा। तभी मुनि की तपस्या से सन्तुष्ट होकर शंख-चक्र-गदाधारी, वनमाला से भूषित विष्णुदेव विनतानंदन गरुड़ पर बैठकर वहां आविर्भूत हो गये। उन्होंने मुनि से कहा।।१५-१८।।

तपोनिधे रामकृष्ण वेदशास्त्रार्थपारग !। मदाविर्भावदिवसे यःस्नाति मनुजोत्तमः॥१९॥
तस्यपुण्यफलं वक्तुं शेषेणाऽपि नशक्यते। मकरस्थेरवौविप्रपौर्णमास्यांमहातिथौ॥२०॥
पुष्यनक्षत्रयुक्तायां स्नानकालोविधीयते। तद्दिने स्नातियोमर्त्यः कृष्णतीर्थेमहामतिः॥२१॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वान्कामाँल्लभेत सः। मदाविर्भावदिवसे कृष्णतीर्थजले शुभे॥२२॥
स्नातुं तत्र समायान्तिस्वपापपरिशुद्धये। देवामनुष्याः सर्वेच दिक्पालाश्चमहौजसः॥२३॥
एते सर्वे महात्मानः कोटिसर्यसमप्रभाः।
ते सर्वे कृष्णतीर्थेऽस्मिन्स्नानात्पूता भवन्ति हि॥२४॥
त्वन्नाम्नेदंमहातीर्थं लोकेप्रख्यातिमेष्यति। इत्युक्त्वा श्रीनिवासश्चतत्रैवाऽन्तरधीयत॥२५॥

भगवान् कहते हैं—हे तपोनिधान, वेदशास्त्रपारंगत रामकृष्ण! मेरे आविर्भाव की इस तिथि के दिन जो मनुष्य श्रेष्ठ पुण्यतीर्थ में स्नान करेगा, शेषनाग भी उसका पुण्यफल वर्णन कर सकने में समर्थ नहीं हैं। हे विप्र! जब दिवाकर मकर राशीस्थ हों तथा पुष्यायुक्त पौर्णमासी हो, वह स्नान का विहित काल है। जो महामना मनुष्य अपने पाप की निवृत्ति के लिये मेरे आविर्भाव की तिथि पर कृष्णतीर्थ में स्नान करेगा, वह सभी पापों से मुक्त होकर समस्त कामना फल प्राप्त करेगा। सभी देवता, मनुष्य, कोटिसूर्य के समान प्रभा वाले महात्मा

दिक्पालगण कृष्णतीर्थ में स्नान करके पवित्र होंगे। हे मुनिवर! आपके नामानुरूप इस महातीर्थ की ख्याति "रामकृष्ण तीर्थ" की संज्ञा से होगी। देव श्रीनिवास यह कहकर वहां से अन्तर्हित् हो गये।।१९-२५।।

एवं प्रभावं तत्तीर्थं महापापविशोधनम्। बुद्धिशुद्धिप्रदं पुसां सर्वैश्वर्यप्रदायकम्।।२६।।

एवं वः कथितमम्वप्राः! कृष्णतीर्थस्य वैभवम्।
शृण्वतां पठताञ्चैव विष्णुलोकप्रदायकम्।।२७।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये रामकृष्णतीर्थमहिमानुवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः।।१५।।

हे द्विजगण! इस प्रकार की विभूति से युक्त रामकृष्ण तीर्थ मानव को शुद्धि-बुद्धि-तथा सभी ऐश्वर्य प्रदान करता है। आप सबसे कृष्णतीर्थ का ऐश्वर्य मैंने कहा। जो इसका पाठ करते हैं किंवा श्रवण करते हैं, उनको विष्णुलोक प्राप्त होता है।।२६-२७।।

।।पञ्चदश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षोडशोऽध्यायः

हेमांग का पूर्वजन्म स्मरण, जलदान न करने पर गोधिका योनि प्राप्ति

श्रीसूत उवाच

वेङ्कटाख्ये महापुण्ये तृषार्तानां विशेषतः। जलदानमकुर्वाणस्तिर्यग्योनिमवाप्नुयात्।।१।।
तस्माद्वेङ्कटशैलेन्द्रे यथाशक्त्यनुसारतः। जलदानं हि कर्तव्यं सर्वेषां जीवनम्महत्।।२।।
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। विप्रस्य गृहगोधायाः सम्वादम्परमाद्भुतम्।।३।।
पुराचेक्ष्वाकुवंशेऽमूद्धेमाङ्गइतिभूमिपः। ब्रह्मण्यो ब्रह्मभूयिष्ठोजितामित्रो जितेन्द्रियः।।४।।
यावन्तोभूमिकणिकायावन्तस्तोयबिन्दवः। यावन्त्युडूनिगगनेतावतीर्गाददात्यसौ।।५।।

सूत जी कहते हैं—जो व्यक्ति महापुण्यमय वेंकटाचल में जाकर प्यासे व्यक्ति को विशेषतया जलदान नहीं करता, उसे तिर्यक्योनि प्राप्त होती है। जल ही प्राणियों का श्रेष्ठ जीवन रूप है। अतएव शक्तिपूर्वक शैलराज वेंकट पर जलदान करना चाहिये। इस विषय में विप्र तथा गृह गोधिका (छिपकली) का पुरातन इतिहास उदाहरण रूपेण कहता हूं। पूर्वकाल में इक्ष्वाकुकुल में उत्पन्न हेमाङ्ग नामक राजा थे। वे ब्रह्मण्यसम्पन्न ब्रह्मभूत शत्रुजित् तथा जितेन्द्रिय थे। उन्होंने पृथिवी पर जितने जलविन्दु हैं तथा आकाश में जितने नक्षत्र हैं, उतनी संख्या में गोदान किया था।।१-५।।

येनेष्टयज्ञदर्भैश्च भूमिर्बर्हिष्मती स्मृता। गोभूतिलहिरण्याद्यैस्तोषिता बहवो द्विजाः॥६॥
तेनाऽदत्तानि दानानि न विद्यन्त इति श्रुतम्।
तेनाऽदत्तञ्जलञ्चैकं सुखलभ्यधिया द्विजाः॥७॥
बोधितो ब्रह्मपुत्रेण वसिष्ठेनमहात्मना। अमूल्यं सर्वतोलभ्यं तद्दातुःकिम्फलंलभेत्॥८॥
इति दुर्धीर्हेतुवादैर्नजलंदत्तवान्विभुः। अलभ्यदानेपुण्यं स्यादित्यवादीत्सयुक्तिकम्॥९॥

उन्होंने जिस भूमि पर कुश (बर्हि) द्वारा यज्ञ किया था, वह समस्त भूमि बर्हिष्मती नाम से प्रसिद्ध हो गयी। राजा हेमांग ने गौ, भूमि, तिल तथा स्वर्ण दान से अनेक ब्राह्मणों को तृप्त किया था। ऐसा कोई ब्राह्मण ही नहीं बचा था जिसने राजा हेमांग से दान न लिया हो। एक बार ब्रह्मनन्दन वसिष्ठ ने उनसे कहा था—"सभी जगह प्राप्त जल दान देने से दाता को क्या मिलेगा?" राजा हेमांग इस हेतुवाद से (तर्क-वितर्क) मलिन बुद्धि हो गये। उन्होंने तब जलदान नहीं किया। वसिष्ठ ने और भी युक्ति के साथ कहा—जिसे सदा दान नहीं मिलता, ऐसे व्यक्ति को ही दान देना प्रशस्त है।।६-९।।

स आनर्च द्विजान्व्यङ्गान्दरिद्रान्वृत्तिकर्शितान्।
नाऽऽनर्च श्रोत्रियान्विप्रान्ब्रह्मज्ञानब्रह्मवादिनः॥१०॥
प्रख्यातान्पूजयिष्यन्ति सर्वलोकाः सहार्हणैः।
अनाथानामविद्यानां व्यङ्गानाञ्च कुटुम्बिनाम्॥११॥
दरिद्राणांगतिःका वा तस्मात्तेमद्दयास्पदाः। इतिदुष्टेषुपात्रेषुत्तवान्किमपिस्वकम्॥१२॥
तेन दोषेण महता चातकस्त्वं त्रिजन्मसु। एकजन्मनिगृध्रत्वं श्वत्वम्वा सप्तजन्मसु॥१३॥
प्राप्यपश्चाद्गृहेजातोभूपोऽयंगृहगोधिका। श्रुतकीर्तेस्तुभूपस्यमिथिलाधिपतेर्द्विजाः॥१४॥
गृहद्वारप्रतोल्यां स्म वर्तते कीटकाशनः। अष्टाशीतिषु वर्षेषु स्थितन्तेन दुरात्मना॥१५॥
विदेहाधिपतेर्गेहं कदाचिदृषिसत्तमः। श्रुतदेव इति ख्यातःश्रान्तो मध्याह्न आगमत्॥१६॥
तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय जातहर्षो नराधिपः। मधुपर्कैः सुसम्पूज्य तस्यपादावनेजनीः॥१७॥
अपोमूर्ध्नाऽवहत्क्षिप्रंतदोत्क्षिप्तैश्चबिन्दुभिः। दैवोपदिष्टकालेनप्रोक्षितागृहगोधिका॥१८॥
सद्योजातिस्मृतिरभूत्कृतकर्माऽतिदुःखिता। त्राहित्राहीतिचुक्रोशब्राह्मणंगृहमागतम्॥१९॥

राजा हेमांग ने इससे यह सोचा कि प्रख्यात व्यक्ति की पूजा सभी दान-मान आदि से करते हैं। लेकिन अनाथ, विद्याहीन, विकलांग तथा दरिद्र कुटुम्बियों की क्या गति होगी? राजा इस प्रकार विकलांग, दरिद्र, वृत्तिहीन, दीनदशाग्रस्त, द्विजों की पूजा करने लगे तथापि उन्होंने श्रोत्रिय, ब्रह्मज्ञ, ब्रह्मवादी द्विजों को धनदान बन्द कर दिया। वे इस प्रकार से अयोग्य पात्रों को धनदानरूपी महादोष के कारण तीन जन्म तक चातक, एक जन्म गृध्र, सात जन्म कुत्ते की योनि में जन्म लेकर पुनः छिपकिली की योनि में जन्मे। हे द्विजगण! इस कीटभोजी दुरात्मा गृहगोधिका ने सम्प्रति मिथिलापति श्रुतकीर्त्ति के गृहद्वार की प्रताली में ८८ वर्ष अवस्थान किया। तदनन्तर एक बार विख्यात ऋषिश्रेष्ठ श्रुतदेव थके हारे मध्याह्न में विदेहाधिपति श्रुतकीर्त्ति के घर आये।

नराधिप श्रुतकीर्त्ति ने उनको सहसा आते देखकर उठकर उनका स्वागत किया तथा प्रसन्नचित्त से पाद्य द्वारा उनका चरण धोकर मधुपर्क आदि से उनका पूजन किया। तदनन्तर राजा ने स्तव करके द्विज का चरणजल अपने मस्तक पर छोड़ा तथापि भाग्य से वह चरणजलविन्दु उस छिपकिली पर भी पड़ गया जिससे उसे पूर्वजन्म स्मृति हो गयी। अपने क्लिष्ट कर्म द्वारा प्राप्त ये सभी जन्म उसकी स्मृति में व्यक्त हो उठे। तब उसने गृह में आये ब्राह्मण को देखकर करुणस्वर में त्राहि-त्राहि कहना प्रारंभ कर दिया।।१०-१९।।

तिर्यग्जन्तुरवं श्रुत्वा ब्राह्मणो विस्मितोऽभवत्।
कुतः क्रोशसि गोधे! त्वं दशेयं केन कर्मणा॥२०॥
उपदेवोऽथ देवोवात्वंनृपोऽथद्विजोत्तमः। कस्त्वम्ब्रूहि महाभाग त्वामद्याऽहंसमुद्धरे॥२१॥

वे ब्राह्मण सहसा तिर्यक् योनि के जन्तु का रव सुनकर विस्मित होकर कहने लगे—"हे गोधिका! तुम कहां से मुझे पुकार रही हो? किस कर्म के आचरण से तुम्हारी यह दशा हो गयी? तुम क्या उपदेव, देव, राजा किंवा द्विजोत्तम थे? हे महाभाग! तुम कौन हो? मुझे बताओ। मैं अभी तुम्हारा उद्धार करूंगा।।२०-२१।।

इत्युक्तः स नृपः प्राह श्रुतदेवं महाप्रभुः। अहमिक्ष्वाकुकुलजः शस्त्रविद्याविशारदः॥२२॥
यावन्तो भूमिकणिका यावन्तस्तोयबिन्दवः।
यावन्त्युडूनि गगने तावतीर्गा अदामहम्॥२३॥
सर्वैर्यज्ञैर्मयाचेष्टं पूर्तान्यांचरितानि मे। दानान्यपि च दत्तानि धर्मजातं स्वनुष्ठितम्॥२४॥
तथापिदुर्गतिर्जाता न मे चोर्ध्वगतिर्विभो। त्रिवारञ्चातकत्वं मे गृध्रत्वञ्चैकजन्मनि॥२५॥
सप्तजन्मसु च श्वत्वं प्राप्तम्पूर्वम्मया द्विज !। धरताऽनेन भूपेन चापः पादावनेजनीः॥२६॥
बिन्दवो दूरमुक्षिप्तास्तैःसिक्तोऽहं कथञ्चन। तदा जन्मस्मृतिरभूत्तेन मे हतपाप्मनः॥२७॥

महात्मा श्रुतदेव के यह कहने पर गोधारूपी शरीरधारी जन्तु ने उत्तर दिया—"मैं इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न तथा शस्त्रविद्या विशारद था। भूतल पर जितने जलविन्दु हैं, मैंने उतना गोदान किया था। मैंने सभी प्रकार के यज्ञ तथा पूर्त्तकर्म भी किये थे। हे विभो! मैंने बहुविध दान देकर सभी धर्मकार्यों का अनुष्ठान किया, तथापि मेरी दुर्गति देखें। मैं ऊर्ध्वगति नहीं पा सका। मैंने तीन बार चातक, एक बार गृध्र तथा सात बार कुत्ते की योनि में जन्म लिया। हे द्विज! तदनन्तर राजा श्रुतकीर्त्ति ने आपका चरणोदक जैसे ही अपने मस्तक पर छोड़ा तब इस ऊपर से टपके एक जलविन्दुकण से मेरा शरीर गीला हो गया। उससे मुझे पूर्वजन्म स्मृति हो गयी। मैं विगत पाप हो गया"।।२२-२७।।

गोधाजन्मानि भाव्यानीत्यष्टाविंशति मे द्विज !।
दृश्यन्ते दैवदिष्टानि बिभ्यते जन्मभिर्भृशम्॥२८॥
न कारणम्प्रपिश्यामितन्मेविस्तरतोवद। इत्युक्तः स द्विजः प्राह ज्ञातम्विज्ञानचक्षुषा॥२९॥
शृणु भूप ! प्रवक्ष्यामि तव दुर्गतिकारणम्। न जलन्तु त्वया दत्तं वेङ्कटाह्वयभूधरे॥३०॥
तज्जलं सुलभम्मत्वा न मौल्यमितिनिश्चितः।
नाऽध्वगानां द्विजादीनां धर्मकालेऽप्यजानता॥३१॥

तथा पात्रं समुत्सृज्य ह्यपात्रे प्रतिपादितम्। ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्यनहिभस्मनिहूयते॥३२॥
तुलसीन्तु सभुत्सृज्यबृहती पूज्यते नु किम्। अनाथव्यङ्गपङ्गुत्वंनप्रयोजकतामियात्॥३३॥
पङ्ग्वाद्या येऽप्यनाथा हि दयापात्रं हि केवलम्।
तपोनिष्ठा ज्ञाननिष्ठाः श्रुतिशास्त्रपरायणाः॥३४॥
विष्णुरूपाः सदापूज्यानेतरेतुकदाचन। तत्रापिज्ञानिनोऽत्यर्थम्प्रियाविष्णोःसदैवहि॥३५॥

"अतएव मैं देखता हूं कि अभी मुझे २८ बार गृहगोधिका का जन्म लेना होगा। मुझे दैव से निश्चित अनेक जन्मों द्वारा पाप भोगों को भोगना होगा। मैं इसका कारण नहीं जान पा रहा हूं। आप इस विषय के सम्बन्ध में बतायें।" गोधिका द्वारा यह कहने पर उन द्विज ने अपने ज्ञान चक्षुओं से देखकर कहा—"हे राजन्! मैं तुम्हारी दुर्गति का कारण कह रहा हूं। इसे सुनो! हे भूप! जल सुखपूर्वक प्राप्त हो जाता है। उसका कोई मूल्य नहीं है। यही सोचकर तुमने जब सूर्य तप रहे थे उस ग्रीष्म ऋतु में भी पथपर्यटक द्विजगण के जलरूप जीवन का महत्व न समझकर वेंकटाचल पर जलदान नहीं किया। साथ ही तुमने दानयोग्य पात्रों को दान न देकर अयोग्य लोगों को धन प्रदान किया। देखो प्रज्वलित अग्नि को त्यागकर भस्म में कोई आहुति नहीं देता। क्या कोई तुलसी को त्यागकर बृहती की पत्ती से पूजा करता है? पंगु आदि अनाथ केवल दयापात्र हैं। वे कभी भी दानग्रहण के योग्य नहीं होते। जो तपोनिष्ठ, ज्ञाननिष्ठ, वेदशास्त्र पारंगत हैं, वे विष्णुरूपी तथा सदैव पूज्य हैं। अन्य व्यक्ति पूज्य नहीं होता। हे भूपाल! इन सब में ज्ञानी विष्णु को सदा प्रिय हैं।।२८-३५।।

ज्ञानिनामपिभूपालविष्णुरेवसदाप्रियः। तस्माज्ज्ञानीसदापूज्यःपूज्यात्पूज्यतरःस्मृतः॥३६॥
न जलन्तु त्वया दत्तं साधवो वा न सेविताः।
तेन ते दुर्गतिश्चेयं प्राप्ता चेक्ष्वाकुनन्दन !॥३७॥

ये ज्ञानी सदा विष्णु को चाहते हैं तथा विष्णु ज्ञानीजन को सदा चाहते हैं। अतः ज्ञानी ही पूज्यतम हैं। तुमने न तो जलदान किया न साधुओं की सेवा किया। तुम्हारी दुर्दशा का यही कारण है।।३६-३७।।

वेङ्कटाद्रौ कृतम्पुण्यं तुभ्यं दास्यामिशान्तये। भूतम्भव्यंभवत्तेनकर्मजातम्विजेष्यसि॥३८॥
इत्युक्त्वाऽऽपउपस्पृश्य ददौ पुण्यमनुत्तमम्। यद्दत्तंब्राह्मणेनाऽपिस्नानञ्चैकदिनेकृतम्॥३९॥
तेनध्वस्ताखिलाऽऽगास्तु त्यक्त्वा च गृहगोधिका।
रूपं कामार्चित घोरं सद्योऽदृश्यत पूरुषः॥४०॥
दिव्यम्विमानमारूढो दिव्यस्त्रग्वस्त्रभूषणः। पश्यतामेव साधूनां मैथिलस्य गृहान्तरे॥४१॥
बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा परिक्रम्यप्रणम्यच। अनुज्ञातो ययौराजा स्तूयमानोऽमरैर्दिवम्॥४२॥

"हे इक्ष्वाकुनन्दन, हे नृप! मैंने वेंकटाचल में जो उत्तम कर्माचरण किया है, तुम्हारी पापशान्ति हेतु उसे दान करता हूं। इसके तुम भूतकृत्, भव्यरूप (भविष्य) तथा वर्त्तमान कर्म का क्षय कर सकोगे।" महर्षि श्रुतदेव ने यह कहा तथा जलस्पर्श द्वारा अपने द्वारा कृत अत्युत्तम पुण्यों का दान कर दिया। श्रुतदेव ने जो पुण्यदान किया था, वह उनके वहां पर किये मात्र एक दिन के स्नान का पुण्य था, तथापि राजा इतने ही पुण्य के प्रभाव से पापरहित हो गया। उसने अपने कर्म से प्राप्त घोर गृहगोधारूप का त्याग किया तथा तत्क्षण एक दिव्यपुरुष

रूप में परिणत हो गया। तभी वहां एक विमान भी आ गया। मैथिलपुरस्थित साधुगण के समक्ष राजा ने अंजलिबद्ध होकर सबको प्रणाम किया तथा प्रदक्षिणा करके विमान पर बैठ गया। उसने साधुगण की आज्ञा लेकर तथा देवगण से स्तुत होकर देवलोक प्रस्थान किया।।३८-४२।।

तत्रभुक्त्वामहाभोगान्वर्षायुतमतन्द्रितः। स एवचेक्ष्वाकुकुलेककुत्स्थोऽभून्महारथः॥४३॥
सप्तद्वीपप्रतीपालो ब्रह्मण्यः साधुसम्मतः। देवेन्द्रस्य समो विष्णोरंशएवम्महाप्रभुः॥४४॥
बोधितस्तु वसिष्ठेन सर्वान्धर्मान्मनोहरान्। अनुष्ठायाऽखिलान्राजा तेन ध्वस्ताशुभादिकः॥४५॥
दिव्यं ज्ञानं समासाद्य विष्णोः सायुज्यमाप्तवान्।
तस्माद्वेङ्कटशैलेन्द्रः पुण्यः पापविनाशनः॥४६॥
तस्मिंश्च जलदानन्तु विष्णुलोकप्रदायकम्। एवंवःकथितम्विप्रा जलदानस्यवैभवम्।
वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने॥४७॥

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचल-माहात्म्ये जलदानवैभववर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः।।१६।।

उस राजा ने १०००० वर्ष पर्यन्त स्वर्ग में उत्तम भोगों का उपभोग किया तथा ईक्ष्वाकु कुल में ही महाबली प्रसिद्ध महारथी ककुत्स्थ के नाम से जन्म लिया। वह सातो द्वीपों का प्रतिपालक ब्रह्मण्य सम्पन्न साधुसम्मत, इन्द्र के समान पराक्रमी, प्रभाशाली महाप्रभु ककुत्स्थ विष्णु का अंश कहलाया। उसने वसिष्ठ से ज्ञान लाभ किया तथा मनोहर धर्मों का अनुष्ठान करके तथा अशुभों का नाश किया। उसने दिव्यज्ञान सम्पन्न होकर विष्णु सायुज्य प्राप्त किया। सूत जी कहते हैं—हे द्विजगण! वेंकटाचल पुण्यप्रद तथा पापनाशक है। यहां जलदान करना विष्णुलोक प्रदायक है। मैंने आपलोगों से सर्वपातकनाशक महापुण्यप्रद वेंकट पर्वत के जलदान माहात्म्य का वर्णन किया।।४३-४७।।

।।षोडश अध्याय समाप्त।।

सप्तदशोऽध्यायः

वेंकटाचल के क्षेत्र आदि का वर्णन

श्रीसूत उवाच

वेङ्कटाद्रेस्तुमाहात्म्यंभूयोऽपिप्रवदाम्यहम्। युष्माकं सावधानेनश्रृणुध्वंसुसमाहिताः॥१॥
पृथिव्यांयानितीर्थानिब्रह्माण्डाऽन्तर्गतानि च। तानिसर्वाणिवर्तन्ते वेङ्कटाह्वयभूधरे॥२॥

तस्मिन्नगोत्तमे पुण्ये वसन्तं पुरुषोत्तमम्। शङ्खचक्रधरन्देवं पीताम्बरधरं शुभम्॥३॥
कौस्तुभालङ्कृतोरस्कं भक्तानामभयप्रदम्। देवदेवं विशालाक्षं वेदवेद्यं सनातनम्॥४॥
अङ्गकोशलकर्णाटकाशीगुर्जरदेशगाः। चोलकेरलपाण्ड्यादिसर्वदेशसमुद्भवाः॥५॥
सकुटुम्बाश्च सेवार्थमायान्ति प्रतिवत्सरम्। देवाश्चऋषयःसिद्धाःयोगिनःसनकादयः॥६॥
ये भाद्रपदमासे तु वेङ्कटेशमहोत्सवे। सेवां कुर्वन्ति ते सर्वे निष्पापा उत्तमोत्तमाः॥७॥
तु तत्र श्रीवेङ्कटेशस्यब्रह्मालोकपितामहः। चकारकन्यामासे तु ध्वजारोपमहोत्सवम्॥८॥
प्रतिवर्षञ्च तत्सेवानिमित्तं सर्वमानवाः। सर्वे देवाश्चगन्धर्वाःसिद्धासाध्यामहौजसः॥९॥
ब्रह्मोत्सवे भगवतः समायान्ति द्विजोत्तमाः। विद्यानांवेदविद्यैवमन्त्राणांप्रणवोयथा॥१०॥

सूत जी कहते हैं—मैं आपलोगों से पुनः वेंकटपर्वत का माहात्म्य कहता हूं। समाहितचित्त से सुनें। ब्रह्माण्ड में पृथिवी पर जितने तीर्थ हैं, वेंकटाचल उन सब में विराजमान है। पुण्य पर्वतराज वेंकटाचल में पीताम्बरधारी तथा शंखचक्रधर शुभ पुरुषोत्तम का निवास है। भक्तगण को अभयदान प्रदाता देव विष्णु का वक्षस्थल कौस्तुभमणि से अलंकृत है। उनके नेत्रद्वय विशाल हैं। अंग-कोशल-कर्णाट-काशी-गुर्जर प्रभृति देशवासी तथा कुटुम्ब सहित चोल-केरल-पाण्ड्य देशोत्पन्न लोग प्रतिवर्ष वेदवेद्य सनातन देवदेव विष्णु की सेवा हेतु वेंकटाचल आते हैं। देव-ऋषि-सिद्ध-सनकादि योगी तथा अन्य निष्पाप अत्युत्तम लोग वेंकटाचल में भाद्रपद मास के महोत्सव में आकर देवदेव की सेवा करते हैं। लोक पितामह ब्रह्मा यहां आश्विनमास में जिस ध्वजारोहण महोत्सव को सम्पन्न करते हैं, वह ब्रह्मोत्सव है। हे द्विजोत्तमगण! देवदेव की सेवा हेतु समस्त मनुष्य, देवता, गन्धर्व, महान् ओजस्वी सिद्धगण तथा साध्य प्रतिवर्ष भगवान् के महोत्सव में आते हैं। जैसे विद्या में वेदविद्या, मन्त्रों में प्रणव को प्रधान कहते हैं।।१-१०।।

प्राणवत्प्रियवस्तूनां धेनूनां कामधेनुवत्। तथावेङ्कटशैलेन्द्रः क्षेत्राणामुत्तमोत्तमः॥११॥
शेषवत्सर्वनागानां पक्षिणां गरुडो यथा। देवानां तु यथा विष्णुर्वर्णानां ब्राह्मणो यथा॥१२॥
तथा वेङ्कटशैलेन्द्रः क्षेत्राणामुत्तमोत्तमः। भूरुहाणां सुरतरुर्भार्येव सुहृदां यथा॥१३॥
तीर्थानां तु यथा गङ्गा तेजसां तु रविर्यथा। तथावेङ्कटशैलेन्द्रः क्षेत्राणामुत्तमोत्तमः॥१४॥
आयुधानां यथा वज्रं लोहानां काञ्चनं यथा।
वैष्णवानां यथा रुद्रो रत्नानां कौस्तुभो यथा॥१५॥
तथा वेङ्कटशैलेन्द्रः क्षेत्राणामुत्तमोत्तमः। नाऽनेनसदृशो लोके विष्णुप्रीतिविवर्धनः॥१६॥

जैसे निखिल प्रियवस्तुओं में प्राण सर्वोपरि है, गौओं में कामधेनु, सर्पों में शेषनाग, पक्षियों में गरुड़, देवताओं में विष्णु, वर्णों में ब्राह्मण, वृक्षों में कल्पवृक्ष, सुहृदों में पत्नी, तीर्थों में गंगा, तेजस्वियों में सूर्य, आयुधों में वज्र, धातुओं में स्वर्ण, वैष्णवों में रुद्रदेव, रत्नों में कौस्तुभ श्रेष्ठ है। उसी प्रकार तीर्थक्षेत्रों में यह अत्युत्तम वेंकटाचल श्रेष्ठ है। त्रिलोक में वेंकटाचलवत् विष्णुप्रेमवर्द्धक कोई स्थान है ही नहीं।।११-१६।।

न माधवसमो मासो न कृतेन समं युगम्। न च वेदसमं शास्त्रंन तीर्थगङ्गया समम्॥१७॥

न जलेन समं दानं न सुखं भार्यया समम्। न कृषेस्तु समं वित्तं न लाभो जीवितात्परः॥१८॥
न तपोऽनशनादन्यन्न दानात्परमं सुखम्। न धर्मस्तुदयातुल्योन ज्योतिश्चक्षुषासमम्॥१९॥
न तृप्तिरशनातुल्या न वाणिज्यं कृषेः समम्। न धर्मेण समं मित्रं न सत्येनसमंयशः॥२०॥
यथा तथा भगवतः स्थानेन सदृशं न हि॥२१॥

जैसे वैशाख के समान मास नहीं है, सत्य जैसा युग नहीं है, वेद ऐसा शास्त्र नहीं है, गंगा के समान तीर्थ नहीं है, जलदान के समान दान नहीं है। पत्नी संगम ऐसा सुख नहीं है, कृषि के समान वित्त नहीं है, जीवन लाभ ऐसा कोई लाभ नहीं है। अनाहार ऐसा तप नहीं है, दान के समान सुख नहीं है, दयातुल्य धर्म नहीं है, नेत्र के समान ज्योति नहीं है, कृषि के समान वाणिज्य नहीं है, अशना के समान तृप्ति नहीं है, धर्म के समान मित्र नहीं है, सत्य के समान नेत्र नहीं है, वैसे ही भगवान् के अधिष्ठान ऐसा कोई उत्तम स्थान नहीं है।।१७-२१।।

यत्कीर्तनं सकलपापहरं मुनीन्द्रा! यद्वन्दनं सकलसौख्यदमेव लोके।
यात्राऽपि यम्प्रति सुरैरपि पूजनीया तादृङ् महान्भवति वेङ्कटशैलमुख्यः॥२२॥
तस्याऽनुभावं प्रवदामि भूयः समस्ततीर्थानि वसन्ति यत्र।
एवं समस्तेषु च मुख्यतीर्थं श्रीस्वामिनामाऽस्ति सरोवरं तत्॥२३॥
माहात्म्यमेतस्य मयोच्यते कथं यत्पश्चिमे रोधसि भूवराहः।
आलिङ्ग्य कान्तामतिसौम्यमूर्तिर्विराजते विश्वजनोपकारी॥२४॥
श्रीस्वामिपुष्करिण्याञ्च दक्षिणे वेङ्कटेश्वरः। आलिङ्गितवपुर्लक्ष्म्यावरदोवर्ततेचिरम्॥२५॥
एवं वः कथितं विप्राः क्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम्।
य श्रृणोति सदा भक्त्या विष्णुलोके महीयते॥२६॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीति साहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचल-माहात्म्ये क्षेत्रमहिमानुवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः।।१७।।

हे मुनीन्द्रगण! जिसके नाम कीर्त्तन से महापाप तथा सभी पापों का नाश हो जाता है, जिसकी वन्दना द्वारा समस्त सुखों की प्राप्ति होती है, जो देवताओं के भी पूज्य हैं, वे शैलश्रेष्ठ वेंकट भी श्रेष्ठतम हैं। जहां सभी तीर्थों का वास है तथा जो सर्वतीर्थ श्रेष्ठ स्वामिसरोवर के नाम से प्रसिद्ध है, मैं पुनः वहां के वैभव का वर्णन करने जा रहा हूं। जिसके पश्चिम तट पर विश्व के लोगों का उपकार करने वाले अतिसौम्यमुख भूवराह अपनी प्रिया भूदेवी का आलिंगन करके विराजमान हैं, मैं उस स्वामीतीर्थ की महिमा का कैसे वर्णन करूं? वरद वेंकटेश्वरदेव स्वामिपुष्करिणी के दक्षिण की ओर लक्ष्मी का आलिंगन करते विराजमान हैं। हे विप्रगण! मैंने आपलोगों से इस उत्तम क्षेत्र का माहात्म्य कहा। जो भक्तिपूर्वक इसका सतत् श्रवण करते हैं, उनको विष्णुलोक का लाभ होता है।।२२-२६।।

।।सप्तदश अध्याय समाप्त।।

अष्टादशोऽध्यायः

श्री वेंकटेश्वर वैभव वर्णन

सूत उवाच

अथेदानीं प्रवक्ष्यामि वेङ्कटेश्वरवैभवम्। यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यतेनाऽत्र संशयः॥१॥
श्रीवेङ्कटेश्वरं देवं यः पश्यति सकृन्नरः। स नरो मुक्तिमाप्नोति विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्॥२॥
दशवर्षैस्तु यत्पुण्यं क्रियते तु कृते युगे। त्रेतायामेकवर्षेण तत्पुण्यं साध्यते नृभिः॥३॥
द्वापरे पञ्चमासेन तद्दिनेन कलौ युगे। तत्फलं कोटिगुणितं निमिषेनिमिषेनृणाम्॥४॥
निःसन्देहं भवेदेवं श्रीनिवासविलोकिनाम्। श्रीवेङ्कटेश्वरे देवे तीर्थानिसकलान्यपि॥५॥
विद्यन्ते सर्वदेवाश्च मुनयः पितरस्तथा। एककालं द्विकालं वा त्रिकालं सर्वदैव वा॥६॥

ये स्मरन्ति महादेवं श्रीनिवासं विमुक्तिदम्।
कीर्तयन्त्यथवा विप्रास्ते मुक्ताःपापपञ्जरात्॥७॥

नारायणं परं देवं वेङ्कटेशं प्रयान्ति वै। पूजितं शङ्खराजेन सच्चिदानन्दविग्रहम्॥८॥
तस्य स्मरणमात्रेण यमपीडाऽपि नो भवेत्। श्रीनिवासंमहादेवंयेऽर्चयन्तिसकृन्नराः॥९॥

किं दानैः किं व्रतैस्तेषां किं तपोभिः किमध्वरैः।
वेङ्कटेशं परं देवं यो न चिन्तयति क्षणम्॥१०॥
अज्ञानी स च पापी स्यात्स मूको बधिरस्तथा।
स जडोऽन्धश्च विज्ञेयश्छिद्रं तस्य सदा भवेत्॥११॥

सूत जी कहते हैं—अब जिसका श्रवण करने से सभी पापों से निःसंदिग्ध रूपेण मुक्ति मिलती है, सम्प्रति उस वेंकटाचल विभूति का वर्णन करता हूं। जो मानव वेंकटपति का एक बार भी दर्शन करते हैं, वे सभी पापों से रहित होकर विष्णु सायुज्य लाभ करते हैं। सत्ययुग में दस वर्ष में जो पुण्य संचय होता है, त्रेतायुग में वह पुण्य मानव एक वर्ष में पा लेता है। वह पुण्य द्वापर में पांच मास में तथा कलियुग में मात्र पांच दिनों में मिलता है, तथापि श्रीनिवास का दर्शन करने मात्र से प्रत्येक क्षण में इन पुण्यों से करोड़ों गुण पुण्य संचित होता है, इसमें सन्देह नहीं है। समस्त तीर्थ, देवता, गुनि तथा पितृगण देवदेव वेंकटेश्वर में विराजित है। जो सब विप्र एक-दो किंवा तीन बार अथवा सदा विमुक्ति प्रदाता महादेव श्रीनिवास का स्मरण किंवा कीर्त्तन करते हैं, वे पापपंक से मुक्त होते हैं तथा देहान्त के अनन्तर वेंकटनाथ परमेश्वर नारायणदेव में लीन हो जाते हैं। शंखराजपूजित सच्चिदानन्द वपु विष्णु के स्मरणमात्र से मानव को यमपीड़ा नहीं होती। जो मानव महादेव श्रीनिवास की एक बार भी पूजा करते हैं, उनको दान, व्रत, तप अथवा यज्ञ की क्या आवश्यकता? जो व्यक्ति परमदेव वेंकटपति का क्षणकाल भी स्मरण नहीं करता, वह अज्ञानी, पापी, मूक, वधिर, जड़, अन्ध होता है। उसके समस्त कार्य दोषयुक्त हो जाते हैं।।१-११।।

श्रीनिवासे महादेव सकृद्दृष्टे मुनीश्वराः।
किं काश्यागययाचैव प्रयागेनापिकिंफलम्॥१२॥

दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं मानवा इह भूतले। वेङ्कटेशं परं देवं ये पश्यन्त्यर्चयन्ति वा॥१३॥
जन्म तेषां हि सफलं तेकृतार्थाश्च नेतरे। वेङ्कटेशे परे देवे दृष्टे वा पूजितेऽपि वा॥१४॥
शम्भुना ब्रह्मणाकिम्वाशक्रेणाऽप्यखिलामरैः। वेङ्कटेशेमहादेवे भक्तियुक्ताश्च ये नराः॥१५॥
तेषां प्रणामस्मरणपूजायुक्तास्तु ये नराः। न तेपश्यन्तिदुःखानिनैवयान्तियमालयम्॥१६॥

हे मनीश्वरगण! श्रीनिवास का एक बार मात्र दर्शन करने पर उसे गया-काशी-प्रयाग जाने की क्या आवश्यकता है? इस पृथिवी पर दुर्लभ मानव जन्म पाकर जो मनुष्य परमदेव वेंकटपति का दर्शन तथा अर्चना करता है, उसका मनुष्य जन्म सफल तथा कृतार्थ हो जाता है। परमदेव वेंकटेश का दर्शन करने से शंभु-ब्रह्मा-इन्द्र तथा देवगण के दर्शन का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। जो वेंकटाचलेश्वर के प्रति भक्तिमान हैं, जो मानव उन वेंकटेश्वर के भक्तों को प्रणाम करते हैं, उनका स्मरण तथा पूजन करते हैं, वे कभी दुःख दर्शन नहीं करते तथा यमपुर को प्राप्त नहीं होते।।१२-१६।।

ब्रह्महत्यासहस्त्राणि सुरापानायुतानि च। दृष्टे नारायणे देवे विलयं यान्ति कृत्स्नशः॥१७॥
ये वाञ्छन्ति सदाभोगं राज्यं च त्रिदशालये। वेङ्कटाद्रिनिवासं तेप्रणमन्तुसकृन्मुदा॥१८॥

हजारों ब्रह्महत्या अथवा १०००० सुरापान करने पर भी नारायण के दर्शनमात्र से समस्त पाप सर्वथा विलीन हो जाते हैं। जो सदा स्वर्ग, राज्य तथा विविध भोगों का भोग करने की इच्छा करते हैं, वे मुदित होकर उन वेंकटाचल निवासी को एक बार अवश्य प्रणाम करें।।१७-१८।।

यानि कानि च पापानिजन्मकोटिकृतानिच। तानिसर्वाणिनश्यन्तिवेङ्कटेश्वरदर्शनात्॥१९॥
सम्पर्कात्कौतुकाल्लोभाद्भयाद्वापिच संस्मरन्।
वेङ्कटेशं महादेवं नेहाऽमुत्रचदुःखभाक॥२०॥
वेङ्कटाचलदेवेशं कीर्तयन्नर्चयन्नपि। अवश्यं विष्णुसारूप्यं लभते नाऽत्र संशयः॥२१॥
यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेक्षणात्। तथापापानिसर्वाणिवेङ्कटेश्वरदर्शनम्॥२२॥

वेंकटेश्वर का दर्शन करने से करोड़ों जन्मों के सभी पापों का नाश हो जाता है। सम्पर्क से हो, कौतुक से हो, लोभ अथवा भय से हो, मनुष्य महादेव वेंकटेश्वर का सम्यक् स्मरण करके इहकाल में अथवा परकाल में (इस जन्म में अथवा मृत्यु के उपरान्त) कभी दुःख नहीं भोगता। वेंकटाचलेश्वर का नाम कीर्त्तन करने वाला तथा पूजक विष्णु सारूप्य की प्राप्ति करता है, यह निःसंशय है। प्रदीप्त अग्नि जैसे क्षणकाल में काष्ठराशि को भस्म कर देती है, उसी प्रकार वेंकटाचलेश्वर के दर्शन से समस्त पापों का नाश हो जाता है।।१९-२२।।

वेङ्कटेश्वरदेवस्य भक्तिरष्टविधा स्मृता। तद्भक्तजनवात्सल्यं तत्पूजापरितोषणम्॥२३॥
स्वयं तत्पूजनं भक्त्यातदर्थे देहचेष्टितम्। तन्माहात्म्यकथावाञ्छाश्रवणेष्वादरस्तथा॥२४॥
स्वरनेत्रशरीरेषु विकारस्फुरणं तथा। श्रीनिवासस्य देवस्य स्मरणं सततं तथा॥२५॥

वेङ्कटाद्रिनिवासंतमाश्रित्यैवोपजीवनम्। एवमष्टविधाभक्तिर्यस्मिन्म्लेच्छेऽपि वर्तते॥२६॥
स एव मुक्तिमाप्नोति शौनकाद्या महोजसः।
भक्त्यात्वनन्ययामुक्तिर्ब्रह्मज्ञानेननिश्चिता ॥२७॥
वेदान्तशास्त्रश्रवणाद्यतीनामूर्ध्वरेतसाम्। सा च मुक्तिर्विना ज्ञानं वेदान्तश्रवणोद्भवम्।
यत्याश्रमं विना विप्रा विरक्तिं च विना तथा॥२८॥

वेंकटाचलेश्वर के भक्तों के प्रति वात्सल्य प्रदर्शन, उनकी पूजा, परितोष साधन, भक्तिपूर्ण होकर उनके उद्देश्य से स्वयं प्रभु की पूजा करना, उनके इष्ट के लिये दैहिक चेष्टा, उनकी महिमा कथन की अभिलाषा, माहात्म्य श्रवण हेतु आदर, स्वर-नेत्र-शरीर में विकार स्फुरण (भावों का स्फुरण), सतत् श्रीनिवास देव का स्मरण, वेंकटाचल में निवास, उनका आश्रय लेकर जीविकोपार्जन, यह वेंकटेश्वर के प्रति अष्टधा भक्ति कही गयी है। हे महातेजस्वी शौनकादि मुनिगण! अन्य बात क्या कहूं? यदि यह अष्टविध भक्ति म्लेच्छ में भी है, तब वह मुक्तिलाभ करता है। हे विप्रगण! ऊर्ध्वरेता यतिगण वेदान्त शास्त्र श्रवण, एकनिष्ठ भक्ति तथा ब्रह्मज्ञान से मुक्तिलाभ करते हैं। यह मुक्ति तो वेदान्त श्रवणजन्य ज्ञान के बिना नहीं मिलती।।२३-२८।।

सर्वेषां चैव वर्णानामखिलाश्रमिणामपि। वेङ्कश्वरदेवस्य दर्शनादेव केवलम्॥२९॥
अपुनर्भवदा मुक्तिर्भविष्यत्यविलम्बितम्। कृमिकीटाश्च देवाश्च मुनयश्च तपोधनाः॥३०॥
तुल्या वेङ्कटशैलेन्द्रे श्रीनिवासप्रसादतः। पापं कृतं मयाऽनेकमिति मा क्रियतांभयम्॥३१॥
मा गर्वः क्रियतां पुण्यं मयाऽकारीतिवा जनैः। वेङ्कटेशेमहादेवेश्रीनिवासेविलोकिते॥३२॥
न न्यूना नाऽधिकाश्चस्युःकिन्तु सर्वे महाजनाः। वेङ्कटाख्येमहापुण्येसर्वपातकनाशने॥३३॥
श्रीनिवासं परं देवं यः पश्यति सभक्तिकम्। न तेन तुल्यतामेति चतुर्वेद्यपि भूतले॥३४॥
वेङ्कटेश्वरदेवेशं यः पूजयति भक्तितः। स कोटिकुलसंयुक्तः प्रयाति हरिमन्दिरम्॥३५॥

लेकिन सभी वर्ण तथा समस्त आश्रमी लोग केवल वेंकटाचलदेव के दर्शन मात्र से अविलम्ब अपुनर्भव (पुनर्जन्म रहित) मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। कृमि-कीट-देवता-तपोधन मुनिगण श्रीनिवास की कृपा से वेंकटेश्वरेन्द्र के समक्ष सभी समान हैं। कोई व्यक्ति "मैंने नाना पाप किये हैं" कहकर भयभीत न हों। कोई यह भी कहकर गर्व न करे कि मैंने अनेक पुण्य किये हैं। वेंकटेश्वर देव श्रीनिवास का दर्शन करके कोई न्यून अथवा अधिक नहीं होता। सभी वहां एक समान हैं। सर्वपातकनाशक महापुण्यप्रद वेंकटेश्वर के प्रति जो भक्ति करते हैं तथा भक्तिभाव से वेंकटपति श्रीनिवास की पूजा करते हैं, वे अपने करोड़ों कुल के साथ हरिलोक जाते हैं।।२९-३५।।

श्रीनिवासाच्च न समं नाऽधिकं पुण्यमस्ति वै।
वेङ्कटाद्रिनिवासं तं द्वेष्टि यो मोहमास्थितः॥३६॥
ब्रह्महत्यायुतं तेन कृतं नरककारणम्। तत्संभाषणमात्रेण मानवो नरकं व्रजेत्॥३७॥
श्रीनिवासपरावेदाः श्रीनिवासपरा मखाः। श्रीनिवासपराः सर्वे तस्मादन्यन्न विद्यते॥३८॥

अन्यत्सर्वंपरित्यज्य श्रीनिवासं समाश्रयेत्। सर्वयज्ञतपोदानतीर्थस्नाने तु यत्फलम्।।३९।
तत्फलं कोटिगुणितंश्रीनिवासस्यसेवया। वेङ्कटाद्रिनिवासं तं चिन्तयन्घटिकाद्वयम्।।४०।।
कुलैकम्विंशतिं धृत्वा विष्णुलोकेमहीयते। स्वामिपुष्करिणीतीर्थेस्नानंदेवस्यदर्शनम्।।४१।।
यदि लभ्येत वै पुंसां किं गङ्गाजलसेवया। वेङ्कटेशं परं देवं यः कदापि न पश्यति।।४२।।
सङ्करः स तु विज्ञेयो न पितुर्बीजसम्भवः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वेङ्कटेशो दयानिधिः।।४३।।
द्रष्टव्योऽतिप्रयत्नेनपरलोकेच्छया द्विजाः !। एवं वः कथितं विप्रा वेङ्कटेशस्यवैभवम्।।४४।।
यस्त्वेतच्छृणुयान्नित्यं पठते च सभक्तिकम्।
स वै वेङ्कटनाथस्य सेवाफलमवाप्नुयात्।।४५।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये वेङ्कटेश्वरवैभवानुवर्णनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः।।१८।।

श्रीनिवास के समान किंवा उनसे अधिक पावन कुछ भी नहीं है। मोहाच्छन्न होकर जो मानव वेंकटाचलवासी श्रीनिवास से द्वेष करता है, वह ब्रह्महत्या पाप से ग्रस्त होकर नरक का द्वार अपने लिये खोल लेता है। वेद-यज्ञ तथा अन्य सब कुछ श्रीनिवासमय है। उनसे भिन्न अन्य वस्तु की सत्ता नहीं है। अतः अन्य सब का त्याग करके केवल श्रीनिवास देवता का आश्रय लेना ही कर्त्तव्य होना चाहिये। समस्त यज्ञ-तप-दान-तीर्थस्थान का जो फल है, उससे करोड़ों गुणित फल श्रीनिवास की सेवा का है। जो मनुष्य दो ही घड़ी पर्यन्त वेंकटाचलवासी श्रीनिवास का स्मरण करता है, वह अपनी इक्कीस पीढ़ी के साथ विष्णुलोक गमन करता है। यदि कभी सुकृति व्यक्तिगण के भाग्य से उनको स्वामिपुष्करिणी तीर्थ में स्नान तथा श्रीनिवास का दर्शन प्राप्त हो, तब गंगाजल के सेवन की क्या आवश्यकता? हे द्विजगण! जो मानव कभी परमदेव वेंकटेश्वर का दर्शन नहीं कर सका, वह तो संकर सन्तान है। वह अपने पिता के वीर्य से जन्मा ही नहीं है! अतएव जो उत्तम लोक में जाना चाहता है वह वेंकटेश्वर का दर्शन आदर सत्कार से करे (जिनका स्थान वेंकटाचल पर है)। हे विप्रगण! मैंने आप से वेंकटेश्वर का ऐश्वर्य कहा है। इसका जो सतत् भक्तिपूर्वक श्रवण या पाठ करता है, वह वेंकटेश श्रीनिवास का सेवाफल लाभ करता है।।३६-४५।।

।।अष्टादश अध्याय समाप्त।।

एकोनविंशोऽध्यायः

वेंकटाचल स्थिति वर्णन, कुलपति द्वारा शूद्र को उपदेश तीर्थ पाप विनाशन महत्ववर्णन

श्रीसूत उवाच

अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामिवेङ्कटाचलवैभवम्। युष्माकं सावधानेनश्रृणुध्वंसुसमाहिताः॥१॥
लक्षकोटिसहस्राणि सरांसि सरितस्तथा। समुद्राश्च महापुण्यावनान्यप्याश्रमाअपि॥२॥
पुण्यानि क्षेत्रजातानिवेदारण्यादिकानि च। मुनयश्च वसिष्ठाद्याः सिद्धचारणकिन्नराः॥३॥
लक्ष्म्या सह धरण्या च भगवान्मधुसूदनः। सावित्र्या च सरस्वत्या सहैवचतुराननः॥४॥
पार्वत्या सह देवेशस्त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः। हेरम्बषणमुखाद्याश्च देवाः सेन्द्रपुरोगमाः॥५॥
आदित्यादिग्रहाश्चैवतथाऽष्टवसवो द्विजाः। पितरो लोकपालाश्चतथाऽन्येदेवतागणाः॥६॥
महापातकसङ्घानां नाशने लोकपावने। दिवानिशं वसन्त्यन्तर्वेङ्कटाचलमूर्धनि॥७॥

सूत जी कहते हैं—इसके पश्चात् आप लोगों से वेंकटाचल के और वैभव का वर्णन करता हूं। सावधान तथा सुसमाहित मन से श्रवण करें। हे द्विजगण! इस वेंकट पर्वत पर लक्षकोटि सहस्र सरोवर, नदी, समुद्र, महापुण्यवन, आश्रम, वेदारण्य आदि पुण्यक्षेत्रों का अधिष्ठान है। वसिष्ठादि मुनिगण, सिद्ध, चारण, किंन्नरगण, लक्ष्मी तथा पृथिवी के साथ भगवान् मधुसूदन, सरस्वती तथा सावित्री के साथ चतुरानन ब्रह्मा, पार्वती के साथ देवेश त्रिपुरान्तक त्रिलोचन, गणपति तथा कार्त्तिक आदि, इन्द्रादि प्रमुख देवता, आदित्य आदिग्रह, अष्टवसु, पितर, लोकपाल तथा अन्य देवता महापातकराशि विनाशक लोकपावन वेंकटाचल के मस्तक (शिखर) पर नित्य निवास करते हैं।।१-७।।

तस्य दर्शनमात्रेण वृद्धिसौख्यं नृणां भवेत्। तन्मूर्धनि कृतावासाः सिद्धचारणयोषितः॥८॥
पूजयन्ति सदाकालं वेङ्कटेशं कृपानिधिम्। कोटयो ब्रह्महत्यानामगम्यागमकोटयः॥९॥
अङ्गलग्ना विनश्यन्ति वेङ्कटाचलमारुतैः॥१०॥
वेङ्कटाद्रिं गिरिं तं तु प्रार्थयेत्पुण्यवर्धनम्। स्वर्णाचलमहापुण्य सर्वदेवनिषेवित॥११॥
ब्रह्मादयोऽपि यं देवाः सेवन्ते श्रद्धया सह। तं भवन्तमहं पद्भ्यामाक्रमेयं नगोत्तम॥१२॥
क्षमस्व तदघं मेऽद्य दयया पापचेतसः। त्वन्मूर्धनि कृतावासं माधवं दर्शयस्व मे॥१३॥

इनके दर्शन मात्र से मनुष्यों की वृद्धि होती है। वे सुखी हो जाते हैं। उसके शिखर पर सिद्धचारण सेवित माधव का निवास है। ये कृपानिधि वेंकटपति का पूजन सतत् करते रहते हैं। इन वेंकटगिरि की वायु के संस्पर्श से करोड़ों ब्रह्महत्या तथा करोड़ों अगम्यागमन जनित पाप कलुषों का लय हो जाता है। मनुष्य को चाहिये कि पुण्यवर्द्धन गिरिवर वेंकट पर्वत पर आरोहण काल में यह प्रार्थना करे। "हे महापुण्य स्वर्णाचल! जो देव समूह द्वारा सेव्य हैं, ब्रह्मादि देवता भी जिनकी श्रद्धापूर्वक सेवा करते हैं, मैं ऐसे आपकी श्रद्धा के साथ सेवा

करता हूं। मैं आपके ऊपर अपने पैरों से चलूंगा। हे नगोत्तम! मैं पापचित्त हूं। आज मेरे पादस्पर्शजनित पाप को आप दयापूर्वक क्षमा करिये। अपने शिखरस्थ माधव का दर्शन प्रदान कराइये''।।८-१३।।

प्रार्थयित्वा नरस्त्वेवं वेङ्कटाद्रिं नगोत्तमम्। ततो मृदुपदं गच्छेत्पावनं वेङ्कटाचलम्।।१४।।
वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने। स्वामिपुष्करिणीतीर्थे स्नात्वा नियमपूर्वकम्।।१५।।
पिण्डदानं ततःकुर्यादपि सर्षपमात्रकम्। शमीदलसमानान्वादद्यात्पिण्डान्पितृन्प्रति।।१६।।
स्वर्गस्था मोक्षमायान्ति स्वर्गं नरकवासिनः।।१७।।
ततस्तस्योपरि महत्सर्वलोकेषु विश्रुतम्। सर्वतीर्थोत्तमं पुण्यं नाम्ना पापविनाशनम्।।१८।।
अस्ति पुण्यतमे विप्राः पवित्रे वेङ्कटाचले। यस्य संस्मरणादेव गर्भवासो न विद्यते।।१९।।

व्यक्ति इस प्रकार पर्वतोत्तम वेंकटाचल के निकट प्रार्थना करके मृदु पदक्षेप से वेंकट पर्वत कर जाये। तत्पश्चात् सर्वपापनाशक महापुण्यमय वेंकटाचल पर स्थित स्वामिपुष्करिणी तीर्थ में नियमतः स्नान करके सरसों अथवा शमीपत्र के नाम का पिण्ड बनाकर पितृगण हेतु प्रदान करें। हे मुनिगण! ऐसा करने से स्वर्ग निवासी पितृगण मोक्ष प्राप्त करते हैं तथा नरकगामी पितृगण स्वर्गलाभ करते हैं। तदनन्तर इसके ऊर्ध्व में पुण्यतम पवित्र वेंकट पर्वत पर ही सर्वलोक प्रसिद्ध सर्वतीर्थोत्तम महापुण्यरूप पापनाशन नामक तीर्थ की स्थिति है। हे विप्रगण! इस तीर्थ का सम्यक् स्मरण करने से प्राणी गर्भवास रूप महाक्लेश से दूर ही रहता है। यह तीर्थ स्वामिपुष्करिणी के उत्तर में विराजित है।।१४-१९।।

तत्प्राप्य तु नरः स्नायात्स्वामितीर्थस्य चोत्तरे।
तत्र स्नानान्नरा यान्ति वैकुण्ठं नाऽत्र संशयः।।२०।।

जो मानव यहां उपस्थित होकर पापनाशन तीर्थ में स्नान करते हैं, वे निःसंदिग्ध रूप से वैकुण्ठलोक जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं है।।२०।।

ऋषय ऊचुः

सूत! पापविनाशाख्यतीर्थस्यब्रूहि वैभवम्। व्यासेनबोधितस्त्वंहिवेत्सिसर्वंमहामुने।।२१।।

सूत जी से ऋषिगण ने जिज्ञासा किया—हे सूत! आपने व्यास जी से शिक्षा ग्रहण किया है। आपको सब विषय ज्ञात है। हे महामुनि! आप कृपापूर्वक पापविनाशन तीर्थ की विभूति का वर्णन करिये।।२१।।

श्रीसूत उवाच

ब्रह्माश्रमपदे वृत्तां पार्श्वे हिमवतः शुभे। वक्ष्यामि ब्राह्मणश्रेष्ठायुष्माकंतुकथांशुभाम्।।२२।।
तदाश्रमपदं पुण्यं ब्रह्माश्रमपदं शुभम्। नानावृक्षसमाकीर्णं पार्श्वे हिमवतः शुभे।।२३।।
बहुगुल्मलताकीर्णं मृगद्विपनिषेवितम्। सिद्धचारणसङ्घुष्टं रम्यं पुष्पितकाननम्।।२४।।
यतिभिर्बहुभिः कीर्णं तापसैरुपशोभितम्। ब्राह्मणैश्च महाभागैः सूर्यज्वलनसन्निभैः।।२५।।
नियमव्रतसम्पन्नैः समाकीर्णं तपस्विभिः। दीक्षितैर्यागशीलैश्च यताहारैःकृतात्मभिः।।२६।।
वेदाध्ययनसम्पन्नैर्वैदिकैः परिवेष्टितम्। वर्णिभिश्च गृहस्थैश्च वानप्रस्थैश्च भिक्षुभिः।।२७।।

स्वाश्रमाचारनिरतैः स्ववर्णोक्तविधायिभिः।
बालखिल्यैश्च ऋषिभिः समन्तात्परिवेष्टितम्॥२८॥

सूत जी कहते हैं—हे ब्राह्मणोत्तमगण! मैं आपके इस पुण्यरूप प्रश्न का उत्तर देता हूं। मैं जिस घटना का वर्णन कर रहा हूं वह हिमालय के पार्श्वस्थ शुभ ब्रह्माश्रम पद पर हुई थी। यह नानावृक्षों गुल्म-लता से भरा तथा मृगों एवं गजों से समाकीर्ण आश्रम है। वहां रम्य पुष्पित कानन में सिद्ध-चामरगण नृत्यगीत करते रहते हैं। इस आश्रम में सर्वत्र यतिगण रहते हैं तथा यह तपस्वियों से शोभित होता रहता है। यहां सूर्यवत् उज्वल तेजःयुक्त महाभाग तपस्वी ब्राह्मण विविध नियम तथा व्रत का अनुष्ठान करते हुये आश्रम में विराजमान रहते हैं। न जाने कितने वेदाध्ययनरत कृतात्मा यागशील वैदिक ब्राह्मण यहां यज्ञों में दीक्षित होकर नियमित आहार पर निर्भर रहकर आश्रम के चतुर्दिक् निवास करते रहते हैं। इस आश्रम में वर्णाश्रम आचार-नियम का पालन करने वाले गृहस्थ-वानप्रस्थ तथा भिक्षुक (संन्यासी) अपने-अपने आश्रम के विधान के अनुसार सतत् तत्पर रहते हैं। यह अनेक बालखिल्य ऋषियों से व्याप्त आश्रम है।।२२-२८।।

तत्राऽऽश्रमेपुराकश्चिच्छूद्रोदृढमतिर्द्विजाः। साहसीब्राह्मणाभ्याशमाजगाममुदान्वितः॥२९॥
आगतो ह्याश्रमपदं पूजितश्च तपस्विभिः। नाम्ना दृढमतिः शूद्रः साष्टाङ्गं प्रणनाम वै॥३०॥
तान् स दृष्ट्वा मुनिगणादेवकल्पान्महौजसः। कुर्वतोविविधान्यज्ञान्संप्राहृष्यतशूद्रकः॥३१॥
अथाऽस्य बुद्धिरभवत्तपः कर्तुमनुत्तमम्। ततोऽब्रवीत्कुलपतिंमुनिमाऽऽगत्यतापसम॥३२॥

हे द्विजगण! पूर्वकाल में कौतूहल के कारण दृढ़मति नामक एक शूद्र साहस करके ब्रह्माश्रमपद स्थित ब्राह्मणों के आश्रम में पहुंचा। तब तपस्वीगण ने यथाविधि अभ्यागत का सत्कार किया। इस शूद्र ने उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। तत्पश्चात् यह शूद्र देवताओं के समान महान् तेज सम्पन्न विविध यज्ञ करने वाले मुनियों का दर्शन पाकर अत्यन्त प्रसन्न चित्त हो गया। इस शूद्र की भी मति अत्युत्तम तप करने की हो गयी। वह तपस्वी मुनि कुलपति के पास गया तथा उसने उनसे प्रार्थना किया।।२९-३२।।

दृढमतिरुवाच

तपोधन ! नमस्तेऽस्तु रक्षमांकरुणानिधे !। तव प्रसादादिच्छामियागं कर्तुं प्रसीद मे॥३३॥
एवमुक्तस्तु शूद्रेण तमाह ब्राह्मणस्तदा॥३४॥

वह शूद्र दृढ़मति कहता है—"हे तपोधन! आपको प्रणाम! हे करुणानिधि! मेरी रक्षा करिये। आपकी कृपा से मैं यज्ञ करने की इच्छा करता हूं। आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो जायें।" शूद्र की प्रार्थना सुनकर कुलपति ब्राह्मण कहने लगे।।३३-३४।।

कुलपतिरुवाच

यागे दीक्षयितुं शक्यो न शूद्रो हीनजन्मभाक्। श्रूयते यदि तेबुद्धिःशुश्रूषानिरतोभव॥३५॥
उपदेशो न कर्तव्यो जातिहीनस्य कर्हिचित्। उपदेशे महान्दोष उपाध्यायस्यविद्यते॥३६॥
नाध्यापयेद्बुधः शूद्रं तथा नैव च चाजयेत्। न पाठयेत्तथाशूद्रंशास्त्रंव्याकरणादिकम्॥३७॥

काव्यं वा नाटकं वापि तथाऽलङ्कारमेव वा। पुराणमितिहासं च शूद्रंनैव तु पाठयेत्।।३८।।

कुलपति कहते हैं—मैं हीनजन्मा शूद्र को यज्ञ में दीक्षित कर सकने में समर्थ नहीं हूं। यदि तुम्हारी बुद्धि इस प्रकार प्रशस्त हो गई है, तब तुम सेवा में निरत हो जाओ। देखो! किसी भी हीन जाति को उपदेश देना कर्त्तव्य नहीं है। हीन जाति को उपदेश देने वाला उपाध्याय महादोष भागी हो जाता है। कोई भी बुद्धिमान ब्राह्मण हीन जाति शूद्र का अध्यापन अथवा यजन कार्य नहीं करे। व्याकरणादि उसे न पढ़ायें। यहां तक कि काव्य-नाटक-अलंकार-पुराण-इतिहास भी शूद्र को कभी भी न पढ़ाये।।३५-३८।।

यदि चोपदिशेद्विप्रःशूद्रस्यैतानिकर्हिचित्। त्यजेयुर्ब्राह्मणाविप्रंतंग्रामाद्ब्रह्मसङ्कुलात्।।३९।।
शूद्राय चोपदेष्टारं द्विजं चाण्डालवत्त्यजेत्। शूद्रं चाक्षरसंयुक्तं दूरतः परिवर्जयेत्।।४०।।
तच्छुश्रूषस्व भद्रं ते ब्राह्मणाञ्छ्रद्धया सह। शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा मन्वादिभिरुदीरिता।।४१।।
न हि नैसर्गिकं कर्म परित्यक्तुं त्वमर्हसि। एवमुक्तः स मुनिना सशूद्रोऽचिन्तयत्तदा।।४२।।

"यदि कदाचित् कोई विप्र शूद्र को इन सब शास्त्र का उपदेश देगा, तब इस ब्रह्मसंकुल ग्राम से विप्रगण उसे भगा देंगे। शूद्र को उपदेश देने वाला ब्राह्मण-द्विज तो चाण्डाल के समान त्याज्य है। इसलिये "शूद्र" शब्द का भी दूर से त्याग करो। मनु आदि शास्त्रकारों ने द्विजों की सेवा ही शूद्र धर्म कहा है। अतएव श्रद्धापूर्वक द्विजगण की सेवा करो। यही तुम्हारे लिये श्रेयप्रद है। सुश्रूषा तुम्हारे लिये स्वाभाविक कर्म है। तुम उसका त्याग करने के अधिकारी नहीं हो।" मुनि द्वारा यह कहे जाने पर वह शूद्र दृढ़मति विचार करने लगा।।३९-४२।।

किं कर्तव्यं मया त्वद्य व्रते श्रद्धा हि मे परा। यथास्यान्ममसुज्ञानंयतिष्येऽहंतथाद्यवै।।४३।।
इति निश्चित्य मनसा शूद्रो दृढमतिस्तदा। गत्वाऽऽश्रमपदाद्दूरं कृतवानुटजं शुभम्।।४४।।
तत्र वै देवतागारं पुण्यान्यायतनानि च। पुष्पारामादिकं चापि तटाकखननादिकम्।।४५।।
श्रद्धया कारयामास तपःसिद्ध्यर्थमात्मनः। अभिषेकांश्च नियमानुपवासादिकानपि।।४६।।
बलिं कृत्वा च हुत्वा च दैवतान्यभ्यपूजयत्।
सङ्कल्पनियमोपेतः फलाहारो जितेन्द्रियः।।४७।।

"अब मैं आज क्या करूं? व्रत के प्रति ही मेरी परम श्रद्धा हो गयी है। अतएव जो करने से मुझमें परम ज्ञान का उदय हो सके, मैं वैसा ही आचरण करूंगा।" मन ही मन यह निश्चय करके वह दृढ़मति शूद्र-आश्रमपद से दूर गया तथा वहां एक पर्णकुटी बनाकर उसमें देवता का स्थान, पुण्यायतन, पुष्पोद्यान बनाया। उसने वहां तालाब खोदा। इस प्रकार व्यवस्था करके वह अपनी अभीष्ट सिद्धि हेतु तपःश्चरण करने लगा। वह वहां श्रद्धापूर्वक तप कर रहा था। उस शूद्र ने नाना अभिषेक, नियम, उपवास, बलिकार्य, होम द्वारा देवताओं की पूजा करता। वह संकल्पवद्ध, नियमयुक्त, जितेन्द्रिय था। वह कन्द-मूल-पुष्प-फल से सदा अतिथियों की पूजा भी करता था। इस प्रकार करते हुये उसे दीर्घकाल बीत गया।।४३-४७।।

नित्यं कन्दैश्च मूलैश्च पुष्पैरपि तथा फलैः। अतिथीन्पूजयामासयथावत्समुपागतान्।।४८।।
एवं हि सुमहान्कालो व्यतिचक्राम तस्य व।।४९।।

अथाऽऽश्रममगात्तस्यसुमतिर्नामनामतः। द्विजोगर्गकुलोद्भूतःसत्यवादीजितेन्द्रियः॥५०॥
स्वागतैर्मुनिमाराध्यतोषयित्वा फलादिकैः। कथयन्वैकथाः पुण्याःकुशलंपर्यपृच्छत॥५१॥
इत्थं विप्रः स पाद्याद्यैरुपचारैस्तुपूजितः। आशीर्भिरभिनन्द्यैनंप्रतिगृह्यचसत्क्रियाम्॥५२॥
तमापृच्छत्प्रहृष्टात्मा स्वाश्रमं पुनराययौ। एवं दिनेदिनेविप्रःशूद्रेऽस्मिन्पक्षपातवान्॥५३॥
आगच्छदाश्रमं तस्य द्रष्टुं तं शूद्रयोनिजम्। बहुकालं द्विजस्याऽभूत्संसर्गः शूद्रयोनिना॥५४॥
स्नेहस्यवशमापन्नःशूद्रोक्तंनाऽतिचक्रमे। अथाऽऽगतं द्विजं शूद्रः प्राहः स्नेहवशीकृतम्॥५५॥
हव्यकव्यविधानं मे ब्रूहि त्वं तु गुरुर्मतः। एवमुक्तः स शूद्रेण सर्वमेतदुपादिशत्॥५६॥

एक दिन गर्गकुल में उत्पन्न सत्यवादी जितेन्द्रिय सुमति नामक द्विज शूद्र दृढ़मति के आश्रम में आये। शूद्रक ने मुनि सुमति को स्वागत वाक्य से पूजित किया तथा उनको मेवा तथा फलादि से सन्तुष्ट किया एवं पुण्यकथा कहते-कहते उनसे कुशलता आदि पूछा। विप्र सुमति ने भी शूद्र प्रदत्त पाद्यादि उपचारों से अर्चित होकर आशीर्वाद वाक्य से उसका अभिनन्दन किया तथा उसके द्वारा प्रदत्त सत्क्रिया ग्रहण करके तथा उससे विदा लेकर अपने आश्रम लौट आये।

सुमति नित्यप्रति शूद्रक को देखने हेतु उसके आश्रम आते रहते। इस प्रकार वे कालक्रम से शूद्र के पक्षपाती हो गये। उन्होंने दीर्घकाल पर्यन्त उस शूद्रयोनि का संसर्ग किया तथा शूद्र दृढ़मति के प्रति उनको स्नेह हो गया। वे शूद्र के वाक्य को टाल नहीं सकते थे, यह स्थिति हो गयी! एक दिन यह देखकर शूद्र ने उन स्नेह से वशीभूत हो गये विप्र सुमति को अपने आश्रम में आने पर उनसे कहा—"हे विप्र! आप तो मेरे सम्माननीय गुरु हैं। इसलिए मुझे हव्य-कव्य विधान का उपदेश करिये।" तदनन्तर द्विजप्रवर सुमति ने शूद्र की प्रार्थना सुनकर उसे समस्त हव्य-कव्य विधान का आदेश दिया।।५०-५६।।

कारयामास शूद्रस्य पितृकार्यादिकं तदा। पितृकार्ये कृते तेन विसृष्टः स द्विजोत्तमः॥५७॥
अथ दीर्घेण कालेन पोषितः शूद्रयोनिना। त्यक्तोविप्रगणैःसोऽयंपञ्चत्वमगमद्द्विजः॥५८॥
वैवस्वतभटैर्नीत्वा पातितो नरकेष्वपि। कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानिच॥५९॥
भुक्त्वा क्रमेण नरकांस्तदन्ते स्थावरोऽभवत्। गर्दभस्तुततोजज्ञेविड्वराहस्ततःपरम्॥६०॥
जज्ञेऽथ सारमेयोऽसौ पश्चाद्वायसतां गतः। अथ चण्डालतांप्राप्यशूद्रयोनिमगात्ततः॥६१॥

गतवान्वैश्यतां पश्चात्क्षत्रियस्तदनन्तरम्।
प्रबलैर्बाध्यमानोऽसौ ब्राह्मणो वै तदाऽभवत्॥६२॥

उपनीतः स पित्रा तु वर्षे गर्भाष्टमे द्विजः। वर्तमानः पितुर्गेहि स्वाचाराभ्यासतत्परः॥६३॥
गच्छन्कदाचिद्गहने गृहीतो ब्रह्मरक्षसा। रुदन्भ्रमन्स्खलन्मूढः प्रलपन्प्रहसन्नसौ॥६४॥
शश्वद्धाहेति च वदन्वैदिकं कर्म सोऽत्यजत्। दृष्ट्वा सुतं तथाभूतंपितादुःखेनपीडितः॥६५॥
सुतमादाय च स्नेहादगस्त्यं शरणं ययौ। सुवर्णमुखरीतीरे तपस्यन्तं शिवाग्रतः॥६६॥

सुमति ने उस शूद्र का पितृकार्य तथा श्राद्धादि सम्पन्न कराया तथा यह कार्य समाप्त होने पर शूद्र ने

दृढ़मति से विदा ले लिया। तदनन्तर शूद्र को पोषित करने के कारण सुमति द्विजगणं द्वारा त्याग दिये गये तथा कालान्तर में मृत्यु को प्राप्त हो गये। यमदूतों ने उनको नरक में ले जाकर छोड़ दिया। तदनन्तर नारकीय सुमति ने अपने प्रवल कर्म से बाधित होकर क्रमशः कोटि सहस्र तथा शतकोटि कल्प पर्यन्त नरकों का भोग किया। तदनन्तर उनका जन्म स्थावर योनि में हुआ। तदनन्तर गर्दभ, विड्वराह, कुत्ता तथा कौआ कि योनि में क्रमशः जन्मे। तदनन्तर चाण्डल योनि में जन्म लेकर क्रमशः शूद्र-वैश्य-क्षत्रिय योनियों में जन्म लेकर अन्त में ब्राह्मण योनि में जन्म ग्रहण किया। तदनन्तर वे आठवें वर्ष की आयु में पिता द्वारा उपनीत (यज्ञोपवीत संस्कार) किये गये तथा अपने आचार में तत्पर होकर वे पिता के पास रहने लगे। वे द्विज सुमति एक बार वन में गये जहां एक ब्रह्मराक्षस से उन्होंने आवेशित होकर वैदिक कर्म को त्याग दिया। वे कभी रोते—कभी मूर्ख की तरह प्रलाप करते, कभी व्यर्थ घूमते, कभी सदा हाय-हाय करते। जब पिता ने पुत्र की यह हालत देखा, तब वे भी पीड़ित हो गये। उन्होंने पुत्रप्रेमवश पुत्र को साथ लिया तथा महर्षि अगस्त्य के आश्रम आये। महर्षि तब सुवर्णमुखरी नदी के तट पर शिव के सम्मुख तप कर रहे थे।।५७-६६।।

भक्त्या मुनिं प्रणम्याऽसौ पिता तस्य सुतस्य वै।
तस्मै निवेदयामास स्वपुत्रस्य विचेष्टितम्।।६७।।

अब्रवीच्च तदा विप्रः कुम्भजं मुनिपुङ्गवम्। एष मे तनयो ब्रह्मन्गृहीतो ब्रह्मरक्षसा।।६८।।
सुखं न लभते ब्रह्मन्रक्ष तं करुणादृशा। नास्ति मे तनयोऽप्यन्यः पितृणामृणमुक्तये।।६९।।
तस्य पीडाविनाशार्थमुपायं ब्रूहि कुम्भज !। त्वत्समस्त्रिषु लोकेषुतपःशीलोन विद्यते।।७०।।
त्वां विनाऽस्य परित्राता न मे पुत्रस्य विद्यते। पुत्रेदयांकुरुगुरोदयाशीलाहिसाधवः।।७१।।

पिता ने भक्ति के साथ महर्षि अगस्त्य को प्रणाम किया तथा पुत्र के वर्तमान आचरण का वर्णन करते हुये कहा—"हे ब्रह्मन्! मेरे इस पुत्र को ब्रह्मराक्षस ने पकड़ लिया है। वह क्षणमात्र भी शान्ति नहीं पा रहा है। हे ब्रह्मन्! आप अपनी करुणादृष्टि से इसकी रक्षा करिये। यह इस प्रकार पितृगण का ऋणमोचन (श्राद्धादि) करे। मेरा यही एक पुत्र है। अन्य नहीं है। हे कुम्भज! इसकी पीड़ा नाशार्थ उपाय करिये। हे गुरुदेव! आपके समान तपस्वी तीनों लोक में नहीं है। मैं आपके अतिरिक्त अपने पुत्र की रक्षा कर सकने में समर्थ किसी को नहीं देखता। इसलिये मेरे पुत्र के प्रति कृपा करें। साधुगण कृपालु, दयावान् होते हैं।।६७-७१।।

श्रीसूत उवाच

एवमुक्तस्तदा तेन कुम्भजोध्यानमास्थितः। ध्यात्वातुसुचिरंकालमब्रवीद्ब्राह्मणंततः।।७२।।

सूत जी कहते हैं—ब्राह्मण द्वारा प्रार्थना करने पर कुम्भयोनि अगस्त्य ने ध्यान किया। कुछ क्षण ध्यानस्थ रहकर वे ब्राह्मण से कहने लगे।।७२।।

अगस्त्य उवाच

पूर्वजन्मनि ते पुत्रो ब्राह्मणोऽयंमहामते !। सुमतिर्नाम विप्रोऽयं मतिंशूद्राय वै ददौ।।७३।।
कर्माणिवैदिकान्येषसर्वाण्युपदिदेशवै। अतोऽयं नरकान्भुक्त्वा कल्पकोटिसहस्रकम्।।७४।।

जातो भुवि तदन्तेषु स्थावरादिषु योनिषु। इदानीं ब्राह्मणो जातः कर्मशेषेण ते सुतः॥७५॥
यमेन प्रेषितेनाऽत्र गृहीतो ब्रह्मरक्षसा। क्रूरेण पातकेनाऽद्य पूर्वजन्मकृतेन वै॥७६॥
उपायं ते प्रवक्ष्यामि ब्रह्मरक्षोविनाशने। शृणुष्व श्रद्धयायुक्तः समाधाय च मानसम्॥७७॥
सुवर्णमुखरीतीरे ऋषिसङ्घनिषेविते। वर्तते दैवतैः सेव्यः पावनो वेङ्कटाचलः॥७८॥
तस्योपरि महातीर्थंनाम्नापापविनाशनम्। अस्तिपुण्यम्प्रसिद्धञ्च महापातकनाशनम्॥७९॥
भूतप्रेतपिशाचानां वेतालब्रह्मरक्षसाम्। महताञ्चैव रोगाणां तीर्थं तन्नाशकं स्मृतम्॥८०॥
सुतमादाय गच्छ त्वं तत्तीर्थं गिरिमध्यगम्।
प्रयतः स्नापय सुतं तीर्थे पापविनाशने॥८१॥
स्नानेन त्रिदिनन्तत्र ब्रह्मरक्षो विनश्यति। नैवषोपायान्तरं तस्यविनाशेविद्यतेभुवि॥८२॥
तस्माच्छीघ्रं प्रयाहि त्वंवेङ्कटाह्वयपर्वतम्। तत्र पापविनाशाख्यतीर्थे स्नापयतेसुतम्॥८३॥
मा विलम्बं कुरुष्वाऽत्र त्वरया याहि वै द्विज !।
इत्युक्तः स द्विजोऽगस्त्यं प्रणम्य भुवि दण्डवत्॥८४॥

अगस्त्य कहते हैं—हे महामति! आपका यह पुत्र पूर्वजन्म में ब्राह्मण था। इसका नाम सुमति था। इसने शूद्र के प्रति स्नेह करके उसे समस्त वैदिक कर्म का उपदेश दिया। तदनन्तर सहस्र कोटिकल्प पर्यन्त नरक भोग करने के उपरान्त इसका जन्म पृथिवी पर स्थावर आदि नाना योनियों में हुआ। अन्ततः कर्म समाप्त होने पर यह ब्राह्मण होकर तुम्हारे गृह में जन्मा है। यह क्रूर ब्रह्मराक्षस यम द्वारा प्रेरित है। तुम्हारे पुत्र के पूर्वजन्मकृत पातक के कारण ही ब्रह्मराक्षस ने इसे पकड़ा है। अब ब्रह्मराक्षस के विनाश की बात मन को एकाग्र करके श्रद्धायुक्त होकर श्रवण करो। ऋषियों द्वारा सेवित सुवर्णमुखरी के तट पर समस्त देवगण से सेवित पवित्र वेंकटगिरि स्थित है। उसके शिखर देश पर पापविनाशन नामक महातीर्थ अवस्थित है। यह प्रसिद्ध तीर्थ अत्यन्त पवित्र तथा महापाप विनाशक है। यह तीर्थ भूत, प्रेत, पिशाच, वेताल, ब्रह्मराक्षस से उत्पन्न विविध उत्कट रोग का नाश करने वाला है। अतएव तुम उस गिरि के मध्य में स्थित पापनाशन तीर्थ में श्रद्धापूर्वक पुत्र को स्नान कराओ। वहां तीन दिन स्नान करने से ब्रह्मराक्षस पलायित हो जायेगा। ब्रह्मराक्षस के विनाश का इसके अतिरिक्त मैं तीनों लोकों में कोई उपाय नहीं देख पा रहा हूं। शीघ्र जाकर उस पापनाशन तीर्थ में पुत्र को स्नान कराओ। हे विप्र! यहां विलम्ब मत करो। शीघ्र जाओ।'' महर्षि अगस्त्य के यह कहने पर ब्राह्मण ने उन्हें साष्टाङ्ग दण्डवत् किया।।७३-८४।।

अनुज्ञातश्च तेनाऽसौ प्रययौवेङ्कटाचलम्। सुतेनसाकंविप्रोऽसौ गत्वापापविनाशनम्॥८५॥
सङ्कल्पपूर्वं सस्नाप्य दिनत्रयमसौ सुतम्। सस्नौस्वयञ्चविप्रेन्द्रः पिता पापविनाशने॥८६॥

इस प्रकार महर्षि अगस्त्य का आदेश पाकर ब्राह्मण ने अपने पुत्र के साथ वेंकटाचल पर्वत के लिये प्रस्थान किया। तदनन्तर वे ब्राह्मण पुत्र के साथ पापविनाशन तीर्थ गये तथा संकल्प करके पुत्र को तीन दिन स्नान कराया। उन्होंने स्वयं भी वहां स्नान एवं आह्निक कृत्य सम्पन्न किया। तदनन्तर वहां का जल पीकर वे पुत्र के साथ घर वापस आये।।८५-८६।।

सगागतः पापै तोयं कृत्वा चाऽप्याह्निकक्रमम्।
अथ तस्य सुतस्तत्र विमुक्तो ब्रह्मरक्षसा॥८७॥
समजायत नीरोगः स्वस्थः सुन्दररूपधृक्।
सर्वसम्पत्समृद्धोऽसौ भुक्त्वा भोगाननेकशः॥८८॥
देहान्ते प्रययौ मुक्तिं स्नानात्पापविनाशने।
पिताऽपितत्र स्नानेनदेहान्तेमुक्तिमाप्तवान्॥८९॥
तेनोपदिष्टोऽयं शूद्रः स भुक्त्वा नरकान् क्रमात्।
अनेकासु जनित्वा च कुत्सितास्वपि योनिषु॥९०॥
गृधजन्माऽभवत्पश्चाद्वेङ्कटाचलभूधरे। स कदाचिज्जलम्पातुं तीर्थे पापविनाशने॥९१॥
समागतः पपौ तोयं सिषिचे चात्मनस्तनुम्। तदैव दिव्यदेहःसन्सर्वाभरणभूषितः।
दिव्यम्बिमानमारुह्य प्रययावमरालयम्॥९३॥

तदनन्तर पापविनाशन तीर्थ में स्नान करने से ब्रह्मराक्षस ने उनके पुत्र को छोड़ दिया। वह निरोग, स्वस्थ तथा सुन्दर स्वरूप हो गया। वह क्रमशः सभी सम्पत्ति से समृद्ध होकर विविध भोगों को भोगता हुआ देहावसान के पश्चात् मुक्त हो गया। उसके पिता ने भी पापविनाशन तीर्थ में स्नानफल द्वारा मृत्यु के पश्चात् मुक्ति प्राप्त किया।

सुमति ने जिस शूद्र को उपदेश दिया था। उसने अनेक नरकों का भोग किया। क्रमशः अनेक कुत्सित योनियों में जन्म लेते हुये अन्त में वेंकटाचल क्षेत्र में गृध्रजन्म लाभ किया तथा वहीं रहने लगा। एक दिन वह गृध्र पिपासा से पीड़ित होकर पापविनाशन तीर्थ पहुंचा। उसने वहां का जल पीकर शरीर त्याग दिया। उसे सर्वाभरणभूषित दिव्यदेह प्राप्त हो गया। उसने विमान पर आरोहण करके स्वर्ग प्रस्थान किया।।८७-९३।।

श्रीसूत उवाच

एवम्प्रभावमेतद्वै तीर्थम्पापविनाशनम्। पापानां नाशनाद्विप्राःपापनाशाभिधं हि तत्॥९४॥
इत्थं रहस्यं कथितं मुनीन्द्रास्तद्वैभवं पापविनाशनस्य।
यत्राभिषेकात्सहसा विमुक्तौ द्विजश्च शूद्रश्च विनिन्द्यकृत्यौ॥९५॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये पापविनाशनतीर्थमहिमानुवर्णनं नामैकोनविंशतितमोऽध्यायः।।१९।।

—❊❊❊—

श्री सूत जी कहते हैं—हे विप्रों! पापविनाशन तीर्थ ऐसे अद्‌भुद् प्रभाव वाला है। पाप समुद्र का नाश करने के कारण इसे पापनाशन कहते हैं। यहां स्नान करके निन्दित कर्मा द्रिज सुमति तथा शूद्र दृढ़मति भी मुक्त हो गये। मुनिगण ने इस तीर्थ का इस प्रकार रहस्य कहा है।।९४-९५।।

।।उनविंश अध्याय समाप्त।।

विंशोऽध्यायः

पापनाशन तीर्थ महिमा, भूमिदान महिमा, भद्रमति कृत विष्णुस्तव

श्रीसूत उवाच

पुनश्चाऽहं प्रवक्ष्यामि पापनाशनवैभवम्। भगवद्भक्तिभावेन शृणुध्वं सुसमाहिताः।।१।।
इतिहासं प्रवक्ष्यामि सर्वपापविनाशनम्। यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्रसंशयः।।२।।
आसीत्पुरा द्विजवरो वेदवेदाङ्गपारगः। दरिद्रो वृत्तिहीनश्च नाम्ना भद्रमतिर्द्विजः।।३।।
श्रुतानि सर्वशास्त्राणि तेन विप्रेण धीमता। श्रुतानिच पुराणानिधर्मशास्त्राणिसर्वशः।।४।।
अभवंस्तस्य षट्पत्न्यः कृता सिन्धुर्यशोवती।
कामिनी मालिनी चैव शोभा चैव प्रकीर्तिताः।।५।।

सूतजी कहते हैं—अब मैं पुनः पापनाशन तीर्थ की विभूति कहता हूं। आप सभी समाहित मन से भगवान् के प्रति भक्तिमान होकर सुने। मैं इस सम्बन्ध में सर्वपापविनाशन एक इतिहास कहता हूं। यह सुनने से निःसंदेह रूप से सर्वपापमुक्ति होती है। पूर्वकाल में वेद-वेदाङ्ग पारंगत, वित्तहीन, दरिद्र, द्विजवर भद्रमति नामक एक ब्राह्मण थे। धीमान् द्विज भद्रमति ने निखिल पुराण, वेद तथा धर्मशास्त्रों का श्रवण किया था। उनकी छ पत्नियां थीं—यथा कृता, सिन्धु, यशोवती, कामिनी, मालिनी तथा शोभा।।१-५।।

तासुपत्नीषुतस्याऽऽसीत्पुत्राणाञ्चशतद्वयम्। तेसर्वेतस्यपुत्राद्याःक्षुधयापरिपीडिताः।।६।।
अकिञ्चनो भद्रमतिः क्षुधार्तानात्मजान्प्रियान्।
पश्यन्प्रियाः क्षुधार्ताश्च विललाऽऽपाकुलेन्द्रियः।।७।।
धिग्जन्मभाग्यरहितं धिग्जन्मधनवर्जितम्।
धिग्जन्मकीर्तिरहितं धिग्जन्माऽऽतिथ्यवर्जितम्।।८।।
धिग्जन्माचाररहितं धिग्जन्मज्ञानवर्जितम्। धिग्जन्मयत्नरहितंधिग्जन्मसुखवर्जितम्।।९।।
धिग्जन्मबन्धुरहितंधिग्जन्मख्यातिवर्जितम्। नरस्यबह्वपत्यस्यधिग्जन्मैश्वर्यवर्जितम्।।१०।।

भद्रमति की छ पत्नियों से २०० पुत्र उत्पन्न हुये। एक बार उसके पुत्रगण क्षुधा से पीड़ित हो गये। अकिंचन ब्राह्मण भद्रमति अपने पुत्रों तथा पत्नीगण को क्षुधार्त्त देखकर आकुलता से रुदन करने लगा। उसने कहा—भाग्यहीन जन्म को धिक्कार है। धनरहित जन्म को, कीर्त्तिरहित जन्म को धिक्कार है। आतिथ्यरहित जन्म को धिक्कार है। आचारहीन धर्म को धिक्कार है। ज्ञानरहित धर्म को धिक्कार है। यत्नहीन धर्म को धिक्कार है। सुखरहित धर्म को धिक्कार है। बन्धुहीन धर्म को धिक्कार है। ख्यातिरहित जन्म को धिक्कार है। अनेक पुत्रों वाले जन्म को धिक्कार है। ऐश्वर्यवर्जित जन्म को धिक्कार है।।६-१०।।

अहोगुणाः सौम्यता च विद्वत्ता जन्म सत्कुले।
दारिद्र्याम्बुधिमग्नस्य सर्वमेतन्न शोभते॥११॥
विप्राः पुत्राश्च पौत्राश्च बान्धवा भ्रातरस्तथा।
शिष्याश्च सर्वे मनुषास्त्यजन्त्यैश्वर्यवर्जितम्॥१२॥
इतिनिश्चित्यमतिमान्धीरोभद्रमतिर्द्विजः। चण्डालोवाद्विजोवापिभाग्यवानेवपूज्यते॥१३॥
दरिद्रः पुरुषोलोके शववल्लोकनिन्दितः। अहो सम्पत्समायुक्तोनिष्ठुरोवाप्यनिष्ठुरः॥१४॥
गुणहीनोऽपिगुणवान्मूर्खोवापि सपण्डितः। सर्वधर्मसमायुक्तो धर्महीनोऽथवानरः॥१५॥
ऐश्वर्यगुणयुक्तश्चेत्पूज्य एव न संशयः। अहो दरिद्रता दुःखं तत्राप्याशातिदुःखदा॥१६॥
आशाभिभूताः पुरुषाःदुःखमश्नुवते क्षणात्॥१७॥
आशाया ये दासा दासास्ते सर्वलोकस्य। आशा दासी येषां तेषां दासायते लोकः॥१८॥
सर्वशास्त्रार्थवेत्तापिदरिद्रोभातिमूर्खवत्। आकिञ्चन्यमहाग्राहग्रस्तानांनास्तिमोचकः॥१९॥

"अहो! दरिद्रता रूपी समुद्र में मग्न व्यक्ति का सत्कुल में जन्म, सौम्यता तथा पाण्डित्य आदि गुण शोभायमान नहीं होता। अहो! विप्र, पुत्र, पौत्र, बन्धु, भ्राता, शिष्य तथा सभी मानव ऐश्वर्यरहित का त्याग कर देते हैं।" तदनन्तर मतिमान धीर भद्रमति ने इस प्रकार आलोचना अन्त में निश्चय किया कि चाण्डाल हो, अथवा द्विज हो, भाग्यवान ही पूजनीय होता है। लोक में दरिद्र व्यक्ति शव के समान निन्दित होता है। समृद्ध व्यक्ति यदि निष्ठुर हो, तब भी उसे दयालु कहते हैं। उसे गुणहीन होने पर भी गुणी तथा मूर्ख होने पर भी पण्डित कहा जाता है। भले ही वह निष्ठुर हो, किंवा गुणहीन हो, अथवा धर्महीन हो, यदि वह ऐश्वर्यवान् है, तब उसे पूजित ही कहा जाता है! इसमें तनिक संदेह नहीं है। अहो! दरिद्रता तो विशेष दुःख है। आशा और भी दुःख है। आशाभिभूत मानव को तो तत्काल दुःख मिलता है। जो आशा के वश में हैं, वे तो सभी लोगों के दास हैं। जिसको आशा पर वश प्राप्त हो गया, उसके समक्ष सभी दास हैं। सर्वशास्त्रवेत्ता भी दरिद्रता दोष के कारण मूर्खवत् प्रतिभात होता है। जिसे दरिद्रता रूपी मगर ने ग्रस लिया, उसका मुक्तिदाता कौन है?।।११-१९।।

अहो दुःखमहो दुःखमहो दुःखं दरिद्रता। तत्राऽपि पुत्रदाराणां बाहुल्यमतिदुःखदम्॥२०॥
एवमुक्त्वा भद्रमतिः सर्वशास्त्रार्थपारगः। अत्यैश्वर्यप्रदं धर्ममनसा चिन्तयंस्तदा।
तूष्णीं स्थितो भद्रमतिर्महाक्लेशसमन्वितः॥२१॥
तदानीं तासु भार्यासु कामिनी पतिदेवता॥२२॥
भार्या साधुगुणैर्युक्ता पतिं तं प्रत्यभाषत॥२३॥

अहा! कैसे कष्ट की बात है? दरिद्रता के समान दुःख और है ही नहीं। इसमें भी पुत्रों तथा पत्नियों की बहुलता और भी दुःखप्रद है। सर्वशास्त्रार्थ पारंगत भद्रमति ने इस प्रकार से अत्यन्त ऐश्वर्यदाता एकमात्र धर्म का ही मन ही मन चिन्तन किया। भद्रमति ने महाक्लेश युक्त होकर और आगे कुछ न कहकर मौन का

अवलम्बन लिया। तदनन्तर उनकी पत्नियों में से विविध साधुगुणों वाली पत्नी कामिनी अपने पति से कहने लगी।।२०-२३।।

कामिन्युवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ ! सर्वशास्त्रार्थपारग !। मम नाथ महाभाग वाक्यंशृणु महामते !।।२४।।
सुवर्णमुखरीतीर ऋषिसङ्घनिषेविते। वर्तते दैवतैः सेव्यः पावनो वेङ्कटाचलः।।२५।।
तस्मिन्वेङ्कटशैलेन्द्रे सुरासुरनमस्कृते। वर्तते पावनं तीर्थं पापानां दाहकं शुभम्।।२६।।
तत्र गत्वा महाभाग पापनाशे महामते। कुरु स्नानं प्रयत्नेन भार्यापुत्रसमन्वितः।।२७।।
तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं नारदाच्च श्रुतं मया। बालभावेममपितुरन्तिकेप्रोक्तवान्मुनिः।।२८।।
वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने। सर्वदुःखप्रशमने सर्वसम्पत्प्रदायके।।२९।।
पापनाशे महीतीर्थे स्नात्वा सङ्कल्पपूर्वकम्। अत्यैश्वर्यप्रदं धर्मं मनसा चिन्तयंस्तदा।।३०।।
भूमिदानं विनिश्चित्य सर्वदानोत्तमोत्तमम्। प्रापकं परलोकस्य सर्वकामफलप्रदम्।।३१।।
दानानामुत्तमं दानं भूदानं परिकीर्तितम्। तद्दत्त्वा समवाप्नोति यद्यदिष्टतमं नरः।।३२।।
इत्येवं नारदेनोक्तं श्रुत्वा मे जनको द्विजः। सम्प्रहृष्टमना भूत्वा शेषाद्रिं प्राप्तवांस्तदा।।३३।।
तत्र गत्वा महाभागः सर्वसम्पत्प्रदायकम्। भूदानं विप्रवर्याय श्रोत्रियाय प्रदत्तवान्।।३४।।

कामिनी कहती है—हे भगवान्! आप समस्त धर्मों को जानने वाले तथा सर्वशास्त्र पारंगत हैं। हे नाथ! महाभाग! हे महामति! मेरा कथन सुनिये। मुनिगण सेवित सुवर्णमुखरी के तीर पर देवसेव्य पावन वेंकटाचल विद्यमान हैं। वहां सुर-असुर, सभी से नमस्कृत पापदाहक एक शुभ पुण्यतीर्थ है। आप वहां जाकर पत्नियों तथा पुत्रों के साथ स्नान करिये। जब मैं बालिका थी, तब महर्षि नारद ने मेरे पिता से इस तीर्थ का माहात्म्य कहा था। तब मैंने महर्षि नारद द्वारा कहे गये इस तीर्थ के माहात्म्य को सुना था। सर्वपापनाशक, महापुण्यप्रद, सर्वदुःखहरण करने वाला तथा सम्पूर्ण समृद्धि को देने वाला यह तीर्थ वेंकटाचल पर स्थित है।

उस समय उन महामुनि ने कहा था कि इस लोक में जो कुछ दान है, उनमें भूमिदान सर्वोत्तम है। अतएव मानव इस पापनाशक महातीर्थ में संकल्प के साथ स्नान करके ऐश्वर्यप्रद धर्म का चिन्तन मन से करे कि "भूमिदान ही समस्तदान में से अत्युत्तम दान है।" ऐसा निश्चय करने के अनन्तर परलोकप्रद सर्वकामफलप्रद भूमिदान करने से उसे जो कुछ कामना है, वह सब प्राप्त होती है। मेरे पिता ने देवर्षि नारद से भूमिदान महिमा सुनकर अत्यन्त प्रसन्न मन से तत्क्षण शेष शैल (वेंकटाचल का अन्य नाम) गमन किया। महाभाग पिता ने वहां के द्विजप्रवर श्रोत्रियगण को सर्वसमृद्धिदायक भूमिदान किया"।।२४-३४।।

ततो मे जनको विद्वन्सर्वभाग्यसमन्वितः। इहलोके सुखं प्राप्य चाऽन्ते विष्णुपुरं ययौ।।३५।।
त्वं च गत्वा महाभाग वेङ्कटाद्रिं नगोत्तमम्। कुरु दानं प्रयत्नेन भूदानं सर्वकामदम्।।३६।।
भूमिदानस्य माहात्म्यं शृणुष्व सुसमाहितः।
न कोऽपि गदितुं शक्तो लोकेऽस्मिन्भगवन्प्रभो !।।३७।।

भूमिदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति। परं निर्वाणमाप्नोतिभूमिदो नाऽत्र संशयः॥३८॥
स्वल्पामपि महीदत्त्वाश्रोत्रियायाऽऽहिताग्नये।
ब्रह्मलोकमवाप्नोतिपुनरावृत्तिवर्जितम् ॥३९॥

हे विद्वान्! तदनन्तर मेरे पिता ने इस लोक में विविध भोग समन्वित सुख का उपभोग किया तथा मरण के उपरान्त उनको विष्णुलोक प्राप्त हुआ। हे महाभाग! आप भी पर्वतश्रेष्ठ वेंकटाचल जाकर सर्वप्रयत्नद्वारा सर्वकामप्रद भूमिदान करें। हे भगवान्! आप समाहित चित्त से इस भूमिदान का फल सुने! हे प्रभो! त्रैलोक्य में कोई भी भूमिदान माहात्म्य कह सकने में समर्थ नहीं है। इससे उत्तम अन्य कोई दान नहीं हो सकता। इससे निःसंदिग्धरूपेण परम निर्वाण की प्राप्ति होती है। जो आहिताग्नि श्रोत्रिय हैं, उनको अल्पमात्र भी भूमि प्रदान करने से दानदाता पुनरावृत्ति रहित मुक्ति प्राप्त करता है। उसे ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।।३५-३९।।

भूमिदः सर्वदः प्रोक्तो भूमिदो मोक्षभाग्भवेत्। भूमिदानं बृषाद्रौचसर्वपापप्रणाशनम्॥४०॥
महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः। दशहस्तां महीं दत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥४१॥
सत्पात्रे भूमिदाता यः सर्वदानफलं लभेत्। भूमिदस्य समो नान्यस्त्रिषु लोकेषु विद्यते॥४२।
द्विजस्य वृत्तिहीनस्य यः प्रदद्यान्महीं शुभाम्। तस्य पुण्यफलंवक्तुंशेषोनार्हःकदाचन॥४३॥
विप्रस्य वृत्तिहीनस्य सदाचारस्य कस्याचित्।
योऽल्पमामपि महीं दद्यात्सविष्णुर्नाऽत्र संशयः॥४४॥
इक्षुगोधधूमकेदारपूगबृक्षादिसंयुता। पृथ्वी प्रदीयते येन स विष्णुर्नाऽत्र संशयः॥४५॥

जिसने भूमिदान कर दिया, उसने तो सभी प्रकार के दान सम्पन्न कर दिये। वह मुक्तिभागी हो जाता है। वृषपर्वत पर भूमिदान द्वारा समस्त पापों का नाश हो जाता है। महापातक किंवा सर्वपातक युक्त मनुष्य भी दस हाथ माप की ही भूमि यदि दान कर देता है, तब उसके सभी कलुष निवृत्त हो जाते हैं। जो मानव सत्पात्र को भूमि प्रदान करता है, उसे सभी दानों का फल लाभ होता है। भूमिदानवत् दान त्रैलोक्य में नहीं है। जो वृत्तिहीन ब्राह्मण को भूमि प्रदान करता है, शेषनाग भी उस व्यक्ति को प्राप्त होने वाले फल का वर्णन नहीं कर सकते। वित्तहीन सदाचारी ब्राह्मण को जो व्यक्ति अल्पभूमिदान भी कर देता है, वह दाता तो साक्षात् विष्णु हैं। इसमें सन्देह नहीं है। गन्ना, गेहूं तथा जलयुक्त तथा सुपारी आदि वृक्षों से युक्त भूमिदान करने वाला स्वयं विष्णु है।।४०-४५।।

वृत्तिहीनस्यविप्रस्यद्ररिद्रस्यकुटुम्बिनः। स्वल्पामपिमहींदत्त्वाविष्णुसायुज्यमश्नुते॥४६॥
सक्तस्य देवपूजासुविप्रस्याऽऽटविका मही। दत्ताभवतिगङ्गायांत्रिरात्रस्नानजंफलम्॥४७॥
विप्रस्य वृत्तिहीनस्य सदाचाररतस्य च। द्रोणिकां पृथिवींदत्त्वायत्फलं लभतेशृणु॥४६॥
गङ्गातीरेऽश्वमेधानां शतानि विंधिवन्नरः। कृत्वायत्फलंमाप्नोतितदाप्नोतिमहत्फलम्॥४९॥

वित्तरहित कुटुम्बी विप्र को अत्यल्प भूमिदान करने से भी विष्णुसायुज्य की प्राप्ति होती है। देवपूजा में अनुरक्त विप्र को कानन सहित भूमिदान करने से तीन बार गंगा स्नान का फल लाभ होता है। सदाचारी, निर्धन ब्राह्मण को एक द्रोणि मात्र भूमिदान का जो फल है, उसे सुनिये। मनुष्य गंगातट पर यथाविधान १०० अश्वमेध करके जो फल पा सकता है, पूर्वोक्त दान से उसे वही महाफल लाभ होता है।।४६-४९।।

ददाति भारिकां भूमिं दरिद्राय द्विजातये। तस्य पुण्यं प्रघक्ष्यामि मन्नाथ भगवन्प्रभो !॥५०॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च। विधाय जाह्नवीतीरेयत्फलं तल्लभेत सः॥५१॥
भूमिदानं महादानमतिदानं प्रकीर्तितम्। सर्वपापप्रशमनमपवर्गफलप्रदम्॥५२॥

हे भगवान्! जो व्यक्ति दरिद्र द्विजाति को विपुल भूमिदान करता है, उसका फल कहती हूं। विधिवत् गंगातट पर १००० अश्वमेध तथा १०० बाजपेय यज्ञ का जो फल है, वह उस दानकर्त्ता को मिलता है। भूमिदान को ही अतिदान तथा महादान कहते हैं। यह सर्वपापनाशक तथा स्वर्गफलप्रद है। हे प्रभो! हे नाथ! अधिक क्या कहूं? जो भूमिदान का माहात्म्य सश्रद्धभाव से सुनता है, उसे भी भूमिदान फल की प्राप्ति होती है।।५०-५२।।

यच्छ्रुत्वाश्रद्धयायुक्तोभूमिदानफलंलभेत्। भार्यायावचनंश्रुत्वात्वितिहाससमन्वितम्॥५३॥
सन्तुष्टो मनसि ध्यात्वा शेषाचलनिवासिनम्॥५४॥
गन्तुं प्रचक्रमे बुद्ध्या क्रीड़ाचलमनुत्तमम्। ततो भद्रमतिः सौम्यः सर्वधर्मपरायणः॥५५॥
सुशालिं नाम नगरीं कलत्रसहितो ययौ। सुघोषंनाम विप्रेन्द्रं सर्वैश्वर्यसमन्वितम्॥५६॥
गत्वा चाचितवान्भूमिं पञ्चहस्तायतां द्विजः।
सुघोषो धर्मनिरतस्तं निरीक्ष्य कुटुम्बिनम्॥५७॥
मनसा प्रीतिमापन्नं समभ्यर्च्यैनमब्रवीत्। कृतार्थोऽहं भद्रमते ! सफलं मम जन्म च।
मत्कुलं चाऽनघं जातं त्वं हि ग्राह्योऽसि मे यतः॥५८॥

ब्राह्मण भद्रमति पत्नी के इतिहास वृत्तान्त से युक्त कथन को सुनकर सन्तुष्ट हो गया तथा वह मन ही मन उस शेष शैल निवासी प्रभु का स्मरण करके उस क्रीड़ांचल वेंकटाचल जाने के लिये उपक्रम करने लगा। तदनन्तर सौम्यदर्शन सर्वधर्मपरायण वह ब्राह्मण पत्नी के साथ सुशालिनगर पहुंचा। वह वहां सर्व ऐश्वर्यसमन्वित विप्रेन्द्र सुघोष के यहां गया तथा उनसे पांच हाथ की वर्गाकार भूमि की याचना किया। धर्मनिरत सुघोष भी कुटुम्वी भद्रमति ब्राह्मण को देखकर मन ही मन प्रसन्न हो गये तथा उन्होंने भद्रमति का सम्यक्तः पूजन किया तथा भद्रमति से कहा—"हे भद्रमति! आज में कृतार्थ हो गया। मेरे अनेक जन्म सफल हो गये। आपको पाकर मेरा कुल भी पावन हो गया।"।।५३-५८।।

इत्युत्त्वा तं समभ्यर्च्य सुघोषो धर्मतत्परः। पञ्चहस्तप्रमाणांतांददौतस्मैमहामतिः॥५९॥
पृथिवी वैष्णवी पुण्या पृथिवी विष्णुपालिता।
पृथिव्यास्तु प्रदानेन प्रीयतां मे जनार्दनः॥६०॥
मन्त्रणाऽनेन विप्रेन्द्राः सुघोषस्तं द्विजेश्वरम्।
विष्णुबुद्ध्या समभ्यर्च्य तावतीं पृथिवीं ददौ॥६१॥
स भद्रमतये विप्रा धीमांस्तांयाचितांभुवम्। दत्तवान्हरिभक्तायश्रोत्रियायकुटुम्बिने॥६२॥
सुघोषो भूमिदानेन कोटिवंशसमन्वितः। प्रपेदे विष्णुभवनं यत्र गत्वान शोचति॥६३॥

विप्रो भद्रमतिश्चाऽपि पुत्रदारसमन्वितः। गतो वेङ्कटशैलेन्द्रं सुरासुरनमस्कृतम्॥६४॥
गन्धर्वयक्षशैलादिसेवितं मेरुपुत्रकम्। वैकुण्ठादागतं दिव्यं क्रीडाचलमनुत्तमम्॥६५॥
तत्र स्वामिसरस्तोये निर्मले पावने शुभे। दारपुत्रादिसंयुक्तः स्नात्वा सङ्कल्पपूर्वकम्॥६६॥
तत्पश्चिमतटे श्वेतसूकरं वसुधाधरम्। नत्वा तत्र विधानेन श्रीनिवासालयं गतः॥६७॥

तदनन्तर धर्मतत्पर सुघोष ने भद्रमति की पूजा किया। महामति सुघोष ने भी "पृथिवी वैष्णवी" इत्यादि मन्त्र का पाठ करते हुये उनको पांच हाथ लंबी तथा पांच हाथ चौड़ी भूमि का दान भी किया। हे विप्रेन्द्रगण! धीमान् सुघोष ने द्विजप्रवर भद्रमति की पूजा उनमें विष्णुबुद्धि से किया था। तदनन्तर भूमिदान किया। तत्पश्चात् सुघोष ने विष्णुभक्त श्रोत्रिय तथा कुटुम्ब के भरण-पोषण में तत्पर भद्रमति को जो भूमिदान किया था, उसके पुण्य से उन्होंने अपने करोड़ों वंशजों के साथ शोकरहित विष्णुलोक का लाभ किया। तत्पश्चात् अपने पुत्रों तथा स्त्रियों के साथ विप्र भद्रमति भी सुरासुरगण द्वारा नमस्कृत शैलेन्द्र वेंकटाचल पहुंचे। यह पर्वतराज गन्धर्व यक्ष तथा अन्य पर्वतों द्वारा सेवित था। यह मेरुपर्वत का पुत्र था। यह दिव्य क्रीड़ाचल विष्णुलोक वैकुण्ठ से यहां पहुंचा था। विप्र भद्रमति ने पत्नियों तथा पुत्रों के साथ वहां स्वामितीर्थ के पुण्यजल में संकल्प के साथ स्नान किया तथा स्वामितीर्थ के पश्चिम तट स्थित धरणी तथा श्वेत वाराह मूर्त्ति को विधिवत् प्रणाम किया। तदनन्तर उन सभी लोगों ने श्रीनिवास स्थल के लिये प्रस्थान किया।।५९-६७।।

तत्र ब्रह्मादिदेवैश्चसेवितं वेङ्कटेश्वरम्। दृष्टवान्सह पुत्राद्यैर्विष्णुभक्तो महामतिः॥६८॥
भक्त्या प्रणम्य देवेशं श्रीनिवासं कृपानिधिम्। पुत्रदारादिसंयुक्तः पापनाशनमाययौ॥६९॥
तत्र स्नात्वाविधानेनकृतधर्मादिसत्क्रियः। कस्मैचिद्विष्णुभक्तायश्रोत्रियायमहामतिः॥७०॥
विष्णुबुद्ध्या स प्रददौ भूदानं मोक्षदं शुभम्॥७१॥
तदा प्रादुरभूद्देवः शङ्खचक्रगदाधरः॥७२॥
विनतानन्दनारूढो वनमालाविभूषितः। पापनाशस्य तीरे तु भूदानस्य प्रभावतः॥७३॥
तदा भद्रमतिः सौम्यः स्तोतुं समुपक्रमे॥७४॥

विष्णु के भक्त भद्रमति ब्राह्मण ने स्त्री-पुत्र के साथ ब्रह्मादि देवगण सेवित वेंकटेश्वर का दर्शन किया तथा भक्तिभावपूर्वक दयानिधि देवेश श्रीनिवास को प्रणाम करके पापनाशन तीर्थ गमन किया। तत्पश्चात् महामति भद्रमति ने पापनाशन तीर्थ में सविधि स्नान तथा धार्मिक क्रिया का अनुष्ठान करके एक श्रोत्रिय विष्णुभक्त को विष्णु मानकर मोक्षप्रद पुण्यभूमिदान सम्पन्न भी किया। पापनाशनतीर्थ के तट पर उनका भूमिदान सविधि हो जाते ही दानप्रभाव से शंखचक्रगदाधारी वनमाला भूषित श्रीनिवास विष्णुदेव विनतापुत्र गरुड़ पर सवार वहां आविर्भूत हो गये। विष्णु का आविर्भाव होने पर सौम्यदर्शन भद्रमति भगवान् की स्तुति करने लगे।।६८-७४।।

नमोनमस्तेऽखिलकारणाय नमो नमस्तेऽखिलपालकाय।
नमोनमस्तेऽमरनायकाय नमोनमो दैत्यविमर्दनाय॥७५॥
नमोनमो भक्तजनप्रियाय नमोनमः पापविदारणाय।
नमोनमो दुर्जननाशकाय नमोऽस्तु तस्मै जगदीश्वराय॥७६॥

नमो नमः कारणवामनाय नारायणायाऽमितविक्रमाय।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय॥७७॥
नमः पयोराशिनिवासकाय नमोऽस्तु लक्ष्मीपतयेऽव्ययाय।
नमोऽस्तु सूर्याद्यमितप्रभाय नमोनमः पुण्यगतागताय॥७८॥
नमोनमोऽर्केन्दुविलोचनाय नमोऽस्तु ते यज्ञफलप्रदाय।
नमोऽस्तु यज्ञाङ्गविराजिताय नमोऽस्तु ते सज्जनवल्लभाय॥७९॥
नमोनमः कारणकारणाय नमोऽस्तु शब्दादिविवर्जिताय।
नमोऽस्तु तेऽभीष्टसुखप्रदाय नमोनमो भक्तमनोरमाय॥८०॥
नमोनमस्तेऽद्भुतकारणाय नमोऽस्तु ते मन्दरधारकाय।
नमोऽस्तु ते यज्ञवराहनाम्ने नमो हिरण्याक्षविदारकाय॥८१॥
नमोऽस्तु ते वामनरूपभाजे नमोऽस्तुते क्षत्रकुलान्तकाय।
नमोऽस्तु ते रावणमर्दनाय नमोऽस्तु ते नन्दसुताग्रजाय॥८२॥
नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते सुखदायिने। श्रितार्तिनाशिने तुभ्यं भूयोभूयो नमोनमः॥८३॥

भद्रमति कहते हैं—हे अखिललोक कारण! आपको प्रणाम, आपको प्रणाम! आप सर्वलोकपालक हैं आपको प्रणाम! हे अमरनायक! आपको पुनः-पुनः प्रणाम! आपने दैत्यों का मर्दन किया था, आप को पुनः-पुनः प्रणाम! आप भक्तजनप्रिय, पापविदारक, दुर्जननाशक, जगदीश्वर हैं। आपको प्रणाम! हे कारणवामन! अमितविक्रम नारायण! आपने श्री, शार्ङ्ग, चक्र, तलवार, गदा धारण किया है। आप पुरुषोत्तम को प्रणाम! हे अव्यक्त लक्ष्मीपति! आप दुग्धसागर में निवास करते हैं। आपको प्रणाम! आप सूर्य आदि की तरह अमितप्रभा से सम्पन्न हैं। आप ही पुण्य हैं। आप ही गत एवं आगत हैं। आपको प्रणाम!

दिवाकर तथा शशधर आप के नेत्र हैं। आप यज्ञफल प्रदाता हैं। समस्त यज्ञाङ्ग आपके अंगों में विराजित हैं। हे सज्जन वल्लभ! आपको प्रणाम! आप कारण के भी कारण तथा शब्दादि रहित हैं। आप भक्तों को मनोरम तथा अभीष्ट सुख देते हैं। आप भक्तों के अन्तःकरणरूप हैं। आपको अनेक प्रणाम! हे अद्भुतकारण! आपने मन्दराचल को (कूर्मरूपेण) धारण किया है। आपने हिरण्याक्ष का विनाश किया था। आपको प्रणाम! हे वामनरूपी! आप क्षत्रियान्तक हैं (परशुराम रूप से)। आपने रावण को मर्दित किया था। आप नन्दसुत गोविन्द के बड़े भाई (बलराम) हैं। आपको अनेक प्रणाम! आप सुखदाता, आश्रितों के दुःख का नाश करने वाले हैं। आपको अनेक प्रणाम!॥७५-८३॥

विप्रेण संस्तुतो देवो भगवान्भक्तवत्सलः।
वात्सल्येनाऽब्रवीद्वाक्यं श्रीनिवासोदयानिधिः॥८४॥
तात तुष्टोऽस्मि भद्रंतेस्तोत्रेणेमहताद्विज। सर्वभोगसमायुक्तः पुत्रपौत्रादिभियुतः॥८५॥
इहलोके सुखं प्राप्य देहान्ते मुक्तिमाप्नुहि। इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत॥८६॥

एवं वः कथितं विप्राः पापनाशनवैभवम्। तत्तीरेभूप्रदानस्यमाहात्म्यंचाऽपिवर्णितम्॥८७॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये पापविनाशनतीर्थे भूदानफलानुवर्णनंनाम विंशतितमोऽध्यायः।
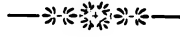
दयानिधि भक्तवत्सल भगवान् श्रीनिवास प्रभु भद्रमति ब्राह्मण के इस स्तव से स्तुत होकर वात्सल्यपूर्ण भाव से कहने लगे—"हे तात! तुम्हारे अत्युत्तम स्तव से मैं सन्तुष्ट हो गया। तुम्हारा मंगल हो। हे द्विज! तुम पुत्र-पौत्रादि के साथ इस लोक में नाना भोगों का भोग करो। देहान्तोपरान्त तुमको मुक्ति मिलेगी।" भगवान् यह वर प्रदान करके वहां से अन्तर्हित् हो गये। हे विप्रगण! मैंने पापनाशन तीर्थ की विभूति तथा उसके तट पर भूमिदान का फल आपसे कहा।।८४-८७।।

।।विंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

एकविंशोऽध्यायः

रामानुज द्विजवृत्तान्त, रामानुजकृत् स्तुति, भागवतगण का लक्षण वर्णन

श्रीसूत उवाच

भोभोस्तपोधनाःसर्वेनैमिषारण्यवासिनः। आकाशगङ्गातीर्थस्यमाहात्म्यंप्रवदाम्यहम्॥१॥
आकाशगङ्गानिकटे सर्वशास्त्रार्थपारगः। रामानुज इतिख्यातोविष्णुभक्तो जितेन्द्रियः॥२॥
तपश्चकार धर्मात्मावैखानसमतेस्थितः। ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्येस्थोविष्णुध्यानपरायणः॥३।
जपन्नष्टाक्षरं मन्त्रं ध्यायन्हृदि जनार्दनम्। वर्षास्वाकाशगो नित्यं हेमन्तेषु जलेशयः॥४॥
सर्वभूतहितोदान्तःसर्वद्वन्द्वविवर्जितः। वर्षाणिकतिचित्सोऽयंजीर्णपर्णाशनोभवत्॥५॥
कञ्चित्कालं जलाहारो वायुभक्षः कियत्समाः॥६॥
अथ तत्तपसा तुष्टोभगवानन्भक्तवत्सलः। प्रत्यक्षतामगात्तस्य शङ्खचक्रगदाधरः॥७॥
विकचाम्बुजपत्राक्षः सूर्यकोटिसमप्रभः। विनतानन्दनाऽऽरूढश्छत्रचामरशोभितः॥८॥
हारकेयूरमुकुटः कटाकादिविभूषितः। विष्वक्सेनसुनन्दादिकिङ्करैः परिवारितः॥९॥

सूत जी कहते हैं—हे नैमिषारण्यवासी तपोधन ऋषियों! अब आकाशगंगा माहात्म्य कहता हूं। इस आकाशगंगा के निकट विष्णुभक्त जितेन्द्रिय सर्वशास्त्रज्ञाता धर्मात्मा रामानुज नामक द्विज वैखानस तपस्वियों के साथ तप कर रहे थे। विष्णु ध्यान तत्पर रामानुज ग्रीष्म में पंचाग्नि में, वर्षाकाल में खुले आकाश के नीचे,

हेमन्त में जल में शयन करके जनार्दन का हृदय में ध्यान करते अष्टाक्षर मन्त्रजप करने लगे। समस्त प्राणीगण के हित में रत, सर्वद्वन्द्वरहित दान्त द्विज कभी जीर्ण पत्तों को खाकर रहते थे, तो कभी उन्होंने कुछ दिन जलाहार करके व्यतीत किया। कुछ वर्ष उन्होंने वायुभक्षण करके तप किया। तदनन्तर भगवान् भक्तवत्सल शंख-चक्र-गदाधारी विष्णुदेव उनके ऊपर प्रसन्न हो गये। उन्होंने रामानुज को दर्शन प्रदान किया। करोड़ों सूर्य के समान प्रभावान् गरुड़वाहन पीतवस्त्र धारण करने वाले विष्णुदेव के नेत्र विकसित पद्मपत्र के समान थे। वे छत्र तथा चामर द्वारा शोभित हो रहे थे। उनके अंग हार, केयूर, मुकुट तथा कटक आदि आभूषणों से भूषित थे। विष्वक्सेन, सुनंद आदि गणों ने उनको चारों ओर से घेर रक्खा था।।१-९।।

वीणावेणुमृदङ्गादिवादकैर्नारदादिभिः। गीयमानः सुविभवःपीताम्बरविराजितः॥१०॥
लक्ष्मीविराजितोरस्को नीलमेघनिभच्छविः। सनकादिमहायोगिसेवितः पार्श्वयोर्द्वयोः॥११॥
मन्दस्मितेन सकलं मोहयन्भुवनत्रयम्। स्वभासा मानयन्सर्वादिशोदश विराजयन्॥१२॥
सुभक्तसुलभो देवो वेङ्कटेशो दयोनिधिः। पुनः सन्निदधे तस्य रामानुजमहामुनेः॥१३॥
आविर्भूतं तदा दृष्ट्वा श्रीनिवासं कृपानिधिम्। पीताम्बरधरं देवं तुष्टिं प्राप महामुनिः॥१४॥
भक्त्या परमया युक्तस्तुष्टाव जगदीश्वरम्॥१५॥

नारद आदि ऋषिगण वीणा-वेणु-मृदंग आदि बजा रहे थे तथा उनकी विभूति से सम्बन्धित गीतों का गायन कर रहे थे। इन नील मेघवत् द्युतिवाले विष्णु के वक्ष पर रमादेवी विराजमान थी। सनक आदि महायोगी उनके दोनों बगल में खड़े होकर उनकी सेवा कर रहे थे। ये थे भक्तसुलभ दयानिधि वेंकटेश्वर स्वामी। उन्होंने अपनी मन्द मुस्कान से भुवनत्रय को मोहित करके अपनी कान्ति से दिगन्त को उद्भासित किया। तदनन्तर मुनि रामानुज के निकट आये। रामानुज ने कृपानिधि पीतवस्त्रधारी श्रीनिवास को आविर्भूत देखा। वे सन्तुष्ट हो गये। तदनन्तर वे अत्यन्त भक्तिभाव के साथ जनार्दन का स्तव करने लगे।।१०-१५।।

रामानुज उवाच

नमो देवाधिदेवाय शङ्खचक्रगदाभृते। नमो नित्याय शुद्धाय वेङ्कटेशाय ते नमः॥१६॥
नमो भक्तार्तिहन्त्रेते हव्यकव्यस्वरूपिणे। नमस्त्रिमूर्तयेतुभ्यं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे॥१७॥
नमः परेशाय नमोऽतिभूम्ने नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये विधात्रे।
नमोऽस्तु सूर्येन्दुविलोचनाय नमो विरिञ्चाद्यभिन्दिताय॥१८॥
यो नाम जात्यादिविकल्पहीनः समस्तदोषैरपि वर्जितो यः।
समस्तसंसारभयापहारिणे तस्मै नमो दैत्यविनाशकाय॥१९॥
वेदान्तवेद्याय रमेश्वराय वृषादिवासाय विधातृपित्रे।
नमोनमः सर्वजनार्तिहारिणे नारायणायाऽमितविक्रमाय॥२०॥
नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय शार्ङ्गिणे। भूयोभूयो नमस्तुभ्यं वेङ्कटाद्रिनिवासिने॥२१॥

रामानुज कहते हैं—हे देवाधिदेव! आपने शंख-चक्र-गदा धारण किया है। आपको प्रणाम! हे वेंकटेश!

आप नित्य शुद्ध हैं, आपको प्रणाम! आप भक्तों की पीड़ा हरण करने वाले हव्यकव्य रूपी हैं। आप ही ब्रह्मा-विष्णु तथा शिव रूप मूर्त्तित्रय में आविर्भूत होकर सृष्टि-स्थिति तथा संहार कार्य सम्पन्न करते हैं। आपको प्रणाम! हे परेश! आप ही प्रधान-लक्ष्मीपति-विधाता हैं। आपको प्रणाम! वे विभो! सूर्य तथा चन्द्रमा आपके दोनों नेत्र हैं। ब्रह्मादि देवता आपकी वन्दना करते हैं। आपको प्रणाम! जिनके नाम तथा जाति आदि की कल्पना नहीं की जा सकती, जो सर्व दोषरहित हैं तथा समस्त संसार के भय को दूर करने वाले हैं, मैं उन दैत्यगण का मर्दन करने वाले देवदेव विष्णु को प्रणाम करता हूं। जो वेदान्तवेद्य रमापति हैं, जो वृषादि वाहन हैं, जो ब्रह्मा के भी जनक हैं, मैं उन सर्वजन पीड़ाहारी अमित विक्रम नारायण को प्रणाम करता हूं। हे शार्ङ्गिन्! आपको प्रणाम! हे वेंकटशैलवासी! आपको बारम्बार प्रणाम!।।१६-२१।।

इतिस्तुत्वावेङ्कटेशंश्रीनिवासंजगद्गुरुम्। रामानुजोमुनिस्तूष्णीमास्तेविप्रवरोत्तमः।।२२।।
श्रुत्वा स्तुतिं श्रुतिसुखां स्तुतस्तस्य महात्मनः। अवापपरमंतोषं वेङ्कटाचलनायकः।।२३।।
अथालिङ्ग्य मुनिं शौनिश्चतुर्भिर्बाहुभिस्तदा। बभाषे प्रीतिसंयुक्तोवरंवैव्रियतामिति।।२४।।
तुष्टोऽस्मि तपसा तेऽद्यस्तोत्रेणाऽपिमहामुने। नमस्कारेणचप्रीतोवरदोऽहंतवागतः।।२५।।

तत्पश्चात् विप्रश्रेष्ठ मुनि रामानुज जगद्गुरु वेंकटाचलेश्वर श्रीनिवास का यह स्तव करके मौन हो गये। वेंकटाचलनायक शौरि महात्मा रामानुजकृत इस कानों को मनोरम लगने वाले स्तव का श्रवण करके अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उन्होंने अपनी चारों बाहु से रामानुज का आलिंगन किया तथा प्रेमपूर्वक कहने लगे—"हे महामुनि! वर मांगो! मैं तुम्हारी तपस्या, स्तोत्र तथा नमस्कार से प्रसन्न होकर तुमको वर देने आया हूं।।२२-२५।।

रामानुज उवाच

नारायण रमानाथ श्रीनिवास जगन्मय। जनार्दन जगद्धाम गोविन्द नरकान्तक।।२६।।
त्वद्दर्शनात्कृतार्थोऽस्मिवेङ्कटाद्रिशिरोमणे ! ।
त्वां नमस्यन्तिं धर्मिष्ठा यतस्त्वं धर्मपालकः।।२७।।
यं न वेत्ति भवोब्रह्मायंनवेत्तित्रयीतथा। त्वांवेद्मिपरमात्मानं किमस्मादधिकं परम्।।२८।।
योगिनोयं नपश्यन्तियंनपश्यन्तिकर्मठाः। पश्यामिपरमात्मानंकिमस्मादधिकम्परम्।।२९।।
एतेन च कृतार्थोऽस्मि वेङ्कटेश जगत्पते !। यन्नामस्मृतिमात्रेण महापातकिनोऽपिच।।३०।।
मुक्तिं प्रयान्ति मनुजास्तं पश्यामि जनार्दनम्। त्वत्पादपद्मयुगले निश्चलाभक्तिरस्तुमे।।३१।।

रामानुज कहते हैं—हे नारायण! आप रमापति हैं। आप श्रीनिवास तथा जगन्मय हैं। हे जनार्दन, जगद्धाम, गोविन्द, नरकान्तक! आपका दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हो गया। इससे अधिक और है क्या जिसकी कामना की जाये? हे वेंकटेश्वर! मैं कृतार्थ हो गया। हे जगत्पति! महापातकी मानव भी जिनके नाम के स्मरणमात्र से मुक्तिलाभ करते हैं, मैंने उन जनार्दन का प्रत्यक्ष दर्शन पा लिया। मुझे अन्य कुछ नहीं चाहिये। आपके चरणकमल में मेरी निश्चला भक्ति हो जाये।।२६-३१।।

श्रीभगवानुवाच

मयि भक्तिर्दृढा तेऽस्तु रामानुजमहामते !। शृणु चाऽप्यपरंवाक्यमुच्यतेते मया द्विज॥३२॥

मेषसङ्क्रमणेभानोश्चित्रानक्षत्रसंयुते। पौर्णमास्यां च गङ्गायां स्नानंकुर्वन्ति येजनाः॥३३॥

मेषसंक्रमणेभानोश्चित्रानक्षत्रसंयुते। पौर्णमास्यां च गङ्गायां स्नानं कुर्वन्ति ये जनाः॥३४॥

ते यान्ति परमं धाम पुनरावृत्तिवर्जितम्। वियद्गङ्गासमीपे त्वं वस रामानुज ! द्विज !॥३५॥

एतत्प्रारब्धदेहान्ते यत्स्वरूपमवाप्स्यसि। बहुना किमिहोक्तेन वियद्गङ्गाजले शुभे॥३६॥

स्नान्तिये वै जनाः सर्वेते वै भागवतोत्तमाः।
भवन्तिमुनिशार्दूल ! न त्रिकार्याविचारणा॥३७॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे महामति! मेरे प्रति तुम्हारी भक्ति दृढ़ हो जाये। हे रामानुज! मेरी एक और बात सुनो। हे द्विज! चित्रानक्षत्र युक्त चैत्र संक्रान्ति में तथा पूर्णिमा के दिन जो आकाशगंगा में स्नान करेंगे, वे पुनर्जन्म रहित होकर मेरे नित्यधाम प्रस्थान करेंगे। हे द्विज! तुम आकाशगंगा के पास निवास करो। हे रामानुज! इस प्रारब्धजनित देहान्त के पश्चात् तुमको मेरा सारूप्य प्राप्त होगा और अधिक क्या कहूं। जो मानव इस पुण्यमय आकाशगंगा जल में स्नान करेंगे, वे सभी भागवतों में भी उत्तम हैं। हे मुनि शार्दूल! इसमें कोई विचार-वितर्क न करें।।३२-३७।।

रामानुज उवाच

किंलक्षणा भागवता ज्ञायन्ते केन कर्मणा। एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कौतूहलपरो यतः॥३८॥

रामानुज कहते हैं—हे भगवान्! भागवतों का लक्षण क्या है? किस कर्म को करने वाले को मनुष्य भागवत नाम से पुकारते हैं? मुझे इस सम्बन्ध में अतीव कुतूहल है।।३८।।

श्रीवेङ्कटेश उवाच

लक्ष्म भागवतानां तु शृणुष्व मुनिसत्तम !।
वक्तुं तेषां प्रभावं तु शक्यते नाऽब्दकोटिभिः॥३९॥

येहिताःसर्वजन्तूनांगतासूयाविमत्सराः। ज्ञानिनोनिःस्पृहाःशान्तास्तेवैभागवतोत्तमाः॥४०॥

कर्मणा मनसा वाचा परपीडां न कुर्वते। अपरिग्रहशीलाश्च ते वै भागवतोत्तमाः॥४१॥

भगवान् वेंकटपति कहते हैं—हे मुनिप्रवर! भागवतों का लक्षण सुनो। इनकी विभूति का वर्णन करोड़ों वर्ष में भी नहीं हो सकता। जो समस्त प्राणियों के हित में लगे हैं, जो असूया-मत्सर तथा स्पृहा त्याग कर चुके हैं तथा जो ज्ञानी तथा शान्त हैं, वे ही भागवतोत्तम हैं। जो कर्म, मन, वाक्य से भी परपीड़ा नहीं देते, जिन्होंने प्रतिग्रह (दान लेना) का त्याग कर दिया है, वे ही भागवतोत्तम हैं।।३९-४१।।

सत्कथाश्रवणे येषां वर्तते सात्त्विकी मतिः। मत्पादाम्बुजभक्तायेतेवैभागवतोत्तमाः॥४२॥

मातापित्रोश्च शुश्रूषां कुर्वते ये नरोत्तमाः। ये तु देवार्चनरता ये तु तत्साधका नराः।
पूजां दृष्टा तु मोदन्ते ते वै भागवतोत्तमाः॥४३॥

वर्णिनां च यतीनां च परिचर्यापराश्च ये। परनिन्दामकुर्वाणास्ते वै भागवतोत्तमाः॥४४॥
सर्वेषां हितवाक्यानि ये वदन्ति नरोत्तमाः। येगुणग्राहिणो लोकेतेवैभागवतोत्तमाः॥४५॥
आत्मवत्सर्वभूतानि ये पश्यन्ति नरोत्तमाः। तुल्याःशत्रुषु मित्रेषु तेवैभागवताःस्मृताः॥४६॥
धर्मशास्त्रप्रवक्तारः सत्यवाक्यरताश्च ये। तेषां शुश्रूषवो ये च ते वै भागवतोत्तमाः॥४७॥

जिनकी सात्विकी वृत्ति सदैव सत्कथा सुनने में लगी रहती है, जो मेरे चरणकमल के भक्त हैं, वे ही भागवतोत्तम हैं। जो नरश्रेष्ठ माता-पिता की सेवा करते हैं, जो देवार्चन में व्यस्त रहते हैं तथा जिनका चित्त देवपूजक साधकों तथा देवपूजा को देखकर प्रसन्न हो जाता है, वे ही भागवतोत्तम हैं। जो वर्णाश्रम का पालन करने वाले तथा यतिगण की सेवा करते हैं, पराई निन्दा नहीं करते, वे ही भागवतोत्तम हैं। जो नरश्रेष्ठगण समस्त प्राणियों के प्रति हितवाक्य का प्रयोग करते हैं तथा प्राणियों का गुण ग्रहण करते हैं, वे ही भागवतोत्तम हैं। जो श्रेष्ठमानव समस्त प्राणीगण को स्वात्मा के समान देखते हैं, शत्रु-मित्र के प्रति समान व्यवहार करते हैं। वे ही भागवतोत्तम हैं। जो धर्मशास्त्रों के वक्ता तथा सत्यवाक्य में रत रहते हैं, वे तथा ऐसे भक्त जो इन भक्तों की सुश्रूषा करते हैं, वे सभी भागवतोत्तम हैं।।४२-४७।।

व्याकुर्वन्ति पुराणानि तानि शृण्वन्ति ये तथा। तद्भक्तरि चभक्तायेतेवैभागवतोत्तमाः॥४८॥
ये गोब्राह्मणशुश्रूषां कुर्वन्ति सततं नराः। तीर्थयात्रापरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः॥४९॥
अन्येषामुदयं दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति मानवाः। हरिनामपर ये च ते वै भागवतोत्तमाः॥५०॥

जो पौराणिक व्याख्या करते हैं, ऐसे जो इस व्याख्या का श्रवण करते हैं, जो व्याख्याता तथा इन श्रोतागण के प्रतिभक्तिवान् हैं, वे भी भागवतोत्तम ही हैं। जो मानव सदा गो-ब्राह्मण की सुश्रूषा में रत रहते हैं तथा तीर्थयात्रा परायण हैं, वे भागवतोत्तम हैं। जो अन्य का अभ्युदय देखकर आनन्दित होते हैं तथा जो हरिनाम परायण हैं, वे सभी भागवतोत्तम हैं।।४८-५०।।

आरामारोपणपरतास्तटाकपरिरक्षकाः। कासारकूपकर्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः॥५१॥
ये वै तटाककर्तारो देवसद्मानि कुर्वते। गायत्रीनिरता ये च ते वै भागवतोत्तमाः॥५२॥
येऽभिनन्दन्ति नामानि हरेःश्रुत्वाऽतिहर्षिताः। रोमाञ्चितशरीराश्चतेवैभागवतोत्तमाः॥५३॥
तुलसीकाननं दृष्ट्वा ये नमस्कुर्वते नराः। तत्काष्ठाङ्कितकर्णा ये ते वै भागवतोत्तमाः॥५४॥
तुलसीगन्धमाघ्राय सन्तोषं कुर्वते तु ये। तन्मूलमृद्धरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः॥५५॥
स्वाश्रमाचारनिरतास्तथैवाऽतिथिपूजकाः। ये च वेदार्थवक्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः॥५६॥
विदितानि च शास्त्राणि परार्थंप्रवदन्तिये। सर्वत्र गुणभाजो ये ते वै भागवतोत्तमाः॥५७॥

जो उद्यान की प्रतिष्ठा कराते हैं, जो पुष्करिणी की देखभाल करते हैं, सरोवर तथा कूप का खनन कराकर तैयार करते हैं, वे सभी भागवतोत्तम हैं। जो पुष्करिणी तथा देवालय प्रतिष्ठापना करते हैं, जो गायत्रीजप निरत हैं, वे भागवतोत्तम हैं। जो हरि नाम सुनकर प्रसन्न होते हैं तथा उससे रोमांचित देह होकर आनन्दित होते हैं, वे सभी भागवतोत्तम हैं। जो नर तुलसी कानन देखकर प्रणाम करता है, कण्ठ में तुलसी काष्ठ धारण करता है, वह भागवतोत्तम हैं। जो तुलसी की गंध सूंघकर सन्तुष्ट होते हैं तथा तुलसी की जड़ की मिट्टी धारण करते

हैं, वे भागवतोत्तम हैं। जो स्व-स्व आश्रम निरत हैं, अतिथिपूजक तथा वेदार्थवक्ता हैं, वे भागवतोत्तम हैं। जो शास्त्र का अर्थ जान कर अन्य के लिये भी उसका प्रयोग (व्यवहार) करते हैं, जो सदा अपने गुणों के कारण आदर पाते हैं, वे भागवतोत्तम हैं।।५१-५७।।

पानीयदाननिरता ह्यन्नदानरताश्च ये। एकादशीव्रतपरास्ते वै भागवतोत्तमाः।।५८।।
गोदाननिरता ये च कन्यादानरताश्च ये। मदर्थं कर्मकर्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः।।५९।।
मन्मानसाश्च मद्भक्ता ये मद्भजनलोलुपाः। मन्नामस्मरणासक्तास्ते वै भागवतोत्तमाः।।६०।।
बहुनाऽत्र किमुक्तेन संक्षेपात्ते ब्रवीम्यहम्। सद्गुणायप्रवर्तन्ते ते वै भागवतोत्तमाः।।६१।।
एते भागवता विप्राः केचिदत्र प्रकीर्तिताः।
ममाऽपि गदितुं शक्या नाऽब्दकोटिशतैरपि।।६२।।
रामानुज! महाभाग! मद्भक्तानां च लक्षणम्।
मयिभक्तेत्वयिप्रीत्यायुक्तंकिलमहामते ।।६३।।

श्रीसूत उवाच

एवं वः कथितं विप्राः शौनकाद्यामहौजसः। वृषाद्रौचवियद्गङ्गातीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्।।६४।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये आकाशगङ्गामाहात्म्यरामानुजविप्रव्रतचर्यादि-वर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः।।२१।।

जो अन्न तथा पानी के दान में निरत रहते हैं, जो परम श्रद्धा के साथ एकादशी व्रत करते हैं, वे भागवतोत्तम हैं। जो गोदान तथा कन्यादान करते रहते हैं तथा मेरे उद्देश्य से कार्य का आचरण करते हैं, वे भागवतोत्तम हैं। जिनका चित्त सदा मुझमें ही निरत रहता है, जो मेरे भक्तों तथा मेरी पूजा के लोलुप हैं, मेरे नाम स्मरणार्थ आसक्त हैं, वे ही भागवतोत्तम हैं। इस विषय में और अधिक क्या कहा जाये? संक्षेप में तुमसे कहता हूं। जो सतत् मेरे गुणकीर्त्तन में प्रवृत्त होते रहते हैं, वे ही भागवतोत्तम हैं। हे रामानुज! मैंने जिन सब भागवत् विप्रों का लक्षण कहा है, इसके अतिरिक्त भी और भी लक्षणों से युक्त भागवतगण हैं। मैं शतकोटि वर्षों में भी उसका वर्णन नहीं कर सकता। हे महाभाग! मेरे भक्तों का जो लक्षण है, वह सब तुम्हारे अन्दर विद्यमान है। तुम यथार्थतः मेरे भक्त हो। हे महामति! मैं तुमसे प्रसन्न हो गया।।५८-६३।।

सूत जी कहते हैं—हे महातेजस्वी शौनकादि विप्रगण! आप से मैंने वृषशैल (वेंकटाचल पर्वत) स्थित आकाशगंगा माहात्म्य कहा।।६४।।

।।एकविंश अध्याय समाप्त।।

द्वाविंशोऽध्यायः

दानहेतु सत्पात्र वर्णन, पुण्यशील को गर्दभ मुख प्राप्ति

ऋषय ऊचुः

भगवन्सूत सर्वज्ञ वेदवेदान्तकोविद !। दानानि कस्मै देयानि दानकालश्च कीदृशः॥१॥
कश्च तत्प्रतिगृह्णयात्सर्वं नो वक्तुमर्हसि॥२॥

ऋषिगण कहते हैं—हे सूत! आप सर्वज्ञ तथा वेद-वेदान्त कोविद हैं। हे भगवान्! किसे दान करना चाहिये? दानफल क्या है? कौन व्यक्ति दान ग्रहण करे? यह सब आप कहिये।।१-२।।

श्रीसूत उवाच

महापुण्यप्रदे क्षेत्रे वेङ्कटाख्ये द्विजोत्तमाः। सर्वेषामेव वर्णानां ब्राह्मणः परमो गुरुः॥३॥
तस्मै दानानि देयानिस तारयति पण्डितः। ब्राह्मणःप्रतिगृह्णीयाद्वर्जयित्वात्ववर्णकम्॥४॥
षण्ढस्य पुत्रहीनस्य दम्भाचाररतस्य च। वेदविद्वेषिणश्चैव द्विजविद्वेषिणस्तथा॥५॥
स्वकर्मत्यागिनश्चाऽपि दत्तं भवति निष्फलम्। परदाररतस्याऽपि परद्रव्यरतस्य च॥६॥
गायकस्याऽपि विप्रस्य दत्तं भवति निष्फलम्। असूयाविष्टमनसःकृतघ्नस्यचमायिनः॥७॥
ज्ञानशून्यस्यविप्रेस्यदत्तंभवतिनिष्फलम्। नित्यंयाच्ञापरस्यापिहिंसकस्याबलस्यच॥८॥
नामविक्रयिणश्चैव वेदविक्रयिणस्तथा। स्मृतिविक्रयिणश्चैव धर्मविक्रयिणस्तथा॥९॥
परोपतापशीलस्य दत्तं भवति निष्फलम्। ये केचित्पापनिरता निन्दिताःसुकृतैस्तथा॥१०॥
न तेभ्यः प्रतिगृह्णीयान्न देयं वाऽपिकिञ्चन। सत्कर्मनिरतायैवश्रोत्रियायाऽऽहिताग्नये॥११॥
वृत्तिहीनाय वै देयं दरिद्रायकुटुम्बिने। देवपूजासु सक्ताय पुराणकथकाय च॥१२॥
देयं प्रयत्नतो विप्रा दरिद्रस्य विशेषतः। बहुना किमिहोक्तेन श्रृणुध्वं द्विजसत्तमाः॥१३॥

सूत जी कहते हैं—हे द्विजश्रेष्ठगण! ब्राह्मण ही सभी वर्णों का गुरु है। जो बुद्धिमान मनुष्य वेंकटपर्वत पर पुण्यक्षेत्र में ब्राह्मण को दान करता है, वह मुक्त हो जाता है। ब्राह्मण हीनवर्णों को छोड़कर सभी का दान ले सकता है। नपुंसक, पुत्रहीन, दांभिक, वेदविद्वेषी, द्विजविद्वेषी, अपने कर्म का त्यागी—इनका दान निष्फल होता है। जो परस्त्री तथा परद्रव्यहरण रत हैं, जो ब्राह्मण होकर भी गीत द्वारा जीविकोपार्जन करता है, उसका दान व्यर्थ है।-जो ब्राह्मण असूया (ईर्ष्या) युक्त, कृतघ्न, मायावी तथा ज्ञानशून्य है, उसको दिया दान व्यर्थ है। जो नित्य याचना करता रहता है, नित्य दुर्बलों की हिंसा करता है, जो नाम (मन्त्र), वेद, स्मृति तथा धर्मविक्रय करता है, जिसका स्वभाव ही परपीड़न है, उसको प्रदत्त दान निष्फल हो जाता है। जो पापकर्म में लगा तथा साधुगण से निन्दित है न तो उसे दान देना चाहिये साथ ही उससे दान नहीं लेना चाहिये। जो सत्कर्म में निरत श्रोत्रिय तथा आहिताग्नि है, वृत्तिहीन तथा दरिद्र है, कुटुम्ब का पालन करने वाला देवपूजा तत्पर पुराणवक्ता तथा विशेषतः गरीब है, हे विप्रों! ऐसे ब्राह्मण को प्रयत्नपूर्वक दान प्रदान करें। हे द्विजश्रेष्ठ! आप सुने और अधिक कहने से क्या लाभ?।।३-१३।।

सर्वेषां ब्राह्मणानां च प्रदातुं शक्यते सदा। वन्ध्याभर्त्रे प्रदत्तञ्चेद्रासभो जायते नरः॥१४॥
नास्तिकं भिन्नमर्यादं पुत्रहीनं जडं खलम्। स्तेयिनं कितवं चैवकदाचिन्नाभिवादयेत्॥१५॥
पाषण्डं पतितं व्रात्यं वेदविक्रयिणं तथा। कृतघ्नं पापनिरतं कदाचिन्नाऽभिवादयेत्॥१६॥
तथा स्नानं प्रकुर्वन्तं समित्पुष्पकरं तथा। उदपात्रधरञ्चैव भुञ्जन्तं नाऽभिवादयेत्॥१७॥

विवादशालिनं चण्डं वमन्तं जनमध्यगम्।
भिक्षान्नधारिणं चैवशयानं नाऽभिवादयेत्॥१८॥
वन्ध्याञ्च पुष्पिणीं जारां सूतिकां गर्भपातिनीम्।
व्रतघ्नीञ्च तथा चण्डीं कदाचिन्नाऽभिवादयेत्॥१९॥

सभायां यज्ञशालायां देवतायतनेष्वपि। प्रत्येकं तु नमस्कारो हन्ति पुण्यंपुरातनम्॥२०॥

श्राद्धव्रते नियुक्तञ्च देवताऽभ्यर्चकं तथा।
यज्ञञ्च तर्पणञ्चैव कुर्वन्तं नाऽभिवादयेत्॥२१॥

कुर्वते वन्दनं यस्तु न कुर्यात्प्रतिवन्दनम्। नाभिवाद्यः स विज्ञेयोयथाशूद्रस्तथैवच॥२२॥

तस्मात्सर्वेषु कालेषु बुद्धिमान्ब्राह्मणोत्तमः।
वन्ध्यापतिं द्विजं क्रूरं कदाचिन्नाऽभिवादयेत्॥२३॥

ब्राह्मणों को ही सतत् दान देना चाहिये। जिसकी पत्नी वन्ध्या है, उसे दान देने से मनुष्य गर्दभ योनि प्राप्त करता है। जो नास्तिक, मर्यादाभंग करने वाला, पुत्ररहित, जड़, खल, चोर तथा धूर्त्त है, इनका तो कभी अभिवादन भी नहीं करे। जो स्नान करते हैं, जिनके हाथों में समिध्, कुश किंवा पुष्प रहता है, जिनके हाथों में जलपात्र है, जो भोजन कर रहे हैं इनका भी अभिवादन न करें। कलही, क्रोधी, वमन करने वाला, जल में स्थित, भिक्षान्न लिये हुये तथा शयान (सुप्त) व्यक्ति का अभिवादन न करें। वन्ध्या, रजस्वला, असती, नवप्रसूता, गर्भिणी, व्रत तोड़ने वाली तथा क्रोधी स्त्री का कदापि अभिवादन नहीं करना चाहिये। सभा में, यागगृह में, किंवा देवालयस्थ व्यक्ति में से प्रत्येक को प्रणाम करने से उस प्रणाम करने वाले का पूर्वार्जित पुण्य नष्ट हो जाता है। जो श्राद्ध कृत्य कर रहे हैं, देवपूजा, यज्ञ अथवा तर्पण कर रहे हैं, उनका भी अभिवादन न करें। जो व्यक्ति प्रणत व्यक्ति का प्रत्यभिवादन नहीं करता, जो शूद्रवत् है उसका भी अभिवादन विहित नहीं है। अतः सभी काल में बुद्धिमान श्रेष्ठ ब्राह्मण वन्ध्यापति तथा क्रूर ब्राह्मण का कदापि अभिवादन न करें।।१४-२३।।

सूत उवाच

अत्रेतिहासं वक्ष्यामि पुण्यशीलस्य धीमतः। सनत्कुमारमुनये नारदेन प्रभाषितम्॥२४॥
तद्वक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठाः! शृणुध्वं सुसमाहिताः। पुरा गोदावरीतीरे सर्वधर्मपरायणः॥२५॥
पुण्यशीलो द्विजवरः सत्यवादी जितेन्द्रियः। दयावान्सर्वभूतेषुदेवाग्निद्विजपूजकः॥२६॥
कर्मणा जन्मशुद्धश्च मातापितृहिते रतः। गुरुभक्तिसदाक्षिण्यो ब्रह्मण्यःसाधुसम्मतः॥२७॥

एतादृशगुणैर्युक्तः पुण्यशीलस्य धीमतः॥२८॥
गृहं सम्प्राप्तवान्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः। प्रार्थितः पुण्यशालेन पितृश्राद्धेऽतिवेगतः॥२९॥
तं विप्रं श्रोत्रियं शान्तं पितृश्राद्धे नियोज्य वै।
श्राद्धं चकार धर्मात्मा प्रत्याब्दिकमनुत्तमम्॥३०॥

सूत जी कहते हैं—इस विषय में बुद्धिमान ब्राह्मण पुण्यशील का एक पुरातन इतिहास कहता हूं। इसे देवर्षि नारद ने सनत्कुमार से कहा था। हे मुनिप्रवरगण! मैं उस इतिहास का वर्णन करता हूं। आप सभी समाहित चित्त से श्रवण करें। पूर्वयुग में गोदावरी तीर पर पुण्यशील नामक सत्यवक्ता इन्द्रियजित् एक द्विजवर निवास करते थे। वे सभी भूतसमूह के प्रति सदय थे तथा सदा देव-द्विज तथा अग्नि की पूजा करते थे। उन्होंने सत्कर्म से यह शुद्ध जन्म प्राप्त किया था। वे पिता-माता का हित करने में लगे रहते थे। वे गुरुजन के प्रति भक्तिमान्, दाक्षिण्य (शिष्ट) ब्राह्मण्य सम्पन्न तथा साधुसम्मत थे। इन सब गुण से युक्त पुण्यशील के यहां एक बार वेद-वेदाङ्ग पारंगत ब्राह्मण आये। पुण्यशील ने अतिशीघ्रता से उनको पिता के श्राद्ध में नियुक्त किया। धार्मिक पुण्यशील ने इस श्रोत्रिय ब्राह्मण को श्राद्ध में नियुक्त करके अत्युत्तम वार्षिक श्राद्ध किया।।२४-३०।।

ततः कालान्तरे तस्य पुण्यशीलस्य चाऽऽनने। वैरूपं प्राप्तमत्युग्रं रासभाननवत्तदा॥३१॥
ततः खिन्नमना भूत्वा पुण्यशीलोऽतिधार्मिकः।
निःश्वस्य बहुधा खिन्नःप्रपेदेऽगस्त्ययोगिनः॥३२॥
सुवर्णमुखरीतीरे ऋषिसङ्घनिषेविते। आश्रमं परमं दिव्यं सर्वकामफलप्रदम्॥३३॥
तत्राऽऽश्रमेमुनिवरैः सेव्यमानमहर्निशम्। दृष्ट्वाऽगस्त्यंमहात्मानंसर्वलोकहितैषिणम्॥३४॥
प्रणाममकरोत्तस्मै गार्दभास्योऽतिदुःखितः॥३५॥

पुण्यशील उवाच

तपोनिधे ! नमस्तुभ्यमगस्त्य ! मुनिसेवित !। कुत्सितास्यंमहापापंरक्षरक्षदयानिधे !॥३६॥
केन दोषेण मे चाऽत्र मुखस्याऽऽसीत्कुरूपता॥३७॥
मयि प्रीत्या महाभाग! वदस्व मुनिसत्तम !॥३८॥

इस घटना के कुछ दिन पश्चात् पुण्यशील का मुख गर्दभ मुख की तरह विवर्ण तथा वीभत्स हो गया। तब अतिधार्मिक पुण्यशील खिन्न मन हो गये तथा दीर्घ श्वास छोड़ते दुःख करते हुये योगीश्रेष्ठ अगस्त्य के पास आये। महर्षि का वह आश्रम सुवर्णमुखरी के तट पर था जो ऋषियों के समूह द्वारा सेवित था। वह आश्रम परम दिव्य तथा सर्वकामना परिपूरक भी था। मुनिगण द्वारा सतत् सेवित उस आश्रम पर अतिदुःखित गर्दभमुख पुण्यशील पहुंचे। वहां निखिल लोक हितकारी अगस्त्य ऋषि को प्रणाम करके पुण्यशील उनसे पूछने लगे—"हे अगस्त्य! मुनिगण सतत् आपकी सेवा करते हैं। हे तपोनिधि! आपको प्रणाम! हे दयानिधि! मैं कुत्सित तथा महापापी हूं। मेरी रक्षा करें। मेरी रक्षा करें। हे महाभाग! किस दोष के कारण मेरा मुख कुत्सित हो गया है? हे मुनिश्रेष्ठ! मुझ पर कृपा करके यह कहें"।।३१-३८।।

अगस्त्य उवाच

विप्रवर्य ! महाभाग ! पुण्यशील ! महामते !।
आननस्य विरूपं वै शृणु नान्यमना द्विज॥३९॥
किञ्चिद्विप्रं गुणनिधिंवेदवेदाङ्गपारगम्। श्रोत्रियं पुत्ररहितं श्राद्धे त्वं विनियुक्तवान्॥४०॥
तेन दोषेण महता मुखे तव विरूपता।
ये लोके हव्यकव्यादौ वन्ध्यायाः स्वामिनं द्विजम्॥४१॥
नियोजयन्ति ते यान्ति मुखेगर्दभरूपताम्। शुभकर्मणि वा विप्रपैतृकेवाऽपिकर्मणि॥४२॥
वन्ध्यापतिं महापापं कदाचिन्न निमन्त्रयेत्। वन्ध्यापतिं महाक्रूरंवृषलीपतिमेव वा॥४३॥
श्रेयस्कामी हि विप्रेन्द ! श्राद्धे तु न निमन्त्रयेत्।
वेदशास्त्रादियुक्तोऽपि कुलीनः कर्मठोऽपि वा॥४४॥
वन्ध्याभर्ता द्विजश्रेष्ठ श्राद्धेत्याज्यः कथञ्चन। ज्योतिष्टोमादियज्ञेषुव्रतेषुचतपःसु च॥४५॥
समर्थोऽपि द्विजश्रेष्ठः श्राद्धे वन्ध्यापतिं त्यजेत्।
अलभ्ये तु द्विजे पात्रे तन्तुमात्रोपजीविनम्॥४६॥
पुत्रवन्तं सदाचारं श्राद्धार्थं तु निमन्त्रयेत्। तदभावे द्विजश्रेष्ठपुत्रं वाऽनुजमेव वा॥४७॥
आत्मानं वा नियुञ्जीत श्राद्धे वन्ध्यापतिं त्यजेत्।
पुण्यशील ! महाभाग ! चोद्धृत्य भुजमुच्यते॥४८॥

अगस्त्य ऋषि कहते हैं—हे विप्रवर! महामति! महाभाग पुण्यशील! अनन्य मन से तुम अपनी विरूपता का कारण सुनो। हे द्विज! तुमने एक पुत्रहीन श्रोत्रिय द्विज को श्राद्ध में नियुक्त किया था। वह विप्र वेदवेदांग पारंगत तथा समस्त गुणनिधान होने पर भी पुत्रहीन है। तुम इसी महादोष के कारण कुत्सित मुख हो गये। इस त्रैलोक्य में जो कोई भी हव्य-कव्य क्रिया हेतु वन्ध्यापति को नियुक्त करता है, उसे गर्दभ मुख की प्राप्ति होती है।

हे विप्र! शुभकर्म हो अथवा पैत्रिक कर्म क्यों न हो, वन्ध्यापति को उसमें कभी भी नियुक्त न करें। हे विप्रेन्द्र! मंगलकामी व्यक्ति श्राद्ध में वन्ध्यापति, महाक्रूर तथा वृषलीपती को कदापि नियुक्त न करें। हे द्विजप्रवर! वेदशास्त्रादियुक्त, कुलीन किंवा कर्मठ होने पर भी वन्ध्यापति श्राद्ध में त्याज्य है। ज्योतिष्टोमादि यज्ञ में, श्राद्ध में, किंवा व्रत में, अपुत्रक द्विज को समर्थ होने पर भी त्याग दें। श्राद्ध के दिन यदि श्रोत्रिय ब्राह्मण पूर्णतः अलम्य हो तब सदाचारयुक्त पुत्रवान् तन्तुमात्रोपजीवी ब्राह्मण को निमन्त्रण प्रदान करें। हे द्विजप्रवर! उसका भी अभाव हो तब अनुज को अथवा पुत्र को नियुक्त करें, किंवा स्वयं नियुक्त हो जायें तथापि अपुत्रक को निमन्त्रित न करें।।३९-४८।।

सर्वथा पुत्रहीनंतुश्राद्धार्थंननियोजयेत्। वन्ध्यापतिंद्विजंयस्तुश्राद्धकर्तानियोक्ष्यति॥४९॥
तच्छ्राद्धमासुरं ज्ञेयं कर्ता च नरकं व्रजेत्॥५०॥

बहुनाऽत्र किमुक्तेन तद्दोषविनिवृत्तये। उपायं ते प्रवक्ष्यामि स्वर्णमुख्यास्तटे शुभे।।५१।।
वर्तते देवसङ्घैश्च सेवितो वेङ्कटाचलः। मेरुपुत्रो महापुण्यः सर्वकामफलप्रदः।।५२।।
तस्मिन्वेङ्कटशैलेन्द्रे सुरासुरनमस्कृते। वियद्गङ्गेति नाम्ना वै तीर्थमस्ति महत्तरम्।।५३।।
सर्वपापप्रशमनमायुरारोग्यवर्धनम्। त्वं गत्वा वेङ्कटं शैलं स्वामिपुष्करिणीजले।।५४।।
स्नात्वा सङ्कल्पपूर्वं तु गङ्गातीर्थमनन्तरम्। गत्वा तीर्थविधानेन स्नानं कुरु महामते !।।५५।।
स्नानमात्रात्ततःसद्योमुखस्याऽस्यमहामते। वैरूप्यंतत्क्षणादेवनङ्क्ष्यत्येव न संशयः।।५६।।

जो श्राद्धकर्त्ता अपुत्रक को श्राद्ध में नियुक्त करता है, उसका श्राद्ध आसुर श्राद्ध होता है तथा श्राद्धकर्त्ता नरकगामी होता है। अधिक क्या कहें। अब तुम्हारे लिये दोषशान्ति का उपाय कहता हूं। पुण्यमयी सुवर्णमुखरी के तट पर देवसेवित सर्वकामना फलीभूत करने वाला महापुण्यमय मेरुपुत्र वेंकटपर्वत स्थित है। इस सुर-असुर नमस्कृत शैलराज पर आकाशगंगा नामक एक तीर्थ है। यह तीर्थ सर्वपापनाशक है तथा आयु-आरोग्य बढ़ाने वाला है। हे महामति! तुम वेंकटगिरि जाओ तथा पहले स्वामिपुष्करिणी में संकल्प के साथ स्नान करके तदनन्तर तीर्थविधान क्रमेण गंगातीर्थ में स्नान करो। हे महामति! आकाशगंगातीर्थ में स्नानमात्र से तत्क्षण तुम्हारे मुख की विरूपता दूरीभूत हो जायेगी इसमें संशय नहीं है।।४९-५६।।

एवमुक्तः पुण्यशीलो ह्यगस्तेन महात्मना। तं प्रणम्य महात्मानं वेङ्कटाद्रिंततो ययौ।।५७।।
तत्र गत्वा महाभागः स्वामिपुष्करिणीजले। स्नात्वा नियमपूर्वं तु वियद्गङ्गासमीपगः।।५८।।
तत्रस्नानेनधर्मात्माकामवक्त्रोपमंमुखम्। प्राप्तवान्पुण्यशीलस्तुअहोतीर्थस्य वैभवम्।।५९।।

तदनन्तर पुण्यशील ब्राह्मण महर्षि वसिष्ठ का आदेश पाकर उन्हें प्रणाम करके वेंकटाचल गये। वहां जाकर उन्होंने पहले स्वामिपुष्करिणी के जल में स्नान किया। तदनन्तर वे आकाशगंगा तीर्थ गये। अहो! गंगातीर्थ की क्या महिमा है! धर्मात्मा पुण्यशील के वहां स्नान करते ही कामदेव के मुख के समान सुन्दर मुख प्राप्त किया।।५७-५९।।

सूत उवाच

एवम्वः कथितं विप्रा नारदेन प्रभाषितम्। सनत्कुमारमुनयेशौनकाद्या महौजसः।।६०।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचल-
माहात्म्यआकाशगङ्गामाहात्म्यवर्णनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः।।२२।।

श्रीसूत जी कहते हैं—हे शौनकादि महातेजस्वी विप्रगण! इस सम्बन्ध में नारद ने सनत्कुमार से यही कहा था। मैंने यथावत् वही प्रसंग आप लोगों से कहा।।६०।।

।।द्वाविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

त्रयोविंशोऽध्यायः

चक्रतीर्थ माहात्म्य, पद्मनाभ द्विजवृत्तान्त

सूत उवाच

अथाहंसम्प्रवक्ष्यामिद्विजेन्द्राःसत्यवादिनः। चक्रतीर्थस्यमाहात्म्यंसर्वपापप्रणाशनम्॥१॥
ये शृण्वन्तिरमहापुण्यंचक्रतीर्थस्यवैभवम्। तेयान्तिविष्णुभवनंपुनरावृत्तिवर्जितम्॥२॥
अन्नदाने च विमुखा जलदाने तथैव च। गोदानविमुखाये च शुद्धास्तेऽत्रनिमज्जनात्॥३॥
तस्मात्पुण्यतमं तीर्थं चक्रतीर्थमनुत्तमम्॥४॥

सूत जी कहते हैं—हे सत्यवादी ब्राह्मणगण! अब सर्वपापनाशक चक्रतीर्थ माहात्म्य सम्यक्तः वर्णन करता हूं। सुनिये। जो महापुण्यमय चक्रतीर्थ के वैभव को सुनते हैं, वे विष्णुलोक में गमन करते हैं। उनको कभी भी पुनरागमन चक्र में नहीं जाना पड़ता। जो अन्न-जल-दान तथा गोदान से विमुख हैं, वे भी यहां स्नान करके शुद्धिलाभ करते हैं। अतः यह चक्रतीर्थ अत्युत्तम पुण्यतम तीर्थ है।।१-४।।

सूत उवाच

पुराश्रीवत्सगोत्रीयः पद्मनाभो जितेन्द्रियः। चक्रपुष्करिणीतीरे सोऽतप्यतमहत्तपः॥५॥
दयायुक्तोनिराहारःसत्यवादीजितेन्द्रियः। आत्मवत्सर्वभूतानिपश्यन्विषयनिःस्पृहः॥६॥
सर्वभूतहितो दान्तः सर्वद्वन्द्वविवर्जितः। वर्षाणि कतिचित्सोऽयं जीर्णपर्णाशनोऽभवत्॥७॥
कञ्चित्कालं जलाहारो वायुभक्षः कियत्समाः। एवं द्वादशवर्षाणिपद्मनाभोमहामुनिः॥८॥
अतप्यत तपो घोरं देवैरपि सुदुष्करम्। अथ तत्तपसा तुष्टो भगवान्कमलापतिः॥९॥

सूत जी कहते हैं—पूर्वकाल में वत्सगोत्र के पद्मनाम नामक एक इन्द्रियजित् द्विज चक्रपुष्करिणी तीर्थ में तप कर रहे थे। विप्र पद्मनाभ दयायुक्त सत्यवादी तथा इन्द्रिय विजयी थे। वे समस्त प्राणीगण को आत्मवत् देखते थे। रूपादि विषय में उनकी स्पृहा नहीं थी। वे महामुनि निराहार, दान्त, सर्वभूतहित में रत, सर्वद्वन्द्वरहित होकर कुछ वर्ष तक जीर्ण पत्ते खाकर, कुछ काल जलाहार करके, कई वर्ष वायुभक्षण पर निर्भर रहकर—इस प्रकार द्वादश वर्ष पर्यन्त उन्होंने तप किया। उनका यह तप अत्यन्त घोर तथा देवताओं के लिये भी दुष्कर था। उनके तपःश्चरण से भगवान् कमलापति सन्तुष्ट हो गये।।५-९।।

प्रत्यक्षतामगात्तस्य शङ्खचक्रगदाधरः। विकचाम्बुजपत्राक्षः सूर्यकोटिसमप्रभः॥१०॥
उन्मील्य चक्षुषी तत्र दृष्टवान्वेङ्कटेश्वरम्। शङ्खचक्रधरं शान्तंश्रीनिवासंकृपानिधिम्।
दृष्ट्वा देवं महात्मानं स्तोतुं समुपचक्रमे॥११॥

विकसित कमल के समान नेत्र वाले कोटिसूर्य के समान प्रभावाले शंख-चक्र-गदाधारी कमलापति भगवान् उसके समक्ष प्रकट हो गये। तदनन्तर पद्मनाभ ने अपने दोनों नेत्रों को खोल कर देखा कि शान्त, शंखचक्र गदाधारी कृपानिधि वेंकटेश्वर श्रीनिवास उसके समक्ष खड़े हैं। वे महात्मा देव श्रीनिवास को देखकर उनका स्तव करने का उपक्रम करने लगे।।१०-११।।

नमो देवाधिदेवाय वेङ्कटेशाय शार्ङ्गिणे। नारायणाद्रिवासाय श्रीनिवासाय ते नमः॥१२॥
नमः कल्मषनाशाय वासुदेवाय विष्णवे। शेषाचलनिवासाय श्रीनिवासाय ते नमः॥१३॥
नमस्त्रैलोक्यनाथाय विश्वरूपाय साक्षिणे।
शिवब्रह्मादिवन्द्याय श्रीनिवासाय ते नमः॥१४॥
नमः कमलनेत्राय क्षीराब्धिशयनाय ते। दुष्टराक्षससंहर्त्रे श्रीनिवासाय ते नमः॥१५॥
भक्तप्रियाय देवाय देवानां पतये नमः॥१६॥
प्रणतार्तिविनाशाय श्रीनिवासाय ते नमः॥१७॥
योगिनां पतये नित्यं वेदवेद्याय विष्णवे। भक्तानां पापसंहर्त्रे श्रीनिवासाय ते नमः॥१८॥

पद्मनाभ कहते हैं—हे देवाधिदेव शार्ङ्गधनुषधारी वेंकटेश को प्रणाम! हे नारायण, श्रीनिवास! आप तो पर्वत पर निवास करते हैं, आप पापनाशक विष्णु हैं। आपको प्रणाम! हे वासुदेव, शेषपर्वत्वासी श्रीनिवास, आपको प्रणाम! हे श्रीनिवास! आप त्रैलोक्यनाथ हैं। आप विश्वरूप, सर्वसाक्षी हैं तथा शिव ब्रह्मादि भी आपकी वन्दना करते हैं। आपको प्रणाम! हे कमलनयन! आप क्षीरसागरशायी हैं तथा दुष्ट राक्षसों का वध करते हैं, हे श्रीनिवास! आपको प्रणाम! हे देव! आप भक्तप्रिय तथा देवताओं के पति हैं, आपको प्रणाम! हे श्रीनिवास! आप प्रणतगण की आर्त्ति का नाश करते हैं। आपको प्रणाम! आप योगीगण के पति, नित्य तथा वेदवेद्य हैं। हे विष्णु! आप भक्तों के कलुष का ध्वंस करते हैं। आपको प्रणाम!॥१२-१८॥

एवं स्तुतो महाभागःश्रीनिवासोजगन्मयः। पद्मनाभाख्यऋषिणाचक्रतीर्थनिवासिना॥१९॥
सन्तोषं परमं प्राप्य वेङ्कटेशो दयानिधिः॥२०॥
पद्मनाभं द्विजवरं शान्तं धर्मपरायणम्। सुधाधारोपमं वाक्यमब्रवीत्पुरुषोत्तमः॥२१॥

तदनन्तर चक्रतीर्थवासी ऋषि पद्मनाभ से इस प्रकार स्तुत होकर जगन्मय महाभाग श्रीनिवास ने परम सन्तोष लाभ किया। दयानिधि पुरुषोत्तम वेंकटेश सुधाधार के समान अनुपम वाणी से द्विजवर शान्त सर्वधर्मपरायण पद्मनाभ से कहने लगे।॥१९-२१॥

श्रीनिवास उवाच

द्विजवर्य! महाभाग मत्पादकमलार्चक !। चक्रतीर्थस्य तीरे त्वमाकल्पं पूजयन्वस॥२२॥
इत्युक्त्वाभगवान्विष्णुस्तत्रैवाऽन्तरधीयत। अन्तर्धानं गते देवे श्रीनिवासेजगद्गुरौ॥२३॥
चक्रतीर्थस्य तीरे तु वासं चक्रे महामतिः। ततः कालान्तरे कश्चिद्राक्षसोभीमदर्शनः॥२४॥
मुनिं तं पद्मनाभाख्यं नारायणपरायणम्। आययौ भक्षितुं क्रूरः क्षुधया परिपीडितः॥२५॥
ब्राह्मणं तरसा सोऽयं राक्षसो जगृहे तदा। गृहीतस्तरसा तेन विप्रो वेदाङ्गपारगः॥२६॥
प्रचुक्रोश दयाम्भोधिमापन्नानां परायणम्। नारायणं चक्रपाणिं रक्ष रक्षेति वै मुहुः॥२७॥
वेङ्कटेश ! दयासिन्धो ! शरणागतपालक !। त्राहि मां पुरुषव्याघ्र ! रक्षोवशमुपागतम्॥२८॥
लक्ष्मीकान्त ! हरे ! विष्णो ! वैकुण्ठ ! गरुडध्वज!।
मां रक्ष राक्षसाक्रान्तं ग्राहाक्रान्तं गजं यथा॥२९॥

दामोदर ! जगन्नाथ ! हिरण्यासुरमर्दन !। प्रह्लादमिव मां रक्ष राक्षसेनाऽतिपीडितम्॥३०॥

भगवान् श्रीनिवास कहते हैं—"हे महाभाग द्विजश्रेष्ठ! तुमने मेरे पादपद्म की अर्चना किया है। अब चक्रतीर्थ में अवस्थित होकर कल्पपर्यन्त मेरी पूजा करो।" भगवान् विष्णु ने पद्मनाभ से यह कहा तथा अन्तर्हित् हो गये। तदनन्तर जगद्गुरु श्रीनिवास के अन्तर्हित् हो जाने पर महामति पद्मनाभ चक्रतीर्थ में निवास करने लगे। इस प्रकार से कुछ काल अतीत हो जाने पर एक दिन एक क्रूर भीमदर्शन राक्षस क्षुधापीड़ित होकर नारायण परायण मुनि पद्मनाभ का भक्षण करने आया। तदनन्तर राक्षस ने अतिवेग से ब्राह्मण को पकड़ लिया। राक्षस द्वारा पकड़े जाने पर वेद-वेदाङ्ग पारंगत पद्मनाभ क्रन्दन करते पुनः पुनः चक्रपाणि नारायण से कहने लगे— "हे दयानिधि! आप दया समुद्र की शरण में मैं निमग्न हूं। मेरी रक्षा करें। हे नारायण चक्रपाणि! मेरी रक्षा करिये। हे वेंकटेश, दयासिन्धु, शरणागतपालक, हे पुरुष व्याघ्र! मेरी रक्षा करिये। मैं राक्षस के वश में आ गया हूं। हे लक्ष्मीकान्त, हरि, विष्णु, वैकुण्ठ, गरुड़ध्वज! ग्राह ने जिस प्रकार से हाथी को पकड़ लिया था, उसी प्रकार से मैं राक्षस से आक्रान्त हो गया। मेरी रक्षा करें। मेरी रक्षा करें। हे दामोदर, जगन्नाथ, हिरण्यकशिपुहन्ता, मैं राक्षस से पीड़ित हूं। जैसे आपने प्रह्लाद की रक्षा किया था, वैसे मेरी रक्षा करें।।२२-३०।।

इत्येवं स्तुवतस्तस्य पद्मनाभस्य हे द्विजाः।
स्वभक्तस्य भयं ज्ञात्वा चक्रपाणिर्दयानिधिः॥३१॥

स्वचक्रं प्रेषयामास भक्तरक्षणकारणात्। प्रेरितं विष्णुचक्रं तद्विष्णुना प्रभविष्णुना॥३२॥
आजगामाऽथ वेगेन चक्रपुष्करिणीतटम्। अनन्तोदित्यसङ्काशमनन्ताग्निसमप्रभम्॥३३॥
महाज्वालं महानादं महासुरविमर्दनम्। दृष्ट्वा सुदर्शनं विष्णो राक्षसोऽथ प्रदुद्रुवे॥३४॥
द्रवमाणस्यतस्याऽऽशुराक्षसस्यसुदर्शनम्। शिरश्चकर्त्तसहसाज्वालामालादुरासदम्॥३५॥
ततो विप्रवरो दृष्ट्वा राक्षसम्पतितं भुवि। मुदा परमया युक्तस्तुष्टाव च सुदर्शनम्॥३६॥

हे द्विजगण! पद्मनाभ द्वारा इस प्रकार स्तुत होकर चक्रपाणि देव ने अपने भक्त को भयकातर जाना तथा तत्क्षण भक्तरक्षणार्थ चक्र छोड़ा। विष्णु-प्रेरित वह चक्र प्रचण्ड वेग से चक्रपुष्करिणी के तीर पर आया। वह चक्र असंख्य सूर्य तथा अनन्त अग्निवत् प्रभाशाली था। उसकी ज्वाला माला अतीव भीषण थी। चक्रोत्थित भीमनाद अति भीषण था तथा दैत्यों के विमर्दन में समर्थ था। विष्णुचक्र दर्शन से भीत होकर राक्षस भागने लगा। अपनी ज्वालामाला से दुरासद सुदर्शन ने भी उस भागते हुये राक्षस का पीछा करके उसे छिन्न कर दिया। तदनन्तर विप्रवर पद्मनाभ ने राक्षसों के मस्तक को भूपतित देखकर परम हर्ष के साथ सुदर्शन चक्र की स्तुति करना प्रारंभ कर दिया।।३१-३६।।

पद्मनाभ उवाच

विष्णुचक्र ! नमस्तेऽस्तुविश्वरक्षणदीक्षित !। नारायणकराम्भोजभूषणायनमोऽस्तुते॥३७॥
युद्धेष्वसुरसंहारकुशलाय महारव। सुदर्शन नमस्तुभ्यं भक्तानामार्तिनाशन !॥३८॥

रक्ष मां भयसम्विग्नं सर्वस्मादपि कल्मषात्।
स्वामिन्सुदर्शन ! विभो ! चक्रतीर्थे सदा भवान्॥३९॥

सन्निधेहि हितायत्वंजगतोमुक्तिकाङ्क्षिणः। ब्राह्मणेनैवमुक्तंद्विष्णुचक्रंमुनीश्वराः॥४०॥
तं प्राह पद्मनाभाख्यं प्रीणयन्निव सौहृदात्॥४१॥

पद्मनाभ कहते हैं—"हे विष्णुचक्र! आप विश्वपालनार्थ दीक्षित (नियुक्त) हैं। आप नारायण के करकमल के आभूषण हैं। आपको प्रणाम! हे सुदर्शन! आपका रव अत्यन्त भीषण होता है। आप तो समस्त असुरों के संहार में अतीव कुशल हैं। आप भक्तों की पीड़ा दूरीभूत करते हैं। आपको प्रणाम! हे स्वामिन्! मैं अत्यन्त भयभीत हुआ था। हे सुदर्शन! आप समस्त आपत्ति से मेरी रक्षा करिये। हे विभु! आप चक्रतीर्थ में सदा मेरे पास रहकर मोक्षार्थी सांसारिकों का हित साधन करिये।" ब्राह्मण से इस प्रकार प्रार्थित होकर विष्णुचक्र सुदर्शन उससे प्रसन्न होकर कहने लगे।।३७-४१।।

सुदर्शन उवाच

पद्मनाभ महापुण्यं चक्रतीर्थमनुत्तमम्। अस्मिन्वसामि सततं लोकानांहितकाम्यया॥४२॥
त्वत्पीडां परिचिन्त्याऽहं राक्षसेन दुरात्मना॥४३॥
प्रेरितोविष्णुना विप्र त्वरयासमुपागतः। त्वत्पीडकोऽपिनिहतोमयाऽयंराक्षसाधमः॥४४॥
मोचितस्त्वं भयादस्मात्त्वं हि भक्तो हरेः सदा। चक्रतीर्थे महापुण्ये सर्वपापहरेद्विज॥४५॥
सततं लोकरक्षार्थंसन्निधानं करोमि ते। अस्मिन्मत्सन्निधानात्तेतथाऽन्येषामपिद्विज॥४६॥
इतः परं न पीडा स्याद् भूतराक्षससम्भवा।
अस्मिन्मत्सन्निधानात्स्याच्चक्रतीर्थमिति प्रथा॥४७॥
स्नानं येऽत्र प्रकुर्वन्ति चक्रतीर्थे विमुक्तिदे। तेषां पुत्राश्च पौत्राश्चवंशजाःसर्वएव हि॥४८॥
विधूतपापा यास्यन्तितद्विष्णोःपरमंपदम्। इत्युक्त्वाविष्णुचक्रंतत्पद्मनाभस्यपश्यतः॥४९॥
अन्येषामपि विप्राणां पश्यतां सहसा द्विजाः।
चक्रपुष्करिणीं तां तु प्राविशत्पापनाशिनीम्॥५०॥

विष्णुचक्र सुदर्शन कहते हैं—"हे पद्मनाभ! मैं समस्त लोकों की हितकामना के लिये इस महापुण्यमय अत्युत्तम चक्रतीर्थ में निवास करूंगा। हे द्विज! तुम हरि के नित्य भक्त हो। क्योंकि दुरात्मा राक्षस तुमको पीड़ित कर रहा था, भगवान् विष्णु ने तुम्हारी चिन्ता देखकर मुझे भेजा था। मैं उनके आदेशानुसार तत्काल यहां पहुंच गया। तुमको पीड़ा देने वाले राक्षसाधम का मैंने वध करके तुमको भय से छुटकारा दिला दिया। हे द्विज! अब लोकहितार्थ मैं सर्वपापहारी महापुण्यप्रद चक्रतीर्थ में सतत् तुम्हारे पास रहूंगा। हे द्विज! मेरे सान्निध्य के कारण यह चक्रतीर्थ इसके पश्चात् ऐसा रहेगा कि यहां तुमको किंवा अन्य किसी को भी राक्षस के कारण पीड़ा नहीं होगी। मेरे सान्निध्य के कारण आज से ही यह तीर्थ चक्रतीर्थ कहा जायेगा। जो सब लोग इस मुक्तिप्रद चक्रतीर्थ में स्नान करेंगे। उनके पुत्र-पौत्र आदि वंशज सभी विगत पाप होकर विष्णुपद प्राप्त करेंगे।" हे द्विजगण! यह कहने के पश्चात् विष्णुचक्र सुदर्शन ने सबके सामने सहसा उस पापहारिणी चक्र पुष्करिणी में प्रवेश किया।।४२-५०।।

श्रीसूत उवाच

चक्रतीर्थस्य माहात्म्यं विप्रेन्द्राःपापनाशनम्। युष्माकंकथितंसर्वंशौनकाद्यामहौजसः।।५१।।
चक्रतीर्थसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति। अत्र स्नात्वा नरा विप्रामोक्षभाजोनसंशयः।।५२।।
कीर्तयेदिममध्यायं शृणुयाद्वा समाहितः। चक्रतीर्थाभिषेकस्य प्राप्नोति फलमुत्तमम्।।५३।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये चक्रतीर्थमहिमानुवर्णनंनाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः।।२३।।
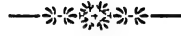
सूत जी कहते हैं—हे महातेजस्वी शौनकादि विप्रेन्द्रगण! मैंने आप लोगों से पापनाशक चक्रतीर्थ माहात्म्य पूर्णतः कहा। इसके समान न तो कोई तीर्थ है, न होगा। हे द्विजगण! मनुष्य यहां स्नान करके निःसंशय रूपेण मोक्षगामी होंगे। जो समाहित होकर इस अध्याय का पाठ करेगा अथवा सुनेगा, उसे तीर्थाभिषेक का उत्तम फल प्राप्त होगा।।५१-५३।।

।।त्रयोविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुर्विंशोऽध्यायः

गन्धर्व की राक्षसत्व प्राप्ति, वसिष्ठ का शाप एवं अनुग्रह, राक्षसत्व नाश हेतु चक्रतीर्थ वर्णन

ऋषय ऊचुः

भगवन्राक्षसः कोऽसौ सूतपौराणिकोत्तम !। विष्णुभक्तं महात्मानंयोब्राह्मणमबाधत।।१।।

ऋषिगण कहते हैं—हे सूत! हे पौराणिक प्रधान! हे भगवान्! यह राक्षस कौन है? किस प्रकार से वह महात्मा विष्णुभक्त को पीड़ित करने में समर्थ हुआ?।।१।।

श्रीसूत उवाच

वक्ष्यामि राक्षसं क्रूरंतंविप्राःशृणुतादरात्। यथाचराक्षसोजातोमुनीनांशापवैभवात्।।२।।
पुरा वैकुण्ठसदृशे श्रीरङ्गेविष्णुमन्दिरे। वसिष्ठाऽत्रिमुखाः सर्वेविष्णुभक्तामहौजसः।।३।।
श्रीरङ्गनाथं देवेशं भक्तानामभयप्रदम्। उपासाञ्चक्रिरे मुक्त्यै श्रीरङ्गपुरवासिनः।।४।।
कदाचित्तत्र गन्धर्वो वीरबाहुसुतो बली। सुन्दरो नाम विप्रेन्द्रा विटगोष्ठीपरायणः।।५।।
ललनाशतसंयुक्तो विवस्त्रःसलिलाशये। चिक्रीड स विवस्त्राभिःसाकंयुवतिभिर्मुदा।।६।।

कुबेरजायास्तीर्थेतुवसिष्ठोमुनिभिःसह। माध्याह्निकंकर्तुमनाययौ श्रीरङ्गमन्दिरात्॥७॥

सूत जी कहते हैं—हे विप्रगण! इस राक्षस ने जिस प्रकार से मुनिगण के शाप से राक्षसत्व प्राप्त किया था, उसका वर्णन करता हूं। आप आदर के साथ सुने। पूर्वकाल में वैकुण्ठ के समान श्रीरंगनायक विष्णु मन्दिर में यह घटना हुई थी। एक बार वसिष्ठ तथा अत्रि आदि प्रमुख महातेजस्वी विष्णुभक्तगण ने मुक्ति की कामना से श्रीरंगपुर वास करके भक्तों को अभय देने वाले श्रीरंगनाथ की उपासना किया था। हे विप्रेन्द्रगण! तदनन्तर लम्पटों का साथ करने वाला वीरबाहुपुत्र सुन्दर नामक एक बली गन्धर्व वहां आया तथा वह स्वयं विवस्त्र होकर विवस्त्र स्त्रियों के साथ प्रसन्न अन्तःकरण से वहां स्थित (कावेरीतीर्थ) जलाशय में जलक्रीड़ा करने लगा। महर्षि वसिष्ठ अन्य मुनियों के साथ वहां मध्याह्न की उपासना के लिये श्रीरंगमंदिर से कावेरी तीर्थ में आये।।२-७।।

तानृषीनवलोक्याथरामास्ताभयकातरः। वासांस्याच्छादयामासुःसुन्दरोनतुसाहसी॥८॥
ततो वसिष्ठः कुपितः शशापैनं गतत्रपम्॥९॥

तदनन्तर गन्धर्व रमणीगण ने इन ऋषियों को देखा तथा भयग्रस्त होकर वस्त्र से अपने शरीर को ढक लिया, परन्तु गर्वित दुःसाहसी गन्धर्व सुन्दर विवस्त्र ही रहा। तब महर्षि वसिष्ठ ने कुपित होकर निर्लज्ज निन्दितकर्मा सुन्दर को शाप प्रदान किया।।८-९।।

वसिष्ठ उवाच

यस्मात्सुन्दर गन्धर्व ! दृष्ट्वाऽस्माँल्लज्जया त्वया।
वासोनाच्छादितं शीघ्रं याहि राक्षसतां ततः॥१०॥
एवमुक्ते वसिष्ठेन रामाः प्राञ्जलयस्तदा। प्रणिपत्य वसिष्ठं तं भक्तिनम्रेण चेतसा॥११॥
मुनिमण्डलमध्ये तु वसिष्ठमिदमब्रुवन्॥१२॥

ऋषि वसिष्ठ ने कहा—"हे निर्लज्ज सुन्दर! तुमने हमको आते देखकर भी वस्त्रों से देह को आच्छादित नहीं किया। अतः हे गन्धर्व! तुम राक्षस शरीर प्राप्त करो।" महर्षि वसिष्ठ द्वारा यह अभिशाप दिये जाते ही रमणीगण ने भक्तिविनीत हृदय से अंजलिवद्ध होकर मुनि मण्डली में स्थित ऋषि वसिष्ठ को प्रणाम करके प्रार्थना करना प्रारंभ किया।।८-१२।।

रामा ऊचुः

भगवन्सर्वधर्मज्ञ चतुराननन्दन !। दयासिन्धोऽवलोक्यास्मान्न कोपं कर्तुमर्हसि॥१३॥
पतिरेव हि नारीणां भूषणम्परमुच्यते। पतिहीना तु या नारी शतपुत्राऽपि सा मुने॥१४॥
विधवेत्युच्यतेलोकेतासांजन्मनिरर्थकम्। तत्प्रसादं कुरु मुने पत्यावस्माकमादरात्॥१५॥
एकोऽपराधः क्षन्तव्यो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
क्षमां कुरु दयासिन्धो ! युष्मच्छिष्येऽत्र सुन्दरे॥१६॥

रमणियां कहती हैं—हे ब्रह्मनन्दन! आप सर्वधर्मज्ञ हैं। हे भगवान्! हमे देखें! हम पर कोप न करें। क्योंकि आप दया सागर हैं। हे मुनिवर! पति ही नारी का भूषण है। पतिहीना नारी १०० पुत्रों की मां होकर

भी विधवा कही जाती है। उसका जन्म निरर्थक हो जाता है। अतः स्वामी अत्यन्त आदरणीय होता है। हे मुनिवर! आप कृपापूर्वक हमारे पति पर कृपा करें। तत्वदर्शी मुनिगण प्रथम अपराध को क्षमा कर देते हैं। सुन्दर आपलोगों का शिष्य है। हे दयासिन्धु! आप उसे क्षमा करिये।।१३-१६।।

श्रीसूत उवाच

वसिष्ठः प्रार्थितस्त्वेवंसुन्दरस्याङ्गनाजनैः। प्रोवाचवचनं भूयः प्रसन्नः स द्विजोत्तमः॥१७॥

सूतजी कहते हैं—हे द्विजसत्तमगण! महर्षि वसिष्ठ इस प्रकार उन रमणियों की प्रार्थना सुनकर उनके प्रति प्रसन्न हो गये तथा कहने लगे।।१७।।

वसिष्ठ उवाच

न मे स्याद्वचनं मिथ्याकदाचिदपिसुभ्रुवः !। उपायंवः प्रवक्ष्यामिशृणुध्वंश्रद्धया सह॥१८॥

षोडशाब्दावधिः शापो भर्तुर्वै भविताध्रुवम्।
षोडशाब्दावधौ चैव सुन्दरो राक्षसाकृतिः॥१९॥

यदृच्छया वेङ्कटाद्रिं सर्वपापहरं शुभम्। गत्वाऽसौ चक्रतीर्थं तद्गमिष्यति सुराङ्गनाः॥२०॥

आस्ते तत्र महायोगीपद्मनाभोमुनीश्वरः। भक्षार्थंतंमुनिंसोऽयंराक्षसोऽभिगमिष्यति॥२१॥

ततो ब्राह्मणरक्षार्थं प्रेरितं चक्रमुत्तमम्। विष्णुनास्य शिरःकायाद्धरिष्यतिन संशयः॥२२॥

ततः स्वं रूपमासाद्य शापान्मुक्तः स सुन्दरः।
पतिर्वस्त्रिदिवं भूयो गन्ता नाऽस्त्यत्र संशयः॥२३॥

ततस्त्रिदिवमासाद्य सुन्दरोऽयं पतिर्हि वः। रमयिष्यतिसुन्दर्योयुष्मान्सुन्दरवेषभृत्॥२४॥

वसिष्ठ जी कहते हैं—हे सुभ्रुओं! मेरा वाक्य कदापि मिथ्या नहीं होता। इसका एक उपाय कहता हूं। श्रद्धापूर्वक उसे सुनो। तुम्हारा स्वामी षोडश वर्ष पर्यन्त पापफल भोगेगा। हे देवाङ्गनाओ! सुन्दर षोडश वर्ष तक राक्षसाकृति होकर मनमाना घूमते-घूमते सर्वपापहारी पुण्यभूमि वेंकटाचल पर जाकर चक्रतीर्थ पहुंचेगा। वहां पद्मनाभ नामक एक मुनीश्वर महायोगी हैं। राक्षसरूपी सुरूप उसका भक्षण करने जायेगा। तदनन्तर भगवान् विष्णु राक्षस के क्षय के लिये चक्र छोड़ेंगे। वह विष्णुचक्र राक्षसरूपी सुरूप का शिरच्छेद करेगा तथा सुरूप भूपतित होगा। इसमें सन्देह नहीं है। तब तुम्हारा पति सुन्दर शापमुक्त होकर अपना पूर्वरूप पुनः प्राप्त करेगा तथा वह पित्रालय जायेगा। इसमें सन्देह नहीं है। हे गन्धर्व रमणीगण! तदनन्तर तुम्हारा पति सुन्दर दिव्यरूप पाकर तुमलोगों का प्रेमवर्द्धन करेगा।।१८-२४।।

श्रीसूत उवाच

इत्युक्त्वातुवसिष्ठस्ताःसुन्दरस्यवराङ्गनाः। स्वाश्रमम्प्रययौतूर्णंश्रीरङ्गेश्वरभक्तिमान्॥२५॥

अथ रामास्तमालिङ्ग्य सुन्दरम्पतिमात्मनः। रुरुदुःशोकसन्तप्तादुःखसागरमध्यगाः॥२६॥

दृश्यमानासु तास्वेवंसुन्दरोराक्षसोऽभवत्। महादंष्ट्रो महाकायो रक्तश्मश्रुशिरोरुहः॥२७॥

तं दृष्ट्वाभयसम्विग्नाजग्मू रामास्त्रिविष्टपम्। ततो राक्षसवेषोऽयं सुन्दरोभैरवाकृतिः॥२८॥

भक्षयन्प्राणिनः सर्वान्देशाद्देशं वनाद्वनम्। भ्रमन्ननिलवेगोऽयं वेङ्कटाद्रिं नगोत्तमम्॥२९॥
प्रविश्याऽसौ महापापी चक्रतीर्थं ततो ययौ। एवं षोडशवर्षाणि भ्रमतोऽस्य ययुस्तदा॥३०॥
ततस्तु षोडशाब्दान्तेराक्षसोऽयंमुनीश्वराः। भक्षितुं पद्मनाभंतं चक्रतीर्थनिवासिनम्॥३१॥
उपाद्रवद्वायुवेगः सचाऽस्तौषीज्जनार्दनम्। योगिना च स्तुतो विष्णुस्तदा चक्रमचोदयत्॥३२॥
रक्षितुं पद्मनाभं तं राक्षसेन प्रपीडितम्। अथाऽऽगत्यहरेश्चक्रं राक्षसस्यशिरोऽहरत्॥३३॥
ततोऽयं राक्षसं देहं त्यक्त्वा दिव्यकलेवरः। विमानवरमारुह्य सुन्दरः पुष्पवर्षितः॥३४॥
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा ववन्दे तत्सुदर्शनम्। तुष्टाव श्रुतिरम्याभिर्वाग्भिरग्र्याभिरादरात्॥३५॥

सूत जी कहते हैं—तदनन्तर श्री रङ्गेश्वर के प्रति भक्तिमान् वसिष्ठ ने सुन्दराङ्गनागण को इस प्रकार कहा तथा अपने आश्रम चले गये। तब उन स्त्रियों ने पति का आलिंगन किया तथा शोकार्त्त एवं दुःखसागर में डूबती-उतराती रुदन करने लगीं। देखते-देखते सुन्दर ने अंगनागण के समक्ष ही राक्षस शरीर धारण कर लिया। जब उन रमणियों ने घोर दाढ़ वाले महाकाय लाल दाढ़ीवाले लोहितकुन्तल राक्षस को देखा तब वे सभी भय से उद्विग्न होकर स्वर्गलोक चली गयीं। भैरवाकृति राक्षसरूपी सुन्दर भी देश से देशान्तर तथा वन से वनान्तर गमन करके प्राणीगण का भक्षण करने लगा। इस प्रकार भ्रमण करते-करते महापापी सुन्दर एक दिन पर्वतोत्तम वेंकटाचल में प्रवेश करके चक्रतीर्थ चला गया। इस समय उसे राक्षस देह धारण किये षोडश वर्ष व्यतीत हो चले थे। हे मुनीश्वरगण! षोडश वर्ष के अन्त में सुन्दर चक्रतीर्थवासी पद्मनाभ का भक्षण करने हेतु वायुवेग से दौड़ा तथा योगी पद्मनाभ की स्तुति से प्रसन्न होकर विष्णु ने सुदर्शन चक्र को उसके वधार्थ भेजा। तदनन्तर राक्षस पीड़ित पद्मनाभ की रक्षा के लिये विष्णु प्रेरित सुदर्शन ने राक्षस का शिर ही उच्छिन्न कर दिया। तत्पश्चात् राक्षस पीड़ित पद्मनाभ के रक्षार्थ भेजे चक्र से मृत राक्षस ने राक्षसदेह का त्याग कर दिया और वह दिव्यदेह धारण करके जैसे ही उठा उसके मस्तक पर पुष्पवृष्टि होने लगी। तब सुन्दर बद्धाञ्जलि होकर सुदर्शन को प्रसन्न करने के लिये उनके सामने रम्यवाणी द्वारा आदरपूर्वक तथा प्रणत होकर उनकी स्तुति करने लगा।।२५-३५।।

सुन्दर उवाच

सुदर्शन नमस्तेऽस्तु विष्णुहस्तैकभूषण। नमस्तेऽसुजसेरसंहर्त्रे सहस्त्रादित्यतेजसे॥३६॥
कृपावेशेन भवतस्त्यक्त्वाहंराक्षसींतनुम्। स्वं रूपमभजंविष्णोश्चक्रायुधनमोऽस्तुते॥३७॥

सुन्दरगन्धर्व कहता है—"हे सुदर्शन! आप ही महासुरों का मर्दन करते हैं। हे विष्णुचक्र! आप एकमात्र विष्णु के हाथ के आभूषण हैं। आपको नमस्कार। आपका तेज हजारों सूर्य के समान है। आपकी कृपा से ही मैंने राक्षस शरीर का त्याग करके अपना शरीर पाया है। हे विष्णुचक्र! आपको प्रणाम!"।।३६-३७।।

अनुजानीहि मां गन्तुंत्रिदिवं विष्णुवल्लभ !। भार्या मे परिशोचन्तिविरहातुरचेतसः॥३८॥

त्वन्मनस्को भविष्यामि यावज्जीवं यथा ह्यहम्।
तथा रूपं कुरुष्व त्वं मयि चक्र ! नमोऽस्तु ते॥३९॥

एवं स्तुतंविष्णुचक्रंसुन्दरेणसभक्तिकम्। अनुजग्राह सहसातथाऽस्त्विति मुनीश्वराः॥४०॥
चक्रायुधाभ्यनुज्ञातःसुन्दरोब्राह्मणोत्तमम्। प्रणम्य तेनाऽनुज्ञातोगन्धर्वस्त्रिदिवंययौ॥४१॥

"हे विष्णुप्रिय चक्र! मेरी पत्नियां विरहकातर होकर एकान्त में दुःखी हो रही हैं। मुझे स्वर्ग जाने की आज्ञा दीजिये। हे चक्र! आप मुझे ऐसा बनायें कि जिससे मैं जब तक जीवन है, तब तक आपमें ही मन लगाये रहूं।" हे मुनीश्वरगण! सुन्दर ने जब भक्तिभाव से यह प्रार्थना किया, तब चक्र सुदर्शन ने "ऐसा ही हो" कह कर उस पर अनुग्रह कर दिया। तब सुन्दर गन्धर्व ने सुदर्शन से जाने की आज्ञा लेकर द्विजोत्तम पद्मनाभ को प्रणाम किया। वह पद्मनाभ की चरण वन्दना करके विमानारूढ़ होकर स्वर्गलोक चला गया।।३८-४१।।

सुन्दरे तु गतेस्वर्गंपद्मनाभोमुनीश्वरः। तच्चचक्रंप्रार्थ यामास विष्णवायुध ! नमोऽस्तुते।।४२।।
चक्रायुध ! नमामि त्वां महासुरविमर्दन। सन्निधानं कुरुष्व त्वं चक्रतीर्थेऽमले शुभे।४३।।
त्वत्सन्निधानात्सर्वेषां स्नातानां पापिनामिह।
पापनाशं कुरुष्व त्वं मोक्षञ्च कुरु शाश्वतम्।।४४।।
चक्रतीर्थमिति ख्यातिंलोकेऽस्यपरिकल्पय। त्वत्सन्निधानादत्रत्यमुनीनांभयनाशनम्।।४५।।
इतः परम्भवत्वार्य चक्रायुध नमोऽस्तु ते। भूतप्रेतपिशाचेभ्यो भयं मा भवतु प्रभो।।४६।।
इति सम्प्रार्थितं चक्रं पद्मनाभेन योगिना।
तथैवाऽस्त्विति सम्भाष्य तस्मिंस्तीर्थे तिरोहितम्।।४७।।

सुन्दर के स्वर्ग गमनोपरान्त मुनीश्वर पद्मनाभ ने उस चक्र से प्रार्थना किया—"हे विष्णुचक्र! आपको प्रणाम! आप इस अमल पुण्यतीर्थ चक्रतीर्थ में निवास करें। जो सब पापी इस तीर्थ में स्नान करेंगे, आप यहां रहते हुये उनके पापों का नाश करिये तथा उनको सनातन मुक्ति प्रदान करें। हे चक्रायुध! आपको प्रणाम! हे आर्य! यहां का यह तीर्थ चक्रतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो जाये तथा आप यहीं रहकर ऐसा करिये जिससे यहां स्नान करने वाले मुनिगण निष्पाप हो जायें। हे प्रभो! आप यहां रहकर भूत-प्रेत-पिशाचों के भय को दूर करें।" तत्पश्चात् योगी पद्मनाभ की प्रार्थना से प्रसन्न होकर सुदर्शन चक्र ने कहा—"यही हो!" यह कहकर चक्र सुदर्शन उसी तीर्थ में अन्तर्हित् हो गये।।४२-४७।।

श्रीसूत उवाच

एवम्वःकथितोविप्रा राक्षसस्योद्भवोमया। माहात्म्यंचक्रतीर्थस्यकथितञ्चमलापहम्।।४८।।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवो भुवि।।४९।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये चक्रतीर्थमहिमानुवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः।।२४।।

श्रीसूत जी कहते हैं—हे विप्रगण! मैंने इस प्रकार आपलोगों से राक्षस की उत्पत्ति तथा पापहारी चक्रतीर्थ का महाफल कहा। इसे सुनने वाला व्यक्ति सर्दपापरहित हो जाता है।।४८-४९।।

।।चतुर्विंश अध्याय समाप्त।।

पञ्चविंशोऽध्यायः

जाबालि तीर्थ महिमा, दुराचाराख्य द्विज का वर्णन, दुराचार विमोक्षण

श्रीसूत उवाच

भोभोस्तपोधनाः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः। वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने॥१॥
ततो जाबालितीर्थस्य माहात्म्यं वर्णयाम्यहम्।
दुराचाराभिधो यत्र स्नात्वा मुक्तोऽभवद् द्विजाः!॥२॥

सूत जी कहते हैं—हे नैमिषारण्यनिवासी तपोधनगण! अब सर्वपातकनाशक महापुण्यप्रद वेंकट पर्वतस्थ जाबालितीर्थ माहात्म्य वर्णन करता हूं। हे द्विजगण! दुराचार नामक एक द्विज इस तीर्थ में स्नान करके मुक्त हो गया था।।१-२।।

मुनयः ऊचुः

दुराचाराभिधःकोऽसौ सूततत्त्वार्थकोविद !। किञ्चपापंकृतन्तेन दुराचारेण वै मुने !॥३॥
कथम्बा पातकान्मुक्तस्तीर्थेऽस्मिन्स्नानवैभवात्।
एतच्छुश्रूषमाणानां विस्तराद्वद नो मुने !॥४॥

ऋषिगण कहते हैं—हे सूत! आपको समस्त तत्वार्थ यथायथ विदित है। हे मुने! यह दुराचार कौन था? इसने क्या पाप किया था? इस तीर्थ में स्नान के प्रभाव से वह किस प्रकार पापमुक्त हो गया? हमें यह सभी सुनने की इच्छा है। हे मुनिवर! कृपया विस्तार से कहें।।३-४।।

सूत उवाच

मुनयः श्रूयतां तस्य दुराचारस्य पातकम्। जाबालितीर्थस्नानेन यथामुक्तश्चपातकम्॥५॥
दुराचाराभिधो विप्रः कावेरीतीरमाश्रितः। कश्चिदास्तेद्विजःपापीक्रूरकर्मरतः सदा॥६॥
ब्रह्मघ्नैश्च सुरापैश्चस्तेयिभिर्गुरुतल्पगैः। सदासंसर्गदुष्टोऽसोतैःसाकंन्यवसद्द्विजाः॥७॥
महापातकसंसर्गदोषेणाऽस्यद्विजस्य वै। ब्राह्मण्यं सकलं नष्टं निःशेषेण द्विजोत्तमाः॥८॥
महापातकिभिः सार्धं दिनमेकंतु यो द्विजः। निवसेत्सादरंतस्यतत्क्षणाद्वैद्विजन्मनः॥९॥
ब्राह्मणस्य तु चैकांशोनश्यत्येव न संशयः। द्विदिनंसेवनात्स्पर्शाद्दर्शनाच्छयनात्तदा॥१०॥
भोजनात्सह पङ्क्तौ च महापातकिभिर्द्विजाः!।
द्वितीयभागो नश्येत ब्राह्मण्यस्य न संशयः॥११॥
त्रिदिनाच्च तृतीयांशोनश्यत्येव न संशयः। चतुर्दिनाच्चतुर्थांशो विलयंयातिहिध्रुवम्॥१२॥

अतः परं च तैः साकं शयनाशनभोजनैः। तत्तुल्यपातकीभूयान्महापातकिसङ्गवान्॥१३॥

सूत ने उत्तर दिया—हे मुनिगण! इस दुराचार की पापकथा तथा वह जाबाल तीर्थ में स्नान करके कैसे मुक्त होकर दुराचार रहित हो सका, वह सब सुनें। कावेरी तीर पर दुराचार नामक एक विप्र निवास करना था। वह पापी तथा क्रूरकर्मा था। वह ब्रह्महत्यारा, मद्यपापी, चोर तथा गुरुपत्नीगामी लोगों के साथ सदा रहता था। इस प्रकार संग-दोष से नितान्त दूषित हो गया। हे द्विजोत्तमगण! महापातकी लोगों के संसर्ग के कारण उसका ब्राह्मणत्व पूर्णरूप से विलुप्त हो गया। जो द्विज महापातकी लोगों के साथ आदर सहित एक दिन भी निवास करता है, उसके ब्राह्मणत्व के एकांश का नाश हो जाने में कोई सन्देह ही नहीं है। हे द्विजगण! दो दिन महापापी लोगों के साथ से, उनका स्पर्श, दर्शन करने से, उनके साथ शयन करने से, एक पंक्ति में उनके साथ भोजन करने से ब्राह्मणत्व का द्वितीय अंश भी नष्ट हो जाता है। तीन दिन ऐसा करने से ब्राह्मणत्व का तीन, चार दिन में ब्राह्मणत्व का चार अंश नष्ट होता है तथा इसके पश्चात् और अधिक दिन शयन, उपवेशन किंवा भोजन करने से वह व्यक्ति उन पापियों जैसा महापातकी हो जाता है।।५-१३।।

तेन ब्राह्मण्यहीनोऽयं दुराचाराभिधो द्विजः। ग्रस्तोऽभवद्भीषणेनव्यालेनेवबलीयसा॥१४॥
असौ परवशस्तेन वेतालेनाऽतिपीडितः। देशाद्देशं भ्रमन्विप्रोवनाच्चैव वनान्तरम्॥१५॥
पूर्वपुण्यविपाकेन दैवयोगेन स द्विजः। वेङ्कटाद्रिं महापुण्यं सर्वपातकनाशनम्॥१६॥
अनुद्रुतः पिशाचेन वेतालेन द्विजौ ययौ। न्यमज्जयत्स वेतालो महापातकनाशने॥१७॥
जाबालितीर्थे विप्रेन्द्रा महापातकिसङ्गिनम्। उदतिष्ठत्क्षणादेव वेतालेन विमोहितः॥१८॥
उत्थितोऽसौ द्विजो विप्रास्तस्मातीर्थात्तु पावनात्।
स्वस्थो व्यचिन्तयत्कोऽयं स्वर्णमुख्याः समीपतः॥१९॥
कथं मयागतमहो कावेरीतीरवासिना। इतिचिन्ताकुलःसोऽयंजाबालेस्तीर्थमुत्तमम्॥२०॥

यह ब्राह्मण दुराचार इस प्रकार के संसर्गदोष से ब्राह्मणत्व रहित होकर महापातकी हो गया। तदनन्तर प्रबल व्यालग्रस्त की तरह (सर्पग्रस्त की तरह) एक भीषण वेताल द्वारा आविष्ट होकर परवश सा वह ब्राह्मण दुराचार देश-देशान्तर में, एक वन से अन्य वन में उस पिशाच से आविष्ट रहता हुआ घूम रहा था, तथापि वह अपने किसी जन्म के पुण्य के कारण देवदेव सर्वपातकहारी महापुण्यप्रद वेंकटाचल पहुंचा। हे विप्रेन्द्रगण! वह पापसंसर्गी द्विज दुराचार अपने ऊपर आविष्ट हुये वेताल के साथ महापातक नाशक जाबालितीर्थ में स्नान करके जब बाहर निकला, तब उसने अनुभव किया कि वह उस वेताल से मुक्त हो गया। वह उस पावन तीर्थजल से बाहर आकर अपने को स्वस्थ अनुभव करने लगा। तब वह मन ही मन विचार करने लगा—"मैं तो कावेरी तट पर रहता था। मैं किस प्रकार से सुवर्णमुखरी के तट पर पहुंच गया? साथ ही यह जो पर्वत दृष्टिगोचर हो रहा है, इसका नाम क्या है?" इस प्रकार वह द्विज चिन्ताकुल स्थिति में पड़ा था।।१४-२०।।

जाबालिंचमहात्मानंयोगीन्द्रवरमुत्तमम्। समागम्यप्रणस्याऽऽसौदुराचारोऽभ्यभाषत॥२१॥
न जाने भगवन्विप्र पर्वतोऽयंवदाऽधुना। कावेरीतीरनिलयो दुराचाराभिधोह्यहम्॥२२॥
कृपया ब्रूहि मे ब्रह्मन्मयाऽत्र कथमागतम्। इतिपृष्टो मुनिस्तेनदुराचारेण सुव्रतः॥२३॥

ध्यात्वा मुहूर्तमवद्दुराचारं कृपानिधिः॥२४॥

वह द्विज इसी प्रकार चिन्ताकुल होकर जाबालि तीर्थ में पास ही निवास कर रहे महामुनि योगीन्द्र प्रवर महात्मा जाबालि के पास पहुंच गया। उसने उन महामुनि को प्रणाम करके पूछा—"हे भगवान्! मुझे इस पर्वत का नाम ज्ञात नहीं है। कृपया मुझे बतायें। मैं तो कावेरी तट का वासी था। मेरा नाम दुराचार है। हे ब्राह्मण! मैं यहां तक कैसे पहुंच गया, कृपा करके कहें।" दुराचार द्वारा यह पूछे जाने पर सुव्रत कृपानिधि जाबालि ने कुछ क्षण ध्यान करके उत्तर देना प्रारंभ किया।।२१-२४।।

जाबालिरुवाच

महापातकिसंसर्गाद्दुराचारस्य ते पुरा। ब्राह्मण्यं नष्टमभवद्वेतालस्त्वां ततोऽग्रहीत्॥२५॥

तेनाऽऽविष्टस्त्वमायातो विवशोऽत्र विमूढधीः।
न्यमज्जयत्त्वां वेतालस्तीर्थेऽस्मिन्नतिपावने॥२६॥
अत्रमज्जनमात्रेण विमुक्तः पातकाद्भवान्।
जाबालितीर्थे ये स्नानंपुण्यंकुर्वन्तिमानवाः॥२७॥

तेषां नश्यन्तिवैसत्यंपञ्चपातकसञ्चयाः। सत्कर्मसाधनेपुण्यतीर्थेऽस्मिन्स्नानमात्रतः॥२८॥
महापातकिसंसर्गदोषस्ते विलयं गतः। त्वामग्रहीद्यो वेतालः पुरायंब्राह्मणोऽभवत्॥२९॥
मृतेऽहनिपितृश्राद्धं नाऽकरोत्पार्वणेन वै। तेन स्वपितृभिः शप्तोवेतालत्वमगादयम्॥३०॥

ऋषिप्रवर जाबालि कहते हैं—हे दुराचार! पूर्वकाल में महापातकीगण के संसर्ग के कारण तुम्हारा ब्रह्मण्य नष्ट हो गया, अतः बेताल ने तुमको ग्रस्त कर लिया था। तुम बेताल द्वारा आविष्ट थे। तुम्हारा समस्त ज्ञान लुप्त हो गया था। तभी तुम बेताल के कारण यहां तक लाये गये। बेताल ने ही तुमको इस अतिपावन तीर्थ में स्नान कराया। तुम यहां स्नान करते ही पातकों से छूट गये। जो मनुष्य इस तीर्थ में स्नान करते हैं, उनके लिये मैं सत्य कहता हूं कि उनके पंच पातकों का क्षय हो जाता है। सत्कर्म साधकरूप इस तीर्थ में स्नान करते ही तुम्हारा महापातकी संसर्ग जनित दोष विलीन हो गया। जिस बेताल ने तुमको आविष्ट किया था। वह पूर्वकाल में एक ब्राह्मण था। उसने मृतकालीन पितृगण का श्राद्ध सम्पन्न नहीं किया था। अतः पितरों द्वारा अभिशप्त होकर वेतालत्व को प्राप्त हो गया।।२५-३०।।

सोऽपिजाबालितीर्थस्यजलेस्नानप्रभावतः। वेतालत्वंविहायैव विष्णुलोकमवाप्तवान्॥३१॥
न कुर्याद्यो नरः श्राद्धंमातापित्रोर्मृतेऽहनि। वेतालत्वमवाप्याऽऽशुपश्चान्नरकमश्नुते॥३२॥

वह बेताल भी जाबालि तीर्थ जल में स्नान के प्रभाव से बेतालत्व छोड़कर विष्णुलोक को प्राप्त हो गया। जो मनुष्य माता-पिता की मृत तिथि पर श्राद्ध नहीं करते, वह बेतालत्व पाकर शीघ्र नरक गमन करते हैं।।३१-३२।।

सूत उवाच

दुराचारो महापापीतीर्थेऽस्मिन्स्नानमात्रतः। प्राप्तवान्विष्णुलोकंवैपुनरावृत्तिवर्जितम्॥३३॥

एवम्वः कथितं पुण्यं दुराचारविमोक्षणम्। तस्मात्पुण्यतमंतीर्थं सर्वपापहरं शुभम्।।३४।।
यत्र हि स्नानमात्रेण दुराचारो विमोचितः।
यानि निस्कृतिहीनानि पापान्यपिविनाशयेत्।।३५।।
शृद्रेण पूजितं लिङ्गंविष्णुंवायोनमेद्द्विजः। प्रायश्चित्तंनस्मृतिषुतस्योक्तंपरमर्षिभिः।।३६।।
नश्येत्तस्यापि तत्पापंतीर्थेजाबालिसञ्ज्ञके। विप्रनिन्दाकृतांचैवप्रायश्चित्तंन विद्यते।।
विश्वासघातकानां च कृतघ्नानां च निष्कृतिः। भ्रातृभार्यारतानांचप्रायश्चित्तंनविद्यते।।३८।।
तेषां जाबालितीर्थे वै स्नानाच्छुद्धिर्भविष्यति।
एवम्वः कथितंविप्राजाबालेस्तीर्थवैभवम्।।३९।।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवो भुवि।।४०।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये जाबालितीर्थमहिमानुवर्णनंनाम पञ्चविंशोऽध्यायः।।२५।।

सूत जी कहते हैं—महापापी दुराचार इस तीर्थ में स्नान मात्र से पुनर्जन्मरहित होकर विष्णुलोक चला गया। यह आपलोगों से दुराचार का मुक्ति वृत्तान्त कहा है। अतः यह तीर्थ पुण्यतम, सर्वपापहर तथा शोभन है। जिन पापों से कहीं छुटकारा नहीं मिलता, वे सभी पाप इस तीर्थ में नष्ट हो जाते हैं। शूद्र पूजित लिंग अथवा शूद्रपूजित विष्णु मूर्त्ति को जो द्विज प्रणाम करता है, ऋषियों के स्मृतिशास्त्र में उसका कोई प्रायश्चित्त नहीं है, तथापि जाबालि तीर्थ में स्नान मात्र से वह पाप भी नष्ट हो जाता है। विप्रनिन्दक, विश्वासघाती, कृतघ्न तथा भाई की पत्नी से गमन करने वाले का कोई प्रायश्चित्त शास्त्र में नहीं है। जाबालि तीर्थ में स्नान करने से ये भी शुद्ध हो जाते हैं। हे विप्रगण! मैंने आपलोगों से जाबालितीर्थ महिमा कह दिया। इस माहात्म्य को सुनने से मानव सर्वपापरहित हो जाता है।।३३-४०।।

।।पञ्चविंश अध्याय समाप्त।।

षड्विंशोऽध्यायः

तुम्बुरुघोणतीर्थमाहात्म्य, गन्धर्व का पत्नी को शाप देना, घोणतीर्थ प्रशंसा

सूत उवाच

अथाऽहं सम्प्रवक्ष्यामि शौनकाद्या महौजसः!। घोणतीर्थस्य माहात्म्यं सर्वपातकनाशनम्।।१।।

तत्रस्नानं जनानां तु जन्मान्तरतपःफलम्। उत्तराफल्गुनीयुक्तशुक्लपक्षीयपर्वणि॥२॥
तुम्बोस्तीर्थं मीनसंस्थे रवौ तीर्थानि सर्वशः। अपराह्णेसमायान्तिगङ्गादीनिजगत्त्रये॥३॥

सूत जी कहते हैं—हे महातेजस्वी शौनकादि मुनिगण! सर्वपापनाशक घोणतीर्थ की महिमा कहता हूं। जन्मान्तर संचित तप के फल प्रभाव से ही मानव को भाग्य से घोणतीर्थ स्नान का संयोग प्राप्त होता है। उत्तर फाल्गुनी नक्षत्रयुत चैत्रमासीय शुक्लपक्ष के पर्व दिवसों पर अपराह्न में पृथिवी के गंगा आदि समस्त तीर्थ इस घोणतीर्थ में मिलित हो जाते हैं।।१-३।।

ऋषय ऊचुः

भगवन्सूत ! सर्वज्ञ ! सर्वशास्त्रार्थपारग !। गङ्गाद्याः सरितः सर्वा घोणतीर्थेऽतिपावने॥४॥
किमर्थं स्नान्ति वै तत्र मीनसंस्थे प्रभाकरे॥५॥

ऋषिगण कहते हैं—हे सूत! आपको समस्त शास्त्रों का अर्थ विदित है। आप सर्वतत्वज्ञ हैं। हे भगवान्! चैत्रमास में गंगादि सभी तीर्थ इस घोणतीर्थ में क्यों मिलित हो जाते हैं?।।४-५।।

श्रीसूत उवाच

पापिनो मनुजाः सर्वे ह्यस्मासु स्नान्ति यत्नतः।
विसृज्य पापजालानि कृतार्था यान्ति वै जनाः॥६॥
अस्माकं पापजालं तत्कथं नश्यति सर्वतः। एवमालोच्यतीर्थानिगङ्गादीनिप्रयत्नतः॥७॥
संस्मृत्य ब्रह्मपुत्रस्य नारदस्य महात्मनः। वाक्यं मनोहरंदिव्यं सर्वपापनिषूदनम्॥८॥
गत्वा श्रीवेङ्कटं शैलंब्रह्महत्यादिशोधकम्। तत्रस्नात्वातीर्थवर्येस्वामिपुष्करिणीजले॥९॥
अनन्तरं ततो विप्रा घोणतीर्थेऽतिपावने। उत्तराफल्गुनीयुक्तशुक्लपक्षीयपर्वणि॥१०॥

सूत जी कहते हैं—पापी मनुष्य यत्नतः घोणतीर्थ में स्नान करके सर्वपापरहित तथा कृतार्थ हो जाते हैं। गंगादि सभी तीर्थ यह सोचते हुये यत्नपूर्वक घोणतीर्थ में आते हैं कि "हमारे पाप कैसे नष्ट हों?"। ये सभी तीर्थ ब्रह्मपुत्र महात्मा नारद की बात का स्मरण करके ही सर्वपापहारी वेंकटाचल पर आते हैं। वे सभी तीर्थप्रवर स्वामिपुष्करिणी जल में स्नान करके तब चैत्रमास में उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र युक्त शुक्लपक्षीय पर्वदिवस पर अतिपावन घोणतीर्थ में भी स्नान करते हैं।।६-१०।।

स्नान्तितीर्थानिसर्वाणिमीनसंस्थेप्रभाकरे। तस्यतीर्थस्यमाहात्म्यंकोवेत्तिभुवनत्रये॥११॥
तस्मात्पुण्यतमं तीर्थं घोणतीर्थं द्विजोत्तमाः॥१२॥
आरामोच्छेदकं क्रूरं कन्यातुरगविक्रयम्। घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुर्ब्रह्मधातुकम्॥१३॥
देवद्रव्यापहर्तारं तथा दत्तापहारकम्। घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुर्ब्रह्मघातुकम्॥१४॥
तटाकसेतुभेत्तारं परस्त्रीसङ्गलोलुपम्। घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुः स्तेयिनं बुधाः॥१५॥
ददामीति द्विजायोक्त्वा पश्चाद्यो नास्तिकोऽधमः।
घोणस्नानपरित्यक्तं सुरापं तं विदुर्बुधाः॥१६॥

गुरुविप्रजनद्वेष्यमात्मस्तुतिपरायणम्। घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुः स्तेयिनं बुधाः॥१७॥
असंस्कृतान्नभोक्तारं पितृशेषान्नभोजिनम्। घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुःस्तेयिनंद्विजाः॥१८॥
पितृशेषाऽन्नदातारंमातापितृविरोधिनम्। घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुः स्तेयिनं बुधाः॥१९॥

तीनों लोक में से कोई भी घोणतीर्थ की महिमा जान नहीं सकता। हे द्विजगण! इससे बढ़कर पुण्यतम तीर्थ अन्य कोई नहीं है। आवास-बाग आदि को भग्न करने वाले, क्रूर, कन्या तथा अश्व विक्रेता व्यक्ति यदि घोणतीर्थ में स्नान नहीं करते तब पण्डितगण उसे ब्रह्मघाती कहते हैं। जो व्यक्ति देवद्रव्य का हरण करता है, किंवा दान देकर पुनः दी गई वस्तु ले लेता है, अथच यह पाप करके भी घोणतीर्थ में स्नान नहीं करता, वह भी ब्रह्मघाती है। पुष्करिणी के तट को तोड़ने वाला, परस्त्री लोलुप मानव यदि घोणतीर्थ स्नान करके पापमुक्त नहीं होता, तब ज्ञानीजन उसे चोर मानते हैं। जो अधम द्विज को दान देने का वचन देकर नहीं देता, यदि वह घोणतीर्थ में स्नान नहीं करता है, तब उसे पण्डितगण सुरा पीने वाला कहते हैं। जो आत्मस्तुति परायण व्यक्ति गुरु तथा देवता से द्वेष करता है, तथापि (पापक्षालनार्थ) घोणतीर्थ में स्नान नहीं करता, उसे पण्डितजन चोर कहते हैं। पितरों के खाने से बचे अन्न का दान करने वाला, माता-पिता का विरोधी यदि पापनाशार्थ घोणतीर्थ में स्नान बिना किये रहता है, उसे भी विद्वान् लोग चोर कहते हैं।।११-१९।।

परस्त्रीसङ्गतनिरतं भ्रातृभार्यारतिप्रियम्। घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुर्गुरुतल्पगम्॥२०॥
चण्डालभाषिणं विप्रं सदैवादर्भपाणिकम्। घोणस्नानपरित्यक्तं तत्संसर्गं तु पञ्चमम्॥२१॥

जो परस्त्री संग करने वाला किंवा भाई की पत्नी का गमन करने वाला यदि घोणतीर्थ में स्नान करके पापमुक्त नहीं होता, तब उसे गुरुपत्नीगामी ही कहा जायेगा। जो विप्र सदा चाण्डालों से बात करता है, हाथ में कुशा धारण नहीं करता, तथापि पापनाशार्थ घोणतीर्थ में स्नान नहीं करता, उसे विद्वान् लोग पंचमहापातक युक्त मानते हैं।।२०-२१।।

रजस्वलाश्वचण्डालध्वनिंश्रुत्वाऽन्नभोजिनम्। घोणस्नानपरित्यक्तंतत्संसर्गंतुपञ्चमम्॥२२॥
पुराणोद्वाहमौञ्ज्यादिधर्माणांविघ्नकारकम्। घोणस्नानपरित्यक्तंतमाहुःपशुघातुकम्॥२३॥
शरणागतहन्तारं सर्वतीर्थपराङ्मुखम्। घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुर्भ्रूणहं बुधाः॥२४॥
पितृयज्ञपरित्यक्तं त्यक्तभार्यं कुलाधमम्। घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुर्गोविघातुकम्॥२५॥
महापापसमानानि क्षुद्रपापानि यानि च। घोणस्नानपरित्यक्तमाश्रयन्ति द्विजोत्तमाः॥२६॥
महापापरतं विप्राः श्वपचं वा कुलाधमम्। क्रूरं कुलान्तकं कष्टमदत्तं कर्मवर्जितम्॥२७॥
पशुघ्नं च परद्रोहमाश्रितं पिशुनं तथा। असत्यभाषिणं दम्भपरदाररतं तथा॥२८॥
मित्रद्रोहं कृतघ्नं च भ्रूणहं चाऽतिपातकम्। परदाररतं पापं पराणामर्थसूचकम्॥२९॥
अनृतं कृषिकर्माणं स्वामिद्रोहं च वञ्चकम्। सलोभंपितृहन्तारं सर्वदेवपराङ्मुखम्॥३०॥
आत्मप्रशंसां कुर्वाणं धर्मविघ्नकरं शठम्। अपात्रव्ययकर्तारं साऽनुकूल्यविभेदकम्॥३१॥
सुपल्लवफलोपेतवृक्षविच्छेदकारकम्। विश्वासघातुकं चैव वीरहत्यापरायणम्॥३२॥

अनग्निकमपुत्रं च विषकर्मप्रयोगिणम्। गुरुद्वेषकरं पापं दम्पत्योर्विरसावहम्।।३३।।
ग्रामाधिपत्यं कुर्वाणं तथा देवालयस्य च। भृतकाध्यापकं विप्रं क्रूरकर्मपरायणम्।।३४।।
प्रकृतीकृतपापौघं गुह्याघौघपरायणम्। अज्ञानादघकर्तारं ज्ञानाद्दुष्कर्मकारकम्।।३५।।
एतान्सर्वांश्च विप्रेन्द्रा घोणतीर्थं मनोहरम्। पुनाति स्नानपानाद्यैरहोतीर्थस्यवैभवम्।।३६।।

जो व्यक्ति भोजनकाल में रजस्वला किंवा कुत्ता खाने वाले चाण्डाल की ध्वनि सुनता है, तथापि पापमुक्ति हेतु घोणतीर्थ में स्नान नहीं करता, उसे भी पंचमहापातकी मानते हैं। घोणस्नान रहित तथा पुराण-विवाह-उपनयनादि मौञ्जी क्रिया नाशक व्यक्ति विद्वानों के मत से पशुघाती कहा जाता है। सभी तीर्थों से विमुख तथा शरणागत हन्ता व्यक्ति यदि घोणतीर्थ स्नान नहीं करता, तब बुधगण उसे भ्रूणहत्यारा कहते हैं। जो कुलाधम पितृयज्ञ का तथा पत्नी का त्याग करके भी घोणस्नान द्वारा पापनाश नहीं करता उसे विज्ञलोग गोहत्यारा मानते हैं। हे द्विजोत्तमगण! जो व्यक्ति घोणस्नान का त्याग करता है, उसे महापातक तथा छोटे पाप—ये सभी घेर लेते हैं। अहा! घोणतीर्थ का क्या उत्तम वैभव है। हे विप्रों! महापातकरत, श्वपच, कुलाधम, क्रूर, कुलान्तक, दुःखी, कर्मवर्जित, पशुहत्यारा, परद्रोही, शरणागत का हत्यारा, असत्यवक्ता, दम्भी, परदाररत, मित्रद्रोही, कृतघ्न, भ्रूणहत्यारा, अतिपातकी, परस्त्रीरत, परार्थद्रोही, झूठा, कृषिकर्म करने वाला, स्वामिद्रोही, वञ्चक, लोभी, पितृहन्ता, देवता से विमुख, आत्मप्रशंसक, धर्म में विघ्न करने वाला, शठ, अपत्र को दान देने वाला, अनुकूलविघातक, सुन्दर फल-पुष्प वाले वृक्ष को काटने वाला, विश्वासघाती, वीरों का वध करने वाला, अग्निरहित, अपुत्रक, विषदाता, गुरुद्वेषी, दम्पति के बीच विरोध कराने वाला, बलपूर्वक ग्राम पर अधिकार करने वाला, देवालय का अधिपति, वेतन लेने वाला अध्यापक, क्रूरकर्मा, स्वभाव से पापी, छिपा पापी तथा ज्ञान एवं अज्ञान पूर्वक पाप करने वाला—ये सभी मनोहर घोणतीर्थ में स्नान करने तथा वहां का जल पीने से पवित्र हो जाते हैं। यह उस तीर्थ का वैभव है।।२२-३६।।

सूत उवाच

अत्रेतिहासं वक्ष्यामि पुराणं पापनाशनम्। सर्वपापप्रशमनमपवर्गफलप्रदम्।।३७।।
पुरा गार्ग्यो महातेजाःसर्वविद्याविशारदः। सर्वज्ञोनीतिवान्विप्रःप्राहचेत्थंजितेन्द्रियः।।३८।।
देवलं च महात्मानं नमस्कृत्य प्रसन्नधीः। कथयस्व महाभाग ! मयिकारुणिको भव।
घोणतीर्थस्य माहात्म्यं सर्वपापहरं शुभम्।।३९।।

सूत जी कहते हैं—इस विषय से सम्बन्धित पापनाशन एक पुराना इतिहास कहता हूं। इसे सुनने से समस्त कलुष नाश हो जाता है तथा अपवर्ग फल मिलता है। पूर्वकाल में जितेन्द्रिय नीतिमान सर्वविद्याविशारद महातेजा प्रशस्तमन वाले सर्वज्ञ गार्ग्य ने महात्मा देवल को प्रणाम करके पूछा—"हे महाभाग! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होकर सर्वपाप हरण करने वाले घोणतीर्थ की महिमा कहिये"।।३७-३९।।

देवल उवाच

तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वो भार्यां शप्त्वा पतिव्रताम्।
अत्रस्नात्वा समभ्यर्च्य वेङ्कटेशं दयानिधिम्।।४०।।

प्राप्तवान्विष्णुलोकं वै पुनरावृत्तिवर्जितम्॥४१॥

देवल कहते हैं—पूर्वकाल में तुम्बुरु नामक एक गन्धर्व था। उसने अपनी पत्नी को शाप दिया था, जिससे वह कलुषित हो गया। अतएव दयानिधि वेंकटेश की सम्यक् अर्चना करके उसने विष्णुलोक प्राप्त किया।।४०-४१।।

गार्ग्य उवाच

किमर्थं देवलऋषे ! भार्यां रूपवतीं स्त्रियम्। तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वः सर्वविद्याविशारदः॥४२॥
शप्तवान्केनदोषेण भार्यां सर्वगुणान्विताम्। तद्वदस्वमहाभाग ! श्रोतुं कौतूहलंहि मे॥४३॥
तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वो भार्यां प्रीत्या ह्युवाच ह। माघत्रये मयासाकं स्नानं कुरुमलापहम्॥४४॥
माघमास्युदिते सूर्ये सर्वकल्मषनाशने। तीरेऽस्मिन्विष्णुपूजार्थंगोमयालेपनं कुरु॥४५॥
रङ्गवल्यादिभिः शुभ्रपद्मस्वस्तिकधातुभिः।
शुश्रूषां कुरु मे विष्णोर्मासेऽस्मिन्मङ्गलप्रदे॥४६॥
माघेऽस्मिन्माधवस्याऽस्य कुरुत्वंदीपवर्तिकाम्। सधूपंपावकंभक्त्यासमर्पयहरेःपुरः॥४७॥
कुरु पाकं शुचिर्भूत्वा माधवाय महात्मने। प्रदक्षिणानमस्कारैर्भक्त्या माघे मया सह॥४८॥
कुरुष्व देवदेवस्य सपर्यां विष्णवेऽन्वह। पुराणश्रवणं विष्णोःकुरुनित्यमतन्द्रिता॥४९॥
नित्यं स्नात्वा प्रयत्नेन पिबपादोदकं हरेः। कृष्णविष्णो मुकुन्देति नारायणजनार्दन॥५०॥
अच्युतानन्त विश्वात्मन्निति कीर्तय सन्ततम्।
क्रोधमात्सर्यलोभादींस्त्यक्त्वा त्वं व्रतमाचर॥५१॥

गार्ग्य ऋषि कहते हैं—हे देवल! गन्धर्व तुम्बुरु तो सर्वविद्या विशारद था। उसने किस कारण से अपनी पतिव्रता सुरूपा पत्नी को शाप प्रदान किया? यह जानने के लिये मुझे कुतूहल है। कृपया कहें।

देवल कहते हैं—एक बार तुम्बुरु ने प्रीतिपूर्वक भार्या से कहा—"हे प्रिये! माघत्रय में तुम मेरे साथ इस तीर्थ में स्नान करो। यह स्नान मल हरण करने वाला है। (मल=कार्ममल इत्यादि मलत्रय)। माघमास में जब सूर्य उदित होते हैं, तब सर्वपापहारी इस तीर्थ की कुछ तटभूमि को गोबर से लेपन करके वहां रंगवल्यादि धातु (रंगे गये चूर्ण) द्वारा शुद्ध पद्म तथा स्वस्तिक का अंकन करो। हे दयिते! इस मंगलमय वैष्णवमास में मेरी सुश्रूषा करो। हे प्रिये! इस माघ मास में माधव के लिये दीप-बत्ती प्रदान करो। हे प्रिये! अग्नि जलाकर विष्णु के समक्ष धूपदान करो तथा पवित्र होकर अन्नादि पाक करके माधव को अर्पित करके उनको मेरे साथ प्रणाम करो तथा उनकी प्रदक्षिणा करो। तुम मेरे साथ आलस्य त्याग कर देवदेव विष्णु की सेवा तथा पुराण श्रवण करो। नित्य प्रयत्नतः स्नान करके हरिपादोदक पान करो। तदनन्तर क्रोध-मात्सर्य-लोभादि दुर्गुणों का त्याग करके कृष्ण-विष्णु-मुकुन्द-नारायण-जनार्दन-अच्युत, अनन्त, विश्वात्मन्-विष्णु के इन नामों का कीर्त्तन करो। इस व्रत का पालन करो"।।४४-५१।।

तेन ते जायते मुक्तिर्विष्णुलोकश्च शाश्वतः। इत्थंसा भर्तृगदितं श्रुत्वागन्धर्ववल्लभा।
भर्तारमब्रवीत्कोपादसह्यं दुर्गतिप्रदम्॥५२॥

माघेचोद्भूतशीते तु प्रातर्मन्दोदिते रवौ। कथं निमज्जयेदस्मिन्माघेशीतार्तिदेऽनघ।।५३।।
यत्त्वयोक्तानि कर्माणि न शक्यानि मयाऽसकृत्।
न करोमि पते ! स्नानं प्रातःकाले त्वया सह।।५४।।
मृतौशीतातिपातेन न च मे रक्षको भवान्। इत्येवमुदितं श्रुत्वा पतिर्गन्धर्ववल्लभः।।५५।।
स शान्तोऽपि शशापाऽथ भार्यां चाऽप्रियवादिनीम्।
पुत्रं च धर्मविमुखं भार्यां चाऽप्रियभाषिणीम्।।५६।।
अब्रह्मण्यञ्चराजानंसद्यःशापेन दण्डयेत्। इतिन्यायंविचिन्त्याऽसौशशापेत्थंसतींतदा।।५७।।
वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने। घोणतीर्थसमीपे च पिप्पलद्रुमकोटरे।।५८।।
तत्राम्बुरहिते मूढे ! मण्डूका भव केवलम्। इत्येवं भर्तृवाक्यंतच्छ्रुत्वा गन्धर्ववल्लभा।।५९।।

"हे प्रिये! इस प्रकार के कीर्त्तन द्वारा तुमको मुक्ति प्राप्त होगी तथा तुम नित्य विष्णुलोक में निवास करोगी।" गन्धर्व पत्नी ने स्वामी से यह सुनकर क्रोधित होकर पति से दुर्गतिप्रद असह्य वाक्य कहा—"हे निष्पाप! माघमास में प्रातः नवोदित सूर्य शीत प्रदान करते हैं। मैं किस प्रकार से उस पीड़ाकारी शीत के समय जल में स्नान करूंगी? हे स्वामिन्! आप ने जो कहा, वह मेरे लिये असहनीय है। यदि मैं शीत से मृत हो जाती हूं, तब आप मेरी रक्षा नहीं कर सकेंगे। अतः मैं प्रातः आपके साथ स्नान कर सकने में कदापि समर्थ नहीं हूं।" तदनन्तर गन्धर्वपति ने पत्नी का ऐसा कथन सुनकर पत्नी को शाप दे दिया। धर्मविमुख पुत्र, अप्रियवादिनी पत्नी तथा अब्रह्मण्य राजा को तत्काल शाप से दण्ड देना चाहिये। यह नीति है। गन्धर्वराज ने यही कर्त्तव्य मानकर उस सती को शाप दिया था। उन्होंने पत्नी को शाप दिया—"हे मूढ़े! सर्वपातकनाशक महापुण्यमय वेंकटपर्वत पर घोणतीर्थ स्थित है। यहां एक पीपल वृक्ष है। तुम मेढ़क बनकर इस जलरहित पीपल वृक्ष के कोटर में निवास करो।" पति का यह कठोर वाक्य सुनकर वह गन्धर्वपत्नी पति के चरण पर गिर पड़ी।।५२-५९।।

पतित्वा पादयोस्तस्य तुम्बुरुं प्रार्थयत्सती। विशापमवदत्पश्चाद्भर्त्तावैतुम्बुरुस्तदा।।६०।।
अगस्त्यो वै महाभागस्तपस्वी विजितेन्द्रियः।
घोणतीर्थवरे स्नात्वा पौर्णमास्यां महातिथौ।।६१।।
शिष्येभ्यो वै यदा तस्मिन्नश्वत्थद्रुमसन्निधौ।
घोणतीर्थस्य माहात्म्यं वक्ति वै ब्राह्मणोत्तमः।।६२।।
तदापिप्पलवृक्षस्यकोटरेत्वंसमाहिता। श्रुत्वावै घोणतीर्थस्यमाहात्म्यंमोक्षदायकम्।।६३।।
विधूयसर्वपापानि मया साकं रमिष्यसि। इत्युक्त्वा विररामथ धर्मपत्नी पतिव्रता।।६४।।

उसने पति द्वारा प्रदत्त यह शाप सुना तथा उस गन्धर्व के चरणों पर गिर गयी। उसने शापमुक्ति हेतु पति से प्रार्थना किया। पत्नी की प्रार्थना से प्रसन्न होकर गन्धर्व ने कहा—"हे प्रिये! उत्तम घोणतीर्थ में जितेन्द्रिय महाभाग तपस्वी अगस्त्य का आश्रम प्रतिष्ठित है। महर्षि ब्राह्मणोत्तम अगस्त्य जब महातिथि पौर्णमासी के दिन घोणतीर्थ में स्नान करके इस पीपल के नीचे बैठकर शिष्यों से घोणतीर्थ की महिमा का वर्णन करेंगे, तब तुम

समाहित मन से उसी पीपलवृक्ष के कोटर में से अगस्त्य वर्णित मोक्षप्रद घोणतीर्थ माहात्म्य श्रवण करके पापरहित हो जाओगी तथा पुनः मेरे पास आ जाओगी।।६०-६४।।

भर्तृशापान्महाघोरां मण्डूकतनुमाश्रिता। शेषाद्रिशिखरे तस्मिन्घोणतीर्थस्य दक्षिणे।।६५।।
शनैःशनैर्गतानारी पिप्पलद्रुमकोटरम्। अब्दायुतं गतं तस्या अश्वत्थद्रुमकोटरे।।६६।।
ततः कालान्तरेऽगस्त्यो वेङ्कटाद्रिं मनोहरम्।
गत्वा श्रीस्वामितीर्थे च स्नात्वा नियमपूर्वकम्।।६७।।
वराहस्वामिनं देवंनत्वातीर्थस्यदक्षिणे। वेङ्कटेशालयंगत्वा श्रीनिवासं कृपानिधिम्।।६८।।
वेदवेद्यं विशालाक्षं देवदेवं सनातनम्। नत्वाऽगस्त्योमहाभागो घोणतीर्थंततो ययौ।।६९।।
तत्र स्नात्वा तीर्थवर्ये स्वशिष्यैर्योगिनाम्वरः।
पिप्पलद्रुमच्छायायां शिष्येभ्यो भक्तिपूर्वकम्।।७०।।
घोणतीर्थस्य माहात्म्यं ब्रह्महत्याविनाशकम्। सर्वमङ्गलदम्पुण्यंसर्वसम्पत्प्रदायकम्।।७१।।
उक्तवान्योगिनां श्रेष्ठो ह्यगस्त्यो भगवानृषिः।।७२।।
तदा श्रुत्वा तु वर्षाभूः पादयोस्तस्ययोगिनः। पतित्वाज्ञानदीपेनविदित्वावैभवंमुनेः।।७३।।

तदनन्तर गन्धर्वराज यह कहकर विरत हो गया। उसकी पतिव्रता धर्मपत्नी स्वामी के शाप के कारण महाघोर मेढ़क शरीर धारिणी हो गयी। उसने शेषाद्रि (वेंकटाचल) शिखरस्थ घोणतीर्थ के दक्षिण तक धीरे-धीरे जाकर पीपल के कोटर का आश्रय लिया। इस वृक्षकोटर में रहते उस मेढ़क देहधारिणी गन्धर्वपत्नी को १०००० वर्ष व्यतीत हो गये। तदनन्तर कालान्तर में महर्षि अगस्त्य मनोहर वेंकटपर्वत पर पहुंचे। उन्होंने नियमपूर्वक स्वामिपुष्करिणी तीर्थ में स्नान किया। तदनन्तर, महर्षि शिष्यों के साथ तीर्थ के दक्षिण में स्थित वराहस्वामी के पास पहुंचे तथा उनको प्रणाम करके वेंकटपति कृपानिधि श्रीनिवास के समीप गये। तदनन्तर योगीवर महाभाग अगस्त्य ने वेदवेद्य विशालनेत्र सनातन देवदेव को प्रणाम किया तथा घोणतीर्थ पहुंचे। उन्होंने इस तीर्थ में शिष्यों के साथ स्नान किया तथा पीपल वृक्ष की छाया में सभी शिष्यों के साथ बैठकर श्रद्धापूर्वक सर्वसम्पतिप्रद सर्वमंगलदायक, ब्राह्महत्याविनाशन पुण्यप्रद घोण महिमा का कीर्त्तन करने लगे। तत्पश्चात् योगीप्रवर ऋषि भगवान् अगस्त्य द्वारा घोणतीर्थ महिमा वर्णन सम्पन्न होते ही वह मेढकी योगीप्रवर अगस्त्य के चरण पर गिर पड़ी। उसे उनके चरणों पर गिरते ही ज्ञानप्रदीप द्वारा मुनि अगस्त्य की विभूति का ज्ञान हो गया।।६५-७३।।

पूर्वरूपं समासाद्य नारीरूपं मनोहरम्। अगस्त्य ! योगिनां श्रेष्ठ रक्षरक्ष दयानिधे !।।७४।।
मांरक्षदययाब्रह्मन्पतिवाक्यविरोधिनीम्। इत्युक्त्वा तं विशालाक्षी विररामततःपरम्।।७५।।

उसने तत्काल अपना मेढ़क वाला शरीर त्याग दिया तथा उसे अपना पूर्ववाला मनोहर रूप प्राप्त हो गया। तत्पश्चात् विशाल नेत्रों वाली गन्धर्वस्त्री कहने लगी—"हे योगीराज अगस्त्य! आप मेरी रक्षा करिये। मेरी रक्षा करिये। हे कृपानिधि! मैंने पति की आज्ञा की अहवेलना किया था। हे ब्रह्मन्! मेरी रक्षा करिये। आप कृपा करके मेरी रक्षा करिये।।" यह कहकर वह विशालाक्षी मौन हो गयी।।७४-७५।।

अगस्त्य उवाच

का त्वंसुश्रोणिभद्रन्तेभेकजन्मप्रदायकम्। पापं पूर्वभवेचाऽऽसीत्तद्वदस्वचमाचिरम्।।७६।।

अगस्त्यदेव कहते हैं—हे सुश्रोणी! तुम्हारा मंगल हो! तुम कौन हो? किसलिये तुमको शापित होकर मेढ़क का शरीर धारण करना पड़ा। अब मुझे वह सब बताओ।।७६।।

नार्युवाच

तुम्बुरुर्नामगन्धर्वःसर्वविद्याविशारदः। तस्यभार्याऽस्म्यहम्विप्रह्यगस्त्यमुनिसेवित।।७७।।
भर्ता मे सर्वधर्मज्ञस्तुम्बुरुर्मुनिसत्तमः। सर्वधर्मान्मनोज्ञा त्वं कुरु नित्यम्मया सह।।७८।।
पतिवाक्यं तदा श्रुत्वा परलोकोपकारकम्। असह्यम्वाक्यमत्युग्रं दुर्गतिप्रदमेव हि।।७९।।
मया चोक्तं हि दुबुद्ध्या हे तात! कुनिसत्तम्!।।८०।।

गन्धर्वपत्नी कहती हैं—हे विप्र! सर्वविद्याविद् तुम्बुरु नामक गन्धर्व मेरे पति हैं। हे अगस्त्यदेव! हे मुनिसेवित! मेरे स्वामी सभी धर्मों के ज्ञाता तथा श्रेष्ठ मुनि हैं। एक दिन उन्होंने मुझसे कहा—"हे प्रिये! तुम प्रशान्तमन होकर मेरे साथ नित्य धर्म कार्य करो।" हे तात मुनिप्रवर! मैंने पति का यह कथन सुना तथा वह कथन परलोक के लिये उपकारी होने पर भी मैंने उनसे दुर्गतिप्रद उग्र एवं असह्य दुर्वाक्य कहा था।।७७-८०।।

अगस्त्य उवाच

कुशाग्रबुद्धिस्ते भर्ता शशाप त्वांरुषान्वितः। एवंशापोयुक्तएवपतिवाक्यविरोधिनीम्।।८१।।
पतिवाक्यमनादृत्य स्वेच्छया वर्तते तु या। सा नारी निरये घोरेपतत्याचन्द्रतारकम्।।८२।।
न स्वातन्त्र्यंतु नारीणां नोल्लङ्घ्यं पतिभाषणम्। पातिव्रत्येनपुण्येनपतिशुश्रूषणेनच।।८३।।
स्त्रियो विष्णुपदं यान्ति न चाऽन्यैरपि सुव्रतैः।
पतिर्माता पतिर्विष्णुः पतिर्ब्रह्मा पतिः शिवः।।८४।।
पतिर्गुरुः पतिस्तीर्थमिति स्त्रीणांविदुर्बुधाः। पतिवाक्यमपाकृत्ययानारीसुकृतैःपरैः।।८५।।
सदैव युज्यते सापि नैव शुद्धा भवेत्सकृत्। पतिहीना तु या नारीगुरुभिर्धर्मवित्तमैः।।८६।।
सा कृतज्ञा विदध्यात्तु व्रतं धर्मफलप्रदम्। पतिना प्रेरिता सैव पतिबुद्धिपरायणा।।८७।।
पतिपादाब्जतीर्थेन या स्नाता सा हरिप्रिया। सा स्नाता सर्वतीर्थेषुगङ्गादिषुनसंशयः।।८८।।

ऋषि अगस्त्यदेव कहते हैं—तुम्हारे पति की बुद्धि कुशाग्र जैसी हितकारक है। उन्होंने तुमसे उचित ही कहा था। उन्होंने रोषयुक्त होकर तुमको शाप दिया, वह भी उचित है। तुमने पतिवाक्य की अहवेलना किया था। जो नारी पति के कथन की उपेक्षा करके मनमाना कार्य करती हैं, जब तक चन्द्र-सूर्य आकाश में उदित होते रहेंगे, तब तक उसे घोर नरक में रहना होगा। नारी के लिये स्वतन्त्रता उचित नहीं है। पति के वाक्य का कदापि उल्लंघन न करे। पातिव्रत्य तथा पतिसेवा से नारीगण विष्णुलोक प्राप्त करती हैं। अन्य किसी भी सुकृत से यह गति नहीं मिल सकती। पण्डितों का कहना है कि पति ही नारी के लिये माता-पिता-विष्णु-ब्रह्मा-शिव-गुरु तथा तीर्थ है। एक बार भी पति के वाक्य का अनादर करने वाली स्त्री चाहे जितना भी सुकृत करे, उसे कदापि शुद्धि

नहीं मिल सकती। पतिहीना जो नारी है, वह धर्मज्ञ उत्तम गुरु से ज्ञान प्राप्त करके धर्मफल देने वाला व्रतादि पालन करें। जो नारी पति से प्रेरित होकर पतिपादपद्म रूपी तीर्थजल से स्नान करती है, वह पति बुद्धिपरायणा स्त्री हरिवल्लभा हो जाती है। उस नारी ने तो मानो गंगा आदि सभी तीर्थ स्नान कर लिया। इसमें सन्देह नहीं है।।८१-८८।।

तस्मात्त्वत्कृतदोषस्तु त्वामायातीति तत्फलम्।
भुञ्जन्त्यास्तेऽत्र शृण्वन्त्या घोणतीर्थस्य वैभवम्।।८९।।
मुक्तिरासीच्छुभाङ्गं तन्नारीरूपं पुनर्यथा। तस्माद्घोणस्य तीर्थस्यतुम्बुतीर्थमितीहवै।
लोके प्रसिद्धरभवदहो तीर्थस्य वैभवम्।।९०।।

अतएव तुम्हें अपने किये कर्म के ही कारण मण्डूक देह जैसा फल मिला था। अतः उसी फल भोग रूप मण्डूक देह में रहते हुये तुमने स्वामितीर्थ महिमा का श्रवण करके उस निकृष्ट देह से मुक्ति पाकर पुनः पूर्ववत् रमणीक शरीर पा लिया। इसलिये तुम्हारे स्वामी के नामानुरूप इसका अन्य नाम तुम्बुरु तीर्थ होगा। अहा! तीर्थों की क्या महिमा है। अब से यह तीर्थ घोणतीर्थ तथा तुम्बुरु तीर्थ के नाम से त्रैलोक्य ख्यात होगा।।८९-९०।।

श्रीसूत उवाच

घोणतीर्थे महापुण्येसर्वपापविनाशिनि। स्नान्तियेपौर्णमास्यांवैशौनकाद्यामहौजसः।।९१।।
तेषां क्रतुफलं पुण्यं तीर्थायुतफलं भवेत्। कपिलागोसहस्त्रं तु यो ददाति दिनेदिने।।९२।।
तत्फलं समवाप्नोति स्नानात्तुम्बुरुतीर्थके। रत्नकोटिसहस्त्राणि यो ददाति दिनेदिने।।९३।।
मत्तेभानां सहस्त्राणि तथैवाश्वायुतान्यपि। तत्फलंसमवाप्नोति घोणतीर्थावगाहनात्।।९४।।
कन्याकोटिप्रदानेनयत्फलंचर्षिभिःस्मृतम्।
तत्फलंसमवाप्नोतिघोणतीर्थाच्चपावनात्।।९५।।
हेमाम्बरसहस्त्रं यः कुरुक्षेत्रे प्रयच्छति। तत्फलं समवाप्नोति घोणतीर्थस्य वैभवात्।।९६।।
गुर्वर्थे ब्राह्मणार्थे चस्वाम्यर्थेयस्त्यजेत्तनुम्। तत्फलंसमवाप्नोतिघोणतीर्थस्यवैभवात्।।९७।।

श्री सूत जी कहते हैं—हे महातेजवान् शौनकादि मुनिगण! जो व्यक्ति सभी लोकों के लिये सर्वपापनाशक महान् पुण्ययुक्त घोणतीर्थ में स्नान करते हैं, उनको यज्ञफल तथा १०००० तीर्थ स्नानफल लाभ होता है। नित्य सहस्त्रकोटि रत्न तथा एक हजार मदमत्त हाथी दान का जो फल है, वही घोणतीर्थ स्नान से मिलता है। ऋषिगण एक कोटि कन्यादान का जो फललाभ कहते हैं, वह पावन घोणतीर्थ में स्नान करने से मनुष्य पा लेता है। घोणतीर्थ का माहात्म्य यह है कि मानव पुण्यक्षेत्र कुरुक्षेत्र में प्रदत्त सहस्त्र स्वर्णवस्त्र दान का फललाभ कर लेता है। मानव गुरु, ब्राह्मण, किंवा स्वामी के लिये शरीर त्याग करके जो फललाभ करता है, वह फल मात्र एक बार ही द्रोणतीर्थ स्नान से मिल जाता है। ऐसा द्रोणतीर्थ का वैभव है।।९१-९७।।

आपन्नार्तिहराणां च तीर्थसेवापरात्मनाम्। सत्यव्रतानां यत्पुण्यंघोणतीर्थाच्चतद्भवेत्।।९८।।

यत्फलं श्राद्धकर्तणांपितृणामिन्दुसंक्षये। तत्फलंसमवाप्नोतिघोणतीर्थाद्धिपावनात्॥९९॥
गङ्गायां नर्मदायां च सरयूचन्द्रभागयोः। सर्वेषु पुण्यतीर्थेषु यः स्नानं कुरुते नरः॥१००॥
तत्फलं समवाप्नोति घोणतीर्थाद्धि पावनात्॥१०१॥
तस्मात्पुण्यतमं तीर्थं घोणतीर्थं विदुर्बुधाः॥१०२॥
य इमं शृणुतेऽध्यायं सर्वपापनिबर्हणम्। वाजपेयफलं तस्य विष्णुलोकश्च शाश्वतः॥१०३॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये तुम्बुरुतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम षड्विंशोऽध्यायः॥२६॥

विपन्नों का त्राण करने वाला, तीर्थसेवापरायण तथा सत्यव्रत मानव को जो पुण्यलाभ होता है, घोणतीर्थ में स्नान करने से उसी फल की प्राप्ति होती है। अमावस्या के दिन पितृश्राद्ध करने का जो फल है, घोणतीर्थ में स्नानमात्र से वही फल मिल जाता है। गंगा, नर्मदा, सरयू, चन्द्रभागा तथा अन्य पुण्यतीर्थ में स्नान का जो फल मनुष्य को मिलता है, पावन घोणतीर्थ में स्नान का वही फल प्राप्त होता है। तभी विद्वान् लोग घोणतीर्थ को पुण्यतमतीर्थ कहा करते हैं। जो इस सर्वपापहारी अध्याय का श्रवण करते हैं, उनको बाजपेय यज्ञफल की प्राप्ति होती है। तदनन्तर मृत्यु के उपरान्त वे नित्य विष्णुलोक गमन करते हैं।।९८-१०३।।

।।षड्विंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

सप्तविंशोऽध्यायः

वेंकटाचल में सभी पुण्यतीर्थफल, पुराण श्रवण-कीर्त्तन महिमा

ऋषय ऊचुः

वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वसङ्कटनाशने। सन्ति वै कति तीर्थानि सूतपौराणिकोत्तम्!॥१॥
तेषां संख्यां च मे ब्रूहि कति मुख्यानितत्रवै। तत्राप्यत्यन्तमुख्यानिवदमेमुनिसत्तम्॥२॥
सद्धर्मरतिदान्यत्र कति मुख्यानि तानि च। कानि ज्ञानप्रदान्यत्र भक्तिवैराग्यदानि च॥३॥
मुक्तिप्रदानि कान्यत्र तानि मे वद सुव्रत!॥४॥

ऋषिगण कहते हैं—हे पौराणिकोत्तम सूत जी! महापुण्यप्रद सर्वसंकटनाशक श्रीवेंकटाचल में कितने तीर्थ हैं? उनकी संख्या, कौन-कौन तीर्थ उत्तम हैं, कौन ज्ञानप्रद है, कौन भक्ति-वैराग्यप्रद है तथा कौन सा मुक्तिदायक है? हे सुव्रत! इनके नाम तथा संख्या कहें।।१-४।।

श्रीसूत उवाच

षट्षष्टिकोटितीर्थानि पुण्यान्यत्र नगोत्तमे। अष्टौत्तरसहस्राणितेषु मुख्यानि सुव्रत !॥५॥
सद्धर्मरतिदान्यत्र सन्ति चाऽष्टोत्तरं शतम्। सहस्रेभ्यश्च मुख्यानि पृथक्तेभ्यश्च तानि च॥६॥
भक्तिवैराग्यदान्यत्र षष्टिरष्टोत्तरे शते॥७॥
मुक्तिदान्यत्र षट् चैववेङ्कटाचलमूर्धनि। स्वामिपुष्करिणी चैव वियद्गङ्गा ततःपरम्॥८॥
पाश्चात्पापविनाशं च पाण्डुतीर्थमतःपरम्। कुमारधारिकातीर्थंतुम्बोस्तीर्थमतःपरम्॥९॥

सूत जी कहते हैं—हे सुव्रतगण! ६६ कोटितीर्थ इस पर्वततोत्तम वेंकट पर्वत पर स्थित हैं। इनमें से ८००० प्रधान हैं। इनमें से भी ८०० उत्तम धर्मरति प्रदान करते हैं। शेष प्रधान १००० तीर्थों में से ६८ तीर्थ भक्ति तथा वैराग्यदाता हैं। स्वामिपुष्करिणी, आकाशगंगा, पापविनाशन, पाण्डुतीर्थ, कुमारधारिका, तुम्बुरुतीर्थ, वेंकटशिखर—ये छ तीर्थ मुक्तिदायक हैं।।५-९।।

कुम्भमासे पौर्णमास्यां मघायोगो यदा भवेत्।
कुमारधारिका यान्ति सर्वतीर्थानि हे द्विजाः !॥१०॥
तत्र यः स्नाति विप्रेन्द्रा राजसूयफलं लभेत्। मुक्तिश्चभवितातत्रनात्रकार्याविचारणा॥११॥
अन्नदानविधिस्तत्र सार्धं दक्षिणया द्विजाः। उत्तराफल्गुनीयुक्तशुक्लपक्षीयपर्वणि॥१२॥
तुम्बोस्तीर्थं मीनसंस्थै रवौ तीर्थानि सर्वशः। अपराह्णेसमायान्तितत्रस्नातोन जायते॥१३॥
मौञ्जीबन्धं विवाहं च कारयेद्द्रव्यदानतः। मेषसङ्क्रमणे भानौ चित्रानक्षत्रसंयुते॥१४॥
पौर्णमास्यां समायान्ति वियद्गङ्गां तथैव च। तत्र स्नात्वानरःसद्यःशतक्रतुफलंलभेत्॥१५॥
सुवर्णं तत्र दातव्यं कन्यादानं विशेषतः। वृषभस्थे रवौ विप्रा द्वादश्यां हरिवासरे॥१६॥
शुक्ले वाऽप्यथ कृष्णे वा भौमेनाऽपि समन्विते।
पाण्डुतीर्थं समायान्ति गङ्गादीनि जगत्त्रये॥१७॥
तत्र स्नात्वा च गांदत्त्वामुच्यतेप्रतिबन्धकात्।
आश्वयुक्छुक्लपक्षेचसप्तम्यांभानुवासरे ॥१८॥
उत्तराषाढयुक्तायां तथा पापविनाशनम्। उत्तराभाद्रयुक्तायां द्वादश्यां वा समागतः॥१९॥

हे द्विजगण! जब फाल्गुनमासीय पूर्णिमा मघानक्षत्रयुक्त हो, तब सभी तीर्थ कुमारधारिका में आते हैं। हे विप्रेन्द्रगण! जो मनुष्य इस समय कुमारधारिका में स्नान करता है, उसे बाजपेय यज्ञफल मिलता है। उसे मुक्ति मिलती है, इसमें किसी तर्क की आवश्यकता नहीं है। हे द्विजगण! वहां दक्षिणायुक्त अन्नदान करें। जब सूर्य मीनराशीस्थ हों तब चैत्रमासीय उत्तरफाल्गुनीयुक्त पूर्णिमा के दिन इस तुम्बुरु तीर्थ में अपराह्न के समय अन्य सभी तीर्थ आते हैं। जो मानव उस समय तुम्बुरुतीर्थ में स्नान करता है, द्रव्यादि दान करके ब्राह्मण का विवाह तथा मौञ्जीबन्धन उपनयनादि संस्कार सम्पन्न कराने वाला फल उस स्नानकर्त्ता को मिलता है। उसे पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता है। वैशाखमासीय चित्रानक्षत्रान्वित पौर्णमासी तिथि के दिन आकाशगंगा में सभी तीर्थों का

समागम होता है। तब स्नानोपरान्त स्वर्णदान, विशेषरूप से कन्यादान करें। इससे तत्क्षण १०० यज्ञफल प्राप्त होगा। हे विप्रगण! ज्येष्ठ मास में रवि किंवा मंगलवासरी शुक्ला अथवा कृष्णाद्वादशी तिथि के दिन त्रिभुवनस्थ सभी तीर्थ पाण्डुतीर्थ में समाहित होते हैं। मानव इस तीर्थ में स्नान करे तथा गोदान करे। वह समस्त प्रतिबन्धकों से रहित हो जाता है। रविवारयुक्त उत्तराषाढ़ानक्षत्र समन्वित भाद्रमासीय शुक्लासप्तमी किंवा उत्तर भाद्रपदयुक्त द्वादशी तिथि के दिन सभी तीर्थ पापनाशन तीर्थ में समाहित रहते हैं।।१०-१९।।

शालग्रामशिलां दत्त्वा स्नात्वा चविधिपूर्वकम्।
मुच्यतेसर्वपापैश्चजन्मकोटिशतोद्भवैः ॥२०॥

धनुर्मासे सिते पक्षे द्वादश्यामरुणोदये। आयान्तिसर्वतीर्थानिस्वामिपुष्करिणीजले॥२१॥
तत्र स्नात्वा नरः सद्योमुक्तिमेति न संशयः। यस्य जन्मसहस्त्रेषु पुण्यमेवाऽर्जितं पुरा॥२२॥
तस्य स्नानं भवेद्विप्रा नान्यस्य त्वकृतात्मनः। विभवानुगुणं दानं कार्यंतत्रयथाविधि॥२३॥
शालिग्रामशिलादानं गां दद्याच्च विशेषतः॥२४॥

इस दिन सविधि स्नान तथा शालग्राम शिलादान करने से मानव के शतकोटि जन्मकृत पाप दूर होते हैं। पौषमासीय शुक्लाद्वादशी के समय अरुणोदय काल में स्वामिपुष्करिणी के जल में सभी तीर्थ आ जाते हैं। वहां स्नानकर्त्ता व्यक्ति तत्काल मुक्त होता है। इसमें सन्देह न करें। हे विप्रों! जिन्होंने पूर्व में हजारों-हजार जन्मों में पुण्यार्जन किया है, उनको ही इस तीर्थ में स्नान का सुअवसर मिलता है। अन्य अकृतपुण्य वालों को यहां स्नान का सौभाग्य नहीं मिल पाता। यहां पर अपनी आर्थिक शक्ति के अनुरूप शालग्रामशिलादान, विशेषतः गोदान करना चाहिये। इसमें करोड़ों जन्मों में किये पापों का नाश हो जाता है।।२०-२४।।

ये श्रृण्वन्ति कथां विष्णोः सदा भुवनपावनीम्।
ते वै मनुष्यलोकेऽस्मिन्विष्णुभक्ता भवन्ति हि॥२५॥

यद्यशक्तः सदा श्रोतुं कथां भुवनपावनीम्। मुहूर्तं वातदर्धंवाक्षणंवाविष्णुसत्कथाम्।
यः श्रृणोति नरो भक्त्या दुर्गतिर्नास्ति तस्य हि॥२६॥

यत्फलं सर्वयज्ञेषु सर्वदानेषु यत्फलम्। सकृत्पुराणश्रवणात्तत्फलं विन्दते नरः॥२७॥

हे विप्रगण! जो भुवनपावनी विष्णुकथा का सदैव श्रवण करते हैं, वे ही मनुष्यलोक में यथार्थ विष्णु भक्त हैं। जो भुवनपावनी विष्णुकथा सदैव नहीं सुन सकते, वे यदि मात्र मुहूर्त्तपर्यन्त अथवा आधा मुहूर्त्त अथवा क्षणकाल भी भक्ति के साथ विष्णुकथा सुनते हैं, उनकी कदापि दुर्गति नहीं होती। सर्वविध दान तथा यज्ञ का जो फल है, मानव मात्र एक बार पुराण सुनकर वह फल पा जाता है। विशेषतः कलिकाल में पुरुषों के लिये पुराण श्रवण के अतिरिक्त धर्म तथा मुक्तिप्रद अन्य कुछ भी नहीं है।।२५-२७।।

कलौ युगे विशेषेण पुराणश्रवणादृते। नाऽस्ति धर्मःपरःपुंसां नाऽस्तिमुक्तिप्रदंपरम्॥२८॥
पुराणश्रवणं विष्णोर्नामसङ्कीर्तनं परम्। उभे एव मनुष्याणां पुण्यद्रुममहाफले॥२९॥
पिबन्नेवाऽमृतं यत्नादेकः स्यादजराऽमरः। विष्णोः कथामृतंकुर्यात्कुलमेवाजरामरम्॥३०॥
बालो युवाऽथवृद्धोवादरिद्रोदुर्भगोऽपिवा। पुराणज्ञःसदावन्द्यःसपूज्यःसुकृतात्मभिः॥३१॥

नीचबुद्धिं न कुर्वीतपुराणज्ञे कदाचन। यस्य वक्त्रोद्गतावाणी कामधेनुःशरीरिणाम्॥३२॥

पुराण तथा विष्णु का परम नाम श्रवण—ये दोनों ही मनुष्य के लिये पुण्यवृक्ष के महाफलरूप हैं। इन फलद्वय में से विष्णुनामामृत पान द्वारा मनुष्य स्वयं अजर-अमर हो जाता है, लेकिन विष्णुकथामय पुराण श्रवण द्वारा समस्त कुल जरामरण रहित स्थिति प्राप्त करता है (अर्थात् पुनर्जन्मचक्र से छूट जाता है)। बालक-युवा-वृद्ध-दरिद्र किंवा दुर्भाग्ययुक्त होने पर भी पुराणज्ञ व्यक्ति सुकृति लोगों के लिये वन्दनीय एवं पूज्य है। जिसके कण्ठ से निर्गत वाणी देहधारीगण के लिये कामधेनुवत् होती है, उस पुराणवेत्ता के प्रति कभी भी नीच बुद्धि रूप व्यवहार अथवा विचार न करें।।२८-३२।।

भवकोटिसहस्त्रेषुभूत्वाभूत्वावसीदताम्। योददात्यपुनर्वृत्तिंकोऽन्यस्तस्मात्परोगुरुः॥३३॥

व्यासासनसमाऽऽरूढो यदा पौराणिको द्विजः।
आसमाप्तेः प्रसङ्गस्य नमस्कुर्यान्न कस्यचित्॥३४॥

न दुर्जनसमाकीर्णे न शूद्रश्वापदावृते। देशे न द्यूतसदने वदेत्पुण्यकथां सुधीः॥३५॥

सुग्रामे सुजनाकीर्णे सुक्षेत्रे देवतालये। पुण्ये वाऽथ नदीतीरे वदेत्पुण्यकथांसुधीः॥३६॥

श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता नाऽन्यकार्येषु लालसाः।
वाग्यताः शुचयोऽव्यग्राः श्रोतारः पुण्यभागिनः॥३७॥

अभक्त्या ये कथां पुण्यां शृण्वन्ति मनुजाधमाः।
तेषां पुण्यफलं नाऽस्ति दुःखं जन्मनि जन्मनि॥३८॥

हजारों-हजार बार जन्म लेकर मानव दुःख में पड़ जाता है। जो पुराणोपदेश से मानवगण के पुनर्जन्म को रोक देते हैं, उनसे बढ़कर श्रेष्ठ गुरु और कौन हो सकता है? पुराणवक्ता विप्र व्यासासन पर बैठकर पाठ समाप्ति पर्यन्त किसी को नमस्कार न करें। शूद्र तथा श्वापद (पशु) से युक्त स्थान किंवा द्यूतस्थान पर सुधीव्यक्ति कदापि पुराणप्रसंग न कहे। अच्छे गांव, पुण्यजन द्वारा प्रशंसनीय स्थान, पुण्यक्षेत्र, देवालय, पुण्य नदीतीर पर सुखी पुराणपण्डित पुराण पाठ करे। श्रोतागण श्रद्धाभक्ति समन्वित होकर अन्य कार्य से रुचि-लालसा हटाकर, पवित्र, वाक्संयमी, अव्यग्र होकर श्रवण करें। इससे वे पुण्यभागी होंगे। जो मनुष्याधम भक्तिहीन होकर पुण्यमयी पुराणकथा सुनते हैं, उनको पुण्य तो मिलता ही नहीं, उलटे उनको जन्म-जन्म में दुःख भोग ही मिलता है।।३३-३८।।

पुराणं ये तु सम्पूज्यताम्बूलाद्यैरुपायनैः। शृण्वन्ति च कथां भक्त्यानदरिद्रानपापिनः॥३९॥

कथायां कथ्यमानायांयेगच्छन्त्यन्यतोनराः। भोगान्तरेप्रणश्यन्तितेषांदाराश्चसम्पदः॥४०॥

सोष्णीषमस्तका ये च कथां शृण्वन्ति पावनीम्।
ते बालकाः प्रजायन्ते पापिनो मनुजाधमाः॥४१॥

ताम्बूलं भक्षयन्तो ये कथांशृण्वन्तिपावनीम्। श्वविष्ठांभक्षयन्त्येतेनरकेचपतन्तिहिं॥४२॥

जो भक्तिभाव के साथ पुण्यमयी पुराणकथा श्रवण करते हैं, वे निष्पाप होते हैं तथा कभी भी दरिद्रता

के दुःख को नहीं भोगते। पुराणकथा आरंभ होने पर जो अन्यत्र चले जाते हैं, अथवा अन्य भोग के प्रति आसक्त हो जाते हैं, उनकी पत्नी तथा समस्त सम्पदा ही नष्ट हो जाती है। जो पगड़ी बांधकर पुण्यमयी पुराणकथा सुनते हैं, वे नराधम बालक रूप में जन्म लेते हैं। जो ताम्बूल भक्षण करते हुये अत्यन्त पावनी पुराण कथा सुनते हैं, वे कुत्ते का मल भक्षण करते नरक में पड़े रहते हैं।।३९-४२।।

ये च तुङ्गासनारूढाः कथां शृण्वन्ति दाम्भिकाः।
अक्षय्यान्नरकान्भुक्त्वा ते भवन्त्येव वायसाः।।४३।।

ये च वीरासनारूढा ये च सिंहासनस्थिताः। शृण्वन्तिसत्कथांतेवैभवन्त्यजुनपादपः।।४४।।
असम्प्रणम्य शृण्वन्तोविषवृक्षाभवन्तिहि। तथाशयानाःशृण्वन्तोभवन्त्य जगराहिते।।४५।।
यः शृणोति कथां वक्तुः समानासनसंस्थितः। गुरुतल्पसमंपापं सम्प्राप्यनरकंव्रजेत्।।४६।।

जो दम्भी व्यक्ति पुराण वक्ता से ऊंचे आसन पर आसीन होकर पुराण श्रवण करता है, वह अक्षय नरक भोग कर कौये का जन्म लाभ करता है। जो वीरासनारूढ़, किंवा सिंहासनस्थ होकर पुण्यमयी पुराणकथा सुनते हैं, वे अर्जुन के पेड़ होकर जन्म लेते हैं। प्रणाम किये बिना सुनने वाले विषवृक्ष, सोकर श्रवण करने वाले अजगर की योनि पाते हैं। जो वक्ता के बराबर ऊंचाई वाले आसन पर बैठकर पुराण श्रवण करते हैं, उनको गुरुपत्नी गमन जैसा पाप लगता है।।४३-४६।।

ये निन्दन्ति पुराणज्ञं सत्कथांपापहारिणीम्। तेवैजन्मशतंमर्त्याःशुनकाश्चभवन्तिहि।।४७।।
कथायां कीर्त्यमानायां ये वदन्ति दुरुत्तरम्। तेगर्दभाःप्रजायन्तेकृकलासास्ततःपरम्।।४८।।
कदाचिदपि ये पुण्यां नश्रृण्वन्तिकथांनराः। तेभुक्त्वानरकान्घोरान्भवन्तिवनसूकराः।।४९।।

जो पुराणज्ञ तथा पापहारिणी पुण्यमयी पुराणकथा की निन्दा करता है, वह १०० मानवजन्म लेकर कुत्ता होता है। पुराण कथा कहे जाने पर जो व्यक्ति दुष्टतापूर्ण उत्तर देता है वह अनेक बार गर्दभ जन्म लेकर अनेक जन्मों में गिरगिट होता है। जो कभी भी पुराणकथा को नहीं सुनता वह घोर नरकों को भोगकर वनसूकर योनि में जन्म लेता है।।४७-४९।।

कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये नराः।
कोट्यब्दं नरकान्भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः।।५०।।

येकथामनुमोदन्तेकीर्त्यमानांनरोत्तमाः। अशृण्वन्तोऽपि तेयान्तिशाश्वतंपदमव्ययम्।।५१।।
ये श्रावयन्तिमनुजाःपुण्यांपौराणिकींकथाम्। कल्पकोटिशतंसाग्रंतिष्ठन्तिब्रह्मणःपदे।।५२।।

वाचक द्वारा कथा कहने के समय जो व्यक्ति उसमें विघ्न उत्पादित करता है, वह करोड़ों वर्ष नरक भोग कर ग्राम्यशूकर योनि में जन्म लेता है, जो नरोत्तमगण पुराणकथा के लिये सहमति देते हैं, वे भले ही पुराण श्रवण न कर पायें, उनको अव्ययपद की प्राप्ति होती है। जो मानव पुण्यमयी पुराणकथा को सुनाते हैं, वे शतकोटि कल्प पर्यन्त ब्रह्मपद में निवास करते हैं।।५०-५२।।

आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः। कम्बलाजिनवासांसि तथामञ्चकमेववा।।५३।।

स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान्।
स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु पदं यान्ति निरामयम्।।५४।।
पुराणस्य प्रयच्छन्ति ये च सूत्रं नवं वरम्। भोगिनो ज्ञानसम्पन्नास्तेभवन्तिभवेभवे।।५५।।
ये महापातकैर्युक्ता ह्युपपातकिनश्च ये। पुराणश्रवणादेव ते यान्ति परमम्पदम्।।५६।।
वेङ्कटाद्रेस्तु माहात्म्यंश्रुत्वातत्रऋषयस्ततः। व्यासप्रसादसम्पन्नंसूतंपौराणिकोत्तमम्।
पूजयित्वा यथान्यायं प्रहर्षमतुलं गताः।।५७।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सर्वतीर्थमहिमोपसंहारपूर्वकपुराणश्रवणप्रक्रियाद्यनु वर्णनंनाम सप्तविंशोऽध्यायः।।

"जो लोग पुराणवक्ता के बैठने हेतु, कम्बल, मृगचर्म, वस्त्र किंवा मंच बनाते हैं, वे यहां विविध ईप्सित वस्तु का भोग करके अन्त में स्वर्गलोक जाकर ब्रह्मादिलोक में स्थित हो जाते हैं। जो पुराणग्रन्थ बांधने के लिये उत्तम नूतन सूत्र प्रदान करते हैं, वे प्रत्येक जन्म में भोगी तथा ज्ञानयुक्त हो जाते हैं। जो महापातक तथा उपपातकों से युक्त हैं, वे भी पुराण श्रवणोपरान्त परमपद की प्राप्ति करते हैं।" तदनन्तर ऋषिगण ने वेंकटाचल का माहात्म्य श्रवण करके व्यास के अनुग्रह से प्राप्त पौराणिकोत्तम सूत की यथायोग्य पूजा करके विपुल आनन्द भी प्राप्त किया।।५३-५७।।

।।सप्तविंश अध्याय समाप्त।।

अष्टाविंशोऽध्यायः

कटाहतीर्थ माहात्म्य, द्विजवृत्तवर्णन, भरद्वाज का ब्रह्महत्या से मुक्ति का उपाय कहना

ऋषय ऊचुः

सूत ! सर्वार्थतत्त्वज्ञ ! वेदवेदान्तपारग !। श्रीवेङ्कटाचले तीर्थं कटाहाख्यं सुपावनम्।।१।।
श्रूयते तस्य माहात्म्यंघुष्यतेचजगत्त्रये। अस्माकमेतद्ब्रूहित्वंकृपयाव्यासशासित !।।२।।
पुरा वै नारदः श्रीमान्ब्रह्मपुत्रो महानृषिः। दृष्ट्वा वै नैमिषारण्यं सम्प्राप्तो द्विजसत्तमः।।३।।
तदानीं ब्रह्मपुत्रं तमर्घ्यपाद्यादिभिः शुभैः। पूजयित्वा यथान्यायं पवित्रे च कुशासने।।४।।
सन्निवेश्य महाभक्त्या विनयानतकन्धराः। प्रणम्य प्रार्थयामासुरिमे सर्वे महर्षयः।।५।।

ऋषिगण कहते हैं—हे सूत! आप वेद-वेदाङ्ग के पारगामी हैं। इसलिये सर्वार्थतत्वज्ञ हैं। हे मुनिवर! वेंकटाचल में सुपावन कटाहतीर्थ विख्यात है। तीनों लोकों में कटाहतीर्थ की महिमा विख्यात है। हे व्यासशिष्य! आप अनुग्रह करके कटाहतीर्थ का माहात्म्य हमलोगों को बतायें। सूत जी कहते हैं—पूर्वकाल में द्विजश्रेष्ठ महर्षि ब्रह्मपुत्र श्रीमान् नारद ने नैमिषारण्य के दर्शन की इच्छा से यहां आगमन किया था। यहां उनके आने पर ऋषिगण ने उनका स्वागत यथाविधि अर्घ्य तथा पाद्य से किया था। उन ऋषियों द्वारा पूजित होकर देवर्षि नारद वहां पवित्र कुशासन पर बैठ गये। तब विनयावनत होकर उन नैमिषारण्य निवासी ऋषि समूह ने महाभक्ति के साथ उनको प्रणाम करके प्रार्थना किया।।१-५।।

त्वां विनानारदश्रीमन्नस्माकंभुवनत्रये। धर्मोपदेशकः कश्चिन्नाऽस्ति नाऽस्तिमहर्षिषु।।६।।
वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वदेवनिषेविते। वैकुण्ठादागते दिव्येसिद्धगन्धर्वसेविते।।७।।
कटाहतीर्थमाहात्म्यं वर्णयाऽद्य वनौकसाम्।।८।।

ऋषिगण कहते हैं—"हे श्रीमान् नारद! महर्षियों में से आपके अतिरिक्त भुवनत्रय को किसी ने नहीं देखा है जो धर्मोपदेश प्रदान करें। सभी देवताओं से सेवित महापुण्यक्षेत्र वेंकटाचल पर ही स्थित कटाहतीर्थ प्रसिद्ध है। यह कटाहतीर्थ सभी देवगण द्वारा सेवित हैं और यह कटाहतीर्थ दिव्यसिद्ध तथा दिव्य गन्धर्वों द्वारा सेवित है। वे दिव्य लोक से यहां आये। प्रतीत होता है मानो इसे वैकुण्ठ से लाया गया है। हम सभी वनवासी ऋषि हैं। आप हमसे उस कटाहतीर्थ की महिमा कहिये"।।६-८।।

श्रीनारद उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे शौनकाद्या महौजसः। कटाहतीर्थमाहात्म्यं को वेत्ति भुवनत्रये।।९।।
महादेवो विजानाति तस्य तीर्थस्य वैभवम्।
यानि कानि च पुण्यानि ब्रह्माण्डान्तर्गतानि वै।।१०।।
तानि गङ्गादितीर्थानि स्वपापपरिशुद्धये। कटाहतीर्थसेवांच कुर्वन्तिद्विजसत्तमाः।।११।।
ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्राश्चेतरजातयः। स्पृशन्तितज्जलमितिनपिबेद्योविमूढधीः।।१२।।
स हि चाण्डालतां प्राप्य कुम्भीपाके पतिष्यति।
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो यतीश्वरः।।१३।।
सेवयातस्यतीर्थस्य प्राप्नोति परमंपदम्। श्रुतिस्मृतिपुराणेषुतत्तीर्थस्य प्रशंसनम्।।१४।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे शौनकादि महर्षिगण! आप सब सुनिये। इस त्रिभुवन में कटाहतीर्थ की महिमा किसे ज्ञात हैं? एकमात्र महादेव ही उस तीर्थ की विभूति जान सकने में समर्थ हैं। हे द्विजश्रेष्ठगण! इस ब्रह्माण्ड में गंगा आदि जितने पुण्यतीर्थ हैं, वे भी अपनी-अपनी शुद्धि के लिये कटाहतीर्थ की सेवा करते हैं। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र तथा अन्य जाति वाले यह जल स्पर्श करते हैं तथा अन्य जाति वाले भी इसका जल स्पर्श करते हैं। यह सोचकर जो मूढ़ मानव इसके जल का पान नहीं करता उसे चाण्डाल योनि में जन्म लेना पड़ता है तथा अन्त में वह कुंभीपाक नरक में पतित होता है। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा यती आदि सभी इस तीर्थ की सेवा करके परमपद की प्राप्ति करते हैं। श्रुति-स्मृति तथा पुराणों में इस तीर्थ की अनेक प्रशंसा की गयी है।।९-१४।।

बहुधा वर्ण्यते पञ्चमहापातकनाशनम्। अत्यद्भुततरं विप्राः सर्वलोकैकपावनम्॥१५॥
ब्रह्महत्यायुतं चापि सुरापानायुतं तथा। अयुतं गुरुदाराणां गमनंपापकारणम्॥१६॥
स्तेयायुतं सुवर्णानां तत्संसर्गाश्च कोटयः। शीघ्रं विलयमायान्ति तस्य तीर्थस्य सेवया॥१७॥
यानि निष्कृतिहीनानि पापानि विविधानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति तीर्थस्याऽस्य निषेवणात्॥१८॥
इदं तीर्थं महापुण्यं भगवत्पादनिस्सृतम्। कुष्ठादिरोगयुक्तोयःप्रत्यहंच पिबेदिदम्॥१९॥
सोऽपि रोगविहीनः सन्विष्णुलोकं च गच्छति। भगवाञ्छङ्करो देवो रहस्यानुभवे पुरा॥२०॥

हे विप्रगण! इनमें सर्वलोक पावन इस तीर्थ की प्रशंसा अनेक बार की गयी है। हे विप्रगण! सर्वलोक पावन तथा पंचमहातापनाशन यह कटाहतीर्थ बहुधा प्रशंसित है। इस तीर्थ की सेवा करने से दस हजार ब्रह्महत्या, दस हजार सुरापान, दस हजार गुरुपत्नीगमन, दस हजार स्वर्णचोरी तथा इन सब पापयुक्त लोगों के संसर्गजनित करोड़ों-करोड़ पाप विलीन हो जाते हैं। जिन पापों से प्रायश्चित्त द्वारा भी छुटकारा नहीं मिलता, वे सभी पाप कटाहतीर्थ की सेवा करने से नष्ट हो जाते हैं। यह कटाहतीर्थ भगवान् के चरण से निःसृत है। हे महामुने! इस कारण यदि कुष्ठादि के रोगी भी इस तीर्थजल का नित्य पान करते हैं, तब वे रोगरहित हो जाते हैं। उनको विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। पूर्वकाल में भगवान् शिव ने इस तीर्थ के रहस्य का अनुभव किया था।।१५-२०।।

पार्वत्यै कथयामास तस्य तीर्थस्य वैभवम्। उक्तेष्वेतेषु सन्देहो न कर्तव्यःकदाचन॥२१॥
अर्थवादोऽयमिति च न वक्तव्यं कदाचन। येऽर्थवादमिदंब्रयुस्तेषांवैनास्तिकात्मनाम्॥२२॥
जिह्वाग्रे परशुं तप्तं प्रक्षिपन्ति च किङ्कराः। तस्मात्कटाहतीर्थं तु सेवनीयं प्रयत्नतः॥२३॥
सर्वदुःखप्रशमनमपवर्गफलप्रदम्। यत्र पीत्वा नरो भक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥२४॥
एवमुक्त्वामहाभागःकाशींत्रैलोक्यपावनीम्।
सम्प्राप्तोनारदःश्रीमान्सूतपौराणिकोत्तमः ॥२५॥
संक्षेपतश्च भगवान्नैमिषे ह्युक्तवान्खलु। इदानीं श्रोतुमिच्छामः कटाहस्य च वैभवम्॥२६॥
सुविस्तरेण चाऽस्माकं वद सूत! कृपावशात्॥२७॥

"उन्होंने इस तीर्थ वैभव को पार्वती से कहा था। इन सब उक्तियों के प्रति कदापि सन्देह नहीं करना चाहिये। इस प्रसंग में अर्थवाद करना कदापि उचित नहीं है। इस तीर्थ माहात्म्य के सम्बन्ध में जो अर्थवाद (मनमाना अर्थ करना) करता है, उस नास्तिक व्यक्ति के जिह्वाग्र पर यम के किंकरगण तप्त परशु का प्रहार करते हैं। जो भक्ति के साथ इस तीर्थ के जल का पान करता है, उसे समस्त कामना की प्राप्ति होती है। इसलिये सर्वदुःख प्रशमनकारी एवं अपवर्ग फल देने वाले कटाहतीर्थ का सेवन प्रयत्नतः सदा करें।" हे पौराणिकों में श्रेष्ठ सूत! महाभाग नारद यह कहकर त्रैलोक्य को पवित्र करने वाली वाराणसी पुरी चले गये। देवर्षि नारद ने संक्षेप में ही इस विषय का वर्णन किया था, तथापि हमें इस कटाहतीर्थ की विभूति को विस्तृत रूपेण सुनने की इच्छा है। हे सूत! कृपा करके इसका विस्तृत वर्णन करिये।।२१-२७।।

श्रीसूत उवाच

भोभोस्तपोधनाः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः। कटाहतीर्थमाहात्म्यंशृणुध्वंद्विजसत्तमाः॥२८॥
कटाहतीर्थं भो विप्राःसर्वलोकेषुविश्रुतम्। सर्वसम्पत्करं शुद्धं सर्वपापप्रणाशनम्॥२९॥
दुःस्वप्ननाशनं ह्येतन्महापातकनाशनम्। महाविघ्नप्रशमनं महाशान्तिकरं नृणाम्॥३०॥
स्मृतिमात्रेण तत्पुंसां सर्वपापनिषूदनम्। मन्त्रेणाऽष्टाक्षरेणैव पिबेत्तीर्थं मनोहरम्॥३१॥
अथवा केशवाद्यैश्च नामभिर्वा पिबेज्जलम्।
यद्वा नामत्रयेणाऽपि पिबेत्तीर्थं शुभप्रदम्॥३२॥
आहोस्विद्वेङ्कटेशस्य मन्त्रेणाऽष्टाक्षरेण वै। पिबेत्कटाहतीर्थं तद्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥३३॥
विना मन्त्रेण योः विप्रः सम्पिबेत्तीर्थमुत्तमम्। पापं मे नाशयक्षिप्रंजन्मान्तरकृतंमहत्॥३४॥
इत्युक्त्वा स पिबेन्नित्यं मोक्षमार्गैकसाधनम्। स्वामिपुष्करिणीस्नानंवराहश्रीशदर्शनम्॥३५॥
कटाहतीर्थपानं च त्रयं त्रैलोक्यदुर्लभम्। बहुना किमिहोक्तेन ब्रह्महत्यादिनाशनम्॥३६॥
पुरा कश्चिद् द्विजो मोहात्केशवाख्यो बहुश्रुतम्।
हत्वा खड्गेन दुर्बुद्ध्या ब्रह्महत्यामवाप्तवान्॥३७॥
सोऽपितस्मिन्महातीर्थे पीत्वाजलमनुत्तमम्। केशवाख्योमहापापीविमुक्तोब्रह्महत्यया॥३८॥

सूत जी कहते हैं—हे नैमिषारण्यवासी ऋषियों! आप सब कटाहतीर्थ का माहात्म्य श्रवण करिये। हे द्विजश्रेष्ठगण! यह तीर्थ त्रैलोक्य में प्रसिद्ध, सर्वसम्पत्ति प्रदायक, शुद्ध, सर्वपापनाशक, दुःस्वप्ननाशक तथा महापापहारी है। हे विप्रगण! मानवों के महान् विघ्न का नाशक, महान् शान्तिदायक इस कटाहतीर्थ के स्मरण से ही सभी पाप विध्वस्त हो जाते हैं। अष्टाक्षर मन्त्र द्वारा अथवा विष्णु के केशव, हरि आदि नामों से, अथवा विष्णु के तीन नाम वाले मन्त्र से अथवा वेंकटपति के अष्टाक्षर मन्त्र से जप करने वाले मनुष्य भुक्ति तथा मुक्ति—दोनों की प्राप्ति कर लेते हैं। जो विप्र मन्त्र के बिना ही केवल यह कहते हुये कटाहतीर्थ जल में प्रवेश करता है कि ''मेरे जन्मान्तरकृत महापापों का नाश करिये'' स्नानमात्र से ही उनका मोक्ष साधन हो जाता है। स्वामिपुष्करिणी स्नान, वराहदेवदर्शन तथा कटाहतीर्थ में जलपान—त्रैलोक्य में यह तीनों दुर्लभ है। इस विषय में अधिक क्या कहा जाये? इस तीर्थ के प्रभाव से ब्रह्महत्या का नाश हो जाता है। पूर्वकाल में केशव नामक एक द्विज था। वह दुर्बुद्धि के कारण मोहग्रस्त हो गया उस अवस्था में केशव ने एक विप्रवध किया था। जिससे वह ब्रह्महत्या में लिप्त हो गया। वह महापापी केशव भी इस महातीर्थ में कटाहतीर्थ का जल पीकर ब्रह्महत्या से मुक्त हो गया।।२८-३८।।

ऋषय ऊचुः

कस्य पुत्रः केशवाख्यः कथं प्राप्तो भयङ्करीम्।
ब्रह्महत्यामतिक्रूरामस्माकं वक्तुमर्हसि॥३९॥

ऋषिगण कहते हैं—केशव किसका पुत्र था? वह किस प्रकार महाक्रूर ब्रह्महत्या से लिप्त हो गया? यह विषय मुझसे कहिये।।३९।।

श्रीसूत उवाच

तुङ्गभद्रातटे रम्ये गन्धर्वैरुपसेविते। अग्रहारो महानासीद्वेदाढ्य इति नामतः॥४०॥
तस्मिन्वेदपुरे रम्ये ब्राह्मणा वेदपारगाः। शब्दशास्त्रपराः सर्वे ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकाः॥४१॥
मीमांसातर्कशास्त्रज्ञाः सर्वे वेदान्तवादिनः। धर्मशास्त्रेषु निरता अन्नदानपराः सदा॥४२॥
पुत्रवन्तश्च ते सर्वे ह्यग्रहारे महाजनाः। वेदाढ्येऽप्यग्रहारे वै पद्मनाभ इति श्रुतः॥४३॥
अस्य पुत्रः केशवाख्यः सर्वकर्मबहिष्कृतः। मातरं पितरंत्यक्त्वा भार्यामपिपतिव्रताम्॥४४॥
सर्वदा गणिकासक्तो वेश्यागारं विवेश ह। दिनद्वये च तां वेश्यामनुभूय द्विजस्ततः॥४५॥
निष्कद्वयं प्रदातव्यं हस्ते दत्त्वागतःसुखम्। वेश्यायाचाधनस्त्यक्तस्तत्संयोगैकतत्परः॥४६॥
इतस्ततश्चोरयित्वा बहुद्रव्याणि सन्ततम्। दत्त्वातया चिरंरेमे तद् गृहे बुभुजे च सः॥४७॥

सूत जी कहते हैं—गन्धर्वों से सेवित रम्य तुङ्गभद्रा के तट पर वेदपुर नामक पुरी में वेदाड्य नामक एक प्रधान अग्रहार ब्राह्मण रहते थे। इस रम्य वेदपुर में जितने ब्राह्मण रहते थे, वे सभी वेदज्ञ, शब्दशास्त्र पारंगत, ज्योतिषशास्त्र प्रवर्त्तक, मीमांसा तथा सर्वशास्त्र ज्ञाता, सतत् अन्न दान करने वाले पुत्रवान् एवं अग्रग्रहण में श्रेष्ठ थे। इस अग्रहार वेदाड्य ब्राह्मण के वंश में पद्मनाभ नामक एक उत्तम ब्राह्मण था। उसी का पुत्र था सभी कर्मों से बहिष्कृत केशव। वेश्यासक्त केशव पिता-माता तथा पतिव्रता पत्नी का त्याग करके सतत् वेश्यागृह में ही निवास करने लगा। तदनन्तर दो दिन बीत जाने पर केशव ने उसके हाथों में दो निष्क धन देकर सुख का अनुभव किया। वेश्यायें निर्धन व्यक्ति के प्रति अनुरक्त नहीं रहतीं, यह जानकर केशव इधर उधर चोरी करके प्रचुर धन लाकर वेश्या को देता था। इस प्रकार वह वेश्या को प्रसन्न करता हुआ रतिसुख का आनन्द उठाता रहता।।४०-४७।।

एकेन चषकेणाऽसौ तया सह सुरां पपौ। सकदाचित्किरातैस्तु द्रव्यं हर्तुं ययौद्विजः॥४८॥
विप्रस्य कस्यचिद्गेहे सोऽपि कैरातवेषधृक्।
केशवो विप्रबन्धुर्वै साहसी खड्गहस्तवान्॥४९॥
तद्गृहस्वामिनं विप्रं हत्वा खड्गेन साहसात्। समादाय बहु द्रव्यंवेश्यागारंविवेशह॥५०॥
तं यान्तमनुयातिस्म ब्रह्महत्या भयङ्करी। नीलवस्त्रधरा भीमा भृशं रक्तशिरोरुहा॥५१॥
गर्जन्ती साट्टहासं सा कम्पयन्ती च रोदसी। अनुद्रुतस्तया विप्रो बभ्रामजगतीतले॥५२॥
एवं भ्रमन्धरां सर्वां विप्रबन्धुर्दुरात्मवान्। स्वग्रामं प्रययौ भीत्या शौनकाद्या महौजसः॥५३॥
अनुद्रुतस्तया भीतः प्रययौ स्वनिकेतनम्। ब्रह्महत्याप्यनुद्रुत्य तेन साकं गृहं ययौ॥५४॥
जनकं रक्ष रक्षेति केशवः शरणं ययौ। मा भैषीरिति स प्रोच्य पिता रक्षितुमुद्यतः॥५५॥
क्रूरैनं ब्रह्महत्या सा जनकं प्रत्यभाषत॥५६॥

केशव अब इसी वेश्यागृह में भोजन तथा मद्यमान करने लगा। एक बार केशव ने किरात वेश धारण किया तथा अन्य किरातों के साथ मिलकर एक ब्राह्मण के घर चोरी करने लगा। द्विजों में अधम केशव ने हाथों

में खड्ग लेकर उस द्विज के गृह में प्रवेश किया। उसने खड्ग से गृहस्वामी ब्राह्मण का वध करके समस्त द्रव्य का हरण किया। तदनन्तर वह समस्त हरण किया द्रव्य लेकर वेश्या के घर पहुंचा। तभी भयंकरी ब्रह्महत्या ने केशव का पीछा किया। उस भयानक ब्रह्महत्या ने नीलवर्ण वस्त्र धारण किया था। उसके मस्तक के केश अत्यन्त लोहितवर्ण के थे। वह अट्टहास करते हुये समस्त आकाश को कम्पित कर रही थी। केशव उसे आता देखकर भय के कारण वेश्यागृह त्यागकर दौड़ पड़ा तथा समस्त पृथिवी का परिभ्रमण करने लगा। केशव जहां-जहां जाता, ब्रह्महत्या भी वहां उसका पीछा करती रहती। हे महातेजस्वी शौनकादि मुनिगण! द्विजाधम दुरात्मा केशव ब्रह्महत्या द्वारा त्रस्त होकर समस्त पृथिवी का परिभ्रमण करता-करता भयवशात् अन्ततः अपने गृह लौटा। ब्रह्महत्या ने वहां भी उसका पीछा किया। तब वह केशव "हे पिता! मेरी रक्षा करिये, मेरी रक्षा करिये कहता पिता की शरण में आ गया। तब पिता यह कहते हुये कि "अब भय न करो" उसकी रक्षार्थ सन्नद्ध हो गये। तब ब्रह्महत्या पद्मनाभ से कहने लगी कि यह केशव भयानक क्रूरकर्मा है।।४८-५६।।

ब्रह्महत्योवाच

मैनं त्वं प्रतिगृह्णीष्व पद्मनाभ द्विजोत्तम !। अयं सुरापीस्तेयी च ब्रह्महा चातिपातकी।।५७।।
मातृद्रोही पितृद्रोही भार्यात्यागी चदुष्टधीः। गणिकासक्तचित्तश्चह्येनंमुञ्चदुरात्मकम्।।५८।।
गृह्णासि चेत्सुतं विप्र महापातकिनं वृथा। त्वद्भार्यामस्य भार्यां चत्वांचपुत्रमिमंद्विज।।५९।।
भक्षयिष्यामि वंशं च तस्मान्मुञ्च दुरात्मकम्।
इमं त्यजसि चेत्पुत्रं युष्मान्मुञ्चामि साम्प्रतम्।।६०।।

ब्रह्महत्या कहती है—हे द्विजोत्तम पद्मनाभ! इसे ग्रहण न करें। यह मद्यप, तस्कर, ब्रह्मघाती, अतिपातकी, मातृ-पितृद्रोही, भार्यात्यागी, कुबुद्धि तथा वेश्यासक्त है। अतः इस दुरात्मा का त्याग करिये। हे विप्र! यदि आप इस महापापी पुत्र को शरण देंगे, तब हे द्विज! मैं आपकी भार्या, पुत्रवधु, पुत्र, यहां तक कि आपके साथ आपके समस्त वंश का भक्षण करूंगी। इसलिये इसे त्याग दीजिये। यदि आप इसे छोड़ देते हैं, तब मैं भी आपको, आप की पत्नी को, पुत्रवधु तथा बाकी समस्त वंश को मुक्त कर दूंगी। हे महामति! एक व्यक्ति को बचाने के लिये समस्त कुल को नष्ट होने देना कदापि उचित नहीं कहा जायेगा।।५७-६०।।

नैकस्याऽर्थे कुलं हन्तुमर्हसि त्वं महामते !।
इत्युक्तः सतयातत्रपद्मनाभोऽब्रवीच्चताम्।।६१।।

पद्मनाभ उवाच

बाधते मां सुतस्नेहः कथं पुत्रं परित्यजे। ब्रह्महत्या तदाकर्ण्य पद्मनाभं तमब्रवीत्।।६२।।

ब्रह्महत्योवाच

पुत्रोऽयंपतितोऽभूत्तेवर्णाश्रमबहिष्कृतः। पुत्रेऽस्मिन्माकुरुस्नेहंनिन्दितंतस्यदर्शनम्।।६३।।
इत्युक्त्वा ब्रह्महत्या सा पद्मनाभस्य पश्यतः। हस्तेन प्रजहाराऽस्यसुतं केशवनामकम्।।६४।।
रुरोद तातताेति जनकं प्रब्रुवन्मुहुः। रुरुदुर्जनको माता भार्या तस्य दुरात्मनः।।६५।।

तस्मिन्काले महाभागो भरद्वाजो महामुनिः।
दिष्ट्या समाययौ योगी शौनकाद्या महौजसः॥६६॥

पद्मनाभ कहते हैं—"पुत्रस्नेह ने मुझे अतीव पीड़ित किया है। इसलिये मैं कैसे इसे छोड़ दूं?" ब्रह्महत्या ने पद्मनाभ का कथन सुनकर उत्तर दिया—"आपका यह पुत्र पतित होकर वर्णाश्रमधर्म से बहिष्कृत हो गया है। इसे देखना भी निन्दनीय है। अतः इसका त्याग करें।" ब्रह्महत्या ने यह कहा तथा पद्मनाभ के सामने ही उनके पुत्र केशव पर हाथों से प्रहार किया। केशव बारम्वार "हां पिता, हां पिता" कहता रुदन करने लगा। यह देखकर उस दुरात्मा के पिता पद्मनाभ, जननी, भार्य भी रोने लगे। हे महातेजस्वी शौनकादि मुनिगण! तभी वहां महाभाग महामुनि भरद्वाज स्वेच्छा से वहां आ गये।।६१-६६।।

पद्मनाभोऽथ तं दृष्ट्वा भरद्वाजं महामुनिम्। स्तुत्वा प्रणम्यशरणंययाचे पुत्रकारणात्॥६७॥
भरद्वाज महाभाग साक्षाद्विष्ण्वंशको भवान्। त्वद्दर्शनमपुण्यानां भविता न कदाचन॥६८॥
ब्रह्महा च सुरापी च स्तेयी चाऽभूत्सुतो मम। पुत्रं प्रहर्तुमायाता ब्रह्महत्या भयङ्करी॥६९॥
भूयाद्यथा मे पुत्रोऽयं महापातकमोचितः। घोरेयं ब्रह्महत्या च यथा शीघ्रंलयं व्रजेत्॥७०॥
तमुपायं वदस्वाऽद्य मम पुत्रे दयां कुरु। एक एव हिपुत्रोमे नाऽन्योऽस्तितनयोमुने॥७१॥
सुते मृते तुवंशोमेसमुच्छिद्येतमूलतः। ततःपितृभ्यःपिण्डानांदाताऽपिनभवेद्ध्रुवम्॥७२॥
ततः कृपां कुरुष्व त्वमस्मासु भगवन्मुने। इत्युक्तः सभरद्वाजःसाक्षान्नारायणांशकः॥७३॥
ध्यात्वा तु सुचिरं कालं पद्मनाभं वचोऽब्रवीत्॥७४॥

पद्मनाभ ने इन महामुनि भरद्वाज का दर्शन करके उनकी स्तुति किया तथा प्रणाम करते हुये पुत्र की समस्या को लेकर उनके शरणापन्न हो गये। पद्मनाभ नें करवद्ध होकर महर्षि भरद्वाज से कहा—"हे महाभाग भरद्वाज! आप साक्षात् विष्णु के अंश हैं। मनुष्यगण कभी भी आपका दर्शन नहीं पा सकते। मेरा पुत्र ब्रह्मघाती, मद्यप तथा तस्कर हो गया है। भयंकर ब्रह्महत्या उस पर प्रहार हेतु आयी है। अब मेरा पुत्र जिस उपाय से इन महापातकों से मुक्त हो सके तथा यह भीषण ब्रह्महत्या भी शीघ्र लयीभूत हो जाये, आप मेरे पुत्र पर दया करके वह उपाय कहें। हे मुनिवर! मुझे दूसरा पुत्र नहीं है यही एकलौता पुत्र हैं। मेरा यही पुत्र मृत हो जायेगा, तब मेरा कुल समाप्त हो जायेगा। इसके अतिरिक्त मेरे पितरों को जल देने वाला अन्य कोई नहीं है। हे मुनिवर! भगवान्! आप हम पर प्रसन्न हो जायें।" साक्षात् नारायण के अंशरूप भरद्वाज ने पद्मनाभ की प्रार्थना सुनकर कुछ क्षण ध्यान किया तथा कहने लगे।।६७-७४।।

भरद्वाज उवाच

पद्मनाभ कृतं पापमतिक्रूरं सुतेन ते। नाऽस्य पापस्यशान्तिःस्यात्प्रायश्चित्तायुतैरपि॥७५॥
तथाऽपि तेसुतस्याऽहमस्य पापस्यशान्तये। प्रायश्चित्तंवदिष्यामिपद्मनाभशृणुद्विज॥७६॥
गङ्गाया दक्षिणे भागे द्विशतीयोजने द्विज। पूर्वाम्भोधेःपश्चिमेतु पञ्चभिर्योजनैर्मिते॥७७॥
सुवर्णमुखरीतीरे चोत्तरे क्रोशमात्रके। वेङ्कटाद्रिरिति ख्यातः सर्वलोकनमस्कृतः॥७८॥

मेरुपुत्रोमहापुण्यःसर्वदेवाभिवन्दितः। वैकुण्ठलोकादानीतोविष्णोः क्रीडाचलोमहान्॥७९॥
गरुत्मता वेगवता स्वर्णमुख्यास्तटे शुभे। वर्तते देवसङ्घैश्च पूजितः॥८०॥
तस्मिन्वेङ्कटशैलेन्द्रे साक्षान्नारायणः स्वयम्।
लक्ष्मीदेव्या च भूदेव्या नीलादेव्या समागतः॥८१॥
वर्तते वेङ्कटेशः स साक्षान्मोक्षप्रदायकः। तस्य वेङ्कटनाथस्य ह्यालयस्य तथोत्तरे॥८२॥
कटाहतीर्थं विप्रेन्द्र वर्तते मङ्गलप्रदम्। ब्रह्महत्यादि पापघ्नं वाञ्छितार्थप्रदायकम्॥८३॥
सुतेनसाकंविप्रेन्द्र ! पिब तीर्थं मनोहरम्। भरद्वाजस्यवाक्यंतच्छ्रुत्वावैवेदसम्मितम्॥८४॥
शिरसा तं प्रणम्याऽथ ययौ वेङ्कटपर्वतम्॥८५॥

भरद्वाज कहते हैं—हे पद्मनाभ! तुम्हारे क्रूर पुत्र ने अत्यन्त पाप किया है। १०००० प्रायश्चित्त से भी इसके पापों की शान्ति नहीं होगी। हे द्विज पद्मनाभ! तथापि मैं तुम्हारे पुत्र की पापशान्ति हेतु एक प्रायश्चित्त कहता हूं। सुनो! हे द्विज! गंगा के दक्षिण भाग में २०० योजन तथा पूर्वसागर के पश्चिम पांच योजन के पश्चात् सुवर्णमुखरी तीर के एक कोस उत्तर में सर्वलोक नमस्कृत सुरगणपूजित सुमेरु पुत्र महापुण्यमय विख्यात वेंकट पर्वत है। वेगवान गरुड़ ने विष्णु के इस क्रीड़ा पर्वत श्रेष्ठ में वेंकटगिरी को वैकुण्ठ से लाकर सुशोभित सुवर्णमुखरी के तट पर स्थापित किया था। देवता एवं ऋषि सदैव इसकी पूजा करते हैं। यह वेंकट शैलेन्द्र मोक्षप्रद है। साक्षात् वेंकटपति श्रीनिवास लक्ष्मी, पृथिवी तथा लीला देवी के साथ वहां विद्यमान रहते हैं। हे विप्रेन्द्र! वेंकटनाथ के स्थान के उत्तर में मंगलप्रद कटाहतीर्थ है। यह तीर्थ ब्रह्महत्यानाशक, पापनाशक तथा अभीष्टफलदाता है। हे द्विजप्रवर! आप पुत्र के साथ वहां जाकर कटाहतीर्थ के जल का पान करें। तदनन्तर विप्रप्रवर पद्मनाभ ने ऋषिभरद्वाज के वेदसम्मत वाक्यों को सुनकर उनको नतशिर होकर प्रणाम किया। तदनन्तर वे वेंकटागिरि के लिये पुत्र के साथ प्रस्थान कर गये।।७५-८५।।

तं गत्वा वेङ्कटं शैलं स्वामिपुष्करिणीजले। सुतेनसाकंविप्रेन्द्रःसस्नौनियमपूर्वकम्॥८६॥
वराहस्वामिनं नत्वा श्रीनिवासालयं गतः। प्रदक्षिणं ततःकृत्वाविमानंसम्प्रणम्य च॥८७॥
पद्मनाभोऽथ पुत्रेण केशवेन दुरात्मना। पपौ कटाहतीर्थं तद्ब्रह्महत्याविनाशकम्॥८८॥
तदानीं ब्रह्महत्या सा शीघ्रमेव लयं गता। अनन्तरं ततो गत्वा वेङ्कटेशं कृपानिधिम्॥८९॥
पुत्रेण सह विप्रेन्द्रः पद्मनाभो ददर्श सः। तदा प्रादुरभूद्देवो वेङ्कटेशो दयानिधिः॥९०॥
कटाहतीर्थपानेन तोषितो वाक्यमब्रवीत्॥९१॥

पद्मनाभ ने वहां जाकर नियमपूर्वक स्वामिपुष्करिणी में स्नान किया। तदनन्तर वराहस्वामी को प्रणाम करके श्रीनिवास मन्दिर गये जहां उन्होंने प्रभु श्रीनिवास एवं उनके विमान की प्रदक्षिणा सम्पन्न किया। तदनन्तर अपने दुरात्मा पुत्र केशव के साथ ब्रह्महत्या विनाशक कटाहतीर्थ गये तथा पुत्र के साथ वहां का जल पान किया। वह जल पीते ही पुत्र पर आच्छन्न ब्रह्महत्या मुहूर्त्त मात्र में विलीन हो गयी। तदनन्तर विप्रप्रवर पद्मनाभ ने पुत्र के साथ जाकर कृपानिधि वेंकटपति का दर्शन किया। दयानिधि वेंकटपति भी कटाहतीर्थ जल के पान से युक्त पद्मनाभ पर प्रसन्न हो गये। उन दयानिधि ने प्रकट होकर पद्मनाभ से कहा—।।८६-९१।।

श्रीभगवानुवाच

पद्मनाभ ! महाबुद्धे वेदवेदान्तपारग !। भरद्वाजस्य वाक्येन प्राप्य वेङ्कटपर्वतम्।।९२।।
कटाहतीर्थं त्वं पीत्वा कृतार्थोऽसि नसंशयः। तवपुत्रःकेशवाख्योविमुक्तो ब्रह्महत्यया।।९३।।
तस्मात्कटाहतीर्थं तु सेवनीयंप्रयत्नतः। तस्मिंस्तीर्थे महाभाग ! पीत्वाजलमनुत्तमम्।।९४।।
पापिनोऽपिकृतार्थाःस्युःसत्यंसत्यं न संशयः। मामकंलोकमागत्यसुखीभवमहामते।।९५।।
इत्युक्त्वा वेङ्कटेशोऽसवावन्तर्धानं गतस्ततः।।९६।।

श्री भगवान् कहते हैं—"हे महाबुद्धि पद्मनाभ! हे वेदवेदान्त पारंगत! तुमने भरद्वाज के कथनानुरूप वेंकटाचल आकर महातीर्थ कटाह का जलपान किया तथा कृतार्थ हो गये। तुम्हारा पुत्र भी ब्रह्महत्या रहित हो गया। इसमें सन्देह नहीं है। अतः यह तीर्थ सर्वप्रयत्न से सेवनीय है। हे महाभाग! पापीगण भी कटाहतीर्थ का अत्युत्तम जल पीकर कृतार्थ हो जाते हैं। हे महामति! तुम शीघ्र ही मेरे वैकुण्ठ लोक को पाकर सुखी हो जाओगे" वेंकटाधीश भगवान् यह कहकर अन्तर्हित् हो गये।।९२-९६।।

श्रीसूत उवाच

तस्मात्तपोधनाः सर्वे शौनकाद्या महौजसः। कटाहतीर्थमाहात्म्यमितिहाससमन्वितम्।।९७।।
यथाश्रुतं मया सम्यक्तथोक्तं भवतां द्विजाः।। !।।९८।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सूतशौनकसम्वादेकटाहतीर्थप्रशंसनंनामाऽष्टाविंशोऽध्यायः।।

सूत जी कहते हैं—हे शौनकादि तपोधन! आप सभी महातेजस्वी हैं। हे द्विजगण! इस इतिहास समन्वित वेंकटाचल महिमा को मैंने जिस प्रकार से सुना था, उसी प्रकार सम्यक्तः आपलोगों से कह दिया।।९७-९८।।

।।अष्टाविंश अध्याय समाप्त।।

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

अर्जुन की तीर्थयात्रा का वर्णन, सुवर्णमुखरी माहात्म्य कथन

ऋषय ऊचुः

तीर्थानामिह सर्वेषां प्रभावः कथितस्त्वया। नदीनांपर्वतानाञ्च क्षेत्राणां सरसामपि।।१।।
निदेशात्पद्मगर्भस्य सुवर्णमुखरी नदी। नीता भुवमगस्त्येन व्याख्याता भवताऽनघ।।२।।

तदुत्पत्तिप्रभावंचतीर्थौघांस्तत्समाश्रयान्। श्रोतुंसम्प्रीतिरुत्पन्नातन्नोवक्तुंत्वमर्हसि।।३।।
प्रणम्य शम्भुं नन्दीशं षडास्यं व्यासमेवच। मुनिभिः प्रार्थितःसूतस्तदावक्तुंप्रचक्रमे।।४।।

ऋषिगण कहते हैं—हे सूत! आप ने तीर्थ-नदी-पर्वत-क्षेत्र-सरोवर समूह के प्रभाव का वर्णन किया है। हे निष्पाप! पद्मगर्भ ब्रह्मा के आदेश से महर्षि अगस्त्य जिस प्रकार से सुवर्णमुखरी को पृथिवी पर लाये थे, आपने उसका भी वर्णन किया। अब सुवर्णमुखरी तथा उसके आश्रित तीर्थो का प्रभाव सुनने की उत्सुकता है। अतः वह सब आप हमलोगों को बतलायें। तदनन्तर सूत जी मुनियों द्वारा प्रार्थित होकर नन्दीश्वर, शम्भु, स्कन्द तथा व्यास को प्रणाम करके कहने लगे।।१-४।।

श्रीसूत उवाच

साधु पृष्टंमहाभागा ! भवद्भिर्मङ्गलावहम्। आख्यानमेतदाम्नायश्रवणोद्भूतसिद्धिदम्।।५।।
श्रृणुताऽवहितादिव्यांकथांकल्मषनाशिनीम्। भरद्वाजेनकथितांपार्थायकथयामि वः।।६।।
अवाप्य द्रुपदात्प्राज्ञाद्याज्ञसेनीं पृथासुताः। धृतराष्ट्रनिदेशेन जग्मुः करिपुरं शुभम्।।७।।
भीष्मेणचाऽम्बिकेयेनतत्रसम्मानितास्तदा। दुर्योधनादिभिःसार्द्धंन्यवसन्पञ्चवत्सरान्।।८।।
ततोऽनुशिष्टोभीष्माद्यैर्धृतराष्ट्रो महायशाः। सर्वेषांकुलवृद्धानांवासुदेवस्यचाऽग्रतः।।९।।
प्रददौ पाण्डुपुत्रेभ्यस्तत्सेवाहृष्टमानसः। सार्धराज्यं पुरवरंखाण्डवप्रस्थसञ्ज्ञिकम्।।१०।।

सूत जी कहते हैं—हे महाभागगण! आपने उत्तम प्रश्न किया है। इस आख्यान का पाठ मंगलप्रद हैं तथा इसका श्रवण करने से सर्वसिद्धि प्राप्त होती है। यह उपाख्यान भरद्वाज ऋषि ने अर्जुन से कहा था। मैं भी उसे आपसे कहता हूं। युधिष्ठिर आदि कुन्तिपुत्र ने प्राज्ञ द्रुपदराज के यहां जाकर उनकी पुत्री याज्ञसेनी द्रौपदी को प्राप्त किया तथा धृतराष्ट्र के आदेश से सुशोभन नगरी हस्तीनापुर गये। वहां पर अम्बिकापुत्र तथा भीष्म से सम्मानित होकर उन्होंने पांच वर्ष पर्यन्त दुर्योधन के साथ निवास किया। तदनन्तर पाण्डुपुत्रों की सेवा से प्रसन्न होकर धृतराष्ट्र ने भीष्म आदि के अनुमोदन से समस्त कुलवृद्धों तथा वासुदेव के समक्ष उनको खाण्डवप्रस्थ नामक उत्तम स्थान प्रदान किया।।५-१०।।

आमन्त्र्यपाण्डुतनयाधृतराष्ट्रादिकान्कुरून् ।
जगमुस्तत्खाण्डवप्रस्थंपुरंकृष्णसमन्विताः।।११।।

इन्द्रप्रस्थाह्वये तत्र रक्षिते विश्वकर्मणा। वसन्पुरेऽशिषत्पृथ्वीं सानुजो धर्मनन्दनः।।१२।।
गते कृष्णेनिजपुरं नारदस्याऽनुशासनात्। प्रतिज्ञांचक्रिरे पार्था धर्मज्ञा द्रौपदीं प्रति।।१३।।
यथाक्रमेण सा कृष्णा वर्षमेकैकमादरात्। एकैकस्य गृहे तिष्ठेत्प्रतिनिर्णयपूर्वकम्।।१४।।
यःपश्येत्तांपरगृहेस्थितांपाञ्चालनन्दिनीम्। तेनैकहायनमितं विधेयं तीर्थसेवनम्।।१५।।
एवं कृतप्रतिज्ञास्ते पाण्डुभूपालनन्दनाः। व्यापारैर्लोकसामान्यैर्निन्युःकालमतन्द्रिताः।।१६।।
अथ जानपदो विप्रो राजगेहाङ्गणे स्थितः। चुक्रोश बहुधा धेनुर्हृता मे तस्करैरिति।।१७।।
समाश्वास्य च तं विप्रं प्रविवेश धनञ्जयः। आयुधानि समानेतुं त्वरयाशस्त्रमन्दिरम्।।१८।।

तदनन्तर युधिष्ठिरादि पाण्डुनन्दनगण धृतराष्ट्र आदि कुरुगण के साथ विदा लेकर कृष्ण के साथ पुरीश्रेष्ठ खाण्डवप्रस्थ गये। वहां धर्मपुत्र युधिष्ठिर विश्वकर्मा रचित इन्द्रप्रस्थपुर में निवास करके भाईयों के साथ पृथिवीराज्य पालन करने लगे। तदनन्तर कृष्ण अपनी पुरी द्वारिका चले गये। तत्पश्चात् वहां मुनि नारद का आगमन हुआ। उन्होंने आदेश दिया कि द्रौपदी क्रमशः एक-एक वर्ष एक-एक पति के साथ रहेगी। जो इस बीच द्रौपदी को अन्य के गृह में रहते एकान्त में देखेगा, उसे एक वर्ष तीर्थाटन करना होगा। धर्मज्ञ पृथिवीपति पाण्डुपुत्रगण महर्षि नारद के इस आदेश से द्रौपदि के प्रति एवंविध प्रतिज्ञाबद्ध हो गये। वे आलस्यरहित होकर अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुये कालयापन करने लगे। तदनन्तर उसी जनपद का निवासी एक ब्राह्मण राजभवन के आंगन में खड़ा होकर कहने लगा—"तस्कर लोग मेरी गौओं का हरण करके ले जा रहे हैं।" धनंजय अर्जुन ने जब ब्राह्मण की यह करुण पुकार को सुना, तब उन्होंने ब्राह्मण को आश्वस्त किया तथा शीघ्र अपना अस्त्र लेने अस्त्रागार में गये।।११-१८।।

तत्रापश्यत्समासीनौ पाञ्चालीधर्मनन्दनौ। जानन्नपि प्रतिज्ञां स धनुर्जग्राह सेषुधिः।।१९।।
स गत्वा तस्करानाजौ निहत्य नृपनन्दनः। निवर्त्यधेनुं तांतस्मैददौविप्राय सादरम्।।२०।।
अथ विज्ञापयामास फाल्गुनो धर्मनन्दनम्।
तीर्थयात्रा मया कार्या समयोल्लङ्घनादिति।।२१।।
अनुजस्य वचः श्रुत्वा सर्वधर्म्रविदाम्वरः। उवाच वचनं धीरः सादरं धर्मनन्दनः।।२२।।

वहां जाकर देखते हैं कि धर्मपुत्र युधिष्ठिर तथा द्रौपदी वहां एक आसन पर आसीन हैं। पूर्व प्रतिज्ञा से अवगत होने पर भी अपने प्रजारक्षण कर्त्तव्य को पूर्ण करने के लिये धनंजय शस्त्रागार में गये तथा वहां से धनुष-वाण लेकर तस्करों के पीछे दौड़ पड़े। उन्होंने क्षणकाल में तस्करों का वध कर दिया। उन्होंने गौओं को वापस लाकर सादर उन ब्राह्मण को अर्पित कर दिया। तदनन्तर अर्जुन ने वापस आकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर से कहा—"मैंने प्रतिज्ञा को तोड़ा है, इसलिये मैं तीर्थयात्रा को जाऊंगा।" छोटे भाई अर्जुन का वाक्य सुनकर धार्मिकों में श्रेष्ठ वीर युधिष्ठिर ने तब आदरपूर्वक कहा।।१९-२२।।

युधिष्ठिर उवाच

गवार्थं ब्राह्मणार्थञ्च यद्वदेदनृतं वचः। यदाचरेदसत्कर्म तत्सत्यं तत्समञ्जसम्।।२३।।
ब्राह्मणार्थं गवार्थं च त्वया कर्मेदृशं कृतम्। तदसद्भावमाप्नोति कथं कथय सुव्रत !।।२४।।
प्रजापालनकृत्यस्य चोरोपेक्षणशिक्षणैः। नूनं फलं भवेद्राज्ञो ब्रह्महत्याश्वमेधजम्।।२५।।
असाध्यान्वैरिणो ज्ञात्वाऽप्यवनीशो न भद्रभाक्।
स्वदेशोपप्लवकरास्तस्करा यद्यशिक्षिताः।।२६।।
अस्माकं भूजुजांलोकजालस्यच हितंहियत्। त्वयेदृशंकृतंकर्मनाऽस्तिदोषोह्यतस्तव।।२७।।

युधिष्ठिर कहते हैं—"जो ब्राह्मण रक्षार्थ के लिये झूठ बोले अथवा असत् कर्म भी करे तथापि उसका झूठ भी सत्य रूप तथा असत् कर्म भी सत्कर्म हो जाता है। तुमने ब्राह्मण तथा गौ के लिये ऐसा कार्य किया। जो राजा यह सोचे कि वैरीगण दबने लायक नहीं है, वह कदापि मंगल का भागी नहीं होगा। अशिक्षित तस्कर

ही अपने देश में उपद्रव करता है। तुमने मेरे जैसे राजा तथा समस्त लोकों के हितार्थ ऐसा कार्य किया है। अतः इसमें तुम्हारा कोई दोष है ही नहीं।।२३-२७।।

श्रीसूत उवाच

धर्मपुत्रस्य वचनमाकर्ण्य रचिताञ्जलिः। पुनर्विज्ञापयामास धर्मनित्यो धनञ्जयः।।२८।।

सूत जी कहते हैं—सनातन धर्मनिष्ठ अर्जुन ने धर्मपुत्र युधिष्ठिर का वाक्य सुना तथा हाथ जोड़कर पुनः कहने लगे।।२८।।

अर्जुन उवाच

मैवं भूपाल ! वादीस्त्वं स्वप्रतिज्ञाऽतिलङ्घनम्। जानताधर्मसर्वस्वमुल्लसद्धर्ममूर्तिना।।२९।।
कृत्याकृत्यचिदादक्षेणाऽऽत्मनाप्राक्समीरिता। नोल्लङ्घनीयासततं प्रतिज्ञापुरुषेण हि।।३०।।
अशक्तानां गतिः सेयं यद्बन्धुगुरुवाक्यतः।
धर्मं त्यजन्ति समयं त्यक्त्वा प्राक्स्वं समीरितम्।।३१।।
कृपया तीर्थगमनादार्यो यदि निवर्तयेत्। हतप्रतिज्ञं मां लोकाञ्जल्पतः को निवारयेत्।।३२।।
ममाऽपि तीर्थयात्रायां कौतुकोत्तरलं मनः। कर्तव्यं चस्मृतंराजन्नारदादिष्टशासनम्।।३३।।
तत्प्रसीद महाराज यत्तीर्थगमनोद्यमे। सम्माननीयः प्रभुभिः समयो ह्यनुजीविनाम्।।३४।।

अर्जुन कहते हैं—हे राजन्! आप ऐसा आदेश न करें। मैंने अपना प्रण तोड़ा है और देखिये! जिसके लिये धर्म ही एकमात्र सर्वस्व है, जो धर्ममूर्त्तिरूपेण प्रतिभात होते हैं, जिनको कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का बोध है, जो दक्ष हैं, ऐसे पुरुष के लिये पूर्व प्रतिज्ञा भंग करना कदापि उचित नहीं है। आपने जिस धर्मसम्मत वाक्य को कहा है, वह तो अशक्त व्यक्ति के लिये आचरणीय है। अशक्त लोग ही गुरु तथा बन्धुगण के वाक्य को मानकर अपनी पहले कही गयी बातों का उल्लंघन कर जाते हैं। इस प्रकार धर्मत्याग कर देते हैं। यदि आप कृपापरवश होकर मुझे तीर्थगमन से रोकते हैं, तब लोग यह कहकर वितण्डा करेंगे कि "मैंने प्रतिज्ञा को तोड़ दिया।" उनको ऐसा कहने से कौन रोक सकेगा। हे राजन्! तीर्थयात्रा के कौतुक के कारण मेरा मन द्रवीभूत हो रहा है। अतः मैं महर्षि नारद के अनुशासन का पालन अवश्यमेव करूंगा। हे महाराज! आप मेरी तीर्थयात्रा के सम्बन्ध में प्रसन्न हो जायें। देखिये! स्वामीगण अपने अधीनस्थ का निर्बद्ध हेतु (वचनपालन हेतु) अतीव आदर करते हैं।।२९-३४।।

तथेति भ्रातृभिः सार्द्धं कृतानुमतिरर्जुनः। अग्रजं तोषयामास प्रणामप्रश्रयादिभिः।।३५।।
यथाऽर्हंभीमसेनादीन्भ्रातॄनमामन्त्र्यपाण्डवः। कृतस्वस्त्ययनोभव्यैर्निर्ययौधरणीसुरैः।।३६।।
पौराणिका ज्यौतिषिका भिषजो धरणीसुराः।
अनुजग्मुर्भृत्यगणाः शिल्पिनः सूतमागधाः।।३७।।
युधिष्ठिराज्ञया तस्य भोगत्यागक्षमं धनम्।
गृहीत्वाऽनुययुः स्निग्धाः सभ्याः कोशाधिकारिणः।।३८।।

अर्जुन का कथन सुनकर राजा युधिष्ठिर ने भाईयों के साथ एक मत हो अर्जुन को तीर्थयात्रार्थ जाने की अनुमति प्रदान किया। अर्जुन ने विनयपूर्वक प्रणाम करके बड़े भ्राता को सन्तुष्ट किया तथा भीमसेन आदि सभी भाईयों से विदा वार्त्ता करके तीर्थयात्र पर निकले। भव्य ब्राह्मणगण ने उनकी कुशलता हेतु विविध मांगलिक क्रियाओं को सम्पन्न किया। पौराणिक, ज्योतिषी, चिकित्सक ने उनका साथ दिया। अनेक भृत्य-शिल्पी तथा सूत-मागधगण भी उनके पीछे चल पड़े। युधिष्ठिर ने यह वचन स्मरण किया कि ''धनदान से भोगक्षय होता है।'' तदनुसार कोषाध्यक्षगण को धन के साथ अर्जुन का अनुगमन करने का आदेश दिया। वे स्निग्ध तथा सभ्य कोषाध्यक्षगण भी अर्जुन के साथ गये।।३५-३८।।

स राजपुत्रः प्रथमं प्राप्य भागीरथीं नदीम्। गङ्गाद्वारं प्रयागं चसिषेवेकाशिकामपि।।३९।।
पश्यंस्तीर्थानि जाह्नव्यास्तत्तीरोपान्तवर्त्मना। आससाद समुत्तुङ्गकल्लोलं दक्षिणोदधिम्।।४०।।
महानदीं महापुण्यां प्रसिद्धं पुरुषोत्तमम्। सिंहाचलंचसम्वीक्ष्यप्राप्तवान्कृतकृत्यताम्।।४१।।
ततो ददर्श कौन्तेयः पुण्यांगोदावरींनदीम्। समस्तदुरितव्रातशातनोत्तीर्णगौरवाम्।।४२।।
कृताभिषेकस्तत्तयोर्यैर्विधिवत्पाण्डुनन्दनः। प्रमोदं विविधैर्दानैरकरोद्भूसुवर्णकैः।।४३।।
नदीं मलापहाख्यां चदृष्ट्वामोदंययौशुभम्। ततःसमाससादाऽसौकृष्णवेणींसरिद्वराम्।।४४।।
शिवस्य नियतावासं चतुर्द्वारसमन्वितम्। नानातीर्थगणाकीर्णं श्रीपर्वतमवैक्षत।।४५।।
नदीं पिनाकिनीं तीर्त्वागत्वादेवर्षिसेवितम्। नारायणप्रियावासमपश्यद्वेङ्कटाचलम्।।४६।।

राजपुत्र अर्जुन प्रथमतः भागीरथी की अभ्यर्थना सेवा करके भागीरथी तीरपथ से गंगाद्वारा प्रयाग तथा काशी का दर्शन करते हुए अत्युच्च कल्लोलयुक्त दक्षिणसागर पहुंचे तथा क्रमशः पुण्यप्रदा महानदी, प्रसिद्ध पुरुषोत्तम तीर्थ तथा सिंहाचल का दर्शन करके कृतार्थ हो गये। तदनन्तर कुन्तिपुत्र अर्जुन वहां पहुंचे जिनके दर्शन से सभी दुरित दूर हो जाता है। ऐसी पवित्र गोदावरी नदी तथा उसके तट का दर्शन करके तथा सविधि गोदावरी जल से अभिषिक्त होकर प्रमोद पूर्वक वहां नाना भूमि एवं स्वर्णदान किया। तत्पश्चात् वे प्रसन्न अन्तःकरण से शोभना मलहारिणी मलापहा नामक नदी पर पहुंचे। उसका दर्शन करके सरिताओं में श्रेष्ठ कृष्णवेणी तट गये। वहां कृष्णवेणी नदी का दर्शन करके श्रीपर्वत पहुंचे। इस पर्वत पर पार्वतीपति शिव का एक मन्दिर (आवास) था। इस आवास के चतुर्दिक् द्वार था तथा वह नानातीर्थों से परिपूर्ण था। शिव यहां सदा निवास करते हैं। अर्जुन ने श्रीपर्वत का दर्शन किया तथा पिनाकिनी नदी पार करके उन्होंने देवर्षिगणसेवित नारायण के प्रिय निवास वेंकटाचल का दर्शन प्राप्त किया।।३९-४६।।

शृङ्गेऽस्य भूभृतस्तुङ्गे स्थितं लोकैकनायकम्। अपूजयद्धरिंभक्त्याप्रसिद्धंशुभसिद्धये।।४७।।
अवरुह्य वेङ्कटमहाद्रिशृङ्गतः स ददर्श सिद्धमुनिसङ्घसेविताम्।
कलशोद्भवेन मुनिना समाहृतां तटिनीं सुवर्णमुखरीसमाह्वयाम्।।४८।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्येऽर्जुनतीर्थयात्रागमनवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः।।२९।।

इस पर्वत के अत्युच्च शिखर पर लोकनायक हरि विराजित हैं। अर्जुन ने शुभसिद्धि प्राप्ति के लिये भक्तिपूर्वक श्रीहरि की पूजा को सम्पन्न किया। तदनन्तर कुन्तिपुत्र अर्जुन वेंकटाचल के इस अत्युच्च शिखर से उतरे। उन्होंने सिद्धों तथा मुनियों से सेवित कुम्भ से उत्पन्न महर्षि अगस्त्य द्वारा लाई गई सुवर्णमुखरी नदी का दर्शन किया।।४७-४८।।

।।उनत्रिंश अध्याय समाप्त।।

त्रिंशोऽध्यायः

अर्जुन द्वारा सुवर्णमुखरी तीरस्थ कालहस्तीश्वर पूजन, भरद्वाज आश्रम की शोभा का वर्णन

सूत उवाच

तथा सर्वाणि तीर्थानि समालोक्यागतस्य च। मुदं प्रगुणयाञ्चक्रेसापार्थस्यमहापगा।।१।।
यस्यास्तटनिकुञ्जषुमोदन्तेवनिताःसुखाः। सिद्धाःसंसेवितावातैःशीकरासारशीतलैः।।२।।
या समुद्यतहस्तेव गङ्गामाकाशवाहिनीम्। आलिङ्गतुं समुत्तुङ्गैः कल्लोलैरभ्रसङ्गिभिः।।३।।
धूमैराहुतिसम्भूतैस्तरुशाखोपलम्भिभिः। वल्कलैश्च विराजन्ते यत्तटाश्रमभूमयः।।४।।
मुनीन्द्रैः सुरवर्यैश्चस्थापितानि समन्ततः। यत्तटद्वितये भान्ति दिव्यलिङ्गानिशूलिनः।।५।।

सूत जी कहते हैं—अर्जुन जब समस्त तीर्थ दर्शनोपरान्त सुवर्णमुखरी तट पर आये, तब नदियों में श्रेष्ठ सुवर्णमुखरी को देखकर उनका अतिशय आनन्दवर्द्धन हो गया। उन्होंने देखा कि—उस नदी तट पर स्त्रियां मुदित होकर विचर रही हैं। सिद्धगण ओस के संसर्ग से शीतल हो रही वायु से सेवित होकर परमसुखभोग कर रहे हैं। अपने हाथों को ऊपर उठाकर मानो सुवर्णमुखरी नदी आकाशगंगा मन्दाकिनी का आलिंगन कर रही हैं। उसकी अत्युच्च लहरें मानो आकाश का स्पर्श कर रही थीं। उस सुवर्णमुखरी के तटवासी ब्राह्मणगण की आहुति से सम्भूत धूआं पेड़ों की शाखाओं को छू रही थीं। उसके तट पर स्थित आश्रम भूमि पर ऋषि-मुनिगण के परिधान वल्कल आदि सूख रहे थे तथा शोभावर्द्धन कर रहे थे। इस नदी के चतुर्दिक् अनेक देवता तथा मुनियों के दिव्यतम आश्रम स्थापित थे। दोनों तट पर अनेक शिवलिङ्ग शोभायमान थे।।१-५।।

यदीयसैकतावासविश्रान्ता मानसं सरः। न स्मरन्ति निजावासं मरालाविहगोत्तमाः।।६।।
शमितावग्रहातङ्कैः कुल्यामुखविनिर्गतैः। पुष्णातितोयैःसस्यानिलोकरक्षाक्षमाणिया।।७।।
चक्रवाककुचोत्तुङ्गवीचिवल्लीविभूषिता। आवर्तनाभिविलसत्सैकतश्रोणिमण्डला।।८।।
प्रफुल्लपद्मवदना चलन्मीनयुगेक्षणा। विलसत्फेनवसना हंसयानमनोहरा।।९।।

जलपक्षिरवालापा नयनानन्दकारिणी। अपूर्वकामिनीरूपा या विभात्यम्बुधिप्रिया॥१०॥

पक्षियों में श्रेष्ठ हंसों के समूह सुवर्णमुखरी की बालू के किनारे रहकर अपने वास्तविक आवास मानससरोवर का विस्मरण कर चुके थे। यहां लोकरक्षार्थ अवर्षण की शंका से रहित—नदी के मुख से निर्गत् अति पवित्र जलधारा द्वारा शस्य पुष्ट हो रहे थे। यह सागर प्रिया सुवर्णमुखरी अपने वक्ष पर स्थित चक्रवाकयुक्त वीचि (लहर) रूपी वल्ली से विभूषित अत्युच्च स्तन के समान उठती हुई प्रतीत हो रही थी। (अर्थात् उत्तुङ्ग लहरें उठ रहीं थीं)। तट की बालू वायुप्रवाह के कारण आवर्त्तन करती उठती थी। वह वहां के शिखर मण्डल की शोभावृद्धि किये जा रही थी। प्रस्फुटित कमल दल मानो मुख ऐसे लग रहे थे। चंचल मछलियां मानो नेत्रों का प्रतिनिधित्व कर रहीं थीं। (अर्थात् लहरें उन्नत स्तन ऐसी, खिले कमल मुख के समान, मछलियां नेत्र के समान लग रही थीं)। लहरों से उठी फेनराशि में श्वेतहंस विचरण करते मानो नदी को वस्त्र धारण करा रहे थे। वहां पक्षीगण जो मधुर कलरव कर रहे थे उससे लग रहा था मानो यह सुवर्णमुखरी का ही वाग्वैभव है! इन उपमाओं के दृष्टिकोण से वे सागररमणी सुवर्णमुखरी एक दिव्यनारी जैसी प्रतिभात हो रही थी।।६-१०।।

रोधस्यन्तरवाहिन्या नद्याः प्राच्यां धनञ्जयः। ददर्श शैलमुत्तुङ्गं कालहस्तिसमाह्वयम्॥११॥
उदग्रशिखराभोगोल्लिखिताकाशमण्डलम्। सप्तपातालमूलाधोरूढमूलोपलाञ्चितम्॥१२॥
स्नात्वातस्यांमहानद्यांतस्मिञ्छैलेसुरार्चितम्। अपश्यदर्जुनोदेवंकालहस्तीशनामकम्॥१३॥
सम्पूज्य च महादेवं नगेन्द्रतनयासखम्। मनसा भक्तियुक्तेनकृतार्थत्वमुपेयिवान्॥१४॥

तदनन्तर धनंजय अर्जुन ने आकाश से प्रवहमान इस सुवर्णमुखरी के पूर्वदिशा वाले तट पर कालहस्ती नामक एक अत्युच्च पर्वत को देखा। इस उच्च शैल का शिखर मानो आकाश मण्डल का चित्रण कर रहा हो। इसके पाषाण से भरे मूल देश को देखकर लगता था मानो उसने सातों पाताल का भेदन किया है तथा नीचे तक फैला है। अर्जुन ने इस महानदी सुवर्णमुखरी में स्नान करके सुरगणपूजित देव कालहस्ती का दर्शन किया एवं भक्तिपूर्ण होकर पर्वतकन्या गिरिजा के सखा महादेव की पूजा किया। इस प्रकार वे कृतार्थ हो गये।।११-१४।।

ततो महागिरौ तस्मिन्नद्भुतैकनिकेतने। चचाराऽभूतपूर्वाणां विशेषाणां दिदृक्षया॥१५॥
सिद्धानालोकयामास वसतो गिरिसानुषु। गायतो देवदेवस्य चरित्राण्यबलायुतान्॥१६॥
अप्सरोललनाजुष्टान्पुष्पासवमदाकुलान्। निकुञ्जजेषु समासीनान्गन्धर्वानैक्षतादरान्॥१७॥
विविक्तेषु प्रदेशेषु शिवध्यानपरायणान्। अपश्यद्योगिनो दिव्यानादरानन्दशालिनः॥१८॥
प्रशान्तान्याश्रमपदान्यवैक्षत समन्ततः। बलिनीवारविलसद्द्वारभूमीश्च पाण्डवः॥१९॥
निराहारान्वायुभुजः पर्णादानातपाशनान्। शान्तानालोकयामास मुनीन्नियमितेन्द्रियान्॥२०॥

इसके अनन्तर प्राणीगण से भरे हुये इस पर्वत पर अर्जुन ने एक अत्यद्भुत् गृह को देखा। तदनन्तर वे वहां के विशेष-विशेष दृश्यों का अवलोकन करने के लिये भी विचरण करने लगे। उन्होंने देखा कि कहीं सिद्धगण पर्वत की घाटी में बैठे हैं। कहीं वे देवदेव के चरित्र का गायन कर रहे हैं। अप्सरायें पुष्पों का आसव पीकर आकुलचित्त से विहरणशील हैं। वहां निकुंजों में गन्धर्वों का समूह आसीन है। उन्होंने यह सब सादर

देखने के उपरान्त यह देखा कि निर्जन प्रदेश में शिवध्यानतत्पर प्रसन्नमुख योगीगण विद्यमान हैं। चतुर्दिक् उनके प्रशान्त आश्रम शोभित हैं। योगीगण के आश्रम की पर्णकुटी के पास आश्रमस्थ पशुगण के भोजनार्थ नीवार पड़ा है। न जाने कितने इन्द्रियजित् शान्त ऋषि-तपस्वी निराहार वायुभक्षी, पत्ते खाकर तप करने वाले तथा केवल सूर्यरश्मि (आतपाहारी) पान करने वाले तप कर रहे हैं।।१५-२०।।

मुदं वितेनिरे तस्य नेत्रयोः कमलाकराः। फुल्लसौगन्धिकामोदसम्वासितदिगन्तरा॥२१॥
मृगयासम्भृतधियश्चरतोऽधिज्यकार्मुकान् ॥२२॥
ददर्शान्वेषितमृगान्किरातान्वनितायुतान्। ततो दक्षिणदिग्भागे चरन्नद्रेर्मनोहरे॥२३॥

पाण्डुनन्दन अर्जुन ने यह समस्त दृश्य सादर अवलोकन किया। वहां के सरोवरों में कमलदल के खिलने से उठी सुगन्ध से दिक्-दिगन्त सुवासित एवं आमोदित हो उठा। वनभूमि में राजागण शिकार के लिये प्रभूत तैयारी के साथ आकर धनुष लेकर इतःस्ततः विचर रहे हैं। कहीं-कहीं किरात लोग अपनी स्त्रियों के साथ वनपशुओं का अन्वेषण कर रहे हैं। यह सब देख-सुनकर कुन्तिनन्दन अर्जुन के नयनद्वय खिल उठे। अब इसके दक्षिण भाग में कौरव अर्जुन विचरण करने लगे।।२१-२३।।

पुण्यमाश्रममद्राक्षीद्भरद्वाजस्य कौरवः। कदलीनारिकेलाम्रकोलचम्पकचन्दनैः॥२४॥
तक्कोलाशोकहिन्तालतालकेतकिदाडिमैः। जम्बूकदम्बकतकखदिराजुनपाटलैः॥२५॥
नागपुन्नागसरलदेवदारुकरञ्जकैः। लवङ्गलुङ्गलवलीप्रियङ्गूतिलकैरपि॥२६॥
विभीतश्रीफलाश्वत्थमधूकप्लक्षकेसरैः। पूगजम्बीरनारङ्गनिम्बामलककौशिकैः॥२७॥

तदनन्तर, अर्जुन ने वहां ऋषि भरद्वाज का मनोहर पुण्याश्रम देखा। उस आश्रम में कदली, नारिकेल, आम, कोल, चम्पा, चन्दन, तक्कोल, अशोक, हिन्ताल, ताल, केतक, अनार, जामुन, कदम्ब, कतक, खदिर, अर्जुन, पाटल, नाग, पुन्नाग, सरल, देवदारु, करञ्जक, लवङ्ग, लुङ्गलवली, प्रियंगु, तिलके, विभीतक, श्रीफल, पीपल, महुआ, पाकड़, केशर, सुपारी, जम्बीरी नीबू, नारंगी, नीमं, आमलक, कौशिक वृक्ष थे।।२४-२७।।

अन्यैश्च फलपुष्पाढ्यैः शोभितं धरणीरुहैः।
वासन्तीकुन्दजात्यादिलताभिः परिवेष्टितम्॥२८॥
अपूर्वसौरभाकृष्टभ्रमरीभिः समन्ततः। चक्रवाकबकक्रौञ्चहंसकारण्डवाश्रयैः॥२९॥
सौगन्धिकोत्पलाम्भोजकैरवौघविराजितैः। सरोभिरमृतस्यन्दिमधुरस्फारवारिभिः॥३०॥
समापादितलक्ष्मीकं कोतुकैकनिकेतनम्। सिंहदन्तावलव्याघ्रतरक्षुरुरुरङ्कुभिः॥३१॥
मृगैरन्यैः समाकीर्णमन्योऽन्यहितकारिभिः। जितचैत्ररथोद्यानमधरीकृतनन्दनम्॥३२॥

उस पर्वत पर अन्य फल तथा पुष्पवाले वृक्ष शोभित थे। कुन्द तथा जाती प्रभृति वासन्ती लता ने आश्रम को चारों ओर से घेर लिया था। भ्रमरगण इस अपूर्व सुगन्ध से आकर्षित होकर चतुर्दिक् घूम रहे थे। सरोवरों में विकसित तथा सुगन्धित कमल एवं कुमुदिनी की अपूर्व शोभा थी। वहां चक्रवाक्, बक, क्रौञ्च, हंस तथा कारण्डवगण विचर रहे थे। आश्रम के सभी ओर सिंह, व्याघ्र, दन्ती, तरक्षु, रुरु, मृग तथा कंकु आदि

पशु भरे पड़े थे। इनके अतिरिक्त वहां अन्य हितकारकपशु भी समाकीर्ण थे। प्रतीत होता था कि स्वर्ग का नन्दन कानन ही यहां उपस्थित हो गया है।।२८-३२।।

अतिवाङ्मनसोदारं परमानन्दकारणम्। शिवागमानां दिव्यानामर्थजातमनुत्तमम्।।३३।।
प्रकाशयन्तिशावानांयत्रमञ्जुगिरः शुकाः। यस्मिन्हुताशनोदारधूमश्यामलितंनभः।।३४।।
अकालजलदभ्रान्तिमातनोति शिखण्डिनाम्।
यस्मिन्विहारश्रान्तानां सिंहानां स्वेच्छयागताः।।३५।।
निर्वापयन्ति गात्राणि करिणः करशीकरैः। तदाश्रमपदंपश्यन्विस्मयाक्रान्तमानसः।।३६।।
प्रभावं पाण्डुतनयः प्रशशंस तपस्विनाम्। निवार्य तत्र तत्रैव सकलाननुजीविनः।।३७।।
मित्रैर्विप्रवरैः सार्धं प्रविवेश तमाश्रमम्। अग्रे ददर्श कौन्तेयः स्फुरत्पावकतेजसम्।।३८।।
भरद्वाजं मुनिवरैरनेकैः परिवारितम्। भस्मानुलिप्तसर्वाङ्गं मृगचर्मोत्तरीयकम्।।३९।।
नववारिदसम्वीतं कैलासमिव भास्वरम्।
जटाभिर्लम्बमानाभिर्भास्वन्तं स्वर्णकान्तिभिः।।४०।।
स्थिरविद्युल्लताकीर्णमिव शारदनीरदम्। श्रुतिस्मृतिपुराणार्थैरेकीभूय समागतैः।।४१।।
अङ्गकृतमिवाऽऽकारं दिव्यज्ञानशुभास्पदम्। धृतिक्षान्तिदयातुष्टिशान्तिभिर्नित्यसेवितम्।।४२।।
प्रियाभिरिव रक्ताभिरखण्डब्रह्मवर्चसम्। उपगम्य शनैः पार्थस्तत्पादाम्बुजयोःपुरः।।४३।।
चक्रे प्रणामं साष्टाङ्गं समालिङ्गितभूतलम्।।४४।।

आश्रम में कहीं-कहीं मञ्जुभाषी शुकशावक से मानो अपने दिव्यस्वर से शिवगमों का अर्थ प्रकाशित कर रहे थे। कहीं हवन की धूम उठकर आकाशमण्डल को श्यामल कर रही थी। यह देखकर मयूर उसे मेघ समझ रहे थे। कहीं-कहीं सिंहगण घूमते-घूमते थककर शान्ति कामना से स्वेच्छा पूर्वक चले आ रहे थे। कहीं-कहीं यूथप हाथी हथिनियों के शुण्ड स्पर्श द्वारा शरीरताप दूर कर रहे थे। परमानन्दजनक वर्णणातीत अभीष्टदायक मंगलावहु उदार भरद्वाजाश्रम समस्त वनसमृद्धि में चैत्ररथ वन तथा नन्दनकानन को भी पराजित कर रहा था। तदनन्तर पाण्डुपुत्र अर्जुन ने इस आश्रम को देखकर विस्मयापन्न हृदय से महर्षि के तपः प्रभाव की प्रशंसा करके अपने अनुचरों को बाहर ही रोक दिया तथा मित्रों एवं ब्राह्मणों के साथ आश्रम में प्रवेश किया। वहां जाकर अर्जुन देखते हैं कि अनेक मुनियों से घिरे महर्षि भारद्वाज प्रज्वलित अग्निवत् तेज से युक्त शोभित हो रहे हैं। उनका सर्वाङ्ग भस्म से लिप्त है। वे मृगचर्म पर आसीन हैं। मृगचर्म का ही उत्तरीय उन्होंने गले पर रखा है। नूतन मेघ से परिवेष्ठित कैलास शिखर जिस प्रकार से शोभित है, उसी प्रकार उनका शरीर प्रदीप्त हो रहा है। उनके मस्तक पर स्थित उज्वल स्वर्णकान्ति सुदीर्घजटा विलम्बित है। उसे देखकर स्थिर सौदामिनी युक्त शारदीय मेघ जाल का भ्रम भी हो जाता है। वहां श्रुति-स्मृति-पुराणार्थ एकीभूत रूप से समागत प्रतीत हो रहा है। अर्थात् इन सबने एकत्रिक होकर दिव्य ज्ञानमय शुभास्पद महर्षि भरद्वाज का रूप तथा आकार ग्रहण कर लिया है। मानो वहां धृति-क्षान्ति-दया-तुष्टि-शान्ति, ये सभी पत्नी का रूप धारण करके उनकी सतत् सेवा कर रही हैं। वे अखण्ड ब्रह्मकान्ति से द्योतित हैं। अर्जुन उन अखण्ड ब्रह्मकान्ति ऋषि का दर्शन करके धीरे-धीरे उनके चरणकमल के निकट आये तथा पृथिवी पर शिर रखकर उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया।।३३-४४।।

तमागतं पृथापुत्रमुत्थाप्य मुनिपुङ्गवः। आशीर्भिरेधयाञ्चक्रे प्रहर्षोत्फुल्लमानसः॥४५॥
सम्पूज्यचयथान्यायंतमर्घ्याद्यैःप्रियातिथिम्। विनिर्दिष्टासनासीनंतमपृच्छदनामयम्॥४६॥
सम्माननमवाप्याऽस्मान्मुनेःपाण्डवमध्यमः। प्रियैर्वाक्यैर्मुनिपतेरकरोन्मनसो मुदम्॥४७॥

सस्माराऽथ भरद्वाजः स्वर्धेनुं कामदोहिनीम्।
सा वितेनेऽतिमहतीं भक्ष्यभोज्यादिकल्पनाम्॥४८॥
भुक्त्वा पार्थः सानुचरस्तमुपास्यतपोनिधिम्।
दिनशेषंकथालापकौतुकेनात्यऽवाहयत् ॥४९॥

तब मुनिप्रवर भरद्वाज ने कुन्तिपुत्र अर्जुन का हाथ पकड़ कर उनको ऊपर उठाया तथा आशीर्वचनों से उनको अभिषिक्त किया। ऋषि ने अर्घ्य आदि प्रदान करके अपने प्रिय अतिथि इन पार्थ (अर्जुन) का सत्कार किया तथा उनको निर्दिष्ट आसन पर बैठने की अनुमति प्रदान किया। तदनन्तर ऋषि ने अर्जुन से कुशल प्रश्न भी पूछा। तत्पश्चात् मध्यम पाण्डव अर्जुन ने भी ऋषि से इस प्रकार का सत्कार पाकर विविध प्रियवाक्यों के द्वारा मुनीश्वर भरद्वाज को सन्तुष्ट किया। तत्पश्चात् ऋषि भरद्वाज ने स्वर्गस्थ कामधेनु गौ का स्मरण किया। कामधेनु ने तत्क्षण वहां प्रभूत भक्ष्य-भोग्यादि द्वारा आश्रम को परिपूर्ण कर दिया। अर्जुन ने विप्रों तथा अनुचरणगण के साथ यह सब भोजन किया। इन तपोनिधि भरद्वाज की उपासना करके उन्होंने उनके साथ विविध कौतुकपूर्ण कथालाप करते हुये दिन व्यतीत किया।।४५-४९।।

ततःसायन्तनींसंध्यामुपास्यहुतपावकः। विप्रैरमात्यैः सहितो ययौतस्यकुटीगृहान्॥५०॥
तत्रासीनो मुनिपतेराशीर्भिरभिनन्दितः। आनन्द्यमानो मुमुदे तन्नदीशीतलानिलैः॥५१॥

सम्प्रापिता केन भुवः प्रभूता कस्मान्महीधादधिकप्रभावा।
इति प्रभावं परिपृच्छ्य नद्याः श्रोतुं मुनीन्द्रान्मतिरस्य जज्ञे॥५२॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशातिसाहरुयां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायां भरद्वाजाश्रमवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः।।३०।।

तदनन्तर सायंकाल होने पर सन्ध्योपासना तथा अग्नि में आहुति प्रदान करके विप्रों एवं आमात्यगण के साथ अर्जुन ने महर्षि की पर्णकुटी में प्रवेश किया। पर्णकुटी में प्रवेश के उपरान्त अर्जुन पुनः मुनीश्वर भरद्वाज के आशीर्वाद को पाकर प्रमुदित हो गये। नदी के संसर्ग से उठ रही मन्द-मन्द सुशीतल वायु सेवन से उनका मन अत्यन्त मुदित हो गया था। अर्जुन के मन में ऋषियों से यह जानने की अभिलाषा हो गयी कि पृथिवी का यह स्थान किस प्रकार से प्रभूत विभूति सम्पन्न हो गया? पर्वतों में से इसका ऐश्वर्य इतना अधिक क्यों है? इस महानदी सुवर्णमुखरी का यह माहात्म्य कैसे हो गया?।।५०-५२।।

।।त्रिंश अध्याय समाप्त।।

एकत्रिंशोऽध्यायः

सुवर्णमुखरी नदी का प्रभाव, भरद्वाज-अर्जुन संवाद

श्रीसूत उवाच

कृतसायन्तनविधिं हुताशनसमद्युतिम्। सुखासीनं मुनिपतिं प्रणम्य भरतवर्षभः॥१॥
तदीयशीतलामोदसुधापूरानुमोदितः। गम्भीरं प्रश्रयोपेतमिदम्वचनमब्रवीत्॥२॥

सूत जी कहते हैं—तत्पश्चात् भरतर्षभ अर्जुन ने सायंकालीन उपासना तथा होम तथा अन्य विधान सम्पन्न किया। तदनन्तर उन्होंने सुखपूर्वक बैठे, अग्निवत् प्रभावान् मुनिवर भरद्वाज को प्रणाम किया तथा उनको शीतल मुदित तथा सुधापूर्ण वाक्य से प्रसन्न करके उनका अनुमोदन मिल जाने पर उनसे कहने लगे।।१-२।।

अर्जुन उवाच

मुनिपुङ्गव ! लोकेऽस्मिन्धन्य एकोऽहमेव हि। पुत्राविशेषं भवता यदेवं सम्यगादृतः॥३॥
भवदादरसञ्जातकौतुकं मम मानसम्। भवद्वाक्यामृतं दिव्यं पातुं त्वरयतीव माम्॥४॥
कस्माच्छैलादियंजाताकेनानीतामहानदी। किम्पुण्यंस्नानदानाद्यैःकृतैस्तत्रोपलभ्यते॥५॥
अस्याःप्रभावं प्रभवं प्रह्वस्य मम सन्मुखे। वक्तुमर्हसि कार्यो हि भक्तानुग्रह एव ते॥६॥
अर्जुनस्यवचःश्रुत्वाभरद्वाजोद्विजोत्तमः। तदाननं समालोक्यवाक्यं वाक्यविदब्रवीत्॥७॥

अर्जुन कहते हैं—"हे मुनिप्रवर ! पृथिवी पर एकमात्र मैं ही धन्य हूं। क्योंकि आपने अपने विशेष पुत्र की तरह मेरा सम्यक् आदर किया है। आपके इस आदर से मेरा हृदय कौतुक से भर गया है। आपकी दिव्य अमृतमयी वाणी ने मुझे चंचल कर दिया है। हे मुनिवर! किस पर्वत से यह पुण्यसलिल वाली महानदी निकली है? कौन महात्मा इसे लाये हैं? इस नदी में स्नान तथा जलपान से क्या पुण्य संचय होता है? हे साधु, मुनिवर! इसके प्रभाव विशेष को मैं नहीं जानता। आप भक्त के प्रति कृपा करते हैं, इसलिये इसके प्रभाव का वर्णन करिये।" अर्जुन का वाक्य सुनकर महर्षि भरद्वाज उनका मुख देखकर कहने लगे।।३-७।।

भरद्वाज उवाच

त्वमर्जुन ! महाबाहो कौरवान्वयपावनः। विशेषान्मम मान्योऽसि धर्मपुत्रानुजोयतः॥८॥
अनेके भूमिपा दृष्टा न ते त्वमिवफाल्गुन। लीलार्जवदयौदार्यधैर्यगाम्भीर्यशालिनः॥९॥
कुलं विद्या धनञ्चैव बलिनां मदकारणम्। भवादृशानांभव्यानां तानि प्रश्रयकारणम्॥१०॥
प्राज्येषु राज्यभोगेषु विद्यमानेषुकौरव। ऋतेभवन्तंकोवाऽन्यो नोपैति विकृतेर्वशम्॥११॥
परवानस्मि कौन्तेय ! गुणैर्लोकोत्तरैस्तव। किमस्त्यकथनीयन्तेकौतुकोपेतमानस !॥१२॥

श्रृणु राजन्कथां दिव्यां मया मुनिमुखाच्छ्रुताम्।
यां श्रुत्वा पातकातङ्कान्मुच्यन्ते सर्वजन्तवः॥१३॥

भरद्वाज कहते हैं—हे महाबाहु अर्जुन! तुमने कुरुओं के कुल को पवित्र किया है। विशेषतः तुम धर्मराज के अनुज हो। इसलिए मेरे लिये अत्यन्त मान्य हो। हे फाल्गुन! लीला, सारल्य, दया, उदारता, धैर्य तथा गाम्भीर्य गुणयुक्त अनेक राजाओं को मैंने देखा है, तथापि तुम्हारे अनुरूप दूसरा नहीं देखा। कुल-विद्या तथा धन यह चारों बली व्यक्ति के लिये मत्तता का कारण हो जाता है, तथापि हे कौरव! तुम्हारे जैसे राजा में तो यह सभी विनय का कारण हो जाता है। प्रभूत राज्य होने पर तुम्हारे अतिरिक्त ऐसा कौन है, जिसका मन विकृत न हो जाये। हे कौन्तेय! तुम तो असाधारण गुण वाले हो। साथ ही दयालु भी हो। तुम्हारा मन पूर्णतः कौतूहलग्रस्त हो गया है। इसलिये तुम्हारे लिये न कहने लायक कुछ भी नहीं है। हे राजन्! मैंने पूर्वकाल में मुनिगण से जो भी श्रवण किया है, उसी पुण्यकथा को कहता हूं। यह दिव्य कथा सुनकर सभी प्राणीगण पापमुक्त हो जाते हैं। अब इस पुण्य प्रसंग को सुनो।।८-१३।।

पूर्वं दाक्षायणी देवीजनकेनाऽवमानिता। त्यक्त्वा तनुन्तां नीहारगिरेरभवदात्मजा।।१४।।

पूर्वकाल में दक्षपुत्री देवी दाक्षायणी सती ने पिता से अपमानित होकर शरीर त्याग दिया था तथा उन्होंने हिमालय की पुत्री होकर जन्म लिया था।।१४।।

सप्तर्षिभिरुपागम्य प्रार्थितो धरणीधरः। मृत्युञ्जयाय स्वां पुत्रीं विवाहे दातुमुद्यतः।।१५।।
वृषभाङ्को जगत्स्वामीविवोढुंसर्वमङ्गलाम्। प्राप्तो हिमवदावासमोषधीप्रस्थनामकम्।।१६।।
तच्छासनात्समाग्मुः स्थावराणि चराणि च। भूतानि भूतनाथस्य कल्याणमभिनन्दितुम्।।१७।।
तद्भूरिभारसम्भग्ना भूमिरुत्तरसंश्रया। निम्नातामाययौ तावद्यावत्पातालमास्थिता।।१८।।
निर्भारलाघवादस्माद्भृशं दक्षिणगामिनी। ऊर्ध्वंगता च तं दृष्ट्वा सर्वेषामभवद्भयम्।।१९।।

तत्पश्चात् धरणीधर हिमाचल ने सप्तर्षिगण से परिवृत होकर (सहमति से) अपनी कन्या गिरिजा को मृत्युंजय शिव के हाथों अर्पित करने की अभिलाषा किया। वृषध्वज जगत्स्वामी गिरिजा का पाणिग्रहण करने हिमालय के यहां आये। उस समय उनके आदेश से समस्त स्थावर, चर, भूतगण ने भी भूतपति शंकर का मांगलिक अभिनन्दन करने के लिये उनका अनुगमन किया। इन सब के महान् भार के कारण यह पृथिवी हिमालय के उत्तर से लेकर पाताल पर्यन्त अत्यन्त निम्न हो गयी। लोगों ने भार के कारण भूमि को एक ओर अत्यन्त नीची तथा दूसरी ओर उच्च ऊर्ध्वगत (असमतल रूप) देखा जिससे वे अत्यन्त भयभीत हो गये।।१५-१९।।

ज्ञात्वा तां विकृतिं भूमेर्दृष्ट्वाऽगस्त्यंमहेश्वरः। इत एहिमहाप्राज्ञेत्युक्त्वावचनमब्रवीत्।।२०।।
आगतेषु समस्तेषु भूतेष्वत्र वसुन्धरा। तद्भारेण समाक्रान्ता विकृतिं समुपागता।।२१।।
तद्भुवः साम्यकरणे त्वमर्हसि महामते। ऋते त्वामत्र हि त्वत्तः परेणैतत्कथम्भवेत्।।२२।।
मत्तेजःसम्भवो हि त्वं लोकसंरक्षणोद्यतः। तस्मान्मद्वचनाद्वत्स भुवमेतां समीकुरुः।।२३।।
मत्पाणिग्रहणाल्लोककौतुकायत्तबुद्धिषु। आगतेषु समस्तेषु स्थातव्यम्भविताऽपिच।।२४।।

तब महेश्वर ने भूमि की यह विकृत स्थिति देखकर महर्षि अगस्त्य से कहा—"हे महाप्राज्ञ! मेरे समीप आओ।" जब अगस्त्य महेश्वर के समीप आ गये, तब उन ईश्वर ने कहा "समस्त प्राणी मेरा अनुगमन करने लगे, इससे पृथिवी भारपीड़िता होकर विकृत हो गयी है। हे महामति! अब तुम ही ऐसे हो जो वसुधा को सम

कर सकते हो। तुम्हारे अतिरिक्त इस कार्य को करने में कौन पारंगत है? इसका कारण यह है कि एकमात्र तुम ही मेरे तेज से युक्त हो तथा लोकरक्षण कार्य के लिये नियुक्त किये गये हो। हे वत्स! मेरा कथन मानकर इस पृथिवी को समान कर दो। इस प्रकार मेरे पाणिग्रहण कार्य को देखने के लिये कौतुक से आविष्ट चित्त वाले इन समागत प्राणियों की रक्षा करो।।२०-२४।।

त्वं न तिष्ठसि चेदत्र नकश्चिद्विकृतिम्भुवः। अपनेतुं हि शक्नोति तद्गन्तव्यंत्वयाऽनघ।।२५।।
इमांगिरिसुतापाणिग्रहकल्याणभासुराम्। मूर्तिंप्रदर्शयिष्यामि यत्र तिष्ठसि तत्र ते।।२६।।
इत्युक्त्वातं परिष्वज्यविससर्जमहेश्वरः। तथेतितंप्रणम्याऽसौययौयाम्यांदिशंमुनिः।।२७।।
विन्ध्याद्रिं समतिक्रम्य दक्षिणामागते दिशम्।
अगस्त्ये मुनिशार्दूले मही साम्यमुपाययौ।।२८।।
भूवोऽपनीय विकृतिं स्थितं कलशजं मुनिम्। तुष्टुवुर्हर्षतरलाः सुरगन्धर्वकिन्नराः।।२९।।

"हे भद्र! तुम्हारे यहां रहते किसी प्रकार से भी पृथिवी की विकृति दूर नहीं होगी। तुम ही इसकी विकृति को दूर कर सकते हो। हे निष्पाप! इसका उपाय करने के लिये यहां से शीघ्रता पूर्वक जाओ। मैं मनोज्ञा गिरिजा से विवाह करके गिरिजा सहित विवाह वाले वेश में ही जहां भी तुम रहोगे वहीं आकर तुमको दर्शन प्रदान करूंगा।" महेश्वर ने यह वचन कहकर ऋषि अगस्त्य को विदा किया। महामुनि अगस्त्य ने भी उनको प्रणाम करके कहा "ऐसा ही हो।" इस प्रकार अगस्त्य ने दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया। तदनन्तर मुनिशार्दूल अगस्त्य ने विन्ध्यपर्वत पार किया तथा दक्षिण की ओर चल पड़े। इस प्रकार जब उनके प्रयत्न से पृथिवी ने पहले जैसा साम्यभाव ग्रहण कर लिया तब ऋषि कुम्भज अगस्त्य पृथिवी के विकृत रूप को समाप्त करने के पश्चात् खड़े हो गये। यह देखकर हर्ष से भरे चित्त से सुर, गन्धर्व तथा किन्नरगण उनकी स्तुति करने लगे।।२५-२९।।

स ददर्श ततो गत्वा कञ्चिच्छैलं समुन्नतम्। विततैर्धरणींम्पादैर्धृत्वासंस्थितमग्रतः।।३०।।
महौषधीनां रत्नानामशेषाणां स्वयम्भुवा। अखण्डतेजोदीप्तानांविनिर्मितमिवाकरम्।।३१।।
समुन्नतैर्यः शिखरैर्निपतद्व्योमभूतले। उदारधारासम्पन्नैर्दधातीव निरन्तरम्।।३२।।
शनैरारुह्य तं शैलमगस्त्यो मुनिपुङ्गवः। निवासाय मतिं चक्रे रम्ये तच्छिखरस्थले।।३३।।
तस्यामृतोपमेयस्य पद्मोत्पलकुलश्रियः। नानाद्रुमपरीतस्य कासारस्योत्तरे तटे।।३४।।
मनोहरे महीभागे विधायाऽऽश्रममुत्तमम्। आराध्य पितृदेवर्षीन्विधिवद्वास्तुदेवताम्।।३५।।
उवास सुचिरन्तत्र मुनिसङ्घसमन्वितः। देवतासिद्धगन्धर्वाऽप्सरोजुष्टमहीधरे।।३६।।
तपः समावेशितचित्तवृत्तौ तपोवने तिष्ठति कुम्भजाते।
प्रशस्तसौभाग्य समन्वितोऽद्रिरगस्त्यशैलाह्वयमाससाद।।३७।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायामर्जुनभरद्वाजसम्वादे शङ्करविवाहागस्त्यदक्षिण-दिग्गमनवर्णनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः।।३१।।

—※—

तब महर्षि ने एक उन्नत पर्वत को देखा तथा उसे भार प्रदान करने के लिये पृथिवी पर स्थापित कर दिया। यह पर्वत भी अपने भार से पृथिवी को दबाकर स्थित हो गया। हे अर्जुन! यह पर्वत अपने अविच्छिन्न तेज के कारण दीप्त होकर अशेष महान् औषधि भंडार तथा रत्नों की खान के रूप में प्रतिभात होने लगा। महान् औषधियां तथा रत्नादि उसमें से स्वयं उत्पन्न होने लगे। पृथिवी पर इस पर्वत की उदारधारा समन्वित उन्नत शिखरराजि मानो भूतल से आकाश तक समाक्रान्त हो रही थी। मुनिप्रवर अगस्त्य ने क्रमशः इस पर्वत के शिखर पर पहुंचकर उस रमणीय स्थल पर निवास का विचार किया। उन्होंने वहां पद्म तथा उत्पल समूह की दिव्यकान्ति से समन्वित अमृतोपम पर्वत शिखर पर स्थित तथा वृक्षों से घिरे मनोरम सरोवर के उत्तर तट पर एक आश्रम का निर्माण किया। ऋषि अगस्त्य ने अन्य ऋषियों के साथ यथाविधि देव-ऋषि-वास्तु देवता का पूजन तथा पितरों की आराधना करके दीर्घकाल पर्यन्त वहां निवास किया। उन कुंभ से उत्पन्न महर्षि अगस्त्य ने देवता, सिद्ध, गन्धर्व तथा अप्सरागण युक्त उस पर्वत पर अवस्थान करके अपनी चित्तवृत्ति को समाहित किया था। इसी कारण महान् सौभाग्य समन्वित यह पर्वत अगस्त्यशैल कहलाया।।३०-३७।।

।।एकत्रिंश अध्याय समाप्त।।

द्वात्रिंशोऽध्यायः

अगस्त्य के प्रयत्न से गंगारूपा सुवर्णमुखरी नदी का पृथिवी पर अवतरण

भरद्वाज उवाच

स कदाचिन्मुनिवरः कृतपौर्वाह्णिकक्रियः। विवेश देवतागारं समाराधयितुं शिवम्।।१।।
अदृश्यरूपा वाग्देवी तत्राश्राऽवि महात्मना। तेनाद्भुतोपपन्नेन व्यक्तवर्णसमुज्ज्वला।।२।।
आकाशवाण्युवाचैनमगस्त्यं जपताम्वरम्। नदीहीनो ह्ययं देशः प्रसिद्धोऽपि न शोभते।।३।।
ज्ञानविज्ञानविमुखः साकार इव भूसुरः। दीक्षेव दक्षिणाहीना ज्योत्स्नाहीनेवशर्वरी।।४।।
न विभाति नदीहीना पृथ्वीयं भूसुरोत्तम। प्रवर्तय नदींकाञ्चिल्लोकानांहितकाम्यया।।५।।
अगाधदुरितोद्भूतभीतिमोचनशालिनीम्। हितमेतत्सुरौधानामेतन्मुनिवरार्थितम्।।६।।
भद्रमेतन्मनुष्याणामेतदाचर सुव्रत। देवानामृषिवर्याणां भूजनानां हितावहाम्।।७।।
पापपङ्कप्रशमनीं प्रवर्तय महानदीम्।।८।।

भरद्वाज ऋषि कहते हैं—एक बार महात्मा मुनिप्रवर अगस्त्य ने समस्त पूर्वाह्णकृत्य समापन करके शिव के आराधनार्थ देवमन्दिर में प्रवेश किया था। तभी उनको एक वाक्य सुनाई पड़ा जिसे कहने वाला अदृश्य था। उस अदृश्य वाक्य को सुनकर महर्षि विस्मित से हो गये। तपस्वी प्रवर अगस्त्य के समक्ष समुज्वल व्यक्ताक्षर

समन्वित आकाशवाणी होकर कहने लगी—"यह प्रसिद्ध स्थल देश नदीहीन होने के कारण वैसे ही शोभित नहीं हो रहा है, जैसे ज्ञान-विज्ञान विमुख शरीरधारी ब्राह्मण, दक्षिणारहित दीक्षा तथा ज्योत्स्ना रहित शर्वरी (रात्रि) शोभायमान नहीं होती। हे विप्रवर! नदीरहित पृथिवी कदापि शोभा नहीं देती। इसलिये लोकहितार्थ एक नदी की प्रतिष्ठा करो। हे मुनिप्रवर! यह मेरी प्रार्थना है। तुम एक ऐसी नदी को यहां लाओ, जिसके द्वारा अत्यन्त दुरित भी दूर हो जाये। यह करके तुम देवगण का हित ही करोगे। सुव्रतरत मनुष्यों के लिये भी यह तुम्हारा कर्त्तव्य है। केवल मानव ही क्यों, तुम्हारे इस कार्य से देवता, मुनीश्वर, यहां तक कि पृथिवी के समस्त प्राणियों का कुशल साधन होगा। अतः पृथिवी के पाप प्रशमनार्थ इस कार्य में समर्थ एक महानदी की प्रतिष्ठा करो।"।।१-८।।

श्रीभरद्वाज उवाच

तदाकर्ण्य वचो विप्रः क्षणं चिन्तापरायणः। समाप्य देवतापूजांबहिर्वेद्यामुपाविशत्॥९॥
आनाययामास तदा तदाश्रमगतान्मुनीन्। तेषामकथयच्चाऽसौ दिव्यवाणीरितं वचः॥१०॥
तदद्भुतमुपश्रुत्य मुनयो हृष्टमानसाः॥११॥
अभिवन्द्य मुनिश्रेष्ठं मैत्रावरुणिमब्रुवन्॥१२॥

भरद्वाज कहते हैं—द्विजप्रवर ने यह आकाशवाणी सुनकर क्षणकाल पर्यन्त चिन्तन किया। वे देवपूजन सम्पन्न करके बहिर्वेदी पर आसीन हो गये। तब उन्होंने आश्रमवासी सभी ऋषिगण को बुलवाकर इस आकाशवाणी का प्रसंग उनसे कहा। मुनिवर्ग इस अत्यद्भुद आकाशवाणी का प्रसंग सुनकर अत्यन्त हर्षित हो गये। उन्होंने मित्रावरुण के पुत्र मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य की वन्दना करते हुये कहना प्रारंभ किया।।९-१२।।

मुनय ऊचुः

आश्चर्याणां महाश्चर्यं मङ्गलानां च मङ्गलम्। तवैव शोभते दिव्यंत्वच्चरित्रं कृपानिधे॥१३॥
तव हुङ्कारमात्रेण भ्रष्टो देवाधिराज्यतः। नहुषः कीटतां प्राप ततश्चित्रं न विद्यते॥१४॥
समावृतधराचक्रः कल्लोलाताडिताम्बरः। किंन्वतो विद्यतेचित्रं यदब्धिश्चुलुकीकृतः॥१५॥
सूर्यमार्गनिरोधार्थप्रवृत्तोविन्ध्यभूधरः। त्वयाप्रशान्तिंगमितः किंन्वतो विद्यते परम्॥१६॥
तवाऽद्भुतानि कर्माणि कः स्तोतुं प्रभवेद्भुवि।
मन्महाभाग्ययोगात्त्वं प्राप्तोऽसीति शरीरिताम्॥१७॥
वयं कृतार्थाः सञ्जातास्त्रैलोक्येयन्महामुने !।
निवसामोऽत्रभवतासनाथाह्याश्रमस्थले ॥१८॥

मुनिगण कहते हैं—हे कृपानिधि! आज आपसे जो कुछ सुना यह आश्चर्य से भी बढ़कर आश्चर्य है। यह सर्वमंगल समूह से भी मंगलमय है। यह आपके ही दिव्य चरित्र का शोभा रूप है। आपके हुंकार मात्र से राजा नहुष स्वर्ग से च्युत होकर अजगरत्व को प्राप्त हो गये थे। क्या यह विचित्र तथ्य नहीं है? जब सम्पूर्ण धराचक्र को समावृत करके अपनी कल्लोल से यह सागर अम्बर तल पर्यन्त सब कुछ को ताड़ित करने लगा

था, तब आपने एक चुल्लू मात्र में उसका पान कर लिया, क्या यह विचित्रता नहीं है! जब विन्ध्यपर्वत ने सूर्य का पथ रोक लिया था, तब आपने आशीर्वाद के बहाने उस गर्वित पर्वत को छोटा कर दिया था। क्या यह विचित्रता नहीं है! आपके विचित्र कार्यों का वृत्तान्त इस पृथिवी पर कौन कह सकने में समर्थ हैं। यह तो हमारा भाग्य ही है कि आपने शरीर धारण किया है। हे महामुनि! आपके आश्रम में जो हमें रहने का स्थान मिला है तथा आपने जो हमें सनाथ किया है, इससे हम इस त्रैलोक्य में कृतार्थ हो गये हैं।।१३-१८।।

वर्ण्यो हि याम्यतोदूरेविषयोऽयंद्विजोत्तम। समस्तवस्तुपूर्णोऽपि नदीहीनोनराजते।।१९।।
किमलब्धनदीस्नानेनाऽमुनाहतजन्मना। अनदीके जनपदे वासादजननं वरम्।।२०।।
परिपाकस्तु भाग्यानामस्माकंसमुपस्थितः। यदादिष्टोऽसिविबुधैःप्रवर्तयमहानदीम्।।२१।।
प्रवर्तितायांदेशेऽस्मिन्महानद्यांतवाऽनघ !।
कदानुखलुयास्यामःकृतस्नानाःकृतार्थताम्।।२२।।
किं वितर्केण बहुना प्रयत्नः क्रियतां ध्रुवम्। समानेतुंजगद्वन्द्यांशरण्यांसरिदुत्तमाम्।।२३।।

हे द्विजोत्तम! दक्षिण देश में अत्यन्त दूर अवस्थित तथा हमारे द्वारा प्रशंसित यह देश समस्त वस्तु से परिपूर्ण होकर भी एकमात्र नदी के अभाव के कारण शोभित नहीं हो रहा है और क्या कहें, हमने भी नदी स्नानरहित होकर व्यर्थ जन्म लिया है। वास्तव में नदी रहित देश में रहने से अच्छा है कि जन्म ही न हो! तथापि हमारे भाग्य को फलीभूत होने का अवसर आज प्राप्त हो गया है। यह उपयुक्त संयोग बना है। हे निष्पाप मुनिवर! देवगण ने जो आदेश प्रदान किया है, तदनुसार आप महानदी का प्रवर्त्तन करिये। वह कौन दिन होगा, जब हम आप द्वारा प्रवर्त्तित महानदी में स्नानोपरान्त अपना जन्म सार्थक करेंगे? हे मुनिवर! इस सम्बन्ध में अधिक तर्क करना व्यर्थ है। आप तो जगत्वन्दित शरण्य हैं। आप महानदी को लाने का प्रयत्न करिये।।१९-२३।।

श्रीभरद्वाज उवाच

स तेषां वचनं हृद्यंमानयित्वामहाद्विजः। समानेष्यामिसरितमितिचक्रेविनिश्चयम्।।२४।।
मुनीश्वरैरनुज्ञातस्तानभ्यर्च्य सुरानपि। विशेषपूजां विधिवद्विधायपुरविद्विषः।।२५।।
अङ्गीकृत्य व्रतं गाढं बहुलक्लेशदुः सहम्। अनन्यसुलभं यत्नात्स चकार महत्तपः।।२६।।
घोरेषु धर्मदिवसेष्वन्तरस्थोहविर्भुजाम्। चतुर्णां सवितृन्यस्तदृष्टिर्नापययौ क्लमम्।।२७।।
वार्षिकेषु दिनेषूग्रवायुसम्पातदुःसहैः। आसारैस्ताड्यमानोऽपि नोद्वेगमगमद्धृदि।।२८।।
हेमन्ते समये तिष्ठन्कण्ठदघ्नेषु वारिषु। जपध्यानपरोभूत्वानकिञ्चिद्विकृतिं ययौ।।२९।।
ततः समीहितार्थस्य विलम्बमवलोक्यसः। पुनर्गाढतरां निष्ठां प्रपेदेलोकभीषणाम्।।३०।।
निगृह्य मानसीं वृत्तिंनिराहारोजितेन्द्रियः। अविज्ञातबहिर्वृत्तिस्तस्थौपाषाणवत्तदा।।३१।।

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—द्विजप्रवर अगस्त्य ने ऋषियों के हृदयग्राही वाक्यों को सुनकर निश्चय किया कि मैं नदी ले आऊंगा। तत्पश्चात् महर्षि ने ऋषिगण से आज्ञा लिया तथा देवताओं की अर्चना करके उन्होंने

सविधि त्रिपुरारी शिव की पूजा किया। तदनन्तर अनेक दुःसह क्लेशयुक्त व्रतों का संकल्प लिया। वे घोरतर ग्रीष्मकाल में चतुर्दिक् अग्नि प्रज्वलित करके उसके बीच में बैठ जाते तथा सूर्य की ओर दृष्टि करके कठोर तप करने लगे। वे इस तप से क्लान्त नहीं हुये। वे कभी वर्षाकाल में दुःसह तीव्र वायु प्रवाह तथा मूसलाधार वर्षा में भी तनिक आघातजनित उद्वेग का अनुभव नहीं करते थे। वे हेमन्त ऋतु में आकण्ठ जल में रहकर जपध्यान परायण होकर तपःश्चरण किया करते थे, तथापि इससे भी उनमें कोई विकृतभाव का संचार नहीं होता था। इतने कठोर तप से जब इष्टसिद्धि होते नहीं देखा, तब उन्होंने पुनः अत्यन्त भीषण गाढ़तर निष्ठा का सहारा लिया। जितेन्द्रिय अगस्त्य ने अपनी समस्त मनोवृत्तियों का निग्रह कर लिया तथा निराहार रहते हुये समस्त वाह्यवृत्तियों से परे होकर अपने शरीर को पाषाणवत् कर लिया।।२४-३१।।

एवं तपस्यतस्तस्य सर्वाङ्गेषु हुताशनः। अभ्रँल्लिहो ज्वलज्ज्योतिर्निश्चक्रामभयङ्करः॥३२॥
ततोऽद्भुतशिखाजालैरावृताः सर्वतो दिशः। समुदग्रभयोद्विग्ना जनौघाः परिचुक्रुशुः॥३३॥
तदा तथाविधं घोरं जगत्संक्षोभमागतम्। देवाविज्ञापयामासुर्नमस्कृत्याऽब्जजन्मने॥३४॥
तानाश्वास्य ततो ब्रह्मा सिद्धगन्धर्व सेवितः। प्रादुरासीत्कुम्भभुवः पुरोभागे तपस्यतः॥३५॥

महर्षि अगस्त्य इसी प्रकार तपःश्चरण कर रहे थे, तभी उनके सभी अंगों से आकाशस्पर्शी जाज्वल्यमान भयंकर अग्नि निर्गत हो गयी तथा उस अद्भुद् शिखाज्वालामाला ने सभी दिशाओं को आवृत कर लिया। सभी लोक उस ऋषिशरीर से उत्थित अग्नि से भीत तथा उद्विग्न होकर क्रन्दनपूर्वक ब्रह्मा के समीप गये। उन्होंने ब्रह्मा को प्रणाम करके अग्नि के सम्बन्ध में निवेदन किया। तब चतुरानन ब्रह्मा ने देवताओं को आश्वस्त किया तथा वे सिद्ध-गन्धर्व सेवित तपस्वी अगस्त्य के आश्रम के भूभाग के समीप आये।।३२-३५।।

तमागतं समालोक्य ब्रह्माणंपरमंद्विजः। प्रणम्यविविधैःस्तोत्रैस्तोषयामासतन्मनाः॥३६॥
ततस्तं विनयानम्रमगस्त्यं वीक्ष्य पद्मभूः। प्रसादसुमुखो भूत्वा पूतां गिरमुपाददे॥३७॥

तन्मय होकर तपस्यारत द्विज अगस्त्य ने उन देवप्रवर ब्रह्मा को आया देखकर उनको प्रणाम किया तथा विविध स्तवों द्वारा उनको प्रसन्न किया। पद्मयोनि ब्रह्मा विनयनम्र ऋषि अगस्त्य का अवलोकन करके प्रसन्न मन से यह पवित्र वाक्य कहने लगे।।३६-३७।।

ब्रह्मोवाच

परितुष्टोऽस्मि तपसा दुश्चरेण तवाऽनध !। वृणीष्वयद्यदिष्टंतेतत्तद्दास्यामिसुव्रत !॥३८॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—हे अनघ! मैं तुम्हारी दुःस्तर तपस्या से प्रसन्न हो गया। हे सुव्रत! यदि तुम्हारा कोई अभीष्ट वर है, उसे मांगो। मैं वह प्रदान करूंगा।।३८।।

अगस्त्य उवाच

तव प्रसादात्सकलमुपपन्नं मम प्रभो !। सम्प्रयच्छसि चेत्कामं याचेनिःशङ्कया धिया॥३९॥
नदीहीनमिमं देशं दृष्ट्वा खिद्यति मे मनः। अर्थावबोधरहितं श्रुतिपाठमिवाऽधिकम्॥४०॥
उर्वीं पावयितुं दक्षां रक्षितुं च महानदीम्। प्रसादं कुरु देवेश ममेष्टमिदमेव हि॥४१॥

अगस्त्य कहते हैं—हे प्रभो! आपके अनुग्रह से मैंने सब कुछ पा लिया है। यदि आप मुझे अभिलषित वर देने के लिये अंगीकृत करते हैं, तभी निःशङ्क चित्त से आपसे प्रार्थना कर सकूंगा। हे ब्रह्मन्! इस देश को नदी हीन देखकर वैसा ही प्रतीत होता है जैसे अर्थज्ञान रहित वेदपाठ ! हे देवेश ! अब पृथिवी को पवित्र करने वाली तथा रक्षा करने वाली एक महानदी ही मेरा अभीष्ट वर है। अतः उसे देकर मेरे प्रति अनुग्रह करिये।।३९-४१।।

श्रीभरद्वाज उवाच

अगस्त्यस्यवचः श्रुत्वाभूयादेवमितिब्रुवन्। सस्मार मनसाब्रह्मासुरवर्त्माश्रयांनदीम्।।४२।।
अथोपेत्य वियद्गङ्गा पुरस्तात्परमेष्ठिनः। अतिष्ठन्मुकुटन्यस्तप्रशस्ताञ्जलिभासुरा।।४३।।
स्वशासनात्समायातां विनयानतमस्तकाम्। तां सर्वजगतांधात्रीमिदंवचनमब्रवीत्।।४४।।

भरद्वाज कहते हैं—तदनन्तर ब्रह्मदेव ने अगस्त्य का वचन सुनकर कहा "ऐसा ही हो।" तभी दीप्तिमयी आकाशगगा परमेष्ठी ब्रह्मा के आगे आईं तथा अपना मुकुट झुकाकर (सिर झुकाकर) हाथ जोड़कर वहीं बैठ गईं। ब्रह्मा ने उन अपने शासन के अन्तर्गत् अवस्थित, विनयावनत, समस्त जगत् का पालन करने वाली इन गंगा देवी से कहा।।४२-४४।।

ब्रह्मोवाच

गङ्गेमयाऽनुशास्यासिकार्ये लोकोपकारके। तवापिलोकरक्षायांममेवनियतास्थितिः।।४५।।
देशे नदीविहीनेऽत्र प्रवर्तयितुमापगाम्। हितार्थं सर्वलोकानां कुम्भजन्मा समीहते।।४६।।
तस्मात्त्वमवतीर्योर्वीं स्वांशेनैकेन भूजनान्। पुनीहि गच्छ वसुधामेतद्दर्शितवर्त्मना।।४७।।
भूलोके सम्प्रवृत्ते तु प्रवाहेसिद्धिकाङ्क्षिणः। सेविष्यन्तेसुरवरामुनिवर्याश्चसन्ततम्।।४८।।
नदीषूत्तमतांयाहि त्राहि त्वत्संश्रयाञ्जनान्। कुरुप्रियमगस्त्यस्यगच्छभद्रेयथासुखम्।।४९।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे गङ्गे! तुम मेरे अनुशासन में स्थित हो। जैसे मैं लोक रक्षणार्थ नियुक्त हूं, मेरी ही तरह तुम भी लोकरक्षा भार में न्यस्त हो। सम्प्रति तुम एक लोकहितकारी कार्य करो। इस नदीविहीन देश हेतु महर्षि अगस्त्य ने एक नदी की प्रार्थना किया है। तुम समस्त लोकों की हित कामना के द्वारा इस स्थान पर एक नदी प्रवर्त्तित कर दो। तुम अपने एक अंश से पृथिवी पर अवतरित होकर मेरे द्वारा प्रदर्शित पथ से पृथिवी पर आकर समस्त लोकों को पावन कर दो। भूतल पर जब तुम्हारा प्रवाह प्रवर्त्तित हो जायेगा तब सिद्धिकामी उत्तम देवता तथा मुनिगण नित्य तुम्हारी सेवा करेंगे। तुम आश्रितों की रक्षा करके नदियों में श्रेष्ठता लाभ करोगी। हे भद्रे! अब यथासुख आगमन करके अगस्त्य का प्रिय साधन करो।।४५-४९।।

भरद्वाज उवाच

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे ब्रह्मा तया नद्या च तेन च। प्रणामपूजनस्तोत्रैर्विशेषैरभिनन्दितः।।५०।।
अथ गङ्गा मुनिपतेः पुरस्तात्स्वांशसम्भवाम्।
दिव्यतेजोमयीं मूर्तिं दर्शयित्वा वचोऽब्रवीत्।।५१।।

भरद्वाज कहते हैं—तदनन्तर ब्रह्मा के इस प्रकार कहने पर आकाश गंगा तथा महर्षि अगस्त्य ने उनको प्रणाम किया तथा पूजन एवं विविध स्तुतियों द्वारा ब्रह्मदेव का अभिनन्दन किया। तत्पश्चात् वे ब्रह्मदेव अन्तर्हित् हो गये। इसके उपरान्त आकाशगंगा ने महर्षि अगस्त्य के पास अपने शरीरांश से उत्पन्न एक दिव्यमूर्त्ति की कल्पना किया। तत्पश्चात् उसे ऋषि अगस्त्य को दिखला कर कहने लगीं।।५०-५१।।

गङ्गोवाच

मदीयांशोऽयमवनीं सम्प्राप्य मुनिवल्लभ!।
पूरयिष्यति तेऽभीष्टं नदीरूपं समाश्रितः।।५२।।

गंगा देवी कहती हैं—हे मुनि वल्लभ! मेरा यह अंश ही पृथिवी पर जाकर नदी रूपी होगा। इससे आपका अभीष्ट पूर्ण होगा।।५२।।

भरद्वाज उवाच

इत्युक्त्वा सिद्धवाहिन्यां गतायां तत्प्रयुक्तया।
गन्तव्यं वर्त्मना केनेत्युक्तो मुनिरुवाच ताम्।।५३।।

भरद्वाज कहते हैं—तदनन्तर गंगा के आदेश से उनका ही एक अंश वहां प्रसिद्ध जलप्रवाहरूप हो गया। उन्होंने ऋषि से पूछा कि मैं किस पथ से जांऊ?।।५३।।

अगस्त्य उवाच

गच्छन्पुरस्तात्कल्याणि ! त्वदीयगमनोचितम्। अहंप्रदर्शयिष्यामिमार्गंत्वंमामनुव्रज।।५४।।
इत्युक्तामुनिना तेन सम्प्रहृष्टा तवाऽनघ। यदिष्टं तत्करिष्येऽहमिति प्रोवाच साशुभा।।५५।।
अथ मुनिरवतार्य तां नगेन्द्राद्धृततदिनीतनुमभ्रसङ्गिशृङ्गात्।
मुदिततरमना ययौ पुरस्तात्तदभिमतां पदवीं प्रदर्शयन्सः।।५६।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये श्रीसुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायां सुवर्णमुखर्या-
विर्भाववर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः।।३२।।

—※※※—

तब अगस्त्य ऋषि ने कहा कि तुमको किस पथ से जाना है, वह मैं आगे-आगे चलकर बताता रहूंगा। तुम मेरा अनुगमन करना। हे अर्जुन! हे निष्पाप! मुनि की बात से सुभद्रा गंगा प्रसन्न होकर कहने लगीं—"हे मुनिवर! मैं आपको जो प्रिय है वही करूंगी।" तत्पश्चात् महर्षि अगस्त्य ने आकाशस्पर्शी उस अत्युच्च गिरिप्रवर के शिखर से नदीरूपी आकाश गंगा का अंश लिया तथा मुनिप्रवर प्रसन्न मन से आगे-आगे उनको मार्ग बतलाते चलने लगे।।५४-५६।।

।।द्वाविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

इन्द्रादि द्वारा सुवर्णमुखरी की स्तुति
सुवर्णमुखरी महत्व वर्णन

भरद्वाज उवाच

तदादिव्यविमानस्थाःशक्रमुख्यादिवौकसः। अगस्त्यमनुयान्तीतामनुजग्मुर्महापगाम्॥१॥
नवावतारां तां दिव्यां सर्वे च मुनिपुङ्गवाः। कृताञ्जलिपुटाःस्तोत्रैरनुयाताःसिषेविरे॥२॥
सिद्धचारणगन्धर्वाः सम्भूताश्च सहस्रशः। तां नदीं तं मुनीन्द्रंचप्रशशंसुःशुभैःस्तवैः॥३॥
सुधोपमानममलं दिष्ट्या लब्धमिदं जलम्। इत्यौत्सुक्यरसायत्ता ननन्दुर्धरणीजनाः॥४॥
तदा निदेशाद्देवस्य पद्मयोनेः समीरणः। शृण्वतां सर्वदेवानामिदं वचनमब्रवीत्॥५॥

वायुरुवाच

सुवर्णमिव लोकानां भागधेयादियं नदी। नीता भुवमगस्त्येन मुखरीकृतदिङ्मुखा॥६॥
तस्माद्यास्यति विख्यातिं सर्वलोकाभिनन्दिताम्।
सुवर्णमुखरीनाम्ना धाम्ना कैवल्यसम्पदा॥७॥
एषा सुवर्णमुखरी सरित्सु सकलास्वपि। विशिष्टा सेवनीया च ब्रह्मणोवचनंत्विदम्॥८॥

भरद्वाज कहते हैं—''तब दिव्य विमानस्थ देवता तथा समस्त मुनिगण भी महर्षि अगस्त्य के पीछे चल रही इस नव अवतीर्ण महानदी का अनुगमन करते-करते इस महानदी की सेवा करने लगे। हजारों-हजार सिद्धचारण तथा गन्धर्व आविर्भूत होकर सुशोभन स्तुति वाक्यों से इन महानदी तथा महर्षि अगस्त्य की प्रशंसा कर रहे थे। धरणी स्थित मनुष्य भी भाग्यतः सुधा के समान निर्मल जल पाकर उत्सुकता से आह्लादित हो उठे। तदनन्तर वायुदेव पद्मयोनि ब्रह्मा के आदेश से देवगण से यह वाक्य कहने लगे। वायुदेव के वाक्य को सभी सुनने लगे थे। वायुदेव कह रहे थे कि ''यह महानदी स्वर्ण की तरह समस्त लोकों के भाग्य से प्राप्त वस्तु है। महर्षि अगस्त्य इसे सभी दिशाओं को मुखरित करके भूतल पर लाये हैं। अतएव सर्वलोकवन्दित यह नदी सुवर्णमुखरी नाम से प्रसिद्ध होगी। यह मुक्तिरूपी सम्पदा के निलय रूपेण ज्ञात होती रहेगी। ब्रह्मा ने कहा है कि यह सुवर्णमुखरी सभी सरिताओं से श्रेष्ठा, विशिष्टतायुक्त तथा सेवनीया है।।१-८।।

भरद्वाज उवाच

श्रुत्वेत्थं पवनेनोक्तं वचनंकुम्भसम्भवः। तुतोषविस्मयाक्रान्तःस्वान्तःपुलकिताङ्गकः॥९॥
एवमेषा दिव्यनदी स्नानपानादिकल्पनैः। सौख्यावहा मनुष्याणां प्रतिष्ठामगमद्भुवि॥१०॥
आज्ञया पद्मगर्भस्य तटिन्याकाशवाहिनी। सुवर्णमुखरीनाम्रा पुनात्यात्मैकसंश्रयान्॥११॥
बहून्गिरीन्द्रान्वनमण्डलञ्च देशाननेकान्सरिदुत्तमेयम्।
क्रमादतिक्रम्य निषेव्यमाणा महानदीभिर्गिरिसम्भवाभिः॥१२॥

रोगाहतानामधिकातुराणामनामयैकप्रतिपादकानि ।
अन्तर्बहिःसम्भृतभूरितापनिवारणानि प्रियकारणानि॥१३॥
विहारलोलद्विरदप्रकाण्डशुण्डामहाघातरयोत्थितेन ।
पुष्पोपहारं पृषतोत्करेण हर्षाद्ददातीव दिवाकरस्य॥१४॥

भरद्वाज कहते हैं—पवन देव का यह वाक्य सुनकर विस्मयाक्रान्त अगस्त्यदेव का शरीर पुलकित हो उठा। वे अत्यन्त हर्षित हो गये। हे नृप! यह दिव्य नदी सुवर्णमुखरी इस प्रकार ब्रह्मा के आदेश से आकाश से प्रवहमान होकर भूतल पर प्रतिष्ठित हो गयी। मानवगण इसके जल से स्नान करके तथा जलपान द्वारा सुखलाभ करेंगे तथा इसके आश्रय से पवित्र होंगे। गिरिसम्भवा महानदी द्वारा सेव्यमाना सरिदुत्तमा यह महानदी सुवर्णमुखरी अनेक पर्वत, वनश्रेणी तथा अनेक देशों को पार करती प्रादुर्भूत हुई है। इसमें विहार करने वाले हाथी प्रकाण्ड शुण्ड के महाघात द्वारा कमल कुसुम चयन करके महावेग से ऊर्ध्व में उठाते हैं। यह देखकर प्रतीत होता है मानो वे सूर्य को ओसविन्दुयुक्त पुष्पोपहार प्रदान कर रहे हैं।।९-१४।।

सौगन्धिकाम्भोरुहकैरवाणां सौरभ्यसम्वासितदिङ्मुखानाम्।
द्विरेफभाग्यैकनिकेतनानामाधारभूतान्प्रातिनिर्मलानि॥१५॥
लीलावगाहोत्सुकनाकनारीसीमन्तसिन्दूररजोऽरुणानि ।
तत्केशपाशच्युतपारिजातप्रसूनगन्धैरधिवासितानि ॥१६॥

नदी तीरस्थ सुवासित पद्म तथा पुष्पों की सुगन्ध से दिक्मण्डल सुरभित हो रहा है तथा प्रत्येक पद्म एवं कुमुद निरन्तर भ्रमरयुक्त हैं। अतः प्रतीत होता है ये पद्म तथा पुष्प ही उनके एकमात्र निवास हैं। मानों वे उसका परित्याग करके कदापि अन्यत्र नहीं जाते। सुवर्णमुखरी ने ऐसा मंगलमय निर्मल जल धारण किया है कि न जाने कितने रोगार्त्त तथा अत्यन्त आतुर व्यक्ति भी इस जल में अवगाहन करके निरामय तथा अन्तः-बाह्यतः शीतल हो जाते हैं। अमर नारियां भी लीलावशात् उत्सुक होकर सुवर्णमुखरी के जल में उतरती हैं, तो उनकी मांग में लगे सिन्दूर के कणों द्वारा नदी का जल अरुण वर्ण हो जाता है। उनके केशपाश से पारिजात के पुष्प गिरते हैं, जिससे इस नदी का जल भी सुगन्धित हो जाता है।।१५-१६।।

सा बिभ्रती सम्भृतमङ्गलानि स्वादून्यपङ्कान्यतिनिर्मलानि।
सुधोपमानानि सुरेन्द्रसूनोः पयांसि पापप्रतिघातुकानि॥१७॥
अगस्त्यशैलात्समवाप्तजन्मा नीता भुवं कुम्भसमुद्वेन।
प्रशस्ततीर्थौघविराजमाना समाययौ दक्षिणवारिराशिम्॥१८॥

शीकराक्षतविन्यासै रत्नदीपार्पणैरपि। प्रत्युद्ययुस्तामम्भोधेर्वीचयोऽभिमुखागताः॥१९॥
तरङ्गहस्तैरालिङ्ग्य सम्भाव्यैनां समागताम्। चकार सरितां नाथःप्रियमाघोषभाषणैः॥२०॥
प्राप्तायामनुकूलायां तदा तस्यामपांनिधेः। प्रहृष्टेन तरङ्गेण जीवनं ववृधेतराम्॥२१॥
इत्थं संसृज्यसरितमगस्त्यस्तामुदन्वता। स्तुत्वाययौसमामन्त्र्यकृतकृत्योयदृच्छया॥२२॥

हे सुरेन्द्रनन्दन अर्जुन! इस नदी का जल स्वादिष्ट, कीचड़रहित, अतीव निर्मल, सुधा के समान तथा पाप रूपी कलुष के ढेर को भी नष्ट कर देता है। यह नदी अगस्त्य पर्वत से निकली है। कुम्भज महर्षि अगस्त्य इसे पृथिवी पर लाये हैं। यहां के सभी प्रशस्त तीर्थ इसी नदी के तट पर विराजित हैं तथा यह नदी दक्षिण समुद्र की ओर प्रवाहित होती है। सागर की अक्षत लहरों से जो शीकर (फुहार) उठती है उसमें से प्रत्येक फुहार मानो उस नदी के लिये अर्पित एक-एक रत्न प्रदीपवत् विन्यस्त प्रतीत होती है। सरित्पति लहरमाला का विस्तार करते हुये महानदी सुवर्णमुखरी के सम्मुखीन होकर उसका आलिंगन अपनी तरंगरूप बाहु से करके समागत सुवर्णमुखरी का प्रिय शब्दों से संभाषण कर रहे हैं। मानो अब जलनिधि अपने अनुकूल सुवर्णमुखरी को प्राप्त करके प्रसन्न अन्तःकरण के द्वारा अपने अंगों को अत्यन्त परिवृद्ध कर रहे हैं। तदनन्तर कृतकृत्य महर्षि अगस्त्य ने इस प्रकार महानदी का सृजन किया तथा मुदित मन से उनका स्तव किया। तदनन्तर उस नदी का आमन्त्रण करके अपनी इच्छानुसार अपने आश्रम चले गये।।१७-२२।।

अर्जुन उवाच

त्वयैष कथितो ब्रह्मन्महानद्याः समुद्भवः। अस्याः प्रभावं भागवन्निदानीं श्रोतुमुत्सहे।।२३।।

अर्जुन कहते हैं—हे ब्रह्मन्! आपने इन महानदी के उद्भव का वृत्तान्त तो कह दिया। हे प्रभो! अब इसका माहात्म्य सुनने की इच्छा हो रही है।।२३।।

भरद्वाज उवाच

अहोनिबर्हणंसर्वश्रेयसामेककारणम्। शृणुमाहात्म्यमस्यास्तेकथयिष्यामिपाण्डव !।।२४।।

पाश्चात्त्यं जन्म सम्प्राप्य ज्ञानिनां कर्मणः क्षये।
सुवर्णमुखरीस्नानं सिद्ध्येद्ब्रह्मत्वकारणम्।।२५।।

एतां सुवर्णमुखरीं योजनानां शतैरपि। स्मृत्वा मनुष्यः पापेभ्यो मुच्यतेनात्रसंशयः।।२६।।

निःक्षिप्तमस्थि जन्तूनां सुवर्णमुखरीजले। सोपानतां समायातिब्रह्मलोकाधिरोहणे।।२७।।

स्मरन्तः स्वर्णमुखरींयत्र कुत्राऽपिमानवाः। तोयान्तरेषुस्नात्वापिलभन्तेफलमुत्तमम्।।२८।।

भरद्वाज कहते हैं—हे पाण्डव! समस्त मंगल की एकमात्र कारणरूप पापविनाशन इन महानदी का माहात्म्य कहता हूं। सुनो! सुवर्णमुखरी के जल में उतरने मात्र से ज्ञानीगण के प्राक्तन कर्मों का क्षय हो जाता है। यहां जल में अवगाहन मात्र से ब्रह्मलोक लाभ का एक कारण बन जाता है। इस नदी के नाम का स्मरण सैकड़ों योजन दूर से करने वाला व्यक्ति निःसंदिग्ध रूपेण सर्वकलुष रहित हो जाता है। इस नदी जल में मृत मानव की अस्थि छोड़ने पर वह कार्य उस मृत के लिये ब्रह्मलोक प्राप्ति की सिढ़ी बन जाता है। मनुष्य चाहें जहां हो, वह सुवर्णमुखरी का स्मरण करके जिस भी जल से स्नान कर लेता है, उसे अवश्य उत्तम फल की प्राप्ति होती है।।२४-२८।।

तावदेवाऽभिभूयन्ते नराः पातककोटिभिः। सुवर्णमुखरीस्नानंयावन्नोलभ्यते शुभम्।।२९।।

दिव्यान्तरिक्षभौमानितीर्थानि निजसिद्धये। स्मरन्त्यहरहः प्रातः सुवर्णमुखरींनदीम्।।३०।।

अगस्त्याचलसम्भूता दक्षिणोदधिगामिनी। पापानिस्वर्णमुखरीस्मरणादेवनाशयेत्।।३१।।

सुवर्णमुखरीस्नानलोलुपेनाऽन्तरात्मना। वाञ्छन्ति मर्त्यतामेव देवाः शक्रपुरोगमाः॥३२॥
सुवर्णमुखरीतोयपुष्टसस्यान्नभोजिनः। न लिप्यन्ते महापापैर्दुर्भोजनशतोद्भवैः॥३३॥

जब तक भाग्यतः मनुष्य को सुवर्णमुखरी जल में स्नान का अवसर नहीं मिलता तभी तक उसे पापों की पीड़ा सताती है, तथापि जहां वहां पर जाकर सुशोभन स्नान का भाग्य मिल जाता है, तभी से उसके शरीर में पापों की कलुषराशि एकत्र नहीं हो पाती। जो नित्य प्रातःकाल सुवर्णमुखरी का स्मरण करते हैं, उनको स्वर्ग-मर्त्य-अन्तरिक्ष तथा भूतलस्थ सभी तीर्थ सिद्ध हो जाते हैं। यह नदी अगस्त्य पर्वत से निकल कर दक्षिण समुद्र में मिल जाती है। यह सुवर्णमुखरी नदी स्मरण मात्र से मानव के पापों को दूर कर देती है। मनुष्य की तो बात ही क्या है? सुवर्णमुखरी के जल में स्नान की लालसा रखने वाले इन्द्रादि प्रमुख देवता मर्त्यशरीर धारण करने की कामना करते हैं। सुवर्णमुखरी के जल से पुष्ट तटभूमि पर उत्पन्न शस्यादि का भोजन करने वाले सैकड़ों दुर्भोजनं का भक्षण करके भी महापापलिप्त नहीं होते।।२९-३३।।

अपि निष्कमितं पीतं सुवर्णमुखरीजलम्। नाशयेदद्रितुल्यानि ह्याशुपापानिदेहिनाम्॥३४॥
प्राप्याऽपि मानुषं जन्म सुवर्णमुखरीजले। ये वा स्नानं न कुर्वन्तितेषांजन्मनिरर्थकम्॥३५॥
सुवर्णमुखरीस्नानं यदेकं विधिना कृतम्। जाह्नवीस्नानकोटीनां समं भवति पर्वसु॥३६॥
गोविन्द इव देवेषु नक्षत्रेष्विव चन्द्रमाः। नरेष्विव महीपालो भूरुहेष्विव कल्पकः॥३७॥
महाभूतेष्विव वियन्मायेवाऽखिलशक्तिषु। गायत्रीव च मन्त्रेषु वज्रं देवायुधेष्विव॥३८॥
तत्त्वेष्विवाऽऽत्मनस्तत्त्वं रुद्राध्यायो यजुष्विव।
अनन्त इव नागेषु हिमाचल इवाऽद्रिषु॥३९॥
पोत्रिक्षेत्रमिव क्षेत्रेष्विन्द्रियेष्विव मानसम्। नदीष्वपि चसर्वासुसुवर्णमुखरीवरः॥४०॥

जो देहधारी लोग इस नदी का जलपान करते हैं, उनका पर्वत प्रमाण पाप भी अत्यल्प काल में विलीन हो जाता है। जो मानव जन्म पाकर भी सुवर्णमुखरी के जल में अवगाहन नहीं करते, उनका मानवदेह धारण करना व्यर्थ है। जो व्यक्ति पर्व के अवसर पर एक बार भी सुवर्णमुखरी के जल में यथाविधि-स्नान करते हैं, उनको करोड़ों बार जाह्नवीजल में स्नान करने के समान पुण्य प्राप्त होता है। जैसे देवगण में गोविन्द, नक्षत्रों में चन्द्रमा, मनुष्य में नृप, वृक्षों में कल्पवृक्ष, पंचमहाभूत में आकाश, शक्तियों में मायाशक्ति प्रसिद्ध है, उसी प्रकार मन्त्रों में गायत्री, देवायुधों में वज्र तथा तत्वों में आत्मतत्व श्रेष्ठ है। जैसे यजुर्वेद में रुद्राध्याय तथा मन्त्राध्याय, नागों में अनन्त, पर्वतों में हिमालय, क्षेत्रों में पौत्रि क्षेत्र, इन्द्रियों में मन प्रधान है, उसी प्रकार से नदियों में सुवर्णमुखरी श्रेष्ठ है।।३४-४०।।

नित्यं स्मरेन्नमस्कुर्यात्कीर्तयेन्मनसाऽर्चयेत्। शुद्धिक्षेमशिवापेक्षी सुवर्णमुखरीं शुभाम्॥४१॥

शुद्धि-क्षेम तथा कुशल चाहने वाला मानव नित्य शोभन सुवर्णभुखरी को मन ही मन नमस्कार, उनका गुण कीर्त्तन (अथवा नाम कीर्त्तन) तथा पूजन करे।।४१।।

अगस्त्याचलसम्भूतां दक्षिणोदधिगामिनीम्। समस्तपापहन्त्रींत्वांसुवर्णमुखरीं श्रये॥४२॥
महापातकविप्लुष्टंगात्रं ममतपोदकैः। क्षालयामि जगद्धात्रि ! श्रेयसा योजयस्वमाम्॥४३॥

इति सूक्तद्वयं सम्यगुच्चार्य नियतो नरः। सुवर्णमुखरीतोये स्नात्वा शुद्धः प्रमोदते॥४४॥
ब्रह्मणा निर्मिता पूर्वमगस्त्येन समाहृता। स्वयं मन्दाकिनी मूर्ता सुवर्णमुखरी वरा॥४५॥
एवंप्रभावादिव्येयंकीर्तनीयाशुभार्थिभिः ।
मनसाभक्तियुक्तेनस्नातव्याशुभकाङ्क्षिभिः ॥४६॥
सोमसूर्योपरागेषु स्नानदानादिकं कृतम्। स्यादमेयफलम्पार्थ ! सुवर्णमुखरीतटे॥४७॥
सङ्क्रान्तावयने पुण्येव्यतीपातेऽथ वासरे। सुवर्णमुखरीस्नानं कुलकोटिं समुद्धरेत्॥४८॥

जो संयत मानव अगस्त्याचल इत्यादि सूक्तद्वय सम्यक् उच्चारण के साथ सुवर्णमुखरी के जल में अवगाहन करता है, वह शुद्धि पाकर मुदित हो जाता हैं। ब्रह्मा द्वारा निर्मित यह श्रेष्ठनदी सुवर्णमुखरी पूर्वकाल में महर्षि अगस्त्य द्वारा पृथिवी पर लाई गयी थी। ये साक्षात् मूर्त्तिमती मंदाकिनी हैं। इनका प्रभाव ऊपर कहा गया है। कुशल चाहने वाला मनुष्य इन दिव्य नदी का गुण-नाम कीर्त्तन करे। शुभ चाहने वाला व्यक्ति भक्तिपूर्ण हृदय से इस नदी में स्नान करे। हे पार्थ! चन्द्र-सूर्यग्रहण के उपलक्ष्य में सुवर्णमुखरी में स्नान-तर्पण तथा श्राद्ध का जो फल है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती। संक्रान्ति, उत्तरायण अथवा व्यतीपात आदि काल में सुवर्णमुखरी तीर का अतुल फल होता है। इससे करोड़ों कुलों का उद्धार भी हो जाता है।।४२-४८।।

जन्मर्क्षे जन्मदिवसे सुवर्णमुखरीजले। स्नात्वा विधिवदाप्नोति क्षेमारोग्यसुखश्रियः॥४९॥
दुःस्वप्नविघ्नजं भूतग्रहदुःस्थानजंतथा। सुवर्णमुखरीतोये स्नात्वा तरति किल्बिषम्॥५०॥
सुवर्णमुखरीतीरे गोपादप्रमितां भुवम्। दत्त्वासर्वमहीदानाद्यत्फलन्तदवाप्नुयात्॥५१॥
धेनुं सवस्त्रालङ्कारां सुवर्णमुखरीतटे। दत्त्वा विप्राय विधिवद्याति ब्रह्म सनातनम्॥५२॥
पुण्यकालेषु दानानि विधेयान्यखिलान्यपि। इहाऽमुत्रफलप्राप्त्यै सुवर्णमुखरीतटे॥५३॥
जपो होमस्तपो दानं पितृकर्म सुरार्चनम्। कृतम्भवेच्छतगुणं सुवर्णमुखरीतटे॥५४॥
अन्यत्ते कथयिष्यामि विधेयंव्रतमुत्तमम्। सुवर्णमुखरीतीरे प्रतिवर्षं सुखार्थिभिः॥५५॥

जो अपने जन्मनक्षत्र तथा जन्मदिन के समय यथाविधि इस नदी में स्नान करता है—वह क्षेम, आरोग्य, सुख तथा लक्ष्मीलाभ कर लेता है। सुवर्णमुखरी जल में स्नान करने वाला मनुष्य दुःस्वप्न, विघ्न, प्राणी, ग्रह तथा दुःस्थानज भयंकर पाप से मुक्त हो जाता है। मनुष्य यदि इस नदी के किनारे गौ के खुर इतनी भी जमीन दान करता है, उसे समस्त भूमण्डल दान इतना फल प्राप्त होता है। सुवर्णमुखरी-तट पर ब्राह्मण को यथाविधि वस्त्र तथा अलंकार से सज्जित धेनु दान करने से सनातन ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। पुण्यकाल में सुवर्णमुखरी तट पर दान करना चाहिये। इस दान द्वारा इहकाल तथा परकाल में फल प्रदान करता है। इस नदी के तट पर जप-होम-तप-दान-पितृक्रिया तथा देवार्चनादि जो कुछ सत्कार्य किया जाता है, उसका फल अन्य स्थान से सात गुणा अधिक मिलता है। हे अर्जुन! सुख चाहने वाले व्यक्ति के लिये जो अन्य कार्य प्रतिवर्ष करणीय है, वह तुमसे कहता हूं।।४९-५५।।

मेघकाले रविकरैस्तिरोधानमुपागतः। यदोदेति मुनिः श्रीमान्मित्रावरुणनन्दनः॥५६॥
तस्मिन्दिने येनियताःस्नानमस्याम्प्रकुर्वते। तैः कल्पञ्च सुरावासेस्थीयतेकुरुनन्दन॥५७॥

तदाऽगस्त्यस्य यद्रूपं सुवर्णेन विनिर्मितम्।
विधिना ददते पार्थ! ते यान्ति ब्रह्म शाश्वतम्॥५८॥

वर्षाकाल में मित्रावरुणनन्दन अगस्त्य तारक का उदय होता है, तथापि सूर्य की किरणों के आच्छादन के कारण वह दृष्टिगोचर नहीं होता। हे कुरुनन्दन! यह अगस्त्योदय होने पर जो संयत होकर सुवर्णमुखरी के जल में स्नान करते हैं, वे कल्पपर्यन्त स्वर्ग में निवास करते हैं। हे पार्थ! उस समय जो स्वर्ण से अगस्त्यमूर्त्ति का निर्माण करके यथाविधि ब्राह्मण को दान करते हैं, उनको सनातन ब्रह्मलोक प्राप्त होता है।।५६-५८।।

अर्जुन उवाच

विधिना केन कर्तव्यंव्रतमेतन्महामुने !। तन्ममाऽऽचक्ष्वसकलं जिज्ञासोस्तु महात्मनः॥५९॥

अर्जुन कहते हैं—हे महामुनि! किस विधि से महात्मा अगस्त्य के इस व्रत का अनुष्ठान करना चाहिये? मैं जिज्ञासु हूं। अतएव मुझसे यह सब कहिये।।५९।।

भरद्वाज उवाच

अगस्त्यस्योदयदिनं ज्ञात्वा नियतमानसः। स्वशक्त्याकारयेद्रूपन्तस्य हेम्ना महामुनेः॥६०॥
सुवर्णभास्वरच्छायं जटाबन्धमनोहरम्। दधानं करपद्माभ्यामक्षमालां कमण्डलुम्॥६१॥
वसानं मृदुलं वल्कं मृगचर्मोत्तरीयकम्। सौम्यं भस्माङ्करुचिरं रुद्राक्षकृतभूषणम्॥६२॥

भरद्वाज कहते हैं—मानव अगस्त्योदय का दिन ज्ञात करके सुवर्ण से यथाशक्ति अगस्त्य प्रतिमा बनवा कर लायें। इस मूर्त्ति की कान्ति स्वर्ण के समान भास्वर हो। मस्तक पर जटायें बंधी हों। दोनों हाथों में माला एवं कमण्डलु हो। उनका परिधान कोमल वल्कल का हो। गले में मृगचर्म का उत्तरीय हो, शरीर पर भस्म लिप्त हो। भूषण रुद्राक्ष का हो। इस प्रकार की सौम्य अगस्त्य मूर्त्ति बनवाये।।६०-६२।।

एवं विधाय तद्रूपं स्नात्वा नियतमानसः। आचार्यं गन्धपुष्पाद्यैरलङ्कृत्ययथाविधि॥६३॥
शालेयतण्डुलानां तामाढकस्योपरि स्थिताम्। वस्त्रद्वयसमायुक्तां प्रतिमां प्रतिपूजयेत्॥६४॥
विन्ध्यसंस्तम्भनो वार्धिचुलकीकृतिपेशलः। ब्रह्मादिसर्वदेवानांतेजसा सुप्रकाशितः॥६५॥
अगस्त्यः कुम्भसम्भूतो देवासुरनमस्कृतः। प्रीतिमाप्नोतुमहतीं दानेनाऽनेन मे प्रभुः॥६६॥
इमं मन्त्रं समुच्चार्य धारापूर्वं सदक्षिणम्। दत्त्वाविमुक्तःपापेभ्योयातिब्रह्मसनातनम्॥६७॥
जन्मान्तरकृतैर्नूनमिह जन्मकृतैरपि। महापापोपपापौधैर्मुच्यते नाऽत्र संशयः॥६८॥

समाहित मन से मनुष्य यहां स्नान करके गंध पुष्पादि से आचार्य को अलंकृत करे तथा उस मूर्त्ति को आढक वजन का शालितण्डुल विछाकर उस पर स्थापित करे। उस प्रतिमा पर दो वस्त्र प्रदान करके उनका पूजन करना चाहिये। तदनन्तर श्लोक ६४-६६ (जो मूल में लिखा है) पढ़ते हुये जलधारा प्रदान करके दक्षिणायुक्त यह मूर्त्ति ब्राह्मण को दान देना चाहिये। हे राजन्! इस प्रकार से अगस्त्यमूर्त्ति दान द्वारा समस्त पापों का नाश हो जाता है। वह व्यक्ति सनातन ब्रह्मलोक की प्राप्ति करता है। उसके इहलोक तथा परलोक में किये सभी महापापों का नाश हो जाता है। उसके उपपातक भी समाप्त हो जाते हैं। इसमें संशय न करें।।६३-६८।।

ब्रह्माद्याः सकला देवाः सनकाद्या महर्षयः। चराचराणिभूतानिप्रीतिं यान्तिनसंशयः॥६९॥
कृत्वा व्रतमिदम्पुण्यमगस्त्यस्य च सन्मुनेः।
प्रीत्यर्थम्भोजयेद्विप्रान्यथाशक्ति सदक्षिणम्॥७०॥
तस्मिन्कर्मणिचाऽशक्तो यथाशक्ति महीसुरान्।
स्वर्णधान्यादिदानेन तोषयेद्भक्तिसंयुतः॥७१॥
तिथिं न वितथीकुर्यात्तांयत्नेनसमाचरेत्। यत्किञ्चिदपिचाऽवश्यंकर्मकुर्याच्चपूरुषः॥७२॥
महामुनेरगस्त्यस्य परिपक्कं तपःफलम्। नदी सुवर्णमुखरी कीर्तनीया सुरासुरैः॥७३॥
एवं ते कथितः सम्यङ्महानद्याः समुद्भवः। प्रभावश्चतदाचक्ष्वयद्भूयःश्रोतुमिच्छसि॥७४॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीप्रभावप्रशंसानाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३॥

जो मानव इस विधि से अगस्त्य मूर्त्ति का दान करता है, उसके प्रति ब्रह्मा आदि देवता, सनकादि महर्षि, चारणादि समस्त प्राणी प्रसन्न हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं है। इस पवित्र व्रत को सम्पन्न करके पुण्यात्मा व्यक्ति अगस्त्यदेव की प्रसन्नता के लिये यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराये। इस व्रत के अन्त में जो व्यक्ति असमर्थता के कारण ब्राह्मण भोजन न करा सके वह भक्तिपूर्वक यथाशक्ति स्वर्ण अथवा धान्य दान करके ब्राह्मणों को प्रसन्न करें। मनुष्य अगस्त्योदय काल को कदापि व्यर्थ न जाने दे। यदि व्रत के सभी अंगों का अशक्तता के कारण पालन न हो सके, ऐसी स्थिति में यत्नतः उसके कुछ अंगों का पालन अवश्यमेव करना चाहिये। सुर-असुरगण सुवर्णमुखरी अवतरण को महामुनि अगस्त्य की तपस्या का परिपाक बतलाते हैं। हे अर्जुन! मैंने तुमसे महानदी के उद्भव का वृत्तान्त सम्यक्तः कह दिया। अब तुम और क्या सुनने की अभिलाषा रखते हो?॥६९-७४॥

॥त्रयस्त्रिंश अध्याय समाप्त।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

अगस्त्येश्वर महिमा

अर्जुन उवाच

श्रोत्राञ्जलिभ्यांपीत्वापिभवद्वाक्यामृतंमुहुः। मनोनोपैति मेतृप्तिंभूयःश्रवणकाङ्क्षया॥१॥
क्रियासमभिहारो मेत्वद्वाक्याकर्णनैषिणः। मनः खेदाय मा भूत्ते करुणाभरितात्मनः॥२॥

इदानीं श्रोतुमिच्छामि नद्यामस्यांमहामुने। कुत्रकुत्र समर्थानि तीर्थान्यघनिबर्हणे॥३॥
काःकाः पुण्यतरङ्गिण्यः सङ्गता अनयामुने। कुत्र स्नानेनकृत्ताघानोपयान्तियमाद्भयम्॥४॥
हराच्युतादिदेवानांपुण्यान्यायतनानिच। यानियानिचपुण्यानितिष्ठन्त्यस्यास्तटद्वये॥५॥
तेषु क्षेत्रेषु मनुजैर्यत्फलं समवाप्यते। विहितैर्विधिवत्स्नानदानादिशुभकर्मभिः॥६॥
सोपाख्यानमिदं सर्वं वेदितं वेदवित्तम !। सञ्जाजामहतीप्रीतिर्विस्तार्याचक्ष्वमेक्रमात्॥७॥

अर्जुन कहते हैं—हे मुनिवर! अपने दोनों कानों द्वारा पुनः पुनः आपके वाक्यामृत का पान करके भी मन को तृप्ति नहीं मिल रही है। पुनः मेरे मन में वही सब सुनने की इच्छा हो जा रही है। हे महात्मन् ! पुनः-पुनः मेरा मन आपके वाक्यों का श्रवण करना चाह रहा है। आप करुणा मूर्त्ति हैं। जो करने से मेरा हृदय खेदग्रस्त न हो, वही करिये। सम्प्रति मुझे जो सुनने की इच्छा हो रही है, वही कहता हूं। हे महामुनि! इस महानदी को किस स्थल पर कौन सा पापनाशक तीर्थ है। कौन-सी पुण्यनदी किस-किस स्थान पर इससे मिलित है? इस महानदी के किस-किस स्थान पर जलपान द्वारा पापनाश होता है तथा यम भय प्राप्त नहीं होता वह कहें। इस नदी के तट पर हरि-हर आदि के जो मन्दिर (स्थान) हैं, उन सब क्षेत्रों में मानव को स्नान दानादि से क्या फल प्राप्त होता है? वहां विविध शुभकर्म सम्पन्न करने का क्या फल है? हे वेदवित्तम! यह सब आपको जिस प्रकार से ज्ञात है, उसे उपाख्यानों के साथ विस्ताररूप से मुझसे कहने की कृपा करिये। क्रमशः मेरी प्रीति इस सम्बन्ध में बढ़ती ही जा रही है।।१-७।।

भरद्वाज उवाच

यत्पृष्टंभवतापार्थक्रमाद्विस्तार्यकथ्यते। आरभ्यागस्त्यतीर्थेन्द्रादस्यास्तीर्थौघवैभवम्॥८॥
अखण्डज्ञानरूपेण सर्वलोकहितैषिणा। सुरासुराणां सम्भाव्येनागस्त्येन महात्मना॥९॥
वसुधामवतीर्णायांप्रथमंतद्धराधरात्। स्नात्वायत्र महानद्यां सम्प्राप्नोतिकृतार्थताम्॥१०॥
अगस्त्यतीर्थमित्युक्तं पावनं तज्जगत्त्रये।
तत्र स्नानेन शुद्धिः स्यान्महापातकिनामपि॥११॥
अनेकजन्माचरितमहापातकसंहतिम्। निरस्य दिवि मोदन्ते तत्र स्नानरता जनाः॥१२॥
ये तत्र तीर्थे यतिनः कृतस्नाना एतेन्द्रियाः। गोभूतिलहरिण्यादि महादानानिकुर्वते॥१३॥
ते प्राप्नुवन्ति सम्पूर्णं गङ्गाद्वारेसमाहितैः। विहितानां शतगुणं दानानां फलमर्जुन॥१४॥

महर्षि भारद्वाज कहते हैं—"हे पार्थ! तुमने जिस प्रकार से पूछा है, मैं विस्तृत रूप से क्रमानुरूप कहता हूं। हे अर्जुन! तीर्थराज अगस्त्यतीर्थ से प्रारंभ करके इस महानदी के तीर्थों की महिमा के कारण अखण्ड ज्ञाननिधि सर्वलोकहितैषी महात्मा अगस्त्य ने इस सुवर्णमुखरी का अवतरण किया है। यह नदी ही प्रथमतः पर्वत से निर्गत होकर पृथिवी पर उतरी है। इसमें स्नान करके मानव कृतकृत्य हो जाता है। इस तीर्थ का नाम है अगस्त्य तीर्थ। यह तीनों लोक के लिये अत्यन्त पावन है। महापापी भी इस तीर्थस्नान से शुद्ध हो जाते हैं। इसमें स्नानरत मानवगण अनेक जन्मार्जित राशि-राशि महापातक से युक्त होकर स्वर्गगमन करके मुदित मन हो जाते हैं। हे अर्जुन! जो जितात्मा तथा जितेन्द्रिय यतिगण यहां स्नान करके गौ, भूमि, तिल तथा स्वर्णादि

महादानानुष्ठान करते हैं, वे गंगाद्वार में समाहित मन वाले दाताओं द्वारा दिये गये विहित दान से भी १०० गुणित फल लाभ करते हैं।।८-१४।।

अत्राऽस्ति भगवानीशः ख्यातोऽगस्त्येशसञ्ज्ञया।
स्थापितोऽगस्त्यमुनिना लोकानन्दविधायिना॥१५॥
स्नात्वा तस्यां महानद्यां तल्लिङ्गं पूजयन्ति ये।
दशानामश्वमेधनां फलं सम्प्राप्नुवन्ति ते॥१६॥

धनूराशिं परित्यज्य यदा मकरमंशुमान्। विशेत्तदयनं पुण्यमुत्तरं परिकीर्तितम्॥१७॥

तस्मिन्दिने ये नियता नद्यां स्नात्वा समाहिताः।
पश्यन्ति पार्वतीनाथमगस्त्येशं सुरार्चितम्॥१८॥

अग्निष्टोमसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च। फलं सम्प्राप्य मोदन्ते दिविदेवगणार्चिताः॥१९॥
मृगसङ्क्रमवेलायां पुरुषैर्मङ्गलार्थिभिः। अवश्यमेवकर्तव्यमगस्त्येशस्य दर्शनम्॥२०॥
ऐशान्यां तस्य तीर्थस्यदेशेक्रोशमितेऽर्जुन। अस्थितीर्थत्रयंख्यातंदेवर्षिपितृनामभिः॥२१॥
देवर्षिपितरस्तत्र मुनिना तेन पूजिताः। प्रददुर्हृष्टमनसः सर्वान्समभिवाञ्छितान्॥२२॥
तदादेवर्षिपितृभिरिदंतीर्थत्रयंक्रमात्। अस्मन्नामभिरीड्यंस्यादित्युक्तंतस्यसन्निधौ॥२३॥
तस्मिंस्तीर्थत्रयेयेतुस्नात्वाविहिततर्पणाः। ऋणत्रयविनिर्मुक्तास्तेयान्तिदिवमक्षयाम्॥२४॥

यहां प्रसिद्ध अगस्त्येश्वर नामक शिव विराजमान हैं। लोकसमूह के आनन्द का विधान करने वाले महर्षि अगस्त्य ने ही इनको प्रतिष्ठित किया है। इस महातीर्थ में स्नान करके जो इस लिंग की पूजा करते हैं, उनको दस अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। जब सूर्य धनुराशि को छोड़कर मकरस्थ होते हैं तब इसे उत्तरायण कहा जाता है। जो मनुष्य समाहित चित्त से उत्तरायण काल में इस महानदी में स्नान करके सुरपूजित पार्वती पति अगस्त्येश्वर लिंग का दर्शन करते हैं, वे १००० अग्निष्टोम तथा १०० बाजपेय यज्ञफल लाभ करके सुरगण पूजित स्थिति में स्वर्ग में निवास करते हैं। जब दिवाकर मृगशिरा में प्रवेश करते हैं, उस समय कुशलकामी मानव इन अगस्त्येश्वर का अवश्य दर्शन करे। हे अर्जुन! इस तीर्थ के ईशानकोण में एक क्रोश स्थान पर्यन्त देव-ऋषि-पितृ नामक विख्यात तीन तीर्थों की स्थिति है। यहां पर महर्षि अगस्त्य द्वारा पूजित होकर प्रसन्न मन से देवता, ऋषि तथा पितृगण मनुष्य पूजक को सभी अभीष्ट प्रदान करते हैं। उन देवता-ऋषि तथा पितरों ने महर्षि से यह कहा था कि यथाक्रमेण हमारा यह तीन तीर्थ इन तीन नामों से क्रमशः प्रसिद्ध हो। जो इन तीर्थत्रय में (क्रमशः प्रत्येक में) स्नान तथा पूजा सम्पन्न करते हैं, वे देवऋण-ऋषिऋण-पितृऋण रूप ऋणत्रय से मुक्ति पाकर अक्षय स्वर्ग में जाते हैं।।१५-२४।।

ततः प्रागुत्तरक्षोण्यां योजनद्वयसीमनि। प्राप्ता सुवर्णमुखरीं वेणानाम महानदी॥२५॥
समुदग्ररयाघातनिपातिततटद्रुमा। कुल्यानिर्गतवाः पूरसमाप्लावितकानना॥२६॥
उत्तुङ्गपुलिनोत्सङ्गखेलत्कोककुलाकुला। अम्बुजामोदलोलालिमालालीलारवान्विता॥२७॥

अतिक्रम्य समुत्तुङ्गाननेकान्धरणीधरान्। प्रभूतोयरुचिरा सुवर्णमुखरीं गता॥२८॥
नदीद्वयव्यतिकरे कृतस्नाना यथाविधि। दशानामश्वमेधानामखण्डं प्राप्नुयुः फलम्॥२९॥

इसके प्राग् उत्तर में दो योजन पर्यन्त दूरी पर वेणा नदी इस सुवर्णमुखरी में मिली हैं। यहां वेणा नदी अतितीव्र वेग से बहती हैं। प्रवाहवेग के कारण तटस्थ वृक्ष गिरते रहते हैं। इस जल प्रवाह से कानन की भूमि परिप्लावित हो जाती है तथा सभी तालाब भर जाते हैं। अत्युच्च पुलिन के शीर्ष पर विहार करने वाले मेढ़क इस जलाघात से आकुल रहते हैं। पद्म पर आमोद करने वाले भ्रमरसमूह इस तट भूमि को अपने मधुर शब्द से मुखरित करते रहते हैं। प्रचुर जलवाली मनोहरा वेणा नदी अत्युच्च पर्वतों को पार करती सुवर्णमुखरी में मिल जाती है। इन दोनों नदियों के संगमस्थल पर जो लोग स्नान करते हैं, उनको दस अश्वमेध यज्ञ करने का अखण्डफल प्राप्त होता है।।२५-२९।।

सङ्गता वेणया पुण्या सुवर्णमुखरी नदी। गिरिदुर्गममार्गेण ययावुत्तरवाहिनी॥३०॥
मध्यगेन महीध्राणां मार्गेण विषमेण सा। गतवा विरेजे तटिनीयोजनानांचतुष्टयम्॥३१॥
पूर्वतस्तस्य देशस्य विषये सार्धयोजने। उदक्कूले महानद्याः प्राग्वाहिन्या मनोहरे॥३२॥
अगस्त्येश्वर नामास्तेख्यातं लिङ्गंपुरद्विषः। स्मरणादेवमर्त्यानांसमस्ताघनिवारणम्॥३३॥
तत्र स्नात्वा महानद्यांयेनरानियतेन्द्रियाः। पश्यन्तिपार्वतीनाथमगस्त्येनप्रतिष्ठितम्॥३४॥
अनेकैः पूर्वजननैरर्जितं पापसञ्चयम्। ते निरस्य सुरावासे मोदन्ते कालमक्षयम्॥३५॥
ततः सोदङ्मुखी भूत्वा सुवर्णमुखरी ययौ।
योजनार्धमिदं देशं तीर्थसङ्घसमन्विता॥३६॥
तस्मिन्देशे तु हिन्तालतालसालमनोरमे। गता सुवर्णमुखरीं नदी व्याघ्रपदाह्वया॥३७॥

वेणानदी से संगम करके पुण्यनदी सुवर्णमुखरी दुर्गम गिरिपथ में उत्तर वाहिनी हो जाती हैं। यह पर्वतों के बीच से बहती विषमगति से प्रवहमान रहती हैं। तदनन्तर चार योजन तक इसका विस्तार हो जाता है। इस देश के पूर्व की ओर आधा योजन जाने पर उदक्कूल नामक मनोहर स्थान में यह महानदी पूर्ववाहिनी हो जाती है। यहां उदक्कूल के पूर्वभाग में ही शिव का अगस्त्येश्वर नामक प्रख्यात लिंग विद्यमान है। देवता तथा मानव इन अगस्त्येश्वर का स्मरण करके अपने सभी दुर्भाग्य को दूर कर लेते हैं। उनके पूर्वजन्मार्जित अनेक पापों का नाश हो जाता है तथा वे अक्षय काल तक स्वर्ग में निवास करके आमोदित होते हैं। तदनन्तर महानदी सुवर्णमुखरी आधा योजन तक पुनः उत्तरवाहिनी होकर बहती है। यहां अनेक तीर्थ सुवर्णमुखरी के साथ मिलते हैं। यह देश हिन्ताल, ताल तथा सालवृक्षों से मनोहर लगता है तथा इस देश में व्याघ्रपदा नदी सुवर्णमुखरी से संगम करती है।।३०-३७।।

दुर्वारभूरिदुरितविनिवारणपेशला। नीरन्ध्रतीरवानीरवनमण्डलमण्डिता॥३८॥
सिद्धगन्धर्वललनालीलागाहनशालिनी। तपस्विकन्यानिःक्षिप्तबलिपुष्पविराजिता॥३९॥
हंसकारण्डवक्रौञ्चकुलकोलाहलाकुला। प्राक्प्रवाहा समागत्य शैलान्तरगताऽध्वना॥४०॥

सङ्गमे सरितोस्तत्र कृतस्नानानरोत्तमाः। समग्रमश्वमेधानां दशानां प्राप्नुयुः फलम्॥४१॥
तत्र व्याघ्रपदाख्यायास्तटेलोकमलापहे। अनघं सर्वपापघ्नं शङ्खतीर्थं विराजते॥४२॥

यह व्याघ्रपदा नदी प्रचुर दुर्भाग्य-दुरित का निवारण करने में समर्थ है। इस नदी की तटभूमि वाणीरव से मण्डित रहती है। सिद्धों तथा गन्धर्वों की ललनायें यहां सतत् नदी में लीला क्रीडा करती हैं। यहां तपस्वियों की कन्याओं द्वारा छोड़े गये पुष्पों से नदी का जल सदा युक्त रहता है। यहां हंस, कारण्डव, क्रौञ्च पक्षीगण के समूह कोलाहल करते रहते हैं, जिससे समस्त जल आकुल होता रहता है। शैलपथ के बीच से बहती व्याघ्रपदा नदी इस देश से पूर्ववाहिनी होकर बहती है। जो व्यक्ति इन दोनों नदियों के संगम स्थल पर जल में स्नान करते हैं, उनको दस अश्वमेध यज्ञ का पूर्ण फललाभ होता है। समस्त लोक को निर्मलता प्रदातृ इस व्याघ्रपदा के तट पर सर्वपापहारी निष्पाप शंखतीर्थ स्थित हैं।।३८-४२।।

ब्रह्मर्षिनियतावासं सुरगन्धर्वसेवितम्। दर्शनस्नानपानाद्यैरमितानन्ददायकम्॥४३॥
तत्राऽऽस्ते भगवानीशः शङ्खेशो नाम फाल्गुन !।
शङ्खनाम्ना मुनीन्द्रेण लिङ्गरूपं प्रतिष्ठितम्॥४४॥
ये तत्रतीर्थेसुस्नाताःपश्यन्तिवृषवाहनम्। दशाश्वमेधजंपुण्यंलब्ध्वायान्तिसुरालयम्॥४५॥
युक्ता तया व्याघ्रपदाभिधानया गत्वा ततो योजनसम्मितां भुवम्।
ययौ मुनीन्द्रैर्वृषभाचलान्तिकं संसेव्यमाना शुभनिर्मलोदका॥४६॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्येऽगस्त्यतीर्थादिविविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनं-
नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः।।३४।।

ब्रह्मर्षिगण यहां देवगण तथा गन्धर्वों से सेवित होकर नित्य निवास करते हैं। इस व्याघ्रपदा का दर्शन, इसके जल में स्नान तथा जलपान अत्यन्त आनंदप्रद कहा गया है। हे फाल्गुन! यहां भगवान् ईश्वर ही शंख नाम से विराजित हैं। यहां शंख मुनि ने इन लिंगरूपी ईश्वर की प्रतिष्ठा की है। जो यहां उत्तमरूपेण स्नान करके वृषभवाहन इन शंखेश्वर लिंग का दर्शन करते हैं, वे दस अश्वमेध फल पाकर देवलोक जाते हैं। मुनियों से सेविता विमलजल वाली शोभना सूर्यमुखरी नदी यहां व्याघ्रपदा से संगम करके यहां से बहती हुई एक योजन आगे से बहकर वृषभाचल पहुंचती है।।४३-४६।।

।।चतुस्त्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

सुवर्णमुखरी का कल्या नदी से संगम, विष्णु माहात्म्य वैभव वर्णन, सृष्टि क्रमादिवर्णन

भरद्वाज उवाच

**सुवर्णमुखरीं तत्र सङ्गतां मङ्गलप्रदा। कल्यानाम नदी पुण्या कालिन्दी जाह्नवीमिव॥१॥
वृषभाचलम्भूता तीर्थराजविराजिता। नदीनामुत्तमा कल्या कलुषौधविनाशिनी॥२॥
नानातरुलताव्रातविभूषिततटद्वया। मुनिसङ्घसुखावासा पुण्याश्रमसमुत्कटा॥३॥
द्विजदत्तार्ध्यविलसत्कुशाक्षतलसत्तटा। अप्सरः कुचकस्तूरीपङ्कक्षालनपङ्किला॥४॥
दन्तावलकटच्योतन्मदाम्बुसुरभीकृता। विप्रभूपालविततमखयूपशतावृता॥५॥
अनाविलजलापूरतोषिताशेषमानवा। एकैवाऽलंपरा कर्तुं महानद्योस्तु पातकम्॥६॥**

भरद्वाज कहते हैं—वहां पर गंगा की ही तरह मंगलदायिनी कालिन्दी नदी सुवर्णमुखरी से मिल जाती हैं। यहां कालिन्दी को कल्या कहते हैं। यह कल्या वृषभाचल से निकल कर बहती है। समस्त तीर्थराज इसमें अधिष्ठित रहते हैं। यह कलुषों के ढेर का नाश करने वाली कल्यानदी सर्वश्रेष्ठ है। इसके दोनों तट पर नाना वृक्ष हैं तथा यह तटद्वय लताजाल से भरे हैं। यहां अनेक पुण्याश्रम भी हैं। ऋषिगण इन सभी आश्रमों में सुखपूर्वक रहते हैं। कल्या का तट कहीं-कहीं ब्राह्मणों द्वारा प्रदत्त अर्घ्य के अक्षत तथा कुश से समुद्भासित रहता है। कहीं-कहीं अप्सरागण द्वारा स्तनों पर लगी कस्तूरी के धोने से उत्पन्न कस्तूरी के कीचड़ से भरा है। कोई-कोई स्थान हाथियों के मद चूने से उसकी गंध से सुरभित है। कोई-कोई स्थान ब्राह्मणों तथा राजाओं द्वारा खोदे गये सैकड़ों यज्ञयूप (स्तंभ) से समावृत है। कल्या नदी अनाविल जल से सदा भरी रहती हैं। मानवगण इस जल को पीकर अशेष सन्तोषलाभ करते हैं। एकमात्र कल्या नदी ही पापराशि को पराजित कर सकती है।।१-६।।

**तयोः सङ्गतयोः स्तोतुं महिमानं क ईशते। यत्र ब्रह्मशिलानाम सरिन्मध्ये च वर्तते॥७॥
अगस्त्यतपसा पश्चाद्गयासान्निध्यमेति च। नदीद्वयजले तत्र स्नाता पुण्ये कुरूद्वह॥८॥
मखानां पौण्डरीकाणां शतस्य फलमाप्नुयुः। ब्रह्महत्यादिपापानि समायान्ति परिक्षयम्॥९॥
तत्राऽभिषेकपूतानां नदीद्वितयसङ्गमे। सङ्गताभवनाशिन्या कृष्णवेणीव पावनी॥१०॥**

हे कुरुश्रेष्ठ! सुवर्णमुखरी तथा कल्या के संगमस्थल की महिमा कौन कह सकता है? इस कल्या जलमध्य में ही ब्रह्मशिला प्रतिष्ठित थी जो बाद में महर्षि अगस्त्य के तप के कारण गया में स्थित हो गयी। हे राजन्! इस संगमस्थल में जो स्नान करते हैं, उस पुण्य जल में स्नान करने वालों को सैकड़ों पौण्डरीक यज्ञ करने का फल मिल जाता है। सुवर्णमुखरी संसार जालनाशिनी कल्या के साथ मिलकर कृष्णवेणी की तरह पवित्र हो गयी है।।७-१०।।

राजते स्वर्णमुखरी कल्यया सङ्गता तदा॥११॥
अथोदीच्यांमहानद्यायोजनार्द्धेविराजते। योजनोत्सेधसहितो विख्यातोवेङ्कटाचलः॥१२॥
सर्वेषामेव तीर्थानामाश्रयोऽयं नगोत्तमः। अञ्जानानन्तवृषभनीलकेसरिपोत्रिणः॥१३॥
एतान्युपवनान्यद्रेः स्युर्नारायणवेङ्कटौ। वराहवपुषा पूर्वं स्वीकृतत्वान्मधुद्विषा॥१४॥
वराहक्षेत्रमित्यार्यैः कीर्तितोऽयं महीधरः। सुवर्णमुखरीतीरे विख्याते वेङ्कटाचले॥१५॥
निवसत्यच्युतो नित्यमब्धीन्द्रतनयान्वितः।
तस्मिन्गिरौ श्रिया सार्द्धं वसन्तं वेङ्कटाधिपम्॥१६॥
सेवन्ते सिद्धगन्धर्वमुनिमानवदानवाः। तस्मिन्विन्यस्तचित्तानां भक्तानांपुरुषोत्तमे॥१७॥
वाञ्छितान्याशु सिध्यन्ति नश्यन्ति विपदोऽर्जुन।
ये स्मरन्ति जगन्नाथं वेङ्कटाद्रिनिवासिनम्॥१८॥
निरस्तदोषास्ते यान्ति शाश्वतम्पदमव्ययम्॥१९॥

इस नदीसंगम स्थल में स्नान से पवित्र हो गये व्यक्ति का ब्रह्महत्यादि पाप भी नष्ट हो जाता है। जहां इन दोनों का संगम हुआ है, वहां से सुवर्णमुखरी उत्तर की ओर आधा योजन जाकर विराजित हैं। इसी के तीर पर एक योजन शिखर वाला विख्यात वेंकटाचल स्थित है। यह पर्वतश्रेष्ठ वेंकटाचल समस्त तीर्थों का आश्रयस्थल है। इस पर्वत प्रवर में अनेक उपवन भी हैं। इन सभी उपवनों में अनेक अंजनवर्ण के नीलवृषभ विचरते रहते हैं। सिंह तथा वराह भी यहां विचरते रहते हैं। यह वेंकटाचल नारायण के समान है। पूर्वकाल में मधुदानव के शत्रु हरि ने वाराह शरीर धारण करके इस पर्वत पर निवास किया था। सिद्ध-गन्धर्व-मुनि-मानव तथा दानवगण यहां लक्ष्मी के साथ वेंकटवासी श्रीनिवास की सतत् सेवा करते रहते हैं। हे अर्जुन! जो भक्त मानव इन पुरुषोत्तम में चित्त लगाकर भजन करते हैं, उनका अभीष्ट शीघ्रता से सिद्ध हो जाता है। उनकी विपत्तियां नष्ट हो जाती हैं। जो वेंकटाचलवासी श्रीनिवास का स्मरण करते हैं, वे दोषरहित होकर विष्णु के अव्यय पद की प्राप्ति करते हैं।।११-१९।।

अर्जुन उवाच

वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सुरासुरनमस्कृतः। कथं प्रादुरभूद्देवो भगवान्कमलापतिः॥२०॥
कस्य वा कृतिनस्तत्र प्रसन्नो निजमद्भुतम्। रूपम्प्रकाशयाञ्चक्रे भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥२१॥
विष्णोर्दिवादिदेवस्य महिमानंमहामुने !। श्रोतुमिच्छामितत्त्वेन तन्मेकथयविस्तरात्॥२२॥

अर्जुन कहते हैं—सुरासुर नमस्कृत हरि किस प्रकार महापुण्यात्मक वेंकटाचल पर प्रादुर्भूत हुये थे? उन्होंने किस कर्मशील मानव के प्रति प्रसन्न होकर भुक्ति-मुक्तिप्रद अपना अद्भुद् रूप प्रकाशित किया था? हे महामुनि! देवदेव विष्णु का प्रभाव स्मरण करने हेतु मुझे इच्छा हो रही है। अतः आप मुझसे विष्णु माहात्म्य का विस्तृत वर्णन करिये।।२०-२२।।

भरद्वाज उवाच

शृणु वेङ्कटानाथस्य महिमानं समाहितः। विस्तरेणसमाख्यातुं ब्रह्मणाऽपिनशक्यते॥२३॥

धन्योऽसि देवदेवस्य माहात्म्यं मधुविद्विषः।
यद्भक्तियुक्ताऽभूत्तात ! श्रोतुम्मतिररिन्दम !॥२४॥
कृतपुण्योऽस्म्यहंपार्थ सर्वभूतपतेर्हरेः। पवित्राणिचरित्राणिस्तोष्यन्ते यन्मयाऽधुना॥२५॥
पुरा भागीरथीतीरे जनकाय महात्मने। क्रतुदीक्षाप्रसक्ताय विशुद्धज्ञानशालिने॥२६॥
वामदेवेनकथितांकथांपापप्रणाशिनीम्। कथयिष्यामि तेपार्थ ! विष्णुकीर्तनपावनीम्॥२७॥
सर्वेषामेव भूतानामाद्यो नारायणः प्रभुः। जगन्मयो जगत्कर्ता चित्स्वरूपो निरञ्जनः॥२८॥
सहस्रशीर्षा भगवान्सहस्राक्षः सहस्रपात्। यस्य भासा जगदिदं विभाति सचराचरम्॥२९॥

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—ब्रह्मा भी जिसे कहने में समर्थ नहीं हैं, मैं उन वेंकट प्रभु की महिमा का विस्तार से वर्णन करने का प्रयत्न करता हूं। तुम एकाग्र मन से उसे सुनो। हे अरिन्दम! तुम धन्य हो। क्योंकि देवदेव मधुरिपु हरि के प्रति भक्तियुक्त होकर उनके प्रभाव का मनन कर रहे हो। हे पार्थ! केवल तुम ही क्यों, मैं भी अनेक पुण्य कर रहा हूं क्योंकि उस पुण्यबल से ही मैं सर्वभूतपति हरि का पवित्र चरित जो कह रहा हूं। पूर्वकाल में विशुद्ध ज्ञानी महात्मा जनक जब जाह्नवी तट पर यज्ञदीक्षित हुये थे, तब वामदेव ने दीक्षारत जनक के समीप पापप्रणाशिनी इस माहात्म्यगाथा का कीर्त्तन किया था। हे पार्थ! मैं भी तुमसे इस पवित्र हरिकथा का वर्णन करूंगा। हे पार्थ! प्रभु नारायण प्राणिगण के आदि, जगन्मय, जगत्कर्त्ता, चित्स्वरूप, निरंजन, सहस्र-शीर्षा, भगवान्, सहस्राक्ष तथा सहस्रपात् हैं। उनके आभास से ही यह चराचर जगत् समुद्भासित हो रहा है।।२३-२९।।

तस्मात्परतरं तेजस्तस्मात्परतरन्तपः। तस्मात्परतरं ज्ञानं योगस्तस्मात्परो न च॥३०॥
विद्या तस्मादपि परा नाऽस्ति पार्थ नरर्षभ !॥ सर्वेष्वपि च भूतेषु सदासन्निहितःप्रभुः॥३१॥
सर्वाण्यपि च भूतानि तस्मिन्नेवाऽऽसते सुखम्।
स एव यज्ञो यज्वा च साधनं स्रुक्स्रुवादिकम्॥३२॥
फलम्फलप्रदाता च तत्सम्प्राप्या गतिस्तथा। वह्नौ प्रणीते पशुना प्रोक्षितेनप्रजुह्वति।
ये तं प्रयान्ति ते यान्ति गतिं तत्प्रतिपादिताम्॥३३॥
कर्मबन्धं पशुं कृत्वा ज्ञानाग्नौसम्प्रवर्तिते। ये जुह्वते समुद्दिश्य ते तत्सायुज्यभागिनः॥३४॥
हरिः सदाशिवो ब्रह्मा महेन्द्रःपरमःस्वराट्। सर्वेश्वरस्य तस्यैतेपर्यायाः परिकीर्तिताः॥३५॥
समाहितोऽनुसन्धत्ते य इदंपरमात्मनः। नारायणस्य माहात्म्यं स न याति पुनर्भवम्॥३६॥
चिदानन्दमयः साक्षी निर्गुणो निरुपाधिकः।
नित्योऽपि भजते तान्तामवस्थां स यदृच्छया॥३७॥

हे पुरुषव्याध्र! उनसे श्रेष्ठतर तेज-तप-ज्ञान-योग-किंवा विद्या आदि कुछ भी नहीं है। ये प्रभु समस्त प्राणीगण में सन्निहित रहते हैं तथा समस्त प्राणीगण उनमें ही सुखपूर्वक निवास करते हैं। वे ही यज्ञ, यज्वा, साधन स्रुक्, स्रुवादि है। वे ही फल, फलदाता, प्राप्य तथा गति हैं। प्रणीत वह्नि में प्रोक्षित पशु द्वारा आहुति

देकर जो सम यज्वा उनकी गति लाभ का प्रयास करते हैं, वे प्रभु उन सबको यागजनित फल प्रदान करते हैं। वे ही ज्ञानाग्नि में कर्मबन्धनरूप पशु द्वारा आहुतिदाता ज्ञानीगण को सायुज्य दान करते हैं। सर्वेश्वर हरि ही पर्यायक्रमेण सदाशिव-ब्रह्मा-महेन्द्र-परम तथा स्वराट् रूप हैं। जो मानव समाहित होकर परमात्मा नारायण के इस माहात्म्य को सम्यक्तः जान कर उनका ध्यान करता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। ये चिदानन्दमय निर्गुण, लोकसाक्षी, उपाधिरहित नारायण नित्य होकर भी अपनी इच्छा से श्रीनिवास आदि पृथक्-पृथक् अथवा उन-उन अवस्था का भोग करते हैं।।३०-३७।।

पवित्राणां पवित्रं यो ह्यगतीनां परा गतिः। दैवतं देवतानाञ्च श्रेयसां श्रेयउत्तमम्।।३८।।

बोध्यानां बोध्य एकोऽसौ ध्येयानां ध्येय उत्तमः।

विनयानां समधिको विनयो नयसंयुतः।।३९।।

तेजसां जनकं तेजः प्रकृष्टं तपसान्तपः। आधारः सर्वभूतानामनाद्यन्तो जनार्दनः।।४०।।

तस्येदं भावविज्ञानेमूढाब्रह्मादयोऽपि च। अजोगृह्णाति जननं सर्वात्माहन्तिविद्विषः।।४१।।

स्वतन्त्रोऽपिस्वभक्तानांपरतन्त्रःप्रवर्तते। स साक्षी कर्मणां देवः सर्वज्ञोगरुडध्वजः।।४२।।

तस्य स्वरूपं मुनयो मृगयन्ते समाहिताः।

सङ्कर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नश्च तथा पुनः।।४३।।

अनिरुद्धइतिख्यातंतन्मूर्तीनांचतुष्टयम्। कीर्तितः प्रणवःपश्चाद्धृदयन्तस्यभास्वरम्।।४४।।

भगवान्वासुदेवश्च मन्त्रोऽयं तत्प्रकाशकः।।४५।।

मन्त्रराजमिमं नित्यं प्रजपेद्यः समाहितः।

स विष्णोः करुणायोगात्सिद्धीनां भाजनम्भवेत्।।४६।।

आपन्निवारकं सम्पत्प्रापको भुक्तिमुक्तिदः। यदा ससर्ज भूतानिकल्पादावेषमाधवः।।४७।।

तत्सर्वंकथयिष्यामि समाहितमनाः शृणु। तस्य चिन्तयतः सर्गं तेजोरूपम्परं हरेः।।४८।।

जो जनार्दन पवित्र से भी पवित्र, अगति की गति, देवगण का देवत्व, श्रेयों का भी उत्तम श्रेय हैं, जो बोध्यों के बोध्य, धैर्यशालीगण के उत्तम धैर्य, विनयी लोगों के विनय, तेजवान् के उत्तम तेज, तपस्या के प्रकृष्ट तपरूप समस्त जीवाधार तथा आदि अन्तरहित हैं, ब्रह्मादि देवता भी उनके भावविज्ञान में मोहित हो जाते हैं। वे अज हैं, तथापि जन्मग्रहण करते हैं। धर्मात्मा होकर भी शत्रु समूह का नाश करते हैं। वे स्वयं स्वतन्त्र होकर भी भक्तों से परतन्त्र हो जाते हैं। ये देव गरुड़ध्वज ही कर्म के साक्षी तथा सर्वज्ञ हैं। ऋषिगण समाहित चित्त से उनके स्वरूप का अन्वेषण करते हैं। संकर्षण-वासुदेव-प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध रूपी विख्यात मूर्त्तिचतुष्टय उनका मूर्त्तिभेद है। ॐकार का जप करने से हृदय में जो भास्कर रूप आविर्भूत होता है, भगवान् वासुदेव ही उस "ॐ" काररूपी मन्त्र के प्रकाशक हैं। जो समाहित होकर इस मन्त्र का जप करते हैं, वे विष्णु की करुणा से सिद्धि समूह के भाजन हो जाते हैं। हे अर्जुन! जो आपत्ति निवारक हैं, सम्पत्तिदायक तथा भुक्ति-मुक्ति प्रदाता हैं, वे माधव कल्प के आदि में जो सृष्टि करते हैं, उन सब का वर्णन करता हूं। समाहित होकर सुनो। हरि ने सृष्टि की इच्छा से परम तेजोरूप होकर चिन्तन किया।।३८-४८।।

विरिञ्च इति विख्यातंराजसंगुणमाश्रितम्। तस्य देवस्य वदनाच्छक्रोदेवःसपावकः।
जज्ञे यश्च त्रिलोकेशःपापकर्मणि यः प्रभुः॥४९॥
मनसश्चाऽभवच्चन्द्रःकरुणानित्यशीतलात्। अपांसर्वौषधीनाञ्च विप्राणांरक्षकःसदा॥५०॥

वे राजोगुणाश्रय लेकर विरिञ्चि ब्रह्मारूपेण प्रादुर्भूत हो गये। उनके देह से पाक शासन के साथ पावक का प्रादुर्भाव हुआ। ये त्रिलोकेश पावक ही पाक कर्म के प्रभु कहे गये हैं। उनके (ब्रह्मा के) मन से चन्द्र का आविर्भाव हुआ। वे करुणा के कारण नित्य शीतल हैं। वे इस अतिशीतलता के कारण निखिल जल, सभी ओषधि एवं विप्रगण के सतत् रक्षक के रूप में नियुक्त किये गये।।४९-५०।।

नेत्राभ्यामुदभूत्सूर्यस्तस्यविश्वप्रकाशकः। शीतोष्णवर्षकृत्कालकारणंतेजसांनिधिः॥५१॥
प्राणेभ्योऽस्य जगत्प्राणः समीरः समजायत। धर्ता ग्रहर्क्षस्वर्गङ्गाविमानानां महाबलः॥५२॥
नाभिदेशात्समुत्पन्नमन्तरिक्षं महात्मनः। तस्याऽऽसीच्छिरसोव्योमभूतसम्भवकारणम्॥५३॥
पादाम्बुजाभ्यामुदभद्भूमिर्भूतगणाश्रया। विनिःसृता दिशः सर्वा श्रोत्राभ्याम्परमात्मनः॥५४॥
भूर्भुवाद्यास्तथालोकाः स्मरणात्तस्य जज्ञिरे। रसातलादिलोकाश्च यक्षरक्षोगणादयः॥५५॥
मुखबाहूरुपादेभ्योजयामासस क्रमात्। ब्राह्मणान्क्षत्रियान्वैश्याञ्छूद्राञ्चैव कुरूद्वह !॥५६॥
छन्दांसि यज्ञस्तुरगा गावो मेषाविकादयः। अतर्क्यप्रभवां तस्मादुत्पत्तिंप्रतिपेदिरे॥५७॥
सङ्कल्पाद्देवदेवस्य तस्यस्थावरजङ्गमम्। भूतजातमभूत्कालो भूतोभावीभवंस्तथा॥५८॥
पिबत्यम्बु समुद्राणां वडवानलरूपधृक्।
कल्पान्तकाले तत्सर्वं विसृजत्यात्मनि स्थितम्॥५९॥
सञ्चारयति भूतानां वृत्तिं सूर्येन्दुरूपधृक्। तमोनिरसनाच्चापि कालधर्मप्रवर्तनात्॥६०॥

तेजोमय सूर्य उनके नेत्रद्वय से उद्भूत होकर विश्व को प्रकाशित करके शीत-उष्ण-वर्षा आदि का विधान करके काल तथा कारणरूपेण सबके ऊपर आधिपत्य करते हैं। महाबली जगत्प्राण वायु उनके प्राणों से उत्पन्न होकर ग्रह-नक्षत्र-स्वर्ग-गंगा तथा विमान को धारण करते हैं। इसके अतिरिक्त इन महात्मा के नाभि से अन्तरीक्ष का तथा मस्तक से प्राणीगण के कारणस्वरूप आकाश का तथा पादपद्मों से जीवसमूह की आश्रय स्वरूप धरती देवी का आविर्भाव हुआ। इन परमात्मा के कर्णयुगल से सभी दिशायें विनिर्गत हो गयीं। उन्होंने स्मरण मात्र से भूः एवं भुवादि रसातलादि लोकों को तथा यक्ष-राक्षस-उरग प्रभृति को उत्पन्न किया। उन्होंने मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उरु से वैश्य तथा चरणों से शूद्रों को उत्पन्न किया। हे कुरुप्रवर! वेदशास्त्र छन्द-यज्ञ-अश्व-गो-मेष-बकरी आदि अतर्किक रूप से इन महापुरुष से उत्पन्न हुये हैं। इन देवदेव के संकल्प मात्र से स्थावर-जंगम प्राणीसमूह, भूत-भावी तथा भविष्यत् काल की उत्पत्ति हुई है। कालावसान में उनके ही आदेश से बड़वानल जल का पान करता है। तदनन्तर वे प्रभु अन्त में समस्त सृष्ट वस्तु का ग्रास करके अपनी आत्मा में स्थापित कर लेते हैं। वे प्रभु कालधर्म का प्रवर्त्तन करने की इच्छा से सूर्य-चन्द्ररूप होकर अन्धकार दूर करके प्राणीगण की वृत्ति को संचारित करते हैं।।५१-६०।।

जगन्ति कल्पविरमेविन्यस्यस्वोदरान्तरे। लीलाबालाकृतिः शेते वटपत्रे महाम्बुधौ॥६१॥

अथ चोदग्रभोगीन्द्रभोगतल्पे सुखोचिते। योगनिद्रामवाप्नोति सद्वितीयोऽब्जवासया॥६२॥
नाभिकासारसम्भूताज्जनयामास पङ्कजात्। सर्वेषां जगतां नाथो विधातारं चतुर्मुखम्॥६३॥
लीलाह्येषा मुकुन्दस्य स्वेच्छायोगप्रवर्तिनः। विज्ञायते न केनाऽपियाथार्थ्येनसईश्वरः॥६४॥

कल्पान्त में वे समस्त जगत् को अपने उदर में विन्यस्त करके लीलावशात् बाल्य आकृति धारण करके महासागर में वटपत्र पर शयन करते हैं। वे तीव्रतेजवान् भोगीन्द्र (अनन्तमहासर्प) के भोगों के सुख से उत्थित सुखोचित इस शय्या पर शयान होकर स्थित रहते हैं तब योगनिद्रा उनका आश्रय लेती हैं (अर्थात् वे शेषशय्या पर शायित हो जाते हैं)। तब कमलनयना लक्ष्मी उनके पास स्थित रहती है। कालान्तर में इन विभु के नाभिकमल से एक पद्म उद्भुत हुआ। इस पद्म पर प्रभु ने समस्त जगत् के नाथ चतुर्मुख विधाता का सृजन किया। मुकुन्द इस प्रकार स्वेच्छा से यह लीला करते हैं, तथापि कोई उनको यथार्थतः ईश्वर कहने में समर्थ नहीं होता।।६१-६४।।

यदा धर्मस्य हानिः स्यादधर्मोवर्धते यदा। यदा वा महतीं पीडांभजन्तेदेवतागणाः॥६५॥
यदावलेपदुर्वारा यान्ति वृद्धिं सुरद्रुहः। भूमेर्भूमिजनानाञ्च यदोदेति महद्भयम्॥६६॥
यदा वा निजभक्तानां साधूनामनिवारिता। दुरान्तातङ्कजननी विपत्समुपजायते॥६७॥
तदा तदनुरूपाणि रूपाण्यास्थाय कौतुकात्। अधर्ममवधूयाऽऽशु कुरुते जगतो हितम्॥६८॥
सृजति विधिसमाख्यो राजसेनात्मनाऽसौ वहति हरिसमाख्यः सत्त्वनिष्ठः प्रपञ्चम्।
हरति हरसमाख्यस्तामसीमेत्य वृत्तिं मधुमथनमहिम्नामस्ति वेत्ता न कोऽपि॥६९॥
यज्ञाङ्गैः कृतसकलाङ्गसन्धिबन्धं वाराहं वपुरधिगम्य लोकनाथः।
शैलेऽस्मिन्नभजदसौ यथा निवासं तद्वक्ष्ये शृणु विबुधाधिनाथसूनो !॥७०॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्ये विष्णुमाहात्म्यप्रस्तावे सृष्ट्यादिवर्णनंनाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः।।३५।।

जब निरन्तर धर्म की हानि तथा अधर्म की वृद्धि होने लगती है, तब जब समस्त देवगण अतीव पीड़ित हो जाते हैं तथा जब देवद्वेषी दानवों का ज्ञान दुर्वार गर्व से चालित होने लगता है, जब पृथिवी के प्राणीगण के लिये महाभय उपस्थित हो जाता है, जब साधुभक्त जन पर दुरन्त आंतक रूपी विपदा आ पड़ती है, तब वे प्रभु जगत् के हितार्थ कौतुक से उस समय के उपद्रव के अनुरूप रूप धारण करके जगत् के अधर्म का नाश करते हैं। ये विभु राजस मूर्त्ति होकर विधातारूपेण जगत् प्रपंच सृजित करते हैं। ये ही सत्वनिष्ठ हरिरूपेण पालन करते हैं तथा तामसी वृत्ति को अपनाकर त्रिलोचनरूपेण जगत्संहारकारी हो जाते हैं। अतः इन विष्णु के प्रभाव को कौन जान सकता है? हे इन्द्रपुत्र अर्जुन! लोकनाथ हरि ने जिस प्रकार यज्ञांगसमूह द्वारा अपने शरीर की सभी संधियों का बन्धन करके वाराहरूप धारण किया था तथा इस पर्वत पर निवास किया था, वह प्रसंग सुनो।।६५-७०।।

।।पञ्चत्रिंश अध्याय समाप्त।।

षट्त्रिंशोऽध्यायः

वराहावतार वर्णन, मनुओं का क्रम, ब्राह्मणों के अनुरोध से प्रभु का दिव्य शरीर धारण

भरद्वाज उवाच

पुरा निशात्यये धातुः प्रबुद्धो मधुसूदनः। पुनः प्रवृत्तिं भूतानामन्वियेष धिया भृशम्॥१॥
विना वसुमतीमन्ये भूतौघधरणक्षमाः। न भवन्तीति हृदये तर्कस्तस्याऽजनिष्ट च॥२॥
अपश्यत्प्रणिधानेन महीं पातालगोचराम्। अतिमात्रभयोद्विग्नांपरीतां महताऽम्बुना॥३॥
प्रतिपेदे तदा रूपं भूसमुद्धरणोचितम्। उपकर्मोष्ठमनलजिह्वं प्रणवघोषणम्॥४॥
चतुराम्नायचरणं प्रायश्चित्तखुराञ्चितम्। प्राग्वंशकायं विलसद्दर्भरोमावलीयुतम्॥५॥
प्रवर्ग्यावर्तसम्पन्नं दक्षिणाग्न्युदरान्वितम्।
स्रुक्तुण्डमखिलैः सर्वैः सम्विभक्ताङ्गसन्धिकम्॥६॥
दिव्यसूक्तसटाजालं परबह्मशिरस्तथा। हव्यकव्यरसोपेतं विशुद्धपशुजानुकम्॥७॥
उक्तात्युक्तादिकच्छन्दोमार्गमन्त्रबलान्वितम्। सर्वयज्ञमयं दिव्यं वाराहंरूपमास्थितः॥८॥
अन्वेष्टुं धरणीमब्धेर्विवेशसलिलान्तरम्। दंष्ट्राबालशशाङ्कोत्थलसत्कान्तिचयैर्हठात्॥९॥

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—पूर्वकाल में विधाता के निशावसान के समय मधुसूदन प्रबुद्ध होकर पुनः जिस प्रकार से प्राणीगण की बहुलता हो, मन ही मन इसके कारण का अनुसन्धान करने लगे। उन्होंने विचार किया कि पृथिवी के विना प्राणीगण को कौन धारण कर सकेगा? उनके हृदय में जब यह वितर्क उपस्थित हो गया, तब उन्होंने प्रणिधान द्वारा देखा कि पृथिवी देवी पाताल में प्रवेश कर गयी हैं तथा वे महासागर से घिरकर अत्यन्त भयभीत हो रही हैं। मधुसूदन ने पृथिवी की यह अवस्था देखकर उसके उद्धार करने योग्य वाराहरूप की रचना किया। उपाकर्म उन यज्ञ वाराह के ओष्ठ थे, प्रणवघोष = जिह्वा, चतुराम्नाय = चरण, प्रायश्चित्त = खुररूप, प्राग्वंश = शरीर, दर्भ (कुश) =रोमावलि, प्रवग्ये = आवर्त्त, दक्षिणाग्नि = उदर, स्रुक् = तुण्डरूपेण प्रतिभात हो रहा था। यज्ञाङ्गों द्वारा उनकी समस्त अंगसन्धियां विभक्त होकर क्षुरित हो गयीं। उनका जटाजाल था दिव्यसूक्त से बना, मस्तक = परब्रह्म, वेग = हव्य-कव्य, जानु = विशुद्ध पशु, उक्थ = प्रत्युक्थ था। छन्दोमार्ग तथा वीर्य था मन्त्र। हरि ने इस प्रकार का सर्वयज्ञमय वराहरूप धारण करके पृथिवी के अन्वेषणार्थ सागरतल में प्रवेश किया। तब उनकी दाढ़ से हठात् बालचन्द्र के समान किरणमाला उल्लसित हो उठी॥१-९॥

कल्पान्तसमयस्फीतं तमिस्रमपसारयन्। अभिभूताम्बुभृद्घोषैर्मुहुर्ब्रह्माण्डकन्दराम्॥१०॥
निनादमुखरां कुर्वन्नगाढैर्घुरुघुरुस्वनैः। खुरप्रखुरविन्यासैर्जर्जरीकृतविग्रहम्॥११॥
इतस्ततो विलुठयन्नुरगाणामधीश्वरम्। तीव्रैर्निःश्वासपवनैरापातालं सरित्पतेः॥१२॥

प्रापयन्नतलस्पर्शमन्तरं दर्शनीयताम्। अतिदीर्घेण पोत्रेण मग्नोन्मग्नेन वारिधेः॥१३॥
संक्षोभितानि पाथांसि कुर्वन्नन्तर्ययौ तदा।
सप्तपातालमूलाधःस्थितां तोये भयाकुलाम्॥१४॥
वेपमानां समालोक्य धरणीं हृष्टमानसः। तामारोप्य स्वदंष्ट्राग्रमुन्ममज्ज सरित्पतेः॥१५॥
संस्तूय मानोमुनिभिर्जनलोकनिवासिभिः। तस्मिन्नुद्वहतिप्रेम्णादेवेवसुमतींक्षणम्॥१६॥

इस उल्लसित किरणमाला के प्रकाश से कल्पान्तकालीन दीर्घ अन्धकार अपसारित हो उठा। वे समुद्र में विचरण में जब प्रवृत्त हो गये, तब जल के साथ उनके शरीर की टक्कर से जो शब्द उठा मानो उसने मेघ गर्जन को भी अभिभूत कर लिया। उनके गाढ़ घुर्र-घुर्र शब्द से दिगन्त मुखरित हो उठा। उसने ब्रह्माण्ड को आपूरित कर दिया। उनके खुर तथा प्रखुर के विन्यास के द्वारा सर्पाधीश शेष का शरीर क्षत-विक्षत होकर जर्जर हो उठा। वह नागपति अपने शरीर से इतःस्ततः लोटने लगे। उनकी तीव्र निःश्वास वायु से (भगवान् की निःश्वास वायु से) अतलस्पर्श समुद्र जल पाताल से अलग हो गया। तभी पाताल तथा जल का अन्तर स्पष्टतः परिलक्षित हो गया। वाराहरूपी हरि ने सागर जल को इस प्रकार संक्षुब्ध करके क्रमशः उसके मध्य में प्रवेश किया। उनका दीर्घ मुख कभी समुद्र में मग्न तो कभी उसके बाहर दृष्ट हो रहा था। इससे वसुधादेवी भयभीत होकर सप्तपाताल के भी मूलभाग में छिपी थीं। तब वराहरूपी हरि ने धरणी को भयभीत तथा निमग्न देखकर दृष्ट अन्तःकरण से उनको अपने दाढ़ के अग्रभाग कर रखा तथा सागर जल से ऊपर उठने लगे। वराह ने प्रेम में भरकर क्षणकाल में धरणी का उद्धार किया था। जनलोक निवासी ऋषिगण उनकी सम्यक्रूपेण स्तुति करने लगे।।१०-१६।।

प्रतिसीरा बभूवाऽधो वारिधेर्मङ्गलोचिता। तदुत्तारणवेलायां वराहवपुषोऽर्जुन !॥१७॥
गम्भीरघोषैरम्भोधिः प्राप मङ्गलतूर्यताम्। उद्वृत्तवीचिविक्षिप्तशीकरासारसङ्गतः॥१८॥
भेजे मुक्ताफलचयो मङ्गलाऽक्षतबिभ्रमम्। उदूढा तेन देवेन सा बभौ सलिलाप्लुता॥१९॥
गाढरागसमुत्पन्नस्वेदक्लिन्नतनूरिव। इत्थमुद्धृत्य भगवान्महीम्पातालमूलतः॥२०॥
सुदृढं स्थापयामास मध्येऽम्बुनिधिपाथसाम्।
तेनोद्धृतायां मेदिन्यां पूर्णन्तद् भूनभोऽन्तरे॥२१॥
जलं तत्कृतमर्यादाऽव्यवच्छिन्नमभूत्तदा। संस्थाप्य पृथिवीमित्थं तदीयाधारसिद्धये॥२२॥

वारिधि के अधोदेश से मंगलोचिता प्रतिसीरा धरती बाहर निकाली गयीं। हे अर्जुन! जब वराहदेहधारी हरि ने पृथिवी का उद्धार किया तब सरित्पति सागर की गंभीर ध्वनि ने मानो तूर्यध्वनि का कार्य सम्पन्न किया। उस काल में सागर की लहरों के विक्षोभ से जो सीकरराशि (जलविन्दु) उद्भूत हो गयी। उसे देखकर प्रतीत होने लगा मानो सागर मुक्ताओं तथा मांगलिक अक्षत द्वारा अपना शरीर भूषित कर रहा है। इस प्रकार जल से आप्लुत पृथिवी का इन देव द्वारा उद्धार किया जा रहा था। गाढ़राग से उत्थित स्वेद द्वारा उनका शरीर आर्द्र हो रहा था। भगवान् वाराहदेव ने एवंविध पातालमूल से धरणी का उद्धार करके उसे पयोनिधि के मध्य में दृढ़ता के साथ स्थापित किया। तब मात्र आकाश एवं जलरूप दो ही वस्तु विद्यमान थी। वाराहदेव ने धरणी का उद्धार

करके उसे भूलोक तथा आकाश के मध्य में स्थापित किया जिससे दोनों के बीच का अन्तर भर गया। जल को ही अविच्छिन्न रूप से वसुधा की सीमा रूप में निर्णीत किया गया। वराहदेव ने इस प्रकार पृथिवी को स्थापित करके उसकी आधार सिद्धि किया।।१७-२२।।

दिग्गजानहिराजञ्च कमठञ्च न्यवेशयत्। तेषामपि च सर्वेषामाधारत्वेन सादरम्॥२३॥
अव्यक्तरूपां स्वां शक्तिं युथोज च दयानिधिः।
ततो धरां समुद्धृत्य स्थितां किटितनुं हरिम्॥२४॥
तुष्टुवुः सनकाद्यास्तं जनलोकनिवासिनः। तदा वराहवपुषमाराध्य पुरुषोत्तमम्॥२५॥
तदाज्ञया जगद् ब्रह्मा यथापूर्वमकल्पयत्॥२६॥

इसके लिये भगवान् ने दिग्गज, नागराज शेष तथा कच्छप को आधार रूप स्थापित करके अपनी अव्यक्ता शक्ति को उन सब के आधारूप से आदरपूर्वक स्थापित किया। जब वे प्रभु वाराहरूपी हरि धरणी का उद्धार करके अवस्थित हो गये, तब जनलोकवासी सनकादि ऋषि उनका स्तव करने लगे। ब्रह्मा ने भी वाराहरूपी पुरुषोत्तम की आराधना करके उनके आदेश के अनुसार पूर्व कल्पवत् जगत् सृष्ट किया।।२३-२६।।

अर्जुन उवाच

कल्पान्तसलिले मग्ना कथं तिष्ठति भूरियम्। सप्तपाताललोकाधः किमाधारामहामुने॥२७॥
कल्पकालः किया नेष स्यात्तद्वृत्तिश्च कीदृशी॥२८॥
एतद्विस्तार्य सकलं मम ब्रह्मन्मुने! वद॥२९॥

अर्जुन कहते हैं— हे महामुनि! कल्प के अवसान के समय ये वसुधादेवी किस प्रकार से जल में चली गईं? सप्तपाताल के अधोदेश में किस वस्तु ने इनके आधार का कार्य किया? इस कल्पकाल का परिमाण क्या है? उस काल की वृत्ति क्या है? हे मुनिवर! ब्रह्मन्! इन सब को विस्तार से कहिये!।।२७-२९।।

भरद्वाज उवाच

विनाडिकानां षष्ट्या स्यान्नाडिकैका दिनम्भवेत्।
तत्षष्ट्या दिवसास्त्रिंशन्मासः पक्षद्वयात्मकः॥३०॥
मासौ द्वावृतुरित्युक्तस्तैः षड्भिर्वत्सरोभवेत्। अयनद्वितयाकारःशीतवर्षोष्णसंश्रयः॥३१॥
देवासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात्। उत्तरं दक्षिणं भानोरयने ते यथाक्रमम्॥३२॥
मानुषाब्दैःखखव्योमखाक्षिपावकसागरैः। महायुगं भवेत्पार्थ! कृताद्याकारसंयुतम्॥३३॥

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—६० विनाड़िका भी एक नाड़िका होती है, ६० नाड़िका का एक दिन, ३० दिन का एक मास होता है। इस मास में शुक्ल-कृष्ण भेद से दो पक्ष होते हैं। २ मास में एक ऋतु होता है। ६ ऋतु काल को एक वर्ष कहते हैं। हे अर्जुन! इस एक वर्ष में २ अयन होते हैं। इन अयनों में ही शीत, वर्षा तथा ग्रीष्मादि का प्रादुर्भाव होता है। (एक दिन में) दिन तथा रात को मिलाकर अहोरात्र कहते हैं। यह जो अहोरात्र है, इसे सुर एवं असुर, इन दोनों के विपर्यय क्रम से निश्चित किया जाता है। सूर्य के दो अयन—

उत्तर तथा दक्षिण अयन को सुर-असुर गण की दिवा-रात्रि कहा गया है। (उत्तरायण देवगण का दिन तथा दक्षिणायन रात्रि है। इस प्रकार उत्तरायण असुरों की रात्रि तथा दक्षिणायन उनका दिन है) हे पार्थ! ख (०), ख (०), व्योम (०), ख (०), अक्षि (२), पावक (३) तथा सागर (४)। इसमें नियम यह है कि अंक की गति बायें से होती है। इस प्रकार ४३०००० वर्ष का सत्यादि युग समन्वित महायुग होता है।।३०-३३।।

सप्तत्या सैकया कालो युगानामन्तरं मनोः।
अस्मिञ्छ्वेतवराहाख्ये कल्पे जातान्मनूञ्छृणु॥३४॥

स्वायम्भुवःस्यात्प्रथमस्ततःस्वारोचिषोमनुः। उत्तमस्तामसाख्यश्चरैवतश्चाक्षुषाह्वयः॥३५॥
एते गताः प्राङ्मनवः षट् सेन्द्रसुरतापसाः। वैवस्वतो वर्त्ततेऽद्य सप्तमो मनुरर्जुन!।३६॥
आदित्यवसुरुद्राद्यास्तत्काले देवतागणाः। इष्ट्वाऽश्वमेधशतकं तेजस्वी प्राप शक्रताम्॥३७॥
विश्वामित्रोऽहमत्रिश्च जमदग्निश्च कश्यपः। वशिष्ठो गौतमश्चैव ते वै सप्तर्षयोऽर्जुन॥३८॥
इक्ष्वाकुप्रमुखाः शूरा मनुपुत्रा महाबलाः। अवनिम्पालयामासुर्नित्यं धर्मपरायणाः॥३९॥

हे पार्थ! इस प्रकार ७१ युग काल को मन्वन्तर कहते हैं। यह है श्वेतवाराहकल्प। स्वायम्भुव मनु प्रथम, स्वारोचिष मनु द्वितीय हैं। इस प्रकार से उत्तम, तामस, रैवत एवं चाक्षुष मनु ने जन्म ग्रहण किया है। इनके साथ इनके पृथक्-पृथक् इन्द्र तथा देवता एवं तपस्वीगण जन्म लेते हैं। हे अर्जुन! चाक्षुष मनु तक का काल बीत गया। इस समय सप्तम वैवस्वत मनु का अधिकार काल है। इस मन्वन्तर के देवता गण हैं आदित्य-वसु तथा रुद्र आदि। १०० अश्वमेध करके एक तपस्वी ने वैवस्वत मन्वन्तर में इन्द्रपद प्राप्त किया, जिसका नाम है तेजस्वी। हे अर्जुन! विश्वामित्र, मैं भरद्वाज, अत्रि, जमदग्नि, कश्यप, वसिष्ठ तथा गौतम ये सात ऋषि इस मन्वन्तर में सप्तर्षि हैं। इस मन्वन्तर में धर्मपरायण इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न, महाबली-पराक्रमी शूर मनुपुत्रगण नित्यप्रति धरती पालन करते रहते हैं।।३४-३९।।

सूर्यदक्षब्रह्मधर्मरुद्राणां पञ्च सूनवः। सावर्णिरौच्यभौमाद्या भविष्यन्मनुसप्तकम्॥४०॥
चतुर्दशविधातुस्तेभवन्तिमनवोऽहनि। तत्कल्पसञ्ज्ञंतस्याऽन्तेनिशास्यात्तत्समाशृणु॥४१॥
दिनावसानसमये ब्रह्मणः पाण्डुनन्दन !। जायतेऽवग्रहो घोरः पृथिव्यां शतवार्षिकः॥४२॥

तस्मिन्नवग्रहे पृथ्व्यां नीरसायां धनञ्जय !।
चतुर्विधानि भूतानि समायान्ति परिक्षयम्॥४३॥

तदा तप्तशिखाकारैरुपेतो धर्मदीधितिः। मयूखैरग्निसदृशैर्वमद्भिःपावकच्छटाः॥४४॥
विनष्टग्रामनगरशैलवृक्षादिकानना। कूर्मपृष्ठोपमोर्वी स्यात्तप्ताऽयःपिण्डसन्निभा॥४५॥

हे पार्थ! तत्पश्चात् सूर्य, दक्ष, ब्रह्मा, धर्म, रुद्र के पुत्र तथा रौच्य एवं भौम—ये सात मनु भविष्य में जन्म लेंगे। हे अर्जुन! इन चतुर्दश मनु का जो प्रसंग कहा है, इनके जीवनकाल में ब्रह्मा का एक दिन होता है (चौदह मनु का पूर्णकाल बह्मा का एक दिन है)। यही कल्पकाल है। अब ब्रह्मा के रात्रिकाल को सुनो! हे पाण्डुपुत्र! ब्रह्मा के दिनावसान के समय पृथिवी पर १०० वर्ष व्यापी भयंकर अवर्षण होता है। हे धनंजय! उस अवर्षण काल में पृथिवी रसहीन हो जाती है। सब चतुर्विध प्राणी क्षय को प्राप्त हो जाते हैं। तब सूर्य ताप मानो

तप्त शिखाकृति रूप अनुभूत होता है और अग्निकिरणवत् अनल छटा का सूर्यवमन करने लगता है। तदनन्तर ग्राम, नगर, पर्वत, वृक्ष, काननादि दग्ध हो जाते हैं। समस्त धरती तप्त लौहपिण्डवत् तथा कछुये की पीठ के समान की आकृति धारण कर लेती है।।४०-४५।।

ततो विधातुर्गात्रेभ्यः समुत्पन्ना महाधनाः। आच्छादयन्तोगगनंगर्जितध्वानबन्धुराः॥४६॥
सितपीतारुणश्यामाश्चित्र वर्णाश्च भीषणाः। शैलेभसौधवृक्षादिनानारूपसमन्विताः॥४७॥
ते शताब्दमितं कालं महावृष्टिं वितन्वते। तेनाऽम्भसाशमंयाति सूर्योद्भूतोमहानलः॥४८॥
भूयश्च शतवर्षाणि वर्षन्त्युग्रं महाघनाः। तदम्भसा समुद्वेला विकृतिं यान्तिवार्द्धयः॥४९॥
कल्पान्ताम्बुदनिर्मुक्तं लोकान्व्याप्नोति तज्जलम्।
भूर्भुवःस्वर्महर्लोकानावृणोति तमो महत्।
तदा निमग्ना सलिले मही पातालमूलगा ॥५०॥
अनष्टाकथमप्याऽऽस्तेब्रह्मशक्त्यवलम्बिता। अथनिःश्वाससम्भूतोमारुतोब्रह्मणोऽर्जुन॥५१॥
उत्सारयतितान्सर्वान्कल्पान्तोत्थान्महाघनान्। एवंप्रवृद्धःपवनःशतसम्वत्सरात्मकम्॥५२॥

विधाता की देह से महामेघ उत्पन्न होकर गर्जन करते आकाश को आच्छादित कर लेते हैं। आकाश में यह मेघमाला उत्पातप्रिय रूप (बन्धुर रूप) धारण कर लेती है। तब मेघगण कभी श्वेत, कभी पीत, तो कभी अरुण, श्यामवर्ण प्रतीत होते हैं। वे कभी पर्वत का, हाथी, सौध तथा वृक्षादि नाना रूप धारण करके भीषण हो जाते हैं। तदनन्तर वे शतवर्ष पर्यन्त महावर्षा करते हैं। इस वृष्टि से सूर्य से उद्भूत महाअनल का उपशम हो जाता है। तदनन्तर महामेघगण के पुनः १०० वर्ष वर्षा करते रहने से सागर उद्वेलित होकर विकृत हो जाता है। कल्पान्त मेघ से बरसते जल से सभी लोक व्याप्त हो जाते हैं। तदनन्तरः भूः-भूवः-स्वः तथा महःर्लोक महान्धकार से आवृत रहता है। जल में निमग्ना धरती पातालमूल तक पहुंच जाती है तथा ब्रह्मशक्ति का सहारा लेकर अत्यन्त कष्टपूर्वक जीवन यापन करती है। हे अर्जुन! तत्पश्चात् ब्रह्मा के निःश्वास से उठी वायु से यह कल्पान्त में उठी मेघमाला हट जाती है। तब वायु इतना तीव्र बहता है कि उसकी गति दुर्निवार हो गई रहती है। यह वेगान्वित वायु निरन्तर १०० वर्ष पर्यन्त प्रवाहित रहती है।।४६-५२।।

कालं निरन्तरं वाति दुर्निवाररयोत्थितः। तमुग्रमनिलंहित्वा हरेर्नाभिसरोरुहे॥५३॥
योगनिद्रामवाप्नोति तस्मिन्पाथसिपद्मभूः। योगानद्रानुषक्तस्य यातितस्यजगद्विभोः॥५४॥
तावती शर्वरी पार्थ ! दिनंयावत्प्रमाणकम्। निशायांसमतीतायामुत्थितोवेगवान्पुनः॥५५॥
सृजत्यखिलजन्तून्वै पूर्ववच्छासनाद्धरेः। कल्पेकल्पे समुचितै रूपैः पाति जगद्धरिः॥५६॥
अस्मिन्कल्पे श्वेतवर्णां प्राप्तवान्यज्ञपोत्रिताम्। वराहवपुषा देवो विहरन्नवनीतले॥५७॥
स्वपूर्वनियतावासं प्रपेदे वेङ्कटाचलम्। स्वमिपुष्करिणीतीरेचरंश्चिरमधोक्षजः॥५८॥

तब ब्रह्मा इस उग्र वायु का त्याग करके योगनिद्रा का अवलम्बन लेकर सागर में शयन कर रहे हरि के नाभिकमल का आश्रय लेते हैं। हे पार्थ! योगनिद्रा से अभिभूत जगद्विभु पद्मसंभव ब्रह्मा का जो दिन परिमाण कहा गया है, उतने ही परिमाण की रात्रि व्यतीत हो जाती है। तदनन्तर जब ब्रह्मा की रात्रि सम्यक्तः व्यतीत

हो जाती है, तब हरि के आदेश से ब्रह्मा वेग से उठकर पुनः प्राणीगण का सृजन करते हैं। हे अर्जुन! हरि कल्प-कल्प में वैसा ही वेष धारण करते हैं। जिससे जगत् रक्षित हो। वे वैसे ही वेष को धारण करके जगत्पालन करते हैं। इस श्वेतकल्प में हरि श्वेत यज्ञवराह देह ग्रहण करते हैं। वे इसी श्वेतवराहरूपेण पृथिवीतल पर विचरण करते रहते हैं। वे वराहरूपी अधोक्षज हरि अब अपने पूर्व निवास वेंकटाचल पर सतत् निवास करके सुवर्णमुखरी तीर पर सदैव विचरते रहते हैं।।५३-५८।।

भक्त्या परमया युक्तमपश्यज्जलजासनम्। सम्पूज्य प्रार्थयामास ब्रह्मा तं भूतभावनम्।।५९।।
पुरातनीं निजां स्वामिन्भज दिव्यां तनूमिति। गृहीत्वाऽनुनयं तस्य त्यक्त्वा तां सूकराकृतिम्।।६०।।
अनन्यभजनीयां स्वाम्प्राप विश्वात्मिकां तनुम्। तथा स्थितं गिरौ तत्र कृत्वाऽप्युत्साहमूर्जितम्।।६१।।
द्रष्टुं न शेकुः सर्वेऽपि कालेन बहुनाऽपि च।।६२।।

तदनन्तर भूतभावन हरि ने एक बार ब्रह्मा की परमभक्ति को जानकर उनको दर्शन प्रदान किया। ब्रह्मा ने उनकी सम्यक् पूजा करके प्रार्थना किया। ब्रह्मा ने कहा—"हे स्वामिन्! आप अपना दिव्य स्वशरीर धारण करिये।" हरि ने तब ब्रह्मा की अनुनयपूर्ण प्रार्थना अंगीकार किया तथा अपनी शूकराकृति का त्याग करके अपना अनन्यसेव्य विश्वात्मक देह धारण किया। वे अपने उस शरीर को अत्यन्त उत्साह से उर्जित करके वेंकटाचल पर्वत पर ही निवास करने लगे। हे अर्जुन! अनेक यत्न करने पर भी विभु भगवान् के इस शरीर को देख सकने में कोई समर्थ नहीं हो सका।।५९-६२।।

अर्जुन उवाच

दर्शनस्मरणादीनां हरिरित्थमगोचरः। कथं प्रत्यक्षतां प्राप मानुषाणां महामुने।।६३।।
भाग्यभूतोऽथजगतांयः को वाऽऽराध्यतंविभुम्। इहप्रकाशयामासकथामेतांनिवेदय।।६४।।
हरिकथाश्रवणं दुरितापहं कथयतां सकलागमविद्धवान्।
सुकृतिनां ननु सम्प्रति धुर्यता मुनिवरेण्य! ममाऽद्य समागता।।६५।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीति साहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायां वराहावतारकीर्तनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः।।३६।।

—❁—

अर्जुन कहते हैं—हे महामुने! यदि ये भूतभावन श्री हरि इसी प्रकार से दर्शन तथा स्पर्श से अगोचर हैं, तब मनुष्य किस प्रकार उनका दर्शन प्राप्त कर सकेंगे? यदि भाग्य से इस पृथिवी पर कोई मनुष्य उन विभु की आराधना करता भी है, तब वे श्रीहरि जिस प्रकार से उसे प्रत्यक्ष हो सकें, वह उपाय कहिये। हे मुनियों में वरेण्य! आप अखिल आगमवेत्ता हैं। हरिकथा श्रवण अत्यन्त दुरित का विनाशक है। विशेषतः जो हरिकथा कीर्त्तन करते हैं, वास्तव में वे ही सुकृति हैं। यह मेरा सौभाग्य है। मैं आज ऐसे मुनि के पास उपस्थित हूं।।६३-६५।।

।।षड्त्रिंश अध्याय समाप्त।।

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

अगस्त्य का वेंकटाचलगमन, शंखाभिधान नृप वृत्तान्त

भरद्वाज उवाच

श्रृणु पार्थ ! प्रवक्ष्यामि कथामाश्चर्यकारिणीम्।
यथाऽसौभगवानस्मिञ्छैले प्राप प्रकाशताम्।।१।।

श्रुताभिधानो नृपतिरस्ति हैहयवंशजः। यः प्रजाः स्वा इवचिरंशशासधरणींशुभाम्।।२।।
तस्य पुत्रो गुणनिधिः शङ्खो नाम महीपतिः। पालयामास वसुधांसर्वशास्त्रविशारदः।।३।।
तस्य विष्णौ जगन्नाथेपुण्डरीकायतेक्षणे। बभूव निश्चलाभक्तिःपरित्यक्ताऽन्यसंश्रया।।४।।
देवदेवं जगन्नाथमनन्तं पुरुषोत्तमम्। प्रगाढनिश्चयो नित्यं ध्यायन्नद्भुतवैभवम्।।५।।
चक्रे व्रतानि दानानि पुण्यानि विविधानि च। वेदवेद्यस्यनियतंप्रीत्यर्थम्मधुविद्विषः।।६।।

भरद्वाज कहते हैं—हे पार्थ! भगवान् हरि जिस प्रकार से वेंकटाचल पर आविर्भूत हुये, उस विस्मयकर कथा को कहता हूं। सुनो। हैहयवंशोत्पन्न श्रुताभिधान नामक एक राजा था। वह प्रजागण को अपने पुत्र के समान मानता हुआ सुशोभना धरती का पालन करता था। राजा का सर्वशास्त्र प्रवीण शंखनामक गुणनिधि पुत्र था। वह महीपति शंख भी वसुधापालन किया करता था। राजा शंख ने विषयों से आसक्ति का त्याग कर दिया था। वह एक मात्र पद्म के समान आयत नेत्रों वाले जगन्नाथ विष्णु में ही निश्चला भक्ति रखता था। उसकी प्रगाढ़ भक्ति देवाधिदेव जगन्नाथ अद्भुतवैभव पुरुषोत्तम के प्रति निश्चयात्मिका रूप से थी। वह सदैव उनके ध्यान में रत रह कर वेदवेद्य मधुदानव के शत्रु हरि की प्रीति हेतु नित्य विविध पूजा-दान-व्रतादि करता रहता था।।१-६।।

तमुद्दिश्यैव विदधेवाजिमेधादिकान्क्रतून्। यथोक्तदक्षिणायोगात्प्रीणिताऽशेषभूसुरः।।७।।
इष्टापूर्त्तात्मकं चक्रे कर्मजातमतन्द्रितः। विन्यस्तहृदयो नित्यं केशवे भक्तवत्सले।।८।।
स्मरत्यजस्त्रं गोविन्दं जपत्यच्युतमव्ययम्। पूजयत्यब्जनयनंसङ्कीर्तयति शार्ङ्गिणम्।।९।।
श्रृणोति सततं राजा संसारार्णवतारिणीः।
पौराणिकैः समाख्याताः पवित्रा वैष्णवीः कथाः।।१०।।

उसने उन पुरुषोत्तम के उद्देश्य से यथोक्त दक्षिणा के साथ अश्वमेधादि अनेक यज्ञ करके ब्राह्मणों को प्रसन्न किया था। उसने तन्द्रारहित होकर इष्ट तथा पूर्त्त कर्मों को सम्पन्न करके भक्तवत्सल केशव को हृदय में स्थापित किया था। वह सदा कमलनेत्र शार्ङ्गधनुषधारी अच्युत गोविन्द का नाम स्मरण-जप-पूजा करता था। वह नृप सदैव पुराणवक्तागण के मुख से संसार सागर पार करने में नौका के समान पवित्र वैष्णवी कथा का श्रवण किया करता था।।७-१०।।

ब्राह्मणानर्चतिस्माऽयंहरिप्रीत्यर्थमेवच। इत्थंसर्वात्मनायुक्तोऽप्यश्रान्तःपृथिवीपतिः।।११।।
नाऽपश्यच्छाश्वतैश्वर्यं स्वतन्त्रं पुरुषोत्तमम्। अप्राप्य दर्शनं विष्णोःसर्वयज्ञमयात्मनः।।१२।।

सशोकाक्रान्तहृदयः परां चिन्तामुपागमत्॥१३॥

शङ्ख उवाच

परः सहस्त्रैर्जननैरतीतैर्दुष्कृतं बहु। कृतम्मया यादप्राप्तं हृषीकेशस्य दर्शनम्॥१४॥
उपार्जितानां तपसामनेकैः पूर्वजन्मभिः। अखण्डं हि फलं विष्णोर्दर्शनं मधुघातिनः॥१५॥

कथं नु यायाद्भगवान्विषयं मम नेत्रयोः।
कदावा लभ्यते श्रेयस्तद्वाक्याकर्णनात्मकम्॥१६॥
हा धिङ्मां विहितागस्कं क्रियासाफल्यवर्जितम्।
नारायणकृपादूरं संसारक्लेशगोचरम्॥१७॥

वह राजा हरि की प्रसन्नता हेतु ब्राह्मणों की अर्चना किया करता था। पृथिवीपति शंख इस प्रकार अश्रान्त भाव तथा सर्वान्तःकरण से हरि के प्रति अपने मन को अर्पित कर चुका था। वह शाश्वत ऐश्वर्य पुरुषोत्तम विष्णु को अपनी आत्मा से पृथक् नहीं मानता था। लेकिन इतना अनन्यभक्त होने पर भी उसे यज्ञात्मा विष्णु का दर्शन नहीं मिला। इस बात से उसका हृदय शोकाक्रान्त हो गया। वह प्रबल रूप से चिन्तित होकर सोचने लगा कि "मैंने सहस्त्रों जन्म तक दुष्कृत्य किया था। यही कारण है कि मुझे आज तक श्रीहरि का दर्शन नहीं मिला। मैं इन मधुदैत्यघाती विष्णु के दर्शन से जो वंचित हूं, यह मेरे पूर्वजन्म की अनन्त पापराशि का ही दुष्परिणाम है। अब किस प्रकार से भगवान् विष्णु मेरे नेत्रों के विषय होंगे (दर्शन प्रदान करेंगे) तथा कब मैं उनके मुख से निकले अमृत वाक्यों को सुनकर श्रेय प्राप्त करूंगा? अहा! मेरी अब तक की कोई भी क्रिया सफलीभूत नहीं हो सकी! मैं अपराधी हूं। मुझे धिक्कार है। नारायण की कृपा मुझसे अत्यन्त दूर है। मैं संसार के क्लेशों से ही दुःखी हूं"।।११-१७।।

भरद्वाज उवाच

इति चिन्ताकुलेतस्मिन्राज्ञि जीवितनिःस्पृहे। अदृश्यमूर्तिः सर्वेषांशृण्वतामाहकेशवः॥१८॥

भरद्वाज कहते हैं—यह राजा विष्णु का दर्शन न होने के कारण अत्यन्त चिन्ता से आकुल होकर अपने जीवन से निराश हो गया। तब केशव ने सभी को सुनाते हुये राजा से कहा।।१८।।

श्रीभगवानुवाच

मा शोकस्य वशं यायाः शृणु वक्ष्यामि ते हितम्।
मदेकशरणं साधुं त्वां त्यक्ष्यामि कथं नृप !॥१९॥

अयं वेङ्कटनामाद्रिस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः। वैकुण्ठादपि मे राजन्नावासोऽतिप्रियावहः॥२०॥
तं गत्वा भूधरवरं तव भक्त्यातपस्यतः। गतेसहस्त्रेवर्षाणांयास्याम्यालोकनीयताम्॥२१॥
भवानिवोद्यतोऽगस्त्यो मम दर्शनमञ्जसा। क्व वा संदृश्यते विष्णुरेवमाह चतुर्मुखम्॥२२॥
वृषभाद्रौ हरिर्द्रष्टं लभ्यते नियतात्मभिः। गच्छ तत्रेति मुनये कथयामास पद्मभूः॥२३॥
अम्भोजसम्भवेनेत्थमादिष्टः कुम्भसम्भवः। अञ्जनाद्रौ महावासे तपस्तप्तुं समेष्यति॥२४॥

तस्मिन्महीधरे पुण्ये कृतवासो भवानपि।
आराध्य मां तपोनिष्ठो मम दर्शनमाप्स्यसि॥२५॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे राजन्! तुम शोक के वशीभूत मत हो। मैं तुम्हारे हितार्थ कहता हूं। तुम मेरे प्रति एकनिष्ठ तथा साधु हो। अतः मैं तुम्हारा त्याग कैसे कर सकता हूं? हे राजन्! यह वेंकटाचल त्रैलोक्य प्रसिद्ध है। मुझे वैकुण्ठ से भी यह स्थान अत्यन्त प्रीतिप्रद है। तुमने नाना तप किया है। तुम्हारी भक्ति से आकृष्ट होकर मैं वेंकटाचल आऊंगा। हे राजन्! वहां जाकर तुम तप करो। १००० वर्ष के उपरान्त तुम वहां मुझे प्रत्यक्ष करोगे। महर्षि अगस्त्य भी तुम्हारी तरह मेरे दर्शनार्थ ब्रह्मा के पास गये थे। उन्होंने ब्रह्मा से पूछा कि "कहां विष्णु का दर्शन मिलेगा?" तब पद्मयोनि ने अगस्त्य से कहा—"हे मुनिवर! वृषभाचल जाकर नियतात्मा होकर श्रीहरि का दर्शन मिलेगा। तुम वहां गमन करो।" तदनन्तर कुंभोत्पन्न अगस्त्य पद्मसंभव ब्रह्मा का आदेश पाकर अंजनशैल पर तपस्यार्थ चले गये। तुम भी उस पुण्यमय महागिरि अंजनपर्वत पर जाकर निवास करो। वहां तपस्यारत होकर मेरी आराधना करो। इससे तुमको मेरा दर्शन मिलेगा।।१९-२५।।

भरद्वाज उवाच

इत्याऽऽज्ञप्तोभगवताशङ्खोदानववैरिणा। जगामप्रीतिमतुलांधन्योऽस्मीतिस्वचेतसि॥२६॥
विन्यस्य तनयं वज्रं प्रजापालनकर्मणि। गोविन्ददर्शनापेक्षीनारायणगिरिं ययौ॥२७॥

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—दानव शत्रु श्रीहरि ने नृपति शंख को यह आदेश दिया। उन्होंने अपनी चेतना को मन ही मन धन्यवाद दिया तथा परम प्रेमपूर्वक अपने पुत्र वज्र को प्रजा-पालन का भार देकर नारायण के दर्शनार्थ नारायण गिरि चले गये।।२६-२७।।

तस्यशृङ्गेसमुत्तुङ्गेस्वामिपुष्कारिणींशुभाम्। दिव्यैःपयोभिरापूर्णामपश्यदमृतोपमैः॥२८॥
अनेकसिद्धगन्धर्वदेवर्षिगणसेविताम्। भवतापप्रशमनीं सर्वतीर्थसमाश्रयाम्॥२९॥
जलकाकबकक्रौञ्चहंसकारण्डवाकुलाम्। कुमुदोत्पलराजीवसौगन्धिकमनोहराम्॥३०॥
तां द्रष्ट्वा पद्मिनींदिव्यांतत्तीरेविहितोटजः। तोषितःस्नानपानाद्यैर्निर्विकल्पमनोगतिः॥३१॥
सर्वकर्माणि विन्यस्य जगदीशे जनार्दने॥३२॥
जपध्यानपरो नित्यं तपस्तेपे सुदारुणम्। तस्मिन्नेवमुनिः काले शासनात्परमेष्ठिनः॥३३॥
अगस्त्योऽप्यासससादाद्यं शैलम्मुनिशतावृतः। प्रतीचीं दिशमारभ्यकृतयत्नःप्रदक्षिणे॥३४॥

उन्होंने नारायण पर्वत पर जाकर देखा कि उस गिरिराज के अत्युच्च शृंग पर स्वामिपुष्करिणी विराजित हैं। अमृत जल से यह स्वामिपुष्करिणी परिपूरिता है। अनेक सिद्ध-गन्धर्व-देवर्षिगण निखिल तीर्थों के आश्रय रूप इस स्वामिपुष्करिणी का सेवन कर रहे हैं। यह भवतापहारी है। यहां के तीर्थजल में जलकौये, बक, क्रौञ्च, हंस तथा कारण्डवगण समाकुल हैं तथा कुमुदपद्म एवं उत्पलों की सुगन्धि से यह स्थल अतीव मनोहर हो गया है। नृपति शंख ने दिव्य पद्मिनी को देखकर उसके तट पर पर्णकुटी बनाया तथा निर्विकल्प रूप मन की गति करके स्नान-जलपान से अतिशय प्रीति की प्राप्ति किया। वे जगदीश-जनार्दन के प्रति कर्मरत हो गये तथा जपध्यान तत्पर होकर सतत् अनन्य मन पूर्वक दारुण तपःश्चरण करने लगे। इसी समय महर्षि अगस्त्य परमेष्ठि ब्रह्मा का

आदेश पाकर इसी पर्वत पर आये। वे सैकड़ों मुनिगण से परिवृत होकर शैल की प्रदक्षिणा पूर्व दिशा से आरंभ करके करने लगे। वे पुण्यतीर्थों का दर्शन करते-करते चिरकाल पर्यन्त पर्वत प्रदक्षिणा कर रहे थे।।२८-३४।।

पश्यंस्तीर्थांनिपुण्यानि बभ्रामसुचिरं गिरौ। तत्र तत्रददर्शाऽसौहरिदर्शनलालसान्।।३५।।
विरिञ्चिगुहशक्रेशविष्वक्सेनादिकान्क्रमात्। सनकाद्यांश्चयोगीन्द्रान्नारदप्रमुखानृषीन्।।३६।।
सिद्धगन्धर्वदैतेययक्षराक्षसपन्नगान्। तैस्तैः सम्मान्यमानोऽसौ प्रश्रयप्रियभाषणैः।।३७।।

इस प्रदक्षिणा काल में ऋषि अगस्त्य ने उस गिरि पर सर्वत्र ब्रह्मा, इन्द्र, कार्त्तिकेय, ईश्वर, विष्वक्सेन आदि हरि दर्शनाकांक्षी देवता तथा सनकादि योगीन्द्रों को, नारदादि प्रमुख देवर्षिगण को, सिद्ध, गन्धर्व, दानव, यक्ष, राक्षस, पन्नगों को देखा। उन सबने प्रेमपूर्वक तथा प्रियभाषण से महर्षि अगस्त्य का सम्मान किया।।३५-३७।।

पश्यन्नाश्चर्यभूतानि सर्वाणिविचचार ह। स्नात्वातीर्थेषुसर्वेषुस्कन्दधारादिकेषुच।।३८।।
तत्रतत्रार्चयामासगोविन्दं जगताम्पतिम्। एवभ्रान्त्वागतेऽब्दानांसहस्त्रेमुनिसत्तमः।।३९।।
नाऽपश्यत्पुण्डरीकाक्षं चिन्ताशोकपरोऽभवत्।।४०।।
तस्मिन्काले समाजग्मुर्धिषणोशनसौ पुनः। राजोपरिचरोनाम वसुश्च तमृषीश्वरम्।।४१।।
अस्माकं सफलं जातं जीवितं मुनिसत्तम !। दृष्टो भवान्यदस्माभिर्नारायणइवापरः।।४२।।
ब्रह्मणा लोकनाथेन यदादिष्टा वयं मुने। अच्युतालोकनपरास्तदिदंकथ्यते तव।।४३।।

ऋषि अगस्त्य ने इन विस्मयकर दृश्यों का दर्शन किया तथा इसी प्रकार वहां विचरण करने लगे। उन्होंने पर्वत की कन्दरा में गिर रही जलधारा में तथा अन्य तीर्थों में स्नान किया तथा उन-उन स्थानों में जगत्पति गोविन्द की अर्चना करने लगे। मुनिप्रवर अगस्त्य को इस प्रकार भ्रमणरत रहते १००० वर्ष व्यतीत हो गये, तथापि उनको पुण्डरीक-नयन हरि का दर्शन नहीं मिला। तब मुनिवर अगस्त्य अतीव चिन्ताग्रस्त हो गये। उसी समय बृहस्पति, भार्गव, उपरिचर वसु इन ऋषिप्रवर अगस्त्य के यहां आये तथा उन्होंने कहा—"हे मुनिप्रवर! आज हमारा जीवन सफल हो गया। क्योंकि हमने द्वितीय नारायण के समान आपका दर्शन प्राप्त किया। हे मुनिवर! हम सब विष्णु के दर्शन की अभिलाषा वाले थे। तभी लोकनाथ ब्रह्मा ने जो आदेश हमें दिया था, आपसे वह सब कहते हैं।।३८-४३।।

अस्ति दक्षिणदिग्भागे वेङ्कटोनाम भूधरः। श्वेतद्वीपादपि हरेरावासोऽयमभीप्सितः।।४४।।
तस्मिन्गिरावगस्त्यस्य शङ्खस्य च महीपतेः।
दर्शयिष्यति गोविन्दो निजरूपं जगद्गुरुः।।४५।।

ब्रह्मा ने कहा था—श्वेतद्वीप के दक्षिण में वेंकट नामक एक पर्वत है। यही शैल हरि का ईप्सित आवास भी है। इसी पर्वत में अगस्त्य ऋषि तथा महीपति शंख रहते हैं। जगतगुरु गोविन्द यहीं उन लोगों को अपने स्वरूप का दर्शन प्रदान करेंगे।।४४-४५।।

तदानीं सर्वदेवानामृषीणां यक्षरक्षसाम्। अस्माकं देवदेवस्य दर्शनं सम्भविष्यति।।४६।।
अचिरेणैवतद्भावितत:सन्त्यक्तकल्मषाः। अन्वेष्टंगच्छताऽगस्त्यंतस्मिन्नारायणाचले।।४७।।

इत्याऽऽज्ञप्ता वयं धात्रा समागम्याऽत्रभाग्यतः। दृष्टवन्तोमहाभागंभवन्तंभूरितेजसम्॥४८॥
भवतासहितागत्वास्वामिपुष्करिणीतटे। तमप्यालोकयिष्यामःशङ्खंभागवतोत्तमम्॥४९॥

"तब समस्त देवता, मुनिगण, यक्ष, राक्षस तथा मैं ब्रह्मा सभी देवदेव का दर्शन प्राप्त करेंगे। अतः आप लोग अगस्त्य के अन्वेषणार्थ नारायणचल जायें।" हे ऋषिवर! ब्रह्मा का आदेश लेकर हम भाग्य से यहां पहुंचे तथा प्रभूत तेज सम्पन्न आप महाभाग का दर्शन प्राप्त किया। अब आपके साथ स्वामीपुष्करिणी जाकर हम सब उन महाभागवतोत्तम राजा शंख का दर्शन प्राप्त करेंगे।।४६-४९।।

भरद्वाज उवाच

गीष्पतिप्रमुखैरित्थमादिष्टःकुम्भसम्भवः। शोकजालम्परित्यज्यययौतैःसहितोद्रुतम्॥५०॥
स ददर्श महावृक्षान्फलपुष्पभरानतान्। प्ररूढशाखानिकरच्छायाच्छादितदिक्तटान्॥५१॥
सिंहदन्तावलव्याघ्रवराहमहिषादिकान्। मृगानालोकयामास पन्थानंचाऽन्तरान्तरा॥५२॥
तैस्तदानीं ददृशिरेसानवोऽप्यम्वुभृद्भृतः। सुवर्णरौप्यताम्रादिशोभितास्तत्र तत्रतु॥५३॥
उच्चलच्छीकरासारनिर्वाहितदिवौकसः। वेगोद्धृतशिला दृष्टा शतशो गिरिनिर्झराः॥५४॥

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—ऋषि अगस्त्य ने बृहस्पति आदि प्रमुख देवगण का आदेश होने पर सभी शोक त्याग दिया तथा शीघ्रता से सबके साथ वहां से चल पड़े। अगस्त्य ने वहां जाकर देखा कि महावृक्ष पुष्प तथा फलभार से अवनत हो रहे हैं। इन सभी महावृक्षों से शाखायें निकली हैं, वे सभी दिशाओं तथा तट को आच्छादित कर रही हैं। सिंह-हाथी-व्याघ्र-वराह-मृग-महिषादि मार्ग में विचर रहे हैं। तदनन्तर अगस्त्य आदि प्रधान ऋषि इस पर्वत की घाटी में पहुंचे। वहां देखते हैं कि मेघमाला इस घाटी का आश्रय ले रही है। घाटी कहीं स्वर्ण, कहीं चांदी तो कहीं ताम्रवर्ण से रंजित है। पर्वतों से उच्छलित होते जलकण प्रवाहरूप में परिणत हो रहे हैं। देवगण इस प्रवाह में वाहित हो रहे हैं। कहीं-कहीं निर्झर प्रवाह के वेग से सैकड़ों शिलायें निर्मूल हो रहीं हैं।।५०-५४।।

तेषामापादयामास प्रमोदं मन्दमारुतः। कमलामोदसम्वाही विचरन्गिरिसानुषु॥५५॥
शुकानां कोकिलानाञ्च तदा शुश्रुविरे गिरः॥५६॥
तत्र तत्र समासीनान्विस्तीर्णासु दृषत्सु ते। सिद्धानपश्यन्कृष्णस्य गायतो गुणवैभवम्॥५७॥

कहीं पर मन्द मारुत कमल का मकरन्द ग्रहण करके उसे पर्वत की घाटी में प्रवाहित करके उनका प्रीतिवर्द्धन कर रहा है। कहीं पर तोता तथा कोकिलाओं का मनोहर सुन्दर शब्द सुनाई पड़ रहा है तो कहीं सिद्धगण विस्तीर्ण शिलातल पर बैठकर प्रभु कृष्ण के गुण-वैभव का गायन कर रहे हैं।।५५-५७।।

अगस्त्यप्रमुखाःसर्वेपरिक्रम्यमुनीश्वराः। स्वामिपुष्णारिणींदिव्यांददृशुर्विमलोदकाम्॥५८॥
तत्तीरे विहितावासमपश्यच्छङ्खभूपतिम्। वाङ्मनःकायजं कर्म सन्निवेश्य स्थितं हरौ॥५९॥
स तानालोक्य सहसा मुनीन्द्रान् संशितव्रतान्।
यथोक्तमकरोत्पूजां प्रणामस्तुंतिपूर्विकाम्॥६०॥

आसीनास्तत्र ते सर्वे सम्भाव्याऽन्योन्यमुत्सुकाः।
गोविन्दकीर्तनपराः कृतार्थत्वं प्रपेदिरे॥६१॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायां श्रीवेङ्कटाचलम्प्रति शङ्खागस्त्याद्या-गमनवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः।।३७।।

तदनन्तर अगस्त्य ने पर्वतघाटी की परिक्रमा करके विमलजल वाली दिव्य स्वामिपुष्करिणी का दर्शन किया तथा देखा कि राजा शंख इस स्वामिपुष्करिणी तीर पर निवास कर रहे हैं। वे वाक्-मन तथा कायज कर्म का हरि को अर्पण करके अवस्थित हैं। भूपति शंख ने संशितव्रत उन ऋषिगणों को आते देखकर उनको प्रणाम किया तथा स्तुति से उनका यथाविधान पूजन किया। तदनन्तर सभी वहां बैठ गये। वे लोग परस्पर वार्त्तालाप तथा गोविन्द नाम कीर्त्तन तत्पर होकर चरितार्थता को प्राप्त हो गये।।५८-६१।।

।।सप्तत्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

अगस्त्य तथा शंख के समक्ष भगवान् का आविर्भाव, विष्णु की अचल भक्ति तथा प्रार्थना का वर्णन, वेंकटाचल माहात्म्य

भरद्वाज उवाच

तेषां हरौ जगन्नाथे समावेशितचेतसाम्। दिनत्रयं गतं तत्र पूजास्तोत्रपरात्मनाम्॥१॥
तृतीये दिवसे प्राप्ते ते सर्वे निद्रिता निशि। अन्तेचतुर्थयामस्य ददृशुः स्वप्नमुत्तमम्॥२॥

भरद्वाज कहते हैं—उन सभी ने वहां जगत्पति हरि में चित्त अर्पित करके पूजा तथा स्तोत्र पाठ किया। इस प्रकार उन सबने तीन दिन व्यतीत किया। तदनन्तर तीसरे दिन की रात्रि आई तथा सब लोगों ने निद्रा के क्रोड़ में आश्रय ग्रहण किया। इस तृतीय दिवस के समय रात्रि के चतुर्थ प्रहर में अर्थात् रात्रि के अन्तकाल में उन्होंने एक उत्तम स्वप्न देखा।।१-२।।

शङ्खचक्रगदापाणिं प्रसन्नं पुरुषोत्तमम्। वरदानाय सम्प्राप्तमपश्यन्स्मेरलोचनम्॥३॥
उत्थायमुदितात्मानोगृहान्निर्गत्यपावने। स्वामिपुष्करिणीतोयेसस्नुर्विधिवदादरात्॥४॥

विधाय विधिवत्कर्म सर्वेदिनमुखोचितम्। गृहान्प्रत्याययुर्देवमाराधयितुमच्युतम्॥५॥
सद्यः श्रेयस्करं मार्गे निमित्तं पक्षिसूचितम्। दृष्ट्वा प्रसाददेवस्य करस्थं मेनिरे तदा॥६॥

वे देखते हैं कि पुरुषोत्तम श्रीहरि प्रसन्न होकर शंख-चक्र-गदाधारी होकर तनिक मुस्कान युक्त स्थिति में वरदानार्थ उनके पास आ रहे हैं। उन्होंने यह स्वप्न देखकर आगे शयन नहीं किया। वे सभी उठ गये तथा घर से बाहर निकले। उन्होंने पुण्यजला स्वामिपुष्करिणी के तट पर आकर आदरपूर्वक उस पुष्करिणी जल में यथाविधि स्नान किया। उन्होंने प्रातःकालीन समस्त कार्यों को विधिपूर्वक सम्पादित किया तथा अच्युत देव के आराधनार्थ अपने गृह वापस आये। (गृह=आश्रम में आये)। जब वे वापस लौट रहे थे, तब मार्ग में पक्षियों ने सद्यः श्रेयस्कर निमित्त (शकुन) प्रदर्शित किया। सबने यह शकुन देखकर सोच लिया कि अब हरिकृपा प्राप्तिरूपी सिद्धि दूर नहीं है। प्रत्युत करस्थ हैं।।३-६।।

ततस्त्रिलोककर्तारंपूजयित्वा जनार्दनम्। तुष्टुबुर्विविधैः स्तोत्रैः पवित्रैर्वेदवर्णितैः॥७॥
स्तोत्रावसाने कौन्तेय मुनीन्द्रःकुम्भसम्भवः। जजापशङ्खसहितो मन्त्रमष्टाक्षरं हरेः॥८॥
इत्थं तेषां जगत्स्वामिन्यच्युतेऽर्पितचेतसाम्। अग्रभागेप्रादुरभूदेकं तेजो महाद्भुतम्॥९॥
अनेककोटिसङ्ख्यानामादित्येन्दुहविर्भुजाम् ।
एकीभूयाऽम्बरतले ज्योतिर्जालमिव स्थितम्॥१०॥
तत्तेजो वीक्ष्य ते सर्वेऽमितान्ताश्चर्यगोचराः। दध्युर्नारायणंदिव्यंपरमानन्दविग्रहम्॥११॥

इसके पश्चात् उन लोगों ने त्रैलोक्य रचयिता जनार्दन की पूजा किया तथा देववर्णित विविध पवित्र स्तुतिवाक्य से स्तव करने लगे। हे कौन्तेय! ऋषिगण का स्तोत्र पाठ सम्पन्न हो जाने पर महर्षि अगस्त्य भूपति शंख के साथ श्रीहरि का अष्टाक्षर मन्त्र जप करने लगे। उन्होंने इस प्रकार से जगन्नाथ अच्युत को चित्तार्पण कर दिया। तभी उनके समक्ष एक अद्भुद् महातेज प्रादुर्भूत हो गया। उस तेजोदर्शन से लगने लगा मानो अनेक कोटिसंख्यक अग्नि, चन्द्र तथा दिवाकर उदित हो गये तथा वे सब तेजोराशि एकत्र होकर मिलित हो गये हैं। इस प्रकार से आकाश में वह तेज स्थित हो गया। इन दोनों ने, भूपति शंख तथा महामुनि अगस्त्य ने, इस तेज का दर्शन किया। वे विस्मित होकर अब परमानन्दविग्रह दिव्य प्रभु नारायण के ध्यान में तत्पर हो गये। यह इन दोनों को ध्यान योग से लक्षित होने लगा।।७-११।।

वाङ्मानसपथातीतं विश्रुतैश्वर्यभासुरम्। सहस्रनेत्रं साहस्रबाहुपादैः समन्वितम्॥१२॥
तप्तकार्तस्वरनिभस्फुरत्कान्तिमनोहरम्। दंष्ट्राकरालं दुर्दर्शं वमन्तं दहनच्छटाः॥१३॥
कास्तुभेन विराजन्तं दधानमुरसिश्रियम्। अविचिन्त्यमनाद्यन्तमत्यन्तभयदायकम्॥१४॥
प्रकाशयन्तं ब्रह्माण्डं सर्वमात्मनि सर्वगम्। अगस्त्यशङ्खप्रमुखास्ते सर्वे हृष्टचेतसः॥१५॥
तमालोक्य जगन्नाथं भूयोभूयो ववन्दिरे। भ्रमन्ति लोकरक्षार्थमायुधानि तदा हरेः॥१६॥
निजतेजोबलोपेतान्याजग्मुस्तं निषेवितुम्। चक्रमर्कप्रभं दिव्या गदाखड्गश्च नन्दकः॥१७॥
पुण्डरीकं चोग्ररवः पाञ्चजन्यः शशिप्रभः। तदा ब्रह्माण्डमखिलं पूरयामास निर्भरः॥१८॥

पाञ्चजन्यस्य निनदः सर्वासुरभयङ्करः। पाञ्चजन्यध्वनिं रुत्वानितान्ताश्चर्यभीषणम्॥१९॥
आययुर्देवताः सर्वाः स्वंस्वंवाहनमास्थिताः। ब्रह्मारुद्रःशतमखःसनकाद्याश्चयोगिनः॥२०॥
वसिष्ठमुख्या मुनयोगन्धर्वारगकिन्नराः। विष्वक्सेनोगरुत्मांश्चविष्णुभृत्याजयादयः॥२१॥
सरूपाश्चैव ये नित्याः श्वेतद्वीपनिवासिनः। सुमनोद्रुमसम्भूता सुमनोवृष्टिरद्भुता॥२२॥

इन दोनों ने देखा कि वाक्य तथा मन से अतीत विख्यात विभूति, भास्वर, सहस्रनेत्र, सहस्रबाहु, सहस्रपाद, तप्तकांचन के समान, प्रदीपकान्ति, मनोहर, भीषण दाढ़ों वाले, दुर्दर्श, अनलकान्ति का वमन करने वाले, कौस्तुभ युक्त वक्ष पर लक्ष्मी को धारण करने वाले, अचिन्त्य, अनादि, अनन्त, अत्यन्त भयप्रद, ब्रह्माण्ड का प्रकाशन करने वाले, सर्वात्मक, सर्वत्रगमन करने वाले श्रीहरि उनके समक्ष उपस्थित हैं। अगस्त्य तथा शंखादि प्रधान मुनिगण जगन्नाथ का दर्शन पाकर अत्यन्त प्रसन्न अन्तःकरण से बारम्बार उनकी वन्दना करने लगे। हरि के जो सभी अस्त्र समूह अपने-अपने तेज तथा बल से दृप्त होकर लोकरक्षार्थ त्रैलोक्य में विचरण करते हैं, वे सभी उन हरि की सेवा के लिये वहां तत्काल उपस्थित हो गये। वहां अर्क (सूर्य) समप्रभ चक्र, दिव्य कौमोदकी गदा, नन्दक खड्ग, कमल तथा उग्र घोषकारी चन्द्रमा के समान प्रभावाले पाञ्चजन्य शंख आदि शस्त्र एकनिष्ठ होकर अखिल ब्रह्माण्डरूपी हरि की पूजा करने लगे। पाञ्चजन्य की ध्वनि से दानवगण भी भयभीत हो गये। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादि सुरगण ने इस अतीव आश्चर्यात्मक तथा भीषण शंखनाद सुना तथा अपने-अपने वाहन पर बैठकर वहां आ गये। सनकादि योगी, वसिष्ठादि प्रमुख मुनि, गन्धर्व-सर्प-किन्नर-विष्वक्सेन-गरुड़, विष्णु के जय-विजयादि पार्षद तथा श्वेतद्वीपवाली समरूपी निवासी भी वहां आ गये। वृक्षों से पुष्पों की अद्भुद् वर्षा होने लगी।।१२-२२।।

पपात मेदुरामोदमोदिताशेषमानसा। ननृतुर्दिव्यसुदृशो जगुः किन्नरपुङ्गवाः॥२३॥
तुष्टुवुर्हर्षतरलाः सुरगन्धर्वचारणाः। दृष्ट्वा ते पुण्डरीकाक्षं प्रसन्नं भक्तवत्सलम्॥२४॥
प्रणम्य तोषयामासुः साष्टाङ्गं विविधैः स्तवैः॥२५॥

मनोहर नेत्रों वाले दिव्य किम्पुरुषगण गम्भीर आमोदित होकर मुदित मन से गायन करने लगे। देव-गन्धर्व तथा किन्नर हर्षित तथा प्रफुल्लित होकर स्तुति करने लगे। तब ब्रह्मा आदि देवताओं ने प्रसन्न मुद्रा वाले पुण्डरीकाक्ष श्रीहरि का दर्शन पाकर उनको विविध साष्टांग प्रणाम किया तथा विविध स्तवों से उनकी स्तुति करने लगे।।२३-२५।।

ब्रह्मादय ऊचुः

जय विष्णो कृपासिन्धो जय! तामरसेक्षण !।
जय लौकैकवरद जय भक्तार्तिभञ्जन !॥२६॥

ब्रह्मा आदि देवता कहते हैं—हे विष्णु! आपके नेत्र ताम्र के समान अरुण वर्ण हैं। हे कृपासिन्धु! आपकी जय हो। हे विभु! आप भक्तों की आर्त्ति का हरण करते हैं। आप ही समस्त लोकों को एकमात्र वर देने वाले हैं।।२६।।

अनन्तमक्षरं शान्तमवाङ्मनसगोचरम्। को वा भवन्तं जानाति चिदानन्दमयात्मकम्॥२७॥

अणोरणुतरं स्थूलात्स्थूलं सर्वान्तरस्थितम्। त्वमामनन्ति पुरुषंप्रकृतेः परमच्युतम्॥२८॥
वेदान्तसाररूपं त्वां सर्वान्तर्बाह्यवर्तिनम्। को हि वर्णयितुं शक्तो मायायत्तेषु देहिषु॥२९॥
भवदीयमिदं रूपं दृष्ट्वाऽतिभयदायकम्। भयोद्विग्ना वयं सर्वे शान्तं रूपं भजस्व ह॥३०॥

हे विष्णु! आप अनन्त, अपार, शान्त तथा मन एवं वाणी से अगोचर हैं। आपको कौन जान सकता है? आप अणु से भी सूक्ष्म हैं। आप सब प्राणीगण के अन्तर में विराजमान रहते हैं। मनीषीगण आपको प्रकृति के परे, अच्युत परमपुरुष कहते हैं। आप वेदान्त के साररूप हैं तथा सबके वाह्याभ्यन्तर में विराजित रहते हैं। हम तो माया से संचालित हैं। अतः कौन आपके स्वरूप का वर्णन कर सकता है? हम आपके अत्यन्त भीतिप्रद इस रूप का दर्शन पाकर अत्यन्त भय से उद्विग्न हो रहे हैं। अतएव आप कृपापूर्वक शान्तरूप धारण करें।।२८-३०।।

भरद्वाज उवाच

इति स्तुतो विरिञ्च्याद्यैः प्रसन्नो गरुडध्वजः। मेघघोषप्रतिमया वाचा सादरमब्रवीत्॥३१॥

भरद्वाज कहते हैं—भगवान् गरुड़ध्वज जनार्दन पद्मयोनि आदि प्रमुख देवगण से स्तुत होकर प्रसन्न हो गये तथा वे आदरपूर्वक अपनी मेघ गंभीर वाणी में कहने लगे।।३१।।

श्रीभगवानुवाच

भयावहामिमांमूर्तिमुत्सृज्याऽहंप्रियावहम्। शान्तंरूपंभजिष्यामिमांपश्यतनिराकुलाः॥३२॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्हितो भूत्वा तस्मिन्नेव क्षणान्तरे। विमानेरत्नखचिते बभूव सुखदर्शनः॥३३॥
चन्द्रबिम्बाननः शान्तो नीलोत्पलदलद्युतिः। सुवर्णवर्णवसनो रत्नभूषणभूषितः॥३४॥
खड्गचक्रगदापद्मलसत्करचतुष्टयः। तमालोक्य रमाकान्तं भूयो भूयो ववन्दिरे॥३५॥
सन्तोषयित्वा ब्रह्मादीनभीष्टप्रतिपादनैः। अवोचद्विनयानम्रमगस्त्यं मुनिपुङ्गवम्॥३६॥

श्रीभगवान् कहते हैं —"हे पुत्रो! मैंने अब अपनी इस भयप्रद मूर्त्ति का त्याग करके शान्तमूर्त्ति धारण कर लिया। सब भयरहित तथा आकुलता रहित होकर उसका अवलोकन करो।" हरि यह कहकर क्षणकाल हेतु अन्तर्हित हो गये। तदनन्तर पुनः उन लोगों के समक्ष प्रकट हो गये। अब उनका मुख चन्द्रविम्ब के समान शान्त था। वे तब रत्नजटित विमान पर बैठे सुखदर्शन रूप से प्रकट हुये थे। वे नीलकमलवत् द्युति वाले थे तथा उनके वस्त्र स्वर्णवर्ण के थे। वे रत्नादि भूषण भूषित थे। उनके चारों हाथों में शंख-चक्र-गदा-पद्म विराजित था। ब्रह्मा आदि देवताओं ने इन रमापति का यथेच्छ दर्शन किया तथा उनकी वन्दना करने लगे। भगवान् रमापति ने भी इन देवगण को उनका अभीष्ट वर देकर सन्तुष्ट किया तथा भगवान् विनय-नम्रपूर्ण वाणी से मुनिप्रवर अगस्त्य से कहने लगे।।३२-३६।।

श्रीभगवानुवाच

त्वं मुनीन्द्र! व्रतैर्घोरैश्शीर्णैर्माम्प्रति सम्प्रति।
परिक्लिष्टोऽसि दास्यामि वरांस्तेऽभीप्सितान्वद॥३७॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे मुनीन्द्र! सम्प्रति आप मेरी प्रसन्नता हेतु घोर व्रताचरण करके श्रान्त हो गये हैं। अतः मैं आपको अभीष्ट वर प्रदान करूंगा।।३७।।

भरद्वाज उवाच

निशम्यवाक्यंश्रीभर्तुःप्रणम्यचपुनःपुनः। सरोमाञ्चितसर्वाङ्गःकुम्भजन्मावचोऽब्रवीत्।।३८।।

भरद्वाज कहते हैं—तदनन्तर कुम्भज अगस्त्य ने कमलावल्लभ भगवान् का वचन सुनकर उनको बारम्बार प्रणाम किया तथा रोमांचित होकर कहने लगे।।३८।।

अगस्त्य उवाच

यद्धुतं यत्तपस्तप्तं यदधीतं श्रुतं मया। तत्सर्वं सफलं जातमादृतोऽस्मि यतस्त्वया।।३९।।

एषोऽहमेव धर्मात्मा त्रिषु लोकेष्वपि प्रभो !।
त्वां विचिन्वन्तमधुनामामन्विष्यागतोऽसि यत्।।४०।।

त्वत्प्रसादात्पुरैवाऽहंप्राप्ताखिलमनोरथः। नपश्यामिविचिन्त्यापिप्राप्यंसम्प्रतिमाधव।।४१।।

तथापिचापलादेतत्तवपिज्ञाप्यते प्रभो !। त्वत्पादाम्बुजयोर्भक्तिमेवं कुरुनिरन्तरम्।।४२।।

अवधारय चैतत्त्वं सुरप्रार्थनया मया। नदासुवर्णमुखरीस्नाताघौघविनाशिनी।।४३।।

सा भवच्छैलकटकसमासन्ना समागता। तां कृतार्थय लोकेश ! त्वदनुग्रहवृत्तिभिः।।४४।।

सुवर्णमुखरीतोये स्नात्वा ये वेङ्कटे स्थितम्।
पश्यन्ति भुक्तिमुक्त्योस्तुभूयासुर्भाजनानि ते।।४५।।

अल्पायुषो नरा मूढाज्ञानयोगपरिच्युताः। न शक्नुवन्तित्वांद्रष्टुंव्रताध्ययनकर्मभिः।।४६।।

सदाऽस्मिन्नास्थितः शैलेसर्वेषांचजगद्गुरो। प्रसादसुमुखोदेवकांक्षितार्थप्रदोभव।।४७।।

अगस्त्य कहते हैं—हे प्रभो! आपने मेरा जो आदर किया है, इससे मुझे सब कुछ मिल गया। मैंने जो होम, तप, अध्ययन तथा शास्त्रश्रवण किया है, आज वह सब सफल हो गया। आज से मैं तीनों लोक में धर्मात्मा रूप से माना जाने लगा। मैंने आपका अन्वेषण किया था। सम्प्रति आज आप मेरा अन्वेषण करते यहां आ गये। इससे आपकी कृपादृष्टि के कारण मेरे समस्त मनोरथ पहले ही सफल हो गये। हे माधव! अब मैं विचार करके भी यह नहीं समझ पा रहा हूं कि मुझे क्या मांगना चाहिये! हे प्रभो! तथापि चापल्यवशात् मैं आपसे मांगता हूं। आप यह करें कि आपके चरणकमलद्वय के प्रति मेरी भक्ति सदैव विद्यमान रहे। हे लोकेश! तथापि मैं देवताओं की प्रार्थना के अनुसार निवेदन करता हूं, आप श्रवण करिये। पुण्यप्रदा सुवर्णमुखरी नदी इस पर्वत पार्श्व के निकट आकर प्रवाहित हो तथा उसमें स्नान करने वालों का पापपुंज नष्ट हो जाये। आप अपनी कृपावृत्ति द्वारा इनको कृतार्थ करिये। हे देवेश! आप यहां निवास करिये तथा जो सुवर्णमुखरी जल में स्नान करें, वेंकटशैलस्थ आपका दर्शन करें, वे भक्ति-मुक्ति के अधिकी हो जायें। ज्ञान-योग रहित अल्पायु मनुष्य व्रत तथा अध्ययन आदि द्वारा भी आपका दर्शन नहीं पाते। हे जगद्गुरु! आप इस शैल पर सदा निवास करके सबके प्रति कृपा करके प्रसन्न हों तथा उनको अभीष्ट वरदान दें।।३९-४७।।

श्रीभगवानुवाच

यत्प्रार्थितं त्वया विप्र ! तत्तथैव भविष्यति। नूनमप्रतिमालाकेमयिभक्तिःकृत्वात्वया॥४८॥
जाह्नवीवनदी सेयंसुवर्णमुखरीमुने। स्यादाशास्यासुराणांच वाञ्छितश्रीविधायिनी॥४९॥
स्वामिपुष्करिणीचेयंनदीमूर्त्यासमन्विता ।
सङ्क्रमिष्यति तां दिव्यां नदीं तीर्थौघसंश्रयाम्॥५०॥
वैकुण्ठनाम्नि शैलेऽस्मिन्नद्यप्रभृति सर्वदा। कृतावासो भविष्यामि मुने प्रार्थनयातव॥५१॥

भगवान् उत्तर देते हैं—हे विप्र! आपने इन तीनों लोकों में मेरे प्रति अप्रतिम भक्ति प्रदर्शित किया है। मैं निश्चित रूप से कहता हूं कि आपने जो प्रार्थना किया है, वही होगा। हे मुनिवर! यह सुवर्णमुखरी नदी जाह्नवी गंगा के ही समान होगी तथा यह देवताओं को अभीष्ट समृद्धि प्रदान करके आशा नाम से पुकारी जायेगी। सुवर्णमुखरी नदी रूपी स्वामिपुष्करिणी मूर्त्ति तो निखिल तीर्थाश्रय स्वरूप मन्दाकिनी नदी का भी पवित्रता में अतिक्रमण कर लेगी। हे मुनिवर! मैं आपकी प्रार्थना के अनुसार आज से ही इस पर्वत में निवास करूंगा। इस पर्वत का नाम भी वैकुण्ठ पर्वत होगा।।४८-५१।।

सुवर्णमुखरीस्नानक्षालिताघौघकर्दमाः। अस्मिन्वैकुण्ठशैलेमां ये पश्यन्तिसमाहिताः॥५२॥
भुवि पुत्रादिसम्पन्नाः सर्वेश्वर्यसमन्विताः। मृतास्त्रिविष्टपे भोगानाकल्पमनुभूय च॥५३॥
पुनरावृत्तिरहितंकेवलानन्दभासुरम्। मत्पदं समवाप्स्यन्तिनाऽत्र कार्या विचारणा॥५४॥
मां द्रष्टुमागतान्सर्वान्प्रतीक्ष्यामीप्सितैः शुभैः।
योजयिष्यामि सततं त्वद्वचो गौरवान्मुने !॥५५॥
पुत्रार्थिनांबहून्पुत्रान्धनानिचधनार्थिनाम् ।
तथैवाऽऽरोग्यकामानां रोगशान्तिं गरीयसीम्॥५६॥
तीव्रापत्परिभूतानांतथैवापन्निवारणम्। दास्याम्यभीप्सितान्भोगान्दुर्लभानपिसर्वदा॥५७॥
ये यान्कामानपेक्ष्येह प्रेक्षन्तेमांसमागताः। अवाप्नुवन्तितेसर्वेतांस्तान्कामान्नसंशयः॥५८॥
स्थितावायत्रकुत्राऽपिमांस्मरन्तिनरोत्तमाः। तेसर्ववाञ्छितांसिद्धिंलभन्तेमत्प्रसादतः॥५९॥

जो लोग सुवर्णमुखरी में स्नान करके पाप से रहित होकर समाहित चित्त से इस पर्वत पर मेरा दर्शन करेंगे, वे पृथिवी पर पुत्र-पौत्रादि तथा समस्त ऐश्वर्य सम्पन्न रहेंगे। वे मृत होकर कल्पपर्यन्त स्वर्गसुखानुभव करेंगे। वे पुनरावृत्ति रहित होकर मेरा आनन्दमात्र भास्वर पद प्राप्त करेंगे। इस विषय में विचार-वितर्क की आवश्यकता ही नहीं है। हे मुनिवर! आपका वाक्यगौरव स्थापित रखने के दृष्टिकोण से मैं अपने दर्शनाभिलाषी समागत मनुष्यगण को शुभदृष्टि द्वारा दर्शन दूंगा तथा उनको सतत् श्रेयस्कर कार्य में नियुक्त करूंगा। मेरे दर्शन की आकांक्षा वाले पुत्रार्थी मनुष्य को पुत्र, धनार्थी को धन, आरोग्यार्थी को अत्युत्तम रोगशान्ति, तीव्र आपत्तिग्रस्त को विपद्नाशिनी शक्ति प्रदान करूंगा। किम्बहुना, जो जैसे भोग की कामना करेगा, दुर्लभ होने पर भी मैं सतत् वही भोग उसे प्रदान करूंगा। यहां पर जो मनुष्य जिस कामना के कारण मेरे दर्शनार्थ आयेगा, वह उन-उन

अभीष्ट की प्राप्ति करेगा। इसमें सन्देह नहीं है। यहां की तो बात ही क्या? जो कहीं भी रहकर मेरा स्मरण करेगा, वह मेरी कृपा से वहीं अपना अभीष्ट लाभ कर लेगा।।५२-५९।।

भरद्वाज उवाच

इत्युक्त्वा तंमुनिंदेवः शङ्खमालोक्यभूपतिम्। शृण्वतांब्रह्ममुख्यानामिदंवचनमब्रवीत्॥६०॥

ऋषि भरद्वाज कहते हैं—भगवान् विष्णु ने इस प्रकार अगस्त्य से कहकर अपने वाक्य को समाप्त किया। तदनन्तर उन्होंने ब्रह्मादि देवता तथा मुनिगण के समक्ष राजा शंख को देखकर कहना प्रारंभ किया।।६०।।

श्रीभगवानुवाच

प्रीतोऽस्मि शङ्ख ! भक्त्याते वृणीष्वाऽभीप्सितं वरम्।
ददामि वरदोऽहं ते क्रशिष्ठस्य तपस्यतः॥६१॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे शंख! तुम्हारी भक्ति से मैं प्रसन्न हो गया। अब इच्छित वर मांगो। देखता हूं कि कठोर तप के कारण तुम्हारा शरीर कृश हो गया है। मैं तुम्हारा वर प्रदाता हूं।।६१।।

शङ्ख उवाच

न याचेऽन्यन्महाबाहो ! त्वत्पादाम्बुजसेवनात्।
याम्प्राप्नुवन्ति त्वद्भक्तास्तां याचे गतिमुत्तमाम्॥६२॥

राजा शंख कहते हैं—हे महाबाहु! मैं आपकी चरण सेवा के अतिरिक्त कोई वर नहीं चाहता, आपके भक्त जो गति प्राप्त करते हैं, मैं उसी उत्तम गति की याचना करता हूं।।६२।।

श्रीभगवानुवाच

यत्प्रार्थितं त्वया शङ्ख ! तत्तथैव भविष्यति। मत्सेवायोगभव्यानामलभ्यंकिमुविद्यते॥६३॥

आकल्पमिन्द्रलोकस्थो ह्यप्सरोगणसेवितः।
भुक्त्वा बहुविधान्भोगांस्ततो मल्लोकमेष्यसि॥६४॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे शंख! तुमने जो प्रार्थना की है, वही होगा। जो सतत् मेरी सेवा में तत्पर रहते हैं, उनके लिये अप्राप्त कुछ भी नहीं है। तुम आज से कल्पकाल पर्यन्त अप्सराओं से घिरे रहकर इन्द्रलोक में निवास करो। वहां विविध भोगों को भोगकर तदनन्तर मेरा लोक प्राप्त होगा।।६३-६४।।

एवं ददौ वरानिष्टाञ्छङ्खाय पृथिवीपते !। नारायणो जगद्योनिर्भजतां कल्पभूरुहः॥६५॥

ततो ब्रह्मादिकान्सर्वान्विसृज्य कमलेक्षणः। संस्तूयमानसैर्भक्त्यातत्रैवाऽन्तर्दधेप्रभुः॥६६॥

भरद्वाज कहते हैं—हे पृथिवीपति! तदनन्तर भक्तों के कल्पतरु रूप कमलनयन जगद्योनि नारायण ने राजा शंख को यह वांछित वर प्रदान किया तथा ब्रह्मादि देवताओं की श्रद्धा के साथ मन ही मन स्तुति करके विदा किया। तब वे स्वयं भी अन्तर्हित् हो गये।।६५-६६।।

भरद्वाज उवाच

वेङ्कटाद्रेःप्रभावोऽयमाख्यातोभवतेऽर्जुन !। नराःपापैः प्रमुच्यन्तेश्रुत्वेमांपावनींकथाम्॥६७॥

वाराहंरूपमुत्सृज्यब्रह्मणाऽभ्यर्थितोहरिः। मुमोदाऽत्राऽद्भुताकारोमायया मोहयञ्जगत्॥६८॥
पश्चादगस्त्यशङ्खाभ्यां प्रार्थितः सुखदर्शनम्। ददौनितान्तसुभगंशान्तंभोगात्मकंवपुः॥६९॥
नारायणंवेङ्कटाद्रिंस्वामिपुष्करिणींतथा। इमामाख्यांचसंस्मृत्यमुच्यन्तेपातकैर्जनाः॥७०॥
वेङ्कटाद्रिसमं स्थानं ब्रह्माण्डेनास्तिकिञ्चन। वेङ्कटेशसमोदेवो न भूतो न भविष्यति॥७१॥
वेङ्कटाद्रिसमं स्थानं न भूतं न भविष्यति। स्वामितीर्थसरस्तुल्यंनकुत्रापिचविद्यते॥७२॥
प्रातरुत्थाय ये नित्यंवेङ्कटेशं स्मरन्ति वै। तेषांकरस्थामोक्षश्रीर्नात्रकार्याविचारणा॥७३॥

स्वामिपुष्करिणीतीर्थे स्नात्वा सर्वात्मकं हरिम्।
ये वा पश्यन्ति नियता वराहाचलवासिनम्॥७४॥

तेऽश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च। प्राप्नुवन्ति फलं पूर्णं नाऽत्रकार्या विचारणा॥७५॥
वेङ्कटाचलमाहात्म्यं येश्रृण्वन्ति नरोत्तमाः। तेषाम्मुक्तिश्चभुक्तिश्च इह लोके परत्र च॥७६॥
वेङ्कटाचलमाहात्म्यं संक्षिप्य कथितं तव। अतः परं महानद्याः प्रभावःकथ्यतेऽर्जुन॥७७॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीमाहात्म्यप्रशंसायामगस्त्यशङ्खादितपस्तुष्टश्रीवेङ्कटेशाविर्भावादि-माहात्म्यवर्णनंनामाऽष्टत्रिंशोऽध्यायः॥३८॥
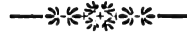
ऋषि भरद्वाज कहते हैं—हे अर्जुन! मैंने इस प्रकार भगवान् वेंकटाचलेश्वर के माहात्म्य का वर्णन किया। जो इस पवित्र कथा का श्रवण करेगा, वह पापरहित हो जायेगा। अपनी आमोदपूर्ण माया से जगत् को मोहित करके श्रीहरि ने यहां अद्भुदाकृति वराहरूप धारण किया था। तत्पश्चात् ब्रह्मा की, तदनन्तर अगस्त्य एवं राजर्षि शंख की प्रार्थना सुन कर उन्होंने वराहरूप का त्याग करके नितान्त सुभग, सुखदर्शन, शान्त तथा भोगात्मक देह से उनको दर्शन प्रदान किया था। जो नारायण का, वेंकटगिरि-स्वामिपुष्करिणी तथा इस उपाख्यान का स्मरण करेगा, वह सामान्य मनुष्य होने पर भी मुक्तिलाभ करेगा। ब्रह्माण्ड में वेंकटाचल के समान अन्य कोई स्थान नहीं है न कोई वेंकटेश्वर के समान कोई देवता ही है। न भविष्य में ही होगा। हे अर्जुन! स्वामिसरोवरवत् अन्य सरोवर कहीं भी नहीं है। जो मानव नित्य प्रातः शय्यात्याग के समय वेंकटेश का स्मरण करता है मोक्ष समृद्धि उसके करतलगत है। इसमें सन्देह नहीं है। जो संयत मानव स्वामिपुष्करिणी जल से स्नान करके वराहशैलवासी सर्वात्मक हरि का दर्शन करता है, उसे सहस्र अश्वमेध तथा १०० बाजपेय यज्ञफल निःसंदिग्ध रूप से प्राप्त होता है। जो सभी लोग वेंकटाचल माहात्म्य का श्रवण करते हैं, उनको इहलोक में तथा परलोक में भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति होती है। हे अर्जुन! मैंने वेंकटाचल का माहात्म्य संक्षेप में तुमसे कह दिया। अब अन्य महानदी का प्रभाव सुनो।।६७-७७।।

।।अष्टत्रिंश अध्याय समाप्त।।

ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः

अञ्जना को मतंग द्वारा पुत्रप्राप्ति उपाय कहना, अञ्जनातप प्रकरण

श्रीसूत उवाच

पुत्रहीनाऽञ्जना पूर्वं दुःखितातपसि स्थिता। तांदृष्ट्वामुनिशार्दूलोमतङ्गोविष्णुतत्परः॥१॥
अञ्जनाख्यामुवाचेदमत्युग्रे तपसि स्थिताम्॥२॥

मतङ्ग उवाच

समुत्तिष्ठाऽञ्जने देवि ! किमर्थं तपसि स्थिता। वद देवि ! महाभागेकार्यं तव वरानने॥३॥

सूत जी कहते हैं—पूर्वकाल में पुत्रहीना अंजना ने दुःखी होकर तपःश्चरण किया था। मुनिशार्दूल विष्णु तत्पर मतंग ऋषि ने अत्युग्र तपःश्चरण तत्पर इन अंजना को देखकर कहा—"हे देवी अंजने! उठो! हे देवी! कहो, तुम तप किसलिये कर रही हो? हे महाभागे! हे वरानने! तुम्हारी तपस्या का उद्देश्य क्या है?।।१-३।।

अञ्जनोवाच

मतङ्ग मुनिशार्दूल ! वचनं मे श्रृणुष्व ह। पिता मे केसरी नाम राक्षसः शिवतत्परः॥४॥
शैवं घोरं तपश्चक्रे पुत्रार्थं तु सुदुष्करम्। पार्वतीसहितः शम्भुर्वृषभोपरि संस्थितः॥५॥
प्रादुरासीत्तदा देवो ददौ तस्मै वरं शुभम्॥६॥

अंजना कहती हैं—हे मुनिशार्दूल मतङ्ग! मेरी वाक्य का श्रवण करो। मेरे पिता राक्षस केशरी शिव तत्पर हैं। मेरे पिता ने पुत्रार्थी होकर घोर सुदुष्कर शैवतप किया था। तब शंकर ने गिरिजा के साथ वृषभ पर आरूढ़ होकर आगमन किया, वे मेरे पिता के समक्ष प्रादुर्भूत हो गये तथा उनको उत्तम वर प्रदान किया।।४-६।।

शम्भुरुवाच

श्रृणु राजन्प्रवक्ष्यामिविधिना निर्मितं तव। अस्मिञ्जन्मन्यपुत्रत्वंतथाप्यन्यद्ददामिते॥७॥
विश्रुता सर्वलोकेषु पुत्री तव भविष्यति। तस्याः पुत्रो महाबुद्धिस्तव प्रीतिं करिष्यति॥८॥
इति तस्मै वरं दत्त्वा तत्रैवाऽन्तर्दधे हरः। मां लब्ध्वामत्पिताविप्रःकृतकृत्योवभूवह ॥९॥

शम्भु कहते हैं—हे राजन्! मैं जो कहता हूं, उसे सुनो। इस जन्म में विधाता ने तुम्हारी सृष्टि अपुत्रक के रूप में की है, अतः तुम इस जन्म में अपुत्रक ही रहोगे। यह विधाता का विधान होने पर भी मैं तुमको सन्तानयुक्त करता हूं। तुमको सर्वलोक प्रसिद्ध एक कन्या होगी। इस कन्या के गर्भ से उत्पन्न महाप्रज्ञशाली पुत्र तुम्हारी प्रीति का वर्द्धन करेगा। हे विप्र! तदनन्तर मेरे पिता को यह वर देकर भगवान् हर वहां से अन्तर्हित् हो गये तथा मेरे पिता भी मुझे पाकर कृतार्थ हो गये।।७-९।।

ततःकालान्तरे विप्रः केसर्याख्यो महाकपिः। ययाचेमांददस्वेतिपितरंमेततःपिता॥१०॥

तस्मै मां दत्तवांश्चैव पारिबर्हं ददौ च सः। गवां लक्षसहस्राणि गजलक्षं महामनाः॥११॥
वाजिनामर्वुदं चैव रथानामर्बुदं तथा। वस्त्ररत्नान्यनेकानि दासदानीसहस्रकम्॥१२॥
अन्तः पुरचरीर्नारीर्नृत्यगीतविशारदाः। ददौ वासःसहस्रं च मया साकं महामते॥१३॥
पत्या मे रममाणायाभूयान्कालोगतो मुने !। अपुत्रादुःखिताविप्रव्रतानिविविधानिच॥१४॥
कृतानिच मयातत्रकिष्किन्धायांमहापुरि। माघेमासिचविप्रेन्द्र ! वैशाखेकार्त्तिकेतथा॥१५॥
स्नानदानव्रतादीनि चातुर्मास्यव्रतं तथा। नमस्कारस्तथा विप्र प्रदक्षिणमनुत्तमम्॥१६॥
शालग्रामान्नदानानि दीपदानं तथैव च। गोदानं तिलदानं च वस्त्रदानं महामुने॥१७॥
भूदानंवारिदानंचदत्त्वापुष्पादिकंमुने !। यानियानिचमुख्यानिवैष्णवानि व्रतानि च।
मया कृतानि सर्वाणि सत्पुत्रफलकाङ्क्षया॥१८॥

तदनन्तर कुछ काल व्यतीत होने पर महाकपि केशरी आये (यहां अंजना के पिता का नाम भी केशरी है तथा अंजना के पति का नाम भी केशरी है, परन्तु भेद यह है कि पिता थे केशरी राक्षस तथा पति हैं केशरी वानर। दोनों पृथक् हैं)। उन्होंने मेरे पिता से मुझे मांगा। वानर केशरी ने कहा—मैं अंजना की याचना करता हूं। अतः मेरे हाथों उसे अर्पित करें।'' महामना मेरे पिता ने उदारमति केशरी की कामना के अनुसार एक करोड़ गौ, एक लाख गौ, एक अरब अश्व, एक अरब रथ, अनेक वस्त्र, रत्न, सहस्रों दास दासी, नृत्यगीत विशारदा अनेक अन्तःपुरनिवासी नारी तथा हजारों वस्त्र के साथ मुझे वानरराज केशरी को प्रदान किया। हे मुनिवर! तदनन्तर मैं अपने उन पति के साथ रमणरत हो गई। इस प्रकार दीर्घकाल बीत गया। हे विप्र! इतने पर भी मैं अपूर्ण ही रह गयी। मैंने दुःखी होकर महापुरी किष्किन्धा में रहकर पुत्रकामना से अनेक व्रत किया। हे विप्रेन्द्र! माघ-वैशाख-कार्त्तिक में स्नान, दान, व्रत किया। हे द्विज! तदनन्तर चातुर्मास्य व्रत, नमस्कार, उत्तम प्रदक्षिणा, शालग्राम अन्न-दीप-गौ-तिल-वस्त्र-भूमि-जल तथा पुष्प दान किया। हे मुनिवर! तदनन्तर जो-जो मुख्य वैष्णव व्रत थे, सत्पुत्र कामना से मैंने वह सब किया।।१०-१८।।

श्रवणादिषु यत्प्रोक्तं व्रतं विप्रैर्महात्मभिः। मया कृतञ्च विप्रेन्द्र वैशाखेकार्तिके तथा॥१९॥
यानियानिचमुख्यानिफलानिविविधानिच।
मयादत्तानिसर्वाणिसत्पुत्रफलकाङ्क्षया॥२०॥
मया कृतान्य संख्यानिव्रतानि विविधानि च।
पुत्रं तथाप्यलब्ध्वाऽहं दुःखिता तपसि स्थिता॥२१॥
भविष्यति कथं विप्र ! पुत्रस्त्रैलोक्यविश्रुतः। याचेऽहं तु मुनिश्रेष्ठ प्रणताचतवाऽग्रतः॥२२॥
वद त्वं मुनिशार्दूल ! दीनाऽहं तपसि स्थिता॥२३॥

हे विप्रेन्द्र! महात्मा द्विजों ने श्रावण मास कर्त्तव्य रूप जो उत्तम व्रत का उपदेश दिया है, मधुशत्रु विष्णुदेव की प्रसन्नतार्थ मैंने उन सब व्रतों को भी किया। इस फल के लिये जो सब उत्तम कहा गया है, मैंने साधु पुत्र प्राप्ति की आकांक्षा से वह सब किया तथा वह सब दान किया। हे द्विज! मैं अधिक क्या कहूं? मैंने असंख्य विविध व्रतों को किया, तथापि मुझे पुत्र की प्राप्ति नहीं हो सकी। मैं पुत्रलाभ हेतु दुःखित होकर तपस्या

में मन लगाकर तपःरत हूं। हे विप्र! हे मुनिप्रवर! मैंने आपके समक्ष प्रणत होकर यह प्रार्थना करती हूं कि वह उपाय कहिये जिससे मुझे त्रैलोक्य प्रसिद्ध पुत्रलाभ हो सके। हे मुनिशार्दूल! मैं तो दुःखित होकर तपस्विनी हो गयी हूं। अतः आप पुत्रलाभ जिससे हो सके, वह उपाय कहें।।१९-२३।।

श्रीसूत उवाच

एवं वदन्तीं तां प्राह मतङ्गो मुनिसत्तमः। शृणु मद्वचनं देवि ! पुत्रपौत्रप्रदायकम्।।२४।।
इतो दक्षिणदिग्भागे दशयोजनदूरतः। घनाचल इति ख्यातो दृसिंहस्य निवासभूः।।२५।।
तस्योपरि महाभागे ब्रह्मतीर्थं मनोहरम्। तस्याऽपि पूर्वदिग्भागे दशयोजनमात्रतः।।२६।।
सुवर्णमुखरी नाम नदीनां प्रवरा नदी। तस्या एवोत्तरे भागे वृषभाचलनामतः।।२७।।
तस्याऽग्रेसरसिनाम्नास्वामिपुष्करिणीशुभा। गत्वादृष्ट्वाशुभंतोयंमनःशुद्धिंगमिष्यसि।।२८।।
तत्र स्नात्वा विधानेन वराहं तम्प्रणम्य च।
वेङ्कटेशं नमस्कृत्य ततो गच्छ वरानने !।।२९।।
उत्तरेस्वामितीर्थस्य सिंहशार्दूलसंयुते। चूतपुन्नागपनसैर्बकुलामलकैः शुभैः।।३०।।
चन्दनागुरुनिम्बैश्च तालहिन्तालकिंशुकैः। कपित्थाश्वत्थबिल्वैश्चइङ्गुदैश्च वरानने।।३१।।
एतादृशैर्महापुण्यैर्वृक्षैश्च विविधै शुभैः। वियद्गङ्गेति विख्यातं तीर्थमेकं विराजते।।३२।।
तस्मिंस्तीर्थेऽञ्जने देवि ! सङ्कल्पविधिपूर्वकम्।
स्नात्वा पीत्वा शुभं तीर्थं तीर्थस्याऽभिमुखी स्थिता।।३३।।
वायुमुद्दिश्य हे ! देवि ! तपः कुरु वरानने !। देवैश्च राक्षसैर्विप्रैर्मनुजैर्मुनिसत्तमैः।।३४।।
भृङ्गैः पक्षिभिरस्त्रैश्च शस्त्रैश्च विविधैः शुभैः। अवध्यो भावितापुत्रस्तपसातेनसंशयः।।३५।।

सूत जी कहते हैं—तपस्विनी अंजना के यह कहने पर मुनि मतंग कहने लगे "हे देवी! अब मेरा वाक्य श्रवण करिये। यह वाक्य पुत्र-पौत्रप्रद है। इस स्थान से दक्षिण की ओर दस योजन के पश्चात् विख्यात धनाचल नामक पर्वत है। यह भगवान् नृसिंह की निवास भूमि है। हे महाभाग! उसके ऊपर मनोहर ब्रह्मतीर्थ के पूर्व की ओर दस योजन स्थान पर सुवर्णमुखरी नदी है। यह समस्त नदियों में श्रेष्ठ है। इस नदी के उत्तर में वृषभ पर्वत है। उसके उर्ध्व में सुशोभना स्वामिपुष्करिणी नामक सरोवर विद्यमान है। हे वरानने! तुम वहां जाकर इस सरोवर को देखकर मन की शुद्धि सम्पादित करो तथा वहां यथाविधि स्नानोपरान्त वराहदेव तथा वेंकटेश्वर को प्रणाम करके स्वामितीर्थ के उत्तर में चली जाना। वहां देखोगी कि वह स्थान सिंह-शार्दूलगण से भरा है। वह मनोहर आम्र-पुन्नाग-पनस-बकुल-आमलक-चन्दन-अगुरु-नीम-ताल-हिन्ताल-किंशुक-कपित्थ-पीपल-बेल-इंगुद प्रभृति महापुण्यरूप विविध वृक्षों से परिपूर्ण स्थल है। वहां वियद्गंगातीर्थ है। हे अञ्जना! तुम उस तीर्थ में संकल्पयुक्त स्नान करो तथा वहां का जल भी पान करो। हे देवी! तुम उस तीर्थ में जाकर वायुदेव को प्रसन्न करने हेतु तप करो। तुम तप द्वारा ऐसा तनय प्राप्त करोगी जो विभिन्न अस्त्रों तथा शस्त्रों से अथवा राक्षस, विप्र, मानव, मुनि, भृंग, विहंग आदि से अवध्य होगा। इसमें संशय नहीं है।।२४-३५।।

श्रीसूत उवाच

इति प्रोक्ताऽञ्जनादेवी तम्प्रणम्य पुनः पुनः। भर्त्रा साकंययावाशुवेङ्कटाचलसञ्ज्ञकम्॥३६॥
कापिलं तीर्थमासाद्य स्नात्वा निर्मलमानसा।
वेङ्कटाद्रिं समारुह्य स्वामिपुष्करिणीं ययौ॥३७॥
स्नात्वा वराहमानम्य वेङ्कटेशकृतानतिः। मतङ्गस्य ऋषेर्वाक्यं स्मरन्ती च मुहुर्मुहुः॥३८॥
वियद्गङ्गां ययावाशु चाऽञ्जना मञ्जुभाषिणी।
स्नात्वा पीत्वा शुभं तोयं तीरे तस्यतदुन्मुखी॥३९॥
प्राणवायुं समुद्दिश्य तपश्चक्रे यतव्रता। फलाहारा जलाहारा निराहारा ततः परम्॥४०॥
सहस्राब्दं तपश्चक्रे न्यस्तनासाग्रदृष्टिका। वयस्या विपुला नाम शुश्रूषामकरोच्छुभा॥४१॥
वर्षाणांचसहस्रान्ते वायुर्देवो महामतिः। प्रादुरासीत्तदा तां वै भाषमाणो महामतिः॥४२॥
मेषसङ्क्रमणं भानौ सम्प्राप्ते मुनिसत्तमाः। पूर्णिमाख्येतिथौ पुण्येचित्रानक्षत्रसंयुते॥४३॥

सूत जी कहते हैं—देवी अंजना ने मुनि का उपदेश सुनकर उनको बारम्बार प्रणाम किया तथा स्वामी के साथ तत्काल वेंकटाचल की ओर प्रस्थान कर गयीं। वहां पहुंचकर उन्होंने वहां कापिल तीर्थ में स्नान किया तथा वेंकटगिरि पर स्वामिपुष्करिणी का दर्शन, वहां स्नान तथा वराहदेव और वेंकटनाथ को प्रणाम किया। मंजुभाषिणी अंजना ने तब पुनः-पुनः मुनिवर मतंग के आदेश का स्मरण किया तथा शीघ्र आकाशगंगा जाकर वहां स्नान करके वहां के उत्तम जल का पान किया। तदनन्तर उसी के तट पर उत्तराभिमुख होकर अवस्थित हो गयीं और वहां व्रत का संकल्प लेकर जगत्प्राण वायुदेव के उद्देश्य से पूजन करने लगीं। अंजना देवी कभी फलाहार करके, कभी जल पीकर, कभी निराहार रहकर नासाग्र पर दृष्टि को निबद्ध करके परम तपःश्चरण करने लगीं। इस प्रकार १००० वर्ष तप करते व्यतीत हो गये। अंजना जब तप कर रहीं थीं तब सुशोभना विपुला जो उनकी समवयस्का थीं, अंजना की सुश्रूषा कर रही थीं। हे मुनिसत्तमगण! तदनन्तर १००० वर्ष व्यतीत हो जाने पर दिवाकर जब मेष राशि में संक्रमण कर गये थे, उस दिन पुण्यतमा पूर्णिमा तिथि का दिन था तथा चित्रा नक्षत्र था। उस समय महामति वायुदेव अंजना के समीप प्रादुर्भूत होकर कहने लगे।।३६-४३।।

तवेप्सितमहं दास्ये वरं वरय सुव्रते !। इति तद्वचनं श्रुत्वा ततः प्राहाऽञ्जना सती॥४४॥
पुत्रं देहि महाभाग! वायो देव महामते।
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा मातरिश्वाऽब्रवीत्ततः॥४५॥
पुत्रस्तेऽहंभविष्यामिख्यातिंदास्येशुभानने। इतितस्यैवरंदत्त्वातत्रैवाऽऽस्तेमहाबलः॥४६॥
तदा ब्रह्मादयो देवा इन्द्राद्या लोकपालकाः।
वसिष्ठाद्या महात्मानः सनकाद्याश्च योगिनः॥४७॥
व्यासादयश्च विप्रेन्द्रा लक्ष्म्या साकं जगत्पतिः।
मुनिपत्न्यो देवपत्न्य ऋषिपत्न्यस्तथैव च॥४८॥

स्वंस्वंवाहनमारुह्यदारभृत्यसुतादिभिः। आगतास्तेमहामानोद्रष्टुंतांतपसिस्थिताम्।।४९।।
आश्चर्यमाश्चर्यमिति ब्रुवाणा ब्रह्मादयो देवगणाश्च सर्वे।
आलोकयन्तो दिवि दूरतस्ते स्थितास्तदा ब्रह्ममहेशमुख्याः।।५०।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये अञ्जनातपःकरणप्रकारादिवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।।३९।।

वायुदेव कहते हैं—"हे सुव्रते! मैं तुमको तुम्हारा अभीष्ट प्रदान करूंगा। वर मांगो।" सती अञ्जना ने वायुदेव का वाक्य सुनकर उत्तर दिया—"हे महाभाग! वायुदेव! मुझे पुत्र प्रदान करिये।" अंजना की प्रार्थना सुनकर वायुदेव ने कहा—" शुभानने! मैं ही तुम्हारा पुत्र होकर जगत् में तुम्हारी ख्याति का प्रचार करूंगा। तदनन्तर महाबली वायु अंजना से यह कहकर वहीं स्थित हो गये। तब अपने-अपने वाहन पर आरूढ़ इन्द्रादि लोकपाल, ब्रह्मा आदि देवता, महात्मा वसिष्ठ आदि ऋषि, सनकादि योगी, विप्रेन्द्र व्यास आदि, लक्ष्मी के साथ जगत्पति विष्णु, मुनि पत्नियां तथा देवपत्नियां, ऋषिपत्नियां, भृत्यों तथा पुत्रादि के साथ इन तपस्विनी अंजना के दर्शनार्थ वहां आये। ब्रह्मादि देवगण कहने लगे कि यह कैसा आश्चर्य है? वहां ब्रह्मा एवं महेश्वर प्रभृति प्रमुख देवगण ने आकाश से ही अंजना का अवलोकन किया।।४४-५०।।

।।उनचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चत्वारिंशोऽध्यायः

आकाशगंगा में स्नान का कालनिर्णय अध्याय की फलश्रुति

श्रीसूत उवाच

अञ्जनाऽपि वरं लब्ध्वाभर्त्रा साकंमुमोद ह। ब्रह्मादीनागतान्दृष्ट्वाविस्मयाविष्टमानसा।।१।।
पत्या साकं ततः स्वस्था चाऽञ्जना मञ्जुभाषिणी।
ब्रह्मादिभिरनुज्ञातो व्यासो वेदविदाम्वरः।।२।।
अञ्जनां तामुवाचेदं मेघगम्भीरया गिरा।।३।।
अञ्जने ! श्रृणुमद्वाक्यंसर्वलोकोपकारकम्। मतङ्गस्य ऋषेर्वाक्यं श्रुत्वानिमलचेतसा।।४।।
यस्मात्तु वेङ्कटं गत्वा तपः कृत्वा सुदुष्करम्।
प्रसूयते त्वया पुत्रः शूरस्त्रैलोक्यविक्रमः।।५।।
इदं तीर्थोत्तमं तस्मात्प्रत्यक्षदिवसे तव। गङ्गाद्यानिच तीर्थानि समायान्ति जगत्त्रये।।६।।

वेङ्कटाद्रिसमं तीर्थं ब्रह्माण्डे नास्ति किञ्चन।
तत्राप्यत्यन्तपुण्या वै स्वामिपुष्करिणी शुभा॥७॥
ततोऽधिकमिदं तीर्थं प्रत्यक्षंदिवसेतव। स्नानार्थं ये समायान्ति चित्रात्रृक्षसमन्विते॥८॥
मेषं पूषणि सम्प्राप्ते पूर्णिमायां शुभे दिने। शृणु तेषां फलं देवि ! वक्ष्यामि तव सुव्रते !॥९॥

सूतजी कहते हैं—ब्रह्मादि का आगमन देखकर मंजुभाषिणी अंजना विस्मिता हो गयीं तथा वायु के द्वारा वर प्राप्त करके स्वामी के साथ प्रसन्न होकर उन्होंने अत्यन्त सन्तोष प्राप्त किया। तदनन्तर वेदज्ञों के अग्रणी व्यासदेव ने ब्रह्मादि देवताओं से आज्ञा पाकर अंजना से मेघगंभीर वाणी में कहा—"हे अंजने! मेरा वाक्य सुनो! यह सभी लोकों के लिये हितकारी है। मतंग ऋषि के वाक्य को मानने से तुम्हारा अन्तःकरण निर्मल हो गया हैं। तुमने उनके ही आदेश का पालन करते हुये वेंकटाचल आकर दुष्कर तप किया। तुमने जिस दिन इस तीर्थोत्तम को प्रत्यक्ष देखा था, उसी दिन सभी गंगादि तीर्थ त्रैलोक्य से आये थे। इसलिए तुम विक्रमी त्रैलोक्य विजयीशूर सन्तान को जन्म दोगी। वेंकटाचल के बराबर ब्रह्माण्ड में कोई तीर्थ नहीं है। उसमें भी अतीव पवित्र स्वामिपुष्करिणी इन गिरिराज पर विराजित है। हे अंजने! तुम्हारे इस प्रत्यक्ष दर्शन के कारण यह आकाशगंगा उससे भी अधिक पवित्र हो गयी है। जो लोग चित्रानक्षत्रयुक्त सूर्य के मेषराशि संक्रमण कालीन पूर्णिमा के शुभ दिन इस तीर्थ में आगमन करते हैं, हे देवी! सुव्रते! उनका पुण्यफल सुनों।।१-९।।

गङ्गादिसर्वतीर्थेषु द्वादशाब्दं वराननने!। यत्फलं विद्यते देवि! तत्फलं भवति ध्रुवम्॥१०॥
दानानि कुर्वतांपुंसां तेषाशृणुफलोन्नतिम्। स्थनेतूक्तं फलंदेविविद्धितेषां वरानने॥११॥

हे देवी वरानने! गंगा आदि तीर्थ की द्वादश वर्ष सेवा करके जो फल प्राप्त होता है, तुम्हारे इस तीर्थ का भी वही फल है, इसमें सन्देह नहीं है। तुम्हारे इस तीर्थ में जो विविध दान करते हैं, उनको पूर्वोक्त फल की प्राप्ति होती है।।१०-११।।

अञ्जनोवाच

कार्याणि यानि दानानि वेङ्कटाद्रौ नगोत्तमे।
तानिसर्वाणि विप्रेन्द्रवदवेदविदाम्वर !॥१२॥

अंजनी कहती हैं—हे विप्रेन्द्र! आप वेदज्ञों में श्रेष्ठ हैं। पर्वतराज वेंकटाचल में किस-किस वस्तु का दान किया जाता है, उसका वर्णन करिये।।१२।।

व्यास उवाच

अन्नदानं वस्त्रदानं द्वयमेतत्प्रशस्यते। पितुः श्राद्धं विशेषेण वेङ्कटाद्रौ नगोत्तमे॥१३॥
सुवर्णं ये प्रयच्छन्ति प्रीतये मधुघातिनः। सर्वलोकं समासाद्य मोदन्ते मुनिसत्तमाः॥१४॥
शालग्रामशिलादानं ये कुर्वन्ति नगोत्तमे।
अङ्गभङ्गमवाप्नोति स्वानुभूतिं च विन्दति॥१५॥
यो ददाति द्विजेन्द्रायगोदानं चकुटुम्बिने। रोमसङ्ख्याप्रमाणेनविष्णुलोकेविराजते॥१६॥

भूमिं ददाति यो देवि! ब्राह्मणाय कुटुम्बिने।
तस्य पुण्यफलं वक्तुं कः शक्तो दिवि वा भुवि॥१७॥

कन्यांददातियो देवि! श्रोत्रियायद्विजातये। विष्णुलोकंसमासाद्यमोदतेपितृभिःसह॥१८॥

व्यास जी कहते हैं—यहां अन्नदान तथा वस्त्रदान ही प्रशस्त है। विशेषतः यहां पितृश्राद्ध अतीव फलप्रद होता है। जो मुनिगण को यहां मधुशत्रु हरि की प्रीति के लिये स्वर्ण किंवा शालिग्राम शिला का दान करते हैं, वे चाहे जिस लोक को क्यों न प्राप्त हो जायें, वे सर्वत्र प्रमुदित रहते हैं। जो मानव कुटुम्बी द्विजेन्द्र (विप्र) को गोदान करते हैं, वे जन्म लेने पर भी पूर्वजन्म की स्मृति से युक्त रहते हैं। उस गौ के शरीर में जितने रोम हैं, वे उतने वर्ष पर्यन्त विष्णुलोक में निवास करते हैं। जो कुटुम्बी विप्र को भूमि प्रदान करते हैं, भूतल में अथवा स्वर्ग में कोई भी उसके पुण्यफल का वर्णन नहीं कर सकता। हे देवी! इस तीर्थ में जो श्रोत्रिय द्विज को कन्यादान देते हैं, वे पितरों के साथ विष्णु लोक को प्राप्त करते हैं। वे वहां प्रसन्न रहते हैं।।१३-१८।।

प्रपां कुर्वन्ति ये देवि शीतलोदकसंयुताम्।
तेषां पुण्यफलं वक्तुंशेषेणाऽपिनशक्यते॥१९॥

तिलं ददाति विप्राय श्रोत्रियायकुटुम्बिने।सर्वपापविनिर्मुक्तोविष्णुलोकंसगच्छति॥२०॥

धान्यदानं प्रशंसन्ति विप्रा वेदविदाम्वराः।
बहुपुत्रा भविष्यन्ति धान्यदानं प्रकुर्वताम्॥२१॥

गन्धचम्पकपुष्पादीञ्छत्रव्यजनचामरान्। ताम्बूलघनसारादीन्यो ददाति द्विजातये॥२२॥

भुक्त्वा भोगं चिरं कालं स्वर्गलोकं ततो व्रजेत्।
दिव्यवर्षसहस्त्रञ्च भुक्त्वा भोगाननेकशः॥२३॥

सार्वभौमस्ततो भूत्वा तत्र भुक्त्वाचिरंमहीम्। ततोविप्रत्वमासाद्यवेदवेदान्तपारगः॥२४॥

हे देवी! इस तीर्थ में जो शीतल जलयुक्त जलाशय का निर्माण करते हैं, शेषनाग भी उनके पुण्यफल का वर्णन नहीं कर सकते। जो कुटुम्बी श्रोत्रिय ब्राह्मण को तिलदान करता है, वह सभी पापों से रहित होकर विष्णुलोक गमन करता है। वेदविद्वरेण्य ब्राह्मण तीर्थ में धान्यदान की प्रशंसा करते हैं। यहां धान्यदान से बहुपुत्र लाभ होता है। इसके अतिरिक्त यहां पर जो गन्ध-चम्पक-कुसुमआदि-छत्र-व्यंजन-चामर-ताम्बूल तथा घनसारादि का दान द्विजाति को करते हैं, वे दीर्घकाल पर्यन्त विविध भोगों का उपभोग करके अन्त में स्वर्ग प्राप्ति करते हैं। वे वहां दिव्य १००० वर्ष पर्यन्त अनेक भोग्य वस्तुओं का उपभोग करके पृथिवी पर जन्म लेकर दीर्घकाल तक सार्वभौमत्व का लाभ करते हैं। इस प्रकार दीर्घकाल तक पृथिवी का भोग करते हैं। तत्पश्चात् वह व्यक्ति ब्राह्मण का जन्म लेकर वेद-वेदांग पारंगत हो जाता है।।१९-२४।।

ततो मुक्तिं समायाति प्रसादाच्चक्रपाणिनः। इत्येतत्कथितं देवि वेङ्कटाचलवैभवम्॥२५॥

य एतच्छृणुयान्नित्यंयश्चापिपरिकीर्तयेत्। सर्वपापविनिर्मुक्तोविष्णुलोकंसगच्छति॥२६॥

इत्येतत्कथितंपूर्वं व्यासेनैव महात्मना। श्रृणुयाद्वा पठेद्वाऽपि कृतकृत्यो भविष्यति॥२७॥
तस्यैव वंशजाः सर्वे मुक्तिं यान्ति न संशयः॥२८॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्येऽञ्जनावरलब्ध्याकाशगङ्गास्नानकालनिर्णयादिवर्णनं-
नाम चत्वारिंशोऽध्यायः।।४०।।

समाप्तमिदं स्कान्दपुराणान्तर्गतं श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यम्।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे द्वितीये वैष्णवखण्डे प्रथमोभूमिवाराहखण्डः समाप्तः।।

वह वेदवेदान्त पारंगत होकर चक्रपाणी की कृपा से मुक्ति प्राप्त करता है। हे देवी! यह तुमसे वेंकटाचल का समस्त माहात्म्य कह दिया। जो नित्य इसे सुनते हैं, अथवा इसका कीर्त्तन करते हैं, वे सभी कलुष से रहित होकर विष्णुलोक प्राप्त करते हैं। जो इसे सुनते तथा इसका पाठ करते हैं, वे कृतकृत्य हो जाते हैं तथा उनके वंश में उत्पन्न सभी को मुक्ति मिल जाती है। इसमें संशय नहीं है।।२५-२८।।

।।चत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

।।वैष्णवखण्ड के अन्तर्गत श्रीवेंकटाचल माहात्म्य समाप्त।।

❖❖❖

।। श्रीगणेशायनमः।।

।।श्रीपुराणपुरुषोत्तमाय नमः।।

अथ स्कन्दपुराणस्थ वैष्णवखण्डे

द्वितीयमुत्कलखण्डम्

प्रथमोऽध्यायः

(जगन्नाथपुरी) पुरुषोत्तम क्षेत्र माहात्म्य, ब्रह्मा की प्रार्थना, विष्णु का आविर्भाव। ब्रह्माकृत विष्णुस्तव

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्।।१।।

मुनय ऊचुः

भगवन्सर्वशास्त्रज्ञ ! सर्वतीर्थमहत्त्ववित्। कथितं यत्त्वया पूर्वं प्रस्तुते तीर्थकीर्तने।
पुरुषोत्तमाख्यं सुमहत्क्षेत्रं परमपावनम्।।२।।
यत्राऽऽस्ते दारवतनुः श्रीशोमानुषलीलया। दर्शनान्मुक्तिदः साक्षात्सर्वतीर्थफलप्रदः।।३।।
तन्नो विस्तरतोब्रूहितत्क्षेत्रंकेननिर्मितम्। ज्योतिःप्रकाशोभगवान्साक्षान्नारायणःप्रभुः।।४।।
कथं दारुमयस्तस्मिन्नास्ते परमपूरुषः। वद त्वं वदतांश्रेष्ठ ! सर्वलोकगुरो मुने !।
श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्परं कौतूहलं हि नः।।५।।

मुनिगण कहते हैं—एक बार मुनिगण ने महर्षि जैमिनी से कहा—"हे भगवान्! आप समस्त शास्त्रों के ज्ञाता हैं। आप समस्त तीर्थों की महिमा को जानते हैं। इसके पूर्व तीर्थ कथन प्रसंग में आपने परम पवित्रताजनक पुरुषोत्तम नामक सुमहत् क्षेत्रतीर्थ का उल्लेख किया था। इस क्षेत्र में श्रीपति नारायण मानवलीला साधनार्थ दारुमय (काष्ठमय) कलेवर से विद्यमान हैं। ये दर्शन मात्र से साक्षात् मुक्ति तथा समस्त तीर्थफल प्रदान करते हैं। इस क्षेत्र का निर्माण किसने किया था, वह विस्तार से बतायें। उन साक्षात् नारायण, स्वयं भगवान्, परमपुरुष ने ज्योतिःस्वरूप होकर किसलिये दारुमयरूपेण होकर इस क्षेत्र में निवास किया है? आपसे यह सब सुनने का कुतूहल हो रहा है। आप परम वाग्मी (वक्ता) तथा सर्वलोक के गुरु हैं। यह सुनकर महर्षि जैमिनि मुनिगण से कहने लगे।।१-५।।

जैमिनिरुवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्वे रहस्यं परमं हि तत्।।६।।
अवैष्णवानां श्रवणे भक्तिस्तत्र न जायते। यस्य सङ्कीर्तनादेव सकलं लीयते तमः।।७।।

यद्यप्येष जगन्नाथः सर्वगःसर्वभावनः। स्कन्देनकथितं पूर्वं श्रुत्वाशम्भोर्मुखाम्बुजात्।
सन्ति क्षेत्राणि चाऽन्यानि सर्वपापहराणि वै॥८॥
एतत्क्षेत्रंपरंचाऽस्यवपुर्भूतंमहात्मनः। स्वयंवपुष्मांस्तत्रास्तेस्वनाम्नाख्यापितंहितत्॥९॥
तत्र ये स्थातुमिच्छन्ति तेपिसर्वेहतांहसः। किंपुनस्तत्रतिष्ठन्तोयेपश्यन्तिगदाधरम्॥१०॥

जैमिनि कहते हैं—हे मुनिगण! इस परमरहस्य क्षेत्र का विवरण पूर्वकाल में कार्त्तिकेय ने महादेव के मुखकमल से सुना था तथा इसे मन्दराचल पर्वत पर सिद्धों तथा देवताओं की सभा में सुनाया था। मैं तब देवदेव महादेव के पूजनार्थ वहां गया था। मैंने कार्त्तिकेय के मुख से निर्गत उस समस्त प्रकरण को जिस प्रकार से सुना था, उसका अविकल रूप से वर्णन करता हूं। आप सुने। जो विष्णुपरायण नहीं हैं, उनके मन में इसे सुनकर भी भक्ति का संचार नहीं होता तथापि इसके क्रीर्त्तन मात्र से समस्त तमोगुण का लय हो जाता है। यद्यपि प्रभुजगन्नाथ सर्वव्यापी तथा सबके कारण हैं तथा अनेक पापनाशक अन्य क्षेत्र भी हैं, तथापि यह क्षेत्र भगवान् का देहरूप होने के कारण सब की अपेक्षा अत्यन्त श्रेष्ठ है। ये महात्मा स्वयं विग्रहधारी होकर वहां अवस्थान करते हैं तथा यह क्षेत्र उनके नाम से विख्यात है। यहां जो रहने की इच्छा करते हैं, उनका समस्त पातक नष्ट हो जाता है तथा जो व्यक्ति वहां निवास करके भगवान् गदाधर की उस मूर्त्ति का दर्शन करते हैं, उनका सौभाग्य वर्णन से परे है।।६-१०।।

अहोतत्परमंक्षेत्रं विस्तृतं दशयोजनम्। तीर्थराजस्य सलिलादुत्थितं वालुकाचितम्॥११॥
नीलाचलेनमहतामध्यस्थेनविराजितम्। एकस्तनमिव पृथ्व्याः सुदूरात्परिभावितम्॥१२॥
वाराहरूपिणापूर्वंसमुद्धृत्यवसुन्धराम्। सर्वतः सुसमां कृत्वापर्वतैःसुस्थिरीकृताम्॥१३॥
सृष्ट्वा चराचरं सर्वं तीर्थानि सरिदब्धिकान्।
क्षेत्राणि च यथास्थानं संनिवेश्य यथा पुरा॥१४॥
ब्रह्मा विचिन्तयामाससृष्टिभारनिपीडितः। पुनरेतां क्रियांगुर्वीनारभेयकथन्त्विति॥१५॥
तापत्रयाभिभूताहि मुच्यन्ते जन्तवःकथम्। एवं चिन्तयमानस्यमतिरासीत्प्रजापतेः।
कुत्त्येककारणं विष्णुं स्तोष्येऽहं परमेश्वरम्॥१६॥

यह परमाश्चर्यमय रमणीय क्षेत्र दस योजन विस्तार वाला है। यह तीर्थराज समुद्र जल से निकला है। तभी यह बालुका राशि से घिरा है। इसका मध्यभाग बृहद् नील पर्वत से शोभित रहता है। दूर से देखने पर यह पृथिवी का स्तनरूप लगता है। पूर्वकाल में वराहरूपधारी नारायण ने प्रलयजलमग्न पृथिवी का उद्धार किया था। ब्रह्मा ने पृथिवी को सर्वतोभावेन परिशोधित किया तथा पर्वतों से घेर कर सुन्दर रूप से उसे स्थिर बनाया। उन्होंने चराचर की सृष्टि करके सभी तीर्थों तथा क्षेत्रों को यथास्थान स्थापित किया था। तब सृष्टि के भार से स्वयं को बोझिल जानकर यह विचार किया कि मैं किस उपाय द्वारा यह कौशल करूं जिससे यह गुरुतर कार्यभार मुझे वहन न करना पड़े! इसी के साथ यह भी विचार किया कि किस प्रकार से आध्यात्मिक आदि त्रिताप से तापित जीव मुक्त हो सकें। इस प्रकार विचार करके प्रजापति प्रजावत्सल ब्रह्मा के मन में इसका यह हल उदित हुआ कि मुक्ति के एकमात्र क़ारण परात्पर परमेश्वर विष्णु का ही स्तव करूं। यह निश्चय करके ब्रह्मदेव स्तव करने लगे।।११-१७।।

ब्रह्मोवाच

नमस्ते जगदाधार ! शङ्खचक्रगदाधर॥१७॥
यन्नाभिपङ्कजादेव जातोऽहं विश्वसृष्टिकृत्। परमार्थस्वरूपं ते त्वं वै वेत्सिजगन्मय॥१८॥
यन्मायायाजगत्सर्वंनिर्मितंमहदादिकम्। यन्निःश्वाससमुद्भूतं शब्दब्रह्म त्रिधाऽभवत्॥१९॥
उपजीव्यतदेवाऽहमसृजम्भुवनानि वै। त्वत्तोनाऽन्यः स्थूलसूक्ष्मदार्घह्रस्वादिकिञ्चन॥२०॥
विकारभेदैर्भगवंस्त्वमेवेदं चराचरम्। कटकादि यथा स्वर्णं गुणत्रयविभागशः॥२१॥
स्त्रष्टासृज्यंत्वमेवाऽत्रपोष्टापोष्यञ्जगत्प्रभो। आधारो ध्रियमाणञ्च धर्ता त्वंपरमेश्वर॥२२॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे शंख-चक्र-गदाधारी! आप तो जगदाधार हैं। मैं विश्व का सृष्टिकर्त्ता होकर भी आपके नाभिकमल से जन्मा हूं। मैं आपको प्रणाम करता हूं। हे जगदात्मा! आप का परमात्मस्वरूप तो कोई नहीं जान सकता। उसे केवल आप ही जानते हैं। आपकी माया से यह निखिल महदादि जगत् निर्मित हुआ है। हे भगवान्! आपकी निःश्वास वायु से उत्थित शब्दरूप ब्रह्म (ॐकार) त्रिधा विभक्त है। मैंने उसी का आश्रय लेकर समस्त भुवनों का सृजन किया है। आप से स्थूल-सूक्ष्म, दीर्घ-ह्रस्व आदि कुछ भी पृथक् नहीं है। जैसे जब सुवर्ण विकार प्राप्त हो जाता है, तब वलयादि अलंकार का जन्म होता है, वैसे ही सत्व-रजः तमः रूप गुणत्रय विभागरूपी अवस्थान्तर भेद से आप ही समस्त चराचर रूप हो गये हैं। हे जगत्प्रभु! आप ही तो सृजनकर्त्ता हैं, तथापि आप ही स्वयं सृष्टवस्तु भी बन जाते हैं। आप पालनकर्त्ता होकर भी स्वयं पालनीय हो जाते हैं। आप ही आधार हैं। आप ही आधेय हैं (जिसे धारण किया जाये वह भी हैं) तथा आप ही धारण करने वाले भी हैं।।१८-२२।।

त्वत्प्रेरितमतिः सर्वश्चरते च शुभाऽशुभम्।
ततः प्राप्नोति सदृशीं त्वयैव विहितां गतिम्॥२३॥
जगतोऽस्य गतिर्भर्त्ता साक्षी त्वं परमेश्वर !। चराचरगुरो ! सर्वजीवभूतकृपामय !।
प्रसीदाऽऽद्यजगन्नाथ ! नित्यं त्वच्छरण्यस्य मे॥२४॥

समस्त जीवगण आपके ही द्वारा नियंत्रित होकर शुभ-अशुभ कर्म का अनुष्ठान करते हैं तथा विहित कर्मानुरूप अवस्था लाभ करते हैं। हे परमेश्वर! आप ही जगत् की गति, भरणकर्त्ता तथा साक्षी हैं। हे कृपामय! आप चराचर जगत् के गुरु तथा समस्त जीवगण के बीजरूप हैं। हे जगन्नाथ! मैं आपका सदा शरणागत हूं। मेरे प्रति प्रसन्न हो जायें।।२३-२४।।

जैमिनिरुवाच

एवं संस्तूयमानश्च ब्रह्मणा गरुडध्वजः। नीलजीमूतसङ्काशःशङ्खचक्रादिचिह्नितः॥२५॥
पतगेन्द्रसमारूढः स्फुरद्वदनपङ्कजः। आविरासीद् द्विजश्रेष्ठा विवक्षुः स्फुरिताधरः॥२६॥

श्रीभगवानुवाच

यदर्थं मां स्तुषे ब्रह्मन्नशक्यः प्रतिभाति सः॥२७॥

अनाद्यविद्यासुदृढा दुश्छेद्याकर्मबन्धनैः। प्रभवन्त्यां कथं तस्यां ह्रीयेतेमृतिजन्मनी॥२८॥
तथाऽपि चेदत्रकृतेव्यवसायस्तवाऽनघ। क्रमेण येन हि भवेत्तत्ते वक्ष्यामि कारणम्॥२९॥
अहं त्वं त्वमहं ब्रह्मन्मन्मयञ्चाखिलञ्जगत्। रुचिस्ते यत्र मे तत्र नान्यथेतिविचारय॥३०॥

महर्षि जैमिनि कहते हैं—हे मुनिगण! नीलकमलवत् शंख चक्रादि चिह्नित दीप्तियुक्त मुखपंकज वाले गरुड़ारोही गरुड़ध्वज भगवान् विष्णु इस प्रकार से ब्रह्मा द्वारा स्तूयमान होकर कुछ कहने के लिये विस्फुरित अधर वाले होकर आविर्भूत हो गये। उन्होंने कहा "हे ब्रह्मन्! आप जिस निमित्त से मेरा स्तव कर रहे थे, वह मेरी शक्ति में नहीं है। इसका कारण यह है कि स्वभावसिद्धा अनादि सुकठिन माया कर्मरूप बन्धन द्वारा दुश्च्छेद्या है। अतः इस माया के प्रभाव के रहते मृत्यु तथा जन्म रहित कोई कैसे हो सकता है? हे अनघ! तथापि आप में यदि नितान्त अध्यवसाय का जन्म हो जाये, तब जिस नियम से मृत्यु तथा जन्म न हो उसका कारण (उपाय) मैं आपसे कहता हूं। यह अखिल जगत् मेरा ही रूप है। जो मैं हूं, वही आप भी हैं। जिसमें आपकी रुचि है, उसी में मेरी भी रुचि है। इसके अतिरिक्त इस सम्बन्ध में अन्य विचार न करें।।२५-३०।।

सागरस्योत्तरेतीरे महानद्यास्तु दक्षिणे। स प्रदेशः पृथिव्यां हि सर्वतीर्थफलप्रदः॥३१॥
तत्र ये मनुजा ब्रह्मन्निवसन्ति सुबुद्धयः। जन्मान्तरकृतानाञ्च पुण्यानां फलभागिनः॥३२॥

नाऽल्पपुण्याः प्रजायन्ते नाऽभक्ता मयिपद्मज।
एकाम्रकाननाद्यावद्दक्षिणोदधितीरभूः ॥३३॥

पदात्पदाच्छ्रेष्ठतमः क्रमात्परमपावनः। सिन्धुतीरे तु यो ब्रह्मन्राजते नीलपर्वतः॥३४॥

पृथिव्यां गोपितं स्थानं तव चाऽऽपि सुदुर्लभम्।
सुरासुराणां दुर्ज्ञेयं माययाऽऽच्छादितं मम॥३५॥

सर्वसङ्गपरिस्त्यक्तस्तत्र तिष्ठामि देहभृत्। क्षराक्षरावतिक्रम्य वर्त्तेऽहं पुरुषोत्तमे॥३६॥
सृष्ट्यालयेननाक्रान्तंक्षेत्रम्मेपुरुषोत्तमम्। यथामां पश्यसिब्रह्मन्रूपं चक्रादिचिह्नितम्॥३७॥
ईदृशं तत्र गत्वैव द्रक्ष्यसे मां पितामह !! नीलाद्रेरन्तरभुवि कल्पन्यग्रोधमूलतः॥३८॥

वारुण्यां दिशि यत्कुण्डं रौहिणं नाम विश्रुतम्।
तत्तीरे निवसन्तं मां पश्यन्तश्चर्मचक्षुषा॥३९॥
तदम्भसाक्षीणपापा मम सायुज्यमाप्नुयुः।
तत्र व्रज महाभाग दृष्ट्वा मां ध्यायतस्तव॥४०॥

समुद्र के उत्तरी तट पर महानदी का दक्षिण प्रदेश पृथिवी में सर्वतीर्थफल प्रदान करता है। हे ब्रह्मन्! इस स्थान पर जो मनुष्य निवास करते हैं, वे सुबुद्धियुक्त हैं तथा पूर्वजन्मार्जित पुण्यफल के फलभागी हो जाते हैं। जो अल्पपुण्य वाले हैं तथा जिनमें मेरे प्रति भक्ति नहीं है, वे उस स्थान पर जन्म नहीं ले सकते। एकाम्रकानन भुवनेश्वर से लेकर दक्षिण समुद्र की तीरभूमि पर्यन्त प्रत्येक पदविक्षेप का स्थान उत्तरोत्तर अपेक्षाकृत पवित्र होने के कारण श्रेष्ठ ही है। हे ब्रह्मन्! सिन्धुतट पर जहां नीलपर्वत विराजित है, पृथिवी में वह स्थान गोपनीय है तथा आपके लिये भी दुर्लभ ही है। वह देवता तथा असुरगण के लिये दुर्विज्ञेय तथा मेरी माया

से ढका हुआ है। मैं सर्वसंग त्यागकर देहधारण करके देवता तथा असुर, सभी का संग त्याग कर, उस पुरुषोत्तम क्षेत्र में नित्य रहता हूं। यह क्षेत्र सृष्टि तथा प्रलय के प्रभाव से परे हैं। हे पितामह! यहां चक्रादि चिह्नित मेरे जिस रूप का आप दर्शन कर रहे हैं, उस क्षेत्र में जाने पर भी इसी रूप का दर्शन मिलेगा। नीलपर्वत के मध्यस्थल में अक्षय वट के मूल से लेकर वायुकोण पर्यन्त जो रौहिण नामक विख्यात कुण्ड है, उसके तट पर मेरा दर्शन इन चर्मचक्षु से करते हुये जीवगण इस कुण्ड जल में स्नान करके निष्पाप हो जाते हैं। उनको सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है। हे महाभाग ब्रह्मन्! आप उस क्षेत्र में जाईये। वहां मेरा दर्शन करके ध्यान करिये।।३१-४०।।

प्रकाशं यास्यते तस्य क्षेत्रस्य महिमाऽपरः। आश्चर्यभूतःपरमस्तवाऽपिचभविष्यति॥४१॥

श्रुतिस्मृतीहासपुराणगोपितं मन्मायया तन्न हि कस्य गोचरम्।
प्रसादतो मे स्तुवतस्तवाऽधुना प्रकाशमायास्यति सर्वगोचरम्॥४२॥
व्रतेषु तीर्थेषु च यज्ञदानयोः पुण्यं यदुक्तं विमलात्मनां हि तत्।
अहर्निवासाल्लभतेऽत्र सर्वं निःश्वासवासात्खलु चाऽऽश्वमेधिकम्॥४३॥

इस विधि से ध्यान करते-करते आपको उस क्षेत्र की महिमा स्पष्टतः अनुभूत हो जायेगी। आपको यह महिमा परमाश्चर्यमयी प्रतीत होगी। वहां पर श्रुति-स्मृति इतिहास-पुराण मेरी माया से गोपित होकर सबसे अगोचर है। अब मैं आपके इस स्तव से प्रसन्न हो गया हूं। तभी यह क्षेत्र सभी के लिये दृष्टिगोचर होगा तथा प्रकाशित रहेगा। निर्मल स्वभाव वाले व्यक्ति के लिये व्रत-तीर्थ-यज्ञ-दान का जो फल कहा गया है, वह सभी फल उस क्षेत्र में मात्र एक दिन-रात (अहोरात्र) निवास करने मात्र से मिल जाता है। वहां एक निमेष मात्र निवास करने से अश्वमेध फलप्राप्ति होती है।।४१-४३।।

इत्यादिश्य विधिं विप्रास्तदाऽसौ पुरुषोत्तमः। पश्यतस्तस्य तत्रैव प्रभुरन्तरधीयत॥४४॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहरुयां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तम-
क्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनऋषिसम्वादे ब्रह्मप्रार्थनया विष्णोराविर्भाववर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

हे विप्रगण! उस समय भगवान् पुरुषोत्तम ने ब्रह्मा से इस प्रकार से कहा, तदनन्तर वे दृष्टि पथ से अगोचर हो गये।।४४।।

।।प्रथम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

द्वितीयोऽध्यायः

ब्रह्मा का पुरुषोत्तम क्षेत्रगमन, काक मुक्ति, लक्ष्मी-यम संवाद, यम द्वारा स्तुति

जैमिनिरुवाच

ततो ब्रह्माऽगमत्तूर्णं यत्राऽऽस्ते भगवान्स्वयम्।
स्तवान्तेऽसौ यथा दृष्टस्तथाऽद्राक्षीत्प्रभुं तदा॥१॥
प्रत्यंभिज्ञानसंहृष्टस्तं दृष्ट्वा परमेश्वरम्। अत्यद्भुतज्ञाननिधिर्बभूवाऽसौ द्विजोत्तमाः!॥२॥
यावत्स्तोतुं समारेभे हर्षसम्फुल्ललोचनः। तावदेव समागत्य कुतश्चिद्वायसोत्तमः॥३॥
कारुण्योदकसम्पूर्णे तस्मिन्कुण्डे निमज्य तम्।
विलोक्य माधवं नीलरत्नकान्तिं कृपानिधिम्॥४॥
काकदेहं समुत्सृज्यलुठमानोमुहुःक्षितौ। शङ्खचक्रगदापाणिस्तस्यपार्श्वेव्यवस्थितः॥५॥

जैमिनि कहते हैं—तब भगवान् स्वयं वहां जाकर निवास करने लगे। वहां जाने पर ब्रह्मा ने प्रभु का दर्शन उसी रूप में किया जैसा उन्होंने पहले प्रभु का स्तव करते समय किया था। हे मुनिगण! ब्रह्मा उन परमेश्वर का वहां पूर्ववत् दर्शन पाकर हर्षितचित्त हो गये तथा उन्होंने अद्भुत ज्ञान लाभ भी किया।

जब वे प्रभु के रूपदर्शन की प्राप्ति के कारण हर्षविभोर होकर हर्षोत्फुल्ल नेत्रों से रूपदर्शन करते हुये उनका स्तव कर रहे थे, तभी उस उत्तम स्थान पर एक कौआ प्यास से पीड़ित होकर पहुंचा। उस काक ने उस कारण जल से पूर्ण रौहिण कुण्ड में स्नान किया तथा उसने नीलरत्न छवियुक्त भगवान् पुण्डरीकाक्ष को देखते-देखते अपनी काकदेह से वहां की मिट्टी में लोटते हुये मृत हो गया। तदनन्तर उसे शंख-चक्र-गदा युक्त देह विग्रह की प्राप्ति हो गयी। वह प्रभु के पार्श्व में स्थित हो गया।।१-५।।

तिरश्चस्तां गतिं दृष्ट्वा योगीन्द्राणां सुदुर्लभाम्।
मेनेऽसौ मुनयः सृष्टिः क्रमात्क्षीणा भविष्यति॥६॥
मनुष्योऽधिकृते मुक्तौ वेदान्ते संशयोऽभवत्।
नकिञ्चिद् दुर्लभं चेह विष्णुभक्तस्य विद्यते॥७॥
प्रत्यक्षोऽभूद्द्विजश्रेष्ठाः पुराणपुरुषोदिते। सङ्कीर्त्यंयन्नामनरःसर्वपापैः प्रमुच्यते॥८॥
तस्य सन्दर्शने विप्रा मुक्तिः किं खलु दुर्लभा।
मनसा ध्याययन्विष्णुं त्यजन्प्राणान्विमुच्यते॥९॥
साक्षात्कृतोभगवतःकिंचित्रम्मुक्तिमेतियत्। पुरुषोत्तमसञ्ज्ञस्यक्षेत्रस्यमहिमाऽद्भुतः॥१०॥

हे मुनिगण! ब्रह्मा ने इस पक्षी को ऐसी दुर्लभ स्थिति को देखा जो कि योगीन्द्रों के लिये भी सुदुर्लभ

है। तब उन्होंने विवेचना किया कि यह सृष्टि इसी प्रकार यहां के प्रभाव से क्षीण होती जायेगी। (क्योंकि यहां सभी उत्तमगतिलाभ करके मुक्त हो जायेंगे)। मनुष्यों की मुक्ति के सम्बन्ध में तो वेदान्त को भी संशय है, तथापि इस क्षेत्र में विष्णुभक्तगण हेतु कुछ भी दुर्लभ नहीं है। हे द्विजगण! इसके पूर्व पुराणपुरुष भगवान् ने जो कहा था, वह सब ब्रह्मा के सामने दृष्टिगोचर होने लगा। जिसके नाम का कीर्त्तन करने से सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं, जब वे साक्षात् दर्शन दे रहे हैं, तब मोक्षफल दुर्लभ कैसे रहेगा? जिन विष्णु का मन ही मन ध्यान करने वाला जीव मुक्त हो जाता है, उनके साक्षात् दर्शन द्वारा मुक्ति प्राप्त होगी इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। हे द्विजगण! इस पुरुषोत्तम क्षेत्र नामक स्थान की महिमा अत्यद्भुत है!।।६-१०।।

यत्र काकोऽपिचहरिंसाक्षात्पश्यतिभोद्विजाः। सुदुर्लभंक्षेत्रमिदमज्ञानाञ्चविमोचनम्।।११।।

अहो क्षेत्रस्य माहात्म्यं काकस्याऽपि विमुक्तिदम्।
किं पुनः सततं शान्तिवैराग्यज्ञानसंयुजाम्।।१२।।

यहां तो काकपक्षी को भी विष्णु का साक्षात् दर्शन प्राप्त हो जाता है। यह अतीव दुर्लभ क्षेत्र है। यहां तो अज्ञानी प्राणी भी मुक्त हो जाते हैं। जो यहां निरन्तर शान्ति-वैराग्य तथा ज्ञानयुक्त रहते हैं, क्या उनकी मुक्ति में कोई संन्देह बाकी है।।११-१२।।

ऋषयःऊचुः

नीलाद्रौ माधवं दृष्ट्वा किं चकार पितामहः। तद्दर्शनेक्षणान्नष्टदेहबन्धञ्च वायसम्।।१३।।

ऋषिगण कहते हैं—नीलमाधव के दर्शन द्वारा क्षणमात्र में देहबन्धन मुक्त उस काक पक्षी के रूपान्तरण को देखकर पितामह ने क्या कहा?।।१३।।

जैमिनिरुवाच

अत्यद्भुतमयंदृष्ट्वायावद्ध्यायति माधवम्। तावत्पितृपतिः स्वाऽधिकारसंयमनाकुलः।।१४।।
दीनाननोनिःश्वसन्वैतत्र यातस्त्वरान्वितः। नीलाद्रौमाधवंदृष्ट्वा साष्टाङ्गम्प्रणिपत्यच।
तुष्टाव स जगन्नाथं स्वाधिकारदृढस्थितौ।।१५।।

जैमिनि कहते हैं—इस प्रकार ब्रह्मा ने वहां की दोनों अद्भुत घटना को देखा। जब वे यह सब देखकर माधव का ध्यान कर रहे थे, तब उस समय दण्डधारी यमराज अपने अधिकार को इस प्रकार ध्वंस होते देखकर व्याकुल हो गये। वे दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुये वहां उपस्थित हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने नील पर्वत पर माधव का दर्शन करके उनको साष्टांग प्रणाम किया तथा अपने अधिकार की दृढ़ स्थिति हेतु स्तव करने लगे।।१४-१५।।

यम उवाच

नमस्ते देवदेवेश ! सृष्टिस्थित्यन्तकारण !।।१६।।
त्वयिप्रोतमिदंसर्वंसूत्रेमणिगणायथा। त्वयाधृतंत्वयासृष्टन्त्वयाचाऽऽप्यायितंजगत्।।१७।।
चन्द्रसूर्यादिरूपेण नित्यम्भासयसेऽखिलम्।
विश्वेश्वरं जगद्योनिं विश्वावासं जगद्गुरुम्।।१८।।

विश्वसाक्षिणमाद्यन्तवर्जितं प्रणमाम्यहम्। नमः परमकारुण्यजलसम्भृतसिन्धवे॥१९॥
परापरपरातीतविभवे विश्वसम्भवे॥२०॥
भवसन्तापनीहारभानवे दीनबन्धवे। स्वमायारचिताशेषविभवे गुणरज्जवे॥२१॥

यम कहते हैं—हे देवदेवेश्वर! आप ही सृष्टि-स्थिति संहार कारण हैं। जैसे माला की मणियां एक सूत्र में ग्रथित रहती हैं, वैसे ही यह समस्त जगत् आपमें संलग्न है। आप इस जगत् को धारण करते हैं। आप ही इसका सृजन करके इसका पालन करते हैं। हे प्रभो! आप चन्द्र-सूर्य आदि रूपेण समस्त जगत् को प्रदीप्त करते हैं। आप विश्वेश्वर तथा विश्वयोनि हैं। आप विश्व के आवास तथा विश्वगुरु भी हैं। आप विश्व के साक्षी, उत्पत्ति विनाश रहित हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं। आप परम करुणा सागर हैं। आप ही पर-अपर-परातीत विभु तथा विश्व संभव हैं। आप भवसन्तापरूप कुहरे के नाशक सूर्य हैं। आप दीनबन्धु हैं। आप ही अपनी माया से रचित विशेषगुणरूप रज्जुरूप भी हैं।।१६-२१।।

नमः कमलकिञ्जल्कपीतनिर्मलवाससे। महाहवरिपुस्कन्धकृन्तचक्राय चक्रिणे॥२२॥
दंष्ट्रोद्धृतक्षितिभृते त्रयीमूर्तिमते नमः। नमो यज्ञवराहाय चन्द्रसूर्याग्निचक्षुषे॥२३॥
नरसिंहाय दंष्ट्रेग्रमूर्तिर्द्रावितशत्रवे। यदपाङ्गविलासैकसृष्टिस्थित्युपसंहृतिः॥२४॥
उच्चावचात्मको ह्येष भवः सम्भवते मुहुः। तममुं नीलमेधामं नीलाश्ममणिविग्रहम्॥२५॥
नीलाचलगुहावासं प्रणमामि कृपानिधिम्। शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं शुभदायिनम्॥२६॥

जो कमलकेशर वर्ण वाले पीतवर्ण निर्मल वस्त्र को पहनते हैं, जो चक्रधारी हैं तथा इस चक्र द्वारा महायुद्ध में शत्रुगण के शिर को उनके कंधे से पृथक् करते हैं, जो अपनी दाढ़ से पृथिवी का उद्धार करके पालन करते हैं, जो ऋक्, यजुः, साम रूप वेदत्रयी की मूर्त्ति धारण करते हैं, जो यज्ञवाराहरूपी हैं, चन्द्र-सूर्य-अग्नि जिनके नेत्र हैं, मैं उन परमेश्वर को प्रणाम करता हूं। जो नृसिंह रूप हैं, जिन्होंने तीक्ष्ण दाढ़ से शत्रुओं को विदीर्ण किया, जिनके कटाक्ष मात्र से सृष्टि-स्थिति-प्रलय घटित होते हैं, जिनसे यह विविध रूप संसार पुनः-पुनः उत्पन्न होता है, उन नील मेघ के समान, नीलकान्त मणिमय नीलाचल गुहावासी कृपानिधि, शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण करने वाले, शुभकारी, प्रणतजन की अशेष पापबुद्धिरूपी पापव्यूह का नाश करने वाले दानव वैरी भगवान् को प्रणाम करता हूं।।२२-२६।।

प्रणताशेषपापौघदारिणं मुरवैरिणम्। नमस्ते कमलापाङ्गसङ्गसंस्कारचक्षुषे॥२७॥
श्रीवत्सकौस्तुभोद्भासिमनोहृद्व्यूढवक्षसे। यत्पादपङ्कजद्वन्द्वसंश्रयैश्वर्यभागिनी॥२८॥
श्रीः संश्रिता जनैः शश्वत्पृथगैश्वर्यदायिनी। या परापरसम्भिना प्रकृतिस्ते सिसृक्षया॥२९॥
निर्विकारम्परम्ब्रह्मविकारिससृजेऽञ्जसा। सर्वलक्षणसम्पूर्णां लक्षितां शुभलक्षणैः।
लक्ष्मीशोरसि नित्यस्थां लक्ष्मीं ताम्प्रणमाम्यहम्॥३०॥

कमला के सतत् संसर्ग से जिनके नयन सदा शोभित हैं, जिनका वक्ष श्रीवत्सचिह्नित और कौस्तुभमणि से दीप्त हैं, जिनके पादपद्मद्वय का आश्रय लेकर लक्ष्मी ऐश्वर्यमयी होकर अपने आश्रितों को पृथक्-पृथक् वांछित ऐश्वर्य प्रदान करती हैं, जिनके सृष्टिरचनार्थ प्रवृत्त हो जाने पर प्रकृति तथा पुरुष भिन्नवत् प्रतिभात होने

लगते हैं ऐसी वह प्रकृति निर्विकार ब्रह्म में विकार सम्पादित करती है तथा जगत् लक्षण में सम्पूर्ण शुभ लक्षणों से लक्षित होकर जो नारायण के वक्षस्थल पर सतत् अधिष्ठिता रहती हैं, उन लक्ष्मी को मैं प्रणाम करता हूं।।२७-३०।।

जैमिनिरुवाच

तदेवंधर्मराजेनश्रीकान्तःपरितोषितः। पार्श्वस्थांवल्लकीहस्तांनेत्रान्तेनादिशच्छ्रियम्।।३१।।
तेन सम्भाविता लक्ष्मीर्भवदुःखविनाशिनी। शुभायसर्वलोकानांयमम्प्रोवाचलीलया।।३२।।

जैमिनि कहते हैं—उस समय श्रीपति ने धर्मराज पितरों के स्वामी का स्तव सुना, उससे वे प्रसन्न हो गये। उन्होंने वीणाधारिणी तथा पार्श्वर में स्थित लक्ष्मी को अपनी कटाक्ष भंगी से संकेत किया। संसार दुःख नाशिनी लक्ष्मी ने उनकी आज्ञा पाकर सर्वलोक हितार्थ यमराज से कहना प्रारंभ किया।।३१-३२।।

लक्ष्मीरुवाच

यदर्थमावांसंस्तौषिक्षेत्रेस्मिन्दुर्लभं हि तत्। अत्याज्यमावयोरेतत्क्षेत्रंश्रीपुरुषोत्तमम्।।३३।।
कल्पावसानेऽप्यावां वै ध्रियेतेपरमेष्ठिना। ब्रह्मादिदिक्प्रभूणांहिस्वामित्वंनेहविद्यते।।३४।।
नेह कर्मपरीपाकाः सम्भवन्ति कदाचन। अत्र प्रवसतां नणां तिरश्चामपिदुष्कृतम्।।३५।।
दह्यते ज्वलिताग्नौ हि तूलराशिर्यथा भृशम्।
ये बद्धा पापपुण्याभ्यां निगडाभ्यामहर्निशम्।।३६।।
तेषां संयमितःत्वंहियमःपूर्वविनिर्मितः। अत्र साक्षाद्वपुष्मन्तं नीलेन्द्रमणिमञ्जुलम्।।३७।।
दृष्ट्वा नारायणं देवं मुच्यते कर्मबन्धनात्।
अतोऽन्यतः कर्मभूमौ प्रभुस्त्वंसूर्यसम्भव !।।३८।।
वैक्लव्यं क्षेत्रराजेऽस्मिन्मा गास्त्वंयम संयमे। तवाऽपि भगवानेषविधाताप्रपितामहः।।३९।।
तिर्यञ्चं विष्णुसारूप्यं प्राप्तं पश्यतिकौतुकात्। एष कर्मपरीपाकं सर्वेषांवेत्तिकञ्जजः।।४०।।
ज्ञात्वा क्षेत्रस्य माहात्म्यं स्तौति देवं गदाधरम्।
त्वद्वशं गन्तुमुचिता नेह तिष्ठन्ति जन्तवः।।४१।।
वैवस्वत ! वसन्त्यत्र जीवन्मुक्ता मुमुक्षुवः। तया सम्बोधितस्त्वेवं विष्णुना स्त्रीस्वरूपिणा।
ततोऽहङ्कारलज्जाभ्यां विनीतः प्राब्रवीद्यमः।।४२।।

लक्ष्मी कहती हैं—"हे यम! तुमने जिस अभिप्राय से हमारा स्तव किया है, वह इस क्षेत्र में दुर्लभ है। क्योंकि यह पुरुषोत्तम क्षेत्र हमारे त्यागने योग्य नहीं है। कल्पावसान काल में भी हम इसका त्याग नहीं करते। कल्पावसान काल में ब्रह्मा हम दोनों की स्थापना करेंगे। यहां ब्रह्मा आदि प्रभुत्व वाले प्रभुओं का भी स्वामित्व नहीं है। यहां शुभ-अशुभ कर्म की फल निष्पत्ति कदापि प्रभावी नहीं हो सकती। यहां जो भी पापी मनुष्य तथा पक्षी आदि प्रविष्ट होंगे, उनकी समस्त दुष्कृति वैसे ही दग्ध हो जायेगी, जैसे अग्नि में रुई जल जाती है। जो जीवगण पाप-पुण्यरूपी जंजीर से दिन-रात आबद्ध हैं, उनका दमन करने हेतु तुम्हारी सृष्टि की गयी है। इस

स्थल पर नीलकान्तमणिवत् मनोहर साक्षात् देहधारी नारायण का दर्शन करके सभी लोग कर्मबन्धन से मुक्त हो जाते हैं। हे यम! अतः (इसके अतिरिक्त) अन्य कर्मभूमियों में तुम स्वामी बनकर कार्य करो। इस प्रधान क्षेत्र में कर्मबन्धन रूप नियम का लंघन हो जाता है, इस बात का क्षोभ करना उचित नहीं है। इसीलिये यहां तुम्हारे प्रपितामह ब्रह्मा कौतूहल से विष्णु सारूप्य प्राप्त पक्षी को देख रहे हैं। हे यम! सभी के (यहां वाले) इस कर्मफल को कोई नहीं जानता। तुम इसे क्षेत्र की ही महिमा समझो तथा गदाधरदेव की स्तुति (स्मरण) करते रहो। जो जीव यहां वास करते हैं, वे तुम्हारे वशीभूत नहीं रह जाते! हे सूर्यपुत्र यम! यहां मुमुक्षु व्यक्ति जीवन्मुक्त होकर रहते हैं।'' देवदेव विष्णु की प्रतिनिधिरूपा लक्ष्मी द्वारा यम से यह कहे जाने पर यमराज ने अहंकार तथा लज्जा त्याग दिया तत्पश्चात् वे विनीतभाव से कहने लगे।।३३-४२।।

यम उवाच

मातस्त्वया यदाज्ञप्तं पुरा नैतन्मया श्रुतम्।।४३।।
अज्ञानोपहतो वेद्मि रहस्यं कथमुत्तमम्। यस्य स्वरूपं वेदाश्च न च वेत्ति पितामहः।।४४।।
महिमानं कथन्तस्य वेद्म्यहङ्कार मोहितः। यदादिष्टं सुरेशानि ! क्षेत्रमेतद्विमुक्तिदम्।।४५।।
सान्निध्याद्वासुदेवस्य ईश्वरेच्छा निरङ्कुशा। अन्यत्र बन्धदोविष्णुरत्रमोक्षंददातियत्।।४६।।
ममाऽपिनिरयाणाञ्चस्त्रष्टासौत्रिदिवस्यच। मृतानामत्रमुक्तिश्चेत्तन्मामम्बसुविस्तरम्।।४७।।
क्षेत्रसंस्थाप्रमाणं हि तत्र स्थितिफलं हि यत्।
तीर्थानि कानि सन्त्यत्र किमन्यद्वा रहस्यकम्।।४८।।
किमधिष्ठातृकं क्षेत्रं तत्सर्वंकथयस्व मे। तदहं सम्परित्यज्य निर्भयः सञ्चरे यथा।।४९।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्र-माहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे यमस्तुतिवर्णनंनामद्वितीयोऽध्यायः।।२।।

यम कहते हैं—हे माता! आपने जो आज्ञा दिया है, वह मैंने पहले कभी नहीं सुना था। मैं अज्ञानी हूं। मुझे यह रहस्य कैसे ज्ञात हो सकता था। जिनके स्वरूप के सम्बन्ध में समस्त वेद तथा ब्रह्मा भी नहीं जानते, मैं अहंकार मोहित व्यक्ति उसे कैसे जान सकता हूं? हे लक्ष्मी! विश्वेश्वरी! देवी! आपका जो आदेश है कि यह क्षेत्र भगवान् की सन्निधि प्रदायक मुक्ति प्रदान करता है, इसमें संशय की बात कहां है? ईश्वरेच्छा ही सर्वत्र अनिवार्य हैं। विष्णु अन्य स्थान में भले ही बन्धन करते हैं, तथापि वे यहां तो मुक्ति देते रहते हैं। विष्णु ने ही मेरा तथा नरकों का सृजन किया है। यदि यहां पर मरने मात्र से मुक्ति मिल जाती है, तब इस क्षेत्र की स्थिति कब तक रहेगी, यहां निवास का क्या फल है? यहां कितने तीर्थ हैं तथा इसके अतिरिक्त यहां कितने गोपनीय स्थल हैं? क्षेत्राधिष्ठाता कौन हैं? इस सब का वर्णन करें। जिससे मैं इस क्षेत्र की सीमा का त्याग करके निर्भय हो जाऊं।।४३-४९।।

।।द्वितीय अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

तृतीयोऽध्यायः

मार्कण्डेय कृत विष्णुस्तव, यमेश्वर महिमा वर्णन

श्रीरुवाच

साधुते बुद्धिरुत्पन्ना विष्णोःसन्निधिमाश्रिता। अद्भुतं कथयाम्येतत्क्षेत्रस्यरविनन्दन॥१॥
यथाऽहं भगवद्वक्षःस्थलस्था ददृशे पुरा। चराचरे जगत्यस्मिन्प्रलीने प्रलये यम !॥२॥
एतत्क्षेत्रमहं चैव द्वे एवोपस्थिते यदा। स तदा सप्तकल्पायुर्मृकण्डोरात्मजो मुनिः॥३॥
प्रणष्टे स्थावरचरे निमग्नः प्रलयार्णवे। नावस्थानमवाप्यैव शर्म लेभे न कुत्रचित्॥४॥
जलार्णवे भ्राम्यमाणः प्रलये स इतस्ततः। पुरुषोत्तमसादृश्ये क्षेत्रे स वटमैक्षत॥५॥
उत्प्लुत्योत्प्लुत्य मूलं तु न्यग्रोधस्य समीपतः।
शुश्राव बालवचनं मार्कण्डेय ! ममाऽन्तिकम्॥६॥

लक्ष्मी कहती हैं—हे सूर्यनन्दन यम! विष्णु के यहां तुम्हारी जो यह बुद्धि उत्पन्न हो गई है, वह प्रशंसायोग्य है। मैंने पूर्वकाल में भगवान् के वक्षःस्थल में रहकर उनका जो रूप देखा था, इस क्षेत्र में उसका आश्चर्य विवरण देती हूं। इस चराचर जगत् के प्रलयकाल में लीन हो जाने पर यह क्षेत्र तथा मैं, मात्र ये दो ही उपस्थित बचे थे। उस समय से सप्तकल्पजीवी मार्कण्डेय ऋषि चराचर विलीन हो जाने पर भी प्रलय समुद्र में मग्न होकर स्थानाभाव के कारण मंगललाभ नहीं कर पा रहे थे। तदनन्तर उस प्रलयजल में इतःस्ततः भ्रमणरत रहते हुये उन्होंने पुरुषोत्तम क्षेत्र में पुरुषोत्तम के समान एक वटवृक्ष देखा। उस वृक्ष के मूल के पास उतराते हुये उन्होंने वृक्ष के पास एक बालक का वचन सुना। "हे मार्कण्डेय! मेरे निकट आओ!।।१-६।।

प्रविश्य दुःखमतुलं जहीहि खलु मा शुचः। तच्छुत्वा चित्रवचनमप्रतर्क्यं तदामुनिः॥७॥
विस्मयं परमं लेभे स्वदुःखं नाऽप्यचिन्तयत्। वारिभिःशीर्यतेनैतद्दह्यतेकालवह्निना॥८॥
सम्वर्तकादिभिर्नैतच्छोष्यते नाऽपिचाल्यते। एकार्णवे महाघोरेनौरिव क्षेत्र दीक्ष्यते॥९॥
तत्राऽयं यूपसदृशो न्यग्रोधस्तिष्ठते महान्। यं गृहीत्वाक्षेत्रमिदंन्यग्रोधईशितुस्तनुः॥१०॥

"यहां आकर अपना आत्यन्तिक दुःख दूर करो। शोक न करो।" मार्कण्डेय ने उस समय इस आश्चर्य वचन को स्पष्टतः सुना तथा अपने दुःख का चिन्तन भूल कर परम विस्मय में पड़ गये कि यह क्षेत्र जल से शीर्ण नहीं है। कालानल रूपी प्रलयाग्नि से दग्ध नहीं है, संवर्त्तक वायु से शुष्क तथा विचलित भी नहीं है। महाघोर एकार्णव की नौका के समान यह क्षेत्र दृष्टिगोचर हो रहा है। इस क्षेत्र में यज्ञस्तम्भवत् यह महान् वटवृक्ष अवस्थित है। यह उत्तम क्षेत्र है। वटवृक्ष तो भगवान् का शरीर है।"।।७-१०।।

महाप्रलयवातेन शाखा नाऽस्य हि कम्पते।
तस्याऽधस्तात्स हि मुनिः स्थित्वा चैतदचिन्तयत्॥११॥
एकार्णवेऽस्मिन्प्रलये नष्टे स्थावरजङ्गमे। भूप्रदेशः स्थिरतरः कथमेष विभाव्यते॥१२॥

यत्राऽयं शाखिप्रवरः कोमलः परिदृश्यते। मार्कण्डेयाऽऽगच्छमुहुरितिसप्रश्रयं वचः॥१३॥
कुतो निराश्रयमिदंचिन्तयन्निति स प्लवन्। शङ्खचक्रगदापाणिंनारायणमलोकयत्॥१४॥
तदङ्गपद्मासनगां मां च वैवस्वतैक्षत। विवशोजलवाताभ्यांतद्वासुस्थोव्यवस्थितः॥१५॥
हृष्टान्तरात्मा स मुनिरावां साष्टाङ्गमानतः। प्रसादनायदेवस्य स्तोत्रमेतदुदाहरत्॥१६॥

महाप्रलयकालीन वायु से भी इसकी शाखायें कम्पित नहीं होती। मुनिवर मार्कण्डेय इस वृक्ष के नीचे स्थित होकर यही विचार करने लगे कि एकार्णव प्रलयकाल में स्थावर जंगम सब नष्ट हो गया, तब यह भूप्रदेश कैसे स्थिर रह गया तथा इस पर तो यह वृक्ष कोमलरूप में यथावत् परिलक्षित हो रहा है। "हे मार्कण्डेय! आओ।" ऐसा आश्रयरहित वाक्य बारम्बार कहां से उत्पन्न हो रहा है? यही सोचते हुये चलते-चलते शंख-चक्र-गदाधारी नारायण का तथा उनकी गोद में पद्मासनासीना मेरा दर्शन मार्कण्डेय ने किया। जिन मार्कण्डेय का जल-वायु वेग के कारण अंग शिथिल हो गया था, उन मार्कण्डेय ने तब स्वस्थ होकर भगवान् को प्रणाम किया तथा उनको प्रसन्न करने हेतु स्तव करने लगे।।११-१६।।

मार्कण्डेय उवाच

त्वत्पादपद्मानुसरानुषङ्गं रुद्रेन्द्रपद्मासनसम्पदाढ्यम्।
त्वद्भक्तिहीनं परितः प्रतप्तं दीनं परित्राहि कृपाम्बुधे ! माम्॥१७॥
ब्रह्मादिभिर्यत्परिचर्यमाणं पदाम्बुजद्वन्द्वमचिन्त्यशक्ति।
श्वःश्रेयसप्राप्रिनिदानतत्त्वं दीनं परित्राहि कृपाम्बुधे ! माम्॥१८॥
यदङ्गभूतं जगदण्डमेतदनेककोटिप्रगणं विभाति।
लीलाविलासस्थितिसृष्टिलीनं तन्मां सुदीनं परिरक्ष विष्णो !॥१९॥
एकं सुवर्णं कटकादिभेदैर्नाना यथा वा नभसोदितोऽर्कः।
आधारवैषम्यजलेषु तादृग्विभाव्यसे निगुण एक एव॥२०॥
अशेषसम्पूर्णरुचिप्रहीणोपादानसङ्कल्पविवर्जितोऽपि ।
दीनानुकम्पानुगुणं बिभर्षि युगेयुगे देहमपारशक्ते !॥२१॥
त्वत्पादपद्मं जगदीश ! पूर्वमसेव्यतानात्मधिया मया यत्।
तत्कर्मणा दारुणपाकभाजं दीनं परित्राहि कृपाम्बुधे ! माम्॥२२॥

मार्कण्डेय कहते हैं—हे विष्णु! आज आपके चरणकमल का सान्निध्य पाकर मैं भी ब्रह्मा-रुद्र-चन्द्रमा की तरह असीम सम्पदा का अधिकारी हो गया। मैंने इतने दिनों आपका भजन नहीं किया था, इसी कारण विविध यन्त्रणा भोग कर रहा था। हे दयासागर! अब मेरी रक्षा करिये। आपके चरणकमल की महिमा अपार है तथा वह मुक्तिलाभ का एकमात्र निदान है। तभी ब्रह्मा आदि देवता आपकी परिचर्यारत रहते हैं। हे दयानिधि! मैं भजनपूजनरहित अधम हूं। मुझ पर दया करिये तथा मेरी रक्षा करिये। जिनके अंगों से उत्पन्न ब्रह्माण्ड उनकी अपेक्षा अनेक कोटिगण विस्तृत प्रतीत होता है, इस संसार की सृष्टि स्थिति तथा लय जिनमें हो जाता है, हे

देव! आप ही वह सर्वव्यापक विष्णु हैं। दयापूर्वक इस अधम की रक्षा करिये। जैसे एकमात्र स्वर्ण ही वलय-हार आदि भेद से विभिन्न आकार प्राप्त करता है, जैसे एकमात्र दिवाकर जल में प्रतिबिम्बित होकर नानारूपेण प्रतीयमान होते हैं, वैसे ही आप निर्गुण अद्वय ब्रह्मरूपी होकर भी विभिन्न आकार धारण कर लेते हैं। हे अपार शक्तिशाली! आपमें कोई भी संकल्प अथवा वासना नहीं है, तथापि आप दीनजन पर कृपा करके प्रति कृपालु होकर प्रत्येक युग में देहधारी हो जाते हैं। हे जगदीश! मैंने पूर्व में जानबूझ कर आपकी सेवा नहीं किया, तभी मेरे समक्ष यह दारुण दुर्विपाक आ गया। हे कृपासागर आप कृपया इस दीन की रक्षा करें।।१७-२२।।

अशेषलोकस्थितिसृष्टिलीनविलासि यत्ते त्रिगुणं विभाति।
वपुर्महात्मन्महदादिहेतुर्हेतोर्नमस्ते प्रकृतेः परस्य॥२३॥
सर्वत्र गत्वा बृहदप्रमेयं प्रवर्द्धमानं त्वयि बृहितं च।
तद्ब्रह्मरूपं परिणामहेतुं स्वाध्यात्मविश्वात्मकमाश्रयामि॥२४॥
एकार्णवे महाघोरे नावस्थातुं प्रदेशभूः। अस्ति लक्ष्मीपते मेघवारिवातप्रकम्प्रनात्॥२५॥
त्राहिविष्णोजगन्नाथमग्नंसंसारसागरे। मामुद्धरास्माद्गोविन्दकृपापाङ्गविलोकनात्॥२६॥

हे महात्मन्! आपका त्रिगुणात्मक देह ही जगत् में सृष्टि-स्थिति-लय सम्पन्न करता है। आप ही महदादि २४ तत्वों के कारण हैं। आप प्रकृति से अतीत सर्वकारण परमात्मा हैं। आपको प्रणाम! आप में जो सर्वव्यापी अनन्त अप्रमेय वर्द्धमान ब्रह्मरूप विद्यमान है, जगत्प्रपञ्च के हेतुभूत विश्वरूपी आप के उस आध्यात्मरूप का आश्रय लेता हूं। हे लक्ष्मीपति! वायुप्रवाह तथा वृष्टि से नितान्त व्यथित हो गया हूं। इस भीषण एकार्णव में मुझे विन्दुमात्र भी बैठने का स्थान नहीं मिल रहा है। हे विष्णु! जगन्नाथ! मैं संसार सागर में डूब रहा हूं। आप रक्षा करिये। हे गोविन्द! आप अपनी कृपापूर्ण दृष्टि द्वारा मेरा संसार सागर से उद्धार करें।।२३-२६।।

श्रीरुवाच

स्तुवन्तमेवं ब्रह्मर्षिं साक्षान्नारायणो विभुः। विलोक्याऽनुग्रहदृशावाक्यंचेदमुवाच ह॥२७॥

श्रीभगवानुवाच

मार्कण्डेय ! सुदीनोऽसि मामज्ञायद्विजोत्तम। दुश्चरं तुतपस्तप्तंदीर्घायुस्तेनकेवलम्॥२८॥
शयानं पत्रपुटके पश्य कल्पवटोर्ध्वगम्। बालस्वरूपं सर्वेषां कालात्मानं महामुने !।
प्रविश्य विस्तृतं वक्त्रं तत्राऽवस्थातुमर्हसि॥२९॥

श्रीरुवाच

एवमुक्तो भगवता स मुनिर्विस्मितानन:॥३०॥

श्रीदेवी कहती हैं—ब्रह्मर्षि मार्कण्डेय की स्तुति सुनकर साक्षात् विभु नारायण ने करुणाकटाक्ष द्वारा उनसे यह कहा—"हे मार्कण्डेय! तुमने मुझे बिना पहचाने पूर्व में मेरा जो दुष्कर स्तव करके दुःखित हो गये थे, उसी से तुमको दीर्घायु मिली है। अब कल्पवट के ऊर्ध्व में पत्र सम्पुट के बीच (पत्ते के सम्पुट में) जो बालकवत् कालात्मा शयन कर रहे हैं, उनका दर्शन प्राप्त करो। उनका जो विस्तृत मुख है, उसमें तुम अवस्थान कर सकोगे।।२७-३०।।

आरुह्य ददृशे बालरूपं तस्याऽविशन्मुखे। प्रविष्टः कण्ठमार्गेण महायामं महोदरम्।।३१।।
तत्राऽसौ ददृशे विप्रोभुवनानि चतुर्दश। ब्रह्मादिदिक्पालसुरान्सिद्धगन्धर्वराक्षसान्।।३२।।
ऋषीन्दिव्यऋषींश्चैव भूतलं सागराङ्कितम्। नानातीर्थैर्नदीभिश्च पर्वतैः काननैस्तथा।।३३।।
लक्षितं पत्तनपुरं ग्रामखर्वटकैर्युतम्। पातालानि तथा सप्त नागकन्याः सहस्रशः।।३४।।
महार्घ्यमणिसौधैश्च सुधापात्रैः समुज्ज्वलैः। अनर्घ्यमणिभिर्नागैःसेवितंपरमाद्भुतम्।।३५।।

जगतां धारिणं शेषं सहस्रफणमण्डितम्।
व्याकर्तारमशेषाणां शास्त्राणां शिष्यमध्यगम्।।३६।।

ब्रह्माण्डोदरगं वस्तु यत्किञ्चित्परमेष्ठिना। सृष्टं सर्वं ददृशेऽसौतत्कुक्षौसमहामुनिः।।३७।।
नापश्यदन्तं कुक्षेस्तु भ्रममाण इतस्ततः। ततो विनिष्क्रम्य पुनर्ददृशे च मया सह।।३८।।
पूर्वमालक्षितं यद्वदास्थितं पुरुषोत्तमम्। विस्मयोत्फुल्लनयनः प्रणिपत्येदमब्रवीत्।।३९।।

मार्कण्डेय भगवान् का यह वाक्य सुनकर विस्मित हो गये। उन्होंने वृक्ष पर आरोहण करके उन बालक का दर्शन किया तथा उनमें प्रविष्ट हो गये। तदनन्तर वे प्रभु के कण्ठमार्ग से उनके उदर में प्रवेश कर गये। उसमें उन्होंने चतुर्दश भुवन तथा ब्रह्मादि दिक्पाल एवं देवता-गन्धर्व-राक्षस-ऋषि-देवर्षिगण-ससागरा पृथिवी-नानातीर्थ-नदी-पर्वत-कानन को देखा। वहां उन्होंने नगर, पुर, ग्राम खर्वट (२०० ग्राम) उनमें स्थित मनोहरस्थान, सप्तपाताल, हजारों नागकन्या, सुधा से लिप्त दीप्तिवान् महामूल्यवान् राजभवन तथा मस्तक में महामूल्यवान् मणिधारी नागगण सेवित, जगत् को धारण करने वाले हजारों फण से युक्त अत्यद्भुत अनन्तदेव को देखा। उन्होंने वहां शिष्यों के बीच आसीन अनंत शास्त्रों की व्याख्या करने वालों को, ब्रह्माण्ड में जिन सब पदार्थों की तथा वस्तुओं की रचना ब्रह्मा ने की है, उन सबको बालक की कुक्षि में देखा। वे वहां इतःस्ततः नाना भ्रमण करके भी उसका अन्त नहीं पा सके। तदनन्तर वे कुक्षि से मुख द्वारा निकले तथा बाहर आकर मेरे साथ पुरुषोत्तम का पूर्ववत् दर्शन किया। तब वे विस्मय से भरे उत्फुल्ल नेत्रों की स्थिति में प्रणाम करके कहने लगे।।३१-३९।।

मार्कण्डेय उवाच

भगवन्देवदेवेश किमद्भुतमिदं प्रभो। महाप्रलयसंरोधे सृष्टिरत्र विभाव्यते।।४०।।
त्वन्मया दुरवच्छेद्या कथं वै ज्ञायते मया।।४१।।

मार्कण्डेय कहते हैं —हे देवदेवेश! यह कैसा आश्चर्य है? प्रलयकाल में यह सृष्टि आपकी कोख में स्थित हो जाती है। आपकी माया अपरम्पार है। मैं उसे कैसे जान सकता हूं।।४०-४१।।

श्रीभगवानुवाच

मुने ! क्षेत्रमिदं चित्रं शाश्वतं मे विभावय। न सृष्टिप्रलयावत्र विद्येते न च संसृतिः।।४२।।

सदैकरूपं पुरुषोत्तमाख्यं मुक्तिप्रदं मामिह सम्प्रबुध्य।
अत्र प्रविष्टो न पुनः प्रयाति गर्भस्थितिं सान्द्रसुखस्वरूपः।।४३।।

इत्याज्ञप्तो भगवतामार्कण्डेयो महामुनिः। अत्र वासंकरिष्यामीत्यन्यतीर्थपराङ्मुखः।
प्रहृष्टवदनः प्राह प्रणिपत्य जगद्गुरुम्॥४४॥

श्री भगवान् कहते हैं—''हे मुनिवर! मेरा यह आश्चर्य क्षेत्र नित्य है। यह अनित्य नहीं है। इसकी भावना करो। इसमें सृष्टि-प्रलय-संसृति है ही नहीं। जो व्यक्ति यहां आकर मुझे निरन्तर एक रूपी पुरुषोत्तम मुक्तिदाता रूप से जानता है, जो व्यक्ति यहां आकर स्थित रहता है, वह व्यक्ति सर्वसुखरूप होकर पुनः गर्भवास को नहीं प्राप्त करता।'' महामुनि मार्कण्डेय ने भगवान् से यह आज्ञा पाकर यह निश्चित किया कि वे यहां से अन्य तीर्थ नहीं जायेंगे। यह स्थिर करके वे यही बात विष्णु से कहने लगे।।४२-४४।।

मार्कण्डेय उवाच

उवाचस तथा विष्णुं भक्तिश्रद्धासमन्वितः। अनुगृह्णीष्वभगवन्क्षेत्रेऽस्मिन्पुरुषोत्तमे।
यथा स्थितो मृत्युवशं न व्रजे पुरुषोत्तम !॥४५॥

मार्कण्डेय कहते हैं—हे भगवान्! मुझ पर यह कृपा करिये जिससे मैं यहां निवास करके मृत्यु के वश में न रहूं।।४५।।

श्रीभगवानुवाच

अत्र स्थितिं मे विप्रर्षे! क्षेत्रे मोक्षप्रसाधके॥४६॥
करिष्यामिन सन्देहो यावदाभूतसम्प्लवम्। प्रलयावसानेतीर्थंतेरचयिष्यामिशाश्वतम्॥४७॥
यत्तीरे तप आस्थाय मद्द्वितीयतनुं शिवम्।
आराध्य मदनुक्रोशान्मृत्युं जेष्यसि निश्चितम्॥४८॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे विप्रर्षि! महाप्रलयपर्यन्त इस मुक्तिसाधक क्षेत्र में मेरी स्थिति रहेगी। इसमें सन्देह नहीं है। मैं महाप्रलयान्त में तुम्हारे लिये एक तीर्थ की रचना करूंगा। उसके तीर पर तुम तप करके मेरे द्वितीय शरीर शिव की आराधना करके मेरी कृपा द्वारा मृत्यु पर विजय प्राप्त करोगे।।४६-४८।।

जैमिनिरुवाच

एवं पुरा दत्तवरो मार्कण्डेयो महामुनिः। न्यग्रोधवायव्यकोणे खातं चक्रेण वै हरेः॥४९॥
पावनं गर्तमास्थाय पूजयित्वा महेश्वरम्। महत्ता तपसा विप्रो जितवान्मृत्युमञ्जसा॥५०॥
मुनेस्तस्यैव भाम्नाऽयं प्रख्यातो गर्त्त उत्तमः।
यत्रस्नात्वाशिवंदृष्ट्वावाजिमेधफलंलभेत् ॥५१॥

महर्षि जैमिनि कहते हैं—इस प्रकार पूर्वकाल में मार्कण्डेय ने वर पाकर वट वृक्ष के वायुकोण में एक गर्त्त तैयार किया तथा उसका आश्रय लेकर उन्होंने महादेव के पूजन के पश्चात् उसी गर्त्त में तप करते हुये मृत्यु को जय किया। इस गर्त्त को मार्कण्डेय गर्त्त कहते हैं। यहां स्नान करके लोग शिव का दर्शन करके अश्वमेध यज्ञफल प्राप्त करते हैं।।४९-५१।।

श्रीरुवाच

पञ्चकोशमिदं क्षेत्रं समुद्रान्तर्व्यवस्थितम्। द्विक्रोशं तीर्थरासजस्यतटभूमौसुनिर्मलम्।।५२।।
सुवर्णवालुकाकीर्णनीलपर्वतोशोभितम्। योऽसौविश्वेश्वरोदेवःसाक्षान्नारायणात्मकः।।५३।।
संयम्य विषयग्रामं समुद्रतटमास्थितः। उपासितुं जगन्नाथं चतुःषष्टितमः प्रभुः।।५४।।
यमेश्वर इति ख्यातो यमसंयमनाशनः। यं दृष्ट्वा पूजयित्वातुकोटिलिङ्गफलं लभेत्।।५५।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तम-क्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे यमेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः।।३।।

श्रीदेवी कहती हैं—यह समुद्र मध्यवर्त्ती क्षेत्र तीर्थों में उत्तम है। इसका विस्तार पांच कोस पर्यन्त है। इस पांच क्रोश में समुद्रतटवर्त्ती दो कोस तो अतीव पावन है। यह स्वर्ण बालुका से भरा क्षेत्र है। वहीं नीलाचल की स्थिति होने से भी शोभायमान है। ये साक्षात् नारायण रूपी देव विश्वेश्वर हैं। यह यमभीति का निवारण करने वाले होने के कारण यमेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये चतुःषष्टितम प्रभु यमेश्वर विषय वासना को संयत करने हेतु समुद्र तट पर स्थित हैं। ये वहां जगन्नाथ की उपासना करते हैं। इनके दर्शन तथा पूजन करने से करोड़ों शिवलिंग का पूजनफल प्राप्त होता है।।५२-५५।।

।।तृतीय अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुर्थोऽध्यायः

लक्ष्मी यम संवाद, पुरुषोत्तम तीर्थस्थ, रोहिणी कुण्ड तीर्थ वर्णन, तीर्थों में मूर्त्ति स्थापना प्रसंग, अम्बरीष के उद्धार का वर्णन

श्रीरुवाच

सीमाप्रतीचीं क्षेत्रस्य शङ्खाकारस्य मूर्द्धनि। सर्वकामप्रदो देवः सआस्तेवृषभध्वजः।।१।।
सङ्खाग्रे नीलकण्ठः स्यादेतत्क्रोशं सुदुर्लभम्। परमं पावनं क्षेत्रं साक्षान्नारायणस्य वै।।२।।
सिन्धुराजस्य सलिलाद्यावन्मूलंवटस्य वै। शङ्खस्योदरभागस्तुसमुद्रोदकसम्प्लुतः।।३।।
यत्सम्पर्कात्समुद्रोऽत्र तीर्थराजत्वमागतः। यथाऽयंभगवान्मुक्तिप्रदोदृष्टिपथं गतः।।४।।
तथेदं मरणात्क्षेत्रं सिन्धुः स्नानाद्विमुक्तिदः। चिच्छेद ब्रह्मणःपूर्वंरुद्रःक्रोधात्तुपञ्चमम्।।५।।

तच्छिरो दुस्त्यजं गृह्णन्ब्रह्माण्डं परिबभ्रमे। अत्राऽऽगतोयदाब्रह्मकपालं परिमुक्तवान्॥६॥
कपालमोचनं लिङ्गं द्वितीयावर्तसंस्थितम्। कपालमोचनं पश्येत्पूजयेत्प्रणमेच्च यः॥७॥
ब्रह्महत्यादिपापनां कञ्चुकंविजहात्यसौ। तस्य दक्षिणपार्श्वे तु मरणं भवमोचनम्॥८॥

लक्ष्मी कहती हैं—"इस क्षेत्र का परिमाण ५ क्रोश है। यह समुद्रपर्यन्त स्थित है। इसमें समुद्र की तटभूमि स्वर्णबालुका से आवृत है तथा नील पर्वत से शोभायमान है। इसमें ३ क्रोश स्थान तो अत्यन्त निर्मल है। वहां विश्वेश्वर देव इन्द्रिय संयमपूर्वक चतुर्वर्ग फलदाता साक्षात् नारायण जगन्नाथ की उपासना करने के लिये समुद्र तट का आश्रय लेकर स्थित हैं।" यमराज ने यह वचन सुनकर शिव की सम्यक् पूजा सम्पन्न किया। यम के संयम का नाश करने के कारण इन शिव का नाम यमेश्वर है। उनका दर्शन-पूजन करने से करोड़ों लिंग पूजन का फल लाभ होता है। इस क्षेत्र की आकृति शंख़ के समान हैं।[1] उसके मस्तक की ओर पश्चिमी सीमा है। इस शंखाकृति क्षेत्र में आगे की ओर नीलकण्ठ शिव की स्थिति है। यह १ क्रोश का स्थान अत्यन्त दुर्लभ है। यह क्षेत्र सागर जल से लेकर वटवृक्ष के मूल पर्यन्त विस्तृत है। साक्षात् नारायण का यह क्षेत्र अतीव पवित्र है। इस शंख का उदर भाग समुद्रजल में निमग्न रहता है। उसके संसर्ग के कारण यहां पर समुद्र ने समस्त तीर्थों की प्रधानता को प्राप्त किया।

जैसे यहां भगवान् अपना दर्शन करने वालों को मुक्ति देते हैं, उसी प्रकार यहां मृत होने पर अथवा सिन्धु में स्नान करने पर भी वे मोक्ष प्रदान करते हैं। इसलिये यहां भगवत्‌दर्शन, क्षेत्र में मरण तथा सिन्धु में यहां स्नान कर पाना अतीव दुर्लभ हैं। इसके पूर्व महादेव ने क्रोधित होकर ब्रह्मा का पंचम मुख छिन्न किया जिसमें वह कपाल उनसे युक्त हो गया था (हाथों में युक्त हो गया था)। ब्रह्माण्ड में घूमते हुये जब महादेव यहां आये तथा शंखाकृति क्षेत्र के द्वितीय आवर्त्त वेष्ठन स्थान में इस कपाल का त्याग किया तब वह ब्रह्मकपाल कपालमोचन नामक शिव हो गया। जो कपाल मोचन शिव का दर्शन-पूजन तथा इनको प्रणाम करता है, उसका तो ब्रह्महत्या पापरूपी कंचुक भी हट जाता है। इसके दक्षिण पार्श्व में जो मृत होता है, वह पुनः जन्म नहीं लेता। (इस स्थान को आजकल जामा कहते हैं)।।१-८।।

तृतीयावर्तगामाद्यां शक्तिं मे विमलाह्वयाम्। जानीहिधर्मराजत्वंभुक्तिमुक्तिफलप्रदाम्॥९॥
य इमां पूजयेद्भक्त्या प्रणमेत्कीर्तयेत्तुवा।
सर्वान्कामानवाप्नोति मुक्तिंचान्वेचविन्दति॥१०॥
नाभिदेशे स्थितं ह्येतत्त्रयं कुण्डं वटो बिभुः। कपालमोचनाद्यावदर्द्धांशिनी प्रतिष्ठिता॥११॥

१. कई प्रतियों में ये तीन श्लोक प्रारंभ से नहीं मिलते, तथापि यहां उनका उल्लेख किया जा रहा है। भाषा टीका में ऊपर इसका अर्थ लिखा गया है। मूल यह है—

"पञ्चक्रोशमिदं क्षेत्रं समुद्रान्त व्यवस्थितम्, त्रिकोशं तीर्थराजस्य तटभूमौ सुनिर्मलम्।
सुवर्ण बालुकाकीर्णं नीलपर्वत शोभितम्। योऽसौ विश्वेश्वरोदेवः साक्षान्नायणं प्रभुम्॥
संयम्य विषयग्रामं समुद्रतटमाश्रितः। उपासितुं जगन्नाथं चतुर्वर्गफलप्रदम्।
तच्छ्रुत्वा वचनं सम्यक् यमः प्रापूजयच्छिवम्। यमेश्वरं इति ख्यातो यमसंयमनाशनः।
यं दृष्ट्वा पूजयित्वा तु कोटिलिङ्गफलं लभेत्।"

मध्यं शङ्खस्य जानीयात्सुगुप्तं चक्रपाणिना। अर्द्धमश्नाति सलिलं महाप्रलयवर्द्धितम्॥१२॥

सृष्ट्यादौ धर्मराजेयं शक्तिर्मेऽर्द्धांशिनी स्मृता।
तां दृष्ट्वा प्रणमेद्यस्तु भोगान्सोऽश्नाति शाश्वतान्॥१३॥

सिन्धुराजस्य सलिलाद्यावन्मूलंवटस्य वै। कीटपक्षिमनुष्याणांमरणान्मुक्तिदोमतः॥१४॥

अन्तर्वेदी त्वियं पुण्या वाञ्छ्यते त्रिदशैरपि।
यत्र स्थितान् हि पश्यन्ति सर्वांश्चक्राब्जधारिणः॥१५॥

पृथिव्यां यानितीर्थानिगगनेचत्रिविष्टपे। सार्द्धत्रिकोटिसंख्यानिस्वर्गमोक्षप्रदानिवै॥१६॥

तेषामयं तीर्थराजः कीर्त्तितः पुरुषेत्तमः। सर्वेषां मुक्तिक्षेत्राणामिदं सायुज्यदं मतम्॥१७॥

अत्रस्थितानशोचन्तिजराजन्ममृतिष्वपि। कुण्डंह्येतद्रोहिणाख्यंकारुण्याख्यजलेनवै॥१८॥

सम्भृतं तिष्ठते नित्यं स्पर्शनाद्बन्धमुक्तिदम्। अत्रप्रतिष्ठितं वारि प्रलये यत्प्रवर्द्धते॥१९॥

अत्रैव लीयते पश्चात्तस्माद्रोहिणसञ्ज्ञितम्।
तस्मात्ते माऽत्र चिन्ताऽस्तु स्वाधिकारविपर्यये॥२०॥

हे धर्मराज! उसकी तृतीयावर्त्त सीमा में मेरी विमला नामक जो शक्ति हैं, वह भी मुक्तिरूपी फल प्रदान करती है। जो उनकी भक्तिभाव से पूजा करते हैं, प्रणाम तथा कीर्त्तन करते हैं, वे सभी अभिलषित पाकर अन्त में मुक्ति की प्राप्ति करते हैं। शंख के नाभिदेश में तीन कुण्ड एवं अक्षयवट तथा प्रभु स्थित हैं। कपाल मोचन से शंख के मध्यभाग पर्यन्त वाले भाग में अर्द्धांशनी शक्ति प्रतिष्ठिता हैं। हे धर्मराज! महाप्रलय काल में इन शक्ति ने महाप्रलय के बढ़ रहे जल में से आधे का पान कर लिया था, तभी इसे अर्द्धांशनी कहते हैं। ये इसी नाम से प्रसिद्ध हैं। हे धर्मराज! महाप्रलय के जल का पान करने वाली शक्ति का दर्शन तथा प्रणाम करने से शाश्वत भोग प्राप्त होता है। सिन्धुराज (समुद्र) के जल से लेकर अक्षयवट के मूल तक का जो स्थान है, वहां यदि कीड़े, पक्षी तथा मनुष्य मृत हो जाते हैं, उनको भी मरण पर भगवान् मुक्ति प्रदान करते हैं। भगवान् की अन्तर्वेदी भी पुण्यप्रद है। उसकी कामना देवगण भी करते हैं। यहां जो निवास करते हैं, वे सभी भगवान् का रूपदर्शन प्राप्त करते हैं। पृथिवी-आकाश-स्वर्ग में भी मोक्षप्रद जो साढ़े तीन कोटि तीर्थ हैं, उनमें पुरुषोत्तम तीर्थ क्षेत्र में सायुज्य मुक्ति प्राप्त हो जाती है। यहां स्थित व्यक्ति को जरा-जन्म-मरणशोक प्राप्त ही नहीं होता। यहां जो रौहिण नामक कुण्ड है, वह सदा कारण जल से भरा रहा है। वह स्पर्शमात्र से मुक्तिदान करता है। इस कुण्ड का जल प्रलयकाल में वर्द्धित हो जाता है तथा बाद में यहीं लीन होता है। तभी इसे रौहिणतीर्थ कहते हैं। इसलिये इतने मात्र से तुम अपने अधिकार में हस्तक्षेप अथवा न्यूनता का अनुभव मत करो।।९-२०।।

मोक्षाधिकारिणामत्रनेश्वरस्त्वंपरेतराट्। धर्मराजं समादिश्यलक्ष्मीरेवंपुरः स्थितम्॥२१॥

ब्रह्माणमाह जगतामम्बा प्रश्रयया गिरा। पितामह ! जगन्नाथ विदितं सर्वमेव यत्॥२२॥

मोक्षदं सर्वजन्तूनामेतत्क्षेत्रं धरातले। कामाख्यं क्षेत्रपालञ्च विमलम्बा तपःस्थितः॥२३॥

साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपोऽसौ नृसिंहो दक्षिणे विभोः।
हिरण्यकशिपोर्वक्षो विदार्याऽयं प्रभोज्ज्वलः॥२४॥

दर्शनादस्य नश्यन्ति पातकानिन संशयः। भुक्तेर्मुक्तेश्चयोग्यःस्यान्नात्रकार्याविचारणा॥२५॥

"केवल यहां के मोक्षाधिकारी गण के तुम प्रभु नहीं रहोगे (बाकी समग्र संसार के प्रभु रहोगे)।" जगन्माता लक्ष्मी ने समुपस्थित धर्मराज यम को यह आदेश दिया तथा प्रेमपूर्वक वे ब्रह्मा से कहने लगीं कि "हे पितामह! हे जगन्नाथ! आप सब जानते हैं। आप इस क्षेत्र में सबको मुक्ति देते हैं। यह तथ्य यम से कहिये। कामाख्या तथा क्षेत्रपाल शिव, इनके मध्य स्थित विमला तथा भगवान् के दाहिने स्थित साक्षात् नृसिंह स्थित हैं। वे ब्रह्मस्वरूप तथा हिरण्यकशिपु के वक्षस्थल को विदीर्ण करने वाले स्वप्रभा से उद्भासित हैं। इन सबका दर्शन करने से सभी पापों का निःसंदिग्ध रूपेण क्षय हो जाता है। वह व्यक्ति भुक्ति तथा मुक्ति के योग्य होता है। इसमें सन्देह नहीं है।।२१-२५।।

यस्याऽग्रे सन्त्यजन्प्राणान्ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात्।
यत्किञ्चित्कुरुते कर्म कोटिकोटिगुणं भवेत्॥२६॥

छायैषाकल्पवृक्षस्यनृसिंहार्केणभासिता। तस्यांनश्यत्यविद्याहिज्ञानतोऽज्ञानतोमृतौ॥२७॥

वेदान्तेषु प्रसिद्धैस्तैर्विज्ञानैः श्रवणादिभिः। मूढानांदुर्लभैर्विप्राविनाप्यत्रविमोचनम्॥२८॥

अविमुक्ते मुमुक्षोस्तु कर्णमूले महेश्वरः। दिशति ब्रह्मसञ्ज्ञानं बोधोपायं कृपानिधिः॥२९॥

तेन बुद्ध्या समभ्यस्य क्रमान्मोक्षमवाप्नुयात्। उपदेष्टुर्महिम्नाहितस्यज्ञानंनहीयते॥३०॥

अत्र त्यजन्तियेप्राणांस्तेषांतत्क्षणएवहि। स्वरूपाज्जायतेमुक्तिःसंशयोमाऽस्तुतेयम्॥३१॥

गतागतप्रसक्तानां कर्मिणां मूढचेतसाम्। वैवस्वत ! कदाचिन्नो विश्वासोह्यत्रजायते॥३२॥

इन नृसिंह के समक्ष जो प्राणत्याग करता है, उसे ब्रह्म-सायुज्य की प्राप्ति होती है। यहां जो भी दान-जपादि कर्म सम्पन्न किया जाता है, उसका कोटिगुणित फल प्राप्त होता है। यह कल्पवृक्ष वट ऐसा है, जिसकी छाया नृसिंह रूपी सूर्य के प्रकाश से महादृप्त है। इस छाया के आगे जो ज्ञानतः अथवा अज्ञानतः मृत हो जाता है, उसके लिये माया नष्ट हो जाती है तथा उसे निःसंदेह मुक्ति मिलती है। वाराणसी क्षेत्र में कृपानिधि महादेव मुमूर्षु के कानों में ज्ञानोपाय रूप ब्रह्म नामोच्चार करते हैं। उसके द्वारा बोधोदय हो जाने पर अभ्यास द्वारा व्यक्ति क्रमिक रूप से मुक्तिलाभ करता है। उपदेष्टा शिव के माहात्म्य के कारण उसे ज्ञान का अभाव कभी नहीं रहता। लेकिन पुरुषोत्तम क्षेत्र में जो प्राणत्याग करते हैं, वे तत्क्षण सारूप्य मुक्तिलाभ कर लेते हैं। हे यम! इसमें संशय नहीं है। कर्मफलभोगी कर्मी, जन्म-मरण में रत अज्ञानी व्यक्ति कभी इस क्षेत्र पर विश्वास नहीं कर पाते।।२६-३२।।

उत्सृज्य वारि गाङ्गेयं स्वादु शीतंसुनिर्मलम्। पिपासुःपल्वलंयातितद्वत्तेमूढचेतसः॥३३॥

भ्रमन्ति तीर्थान्यन्यानि त्यक्त्वैतत्क्षेत्रमुत्तमम्।
फलाशामोदकैस्तृप्ता लभन्ते श्रमजं फलम्॥३४॥

स्नानादब्धिर्दृशा देवश्छायया कल्पपादपः। यत्र कुत्रापिचक्षेत्रंमरणान्मुक्तिदं नृणाम्॥३५॥

यो यत्र विषये भक्त्या विश्वासं कुरुते नरः। स तु तेनैवमुच्येतनेदृशं तीर्थमस्ति वै॥३६॥

एतन्त्यक्त्वाऽन्यतीर्थे वै विदधाति रुचिं तु यः।
नूनं स मायया विष्णोर्वञ्चितो लोभलालसः॥३७॥

जो प्यासा व्यक्ति स्वादिष्ट शीतल गंगा जल त्याग कर क्षुद्र सरोवर में जल हेतु जाता है, उसी प्रकार के मूढ़ लोग इस उत्तम क्षेत्र का त्याग करके अन्य तीर्थ में घूमते-भटकते हैं। वे फलाशा रूपी मोदक से ही तृप्त होकर श्रम पूर्वक फललाभ में लगे रहते हैं। यहां समुद्र स्नान द्वारा, भगवान् विष्णु के दर्शन द्वारा, कल्पवृक्ष (वटवृक्ष) छाया में अथवा इस क्षेत्रान्तर्गत किसी भी स्थान में मरण होने से मुक्ति प्राप्त होती है। यहां जो व्यक्ति इस तीर्थ के प्रति भक्ति के साथ विश्वास करता है (अर्थात् विष्णुदर्शन-समुद्रस्नान कल्पवृक्ष (वटवृक्ष) छाया आदि विषय), उसे उसी से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। ऐसा तीर्थ कहीं नहीं है। जो इस तीर्थ का त्याग करके लोभ-लालसा परायण होकर तीर्थान्तर की कामना करता है, वह तो निश्चित रूप से विष्णुमाया में पड़ कर मुक्तिलाभ से वंचित हो जाता है।।३३-३७।।

उपदेशेन बहुना न प्रयोजनमस्ति ते। प्रत्यक्षो ह्यनुभूतोऽयं करटो विष्णुरूपधृक्।।३८।।
अन्तर्वेदीरक्षणार्थं शक्तयोऽष्टौ प्रकीर्तिताः। उग्रेणतपसा पूर्वमहं रुद्रेण भाविता।।३९।।
पत्यर्थं सा मया सृष्टा गौरी तस्याऽथ भाविनी। सर्वसौन्दर्यवसतिर्वपुषो मे विनिर्गता।।४०।।
तदाऽऽदिष्टा मया भद्रे ! वचनं मे प्रियं कुरु। अन्तर्वेदीं रक्षममपरितस्त्वंस्वमूर्तिभिः।।४१।।
सा तु तिष्ठति मत्प्रीत्या अष्टधादिक्षु संस्थिता। मङ्गल्यावटमूलेतुश्चिमेविमलातथा।।४२।।

तुमको और अधिक उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि तुमने प्रत्यक्ष देखा कि काक पक्षी ने यहां विष्णुस्वरूपता पाया है। यहां की अन्तर्वेदी की रक्षा हेतु, मैंने आठ शक्ति कल्पित की है। तदनन्तर महादेव द्वारा पत्नि के हेतु उग्रतप किये जाने पर तथा उनके द्वारा उपासिता होने पर मैंने अपने देह से सर्व सौन्दर्यशालिनी गौरी का सृजन उनके पत्निरूपेण किया था। उस समय मैंने गौरी को आदेश प्रदान किया था। "हे भद्रे! मेरे वाक्य का पालन करके तुम यहां अपनी मूर्त्तियों द्वारा इस अन्तर्वेदी की रक्षा चारों ओर से करो।" वे गौरी मेरी प्रसन्नता के लिये आठ प्रकार की मूर्त्ति धारण करके आठ दिशा में संस्थित हो गयीं। मंगला वटमूल के अग्नि कोण में तथा पश्चिम में संस्थित हैं।।३८-४२।।

शङ्खस्य पृष्ठभागे तु संस्थिता सर्वमङ्गला। अर्द्धांशिनी तथालम्बा कुबेरदिशि संस्थिता।।४३।।
कालरात्रिर्दक्षिणस्यां पूर्वस्यां तु मरीचिका।
कालरात्र्यास्तथा पश्चाच्चण्डरूपा व्यवस्थिता।।४४।।
एताभिरुग्ररूपाभिःशक्तिभिःपरिरक्षितम्। अल्पपुण्यस्यपुं सोहिस्थानमेतत्सुदुर्लभम्।।४५।।
एतासामष्टशक्तीनां दर्शानात्कीर्तनात्तथा। नश्यन्ति सर्वपापानि हयमेधफलं लभेत्।।४६।।
रुद्राण्याश्चाष्टधा भेदं दृष्ट्वा रुद्रोऽपि शङ्करः। आत्मानमष्टधाभित्त्वा उपास्तेपरमेश्वरम्।।४७।।
आराध्य तपसा विष्णुं प्रार्थयद्वरमुत्तमम्। यत्र त्वं देवतत्राहं वसेयं हि यथासुखम्।।४८।।
त्वामृते कमलाकान्त ! नान्यन्निर्वाणकारणम्।
अन्तर्यामिन्प्रभो ! मे त्वं त्वां विना विग्रहः कुतः।।४९।।
मूढा ये त्वां न जानन्ति हृष्यन्तिविषयेऽशुचौ। निर्मलाम्बरसङ्काशंत्वामहंशरणंगतः।।५०।।

शंख के पूर्वभागस्थ वायुकोण में सर्वमंगला, उत्तर में अर्द्धांशनी, ईशान में लम्बा, दक्षिण में कालरात्रि,

पूर्व में मरीचिका, नैर्ऋत् में चण्डरूपा नामक शक्तियां हैं। इन भीषणा अष्टशक्ति द्वारा अन्तर्वेदी सर्वतोभावेन रक्षित होती है। जो अल्पपुण्य हैं, उनके लिये यह स्थान दुर्लभ है। इन अष्टशक्तिगण का दर्शन तथा कीर्त्तन करने से समस्त पापक्षय होता है तथा अश्वमेध यज्ञफल की प्राप्ति होती है। यहां पर रुद्रदेव ने रुद्राणी का यह आठ प्रकार का भेद देख कर परमेश्वर की उपासना किया था। उन्होंने विष्णु की उपासना करके यह वर मांगा। "हे देव! आप यहां सुखपूर्वक निवास करिये। हे कमलाकान्त! आपके सिवाय अन्य मुक्ति का कारण है ही नहीं। हे प्रभो! आप मेरे अन्तर्यामी हैं। आपके बिना तो देह ही संभव नहीं है। जो आपको नहीं जानते वे मूढ़ विषयरूपी अग्नि में हर्षित होते हैं। हे निर्मल मेघसन्निभ देव! मैं आपकी शरण लेता हूं।"।।४३-५०।।

जैमिनिरुवाच

भगवानपि रुद्रं ते क्षेत्रपालं तथा विभुः। स्थापयामास परितः स्वयंमध्येव्यवस्थितः।।५१।।
कपालमोचनं नाम क्षेत्रपालं यमेश्वरम्। मार्कण्डेयं तथेशानं बिल्वेशं नीलकण्ठकम्।।५२।।
वटमूले वटेशं च लिङ्गान्यष्टौमहेशितुः।
यानि दृष्ट्वा तथा स्पृष्ट्वा पूजयित्वाविमुच्यते।।५३।।
अत्र क्षेत्रे मृता ये च न तेषां तु प्रभुर्यमः। यदर्थमागतस्त्वं हि तदन्यत्र प्रसाधय।।५४।।
तथाऽप्यसौ जगन्नाथो भक्तायात्मसमर्यकः। यमेन तोषितो भक्त्याप्रपन्नार्तिहरः प्रभुः।।५५।।
सुदर्शनेन चक्रेण मायां च व्यवधास्यति। अत्याज्येऽस्मिन्क्षेत्रवरेस्वर्णबालुकयावृते।।५६।।
तं यमं वञ्चयित्वा तु प्रस्थापय्यमालयम्। साधुमत्वाततःप्राहब्रह्माणंपुरतःस्थितम्।।५७।।

ऋषि जैमिनी कहते हैं—क्षेत्रस्वामी भगवान् ने रुद्र को आठ प्रकार से विभक्त करके आठों दिशा में स्थापित किया तथा स्वयं मध्य में स्थित हो गये। उन अष्टरुद्र के नाम है—कपालमोचन, काम, क्षेत्रपाल, यमेश्वर, वटमूलस्थ वटेश्वर, मार्कण्डेश्वर, विश्वेश्वर, नीलकण्ठ। महादेव के इन अष्टलिङ्ग का दर्शन-स्पर्शन करने वाला समस्त मुक्तिलाभ करता है। हे यमराज! यहां जो मरते हैं, उनके स्वामी तुम नहीं हो। अन्यथा जिस उद्देश्य से तुम आये हो उसे अन्यत्र साधित करो।" (लक्ष्मीदेवी ने यम को यह उपदेश दिया तथा पितामह ब्रह्मदेव से कहने लगी—"हे ब्रह्मन्! अवधारण करें।[१] आप भगवान् के नाभि कमलोत्पन्न हैं।") प्रभु जगन्नाथ भक्त के प्रति अपना समर्पण कर देते हैं। ये प्रभु शरणागत का क्लेश दूरीभूत करते हैं। ये प्रभु यम द्वारा भक्तिपूर्वक सन्तुष्ट होकर आपसे यह कहना चाहते हैं कि यहां सुदर्शन, अनन्तदेव तथा लक्ष्मी के साथ आप भी इस अत्याज्य क्षेत्र में स्वर्ण बालुका से आवृत होकर अवस्थित रहें। यह बात आप यम को बतला कर उसे उसके लोक में भेंजे। श्रीदेवी ने इस कथन को प्रश्रय देते हुये सम्मुखीन ब्रह्मा से कहा।।५१-५७।।

श्रीरुवाच

इन्द्रद्युम्नोनाम राजा युगे सत्ये भविष्यति। वैष्णवः सर्वयज्ञानामाहर्त्ताशास्त्रकोविदः।।५८।।

---

१. बंगदेशीय संस्करण में यहां एक श्लोक अधिक हैं—उसका अर्थ अनुवाद में दिया है।
"उपदिश्य यमायेत्थं श्रीरुवाच पितामहम्। भगवन् भगवन्नाभिपद्मयोनेऽवधारय।।"

अत्राऽऽगत्य महाभक्तिं करिष्यति नृपोत्तमः। भगवत्प्रीतये येन वाजिमेधमहस्त्रकम्॥५९॥
करिष्यते प्रजानाथ तदनुग्रहकारणात्। एकदारुसमुत्पन्नश्चतुर्द्धा सम्भविष्यति॥६०॥
दारवप्रतिमानानि विश्वकर्मा घटिष्यति। प्रतिष्ठापयिता त्वं हि इन्द्रद्युम्नप्रसादितः॥६१॥
अस्माकं सदृशानां च प्रतिमानांपितामह। तद्रूपका प्रतिष्ठा हि घटना च भविष्यति॥६२॥

लक्ष्मी कहती हैं—सत्ययुग में विष्णु परायण तथा समस्त यज्ञकर्त्ता शास्त्रज्ञ इन्द्रद्युम्न नामक राजा जन्म लेगें। वे उस समय यहां रहकर इस क्षेत्र में महान् भक्ति का आचारण करेंगे। उनके द्वारा यहां महाभक्ति का प्रकाश होगा। वे प्रजानाथ राजा भगवान् के प्रति प्रेम के कारण १००० अश्वमेध यज्ञानुष्ठान करेंगे। भगवान् उन पर अनुग्रह करके (दारु) काष्ठ में उत्पन्न होंगे। विश्वकर्मा इस दारु प्रतिमा को गढ़ेंगे। आप इन्द्रद्युम्न पर प्रसन्न होकर उस काष्ठ प्रतिमा को प्रतिष्ठित करियेगा। हे पितामह! हमलोगों के अनुरूप प्रतिमा आपकी आज्ञा से प्रतिष्ठित तथा गठित होगी।।५८-६२।।

जैमिनिरुवाच

इति श्रुत्वा श्रियो वाक्यं चतुर्वक्त्रो यमश्च सः।
स्वं स्वं पुरं जग्मतुस्तौ मुदा परमया युतौ॥६३॥
क्षेत्रस्य महिमानं तं संस्मृत्य च मुहुर्मुहुः। विस्मयेन च हर्षेण रोमाञ्चितविग्रहौ॥६४॥
साम्प्रतं मुनयस्तस्मिन्निन्द्रद्युम्नप्रसादितः। शङ्खचक्रधरः श्रीमान्नीलजीमूतसन्निभः॥६५॥
नीलाचलगुहान्तःस्थो बिभ्रद्दारुमयं वपुः। आस्ते लोकोपकाराय बलेन च सुभद्रया॥६६॥
सुदर्शनेन चक्रेण दारुणा निर्मितेन च। सहितः प्रणतार्त्तीनां नाशनः करुणार्णवः॥६७॥
यं दृष्ट्वा पापबन्धेन सुदृढेन विमुच्यते। सुकर्मौघपरीपाको युगपत्समुपस्थितः॥६८॥
पश्यतां भो मुनिश्रेष्ठास्तापत्रयसुधानिधिम्।
बहवो ह्यवतारा हि विष्णोर्दिव्याश्च मानुषाः॥६९॥
अत्यद्भुतानि कर्माणि माहात्म्यं चाऽपि वर्णितम्।
पारिचित्यान्मनुष्यांस्तु न मन्यन्ते सुरा अपि॥७०॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—लक्ष्मी देवी का यह वचन सुनकर ब्रह्मा तथा यमराज ने अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट किया तथा वे क्षेत्र महिमा का पुनः-पुनः चिन्तन करते विस्मित तथा रोमांचित होकर अपने-अपने लोक चले गये। हे मुनिगण! इस क्षेत्र में नीलमेघश्याम शंख-चक्र-गदाधारी भगवान् तब इन्द्रद्युम्न के प्रति प्रसन्न होकर नीलाचल की गुहा में बलराम-सुभद्रा तथा सुदर्शन चक्र के साथ दारुमय विग्रह धारणपूर्वक लोगों के उपकार हेतु स्थित हो गये।

हे मुनिप्रवरगण! वे दयासागर तथा प्रणत व्यक्तिगण की विपत्तियों का निवारण करने वाले हैं। जिनका दर्शन करने से दृढ़ पापबन्धन छिन्न हो जाता है, उन त्रिपापहारी, सुधाकर स्वरूप भगवान् का दर्शन करने से समस्त सत्कर्मों का फल एकबारगी प्राप्त हो जाता है। भगवान् के इस प्रकार दिव्य अवतार एवं मनुष्य अवतार

अनेक हैं। उनके कर्म तथा उनकी महिमा का वर्णन अद्भुत् मानकर किया जाता है। मनुष्य की तो बात ही क्या, देवता भी उनकी महिमा की सीमा नहीं जान पाते।।६३-७०।।

देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसाम्। तिरश्चामपि भो विप्रास्तस्मिन्दारुमयेहरौ।।७१।।
सर्वात्मभूते वसति चितं सर्वसुखावहे। उपजीवन्त्यस्यसुखंयस्याऽनन्यस्वरूपिणः।।७२।।
ब्रह्मणः श्रुतिवागाहेत्येतदत्राऽनुभूयते। द्यति संसारदुःखानि ददाति सुखमव्ययम्।।७३।।
तस्माद्दारुमयं ब्रह्म वेदान्तेषु प्रगीयते। न हि काष्ठमयी मोक्षं ददाति प्रतिमा क्वचित्।।७४।।

हे विप्रों! देवता, दैत्य, मानव, गन्धर्व, सर्प, राक्षस तथा तिर्यक् जाति—सभी का चित्त सबके आत्मभूत इन सर्वसुखप्रद दारुमय हरि के प्रति अनुरक्त तथा पूर्णतः तत्पर रहता है। इन आनन्दरूप ब्रह्म के ही जीवांश से प्राणियों का जन्म होता है। ये प्राणीगण ही इन दारुमय विग्रहरूप ब्रह्म का अनुभव करते हैं। यह श्रुतिवाक्य है। यह विग्रह संसार दुःख का नाश तथा अव्यय सुखदाता है। इसलिये वेदान्त में दारुमय ब्रह्म के रूप से कहा गया है। केवल काष्ठ प्रतिमा कदापि मुक्ति नहीं दे सकती। हे विप्रगण! जो कृत्रिम है, उससे अकृत्रिम मोक्ष कैसे मिल सकेगा ?।।७१-७४।।

कृतेनाऽकृतता विप्राः कदाचिन्नोपलभ्यते। अकृतो ह्यपवर्गस्तु कृताद्वादारुणः कथम्।।७५।।
अधिष्ठानं विना ब्राह्मयमैश्वर्य नोपलभ्यते। रहस्यमेतत्परमं विष्णोः स्थानमनुत्तमम्।।७६।।
अलौकिकी साप्रतिमालौकिकीतिप्रकाशिता। कुत्रश्रुतावादृष्टावाप्रतिमाव्याहरेदिति।।७७।।

जो मोक्ष स्वभावासिद्ध अकृत्रिम रूप से प्राप्त होता है, वह कृत्रिम प्रतिमा से कैसे संभव है? अतः आश्रय के अभाव में ब्रह्म सुख उपलब्धि कदापि नहीं हो सकती। तभी विष्णु का यह गोपनीय स्थान है। यह अलौकिकी प्रतिमा यहां लौकिक रूपेण प्रकाशित है। कहीं यह सुनी जाती है, कहीं देखी जाती है।।७५-७७।।

इन्द्रद्युम्नाय स वरं तदा दारुवपुर्ददौ। दीनानाथैकशरणं तरणं भववारिधेः।।७८।।
चराचर सदावन्द्य चरणं तं परायणम्। नारायणं जगद्योनिं सृष्टिसंहृतिकारणम्।।७९।।
मोक्षणं सर्वपापानां दारणं सकलापदाम्। विभूतीनां विसरणं वरणं सर्वयोगिनाम्।।८०।।
भरणं सर्वजन्तूनां धरणं जगतामपि। भाषणं सर्वभाषणां दूषणं सर्वदुष्कृताम्।।८१।।
शोषणं सर्वपङ्कानां नीलाद्रिशरणं हरिम्।
शरणं प्रयात मुनयो ह्यनन्यशरणं विभुम्।।८२।।

इसी दारुमय शरीर प्रभु ने इन्द्रद्युम्न राजा को वर दिया था। जो दीनों-अनाथों के एकमात्र रक्षक हैं, जो संसार सागर से पार होने के एकमात्र उपाय हैं, जो सबके एकमात्र अवलम्बन हैं, समस्त चराचर जिनकी सर्वदा चरण वन्दना करता है, जो सृष्टि तथा संहार कारण हैं, जो निखिल पापमोचनोपाय हैं, जो समस्त आपत्ति निवारक हैं, जो विभूतिवर्द्धक-विषयभोगीगण के अभीष्ट को पूर्ण करने वाले हैं, जो समस्त प्राणीगण के पालनकर्त्ता हैं तथा जगत् के पालनहार हैं, जो समस्त भाषाविद् हैं, जो निखिल पापनिवारक शक्ति से युक्त-सक्षम हैं, जो सब प्रकार के कीचड़ को (मोहमायादि कीचड़ को) सुखा देते हैं, आप सभी मुनिगण उन जगद्योनि प्रभु नीलाचलस्थ नारायण विभु की शरण लीजिये।।७८-८२।।

निश्चेष्टो दारुवर्ष्माऽपि दिव्यलीलाविलासकृत्।
क्षमते स्वल्पभक्त्याऽपि सोऽपराधशतं नृणाम्।।८३।।
अत्र वः कथयिष्यामि चरितं पापनाशनम्। लीलया दारुदेहस्य मुनयः परमात्मनः।।८४।।
कुरुक्षेत्रे समुद्भूतौ ब्राह्मणक्षत्रियावुभौ। सखायौ जग्मतुःप्रीत्याएकाहारविहारिणौ।।८५।।
वृत्तच्युतौ निषिद्धानामाहर्त्तारौ विमोहितौ।
अस्वाध्यायवषट्कारौ स्वधास्वाहाविवर्जितौ।।८६।।
अपात्रभूतौ धर्मस्य महापातकदूषितौ। मधुभक्षौ पण्ययोषित्सहवासौ मुदान्वितौ।।८७।।
पारलौकिकचिन्तातुतयोःस्वप्नेऽपिनाऽऽगता।
एवंप्रवर्तमानौतावायुषोऽर्द्धचनिन्यतुः ।।८८।।
एकदा भ्रममाणौ तौ यज्ञवाटमगच्छताम्। शृण्वन्तौदूरतःस्तोत्रंशास्त्रशब्दंमनोहरम्।।८९।।
दृष्ट्वा तास्ताः क्रियाः सर्वाः श्रुतिसञ्चोदिता द्विजाः।
तौ तदा चक्रतुः श्रद्धां धर्मे वर्त्मन्यधार्मिकौ।।९०।।

वे चेष्टारहित काष्ठमय देह होकर भी विविध दिव्य लीला सम्पन्न करते रहते हैं। उनके प्रति जो अल्प भक्ति भी करता है, वे उस मानव के सैकड़ों अपराध क्षमा भी कर देते हैं। हे मुनिगण! यहां आप लोगों से पापहारी दारुब्रह्म के एक चरित्र का वर्णन करता हूं। आप सब सुनें। कुरुक्षेत्र में उत्पन्न एक ब्राह्मण तथा एक क्षत्रिय जन्मकाल से ही आपस में मित्र थे। वे प्रेमपूर्वक साथ ही आहार-विहार करते थे। वे शौचाचार रहित, निषिद्ध कर्मकारी, मोहाच्छन्न, वेदाध्ययन-देवकार्य-पितृकार्य रहित, धर्म के अनधिकारी, महापातक दूषित, मदोन्मत्त तथा सदा वेश्यागमन से प्रसन्न होने वाले थे। उनको तो स्वप्न में भी पारलौकिक हित चिन्तन का विचार नहीं रहता था। इस प्रकार विपथगामी इन दोनों की आधी आयु व्यतीत हो गयी। एक बार वे भ्रमण करते हुये यज्ञस्थल पहुंचे। दूर से ही मनोहर प्रशस्त शब्दयुक्त वेद गायन का स्वर तथा श्रुति अनुमोदित सभी क्रिया को देखकर इन दोनों अधार्मिकों में भी धर्म के प्रति श्रद्धा जाग्रत हो उठी।।८३-९०।।

संस्मरन्तौस्वजातिंतौपुण्डरीकाम्बरीषकौ। निन्दन्तौदुश्चरित्रंस्वंपरस्परमभाषताम्।।९१।।
कथमावां तरिष्यावो दुष्कृतार्णवमुल्बणम्। इहैव जन्मन्यजरं बुद्धिपूर्वमुपार्जितम्।।९२।।
न तच्छःस्त्रं हि जानाति यदावाभ्यां च दुष्कृतम्।
सञ्चितं तस्य घोरस्य प्रायश्चित्तं सुदुर्ल्लभम्।।९३।।
तथापि ब्राह्मणानेतान्ब्रह्मिष्ठान्वै सदोगतान्।
प्रणिपातप्रपन्नान्वै पृच्छावोऽत्र च निष्कृतिम्।।९४।।

ये पुण्डरीक तथा अम्बरीष अपनी-अपनी जाति का स्मरण करते तथा अपने-अपने दुष्कृत्य की निन्दा करते परस्परतः कहने लगे—"हम दोनों दुष्कृतिरूप समुद्र से कैसे पार होंगे? हमने इस जन्म में जानबूझकर जितनी दुष्कृति का उपार्जन किया है, उसका तो कोई भी प्रायश्चित्त ही नहीं है। चिर संचित इस पाप का प्रायश्चित्त

दुर्लभ है, तथापि इस सभा में आये ब्राह्मणगण को प्रणाम करके प्रसन्न करने से पाप से छुटकारा मिलने का उपाय पूछना चाहिये।।९१-९४।।

इति निश्चित्य तौ विप्रानभिवाद्याऽभ्यपृच्छताम्।
यथावत्कल्मषं स्वं स्वं विज्ञाप्य च मुहुर्मुहुः।।९५।।
ते तयोर्वचनं श्रुत्वां मीलिताक्षा द्विजोत्तमाः।
नाऽब्रुवन्किंस्विदन्योन्यं वीक्षन्तो विस्मिताननाः।।९६।।

अहो सुघोरकर्माणि सञ्चितानि दुरात्मनोः। येषु शास्त्रंपदं दातुं प्रायश्चित्तायनह्यलम्।।९७।।
शक्नुमोनवयं तस्मादनयमोर्निष्कृताविति। तेषांमध्येसदोमुख्यःकश्चिद्वैष्णवपुङ्गवः।।९८।।
भगवद्भक्तिमाहात्म्यक्षपिताशेषकल्मषः। तानुवाच विहस्येदं वाक्यं वाक्यविदांवरः।।९९।।

यह निश्चय करके उन दोनों ने विप्रगण को प्रणाम किया तथा अपने-अपने पाप का वर्णन बारम्बार यथायथ रूप से करके उससे निष्कृति का उपाय पूछा। ब्राह्मणों ने उन दोनों के वचन को सुनकर नेत्र बन्द किया तथा विस्मित होकर आपस में एक दूसरे की ओर देखकर मौन हो गये। क्या आश्चर्य! इन दुरात्माद्वय के अतीव घोरतर पाप कर्म संचित हैं। ऐसे पापों का प्रायश्चित्त शास्त्र भी बतलाने में समर्थ नहीं हैं। उस सभा में उन ब्राह्मणों में एक ऐसे वैष्णव चूड़ामणि प्रधान ब्राह्मण थे जिनकी भगवद्भक्ति के कारण उनका समस्त पाप क्षयीभूत हो गया था। वे वक्ताओं में श्रेष्ठ थे। उन्होंने हंसते हुये इन दोनों पापियों से यह कहा—।।९५-९९।।

वैष्णव उवाच

भो द्विजक्षत्रदायादपापराशेःसुदारुणात्। मुक्तिश्चेद्वाञ्च्छतस्तूर्णच्छतंपुरुषोत्तमम्।।१००।।
क्षेत्रोत्तमं दारुमयो यथाऽऽस्ते पुरुषोत्तमः। इन्द्रद्युम्नस्य राजर्षेर्भक्त्यानुग्रहकृद्विभुः।।१०१।।
तमाराध्य जगन्नाथं शङ्खचक्रगदाधरम्। पापक्षयं वामुक्तिंवास्वेच्छयाप्राप्स्यथध्रुवम्।।१०२।।
घोरदुष्कृततूलौघदावाग्निसदृशस्तु सः। तपसैतत्क्षयं नेतुं न शक्यं जन्मकोटिभिः।।१०३।।
युगपत्संक्षयं याति यंदृष्टासर्वकिल्बिषम्। तन्मा विलम्बं कुरुतंप्रयातंतत्रसत्वरम्।।१०४।।
सुपुण्ये चोत्कले देशे दक्षिणार्णवतीरगे। नीलाद्रिशिखरावासं व्रजतं शरणं विभुम्।।१०५।।

सोऽभीष्टसिद्धिं वां देवः प्रदास्यति कृपानिधिः।
इत्यादिष्टौ ततो विप्रक्षत्रियौ हर्षसंयुतौ।।१०६।।
तेनैव वर्त्मना विप्राः प्रयातौ पुरुषोत्तमे।।१०७।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे-
पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्येजैमिनिऋषिसम्वादे पुण्डरीकाम्बरीषोद्धार-
कथावर्णनंनामचतुर्थोऽध्यायः।।४।।

—※※※—

वैष्णव ब्राह्मण कहते हैं—"हे ब्राह्मण पुत्र तथा क्षत्रियपुत्र! तुमने जितना दारुण पाप किया है, यदि उस विषम पापों से मुक्ति चाहो, तब शीघ्र पुरुषोत्तम क्षेत्र में जाओ। वहां दारुमय पुरुषोत्तम हैं। वह उत्तम क्षेत्र है। राजर्षि इन्द्रद्युम्न की भक्ति से प्रसन्न होकर विष्णु ने अनुग्रह किया था। वे तब से वहीं स्थित हैं। उन शंख-चक्र-गदाधारी जगन्नाथ की आराधना से पाप क्षयीभूत हो जाते हैं तथा मुक्ति मिलती है। मुक्ति तथा भुक्ति, किंवा पापक्षय एवं मुक्ति में से जो चाहोगे, वहां पर निश्चय ही मिलेगा। ये जगन्नाथदेव घोर दुष्कृति रूप रूई के ढेर के लिये अग्नि रूप हैं। यह भयानक घोर पाप तप द्वारा कोटिजन्मों में भी दूर होने वाला नहीं है। जिनके दर्शनमात्र से एक ही बार में समस्त पाप क्षयीभूत हो जाते हैं, उनके पास जाने में विलम्ब मत करो। पुण्यभूमि उत्कल देशस्थ दक्षिण समुद्र के तट पर नीलगिरि शिखरवासी विभु की शरण ग्रहण करो। उन कृपासागर द्वारा तुम्हारी इष्टसिद्धि होगी।" यह सुनकर वह ब्राह्मण तथा क्षत्रिय हर्षयुक्त हो गये।।१००-१०६।।

जैमिनि कहते हैं—हे मुनिगण! वे अत्यन्त हर्षपूर्वक पुरुषोत्तम क्षेत्र हेतु प्रस्थान कर गये।।१०७।।

।।चतुर्थ अध्याय समाप्त।।

पञ्चमोऽध्यायः

ब्राह्मण पुण्डरीक तथा क्षत्रिय अम्बरीष कृत भगवान् की स्तुति, विष्णुदर्शन वर्णन

जैमिनिरुवाच

निर्विण्णचेतसौ तौ तु त्यक्त्वा वेश्यादिसङ्गतिम्।
ध्यायंतौ मनसा विष्णुं शुद्धहारव्रतावुभौ।।१।।
कालेनकियताप्राप्तौनीलाद्रिनिलयंहरेः। तीर्थराजजले स्नात्वायथावद्विधिचोदितम्।।२।।
प्रासादद्वारितिष्ठन्तौसाष्टांगंप्रणिपत्यच। भगवन्तंनिरीक्षन्तौ नापश्यतां तदाद्विजाः।।३।।
विवर्णवदनौ देवमदृष्ट्वा चिन्तयाऽऽकुलौ। आरभेते ह्यनशनं भगवद्दर्शनावधि।।४।।
कीर्तयन्तौ भगवतो नाम कल्मषनाशनम्। तृतीयस्यां त्रियामायां ज्योतिरेकमपश्यताम्।।५।।
त्रीण्यहानिपुनस्तौ चतदोपावसतांस्थिरौ। मध्ये सप्तमरात्रेस्तुभगवन्तमपश्यताम्।।६।।
त्रिदंशानांस्तुतीःश्रुत्वादिव्यज्ञानौबभूवतुः। अपास्तपापनिर्मोकौसाक्षाद्देवमपश्यताम्।।७।।

ऋषि जैमिनि कहते हैं—वह ब्राह्मण तथा क्षत्रिय वेश्या संग त्यागकर अनुताप करते हुये हविष्यान्न भक्षण पर आधारित रहकर विष्णु के ध्यान में निरत रहते हुये कुछ काल पश्चात् नीलपर्वत रूप मंदिर तक पहुंचे। उन्होंने तीर्थराज समुद्र के जल में विधिवत् स्नान किया तथा भगवान् के मन्दिर के द्वार देश पर खड़े

होकर प्रणाम तो किया, तथापि भगवान् की ओर देखने का प्रयास करने पर भी उनको दर्शन नहीं मिला। वे दोनों देवदेव प्रभु को नहीं देख पा रहे थे। अतः वे विषण्ण चित्त तथा चिन्तातुर हो गये। उन्होंने दर्शन होने तक के लिये व्रत ले लिया। उन दोनों ने भगवान् का पापनाशक नामक कीर्त्तन करते-करते तीसरी रात्रि में एक ज्योति को देखा। उन्होंने पुनः तीन दिन तक स्थिरता के साथ उपवास किया। सप्तम दिन उन्होंने भगवान् की प्रतिमा का दर्शन किया तथा देवगण का स्तव सुना। इससे उनमें दिव्यज्ञान आविर्भूत हो गया। अब उन्होंने पापरूप आच्छादन से मुक्त होकर देवदेव का साक्षात् दर्शन प्राप्त किया।।१-७।।

शङ्खचक्रगदापाणिं दिव्यालङ्कारभूषितम्। रत्नपादुकयोःपृष्ठे विन्यस्तचरणाम्बुजम्।।८।।
व्याकोशपुण्डरीकाक्षं प्रसन्नवदनं विभुम्।
वामपार्श्वे स्थितां लक्ष्मीं वामेनाऽऽलिङ्ग्यबाहुना।।९।।
नागवल्लीदलं बद्धमाददानं श्रिया हृतम्।
रत्नवेत्रकराः काश्चित्काश्चिच्चामरपाणयः।।१०।।
गन्धतैलप्रदीपास्तुरत्नवर्तिप्रदीपिकाः। काश्चिद्दधानाः स्वकरैर्यौवनाढ्याः सुभूषिताः।।११।।
पश्चाद्रत्नमयं छत्रं बिभ्रती काचिदुज्ज्वला। धूपपात्रं मुखाभ्याशेकृष्णागुरुसुधूपितम्।।१२।।
काचिद्दधाना प्रम्लोचां हसन्तीं विग्रहश्रिया। लीलालकदृशा देवाननुगृह्णन्तमग्रतः।।१३।।
बद्धाञ्जलिपुटान्नम्रकन्धरांस्तुवतः पृथक्।
सिद्धान्मुनिगणान्दिव्यान्सनकादीन्स्मितेन च।।१४।।

दोनों ने देखा कि वे देवदेव शंख-चक्र-गदाधारी, दिव्यालङ्कार भूषित हैं। उनके दोनों चरण रत्नपादुकामय पृष्ठ पर रखे हैं। उनके नेत्र विकसित श्वेतकमलवत् हैं। वे प्रसन्नमुख वाले हैं। उनके बांयी ओर उनके बाम हाथ द्वारा आलिंगिता लक्ष्मी आसीन हैं। भगवान् ने लक्ष्मी द्वारा प्रदत्त ताम्बूल का बीड़ा ग्रहण किया है। कई सुशोभिता युवती दासियां हाथ में रत्नजटित बेंत धारण किया है। कुछ ने चामर, कुछ दासियों ने गन्धतैल, कई ने अति उज्वल रत्नदीप धारण किया है। एक अन्य उत्तम दीप्तियुक्त दासी ने भगवान् के पीछे खड़े होकर रत्नमय छत्र धारण किया है। किसी स्त्री ने अपने शरीर सौन्दर्य से प्रम्लोचा अप्सरा को भी उपहास का विषय बनाया है। उसने प्रभु के मुख के निकट कृष्ण अगुरुयुक्त धूप-पात्र धारण किया है। प्रभु के सामने देवता, सिद्ध, सनकादि दिव्य मुनिगण नतशिर होकर तथा हाथ जोड़े हुये स्तव करते रहते हैं।।८-१४।।

नारदादींश्च गन्धर्वान्दिव्यगामनोहरान्। दत्तावधानं श्रवणे लीलयैवानुकम्पिनम्।।१५।।
प्रह्लादादीन्वैष्णवाग्रयान्स्वरूपं ध्यायतोऽग्रतः।
चित्ताकर्षणसँल्लीनां विदधानं स्वविग्रहे।।१६।।

वे प्रभु सस्मित मुख से कटाक्षपात द्वारा इन सबको अनुगृहीत करते रहते हैं। नारदादि मुनि तथा गन्धर्व उनके सामने बैठकर मनोहर संगीत करते रहते हैं। भगवान् भी उनका संगीत श्रवण करने के लिये उन्मुख होकर उन पर अनुकम्पा करते हैं। प्रह्लाद आदि वैष्णव चूड़ामणि उनके सम्मुख बैठ कर उनके स्वरूप का ध्यान करते रहते हैं। भगवान् ने उनका चित्त आकर्षित करके उनको अपने विग्रह में लीन किया है।।१५-१६।।

वक्षःस्थलप्रविलसत्कौस्तुभप्रतिबिम्बितैः। देवादिभिर्विश्वरूपमूर्त्तेः स्वस्याः प्रकाशकम्॥१७॥
उपर्युपरि दिव्यायाःपुष्पवृष्टेरधः स्थितम्। श्रीसन्निधानविगतश्रियमप्सरसां गणम्॥१८॥
पश्यन्तं विविधं नित्यमङ्गहारमनोहरम्। दिव्यलीलाविलासं तं दृष्ट्वातौद्विजबाहुजौ॥१९॥

उनके वक्षस्थलस्थ कौस्तुभमणि में सामने बैठे देव-गन्धर्वादि का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है। इससे उनकी साक्षात् विश्वरूपमूर्त्ति प्रकाशित हो रही है। भगवान् के मस्तक पर स्वर्ग से अनवरत पुष्पवर्षा होती रहती है। अप्सरायें लक्ष्मी देवी के सामने श्रीहीन लगती हैं, तथापि वे भगवान् की सन्तुष्टि हेतु विविध अंगभंगी के साथ नृत्य करती हैं। भगवान् उनके इस मनोहर नृत्य का अवलोकन कर रहे हैं। इस प्रकार नाना दिव्यलीला विलासी भगवान् का दर्शन इन दोनों ने करके सभी विद्याओं में निपुणता प्राप्त कर लिया। उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान् **की तीन प्रदक्षिणा किया तदनन्तर हर्षपूर्वक साष्टांग प्रणाम निवेदित करके स्तव करने लगे**।।१७-१९।।

बभूवतुः क्षणात्सर्वविद्यानांपारगौ द्विजाः। त्रिः परिक्रम्य देवेशं कृताञ्जलिपुटावुभौ।
साष्टाङ्गपातप्रणतौ तुष्टुवाते मुदान्वितौ॥२०॥

पुण्डरीक उवाच

नमस्ते जगदाधार ! सर्गस्थित्यन्तकारण !। नारायण ! नमस्तेऽस्तुपरमात्मन्परायण !॥२१॥
परमार्थस्त्वमेवैको भवाप्यन्यविवर्जितः। नित्यानन्दस्वरूपंत्वांविदन्तिंध्यानचक्षुषः॥२२॥
चिन्मात्रं जगतामीशमधिष्ठानं परात्परम्। कथं नु मूढहृदयास्त्वांजानन्तिसुनिर्मलम्॥२३॥
कामार्थलिप्सासम्भ्रान्तचेतसोऽत्यन्तदुःखिनः। गतागतपथेश्रान्ताःसुखभाजःकदाचन॥२४॥
अनुकम्पय मां नाथ ! सुदीनं शरणागतम्। मूढं दुष्कृतकर्माणं पतितं भवसागरे॥२५॥

पुण्डरीक ब्राह्मण कहता है—हे नारायण! आप ही जगदाधार तथा जगत् की सृष्टि-स्थिति-विनाश के कारण हैं। आप परमात्मा हैं। आप सबके एकमात्र आश्रय हैं। आपको प्रणाम! हे भगवान्! आप अज, अविनश्वर तथा एकमात्र परमवस्तु हैं। योगीगण ध्यान द्वारा आपके नित्यानन्द रूप का लाभ करते हैं। आप ही परात्पर चिन्मय जगदीश्वर हैं, आप जगदाधार हैं। मूढबुद्धि मनुष्य किस प्रकार आप के सुनिर्मल स्वरूप से अवगत हो सकेंगे? जो काम तथा अर्थलिप्सा से व्याकुल हैं, वे केवल संसार में आवागमन करके भ्रान्त होकर असीम दुःख प्राप्त कर लेते हैं। आपके साक्षात्कार का सुखलाभ करने का भाग्य कभी दैवात् घटित हो जाता है। हे नाथ! मैं एक कामार्त-दुष्कर्मा-लोभी हूं। इस कारण संसार सागर में डूबता-उतराता रहता हूं। मैं अतिदीन हूं। मेरा कोई भी नहीं है। मैं आपकी शरण में हूं। मैं मूढ़ तथा दुष्कर्मा हूं तथा भवसागर में निमग्न हूं।।२०-२५।।

कोऽन्यस्त्वत्सदृशो बन्धुर्ब्रह्माण्डेनाथवर्त्तते। स्वकर्त्तव्यानपेक्षोयोदीनानाथदयालुकः॥२६॥
उच्चावचभ्रमाद्दुःखं जलयन्त्रघटीमिव। अजस्रमधिकर्त्तारं परित्राहि कृपाम्बुधे !॥२७॥
योगक्षेमाभिसन्धाना ये मूढास्त्वामुपासते।
लीलाविमुक्तिदं ते वै तवन्मायापरिमोहिताः॥२८॥
नारायणेति त्वन्नाम कीर्तितं तु यदृच्छया। त्वत्तोऽधिकं जगन्नाथचतुर्वर्गैकसाधनम्॥२९॥

त्वं तु तैस्तैः पृथग्यज्ञैस्तास्ताः सिद्धीः प्रयच्छसि।
त्वमेकः शरणं नाथ! पतितानां भवार्णवे॥३०॥
ज्ञाननौकासमारूढः करुणाक्षेपणीकरः। परम्पारं प्रभो नेतुं संसाराब्धेर्विचेतनम्॥३१॥
त्वमेक ईशिषे भक्त्याऽनन्ययापरिचिन्ततः।
येऽन्येमुक्तिप्रदादेवाःशास्त्रेषुपरिनिष्ठिताः ॥३२॥
दुःखाब्धिकुम्भयोनिं ते त्वद्भक्तिं प्रापयन्ति वै॥३३॥

हे नाथ! अपने कार्य की अहवेलना करके दीन-अनाथ-व्यक्तियों के ऊपर दया करने वाले आपके अतिरिक्त ऐसे दीनबन्धु ब्रह्माण्ड में और कौन है? हे कृपासागर! मैं जलयन्त्र सा ऊर्ध्व-अधः (लोकों में) भ्रमणजनित दुःख निरन्तर भोग रहा हूं। मेरी रक्षा करें।[1] अवलीला क्रम से मुक्ति पर्यन्त आप प्रदान करने में सक्षम हैं, तथापि आप से मात्र संसार के योगक्षेम निर्वाह के उपाय को जानने हेतु ये मूढ़लोग आपकी उपासना करते हैं। वास्तव में ये सभी आपकी माया से मोहित भ्रान्तजीव ही हैं। हे जगन्नाथ! आपका 'नारायण' यह नामकीर्त्तन आपसे अधिक परिमाण में चतुर्वर्ग का साधन सम्पन्न करता है। इस बात में आपका नाम आपसे अधिक सक्षम है। हे नाथ! आप पृथक्-पृथक् यज्ञों से पृथक्-पृथक् फल प्रदान करते हैं। आप ही संसार सागर में पतित लोगों के एकमात्र आश्रय हैं। हे प्रभो! आप संसार सागर में पतित मुग्ध व्यक्ति को ज्ञानरूप नौका पर बैठाकर करुणारूप पतवार के सहारे पार ले जाते हैं। जो व्यक्ति एकाग्रतापूर्वक आपका ध्यान करता है, आप उसे संसार सागर से उत्तीर्ण कर देते हैं। शास्त्रों में जिन अन्य देवताओं को मुक्तिप्रद कहा गया है, वे सीधे मुक्ति नहीं दे पाते। आप इस दुःखसागर में भी अपनी भक्ति का उदय करा देते हैं। दुःखसागर को सुखा देने वाली अगस्त्य रूपा (जैसे अगस्त्य ने सागर सोख लिया था) भक्ति की प्राप्ति करा देते हैं।।२६-३३।।

तन्मे प्रसीद भगवन्पदकञ्जे ते भक्तिं दृढां वितर नाथ! भवाब्धिमुच्चैः।
घोरं सुदुस्तरममुं हि यया तरेयमष्टाङ्गयोगजनितश्रमवर्जितोऽपि॥३४॥
धर्मार्थकामनिचयैः कुमतिप्रगृह्यैः क्षुद्रैरमीभिरहिताल्पसुखैर्न कार्यम्।
आज्ञापयाऽङ्घ्रिनलिनद्वयचिन्तनेऽद्य सान्द्रानुवर्धितसुखार्णवमज्जनं मे॥३५॥

हे प्रभु! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो जायें। हे नाथ! मुझे अपने चरणकमलों में सुदृढ़ भक्ति प्रदान करिये। मैं अष्टांग योग नहीं जानता। अतः आप ऐसी कृपा करिये जिससे मैं दुस्तर संसार सागर को पार करूं। धर्म-अर्थ-काम का आदर कुबुद्धियुक्त लोग करते हैं। मैं इन अहितकर सामान्य सुखों को नहीं चाहता। हे नाम! मुझे आज्ञा प्रदान करिये जिससे मैं आपके पादपद्मचिन्तन रूप शान्त सुख सागर में डूब जाऊं।।३४-३५।।

स्तुत्वेत्थं जगदीशस्य पादपद्मान्तिके द्विजः। पपातत्राहिकृष्णेतिवदन्बाष्पार्द्रयागिरा॥३६॥
तस्थौ स पुनरुताय कृताञ्जलिपुटः स्तुवन्॥३७॥

ब्राह्मण पुण्डरीक ने इस प्रकार से जगदीश्वर का स्तव किया तथा "हे कृष्ण! रक्षा करिये" कहते-कहते

---

१. बांस के आगे रज्जु बांधकर पीछे की ओर भार बांधते हैं। इसी रज्जु में कलस बांधकर कूप से जल निकालते हैं। यही जलयन्त्र है।

अश्रुपूरित नेत्रों से भगवान् के चरणों में गिर पड़ा। तदनन्तर पुनः आज्ञा पाकर उठा। तब हाथ जोड़कर अम्बरीष स्तुति करने लगा।।३६-३७।।

अम्बरीष उवाच

प्रसीददेव ! सर्वात्मन्नसङ्ख्येयशिरोभुज। असङ्ख्यघ्राणनयनपाणिपाद ! नमोऽस्तुते।
षट्त्रिंशत्तत्त्वातीतोऽसि निष्प्रपञ्चप्रपञ्चकः। चतुर्विधजगद्धामविश्वमूर्त्तेनमोऽस्तु ते।।३८।।
एकपादस्त्रिपादश्च तीर्थपादोऽन्तरिक्षपात्। यस्यपादोद्भवागङ्गा पुनाति भुवनत्रयम्।।३९।।
ब्रह्महत्यादिपापानां शोधकं यस्य नाम वै। कीर्तितं सर्वशुभदं नमस्तस्मै शुभात्मने।।४०।।
देव ! त्वन्नामकीर्त्याऽपि जायन्ते सर्वसिद्धयः।
कौतुकात्त्वां हि मृग्यन्ति विद्वांसो बुद्धिशालिनः।।४१।।
नाथत्वत्पादसलिलं संश्रयात्तापहारकम्। तापत्रयाभिभूतस्य भक्तिं मेऽत्र दृढां कुरु।।४२।।
अनन्यस्वामिनो मेऽद्य नाऽस्त्यन्यत्प्रार्थनीयकम्।
प्रणिपत्य जगन्नाथ ! त्वां प्रयाचे सहस्रधा।।४३।।
समस्तपुरुषार्थस्य बीजं त्वत्पादपङ्कजे। यावत्प्राणान्धारयामितावद्भक्तिर्दृढास्तुऽमे।।४४।।
सृष्टिंविनिर्ममे चेमां ययाभक्त्या पितामहः। संहरत्यखिलंरुद्रो लक्ष्मीश्चैश्वर्यदायिनी।।४५।।
दीनानुकम्पिंस्तां भक्तिं प्रार्थये नाऽन्यमानसः।
अनाद्यविद्यापङ्केऽस्मिन्सुदृढे दुस्तरे भृशम्।।४६।।
निमग्नस्य जगन्नाथ! निरालम्बं प्रणश्यतः। महामहिम्नस्त्वद्भक्तेर्नान्यदस्तिपरायणम्।।४७।।

अम्बरीष कहता है—हे सर्वव्यापी देव! आपके असंख्य मस्तक, असंख्य बाहु, असंख्य चरण हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं। आपकी असंख्य नासिका, असंख्य नेत्र, असंख्य हस्त हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं। हे विश्वमूर्त्ति! आप ३६ तत्त्वों से अतीत हैं। आप प्रपञ्च सम्पर्क शून्य हैं, तथापि आप ही जगत् प्रपञ्च करने वाले भी हैं। आप चतुर्विध जगत् के आधार हैं। आपको प्रणाम! आप एकपद, द्विपद, त्रिपद, तीर्थपद हैं। यह अन्तरिक्ष आपका ही पद है। आपके चरणों से उत्पन्न गंगादेवी त्रिभुवन को पावन करती है। जिसके नाम का उच्चारण करने से ब्रह्महत्यादि पाप दूरीभूत होते हैं, सभी शुभ प्राप्त किये जाते हैं, आप वही शुभ जगदीश्वर हैं। आपको नमस्कार! हे देव! आपका नाम जप करने से सभी सिद्धियां प्राप्त होती हैं। बुद्धिमान विद्वान् आपका ही अन्वेषण करते हैं। हे नाथ! आपका चरणोदक त्रितापहारी है। हे प्रभो! मैं त्रिताप पीड़ित अधम हूं। आप अपने चरणों की सुदृढ़ भक्ति प्रदान करिये। हे जगन्नाथ! आप ही मेरे एकमात्र स्वामी हैं। मैं आपके चरणकमल में प्रणत होकर पुनः-पुनः प्रार्थना करता हूं कि आपके प्रति मेरी अचला भक्ति बनी रहे। इसके अतिरिक्त मेरी अन्य प्रार्थना नहीं है। आपके चरणकमल में सभी पुरुषार्थ के बीज विद्यमान रहते हैं। जितने दिन मेरा जीवन है, तब तक आपके चरणों के प्रति मेरी दृढ़ भक्ति बनी रहे। जिस भक्ति के बल से पितामह जगत् सृजन, रुद्रदेव समस्त लोक संहार करते हैं तथा लक्ष्मीदेवी भी जिनके भक्ति बल से ऐश्वर्यदानार्थ सफल हो सकी हैं, मैं आपसे

उसी भक्ति को मांगता हूं। हे जगन्नाथ! मैं उस अतीव दुष्कर सुदृढ़ अनादि अविद्यापंक में निमग्न हूं तथा निराश्रय हूं। आपकी महान् माहात्म्यमयी भक्ति ही मेरे निस्तार का उपाय है। भक्ति के अतिरिक्त कोई उपाय दृष्टिगोचर ही नहीं होता।।३८-४७।।

श्रुतिस्मृत्यादिसम्भिन्नमार्गाः सम्मोहहेतवः। त्वद्भक्तिमहायैते न प्रवर्त्तितुमीश्वराः।।४८।।
अनन्यशरणं स्वामिन्ननुकम्पय मां विभो !। इति स्तुवञ्जगन्नाथपादपद्मान्तिके मुदा।।४९।।
पपात दण्डवद्भूमौ प्रसीदेतिवदन्मुहुः। ततस्तेदेवताः सर्वे स्तुत्वासम्पूज्यकेशवम्।।५०।।
तल्लीलापाङ्गसन्तुष्टाःप्रयातास्त्रिदिवम्पुनः। तत उन्मीलितदृशौ पुडरीकाम्बरीषकौ।।५१।।
मायया मोहितौ विष्णोः स्वप्नदृष्टमबुध्यताम्।
यां दृष्ट्वा दिव्यलीलां हि साक्षात्पललचक्षुषा।।५२।।

"श्रुति-स्मृति प्रभृति में अंकित भिन्न-भिन्न उपाय से आपके पादपद्म की भक्ति का लाभ नहीं कर सका। उनसे कोई फल नहीं मिला, अपितु उनसे मैं मोहमुग्ध हो गया। हे विभु! हे स्वामिन्! मेरा कोई रक्षक नहीं हैं। आप ही मेरे एकमात्र रक्षक हैं। मेरे ऊपर दया करिये।" यह कहते-कहते अम्बरीष क्षत्रिय जगन्नाथ के चरणों पर परमानन्दपूर्वक गिरकर दण्डवत् करने लगा। वह बारम्बार "प्रसन्न हों, प्रसन्न हों" कहता जा रहा था। तब सभी देवगण जगन्नाथ देव की स्तुति तथा पूजा करके उनके करुणा कटाक्ष को पाकर सन्तुष्ट हो गये तथा स्वर्ग चले गये। तदनन्तर पुण्डरीक तथा अम्बरीष ने भी नेत्र खोला तथा विष्णु माया से मोहित होकर स्वप्न दृष्टि के समान ज्ञान चक्षु से विष्णु की दिव्य लीला का अवलोकन करने लगे।।४८-५२।।

पुनर्मानुषभावौ तौ दिव्यसिंहासनस्थितम्। नीलजीमूतसङ्काशं फुल्लपद्मायतेक्षणम्।।५३।।
शोणाधरञ्चारुनासं दिव्यकुण्डलभूषितम्। शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं वनमालिनम्।।५४।।
पीनोरस्कञ्चारुहारमनर्घ्यमुकुटोज्वलम्। श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं दिव्याङ्गदविभूषितम्।।५५।।
प्रलम्बबाहुं दीनार्त्तपरित्राणसमुद्यतम्। सुवर्णसूत्रसन्नद्धमध्यग्रन्थिमणीयतुम्।।५६।।
दिव्यपीताम्बरधरं दिव्यस्त्रग्गन्धभूषितम्। स्वर्णपद्मासनासीनं सर्वाङ्गालिङ्गितश्रियम्।।५७।
प्रपन्नसन्तापहरं सुधासागरमुल्बणम्। अशेषवाञ्छाफलदं कल्पवृक्षं सुपुष्पितम्।।५८।।
दक्षपार्श्वस्थितंतस्य ददृशाते हलायुधम्। बिभर्त्ति येन ब्रह्माडं बलेन महताविभुः।।५९।।

उस समय वे कुछ क्षणों के लिये दिव्यभावापन्न हो गये। तत्पश्चात् पुनः मनुष्यभावापन्न होकर चर्मचक्षु से देखा। भगवान् दिव्य सिंहासनासीन हैं। उनकी शरीर कान्ति नीलमेघवत् है। नयन युगल प्रफुल्लकमलवत् शोभायमान है। अधर रक्तवर्ण हैं। नासिका मनोहर है। कानों में दिव्य कुण्डल शोभित हो रहा है। कण्ठ में वनमाला है, चारों हाथों में शंख-चक्र-गदा तथा पद्म है। वक्षस्थल पीन है। गले में मनोहर हार है। मस्तक पर मणिजटित मुकुट शोभायमान है। उनकी बाहु आजानुलम्बित है। वे दीन आर्त्त व्यक्ति तथा प्राणी के परित्राणार्थ सदा सन्नद्ध हैं। उन्होंने सुवर्णसूत्र ग्रंथियुक्त मणियुक्त दिव्य पीतवस्त्र धारण किया है। वे दिव्यमाला तथा दिव्यगन्ध से भूषित हैं। वे सुवर्ण पद्म के आसन पर आसीन हैं। लक्ष्मी देवी ने उनका सर्वाङ्ग आलिंगन किया है। वे विपन्नगण के सन्तापों का हरण करके अतीव गंभीर सुधासागर रूप में तथा अशेष वाञ्छाफलप्रद पुष्पित कल्पतरु

के रूप में शोभित हैं। इन दोनों ने और भी दर्शन किया कि भगवान् जिनके सहारे त्रिभुवन पालन कर रहे हैं, वे हलधर बलराम उनके दाहिनी ओर अवस्थित हैं।।५३-५९।।

तं बलंनागराजानंफणासप्तकमण्डितम्। कैलासशिखरोत्तुङ्गं धवलं कुण्डलोज्ज्वलम्।।६०।।
विचित्रवनमालाढ्यं दिव्यंनीलनिचोलिनम्। सततम्वारुणीक्षीबघूर्णोन्नयनपङ्कजम्।।६१।।
निम्नपृष्ठोन्नतोरस्कं कुण्डलीकृतविग्रहम्। शङ्खचक्रगदापद्मसमुज्ज्वलचतुर्भुजम्।।६२।।
नानाऽलङ्काररुचिरं नतकल्मषनाशनम्। तयोर्मध्येस्थितां भद्रांसुभद्रां कुङ्कुमारुणाम्।।६३।।
सर्वलावण्यवसतिंसर्वदेवनमस्कृताम्। लक्ष्मींलक्ष्मीशहृदयपङ्कजस्थांपृथक्स्थिताम्।।६४।।

सातफणयुक्त-फणों से शोभित नागराज शेष के अवतार ये बलराम कैलासशिखर के समान उच्च उज्वल, मणिकुण्डलधारी तथा धवलमूर्त्ति हैं। उन्होंने दिव्य नीलवर्ण वस्त्र धारण किया है। उनके कण्ठ में विचित्र वनमाला है। नयनकमल वारुणी के मद से सदा घूर्णित एवं रक्तिम से रहते हैं। उनका पृष्ठदेश निम्न है तथा वक्षस्थल उन्नत है। वे कुण्डलीकृत रूप से अवस्थान करते हैं। उनके हाथों में शंख-चक्र-गदा-पद्म विराजित है। उनके अंगों में नाना अलंकार हैं। वे प्रणत भक्तों के पापों को दूर कर देते हैं। वे रंजित मूर्त्तिरूपेण अवस्थान करते हैं। जगन्नाथ प्रभु तथा बलराम के मध्य में मंगलमयी सुभद्रा कुंकुम से रंजित मूर्त्ति में अवस्थित हैं। ये देवी समस्त लावण्य की आधार हैं तथा सभी देवगण इनको प्रणाम करते रहते हैं। वे लक्ष्मीश्वर के हृदयकमल में वास करने वाली साक्षात् लक्ष्मी हैं। ये पृथक् रूप से अवस्थित रहती हैं।।६०-६४।।

वराब्जधारिणीं देवीं दिव्यनेपथ्यभूषणाम्। प्रपन्नकल्पलतिकांसर्वकल्मषनाशिनीम्।।६५।।
संसारार्णवमग्नानां तारिणीं देवतारिणीम्। वामपार्श्वस्थितम्विष्णोदद्राष्टां चक्रमुत्तमम्।।६६।।
दार्वग्रनिर्मितम्विप्राः स्वर्णभक्तिसमुज्ज्वलम्।
चतुर्द्धावस्थितं विष्णु दृष्ट्वा तौ द्विजबाहुजौ।।६७।।
अरुणोदयवेलायांश्रमंसार्थममन्यताम्। संस्मृत्यतांस्वप्नलीलांविस्मयञ्जग्मतुस्तदा।।६८।।
न दारुप्रतिमाचेयं साक्षाद्ब्रह्मप्रकाशते। सदोगतानाम्विप्राणां वाक्यंश्रद्दधतुश्च तौ।।६९।।
क्वाऽऽवां महापातकिनौ यातनाक्रमभागिनौ।
क्वेदं सुरसमाक्रान्तस्थितम्विष्णोः प्रदर्शनम्?।।७०।।
मूर्खयोरावयोरष्टादशविद्याप्रवीणता। यस्मात्तस्मान्नच भ्रान्तिर्ज्ञानं तत्समवादिनः।।७१।।
यदूचुर्दारवं ब्रह्म तीर्थराजतटे स्थितम्। वटमूले प्रकाशन्तं दृष्ट्वा जन्तुर्विमुच्यते।।७२।।
तदेवाऽयं जगन्नाथश्चतुर्द्धा सम्व्यवस्थितः। क्षितौ यदावतरति चतुरूपः प्रकाशते।।७३।।
तदाऽस्य सन्निधावावां स्थास्यावः प्राणधारिणौ।
यावन्नाऽन्यत्र गच्छावः क्षुद्रकामपराङ्मुखौ।।७४।।
इति निश्चित्य मुनयो विष्णौ भक्तिपरायणौ।
नारायणाख्यं सततं जपन्तौ मुक्तिमाऽऽगतौ।।७५।।

ये देवी सुभद्रा दिव्य वेशभूषा धारण करके तथा हाथ में मनोहर पद्म लेकर बैठी रहती हैं। वे विपन्नगण के समस्त कलुष का नाश करने वाली, कल्पलतारूपा हैं। वे संसार सागर में डूब रहे लोगों का निस्तार करने वाली हैं। यहां तक कि वे देवगण का भी उद्धार करती हैं। पुण्डरीक तथा अम्बरीष ने विष्णु के बामपार्श्व में मनोहर चक्र सुदर्शन का दर्शन किया। हे विप्रगण! उन ब्राह्मण तथा क्षत्रिय ने स्वर्णरेखा से शोभित काष्ठमय जगन्नाथ-बलराम-सुभद्रा तथा सुदर्शन चक्र का दर्शन करके अरुणोदय काल में अपने श्रम का फल पाया। इस स्वप्नलीला का अवलोकन करने के पश्चात् वे निश्चित रूप से यह जान गये कि यह दारु प्रतिमा नहीं है। यहां साक्षात् ब्रह्म ही प्रकाशित हो रहे हैं। इन्होंने सभास्थित ब्राह्मणगण के वाक्य में श्रद्धा किया तथा स्वयं को महापातकी तथा यातना-क्लेश का भागी मान लिया। इन्होंने विचार किया कि "यहां के नगरवासीगण को विष्णु का जो दर्शन प्राप्त होता है, वह हमें कहां मिला है? हम मूर्ख थे तथापि हमें इस समय १८ विद्याओं पर अधिकार प्राप्त हो गया! इसलिये हमने जो देखा वह भ्रान्ति ज्ञान नहीं है। उन सत्यवादी ब्राह्मणों ने कहा था कि दारुमय ब्रह्म तीर्थराज समुद्र के तट पर वटमूल में प्रकाशित हैं। इनके दर्शन से प्राणियों को मुक्ति मिलती है। ये एक जगन्नाथ ही चतुर्धा विभक्त होकर चार रूपों में व्यक्त हो रहे हैं। अतः हम जब तक जीवित रहेंगें, तब तक सभी कामना का त्याग करके यहीं विष्णु के पास निवास करेंगे। अब हमें अन्यत्र नहीं जाना है।" यह निश्चित करके वे दोनों मुनि विष्णुभक्ति परायण होकर 'नारायण' नाम का जप करते हुये मुक्त हो गये।।६५-७५।।

जैमिनिरुवाच

प्रसङ्गात्कथितं ह्येतद्रहस्यं पापनाशनम्। शृण्वन्तियेतु चरितं पुण्डरीकाम्बरीषयोः।।७६।।
सततं कीर्तयन्तश्च मुदा परमया युताः।। व्रजन्ति विष्णुनिलयं मुदा परमया युताः।
व्रजन्ति विष्णुनिलयं तेऽपि निर्द्धूतकल्मषाः।।७७।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तम-क्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे पुण्डरीकाम्बरीषमुक्तिवर्णनंनामपञ्चमोऽध्यायः।।५।।

ऋषि जैमिनि कहते हैं—मैंने प्रसंगक्रमेण यह पापनाशक गोपनीय प्रसंग आपलोगों से कहा। जो पुण्डरीक एवं अम्बरीष के इस उपाख्यान का श्रवण किंवा परमानन्दपूर्वक इसका सतत् कीर्त्तन करते हैं, वे पापमुक्त होकर विष्णुलोक गमन करते हैं।।७६-७७।।

।।पञ्चम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षष्ठोऽध्यायः

उत्कल देश का वर्णन

मुनय ऊचुः

कस्मिन्देशे द्विजश्रेष्ठ! तत्क्षेत्रं पुरुषोत्तमम्। यत्र नारायणःसाक्षाद्दारुरूपी प्रकाशते॥१॥

मुनिगण कहते हैं—हे द्विजश्रेष्ठ! किस देश में यह पुरुषोत्तम क्षेत्र स्थित है? जहां नारायण काष्ठ रूप से (दारुमय) होकर प्रकाशित हैं?।।१।।

जैमिनिरुवाच

उत्कलोनाम देशोऽस्ति ख्यातःपरमपावनः। यत्रतीर्थान्यनेकानिपुण्यान्यायतनानिच॥२॥

दक्षिणस्योदधेस्तीरे स तु देशःप्रतिष्ठितः। यत्रस्थितावैपुरुषाः सदाचारनिदर्शनाः॥३॥

वृत्ताध्ययनसम्पन्ना यज्वानो यत्र भूसुराः। सृष्ट्यादौ क्रतवोवेदा वेदशास्त्रप्रवर्तकाः॥४॥

अष्टादशानां विद्यानांनिधानं सम्प्रकीर्तितम्। गृहे गृहे निवसतिलक्ष्मीर्नारायणाज्ञया॥५॥

लज्जाशीला विनीताश्च आधिव्याधि विवर्जिताः।
पितृमातृरताः सत्यवादिनो वैष्णवा जनाः॥६॥

नचाऽत्रावैष्णवःकश्चिन्नास्तिकोवाऽपिवर्तते। सर्वेपरहितास्तत्रनलुब्धानशठाःखलाः॥७॥

ऋषि जैमिन कहते हैं—उत्कल नामक एक परम पवित्र विख्यात देश है। वहां अनेक तीर्थ हैं तथा अनेक पुण्यस्थल भी हैं। यह देश दक्षिणी समुद्र के तट पर प्रतिष्ठित है। वहां के ब्राह्मण वेदज्ञ तथा वेदाध्ययन तत्पर तथा विधिवत् याग करने वाले होते हैं। सृष्टिकाल से ही वहां पर वेदविहित याग-यज्ञादि समभावेन अनुष्ठित होता रहता है। यह १८ प्रकार की विद्या की खान वाला देश कहलाता है। यहां पर लक्ष्मीदेवी नारायण की आज्ञानुसार घर-घर में विराजित रहती हैं। यहां के जनगण भी वैष्णवधर्म परायण, सत्यवक्ता, मातृ-पितृभक्त, लज्जावान् तथा विनयी हैं। उनको आधि-व्याधि का क्लेश नहीं रहता। वहां के वैष्णवों में कपटधर्मी तथा नास्तिक कोई भी नहीं है। वहां सभी दूसरे का हित करने वाले हैं। वहां पर लोभी तथा खल प्रकृति वाला है ही नहीं।।२-७।।

दीर्घायुषस्तत्र जनाः स्त्रियश्च पतिदेवताः। सुशीला धर्मशीलाश्चत्रपाचारित्रभूषिताः॥८॥

रूपयौवनगर्वाढयाः सर्वालङ्कारभूषिताः। कुलशीलवयोवृत्तानुरूपाचारचञ्चवः॥९॥

स्वकर्मनिरतास्तत्र प्रजारक्षणदीक्षिताः। क्षत्रिया दानशौण्डाश्चशस्त्रशास्त्रविशारदाः॥१०॥

यजन्ते क्रतुभिः सर्वे सततं भूरिदक्षिणैः। दीप्यन्ते चित्तयोयेषांयूपाःकाञ्चनभूषिताः॥११॥

वहां के सभी लोग दीर्घजीवी हैं। रमणीगण पतिव्रता, सुशीला, धर्मचारिणी तथा लज्जा एवं सच्चरित्र गुण से भूषिता हैं। वे सभी कुल शील तथा आयु के अनुरूप सदाचारिणी हैं। वहां के क्षत्रियगण स्वधर्मतत्पर, प्रजापालनपरायण, दाता हैं। वे अस्त्रविद्या तथा सर्वशास्त्र पारंगत भी हैं। सभी लोग प्रचुर दक्षिणा देकर विविध यज्ञानुष्ठान करते हैं। वहां पर प्रत्येक गृह में स्वर्णभूषित यज्ञ का यूपकाष्ठ शोभायमान रहता है।।८-११।।

येषां गृहेष्वतिथयः कामनाधिकपूजिताः। वैश्याश्च कृषिवाणिज्यगोरक्षावृत्तिसंस्थिताः॥१२॥
देवान्गुरून्द्विजान्भक्त्याप्रीणयन्तिधनैरपि। एकस्यद्वारियातोऽर्थीनगच्छेदन्यवेश्मनि॥१३॥
गीतकाव्यकलाशिल्पकुशलाःप्रियवादिनः। शूद्राश्चधार्मिकास्तत्रस्नानदानक्रियारताः॥१४॥
कर्मणा मनसा वाचा धनैश्चद्विजसेवकाः। येऽन्येसङ्करजातास्तेस्वेस्वेधर्मेप्रतिष्ठिताः॥१५॥
ना विपर्यन्ति ऋतवो नाऽकाले वर्षते घनः। न सस्यहानिर्नमरुत्क्षुन्नपीडयति प्रजाः॥१६॥
दुर्भिक्षमरके नाऽत्र राष्ट्रभङ्गः प्रजायते।
नाऽलभ्यं तत्र वस्त्वस्ति यत्किञ्चित्पृथिवीगतम्॥१७॥
एवं सर्वगुणैर्युक्तो नानाद्रुमलताकुलः। अर्जुनाशोकपुन्नागतालहिन्तालशलकैः॥१८॥

वहां अतिथिगण लोगों के घर जाकर इच्छा से अधिक सत्कार प्राप्त करते हैं। वहां के वैश्यलोग कृषि-वाणिज्य तथा गोरक्षण में नियुक्त रहते हैं तथा भक्ति एवं अर्थ से देवता-गुरु-ब्राह्मण को प्रसन्न रखते हैं। याचक एक ही व्यक्ति के गृह जाकर इतना अर्थ पा जाता है कि उसे अन्य के गृह नहीं जाना पड़ता। वहां प्रायः सभी काव्य-संगीत विद्या तथा शिल्प में निपुण, प्रियवादी हैं। शूद्रगण धर्मपरायण हैं। सभी स्नानदानादि सत्कर्म तत्पर हैं। वे काया, मन, वाणी से तथा अर्थ से ब्राह्मणों की सेवा करते हैं। इसके अतिरिक्त जो संकर जाति वाले हैं, वे भी अपने-अपने धर्म में तत्पर हैं। वहां यथाकाल ऋतु अपना कार्य करते हैं, तथापि कभी भी इसमें ऋतु के विपरीत वातावरण नहीं होता। मेघ असमय वर्षा नहीं करते। खेती तथा फसल की हानि कभी नहीं होती। आंधी तथा अतिवृष्टि नहीं होती। प्रजागण कभी भी क्षुधा से कातर नहीं होते। दुर्भिक्ष-महामारी तथा राष्ट्रविपर्यय कभी नहीं होता। वहां के निवासीगण के लिये पृथिवी की कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं होती। वह देश सर्वगुणयुक्त तथा नाना तरुलता शोभित है। वहां अर्जुन-अशोक-पुन्नाग-ताल-हिन्ताल के वृक्ष भरे पड़े हैं।।१२-१८।।

प्राचीनामलकैर्लोर्ध्रैर्बकुलैर्नागकेशरैः। नारिकेलैः प्रियालैश्च सरलैर्वेवदारुभिः॥१९॥
धवैश्च खदिरैर्बिल्वैः पनसैश्च कपित्थकैः। चम्पकैः कर्णिकारैश्चकोविदारैःसपाटलैः॥२०॥
कदम्बनिम्बनिचुलरसालामलकैस्तथा। नागरङ्गैश्च जम्बीरैर्नीपकैर्मातुलुङ्गकैः॥२१॥
मन्दारैः पारिजातैश्च न्यग्रोधागुरुचन्दनैः। खर्जूराम्रातकैः सिद्धैर्मुचुकुन्दैः सकिंशुकैः॥२२॥
तिन्दुकैः सप्तपर्णैश्च अश्वत्थैश्च बिभीतकैः। अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैःप्रकीर्णःसुमनोहरैः॥२३॥
मालतीकुन्दबाणैश्च करवीरैः सितेतरैः। केतकीवनषण्डैश्च अतिमुक्तैः सकुब्जकैः॥२४॥
एलालवङ्गकङ्कोलदाडिमैर्बीजपूरकैः। श्रेणीकृतैः पूगवनैरुद्यानैः शतशो वृतः॥२५॥

शाल, प्राचीन आमलक, लोध, वकुल, नागकेशर, नारियल, पियाल, पनस, कपित्थ, चम्पक, कर्णिकार, कोविदार, पाटल, कदम्ब, निम्ब, निचुल, आम्र, आमलक, नागरंग, जम्बीर, नीप, मातुलुंग, मंदार, पारिजात, वट, अगुरु, चन्दन, खजूर, आमड़ा, सिद्ध, मुचुकुन्द, किंशुक, तिन्दुक, सप्तपर्ण, विभीतक इत्यादि वृक्षों द्वारा वह देश अतीव मनोहर प्रतीत होता है। मालती-कुन्द-बाण-कनेर-केतकी-अतिमुक्त-कुब्ज-इलायची-लौंग-कंकोल-अनार-बीजपूरक आदि नाना कुसुम वृक्ष इस देश में प्रचुरता से हैं। सभी उद्यान चतुर्दिक् राशि-राशि पूगवृक्ष से घिरे हैं।।१९-२५।।

नानाद्रुमलताकीर्णःपर्वतैः सिन्धुभिर्वृतः। स एषदेशप्रवर उत्कलाख्यो द्विजोत्तमाः॥२६॥
ऋषिकुल्यां समासाद्य दक्षिणोदधिगामिनीम्।
स्वर्णरेखामहानद्योर्मध्ये देशः प्रतिष्ठितः॥२७॥
सन्त्यत्र पुण्यायतने क्षेत्राणि सुबहून्यपि। पूर्ववस्तीर्थयात्रायांवर्णितानिमयाद्विजाः।
भूस्वर्गः साम्प्रतं ह्येष कथितः पुरुषोत्तमः॥२८॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्र-माहात्म्य ओढ्र (उत्कल) देशवर्णनंनामषष्ठोऽध्यायः।।६।।

हे द्विजोत्तमगण! नाना वृक्ष, लता, पर्वत नदी द्वारा परिवेष्ठित यह उत्कल देश सभी देशों से उत्तम रूप है। इस दक्षिणसमुद्रगामिनी ऋषिकुल्या नदी से लगाकर उत्तरवर्त्तिनी स्वर्णरेखा तथा महानदी के बीच का जो प्रदेश हैं, वह पुरुषोत्तम क्षेत्र है। हे द्विजगण! इस पवित्र देश में बहुतर क्षेत्र हैं। यह मैंने तीर्थयात्रा प्रसंग में पहले भी आप लोगों से कह दिया। इसे तो पृथिवी का भूस्वर्ग कहते हैं।।२६-२८।।

।।षष्ठ अध्याय समाप्त।।।

❖❖❖

सप्तमोऽध्यायः

ब्राह्मण द्वारा इन्द्रद्युम्न को पुरुषोत्तम क्षेत्र का सन्धान देना, सबका भगवद् दर्शनार्थ गमन, विद्यापति-शबर संवाद

मुनय ऊचुः

कस्मिन्युगे स तुनृप इन्द्रद्युम्नोऽभवन्मुने। कस्मिन्देशेऽस्यनगरंकथंवापुरुषोत्तमम्॥१॥
गत्वा च विष्णोःप्रतिमांकारयामासावकथम्। एतत्सर्वंविस्तरतःकथयस्व महामुने॥२॥
याथातथ्येन सर्वज्ञ! परं कौतूहलं हि नः॥३॥

मुनिगण कहते हैं—किस युग में इन इन्द्रद्युम्न राजा का जन्म हुआ था? किस देश में इनका नगर है? वे किस प्रकार पुरुषोत्तम क्षेत्र में गये थे? उन्होंने विष्णु प्रतिमा का निर्माण क्यों किया था? इन सबका वर्णन विस्तार से करिये। हमें इस वृत्तान्त को सुनने हेतु अत्यन्त कुतूहल हो रहा है।।१-३।।

जैमिनिरुवाच

साधु साधु द्विजश्रेष्ठा यत्पृच्छध्वं पुरातनम्। सर्वपापहरं पुण्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम्॥४॥

चरितं तस्य वक्ष्यामि तथावृत्तं कृते युगे। शृणुध्वं मुनयःसर्वेसावधानाजितेन्द्रियाः॥५॥
आसीत्कृतयुगे विप्राः इन्द्रद्युम्नो महानृपः। सूर्यवंशे स धर्मात्मा स्त्रष्टुः पञ्चमपुरुषः॥६॥
सत्यवादी सदाचारोऽवदातः सात्त्विकाग्रणीः।
न्यायात्सदा पालयति प्रजाः स्वा इव स प्रजाः॥७॥
अध्यात्मविज्ञानशौण्डःशूरःसङ्ग्रामवर्द्धनः। सदोद्यतःसदाविप्रपूजकःपितृभक्तिमान्॥८॥
अष्टादशसु विद्यासु बृहस्पतिरिवाऽपरः। ऐश्वर्येण सुराधीशः कुबेरः कोषसञ्चये॥९॥
रूपवान्सुभगः शीलीदाता भोक्ता प्रियम्वदः। यष्टासमस्तयज्ञानांब्रह्मण्यःसत्यसङ्गरः॥१०॥
वल्लभो नरनारीणां पौर्णमास्यां यथा शशी। आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यःशत्रुपक्षक्षयङ्करः॥११॥
वैष्णवः सत्यसम्पन्नो जितक्रोधो जितेन्द्रियः। राजसूयंक्रतुरंवाजिमेधसहस्त्रकम्॥१२।
इयाज परमः श्रीमान्मुमुक्षुर्धर्मतत्परः। एवं सर्वगुणोपेतः स पृथ्वीं पालयन्नृपः॥१३॥
अवन्तींनाम नगरीं मालवे भुवि विश्रुताम्। उवास सर्वरत्नाढ्यांद्वितीयाममरावतीम्॥१४॥

जैमिनी कहते हैं—हे द्विजप्रवरगण! साधु-साधु! आपने मुझसे जो सर्वपापहारी पवित्र भोगमोक्षदायक शुभ पुरातन वृत्तान्त पूछा है, वह कथा है इन्द्रद्युम्न राजा का चरित्र। सत्ययुग के उस उपाख्यान को आप लोगों से कहता हूं। हे जितेन्द्रिय मुनिगण उसे सुनिये। हे मुनिगण! सत्ययुग में सूर्यवंश में उत्पन्न इन्द्रद्युम्न नामक राजा थे। वे धर्मात्मा तथा ब्रह्मा से पंचम पीढ़ी में थे। वे सत्यवादी, सदाचारी, निष्पाप तथा सात्विक प्रवर थे। वे प्रजावर्ग का पालन न्यायपरता पूर्वक सन्तानवत् करते थे। ये राजा इन्द्रद्युम्न आत्मतत्व की चर्चा में निरत, संग्राम विजेता विख्यात वीर, सर्वदा उद्योगी, सर्वदा ब्राह्मणपूजक तथा पितृभक्त थे। वे १८ विद्याओं के ज्ञान में दूसरे बृहस्पति के समान थे। वे रूपवान्, सुभग, सुशील, दाता, भोक्ता, प्रियभाषी, निखिल यज्ञों के अनुष्ठानकर्त्ता, ब्रह्मण्य, सत्यप्रतिज्ञ, पूर्णिमा के पूर्णचन्द्र के समान नर-नारीगण के प्रियपात्र, सूर्य के समान तेजयुक्त होने के कारण दुर्निरीक्ष्य, शत्रुओं के लिए हानिकारक, वैष्णव, सत्यपरायण, क्रोधजित् तथा जितेन्द्रिय थे। परमधर्मात्मा श्रीमान् इन्द्रद्युम्न ने मुक्तिकामी होकर राजसूय महायज्ञ तथा १०० अश्वमेध सम्पन्न किया था। इस प्रकार समस्त गुणयुक्त पृथिवीपालक यह राजा अपनी सुविख्याता तथा अमरावती पुरी के समान सर्वरत्नयुक्त विख्यात अवन्ती नगरी में निवास करते थे।।४-१४।।

तत्र स्थितो नरपतिर्विष्णौभक्तिमनुत्तमाम्। चकार मनसा वाचा कर्मणापरमाद्भुताम्॥१५॥
एवं प्रवर्तमानोऽसौ कदाचिच्छ्रीपतेर्विभोः। पूजासमयमासाद्य देवार्चनगृहान्तरे॥१६॥
विद्वद्भिःकविभिश्चैवतीर्थयात्राप्रसिद्धिभिः। दैवज्ञैःश्रोत्रियैःसार्द्धंपुरोहितमवस्थितम्॥१७॥
आदृतो व्याजहारेदं ज्ञायतां क्षेत्रमुत्तमम्। यत्रसाक्षाज्जगन्नाथं पश्यामोऽनेन चक्षुषा॥१८॥
एवमुक्तो नृपाग्र्येण वैष्णवेन पुरोहितः। तीर्थयातृव्रजं पश्यन्नुवाच प्रश्रितं वचः॥१९॥

वे इस नगर में रहकर काया-मन-वाणी से विष्णु के प्रति अचला तथा अत्यद्भुत भक्ति करते रहते थे। इस प्रकार वे एक बार देवार्चन गृह में विष्णु की पूजा कर रहे थे। तभी उन्होंने पूजा काल में विप्रगण, कविगण, तीर्थयात्रा का प्रस्ताव बतलाने वाले दैवज्ञगण तथा श्रोत्रिय आदि के समक्ष पुरोहित से आदरपूर्वक प्रश्न किया—

"क्या आप जानते हैं कि वह उत्तम क्षेत्रधाम कहां है, जहां साक्षात् जगन्नाथ देव का इस चर्मचक्षु से दर्शन मिल सके?" पुरोहितों ने इन विष्णुभक्त नृपश्रेष्ठ द्वारा पूछे जाने पर पहले तीर्थयात्रीगण को देखकर उनसे प्रश्न किया।।१५-१९।।

भोभोस्तीर्थाटनव्यग्रा धार्मिकास्तीर्थकोविदाः!।
यद्दादिशति देवोऽयं युष्माभिस्तच्छ्रुतं किल॥२०॥

विज्ञाय तस्याऽभिप्रायं कश्चित्सुबहुतीर्थगः। उवाचवाग्ग्मीराजानंबद्धाञ्जलिपुटं मुदा॥२१॥
राजन्ननेकतीर्थानिव्यचारिषमहं प्रभो !। आशैशवात्क्षितितले श्रुतान्यन्यैस्तु यानि वै॥२२॥
ओढदेशइतिख्यातो वर्षे भारतसञ्ज्ञिते। दक्षिणस्योदधेस्तीरेक्षेत्रं श्रीपुरुषोत्तमम्॥२३॥
यत्र नीलगिरिर्नामसमन्तात्काननावृतः। तस्योत्सङ्गेकल्पवृक्षःसमन्तात्क्रोशसंमितः॥२४॥

तस्य छायां समाक्रम्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति।
तस्य पश्चाद्दिशि ख्यातं कुण्डं रौहिणसञ्ज्ञितम्॥२५॥
तत्पूर्णं कारुणाम्भोभिः स्पर्शनादेव मुक्तिदम्।
तस्य प्राक्तटमास्थाय नीलेन्द्रमणिनिर्मिता॥२६॥

पुरोहित कहते हैं—"हे तीर्थयात्रीगण! आप लोग सदैव तीर्थयात्रार्थ व्यग्र रहते हैं। आप धर्मात्मा हैं तथा अनेक देशों को आपने देखा है। इन महाराज ने जो आदेश किया है, क्या ऐसा तीर्थ आपने सुना है?" तब उन अनेक तीर्थयात्रियों में से एक अनेक तीर्थगामी वक्ता उठा तथा उसने पुरोहितों का अभिप्राय जानकर हाथ जोड़कर हर्षपूर्वक राजा से कहा—"हे राजन्! मैंने शिशुकाल से ही भूमण्डलस्थ अनेक तीर्थयात्रा की है। मैंने अन्य तीर्थगामी लोगों से सुना है कि भारतवर्ष के विख्यात उड्रदेश के दक्षिण समुद्रतट पर श्रीपुरुषोत्तम नामक एक तीर्थ है। यह अत्युत्तम क्षेत्र है। वहां एक नीलगिरि नामक पर्वत है। उसके चतुर्दिक् नाना वन हैं। उसके अंकभाग में चारों ओर एक क्रोश पर्यन्त फैला एक कल्पवृक्ष है। इस वृक्ष की छाया में जाने से ब्रह्महत्या पातक भी नष्ट हो जाता है। उसके पश्चिम में रौहिण नाम से प्रसिद्ध एक कुण्ड है। यह कुण्ड कारण जल से भरा है तथा यह दर्शनमात्र से मुक्ति देने वाला है। इसके पूर्वतट पर नीलकान्त मणि से निर्मित भगवान् वासुदेव की मूर्त्ति है।।२०-२६।।

तनुः श्रीवासुदेवस्य साक्षान्मुक्तिप्रदायिनी। तत्र कुण्डेतुयःस्नात्वादृष्ट्वातुपुरुषोत्तमम्॥२७॥
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्य विमुच्यते। तत्राऽऽस्त आश्रमश्रेष्ठःख्यातःशबरदीपकः॥२८॥
पश्चिमस्यां दिशिविभोर्वेष्टितःशबरालयैः। यस्मादेकपदीमार्गोयेनविष्ण्वालयंव्रजेत्॥२९॥
यत्र साक्षाज्जगन्नाथः शङ्खचक्रगदाधरः। जन्तूनां दशनान्मुक्तिं यो ददाति कृपानिधिः॥३०॥
तत्रोषितं मया राजन्वर्षं श्रीपुरुषोत्तमे। तुष्ट्यर्थं देवदेवस्य व्रतिना वनवासिना॥३१॥
प्रतिरात्रं भगवतो दर्शनाय दिवौकसाम्। आगतानां महाराज ! दिव्यगन्धोह्यमानुषः॥३२॥

वह साक्षात् प्रभु की शरीररूपा है। वह साक्षात् मुक्तिदायिका भी है। जो व्यक्ति इस कुण्ड में स्नान

करके इन पुरुषोत्तम का दर्शन करता है, उसे सहस्र अश्वमेध का फल प्राप्त हो जाता है। उसके पश्चिम की ओर शबरदीपक नामक एक प्रसिद्ध उत्तम आश्रम है। वह शबर जाति के लोगों के गृहों से घिरा है। इसी स्थान से विष्णुगृह (मंदिर) में जाते हैं वहां ऐसी एक पगदण्डी भी है। इस गृह में साक्षात् जगन्नाथ शंख-चक्र-गदा धारण पूर्वक अवस्थान करते हैं। वहां भगवान् के दर्शनार्थ प्रत्येक रात्रि में देवगण का अपूर्व सुगन्ध के साथ आगमन होता है। इन कृपानिधि के दर्शन मात्र से वहां तो मुक्ति का वितरण होता है। हे राजन्! मैंने वहां उन देवता को प्रसन्न करने हेतु वनवासी तपस्वी होकर वहां पुरुषोत्तम क्षेत्र में एक वर्ष वास किया था।।२७-३२।।

नानास्तुतिवचःकल्पपुष्पवृष्टिश्चलभ्यते। महिमैष न कुत्राऽपिविष्णोःस्थानेप्रकाशते।।३३।।
पौराणिकी प्रवृत्तिश्च श्रुतातत्र महीपते !। वायसो माधवं दृष्ट्वा तिर्यग्देहोऽपिमुच्यते।।३४।।
नाऽधिकारी पुण्यकृत्येज्ञानहीनोऽपिपार्थिव !। तृषार्त्तो रौहिणेकुण्डेजलंपातुंसमागतः।।३५।।
त्यक्त्वा कालवशात्प्राणान्विष्णुसारूप्यमाप्तवान्।
अहमासं पुरा मूर्खस्तत्प्रसादात्तु साम्प्रतम्।।३६।।
अष्टादशसुविद्यासुशेषोवास्यान्ममापरः। मतिश्चनिर्मलाजाताविष्णोःपश्यामिनापरम्।।३७।।
त्वं यस्माद्विष्णुभक्तोऽसिसततंचदृढव्रतः। अतस्तवोपदेशार्थमागतोऽहंतवान्तिकम्।।३८।।
नो धनं न चभूमिंचत्वत्तःसम्प्रार्थ्यतेऽधुना। व्यलीकमेतन्माबुद्ध्वातत्रस्थंश्रीधरंभज।।३९।।
एवमुक्त्वा तु जटिलः सर्वेषां पश्यतां तदा। अन्तर्द्धानंजगामाशुराजापरमविस्मयम्।।४०।।

वहां पर अनवरत विविध प्रकार के स्तुति वाक्यों का उद्घोष होता है तथा कल्पवृक्ष से अनवरत पुष्पवर्षा होती रहती है। इस प्रकार की विष्णु महिमा अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होती। हे राजन्! इस स्थान के सम्बन्ध में एक प्राचीन वार्त्ता प्रसिद्ध है। एक काक पक्षी ने तिर्यक् जाति का होकर भी माधव के दर्शन से मुक्तिलाभ किया था। हे पार्थिव! ज्ञानहीन पक्षी तो पुण्यकृत्य का अधिकारी नहीं है, तथापि वह प्यास से पीड़ित होकर रौहिणकुण्ड में जल पीने की आशा से आया था, तथापि तभी उसका काल आ गया। उसने यहीं प्राण त्याग करके विष्णुरूपत्व प्राप्त किया। मैं भी पूर्वकाल में मूर्ख था। लेकिन उनकी कृपा से अष्टादश विद्या में अब मेरे लिये कुछ भी बाकी नहीं है। मेरी-बुद्धि अब निर्मल है। मैं सबको विष्णुरूप देखता हूं। अन्य रूप नहीं देखता। आप विष्णुभक्त हैं तथा सदैव दृढव्रती हैं। इसलिये आपको उपदेश देने हेतु मैं यहां आ गया हूं। मैं आपसे धन अथवा भूमि लेने नहीं आया। मेरी बात को व्यर्थ न मान कर आप पुरुषोत्तम क्षेत्र जाकर पुरुषोत्तम का भजन करें। वह जटिल तपस्वी यह उपदेश देकर सभी दर्शकों के सामने से तत्काल अन्तर्हित् हो गया। इससे राजा अत्यन्त विस्मित हो गये।।३३-४०।।

अवाप्य व्याकुलमतिः कथं मे निर्वहेदिति। पुरोहितमुवाचेदं तस्यैवाऽर्थस्य साधने।।४१।।

तब राजा ने विस्मयाकुल होकर चिन्तन किया कि किस प्रकार यह कार्य सम्पन्न हो? यह सोचकर उसके साधनार्थ राजा पुरोहित से कहने लगे।।४१।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

अमानुषमिदंवृत्तं श्रुत्वेदानीममानुषात्। बुद्धिस्त्वरयते तत्र यत्रास्तेऽसौ गदाधरः।।४२।।

मम धर्मार्धकामाहित्वदायत्ताद्विजोत्तम। अविरुद्धास्त्वत्प्रसादात्त्रिवर्गःसाधितोमया।।४३।।

इदानींचेद्द्विजश्रेष्ठत्वमत्रार्थेगमिष्यसि। चतुर्वर्गस्तुसम्पूर्णःप्राप्तःस्यात्साम्प्रतम्मया।।४४।।

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—हे द्विजोत्तम! धर्म-अर्थ-काम रूपी त्रिवर्ग तो आपके अधीन हैं। आपकी कृपा से मैंने बिना किसी रुकावट के इन त्रिवर्ग का लाभ साधन किया है। यह वृत्तान्त एक अमानुष से सुना जो कि वस्तुतः अमानुषिक वृत्तान्त है। (अर्थात् दैवी वृत्तान्त हैं)। तदनुसार जहां गदाधर हैं, वहां मेरी बुद्धि शीघ्रता से जा रही है। हे द्विजप्रवर! यदि आप इस सम्बन्ध में (वहां जाने के लिये) विशेष यत्न करें तब तो मैं चतुर्वर्ग प्राप्त कर लूंगा।।४२-४४।।

पुरोहित उवाच

बाढमेतत्करिष्यामि यथा द्रक्ष्यसि केशवम्।
चर्माच्छादितचक्षुर्भ्यां साक्षान्मुक्तिप्रदम्विभुम्।।४५।।

एवमत्र यतिष्यामि तत्र सर्वे यथा वयम्। वत्स्यामः ससहायाश्चक्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे।।४६।।

साफल्यंकिमतोराजञ्जन्मिनोजन्मनोभवेत्। पुरुषन्तमसःपारंसाक्षाद्द्रक्ष्यसिमाधवम्।।४७।।

भ्राताविद्यापतिर्नामकनीयान्मे व्रजिष्यति। देशभ्रमणशीलैश्च चारैः सह तवाऽधुना।।४८।।

तत्र गत्वा जगन्नाथं दृष्ट्वा स हि गिरौयथा। कण्टकावाससंस्थानम्भूप्रदेशम्प्रमीयच।।४९।।

तूर्णम्प्रवृत्तिमानेताश्रेयोऽस्माकम्भविष्यति। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा पुनरुवाचह।।५०।।

पुरोहित कहते हैं—मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं वह प्रयत्न अवश्यमेव करूंगा जिससे उन साक्षात् मुक्तिप्रदाता केशव का दर्शन इन चर्मचक्षुओं से प्राप्त हो सके। इस महापुण्यदायक पुरुषोत्तम क्षेत्र में हम सब जाकर वहां निवास करें। यह यत्न करूंगा। हे राजन्! जिन्होंने इस समय जन्म लिया है, उनके लिये इससे अधिक और क्या फल हो सकता है? वे इन तमोगुण से अतीत पुरुष का मनुष्य होकर भी साक्षात् दर्शन पा सकेंगे। अभी आपके देशभ्रमणरत दूतों के साथ मेरे कनिष्ठ भ्राता विद्यापति वहां जायेंगे। वे वहां जाकर नीलगिरि पर भगवान् जगन्नाथ का दर्शन सम्पन्न करने के पश्चात् उस देश में निवास योग्य स्थान का चयन करके शीघ्र संवाद भेजेंगें। इससे हमारी इष्टसिद्धि होगी। राजा ने पुरोहित का यह वाक्य सुनकर उनसे पुनः कहा।।४५-५०।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

साधु ब्रह्मन्समाधाय व्यवसायोविचारितः। अहम्प्रथमतोऽप्येतच्छ्रुत्वैव कृतनिश्चयः।।५१।।

तत्र क्षेत्रे भगवतः सन्निधौ निवसाम्यहम्। तद्गच्छतु तव भ्रातायथेष्टं साधयिष्यति।।५२।।

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—हे ब्रह्मन् ! आपने उत्तम निश्चय किया है। मैंने वहां का वृत्तान्त सुनते ही भगवान् के पास वहां रहने का निश्चय किया था। अतएव आप के भाई वहां जाकर इष्टकार्य सम्पन्न करें।।५१-५२।।

इत्युक्त्वाऽन्तःपुरं राजाप्रविवेशमुदान्वितः। पुरोहितोऽपि तान्सर्वान्यथावदनुपूर्वशः।।५३।।

राजाज्ञया पूजयित्वा प्राहिणोत्स्वं स्वमाश्रमम्। भ्रातरंसुमुहूर्ते च दैवज्ञकृतनिश्चये।।५४।।

प्रस्थापयामासतदा कृतस्वस्त्ययनंद्विजैः। अपसर्पैःप्रत्ययिकैः पुष्पस्यन्दनमास्थितः।।५५।।

ततः सम्प्रस्थितो विप्राः ! स तु विद्यपतिर्द्विजः।
मनसा चिन्तयामास मध्ये स्यन्दनमास्थितः।।५६।।

अहो मे सफलं जन्म सुकल्या शर्वरी च मे। द्रक्ष्यामि यद्भगवतो मुखपद्ममघापहम्।।५७।।
श्रवणाद्यैरुपायैर्यं यतमाना अहर्निशम्। पश्यन्ति यतयश्चेतःपुण्डरीके व्यवस्थितम्।।५८।।
तमद्य नीलशिखरेशृङ्गस्थंबिभ्रतम्वपुः। वपुः सम्बन्धहरणंसाक्षद्द्रक्ष्यामिचक्रिणम्।।५९।।

श्रुतिस्मृतीहासपुराणवाक्यैर्यद्रूपमास्थापयितुं न शक्यम्।
तच्छ्रीनिधे रूपमदृष्टपूर्वं दृष्ट्वा तरिष्यामि भवाम्वुराशिम्।।६०।।

राजा यह कहकर हर्षान्वित चित्त से अन्तःपुर में चले गये। पुरोहित ने उन सभी लोगों का सम्मान यथायोग्य रूप से राजाज्ञा के अनुसार किया। सबने अपने-अपने स्थान लौटने के लिये विदा प्राप्त किया। पुरोहित ने अपने भाई विद्यापति को शुभमुहूर्त्त में स्वस्तिवाचन करके विदा किया। तत्पश्चात् विश्वस्त लोगों द्वारा लाये गये पुष्पक रथ पर आरोहण करके विद्यापति मार्ग में रथ पर जाते समय जगन्नाथ देव का चिन्तन मन ही मन करने लगे कि "आज मेरा जन्म सफल हो गया। आज मेरी रात्रि सुप्रभातमय हो गयी! इसका कारण यह है कि मैं भगवान् के पापनाशक मुखकमल का दर्शन करूंगा। जिनका दर्शन यतिगण श्रवणादि उपायों से यत्नवान् होकर दिन-रात करते हैं, आज मैं भी नीलपर्वत के शिखर पर श्वेतपद्म में आसीन मुक्तिदाता चक्रधारी पुरुष का साक्षात् दर्शन प्राप्त कर सकूंगा! श्रुति-स्मृति-इतिहास पुराणादि के वाक्य से जिनके स्वरूप का निरूपण नहीं हो सकता उन श्रीनिधि प्रभु के अदृष्टपूर्व अलौकिक रूप का दर्शन पाकर मैं संसार सागर से उत्तीर्ण हो जाऊंगा।"।।५३-६०।।

यन्नामसङ्कीर्तनतस्त्रिधांहः सङ्घः प्रणाशं स्मरतां प्रयाति।
तमद्य विश्वेश्वरमप्रमेयं साक्षतरिष्यामि गिरौ वसन्तम्।।६१।।
यत्पादपद्मानुसंहितस्य पदे पदे दुःखमुपार्जितस्य।
तमः प्रकाण्डप्रभवं कदाचिन्नात्माश्रितं कर्मभिरेति नाशम्।।६२।।
आराध्य सूक्ष्मं स्वगुहानिवासं यं पञ्चकोषावृतमात्मसंस्थम्।
वेदान्तगीराह न चाऽपि वेद वन्दे स्वविद्यैकनिवेद्यमाद्यम्।।६३।।
ब्रह्माण्डमालाकलितानुरोमं सहस्त्रमूर्द्धाङ्घ्रिदृशं पुराणम्।
निःश्वासवातोत्थितवेदराशिं सर्वप्रपञ्चेशमहं प्रपद्ये।।६४।।

"जिनके नाम का श्रवण-कीर्त्तन दैहिक-दैविक-भौतिक रूप त्रिताप रूपी पाप का नाश करता है, नीलाचलस्थ उन अप्रमेय विश्वेश्वर का साक्षात् प्राप्त करूंगा। उनके चरणकमल के स्मरण के अतिरिक्त किसी कर्म में तनिक भी सुख नहीं है, अपितु पग-पग पर दुःख ही है। असत् कर्मजनित पाप उनके पादपद्म के शरणरूप सन्धान बिना नष्ट ही नहीं होता। वेदान्तवादी नाना आराधना करके जिसको अन्नमयादि पंचकोषावृत आत्मगुहानिवासी तथा अनिर्वाच्य कहते हैं, तथापि जिनके स्वरूप से तनिक भी अवगत नहीं हो पाते, उन

एकमात्र अध्यात्मविद्या-ज्ञेय सर्वादिदेव जगन्नाथ की वन्दना करता हूं। जिनके एक-एक रोम में ब्रह्माण्डमाला है, जिनकी निःश्वास वायु द्वारा वेदराशि का उद्भव होता है, जो सहस्त्रों मस्तक, सहस्त्रों पद तथा सहस्त्रनेत्रों वाले हैं, जो समस्त प्रपञ्चों के अधीश्वर हैं, मैं उन जगन्नाथ का आश्रय लेता हूं।"।।६१-६४।।

यन्मायया निर्मितकूटमेतत्सृष्टिक्षयस्थानविलासिरूपम्।
निरूपिताऽऽरोपितहेयरूपस्वरूपहीनं प्रणवस्वरूपम्।।६५।।
तिर्यक्तृषाशान्तिनिमित्ततोऽपि यदृच्छया यत्सविधं प्रयातः।
देहेन तेनैव सरूपमुक्तिमवाप तं दृष्टिपथं करिष्ये।।६६।।
अहो अहो मे खलु भाग्यशंसी यत्कोटिजन्मार्जितपुण्य एकः।
समुत्थितो मे खलु चर्मदृग्भ्यां विलोकयिष्ये जगदादिकन्दम्।।६७।।
इत्थं सञ्चिन्तयन्विप्रः प्रहृष्टेनाऽन्तरात्मना। अतीतं बहुमध्वानं नाबुध्यद्रथवेगतः।।६८।।

"यह जगत्प्रपञ्च जिनकी माया से सृष्ट हुआ है तथा वह सृष्ट होकर स्थिति एवं विनाशात्मक हो गया है, जिसे आरोप द्वारा अज्ञ व्यक्ति नश्वर दारुमय (काष्ठमय रूप) रूपवाला कहते हैं, वे रूपरहित जो प्रणव रूपी जगदीश्वर हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूं। जिनके सम्पर्क में काकपक्षी अपनी प्यास बुझाने के लिये स्वेच्छा से गया था, उसने देह त्याग कर स्वरूपा मुक्ति को प्राप्त किया मैं उनके दर्शन हेतु उस मार्ग का आज पथिक हो गया जो मार्ग उनकी ओर जा रहा है। अहा! आज मेरा क्या उत्तम सौभाग्य है! न जाने मैंने पूर्वजन्म में कितने पुण्य किये थे। कोटिजन्मार्जित पुण्यराशि आज प्राप्त हो रही है, क्योंकि आज मैं जगत्कारण आदिदेव जगदीश्वर का दर्शन चर्मचक्षुओं से प्राप्त करूंगा।" विद्यापति ने प्रसन्न मन से यही विचार करते-करते रथ के वेग के कारण दीर्घ पथ पार कर लिया तथापि उनको यह ज्ञात ही नहीं हो सका, क्योंकि वे प्रभु चिन्तन में लीन थे।।६५-६८।।

दिनमध्ये व्यतिक्रान्ते लम्बितेबहुवासरे। वर्त्मन्यदृश्यताऽग्रे तु देशो भुवनमण्डनः।।६९।।
ओढसञ्ज्ञस्तुभोविप्राःक्षितिमण्डलपावनः। इत्थंपश्यन्वनान्तानिगिंरिदुर्गाश्चमार्गगान्।
सूर्यास्तमनवेलायां महानद्यास्तटेऽभवत्।।७०।।
अवरुह्य रथाद्विप्रःकृत्वाचाह्निकमादृतः। उपास्य पश्चिमांसन्ध्यांदध्यौसमधुसूदनम्।।७१।।
रथपृष्ठेस्थितोरात्रिं गमयित्वात्वरान्वितः। महानदीं समुत्तीर्यप्रातःकृत्यंसमाप्यसः।।७२।।
चिन्तयन्नेव गोविन्दं प्रतस्थे रथमास्थितः।
पश्यन्भगवतो मार्गं श्रोत्रियाणां हि यज्वनाम्।।७३।।
वह्निवर्चस्विनाम्विप्राग्रामान्पूगैरलंकृतान्।
विलङ्घ्यैकाम्रमकवनंयावदायातिसद्विजः।।७४।।
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणो ददृशे जनान्। जन्मान्तरितमात्मानं बुबुधे दिव्यरूपिणम्।।७५।।
अवरुह्य रथात्तूर्णं साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च। हर्षाश्रुपूर्णनयनो नाऽन्यत्किञ्चिदपश्यत।।७६।।

हे विप्रगण! कई दिन इस प्रकार व्यतीत होने पर अपराह्न में मार्ग पर भूमण्डल को पवित्र करने वाला, मंगलकारी उड्र (उड़ीसा) देश सामने दृष्टिगोचर होने लगा। इस प्रकार वहां के वन, पर्वत, दुर्ग तथा मार्ग का अवलोकन करते हुये सूर्यास्त काल में विद्यापति महानदी तट तक पहुंचे। हे विप्रों! तब विद्यापति ने रथ से उतर कर आह्निकक्रिया को सम्पन्न करने के पश्चात् सायं सन्ध्योपासना सम्पन्न किया। तदनन्तर उन्होंने मधुसूदन का चिन्तन करके रथ पर ही शयन करके रात्रि व्यतीत किया। उन्होंने महानदी को शीघ्र पार करके प्रातः कृत्य सम्पन्न किया तथा रथ में गोविन्द का चिन्तन करते हुये प्रस्थान किया। तदनन्तर उन्होंने एकाम्र वन पार किया। वे तदनन्तर श्रोत्रिय-याज्ञिक-ब्रह्मतेजस्वी लोगों के यूपकाष्ठ द्वारा शोभित ग्राम में पहुंचे। तब वहां के सभी लोगों को उन्होंने शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी रूप में पाया। उन्होंने अपने देह को भी उसी प्रकार दिव्यरूपी हो गयी देखा। वे सोचने लगे कि प्रतीत होता है मानो जन्मान्तर हो गया। विद्यापति शीघ्र रथ से उतरे तथा उन्होंने उन सभी चतुर्भुज लोगों को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। वे इतने हर्ष से विभोर हो गये कि वे और कुछ भी नहीं देख पा रहे थे।।६९-७६।।

केवलं मनसा विष्णुं पश्यन्बाह्ये च भो द्विजाः।।
एवं व्रजन्यदा विप्रो ध्यायन्पश्यन्स्तुवन्हरिम्।।७७।।
अपश्यत्काननाकीर्णकल्पन्यग्रोधभूषितम्। नीलाचलंलिखन्तंखं पश्यताम्पापनाशनम्।।७८।।
अत्यद्भुतं निवसतिं साक्षात्तनुभृतो हरेः। उपत्यकोयामारूढः समन्तान्मार्गयन्द्विजः।।७९।।
मार्गं न लेभे विप्रोऽसौ मुकुन्दालोकनोत्सुकः।
असुप्यत ततो भूमौ कुशानास्तीर्य वाग्यतः।।८०।।
दर्शने तस्य देवस्य तमेवा शरणं ययौ। ततः शुश्राव वचनं गिरेः पश्चादमानुषम्।।८१।।
भगवद्भक्तिविषयं सँल्लापं कुर्वताम्मिथः। ततो विद्यापतिर्हृष्टोऽनुसरंस्तञ्जगामवै।।८२।।
ददर्श शबरागारैर्वेष्टितं परितो द्विजाः। क्षेत्रस्य द्वीपसंस्थानं ख्यातं शबरदीपकम्।।८३।।

हे द्विजगण! वे विद्यापति हृदय में तथा बाह्यतः विष्णु का दर्शन करते-करते चले जा रहे थे। वे ब्राह्मण इस प्रकार कभी विष्णु का ध्यान तो कभी साक्षात् दर्शन, कभी स्तव करते-करते कुछ दूर गये ही थे, तभी उन्होंने कुछ दूरी पर नीलाचल पर्वत देखा। यह पर्वत दर्शन करने वालों के लिये पापनाशक था। उच्चता में आकाश भेदी था। इसके मध्य में कल्पवृक्ष शोभायमान था। चारों ओर काननों से घिरा था। यह पर्वत अत्यद्भुद् था। मानो साक्षात् मूर्त्तिमान् विष्णु का निवास हो। क्रमशः विद्यापति उस पर्वत के निकट की भूमि पर चढ़े लेकिन मुकुन्ददेव के दर्शनों के उत्सुक वे ब्राह्मण चारों ओर खोजने पर भी मार्ग न पा सके! तदनन्तर उन्होंने वाक् संयम करके भूमि पर कुशपत्र बिछाया तथा उस पर शयन करके मुकुन्द देव की दर्शनाकांक्षा के साथ भगवान् गोविन्द के शरणागत हो गये। तभी उनको पर्वत के पीछे से मानो कोई भगवद् भक्ति सम्बन्धित वार्त्ता करता सुनाई पड़ा। विद्यापति ने उनके अलौकिक वाक्यों को सुना। विद्यापति प्रसन्न चित्त होकर उस वाक्य की ध्वनि जहां से आ रही थी, उसकी खोज में आगे बढ़े। वह स्थान शबर जातीय लोगों के आवास से चारों ओर से घिरा था। वहां उन्होंने शबरों के नाम से विख्यात उस क्षेत्र के दीप संस्थान को देखा।।७७-८३।।

तत्र गत्वाशनैर्विप्रःप्रविश्यविनयान्वितः। ददर्श विष्णुभक्तांस्ताञ्छङ्खचक्रगदाधरान्॥८४॥
प्रणम्य शिरसाविप्रस्तस्थौबद्धाञ्जलिस्तदा। ततोविश्वावसुर्नाम शबरः पलितङ्गकः॥८५॥
अवसायहरेः पूजांपूजाशेषोपशोभितः। सम्प्राप्तोगिरिमध्यात्तुतस्मिन्नेवक्षणेद्विजाः॥८६॥
आलोक्य तं द्विजो हर्षमुपयानो व्यचिन्तयत्।
एष प्राप्तो हरेः स्थानाच्छ्रान्तो निर्माल्यभूषितः॥८७॥
वैष्णवाग्र्य इतो वार्त्ता विष्णोः प्राप्स्यामि दुर्लभाम्।
चिन्तयन्नेव विप्रोऽसौ शबरेणाऽभ्यभाषत॥८८॥

विद्यापति ने क्रमशः विनीत भाव के साथ उस स्थान में प्रवेश किया तथा वहां भी उन्होंने शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी वैष्णवों का दर्शन किया। वे उनको प्रणाम करके वद्धांजलि होकर बैठ गये। तदनन्तर वहां के विश्वावसु नामक एक वृद्ध शबर हरिपूजा सम्पन्न करके पूजा के बचे चन्दनादि से शोभित होकर पर्वत के बीच विद्यापति को दिखलाई पड़ गये। विद्यापति उसे देखकर हर्षित होकर सोचने लगे कि हरि के स्थान से यह श्रान्त तथा हरि के निर्माल्य से भूषित वैष्णव का दर्शन मिला। अब इनसे विष्णु सम्बन्धित वार्त्ता होगी। यह चिन्तन करके विद्यापति से उस शबर ने पूछा—।।८४-८८।।

शबर उवाच

कुतः समागतो विप्र! काननान्तं सुदुस्तरम्।
क्षुतृड्भिरतिश्रान्तश्च सुखमत्राऽऽस्यताञ्चिरम्॥८९॥
पाद्यमासनमर्घ्यञ्च दत्त्वा विश्वावसुर्द्विजम्। उवाचप्रश्रयगिरा प्रस्तुतं प्रतिपादयन्॥९०॥
फलैः पाकेन वा विप्र! प्राणयात्रा भवेत्तव। यत्तभ्यं रोचते तद्वै दीयतेऽत्रमया द्विज॥९१॥
भाग्यं ममाऽद्य भगवञ्जीवितं सफलञ्च मे।
प्राप्तोऽसि मद्गृहं विप्र साक्षाद्विष्णुरिवाऽपरः॥९२॥

शबर कहता है—"हे विप्र! आप का आगमन कहां से हो रहा है? आप कहां से इस दुर्गम वन में आये हैं? आप क्षुधा-तृष्णा से कातर तथा श्रान्त हैं। आप यहां सुखपूर्वक अवस्थान करिये।" यह कहकर उस विश्वावसु ने पाद्य-आसन-अर्घ्य उन द्विज को अर्पण किया तथा प्राप्तव्य द्रव्य का उल्लेख करके विद्यापति से विनयपूर्वक पूछा—"हे विप्र! आप फलाहार करेंगे, किंवा पका भोजन करेंगे? आप की जो रुचि हो, वह प्रस्तुत करूंगा। हे भगवान्! आज हमलोगों का परम भाग्य है तथा हमारा जीवन सफल हो गया क्योंकि आप द्वितीय विष्णुरूप हैं। हमारे गृह में आपका शुभागमन हुआ है।"।।८९-९२।।

इतिब्रुवाणं शबरं प्रोवाच द्विजपुङ्गवः। न मे फलैर्न पाकेन कार्यं वैष्णवपुङ्गव!॥९३॥
यदर्थमागतं दूरात्साधो! तत्सफलं कुरु। इन्द्रद्युम्नस्य नृपतेरवन्तिपुरवासिनः॥९४॥
पुरोहितोऽहं सम्प्राप्तो विष्णोर्दर्शनलालसः।
राजाऽग्रे तैर्थिकानां हि समाजावसरे श्रुतम्॥९५॥

तीर्थक्षेत्रप्रसङ्गेन केनचित्प्रस्तुतं तदा। तथा निवेदितं क्षेत्रं राजाग्रे जटिलेन वै॥९६॥
आनुपूर्व्याच्च तत्सर्वं कथयामास स द्विजः। एतदर्थमहं साधो राज्ञा चोत्कण्ठितेनवै॥९७॥
प्रेषितोऽहं हरिं द्रष्टुमत्रस्थं नीलमाधवम्। दृष्ट्वा यावन्नरपतेर्वार्त्तां नेष्यामि सोऽप्यहम्॥९८॥
निराहारो ध्रुवं साधो! तन्मां विष्णुं प्रदर्शय॥९९॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कल-
खण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसमदे इन्द्रद्युम्नपुरोहितस्यनील-
माधवदर्शनार्थंगमनवर्णनंनाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥
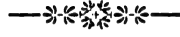
शबर का यह कथन सुनकर विद्यापति कहने लगे "मुझे फल अथवा अन्नपाक का कोई प्रयोजन नहीं है। हे साधु! जिस प्रयोजनार्थ मैं दूर से आया हूं, वह सफल करिये। मैं अवन्तीपुर निवासी राजा इन्द्रद्युम्न का पुरोहित हूं। विष्णु के दर्शनार्थ यहां आया हूं। राजा से तीर्थ पर्यटकों में से किसी ने तीर्थ प्रसंगान्तर्गत् इस तीर्थ का वर्णन कहीं सुना था। उसने यह प्रसंग राजा से उस समय कहा। राजा ने वह सब प्रसंग सुना। हे साधो! तब राजा ने उत्कण्ठित होकर मुझे यहां अप्रतिम नीलमाधव के दर्शनार्थ भेजा। मैं उनका दर्शन करके राजा के पास जब तक संवाद लेकर नहीं पहुंचता, तब तक वे अनाहार रहेंगें। हे साधु! इस हेतु से मुझे विष्णुदर्शन कराओ।।९३-९९।।

।।सप्तम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अष्टमोऽध्यायः

ब्राह्मण तथा शबर का पुरुषोत्तम क्षेत्र गमन, ब्राह्मण द्वारा आश्चर्य वर्णन, इन्द्रद्युम्न का पुरोहित के साथ पुरुषोत्तम क्षेत्र गमन

जैमिनिरुवाच

इत्युक्तस्तेन विप्रेणशबरश्चिन्तयाकुलः। अस्माकमुपजीव्योऽसौरहस्यस्थोजनादनः॥१॥
उपस्थितं नो दूर्वैवंयेनस्यात्सार्वलौकिकः। नदर्शयामिचेद्विप्रंशापंमेऽसौ प्रदास्यति॥२॥
सर्वेषां ब्राह्मणो मान्यो विशेषादतिथिस्त्वयम्।
यस्मिन्विफलकामे तु द्वौ लोकौ विफलौ मम॥३॥

जैमिनि कहते हैं—विद्यापति के यह कहने पर शबर चिन्ताकुल हो गया कि "अहो! हमारे लिये दुर्दैव आ गया। क्योंकि हमारे उपजीव्य तथा इहलोक एवं परलोक के साधन इन निर्जनस्थ जनार्दन का दर्शन ब्राह्मण को करा देने से यहां के सम्बन्ध में सभी को पता चल जायेगा! यदि मैं इनको दर्शन नहीं कराता, तब ब्राह्मण हम सबको शाप देकर चल जायेंगे। सभी जातियों में से ब्राह्मण मान्य हैं। ऊपर से ये अतिथि हैं। यदि इनकी अभिलाषा पूरी नहीं होगी तब तो हमारा दोनों लोक ही विफल होगा।"।।१-३।।

एवं विचारयन्विश्वावसुः शबरपुङ्गवः। जनप्रवादं सस्मार पुराणं शबरालये॥४॥
अस्मिन्नन्तर्हिते देवे भूभ्यन्तर्लीनमाधवे। इन्द्रद्युम्नो नरपतिः शक्रतुल्यपराक्रमः॥५॥
मनुष्यवपुषा यो वै ब्रह्मलोकं व्रजेदपि। सोऽस्मिन्प्रजाभिरागत्य वाजिमेधशतेन च॥६॥
इष्ट्वादारुमयंविष्णुंचतुर्द्धास्थापयिष्यति। अस्यचेद्भाग्यमुत्पन्नंब्राह्मणस्याऽतिथेर्भृशम्॥७॥
अन्तर्द्धानं भगवतः सन्निधानमथो भवेत्। तदेनंदर्शयिष्यामिनीलेन्द्रमणिमच्युतम्॥८॥
न पौरुषेयं कस्याऽपि कर्तव्ये दैवनिर्मिते। इत्थं विचार्य मनसा शबरश्च पुनः पुनः॥९॥
उवाच विप्रं पुरतो ध्यायन्तं विष्णुमव्ययम्॥१०॥

शबरश्रेष्ठ विश्वावसु यह विवेचन करते-करते उस पुराने जनप्रवाद का स्मरण करने लगे। जिसके अनुसार यहां इस स्थान में नीलमाधव के भूतल में अन्तर्हित् हो जाने पर इन्द्रतुल्य पराक्रमी इन्द्रद्युम्न नामक राजा यहां प्रजा के साथ आकर १०० अश्वमेध यज्ञ करेंगे। वे विष्णु के दारुमय रूप को ४ प्रकार से स्थापित करेंगे (जगन्नाथ-सुभद्रा-बलराम-सुदर्शनचक्र)। यदि इस अतिथि ब्राह्मण का अत्यधिक भाग्य होगा, तब इनको अन्तर्ध्यान तत्पर भगवान् का दर्शन मिलेगा। इसलिये इनको नीलेन्द्रमणिमय भगवान् का दर्शन कराऊंगा। क्योंकि जो ईश्वर करेंगे, वही होगा। व्यक्ति के प्रयत्न से कुछ भी नहीं हो सकता।" शबर ने पुनः-पुनः मन में यह विवेचना करके उन अव्यय विष्णु की चिन्ता में तत्पर सामने स्थित ब्राह्मण से कहा।।४-१०।।

शबर उवाच

अस्माभिः पूर्वतोऽप्येष उदन्तः श्रुत एव हि। इन्द्रद्युम्नोनरपतिरत्र वासं करिष्यति॥११॥
ततोऽपिभाग्यवांस्त्वंहियदग्रेनीलमाधवम्। चक्षुषापश्यसेब्रह्मन्नेहियामोह्यधित्यकाम्॥१२॥
इत्युक्त्वा तं करे धृत्वा वर्त्मना गहनं ययौ। उपर्युपयुपारुह्य शिलाविषमवर्त्मनि॥१३॥
एकैकनरगम्ये च कण्टकाचितदुर्गमे। तमः प्राये पथि गतं बोधयन्वचसा द्विजम्॥१४॥
मुहूर्ताभ्यांरौहिणस्यकुण्डस्याविशतांतटे। तंदृष्ट्वासोऽब्रवीद्विप्रंकुण्डमेतद्द्विजोत्तम॥१५॥
रौहिणाख्यं महत्तीर्थं कारणं सर्वपाथसाम्। अत्रस्नात्वा नरो यातिवैकुण्ठभवनंद्विज॥१६॥
एतस्यपूर्वभागेऽसौकल्पच्छायावटोमहान्। छायांयस्यसमाक्रम्यब्रह्महत्यांव्यपोहति॥१७॥
एतयोरन्तरे ब्रह्मन्निकुञ्जाभ्यन्तरे स्थितम्। पश्यसाक्षाज्जगन्नाथं वेदान्तप्रतिपादितम्॥१८॥
दृष्ट्वा जहीहि सकलं विविधं पापसञ्चयम्। इत ऊर्ध्वं न शोचस्वपतितो भवसागरे॥१९॥

शबर ने कहा—"इन्द्रद्युम्न नामक राजा यहां निवास करेंगे" यह वृत्तान्त को हमने पहले से सुना है।

जब आप उनसे पहले प्रभु नीलमाधव के दर्शनार्थ आये हैं, तब तो आप राजा से अधिक भाग्यशाली हैं। हे ब्रह्मन्! आईये! हम पर्वत के ऊर्ध्वभाग की ओर चलें।'' यह कहकर शबरपति ने विद्यापति का हाथ पकड़ा तथा अति संकीर्ण मात्र एक व्यक्ति ही एक बार में जहां से जा सकें ऐसे प्रस्तर तथा कण्टकाकर्ण दुर्गम तथा अन्धकार प्रायः पथ पर बढ़ा। इस पथ पर जाते-जाते वह शबर ब्राह्मण को हिम्मत बंधाने वाले वाक्य कहते-कहते मुहूर्त्त भर में कुण्ड के किनारे पहुंचा। उस कुण्ड को दिखलाते हुये शबर ने कहा–हे द्विजोत्तम! यह महातीर्थ रोहिण है। इसमें स्नान करने से मानव वैकुण्ठधाम में गमन करता है। इसके पूर्वभाग में कल्पपर्यन्त स्थायी रहने वाला एक अक्षय वटवृक्ष है। उसकी छाया में जाते ही ब्रह्महत्या का पाप नष्ट हो जाता है। इस कुण्ड तथा वृक्ष के मध्य में निकुञ्ज के अन्दर वेद प्रसिद्ध साक्षात् जगन्नाथ हैं। उनका दर्शन करने से नाना संचित पातक समाप्त हो जाता है। उसे अब संसार सागर में पतित होकर शोक नहीं करना पड़ता।।११-१९।।

जैमिनिरुवाच

सतु कुण्डेद्विजःस्नात्वासम्प्रहृष्टमनाः सुधीः। दूरात्प्रणम्यशिरसामनसावचसाहरिम्॥२०॥
तुष्टाव चैकाग्रमना हर्षगद्गदया गिरा॥२१॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—अत्यन्त बुद्धिमान विद्यापति इससे सन्तुष्ट हो गये तथा उन्होंने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। वे एकाग्रचित्त तथा अत्यन्त हर्षित होकर वाक्य एवं मन से हरि की स्तुति करने लगे।।२०-२१।।

विद्यापतिरुवाच

प्रधानपुरुषातीत! सर्वव्यापिन्परात्पर!। चराचरपरीणाम! परमार्थ! नमोऽस्तु ते॥२२॥
श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहाससम्प्रतिपादितैः। कर्मभिस्त्वं समाराध्य एक एव जगत्पते॥२३॥
त्वत्त एतज्जगत्सर्वं सृष्टौ सम्पद्यतेविभो!। त्वदाधारमिदं देव! त्वयैव परिपाल्यते॥२४॥
कल्पान्ते संहृतं सर्वं त्वत्कुक्षौ सावकाशकम्।
सुखं वसति सर्वात्मन्नन्तर्यामिन्नमोऽस्तु ते॥२५॥
नमस्ते देवदेवाय त्रयीरूपाय ते नमः। चन्द्रसूर्यादिरूपेण जगद्भासयते सदा॥२६॥
सर्वतीर्थमयीगङ्गायस्य पादाब्जसङ्गमात्। पुनाति सकलाँल्लोकांस्तस्मै पावयतेनमः॥२७॥

विद्यापति कहते हैं—हे सर्वव्यापी! हे परात्पर! आप प्रकृति-पुरुष से अतीत हैं। आप समस्त जगत् के परिणाम रूप परम वस्तु हैं। आपको नमस्कार! हे जगत्पति! एकमात्र आप ही श्रुति-पुराण तथा इतिहास प्रतिपादित कर्मों द्वारा आराध्य वस्तु हैं। हे विभु! सृष्टिकाल में यह समस्त जगत् आप से ही उत्पन्न होता है, जिसके आप ही आधार हैं। हे देव! आप ही इसका प्रतिपालन करते हैं। हे सर्वात्मन्! प्रलयकाल में निखिल जगत् संहार को प्राप्त होकर आपके उदर में असंकीर्णरूपेण अवस्थित रहता है। हे अन्तर्यामी! आपको प्रणाम! हे प्रभु! देवत्रय आपके ही रूप हैं। आप देवगण के भी देवता हैं। आप चन्द्र-सूर्यादि ज्योतिष्करूपेण सर्वदा जगत् को प्रकाशित करते हैं। आपको प्रणाम! गंगा देवी जिनके चरणस्पर्श से निखिल तीर्थरूपा होकर समस्त लोक को पावन करती हैं, आप तो उन गंगा को भी पावन करने वाले पवित्र कर्त्ता नारायण हैं। आपको नमस्कार!।।२२-२७।।

हवींषि मन्त्रपूतानि सम्यग्दत्तानि वह्निषु। परिणामकृते तुभ्यं जगज्जीवयते नमः।।२८।।
यदंशमुपजीवन्ति जगन्त्यानन्दरूपिणः। सर्वकल्मषहीनाय तस्मै ब्रह्मात्मने नमः।।२९।।
निर्मलाय स्वरूपाय शुम्भरूपायमायिने। सर्वसङ्गविहीनाय नमस्ते विश्वसाक्षिणे।।३०।।
बहुपादाक्षिशीर्षास्यबाहवे सर्वजिष्णवे। सर्वजीवस्वरूपाय नमस्ते सर्वरूपिणे।।३१।।
नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते कमलासन !। नमः कमलपत्राक्ष त्राहि मां पुरुषोत्तम !।।३२।।
असारसंसारपरिभ्रमेण निपीड्यमानं खलु रोगशोकैः।
मामुद्धराऽस्माद्भवदुःखजातात्पादाब्जयोस्ते शरणं प्रपन्नम्।।३३।।

सविधि मन्त्रपाठ पूर्वक अग्नि में छोड़ी हवि को जो ग्रहण करते हैं, आप ही वे सर्वयज्ञेश्वर नारायण हैं। आप ही जगत् परिवर्त्तन सम्पन्न करते हैं। आप ही अपने अंश से जगद्वासी लोगों को जीवित रखते हैं। आपको नमस्कार! आप आनन्दरूप हैं। यह समस्त जगत् जिनका अंश होने के कारण उपजीवित रहता है, आप वही निष्पाप ब्रह्मात्मा हैं। आपको प्रणाम! आप मायावी होकर भी शुभरूप हैं। आप सर्वसंगरहित होकर भी विश्व के साक्षी हैं। आप निर्मलरूप हैं। आपको प्रणाम! आप अनेक चरणवाले, अनेक नेत्र, अनेक मस्तक, अनेक मुख, अनेक बाहु वाले, सर्वविजयी हैं। आप सबके जीवनस्वरूप हैं। किम्बहुना! आप सर्वरूपी हैं। आपको प्रणाम करता हूं। हे कमलाकान्त, हे कमलासन, हे पद्मपलाशलोचन, हे पुरुषोत्तम! आपको पुनः-पुनः प्रणाम करता हूं। आप मेरी रक्षा करिये। हे देव! मैं असार संसार में घूम-घूम कर राग-शोक से अतिशय पीड़ित हो रहा हूं। सम्प्रति मैं आपके चरणों में शरणापन्न हूं। कृपा करके मेरा संसार क्लेश से उद्धार करिये।।२८-३३।।

जैमिनिरुवाच

इति स्तुत्वा सुरेशानं देवं प्रणवरूपिणम्। प्रणतः प्रणवं मन्त्रं जजाप पुरतो हरेः।।३४।।
जपान्ते शान्तमनसं कृताञ्जलिमुपस्थितम्। मन्यमानं कृतार्थंस्वंप्रोवाचशबरोद्विजम्।।३५।।

ऋषि जैमिनि कहते हैं—ब्राह्मण विद्यापति इस प्रकार सुरेश्वर प्रणवरूपी देव जगन्नाथ का स्तव करके उनके समक्ष प्रणतभाव से बैठकर प्रणवमन्त्र का जप करने लगे। जप समाप्ति पर जब वे प्रशान्तचित्त होकर अंजलिबद्ध होकर बैठे तब वे स्वयं को कृतार्थ बोध करने लगे। अब उस शबर विश्वावसु ने ब्राह्मण से कहा।।३४-३५।।

विश्वावसुरुवाच

कृतार्थस्त्वं प्रभुं दृष्ट्वा साम्प्रतं द्विजपुङ्गव !।
दिनान्तोऽभूद्गृहं यावः क्षुधितोऽसि श्रमान्वितः।।३६।।
वासोऽप्यरण्ये हिंस्राणां नाऽस्माकमुचिता स्थितिः।
यावद्भानोर्भान्ति भासस्तावद्यामो निजालयम्।।३७।।
इत्युक्त्वा ब्राह्मणंपाणौगृहीत्वाशबरःपुनः। आजगामद्विजश्रेष्ठाःस्वाश्रमंत्वरयान्वितः।।३८।।
ब्राह्मणोऽपि जगन्नाथं ध्यायन्नानन्दसागरम्। क्षुत्तृषाश्रमजातानि दुःखानि बुबुधेनहि।।३९।।

शिलाविषममार्गेऽपि कण्टकोत्करदुर्गमे। व्रजन्न दुःखं लेभेऽसौ शरीरानास्थयामुदा॥४०॥
एवं व्रजन्तौ तौ विप्रशबरौ शबरालयम्। सायाह्नेतमनुप्राप्तौवैष्णवाग्र्यौतुभोद्विजाः॥४१॥
तत्राऽतिथिमनुप्राप्तं ब्राह्मणं शबरोत्तमः। भक्ष्यभोज्यविधानैश्च विविधैः समपूजयत्॥४२॥
ततोऽभितृप्तस्तद्दत्तैरुपचारैर्नृपोचितैः। विस्मयं परमं लेभे शबरस्य सुदुर्लभैः॥४३॥

शबर विश्वावसु कहता है—"हे द्विजश्रेष्ठ! प्रभु का दर्शन करके आप कृतार्थ हो गये। अब दिन ढल गया है। आप थके हैं तथा क्षुधाग्रस्त हैं। आप मेरे गृह चलें। जंगल में हिंस्र पशु रहते हैं। अतः हमारा और यहां रुकना उचित नहीं है। चलिये सूर्यदेव के अस्ताचलगमन के पहले ही हम घर पहुंच जायें।" हे द्विजप्रवरगण! उस व्याध ने विश्वावसु से यह कहा तथा ब्राह्मण का हाथ पकड़कर शीघ्रतापूर्वक अपने गृह आ गया। विद्यापति जगन्नाथ का ध्यान करते-करते आनंदसागर में निमग्न होकर क्षुधा-तृष्णा तथा श्रमजानित समस्त दुःख भूल गये। पत्थर तथा कण्टकों से भरे उस दुर्गम पथ से आते हुये भी विप्र को किसी दुःख का बोध ही नहीं था। हे मुनिगण! वैष्णवप्रवर विप्र तथा शबर इस प्रकार जाकर सायंकाल घर पहुंचे। ब्राह्मण अतिथि को गृहागत पाकर उस शबर ने उनको विविध अन्न, भोज्य द्रव्य द्वारा उनका सुन्दर रूप से सत्कार किया। तदनन्तर ब्राह्मण विद्यापति एक शबर के घर इस प्रकार का राजोचित सत्कार तथा राजोचित भोजनादि द्रव्य देखकर विस्मित हो गये, जिसे एकत्र कर पाना एक शबर के लिये असंभव था।।३६-४३।।

शबरोऽयं निवसति विषमे काननान्तरे। आरण्यकैर्वर्त्तमानः कथमस्य गृहान्तरे॥४४॥
राजार्हभक्ष्यभोज्यानि सुलभान्यद्भुतं महत्। इति विस्मयमापन्नं ब्राह्मणं शबरस्तदा॥४५॥
प्रोवाच स्निग्धवचसा विनयावनतो भृशम्॥४६॥

तब विद्यापति ब्राह्मण मन ही मन विचार करने लगे—"यह कैसा आश्चर्य है? यह शबर तो दुर्गमवन में रहता है। इसके प्रतिवेशी (साथ रहने वाले) भी वनवासी हैं। इसके गृह में राजभोज्य खाद्य द्रव्यादि कहां से आ गये? ब्राह्मण यह विचार विस्मित होकर कर ही रहे थे कि शबर ने अत्यन्त विनीत भाव से उनसे मधुर वचन में कहना प्रारंभ किया।।४४-४६।।

शबर उवाच

भो विप्र ! श्रमहीनोऽसि कच्चित्क्षुत्तृड्विवर्जितः।
आरण्यकानां भवने नागराणां कुतः सुखम्॥४७॥
अज्ञाता नागरी वृत्तिः शबरैस्तु विशेषतः। राजोपजीविनांश्रेष्ठौराजामात्यपुरोहितौ॥४८॥
तयोराजसमः पूज्यः पुरोधाः शास्त्रसम्मतः। इन्द्रद्युम्नो नरपतिःसार्वभौमःप्रतापवान्॥४९॥
त्वयि तुष्टे स सन्तुष्टोध्रुवंविप्रभविष्यति। इत्युक्तवत्यरण्यस्थे सतु प्रीततरोद्विजः।
उवाच शबरम्प्रीत्या विनयाद्भुतवादिनम्॥५०॥

शबर कहता है—"हे विप्र! आपका श्रम दूर तो हो गया? क्षुधा-तृष्णा में कुछ न्यूनता आई? वनवासियों के यहां नागरिकों को सुख कहां? विशेषतः शबर द्वारा नगरवासीगण का आचार-व्यवहार जान सकना संभव ही नहीं है। राजा के आश्रितों में से पुरोहित तथा मन्त्री—ये दो श्रेष्ठ माने गये हैं। शास्त्र में है

कि पुरोहित का तो राजा को ऐसा सम्मान करना चाहिये। आपके सन्तुष्ट होने से सर्वप्रख्यांत राजा प्रतापी इन्द्रद्युम्न भी प्रसन्न हो जायेंगे।'' अरण्यवासी शबर का यह कथन सुनकर विद्यापति सन्तुष्ट हो गये। उन्होंने विस्मयपूर्वक विनयान्वित उस अद्भुत वाक्य कहने वाले शबर से कहा।।४७-५०।।

विद्यापतिरुवाच

साधो मदुपचाराय हृतान्येतानियानि ते। वस्तून्यमानुषाणीह यान्यदृष्टानिराजभिः।।५१।।
चित्रमेतद्दिव्यवस्तुसञ्चयः शबरालये। एतत्ख्यातुं कौतुकं मे साधो ! सम्वर्द्धतेमहत्।।५२।।

विद्यापति कहते हैं—हे साधु! तुमने भोजन हेतु जितने भी द्रव्य प्रस्तुत किये थे, वह मनुष्य द्वारा बनाया नहीं लग रहा था। उसे तो राजा भी नहीं देख सकते। हे मित्र! इस शबर ग्राम में वैसी दिव्यवस्तु कैसे संचित हो गयी, इसे जानने हेतु मुझे अत्यधिक कौतुक हो रहा है।।५१-५२।।

शबर उवाच

एतत्प्रकाशितुंविप्रमतिर्नोत्सहते मम। तथापि ते द्विजश्रेष्ठाऽतिथिभक्त्त्यावदाम्यहम्।।५३।।
शक्रादयो देवगणाः समायान्त्यन्वहं द्विज !। दिव्योपचारानादाय पूजनाय जगत्पतेः।।५४।।
पूजयित्वाजगन्नाथंस्तुत्वानत्वाचभक्तितः। गीतवादित्रनृत्यैश्चसन्तोष्यपुरुषोत्तमम्।।५५।।
पुनः प्रयान्ति सततं त्रिदिवं सुरसत्तमाः।
दिव्यान्येतानि वस्तूनि निर्माल्यानि जगत्पतेः।।५६।।
दत्तानितुभ्यम्विदुषेकथंविस्मयतेभवान्। विष्णोर्निर्माल्यभोगेन क्षीणरोगजरावयम्।।५७।।
सपुत्रबान्धवाः सर्वे निवसामोऽयुतायुषः। विष्णुनिर्माल्यभोगेन क्षीयते पापसंहतिः।।५८।।
न तच्चित्रं द्विजश्रेष्ठ येन स्यान्मुक्तिभाजनम्। श्रुत्वैतद्दुर्लभं कर्म ब्राह्मणोरोमहर्षणः।।५९।।

शबर कहते हैं—हे विप्र! यह बतलाने हेतु मेरी बुद्धि में तनिक भी उत्साह नहीं हो रही है। फिर भी आप ब्राह्मण एवं अतिथि हैं। आपके प्रति श्रद्धा-भक्ति युक्त मैं आपको इसी कारण से बतला रहा हूं। यहां जगत्पति की पूजा के लिये इन्द्रादि देवता दिव्य वस्तु के साथ प्रतिदिन यहां आते हैं। इन जगन्नाथ देव की पूजा भक्तिक्रम से वे करते हैं। वे स्तव-प्रणाम-नृत्य-गीत-वाद्य द्वारा उनको सन्तुष्ट करके पुनः स्वर्ग चले जाते हैं। उन जगत्पति की वही सब दिव्य निर्माल्य वस्तु आप को मैंने दिया है। इसमें आप विस्मय क्यों कर रहे हैं? मैं विष्णु का यह निर्माल्य भक्षण करके रोग तथा वृद्धावस्था को दूर करके पुत्र एवं बान्धवों के साथ १०००० वर्ष की परमायु पाकर सुख से निवास कर रहा हूं। विष्णु के निर्माल्य का भक्षण करने से मुक्ति का लाभ होता है। उसके भक्षण से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें क्या आश्चर्य? विद्यापति इस दुर्लभ निर्माल्य प्रसंग को सुनकर रोमांचित हो गये।।५३-५९।।

आनन्दाश्रुविलुप्ताक्षः स्वं कृतार्थममन्यत। अहोशबरजन्माऽसौ पश्यत्यव्ययमीश्वरम्।।६०।।
तदुच्छिष्टं दिव्यभोगमुपभुङ्क्ते दिवानिशम्।
नान्योऽस्य सदृशो लोके पृथिव्यां सचराचरे।।६१।।

यादृशो विष्णुभक्तोऽयं शबरो नीलपर्वते। किंगत्वास्वगृहेमेऽद्यकुटुम्बेनाऽसुखात्मना॥६२॥
अनेन सख्यं निष्पाद्य स्थास्याम्यत्र वनान्तरे।
चिन्तयित्वा चिरं विप्रः श्रीकृष्णासक्तमानसः॥६३॥
पुनः प्रोवाच शबरं मयि ते चेदनुग्रहः। साधो ! सख्यंत्वयाकार्यमितिमेनिश्चयोमहान्॥६४॥
किं गत्वा सेवयाराज्ञः परत्राऽसुखहेतुना। अत्र स्थित्वा त्वयासार्धमुपास्यमधुसूदनम्॥६५॥
यथा पुनर्देहबन्धो यतिष्ये न भवेन्मम। साधु मित्रत्वयासार्द्धंभागयान्मेसङ्गमोऽभवत्॥६६॥
दुस्तारं भवसंसारं तरिष्ये त्वत्प्रसादतः। सारमेतत्प्रशंसन्ति संसारे भवसागरे॥६७॥
यद्वैष्णवेन मित्रत्वं दुःखसंसारपारदम्। मित्रस्य सहवासेन पुनः प्रत्यक्षमेष्यति॥६८॥

उनके नेत्रों से आनन्दाश्रु बहने लगे। इस प्रकार विद्यापति ने स्वयं को कृतार्थ मान लिया। "क्या आश्चर्य! यह व्यक्ति शबरवंश में जन्मग्रहण करके भी नित्य प्रभु दर्शन करता है तथा उनके दिव्य निर्माल्य का नित्य भोजन करता है। यह नीलपर्वतवासी शबर जैसा विष्णुभक्त है, उसके समान विष्णुभक्त चराचर जगत् में होगा। अब मुझे अपने गृह लौटने का तथा असुख के कारण कुटुम्बवर्ग का क्या प्रयोजन? अब इस शबर के साथ मित्रता करके इस अरण्य में ही निवास करूंगा।" तब विद्यापति कुछ समय विचार द्वारा श्रीकृष्ण में चित्त आसक्त करके पुनः शबर से कहने लगे "हे साधु! यदि मेरे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो, तब मैं तुम्हारे साथ मित्रता करूंगा। यह मैंने दृढ़ निश्चय किया है। घर जाकर परलोक में दुःखप्रद राजसेवा का क्या प्रयोजन? मैं यहां रहकर तुम्हारे साथ मधुसूदन की उपासना करूंगा, जिसके करने से पुनः देहबन्धन न मिले। अब यही यत्न करूंगा। हे मित्र! साधु! साधु! आज सौभाग्यक्रमेण तुम्हारे साथ मिलन हो गया। तुम्हारी कृपा से मैं दुस्तर संसार सागर पार करने में सक्षम हो जाऊंगा। विष्णुभक्तगण के साथ मित्रता से संसार दुःख का अवसान हो जाता है। साधुगण ने संसार सागर में विष्णुभक्त के साथ मित्रता को ही श्रेष्ठ धर्म कहा है।।६०-६८।।

भगवान्पुण्डरीकाक्षः शङ्खचक्रगदाधरः। इन्द्रद्युम्नो नरपतिर्मयि प्रत्यागते सखे॥६९॥
भगवन्तं समाराद्धुमिहैव स निवत्स्यति। प्रासादं विपुलं चात्रचिकीर्षुर्भगवत्प्रियम्॥७०॥
सहस्त्रमुपचाराणां पूजनाय जगत्पतेः। रचयिष्यामीति महत्प्रतिज्ञाऽऽसीन्महीपतेः।
प्रतिश्रुतं तत्पुरतः प्रीतस्तन्मेऽनुमन्यताम्॥७२॥

क्योंकि ऐसे विष्णुभक्त बन्धु के साथ रहने से शंख-चक्र-गदाधारी भगवान् पुण्डरीकाक्ष का साक्षात्कार हो जाता है। हे सखे! मेरे वापस जाने पर इन्द्रद्युम्न राजा यहां पर भगवान् की आराधना के लिये आकर निवास करेंगे। वे नृपश्रेष्ठ यहां भगवान् के लिये प्रीतिपद बृहद् प्रासाद निर्माण तथा इन जगत्पति की पूजा हेतु अनेक उपचार प्रदानार्थ दृढ़प्रतिज्ञ हो गये हैं। ऐसे चेष्टा वाले राजा के लिये यही उपयुक्त स्थान है। मैं इस प्रकार से इस देश के सम्बन्ध में अपना निर्णय उनसे कहूंगा तथा मैंने उनसे यही वचन दिया था। अतः अब मुझे जाने की अनुमति प्रदान करो।।६९-७२।।

शबर उवाच

सखे! पुरातनी वार्त्ता प्रसिद्धैवाऽत्र तादृशी॥७३॥

त्वया यथैव कथितं इन्द्रद्युम्नसमागमः। केवलं माधवं तत्र न द्रक्ष्यति महीपतिः॥७४॥
अचिरादेव भगवान्स्वर्णवालुकयावृतः। प्रतिजज्ञे यमायैतदन्तर्द्धानं गमिष्यति॥७५॥
महाभाग्यपरीपाकात्प्रत्यक्षोऽयं त्वया कृतः। इन्द्रद्युम्नागमाभ्यासेध्रुवंसव्यवधास्यति॥७६॥
एषोऽर्थस्तु त्वया मित्र न वक्तव्यो नृपाग्रतः। आगत्य सोऽत्र नृपतिरदृष्ट्वापरमेश्वरम्॥७७॥
प्रायोपवेशव्रतवान्स्वप्ने दृष्टा गदाधरम्। तदादेशाद्दारुमयं प्रभोर्लिङ्गचतुष्टयम्॥७८॥
पूजयिष्यतिभक्त्याचप्रतिष्ठाप्यस्वयम्भुवा। स्थितिरत्रहरेर्यावदावयोर्वंशसंस्थितिः॥७९॥

शबर कहता है—हे सखे! आपने इन्द्रद्युम्न समागम का जो विषय कहा है, वह समस्त प्रसंग यहां पूर्वकाल से ही जनश्रुति रूप में प्रसिद्ध है। लेकिन वे राजा माधव के दर्शन को प्राप्त नहीं कर सकेंगे। क्योंकि अल्पकाल में ही भगवान् यहां स्वर्ण बालुका से आवृत हो जायेंगे। भगवान् ने यम से प्रतिज्ञा किया था कि वे अन्तर्हित् हो जायेंगे, तथापि आप महाभाग्यवान् हैं जो आपने भगवान् का दर्शन कर लिया। हे मित्र! इन्द्रद्युम्न के आगमन के पूर्व ही भगवान् निश्चित रूप से अन्तर्हित् हो जायेंगे तथापि राजा से यह बात कभी मत बतलानां। वे नृपति यहां आकर परमेश्वर का दर्शन न पाकर प्रायोपवेशन[१] व्रताचरण करेंगे। तब उनको स्वप्न में गदाधर का दर्शन प्राप्त होगा। वे उनके आदेशानुसार ब्रह्मा द्वारा भगवान् के चार रूपों की प्रतिष्ठा कराकर भक्तिपूर्वक उनका पूजन करेंगे। जब तक श्रीहरि इस क्षेत्र में अवस्थित रहेंगें, तब तक उनकी कृपा से हमदोनों का वंश अक्षुण्ण रहेगा। इसमें कोई संशय नहीं है।।७३-७९।।

अनुग्रहाद्भगवतो नात्र कार्या विचारणा। तदत्राऽर्थे सखे ! खेदं मा व्रज क्षिप्रमेव हि॥८०॥
निर्वर्त्स्यर्तेऽचिरादेव मित्रेदानीं सुखं स्वप। प्रातर्दृष्ट्वा पुनर्देवंनीलेन्द्राश्ममयंविभुम्॥८१॥
सिन्धौ स्नात्वा तस्य तटे निवासाय महीपतेः।
द्रक्ष्यामः साधु संस्थानं यथाऽभिलषितं सखे !॥८२॥

"हे सखे! इसलिये इस सम्बन्ध में खेद का त्याग करें। शीघ्र ही इन्द्रद्युम्न यहां रहने आयेंगे। आप अब सुख से शयन करिये। प्रातःकाल आप नीलकान्तमणिमय प्रभु का पुनः दर्शन तथा महासमुद्र में स्नान करें। तदनन्तर तट पर नृपति के रहने योग्य उत्तम निवास स्थान का यथेच्छ दर्शन करें।"।।८०-८२।।

इत्यन्याश्च कथाः पुण्याःकृत्वातौचपरस्परम्। शुभस्थानेचास्वपतांशयनेपल्लवास्तृते॥८३॥
प्रभातायां तु शर्वर्यां तीर्थराजोदकेन तौ। स्नानं निर्वर्त्य विधिवन्माधवं प्रणिपत्य च॥८४॥
राजार्हस्थानं निर्णीयनिवासायगतौपुनः। तत्रमित्रेणाऽभिमन्त्र्यराज्ञोनिर्देशकारणात्॥८५॥
रथमारुह्य विप्रः स त्ववन्तीपुरमाययौ॥८६॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशातिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे पुरुषोत्तमदर्शनमनुइन्द्रद्युम्नपुरोहित-स्यावन्तीपुरींप्रत्यापगमनवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः।।

—*—

१. प्रायोयवेशन व्रत में मरण पर्यन्त निराहार रहकर व्रत करते हैं।

विद्यापति तथा विश्वावसु शबर आपस में यह सब तथा अन्य पुण्यमय कथावार्त्ता करके उत्तम पत्तों वाली शय्या पर शयन करने लगे। प्रातः होने पर तीर्थराज समुद्र जल द्वारा सविधि (ब्राह्मण ने) स्नान करके माधव को प्रणाम किया। तदनन्तर राजा के यहां निवास स्थान हेतु भूमि चिह्नित करके सभी अपने-अपने घर लौट गये। यहां मित्र के साथ मन्त्रणा करके विद्यापति ने राजा को समस्त संवाद देने के लिये रथारूढ होकर अवन्ति नगरी के लिये प्रस्थान किया।।८३-८६।।

।।अष्टम अध्याय समाप्त।।

नवमोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्न द्वारा विद्यापति से पुरुषोत्तम क्षेत्र सम्बन्धित प्रश्न, निर्माल्यमाला प्रदान वर्णन, विद्यापति के नाम से चिह्नांकित क्षेत्र महिमा वर्णन

जैमिनिरुवाच

प्रत्यागते ततो विप्रे सायाह्ने सुरसङ्कुले। माधवार्चनवेलायां वातश्चण्डगतिर्ववौ।।१।।
सुवर्णवालुकाश्चाऽसौ विचकार च सर्वशः। तेनाकुलदृशोदेवा न शेकुरवलोकने।।२।।
श्रीकान्तस्यतदा विप्रादध्युस्तेपुरुषोत्तमम्। यावद्ध्यानस्थिरदृशोमुहूर्ततेदिवौकसः।।३।।
ध्यानान्तेवालुकाराशिंददृशुस्ते नमाधवम्। रौहिणंचतथाकुण्डंबभूवुर्व्याकुलेन्द्रियाः।।४।।
चिन्तामवापुर्महतीं हाहेति रुरुदुर्भृशम्। किमेतन्नो हि दुर्दैवमेकदा समुपस्थितम्।।५।।

जैमिनि कहते हैं—हे विप्रगण! विद्यापति के अपने देश के लिये वापस लौटने पर सायंकालीन पूजन हेतु देवगण वहां आये (जहां भगवान् नीलमाधव की प्रतिमा थी वहां देवता आये) तब अत्यन्त वेगवान् वायु प्रवाह होने लगा। इस समय समुन्नत बालुका राशि चतुर्दिक् विक्षिप्त हो गई। इससे दृष्टिरोध होने लगा। क्योंकि आखों में धूलकण भर जा रहे थे। इस स्थिति में देवगण भगवान् पुरुषोत्तम का अवलोकन कर सकने में असमर्थ हो गये। अतः वे ध्यान करने लगे। जब देवगण ने एक मुहूर्त्त ध्यान के उपरान्त अपने नेत्र खोले, तब उन्होंने बालुका राशि को देखा तथापि भगवान् माधव (की प्रतिमा को) तथा रोहिणकुण्ड कहीं भी दृष्टिगोचर न हो सके। इससे उनकी इन्द्रियां विकल हो गयीं। इससे वे अत्यन्त चिन्तित होकर हाहाकार करते रुदन करने लगे कि "हाय! हम सबके ऊपर यह कैसा दुर्दैव आ गया?"।।१-५।।

दृशां सेचनकः श्रीशः क्षणाद्यन्नोपलभ्यते। अपराधं किमस्माकं लक्षितं पुरुषोत्तम !।।६।।
युगपत्सेवकान्सर्वानपहाय न दृश्यसे। येषामर्थे जगन्नाथ ! स्वीचकर्थ कलेवरम्।।७।।

"नयनों को तृप्ति देने वाले श्रीमाधव क्षणकाल में ही हमारी दृष्टि से अगोचर हो गये! हे पुरुषोत्तम! हम सबसे कौन सा अपराध हो गया? आप हम सेवकों को एक साथ ही त्यागकर अदृश्य हो गये! जिनके लिये जगन्नाथ ने शरीरधारी होना स्वीकार किया था, उनको अनाथ करके इस वन को आपने त्याग कर अनाथों की उपेक्षा ही कर दिया!।।६-७।।

ताननाथान्परित्यज्य कानने किमुपेक्षसे। स्वशरीरविभूतीर्नो विहाय कमलेक्षण !।।८।।
किमकाण्डंरचयसि कथाशेषान्दिवौकसः। तवांशभूतान्नः सर्वान्यज्वानःप्रयजजन्तिवै।।९।।
त्वत्प्रीत्यै यज्ञपुरुषं त्वदादिष्टफलप्रदान्। त्वदहङ्कारवर्ष्माणस्त्वदनुग्रहजीवनाः।।१०।।
कान्दिशीकाः कुत्र यामः साम्प्रतं त्वदुपेक्षिताः।
दिवि स्थानैश्च किं कार्यं त्वामनालोक्य माधव !।।११।।
अकृतार्थास्त्वयाहीना भविष्यामो वनेचराः। निष्कलङ्कसुधाभानुंसुषमापरिभावुकम्।।१२।।
त्वदास्यं चेन्न पश्यामो न यास्यामःसुरालयम्। तपआस्थायपरममत्रैवसंशितव्रताः।।१३।।

हे कमलेक्षण! हम आपके ही शरीर से उत्पन्न हैं। आपने हमें त्यागकर यह कैसा अकार्य किया! इस प्रकार आपने हम स्वर्गवासीगण की कहानी को ही समाप्त कर दिया! हे यज्ञपुरुष! याज्ञिकगण आपकी प्रसन्नता के ही लिये आप ही के अंश से उत्पन्न हमारे लिये यज्ञ करते हैं। हम लोग भी आपके आदेशक्रम से उन याज्ञिकों को फल प्रदान करते हैं। हमारा शरीर आपका ही अंशरूप है। वह उसी अहंकार रूप चर्म से आवृत है। हम आपके अनुग्रह के कारण ही शरीरधारी हैं। हम सब इसी क्षण आप द्वारा उपेक्षित होकर भयभीत व्यक्ति के समान कहां जायें? हे माधव! यदि हम आपको अब नहीं देख सकेंगे, तब हमारे लिये स्वर्ग किंवा मृत्युलोक का तो कोई प्रयोजन ही नहीं रह गया! हे देव! यदि आप हमारा त्याग कर देते हैं, तब हमारे लिये सब कुछ व्यर्थ है। हम वनवासी हो जायेंगे। यदि हम आपके नव चन्द्रमा के समान अतीव शोभायुक्त मुखकमल को नहीं देख सकते, तब हम अब देवलोक न जाकर यहीं कठोर परिश्रम वाली कठोर तपस्या प्रारंभ कर देंगे।।८-१३।।

वर्त्तामहे वन्यवृत्त्याजटावल्कलधारिणः। यावत्त्वांपुण्डरीकाक्षविलोकिष्यामहेवयम्।।१४।।
निसर्गकरुणाम्भोधे दीनान्नस्त्रातुर्महसि। अनाथान्दीनहृदयांस्त्वामेव शरणं गतान्।।१५।।
त्वदनालोकशोकैकपारावारे निमज्जतः। शुभदृष्टितरण्या नः समुद्धर जगत्पते !।।१६।।

हे पुण्डरीकाक्ष! यदि हमें आपका दर्शन नहीं मिला, तब हम जटा-वल्कल धारण करके वनवासी हो जायेंगे। हे स्वभावतः दयासागर! हम अनाथ हैं। हम आपके शरणापन्न हैं। दया करके हमारी रक्षा करिये। हे जगत्पति! हम आपका दर्शन न पाकर शोक सागर में निमग्न हो गये हैं। आप साक्षात्कार प्रदान रूपी नौका द्वारा इस शोक सागर से हमारा उद्धार करिये।।१४-१६।।

एवम्प्रलपतां तत्र सर्वेषां त्रिदिवौकसाम्। अशरीरा तदा वाणी पुनः प्रादुर्बभूवह।।१७।।
अत्राऽर्थे भोः सुरा यत्नं कर्तुमर्हथ नो वृथा। अद्यप्रभृति देवस्य दर्शनं दुर्लभं भुवि।।१८।।
अत्रस्थानेऽपितंनत्वातद्दर्शनफलंलभेत्। स्वयंभुवोऽन्तिकंगत्वाहेतुंज्ञास्यथनिश्चितम्।।१९।।
तच्छ्रुत्वा त्रिदशाः सर्वे ब्रह्मणोऽन्तिकमागताः। यमानुग्रहवृत्तान्तमवतारं च दारुणः।।२०।।

श्रुत्वा सन्तुष्टमनसःसर्वेतेत्रिदिवंगताः। स तुविद्यापतिर्विप्रोरथारूढोऽभ्यचिन्तयत्॥२१॥
ममकार्यं तु निष्पन्नं यद्दृष्टो नीलमाधवः। आसमन्तात्क्षेत्रमिदंपरिभ्रम्याऽवलोकये॥२२॥
अदृष्टपूर्वं परमंसुपुण्यं सङ्कीर्तनं यस्य मलापहारि।
क्षेत्रोत्तमं श्रीपुरुषोत्तमाख्यं प्रदक्षिणीकृत्य व्रजामि तूर्णम्॥२३॥
पृथ्वीप्रदक्षिणफलं शतधा भजन्ते पर्यन्ति ये सकलकल्मषदार्यरण्यम्॥२४॥
नीलाद्रिमण्डितमिदं पुरुषोत्तमाख्यं मित्रं ममोपदिशति स्म समुद्रतीरे॥२५॥
विचिन्त्येत्थं द्विजश्रेष्ठः परिबभ्राम वै तदा। क्षेत्रं पश्यन्वनं चैवनानाद्रुमगणान्वितम्॥२६॥

जब देवगण इस प्रकार से वहां प्रलाप कर रहे थे तभी वहां सहसा आकाशवाणी हुई कि "भगवान् पुनः प्रकट होंगे। हे सुरगण! अभी इसके लिये तुम सब वृथा यत्न न करो। आज से पृथिवी पर देवदर्शन दुर्लभ होगा। इस क्षेत्र में आकर भगवान् के उद्देश्य से प्रणाम करने पर व्यक्ति को दर्शन फल ही प्राप्त होगा। तुमलोग ब्रह्मा के पास जाकर इस घटना के कारण को जानो।" देवता इस आकाशवाणी को सुनकर ब्रह्मा के पास चले गयें। वहां जाकर उन्होंने ब्रह्मा से यम के प्रति भगवान् के अनुग्रह के वृत्तान्त को सुना तथा यह भी जाना कि भगवान् का दारुमयरूप से अवतार होगा। यह सुनकर देवगण सन्तुष्ट चित्त से स्वर्ग चले गये। इधर अब विद्यापति ब्राह्मण भी रथारूढ़ होकर यही विचार करने लगे कि मेरा कार्य निष्पन्न हो गया। अब मैंने नीलमाधव का दर्शन कर लिया। इस क्षेत्रधाम के चतुर्दिक् भ्रमण भी कर लिया। मैं इस अतिपावन अदृष्टपूर्व श्रीपुरुषोत्तम नामक क्षेत्र की प्रदक्षिणा करके अविलम्ब चला जाऊंगा। जो सर्वपापनाशक नीलाचल शोभित समुद्रतीरस्थ पुरुषोत्तम क्षेत्र की प्रदक्षिणा करते हैं, उनको १०० बार पृथिवी प्रदक्षिणा का फललाभ होता है। यह प्रसंग मैंने मित्र से सुना था।।१७-२६।।

नानापक्षिगणाघुष्टंकूजद्भ्रमरगुम्फितम्। अप्रविष्टार्ककिरणं छायातरुणगणावृतम्॥२७॥
सर्वर्तुकुसुमोपेतं लतागुल्मोपशोभितम्। नानाजलाशयाधारकूजत्सारससङ्कुलम्।
पद्महल्लारकुमुदविकचोत्पलराजितम्। न जलं तत्र कुसुमंपरिहीनं लतादिकम्॥२८॥
परीत्यवेगात्तत्क्षेत्रंजगामाऽथद्विजोत्तमः। ध्यायन्निरशनःप्राज्ञःप्राप्याऽवन्तींदिनात्यये॥२९॥
दूतैरावेदितं पूर्वं दूरस्थस्याऽऽगतं द्विजाः। श्रुत्वेन्द्रद्युम्नोनृपतिः प्रहर्षं परमं ययौ॥३०॥
तदागमनमाकाङ्क्षन्पूजयित्वा जनार्दनम्। विद्वद्भिर्ब्राह्मणैः सार्द्धं तस्थौ संहृष्टमानसः॥३१॥

वे द्विजप्रवर यह सोचते हुये नानातरुसमूह से शोभित, कानन तथा पुरुषोत्तम क्षेत्र का अवलोकन करके भ्रमण रत हो गये। इस मनोहर वन में नाना पक्षीगण निवास करते हैं। इस कुसुम उद्यान में सर्वदा भ्रमरों की झंकार सुनाई पड़ती है। वहां छाया बहुल वृक्षों की इतनी भरमार है कि सूर्यकिरणों का प्रवेश नहीं होता। सभी ऋतुओं के पुष्प वहां सदा विकसित रहते हैं। स्थान-स्थान में विविध लतायें भी शोभित होती हैं। वहां के सरोवरों में पद्म-कल्हार कुमुद तथा विकसित उत्पल शोभित होते हैं। वहां ऐसा सरोवर तथा ऐसी लता है ही नहीं, जिसमें पुष्प न मिलें! तदनन्तर उन्होंने उस क्षेत्रधाम को वे रथ द्वारा पीछे छोड़ा तथा रथ पर बैठे जगन्नाथ का ध्यान करते-करते सायंकाल अवन्ती नगर पहुंचे। हे द्विजगण! दूतों ने दूर से ही विद्यापति को आते देखकर यह संवाद

विद्यापति के पहुंचने के पहले ही राजा तक पहुंचा दिया। यह सुनते ही इन्द्रद्युम्न अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये। उन्होंने जनार्दन की पूजा सम्पन्न किया तथा विद्वान् ब्राह्मणों के साथ प्रसन्नता पूर्वक बैठकर विद्यापति के पहुंचने की प्रतीक्षा करने लगे।।२७-३१।।

एतस्मिन्नन्तरे विप्राः स तु विद्यापतिर्द्विजः। प्रावेशिकैर्वेत्रहस्तैर्दौवारिकपुरःसरैः।।३२।।

निर्दिष्टमार्गः पौरैश्चाऽनुमतः कौतुकान्वितैः।
निर्माल्यमालां नीलाख्यमाधवस्य सुशोभनाम्।।३३।।
निधाय पाणौ राजाग्रे प्रविवेश त्वरान्वितः।
तं दृष्ट्वा नृपतिः सोऽथ समुत्थाय वरासनात्।
प्रसीद जगदीशेति वदन्नन्तिकमभ्यगात्।।३४।।

अद्य मे जीवितं जातं सफलं जन्मकर्मणा। निर्माल्यमालावपुषं यत्पश्यामीहमाधवम्।।३५।।
मालां मुकुन्दशिरसोऽनुपमप्रमोदलाभाधरीकृतसुरद्रुम कान्तगन्धाम्।
अन्धीकृतालिनिचयां पवनप्रसारिगन्धप्रणाशितजगत्कलुषां नमामि।।३६।।

इसी बीच विद्यापति ने नीलमाधव देव के निर्माल्य की परम उत्तम रमणीय माला हाथों में लिये तथा वे द्वारपाल के साथ बेंतधारी मार्गप्रदर्शकों द्वारा दिखलाये पथ पर विस्मय में पड़े पुरवासी लोगों के साथ शीघ्रतापूर्वक राजा के समक्ष उपस्थित आये। राजा भी उनको देखते ही आसन से उठ गये तथा "जगदीश्वर प्रसन्न हों" कहते-कहते विद्यापति के पास पहुंचे। अब राजा कहने लगे "आज मेरा जीवन, जन्म, कर्म सभी सफल हैं; क्योंकि आज इस निर्माल्य माला के दर्शन से मैं अपने घर बैठे माधव का दर्शन कर रहा हूं। मैं मुकुन्ददेव को मस्तक से लाई इस माला को प्रणाम कर रहा हूं। इसके अनुपम सौरभ के सामने कल्पवृक्ष का कुसुम सौरभ अतीव हेय है। वायु द्वारा जब इस माला की गन्ध चतुर्दिक् फैलती है, उससे जगत् की पापराशि का नाश हो जाता है। इसकी गन्ध से आकृष्ट होकर भ्रमरगण पुनः इसका त्याग नहीं कर पाते।"।।३२-३६।।

यत्पादपङ्कजगलद्रजसोऽनुषङ्गा ब्रह्मादयः परमसम्पदमापुरस्य।
विष्णोः कलेवरसमुज्ज्वलिताङ्गरागसंसक्तपुष्पनिलयां प्रणतोऽस्मि मालाम्।।३७।।
पद्मांहत्पद्मवसतिंसपत्नींयाहसत्यसौ। विकस्वरैःसुकुसुमैर्विष्णवङ्कस्थितिगर्विताम्।।३८।।
कुत्रस्थितेयमाहार्षीन्महिमानंस्त्रगुज्ज्वला। याश्रीनिधेःशरीरेभूत्सर्वाङ्गव्यापिनीचिरम्।।३९।।
जय नीलाद्रिशिखरभूषणाघप्रदूषण !। प्रणतार्त्तिहर ! श्रीमँस्त्राहि मां शरणागतम्।।४०।।

"ब्रह्मादि देवता जिसके पादपद्म का कण पाकर यह मानते हैं कि महान् सम्पदा मिल गई, उन विष्णु के कलेवर स्पर्श से पवित्र उनके अंगराग से रंजित इस मनोहर माला को मैं प्रणाम करता हूं। लक्ष्मीदेवी विष्णु के हृदय में निवास करती हैं। लक्ष्मी प्रभु के हृदय में काल यापन करती हैं। उन्होंने गर्व में भरकर मानो इस माला को दूर कर दिया है। क्योंकि यह माला भी तो लक्ष्मी की तरह ही भगवान् के वक्षस्थल पर निवास जो करती है! यह कुसुम सौन्दर्यमयी माला लक्ष्मी से किसी भी दृष्टि से न्यून नहीं है। यह माला तो सौत के रूप में लक्ष्मी का उपहास करने में समर्थ है! इस मनोहर माला ने कहां से ऐसी महिमा पाई हैं कि इसने उन

लक्ष्मीकान्त के हृदय पर निवास कर लिया! मुझे प्रतीत होता है कि यह माला दीर्घकाल उनकी सर्वाङ्गव्यापिनी थी, अन्यथा इसमें इतना सौन्दर्य, इतना सौरभ कहां से आ गया! हे नीलाचल शिरोभूषण! हे प्रणतदुःखहारी! लक्ष्मीकान्त! मैं आपकी शरण में हूं। मेरी रक्षा करिये।''।।३७-४०।।

इति ब्रुवाणः क्षितिपो बाष्पगद्गदयागिरा। जगामशिरसाभूमिंस्फुरद्रोमाञ्चकञ्चुकः॥४१॥
सोऽपिविद्यापतिर्विप्रःक्षपिताशेषकल्मषः। दिव्यदेहोनृपस्याग्रेध्यायन्माधवमास्थितः॥४२॥
तेजसा सर्वलोकानां पापानिक्षालयन्सुधीः। अनुगृह्णातुदेवस्त्वांनीलाद्रिशिखरालयः॥४३॥
श्रीपतेरियमाज्ञातेमालारूपाप्रकाशिता। द्रष्टुंक्षेत्रोत्तमगतंस्वंसाक्षान्मुक्तिदायकम्॥४४॥
इत्युच्चरन्नरपतेरामुमोच गले स्रजम्। सोऽप्युत्थाय क्षितिपतिर्मालांहृदयलम्बिनीम्॥४५॥
दृष्ट्वा मेने श्रियः कान्तं साक्षाद्धृदयगामिनम्। निधायपाणीशिरसिदरमीलितलोचनः॥४६॥
आनन्दाऽश्रुजलक्लिन्नवदनस्तुष्टुवे हरिम्॥४७॥

यह कहकर वाष्प गद्गद् वाणी से राजा ने अनेक प्रकार से माला का स्तव किया तथा वे रोमांचित होकर स्तव करते-करते भूमि पर लेट गये तथा मस्तक को भूमि से सटाकर माला को प्रणाम किया। ब्राह्मण विद्यापति ने जगन्नाथ देव का दर्शन प्राप्त किया था, जिससे उनके समस्त पापों का क्षय हो गया था तथा उनको तो दिव्य शरीर तक प्राप्त हो गया था। वे ब्राह्मण हृदय में माधव का ध्यान करते-करते राजा के पास आये तथा वह माला राजा को देकर कहने लगे ''जो अपने तेज के द्वारा समस्त लोकों के पापों का क्षय कर देते हैं, वे नीलाचल वासी देव जगन्नाथ आप पर कृपा करें। उन्होंने इस माला के बहाने साक्षात् मुक्तिप्रद महाक्षेत्र पुरुषोत्तम में स्थित अपने रूप के दर्शनार्थ आपको अनुमति प्रदान किया है।'' यह कहकर ब्राह्मण ने राजा के कण्ठ पर वह माला पहना दिया। राजा ने भी ब्राह्मण प्रदत्त तथा अपने हृदय पर विराजित इस माला का दर्शन करके साक्षात् लक्ष्मीकान्त को अपने हृदयगत माना तथा मस्तक को हथेली से आच्छादित करके आनन्दाश्रु धारा से भींग रहे मुख द्वारा जगदीश्वर की स्तुति आखें बन्द करके करने लगे।।४१-४७।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

जयाऽखिलजगत्सृष्टिस्थितिसंहारशिल्पकृत्!। लीलाविश्वपुर्लोमसङ्ख्यब्रह्माण्डभारभृत्!॥४८॥
अन्तर्यामिन्नशेषाणां प्रणतार्तिहर! प्रभो। ब्रह्मेन्द्ररुद्रमुकुटकिर्मीरितपदाम्बुज!॥४९॥
दीनानाथविपन्नैकसततत्राणतत्पर!। निर्व्याजकरुणावारिपारावार! परात्पर!॥५०॥
त्वदेकशरणं दीनमनादिभ्रमनिर्भरम्। परित्राहि जगन्नाथ भक्ताविरतवत्सल॥५१।

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—''हे प्रभो! जगन्नाथ! आपकी जय हो। आप समस्त जगत् का सृजन करने वाले, पालक तथा संहारक हैं। आप के रोमकूपों में लीलार्थ समस्त ब्रह्माण्ड स्थित है। आप ही यह भार धारण कर सकते हैं। आप समस्त लोकों के अन्तर्यामी हैं। आप प्रणतजन की आर्त्ति का हरण करते हैं। आपके चरण कमलों में ब्रह्मा-इन्द्र तथा रुद्र के मुकुटों की प्रभा विचित्र शोभा धारण करती है। आप सब के लिये अकपट दया सागर हैं। हे परात्पर! आप दीन-अनाथ तथा विपन्नगण के रक्षक हैं। इसी में सदा व्यस्त रहते हैं। हे जगन्नाथ! मैं भी एक दीन हूं। चिरकाल से मोहग्रस्त हूं। आपके अतिरिक्त मेरी अन्यगति नहीं है। हे भक्तवत्सल! दयापूर्वक मेरी रक्षा करिये।''।।४८-५१।।

इति स्तुवन्नरपतिः स्वासने समुपाविशत्। गृहमेधिब्रह्मचारियतिवैखानसैर्वृतः॥५२॥
अष्टादशसु विद्यासु कुशलैर्यज्वभिर्द्विजैः। मौनैःस्थविरभृत्यैश्चसार्द्धंमन्त्रिपुरःसरैः॥५३॥
विद्यापतिं पूजयित्वा बहुमानपुरःसरम्। उपवेश्याऽग्रतः पीठे पृष्ट्वा कुशलमादितः॥५४॥
पुरुषोत्तमक्षेत्रस्य विष्णोर्नीलाश्मवर्ष्मणः। महिमानं स्वरूपं चपप्रच्छाऽवहितोमुदा॥५५॥
ब्राह्मणः क्षत्रियेयेणाऽसौ पृष्टोऽनुभवमात्मनः। भिल्लद्वीपप्रवेशादिमज्जनान्तं सरित्पतेः॥५६॥
क्षेत्रोत्तमस्य वृत्तान्तंकथयामासविस्तरात्। नीलान्द्रिरोहणंनीलमाधवस्यचदर्शनम्॥५७॥
स्नानं चरौहिणेकुण्डे महिमानंवटस्य च। नृसिंहाद्यष्टशम्भूनांशक्तीनांमष्टसंस्थितिम्॥५८॥
रथेनाऽऽक्रमणाद्दृष्टौक्षेत्रस्याऽऽयामविस्तरौ। तत्सर्वं वर्णयामास यथावदनुपूर्वशः॥५९॥
तच्छ्रुत्वा चित्रमतुलं तैर्थिकावेदितं पुरा। सम्प्रतीतो हृष्टमनाः पुनस्तं क्षितिपोऽब्रवीत्॥६०॥

राजा इन्द्रद्युम्न यह स्तव करके ब्रह्मचारी, गृहस्थ, यति तथा वैखानसगण से गिरे रहकर आसनासीन हो गये। महाराज के पास अष्टादश विद्या के पारदर्शी, यागकर्त्ता ब्राह्मण-मुनि-मन्त्री-वृद्ध-भृत्य आदि परिजन उपस्थित थे। वे भी महाराज को घेर कर बैठ गये। राजा ने विद्यापति को अनेक सम्मान से सम्मानित किया तथा उनका पूजन करके सामने पीठ पर बैठाया। कुशल प्रश्नोपरान्त परमानन्दपूर्वक एकाग्रचित्त से पुरुषोत्तम क्षेत्र तथा विष्णु की मणिमय नीलमूर्त्ति की महिमा की स्वरूप जिज्ञासा करने लगे। महाराज द्वारा पूछे जाने पर विद्यापति ने जो देखा था वह सब राजा से वर्णन कर दिया। भीलद्वीप में प्रवेश, सागरस्नान तथा नीलपर्वत आरोहण, नीलमाधव का दर्शन मिलना, रौहिणकुण्ड स्नान, अक्षयवट महिमा, नृसिंहादि अष्ट शम्भु तथा अष्ट शक्ति की कथा, रथारोहण द्वारा इस महाक्षेत्र की दीर्घता एवं विस्तार का देखा हुआ हाल, सब राजा से कहा! राजा ने तो तीर्थयात्रीगण से पहले ही सुना था, पुनः विद्यापति के मुख से यह विचित्र व्यापार सुनकर उनको विश्वास हो गया। तब वे प्रसन्नचित्त होकर ब्राह्मण से कहने लगे।।५२-६०।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

श्रुतपूर्वन्तु भगवंस्त्वत्तोऽश्रौषं सुदुर्लभम्। क्षेत्रोत्तमं द्विजेश्रेष्ठ ! साम्प्रतं वर्णयस्वमे॥६१॥
नीलेन्द्रमणिमूर्त्तेस्तु विष्णो रूपं यथातथम्।

राजा कहते हैं—हे भगवान्! आपके द्वारा इस अतीव पवित्र क्षेत्र का वर्णन सुना। पहले भी यह मैंने सुना था। हे द्विजप्रवर! यह सुनकर भी मेरी आकांक्षा नहीं मिटी। आप यह सब पुनः वर्णन करिये। आप विष्णु की इन्द्रनीलमणिमय मूर्त्ति का वृत्तान्त पुनः कहिये।।६१।।

विद्यापतिरुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्यां मूर्तिं जगत्पतेः॥६२॥
यां चर्मचक्षुषा दृष्ट्वा जायते मुक्तिभाजनम्। नीलेन्द्रमणिपाषाणमयीं मूर्तिः पुरातनी॥६३॥
यान्वहं ब्रह्मरुद्रेन्द्रपुरोगैरर्चिता सुरैः। आरोपितेयं दिव्या स्त्रक्पूजायांहि सूपर्वभिः॥६४॥
सेयंन म्लायति नृप न च गन्धेन रिच्यते। दिने बहुतिथे यातेऽपीदृशी स्त्रग्धरोद्भवा॥६५॥

दिव्योपहारनिर्माल्यभक्षणात्क्षीणकल्मषम्। मांनपश्यसिकिंराजन्नतिमानुषवर्चसम्।।६६।।
सकृदप्यशनाद्यस्य क्षुत्पिपासाबलक्षयाः। न बाधन्ते नृपश्रेष्ठ ! दृष्टेनाऽदृष्टकल्पनम्।।६७।।
भुक्तिर्मुक्तिश्च वै राजन्द्वे तत्र युगपत्स्थिते। न जरारोगशोकादि दुःखंतत्रहिविद्यते।।६८।।
यत्र साक्षाज्जगन्नाथः प्रसन्नवदनो विभुः। फुल्लेन्दीवरपत्राक्षः प्रपन्नामृतमुक्तिदः।।६९।।

इति श्रीस्कन्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे श्रीपुरुषोत्तममाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे विद्यापतिनेन्द्रद्युम्नायदिव्यमालावर्णनंनाम नवमोऽध्यायः।।९।।

—❋❋❋—
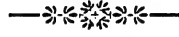
विद्यापति कहते हैं—हे राजन्! मैंने उन जगत्पति की आश्चर्यमयी दिव्यमूर्त्ति का दर्शन किया है। अब उसका वर्णन सुनिये। इस चर्मचक्षु से उस मूर्त्ति का दर्शन मुक्तिप्रद होता है। वह इन्द्रनीलमणि निर्मित तथा अति पुरातन एवं ब्रह्मादि देवताओं द्वारा अहरह अर्चिता है। यह जो आप स्वर्गीय माला देखते हैं, इसे देवताओं ने नीलमाधव के पूजनार्थ अर्पित किया था। तभी यह म्लान तथा गंधरहित नहीं होती। दीर्घकाल हो जाने पर भी इसकी सुगन्ध तथा सौन्दर्य का ह्रास नहीं हुआ! हे राजन! आप मुझे तो देख रहे हैं। मैं दिव्य निर्माल्य भक्षण करने के कारण निष्पाप हो गया तथा अमानुषिक तेजलाभ किया है। हे नृपवर! जीवगण इस निर्माल्य का एक बार भक्षण करके बलक्षय, क्षुधा-पिपासा से आक्रान्त नहीं होते। इसके दर्शन से शुभ भाग्य रूप अदृष्ट का जन्म होता है। हे राजेन्द्र! यह निर्माल्य एक ही साथ भोग-मोक्ष प्रदाता है। वस्तुतः रोग-शोक प्रभृति दुःखपरम्परा इसके द्वारा नष्ट हो जाती है। अधिक क्या कहें। खिले कमल पत्र के समान वर्ण युक्त माला को प्रसन्नतापूर्वक शरणागतजन को मुक्ति देने वाले प्रभु ने यह प्रभुत्व प्रदान किया है।।६२-६९।।

।।नवम अध्याय समाप्त।।

दशमोऽध्यायः

विद्यापति द्वारा भगवान् इन्द्रद्युम्न का स्वरूप वर्णन, विष्णुभक्तिप्रशंसा, वासुदेवभक्तलक्षण

इन्द्रद्युम्न उवाच

जन्मप्रभृति तत्र त्वं न प्रयातोद्विजोत्तम !। कथम्विद्याद्भवान्दिव्यवृत्तान्तं पुरुषोत्तमे।।१।।

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—हे द्विजवर! आप तो अपने जन्म से लेकर कभी भी वहां गये ही नहीं थे। आपने मात्र एक बार ही जाकर अल्पकाल में ही पुरुषोत्तम के समस्त दिव्य वृत्तान्त को जान लिया, वह मुझसे व्यक्त करिये।।१।।

विद्यापतिरुवाच

तत्र स्थितोऽहं सायाह्ने भगवन्तमुपागमम्।
तस्मिन्काले दिव्यगन्धो ववौ च शिशिरो मरुत्॥२॥
उद्यतःसङ्कुलःशब्दःश्रूयतेस्म वियत्पथे। क्रमाद्याहि प्रयाहीति स तु वर्णमयःस्वनः॥३॥
दिविष्ठानां पतत्पुष्पवृष्ट्याच्छादितपर्वतः। समागमोऽभूत्सान्निध्येवैकुण्ठस्यमहीपते॥४॥
वीणावेणुमृदङ्गानांचर्चरीणाञ्चनिःस्वनः। अभूतपूर्वस्तत्राऽऽसीद्दिव्यवगानविमिश्रितः॥५॥
सहस्रमुपचाराणां प्रीतये परमेशितुः। देवैः समर्पितं तत्र मनुष्याऽदृष्टपूर्वकम्॥६॥
सम्पूज्यविधिवद्देवंकरमात्रोपलक्षिताः। जयपूर्वैश्च तं स्तोत्रैः सन्तोष्य मधुसूदनम्॥७॥
यथागतन्ते त्रिदशाः प्रययुस्त्रिदशालयम्। तेषु यातेषु शबरः सखा विश्वावसुर्मम॥८॥
दिव्योपहारभोज्यानिमाल्यं चेदं ददौ मम। अनर्घ्यमेतदम्लानं श्रीराज्यसुखदायकम्॥९॥

विद्यापति कहते हैं—महाराज! मैंने मात्र एक बार ही वहां जाकर समस्त घटना को जाना है। वहां उपस्थित होकर मैं सन्ध्याकाल में भगवान् के निकट गया। वहां स्वर्गीय गन्धयुक्त सुशीतल वायु बह रही थी। आकाश में तब "जाओ-जाओ" इस प्रकार की ध्वनि श्रवण गोचर होने लगी। हे महीपति! मैंने देखा कि तब देवगण द्वारा आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी। उस पुष्पवृष्टि से नीलाचलपर्वत ढक सा गया। तब देवगण वैकुण्ठनाथ के समीप वहां आये। उस स्थल पर स्वर्गीय संगीत के साथ ही वीणा, मृदंग, वेणु आदि की वाद्यध्वनि होने लगी। उस अपूर्व गीतवाद्य जैसा गीतवाद्य मैंने आजतक कभी नहीं देखा। मुझे प्रतीत हुआ कि ऐसा उपचार-उत्सव मनुष्य ने कंभीं नहीं देखा होगा। तदनन्तर देवगण उन मधुसूदन जगन्नाथ की यथाविधि पूजा, जयध्वनि तथा स्तुति पाठ द्वारा भगवान् का संतोष साधन करते स्वर्गलोक लौट गये। उनके प्रस्थान कर जाने पर मेरा सखा विश्वावसु शबर स्वर्ग से लाई खाद्यसामग्री को तथा इस माला को वहां से लाया तथा मुझे उपहार में दिया। यह माला कभी मुरझाती नहीं तथा लक्ष्मी एवं राज्यसुखप्रद है।।२-९।।

अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नंयोग्यंतेनाऽऽहृतंमया। शृणुष्वतस्यसंस्थानंविष्णोर्यत्क्षेत्रमुत्तमम्॥१०॥
अपूर्वशिल्पनैपुण्यं रूपं चाऽस्य मनोहरम्।
न भूमिजन्मना पुंसा शक्यते गदितुं हि तत्॥११॥
त्वद्भाग्यपौरुषाभ्यां तल्लक्षितं कथयामि ते। समन्ताद्गहनाकीर्णं नीलाद्रिनाभिकम्॥१२॥
आयामविस्तृतिभ्यां च विख्यातं क्रोशपञ्चकम्।
तीर्थराजस्य वेलायां स्वर्णवालुकयावृतम्॥१३॥
अद्रेःशृङ्गे महानुच्चःकल्पस्थायीवटोमहान्।
क्रोशायतः पुष्पफलवर्जितःपल्लवोज्ज्वलः॥१४॥
सूर्यापक्रमणे तस्य छायां नापक्रमेत वै। तस्य पश्चात्प्रदेशेहिकुण्डंरौहिणसञ्ज्ञकम्॥१५॥
जलोद्गमान्नीलहृषदारोहण विभूषितम्। बहिः स्फटिकवेदीभिश्चतुर्दिक्षु परीवृतम्॥१६॥

अघसङ्घातहारीभिरद्धिः पूर्णं मनोरमम्। तत्पूर्ववेदिकामध्ये न्यग्रोधच्छायशीतले॥१७॥
इन्द्रनीलमयो देव आस्ते चक्रगदाधरः। एकाशीत्यङ्गुलमितःस्वर्णपद्मोपरि स्थितः॥१८॥

यह माला अलक्ष्मी का तथा पापरूपी राक्षस का वध करने में समर्थ है। अब उस मनोरम स्थान का परिचय सुनें जहां अब विष्णु स्थित हैं। वह श्रीक्षेत्र अत्यन्त मनोहर है। मर्त्यवासी मनुष्य उसका वर्णन करने तथा पूर्णतः देख सकने में भी असमर्थ हैं। मैं आपके भाग्य से तथा अपने पुरुषकार से उसे देख सका हूं। अब आपसे वहां का परिचय देता हूं। उस क्षेत्र के चारों ओर घने वन के बीच वह नीलगिरी उस क्षेत्र में नाभि के समान शोभायमान है। इस क्षेत्र की दीर्घता एवं विस्तार पांच कोस का है। उसका पार्श्ववर्त्ती समुद्रतट स्वर्ण वर्ण की बालुका से भरा है। इस नीलगिरि के शिखर पर एक आकाशस्पर्शी वटवृक्ष है। इसका परिमाण एक कोस है। उसमें फल-फूल नहीं है तथा वह पूर्णतः पत्तों से भरा है। इसलिये देखने में अत्यन्त मनोहर है। सूर्यदेव की गतिविधि के अनुसार उसके तल की छाया में कुछ भी परिवर्द्धन नहीं होता, इस वृक्ष के पीछे रौहिण कुण्ड है। इस कुण्ड में उतरने वाली सीढ़ियां नीलकान्तमणि से बनी हैं। ये सिढ़ियां कुण्ड के तलदेश पर्यन्त गई हैं। इस कुण्ड के चतुर्दिक् स्फटिक मणियों की वेदी है। यह जलपूर्ण कुण्ड पापनाशक है। इस कुण्ड की वटच्छाया अत्यन्त सुशीतल है। पूर्व वेदी के मध्य में देवचक्र गदाधर विराजित हैं। वह मूर्त्ति इन्द्रनीलमणिमय है तथा वह ८१ अंगुल उच्च है। वह स्वर्णपद्म पर स्थित है।।१०-१८।।

अष्टमीचन्द्रशकलशोभाविजयि भालभूः। स्मेरेन्दीवरयुग्मश्रीधिक्कारोद्यतलोचनः॥१९॥

उनके ललाट की शोभा के सामने अष्टमी का चन्द्रमा पराजित है। उनके नयनद्वय तो विकसित दो कमल को भी अपनी शोभा के कारण मानो धिक्कार रहे हैं।।१९।।

आननामृतभानूद्यत्सन्तापत्रयमोचनः। नासापुटद्वयोद्भासितिलपुष्पप्रशोभनः॥२०॥
वपुषोऽश्ममयत्वेऽपितुसुस्मितस्नपिताधरः ।
हाससम्फुल्लगण्डाभ्यां रुचिरश्चिवुकंहनुः॥२१॥
अनन्य पूर्वघटितं सृक्किणीयुगमञ्जसा। ह्रासनिम्नाधरौ गण्डौ चिबुकं सृक्किणी शुभे॥२२॥
वहन्निदर्शनं देवो विश्वकर्मादि शिल्पिनाम्। मकरास्यकर्णभूषाशोभिश्रुतियुगेन सः॥२३॥
गुरुभार्गवयोर्मध्ये पूर्णचन्द्रोपहासकः। ग्रैवेयशोभाजनककण्ठेदेशेन पश्यताम्॥२४॥
दक्षिणावर्त्तशङ्खस्य मुक्ताजन्माभिशङ्ककृत्। पीनायतस्कन्धयुगजानुदीर्घचतुर्भुजः॥२५॥

उनके मुखचन्द्र का दर्शन करने पर त्रिताप शान्त हो जाता है। उन भगवान् के नासिकाद्वय तिल पुष्प की तरह शोभित होते हैं। (मूर्त्ति होने के कारण) भले ही उनका शरीर पाषाणमय है, तथापि उनके अधर हास्यमय हैं। दोनों गाल हर्ष से उत्फुल्ल हैं। चिबुक तथा हंसली अत्यन्त मनोहर है। ओष्ठों के दोनों प्रान्तभाग अपूर्व सुगठित हैं। गण्डद्वय का निम्नभाग उनके हास्य के कारण कुछ गड्ढेदार प्रतीत हो रहा है। देव जगन्नाथ का यह स्वरूप विश्वकर्मा आदि शिल्पीगण के सुशिल्प का उत्तम निरूपण है। उनके कर्णद्वय मकर के मुखवाले कर्णकुण्डल से शोभित हो रहे हैं। बृहस्पति तथा शुक्र के मध्य में स्थित पूर्णचन्द्र की शोभा भी इनके आगे फीकी है। उनके कण्ठदेश में मनोहर गले वाला आभूषण शोभायमान है। उन्होंने एक हाथ में मुक्ता के समान

होने का भ्रम उत्पन्न करने वाला मनोहारी दक्षिणावर्त्त शंख धारण कर रखा है। उनके चारों बाहु अजानुलम्बित है। कन्धे स्थूल तथा आयताकार हैं।।२०-२५।।

स्वच्छनिर्मलहारोपशोभकोरःस्थलोविभुः। धत्तेचतुर्दशजगद्दिव्यकौस्तुभबिम्बितम्।।२६।।
निम्ननाभिह्रदाविष्टतनुरोमालिमञ्जुलः। हारं त्रिवलिमध्येन स्थाणुत्वपरिणामकः।।२७।।
सुरत्नमेखलादाम्ना किङ्किणीमौक्तिकस्त्रजा। जगल्लावण्यपुटके स्फिचौदेवस्यशोभतः।।२८।।
जघनालम्बिमुक्तास्त्रक्पीतचैलोपशोभितम्। जङ्घास्तम्भयुगंमोक्षमाङ्गल्यतोरणाश्रयम्।।२९।।
वृत्तानुपूर्वजानुभ्यां मालया प्रपदीनया। रत्नाढ्यबलयाभ्यां च शोभेते चरणौविभोः।।३०।।
हारकङ्कणकेयूरमुकुटाद्यैरलङ्कृतम्। ज्ञानाऽहङ्कारकैश्वर्यशब्दब्रह्माणि केशवः।।३१।।
चक्रपद्मगदाशङ्खे परिणामानि धारयन्। सर्वाशाद्योतको देवो नीलाद्रेरुपरि स्थितः।।३२।।
भक्त्याप्रणम्यदृष्ट्वाऽयंदेहबन्धात्प्रमुच्यते। वामपार्श्वगतालक्ष्मीराश्लिष्टापद्मपाणिना।।३३।।

प्रभु के वक्ष पर मनोहारी निर्मल हार शोभायमान है। उनके वक्षस्थल पर दिव्य कौस्तुभमणि विराजमान है, जिसमें चतुर्दश भुवन की मूर्त्ति प्रतिच्छवित हो रही है। (प्रतिबिम्बित हो रही है)। उनकी गहरी नाभि कोमल रोमावलि से मण्डित है। उनका कण्ठ में लटकता हार त्रिवली (पेट के नीचे कमर पर की तीन रेखा) पर्यन्त का स्पर्श कर रहा है। प्रभु जगन्नाथ अचल रूप से (स्थाणु रूप में) वहां अवस्थित हैं। प्रभु के स्फिक्द्वय तीनों लोक के लावण्य की खान के स्वरूप हैं। वह उत्तमरत्नमय करधनी तथा मुक्तानिर्मित किंकिणी माला से शोभित हैं। उन्होंने पीतवस्त्र द्वय धारण कर रखा है तथा उनकी मुक्तामाला उनके जंघों तक लटक रही है। उनके दोनों जानु दो स्तम्भ की तरह शोभायमान हैं। वे मानो मोक्षद्वार के दो मंगल तोरण रूप हैं। प्रभु के दोनों चरण गोलाकृति हैं। जानुयुगल पैर पर लटकती माला तथा रत्नवलय के कारण अपूर्व शोभायुक्त लग रहे हैं। प्रभु का शरीर हार-केयूर-कंकण-मुकुट आदि अलंकार से शोभित है। उनके चारों हाथों में शंख-चक्र-गदा-पद्म है जो ज्ञान, अहंकार, ऐश्वर्य तथा वेदरूप में परिणत हैं। देवदेव जगन्नाथ इस प्रकार से चारों दिशाओं को आलोकित करते हुये नीलाचल के ऊर्ध्वभाग में विराजित हैं। उनका दर्शन करके भक्तिभाव से प्रणाम करने पर जीव देहबन्धन से मुक्त हो जाता है। प्रभु के वामपार्श्व में लक्ष्मी देवी अपने करकमल से उनका आलिंगन करती हुई स्थित हैं।।२६-३३।।

वल्लकीवादनपरा भगवन्मुखलोचना। सर्वलावण्यवसतिः सर्वालङ्कारभूषिता।।३४।।
तावपश्यं हि जगतः पितरावचलस्थितौ। तूष्णींभूतौस्मेरदृशाऽनुगृह्णन्तौचपश्यतः।।३५।।
सजीवौ तावबुधं भो दीनानुग्रहकारणात्। छत्रीभूतफणावृन्दः शेषःपश्चादवस्थितः।।३६।।
अग्रे व्यवस्थितं दृष्टं वपुर्बिभ्रत्सुदर्शनम्। कृताञ्जलिपुटं तस्य पश्चाद्गरुडमास्थितम्।।३७।।
एवमद्भुतरूपन्तं दृष्ट्वा साक्षाच्छिच्छ्रयः पतिम्।
चेतो रज्जूभिराकृष्टमिव तत्रैव धावति।।३८।।

सर्व प्रकार की सुन्दरता तथा लावण्य की आधारभूता देवी क्षीरसागर कन्या लक्ष्मी सर्व प्रकार के अलंकारों से भूषित होकर भगवान् की ओर देखती हुई वीणावादन कर रही हैं। मैंने देखा कि जगत्माता-पिता

नीलाचल पर मौन भाव से विराजित होकर अपने दृष्टिपात से दर्शकों पर अनुग्रह कर रहे हैं। उनके पीछे अनन्तनाग उनके शिर पर अपने फणों को फैलाये हुये छत्ररूप से स्थित हैं। भगवान् के ही पश्चात् भाग में गरुड़ हाथ जोड़ कर खड़े रहते हैं। इस अद्‌भुत रूप से सम्पन्न श्रीपति का दर्शन करके मानो दर्शकों का चित्त रस्सी से बंधा सा उनकी ओर खींचा जाता रहता है।।३४-३८।।

अनेकजन्मसाहस्त्रैः सुकर्माण्यर्जितानि चेत्।
युगपत्परिपक्कानि यस्याऽसौ तं हि पश्यति॥३९॥
तीर्थस्नानतपोदानदेवयज्ञव्रतैरपि। नाऽलमालोकितुं मर्त्यस्तादृशं पुरुषोत्तमम्॥४०॥
ये नीलमूर्तिं विमलाम्बराभं ध्यायन्ति विष्णुं पुरुषोत्तमस्थम्।
ते क्षीणबन्धाः प्रविशन्ति विष्णोः पुरं हि यत्प्राप्य न शोचतीह॥४१॥
विद्याभिरष्टादशभिः प्रणीतं नानाविधं कर्मफलं नृणां यत्।
एकत्र तत्सर्वममुष्य विष्णोः सन्दर्शनस्यैति शतांशमानम्॥४२॥
किमत्र वाच्यं त्वधिकं क्षितीन्द्र ! पुंसोमतिर्यावदुपैति कामान्।
लभेत नीलाद्रिपतिं प्रणम्य ततोऽधिकं क्षेत्रभुवो महिम्ना॥४३॥
स एव दाता क्रतुभिः स यष्टा सत्यप्रवक्ता स तु धर्मशीलः।
सर्वैर्गुणैः सर्वभवैर्वरिष्ठो नीलाद्रिनाथः खलु येन दृष्टः॥४४॥
तत्र ये सेवकाः सन्तिमाधवस्यजगत्पतेः। तेभ्यःसकाशान्माहात्म्यमिदंज्ञातंमयानृप॥४५॥
तस्मिन्परम्परायातमादिसृष्टेः पुरातनम्। प्रसिद्धमिदमाख्यानंश्रुत्वातत्राऽऽगतोह्यहम्॥४६॥
त्वदाज्ञया तत्र गत्वा दृष्ट्वा श्रीपुरुषोत्तमम्। निवेदितं ते राजेन्द्र ! यथेच्छसितथा कुरु॥४७॥

विद्यापति कहते हैं कि जो व्यक्ति अनेक हजार जन्मों तक अपने सत्कर्म के कारण पुण्यसंचय करके उसका फल लाभ करता है, वहीं उन नीलमाधव का दर्शन कर पाता है। अन्यथा तीर्थस्थान, तप, होम, वेद, दान, व्रतादि कर्म करके भी पृथिवीवासी ऐसे पुरुषोत्तम का दर्शन नहीं पा सकते। जो इस पुरुषोत्तम क्षेत्रस्थ निर्मल आकाश के समान नीलमूर्त्ति विष्णु का ध्यान करते हैं, वे सांसारिक बन्धन से मुक्त होकर विष्णुलोक जाकर वहां शोकरहित स्थिति में रहते हैं। अठारह शास्त्रों में मानवगण का जो कर्मफल कहा गया है, वह समस्त कर्मफल जोड़कर तुलना करने पर विष्णुदर्शन जनित फल का $\frac{१}{१००}$ भी होगा अथवा नहीं होगा, इसमें भी सन्देह है। हे महाराज! अधिक क्या कहूं! श्रीक्षेत्र की महिमा अत्यन्त अद्भुत है। जो मानव वहां जाकर नीलाचल के अधिदेवता जगन्नाथ को प्रणाम करते हैं, उनको इच्छा से अधिक सम्पत्ति मिलती है। जिन्होंने उन भगवान् नीलाचलनाथ का दर्शन पा लिया, वे ही दाता, यज्ञकर्त्ता, सत्यवादी तथा धार्मिक रूप से परिचित होते हैं तथा वे सर्वगुणसम्पन्न रूप से प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं। हे राजन्! वहां जो जगत्पति माधव के सेवक हैं, उनसे मुझे प्रभु की यह महिमा ज्ञात हो सकी है। वहां के प्रसिद्ध लोकपरम्परागत पुरातन इस आदि उपाख्यान को सुनने मैं वहां गया था। हे राजेन्द्र! मैं वहां आपके आदेशानुरूप गया तथा श्री पुरुषोत्तम देव का दर्शन किया तथा यहां आकर मैंने समस्त वृत्तान्त आपसे कह दिया। अब आपकी जो इच्छा हो करिये।।३९-४७।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

आप्तवाक्याद्भगवतः श्रुत्वा रूपमघापहम्।
कृतकृत्योऽस्मि भगवन्दिव्यनिर्माल्यसङ्गमात्॥४८॥
बहुजन्मस्वर्जितानि क्षीणानि दुरितानि मे। अधिकारी त्वंहंजातोदर्शने श्रीपतेरिहः॥४९॥
सर्वात्मनाऽहं यास्यामि राज्येनसुसमृद्धिना। तत्रावासंकरिष्यामिपुरदुर्गाणिचैवहि॥५०॥
क्रतुना हयमेधेन यक्ष्ये प्रीत्यै मुरद्विषः। शतोपचारैः श्रीनाथं पूजयिष्ये दिनेदिने॥५१॥
व्रतोपवासनियमैः प्रीणयिष्ये जगद्गुरुम्। वाक्यामृतेन सन्तप्तं यथामामभिषेक्ष्यति॥५२॥
दीनानुकम्पीभगवान्साक्षान्नारायणो विभुः। एवंसश्रद्धयाभक्त्त्यासंस्तुतेयावदीश्वरम्॥५३॥

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—"हे भगवान्! मैं आपके मुख से भगवान् का पापनाशक रूप सुनकर तथा इस दिव्य निर्माल्य माला को धारण करके कृतकृत्य हो गया। मेरी नाना जन्मार्जित पापराशि नष्ट हो गयी। मैं अब उन श्रीपति के दर्शन करने का अधिकारी हो गया। अतएव मैं सम्पूर्ण यत्न के साथ राजोचित समृद्धि की सहायता से उस स्थान पर जाऊंगा तथा वहां दुर्ग तथा पुरी का निर्माण करने के पश्चात् वहीं वास करूंगा। इन मुरारीदेव की प्रसन्नता के लिये मैं वहां अश्वमेध यज्ञ करता हुआ नित्य सैकड़ों उपचार से भगवान् का पूजन करूंगा। मैं वहां कठिन व्रत उपवास करके उन जगद्गुरु को इस प्रकार सन्तुष्ट करूंगा जिससे वे मुझे अपने वाक्यामृत से तृप्त करें, मैं असीम संसारताप से दग्ध हूं। मैं वह सब व्रतोपवासादि करूंगा जिससे वे प्रभु जगद्गुरु अपने वचन सुधा से मुझे शीतल करें।" इस प्रकार इन्द्रद्युम्न ने श्रद्धा भक्तिपूर्वक ईश्वर का स्तव किया था।।४८-५३।।

नारदस्तत्र सम्प्राप्तो भुवनालोककौतुकी। तमायान्तमृषिंदृष्टावैष्णवाग्र्यंविधेःसुतम्॥५४॥
आशशंस स्वकार्यस्यसिद्धिंनरपतिस्तदा। उत्थायसहसाविप्राःपाद्यार्घ्याचमनीयकैः।
वरासनस्थं प्रणतः प्रोवाचेदं कृताञ्जलिः॥५५॥

इसी समय भुवनों का दर्शन करने के लिये सदा कौतूहलयुक्त देवर्षि नारद वहां उपस्थित हो गये। नरपति ने उन वैष्णवप्रधान ब्रह्मपुत्र ऋषि को समागत देखा तब वे जान गये कि उनकी कार्यसिद्धि की सम्भावना हो गयी है। वे अब आश्वस्त हो गये। हे विप्रगण! उनको आया देखकर राजा सहसा उठे तथा उन्होंने नारद ऋषि का पूजन (सत्कार) पाद्य-अर्घ्य तथा आचमनीय से किया। नारद जब श्रेष्ठ आसन पर आसीन हो गये, तब राजा ने उनको प्रणाम किया तथा अंजलिबद्ध होकर कहने लगे।।५४-५५।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

अद्य मे सफला यज्ञा दानमध्ययनं तपः॥५६॥
यन्मे गृहं समागच्छद् द्वितीयाब्रह्मणस्तनुः। कृतार्थो यद्यपि मुने आगमानुग्रहात्तव॥५७॥
तथाऽपि त्वत्प्रसादायकिमाज्ञां करवाणिते। किम्प्रयोजनमुद्दिश्यभवनंमेपवित्रितम्॥५८॥

राजइन्द्रद्युम्न कहते हैं—आज मेरे द्वारा कृत यज्ञ, दान, अध्ययन, तप आदि सब सफल हो गया,

क्योंकि आप द्वितीय ब्रह्ममूर्त्ति आज मेरे गृह में उपस्थित हैं। हे मुनिवर! यद्यपि आपने कृपापूर्वक आकर मुझे कृतार्थ कर दिया है, तथापि आप आज्ञा करिये, मैं आपकी प्रसन्नता हेतु क्या करूं? आपने आज किस प्रयोजन से मेरे भवन को पवित्र किया है?।।५६-५८।।

जैमिनिरुवाच

तच्छ्रुत्वा नृपतेर्वाक्यं भक्तिप्रश्रयकोमलम्। उवाचब्रह्मणः पुत्रः स्मितपूर्वंमहीपतिम्।।५९।।

ऋषि जैमिनि कहते हैं—ब्रह्मपुत्र नारद ने राजा का यह विनय भक्तियुक्त कोमल वाक्य सुना तथा ईषत् हास्य के साथ उनसे कहने लगे।।५९।।

नारद उवाच

इन्द्रद्युम्न! नृपश्रेष्ठ! विमलैस्त्वद्गुणोत्करैः। प्रीणितादेवतासिद्धाःमुनयो ब्रह्मणासह।।६०।।
स्वप्रतिष्ठा पृथग्योग्यागुणाएकैकशस्तव। ब्रह्मणःसदनेस्थित्यैपर्याप्तास्तुसमीहिताः।।६१।।
अवतीर्णो नरं द्रष्टुं तिष्ठन्तं बदराश्रमे। तद्ध्यानावसरेज्ञातो व्यवसायस्तवेदृशः।।६२।।
साधुव्यवसितं राजन्याऽभूत्ते बुद्धिरीदृशी। सहस्त्रजन्मस्वभ्यासाद्भक्तिर्भवति भूपते।।६३।।
नीलाचलगुहावासे माधवे जगतां ध्रुवे। पितामहो महाप्राज्ञो यमाराध्य जगत्पतिम्।।६४।।
विनिर्ममे सृष्टिमिमां लेभे पैतामहं पदम्। तदन्वयप्रसूतोऽसि युक्ता ते भक्तिरीदृशी।।६५।।
चतुर्वर्गफलाभक्तिर्विष्णौ नाऽल्पतपःफलम्। अनाद्यविद्यासुदृढपञ्चक्लेशविवर्द्धिनी।।६६।।

"हे महाराज! इन्द्रद्युम्न! तुम्हारे विमल गुणों की चर्चा जानकर सिद्ध-मुनि-देवता, यहां तक कि ब्रह्मा तक प्रसन्न हो गये। तुम्हारे गुणसमूह में से प्रत्येक ही प्रतिष्ठालाभ के लिये उपयुक्त हैं। समस्त गुणों की तो बात ही क्या! तुम्हारे सभी मनोरथ पूर्ण हों। इसके द्वारा तुम लोक में ब्रह्मा के समान वास करने में समर्थ हो। मैं बदरिकाश्रमस्थ नर-नारायण के दर्शनार्थ आया था। उनका ध्यान करने के पश्चात् तुम्हारे इस कार्य से अवगत हो गया। हे राजन् ! तुम्हारा प्रयत्न अत्युत्तम है। तभी तुम्हारी यह बुद्धि है। हे भूप! हजारों जन्म के अभ्यास द्वारा नीलाचल गुहावासी विश्वेश्वर माधव के प्रति भक्ति का जन्म होता है। जिनकी आराधना करके महाभाग पितामह ने जगत् पर प्रभुत्व लाभ किया है तथा सृष्टि करके पैतामह (ब्रह्मा पद) प्राप्त किया है, तुम उन ब्रह्मा के वंश में उत्पन्न हो। इसलिये तुम्हारी यह बुद्धि उपयुक्त ही है। भगवान् विष्णु के प्रति भक्ति का जन्म होने से चतुर्वर्ग फल की प्राप्ति होती है। यह अल्पतम फल नहीं है। आनादि अविद्या अत्यन्त दृढ है। उससे केवल पञ्चक्लेश ही बढ़ता है।।६०-६६।।

एकैवेयं विष्णुभक्तिस्तदुच्छेदाय जायते। भवारण्ये प्रतिपदं दुःखसङ्कटसङ्कुले।।६७।।
नराणां भ्रमतां विष्णुभक्तिरेकासुखप्रदा। निरालम्बेद्वन्द्ववातप्रोद्यतेऽस्मिन्सुदुस्तरे।।६८।।

निमग्नानां भवाम्भोधौ विष्णुभक्तिस्तरिः स्मृता।
आश्रित्यैकां भगवतीं विष्णुभक्तिं तु मातरम्।।६९।।
सन्तः सन्तुष्टमनसो न तु शोचन्ति जातुचित्।
विष्णुभक्तिसुधापानसंहृष्टानां महात्मनाम्।।७०।।

ब्राह्मयं पदं स्वल्पलाभो भाजनानां विमुक्तये।
त्रिविधो योऽहसां राशिः सुमहाञ्जन्मिनां नृप !।।७१।।
विष्णुभक्तिमहादाववह्नौ स शलभायते। प्रयागगङ्गाप्रमुखतीर्थानि च तपांसि च।।७२।।
अश्वमेधः क्रतुवरो दानानि सुमहान्ति च। व्रतोपवासनियमाःसहस्राण्यर्जिताअपि।।७३।।
समूह एषामेकत्र गुणितः कोटिकोटिभिः।
विष्णुभक्तेः सहस्रांशसमोऽसौ न हि कीर्तितः।।७४।।

एकमात्र विष्णुभक्ति से ही इस अविद्या का उच्छेद हो सकता है। मनुष्यगण दुःख संकट से पूर्ण संसार रूपी वन में अनवरत भ्रमण करते कष्ट पा रहे हैं। उनके लिये एकमात्र विष्णुभक्ति ही सुखदायक है। अवलंबरहित शीतोष्णादिरूप द्वन्द्व वायु से उत्पन्न लहरों से युक्त दुस्तर भवसागर में डूब रहे प्राणी के लिये विष्णुभक्ति ही एकमात्र पार उतारने वाली नौका है। साधूगण एकमात्र भगवती विष्णुभक्ति का मातृरूपेण आश्रय लेकर सन्तुष्ट चित्त से रहते हैं, वे कभी शोक नहीं करते। जो महात्मा विष्णुभक्तिरूपी सुधापान द्वारा प्रसन्न हो जाते हैं, वे ही मुक्तिपथ पर अग्रसर हैं। उनकी दृष्टि में तो ब्रह्मपद भी तुच्छरूप ही है। विष्णुभक्ति रूपी प्रदीप्त दावानल जीवगण के कायिक-वाचिक, मानसिक पापराशि रूप पतंगों को दग्ध कर देता है। प्रयाग, गंगा, आदि तीर्थ तप, अश्वमेध यज्ञ, सत्पात्र को प्रचुर दान, सहस्रों संचित व्रतोपवास आदि सत्कर्म यदि करोड़ों गुना कर दिये जायें, तब भी वे विष्णु भक्ति का हजारवां भाग $\frac{१}{१०००}$ भी नहीं होगा। विष्णु भक्ति की महिमा अतुलनीय तथा अनिर्वाच्य है।।६७-७४।।

जैमिनिरुवाच

विष्णुभक्तेस्तु माहात्म्यं श्रुत्वा ब्रह्मर्षिणोदितम्।
विष्णुभक्तेः स्वरूपं हि ज्ञातुकामः क्षितीश्वरः।।७५।।
नारदं पुनराहेदं वाक्यं सत्कारयुक्तिमान्।।७६।।

ऋषि जैमिनि कहते हैं—राजा इन्द्रद्युम्न ने इस प्रकार देवर्षि से विष्णुभक्ति की यह महिमा सुना, तब वे विष्णु भक्ति के स्वरूप को जानने की इच्छा के कारण भक्तिपूर्वक पुनः नारद से कहने लगे।।७५-७६।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

महिमाविष्णुभक्तेस्तुसाधुप्रोक्तोमहामुने। तस्याः स्वरूपजिज्ञासाचिरान्मेहृदिवर्त्तते।।७७।।
लक्षणंवर्णयेदानीं भक्तेर्वैष्णवपुङ्गव। त्वदन्यो न हि वक्ता स्याद्विज्ञातो मे महीतले।।७८।।

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—हे मुनिवर! आपने जिस अत्युत्तम विष्णु-भक्ति का वर्णन किया है, उसके स्वरूप को सुनने की जिज्ञासा मेरे हृदय में विद्यमान है। हे वैष्णव प्रवर! उसका लक्षण कहने की कृपा करें। समस्त भूमण्डल में आपके समान सद्वक्ता कोई नहीं है।।७७-७८।।

नारद उवाच

साधुराजंस्त्वया पृष्टं भक्तिलक्षणमुत्तमम्। कथयिष्ये यथार्थंत्वांभक्तिभाजनमुत्तमम्।।७९।।

अपात्रे न हिवाच्येयंनरेऽन्धेमलिनान्तरे। शृणुष्वाऽवहितोराजन्प्रोच्यमानांमयाऽनघ॥८०॥

सामान्यतो विशेषाच्च विष्णोर्भक्तिं सनातनीम्।
अत्यन्तसुखसम्प्राप्तौ विच्छेदे दुःखसन्ततेः॥८१॥

हेतुरेकोऽयमेवेति संश्रयाद्भक्तिरुच्यते। त्रिधा सा गुणभेदेन तुरीयानिर्गुणा मता॥८२॥

कामक्रोधाभिभूतानां दृष्ट्वा याऽन्यं न पश्यताम्।
लब्धये चाऽभिचाराय भक्तिःस्यान्नृप तामसी॥८३॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे राजन्! तुम धन्य हो। तुम यथार्थ भक्त हो। तुमने उत्तम भक्तिलक्षण जानना चाहा है। मैं तुमसे यथार्थरूप से भक्तिलक्षण कहूंगा। तुम सत्पात्र हो, अतः तुमको बतलाता हूं। पाप से आच्छन्न, दुरित आशयवाले अपात्र व्यक्ति को यह बतलाना वर्जित है। हे निष्पाप राजन्! मैं तुमसे सनातनी विष्णुभक्ति का सामान्य एवं विशेष, दोनों प्रकार का वर्णन करता हूं। एकाग्रतापूर्वक श्रवण करो। अत्यन्त दुःख की स्थिति होने पर उसके विनाशार्थ एकमात्र विष्णुभक्ति ही आश्रय रूप है। यह भक्ति गुणभेद से तीन प्रकार की होती है। जो चौथी भक्ति है, उसे निर्गुण कहते हैं। हे नृप! प्रथमतः जो काम-क्रोध के वशीभूत हैं, तथापि जो दृष्ट पदार्थ को स्वीकार करते हैं, उनकी अभिचारिणी भक्ति को तामसी कहते हैं।।७९-८३।।

यशसेचाऽतिरिक्तायपरस्यस्पर्द्धयापिवा। प्रसङ्गात्परलोकायभक्तिःसाराजसीस्मृता॥८४॥

आमुष्मिकंस्थिरतरंदृष्ट्वाभावान्विनश्वरान्। पश्यताऽऽश्रमवर्णोक्तान्धर्मान्नैवजिहासता॥८५॥

आत्मज्ञानाय या भक्तिः क्रियते सा तु सात्त्विकी।
जगच्चेदं जगन्नाथो नाऽन्यं चाऽपि च कारणम्॥८६॥

अहं च नततोभिन्नोमत्तोऽसौनपृथक्स्थितः। हीनंबहिरुपाधीनांप्रेमोत्कर्षेणभावनम्॥८७॥

दुर्लभा भक्तिरेषा हि मुक्तयेऽद्वैतसञ्ज्ञिता।
सात्त्विक्या ब्रह्मणः स्थानं राजस्या शक्रलोकताम्॥८८॥
प्रयान्ति भुक्त्वा भोगान्हि तामस्यापितृलोकताम्।
पुनरागत्य भूर्लोकं भक्तिं तां वैपरीत्यतः॥८९॥
तामसो राजसीं कुर्याद्राजसः सात्त्विकीं तथा।
सात्त्विको मुक्तिमाप्नोति कृत्वा चाऽद्वैतभावनाम्॥९०॥
एकामपि समाश्रित्य क्रमान्मुक्तिपथं व्रजेत्॥९१॥

यशोलाभार्थ तथा अन्य की श्रद्धा के कारण प्रथमतः परलोक के लिये विधिवत् जो भक्ति की जाती है, उसे राजसी भक्ति कहा गया है तथा "इसका यही स्थिर रूप है, समस्त दृष्ट पदार्थ विनाशशील हैं" यह निश्चित करके जो व्यक्ति अपने आश्रमधर्म तथा वर्णोक्त धर्म का त्याग नहीं करता, जो केवल आत्मज्ञान हेतु भक्ति करता है, उसकी भक्ति सात्विकी है। अब चौथी भक्ति कहते हैं—यह जगत् ही जगन्नाथ है, इसका अन्य कारण नहीं है, मैं उससे अलग नहीं हूं, प्रभु भी आत्मा से पृथक् विद्यमान नहीं हैं। अतः यह स्थूल शरीरादि तथा स्थूल

गन्धमाल्यादि यदि केवल प्रीतिवर्द्धन करते हैं, तब इनके द्वारा मुक्ति नहीं मिल सकती इस प्रकार के ज्ञान से युक्त मोक्ष हेतु जो बुद्धि प्रकट होती है उसे अद्वैतनामक अत्यन्त दुर्लभ भक्ति कहते हैं। सात्विकी भक्ति से ब्रह्मलोक, राजसी भक्ति द्वारा इन्द्रलोक, तामसी भक्ति द्वारा पितृलोक प्राप्त होता है। तदनन्तर वह पुनः भूलोक में जन्म लेकर पूर्वजन्म की भक्ति के विपरीत भक्ति प्राप्त करता है। अर्थात् तामसी भक्ति जिसने पूर्वजन्म में किया था, वह अब राजसी भक्ति प्राप्त करता है। पूर्वजन्म में राजसी भक्ति वाला अब सात्विकी भक्ति प्राप्त करता है। पूर्वजन्म में सात्विकी भक्ति करने वाला व्यक्ति इस जन्म में अद्वैतभावना द्वारा मुक्ति प्राप्त करता है। अतः तीनों में से किसी भी एक भक्ति का आश्रय लेकर व्यक्ति को मुक्तिपथ की प्राप्ति हो जाती है।।८४-९१।।

विष्णुभक्तिविहीनस्य श्रौतस्मार्ताश्च याः क्रियाः।
प्रायश्चित्तादिकंतीर्थयात्राकृच्छ्रादिकंतपः। कुलेप्रसूतिःशिल्पानिसर्वंलौकिकभूषणम्।।९२।।
कायक्लेशः फलं तेषां स्वैरिणीव्यभिचारवत्।
कुलाचारविहीनोऽपि दृढभक्तिर्जितेन्द्रियः।।९३।।
प्रशस्यः सर्वलोकानांन त्वष्टादशविद्यकः।
भक्तिहीनोनृपश्रेष्ठ ! सज्जातिर्धार्मिकस्तथा।।९४।।
नाऽल्पभाग्यस्य पुंसो हि विष्णौ भक्तिः प्रजायते।
यां तु सम्पाद्य यत्नेन कृतकृत्यो न सीदति।।९५।।
यया वेत्तिजगन्नाथंसाविद्यापरिकीर्तिता। येन प्रीणाति भगवांस्तत्कर्माशुभनाशनम्।।९६।।
विष्णुभक्तश्च सम्प्रोक्तस्ताभ्यांयुक्तोदृढव्रतः। यत्पादपांसुनाविश्वं पूयतेसचराचरम्।।९७।।
सृष्टिस्थितिविनाशानां स्वेच्छया प्रभवत्यसौ।
किम्पुनः क्षुद्रकामानां भूमिस्वर्गादिसम्पदाम्।।९८।।
वासुदेवस्यभक्तस्यनभेदोविद्यतेऽनयोः। वासुदेवस्य ये भक्तास्तेषांवक्ष्यामिलक्षणम्।।९९।।

जो विष्णु की भक्ति से रहित है, उसका वेद तथा श्रुति में वर्णित समस्त क्रिया-कलाप, यज्ञ-व्रत, प्रायश्चित्त, तीर्थयात्रा, सत्कुल में जन्म, शिल्प आदि केवल सांसारिक सजावट मात्र है। उसका कोई फल नहीं होता। वह सब मात्र शारीरिक क्लेशरूप है। वह सब असती स्त्री के व्यभिचार जैसा निष्फल कृत्य है, तथापि कुलाचार विहीन व्यक्ति भी भगवान् के प्रति दृढ़भक्ति करके तथा जितेन्द्रिय होकर सभी लोगों के बीच प्रशस्त रूप से मान्य हो जाता है। हे राजन्! भक्तिरहित जो व्यक्ति है, वह अष्टादश विद्या विशारद तथा सद्जाति वाला और धार्मिक होकर भी प्रशंसनीय नहीं है। किसी व्यक्ति को अल्पकाल में ही सद्भक्ति नहीं मिल जाती। अत्यन्त प्रयत्न द्वारा विष्णु भक्ति की प्राप्ति हो पाती है। तभी मानव जीवन चरितार्थ हो सकेगा। जिस विद्या द्वारा जगन्नाथ को जाना जा सके, वही यथार्थ विद्या है। जिस कर्म से भगवान् के प्रति प्रीति होती है, वही कर्म अशुभनाशक होता है। भक्तियुक्त तथा विद्यायुक्त दृढ़व्रती को ही विष्णुभक्त कहा जाता है। ऐसे विष्णुभक्त के चरणों के स्पर्श से सचराचर जगत् में पवित्रता का संचार होता है। वह तो स्वेच्छा से ही सृष्टि-स्थिति-विनाश करने के सामर्थ्य से युक्त होता है उसके लिये पृथिवी का आधिपत्य तथा स्वर्ग-कामना अत्यन्त तुच्छ ही है। हे राजन्! तुमसे

अधिक क्या कहा जाये, विष्णुभक्त तथा विष्णु एक ही हैं। विष्णुभक्त की सेवा ही विष्णु की ही सेवा रूप है। अब वासुदेव के भक्तों का लक्षण सुनो।।९२-९९।।

प्रशान्तचित्ताःसर्वेषांसौम्याःकामजितेन्द्रियाः। कर्मणामनसावाचापरद्रोहमनिच्छवः॥१००॥
दयाऽऽर्द्रमनसो नित्यं स्तेयहिंसापराङ्मुखाः। गुणेषु परकार्येषु पक्षपातमुदान्विताः॥१०१॥
सदाचारावदाताश्च परोत्सवनिजोत्सवाः। पश्यन्तः सर्वभूतस्थं वासुदेवममत्सराः॥१०२॥
दीनानुकम्पिनो नित्यं भृशंपरहितैषिणः। राजोपचारपूजायां लालनाः स्वकुमारवत्॥१०३॥
कृष्णसर्पादिव भयं बाह्ये परिचरन्ति ते। विषयेष्वविवेकानां या प्रीतिरुपजायते॥१०४॥
वितन्वतेतुतांप्रीतिंशतकोटिगुणांहरौ। नित्यकर्तव्यताबुद्ध्यायजन्तः शङ्करादिकान्॥१०५॥
विष्णुस्वरूपान्ध्यायन्ति भक्त्या पितृगणेष्वपि।
विष्णोरन्यं न पश्यन्ति विष्णुं नान्यत्पृथग्गतम्॥१०६॥

सबके प्रति जिनका चित्त प्रशान्त है, जो स्वयं सौम्य तथा जितेन्द्रिय है, जो मनसा-वाचा-कर्मणा परद्रोह नहीं करता, जिसका अन्तःकरण सदैव दयार्द्र रहता है, जो चोरी एवं हिंसा कर्म से विमुख है, जिसमें अन्य के गुणों की प्रति जलन नहीं है, जिसमें पक्षपात नहीं है, जो सदाचरण से निर्मल बुद्धि है, जो दूसरे की प्रसन्नता को अपनी प्रसन्नता मानता है, जो मात्सर्य रहित होकर समस्त भूतसमूह में वासुदेव को ही देखता है, जो दीनों के प्रति सर्वदा सदय तथा परहित में निरत रहता है, जो देवपूजारत-उत्तम-उत्तम सामग्री से पूजनरत तथा देवगण का पुत्रवत् पालन करता है, जो बाह्य विषयों से उसी प्रकार भयभीत रहता है मानो वे कालसर्प जैसे हों अतः उनके प्रति अनुरक्त नहीं होता, जो सर्वत्र अनासक्त है, ऐसे व्यक्ति में ईश्वराराधन से जिस प्रेम का उत्कर्ष होता है, वैष्णवगण इस प्रेम को भगवान् विष्णु के प्रति नियोजित करके उसको शतगुणित कर देते हैं। विष्णुभक्त नित्य कर्त्तव्यनिष्ठ रहकर शंकर आदि देवगण की अर्चना तथा पितरों का तर्पणादि सम्पन्न करता है। वह इनको भी विष्णुरूप देखता है। वह विष्णु से पृथक् रूप कुछ भी नहीं देखता। समस्त जगत् का वह विष्णु भक्त विष्णुरूप ही अनुभव करता है।।१००-१०६।।

पार्थक्यं न च पार्थक्यं समष्टिव्यष्टिरूपिणः।
जगन्नाथ! तवाऽस्मीति दासस्त्वं चाऽस्मि नो पृथक्॥१०७॥
अन्तर्यामी यदा देवः सर्वेषां हृदि संस्थितः।
सेव्यो वा सेवको वाऽपि त्वत्तो नान्योऽस्ति कश्चन॥१०८॥
इति भावनया कृतावधानाः प्रणमन्तः सततञ्च कीर्त्तयन्तः।
हरिमब्जजवन्द्यपादपद्मं प्रभजन्तस्तृणवज्जगज्जनेषु॥१०९॥
उपकृतिकुशला जगत्स्वजस्रं परकुशलानि निजानि मन्यमानाः।
अपि परपरिभावने दयार्द्राः शिवमनसः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः॥११०॥

वह विष्णु के समष्टि रूप तथा व्यष्टि रूप में कोई पृथक्त्व नहीं देखता। उसकी यह भावना रहती है

कि "हे जगन्नाथ! आप मेरे कारण हैं, मैं आपका कार्य हूं। हममें आपमें अभेद होकर भी एक अचिन्त्य भेद यह है कि वे अन्तर्यामी! मैं सेवक हूं आप सेव्य हैं। जब आप मेरे अन्तर में विद्यमान हैं, तब चाहे सेव्य हो चाहे सेवक हो, दोनों आप ही हैं। आप से भिन्न कुछ भी नहीं है।" यह भावना दृढ़ करके एकाग्रचित्त ब्रह्मा जिनके चरणों की सतत् वन्दना करते रहते हैं, उन हरि को यथार्थ भक्त प्रणाम करता है तथा तद्गत् चित्त होकर उनका नाम कीर्त्तन करता रहता है। उस भक्त के लिये निखिल लोक सम्पदा तृणवत् तुच्छ है। जो जगत् में सर्वदा परोपकाररत रहते हैं, अन्य की कुशलता को अपनी कुशलता मानते हैं, परदुःख कातर होकर परहित की भावना से भावित रहते हैं, ऐसे दयालु सदाशय व्यक्ति को ही वैष्णव कहा गया है।।१०७-११०।।

दृषदि परधने च लोष्टखण्डे परवनितासु च कूटशाल्मलीषु।
सखिरिपुसहजेषु बन्धुवर्गे समप्रतयः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः।।१११।।
गुणगणसुमुखाः परस्य मर्मच्छदनपराः परिणामसौख्यदा हि।
भगवतिसततं प्रदत्तचित्ताः प्रियवचसःखलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः।।११२।।
स्फुटमधुरपदं हि कंसहन्तुः कलुषमुषं शुभनाम चाऽऽमनन्तः।
जयजयपरिघोषणां रटन्तः किमु विभवाः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः।।११३।।
हरिचरणसरोजयुग्मचित्ता जडिमधियः सुखदुःखसाम्यरूपाः।
अपचितिचतुरा हरौ निजात्मनतवचसः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः।।११४।।

उनकी दृष्टि में पराई सम्पदा पत्थर तथा मिट्टी के ढेले के समान है। वे परस्त्री तथा कण्टकाकीर्ण वृक्ष को समान देखते हैं। आत्मीय सुहृद तथा शत्रु में भी समान आत्मरूप का ही दर्शन करते हैं। ऐसे भक्त ही यथार्थ वैष्णव हैं। जो एकाग्रभाव से सतत् भगवान् को चित्त का समर्पण कर देते हैं, गुणवानों का आदर करते हैं, दूसरे के रहस्य को गुप्त रखते हैं, सर्वदा सबसे प्रिय बोलते हैं, वे ही वैष्णव हैं। वे भक्तिभाव से ओतप्रोत होकर कंसहन्ता कृष्ण का मधुर पापनाशक स्तव गायन करते रहते हैं। उच्च स्वर से सदैव प्रभु का जयजयकार करते हैं। ऐसे व्यक्ति ही वैष्णव हैं। जिन्होंने मनसा-वाचा-कर्मणा हरि के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है, जो एकाग्र होकर हरि के चरणद्वय का चिन्तन करते रहते हैं, इसी चिन्तन में विभोर होकर सुख-दुःख के प्रति समान भावना रखते हैं, विनम्र वचन से हरि का स्तव तथा हरि की पूजा में सर्वदा व्यग्र रहते हैं, वे ही वैष्णव हैं।।१११-११४।।

रथचरणगदाऽब्जशङ्खमुद्राकृतितिलकाङ्कितबाहुमूलमध्याः।
मुररिपुचरणप्रणामधूलीधृतकवचाः खलु वैष्णवा जयन्ति।।११५।।
मुरजिदपघनापकृष्टगन्धोत्तमतुलसीदलमाल्यचन्दनैर्ये।
वरयितुमिव मुक्तिमाप्तभूषाकृतिरुचिराः खलु वैष्णवा जयन्ति।।११६।।
विगलितमदमानशुद्धचित्ताः प्रसभविनश्यदहङ्कृतिप्रशान्ताः।
नरहरिममराप्तबन्धुमिष्ट्वा क्षयितशुचः खलु वैष्णवा जयन्ति।।११७।।

भगवति सततं प्रभक्तिभाजां शुभचरितं तव लक्ष्म नोऽभ्यधायि।
श्रुतिपथमवतीर्णमाऽऽशु पुंसां हरति मलं चिरसञ्चितं यदेतत्॥११८॥
न हि धनमऽपि मृग्यते कदाचिन्न खलु शरीरजखेदसम्प्रयोगः।
मृदुलघुवचसाभिधानकीर्ति भजनमहं तव दास्य एव चिन्ता॥११९॥

"जो अपने बाहुमूल तथा मध्य में रथचक्र, गदा, पद्म, शंख मुद्रा इत्यादि की आकृति का तिलक धारण करते हैं, जो मधुरिपु मधुसूदन को पृथिवी पर प्रणाम करके धूलधूसरित हो रहे हैं, ऐसे वैष्णवों की जय हो! जो मुक्ति कामना से मुरारी के अंगस्पर्श वाले सुगन्धित तुलसीपत्र, (निर्माल्य) माला तथा भगवान् को लगाने से बचे चन्दन से अपना अंग सज्जित करते हैं, भक्तिपूर्वक प्रभु की पूजा करते हैं, वे ही वैष्णव हैं। उनकी जय हो। जिनका दर्प, अभिमान, अहंकार विगलित हो गया, जिनका चित्त देवगण के आत्मीय नरसिंहदेव के पूजन से निर्मल हो गया है, जो हरिचरण की सेवा करके शोकरहित हो गये, वे ही वैष्णव हैं। सर्वतोभावेन उनकी जय हो। हे राजन्! मैंने तुमसे भगवान् के शुभचरित की महिमा, भक्तिलक्षण का वर्णन कर दिया। जो सर्वदा प्रभु जगन्नाथ के प्रति भक्तिमान् हैं, जिन्होंने भगवान् का शुभचरित सुना है, उनका चिरकाल संचित पाप-ताप तत्काल दूरीभूत हो जाता है।" भगवान् की महिमा का वर्णन करते-करते नारद का चित्त भगवत् प्रेम से आकुल हो उठा। वे कहने लगे—"हे राजन्! वैष्णव को कभी धनप्रार्थी नहीं होना पड़ता। उसे शारीरिक क्लेश भी नहीं होता। वह सदा शान्त भाव से मृदुवाणी से भगवन्नाम कीर्तन करता है। वह सदा भगवत् नाम कीर्त्तन, भजनोत्सव करता है। प्रभु का दासत्व तथा चिन्तन करता सर्वदा तत्पर रहता है।।११५-११९।।

शुभचरितमपि द्विषन्ति पुंसां स्वयमिह दुश्चरितानुबन्धचित्ताः।
महदकुशलमप्यवाप्य सुस्था भगरसरसिका अवैष्णवास्ते॥१२०॥
परमसुखपदं हृदम्बुजस्थं क्षणमपि नाऽनुसज्जन्ति मत्तभावाः।
वितथवचनजालकैरजस्त्रं पिदधति नाम हरेरवैष्णवास्ते॥१२१॥
परयुवतिधनेषु नित्यलुब्धाः कृपणधियो निजकुक्षिभारपूर्णाः।
नियतपरमहत्त्वमन्यमाना नरपशवः खलु विष्णुभक्तिहीनाः॥१२२॥
अनवरतमनार्यसङ्गरक्ताः परपरिभावकहिंसकाऽतिरौद्राः।
नरहरिचरणस्मृतौविरक्ता नरमलिनाः खलु दूरतो हि वर्ज्याः॥१२३॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे-
पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे नारदेनेन्द्रद्युम्नाय-
भगवद्भक्तिवर्णनंनामदशमोऽध्यायः।।१०।।

—※※※—
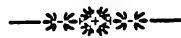
जो अवैष्णव लोग है, वे तो दूसरों के उत्तम चरित्र पर भी दोषारोपण करते रहते हैं। वे अपनी दुश्चरित्रता में ही पड़े रहते हैं। वे महान् अमंगल घटित होने पर स्वस्थता पूर्वक भगवत् चिन्तन न करके विषयान्तर में लग जाते हैं। वे परमसुख के कारण जगन्नाथपद का क्षणमात्र के लिये भी हृदय में चिन्तन नहीं

करते। वे मत्तचित्त होकर भगवन्नाम को भी मिथ्या जाल द्वारा आच्छादित कर देते हैं। ऐसे लोग अवैष्णव हैं। विष्णुभक्तिरहित लोग परदारा तथा परधन के प्रति सदा लोलुप रहते हैं। उनकी बुद्धि कदर्य है। गंदी होती है। वे सदा अपनी आदर प्राप्ति के लिये उत्सुक रहते हैं। केवल नियति को तथा पराये भय को ही मानकर अपना जीवन व्यतीत कर देते हैं। ऐसे लोगों को नरपशु के अतिरिक्त और क्या कहा जाये? जो नरहरिदेव के चरणचिन्तन से विमुख हैं, अनवरत कुसंग में आसक्त हैं, दूसरे को नीचा दिखलाने वाले तथा हिंसा-वृत्तिवाले हैं, वे अतिभयानक चरित्रवाले नराधम लोग होते हैं। इनका संग तो दूर से ही त्याग देना चाहिये।।१२०-१२३।।

।।दशम अध्याय समाप्त।।

एकादशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्न तथा नारद का पुरुषोत्तम क्षेत्र गमनार्थ परामर्श, राजा का नीलाचल जाने हेतु तैयारी करना, उड़ीसा देशाधिपति द्वारा इन्द्रद्युम्न का आदर

जैमिनिरुवाच

नारदाद्ब्रह्मणः पुत्राद्भगवद्भक्तिमुत्तमाम्। श्रुत्वेत्थं परमप्रीतइन्द्रद्युम्नोऽप्युवाचतम्।।१।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

साधुसङ्गस्तु विद्वद्भिर्भवव्याधिविनाशनः। ममोपदिष्टोभगवन्सोऽभूत्साम्प्रतमेवमे।।२।।

येन साक्षात्कृतो विष्णुः परमात्मा परात्परः। स त्वं यन्मन्दिरायातस्त्वदन्यः साधुरत्र कः।।३।।

त्वत्सन्निधानाद्भगवंस्तमो मे नाशमभ्यगात्। यन्मेत्वरयतेचित्तमर्चितुंनीलमाधवम्।।४।।

वेत्सि ब्रह्माण्डवृत्तान्तं पर्यटन्सार्वलौकिकः।
तदावां रथमास्थाय पश्यावो नीलमाधवम्।।५।।

पुरुषोत्तमसञ्ज्ञस्यक्षेत्रस्याऽलङ्कृतंशुभम्। तत्रतीर्थानिसन्तीतिबहुभिःकथितानिमे।
त्वद्वाक्याद्यदि जानामि भवेयुः सफलानि मे।।६।।

ऋषि जैमिनि कहते हैं—राजा इन्द्रद्युम्न ने ब्रह्मपुत्र नारद से अत्युत्तम विष्णुभक्ति को सुनकर परमप्रसन्न होकर उनसे कहा—"हे भगवान्! विद्वान् लोगों ने मुझे उपदेश दिया था कि साधुसंग सांसारिक पीड़ा नाशक है। सौभाग्य से आज मैंने वह साधुसंग पा लिया। जिन्होंने परात्पर परमात्मा विष्णु का प्रत्यक्ष दर्शन पाया है,

ऐसे आपने जब मेरे गृह में शुभागमन कर लिया तब मेरे लिये कौन सा साधुसंग बाकी रह गया? हे भगवान्! आप की सन्निधि को पाकर मेरा आभ्यन्तरिक अज्ञान नष्ट हो गया। अब नीलमाधव की अर्चना हेतु मेरा चित्त अत्यन्त व्यग्र हो उठा है। आपको सब लोकों का ज्ञान है तथा आप भ्रमण करते-करते समस्त ब्रह्माण्ड के वृत्तान्त को जानते हैं। अतएव अब हमदोनों रथ पर बैठकर नीलाचल चले। पुरुषोत्तम क्षेत्र महिमावान् है तथा वहां अनेक अन्य तीर्थ भी हैं। यह वृत्तान्त मुझे अनेक लोगों ने बतलाया है। अब यदि आपने जो कुछ कहा है, उसे प्रत्यक्ष देख सकूं तब मेरा जीवन सफल होगा।।१-६।।

नारद उवाच

हन्त ते दर्शयिष्यामिक्षेत्रंक्षेत्रस्थितानि च। तीर्थानिशक्तिशम्भूंश्चक्षेत्रमाहात्म्यमेवच।।७।।

साक्षाद् द्रक्ष्यसि देवेशं भक्तस्याऽऽत्मसमर्पकम्।

तवाऽनुग्रहतः शीघ्रं चतुर्द्धा सम्व्यवस्थितम्।।८।।

यस्यसन्दर्शनान्मर्त्या जायतेभक्तिभाजनम्। एवं कथान्तेतौप्रीतावहःकृत्यंसमाप्यच।।९।।

यात्राऽनुकूलं निर्णीय पञ्चम्यां बुधवासरे। ज्येष्ठकृष्णेतरे पक्षे पुष्यर्क्षे लग्न उत्तमे।

एकत्र शयितौ रात्रिं निन्यतुर्नृपनारदौ।।१०।।

ततः प्रभाते विमलइन्द्रद्युम्नो नृपोत्तमः। घोषणां कारयामास राज्यस्यसहबन्धुभिः।।११।।

यथाविभवतः सैन्यैर्नीलाद्रिगमनम्प्रति। यावज्जीवंतत्रवासं करिष्यामोविनिश्चितम्।।१२।।

यावृत्तिःकल्पितायस्यसतयातत्रजीवतु। राजानःसावरोधाश्चसामात्याःसपरिच्छदाः।।१३।।

रथैर्गजैस्तुरङ्गैश्च कोपैः सह पदातिभिः।।१४।।

व्रजन्तु सज्जितास्तत्र ब्राह्मणाः साऽग्निहोत्रिणः।

वणिजः सह भाण्डैश्च सपण्याः पण्यजीविनः।।१५।।

नारद करते हैं—"हे राजन् ! वहां मैं तुमको वह क्षेत्र तथा क्षेत्र में स्थित समस्त तीर्थ, शम्भु, अष्टशक्ति तथा समस्त क्षेत्र की महिमा दिखाऊंगा। तुम उन भक्त के अधीन रहने वाले देवदेव का साक्षात्कार करोगे। तुम्हारे ऊपर कृपा करने के निमित्त वे श्रीपति चार रूपों में अवस्थान करेंगे। इसके दर्शन से मनुष्य को मुक्ति प्राप्त होती है।" नारद तथा राजा इस कथनोपकथन से प्रसन्न हो गये। उन्होंने समस्त दैनिक कृत्य सम्पन्न किया तथा यात्रा के अनुकूल समय का विचार करके ज्येष्ठमास की शुक्ला पञ्चमी शुक्रवार के दिन पुष्यनक्षत्र के शुभलग्न में एकत्र रूप से शयन किया तथा रात्रि व्यतीत किया। प्रभातकाल में राजा इन्द्रद्युम्न द्वारा यह घोषित किया गया कि "मैं अपने वैभव के अनुरूप राज्यवासी बन्धुओं के साथ सैन्य-सामन्तगण को लेकर नीलाचल जा रहा हूं तथा मैं यावज्जीवन वहीं पर निवास करूंगा। यह निश्चय है। अतएव जिसका जो व्यवसाय निश्चित है, वह वहां वही व्यवसाय करता हुआ जीविकोपार्जन करेगा। मेरे अधिकारस्थ राजपुरुषगण; अन्तःपुर के परिवार-गण, आमात्य, पैदलसैन्य, रथ-गज-अश्व, खजाना तथा सभी वेषभूषादि से सज्जित होकर वहां चलें। अग्निहोत्री तथा सभी ब्राह्मण विद्वान् वहां निवास करें। पण्यजीवी वणिक्गण पण्यद्रव्य का पात्र लेकर उस श्रीक्षेत्र चलें"।।७-१५।।

राष्ट्रकर्मणिनिष्णाताःकुशलाराजवर्त्मसु। ज्योतिर्विदोनृत्यविदोदण्डनीतौप्रवीणकाः॥१६॥
नृत्यगायनवादित्रचतुर्विधसुबुद्धयः। गजवाजिनराणाञ्च भैषज्ये शास्त्रउत्तमे॥१७॥
कुशला दृष्टकर्माणो विद्यास्वष्टादशस्वपि। उपाङ्गविद्यासु तथा कुहकार्थकुतूहलाः॥१८॥
वाटसाहसिकाश्चोरास्तथान्येपश्यतोहराः। विचित्रकथनाजीवाश्चाटुकाराश्चमागधाः॥१९॥
शास्त्रोपजीविनश्चैवतथाऽन्येशल्यहारकाः। द्यतकाराश्च पुंश्चल्योवेश्यावेशानुगाविटाः॥२०॥
कृषीबलाश्च गोमेषच्छागोष्ट्रखररक्षकाः। शकुन्तपालाश्च कपिव्याघ्रशार्दूलरक्षकाः॥२१॥
आहितुण्डिकगोरक्ष्यशबरा म्लेच्छजातयः॥२२॥
अन्ये च ये मालवदेशजाता आज्ञाम्मदीयामनुपालयन्ति।
ते यान्तु सर्वे वसतौ हि नीलाचले यथा स्वं कृतवास्तुभागाः॥२३॥

राजनीति विद्या विशारद, राज्यकार्य कुशल व्यक्ति, ज्योतिषी, नृत्य ज्ञाता नटगण, दण्डनीति प्रवीण कर्मचारी, नृत्यगीत ज्ञाता मनुष्य, अश्व-हाथी तथा मनुष्यों की चिकित्सा पारदर्शी उत्तम आयुर्वेद शास्त्रज्ञ वैद्य, १८ विद्याओं के पारंगत विद्वान् मेरी आज्ञा के अनुसार वहां चलें। साहसी चोर, स्वर्णकार, विचित्र वाक्यवक्ता भांड़, चाटुकार तथा मगधदेशीय मागध (स्तुति करने वाले) इन जगन्नाथ देव को देखकर अपना जीवन पावन करें। जो शास्त्र चर्चा में समय व्यतीत करते हैं, अथवा जो दूसरे की खेती का हरण करके जीवनयापन करते हैं, वे भी पाप मुक्ति हेतु उस श्रीक्षेत्र में चलें। जुआरी, पुंश्चली वेश्या, वेश्या के दलाल, कृषक, गौ-भेड़-बकरी पालने वाले, बहेलिया, वानर-व्याघ्र-जन्तुवर्ग रक्षक, विषवैद्य, राखालगण, अश्वपालक, (सईस), म्लेच्छलोग, मालव देशवासी, ऐसी सभी मेरी आज्ञापालक प्रजा नीलाचल जाकर निवास करें। वहां अपनी-अपनी जीविका से निर्वाह करें।।१६-२३।।

एवमाज्ञाप्य नृपतिर्यात्रायां च कृतक्षणः। नारदेन समागम्य दैवज्ञमिदमाह सः॥२४॥
साम्वत्सरमुहूर्त्तं मे निर्णीतं ते यथा पुरा। तावन्माङ्गलिकं वस्तुजातं सम्यगुपानय॥२५॥
पुरोहितमतेनाऽस्मिन्क्षणेयावद्विमृग्यते। तेनाऽऽदिष्टःस गणकः पुरोहितसहायवान्॥२६॥
आजहार समस्तानि माङ्गल्यानि द्विजोत्तमाः।
अत्रान्तरे स राजर्षिर्दिव्यसिंहासनस्थितः॥२७॥
यात्राभिषेकमाङ्गल्यं विप्रैःप्रागनुभावितम्।
श्रीसूक्तवह्निसूक्ताभ्यां सूक्तेनाऽब्दैवतेनच॥२८॥
पावमान्याब्धिसूक्तेनपृथङ्माङ्गल्यवर्द्धकैः। तीर्थाद्भिरौषधीभिश्चसर्वगन्धैःपृथक्पृथक्॥२९॥
अभिषिक्तस्ततो राजा चीनांशुकहृताम्भसा। रराज वपुषा दीप्तो निर्धूमःपावकोयथा॥३०॥
आमुक्तशुक्लवसनःस्वाचान्तःसपवित्रकः। नान्दीमुखान्पितृगणान्पूजयित्वायथाविधि॥३१॥
जयाराष्ट्रभृतो हुत्वा गणहोमांश्च यत्नतः। शङ्खध्वनिसुगन्धाढ्यं श्वेतवर्णं विधूमकम्॥३२॥
वह्निं प्रदक्षिणं चक्रे दक्षिणावर्त्तगार्चिषा। साक्षात्कारेण ददतं जयं राज्ञे जयार्थिने॥३३॥

राजा ने यह आज्ञा देकर यात्राकाल निश्चय करने के लिये नारद के साथ दैवज्ञ से कहा—"हे दैवज्ञ! पूर्व से जैसे मुहूर्त्त का आपने निर्णय किया था, उसी प्रकार से इस समय भी वैसा निर्णय करिये। सभी मांगलिक वस्तु का पुरोहितों के मतानुसार सम्यक् प्रकार से अभी आयोजन करिये।" उन गणक ज्योतिषी ने राजा की यह आज्ञा पाकर मांगलिक द्रव्यों का आयोजन किया। राजर्षि इन्द्रद्युम्न दिव्य सिंहासनासीन होकर मंगल वाचक द्विजोत्तमगण के मुख से निर्गत वाक्यों का श्रवण कर रहे थे। शुभवर्द्धक श्रीसूक्त, अग्निसूक्त, अब्दैवत् सूक्त, पावमानादि सूक्त द्वारा पृथक्-पृथक् रूप से तीर्थजल, औषधि, गन्धजल व प्रभृति से अभिषिक्त होकर चीनवसन (चीन देश का वस्त्र) से गात्रमार्जन करके वे धूमरहित अग्नि की तरह दीपित होने लगे। तदनन्तर उन्होंने श्वेतवस्त्र पहना। यथाविधि आचमन करके एवं पवित्र होकर यत्न के साथ वृद्धिश्राद्ध एवं गणदेवता आदि का होम सम्पन्न किया। वहां शंखध्वनि करके सुगन्धित शुभ्रवर्ण धूमशून्य दक्षिणावर्त्त अग्नि की प्रदक्षिणा सम्पन्न किया। उक्त लक्षण वाला वह्नि जयार्थी राजा को साक्षात् जयप्रदायक है।।२४-३३।।

नवग्रहमखान्ते च ग्रहकुम्भेनसेवितः। ग्रहाणांदौष्ट्यनाशायसौस्थ्यस्याऽपिविवृद्धये।।३४।।
ज्योतिःशास्त्रोदितैर्मन्त्रैर्दैवज्ञविधिचोदितैः। ततो माङ्गल्यनेपथ्यविधानमुपचक्रमे।।३५।।
चीनांशुकप्रावरणे विधाय कवचं निजम्। शिरोवेष्टनकं शुभ्रं सुरत्नमुकुटोज्ज्वलम्।।३६।।
सावतंसे श्रुतियुगे रत्नकुण्डलभूषिते। ग्रैवेयकं महार्घं तु हारं तरलभूषितम्।।३७।।
दधाराऽथ नृपश्रेष्ठः केयूराङ्गदमुद्रिकाः। मध्येन त्रिवलीसक्तं स्वर्णसूत्रं त्रिवृद्दधौ।।३८।।
हिरण्यकिङ्किणीयुक्तमुक्तातोरणमालिकम्। नानारत्नैःसुघटितांदधाराऽथसुमेखलाम्।।३९।।
अनर्घ्ये पादकटके पादयोः संन्यवेशत्। सम्मुखादर्शिताऽऽदर्शेददृशे स्वं विभूषितम्।।४०।।
मङ्गलारोपणार्थाय हैमपीठमुपाविशत्। प्राङ्मुखः श्रीधरं देवं संस्मरन्मधुसूदनम्।।४१।।
मङ्गलायतनं विष्णुं सर्वमाङ्गल्यकारणम्। स्मरणादस्य नश्यन्ति पातकानिबहून्यपि।।४२।।

तदनन्तर राजा ने विपरीत ग्रहों की विपरीतता की शान्ति हेतु तथा उत्तम ग्रह के अनुग्रहार्थ नवग्रह याग के पश्चात् ग्रह कुंभ के जल से अभिषेक कराया। तदनन्तर दैवज्ञ द्वारा ज्योतिष शास्त्रोक्त विधान द्वारा मन्त्रपाठ के साथ यात्राकालीन मंगलकृत्य सम्पन्न किया। चीन के रेशम से अपने कवच (वक्ष) को आच्छादित करके मस्तक पर शुभ्र उष्णीष तथा उसके ऊपर मनोहर रत्नमय मुकुट धारण किया। तदनन्तर महाराज इन्द्रद्युम्न ने दोनों बाहु पर केयूर, अंगद तथा अंगूठी और मध्यदेश में त्रिवली रेखा ऊपर तिहरा स्वर्णसूत्र धारण किया। कमर में विविध मनोहर रत्नमय करधनी धारण किया। दोनों पैर में महामूल्य पादकटक धारण किया। इस प्रकार अलंकृत होकर सामने रखे दर्पण में उसमें अपने सज्जित शरीर को देखा। वे यात्रा करने के लिये पूर्वमुख होकर सुवर्ण पीठ पर बैठे तथा महादैत्य नाशक देव श्रीधर का स्मरण किया। विष्णु ही मंगल के आधार, समस्त मंगल के एकमात्र कारण हैं। उनका स्मरण करने से अनेक पातकों का नाश हो जाता है।।३४-४२।।

सौमन्यस्यामथो मालामार्त्तवीं गन्धवर्णिताम्।
दधार प्रथमं राजा मन्त्रितां स्वपुरोधसा।।४३।।

मृदं दीपं फलं दूर्वादधिगोरोचनांततः। मन्त्राभिमन्त्रितान्सर्वान्सिद्धार्थैरभिरक्षितः।।४४।।

आत्मानं ददृशे राजा सौरभेये हविष्यथ। मुकुरे मन्त्रिते पश्चात्स्वं दृष्ट्वा नृपकेसरी॥४५॥

पहले उस ऋतु में उत्पन्न सुगन्धित पुष्पमाला को पुरोहित से मन्त्रपूत कराकर धारण करना चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्रपूत मुद्रिका, दीप, दूर्वा, फल, दधि तथा गोरोचन आदि धारण किया तथा मन्त्रित सरसों से स्वयं का रक्षण किया। तदनन्तर गोघृत में अपना प्रतिबिम्ब देखकर मंत्रित दर्पण में पुनः मुख को देखा।।४३-४५।।

बह्वृचैः शान्तिघोषेणसमुदीर्णशुभायतिः। याजुष्कैःपथिसूक्तेनव्रजन्मार्गेऽभिरक्षितः॥४६॥
पौराणैर्मङ्गलैर्वाक्यैः कृतवीर्यधृतिर्नृपः। मागधैः स्तुतिपाठेन प्रादुर्भूतपराक्रमः॥४७॥
पारिजातहरं सत्यासहितं गरुडध्वजम्। ध्यायन्हृत्पङ्कजे राजा दक्षिणं पादमुद्दधौ॥४८॥
प्रदक्षिणीकृत्य मुनिं नारदं पुरतः स्थितम्। मध्यद्वारमुपागच्छेद्वेत्रपाणिभिरावृतः॥४९॥
आदिष्टपदमार्गोऽसावग्निहोत्रपुरःसरः। तत्राऽपश्यत्स्थितान्विप्रानात्मनोदक्षिणेनवै॥५०॥

मंगल पढ़ने वालों ने पुराणोक्त मंगलजनक मन्त्रों का पाठ करके महाराज के बल-वीर्य का वर्द्धन किया। स्तुति पाठकों ने स्वस्तिपाठ करके उनके पराक्रमों को उत्तेजित किया। तब वे प्रकृतिगण के अत्युच्च शान्तिशब्द द्वारा अभिलषित विषय हेतु भविष्य के लिये मंगल संभावना करते हुये आयुष्कर मन्त्र द्वारा तथा पथिसूक्त अर्थात् जाने वाले विघ्न विनाशक मन्त्र से अभिरक्षित हुये। तब लक्ष्मी के साथ माधव का ध्यान अपने हृदयकमल में करते-करते दाहिना पैर यात्रार्थ बढ़ाया।।४६-५०।।

माङ्गल्यसूक्तं पठतः शुभ्राभान्पाण्डुरांऽशुकान्।
लाजाः सपुष्पा राजाऽग्रे क्षिपतः शंसतः शुभम्॥५१॥
वामपार्श्वस्थिता वेश्याश्चामरव्यग्रपाणयः। शुभ्रालङ्कारवसनाः स्मेरपद्माननाः शुभाः॥५२॥
ब्राह्मणान्पूजयामास भक्तिनम्रोद्विजोत्तमाः !।
वस्त्राऽलङ्कारमाल्यैश्च सुगन्धैरनुलेपनैः॥५३॥
तोषयामास तान्विप्रान्भगवद्बुद्धिभावितान्।
वेश्याभ्यो मागधेभ्यश्च दीनानाथेभ्य एव च॥५४॥
राजानुमत्या सचिवो यथार्हं प्रददौ धनम्। श्वेतान्पारावतान्हंसाञ्छ्वेताश्वं श्वेतकुञ्जरम्॥५५॥
सचूतपल्लवं श्वेतमालाफलविभूषितम्। कदलीकाण्डसन्नद्धतोटणाधःस्थितं नृपः॥५६॥
पूर्णकुम्भं स पश्यन्वै मङ्गलानि बहून्यपि। सितातपत्रेण शिरःप्रदेशे वारितातपः॥५७॥

नारद ऋषि ने आगे-आगे कदम बढ़ाया। राजा हाथ में बेंत लिये परिचारकों द्वारा घिरे थे तथा अब उन्होंने महर्षि नारद की प्रदक्षिणा किया तथा मध्यद्वार की ओर जाने लगे। पूर्वभाग में अग्निहोत्र लेकर वे परिचारक द्वारा प्रदर्शित पथ पर गमन करने लगे। जाते-जाते राजा ने देखा कि उनके दाहिनी ओर श्वेतवस्त्रधारी श्वेतमूर्त्ति ब्राह्मणगण आगे-आगे पुष्प राशि विखेरते जा रहे हैं तथा मंगलसूक्त वाचन एवं आशीर्वाद प्रदान करते-करते आगे बढ़ रहे हैं। वामपार्श्व में वाराङ्गनायें शुभ्र वेश धारण किये हुये सहास्यमुद्रा में व्यस्ततापूर्वक चावर झलते-झलते चल रही हैं। हे द्विजगण! चलते-चलते राजा ने ब्राह्मणगण को भगवत् बुद्धि से उनकी पूजा

वस्त्रालंकार, माला से करके उनको प्रसन्न किया। उन्होंने वाराङ्गनाओं, मागधों तथा दीन एवं अनाथ को यथायोग्य धन अपने मन्त्रियों को आदेश देकर दिलाया। श्वेतवर्ण कबूतर, हंस, आम्रपल्लव, मालादि से भूषित श्वेताश्व, श्वेत हाथी तथा कदली स्तम्भ से भूषित तोरण तथा बहिर्द्वार के अधोभाग में स्थापित पूर्णकुंभ तथा नाना मंगल द्रव्य का दर्शन करते हुये राजा इन्द्रद्युम्न अग्रसर होने लगे। राजा के सेवकों ने उनको धूप से बचाने के लिये उनके शिर पर छत्र धारण किया था।।५१-५७।।

युगपत्यूर्यमाणैस्तुकम्बुभिःशतसङ्ख्यकैः। सम्भिश्रितानिशुश्रावववादित्राणिबहूनिसः।।५८।।
तथा मङ्गलगीतानि जयशब्दांश्च भूपतिः। ततो विवेश प्रासादं नृसिंहमवलोकितुम्।।५९।।
यं स्मृत्वाजायतेमर्त्यःसर्वकल्याणभाजनम्। दृष्ट्वासदूरान्नृहरिंदिव्यसिंहासनस्थितम्।।६०।।
प्रणम्य साष्टावयवंसन्तोष्योपनिषद्गिरा। दक्षपार्श्वस्थितांदुर्गांसर्वदुर्गतिमोचिनीम्।।६१।।
ववन्दे चरणाभ्याशे पश्यन्तीं कृपया नृपः। ततः पुरोधा देवाङ्गादवरोप्य शुभांस्त्रजम्।।६२।।
आसञ्जयामास गले सुगन्धेनाऽन्वलेपयत्। नीराजयामास राज्ञः शिरश्चावेष्टयन्मुदा।।६३।।

एक ही काल में सैकड़ों शंखध्वनि होने लगी। बाहरी द्वार पर उपस्थित होकर एक ही साथ अनेक प्रकार के वाद्य-मंगलगीत जय शब्द-शब्द सुनकर राजा ने नृसिंह देव के मन्दिर में प्रवेश किया जो स्मरण मात्र से मानव को समस्त कल्याण प्रदान कर देते हैं। राजा ने दूर से सिंहासनासीन नृसिंह देव को देखकर उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया तथा उनको प्रणाम करके वेदवाक्य से स्तव करने लगे। नृसिंह देव के दक्षिण पार्श्व में निखिल दुर्गतिहारिणी भगवती दुर्गा देवी की प्रतिमूर्ति थी जो दर्शनार्थी लोगों की ओर कृपादृष्टि से देखते हुये स्थित थी। तब पुरोहित को महाराज ने उनके चरणों के पास जाकर प्रणाम किया। तदनन्तर पुरोहित ने भगवान् के अंग से मनोहर माला उतार कर महाराज के गले में पहनाकर उनके अंग पर सुगन्धलेपन कर दिया तथा परमानन्द पूर्वक महाराज का शिर आवेष्टित करके नीराजन किया।।५८-६३।।

पुनः प्रदक्षिणीकृत्य तौ देवौ नृपसत्तमः। शिबिकायां समारोप्य प्रतस्थेचपुरस्कृतौ।
प्रादुर्भूय बहिर्द्वारे रथं दृष्ट्वा सुसज्जितम्। तुरङ्गैर्वातजवैर्दशभिः परयोजितम्।।६४।।
प्रदक्षिणीकृत्य नृपो नारदेन समाविशत्। ढक्कामृदङ्गनिःसाणभेरीपणवगोमुखाः।।६५।।
मधुरीचर्चरीशङ्खा अवाद्यन्त सहस्त्रशः। स्यन्दनाः कोटिशस्तत्र नृपाणामनुजीविनाम्।।६६।।
चक्राशिरे श्रेणिकृता इन्द्रद्युम्नरथाभितः। नानाप्रहरणोपेताः पताकाभिरलङ्कृताः।।६७।।
ध्वजोच्छ्रिताः स्वर्णरौप्यैः किङ्किणीजालदर्पणैः।
यन्त्रैर्नानाविधैर्युक्ता गम्भीरस्निग्धनिःस्वनाः।।६८।।
पदातीनां कुञ्जराणांहयानां वातरंहसाम्। पत्तिसंस्फोटनैर्हस्तिबृंहितैर्हयहेषितैः।।६९।।
बहुलै रथ निर्घोषैर्मिश्रितावाद्यनिःस्वनाः। युगान्तार्णवनिस्वानतुल्याः शुश्रुविरे जनैः।।७०।।
तस्मिन्क्षणे पौरजनाः स्वस्वसम्भारसज्जिताः। अश्वकै रासभैरुष्ट्रैर्वाहकैः प्रतितस्थिरे।।७१।।
आन्दोलिकाश्च पल्यङ्काःकोटिशश्चतुरङ्गकाः। श्रेणीभूताश्चदृश्यन्तेराष्ट्रप्रस्थानसङ्कुले।।७२।।

राजा ने नृसिंहदेव तथा दुर्गादेवी की पुनः-पुनः प्रदक्षिणा करके उनको पालकी में रखा तथा उनको आगे करके चलने लगे। क्रमशः पुरी के बाहर में पहुंच कर उन्होंने सज्जित रथ देखा। उसमें वायु के समान गति वाले दस अश्व योजित थे। राजा ने उसकी प्रदक्षिणा किया तथा रथ पर बैठ गये। उस समय ढक्का, मृदंग, भेरी, पणव, गोमुख, मधुरी, चर्चरी, शंख प्रभृति हजारों वाद्य बजाये जाने लगे। इन्द्रद्युम्न के रथ के चारों ओर उनके अधीनस्थ राजाओं की प्रचुर रथ श्रेणी शोभायमान हो रही थी। ये सभी रथ विविध अस्त्र-शस्त्र, स्वर्णरौप्य की किंकिणी तथा दर्पण से युक्त ध्वजा पताकाओं से शोभित थे। विविध प्रकार के यन्त्रों से युक्त उन रथों का घर्घर शब्द, हाथी के चिग्घाड़ने की ध्वनि, अश्वों की हिनहिनाहट, विविध वाद्यों की ध्वनि सम्मिलित होकर प्रलयकाल में एकार्णव के गंभीर शब्द ऐसी प्रतीत हो रही थी। उस समय पुरवासीगण अपनी-अपनी साज-सज्जा से सुशोभित होकर आये। कोई अश्व पर, कोई गर्दभ पर, कोई ऊंट पर, कोई अन्य-अन्य प्रकार के वाहनों पर बैठकर आते जा रहे थे। वह मार्ग इन्द्रद्युम्न राजा की समस्त जनता से समाकीर्ण हो गया।।६४-७२।।

राजावरोधाःशतशो वृतावर्षवरैस्ततः। नानायानसमारूढाःपालिताश्चाऽधिकारिभिः॥७३॥
महासैन्यैश्चसंरुद्धा राजागाराद्विनिर्ययुः। यज्वानश्चाग्निहोत्राणिशम्यारूढानिवृन्दशः॥७४॥
शकटेषु समारोप्य सपत्नीकाः प्रतस्थिरे। तथा पुस्तकभारांश्चदेवतार्चाकरण्डकान्॥७५॥
इध्मबर्हिकुशान्पात्रीः सम्भारान्होमसम्भृतान्। वाहयामासुरन्यैश्चशकटावाहकद्विजैः॥७६॥
सामन्तामात्यभृत्याश्चपुरोधाऋत्विजश्च ये। राज्ञः प्रकृतदासाश्चउपचारनियोगिनः॥७७॥

अश्व, नवयान, खाट, पैदल, भार ढोने वाले लाईन बनाकर चलने लगे। राज्य की सैकड़ों-सैकड़ों पुरनारियां नाना यानों पर आरूढ़ होकर परिवार जन से घिरकर तथा रक्षकों से रक्षित होकर चलने लगीं। याज्ञिकगण छकड़े पर अग्निहोत्र उपकरण रखकर प्रधान-प्रधान सैनिकों से रक्षित होकर राजभवन से निकले तथा वे दल की दल प्रस्थान करने लगे। ब्राह्मण तथा अन्य उच्च जातीय व्यक्ति कोई पुस्तक, कोई देवपूजा उपकरण पात्र, कोई होमीय काष्ठ, कोई होम का घृत, कोई कुश, कोई होम के अन्याय द्रव्य लेकर राजा के साथ चल रहे थे। समस्त राजा, अमात्य, भृत्यगण, पुरोहित, ऋत्विक् तथा राजा के अन्य सेवक सब प्रकार की सामग्री लेकर साथ-साथ चल रहे थे।।७३-७७।।

सर्वापचारसम्भारानासतेऽन्ये प्रयायिनः। कोषागारनियुक्ताश्च कोषजातमशेषतः॥७८॥
समादाय ययुस्तूर्णं राज्ञोऽवसरसेवकाः। मालाकारादयः सर्वे पण्यजीवादयस्तथा॥७९॥
स्वंस्वं पण्यं समादाय ययूराजनियोगिनः। श्रेष्ठश्रेण्यादयः सर्वे पुरखर्वटवासिभिः॥८०॥
समं विनिर्ययुः स्वस्वव्यवहारविलासकाः। इन्द्रद्युम्नस्यनृपतेर्यात्रासमयवादितान्॥८१॥
भेरीमृदङ्गपटहान्व्यश्नुवानान्दिगन्तरम्। श्रुत्वा जनपदावासिजनाः सर्वेससम्भ्रमाः॥८२॥
राजाज्ञांमूर्ध्निसम्मान्यनिर्गतानीलपर्वतम्। यस्ययश्चऋजुःपन्थाःसचतेनैवजग्मिवान्॥८३॥
न राजमार्गप्रजवाद्व्यमृग्यन्तनृपाज्ञया। नीलादिप्राप्तिमार्गेणदुर्गमेणाऽपि ते ययुः॥८४॥

कोषाध्यक्षगण, कोषागार के साथ चल पड़े। राजा के सेवक भी सेवा द्रव्य को हाथ में लेकर चल रहे थे। माली प्रभृति पण्यजीवीगण अपने-अपने पण्यद्रव्य लेकर राजा के साथ चल रहे थे। नगरवासीगण जो उच्च

श्रेणी वाले थे, ग्राम तथा खर्वटवासी सब जाति के लोग साथ ही साथ अपनी-अपनी वेशभूषा से भूषित होकर राजा के साथ यात्रा कर रहे थे। राजा इन्द्रद्युम्न के यात्रा के समय भेरी-पटह प्रभृति वाद्य बजने लगे। तब उस वाद्य शब्द से चारों दिशायें भर गयीं। जनपद निवासी लोग यह वाद्यध्वनि सुनकर महाराज के आदेश को शिरोधार्य करके नीलपर्वत गमनार्थ बहिर्गत हो गये। जिसके लिये जो मार्ग आसान था वह उसी पथ से जाने लगा। ग्रामवासी तथा जनपदवासीगण ने राजा के आदेशानुसार जनसंकुल राजपथ से जाकर भीड़ नहीं किया। वे सभी नीलाचल पहुंचने के लिये दुर्गम मार्ग से चल पड़े।।७८-८४।।

इन्द्रद्युम्नोऽपिराजेन्द्रः समस्तपुरवासिभिः। चतुरङ्गानीकिनीभिः सहर्षाभिश्चवेष्टितः॥८५॥
श्रेणीभूतक्षितिपतिस्यन्दनावलिमध्यगे। रथे रराज राजर्षिः शक्रतुल्यपरिच्छदः॥८६॥
पुरस्त्रीमङ्गलाचारगीतलाजप्रसूनकैः। मङ्गलाचारशोभाभिः प्रसन्नशुभचेतनः॥८७॥
वातरंहैर्हयैर्युक्तरथेन प्रययौ मुदा। अनुकूलानिलप्रोद्यद्घनच्छायसुशीतले॥८८॥
नीरजस्के महीपृष्ठे समीकृतचतुष्पथे। देशाऽध्वनीनैः पुरुषैः काननान्तरवेदिभिः॥८९॥
आदिष्टवर्त्मा नृपतिर्मार्गस्योभयपार्श्वगान्।
देशानरण्यानि मुहुः पश्यन्नाऽऽनन्दलोचनः॥९०॥
सीमामुत्कलदेशस्यविभजन्तींवनान्तरे। मार्गस्थांचर्चिकाम्प्रापचर्चितां मुण्डमालया॥९१॥
अवतीर्य रथाद्राजाविनतोनारदाऽऽज्ञया। साष्टाङ्गपातं तां नत्वा तुष्टावाऽऽनन्दचेतनः॥९२॥

महाराज इन्द्रद्युम्न समस्त पुरवासी तथा आनन्दोत्फुल्ल चतुरंगिणी सेना से घिर कर चतुर्दिक् श्रेणीवद्ध होकर अवस्थित अपरापर राजवर्ग के रथों के बीच में मनोहर राजपथ में शोभित हो रहे थे। वे इस उत्तम परिवेश में इन्द्र के समान शोभायमान होने लगे। इस काल में पुरस्त्रीगण मंगलाचरणयुक्त गायन करते-करते लावा तथा पुष्पवर्षा करने लगी। स्वयं राजा इन सब मंगलाचार से प्रफुल्ल चित्त होकर मन ही मन शुभ संकल्पना करके द्रुत गति से घोड़े से युक्त रथ पर बैठकर हर्षपूर्वक आगे बढ़े। जो सभी देशों का मार्ग जानते थे तथा कहां वन है, कहां किस पथ से जाना होगा—यह जानने वाले थे, इस प्रकार के सभी जानकार लोग राजा को मार्ग दिखलाते चलने लगे। महाराज छायायुक्त सुशीतल, धूलिरहित समतल प्रशस्त पथ से चलने लगे। उनके गमनकाल में अनुकूल वायु बहने लगी। वे मार्ग में नाना देश तथा विविध वनों को देखते हुये अत्यन्त आनंदित हो गये। कुछ दूर जाकर उन्होंने वन में देखा कि उत्कल देश की सीमा पर मुण्डमाला से भूषिता चण्डिका देवी मार्ग पर स्थित हैं। वहां नारद की आज्ञा लेकर राजा ने रथ से उतर कर आनन्दपूर्वक देवी को विनीत भाव से प्रणाम किया तथा स्तव करने लगे।।८५-९२।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

नमस्ते त्रिदशेशानिसर्वापद्विनिवारिणि। ब्रह्मविष्णुशिवाद्याभिः कल्पनाभिरुदीरिते॥९३॥
कारणं जगतामाद्ये प्रसीद परमेश्वरि !। त्वया विना जगन्नैतत्क्षणमुत्सहते शिवे॥९४॥
सिद्धयःसर्वकार्याणांमङ्गलानिचशाश्वते। त्वत्पादाराधनफलंमर्त्यलोके हि नाऽन्यथा॥९५॥
चराचरपतेर्विष्णोः शक्तिस्त्वं परमेश्वरि !। यया सृजत्यवति च जगत्संहरते विभुः॥९६॥

चराचरगुरुं देवं नीलाचलनिवासिनम्। अनुगृह्णीष्व मां देवि यथा पश्ये स्वचक्षुषा॥९७॥

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—"हे त्रिदशेश्वरी! हे परमेश्वरी! विघ्नराशि विनाशिनी! आपको प्रणाम! आपके द्वारा कल्पित ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर प्रभृति देवता आपकी ही स्तुति करते हैं। आप ही जगत् की कारण तथा आद्याशक्ति हैं। अतएव मुझ पर प्रसन्न हो जायें। हे परमेशानी! ब्रह्माण्डपति श्रीमान् विष्णु जिस शक्ति से इस जगत् का सृजन-पालन-संहार करते हैं, वह शक्ति आप ही हैं। हे शिव! आपके बिना यह जगत् एक क्षण भी स्थित नहीं रह सकता। हे शाश्वतरूपा! मर्त्यलोक में सर्वकार्य सिद्धि तथा सभी प्रकार का मंगल आपके चरणकमल की आराधना का ही परिणाम है। आपके चरणकमल की आराधना के बिना कोई भी सर्वकार्यसिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। हे देवी! आप यह अनुग्रह करिये, जिससे मैं चराचरगुरु देवदेव को अपने नेत्रों से देख सकूं।"।।९३-९७।।

जैमिनिरुवाच

नारदस्योपदेशेन स्तुत्वा देवीं नराधिपः। आरुरोह रथं तूर्णं विवस्वानुदयं यथा॥९८॥

ततः प्रतस्थे तरसा स राजा श्रान्तवाहनः। चित्रोत्पलमहानद्यास्तीरे विरलकानने॥९९॥

धातुकन्दरविख्याते न्यवेशयदनीकिनीम्। अपराह्णक्रियां कर्तुं यावदाह्निकमादृतः॥१००॥

जलावतरणे नद्यां विवेश स्वपुरोधसा। पूर्वं संशोधिते प्राज्ञैर्विषकण्टकवर्जिते॥१०१॥

स्नात्वा सन्तर्प्य देवांश्च पितॄनथ विंशाम्पतिः।
सम्पूज्य विधिवद्विष्णुं नृपतीन्प्रकृतीस्ततः॥१०२॥

सम्मानयामास नृपः सन्निवेशासनादिभिः। नारदेन सह श्रीमान्प्रविश्यान्तःपुरन्ततः॥१०३॥

सुधारसानिभोज्यानिबुभुजेप्रीतमानसः। पश्चिमाद्रिंततोयाते विवस्वतिविशाम्पतिः॥१०४॥

सायंविधिंसमाप्याशुशीतभानौ समुद्यते। अनुजीविविशांनाथःसभामध्यउपाविशत्॥१०५॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—वे राजा भी नारद के उपदेशानुसार देवी का स्तव करके अविलम्ब रथ पर बैठ गये। तदनन्तर रथ द्वारा वहां से प्रस्थान करके धातु कन्दर नामक किसी अरण्य के मध्य में स्थित चित्रोपला महानदी के तट पर पहुंचे। वेग से चलने के कारण वाहन तथा सैन्य समूह के साथ थके ठहर गये। राजा ने पुरोहितगण के साथ अपराह्न कृत्य सम्पन्न किया। वे स्वयं भी यत्नपूर्वक नदी के घाट पर आये। पूर्व में इस महानदी के किनारे उगे विषैले-काटों तथा जलचर हिंस्र जन्तु को किसी विचक्षण व्यक्ति ने दूर किया था। वहां राजा ने उतर कर स्नान-पितृतर्पण-देवपूजा तथा यथाविधि विष्णु की अर्चना किया। तदनन्तर राजा ने तथा अनुचरों ने सभी राजा एवं समस्त लोगों को यथायोग्य आसन पर सम्मान के साथ बैठने के लिये कहा। इस अवसर पर राजा इन्द्रद्युम्न ऋषि नारद के साथ अन्तःपुर में गये तथा प्रीतिपूर्वक सुधा के समान भोज्य द्रव्यों का आहार किया। उस समय भगवान् सूर्य पश्चिम गिरिशिखर पर आरोहण करके अस्तगामी हो रहे थे तथा निशापति उदित हो रहे थे। यह देखकर राजा ने सायंकृत्य का समापन किया तथा अनुगत लोगों से परिवेष्ठित होकर सभा में बैठ गये।।९८-१०५।।

तत्र तस्मिन्नरपतिर्बभौसाम्राज्यलक्षणः। सम्पूर्णमण्डलश्चन्द्रो ज्योतिषामिवशारदः॥१०६॥

कवयः कवयाञ्चक्रुः कीर्तिं तस्य सुधामलाम्।
जगुर्गाथां सुग्रथितां गायकाः कलसुस्वराः॥१०७॥
रूपयौवनलावण्यगर्विता गणिकास्ततः। लयतानाङ्गहारैश्च सुशुद्धैर्ननृतु पुरः॥१०८॥
मागधास्तुष्टुवुश्चैनं लोकोत्तरशुभाकृतिम्। गद्यपद्यप्रबन्धाद्यैश्चित्रैः पदकदम्बकैः॥१०९॥
ततः स राजा प्रानर्च वैष्णवाग्र्यान्सभासदः। सुसंमतैर्गन्धमाल्यताम्बूलैरतिशोभनैः॥११०॥
नृपांश्च शतशस्तत्र सुखासीनान्नृपाज्ञया। सम्भावयामास यथायोग्यं नृपतिभाजनैः॥१११॥
अथाऽपृच्छन्मुनिवरं नारदं भगवत्प्रियम्। सिंहासनार्हे स्वासीनं बहुमानपुरःसरम्।
भगवच्चरितं श्रोतुं सर्वपापापनोदनम्॥११२॥

सम्राट राजा इन्द्रद्युम्न आसन पर बैठकर शरत्कालीन पूर्णचन्द्र के समान शोभायमान हो रहे थे। कविगण सुधावत् उनकी निर्मल कीर्त्ति का गायन करने लगे। गायकगण उस समय सुन्दर स्वर में उनकी कीर्त्तिगाथा का वर्णन करते जा रहे थे। रूप-यौवनमत्ता सुन्दरीगण महाराज के सामने विभिन्न अंग-भंगी के साथ ताल-लययुक्त नृत्य करने लगीं। स्तुति-पाठकगण गद्यपद्यमय मनोहर पदावली की रचना करके उसके द्वारा महाराज के अलौकिक कीर्त्ति-कलाप का गायन कर रहे थे। तदनन्तर राजा ने उस सभा में आसीन होकर प्रधान-प्रधान वैष्णवों को मनोहर गन्ध, माला तथा ताम्बूल प्रदान करके उनकी अभ्यर्थना किया। उनकी आज्ञा लेकर इन्द्रद्युम्न ने वहां समासीन राजाओं की भी यथायोग्य अभ्यर्थना तथा उनका स्वागत किया। सर्वपापनाशक भगवत् चरित्र सुनने की इच्छा होने पर राजा ने सिंहासन पर उच्चासनासीन मुनि प्रवर नारद का प्रभूत सम्मान करके पूछा।।१०६-११२।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

भगवन्वेदवेदाङ्गनिधान ! भगवत्प्रिय। त्वमेव चरितं विष्णोर्जानासि ज्ञानचक्षुषा॥११३॥
हरेश्चारित्रसुधया दृढपङ्कमलीमसम्। क्षालयाऽन्तर्मम मुने यद्यनुक्रोशको मयि॥११४॥
इत्थमालापसंमिश्रे मुनिराज्ञोः कथान्तरे। प्रविवेश नृपं द्वाःस्थ उत्कलेशप्रसेवकः॥११५॥
उवाच देवद्वारान्ते तिष्ठत्युत्कलभूमिपः। सोपायनो देवपादपद्मं द्रष्टुं समौलिकः॥११६॥

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—"हे भगवान्! वेदवेदांगनिधान, भगवत्प्रिय! आपने अपने ज्ञानमय नेत्र से विष्णुचरित का अवगाहन किया है। आप मुझ पर कृपा करके सुधामय हरिचरित वर्णन करके मेरे पापपंक से कलुषित हो गये अन्तःकरण को निर्मल करिये।" जब राजा तथा देवर्षि नारद के बीच यह आलाप हो ही रहा था, तभी द्वारपाल ने राजा के पास आकर संवाद दिया कि "हे देव! प्राचीन मन्त्रियों के साथ उत्कल देश के अधिपति महाराज के चरणकमल के दर्शनार्थ खड़े हैं।"।।११३-११६।।

विज्ञापितःसराजर्षिर्द्वाःस्थेनैवंससम्भ्रभः। उवाचतंहिभो विप्राःश्रुत्वातद्देशमण्डलम्॥११७॥
क्षेत्रं श्रीपुरुषेशस्य तद्वार्त्ताकर्णनोत्सुकः। प्रवेशया विलम्बं तं श्रीमदोढ्रमहीपतिम्॥११८॥
स हि नीलगिरौ विष्णुं समाराध्य सुनिर्मलः। यस्य सन्दर्शनात्सर्वे भविष्यामो हतांहसः॥११९॥

श्रुत्वा तद्वचनं सद्यो द्वारपालो महीपतिम्। प्रवेशयामास सभामिन्द्रद्युम्नस्यभूपतेः॥१२०॥

विवेशोद्रूपतिस्तूर्णंसचिवैर्वैष्णवैःसह। ननामाऽङ्घ्रियुगंवन्द्यमिन्द्रद्युम्नस्यसादरम्॥१२१॥

तमुत्थाप्य च राजेन्द्रं पुरुस्कृत्य स वैष्णवम्।
स्वाऽऽसनान्ते निवेश्याऽथ प्रोचे सप्रश्रयम्वचः॥१२२॥

हे द्विजगण! उन राजा इन्द्रद्युम्न ने द्वारपाल के मुख से यह सुना तथा "उत्कल देश" शब्द को सुनते ही राजा ने तत्काल द्वारपाल से कहा कि यह श्रीपुरुषोत्तम देव का क्षेत्र है। मैं इसके सम्बन्ध में जानने के लिये अत्यन्त उत्सुक हूं। हे धीमान्! तुम उन उत्कलराज को अविलम्ब यहां ले आओ। उन्होंने नीलगिरि शिखर पर विष्णु की आराधना द्वारा निश्चित रूप से निष्पाप स्थिति प्राप्त की है। उनका दर्शन पाकर हम सब पापशून्य हो जायेंगे।" द्वारपाल ने यह आदेश सुना तथा उत्कलराज को सभा में ले आया। उत्कलाधिपति ने सभा में प्रवेश करते ही उस सभा में अपने सचिवों के साथ वैष्णवों तथा इन्द्रद्युम्न को सादर प्रणाम किया। राजा इन्द्रद्युम्न ने अपने चरणों पर झुके उत्कलपति को उठाया तथा समागत वैष्णवगण की यथायोग्य पूजा करने के पश्चात् उत्कलपति को अपने आसन के पार्श्व में बैठाया। राजा इन्द्रद्युम्न उनसे कहने लगे।।११७-१२२।।

राजन्सर्वत्र कुशली भवानोद्रूपते ! किल। अपि देवो विजयते नीलाद्रिशिखरालयः॥१२३॥

कच्चित्ते निर्मलाबुद्धिर्भगवत्पादपद्मयोः। उपैति समचित्तस्य सर्वभूतेषु ते हरौ॥१२४॥

ओद्राधीशस्तदा तस्य वचः श्रुत्वा कृताञ्जलिः।
उवाच प्रश्रितं वाक्यं हर्षविस्मयचञ्चुकः॥१२५॥

राजा इन्द्रद्युम्न कहते हैं—"हे राजन! आपकी तो कुशल सर्वत्र निश्चित है। नीलाचल शिखरवासी जगन्नाथ जययुक्त हैं न! आप क्या सभी प्राणीगण को विष्णु भाव से जानते हैं! आपकी बुद्धि निर्मल होकर भगवान् के चरण कमलों में निरत है न!" उत्कलाधिपति राजा इन्द्रद्युम्न के इस वाक्य को सुनकर हर्ष तथा विस्मय से चंचल होकर अंजलिबद्ध स्थित हो गये तथा विनयपूर्वक राजा से कहने लगे।।१२३-१२५।।

स्वामिन्सर्वत्र कुशलं त्वत्पादानुग्रहान्मम। तूर्ये तपत्यन्धकारः कथम्वाप्रभविष्यति॥१२६॥

निसर्गगुणसंसर्गवशीकृतमहीभुजा। त्वया सनाथा पृथिवी जिष्णुनेवाऽमरावती॥१२७॥

सदा धर्मश्चतुष्पादस्त्वयि शासति मेदिनीम्। निषेधाचरणं राजन्केवलं श्रूयते श्रुतौ॥१२८॥

राजनीतिषुयेराज्ञांगुणाःसमुदितास्त्वयि। त एकैकंक्षितिभुजांगतादार्ष्टान्तिकंविभो॥१२९॥

एतावदपि साम्राज्यं दुर्लभं ते नृपोत्तम। अष्टादशद्वीपवतीक्षितिरेकगृहोपमा॥१३०॥

यदित्वांनाऽसृजद्ब्रह्मावत्सलंसर्वजन्तुषु। कथंशोकविहीनाःस्युर्मृतेष्वात्मजबन्धुषु॥१३१॥

साधारणा नृपतयो विष्णोरंशा इति श्रुतिः।
भवान्साक्षात्तु भगवान्कोऽन्य ईदृग्गुणाकरः॥१३२॥

उत्कलपति कहते हैं—हे स्वामी! आपके चरणकमल के अनुग्रह से मेरे लिये सर्वत्र कुशल है। जब सूर्यदेव अपनी किरणें विकीर्ण कर देते हैं, तब अन्धकार का कहां प्रभाव रहेगा? जैसे इन्द्र के सान्निध्य में

अमरावती सनाथ है, वैसे ही आपके सान्निध्य में पृथिवी सनाथ है। आपकी असामान्य नैसर्गिक गुणराशि द्वारा समस्त राजवर्ग आपके वश में हैं। आपके शासनकाल में इस पृथिवी पर धर्म चतुष्पाद रहता है। आपके प्रभाव के कारण सभी निषिद्धाचरणों का केवल नाम ही रह गया है। हे प्रभो! राजनीतिशास्त्र में राजा में जो गुण होने की बातें कहीं गयी है, वे समस्त गुण आपमें राजाओं के आदर्श रूप से स्थित हैं। हे महाराज! यह साम्राज्य तो आपके लिये अतीव तुच्छ है। अष्टादश द्वीपवती पृथिवी आपके लिये मात्र एक घर की तरह है। आप तो सैकड़ों पृथिवी के राजत्व को पा सकते हैं। यदि ब्रह्मा सर्वप्राणिवत्सल आपकी तरह व्यक्ति की सृष्टि नहीं करते तब जनगण अपने आत्मज बंधु की मृत्यु पर कैसे शोकविहीन हो पाते! हे महाराज! यह प्रवाद सुना जाता है कि साधारण नृपति भी विष्णु का अंश है। अतः आप जैसे असाधारण नृपति तो साक्षात् भगवान् हैं, इसमें क्या संदेह! आप जैसा सर्वगुण सम्पन्न राजा और कौन है?।।१२६-१३२।।

दक्षिणोदधितीरेऽस्तिनीलाद्रिःकाननावृतः। नतत्रलोकसञ्चारस्तत्रास्तेसाऽपिदेवता।।१३३।।
वात्यया वालुकाकीर्णःसाम्प्रतंश्रूयतेतु सः। तद्वशान्ममराज्येऽपिदुर्भिक्षमरकादिकम्।।१३४।।
त्वय्यागते तु सर्वस्मिन्कुशलं मे भविष्यति।
इत्युक्तवन्तं नृपतिरुत्कलेशं द्विजोत्तमाः!।।१३५।।
विसर्जयामास तदा संनिवेशायमानयन्। नारदम्प्रेक्ष्यनिर्विण्णः किमेतदितिभोमुने !।।१३६।।
यदर्थं मे श्रमस्तञ्च विफलं हि वितकये। इत्युक्तवन्तं तं प्राह नारदस्तुत्रिकालवित्।।१३७।।

हे नृप प्रवर! नीलपर्वत दक्षिणसमुद्र के तटभाग पर स्थित है तथा वह वन से भरा हुआ है। वहां पर लोगों में आने-जाने की शक्ति नहीं है। यहां तक कि देवगण भी सर्वदा उस स्थल पर सदा आने-जाने में सफल नहीं होते। संप्रति सुना गया है कि उस पर्वत पर प्रचण्ड वायु प्रवाह ने उस स्थान को बालुका से आवरित कर दिया है। इसलिये मेरे राज्य में महामारी तथा दुर्भिक्ष का आक्रमण हुआ है। अब आप आ गये, अतः सब कुशल होगा।'' हे द्विजोत्तमगण! उत्कल नरेश द्वारा यह वृत्तान्त वर्णन करने पर राजा इन्द्रद्युम्न ने उनको सम्मानपूर्वक बैठने का अवसर दिया। तब उन्होंने नारद की ओर देखकर अतीव व्याकुल भाव से कहा ''हे मुनिवर! यह कैसी घटना हो गई! हाय! मुझे प्रतीत हो रहा है कि जिस उद्देश्य से मैं यहां आया था, वह विफल हो गया।'' यह सुनकर त्रिकालज्ञ नारद कहने लगे।।१३३-१३७।।

न कार्या विस्मयस्तेऽत्र भाग्यवान्वैष्णवोत्तमः।
वैष्णवानां न वाञ्छा हि विफला जायते क्वचित्।।१३८।।
अवश्यं प्रेक्षसे राजन्बिभ्रतं पार्थिवं वपुः। कारणं जगतामादिं नारायणमनामयम्।।१३९।।
त्वदनुग्रहहेतोर्वै क्षिताववतरिष्यति। जगच्चराचरं सर्वं विष्णोर्वशमुपागतम्।।१४०।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे राजन्! इसमें विस्मित क्यों हो रहे हो? तुम भाग्यवान तथा विष्णुभक्त हो। अतः वैष्णवों की कामना कदापि विफल नहीं होती। जिन्होंने पार्थिव देह धारण किया है, उन जगत् के आदिकारण नारायण का तुम अवश्य दर्शन प्राप्त कर सकोगे। वे तुम्हारे ऊपर कृपा करके स्थिर तरुरूपेण पुनः अवतीर्ण होंगे। यह समस्त चराचर जगत् विष्णु के ही वशीभूत हैं।।१३८-१४०।।

न कस्याऽपि वशे सोऽपि परमात्मा सनातनः।
केवलम्भक्तिवशगोभगवान्भक्तवत्सलः ॥१४१॥
ब्रह्मादिकीटपर्यन्तं सुगुप्तं यस्य मायया। स कथं परतन्त्रः स्यादृते भक्तजनान्नृप॥१४२॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां मूलं भक्तिर्मुरद्विषः। सैव तद्ग्रहणोपायस्तामृतेनास्तिकिञ्चन॥१४३॥
एक एव यदा विष्णुर्बहुधा स्वस्य मायया। तमृते परमात्मानं सुखहेतुर्न विद्यते॥१४४॥
येऽप्यन्ये शिवदुर्गाद्यास्तैस्तैः कर्मभिरावृताः।
यच्छन्ति पूजिताः कामं तेऽपि विष्णुपरायणाः॥१४५॥
अन्तर्यामी स भगवान्देवानामपि हृत्स्थितः। यावत्फलम्प्रेरयति तावदेव ददत्यमी॥१४६॥
वैष्णवस्त्वञ्चराजेन्द्र ! पद्मयोनेश्च पञ्चमः।
अष्टादशानां विद्यानां पारगोवृत्तसंस्थितः॥१४७॥
न्यायेन रक्षितापृथ्वीं विशेषाद्ब्राह्मणार्चकः।
अवश्यंद्रक्ष्यसिक्षेत्रे वैकुण्ठं चर्मचक्षुषा॥१४८॥
पितामहोऽप्यत्रकार्येभवतोमांनियुक्तवान्। सर्वं ते कथयिष्यामि प्राप्तेक्षेत्रोत्तमे नृप॥१४९॥
साम्प्रतं रात्रिशेषो हि तृतीयं याममृच्छति।
स्वान्स्वान्निवेशान्निर्गन्तुं राज्ञ आज्ञापयाऽधुना॥१५०॥
त्वमप्यन्तर्गृहं याहि निद्राया वशमागंतः॥१५१॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीति साहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कल-
खण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे इन्द्रद्युम्नस्य-
पुरुषोत्तमक्षेत्रगमनंनामैकादशोऽध्यायः॥११॥

तथापि वे परमात्मा सनातन हैं। वे किसी के वश में नहीं हैं। भगवान् भक्तवत्सल हैं। वे केवल भक्तों के ही वशीभूत होते हैं। हे राजन्! जिनकी माया द्वारा ब्रह्मा से कीट पर्यन्त की उत्पत्ति होती है, वे भक्तों के अतिरिक्त किसकी परतन्त्रता स्वीकार कर सकते हैं? मुरारी के प्रति भक्ति ही धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूपी चतुर्वर्ग का मूल कारण है। वही भक्ति ही भगवान् को वशीभूत करने का एकमात्र उपाय है। ये विष्णुदेव ही अपनी माया के द्वारा अनेक आकार धारण करते हैं। इन परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कोई भी सुख का कारण नहीं है। तब भी देखा गया है कि शिव, सूर्य प्रभृति देवता इसी कर्माचरण द्वारा अतिशय सम्माननीय हो सके हैं। वे अपनी अर्चना करने वाले को अभिलषित फल भी प्रदान करते हैं, तथापि वे सभी देवता नारायण की भक्ति करते हैं। भगवान् माधव अन्तर्यामी हैं। वे देवताओं के भी हृदयकमल में विद्यमान रहते हैं। वे ही देवगण को भक्तों को फल प्रदान करने की अनुमति देते हैं, तभी वे देवता उन-उन फलों को प्रदान करने में सक्षम होते हैं। हे राजेन्द्र! तुम वैष्णव-चूड़ामणि हो। तुम ब्रह्मा से उनकी पांचवी पीढ़ी में उत्पन्न हो। तुम अष्टादश विद्याओं में भी पारङ्गत

हो। तुम सच्चरित्र हो। तुमने राजनीति के अनुरूप पृथिवी का पालन किया है। तुम्हारे द्वारा ब्राह्मणों की विशेष पूजा की जाती है। तुम अवश्यमेव अपने चर्म चक्षुओं से ही क्षेत्रधाम में वैकुण्ठनाथ का दर्शन पा सकोगे। हे नृप! पितामह ब्रह्मा ने तुम्हारे इस कार्य हेतु मुझे नियुक्त किया है। अतः उस क्षेत्र में पहुंचकर तुमसे सभी विषय सविशेष रूप से कहूंगा। पितामह ब्रह्मा ने तुमको यज्ञ कार्य में नियुक्त करने के लिये मुझे भेजा है। तुम अपने ज्ञाननेत्र से श्रीहरि का दर्शन प्राप्त कर सकोगे। हे नृप! मैं पुरुषोत्तम क्षेत्र पहुंचकर सभी कार्य को तथा बातों को शीघ्र बतलाऊंगा। सम्प्रति रात्रि का तृतीय प्रहर हो रहा है। तुम अवश्य लोकनाथ गोविन्द का दर्शन प्राप्त करोगे। अब तुम सभी को अपने-अपने घर जाने की आज्ञा प्रदान करो। हे राजन्! तुम अब अन्तःपुर जाओ। अपनी शैय्या पर जाकर निद्राभंग न हो ऐसी सावधानी करना।।१४१-१५१।।

।।एकादश अध्याय समाप्त।।

द्वादशोऽध्यायः

नारद-इन्द्रद्युम्न संवाद, गौरी द्वारा परुष वाक्य कहना, विष्णु-महादेव संवाद, कोटिलिंगेश्वर का इन्द्रद्युम्न को वचन प्रदान, विश्वेश्वर कपोतेश्वर वर्णन

जैमिनिरुवाच

उक्ते ब्रह्मसुतेनेत्थमिन्द्रद्युम्नो महीमतिः। मुनेस्तु वचनं श्रुत्वा प्रहृष्टेनाऽन्तरात्मना।
विचार्य परया बुद्ध्या श्रमं मेने फलावहम्।।१।।
अहो मे परमं भाग्यं बहुजन्मान्तरार्जितम्। व्यवसाये ममोद्युक्तःसर्वलोकपितामहः।।२।।
जीवन्मुक्तं स्वंतनुजंमत्सहायमकारयत्। सहायो यादृशःपुंसांभवेत्कार्यं हि तादृशम्।।३।।
श्रुतं सभासुसर्वासुइति वृद्धानुशासनम्। स इत्थं चिन्तयन्राजा विसृज्यचसभासदः।।४।।
ततो मुनिं करे धृत्वा विवेशाऽन्तःपुरेद्विजाः !। तमर्चयित्वाविधिवत्पल्यङ्केसहतेनवै।।५।।
निशावशेषं नृपतिर्निनाय सँल्लपन्मिथः। ततः प्रभाते विमले नित्यं कर्म समाप्य वै।।६।।
पूजयित्वा जगन्नाथं सन्ततार महानदीम्। ओढ्रदेशाधिपेनाऽग्रे गच्छतादिष्टपद्धतिः।।७।।

ऋषि जैमिनि कहते हैं—ब्रह्मनंदन नारद के यह कहने पर महाराज इन्द्रद्युम्न अतिशय आह्लादित हो गये तथा विशिष्ट बुद्धि के द्वारा विचार करके उन्होंने अपने परिश्रम को सफल मानते हुये कहा—"अहा! मेरा क्या सौभाग्य है! अनेक जन्मों में मैंने न जाने कितने पुण्य किये थे कि सर्वलोक पितामह मेरे कार्य में सहायक हो

गये! उन्होंने अपने जीवन्मुक्त पुत्र नारद को मेरी सहायतार्थ भेजा है। मैंने अनेक सभा में वृद्धों का उपदेश सुना था कि पुरुष को जैसी सहायता मिलेगी, उसका कार्य भी वैसा ही होगा। हे द्विजगण! राजा ने इस प्रकार विचार करके सभासदों को विदा किया तथा नारद मुनि का हाथ पकड़े हुये अपने अन्तःपुर में प्रवेश किया। नृपति ने यथाविधान नारद की अर्चना करके उनके साथ एक ही पलंग पर स्थित होकर नाना कथा-वार्त्ता करते हुये रात्रि व्यतीत किया। तदनन्तर अगले दिन पवित्र प्रभातकाल में नित्यकर्म सम्पन्न करके जगन्नाथ की पूजा किया, तदनन्तर उन लोगों ने महानदी पार किया। उड़ीसा देश के राजा आगे-आगे मार्ग दिखलाते चल रहे थे।।१-७।।

एकाम्रवनकं क्षेत्रमभियातो बलान्वितः।
स गत्वा किञ्चिदध्वानम्प्राप्य गन्धवहाभिधाम्।।८।।
नदीं वेगवतीं शीततोयामाक्रम्य वेगवान्। पूर्वाह्णपूजासमये कोटिलिङ्गेश्वरस्य वै।।९।।
चर्चरीशङ्खकाहालमृदङ्गमुरजध्वनिम्। व्यश्नुवानं महारण्यं दूराच्छुश्राव भूपतिः।।१०।।
मन्यमानो भगवतो नीलाचलनिवासिनः। उवाच नारदम्प्रीतो ध्वनिः कुत्रमहामुने।।११।।
निलाद्रिशिखरावासः प्राप्तः किं परमेश्वरः। यदर्चा समयेह्येष श्रूयते सङ्कुलध्वनिः।।१२।।
उताऽहोप्यन्यदेवो वा निकटे वर्त्तते मुने। इति पृष्टस्तदा राज्ञा प्रोवाच मुनिपुङ्गवः।।१३।।

क्रमशः ये लोग ससैन्य एकाम्रकानन क्षेत्र में आये। वहां से कुछ दूर जाने पर पीतवर्ण जलवाली वेगवती गन्धवहा नदी को पार करके अत्यन्त वेग से पथ पार करने लगे। तभी दूर से उन्होंने कोटि लिंगेश्वर की पूर्वाह्ण पूजा के समय बज रहे शंख-चर्वरी-मृदङ्ग-मुरज तथा काहल आदि वाद्यों की ध्वनि सुना। इन ध्वनियों से वह महारण्य ध्वनित हो उठा। इससे प्रसन्न होकर राजा नारद से कहने लगे कि—"हे महामुनि! यह ध्वनि अत्यन्त सन्तोष प्रदात्री है। क्या हम उन नीलगिरि शिखरवासी परमेश्वर के पास तक आ गये? क्योंकि पूजा समयोचित ये सब वाद्य श्रुतिगोचर जो हो रहे हैं, अथवा हम किसी अन्य देवता के निकट पहुंचे हैं? राजा के इस प्रश्न को सुनकर मुनिप्रवर नारद कहने लगे।।८-१३।।

नारद उवाच

राजन्सुदुर्लभं क्षेत्रं गोपितं मुरवैरिणा। न तत्रास्तीति भगवान्कैरपि ज्ञायते नृभिः।।१४।।
त्वं हि भाग्यवतांश्रेष्ठस्त्वद्भाग्यात्तेपुरोधसा। दृष्टः कथञ्चिद्भगवान्संयतेन्द्रियवर्त्मना।।१५।।
त्वं हि ताद्वद्बलैर्युक्तः षडङ्गैर्नृपसत्तम !। साहसेऽतिप्रवृत्तोऽसि संशयो मे महीपते।।१६।।
सम्वर्त्तते नीलगिरिर्योजने तु तृतीयके। इदन्त्वेकाम्रकवनंक्षेत्रं गौरीपतेर्विभोः।
नाऽतिदूरे महीपाल ! भीतः स शरणागतः।।१७।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे राजन्! इस दुर्लभ क्षेत्र को भगवान् ने गुप्त रखा है। यह कोई नहीं जान पाता कि यहां मुरारी रहते हैं। तुम भाग्यवानों में प्रधान हो। इसी कारण तुम्हारे सौभाग्य के कारण तुम्हारे जो जितेन्द्रिय पुरोहित हैं, इनको उन्होंने कुछ दर्शन प्रदान किया है। हे राजन्! तुम इस षडङ्ग बल के साथ आडम्बर पूर्वक इस साहसिक कार्य में प्रवृत्त हो गये हो। यही कारण है कि तुम्हारे अन्दर संशय का जन्म हो रहा है।

हे राजन्! अभी भी नीलगिरि तीन योजन दूर है। यहां जो वाद्य आदि का वादन तुम सुन रहे हो, वह निकटस्थ एकाम्रवन भयभीत तथा शरणाकांक्षी भवानीपति का स्थान है।।१४-१७।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

कथं स भीतो गौरीशः कम्वा शरणमागतः॥१८॥
ददाह त्रिपुरं घोरं शरेणैकेन यः पुराः। अत्र मे विस्मयोजातःश्रोतुमिच्छामिदुर्लभम्॥१९॥
राक्षताभवभीतानांभवःपरमपावनः। किमर्थं भयभीतोऽसौ कः समर्थोऽस्य वै जये॥२०॥

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—जिन्होंने पूर्वकाल में मात्र एक बाण से त्रिपुरासुर का दहन किया था, वे भयभीत क्यों हो गये? तब उन्होंने किसी की शरण लिया? यह सुनकर मुझे विस्मय हो रहा है। इसे मैं यथार्थरूपेण सुनना चाहता हूं। जो भवनाथ संसार से भीत हो रहे व्यक्तियों के रक्षक हैं, उनको भय क्यों हो गया? उनको पराजित कर सकने वाला कौन है?।।१८-२०।।

नारद उवाच

अत्र ते कथयिष्यामि पुरावृत्तम्महीपते। उपयेमे पुरा गौरीं तपसा वशमागतः॥२१॥
ब्रह्मचारी हिमगिरौ भगवान्नीललोहितः। उत्सृज्य ब्रह्मचर्यं तु सोऽनङ्गशरपीडितः॥२२॥
तया रेमे रुचिरया यौवनोन्मत्तया नृप !। तत्पितुर्विषये भोगान्बुभुजेदेवकाङ्क्षितान्॥२३॥
कदाचिदथ निर्यातीस्ववासभवनात्सती। सामपूर्वं कुलस्त्रीभिर्मात्रोक्तासस्मितमतंवचः॥२४॥
आर्ये महत्तपस्तप्तं वरार्थं गहने वने। निष्कुलो निर्गुणो वृद्धो वरः प्राप्तो वरानने॥२५॥
दिवारात्रिं न त्यजसि सन्निधिं तादृशस्य वै।
को गुणः कथ्यतां वत्से !। किम्वा पत्युः प्रसादजम्॥२६॥
भूषणाच्छाददं प्राप्तं ममैव गृहवासिनी। चिरं तिष्ठसि भद्रे त्वं पितृभोगोपलालिता॥२७॥
त्रैलोक्ये यास्तु कन्या वै परिणीता पितुर्गृहात्।
प्रयान्त्यलङ्कृता भर्त्रा भर्तृवेश्मनि शुश्रुम॥२८॥
अहं तु मानसी कन्यापितृणां पितृलोकतः। आगतातुमहाभागेपरिणीताहिमाद्रिणा॥२९॥
इत्थमुक्ता मया हास्यान्न क्रोधाच्चललोचने। जामातुरग्रेनोवाच्यंसहिविष्णुसमोमतः॥३०॥

नारद कहते हैं—हे महीपति! अब मैं यह प्राचीन वृत्तान्त कहता हूं। सुनो। पूर्वकाल में भगवान् नीलकण्ठ तप करने हेतु ब्रह्मचारी वेश में हिमालय के शिखर पर अवस्थित थे। वे कामबाण से पीड़ित हो गये तथा उन्होंने ब्रह्मचर्य त्याग दिया था। तब उन्होंने यौवनमदमत्ता सुरुचिरा गिरिपुत्री गौरी से विवाह उनके पिता के यहां देववांछित सभी भोगों के साथ गौरी से रमणरत हो गये। एक बार वे देवी अपने निवास भवन से जा रही थीं, तभी उनकी माता ने कुलस्त्रीगण के साथ उन गौरी से ममता पूर्वक सस्मित मुख से कहा—हे आर्ये! तुमने उत्तम पति पाने के लिये गहनकानन में महती तपस्या किया था। उसी का यह फल है कि हे वरानने! तुमको धनहीन-कुलहीन एक वृद्ध वर प्राप्त हो गया। तुम तो ऐसे वर का साथ रात्रि में भी नहीं छोड़ती हो। हे वत्से!

तुम्हारे पति में क्या गुण है? उससे तुमको कौन-कौन से अलंकार अथवा वस्त्र मिले हैं? यह देख रही हूं कि वे मेरे ही गृह में दीर्घकाल से रह रहे हैं। हे भद्रे! तुम भी चिरकाल से पिता के ही साधनों से पल रही हो। मैंने सुन रक्खा है कि इस त्रैलोक्य में परिणिता कन्या पति प्रदत्त अलंकारादि से तुष्ट होकर पिता का गृह छोड़कर पति के भवन में चली जाती है। यह मैं भी तो पिता की मानसी कन्या हूं। हिमालय ने मुझसे विवाह किया, तब अपने गृह ले आये। जो भी हो! पुत्री! मैं यह सब परिहास में ही कह रही हूं। किसी लोभ किंवा क्रोध के कारण नहीं कह रही हूं। अतएव मेरे इस विष्णु के समान जमाता से यह सब नहीं कहना।।२१-३०।।

नारद उवाच

मातुरित्थं वचः श्रुत्वा भर्तृनिन्दाप्रपीडिता। कोपप्रस्फुरदोष्ठीसावाचंनोचेमनागपि।।३१।।
प्रययावन्तिकं भर्तुर्निह्नुवानाऽम्बिकावचः। जगाद परुषं वाक्यंस्नेहगर्भमिताक्षरम्।।३२।।

देवर्षि नारद कहते हैं—गौरी देवी माता का यह वाक्य सुनकर तथा पति की निन्दा भरे वाक्यों को सुनकर अत्यन्त दुःखी हो गयीं। उनके ओष्ठ क्रोध से कम्पित होने लगे। वे माता को कोई उत्तर दिये बिना पति के पास गई और माता के द्वारा की गई समस्त निन्दा को छिपाते हुये स्नेह गर्भयुक्त यत्किंचित् निष्ठुर वाक्य कहने लगीं।।३०-३२।।

उमोवाच

स्वामिन्न साम्प्रतं चैतद्यद्वासः श्वशुरालये। क्षौद्रीयसामपिगुरोस्त्रैलोक्यस्यकथंनुते।।३३।।
तदावयोर्नाऽत्र योग्या वसतिर्मे प्रिया विभो!।
न सन्ति किं ते वासाय योग्या वै भूमयः प्रभोः।।३४।।

देवी उमा कहती हैं—हे स्वामी! अब आपका श्वसुर गृह में निवास करना उचित प्रतीत नहीं हो रहा है। आप तो जब त्रैलोक्यस्थ क्षुद्राशय लोगों के गुरु हैं, तब इससे अधिक आपकी निन्दा और क्या होगी? हे विभु! अब हम दोनों का ही यहां निवास करना अनुचित है। हे प्रभो! क्या सम्पूर्ण भूमण्डल पर आपके रहने योग्य स्थान नहीं है?।।३३-३४।।

नारद उवाच

इतयुक्तः शिवया सोऽथ भगवान्वृषभध्वजः।
तया सार्द्धं वृषारूढोमध्यदेशंययौत्वरम्।।३५।।
विलङ्घ्य सर्वतीर्थानि प्रयागं पावनं महत्। पूर्वसागरगामिन्या गङ्गाया उत्तरे तटे।।३६।।
वाराणसींनाम पुरीं गौर्या वासाय निर्ममे। पञ्चक्रोशमितांरम्यांवरप्रासादशोभिताम्।।३७।।
अट्टालकशतैर्युक्तामसंख्योपवनैर्युताम्। नानातीर्थसमायुक्तां नानाजनसमाकुलाम्।।३८।।
आज्ञया धूर्जटेः शुभ्रां निर्मितां विश्वकर्मणा। पावनैः शीतलैर्गङ्गातरङ्गैःक्षपितांहसाम्।।३९।।
तत्र मध्ये पुरे स्वर्णप्राकाराट्टालशोभिते। रत्नस्तम्भैः सुघटिते सर्वाशापरिपूरके।।४०।।
तया रेमे पशुपतिः श्रियेव मधुसूदनः। सा पुरी विश्वनाथेन कदाचिन्नैव मुच्यते।।४१।।

अविमुक्तेतिसाख्यातानृणांमुक्तिप्रद्रायिनी। पुराऽऽसीन्मनुजधीशसेविताभवभीरुभिः॥४२॥
तत्रोपिता तदा गौरी तेन भर्त्रा स्वलङ्कृता। मातरं पितरञ्चापि न सस्मारमहीपते !॥४३॥
एवं बहुयुगेऽतीते कैलासाद्रिं स जग्मिवान्।
आत्मनः कोटिलिङ्गानि तत्र संस्थाप्य वै प्रभुः॥४४॥
राजानःपालयामासुस्तांपुरींबहुशो नृप। तत्राऽऽसीत्काशिराजाख्यः पुरा द्वापरकेयुगे॥४५॥

देवर्षि नारद कहते हैं—भगवान् वृषध्वज यह वाक्य सुनते ही उमा के साथ वृषारूढ़ होकर शीघ्रता से वहां से मध्यदेश चले गये। वहां उन्होंने पवित्रताप्रद सर्वतीर्थमय अति श्रेष्ठ प्रयाग तीर्थ को पार करके गौरी के निवासार्थ दक्षिण समुद्र में मिलने वाली गंगा नदी के उत्तरतटस्थ वाराणसी नामक पुरी का निर्माण किया। यह पुरी पांच क्रोश परिमित रमणीय तथा उत्तम प्रासाद, सैकड़ों अट्टालिका, असंख्य उपवन, नाना तीर्थ एवं बहुविध मनुष्यों से पूर्ण शोभित थी। विश्वकर्मा ने प्रभु महादेव की आज्ञानुरूप इस पुरी की रचना शुभ्रवर्ण में की थी। उसे पवित्र सुशीतल गंगाजल से धो दिया था! पशुपति देवी भगवती गौरी के साथ विष्णु एवं लक्ष्मी की ही तरह वाराणसी धाम में स्वर्णनिर्मित प्राचीर तथा अट्टालिका से शोभित और उत्तम रत्नस्तम्भों से चतुर्दिक् पूर्ण पुरी में रमणरत हो गये। इस वाराणसी का महादेव कभी भी त्याग नहीं करते थे। यह पुरी अत्याज्य एवं मोक्षप्रदा कही जाती है। हे राजन्! सदा से संसार से भयभीत व्यक्ति इस पुरी की सेवा करते चले आ रहे हैं। तब से गौरी देवी पति द्वारा अलंकृत होकर यहां उनके साथ निवास करने लगे। हे नरपति! अब देवी माता-पिता का स्मरण ही नहीं करती थीं। इस प्रकार दीर्घकाल बीत जाने पर देवाधिदेव गौरीपति यहां अपनी कोटिलिंग की स्थापना करके कैलासपर्वत चले गये। तत्पश्चात् अनेक राजाओं ने इस पुरी का पालन किया। वहां द्वापरयुग में काशिराज नामक एक राजा वहां रहता था।।३५-४५।।

शम्भुं सन्तोषयामास तपसोग्रेण वै प्रभुम्। जरासन्धपुरोगाणां राज्ञांजेतारमच्युतम्॥४६॥
सङ्ग्रामे प्रभविष्यामीत्यभिसन्धाय पार्थिवः।
प्रादात्तस्मै वरं सोऽपि पिनाकी पारितोषितः॥४७॥
जेतासि कंसहन्तारं सङ्ग्रामे त्वमरिन्दम। तवार्थे प्रमथैः सार्द्धमहंयोत्स्येवृषेस्थितः॥४८॥

इस काशिराज ने अत्युग्र तपस्या से महादेव को प्रसन्न करके अभिसन्धिपूर्वक यह वर मांगा—"मैं संग्राम में जरासन्ध आदि राजा का हनन करने वाले नारायण पर प्रहार कर सकूं।" तब पिनाकी भगवान् शिव ने भी उस पर प्रसन्न होकर वर दिया—"हे शत्रुनाशक! तुम रणभूमि में कंस शत्रु श्री कृष्ण को पराजित करोगे। मैं भी तुम्हारी सहायता के लिये वृषारूढ़ होकर प्रमथगणों को साथ लेकर तुम्हारे पक्ष से युद्ध करूंगा।।४६-४८।।

शम्भोरिति वरं लब्ध्वा प्रमत्तः स नराधिपः। शङ्खचक्रधरंसङ्ख्येहरिमाह्वतवीर्यवान्॥४९॥
अन्तर्यामी सभगवाञ्ज्ञात्वा वृत्तान्तमीदृशम्। चक्रंप्रस्थापयामासकाशिराजस्यसूदने॥५०॥
तदुग्रदर्शनं चक्रं सहस्त्रादित्यवर्चसम्। काशिराजशिरश्छित्त्वा तद्बलं तां पुरीं ततः॥५१॥
ददाह कुपितं राजन्विष्णोराशयवीर्यवित्। तद्दृष्ट्वा सुमहत्कर्म क्रुद्धः पशुपतिस्तदा॥५२॥

गणैर्वृतो वृषारूढः पिनाकी तदुपाद्रवत्। ततः सुदर्शनं चक्रं दृष्ट्वा तं प्रथमं पुरः॥५३॥
शम्भुः पाशुपतास्त्रंतच्चकारोत्पातसन्निभम्। पुराविष्णोर्वरंप्राप्तंशम्भुनाभक्तितोषितात्॥५४॥
बलेनाऽऽप्याययिष्यामि तवाऽस्त्रं संस्मृतस्त्वया।
मयि चेत्प्रतिकूलस्त्वं भविष्यति च निष्प्रभम्॥५५॥
घोरे पाशुपतेचाऽस्मिन्नस्त्रेचविफलीकृते। वाराणस्यांचदग्धायांभयत्रस्तोवृषध्वजः॥५६॥
तुष्टाव जगतामादिमनादिं पुरुषोत्तमम्॥५७॥

वह काशिराज एवंविध शंभु से वर पाकर वीर्यवान् एवं प्रमत्त भाव से युद्धभूमि में शंख-चक्र-गदाधारी हरि को चुनौती देने लगा। तदनन्तर अन्तर्यामी भगवान् हरि ने यह सब वृत्तान्त जानकर काशीराज के विनाशार्थ चक्र छोड़ा। हे राजन्! सहस्रों सूर्य के समान तेजयुक्त उग्ररूपी यह चक्र विष्णु के अभिप्राय को जानकर वीर्यशाली एवं कुपित होकर काशिराज के मस्तक को, उसकी पुरी तथा सैन्य को दग्ध करने लगा। तब पशुपति ने इस गुरुतर व्यापार को देख लिया तथा वे क्रोधान्वित हो गये। वे वृषभारूढ़ हो तथा धनुषधारण करके प्रमथगणों के साथ शीघ्र वहां पहुंचे। तब उस सुदर्शन चक्र ने प्रमथगण को दग्ध करना प्रारंभ किया तथा पाशुपतास्त्र का भी दहन करके उसे अंगार बना दिया। पूर्वकाल में विष्णुदेव ने महादेव की भक्ति से प्रसन्न होकर उनको वर दिया था कि "आप द्वारा स्मरण किये जाने पर मैं आपके अस्त्र को बलपूर्ण कर दूंगा तथापि यदि आप मेरे प्रतिकूल आचरण करेंगे, तब आपका अस्त्र तेजवान् नहीं रहेगा।" जब यह भयानक पाशुपतास्त्र निष्फल हो गया तथा वाराणसी पुरी दग्ध हो गयी, तब वृषध्वज शंकर भय से त्रस्त हो गये तथा अनादिरूप एवं जगत् के आदि पुरुषोत्तम का स्तव करने लगे।।४९-५७।।

महादेव उवाच

नारायण! परंधाम! परमात्मन्परात्पर!। सच्चिदानन्दविभव! निरञ्जन नमोऽस्तु ते॥५८॥
जगत्कारणसृष्ट्यादिकर्मकृद्गुणभेदतः। मायया निजया गुप्त स्वप्रकाश नमोऽस्तुते॥५९॥
नाऽन्तर्बहिर्बहिश्चाऽन्तर्दूरस्थो निकटाश्रयः।
गुरुर्लघुः स्थिरोऽणीयान्स्थवीयांश्च नमोस्तु ते॥६०॥
कोटयश्चतुरास्यस्य पलार्द्धं मम चाऽतुल!। यदपाङ्गविलासोत्थंतस्मैकालात्मने नमः॥६१॥
एकैकरोमाकलितब्रह्माण्डगणसम्वृतम्। मानातीतं वपुर्यस्य तस्मै विश्वात्मने नमः॥६२॥

महादेव कहते हैं—हे नारायण! आप परमाश्रय, परात्पर, परमात्मा, नित्य, ज्ञानरूप, आनन्दरूप, निरंजन हैं। आपको नमस्कार!

हे जगत्कारण! आप गुणत्रयभेद से सृष्टि-स्थिति-प्रलयकर्त्ता हैं। आप अपनी ही माया से गुप्त तथा स्वप्रकाशित हैं। अतएव आपको प्रणाम! हे देव! आप अन्तः अथवा बहिः रहित हैं। अथच आप ही बाह्य-अन्तः, गुरु-लघु, दूरस्थ-निकटस्थ, सूक्ष्म तथा अत्यन्त स्थूल होकर स्थित हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूं। जिनके कटाक्षपात से करोड़ों ब्रह्मा तथा अतुल परार्द्धसांख्यक मेरी उत्पत्ति होती है, उन कालरूप को प्रणाम! जिनके शरीर के एक-एक रोम में समस्त ब्रह्माण्ड स्थित हैं, उन परिमाण रहित विश्वात्मा को प्रणाम!।।५८-६२।।

स्वकालपरिमाणेन वेधसः प्रलयोद्भवौ। मन्वन्तरादिघटनाकलनाय नमोऽस्तु ते॥६३॥
सृष्टोऽहं तमसानाथ त्वत्प्रभावानभिज्ञकः। तत्क्षमस्वाऽपराधं मेत्राहिमांशरणागतम्॥६४॥
स्तुतिमित्थं प्रकुर्वाणे तस्मिंस्त्रिपुरदाहिनि। चक्ररूपंपरित्यज्यआविरासींदधोक्षजः॥६५॥
प्रसन्नवदनः श्रीमाञ्छङ्खचक्रगदाधरः। तार्क्ष्यपद्मासनगतो वनमालाविभूषणः॥६६॥
हारकुण्डलकेयूरमुकुटादिभिरुज्ज्वलः। वामोत्सङ्गगतांलक्ष्मींसत्यांदक्षिणपार्श्वगाम्॥६७॥
बिभ्राणःकृष्णजीमूतकान्तदेहंकृपाम्बुधिः। क्रोधाविष्टइवोवाचबिभ्यन्तंगिरिजापतिम्॥६८॥

आप ब्रह्मा के काल का परिपाक करके (कालपूर्ण करके) प्रलय तथा उद्भव एवं मन्वन्तर आदि घटना को घटित कराते हैं। आपको प्रणाम! हे नाथ! आप द्वारा सृष्ट होने के कारण तपस्या करके भी मैं आपके प्रभाव को नहीं जान सका। अतः मैं शरणागत हूं। आप मेरे अपराध को क्षमा करके मेरी रक्षा करिये।'' यह स्तुति सुनकर शंख-चक्र-गदाधारी श्रीमान् विष्णु ने चक्ररूप का त्याग कर दिया तथा वे आविर्भूत हो गये। उनका मुख प्रसन्न था, गले में वनमाला, हार शोभित हो रहा था। वे केयूर, मुकुट आदि उज्वल अलंकार से सज्जित थे। उनके बायीं ओर गोद में लक्ष्मी देवी तथा दायीं ओर सत्यभामा विराजमान थीं। उनका शरीर नील जलधरवत् मनोहर था। कृपासागर भगवान् अधोक्षज ने क्रोधान्वित होकर भयातुर महादेव से कहा।।६३-६८।।

श्रीभगवानुवाच

कालेनैतावताशम्भो ! दुर्बुद्धिःकथमागता। हेतोर्नृपतिकीटस्यमयायोद्धुमुपस्थितः॥६९॥
कति वा मत्प्रभावास्ते नो ज्ञाता धूर्जटे ! त्वया। सत्यंपाशुपतंतेऽस्त्रंदुर्जयंससुरासुरैः॥७०॥
मत्क्रोधरूपं तच्चक्रं त्वामपि क्षमते न यत्। मामवज्ञाय जगति भ्रमति त्वामृतेहि कः॥७१॥
तपोभिर्बहुभिःपूर्वं मच्छरीरतयोर्जितः। साम्प्रतं चेच्चिरं रन्तुं गौर्यासार्द्धमिहेच्छसि॥७२॥
पुरीं वाराणसीं चेमां यदीच्छसि चिरस्थिताम्।
मन्नाम्ना भुवि विख्यातं क्षेत्रं श्रीपुरुषोत्तमम्॥७३॥
दक्षिणस्योदधेस्तीरे नीलाचलविभूषितम्। दशयोजनविस्तीर्णं यावद्विरजमण्डलम्॥७४॥
क्रमशः पावनं क्षेत्रं यावच्चित्रोत्पला नदी। ततःप्रभृतियो देशोयावत्स्याद्दक्षिणार्णवः॥७५॥
पदात्पदाच्छ्रेष्ठतमो नीलाद्रिरपवर्गदः। चतुर्देहस्थितोऽहं वै यत्र नीलमणीमयः॥७६॥
तस्योत्तरस्यां विख्यातं वनमेकाम्रकाह्वतम्। पार्वत्या तत्र निवसनिर्भयस्त्रिपुरान्तक॥७७॥
सृजता सर्वलोकानां मन्निदेशात्स्वयम्भुवा।
तत्राऽपि कोटिलिङ्गानां राजा त्वमभिषेक्ष्यसे॥७८॥
सर्वतीर्थमयं चेदं तीर्थं यन्मणिकर्णिकम्। इहाऽहङ्कारमुत्सृज्य व्रज त्वं सपरिच्छदः॥७९॥

भगवान् कहते हैं—हे शम्भु! इतने काल के पश्चात् आपके मन में क्यों दुर्बुद्धि का उदय हो गया? आपने कीटस्वरूप राजा के लिये मेरे साथ युद्ध छेड़ दिया। हे धूर्जटि! मेरा कितना प्रभाव है, क्या आप नहीं जानते? यह सत्य है कि आपका पाशुपत अस्त्र सुर-असुर सभी को परास्त कर सकता है, तथापि मेरे चक्र से

अवगत होकर भी आप क्षान्त नहीं हो सके। इस जगत् में मेरी अवज्ञा करके आपके सिवाय कौन जीवित रह सकेगा! क्योंकि आपने पूर्व में अनेक तप करके मेरे शरीर रूप में जन्म लिया है। अतः यदि अब गौरी के साथ चिरकाल पर्यन्त आप यहां रमण करने के इच्छुक हों तथा वाराणसी पुरी को स्थिर रखना चाहें, तब मेरे नाम से विख्यात जो पुरुषोत्तम क्षेत्र है, वहां गमन करिये। यह स्थान दक्षिण समुद्र के तट पर नीलपर्वत पर शोभित है तथा विरजमण्डल पर्यन्त दस योजन विस्तीर्ण है तथा चित्रोत्पला नदी पर्यन्त पवित्र है। इसके पश्चात् से लेकर दक्षिण समुद्र तक के प्रदेश (समुद्र के किनारे से) से एक पैर इतने स्थान से प्रारंभ करके यह उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होता जाता है। यह नीलपर्वत तो मुक्तिप्रद है। यहां मैंने नीलकान्तमणिमय शरीर से चार देह धारण किया है (जगन्नाथ, बलराम, सुभद्रा तथा सुदर्शनचक्र)। उसके उत्तरांश में एकाम्र नामक प्रसिद्ध कानन विस्तृत है। हे त्रिपुरान्तक! आप पार्वती के साथ वहां जाकर निवास करिये। वहां निर्भय रहिये। समस्त लोकों के सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा मेरी अनुमति द्वारा आपको कोटिलिंग के राजपद पर अभिषिक्त करेंगे। यहां काशी में सर्वतीर्थमय मणिकर्णिका तीर्थ है। अतएव आप अपना अहंकार त्याग कर वहां पार्षदों के साथ जायें।।६९-७९।।

नारद उवाच

इत्युक्तो वासुदेवेन त्र्यम्बको नतकन्धरः। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रोवाच मधुसूदनम्।।८०।।

नारद कहते हैं—वासुदेव के यह कहने पर महादेव वृषभस्कन्ध से उतर कर अंजलिबद्ध होकर उनसे कहने लगे।।८०।।

महादेव उवाच

देवदेव ! जगन्नाथ ! प्रणतार्तिहर ! प्रभो !।
त्वदाऽऽज्ञापालनं श्रेयः कारणं मे जगत्पते !।।८१।।
यत्तु मूढतया देव ! अवलेपः कृतो मया। तवैवाऽनुग्रहस्तत्र प्रभो ! चाञ्चल्यकारणम्।।८२।।
यदादिशसि देवेश प्रयाणं पुरुषोत्तमम्। तन्मूर्ध्नि कृत्वायास्यामिक्षेत्रंमुक्तिप्रदंशिवम्।।८३।।
अभिसन्धिं कुरुष्वाऽद्य ममानुग्रहकारणम्। पुरुषोत्तमं मम क्षेत्रं त्वमेव परिपालय।।८४।।
यथा पुनर्नेदृशं तद्विनाशमुपयास्यति। इत्थमेतत्पुरा क्षेत्रं महादेवेन निर्मितम्।।८५।।
बलश्रीसहितं देवमर्चयन्पुरुषोत्तमम्। अत्र साक्षादुमाकान्तः स्थापितः परमेष्ठिना।।८६।।
वयंतत्र व्रजिष्यामोद्रक्ष्यामःपुरनाशनम्। सुदृढान्तस्तमःस्तोमभास्वतंगिरिजापतिम्।।८७।।
यदेतच्छाम्भवं क्षेत्रं तमसो नाशनं परम्। रजःप्रक्षालनं श्रेयः ख्यातं विरजमण्डलम्।।८८।।

महादेव कहते हैं—हे देवदेव! जगन्नाथ! हे प्रभो! आप आश्रित के क्लेशों का नाश करते हैं। हे जगत्प्रभु! आप हमारे मूलाधार हैं। आपकी अनुमति का पालन करना ही हमारे लिये मंगलप्रद है। हे देव! मुझे निर्बुद्धि के कारण अहंकार हो गया था। इसका कारण है आपकी पूर्वकाल में की गयी कृपा, जिससे मुझमें चंचलता आ गयी।

"हे भगवान्! आपने पुरुषोत्तम स्थल जाने का जो आदेश दिया है, वह मैंने शिरोधार्य कर लिया। मैं

उस मुक्तिक्षेत्र में जाऊंगा। अब मेरे ऊपर अनुग्रह करके सम्मति प्रदान करें तथा पुरुषोत्तम क्षेत्रस्थ मेरे क्षेत्र का आप पालन करें। वह पुनः नष्ट न हो, ऐसा करिये।''

पूर्वकाल में महादेव ने बलदेव-लक्ष्मी- पुरुषोत्तम की पूजा करके सन्तोष हो जाने के कारण इस क्षेत्र का निर्माण किया था। पितामह ब्रह्मा ने साक्षात् उमाकान्त को इस स्थान में स्थापित किया था। हम सभी वहां जाकर त्रिपुरारि शिव का दर्शन करें। यह शांभव क्षेत्र रजः तथा तमः गुण के विनाशार्थ अत्यन्त उत्कृष्ट है। यह रजः गुण का प्रक्षालन करता है, तभी विरजमण्डल के नाम से विख्यात है।।८१-८८।।

सत्त्वोद्रिक्ततया ख्यातं मुक्तिदं पुरुषोत्तमम्।
यावन्त्यन्यानि क्षेत्राणि मुक्तिदानि श्रुतानि ते॥८९॥
तानि सर्वाणि राजेन्द्र ! ददतेमुक्तिमत्र वै। एतत्क्षेत्रं महाराज ! दुष्कृताविलचेतसाम्॥९०॥
न विश्वासपथं याति रहस्यं चक्रपाणिनः॥९१॥

पुरुषोत्तम क्षेत्र को सत्वगुणोद्रेक के कारण मुक्तिप्रद कहते हैं। हे राजेन्द्र! अन्य सब जो क्षेत्र मुक्तिप्रद कहे गये हैं, उन समस्त क्षेत्रों में से यह स्थान मुक्ति देता है। हे महाराज! यह क्षेत्र पाप से आकुल चित्त व्यक्तियों के विश्वास मार्ग में प्रतीत ही नहीं होता। इसलिये चक्रपाणी के इस गोपनीय स्थान को क्षेत्र कहा गया है।।८९-९१।।

जैमिनिरुवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहृष्टहृदयो नृपः। उवाच मुनिशार्दूलं विस्मयोत्फुल्ललोचनः।
साधु मे कथितं ब्रह्मन्क्षेत्रं परमपावनम्॥९२॥
यत्रोमापतिरास्तेऽसौ पालकः पुरुषोत्तमः। अवश्यं तत्र गच्छामःपन्थायद्यपिवक्रभूः।
उद्दिष्टेष्टपरिप्राप्तौ यदिदं कारणं महत्॥९३॥

जैमिनी कहते हैं—राजा इन्द्रद्युम्न ने नारद का यह वाक्य सुनकर विस्मयोत्फुल्ल नेत्र से हृष्ट अन्तःकरण द्वारा उन मुनि से कहा कि ''हे ब्रह्मन्! आपने अतीव उत्तम अनुष्ठान किया है। यह क्षेत्र परम पवित्रात्मक तो अवश्य है। वहां पवित्रतात्मक पुरुषोत्तम तथा उमापति स्थित हैं। यदि वहां अतीव कुटिल मार्ग से भी जाना पड़े, तथापि हम वहां अवश्य गमन करेंगे। हमारे लिये उद्दिष्ट मोक्षप्राप्ति हेतु यह क्षेत्र ही एकमात्र प्रधान क्षेत्र है।।९२-९३।।

जैमिनिरुवाच

ततोस्तौ मुनिभूपालौ मध्याह्नसमये द्विजाः।
प्रापतुः सबलौ क्षेत्रमेकाम्रवनसञ्ज्ञकम्॥९४॥
बिन्दुतीर्थे नृपःस्नात्वातीरस्थंपुरुषोत्तमम्। सम्पूज्यविधिवद्यातःकोटीश्वरमहालयम्॥९५॥
तद्वारि सम्यगाचान्तस्तत्प्रीत्यै सुबहूनि सः। गजाश्वधनरत्नानि वस्त्रालङ्करणानि च॥९६॥
द्विजेभ्यः प्रददौ राजा सात्त्विकं धर्ममास्थितः। लिङ्गंत्रिभुवनेशंतंमहास्नानेनपूजयन्॥९७॥

अतुलां प्रीतिमालेभे विष्णोरद्वैतदर्शनः।
स्तुत्वा प्रणम्य भक्त्याऽसौ वीणया चोपगाय्य च॥९८॥
कृताञ्जलिपुटो देवप्रसादनकृतोद्यमः। अनन्यमनसा तस्थौ चिन्तयन्वृषभध्वजम्॥९९॥
ततः प्रसन्नो भगवांस्त्र्यम्बकः परमेश्वरः। साक्षान्नृपमुवाचेदं स्पष्टाक्षरपदं द्विजाः॥१००॥

जैमिनी कहते हैं—तदनन्तर वे मुनि तथा राजा अपने सैन्य के साथ मध्याह्न काल में एकाम्रवन क्षेत्र में आये। तदनन्तर राजा ने विन्दुतीर्थ में स्नान करके तीरस्थ पुरुषोत्तम की यथाविधि पूजा किया तथा कोटिश्वर शिव के प्रधान आलय में पहुंचे। तदनन्तर राजा ने विन्दुतीर्थ में स्नान किया तथा तट पर स्थिति पुरुषोत्तम की सविधि पूजा करके कोटीश्वर शिव के प्रधान देवगृह में गये। उनके देवगृह के द्वार पर उन्होंने सम्यक्रूपेण आचमन किया तथा सात्विक रूप से उनकी प्रीति हेतु बहुतर गज-अश्व-धन-रत्न तथा वस्त्रालंकार आदि प्रदान किया तथा शिव एवं विष्णु में अभेद की भावना रखते हुये उन त्रिभुवनेश्वर लिंग की महान् स्नानादि से पूजा करके उन्होंने अतुलित प्रसन्नता का अनुभव किया। राजा ने देवदेव नारायण का भक्तिपूर्वक स्तवपाठ किया तथा उनको प्रणाम करके वीणावादन द्वारा उनकी स्तुति भी किया। वे वृषभवाहन शंभु का चिन्तन करते हुये वहां एक पार्श्व में हाथ जोड़कर अनन्यमन से बैठ गये। हे द्विजगण! तदनन्तर त्र्यम्बक त्रिभुवनदर्शी भगवान् परमेश्वर शंभु ने प्रसन्न होकर राजा से स्पष्टतः कहा।।९४-१००।।

कोटिलिङ्गेश उवाच

इन्द्रद्युम्न ! महाराज ! वैष्णवस्त्वादृशो भुवि।
दुर्लभः खलु ते वाञ्छा चिरात्सम्यग्भविष्यति॥१०१॥

कोटिलिंगेश्वर कहते हैं—"हे महाराज! तुम्हारे समान विष्णुभक्त संसार में दुर्लभ हैं। अतः तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो"।।१०१।।

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे शम्भुः पश्यतस्तु महीक्षितः। नारदं पुनराहेदं यदादिष्टं स्वयम्भुवा॥१०२॥
तत्कल्पय महाभाग वाजिमेधपुरःसरम्। विष्णोः कलेवरे तस्मिन्क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे॥१०३॥
अन्तर्वेदी महापुण्या विष्णोर्हृदयसन्निभा।
तस्याः संरक्षणायाऽहं स्थापितो विष्णुनाऽष्टधा॥१०४॥
शङ्खाकृतेरग्रभागे नीलकण्ठोऽहमास्थितः। दुर्गया सह विप्रेन्द्र ! तत्रेमं भूपतिं नय॥१०५॥
अन्तर्हितः खल्विदानीं नीलरत्नतनुर्हरिः। तत्र श्रीनरसिंहस्य क्षेत्रं कुरु मदाज्ञया॥१०६॥
तत्र नः सन्निधौ वाजिमेधेन यजतामयम्। सहस्रेण नृपश्रेष्ठः तदन्ते तरुमद्भुतम्॥१०७॥
दर्शयैनं द्विजश्रेष्ठ ब्रह्मरूपमकल्मषम्। चतस्रः प्रतिमास्तेन विश्वकर्मा घटिष्यति॥१०८॥
तासां प्रतिष्ठितौब्रह्मास्वयमेवागमिष्यति। यथायंक्षीणपापःस्याद्वाजिमेधैर्यजन्हरिम्॥१०९॥
तिष्ठत्वब्दसहस्रं वै तदन्ते लोकयिष्यति। समस्तजगदाधारं सर्वकल्मषनाशनम्॥११०॥
दारवीं तनुमास्थाय दर्शनादपवर्गदम्। न तस्य चरितं वेत्ति ब्रह्माऽहं त्वं च नारद !॥१११॥

शंभुदेव यह कहकर अन्तर्हित् हो गये। तब नारद से शंभु ने कहा—"हे महाभाग! स्वयम्भु ने जो आदेश दिया है आप वहां अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करिये। यह पुरुषोत्तम क्षेत्र विष्णु का शरीर है। उसमें जो अन्तर्वेदी है, वह विष्णु का हृदय है। मैं भी वहां उस अन्तर्वेदी की रक्षा के लिये विष्णु द्वारा आठ प्रकार से स्थापित किया गया हूं। उस वेदी की आकृति शंखवत् है। मैं उसके अग्रभाग में दुर्गा के साथ अवस्थित रहता हूं। हे विप्रेन्द्र नारद! आप इन नरपति को वहां ले जाईये। वे नीलकान्तिमय हरि निश्चित रूप से यहां से अन्तर्हित् हो गये। इसलिये मेरी इस अनुमति द्वारा वहां पर नरसिंह देव के क्षेत्र का निर्माण करें। ये राजा इन्द्रद्युम्न वहां मेरे समक्ष १००० अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करें। तदनन्तर इनको उस निर्मल ब्रह्मरूप अलौकिक वृक्ष का दर्शन कराओ। विश्वकर्मा उस वृक्ष से चार अद्भुत प्रतिमूर्त्ति का निर्माण करें। उन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठार्थ वहां स्वयं ब्रह्मा का आगमन होगा। ये राजा वहां १००० वर्ष स्थित रहकर १००० अश्वमेध यज्ञों से श्रीहरि का पूजन करके निष्पाप हो जायेंगे। तदनन्तर समस्त जगत् के आधार, पापराशि विनाशक, दर्शन से ही अपवर्ग प्रदाता विष्णु की काष्ठमयी (दारुमयी) मूर्त्ति का अवलोकन कर सकेंगे। इस हरि चरित्र को मैं, आप, ब्रह्मा, कोई भी नहीं जानता।।१०२-१११।।

आज्ञानुष्ठानतो भक्त्या प्रसीदति स केवलम्।
नारदोऽपिमहादेवंप्रणिपत्यजगद्गुरुम् ।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा यदादिष्टं त्वया विभो !।।११२।।
पितामहोऽपि मामित्थं निर्दिदेशाऽस्य कल्पनम्।
पितामहश्च त्वं नाथ नो भिन्नौ परमात्मनः।।११३।।
नृपतेरस्य भाग्यर्द्धिरीदृशी यत्कृते विभो !। अगोचरोऽसौ मनसस्त्रयाणामप्यनुग्रहः।।११४।।
यत्प्रसङ्गेन तरणं भवाब्धेरपि दुष्कृताम्। अचिन्त्यमहिमा ह्येष भगवान्भूतभावनः।।११५।।
न बुद्धिगोचरे भक्तिर्यावत्या प्रीयते ह्यसौ। चिरंयतन्तस्तिष्ठन्तिवेदानुवचनादिभिः।
क्षुद्रोऽपि लभते मुक्तिमनायासेन कर्मणा।।११६।।

"केवल भक्तियोग के साथ आज्ञापालन करने से ही वे प्रभु प्रसन्न होते हैं।" यह सुनकर नारद ने जगद्गुरु शंभु को प्रणाम किया तथा कहा—"हे प्रभो! आपने जो आदेश दिया है, निर्माण आदि हेतु पितामह ने भी वही आदेश दिया था। हे नाथ! आप अथवा पितामह ब्रह्मा उन परमात्मा विष्णु से भिन्न नहीं हैं। इसलिये इन राजा की भाग्यसम्पत्ति इस प्रकार की है। आप तीनों देवताओं की एक साथ कृपा मन से भी अगोचर हैं। इसके सम्बन्ध से दुष्कृति व्यक्ति भवसागर को पार करने में समर्थ हो जाता है। भूतभावन भगवान् विष्णु की अचिन्त्य महिमा है। वे जिस प्रकार भक्ति द्वारा प्रसन्न होते हैं, वह भी बुद्धि का विषय नहीं है। क्या आश्चर्य है! न जाने कितने देवता तथा प्रधान-प्रधान मनुष्य इस भुवन में स्थित रहते हैं, तथापि अत्यन्त क्षुद्र व्यक्ति भी अनायास कर्म द्वारा विष्णु को सन्तुष्ट करके मुक्तिलाभ करते हैं।।११२-११६।।

गव्योपजीव्या गोप्यस्तुवनचारगृहोषिताः। आरण्यजीवनाःप्रापुर्मुक्तिंकामोपभोगतः।।११७।।
द्रुहन्निरन्तरं प्राप शिशुपालः सभान्तरे। व्याधोहृदयमाविध्य गतिं प्रापसुदुर्लभाम्।।११८।।

वस्त्राकर्षं गृहं नीत्वा कुब्जैनं बुभुजे पुरा। यं ध्यानलयमापन्ना लभन्ते न सुरस्त्रियः॥११९॥
चाण्डालायददौ मुक्तिंदूरस्थायापिनोपुनः। आसन्नायाऽतिभक्तायश्रोत्रियायपुराविभुः॥१२०॥
मायाभिर्वञ्चयेत्त्वां हि पितामहमपि प्रभुः। तिष्ठन्ति दुःखबहुलास्तपोभिर्देहबन्धनाः॥१२१॥
गौतमाद्या ब्रह्मचर्यनिष्ठाः कल्पान्तवासिनः।
ईदृक्तादृक्परिच्छेद गोचरं नाऽस्य चेष्टितम्॥१२२॥
व्यवसायेन बहुना कालेन महता तथा। निर्णेतुं शक्यते नाऽस्य चरितं वा सुमेधसः॥१२३॥
उपाया बहवः सन्ति ये शास्त्रपरिनिष्ठिताः। विदुषां मोचनायेह बहुशस्तैर्यजन्ति वै॥१२४॥
सर्वेषामुत्तमोपायोवसतिः पुरुषोत्तमे। याऽवश्यं स्वामिसायुज्यंप्रापयेत्सुसखा यथा॥१२५॥

उन सब गौवों से जीविका चलाने वाली गोपीगण ने पर्णकुटीरादि में रहते हुये, अरण्य में जीवनयापन करते हुये एकमात्र कामोपभोग द्वारा ही मुक्ति प्राप्त किया था। दुर्दान्त शिशुपाल ने निरन्तर द्रोह करके भी भगवान् की सभा में स्थान प्राप्त किया। व्याध ने प्रभु का हृदय बाणविद्ध करके भी अतीव दुर्लभ गति का लाभ किया। पूर्वकाल में मथुरा की कुब्जा ने वस्त्राकर्षण द्वारा भगवान् को गृह में ले जाकर उनकी सेवा करके उनका उपभोग करने का सौभाग्य पाया। लेकिन देवताओं की स्त्रियां यावज्जीवन उनका निरन्तर ध्यान करके भी उनकी प्राप्ति करने में असफल रहीं। पूर्वकाल में प्रभु ने दूरस्थ चाण्डाल को भी मुक्ति प्रदान किया था, तथापि उन्होंने निकटस्थ अत्यन्त भक्त श्रोत्रिय को दर्शन दान से वंचित कर दिया। वे प्रभु माया से आपकी तथा पितामह की वंचना करते हैं। गौतमादि ऋषिगण ब्रह्मचर्य का अवलम्बन लेकर उनके निमित्त तप करते हैं। अथच उसके द्वारा उनको अनेक दुःखागररूपी कल्पान्तवासी देह बन्धन ही प्राप्त होता है (अर्थात् उनकी कल्पान्त पर्यन्त का दीर्घ जीवन मिलता है जो दुःख रूप ही है)। किम्बहुना, अतिशय बुद्धिमान व्यक्ति दीर्घकाल तक चेष्टा करके भी प्रभु का चरित्ररहस्य नहीं जान सकते। यद्यपि ज्ञानियों की मुक्ति के लिये शास्त्रों में बहुविध उपाय कहे गये हैं। उनके द्वारा मोक्ष पथ का अनुसरण किया जाता है, तथापि उन समस्त उपायों की तुलना में प्रधान उपाय है एकमात्र पुरुषोत्तम क्षेत्र में निवास करना। इस उपाय द्वारा स्वामी का सायुज्य मिल जाता है। मानो यह क्षेत्र सखा के रूप में विष्णु सायुज्य की प्राप्ति करा देता है।।११७-१२५।।

तदेनं मायिनं प्राप्तुमुपायो नान्तरीयकः। स्वयं निधाय हरिणा यत्र वासः सुरक्षितः॥१२६॥
इन्द्रद्युम्नप्रसङ्गेन जायते सार्वलौकिकः। तदाज्ञापय देवेश गृहीत्वैनं बलान्बितम्॥१२७॥
उपत्यकायां संस्थाप्य दीक्षयित्वा महाक्रतौ।
आगमिष्यामि पादाब्जसमीपं ते वृषध्वज !॥१२८॥

अतएव मायावी विष्णु की प्राप्ति हेतु यही एक विघ्नरहित उपाय है। हरि स्वयं ही इस क्षेत्र रूपी निवास-स्थल का निर्माण करके अत्यन्त यत्नतः इसकी रक्षा कर रहे हैं। अब इन्द्रद्युम्न राजा के प्रसंग के कारण यह क्षेत्र सभी को ज्ञात हो गया है। अतः हे देवदेव वृषध्वज! आप अनुमति प्रदान करिये। मैं राजा को नीलाचल की उपत्यकाओं में ले जाकर उनको यज्ञों के लिये दीक्षित करके पुनः आपके श्रीचरणों के निकट आ जाऊं।।१२६-१२८।।

जैमिनिरुवाच

तथेत्युक्त्वा महादेवः क्षणान्तर्दधे मुनेः। सोऽपि राज्ञो रथेतिष्ठन्प्रययौक्षेत्रमुत्तमम्॥१२९॥
द्वितीयेऽह्निकपोतेशस्थलीमासेदिवान्नृपः। दैर्घ्यायामसमायुक्तां जलाशयद्रुमाकुलाम्॥१३०॥
बिल्वेशः पूर्वसीमायां समुद्रतटमास्थितः।
सेनानिवेशयोग्यां तां मन्त्रिणा सन्निवेदिताम्॥१३१॥
यथायोग्यं यथास्थानं स्थापयित्वानृपोत्तमः। बिल्वेश्वरकपोतेशंनमस्कृत्यप्रपूज्यच॥१३२॥
रथमास्थाय मतिमान्सहितो ब्रह्मसूनुना। मनसा वचसाविष्णुंनीलाचलनिवासिनम्।
चिन्तयन्कीर्तयन्विप्रा जगाम सन्निधिं हरेः॥१३३॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्र-माहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे बिल्वेश्वरकपोतेश्वरगमनवर्णनंनामद्वादशोऽध्यायः॥१२॥

—✲✲✲—

जैमिनि कहते हैं—देवदेव महादेव नारद को अनुमति प्रदान करके सहसा वहां से अन्तर्हित् हो गये। ऋषि नारद ने भी राजरथ पर बैठकर उत्तम क्षेत्रधाम के लिये प्रयाण किया। दूसरे दिन वे लोग कपोतेश्वर देवालय में पहुंचे। यह स्थल दीर्घ तथा प्रशस्त था। यहां पर नाना वृक्ष श्रेणी तथा मनोरम जलाशय थे। उसकी पूर्व सीमा पर समुद्रतटस्थ विश्वेश्वर नामक शिवलिंग है। हे द्विजगण! राजमन्त्री ने यहां सैन्यनिवास योग्य स्थान जाना तथा प्रत्येक को उसकी-उसकी मर्यादा के अनुरूप वहां स्थापित किया तथा कपोतेश्वर प्रभु को प्रणाम करके तथा उनकी सम्यक् पूजा करके ब्रह्मपुत्र नारद के साथ रथ पर बैठे। वे मन-वाणी से उन नीलाचलवासी विष्णु का चिन्तन करते-करते श्रीहरि के स्थान की ओर चल पड़े।।१२९-१३३।।

।।द्वादश अध्याय समाप्त।।

त्रयोदशोऽध्यायः

कपोतेश तथा बिल्वेश महिमा

मुनय ऊचुः

कपोतेशस्थलीचाऽपि कथं ख्याता महामुने !। को वाकपोतःकश्चेशएतन्नोवक्तुर्महसि॥१॥

मुनिजन कहते हैं—हे जैमिनि! यह कपोतेशस्थल नाम किसलिये प्रख्यात है तथा कपोत एवं उनका ईश्वर कौन है? यह सब कृपया कहिये।।१।।

जैमिनिरुवाच

पुराकुशस्थलीसावैअसेव्यासर्वजन्तुभिः। तीक्ष्णधारैःकुशाग्रैस्तुपरितःकण्टकैश्चिता॥२॥
निस्तरुर्निर्जलाधारा पिशाचवसतिर्यथा। यदा पूर्वं भगवतो नाऽन्योदेवोऽपिपूज्यते॥३॥
पूज्यः स्यामहमप्येवं स्पर्धाऽऽसीद् धूर्जटेस्तदा।
चिन्तयन्निति तस्यैव विष्णोर्भक्तौ मनोऽदधत्॥४॥
सर्वनिर्विषये देशे स्थित्वाऽहंनिष्परिग्रहः। सुमहत्तपआस्थायतोषयिष्यामितंहरिम्॥५॥
किं वदेयं रमेशाय का स्तुतिःशारदापतेः। सर्वब्रह्माण्डनाथस्यकिंवान्यत्तुष्टिकारकम्॥६॥
तस्मान्न बाह्यं वस्त्वन्यदुपयोगायतस्य वै। अन्तर्यागंसमास्थायनिर्व्यलीकेनचेतसा॥७॥
भक्तेभ्य आत्मप्रददं चराचरगुरुं हरिम्। आराध्ययिष्ये सर्वेषांपूज्यःस्यांतत्प्रसादतः॥८॥

जैमिनि कहते हैं—पूर्वकाल में एक प्रसिद्ध कुशस्थली थी। उसमें सभी जन्तु निवास करते थे। अत्यन्त तीक्ष्ण धार वाले कुश से तथा अनेक काटों से यह स्थल चतुर्दिक् से घिरा था। उसमें वृक्ष तथा जलाशय नहीं था। यह स्थान पिचाशों का वासस्थान प्रतीत होता था। एक बार देवेश्वर धूर्जटि भगवान् शिव ने मन में यह अभिलाषा किया कि एकमात्र भगवान् के अतिरिक्त पूर्वकाल में अन्य कोई देवता पूज्य नहीं था, मैं भी उस प्रकार पूज्य रहूंगा। महादेव ने यह संकल्प करके उन विष्णु की भक्ति में मन लगाकर यह कहा कि मैं समस्त आकांक्षाओं का त्याग करके विषयशून्य प्रदेश में अवस्थित होकर एकमात्र महती तपस्या के अनुष्ठान द्वारा हरि को प्रसन्न करूंगा। वे तो स्वयं लक्ष्मीपति हैं, अतः उनको और क्या दिया जा सकता है? वे स्वयं वाक्पति हैं, अतः उनकी स्तुति क्या की जाये? वे समस्त ब्रह्माण्ड के ईश्वर हैं इसलिये उनकी तुष्टि क्या अन्य उपाय किया जा सकता है? अतएव भगवान् को सन्तुष्ट करने का जो उपाय अन्तर्याग है, उसका एकचित्तता से आश्रय लेकर भक्तगण आत्मसमर्पण द्वारा उन हरि की आराधना करें। इसके द्वारा मैं उनकी कृपा से सबका पूज्य हो सकूंगा।।२-८।।

तत इत्यभिसन्धायययौ पुण्यांकुशस्थलीम्। समीपेनीलगोत्रस्यसर्वद्वन्द्वविवर्जितः॥९॥
ततस्तेपे तपस्तीव्रं वायुभक्षो महेश्वरः। कपोत इव सूक्ष्मोऽभूदष्टमूर्तिरपि प्रभुः॥१०॥
ततः प्रसन्नो भगवानैश्वर्यं प्रददौ तदा। येनात्मतुल्यः सञ्जातः पूजासम्माननादिषु॥११॥
तपःप्रभावात्तस्यासीत्स्थलीवृन्दावनोपमा। सरस्तडागसरसीनदीभिःशोभितान्तरा॥१२॥
नानाद्रुमैर्लताभिश्च सर्वर्तुफलपुष्पकैः। मधुमत्तद्विरेफाणां झङ्कारैर्मुखराशया॥१३॥
नानापक्षिगणाकीर्णा सर्वजन्तुसुखाश्रया। कपोतसदृशो जातो यतः सतपसाशिवः॥१४॥
मुरारेराज्ञया सोऽत्र कपोतेश्वरतांगतः। तदाज्ञयाऽत्रवसति मृडान्या त्र्यम्बकः सदा॥१५॥

तदनन्तर भगवान् शिव निश्चय करके नीलपर्वत सन्निहित विरोधशून्य पुण्यभूमि कुशस्थली पहुंचे। वहां महेश्वर केवल वायु का ही भक्षण करते हुये तपश्चरण करने लगे। वे स्थूल रूप से दृष्ट होने वाले अष्टमूर्त्ति होने पर भी तपस्या के कारण कपोत की तरह सूक्ष्म (क्षीण) प्रतीत होने लगे। इस तपस्या से भगवान् प्रसन्न हो गये तथा उन्होंने शिव को वह ऐश्वर्य प्रदान किया जिससे उन्होंने पूजा तथा समस्त सम्मानों को भगवान् की तरह

ही प्राप्त कर लिया। महादेव के तपः प्रभाव से वह कुशस्थली वृन्दावन के समान प्रतीत होने लगी और वह सरोवर-तड़ाग तथा नदी के द्वारा शोभित हो गयी। वहां नाना तरुलता समस्त ऋतुराज पुष्प-फल, मधु से उन्मत्त भ्रमरों का गुंजन गूंजने लगा। वह कुशस्थली अनेक पक्षियों से परिपूर्ण होकर सभी प्राणियों के लिये सुखप्रद हो गयी। शिव अपने तप के कारण कपोत की तरह सूक्ष्म शरीर वाले हो गये, इसलिये मुररिपु माधव की आज्ञा से उन्होंने 'कपोतेश्वर' की संज्ञा प्राप्त किया। उनकी ही आज्ञा के द्वारा शिव सदैव भगवती मृडानी गौरी के साथ वहां त्र्यम्बकरूपेण सदा निवास करते हैं।।९-१५।।

येऽर्चयन्ति कपोतेशं स्तुवन्तिप्रणमन्ति वा। निर्धूतकल्मषास्तेवैप्रयान्तिपुरुषोत्तमम्।।१६।।

अतः परं प्रवक्ष्यामि बिल्वेशमहिमां द्विजा !।

पातालवासिनः पूर्वं दैत्या भित्त्वा महीतलम्।।१७।।

उपद्रवन्ति भूर्लोकं भक्षयन्ति जनांस्तथा। भारावतरणार्थाय देवकीगर्भसम्भवः।।१८।।

पालयामास पृथिवीं यदा स भगवान्प्रभुः। यादवैःपाण्डवैःसार्द्धंतदातत्स्थानमागतः।।१९।।

तीर्थराजस्य सलिलेस्नात्वा तं नीलमाधवम्। दूरात्प्रणम्य मनसा दैत्यद्वारमुपागतः।।२०।।

दृष्ट्वा तद्विवरं घोरंभप्रवेश्यं तु मानवैः। भ्रान्त्यासंमोहयँल्लोकान्प्रथयञ्छिवपूज्यताम्।।२१।।

बैल्वं फलं समादाय तत्राऽऽवाह्यत्रिलोचनम्। पूजयित्वापुरारातिं तुष्टावाऽसुरसूदनः।।२२।।

जो कपोतेश्वर शिव की अर्चना, स्तुति तथा प्रणाम करते हैं, वे ही निष्पाप होकर पुरुषोत्तम क्षेत्र जाने में समर्थ हो जाते हैं। हे द्विजगण! विश्वेश्वर शिव की और भी महिमा को सुनें। पूर्वकाल में जब पातालवासी दैत्यगण पृथिवी का भेदन करके वहां द्वार बनाकर भूलोक में आकर अनेक उपद्रवों के साथ जनसमूह का भक्षण करने लगे, तब भगवान् ने भूभार हरणार्थ देवकी के गर्भ से जन्म लेकर धरती का पालन किया। एक बार भगवान् यादव तथा पाण्डवों के साथ यहां इस क्षेत्र में आये। उन्होंने तीर्थराज समुद्र में स्नान के पश्चात् इन नीलमाधव को मन ही मन प्रणाम किया। वे तदनन्तर उस दैत्य द्वार तक पहुंचे। उन्होंने देखा कि वह द्वार विवर अत्यन्त भयानक हैं। उसमें मानव प्रवेश नहीं कर सकते। अतः लोगों को उन्होंने अपनी भ्रान्ति से मोहित करके यही व्यक्त किया कि उनको यहां देवदेव शिव की पूजा करनी है। तदनन्तर माधव एक बिल्वफल लाकर त्रिपुर तथा अन्धक दैत्यनाशक त्रिलोचन का आवाहन करके उनको प्रसन्न करने के लिये स्तवगान करने लगे।।१६-२२।।

श्रीभगवानुवाच

नमस्तेत्रिगुणातीत ! गुणत्रयविभागकृत् !। त्रयीमय ! त्रयातीत ! त्रिकालज्ञानिने नमः।।२३।।

शशिसूर्याऽग्निनेत्राय ब्रह्मण्याय वरात्मने। अष्टैश्वर्यनिधानाय तुभ्यमष्टात्मने नमः।।२४।।

यस्य रूपं तमःपारे तमोनाशनमव्ययम्। अज्ञानानां तमश्छिन्नं तस्मै वितमसे नमः।।२५।।

भगवान् कृष्ण कहते हैं—हे शिव! आप त्रिगुण रहित हैं अथच आप ही गुणत्रय का विभाग करते हैं। आप वेदत्रयरूपी हैं, तथापि वेद से परे हैं। आप ही भूत-भविष्य-वर्त्तमान रूपी कालत्रय के ज्ञाता हैं। आपको प्रणाम। हे शिव! चन्द्र, सूर्य, अग्नि आपके तीन नेत्र हैं। आप ब्रह्मण्यरूप तथा परमात्मा हैं। आप अणिमादि आठों ऐश्वर्य के ईश्वर हैं। आप ही पृथिव्यादि अष्टमूर्त्ति धारण करते हैं। आपको नमस्कार। हे शिव! आपका

स्वरूप अव्यय है तथा तमोगुण के पार स्थित है। अथच वह तमोगुण नाशक है। अतः आप अज्ञानियों के तमः का छेदन करते हैं। आप तमोगुण से रहित हैं। आपको प्रणाम!।।२३-२५।।

एवंस्वमाऽऽत्मनात्मानंस्तुत्वा स भगवान्प्रभुः। तस्यप्रसादाद्विवरं सुप्रवेशमपश्यत।।२६।।
तेन मार्गेण पातालंससैन्योऽभ्यगमत्प्रभुः। हत्वा तत्रबलोदग्रान्दैत्यान्भारावतारणः।।२७।।
पुनरागम्य तत्रैवस्थित्वासवृषभध्वजम्। सम्पूज्यभगवान्द्वाररोधायस्थापयञ्छिवम्।।२८।।
इदमाह महाबुद्धिर्भक्तिवश्यो गदाधरः। धूर्जटे ! तिष्ठ प्रासादेरुन्धानोऽसुरनिर्गमम्।।२९।।
त्वदन्यः कः क्षमः शम्भो कर्बूरबलनाशने। स्थापयित्वा महादेवं ततोद्वारावतींययौ।।३०।।

इस प्रकार उन प्रभु भगवान् कृष्ण ने स्वयं अपना ही स्तव किया था तथा उन शिवरूपी ब्रह्म की कृपा से उन्होंने इस पाताल विवर को अपने प्रवेश योग्य हो गया देखा। उन प्रभु ने उसी पथ द्वारा सेना सहित पाताल में जाकर वहां स्थित बलगर्वित दैत्यों का विनाश करके पृथिवी का भार हरण किया। तदनन्तर वे बाहर निकले तथा उस स्थान पर अवस्थित होकर कृष्ण ने भगवान् वृषध्वज शंकर का पूजन किया। अब उन्होंने वहां दैत्यों को रोकने हेतु उस विवर पर प्रासाद बनवाया तथा वहां भगवान् महादेव की स्थापना का कार्य सम्पन्न किया। तब भक्तिवश्य महाबुद्धि गदाधर ने शिव से कहा—"हे धूर्जटि! आप असुरों के बाहर निकलने वाले उस निर्गमपथ बिलद्वार को अवरुद्ध करके इस प्रासाद में स्थित हो जायें। हे शम्भु! कर्वुरदल का नाश करने में आपके अतिरिक्त कौन सक्षम है?" तदनन्तर शिव की एवंविध स्थापना का कार्य सम्पन्न करके भगवान् वासुदेव द्वारिका चले गये।।२६-३०।।

ततः प्रभृति बिल्वेशः पृथिव्यां ख्यातिमागतः।
पूर्वविधिः स बिल्वेशः क्षेत्रराजस्य भो द्विजाः !।।३१।।
तं दृष्ट्वा पापहन्तारं मृडानीपतिमव्ययम्। सर्वान्कामानवाप्नोति विपत्तिंदुस्तरांजयेत्।।३२।।
कपोतबिल्वेश्वरयोर्माहात्म्यंकथितं तु वः। अतःपरंभोमुनयः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ।।३३।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे-
पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनऋषिसम्वादे कपोतेशबिल्वेशयोर्माहात्म्य-
वर्णनंनामत्रयोदशोऽध्यायः।।१३।।

—❀❀❀—

से पृथिवी पर महादेव की प्रसिद्धि विश्वेश्वर नाम से हो गयी। हे द्विजगण! ये विश्वेश्वर शिव इस क्षेत्र राज की पूर्वसीमा अलंकृत करके स्थित हैं। जनगण इन पापहन्ता मृडानीपति का दर्शन करके दुस्तर विपत्तिसागर से पार होकर समस्त अभिलषित पदार्थ की प्राप्ति करते हैं। मैंने कपोततीर्थ तथा विश्वेश्वर का माहात्म्य वर्णन आप लोगों से इस प्रकार कह दिया। हे मुनिगण! अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?।।३१-३३।।

।।त्रयोदश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुर्दशोऽध्यायः

विद्यापति के साथ नारद तथा राजा का जाना, राजा द्वारा दारु प्रतिमा निर्माण का संकल्प

मुनय ऊचुः

रथमारुह्य तौ यातौ यदा नारदपार्थिवौ। क्व यातौ चक्रतुः किं वा तन्नो वदमहामुने॥१॥

मुनिगण कहते हैं—हे महामुनि जैमिनी! जब राजा इन्द्रद्युम्न तथा नारद ने वहां से रथ द्वारा प्रयाण किया तब वे कहां पहुंचे तथा उन्होंने किस कार्य को सम्पन्न किया? यह बतलाने की कृपा करिये।।१।।

जैमिनिरुवाच

सार्द्धं च विद्यापतिना पुरोहितकनीयसा। क्षेत्रान्ते नीलकण्ठस्य समीपमुपजग्मतुः॥२॥
दुर्निमित्तमभून्मार्गे व्रजतोऽस्यमहीक्षितः। वामाक्षिभुजयोःस्पन्दःस्फुरणंचमुहुर्मुहुः॥३॥
तद्दृष्ट्वा नृपशार्दूलोविषादमुपसेदिवान्। पप्रच्छ कारणं चाऽस्यसर्वज्ञाननिधिंमुनिम्॥४॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—इन्द्रद्युम्न तथा नारद ऋषि उन पुरोहित के अनुज विद्यापति के साथ क्षेत्रधाम की सीमा नीलकण्ठ के निकट पहुंचे। राजा के जाते समय मार्ग में कई अपशकुन दिखलाई पड़े। तब राजा के वामनेत्र तथा वामबाहु फड़कने लगे। राजा ने यह सब देखा। इससे उनके मन में द्विधा उत्पन्न हो गई कि इन अपशकुनों का कारण क्या है? तब उन्होंने सर्वज्ञानी देवर्षि नारद से इसका तात्पर्य पूछा।।२-४।।

अव्याहतं मे साम्राज्यं प्राप्तं क्षेत्रोत्तमं त्विदम्। दर्शनार्थंमाधवस्ययात्रेयं तु शुभावहा॥५॥
अकार्यं मे भवेदद्य किं मुने ब्रूहि तत्त्वतः। स्पन्दतेवामनेत्रंतुस्फुरते च भुजोऽसकृत्॥६॥
तच्छ्रुत्वा नारदः प्राह भावि कार्यं च सूचयन्। श्रावयन्कुशलं वाक्यंयदुक्तंपद्मयोनिना॥७॥

राजा कहते हैं—"हे मुनिवर! मेरा साम्राज्य अव्याहत है तथा इस उत्तम क्षेत्र में मैं शान्ति से अवस्थित हूं, साथ ही माधव के दर्शन के लिये यात्रा कर रहा हूं। यह सब अवश्य शुभयुक्त प्रतीत होता है। तब भी किसलिये अनिष्ट घटित होगा, मैं यह आपसे जानना चाहता हूं। कृपापूर्वक यथार्थतः कहिये।" नारद ने यह सुनकर भावीकार्य सूचक ब्रह्मदेव ने जो कुछ उनसे कहा था, वह कुशल भाव से कहने लगे।।५-७।।

नारद उवाच

मा भूद्विषादस्ते भूप सविघ्नं प्रायशः शुभम्। विघ्नान्ते चशुभंपुंसांपुनर्भाग्यवतांनृप॥८॥
सत्यं त्वं सार्वभौमोऽसि क्षेत्रं विष्णोर्वपुस्त्विदम्।
यात्रा तेऽत्र यदर्थेयं सोऽन्तर्द्धानमुपागमत्॥९॥
एष विद्यापतिर्विप्रोदिनेयस्मिन्ददर्शतम्। सायंकालेततोऽन्येद्युः स्वर्णवालुकयावृतः।
ययौ पातालनिलयं मर्त्यलोके सुदुर्लभः॥१०॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे राजन्! आप विमना न हों। सभी शुभ-कार्यों में विघ्न आते हैं। भाग्यवान् पुरुषों के समक्ष भी विघ्न आते हैं, तथापि पुनः शुभ का उदय होता है। यह सत्य है कि आपने समस्त साम्राज्य सुखपूर्वक व्यवस्थित किया है, यह क्षेत्र तथा विष्णु शरीर अविकृत है। (अर्थात् यह क्षेत्र विष्णु का शरीर है।) तथापि जिनके लिये आप यात्रा कर रहे हैं, वे अन्तर्हित् हो गये हैं। इन विप्र विद्यापति ने जिस दिन उनका दर्शन किया था, उसके अगले दिन की सन्ध्या के समय वे स्वर्णबालुका से आवृत होकर अपने पाताल गृह में चले गये। अतः अब उनका मर्त्यलोक में दर्शन दुर्लभ है।।८-१०।।

जैमिनिरुवाच

तच्छ्रुत्वा घोरवचनं वज्रपातसमं नृपः। पपात धरणीपृष्ठे निःसञ्ज्ञः स द्विजोत्तमाः॥११॥
तं तथा पतितं दृष्ट्वा पुरोहितपुरोगमाः। स्निग्धाःसखायः सर्वे ते हाहाकारमुपाद्रवन्॥१२॥
कर्पूरशीतलंवारि मुखे सिक्त्वा पुनःपुनः। चन्दनागुरुकर्पूरैः सर्वाङ्गं लिलिपुश्च ते॥१३॥
चामरैस्तालवृन्तैश्चवीजयामासुराशुतम्। नारदोऽपिचसम्भ्रान्तोधारयन्योगधारणम्॥१४॥
प्राणानरक्षन्नृपतेर्जानंस्तत्र शुभायतिम्। सोऽपिराजा चिरात्संज्ञां लेभेयत्नैरनुत्तमैः॥१५॥
उत्थायपादयोर्विप्रा नारदस्याऽपतत्पुनः। किमकार्षं मुने ! पापं कस्मिञ्जन्मान्तरेदृढम्॥१६॥
यस्यपाकदशायाम्वैदुःखमासीत्सुदारुणम्। कर्मणामनसावाचानो द्विजानां गवामपि।
अपराधः कृतः कश्चित्स्वप्नेऽपि मुनिपुङ्गव !॥१७॥

जैमिनि कहते हैं—हे द्विजगण! राजा यह घोरतर वज्राघात ऐसा वाक्य सुनकर चेतनारहित होकर भूमि पर गिर गये। तदनन्तर उनको इस हालत में देखकर पुरोहित आदि सभी आत्मीयजन हाहाकार करने लगे तथा कर्पूर से सुवासित जल से पुनः-पुनः उनके मुख का सिंचन करते-करते चन्दन-अगुरु-कस्तूरी आदि गन्धद्रव्य का समस्त अंग में उन्होंने लेपन भी कर दिया। इसके पश्चात् शीघ्रतापूर्वक चामर तथा तालपत्र के पत्ते से उनको पंखा झलने लगे। नारद भी योगबल द्वारा नृपति के भविष्यगत शुभ निश्चय को जानकर उनके प्राण तथा इन्द्रियों की रक्षा करने लगे। इस प्रकार कुछ समय के पश्चात् राजा अनेक यत्न किये जाने पर चैतन्य युक्त हो सके। हे द्विजगण! तब वे उठे तथा सर्वज्ञ देवर्षि नारद के चरणों पर गिरकर विलाप करते-करते कहने लगे "हे मुनिवर! मैंने किस जन्म में क्या घोरतर पाप किया था, जिसके परिपाक दशा के आने पर इस प्रकार का दारुण मनःस्ताप पा रहा हूं? हे मुनिवर! मैंने शरीर से, वाक्य से, मन से कभी भी गौ, ब्राह्मण के प्रति (इस जन्म में) कोई भी अपराध नहीं किया।।११-१७।।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कर्म यत्परिकीर्तितम्।
राज्ञस्तन्मुनिशार्दूल ! न त्यक्तं वै मया क्वचित्॥१८॥
देवतातिथिभृत्यानां पितॄणां च महामुने। तथाश्रितानां बन्धूनां नापमानःकृतोमया॥१९॥
पञ्चाशदपराधा ये विष्णोर्वैष्णवपुङ्गव !। त्यक्ताः प्रयत्नात्ते सर्वे क्रुद्धा इव महोरगाः॥२०॥
किं भाग्यं चरितं नेन पुरोहितकनीयसा। यच्चर्म चक्षुषा दृष्टो भगवान्नीलमाधवः॥२१॥
किमर्थं राज्यविभ्रंशो जानतैष त्वयाकृतः। यात्रासमय एवैतत्कथं वा न प्रकीर्तितम्॥२२॥

हे मुनिप्रवर! जितने नित्य, नैमित्तिक तथा काम्यकर्म राजाओं का कर्त्तव्य कहकर शास्त्र ने निर्देश दिया है, मैंने कभी उनकी अहवेलना नहीं किया है। हे महामुनि! देवता, अतिथि, वृद्ध, पितर, बन्धुवर्ग तथा आश्रितों का मेरे द्वारा कभी अपमान नहीं किया गया। हे मुनिश्रेष्ठ! जो विष्णु से सम्बन्धित पचास अपराध कहे गये हैं, मैंने यत्नतः उनका वैसे ही त्याग किया है, जैसे व्यक्ति क्रोधित सर्प से दूर से ही बच निकलता है। अहा! इन पुरोहित के अनुज विद्यापति का कितना उत्तम भाग्य है कि उन्होंने अपने इन्हीं नेत्रों से भगवान् नीलमाधव का दर्शन पा लिया! हे मुनिवर! आपने सब जानते-समझते मुझे राज्य से क्यों हटाया! आपने किसलिये यात्रा के समय ही इन सब प्रसंग को क्यों व्यक्त नहीं किया।।१८-२२।।

किमर्थम्वाश्रोत्रियाणांस्थानभ्रंशोमयाकृतः। कथमेतैःपरित्यक्ताश्चिरात्संस्कृतभूमयः।।२३।।
आवंशभूतेर्वृत्तिर्याप्रजाभिःपरिपालिता। मदर्थं सा परित्यक्ताजीविष्यन्तिकथंनुताः।।२४।।
प्राणान्न धारयिष्यामि न द्रक्ष्यामि यदा हरिम्।
एष मे निश्चयो ब्रह्मन्मयि नष्टे कुतः प्रजाः।।२५।।
मुने सदासकरुणस्त्वंमांशास्सिशुभाशुभम्। साम्प्रतंमत्सुतंनीत्वामालवेष्वभिषेचय।।२६।।
स पालयतु न्यायेन न शोचन्तु इमाःप्रजाः। राजानो ये समायातास्तेसर्वेमन्निदेशतः।।२७।।
मत्सूनोर्मालवेशस्यप्रयान्तुवचने स्थिताः। प्रायोपवेशविधिना चिन्तयन्नीलमाधवम्।।२८।।
आयुः शेषं करिष्यामि सफलं क्षेत्रसंस्थितः।।२९।।

मैंने किसलिये ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रियगण का स्थान-परिवर्त्तन कराया? अहा! किसलिये इन्होंने अपनी चिरकालीन आवसभूमि का त्याग किया? प्रजावर्ग वंशक्रम से आजतक जिन वृत्ति का भोग करते चले आ रहे थे, वे अब कैसे जीवन धारण करेंगे? हे ब्रह्मन्! मैं यदि हरिदर्शन से वंचित हो गया हूं, तब मुझे प्राणधारण नहीं करना है, यदि मैंने यह निश्चय कर ही लिया है तब मेरे नष्ट हो जानेपर मेरे प्रजावर्ग के जीवन की क्या संभावना रह जायेगी? हे मुनिवर! आप सदा मुझे अनुग्रहपूर्वक शुभ-अशुभ सम्बन्धित उपदेश देते रहते हैं। आप मेरे पुत्र को राज्य पर अभिषिक्त कर दीजिये। इस सन्तान द्वारा यथान्याय राज्य का प्रतिपालन होते रहने पर प्रजाजन शोकग्रस्त नहीं होंगे। जो सब राजा साथ में आये हैं, उन सबको मेरी यह अनुमति है कि वे मेरे पुत्र मालवेश (मालवा के स्वामी) के अनुगत होकर उसके साथ चले जायें। मैं यहीं रहकर प्रायोवेशन व्रत का अवलम्बन लेकर नीलमाधव देव का चिन्तन करते-करते सफलता पूर्वक अपनी आयु समाप्त करूंगा।।२३-२९।।

जैमिनिरुवाच

विलपन्तमिन्द्रद्युम्नं राजानं ब्रह्मणः सुतः। उत्थाप्य प्रश्रयगिरासान्त्वयन्निदमब्रवीत्।।३०।।

जैमिनी कहते हैं—राजा इन्द्रद्युम्न इस प्रकार नारद के चरणों पर गिरकर विलाप करने लगे। ब्रह्मपुत्र नारद ने उनको उठाया तथा उनको सान्त्वना देते हुये कहने लगे।।३०।।

नारद उवाच

राजन्पण्डितमूर्द्धन्यो वैष्णवो धैर्यसागरः। श्रेयः सविघ्नंसततं कथं वा नाऽवधारयेः।।३१।।
इदं तु परमं श्रेयः पुंसो जन्मशतार्जितम्। शरीरधारिणं पश्येच्चर्मचक्षुर्गदाधरम्।।३२।।

निरङ्कुशा हरेर्लीला केनवाप्यवधार्यते। जीवन्मुक्तोऽप्यहं राजंस्तल्लीलांनाऽतिवर्तये।।३३।।

कियता वञ्चितो नाऽहं दृढभक्तोऽन्तिकस्थितः। दुरत्यया तस्य माया बहुजन्मशतैरपि।।३४।।

अनन्ता तस्यमायेयंदुर्ज्ञेयापद्मयोनिना। नाभिपद्मास्थितेनाऽपिनित्यञ्चस्तुतिशालिना।।३५।।

नारद कहते हैं—"हे राजन्! तुम पण्डित प्रधान हो। विष्णुभक्ति परायण तथा धैर्यरूपी गुण के साररूप हो। अतएव सामान्यतः समस्त श्रेयमार्ग तथा श्रेयमात्र ही विघ्नसंकुल होता है क्या यह नहीं जानते? विशेषतया इन भौतिक नेत्रों से शरीरधारी गंगाधर का दर्शन पा सकना तो व्यक्ति के १०० जन्मों का श्रेयः कहा जा सकता है। इस निरंकुश हरिलीला की धारणा कर सकने में कोई भी सक्षम नहीं है। हे राजन्! मैं जीवन्मुक्त होकर भी इस लीला का अतिक्रमण नहीं कर सकता। देखो! मुझे कोई भी कामना नहीं है, तथापि मैं उनके प्रति दृढ़भक्ति करते हुये सर्वदा उनके ही समीप अवस्थित रहता हूं। कोई १०० जन्म लेकर भी उनकी माया का अतिक्रमण नहीं कर सकता। क्योंकि उनकी माया तो अन्तहीन है। इसी कारण पद्मयोनि ब्रह्मा उनके नाभिपद्म पर सदा स्थित होकर अनेक स्तव करते हुये भी यह रहस्य नहीं जान पाते।।३०-३५।।

स्वभाव एवं कथितस्तस्यमायाविनोनृप। विशेषं कथयाम्येवं त्वन्तु भाग्यवताम्वरः।।३६।।

तिस्रोऽपि मूर्तयस्तस्य त्वदनुग्रहबुद्धयः। चराचराणांस्त्रष्टायः साक्षाल्लोकपितामहः।

मामुवाच व्रजाऽऽशु त्वमिन्द्रद्युम्नस्य चाऽन्तिकम्।।३७।।

नीलाचलम्प्रयात्येष दिदृक्षुर्नीलमाधवम्। अन्तर्द्धानं गतो ह्येष यमेन प्रार्थितो विभुः।।३८।।

न तत्र शोकः कर्तव्यः शक्यतेतत्र नान्यथा। वाच्यो मद्वचनाद्राजापञ्चमीममसन्ततिः।।३९।।

तत्कृते परमात्मानं प्रसाद्य पुरुषोत्तमम्। श्वेतद्वीपान्नयिष्यामि सहस्रान्ते महाक्रतोः।।४०।।

इन्द्रद्युम्नः स इदानीं क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे। अश्वमेधसहस्त्रैस्तु यजन्विष्णुं स तिष्ठतु।।४१।।

हे राजन्! उन मायावी माधव का यह स्वाभाविक भाव मैंने कहा है। इसलिये और तथ्य भी विशेषतः तुमसे कहता हूं। तुम भाग्यशालीगण में श्रेष्ठ हो। हे इन्द्रद्युम्न! यह हरिमूर्त्ति चतुर्धा है। इन चारों मूर्त्ति-जगन्नाथ, बलदेव, सुभद्रा तथा सुदर्शन की तुम्हारे प्रति कृपा बुद्धि है। इन चारों में से जो मूर्ति चराचर का सृजन करते हैं, उन साक्षात् लोकपितामह ब्रह्मा ने यह कहा था—"हे नारद! तुम शीघ्रता से इन्द्रद्युम्न के पास जाओ। वे नीलमाधव के दर्शनाभिलाषी होकर नीलपर्वत जाने का उपक्रम कर रहे हैं, किन्तु वे नीलमाधवदेव यमराज की प्रार्थना के अनुसार अन्तर्हित हो गये। इससे राजा शोक न करें। क्योंकि यमराज से कहकर भगवान् जो अन्तर्हित् हो गये, वह अन्यथा नहीं होना है। अत यह वचन राजा से कहो। वह राजा मेरी पांचवी सन्तति (पीढ़ी) है। उसी के लिये मैने इन परमात्मा पुरुषोत्तम को प्रसन्न करके वह परमात्मा को श्वेतद्वीप से ले आयेगा। इससे पूर्व वह १००० यज्ञ सम्पन्न करेगा। अतः पहले इन्द्रद्युम्न पुरुषोत्तम क्षेत्र में क्रमशः १००० अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करे। इस प्रकार यज्ञों से वह विष्णु पूजन करें।।३६-४१।।

तदन्ते दारवतनुंविष्णुंद्रक्षतिचक्षुषा। सोऽवतारो हरेः ख्यातिंतस्यद्वारागमिष्यति।।४२।।

तदा तु तनवो विष्णोः प्रतिष्ठाप्या मया ध्रुवम्।

पुरा स्म मणिमूर्तिस्तु चतुर्द्धाऽवस्थितो हरिः।।४३।।

तदनन्तर वह दारुमय विष्णु को चर्मचक्षु से देख सकेगा। तब विष्णु का यह दारुब्रह्म अवतार इन्द्रद्युम्न द्वारा ही सर्वजन विदित होगा। स्वयं में उन चारों दारु (काष्ठ) मूर्त्ति की प्रतिष्ठा करूंगा। पूर्वकाल में भगवान् मणिमूर्त्तिमान चार मूर्त्तियों में विराजित थे।।४२-४३।।

दृष्ट्वा पुरोधसा तस्य साक्षादग्रे निवेदितः। दिव्यदारुवपुर्भूयश्चतुर्द्धावतरिष्यति।।४४।।
तस्मान्माव्यथराजेन्द्रवाञ्छातेसफलाध्रुवम्। भविष्यतिनसन्देहोर्निर्व्यलीकोवसेहवै।।४५।।

पुरोहित ने उनका दर्शन करके महादेव से निवेदन किया था। भविष्यत् में भगवान् दिव्य दारुमय शरीर से चार मूर्तियों में अवतीर्ण होंगे। हे राजेन्द्र! व्यथित न हों तुम्हारी वांछा अवश्य पूर्ण होगी इसमें सन्देह नहीं है। अब उत्सव करते हुये विश्वस्त चित्त से शान्त होकर रहो।।४४-४५।।

जैमिनिरुवाच

सान्त्वयित्वा निनायेत्थं राजानं नारदस्तदा। विश्वासपदवीं विप्राःपुनर्वाक्यमुवाचह।।४६।।

जैमिनि ऋषि कहते हैं—हे द्विजगण! ऋषि नारद ने इस प्रकार राजा को सान्त्वना प्रदान किया। तदनन्तर उनमें विश्वास उत्पन्न करने हेतु नारद उनसे पुनः कहने लगे।।४६।।

नारद उवाच

शङ्खाकृतेः क्षेत्रवरस्य चाऽग्रे यो नीलकण्ठः खलु दुर्गयाऽऽस्ते।
यामो वयं तत्र च वाजिमेधक्रतूपयोग्या सुसमा स्थली सा।।४७।।
तस्यां विनिर्माय सहस्त्रवर्षस्थिरां सुशालां हयमेधनाय।
नीलाद्रिवासस्य नृसिंहमूर्तिं दृष्ट्वा कृतार्थं विरचय्य जन्म।।४८।।
तस्यैव मूर्तिं प्रतियातनान्ते नित्याऽर्चनीयां तव पूजनीयाम्।
प्रत्यक्प्रतिष्ठाप्य समस्तविघ्नविनाशहेतोः फलबृंहणाय।।४९।।
आरप्स्यामःक्रतुवरंमुनिवर्यैर्यथोचितम्। विलम्बोऽत्र न हि श्रेयानितिपैतामहम्वचः।।५०।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे शोकार्त्तस्येन्द्रद्युम्नस्यनारदकर्तृकंसान्त्वनंनामचतुर्दशोऽध्यायः।।१४।।

नारद कहते हैं—हे राजन्! इस शंखाकृति अत्युत्तम क्षेत्रधाम के उत्तम अग्रभाग में दुष्प्राप्य नीलकण्ठ शिव अवस्थान कर रहे हैं। हम अश्वमेध यज्ञ हेतु उस उत्तम, उपयुक्त तथा मनोहर स्थल पर चलेंगें। वहां पर अश्वमेध यज्ञ हेतु सहस्त्रवर्षपर्यन्त नीलाचलनाथ की स्थिर तथा सुशील रूप नरसिंह मूर्त्ति का निर्माण तथा उनका दर्शन करके जन्म को कृतार्थ मानना। भगवान् पुरुषोत्तम की मूर्त्ति का दर्शन न होने से अभी जो यातना हो रही है, उन नित्य वन्दनीय तथा पूज्य नरसिंह मूर्त्ति का भजन करके उसका नाश करो। पहले नरसिंह देव की ही प्रतिष्ठा करने से समस्त विघ्नों का नाश होगा तथा सुफल वृद्धि होगी। अब इस कार्य में विलम्ब उचित नहीं है। यह पितामह का आदेश है। हे राजन्! आओ! अब हम यज्ञों में प्रधान अश्वमेधयज्ञ शास्त्रोक्त विधान से करें।।४७-५०।।

।।चतुर्दश अध्याय समाप्त।।

पञ्चदशोऽध्यायः

चतुर्मूर्त्तिधारी विष्णुदर्शन वर्णन

जैमिनिरुवाच

ततस्ते प्रस्थिता विप्रा नीलकण्ठान्तिकम्मुदा। प्रपूज्यतं महादेवंश्रीदुर्गांप्रणिपत्यच॥१॥
विमुच्य स्यन्दनवरंपादचाराः सहानुगाः। आरोढुं नीलभूमिध्रंप्रयाताः संयतेन्द्रियाः॥२॥
नानाद्रुमलताकीर्णं नागापक्षिगणाकुलम्। शिलाविषमसंरोधममितं परिवेषकम्॥३॥
भ्रमद्भ्रमरसम्भूतभ्रमकृद्गण्डशैलकम्। दक्षिणाम्भोधिकल्लोलजलावृतनितम्बकम्॥४॥
अप्रतर्क्यं सदा मर्त्यैर्दुष्प्रवेश्यं महोरगैः। मत्तमात्तङ्गकघटा बृंहितैर्भीषिणान्तरम्॥५॥
श्वापदैश्चिरसम्वासैः शस्त्राघातमवेदिभिः। निर्भयैःपरितः कीर्णं मृगयूथैरनेकशः॥६॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे द्विजगण! तदनन्तर सभी हर्षित मन से नीलकण्ठ के समीप आये। उन्होंने महादेव तथा दुर्गा का पूजन किया तथा उनको प्रणाम करके राजरथ छोड़ दिया तथा इन्द्रियों को संयमित करके अनुचरों के साथ नीलपर्वत के ऊपर आरोहण करने के लिये पैदल जाने लगे। यह पर्वत नाना प्रकार की लता तथा वृक्षों से समाकीर्ण है। अनेक पक्षीगण से परिपूर्ण है। पत्थरों से उसका मार्ग अवरुद्ध है तथा चतुर्दिक् परिधि से युक्त हैं। वहां भ्रमरों का झुण्ड भ्रमण कर रहा है। छोटे-छोटे पत्थर इधर-उधर छिटके पड़े हैं तथा उसके नीचे की ओर दक्षिण सागर की तरंगे उद्वेलित हो रही हैं। मनुष्यगण तर्क द्वारा इस पर्वत के विषय में कोई मत निर्णय नहीं कर सकते। भयानक सर्पगण इतःस्ततः संचरण कर रहे हैं। मत्तहाथी घोरतर रूप से घूमते रहते हैं, जिससे इसका आन्तरिक भाग अतिदुर्गम एवं भयानक हो गया है। अतः यहां श्वापदगण (मांसाहारी पशु) इस पर्वत पर चिरकाल से निवास कर रहे हैं। यहां उन्होंने व्याघों के शस्त्रों का आघात कभी नहीं सहा है। इसलिये निर्भयतापूर्वक ये सभी नीलपर्वत के चतुर्दिक् रहते हैं तथा अन्य अनेक मृगयूथगण वहां निर्भय होकर निवास करते रहते हैं॥१-६॥

प्रवेष्टुकामा न प्रापुर्यदा ते मार्गमन्तरम्। तदा नारदसंसर्गाद्विदित्वा तु गिरेः शिरः॥७॥
आसेदुर्यत्र वसति कृष्णागुरुतरोरधः। सर्वापद्भयसंहर्ता दिव्यसिंहवपुर्विभुः॥८॥
यं दृष्ट्वा ब्रह्महत्याया लीयन्तेकोटयोनृणाम्। व्यात्तास्यंभीमदशनमापिङ्गलसटाकुलम्॥९॥
उग्रं त्रिनेत्रं दैत्यस्य स्वोरावुत्तानशायिनः। वक्षःस्थलं दारयन्तं नखरैर्वज्रदारुणैः॥१०॥
अरुणाभं लसज्जिह्वं साट्टहासमुखं विभुम्। शङ्खचक्रलसद्बाहुंकिरीटमुकुटोज्ज्वलम्॥११॥
नेत्रोच्छलद्वह्निकणसन्त्रासितदिगन्तरम्। प्रचण्डाघातभूम्यन्तप्रविष्टपदपङ्कजम्॥१२॥
तमादिमूर्तिं ते दृष्ट्वा नारदाऽग्रे तदा हरिम्। निर्भया ददृशुर्दूरात्प्रणेमुर्विगतज्वराः॥१३॥
इन्द्रद्युम्नोऽपि तं दृष्ट्वा नारदोक्तौ विशस्वसे। भाविकार्येप्रत्ययवानिदमाहमहामुनिम्॥१४॥

महाराज इन्द्रद्युम्न ने अपने अनुचरों के साथ वहां प्रवेश करने की चेष्टा करने लगे, तथापि उनको उसमें

मार्ग नहीं मिला। तब नारद ऋषि ने उनको संग लिया तथा दिव्य गति से इस पर्वत के शिखर देश पर जा पहुंचे। वहां काले अगुरु के नीचे भगवान् विपदभंजन विभु एक नृसिंहमूर्त्ति के रूप में स्थित थे। उनके दर्शन मात्र से करोड़ों ब्रह्महत्या का लय हो जाता है। ये नरसिंह मूर्त्ति प्रभु भयानक रूप से मुख फाड़े खड़े थे। उनकी दन्तपंक्ति अतीव भयानक थी। उनकी जटायें पिंगलवर्ण की थी। तीनों नेत्र उग्रभाव वाले थे। उनके उरुद्वय पर उत्तान रूप से दैत्य हिरण्यकशिपु लेटा था, जिसके वक्षस्थल को ये प्रभु अपने वज्र के समान दारुण नखों से विदीर्ण कर रहे थे। उनके शरीर की आभा रक्तवर्ण थी। जिह्वा लपलपा रही थी। वे अट्टहास की मुद्रा में थे। दो बाहु में चक्र तथा शंख था। शिर पर उज्वल किरीट तथा मुकुट उनको उज्वल कर रहा था। उनके मुख से निकली उद्यत अग्निज्वाला सभी दिशाओं को सन्तापित किये जा रही थी। चरणों से प्रचण्ड आघात करने के कारण भूमि विदीर्ण हो जाने से उनके चरणद्वय भूमि में प्रवेश कर गये थे! सभी ने नारद के सामने स्थित इन आदिमूर्त्ति सनातन रूप विष्णु का दूर से ही निर्भय होकर दर्शन किया। तत्पश्चात् इनको प्रणाम करने से सब के मन के कष्ट दूर हो गये। राजा इन्द्रद्युम्न ने भी यह दर्शन पाया तथा उस समय उनको नारद द्वारा पहले कहे गये वाक्यों के प्रति पूर्ण विश्वास हो गया। अब उन्होंने आगामी कार्य का विचार करके देवर्षि नारद से कहा।।५-१४।।

महर्षे! कृतकृत्योऽस्मि त्वं हि ज्ञाननिधिः परम्।
दुराराध्यो नृसिंहोऽयं दर्शनेऽपि भयावहः॥१५॥
भवादृशैः सुसेव्योऽयंमादृशैर्दूरतोऽपिसः। दर्शनात्कृतकृत्योऽस्मिसंलीनाशेषपातकः॥१६॥
त्वत्सन्निधानादेवाऽत्रतिष्ठामोनिर्भया मुने। अत्युग्रमूर्तिर्भगवान्स्वल्पवीर्यैर्नरैः कथम्॥१७॥
आराध्यतेदैत्यराजंत्रिलोकेशंविदारयन्। यस्यनीलमयीमूर्त्तिःकृपासिन्धोःस्थितातुवै॥१८॥
कस्मिन्स्थले मुनिश्रेष्ठ दर्शनाद्या विमुक्तिदा। तन्मे दर्शय विप्रेन्द्रयन्मेमुक्तिप्रदंमतम्॥१९॥

राजा इन्द्रद्युम्न कहते हैं—हे मुनिप्रवर! आपकी कृपा से मैं कृतकृत्य हो गया। अद्वितीय ज्ञानसागर दुराराध्य नरसिंह देव का भयानक दर्शन आपके सान्निध्य से ही संभव हो सका है। इन अत्युग्र मूर्त्ति भगवान् का दर्शन स्वल्पवीर्य मनुष्यों द्वारा कैसे संभव है? इनके दर्शन से मेरी अशेष पातकराशि विदूरित हो गई तथा मैं कृतार्थ हो गया। हे मुनिवर! आपके सन्निधान के कारण हम आज यहां निर्भयतापूर्वक रह सकेंगे। त्रैलोक्याधिकारी दैत्यराज हिरण्यकशिपु का विदारण करने वाली अत्युग्रमूर्त्ति भगवान् का क्षीणवीर्य मनुष्य जिस प्रकार से आराधना कर सकेंगे? हे मुनिवर! इस स्थान में वह नीलकान्त मणि निर्मिता कृपामयी भगवान् की मूर्त्ति कहां है, जिसके दर्शनमात्र से मुक्ति मिल जाती है? उसका हमें दर्शन करायें।"।।१५-१९।।

जैमिनिरुवाच

इत्युक्तो नारदस्तस्मै दर्शयामास पावनम्। स्थानंयत्रस्थितोदेवःस्वर्णसैकतसम्वृतः॥२०॥
पश्यैतं योजनायामंयोजनद्वयमुच्छ्रितम्। कल्पान्तस्थायिनं भूपन्यग्रोधंमुक्तिदंनृणाम्॥२१॥
छायायां क्रमणाद्यस्य मुच्यते पापकञ्चुकात्।
अस्य मूले नरः प्राणांस्त्यजन्मुक्तिमवाप्नुयात्॥२२॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—नारद ऋषि ने इन्द्रद्युम्न द्वारा यह कहे जाने पर वह पवित्र स्थान प्रदर्शित किया

जहां स्वर्णबालुका वृत्त जगन्नाथ जहां गुप्त हो गये थे तथा नारद ने कहा—"हे राजन्! तुम जो यह एक योजन विस्तार वाला तथा दो योजन ऊंचा वटवृक्ष देखते हो, यह मुक्तिप्रद तथा कल्पान्तपर्यन्त स्थित रहने वाला है। इसकी छाया का स्पर्शमात्र करते ही मनुष्यगण नाना पापरूपी कंचुक से मुक्त हो जाते हैं। इसके मूल में प्राणत्याग करने वाला मुक्त हो जाता है।"।।२०-२२।।

न्यग्रोधरूपं दृष्ट्वाऽपि नारायणमकल्मषम्। निष्पापोजायते मर्त्यःकिमुतंपूजयंस्तुवन्॥२३॥
अस्य मूलत्प्रतीच्यां हि नृसिंहस्योत्तरेनृप !। अतिष्ठन्माधवोयत्रतुर्मूर्तिधरोविभुः॥२४॥
अनुग्रहीतुं त्वामेव पुनरत्रोद्भविष्यति। श्वेतद्वीपे यथा विष्णुर्भोगभूमौ निजालयः॥२५॥
जम्बूद्वीपे कर्मभूमौ निजं स्थानमिदं स्मृतम्। स्वस्यैवाऽतिरहस्यत्वान्न प्रकाशोऽस्य सम्मतः॥२६॥
मोक्षाधिकारी जानातिस्थलमेतन्महीपते। अविश्वासपदं नृणां दुष्कृतांहिविशेषतः॥२७॥
अत्र याऽन्या प्रतिकृतिः पौरैर्विष्णोः प्रतिष्ठिता।
साऽपि मुक्तिप्रदा भूप ! किं पुनः सा स्वयम्भुवा॥२८॥
अन्तर्द्धानतिरोधाने सनिमित्ते जगत्प्रभोः। अनुग्रहार्थं साधूनां जायते च युगेयुगे॥२९॥

"इन वटवृक्ष रूपी नारायण का दर्शन करने से मानव निष्पाप होता है और इनकी पूजा तथा स्तव करने से कितना फल प्राप्त होगा, यह कहा नहीं जा सकता। हे राजन्! इस तरुवर के मूलदेश से पश्चिम की ओर नृसिंहदेव के उत्तरांश में प्रभु माधव चार मूर्त्तिरूप होकर निवास करते हैं। इस समय तुम्हारे ऊपर कृपा करने के लिये वे पुनः वहां आविर्भूत होंगे। जैसे उन विष्णु की भोगभूमि श्वेतद्वीप उनका अपना आलय है, इस कर्मभूमि जम्बूद्वीप में यह स्थान भी उनका अन्य एक स्वगृह रूप है। उनका यह स्थान अतीव गुप्त है। इसलिये इसका प्रचार होना उचित नहीं है। हे महामति! जो मोक्षाधिकारी हैं, वे ही इस स्थान का सन्धान पाते हैं। पापी मनुष्य इस स्थान के प्रति विश्वास ही स्थापित नहीं कर पाते। हे नृप! इस क्षेत्र में अन्य जो सब विष्णुमूर्त्ति प्रतिष्ठित हैं, वे सब मुक्ति प्रदाता हैं, तब साक्षात् ब्रह्मा द्वारा संस्थापित इस मूर्त्ति के सम्बन्ध में क्या कहा जाये? उन जगत्प्रभु का आविर्भाव तथा तिरोधान किसी कारणविशेष से ही होता है। हे नृप! वे युग-युग में साधुओं पर अनुग्रह करने के लिये ही जन्म लेते हैं"।।२३-२९।।

नानावतारैर्भगवान्मत्स्यमूर्मादिकैर्नृप। निमित्तनाशे च तिरोदधाति परमेश्वरः॥३०॥
निर्निमित्तंस्थितोनित्यमिहकारुण्यसागरः। श्वेतद्वीपाद्यथाविष्णुरन्यत्राऽवतरेत्प्रभुः॥३१॥
अत्र स्थितोऽपि स द्वारकाकाञ्चीपुष्करादिषु। प्रकाशं याति कृपया तरुमूलप्ररोहवत्॥३२॥
नानातीर्थेषु देशेषु क्षेत्रेष्वायतनेषु च। अंशावतारास्तस्यैव मा भूत्ते संशयो नृप !॥३३॥
क्षणंनत्यजतीशानःक्षेत्रंक्षेत्रमिवस्वकम्। त्वदुपज्ञस्तुभूपाल ! प्रकाशोऽन्योभविष्यति॥३४॥
इति संदर्शितं स्थानं नारदेन महात्मना। साष्टाङ्गपातं भूमौ तदिन्द्रद्युम्नो ननाम ह॥३५॥
मन्वानस्तु स्थितं देवं प्रकाशमिव तुष्टुवे॥३६॥

"हे नृप! वे साधुओं पर अनुग्रहार्थ ही युग-युग में मत्स्य-कूर्मादि अनेक अवतार लेते हैं। जब दुर्दान्त असुर वधरूपी सभी कारण समाप्त हो जाता है, तब वे अन्तर्हित् हो जाते हैं, तथापि वे करुणासागर प्रभु बिना

किसी कारण के स्वेच्छा से यहां इस क्षेत्रधाम में निवास कर रहे हैं। जैसे वे श्वेतद्वीप में रहते हुये भी स्थानान्तर में अवतीर्ण हो जाते हैं, वैसे ही यहां रहकर भी वे मन्दारपर्वत, पुष्कर तथा काञ्ची प्रभृति नाना स्थान में करुणा के कारण अपना (स्वरूप) प्रकाश करते हैं। हे राजन्! भिन्न-भिन्न तीर्थ, नाना देश, क्षेत्र तथा आयतनों (देवायतनों) में उनका अंशमात्र अवतार रहता है। इसमें कोई अन्य संशय नहीं करना चाहिये। वे ईशानदेव क्षणकाल हेतु भी अपने शरीररूपी इस क्षेत्रधाम का त्याग नहीं करते। हे राजन्! केवल मैं ही यह तुमसे कह रहा हूं, ऐसा नहीं है। तुमसे सम्बन्धित यह उपक्रम प्रकारान्तर से भी प्रकाशित होगा।" यह कहकर महात्मा नारद ने राजा को वह स्थान प्रदर्शित किया जहां से भगवान् नीलकान्त मणिरूपी जनार्दन अन्तर्हित् हो गये थे। इन्द्रद्युम्न ने पृथिवी पर साष्टाङ्ग होकर उस स्थान को प्रणाम किया। तब राजा ने यह भावना मन में किया कि यही प्रभु जगन्नाथ हैं और भगवान् की स्तुति करने लगे।।३०-३६।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

देवदेव जगन्नाथ ! प्रणतार्तिविनाशन !। त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष ! पतितं भवसागरे।।३७।।
त्वमेक एवदुःखौघध्वंसकःपरमेश्वरः। क्षुद्राः क्षुद्रान्हि सेवन्ते सुखलेशस्यलिप्सया।।३८।।
अनादित्रिविधौघस्य राशेः स्वस्य महांहसः। दुरुच्छेद्यस्य सततं पूर्यमाणस्य जन्मनः।।३९।।

इन्द्रद्युम्न कहते हैं कि "हे देवदेव जगन्नाथ! हे विपन्नगण की विपत्ति के नाशक! पुण्डरीकाक्ष! मैं इस भवसागर में डूब रहा हूं। मेरी रक्षा करिये। आप ही एकमात्र दुःखों के विनाशक हैं। आप ही परम ईश्वर हैं। क्षुद्रव्यक्तिगण सामान्य सुख पाने की वासना से क्षुद्र (शक्तियों) की उपासना करते हैं। किन्तु आपके नाममात्र का कीर्त्तन करने से ही देहधारियों का आध्यात्मिक आधिभौतिक तथा आधिदैविक रूप दुर्द्धर्ष अनादि तापत्रय का और सभी महापापों का विनाश हो जाता है।।३७-३९।।

किंपुनर्भक्तिभावेनसाक्षान्मुक्तिप्रदंनृणाम्। कर्माधीनन्तुयेमूढावदन्तित्वांकृपानिधिम्।।४०।।
ते न जानन्तिभगवन्कर्मैवंप्रेरितंत्वया। अजामिलेनविप्रेण त्यक्त्वा वर्णाश्रमोदितम्।।४१।।
किं न पापं कृतं स्वामिन्सोऽपि त्वन्नामकीर्तनात्। मुक्तोऽभूत्स्मरणादेव पाशहस्तैर्विमोचितः।।४२।।
सर्वेऽप्युपाया देवेशकीर्तितास्तवदर्शने। त्वयि दृष्टे हि भिद्यन्तेसंशयाहृदिसंस्थिताः।।४३।।
निःसंशयो भवेत्सद्यः पापपुण्यक्षयो ध्रुवम्। त्वमेव शरणं दीनमनुगृह्णीष्वमांविभो।।४४।।

भक्तिभाव के साथ आपका नामोच्चारण करने वाले मनुष्यों को साक्षात् मुक्ति मिल जाती है। इसमें संशय की क्या बात है? हे प्रभो! जो सब मूढ़ मानव आप कृपामय को कर्म से प्राप्त होने वाले, कर्माधीन कहते हैं, वे यह नहीं जानते कि कर्म आप द्वारा ही प्रेरित किया जाता है। हे स्वामी! अजामिल विप्र वर्णाश्रमादि विधि से रहित था, उसने विहित क्रियाकलापों का त्याग करके कौन सा पापकर्म नहीं किया था! तथापि वह व्यक्ति भी आपके स्मरण तथा नामकीर्त्तन द्वारा यमपाश से छूट गया तथा उसे मुक्ति मिली। हे देवेश्वर! आपके दर्शन से ही समस्त उपायों का जन्म होता है। आपका दर्शन करने से हृदय के सभी संशय विच्छिन्न हो जाते हैं। आपके दर्शन से पाप तथा पुण्य, दोनों का क्षय सम्पादित होता है। तभी दर्शन के क्षण में ही वह व्यक्ति तथा जीवगण समस्त पाप एवं संशय रहित हो जाते हैं। हे प्रभो! आप ही रक्षक हैं। इसलिये इस दीन पर कृपा वर्षा करिये। मुझे शरण में लीजिये।।४०-४४।।

निश्चितानि त्वया देव ! गर्भस्थस्य च यानि मे।
तैरेव मे जनिर्जातु याचे त्वां केवलं त्विदम्॥४५॥
तिरश्चो मुक्तिदा मूर्तिः स्थिता ते याऽत्र ताम्पुनः।
अनेन चक्षुषा पश्यामीश ! नाऽन्यत्प्रयोजनम्॥४६॥

हे देव! आपने मेरी गर्भावस्था में ही मेरे भाग्य में जो लिख दिया है, मैं यावत् जीवन उसे ही भोगने के लिये प्रस्तुत हूं तथापि मेरी मात्र यही प्रार्थना है कि आप की उस मूर्त्ति का दर्शन मिल जाये जिसके दर्शन से वह तिर्यक् योनि (काक) मुक्त हो गया था। इसके अतिरिक्त मेरा अन्य प्रयोजन ही नहीं है।।४५-४६।।

कृताञ्जलिपुटोराजा स्तुत्वैवं मधुसूदनम्। पुनर्ननाम धरणीपृष्ठे साऽश्रुविलोचनः॥४७॥
ततोऽन्तरिक्षगावाणीसामसुस्वरभाषिणी। उच्चचारनभोमध्येइन्द्रद्युम्नस्यश्रृण्वतः॥४८॥
माचिन्तांव्रजभूपाल ! व्रजिष्येत्वद्दृशोःपथम्। पैतामहम्वचःप्राहनारदोयत्कुरुष्वतत्॥४९॥
तच्छ्रुत्वा दिव्यवचनं नारदस्य च भाषितम्। श्रद्दधेवाजिमेधाय भगवत्प्रीतिकारकः॥५०॥
नारदं च पुनः प्राह हर्षगद्गदया गिरा। मुने। त्वया यदादिष्टं चतुर्मुखनिदेशतः॥५१॥
अशरीरा त्वियंवाणीअनुजज्ञे तदेव हि। पितामहोजगन्नाथो भेदोवैनाऽनयोःक्वचित्॥५२॥
पद्मयोनेः सुतस्त्वं हि वचस्ते भगवद्वचः। तत्कर्तव्यं प्रयत्नेन यच्छ्रेय उपपादकम्॥५३॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्येजैमिनिऋषिसम्वादे
इन्द्रद्युम्नस्यशोकनाशोनामपञ्चदशोऽध्यायः।।१५।।

राजा ने हाथ जोड़कर (कृतांजलि होकर) इस प्रकार से अनेक स्तव किया तथा अश्रु भरे नेत्रों से भगवान् को धरती पर शिर रखकर प्रणाम किया। इस समय आकाश मण्डल से इन्द्रद्युम्न को सुनाई पड़े, ऐसी सुमधुर आकाशवाणी होने लगी—"हे भूपाल! तुम चिन्ता न करो। मैं तुमको दृष्टिगोचर हो जाऊंगा। नारद ने तुमसे जो ब्रह्मवाक्य कहा था, तुम तदनुसार सब कार्य करो।" राजा ने पूर्व में देवर्षि नारद से जो सुना था, इस बार भी वही दिव्यवाणी द्वारा उन्होंने सुना। तब वे भगवान् के प्रीतिकारक अश्वमेध यज्ञ के लिये श्रद्धान्वित हो गये। राजा ने पुनः हर्ष से गद्‌गद् होकर नारद से कहा—"हे मुनिवर! आपने उन ब्रह्मदेव के आदेशक्रम से जो कुछ कहा था, इस अशरीरी वाणी ने भी मुझसे वही कहा है। पितामह तथा जगन्नाथ में कोई भेद नहीं है। आप भी उन पद्मयोनि ब्रह्मा की सन्तान हैं। अतएव आप का जो वाक्य है, अतः आपने श्रेयसम्पादक जो उपदेश आपने प्रदान किया है। मैं सम्यक्तः यत्नतः वही करूंगा।।४७-५३।।

।।पञ्चदश अध्याय समाप्त।।

षोडशोऽध्यायः

आद्यमूर्त्ति नृसिंह की स्थापना हेतु राजा का उद्योग इन्द्रद्युम्न कृत नृसिंहस्तव, नृसिंहदर्शन फल वर्णन

जैमिनिरुवाच

नृपं सुमनसं दृष्ट्वा श्रद्दधानं महाक्रतौ। उवाच परमप्रीत्या नारदो लोकहर्षणः॥१॥
व्यवसाये सुकृतिनां देवायान्तिसहायताम्। तत्रोदाहरणं त्वं हि यत्सहायश्चर्तुमुखः॥२॥
तदेहि यामस्तत्रैव नीलकण्ठस्य सन्निधौ। सर्वराक्षससंहारं सर्वविघ्ननिवारणम्॥३॥
स्थापयाम्यग्रतो राजन्नृसिंहं वारुणीमुखम्। अन्तर्हितो हि भगवान्प्रत्यक्षोऽसौ नृकेसरी॥४॥
सन्निधावस्य यागस्तु फलातिशयवान्भवेत्। त्वमग्रतो गच्छशीघ्रं प्रासादंतत्रकारय॥५॥
स्मरणान्मम चागत्यसुतो वै विश्वकर्मणः। प्रत्यङ्मुखं तुप्रासादंसतूर्णं घटयिष्यति॥६॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—लोक समूह को हर्ष प्रदान करने वाले नारद ऋषि ने जब राजा को महायज्ञ के प्रति श्रद्धावान् एवं आसक्त देखा तब उन्होंने अत्यन्त प्रेमपूर्वक कहा—हे राजन्! कार्यकुशल व्यक्ति के कार्य में देवता सहायक होते हैं। इस विषय में तुम ही प्रमाण हो। क्योंकि स्वयं चतुर्भुज ब्रह्मा तुम्हारे सहायक हैं। अतएव चलो, हमलोग नीलकण्ठ के निकट चलें। हे राजन्! यह सर्वराक्षस नाशक सभी विघ्न विनाशक नृसिंह देव को इन महादेव के अग्रभाग में पश्चिममुख स्थापित करो। भगवान् भले ही अन्तर्हित् हो गये तथापि ये नरकेशरी (नृसिंह) तो यहां पर साक्षात् हैं। इनके निकट तुम्हारा यज्ञानुष्ठान अत्यन्त फलद होगा। अतः तुम आगे वहां जाओ तथा वहां एक देवगृह बनवाओ। मेरे स्मरण करने पर विश्वकर्मा का पुत्र यहां आकर पश्चिम की ओर द्वार वाला एक प्रासाद बनवा देगा।।१-६।।

दक्षिणे नीलकण्ठस्य यो महांश्चन्दनद्रुमः। धनुः शतान्तरे राजंश्चिररूढस्तु तिष्ठति॥७॥
तस्य पश्चिमदेशस्थंक्षेत्रं राजन्भविष्यति। वाजिमेधसहस्रेण तस्याऽग्रेयजतांभवान्॥८॥
गच्छत्वमहमत्रैवस्थास्यामिदिनपञ्चकम्। आराध्यैनंदिव्यसिंहं ज्योतीरूपमनन्तकम्॥९॥
प्रत्यर्चायां प्रतिष्ठाप्यप्राणेन्द्रियमनोयुतम्। दीपाद्दीपंयथाराजन्नयिष्येशोभनाकृतिम्॥१०॥
नारदस्येति वचनं प्रतिश्रुत्य नृपोत्तमः। जगाम तत्र वेगेन चन्दनद्रुमसन्निधिम्॥११॥
तत्राऽपश्यत्सुघटकंशिल्पशास्त्रविशारदम्। नारदस्याऽऽज्ञया प्राप्तंपुत्रं वैदेवशिल्पिनः॥१२॥
मनुष्यरूपमास्थाय शस्त्रसूत्रधरं स्थितम्। राजानं स तु दृष्ट्वा वै चिकीर्षन्तं सुरालयम्॥१३॥
कृताञ्जलिपुटः प्रोचेदेवाहंशिल्पशास्त्रवित्। नरसिंहालयं तेऽद्यघटयिष्यामिशोभनम्।
राजाऽपि तमुवाचेदं प्रहसन्भो द्विजोत्तमाः !॥१४॥

हे राजन्! नीलकण्ठ के दक्षिण में ४०० हाथ के बीच जो महान् चन्दनवृक्ष चिरकाल से खड़ा है,

उसके पश्चिम की ओर इन देव का क्षेत्र निर्मित हो। तुम नृसिंहदेव के निकट १००० अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करो। मैं यहां पांच दिन रहूंगा। तुम जाओ तथा इन अनन्त ज्योतिर्मय नरसिंह देव की आराधना करके प्रतिमा में प्राण-प्रतिष्ठा सम्पन्न करो। जैसे एक दीप से दूसरा दीप प्रज्वलित करने पर वहां शोभा की वृद्धि होती है, उसी प्रकार उनको अपनी श्रद्धा से तथा अपने प्राणों को उनमें नियोजित करके उनकी प्राण प्रतिष्ठा करो।'' नारद का वचन सुनकर राजा शीघ्रता से उस चन्दन वृक्ष तक पहुंचे। उन्होंने वहां देखा कि शिल्पशास्त्र प्रवीण विश्वकर्मा के पुत्र नारद के आदेशानुरूप वहां मनुष्य के रूप में अपने औजार तथा सूत्र के साथ आये हैं। उन्होंने राजा को देवमन्दिर निर्माण का इच्छुक देखकर अंजलिबद्ध होकर राजा के समीप आकर कहा—''हे देव! मैं शिल्पशास्त्री हूं। मैं आपके लिये नरसिंह मन्दिर का निर्माण सुन्दरता से करूंगा।'' हे द्विजश्रेष्ठगण! राजा ने भी उनसे हंसते हुये कहा—।।७-१४।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

न शिल्पीत्वंहिसामान्यःशिल्पशास्त्रप्रणेतृकः। कथितो नारदेनैवत्वष्टुःपुत्रो महायशाः।।१५।।
निर्जनेऽस्मिन्महारण्येनेतः पूर्वंजनाश्रयः।
वयमद्यागताः शिल्पिन्सम्बन्धः किंनिमित्तकः।।१६।।
देवशिल्पी भवानेव विष्णोरमिततेजसः। सदाऽनुध्यायिनस्तस्य निदेशवशवर्तिनः।।१७।।
येन स्मृतस्त्वंमुनिनासएवाऽऽत्रागमिष्यति। प्रत्यर्चानरसिंहस्यगृहीत्वातुदिनान्तरे।।१८।।
तदाशु घटयस्वाऽद्य सप्राकारं सतोरणम्। प्रासादं नरसिंहस्य प्रतीचीवदनं शुभम्।।१९।।

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—''आप तो सामान्य शिल्पी नहीं हैं। आप तो शिल्पशास्त्र के प्रणेता हैं। यह नारद ने ही मुझसे कहा था। आप त्वष्ट्रा (विश्वकर्मा) देव के पुत्र हैं। अन्यथा इससे पहले इस महान् अरण्य में कहीं भी जनाश्रय नहीं था। हम इस सम्बन्ध में अभ्यागत ही हैं। आपके साथ यह सम्बन्ध किस निमित्त से घटित हुआ है! आप देव शिल्पी हैं। अपरिमित तेजस्वी विष्णुदेव के आप नित्य उपासक हैं। उनके निर्देश के कारण मुनिगण ने आपका स्मरण किया था। वे भी दिन व्यतीत होने पर नृसिंहदेव की प्रतिमूर्त्ति लेकर यहां आने वाले हैं। इसलिये आप शीघ्रता से एक पश्चिम की ओर द्वार वाला तथा प्राकार एवं तोरण से युक्त उत्तम देवगृह शीघ्र निर्माण करिये।।१५-१९।।

तं पूजयित्वा विधिवन्नियोज्यघटनेनृपः। शिलासञ्चयकान्भृत्यान्बहुवित्तैरयोजयत्।।२०।।
चतुर्थे दिवसे विप्राःप्रासादोऽभूदनुत्तमः। बहुकालप्रसाध्योऽपिमहिम्नादेवशिल्पिनः।।२१।।
ततः प्रभाते विमले नित्यकर्मावसानतः। प्रतिष्ठाविधिसम्भारं गृहीत्वासपरिच्छदः।।२२।।
नारदागमनं प्रेक्ष्ययावत्तिष्ठति भूपतिः। यावच्छुश्रुविरे शङ्खा मृदङ्गा मुरजास्तथा।।२३।।
गीतमङ्गलवाद्यानिघण्टानांकरिणांस्वनाः। तथा जयजयेत्युच्चैःशब्दाआकाशमण्डले।।२४।।
ताञ्छ्रुत्वाविस्मयापन्नाइन्द्रद्युम्नपुरोगमाः। राजानःश्रोतियाविप्रावैष्णवाश्चसहस्रशः।।२५।।
निराधारास्त्विमे शब्दा अद्भुतानि न संशयः। विचारयन्तस्ते यावत्तावद्दक्षिणतो मरुत्।।२६।।

राजा ने उन देवशिल्पी की विधिवत् पूजा करके उनको प्रासाद निर्माण में युक्त किया तथा प्रचुर धन

व्यय करके शिला एकत्र करने वाले भृत्यगण को शिला संग्रह का आदेश दिया। हे विप्रगण! यद्यपि वह प्रासाद तैयार करना दीर्घकाल का कार्य था, तथापि उन दिव्य शिल्पी की महिमा से वह प्रासाद चौथे ही दिन सुन्दररूप से बनकर तैयार हो गया! तत्पश्चात् पांचवें दिन राजा इन्द्रद्युम्न ने प्रातःकाल नित्यकर्म सम्पन्न करने के अनन्तर अपने पार्षदों के साथ प्रतिष्ठा द्रव्य युक्त आयोजन करके नारद के आने के लिये प्रतीक्षा करने लगे। इस समय आकाशमण्डल से शंख-मृदंग-मुरज-आदि की घन वाद्यध्वनि के साथ मंगलगीतध्वनि तथा हांथियों की चिग्घाड़ तथा जयजयकार श्रुतिगोचर होने लगा। इन सब के शब्द को सुनकर इन्द्रद्युम्न आदि सहस्रों राजा, श्रोत्रिय ब्राह्मण वैष्णव समूह विस्मयापन्न हो गया। तब लोग यह कहकर तर्क करने लगे कि "ये सभी आश्रयशून्य शब्द निःसंदिग्ध रूप से अद्भुत हैं।" इसी समय दक्षिण दिशा से गन्धवहा वायु बहने लगी।।२०-२६।।

गन्धान्वितद्विरेफौघशब्दिताःपुष्पवृष्टयः। आविर्भूतास्त्रिपथगावारिणार्द्रीकृताद्विजाः॥२७॥
तदनन्तरमेवाऽसौ नारदो ब्रह्मणः सुतः। तपः प्रभावनिर्व्यूढविमानवरशायिनीम्॥२८॥

उस समय भ्रमणगण गुंजार कर रहे थे। इसी ध्वनि के साथ ही आकाश से भागीरथी के जल में शीतल पुष्पवर्षा होने लगी। तब ब्रह्मपुत्र नारद ने नरसिंह देव की रमणीय प्रतिमा को तपः प्रभाव से आविर्भूत मनोरम रथ पर रखवाया।।२७-२८।।

रत्नचामरहस्ताभिर्दिव्यस्त्रीभिः सुशोभिताम्। अलङ्कृतां बहुविधैर्मणिरत्नप्रसाधनैः॥२९॥
दिव्यमाल्याम्बरधरांदिव्यगन्धानुलेपनाम्। रम्यांप्रतिष्ठितप्राणांघटितांविश्वकर्मणा॥३०॥
तेजोमण्डलसम्वीतां परितो हर्षदामपि। आदाय नरसिंहस्य प्रत्यर्चांप्रत्युपस्थितः॥३१॥
तां दृष्ट्वा हर्षिताःसर्वेराजाराजानुयायिनः। अन्तर्द्धानं गतो देवो नारदेनोद्घृतः किमु॥३२॥
मेनिरे हर्षितात्मानःप्रशशंसुश्च तं मुनिम्। निरूप्य सन्निधिस्थां तु नरसिंहाकृतिं द्विजाः।
आद्यमूर्तेर्नृसिंहस्य प्रतिमामथ मेनिरे॥३३॥

इस प्रतिमा के उभय पार्श्व में दिव्यरमणीगण रत्न चामर लेकर शोभायमान हो रहीं थीं। यह नृसिंहमूर्त्ति नाना मणियुक्त तथा रत्नजटित अलंकारों से सज्जित थी। गले में दिव्य माला तथा कमर में दिव्य वस्त्र धारण किये हुई थी। उस प्रतिमा का सर्वाङ्ग दिव्य गन्ध से लिप्त था। तेजपुंज से व्याप्त उस मूर्त्ति को दूर से ही देखने पर एक अनिर्वचनीय आनंद प्राप्त होता था। नारद विश्वकर्मा निर्मित इस प्रतिमा को उस स्थान पर लाये। उसका दर्शन पाकर राजा तथा उनके साथ आये सभी लोग आह्लादित हो गये। सब आपस में कहने लगे कि क्या उन अन्तर्हित् देवता को तो नारद नहीं लाये हैं? यह कहते हुए सबने स्वयं को कृतार्थ माना तथा मुनि की अनेक प्रशंसा करने लगे। हे द्विजगण! यह प्रतिमा स्थापित हो जाने पर सबने उसकी आकृति के सम्बन्ध में विचार करते हुये उसे नृसिंहदेव की वही आद्य प्रतिमा ही माना!।।२९-३३।।

प्रत्युत्थायततोराजा प्रहृष्टेनाऽन्तरात्मना। प्रदक्षिणीकृत्य हरिं जगामशिरसा महीम्॥३४॥
श्रद्धासम्पत्तियोग्येन सम्भारेण नृपाज्ञया। प्रस्थापयामास मुनिः प्रासादं शुभलक्षणम्॥३५॥
प्रतिमां देवदेवस्य सुमुहूर्तेद्विजोत्तमाः। धरारमाभ्यां सहितां रत्नवेद्यां प्रतिष्ठिताम्।
योगारूढतनुं राजा इन्द्रद्युम्नोऽथ तुष्टुवे॥३६॥

वैष्णवैर्ब्राह्मणैर्भूपैर्नारदेनच धीमता। गुह्योपनिषदैः स्मार्तैः स्तोत्रैःशास्त्रैर्मुदान्वितैः।।३७।।

नारद इस विश्वकर्मा विरचित प्रतिमा को जब ले आये, तब इन्द्रद्युम्न ने सहर्ष उठकर इन नरसिंह रूपी हरि की प्रदक्षिणा करने के पश्चात् भूमि पर मस्तक रखकर उनको प्रणाम किया। हे द्विजोत्तमगण! तदनन्तर नारद ने राजा से अनुमोदन लेकर पूर्णश्रद्धा के साथ देवसेवा के लिये आवश्यक अनेक उपकरण तथा वस्तुओं के साथ इन शुभलक्षण सम्पन्न देवदेव की प्रतिमूर्त्ति को उत्तम मुहूर्त्त में उस प्रासाद के मध्य में स्थित रत्नमयी वेदी पर प्रतिष्ठित करवाया तथा उनकी परिचर्या हेतु दो ब्राह्मणों को नियुक्त किया। तत्पश्चात् राजा इन्द्रद्युम्न वैष्णवों, ब्राह्मणों तथा धीमान् नारद के साथ गुह्य उपनिषदों तथा स्मृतियों में कहे गये स्तोत्रों से परम आदरपूर्वक इन योगस्थित प्रतिमा का स्तव मुदित होकर करने लगे।।३४-३७।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

एकानेकस्थूलसूक्ष्माणुमूर्ते! व्योमातीत! व्योमरूपैकरूप !।
व्योमाकार! व्यापक! व्योमसंस्थ! व्योमारूढ! व्योमकेशाब्जयोने !।।३८।।
दुःखाम्भोधेस्त्राहि मां दिव्यसिंह ! प्रादुर्भूतानेककोट्यर्कधामन् !।
नित्यासन्नो दूरसंस्थो न दूरो नाऽऽसन्नो वा बोध्यबोधात्मभाव !।।३९।।
ज्ञेयज्ञेयो ज्ञानगम्योऽप्यगम्यो मायातीतो मानमेयोऽनुमानात्।
कृत्स्नस्याऽऽदिः कृत्स्नकर्त्ताऽनुमन्ता पाताहर्त्ता विश्वसाक्षिन्नमस्ते।।४०।।

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—हे देव! आप एक होकर भी अनेक हैं। स्थूल होकरं भी अणुवत् सूक्ष्म हैं। आप एकमात्र आकाशरूप तथा उसके समान सर्वव्यापी हैं। आप व्योमसंस्थ, व्योमारूढ तथा व्योमकेश तथा कमलयोनि हैं। हे दिव्य सिंह रूप! आप अनेक करोड़ सूर्यों के समान तेजपुंजरूपी हैं। आप दुःख सागर से मेरा त्राण करिये। आप सर्वदा निकट सन्निहित होकर भी दूरस्थ ही हैं। वास्तव में आप न तो दूरवर्त्ती हैं न अल्प प्रयास से सन्निहित ही हैं। आप ज्ञेय-ज्ञानरूप हैं। आप कृपा करिये। आप ज्ञेय वस्तु द्वारा ज्ञेय होकर भी, ज्ञानगम्य होकर भी, आगम्य ही हैं। आप माया से अतीत हैं, तथापि आप मायामोहित प्राणी के अनुमान द्वारा अनुमेय हो जाते हैं। आप सबके आदि, सब कुछ की सृष्टि करने वाले, सबका अनुमोदन करने वाले, रक्षक तथा संहर्त्ता दोनों हैं। हे विश्वसाक्षी विश्वस्वामी! आपको प्रणाम!।।३८-४०।।

दुःखध्वंसस्यैकहेतुं न हेतुं भेत्तुं छेत्तुं संशयानग्रजातम्।
ज्योतीरूप ! ज्ञानरूप ! प्रकाश ! स्तोमव्यूहाकारनिर्माणहेतो !।।४१।।
त्वत्पादाब्जे भक्तिमग्र्यां सदा मे देहि स्वामिन्मूलभूतां चतुर्णाम्।
श्रौतैः स्मार्तैर्नित्ययुक्ता जनास्ते दीनास्तिष्ठन्त्यत्र बद्धा भवाब्धौ।।४२।।
अनन्तपादं बहुहस्तनेत्रमनन्तकर्णं ककुभौघवस्त्रम्।
दिवानिशानाथसुकुण्डलाढ्यं नक्षत्रमालाकृतचारुहारम्।।४३।।
त्वामद्भुतं दिव्यनृसिंहमूर्तिं भक्त्येष्टपूर्तिं शरणम्प्रपद्ये।
यत्पादपद्मं हि पितामहस्य किरीटरत्नैर्विकचत्वमेति।।४४।।

यदीयपादाब्जयुगान्तभूमौ लुठेच्छिरो यस्य हि पाञ्चभौतम्।
तद्दिव्यपादं शिरसा वहन्ति सूरेन्द्रनार्यः खलु तं नमामि॥४५॥

आप दुःखों का ध्वंस करने वाले एकमात्र हेतु हैं, तथापि आपका हेतु कोई नहीं है। आप ही संसार बन्धन तथा संशय समूह के विनाशक हैं। आप सबसे पूर्व में उत्पन्न हैं। आप ज्योतिरूप-ज्ञानरूप तथा प्रकाशसमूह रूप हैं। आप ही व्यूहाकार निर्माण के कारण हैं। आपको प्रणाम! आपके पादपद्म की भक्ति ही धर्मार्थकाम का मूल है। हे स्वामी! मुझे वही परमरहस्यमयी भक्ति प्रदान करिये। जो आपकी भक्ति से रहित होकर स्रौत-स्मार्त्त कर्म करते हैं, उनका वह कर्म तो यन्त्रणास्वरूप ही है। क्योंकि उनके कर्मों से वे संसार सागर में बद्ध होकर दीनतापूर्वक कालयापन करते रहते हैं। हे देव! आपके अनन्त पद (चरण), अनन्त बाहु, अनन्त नेत्र, अनन्त कर्ण हैं। दिशायें आपके वस्त्र हैं। चन्द्र-सूर्य आपके कर्णकुण्डल हैं, नक्षत्रमाला आपका मनोहर कण्ठहार है। आप की यह अद्भुत दिव्य नृसिंहमूर्त्ति भक्तगण की वांछा की परिपूरक है। मैं आपकी इस मूर्त्ति की शरण लेता हूं। आपके चरणकमल ही ब्रह्मा के किरीट रत्नों को सुशोभित करते हैं। जिन चरणकमलों में समस्त पांचभौतिक प्राणियों का मस्तक लोटता रहता है, जिन चरणकमल को देवाङ्गनायें मस्तक पर धारण करती हैं, मैं आपके उन चरण कमलों को प्रणाम करता हूं।।४१-४५।।

तद्दिव्यसिंहं हतपापसङ्घं पादाश्रितानां करुणाब्धिसिंहम्।
पादाऽब्जसङ्घट्टविघट्टमानब्रह्माण्डभाण्डं प्रणमामि चण्डम्॥४६॥
सटाच्छटाकम्पनशीर्यमाणघनौघविद्रावितपापसङ्घम् ।
चण्डाट्टहासान्तरिताब्दशब्दं त्रिलोकगर्भं नृहरिं नमामि॥४७॥

आपकी यह दिव्य नृसिंहमूर्त्ति पापीगण के लिये प्रचण्डरूप है। यह पापसमूह नाशक है। यह मूर्त्ति अपने चरण के आश्रितों के लिये दयासागररूपा है। आपकी इस मूर्त्ति के चरणद्वय के संघट्ट-विघट्ट मात्र से यह ब्रह्माण्डरूपी पात्र भग्न हो जाता है। आपकी इस मूर्त्ति को मैं प्रणाम करता हूं! आप अपने जटासमूह के कम्पन से पापसमूह को उसी प्रकार उड़ा देते हैं, जैसे आपके जटा के कम्पन मात्र से मेघसमूह अपसारित हो जाते हैं। आपका प्रचण्ड अट्टहास निनाद मेघों के घनघोर शब्द को भी पराभूत कर देता है, ऐसे आप नृसिंह को मैं प्रणाम करता हूं, जिनके उदर में समस्त त्रिलोकी विद्यमान हैं।।४६-४७।।

नमस्ते नमस्ते नमस्तेऽद्य विष्णो ! परित्राहि दीनानुकम्पिन्ननाथम्।
भवन्तं समासाद्य मे देहबन्धो मुरारे ! न संसारकारागृहेऽस्तु॥४८॥
हयमेधसहस्रान्ते यथा त्वां चर्मचक्षुषा। दिव्यरूपं प्रपश्यामितथाऽनुक्रोशय प्रभो !।
यथा चेज्यासहस्रं मे निर्विघ्नं तत्समाप्यते। यज्ञेशत्वत्प्रसादान्मे तथा सान्निध्यमस्तु ते॥४९॥
कोटयःपापराशानांक्षयंयान्तियथाप्रभो !। धर्मार्थकामाहस्तस्थानैषांचित्रंस्तुवन्तिये॥५०॥
मोक्षस्य भाजनं विष्णो ते नरा ये तवाऽऽश्रयाः॥५१॥

हे विष्णु! आपको मैं पुनः-पुनः प्रणाम करता हूं। हे दीनदयालु! मैं अनाथ हूं। मेरी रक्षा करिये। हे मुरारि! मैं आपका साक्षात्कार पा जाऊं। मैं संसाररूपी कारागार में बद्ध न हो सकूं। हे प्रभो! आप वह कृपा

करिये जिससे मैं १००० अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करके आपका दर्शन इन नेत्रों से कर सकूं। हे यज्ञेश्वर! आप यहां सन्निहित होकर वह करें जिससे मैं संकल्पित सहस्र अश्वमेध निर्विघ्न रूप से सम्पन्न करूं। हे प्रभो! आप ऐसी कृपा करिये जिससे कोटि-कोटि पापों का क्षय हो जाये। हे विष्णु! जो आपके आश्रित हैं तथा आपकी इस अद्भुत मूर्त्ति का स्तव करते हैं, वे धर्म-अर्थ तथा काम को तुच्छ मान कर मुक्ति के पात्र हो जाते हैं।।४८-५१।।

स्तुत्वेत्थं दिव्यसिंहं तं भूपतिर्हृष्टमानसः। दण्डपातप्रणामेन जगाम धरणीं मुहुः॥५२॥

राजा ने हर्षित चित्त के साथ दिव्यनृसिंह मूर्त्ति का यह स्तव किया तथा भूतल पर गिर कर बारंबार उनको दण्डवत् प्रणाम करने लगे।।५२।।

जैमिनिरुवाच

क्षेत्रं तन्नरसिंहस्य ब्रह्मणा निर्मितं पुरा। इन्द्रद्युम्नानुग्रहाय सर्वलोकहिताय च॥५३॥
पश्यन्ति ये नृसिंहं तं शम्भुनासहसंस्थितम्। नदेहबन्धं तेविप्राःप्राप्नुवन्तिनसंशयः॥५४॥
मनसा वाञ्छितं यद्यत्प्राप्नुवन्ति ततोऽधिकम्।
स्तोत्रेणाऽनेन ये दिव्यसिंहरूपं स्तुवन्ति वै॥५५॥
सर्वकामप्रदो देवस्तस्य मुक्तिं प्रयच्छति। ज्येष्ठशुक्लद्वादशी या स्वातीनक्षत्रसंयुता॥५६॥
तस्यां प्रतिष्ठितः क्षेत्रे दिव्यसिंहोमहर्षिणा। सुतेनब्रह्मणःसाक्षात्तत्रपश्यन्तितं च ये॥५७॥
वाजिमेधसहस्रस्य फलं साग्रं लभन्ति ते। पञ्चामृतैर्वा क्षीरेण नारिकेलरसेन वा॥५८॥
स्नापयन्ति नरा ये वै अथवा गन्धवारिणा। पूजयित्वा महासिंहमुपचारैः सपायसैः॥५९॥
जपाकुसुममाल्यैश्च गन्धमाल्यैः सुशोभनैः। धूपदीपैः सकर्पूरैस्ताम्बूलैरतिशोभनैः॥६०॥
सुगीर्भिः स्तुतिपाठैश्च जयशब्दैस्तथोच्चकैः। प्रदक्षिणप्रणामैश्च दानैर्ब्राह्मणतर्पणैः।
सन्तोष्य नरसिंहं तं ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥६१॥

जैमिनि कहते हैं—इसके पूर्व ब्रह्मा ने इन्द्रद्युम्न के प्रति अनुग्रह हेतु तथा समस्त लोकों के हितार्थ इस नृसिंह क्षेत्र का निर्माण किया था। हे विप्रगण! शम्भुदेव के साथ में स्थित इन नृसिंहदेव का जो दर्शन करते हैं, वे कभी भी पुनः देह रूपी बन्धन से बद्ध नहीं होते। इसमें संदेह नहीं है। वे मन में जो-जो इच्छा करते हैं, उसका फल अपनी इच्छा से भी अधिक प्राप्त करते हैं। जो इस स्तव द्वारा श्रीनृसिंहदेव की स्तुति करते हैं, सर्वाभीष्टप्रद नृसिंहदेव उनको मुक्ति प्रदान करते हैं। महर्षि नारद ने ज्येष्ठ मासीय शुक्लाद्वादशी तिथि के दिन जब स्वाति नक्षत्र था, तब क्षेत्रधाम में इन दिव्य नृसिंह को प्रतिष्ठापित किया। जो इस स्थान पर आकर इनका साक्षात् दर्शन करते हैं, वे सहस्र अश्वमेध यज्ञ का सम्पूर्ण फल प्राप्त करते हैं। जो पंचामृत, दुग्ध अथवा नारिकेल जल, किंवा गन्धजल से महासिंहरूप देवदेव को स्नान कराते हैं तथा पायस आदि उपचारों से उनका पूजन करते हैं तथा जवापुष्प की माला, सुशोभन गन्धमाला, धूप, दीप, कर्पूर, ताम्बूल, सुन्दर स्तवपाठ, उच्चस्वर से जय-जयकार घोष, प्रदक्षिणा, प्रणाम, दान, ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करना आदि सम्पन्न करते हैं, वे सर्वोत्तम ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं।।५३-६१।।

वैशाखस्य चतुर्दश्यां सौरिवारेऽनिलर्क्षके। आद्यावतारः सिंहस्य प्रदोषसमयेद्विजाः॥६२॥
तस्यां सम्पूज्य विधिवन्नरसिंहंसमाहितः। जन्मकोटिसहस्त्रैस्तुपापराशिःसुसञ्चितः।
दह्यते तत्क्षणादेव तूलराशिरिवाऽग्निना॥६३॥
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा नमस्कृत्वा प्रणिपत्यचभक्तितः।
स्तुत्वाविमुच्यतेपापैर्निर्मोकिनभुजङ्गवत् ॥६४॥
न तस्यव्याधयःसन्तिन शोकानाऽऽधयस्तथा।
सर्वान्कामानवाप्नोतिहयमेधफलंतथा ॥६५॥
समीपे तस्य भो विप्रा यजनं दानमेव च। अन्यानि पुण्यकर्माणि कृतानिचसकृन्नरैः॥६६॥
कोटिकोटिगुणानि स्युर्नरसिंहप्रसादतः॥६६॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव खण्डान्तर्गतोत्कल-
खण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे नृसिंहमूर्ति-
प्रतिष्ठानाम: षोडशोऽध्याय:।।१६।।

—***—

इन नृसिंह देव का आद्य अवतार वैशाख शुक्ला दशमी, शनिवार, प्रदोष समय में स्वाती नक्षत्र में हुआ था। इस दिन समाहित होकर यथाविधि नृसिंहदेव का पूजन करने से तत्क्षण सहस्रकोटि जन्मार्जित तथा संचित पापों का दग्धीकरण वैसे ही होता है, जैसे अग्नि में रूई का ढेर तत्काल भस्मीभूत हो जाता है। नृसिंहदेव का दर्शन, स्पर्शन, उनको प्रणाम करना तथा भक्ति से स्तवपाठ करना, इस कार्य से व्यक्ति पाप के आवरण से वैसे ही मुक्त होता है, जैसे सर्प अपनी केचुल से मुक्त होता है। ऐसे व्यक्ति को किसी प्रकार की पीड़ा, शोक, मनःस्ताप नहीं होता। उसके सभी अभीष्ट पूर्ण हो जाते हैं। वह अश्वमेध यज्ञ फल प्राप्त करता है। हे विप्रगण! नृसिंहदेव की कृपा से उसके द्वारा किये गये याग-यज्ञ-दान तथा सभी पुण्यकार्य करोड़ों गुना फल प्रदान करते हैं।।६२-६६।।

।।षोडश अध्याय समाप्त।।

सप्तदशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्न का सहस्त्र अश्वमेध अनुष्ठान, देवगण का आवाहन, यज्ञ में आये लोगों का आतिथ्य सत्कार, भगवान् के साथ लक्ष्मी का दर्शन

मुनय ऊचुः

प्रतिष्ठिते नारसिंहे क्षेत्रे तस्मिन्नराधिपः। किं चकारमुने ! ब्रूहि परं कौतूहलं तु तत्॥१॥

मुनिगण कहते हैं—हे मुनिवर! उस क्षेत्रधाम में नृसिंहदेव की प्रतिष्ठा हो जाने के पश्चात् नरराज इन्द्रद्युम्न ने क्या किया? इसे जानने हेतु कुतूहल हो रहा है। अतः कृपया कहिये।।१।।

जैमिनिरुवाच

इन्द्रादींस्त्रिदशान्सर्वान्न्यमन्त्रयत पूर्वतः। ततः स मन्त्रयामासऋषीन्विप्रान्सहस्त्रशः॥२॥
अध्येतॄंश्चतुरो वेदान्सषडङ्गपदक्रमैः। यज्ञविद्यासु कुशलान्मीमांसापरिनिष्ठितान्॥३॥
सभाष्यकल्पसूत्रैस्तु परिनिष्ठितकर्मिणः। अष्टादशसु विद्यासु कुशलान्धर्मकोविदान्॥४॥
सदाचारावदातांश्च कुलीनान्सत्यवादिनः। वैष्णवांश्च विशेषेण मन्त्रयामाससादरम्॥५॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे विप्रगण! उन राजा ने पहले इन्द्रादि देवतागण को निमन्त्रित करके हजारों-हजार ब्राह्मण तथा षडङ्गपदक्रम के साथ चतुर्वेदाध्यायी, यज्ञविद्या पारंगत, मीमांसाशास्त्रज्ञ, सभाष्यकल्पकुशल, परिनिष्ठित कर्मवाले, अष्टादश विद्याविशारद, धर्मकोविद, सदाचारी, सत्यवादी, सत्कुलोत्पन्न व्यक्तिगण को तथा विशेषतया वैष्णवगण को आदर के साथ निमन्त्रित किया।।२-५।।

त्रैलोक्ये ये च राजानः सिद्धाः सप्तर्षयो द्विजाः।
सच्छूद्रा वणिजो द्वीपपतयश्च निमन्त्रिताः॥६॥
क्रोशद्वयमिता विप्राः सभाऽऽसीत्तस्य भूपतेः।
पाषाणघटिता सोच्चा सुधयासानुलेपिता॥७॥

क्वचिद्रत्नमयी भूमिः क्वचित्काञ्चननिर्मिता। स्फाटिकीराजतीवैवयथायोग्यंकृतस्थली॥८॥
स्तम्भै रत्नमयैः प्रोच्चैर्दुकूलपरिवेष्टितैः। चारुचन्द्रातपाढ्या तुगन्धमाल्यैःसचामरैः॥९॥

हे द्विजगण! अधिक क्या कहूं? त्रैलोक्य में जितने भी राजा, सिंह, ऋषि तथा सत्‌शूद्र-वणिक-तथा द्वीपाधिप थे, वे भी इस समारोह में निमन्त्रित किये गये। हे विप्रगण! इन राजा का सभास्थल दो कोश विस्तार वाला था। यह सभा पाषाण से निर्मित ऊंची थी। इसे सम्यक्तः सुधा लेप से अत्यन्त सुन्दर बना दिया गया था। कोई स्थान स्वर्ण निर्मित, कोई स्फटिक तथा चांदी से शोभित एवं यथा योग्य था। उसके स्तम्भ रत्नमय थे, वे ऊंचे थे तथा उन पर वस्त्र लिपटे थे। उसके ऊपर उत्तम चन्द्रातप (चंदोवा) ताना गया था। वहां चामर झले जा रहे थे तथा गन्धमाला से वह सजा था।।६-९।।

मुक्तादामान्तरस्थैश्च चारुवातायनाशुभा। कृष्णागुरुस्नेहसिक्ताश्रीखण्डसलिलोक्षिता॥१०॥
सर्वर्त्तुकुसुमाकीर्णाप्रान्तोपवनसम्वृता। वाप्यः स्फटिकसोपानाःपद्मकह्लारमण्डिताः॥११॥
चक्रवाकैः प्लवैर्हंसैः सारसैर्मधुरस्वनैः। व्याप्तान्तराः स्वच्छशीतसुगन्धमधुराम्भसः॥१२॥
परितः शतशस्तस्याःसुखावतरणा द्विजाः। उपच्छायाविरचनाःशोभमानाःसमन्ततः॥१३॥

वह सभा मुक्तादाम से सज्जित थी। उसमें शुभ वातायन बने थे। वह कृष्ण अगुरु के द्वारा सिक्त थी तथा वहां श्रीखण्डजल छिड़का गया था (श्रीखण्ड-चन्दन)। वह सभी ऋतुओं के पुष्प से समाकीर्ण तथा उत्तम पवन से संवृत्त थी। उसके स्फटिक के सोपान थे कमलों तथा कल्हार पुष्प से वह सभा सजी थी। वहां चक्रवाक, प्लव, हंस, सारस मधुर स्वर कर रहे थे। वहां के सरोवर स्वच्छ-शीतल-सुगन्धित जल से पूर्ण थे। सर्वत्र उपच्छाया रचना से वहां शोभावृद्धि हो रही थी।।१०-१३।।

यज्ञशाला मरुत्तस्य यथाऽऽसीद्धोद्विजोत्तमाः !। तथेन्द्रद्युम्नभूपस्यरचिताविश्वकर्मणा॥१४॥
शुभेह्निशुभनक्षत्रेवासयित्वासभासदः। राज्ञः सिंहासनासीनान्दृष्ट्वाऽऽसीनानृषीनपि॥१५॥
ससिद्धान्ब्रह्मर्षिगणान्बहुमूल्यकुथस्थितान्। देवान्काञ्चनपीठस्थान्यथायोग्यमथ द्विजान्॥१६॥
वरासनस्थानन्यांश्च यथादेशं सुखस्थितान्। मध्ये नृपाणां देवानामृषीणां च शचीपतिम्॥१७॥
साम्राज्यलक्षणे स्वस्य रत्नसिंहासने स्थितम्। दिव्यैर्माल्यैस्तथा गन्धैर्वासोभिर्विष्टरादिभिः॥१८॥
पुरोधसा समं पूर्वमर्चयामास ऋद्धिमत्। विनीतो दीनवत्तस्य चक्रे पूजांतथानृपः॥१९॥
आश्चर्यं मन्यतेऽस्यासौत्रैलोक्येशोऽपितद्यथा। ततःसिद्धान्देवमुनीनचर्यन्निन्द्रवत्तदा॥२०॥

हे द्विजोत्तमों! जिस प्रकार से राजा मरुत्त की पूर्वकाल में यज्ञशाला थी, इन राजा इन्द्रद्युम्न की यज्ञस्थली विश्वकर्मा द्वारा तदनुरूप बनाई गयी थी। राजा ने शुभदिवस तथा शुभ-नक्षत्र में सभासदों को उनकी-उनकी मर्यादा के अनुरूप स्थान निर्दिष्ट करके यथायोग्य आसनों पर बैठाया। राजाओं को सिंहासन, ऋषियों को वृष्यासन, सिद्ध तथा ब्रह्मर्षिगण को उत्तम बहुमूल्य कुशासन, देवगण को स्वर्णपीठ तथा अन्य संभ्रान्तगण को वरासन (श्रेष्ठ आसन) पर बैठाया तथा देवता, ऋषि तथा राजाओं के बीच शचीपति इन्द्र को विष्ठरादि प्रदान किया। तदनन्तर दिव्य माला-गन्ध-वस्त्र-प्रभृति द्वारा सबसे पहले समृद्धिपूर्वक राजा ने अर्चना किया। राजा ने दीनभावापन्न व्यक्ति की तरह अतीव विनीत भाव से धन प्रदान करके उनका पूजन किया। इससे सबको आश्चर्य होने लगा। तत्पश्चात् सिद्ध-देवता तथा मुनियों की पूजा इन्द्र की तरह राजा ने सम्पन्न किया।।१४-२०।।

विस्मयं जनयामास कुवेरस्याप्यधिश्रियः। ततो देवान्समानर्च प्रभूतस्वस्वसम्पदः॥२१॥
उपचारैर्महीनाथः सम्यगव्यग्रमानसः। राज्ञः सम्पूजयामास राजयोग्यैःपरिच्छदैः॥२२॥
तथा ते मेनिरे भूपा भवामः साम्प्रतं वयम्। सत्यं राज्यंक्रमात्प्राप्तंनेदृशश्चपरिच्छदः॥२३॥
आनर्च वैष्णवान्भूय उपचारैः समानयन्। शान्ता अपि यथा चित्रंमेनिरेविषयागमम्॥२४॥

ततो विप्रान्बाहुजातान्वैशयान्मुनिपुरःसरम्।
सम्यक्प्रपूजयामास सत्त्वोद्रिक्तो महीपतिः॥२५॥

अन्यांश्च सचिवद्वारा पूजयित्वा ससंभ्रमः। दृष्टः स विनयान्नम्रःकृताञ्जलिपुटस्तथा॥२६॥
महेन्द्रमुच्चैराहेदं नारदेन पुरोधसा॥२७॥

राजा के द्वारा इस प्रकार से प्रचुर धनदान देने के कारण कुबेर भी विस्मित हो गये। तदनन्तर अन्य देवगण की यथाविधान पूजा राजा ने अपनी सम्पदा के अनुसार किया। राजा ने इसके पश्चात् अव्यग्र भाव से समागत राजाओं का यथायोग्य पूजन उनकी-उनकी प्रतिष्ठा के अनुरूप किया। तदनन्तर राजा इन्द्रद्युम्न ने वैष्णवगण का पूजन नाना उपचारों से किया। तत्पश्चात् राजा ने समागत ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों की पूजा यथायोग्य रूप एवं क्रम से करके उन्होंने अन्य संभ्रान्त लोगों की पूजा किया तथा दृष्ट अन्तःकरण द्वारा विनीत तथा नम्रभाव से अंजलिबद्ध होकर नारद तथा महेन्द्र के पास जाकर उनसे उच्चस्वर से यह निवेदन किया।।२१-२७।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

तव प्रसादाद्देवेश इच्छामीदं प्रसीद मे। क्रतुना हयमेधेन प्रयक्ष्ये यज्ञपूरुषम्॥२८॥
अजुनानीहि मां देव क्रतूनामीश्वरोभवान्। त्वदाज्ञापालकाःसर्वेत्रैलोक्येनिवसन्तिये॥२९॥
यावत्क्रतुसहस्रस्य संस्था च भवति प्रभो। तावत्त्वं त्रिदशैः सार्द्धसदोमध्यगतोवस॥३०॥
यष्टुमिच्छामि देवेश ! नाऽहंत्वत्पदलिप्सया। सर्वेषांवेत्सिदेवेश ! मनोवृत्तिंसदाप्रभो॥३१॥
युष्माकं पूर्वदृष्टोऽत्रवपुष्मान्माधवःप्रभुः। उपासनायांसोऽयंयोवालुकाभिस्तिरोदधे॥३२॥
तस्य भूयः प्रकाशार्थंवाजिमेधसहस्रकम्। करिष्येवचनादिन्द्रचतुरास्यस्यशासनात्।
पुनः प्रकाशिते तस्मिञ्छ्रेयो वोऽपि भविष्यति॥३३॥

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—हे देवेश्वर! मैंने आपकी कृपा से इस सहस्र अश्वमेध यज्ञ की इच्छा किया है। अतएव आप मुझ पर प्रसन्न हो जायें। मैं अश्वमेध यज्ञ से यज्ञपुरुष की पूजा करूंगा। हे देव! आप यज्ञकर्त्ताओं के ईश्वर हैं। अतः मुझे आज्ञा प्रदान करें। हे देव! इस त्रैलोक्य में जो निवास करते हैं, वे सभी आपकी आज्ञा के प्रतिपालक हैं। हे प्रभो! जब तक मेरा यह सहस्रयज्ञ पूर्ण न हो जाये, तब तक आप देवगण के साथ इस सभा में रहिये। मैं आपके इन्द्रपद प्राप्ति हेतु देवेश्वर के इस यज्ञानुष्ठान को नहीं कर रहा हूं। हे प्रभु! हे देवेन्द्र! आप सदैव सबकी मनोवृत्ति के ज्ञाता हैं। आपने पहले अपने जिन प्रभु माधव को यहां मूर्त्तिमान् दिखा था, वे उपासना द्वारा (यमराज की उपासना द्वारा) बालुका राशि में अन्तर्हित् हो गये। हे इन्द्र! मैं उनके ही पुनः प्रकाशनार्थ चतुरानन ब्रह्मदेव की अनुमति से सहस्र अश्वमेध यज्ञ करूंगा।।२८-३३।।

इति विज्ञापिते राज्ञा महेन्द्रप्रमुखाः सुराः। अन्तर्द्धानोत्तरं या चश्रुत्वापूर्वसरस्वती॥३४॥
अशरीरां स्मरन्तस्तामिदं प्रोचुः प्रहर्षिताः।
इन्द्रद्युम्न ! महात्माऽसि सत्यं सत्यव्रतो भुवि॥३५॥
त्वच्चेष्टितं पुराऽस्माभिरन्वभावि भविष्यकम्।
सहायास्ते भविष्यामः कार्ये त्रैलोक्यपावने॥३६॥

स्त्रष्टा स जगतां यत्र उद्युक्तः स्वयमेव हि। अत्रैवोवाच भगवानस्माकमपि भूतले॥३७॥
प्रविशंस्तदनुक्रोशवशाद्भूयः प्रकाशनम्। करिष्ये दारवं देहमित्येतत्परिनिष्ठितम्॥३८॥
नाऽत्राऽस्माकंव्यलीकं तुनेन्द्रस्यच महीपते। अस्मद्दिष्टसमुद्योगस्तवनःप्रीतिकारकः॥३९॥
सुखं यजस्व राजेन्द्र ! वैकुण्ठं भक्तवत्सलम्। क्रतुना हयमेधेन सहस्त्रपरिवर्तिना॥४०॥
दुराराध्यो हि भगवानस्माकं भक्तवत्सलः। वयमप्यत्र देवत्वंत्यक्त्वा भक्तिपरायणाः॥४१॥
आराधयामः क्षेत्रेस्मिन्विनीता नररूपिणः। प्रियं हिमानुषेलोकेकर्मसिद्ध्यतिवैकृतम्॥४२॥

राजा के यह कहने पर महेन्द्र आदि ने भगवान् माधव के अन्तर्ध्यान के पश्चात् सुनी गई अशरीरी वाणी का स्मरण किया और हर्षपूर्वक तदनुसार राजा से कहा—"हे इन्द्रद्युम्न! तुम महात्मा हो तथा इस धरती पर तुम यथार्थ सत्यव्रतावलम्बी हो। तुम्हारे द्वारा जो कार्य किया जायेगा, उसका हमने पहले ही अनुभव कर लिया था। अतः तुम्हारे इस त्रैलोक्यपावन कार्य हेतु हम तुम्हारे सहायक होंगे। इस कार्य हेतु जगत्स्त्रष्टा जगदीश स्वयं उद्यत हैं। भगवान् ने यहीं पर हमलोगों से कहा था कि पाताल में प्रवेश के पश्चात् वे इन्द्रद्युम्न पर दया करके पुनः भूतल पर दारुमयदेह में प्रकाशित होंगे। यह उनका निश्चय है। अतः हे राजन्! इस विषय के प्रति हमारे अन्दर अथवा देवेन्द्र के अन्तःकरण में कोई असन्तोष नहीं है। हमारे उद्देश्य से किये गये यज्ञों से तुम्हारा कोई उपकार नहीं हो रहा है। इसलिये परम भक्तवत्सल वैकुण्ठपति को बिना किसी विघ्न के याग-यज्ञादि से प्रसन्न करो। यद्यपि भगवान् दुराराध्य हैं, तथापि हम अनेक अश्वमेध द्वारा उनका प्रीतिविधान करेंगे। हम भी इस क्षेत्र में अपना देवरूप त्यागकर नररूपी होकर विनय-भक्ति के साथ भगवत् आराधन करेंगे। इसका कारण है कि मृत्युलोक में ही कर्म तत्पर होने पर सिद्धि मिलती है।।३४-४२।।

जैमिनिरुवाच

इत्युक्ते त्रिदशैःसेन्द्रैः परितुष्टान्तरात्मना। आरम्भार्थं क्रतोराजाभगवन्तमपूजयत्॥४३॥
उपचारसहस्त्रैस्तु यथावत्प्रतिपादितैः। ततः पितृगणाव्राजा निरूप्य श्रद्धयाऽन्वितः॥४४॥
सदोगृहगतान्विप्रान्याज्ञिकान्समलङ्कृतान्। कृत्वेष्टदेवंपुरतोवैकुण्ठंसाऽग्निहोत्रकम्॥४५॥

आकाङ्क्षन्कल्पितंलग्नंसम्वृत्तेस्वस्तिवाचने ।
उपस्थितःसपत्नीकःशुद्धमाङ्गल्यवेषधृक् ॥४६॥
स्वस्ति वाच्य द्विजाञ्छुद्धान्पुण्याहं वृद्धिकर्म च।
ततः सम्भृतसम्भारो वरयामास ऋत्विजः॥४७॥

ऋषि जैमिनी कहते हैं—इन्द्रादि देवगण की अन्तरात्मा के सन्तुष्ट हो जाने पर राजा ने यज्ञ का आरंभ करने के लिये यथाविधि सहस्रों उपचार से भगवान् की पूजा तथा पितरों का नान्दीश्राद्ध श्रद्धापूर्वक सम्पन्न किया।

तत्पश्चात् राजा ने सभागृह में समागत याज्ञिक ब्राह्मणों को सम्यक् रूप से अलंकृत किया तथा अग्निहोत्र के साथ अभीष्ट देवता वैकुण्ठनाथ को सम्मुख रखकर निर्दिष्ट शुभलग्न की प्रतीक्षा करने लगे। जब स्वस्तिवाचन

योग्य शुभ मुहूर्त आ गया तब उन्होंने पत्नी के साथ विशुद्ध मांगलिक वेश धारण किया। तत्पश्चात् शुद्ध आचरण वाले ब्राह्मणों ने पुण्याहवाचन-ऋद्धि-स्वस्तिवाचन सम्पन्न किया। तब राजा ने भी राजयोग्य उपकरण दान करके ऋत्विक्‌गण का वरण किया।।४३-४७।।

वृतास्ते तु सपत्नीकं दीक्षयन्तो नृपोत्तमम्।
विहृत्य दीक्षणायेष्टान्ययजन्सभ्यचोदिताः॥४८॥

प्रणीय तंप्रज्वलन्तं वेद्यामाहवनीयकम्। त्रैलोक्यमङ्गलकरं किं साक्षाद्वैष्णवं महः॥४९॥
सुप्रोक्षितं चाऽभिमन्त्र्य अनुज्ञाप्यदिगीश्वरान्। मुमुचुस्तेहयंमुख्यमङ्गेषुशुभलक्षणम्॥५०॥
ततः सदीक्षितो राजावाग्यतोरौरवींत्वचम्। अधिष्ठायसदोमध्येमृत्युञ्जयइवस्थितः॥५१॥
निमन्त्रितानां भुक्त्यर्थं चक्षुषा सन्दिदेश वै। सुराणां रत्नपात्राणिमहार्घाणिनृपाज्ञया॥५२॥
सचिवः कारयामासभोजनायसमृद्धिमत्। शुद्धसौवर्णपात्राणिमुनीनांचमहीक्षिताम्॥५३॥
द्विजानां भोजनार्थायनवानिप्रत्यहंद्विजाः। क्षत्रियाणांविशांविप्राराजतानिशुभानिच॥५४॥
कांस्यनिर्मलपात्राणिशूद्राणांभोजनाय वै। अहन्यहनिपात्राणिभोजनान्तेद्विजोत्तमाः॥५५॥
आकरेषु प्रपात्यन्तेप्रोच्छिष्टदलवज्जनैः। तत्र यज्ञोत्सवे ये वै भोजनाय निमन्त्रिताः॥५६॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च प्रपौत्राश्चैव सन्ततिः। नित्यं पञ्चरसान्नानि बहुमानपुरःसरम्॥५७॥
आदृतैर्भोजिता राज्ञ इन्द्रद्युम्नस्य शासनात्। कुटुम्बवत्स्थितास्तत्रसंस्थायावन्महाक्रतोः॥५८॥

तत्पश्चात् वे सत्यव्रत-वृत् ऋत्विकगण ने नृपात्तम इन्द्रद्युम्न को सपत्नीक यज्ञ में दीक्षित किया। तदनन्तर वेदी के ऊर्ध्वभाग में त्रैलोक्यमंगलकारी साक्षात् वैष्णव तेजपुञ्ज युक्त ज्वलन्त आह्वनीय अग्नि का प्रणयन-प्रोक्षण-अनुमन्त्रण किया तथा दिक्पतिगण की अनुज्ञा लेकर दीक्षणीय अश्वमेध यज्ञ में अभीष्टदेवता के लिये विशेषतः याग किया। तदनन्तर शुभलक्षणान्वित एक प्रधान अश्व छोड़ा गया। इधर नरपति दीक्षित होकर वाणी का संयम करके सभा मध्य में रौरव (रुरुमृग) के चर्मासन पर स्थित होकर साक्षात् मृत्युञ्जयवत् शोभित हो रहे थे। वे निमन्त्रित व्यक्तिगण के भोजनार्थ तत्वावधारक लोगों को आखों के संकेत से आदेश दे रहे थे। राजमन्त्री राजा की अनुमति पाकर भोजनार्थ देवताओं के लिये महार्द्ध रत्नपात्रादि में, मुनियों तथा ब्राह्मणों के लिये एवं राजवर्ग हेतु शुद्ध स्वर्णपात्र में, क्षत्रिय तथा वैश्यों को निर्मल चांदी के पात्रों में तथा क्षूद्रों को कांस्यपात्र में भोजन प्रदान करने लगे। वे लोग नित्य इन जूठे बहुमूल्य पात्रों को भोजन समाप्त होने पर कूड़ा की तरह ढेरों में त्याग दिया करते थे। इस यज्ञ में भोजनार्थ जो-जो निमन्त्रित किये जाते थे, वे पुत्र-पौत्रादि क्रम से (अर्थात् उनके वंशज) सन्तानगण ५०० वर्ष पर्यन्त नित्य बहुसंख्यक आकर भोजन करते रहते थे। (अर्थात् जिसे निमंत्रित करके खिलाया जाता, उसकी मृत्यु होने पर उनके वंशजों को भोजन पीढ़ी-दर-पीढ़ी ५०० वर्ष तक कराया गया) अधिक क्या कहें, इन्द्रद्युम्न राजा के शासन बल से वे सब उनके यज्ञ समापन कालपर्यन्त राजा के कुटुम्बी की तरह वहां रहते थे।।४८-५८।।

यद्देशीया जनास्तेषामधिष्ठाता च तान्नृपः। नृपाणामनुसन्धाता इन्द्रद्युम्नप्रयाचितः॥५९॥
नारदः समदर्शी तु परोपकृतिलोलुपः। इन्द्रादीनां सुरेन्द्राणां देवर्षीणां नृपोत्तमः॥६०॥

स्वयं नरपतिश्चर्यां चकार क्रतुपूर्त्तये। षड्विधान्यन्नपानानि संस्कृतानि द्विधा नरैः॥६१॥
देवानां भोजने तत्र मन्त्रतन्त्रविशारदैः। मर्त्यानां नलविद्यायांकुशलैःसंस्कृतानि वै॥६२॥
क्षुत्पिपासानानभिज्ञा हि सुधाहारा दिवौकसः। तेषामपिअपूर्वत्वादाश्चर्यंतद्धिभोजनम्॥६३॥
नराणां दुर्लभं मर्त्त्ये इन्द्रद्युम्नगृहेऽशनम्। इन्द्रद्युम्नस्य चेन्द्रस्यविशेषोमर्त्यवासिता॥६४॥
अत्यद्भुतकरं ह्येतत्प्रत्यहं च नवं नवम्। सम्माननादरावृद्धिर्भोज्यस्य द्विजसत्तमाः॥६५॥
अन्योन्यस्पर्द्धयैवात्र प्रवर्द्धन्ते परस्परम्। सुगन्धसुमनोमाल्यकस्तूर्यादिप्रलेपनम्॥६६॥
चित्रसूक्ष्मदुकूलानि सोपधानासनानि च। रत्नपल्यङ्किकाशय्यारत्नदण्डप्रकीर्णकम्॥६७॥
जातीलवङ्गकर्पूरैर्नागवल्लीदलानि च। मनोहराणि गीतानि नृत्यानि विविधानि च॥६८॥

अनेक देशों से निमन्त्रित बहुतर व्यक्तियों के तत्वावधान में यज्ञ का समापन निर्विघ्न हो इसीलिये यह व्यवस्था की गई थी। जिस देश का जो व्यक्ति था उन सबका तत्वावधारक उस देश का नरपति होता था। अपने यहां के लोगों का भार उस पर होता था। इन्द्रद्युम्न की प्रार्थना से परोपकार करने के लिये लोलुप, सबमें समदर्शी, देवर्षि नारद ने समस्त राजाओं के तत्वावधान का भार लिया था। यज्ञसिद्धि के लिये देवगण की तथा दिव्यर्षिगण की परिचर्चा राजा स्वयं करते थे।

वहां छः प्रकार के अन्न पानादि संस्कृत रूप से दो प्रकार से प्रदान किये जाते थे। देवगण का भोजन मन्त्र-तन्त्र विशारद प्रस्तुत करते। मनुष्यों के भोजन की व्यवस्था नलविद्या कुशलगण (पाक विद्या कुशल) भोजन का संस्कार करके करते थे। देवगण क्षुधा-पिपासा से अनभिज्ञ होते हैं। वे सुधा का आहार करते हैं। उनको भी यहां भोजन ग्रहण देख आश्चर्य होता था। इन्द्रद्युम्न के यहां का भोजन तो मनुष्य के लिये दुर्लभ था जिसे मानवों को वहां खिलाया जाता था। इन इन्द्रद्युम्न में तथा इन्द्र में कोई पार्थक्य ही नहीं था। केवल भेद इतना ही था कि इन्द्रद्युम्न पृथिवी पर रहते थे तथा इन्द्र स्वर्ग में। हे द्विजोत्तमगण! तब राज्य सभा में नित्य नये-नये समादर, नव-नव सम्मान, नवीन-नवीन भोज्य आदि का नित्य एक से बढ़कर एक आयोजन होता था। सुगन्धित पुष्प, माला, कस्तूरी आदि विलेपन, विविध सूक्ष्म वस्त्र, तकिया युक्तशय्या, रत्नजटित पलंग, रत्नयुक्त चामर, जाती-लवंग-कपूर-ताम्बूल आदि मनोहर द्रव्य मनोहर गीत, नाना प्रकार के नृत्य, समस्त पारस्परिक स्पर्द्धारूप से सम्पन्न करके दूना-दूना प्रदान किया जाता था। स्पर्द्धा का तात्पर्य यह है कि एक से बढ़कर एक वस्तु नित्य बढ़ा-बढ़ाकर प्रदान की जाती थी।।५९-६८।।

भरतस्य मुनेः शिक्षापण्डितै रचितानि च।
स्वस्ववंशयशोऽभिज्ञाः शतशः सूतमागधाः॥६९॥
एतान्यन्यानिवस्तूनिदुर्लभान्यपियानिवै। त्रिदशाश्चापिमर्त्याश्चान्वभुज्यन्तसुसादरम्॥७०॥
एकतोऽन्यत्रचित्राणिनचहीनानिकुत्रचित्।
पातालवासिनांचापिभोजनंवैसुधाधिकम्॥७१॥
यद्भुक्त्वा नाऽनुवाञ्छन्ति पातालगमनंहि ते। पुराणियानिपातालेरत्नौघालोकितानिच॥७२॥
विना सूर्यप्रकाशेन तादृशान्येव भूपतिः। ददौ तेषां निवासाय येषु पातालबुद्धयः॥७३॥

सुखासीनाश्च क्रीडन्तो भुञ्जानाः शेरतेमुदा। देवानामपि नान्यत्रभूमिस्पर्शनमस्तिवै॥७४॥
इन्द्रद्युम्नपुरे तत्र स्वर्गादपि मनोहरे। यदृच्छया सुखक्रीडासक्ता नो तत्यजुर्भुवम्॥७५॥

यह सब नृत्यादि जो होते थे, वे भरतमुनि की शिक्षा के अनुसार किये जाते थे। (भरतनाट्यशास्त्र के अनुसार सम्पन्न होते थे) अपने-अपने राजवंश के यश को जानने वाले सैकड़ों सूत-मागध भी वहां विद्यमान थे। स्वर्ग में भी जो अत्यन्त दुर्लभ है। उसका राजा इन्द्रद्युम्न के यहां लोग अत्यन्त आदर से उपभोग करते थे। एक साथ इतने अद्भुद् उपचारों की बहुलता कहीं भी संभव नहीं थी। राजा के धनव्यय तथा आदर में कहीं भी लेशमात्र त्रुटि नहीं होती थी। पातालवासीगण भी यहां आकर देवगण की अपेक्षा अत्यन्त मधुर खाद्यों का भोजन कर रहे थे। उसे खाकर अब उनकी पाताल जाने की इच्छा ही नहीं हो रही थी। पाताल में रत्नादि के प्रकाश में वे लोग अवलोकन करते हैं। बिना सूर्यप्रकाश के रत्नादि के प्रकाश से ही वहां दिखलाई पड़ता है। यहां भी राजा ने उनको पाताल के ही समान निवास प्रदान किया। वे यहां सुखपूर्वक रहते। भोजन करते तथा क्रीड़ारत रहते थे। इन्द्रद्युम्न की वह पुरी स्वर्ग से भी मनोरम थी। सभी वहां सुखपूर्वक क्रीड़ा सक्त रहते थे।।६९-७५।।

अभिलाषोपजातं तु सुखंस्वर्गेवदन्तिहि। अनिच्छयाऽपिभोविप्राःसुखंसर्वत्र तत्र वै॥७६॥
आदृत्य यत्नान्मन्यन्ते भोज्यन्ते सादरं नराः।
न याचितः कोऽपि जनः कुतो वा स्यात्पराङ्मुखः॥७७॥
राजाधिराजवेश्मानि जनानां स्वगृहैःसमम्। तदासीत्स्वगृहेतेषांनसदासर्वसम्भवः॥७८॥
तत्र यत्कामनातीतं तद्वस्तु सुलभं बहु। इत्थं प्रवर्तिते यज्ञे यज्ञेशप्रीतये मुदा॥७९॥
पृथिवी हृतसर्वस्वा वाजिमेधेस्य भूपतेः। या पूर्वं साभवद्भूयःस्वर्णवृष्टिसुभूषिता॥८०॥
इत्थं प्रवृत्ते लोकानां तत्र त्रैलोक्यवासिनाम्।
दानसम्मानभोज्यानां विधौ विधिवतोऽन्वहम्॥८१॥
अश्वमेधं प्रति जना जगुर्गाथाःपरस्परम्। नेदृग्यागस्यसम्भारोविधेःशास्त्रप्रचोदितः॥८२॥
इन्द्रद्युम्नस्य राजर्षेर्न भूतो नभविष्यति। नयाचितारोऽदातारोमिथोयत्रनिमन्त्रिताः॥८३॥
नकामभङ्गोयत्राऽऽसीद्देवानामपिभोद्विजाः। ईदृक्समृद्धिःक्रतुराट् प्रवृत्तोभूपतेस्तदा॥८४॥
अधिश्रद्धःसुसम्पन्नःपूर्वस्मादपरोऽभवत्। स्मृतिकाराःकल्पकारास्तथाशास्त्रप्रणेतृकाः॥८५॥
यज्ञानुष्ठानकुशलाः सदाचारावतंसकाः। अग्न्याधानाद्यवभृथप्रचारमनुपूर्वशः॥८६॥
क्रतुः सदस्यानुमते नृपतेःप्रीतयेद्विजाः। नमन्त्राःस्वरतोहीनावर्णतोवाऽपिकर्हिचित्॥८७॥
ये वै विधिविधातारस्ते वै कर्मप्रचारकाः। प्रायश्चित्तनिमित्तेनप्रायश्चित्तनिबन्धनात्॥८८॥
कर्मोपघातो नो तत्र योगिनः कर्मयोगिनः।
यत्र सप्तर्षयो दिव्याः सदस्याः क्रतुसाक्षिणः॥८९॥

वहां इच्छामात्र से स्वर्गवत् सुख प्राप्त होता था। बिना कामना किये ही वहां सर्वत्र सुख था। वहां आदरपूर्वक लोग भोजनादि करते थे। वहां कोई याचना नहीं करता था। न कोई वहां से विमुख ही होता था।

राजधिराज का वह गृह लोगों को स्वगृह के समान ही प्रतीत होता था। वहां जिसे जिस वस्तु की कामना होती थी, वह बहुलता से मिल जाती थी। इस प्रकार यज्ञेश प्रभु की प्रसन्नतार्थ वह यज्ञ मुदित होकर राजा द्वारा किया जा रहा था। राजा के इस अश्वमेध यज्ञ के कारण पृथिवी का मानो सब कुछ हर लिया गया। इस प्रकार से त्रैलोक्यवासी सभी दान सम्मान एवं भोजनादि से सत्कृत किये जा रहे थे।

इस अश्वमेध आयोजन के सम्बन्ध में लोग परस्पर वार्त्ता करते थे कि ऐसा शास्त्रोक्त यज्ञ सम्भार नहीं देखा गया था। इन्द्रद्युम्न ऐसा राजा न हुआ था न होगा। इस प्रकार का समृद्धि पूर्ण यज्ञ आयोजन जिस श्रद्धा के साथ सम्पन्न हो रहा है, वह न तो पूर्वकाल में देखा सुना गया, न भविष्य में ही होगा। यहां जो निमन्त्रित हैं, उन देवता तथा द्विजगण की कोई इच्छा अपूर्ण नहीं रहती। हे द्विजगण! इस यज्ञ में यज्ञानुष्ठान कुशल, सदाचार-परायण, स्मृतिकार, कल्पकार, आदि तथा शास्त्र प्रणेतागण राजा के सन्तोषार्थ सदस्यों की अनुमति के द्वारा अग्न्याधान से लेकर अवभृथ स्नानपर्यन्त का समस्त कार्य सम्पन्न कर रहे थे। इस यज्ञ में समस्त यज्ञीय मन्त्र तथा उदात्तादि स्वर एवं वर्ण, किसी भी अंश में हीनाङ्ग नहीं था। ऐसा क्यों न हो? जिन्होंने स्वयं ही मन्त्र विधान किया है, वे ही इस यज्ञ में कर्मप्रचारक जो थे! यहां प्रायश्चित्त के निमित्त तथा प्रायश्चित्त के कारण रूप कोई भी कर्मापघात नहीं होता था। यहां योगी, कर्मयोगी दिव्य सप्तर्षिगण इस यज्ञ के सदस्य तथा यज्ञ के साक्षी थे।।७६-८९।।

प्रचारयन्ति कर्माणि गुणदोषविभागिनः।
याज्ञवक्ल्यादयस्तेऽत्र मुनयस्त्वृत्विजो वृताः।।९०।।

सदोगतास्ते मुनयः परस्परकथान्तरे। वाकोवाक्यानि सूक्तानि गुह्योपनिषदानि च।।९१।।
गाथाः पैराणिकीर्विप्रा विष्णुभक्तिपुरःसराः। चरितानि हरेः सर्वकल्मषौघहराणिच।।९२।।
तत्र सम्वर्तयामासुस्ते सभायां महीक्षितः। तस्य यज्ञेहविःप्राशुःप्रत्यक्षंवह्निमध्यगाः।।९३।।
मुदितास्त्रिदशा विप्रा महेन्द्रप्रमुखा मखे। चिरप्रवासिनो देवा नाऽस्मरन्तामरावतीम्।।९४।।
अमृतं हि हविस्तेषां कल्पितं ब्रह्मणा पुरा। तत्प्राश्यमुदितादेवावीर्यवन्तश्चिरायुषः।।९५।।
यागानुष्ठानविषयादैन्यत्र विषयान्बहून्। इन्द्रद्युम्नेन रचितान्समस्तानुपभुञ्जते।।९६।।
तत्र ये नागराजानः पातालतलवासिनः। ततोऽधिकान्मर्त्यलोके विषयानुपभुञ्जते।।९७।।
पातालगमनं ते वै नेहन्ते मनसा ध्रुवम्। इत्थं प्रवर्तितो यज्ञस्त्रैलोक्यप्रीतिकारकः।।९८।।
इन्द्रद्युम्नस्य नृपतेः क्षेत्रेऽस्मिन्पुरुषोत्तमे। जगदीशप्रसादाय पितामहनिदेशतः।।९९।।

वहां याज्ञवल्क्यादि मुनिगण ऋत्विज थे। वे गुण-दोष विभाग द्वारा यज्ञ कर्म सम्पन्न कर रहे थे। वहां मुनिगण परस्परतः सूक्त, गुह्य उपनिषद, पौराणिकी गाथा, विष्णुभक्तियुक्त कथनोपकथन तथा हरिचरित्र वर्णन कर रहे थे जो समस्त पापों को हरने वाला है। वहां समस्त देवता तथा महेन्द्रादि प्रमुख देवगण प्रमुदित थे। वे अमरावती को भूल कर यहीं चिरकाल से प्रवास कर रहे थे। ब्रह्मा ने पूर्वकाल में उनके लिये जिस अमृत रूप हवि की कल्पना की थी, वे देवगण यहां उस हवि का प्राशन करके वीर्यवान् तथा चिरायु होकर मुदित हो रहे थे। यज्ञानुष्ठान विषय से अतिरिक्त अन्य अनेक विषयों की भी व्यवस्था का वे यहां आनन्द उठा रहे थे जिसे

इन्द्रद्युम्न ने प्रस्तुत किया था। यहां पातालवासी नागराजगण अपने पाताल लोक की तुलना में उससे कहीं अधिक विषयों का उपभोग कर रहे थे। उनके मन में पाताल गमन की इच्छा ही नहीं होती थी। पुरुषोत्तम क्षेत्र में राजा पितामह के आदेश से इन्द्रद्युम्न ने इस प्रकार का यज्ञ प्रवर्त्तन करके त्रैलोक्य में सुख का उत्पादन कर दिया था।।९०-९९।।

एकोनं क्रमतः संस्थामवाप पृथिवीपतिः। सहस्त्रं हयमेधस्य यथावद्विधिचोदितम्।।१००।।
ततः साहस्त्रिके यज्ञे वाजिमेधे महीपतिः। दिनेदिने दिव्यगतिर्बभूव नृपतिस्तदा।।१०१।।
सुत्यायाः सप्तदिवसाद्या रात्रिरभवत्पुरा। तस्यास्तुरीयप्रहरेदध्यौसविष्णुमव्ययम्।।१०२।।
ध्याने तस्मिन्ददर्शाऽसौ महाभाग्यवशान्नृपः।
प्रत्यक्षमिव स श्वेतद्वीपं स्फटिकनिर्मितम्।।१०३।।
समन्तात्परिवार्यैनं तिष्ठन्तं क्षीरसागरम्। महाकल्पद्रुमैः पुष्पगन्धामोदिदिगन्तरैः।।१०४।।
फलपल्ल ववल्केषु बहिरन्तश्च सर्वशः। शङ्खचक्राङ्कितैः शुभ्रैः सर्वालङ्कारभूषितः।।१०५।।
महामञ्जिष्ठवर्णैश्च मूर्तिभिस्तैर्मुरद्विषः। तन्मध्ये घटितं दिव्यमणिभिर्मण्डपोत्तमम्।।१०६।।
मध्यस्थसूर्यवद्भासि रत्नसिंहासनोज्ज्वलम्।
क्षीराब्धिशीतकल्लोलमन्दवातमनोहरम् ।।१०७।।

इस प्रकार जगदीश्वर की प्रसन्नता हेतु नरपति ने अश्वमेध यज्ञ को क्रमशः ९९९ संख्या में पूर्ण कर दिया। यह समस्त यज्ञानुष्ठान सविधि किया गया था। वे जब सहस्त्र यज्ञार्थ दीक्षित हुये थे, तब से वे नित्य क्रमशः दिव्यगति प्राप्त करते जा रहे थे। तदनन्तर जिस दिन यज्ञ समापन होने पर उनको अवमृत स्नान कराना था, उसके सात दिन पूर्व रात्रि के शेष प्रहर में उन राजा ने ध्यानयोग से सौभाग्यवशात् अव्यय विष्णुमूर्त्ति का प्रत्यक्ष किया। उन्होंने और भी देखा कि स्फटिक निर्मित श्वेतद्वीप है तथा उसके चारों ओर क्षीर समुद्र स्थित है। वहां स्थित बृहद् कल्पवृक्ष समस्त पुष्पगन्ध द्वारा दिक्-दिगन्त को आमोदित कर रहा है। उसका फल, फल्लव, वल्कल अन्दर तथा बाहर सर्वत्र शंख-चक्र चिह्न भूषित होने से लगता है मानो वहां भी अलंकारों से सज्जित महामंजिष्ठ वर्णात्मक उन मुररिपु विष्णु की यह कल्पतरु मूर्त्ति अतिशय रक्तिम शोभा से शोभित है। इस द्वीप के मध्य में दिव्य मणि निर्मित उत्कृष्ट मण्डल है। उसके भी मध्य में सूर्यकिरण के समान आभायुक्त रत्नसिंहासन ने उस स्थान का और भी उज्वल बना रखा है। पास में स्थित क्षीर सागर के जलकल्लोल से और मृदुवायु के संसर्ग से वह स्थान और भी मनोरम हो रहा है।।१००-१०७।।

तन्मध्ये ददृशे देवं ! शङ्खचक्रगदाधरम्। नीलजीमूतसङ्काशं वनमालीविभूषितम्।।१०८।।
सर्वलावण्यभवनं सौन्दर्यश्रीनिकेतनम्। निर्भर्त्सयन्तं वपुषा पिनद्धं दिव्यभूषणम्।।१०९।।
दक्षपार्श्वे स्थितं तत्र अनन्तं धरणीधरम्। कोटिचन्द्रप्रतीकाशं हिमाद्रिसदृशप्रभम्।।११०।।
फणामुकुटविस्तारच्छत्रीभूतंमनोहरम्। मणिकुण्डलयुग्माङ्कं चारुनीलनिचोलकम्।।१११।।
हललाङ्गलशङ्खारिस्फुरद्बाहुचतुष्टयम्। हारकेयूरवलयमुद्रिकाभिरलङ्कृतम्।।११२।।

मेखलाकटिसूत्राढ्यं दिव्यरत्नप्रसाधनम्। दिव्यहालाक्षीबमूर्तिं चारुहासं सुनेत्रकम्॥११३॥

दक्षपार्श्वस्थितां चाऽस्य लक्ष्मीं तां शुभलक्षणाम्।
वराभयाब्जहस्तां वै कुङ्कुमाभां सुलोचनाम्॥११४॥

त्रैलोक्ययुवतीवृन्ददृष्टान्ताऽद्भुतविग्रहाम्। ददर्श पद्मासनगांलावण्याम्बुधिपुत्रिकाम्॥११५॥

राजा ने उस सिंहासन के मध्यभाग में शंख-चक्र-गदाधारी देवता का दर्शन किया। वे नीलमेघ के समान वर्ण वाले, वनमालाभूषित, समस्त लावण्य के आश्रय सौन्दर्यपूर्ण लक्ष्मी के आश्रय रूप थे। उनका शरीर दिव्यभूषणों से दीप्तिमान हो रहा था। उनके दाहिनी ओर धरणीधर अनन्तदेव स्थित थे। वे करोड़ों चन्द्र के समान ज्योत्स्नापूर्ण तथा हिमालय के समान श्वेत प्रभा से युक्त थे। उनके फणों का विस्तार भगवान् विष्णु के ऊपर छत्रवत् शोभित हो रहा था। मणिरचित कुण्डल उनके कानों की शोभा बढ़ा रहे थे। उन्होंने नीलवर्ण का वस्त्रद्वय धारण किया था। उनके चार हाथों में हल, लाङ्गल, शंख, मूसल शोभायमान था। वे हार-केयूर-मुद्रिका से अलंकृत थे। मेखला, कटिसूत्र तथा दिव्य रत्न से वे शोभायमान थे। वे उत्तम हास्य तथा उत्तम नेत्रों के कारण दिव्यमूर्त्ति रूप थे। उनके वामपार्श्व में शुभलक्षणा लक्ष्मी विराजमान थीं। उनके हाथों में वर-अभय मुद्रा तथा कमल शोभायमान था। त्रैलोक्यस्थ युवतीवृन्द उनके अद्भुत् विग्रह का उन पद्मासनासीना के लावण्य का दर्शन कर रहीं थीं। जो देवी सागर की पुत्री हैं। वे कुंकुम की आभावाली सुलोचना देवी लक्ष्मी वहां भगवान् के वाम पार्श्व में पद्मासनासीना थीं।।१०८-११५।।

पितामहंच ददृशेपुरतोऽस्यकृताञ्जलिम्। वामपार्श्वस्थितंचक्रंनानामणिमयं विभोः॥११६॥
सनकाद्यैर्मुनीन्द्रैस्तं स्तूयमानं जगद्गुरुम्। दृष्ट्वा स्वप्ने सराजावैप्रहृष्टोद्विजसत्तमाः॥११७॥
अदृष्टपूर्वरूपं तं ज्योतिर्मयमनन्तकम्। तुष्टाव तत्र ध्यानस्थो हर्षगद्गदया गिरा॥११८॥

पितामह ब्रह्मा कृतांजलि होकर उनके सामने स्थित थे। विष्णु के वाम पार्श्व में उनका सर्वज्ञानात्मक चक्र स्थित था। सनक, सनन्दन आदि मुनीन्द्रगण खड़े होकर जगद्‌गुरु जगदीश्वर का स्तव कर रहे थे। हे द्विजोत्तमगण! राजा ने स्वप्नावस्था में यह देखा जिससे वे अतीव हर्षोत्फुल्ल हो गये। तब वे उसी स्थिति में ध्यानस्थ होकर उन अनन्त, ज्योतिर्मय, अदृष्टपूर्व रूप वैकुण्ठनाथ की स्तुति हर्ष-गद्‌गद् वाक्यों से करने लगे।।११६-११८।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

नमस्ते जगदाधार जगदात्मन्नमोऽस्तु ते। कैवल्यत्रिगुणातीत गुणाञ्जन नमोऽस्तुते॥११९॥
सुशुद्धनिर्मलज्ञानस्वरूपाय नमोऽस्तु ते। शब्दब्रह्माभिधानाय जगद्रूपाय ते नमः॥१२०॥
संसारपतितश्रान्तदुःखध्वंस ! नमोऽस्तुते। दुर्भेद्यहृदयग्रन्थिभेदकाय नमोऽस्तु ते॥१२१॥
द्विसप्तभुवनागारमूलस्तम्भाय ते नमः। ब्रह्माण्डकोटिघटनाशिल्पिने चक्रिणे नमः॥१२२॥
करुणाऽमृतपाथोधिसुधाधाम्ने नमो नमः। दीनोद्धारैकगुह्याय कृपापाथोधये नमः॥१२३॥

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—हे जगदाधार, हे जगद्रूपिन्! आपको प्रणाम! हे देव! आप गुणमय होकर भी गुणत्रयातीत हैं। आप कैवल्यरूपी हैं। आपको नमस्कार! आप परिशुद्ध निर्मल ज्ञानरूप हैं, आपको नमस्कार!

आप शब्द ब्रह्मरूप, जगद्रूप हैं, आपको नमस्कार! आप संसार में गिरे श्रान्त व्यक्ति का दुःख दूर करते हैं। आपको नमस्कार! आप दुर्भेद्य हृदयग्रंथि का भेदन कर देते हैं, आप चतुर्दश भुवन रूपी गृह के मूल स्तम्भ हैं, हे चक्रिन्! आप करोड़ों ब्रह्माण्ड का निर्माण करते हैं, आप दयारूप सुधासागर के सुधारूप हैं। आपको नमस्कार! आप दीनों के उद्धारक, अतिगुह्य, दयासागर हैं, आपको पुनः-पुनः प्रणाम!।।११९-१२३।।

प्रकाशकानां सूर्यादिज्योतिषां ज्योतिषे नमः।
प्रतिस्वस्वनदीप्ताय अन्तःपापाग्नयेनमः॥१२४॥
पावकाय पवित्राय पवित्राणां नमो नमः। गरिष्ठाय वरिष्ठाय द्राघिष्ठाय नमो नमः॥१२५॥
नेदिष्ठाय दविष्ठाय क्षोदिष्ठाय नमो नमः। वरेण्याय सुपुण्याय नारायण नमोऽस्तु ते॥१२६॥
परित्राहि जगन्नाथ ! दीनबन्धो ! नमोऽस्तु ते।
निस्तीर्णाऽहं भवाम्भोधिं प्राप्य त्वां तरणिं सुखाम्॥१२७॥

आप ही आलोक देने वाले सूर्य आदि ज्योतिर्मय वस्तु के ज्योति हैं, आप लोगों के हृदयस्थ पाप को दग्ध करने वाले अग्निरूप हैं, आप पवित्र को भी पवित्र करने वाले हैं, आपको पुनः पुनः प्रणाम! आप वरेण्य, पुण्यमय हैं। आप वरिष्ठ, दीर्घतम हैं। आप अत्यन्त निकट होकर भी अतिदूर हैं। गुरुतम होकर भी क्षुद्रतम हैं। आपको नमस्कार। हे नारायण! आप सबके वरेण्य पुण्यतम हैं, आपको प्रणाम! हे जगन्नाथ! मेरी रक्षा करिये। हे दीनबन्धु! मैं आपको पुनः-पुनः प्रणाम करता हूं। आप संसार सागर को पार कराने वाले सुखप्रद नौकारूप हैं। आपको पाकर मैं अनायास संसार सागर से पार हो गया।।१२४-१२७।।

त्वयि दृष्टे रमानाथ क्लेशा व्यपगता मम। चिदानन्दस्वरूपंत्वांप्राप्तानांदुःखसंक्षयः॥१२८॥
ध्रुवं नाथ समुत्पन्नपरमानन्ददेहेतुकम्। त्राहि त्राहि भवाम्भोधिमग्नं मांदीनचेतसम्॥१२९॥
मध्याह्नाऽर्कोदिते व्योम्नि कुतः सन्तमसोदयः।
ध्यानस्थितः स्तुवन्नेवं प्रणम्य जगदीश्वरम्॥१३०॥

"हे रमानाथ! आपका दर्शन प्राप्त होने मात्र से मेरा समस्त क्लेश दूर हो गया। आप चिदानन्दरूप हैं। आपको पाने के पश्चात् कोई दुःख ही नहीं रह गया। हे नाथ! आपका दर्शन ही परमानन्द का कारण है। हे देव! मैं संसार सागर में मग्न तथा अतिदीन हूं। मेरी रक्षा करिये। मध्याह्न रविदेव जब आकाश में उदित हैं, तब आकाश में अन्धकार कहां से आयेगा?" इस प्रकार राजा ने ध्यानावस्था में उन जगदीश्वर की स्तुति करके उनको प्रणाम किया।।१२८-१३०।।

ध्यानावसानेसपुनःस्वयंजाग्रदबुध्यत। स्वप्नान्तइन्द्रद्युम्नोऽपिसस्माराऽऽत्मानमात्मना॥१३१॥
अत्यद्भुतमिदं स्वप्नं दृष्ट्वा च नृपकुञ्जरः। मेने कृतार्थमात्मानं हयमेधक्रतोस्तथा॥१३२॥
सहस्रं सफलं चैव स्वभाग्यं समुपस्थितम्। न हि देवर्षिवचनं वृथाभवतिकर्हिचित्॥१३३॥
प्रत्यक्षं मे कथं नाथः स्वयमत्र भविष्यति।
इति चिन्ताऽऽकुलो रात्रिशेषं नीत्वा विशाम्पतिः॥१३४॥

शशंस नारदस्याऽग्रे यथा स्वप्नोऽन्वभूयत। स चापि नारदःप्राह शोकस्तेविगतोनृप॥१३५॥
अरुणोदयकाले हि भगवन्तं ददर्श यत्। दशाहात्फलदःस्वप्नस्तस्मिन्कालेनृपोत्तम॥१३६॥
क्रत्वन्ते भगवानत्र प्रत्यक्षस्ते भविष्यति। यदाह मद्गिरा त्वां हि चराचरगुरुर्विधिः॥१३७॥
सोऽपि त्वया जगत्स्त्रष्टा स्वप्नेऽस्मिन्नवलोकितः। तदनुष्ठीयतांयज्ञःपराग्रेनप्रकाशय॥१३८॥
स्वप्नोऽयं नृपशार्दूल ! दुर्बोधाचरितोहरेः। किन्तुभाग्यवतस्त्वेवस्वप्नस्तादृक्प्रजायते॥१३९॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे सहस्त्रयज्ञेस्वप्नेभगवद्दर्शनवर्णनंनाम सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

ध्यान समाप्त होने पर राजा स्वप्नावस्था से जाग्रदावस्था में लौटे। इन्द्रद्युम्न ने स्वप्नावस्था में आत्मा द्वारा परमात्मा का स्मरण किया था। इन नृपशार्दूल इन्द्रद्युम्न ने स्वप्नावस्था में अत्याश्चर्य दर्शन पाकर स्वयं को कृतार्थ समझा। उनका सहस्त्र अश्वमेध सफल हो गया। अतः अब राजा का सौभाग्य उपस्थित हो गया। स्वर्गस्थ ऋषियों का वचन कदापि व्यर्थ नहीं जाता। अब राजा यह चिन्तन करने लगे कि वे देवनाथ कब इस स्थल पर आकर मुझे प्रत्यक्ष दर्शन प्रदान करेंगे? इस प्रकार चिन्तन करते-करते रात्रि व्यतीत होने पर उन्होंने समस्त वृत्तान्त नारद से कहा। नारद ने कहा—"हे राजन्! अब से तुम्हारा दुःख दूर हो गया। तुमको अरुणोदय काल में भगवान् ने स्वप्न में दर्शन दिया है। यह स्वप्न दस दिनों में फलित हो जायेगा। इस हजारवें यज्ञ का समापन होते ही भगवान् यहां तुम्हारे समक्ष प्रकट होंगे। इतिपूर्व चराचर गुरु ब्रह्मा ने मेरे द्वारा तुमको यह बतलाया था। इस स्वप्न द्वारा जगदीश्वर ने वही बात प्रकट की है। अब यज्ञ सम्पन्न करके वाक्य को सार्थक करो। हे नृपशार्दूल! इस स्वप्न से जो अवगत हुआ है, वह हरि का दुर्बोध चरित्र है। तुम तो भाग्यशाली हो, जो तुमने ऐसा सुस्वप्न देखा।।१३१-१३९।।

।।सप्तदश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अष्टादशोऽध्यायः

अक्षयवटोत्पत्तिप्रसंग, वर्द्धकीसमागम वर्णन

जैमिनिरुवाच

ततः प्रववृते सुत्या नृपतेर्वाजिमेधिका। तस्यां त्रैलोक्यमभवदेकसद्मनिभं द्विजाः॥१॥
शास्त्रैः स्तोत्रैर्दिवस्पृग्भिर्वर्णक्रमसमुज्ज्वलैः। यथापदस्वरन्यासैरन्ये शब्दास्तिरोहिताः॥२॥
दीनेभ्योऽवारितंतत्र दीयन्तेवाञ्छितानि वै। नटनर्त्तकसूतानां साऽभूत्कल्पद्रुमोपमा॥३॥

तन्मध्येऽवभृथे स्नातुं कृता यत्रोपकारिका। दक्षिणे तटभूदेशे बिल्वेश्वरसमीपतः॥४॥
नियुक्ताः सेवकाराज्ञा ससम्भ्रममुपस्थिताः। न्यवेदयन्त नृपतिं कृताञ्जलिपुटाद्विजाः॥५॥

जैमिनि कहते हैं—तदनन्तर राजा इन्द्रद्युम्न यज्ञ के अन्त में अवभृथ स्नान का उद्योग करन लगे। हे द्विजगण! इस यज्ञ में समस्त त्रैलोक्यवासी लोगों का समावेश होने से त्रिभुवन वहां एक गृहवत् प्रतीत हो रहा था। ऋत्विक् आदि ब्राह्मणगण द्वारा नभस्पर्शी उदात्त आदि स्वर के द्वारा उच्चरित क्रमोज्वल पदकदम्बक से तथा नानाविध स्तोत्रध्वनि से तथा विविध शास्त्रीय वाक्योच्चारण से अन्यान्य सभी शब्द तिरोहित हो गये। उस सभामध्य में अनवरत अर्थीगण अभिलषित द्रव्य वितरित होने लगे। यह यज्ञसभा नट-नर्त्तक तथा स्वस्तिपाठकगण का कल्पतरुस्वरूप हो गयी। अर्थात् सभी यथेच्छ परितोषित होने लगे। दक्षिण में सागर के तट पर विश्वेश्वर शिव के समीप अवभृथ स्नान के निमित्त जो सब सेवक नियुक्त थे, वे राजा के पास आये तथा ससभ्रम वहां उपस्थित होकर अंजलिबद्ध हो राजा से कहने लगे।।१-५।।

देव दृष्टो महान्वृक्षस्तटभूमौ महोदधेः। प्रविष्टाग्रसमुद्रान्तःकल्लोलप्लवमूलकः॥६॥
मञ्जिष्ठवर्णःसर्वत्रशङ्खचक्राङ्कितः प्लवन्। स्नानवेशमसमीपेऽसौदृष्टोऽस्माभिःपरोऽद्भुतः॥७॥
न दृष्टपूर्वो वृक्षोऽयमुद्यत्सूर्यनिभोऽङ्शुना। गन्धेनवासयन्सर्वां तटभूमिं सुगन्धिना॥८॥
द्रुमः साधारणो नाऽयंलक्ष्यते देवभूरुहः। कश्चिद्देवस्तरुर्व्याजादागतो लक्ष्यतेध्रुवम्॥९॥

सेवक कहते हैं—हे देव! महासमुद्र की तटभूमि में एक महावृक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है। उसका अग्रभाग समुद्र में प्रविष्ट है तथा मूलदेश जल कल्लोल से प्लावित हो रहा हैं, वह तैरते-तैरते हमारे स्नानगृह के समीप पहुंच गया है। उसका सभी अंग रक्तवर्ण, शंखचक्र चिह्न से चिह्नित है। हम उसे एक अद्भुत दर्शन समझ रहे हैं। वह वृक्ष अपने तेज से नवोदित सूर्य के समान समस्त प्रदेश को आलोकित कर रहा है। वह अपनी सुगन्ध से सभी दिशाओं को आमोदित कर रहा है। यह सामान्य वृक्ष नहीं लगता। इसे देववृक्ष कह सकते हैं अथवा निश्चिंत रूप से किसी देवता ने ही वृक्षरूप धारण किया है।।६-९।।

नियुक्तानां वचः श्रुत्वा राजा नारदमब्रवीत्। तत्किं निमित्तं यद् दृष्टं तरुश्रेष्ठं वदन्ति ते॥१०॥
नारदः प्रहसन्वाक्यमुवाच नृपसत्तमम्। पूर्णाहुतिः समाप्नोतु यथा स्यात्सफलःक्रतुः॥११॥
उपस्थितंते तद्भाग्यंस्वप्नेयद्दृष्टवान्पुरा। श्वेतद्वीपे विश्वमूर्तिर्दृष्टो योविष्णुरव्ययः॥१२॥
तदङ्गस्खलितं रोम तरुत्वमुपपद्यते। अंशावतारः स्थास्नुर्यः पृथिव्यां परमेष्ठिनः॥१३॥
तद्रूपावतरं यातिभगवान्भक्तवत्सलः। द्रुमो ह्यपौरुषो योऽसौभाजनंनाऽस्य दर्शने॥१४॥
त्वामृते पुरुषव्याघ्र पृथिव्यां नृपसत्तम। त्वद्भाग्यवशतःसर्वलोकानां नयनाऽतिथिः॥१५॥
भविष्यति महाराज सर्वकल्मषनाशनः। समाप्याऽवभृथस्नानं तटान्ते सरिताम्पतेः॥१६॥
उत्सवं सुमहत्कृत्वा कृतकौतुकमङ्गलम्। महावेद्यां स्थापयात्र यज्ञेशं तरुरूपिणम्॥१७॥

राजा ने भृत्यगण का यह वाक्य सुनकर नारद से कहा कि "जिसे ये लोग तरुश्रेष्ठ कह रहे हैं, यहां उसे दिखलाई पड़ने का कारण क्या है?" तब नारद हंसते हुये कहने लगे "तुम अभी पूर्णाहुति सम्पन्न करो जिससे यह यज्ञ सफल हो सके। तुम्हारा यह सौभाग्य सामने आ गया है। तुमने इससे पूर्व स्वप्न में जिन

श्वेतद्वीपवासी अव्यय विश्वमूर्त्ति विष्णु का दर्शन किया था, उनके ही अंग से रोम गिरकर यह वृक्षरूप हो गया। भक्तवत्सल भगवान् पृथिवी पर ब्रह्मा के अंशावतार स्वरूप स्थाणुरूपेण उत्पन्न हुये हैं। हे राजन्! तुम पुरुषश्रेष्ठ हो। तुम्हारे अतिरिक्त पृथिवी पर अन्य कोई भी इस अपौरुषेय वृक्ष का दर्शन नहीं पा सकता। तुम्हारे भाग्य से वह सभी लोगों को दृष्टिगोचर होकर सबकी पापराशि का विनाश करेगा। तुम सागर के तट के पास अवभृथ स्नान का समापन करके महती वेदी का निर्माण करके उसके ऊपरीभाग में इस वृक्ष रूपी यज्ञेश्वर की स्थापना सुसमृद्ध उत्सव के साथ, कौतुक तथा मंगलाचरण के साथ स्थापित करो।।१०-१७।।

विचार्येत्थंमुदायुक्तौ तावुभौनृपनारदौ। सुसमृद्धौतत्र यातौ यत्राऽसौ भगवद्द्रुमः।।१८।।
तंदृष्ट्वाःहर्षिताःसर्वेब्रह्मसाक्षादुपस्थितम्। मेनिरे जन्मसाफल्यं जीवन्मुक्ता महोदयाः।।१९।।
इन्द्रद्युम्नोऽपिनृपतिर्ममज्जाऽमृतसागरे। स्वप्ने दृष्ट्वा जगन्नाथं यथाऽसौ भगवत्प्रियः।।२०।।
तथा ददर्श तं वृक्षं चतुःशाखं चतुर्भुजम्। स्वकं श्रमं मन्यमानः सफलं नृपसत्तमः।।२१।।
जहौशोकं नीलमणिमाधवान्तर्धिजं द्विजाः। पुनः पुनः प्रणम्यैनं हर्षाश्रुनयनो नृपः।।२२।।
द्विजैराहारयामास तरुं कल्लोललोलितम्। शङ्खकाहालमुरजढक्कापटहनिःस्वनैः।।२३।।
गीतवादित्रनिनदैर्जयशब्दैःसहस्रशः। सुगन्धिपुष्पाञ्जलिभिराकाशात्पतितैर्मुहुः।।२४।।
परितोधूपपात्रैश्च कृष्णागुरुसुधूपितैः। वेश्याभिर्यौवनोन्मत्तसुरूपाभिः प्रचालितैः।।२५।।
रत्नदण्डप्रकीर्णैश्च वीज्यमानं समन्ततः। पताकाभिर्दिव्यपट्टदुकूलाभिः सुशोभितम्।।२६।।
राजर्षिराजवृन्दैश्च तुरङ्गैः पत्तिभिर्वृतम्। मागधैर्वन्द्यमानं तु स्तूयमानं महर्षिभिः।।२७।।
ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैश्चैव विद्वद्भिः श्रोत्रियैस्तथा। राजन्यैर्वैश्यकुलजैः सच्छूद्रैःपरिचारितम्।।२८।।
स्तोत्रैर्बहुविधैः स्मार्त्तैःपौराणिकैस्तथा। स्तूयमानं तरुं विष्णोर्भूलोकेपरिवेष्टितम्।।२९।।
स्त्रग्गन्धालङ्कृतंदिव्यंमहावेदीं विनिन्यतुः। वितानवरचित्रायांवेष्टितायांनिरन्तरम्।।३०।।
वेद्यां तं स्थापयामासुरिन्द्रद्युम्नस्य शासनात्। वचसा नारदस्यैनंपूजयामासपार्थिवः।।३१।।

तत्पश्चात् नारद तथा राजा इन्द्रद्युम्न इसी प्रकार आपस में वार्त्ता करते महासमारोह के साथ उस वृक्षरूपी भगवान् के पास आये। वहां उपस्थित होकर उन्होंने उस वृक्ष का दर्शन करके मानो ब्रह्मदर्शन की प्रसन्नता प्राप्त किया तथा सभी जीवन्मुक्त महोदयगण अपने-अपने जन्म को सार्थक मानने लगे। इन्द्रद्युम्न राजा भी आनन्द में मग्न हो गये। स्वप्नावस्था में राजा ने जिस चतुर्भुज मूर्त्ति को देखा था, अब वे चतुर्भुजरूपेण चतुःशाखासम्पन्न वृक्षराज का दर्शन करने लगे। अपना परिश्रम सफल देखकर उनके मन का वह सन्ताप दूर हो गया जो नीलमणिमाधव के अदर्शन के कारण उनके हृदय में हो गया था। अब राजा ने हर्षोत्फुल्ल नेत्रों से प्रणाम करते हुये जलकल्लोल के कारण लहरों पर अठखेली ले रहे उस तरुवर का द्विजगण द्वारा आवाहन किया गया। इस समय शंख, काहल, मुरज, ढक्का तथा पटह प्रभृति वाद्ययन्त्र बजाये जाने लगे। गायकगण हरिसंकीर्त्तन आदि गायन आरंभ करने लगे। वहां हजारों-हजार जयशब्द उच्चारित होने लगे। नभमण्डल से पुनः-पुनः सुगन्धित पुष्पाञ्जलि वर्षित होने लगी। भगवद्रूपी उस तरुप्रवर को चतुर्दिक् काला अगुरु प्रभृति धूप से धूपित किया जाने लगा। यौवनमदमत्त उत्तम स्त्रीगण रत्नदण्ड मण्डित व्यजन द्वारा चतुर्दिक् व्यजन करने लगीं। दिव्य पट्टाम्बरनिर्मित

पताकायें उन तरुराज की शोभा का वर्द्धन करने लगी। राजाओं के गज, अश्व, पैदल सैनिक चतुर्दिक् व्याप्त हो गये। वन्दीगण वन्दना करने लगे तथा महर्षि, ऋत्विक्, श्रोत्रिय तथा अन्य विद्वान् ब्राह्मणगण स्तव करने लगे। तदनन्तर इन्द्रद्युम्न की आज्ञा से उस वृक्ष को सुगन्ध आदि से अलंकृत करके महावेदी के ऊपर स्थापित किया। अनेक स्तोत्रों द्वारा स्मार्त्तगण, पौराणिकगण ने उन विष्णुरूप तरु को घेरकर उसे आवेष्ठित कर दिया। वह महावेदी माला, गन्ध से अलंकृत थी। वहां वैश्य, सच्छूद्र भी उपस्थित थे। वहां श्रौत, स्मार्त्त तथा पौराणिक नाना स्तोत्रों से उनकी स्तुति कर रहे थे। तदनन्तर नरपति ने नारद के कथनानुरूप उनकी पूजा किया।।१८-३१।।

सहस्त्रैरुपचाराणां दिव्यरूपैर्नृपोत्तमः। पूजावसाने पप्रच्छ नारदं मुनिसत्तमम्।।३२।।

कीदृश्यः प्रतिमा विष्णोर्घटयिष्यति कः पुनः।

तच्छ्रुत्वा तं मुनिः प्राह अचिन्त्यमहिमागुरुः।।३३।।

को वेद तस्यचेष्टाम्वैसर्वलोकोत्तरां नृप। स्त्रष्टायोजगतां तस्याऽप्येषासंशयगोचरा।।३४।।

पूजा के अन्त में उन्होंने मुनिप्रवर से जिज्ञासा किया कि इस समय विष्णु प्रतिमा कैसे निर्मित होगी? कौन व्यक्ति उसका गठन सम्पन्न करेंगे? मुनिपुंगव ने यह सुनकर राजा से कहा कि इन चराचरगुरु की महिमा अचिन्त्य है। इन सर्वलोकातीत की चेष्टा कौन जान सकता है? जो इस स्थावर-जंगमात्मक जगत् के स्त्रष्टा हैं लोग उनके प्रति संशय उपस्थित कर देते हैं।।३२-३४।।

विचारयन्तौ तावित्थं यावन्नारदपार्थिवौ। अशरीरा ततोवाणी शुश्रुवेचाऽन्तरिक्षतः।।३५।।

तत्र विस्मयमानानां सर्वेषामेव श्रृण्वताम्। अपौरुषेयो भगवानविचारपथे स्थितः।।३६।।

सुगुप्तायां महावेद्यांस्वयंसोऽवतरिष्यति। प्रच्छाद्यतां दिनान्येषायावत्पञ्चदशानिवै।।३७।।

उपस्थितोऽयं यो वृद्धःशास्त्रपाणिस्तु वर्द्धकिः। एनमन्तःप्रवेश्यैवद्वारंबध्नन्तुयत्नतः।।३८।।

बहिर्वाद्यानि कुर्वन्तु यावत्तुघटनाभवेत्। श्रुतो हि घटनाशब्दोबाधिर्यान्धित्वदायकः।।३९।।

नरके वसतिश्चैव कुर्यात्सन्ताननाशनम्। नान्तः प्रवेशनं कुर्यान्न पश्येच्च कदाचन।।४०।।

नियुक्तादन्यः पश्येच्चेद्राज्ञो राष्ट्रस्य चैव ह। द्रष्टुश्चाऽपि महाभीतिरन्धता चक्षुषोर्युगे।।४१।।

अब नारद तथा राजा यह तर्क-वितर्क करने लगे कि किस प्रकार की प्रतिमा का निर्माण होने से भगवान् में सन्तोष का जन्म होगा? तभी अन्तरिक्ष से अशरीरी वाणी उन लोगों के कर्णकुहर में प्रविष्ट हो गयी। वहां सभी विस्मयापन्न हो गये। यह आकाशवाणी थी कि "अपौरुषेय भगवान् स्वयं ही अपनी प्रतिमूर्त्ति के विषय में विचार करके अपने आवरण से महावेदी में अवतीर्ण होंगे। तुम पन्द्रह दिन तक वेदीगृह को उत्तम रूप से आच्छादित करके रक्खो। यहां जो शस्त्रहस्त यह वृद्ध पुरुष उपस्थित हैं इनको उस गृह में भेजकर यत्नतः द्वार को बन्द करो। जब तक मूर्त्ति गढ़ने का कार्य सम्पन्न न हो जाते, तब तक सब लोग बाहर ही रह कर नाना प्रकार का वाद्य-वादन करें। क्योंकि यदि मूर्त्ति गढ़ने का शब्द कान में जायेगा, तब उससे वधिरता, अन्धत्व, नरकवास तथा पुत्रनाश होगा। अतः कदापि उस गृह में प्रवेश न करे तथा मूर्त्ति गढ़ने की क्रिया को भी न देखें। यदि इस कार्य में नियुक्त व्यक्ति के अतिरिक्त इसको अन्य कोई देखेगा, तब राज्य-राष्ट्र में महाभयोत्पत्ति होगी। विशेषतः देखने वाला व्यक्ति युग-युग पर्यन्त अन्धता से वशीभूत होगा।"।।३५-४१।।

तस्मान्नावेक्षणंकार्य्ययावत्प्रतिमनिर्मितिः। निर्व्यूढस्तुस्वयंदेवः कृत्यान्तेतुवदिष्यति॥४२॥
यद्यत्कार्यं प्रयत्नेनसर्वलोकसुखावहम्। तच्छ्रुत्वानारदाद्यास्तेयथोक्तंविष्णुनास्वयम्॥४३॥
चिकीर्षन्ति तथा कर्त्तुं तत्राऽऽयातश्च वर्द्धकिः।
प्रोवाच नृपतिं सोऽथ स्वप्ने दृष्टास्तु यास्त्वया॥४४॥
ताएवाऽहंघटिष्यामिदारुणादिव्यरूपिणा। इत्युक्त्वाऽन्तर्दधेवेद्यांवृद्धवर्द्धकिरूपधृक्॥४५॥
वञ्चनार्थं मनुष्याणां साक्षान्नारायणो विभुः॥४६॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे श्रीपुरुषोत्तक्षेत्र-माहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे मूर्तिघटनार्थंकिसमागमोनामाऽष्टादशोऽध्यायः।।१८।।

"अतः जब तक प्रतिमूर्त्ति निर्मित न हो जाये तब तक किसी प्रकार से भी उसे कोई न देखे। हे राजन्! स्वयं सनातन देव ने तुमको जिस-जिस कार्य का उपदेश दिया है, तुम सर्वप्रयत्न से सर्वलोक सुखावह उस कार्य को सम्पादित करो।" नारद आदि ने यह सुनकर वह करने की इच्छा प्रकट किया, जिसका आदेश विष्णु ने दिया था। तभी वे वृद्ध पुरुष रूपी सूत्रधारी वहां उपस्थित हो गये। उन्होंने राजा से कहा—"हे राजन्! आपने स्वप्न में जिन मूर्त्ति का दर्शन किया था, मैं उसे दिव्यरूपी काष्ठ से बना दूंगा। मनुष्यों को अपनी वास्तविकता से वंचित करने हेतु वृद्धपुरुषरूपी स्वयं नारायण यह कहकर वेदी में अन्तर्हित् हो गये।।४२-४६।।

।।अष्टादश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

एकोनविंशोऽध्यायः

विष्णु की दारुमयी मूर्त्ति का आविर्भाव तथा चार मूर्त्तियों के आविर्भाव का वर्णन

जैमिनिरुवाच

ततः स पृथिवीपालस्तथा कृत्वाऽन्तरिक्षगा। यदुवाच गिरां देवी तद्वत्परिचचारह॥१॥
एवं दिनेदिने याते दिव्यगन्धोऽनुभूयते। पारिजातप्रसूनानां वृष्टिर्मर्त्येषु दुर्लभा॥२॥
दिव्यसङ्गीतनादश्च गीतानि रुचिराणि च। स्वर्गङ्गाजलवृष्टिश्चसूक्ष्मबिन्दुसुशोभना॥३॥
ऐरावतादिनागानां मदगन्धो वनद्विपैः। दुःसहः सर्वभूतानां सुखकार्यनुभूयते॥४॥

ऋषि जैमिनी कहते हैं—तदनन्तर उन भूपति ने प्रतिमा निर्माण के लिये गृहद्वार बन्द कर दिया तथा

आकाशव्यापिनी वाग्देवी ने जो आकाशवाणी से कहा था तदनुरूप आचरण करने लगे। इस प्रकार कुछ काल व्यतीत हो जाने पर एक अपूर्व गन्ध का अनुभव वे लोग करने लगे तथा मनुष्यगण के लिये दुर्लभ पारिजात पुष्पों की वर्षा होने लगी। स्वर्गीय संगीत तथा अन्यान्य मनोहर गीतध्वनि सुनाई पड़ने लगी। सुरदीर्घिका से सूक्ष्म-सूक्ष्म विन्दुरूप सुरुचिर वारिवर्षण होने लगा। ऐरावत आदि गजसमूह की तथा मत्त हाथियों की मदगन्ध दुःसह होने पर भी उससे सुखानुभव होने लगा।।१-४।।

यज्ञार्थमागतादेवास्ते सर्वे विगतज्वराः। आविर्भूतं हरिं दृष्ट्वा उपासाञ्चक्रिरेद्विजाः।।५।।
यथा हि माधवं पूर्वं तथा तं विष्णुशाखिनम्। उपासनासु देवानां दिव्यचिह्नानि जज्ञिरे।।६।।
निर्ववाह स्वयं देवः क्रमात्पञ्चदशे दिने। चतुर्मूर्तिः स भगवान्यथा पूर्वं मयोदितः।।७।।
तादृगाविर्बभूवाऽसौ युष्माकं वर्णितः पुरा। दिव्यसिंहासनगतो बलभद्रसुदर्शनैः।।८।।
शङ्खचक्रगदापद्मलसद्बाहुर्जनार्दनः। गदामुसलचक्राब्जं धारयन्पन्नगाकृतिः।।९।।

हे विप्रगण! यज्ञ के उपलक्ष्य में जो सब देवता वहां आये थे, उन सबने जब हरिदेव को आविर्भूत होते देखा तब उन्होंने उस विष्णुवृक्ष की उस प्रकार से उपासना-अर्चना किया। देवगण की इस उपासना के कारण उस वृक्ष पर के दिव्य चिह्नों का ज्ञान सभी को होने लगा। क्रमशः पन्द्रह दिन व्यतीत होने पर मैंने जैसे पहले कहा था जगन्नाथ देव ने बढ़ई के रूप में (वृद्ध व्यक्ति के रूप में) स्वयं अपनी मूर्त्ति का निर्माण किया था। उस समय वे उस प्रकार से जनार्दन, बलराम, सुभद्रा तथा चक्र के साथ दिव्य सिंहासन पर आविर्भूत हो गये। जनार्दन के चिह्न शंख-चक्र-गदा-पद्म उनके हाथों में विराजित थे। अनन्तदेव ने गदा-मूसल-चक्र तथा वज्र चिह्न धारण किया था। वे नाग की आकृति थे।।५-९।।

छत्राकृतिफणासप्तमुकुटोज्ज्वलकुण्डलः। सुभद्रा चारुवदना वराब्जाभयधारिणी।।१०।।
लक्ष्मीःप्रादुर्बभूवेयं सर्वचैतन्यरूपिणी। इयं कृष्णावतारे हि रोहिणीगर्भसम्भवा।।११।।
बलभद्राकृतिर्जाता बलरूपस्य चिन्तनात्। क्षणं न सहतेसाहिमोक्तुंलीलावतारिणम्।।१२।।
न भेदोऽस्तीह को विप्राः कृष्णस्य च बलस्य च।
एकगर्भप्रसूतत्वाद्व्यवहारोऽथ लौकिकः।।१३।।
भगिनी बलदेवस्येत्येषा पौराणिकी कथा। पुंरूपे स्त्रीस्वरूपेण लक्ष्मीःसर्वत्रतिष्ठति।।१४।।
पुन्नाम्ना भगवान्विष्णुःस्त्रीनाम्नाकमलालया। देवतिर्यङ्मनुष्यादौविद्यतेनतयोःपरम्।।१५।।
कोह्यन्यः पुण्डरीकाक्षाद्भुवनानि चतुर्दश। धारयेत्तु फणाग्रेण सोऽनन्तोबलसञ्ज्ञितः।।१६।।

उनके सात फणों ने छत्राकृति धारण किया था जिस पर मुकुट तथा उज्वल कुण्डल के आभूषण शोभित हो रहे थे। चारुवदना सुभद्रा देवी ने एक हाथ में वर-पद्म तथा दूसरे हाथ में अभयमुद्रा धारण किया था। ये ही चैतन्यरूपा लक्ष्मी हैं, जो अन्य मूर्त्ति रूपेण आविर्भूत हुई थीं। इन्होंने ही कृष्णावतार में रोहिणी के गर्भ से बलभद्र की आकृति का चिन्तन करके उस रूप में जन्म लिया था। ये उन नीलमणि रूपी विष्णु का क्षणकाल के लिये भी परित्याग नहीं करतीं। हे विप्रगण! इन कृष्ण तथा बलराम के बीच कोई भेद ही नहीं है। एक ही गर्भ से उत्पन्न होने के कारण सुभद्रा लौकिक दृष्टि से बलराम की बहन हैं। अतः पुराण आदि में यही

रूप वर्णित है। पुरुष तथा स्त्रीरूपेण विष्णु तथा लक्ष्मी सर्वत्र विराजमान हैं। पुरुष रूप से विष्णु को तथा स्त्रीरूप से कमलालया लक्ष्मी को ही जाने। देवता, तिर्यक् प्राणी, मनुष्य इन सबमें देव-देवी से भिन्नरूपेण कुछ भी नहीं हैं। इन पुण्डरीकाक्ष के अतिरिक्त कौन व्यक्ति इस चतुर्दश भुवनों को फण के अग्रभाग पर धारण कर सकता है? इस भुवन श्रेणी के भार का वहन करने वाले अनन्तदेव ही बलदेव हैं।।१०-१६।।

तस्य शक्तिस्वरूपेयं भगिनीश्रीःप्रकीर्तिता। सुदर्शनंतुयच्चक्रंसदाविष्णोःकरेस्थितम्॥१७॥
शाखाग्रस्तम्भमध्यस्थं तद्रूपं तत्तुरीयकम्। एवं तु मूर्त्तयस्तेन चतस्त्रो वै प्रकाशिताः॥१८॥
निर्वृत्ते भगवद्रूपे चतुर्द्धा दिव्यरूपिणि। लोकानामुपकाराय पुनराहाऽन्तरिक्षगा॥१९॥
पटैराच्छाद्यसुदृढंनृपतेप्रतिमास्त्विमाः। स्वं स्वं वर्णंप्रापयाऽऽशुवर्णकैश्चित्रकर्मणा॥२०॥
नीलाभ्रश्यामलं विष्णुं शङ्खेन्दुधवलं बलम्। रक्तं सुदर्शनंचक्रंसुभद्रांकुङ्कुमारुणाम्॥२१॥
नानालङ्काररुचिरां नानाभङ्गिविभागशः। अमी दारुस्वरूपेण दृष्टाः पापाय हेतवे॥२२॥
गोपनीयाः प्रयत्नेन पटनिर्यासवल्कलैः। तस्मात्प्रथममेवैतांस्तरोरेवाऽस्य वल्कलैः॥२३॥
शिल्पिभिःकर्मकुशलैर्दृढमाच्छादयाऽग्रतः। वर्षे वर्षेचसंस्कार्याःपूर्वसंस्कारामोचनात्॥२४॥

ये सुभद्रा उनकी शक्ति हैं। वे श्री-प्रदायिनी हैं। सुदर्शन नामक चक्र उस महावृक्ष की शाखा के अग्रस्तम्भ के मध्य विष्णु के हाथों में विराजित हैं। यह उनका चतुर्थ रूप है। इस प्रकार वे प्रभु स्वयं चार मूर्त्तियों में प्रकाशित होते हैं। जब वह भगवद्रूप चार प्रकार से सम्पादित हुआ तब लोकों के उपकार हेतु उस आकाशवाणी ने पुनः कहा—"हे नरपति! इन प्रतिमाओं को पट्टवस्त्र द्वारा दृढ़ता से ढांककर चित्रकार द्वारा उन-उन वर्णों से रंग कराओ। विष्णु को नीलमेघवत् श्यामवर्ण से, बलराम को शंख अथवा शुभ्र चन्द्रवत् धवल वर्ण से, चक्र को रक्तवर्ण से तथा सुभद्रादेवी को कुंकुम के समान अरुण वर्ण से रंगवाओ। इन सबके नाना प्रकार की भंगिमा को अलंकार से शोभित कराओ। ये प्रतिमायें दारुरूपेण दिखलाई पड़ने पर पाप का कारण हो सकती हैं। इसलिए यत्नतः पट्ट एवं निर्यास से इनके सभी अवयवों को बांधकर (ढांककर) गुप्त बनाओ। पहले कर्मकुशल शिल्पीगण वल्कलादि से दृढ़ रूप से इनके अंगों को ढकें। प्रतिवर्ष पूर्ववर्ष का यह संस्कार हटाकर नया संस्कार करें। (पहले वर्ष की सज्जा हटाकर अगले वर्ष नयी सज्जा कराओ)।।१७-२४।।

ऋते वल्कललेपं तु स तु दिव्यश्चिरन्तनः। प्रमादाद्य इमं लेपमपनीयेत कश्चन॥२५॥
दुर्भिक्षं मरकंराष्ट्रेसन्ततिश्चाऽस्यहीयते। नेक्षितव्यास्त्वयाराजन्कदाचिद्पवारणाः॥२६॥
मनुष्यैश्चापिराजेन्द्र ! दृष्टाः स्युर्भयहेतवः। तस्मात्सचित्रा द्रष्टव्याबहुलेपविलेपिताः॥२७॥

वस्त्रबन्धन तथा अंगलेप (रंग करना आदि) के अतिरिक्त इस दिव्य मूर्त्ति को चिरन्तन कहते हैं। यदि कोई व्यक्ति प्रमाद के कारण इन प्रतिमा के गात्रलेप (अंगलेप) को क्षति पहुंचाता है, किंवा जब गात्रलेपादि हटा हो तब इन प्रतिमा का दर्शन करता है, तब उसे चिरकाल पर्यन्त नरक वास करना होगा। उस राजा के राज्य में दुर्भिक्ष तथा महामारी पीड़ा उत्पन्न हो जाती है। उसकी वंश परम्परा तथा सन्तान का नाश होता है। हे राजन्! कदापि इन चारों मूर्त्ति का दर्शन आवरण हटी दशा में न करे। यदि मानव इस स्थिति में इन प्रतिमाओं का दर्शन करेंगे, तब वे महाभयग्रस्त होंगे। इसलिए इनको लेप विलेपित तथा उत्कृष्ट चित्रित मूर्त्तिरूपेण देखें।।२५-२७।।

सुचित्रं पुण्डरीकाक्षं सचिलासं सविभ्रमम्। दृष्ट्वा विमुच्यतेपापैःकल्पकोटिसमुद्भवैः॥२८॥
सुचित्रान्कुरुराजेन्द्र ! चित्रान्कामानवाप्स्यति। आविर्बभूवभगवांस्तवानुग्रहकाम्यया॥२९॥
तव प्रसादाज्जन्तूनां चतुर्वर्गं प्रसादास्यति। नीलाद्रौकल्पवृक्षस्यवायव्यांशतहस्ततः॥३०॥
प्रदेशे सुमहत्स्थाने प्रासादं सुदृढायतम्। उत्तरे नरसिंहस्य सहस्त्रकरमुच्छ्रितम्॥३१॥
कारयित्वा प्रतिष्ठाप्य तत्रैनं विनिवेशय। पुरा स्थितं पर्वतेऽस्मिन्योऽभ्यर्चयति माधवम्॥३२॥
नाम्ना विश्वावसुर्नाम शबरो वैष्णवोत्तमः। पुरोधसः सख्यमासीत्तेन सार्द्धं पुरा चते॥३३॥
तयोः सन्ततिरेवाऽस्य लेपसंस्कारकर्मणि। नियुज्यतां महाराजभविष्यत्सूत्सवेषुच॥३४॥
विररामैतदाभाष्य सा तु दिव्या सरस्वती। तयोपदिष्टमाकर्ण्य प्रहृष्टेनाऽन्तरात्मना॥३५॥

इन पुण्डरीकाक्ष के सुचित्र तथा सुन्दर विलास तथा विभ्रमान्वित अवस्था में दृष्ट होने पर (दर्शन करने पर) कल्प कोटि का किया पाप समाप्त हो जाता है। हे राजेन्द्र! तुम इन सब प्रतिमाओं को सुचित्रित कराओ। इससे ही कामना सफल होगी। भगवान् तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करके ही यहां आविर्भूत हुये हैं। वे यहां जन्तुओं को भी चतुर्वर्ग प्रदान करेंगे। इस नीलपर्वत के ऊर्ध्वभाग में जो कल्पवृक्ष है, उससे वायुकोण में जाने पर एक सौ हाथ दूर प्रतिष्ठित नरसिंहदेव के उत्तरांश में जो प्रशस्त देश विस्तीर्ण है, वहां १००० हाथ उन्नत तथा तदनुरूप आयताकार एक सुदृढ़ प्रासाद बनवाओ। उसमें इन देवता को स्थापित करो। हे नृप! पूर्वकाल में इस पर्वत पर विश्वावसु नामक वैष्णवों में अग्रणी एक शबर यहां माधव की नित्य अर्चना करता था। उसके साथ आपके पुरोहित विद्यापति की मित्रता हो गयी। इन दोनों व्यक्तियों के वंश में उत्पन्न व्यक्ति को इन प्रतिमाओं के लेप संस्कार कार्य में (शबर को) तथा भविष्य के यज्ञादि उत्सव हेतु (ब्राह्मण) को नियुक्त करो।'' वह दिव्य वाणी यह कहकर शान्त हो गयी। राजा यह उपदेश सुनकर प्रसन्न मन से महावेदी के निकट गये।।२८-३५।।

वेष्टनं मोचयामास महादेव्या नृपोत्तमः। ददृशुस्ते तदा सर्वे रत्नसिंहासने स्थितम्॥३६॥
रामं कृष्णं सुभद्रां च वासुदेवं सुदर्शनम्। यथोपदिष्टलेप्यादिसंस्कारैरुचिराकृतिम्॥३७॥

तथा महादेवी की मूर्त्तियों के वेष्टन को हटाये। तब राजा देखते हैं कि रत्नसिंहासन पर बलराम-जगन्नाथ-सुभद्रा तथा वासुदेव का चक्रचिह्न है। तब सब ने देखा कि आकाशवाणी ने जो उपदेश दिया था उसी प्रकार लेपादि संस्कार से उनकी आकृति अतीव मनोहर हो गयी है।।३६-३७।।

कृपया स्मेरवदनमुन्नतायतवक्षसम्। दीनानामुद्धृतौ नाथं प्रलम्बभुजपञ्जरम्॥३८॥
प्रबुद्धपुण्डरीकाक्षं हासशोणायताधरम्। पश्यतां दृष्टिमात्रेण हर्तारं पापसञ्चयम्॥३९॥
पद्मासनस्थितं कृष्णं दिव्यालङ्कारभूषितम्। स्वतेजसा परिवृतं दारुदेहेऽपिनिर्मलम्॥४०॥
नीलजीमूतसङ्काशं सर्वसन्तापनाशनम्। ददशबलदेवं च साट्टहासमुखाम्बुजम्॥४१॥
फणामण्डलविस्तीर्णं वारुणीघूर्णितेक्षणम्। प्रोत्थितं नागराजानंपीनोन्नतसुवक्षसम्॥४२॥
किञ्चिन्नतं पृष्ठदेशे कुण्डलीकृतविग्रहम्। अग्रसम्फुल्लककुभं कैलासशिखरं यथा॥४३॥
हलचक्राब्जमुसलधारिणं वनमालिनम्। हारकुण्डलकेयूरकिरीटमुकुटोज्ज्वलम्॥४४॥

श्रीकृष्ण का वक्षस्थल अत्यन्त उन्नत था। उनका कृपान्वित मुखमण्डल ईषत् हास्ययुक्त था। दीनानाथ का भुजमण्डल दीनजन के उद्धारसाधनार्थ सदा आगे बढ़ा रहता था। उनके दोनों नेत्र प्रफुल्लित श्वेतपद्म की भी शोभा का हरण कर रहे थे। दोनों अधर हास्यराग के कारण रक्तिम हो रहे थे। ये प्रभु दर्शनमात्र से लोगों के पापसमूह का हरण कर देते हैं। इनका देहदारुमय होकर भी पद्मासनासीन था तथा ये दिव्यालंकार से भूषित होकर अपने ही निर्मल तेजपुंज से परिवृत हो गये थे। इनकी देह शोभा नीलमेघ के समान मनोहर थी। ये जीवों के समस्त सन्ताप को दूर कर देते हैं। अब उन्होंने बलदेव का दर्शन किया। उनका मुखकमल अट्टहास से परिशोभित था तथा फणों के कारण छत्राकार था। उनके नयन वारुणी के मद से घूर्णित हो रहे थे। वे उत्थित थे तथा उन नागराज का वक्षस्थल कोमल तथा उन्नत था। उनका पृष्ठदेश किंचित अवनत (झुका) था। देह का बाकी भाग कुण्डलीकृत था। उन्होंने हाथों में हल, चक्र, पद्म, मूषल तथा गले में वनमाला धारण किया था। हार, कुण्डल, केयूर, किरीट तथा मुकुटादि अलंकारों से उनकी देहशोभा अतीव उज्वल प्रतीत हो रही थी।।३८-४४।।

तयोर्मध्ये स्थितां लक्ष्मीं सुभद्रां भद्ररूपिणीम्।।४५।।
सर्वदेवारणीं पापसागरोत्तारकारिणीम्। विकचाम्भोजवदनां वराब्जाभयधारिणीम्।।४६।।
रूपलावण्यवसतिं शोभमानां प्रसाधनैः। कुङ्कुमारुणदेहांतांसाक्षाल्लक्ष्मीमिवाऽपराम्।।४७।।
ददर्श विष्णोर्वामस्थां चक्रशाखाग्रनिर्मिताम्।
बालार्कसदृशीं तीक्ष्णधारां तेजोमयीं द्विजाः !।।४८।।

कृष्ण तथा बलराम के मध्य में भद्ररूपा लक्ष्मी अवस्थित थीं। इनका मुखमण्डल विकसित कमल के समान था। दोनों हाथों में वर, पद्म तथा अभय मुद्रा देवी ने धारण कर रखा था। देहशोभा कुंकुमवत् रक्तिम थी। वे साक्षात् द्वितीया लक्ष्मी प्रतीत हो रहीं थीं। हे विप्रगण! उन्होंने विष्णु के वाम पार्श्व में नवोदित सूर्य के समान तेजोमय तथा तीक्ष्ण चक्र का दर्शन किया जो शाखा के अग्रभाग से निर्मित था।।४५-४८।।

तां दृष्ट्वानन्दपाथोधिनिमग्नः पृथिवीपतिः। कर्तव्यमूढः स्वतनौ स्वयं न प्रबभूव ह।।४९।।
दरमीलितनेत्रःसन्सृजन्बाष्पाम्बुकेवलम्। कृताञ्जलिपुटस्तस्थौस्थूणाकारोनृपोत्तमः।।५०।।
उवाच तं मुनिवरः स्मितवक्त्रः क्षितीश्वरम्। यदर्थं श्रममापन्नस्तत्साम्प्रतमभूत्तव।।५१।।
प्रत्यक्षं नृपशार्दूल ! एकस्त्वंभाग्यवान्भुवि। अमुं पश्य जगन्नाथं पुण्डरीकायतेक्षणम्।।५२।।
भक्तानुग्रहपाथोधिं सर्वज्ञाननिधिं हरिम्। यं द्रष्टुं योगिनो नित्यं यतन्ति यतमानसाः।।५३।।

राजा इन्द्रद्युम्न अपने भाग्य को प्रकाशित करने वाली इन सभी मूर्त्ति के दर्शन मात्र से इस समय अपार आनन्द सागर में निमज्जित हो गये। वे इतने किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये कि उनका अपने शरीर पर भी प्रभुत्व न रह गया। केवल तनिक निमीलित नेत्र से वे अविराम आनन्द वाष्प छोड़ने लगे। वे अंजलिबद्ध होकर निश्चल भाव से प्रभु के समक्ष खड़े हो गये। तदनन्तर नारद ने ईषत्हास्य के साथ पृथिवीपालक इन्द्रद्युम्न से कहा "हे नृपशार्दूल! तुमने जिस लिये यह महान् श्रम अंगीकृत किया था, उसका फल अब (प्रभु के रूप में) प्रत्यक्ष है। अतएव तुम ही इस पृथिवी में भाग्यवान् हो! अब तुम जगन्नाथ का दर्शन करो। उनके नेत्र श्वेतपद्मवत् हैं तथा

वे कर्ण तक विस्तृत हैं। वे भक्तों के लिये दयासागर हैं। ये हरि समस्त ज्ञान के जलनिधिरूप हैं। उनके दर्शन के लिये योगीगण संयत रूप से नित्य यत्नशील रहते हैं।।४९-५३।।

अवधानेन महता क्षणं पश्यन्ति मानवाः। सोऽयं दारुमयं देहं समास्थाय जनार्दनः॥५४॥
अनुग्रहीतुं त्वां भूप ! प्रत्यक्षत्वमुपागतः। भजैनं धरणीनाथं स्तुहि कारुण्यसागरम्॥५५॥
ददाति संस्तुतः कामान्सर्वान्नृप ! मनोगतान्॥५६॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे विष्णोर्दारुमूर्त्याविर्भावोनामैकोनविंशोऽध्यायः।।१९।।

उस महान् अवधान से मनुष्य उनका क्षणमात्र के लिये दर्शन प्राप्त करते हैं। ऐसे जनार्दन ने दारुमय देह का आश्रय लेकर तुम पर अनुग्रह करने हेतु दर्शन दिया है। हे धरणीधर! इन करुणासागर का स्तव करो। ये प्रभु स्तवादि से उपासित होकर समस्त मनोगत कामनायें पूर्ण करते हैं।।५४-५६।।

।।एकोनविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

विंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्न कृत भगवत् स्तुति, स्वसमर्पण वर्णन

जैमिनिरुवाच

इत्थं प्रबोधितस्तेन नारदेन क्षितीश्वरः। तुष्टाव जगतांनाथं वचोभिः करुणान्वित॥१॥

जैमिनि कहते हैं—नारद द्वारा जब राजा प्रबोधित किये गये तब वे स्तुतिवाक्य द्वारा करुणामय जगन्नाथ का स्तव करने लगे।।१।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

त्वदङ्घ्रिपाथोजयुगं मुरारे ! नोपासितं जन्मसु पूर्वजेषु।
तत्कर्मणां दारुणपाकभाजं दीनं परित्राहि कृपाम्बुधे ! माम्॥२॥
क्व निर्मलं त्वच्चरणाब्जयुग्मं विरिञ्चिरुद्रेन्द्रकिरीटमग्नम्।
क्वाऽहं कुदीनः शकृदस्त्रमांसमूत्रास्थिसङ्घैः पिहितस्त्वचा वै॥३॥
असारसंसारपरिभ्रमेण श्रमातुरस्त्वां कथमीश ! जाने।
जानन्ति ते त्वां खलु देवदेव येषां भवो दुःखभवप्रकाशः॥४॥

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—हे मुरारि! मैंने अपने पूर्व-पूर्व जन्मों में आपके इन चरणपद्मयुगल की उपासना नहीं किया था। उस कर्मफल के कारण मैं दीनतापूर्वक दारुण दुर्विपाक भय से भीत हो रहा हूं। हे कृपासागर! मेरी रक्षा करिये। ब्रह्मा-रुद्र तथा इन्द्र के मुकुट आपके जिस चरणद्वय का स्पर्श करते हैं, कहां वह और कहां मल-मूत्र-रक्त-मांस-त्वग्-अस्थिमय अति दीन मैं! मेरे ऐसे हतभाग्य के लिये आपके चरणकमल अतीव दुर्लभ हैं। हे ईश्वर! मैं असार संसार में भ्रमण करते-करते श्रान्त हो गया हूं। इस क्लेश को अब सह नहीं पा रहा हूं। मैं आपको कैसे जान सकता हूं? आपको जानने से पहले अनेक क्लेश सहना पड़ता है। मैं उसे कैसे सहन कर सकूंगा? जो सांसारिक दुःख सहने में सक्षम हैं, किसी प्रकार से भी शान्ति नहीं पाते, हे देवदेव! वे ही आपके स्वरूप को जान सकने में सक्षम हैं।।२-४।।

प्रभो मया दुःखमनेकजन्मपापार्जितं भुक्तमनेकभावम्।
शुभार्जितो यः सुखलेशभावो निदर्शनं यन्मधुपृक्ततिक्ते।।५।।
यदेव सौख्यानुभवाय देव! कर्मार्जितो मे विषयोपभोगः।
स एव दुःखं परिणामतो मे न मद्विधो दुःखिजनोऽस्ति चाऽन्यः।।६।।

हे प्रभो! मैं अनेक जन्मार्जित पापों के कारण अनेक प्रकार का दुःखभोग कर रहा हूं। मधुयुक्त तिक्त पदार्थ के आस्वादन की तरह जन्मान्तरीण शुभकर्म फल के कारण मैं जो कुछ सुखानुभव कर रहा हूं, हे देव! उत्कट पापों के परिणाम के कारण मेरे लिये वह सभी दुखप्रद हो रहा है। मेरे समान दुखी कोई नहीं है।।५-६।।

विभो! यदि त्वां मनसाऽपि पूर्वमुपास्तमन्यद्विषयेक्षणोऽहम्।
कथं तदालप्स्यमनेकजन्म पुनः पुनर्भोग्यमशेषदुःखम्।।७।।
विभुत्वदासत्वपितृत्वपुत्रप्रियत्वमातृत्वधनित्वभावैः ।
वध्यत्वहिंस्रत्वपतित्वजायाभावैश्च तिर्यक्त्वसुरादिभावैः।।८।।
नीचोर्द्ध्वभावं बहुशः सकृद्वा भवाङ्गणेऽस्मिँल्लुठतानुभूतम्।
न वा मुरारे तव पादपद्मदूरीभवस्येष्टफलं हि चैतत्।।९।।
कोशं बलं चैतदशेषपृथ्वीधनैर्वृतं यौवनरूपरूप्यः।
मनोऽनुकूलाः शतशः स्त्रियश्च निष्कण्टकं मे नृपमण्डलं च।।१०।।
साम्राज्यता चाऽपि भरो महान्मे! त्वज्ज्ञानहीनस्य पशोरिवाऽयम्।
भारावतारं कुरु मे कृपाब्धे! सदैव तत्रोदित खेदयोगः।।११।।

हे प्रभो! यदि मैं अन्य विषयों में आसक्त होते हुये भी मन ही मन आपकी उपासना करता रहता, तब मुझे अशेष दुःख-भोग किंवा अनेक जन्मलाभ नहीं करना पड़ता। हे मुरारी! मैंने इस संसार कानन में कभी पिता-कभी पुत्र-कभी स्वामी-कभी दास-कभी माता-कभी पति-कभी पत्नी-कभी वन्ध्या कभी हिंस्र-कभी तिर्यक् प्राणी-कभी देवता इत्यादि ऊंच-नीच, नाना भावों में भ्रमण करते हुये कितनी अवस्थाओं का अनुभव किया है, न जाने कितने कष्ट झेले हैं। आपके चरणकमल से दूर रहने के कारण ही अब तक इतने कष्ट झेलता रहा हूं,

इस बात को कभी भी मैं समझ नहीं सका। हे देव! मैं आपको नहीं जानता। मैं केवल पशु के समान यह समस्त कोष, बल, ससागरा पृथिवी, राज्य, रूप, यौवन, मनोनुकूल सैकड़ों पुर नारीगण का भोग करता रहा हूं। यह साम्राज्य मुझ जैसे पशु के हाथों में हैं। एक पशु के कंधों पर यह गुरुभार रहना कदापि उचित नहीं है। हे कृपासागर! आप दया करके इस भार को उतार दीजिये। इस भार से मैं कष्ट बोध कर रहा हूं।।७-११।।

दीनाकुकम्पिनू ! करिणो विमुक्तिः कृता विभो त्वत्स्मृतिमात्रकेण।
भ्रान्तं घटीयन्त्रवदत्र नाथ ! मां त्रातुमर्हस्यनुकम्पिभावात्।।१२।।
न मे त्वदन्यः खलु बन्धुरत्र प्रवाहविभ्रष्टतरुस्वभावे।
पापीयसी बुद्धिरुपेतभावा स्नेहानुबन्धा विषयेऽभिभेद्या।।१३।।
अहर्निशं मे तव पादपद्मान्नाऽपैतु मत्प्रार्थितमेतदेव।
त्वां सच्चिदानन्दसुपूर्णसिन्धं प्राप्तास्तु ये जन्मसहस्त्रभाग्यैः।।१४।।
किं ते हि पश्यन्ति लवैकसौख्यमनेकदुःखं विषयेन्द्रजालम्।
क्क बन्धनं कर्मभिरिष्टलेशदुःखाकरग्रन्थिशतैरभेद्यम्।।१५।।
अनन्तमाद्यन्तविहीनमेकमानन्ददं त्वत्पदपङ्कजं क्क।
मायाम्बुधौ ते ममताभ्रमौ च कुकर्मनक्रायितगर्तमध्ये।।१६।।
निराश्रयं मे पतितं विलासकटाक्षपातेन नयाऽद्य तीरम्।
स्वकार्यसंसाधनयाश्रितानां सम्पादनायेष्टविधेरजस्त्रम्।।१७।।
भ्राम्यन्तमात्मीयहितं विसृज्य मां त्राहि मूढं सहजानुकम्पिन् !।
क्षुद्राय कार्याय बहु भ्रमन्तमप्राप्य मूलं परमेश्वरं त्वाम्।।१८।।

हे विभु! हे दीनदयाल! मैंने आपकी स्मृतिमात्र से इस (भाररूपी) हाथी का बन्धनमोचन कर दिया। हे नाथ! मैं घड़ीयन्त्र के समान कभी ऊपर उठता हूं, कभी निम्न में गिरता हूं। दया करके मेरी रक्षा करिये। जलप्रवाह से पीड़ित पौधे की तरह मैं संसार स्रोत में डूबता-उतराता बहता जा रहा हूं। आपके अतिरिक्त मेरा कोई बन्धु नहीं है। मेरा विषयों के प्रति घोरतर अनुराग है। संसार बन्धन अतीव दुर्दमनीय हो गया है। मेरी पापमयी बुद्धि उसी को अनुकूल मान रही है। वह बुद्धि किसी भी प्रकार से आपके चरण कमल के प्रति आसक्त नहीं हो रही है। मेरी यह प्रार्थना है कि आप ऐसा करिये जिससे मेरी यह पापी बुद्धि सदैव आपके चरणकमल में लीन हो जाये। कभी उससे च्युत न हो। जो हजारों जन्मों में संचित सौभाग्य के कारण सच्चिदानन्द सागर रूपी आपको प्राप्त हो गये हैं, वे इस सामान्य सुखकणारूपी, दुःखमय, इन्द्रजाल के समान इन विषरूपी विषयों की ओर देखते भी नहीं हैं। कहां तो दुःख पूर्ण सैकड़ों ग्रंथियों से दुर्भेद्य यह अल्प सुखमय कर्मबन्धन! कहां प्रचुर आनन्दमय अनन्त अनादि आपके चरणकमल! मैं ममतारूपी आवर्त्त से भरे, कुकर्मरूपी मकरों से आच्छन्न भीषण रूपी आपकी माया के सागर में गिर पड़ा हूं। आप अपने कृपाकटाक्ष द्वारा अब मुझे इससे निकाल कर किनारे ले आईये। जिन्होंने अपने स्वार्थ साधनार्थ मेरा आश्रय ग्रहण किया है, अपने हित की ओर लक्ष्य नहीं करते हुये मैं उनके ही कार्य साधनार्थ सदैव भ्रमण करता रहा हूं। हे स्वभाव से दयालु प्रभु! आप मेरी रक्षा

करिये। हे परमेश्वर! आप मूल उद्धारक हैं, मैं आपको न जानने के कारण क्षुद्र कार्यों के लिये व्यर्थ भ्रमण (संसार में भ्रमण-भटकना) करते-भटकते व्यर्थ प्रयास में लगा हूं।।१२-१८।।

आयासपात्रं परमं सुदीनं मां त्राहि विष्णो जगदेकवन्द्य !।
वेदान्तवेद्याऽव्यय ! विश्वनाथ ! त्वमीशिषे हन्तुमघौघराशीन्।।१९।।
तं त्वां परित्यज्य सुखैकहेतुं क्षुद्राशयं मां परिपाहि विष्णो !।
प्रसुप्त एषोऽखिलभूतसङ्घश्चतुर्विधो यत्कृतमोहरात्रौ।।२०।।
त्वज्ज्ञानभानूदयमेत्य चाऽन्ते प्रबोध्यते त्वां शरणं प्रपद्ये।
त्वमेक एवाखिललोककर्त्ता फणासहस्त्रैः परिवीतमूर्तिः।।२१।।
पर्यायवृत्त्या बलिनांवरिष्ठ ! त्वामीशितारं शरणं प्रपद्ये।
यया सृजस्यत्सि जगन्ति नाथ वक्षःसरोजासनया स्वशक्त्या।।२२।।
तां भद्ररूपां जगदाश्रयां ते देवारणिं पादयुगे नतोऽस्मि।
यदंशुजालप्रतिसृष्टमेतद्ब्रह्माण्डजालं करसङ्गि नाथ !।।२३।।
सुदर्शनं दैत्यबलस्य हन्तृ चक्राभिधं त्वां प्रणतः सुदर्शनम्।
स्तुत्वेत्थं नृपतिश्रेष्ठः साष्टाङ्गं प्रणनाम सः।।२४।।

हे जगत् में एकमात्र वंदनीय! हे विष्णु! मैं अति दीन हूं, मेरी रक्षा करिये। हे वेदान्तवेद्य अव्यय विश्वनाथ! आप पापों को दूर करने में समर्थ हैं। हे विष्णु! मैं क्षुद्राशय हूं। मैं आपका त्याग करके सामान्य ऐहिक सुख की आशा में घूमता रहता हूं। मेरी रक्षा करें। ये चारों प्रकार के समस्त प्राणीवर्ग आपके स्वरूपज्ञानयुक्त सूर्योदय से ही प्रबुद्ध होते हैं। ये सभी प्राणीवर्ग जो मोहरात्रि में निद्रित हैं, वे स्वरूप ज्ञानरूप सूर्योदय के प्रभाव द्वारा प्रबुद्ध हो जाते हैं। हे बलदेव! आप समस्त लोकों के ऊपर कर्तृत्व रखते हैं। आपकी मूर्त्ति सहस्त्रफणा द्वारा छत्रित होकर शोभित हो रही है। आप सभी बलवानों की तुलना में श्रेष्ठ हैं। इसलिये सभी नामपर्याय के बलवानों में वरिष्ठ आप ही विदित हैं। आप ईश्वर हैं। मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूं। हे नाथ! आप अपनी ही शक्ति द्वारा जगत्सृष्टि करते हैं तथा आपने जिनके लिये अपने हृदयपद्म रूपी आसन को अर्पित किया है, जो देवताओं की उत्पत्ति के लिये अरणिस्वरूप हैं तथा समस्त जगत् के आश्रय हैं, मैं आपकी उन सुभद्रादेवी के चरणकमल में प्रणाम करता हूं। हे नाथ! जिसके किरण जाल के प्रतिबिम्बस्वरूप यह ब्रह्माण्ड दृष्टिगोचर हो रहा है तथा जो सर्वदा नाथ के करकमल के संसर्ग में रहता है, जो दुर्दान्त दैत्यगण के बल का हरण करता रहता है तथा अत्यन्त सु+दर्शन होने के कारण सुदर्शन नाम से भूषित है, मैं उस चक्र को प्रणाम करता हूं।।१९-२४।।

परित्राहि जगन्नाथमग्नं संसारसागरे। अनाथबन्धो ! कृपया दीनं मां तमसाकुलम्।।२५।।

यह स्तुति करके इन्द्रद्युम्न ने प्रभु को साष्टाङ्ग प्रणाम करके कहा—"हे जगन्नाथ! मैं इस संसार सागर में निमग्न हो रहा हूं। हे अनाथबन्धु! इस तापसंकुल दीनजन पर कृपा करके मेरी रक्षा करिये।।२५।।

नारद उवाच

जय जय नारायण अपारभवसागरोत्तारपरायण सनकसनन्दनसनातनप्रभृति-योगिवरविचिन्त्यमानदिव्यतत्त्व स्वामायाविलसिताध्यासपरिणमिताशेषभूततत्त्वत्रितत्व त्रिदण्डधरत्रिणाचिकेतत्रिमधुत्रिसुपर्णोपगीयमानदिव्यज्ञानच्छन्दोमय स्वासनसुपर्णप्रिय भक्तप्रिय भक्तजनैकवत्सल स्वमायाजालव्यवहितस्वरूप विश्वरूप। विश्वप्रकाश विश्वतोमुख विश्वतोक्षि विश्वतः श्रवण विश्वतः पादशिरोग्रीव विश्वहस्तनासारसनात्वक्केशलोमलिङ्ग सर्वलोकात्मक सर्वलोकसुखावह सर्वलोकोपकारक सर्वलोकनमस्कृत लीलाविलसितकोटि-पद्मोद्भवरुद्रेन्द्रमरुदश्विसाध्यसिद्ध गणप्रणताशेषसुरासुरत्रिभुवनगुरो न कस्याऽपि ज्ञानगोचर! नमस्ते नमस्ते॥२६॥

नारद कहते हैं— जय जय नारायण, अपार भवसागर से पार कराने में परायण, सनक-सनन्दन-सनातन आदि योगियों से चिन्तनीय, दिव्यतत्वरूप अपनी माया से विलासित अध्यास परिणमित, अशेष, भूततत्व, त्रितत्व, त्रिदण्डधर, त्रिणाचिकेत, त्रिमधु, त्रिसुपर्ण, उपगीयमान, दिव्यज्ञान, छन्दोमय, स्वासन सुवर्णप्रिय, भक्तप्रिय, भक्तजनैकवत्सल, अपने माया जाल से व्यवहित रूप, विश्वरूप, विश्वप्रकाश, विश्वतोमुख, विश्वताक्षि, विश्वतश्रवण, विश्वतपादशिरोग्रीव, विश्वहस्त, विश्वनासा-रसना-त्वक्-केश-लोम-लिङ्ग सर्वलोकात्मक, सर्वलोकसुखावह, सर्वलोकोपकारक, सर्वलोकनमस्कृत, लीलाविलसित, कोटिपद्मोद्भव, रुद्र-इन्द्र-मरुत्, साध्य-सिद्धगण द्वारा प्रणत शेष-सुरासुरत्रिभुवनगुरु जो किसी को ज्ञानगोचर नहीं हैं, उनको प्रणाम!।।२६।।

जैमिनिरुवाच

अन्ये चयेनृपतयःश्रोत्रियावेदपारगाः। मुनयोद्विजाःक्षत्रियाश्चविद्वांसोवैश्यजातयः॥२७॥
अस्तुवन्पुण्डरीकाक्षं बलिनंभद्रयासह। सूक्तैः स्तोत्रैः पुराणैश्चकविताभिर्यथातथा॥२८॥
अथेन्द्रद्युम्नः प्रोवाच पुरोधसमकल्मषम्। पूजार्थं वासुदेवस्य उपाचारोपसंस्कृतम्॥२९॥
स्वयं स नृपतिश्रेष्ठः पूजयामास तान्क्रमात्। नारदस्योपदेशेन विधिना मन्त्रतस्तथा॥३०॥

जैमिनी कहते हैं—वहां जो अन्यान्य नरपति तथा वेदज्ञ श्रोत्रिय ब्राह्मण, राजा, मुनिवर्ग, द्विजवर्ग, विद्वान्, क्षत्रिय तथा वैश्यजाति थे, वे सभी उन पुण्डरीकाक्ष, बलदेव तथा सुभद्रा देवी का सूक्त-मन्त्र तथा पुराणोक्त स्तव-स्तोत्रादि द्वारा तथा अपने-अपने कवित्व के अनुसार कवित्व की रचना करके उससे स्तव करने लगे। तदनन्तर इन्द्रद्युम्न ने सदाचारी अपने पुरोहित को वासुदेव की पूजा हेतु उपचार द्रव्य का संस्कार करने के लिये कहा तथा नारद के उपदेश के अनुरूप राजा भी स्वयं यथाविधि मन्त्रादि का पाठ करते हुये इन देवगण की क्रमशः पूजा करने लगे।।२७-३०।।

द्वादशाक्षरमन्त्रेण बलभद्रमपूजयत्। यमुपास्यध्रुवःस्थानं प्राप्तवानुत्तमोत्तमम्॥३१॥
त्रयीप्रसिद्धंयत्सूक्तं पावनं पौरुषं महत्। तेन नारायणं भूपः पूजयामास शक्तितः॥३२॥
देव्याः सूक्तेन भद्रां तां सौदर्शन्या सुदर्शनम्।
यथासमृद्धि भक्त्या तान्पूजयित्वा नृपोत्तमः॥३३॥

तत्प्रीत्यै द्विजमुख्येभ्यो ददौ दानानिभक्तितः। तुलापुरुषदानानिमहादानानिपार्थिव॥३४॥
अश्वमेधाङ्गभूताश्चकोटिशो गा ददौतदा। अलङ्कृतास्तथान्याश्चददौगाबहुदक्षिणाः॥३५॥

उन्होंने बलदेव का पूजन "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" मन्त्र से किया। इस मन्त्र से उपासना के अनन्तर ही उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव को सर्वोत्तम ज्ञान मिला था तथा जो पुरुषसूक्त महत् तथा पावन है और जिसमें वेदत्रयी का प्रसंग है, राजा ने उस मन्त्र द्वारा भक्ति के साथ नारायण की पूजा सम्पन्न किया। उन्होंने भद्रादेवी का पूजन देवीसूक्तमन्त्र से तथा सुदर्शन-चक्र का पूजन सौदर्शिनी सूक्त द्वारा सम्पन्न किया। उन्होंने स्वयं अपनी शक्ति-समृद्धि के आधार पर भक्तिपूर्वक पूजान्त में देवताओं की प्रसन्नता हेतु उत्तम तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणगण को सात्विक भाव से दान किया। इस समय तुला दान आदि जो महान्-महान् दान कहे गये हैं, उनको और अश्वमेध यज्ञ के अंगभूत रूप कोटि-कोटि गौओं को विशेष रूप से अलंकृत करके भूरि-भूरि प्रचुर दक्षिणा के साथ ब्राह्मणों को प्रदान किया।।३१-३५।।

तासां खुरोद्धृतेर्योगाद्गर्तोऽभूद्द्विजसत्तमाः!।
दानाम्बुना स पूर्णो वै तीर्थमासीन्महाफलम्॥३६॥

तस्मिन्स्नात्वा पितॄन्देवान्सन्तर्प्य विधिवन्नरः। अश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोत्यसंशयः॥३७॥
नाम्ना ख्यातं सरस्तस्यइन्द्रद्युम्नस्यभूपतेः। निर्वपत्यत्रपिण्डांश्चपितृनुद्दिश्यमानवः॥३८॥
कुलैकविंशमुद्धृत्य ब्रह्मलोके महीयते। नाऽतः परतरं तीर्थं हयमेधाङ्गसम्भवात्॥३९॥
इन्द्रद्युम्नस्य सरसः स्याद्वात्रिपथगा समा। ततःप्रासादघटनामुपचक्राम भूपतिः॥४०॥

हे द्विजसत्तमगण! इन गौओं के खुर के अग्रभाग से जो गर्त्त बना, वह दान के समय हाथ से गिरे जल से परिपूर्ण होकर एक महाफलप्रद तीर्थरूपेण परिणत हो गया। इस तीर्थ में स्नान, पितृगण-देवगण का तर्पण यथाविधि करने पर मनुष्यों को हजारों अश्वमेध का फल प्राप्त होता है। इसमें संशय नहीं है। इस सरोवर का नाम इन्द्रद्युम्न के नाम से इन्द्रद्युम्न सरोवर प्रसिद्ध हो गया। यहां जो अपने पितरों के उद्देश्य से पिण्ड प्रदान करता है उसकी २१ पीढ़ी के पूर्वजों का उद्धार हो जाता है। वह पिण्ड प्रदाता व्यक्ति स्वयं ब्रह्मलोक की प्राप्ति करके वहां अनेक सम्मान प्राप्त करता है। इस अश्वमेध यज्ञाङ्ग से उत्पन्न इन्द्रद्युम्न सरोवर से श्रेष्ठतम तीर्थ कहीं भी नहीं है। उसकी उपमा केवल त्रिपथगामिनी गंगा से ही दी जा सकती है। तदनन्तर राजा इन्द्रद्युम्न जगन्नाथ के प्रासाद निर्माण का उपक्रम करने लगे।।३६-४०।।

शुभे काले सुनक्षत्रे दैवज्ञविधिचोदिते। सुमुहूर्ते नारदादीन्ब्राह्मणाग्र्यान्प्रपूज्य च॥४१॥

स्वस्तिवाचं च कर्मर्द्धिं वाचयित्वा नृपोत्तमः।
अर्घ्यं ददौ जगन्नाथं स्मरन्प्रासादवेश्मनि॥४२॥
वसुधां प्रार्थयित्वा तु स्थानमाचन्द्रतारकम्।
शिल्पिनः पूजयामास वास्तुयागपुरःसरम्॥४३॥

प्रथमतः दैवज्ञ से सुनक्षत्र सुमुहूर्त युक्त विशेष शुभकाल का निर्णय कराया गया। तदनन्तर राजा ने नारद प्रभृति श्रेष्ठ ब्राह्मणों की अर्चना तथा ग्रन्थों की पूजा किया। तब स्वस्तिवाचन तथा जगन्नाथ का स्मरण

करते-करते उनके उद्देश्य से प्रासाद गृहस्थल पर अर्घ्य प्रदान किया। तब वसुधादेवी के समीप चन्द्र-सूर्य अवस्थिति पर्यन्त अर्थात् महाकालपर्यन्त उस गृहस्थान को स्थित रखने की प्रार्थना किया तथा वहां वास्तु-दोष उपशमनार्थ वास्तुयाग क्रिया का समापन किया। शिल्पी लोगों को पुरस्कार देकर उनको प्रसन्न कर दिया।।४१-४३।।

महोत्सवं तथाचक्रे गीतवाद्यैः प्रभूतकैः। दीनानाथविपन्नेभ्योददौ वस्तुयथेप्सितम्॥४४॥
राज्ञोविसर्जयामास बहुमानपुरःसरम्। कृतार्थानवतारं तं हरेर्दृष्ट्वा हतांहसः॥४५॥

इस समय प्रभूत गीतवाद्यादि द्वारा महाउत्सव प्रारंभ हो गया। राजा ने दीन-अनाथ तथा विपन्न प्रभृति लोगों को उनकी अभिलाषा के अनुरूप अनेक वस्तु प्रदान किया। वहां नाना प्रदेश से समागत जो सभी राजा आये थे, वे उन हरिदेव के अवतार का दर्शन करके निष्पाप हो गये। वे इस प्रकार भगवद्दर्शन द्वारा कृतार्थ हो गये। राजा ने उन सबका प्रभूत सम्मान किया तथा उनको सादर विदा किया।।४४-४५।।

ततः स कोटिशो वित्तं ददौपाषाणदारके। आहृतौ बहुदेशेभ्यो दृषदां पार्थिवोत्तमः॥४६॥

इसके पश्चात् राजा ने देवगृह निर्माणार्थ करोड़ों धन व्यय करके प्रस्तरखण्ड समूह मंगवाया। हे पार्थिव सत्तम! उस समय अनेक देशों से पाषाण के कारीगर बुलाये गये।।४६।।

उवाचेदंमुदायुक्तःसभायांपृथिवीश्वरः। अष्टादशभ्योद्वीपेभ्यो यन्मयापौरुषार्जितम्॥४७॥
तत्सर्वं जगदीशस्य प्रासादायाऽपवर्जितम्। जैत्रयात्राप्रसङ्गेनश्रमोलब्धस्तु योमया॥४८॥
सफलोऽस्तु स मे विष्णोः प्रासादायाऽर्थयोगतः।
अतः परं मे किं भाग्यं चराचरगुरुं हरिम्॥४९॥
प्रसादयिष्ये सम्पत्त्या भुजद्वन्द्वार्जितश्रिया। श्रीःसदापुण्डरीकाक्षेश्रियोनुग्रहजामम॥५०॥
किं कर्तुमीशस्तस्यां वै देवदेवस्य चक्रिणः।
कटाक्षपातो यस्य स्यात्तस्य श्रीः सर्वतोमुखी॥५१॥
अष्टादशात्मिका देवी जिह्वाग्रे चाऽस्य नृत्यति।
यमाराध्य जगन्नाथं ब्रह्मत्वं प्राप्तवान्विधिः॥५२॥
रुद्रो महेश्वरत्वं च शक्रस्त्रिदिवराजताम्। लेभेतमर्च्यं जगतामर्चयिष्यामिशाश्वतम्॥५३॥
जितं तेन त्रिधाराशीभूतमंहो महात्मना। साङ्गोपाङ्गेन विधिना येनकृष्णःसमर्चितः॥५४॥
कलेवरमिदं क्षेत्रं यत्राऽहङ्कारवान्विभुः।
आविर्भावतिरोभावौ स्थितिर्नित्या हि यत्प्रभुः॥५५॥
अत्र साक्षाद्वपुष्मन्तं सम्पूज्य जगतां गुरुम्।
साक्षात्कृतार्थो भवति चतुर्वर्गस्य भाजनम्॥५६॥
बहुव्ययाऽऽयासतो या राज्यऋद्धिर्मयाऽर्जिता।
अस्यैवाऽनुग्रहात्सा तु सफलाऽस्तु पदाऽम्बुजे॥५७॥

सर्वोपचारैः परिपूज्य देवं द्रव्यैर्हृतैः सागरमेखलायाः।
यावत्समाप्नोति हि कर्मपाकः साम्राज्ययात्रा सफला हि माऽस्तु॥५८॥
किं द्रव्यजातं खलु येन विष्णुं नोपाहरेत्साङ्गमपेतकल्मषः।
किं पौरुषेयं यदि वासुदेवपरिच्छदो येन न साधितो मे॥५९॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशातिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे इन्द्रद्युम्नसरोवरोत्पत्तिविवरणंनामविंशोऽध्यायः।।२०।।
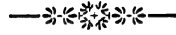
उन सब को महाराज इन्द्रद्युम्न ने सभा में बुलाकर कहा "मैंने १८ द्वीपों द्वारा पुरुषाकार द्वारा जो सब द्रव्य उपार्जित किया था, वह सब जगदीश्वर के प्रासाद निर्माण में अर्पित हो गया। मैंने दिग्विजय यात्रार्थ जो परिश्रम किया था तथा विष्णु के प्रासाद रचनार्थ जो श्रम से प्राप्त किया था, वह सब विष्णु के प्रासाद निर्माण में लग रहा है, इससे मेरा श्रम तथा जीवन सफल हो गया। इससे बढ़कर और मेरा क्या भाग्य होगा! मैं अपनी भुजाओं से अर्जित सम्पत्ति से चराचर गुरु श्रीहरिदेव को प्रसन्न करूंगा। पुण्डरीकाक्ष की प्रियतमा लक्ष्मी के अनुग्रह से ही यह सब समृद्धि प्राप्त हो सकी थी। आज मैं यह देवगृह निर्माण करके उनको समर्पित करूंगा तथा कृतात्मा हो जाऊंगा। मुझ पर इन चराचर प्रभु की जो कृपा है, उससे मैं इन चराचरगुरु का कौन कार्य करूं? ये प्रभु जिस पर एक बार भी कृपाकटाक्षपात् कर देते हैं, उसकी श्रीसम्पदा सर्वतोभावेन चिरकाल विद्यमान रहती है। इनके जिह्वाग्र पर १८ विद्याधीश्वरी वाग्देवी नृत्यरत रहती हैं। इनकी आराधना करके ब्रह्मा ने ब्रह्मत्व, रुद्र ने महेश्वरत्व तथा इन्द्र ने देवराजत्व पाया है। मैं इन जगदार्चनीय शाश्वत देव की अर्चना करूंगा। जो सर्वाङ्गसम्पन्न विधान से श्रीकृष्ण की सम्यक् पूजा करते हैं, उन महात्माओं की कायिक-वाचिक-मानसिक समस्त पापराशि पराजित हो जाती है। यह पुरुषोत्तम क्षेत्र उन पुरुषोत्तम का देहरूप है। यहां प्रभु अहं विशिष्ट हैं। वे यहां आविर्भाव तथा तिरोभाव—दोनों स्थिति होने पर भी सदा स्थित रहते हैं। यहां प्रत्यक्ष शरीरधारी जगद्गुरु जगन्नाथ की अर्चना द्वारा मानव धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-लाभ पूर्वक साक्षात् कृतकृत्य हो जाते हैं। प्रभु के अनुग्रह से मैंने अनेक प्रयास तथा व्यय से जो राज्य समृद्धि अर्जित किया था, वह प्रभु के पदाम्बुज में अर्पित करके मैंने जीवन में सफलता प्राप्त कर लिये। देवदेव का पूजन सर्वोपचार द्वारा सम्पन्न करके मेरी साम्राज्य यात्रा सफल हो गई हैं। वह पौरुष क्या जिसके द्वारा वासुदेव की सेवा न की जाये। उस द्रव्य की क्या शोभा जो विष्णु की सेवा में अर्पित होकर कल्मषों का हरण न करे।।४७-५९।।

।।विंश अध्याय समाप्त।।

एकविंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्न द्वारा दारुवृक्ष से प्रासाद निर्माण वर्णन, नारद-इन्द्रद्युम्न संवाद

जैमिनिरुवाच

इति ब्रुवाणं राजर्षिश्छिदृग्वेदपारगः। वेदान्तविज्ञानशीलोद्विजोवाक्यंमुदाजगौ॥१॥
अहो तवाऽयं खलु भाग्यराशिर्येनाऽऽविरासीद्भुवि दारुमूर्तिः।
यस्यात्युपास्तिं श्रुतिराह मुक्तिप्रदामनात्मज्ञविमोहितानाम्॥२॥
य एष प्लवते दारुः सिन्धोः पारे ह्यपौरुषम्। तमुपास्य दुराराध्यं मुक्तिं यान्ति सुदुर्लभाम्॥३॥
ब्रह्मज्ञाननिधिःसाक्षान्नारदःप्रत्युवाच यत्। न हि वेदान्तवचसोऽपरस्माज्ज्ञानमस्यवै॥४॥
न हिप्रवृत्तिर्विष्णोस्तुविनावेदंप्रवर्त्तते। परेषांस्वस्यवासृष्टौ श्रुतिप्रामाण्यवान्प्रभुः॥५॥
विना श्रुतिं प्रवर्तेच्चेत्कस्तत्प्रामाण्यमृच्छति। तस्माच्छुतिप्रसिद्धोऽयमवतारोऽत्र भूपते !॥६॥
वेदान्तवेद्यं पुरुषं गीतं तं सामगीतिषु। प्रतिमां न तु जानीहिनिःश्रेयसकरंनृणाम्॥७॥

जैमिनि कहते हैं—जब इन्द्रद्युम्न यह वार्त्ता कर रहे थे, तभी ऋग्वेद पारंगत साक्षात् ब्रह्मज्ञानसागर (नारद ऋषि) बीच-बीच में उनका प्रत्युत्तर देने लगे। वे वेदान्तविद् ज्ञानी ब्राह्मण प्रसन्नता पूर्वक उनसे कहने लगे—"हे नृपोत्तम! तुम्हारी यह विपुल भाग्यराशि अतीव आश्चर्यात्मक है। जिस कारण भगवान् ने पृथिवी पर दारु (काष्ठ) मूर्त्ति का परिग्रह किया है तथा आविर्भूत हुये हैं, उसका कारण यह है कि उनकी उपासना करके आत्मज्ञान विमोहित (आत्मज्ञान न होने के कारण मोहग्रस्त) व्यक्तिगण भी मुक्ति प्राप्त करते हैं। वह अपौरुषेय दारु समुद्र तट पर भासमान हो रही है। उन दुराराध्य की उपासना द्वारा आत्मज्ञान विमोहित व्यक्तिगण को भी मुक्तिलाभ होता है।" साक्षात् ब्रह्मज्ञान सागर नारद कहने लगे कि "ये भगवान् वेदान्तवाक्य में अज्ञात नहीं हैं। इन विष्णु की कार्यप्रवृत्ति सभी वेदों के बहिर्भूत भी नहीं हैं। प्रभु जब सृष्टि करते हैं, किंवा स्वयं सृष्ट होते हैं, तभी वे वेद प्रामाण्य के अन्तर्गत ही करते हैं। यदि वे वेदवाह्य कार्य करेंगे, तब कौन व्यक्ति वेदप्रमाण में आस्था करेगा? हे भूपति! इसी कारण देवदेव का यह अवतार वेदों में प्रसिद्ध है। सामगान में इनको वेद-वेदान्तवेद्य पुरुष कहा गया है। इसे सामान्य प्रतिमा न समझो! ये तो मनुष्यों को मोक्षदान करते हैं।।१-७।।

दर्शनादेव नः शान्तं सुदृढं तम उत्तमम्। सन्त्येव श्रुतयः पूर्वमेतदर्चाप्रकाशिकाः॥८॥
एतदर्चा प्रशस्ता वै सदर्थेविनियोजिता। अहोभारतवर्षस्थामनुष्याःक्षीणकल्मषाः॥९॥
अपवर्गप्रदो येषामाविरासीज्जनार्दनः। तत्राऽप्ययं चोद्रदेशःसर्वेषामुत्तमोत्तमः॥१०॥
यत्रस्थाश्चर्मनेत्रेण पश्यन्ति ब्रह्मरूपिणम्। श्रुतिस्मृतीनांगहनःपन्थाःकर्मभिराकुलः॥११॥
येन याता भ्रमन्तीह घटीयन्त्रवदाकुलाः। निर्व्यलीकपदप्राप्तिहेतुरेष स चिन्मयः॥१२॥
श्रुत्यादिभिर्विनोपायैः परमानन्दमुक्तिदः। निरन्तरगतायातदुःस्थितानांदुरात्मनाम्॥१३॥

एष दारुवपुर्विष्णुः सुखदाता सुबान्धवः। श्रुतिस्मृत्युक्तनियमा वर्तन्तेनेह पार्थिव॥१४॥

इनके दर्शन से ही अत्युत्कट तमोगुण का ध्वंस हो जाता है। इन जगन्नाथ की प्रतिमूर्त्ति का संधान देने वाली श्रुति तो इसके पूर्व से भी स्थित थी। लेकिन यह चार प्रतिमा हमें प्रत्यक्षीभूत हो जाने से यह हमारे लिये सद् अर्चनार्थ नियोजित हो गई है। क्या आश्चर्य है! भारतवर्ष के लोगों के लिये, उन क्षीणकल्मषगण के लिये, मुक्तिदाता जनार्दन यहां आविर्भूत हुये हैं। भारतवर्ष में ओड्रदेशादि सबकी तुलना में उत्तम हैं। इसका कारण है कि ओड्रदेश में ब्रह्मरूपी जनार्दन का सबको दर्शन चर्मचक्षु से मिल जाता है। श्रुति-स्मृति के सभी मार्ग कर्म से आवृत हैं, माया भी घटीयन्त्र के समान आकुल होकर घूमती रहती है। जैसे घटी (घड़ी) सर्वदा चलती रहती है, वैसे माया भी सतत् भ्रमणशील रहती है। इसलिये ज्ञानमय जगन्नाथ ही सत्यपद प्रगति के कारण रूप है। इसलिये वे श्रुतियों में वर्णित उपायों के बिना ही परमानंद मुक्तिदान कर देते हैं। जो अनवरत जन्ममरण रूपी आवागमन करते रहते हैं, उन सब दुःस्थित लोगों के लिये जगन्नाथ ने यह सुखदान रूप उपाय किया है। यहां श्रुति तथा स्मृति में कहे नियमों का कोई महत्व नहीं है।।८-१४।।

यथा तथा दृष्टिपथमाचाण्डालाद्विमुक्तिदः। अभक्तश्चेदमुं पश्येद्गतानुगतिको नरः॥१५॥
अश्वमेधसहस्त्राणांफलं ह्यविकलंलभेत्। भजेच्चेन्नियमस्थो हि भक्तिमान्दृढमानसः॥१६॥
असंशयंस सायुज्यं ब्रह्मणा लभते नरः। क्वः दुःखायासबहुलमनायासविनश्वरम्॥१७॥
अचिरस्थं क्षुद्रफलं पुनरावृत्तिलक्षणम्। क्वेदं दारुमयं ब्रह्म पापराशिदवानलम्॥१८॥
सच्चिदानन्दकैवल्यमुक्तिदं दर्शनादपि। वेदानुवचनादीनि दुष्कराणि दुरात्मनाम्॥१९॥
महात्मभिस्तैर्यत्प्राप्यं तदव्यग्रमयं ददेत्। अन्यक्षेत्रेषु भगवान्सुदूरो मर्त्यवासिनाम्॥२०॥
स्वक्षेत्रेऽस्मिन्निवसति नित्यं मुक्तिप्रदोविभुः। अस्मादत्रमहाभागतिष्ठस्वबलपौरुषः॥२१॥
विद्वत्तमोऽसि भक्तश्च साङ्गोपाङ्गममुं भज॥२२॥

किम्बहुना! जब ये भगवान् कहीं भी तथा किसी प्रकार यदि दृष्टिगोचर हो जायें तब चाण्डाल पर्यन्त सभी व्यक्तियों को वे मुक्ति वितरित कर देते हैं। पुनः-पुनः जन्मभागी (जन्म लेने वाले, पुनर्जन्म चक्र में पड़े) अभक्त व्यक्ति भी यदि इनका दर्शन पा लेते हैं, तब उनको भी सहस्र अश्वमेध फल प्राप्त होता है। यदि कोई स्थिर चित्त होकर भक्तियोग में निमग्न होकर उनका भजन करता है, तब उसे ब्रह्मसायुज्य प्राप्त होता है। अनेक दुःख तथा प्रयास द्वारा अचिरस्थायी क्षणभंगुर पुनरावृत्ति (पुनः जन्म-मरण) युक्त स्वर्गरूप क्षुद्र फल एक ओर है, दूसरी ओर पापव्यूह के लिये दावानल के समान सच्चिदानन्द जिनके दर्शनमात्र से कैवल्य मिल जाता है, वे दारुमय ब्रह्म दूसरी ओर! यह उपलब्धि यही होती है। अन्यत्र नहीं होती। दुरात्मा लोगों हेतु वेदोक्त प्रमाणादि का अवलम्बन दुष्कर होने पर भी उनको यहां जो महात्माओं द्वारा प्राप्त फल है, उसकी प्राप्ति होती है। अन्यक्षेत्र में मृत्युलोकवासी मानव के लिये भगवान् तो दूरवर्त्ती रहते हैं। लेकिन वे यहां अपने स्वक्षेत्र में मुक्तिदाता रूपेण नित्य निवास करते हैं। हे महाभाग! तभी मेरा कथन है कि आप अपने बल-पौरुष के साथ यहीं स्थित हो जायें। आप पण्डितगण में अग्रणी तथा विष्णुभक्त हैं। तभी आप यहां साङ्गोपाङ्ग (प्रभु के सभी अर्चन विधान के साथ) उनकी अर्चना करिये।।१५-२२।।

जैमिनिरुवाच

द्विजस्य तद्वचः श्रुत्वा नारदो हृष्टमानसः। साधूक्तं द्विजवर्येण श्रौतमार्गानुसारिणा॥२३॥
सृष्ट्यादौ ब्रह्मनिश्वासैरभवद्वेदसंहतिः। तत्रोपनिषदर्थोऽयं साम्प्रतं व्यक्तिमागतः॥२४॥
वेत्त्येतदर्थं भगवान्पद्मयोनिः प्रजापतिः। अज्ञासिषं च भूपाल साम्प्रतं तन्मुखादहम्॥२५॥
तस्याऽऽज्ञयाकृतंसर्वंयथाभिलषितं एव। एनमाराध्यतिष्ठात्रयाम्यहंब्रह्मणोऽन्तिकम्॥२६॥
कृतं निवेदयिष्यामि प्रकाशञ्च मुरद्विषः। प्रासादं कुरु भूपाल ! धनेन महता तथा॥२७॥
प्रसादे नरसिंहं तु प्रतिष्ठाप्य विमुच्यसे॥२८॥

जैमिनि कहते हैं—उन ब्राह्मण का यह वचन सुनकर नारद ऋषि सन्तोषपूर्वक कहने लगे—"इन द्विजप्रवर ने वेदपथ का अनुसरण करके जो कुछ कहा है, वह तो यथार्थ है। सृष्टि के प्रारंभ में ब्रह्मा के निःश्वास से वेदों का प्राद्रुर्भाव हुआ है। उनमें दारुब्रह्म सम्बंधित उपनिषद् व्यक्त हैं। हे राजन्! ये पद्मयोनि पितामह पहले इस अर्थ को जानते थे। सम्प्रति उनके मुख से हमने जाना। उनकी ही अनुमति द्वारा तुम्हारे इस अभिलषित कार्य को सम्पन्न कराया गया। तुम उन देवदेव की आराधना करते यहां रहो। मैं अब ब्रह्मा के निकट जाता हूं। मैं वहां जाकर मुरारी के आविर्भाव तथा इन सब कार्य के सम्बन्ध में उनसे कहूंगा, जो यहां सम्पन्न हुआ है। अब तुम यहां मन लगाकर विपुल धन व्यय से एक देवगृह (प्रासाद) का निर्माण करो। उसमें इन नरसिंह की प्रतिष्ठा द्वारा मुक्तिलाभ करोगे।।२३-२८।।

जैमिनिरुवाच

तच्छ्रुत्वा स तु भूमीन्द्रः प्रत्युवाच मुनिं तदा।
महर्षेऽहं त्वया सार्द्धं यियासुर्ब्रह्मणोऽन्तिकम्॥२९॥
यत्प्रसादाज्जगन्नाथश्चक्रेऽयं लोचनातिथिः। निवेद्य तं च प्रासादं प्रतिष्ठार्थं मुरद्विषः॥३०॥
विज्ञापयिष्ये सान्निध्ये प्रासादस्थापनोत्सवम्। यथा स्वयं समागम्य ब्रह्मलोकात्पितामहः॥३१॥
महोत्सवं भगवतः प्रासादेऽत्र करिष्यति। तन्मुने ! मामपिविधेःसंनिधिंप्रापयस्व च॥३२॥
गर्भप्रतिष्ठां प्रासादे समाप्येह स्थितो मुने !।
पश्चादावां गमिष्यावः कञ्चित्कालं प्रतीक्ष मे॥३३॥
ततः स नृपतिः सर्वाञ्छिल्पशास्त्रविशारदान्। पाषाणखण्डघटनाकर्मण्येकैकयोगतः॥३४॥
सत्कारैर्दानमानैश्च योजयामास सादरम्। दिने दिने सुघटितःप्रासादोववृधे द्विजाः॥३५॥

जैमिनि कहते हैं—राजा इन्द्रद्युम्न ने मुनि का वाक्य सुनकर उनसे कहा—"हे महर्षि! मैं भी आप के साथ ब्रह्मा के यहां जाना चाहता हूं। उनकी ही कृपा के बल से मैंने जगन्नाथ देव को अपने नयन पथ का अतिथि बनाया है (अर्थात् उनका दर्शन पाया है)। मैं मुरशत्रु माधव की प्रतिष्ठा हेतु, उन जगत्स्रष्टा के समक्ष उनकी उपस्थिति में उस प्रासाद की प्रतिष्ठा तथा उत्सव कार्य प्रारंभ करूंगा;-जिसके लिये वे स्वयं ब्रह्मलोक से यहां शुभागमन करके उस प्रासाद में भगवान् पुरुषोत्तम का महोत्सव सम्पन्न करायें। हे मुनिवर! आप कृपया मुझे भी

ब्रह्मगृह तक ले चलिये। अथवा आप कुछ समय यहीं पर प्रतीक्षा करिये। प्रासाद-निर्माण तथा उसके मध्य में रत्नवेदी की प्रतिष्ठा सम्पन्न करके मैं आपके ही साथ ब्रह्मलोक चलूंगा।" तदनन्तर श्रीमान् राजा ने प्रस्तरखण्ड से निर्माण किये जाने वाले देवगृह गठन के कार्य में शिल्पकर्म निपुण लोगों को नियुक्त किया। उनका सम्मान, सत्कार करके उनको प्रचुर धन भी प्रदान किया। इस प्रकार प्रतिदिन वह प्रासाद निर्मित एवं परिवर्द्धित होने लगा।।२९-३५।।

परितः पूर्यमाणस्तु शुक्लपक्षे यथा शशी। एवंसम्वर्ध्यमानोऽपिप्रासादः परिवर्द्धितः।।३६।।
महोच्छ्रयत्वादल्पेननकालेनाभिलक्ष्यते। पाषाणसङ्ख्याशक्यावाकथञ्चिद्धटनाक्रमात्।।३७।।
वित्तव्ययस्तु कोटीनां न सङ्ख्यातुं च शक्यते।
यावन्तो भारते वर्षे लोकाः समयवर्तिनः।।३८।।
इन्द्रद्युम्नस्य नृपतेर्नियुक्तास्ते महीभृतः। एकैकशो नियुक्ता ये परस्परसमन्विताः।।३९।।
तेऽपि चान्यैर्नियुक्तास्तेसर्वे तत्रप्रवर्तिताः। अजस्रं तन्नियुक्तानां योहर्षोत्थोमहारवः।।४०।।
आकाशमश्नुवानोऽसौदिशांभागानपूरयत्। नृपतेःश्रद्धयाभक्त्या सात्त्विकेनप्रसादिता।।४१।।

वह प्रासाद रूप देवगृह उसी प्रकार से बर्द्धित होने लगा जैसे पूर्णिमा पर्यन्त शुक्लपक्ष का चन्द्रमा क्रमशः बढ़ता जाता है। प्रासाद इस प्रकार उच्चतापूर्वक बना कि पहली दृष्टि में उसका सभी अंग दृष्टिगोचर ही नहीं हो पाता था। यद्यपि उसकी प्रस्तर संख्या कथंचित भले ही गिन ली जा सके, तथापि यह निर्णीत होना संभव ही नहीं था कि महाराज ने उसमें कितना कोटि धन व्यय किया है। उस समय इस तारतम्य में जितने भी राजा वहां निवास करते थे, राजा इन्द्रद्युम्न ने उन सबको कोई न कोई कार्यभार प्रदान किया था। जो एक-एक कार्य में नियुक्त थे, वे पुनः परस्पर मिलित होकर अन्य अनेक लोगों को इस हेतु नियुक्त कर रहे थे। सभी व्यक्ति प्रासाद निर्माण कार्य में प्रवृत्त थे। इस प्रकार अनवरत नियुक्त किये गये लोगों का वहां हर्षयुक्त महारव उद्भूत होने लगा। इस शब्द से आकाशमण्डल व्याप्त हो गया तथा सभी दिशायें इस शब्द से परिपूर्ण हो उठीं। राजा की श्रद्धा-भक्ति तथा सात्विकवृत्ति से श्रीदेवता प्रसन्न हो गयीं।।३६-४१।।

श्रीः समृद्धाऽभवद्विप्राः कीर्त्या सह महीपतेः।
क्वचित्काञ्चनविन्यस्तनानारत्नमहोज्ज्वलः ।।४२।।
क्वचित्स्फटिकमागान्तशारदाभ्रनिभच्छविः। क्वचिन्नीलाश्मघटिता भित्तिःकालाभ्रमेदुरा।।४३।।
एवं सुघटिते विष्णोः प्रासादे सुमनोहरे। गर्भप्रतिष्ठां विधिवत्कृत्वा स नृपसत्तमः।।४४।।
वज्रपातादिभङ्गादिवारणार्थंयथोचितम्। शिल्पशास्त्रेषुमण्यादिविन्यस्यपौरुषाहतम्।।४५।।
पुनः प्रासादघटनासम्भारोचितमेव वै। बहुमूल्यं वस्तुजातं यत्नात्तत्र न्यवेशयत्।।४६।।
ततोविरच्यमानेऽस्मिन्प्रासादेकीर्तिवर्द्धने। मनसापिनसम्भाव्येत्रिषुलोकेषुभूभुजाम्।।४७।।
देवानामपि नो लक्ष्ये द्विजाः कल्पान्तवासिनाम्।
प्रासाद ईदृशो भूमौ क्वचिच्च घटितो न हि।।४८।।

स्वर्गेवाइत्थमादित्याआलपन्तिपरस्परम्। अहो सुबुद्धिरस्योच्चैर्येयमीदृक्परीणता॥४९॥

श्रद्धया भगवत्पादपद्मयोः साभिलाषिणी।

अलौकिकानि कर्माणि पश्यन्ति हि रचन्त्यपि॥५०॥

केवाऽत्रभूमौराजानोबभूवुर्नीतिशालिनः। सार्वभौमास्तुसाम्राज्यजेतारःसर्वविद्विषाम्॥५१॥

इस प्रकार श्रीदेवता प्रसन्न होकर उनकी कीर्त्ति द्वारा सुसमृद्धा हो गयीं। वहां का कोई-कोई स्थान स्वर्ण से मढा था। वह नाना रत्नों की किरणों से उज्वल प्रतीत हो रहा था। कही स्फटिकमयी भित्ति मानो शरत्कालीन आकाश मण्डल की मेघमण्डित शोभावत् झलक रही थी। कोई-कोई भित्ति नीलकान्त मणियों से युक्त होकर कालाभ्रवत् प्रतीत तथा शोभित हो रही थी। इस प्रकार से नाना मनोहर गुण समन्वित भगवत् प्रासाद सम्पन्न हो जाने पर राजा ने उसकी गर्भ प्रतिष्ठा को सम्पन्न कराया। उसके ऊपरी भाग में बिजली आदि (आकाशीय विद्युत्) न गिरे, उस भय के निवारणार्थ शिल्पशास्त्रोक्त पुरुष प्रतिकृति तथा मणि आदि लगवाई गयी। पुनः प्रसादगठनोपयोगी बहुमूल्य रत्नों को यत्नपूर्वक न्यस्त किया गया। तदनन्तर इन्द्रद्युम्न द्वारा इस कीर्त्तिवर्द्धक प्रासाद के सम्बन्ध में समस्त कर्त्तव्य सम्पन्न करने के पश्चात् इसे राजाओं ने कदापि त्रिकाल में भी इसे मनःकल्पना द्वारा योजना बनाकर बनवाया नहीं माना (अर्थात् यह कल्पना से परे बना प्रासाद था)। हे द्विजगण! कल्पान्त तक रहने वाले देवगण ने भी ऐसा कभी नहीं देखा था। अतः भूमितल में तो ऐसा देवालय कभी बना ही नहीं। ऐसा प्रासाद तो स्वर्ग में भी नहीं हो सकता। अतः सुबुद्धियुक्त ऐसी रचना श्रद्धा तथा भगवत् पादपद्म प्रवणता के कारण ही संभव हो सकी। भगवत् कृपा से ही ऐसे अलौकिक रचनाकर्म संभव होते हैं। पृथिवी पर ऐसा नीतिशाली और कौन राजा है? वे सार्वभौम तथा समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले थे।।४२-५१।।

वित्तानि यैः सञ्चितानि सुबहूनिचकोटिशः। अश्वमेधसहस्त्रन्तु यत्कृतंत्रिदिवेशितुः॥५२॥

शक्यं वा स्याद्भूभुजां तुनातःपूर्वमनुष्ठितम्। न दृष्टंनश्रुतम्वापि वाजिमेधसहस्त्रकम्॥५३॥

महाक्षितानुष्ठितंवै यत्रत्रैलोक्यवासिनः। पृथिव्यामस्यनृपतेः सहस्थाभोगभोगिनः॥५४॥

ब्रह्मलोक इवाभातिसभार्यस्य च यज्विनः। मूर्तिमन्तस्त्रयो वेदाश्चतुष्पादोवृषस्तथा॥५५॥

सुराः सङ्कल्पकामास्तुयत्राद्भुतधियोऽभवन्। अयं प्रासादवर्योवैबुद्धेर्विषयताङ्गतः॥५६॥

मनोऽपि यत्र भवति न वा त्रैलोक्यवासिनाम्।

भूपतेर्दुर्लभं किं स्यात्सहायो यस्य नारदः॥५७॥

उन्होंने जो बाहुवल से कोट-कोटि वित्त एकत्रित किया था। उससे सहस्त्र अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया। पूर्वकाल में सहस्त्र अश्वमेध करते न तो किसी को देखा गया था, न सुना गया था। त्रैलोक्य वासीगण के समक्ष राजा ने इस सहस्त्र अश्वमेध का अनुष्ठान किया था। यह स्थल ब्रह्मलोक जैसा भासित हो रहा था। वहां तीनों वेद मूर्त्तिमान होकर उपस्थित थे तथा वहां चतुष्पाद धर्म वृषरूपेण विराजित था। सुरगण भी इस अद्भुत प्रासाद को देखकर कह रहे थे कि यह प्रासाद निर्माण बुद्धि से परे है। लेकिन जिसके सहायक साक्षात् नारद हैं, उन राजा के लिये क्या दुर्लभ है!।।५२-५७।।

पितामहश्च जगतांस्त्रष्टासर्वामरेश्वरः। अथवा विष्णुभक्तस्य नाऽतिदूरं चिकीर्षितम्॥५८॥

विष्णोस्तद्भक्तलोकस्यनाऽन्तरंविद्यतेद्विजाः। ततःसनारदम्प्राहप्रासादान्तेमुनीश्वरम्॥५९॥
सर्वं सम्पन्नमासीन्मे यदशक्यं सुरासुरैः। साक्षाद्भगवतो विष्णोरद्वैतोपासनारतः॥६०॥
भगवद्वपुराभाषि प्रासादस्तु चिरं मयि। इत्युक्त्वापादयोर्मूर्ध्ना प्रणनाम स नारदम्॥६१॥

देवगण इस प्रकार से परस्पर आशंसा करने लगे। "इनके सहायक नारद हैं। इनके लिये क्या दुर्लभ है? इससे भी बड़ी बात यह है कि साक्षात् जगत्स्रष्टा पितामह ने ही इस कार्यभार को ग्रहण किया है। अथवा जो विष्णुभक्त होता है, उसे कोई वस्तु दुर्लभ नहीं होती और उसका कोई कार्य दुष्कर नहीं होता। हे विप्रवृन्द! विष्णु तथा उनके भक्त में कोई अन्तर नहीं है। जो सम्पत्ति सुर-असुर के लिये दुर्लभ है, वह विष्णुभक्त को प्राप्त होती है। वह साक्षात् भगवान् विष्णु की अद्वैतोपासना में रत रहता है।" तदनन्तर राजा इन्द्रद्युम्न ने उस देवगृह (प्रासाद) में नारद से कहा—"हे ऋषिवर! मेरा यह प्रासाद चिरकाल पर्यन्त भगवान् की आभा से युक्त रहे।" यह कहकर इन्द्रद्युम्न नारद के चरणों में प्रणाम करने लगे।।५८-६१।।

नारदोऽपि तमुत्थाप्य परिपूज्य नृपोत्तमम्।
त्वत्तो न भेदो नृपते ममाऽस्ति खलु तत्त्वतः॥६२॥
यस्तुसाक्षाज्जगन्नाथआविर्भूतःकृतेनवा। अवश्यमर्चयस्वैनंजीवन्मुक्तोऽसिसाम्प्रतम्॥६३॥
तत्पादपद्मे यादृक्ते चेतः प्रणवतान्वितम्। भक्त्याह्यनन्ययापुंसः किमतःपरमस्तिवै॥६४॥
तीर्थैर्मन्त्रैर्जपैर्दानैः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः। व्रतैरध्ययनैर्भूप ! तपोभिश्च यदर्जितुम्॥६५॥
न शक्यंतवराजेन्द्रभक्त्या तत्करमागतम्। अतः परं न शोचस्वभक्तियोगेनमोऽस्तुते॥६६॥
प्रकर्षं बहुराजेन्द्र स्थित्वा चाऽस्मिंश्चिरम्भुवि। आराधयजगन्नाथमुपचारैर्महोत्सवैः॥६७॥
पितामहं द्रष्टुकामो गन्ता चेदन्तिकं विभोः।
उपदेक्ष्यति सोऽप्यस्य यात्रास्तास्ता महोत्सवाः॥६८॥
स्वयं च भगवानेववरं तुभ्यंप्रदास्यति। प्रतिष्ठापितेप्रासादेतस्मिन्कालेस्वयम्भुवा॥६९॥
अहमप्यागमिष्यामि तदा सप्तर्षिभिःसह। तदावांतत्र गच्छावो ब्रह्मलोकमकल्मषम्॥७०॥
त्वां विना भुवि कः शक्तो ब्रह्मलोकगतिम्प्रति।
इत्युक्त्वा नारदो भूपं समुत्तस्थौ नभस्तलम्॥७१॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे श्रीनारदेनराजानम्प्रतिभगवत्प्रासादनिर्मापणार्थमुद्बोधवचनंनामैकविंशोऽध्यायः।।२१।।

—※※※—

तब नारद ने राजा को उठाया तथा उनका आलिंगन करके कहने लगे—"हे राजन्! तुममें तथा मुझमें कोई भी पारस्परिक भेद नहीं है। तुम्हारे लिये ही साक्षात् जगन्नाथ का आविर्भाव हुआ है। उनके पादपद्म में तुम्हारा अन्तःकरण अनन्य भक्ति के साथ अनुरक्त हो गया है, इससे अधिक व्यक्ति हेतु और परमार्थ क्या हो सकता है? अब आओ! इनकी अर्चना करो। तुम जीवन्मुक्त हो गये हो। तीर्थपर्यटन, प्रचुरदक्षिणा, मन्त्र, जप

तथा यज्ञ से भी यह फल उपार्जित नहीं किया जा सकता। हे राजेन्द्र! केवल भक्ति द्वारा ही वह फल प्राप्त हो सकेगा। अब शोक न करो। मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूं कि एकमात्र भक्तियोग में ही तुम्हारा मन लीन रहे। यदि तुम प्रश्नार्थी होकर पितामह के पास जाना चाहो, तब वे भी इन देवाधिदेव के सभी यात्रा महोत्सव का उपदेश तुमसे करेंगे। स्वयं प्रभु ही तुमको इच्छित वर प्रदान करेंगे। जब स्वयम्भु ब्रह्मा यहां आकर तुम्हारे इस देवालय प्रासाद की प्रतिष्ठा करेंगे, तब मैं भी सप्तर्षिमण्डल के साथ यहां आगमन करूंगा। अब हम दोनों निर्मल ब्रह्मलोक चलें। पृथिवी में तुम्हारे अतिरिक्त और कोई भी वहां नहीं जा सकता।'' नारद मुनि ने राजा से यह कहा तथा नभपथ पर जाने हेतु उठ गये।।६२-७१।।

।।एकविंश अध्याय समाप्त।।

द्वाविंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्न का नारद के साथ ब्रह्मलोक जाना, ब्रह्मा का दर्शन प्राप्त होना

जैमिनिरुवाच

राजाऽथ तमुवाचेदं निर्लक्ष्य गमनं कथम्। अयं पुष्परथोऽस्त्येव मनसोवेगवान्मुने।।१।।
एनमारुह्य यास्यावः क्षणं तावत्प्रतीक्ष्यताम्। यावदेताननुज्ञाप्य प्रासादेह्यधिकारिणः।।२।।
प्रदक्षिणीकृत्य विभुमायामि मुनिसत्तम !। नारदोऽपिवचः श्रुत्वा श्रद्दधानोनृपोक्तिषु।।३।।
करेण धृत्वा राजानं महावेदीं प्रविश्य च। सहितं रामभद्राभ्यां नत्वा कृष्णंमुहुर्मुहुः।
अनुज्ञां प्रार्थयामास ब्रह्मलोकगतिम्प्रति।।४।।

ऋषि जैमिनि कहते हैं—राजा इन्द्रद्युम्न ने इन निर्लक्ष्य गमनकारी ऋषिवर से यह कहा ''हे मुनिवर! मेरा यह मन से भी तीव्र वेगवान् पुष्पक रथ है। हम दोनों इस रथ द्वारा ब्रह्मलोक गमन करें। आप एक क्षण प्रतीक्षा करिये। मैं प्रासाद कार्य में लगे लोगों को उचित आदेश प्रदान करने के पश्चात् प्रभु की प्रदक्षिणा करके आता हूं।'' नारद ने भी राजा की बात का अनुमोदन किया तथा उनका हाथ पकड़े हुये महावेदी में प्रवेश किया। तब सभी ने बलराम, सुभद्रा तथा जगन्नाथ देव को पुनः-पुनः प्रणाम करने के पश्चात् ब्रह्मलोक जाने की अनुमति भगवान् से मांगा।।१-४।।

इन्द्रद्युम्नोऽपि वचसा मनसा वपुषा हरिम्। प्रदक्षिणीकृत्यपुनर्नत्वा साष्टाङ्गमुन्मनाः।
ब्रह्मलोकगतिं विप्रा ! याचते स्म कृताञ्जलिः।।५।।

इन्द्रद्युम्न ने भी काया-मन तथा वाणी से श्रद्धापूर्वक हरि की प्रदक्षिणा करने के अनन्तर उन्मना स्थिति

में भगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम किया, तदनन्तर उन्होंने अंजलिवद्ध होकर भगवान् से ब्रह्मलोक जाने के लिये आज्ञा मांगी।।५।।

उभौ तौ दिव्ययानेन जग्मतुर्मुनिभूभृतौ। प्रदक्षिणीकृत्यरविं व्योममण्डलमध्यगम्।
उपर्युपरि जग्माते व्यतीत्य ध्रुवमण्डलम्।।६।।
जनलोकगतैःसिद्धैः सत्वरावनतोन्मुखैः। वीक्ष्यमाणौमुदायुक्तौ सँल्लपन्तौपरस्परम्।।७।।
भगवच्चरितम्विप्रा मनोमलविशोधनम्। जीवन्मुक्तो मुनिश्रेष्ठः सर्वलोकान्भ्रमन्नयम्।
यथानुपहतव्रज्यस्तथाऽयं मर्त्यवास्यपि।।८।।
भूपतिः प्रययौ शीघ्रं विष्णुभक्तिप्रसादतः। ब्रह्माण्डविषयेनैतद्दुष्प्राप्यंवस्तुविद्यते।।९।।
विष्णुभक्तेन यल्लभ्यमथवामुक्तिमेति सः। महर्लोकगतैः सिद्धैः सादराभ्यर्चितौचतौ।।१०।।

तत्पश्चात् दोनों दिव्ययान पर आरूढ़ होकर जाने लगे। तब उन्होंने नभमण्डल मध्यवर्त्ती सूर्यमण्डल की प्रदक्षिणा करने के पश्चात् ध्रुवमण्डल का अतिक्रमण किया तथा और भी ऊर्ध्व में जाने लगे। तभी जनलोकनिवासी सिद्धगण शीघ्रता से आगे आये तथा अवनत मुख करके इनको देखने लगे। वे मन के कलुष का विनाश करने वाले भगवद् चरित्र के विषय में परस्परतः वाक्यालाप करते हुये हर्षान्वित हो गये कि जैसे मुनिश्रेष्ठ जीवन्मुक्त महात्मा नारद बिना किसी रोक-टोक के सभी लोकों में जा सकते थे, ये मनुष्यलोक निवासी राजा इन्द्रद्युम्न भी एकमात्र विष्णुभक्ति के कारण उनके सहयोग से शीघ्र गमन करने के अधिकारी हो गये! जो विष्णुभक्त हैं, उनके लिये निखिल ब्रह्माण्ड राज्य में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। यहां तक कि ऐसे लोग मुक्ति तक के अधिकारी हो जाते हैं।'' इस प्रकार ऊर्ध्वगमन करते हुये ये लोग महर्लोक पहुंचे तथा वहां के सिद्धगण द्वारा सादर अर्चित हुये।।६-१०।।

इन्द्रद्युम्नो न सस्मार पार्थिवं वासमात्मनः।
क्रमादूर्ध्वगतिर्गच्छन्पश्यन्सौख्यैकभाजनान्।।११।।
निर्द्वन्द्वानभिलाषोत्थतत्क्षणानेकपौरुषान्। केवलम्भगवत्प्रीत्यै कर्मभूमौचकार यत्।।१२।।
प्रासादंचिन्तयामास सम्पूर्णोवा न वा भवेत्। मय्यागतेब्रह्मलोकंशत्रुभिर्वाऽभिभूयते।।१३।।
श्लथादरावाभूयासुःसेवकाद्रव्यलोभतः। गृहीतवेतनाः शिल्पिवृन्दा मन्दक्रियास्तथा।
न शीघ्रं घटयिष्यन्ति मयि ब्रह्मक्षयागते।।१४।।
यावद्गमिष्ये धातारं गृहीत्वाऽहं चतुर्मुखम्। तावन्नपुनरेवस्यात्प्रासादोमयि दूरगे।।१५।।
इहायातास्तु ये पूर्वे न पुनस्तेक्षितिंगताः। मन्वानाममसामन्ताइत्थं वा दुष्टमानसाः।
राज्यं ममाहरिष्यन्ति द्विषन्तः किमु साम्प्रतम्।।१६।।

इस समय इन्द्रद्युम्न को अपना देह पार्थिव देह नहीं प्रतीत हो रहा था। इस प्रकार क्रमशः जैसे-जैसे वे ऊर्ध्वगमन करने लगे, उतने ही परमसुखी द्वन्द्वरहित (वहां-वहां) पुरुषों को देखते-देखते सन्तोष प्राप्त करने लगे। उस देवगृह प्रासाद की चिन्ता राजा के मन में हो रही थी, जिसे उन्होंने भगवान् की प्रसन्नता हेतु निर्मित

करने का आदेश दिया था। राजा विचार करने लगे कि "क्या वह निर्माण सम्पन्न हो गया, अथवा नहीं! मैं तो ब्रह्मलोक जा रहा हूं। कहीं शत्रुगण वहां जाकर उस स्थान को नष्ट न करें अथवा अपने अधिकार में न कर लें। अथवा वहां नियुक्त सेवकगण द्रव्यलोभ में उसे बर्बाद न करें अथवा कहीं वेतनभोगी शिल्पी बाकी बचे कार्य को मन्दगति से करना प्रारंभ न कर दें। मैं तो ब्रह्मलोक गया हूं तथा पृथिवी पर नहीं हूं, यह सोचकर उन लोगों द्वारा कार्य ही सम्पन्न न हो? क्योंकि तब वहां पृथिवी पर सबका यही विचार होगा कि जो इस लोक पहुंच गया, वह पुनः पृथिवी पर नहीं वापस आता। इस विचार के कारण कहीं दुष्टता के कारण मेरे सामन्त लोग मेरे राज्य का हरणं न कर लें। तब शत्रुगण की तो बात ही क्या?"।।११-१६।।

इत्थं सुविग्नमनसा चिन्तयानं महीपतिम्। अतीतानागतज्ञाननिधिर्मुनिरुवाचतम्॥१७॥
किंचिन्तयसिराजेन्द्रत्वमेवंदीनमानसः। यत्र चाभ्यागतावावां नचिन्ताविषयोह्ययम्॥१८॥
नाऽऽधयोव्याधयश्चाऽत्र प्रभवन्तिकदाचन।
नजरानचवामृत्युःकिमन्यद्दुःखहेतुकम् ॥१९॥
कृतार्थोऽसिमहाभाग! यन्मानुषवपुः स्वयम्। ब्रह्मलोकमिहायातःप्रत्यक्षंदृष्टवान्हरिम्॥२०॥
इहायाता न शोचन्ति हेये संसारकल्पके। ब्रुवाणमित्थं भूपालस्तमुवाच मुनीश्वरम्॥२१॥

राजा इन्द्रद्युम्न इस चिन्ता से व्यथित होकर आगे जा रहे हैं, यह भूत-भविष्यत् के द्रष्टा देवर्षि नारद को ज्ञात हो गया। तब वे देवर्षि राजा इन्द्रद्युम्न से कहने लगे—"हे राजेन्द्र! इस प्रकार दीन मन से क्या विचार कर रहे हो? हम यहां जा रहे हैं, यह चिन्ता का विषय नहीं है। जहां हमारा जाने का लक्ष्य है, वहां आधि-व्याधि का प्रभुत्व नहीं होता। यहां जरा-मृत्यु आदि का भी प्रभाव नहीं रहता। हे महाभाग! तुम कृतार्थ हो गये। स्वयं अपने मानवदेह से ही ब्रह्मलोक आकर श्रीहरि का साक्षात् दर्शन करोगे। जो यहां पहुंच जाते हैं, वे तुच्छ संसार कार्य के लिये शोकार्त्त नहीं होते।" मुनिवर नारद के यह कहने पर राजा उनसे कहने लगे।।१७-२१।।

न हि शोचामि भगवन्राज्ञःस्वजनबन्धुषु। समारब्धो भगवतः प्रसादो यो मयाधुना॥२२॥
अत्रागतं मां तेज्ञात्वा नानुतिष्ठन्तिसेवकाः। आरब्धस्यप्रतिष्ठाहिकर्तव्यानिश्चितामुने॥२३॥
तस्यान्तरायं सम्भाव्य दुःखितं मेमनः प्रभो। तस्य तद्वचनंश्रुत्वाप्रहस्यमुनिब्रवीत्॥२४॥

राजा कहते हैं—"हे मुनीश्वर! भगवन्! मैं राज्य अथवा स्वजन बन्धु आदि के लिये कोई शोक नहीं कर रहा हूं। सम्प्रति मैंने भगवान् के जिस प्रासाद निर्माण को प्रारंभ किया है, कहीं मेरे यहां आने के कारण सेवकगण उस कार्य के प्रति मनोयोग न करें! जो आरंभ किया है, उसे प्रतिष्ठित अवश्य करना होगा, तथापि अब उसमें विघ्न की संभावना का विचार करके मैं दुःखी हो रहा हूं।।" राजा का यह वाक्य सुनकर देवर्षि नारद कहने लगे।।२२-२४।।

प्रजापतिसमस्त्वं हि न तु सामान्यभूपतिः। केनाऽप्यकृतं नैव भूमौ पूर्वैरनुष्ठितम्॥२५॥
किं पुनस्तव कृत्यं तु यः सृष्टिस्थितिहानिकृत्।
ब्रह्मलोकं गतस्याऽद्य प्रतापयशसा तव॥२६॥
त्रैलोक्ये भ्रमतोनित्यंयथासूर्यनिशाकरौ। यस्यकार्येषुभगवान्सहायोऽसौ चतुर्मुखः॥२७॥

तेषुकिंराजशार्दूल !। विघ्नशङ्काऽपिजायते। एषदूरेऽस्तिराजेन्द्रप्रत्यक्षंयस्तवद्विषाम्।।२८।।
सदोमध्यगतः शक्रः साक्षात्त्रिजगतीपतिः। विशेषतो जगन्नाथप्रासादे कः पुमान्नृप।।२९।।
निहन्तु मनसाऽपीच्छेत्तत्र शङ्कास्तु मा तव। तदग्रतःपश्यभूप चन्द्रकोटिसमत्विषा।।३०।।
परितो ह्लादजनकः सुधासागरकोटिवत्। यश्चाऽयं तेजसां राशिर्जानीहि ब्रह्मसद्मनः।।३१।।

देवर्षि नारद कहते हैं—तुम सामान्य राजा नहीं हो। तुम तो प्रजापति से ही तुलनीय हो। तुम्हारा कोई अपकार तुम्हारे पृथिवी पर रहते नहीं कर सका, अब तुम्हारा जो यह एकमात्र कर्त्तव्य कार्य बचा है, वह होकर रहेगा। इसमें सृष्टि-स्थिति-प्रलयकर्त्ता पुरुष तक तुम्हारे सहायक हैं। भले ही तुम ब्रह्मलोक आ गये, तथापि तुम्हारा प्रताप, यश, चन्द्र-सूर्यवत् त्रैलोक्य में प्रचलित रहेगा। हे राजशार्दूल! विशेष करके जिसके कार्य समूह हेतु भगवान् चतुर्मुख ब्रह्मा सदा सहायक हैं, उसके लिये विघ्न की आशंका करना व्यर्थ है। क्या उसे कभी विघ्न हो सकता है? कदापि नहीं! हे महाराज! यह तो दूर से परिलक्षित हो रहा है कि वहां साक्षात् त्रिजगत्पति शचीपति इन्द्रदेव सभामण्डली में प्रत्यक्षतः विद्यमान हैं। तुम उत्कण्ठा त्यागो। उस जगन्नाथ देव के प्रासाद पर अधिकार करने की कोई भी अभिलाषा नहीं करेगा। हे राजन्! अब देखो! यह जो इन्द्रालय के ऊपर की ओर करोड़ों चन्द्र के समान दीप्तिशील समस्त सन्तोषप्रद कोटि-कोटि अमृतसागर के समान तृप्तिप्रद तेजोराशि परिलक्षित हो रही है, वही ब्रह्मा का वासस्थल है।।२५-३१।।

इत्थमालपतस्तौ तुब्रह्मलोकान्तिकंगतौ। शुश्रुवाते सुदूरात्तौब्रह्मर्षीणां मुखोद्गतम्।।३२।।
स्वाध्यायशब्दंसुपदंस्पष्टवर्णक्रमस्वरम्। इतिहासपुराणानिच्छन्दःकल्पानिगाथिकाः।।३३।।

इस प्रकार देवर्षि तथा राजा परस्परतः आलाप करते-करते ब्रह्मलोक के निकट पहुंचे। उन्होंने वहां दूर से ही ब्रह्मर्षिगण के मुख से निर्गत वर्णक्रमयुक्त सुन्दर-सुखद वेदध्वनि को सुना। उन्होंने और भी स्पष्टरूप से इतिहास, पुराण, छन्दः, कल्प तथा गाथाओं को अलग-अलग क्रम से सुना।।३२-३३।।

असङ्कीर्णोज्ज्वलपदंश्रूयते प्रविभागशः। अत्रैतद्राजशार्दूल ! जानीहि ब्रह्मणः पुरम्।।३४।।
सभाहि दृश्यते चैषा यत्रलोकपितामहः। सार्द्धंब्रह्मर्षिमुख्यैश्च सुखासीनश्चतुर्मुखः।।३५।।
नानाचैतन्यशबलैर्जीवन्मुक्तैरुपासितः। यत्राऽऽगतानि वर्त्तन्ते न संसाराऽब्धिसङ्कटे।।३६।।
सदिति ब्रह्मणो नामतस्यायंभुवनोत्तमः। सत्यलोकइतिख्यातस्तदूर्ध्वंनास्तिकिञ्चन।।३७।।
अस्यैव किञ्चिदुपरि अधश्चाऽण्डकपालतः। वैकुण्ठभुवनं राजन्मुक्तायत्रवसन्ति वै।।३८।।
यत्र योगीश्वरःसाक्षाद्योगिचिन्त्योजनार्दनः। चैतन्यवपुरास्तेवैसान्द्रानन्दात्मकःप्रभुः।।३९।।
यं प्राप्यन निवर्त्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि। यमुपास्ते सदा ब्रह्माजीवन्मुक्तैः स्वमुक्तये।।४०।।
कल्पितस्यायुषोन्तेऽसावेभिःसार्द्धंप्रपद्यते। सएषस्त्रष्टालोकानांमत्स्यकूर्मादिरूपधृक्।।४१।।
रक्षिता रौद्ररूपेण संहर्त्ता लोकभावनः। इन्द्रद्युम्नं वदन्नित्थं प्राप ब्रह्मनिकेतनम्।।४२।।

देवर्षि ने कहा—"हे राजन! तुम जो सब ध्वनि सुन रहे हो, वही ब्रह्मसदन है। यह जो सभा देख रहे हो, इसी में लोकपितामह ब्रह्मा ब्रह्मर्षिगण के साथ समासीन हैं। वे नाना चैतन्यगण के आश्रय और जीवन्मुक्तगण के उपास्य हैं। जो प्राणी एक बार यहां आ जाता है, वह पुनः संसार सागर रूपी संकट में पतित

नहीं होता। सत् इन ब्रह्मा का ही नाम है। अतः उनके उत्तम भुवन का नाम "सत्य" लोक है। उसके ऊपरी भाग में कुछ भी नहीं है। केवल इस लोक के कुछ ऊपर ब्रह्मा के अण्डकपाल की अधः सीमा में वैकुण्ठलोक है। हे राजन्! मुक्त पुरुष यहीं निवास करते हैं। उस स्थान में साक्षात् योगेश्वर योगीगण के चिन्तनीय प्रभु जनार्दन का निवास है। वे चैतन्य देह तथा सान्द्र-आनन्दरूप हैं। उनको प्राप्त करके व्यक्ति मृत्युपथ का पथिक नहीं होता। लोक स्रष्टा मत्स्यकूर्मादि रूप से लोक का रक्षण करने वाले तथा रुद्ररूपेण संहर्त्ता देवश्रेष्ठ इसी स्थान पर निवास करते हैं।" इन्द्रद्युम्न से देवर्षि यह बात करते-करते ब्रह्मभवन पहुंच गये।।३४-४२।।

क्षणेन च सभाद्वारि प्रकोष्ठे स न्यवर्तत। यत्रतिष्ठन्तिदिक्पालाःशक्राद्याःपरितस्तथा।।४३।।
चिरकालंध्यानपरास्तथामन्वन्तराधिपाः। पृथग्जननिभाद्वाःस्थनिषिद्धान्तःप्रवेशनाः।।४४।।
इन्द्रद्युम्नेन सहितं नारदं प्रविलोक्य सः। द्वारपालः सविनयं ननामाऽऽनतकन्धरः।।४५।।
चतुर्दशानां लोकानांभ्रमणेरसिक ! प्रभो। त्वयाविनाशोभतेनोस्वामिंस्तवपितुःसभा।।४६।।
सन्त्येव मुनयः श्रेष्ठा ब्राह्मणा ब्रह्मविद्वराः।
गौतमाद्यास्तथाऽप्येषा न रम्या ब्रह्मणः सभा।।४७।।
बहुतारासु रजनी चन्द्रेणेव प्रकाशते। इति स्तुवन्ददौ तस्य प्रवेशं विनयान्वितः।।४८।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कल-
खण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे राज्ञइन्द्रद्युम्नस्यनारदेनसाकंब्रह्म-
सदनगमनंनामद्वाविंशोऽध्यायः।।२२।।

—***—

क्षणकाल में ही उन्होंने सभाद्वार के प्रकोष्ठ में जाकर देखा कि द्वार पर इन्द्रादि देवता, पितर, मन्वन्तर के अधिपतिगण दीर्घकाल से सामान्य क्षुद्र लोगों के समान दीर्घकाल से द्वारपाल का अनुनय-विनय कर रहे थे। तब भी द्वारपाल उनको किसी प्रकार से अन्दर प्रवेश नहीं दे रहे थे। इन्द्रद्युम्न के साथ नारद को देखते ही द्वारपाल अवनत हो गया तथा उसने नारद को प्रणाम किया, तदनन्तर द्वारपाल कहने लगा—"हे प्रभो! आप चतुर्दश भुवनों में भ्रमण करने वाले हैं। हे स्वामी! आपके बिना आपके पितृदेव की (ब्रह्मसभा) सभा शोभायमान नहीं हो रही है। यद्यपि वहां ब्रह्मतत्पर, ब्रह्मज्ञप्रवर अनेक श्रेष्ठ गौतमादि मुनि विद्यमान हैं, तथापि आपके बिना वह सभा शोभित नहीं हो रही है। जैसे रात्रि में भले ही अनेक तारा उगे हों, तथापि तारानाथ चन्द्रमा के बिना आकाशमण्डल शोभायमान नहीं होता।" द्वारपाल ने यह स्तुति करने के पश्चात् विनयपूर्वक नारद तथा राजा को अन्दर प्रवेश करने के लिये द्वार उन्मुक्त कर दिया।।४३-४८।।

।।द्वाविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

त्रयोविंशोऽध्यायः

राजा द्वारा ब्रह्मदर्शन, देवगण का ब्रह्मदर्शन एवं ब्रह्मा का वैभव वर्णन

नारद उवाच

दौवारिकाऽयंराजर्षिरिन्द्रद्युम्नोमहायशाः। सार्वभौमोवैष्णवाग्र्योधातारंद्रष्टुमागतः॥१॥
यात्वयं पुरतस्तस्य यदि त्वमनुमन्यसे। इत्युक्तस्तं पुनः प्राह नारदं मणिकोदरः॥२॥
स्वामिंस्त्वयाऽऽगतो योऽसौ न सामान्यो हि बुध्यते।
यत्र पश्यसि दिक्पालान्पितॄन्मन्वन्तराधिपान्॥३॥
तत्राऽयं मर्त्यनिलयस्तिष्ठेदपि हि पौरुषम्। भवान्गत्वा पद्मयोनिंविज्ञाप्यैनंप्रवेशय॥४॥
सभाद्वारगतो योऽसौदिक्पालैःसह यास्यति। एकाग्रचित्तोभगवान्गायनेचतुराननः॥५॥
अस्माकंद्वारियुक्तानांप्रतीक्ष्योऽवसरोध्रुवम्। नक्रोधोमयिकर्त्तव्योदासेतवपितुश्चते॥६॥
इत्युक्तो नारदो गत्वा ब्रह्माणं जगतां पतिम्। नत्वासाष्टाङ्गपतनंविज्ञप्तोवसुधाधिपः॥७॥
कटाक्षेणाऽदिशत्सोऽथ इन्द्रद्युम्नप्रवेशनम्। नोवाच किञ्चिद्भगवान्गानेदत्तावधानतः॥८॥

नारद कहते हैं—"हे दौवारिक (द्वारपाल) ये राजर्षि, महान् यशस्वी सार्वभौम तथा वैष्णवचूड़ामणि इन्द्रद्युम्न विधाता के दर्शनार्थ आये हैं। तुम्हारी अनुमति पाकर ये ब्रह्मा के पास जा सकेंगें।" द्वारपाल ने नारद का कथन सुनकर उन मुनिप्रवर से कहा "हे स्वामी! आप के साथ जो कोई भी आये हैं, उनको कदापि सामान्य व्यक्ति नहीं कहा जा सकता! यहां जो दिक्पाल, पितर, मन्वन्तरपति खड़े हैं तथा ये अमित प्रभावशाली मर्त्यलोकवासी राजा भी यहां कुछ क्षण रुकें। आप पद्मयोनि ब्रह्मा के पास जाकर यह विषय उनसे कहकर तब इनको सभा में ले जायें। मैं द्वार पर नियुक्त उनके अधीन व्यक्ति हूं। इसलिये मुझे स्वामी के आदेश की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। इसलिये आप अपने एवं अपने पिता के इस दास के प्रति क्रोध न करें।" दौवारिक की यह प्रार्थना सुनकर नारद ऋषि जगत्पति ब्रह्मा के पास गये तथा उनको साष्टाङ्ग प्रणाम करके उन्होंने पृथिवीपति इन्द्रद्युम्न के सम्बन्ध में जैसे ही ब्रह्मदेव को अवगत कराया, विधाता ने तत्काल नेत्रों के संकेत से इन्द्रद्युम्न को वहां लाने का आदेश दिया। उस समय ब्रह्मसभा में संगीत हो रहा था। अतएव ब्रह्मदेव का ध्यान उस ओर था। अतः उन्होंने मुख से कुछ नहीं कहा।।१-८।।

दिव्यगायनसङ्गीते कौतुकाविष्टमानसः। ज्ञात्वेङ्गितं नारदोऽथ! इन्द्रद्युम्नंनृपोत्तमम्।
प्रवेशयामास ततः शक्राद्यैः सुनिरीक्षितः॥९॥
दृष्ट्वा पितामहं दूरात्स्त्रष्टारं जगतां नृपः। अमन्यत द्विजश्रेष्ठाः साक्षाद्दारुमयं हरिम्॥१०॥
शनः शनैर्ययौ भूपः प्रणमंश्च कृताञ्जलिः। स्तुवन्नमन्प्रणिपतन्साध्वसस्खलितंव्रजन्।
किञ्चिद्दूरे स्थितो भूपो नारदस्य निदेशतः॥११॥

उत्तम गायन तथा संगीत के कारण नारद कौतूहलान्वित हो गये। नारद के संकेत से राजश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्न को सभा में प्रवेश कराया गया। यह इन्द्रादि देवता विस्मय से देखने लगे।

हे द्विजगण! राजा ने दूर से जगत्स्रष्टा पितामह को देखा। तदनन्तर इतने दिन के उपरान्त उन्होंने उन दारुनिर्मित जगन्नाथ को साक्षात् जगन्नाथ स्वीकार किया। राजा इन्द्रद्युम्न अंजलिबद्ध होकर धीरे-धीरे आगे बढ़े तथा उन्होंने ब्रह्मदेव को प्रणाम किया। तत्पश्चात् वे स्तव, नमस्कार तथा प्रणिपात करते हुये भय से लड़खड़ाते आगे बढ़े तथा नारद के आदेशानुसार ब्रह्मा के आसन से कुछ दूरी पर खड़े हो गये।।९-११।।

ततः पुण्यं गीयमानं चरितं सिन्धुजापतेः। शृण्वंश्चतुर्मुखस्तस्थौमुहूर्त्तंद्विजपुङ्गवाः॥१२॥
सावित्रीशारदाभ्यांचवीज्यमानस्तुपार्श्वयोः। शुद्धदेहधरैर्वैदैः स्तूयमानःस्वयम्भुवः॥१३॥
कलाकाष्ठानिमेषादि कल्पयन्युगपर्ययम्। न जराजन्ममरणं रूपादिपरिणामनम्॥१४॥
यस्य लोकगतानां वै नाऽऽधयोव्याधयस्तथा। मन्वन्तरादयोयत्रयुगावर्त्तादयस्तथा॥१५॥
कल्पान्ताद्या न विद्यन्ते स साक्षात्परमेश्वरः। गीतावसानेतं भूपमुवाच प्रहसन्निव॥१६॥
इन्द्रद्युम्नमहासत्त्वसाक्षात्त्वंभगवत्प्रियः। अन्यस्यदुर्लभोलोकःसत्याख्योविदितस्तव॥१७॥
अत्रागतिंहिवाञ्छन्तोमुनयःक्षीणकल्मषाः। तपोनिष्ठाश्चतिष्ठन्तियावदाभूतसम्प्लवम्॥१८॥
चतुर्दशसुलोकेषुसृष्टानांप्राणिनांहियत्। चैतन्यादिविचित्राणिसर्वेषामाश्रयोह्यसौ॥१९॥
जानन्नपि हि तत्कार्यं मानयन्नृपसत्तमम्। उवाच परमप्रीत इन्द्रद्युम्नं पितामहः॥२०॥
किमर्थमागतोऽस्यत्रतद्ब्रूहिहृदयस्थितम्। मयि दृष्टेन दुष्प्रापममृतंकिन्नुवाञ्छितम्॥२१॥

हे द्विजगण! तदनन्तर लक्ष्मीनाथ के परम पवित्र चरित्रगायन का श्रवण करते-करते ब्रह्मा मुहूर्त तथा कालस्थिति का आकलन करने लगे। देवी सावित्री तथा देवी वागदेवी उनके दोनों पार्श्व में पंखा चामर झलने लगीं। निर्मल देहधारी देवगण भी इस स्वयम्बर में ब्रह्मा का स्तव करने लगे। ब्रह्मा स्वयं कला-काष्ठा निमेषादि द्वारा युगपर्यय की गणना करते हैं। जिनके लोक के व्यक्तिगण में जरा-जन्म-मरण-तथा रूप परिवर्त्तन आदि का संघटन नहीं होता तथा जिनमें आधि-व्याधि का लेश भी नहीं रहता, जिनके लोक में मन्वन्तर, युगावर्त्तन तथा कल्पान्तरादि कुछ भी नहीं रहता, उन साक्षात् परमेश्वर ने गीत समाप्ति पर राजा से प्रसन्न मुद्रा में कहा—"हे इन्द्रद्युम्न! महासत्व! तुम भगवान् के साक्षात् प्रियपात्र हो। मेरा यह सत्यलोक अन्य के लिये दुर्लभ है, यह तो तुमको ज्ञात ही है। निष्पाप मुनिगण भी इस लोक में आगमन की कामना करते हैं। महाप्रलयकाल तक वे तपस्या परायण रहते हैं। चौदह भुवनों में सृष्ट प्राणीगण हेतु जो पृथक्-पृथक् विचित्र चैतन्य विषय रहता है, वह सब इस लोक का आश्रय लेकर विद्यमान रहता है।" यद्यपि पितामह इन्द्रद्युम्न के समस्त उद्देश्य को जानते थे, तथापि उन्होंने प्रेमपूर्वक उनसे ससम्मान पूछा—"तुम यहां किस प्रयोजन से आये हो? मनोगत विषय कहो। जब तुमको मेरा दर्शन मिल गया है, तब अमृत भी तुम्हारे लिये दुष्प्राप्य नहीं है। सामान्य वांछित विषय की तो बात ही क्या?।।१२-२१।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

अन्तर्यामिन्हि भगवंस्त्वदज्ञातंकुतो भवेत्। तथाऽपि प्रश्नोयोनाथमय्यनुक्रोशएवसः॥२२॥

मूर्ध्न्याधाय तवाऽनुज्ञां कथितं तव सूनुना। इष्टाः सहस्रं क्रतवस्तदन्ते दारुदेहभृत्॥२३॥
आविर्बभूव भगवान्भूतभव्यभवत्प्रभुः। त्वदनुग्रहसम्पत्तिवशादेवाऽवलोकयन्॥२४॥
तादृशं पुण्डरीकाक्षं येन त्वल्लोकमागतः। यस्यारब्धोमयादेवप्रासादस्तत्रचेत्स्वयम्॥२५॥
गत्वा देवं जगन्नाथंस्थापयिष्यसिचेत्प्रभो !। त्वदनुग्रहस्तुसफलोभवेन्मेलोकभावन॥२६॥
एतदर्थं जगत्स्वामिन्नारदेन सहाऽधुना। त्वत्पादमपद्मयुगलं द्रष्टुं त्वल्लोकमागतः॥२७॥
प्रसीद मां कुरुष्वेदं जगन्नाथस्त्वमेव हि। त्वमेव स जगन्नाथो न भेदो युवयोर्विभो !॥२८॥
स्थाप्यः स्थापयिता चाऽसि वेद्यो वेदयिता भवान्॥२९॥

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—हे भगवान्! आप अन्तर्यामी हैं। आपसे क्या छिपा है? तथापि आपने जो प्रश्न किया है वह मेरे प्रति करुणा ही है। हे नाथ! आपके पुत्र देवर्षि से मैंने आपकी आज्ञा को सुनकर उसे शिरोधार्य किया तथा १००० अश्वमेध यज्ञ भी सम्पन्न कर लिया। उसके सम्पन्न हो जाने पर भूत-भविष्य-वर्त्तमान के प्रभु जगन्नाथ दारुमय (काष्ठमय) देह से आविर्भूत हुये हैं। आपके अनुग्रह द्वारा उन पुण्डरीकाक्ष देव का अवलोकन करके आपके इस सत्यलोक में आगमन कर सका हूं। हे प्रभो! मैं उनकी कृपा से सफल हो गया हूं। हे प्रभो! यदि भगवान् स्वयं चल कर उस प्रासाद में जगन्नाथदेव की स्थापना करें, तब हे लोकभावन! मेरे प्रति आपकी कृपा सफल हो जायेगी। मैं इसीलिये अब ऋषिवर नारद के साथ आपके चरणकमल के दर्शनार्थ आपके लोक में आया हूं।

हे जगत्स्वामी! आप मेरें प्रति प्रसन्न होकर मेरा अभीष्ट साधन करिये। आप ही जगन्नाथ हैं। हे विभु! आप ही वे जगन्नाथ हैं। आपमें तथा उनमें मुझे कोई भेद प्रतीत नहीं होता। इस समय उनकी स्थापना होनी है तथा आप स्थापना कर्त्ता हैं। वे हैं वेद्य, आप हैं वेदयिता।।२२-२९।।

जैमिनिरुवाच

एवंविज्ञापनान्ते तु दुर्वासाः स महामुनिः। प्रणम्यसाष्टाङ्गपातं कृताञ्जलिरुपस्थितः।
प्रोवाच विनयान्नीचो धातारं जगतां गुरुम्॥३०॥
विभो ! द्वारप्रवेशेऽत्रदौवारिकनिवारिताः। लोकपालाः सपितरस्तथामन्वन्तराधिपाः॥३१॥
तिष्ठन्ति दीनजनवत्सुचिराल्लोकभावन !। तदाज्ञापय पश्यन्तु तव पादसरोरुहम्॥३२॥
तच्छ्रुत्वा देवदेवस्तु तदा दुर्वाससो वचः। प्रहस्य वचनम्प्राह नैषां प्रस्ताव एवहि॥३३॥
इन्द्रद्युम्नेनस्पर्द्धन्तेकिन्तु मोहवशानुगाः। जीवन्मुक्तोऽयंनृपतिःक्षीणकर्माऽघसंहतिः॥३४॥
मत्सन्ततेः पञ्चमोऽयं वैष्णवोविष्णुतत्परः। एतेहिसुखभोगायकर्मणा प्राप्तपौरुषाः॥३५॥
अत्राऽगतिं प्रार्थयन्तस्तपस्तप्त्वा हि देवताः। ममानुग्रहत एते आयाता मदुपासने॥३६॥
तथापि त्वदनुज्ञाता आयान्तु मम दर्शने। ततः प्रविष्टास्ते देवा दुर्वासोवचनेन वै॥३७॥
दूरात्प्रणेमुर्ब्रह्माणं गायनानां समीपतः। इन्द्रद्युम्नं नरपतिं सँल्लपन्तं कृताञ्जलिम्॥३८॥
ताँल्लोकपालान्प्रणतान्कटाक्षेण जगत्प्रभुः। अनुजग्राह कथयन्निन्द्रद्युम्नं ससादरम्॥३९॥

जैमिनि कहते हैं—जब नरपति इन्द्रद्युम्न ने इस प्रकार प्रार्थना किया, तब वहां मुनिवर दुर्वासा का उस ब्रह्मसभा में सहसा आगमन हुआ। वे उस ब्रह्मसभा आये तथा उन्होंने भगवान् ब्रह्मा को अंजलिबद्ध होकर प्रणाम किया और विनयपूर्वक विधाता से कहने लगे—"हे विभु! आप के द्वार पर लोकपालगण तथा मन्वन्तराधिपगण द्वारपाल से रोके जाने के कारण अत्यन्त दीनों के समान दीर्घकाल से खड़े हैं। हे लोकभावन! आदेश करिये! वे आकर आपके चरणकमल का दर्शन करें।" देवदेव ब्रह्मा ने दुर्वासा का वाक्य सुनकर हंसते हुये कहा—"तुमने इन्द्रद्युम्न का प्रवेश तथा लोकपालों को रोके जाते देखकर यह बात कही है, लेकिन इन राजा के साथ उनकी कभी भी बराबरी नहीं हो सकती। उन्होंने मोह के वशीभूत होकर क्या इन्द्रद्युम्न से स्पर्द्धा किया है! यह राजा जीवन्मुक्त है। इसने सत्कर्मों के द्वारा पापों का क्षय किया है। वह मेरी पांचवी पीढ़ी की सन्तान है जो वैष्णव एवं विष्णु तत्पर हैं। ये देवता केवल सुखभोगार्थ कर्माचरण करते हैं। ये पौरुष प्राप्त करके मेरे इस लोक में आकर तप करके मेरे अनुग्रह से मेरी उपासना की इच्छा लेकर यहां द्वार तक आ सके हैं। जो भी हो, अभी वे तुम्हारी प्रार्थना से तथा तुम्हारी आज्ञा से मुझे देखने के लिये यहां आ सकते हैं।" तदनन्तर दुर्वासा के बुलाये जाने के कारण देवता सभा में प्रविष्ट हो गये तथा गायकों के समीप तक आकर दूर से ही ब्रह्मा को प्रणाम किया। जगत्प्रभु पद्मयोनि ब्रह्मा ने वहां उपस्थित हाथ जोड़कर खड़े इन्द्रद्युम्न तथा सभी प्रणत लोकपालगण को कटाक्ष से देखकर अनुगृहीत किया तथा नृपति से सादर कहने लगे।।३०-३९।।

राजन्कृतस्त्वया सत्यं प्रासादो भगवत्स्थितौ।
नाऽयं कालस्तथा राज्यं न वा त्वत्सन्ततिर्नृप !।।४०।।
गीतगानावसरतो भूयान्कालोगतस्तव। मन्वन्तरो हि दिव्यानांयुगानामेकसप्ततिः।।४१।।
तव वंशोऽपि विच्छिन्नः कोटिशः क्षितिपा गताः।
देवोऽन्तिमश्च प्रासादो द्वयमत्राऽवशिष्यते।।४२।।

ब्रह्मदेव कहते हैं—तुमने जो भगवान् के लिये प्रासाद निर्माण किया है, वह बात तो यथार्थ है, तथापि जब उस प्रासाद का निर्माण हुआ था, तब से अत्यन्त दीर्घ काल व्यतीत हो चुका है। तुम्हारा वह राज्य भी विलुप्त हो गया है। तुम्हारी सन्तान-सन्तति परम्परा भी नहीं बची है। यहां जितने समय यह गायन-संगीत चल रहा था उस समय से मानवों का अत्यन्त दीर्घकाल व्यतीत हो चुका। देवगण के ७१ युग का एक मन्वन्तर होता है। इस मन्वन्तर काल में केवल तुम्हारा वंश विच्छिन्न हुआ हो, ऐसा नहीं है। इतनी देर में तो करोड़ों-करोड़ों राजा भी विगत हो चुके। केवल वह दारुमूर्त्ति देवदेव तथा तुम्हारा वह प्रासाद, यह दो ही विद्यमान है।।४०-४२।।

द्वितीयस्य मनोरादियुगं स्वारोचिषस्य तु। ममान्तिकेऽत्रवसतोमृत्युर्वानजरातथा।।४३।।
विपर्ययमृतूनां वा न कालपरिणामता। तद्गच्छ भूमौ राजेन्द्र ! देवं प्रासादमेव च।।४४।।
आत्मसम्बन्धिनं कृत्वा पुनरायाहि वेगवान्। अथवाऽहं प्रयास्यामितवानुपदमेव हि।।४५।।
त्वमग्रतो धरां गत्वा यावत्सम्भारमृद्धिमत्। करिष्यसि महाभाग ! तावदेव व्रजाम्यहम्।।४६।।
इत्याज्ञाप्येन्द्रद्युम्नं तं भगवान्सपितामहः। देवान्पुरःस्थितानाह विनयानतकन्धरान्।।४७।।

बद्धाञ्जलीन्साध्वसांस्तांस्तत्पादन्यस्तवीक्षणान्।
उवाच भगवान्स्निग्धगम्भीरवचसा द्विजाः !॥४८॥

किमर्थमागताः सर्वे युगपत्तुदिवौकसः। यत्कार्यं वो मया कार्यं विज्ञापयतमाचिरम्॥४९॥

द्वितीय मनु स्वरोचिष का यह आदियुगकाल तुमने मेरे पास व्यतीत किया है। मेरे पास रहने के कारण तुम मृत्यु अथवा जरा के वश में नहीं हो सके। ऋतुविपर्यय तथा काल परिणाम भी तुमको अनुभूत नहीं हो सका। हे राजेन्द्र! अब तुम पृथिवी पर जाओ। देवता तथा देव प्रासाद का कार्य सम्पन्न करके शीघ्र मेरे पास आओ। अथवा आना आवश्यक है क्या? मैं तुम्हारे पीछे आता हूं। तुम आगे-आगे पृथिवी पर जाकर समृद्धिपूर्वक द्रव्यसम्भार का आयोजन करो। मैं उस अवसर पर वहां उपस्थित हो जाऊंगा। हे द्विजगण! भगवान् पितामह ने इन्द्रद्युम्न को यह आज्ञा प्रदान किया तथा सामने आकर खड़े हाथ जोड़कर विनय से कंधे झुकाकर अपने चरण कमलों की ओर देखने वाले देवताओं से स्निग्ध गंभीर वाणी में कहा।

ब्रह्मदेव कहते हैं—हे स्वर्गनिवासी देवगण! तुम सब मिलकर किस निमित्त आये हो? तुम्हारा क्या कार्य करना है, उसे शीघ्र कहो।।४३-४९।।

जैमिनिरुवाच

इति श्रुत्वा वचो धातुस्त्रिदशाविगतज्वराः। प्रत्यूचुर्हर्षिताःसर्वे भगवन्त पितामहम्॥५०॥

जैमिनि कहते हैं—विधाता का सादर वाक्य सुनकर सभी देवगण ने भगवान् पितामह से हर्षित होकर कहा।।५०।।

देवा ऊचुः

उपासितः पुराऽस्माभिर्योनीलाद्रौमणीमयः। अन्तर्हितःकथन्देव इदानीं दारुदेहधृक्॥५१॥
आविर्भूतः क्रतोरन्त इन्द्रद्युम्नस्य भूपतेः। एतस्य कारणं ज्ञातुं भवतः पादपङ्कजम्॥५२॥
आराधितुमिहाऽऽयाताः प्रसीद कथयस्व तत्। इत्युक्तेत्रिदशैर्देवोभगवान्पङ्कजासनः॥५३॥

देवता कहते हैं—''हमने इतिपूर्व नीलपर्वत पर जिन नीलमणिमय देवाधिदेव की उपासना किया था, वे क्यों अन्तर्हित् हो गये? अब वे किस कारण से इन्द्रद्युम्न राजा के यज्ञावसान में दारुरूप धारण करके आविर्भूत हो गये? हम इस विषय का कारण जानते ही आपके चरणकमल की आराधना करने के पश्चात् यहां आ सके हैं।'' देवगण की यह जिज्ञासा सुनकर भगवान् पद्मासन ब्रह्मा ने उत्तर दिया।।५१-५३।।

रहस्यमेतद्वो देवाः कस्यचिन्नोदितं पुरा। सर्वे समुदिता यस्मादपृच्छत चिरागताः॥५४॥
ततो वः कथयिष्यामि सुराणांगुह्यमुत्तमम्। पूर्वेपरार्द्धे भो देवाःक्षेत्रंश्रीपुरुषोत्तमम्॥५५॥
नीलाश्मवपुरास्थाय न तत्याज जनार्दनः। साम्प्रतं मे द्वितीयन्तुपरार्द्धंसमुपस्थितम्॥५६॥
मनुःस्वायम्भुवो नाम श्वेतवाराहकल्पके। प्रवर्त्ततेऽयं कालो वै प्रातराद्यदिनस्य च॥५७॥
दारुमूर्तिरयं देवो भुवनानां हि मध्यमे। ममाऽऽयुषः प्रमाणन्तुस्थास्यतेमानयन्प्रभुः॥५८॥
ममाऽऽत्मा एष भगवानहमेतन्मयः सुराः। नावयोर्विद्यते किञ्चिदस्मिन्स्थावरजङ्गमे॥५९।

क्षीरोदार्णवमध्येहि श्वेतद्वीपेहि तल्पके। यः शेते योगनिद्रां तां मानयन्पुरुषोत्तमः॥६०॥
समूलंजगतामादिस्तस्यरोमाणियानिवै। तानि कल्पद्रुमाख्यानिशङ्खचक्राङ्कितानिवै॥६१॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—"हे देवगण! मैंने यह गोपनीय विषय किसी से भी प्रकाशित नहीं किया था, तथापि तुमलोग अत्यन्त आग्रह के साथ जिज्ञासु होकर यहां दीर्घकाल से आये हुये थे, अतः यह देवताओं से भी गुह्य वृत्तान्त कहता हूं। हे देवगण! इसके पूर्व मेरे कालमान से एक परार्द्धकाल पर्यन्त इस पुरुषोत्तम क्षेत्र में भगवान् जनार्दन नीलकान्तमणिमय शरीर धारण करके स्थित थे। जब द्वितीय परार्द्धकाल उपस्थित हो गया, तब मेरे आज के दिन के प्रातःकाल के श्वेत वाराहकल्प में स्वायम्भुव मनु का काल प्रवर्त्तित हुआ। प्रभु जनार्दन इस मेरे इस प्रातः समय से सभी भुवनों में से भूलोक में दारुमूर्त्ति में ही अधिष्ठित हो गये। मेरी परमायु शेष होने तक प्रभु इसी रूप में अवस्थान करेंगे। हे सुरगण! भगवान् मेरी आत्मा हैं। मैं भी उनकी आत्मा हूं। इस स्थावर जंगम सृष्टि में मुझमें तथा उनमें कोई भेद ही नहीं है। जो पुरुषोत्तम क्षीरसागर में श्वेतद्वीप रूप शय्या पर योगनिद्रादेवी का आश्रय लेकर शयनरत हैं, वे पुरुषोत्तम ही इस सचराचर जगत् के आदि कारण हैं। उनके शरीर की रोमराशि ही वह कल्पद्रुम है तथा वह शंख-चक्र चिह्न युक्त है।।५४-६१।।

तन्मध्यस्थोह्ययंवृक्षश्चैतन्याधिष्ठितःसुराः। स्वयमुत्पतितःसिन्धोःसलिलेसत्यपुरुषः॥६२॥
भोगान्भोक्तुंत्रिलोकस्थान्दारुवर्ष्मा जनार्दनः। अनेकजन्मसाहस्रैर्भक्तियोगेनभावितः॥६३॥
घोरसंसारनाशाय मया पूर्वं प्रयाचितः। पुनः पुनः सृष्टिलीनपालनोद्विग्नचेतसा॥६४॥
अशेषकर्मनाशाय जगतां सर्वमुक्तये। धारणाध्यानयोगानां दुष्कराणां विनाऽपि सः॥६५॥
मोक्षाय भगवानाविर्बभूव पुरुषोत्तमः। प्रच्छन्नं वपुरेतस्य क्षेत्रं नाऽस्य विचारयेत्॥६६॥
धर्मिग्राहप्रमाणेन यादृग्दृष्टः स एव सः। चतुर्वर्गप्रदो देवो यो यथा तं विभावयेत्॥६७॥
तद्दर्शनपरिक्षीणपापसङ्घाः क्रमाद्भुवि। भवन्ति निर्मलात्मानः पुरुषा मुक्तिभाजनम्॥६८॥

उसमें चैतन्याधिष्ठानभूत वह सारपौरुष वृक्ष पहले उस सागर जल में स्वयं गिरा। उन जनार्दन ने त्रिलोकस्थ समस्त भोग भोगने हेतु उस दारुविग्रह को धारण किया है। ये हजारों-हजार जन्मों में भक्ति के साथ चिन्तनीय होते हैं। मैंने इनसे पहले घोर संसार के विनाशार्थ इनसे प्रार्थना किया था, इसलिये ये प्रभु पुनः-पुनः सृष्टि-पालन तथा लय हेतु नितान्त उद्विग्न हो गये। जीवगण के अन्तहीन कर्म के विनाशार्थ तथा जगत् में मुक्ति सम्पादनार्थ ध्यान-धारणादि दुष्कर योगों के बिना भी मोक्ष प्रदान करने की इच्छा से भगवान् पुरुषोत्तम आविर्भूत हुये। उनकी इस गोपनीय दारुमूर्त्ति के सम्बन्ध में विशेष वितर्क करना उचित नहीं है। जो जिस भाव को लेकर उनका दर्शन करते हैं, धर्मात्मा लोगों द्वारा मान्य प्रमाण के अनुसार वे प्रभु उस व्यक्ति को उसी प्रकार से धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को एक साथ प्रदान करते हैं अथवा इन चारों में से वह व्यक्ति जो प्रथमतः चाहता है, वह उसे प्रदान कर देते हैं। उनके दर्शन से लोग पाप रहित होकर भूमण्डल में निर्मलात्मा रूप से जीवन व्यतीत करते हैं तथा अन्त में मुक्त हो जाते हैं।।६२-६८।।

जैमिनिरुवाच

एच्छ्रुत्वा तुते देवाः पद्मयोनेर्वचोऽमृतम्। हृष्टा सञ्चिन्तयामासुःप्रहृष्टेनाऽन्तरात्मना॥६९॥

अचिरस्थायि देवत्वं विहायैतद्ध्रुवं गताः। अस्मिन्क्षेत्रवरे देवमाराध्यामः सुसंयताः॥७०॥
हर्षप्रफुल्लवदनान्सुरान्दृष्ट्वा पितामहः। इन्द्रद्युम्नानुग्रहाय यः प्रकाशं गतः प्रभुः॥७१॥
याताऽत्र प्रतिमा त्वस्यस्वयमेववदिष्यति। वरान्प्रदास्यतिबहून्भगवान्भक्तवत्सलः॥७२॥
प्रासादमिन्द्रद्युम्नस्य प्रतिष्ठापयितुं विभुम्। अहञ्चाऽपिगमिष्यामियूयंतत्र प्रयात वै॥७३॥
इन्द्रद्युम्नोऽग्रतो यातु प्रतिष्ठावस्तुसम्भृतौ। सहायास्तत्रभवतयूयंक्षीणाधिकारिणः॥७४॥
मन्वन्तरं व्यतीतं वै प्रथमं साम्प्रतं सुराः। इन्द्युम्नेन सहितास्तत्र गत्वा सुरोत्तमाः॥७५॥

प्रासादप्रतिमानां च विधर्ता स्वाम्यमस्य वै।
तस्मात्सम्भृत सम्भारः ससहायोऽधुना ह्यसौ॥७६॥

अस्यसन्तति सम्बन्धस्मरणादपि भूतले। मदाज्ञया पद्मनिधिः सह यास्यतिभूतलम्॥७७॥
प्रतिष्ठायै भगवतःसंयतौ सर्ववस्तुनः। इन्द्रद्युम्नोऽपि हृष्टात्मा दृष्ट्वाब्राह्मींश्रियंद्विजाः॥७८॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—देवताओं ने पद्मयोनि ब्रह्मा का यह अमृतायमान वाक्य सुना तब वे प्रसन्न होकर हर्षित अन्तःकरण से विचार करन लगे। "हम आज इस अचिरस्थायी देवत्व का त्याग करके भूलोक चलें तथा उस उत्तम क्षेत्र में देवोत्तम की आराधना संयत होकर करें।" पितामह ने तब देवगण का हर्ष से उत्फुल्ल लोचन द्वारा निरीक्षण करके कहा—"जो इन्द्रद्युम्न पर अनुग्रह करके प्रकट हुये हैं, उनका जो मासिक यात्रा उत्सव है, उसे वे स्वयं कहेंगें और वे भक्तवत्सल प्रभु अनेक वर प्रदान भी करेंगे। इन्द्रद्युम्न के प्रासाद में मैं प्रभु की प्रतिष्ठा करने स्वयं जाऊंगा। तुम सब भी वहां जाओ। इन्द्रद्युम्न प्रतिष्ठा हेतु वस्तु आदि एकत्र करने पहले जायें। तुम सब इसी क्षण अपने-अपने कार्याधिकार का त्याग करके पहले वहां जाओ। सम्प्रति प्रथम मन्वन्तर व्यतीत हो गया। इसलिये इन राजा वाली वह प्रतिमा तथा उस प्रासाद के निर्णयार्थ तुम सब श्रेष्ठ देवता राजा के साथ वहां शीघ्र जाओ। राजा को सन्तति के सम्बन्ध में स्मरण तक नहीं है। अतः यह राजा सहायहीन है। अतएव तुम सब प्रतिष्ठार्थ द्रव्य की व्यवस्था करो। मेरी आज्ञा से पद्मनिधि भी भगवान् की प्रतिष्ठा हेतु समस्त वस्तु-सम्पत्ति की व्यवस्था के लिये तुम लोगों के साथ जायेगी।" हे द्विजगण! ब्रह्मा के इस आदेश को सुनकर तथा उनके इस आधिपत्य को देखकर हर्षित हो गये।।६९-७८।।

महदाश्चर्यसम्पन्नः प्रणिपत्यजगद्गुरुम्। तदाज्ञांशिरसाधृत्वादेवैःक्षीणाधिकारिभिः॥७९॥

आजगाम भुवं विप्रा विधिना चाऽनुमोदिताः॥८०॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे राज्ञाब्रह्मदर्शनमनुपृथ्वीसमागमनवर्णनंनामत्रयोविंशोऽध्यायः।।२३।।

—❊❊❊—

वे आश्चर्यान्वित हो गये तथा जाने के पूर्व उन्होंने भगवान् ब्रह्मा को प्रणाम किया। तदनन्तर उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करके अपने अधिकार का त्याग किये हुये उन देवगण के साथ भूलोक पहुंचे।।७९-८०।।

।।त्रयोविंश अध्याय समाप्त।।

चतुर्विंशोऽध्यायः

भूलोक में आये देवताओं द्वारा विष्णुस्तव, पद्मनिधि का स्वागत

जैमिनिरुवाच

आगत्य च जगन्नाथं चिरादुत्कण्ठमानसः। दण्डवत्प्रणनामाऽसौघनरोमाञ्चकञ्चुकः॥१॥
नमोब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च। प्रणतार्तिविनाशाय चतुर्वर्गैकहेतवे॥२॥
हिरण्यगर्भपुरुषप्रधानव्यक्तरूपिणे। ॐ नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वरूपिणे॥३॥
इत्युच्चरन्स्तुतिं भूपः सानन्दाश्रुविलोचनः। प्रदक्षिणं पुनःकुर्वन्ननाम च पुनः पुनः॥४॥
ततोऽन्या देवता या वैतत्रागच्छन्मुदान्विताः। तुष्टुवुःप्रणतादेवंकृताञ्जलिपुटा मुदा॥५॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—इन्द्रद्युम्न चिरकाल के उपरान्त उत्कण्ठित चित्त से भूलोक आये तथा रोमांचित देह से उन्होंने जगन्नाथ देव को दण्डवत् प्रणाम किया और कहा—"जो ब्रह्मण्यदेव तथा गो-ब्राह्मणगण के हितैषी हैं, जो प्रणतजन के अशुभ का नाश करते हैं तथा जो चतुर्वर्ग प्राप्ति के एकमात्र निदान हैं, जो हिरण्यगर्भ पुरुष प्रधान तथा अव्यक्तरूपी हैं तथा विशुद्ध ज्ञानमूर्त्ति हैं, उन वासुदेव को प्रणाम!" इस प्रकार इन्द्रद्युम्न ने बहुविध स्तुति वाक्यों से स्तुति करके आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्रों से प्रदक्षिणा किया तथा वे पुनः-पुनः प्रणाम करने लगे। तदनन्तर सभी देवता वहां उपस्थित होकर हर्षपूर्वक हाथ जोड़कर नतशिर हो देवदेव का स्तव करने लगे।।१-५।।

देवा ऊचुः

सहस्रशीर्षापुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं सर्वतोव्याप्यअध्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥६॥
यः पुमान्परमं ब्रह्म परमात्मेति गीयते। भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं पुरुष एव तत्॥७॥
एतावानस्य महिमा ज्यायानेष पुमान्प्रभुः।
पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्याऽमृतं दिवि॥८॥
छन्दांसिजज्ञिरेत्वत्तस्त्वत्तोयज्ञपुमानपि। त्वत्तोऽश्वाश्चव्यजायन्तगावोमेषादयस्तथा॥९॥
ब्राह्मणामुखतोजाताबाहुजाक्षत्रियास्तव। विशस्तवोरुजापद्भ्यांतथाशूद्राःसमागताः॥१०॥

देवगण कहते हैं—जिनके हजारों मस्तक हैं, हजारों ज्ञानेन्द्रियां हैं, सहस्रों कर्णेन्द्रियां हैं, वे समस्त पार्थिव देह में व्याप्त परमात्मा नाभि के ऊर्ध्व में १० अंगुलि स्थानोपरान्त हृदयपद्म में विज्ञानरूपेण स्थित रहते हैं। वे ही परमपुरुष, परमात्मा परब्रह्म कहे जाते हैं। वे भूत-भविष्य-वर्त्तमान रूप कालत्रय में भी हैं। इस प्रकार से प्रभु सर्वदेश-सर्वकाल में अपनी महिमा से व्याप्त रहते हैं। इसीलिये वे प्रभु सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वज्येष्ठ पुरुष हैं। समस्त पञ्चभूत उनके एकपाद हैं। ऋक्-यजुः तथा साम उनके तीन पाद हैं। इनका यह अमृतमय त्रिपादात्मक सूर्यरूप स्वर्ग में मुक्तिद्वार रूप है। हे देव! आप सर्वनियन्ता परमात्मा हैं। आप से ही छन्दों की उत्पत्ति हो गयी है। आप से ही अश्व, गौ, मेषादि उत्पन्न हैं। आपके मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उरु से वैश्य तथा पद से शूद्रों की उत्पत्ति हुई है।।६-१०।।

मनसश्चन्द्रमा जातश्चक्षुषस्ते दिवाकरः। कर्णाभ्यां श्वसनः प्राणैर्जिह्वायाहव्यवाडपि॥११॥
नाभितो गगनंद्यौश्चमूर्ध्नस्तेसमवर्तत। पादाभ्यां तेधराजातादिशश्चाऽष्टौश्रुतेर्गताः॥१२॥
सप्ताऽऽसन्परिधयस्त्वत्तएकविंशत्समिच्चवै। चराचराःसर्वभावास्त्वत्तएवहिजज्ञिरे॥१३॥
त्वमेवजगतां नाथस्त्वमेव परिपालकः। उग्ररूपश्च संहर्ता त्वमेव परमेश्वर !॥१४॥
त्वमेव यज्ञो यज्ञांशस्त्वंयज्ञेशःपरात्परः। शब्दब्रह्मपरं त्वं हि शब्दब्रह्माऽसिविश्वराट्॥१५॥
स्वराट् सम्राड् जगन्नाथ ! विराडसि जगत्पते !।
अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्त्वं त्वया व्याप्तं जगन्मय !॥१६॥
प्राप्नुवन्ति परंस्थानंत्वांयजन्तश्चयाज्ञिकाः। भोज्यंभोक्ताहविर्होताहवनंत्वंफलप्रदः॥१७॥

आपके मन से चन्द्रमा, चक्षु से सूर्य, कर्ण से प्राणादि पञ्चवायु, जिह्वा से अग्नि, नाभि से आकाश, मस्तक से स्वर्ग, पदयुगल से पृथिवी तथा कर्ण से आठों दिशा की उत्पत्ति कही गयी है। आप जब यज्ञपुरुषरूपेण आविर्भूत हुये तब सात समुद्र आपकी परिधि हो गये। उस यज्ञ की समिधि थे २१ प्रकार के छन्दः। यह चराचर जगत् आप से ही उत्पन्न है। हे परमेश्वर! आप जगन्नाथ हैं। आप ही जगत्पालक तथा उसके संहारक होकर उग्रमूर्त्ति धारण करते हैं। आप स्वप्रकाश, यज्ञा, यज्ञांश, यज्ञेश्वर, परमशब्दब्रह्म, विश्वप्रकाश ब्रह्मस्वरूप सम्राट हैं। हे जगन्मय! आप ही अधः, ऊर्ध्व तथा त्रिर्यक् प्रदेश में परिव्याप्त हैं। याज्ञिकगण आपकी उपासना करके परमस्थान लाभ कर लेते हैं। आप ही भोज्य तथा भोक्ता हैं। आप ही हवि-होता तथा फलप्रद होम हैं।।११-१७।।

समस्तकर्मभोक्तात्वं सर्वकर्मात्मकः प्रभो !। सर्वकर्मोपकरणं सर्वकर्मफलप्रदः॥१८॥
कर्मप्रेरयिता त्वं हि धर्मकामार्थसिद्धिदः। त्वामृतेमुक्तिदःकोऽन्योहृषीकेशनमोस्तुते॥१९॥
नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्त्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः॥२०॥
वयं च्युताधिकारास्त्वां प्रपन्नाःशरणंप्रभो !। त्राहिनःपुण्डरीकाक्षअगतीनांगतिर्भव॥२१॥
संसारपतितस्यैकोजन्तोस्त्वंशरणंप्रभो !। त्वत्सृष्टौत्वादृशोनास्तियोदीनपरिपालकः॥२२॥
दीनानाथैकशरणं पिता त्वं जगतः प्रभो !। पातापोष्टा त्वमेवेश सर्वापद्विनिवारकः॥२३॥
त्राहि विष्णो जगन्नाथ ! त्राहि नःपरमेश्वर !। त्वामृते कमलाकान्तकःशक्तःपरिरक्षणे॥२४॥
अन्तर्यामिन्नमस्तेऽस्तु सर्वतेजोनिधे नमः॥२५॥

हे प्रभु! आप ही सर्वकर्म भोक्ता तथा सर्वकर्मरूपी हैं। आप ही निखिल कर्म के उपकरण हैं। आप ही निखिल कर्म फल देते हैं। आप ही समस्त कर्म का नियोग करते हैं। आप ही धर्म-अर्थ-काम में सिद्धि देते हैं। हे हृषीकेश! आपके अतिरिक्त और कौन मुक्तिदाता है? वे अनंतदेव (बलभद्र) भी सहस्रमूर्त्ति तथा सहस्रपादयुक्त हैं। उनके सहस्रचक्षु तथा सहस्र शिर हैं। वे सहस्रशिर तथा सहस्रबाहु हैं। हे प्रभो! हम देवता अधिकारों से च्युत होकर शरण में आये हैं। हे पुण्डरीकाक्ष! हम अगति हैं। आप ही हमारे एकमात्र गति हैं। आप हमारी रक्षा

करिये। हे प्रभो! आप ही संसार सागर में पतित जीव के एकमात्र आश्रय हैं। आपकी समग्र सृष्टि में आपके समान दीनपालक कोई नहीं है। आप ही दीन-अनाथ के एकमात्र आश्रय हैं। हे प्रभु! आप ही जगत् के पिता हैं। हे ईश्वर! आप जगत् के पालक, रक्षक, आपत्ति निवारक हैं। हे विष्णु! जगन्नाथ! हे परमेश्वर! हे कमलाकान्त! आपके अतिरिक्त और कोई हमारी रक्षा में समर्थ नहीं है। आप हमारी रक्षा करिये। हे अन्तर्यामी! आप निखिल तेज के आधार हैं। हम आपको प्रणाम करते हैं।।१८-२५।।

इतिस्तुवन्तस्ते देवाः प्रणिपत्य पुनः पुनः। इन्द्रद्युम्नेनसहिता बहिर्भूय द्विजोत्तमाः॥२६॥
क्षेत्रं श्रीनरसिंहस्यगत्वातं प्रणिपत्य च। नमस्कृत्यपरांभक्तिंकृत्वाऽभ्यर्च्यनृकेसरिम्॥२७॥
नीलाचलाद्रेः शिखरं यत्रप्रासासादउत्तमः। ययुस्तेपद्मनिधिनासार्द्धंसम्भारकारणात्॥२८॥

हे द्विजगण! देवता इस प्रकार से स्तव करके पुनः पुनः प्रणिपात द्वारा इन्द्रद्युम्न के साथ वहां से बहिर्गत् हुये तथा क्षेत्रधाम जाकर वहां पर नृसिंहदेव को नमस्कार किया तथा परमभक्ति के साथ उनकी अर्चना किया। तदनन्तर नीलपर्वत के शिखर पर जहां देवोत्तम का उत्तम प्रासाद था, वहां पर देवगण द्रव्यों का आयोजन करने हेतु पद्मनिधि के साथ गये।।२६-२८।।

ददृशुस्ते महाप्रांशुंव्याप्तंगगनमण्डले। उत्तिष्ठन्तंविन्ध्यगिरिंरोद्धुंभानोर्गतिंकिमु॥२९॥
व्यश्नुवानं दिशः सर्वा विचित्रघटनोज्ज्वलम्।
बहुकालव्यतिक्रान्तस्वस्तिभाङ्गिविचित्रकम्।।३०।।

वहां देवगण ने देखा कि वह प्रासाद इतना ऊंचा था मानो गगनमण्डल का भेदन कर रहा हो। उन्होंने आपस में वार्त्ता किया कि क्या विन्ध्यपर्वत पुनः सूर्य का मार्ग रोकने के लिये उन्नत हो गया! समस्त दिशाओं को व्याप्त करके स्थित वह विभिन्न चित्रकारी से शोभित प्रासाद दीर्घकाल पूर्व निर्मित होकर भी अपनी विचित्र स्वस्तिपूर्ण (श्रीसम्पन्न) भंगिमा से खड़ा था।।२९-३०।।

ततश्च चिन्तयामास इन्द्रद्युम्नः स वैष्णवः। घटनार्थे मया यातःसत्यलोकमितःपुरा॥३१॥
सुचिराद्दृष्टिपथगः पूर्णःप्रासाद उत्तमः। अनुग्रहाद्वै देवस्य नाऽत्र मानुषपौरुषम्॥३२॥
मन्वन्तरसमाप्तिः क्व सूर्यचन्द्रेन्द्ररोधिका। तथापितिष्ठतेचायंप्रासादोह्येषदुर्लभः॥३३॥
वल्मीकसदृशा ह्येते प्रासादा मानुषैः कृताः। शीर्यन्ति रोहणैर्वृक्षैः स्वल्पकालगतायुषः॥३४॥
मदनुक्रोशबुद्ध्या तु रक्षितं भवनं हरेः। ततस्तान्स सहायान्वै जगाद प्रश्रयं वचः॥३५॥

परम वैष्णव इन्द्रद्युम्न ने इस प्रकार अपने बनवाये प्रासाद को पूर्ण देखकर विचार किया "जब मैंने सत्यलोक गमन किया था, तब निर्मित होने में यह आधा बाकी था। यह तो अब उत्तमरूप से पूर्ण बना है। यह केवल प्रभु की कृपा है। यह मनुष्य के पौरुष से कदापि साध्य नहीं है। मन्वन्तर समाप्त होने पर तो सूर्य-चन्द्रमा भी विलीन हो जाते हैं, तथापि यह दुर्लभ प्रासाद यथावत् बचा है। अन्य सब प्रासाद वाल्मीकि (दीमक की बांबी से) से आच्छादित हो जाते हैं। उनके ऊपर वृक्षादि उत्पन्न होकर उसे क्षीण कर देते हैं। उनका स्थितिकाल अत्यल्प होता है, तथापि भगवान् ने मेरे ऊपर कृपा करके अपने इस गृह की रक्षा की है।" तब इन्द्रद्युम्न वहां अपने सहायकों से यही कहने लगे तथा अपनी वाणी से उनका उत्साह बढ़ाने लगे।।३१-३५।।

जानीत जगदीशस्य प्रासादं कारितं मया। आविर्बभूव भगवान्दारुरूपवपुःस्वयम्।
तदान्तरिक्षगा वाणी मामुवाचाऽशरीरिणी॥३६॥
सहस्त्रपाणिसंमितं नीलाद्रेः शिखरोपरि। प्रासादं कारयस्वेति स्थितये जगदीशितुः॥३७॥
एतत्प्रतिष्ठानविधौ स्वयमत्राऽऽगमिष्यति। पद्मयोनिःस्वयंसार्द्धंसिद्धब्रह्मर्षिदैवतैः॥३८॥
तदत्र क्रियते को वा सम्भारो ज्ञायते कथम्। इत्युक्तवन्तं ते प्रोचुर्देवा भग्नाधिकारिणः॥३९॥

राजा इन्द्रद्युम्न कहते हैं—"क्या तुम लोग जानते हो कि भगवान् का प्रासाद मैंने ही निर्माण कराया था। भगवान् स्वयं ही दारुरूपेण आविर्भूत हुये हैं। उस समय आकाशवाणी ने मुझसे कहा था कि जगदीश्वर के निवासार्थ नीलपर्वत के शिखर पर १००० हाथ का एक प्रासाद निर्माण कराओ। उसमें देवदेव की प्रतिष्ठा हेतु पद्मयोनि ब्रह्मा स्वयं सिद्ध-महर्षि-देवता के साथ आयेंगें। हे सुरगण! अब किस प्रकार समस्त द्रव्य एकत्र किया जाये, यह जानना उचित है। इसे किस प्रकार से जाना जा सकता है?" यह सुनकर अधिकारच्युत देवता कहने लगे।।३६-३९।।

देवा ऊचुः

न जानीमो वयमपि तदस्माकं गुरुर्गुरुः। इदानीं न वशेऽस्माकं सहि स्वर्गपरोहितः॥४०॥

देवगण ने कहा—"हे राजन्! हम यह सब कुछ नहीं जानते। हमारे गुरु के गुरु बृहस्पति ही यह जानते हैं। वे ही हमारे स्वर्ग के पुरोहित हैं। अतः यह हम नहीं बता सकते!"।।४०।।

पद्मनिधिरुवाच

स्वामिन्विधेरनुज्ञानादागतोऽस्मि त्वया सह।
कर्त्तव्यं किं मया चाऽत्र किम्वा वस्तु प्रतीक्ष्यते॥४१॥

पद्मनिधि कहते हैं—हे स्वामिन्! मैं विधि की अनुमति से आपके साथ आकर उपस्थित हूं। अब यह कहें कि मुझे क्या करना है तथा आपको क्या चाहिये।।४१।।

जैमिनिरुवाच

इतिह्यालप्यमानानां नारदः पूरतः स्थितः। ब्रह्मणा प्रेषितः पूर्वं सर्वशास्त्रविशारदः॥४२॥
सर्वसम्भारवस्तूनि यथाशास्त्रंमुने कुरु। सम्पादयिष्यति तव शासनात्पद्मकोनिधिः॥४३॥
तं दृष्ट्वा ते मुदा युक्ता उत्तस्थुर्ब्रह्मणः सुतम्। षडर्घ्यपूजया तस्यपूजांचक्रे नृपोत्तमः॥४४॥
प्रणेमुस्तेऽपि तं देवा मनुष्याकारधारिणः। ऊचे तमिन्द्रद्युम्नोऽपि प्रतिष्ठाविधिवस्तुनि॥४५॥
नाऽहंवेद्मि मुनिश्रेष्ठ ! चिरात्त्यक्तः पुरोधसा। आदेशयक्रमादब्रह्मन्सम्पाद्यं यद्यदेव हि॥४५॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे इन्द्रद्युम्नराजकृतभगवत्स्तुतिनामचतुर्विंशोऽध्यायः।।२४।।

—※—

जैमिनि कहते हैं—ब्रह्मा ने पहले ही सर्वशास्त्रज्ञ नारद को भेजा था। जब यह सब कथनोपकथन हो रहा था, तभी वे उपस्थित हुये। राजा उनसे कहने लगे—"हे मुनिवर! आप अभी देवप्रतिष्ठा के लिये उपयुक्त द्रव्य संचय करें। आपकी अनुमति से पद्मनिधि को यह सब करना है।" देवता नारद को देखकर उनके सम्मान में खड़े हो गये। सबने उनका सम्मान किया। राजा इन्द्रद्युम्न ने भी छः अर्घ्यों से उनकी अर्चना किया। मनुष्याकृति देवताओं द्वारा उनको प्रणाम किया गया। तब इन्द्रद्युम्न ने नारद से प्रतिष्ठा की वस्तुओं की व्यवस्था हेतु कहा। राजा ने कहा—हे मुनिवर! मैं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता। मेरा पुरोहित संसर्ग भी दीर्घकाल से नहीं हुआ है। यह कार्य कैसे सम्पन्न होगा, वैसा आदेश करिये।।४२-४५।।

।।चतुर्विंश अध्याय समाप्त।।

पञ्चविंशोऽध्यायः

रथनिर्माण वर्णन, रथस्थापन विधान

जैमिनिरुवाच

इत्युक्ते नारदः सोऽथ यथाशास्त्रंविचार्यवै। आलेख्यक्रमशः पत्रे राज्ञेतस्मै न्यवेदयत्।।१।।
राजाऽपि पत्रं तच्छ्रुत्वासोऽवधार्य पुनःपुनः। प्रददौपद्मनिधयेलिखितान्यत्रयानिवै।।२।।
सम्पादय पद्मनिधेशालां स्वर्णमयीं कुरु। ब्रह्मणः सदनं दिव्यं ब्रह्मर्षीणाञ्चनिर्मलम्।।३।।
इन्द्रादीनां सुराणां च सिद्धानां मर्त्यवासिनाम्।
मुनीन्द्राणां निवासाय राज्ञां पातालवासिनाम्।।४।।
तथा च नागराजानां निधे ! त्रैलोक्यवासिनाम्। यथायोग्यासनैयुक्तंगृहंगृहमतन्द्रितः।।५।।
कारयाऽऽशु निधे ! द्रव्यसम्भारंयावदेवतु। विश्वकर्माऽपिचतवसाहाय्यंरचयिष्यति।।६।।

जैमिनि कहते हैं—नरपति ने जब नारद से यह पूछा तब नारद ने शास्त्रोक्त मतानुसार विचारपूर्वक क्रमशः सभी सामग्री को भोजपत्र पर लिखकर राजा को दिया। इन्द्रद्युम्न ने वह सब सुनकर विवेचना करके उसे पद्मनिधि को प्रदान किया। राजा ने पद्मनिधि से कहा—"हे पद्मनिधि! आप यह सब कार्य (पत्र में जो लिखा है) सम्पादित करें। सबसे पहले पर्णमयी शाला निर्माण करिये। ब्रह्मा का सदन शुभ्रवर्ण तथा ब्रह्मर्षिगण का आलय निर्मल हो। इन्द्रादि देवता, सिद्धगण तथा मर्त्यलोकवासी मुनीन्द्रगण का निवास तथा राजाओं और पातालवासी नागराजों के लिये निवास उनके-उनके उपयुक्त हो ऐसा निर्माण करिये। हे निधि! स्वर्ग, मर्त्यलोक, पाताल तथा त्रैलोक्योपयोगी पण्यद्रव्यराशि को दोनों पार्श्व में रखिये। मध्य में सुप्रशस्त सीधा मार्ग हो तथा उसके दोनों ओर श्रेणीबद्ध गृहों का निर्माण करने की शीघ्र व्यवस्था करिये। हे निधि! आप शीघ्रता से समस्त वांछित द्रव्यों को प्रस्तुत करें। विश्वकर्मा इस कार्य में सहायक होंगे।"।।१-६।।

इत्यादिशन्तं स मुनिरिन्द्रद्युम्नमुवाच वै। सम्भारान्पृथगेतद्धि कर्त्तव्यं व्यवधानतः॥७॥
स्वर्णैः सुघटितं साधुरथत्रयमलङ्कृतम्। दुकूलरत्नमालाद्यैर्बहुमूल्यैर्दृढं महत्॥८॥

जब इन्द्रद्युम्न ने यह आदेश प्रदान किया तब मुनिवर ने उनसे कहा—"राजन्! सभी सामग्री को सावधानी से पृथक् रूप से रखवाईये। तीन रथ जो सुगठित तथा स्वर्णालंकार से अलंकृत हो तथा वस्त्र, माला एवं रत्नादि द्वारा इन प्रधान रथों को युक्त किया जाये।।७-८।।

श्रीवासुदेवस्य रथो गरुडध्वजचिह्नतः। पद्मध्वजः सुभद्राया रथमूर्द्धनि धार्यताम्॥९॥
रथः षोडशचक्रस्तु विष्णोः कार्यः प्रयत्नतः। चतुर्दश बलस्यैव सुभद्रायास्तु द्वादश॥१०॥
हस्तषोडशविस्तारो रथश्चक्रधरस्य तु। चतुर्दश बलस्यैव सुभद्रायास्तु द्वादश॥११॥
आसनं जगतां भूयः स्वयं स्वासनविग्रहः। तद्याने जगतां नाथस्ततो यानं न विद्यते॥१२॥
पश्येच्चराचरंविश्वं ज्ञानादथ सुनिर्मले। स्थितो हस्ततले नित्यं निर्मलस्तस्यदर्पणः॥१३॥
तलस्थत्वादसौ तालः सदा तेनाऽङ्कितः प्रभुः। ततः स एव शेषस्य बलभद्रावतारिणः॥१४॥
अथवासीरिणःकार्यसीरमेवध्वजोत्तमम्। ध्वजःसुनिर्मलःकार्यस्तस्मात्तालध्वजोमतः॥१५॥
न वासितव्यो देवोऽसावप्रतिष्ठे रथे नृप !। प्रासादेमण्डपे वापिपुरेतन्निष्फलंभवेत्॥१६॥
तस्मात्प्रतिष्ठा प्रथमं हरेः कार्यारथस्य वै। सम्भारःक्रियतांतस्यह्यनुष्ठेयामयातुसा॥१७॥

"वासुदेव का रथ १६ पहियों वाला, बलदेव का १४ तथा सुभद्रा का रथ १२ पहियों वाला हो। प्रभु चक्रधर का रथ १६ हाथ विस्तृत हो। बलदेव का १४ हाथ का एवं सुभद्रा का रथ १२ हाथ का हो। हे राजन्! जो इस निखिल जगत् के आसन हैं, वे ही आसन स्वरूप हैं। आसन विग्रह हैं। अर्थात् उनके बिना जगत् का कोई आसन (आधार) है ही नहीं। वे सुनिर्मल ज्ञानरूप आधार से सचराचर विश्व के साक्षी हैं। उनके हाथों में सदा निर्मल दर्पण स्थित रहता है। यह दर्पण हस्ततल में रहने के कारण 'ताल' कहा जाता है। प्रभु सदैव इस ताल (दर्पण) चिह्न से चिह्नित हैं। इसी कारण बलभद्र अनन्तदेव के रथ में ऐसा दर्पण (ताल) ध्वज में युक्त करें। अथवा हलधारी बलभद्र देव के रथध्वज में हलचिह्न लगाये। इस ध्वज को निर्मल रूप में बनाया जाये। फलस्वरूप तालध्वज ही प्रशस्त है (तालचिह्नयुक्त)। (अर्थात् लाङ्गल ध्वज की जगह तालध्वज प्रशस्त है)। हे राजन्! जिस रथ की प्रतिष्ठा नहीं हुई है, उस पर देवताओं को कदापि आसीन न कराये। अप्रतिष्ठित प्रासाद, मण्डप में उनकी स्थापना निष्फल हो जाती है। अतः सर्वप्रथम रथप्रतिष्ठा करनी चाहिये। इसलिये सभी आवश्यक वस्तुओं की शीघ्र व्यवस्था करें। मैं स्वयं रथ प्रतिष्ठा करूंगा।"।।९-१७।।

इत्याज्ञांमत्पितुर्लब्ध्वा शीघ्रमायाम्यहं नृप !। तस्य तद्वचनंश्रुत्वाघटितंस्यन्दनत्रयम्॥१८॥
निधिसम्पादितैर्द्रव्यैरेकाह्नाद्विश्वकर्मणा। स्वक्षं सुचक्रं सुस्तम्भं सुविस्तीर्णं सुतोरणम्॥१९॥

"हे राजन्! मैंने अपने पिता-पितामह ब्रह्मा से यह आज्ञा प्राप्त किया तथा शीघ्रता से यहां चला आया।" ऋषिप्रवर का यह कथन सुनकर पद्मनिधि द्वारा प्रदत्त वस्तुओं से एक दिन में ही तीन रथों का निर्माण विश्वकर्मा ने किया। उसके सभी चक्र सुगठित थे। उनका आकार विस्तीर्ण था। उसके तोरण तथा स्तम्भ विस्तीर्ण थे। उनके अक्ष भी उत्तम थे।।१८-१९।।

सुध्वजं सुपताकं च नानाचित्रमनोहरम्। विचित्रबन्धमिथुनपुत्तलीवलयान्वितम्॥२०॥
अर्द्धहाटकनिर्व्यूढं साक्षाद्रविरथोपमम्। मेघगम्भीरनिर्घोषं दृष्ट्वा कर्षगुणैर्युतम्।
वातरंहोहयैर्युक्तं शतसङ्ख्यैः सितप्रभैः॥२१॥
यथाशास्त्रविधानेन नारदेन प्रतिष्ठितम्। सुलग्ने सुमुहूर्त्ते च सुतिथौ ज्योतिषोदिते॥२२॥

उनके ध्वज-पताका भी अत्युत्तम थे। वे रथ नाना मनोहर चित्रों से चित्रित थे। विचित्र बन्धन कौशल द्वारा उत्तम पुतली का जोड़ा जो स्वर्ण से शोभित था, वह रथों में आबद्ध था। रथ देखने से प्रतीत हो रहा था मानो साक्षात् सूर्यदेव का रथ विराजित है। जब वे रथ चलाये जाते थे, तब उनके चलने से मेघ गम्भीर निर्घोष गुंजरित हो उठता था। उनको खींचने वाली रस्सी अत्यन्त मजवूत थी। १०० शुभ्र वर्ण वाले वायुवेगयुक्त घोड़े उसमें संयोजित थे। ऋषिप्रवर नारद ने ज्योतिष शास्त्रोक्त शुभकाल में यथाशास्त्र विधान उन रथत्रय की प्रतिष्ठा सम्पन्न किया।।२०-२२।।

मुनय ऊचुः

भगवञ्जैमिने! ब्रूहि सर्वज्ञोऽसि मतो हि नः॥२३॥
विधिना केन हि रथः प्रतिष्ठाप्योहरेरयम्। यथावद्वद नोयेनजानीमोविधिविस्तरम्॥२४॥

मुनिगण कहते हैं—हे भगवान् जैमिनि! आप सर्वज्ञाता हैं। अतः यह बतलायें कि हरिदेव के रथ की प्रतिष्ठा किस विधि-विधान से करनी चाहिये? इसका विस्तृत वर्णन करिये।।२३-२४।।

जैमिनिरुवाच

यथाप्रतिष्ठितं तेन नारदेन महात्मना। तद्वो वदिष्यामि विधिं यथा दृष्टं पुरा मया॥२५॥
रथस्येशानदिग्भागेशालांकृत्वासुशोभनाम्। तन्मध्येमण्डपंकृत्वावेदितंत्रसुनिर्मलाम्॥२६॥
चतुरस्त्रां चतुर्हस्तमितां हस्तोच्छ्रितां द्विजाः। प्रतिष्ठापूर्वदिवसेरात्रावुत्तरतःशुभे॥२७॥
मुहूर्ते स्वस्तिवाच्याऽथ कारयेदङ्कुरार्पणम्। द्वात्रिंशद्देवताभ्यश्चबलिंदत्त्वायथाविधि॥२८॥

जैमिनि कहते हैं—हे ऋषिगण! पूर्वकाल में महात्मा नारद ने जिस प्रकार से प्रतिष्ठा किया था तथा मैंने जिस प्रकार उसे देखा था, वह आपसे व्यक्त करता हूं। रथ के ईशान कोण में सुनिर्मल गृह का निर्माण करे, इसमें वेदी बनाकर उसका मण्डल करे। यह वेदी समचतुरस्र चार हाथ परिमित आयत हो तथा एक हाथ उच्च हो। प्रतिष्ठा के पूर्व दिन रात्रि जब समाप्त हो रही हो, तब शुभ मुहूर्त्त में स्वस्तिवाचन करके वहां अंकुरार्पण करे। वहां यथाविधि ३२ देवगण को यथाविधि बलि प्रदान करे।।२५-२८।।

प्रातस्ततो वेदिकायां मध्ये मण्डलमालिखेत्।
पद्मं वा स्वस्तिकं वाऽपि कुम्भं तत्र निधापयेत्॥२९॥
पञ्चद्रुमकषायं च तन्मध्ये पूरयेत्सुधीः। गङ्गादिपुण्यतोयानि पल्लवान्स समृत्तिकाः॥३०॥
सर्वगन्धान्पञ्चरत्नसर्वौषधिगणं तथा। पूरयित्वा विधानेन आचार्यः प्राङ्मुखःशुचिः॥३१॥
विष्णुं स्मरन्पञ्चगव्यं पश्चादपि प्रपूरयेत्। दुकूलवेष्टितंकण्ठे माल्यैर्गन्धैःसुशोभनैः॥३२॥

फलपल्लवसंयुक्तं कृतकौतुकमङ्गलम्। पूरयेत्तत्र देवेशं नरसिंहमनामयम्॥३३॥
मन्त्रराजेन विधिवदुपचारैस्तथान्तरैः। प्रार्थयित्वाप्रसादायतस्मिन्नावाह्य तं हरिम्॥३४॥
बाह्योपचारैर्विविधैःपूजयेद्विधिवद्द्विजाः। वायव्यांतस्यकुम्भस्यसमिदाज्यचरुंतथा॥३५॥
अष्टोत्तरसहस्त्रं च जुहुयाद्विधिवद्गुरुः। सम्पातान्प्रापयेत्तत्र कुम्भमध्ये तदन्ततः॥३६॥
रथं सुशोभनं कृत्वा पताकागन्धमाल्यकैः। सर्वाङ्गंसेचयेत्तस्यगन्धचन्दनवारिभिः॥३७॥

अगले दिन प्रातःकाल इस वेदी में सर्वतोभद्रमण्डल किंवा पद्मनिर्माण करे अथवा तण्डुल रखकर उसके ऊपर पूर्णकुम्भ स्थापना के पश्चात् पञ्चकषाय तथा गंगादिपुण्य तीर्थ के पवित्र जल से इस कुंभ को पूर्ण करे। तदनन्तर पञ्चपल्लव, सात प्रकार की मृत्तिका, सभी विहित गन्धद्रव्य, पञ्चरत्न तथा सर्वौषधियों से उसे भर देना चाहिये। तदनन्तर आचार्य को चाहिये कि वह विष्णु का स्मरण करके पवित्र हो जाये तथा उसे पञ्चगव्य से उसे पूरित करे तथा कुम्भ के गले में वस्त्र लपेटे तथा उसके ऊपर फल रखकर गन्ध माल्यादि से उसे शोभित करे। अन्त में उत्सव के साथ उसका मंगलाचार करे। हे द्विजगण! अनामय देवदेव नृसिंह देव की प्रधान मन्त्र द्वारा अनेक उपचारों से यथाविधान पूजा करे। हे द्विजगण! प्रथमतः उनकी प्रसन्नता हेतु प्रार्थना करने के अनन्तर उसमें आवाहन मानस पूजन तदनंतर वाह्यपूजन विधान के अनुसार उनका पूजा करनी चाहिये। अन्त में कुम्भ के वायुकोण में समिध्, घृत तथा चरुद्वारा विधिवत् १००८ होम करे। अन्त में कुंभ में सम्पात-पात करने के पश्चात् पताका-वस्त्र तथा माला से रथ को सज्जित करके सर्वाङ्ग सेचन गन्ध एवं चन्दन जल से करना चाहिये।।२९-३७।।

धूपयेत्कालागुरुणा शङ्खकाहालनिस्वनैः। ध्वजे तस्य नृसिंहस्य प्रतिष्ठाप्य समीरणम्॥३८॥
पूजयित्वा विधानेन रक्तस्त्रग्गन्धमाल्यकैः। इमं मन्त्रं समुच्चार्य सुपर्णम्प्रार्थयेत्ततः॥३९॥

तदनन्तर शंख तथा काहल ध्वनि के साथ कृष्ण अगुरु की धूप से वहां धूपित करे। तदनन्तर नृसिंह देव के ध्वज की प्रतिष्ठा करे जो वायु से लहराता रहता है। रक्तवर्ण माला तथा गन्धादि से उसकी पूजा करें तथा इस मन्त्र से सुपर्ण (गरुड़) की प्रार्थना करनी चाहिये। वह मन्त्र मूल में श्लोक ४० है। मन्त्रार्थ यह है।।३८-३९।।

यो विश्वप्राणहेतुस्तनुरपि च हरेर्यानकेतुस्वरूपो,
यं सञ्चिन्त्यैव सद्यः स्वयमुरगवधूवर्गगर्भाः पतन्ति।
चञ्चच्चण्डोरुतुण्डत्रुटितफणिवसारक्तपङ्काङ्कितास्यं,
वन्दे छन्दोमयं तं खगपतिममलं स्वर्णवर्णं सुपर्णम्॥४०॥

मन्त्रार्थ—जो इस विश्व संसार के प्राण हेतु हैं, जो हरि के अंग रूप हैं, जो प्रभु के रथ के केतुस्वरूप विराजित हैं, जिनकी मन में मात्र एक बार चिन्तना करने से तत्क्षण सर्परमणीगण को गर्भ स्वतः गिर जाते हैं, जिनका मुख अपने चंचल तथा प्रचण्ड चोंच से खण्डित किये गये सर्प, नागगण की वसा, रक्त, मांस से सर्वदा लिप्त रहता है, मैं उन छन्दोमय-निर्मल-स्वर्णवर्ण सुपर्ण (गरुड़) खगपति की वन्दना करता हूं।।४०।।

ब्रह्मघोषैः शङ्खनादैर्नानावाद्यसुविस्तरैः। रथमुर्ध्नि स्थापयेत्तं चारुसूक्तं समुच्चरन्॥४१॥

तस्योपरिष्टात्तं कुम्भं समन्तात्प्लावयन्नथम्। त्रिरुच्चरन्मन्त्रराजं सेचयेद्ब्रह्मणा सह॥४२॥
ततः पूर्णाहुतिं दत्त्वा ब्रह्मणेदक्षिणां ददेत्। आचार्यदक्षिणांदद्याद्येनतुष्यतितद्गुरुः॥४३॥

एवंविध प्रार्थना के अनन्तर वेदध्वनि, शंखनाद तथा नाना वाद्यवादन करके पुरुषसूक्तमन्त्र से गरुड़ध्वज रथ के ऊपरीभाग में ध्वज स्थापना करनी चाहिये। पूर्व स्थापित कुम्भजल द्वारा ब्राह्मण के साथ प्रधान विष्णुमन्त्र का तीन बार उच्चारण करके रथ के ऊपर से लेकर चतुर्दिक् इस जल को छिड़कें। तदनन्तर पूर्णाहुति समाप्त करके ब्राह्मण को दक्षिणा देनी चाहिये। आचार्य को दक्षिणा प्रदान करने से जगद्गुरु सन्तुष्ट होते हैं। आचार्य जिससे सन्तुष्ट हो ऐसी दक्षिणा देनी चाहिये।।४१-४३।।

ब्राह्मणान्भोजयेदन्ते पायसैर्मधुसर्पिषा। द्वादशाक्षरमन्त्रेणबलभद्रस्य कारयेत्॥४४॥
लाङ्गलं च पविरवन्मन्त्रःस्याल्लाङ्गलध्वजे। अथवाद्विषड्वर्णोपिमूलमन्त्रः प्रकीर्तितः॥४५॥
लक्ष्मीसूक्तेनभद्रायाःप्रतिष्ठाप्योरथस्तथा। नाभिह्रदान्मुरारेस्त्वंब्रह्माण्डावलिरूपधृक्॥४६॥
आसनं चतुरास्यस्य श्रियो वास! स्थिरो भव।
इमं मन्त्रं समुच्चार्य ध्वजपद्मं समुच्छ्रयेत्॥४७॥
इयान्विशेषो हविषा त्रयाणां च पृथक्पृथक्। पञ्चपञ्चभिर्होतव्यमेकैकं तु विभागशः॥४८॥

तत्पश्चात् ब्राह्मणों को मधु-घृताक्त भोजन कराना चाहिये। इसी प्रकार द्वादशाक्षर मन्त्र से बलराम के रथ को भी प्रतिष्ठित करें। उनके हल चिह्नात्मक ध्वज की पूजा "लाङ्गलं तत्" इत्यादि मन्त्र से करके उसमें मूलमन्त्र द्वारा बलराम की अर्चना करनी चाहिये। सुभद्रा के रथ की प्रतिष्ठा लक्ष्मीसूक्त मन्त्र से की जाये तथा यह मन्त्र पढ़े "आप मुरदैत्य के शत्रु विष्णु के ब्रह्माण्डरूपी नाभिह्रद से उत्पन्न होकर रूप बल धारण करके चतुरानन के आसन बने हैं। अब विष्णु प्रिया लक्ष्मी के यान में स्थित हो जायें।" यह मन्त्र उच्चारण करके पद्मध्वज को लगाये तथा लहराये। हरिदेव के सम्बन्ध में मात्र यही क्रिया विशेष रूप से की जाती है कि मूर्त्तित्रय की होम क्रिया में एक-एक करे पृथक्-पृथक् रूप से प्रत्येक को ५-५ आहुति प्रदान करना होगा।।४४-४८।।

इत्थं रथान्प्रतिष्ठाप्यसुवर्ण गांचवस्त्रकम्। धान्यंचदक्षिणांदद्यात्सम्यग्देवस्यभक्तितः॥४९॥
एवं प्रतिष्ठिते तत्र स्यन्दनेऽथ सुभूषिते। आरोप्य देवं विधिवद्ब्रह्मघोषपुरःसरम्॥५०॥
जयमङ्गलशब्दैश्च नानावाद्यपुरःसरैः। चामरान्दोलनैर्धूपैः पुष्पवृष्टिभिरेव च॥५१॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्नीयते स्म रथं प्रति। हयैः सुलक्षणैर्दान्तैर्बलीवर्दैरथापि वा॥५२॥
पुरुषैर्विष्णुभक्तैर्वा नेतव्या ह्यप्रमादतः। प्रीणयित्वा जनं सर्वं भक्ष्यभोज्यादिलेपनैः॥५३॥

इस प्रकार से रथ प्रतिष्ठा करने के उपरान्त स्वर्ण-गौ-वस्त्र तथा धान्य-दक्षिणा भी देव के प्रति सम्यक् भक्ति द्वारा ब्राह्मणों को देना चाहिये। वह रथ प्रतिष्ठित तथा सुभूषित होने पर उस देवता को स्थापित करे। तब उस समय वेदध्वनि, जयध्वनि, मंगल निनाद तथा नाना प्रकार के वाद्यों का शब्द करना चाहिये, चामर झलना, धूप प्रदान करना तथा पुष्पवर्षा करना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्मण-क्षत्रिय तथा वैश्यगण रथ के ऊपर देवगण को लायें। उस समय ब्राह्मणगण को धनदान करके सुलक्षण अश्व अथवा शान्तशील बैल रथों में जोते अथवा विष्णुभक्त पुरुषगण स्वयं बलभद्र रथ को खीचें। उस समय सुस्वादु भक्ष्य-भोज्य तथा सुगन्धिलेपन से सभी लोगों को प्रसन्न करे।।४९-५३।।

रथस्योपरि देवेभ्यो बलिमन्त्रेणभोद्विजाः। बलिंगृह्णन्तुभोदेवाआदित्यावसवस्तथा॥५४॥
मरुतश्चाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः। असुरायातुधानाश्च रथस्थाश्चैव देवताः॥५५॥
दिक्पाला लोकपालाश्चयेचविघ्नविनायकाः। जगतःस्वस्तिकुर्वन्तुदिव्यामहर्षयस्तथा॥५६॥
अविघ्नमाचरन्त्वेतेमा सन्तु परिपन्थिनः। सौम्या भवन्तुतृप्ताश्चदैत्याभूतगणास्तथा॥५७॥

इसके पश्चात् रथ के ऊपरी भाग में बलिमन्त्र से देवगण को बलिरूपी पूजनोपहार प्रदान करना चाहिये। उसका मन्त्रार्थ है—"हे देवगण! आप मेरे द्वारा अर्पित बलि ग्रहण करिये। हे आदित्यगण! वसुगण! रुद्रवर्ग! गरुड़-पन्नग तथा सभी ग्रह! असुरगण! यातुधानगण! रथस्थ समस्त देवता! हे दिक्पाल-लोकपालगण! विघ्नविनायकगण! हे देवर्षि-महर्षिगण! आप सब जगत् का मंगल करिये। आप मेरे इस कार्य को विघ्नरहित करिये। आप इस कार्य में प्रतिकूलता न करें। हे देवगण! हे दैत्यों! भूतगण! आप मेरे प्रदत्त बलि भोजन से तृप्त होकर सौम्यरूप हो जायें।"॥५४-५७॥

ततस्तु नीयते देवः समभूमौ समुच्चरन्। मन्त्रंवैष्णवगायत्रीं विष्णोःसूक्तंपवित्रकम्॥५८॥
वामदेव्यैः पवित्रैश्च मानस्तोक्यै रथन्तरैः। ततःपुण्याहघोषेणकृतवादित्रनिःस्वनम्॥५९॥
शनैः शनैरथो नेयो रथःस्नेहात्तुचक्रिणः। तत्रोत्पातान्प्रवक्ष्यामिरथेऽत्रद्विजसत्तमाः॥६०॥
ईषाभङ्गे द्विजभयं भग्नेऽक्षे क्षत्रियक्षयः। तुलाभङ्गे वैश्यनाशः शम्या शूद्रभयं भवेत्॥६१॥

तत्पश्चात् वैष्णवीगायत्री तथा परमपवित्र विष्णुसूक्त मन्त्रोच्चार द्वारा देवगण के रथ को खींचते हुये समतल स्थान पर लाये। तब पवित्र वामदेव आदि का मन्त्र उच्चरित करते हुये पुण्याहवाचन तथा अनेक वाद्यों की ध्वनि करते हुये स्नेहाक्त भाव से रथचक्र को धीरे-धीरे चालित करना चाहिये। हे द्विजश्रेष्ठगण! इस समय जो उत्पात घटित हो सकते हैं, उनका श्रवण करें। यदि रथ की ईषा खण्डित हो जाये, तब ब्राह्मणों के लिये भय उत्पन्न होता है। यदि रथ का अक्ष-भंग हो, तब क्षत्रियों का नाश होता है। रथ का तुलाभंग होने पर वैश्यनाश और रथ की शमी भंग होने पर शूद्रगण हेतु भय उत्पन्न होगा॥५८-६१॥

धुराभङ्गे त्वनावृष्टिः पीठभङ्गे प्रजाभयम्। परचक्रागमं विद्याच्चक्रभङ्गे रथस्य तु॥६२॥
ध्वजस्य पतने विप्रा नृपोऽन्यो जायतेध्रुवम्। प्रतिमाभङ्गतायांतुराज्ञोमरणमादिशेत्॥६३॥
पर्यस्ते तु रथे विप्राः सर्वजानपदक्षयः। उत्पन्नेष्वेवमाद्येषु उत्पातेष्वशुभेषु च॥६४॥

रथ का धुरा भंग होने से अनावृष्टि, पीठ भंग से प्रजाभय, चक्रभंग से परचक्र गति भय (षड़यन्त्र भय), रथ ध्वज पतन से राजा का राज्य अन्य द्वारा अधिकृत हो जाता है। प्रतिमा का कहीं अंग-भंग होने से राजा का मरण निश्चित है॥६२-६३॥

बलिकर्म पुनः कुर्याच्छान्तिहोमं तथैवच। ब्राह्मणान्भोजयेद्भूयो दद्याद्दानानिचैवहि॥६५॥
पूर्वोत्तरे च दिग्भागे रथस्याऽग्निं प्रकल्पयेत्।
समिद्भिर्घृतमध्वाज्यमूलाग्राभिश्च होमयेत्॥६६॥
पालाशाभिर्द्विजश्रेष्ठा मन्त्रराजेन दीक्षितः। सोमायाऽग्नयेप्रजाभ्यःप्रजानां पतये तथा॥६७॥

ग्रहेभ्यश्च ब्रह्मणे च दिक्पालेभ्यस्तदन्ततः। यत्र यत्र रथे दोषास्तत्र तत्र चदीक्षितः॥६८॥

जुहुयात्प्रतिष्ठामन्त्रेण विशेषः सर्वतो भवेत्।
ब्राह्मणैः सहितः कुर्याद्धोमान्ते शान्तिवाचनम्॥६९॥

हे विप्रगण! यदि रथ विनष्ट हो जाये, तब सभी जनपद वासीगण का तथा जनपद का क्षय होता है। हे राजन्! इस प्रकार के अशुभ उत्पात होने पर बलिकर्म, शान्ति कर्म तथा होम करना चाहिये। पुनः ब्राह्मण भोजन तथा धनदान करना चाहिये। दीक्षित व्यक्ति रथ की पूर्वोत्तर दिशा में अग्नि स्थापन करके घृत-मधु युक्त एवं पलाश की समिध् के मूलभाग तथा अग्र भाग द्वारा प्रधान वैष्णवमन्त्र से होम सम्पन्न करें। सोम-अग्नि-प्रजा-प्रजापति-ग्रह-ब्रह्मा तथा दिक्पाल के उद्देश्य से रथ के जिस-जिस भाग में दोष दिखलाई पड़े, वहीं-वहीं दीक्षित व्यक्ति प्रत्येक देवता का मन्त्र उच्चारित करते हुये होम करे। यहां ऊपर जितने देवगण का नाम कहा गया है, उन सबका होम करना चाहिये। तदनन्तर होमावसान पर ब्राह्मण शान्तिकार्य करें। मन्त्रार्थ इस प्रकार है।।६४-६९।।

स्वस्ति भवतु विप्रेभ्यः स्वस्ति राज्ञेऽस्तु नित्यशः।
गोभ्यः स्वस्ति प्रजाभ्यस्तु जगतः शान्तिरस्तु वै॥७०॥
स्वस्त्यस्तु द्विपदे नित्यं शान्तिरस्तु चतुष्पदे।
शं प्रजाभ्यस्तथैवाऽस्तु शं तथाऽऽत्मनि चास्तु नः॥७१॥
शान्तिरस्तु च देवस्य भूर्भुवःस्वःशिवं तथा।
शान्तिरस्तु शिवं चाऽस्तु सर्वतः स्वस्तिरस्तु नः॥७२॥

त्वं देव ! जगतः स्रष्टापोष्टाचैव त्वमेव हि। प्रजाः पालय देवेश ! शान्तिंकुरु जगत्पते॥७३॥
यात्राकारणभूतस्य पुरुषस्य च भूपते !॥ दुष्टान्ग्रहांस्तु विज्ञायग्रहशान्तिं समाचरेत्॥७४॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादइन्द्रद्युम्नस्यभगवद्रथप्रतिष्ठाविधानंनामपञ्चविंशोऽध्यायः।।२५।।

—❊❊❊—

ब्राह्मणों का मंगल हो, जगत् में शान्ति हो, द्विपद (मानवों) का मंगल हो। जगत् में शान्ति हो, प्रजावर्ग की तथा हमारी कुशलता हो। देवताओं में शान्ति हो, भूर्लोक-भुवःर्लोक तथा स्वर्लोक का शुभ हो। सर्वत्र शान्ति तथा मंगल विराजित रहे। चतुर्दिक् मंगल हो। हे देव! आप ही जगत् के सृष्टिकर्त्ता तथा पालक हैं। हे देवेश! आप प्रजावर्ग का पालन करिये। हे जगत्पति! आप शान्ति का प्रसार करिये।''

इस प्रकार रथयात्रा के लिये तत्पर राजा तथा अन्य लोग दुष्टग्रह का निर्णय करके ग्रहशान्ति करें।।७०-७४।।

।।पञ्चविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षड्विंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्न द्वारा भगवत् प्रतिष्ठा का आयोजन, गालेन्द्र-इन्द्रद्युम्न संवाद

जैमिनिरुवाच

निरुत्पातं स मे देशे विधिवर्त्तनयाऽपि च। प्रासादनिकटं देवाः प्रापिताः सुमुहूर्त्तके॥१॥
ततः शालासुमहती रत्नवर्णविनिर्मिता। निदेशादिन्द्रद्युम्नस्य निर्मिता विश्वकर्मणा॥२॥
सभार्चनायां वस्तूनि हवींषि च समित्कुशाः।
भोज्यं नानाविधं गीतनृत्यांश्च विविधांस्तथा॥३॥
साम्राज्ये यादृशी पूर्वं सम्पत्तिरभवत्क्षितौ। ततः श्रेष्ठतरा विप्राः प्रतिष्ठायांबभूवह॥४॥
गालोनाम महीपालस्तदा क्षितितलेऽभवत्।
सोऽप्यत्र प्रतिमां कृत्वा माधवाख्यां दृषन्मयीम्॥५॥
स्थापयित्वाऽत्र प्रासादे पूजयामासऋद्धिमत्। कनीयांसंच प्रासादं निर्मायनृपसत्तमः॥६॥
तत्रतांस्थापयामासततोनिष्कृष्यसादरम्। ततोऽस्यनृपतिर्दूतमुखाच्छ्रुत्वास्यकर्मतत्॥७॥
गालोऽभ्यागात्ससैन्यः सन्क्रुद्धस्तं नीलपर्वतम्।
दृष्ट्वा प्रतिष्ठासम्भारं मर्त्यैः स्वप्नेऽपि दुर्लभम्॥८॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे विप्रगण! तदनन्तर मैं देवगण को शुभमुहूर्त्त में निरुपद्रव समतल स्थान पर ले गया जहां वह प्रासाद था। तत्पश्चात् राजा इन्द्रद्युम्न के आज्ञानुसार देवशिल्पी विश्वकर्मा ने स्वर्ण तथा नाना मणियों से एक विशाल देवालय का निर्माण किया। इन्द्रद्युम्न ने वहां देवालय की प्रतिष्ठा हेतु प्रचुर घृत, समिध्, कुश आदि और नाना प्रकार के भोजनादि एकत्र कर रखा था। वहां नाना प्रकार के गीत-वाद्यादि का आयोजन भी था। हे विप्रगण! अधिक क्या कहूं? जैसी सम्पदा इन राजा के पास पूर्वकाल में थी, उससे भी अधिक सम्पदा इस महायज्ञ में दृष्टिगोचर हो रही थी। इस समय पृथिवी पर एक गाल नामक राजा का राज्य था। उन राजा ने भी पहले माधव नामक एक दारु प्रतिमा का निर्माण कराया था और उक्त मन्दिर में ससमारोह प्रतिष्ठापित किया था। वह वहां पूजन करता था। तत्पश्चात् इन्द्रद्युम्न एक अपेक्षाकृत छोटा प्रासाद बनवाकर उस माधव मूर्त्ति को सादर पुरुषोत्तम मन्दिर में रथ से लाये तथा वहां स्थापित किया। उधर दूत द्वारा जब राजा गाल ने यह संवाद जाना, तब वह राजा क्रोधित हो सेना के साथ वहां नीलगिरि आ गया तथापि उसने वहां देखा कि मनुष्य के लिये जो स्वप्न में भी दुर्लभ है, यहां वैसा प्रतिष्ठा समारोह सम्पन्न हो रहा है।।१-८।।

विस्मयताविष्टचेताःसतस्थौगालोनराधिपः। किमेतदितिवृत्तान्तंकोवाकारयतीदृशम्॥९॥
यत्नाद्दिव्यं स विज्ञाय इन्द्रद्युम्नं नराधिपम्। ब्रह्मलोकादागतं तं कर्त्तारं देववेश्मनः॥१०॥

प्रतिष्ठापयितुं देवैः सार्द्धं सम्भारकारकम्। सहितं पद्मनिधिना गुरुणा नारदेन च॥११॥
ब्रह्माणंचाऽऽगमिष्यन्तंप्रतिष्ठायैसुरोत्तमम्। श्रुत्वासर्वंचवृतान्तंतद्राजादिव्यचेष्टितम्॥१२॥
मेने कृतार्थमात्मानं तद्राज्ये परमाद्भुतम्। इतः श्रेयस्करं कर्म न भूतं न भविष्यति॥१३॥

वह राजा गाल यह आयोजन देखकर जिसे इन्द्रद्युम्न द्वारा किया जा रहा था, अत्यन्त विस्मय में भर गया तथा मन ही मन सोचने लगा "यह क्या अद्भुत् कार्य हो रहा है? कौन यह असमान्य कार्य कर रहा है?" उसने प्रयत्न करके यह ज्ञात किया कि नृपश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्न यह कार्य करने के लिये तत्पर होकर देवगृह निर्माण तथा प्रतिमा प्रतिष्ठार्थ यह सब द्रव्यादि एकत्र कर रहे हैं तथा साथ में यह भी सुना कि वे भगवान् को प्रतिष्ठित करने के लिये ब्रह्मलोक से आये हैं और उक्त कार्य को सम्पन्न करने के लिये भगवान् ब्रह्मा तथा देवगण भी पद्मनिधि तथा नारद के साथ आये हैं। यह सब ज्ञात होने के पश्चात् इस अलौकिक आयोजन के सम्बन्ध में सभी दिव्य तथ्यों से अवगत होने पर उस राजा गाल ने स्वयं को कृतार्थ माना। उसने सोचा कि "ऐसा महान् तथा अद्भुद् श्रेयस्कर कर्म न तो भूतकाल में हो सका है, न भविष्य में कोई कर सकेगा!"।।९-१३।।

तदस्य निकटे स्थित्वा ज्ञात्वा कर्मक्रमं विधिम्।
उत्सवांश्चाऽपि विज्ञाय करिष्ये प्रतिवत्सरम्॥१४॥
अमुं दारुमयं साक्षाद्ब्रह्मरूपं जनार्दनम्। अभाग्योपचयादेतावन्तं कालं न जानता॥१५॥
असेव्यमानेन कृतं जन्मैव विफलं मया। तदेनमिन्द्रद्युम्नं वै प्रणिपत्य जगद्गुरुम्॥१६॥
महाभागवतश्रेष्ठं ब्रह्मलोकादिहागतम्। उपेत्य शरणं साक्षाद्दृष्ट्वा नारायणं विभुम्॥१७॥
प्रतिष्ठितं वै प्रासादे मुक्तिमेष्यामिनिश्चयम्। वैकुण्ठंसप्रतिष्ठाप्यमय्येवारोपयिष्यति॥१८॥

"ऐसी स्थिति में मैं भी यहां स्थित होकर कर्म की क्रमविधि तथा उत्सव के सम्बन्ध में समस्त तथ्यों को जानकर प्रतिवर्ष इसी प्रकार से सविधि उत्सव सम्पन्न करूंगा। मैंने अपनी अज्ञानता के कारण तथा अपने नितान्त दुर्भाग्य के ही कारण अब तक इन दारुमय साक्षात् ब्रह्मरूपी जनार्दन को नहीं जाना, उनकी सेवा नहीं किया, इस प्रकार मैंने अपना जन्म विफल कर दिया! जो भी हो, अब मैं इन ब्रह्मलोक से आये सर्वश्रेष्ठ विभु जगद्गुरु इन्द्रद्युम्न के पास जाकर उनको प्रणाम करूंगा तथा सभी कारणों के भी कारण भगवान् नारायण को उस प्रासाद में प्रतिष्ठित होते देखकर निश्चित रूप से मुक्तिलाभ करूंगा! राजा इन्द्रद्युम्न अवश्यमेव भगवान् वैकुण्ठ की प्रतिष्ठा के अनन्तर उनकी सेवा आदि का भार मुझे प्रदान करेंगे।"।।१४-१८।।

ब्रह्मलोकं गतो योवैकिंक्षितौसोऽवतिष्ठते। उपचारान्समादिष्यकोपंसम्भृत्यचप्रभोः॥१९॥
ब्रह्मणा सहितोऽवश्यं पुनर्यास्यति तत्क्षयम्।
विचार्य मन्त्रिभिः सार्द्धं ततो गालोऽपि वैष्णवः॥२०॥

"क्योंकि उन्होंने इतने दिनों ब्रह्मलोक में निवास किया था। अब वे किसलिये पृथिवी पर रहेंगें? वे यहां प्रभु की सेवा के लिये प्रभूत धनरत्न रख कर तथा उपचार के, पूजनादि के सम्बन्ध में मुझे आदेश देकर भगवान् के साथ पुनः ब्रह्मलोक लौट जायेंगे।" मन्त्रियों के साथ यह मन्त्रणा वैष्णव राजा गाल ने किया।।१९-२०।।

इन्द्रद्युम्नस्य निकटं विनीतः प्रययौ मुदा। गत्वा तं दूरतो दृष्ट्वा प्रणिपातपुरःसरम्॥२१॥
बद्धाञ्जलिपुटो राजा मूर्ध्निवीक्षन्ससाध्वसम्। शनैःशनैर्ययौतस्यनिकटंगालपार्थिवः॥२२॥
देव ! त्वं राजराजोऽसि मर्त्योऽसि ब्रह्मलोकगः।
किं स्तौमि नृपकीटोऽहं त्वां जीवन्मुक्तमीश्वरम्॥२३॥
अज्ञात्वामहिमानं ते सचिवैर्मन्त्रयन्मुहुः। योद्धुमभ्यागतो देव ! दृष्ट्वा ते पौरुषं महत्॥२४॥
अतिमानुषमाश्चर्यं पदं चाऽपि शचीपतेः। दृष्टैतन्निश्चितं देव ! ब्रह्मलोकागतस्य हि॥२५॥
ईदृशं हि महत्कर्म यदाज्ञाकृन्महानिधिः। चेतः प्रसादप्रवणं मयि धेहि सुरोत्तम !॥२६॥
त्रैलोक्यवासिनो देवा यदाज्ञावशवर्तिनः॥२७॥

तत्पश्चात् वह ज्ञानी राजा गाल प्रसन्न चित्त से विनीत होकर इन्द्रद्युम्न के पास गया। उसने कुछ दूरी से इन्द्रद्युम्न का दर्शन किया तथा उनको प्रणाम करने के अनन्तर अपने मस्तक पर अंजलिबद्ध मुद्रा में भयपूर्वक तथापि मृदुता के साथ राजा के पास धीरे-धीरे जाकर कहने लगा—"हे देव! आप राजाधिराज हैं। जब आप मनुष्य देहधारी स्थिति में ही सशरीर ब्रह्मलोक चले गये, तब तो आप असीम शक्तिशाली जीवन्मुक्त हैं। हे राजन्! मेरे जैसा, सामान कीट जैसा व्यक्ति आपकी क्या स्तुति कर सकेगा? हे देव! मैं आपको न जान सकने के कारण मन्त्रियों से बारम्बार मन्त्रणा करके आपसे युद्ध करने आ गया था, तथापि यहां आकर आपका अद्भुद् महान् पौरुष तथा इन्द्र के समान अलौकिक ऐश्वर्य देखकर निश्चय किया कि त्रैलोक्यवासी देवता तथा दिव्य निधियां भी जिनकी आज्ञाकारी हैं, उन ब्रह्मलोकगत आप द्वारा ही ऐसा आयोजन कर सकना संभव है! अब आप कृपापूर्वक मुझ पर प्रसन्न हों।"।।२१-२७।।

जैमिनिरुवाच

इत्थं विज्ञापयन्तं तं गालं नृपतिकुञ्जरम्। स्मयमान उवाचेदं राजन्किं बहुभाषसे॥२८॥
भवानपि हरेर्भक्तः सार्वभौमोमहीपतिः। सामान्यमेतद्राज्ञांवैभूस्वाम्यंभुवि वर्त्तताम्॥२९॥
साम्प्रतं हि भवानत्र पृथिव्यामेकपार्थिवः। नृपायत्ताःक्रियाःसर्वामर्त्यानांमरुतामपि॥३०॥
अष्टदिक्पालकांशैस्तु ब्रह्मणा निर्मितो नृपः। न ह्यल्पपुण्यकृद्राजा प्रजापालनतत्परः॥३१॥
इह कीर्तिं च धर्मं च यत्रगच्छन्सुवर्त्मनि। प्राप्नोति राजशार्दूलविशेषात्त्वंतुवैष्णवः॥३२॥
प्रासादे स्थापयेद्यस्तु हरेरर्चां विधानतः। न देहबन्धमाप्नोति यातिविष्णोःपरंपदम्॥३३॥

जैमिनि कहते हैं—जब नृपतिकुंजर गाल ने इस प्रकार का निवेदन किया, तब नृपप्रवर इन्द्रद्युम्न तनिक मुस्कान के साथ कहने लगे—"राजन्! आपके ऐसे विनयपूर्ण वचनों का कोई प्रयोजन नहीं है। क्योंकि आप एक हरिभक्त सार्वभौम राजा हैं और एक बात है, पृथिवी पर राजाओं के प्रभुत्व को आप सामान्य विषय मात्र मानिये। अतएव आप मुझ जैसे सामान्य व्यक्ति के प्रति इतना विनय प्रकट कर रहे हैं? इन सब बातों का अब कोई प्रयोजन नहीं है। सम्प्रति आप पृथिवी के अद्वितीय राजा हैं आप मनुष्यों में अति महान् हैं। प्रजावर्ग का समस्त कार्य राजा के अधीन होता है। इसीलिये भगवान् ने अष्टदिक्पालों के अंश से राजा की सृष्टि किया है। जिन राजा का पुण्यबल अत्यल्प है, वे प्रजापालन में तत्पर नहीं रहते। हे नरशार्दूल! जो राजा अतीव पुण्यात्मा

होते हैं, वे इस लोक में प्रजापालनादिजनित अतुल धर्मसञ्चय करके यहां अपनी चिरकीर्त्ति स्थापित करते हैं। उनको परलोक में उत्तम सद्गति मिलती है। आप तो परम वैष्णव हैं। आपकी सद्गति में तो कोई संशय ही नहीं है। जो व्यक्ति देवालय में यथाविधि विष्णु प्रतिमा स्थापित करता है, उसे पुनः देहबन्धन नहीं होता। उसे निश्चित रूप से विष्णु के परमपद की प्राप्ति होती है।।२८-३३।।

माधवप्रतिमामेतां दारवीं शुभलक्षणाम्। साक्षान्मुक्तिप्रदांभूपस्वयंस्थापितवानसि।।३४।।
निर्विघ्नं कर्म ते जातं मममन्वन्तरं गतम्। भवेद्वा संशयो मेऽत्र नस्बतन्त्रश्चतुर्मुखः।।३५।।
प्रतिष्ठायै प्रार्थितोऽयं तदन्यः स्थापयेत्कथम्।
साक्षाद्दार्ववतारस्य प्रासादस्य नृपोत्तम !।।३६।।
सन्निधानेन चेदत्र विधाताऽनुग्रहिष्यति। तदेनं स्थापयित्वा तु चतूरूपं जनार्दनम्।।३७।।
समर्प्यत्वांगमिष्यामित्वमेघोपघरिष्यसि। नित्योपहारंयात्राश्चउत्सवांश्चजगत्पतेः।।३८।।
यानेवोपदिशेद्देवः स्वयं वा प्रपितामहः। तांस्तान्प्रयत्नात्कुर्वीतराजा वै धर्मपालकः।।३९।।

"हे राजन्! आपने स्वयं साक्षात् मुक्तिप्रद शुभलक्षण सम्पन्न दारुमयी माधव प्रतिमा स्थापित किया है। आप का कार्य निर्विघ्न समाप्त हो गया, लेकिन मुझे तो एक मन्वन्तर बीत जाने पर भी कार्यसिद्धि नहीं मिली। इससे यह संशय हो रहा है कि क्या यह सम्पन्न होगा अथवा नहीं? भगवान् ब्रह्मा भी तो स्वाधीन नहीं हैं। जब मैंने साक्षात् देवतास्वरूप प्रासाद प्रतिष्ठार्थ उनसे प्रार्थना किया था, तब अन्य व्यक्ति द्वारा यह कार्य कैसे हो सकेगा? हे राजन्! अब यदि भगवान् ब्रह्मा यथाविधान कार्य करके मुझे अनुगृहीत करें, तभी मैं तरुरूपी भगवान् जनार्दन की स्थापना करके आपको यहां का सेवा-पूजा का भार देकर ब्रह्मलोक जा सकूंगा। आप ही यहां उपचारादि से जगत्पति की सेवा करियेगा। अथवा पितामह ब्रह्मा की इस विषय में आज्ञा होगी आप यत्नतः उसी प्रकार से यहां नित्य पूजा, रथयात्रा, उत्सवादि का आयोजन करियेगा। क्योंकि राजा ही धर्मपालक होता है।"।।३४-३९।।

ततःसगालोनृपतिःश्रुत्वातच्चिन्तितंस्वयम्। इन्द्रद्युम्नादिष्टमेतदितिप्राप परांमुदम्।।४०।।
तस्थौ तस्याऽन्तिकेगालआज्ञाकारइवस्वयम्। तत्तदाशुकरोत्येषइन्द्रद्युम्नोयदादिशत्।।४१।।
एवं सम्भृतसम्भारः सिंहासनगतः प्रभु। देवैःपरिवृतश्चेन्द्रद्युम्नः शक्र इवाऽऽबभौ।।४२।।

इस कथन को सुनकर राजा गाल तो मन ही मन यह सोचने लगे कि मैं जो चाहता था, वैसी ही आज्ञा राजा इन्द्रद्युम्न द्वारा प्रदान की गयी है। उनको इस बात से अभूतपूर्व आनन्द प्राप्त होने लगा। वे राजा गाल उसी क्षण से इन्द्रद्युम्न के सम्पर्क में रहते हुये उनके आज्ञाकारी सेवक के समान कार्य करने लगे। राजा इन्द्रद्युम्न ने इस प्रकार से प्रतिष्ठार्थ द्रव्य समूह का आयोजन किया तथा देवगण से घिरे सिंहासनारूढ़ होकर इन्द्र के समान शोभित होने लगे।।४०-४२।।

ततोऽश्रूयन्तनिनदादिव्यदुन्दुभिजाःशुभाः। मृदङ्गवेणुवीणादितालकाहालनिःस्वनाः।।४३।।
ऐरावतादिकरिणां बृंहितानि बहूनि खे। समन्ताज्जयशब्दाश्चपुष्पवृष्टिविमिश्रिताः।।४४।।
आकाशगङ्गासलिलकणा मन्दारमिश्रिताः।

दिव्यस्त्रग्लेपधूपानां गन्धा दिग्व्यापिनस्तथा।
वैमानिकानां देवानां किङ्किणीजालनिःस्वनाः॥४५॥
ततश्चतेजसां राशी रोदसीमध्यपूरकः। आविरासीत्क्षितिगतनयनाच्छादकोद्विजाः॥४६॥
उत्तोलिताक्षिमालाभिःप्रजाभिर्वीक्षितःपुरः। ततःक्रमात्सन्ददृशेविमानाग्र्यं प्रजापतेः॥४७॥
स्वर्णहंसशतैः स्कन्धेनोह्यमानः समन्ततः। दिक्पालैश्चामरव्यग्रहस्तैरासेवितः पुरः॥४८॥
जाह्नवीयमुनानीरप्रकीर्णककरेऽभितः। पार्श्वयोश्चन्द्रसूर्याभ्यामुभाभ्यामातपत्रके॥४९॥
धार्यमाणे शनैर्वायोर्गतिचञ्चलचोलके। ब्रह्मर्षिभिर्गौतमाद्यैः स्तूयमानो रहस्यकैः॥५०॥

तदनन्तर दिव्य दुन्दुभि, मुरज, वेणु, काल एवं वीणा आदि का तालत्रय समन्वित मनोहर निनाद होने लगा। ऐरावतादि हाथी के उच्च शब्द चतुर्दिक् होने लगे। जय शब्द के घोष के साथ आकाश से पुष्पवर्षा हो रही थी। दिव्य माला तथा धूप भी गन्ध दिगन्तव्यापिनी हो रही थी। वैमानिक देवगण के विमानों पर लगी छोटी-छोटी असंख्य घंटिया भी बज रहीं थीं। ये सभी मनोमुग्धकारी ध्वनियां श्रुतिगोचर होती जा रहीं थीं। हे द्विजगण! उसी समय स्वर्ग तथा मृत्युलोक के मध्यभाग को परिपूर्ण करती एक अत्यद्भुत् तेजोराशि आविर्भूत हो गयी। पृथिवी पर स्थित कोई भी प्राणी उस तेजराशि की ओर आंखें उठाकर नहीं देख पा रहा था। उस तेज से सभी के नेत्र बन्द हुये जा रहे थे। तत्पश्चात् प्रजावर्ग ने अतीव प्रयत्न से नेत्रों को खोल कर उस तेजराशि को यत्किंचित् देखा। तत्पश्चात् क्रमशः उस तेजराशि के मध्य में विमान पर बैठे प्रजापति ब्रह्मा दृष्टिगोचर होने लगे। उस विमान का वहन चारों ओर से सैकड़ों स्वर्ण हंस कर रहे थे। दिक्पालगण उनको अपने हाथों से अनवरत चंवर झल रहे थे। उनके पवित्र कलेवर को दोनों पार्श्व से क्रमशः यमुना तथा गंगा अभिषिक्त कर रही थीं। चन्द्र तथा सूर्य ने दोनों ओर से आतपत्र धारण कर रखा था। मन्दमन्द वायु के प्रवाह के कारण इन आतपत्र के प्रान्तभाग में विलम्बित झालर हिल रही थी। गौतमादि ब्रह्मर्षिगण देवदेव के मन्त्रों से उनकी स्तुति कर रहे थे।।४३-५०।।

तन्मध्यस्थः प्रजानाथ ! इन्द्रद्युम्नादिभिः स्तुतः। आलुलोके देवगणैर्जयशब्दैरभिष्टुतः॥५१॥
रम्भादिकाभिर्वेश्याभिर्नृत्यतेस्मससाध्वसम्। हाहाहूहूप्रभृतिभिर्गीयमानश्चगायकैः॥५२॥
सिद्धविद्याधरगणैः सादरं चोपवीणितः। कृताञ्जलिपुटैर्दूरात्तपस्विभिरुपासितः॥५३॥
सावित्रीशारदे तस्य वाक्प्रबन्धैर्विचित्रकैः।
तोषमासादयन्त्यौ च कोऽन्यस्तत्तोषणे क्षमः॥५४॥
जाह्नवीयमुनानीरप्रकीर्णितकलेवरः। ये च गन्धर्वसिद्धाद्या नारदप्रमुखा द्विजाः॥५५॥
वेत्रहस्ताःसविनयादिव्यसोपानदर्शनाः। सम्मर्दःसमहानासीद्देवानां दिविगच्छताम्॥५६॥
नकोऽपिगण्यतेदेवःकोवाकेनपथाव्रजेत्। अहंपूर्विकया तेषां व्रजतां त्रिदिवौकसाम्॥५७॥
सम्मर्दातिशयात्तेषां विभ्रंशोऽभूत्स्ववाहनैः। स्त्रष्टा पाताचसंहर्त्ताजगतांयोजगन्मयः॥५८॥
साक्षाद्व्रजतितत्रैषांसुराणांमहिमाकुतः। तं दृष्ट्वासाध्वसान्नम्रोभक्त्याबद्धाञ्जलिर्नृपः॥५९॥

उस समय इन्द्रद्युम्न आदि राजर्षिगण तथा देवगण ने विमानस्थ प्रजानाथ ब्रह्मा की यथोचित स्तुति किया। उस समय रम्भा आदि स्वर्ग की स्त्रियां भयपूर्वक नृत्य करने लगीं। हाहा-हूहू आदि संगीतज्ञ गन्धर्वगण मधुर संगीत से उनको प्रसन्न करने लगे। सिद्धविद्याधरगण सादर मनोहर वीणावादन रत हो गये। जो तपस्वी थे, वे दूर से उनकी हाथ जोड़कर उपासना कर रहे थे। देवी सावित्री तथा सरस्वती विचित्र वाक्यों द्वारा उनको सन्तुष्ट कर रहीं थीं। फलस्वरूप इन देवदेव को और कौन सन्तुष्ट कर सकेगा? हे द्विजगण! तब नारदादि देवर्षि तथा प्रधान-प्रधान सिद्ध एवं गन्धर्वगण हाथों में बेत धारण किये विनय के साथ भगवान् ब्रह्मा को सोपान दिखलाने लगे। उस समय गगनमार्ग देवगण द्वारा भर गया। तब कौन किस मार्ग से आगे जाये, यही ज्ञात नहीं हो पा रहा था। कोई देवता किसी देवता को ही नहीं समझ पा रहा था (अर्थात् इतनी भीड़ थी)। सभी देवता अपने वाहनों से पहले आगे जाने का उपक्रम करने लगे। ऐसा घटित होना भी विचित्र नहीं है। क्योंकि सृष्टि-स्थिति-संहारक जगन्मय साक्षात् भगवान् जहां आये हैं, वहां अन्य देवताओं की क्या गिनती? उनको कौन-महत्व देगा? भगवान् को देखकर राजा इन्द्रद्युम्न सभय तथा विनीत मुद्रा में हाथं जोड़कर स्थित हो गये।।५१-५९।।

तैर्देवैर्गालराजेन नारदप्रमुखेन च। सहितो धरणीं प्रायात्साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च।।६०।।
उत्थाय परया भक्त्या प्रहृष्टेनान्तरात्मना। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गं स्वं मन्वानःकृतार्थकम्।।६१।।
पुरतो जगदीशस्य पश्यञ्छुद्धंपितामहम्।
कृताञ्जलिपुटो राजा ममज्जाऽऽनन्दसागरे।।६२।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्र-माहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे भगवत्प्रतिष्ठायोजनंनामषड्विंशोऽध्यायः।।२६।।

उस समय सभी देवता, महर्षि, नारदादि देवर्षि तथा राजा गाल आदि साष्टांग धरणी पर लोटते हुये उनका स्तव पुनः-पुनः करने लगे। हे विप्रगण! तदनन्तर उन महात्मा इन्द्रद्युम्न ने परमभक्ति के साथ प्रसन्न अन्तःकरण से उठकर स्वयं को कृतार्थ माना। उनका शरीर पुलकित तथा रोमांचित हो उठा। वे निर्मलात्मा भगवान् पितामह का दर्शन करते हुये उन जगदीश्वर के समक्ष अंजलिबद्ध खड़े होकर आनन्द सागर में निमज्जित हो गये।।६०-६२।।

।।षड्विंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

सप्तविंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्न द्वारा चार मूर्त्तियों की स्थापना, ब्रह्माकृत भगवत् स्तुति, भारद्वाज द्वारा सर्वदेवपूजा

जैमिनिरुवाच

अथाऽन्तरिक्षान्निःश्रेणी रत्नकाञ्चननिर्मिता। संलग्ना पादसम्पीठे पद्मयोनेर्विमानगा॥१॥
सा क्षितिस्पृष्टमूला वै विधातुरवहोहणे। चतुर्व्यासायतापीनसोपानश्रेणिसंयुता॥२॥
रथप्रासादयोर्मध्ये शक्रचापइवांऽशुमान्। आविर्बभूव सहसासाऽद्भुतं वीक्षितो जनैः॥३॥
ततो गन्धर्वराजैस्तु रत्नवेत्रकरैर्द्विजाः। एषपन्थाः प्रभो ह्येहि इत्यादेशितमार्गकैः॥४॥

जैमिनि कहते हैं—तदनन्तर भगवान् ब्रह्मा के नीचे उतरने के लिये रत्न-कौचन निर्मित एक दिव्य सिढ़ी उनके विमान के पाद पीठ पर लगाई गई। उसका निचला सिरा पृथिवी पर रखा गया। उसकी सभी सिढ़ियां दीर्घता में तथा बड़ी थीं। जब देदीप्यमान इन्द्रधनुष के समान वह सिढ़ी ब्रह्मा के विमान से लेकर प्रासाद के मध्य भाग तक से पृथिवी पर लगाई गई, तब सभी ने उस अद्भुत वस्तु का निरीक्षण करना प्रारंभ कर दिया। हे द्विजगण! तब गन्धर्वगण मार्ग प्रदर्शनार्थ रत्नमयी बेंत हाथों में लेकर कहने लगे—"हे प्रभो! यह आपके जाने का मार्ग है। आप इधर से चलें।" इत्यादि वाक्यों से वे गन्धर्वगण ब्रह्मा को मार्ग दिखलाने लगे।।१-४।।

दुर्वाससो नारदस्य करयोर्दत्तहस्तकः। सोपानैरवतीर्णाऽथ पुनानश्चक्षुषा जगत्॥५॥
स्मयमानो रथान्दृष्ट्वा प्रासादं समलङ्कृतम्।
दिगन्तव्यापिनींशालां रत्नस्तम्भोपशोभिताम्॥६॥
शक्रस्याऽप्यद्भुतकरीं सर्वसम्भारसम्भृताम्। अवातरद्विमानात्स देवब्रह्मर्षिराजभिः॥७॥

तदनन्तर भगवान् पद्मयोनि महर्षि दुर्वासा तथा नारद का हाथ पकड़े हुये तथा दृष्टिपात मात्र से समस्त जगत् को पवित्र करते उस सिढ़ी-द्वारा विमान से नीचे उतरे। वहां देवताओं के रथ, अलंकृत देवालय (प्रासाद) को तथा जिसे देखकर देवराज इन्द्र भी विस्मित हो जायें, ऐसे रत्नों के स्तम्भ पर शोभित दिगन्तव्यापी सर्वसम्भारपूर्ण पुरुषोत्तम मन्दिर को देखकर आनंदित हो गये तथा मन्द हास्य करने लगे।।५-७।।

किरीटदत्ताञ्जलिभिः स्तूयमानः समन्ततः। कटाक्षेणाऽनुगृह्णाति यां दिशं स पितामहः॥८॥
तत्राऽञ्जलीनां सम्मर्दाः कोटयः शिरसा धृताः। पादाब्जप्रणतंदृष्ट्वाइन्द्रद्युम्नंप्रजापतिः॥९॥
उवाच प्रश्रयगिरास्मितभिन्नोष्ठसम्पुटः। अफल्यानिर्दिशन्देवान्पितृन्ब्रह्मर्षितापसान्॥१०॥
सिद्धविद्याधरान्यक्षगन्धर्वाप्सरस्तथा। एकत्र मिलितान्सर्वान्युगपन्मोदनिर्भरान्॥११॥
पश्येन्द्रद्युम्नभाग्यं ते सर्वलोकवशीकरम्। त्वदर्थमेकदा सर्वे मां पुरस्कृत्य सङ्गताः॥१२॥
इत्युक्त्वा प्रययौ शीघ्रं नारायणरथं ततः। प्रणिपत्य जगन्नाथं त्रिः परीत्य पितामहः॥१३॥

आनन्दसिन्धुसम्मग्नःसरोमाञ्चवपुःस्वयम्। स्वमात्मानंनुनावाऽथप्रत्यक्षंस्वरगद्गदम्॥१४॥

जब वे विमान से पृथिवी पर उतरे तब समस्त देवता तथा ब्रह्मर्षिगण मस्तक का स्पर्श कर अंजलिबद्ध होकर चारों ओर से उनकी स्तुति कर रहे थे। वे भगवान् पितामह जिधर भी कटाक्षपात करते अनुग्रह कर रहे थे, उधर ही उन्होंने सबको मस्तक पर अंजलिबद्ध अवस्था में देखा। तत्पश्चात् भगवान् प्रजापति ने राजाओं में श्रेष्ठ इन्द्रद्युम्न को जब अपने चरणों में गिरा देखा, तब वे हास्यपूर्ण मुद्रा में समागत आनन्दाप्लुत देवता, पितर, ब्रह्मर्षि, तपस्वी तथा सिद्ध-विद्याधर-यक्ष-गन्धर्व-अप्सरा आदि को इंगित करके मृदुमधुर वचन कहने लगे "हे इन्द्रद्युम्न! तुम्हारा तो अप्रतिम सौभाग्य है! तुमने तो अपने भाग्य से सातों लोक वश में कर लिया। तुम्हारे कार्य हेतु ही सातों लोक के निवासी मुझे आगे करके लाये हैं।" भगवान् कमलयोनि ने इन्द्रद्युम्न से यह कहा तथा तत्क्षण भगवान् जगन्नाथ के रथ के पास जाकर उन्होंने जगन्नाथ हरि की तीन प्रदक्षिणा किया। तदनन्तर जगन्नाथ देव को प्रणाम करके वे आनन्दसागर में निमग्न हो गये। उन्हें रोमांच हो आया। ब्रह्मदेव गद्गद् होकर अपने ही आत्मरूप प्रत्यक्षीभूत भगवान् की स्तुति प्रणाम करते हुये कहने लगे।।८-१४।।

ब्रह्मोवाच

नमस्तुभ्यं नमोमह्यं तुभ्यं मह्यं नमोनमः। अहं त्वंत्वमहंसर्वं जगदेतच्चराचरम्॥१५॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे विश्वात्मन्! आपको तथा मुझे बारम्बर प्रणाम, क्योंकि जो मैं हूं, वे ही आप हैं तथा जो आप हैं, वही मैं हूं।अतः अभिन्नात्मा आपको तथा स्वयं को पुनः-पुनः प्रणाम करता हूं।।१५।।

महदादि जगत्सर्वंमायाविलसितंतव। अध्यस्तंत्वयिविश्वात्मंस्त्वयैवपरिणामितम्॥१६॥
यदेतदखिलाभासं तत्त्वदज्ञानसम्भवम्। ज्ञाते त्वयिविलीयेत रज्जुसर्पादिबोधवत्॥१७॥
अनिर्वक्तव्यमेवेदं सत्त्वात्सत्त्वविवेकतः। अद्वितीय जगद्भास स्वप्रकाशनमोऽस्तु ते॥१८॥

महदादि समस्त जगत् आपका मायाविलास मात्र है। वास्तव में आपकी माया द्वारा उत्पादित समस्त वस्तु एकमात्र आपमें ही प्रतिफलित हो रही है। हे नाथ! आपके तत्व को न जानने के कारण अखिल पदार्थ भासित होता है, तथापि वास्तविक रूप से आपकी अभिज्ञाता हो जाने पर जैसे रज्जु में सर्पादि भ्रम होता है, उसी प्रकार आप से अतिरिक्त जो कुछ है, उन सबका अस्तित्व ही लुप्त हो जाता है। तब यह लगता है कि सब कुछ केवल आप ही हैं। जगत् में कोई वस्तु सत् तथा कोई वस्तु असत् है। इसकी विवेचना करके देखने से यह सब वास्तव में क्या है, इसे वाक्य से कहा जा सकना असंभव है। क्योंकि वह सब केवल आप हैं। हे अद्वितीय! आप ही जगत्स्वरूप में प्रतिभासित तथा स्वप्रकाशमान हैं। आपको प्रणाम!।।१६-१८।।

विषयानन्दमखिलं सहजानन्दरूपिणः। अंशं तवोपजीवन्ति येन जीवन्ति जन्तवः॥१९॥
निष्प्रपञ्च! निराकार! निर्विकार! निराश्रय!। स्थूलसूक्ष्माणुमहिमन्स्थौल्यसूक्ष्मविवर्जितः !॥२०॥

समस्त जन्तुगण सहज आनन्दरूप आपके ही अखिल विषयानन्दकण का आश्रय लेकर विद्यमान हैं। हे निराकार! आप निर्विकार-निराश्रय हैं! आपमें समस्त जगत्प्रपंच प्रकाशित होने पर भी आप प्रपंच से अतीत रहते हैं। हे निराकार! आप निर्विकार, निराश्रय हैं। आप में समस्त जगत्प्रपंच प्रकाशित होने पर भी, आपमें स्थूलत्व तथा सूक्ष्मत्व न रहने पर भी, आप प्रपंचात्मक, स्थूलत्व तथा सूक्ष्मत्व युक्त एवं महान् हैं।।१९-२०।।

गुणातीत ! गुणाधार ! त्रिगुणात्मन्नमोऽस्तु ते॥२१॥

त्वन्माययामोहितोऽहंसृष्टिमात्रपरायणः। अद्याऽपिनलभेशर्मअन्तर्य्यामिन्नमोऽस्तुते॥२२॥

हे त्रिगुणात्मन्! आप सत्वादिगुणत्रयाधार होकर भी त्रिगुणातीत हैं। आपको प्रणाम! हे अन्तर्यामी! मैं आपकी माया से मोहित होकर सृष्टिकार्य में निरन्तर निरत रहकर किसी प्रकार से भी शान्तिसुखलाभ नहीं कर पा रहा हूं। आपको प्रणाम!।।२१-२२।।

त्वन्नाभिपङ्कजाज्जातो नित्यं तत्रैव संस्तुवन्।
नाऽतिक्रमितुमीशोऽस्मि मायां ते कोऽन्य ईश्वरः॥२३॥

अहं यथाऽण्डमध्येऽस्मिन्नचितःसृष्टिकर्मणि। तथानुलोमकलिताब्रह्माण्डेब्रह्मकोटयः॥२४॥

सार्द्धत्रिकोटिसङ्ख्यानां विरिञ्चीनामपि प्रभो !।
नैकोऽपि तत्त्वतो वेत्ति यथाऽहं त्वत्पुरः स्थितः॥२५॥

नमोऽचिन्त्यमहिम्ने ते चिद्रूपाय नमोनमः। नमोदेवाऽधिदेवाय देवदेवाय ते नमः॥२६॥

हे प्रभो! मैंने आपके नाभिकमल से जन्म लिया था। मैं तदनन्तर अनंतकाल पर्यन्त वहीं रहकर आपकी स्तुति करता रहा, तथापि मैं आपकी माया का अतिक्रमण नहीं कर सका। तब अन्य कौन इसमें सक्षम हो सकेगा? हे नाथ! आपने जैसे सृष्टि कार्य हेतु मेरी उत्पत्ति किया, ऐसे ही आपने करोड़ों ब्रह्माण्डों में करोड़ों ब्रह्मा की सृष्टि किया। हे प्रभो! मेरे जैसे साढ़े तीन करोड़ संख्यक ब्रह्माओं में से आपके समक्ष स्थित मेरे ही समान कोई भी ब्रह्मा यथार्थतः आपके स्वरूप को नहीं जान सका। (अर्थात् मैं जैसे नहीं जान सका वैसे ये साढ़े तीन कोटि ब्रह्मा भी नहीं जान सके)। हे नाथ! मैं अनन्तमहिमासम्पन्न आप चिद्रूप प्रभु को पुनः-पुनः प्रणाम करता हूं। हे देवाधिदेव, देवदेव! आपको प्रणाम!।।२३-२६।।

दिव्यादिव्यस्वरूपाय दिव्यरूपाय ते नमः। जरामृत्युविहीनायमृत्युरूपाय ते नमः॥२७॥
ज्वलदग्निस्वरूपाय मृत्योरपि च मृत्यवे। प्रपन्नमृत्युनाशायसहजानन्दरूपिणे।
भक्तिप्रियाय जगतां मात्रे पित्रे नमोनमः॥२८॥

आप दिव्यरूप हैं, तथापि दिव्यादिव्यरूप भी हैं। आपको पुनः-पुनः प्रणाम! आप जरामृत्युरहित हैं एवं मृत्युरूपी मनीषी आपको ज्वलद् अग्निरूप तेजोमय तथा मृत्यु का भी मृत्युरूप कहते हैं। हे देव! आप सहज आनन्दमय हैं। आप शरणागत की मृत्यु के नाशक हैं। आप भक्तों के प्रिय तथा समस्त जगत् के पिता-माता हैं। आपको पुनः-पुनः प्रणाम!।।२७-२८।।

प्रणतार्तिविनाशाय नित्योद्योगिन्नमोस्तुते। नमोनमस्तेदीनानां कृपासहजसिन्धवे॥२९॥

आप ही प्रगाढ़ अज्ञानान्धकार को नष्ट करने वाले अद्वितीय सूर्यरूप हैं। आपका आश्रय लेने पर अन्य किसी प्रकार का दुःख नहीं रहता। नाना क्लेश से दग्ध जीवों हेतु आप ही अकृत्रिम कृपासिन्धु हैं। आपको पुनः पुनः प्रणाम!।।२९।।

पराय पररूपाय परम्पाराय ते नमः। अपारपारभूताय ब्रह्मरूपाय ते नमः॥३०॥
परमार्थस्वरूपाय नमस्ते परहेतवे। परम्परापरिव्याप्तपरतत्त्वपराय ते॥३१॥

प्रणतार्तिविनाशाय नमः स्वात्मैकभानवे। पुरायत्प्रर्थितं स्वास्मिन्सृष्टिभारावतारणे॥३२॥
तत्कुरुष्व जगन्नाथ सहजानन्दरूपभाक्। त्वयिप्रसन्ने किं नाथ दुर्लभं मयि विद्यते॥३३॥
त्वयैवाऽहं पृथग्लीलाभेदाद्भिन्नः कृपाऽम्बुधे। अज्ञानतिमिरच्छन्ने जगत्कारागृहान्तरे॥३४॥
भ्राम्यन्न द्वारमाप्नोति त्वामृते मुक्तिहेतवे॥३५॥

हे प्रभो! आप परात्पर तथा सर्वश्रेष्ठ हैं। भक्तों के पापसमूह के परमशत्रु हैं। आप संसार पारावार को पार कराने वाले हैं। हे नाथ! आप ही समस्त वस्तु के मूलीभूत कारण हैं। आप परम्परा से परिव्याप्त परतत्वपर हैं। आप परमात्मारूप को प्रणाम! हे नित्योदय योगी! आप प्रणतजन के समस्त दुःखों को दूर कर देते हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं। हे स्वामी! मैंने पूर्वकाल में सृष्टि के भार को उतारने हेतु जो प्रार्थना किया था उसे पूर्ण करें। हे जगन्नाथ! हे सहजानन्दरूपी प्रभी! आपके प्रसन्न होने पर दुर्लभ क्या है? हे कृपाम्बुधि! आपने ही तो अपने लीलाभेद द्वारा मुझे अपने से अलग करके अज्ञानान्धकार से आवृत जगतीरूप कारागार में फेंक दिया है। अब इससे मुक्ति हेतु आपकी कृपा के अतिरिक्त अनन्तकालं भटकते रहने पर भी कोई छुटकारा का मार्ग नहीं है।।३०-३५।।

नमो नमस्ते जगदेकवन्द्य! सुरासुराभ्यर्चितपादपद्म!।
नमोनमस्तापहरैकचन्द्र! नमोनमः शर्मसुबोधसान्द्र!॥३६॥
नमोनमः कल्पकदूरभूत दुष्प्राप्यकामप्रदकल्पवृक्ष!।
दीनाशरण्यप्रणतैकदुःखसङ्घोद्धृतौ नित्यसुबद्धपक्ष !॥३७॥
प्रसीदं जगतांनाथ ! मग्नानां दुःखसागरे। कटाक्षलीलापातेनत्रायस्व करुणाकर !॥३८॥

हे देव! आप अखिल जगदाधार तथा आराध्यदेव हैं। इसलिये देव-असुर सभी आपके चरणकमल की आराधना करते रहते हैं। हे नाथ! इस जगत् संसार में एकमात्र आप ही समस्त सुखों के आधार, सन्तापहारी, अद्वितीय चन्द्ररूप हैं। आपको पुनः-पुनः अनेक प्रणाम! हे दीनबन्धु! आप दीनों के दुर्लभ दाता, कामनापूरक, अकम्पित कल्पवृक्ष रूप हैं। आप दीन-निराश्रित प्रणत हो गये भक्तों की असीम क्लेशराशि के निवारणार्थ सदैव उद्यत रहते हैं। आपको पुनः-पुनः प्रणाम! हे नाथ! दुःखसागरनिमग्न जगद्वासीगण के प्रति प्रसन्न हो जायें। हे करुणाकर! करुणा करके करुणाकटाक्षपात द्वारा जगत्वासीगण की रक्षा करिये।"।।३६-३८।।

स्तुत्वेत्थं श्रीजगन्नाथं वेदार्थैः स पितामहः। जगाम सीरिणंद्रष्टुमवतीर्णंधराधरम्॥३९॥
प्रणम्यपरया भक्त्या तुष्टाव बलिनं मुदा। नमः शिरस्तेदेवेश आपस्तेविग्रहः प्रभो॥४०॥
पादौक्षितिर्मुखं वह्निः श्वसितानि समीरणः। मनस्तेह्योषधीनाथश्चक्षुषीतेदिवाकरः॥४१॥
बाहवः ककुभोनाथ नमस्तेज्ञानदर्पण !। चतुर्दशानां लोकानांमूलस्तंभायसीरिणे॥४२॥
पदाम्भोजप्रपन्नानां नमः पापौघदारिणे। अनन्तवक्त्रनयनश्रोत्रपादाक्षिबाहवे॥४३॥
नमोऽनादिमहामूलतमःस्तोमौघभानवे। त्रयीमयत्रिधादोषनाशायत्र्यवतारिणे॥४४॥

भगवान् पितामह ने इस प्रकार से जगन्नाथ श्रीहरि का स्तव किया। तत्पश्चात् वे वहां प्रकट धराधर बलभद्र के दर्शनार्थ गये। तदनन्तर अत्यन्त भक्ति के साथ ब्रह्मा ने बलभद्र को प्रणाम किया तथा आनन्दित

होकर यह स्तव करने लगे। "हे देवेश! नभमण्डल पर्यन्त आपका मस्तक है। जलराशि आपका शरीर है। पृथिवी आपके दो पैर हैं। अग्नि ही मुख हैं। ४९ वायु आपका निःश्वास-प्रश्वास है। चन्द्र-सूर्य आपके दो नेत्र हैं। हे प्रभो! आपको प्रणाम! हे नाथ! दिशायें आपकी बाहु हैं। आप चतुर्दश भुवनों के मूल स्तम्भ तथा ज्ञानदर्पण हैं। आपको प्रणाम! हे देव! जो आपके चरणाश्रित हैं, आप उनकी पापराशि को दूर करते हैं। आपके चक्षु-कर्ण-मुख-हस्त-पादादि अनन्त हैं। हे प्रभो! आपका आदि नहीं है। आप ही विश्व के महामूल हैं। तमः के निवारणार्थ आप ही सूर्य हैं। आप कही ऋक्-यजुः-साम रूप वेदत्रयी हैं। आपकी कृपा से आध्यात्मिकादि तीनों दोषों का प्रशमन हो जाता है। आप त्रिमूर्त्ति में अवतीर्ण हैं। आपको पुनः-पुनः प्रणाम!।।३९-४४।।

फणामणिफणाकारक्षितिमण्डलधारिणे। नमः कालाऽग्निरुद्राय महारुद्राय ते नमः।।४५।।
भोगतल्पफणाच्छत्रमध्यसुप्ताय ते नमः। महार्णवजलेवृद्ध एकीभूते जगत्त्रये।।४६।।
त्वमेवशेषोभगवन्सहस्रफणमण्डितः। फणामणिगणव्याजसम्भृताखिलभौतिकः।।४७।।
त्वमेव नाथः सर्वेषां स्त्रष्टा पालयिता विभो !।
अत्ता धारयिता नित्यं मदाद्यास्त्वन्निमित्तकाः।।४८।।
एषनारायणो देवो वेदान्तेपूषगीयते। त्वत्तो न भिन्नोभगवन्कारणाद्भेदभागसि।।४९।।
शय्या त्वं शयिता ह्येष छाद्यः सञ्छादको भवान्।
यो वै विष्णुः स वै रामो यो रामः कृष्ण एव सः।।५०।।
युवयोरन्तरं नास्ति प्रसीदत्वं जगन्मय। इतिस्तवन्ते बलिनं प्रणम्य परमेश्वरम्।।५१।।

हे प्रभो! आपने अपने मस्तक पर अपनी मणि के समान एक कण की तरह विशाल पृथिवीमण्डल को लीलापूर्वक धारण किया है। आप कालाग्निरूप तथा महारुद्र हैं। आपको पुनः-पुनः प्रणाम! हे देव! प्रलयकाल में महार्णवजल जब बढ़ जाता है, उसके द्वारा तीनों लोक के प्लावित होने पर सब कुछ एकीभूत रहता है, तब आप अपने कुण्डली के समान प्रकाण्ड देह को शय्या तथा फणों को छत्र बनाकर प्रलय समुद्र के जल में सुखपूर्वक निद्रित होते हैं, आप अनन्त महिमा वाले को प्रणाम! हे नाथ! आप सबके स्त्रष्टा-पालक तथा संहारक हैं। आप ही मेरे तथा सबके मूलकारण भी हैं। हे भगवान्! समस्त वेदान्त शास्त्रों में जिनकी महिमा वर्णित है, वे भगवान् नारायण आपसे भिन्न नहीं हैं। केवल अनिर्वचनीय कारणों से ही आप पृथक्तः विराजमान रहते हैं। आप शय्या हैं। नारायण शयन कर्त्ता हैं। आप फणरूप छादक (छत्र) हैं। नारायण छाद्य हैं। (अर्थात् फणरूपी छत के नीचे स्थित हैं) वास्तव में वे कृष्ण ही राम हैं, जो राम हैं, वे ही कृष्ण हैं। आप लोगों में कोई भेद नहीं है। हे जगन्नाथ! आप मुझ पर प्रसन्न हो जायें।" भगवान् ब्रह्मा ने परमेश्वर बलराम की इस प्रकार स्तुति करके उनको प्रणाम किया।।४५-५१।।

ईश्वरीं जगतां द्रष्टुं सुभद्रास्यन्दनं ययौ। जय देवि ! जगन्मातः ! प्रसीदपरमेश्वरि !।।५२।।
कार्यकारणकर्त्रीत्वं सर्वशक्त्यै नमोऽस्तुते। सर्वस्यहृदिसम्विष्टेज्ञानमोहात्मिकेसदा।।५३।।
कैवल्यमुक्तिदे भद्रे ! त्वां ! नमामि सुरारणिम्।
देवि ! त्वं विष्णुमायाऽसि मोहयन्ती चराचरम्।।५४।।

हृत्पद्मासनसंस्थासि विष्णुभावानुसारिणी।
त्वमेव लक्ष्मीगौंरी च शची कात्यायनी तथा॥५५॥
यच्च किं चित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वा खिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य शक्तिस्त्वं स्तोतुं त्वां कस्तु शक्तिमान्॥५६॥

भगवान् ब्रह्मा बलभद्र को स्तुति करने के अनन्तर प्रणाम करके अखिल जगत् की ईश्वरी विष्णुशक्ति सुभद्रा के रथ के पास गये। वहां जाकर ब्रह्मा कहने लगे—"हे देवी जगन्माता! आपकी जय हो। आप प्रसन्न हो जायें। हे परमेश्वरी! आप कार्यकारणकर्त्री हैं, आप सर्वशक्तिस्वरूपा हैं। आपको नमस्कार! हे कैवल्यसुखदे! आप अखिल जीव के हृत्कमल में विराजित रहती हैं। हे ज्ञानमोहात्मिके! आप सुरगण की अरणिरूप हैं। हे भद्रे! आपको प्रणाम करता हूं। हे देवी! जो चराचर को मोहित करती रहती हैं, आप वही विष्णुमाया हैं। हे विष्णु के भावों का अनुसरण करने वाली! आप कमलारूप से सर्वदा विष्णु के हृत्कमल में निवास करती हैं। हे माता! आप ही लक्ष्मी, गौरी शची, कात्यायनी हैं। अधिक क्या कहा जाये, जगत् में सत्-असत् जो कुछ भी है, आप उन सबकी शक्तिरूपा हैं। हे अखिलात्मिके! आपका स्तव कौन करने में समर्थ हो सकता है?।।५२-५६।।

जय भद्रे ! सुभद्रे ! त्वं सर्वेषां भद्रदायिनि !। भद्राभद्रस्वरूपेत्वंभद्राकालिनमोऽस्तु ते॥५७॥
त्वं माता जगतां देवि ! पिता नारायणो हिसः। स्त्रीरूपंत्वंसर्वमेवपुंरूपोजगदीश्वरः॥५८॥
युवयोर्न हि भेदोऽस्ति नास्त्यन्यत्परमेव हि।
यथा वयं नियुक्ता हि त्वया वै विष्णुमायया॥५९॥
निदेशकारिणो नित्यं भ्रमामः परमेश्वरि !। वृत्तिः प्रवृत्तिः परमाक्षुधानिद्रा त्वमेव च॥६०॥
आशात्वमाशापूर्णा च सर्वाशापरिपूरिका। मुक्तिहेतुस्त्वमेवेशिबन्धहेतुस्त्वमेवहि॥६१॥

हे जननी! आप समस्त शुभप्रदात्री (भद्रदायिनी) होने के कारण भद्रा नाम से प्रसिद्ध हैं। हे सुभद्रे! आप भी जय हो। हे भद्रकाली! आप ही समस्त भद्राभद्ररूप हैं। आपको प्रणाम! हे देवी! आप अखिल जगत् की माता हैं। भगवान् नारायण समस्त जगत् के पिता हैं। जगत् में जितने भी स्त्री-पुरुष हैं, वे जगदीश्वर नारायण के ही स्वरूप हैं। हे परमेश्वरी! आप तथा नारायण में कोई भेद नहीं है। जगत् में आपलोगों से श्रेष्ठ वस्तु कुछ भी नहीं है। आप विष्णुमाया ने हमें जिस-जिस कार्य में नियुक्त किया है, हम नित्य उनके ही निर्देशानुरूप कार्य करते रहते हैं। चाहे परमावृत्ति कहें, प्रवृत्ति कहें, क्षुधा कहें, निद्रा कहें, आशा कहें, अथवा आशा की पूर्ण स्थिति कहें, वह सब आप हैं। एकमात्र आपकी कृपा से ही सभी लोगों की आशायें पूर्ण होती हैं। हे माता! आप ही जीवगण को मुक्ति प्रदान करती हैं। आप ही इन सबके भवबन्धन की भी हेतु हैं।।५७-६१।।

सर्वज्ञानप्रदे नित्ये भक्तानां कल्पवल्लरी। त्राहिपादाब्जनम्रं मां कृपापाङ्गविलोकनैः॥६२॥
स्तुत्वेत्थं भद्ररूपां तां तत्समीपस्थितं रथे। चक्रंसुदर्शनंविष्णोश्चतुर्थवपुरास्थितम्॥६३॥

"हे सनातनी! आप ही भक्तों हेतु सर्वकाम प्रदात्री हैं। हे भक्तवत्सले! आप उनके लिये कल्पलतावत् हैं। आप अपने भक्तों की समस्त कामना पूर्ण करती हैं। आप आशा पूर्ण करने वाली, सर्वाशापरिपूरिका हैं। आप ही मुक्ति का कारण हैं तथा आप ही बन्धन की हेतुरूपा भी हैं। हे भक्तवत्सले! मैं आपके चरणों में प्रणत

होता हूं। आप अपने कृपाकटाक्ष से मेरा परित्राण करिये।'' इस प्रकार कमलासन ब्रह्मा ने सुभद्रा देवी का स्तव किया तथा समीपवर्त्ती रथस्थ विष्णु के ही चतुर्थ देहरूप सुदर्शन चक्र के पास गये तथा उनको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके स्तुति करने लगे।।६२-६३।।

प्रणम्यपरया भक्त्या इमांस्तुतिमुदाहरत्। सुदर्शन ! महाज्वाल ! कोटिसूर्यसमप्रभ !।।६४।।
अज्ञानतिमिरान्धानां वैकुण्ठाध्वप्रदर्शक। नमस्ते नित्यविलसद्वैष्णवस्वनिकेतन।।६५।।
अवार्यवीर्ययद्रूपं विष्णोस्तत्प्रणमाम्यहम्। प्रणम्यस्तुत्वादेवान्सरथेभ्यःपरिवृत्य च।।६६।।
इन्द्रद्युम्ननारदाभ्यामादिष्टपदपद्धतिः। नीलाचलमथारोहत्प्रासादं द्रष्टमुत्सुकः।।६७।।
ततः स गत्वा प्रासादसमीपं देवतैः सह। ददर्शशालांरुचिरांस्वचित्ताभिमतांद्विजाः।।६८।।
तन्मध्ये स्थापयामासदैवतोरगभूपतीन्। ब्रह्मर्षीन्योगिनोविप्रान्वैष्णवांश्चतपस्विनः।।६९।।

चक्रराज के पास जाकर ब्रह्मा ने उनको भक्ति के साथ प्रणाम किया तथा उनकी स्तुति करने लगे। ब्रह्मा कहते हैं ''हे महादीप्तिमान सुदर्शन! हे कोटिसूर्य के समान प्रभा से युक्त! आप अज्ञानान्धकार के कारण अन्ध व्यक्तियों के लिये वैकुण्ठमार्ग के मार्गप्रदर्शक तथा सर्वदा विलसनशील हैं। आप नाना वैष्णवास्त्रों के आधार हैं। आपको प्रणाम! आप विष्णु की अनिवार्य मूर्त्ति के समान हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं।'' इस प्रकार ब्रह्मा ने सुदर्शन चक्र को प्रणाम तथा स्तुति करने के उपरान्त सभी देवगण को उनके-उनके वाहन से नीचे उतरने को कहा तथा सबके साथ प्रासाद दर्शनार्थ (देवालय दर्शनार्थ) उत्सुक होकर देवर्षि नारद तथा इन्द्रद्युम्न द्वारा प्रदर्शित पथ से नीलाचल की ओर चल पड़े। हे द्विजगण! तदनन्तर ब्रह्मा देवगण के साथ प्रासाद के निकट पहुंचे तथा उन्होंने वहां पर अपनी इच्छानुरूप बनी मनोहर शाला को देखा। उन्होंने उस शाला में देवता, उपदेवता, ब्रह्मर्षि, योगी, विप्रगण, तपस्वीगण, वैष्णवगण तथा राजाओं को यथास्थान संस्थापित किया।।६४-६९।।

दिव्यसिंहासनवरे नृपेण प्रतिपादिते। स पादपीठे भगवानुपविष्टः स्वयं विभुः।।७०।।
शान्तिकं पौष्टिकं कर्तुं भारद्वाजं महामुनिम्। पितामहाज्ञयाभूपोवरयामासऋद्धिमत्।।७१।।
प्रतिष्ठायां तु ये देवा बलिपूजाविधौ मताः। होमेषु च तथा तेवैध्यानरूपमुपाश्रिताः।।७२।।
आज्ञया पद्मयोनेस्तु चतुर्दिग्भागमाश्रिताः। सुपूजिता गन्धपुष्पमालाऽलङ्कारभूषणैः।।७३।।

वे विभु भगवान् भी स्वयं इन्द्रद्युम्न द्वारा प्रदत्त पादपीठ समन्वित उत्तम तथा सर्वश्रेष्ठ दिव्यसिंहासन पर आसीन हो गये। पितामह का आदेश पाकर तदनुसार इन्द्रद्युम्न ने शान्ति तथा पुष्टि कर्म का अनुष्ठान करने के लिये महर्षि भरद्वाज को बहुमूल्य द्रव्यादि प्रदान करते हुये वरण किया। जो सब देवता प्रतिष्ठा सम्बन्धित बलि-पूजा-होमादि कार्य हेतु स्वीकृत थे, ब्रह्मदेव की आज्ञा से वे सभी इन्द्रद्युम्न द्वारा गन्ध-पुष्प-माला-अलंकारादि द्वारा पूजित होकर चतुर्दिक् बैठ गये तथा ध्यानयोग द्वारा विष्णुचिन्तन करने लगे।।७०-७३।।

ततः कर्म प्रववृते भारद्वाजेन धीमता। प्रत्यक्षं देवदेवस्य सर्वेषां च दिवौकसाम्।।७४।।
त्रैलोक्यवासिनां पूजां चकार नृपतिर्मुदा। साङ्गोपाङ्गं समभ्यर्च्य जगत्स्त्रष्टारमग्रतः।।७५।।

ततः सम्पूजिताः सर्वे तेन त्रैलोक्यवासिनः।
पश्यन्तोऽवस्थितं मध्ये साक्षाद्ब्रह्माणमव्ययम्।।७६।।

वपुष्मन्तं जगन्नाथं प्रत्यक्षं ब्रह्मरूपिणम्। इन्द्रद्युम्नप्रसादेन जीवन्मुक्तत्वमाप्नुवन्॥७७॥

इसके पश्चात् धीमान् महर्षि भरद्वाज ने देवाधिदेव ब्रह्मा तथा अन्य उपस्थित देवगण के समक्ष कर्त्तव्य कर्म प्रारंभ किया। उस समय नृपति इन्द्रद्युम्न ने आनन्दपूर्वक प्रथमतः साङ्गोपाङ्ग विधान द्वारा देवगण के साथ जगत्स्रष्टा ब्रह्मा की अर्चना करके त्रैलोक्यवासी समस्त जीवगण का यथायोग्य पूजन किया। तदनन्तर इन्द्रद्युम्न द्वारा पूजित त्रैलोक्यवासी समस्त प्राणीगण ने इन्द्रद्युम्न के उस देवालय में देवताओं के मध्य में स्थित अव्ययरूपी साक्षात् भगवान् ब्रह्मा का तथा ब्रह्मरूपी प्रत्यक्ष देहधारी प्रभु जगन्नाथ का दर्शन करने के अनन्तर जीवन्मुक्तावस्था को प्राप्त किया। यह इन्द्रद्युम्न की कृपा से ही संभव हो सका था।।७४-७७।।

कलेवरं भगवतः प्रासादं सुमनोहरम्। प्रतिष्ठाय भरद्वाजः समुच्छ्रितमहाध्वजम्॥७८॥

व्यज्ञापयत्प्रतिष्ठायै जीवस्याऽथ पितामहम्।
समुत्तस्थौ ततो ब्रह्मा कृतस्वस्त्ययनः स्वयम्॥७९॥

ऋषिभिर्नारदाद्यैश्च विद्वद्भिर्ब्राह्मणैस्तथा। राजभिः क्षत्रियैर्नागैः सहितःपरमर्षिभिः॥८०॥

गन्धर्वैर्गायमानेषु दिव्यगानेषु सुस्वरम्। माङ्गल्योचितरागेषु नृत्यन्तीष्वप्सरःसु च॥८१॥

शाकुनेषु च सूक्तेषु पठ्यमानेषु च द्विजैः। शङ्खकाहालमुरजभेरीवादित्रवैणवे॥८२॥

शब्दे प्रमूर्च्छति ततः सर्वे ते स्यन्दनोपरि। गत्वाऽवतारयामासूरथात्सोपानवर्त्मनि॥८३॥

सावधानाः समाधिस्था भक्त्या संयमितात्मकाः।
पार्श्वयोर्भजयोर्मूर्ध्नि पादयोर्न्यस्तपाणयः॥८४॥

शनैः शनैः सलीलं तेनारायणनामयम्। वासंवासंतूलिकासुनिन्युःप्रासादसन्निधिम्॥८५॥

उपर्यपरि सन्तानवृष्टिषूत्पतितासु च। जय कृष्ण ! जगन्नाथ ! जय सर्वाऽघनाशन !॥८६॥

जय लीलादारुतनो ! जय वाञ्छाफलप्रद !।
जय संसारसम्मग्नलीलोद्धार ! जयाऽव्यय॥८७॥

उधर महामुनि भरद्वाज ने भगवान् जगन्नाथ देव की दारुमयी प्रतिमा का और समुन्नत महाध्वज से शोभित मनोहर मन्दिर की प्रतिष्ठा करके भगवान् की प्राणप्रतिष्ठा हेतु भगवान् पितामह से प्रार्थना किया। तब वे उस समय के लिये जो उचित तथा विहित था, ऐसा स्वस्तिवाचन करके नारदादि देवर्षिगण, अन्य विद्वान् ब्राह्मण, क्षत्रिय, राजागण और नागगण के साथ उठे। उस अवसर पर गन्धर्वगण सुमधुर स्वर तथा राग-रागिनी युक्त संगीत गायन कर रहे थे। अप्सरायें मनोहर नृत्य कर रही थीं। द्विजगण ने शाकुनसूक्तों का पाठ आरंभ किया। चारों ओर से शंख-काहल-मुरज-भेरी तथा वेणु वादन के कारण मन को मुग्ध करने वाला महाशब्द उत्थित होने लगा। ब्रह्मादि सभी लोग रथ के निकट गये तथा एकाग्र तथा संयतात्मा होकर भक्ति के साथ अपने हाथों से भगवान् के भुजद्वय, चरणद्वय तथा मस्तक को धीरे से पकड़कर क्रमशः मृदुतापूर्वक उन अव्यय नारायण को रथ से सिढ़ियों पर उतार कर बीच-बीच में उनको स्थानविशेष में ठहराते क्रमशः प्रासाद तक ले आये। इस अवसर पर स्वर्ग से उनके ऊपर कल्पवृक्ष के पुष्पों की वर्षा भी हो रही थी। स्वयम्भु ब्रह्मा उस समय कह रहे थे "हे कृष्ण, जगन्नाथ, सर्वपापनाशक! आपकी जय हो! हे वांछा के अनुसार फलप्रदाता! आप

लीलामय हैं। आपने अपनी लीला व्यक्त करने हेतु दारुमयी मूर्त्ति का रूप धारण किया है। हे अच्युत! आप संसार सागर में मग्न जीवगण का लीला से ही उद्धार कर देते हैं।''।।७८-८७।।

जयानुकम्पापाथोधे ! जयदीनपरायण !।
जयाऽच्युतजयाऽनन्तजयेशान ! नमोऽस्तु ते॥८८॥
एभिः स्तवैः स्तूयमानोब्रह्मणाचस्वयम्भुवा। तुष्टावसमुदायुक्तोनारदश्चोपवीणयन्॥८९॥
रत्नच्छत्रयुगे मूर्ध्नि धार्यमाणेऽथ पृष्ठतः। शशिनाभास्वताभक्त्या दिव्यधूपेनधूपिताः॥९०॥
श्रेणीकृता ह्यभयतः पार्श्वयोश्चामरग्रहाः। सलीलान्दोलनव्यग्रायौवनालङ्कृतास्तथा॥९१॥
एवं च सहिताः सर्वे कौतूहलसमन्विताः। सुदर्शनं सुभद्रां च बलभद्रमनैषिषुः॥९२॥

"आप कृपासिन्धु हैं। आपकी जय हो! हे अव्यय! अच्युत! एकमात्र आप ही दुःखी लोगों के दुःख के निवारणार्थ सर्वदा उत्सुक रहते हैं। हे ईशान्! आपकी जय हो! जय हो! आपको प्रणाम!'' इस प्रकार ब्रह्मा द्वारा स्तव किये जाने पर देवर्षि नारद भी वीणावादन के साथ आनन्दपूर्वक स्तुति करने लगे। तदनन्तर चन्द्र-सूर्य ने भी भगवान् जगन्नाथ के पीछे खड़े होकर अत्यन्त भक्ति के साथ उनके मस्तक पर दो छत्र लगाया। अन्य देवता भी दिव्य धूप-गन्धादि द्वारा भगवान् को सन्तुष्ट करने लगे। असंख्य युवा लोग जगन्नाथदेव के दोनों ओर खड़े होकर दिव्य चामर झल रहे थे। अब इसी प्रकार ब्रह्मादि देवगण मिलकर हर्ष तथा कौतुक से आह्लादित होकर क्रमशः रथ पर से बलभद्र-सुभद्रा तथा सुदर्शन चक्र को भी वहां लाये।।८८-९२।।

प्रासादद्वारि रचिते रत्नस्तम्भेऽथ मण्डपे।
वासयित्वाऽभिषेकाय सम्मुखाऽऽदर्शमण्डले॥९३॥
अधिवासितै रत्नकुम्भैस्तीर्थवार्युपसम्भृतैः। सूक्ताभ्यां श्रीपुरुषयोरभिषेकंपितामहः।
चकार भगवाँल्लोकसंग्रहार्थं द्विजोत्तमाः॥९४॥
ततोह्यलंकृतान्देवान्गन्धमाल्योपशोभितान्। नीराजयित्वाभगवान्सस्वयंलोकभावनः।
रत्नसिंहासने रम्ये स्त्रथापयामास मन्त्रतः॥९५॥

हे द्विजगण! इसके पश्चात् स्वयं लोकभावन भगवान् पितामह ने लोकरक्षार्थ प्रासाद के द्वारदेशस्थ रत्नस्तम्भों पर विराजित सुशोभित मण्डप में सामने स्थापित किये गये दर्पण में प्रतिविम्बित हो रहे उन चारों देवगण को अभिषेकार्थ सुगन्धि तैलादि से पहले उद्वासित किया, तदनन्तर कर्पूर आदि से सुवासित तीर्थजल से भरे कलसों से श्री तथा पुरुषसूक्त पाठ करते हुये उनका अभिषेक किया। तदनन्तर गन्ध-माला तथा नाना अलंकार से उनको अलंकृत करने के पश्चात् उनका नीराजन किया और यथोक्त वेदमन्त्र का उच्चारण करने के साथ उन चारों देवगण को रमणीय सिंहासन पर स्थापित किया। तत्पश्चात् इस प्रकार से प्रार्थना करने लगे।।९३-९५।।

ब्रह्मोवाच

अशेषजगदाधार सर्वलोकप्रतिष्ठित !। सुप्रतिष्ठाऽखिलव्यापिन्प्रासादेसुस्थिरो भव॥९६॥

त्वयि प्रतिष्ठितेनाथ ! वयंसर्वेप्रतिष्ठिताः। त्वदाज्ञयाप्रतिष्ठेयंपूर्णाऽऽस्तांत्वत्प्रसादतः॥९७॥
स्थापयित्वा जगन्नाथं स्पृष्ट्वा तस्य हृदम्बुजम्। आनुष्टुभं मन्त्रराजंसहस्त्रं सजजापह॥९८॥
वैशाखस्याऽमले पक्षेअष्टम्यांपुष्ययोगतः। कृता प्रतिष्ठा भो विप्राःशोभनेगुरुवासरे॥९९॥
तद्दिनं सुमहत्पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्। स्नानं दानं तपो होमः सर्वमक्षय्यमश्नुते॥१००॥
तस्मिन्दिनेये पश्यन्तिमानवाभक्तिभाविताः। कृष्णंरामंसुभद्रांचमुक्तिभाजोनसंशयः॥१०१॥
शुक्लाष्टमी यावैशाखेगुरुपुष्ययुतायदा। तस्यामभ्यर्चनंविष्णोः कोटिजन्माघनाशनम्॥१०२॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकादशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डातर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्र-माहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे भगवन्मूर्त्तिचतुष्टयप्रतिष्ठावर्णनंनामसप्तविंशोऽध्यायः।।२७।।

ब्रह्मदेव कहते हैं—"हे सर्वलोक प्रतिष्ठित! आप अखिल जगदाधार तथा सर्वव्याप्त हैं। आंप कृपापूर्वक इस प्रासाद में प्रतिष्ठित हो जायें। यहां आप स्थिरभाव से स्थित रहें। हे नाथ! आपके प्रतिष्ठित होने मात्र से हम सबकी प्रतिष्ठा होगी। आपकी ही आज्ञा से अनुष्ठित यह प्रतिष्ठाकार्य आपकी ही कृपा से पूर्ण हो।" इस प्रार्थना के अन्त में जगन्नाथ प्रभु को स्नान कराकर उनके हृत्कमल का ब्रह्मा ने स्पर्श किया तथा १००० बार आनुष्टुप् मन्त्रजप भी किया। हे विप्रगण! भगवान् ब्रह्मा ने वैशाख मासीय पुष्यायोगयुक्ता शुक्लाष्टमी के दिन जब सुशोभन बृहस्पतिवार था, तब यह प्रतिष्ठाकार्य सम्पन्न किया था। तभी यह तिथि परमपुण्यमयी तथा सर्वपापनाशक है। इस तिथि के दिन स्नान, दान, तप, होम सभी कार्य अक्षय पुण्यफलप्रद होता है। जो मनुष्य इस दिन भक्तिभाव से हृदय में जगन्नाथ प्रभु, बलराम तथा सुभद्रा का दर्शन करते हैं, उनको निश्चित रूप से मुक्ति मिलती है। किम्बहुना, बृहस्पति के दिन पुष्यनक्षत्रयुक्त वैशाख मासीय शुक्लाष्टमी तिथिकाल में भगवान् विष्णु की अर्चना द्वारा कोटिजन्मार्जित कलुषराशि भी लुप्त हो जाती है।।९६-१०२।।

।।सप्तविंश अध्याय समाप्त।।

अष्टाविंशोऽध्यायः

भगवान् नृसिंहमूर्त्ति का परिग्रह, ब्रह्माइन्द्रद्युम्न संवाद

जैमिनिरुवाच

ततः स भगवान्मन्त्रमहिम्ना नरकेसरी। इन्द्रद्युम्नादिभिःसर्वैर्ददृशेऽद्भुतदर्शनः॥१॥
लेलिहानो जगत्सर्वंसमन्ताज्ज्वलजिह्वया। कालाग्निरुद्रंसकलंग्रसन्तमिवचोत्थितम्॥२॥
रोदसीकन्दरं व्याप्य तेजसा तपता भृशम्। अनेकाक्षिमुखग्रीवाकरपादश्रुतिर्विभुः॥३॥

सर्वाश्चर्यमयो देवः केवलं तेजसोनिधिः। भयत्रस्ताःसमुद्विग्नानेशाःस्तोतुमपिप्रभुम्॥४॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे द्विजगण! अब ब्रह्मा की मन्त्र महिमा से इन्द्रद्युम्न आदि सभी ने भगवान् जगन्नाथ की अद्‌भुदाकृति नृसिंह प्रतिमा का दर्शन किया। उन्होंने देखा कि वे नृसिंहदेव अपनी तेज से उद्दीप्त जिह्वा द्वारा मानो समस्त जगत् को चाट रहे हैं। उस समय प्रतीत हो रहा था कि मानो कालाग्निरुद्रदेव स्वयं प्रकट होकर समस्त जगत् का ग्रास करने जा रहे हैं। तेजोनिधि विभु नृसिंहदेव सर्वदा आश्चर्यात्मक प्रतीत हो रहे थे। उनके चक्षु, कर्ण, नासिका, ग्रीवा, हस्तपादादि असंख्य दृष्टिगोचर हो रहे थे। बोध हो रहा था मानो उनका तपस्तेज स्वर्ग तथा मृत्युलोक के मध्य में व्याप्त है। ऐसी भीमाकृति मूर्त्ति को देखकर वहां सभी लोग अत्यन्त उद्विग्न तथा भयग्रस्त हो गये। यहां तक कि वे भगवान् नृसिंह की स्तुति भी नहीं कर पा रहे थे।।१-४।।

तं तथाविधमालोक्य नारदः पितरं तदा। पप्रच्छ भगवन्नित्थं कथमेष प्रकाशते॥५॥

नारद उवाच

अनुग्रहायाऽवतरत्प्रत्युतैष भयप्रदः। सर्वे भयात्स्थिरतराः प्रलयाशङ्किनोऽधुना॥६॥
त्वमेव भगवल्लीलां जानासि जगताम्पते !॥७॥

तच्छ्रुत्वा नारदवचः पद्मयोनिः स्मिताननः। उवाच कौतुकं वाक्यंसर्वेषामुपकारकम्॥८॥

उस समय सबकी यह स्थिति देखकर देवर्षि नारद ने अपने पिता कमलासन से प्रश्न किया "हे भगवान्! हरि इस प्रकार क्यों लग रहे हैं? यह सत्य है कि इनका यह अवतार सब पर अनुग्रह हेतु हुआ है, तथापि यहां तो नृसिंह देव सबके लिये भयप्रद हो गये हैं। अब यह प्रतीत हो रहा है मानो सभी प्राणीगण के लिये प्रलय उपस्थित हो गया! यह विचार करने से मैं भयवशात् अतीव अस्थिर हो गया हूं। इसका क्या कारण है? कहिये! हे भगवान्! एकमात्र आप ही जगत्पति हरि की लीलाओं के ज्ञाता हैं।" भगवान् पद्मयोनि ब्रह्मा ने नारद का यह वाक्य सुनकर सबका उपकार करने वाला परम कौतूहल कारक वचन हंसते हुए कहा।।५-८।।

ब्रह्मोवाच

अवतीर्णं जगन्नाथं दृष्ट्वा दारुवपुर्धरम्॥९॥
अवज्ञास्यन्ति वै लोकाः साक्षाद् ब्रह्मस्वरूपिणम्।
अतत्त्ववेदिनो मूढा महिमानं विदन्त्विति॥१०॥

मन्त्रितो मन्त्रराजेन येनाऽसौ परमेष्ठिना। पुराऽभिमन्त्रितो येन विददार महासुरम्॥११॥
तादृग्रूपं सुदुर्दर्शं प्राप्यमेति भयप्रदम्। मूर्तिरेषा परा काष्ठा विष्णोरमिततेजसः॥१२॥
यामभ्यर्च्यगतिंयान्तिपुनरावृत्तिदुर्लभाम्। नृसिंहाभिमुखःस्तोत्रमिदमाहमुदान्वितः॥१३॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—"जो तत्व नहीं जानते, वे मूढ़ लोग साक्षात् ब्रह्मरूपी उन जगन्नाथ को दारुमय देखकर उनकी अवज्ञा करेंगे।" यह सोचकर जिससे उनकी महिमा स्थापित हो इसीलिये सर्वप्रधान परमेष्ठिमन्त्र से इनको मैंने अभिमंत्रित किया है। तभी ये इस प्रकार से प्रकाशमान हैं। पूर्वकाल में भी इसी मन्त्र से मंत्रित किये जाने के कारण मेरे लिये भी भयप्रद दुर्निरीक्ष्यरूप धारण करके इन देवदेव ने महासुर हिरण्यकशिपु को

विदीर्ण किया था। अमित तेजस्वी विष्णुदेव की यह मूर्त्ति कालविशेष के समान है।'' यह कहकर ब्रह्मा उन नृसिंहदेव के सामने खड़े होकर आनन्दपूर्वक यह स्तुति करने लगे।।९-१३।।

नमोऽस्तु ते देववरैकसिंह ! नमोऽस्तु पापौघगजैकसिंह !।
नमोऽस्तु दुःखार्णवपारसिंह ! नमोऽस्तु तेजोमय दिव्यसिंह !।।१४।।
नमोऽस्तु सर्वाऽऽकृतिचित्रसिंह ! नमोऽस्तु ते क्लेशविमुक्तिसिंह !।
नमोऽस्तु ते दिव्यवपुर्नृसिंह ! नमोऽस्तु ते वीरवरैकसिंह !।।१५।।
नमोऽस्तु ते दैत्यविदारसिंह ! नमोऽस्तु देवेष्वधिदेवसिंह !।
नमोऽस्तु वेदान्तवनैकसिंह ! नमोऽस्तु ते योगिगुहैकसिंह !।।१६।।
नमोऽस्तु ते सिंह ! वृषैकसिंह ! नमोऽस्तु नीलाचलशृङ्गसिंह !।।१७।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे देव! आप अलौकिक सर्वोत्तम अद्वितीय नृसिंहमूर्त्तिधारी हैं, आपको प्रणाम! हे योगीगण की योगरूप गुहा में शयन करने वाले, अप्रतिमसिंह रूप! आपको प्रणाम! आप महासिंहों के बीच महान् सिंह-प्रधान सिंह हैं। आप नीलाचल शिखर पर विहार करने वाले महासिंह हैं। आपको पुनः-पुनः प्रणाम! हे प्रभो! आप भक्तगण को दुःखार्णव से पार ले जाने वाले सिंहवत् महाविक्रमी हैं। हे तेजोमय! दिव्यसिंह! आपको प्रणाम! हे चित्रसिंह! आपकी आकृति अतीव विचित्र है। आप शरणागत लोगों की क्लेशमुक्ति के लिये महाविक्रान्त सिंह हैं। आपको अनेक प्रणाम! हे दिव्य शरीर में निवास करने वाले नृसिंह! आप वीरवरगणों में अद्वितीय वीर केसरी हैं। आप दैत्य पशु विनाशार्थ महासिंहरूप हैं। आप अखिल देवगण में सिंहवत् परम प्रधान अधिदेवता हैं। अतः आपको पुनः-पुनः प्रणाम! हे प्रभो! आप वेदान्तवन के एकमात्र सिंह हैं। आप योगीगण की हृदयरूपी गुहा में निवास करने वाले सिंह हैं। आप वृष सिंह हैं (वृष का तात्पर्य यहां धर्म से है) आप नीलाचल पर्वत शिखर के सिंहरूप हैं।।१४-१७।।

जैमिनिरुवाच

स्तुत्वेत्थंदिव्यसिंहंतमिन्द्रद्युम्नंप्रजापतिः। सिंहयन्त्रंसमालेख्यतस्योपरिनिवेश्यच।।१८।।
दीक्षयित्वा मन्त्रराजंसाक्षादाथर्वणोदितम्। आहुर्वैष्णवनिर्वाणं यं वेदान्तपरायणाः।।१९।।
यत्र वेदाश्चचत्वारःसाक्षान्नित्यम्प्रतिष्ठिताः। यमधीत्यमहामन्त्रंमनुःस्वायम्भुवःपुरा।।२०।।
सृष्टिं चकार भगवान्प्राप्तमस्माच्चतुर्मुखात्।
अणिमादिगुणा यस्य फलं स्यादानुषङ्गिकम्।।२१।।
एक एव महामन्त्रः पुरुषार्थचतुष्टयम्। प्राप्तुं कारणभूतो हि किं पुनः क्षुद्रकामनाम्।।२२।।
एक एव महामन्त्रः सर्वक्रतुफलप्रदः। सर्वतीर्थप्रदः सर्वदानव्रतफलप्रदः।।२३।।
यथाऽयं सर्वपापौघतूलराशेर्दवानलः। दिव्यसिंहाकृतिर्देवो मन्त्रराजस्तथा ह्ययम्।।२४।।

ऋषि जैमिनि कहते हैं—भगवान् प्रजापति ने उन दिव्य सिंह की इस प्रकार से स्तुति करके नृसिंहयन्त्र अंकित किया तथा उसके ऊपर साक्षात् अथर्ववेदोक्त विधान द्वारा नृसिंह देव के प्रधान मन्त्र को सन्निवेशित करके

नृपवर इन्द्रद्युम्न को उस मन्त्र की दीक्षा देकर वहां स्थित हो गये। वेदान्तशास्त्र के पारगामी विद्वद्गण जिसका उल्लेख निर्वाण नाम से करते हैं, वह मन्त्र साक्षात् वेदचतुष्ठय में नित्य स्थित है। पूर्व में भगवान् स्वायम्भुव मनु ने ब्रह्मा से वह मन्त्र प्राप्त किया। वे उसका जप सतत् किया करते थे। इस प्रकार उन्होंने सृष्टि विन्यास (सफलता पूर्वक) सम्पन्न किया। उस मन्त्र का आनुषंगिक फल है अणिमादि अष्टसिद्धि। एकमात्र उसी महामन्त्र से धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का लाभ होता है। अतः उस मन्त्र से सामान्य कामना सिद्धि होना तो कौन बड़ी बात है! एकमात्र वह महामन्त्र सभी प्राणीगण के लिये यज्ञ, तीर्थ तथा सर्वविध दान का फल प्रदान करता है। किम्बहुना, दिव्य सिंहाकृति नृसिंहदेव जिस प्रकार से समस्त पापपुंज-रूप रुई के ढेर को भस्म करने हेतु दावानलरूप हैं, उसी प्रकार से इस अक्षरात्मक मन्त्रराज का भी वही प्रभाव है।।१८-२४।।

एनमभ्यस्य यतयो भवरोगं त्यजन्ति हि। यस्य ग्रहणमात्रेण ग्रहापस्मारराक्षसाः।।२५।।
डाकिन्यो भूतवेतालपिशाचा उरगा ग्रहाः। दूरादेवपलायन्ते नेशते वीक्षितुं च तम्।।२६।।
मन्त्रराजं ततो लब्ध्वा इन्द्रद्युम्नश्चतुर्मुखात्। नृसिंहंशान्तवपुषंलक्ष्मीसंश्रितवक्षसम्।।२७।।
चक्रं पिनाकं दधतं चन्द्रसूर्याग्निचक्षुषम्। जानुप्रसारितकरसरोजद्वन्द्वमुन्नसम्।।२८।।
योगपट्टासनाऽऽरूढंद्वात्रिंशद्दलपद्मके। मन्त्रवर्णमये मध्ये कर्णिकाप्रणवोज्ज्वले।।२९।।
सुखासीनं साट्टहासं वीक्षन्तं श्रीमुखाम्बुजम्। सटामण्डितवक्त्राब्जं दिव्यरत्नोज्ज्वलाकृति।।३०।।

यतीगण इस मन्त्र का जप करके भवरोग से मुक्त हो जाते हैं। इस मन्त्र को ग्रहण करते ही दुष्टग्रह, ग्रहापस्मार, राक्षस, डाकिनी, भूत, बेताल, पिशाच, सर्पादि दूर से ही पलायन कर जाते हैं। यहां तक की उस मन्त्री की ओर वे देख भी नहीं पाते। नृपति इन्द्रद्युम्न ने ब्रह्मा से यह मन्त्र प्राप्त करते ही देखा कि नृसिंह देव की अब वह भीषण भावपूर्ण मूर्त्ति नहीं है। उन्होंने प्रशान्तभाव धारण कर लिया है। देवी कमला उनके हृदयकमल में विराजित हैं। उनके नेत्र चन्द्र-सूर्यवत् समुज्वल हैं। उनके हस्तद्वय में चक्र तथा पिनाक धनुष शोभित है। अन्य दो हाथ उन्होंने अपनी जांघ के अग्रभाग में स्थापित कर रखा है। वे भी दो कमल के समान शोभित हो रहे हैं। ॐकाररूप कर्णिका से शोभित मन्त्राक्षर अंकित ३२ दल वाले कमल पर सुख से बैठी कमलादेवी के मुखकमल का अवलोकन करते-करते प्रभु नृसिंह अट्टहास्य कर रहे हैं। उनका सर्वाङ्ग दिव्य रत्न तथा अलंकार से उद्भासित हो रहा है। मुखमण्डल जटाजाल से विमण्डित है। वे योग में स्थित हैं। वे प्रभु दिव्यरत्नों को धारण करने के कारण उज्वल आकृति हैं।।२५-३०।।

फणासहस्त्रंविस्तार्य पश्चाच्छत्राकृतिंविभोः। ददर्श बलभद्रं तं हललाङ्गलधारिणम्।।३१।।
प्रजहर्ष नृपो दृष्ट्वा तादृशं पुरुषोत्तमम्। विस्मयाविष्टचेताश्च पप्रच्छ कमलासनम्।।३२।।

उन्होंने पुनः देखा कि हल-मूसलधारी बलदेव उनके पीठ की ओर से अपने हजार फणमण्डल का विस्तार करके भगवान् के ऊपर फणों का छत्र लगाये हुये हैं। नृपवर इन्द्रद्युम्न ने परमेश्वर का यह रूप देखकर अतिशय आनन्द का अनुभव किया। तब उन्होंने विस्मयापन्न मन से ब्रह्मदेव से पूछा।।३१-३२।।

भगवंश्चित्रमेतद्वै चरितं मधुघातिनः।
विज्ञातुं कथमस्माभिः शक्यःस्याल्लोकभावन !।।३३।।

यज्ञान्ते तादृशं रूपं बभार दारुनिर्मितम्। रथस्थं भगवानेवं प्रासादान्तर्न्यवेशयत्॥३४॥
मामाह पूर्वं वाणी सा गगनान्तरिता तदा। अपौरुषेयतरुणा चतुर्मूर्तिर्भविष्यति॥३५॥
इदानीमेकएवाऽसौ दृश्यते सुप्रतिष्ठितः। माया वातत्त्वमथ वा तत्त्वतो मे वद प्रभो॥३६॥
श्रवणे यदि मां वेत्सि भाजनं भवभावन !। श्रुत्वैतत्प्रत्युवाचोऽथसंशयानंनृपोत्तमम्॥३७॥

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—हे भगवान्! लोकभावन! भगवान् मधुसूदन का चरित्र अत्यन्त अद्भुद् है। हमारे जैसा सामान्य मानव उसे कैसे जान सकता है? आपने प्रासाद में रथस्थ दारुमूर्त्ति को स्थापित किया था। उसी दारुनिर्मित मूर्त्ति ने यज्ञान्त में ऐसा भीषणरूप धारण कर लिया! तथापि इस सम्बन्ध में मेरे मन में एक शंका हो रही है। पूर्व में आकाशवाणी ने मुझसे कहा था—कि जो किसी पुरुष के प्रयत्न से न बनी हो ऐसी किसी वृक्ष से निर्मित भगवान् की चार मूर्त्ति प्रकट होगी तथापि आप द्वारा प्रतिष्ठित मात्र एक प्रतिमा ही लक्षित हो रही है। उसके चार रूप तो नहीं दिखलाई पड़ रहे हैं। हे प्रभो! हे भवभावन! यदि इस विषय को जानने का उपयुक्त अधिकारी आप मुझे समझें तब कृपा करके आप यह यथार्थतः कहिये कि क्या यह भगवत् माया है अथवा वास्तविक घटना है? संदिग्धचित्त राजा का यह कथन सुनकर ब्रह्मदेव कहने लगे।।३३-३७।।

ब्रह्मोवाच

आद्यामूर्तिर्भगवतो नारसिंहाकृतिर्नृप !। नारायणेन प्रथिता मदनुग्रहतस्त्वयि॥३८॥
दारवी मूर्तिरेषेति प्रतिमाबुद्धिरत्र वै। मा भूत्ते नृपशार्दूल परम्ब्रह्माकृतिस्त्वियम्॥३९॥
खण्डनात्सर्वदुःखानामखण्डानन्ददानतः। स्वभावाद्दारुरेषो हि परं ब्रह्माऽभिधीयते॥४०॥
इत्थं दारुमयो देवश्चतुर्वेदानुसारतः। स्त्रष्टा स जगतां तस्मादात्मानञ्चापिसृष्टवान्॥४१॥
शब्दब्रह्म परम्ब्रह्म नानयोर्भेद इष्यते। लये तु एकमेवेदं सृष्टौ भेदः प्रवर्त्तते॥४२॥
अन्योन्यापेक्षिणौ भूप ! शब्दार्थौ हि परस्परम्।
अर्थाभावे न शब्दोऽस्ति शब्दाभावे न बुद्ध्यते॥४३॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे नृप! भगवान् की नरसिंहाकृति ही आदिमूर्त्ति है। इसलिये तुम्हारे प्रति मेरा अनुग्रह देखकर भगवान् नारायण ने उसी मूर्त्ति को प्रकाशित किया। हे राजशार्दूल! यह दारु (काष्ठ) मूर्त्ति है। यह जानकर उसमें तुम्हारी प्रतिमा बुद्धि न हो, तभी सर्वदुःखखण्डनकारी तथा अखण्ड आनन्द प्रदानार्थ साक्षात् प्रभु दारुरूप प्रकट हुये। ये परब्रह्माकृति हैं। मनीषी लोग परब्रह्म को स्वभावतः दारुवत् कहते हैं तथा चारों वेद भी ब्रह्मरूपी नारायण को दारुमय कहते हैं, यह सभी को ज्ञात है। केवल ये ही अखिल जगद्वस्तु के स्त्रष्टा हैं। अन्य कोई भी वस्तुतः सृष्टिकर्त्ता नहीं है। शब्दब्रह्म तथा परब्रह्म में कोई भी भेद नहीं है। प्रलयकाल में मात्र परब्रह्म ही विराजित रहते हैं। सृष्टि के प्रारंभ में उनमें भेद होता है।।३८-४३।।

अर्थस्तस्माच्चतुर्वेदाः शब्दा ह्यर्थाश्चतादृशाः। ऋग्वेदरूपी हलधृक्सामवेदानृकेसरी॥४४॥
यजुर्मूर्त्तिस्त्वियं भद्रा चक्रमाथर्वणं स्मृतम्। वेदश्चतुर्द्धाभेदोऽयमेकराशिरभेदतः॥४५॥
अतस्ते संशया मा भूदेकस्तु बहुधा विभुः। अवतारेषु चाऽन्येषु न्यायेनैतेनवर्त्तते॥४६॥

भेदाभेदौतथाख्यातौ जगन्नाथस्य ते नृप !। येन ते मनसस्तुष्टिस्तेनभक्त्यासमाचर।।४७।।
सर्वरूपमयो ह्येष सर्वमन्त्रमयः प्रभुः। आराध्यते यथा येन तथा तस्य फलप्रदः।।४८।।
यथा सुशुद्धं कनकं स्वेच्छयाघटितंनृप !। तत्तत्सञ्ज्ञामवाप्येह तत्तत्सन्तोषकारकम्।।४९।।
एवं महिम्ना भगवानत्राविरभवन्नृप। यस्ययावांस्तुविश्वासस्तस्यसिद्धिस्तुतावती।।५०।।
कर्मणा मनसा वाचा विशुद्धेनाऽन्तरात्मना। समाराधय गोविन्दमत्र दारुवपुर्द्धरम्।।५१।।
चतुर्वर्गफलावाप्त्यै यथाऽभिलषितं तव। अनेन मन्त्रराजेनविष्णुमेनं समर्चय।।५२।।
नाऽतःपरतरोमन्त्रोनभूतोनभविष्यति। अनेनाभ्यर्चितोविष्णुःप्रीतोभवतितत्क्षणात्।।५३।।
ददातिस्वपुरंचापिभगवान्भक्तवत्सलः। यज्ञैस्तीर्थैर्व्रतैर्दानैस्तपोभिश्चापि तस्यकिम्।।५४।।
नीलाचलस्थं यो विष्णुं दारुमूर्तिमुपास्ति वै। तत्त्वं ब्रवीमि ते भूप ! श्रुत्वैतदवधारय।।५५।।
न्यग्रोधमूलेकूलेऽस्य सिन्धोर्नीलाचलेस्थितम्। दारुव्याजामृतंब्रह्मदृष्ट्वामुच्येन्नसंशयः।।५६।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे भगवतोनृसिंहपरिग्रहोनामाऽष्टविंशोऽध्यायः।।२८।।

हे राजन्! शब्द तथा शब्दार्थ ये परस्परतः एक दूसरे से नित्यापेक्षी, अभिन्न हैं। इसमें अणुमात्र संदेह नहीं है। अर्थरहित कोई शब्द नहीं है। शब्द के अभाव में तो अर्थ हो ही नहीं सकता। तभी चारों वेद शब्द-अर्थमय हैं। अतएव देव ब्रह्म हैं। देवता का आदेश भी ब्रह्म का ही आदेश है। हलधारी बलभद्र ऋग्वेदरूपी, नृसिंहदेव सामवेदरूपी, सुभद्रा यजुर्वेदमयी तथा सुदर्शनचक्र अथर्ववेद रूपी हैं। भगवान् के भेद के सम्बन्ध में इन चार भेदों को समझो। अभेद समझने के लिये एक पदार्थ की ही समष्टि जानो। इस विषय के प्रति कोई संशय नहीं हो। एकमात्र भगवान् ही अनेक रूपों में प्रकाशित होते हैं। भगवान् के अन्य अवतारों में भी यही नियम पार्थक्य दर्शित होता है। हे राजन्! मैंने तुमसे जगन्नाथ देव के भेदाभेद का वर्णन किया था। अब जिसके द्वारा तुम्हारा मन सन्तुष्ट हो, उसी प्रकार भक्ति के साथ जगन्नाथ देव की सेवा करना। ये प्रभु जगन्नाथ देव सर्वरूप तथा सर्वमन्त्रमय हैं। इनकी आराधना जो व्यक्ति जिस उद्देश्य से करता है, वे उस व्यक्ति को वैसा ही फल देते हैं। राजन्! जैसे विशुद्ध स्वर्ण नाना प्रकार का सन्तोष प्रदान करता है, वैसे ही एकमात्र भगवान् भी अपनी महिमा से नानारूप में प्रकट होते हैं। जो जैसा विश्वास करता है, उसे वैसी ही सिद्धि मिल जाती है। तुम विशुद्ध हृदय से काया-मन-वाक्य से दारुमय गोविन्द की आराधना करो। तुम मेरे द्वारा प्रदत्त मन्त्र से दारुमय ब्रह्म की आराधना चतुर्वर्ग हेतु करो। इससे श्रेष्ठ मन्त्र न था न होगा। इससे अर्चित होकर भक्तवत्सल भगवान् तत्क्षण प्रसन्न होकर अपना पद तक प्रदान करते हैं। जो व्यक्ति नीलाचलस्थ दारुमय विष्णु की अर्चना करता है, उसे यज्ञ-व्रत-दान-तप का कोई भी प्रयोजन नहीं है। हे भूप! मैं तुमसे प्रकृत तत्व कहता हूं। उसे सुनो। इस सिद्ध तट पर अक्षयवट के मूल में नीलाचलस्थ दारु ब्रह्म का दर्शन करने से सभी को मुक्ति मिलती है। यह निसंदिग्ध है।।४४-५६।।

।।अष्टविंश अध्याय समाप्त।।

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्न को वर प्राप्ति, विभिन्न मास में प्रतिमा पूजा विधि

जैमिनिरुवाच

इत्युक्त्वा नृपशार्दूलं लोकसंग्रहणाय वै। सिंहाकृतिं स हृदये उद्वास्य कमलासनः॥१॥
पूर्व प्रकाशरूपं यद्विष्णोस्तु प्रकटीकृतम्। रथावरोहणे दृष्टाश्चतस्रो मूर्त्तयः पुरा॥२॥
ता एव सिंहासनगाः सर्वे ते ददृशुः पुनः। द्विषडक्षरमन्त्रेण बलभद्रमपूजयत्॥३॥
सूक्तेन पौरुषेणैनं नारायणमनामयम्। देवीसूक्तेन चक्रं च द्वादशाक्षरकेण च।
पूजयित्वाऽनुग्रहाय पार्थिवस्य न्यवेदयत्॥४॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—भगवान् कमलासन ने नृपशार्दूल इन्द्रद्युम्न से यह कहकर जनसाधारण के कल्याणार्थ अपने हृदय में भगवान् की वह सिंहाकृति स्थापित करके उनके पूर्वरूप का प्रकाश किया। पूर्व में रथ से उतारते समय प्रभु की जिन चार मूर्त्तियों का दर्शन मिला था, तब वहां सभी ने उन चारों मूर्त्तियों का सिंहासन पर बैठे हुये दर्शन किया था। तदनन्तर ब्रह्मा ने पुरुषसूक्त के मन्त्र से अनामय नारायण की, द्विषड्क्षर मन्त्र से बलदेव की, सूक्तमन्त्र से सुभद्रा देवी की द्वादशाक्षर मन्त्र से सुदर्शन चक्र की पूजा करके इन्द्रद्युम्न के लिये अनुग्रहार्थ कहा।।१-४।।

ब्रह्मोवाच

भगवन्देवदेवेश ! भक्तानुग्रहकारक !। इन्द्रद्युम्नस्य जन्मानि त्वयि भक्तिम्प्रकुर्वतः।
सहस्त्रं समतीतानि तदन्ते त्वामलोकयत्॥५॥
त्वद्दर्शनं हि भगवंस्त्वयि सायुज्यकारणम्। यद्यप्ययं भक्तियोगेनेच्छति त्वां समर्चितम्॥६॥
तदाज्ञापय येन त्वां भक्तियोगेन भावयेत्। देशकालव्रताद्यैस्तु तथानानोपचारकैः॥७॥
त्वन्मुखाम्भोजगलितमाज्ञामृतरसं नृपः। पिपासुस्त्वां जगन्नाथ ! पश्यत्येषोऽनिमेषकम्॥८॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे भगवान्, देवदेवेश! भक्तों पर अनुग्रह करने वाले! आपके प्रति भक्तिमान् होकर इसे इन्द्रद्युम्न के १००० जन्म व्यतीत हो चुके, तब इसे आपका दर्शन मिला। हे भगवान्! यद्यपि आपका दर्शन सायुज्यमुक्तिप्रद है, तथापि जब इसने भक्तियोग द्वारा आपकी अर्चना करना चाहा है, तब यह किस प्रकार देश-काल-व्रतादि उपचारों से आपकी अर्चना करेगा तथा जैसे भक्तियोगन्वित होकर आपकी भावना करनी होगी, वह आदेश दीजिये। हे जगन्नाथ! यह श्रेष्ठ राजा आपके मुखकमल से निकले आज्ञारूपी अमृत रस के पान का इच्छुक होकर आपको एकटक देख रहा है।।५-८।।

जैमिनिरुवाच

इतिविज्ञापितोदेवःसाक्षात्कमलयोनिना। दारुदेहोऽपि विहसन्प्राह गम्भीरयागिरा॥९॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—जब साक्षात् कमलयोनि ब्रह्मा ने इस प्रकार की प्रार्थना जगन्नाथ से किया तब उन्होंने दारुमय होकर भी हास्य करते हुये गंभीर वाणी से कहा।।९।।

श्रीप्रतिमोवाच

इन्द्रद्युम्न ! प्रसन्नस्तेभक्त्यानिष्कामकर्मभिः। त्वदन्येनेदृशी सम्पन्न केनाऽप्यपवर्जिता।।१०।।

वरं ददामि ते भूप ! मयि भक्तिः स्थिरास्तु ते।

उत्सृज्य वित्तकोटिस्तु यन्ममाऽऽयतनं कृतम्।।११।।

भङ्गेप्येतस्यराजेन्द्रस्थानंनत्यज्यतेमया। कालान्तरेऽपिनोऽप्यन्यःप्रासादंकारयिष्यति।।१२।।

तवैवकीर्त्तिःसानूनंत्वत्प्रीत्यातत्रमेस्थितिः। सत्यं सत्यं पुनःसत्यंसत्यमेवब्रवीमिते।।१३।।

प्रासादभङ्गेतत्स्थानं न त्यक्ष्यामि कदाचन। अनेनदारुवपुषास्थास्याम्यत्रपरार्द्धकम्।।१४।।

द्वितीयंपद्मयोनेस्तु यावत्परिसमाप्यते। मनोःस्वायम्भुवस्याऽस्यद्वितीयेचचतुर्युगे।।१५।।

कृतस्य प्रथमे ज्येष्ठे दशेति क्रतुसंस्थितिः।

ज्यैष्ठ्यामहं चाऽवतीर्णस्तत्पुण्यजन्मवासरम्।।१६।।

श्रीप्रतिमा कहते हैं—हे इन्द्रद्युम्न! तुम्हारी भक्ति तथा तुम्हारा निष्काम कर्म देखकर मैं तुम्हारे प्रति प्रसन्न हूं। तुम्हारे अतिरिक्त किसी ने इस प्रकार की (दैवी) सम्पत्ति प्राप्त ही नहीं किया है। हे राजन्! मैं तुमको यह वर देता हूं कि मेरे प्रति तुम्हारी अचल भक्ति हो जाये। हे राजेन्द्र! जब तुमने करोड़ों रत्नों को उत्सर्ग किया है तथा उसके द्वारा मेरे मन्दिर की स्थापना की है, उसके कालान्तर में भग्न हो जाने पर भी उस स्थान का त्याग नहीं करूंगा। यदि कालान्तर में कोई भी यहां मेरा मन्दिर निर्मित करेगा, उसमें भी तुम्हारा ही नाम होगा। तुम्हारे प्रति मेरी असीम प्रीति होने के कारण मैं यहां स्थित रहूंगा। मैं इसे सत्य-सत्य-सत्य रूप से त्रिसत्यरूपेण कहता हूं। यदि यह प्रासाद कालक्रमेण भूमिसात् भी हो जाये, तब भी मैं इस स्थान का कदापि त्याग नहीं करूंगा। पद्मयोनिब्रह्मा के द्वितीय परार्धकाल पर्यन्त मैं यहां दारुमय देह में स्थित रहूंगा। हे राजन्! स्वायम्भुव मनु के सत्ययुग आदि चतुर्युग के द्वितीय अंश में तथा सत्ययुग में मेरे दर्शनप्रद इस प्रथमांश में तुम्हारे यज्ञप्रभाव से मेरा यह आविर्भाव हुआ है। मैं ज्येष्ठ पूर्णिमा में अवतीर्ण हुआ हूं। अतः यह दिन ही मेरा पुण्यप्रद जन्मदिन है।।१०-१६।।

तस्यां मे स्नपनं कुर्यान्महास्नानविधानतः। प्रत्यर्चायांमहाराजसाधिवासंसमृद्धिमत्।।१७।।

पापं विनाशयिष्यामि कोटिजन्मभिरर्जितम्। सर्वतीर्थक्रतुफलं सर्वदानफलं तथा।।१८।।

पश्यतां चापि राजेन्द्र ! फलं तावत्प्रद्यते। न्यग्रोधादुत्तरे कूपः सर्वतीर्थमयोऽस्तिहि।।१९।।

स्नानाय पूर्वं निर्माय किञ्चिदाच्छादितं भुवा।

अवतीर्णस्त्वहं पश्चात्तं विविच्य प्रकाशय।।२०।।

संस्कार्यः स चतुर्दश्यां बलिं दत्त्वा विधानतः। रक्षकक्षेत्रपालायदिशांपालेभ्यएवच।।२१।।

कम्बुकाहालमुरजध्वनिषु सुस्वरेषु च। द्विजातयः स्वर्णकुम्भैरुद्धरेयुस्ततो जलम्।।२२।।

ज्यैष्ठ्यां प्रातस्तने काले ब्रह्मणा सहितं च माम्।
रामं सुभद्रां संस्नाप्य मम लोकमवाप्नुयात्॥२३॥
स्नाप्यमानं तु यः पश्येन्मां तदा नृपसत्तम !। देहबन्धंचनाऽऽप्नोति स पुनर्न तु पुरुषः॥२४॥

हे महाराज! इस दिन मेरी प्रतिमा के अधिवास के साथ महास्नान विधानानुसार उसे महासमारोह के साथ स्नान कराये। इससे मैं कोटि जन्मार्जित पापराशि का विनाश करूंगा। किम्बहुना, हे राजेन्द्र! जो मेरी इस स्नानयात्रा का दर्शन करेंगे, उनको समस्त तीर्थस्नान, सभी यज्ञानुष्ठान तथा सर्वप्रकार का दानफल मिलेगा। हे राजन्! इस वृक्ष के उत्तर में सर्वतीर्थात्मक एक कूप है। वह इस समय मिट्टी से ढ़क गया है। मैंने अपने स्नानार्थ पूर्व में उसका निर्माण करके बाद में अवतार लिया था। अतएव तुम अब निर्णयपूर्वक उसका आविष्कार करो। रक्षक क्षेत्रपाल तथा दिक्पालगण के लिये यथाविधान बलिदान देकर शंख-काहल तथा मुरज आदि वाद्ययन्त्र वादन करके चतुर्दशी के दिन इस कूप का संस्कार करना। द्विजातिगण स्वर्णकुंभ द्वारा उसमें से जल निकालें। उस जल द्वारा ज्येष्ठा पूर्णिमा के दिन प्रातःकाल स्नान कराते समय जो मेरा दर्शन करेगा, उसे पुनः जन्म नहीं लेना होगा।।१७-२४।।

कारयित्वादृढंमञ्चमैशान्यांदिशिमण्डितम्। वितानशोभारचितंचन्दनाम्भःसमुक्षितम्॥२५॥
तत्र मां रामभद्राभ्यां स्नापयित्वा पुनर्नयेत्॥२६॥
दक्षिणाभिमुखं यान्तंयो मांपश्यतिभक्तितः। तत्तद्ध्रुवमवाप्नोतिमनसायद्यदिच्छति॥२७॥
ततः पञ्चदशाहानि स्थापयित्वा तु मां नृप !। विरूपमभिरूपं वानपश्येत्तु कदाचन॥२८॥
ज्येष्ठस्नानमिदं कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥२९॥
गुण्डिचाख्यांमहायात्रांप्रकुर्वीथाःक्षितीश्वर !। यस्याःसङ्कीर्तनादेवनरःपापाद्विमुच्यते॥३०॥
माघमासस्य पञ्चम्यामष्टम्यां चैत्रशुक्लके।
एतेकालाःप्रशस्ताहिगुण्डिचाख्यमहोत्सवे ॥३१॥
विशेषान्मोक्षदाषाढद्वितीया पुष्यसंयुता। ऋक्षाभावे तिथौकार्या सदासाप्रीतयेमम्॥३२॥

हे राजन्! ईशान कोण की ओर चन्दन के जल से समुक्षित चन्द्रातपशोभित सुगन्धित दृढ़तर एक मंच बनाये। उसके ऊपर बलराम तथा सुभद्रा के साथ मुझे स्नान कराने के उपरान्त पुनः सबको यथास्थान रखे। दक्षिणाभिमुख जाते समय भक्तिपूर्वक जो व्यक्ति मेरा दर्शन करके मन ही मन जो कामना करेगा, वह सब मुझे प्राप्त होगा। इसमें सन्देह नहीं है। हे नृप! इस प्रकार मुझे पन्द्रह दिन स्नान कराये। अंगराहविहीन विरूपावस्था में कभी मेरा दर्शन न करें। हे क्षितीश्वर! इस प्रकार मुझे ज्येष्ठ स्नान कराये अथवा उस कार्य का दर्शन करके अवश्य मुक्ति मिलेगी। इसके अतिरिक्त तुम मेरा गुण्डीचा नामक महोत्सव करना। उक्त महायात्रा का नामोल्लेख करने से मानव निष्पाप हो जाता है। माघमासीय शुक्ला पञ्चमी तथा चैत्रमासीय शुक्लाष्टमी को गुण्डीचा महोत्सव का उत्तम काल है। विशेषतः आषाढ़ मास की शुक्ला द्वितीया यदि पुष्यानक्षत्रयुता हो, तब वह अतीव प्रशस्त होगा। वह समस्त मोक्षप्रद है। उक्त नक्षत्र यदि न मिले तब भी उसी तिथि पर ही महोत्सव करना चाहिये। यह महोत्सव प्रीतियुक्त होकर करे।।२५-३२।।

आषाढस्य सिते पक्षे द्वितीया पुष्यसंयुता। तस्यां रथे समारोप्यरामंमांभद्रयासह॥३३॥
महोत्सवप्रवृत्त्यर्थं प्रीणयित्वा द्विजान्बहून्। गुण्डिचामण्डपंनाम यत्राहमजनं पुरा॥३४॥
अश्वमेधसहस्त्रस्य महावेदी तदाऽभवत्। तस्याः पुण्यतमं स्थानंपृथिव्यांनेहविद्यते॥३५॥

आषाढ़ मासीय शुक्लपक्ष की द्वितीया के दिन यदि पुष्य नक्षत्र योग हो, तब इस दिन सुभद्रा के साथ मुझे तथा बलराम को रथारूढ़ कराये। द्विजवरगण को प्रसन्न करे और रथयात्रारूपी महोत्सव सम्पन्न करके जहां मैं पूर्वकाल में प्रादूर्भूत हुआ था तथा जिस स्थान पर तुम्हारे सहस्र अश्वमेध यज्ञ की वेदी बनी है, उस गुण्डीचामण्डप में मुझे ले जाये। पृथिवी पर इस स्थान की तुलना में पवित्र स्थान है ही नहीं।।३३-३५।।

यत्राऽजुहोः पञ्चशतवर्षाणि प्रीतये मम। ममप्रीतिकरं स्थानं तस्मान्नान्यद्धरागतम्॥३६॥
यथेयं नीलशिखरी प्रासादेनतवाधुना। चतुर्मुखाऽनुरोधेन महाप्रीतिकरी मम॥३७॥
तथा नृसिंहक्षेत्रे वै महावेदी तव क्रतोः। ममोत्पत्तेश्च निलयं प्रीतिकृन्ममशाश्वतम्॥३८॥

बहुकालं स्थितश्चाऽहं तस्यां मे प्रीतिरुत्तमा।
आत्मा मे पद्मभूरेष प्रासादे स्थापितोऽमुना॥३९॥
अस्यानुरोधात्त्वद्भक्त्या ह्यवतिष्ठेऽत्र नित्यदा।
दिनानि नव यास्यामि तथा तस्मादिहागतः॥४०॥

तत्राऽस्तिते महाराज ! सर्वतीर्थमयंसरः। तत्तीरेसप्तदिवसान्स्थास्याम्यनुजिघृक्षया॥४१॥

तत्र स्थितं मां पश्यन्तो यान्ति मर्त्या ममाऽऽलयम्।
तिस्त्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च तीर्थानां भुवनत्रये॥४२॥
तानि सर्वाणि सरसि मत्सान्निध्याद्व्रजन्ति ते।
तत्र स्नात्वा च विधिवद्दृष्ट्वा मां भक्तिभावतः॥४३॥

तुमने पूर्वकाल में मेरी प्रसन्नता हेतु वहां क्रमशः ५०० वर्ष पर्यन्त आहुति प्रदान किया था। उस स्थान से बढ़कर प्रीतिकारक स्थान पृथिवी पर कहीं भी नहीं है। तुम्हारे द्वारा प्रतिष्ठित प्रासाद तथा ब्रह्मा की प्रार्थना के कारण अब यह नीलपर्वत मेरी परमप्रीति का स्थान हो गया है। तुम्हारे महायज्ञ की महावेदी जो नृसिंह क्षेत्र में स्थित है, वह भी मेरा प्रीतिकर स्थल है। यदि उसे मेरा जन्मस्थल कहो, तब मेरे लिये अखण्ड प्रीतिकारक बात होगी। मैंने इन स्थानों पर दीर्घकाल निवास किया है, अतः उनके प्रति मेरे मन में अतीव प्रीति हो गयी! हे राजन्! ये पद्मयोनि ब्रह्मा मेरी आत्मा हैं। इन्होंने मुझे इस प्रासाद में स्थापित किया है। साथ ही इनके अनुरोध तथा तुम्हारी भक्ति के कारण मैं यहां चिरकाल तक स्थित रहूंगा। हे महाराज! मैं गुण्डीचा मण्डप में नौ दिन निवास करूंगा। तदनन्तर (रथयात्रा द्वारा) पुनः यहां लौटूगां। वहां जो तुम्हारा सर्वतीर्थमय एक सरोवर है, तुम्हारे प्रति अनुग्रह के कारण मैं वहां सरोवर तट पर एक सप्ताह स्थित रहूंगा। उन सात दिन तक जो मनुष्य मेरा वहां दर्शन करेगा, वह मेरे लोक वैकुण्ठ जायेगा। तीनों लोकों में जो साढ़े तीन कोटि तीर्थ हैं, वे उस सरोवर में उन सात दिन स्थित रहेंगे। इसलिए वहां भक्तिपूर्वक मेरा दर्शन तथा उसमें स्नान करना चाहिये।।३६-४३।।

जननीजठरे क्लेशं पुनर्नानुभवन्ति हि। नवमेऽह्नि समायान्तं दक्षिणाशामुखं तदा॥४४॥
येपश्यन्तिप्रतिपदमश्वमेधक्रतोःफलम्। प्राप्यभोगान्द्रिसमान्भुक्त्वान्तेमांविशन्तिते॥४५॥
ममोत्थानं ममस्वापं मत्पार्श्वपरिवर्त्तनम्। मार्गप्रावरणं चैव पुष्यस्नानमहोत्सवम्॥४६॥
फाल्गुन्यां क्रीडनं कुर्याद्दोलायां मम भूमिप!।
दोलायां येऽपि पश्यन्ति दक्षिणामुखपूजितम्॥४७॥
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नाऽत्र संशयः॥४८॥
अनयोर्मा समभ्यर्च्य दृष्ट्वा मां प्रणिपत्य च। प्रत्येकमष्टसाहस्त्रं वाजिमेधफलं लभेत्॥४९॥
चैत्रेसितत्रयोदश्यां कुर्यात्कर्मप्रपूरणम्। चैत्रे मासिचतुर्दश्यां दमनैर्मे प्रपूजनम्।
शुक्लपक्षे तु ये लोकाः सर्वपापक्षयो भवेत्॥५०॥

उन मानवों को पुनः गर्भ में जाकर दुःखभोग नहीं करना होगा। दसवें दिन दक्षिणाभिमुख यात्रा काल में जो मेरा दर्शन करेंगे, वे वहां प्रत्येक पग चलने में वे एक-एक अश्वमेध फल प्राप्त करेंगे। वे इस लोक में इन्द्र के समान तथा राजाओं की तरह भोग प्राप्त करके देहान्त में मेरा सायुज्य प्राप्त करेंगे। इसमें सन्देह नहीं है। हे भूमिप! इस प्रकार से मेरा शयन, पार्श्वपरिवर्त्तन, उत्थापन करे। अग्रहायण मास में प्रावरण, पुष्यस्नान, फाल्गुन मास में दोलायात्रा महोत्सव करें। दक्षिणाभिमुख पूजित दोलायात्रा का जो दर्शन करते हैं, वे ब्रह्महत्यादि पापों से निश्चित रूप से मुक्त हो जाते हैं। मनुष्यगण उक्त दोलायात्रा तथा पुष्यस्नानरूप महोत्सव में मेरा दर्शन, अर्चन तथा मुझे प्रणाम करके इन प्रत्येक कार्य से आठ हजार अश्वमेध यज्ञ फल प्राप्त करते हैं। चैत्रकृष्ण त्रयोदशी के दिन काम पूजन करे। चैत्रमासीय चतुर्दशी के दिन मेरा दर्शन तथा पूजन करने से लोगों का सर्वपापक्षय हो जाता है।।४४-५०।।

वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयाऽक्षयसंज्ञिता। तत्र मां लेपयेद्गन्धलेपनैरतिशोभनैः॥५१॥
प्रीतये मम ये कुर्युरुत्सवान्मम शाश्वतान्। चतुर्वर्गप्रदाह्येते प्रत्येकं परिकीर्तिताः॥५२॥

वैशाखमास की अक्षय तृतीया के दिन चन्दनादि विलेपन द्वारा मुझे अच्छी तरह लिप्त करें। जो भक्तिपूर्वक मेरी प्रसन्नता हेतु ऊपर कहे गये उत्सव सम्पन्न करते हैं मैं उनको प्रत्येक कार्य के लिये चतुर्वर्ग रूप फल प्रदान करता हूं। यह सब मैंने तुमसे कह दिया।।५१-५२।।

जैमिनिरुवाच

इतिदत्त्वावरं तस्माइन्द्रद्युम्नायभोद्विजाः। ब्रह्माणमाहभगवान्स्मेराम्भोरुहसन्मुखः॥५३॥
चतुर्मुख ! तव प्रीत्यै सर्वंसम्पादितंमया। त्वदिच्छाहिममैवेच्छानभेदोह्यावयोध्रुवम्॥५४॥
यन्मां माधवमूर्तिं त्वं पुराप्रार्थितवानसि। तस्यैवपरिपाकोऽयमवतारःकृतोमया॥५५॥
मामत्र दृष्ट्वा त्वभ्यर्च्य प्राणान्सन्त्यज्य मुच्यते।
क्रमात्सर्वे त्वया सार्द्धं भूयः सायुज्यमेव च॥५६॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे द्विजवर्ग! भगवान् हरि ने इन्द्रद्युम्न को यह वरदान देकर ईषत् हास्ययुक्त

मुख से ब्रह्मा से कहा—"हे चतुर्मुख! आपकी प्रीति के लिये आपके समस्त अभीष्ट विषयों का सम्पादन किया। आप निश्चय जानें, आपकी जो इच्छा है, वही मेरी भी इच्छा है। आपमें तथा मुझमें कोई भी भेद नहीं है। आपने पूर्वकाल में मुझसे माधव मूर्त्ति धारणार्थ प्रार्थना किया था, उसी के परिणामस्वरूप इस अवताररूपी जगन्नाथ मूर्त्ति को मैंने धारण किया है। यहां मेरा दर्शन तथा मेरी अर्चना करके जो कोई प्राण त्याग करेगा वह संसार से मुक्त होगा। इस प्रकार सभी क्रमशः आपके साथ मेरा सायुज्य प्राप्त करेंगे।"।।५३-५६।।

यद्वाचाऽभिलपन्मर्त्योमामत्रहि निषेवते। अवश्यंतदवाप्नोतिसङ्गत्या चाऽत्रभूपतिः॥५७॥
व्रजेदानीं सत्यलोकं त्रिदिवं यान्तुदेवताः। तवायुःपूर्णपर्यन्तमहमत्रस्थितो ध्रुवम्॥५८॥
ततस्तेहर्षिताः सर्वेब्रह्मर्षिसुरसत्तमाः। प्रणम्य शिरसा देवंजग्मुस्तेनिलयं स्वकम्॥५९॥
देवोऽपि च जगन्नाथःप्रतिमारूपधृक्तदा। तूष्णींतिष्ठतिसर्वेषांहर्षमापादयन्नृणाम्॥६०॥
इन्द्रद्युम्नोऽपिधर्मात्माविष्णुभक्तोदृढव्रतः। अनुव्रजन्पद्मयोनिंतेनाऽऽदिष्टोन्यवर्तत॥६१॥
यात्राःसर्वाभगवताआज्ञप्ताःसाधु कारय। अस्मिंस्तुष्टे जगन्नाथे सन्तुष्टंवैचराचरम्॥६२॥
इत्याज्ञां पद्मयोनेस्तु मूर्ध्न्याधाय क्षितीश्वरः। नारदेन सह श्रीमान्निधिना च समृद्धिमत्।
ज्येष्ठस्नानादिकं सर्वमुत्सवं निरवर्तयत्॥६३॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांद्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्ग-
तोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्यं जैमिनीऋषिसम्वादे दारुब्रह्मणः
सकाशादिन्द्रद्युम्नस्यवरलाभोनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः।।२९।।
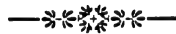
"मानव यहां पर जिस-जिस इच्छा को लेकर मेरी सेवा करेंगे, वे अवश्य ही उन-उन कामनाओं की प्राप्ति करेंगे। अब तुम सत्यलोक जाओ तथा देवगण भी सुरपुर प्रस्थान करें। मैं तुम्हारे जीवनकाल पर्यन्त-यहां स्थित रहूंगा।" तदनन्तर ब्रह्मर्षि तथा सुरगण आदि सभी ने आनन्दित होकर जगन्नाथ देव को शिर झुकाकर प्रणाम किया तथा अपने-अपने स्थान चले गये। तब प्रतिमारूपी देव जगन्नाथ भी समस्त मानवगण को आनन्द प्रदान करते हुये मौनी होकर वहां अवस्थित हो गये। इधर धर्मात्मा दृढ़व्रत विष्णुभक्त इन्द्रद्युम्न ब्रह्मा के पीछे-पीछे उनके आदेशानुसार जाने लगे। ब्रह्मा ने उनसे कहा—राजन्! अब तुम भगवान् का सभी विधान से यात्रा महोत्सव सम्पन्न करो। इन भगवान् की प्रसन्नता से समस्त चराचर सन्तुष्ट होगा।" श्रीमान् क्षितीश्वर इन्द्रद्युम्न ने भगवान् पद्मयोनि का यह आदेश मस्तक पर धारण करके नारद के साथ महासमारोहपूर्वक ज्येष्ठ स्नानादि सर्वविध उत्सवों को सम्पन्न किया।।५७-६३।।

।।एकोनत्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

त्रिंशोऽध्यायः

पञ्चतीर्थ माहात्म्य कीर्त्तन, वटवृक्ष मूल में विष्णु आवाहन, स्वर्गद्वार तीर्थ वर्णन, बहिःपूजन, सिन्धुराजतीर्थ महिमा

मुनय ऊचुः

चकार केनविधिनाजन्मस्नानंश्रियःपतेः। अन्यानप्युत्सवान्सर्वान्विधिवद्ब्रूहिनोमुने॥१॥
नारदेन पुरा प्रोक्तं सर्वं ते मुनिसत्तम। सहि वेद तमःपारे ब्रह्म ब्रह्मसुतो मुनिः॥२॥
तत्सर्वं ब्रूहि तत्त्वेन मुने कौतूहलं हि नः। अहो भाग्यं नरपतेरिन्द्रद्युम्नस्य भो मुने॥३॥
तस्य तावति कर्मान्ते अत्यद्भुतमिदं महत्। न श्रुता हिनदृष्टाहिप्रतिमादारुनिर्मिता॥४॥
सजीवतनुवत्साक्षाद्वरं दद्यान्मनुष्यवत्। स्मारंस्मारं भगवतश्चरितं पापनाशनम्॥५॥
चरितं तस्यनृपतेर्दुर्लभंमर्त्यवासिनाम्। नसन्तोषोऽस्तिभगवञ्श्रृण्वतांनोमहामुने॥६॥
तद्वदानुक्रमेणाऽस्मान्यात्राः सर्वाघनाशनाः। यासां सन्दर्शनाद्वासो वैकुण्ठ इति निश्चितम्।
यात्रामाहात्म्यवक्ताऽसौ यत्साक्षान्मधुसूदनः। तन्नोवदमहाभागजगतांहितकाम्यया॥७॥

मुनिगण कहते हैं—हे मुनिवर! राजा इन्द्रद्युम्न ने किस विधान द्वारा भगवान् श्रीहरि का जन्म-स्नान महोत्सव तथा अन्य समस्त उत्सव सम्पादित किया? वह मुझसे सविधि कहें। हे मुनिप्रवर! पूर्व में देवर्षि नारद ने आपसे समस्त विषय बतलाया था। हे स्वामिन्! अब आप ज्येष्ठस्नान के विषय में यथार्थरूप से बतायें। हे मुनिवर! स्नानभेद से माहात्म्य तथा उत्सव किस प्रकार से सम्पादित हुआ वह कहिये। ब्रह्मा के मानसपुत्र देवर्षि नारद तमोगुण से अतीत ब्रह्म के विषय को अच्छी तरह जानते हैं। इसलिये हमारे द्वारा पूछे गये विषय को यथार्थ रूप से कहिये। यह सुनने के लिये हममें कुतूहल उत्पन्न हो रहा है। हे मुनिवर! अहो! नरपति इन्द्रद्युम्न का क्या उत्तम भाग्य है! यदि कर्मान्त में वस्तुतः ऐसा होता है, तब तो यह अतीव आश्चर्य का विषय है। कभी ऐसा सुना नहीं गया है, न देखा ही गया है। दारुमयी प्रतिमा साक्षात् सजीव होकर मनुष्यवत् स्नान करती है। हे भगवान्! तभी भगवान् की पापनाशन अद्भुत महिमा तथा राजा इन्द्रद्युम्न और मर्त्यवासीगण के दुर्लभ आश्चर्य चरित्र के विषय में सुनकर पुनः-पुनः अतीव आश्चर्य होता है। हे महामुनि! आपके मुख से उनकी चरितकथा सुनकर हमें तृप्ति नहीं हो रही है। इसलिये कृपापूर्वक यथाक्रमेण भगवान् के सर्वपापनाशक यात्रा सम्बन्धित उत्सव के विषय में हमें बतायें। इस यात्रा महोत्सव का दर्शन करने से वैकुण्ठ में निवास मिलता है। क्योंकि वे साक्षात् मधुसूदन हैं। उन्होंने स्वयं यात्रा महिमा का वर्णन किया है। हे महाभाग! आप अखिल जगत् की हितकामना से इन विषय को व्यक्त करें।।१-७।।

जैमिनिरुवाच

ज्येष्ठस्नानं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मुनयोऽधुना। ज्येष्ठशुक्लदशम्यांतुव्रतंसङ्कल्प्यवाग्यतः॥८॥
प्रातरुत्थाय कुर्वीत पञ्चतीर्थविधानतः। मार्कण्डेयावटं गत्वा आचम्य प्रयतः पुमान्॥९॥

प्रार्थयेच्छङ्करं नत्वा कृताञ्जलिपुटोऽग्रतः॥१०॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे मुनिगण! अब ज्येष्ठ स्नान के विषय में कहता हूं। श्रवण करें। ज्येष्ठ शुक्लादशमी को व्रत संकल्प लेकर इस दिन वाग्यत (मौन) होकर रहे। तदनन्तर प्रातः उठकर यथाविधान पञ्चतीर्थ करे। मानव पहले मार्कण्डेय वट पर जाकर वहां आचमन करके भगवान् शंकर को प्रणाम करे। तब प्रणत भाव से अंजलिवद्ध होकर उनके सामने खड़े होकर प्रार्थना करनी चाहिये।।८-१०।।

अतितीक्ष्ण ! महाकाय ! कल्पान्तदहनोपम !। भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि॥११॥
ततः प्रविश्य तीर्थं तु वैदिकैः पञ्चवारुणैः। अघमर्षणसूक्तेन त्रिरावृत्तेन वा द्विजाः॥१२॥
स्नात्वा यथावत्स्नायीत मन्त्रेणानेन चान्ततः॥१३॥
नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहराय च। स्नानं करोमि देवेश ! मम नश्यतु पातकम्॥१४॥
संसारसागरे मग्नं पापग्रस्तमचेतनम्। त्राहि मां भगनेत्रघ्न! त्रिपुरारे! नमोऽस्तु ते॥१५॥
एवं स्नात्वा बहिर्गत्वा धौतवासाः सपुण्ड्रकः।
देवानृषीन्पितृंश्चै व तर्पयित्वा यथाविधि॥१६॥
प्रविश्य शङ्करागारं स्पृष्ट्वा वृषणयोर्वृषम्। मन्त्रेणानेन भो विप्राः सर्वक्रतुफलंलभेत्॥१७॥
धर्मश्चतुष्पाद्यज्ञस्त्वंस्वर्णशृङ्गस्त्रयीवपुः। गोपते वाहरूपस्त्वं शूलिनंत्वां नमाम्यहम्॥१८॥

प्रार्थना इस प्रकार है—"हे देव! आप महाकाय, अतितीक्ष्ण हैं। आप कल्पान्तकालीन अग्नि के समान तेज से प्रदीप्त हैं। आप भैरवरूप को मैं प्रणाम करता हूं। आप मुझे तीर्थस्नान की आज्ञा दीजिये।" हे द्विजगण! तदनन्तर तीर्थजल में उतर कर मन्त्र द्वारा स्नान करके पुनः यह मंत्र पाठ करें। "हे देवेश! आप सर्वपापहारी हैं। अतः सर्वकल्याणकारी शान्तमूर्त्ति आपको प्रणाम! मैं इस तीर्थजल में स्नान कर रहा हूं। मेरा समस्त पाप नष्ट हो जाये। हे त्रिपुरारि! आपने अपनी नेत्राग्नि से दुर्निवार कामदेव को भस्मीभूत किया था। आपको प्रणाम! आप मेरी रक्षा करें।" इस प्रकार स्नानान्त में जल के बाहर निकलकर धौतवस्त्र पहने तथा तिलक लगाये। हे विप्रगण! तदनन्तर देवता, ऋषि तथा पितृगण का यथाविधि तर्पण करके शंकर के देवालय में प्रवेश करके कहे—"हे गोपति! आप चतुष्पाद धर्म हैं। आप यज्ञरूप हैं। आपका शरीर त्रयीमय तथा शृङ्ग स्वर्णभूषित है। आप शंकर के वाहन हैं, आप त्रिशूलचिह्नधारी हैं। आपको प्रणाम!" इस मन्त्र द्वारा शंकर वाहन वृष के वृषणद्वय का स्पर्श करने से सर्वयज्ञ फल लाभ होता है। (तत्पश्चात् इस मन्त्र का पाठ करते हुये शिव को प्रणाम करना चाहिये—"हे त्रिलोचन! आपको प्रणाम! हे विरुपाक्ष, महादेव! आपको पुनः-पुनः प्रणाम! आप मेरी रक्षा करें।[१])।।११-१८।।

अघोरमन्त्रेण ततः पूजयेद्वृषवाहनम्। पञ्चब्रह्मभिर्ऋग्भिस्तु संस्पृशेल्लिङ्गमुत्तमम्॥१९॥
अङ्गुष्ठनस्पृशेल्लिङ्गं मुष्टिना शक्तिमेव च। पूजयित्वा तु विधिवत्स्तुत्वादेवंपुरद्विषम्॥२०॥
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम्।
मार्कण्डेयावटे स्नात्वा दृष्ट्वा देवं तु शङ्करम्॥२१॥

१. कुछ प्रतियों में यह श्लोक अतिरिक्त है, उसका अर्थ अनुवाद में कोष्ठ में दिया गया है—
"त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु नमस्ते शशिभूषणे। त्राहि मा त्वं विरुपाक्ष महादेव नमोऽस्तुते।।"

फलं प्राप्नोत्यविकलं राजसूयाश्वमेधयोः। अन्ते शिवस्यसालोक्यंप्राप्यज्ञानंततोनरः॥२२॥
क्रमाच्च लभते मुक्तिं जगन्नाथप्रसादतः। ततो मौनी व्रजेद्देवं नारायणमनामयम्॥२३॥
तद्दक्षिणस्थितं विष्णुरूपं न्यग्रोधमुत्तमम्। दर्शनादपि पापानां पापसंहतिनाशनम्॥२४॥
तं दृष्ट्वा प्रणमेद्दूराद्भावयन्पुरुषोत्तमम्। प्रदक्षिणं ततः कुर्यादिमं मन्त्रमुदीरयन्॥२५॥

तत्पश्चात् अघोर आदि मन्त्र से वृषवाहन शंकर का पूजन करें और पञ्चब्रह्म ऋक् मन्त्र द्वारा शिव स्पर्श करें। अंगुष्ठ द्वारा लिंग का स्पर्श तथा मुष्ठि द्वारा शक्तिपीठ का स्पर्श करना चाहिये। इस प्रकार त्रिपुरारि महादेव की यथाविधि पूजा तथा स्तुति करके मनुष्य निःसंदिग्धरूपेण दस अश्वमेध यज्ञफल लाभ करता है। मार्कण्डेय वट तीर्थ में मानव तीर्थजल में स्नान करके भगवान् शंकर के दर्शन द्वारा राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञफल अविकल रूप से लाभ करता है। वह देहान्त के उपरान्त शिवसालोक्य लाभ करके क्रमशः महादेव की कृपा से तत्वज्ञान प्राप्ति रूप निर्वाण मुक्तिलाभ करता है। तत्पश्चात् मौन रहकर मार्कण्डेय वटवृक्ष के दक्षिण में स्थित साक्षात् अनामय देव नारायणस्वरूप अक्षय वटवृक्ष के पास जाये। इसका दर्शन करने से पापी लोगों के पापपुञ्ज दूर हो जाते हैं। दूर से इस वृक्ष का दर्शन करके उसमें पुरुषोत्तम विष्णु की भावना करे। प्रणामोपरान्त उनकी स्तुति इस प्रकार से करनी चाहिये। यह स्तुति उनकी प्रदक्षिणा के साथ करें।।१९-२५।।

अमरस्त्वं सदा कल्प विष्णोरायतनं महत्। न्यग्रोध हर मेपापंविष्णुरूपनमोऽस्तुते॥२६॥
नमोऽस्त्वव्यक्तरूपाय महाप्रलयस्थायिने। एकाश्रयाय जगतां कल्पवृक्षाय ते नमः॥२७॥

स्तुति इस प्रकार है—"हे न्यग्रोध! आप कल्पान्तकाल तक अमर हैं तथा विष्णु की महत् आवासभूमि हैं। हे विष्णुरूप! आपको प्रणाम! आप पापराशि का हरण करें। आप महाप्रलय तक स्थायी रहते हैं। आपका स्वरूप अव्यक्त है। आप अखिल जगदाश्रय हैं। हे कल्पवृक्ष! आपको बारम्बार प्रणाम! आप प्रसन्न हों!।।२६-२७।।

स्तुवञ्जपेत्तुतद्भक्त्या मूले तस्य जनार्दनम्। कोटिजन्मशतोद्भूतपापादेव विमुच्यते॥२८॥
तच्छायाक्रमणेनाऽपि निष्पापो जायते नरः। ततः सुपर्णं प्रणमेद्यानरूपं हरेः पुरः॥२९॥
स्थितो भक्तिनतो विष्णोः कृताञ्जलिपुटोमुदा। छन्दोमयजगद्धामन्यानरूपत्रिवृद्वपुः॥३०॥
यज्ञरूप! जगद्व्यवापिन्प्रीयमाणाय ते नमः।
स्तुत्वेत्थं गरुडं पापान्मुच्यतेऽनेकजन्मजात्॥३१॥

इस प्रकार अक्षयवट की स्तुति तथा प्रदक्षिणा करने के पश्चात् उसके मूलदेश में भगवान् जनार्दन की पूजा करनी चाहिये। ऐसा करने से मानव अपनी कोटिजन्म समुद्भूत पापराशि से मुक्त होता है। इसमें किंचित सन्देह नहीं है। किम्बहुना, इस वृक्ष की छाया का स्पर्श करने मात्र से ही मानव निष्पाप हो जाता है। हे विप्रगण! तत्पश्चात् इन अक्षयवट के मूल में स्थित नारायण के सम्मुख स्थित उनके वाहन गरुड़ की भक्ति के साथ हाथ जोड़कर विनम्रतापूर्वक प्रणाम करके स्तुति करें—"हे जगत्स्वामी! आप वेद तथा मन्त्ररूप हैं। आप अखिल जगदाधार, त्रिगुणात्मा तथा विष्णु के वाहन हैं। आपको प्रणाम! आप प्रसन्न हों।" गरुड़ की इस प्रकार स्तुति करने तथा प्रणाम करने से मनुष्य अनेक जन्मार्जित पापों से मुक्त हो जाता है।।२८-३१।।

वाङ्मनःकर्मनियतोगच्छेदेवंविचिन्तयन्। प्रविश्यदेवताऽगारंकृत्वातंत्रिःप्रदक्षिणम्॥३२॥
पूजयेन्मन्त्रराजेन सूक्तेन पुरुषस्य वा। द्वादशाक्षरमन्त्रेण यत्र वा जायते रुचिः॥३३॥

इसके अनन्तर मन-वाणी तथा कर्म से संयतात्मा होकर मन ही मन देवदेव नारायण का चिन्तन करते हुये देवालय जाकर उसकी तीन प्रदक्षिणा सम्पन्न करे तथा मन्त्रप्रधान पुरुषसूक्त अथवा द्वादशाक्षरमंत्र द्वारा अथवा जिस मन्त्र की रुचि हो, उससे भगवान् की पूजा करनी चाहिये।।३२-३३।।

पूजाऽधिकारिणःसर्वे ब्रह्मक्षत्रविशस्ततः। अन्येषांदर्शन भक्त्यातयोर्नामानुकीर्तनात्॥३४॥
पञ्चोपचारविधिना पूजयेत्परमेश्वरम्। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इदं स्तोत्रमुदीरयेत्॥३५॥

समस्त ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों को इस पूजा करने का अधिकार प्राप्त है। अन्य जाति वाले भक्तिभाव से नामों का उच्चारण तथा दर्शन मात्र करें। पञ्चोपचार विधि से इन परमेश्वर की पूजा करके पूजावसान में कृताञ्जलि होकर भक्ति के साथ यह स्तुति पाठ करे।।३४-३५।।

देवदेव ! जगन्नाथ ! संसारार्णवतारक !। भक्तानुग्राहक सदा रक्ष मां पादयोर्नतम्॥३६॥
जय कृष्ण ! जगन्नाथ ! जयसर्वाघनाशन !।
जयाशेषजगद्वन्द्यपादाम्भोज ! नमोऽस्तुते॥३७॥
जय ब्रह्माण्डकोटीश वेदनिःश्वासवातक !। अशेषजगदाधार ! परमात्मन्नमोऽस्तु ते॥३८॥
जय ब्रह्मेन्द्ररुद्रादिदेवोघप्रणतार्तिनुत्। जयाखिलजगद्धामन्नन्तर्यामिन्नमोऽस्तु ते॥३९॥
जय निर्व्याजकरुणापाथोधेदीनवत्सल !। दीनानाथैकशरण ! विश्वसाक्षिन्नमोऽस्तुते॥४०॥
संसारसिन्धुसलिले मोहावर्त्ते सुदुस्तरे। षडूर्मिकूलदुष्पारे कुकर्मग्राहदारुणे॥४१॥
निराश्रये निरालम्बे निःसारे दुःखफेनिले। तव मायागुणैर्बद्धमवशं पतितं ततः॥४२॥

स्तुति इस प्रकार है—हे देवदेव, जगन्नाथ, संसारसमुद्र से पार उतारने वाले, भक्तों पर अनुग्रह परायण! मैं आपके चरणों में नमन करता हूं। मेरी रक्षा करें। हे कृष्ण, जगन्नाथ, सर्वपापनाशक! आपकी जय हो। हे नाथ! आपके चरणकमल समस्त जगत्पूज्य हैं आपको प्रणाम, आपकी जय हो! हे अशेष जगदाधार! आप कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड के अधीश्वर हैं। समस्त वेद आपके निःश्वासरूप हैं, हे परमात्मन! आपको प्रणाम! हे अन्तर्यामी! आप ब्रह्मा-रुद्र-इन्द्रादि देवगण द्वारा नमस्य हैं, आप सर्वक्लेशनाशक हैं। आप में ही समस्त जगत् स्थित रहता है। आपको प्रणाम! हे विश्वसाक्षी! दीनवत्सल! आप दीन तथा अनाथों के एकमात्र आश्रय हैं तथा अकपट करुणारस सागर हैं। आप की जय हो। आपको प्रणाम करता हूं। हे देवेश! संसार सागर अत्यन्त दुस्तर है। इसमें कामादि छः दोष रूप लहरें सदा चंचला रहती हैं। कोई भी किसी भी प्रकार से इसको पार कर सकने में समर्थ नहीं है। यही नहीं, मोहरूपी आवर्त्त तथा कुकर्म रूपी मकर आदि इसमें रहते हैं। इस कारण यह सागर अत्यन्त भीषण हो गया है। इसमें कोई आश्रय अथवा अवलम्बन ही नहीं मिलता। नाना दुःख-सुख ही इस सागर के फेन रूप में परिलक्षित होते रहते हैं। मैं तमोगुण में बद्ध होकर अवशरूप से इस सागर जल में गिरा हुआ क्रमशः उसमें डूबता जा रहा हूं। मैं माया तथा त्रिगुण से बद्ध होकर डूब रहा हूं।।३६-४२।।

मां समुद्धर देवेश ! कृपाऽपाङ्गविलोकनैः। तत्र मग्नं सुरश्रेष्ठ ! सुप्रसादप्रकाशक !॥४३॥

एक एव जगन्नाथ! बन्धुस्त्वं भवभीरुणाम्।
बुभुक्षा च पिपासा च प्राणस्य मनसः स्मृतौ॥४४॥
शोकमोहौ शरीरस्यजरामृत्युर्वपुर्भवः। त्वत्सृष्टौतादृशोनाऽस्तियोदीनपरिपालकः॥४५॥
अवतीर्णोऽसिलोकानामनुग्रहधिया विभो !। पूर्णकामस्यतेनाथकिमन्यत्कारणंक्षितौ॥४६॥
त्वत्पादपद्ममासाद्य न चिन्ताऽस्ति जगत्पते !। यतस्तेचरणाम्भोजंचतुर्वर्गैकसाधनम्॥४७॥
दर्शनात्सर्वलोकानां सर्ववाञ्छाफलप्रदम्। ततः सीरध्वजं शेषमन्त्रेण परिपूजयेत्॥४८॥
द्वादशाक्षरमन्त्रेण नाम्ना वा प्रणवादिना। एकाग्रमानसो भूत्वा प्रणिपत्य प्रसादयेत्॥४९॥

"हे देवेश! हे जगन्नाथ! जगत्प्रकाशक! आप अपने कृपा कटाक्ष से मेरा उद्धार करिये। हे जगन्नाथ! मैं भवभय से डरा हुआ हूं। ऐसी स्थिति में आप ही एकमात्र बन्धु हैं। भूख, पिपासा शोक-मोह-जरा-जन्म-मृत्यु-पुनर्जन्म का स्मरण करके मैं भयग्रस्त हूं। हे विभु! इस सम्पूर्ण सृष्टि में आपके अतिरिक्त अन्य कोई दीनों की रक्षा नहीं कर सकता। अतः आप स्वयं अनुग्रह करते हुये इस मूर्त्ति में अवतीर्ण हो गये हैं, अन्यथा हे नाथ! आप तो स्वयं पूर्णकाम हैं। अनुग्रह के अतिरिक्त आपके इस पृथिवी पर अवतरित होने का कोई अन्य कारण ही नहीं है। हे जगत्पति! आपके चरणों का आश्रय ग्रहण कर लेने पर तदनन्तर भवसागर पार करने की कोई चिन्ता ही नहीं रह जाती। यदि आपके चरणों का आश्रित हो जाने पर भी वह चिन्ता बाकी रह जाती, तब आपके चरणकमल चतुवर्ग साधन के प्रधान कारण कैसे होते? तब क्या आपके दर्शन मात्र से सभी लोकों को अपने वांछित फल की प्राप्ति होती?" (अर्थात् चरणकमल का आश्रय लेते ही समस्त चिन्ता समाप्त हो जाती हैं।) इस प्रकार से स्तुति करने के अनन्तर अनन्तदेव बलराम की अर्चना द्वादशाक्षर मन्त्र अथवा प्रणावादि नामोच्चार से सम्यक्रूपेण करनी चाहिये। तदनन्तर एकाग्र मन से उनकी सन्तुष्टि हेतु उनको प्रणाम करें।[१]॥४३-४९॥

जय राम सदाराम सच्चिदानन्दविग्रह !। अविद्यापङ्करहित ! निर्मलाकृतये नमः॥५०॥
जयाखिलजगद्धारधारणश्रमवर्जित !। तापत्रयविकर्षाय हलं कलयसे सदा॥५१॥
प्रपन्नदीनत्राणाय स्फुटनेत्रसरोरुह !। त्वमेवेश ! पराशेषकलुषक्षालनप्रभुः॥५२॥
प्रसन्नकरुणासिन्धो ! दीनबन्धो ! नमोऽस्तुते। चराचराफणाग्रेण धृता येन वसुन्धरा॥५३॥
मामुद्धरास्माद्दुष्याराद्भवाम्भोधेरपारतः। परापराणां परम ! परमेश ! नमोऽस्तुते॥५४॥
स्तुत्वैवं नागराजानं हलं मुसलधारिणम्। पूजयेज्जगतामादिकारणां भद्रलोचनाम्॥५५॥

१. एक अन्य प्रति में इतने श्लोक अधिक हैं—"गता गत्वा निवर्त्तन्ते चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः। अद्यापि न निवर्त्तन्ते द्वादशाक्षर चिन्तकाः। यतः सर्वं वैष्णवं कर्म प्रतिष्ठादि प्रकल्पितम्। तदनेन प्रकर्त्तव्यं विष्णो प्रीतिकरेण वै॥ सर्वेषां महिमावाप्तिरस्य संसेवनाद् भवेत्। स्वायम्भुवो मनुर्नाम जजाप मन्त्रमुत्तमम्॥ प्रजापतित्वं सम्प्राप्य ससर्ज च चराचरम्। एकाग्रमनसो भूत्वा प्रणिपत्य प्रसादयेत्।"

इसका श्लोकार्थ—चन्द्र-सूर्यादि ग्रह भी बारम्वार उगते हैं तथा डूबते हैं तथापि द्वादशाक्षरमन्त्र चिन्तक वैकुण्ठ जाकर पुनः नहीं लौटता। विष्णु प्रतिष्ठादि सभी कार्य में इस विष्णु प्रीतिकारी द्वादशाक्षर मंत्र का उच्चारण करना चाहिये। इस मन्त्र का सम्यक् सेवन (जप) करने से सभी महत्व प्राप्त होते हैं। पूर्वकाल में स्वायम्भुव मनु ने यह मन्त्र जप कर प्रजापतित्व पाया था। हे मुनिवर! तत्पश्चात् एकाग्रतापूर्वक प्रणामोपरान्त बलराम की यह स्तुति करनी चाहिये।

स्तव इस प्रकार है—"हे राम! आप सदा आत्माराम तथा सच्चिदानंदकर हैं। आप में अविद्यारूपी मल नहीं है। इस कारण आपकी आकृति अत्यन्त निर्मल है। आपको प्रणाम! हे प्रभो! आपकी जय हो। आप सतत् अखिल जगत्मण्डल को धारण करके भी थकते नहीं तथा भक्तों के आध्यात्मिकादि तापतत्रय को हटाने के लिये (उखाड़ने हेतु) सतत् हल चलाते रहते हैं। हे नाथ! शरणागत दीन व्यक्तिगण के परित्राणार्थ आप निरन्तर अपने नयनकमल खोले रहते हैं। हे ईश! एकमात्र आप ही अन्य की अशेष पापराशि का क्षालन करने में समर्थ हैं। हे दीनबन्धु! हे जगत्पति! आप आश्रितों के करुणासागर हैं तथा जगत् की रक्षा हेतु आप अपने फणाग्र द्वारा चराचर युक्त इस वसुन्धरा को सर्वदा धारण करते हैं। हे परमेश! आप अखिल परापर व्यक्तियों में से एक परम श्रेष्ठ हैं। इसलिये आपको प्रणाम! आप इस अपार संसार पारावार से मेरा उद्धार करिये।" हे विप्रगण! हल-मूसलधारी अनन्तदेव बलराम का इस प्रकार स्तव करके जगत् की मूल कारण सुभद्रादेवी का पूजन करके यह स्तोत्र पाठ करने लगे।।५०-५५।।

स्तुत्वाजयान्तांभोविप्राःप्रणिपत्यप्रसादयेत्। जयदेवि ! महादेवि ! प्रसीदभवतारिणि।।५६।।
सुखारणिश्रितवतांजयसन्तुष्टिकारिणी। कार्यकार्यस्वरूपाणांकारणानांचकारणम्।।५७।।

धारणां धार्यमाणानां त्वामादिम्प्रणमाम्यहम्।
वक्षःस्थलस्थितां विष्णोः शम्भोरर्द्धाङ्गधारिणीम्।।५८।।
पद्मयोनिमुखाब्जस्थां प्रणमामि जगत्प्रियाम्।
सृष्टिस्थितिविनाशादिकर्मणां परमात्मनः।।५९।।
त्वमेका शक्तिरतुला त्वां विना सोऽपि नेश्वरः।
त्वां सर्वलोकजननीं विष्णुमायां तपस्विनीम्।।६०।।

सुभद्रां भद्ररूपां तां मूलभूतां नमाम्यहम्। ततः सागरस्नानाय प्रार्थयेत्पुरुषोत्तमम्।।६१।।

उन्होंने सुभद्रा देवी का पूजन करके उनको प्रणाम किया। तदनन्तर कहने लगे—"हे देवी, भवतारिणी! आप समस्त देवियों में महादेवी हैं। आप आश्रितों का दुःखमोचन करने के लिये सदा तत्पर रहती हैं। आप देवगण को सन्तोष प्रदान करती हैं। आपकी जय हो, जय हो! आप प्रसन्न हो! आप समस्त कार्यों की भी कार्य, समस्त कारण की कारण तथा अखिल धारण करने वाले की धारक हैं। मैं परम आदिभूता, सबकी आदिभूता आपको प्रणाम करता हूं। हे देवी! आप लक्ष्मीरूपेण विष्णु के वक्ष पर स्थित रहती हैं। गौरीरूपेण आप ही शंकर की अर्द्धाङ्गशायिनी हैं। आप ही सरस्वतीरूपेण पद्मयोनि के मुखपद्म में विराजमान रहती हैं। इसलिये जगत्प्रिया आपको प्रणाम करता हूं। हे माता! आप ही परमेश्वर की सृष्टि-स्थिति-विनाशादि कार्य सम्पादन की एकमात्र शक्ति हैं। आपकी सहायता के अतिरिक्त (सहायता के बिना) वे कोई कार्य ही नहीं कर पाते। हे देवी! आप ही सर्वलोक जननी हैं। आप ही तपस्विनी तथा विष्णुमाया भी हैं। आप समस्त पदार्थों की मूलकारण, भद्ररूपा सुभद्रा हैं।" यह स्तुति करने के अनंतर सागर में स्नानार्थ पुरुषोत्तम की यह प्रार्थना करें।।५५-६१।।

नमस्ते भगवन्विष्णो जगद्व्यापिंश्चराचर !।
निर्विघ्नं सिद्धिमायातु सिन्धुस्नानं मम प्रभो !।।६२।।

नमस्ते जगतामीश ! शङ्खचक्रगदाधर !। देहि देव ममाऽनुज्ञां तव तीर्थनिषेवणात्॥६३॥
ततोमौनंव्रजेद्विष्णुंचिन्तयन्सरितांपतिम्। उग्रसेनं स्थितंमार्गेअनुज्ञाप्यसमाहितः॥६४॥
उग्रसेन ! महाबाहो ! बलवन्नुग्रविक्रम। लब्ध्वा वरं सुप्रसन्नात्समुद्रतटमास्थितः॥६५॥

"हे भगवान् विष्णु! आप सचराचर जगद्व्यापक हैं, हे प्रभु! मेरा सिन्धु स्नान आप की कृपा से सिद्ध हो जाये। हे शंखचक्रगदाधारी! आप अखिल जगत्प्रभु हैं। आपको प्रणाम! हे देव! आप तीर्थ स्नानार्थ मुझे आज्ञा दीजिये।" तदनन्तर समाहित चित्त से पार्श्वस्थ उग्रसेन से आज्ञा लेकर तथा प्रार्थना करके मौन भाव से मन ही मन विष्णु चिन्तनोपरान्त सागर की ओर जायें। उग्रसेन से यह प्रार्थना करनी चाहिये। "हे उग्रसेन, हे महाबाहु! आप महाबली तथा उग्रविक्रमी हैं। आपने भगवान् को प्रसन्न करके उनसे वर ग्रहण किया है तथा समुद्रतट पर अवस्थान करते हैं।" उग्रसेन से यह प्रार्थना करने के पश्चात् तीर्थराज सागर के तट पर जाकर यह प्रार्थना करें।।६२-६५।।

तीर्थराजकृतस्नानसुसम्पूर्णफलप्रद !। सिन्धुस्नानं करिष्यामिअनुज्ञां दातुमर्हसि॥६६॥
ततोगच्छेद्द्विजश्रेष्ठाःस्वर्गद्वारंततःपरम्। येनदेवाःसमायान्तिक्षेत्रेऽस्मिन्पुरुषोत्तमे॥६७॥
भूस्वर्गेजगदीशस्य दर्शनाय दिने दिने। स्वर्गावतारमार्गेण तत्रस्थौवांनमाम्यहम्॥६८॥
मामप्यूर्ध्वं नयेतां वै साक्षिणौ कर्मणां सताम्।
सागराम्भः समुत्पन्नो श्रेष्ठौ सर्वगुणान्वितौ॥६९॥
मध्येन युवयोर्यामि स्वर्गद्वारमपावृतम्। प्रार्थयित्वा ततो गच्छेत्तीर्थराजस्य सन्निधिम्॥७०॥
यं दृष्ट्वादूरतः पापान्मुच्यतेमहतोध्रुवम्। प्रक्षालितकराङ्घ्रिकआचान्तः शुचिविष्टरे।
आसीनः प्राङ्मुखो भूत्वा लिखेन्मण्डलमग्रतः॥७१॥
चतुरस्रं चतुर्द्वारं चतुः स्वस्तिककोणकम्॥७२॥
तन्मध्ये विलिखेत्पद्ममष्टपत्रं सुशोभनम्। ततोऽष्टाक्षरमन्त्रंतु करयोश्चतनौन्यसेत॥७३॥
षड्भिर्वणः षडङ्गानां न्यासः प्रोक्तो मनीषिभिः।
शेषौ कुक्षौ च पृष्ठे च न्यस्तव्यौ च ततः पुनः॥७४॥
पादयोर्जङ्घयोरूर्वोःस्फिचोश्चपार्श्वयोःपुनः। नाभौपृष्ठेबाहुयुग्मेहृदिकण्ठेचकक्षयोः॥७५॥
ओष्ठयोः कर्णयोरक्ष्णोर्गण्डयोर्नासयोस्तथा।
भ्रुवोर्ललाटे शिरसि मन्त्रवर्णान्यथाक्रमम्॥७६॥
विन्यस्यव्यापकंसर्वैर्न्यासंकुर्यात्समाहितः। प्राणायामत्रयं कुर्यान्मूलेनपञ्चविंशतिम्॥७७॥

"हे तीर्थराज! जो आपमें स्नान करते हैं आप उनको पूर्णफल देते हैं। अतः हमें स्नानार्थ आज्ञा दें।" हे द्विजप्रवरगण! तदनन्तर देवगण जिस स्वर्गावतरण पथ से जगदीश्वर जगन्नाथ देव के दर्शनार्थ भूस्वर्ग नाम से प्रसिद्ध पुरुषोत्तम क्षेत्र में प्रतिदिन आते हैं, उस अत्युत्तम स्वर्गद्वार पर जाकर उक्त उग्रसेन तथा तीर्थराज से पुनः यह प्रार्थना करें। "हे उग्रसेन, तीर्थराज! आप लोग समुद्रजल से उत्पन्न हैं। आप समस्त सत्कर्म के

साक्षीरूप से स्वर्गद्वार पर स्थित रहते हैं। आप सभी गुणों से युक्त तथा सर्वोत्तम हैं। आप लोगों को प्रणाम! आप आज्ञा दीजिये। मैं आपलोगों के बीच से जाकर अपावृत स्वर्गद्वार जा सकूं।'' यह प्रार्थना करके तीर्थराज सागर के पास जाये। उनका दूर से ही दर्शन पाकर मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है। तदनन्तर हाथ-पैर धोकर आचमन करके पूर्वाभिमुख आसनासीन होकर अपने सामने चार द्वार वाला एक चौकोर मण्डल रचे। उसके चारों कोण में एक-एक स्वस्तिक बनाये। मध्य में सुशोभन अष्टदल कमल बनाना चाहिये। तदनंतर उसकी दोनों बाहु में अष्टाक्षर मन्त्र स्थापित करके अष्टाक्षर मन्त्र के पहले छ अक्षरों से षडङ्गन्यास करें। अपनी कुक्षि एवं पृष्ठदेश पर बाकी बचे दो अक्षरों से न्यास करें। यही सभी मनीषि कहते हैं। तत्पश्चात् पादद्वय, जंघाद्वय, उरुद्वय, नितम्बद्वय, पार्श्वद्वय, नाभि, पीठ, बाहुद्वय, हृदय, कण्ठ, कक्षद्वय, ओष्ठद्वय, कर्णद्वय, नेत्रद्वय, गण्डद्वय, नासिकरन्ध्रद्वय, भ्रूयुगल, ललाट तथा मस्तक पर यथाक्रमेण मन्त्र के वर्णों को विन्यस्त करे। समाहित चित्त से यह व्यापक न्यास सम्पन्न करने के अनन्तर पच्चीस प्राणायाम करना चाहिये।।६६-७७।।

बध्नीयात्कवचं दिव्यंसर्वपापापनोदनम्। पूर्वे मांपातुगोविन्दोवारिजाक्षस्तुदक्षिणे।।७८।।
प्रद्युम्नः पश्चिमे पातु हृषीकेशस्तयोत्तरे। आग्नेय्यां नरसिंहस्तुनैर्ऋत्यां मधुसूदनः।।७९।।
वायव्यां श्रीधरः पातु ऐशान्यांचगदाधरः। ऊर्ध्वंत्रिविक्रमःपातुअधोवाराहरूपधृक्।।८०।।
सर्वत्र पातु मां देवः शङ्खचक्रगदाधरः। नारायणो मनः पातु चैतन्यं गरुडध्वजः।।८१।।
पातुमे बुद्ध्यहङ्कारौत्रिगुणात्माजनार्दनः। इन्द्रियाणि सदा पातु दैत्यवर्गनिकृन्तनः।।८२।।

इसके पश्चात् इस मन्त्र के पाठ द्वारा सर्वपापनाशक दिव्य कवच से देहबन्धन करना चाहिये। यथा— पूर्व दिशा में गोविन्द, दक्षिण में वारिजाक्ष, पश्चिम में प्रद्युम्न तथा उत्तर में हृषीकेश मेरी रक्षा करें। अग्निकोण में नृसिंह, नैर्ऋत् में मधुसूदन, वायुकोण में श्रीधर तथा ईशन में गदाधारी मेरी रक्षा करें। देवता त्रिविक्रम ऊर्ध्व में, वराहरूपी हरि अधः में, शंख-चक्र-गदाधारी देव नारायण सर्वदिक् में मेरी रक्षा करें। नारायण मन की, गरुड़ध्वज चैतन्य की, त्रिगुणात्मा जनार्दन बुद्धि तथा अहंकार की, दानवशत्रु मधुसूदन मेरे इन्द्रियों की सदा रक्षा करें।''।।७८-८२।।

एवं बद्ध्वा च कवचं निष्पापो जायते पुमान्। षोडशैरुपचारैश्चमनसा कल्पितैनरः।।८३।।
पुरुषोत्तमं पूजयित्वा यथावद्विधितोद्विजाः। आवाह्यमण्डलेतस्मिन्देवदेवमनामयम्।।८४।।
पूजयित्वा विधानेन यथाशक्त्युपबृंहितैः। आत्मानं तीर्थराजस्य देवदेवस्य चिन्तयन्।।८५।।
एवं बद्ध्वाञ्जलिपुटमिमं मन्त्रमुदीरयेत्। सुदर्शन! नमस्तेऽस्तु कोटिसूर्यसमप्रभ!।।८६।।
अज्ञानतिमिरान्धस्य विष्णोर्मार्गंप्रदर्शय। एवंसम्प्रार्थ्यभोविप्रास्तीर्थराजजलान्तिके।।८७।।
जानुभ्यामवनिं गत्वा प्रणमेद्भक्तिभावितः। तीर्थराज! नमस्तुभ्यं जलरूपाय विष्णवे।।८८।।
जीवनाय च जन्तूनां परं निर्वाणहेतवे।।८९।।
अग्निश्च ते योनिरिला च देहो रेतोधा विष्णोरमृतस्य नाभिः।
उपैमि ते रूपमनन्यहेतुमानन्दसम्पन्नमप्रनुप्रविश्य।।९०।।

इस प्रकार से कवच द्वारा देहबन्धन करके इसे पाठ करने वाला व्यक्ति निष्पाप हो जाता है। हे द्विजों!

इसके पश्चात् मनुष्य मनःकल्पित षोडशोपचार से भगवान् पुरुषोत्तम की यथाविधि पूजा करके उस मण्डल में मनोमय देवदेव का आवाहन करने के अनन्तर उनकी यथाशक्ति उपचारों से अर्चना सम्पन्न करें। तब तीर्थ राज तथा देवदेव की एकत्व भावना करने के अनन्तर अंजलिबद्ध होकर यह मन्त्र पढ़ना होगा। यथा—"हे सुदर्शन! कोटिसूर्यवत् प्रकाशयुक्त! आपको प्रणाम! आप कृपापूर्वक इस अज्ञानतिभिरान्ध व्यक्ति को विष्णु दर्शनपथ प्रदर्शित करें।" हे विप्रगण! इस प्रकार की प्रार्थना करके तीर्थराज समुद्र के समीप घुटने के बल बैठे। उनको भक्ति के साथ प्रणाम करना चाहिये तथा भक्तिभाव से स्तुति करनी चाहिये। यथा—हे तीर्थराज! आप जलरूपी साक्षात् विष्णु तथा समस्त प्राणीगण के जीवन रूप हैं। आप ही निर्वाण-मोक्षकारण भी हैं। आपको प्रणाम करता हूं। अग्नि आपका उत्पत्तिस्थल है। जल आपका शरीर है। आप अमृत के नाभिस्थल तथा विष्णु के तेजपूर्ण अधःस्थल हैं। आप प्राणियों की निर्मलता के कारण हैं। अतएव मैं आपके शरीर में (जल में) प्रवेश करके पवित्र आनन्द प्राप्त करूंगा।।८३-९०।।

इति मन्त्रं पठन्विप्राः प्रविशेज्जलमध्यतः। आवाहयेत्तीर्थराजं भावयञ्जगतां पतिम्।।९१।।
जलाधीशं कृतस्नानफलदानेऽग्रतः स्थितम्। अघमर्षणसूक्तेन नारायणयुतेन च।।९२।।
त्रिरावृत्तेन कुर्वीत पञ्चवारुणकेन च। सकृदावाहनादीनि षडङ्गान्यभिषेचने।।९३।।
आवाहनं पुरः प्रोक्तंसन्निधानमथोच्यते। स्नातुरिष्टफलप्राप्तौ सान्निध्यपरिकल्पनम्।।९४।।

अन्तःशुद्ध्यर्थमाचामेत्पीत्वातदभिमन्त्रितम्।
बाह्यावयवशुद्ध्यर्थंमार्जयेत्कुशवारिणा।।९५।।
अन्तः बहिर्विशुद्ध्यर्थं मन्त्रपूतेन वारिणा।
त्रीनञ्जलीन्मूर्ध्नि सिञ्चेन्तिसधौ नाऽन्तर्जले जपः।।९६।।
त्रिः स्नायात्स्वकृताघानि कोटिजन्मकृतानि च।
प्लावितानि जले तस्मिन्भावयन्नघनाशनम्।।९७।।

हे विप्रगण! यह मन्त्र पाठ करने के पश्चात् जल में उतरकर स्नान करने वाले व्यक्ति को फल देने वाले समुद्रवर्त्ती जलेश्वर तीर्थराज का नारायण मन्त्र संयुक्त अघमर्षण सूक्त अथवा पञ्चावृत किंवा त्रिरावृत वारुण मन्त्र से आवाहन करना चाहिये। स्नानकाल में 'इहागच्छ' से आवहनादि षडङ्ग मात्र एक बार करें। विद्वानों ने पहले आवाहन तदनन्तर सन्निधान का क्रम कहा है। स्नान के लिये उद्यत व्यक्ति अभीष्ट फल पा सके, इसी कारण से सान्निध्य का विधान है। इसको करने के पश्चात् अन्तःशुद्धि के लिये मन्त्रपूत जलपान, आचमन करें। बाह्यशुद्धि हेतु कुश जल से बाह्य अंगमार्जन तथा अन्दर-बाहर दोनों शुद्धि हेतु मस्तक का मन्त्रपूत जलाञ्जलि से सेचन करें। सिन्धु-स्नान करते समय जल में जप करना मना है। तत्पश्चात् यह भावना करते हुये तीन बार स्नान करे कि अनन्त कोटि-कोटि जन्मार्जित पापराशि इस जल द्वारा धो दी गयी। इस भावना द्वारा सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।।९१-९७।।

उत्थायाऽऽचम्यविधिवत्प्रार्थयेन्मन्त्रमुच्चरन्। त्वमग्निर्जगतांनाथरेतोधाःकामदीपनः।।९८।।
प्रधानं सर्वभूतानां जीवानां प्रभुरव्यय!। अमृतस्याऽरणिस्त्वंहि देवयोनिरपाम्पते।।९९।।

वृजिनं हर मे सर्वं तीर्थराजनमोऽस्तु ते। जन्मकोटिसहस्त्रेषु यत्पापं पूर्वमर्जितम्॥१००॥
तदशेषं लयंयातुदेहिमेब्रह्मशाश्वतम्। स्नात्वाऽपिचततस्तीरमुत्तीर्याऽऽचम्य वाग्यतः॥१०१॥

इसके पश्चात् जल में उठ कर यथाविधि आचमनोपरान्त यह मन्त्र कहें। यथा—"हे नाथ! आप निखिल ब्रह्माण्ड के पाचक अग्नि तथा कामदीपक शुक्राधार रूपी अधःस्थल हैं। आप अव्यय, सर्वप्राणीगण में प्रधान तथा प्राणियों के कारण हैं। हे अपाम्पति! आप अमृत की अरणि, देवयोनि हैं। हे तीर्थराज! आपको प्रणाम! आप मेरे पापों का हरण करें। मैंने हजारों करोड़ जन्मों में जिस पाप को अर्जित किया है, आपकी कृपा से वह सब विलीन हो जाये। आप मुझे सनातन ब्रह्म प्रदान करिये।" पुनः स्नान करके जल से बाहर आकर आचमन करके मौन हो जाये।।९८-१०१।।

धारयेद्वाससी शुक्लेपुण्ड्रकानुज्ज्वलाकृतीन्। शङ्खचक्रगदापद्मतिलकानिचभक्तितः॥१०२॥
देवान्पितॄन्यथान्यायं चिन्तयन्भगवद्धिया। तर्प्पयेद्विधिवद्विप्राः सम्यगव्यग्रमानसः॥१०३॥

बाहर सूखा वस्त्र तथा उत्तम श्वेत उत्तरीय धारण करके भक्ति के साथ मस्तक पर ऊर्ध्व त्रिपुण्ड्र तथा हाथों पर (बाहु पर) शंख-चक्र-गदा-पद्माकृति तिलक लगाये। हे विप्रगण! तदनन्तर क्रमशः देवता एवं पितरों का देव बुद्धि से चिन्तन करें तथा व्यग्रता रहित होकर सम्यक्रूपेण यथाविधान तर्पण करें।।१०२-१०३।।

ततः पूर्ववदालिख्य मण्डलं चोत्तरामुखः। पूजयेन्मूलमन्त्रेण मन्त्रैरेभिश्च भक्तितः॥१०४॥
नारायणं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम्। धरारमाभ्यां सहितं केवलं वा द्विजोत्तमाः।
ध्यात्वाऽन्तर्यागसंतुष्टं बहिरावाहयेत्ततः॥१०५॥

अब उत्तराभिमुख होकर पूर्ववत् मण्डल बनाकर भक्तिभाव के साथ मूलमन्त्र एवं यहां कहे गये मन्त्रों द्वारा भगवत् पूजन करना चाहिये। तब यह ध्यान करना चाहिये कि नारायण चतुर्भुज, शंख-चक्र-गदाधारी हैं। वे पृथिवी तथा लक्ष्मी के साथ विराजित हैं। अथवा यह भी ध्यान कर सकते हैं कि वे अकेले विराजित हैं। इस प्रकार ध्यानन्त में उनकी मानसपूजा करके उनका इस मन्त्र से बाहर आवाहन करें।।१०४-१०५।।

आगच्छ परमानन्द जगद्व्यापिञ्जगन्मय!। अनुग्रहाय देवेश मण्डले सन्निधिं कुरु॥१०६॥
चराचरमिदं सर्वं जगदत्र प्रतिष्ठितम्। तदन्तस्थस्त्वमेवेश! आसनं कल्पयामि ते॥१०७॥
यस्य पादाम्बुजे धौते धर्मेण ब्रह्मरूपिणा। पुनाति तद्भवागङ्गाजगत्पाद्यं ददाम्यहम्॥१०८॥
अनर्घ्यरत्नघटितचूडामणिकरोत्करैः। ब्रह्मादयः पादपद्मं चिन्तयन्ति दिने दिने॥१०९॥
अनर्घ्याय जगद्धाम्ने अर्घ्यमेतद्ददाम्यहम्। आचान्तस्तीर्थराजो वै येनाऽगस्त्यस्वरूपिणा।
तस्मै सुवासितं वारि ददाम्याचमनीयकम्॥११०॥
यः प्राप्य मधुसम्पर्कं चकर्ष! जलरूपिणम्। अशेषाघविकर्षाय मधुपर्कं ददाम्यहम्॥१११॥
यः क्रोडरूपमास्थाय प्रलयार्णवविप्लुताम्।
उज्जहार धरामेतां स्नापयामि तमम्भसा॥११२॥
ब्रह्माण्डकोटयोयस्यविश्वरूपस्यसम्वृतिः। आच्छादनाय सर्वेषां प्रददेवाससीशुभे॥११३॥

विना येनाऽनुष्ठितोऽपि यज्ञः स्नादकृतोध्रुवः। तस्मैयज्ञेश्वरायेदमुपवीतं प्रकल्पये॥११४॥
यदङ्गसङ्गमासाद्य शोभन्ते भूषणानि वै। विश्वालङ्कृतये तस्मै भूषणानि प्रकल्पये॥११५॥
यदङ्गसंस्पर्शिमरुत्सङ्गान्मलयजा द्रुमाः। सुगन्धरससम्पन्नास्तस्मैगन्धाऽनुलेपनम्॥११६॥

यथा—हे जगत् में व्याप्त! जगन्मय आप परमानन्दरूप हैं। आप कृपया हृदय से बाहर आयें। हे देवेश! मेरे प्रति कृपा प्रकाशनार्थ इस मण्डल में आगमन करिये। हे ईश्वर! यह जो परिदृश्यमान चराचर जगत् जिनमें स्थित है, एकमात्र वही आप सबके अभ्यन्तर में विराजित रहते हैं। मैं अब आपके आसन की भावना करता हूं। ब्रह्मरूपी धर्म जिनके चरणों को धोते हैं, उन चरणों से जगत् में भगवती भागीरथी अवतीर्ण होकर समस्त जगत् को पावन करती हैं। मैं ऐसे आपके चरणों में अर्घ्य प्रदान करता हूं।

ब्रह्मादि देवता अपने अमूल्य रत्नजटित चूड़ामणि की समुज्वल किरणमाला से जिनके पादपद्म को नित्य प्रति उद्भासित करते हैं तथा वे सदैव जिनके चरणों के ध्यान में तत्पर रहते हैं, मैं उन अखिल जगदाधार अमूल्य निधि भगवान् को अर्घ्य प्रदान करता हूं। जिन्होंने अगस्त्यरूप से तीर्थराज (सागर) के समस्त जल का पान कर लिया था, मैं उन अनन्तशक्ति प्रभु को सुवासित आचमनीय जल प्रदान करता हूं। जिन्होंने मधुपर्क पान करके जलरूपी अपने शरीर का आकर्षण किया था, जो इसी प्रकार समस्त पापराशि का आकर्षण कर लेते हैं, मैं उन भगवान् को मधुपर्क देता हूं। जो वराहमूर्त्तिधारी होकर प्रलयजल में डूबी वसुन्धरा का उद्धार करते हैं, मैं उन भगवान् को जल द्वारा स्नान कराता हूं। जिन विश्वरूपी भगवान् के कोटि आवरण, परिधेय स्वरूप करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं, तथापि जो प्रभु सबका आच्छादन कर देते हैं, मैं उन भगवान् को यह शुभ वस्त्रद्वय प्रदान करता हूं। जिनकी अर्चना के बिना अनुष्ठित किया यज्ञ निष्फल हो जाता है, मैं उन यज्ञेश्वर को यज्ञोपवीत प्रदान करता हूं। समस्त भुवन जिनके अंगस्पर्श मात्र से शोभित हो जाते हैं, जो भगवान् विश्व ब्रह्माण्ड के अलंकार हैं, मैं उन भगवान् को भूषण अर्पित करता हूं। चन्दन वृक्ष जिनके अंग से स्पर्शित वायु के संसर्ग से ही सुगन्ध रसमय होते हैं, मैं उन भगवान् को गन्धानुलेप दान करता हूं।।१०६-११६।।

यस्यसञ्चिन्तनादेवसौमनस्यंहतांहसाम्। तस्मैसुमनसां मालां सुगन्धांपरिकल्पये॥११७॥
यं चित्ते स्थिरमादाय भवाग्निपरिधूपनम्। जहाति तस्मै प्रददे सुगन्धं धूपमुत्तमम्॥११८॥
स्वतेजसाऽखिलमिदंदीपितं यस्य भाषतः। तस्मै दीपप्रदीप्ताय दीपमेतं ददाम्यहम्॥११९॥
चराचरं जगत्सर्वमत्ति यो यश्च भावयेत्। अनेन च पुनः पुष्टौ तस्मादन्नं निवेदये॥१२०॥
यदीयमुखरागेण सहजावासितेन च। मोहिताः सुरसुन्दर्यस्तस्मै ताम्बूलमुत्तमम्॥१२१॥
प्रदक्षिणप्रक्रमणाद्भवाङ्गणविवर्त्तनम्। हन्ति यः करुणाम्भोधिस्तंनमामि जगद्गुरुम्॥१२२॥

मन्त्रास्तु कथिता ह्येत उपचारैः पृथक्पृथक्।
आवाह्य चिन्तयेद्देवं बहिःसंस्थितमात्मनः॥१२३॥

"जिनके चिन्तन मात्र से पापात्माओं की पापराशि तिरोहित हो जाती है तथा चित्त में प्रसन्नता होती है, मैं उन भगवान् को पुष्पमाला प्रदान करता हूं। जिनका अन्तर्मन में चिंतन करने मात्र से भवाग्नि के विषम ताप से छुटकारा लोग पाते हैं तथा चित्त में प्रसन्नता प्राप्त करते हैं, मैं उन प्रभु को श्रेष्ठ धूप प्रदान करता हूं। जो

स्वयं तेजोमय हैं तथा जिनके तेज से समस्त जगत् उद्दीपित होता है, मैं उन प्रदीप्त भगवान् को दीपदान करता हूं। जो प्रलयकाल में अखिल चराचर का ग्रास करते हैं तथा अन्न द्वारा पुनः जगत् का पुष्टि विधान करते हैं, मैं उन भगवान् को अन्न निवेदित करता हूं। जिनके सहज सुगन्धित मुखराग से सुर ललनायें मोहित रहती हैं, मैं उन प्रभु को ताम्बूल अर्पित करता हूं। जिन करुणासागर भगवान् की प्रदक्षिणा करने से भक्तों को पुनः-पुनः संसार रूपी प्रांगण में (जन्म लेकर) भटकना नहीं पड़ता, मैं उन जगद्गुरु को प्रणाम करता हूं।'' प्रत्येक उपचरार्पण हेतु ये पृथक्-पृथक् मन्त्र कहे गये हैं। अब भगवान् को हृदय से बाहर लाने हेतु आवाहन करके यह चिन्तन करे कि वे हृदय के बाहर स्थित हैं।।११७-१२३।।

रत्नसिंहासनं दत्त्वा तत्राऽऽसीनं विचिन्तयेत्।
पादपद्मद्वयेदद्यात्पाद्यंश्यामाकपङ्कजैः ॥१२४॥
दूर्वापराजिताभ्यां च संस्कृतं मूलमन्त्रणात्। सौवर्णेराजतेवाऽपि ताम्रेवाशङ्खएववा॥१२५॥
अर्घ्यं संस्कृत्यविधिवद्वारिचन्दनपुष्पकैः। यवदूर्वाकुशाग्रैश्च फलसिद्धार्थकैस्तिलैः॥१२६॥
दूर्वाकुशाग्रैर्देवस्य मूर्ध्नि सिञ्चेत्तदग्रतः। सावशेषं क्षिपेद्भूमावेषोऽर्घविधिरीरितः॥१२७॥
जातीफलैर्वा कङ्कोलैर्लवङ्गैः संस्कृतं जलम्। दद्यादाचमनार्थन्तु मधुपर्कं ततो ददेत्॥१२८॥
मधुसर्पियुतंगव्यंदधिकांस्येहिनिर्मले। पात्रे स्थितं च पिहितं पात्रेणाऽन्येनतादृशा॥१२९॥
सुसंस्कृतं फलयुतं स्नपने जलमुच्यते। पट्टकौशेयकापासनिर्मिते वाससी शुभे।
यथाशक्ति प्रदेये च वित्तशाठ्यं न कारयेत्॥१३०॥

अब उनको मानसिक चिन्तना से ही रत्नसिंहासन पर बैठाये। तदनन्तर-मानस चिन्तन से ही उनके पादपद्म पर श्यामाक, पद्म, दूर्वा, अपराजिता मिश्रित तथा मूलमन्त्र से संस्कृत पाद्यदान करना चाहिये। तदनन्तर स्वर्ण, चांदी अथवा ताम्रपात्र में, किंवा शंख में ही दूर्वा-कुशाग्र-फल-श्वेत सरसों-पवित्र जल-चन्दन-पुष्पमय अर्घ्य यथाविधि संस्कृत करके भगवान् के सामने लाये तथा भगवान् के मस्तक का सिंचन दूर्वा अथवा कुशाग्र से करें। शेष जल भूमि पर छोड़ें। इस अर्घ्यदान के उपरान्त जातीफल, इलायची, कंकोल तथा लौंग से सुवासित जल को आचमन हेतु देना चाहिये। इसके पश्चात् निर्मल कांस्यपात्र में गव्य घृत-दुग्ध-दधि-मधु मिलाकर अन्य ऐसे ही पात्र से आवरण के साथ यह मधुपर्क प्रदान करें। तत्पश्चात् फलयुक्त एवं संस्कृत स्नान जल अर्पित करना चाहिये। इसके अनन्तर अपनी वित्तशक्ति के अनुरूप पट्टसूत्र, कौषेयसूत्र, अथवा कपास के सूत्र से निर्मित उत्तम वस्त्रद्वय प्रदान करें। इसमें कंजूसी नहीं करनी चाहिये।।१२४-३०।।

हारकेयूरमुकुटग्रैवेयादिकभूषणम्। यथाशक्ति यथास्थानं देवस्याऽङ्गे निवेशयेत्॥१३१॥
उपवीतं हरेर्दद्यात्पट्टसूत्रविनिर्मितम्। कार्पासमथवा विप्रा गन्धचन्दनसंस्कृतम्॥१३२॥
चन्द्रचन्दनकस्तूरीकुङ्कुमैरनुलेपनम् ॥१३३॥
तुलसीदलमालाञ्च जातीपङ्कजचम्पकैः। अशोकच्छुरपुन्नागनागकेसरकेसरैः॥१३४॥
अन्यैःसुगन्धैः कुसुमैर्मालांमाल्यमथापि वा।
मुक्तकानिच पुष्पाणिदद्याद्देवस्यमूर्द्धनि॥१३५॥

इसके पश्चात् भगवान् के अंगों पर यथाशक्ति हार, केयूर, मुकुट, ग्रैवेयक आदि आभूषण अपनी वित्तशक्ति के अनुरूप धारण कराये। हे विप्रगण! तदनन्तर भगवान् हरि को पट्टसूत्र अथवा कार्पाससूत्र से बना गन्ध चन्दन चर्चित यज्ञोपवीत प्रदान करके प्रभु के अंगों पर कर्पूर-चन्दन-कस्तूरी-कुंकुम का अनुलेप प्रदान करें। तत्पश्चात् उनके गले में तुलसीमाला तथा जातीपुष्प, पद्म, चम्पा, अशोक, सुर पुन्नाग, नागकेशर, केशर तथा अन्य पुष्पों की माला तथा माल्य प्रदान करनी चाहिये। भगवान् के मस्तक पर मुक्तक आदि पुष्प प्रदान करना विहित है।।१३१-१३५।।

माला सा प्रपदीना तु माल्यं कण्ठोरुसम्मितम्।
गर्भकं केशमध्ये तु मूर्ध्नि पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।
सगुग्गुल्वगुरूशीरसिताज्यमधुचन्दनैः। धूपं दद्यात्सुगन्धाढ्यं दीपंगोसर्पिषा शुभम्॥१३६॥
कर्पूरगर्भयावर्त्या तिलतैलेन वा ददेत्॥१३७॥
अखण्डितसमुद्धौतंशालितण्डुलनिर्मितम्। सुपक्वमन्नं सुरभि सर्पिषाच सुवासितम्॥१३८॥
सौरभेयदधिक्षीरपक्वरम्भासितायुतम्। नानाव्यञ्जनसङ्कीर्णं सोपदंशं सपूपकम्॥१३९॥
नानाफलयुतं हृद्यं सुगन्धं सुरसं नवम्। नैवेद्यं देवदेवस्य प्रस्थादूनं न शस्यते॥१४०॥

मुनिगण का मत है कि पैर तक लम्बी माला को माला कहते हैं। कण्ठ देश से उरु पर्यन्त के माप की माला को माल्य कहते हैं। जिसे मस्तक पर लपेटा जाये उसे गर्भक कहते हैं। पुष्पांजलि भगवान् के मस्तक पर देनी चाहिये। भगवान् की प्रसन्नता हेतु अगुरु, उशीर, शर्करा, घृत, मधु, चन्दनादि से बनी सद्गन्धयुक्त धूप दे तथा बत्ती में कर्पूर चूर्ण मिलाकर गौ घृत और तिल तैल का दीप प्रदान करें। समस्त उपचार प्रदान करके सुन्दर रूपेण धुला अखण्डित शालितण्डुल का सुगन्धित सुपक्व अन्न गौघृत से सुवासित करके गौ की दधि, क्षीर, पके केला, शर्करा, नाना व्यञ्जन, पिष्टक, चटनी, एवं नाना फल-मूलादि के साथ भगवान् को अर्पित करना चाहिये। यह अन्न प्रीतिकारी, सुरसयुक्त, नवतण्डुल से बना तथा सद्गन्धात्मक हो। भगवान् का नैवेद्य एक प्रस्थ से कम नहीं होना चाहिये।।१३६-१४०।।

धूपे दीपे च नैवेद्ये स्नानेऽर्घे मधुपर्कके। वस्त्रे यज्ञोपवीते च दद्यादाचमनीयकम्॥१४१॥
अन्यत्र केवलं वारिसंस्कृतं त्वौपचारिकम्। नैवेद्यान्ते त्वाचमनंदद्याच्चकरघृष्टिकम्॥१४२॥
सगन्धचन्दनं विप्रास्ताम्बूलं च ददेत्ततः। सकर्पूरलवङ्गैलाजातीक्रमुकसंयुतम्॥१४३॥
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा मूलमन्त्रमनन्यधीः। स्तुत्वा प्रदक्षिणं कृत्वाप्रार्थयेत्पुरुषोत्तमम्॥१४४॥

धूप, दीप, नैवेद्य, स्नानीय, मधुपर्क, वस्त्र तथा यज्ञोपवीत के पश्चात् आचमनीय प्रदान करे। इसके अतिरिक्त अन्य उपचारदान में केवल उपचार प्रदान करे। (आचमनीय नहीं देना है) तथापि प्रत्येक वस्तु जल से संस्कृत हो। हे विप्रगण! नैवेद्य प्रदान करके आचमनीय देकर स्त्री द्वारा घिसा सुगन्धित चन्दन तथा कर्पूर, लवंग, इलायची, जातीफल तथा गुवाकयुक्त (सुपारीयुक्त) ताम्बूल अर्पित करे। पूजा समापन के समय एकाग्र-मन से १०८ मूलमन्त्र जप, स्तवपाठ तथा प्रदक्षिणा करके इन पुरुषोत्तम भगवान् से यह प्रार्थना करनी चाहिये।।१४१-१४४।।

देवदेव! जगन्नाथ! सर्वतीर्थप्रवर्त्तक। सर्वतीर्थमयश्चाऽसि सर्वदेवमय! प्रभो!।।१४५।।
त्वत्प्रसादान्मया तीर्थराजेस्नानं हि यत्कृतम्। तदस्तु सफलं देव! यथोक्तफलदोभव।।१४६।।

सिन्धुराजस्त्वं च विभो! द्रवरूपोऽस्यसंशयम्।
पापालये निमग्नं मां परित्राहि नमोऽस्तु ते।।१४७।।

"हे देवदेव! प्रभो, जगन्नाथ! आप ही सभी तीर्थों की सृष्टि करने वाले तथा आप ही सर्वतीर्थमय एवं सर्वदेवमय हैं। हे देव! मैं जो तीर्थराज जल में स्नान कर रहा हूं, यह आपकी कृपा से सफल हो जाये। आप कृपापूर्वक मुझे यथोक्त फल प्रदान करिये। हे विभु! आप ही द्रवरूपी तीर्थराज हैं। इसमें सन्देह नहीं है। हे नाथ! आपको प्रणाम! मैं इस घोर संसाररूपी पापालय में डूब रहा हूं। मेरी रक्षा करिये।"।।१४५-१४७।।

इत्थं प्रपूज्य देवेशं नारायणमनामयम्। तीर्थराजकृतस्नानः सर्वतीर्थफलं लभेत्।।१४८।।
गवां कोटिप्रदानेन क्रतुकोटिकृतेन च। कोटिब्राह्मणभोज्येन महादानैश्च कोटिशः।
यत्पुण्यं कर्मिणां प्रोक्तं तदनेन हि लभ्यते।।१४९।।
ध्यानं दानंतपोजाप्यंश्राद्धंचसुरपूजनम्। सिन्धुराजे कृतं सर्वं कोटिकोटिगुणम्भवेत्।।१५०।।

अपि नः स कुले कश्चित्सिन्धुस्नायी भविष्यति।
देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च दास्यते च तिलोदकम्।।१५१।।

तीर्थराज जल में स्नानोपरान्त (अनामय देवदेव नारायण की सम्यक् पूजा द्वारा मनुष्य को सर्वतीर्थ फल की प्राप्ति होती है। करोड़ों गोदान, करोड़ों अश्वमेध यज्ञ, करोड़ों ब्राह्मण भोजन तथा करोड़ों महादान का जो पुण्य कहा गया है, वह मात्र एक इस कर्मानुष्ठान से मिल जाता है। ध्यान-दान-तप-जप श्राद्ध-देव पूजनादि जो भी कार्य समुद्र तट पर किया जाता है, वह करोड़ों गुना अधिक फल प्रदाता हो जाता है। समस्त धर्मात्मा यह चाहते हैं कि हमारे वंश में ऐसा धार्मिक उत्पन्न हो, जो सिन्धु स्नान करके देवता तथा पितरों हेतु तिल जल प्रदान करे।।१४८-१५१।।

क्रन्दन्तिसर्वपापानिसम्भ्रान्ताःसर्वपातकाः। अनिष्टानिपलायन्तेसिन्धुस्नानोद्यतस्यवै।।१५२।।
अन्यतीर्थे कृतं पापंसिधुतीरे विनश्यति। सिन्धुतीरेकृतं पापं सिन्धुस्नानेविनश्यति।।१५३।।

सिन्धुस्नानरतंनित्यंदृष्ट्वैव यमकिङ्कराः।
दिशोदश पलायन्ते सिंहं दृष्ट्वा यथा मृगाः।।१५४।।
यमोऽपिभीतस्तंदृष्ट्वाप्रणिपत्यप्रपूज्य च।
न शक्नोतितदास्थातुं तस्याग्रेपुण्यकर्मिणः।।१५५।।
वाञ्छन्ति देवता नित्यं मानुष्यं प्राप्नुयामहे।
भूत्वा सम्यक्छुद्धतन्वो सिन्धुस्नानं लभेमहि।।१५६।।

मेरुमन्दरमात्रोऽपिराशिःपापस्यकर्मणः। सिन्धुस्नानेनदग्धःस्यात्तूलराशिरिवानलात्।।१५७।।
अप्सु नारायणंदेवं स्नानकालेस्मरेत्सदा। साक्षाद्विष्णुस्वरूपेऽत्रसिन्धौचैवविशेषतः।।१५८।।

ब्रह्मघ्नो वा सुरापोवागोघ्नोवापञ्चपातकी। सर्वेतेनिष्कृतिंयान्तिसिन्धुस्नानान्नसंशयः॥१५९॥
कपिलाकोटिदानाच्च सिन्धुस्नानं विशिष्यते।
सकृत्सिन्ध्ववगाहेन कुलकोटिं समुद्धरेत्॥१६०॥

हे मुनिगण! अधिक क्या कहूं। सिन्धु (सागर) में स्नान हेतु उद्यत होते ही उसकी पापराशि नष्ट होने के भय से रुदन करने लगती है। अखिल अमंगल भाग जाता है। अन्य तीर्थों में संचित किये पातक सिन्धुतट आते ही नष्ट हो जाते हैं। सिन्धु तीर पर जो पातक किया जाता है, वह सिन्धु स्नान मात्र से नष्ट हो जाता है। जो नित्य सिन्धु स्नान करता है, यमदूत उसे देखते ही उस तरह से दशो दिशाओं में भाग जाते हैं, जैसे सिंह को देखते ही मृगसमूह पलायित हो जाता है। अधिक क्या कहें, उसे देखकर तो धर्मराज यम भी डर जाते हैं। वे उस पुण्यात्मा के सामने खड़े होने में असमर्थ होकर उसे मन ही मन प्रणाम करते हैं तथा उसकी पूजा करके वहां से चले जाते हैं। सम्यक् श्रद्धापूर्वक सागर में स्नान करने की इच्छा से देवता भी प्रतिदिन मानव देह प्राप्ति की कामना करते हैं। मेरु तथा मन्दराचल इतनी विशाल पापराशि भी सिन्धु स्नान से उस प्रकार जल जाती है, जैसे अग्नि तृण के ढेर को जला देता है। हे महर्षिगण! स्नान काल में समस्त जल में देवदेव नारायण का स्मरण करना चाहिये। विशेषतः समुद्र जल में यह स्मरण आवश्यक सा है। क्योंकि वह विष्णु रूप है। ब्रह्म हत्यारे, गो हत्यारे, शराबी प्रभृति पंच महापातकी भी सिन्धु स्नान द्वारा पापमुक्त होते हैं। करोड़ों कपिलागोदान की तुलना में सिन्धु स्नान का गौरव अधिक है। मात्र एक बार सिन्धु में स्नान करने से कोटि-कोटि पीढ़ी का उद्धार हो जाता है।।१५२-१६०।।

सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वेष्वायतनेषु च। तत्फलं लभते सर्वं सिन्धुस्नानान्न संशयः॥१६१॥
य इच्छेत्सफलं जन्म जीवितंश्रुतमेववा। सपितृंस्तर्पयेत्सिन्धुमभिगम्यसुरांस्तथा॥१६२॥
चत्वारः सुलभाः वेदाः सषडङ्गपदक्रमाः। सुलभानि कुरुक्षेत्रे दानानि विविधानिच॥१६३॥
चान्द्रायणानिकृच्छ्राणितपांसिसुलभान्यपि। अग्निष्टोमादयोयज्ञाःसुलभाबहुदक्षिणाः॥१६४॥
सिन्धुतोयैश्च सलिलैर्दुर्लभं पितृतर्पणम्। मासं तर्पणमात्रेण पिण्डानां पातनेन च॥१६५॥
सिन्धौ वै पितरंसर्वेविमानान्सूर्यवर्चसः। सिन्धुतर्पणसन्तुष्टाःश्राद्धपिण्डसुतर्पिताः।
आरुह्य सहसा यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम्॥१६६॥
आद्यन्तयोर्जगन्नाथं पूजयित्वा यथाविधि।
तीर्थराजेऽभिषिच्य स्वं नरः स्यान्मुक्तिभाजनम्॥१६७॥
ततस्तीर्थविसर्गं च कृत्वा शुद्धमनाःपुमान्। रामंकृष्णंसुभद्रांचनत्वारूपंविचिन्तयेत्॥१६८॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तम-क्षेत्रमाहात्म्येजैमिनिऋषिसम्वादे पञ्चतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामत्रिंशोऽध्यायः।।३०।।

—※※※—
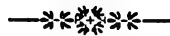
सभी तीर्थ में स्नान तथा सर्वपीठ दर्शन तथा वहां जाने से जो फल मिलता है, वह एक मात्र सिन्धु

स्नान से ही मिल जाता है। जो व्यक्ति अपने जन्म-जीवन-शास्त्राध्ययन को सफल करना चाहे, वह सिन्धुस्नानोपरान्त देवता तथा पितरों का तर्पण अवश्य करे। षड़ङ्ग के साथ चतुर्वेद अध्ययन, कुरुक्षेत्र में नाना दान, चान्द्रायण आदि व्रताचार, तप तथा अनेक दक्षिणायुक्त अग्निष्टोमादि यज्ञ तो सुलभ है, तथापि सिन्धुजल से पितरों का तर्पण तथा उस जल से पितरों हेतु पिण्डार्पण एक मास तक जो करता है, उसके पितर तृप्त होकर सूर्यवत् तेजोमय देहधारी हो जाते हैं। वे सहसा विमान पर बैठकर ब्रह्मलोक गमन करते हैं। आद्यन्त रूप से जगन्नाथदेव का यथाविधान पूजन तथा सागरजल में स्नान करके मानव निःसंदेह मुक्त हो जाता है। इन सब कार्य को सम्पन्न करके तीर्थसेवी व्यक्ति पवित्र हृदय से तीर्थ विसर्जन करे तथा जगन्नाथ देव, बलराम एवं सुभद्रा को प्रणाम करके मन ही मन उनका चिन्तन करे।।१६१-१६८।।

।।त्रिंश अध्याय समाप्त।।

एकत्रिंशोऽध्यायः

दारुब्रह्म की स्नान तथा यात्रा विधि विष्णु स्नान माहात्म्य

जैमिनिरुवाच

कृतकृत्यं तदाऽऽत्मानं मन्यमानस्ततो व्रजेत्। अश्वमेधाङ्गसम्भूतमिन्द्रद्युम्नसरः प्रति।।१।।
यस्य तीरे निवसति नरसिंहाकृतिर्हरिः। नरसिंहमनुप्राथ्र्य तत्र स्नायाद्यथाविधि।।२।।
नरसिंह! नमस्तुभ्यं यस्य ते क्षेत्र उत्तमे। सहस्रं वाजिमेधस्य क्रतोश्चक्रे नृपोत्तमः।।३।।
इन्द्रद्युम्नः प्रसादात्ते तस्य क्रत्वङ्गसम्भवे। सरसि स्नातुमायातो मामनुज्ञापय प्रभो!।।४।।
ततस्तीर्थतटं गत्वा कृतशौचाचमक्रियः। प्रार्थयेदञ्जलिं कृत्वा इमं मन्त्रमुदीरयेत्।।५।।
अश्वमेधाङ्गगोकोटिखुरक्षुण्णमहीतलः। तन्मूत्रफेनादानाम्भः पूरिताखिलपावनः।।६।।
स्नातुं तवाऽऽगतः पुण्ये सर्वतीर्थमये जले। पूर्वजन्मसहस्रोत्थं पापं स्नानाद्विमोचय।।७।।
अन्तःप्रविश्यचततोवारुणैःपञ्चभिर्द्विजाः। स्नायादन्तर्जलेजप्यात्त्रिरावृत्त्याऽघमर्षणम्।।८।।
अश्वमेधाङ्गसम्भूत तीर्थ! सर्वाघनाशन!। जन्मकोटिभवं पापं त्वयि स्नानाद्विनश्यतु।।९।।

जैमिनि कहते हैं—तत्पश्चात् स्वयं को कृतकृत्य मानकर उस सरोवर की ओर जाना चाहिये। उसके तीर पर नृसिंहाकृति भगवान् विराजित हैं। वह सरोवर इन्द्रद्युम्न के अश्वमेध से उद्भूत है। वहां जाकर नृसिंहदेव से आज्ञा लेकर प्रयत्नपूर्वक यथाविधि स्नान करना चाहिये। उन नृसिंहदेव से इस प्रकार से आज्ञा लेनी चाहिये—"हे नरसिंह! आपको प्रमाण! आप उत्तम पवित्र क्षेत्र में नृपवर इन्द्रद्युम्न ने १००० अश्वमेध सम्पन्न किया था। उनकी कृपा से यज्ञाङ्ग से सम्भूत इस सरोवर में स्नानार्थ मैं आया हूं। हे प्रभो! मुझे स्नानार्थ अनुमति दीजिये।"

तत्पश्चात् सरोवर तट पर जाकर आचमनादि पवित्रीकरण करके अंजलिबद्ध होकर इस मन्त्र से प्रार्थना करें—"हे सरोवर! इन्द्रद्युम्न के यज्ञ में एक करोड़ गौंओं के खुर के आघात से महीतल विदीर्ण होने के कारण आपकी उत्पत्ति होने से आप सबको पवित्र करने वाले हैं। यहां मैं आपके सर्वतीर्थमय पवित्र जल में स्नानार्थ आया हूं। आप मुझे अपने जल में स्नान का अवसर देकर मेरे पूर्व के हजारों जन्मों से उत्पन्न पापों को दूर कर दीजिये।"।।१-९।।

इमं मन्त्रं त्रिरुच्चार्य त्रिः स्नायात्तज्जले द्विजाः।
संस्मरेद्विष्णुगायत्र्या नरसिंहाकृतिं हरिम्॥१०॥
आपो नारा इति प्रोक्ता यस्मात्ता नरसूनवः। अयनं प्रथमंचास्यतस्मादप्सुहरिंस्मरेत्॥११॥
देवानृषीन्पितृंश्चैव तर्पयेद्विधिवन्नरः। नरसिंहं ततो गच्छेत्पश्चिमाभिमुखं स्थितम्॥१२॥
सिद्धं शम्भुं कृत्रिमंवा पश्चिमाभिमुखं हरिम्। दृष्ट्वा विमुच्यतेपापैर्जन्मकोटिसमुद्भवैः॥१३॥

हे द्विजगण! तत्पश्चात् जल में प्रवेश करके पञ्चवारुण मन्त्रपाठ करके स्नान करें तथा जलमध्य में खड़े रहकर तीन बार अघमर्षण सूक्त पाठ करना होगा। हे द्विजगण! तदनन्तर "हे अश्वमेधाङ्गसम्भूत! हे सर्वपापनाशन! आपके जल में स्नान के द्वारा मेरे करोड़ों जन्मार्जित पापों का नाश हो जाता है।" तीन बार मन्त्र पाठ करने से उस सरोवर जल में तीन बार स्नान करें तथा विष्णुगायत्री जप करके नरसिंहाकृति भगवान् हरि का स्मरण करना चाहिये। जल तो नर नामक परमात्मा का पुत्रस्वरूप है। विद्वद्गण जल को नारायण कहते हैं। जल उनका प्रथम अयन होने के कारण प्रभु को नारायण कहा गया है। इस कारण जल में भगवत् स्मरण एकमात्र कर्तव्य है। मानव पूर्वोक्त प्रकार से इस सरोवर में स्नान करके देवता ऋषि तथा पितृगण हेतु तर्पण करे। तदनन्तर पश्चिमाभिमुख अवस्थित नृसिंहदेव के दर्शनार्थ उनके पास जाये। वहां स्वतःसिद्ध अथवा कृत्रिम शंभु तथा पश्चिमाभिमुखीन भगवान् हरि का दर्शन करने से मानव करोड़ों जन्मार्जित पापों से मुक्त हो जाता है।।१०-१३।।

तमाथर्वणमन्त्रेण यजेच्च नरकेसरिम्। नारदेन पुरा ह्येष मन्त्रराजः प्रतिष्ठितः॥१४॥
इन्द्रद्युम्नेन तेनैव चिरादेष उपासितः। नरसिंहाकृतौ नान्यो मन्त्रस्तत्सदृशो द्विजाः॥१५॥
यस्योच्चारणमात्रेण तुष्टो भवति केसरी। अनेनदारुवर्ष्माऽपि ब्रह्मणा सम्प्रतिष्ठितः॥१६॥
पूर्वोक्तैरुपचारैस्तु पूजयेन्नरकेसरिम्। जपाप्रसूनैररुणैरन्यैश्चैव सुगन्धिभिः॥१७॥
चन्दनागरुकर्पूरैर्लेपयेन्नरकेसरिम्। पायसं सितया युक्तं सौरभेयेण सर्पिषा॥१८॥
कर्पूरखण्डसंयुक्तान्मोदकान्वृतपाचितान्। संयावान्घृतपूपांश्च फलं नानाविधं तथा॥१९॥
शर्करादधिसंयुक्तं शाल्यन्नं विनिवेदयेत्।
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा नमस्कृत्वा सम्पूज्यनरकेसरीम्॥२०॥

तत्पश्चात् आथर्वण मन्त्र जप द्वारा नृसिंहदेव की अर्चना करना चाहिये। पूर्व में देवर्षि नारद ने इस मन्त्रराज को प्रकाशित किया था। हे द्विजगण! नृपवर इन्द्रद्युम्न ने दीर्घकाल तक इस मन्त्र से नृसिंहदेव की उपासना किया था। वास्तव में नृसिंहदेव की उपासना के लिये इस मन्त्रतुल्य अन्य कोई मन्त्र प्रशस्त नहीं है।

इसके उच्चारण मात्र से नृसिंहदेव प्रसन्न हो गये। भगवान् ब्रह्मा ने इस मन्त्र से जगन्नाथ देव की दारुमयी मूर्त्ति को प्रतिष्ठित किया था। पूर्वोक्त उपचारों से तथा अरुणवर्ण जवा तथा अन्य सुगन्धित पुष्पों द्वारा नृसिंहदेव की पूजा करें। कर्पूर चूर्ण मिश्रित पिसे चन्दन तथा अगुरु से नृसिंहदेव के सर्वाङ्ग पर विलेपन करके गोघृत तथा शर्करामिश्रित पायस, कर्पूरखण्डयुक्त घृतपक्व मोदक, संयाव, घृत-पिष्टक नानाविध फल एवं शर्करा तथा दधिसंयुक्त शालितण्डुल अन्न निवेदन करें। उनका दर्शन, स्पर्श तथा नमस्कार करके उन नरकेसरी की पूजा करें।।१४-२०।।

स्वान्स्वानभीष्टानाप्नोतिनरो वै नाऽत्रसंशयः। देवत्वममरेशत्वं गन्धर्वत्वंचभोद्विजाः।।२१।।
ईशित्वं च वशित्वं च सार्वभौमत्वमेव वा। यद्यत्कामयते चित्ते तत्तदाप्नोत्यसंशयम्।।२२।।
पञ्चतीर्थीविधानं च कथितं पृच्छतां द्विजाः। दिनानि पञ्च कृत्वैतां पञ्चभूतमयेपुनः।।२३।।
न देहे प्रविशेन्मर्त्यो व्रती विष्णुपरायणः। पौर्णमास्यां प्रत्युषसि तीर्थराजजलेपुनः।।२४।।
पूर्वोक्तविधिना स्नात्वा शुद्धाहारो जितेन्द्रियः। एवभक्तव्रतेनैव वर्त्तते प्रीतये नरः।
यावत्पञ्च दिनानि स्युस्तावत्कालं द्विजोत्तमाः!।।२५।।

इस प्रकार से मनुष्य अपना-अपना अभीष्ट लाभ करता है। इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं है। हे द्विजगण! अधिक क्या कहें! देवत्व, देवाधिपत्य, गन्धर्वत्व, ईशित्व, वशित्व, सार्वभौमत्व प्रभृति जो भी चित्त में इच्छित विषय है, वह सब प्राप्त होता है। हे द्विजगण! मैंने इससे पहले आपसे पंचतीर्थ का वर्णन किया था तथा उसका विधान भी कहा था। इन पंचतीर्थों का स्नानादि पांच दिन में सम्पन्न करें। विष्णुभक्त मानव जब यथाविधि नियमपालन करके इन पंचतीर्थ विधान सम्पन्न कर देता है, तब उसे भविष्य में पञ्चभूतमय देह में प्रवेश नहीं करना पड़ता है। हे द्विजोत्तमगण! पूर्णिमा के दिन अत्यन्त प्रातःकाल में तीर्थराज के जल में पूर्वोक्त विधान द्वारा स्नान करे। जब तक पांच दिवस पूर्ण न हो जाये, तब तक भगवान् श्रीहरि को प्रसन्न करने हेतु जितेन्द्रिय तथा शुद्ध आचार परायण होकर शुद्ध आहार मात्र एक समय करके रहे।।२१-२५।।

ततः प्रविश्य प्रासादं मञ्चस्थं पुरुषोत्तमम्। रामं सुभद्रां दृष्ट्वाच मुच्यतेपापकच्चुकैः।।२६।।
सर्वतीर्थमयात्कूपात् कृपादुद्धृतेन सुगन्धिना।
वारिणा स्नाप्यमानं तु यो ज्यैष्ठ्यां पश्यते हरिम्।।२७।।
न तस्य पापसम्बन्ध आत्मनिप्रभविष्यति। यात्राकर्तृविधिंवक्ष्येशृणुध्वंमुनयःपरम्।।२८।।
चतुर्दश्यां दृढं मञ्चं कारयित्वा सुशोभनम्। तृणकाष्ठमयं लिप्तं सुधया बहुलं शुभम्।।२९।।
अथवा दार्षदं कुर्याच्चिरस्थायि द्विजोत्तमाः। स्नानार्थंदेवदेवस्यवित्तशाठ्यंनकारयेत्।।३०।।

इसके अनन्तर जगन्नाथ देव के मंदिर में प्रवेश करना चाहिये। वहां मानव मञ्चस्थ पुरुषोत्तम, बलराम तथा देवी सुभद्रा का दर्शन पाकर पाप के कंचुक से छूट जाता है। जो ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा के दिन तीर्थमय कूप से निकाले सुगन्धित जलद्वारा भगवान् को स्नान कराकर उनका दर्शन करता है। उसकी देह से कोई पाप सम्बन्ध बाकी नहीं होता। हे मुनिवर! अब तीर्थयात्रा कर्मविधि तथा बलि विधान सुने। यह बहुल कार्यों में से उत्कृष्ट कहा गया है। हे द्विजोत्तमगण! देवदेव भगवान् के स्नानार्थ चतुर्दशी के दिन तृण काष्ठमय अथवा

दारुमय सुशोभन एक मंच बनाकर उस पर चूर्ण लेप करे। इस प्रकार वह दीर्घस्थायी हो जायेगा। इस कार्य में कदापि कंजूसी नहीं करनी चाहिये।।२६-३०।।

नानाद्रुमगणाकीर्णं दक्षिणानिलशीतलम्।
उल्लसत्सिन्धुकल्लोलशाड्वलोपरि संस्कृतम्।।३१।।
समुच्छ्रितमहामूल्यवितानवरशोभितम्। विरलाच्छादनं कुर्याद्देवानां दर्शनाय वै।।३२।।
आयान्ति ब्रह्मणासार्द्धंस्नपनायजगत्पतेः। स्वर्गङ्गाम्भः समादायपारिजातविभूषितम्।।३३।।
ब्रह्मर्षयश्च त्रिदशा ब्रह्मणा सहिता विभुम्। मञ्चस्थं स्नापयन्तीह वचनात्परमेष्ठिनः।।३४।।
जयशब्दैश्च स्तुतिभिर्वन्द्योऽयं त्रिदिवौकसाम्।
तस्मान्मञ्चस्तु कर्तव्यो मण्डितो माल्यचामरैः।।३५।।
नानामणिस्त्रजा हारिदुकूलकृततोरणम्। सुगन्धधूपसुरभिचन्दनाम्भः समुक्षितम्।।३६।।

तदनन्तर देवगण वहां अवस्थित होकर चंदोवा को शोभित विस्तृत महामूल्य आवरण वस्त्र से आच्छादित करके बनाये, जिससे वहां देवता स्थित होकर भगवान् की स्नानयात्रा का दर्शन कर सकें। इस आच्छादन को अत्यन्त उच्च स्थापित करना चाहिये। जहां सिन्धु की लहरें नृत्य करती हैं, उस नव-नव तृणराजि द्वारा हरित वर्ण से रंजित, दक्षिण वायु के स्पर्श से शीतल तथा विविध तरुराशि युक्त परिष्कृत स्थान पर ही स्नान पीठ की स्थापना करनी चाहिये। समस्त देवर्षि तथा देवता जगत्पति जगन्नाथ देव को स्नान कराने के लिये पारिजात से सुवासित पवित्र देवनदी का जल लेकर भगवान् ब्रह्मा के साथ आकर ब्रह्मा के आदेशानुसार मञ्चस्थ भगवान् के स्नान तथा जयशब्दयुक्त विविध स्तुतियों द्वारा वन्दना करनी चाहिये। इसलिये भगवान् का स्नानमञ्च नाना प्रकार की मणि-मुक्ता-माला-चामर-पताका तथा तोरण से मण्डित चन्दन मिश्रित सुगंधित तथा शीतल जल से संसिक्त सुगन्धित धूप द्वारा सुवासित करना चाहिये।।३१-३६।।

एवंमञ्चंप्रतिष्ठाप्यतस्यदक्षिणतोद्विजाः। कूपाद्वारिसमुद्धृत्यकलशान्स्वर्णनिर्मितान्।।३७।।
शालायां शास्त्रदृष्टेन विधिना त्वधिवासयेत्।।३८।।
सुवासितं जलं तेषु पावमान्या प्रपूरयेत्। चतुर्दशीनिशामध्ये कर्मैतत्समुदाहृतम्।।३९।।
शनैः शनैश्च नीयासुर्हरिं हलिपुरःसरम्। ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्याराज्ञासम्मानितादृताः।।४०।।
चामरैस्तालवृन्तैश्च वीज्यमानं निरन्तरम्। पुराकृतामलेपं तं विष्णोरङ्गान्न हापयेत्।।४१।।
यथा सुगन्धलेपेन सुपुष्टाङ्गो दिने दिने। तथा प्रयत्नतः कार्यः कृशाङ्गो नहिपुष्टिकृत्।।४२।।
नयेयुरप्रमाद्यन्तो भगवन्तमनिन्दिताः। प्रमादतो यदि भवेत्पतनं मुरवैरिणः।।४३।।
वलस्य वा सुभद्रायाराज्ञोराज्यस्यभीतिकृत्। अपिपातयतांहानिःसन्ततेर्बहुदुःखिता।।४४।।

तदनन्तर पवमान मन्त्र से स्वर्ण निर्मित कलसों को भरकर रखें तथा मंदिर के अन्दर शास्त्रोक्त विधान से भगवान् का अधिवास करें। उक्त कार्य चतुर्दशी के दिन रात्रि में करें। तत्पश्चात् भगवान् हरि को बलराम के साथ क्रमशः धीरे-धीरे भगवान् को स्नान मंच पर लाये। राजा से जिन्होंने सम्मान तथा आदर पाया है, ऐसे

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इस समय चामर तथा ताड़ का पंखा लेकर भगवान् को झलते रहें। भगवान् के अंगों पर पहले से लगा अंगलेपन हटाना उचित नहीं है, अपितु वह अंगलेपन दिनों-दिन पुष्ट हो यत्न के साथ वही करें। क्योंकि दुबली पतली देवमूर्त्ति कल्याणप्रद नहीं होती। अति सावधानी से भगवान् को ले जायें। क्योंकि यदि ले जाने वालों की असावधानी के कारण यदि जगन्नाथ-बलराम-सुभद्रा खण्डित हो जाते हैं, तब राजा एवं राज्य का अमंगल होता है। साथ ही जिनके हाथ से वे गिरते हैं, उनका अत्यन्त दुर्भाग्य होता है और उनकी वंश परम्परा दुःखी रहती है।।३७-४४।।

नरके नियतं वासो भवेत्तेषां दुरात्मनाम्। विमुह्यन्तश्चिराद्दारुमयीयं प्रतिमा कथम्।।४५।।
तिष्ठेदविश्वसन्तो ये भगवद्द्रोहिणस्तु ते। नरकं प्रतिपद्यन्ते सर्वकर्मबहिष्कृताः।।४६।।
मूढानां नास्तिकानां च कृतघ्नानां हतात्मनाम्।
धर्मकृत्येषु जायन्ते अविश्वासस्य युक्तयः।।४७।।
अदृष्टं यस्य यवद्धि स तु तेन विनिर्मितः। तदन्ते तस्यक्षीयन्तेप्रासादप्रतिमादयः।।४८।।
न चाऽयं निर्मितः केन द्रुमः सोऽपि प्रवर्द्धितः। वरं ददातियानूनंनचासौप्रतिमामता।।४९।।

ऐसे दुरात्मा को नरक प्राप्त होता है। जो मोहाभिभूत होकर भगवान् पर अविश्वास करके मन में यह शंका करते हैं कि दारुमयी प्रतिमा कितने दिन ठहरेगी, वे सभी भगवद्द्रोही तथा सर्वधर्म बहिष्कृत समझे जाये। उनको निश्चित रूप से नरक मिलेगा। जो नितान्त मूढ़-नास्तिक-कृतघ्न-दुरात्मा हैं, उनमें धर्मकार्य का अविश्वास उत्पन्न हो इसलिये यह सब उक्ति उनमें जन्म लेती है। जिसका जैसा अदृष्ट है, वह उसी अदृष्ट के अनुसार ही सृष्ट होता है। वह अदृष्ट क्षय होने पर ही उसकी प्रतिमादि के प्रति अश्रद्धा तथा शंका की समाप्ति होगी। वास्तव में इन दारुमय देव का किसी ने भी निर्माण नहीं किया है। वे स्वयं अपने आप ही निर्मित हैं। उसका प्रमाण देखें। जो मूर्त्ति भक्त को वर देती है, उसे कदापि मात्र प्रतिमा नहीं कह सकते।।४५-४९।।

निर्मितायां प्रतिकृतौ पुरा मन्वन्तरादिषु। व्यतीतेष्वपि वर्द्धन्तेजनानांचसुपर्वणाम्।।५०।।
भक्तस्तादृशो विप्राः सर्वेषां पृथिवीक्षिताम्। स्वारोचिषेऽन्तरे चैव आविर्भूतः कृपानिधिः।।५१।।
वैतस्वतेऽन्तरे सप्तविंशे चैव चतुर्युगे। द्वापरान्ते समायातौ तदा कृष्णार्जुनावुभौ।।५२।।
त्रिदिनानि स्थितावत्र व्रतस्थौ मधुसूदनम्।
भक्त्या सम्पूज्य तं स्तुत्वा जग्मतुर्द्वारकां पुनः।।५३।।

हे विप्रगण! और एक कारण है। न जाने कितने युग, मन्वन्तर अतीत हो गये, तथापि समस्त देवता तथा मनुष्य अभी भी वैसे ही उनके प्रति भक्तियुक्त हैं। यदि वह प्रतिमा वस्तुतः किसी के द्वारा निर्मित होती, तब निर्मित प्रतिमा के प्रति कभी भी चिरकाल तक एक समानरूप भक्ति न रहती। उनकी महिमा पूर्वकाल से ही एक समान स्थित हैं। स्वारोचिषमनु के काल में कृपानिधि जगन्नाथ देव का आविर्भाव हुआ था। तदनन्तर वैवस्वत मनु के २७वें चतुर्युग के द्वापर के शेषभाग में जब भगवान् कृष्ण तथा अर्जुन पुरुषोत्तम क्षेत्र गये थे तब उन दोनों ने व्रत धारण करके वहां तीन दिन व्यतीत किया तथा भक्तिपूर्वक मधुसूदन की यथाविधि अर्चना करके स्तव पाठ किया। तदनन्तर कृष्ण द्वारिका लौटे थे।।५०-५३।।

न केऽपि तत्त्वंजानन्तिमानुषींतनुमास्थिताः। अवताराःप्रवर्त्तन्तेविष्णोरस्ययुगेयुगे॥५४॥
धर्मस्थापनया विप्रा लीयन्ते स्वपदे पुनः। पूर्वं च ब्रह्मणा प्रोक्तःस चानेनपरस्परम्॥५५॥
स्थाता परार्द्धयर्यन्तं भगवान्दारुरूपधृक्। सदाऽयं वरदोविष्णुः शुद्धसत्त्वेन भावितः॥५६॥
यस्य यावांस्तु विश्वासस्तस्य सिद्धिस्तु तावती।
प्रमादीकृतविश्वासो भक्तो दृढमतिः पुमान्॥५७॥
यत्नानुरूपं लभते फलमस्मात्सुदुर्लभम्। पुरा वः कथितं सर्वमम्बरीषविमोचनम्॥५८॥
ततस्तस्मिञ्जगन्नाथे परमात्मस्वरूपिणि। विधाय सुदृढां भक्तिं वसध्वं पुरुषोत्तमे॥५९॥
अतोऽयं भक्तितो नेयः श्रीकृष्णमञ्च उत्तमः। सुभद्राबलभद्रौ च राजवत्परिचर्यवै॥६०॥

हाय! आधुनिक सामान्य मानवगण आज भगवान् का प्रकृत तत्व नहीं जान पाते! हे विप्रगण! वेदरक्षार्थ युग-युग में इन भगवान् विष्णु की नाना मूर्त्ति आविर्भूत होकर पुनः अपने स्वपद में लीन हो जाती है। अतीव पूर्व काल में भगवान् ब्रह्मा ने दारुरूपधारी भगवान् की प्रतिष्ठा किया था। उनकी ही प्रार्थना के अनुसार भगवान् परार्द्ध काल पर्यन्त पुरुषोत्तमक्षेत्र में अवस्थित रहेंगे। सत्व गुणमय विशुद्ध चित्त से सदा इन भगवान् की भावना करे। ये अवश्य ही वांछित वर प्रदान करते हैं। जिसका जैसा विश्वास है, उसकी सिद्धि भी वैसी ही होती हैं। जो विष्णुभक्त, प्रमादरहित, स्थिरचित्त तथा अटल विश्वासयुक्त है, वह निश्चित रूप से इन जगन्नाथदेव इच्छानुरूप फल प्राप्त करता है। हे मुनिगण! पूर्वकाल में मैंने आप लोगों से इस सम्बन्ध में जगदीश्वर का संसार नाशक वृत्तान्त कहा है। हे द्विजगण! आप लोग उन जगन्नाथ देव के प्रति अचला भक्ति रखकर पुरुषोत्तम क्षेत्र में निवास करें। इसीलिये मैंने कहा कि परम भक्ति के साथ यत्नपूर्वक श्रीकृष्ण जगन्नाथ देव, बलराम तथा सुभद्रा की राजसी परिचर्या करके उनको स्नानमंच पर आरूढ़ करायें।।५४-६०।।

उत्तोलितेपुच्छत्रेषु चामरैर्वीजितेषु च। कालागुरुसुधूपासु दिक्षु गम्भीरनादिषु॥६१॥
नानाविधेषु वाद्येषु त्वगारे परिपूरिते। तौर्यत्रिके साधुवृत्ते दीपिका श्रेणिराजिते॥६२॥
अन्धकारेऽथ सर्वेषां वर्द्धमाने महोत्सवे। आच्छन्ने श्रीपतेरङ्गे प्रमादपरिशङ्कया॥६३॥
पट्टपट्टदुकूलेषु नीयमानेषु दूरतः। गतेर्वेगात्तदोत्तानीकृतास्ये जगतां गुरौ॥६४॥
आवर्त्तदृष्टयो देवा दिवारोहणशङ्किनः। जयस्व राम कृष्णोति जय भद्रेति चोचिरे॥६५॥
एवं सलीलं भगवाञ्जन्मज्यैष्ठ्याभिषेचने। नीयते मञ्चदेशं तु निशीथे ब्राह्मणादिभिः॥६६॥
अहम्पूर्विकशब्दस्तु देवानां श्रूयते दिवि। देवदुन्दुभयश्चैव जयशब्दविमिश्रिताः॥६७॥

जब भगवान् को स्नान मंच पर ले जायें तब छत्र धारण कराना चाहिये तथा काला अगुरु जलाकर दिशाओं को आमोदित करें। नाना गंभीर वाद्यों की ध्वनि से स्वर्ग-मर्त्यलोक के बीच के स्थान को भरकर दीपावलि के आलोक से अन्धकार दूर करें। जब भगवान् के चतुर्दिक् चामर झला जाये तथा सुन्दर रूप से नृत्य-गीतादि होता रहे, उस समय यदि असावधानी के कारण कोई प्रमाद उपस्थित हो जाता है, तब सुन्दर पट्ट वस्त्र द्वारा श्रीपति का सर्वाङ्ग आवरित करके उनको दूरवर्त्ती स्नान मंच पर ले जाना चाहिये। उस समय अखिलजगत् पूज्य जगन्नाथ देव को दूर ले जाते समय उत्तान करके ले जाया जाता है। स्वर्गस्थ देवगण को यह आशंका होती

है कि "प्रतीत होता है, भगवान् स्वर्ग आने की इच्छा कर रहे हैं।" तब वे दृष्टि उधर से हटाकर "हे राम, हे कृष्ण, आपकी जय हो" यह कहने लगते हैं। हे मुनिगण! इस प्रकार लीला के साथ भगवान् का जन्म ज्येष्ठ अभिषेक होता है। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य जब रात्रि में भगवान् को स्नानमंच पर ले जाते हैं, तब स्वर्ग में दुन्दुभि ध्वनि होती है तथा देवगण जयध्वनि के साथ तुमुल कोलाहल करते हैं।।६१-६७।।

ततो मञ्चस्थितं ब्रह्मरूपं प्रत्यर्चया सह। आच्छाद्य सर्वाण्यङ्गानि मुखवर्जं सुचेलकैः।।६८।।
विना निवेद्यं सम्पूज्य उपचारैः पुरोदितैः। अधिवासितकुम्भैश्चशान्तिघोषपुरःसरम्।।६९।।
समुद्रज्येष्ठामन्त्रेण स्नापयेत्सुरपुङ्गवान्। पश्यतामभिषेक्तॄणां कृतकृत्यत्वहेतवे।।७०।।
स्नाप्यमानं तु पश्यन्ति ये नरास्तत्रसंस्थिताः। गर्भादकेन स्नपनं न ते पुनरवाप्नुयुः।।७१।।
ज्येष्ठस्नानं भगवतोयेपश्यन्तिमुदान्विताः। नतेभावाब्धौमज्जन्तियात्रामुत्कण्ठमानसा।।७२।।

हे महर्षिगण! तदनन्तर इन ब्रह्मरूपी प्रतिमाधारी जगन्नाथ प्रभु की स्थापना स्नानमंच पर करनी चाहिये। उस समय मात्र उनका मुखमण्डल खुला रहे। सर्वाङ्ग को आच्छादित करके समस्त उपचार द्वारा पूजा करके (नैवेद्य इस समय नहीं अर्पित करना चाहिये) शान्तिपाठ करें। तत्पश्चात् "समुद्रज्येष्ठा" इत्यादि मन्त्रपाठ के उपरान्त अधिवासित कलसों को लेकर अभिषेक करने वाले, दर्शक आदि सभी की कृतार्थता हेतु जगन्नाथ, बलभद्र तथा सुभद्रा देवी का अभिषेक सम्पन्न करना चाहिये। हे द्विजवृन्द! अधिक क्या कहा जाये, जो मनुष्य यथोक्त व्रताचरण द्वारा स्नानकाल में भगवान् का दर्शन करता है, उसे पुनः जननीगर्भ में कदापि निवास नहीं करना पड़ता। यह निश्चित है। स्नान यात्रा के दर्शनार्थ परमानन्दपूर्वक उत्सुकता पूर्ण हृदय से भगवान् के ज्येष्ठ स्नान का दर्शन करने वाला कभी भी जननीगर्भ में नहीं जाता।।६८-७२।।

बुद्ध्यबुद्धिकृतः पुंसामनादिः पापसञ्चयः। तत्क्षणान्नाशमायातिपश्यंतांस्नपनं हरेः।।७३।।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं ब्रवीमिद्विजपुङ्गवाः!। सर्वसन्तोपशमनमशेषमलनाशनम्।।७४।।
स्नपनं श्रीपतेर्ज्यैष्ठ्यां यदि भक्त्या विलोकनम्।
प्रायश्चित्तनिमित्तानि यानि पापानि सन्ति वै।।७५।।
तानि सर्वाणि क्षीयन्तु पश्यतां स्नपनं हरेः। नाऽतः परतरंकर्म ह्यनायासेन मोचनम्।।७६।।
ज्येष्ठजन्मदिने स्नानं हरेर्यदवलोकितम्। स्नानदानतपःश्राद्धजपयज्ञादयस्तु ये।।७७।।
विधयःकोटिगुणिताःकोटिजन्मोपपादिताः। स्नानदर्शनपुण्यस्यहरेस्तेनतुलांगताः।।७८।।
भक्त्या यः स्नपनंविष्णोरेकस्मिन्वत्सरेऽपिवा। पश्येन्नशोचतेविप्राइहसंसारमोचने।।७९।।

मनुष्य बाल्यावस्था से जानते हुये अथवा अनजान स्थिति में जो कुछ पाप संचय करता है, भगवान् हरि की स्नान-यात्रा का दर्शन करते ही वह सब तिरोहित हो जाता है। हे द्विजपुंगव! यह सत्य है, सत्य है, पुनः सत्य है। यह तथ्य सबको विदित है कि ज्येष्ठी पूर्णिमा के दिन भगवान् श्रीहरि की स्नान यात्रा का अवलोकन भक्तिपूर्वक करने से समस्त सन्ताप तथा कभी समाप्त न होने वाले संचित पाप भी प्रशमित हो जाते हैं। जितने भी प्रायश्चित्त योग्य पाप हैं, वे सभी हरि का स्नानोत्सव दर्शन करने से क्षयीभूत हो जाते हैं। इसलिये ज्येष्ठ मास की हरिजन्म तिथि के दिन स्नान यात्रा के दर्शन के अतिरिक्त अनायास मोक्ष देने वाला श्रेष्ठ कर्म अन्य

कुछ भी नहीं है। स्नान-दान-तप-श्राद्ध-जप-यज्ञादि जो भी विहित कर्म है, वह सब यदि करोड़ों गुना किया जाये, तथापि वह सब मिलाकर भी श्रीहरि की स्नान यात्रा के समान महापुण्यप्रद है ही नहीं। हे विप्रगण! जो भक्तिभाव के साथ एक वर्ष भी विष्णु की स्नानक्रिया का दर्शन करता है, उसे अब संचार से मुक्ति पाने हेतु शोक नहीं करना पड़ता।।७३-७९।।

तेनेष्टं क्रतुभिः पुण्यैः श्रद्धाविपुलदक्षिणै।
महादानानि दत्तानि भोजिताः कोटिशो द्विजाः।।८०।।
श्राद्धानि गयशीर्षादौकोटिशश्चकृतानि वै। पुण्यकालेचतीर्थादौतपांसिचरितानिच।।८१।।
अर्धोदयादियोगेषु कोटितीर्थेषु कोटिशः। स्नातानि तेनभो विप्रायः पश्येत्स्नपनंहरे।।८२।।

हे द्विजगण! अधिक क्या कहा जाये! जो व्यक्ति हरि का स्नानदर्शन कर पाता है, वह प्रचुर दक्षिणायुक्त, श्रद्धायुक्त यज्ञानुष्ठान, महादान, कोटि ब्राह्मण भोजन, गया आदि में करोड़ों बार पिण्डदान, पुण्यकाल में तीर्थादि तपःश्चरण तथा अर्द्धोदय योग में कोटि-कोटि तीर्थों में कोटि-कोटि बार स्नान आदि का फल प्राप्त कर लेता है।।८०-८२।।

सत्यं सत्यं पुनःसत्यंब्रवीमिद्विजपुङ्गवाः!। नाऽतःश्रेयस्करंकर्मशास्त्रदृष्टपथिस्थितम्।।८३।।
मञ्चस्थं स्नाप्यमानं हियः पश्येत्पुरुषोत्तमम्। स्नानाच्छतगुणंपुण्यंलभतेवैनसंशयः।।८४।।
मञ्चस्थितं जगन्नाथं स्नानार्द्रं यस्तु पश्यति।
सान्द्रानन्दार्द्रचित्तोऽसौ न किञ्चत्पापमश्नुते।।८५।।
यदेवपुण्यमुदितं स्नानदर्शनकर्मणि। तत्तत्फलमवाप्नोति दृष्ट्वामञ्चस्थमच्युतम्।।८६।।
एक एवजगन्नाथस्त्रिधातत्रस्थितो द्विजाः। एकैकस्याऽपिस्नपनदर्शनंभुक्तिमुक्तिदम्।।८७।।
जयस्वरामभद्रेति जयभद्रेति योवदेत्। जयकृष्णजगन्नाथ! जयेत्युच्चारयेन्मुदा।।८८।।
स्नानकाले स वै मुक्तिं प्रयातिद्विजसत्तमाः। अधिवासादिकंतत्रयैःकृतंस्नानकर्मणि।।८९।।
तेषांश्रद्धामुदायुक्तः प्रदद्याद्दक्षिणाःपृथक्। ब्राह्मणेभ्यश्चमिष्टान्नं वस्त्रालङ्करणानिच।।९०।।
प्रदद्याच्छ्रद्धया युक्तो दीनाऽनाथांश्च तर्पयेत्।
ये द्रष्टुमागताःस्नानं जीवन्मुक्तास्तु ते ध्रुवम्।।९१।।

हे द्विजपुंगणगण! मैं आप लोगों से यह सत्य-सत्य-सत्य कहता हूं कि किसी भी शास्त्र में भगवान् के स्नान के दर्शन की अपेक्षा श्रेयस्कर कर्म नहीं दिखता। जो मंचस्थ भगवान् पुरुषोत्तम के स्नान का दर्शन करते हैं, वे सभी तीर्थों में स्नान की अपेक्षा शतगुणित फल की प्राप्ति करते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो मनुष्य स्नान से आर्द्र हो रहे जगन्नाथ का दर्शन करता है, उसका चित्त प्रगाढ़ आनन्दरस से आर्द्र हो जाता है। वह किसी पाप से लिप्त नहीं होता। हे मुनिगण! मैंने स्नान यात्रा के जिस पुण्य का वर्णन किया है, वही पुण्य मनुष्यगण केवल भगवान् को मंचस्थ देखकर भी पा लेते हैं। हे द्विजगण! एकमात्र भगवान् श्रीहरि ही लीला के कारण तीन मूर्त्ति में विराजित हैं। इसलिये जगन्नाथदेव अथवा बलभद्रदेव अथवा सुभद्रादेवी, इन तीन में से एक भी मूर्त्ति का स्नान दर्शन करने मात्र से मनुष्य इस लोक का समस्त सुख भोग तथा परिणाम में मोक्षपद

प्राप्त कर लेते हैं। हे द्विजश्रेष्ठगण! जो व्यक्ति स्नानकाल में सानन्द होकर एक बार भी हे कृष्ण, हे जगन्नाथ, हे नाथ! हे राम! हे सुभद्रा! आप सब की जय हो! कहता है, वह निःसंदेह मुक्तिलाभ करता है। भगवान् के उक्त स्नानकार्य में पुरोहितगण द्वारा जो कुछ अधिवास आदि कार्य सम्पन्न किया जाता है, श्रद्धा तथा आनन्दपूर्ण हृदय से उनमें से प्रत्येक को पृथक् रूप से दक्षिणा देनी चाहिये। ब्राह्मणों को मिष्ठान्न, वस्त्रालंकार तथा दीन-दरिद्रों को तथा अनाथों को भी मिष्ठान्नादि से प्रसन्न करें। जो भगवान् के स्नान दर्शनार्थ आते हैं, वे निश्चित रूप से जीवमुक्त हो जाते हैं। यह निश्चित है।।८३-९१।।

तान्यथाशक्तिवै राजा मानयेत्प्रीतये हरेः। स्नानावशेषतोयेनस्नायाद्भद्रासनस्थितः॥९२॥
नारीवापुरुपोवाऽपितस्यपुण्यंवदामि वः। कल्पःस्याच्चिररोगार्तोह्यपमृत्युंजयेदसौ॥९३॥
अपुत्रामृतवत्सा वावन्ध्यावापिलभेत्सुतम्। सुभगःसर्वलोकानांनिर्धनोधनवान्भवेत्॥९४॥
गुर्विणी लभते पुत्रं दीर्घायुर्गुणवत्तरम्। गङ्गादिसर्वतीर्थानां स्नानजं फलमुच्यते॥९५॥
स्नानदर्शनजं पुण्यं धर्मात्मा लभते ध्रुवम्॥९६॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतो-
त्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे दारुब्रह्मणःस्नानयात्रा-
विधिकीर्त्तनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः।।३१।।

इसलिये भगवान् हरि की प्रसन्नता के लिये उनके प्रति यथाशक्ति सम्मान प्रदर्शन उचित है। स्त्री-पुरुष तथा जो व्यक्ति भद्रासनस्थ होकर भगवान् के स्नान से बचे जल से स्नान करता है, आप लोगों से उस पुण्य के सम्बन्ध में कहता हूं। वह चिररोगी भी आरोग्य लाभ करके धन्य हो जाता है। वह अपमृत्यु को जीत लेता है। इसमें सन्देह नहीं है। अपुत्रा, मृतवत्सा, वन्ध्या रमणी भी इसके फलस्वरूप पुत्रवती होती है। निर्धन व्यक्ति धनवान तथा सर्वलोक प्रिय हो जाता है। यदि गर्भवती स्त्री भगवत् स्नान से बचे जल से स्नान करती है, तब उसे दीर्घायु तथा गुणी पुत्र मिलता है। उसे गंगा आदि सर्वतीर्थफल की प्राप्ति होती है। धर्मात्मा को स्नान के दर्शन का भी फल निश्चित रूपेण मिलता है[1]।।९२-९६।।

।।एकत्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

---

१. अन्य प्रति में इतने श्लोक अधिक हैं—

कुष्ठव्याधि युतो ये वै सर्वाङ्गः परिलेपयेत्।
नश्यते नात्र सन्देहो वाग्मी स्याच्छास्त्रकोविदः।
नातः पवित्रं भो विप्राः स्वर्धुन्यस्योऽपि कीर्त्तितम्।
यदयद् कामयते चित्ते ऐहिकामुष्मिकं तथा।
विष्णोः स्नानावशेषेण तो येन लभते फलम्।

द्वात्रिंशोऽध्यायः

दक्षिणामूर्त्ति दर्शन, ज्येष्ठ पंचकव्रत, पूजावर्णन

जैमिनिरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि दक्षिणामूर्तिदर्शनम्। पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं यत्रोपलभ्यते॥१॥
ततोनानाविधैर्दिव्यैर्भक्ष्यभोज्यादिकैस्तथा। यथाशक्त्युपचारैस्तुगन्धैर्माल्यैश्चपूजयेत्॥२॥
रामं कृष्णं सुभद्रांच गीतनृत्यादिकैस्तथा। प्रेक्षणीयैश्चविविधैः श्रद्धयाचोपपादितैः॥३॥
वस्त्रचन्दनमाल्याद्यैःपूजयित्वाद्विजोत्तमान्। भगवद्ब्राह्मणांश्चैतान्महाभागवतांस्तथा॥४॥
ततोनयेद्दक्षिणाभिमुखांस्तांस्त्रिदशेश्वरान्। उत्सवञ्च महत्कृत्वा पूर्वानयनवद्धरेः॥५॥
तस्मिन्काले हरिं पश्येद्व्रजन्तं दक्षिणामुखम्। समंसुंभद्रांयोमर्त्योनसप्राकृतमानुषः॥६॥
स्नानार्थमागता देवाः स्नापयित्वा जगद्गुरुम्।
आकाशेऽपि ससम्बाधास्तावत्कालं स्थिता हरिम्।
द्रष्टुं व्रजन्तं याम्याशावदनं भवनाशनम्॥७॥
धर्मशास्त्रेषु यावन्तिधर्मकर्माणिसन्तिवै। तानिसर्वाणिसन्द्रष्टुंव्रजन्तंदक्षिणामुखम्॥८॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे मुनिगण! तत्पश्चात् दक्षिणामूर्त्ति दर्शन के सम्बन्ध में श्रवण करें। इससे पग-पग पर अश्वमेध फल लाभ होता है। तदनन्तर यथाशक्ति गन्धमाल्य एवं नाना प्रकार भोज्य भक्ष्य प्रभृति श्रद्धापूर्वक लाकर उसे शुद्ध करके विविध प्रकार से प्रोक्षित उपचार द्रव्य, नृत्य-गीतादि द्वारा जगन्नाथ, बलराम तथा सुभद्रा देवी की पूजा करनी चाहिये। इसके पश्चात् द्विजोत्तम पुरोहित लोग भगवत्प्रिय अन्य ब्राह्मण तथा भगवान् के अपरापर परम भक्तों की वस्त्र तथा चन्दनमाला आदि द्वारा यथोचित अभ्यर्थना करके पूर्व की तरह महत् उत्सव करें। इस अवसर पर इन तीनों देवगण को दक्षिणामुखीन ले जाये। इस समय जो व्यक्ति हरि, बलभद्र तथा सुभद्रा को दक्षिणाभिमुखीन जाते देखता है, वह वास्तव में सामान्य मनुष्य नहीं है। भगवान् के स्नानार्थ समागत देववृन्द भवरोगनाशक जगद्गुरु जगन्नाथ देव को स्नान करके दक्षिणाभिमुखीन जाते देखने हेतु आकाश में परस्परतः कौन पहले देखे यह संघर्ष करते हुये अवस्थित रहते हैं। भगवान् को दक्षिणाभिमुखी जाते देखने के लिये जो व्यक्ति खड़ा रहता है, उसने तो धर्मशास्त्रों में वर्णित समस्त धर्मकार्यों का फललाभ कर लिया॥१-८॥

स्नानदर्शनजंपुण्यं समग्रं लभते तु सः। स्नातं मुरारिं यः पश्येद्व्रजन्तं दक्षिणामुखम्॥९॥
नीराजयित्वा देवेशं रामेण सह भद्रया। प्रासादाऽन्तःप्रवेश्याऽथ न पश्येद्वै कथञ्चन॥१०॥
एतत्तु विस्तरेणोक्तं पूर्वमेव मया द्विजाः!॥११॥

जो व्यक्ति स्नात भगवान् मुरारी को दक्षिणाभिमुखीन जाते देखता है, उसने इस स्नानदर्शन को देखकर समस्त पुण्यों को ही पा लिया! हे द्विजोत्तमगण! तत्पश्चात् बलराम तथा सुभद्रा के साथ देवाधिदेव जगन्नाथ की

आरती करके उनको मंदिर के अन्दर प्रविष्ट कराकर जो दर्शन कदापि नहीं करना है, वह मैंने पहले ही आप लोगों को विस्तार के साथ बता दिया था।।९-११।।

मुनयः ऊचुः

भगवन्यत्त्वया प्रोक्तं ज्येष्ठास्नानप्रदर्शनात्। फलं प्राप्नोति नियतं तन्नोब्रूहिविदाम्वर!॥१२॥

ऋषिगण कहते हैं—हे भगवान्! आपने जिस व्रत का वर्णन किया है, उससे मनुष्य भगवान् का स्नानावस्था में दर्शन पाकर सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लेता है। अब उस व्रत का विस्तार से वर्णन करिये।।१२।।

जैमिनिरुवाच

हन्त वः कथयिष्यामि तद्व्रतं ज्येष्ठञ्चकम्। नातःपरतरंप्रोक्तमृषिभिः शास्त्रपारगैः॥१३॥
श्रौतस्मार्तपुराणोक्तव्रतानामिदमुत्तमम्। इदं प्रथमतः प्रोक्तं ब्रह्मणा परमेष्ठिना॥१४॥
ज्येष्ठत्वाद्व्रतमुख्यानां ख्यातं तज्ज्येष्ठपञ्चकम्। समुद्रोज्येष्ठफलदःप्रभुर्ज्येष्ठफलप्रदः॥१५॥
वर्षसन्दर्शनात्पुण्यं मञ्चकेनैवलभ्यते। मञ्चकेन तु यल्लभ्यं महाज्यैष्ठ्यां तु तल्लभेत्॥१६॥
यन्मयोक्तं पुरा विप्राः स्नानदर्शनजंफलम्। समग्रं तदवाप्नोतिमहाज्यैष्ठ्यांन संशयः॥१७॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे मुनिप्रवरवृन्द! मैं आपके प्रश्न को सुनकर आनन्दित हो गया। अतः अब ज्येष्ठपञ्चक व्रत का वर्णन करता हूं। शास्त्रपारंगत ऋषिगण ने इससे उत्तम किसी व्रत का वर्णन नहीं किया है। परमेष्ठि भगवान् ब्रह्मा ने पूर्वकाल में कहा था कि यह श्रुति-स्मृति-पुराण शास्त्रोक्त समस्त व्रतों में उत्कृष्ट है। यह समस्त व्रतों में ज्येष्ठ है। इसी कारण इसको ज्येष्ठपञ्चक कहा गया है। इसी प्रकार से समुद्र को तथा प्रभु जगन्नाथ को ज्येष्ठ फलप्रद रूप से कहते हैं। भगवान् का धारावाहिक रूप से (नित्य) एक वर्ष दर्शन करने का जो फल है, उक्त ज्येष्ठपञ्चक व्रत का भी वही फल है। साथ ही ज्येष्ठपञ्चक व्रताचरण का जो फल है, वही फल महाज्येष्ठ व्रत में भी मिलता है। हे विप्रवृन्द! मैंने पहले जगन्नाथ देव के स्नान दर्शन का जो फल वर्णन किया है, मानवगण महाज्येष्ठ से भी उसी फल को पा लेता है। इसमें सन्देह न करें।।१३-१७।।

मुनय ऊचुः

महाज्येष्ठीं समाचक्ष्व यत्र स्नानं महाफलम्। तत्र नः कौतुकं ब्रह्मन्महद्वैसम्प्रवर्त्तते॥१८॥

मुनिगण कहते हैं—हे ब्रह्मन्! महाज्येष्ठ व्रत में स्नान का जो महाफल कहा गया है, उसे सुनने के लिये हमें महान् कुतूहल हो रहा है।।१८।।

जैमिनिरुवाच

ज्येष्ठस्य विमले पक्षे या वै पञ्चदशी भवेत्। शक्रर्क्षैकांशगौ चन्द्रगुरू च गुरुवासरे॥१९॥
शुभे योगे महाज्यैष्ठी सर्वपापप्रणाशिनी। सर्वक्षेत्रं सर्वतीर्थं सप्त वै सागरास्तथा॥२०॥
क्रतवश्चमहादानसमूहश्च तपांसि च। विद्याश्चाऽष्टादशविधा व्रतानि विविधानि च॥२१॥
शान्तिपौष्टिककर्माणिसाङ्ख्ययोगस्तथैवचासर्वेसम्भूयगच्छन्तिक्षेत्रंश्रीपुरुषोत्तमम्॥२२॥

वृन्दशः प्रविभक्तास्तएकैकं क्षत्रगं प्रति। कस्मै वयं भाग्यवते ज्येष्ठस्नानावलोकने॥२३॥
महाज्यैष्ठ्याम्प्रवेक्ष्यामः परस्परमहम्मया। तत्र यान्ति महायोगेभगवत्क्षेत्रमुत्तमम्॥२४॥
महाज्यैष्ठी महापुण्या भगवत्प्रीतिवर्द्धनी। तस्यां सम्पूज्य देवेशंजगन्नाथंकृपार्णवम्।
दृष्ट्वा च स्नाप्यमानं तं पापकोशाद्विमुच्यते॥२५॥
अतऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि व्रतं तज्जेष्ठपञ्चकम्। व्रतेनाऽनेन लभ्यं यत्तत्तदेवं ब्रवीमि वः॥२६॥

जैमिनि कहते हैं—हे मुनिगण! ज्येष्ठशुक्लपक्ष की पूर्णिमा के दिन यदि बृहस्पतिवार पड़े तथा यदि इस तिथि के समय चन्द्रमा एवं बृहस्पति ज्येष्ठा नक्षत्रस्थ रहें, तब वही पौर्णमासी महाज्येष्ठा है। उस समय स्नान करने से समस्त पापों का नाश हो जाता है। समस्त पुण्यक्षेत्र, समस्त तीर्थ, साते समुद्र, समस्त यज्ञ, महादान, सर्वविध तप, अष्टादश विद्या, नाना व्रत, समस्त शान्ति-पौष्टिक कार्य तथा सांख्ययोग मिलकर इस दिन पुरुषोत्तम क्षेत्र में आते हैं तथा यह सोचकर कई दल में बटकर यह प्रतीक्षा करते हैं कि आज ज्येष्ठ स्नान दर्शन करने वाले किस भाग्यवान को वरदान देना होगा। समस्त महायोग भी इस दिन परस्परतः महोत्सव के सम्बन्ध में विचार करते हुये भगवान् के इस महान् पुरुषोत्तम क्षेत्र में आते हैं। परिणाम यह होता है कि इस महापुण्यप्रद भगवान् को अत्यन्त प्रसन्नताप्रद इस महाज्येष्ठी के दिन कृपार्णव देवदेव जगन्नाथ की अर्चना तथा उनका स्नानदर्शन करके सभी लोग पापों से त्राण पा लेते हैं। हे महर्षिगण! तदनन्तर आप लोग यह श्रवण करें कि पूर्वोक्त ज्येष्ठपञ्चक व्रताचरण से क्या फल लाभ होता है?।।१९-२६।।

दशम्यां नियमंकुर्यात्प्रातःस्नात्वायथाविधि। आचार्यंवृणुयात्तत्रवैष्णवंद्विजपुङ्गवम्॥२७॥
इत्थं सङ्कल्पममलं गृह्णीयाद् व्रतमुत्तमम्॥२८॥
देवदेव जगन्नाथ संसारार्णवतारक!। अद्यारभ्यव्रतं देव यावज्ज्यैष्ठी च सा तिथिः।
तावद्व्रतं करिष्यामि प्रीतये तव केशव!॥२९॥
सर्वतीर्थाऽभिषेकं च प्रत्यहं व्रतभोजनम्। मूर्तीनां तवपञ्चानामेकस्याऽपिप्रपूजनम्॥३०॥
एकस्मिन्दिवसेदेव! त्रिसन्ध्यंत्वत्प्रसादतः। समाप्यतांव्रतमिदंसफलंचास्तुतेप्रभो॥३१॥

दशमी के दिन प्रातः यथाविधि स्नानोपरान्त इस व्रत को ग्रहण करना चाहिये। इस व्रतग्रहण के समय किसी विष्णुभक्त ब्राह्मण का आचार्य रूप में वरण करे। यह कार्य करके पवित्ररूप से संकल्प लेकर उक्त उत्कृष्ट व्रत को ग्रहण करें। जिस मन्त्र का पाठ करके इस व्रत का संकल्प करना होगा, वह सुने। यथा—"हे देवदेव! जगन्नाथ, संसारार्णवतारक, केशव, जब तक ज्येष्ठी पूर्णिमा तिथि नहीं आ जाती आपकी प्रसन्नता के लिये मैं तब तक व्रताचरण करूंगा। हे देव! मैं नित्य सर्वतीर्थ स्नान, व्रतोचित हविष्यान्न भक्षण तथा प्रतिदिन आपकी कृपा से (एक-एक दिन) त्रिसन्ध्या कालों में आपकी पञ्चमूर्त्ति में से एक-एक मूर्त्ति का दर्शन-पूजन करूंगा। यह मैंने निश्चय किया है। हे प्रभु! आप कृपापूर्वक मेरे व्रत को पूर्ण करें। आपके अनुग्रह से मैं इस कार्य में सफल हो जाऊं।।२७-३१।।

ततः पञ्चसुतीर्थेषु स्नात्वा च गृहमेत्यच। स्थण्डिलेविलिखेत्पद्ममष्टपत्रंसकर्णिकम्॥३२॥
तन्मध्ये स्थापयेत्कुम्भंतीर्थाम्भोभिःप्रपूरितम्। सचन्दनफलैर्युक्तंतन्मुखेताम्रभाजनम्॥३३॥

वाससा वेष्टितं कण्ठे पात्रं चाऽक्षतपूरितम्। तन्मध्येस्थापयेद्देवं सौवर्णं मधुसूदनम्॥३४॥
शुभाङ्गावयवं शान्तं वामे श्रीयुतमीश्वरम्॥३५॥
दक्षिणेचगरुत्मन्तं स्पृशन्तं पृष्ठदेशतः। शङ्खचक्रधरं चोर्ध्वे पद्मासनगतं विभुम्॥३६॥
पूजयेदुपचारैस्तमाचार्योवाऽपिभोद्विजाः। नीलोत्पलानांमालांतुभक्त्यादेवायदापयेत्॥३७॥
दशम्यांपूजयित्वैवं दशकोट्यघनाशनम्। प्रार्थयेत्प्राञ्जलिर्भूत्वा मन्त्रमेतं समुच्चरन्॥३८॥
मधुसूदनदेवेश! नमस्ते माधवीप्रिय!। कृपावारांनिधे! पतितं मां भवार्णवे॥३९॥

इसके पश्चात् पञ्चतीर्थ में स्नानोपरान्त अपने निवास स्थल पर आकर स्थण्डिल (वेदी) के मध्य में कर्णिका समन्वित अष्टदल पद्मांकन करे। उस पद्म में तीर्थजल भरा एक कुम्भ स्थापित करके उसके ऊपर में चन्दन तथा फलयुक्त ताम्रपात्र रखें। उस कुम्भ के कण्ठ को वस्त्र से लपेटे। उस पात्र में (ताम्रपात्र) अक्षत रखकर उसके ऊपर भगवान् मधुसूदन की स्वर्ण प्रतिमा रखनी चाहिये जो सुन्दर तथा अंग-प्रत्यंग युक्त हो। उनकी आकृति प्रशान्त हो तथा उनके वामभाग में लक्ष्मी की मूर्त्ति हो। भगवान् के ऊर्ध्व हस्तद्वय में शंख-पद्म हो। वे दाहिने (अधः हस्त से) से गरुड़ का पृष्ठदेश स्पर्श कर रहे हों तथा वे पद्मासनासीन हों। हे द्विजगण! स्वयं अथवा आचार्य इन विष्णुदेव की पूजा विहित उपचारों से करें। तदनन्तर भक्ति के साथ इन देवदेव को नीलकमल की माला प्रदान करें। अपने दस करोड़ पापों के विनाशार्थ दशमी के दिन (व्रत संकल्प के दिन) भगवान् की यह पूजा करके भगवान् के समक्ष अंजलिबद्ध होकर यह मन्त्र पाठ करना होगा। यथा—हे मधुसूदन, देवेश, माधवीप्रिय, मैं भवसागर में डूब रहा हूं। मुझे क्षमा करें।।३२-३९।।

एकादश्यां चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम्। नारायणं पद्मसंस्थं पञ्चनिष्कविनिर्मितम्।
तदर्द्धं निर्मितं वाऽपि पूजयेत्पद्ममालया॥४०॥
नैवेद्यं पायसं दद्यात्सितां रम्भाफलानि च। नानाविधञ्च नैवेद्यं दत्त्वासम्प्रार्थयेन्मुदा॥४१॥
नारायण! नमस्तेऽस्तु भवसागरतारण!। त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष शरणागतवत्सल!॥४२॥
एकादशेन्द्रियकृतं पापराशिममुत्तमम्। अनादिभवनिर्व्यूढं नाशयेत्पूजितः प्रभुः॥४३॥
द्वादश्यां यज्ञवाराहं पूजयेत्स्वर्णनिर्मितम्। चन्दनागुरुकर्पूरलेपनैश्चम्पकस्त्रजा॥४४॥
नानाविधापूपसारा भक्ष्यभोज्यफलान्विताः। निवेद्य प्रार्थयेद्देवं स्तुतिमेतांसमुच्चरन्॥४५॥
प्रलयार्णवसम्मग्नां धरणीं धृतवानसि। किन्न शक्तोममोद्धारे पतितस्याऽङ्घ्रिपङ्कजे।
तन्मामुद्धर गोविन्द! निमग्नं शोकसागरे॥४६॥

एकादशी के दिन पंच निष्क अथवा ढाई २ $\frac{1}{2}$ निष्क वजन की स्वर्णनिर्मित चतुर्भुज, शंख-चक्र-गदाधारी, पद्मासनासीन नारायण प्रतिमा की पूजा कमल की माला आदि से करके पायस, शर्करा, केला आदि फल तथा नाना नैवेद्य अर्पित करके सानन्द यह प्रार्थना करें—"हे नारायण! आप भवसागर पार कराने वाले हैं। आपको प्रणाम! हे पुण्डरीकाक्ष! आप शरणागत वत्सल हैं। आप मेरी रक्षा करिये!" भगवान् जगन्नाथ इस प्रकार पूजित होकर अनगिनत जन्मार्जित एकादश इन्द्रियों द्वारा किये दारुण पापों का भी नाश कर देते हैं। इसके पश्चात् द्वादशी के दिन चन्दन-अगुरु-कर्पूर लेपन तथा चम्पा की माला से शंभु निर्मित भगवान् यज्ञ वाराह मूर्त्ति की

अर्चना करके नाना उत्कृष्ट धूप तथा विविध भक्ष्य-भोज्य-फल नैवेद्य निवेदन करके यह स्तुतिपाठ करना चाहिये। यथा—"हे गोविन्द! जब आपने प्रलयार्णव से पृथिवी देवी का उद्धार किया था, तब आप अपने चरणों में गिरे मेरा उद्धार कर सकने में समर्थ क्यों नहीं हैं? हे नाथ! मैं शोक सागर में निमग्न हूं। मेरा उद्धार करिये—"।।४०-४६।।

अब्दो द्वादशमासो वै यावदब्दकृतानि तु। पापानि महदल्पानि इतः पूर्वेषु जन्मसु।
तद्विनाशयते देवो द्वादश्यामर्चितो नृणाम्।।४७।।
त्रयोदश्यां तु प्रद्युम्नं शङ्खचक्रवराभयान्। धारयन्तं पद्मगतं चतुर्निष्कविनिर्मितम्।।४८।।
उपचारैर्यथाप्रोक्तैःपूजयेद्भक्तितो नरः। अशोकपाटलीमालांचन्द्रपूर्णांसमुज्ज्वलाम्।।४९।।
नैवेद्यं चैव पक्वान्नं फलं पक्वं मनोहरम्। दत्त्वा नमस्कृतिंकुर्वन्प्रार्थयेत्प्राञ्जलिःशुचिः।।५०।।
देवप्रद्युम्न! कामानांपूरककामरूपधृक्!।
कामाश्चसफलाःसन्तुःकामपाल! नमोऽस्तुते।।५१।।

द्वादशी के दिन यज्ञवाराह की ऐसी पूजा करने वाला पूजक अपने पूर्व-पूर्व जन्मों के द्वादश मासों का जो वर्ष होता है, ऐसे समस्त वर्षों में संचित (अर्थात् समस्त जन्मों के समस्त पापों का) लघु-गुरु सभी पापों का नाश कर देता है। तदनन्तर त्रयोदशी के दिन मानव चार निष्क वजन की स्वर्ण प्रतिमा जिसके हाथों में शंख-चक्र-वरमुद्रा तथा अभयमुद्रा हो, जो पद्म पर आसीन प्रद्युम्न प्रभु की आकृति युक्त हो, उसका पूजन यथोक्त उपचारों से भक्तिपूर्वक करें तथा अशोक एवं पाटली पुष्प की ऐसी माला अर्पित करें जिस पर कपूर का चूर्ण लगा हो। उस समय पक्वान्न का नैवेद्य मनोहर पक्व फल भी प्रदान करें। उसे प्रणाम करके अंजलिबद्ध होकर पवित्र हृदय से यह प्रार्थना करें—"हे देव प्रद्युम्न! आप कामरूपी तथा भक्तों की समस्त कामना पूर्ण करते हैं। हे कामपाल! आपको प्रणाम! आपकी कृपा से सभी कामना पूर्ण हो।"।।४७-५१।।

चतुर्दश्यांनरहरिंपूजयेत्कनकाकृतिम्। वक्षःस्थलस्थयालक्ष्म्याप्रीयमाणंसटोज्ज्वलम्।।५२।।
व्यात्ताननं साट्टहासं योगपट्टाब्जसंस्थितम्। सुतीक्ष्णनखरं देवंसर्वापद्विनिवारणम्।।५३।।
चतुर्भिर्हेमनिष्कैश्च घटितं शुभलक्षणम्। पूजयेत्पूर्ववद्देवं सोपहारं सुभक्तितः।।५४।।
जपाकुसुममालां च जातीपुष्पस्रजं तथा। दत्त्वा पुष्पाञ्जलीन्पादेप्रणम्यसप्रदक्षिणम्।।५५।।

तत्पश्चात् चतुर्दशी के दिन लक्ष्मी देवी जिनके वक्ष पर स्थित रहकर सतत् प्रीति उत्पादित करती रहती हैं, जिनके मस्तक पर समुज्वल जटाजाल विराजित है, जो मुखमण्डल फैलाकर अट्टहास्स करते हैं, जो योगपट रूपी कमल पर विराजित हैं, जिनके नख अतीव तीक्ष्ण हैं, जो भक्तों की समस्त आपत्ति का निवारण करते हैं, जो समस्त शुभ लक्षण वाले हैं जो चार निष्क वजन के स्वर्ण से आवृत हैं (जिनकी प्रतिमा चार निष्क स्वर्ण से बनी है), ऐसी नृसिंह मूर्त्ति बनवाकर परम भक्तिभाव से पूर्ववत् उपचारों से उनकी पूजा करनी चाहिये तथा जवा एवं चमेली की माला पहनाकर उनके चरणों में पुष्पांजलि अर्पित करके उनको प्रणाम करें तथा उनकी प्रदक्षिणा करके प्रार्थना करें।।५२-५५।।

यथाहिरण्यकशिपुं लोकानांहितकाम्यया। व्यदारयस्तथा पापसङ्घं नाशयपूजितः।।५६।।

यथा—हे देव! त्रिलोक की हितकामना के कारण आप ने जिस प्रकार से हिरण्यकशिपु का वक्ष विदीर्ण किया था, आप मुझसे पूजित होकर उसी प्रकार से मेरे पापपुंजों को भी विदारित करिये।।५६।।

एवं सम्प्रार्थ्य नृहरिं प्रणम्य दण्डवत्क्षितौ। निर्वर्त्यव्रतमेवंतद्व्रतीपञ्चदिनात्मकम्।
पञ्च पञ्च प्रदीपांस्तु दिवारात्रौ प्रदापयेत्॥५७॥
वस्त्रयुग्मान्पञ्चपञ्चच्छत्रोपानद्युगंतथा। सयज्ञसूत्रान्कलशान्पञ्च पञ्च फलान्वितान्॥५८॥
भोजनान्ते द्विजेभ्यश्च प्रदद्याच्छ्रद्धयान्वितः॥५९॥
रात्रौ जागरगीताद्यैस्तथा नानोपहारकैः। तोषयेद्वासुदेवं तु पुराणपठनेन तु॥६०॥

नृसिंह देव की यह प्रार्थना करके पृथिवी पर शिर झुकाकर उनको दण्डवत् प्रणाम करें। व्रतावलम्बी मानव ५ दिन इस प्रकार का व्रत करके पञ्चदेव के स्थान पर दिन-रात ५-५ प्रदीप प्रज्वलित रखे तथा परम श्रद्धा के साथ अनेक ब्राह्मणों को भोजन कराये। प्रत्येक देवता के लिये ५-५ प्रदीप जलाकर रखना चाहिये। (अर्थात् पंचदेव हेतु २५ प्रदीप जलना होगा)। प्रत्येक ब्राह्मण को भोजनान्त में ५-५ जोड़ी वस्त्र (एक-एक जोड़ी में दो वस्त्र हों), ५-५ छत्र, ५-५ जोड़ी पादुका, ५-५ यज्ञोपवीत, ५-५ फलयुक्त कलस अर्पित करें। रात्रि में जागरण द्वारा नाना उपचार से दान-गीत-वाद्य तथा पुराण पाठ से भगवान् वासुदेव को सन्तोष करें।।५७-६०।।

पौर्णमास्युषसि स्नात्वा श्रीकृष्णस्याऽन्तिकं व्रजेत्॥६१॥
रामंकृष्णंसुभद्रांचपूजयित्वायथाविधि। स्नपनंकारयित्वाऽथदृष्ट्वावाशास्त्रचोदितम्॥६२॥
स्नानं कृत्वा पुनः सिन्धौ गृहमागत्य तत्र वै।
यत्र विष्णोर्मूर्त्तयस्ताः कुम्भस्था मन्त्रपूजिताः॥६३॥
तासां पश्चिमतोवह्निंसमाधाययथाविधि। अग्निकार्यप्रकुर्वीतस्वैःस्वैर्मन्त्रैःपुरोहितः॥६४॥

पूर्णिमा के दिन अत्यन्त प्रातः स्नानोपरान्त जगन्नाथ देव के पास जाकर जगन्नाथ-बलभद्र तथा सुभद्रा देवी की यथाविधि पूजा करके उनको शास्त्र सम्मत स्नान कराये। अथवा केवल विहित विधान से भगवत् स्नान का अवलोकन मात्र करके केवल विहित प्रकार से समुद्र में स्नान करके अपने निवास लौट आये जहां-जहां कलस पर विष्णु की पूर्वोक्त प्रतिमा स्थापित है, वहां पञ्चमूर्त्ति के विहित मन्त्र द्वारा उनकी अर्चना की गयी है, उसके पश्चिम की ओर स्वयं अथवा पुरोहित अग्निस्थापना विधिवत् करें। उस अग्नि में उन पांचों देवता का जो-जो मन्त्र है, उसे-उस मन्त्र से उन-उन देवता हेतु होम करना चाहिये।।६१-६४।।

प्रणवादिचतुर्थ्यन्तंनमोऽन्तं नामईरयेत्। देवानां मूलमन्त्रस्तुस्वाहान्तोहोमकर्मणि॥६५॥
चरोराज्यस्य समिधां पलाशानां पृथक्पृथक्। एकैकं देवमुद्दिश्यजुहुयाच्च शतंशतम्॥६६॥
तस्य पुष्पशतं चैव जहुयात्तदनन्तरम्। पूर्णाहुतिं ततो हुत्वा ब्रह्मणे दक्षिणां ददेत्॥६७॥
आचार्ये दक्षिणां दद्यात्सुवर्णं धेनुमेवच। स्वर्णशृङ्गींरौप्यखुरांनानोपकरणैर्युताम्॥६८॥
महार्घ्यवस्त्रदानानि येन तुष्यति वा गुरुः। सर्वोपकरणैर्युक्ताः प्रतिमाश्च निवेदयेत्॥६९॥

देवगण को उपचार दान के लिये मन्त्र के पूर्व 'ॐ' तथा उसके पश्चात् चतुर्थीविभक्तियुक्त नाम और अन्त में 'नमः' मन्त्र कहना चाहिये तथा होमकार्य में उन-उन देवता के नाम के अन्त में 'स्वाहा' लगाकर होम करें। प्रत्येक देवता के लिये पृथक्तः १००-१०० संख्यक आहुति चरु, घृत तथा पलाश समिध् से प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर प्रत्येक देवता को फल १००-१०० आहुति प्रदान करें। आचार्य को स्वर्ण तथा एक गौ प्रदान करें। जिसके सींग स्वर्णमण्डित तथा खुर चांदी से मढ़े हों। नाना प्रकार के उपकरणों के साथ इस गौ को, महामूल्य वस्तुयें, प्रभूत धान्य प्रदान करें। अथवा जिससे आचार्य सन्तुष्ट हों, वह दक्षिणा में प्रदान करना चाहिये। जिन पांच स्वर्ण प्रतिमा की पूजा की जा रही है, उन सब प्रतिमाओं को सर्वविध उपकरणों के साथ आचार्य को प्रदान करें।।६५-६९।।

ब्राह्मणान्भोजयेत्सर्पिः खण्डयुक्तैश्चपायसैः। एतद्व्रतं समाख्यातं ज्येष्ठपञ्चकमुत्तमम्।।७०।।
अनुष्ठाय नरो भक्त्या स्नानदर्शनजं फलम्। समग्रं लभते विप्रास्तदा नैवाऽत्र संशयः।।७१।।
एकादशी या तु मध्ये निर्जलासाप्रकीर्तिता। एकांतांभक्तियुक्तायेयथाविधिउपासते।।७२।।
यावज्जीवकृताः सर्वा एकादश्यो न संशयः। व्रतराजमिमं कृत्वा सर्वव्रतफलं लभेत्।।७३।।
यान्यान्समीहते कामांस्तांस्तानाप्नोत्यसंशयः।।७४।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतो-
त्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे ज्येष्ठपञ्चकादितवर्णनं-
नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः।।३२।।

इस व्रत में घृत तथा खांड युक्त पायस का अनेक ब्राह्मणों को भोजन करायें। हे विप्रगण! मैंने जिस ज्येष्ठ पञ्चक रूपी उत्तम व्रत कहा है, मानव भक्ति के साथ उसका अनुष्ठान करके भगवान् के स्नानदर्शनरूपी पूर्णफल की प्राप्ति करता है। इस व्रत में जो एकादशी द्वितीय दिन पड़ती है, उसे निर्मल कहते हैं। जो मानव निर्मला एकादशी के दिन यथाविधि कार्यानुष्ठान करते हैं, उनको यावज्जीवन एकादशी व्रताचरण का समस्त व्रतानुष्ठान फल मिलता है। जिस-जिस विषय की वे कामना करते हैं, वह समस्त इस व्रतानुष्ठान करने वाले प्राप्त करते हैं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।।७०-७४।।

।।द्वात्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

रथयात्रा महोत्सव विधि, महावेदी महोत्सव वर्णन, गुण्डीचा यात्रा वीजन फल वर्णन

जैमिनिरुवाच

**अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिमहावेदीमहोत्सवम्। अज्ञानतिमिरान्धोऽपि येनभास्वत्पदंव्रजेत्॥१॥
वैशाखस्याऽमले पक्षे तृतीयापापनाशिनी। स्वयमाविष्कृताचैषाप्राजापत्यर्क्षसंयुता॥२॥
तस्यां संकल्प्य नृपतिराचार्यंवरयेच्छुचिः। एकं त्रीनथ तक्षाणं दृष्टकर्माणमादरात्॥३॥
वृणुयाद्वनयागायवस्त्रालङ्करणादिभिः। तक्ष्णासार्द्धं वनं गत्वा साधुवृक्षगणाकुलम्॥४॥
तन्मध्ये वह्निमाधायमन्त्रराजेनमन्त्रवित्। अष्टोत्तरशतंहुत्वासम्पाताज्यविमिश्रितम्॥५॥
आज्यं तरूणां मूलेतुप्रत्येकमभिधारयेत्। दिक्पालेभ्योबलिंदत्त्वाक्षेत्रपालपशूंस्तथा॥६॥
वनस्पतये जुहुयात्क्षीरोदनशताहुतिम्। ततः परशुमादाय वृक्षमूलेषु दिक्षु वै॥७॥**

ऋषि जैमिनि कहते हैं—अब मैं उस महादेवी महोत्सव के विषय में कह रहा हूं, जिसके द्वारा अज्ञानान्धकार से अन्ध व्यक्ति भी ज्योतिर्मय पद की प्राप्ति करता है। इस महोत्सव के सम्बन्ध में श्रवण करें।[1] वैशाख मास की रोहिणी नक्षत्रयुक्त शुक्लातृतीया के दिन सर्वपापनाशिनी तथा स्वयं आविष्कृता है। इस दिन राजा पवित्र होकर संकल्पपूर्वक आचार्य का वरण करके सुदक्ष रूप से जानकार तीन अथवा एक सूत्रधर का अरण्य यागार्थ सादर वस्त्रालंकारादि से वरण करें। तदनन्तर मन्त्रविद् वह राजा इस सूत्रधर के साथ जहां उत्तम वृक्ष है, ऐसे वन में जाये तथा सुप्रशस्त मन्त्र पाठ द्वारा अग्नि स्थापन के अन्त में घृतयुक्त १०८ आहुति देकर प्रत्येक तरुमूल में घृतधारा प्रदान करें। तत्पश्चात् दिक्पालों को यथोक्त बलि तथा क्षेत्रपालों को पशुबलि देकर वनस्पति की प्रसन्नता हेतु दुग्धान्न की सौ आहुति प्रदान करें। तब आचार्य कुठार लेकर वृक्षमूल के पास आये।।१-७।।

**आज्यसंस्कृतिदेशेषु आचार्यो मन्त्रमुच्चरन्।
किञ्चित्किञ्चिच्छेदयेद्वै चिन्तयन्गारुडध्वजम्॥८॥
नदत्सु तूर्यघोषेषु गीतमङ्गलवादिषु। नियोज्य वर्द्धकिं तत्र आचार्यः स्वगृहं व्रजेत्॥९॥**

आचार्य मन ही मन भगवान् गरुड़ध्वज का चिन्तन करके यथोक्त मन्त्रोच्चार द्वारा प्रत्येक ओर के उन वृक्षों की मूल पर कुछ-कुछ आघात कुठार से करें, जिसे घृतधारा से युक्त किया गया था। इस समय यहां मंगलगीत समन्वित तूर्यवादन करें। तदनन्तर आचार्य सूत्रधार को छेदन कार्य में नियोजित करके अपने घर लौट जायें।।८-९।।

---

*१. अन्य प्रति में यह श्लोक अतिरिक्त है—
सर्वपापरजःसन्ध्यः पूज्यत्वात् सर्वदैवतेः। गुण्डीचाख्यापि सा यात्रा ब्रह्मतेजोऽवगुण्ठनात्॥*

अथवास्थानलब्धानिदारूणिरथकर्मणि। उक्तसंस्कारविधिनासंस्कुर्यात्कल्पितेऽनले॥१०॥
आरभेत रथं कृत्वा विघ्नराजमहोत्सवम्। षोडशारैः षोडशभिश्चक्रैर्लोहमयैर्दृढैः॥११॥
युक्तं विष्णो रथं कुर्याद्दृढाक्षं दृढकूबरम्। विचित्रघटनाकक्षपुत्तलीपरिवेष्टितम्॥१२॥
नानाविचित्रबहुलमिक्षुखण्डविराजितम्। चतुस्तोरणसंयुक्तं चतुर्द्वारं सुशोभनम्॥१३॥
नानाविचित्रबहुलं हेमपट्टविराजितम्। द्वाविंशतिकरोच्छायं पताकाभिरलङ्कृतम्॥१४॥
गारुडं च ध्वजं कुर्याद्रक्तचन्दननिर्मितम्। दीर्घनासंस्थूलदेहंकुण्डलाभ्यांविभूषितम्॥१५॥
चञ्च्वग्रदष्टभुजगंसर्वालङ्कारभूषितम्। वितत्य पक्षतीव्योम्निउड्डीयन्तमिवोदितम्॥१६॥
दैत्यदानवसङ्घस्य बलदर्पविनाशनम्। सर्वाङ्गं तस्य कनकैराच्छाद्य परिशोभयेत्॥१७॥

अथवा रथगठनोपयोगी काठ यदि अपने ही स्थान पर मिल जाये तब यथोक्त संस्कार विधान से अग्निस्थापना करके उसी काठ का संस्कार कर लिया जाये। इससे पहले विघ्नविनाशार्थ विघ्नराज गणेश का उत्सव करके तब रथ गठन करें। भगवान् जगन्नाथ के रथ में लौहमय दृढ़ १६ चक्र, १६ अरकाष्ठ तथा अक्ष एवं कूबर मजबूती से लगाये। इसके चतुर्दिक् विचित्र रूप से गठित काष्ठपुत्तलिका समूह तथा मध्य में वेदी बनाये। यह वेदी समुन्नत हो तथापि विचित्र मण्डल से सुशोभित हो। उस पर चार संख्यक सुन्दर तोरण हो तथा चार मनोहर द्वार बने हों। वह नाना प्रकार की कारीगरी से विभूषित हो। उसे हेमपट्ट से मण्डित करें। उसकी ऊंचाई बाईस हाथ हो तथा पताका-मालाओं से उसे सजाया गया हो। उसे रक्तचन्दन काष्ठ से निर्मित गरुड़ध्वज लगा हो। उक्त गरुड़ की देह स्थूल हो तथा नासिका दीर्घ हो कर्णद्वय कुण्डल विभूषित हों तथा सर्वाङ्ग नानाविध, अलंकार से अलंकृत करना होगा तथा उनकी चोंच में सर्प दबा हो। उनके दोनों पंखों को देखकर यह बोध होता हो कि दोनों पंखों को फैलाकर वह आसमान में उड़ रहे हैं। दैत्य-दानवगण के बलदर्प का हरण करने वाले इन गरुड़देव का सर्वशरीर सुवर्ण से मण्डित करके शोभित करना चाहिये।।१०-१७।।

रथमेवं हरेः कुर्यात्स्वासनं सुपरिष्कृतम्। चतुर्दशरथाङ्गैस्तं रथं कुर्याच्च सीरिणः॥१८॥
चक्रैर्द्वादशभिःकुर्यात्सुभद्रायारथोत्तमम्। सप्तच्छदमयं कुर्यात्सीरिणोलाङ्गलध्वजम्॥१९॥
देव्याः पद्मध्वजं कुर्यात्पद्मकाष्ठविनिर्मितम्। विरचय्य रथान्राजाप्रतिष्ठां पूर्ववच्चरेत्॥२०॥
यथामन्त्रं यथाशास्त्रंविश्वसेद्ब्राह्मणेषु च। ब्राह्मणाजगदीशस्यजङ्गमास्तनवःस्मृताः॥२१॥
इत्थं सुघटितं चक्रित्रयं देवत्रयस्यवै। आषाढस्य सिते पक्षे दिने विष्णोःशुभप्रदे॥२२॥
प्रतिष्ठाप्य समृद्धेनविधिनापूर्ववद्द्विजाः। रक्षणीयंतथातत्र नाऽऽरोहेत्कश्चनाऽशुभः॥२३॥
पक्षी वा मानुषो वाऽपि मार्जारनकुलादयः। ततो दिनत्रयादर्वाग्रथानामुत्तरे कृते॥२४॥
मण्डपे उत्सवाङ्गे वाप्रकुयादङ्कुरार्पणम्। अद्भुतेष्वथ जातेषु शान्तिं कुर्यात्पुरोदिताम्॥२५॥

इस प्रकार से भगवान् हरि का रथ निर्मित करना चाहिये। वह सुन्दरता से परिष्कृत हो तथा उसके अन्दर भगवान् के अवस्थानार्थ सुन्दर आसन शोभायमान हो। बलभद्र देव का रथ १४ चक्रों (पहियों) वाला तथा सुभद्रा देवी का रथ १२ चक्र वाला बने। बलदेव का सप्तच्छदयुक्त हलध्वज हो तथा सुभद्रा का रथ पद्मकाष्ठ निर्मित पद्मध्वज हो। नृपति इस प्रकार तीन रथ बनाये तथा पूर्ववत् मन्त्र तथा विधानानुरूप प्रतिष्ठा करें।

उक्त समस्त कार्य में ब्राह्मणगण के प्रति राजा का विश्वास स्थापित रहना चाहिये, क्योंकि ब्राह्मणगण जगदीश्वर की जंगम देह होते हैं। हे द्विजगण! आषाढ़मासीय शुक्लपक्ष में विष्णु को प्रीतिप्रद शुभदिन में पूर्ववत् महासमारोह से उक्त देवत्रय हेतु गठित रथत्रय की प्रतिष्ठा करके उस पर मनुष्य-पक्षी-मार्जार-नकुल आदि किंवा किसी अशुभ प्राणी को आरोहण नहीं करने देना चाहिये। इस तरह से उस रथ की रक्षा करें। तीन दिन जब व्यतीत हो जाये तब उन रथत्रय के उत्तर में पूर्व में बने मण्डप में रथयात्रारूपी महोत्सव के अंगकार्य अंकुरार्पण को करना चाहिये। इस बीच यदि कोई आधिदेविकादि विचित्र घटना (अपशकुन आदि) वहां घटित हो, तब पूर्वोक्त प्रकार से शान्ति कार्य करना होगा।।१८-२५।।

रथ्यासुसंस्कृताकार्यामहावेदींतथाव्रजेत्। पार्श्वयोर्मण्डलंकुर्यात्पथिगुल्मादिभिःफलैः॥२६॥
सुमनःस्तबकैर्माल्यैर्दुकूलैश्चामरैस्तथा। यथा सुपुष्पिताऽरण्यराजी तत्र विराजते॥२७॥
भूमिः समा च कार्या वै निष्पङ्का सुखचारणा।
निर्मला च सुगन्धा च सुदूराद्वर्जितोत्करा॥२८॥
धूपपात्राण्यनुपदं दिशांमोदकराणि च। चन्दनाम्भः परिक्षेपो यन्त्रपातोत्करस्तथा॥२९॥
बहूनि ऋतुपुष्पाणि पुष्पवृष्ट्यर्थमेव हि। नटनर्त्तकमुख्याश्च गायना बहवस्तथा॥३०॥
वेश्या यौवनगर्वाढ्या रूपाऽलङ्कारभूषिताः। मृदङ्गाः पणवाश्चैव भेरीढक्कादयस्तथा॥३१॥
बहवो बहुधा तत्र पताकाश्चित्रितान्तराः। ध्वजाश्च बहवस्तत्र स्वर्णराजतनिर्मिताः॥३२॥
वैजयन्त्यो बहुविधाभूमिगावाहनास्तथा। हस्तिनश्चहयाश्चैवसुसन्नद्धाःस्वलङ्कृताः॥३३॥

भगवान् रथारोहण हेतु जिस मार्ग से महावेदी पर जायें, उस पथ का उत्तम संस्कार करना चाहिये। उस पथ के दोनों ओर उत्तम रूपेण सफाई आदि करें तथा उस पथ के दोनों ओर समस्त तरुगुल्मादि हों। वहां पुष्पस्तवक, माला, दुकुल तथा चामरादि से सुसज्जित मण्डल की इस प्रकार रचना करें जिसे देखकर यह प्रतीत हो कि मानों वहां अरण्य की ही शोभा विराजित है। रथ के जाने हेतु वहां की भूमि सुन्दररूप से समतल करे तथा कीचड़ आदि से रहित, कंकड़ आदि से मुक्त, निर्मल, सदगन्धवाली कोमल मिट्टी हो, जिससे सभी लोग सुखपूर्वक चल सकें। इस मार्ग में प्रत्येक कदम रखने में लोग आमोदित हो जाये, ऐसा सुगन्धिद्रव्यपूर्ण पात्र वहां हो। ऐसा भी यन्त्र हो जो चन्दनमिश्रित जल इधर-उधर छिड़क सके। जगन्नाथ देव के रथ संचालन करते समय पुष्पवृष्टि हेतु स्थान-स्थान पर ऋतुजनित पुष्प हों। उस समय बहुसंख्यक गायक तथा नर्तक नृत्यगीतादि आरंभ करें। सर्वालंकारभूषिता असामान्य लावण्य वाली, यौवनगर्विता रमणियां वहां खड़ी रहें तथा मृदंग-पणव-भेरी-ढक्का आदि वाद्ययन्त्र वहां बजाया जाये। अनेक चित्र-विचित्र पताका वहां लहराती रहे तथा स्वर्ण-रजत निर्मित अनेक ध्वजदण्ड वहां लगे हों। अनेक लम्बमान पताकायें (वैजयन्ती) भूमितल पर लगी हो तथा वह अनेक हाथियों पर भी लगी लहराती रहे। वहां घोड़े भी सुन्दरता से सज्जित तथा अलंकृत हों।।२६-३३।।

एवं सम्भृतसम्भारः क्षितिपालः शुचिव्रतः। मुदा भक्त्या च परया युक्तः कुर्यान्महोत्सवम्।
आषाढस्य सिते पक्षे द्वितीयापुष्यसंयुता। अरुणोदयवेलायां तस्यां देवं प्रपूजयेत्॥३४॥
ब्राह्मणैर्वैष्णवैः सार्द्धं यतिभिश्च तपस्विभिः। विज्ञापयेद्देवदेवंयात्रायैसंस्कृताञ्जलिः॥३५॥

अब राजा नियमतः पवित्रभाव से रहकर महासमारोह के साथ परम भक्तिपूर्वक तथा सानन्दचित्त से भगवान् के रथयात्रारूप महोत्सव को सम्पन्न करें। हे मुनिगण! आषाढ़ामासीय पुष्यनक्षत्रयुता द्वितीया के दिन अरुणोदयकाल में जगन्नाथ देव की सम्यक्तः अर्चना करें। तदनन्तर ब्राह्मण-वैष्णव-यति तथा तपस्वियों के साथ अंजलिबद्ध होकर रथयात्रा हेतु देवदेव से यह प्रार्थना करनी चाहिये।।३४-३५।।

इन्द्रद्युम्नंक्षितिभुजंयथाज्ञासीःपुराविभो। विजयस्वरथेनाऽथ गुण्डिचामण्डपम्प्रति।।३६।।
तवापाङ्गविलोकेन प्रपुनन्तु दिशो दश। निःश्रेयसपदं यान्तु स्थावराणि चराणि च।।३७।।
अवतारः कृतो ह्येष लोकानुग्रहकाम्यया। तदेहि भगवन्प्रात्या चरणं न्यस्य भूतले।।३८।।

यथा—हे प्रभो! आपने पूर्वकाल में राजा इन्द्रद्युम्न को जो आदेश दिया था, मैं तदनुरूप कार्य हेतु उद्यत हो गया हूं। हे नाथ! आपकी जय हो। आप रथ पर आरूढ़ होकर गुण्डीचा मन्दिर चलिये। आपकी कृपादृष्टि से दसों दिशायें पावन हो जायें। समस्त चराचर कल्याणमय मोक्षप्रद प्राप्त करें। हे देव! आपने समस्त लोकों पर अनुग्रहार्थ यह (दारुब्रह्ममय) अवतार ग्रहण किया है। हे प्रभो! आप प्रसन्न होकर इस भूतल पर पग संचार करते हुये आयें।।३६-३८।।

ततः कर्पूरचूर्णैश्च सुमनोभिरवाकिरेत्। पथि शाकुनसूक्तानि प्रपठन्ति द्विजातयः।।३९।।
केचिन्मङ्गलगाथाश्च केचिज्जयजयेति च। जितन्त इति मन्त्रं वै केचिदुच्चैर्जपन्तिच।।४०।।
सूतमागधमुख्याश्चकीर्तिंपुण्यांमुदाजगुः। स्वर्णदण्डप्रकीर्णानांश्रेणीचोभयपार्श्वयोः।।४१।।
लीलयाऽऽन्दोलयन्तिस्मरमत्कङ्कणमञ्जुलम्। स्वर्णपात्रपरिक्षिप्तकृष्णागुरुसुधूपितैः।।४२।।
सुरभीकृतसर्वाशा मुखे व्योमाङ्गणे तथा। चर्चरीझर्झरीवेणीवीणामाधुरिकादयः।।४३।।
शब्दायन्ते सुमधुरं गोविन्दविजयान्तरे।।४४।।
एवं प्रवृत्ते समये कृष्णं रामपुरःसरम्। नयन्ति विप्रा भद्राञ्चक्षत्रियाश्च विशस्तथा।।४५।।
छत्रमाला समुदिता मुक्तास्रक्चीनतोरणा। रत्नध्वजा हेमदण्डाः पार्श्वयोर्मुरवैरिणः।।४६।।
राजा चतुविधावर्णाअन्ये ये च पृथग्जनाः। दीना महान्तश्चतदा समानातत्रभान्तिवै।।४७।।
सलीलचरणन्यासंतूलिकास्तरणेषुतान्। वासयन्तःक्वचिच्छान्तादेवांस्तेरथमन्वियुः।।४८।।

तत्पश्चात् भगवान् को ले जाते समय मार्ग में द्विजातिगण शाकुनसूक्तों का पाठ करते रहें तथा भगवान् के अंग पर कपूर का चूर्ण तथा पुष्पों का वर्षण आरंभ करें। तब कोई मंगल गाथा पढ़ता रहे, कोई जय ध्वनि करता रहे। कोई "जितं ते" इत्यादि मन्त्रों का उच्चस्वर से उच्चारण करता रहे। प्रसिद्धतम सूत मागधगण सानन्द भगवान् की पुण्य कीर्त्ति का गायन करें तथा बहुसंख्यक लोक भगवान् के उभयपार्श्व में स्वर्ण मढ़े दण्डों को उठाये हुये, अपने हाथों में धारण किये गये कंकणों को मधुर तथा मृदुरूप से हिलाकर मधुर ध्वनि करते रहें। इस समय समस्त दिक्मण्डल तथा आकाशमण्डल स्वर्णपात्र में स्थित कृष्णवर्ण के अगुरु की गन्ध से आमोदित होता रहे। भगवान् गोविन्द की विजय हेतु चर्चरी, वेणु, वीणा, मधुरिका आदि वाद्यों का मधुर शब्द भी वहां होता रहे। इस प्रकार महासमारोह के समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यगण एकत्र होकर बलराम-सुभद्रा तथा कृष्ण इस क्रम से उनको रथ के सन्निधान में ले जाये। उस समय भगवान् मुरारी के दोनों ओर ऐसे छत्र को लोग

धारण करें, जिसका अगला भाग रत्नजटित हो, उसका दण्ड स्वर्ण का बना हो तथा चीन देश देशीय आवरण वस्त्र का प्रान्त भाग मुक्तादाम भूषित हो। उस समय वहां राजा, ब्राह्मणादि चारों वर्ण तथा अन्य जातीय, नीच जातीय, व्यक्तिगण, धनी-दरिद्र सभी समान लगते हैं। इन देवत्रय का रथ वहन (खींचने वाले) करने वाले वाहकगण कभी वहन काल में श्रान्त होकर अतिधीर भाव से पगसंचार करते हुये आस्तरणों के ऊपर देवत्रय का रक्षण करते हैं। तदनन्तर थकान दूर होते ही पुनः पूर्ववत् रथ खींचना प्रारंभ कर देते हैं।।३९-४८।।

महोत्सवंसमासाद्यगीतकोलाहलानि च। करे कृत्वा जगन्नाथं भ्रामयित्वारथोत्तमम्।।४९।।
रामं कृष्णं सुभद्राञ्च रथमध्ये निवेशयेत्। चारुचन्द्रातपाढ्येन मण्डपेन विराजिते।।५०।।
किङ्किणीमालिकाभिश्च माल्यचामरभूषिते। ससारकृष्णागुरुजधूपपूरितगर्भके।।५१।।
ततस्तान्वासयित्वा तु तूलिकासु सुरोत्तमान्।
भूषयेद्विविधैर्भक्त्या वस्त्रालङ्कारमाल्यकैः।।५२।।
पूजयेदुपचारैस्तैः समृद्धैर्भक्तिभावितैः। नाऽतः परतरं विष्णोर्यात्रान्तरमवेक्ष्यते।।५३।।

तत्पश्चात् रथ के निकट जाकर महोत्सव तथा मंगलगीत आरंभ करके जगन्नाथ देव को हाथ में पकड़ कर रथ की (हाथ में उठाकर) प्रदक्षिणा करके मनोहर चंदोवा से शोभित मण्डल में किंकिणी-माला, माल्य तथा चामर द्वारा युक्त अभ्यन्तर में सारवत् कृष्ण अगुरु प्रभृति की धूप गन्ध से आमोदित रथ में कृष्ण-बलराम तथा सुभद्रादेवी को प्रवेश करायें। तदनन्तर इन तीनों देवगण को रुई के गद्दे से युक्त शय्या के ऊपर रखे तथा भक्तिपूर्वक इनको वस्त्र-अलंकार एवं माला द्वारा यथाविधान भूषित करना चाहिये। भक्तिपूर्ण हृदय से पूर्वोक्त उपचारों से भगवान् की पूजा करनी चाहिये। हे मुनिगण! भगवान् विष्णु के लिये इसकी अपेक्षा उत्तम और कुछ नहीं है।।४९-५३।।

यत्र स्वयं त्रिलोकेशः स्यन्दनेन कुतूहलात्। मानयन्पूर्वमाज्ञां तां वर्षे वर्षे व्रजेदसौ।।५४।।
रथस्थितं व्रजन्तं तं महावेदीमहोत्सवे। ये पश्यन्ति मुदाभक्त्या वासस्तेषांहरेःपदे।।५५।।
सत्यं सत्यंपुनःसत्यंप्रतिजानेद्विजोत्तमाः। नातःश्रेयःपरंविष्णोरुत्सवःशास्त्रसम्मतः।।५६।।
यथारथविहारोऽयंमहावेदीमहोत्सवः। यत्राऽऽगत्यदिवोदेवाःस्वर्गयान्त्यधिकारिण।।५७।।

इसका कारण यह है कि स्वयं त्रिलोकेश्वर भगवान् हरि अपने पूर्वकालीन आदेश के सम्मान की रक्षा हेतु प्रतिवर्ष रथारोहण करके गुण्डीचा मण्डप में परम कुतूहल से जाते हैं। उक्त महादेवी के महोत्सव काल में जो आनन्दित हृदय से भगवान् का रथारोहण देखते हैं, वे निःसन्देह विष्णुलोक में स्थान प्राप्त करते हैं। हे द्विजोत्तमगण! मैं तीन बार प्रतिज्ञा करके कहता हूं कि महादेवी के महोत्सव में जिस प्रकार से यह रथ विहार श्रेयप्रद है, इसकी अपेक्षा उत्तम विष्णुत्सव किसी शास्त्र में परिलक्षित ही नहीं होता। हे मुनिगण! भगवान् मुरारी के इस उत्सव के सम्बन्ध में और अधिक क्या कहें, देवगण स्वर्ग से इस उत्सव में आकर (दीर्घकाल हेतु) स्वर्ग में रहने के अधिकारी हो जाते हैं। इस प्रकार उनको पुनः स्वर्गवास प्राप्त होता है।।५४-५७।।

किं वच्मि तस्य माहात्म्यमुत्सवस्य मुरद्विषः?।
यस्य संकीर्तनात्पापं नश्येज्जन्मशतोद्भवम्।।५८।।

महावेदीं व्रजन्तं तं रथस्थं पुरुषोत्तमम्। बलभद्रं सुभद्राञ्च जन्मकोटिसमुद्भवम्।।५९।।
दृष्ट्वा पापं नाशयति नाऽत्रकार्याविचारणा। रथच्छायांसमाक्रम्य ब्रह्महत्यांव्यपोहति।।६०।।
तद्रेणुसंसक्तवपुस्त्रिविधां पापसंहतिम्। नाशयेत्स्वर्गगङ्गायां स्नानजं फलमाप्नुयात्।।६१।।

हे मुनिगण! भगवान् मुरारी के इस उत्सव माहात्म्य के सम्बन्ध में अधिक क्या कहा जाये! इस उत्सव का नाम कीर्त्तन करने से भी सौ जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। महावेदी में गमनकाल में रथस्थ पुरुषोत्तम-बलदेव-सुभद्रा का दर्शन पाकर मानव कोटिजन्मकृत पापराशि का नाश कर देता है। इसमें तनिक भी विचार न करें। भगवान् के रथ की छाया का स्पर्श करने मात्र से ब्रह्महत्या पाप दूर हो जाता है। रथ की धूल देह में लगने मात्र से तीनों प्रकार के पापपुंज नष्ट प्रायः हो जाते हैं। अधिक क्या कहें, स्वर्ग गंगाजल में स्नान का जो फल है, वह फल यहां प्राप्त होता है।।५८-६१।।

घनाम्बुवृष्टियोगेन रथमार्गे तु पङ्किले। दिव्यदृष्ट्याच कृष्णस्य समस्तमलहारिणि।।६२।।
तत्रयेप्रणिपातांस्तुकुर्वते वैष्णवोत्तमाः। अनादिव्यूढपङ्कांस्तेहित्वा मोक्षमवाप्नुयुः।।६३।।
गवां कोटिप्रदानस्य कन्यानामयुतस्य च। वाजिमेधसहस्रस्य फलम्प्राप्नोत्यसंशयः।।६४।।
अनुगच्छन्तिकृष्णं ये यात्राकौतूहलादपि। अनुव्रजन्ति नित्यम्वै देवाःशक्रपुरोगमाः।।६५।।

रथ पथ पर यदि घोर वर्षा हो जाये तथा वह पंकिल (कीचड़युक्त) हो जाये तथापि भगवान् के दृष्टिपात के कारण वही पथ अन्तर्मल नाशक हैं। इसमें सन्देह नहीं है। अतएव जो सब वैष्णव इस पंकिल पथ पर मस्तक रखकर भगवान् को प्रणाम करते हैं, वे अपनी असीम पापराशि का नाश करके मोक्षगामी हो जाते हैं। किम्बहुना वे करोड़ों गोदान, १०००० कन्यादान तथा १००० अश्वमेध यज्ञ का फल पाते हैं। इसमें तनिक सन्देह नहीं है। जिनमें प्रकृत भक्ति नहीं है, जो केवल यात्रा कौतुक देखने हेतु रथारूढ़ कृष्ण का अनुगमन करते हैं, उनके पीछे-पीछे भी इन्द्रादि देवगण चलते हैं।।६२-६५।।

पश्यन्ति ये रथं यान्तं दारुब्रह्मसनातनम्। पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं तेषां प्रकीर्तितम्।।६६।।
वेदैःस्तुवन्तिवेदानांवक्तारोमोक्षदायिनम्। इतिहासपुराणाद्यैःस्तोत्रैर्वाऽपिस्वयंकृतैः।।६७।।
स्तुवन्तिपुण्डरीकाक्षंयेवै विगतकल्मषाः। वैष्णवंयोगमास्थाय मोदन्तेनारदादिभिः।।६८।।
कुर्वन्ति वासुदेवाऽग्रेजयशब्देनवास्तुतिम्। ते वै जयन्तिपापानिविविधानिनसंशयः।।६९।।
लयतालानभिज्ञोऽपि गीतमाधुर्यवर्जितः। नर्त्तनं कुरुते वाऽपि गायत्यथ नरोत्तमः।
वैष्णवोत्तमसंसर्गान्मुक्तिं प्राप्नोत्यसंशयः।।७०।।

मनीषीगण कहते हैं कि जो लोग दारुमय सनातन ब्रह्म को रथ पर बैठ कर जाते देखते हैं, उनको पग-पग पर अश्वमेध यज्ञफल प्राप्त होता है। इस समय जो वेदवादी ब्राह्मण वैदिक स्तोत्रों से मोक्षप्रद भगवान् की स्तुति करते हैं तथा अन्य सब व्यक्ति जो इतिहास-पुराणों में कहे गये स्तोत्र से किंवा स्वरचित स्तव से भगवान् पुण्डरीकाक्ष की स्तुति करते हैं, वे लोग निष्पाप होकर वैष्णव योग प्राप्त करके नारदादि महर्षिगण के साथ नित्यानन्द का उपभोग करते हैं। जो वासुदेव के सामने खड़े होकर जय-जय शब्द से ही स्तुति करते हैं, उन्होंने तो निःसंदिग्ध रूप से तीनों प्रकार के पापों पर विजय पा लिया! जो व्यक्ति ताल-लय तथा संगीतमाधुर्य रहित

होने पर भी जगन्नाथदेव के समक्ष नृत्यगीत करते हैं, वे पुण्यात्मा लोग साधु वैष्णवों के संसर्ग से मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।।६६-७०।।

नामानि कीर्तयन्नस्य तेन याति सहैव यः। अनुव्रज्यात्तत्फलम्वै प्राप्नोत्यत्रनसंशयः।।७१।।
जय कृष्ण जय कृष्ण जय कृष्णेति यो वदेत्। गुण्डिचानगरं यान्तं कृष्णं भक्तिसमन्वितः।
न मातृगर्भवासस्य स च दुःखमवाप्नुयात्।।७२।।
चामरैर्व्यजनैः पुष्पस्तबकैर्नीलचोलकैः। रथस्याऽग्रस्थितोयोवैवीजयेत्पुरुषोत्तमम्।।७३।।
स वीज्यमानोऽप्सरोभिर्गन्धर्वैरुपशोभितः। अनुव्रजद्भिस्त्रिदशैर्महेन्द्रासनसंस्थितः।।७४।।
भुनक्तिभोगानतुलान्यावदाभूतसम्प्लवम्। तदन्तेच ब्रह्मलोकं प्राप्यमुक्तिमवाप्नुयात्।।७५।।

जो व्यक्ति भगवन्नाम कीर्त्तन करते-करते उनके रथ के साथ चलता है तथा भक्तिपूर्वक जयकृष्ण! जय कृष्ण! कहता है, वह पुनः जननी का गर्भवास कष्ट नहीं सहता। जो व्यक्ति भगवान् के रथ के आगे स्थित होकर चावर झलता है, पुष्पस्तवक अथवा नील चोलक द्वारा पुरुषोत्तम को पंखा झलता है, वह अप्सराओं से शोभित होकर अनुगामी देवगण के साथ स्वर्ग जाकर देवराज के आधे आसन पर बैठ जाता है। वह वहां कल्पान्तपर्यन्त विविध भोग्यवस्तु के उपभोग के पश्चात् ब्रह्मलोक जाकर मुक्त हो जाता है।।७१-७५।।

कृष्णस्य पुरतो ये वै पुष्पवृष्टिं प्रकुर्वते। ते वै मनोगतान्सर्वान्प्राप्नुवन्तिमनोरथान्।।७६।।
सहस्रनामभिः पुण्यैः पर्यटन्ति रथं तु ये। तेषां प्रदक्षिणं कुर्युस्त्रिदशानतकन्धराः।।७७।।
वसन्ति वैकुण्ठगृहे विष्णुतुल्यपराक्रमाः।।७८।।
तस्मिन्काले महापुण्ये देवर्षिपितृसेविते। एकं ब्रह्म त्रिधाभूतं माययाऽनुगतंस्वया।।७९।।
साक्षाद्दारुस्वरूपेण महावेदी महोत्सवम्।।८०।।
रथारूढःकौतुकवान्यत्रयातिजगत्प्रभुः। तस्मिन्कालेपृथिव्यां तु चरेत्तत्रमहोत्सवम्।।८१।।

भगवान् कृष्ण के सम्मुख जो पुष्पवर्षा करते हैं, वे मनोगत सभी अभीष्ट कामना को प्राप्त कर लेते हैं। जो भगवान् के पवित्र सहस्रनाम का पाठ करते-करते उनके रथ के साथ गमन करते हैं, देवता उस व्यक्ति की अनवरत प्रदक्षिणा करते हैं। वे परिणामतः विष्णु के सामन महान् पराक्रमी होकर वैकुण्ठधाम में निवास करते हैं। हे मुनिगण! देवर्षि तथा पितृगण सेवित महान्पुण्य जनक रथयात्रा के समय एकमात्र ब्रह्म ही अपनी मायाशक्ति द्वारा त्रिमूर्त्ति में विराजित रहते हैं। जगत्प्रभु भगवान् कौतुक के साथ रथारूढ़ होकर उस समय महावेदी महोत्सव में गमन करते हैं, उसी समय पृथिवी में स्थित उस स्थान में भगवान् की प्रीति हेतु राजा को महोत्सव करना चाहिये। यह राजा का कर्त्तव्य है।।७६-८१।।

देवा अप्युत्सवेतस्मिन्पुरुहूतपुरोगमाः। अभिमानम्परित्यज्य श्रेणीभूताहिपार्श्वयोः।।८२।।
प्रकर्वते महायात्रां तैस्तैर्दिव्यैः परिच्छदैः।।८३।।
तेषामग्रेसरस्तत्र देवोऽपि प्रपितामहः। चतुर्दशानां जगतां कर्ता यः परमेश्वरः।।८४।।
सोऽपि तत्र जगन्नाथं रथेयान्तंमहोत्सवे। ब्रह्मलोकात्परावृत्य स्तुवन्वेदमयैःस्तवैः।
पदे पदे प्रणमतिः भगवन्तं सनातनम्।।८५।।

इस उत्सव काल में इन्द्रादि देवता भी अपना अभिमान त्याग कर अपना-अपना दिव्य परिच्छेद पहनकर भगवान् के उभय पार्श्व में श्रेणीबद्ध होकर रथ के साथ-साथ गुण्डीचा मन्दिर जाते हैं। जो चौदहों भुवन कर्त्ता तथा परमेश्वर हैं, वे देवदेव ब्रह्मा भी ब्रह्मलोक से आकर देवगण के आगे-आगे रथारोहण महोत्सव में भगवान् सनातन जगन्नाथ देव का वैदिक स्तवों द्वारा स्तव करते-करते कदम-कदम पर प्रणाम करते चलते हैं।।८२-८५।।

यद्यप्यब्जनिधेः कृष्णान्न भेदोऽस्ति तथाऽप्ययम्।
महोत्सवस्य महिमा यत्र सर्वेऽनुयायिनः।।८६।।
नाऽतः परतरो लोके महावेदीमहोत्सवात्। सर्वपापहरो योगः सर्वतीर्थफलप्रदः।।८७।।
कृष्णमुद्दिश्य यस्तत्र दानं ददति वैष्णवाः। यत्किञ्चिदक्षयफलं मेरुदानेन तत्समम्।।८८।।
तस्याऽग्रे देवदेवस्य व्रजतो गुण्डिचालयम्। यत्किञ्चित्कुरुते कर्म तत्तदक्षयमश्नुते।।८९।।
उपायनानि नाना वै भक्ष्यभोज्यानिवैव हि। समर्पयन्तिदेवाय तत्प्रीत्यैवाद्विजन्मने।
तेषामक्षयपुण्यानि सर्वकामप्रदानि च।।९०।।
हरेरग्रेसरा ये वै पश्यन्तस्तन्मुखाम्बुजम्। पदे पदे नमन्तश्च पङ्कधूलिपरिप्लुताः।।९१।।
विहाय पापकवचमभेद्यं कोटिजन्मभिः।
क्षणान्मुक्तिफलम्प्राप्य यान्ति विष्णोः शुभालयम्।।९२।।

यद्यपि कृष्ण तथा ब्रह्मदेव में कोई भेद नहीं है, तथापि जिस महोत्सव में सभी प्राणी भगवान् के अनुगामी होते हैं, वे महोत्सव की यह महिमा जानते हैं। वास्तव में जगत् में महादेवी के महोत्सव की अपेक्षा सर्वपापनाशक, सर्वतीर्थ फलप्रद उत्कृष्टतम शुभयोग और नहीं है। इस समय जो भी विष्णुभक्त मानव हैं, वे विष्णु के उद्देश्य से जो भी वस्तु दान करते हैं वह यत्किंचित् होने पर भी मानो मेरुदान के समान अक्षय फलप्रद हो जाता है। फलतः गुण्डीचामण्डप में जाते समय देवदेव जगन्नाथ देव के निकट जो भी सत्कार्य किया जाता है, वह सब अक्षय पुण्य-प्रदान करता है। मुनष्य इस समय नाना प्रकार के उपटोकन द्रव्य अनेक भक्ष्य-भोज्य जगन्नाथ देव को अर्पित करे तथा उनकी प्रसन्नता हेतु किसी ब्राह्मण को समर्पित कर दे। इससे वह व्यक्ति अक्षय पुण्य तथा अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करता है। जो हरि के रथ के आगे अग्रसर होने पर उनका मुखपंकज दर्शन करते हुये प्रत्येक कदम पर उनको प्रणाम करते-करते रथ के मार्ग के कीचड़ तथा धूलि से परिप्लुत हो जाते हैं, वे कोटि-कोटि जन्मों के दुःश्छेद्य पाप कवच को उतार कर सभी यज्ञानुष्ठान, सर्वतीर्थ स्नान तथा सर्वविध दानफल प्राप्त करते हैं। वे अत्यल्प काल में ही मोक्षाधिकारी होकर विष्णु का परमपद प्राप्त करते हैं।।८६-९२।।

सर्वक्रतूनां तीर्थानां दानानां यान्तिते फलम्। भगवद्भक्तिभावानांनातःपुण्यतमोमहः।।९३।।
एवं स भगवान्कृष्णः सुभद्रारामसङ्गतः। व्रजन्स्यन्दनश्रेष्ठस्थो द्योतयंश्च चतुर्दिशः।।९४।।
श्रीमदङ्गोपसृष्टेन मरुता सर्वदेहिनाम्। पापानि नाशयञ्छ्रीमान्दयालुर्भक्तभावनः।।९५।।
अज्ञानामप्यविश्वासभाजांविश्वासहेतवे। निसर्गमुक्तिदोऽप्येष यात्रारम्भान्करोतिवै।।९६।।
व्रजन्समृद्ध्या देवानांमर्त्यानां च जनार्दनः। सूर्ये ललाटंतपति मध्याह्ने मार्गमध्यतः।।९७।।

श्रान्ता कर्षजनस्तस्थौ म्लायन्वैतद्रजोवृतः। तत्रातपस्यशान्त्यर्थंदर्पणेष्वभिषेचयेत्॥९८॥
पञ्चामृतैः शीततोयैः पुष्पकर्पूरवासितैः। चामरैश्च जलार्द्रान्तैः शीतलैर्व्यजनैस्तथा॥९९॥
वीजयेत्पुण्डरीकाक्षं सुभद्रां राममेव च। शीतैश्च पानकैर्हृद्यैस्तथा खण्डविकारकैः॥१००॥
खजूरैर्नारिकेलैश्च नानारम्भाफलैस्तथा। तथा क्षीरविकारैश्च पनसैस्तृणराजकैः॥१०१॥
इक्षुभिः स्वादुहृद्यैश्च फलैर्नानाविधैस्तथा। वासितैः शीततोयैश्च पक्वताम्बूलपत्रकैः॥१०२॥
सकर्पूरलवङ्गाद्यैः पूजयेत्पुरुषोत्तमम्॥१०३॥

समस्त यज्ञ, तीर्थयात्रा, दानादि द्वारा जो फललाभ होता है, वही महापुण्य फल भावपूर्ण भगवद् भक्ति से प्राप्त होता है। श्रीमान् भक्तवत्सल कृपालु भगवान् कृष्ण इसी प्रकार से बलराम तथा सुभद्रा के साथ दशों दिशाओं को उद्भासित करके रथारोहण द्वारा जाते-जाते अपने अंग से स्पृष्ट समीर के संस्पर्श द्वारा समस्त देहीगण के पापपुंज को दूर करते रहते हैं। भगवान् कृष्ण तो स्वभावतः मुक्ति देने वाले हैं, तथापि वे विश्वासरहित जीवगण में विश्वास उत्पादनार्थ रथयात्रादि लीला करते हैं। हे मुनिगण! भगवान् इस प्रकार महासमारोहपूर्वक रथारोहण द्वारा आगे बढ़ते-बढ़ते मध्याह्न काल में जब सूर्यदेव देवगण का, विशेषतः मानवगण का ललाट सन्तप्त करते हैं तथा जब उनके ताप के कारण रथ खींचने वाले लोग नितान्त श्रान्त हो जाते हैं, तब वे प्रभु भी म्लानमुख, धूलधूसरित होकर मार्ग में अचल होकर रुक जाते हैं। इस समय (भगवान् की) उनकी सन्ताप शान्ति हेतु पञ्चामृत तथा पुष्प एवं कर्पूर से सुवासित सुशीतल सलिल द्वारा दर्पण में उनका अभिषेक करना चाहिये तथा चन्दन, कर्पूर से उनके सर्वाङ्ग पर लेप करें। तत्पश्चात् सुगन्धित माल्याभरण युक्त सुशोभन चीन देश का रेशमी वस्त्र, चामर तथा जल से भींगे शीतल पंखे द्वारा जगन्नाथ, बलराम एवं सुभद्रा को पंखा झले। तत्पश्चात् इन तीनों देवताओं को शर्करा, सुमधुर पेय, द्रव्य, खांड़ से बने मिष्ठान्न, खजूर, नारियल, नाना प्रकार के केला, ताल, कटहल, अति मुखप्रिय स्वादुफल गन्ना, दूध से बनी नाना स्वादिष्ट वस्तु, सुवासित शीतल जल एवं कपूर-लवंग आदि एवं ताम्बूल आदि सामग्री से इन देवगण का पूजन यथाशक्ति करें।।९३-१०३।।

तस्मिन्कालेद्विजश्रेष्ठायेपश्यन्तिजनार्दनम्। पूजयन्तियथाशक्तिन ते संसारजंश्रमम्॥१०४॥
प्राप्नुवन्ति द्विजश्रेष्ठा ब्रह्मलोकनिवासिनः॥१०५॥
रथत्रयस्थितं देवत्रयं ये पुरुषर्षभाः। प्रदक्षिणं प्रकुर्वन्ति त्रिश्चतुः सप्त एव वा॥१०६॥
दशप्रमाणान्कृत्वाऽन्ते स्थिताः प्राञ्जलयोऽग्रतः।
पुरा रथस्थितान्ब्रह्मा स्तुतिभिर्याभिरब्जभूः॥१०७॥
तुष्टाव ताभिर्देवेशं स्तुवन्ति परमेश्वरम्। ये नरा ब्रह्मलोकं ते प्रयान्ति नियतंद्विजाः॥१०८॥
ततोऽपराह्ने देवेशं दक्षिणानिलवीजितम्। शनैः शनैर्नयेद्गीतैर्वेणुवीणादिनादितैः॥१०९॥
बन्दिनः स्तुतिपाठैश्च कलैर्मधुरिकास्वनैः। निरन्तरैः पुष्पवर्षैश्चामरान्दोलनैस्तथा॥११०॥

हे द्विजवरगण! जो उस समय इन जनार्दन का दर्शन तथा उनकी यथाशक्ति अर्चना करते हैं, ऐसे सभी प्रशंसनीय मनुष्य पुनः संसार रूपी श्रम के भागी नहीं होते (पुनः जन्म नहीं लेते)। वे ब्रह्मलोक में निवास करते हैं। हे द्विजगण! जो इन तीन देवगण की तीन बार अथवा चार बार किंवा सात बार प्रदक्षिणा करते हैं तथा जो

दस बार प्रणाम करके हाथ जोड़कर भगवान् के समक्ष खड़े होते हैं तथा ब्रह्मा द्वारा पूर्वकाल में किये गये स्तव द्वारा इन परमेश्वर की स्तुति करते हैं, वे पुण्यात्मा मानव देहान्त होने पर निश्चित रूप से ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं। तत्पश्चात् अपराह्नकाल में जब भगवान् के देह में मन्द-मन्द दक्षिण वायु अपना पंखा झले तब उन देवगण का रथ पुनः चालित करें। इस समय गायकगण वेणुवीणावादन के साथ उनके रथ के साथ संगीत करते-करते चलें। वन्दीजन स्तुतिपाठ करते रहें, चतुर्दिक् से भगवान् पर पुष्पवर्षा होती रहे। सुमधुर मधुर ध्वनि हो तथा चामर झला जाता रहे।।१०४-११०।।

एवं व्रजति देवेशेसूर्यश्चास्तंगतोभवेत्। द्वीपिकानां सहस्त्राणि ज्वालितानिसहस्त्रशः।।१११।।
तदालोकप्रकाशेन मार्गशेषश्च नीयते। रथावरोहणेनैषां मण्डपारोहणेन च।।११२।।
सम्मर्दः सुमहांस्तत्र दिदृक्षूणां कुतूहलात्। मण्डपेवासयेद्देवं गुण्डिचाख्ये मनोहरे।।११३।।
चारुचन्द्रातपे चारुमाल्यचामरभूषिते। रत्नस्तम्भमये स्वर्णवेदिकोपस्कृतान्तरे।।११४।।
प्राचीरवलयावीते सुधालेपसमुज्ज्वले। साधुसोपानघटिते चतुर्द्वारोपशोभिते।।११५।।
त्रैलोक्याडम्बरयुते महावेद्यां महाक्रतोः। प्रादुर्भावो महेशस्य यत्राऽभूद्दारुवर्ष्मणः।।११६।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्त-
र्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्येजैमिनिऋषिसम्वादे गुण्डिचायात्रा-
कथनंनाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः।।३३।।

भगवान् के इस प्रकार रथ से जाते-जाते जब सूर्यदेव अस्त हो जायें तब चारों ओर हजारों दीपमाला प्रज्वलित करनी चाहिये। इस दीपमाला के प्रकाश में रथ को आगे ले जाना चाहिये। तदनन्तर देवदेव को रथ से उतारकर मण्डप पर ले जाते समय दर्शनार्थीगण में उनके दर्शनार्थ निरतिशय कौतूहल के कारण होड़ लग जाती है। तदनन्तर गुण्डीचा नामक मनोहर मण्डप में देवदेव को ले जाये। इस मण्डप के आभ्यन्तरिक भाग में ऊपर की ओर मनोहर चन्दोवा रहे तथा चारों ओर मनोहर माल्य तथा चामर सजे हों। उसके स्तम्भों में विविध रत्न जड़े हों। अन्दर स्वर्णवेदी शोभित हो। चतुर्दिक् वह मण्डप प्राचीर (दीवाल) से घिरा हो। वह समस्त स्थान सुधालेप जैसा उज्वल हो। इस मण्डप में सुंदर सिढ़ियां बनी हों। प्रशस्त चार द्वार हों। देखने से बोध हो मानो यहां त्रैलोक्य की सजावट रूपी आडम्बर से युक्त जो महायज्ञ की वेदी है उस पर दारुमय भगवान् आविर्भूत हैं।।१११-११६।।

।।त्रयस्त्रिंश अध्याय समाप्त।।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

रथयात्रा महोत्सव प्रशंसा, श्राद्धविधि वर्णन

जैमिनिरुवाच

अश्वमेधाङ्गसरसो नृसिंहस्य च दक्षिणे। तत्राऽऽसीनश्च भगवान्पुनश्चावतरन्निव॥१॥
बभासे दिव्यरूपोऽसौ दुर्विर्भाव्यः सुरासुरैः। तदा पूजोपहारैश्च भक्ष्यभोज्यादिकैस्तथा॥२॥
पूजयित्वा जगन्नाथं तोषयेद्गीतनृत्यकैः। पुष्पोपहारैर्विविधैः सुगन्धैरनुलेपनैः॥३॥
कृष्णागुरुजधूपैश्च गन्धतैलप्रदीपकैः। तोषयेज्जगतां नाथमनेकैरुपहारकैः॥४॥
बिन्दुतीर्थतटे तस्मिन्सप्ताहानिजनार्दनः। तिष्ठेत्पुरा स्वयं राज्ञे वरमेतत्समादिशत्॥५॥
त्वत्तीर्थतीरे राजेन्द्र! स्थास्यामि प्रतिवत्सरम्।
सर्वतीर्थानि तस्मिंश्च स्थास्यन्ति मयि तिष्ठति॥६॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे मुनिवरगण! पूर्वोक्त अश्वमेधज सरोवर तथा नृसिंहदेव के दक्षिणदिक्वर्त्ती गुण्डीचामण्डप में सुरासुरगण के लिये अचिन्त्यनीय महिमा वाले दिव्यरूपी प्रभु के आसीन होने पर प्रतीत होता है कि वे पुनः मनुष्यदेह में अवतार लेकर यहां विराजित हैं। उस समय भक्ष्य भोज्यादि विविध पूजोपहार जगन्नाथ देव की अर्चना के साथ अर्पित करें तथा नृत्य गीतादि से उनको प्रसन्न करें। विविध पूजोपहार, सुगन्धित अनुलेपन द्रव्य, कृष्ण अगुरु आदि सुगन्धद्रव्ययुक्त धूपावली, सुगन्धित तैल की दीपमाला तथा नाना प्रकार के अन्य उपहार द्रव्यों से उन अखिल जगत् के अधिपति को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिये। इस विन्दु तीर्थ के तट पर जाकर भगवान् जनार्दन वहां पर सात दिन निवास करते हैं। पूर्व में उन्होंने स्वयं राजा इन्द्रदेव को वर प्रदान किया था कि "हे राजेन्द्र! मैं प्रतिवर्ष इस विन्दुतीर्थ के तट पर सात दिन अवस्थान करूंगा तथा मेरे अवस्थान के कारण वहां समस्त तीर्थ निवास करेंगे—"।।१-६।।

तत्रस्नात्वाविधानेनतीर्थेतीर्थौघपावने। सप्ताहं ये प्रपश्यन्ति गुण्डिचामण्डपेस्थितम्॥७॥
मां च रामं सुभद्रांच मत्सायुज्यमवाप्नुयुः। ततस्तस्मिन्महापुण्ये सर्वपापप्रणाशने॥८॥
सर्वतीर्थैकफलदविष्णुप्रीतिकरे शुभे। स्नात्वा सन्तर्प्य विधिवत्पितॄन्देवानतन्द्रितः॥९॥
तटस्थं नरसिंहं तं पूजयित्वा प्रणम्य च। महावेदीं नरो गत्वा कृताशौचाचमक्रियः॥१०॥
पूजयेत्पूर्ववद्विप्राः प्रणमेद्वापि भक्तितः। सप्ताहं यो नरो नारी न सा प्राकृतमानुषी॥११॥
विष्णुसायुज्यमाप्नोति शासनान्मुरवैरिणः। दिवातद्दर्शनं पुण्यं रात्रौ दशगुणंभवेत्॥१२॥

उस समय जो मानव अखिल तीर्थसमूह को पवित्रता प्रदान करने वाले उस तीर्थ में स्नानोपरान्त गुण्डीचामण्डपस्थ मेरा, बलराम तथा सुभद्रा का दर्शन करेंगे, वे मेरा सायुज्य प्राप्त करेंगे। हे विप्रगण! अतः मानव सर्वतीर्थ फलप्रद सर्वपापनाशक, विष्णु प्रीतिकारी महापुण्यदायक इस तीर्थ में स्नान करके अतन्द्रितरूपेण देवता तथा पितृगण के लिये तर्पण करके तीरवर्त्ती नृसिंहदेव की पूजा तथा प्रणाम करें तत्पश्चात् उक्त

गुण्डीचामण्डपरूप महावेदी में जाकर अन्तःशुद्धि के लिये आचमन के अन्त में भक्ति के साथ भगवान् की पूर्ववत् पूजा तथा प्रणाम करें। पुरुष-नारी जो कोई भी एक सप्ताह यह करेगा, वह प्राकृतिक मनुष्य नहीं रह जायेगा। उसे निश्चय ही विष्णु के आदेशानुसार उन प्रभु का सायुज्य मिलेगा। इनका दिन में दर्शन का जो पुण्य है, रात्रि में उनका दर्शन करने पर उसका दस गुणा पुण्य प्राप्त होता है।।७-१२।।

यत्किञ्चित्क्रियते कर्म सन्निधौ जगदीशितुः।
स्वल्पंवाप्यथवा भूरि कोटिकोटिगुणं भवेत्।।१३।।

तुलापुरुषदानानि महादानानि यो ददेत्। एके प्रदत्ते दानेऽपि सर्वं दत्तं भवेद् द्विजाः।।१४।।
सर्वं मेरुसमं दानं सर्वे व्याससमाद्विजाः। महावेद्यां गते कृष्णे योगोऽयंखलुदुर्लभः।।१५।।

उक्त जगदीश्वर का सन्निधान अल्प हो अथवा अधिक हो, वहां जो कुछ सत्कार्य किया जाता है, वह करोड़ों गुना अधिक पुण्यप्रद होता है। हे द्विजगण! यदि कोई व्यक्ति असंख्य तुलापुरुषदान किंवा बहुल महादान करता है, उसके लिये जो पुण्य कहा गया है, भगवान् के समक्ष वैसा मात्र एक दान ही उतने दान के बराबर हो जाता है। अधिक क्या कहा जाये? भगवान् श्रीकृष्ण जब महावेदी पर जाते हैं, तब वहां जो कुछ प्रदान किया जाता है, वह सब मेरुपर्वत इतना विशाल फलप्रद हो जाता है। वहां जितने ब्राह्मण उपस्थित रहते हैं, वे सभी वेदव्यास के समान हो जाते हैं। इसीलिये महावेदी पर भगवान् की अवस्थिति रूपी महायोग अत्यन्त दुर्लभ है।।१३-१५।।

अर्द्धोदयादिका योगाः स्कन्देन परिभाषिताः।
महावेद्याख्ययोगस्य कला नार्हन्ति षोडशीम्।।१६।।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि पितॄणां कार्यमुत्तमम्। यावज्जीवंगयाश्राद्धैरलभ्यम्भुवियत्फलम्।।१७।।

दिविस्था नरकस्था वा तिर्यग्योनिगतास्तथा।
तथा मनुष्यजातिस्थाः सर्वे पितृपितामहाः।।१८।।
शतं पुरुषविख्याता यं वाञ्छति सुतैः कृतम्।
तं वो विधिं प्रवक्ष्यामि श्रृणुध्वं मुनयो वरम्।।१९।।

मघा वै पितृनक्षत्रं पितॄणां प्रीतिदं परम्। तत्र श्राद्धं तु प्रीणातिदत्तंपुत्रैर्मुदान्वितैः।।२०।।

भगवान् स्कन्द ने अर्द्धोदयादि जिन योगों का वर्णन किया था, वह उक्त महावेदी नामक योग का $\frac{१}{१६}$ भी नहीं है। हे मुनिगण! समस्त जीवनपर्यन्त पुनः पुनः अनेक गंगास्नान से भी इसका फल दुर्लभ कहा गया है। इसलिये मैं पितृगणों को प्रीतिकर अत्युत्तम कार्य के सम्बन्ध में कहता हूं। सुने। स्वर्गस्थ अथवा नरकस्थ, किंवा तिर्यक् योनिगत अथवा मनुष्य लोकस्थ सौ पीढ़ी पूर्व तक के समस्त पितर, पितामहादि भी पुत्रों द्वारा अनुष्ठित तथा विहित इस श्राद्ध की कामना करते हैं। अब मैं आप लोगों से इस विषय में कहता हूं। पितृदैवत् मघा नक्षत्र ही पितरों हेतु परम प्रीतिकारक है। अतः पुत्रगण आनन्दपूर्वक इस नक्षत्रयुक्त दिवस पर जो श्राद्ध करते हैं, वे पितरों में अतिशय प्रसन्नता का उत्पादन कर देते हैं।।१६-२०।।

पञ्चमीचतिथिःश्रेष्ठाश्राद्धेऽभ्युदयकारिणी। उभयोर्यदिसंयोगोमहापुण्यतमातिथिः।।२१।।

यस्यां श्राद्धे कृतेपुत्रैःपितृणामुद्धृतिर्भवेत्। सर्वतीर्थमयेतस्मिन्सन्निधौमुरवैरिणः॥२२॥
श्राद्धं चेच्छ्रद्धया कुर्यान्नीलकण्ठनृसिंहयोः। मध्ये मेध्यतमे देशे योगे परमदुर्लभे॥२३॥
पुरुषाञ्छतमुद्धृत्य ब्रह्मलोके महीयते। प्रशस्यः कुतपः कालो मन्दीभूतदिवाकरः॥२४॥
पितृनुद्दिश्य वा दद्यादशक्तः कनकं शुचिः।
तर्पयित्वा तिलैः सम्यक्पैतृकीं प्रीति मुत्तमाम्॥२५॥

पंचमी तिथि अत्यन्त उत्तम है। यह श्राद्धकार्य हेतु प्रशस्त है। यह श्राद्ध के सम्बन्ध में अभ्युदयप्रदा है। इसीलिये यदि मघा नक्षत्र पंचमी के साथ हो तथा दोनों का संयोगसाधन हो गया हो—तब यह तिथि महापुण्यप्रदा हो जाती है। भगवान् मुरारी के सान्निधान में इस सर्वतीर्थमय स्थान में उक्त मघानक्षत्र युक्त पंचमी तिथि के दिन पुत्र-श्राद्ध करने से पितरों का उद्धार हो जाता है। यदि मानव वहां महादेव तथा नृसिंहदेव के मध्यवाले स्थान में परम दुर्लभ उक्त मघा पञ्चमी योग में श्रद्धा के साथ श्राद्ध करते हैं, तब वे अपने पहले वाली १०० पीढ़ी का उद्धार करके स्वयं भी देहावसान काल में ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं तथा वहां गौरवपूर्ण निवास करते हैं। इस अष्टम मुहूर्त्तरूप कुतुप काल में दिवाकर की प्रखरता अपेक्षाकृत शून्य सी हो जाती है, उसे ही श्राद्धारम्भ का उत्तम काल जानें। यदि उक्त योग में मनुष्य यथाविधि श्राद्ध न कर सके, तब पवित्र होकर पितरों के उद्देश्य से मात्र चना दान करें। अथवा तिल से तर्पण करके पितृगण को परम प्रसन्न करें।।२१-२५।।

अथवा भोजयेद्विप्रान्भोज्यमूल्यानि वा ददेत्।
एकस्मै वा गुणवतेसहस्त्रंभोजनंददेत्॥२६॥
गुणागुणविवेकस्तुनाऽत्रयोगे विधीयते। तस्मिन्सुदुर्लभे योगेसर्वेमुनिसमाद्विजाः॥२७॥
आषाढस्य सिते पक्षे पञ्चमी पितृदैवतम्। नक्षत्रं जगदीशस्य महावेदीसमागमः॥२८॥
एते यदा त्रयः स्युश्चेदिन्द्रद्युम्नसरोवरे। चतुष्पादः स्मृतो योगः पितृणामक्षयप्रदः॥२९॥
पितृकार्ये न सीदन्ति निरूप्य श्राद्धमत्र वै। श्रृणुध्वमन्यद्विप्रा वैप्रसङ्गाच्चब्रवीमिवः॥३०॥

अथवा पितरों को प्रसन्न करने के लिये विप्रगण को भोजन कराये अथवा भोजन का मूल्य प्रदान करें। अथवा अनेक ब्राह्मणों का समावेश न होने पर मात्र एक विद्याविनय सम्पन्न गुणसम्पन्न ब्राह्मण को प्रभूत भोज्यवस्तु देनी चाहिये। इस योगकाल में ब्राह्मणों की गुणागुण विवेचना का विधान नहीं है। उक्त सुदुर्लभ योग में समस्त द्विजगण ही मुनिगण के समान होते हैं। आषाढ़ मास की शुक्लापञ्चमी तिथि का दिन, मघानक्षत्र का काल तथा भगवान् का महावेदी में समागम, ये तीनों उक्त योग के त्रिपादरूप हैं। इस योगत्रिपाद के साथ यदि इन्द्रद्युम्न सरोवर भी प्राप्त जो जाये तब इसे पूर्ण चतुष्पाद योग कहते हैं। यह पूर्ण योग पितरों को मोक्ष प्रदान करता है। जो इस योग में श्राद्ध करता है उसे पितृकार्य हेतु कदापि अवसन्न नहीं होना पड़ता। हे विप्रों! प्रसंगक्रमेण अब आपलोगों से अन्य श्राद्ध का वर्णन करता हूं।।२६-३०।।

नभस्यदर्शे यः कुर्याच्चतुर्ष्वपि युगादिषु। श्राद्धं पितृन्समुद्दिश्याऽश्वमेधाङ्गसम्भवे॥३१॥
गयाश्राद्धसहस्त्रस्य श्रद्धया विहितस्य वै।
फलं यद्धिसमंत्वस्यनात्रकार्याविचारणा॥३२॥
दानं होमो जपश्चापि सर्वपापापनोदनः। दिनानि सप्त यान्यत्र कृष्णे वसतिमण्डपे॥३३॥

एकस्मादुत्तरं श्रेयो यत्तस्मादुत्तरोत्तरम्।
आषाढशुक्लतृतीयायां प्रातः स्नानं समाचरेत्॥३४॥
इन्द्रद्युम्नतटे देशे नृसिंहक्षेत्र उत्तमे। व्रतमेतत्तु गृह्णीयात्सङ्कल्प्य विधिवन्नरः॥३५॥
वनजागरणं नाम भगवत्प्रीतिवर्द्धनम्। सर्वपापप्रशमनं सर्वव्रतफलप्रदम्॥३६॥
दिनानि सप्त मौनीस्यात्कृतत्रिषवणक्रियः। कुम्भेचपूजयेद्देवंत्रिसन्ध्यंभक्तिभावितः॥३७॥
गोघृतेनाऽथ तैलेन तिलजेनपप्रदीपयेत्। अहर्निशं हरेरग्रे रक्षेत्तं यत्नतो व्रती॥३८॥
दिवा दिवा वसेन्मौनी रात्रौ रात्रौ च जागृयात्।
मन्त्रं भागवतं जप्यान्नित्यकृत्यान्तरे व्रती॥३९॥
उपवासपरो भूत्वा सप्ताहानि नयेद्व्रती। अष्टमे प्रातरुत्थाय प्रतिष्ठां कारयेद्दिने॥४०॥

भाद्रमासीय अमावस्या के दिन तथा युगाद्य दिन चतुष्टय के दिन जो व्यक्ति अश्वमेधाङ्ग उस सरोवर के तट पर पितरों हेतु श्राद्ध करता है, उसे गयाक्षेत्र में सहस्र श्राद्ध करने का फल मिलता है। इसमें अधिक विचार का प्रयोजन नहीं है। भगवान् कृष्ण जिन सात दिनों तक गुण्डीचा मण्डप में रहते हैं, उन सात दिन तक वहां दान, होम तथा जपादि करने से वह अखिल पातकों से मुक्त हो जाता है। इन सात दिनों में क्रमशः पहले दिन से आगे के दिन का पुण्यकार्य अधिक श्रेयप्रद होता जाता है। (इस योग में श्राद्ध करके मानव को पितृकार्य हेतु कभी अवसन्न नहीं होना पड़ता) अर्थात् मानव उक्त आषाढ़ शुक्ला द्वितीया के दिन प्रातः मौनी रहकर स्नान करें तथा इन्द्रद्युम्न सरोवर के तीर पर स्थित नृसिंहक्षेत्र का यथाविधि संकल्प के साथ अखिल पाप को शान्त करने वाले, सभी व्रतों में फलदायक, भगवान् को प्रसन्नता देने वाले इस वन जाकर व्रत का अनुष्ठान करें। इसमें सात दिन मौनी रहनां, तीनों सन्ध्या में स्नान तथा तीनों सन्ध्या में भक्तिपूर्ण चित्त से भगवत् पूजन करें। उक्त व्रतावलम्बी व्रती व्यक्ति इन सात दिन तक हरि के समक्ष अहर्निश गव्यघृत अथवा तिल तैल का प्रदीप जलाकर रखना होगा। यत्नपूर्वक उसकी रक्षा करनी होगी। उक्त व्रताचरण के समय प्रत्येक दिन के समय मौन रहे। रात्रि जागरण करें। नित्यकृत्य सम्पन्न करके भागवत मन्त्र जप करना विहित है। उक्त व्रतावलम्बी मानव को उपवासी रहकर व्रत परायण रहे। आठवें दिन प्रातः वह व्रती उठे और उक्त व्रत को यथाविधि प्रतिष्ठा करें।।३१-४०।।

तस्मिन्नेवतीर्थवरेस्नात्वाऽऽगत्यगृहं पुनः। मण्डले सर्वतोभद्रे पूर्वे कुम्भं निवेशयेत्॥४१॥
तत्राऽऽवाह्यहृषीकेशंपूजयेदुपचारकैः। तस्य पश्चिमदेशे च स्थण्डिले विधिसंस्कृते॥४२॥
अग्निं प्रणीय गृह्योक्तविधिना ब्राह्मणावृतः। अग्निकार्यंप्रकुर्वीतसमिदाज्यचरूंस्तथा॥४३॥
सहस्रं जुहुयादग्नौ प्रत्येकं वा शतं शतम्।
गायत्री वैष्णवी या वै तया होमविधिः स्मृतः॥४४॥
सम्प्राश्यदक्षिणांदद्याद्धेनुंवस्त्रंहिरण्यकम्। विप्रांश्चभोजयेदन्तेप्रीतयेविश्वसाक्षिणः॥४५॥
व्रतराजमिमं कृत्वाविधिनाऽनेन भोद्विजाः। चतुर्वर्गानवाप्नोतियोयःकामानभीप्सति॥४६॥
नारी वा श्रद्धया युक्ता कुर्याद्वेदीमहोत्सवम्।
साऽपि तत्फलमाप्नोति या कुर्याद्व्रतमुत्तमम्॥४७॥

यात्राकर्तुः फलं यादृग्व्रतकर्तुश्च तत्फलम्। भवतेवैद्विजश्रेष्ठाःकथितंवोमुदान्विताः॥४८॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतो-
त्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनऋषिसम्वादे रथयात्रामहोत्सव-
प्रशंसानामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः।।३४।।

तत्पश्चात् इस तीर्थ के सरोवर में अवगाहन करके पुनः गृह में आकर सर्वतोभद्रमण्डल में घट स्थापित करें। उस घट पर भगवान् हृषीकेश का आवाहन करके यथोक्त उपचारों से पूजा करें। तत्पश्चात् किसी ब्राह्मण व्रती व्यक्ति द्वारा यथाविधि संस्कृत स्थण्डिल पर गृहोक्त विधान से अग्नि स्थापन करके अग्नि कार्य (होम) करें। इस होमकार्य में प्रज्वलित अग्नि में १००० अथवा १०० समिध्, घृत तथा चरु की आहुति देनी चाहिये। इस होम हेतु वैष्णवी गायत्री ही विहित हैं। व्रत समापन के समय ब्राह्मण को गृह, वस्त्र तथा स्वर्ण दक्षिणा प्रदान करें। तदनन्तर विश्वसाक्षी भगवान् को प्रसन्न करने के लिये ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। हे द्विजगण! इस विधान द्वारा उक्त उत्कृष्ट व्रत करें। उस व्रती की इच्छित कामना सिद्ध होगी। यहां तक कि उसे चतुर्वर्ग मिलेगा। हे मुनिगण! यदि राजा के अतिरिक्त भी अन्य पुरुष श्रद्धायुक्त होकर पूर्वोक्त वेदी महोत्सव करते हैं, तब उनको भी वही फल मिलेगा, जो राजा को मिलता है। हे द्विजश्रेष्ठगण! रथयात्रा कालीन जो फल पहले कहा है, वैसा ही फल इस व्रतकर्त्ता को भी मिलेगा। यह वृत्तान्त मैंने आपसे आनन्दपूर्वक कहा है।।४१-४८।।

।।चतुस्त्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

भागवत रथ रथाविधान

जैमिनिरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि रथरक्षाकरं विधिम्। भूतप्रेतादयो घोरा दारुणान्यद्भुतानि च॥१॥
न बाधन्ते रथान्येन मुनयो यश्चयन्मतम्। प्रत्यहंपूजयेद्देवान्कृष्णादीन्ध्वजसंस्थितान्॥२॥
गन्धपुष्पाक्षतैर्माल्यैरुपहारैरनुत्तमैः। गीतनृत्तादिकैश्चैव धूपदीपनिवेदनैः॥३॥
दिक्पालेभ्योबलिंदद्यात्पायसान्नेनचान्वहम्। भूतप्रेतपिशाचेभ्योदद्याच्चबलिमुत्तमम्॥४॥
रथेच्च यत्नतस्तान्वै रथानारोहणोचितान्। यथा न कश्चिदारोहेन्नरो ग्राम्यपशुस्तथा।
पक्षिणश्च विशेषेण येषां वासो न शोभनः॥५॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे मुनिगण! भगवान् के रथारोहण की जैसे रक्षा करनी चाहिये, अब उस

सम्बन्ध में कहता हूं, सुनें। भीषण भूत-प्रेतादि तथा आकस्मिक दारुण घटना होने पर भी रथ का अनिष्ट न हो, आप लोगों से ऐसे विधान के विषय में कहता हूं। प्रतिदिन अपने-अपने ध्वज स्थित कृष्ण-बलभद्र-सुभद्रा की पूजा गन्ध, पुष्प, अक्षत, माला, धूपदीपादि उत्तमोत्तम उपचारों से नृत्यगीतादि से पूजा करें। नित्य दिक्पालों को पायसान्न आदि नाना प्रकार की बलि प्रदान करें। भूत-प्रेत-पिशाचादि हेतु उनकी प्रियबली देनी चाहिये। इस प्रकार से श्रीकृष्ण आदि के रथत्रय भी इस प्रकार से रक्षा करनी होगी कि कोई मनुष्य अथवा ग्राम्यपशु उस पर न चढ़े तथा जिनका उस पर बैठना अशुभसूचक है, वे पक्षी उस पर न बैठ सकें, यह यत्न करना चाहियें। उस पर ग्राम्यपशु न बैठे तथा उस पर पक्षियों का घोंसला न बने। वह अशुभ है।।१-५।।

अष्टमेऽह्नि पुनः कृत्वा दक्षिणाभिमुखान्रथान्। विभूषयेद्वस्त्रमाल्यपताकैश्चामरादिभिः॥६॥
नवम्यां वासयेद्देवांस्तेषु प्रातः समृद्धिमत्॥७॥
दक्षिणाभिमुखा यात्राविष्णोरेषा सुदुर्लभा। यात्राप्रयत्नतःसाहिभक्तिश्रद्धासमन्वितैः॥८॥
यथापूर्वा तथा चेयं द्वे च मुक्तिप्रदायिके। यात्राप्रवेशौ देवस्य एक एवोत्सवोमतः॥९॥
पुराविदो वदन्त्येतां यात्रांनवदिनात्मिकाम्। एषात्र्यवयवायात्रासम्पूर्णायैरुपासिता॥१०॥
सुसम्पूर्णफलस्तेषां महावेदीमहोत्सवः॥११॥
गुण्डिचामण्डपात्कृष्णमायान्तं दक्षिणामुखम्।
रथस्थं बलिनं भद्रां पश्यन्तो मुक्तिभागिनः॥१२॥
उत्तराभिमुखान्दृष्ट्वालभन्तेयादृशंफलम्। रामादीन्स्यन्दनस्थान्येपश्यन्त्येवंमहोदयान्।
यादृशं फलमाप्नुयुस्तादृशं दक्षिणामुखान्॥१३॥

तदनन्तर आठवें दिन रथत्रय को पुनः दक्षिणाभिमुखी करके वस्त्र, माल्य, पताका तथा चामर आदि से सजाये। नवमी के दिन तीनों रथों पर इन तीनों देवताओं को स्थापित करें। भगवान् विष्णु की दक्षिणाभिमुखी यात्रा अतीव दुर्लभ है। मनुष्य भक्ति-श्रद्धा युक्त होकर अतिशय यत्नपूर्वक यात्रा को सम्पन्न करे। यह यात्रा तीन अंगों वाली हैं। पूर्व यात्रा पहला अंग है। गुण्डीचामण्डप में अवस्थान द्वितीय अंग है। पुनर्यात्रा इसका तीसरा अंग कहा गया है। इस कारण जो इस यात्रा के अंगत्रय को सम्पूर्णतः सम्पन्न करते हैं, वे महावेदी-महोत्सव का पूर्ण फल प्राप्त करते हैं। पूर्व यात्रा तथा पुनर्यात्रा मुक्तिदायक है। भगवान् के अपने मंदिर से महावेदी तक की यात्रा तथा वहां से पुनः उनका अपने मन्दिर में प्रवेश, ये दोनों कार्य एक ही उत्सव हैं। तभी पण्डितगण भगवान् की रथयात्रा को नवदिनात्मक कहते हैं। रथारूढ़ जगन्नाथ, बलराम तथा सुभद्रा को गुण्डीचामण्डप से दक्षिणाभिमुखीन आते देखने वाला भी मुक्त हो जाता है। जो बलराम आदि के अश्वस्थान का भी दर्शन करता है, उसे भी दक्षिणाभिमुखीन प्रभु के दर्शन ऐसा ही फल होता है।।६-१३।।

पदा यान्तं रथे यान्तं यःपश्येद्दक्षिणामुखम्। तस्य जन्मकृतार्थंस्याद्वाजिमेधःपदेपदे॥१४॥
स्तुतिभिः प्रणिपातैश्च पुष्पवृष्टिभिरेव च। नानानृत्तोपहारैश्च व्यजनच्छत्रचामरैः।
उपायनैर्बहुविधैरुपतिष्ठेद्रथाग्रतः॥१५॥
नीलाचलं समायान्तं रथस्थं दक्षिणामुखम्। येपश्यन्तिहृषीकेशंसुभद्रांलाङ्गलायुधम्॥१६॥

कामकल्पतरुं पुंसां दर्शनादेव मुक्तिदम्। ते व्रजन्ति महात्मानो वैकुण्ठभवनं हरेः॥१७॥
रथेन विचरन्तं तं सिन्धुतीरे जनार्दनम्।
पश्यन्तं करुणापाङ्गैः प्रणतान्पुरतो नरान्॥१८॥
दक्षिणाभिमुखं यान्तं प्रासादं नीलभूधरे। सर्वतीर्थनिधिं सर्वदानकल्पतरुं हरिम्॥१९॥
स्तुवन्तः प्रणमन्तश्च श्रद्दधानाश्च ये नराः। न तेपुनरिहायान्तिब्रह्मलोकस्थिताध्रुवम्॥२०॥

हे तपस्वीगण! किम्बहुना, जो व्यक्ति पैदल चलते हुये भगवान् को रथारूढ़ होकर दक्षिणाभिमुखीन जाते देखता है, उसका जन्म सार्थक है। वह प्रत्येक पगसंचार में अश्वमेध यज्ञफल लाभ करता है। इस समय रथ की ओर मुख करके खड़ा हो तथा विविध स्तुति, पुनः पुनः प्रणाम, बारम्बार पुष्पवृष्टि, नाना नृत्य तथा उपहारदान, पंखा चामर झलने आदि द्वारा तथा छत्र धारण एवं नाना उपटोकन प्रदान करके भगवान् की सेवा करे। यह सबका कर्त्तव्य होना चाहिये। जो मानवगण सबके लिये कल्पवृक्ष के समान, दर्शनमात्र में मुक्ति दाता भगवान् हृषीकेश, हलायुध बलभद्र तथा सुभद्रा को रथाधिष्ठित होकर दक्षिणाभिमुखीन यात्रा करते देखते हैं, वे ही यथार्थ महात्मा हैं। वे निश्चित रूप से हरि के प्रियस्थल वैकुण्ठगमन करेंगे। हे ऋषिगण! यह निश्चित है कि सर्वतीर्थों के आधार, सब कुछ देने वाले कल्पतरुरूप भगवान् जनार्दन जब सिन्धुतीर पर विचरण करते हैं तथा अपने सामने प्रणत मानवों को कृपादृष्टि से देखते हुये दक्षिणाभिमुखीन होकर नीलाचलस्थ देवालय प्रासाद में जाते हैं, उस समय, जो मानवगण श्रद्धायुक्त होकर उनको प्रणाम करते तथा स्तुति करते हैं, उनको पुनः संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता। वे निःसंदेह ब्रह्मलोक में निवास करते हैं।।१४-२०।।

मुनयः कथितो वोऽयं महावेदीमहोत्सवः। यस्य सङ्कीर्त्तनादेव निर्मलो जायतेनरः॥२१॥
यश्चेदं कीर्तयेन्नित्यं प्रातरुत्थाय मानवः। शृणुयादपि बुद्धिस्थः शक्रलोकं व्रजेदसौ॥२२॥
प्रत्यर्चारूपमपि वा रथमास्थाप्य योहरेः। कुर्याद्यात्रामिमां श्रद्धाभक्तिभावेनमानवः॥२३॥
सोऽपि विष्णोः प्रसादेन गुण्डिचोत्सवजं फलम्।
प्राप्य वैकुण्ठभवनं याति नाऽत्र विचारणा॥२४॥
पश्यश्रीर्यावतीविप्राभक्तिर्वाश्रद्धयान्विता। तावतीयंमहायात्रायो यथाकर्तुमिच्छति॥२५॥
इदं पवित्रं परमं रहस्यं वेधसोदितम्। कारयित्वाऽथवा दृष्ट्वा यन्नरोनाऽवसीदति॥२६॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे नवाह्निकयात्रायांरथरक्षाविधानंनामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः।।३५।।

—***—
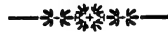
हे मुनिगण! जिनके नाम कीर्त्तन मात्र से मानव पापरहित हो जाते हैं, मैंने आपलोगों से उस महावेदी महोत्सव का वर्णन कर दिया। जो मानव नित्य प्रातः शय्या से उठकर एकाग्रतापूर्वक महावेदी-महोत्सव का कीर्त्तन तथा श्रवण करते हैं, उनको इन्द्रलोक प्राप्त होता है। जो श्रद्धाभक्ति युक्त होकर भगवान् हरि की अन्य प्रकार की प्रतिमा को रथ पर बैठाकर रथयात्रा करते हैं, वे भी भगवत् कृपा द्वारा गुण्डीचा मण्डपोत्सव सम्पन्न

करने वाला फललाभ करते हैं तथा सर्वान्त में वैकुण्ठधाम प्राप्त कर लेते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे विप्रगण! जिसके पास जैसी भी सम्पत्ति अथवा जितनी भी श्रद्धा-भक्ति है, उसके लिये उसी तारतम्य से महायात्रा करना उचित है। हे द्विजगण! यात्रानुष्ठान तथा दर्शन द्वारा मानव को संसार दुःख से अवसन्न नहीं होना पड़ता। पूर्वकाल में ब्रह्मा ने ही भगवान् के रथयात्रारूप परमपवित्र रहस्य को व्यक्त किया था।।२१-२६।।

।।पञ्चत्रिंश अध्याय समाप्त।।

षट्त्रिंशोऽध्यायः

भगवत् शयनोत्सव वर्णन, चातुर्मास्यव्रत वर्णन

जैमिनिरुवाच

अतः परम्प्रवक्ष्यामिशयनोत्सवमुत्तमम्। आषाढीमवधिं कृत्वा हरेः स्वापस्तुकर्कटे।
वार्षिकांश्चतुरो मासान्यावत्स्यात्कार्त्तिकी द्विजाः!।।१।।
अयं पुण्यतमः कालो हरेराराधनम्प्रति।।२।।
काश्यां बहुयुगं वासान्नियमव्रतसंस्थितेः। फलं यदुक्तं तद्विद्यात्क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे।।३।।
चातुर्मास्यदिनैकेन वसतःसन्निधौः हरेः। वार्षिकाणांचतुर्णां तु यान्यहानिवसन्नयेत्।।४।।
पुण्यक्षेत्रे जगन्नाथसनिधौ निर्मलान्तरे। प्रत्यक्षं वाजिमेधस्य सहस्त्रस्यलभेत्फलम्।।५।।

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे विप्रगण! अब भगवान् हरि के अत्युत्तम शयनोत्सव का वर्णन सुने। जब सूर्य के कर्क राशि में गमनकाल में आषाढ़ी एकादशी हो, तब जब तक कार्त्तिक मास की एकादशी न आ जाये, तब तक प्रतिवर्ष चार मास तक भगवान् निद्रित रहते हैं। हरि के आराधनार्थ यह चार मास अत्युत्तम पुण्यप्रद कहा गया है। अनेक व्रतनियमों के साथ काशीधाम में रहने का जो फल कहा गया है, श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र के हरि के धाम में चातुर्मास के एक दिन मात्र निवास करने पर वही फल प्राप्त होता है। जो मानव निर्मल अन्तःकरण द्वारा पुण्यतम पुरुषोत्तम क्षेत्र में जगन्नाथ देव के निकट उक्त चतुर्मास काल में जितने दिन रहता है, उसे प्रतिदिन १००० अश्वमेध यज्ञफल की प्राप्ति होती है।।१-५।।

स्नात्वा सिन्धुजले पुण्ये दृष्ट्वा श्रीपुरुषोत्तमम्। चातुर्मास्यव्रतेतिष्ठन्नशोचतिकुतश्चन।।६।।
चातुर्मास्ये निवसति क्षेत्रेश्रीपुरुषोत्तमे। साक्षाद्दृष्टिर्भगवतस्तद्द्वयं मुक्तिसाधनम्।।७।।
तस्मात्सर्वाणि सन्त्यज्य श्रौतस्मार्त्तानि मानवः। प्रयत्नान्निवसेत्पुण्ये क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे।।८।।
भोगिभोगासने सुप्तश्चातुर्मास्येषु वै प्रभुः। सर्वक्षेत्रेषुसान्निध्यंनकरोति जगद्गुरुः।।९।।
अत्र साक्षान्निवसति यथा वैकुण्ठवेश्मनि। द्वादशस्वपि मासेषु भगवानत्र मूर्तिमान्।।१०।।

मुक्तिदश्चक्षुषा दृष्टश्चातुर्मास्ये विशेषतः। अष्टमासनिवासेन दृष्ट्वा विष्णुं दिने दिने॥११॥
यदाप्नोति फलं तद्धि चातुर्मास्यदिनैकतः। चातुर्मास्यनिवासेन क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे॥१२॥
दिनं दिनं महापुण्यं सर्वक्षेद्रनिवासजम्। फलं ददाति भगवान्क्षेत्रे वर्षनिवासतः॥१३॥

इस समय नित्य सिन्धुजल में स्नान तथा पुरुषोत्तम देव का दर्शन करने पर व्यक्ति किसी भी कारण से शोकग्रस्त नहीं होता। हे मुनिगण! अधिक क्या कहूं? पुरुषोत्तम क्षेत्र में चातुर्मास व्रताचरण करके वास करने वाले पर प्रभु की साक्षात् दृष्टि पड़ती है। क्योंकि भगवान् को भक्तिसाधन भगवान् का ही रूप है। इसलिये श्रुति-स्मृति विहित अन्य सभी कार्य को छोड़कर मानव यत्नतः पवित्र पुरुषोत्तम क्षेत्र में निवास करे। सर्वनियन्ता हरि इन चार मास में अनंतशय्या पर शायित रहते हैं। अतः समस्त पुण्यक्षेत्रों में उनका सान्निध्य नहीं मिलता, लेकिन मूर्त्तिमान भगवान् वैकुण्ठलोक की तरह केवल इस पुरुषोत्तम क्षेत्र में बारहों मास समभाव से विराजमान रहते हैं। अन्य काल की तुलना में उक्त चतुर्मास काल में वे अपने नेत्रों से दृष्टिगोचर होने के कारण निःसंदिग्ध रूप से तथा विशेष रूप से मुक्तिदाता हो जाते हैं। अन्य आठ मास में पुरुषोत्तम क्षेत्र में रहते प्रतिदिन विष्णुदर्शन करने से मनुष्य को जो फल मिलता है, चातुर्मास काल में पुरुषोत्तम क्षेत्र में मात्र एक दिन विष्णुदर्शन का वही फल है। जो चातुर्मास पर्यन्त इस क्षेत्र में निवास करता है, उसे अन्त में भगवत् सायुज्य की प्राप्ति होती है। वह सर्वदुःखरहित होकर स्थित रहता है। जो एक वर्ष पर्यन्त व्रताचरणपूर्वक इस क्षेत्र में निवास करता है, स्वयं भगवान् उसे समस्त पुण्यक्षेत्रनिवासरूप महाफल प्रदान करते हैं।।६-१३।।

सर्वपापप्रसक्तोऽपि सर्वाऽऽचारच्युतोऽपि च। सर्वधर्मबहिर्भूतो निवसेत्पुरुषोत्तमे॥१४॥
चातुर्मास्यमथैकं यः कुर्याद्वै पापकृन्नरः। विहाय सर्वपापानि बहिरन्तश्च निर्मलः।
नरसिंहप्रसादेन वैकुण्ठभवनं व्रजेत्॥१५॥
तस्मान्नरः सर्वभावैर्विष्णोःशयनभावितान्। वार्षिकांश्चतुरोमासान्निवसेत्पुरुषोत्तमे॥१६॥
कुर्यादन्यन्न वा कुर्याज्जन्मसाफल्यमृच्छति॥१७॥
आषाढशुक्लैकादश्यां कुर्यात्स्वापमाहोत्सवम्। मण्डपं रचयेत्तत्र शयनागारमुत्तमम्॥१८॥

यहां एक वर्ष पर्यन्त निवास करने वाला तथा व्रताचारी व्यक्ति निरतिशय पापी होने पर भी समस्त पापपुंजों से मुक्त होकर वाह्य एवं अन्तःशुद्धि प्राप्त कर लेता है। वह अन्त में नृसिंहदेव की कृपा से वैकुण्ठगामी हो जाता है। तभी मैं कहता हूं कि भगवान् अपने शयन द्वारा जिस चार मास को पावन बनाते हैं, उस चार मास में मनुष्य सर्वतोभावेन पुरुषोत्तम क्षेत्र में निवास करें। यही विहित है। हे तपोधनगण! जो व्यक्ति मानव जन्म को सफल करना चाहता है, वह अन्य कोई सत्कर्म करे अथवा न करें, वह पुरुषोत्तम क्षेत्र में आषाढ़ शुक्ला एकादशी के दिन भगवत् शयन महोत्सव अवश्य करे। वह मण्डप तथा उत्तम शयनागार उसमें बनवाये।।१४-१८।।

देवस्य पुरतःशय्यांरत्नपल्यङ्किकोपरि। स्वास्तीर्यसोपधानांतु मृदुचीनोत्तरच्छदाम्॥१९॥

इस महोत्सव को जगन्नाथ देव के सामने वाले स्थल पर करना चाहिये। पहले एक मण्डप निर्माण करके उसमें भगवान् के उत्तम शयनागार की रचना करें। उस शयनागार में रत्नपर्यंक के ऊपर कोमल उत्तम चीन के रेशम वस्त्र का आच्छादन विछाये।।१९।।

कर्पूरधूलिविक्षिप्तांसाधुचन्द्रातपांशुभाम्। सर्वतोवेष्टितांछिद्ररहितां चन्दनोक्षिताम्॥२०॥
साधुद्वारां समां स्निग्धां नानाचित्रोपशोभिताम्।
एकं स्वापगृहं कृत्वा निशीथे प्रतिमात्रयम्॥२१॥
सौवर्णं राजतं वाऽपि रीतिजं दार्षदंतथा। यथाश्रद्धं प्रकुर्वीत प्रशस्तं चोत्तरोत्तरम्॥२२॥
तत्त्रयाणां सुराणाम्वैपादमूले यथातथम्। निधाय पूजयेद्देवांस्तच्छेषंतेषुनिक्षिपेत्॥२३॥
पूजान्ते भावयेदैक्यं तेषां कृष्णादिभिःसह। एह्येहिभगवन्देव सर्वलोकैकजीवन!॥२४॥
स्वापार्थंचतुरो मासान्सर्वकल्याणवृद्धये। इतिसम्प्रार्थ्यदेवेशांस्तदंगात्तत्स्त्रजांत्रयम्॥२५॥

चीन देश के वस्त्र को चादर की तरह उत्तम रूप से शय्या पर बिछाकर उस पर कर्पूर चूर्ण छिड़कें। पलंग के ऊर्ध्व में मनोहर चंदोवा लगाये तथा चतुर्दिक् मनोहर सूक्ष्म वस्त्र द्वारा घेर कर उस आवरण वस्त्र को चन्दन लिप्त करें। वह आवरण (मसहरी) द्वारयुक्त हो। इस प्रकार की शुभ शय्या समतल, स्निग्ध तथा नाना प्रकार के चित्रकार्य से सुसज्जित होनी चाहिये। हे मुनिगण! ऐसा शयनागार बनाकर रात्रि में अपनी श्रद्धा के अनुरूप स्वर्णमय-रजतमय, पीतलमय अथवा काष्ठमय तीन प्रतिमा निर्मित करायें। इनमें से अंतिम वाली प्रतिमा से उसके पूर्व वाली प्रतिमा क्रमशः उत्तम मानी जाती हैं। तब देवशयनी एकादशी के दिन (मूल रूप से पहले वाली) जगन्नाथ, बलराम तथा सुभद्रा—इन देवत्रय के पैरों के पास इन तीनों प्रतिमा को रखकर इनकी अर्चना यथायोग्य करें तथा इन प्रतिमात्रय को पूजा में बचे द्रव्य को अर्पित करें। इस प्रकार श्रीकृष्ण-बलराम तथा सुभद्रा की पूर्व प्रतिमा के साथ इन तीनों प्रतिमा की अभेदभावना करके यह प्रार्थना करें। "हे जगत्‌बन्धु! जगन्नाथ! आपही जगत् के रक्षक हैं। आपकी जय हो। आप ही समस्त लोकों के अद्वितीय जीवन हैं। आप जगत् की कल्याण वृद्धि हेतु चार मास शयन करते हैं। आप शयनार्थ आईये। आप आगमन करिये। इस प्रकार से शयनार्थ प्रार्थना के अनन्तर उन देवत्रय (पूर्व वाली मूल तीन प्रतिमा की) के अंग की मालायें इन प्रतिमाओं पर प्रदान करें।।२०-२५।।

प्रत्यर्चासु विनिक्षिप्य माङ्गल्यस्तुतिगीतिभिः। नयेच्छय्यागृहद्वारं वासयेद्धटिकात्रये॥२६॥
पञ्चामृतैः स्नापयेत्तान्पृथक्पलशताधिकैः।
सुगन्ध चन्दनैर्लिप्तान्वस्त्राऽलङ्करणादिभिः॥२७॥
पूजयित्वा यथान्यायं प्राञ्जलिर्मन्त्रमुच्चरेत्। जगद्वन्द्य! जगन्नाथ! जगत्त्राणपरायण!॥२८॥
हितायजगतामीश चातुर्मास्यान्घनागमान्। सुप्त्वाप्रशमयाऽरिष्टाञ्छक्रेणसहपूजितः॥२९॥
एह्येहि शयनागारं सुखमत्र स्वप प्रभो!। इति सम्प्रार्थ्य देवेशं स्वापयेत्पुरुषोत्तमम्॥३०॥

तदनन्तर मंगलसूचक स्तुति-गीत के साथ उन्हें शय्यागृह के द्वार देश तक ले जायें। तदनन्तर तीन घड़ी तक उनको वहां पीठ पर रखकर प्रत्येक को १०० पल से अधिक पंचामृत से स्नान करना चाहिये। तदनन्तर सुगन्ध चन्दनादि से प्रतिमात्रय के अंग लिप्त करके वस्त्र-अलंकार से उनकी यथाविधि अर्चना के उपरान्त हाथ जोड़कर प्रार्थना करें। यथा—"हे जगत्‌बन्धु! जगन्नाथ! आप जगत् त्राणकर्त्ता हैं। आपकी जय हो। हे ईश्वर! आप जगत् के हितार्थ वर्षा के चार मास शयन करके इन्द्र के साथ पूजित होकर जगत् के अरिष्ट को शान्त करें। हे

प्रभो! अब आप शयनागार में आईये। इस शय्या पर सुख से शयन करिये।'' यह प्रार्थना करके पुरुषोत्तम को सुखपूर्वक निद्रित करायें।।२६-३०।।

सुदृढंबन्धयेद्द्वारं विष्णोः शयनवेश्मनः। स्वापयित्वाजगन्नाथं लभते सुखमुत्तमम्।।३१।।
वार्षिकांश्चतुरोमासान्प्रसुप्ते वै जनार्दने। व्रतैरनेकैर्नियमैर्मासान्वै चतुरः क्षिपेत्।।३२।।
कल्पस्थायीविष्णुलोकेनरोभक्तोभवेद्ध्रुवम्। नियमव्रतानि गदतःशृणुध्वंमुनयो मम।।३३।।
मञ्चखट्वादिशयनं वर्जयेभक्तिमान्नरः। अनृतौ न व्रजेद्भार्यां मासं मधु परौदनम्।।३४।।
पटोलं मूलकं चैव वार्त्ताकं च न भक्षयेत्। अभक्ष्यंवर्जयेद्दूरान्मसूरं सितसर्षपम्।।३५।।
राजमाषान्कुलत्थांश्च आशुधान्यं च सन्त्यजेत्।
शाकं दधि पयो माषाञ्छ्रावणादौ क्रमादिमान्।।३६।।
राजगोपयतींस्त्यक्त्वा नाऽऽरोहेच्चर्मपादुके। वार्षिकांश्चतुरो मासानव्रतेन नयेद्यदि।
तस्य पापस्य शान्त्यर्थं कार्तिके वा व्रती भवेत्।।३७।।
नमः कृष्णाय हरये केशवाय नमोनमः। नमोऽस्तु नारसिंहाय विष्णवे पापजिष्णवे।।३८।।
सायम्प्रातर्दिवामध्ये कर्मान्तेषु च योजयेत्।।३९।।
तस्य पापानि घोराणि चितानिबहुजन्मसु। निर्दहत्येव सर्वाणितूलराशिमिवानलः।।४०।।

तत्पश्चात् विष्णु के शयनागार के द्वार को दृढ़ता से बन्द कर देना चाहिये। मानव इस प्रकार से जगन्नाथ देव को शयन कराने से परमपुण्यलाभ करता है। उक्त वार्षिक चातुर्मास में भगवान् जनार्दन निद्रित रहते हैं। अतः इन चार मासों को विविध व्रतानुष्ठान द्वारा व्यतीत करें। ऐसा करके वह विष्णुभक्त मनुष्य कल्पपर्यन्त विष्णुलोक में निवास करता है। अब इस समय व्रत को कैसे करना चाहिये यह सुनिये। भक्तिमान् मानव चतुर्मास के समय मंच अथवा खाट पर शयन न करें। ऋतुकाल के अतिरिक्त पत्नी समागम न करे। मधु, मांस, दूसरे का अन्न, पटोल, मूली तथा वार्त्ताकु न खाये। मसूर एवं श्वेत सरसों का भी त्याग करे। इस समय ये सभी द्रव्य अभक्ष्य हैं। इस काल में राजमाष, कुलथी, आशुधान्य का भी त्याग करना चाहिये। श्रावण में शाक, भाद्रपद में दही, आश्विन में दुग्ध तथा कार्तिक में माष (उर्द) का वर्जन करें। उक्त चार मास में राजा भी यतिव्रत धारण करे तथा पादुका न पहने। यदि कोई व्यक्ति किसी कारण से चातुर्मास व्रतधारण न कर सके, तब वह व्यक्ति उस पाप की शान्ति हेतु कार्तिक मास में व्रत ग्रहण करे। इस काल (चातुर्मास में) में जो व्यक्ति सायं, प्रातः, मध्याह्न में नित्य कर्त्तव्य सम्पन्न करके ''भगवान् कृष्ण को प्रणाम! केशव को प्रणाम! सर्वपापहारी विष्णु नृसिंह मूर्त्ति को प्रणाम! करता है तथा यही जप करता है, भगवान् जनार्दन उसके अनेक जन्म संचित पापों को उसी प्रकार से दग्ध करते हैं, जैसे प्रज्वलित अग्नि में रुई दग्ध हो जाती है।।३१-४०।।

एकाहारोयताहारोविष्णुनिर्माल्यभोजनः। आषाढीमवधिंकृत्वाकार्तिक्यवधियोभवेत्।
नक्तभोजी भवेद्वाऽपि स्वर्गस्तस्याऽल्पकं फलम्।।४१।।
तैलाभ्यङ्गंदिवास्वापंमृषावादञ्चवर्जयेत्। आषाढशुक्लैकादश्यांसंक्रान्तौकर्कटस्यवा।।४२।।
आषाढ्यां वा नरो भक्त्या गृह्णीयान्नियमम्व्रती। सर्वपापहरं देवं प्रपूज्य मधुसूदनम्।।४३।।

तगग्रे प्रतिसङ्कल्प्य व्रतार्चनजपादिकम्। प्रार्थयेत्परमानन्दं कृताञ्जलिपुटो व्रती॥४४॥

जो व्यक्ति निराहार अथवा मात्र विष्णु निर्माल्य का भक्षण करता है अथवा रात्रि काल में हविष्य भोगी अथवा मात्र रात्रिभोगी, एकाहारी होकर आषाढ़ मास की देवशयनी एकादशी से लेकर कार्त्तिक मास की देवोत्थान एकादशी पर्यन्त पूर्वोक्त विधान से उक्त मन्त्र का जप करता है, उसके लिये तो स्वर्गगमन अत्यन्त साधारण बात है। इस समय तैल मालिश, दिन में सोना तथा झूठ बोलना सर्वथा वर्जित रहना चाहिये।

आषाढ़ मासीय शुक्ला एकादशी, कर्क संक्रान्ति अथवा आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन मानव भक्ति के साथ पूर्वोक्त व्रत ग्रहण करे। संकल्प लेने के पश्चात् अंजलिबद्ध होकर उसे परमानन्दपूर्वक भगवान् से यह प्रार्थना करनी चाहिये।।४१-४४।।

चातुर्मास्यव्रतं देव गृहीतं त्वत्प्रसादतः। तव प्रसादान्निर्विघ्नं सिद्धिमायातु केशव॥४५॥
व्रतेऽस्मिन्नद्यसम्पूर्णे परलोकगतिर्भवेत्। तन्मे भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादादधोक्षज!॥४६॥
इति सम्प्रार्थ्य देवेशं पूर्वोक्तनियमस्थितः। प्रापयेच्चतुरोमासान्विष्णवर्पितमतिर्व्रती॥४७॥
पारणं प्रतिमासान्ते प्रीत्यै कृष्णस्य कारयेत्॥४८॥
मिष्टान्नैर्भोजयेद्विप्रान्पूजयित्वा जगत्पतिम्। असमर्थस्तु कार्तिक्यां पारयेद्व्रतमुत्तमम्॥४९॥

"हे देव! मैंने आपकी कृपा से यह चातुर्मास व्रत ग्रहण किया है। हे केशव! यह आपकी ही कृपा से विघ्नरहित सम्पन्न हो जाये। हे अधोक्षज! यदि इस व्रत के सम्पूर्ण हुये बिना मुझे पारलौकिक गति मिले (मृत्यु हो जाये), तब आपकी कृपा से यह पूर्ण माना जाये।" देवाधिदेव जगन्नाथ से यह प्रार्थना करने के पश्चात् व्रताचारी मानव पूर्वोक्त नियमानुसार भगवान् विष्णु के प्रति समर्पित मन से इस चार मासीय व्रत का पालन करे। प्रत्येक मास के अन्त में श्रीकृष्ण की प्रसन्नता हेतु जगत्पति की अर्चना करके विविध मिष्ठान्न द्वारा विप्रगण को भोजन कराये तथा इस उत्तम व्रत में स्वयं पारण करे।।४५-४९।।

तस्यां पूज्यंजगन्नाथंवह्निस्थंतर्पयेत्ततः। द्विजाग्र्यान्पायसैर्मिष्टैर्विष्णुभक्त्याप्रपूजयेत्॥५०॥
यथाशक्त्या प्रदद्याद्वै कनकं वस्त्रमेव च। अशक्तः कार्तिके मासि व्रतंकुर्यात्पुरोदितम्॥५१॥
व्रतं च विविधं विष्णोः कृच्छ्रचान्द्रायणं तथा॥५२॥
एकान्तरंद्वान्तरंवाकुर्यान्मासोपवासकम्। अनोदनं फलाहारं नक्तव्रतमथाऽपिवा।
यवगोधूमकं कुर्यात्पराकम्वाव्रतं द्विजाः॥५३॥

पूर्वोक्त प्रकार से प्रति मासान्त के पारण में यदि व्रती व्यक्ति अशक्त हो, तब कार्त्तिकी पूर्णिमा के दिन इस व्रत का पारण कर सकता है। इस दिन जगन्नाथ के रथ की पूजा करके घृताहुति द्वारा अग्नि में स्थित जगन्नाथ देव का सन्तोष साधन करे। तदनन्तर पायस एवं मिष्ठान्न द्वारा द्विजप्रवरगण की पूजा उनमें जगन्नाथ की भावना के साथ करनी चाहिये। उनको यथाशक्ति स्वर्ण तथा वस्त्रदान करना आवश्यक है। यदि व्यक्ति चतुर्मास व्रत हेतु अशक्त हो, तब केवल कार्त्तिक मास में ही पूर्वोक्त व्रत का पालन अवश्य करें। विष्णु के लिये अनेक व्रत हैं। यथा कृच्छ्रचान्द्रायण, एकान्तर व्रत अर्थात् एक दिन छोड़कर भोजन, द्वयन्तर (दो दिन छोड़कर भोजन), मासपर्यन्त उपवास, अन्न त्याग, फलाहार, केवल रात्रिभोजन, यव-गोधूम के अतिरिक्त सभी वस्तु का त्याग, पराकव्रत, आदि।।५०-५३।।

पयःपीत्वानयेद्यस्तुशाकाहारेणवापुनः। भुक्त्वाऽत्रविपुलान्भोगान्परंनिर्वाणमृच्छति॥५४॥
तत्राऽपि चेदशक्तः स्याद्भीष्मपञ्चकमुत्तमम्। प्रीतये देवदेवस्य वन्यवृत्तिर्भवेद्व्रती॥५५॥

हे द्विजगण! जो व्यक्ति उक्त चार मास पर्यन्त केवल दुग्धाहार अथवा शाकाहार करके व्यतीत करता है, वह इस जीवन में नाना भोगों को उपभोग करके देहान्तकाल में परम निर्वाण मुक्ति का लाभ करता है। यदि कोई मात्र कार्त्तिक मास में भी व्रत करने में सक्षम नहीं है, तब देवता जगन्नाथ की प्रसन्नता हेतु वह भीष्म पञ्चक के दिन (कर्त्तिकी एकादशी से लेकर पूर्णिमा पर्यन्त) ही पांच दिन व्रताचार करे। वह वन्यवृत्ति का अवलम्बन करे।।५४-५५।।

एतद्व्रतं समाख्यातं भगवत्प्रीतिकारकम्। सर्वपापप्रशमनं विष्णुलोकगतिप्रदम्॥५६॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामप्रसाधनम् (प्रसादनम्)॥५७॥
मुनयः प्रोक्तमेतद्वो रहस्यं श्रृणुताऽपरम्। एतद्व्रतम्वा चान्यानिव्रतानि सुबहूनि च॥५८॥
भगवद्भक्तिहीनानां जानीध्वं विफलानि वै। फलं महाक्रतूनांयत्तीर्थानां फलमुत्तमम्॥५९॥
दानानां तपसांचैवसात्त्विकानांचयत्फलम्। एकयाविष्णुभक्त्यातत्समग्रं फलमश्नुते॥६०॥
ये पश्यन्तिमहात्मानः शयनोत्सवमुत्तमम्। मातुर्गर्भे न स्वपन्तिकारयन्तिचयेमहत्॥६१॥
उत्सवान्ते व्रतं चेदं प्रतिज्ञाय तदग्रतः। पर्याप्तं पारयित्वा तु ब्रह्मलोके महीयते॥६२॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतो-
त्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे भगवतःशयनो-
त्सवविधिवर्णनंनामषट्त्रिंशोऽध्यायः।।३६।।
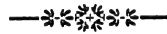
मनीषीगण कहते हैं उक्त व्रताचार से भगवान् सन्तुष्ट हो जाते हैं। अखिल पाप लुप्त हो जाते हैं। दीर्घ आयु लाभ होता है, समस्त कामना पूर्ण हो जाती है। अतः यह अतीव प्रशंसित व्रत है। हे मुनिगण! मैंने आप से इस प्रकार से चातुर्मास्य व्रत कह दिया। अब एक अन्य रहस्य कथा को सुनिये। मैंने यहां जो चातुर्मास्य व्रत का वर्णन किया है, किंवा अनेक बहुतर जो व्रत हैं, वे यदि भगवद् भक्ति से रहित हैं तब उनको विफल ही मानन होगा। समस्त महायज्ञ, सभी तीर्थ, सभी दान, तप तथा अनेक सात्विकी क्रिया का जो फल कहा गया है, वह एकमात्र विष्णुभक्ति के बल से ही प्राप्त हो सकता है। जो महात्मा भगवान् के इस अति उत्तम शयनोत्सव का दर्शन करते हैं अथवा अन्य को भी इसके प्रति प्रेरित करते हैं, उनको पुनः मातृगर्भ में नहीं आना पड़ेगा। हे द्विजगण! भगवान् का शयनोत्सव दर्शन तथा उसके साथ किया जाने वाला व्रत जो यथासमय संकल्प करके सम्पन्न करता है, वह मनुष्य निःसंदिग्ध रूप से ब्रह्मलोक में निवास करके वहां के निवासियों से पूजित होता है।।५६-६२।।

।।षट्त्रिंश अध्याय समाप्त।।

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

दक्षिणायन संक्रान्तिकृत्य तथा श्वेतमाधव उपाख्यान वर्णन

जैमिनिरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामिदक्षिणायनमुत्तमम्। सङ्क्रान्तेःपूर्वकालेयाकला वै विंशतिर्मताः॥१॥
अयनं पुण्यकालोऽयंपुण्यकर्मसुकर्मिणाम्। पञ्चामृतैस्तत्रदेवंस्नापयेत्स्वापवद्द्विजाः॥२॥
सर्वाङ्गं लेपयेदस्यागुरुकर्पूरचन्दनैः। सुगन्धमाल्यालङ्कारैश्चारुवस्त्रैश्च दीपकैः॥३॥
नानाभक्ष्योपहारैश्च पूजयेत्परमेश्वरम्। कर्पूरालतिकामुच्चैर्मुखाभ्याशे हरेर्ददेत्॥४॥
दुर्वाङ्कुराक्षतैर्नीराजनेनाऽथप्रवन्दयेत्। माङ्गल्यगीतनृत्ताद्यैर्नारी हुलुहुलां वदेत्॥५॥
पूजितं पूज्यमानं च यः पश्येत्पुरुषोत्तमम्। पूजाशतगुणं पुण्यं तस्मै दद्याज्जनार्दनः॥६॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे विप्रगण! तदनन्तर अत्युत्तम दक्षिणसंक्रान्ति कृत्य का विषय सुनिये। इस संक्रान्ति का परवर्त्ती बीस दण्डकाल कर्मी लोगों के लिये पुण्यप्रद अनुष्ठान हेतु विहित है। इस समय जगन्नाथ देव को पंचामृत से स्नान कराकर अगुरु-कर्पूर तथा चन्दन से उनके सर्वाङ्ग का लेपन करें। तदनन्तर सुगन्धि माला, अलंकार, मनोहर वस्त्र, दीपमाला तथा भक्ष्य भोज्य प्रभृति उपचारों से उन परमेश्वर की पूजा करनी चाहिये। उक्त पूजा हेतु भगवान् हरि के मुख के पास कर्पूर लिप्त ताम्बूल प्रदान करें। भगवान् का नीराजन अक्षययुक्त दूर्वा से करके उनकी संवर्द्धना करना विहित कहा गया है। वहां मांगल्य गीत-नृत्यादि से नारीगण कोलाहलपूर्ण उत्सव करें। जो व्यक्ति इस समय भगवान् पुरुषोत्तम का पूजित एवं पूज्यमान स्थिति में दर्शन करता है, देव जनार्दन उसे पूजा का सौ गुना फल प्रदान करते हैं।।१-६।।

अयने दक्षिणे तस्मिन्नर्च्यमानंश्रियःपतिम्। विहायसर्वपापानिविष्णुलोकंव्रजन्तिते॥७॥

स्वल्पा वा महती यात्रा सर्वा मुक्तिप्रदा हरेः।
तस्मिंस्तस्मिन्दिते दृष्टो भगवान्मुक्तिदो ध्रुवम्॥८॥
विश्वासहेतोर्मूर्खाणां यात्रा ह्येताः कृपावता।
विष्णुना कथिता विप्राः! पापिनां किल्बिषापहाः॥९॥

आयासजनितं पुण्यं मन्यन्ते ये नराधमाः। लक्ष्मीपतेर्भोजनायसंस्कार्योऽत्रमहानसः॥१०॥
वैष्णवाग्निं समाधाय निरूप्य चरुमुत्तमम्। वैश्वदेवं प्रकुर्वीत भगवत्पाकसाधनम्॥११॥
ब्रह्मणे वास्तुपतये प्रजानाम्पतये तथा। विष्णवेविश्वकर्त्रे चशुच्यग्नौजुहुयाच्छुचिः॥१२॥
राज्ञा नियुक्त आचार्यःश्रौतस्मार्तक्रियापरः। द्वारपालप्रचण्डाभ्यामैशान्यांक्षेत्रपालिने॥१३॥
दक्षिणे च विरूपाय खगानाम्पतयेतथा। दुर्गासरस्वतीभ्यांचनैर्ऋत्यांविनिवेदयेत्॥१४॥

महालक्ष्मीमहेन्द्राभ्यां प्राच्यां दिशि बलिः स्मृतः।
विष्णुपारिषदेभ्योऽथ पशूनाम्पतये तथा॥१५॥

उदीच्यां बलिदानंतुनारदायाऽथपश्चिमे। आग्नेय्यामग्नयेदद्याद्वायव्यांविश्वसाक्षिणे॥१६॥
पञ्चश्वसनरूपेभ्यो विश्वकर्त्रेऽथ मध्यतः। आद्यन्तयोर्जलं दद्यात्प्रत्येकं बलिकर्मणि॥१७॥

हे द्विजगण! अधिक क्या कहा जाये, जो पवित्र तथा तद्गत् चित्त होकर इस दक्षिणायन संक्रान्ति के दिन श्री हरि को अर्चित होते देखते हैं, वे अपनी समस्त पापराशि का त्याग करके विष्णुलोक जाते हैं। हे मुनिगण! भगवान् हरि का सामान्य अथवा महत् उत्सव मुक्तिदायक होता है। इसलिये उन-उन दिनों भगवान् के दर्शन से जो मुक्ति मिलती है, उसमें क्या सन्देह! हे विप्रगण! विष्णु कृपा परवश होकर मूर्खों के विश्वास हेतु पापीगण के सर्वपापनाशक उत्सव का स्वयं वर्णन कर गये हैं। इसका कारण यह है कि नराधमगण कदापि प्रयास से मिलने वाले पुण्य का आदर नहीं करते। हे तपोधन! भगवान् लक्ष्मीपति को भोज्य वस्तु प्रस्तुत करने के पहले पाकशाला की सफाई तथा उसका संस्कार होना चाहिये। तत्पश्चात् राजा द्वारा नियुक्त किये गये स्रौत-स्मार्त्त क्रिया ज्ञाता, पवित्र, पवित्रदेह ज्ञानी आचार्य वैष्णवाग्नि स्थापित करके अत्युत्तम चरु बनाकर भगवान् हरि के पाक साधन वैश्यदेव चरुबलि प्रदान करके ब्रह्मा, वास्तुपति, प्रजापति, विष्णु तथा विश्वकर्त्ता के उद्देश्य से अग्नि में आहुति प्रदान करें। तदनन्तर द्वार पर चण्ड-प्रचण्ड को, ईशान में क्षेत्रपाल को, दक्षिण में विरुप तथा गरुड़ को, नैऋत् में दुर्गा तथा सरस्वती को, पूर्व में महालक्ष्मी तथा महेन्द्र को, उत्तर में विष्णु के पार्षदों को तथा पशुपति, पश्चिम में नारद को, अग्निकोण में अग्नि को, वायुकोण में विश्वसाक्षी को, पंच वायु को, मध्य में विश्वकर्त्ता को बलि देनी चाहिये। प्रत्येक को बलि देते समय जल छिड़कना आवश्यक है।।७-१७।।

दत्त्वा बलिं तदग्नौ तु कारयेत्पाकमुत्तमम्। सन्ध्यात्रये भगवतःपूजायैचरुकारणात्॥१८॥
चरुसंस्कारकाङ्गानिभक्ष्यभोज्यादिकानि वै।
न दीप्तान्योजयेत्तत्रलोकेत्रैवर्णिकोनृपः॥१९॥
आर्यान्पवित्राञ्छूद्रान्वा वर्णांश्च परिसेवकान्।
लौकिकव्यवहारोऽयं पचति श्रीःस्वयं ध्रुवम्॥२०॥
भुङ्क्ते नारायणो नित्यं तयापक्वंशरीरवान्। अमृतंतद्धिनैवेद्यंपापघ्नंमूर्ध्निधारणात्॥२१॥
भक्षणान्मद्यपानादिमहादुरितनाशनम्। आघ्राणान्मानसं पापं दर्शनाद्दृष्टिजं तथा॥२२॥
आस्वादात्तु कृतं पापं श्रावणंचव्यपोहति। स्पर्शनात्त्वक्कृतंपापंमिथ्याभाषणजंतथा॥२३॥
गात्रलेपाद्दहेत्पापं शारीरं वै न संशयः॥२४॥
महापवित्रं हि हरेर्निवेदितं नियोजयेद्यः पितृदेवकर्मसु।
तृप्यन्ति तस्मै पितरः सुरास्तथा प्रयान्ति लोकं मधुसूदनस्य ते॥२५॥

राजा को चाहिये कि तीनों सन्ध्याकाल में भगवान् की पूजा के लिये उक्त प्रकार से अग्नि में चरुबलि प्रदान करके उत्तम रूप से अन्नादि पाक करें तथा चरु निमित्तक संस्कार के सभी अंग सुचारुरूप से सम्पन्न करें। साथ ही प्रत्येक पूजा में प्रभूत भोज्य तथा भक्ष्य पदार्थ निवेदित करें। उक्त पूजाकार्य में जिस प्रकार से परिपाटीरूपेण सम्पन्न हो उसे हेतु राजा ब्राह्मणादि वर्णत्रय को, किंवा तीनों वर्ण की सेवा करने वाले पवित्र शूद्र की नियुक्ति करें। भगवान् के अन्न व्यंजनादि के विषय में यह लौकिक उक्ति है कि इस समय स्वयं देवी लक्ष्मी ही पाक करती हैं तथा स्वयं

मूर्त्तिमान् साक्षात् नारायण नित्य प्रति कमला द्वारा बनाये गये अन्नादि का भोजन करते हैं। हे मुनिगण! यह निश्चय मानो कि भगवान् का यह नैवेद्यान्न अमृतरूप है। उसे मस्तक पर धारण करने से समस्त पापों का नाश हो जाता है। इस नैवेद्य का भक्षण करने से मद्यपान आदि सभी पापों का नाश हो जाता है। हे द्विजगण! इस महाप्रसाद को सूंघने से ही मानस पाप, नैवेद्य दर्शन से दृष्टिपाप, आस्वादन करने से वाक्य के पाप श्रवणेन्द्रिय के (परनिन्दा आदि सुनने से उत्पन्न) पाप, मिथ्या कथन जनित उत्पन्न पाप, स्पर्श करने से स्पर्श जनित पाप, शरीर पर लेपन करने से शरीरज सभी पाप तिरोहित हो जाते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो व्यक्ति देव अथवा पैत्रिक कार्य में भगवान् हरि का यह पवित्र नैवेद्य निवेदित करता है, उसके प्रति देवता तथा पितृगण परम प्रसन्न हो जाते हैं वह व्यक्ति निःसंदिग्ध रूप से देहान्त के उपरान्त वैकुण्ठलोक प्राप्त करता है।।१८-२५।।

नातःपवित्रंवस्त्वस्तिहव्यकव्येषुभोद्विजाः। नराणांरूपमस्यायतदश्नन्तिदिवौकसः॥२६॥
अभिमानो महांस्तत्र देवदेवस्य चक्रिणः। श्वेतोनाम महाराजः पुरात्रेतायुगेऽभवत्॥२७॥

हे द्विजगण! हव्य-कव्य रूप से उसकी तुलना में पवित्र अन्य कुछ भी नहीं है। अधिक क्या कहा जाये, देवता भी मनुष्यरूप धारण करके इस महाप्रसाद का भक्षण करने आते हैं। अतः इस महाप्रसाद के प्रति भगवान् चक्रपाणि को महान् अभिमान है। पूर्वकालीन त्रेतायुग में श्वेत नामक एक राजा था।।२६-२७।।

व्रतस्थोऽपि महाभक्तिं चकार पुरुषोत्तमे। इन्द्रद्युम्नेन रचितभोगमात्रानुसारतः॥२८॥
भोगान्प्रकल्पयामासप्रत्यहंश्रीपतेर्मुदा। भक्ष्यभोज्यान्यनेकानिषड्रसांश्चसुसंस्कृतान्॥२९॥
माल्यानिचविचित्राणिसुगन्धमनुलेपनम्। गीतवादित्रनृत्यानि दिव्यानिसुबहूनिच॥३०॥
राजोपचारा बहुशोऽवसरेऽवसरे हरेः। बहुविनव्ययायासभक्तिभावनिरूपकाः॥३१॥
तत्तद्वैष्णवशास्त्रोक्तचित्रचित्रभोगाःपृथग्विधाः।
कल्पितास्तेनभूपेनविद्वत्पङ्कजभानुना॥३२॥
प्रातः पूजनवेलायां हरिं द्रष्टुं जगाम सः। कस्मिंश्चिद्दिवसेराजापूज्यमानंददर्शतम्॥३३॥
प्रणम्य देवदेवं तु बद्धाञ्जलिपुटोमुदा। प्रासादद्वारनिकटे तस्थिवान्नृपसत्तमः॥३४॥

वह व्रताचरण करने वाला तथा भगवान् पुरुषोत्तम जगन्नाथ के प्रति अतिशय भक्ति करने वाला था। वह नृपश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्न कृत महाभोग प्रणाली के अनुसार नित्य आनन्दित हृदय से सुसंस्कृत षड्रसयुक्त विविध भोज्य-भक्ष्य की व्यवस्था करता था। वह यथोचित सुन्दर अद्भुत माला तथा सुगन्ध लेपद्रव्य अर्पण करने में कोई त्रुटि नहीं करता था। भगवान् हरि की प्रसन्नता के लिये उपयुक्त समय पर अनेक श्रुतिमधुर नृत्य-गीत-वाद्यवादन का आयोजन करता था। इसी के साथ अनेक राजसी उपचारों को भी प्रदान करता था। हे मुनिगण! जिन अत्यन्त धन व्यय वाले तथा प्रयास साध्य नाना प्रकार के उत्तम भोगों का वर्णन प्रधान वैष्णव शास्त्रों में कहा गया है, विद्वान् रूप कमलों को खिलाने वाले सूर्य के समान वह राजा अत्यन्त भक्ति के साथ भगवान् की सेवा के लिये उन सबकी व्यवस्था करता था। एक दिन यह राजा प्रातः पूजा के समय हरि मन्दिर गया तथा देखा कि भगवान् की पूजा हो रही है। तब वह राजा जगन्नाथ देव को प्रणाम करके तथा उनकी स्तुति करने के अनन्तर हाथ जोड़कर भगवत् प्रासाद के द्वारदेश पर खड़ा हो गया।।२८-३४।।

दृष्ट्वा स्वयंविरचितानुपचाराननुत्तमान्। उपायनसहस्त्रं च हरेरग्रे प्रकल्पितम्॥३५॥
चिन्तयामास मनसा किञ्चिद्ध्यानावलम्बितः।
मनुष्यकल्पितं भोगं ग्रहीष्यति हरिः किमु॥३६॥
देवैर्दिव्योपचारैर्यो शक्यतेनाऽर्चनाविधौ। मानसैरुपहारैर्यंपूजयन्ति यतव्रताः॥३७॥
भावदुष्टो बहिर्यागो नमुदे तस्यनिश्चितम्। इत्थंसञ्चितयन्राजादिव्यासनगतंविभुम्॥३८॥
भुञ्जानमन्नपानाढ्यं श्रिया सुपरिवेषितम्। दिव्यस्त्रजालङ्कृतयादिव्यगन्धदुकूलया॥३९॥
अमूल्यरत्नमञ्जीरसिञ्जितेन सुरालयम्। पूरयन्त्यास्वर्णदर्व्या ददत्या सादरं रसान्॥४०॥
भगवत्प्रतिरूपैश्च भुञ्जानैः परिवेष्टितम्। दृष्ट्वा कृतार्थमात्मानं मन्यमानस्तदद्भुतम्॥४१॥
प्रोन्मीलिताक्षः स पुनःप्राग्दृष्टंसमवैक्षत। अतःप्रभृतिराजाऽसौपरांनिर्वृतिमाप्तवान्॥४२॥

तत्पश्चात् वह अपने द्वारा व्यवस्थापित अति उत्तम उपचार समूह को तथा श्रीहरि के समक्ष रखे गये सहस्त्रों उपचारों को देखकर किंचित ध्यानस्थ हो गया। वह सोचने लगा कि देवगण दिव्यातिदिव्य उपचारों से भी जिनकी अर्चना करने में समर्थ नहीं हैं तथा बाह्य उपचार सभी भावदुष्ट होते हैं, वे सभी श्रीहरि को सन्तोष प्रदान नहीं कर सकते। यह सोचकर व्रताचारी मानवगण जिनकी सतत् पूजा मानसोपचार से ही करते हैं, वे भगवान् क्या मनुष्य कल्पित (बनाई गयी) भोग्यवस्तु ग्रहण करेंगे? हे मुनिगण! श्वेतराज निमीलित नेत्रों से यही चिन्तन कर रहे थे। तभी उन्होंने ज्ञानात्मक दृष्टि से अनुभव किया कि भगवान् हरि दिव्यासनासीन होकर उनके द्वारा प्रदत्त समस्त अन्नपानादि का भक्षण कर रहे हैं। भगवती लक्ष्मी अलौकिक सुगन्धित दिव्यवस्त्र तथा दिव्यमाला से शोभित होकर अमूल्य रत्नमय मंजीर ध्वनि से सुरलोक को प्रपूरित करके स्वर्णनिर्मित कलछुल से सादर उस षड्रसों से बने अन्नादि व्यंजन को उन्हें परोस रही हैं। साथ ही भगवान् की सभी प्रतिमूर्त्तियां उनको चारों ओर से घेर कर भोजन कर रही हैं। उन महाराज श्वेत ने यह दृश्य देखकर स्वयं को कृतार्थ माना। वे पुनः-पुनः नेत्र बन्द करके पूर्व में देखे गये इसी दृश्य को बारम्बार देखते जा रहे थे। यह देखकर राजा परम निर्वृत्ति को प्राप्त हो गये।।३५-४२।।

निवेदिताशीर्व्रतवांश्चचार सुमहत्तपः। अकालमृत्युनाशाय स्वराज्ये मृतमुक्तये॥४३॥
मन्त्रराजं जपन्नित्यं श्रितानां कल्पपादपम्। ददर्श शतवर्षान्ते नृहरिं दुरितापहम्॥४४॥
योगासनाब्जनिलयं वामाङ्गावस्थितश्रियम्।
दिव्यालङ्कृतसर्वाङ्गं स्फटिकामलविग्रहम्॥४५॥
त्रिदशैःसिद्धमुक्तैश्चस्तूयमानंस्मिताननम्। भ्रान्तोविस्मयभीतिभ्यांहर्षगद्गदयागिरा।
प्रसीद नाथेति लपन्यपात धरणीतले॥४६॥
तपः कृशं तं प्रणतं दृष्ट्वा मनुजकेसरी। अकल्मषं क्षितिपतिं विवक्षुर्भक्तवत्सलः॥४७॥

वे परम भक्तियुक्त होकर अपने राज्य के लोगों की अकाल मृत्यु का नाश करने के लिये, मृतकों की मृत्युकामना के लिये अनाहार व्रत का अवलम्बन लेकर निरन्तर आश्रित प्राणीगण के लिये कल्पतरुरूप मन्त्रराज का जप करते हुये महान् तपःश्चरण करने लगे। ऐसे शत वर्ष व्यतीत हो जाने पर दुरित का अपहरण करने वाले

नृसिंहदेव का साक्षात्कार उनको प्राप्त हुआ। राजा ने देखा कि वे योगपद्मासनासीन हैं। उनके वामभाग में लक्ष्मीदेवी विराजित हैं। उनका सर्वाङ्ग दिव्य अलंकारों से अलंकृत हैं, उनका निर्मल विग्रह स्फटिक के समान है। उनके मुखमण्डल में ईषत् हास्यरेखा प्रकाशित हो रही है। देवगण सिद्धों के साथ मिलकर उनकी स्तुति कर रहे हैं। श्वेतराज इन नृसिंहदेव का दर्शन करके एक साथ विस्मित तथा भयभीत हो गये। वे उद्‌भ्रान्त चित्त तथा गदगद् वाणी से कहने लगे कि "हे नाथ! आप प्रसन्न हो जायें।" यह कहकर वे धरणी पर गिर पड़े। तब भक्तवत्सल नृसिंह देव ने तप से कृश हो गये निष्पाप श्वेत राज को पृथिवी पर लेटकर प्रणाम करते देखकर कहा।।४३-४७।।

श्रीभगवानुवाच

उत्तिष्ठवत्स! भक्त्यातेप्रसन्नंविद्धिमांप्रभुम्। मयि प्रसन्नेनालभ्यंवरंतत्प्रार्थ्यतांभवान्।।४८।।
श्रुत्वेत्थं भगवद्वाक्यंसमुत्तस्थौ ततोनृपः। बद्धाञ्जलिपुटोनम्रोभक्त्योवाच जनार्दनम्।।४९।।

श्री भगवान् कहते हैं—हे वत्स! उठो! तुम्हारी भक्ति से मैं अतीव सन्तुष्ट हो गया। मेरे प्रसन्न होने पर जगत् में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता। अब तुम इच्छित वर मांगो। भगवान् का यह कथन सुनकर राजा श्वेत उठे तथा विनम्र एवं अंजलिबद्ध होकर जनार्दन देव से कहने लगे।।४८-४९।।

श्वेत उवाच

स्वामिन्यदिः प्रसादस्ते मयि जातः सुदुर्लभः।
सारूप्यमथ सम्प्राप्य स्थास्यामि तव सन्निधौ।।५०।।
स्थास्ये यावन्नृपत्वेऽहं मद्राज्ये नो जनः क्वचित्।
अकाले म्रियतां जन्तुः काले चेन्मक्तिमाप्नुयात्।।५१।।
तच्छ्रुत्वा भगवान्प्राह श्वेतराजानमुत्तमम्।।५२।।
श्वेत! ते वाञ्छितंभूयात्तिष्ठ त्वं ममदक्षिणे। भुक्त्वावर्षसहस्रंतुस्वराज्यंसुसमृद्धिमत्।।५३।।
मम निर्माल्यभोगेनक्षीणशेषाघसञ्चयः। सुनिर्मलान्तःकरणोमत्सायुज्यमवाप्स्यसि।।५४।।
वटसागरयोर्मध्येमुक्तिस्थानेसुदुर्लभे। मदीयाऽऽद्यावतारस्यविष्णोर्मत्स्यस्वरूपिणः।।५५।।
सम्मुखीनोवसत्वंहिस्फटिकामलविग्रहः। ख्यातिंयास्यसिभूर्लोकेश्वेतमाधवसञ्ज्ञया।।५६।।
युवयोरन्तरालेयेप्राणांस्त्यक्ष्यन्तिमानवाः। तिर्यञ्चोपिचकीटावाध्रुवंतेमुक्तिमाप्नुयुः।।५७।।
अमरा यत्र मरणमिच्छन्ति किमुमानवाः। तवोत्तरस्यां दिशियत्सरःपापनिबर्हणम्।।५८।।

राजा कहते हैं—"हे स्वामी ! यदि मेरे प्रति आपकी सुदुर्लभ प्रसन्नता हो, तब यह वर प्रदान करिये कि मैं आपका सारूप्य प्राप्त करके आपके पास अवस्थान कर सकूं तथा जब तक मैं राजा रहूं, तब तक मेरे किसी व्यक्ति की अकालमृत्यु न हो। वे यथाकाल मृत होकर मुक्ति पा सकें।" यह सुनकर भगवान् राजा से कहने लगे "हे श्वेत! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। तुम मेरे दाहिने स्थित रहोगे। तुम १००० वर्ष तक अपने महा समृद्धिपूर्ण राज्य का भोग करके मेरी कृपा से समस्त पापराशि से मुक्त होकर सम्यक् निर्मल अन्तःकरण वाले

होकर मेरा सारूप्यलाभ करोगे। तुम अक्षयवट तथा सागर के मध्यस्थ मुक्तिक्षेत्र में मेरे आदि अवतार रूप मत्स्यरूपी विष्णु के समक्ष स्फटिक् मणि के समान विमल देहधारी होकर निवास करोगे तथा भूलोक में श्वेत माधव कहे जाओगे। तुम्हारे तथा मत्स्यरूपी विष्णु के मध्य में जो लोग प्राणत्याग करेंगे वे निःसंदेह मुक्त हो जायेंगे। मानवों की तो बात ही क्या, देवगण भी वहां मुक्ति की कामना करते हैं। उसके उत्तर में सर्वपापनाशक सरोवर है।।५०-५८।।

तत्र स्नात्वाउपस्पृश्यतदीयेदक्षिणेतटे। उभयोर्दृष्टिपूतःसंस्त्यक्त्वाप्राणान्विमुच्यते।।५९।।
आसमन्तादिदं क्षेत्रं यत्रतत्राऽपिमुक्तिदम्। मूढात्मनांविश्वसितुंप्रधानंस्थानमीरितम्।।६०।।
तव राज्ये तु येलोकाममनिर्माल्यभोजिनः। मृतिराकालिकीतेषांनकदाचिद्भविष्यति।।६१।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतो-
त्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे श्वेतमाधवोपाख्यान-
वर्णनंनामसप्तत्रिंशोऽध्यायः।।३७।।

मानव उस सरोवर में स्नान के पश्चात् आचमन करें। उसके दक्षिण तट पर तुम दोनों का दर्शन करके जो प्राणत्याग करेगा, वह मुक्त होगा। इसमें सन्देह नहीं है। अतः इस पुरुषोत्तम क्षेत्र के चतुर्दिक् कहीं भी मृत्यु होने पर वहां मुक्ति प्राप्त होगी। मूढ़ों में विश्वास के उत्पादनार्थ इस स्थान को सर्वप्रधान पुण्यस्थान कहते हैं। हे श्वेतराज! तुम्हारे राज्य में जो सब लोग हैं, वे मेरे महाप्रसाद का भोजन करके निश्चित रूप से कभी भी अकालमृत्युग्रस्त नहीं होंगे।।५९-६१।।

।।सप्तत्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

भगवत् प्रसाद-निर्माल्यादि महिमा, भवद्विज की कथा

जैमिनिरुवाच

इतिदत्त्वावरंतस्मैश्वेतराजायवैपुरा। जगामाऽन्तर्हितोविप्राःप्रासादान्तःस्थितोहरिः।।१।।
समस्तजगदाद्याश्रीःसृष्टिस्थितिविनाशकृत्। वैष्णवीशक्तिरतुलाविष्णुदेहार्द्धहारिणी।।२।।
सुधोपमं सुपक्वान्नं भुङ्क्ते नारायणः प्रभुः। तदुच्छिष्टोपभोगो हिसर्वाघक्षयकारकः।।३।।
नतादृशसमंपुण्यंवस्त्वस्तिपृथिवीतले। प्रायश्चित्तमशेषाणाम्पापानांपरिकीर्तितम्।।४।।

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे विप्रगण! प्रासाद मध्य स्थित भगवान् हरि नृसिंहमूर्त्ति ने श्वेत राजा को यह

वर दिया तथा अन्तर्हित् हो गये। हे मुनिगण! निश्चय जाने, अखिल जगत् के आदि कारण सृष्टि-स्थिति-प्रलयकारिणी विष्णु के देहार्द्ध में निवास करने वाली अद्वितीया वैष्णवी शक्ति देवी कमला ही सुधोत्तम अन्न व्यञ्जनादि पाक करती हैं तथा स्वयं प्रभु नारायण उसका भोजन करते हैं। भगवान् के उस उच्छिष्टभोजन से सभी का समुदय पाप ही दूर हो जाता है। वस्तुतः उक्त महाप्रसाद के समान पावन वस्तु पृथिवीतल में और नहीं है। हे महर्षिगण! मनीषीगण कहते हैं कि भगवान् जगन्नाथ देव के चरणों का दर्शन तथा उनकी उपासना आदि द्वारा समस्त पापों का प्रायश्चित्त हो जाता है।।१-४।।

भगवत्पादपद्मानुप्रेक्षणोपासनादिभिः। पापसंस्कार कर्तॄणां सम्पर्कात्तु न दुष्यति।।५।।
पद्मायाः सन्निधानेन सर्वे तेशुचयःस्मृताः। विष्ण्वालयगतंतद्धिनिर्माल्यंपतितादयः।।६।।
स्पृशन्त्यन्नं न दुष्टंतद्यथाविष्णुस्तथैव तत्। व्रतस्थाविधवाश्चैवसर्वेवर्णाश्रमास्तथा।।७।।
तत्प्राशनेन पूयन्ते दीक्षिताश्चाग्निहोत्रिणः। दरिद्रःकृपणो वाऽपि गृहस्थःप्रभुरेववा।।८।।
स्वदेश्याः परदेश्या वा सर्वेतत्रसमागताः। नाभिमानंप्रकुर्वीरन्विष्णोर्निर्माल्यभक्षणे।।९।।
भक्त्या लोभात्कौतुकाद्वा क्षुधासंशमनेनवा। आकण्ठभक्षितंतद्धि पुनाति सकलांहसः।।
सर्वरोगोपशमनं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम्। दारिद्र्यहरणं श्रेष्ठं विद्यायुःश्रीप्रदं शुभम्।।१०।।
पक्षपातो महांस्तत्रविष्णोरमिततेजसः। निन्दन्ति ये तदमृतं मूढाःपण्डि तमानिनः।।११।।
स्वयं दण्डधरस्तेषु सहते नाऽपराधिनः। येषामत्र स दण्डश्चेद्ध्रुवातेषांहि दुर्गतिः।।१२।।

उक्त पुरुषोत्तम क्षेत्र में पाचकगण के संस्पर्श के कारण कोई दोष नहीं होता, क्योंकि भगवती कमला के सान्निध्यवशात् वे सब पवित्र रहते हैं। यदि वह महाप्रसाद वेश्यालय में रहे, किंवा पतितादि उसका स्पर्श कर लें, तथापि वह अपवित्र नहीं होता। वह अन्न साक्षात् विष्णुरूप है। सभी वर्णाश्रमी, विधवा, व्रतस्थ, दीक्षित किंवा अग्निहोत्री व्यक्ति भी उस महाप्रसाद को खाकर पवित्र हो जाते हैं। स्वदेशी, विदेशी, दरिद्र, कृपण, गृहस्थ, राजा सभी उस प्रसाद भक्षण के समान अधिकारी हैं। उक्त विष्णु प्रसाद भक्षण में किसी को कोई अभिमान नहीं करना चाहिये। भक्ति-लोभ-कौतुक-क्षुधाशान्ति आदि कोई भी कारण क्यों न हो, उसे आकण्ठ खाने से समस्त पापपुंज से व्यक्ति शुद्ध हो जाता है। इससे इसके द्वारा सर्वरोग शान्ति, पुत्र-पौत्रवृद्धि, दरिद्रतानाश तथा दीर्घायु एवं सम्पत्तिलाभ होने के कारण यह महाप्रसाद सभी वस्तु में श्रेष्ठ तथा शुभ है। उसमें अमित तेजस्वी भगवान् विष्णु का महान् पक्षपात है (अर्थात् भगवान् विष्णु ने उसे उत्तम बना दिया है)। जो सभी पण्डिताभिमानी मूढ़ व्यक्ति हैं, वे ही उस अमृतवत् महाप्रसाद की निन्दा करते हैं। स्वयं भगवान् इस अपराध को सहन नहीं कर पाते तथा उनको स्वयं दण्डित करते हैं। उनको दुर्गति प्रदान करते हैं।।५-१२।।

कुम्भीपाके महाघोरे पच्यन्ते तेऽतिदारुणे।
न विक्रयः क्रयो वाऽपि प्रशस्तस्तस्य भो द्विजाः!।।१३।।
निर्माल्यं जगदीशस्य नाऽशित्वाऽश्नामि किञ्चन।
इति सत्यप्रतिज्ञो यः प्रत्यहं तच्च भक्षयेत्।।१४।।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शुद्धान्तःकरणो नरः। स शुद्धं वैष्णवस्थानं क्रमाद्यातिन संशयः।।१५।।

चिरस्थमपि संशुश्कं नीतं वा दूरदेशतः। यथातथोपयुक्तं तत्सर्वं पापापनोदनम्॥१६॥
कुक्कुरस्य मुखाद्भ्रष्टं तदन्नं पतितं यदि। ब्राह्मणेनाऽपि भोक्तव्यमितरेषांतुकाकथा॥१७॥

जब प्रभु यह देखते हैं कि अभी उनको कोई दण्ड दे सकना संभव नहीं है, उनकी तो विषम दुर्गति होती है। अर्थात् वे मृत होकर अत्यन्त दारुण महाघोर कुंभीपाक नरक में विषम यातना भोग करते हैं। हे द्विजगण! उक्त महाप्रसाद का क्रय-विक्रय करना भी उत्तम है। ''जगदीश्वर जगन्नाथदेव के प्रसाद का भोजन किये बिना कदापि अन्य वस्तु का भोजन नहीं करूंगा—'' ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा करके वह व्यक्ति नित्य महाप्रसाद का भक्षण करे। वह मानव निश्चित रूप से सर्वपाप रहित होकर शुद्धअन्तःकरण होकर क्रमशः पवित्र विष्णुलोक गमन करता है। उक्त महाप्रसाद अनेक दिनों का बासी, अतिशय शुष्क तथा दूर देश से आया होने पर भी सर्वपापरहित माना जाता है। यह भक्षण करने पर सभी पापों से व्यक्ति को मुक्त कर देता है। यदि वह सर्वपाप नाशक अनायास कुत्ते के मुख से भी गिरे, तथापि ब्राह्मण भी उसका अनायास भोजन कर सकते हैं।।१३-१७।।

उपोष्य तिष्ठता वाऽपि नोपवासं च कुर्वता। अशुचिर्वाप्यनाचारोमनसापापमाचरन्।
प्राप्तमात्रेण भोक्तव्यं नाऽत्र कार्या विचारणा॥१८॥
नैवेद्यान्नं जगद्भर्त्तुर्गाङ्गं वारि समं द्वयम्।
दृष्टेःस्वर्गादिसम्प्राप्तिर्भक्षणाच्चाऽघनाशनम् ॥१९॥
जगद्धात्र्या हि यत्पक्वं वैष्णवेऽग्नौ सुसंस्कृते।
भुङ्क्तेऽन्वहं चक्रपाणिर्युगमन्वन्तरादिषु॥२०॥
सप्तद्वीपधरामध्ये सान्निध्यं नेदृशं हरेः। यादृशंनीलगोत्रेऽस्मिन्व्याजमानुपचेष्टितम्॥२१॥
दारुरूपं परंब्रह्म सर्वचाक्षुषगोचरम्। प्रकाशते भो मुनयो न दृष्टं न श्रुतं क्वचित्॥२२॥
तस्मै प्रवृत्तिरूपाय ब्रह्मणे परमात्मने। प्रवृत्तिरूपा शक्तिः श्रीः प्रवर्तयति यद्धविः॥२३॥
तदश्नाति जगन्नाथस्तच्छेषं दुरितापहम्। किमत्र चित्रंभो विप्रायदुक्तंमुक्तिकारणम्॥२४॥

यहां पवित्र-अपवित्र, अनाचारी, मन ही मन पापाचारी सभी उक्त प्रसाद पाते ही भोजन करें। इस विषय में कोई विचार न करे। भगवान् का उक्त नैवेद्य अथवा गंगा, यह दोनों ही समान है। दोनों (प्रसाद तथा गंगा) का दर्शन, स्पर्शन, चिन्तन एवं भोजन अखिल पातक दूर कर देता है। जगद्धात्री लक्ष्मीदेवी स्वयं सुसंस्कृत वैष्णवाग्नि में उसका पाक करते हैं तथा स्वयं भगवान् चक्रपाणि अनेक मन्वन्तर तथा युग-युगान्तर उसका भोजन करते रहते हैं। उक्त नीलाचल में भगवान् हरि का जो सान्निध्य है सप्तद्वीपा धरती के मध्य अन्य ऐसा सान्निध्य दृष्टिगोचर नहीं होता। हे मुनिगण! न तो किसी ने ऐसा देखा है न सुना है। यहां दारुमय परमब्रह्म सदा प्रकाशित रहकर सभी को दृष्टिगोचर होते हैं। इन प्रवृत्तिरूपा परमात्मा ब्रह्म के निमित्त साक्षात् प्रवृत्तिरूपा कमला देवी जो हविर्मय द्रव्य प्रस्तुत करती हैं, भगवान् दुरितहारी जगन्नाथ उसी का भोजन करते हैं। हे विप्रगण! उस उच्छिष्ट भोजन से समस्त दुरित नाश तथा मुक्ति प्राप्त होती है, इसमें आश्चर्य की क्या बात?।।१८-२४।।

नाऽल्पपुण्यवतां तत्र विश्वासश्च प्रजायते। वेदाचारप्रधानेषु युगेष्वेतत्प्रकीर्तितम्॥२५॥

महिमानं न वेदास्य विशेषाच्च्छ्रूयतां कलौ।
घोरे कलियुगे तस्मिंस्त्रिपादो धर्मविप्लवः॥२६॥
धर्मः स्यादेकपादस्तुक्कचित्तस्य भयाच्चरेत्। सर्वेऽनृतप्रधानाहि दाम्भिकाःशठवृत्तयः॥२७॥
प्रायश्च धर्मविमुखा जिह्वोपस्थपरायणाः। न ध्यायन्ति तपस्यन्तिव्रतयन्तिकदाचन॥२८॥
अधर्मबहुलाः सर्वे हिंसका लोलुपाः परम्। परेषां परिवादेन तुष्यन्ति स्वकृतंविना॥२९॥
प्रसङ्गात्कौतुकाद्वाऽपि निघ्नन्ति परकर्म वै। क्षुद्रकार्याशयात्स्वस्यपरकार्यप्रबाधकाः॥३०॥
धर्मलब्धां स्त्रियं रम्यामवज्ञाय स्ववेश्मनि।
परयोषिति निन्द्यायां प्रसक्ताः पशुचेष्टिताः॥३१॥
अग्निहोत्रादिकं वाऽपि व्रतं नाऽन्यत्क्कचित्क्कचित्।
जीविका तद् द्विजातीनां येषां वा पारलौकिकम्॥३२॥
अव्रताधीतवेदेन अन्यायाऽऽप्तधनेन च। वित्तशाठ्येन च कृतं न तथा फलदायि तत्॥३३॥

तथापि जिनका पुण्यबल अल्प है, उनको इसमें कदापि विश्वास नहीं होता। सत्य, त्रेता, द्वापर में जब वेदाचार विद्यमान रहता है, उन सब युगों के सम्बन्ध में यही कहा गया है। परन्तु देवाचार विहीन कलिकाल में विष्णु के नैवेद्य की विशेष महिमा सुनिये। घोर कलि में धर्म एक पाद और अधर्म तीन पाद रहता है। अतः कलि में सभी वस्तु अधर्म बहुल हैं। इस समय कोई कदाचित् ही धर्म भय से कार्य करता हो? उक्त कलि में सभी सतत् मिथ्यावादी, दाम्भिक शठ प्रायः सदाचार रहित होते हैं। केवल जीभ तथा उपस्थ की तृप्ति हेतु कार्य साधन करते हैं। कलिकाल में लोग कदाचित ही इष्ट ध्यान-तप-व्रत करते हों। तब सभी अधार्मिक, हिंसक तथा लोभपरवश होकर अपना कोई मतलब न रहने पर भी अन्य की हानि से संतोष पाते हैं। वे प्रसंगवशात् अथवा मजा लेने के लिये ही लोगों के कार्य में अवरोध उत्पन्न करते हैं। वे नीच कार्य करने की इच्छा रखते हैं तथा स्वार्थ हेतु अन्य के कार्य में बाधा उत्पन्न करते हैं। कलि के मनुष्यगण पशुवृत्ति वाले होते हैं। अपने गृहस्थित स्ववशतापन्न सहधर्मिणी की अवज्ञा करके निर्लज्जतापूर्वक परस्त्री परायण बने रहते हैं। अग्निहोत्रादि कार्य अथवा अन्य व्रताचरण कदाचित कभी दिखलाई पड़ता है। वह अब द्विजों की जीविका निर्वाह का उपाय मात्र हो जाता है। परलोक में शुभफल पाने के लिये जो सब सत्कार्य हैं, लोग वैसे कार्य में सफल नहीं होते। क्योंकि जिन्होंने कभी वेद श्रवण नहीं किया अथवा वेदाध्ययन नहीं किया, ऐसे व्यक्ति द्वारा तथा उसके द्वारा अन्याय से उपार्जित धन द्वारा जो परलोकार्थ कर्म अनुष्ठित होता है, उसमें भी यजमान कंजूसी करता है। अतः वे कर्म फलदायक नहीं होते।।२५-३३।।

प्रायः कलियुगे भूपाः प्रजावनपराङ्मुखाः। करादानपरानित्यं पापिष्ठाश्चौर्यवृत्तयः॥३४॥
वर्णसङ्करिणः सर्वे शूद्रप्रायाः कलौयुगे। हर्तारः पार्थिवाः एव शूद्राश्च नृपसेवकाः॥३५॥
श्रौतस्मार्तादिकं कर्म न तथासदनुष्ठितम्। युगे चतुर्थे भो विप्राः परलोकायकल्पिते॥३६॥
दानधर्मः परो ह्येष नाऽन्योधर्मःप्रशस्यते।
कर्मणा मनसा वाचा हितमिच्छेद् द्विजन्मनाम्॥३७॥

इतिहोवाचभगवान्ब्राह्मणोमामकीतनुः। ब्राह्मणायस्यसन्तुष्टाःसन्तुष्टस्तस्यचाप्यहम्।।३८।।
उभयत्र समो भूयाद्ब्राह्मणे च जनार्दने। यद्वदन्तिद्विजावाक्यं तत्स्वयंभगवान्वदेत्।।३९।।
यथा तथा वर्तमानो वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः। भगवानपि देवेशःस साक्षाद् ब्राह्मणप्रियः।।४०।।
सदाऽवतारं कुरुते ब्राह्मणार्थं जनार्दनः। तत्पालनार्थं दुष्टान्वै निगृह्णाति युगे युगे।।४१।।
ससर्जब्राह्मणानग्रे सृष्टश्चादौ स चतुर्मुखः। सर्वे वर्णाः पृथक्पश्चात्तेषां वंशेषु जज्ञिरे।।४२।।
तस्मात्कलियुगे तस्मिन्ब्राह्मणो विष्णुरेव च। उभौ गतिश्च सर्वेषां ब्राह्मणानां हरिर्गतिः।।४३।।
हरिरेवाऽत्र सर्वेषांगतिः प्राप्तेकलौयुगे। शालग्रामादिके क्षेत्रे स्मर्यतेकीर्त्यतेऽपि च।।४४।।

कलिकाल में अधिकांश राजा प्रजा से कर वसूलने में ही तत्पर रहते हैं। वे प्रजारक्षण से विमुख, पापी तथा चौर्यवृत्ति हो जाते हैं। कलि में सभी वर्णसंकर, शूद्रवत् तथा नृप सेवक रहते हैं। शूद्र ही दाता तथा राजा हो जाते हैं। हे विप्रगण! चतुर्युग में से जो कलियुग है, उसमें श्रौत-स्मार्त्त कार्य अन्य युगों की तरह सुन्दररूप से नहीं किया जाता। अतः वह परलोकप्रद, शुभप्रद नहीं होता। अतएव कलि में दान ही श्रेष्ठ धर्म है। कलि में अन्य धर्म प्रशस्त नहीं है। इस समय मनसा-वाचा-कर्मणा द्विजों का हित साधन ही करना चाहिये। स्वयं भगवान् का कथन है कि ब्राह्मण मेरे शरीर हैं। अतः ब्राह्मण जिससे प्रसन्न होते हैं, साक्षात् नारायण उस पर प्रसन्न हो जाते हैं। ब्राह्मण तथा नारायण में समान ज्ञान करना उचित है। क्योंकि ब्राह्मण जो कहते हैं, वह स्वयं भगवान् की ही उक्ति है। जब देवदेव नारायण ही ब्राह्मणों के प्रति ऐसी प्रीति प्रकट करते हैं, तब ब्राह्मण चाहे जिस अवस्था में हो, क्षत्रियादि वर्णत्रय के लिये वह पूज्य हैं। इसमें सन्देह न करें। भगवान् जनार्दन ने ब्राह्मणों के हितार्थ ही अवतारमूर्त्ति धारण किया है। वे प्रभु ब्राह्मणों के पालनार्थ युगयुग में दुष्टों का निग्रह करते हैं। भगवान् ब्रह्मा ने सृष्टि के आरंभ में ब्राह्मणों का ही सृजन किया था। तत्पश्चात् ब्रह्मा ने पृथक्-पृथक् सभी वर्णों को उत्पन्न किया। तभी इस विषम कलिकाल में ब्राह्मण एवं विष्णु ही सबकी गति हैं। लेकिन ब्राह्मण की गति हैं एकमात्र श्रीहरि। पापरूप कलिकाल में एकमात्र हरि ही सबका निस्तार करने के कारण एकमात्र उपायरूप हैं। अतः शालग्राम क्षेत्र में उनका ही स्मरण करें तथा उनकी ही महिमा का कीर्त्तन करें।।३४-४४।।

तस्मिन्नीलाचलेपुण्ये क्षेत्रे क्षेत्रज्ञवर्ष्मणि। जीवभूतः स सर्वेषां दारुव्याजशरीरभृत्।।४५।।
कलिकल्मषनाशाय प्रायो दुष्कृतकर्मणाम्। दर्शनस्तवनोच्छिष्टभोजनैर्मुक्तिदायकः।।४६।।
उच्छिष्टेन सुरेशस्य व्याप्तंयस्यकलेवरम्। तदाहारस्तदात्माहिलिप्यते न सपातकैः।।४७।।
निवेदनीयमन्यासु मूर्तिष्वीशस्य वर्तते। पावनं तदपि प्रोक्तमुच्छिष्टं तु विमोचकम्।।४८।।
भुङ्क्ते त्वत्रैवभगवान्पश्यत्यन्यत्रचक्षुषा। पुराऽयंप्रार्थितो देवो योगिभिःपरिवेष्टितः।।४९।।

निर्माल्योच्छिष्टभोगेन तव मायां जयेमहि।
अत्यन्तस्तिमिताक्षाणामनायासेन मुक्तिदः।।५०।।

शयनासनभोगाद्यै रमते च श्रिया सह। अत्र चेष्टा भगवतो वेदार्थ इति धार्यताम्।।५१।।

परमात्मा की निवास भूमि के रूप में यह पुण्यभूमि नीलाचल सभी का जीवनस्वरूप है तथा शंखचक्रगदाधारी भगवान् हरि मनुष्यगण के उपकारार्थ तथा अत्यन्त पापी व्यक्तियों के कलिकलुष के विनाशार्थ

दारुमयी मूर्त्ति रूप में यहां विराजमान हैं। उनका दर्शन, उनकी स्तुति तथा उनका प्रसाद भोजन, यह सब मुक्तिप्रदाता है। सुरेश्वर जगन्नाथ देव का जो उच्छिष्टान्न है, वह जिसके शरीर में व्याप्त हो जाता है, उस व्यक्ति की आत्मा कदापि पापलिप्त नहीं होती। वह प्रसाद रूपी अन्न परमेश्वर हरि की अन्य मूर्त्ति ही है। अतः भगवान् का यह उच्छिष्ट अन्न सभी के लिये पवित्रताजनक तथा मुक्तिप्रद कहा गया है। हे मुनिगण! उक्त पुरुषोत्तम क्षेत्र में साक्षात् भगवान् भोजन करते हैं। अन्यत्र तो वे भक्त द्वारा प्रदत्त भोजन पर मात्र दृष्टिपात करते हैं। परम निष्ठावान् योगीगण ने पूर्व में भगवान् जगन्नाथ से यह प्रार्थना किया था—"हे नाथ! हम आपके निर्माल्य तथा उच्छिष्ट अन्न द्वारा आपकी माया को जय कर सकते हैं। जिनको मुक्ति की कामना से अनन्तकाल तक नेत्रों को स्थिर करके (एकाग्र होकर) योगसाधना करनी पड़ती है, उन सब योगीगण के लिये अनायास मुक्तिप्रद होकर यहां आप प्रभु स्वयं शयन तथा आसनादि के साथ तथा भोगों के साथ साक्षात् कमला के साथ विराजित रहते. हैं। यहां भगवान् की जो भी चेष्टा है, वही वेदार्थ रूप है।।"।।४५-५१।।

समतिक्रान्तवेदो हि न कदाचित्प्रवर्तते। वेदरक्षार्थमेवास्य सम्भवो हि युगे युगे।।५२।।
प्रमाणभूतो भगवान्विरुद्धं कथमाचरेत्। तस्मिन्विरुद्धं चरति जगदेव तथा भवेत्।।५३।।
आचारेण हि वेदार्थो नियतो धामतांगतः। मध्यदेशभवः पूर्वमत्रागच्छद्द्विजोत्तमः।।५४।।
शिष्टाचारैः सुविमलः शास्त्रार्थपरिनिष्ठितः।
सदा शान्तः सदा दान्तःकायवाङ्मनसैर्गृही।।५५।।
स तीर्थविधिनादेवंसमभ्यर्च्यचसाग्निकः। त्रिरात्रमत्रोषितवान्विष्ण्वर्चनपरः शुचिः।।५६।।
यज्ञशेषं गृहस्थानां भोक्तव्यमितिशास्त्रतः। देवोच्छिष्टं न जग्राहअन्यपाकाभिशङ्कया।।५७।।
दैवतैरत्र संस्कार्यो देवयोग्यः कथं भवेत्। अयोग्यत्वाच्च नैवेद्यमग्राह्यंच भवेद्ध्रुवम्।।५८।।
अगृहीते च नैवेद्ये श्रोत्रियेणतदाद्विजाः। सर्वे च तस्यानुचरा नाभुञ्जन्तनिवेदितम्।।५९।।

हे तपोधनगण! भगवान् भी वेदमर्यादा का उल्लंघन करके कोई कार्य नहीं करते। वे प्रभु वेद मर्यादा की रक्षा के लिये ही युग-युग में विविध अवतारमूर्त्तिरूपी प्रादुर्भूत हो जाते हैं। अतः वेद प्रमाणरूपी भगवान् वेद विरुद्ध आचरण कैसे कर सकते हैं? यदि वे ही वेद के विपरीत आचरण करेंगे, तब सभी जगद्वासी ही उसी प्रकार विरुद्धाचरण तत्पर हो जायेंगे। इस विषय में विद्वानों का यह मत है कि भगवान् का आचरण देख कर ही वेदार्थ निर्णीत होता है। हे मुनिगण! पूर्वकाल की बात है कि सदाचार पालक, शास्त्र के अर्थ के पारगामी, यागशील (यज्ञात), दान्त, मध्यदेश में जन्मे एक उत्तम ब्राह्मण इस पुरुषोत्तम क्षेत्र में आये। वे गृही थे। उनका शरीर, वाक्य तथा अन्तःकरण शान्तभावापन्न रहता था। वे परम सात्विक ब्राह्मण एक बार तीर्थयात्राविधानानुरूप भगवान् की अर्चना करते श्रीक्षेत्र में पहुंचे तथा वे नित्यप्रति पवित्रभाव से विष्णु पूजन तत्पर रहकर यहां तीन रात्रि ठहरे। तब उन्होंने शास्त्र वचनानुसार यह सोचा कि यज्ञ-होम से बचा ही गृहस्थ को खाना चाहिये। इस विचार के कारण उन्होंने जगन्नाथ देव का प्रसाद ग्रहण नहीं किया। उन्होंने यह विचार नहीं किया कि यहां साक्षात् कमला भोजन पाक करती हैं। उनका विचार था कि यहां अन्य लोग पाक करते हैं। देवल ब्राह्मणों द्वारा पकाया अन्न कदापि देवता के योग्य नहीं होता। इस कारण जब जगन्नाथ देव का नैवेद्यान्न उनके (देवदेव) के लायक नहीं है, तब अन्य के लिये भी वह ग्रहण करने योग्य नहीं हो सकता। इसमें क्या सन्देह! हे द्विजगण!

इन श्रोत्रिय ब्राह्मण ने इस विवेचना के साथ जगन्नाथ देव द्वारा निवेदित अन्न ग्रहण ही नहीं किया। साथ ही उन ब्राह्मण के अनुचरगण ने भी वह प्रसाद ग्रहण नहीं किया।।५२-५९।।

ततः स व्याधिसम्मग्नो विह्वलीभूतविग्रहः। सकुटुम्बोऽभवन्मूकोभगवद्द्रोहसंयुतः॥६०॥
मनसाचिन्तयत्येवं निर्निमित्तं कथं नु मे। कुटुम्बसहितस्याभूत्पीडासर्वाङ्गभञ्जिनी॥६१॥
एवं चिन्तयमानस्यत्रिरात्रान्तेऽभवन्मतिः। नेदृशी व्याधिपीडाचसर्वेषामेकदाभवेत्॥६२॥
को वा द्रोहः कृतोऽस्माभिरेतस्मिन्पुरुषोत्तमे।
न बुद्धिपूर्वकः किं स्यात्ततो मे व्याधिकारणम्॥६३॥
मुहुरित्थं चिन्तयित्वादध्यौनारायणंप्रभुम्। ध्यानावसानेतुष्टाव शास्त्रतत्त्वार्थदर्शकः॥६४॥

इस कृत्य से वह ब्राह्मण तथा अनुचरगण भगवान् के प्रति अपराधी होने के कारण व्याधिपीड़ित हो गये। उनके शरीर विवश हो गये तथा उनकी वाणी अवरुद्ध हो गयी। तब वे मन ही मन विचाररत होकर सोचने लगे—"यह क्या? किस कारण मैं अपने अनुचरों के साथ अकस्मात् पीड़ित हो गया तथा समस्त शरीर भग्न हो गया।" इस प्रकार वे ब्राह्मण अहर्निश यही विचार करते रहते थे। तीन रात्रि व्यतीत होने पर उनमें अकस्मात् इस बुद्धि का उदय हो गया कि बिना किसी अपराध के एक साथ इन सब पीड़ा का उद्भूत होना कदापि संभव नहीं है। हमने इस पुरुषोत्तम क्षेत्र में आकर क्या अपराध कर दिया? जान-बूझकर ऐसा कोई अपराध मैंने किया ही नहीं है जो इस रोग का कारण बने! वह शास्त्रज्ञ ब्राह्मण निरन्तर यही चिन्ता कर रहे थे। तदनन्तर उन्होंने भगवान् नारायण का ध्यान किया। वे शाण्डिल्य विप्र ध्यान समाप्त होने पर भगवान् का स्तव करने लगे।।६०-६४।।

शाण्डिल्य उवाच

चतुर्दशाऽपिया विद्याधर्मनिर्णयहेतवः। ताः सर्वास्तव वाक्यानि मुखपद्मविनिर्गताः॥६५॥
ताभिरेवाऽऽचरेद्धर्ममिति शास्त्रार्थनिश्चयः। तस्य धर्मस्य रक्षार्थमवतारो युगे युगे॥६६॥
तमुल्लङ्घ्य वर्त्तमानो भवद्द्रोहकरो ध्रुवम्। अहं ते देवदेवेश! कर्मणा मनसा गिरा॥६७॥
धर्मशास्त्रमतिक्रम्य न वर्त्तेऽप्यर्थकामयोः। अनेकजन्मसाहस्रैः सञ्चितं पापसञ्चयम्॥६८॥
दग्धुमत्राऽऽगतोदेवत्वद्दर्शनदवाग्निना। कोऽपराधः कृतो देव त्वच्छास्त्रपथिवर्तिना।
सर्वाङ्गं बाधते यस्मादुग्रो व्याधिरहेतुकः॥६९॥
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि त्वत्पादसरसीरुहे। कृतोऽपराधोयोदेव! तं क्षमस्व कृपाम्बुधे!॥७०॥
भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम्। त्वयिजातापराधानां त्वमेवशरणम्प्रभो।
तवाऽपराधजं पापं त्वमेव च क्षमस्व मे॥७१॥
वह्निसन्तापतोनश्येद्वह्निसन्तापजो व्रणः। तदिमां दुर्दशांदेव प्रारब्धांपापबीजजाम्॥७२॥

शाण्डिल्य कहते हैं—हे प्रभो! धर्मनिर्णयार्थ जो १४ विद्यायें हैं, वे सभी आप द्वारा कही गयी हैं। वे सभी आपके ही मुख से कहे वाक्य हैं। शास्त्रों के अर्थ के अनुसार यह निर्णीत हुआ है कि उक्त १४ विद्याओं

के अनुरूप ही सबको धर्माचरण करना होगा। अखिल विद्वान् यही स्वीकार करते हैं कि पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, अपने छः अंगों के साथ चारों वेद—ये १४ शास्त्र ही अखिल विद्या तथा धर्म के आकार हैं। आप भी तो इसी धर्म के रक्षणार्थ युग-युग में अवतरित होते हैं। अतः जो व्यक्ति शास्त्रों के मत का उल्लंघन करके कार्य करते हैं, वे अपना ही अनिष्ट करते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे देवेश! मैंने मनसा-वाचा-कर्मणा कभी भी धर्मशास्त्र का उल्लंघन नहीं किया है तथा शास्त्र विपरीत रूप से अर्थ-काम साधन में प्रवृत्त नहीं हुआ। हे देव! मैं आपके दर्शनरूपी दावानल में अनेक हजार जन्म में संचित पापराशि को दग्ध करने के लिये यहां आया था, तथापि हे देव! पता नहीं आपके ही शास्त्र पथ का अनुसारी होकर मैंने क्या अपराध कर दिया जिसके कारण यह भीषण पीड़ा मेरे सभी अंगों को महान् कष्ट पहुंचा रही है। मैं आपके प्रति किये किसी अपराध के अतिरिक्त इस पीड़ा का अन्य कोई कारण नहीं समझ पा रहा हूं। जो भी हो, हे देव! हे कृपाम्बुधि! ज्ञानतः अथवा अज्ञानतः आपके चरण कमल के प्रति जो अपराध मैंने किया हो, उसे आप क्षमा करिये। हे प्रभो! जो पृथिवी पर मार्गच्युत हो जाते हैं, आप ही उनके अवलम्बन हैं। इसी प्रकार जिसने आपका अपराध कर दिया, उसके भी आप ही तो रक्षक हैं! हे प्रभो! आपके प्रति अपराधरूपी जो महापाप मुझसे हो गया हो, उसे आप क्षमा करें। क्योंकि अग्नि सन्ताप जनित व्रण भी अग्निताप से ही दूर होता है। हे देव! इस कारण अपने प्रारब्धरूपी पाप बीज से मैं इस दुर्दशा से ग्रस्त हो गया हूं।।६५-७२।।

लीलापाङ्गेन शमय अपवर्गैकहेतुना। मामुद्धर जगन्नाथ पतितं शोकसागरे।।७३।।
त्वद्दर्शनपथं यातः किं नु शोच्योभवेन्नरः। निसर्गकरुणाम्भोधे यस्त्वदृष्टिपथङ्गतः।।७४।।
सदानन्दाब्धिसंमग्नोनशोचतिनकाङ्क्षति। नाल्पभाग्योह्यहंदेव त्वामद्राक्षंस्वचक्षुषा।।७५।।
अपवर्गान्तरायो मे ध्रुवमेषा विभीषिका। तत्प्रसीद जगन्नाथ! सेवकं द्रोहिणं सदा।।७६।।
सेव्यसेवकसम्बन्धादपराधं क्षमस्व मे। इति स्तवान्ते तस्याऽऽशु देहपीडाऽगमत्तदा।।७७।।

हे नाथ! आप भक्तों को अपवर्ग प्राप्ति के प्रधान कारण हैं। आप मेरी दुर्दशा को अपने लीलारूपी दर्शन से नष्ट कर दीजिये। हे जगन्नाथ! मैं अतीव शोकसागर में गिर गया हूं। आप इस स्थिति से मेरा उद्धार करिये! जो मनुष्य आपकी दृष्टि में आ जाता है, क्या उसे ऐसी शोचनीय दशा मिलना उचित है? हे प्रभो! आप स्वभावतः करुणा सागर हैं। जो व्यक्ति आपकी दृष्टि में पड़ जाता है, वह तो आनन्दमय सागर में सन्तरण करता रहता है। उसे अन्य कोई शोक नहीं करना पड़ता। उसे किसी भौतिक वस्तु की आवश्यकता ही नहीं होती। हे नाथ! मैंने अपने नेत्रों से आपका दर्शन किया है (नीलाचलनाथ की दारुप्रतिमा का दर्शन किया है), यह तो अल्प भाग्य का फल कदापि नहीं है, तथापि यह रोगविभीषिका मेरे अपवर्ग लाभ के मार्ग में एक रुकावट की तरह है। हे जगन्नाथ! आप मुझ पर प्रसन्न हो जायें। हे प्रभो! आप मेरी रक्षा करिये। हे नाथ! आप सेव्य हैं। मैं सेवक हूं। इस सेव्य-सेवक सम्बन्धानुरूप मेरे अपराधों को क्षमा करिये।'' हे मुनिगण! इस प्रकार स्तव करने के पश्चात् उन ब्राह्मण की देह पीड़ा तथा रोग तत्काल नष्ट हो गया!।।७३-७७।।

ददर्श सोथ गोविन्दंनृसिंहंभक्तवत्सलम्। दिव्यसिंहासनारूढंदिव्याऽलङ्कारभूषितम्।।७८।।
आददानं श्रिया दत्तं परमान्नं कराम्बुजे। ग्रासावशेषं पात्रेषु क्षिपन्तं च मुहुर्मुहुः।।७९।।
यावद्दत्तंवस्तुजातंतावदश्नन्तमत्वरम्। विलाससस्मितापाङ्गंहस्तेलक्ष्म्याऽपवर्जितम्।।८०।।

तं दृष्ट्वा विस्मयाविष्टः शाण्डिल्यः स द्विजोत्तमः।
सस्माराऽऽत्मकृतं द्रोहं नैवेद्याग्रणेस्थितम्॥८१॥

तदनन्तर उन ब्राह्मण ने भक्तवत्सलगोविन्द के भगवान् नृसिंह रूप का वहां साक्षात्कार किया। ब्राह्मण शाण्डिल्य ने देखा कि वे प्रभु दिव्य सिंहासनासीन हैं। उनके सभी अंग दिव्य अलंकारों से विभूषित हैं। वे अपने करकमल से भगवती कमला द्वारा प्रदत्त परमान्न ग्रहण करके भोजन से बचे भाग को अनेक पात्रों में छोड़ रहे हैं। इस प्रकार देवी कमला सहास्यपूर्ण मुखमुद्रा में स्थित होकर प्रेमपूर्ण कटाक्षपात द्वारा उनके हाथ में जो कुछ भोज्यवस्तु प्रदान करती जा रही हैं, भगवान् उनका तत्काल भोजन करते जा रहे हैं। हे तपोधनगण! द्विजप्रवर शाण्डिल्य ने इस प्रकार नृसिंहदेव का दर्शन किया तथा वे इससे अतिशय विस्मय में पड़ गये। तदनन्तर वे सोचने लगे कि नीलाचलनाथ का महाप्रसाद ग्रहण न करके उन्होंने कितना भीषण अपराध कर दिया! तदनन्तर वे पुनः भगवान् का नतशिर होकर स्तव करने लगे।।७८-८१।।

क्वाऽहं प्रादेशिकः प्राज्ञः सर्वज्ञाननिधिर्भवान्। क्व त्वं महदहङ्कारभूततत्त्वविसर्जकः॥८२॥
त्वन्मायोमूढमनसो जानीयुः कथमीश ते।
निरंकुशामनिर्वाच्यामिच्छां सृष्टिलयात्मिकाम्॥८३॥
इतिस्तुवन्तंनृहरिस्तेनैवोच्छिष्टपाणिना। सिषेच ग्रासशिष्टांश्चसर्वाङ्गेद्विजसत्तमम्॥८४॥
तैःसिक्तैर्ब्राह्मणःसद्यःसुधासेकोपमैर्मुदा। बभौदिव्यवपुःश्रीमाञ्जीवन्मुक्तोयथा मुनिः॥८५॥
महिमानं हि भक्तेस्तु भक्ता एवविजानते। महतींसूतिपीडांतुवन्ध्यानानुभवेत्क्वचित्॥८६॥
इत्युदीर्य स्वयं गात्रादुच्छिष्टं परमात्मनः। भुक्त्वा कृतार्थमात्मानं मेने श्रोत्रियपुङ्गवः॥८७॥

शाण्डिल्य कहते हैं—"हे देव! कहां परदेश से यहां आया हुआ ज्ञानहीन रूप में और कहां आप महद् अहंकारादि भूतत्रय से अतीत सर्व ज्ञाननिधि प्रभु! हे ईश्वर! आपकी माया से हम मूढ़मति हैं। हम किस प्रकार से आपकी सृष्टिलयात्मिका अनिर्वाच्य स्वप्रधाना इच्छा को जान सकते हैं?" हे मुनिगण! जब द्विजश्रेष्ठ शाण्डिल्य इस प्रकार से स्तुति कर रहे थे, तब भगवान् नृसिंह देव ने अपने जूठन को अपने जूठे हाथों उन ब्राह्मण के शरीर पर लिप्त कर दिया। वे ब्राह्मण उस भगवत् उच्छिष्ट से जो अम्ल स्वरूप था लिप्त हो तथा उस प्रसाद की आर्द्रता से सिंचित होकर तत्क्षण जीवन्मुक्त ऋषिगण की तरह सौन्दर्यसम्पन्न दिव्य शरीर से सानन्द शोभान्वित हो उठे। "जैसे वन्ध्यारमणी प्रबल प्रसव वेदना का कभी भी अनुभव नहीं करती, उसी तरह अभक्तगण कभी भगवत् भक्ति महिमा जान नहीं सकते। केवल भक्तगण ही भक्ति की महिमा से अवगत होते हैं।" यह कहकर उन द्विजसत्तम ने स्वयं परमात्मा नृसिंहदेव के जूठन (प्रसाद) को पात्र में से लिया तथा उसका भोजन करने के पश्चात् कृतार्थ मन से स्वयं विचार करने लगे।।८२-८७।।

साधारणं धर्मशास्त्रं क्षेत्रेऽस्मिन्न विचार्यते। अयं तु परमो धर्मो यो देवेन प्रकीर्तितः॥८८॥
आधारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः। इत्थं सञ्चिन्तयन्विप्रःकुटुम्बार्थेऽवशेषितम्॥८९॥
आजहार स्वयं मुष्ट्या ध्यानभङ्गमवापच। प्रबुद्धश्चिन्तयामासस्वप्नंतंविस्मिताशयः॥९०॥
अयमेव मम द्रोहो ह्यवज्ञासिषमीश्वरम्। नैवेद्याशनमाहात्म्यमजानन्परमाद्भुतम्॥९१॥

इस पुरुषोत्तम क्षेत्र की विवेचना सामान्य धर्मशास्त्रों के अनुसार करना उचित नहीं है। वास्तव में यहां साक्षात् देवाधिदेव जनार्दन साक्षात् रूप से जिस धर्म का प्रवर्त्तन कर रहे हैं, वही परमधर्मरूप है। जैसे आचार का स्वामी धर्म है, उसी प्रकार से भगवान् नारायण धर्म के स्वामी हैं। विप्रप्रवर इस प्रकार चिन्तन करके अपने परिजनों के लिये अपनी मुट्ठी में महाप्रसाद लेकर जाने लगे, तभी उनका ध्यान भंग हो गया (अर्थात् यह समस्त अनुभूति उनको स्वप्न में मिली थी)। तब वे प्रबुद्ध होकर अतिशय विस्मित हो स्वप्न विषयक चिन्तन करने लगे। उन्होंने यह निश्चय किया कि मैंने इस अत्यद्भुद नैवेद्य महिमा को नहीं जानकर भगवान् के प्रसाद की अवज्ञा किया है। यही मुझसे एकमात्र अपराध हुआ है।।८८-९१।।

अष्टादश चतुर्दश ब्रह्माण्डं यत्पदाम्बुजम्। धर्मद्रवेण प्रक्षाल्य अपुनास्त्वं तदम्बुना।।९२।।
यमर्चयन्ति शक्राद्या दिव्यभोगैरनुत्तमैः। समानुष्यकृतं भुङ्क्ते क्षेत्रेऽस्मिन्महदद्भुतम्।।९३।।
इत्याश्चर्यपरस्तेन स्वप्नलब्धेन वै द्विजाः। नैवेद्येन कुटुम्बं स्वं मार्जयामास सादरम्।।९४।।
ततः सर्वे नीरुजास्ते सुवाक्याहृष्टमानसाः। पुनर्जन्म मन्यमानाः शशंसुः क्षेत्रमुत्तमम्।।९५।।
नाऽस्त्यस्य सदृशं क्षेत्रं सप्तद्वीपावनीतले। यत्र स्वोच्छिष्टदानेन पापान्मोचयते नरान्।।९६।।
पुरुषोत्तममाहात्म्यं क्षेत्रं परमदुर्लभम्। यतः स्वर्गश्च भोगश्च मुक्तिश्चैव करे स्थिता।।९७।।

''चतुर्दश द्वीपपति (चौदहों भुवनों के पति) भगवान् ब्रह्मा ने धर्मद्रवमय जल में जिनके चरण कमल का प्रक्षालन करके उस जल से अपने को पवित्र किया था, इन्द्रादि देवता अत्युत्तम दिव्यभावना के साथ निरन्तर जिनकी अर्चना करते हैं, वे भगवान् नारायण इस पुरुषोत्तम क्षेत्र में मनुष्य द्वारा बनाये अन्नादि का भोजन कर लेते हैं, यह परमाश्चर्य है।'' हे द्विजगण! वे ब्राह्मण स्वप्न में प्राप्त महाप्रसाद से इतने आश्चर्यचकित हो गये कि उन्होंने सादर उस पवित्र नैवेद्यान्न से अपने समस्त परिवार जन का मार्जन किया। तदनन्तर सभी निरोग हो गये तथा वाक्शक्ति पाकर प्रसन्न मन से मानने लगे कि उनका यह पुनर्जन्म हो गया। परस्परतः वे इस उत्तम तथा अद्भुद् क्षेत्र की प्रशंसा करने लगे कि ''जिस स्थान पर भगवान् अपने उच्छिष्ट को प्रदान करके पापी मनुष्यों को इस प्रकार से मुक्त करते हैं, इस समस्त सप्तद्वीपा पृथिवी पर इस पुरुषोत्तम क्षेत्र के समान पुण्यक्षेत्र है ही नहीं। यहां स्वर्ग, मुक्ति तथा भोग मानो करतलगत हैं। पुरुषोत्तम के समान पुण्यक्षेत्र अत्यन्त दुर्लभ है, इसमें क्या सन्देह?''।।९२-९७।।

आर्तानां भवकान्तारेभाग्यादत्रसमीयुषाम्। नानाभोगोपतृप्तानांमुक्तिमार्गःसुखंभवेत्।।९८।।
इत्थं ते हर्षमापन्नाः प्रलपन्तः परस्परम्। यथेष्टं भोजयामासुरन्योन्यं च निवेदितम्।।९९।।
ततस्ते निर्मला विप्रास्तरुणादित्यवर्चसः। देवा इव बभुः सर्वे निष्पापानिर्गतज्वराः।।१००।।
नैवेद्याशनमाहात्म्यंकथितं वो द्विजोत्तमाः। श्रुत्वाऽपिमहतःपापान्मुच्यतेपापकृत्तमः।।१०१।।
निर्माल्यग्रहणस्याऽस्यफलंवक्तुं नशक्नुमः। साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपेणधियतेवपुषाहितत्।।१०२।।
पुष्पचन्दनमाल्यादि यदङ्गैरुपधार्यते। अपनीतं यथाकाले निर्माल्यं तत्प्रकीर्तितम्।।१०३।।

''जो व्यक्ति पुनः-पुनः इस संसार रूपी भयानक वन में चक्रमण करते भ्रान्त हो रहे हैं, यहां उन्हें नाना प्रकार क्री भोग्य वस्तु के उपभोग द्वारा तृप्ति लाभ करने के पश्चात् मुक्तिमार्ग भी सुखगम्य हो जाता है।'' वे

आनन्दित होकर आपस में यही सब चर्चा करते आपस में एक दूसरे को इस महाप्रसाद का भोजन कराने लगे! हे विप्रगण! तदनन्तर वे निष्पाप, सर्वक्लेशरहित तथा मध्याह्न सूर्यवत् सुविमल देहकान्तियुक्त होकर देवताओं के समान शोभित हो गये। हे द्विजोत्तमगण! आप लोगों से मैंने जो जगन्नाथदेव के नैवेद्य भोजन की महिमा व्यक्त की है, इसके सुनने से महापापी भी महापाप रहित हो जाता है। साक्षात् ब्रह्मरूप भगवान् जिसका अपने शरीर पर लेपन करते हैं, हम उस निर्माल्य ग्रहण के वास्तविक फल का वर्णन कदापि नहीं कर सकते। भगवान् को पुष्प-चन्दन-माला आदि जो कुछ प्रदान किया जाता है, वह यथाकाल जब उनके अंगों से हटाया जाता है, उसे ही मनीषी लोग निर्माल्य कहते हैं।।९८-१०३।।

धारणं शिरसा तस्य तेनाङ्गेचापिमार्जनम्।
सार्द्धानांकोटितीर्थानामभिषेकफलप्रदम् ।
भक्षणं गुरुतल्पादिपातकौघविनाशनम्।।१०४।।
लेप्या मूर्त्तिरियंविष्णोरन्येभ्योलेपउत्तमः। श्रीखण्डागुरुकर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमादिभिः।।१०५।।
प्रविष्टलेपस्नेहेन चन्दनागुरुदारुणा। शरीरे वासुदेवस्य इन्द्रद्युम्नेन कारितः।।१०६।।
प्रत्यहं भो द्विजश्रेष्ठा वर्षान्ते चाऽपनीयते। लेप्यानां लेपनिर्मोके दर्शनं न प्रशस्यते।।१०७।।
अन्तरा चेत्पतेल्लेपः पिष्टं लिम्पेत्पुनश्च तम्।
नान्यलेपः प्रशस्यो हि स विष्णोरङ्गसम्मतः।।१०८।।

उक्त निर्माल्य मस्तक पर धारण, अंगों पर मर्दन करने का जो फल है, वह साढ़े तीन करोड़ तीर्थों में स्नान फल के समान है। इस निर्माल्य भोजन द्वारा गुरुपत्नीगमन आदि समस्त पापों का नाश हो जाता है। यह निर्माल्य भगवान् की ऐसी विशेष मूर्त्ति रूप है, जिसका हम ऊर्ध्व अंगों पर लेप कर सकते हैं। इसे अन्य के अंगों पर लगाना भी उत्तम कार्य है। हे द्विजोत्तमगण! पूर्व में राजा इन्द्रद्युम्न ने जो किया था, उसी नियमानुसार नित्य भगवद् देह पर श्रीखण्ड (चन्दन), कर्पूर, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुमादियुक्त चन्दन द्रव्य का पिष्टलेप करें तथा वर्षान्त में उसे उतार दें। भगवान् के अंग से जब लेपनद्रव्य उतारा जाता है, तब का दर्शन उचित नहीं है। यदि वर्ष समाप्त होने के पूर्व ही भगवान् के अंगों से लेपन द्रव्य गिर जाता है, तब तत्काल पुनः इन सबका पिष्टलेप लगा देना होगा। अन्य प्रकार के लेपन प्रशस्त नहीं है। यह पिष्टलेप तो विष्णु का अंग ही है।।१०४-१०८।।

चन्दनार्द्रशरीरं च दृष्ट्वा विष्णुं पुरा किल।
सौगन्ध्याल्लोभयामास नृपपुत्रःसमूढधीः।।१०९।।
तस्य प्रीत्यै नियुक्तस्तु आकृष्याङ्गात्प्रलेपनम्। ददौ नृपकुमारायलिलिम्पेहृदिस्वके।।११०।।
तावत्प्रदेशं कुष्ठं वै श्वेतं तस्याऽभवत्क्षणात्।
स असीत्कुष्ठपाणिस्तु तस्मै यो दत्तवान्किल।।१११।।
ततो वर्षावधिष्ठायीलेपःपुण्यतमःस्मृतः। निर्माल्यानांप्रधानंतद्घ्राणादंहोविनाशनम्।।११२।।

पुराविद्गण इस सम्बन्ध में एक प्राचीन इतिहास कहते हैं। पूर्वकाल में कोई एक मूढ़मति राजपुत्र था। उसने भगवान् को चन्दन लिप्त देखा तथा उसकी अपूर्व सुगन्ध से आकर्षित होकर उसे वह चन्दन अपने अंग पर लेप करने की लालच हो गई। तब भगवत् सेवा में लगा कोई व्यक्ति उस राजकुमार के सन्तोषार्थ भगवान् के अंग से उस विलेपन को उतारकर उस राजकुमार को अर्पित कर गया। राजपुत्र ने उसे अपने वक्ष पर लिप्त कर दिया तथापि तत्क्षण उसने जहां-जहां लेप लगाया था, वह स्थान श्वेतकुष्ठ रोग से आक्रान्त हो गया। जिस व्यक्ति ने राजपुत्र को वह लेप दिया था वह भी तत्क्षण कुष्ठरोगी हो गया। तभी उस लेप को एक वर्ष तक भगवान् के अंग पर स्थित रखना ही चाहिये। एक वर्ष व्यतीत होने पर ही उसे निकाले। बीच में वर्जित है। यह विलेपन समस्त निर्माल्य में प्रधान है। उसके सूंघने मात्र से सभी पाप दूर हो जाते हैं।।१०९-११२।।

पुरा दमनकं दैत्यं समुद्रोदकचारिणम्। बाधितारं जनानां वै मायाबलपराक्रमम्।।११३।।
भगवानपि मायावी पितामहनिदेशतः। मत्स्यावतारेण विभुः प्रविश्य वरुणालयम्।।११४।।
अन्विष्याऽऽकृष्य वेलायां निष्पिपेष महीतले।
मधोः शुक्ल चतुर्दश्यां पतितो दानवोत्तमः।।११५।।
भगवत्करसम्पर्कात्सुगन्धिरभवत्तृणम्। तस्यैव नाम्नाऽतः सम्यग्जग्राहाश्चर्यमानसः।।११६।।
मालां कृत्वा हृत्प्रदेशमिलितांवनमालया। अचिन्तयत्तस्यगन्धंयावद्वस्तुचिरस्थितम्।।११७।।
तस्याऽपि गन्धः सर्वेषां पुष्पाणां सौरभापहः।
वर्णस्तु भगवन्मूर्तेस्तुल्योऽभूत्स सुशोभनः।।११८।।

हे मुनिगण! अन्य एक बात सुनें। पूर्वकाल में दमनक नाम का एक दैत्य था। वह सतत् समुद्रजल में विचरण करता था। वह माया बल के कारण अतीव पराक्रमी हो गया था तथा सर्वदा सामान्य जनगण को अतिशय क्लेश देता था। तत्पश्चात् ब्रह्मा की प्रार्थना के अनुसार मायावी भगवान् ने अपनी मत्स्यावतार मूर्त्ति धारण किया तथा सागर जल में प्रविष्ट होकर अनेक अन्वेषणोपरान्त उसे समुद्रतट की ओर आकर्षित किया। तदनन्तर उसे पृथिवी पर अच्छी तरह पीस दिया। वह दानवप्रवर चैत्रमासीय शुक्लचतुर्दशी के दिन निहत हुआ। भगवान् के करस्पर्श से (जहां वह पीसा गया था) उस स्थान पर सुगन्धित तृण उगने लगे। उसके दर्शन से भगवान् आश्चर्यान्वित हो गये तथा उसका नाम उन्होंने सुगन्धितृण रखा तथा माला बनाकर उसे वनमाला के साथ हृदय पर धारण कर लिया। तब वे उसकी गन्ध का विचार करने लगे। फलस्वरूप जो भी वस्तु गन्धतृण के साथ कुछ देर रख दी जाती है, उसकी गन्ध समस्त पुष्पों की गन्ध को पराजित कर देती है। उस तृण का वर्ण भी भगवान् की मूर्त्ति की तरह अत्यन्त सुन्दर है।।११३-११८।।

तस्य माला भगवतः परमप्रीतिकारिणी।
शुष्कापयुषिता वाऽपिनदुष्टाभवतिक्वचित्।।११९।।
तस्य सुग्रथितां मालांदत्त्वादमनकारये। उत्पादयेन्महाप्रीतिंविष्णोर्यामुक्तिदायिनी।।१२०।।
अङ्गापकर्षितां मालां भक्त्या यो धारयेन्नरः।
हयमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम्।।१२१।।

तुलसीकल्पितां मालां विष्णोरङ्गापकर्षिताम्।
धारयेन्मूर्ध्नि कण्ठे च भक्तो यो विन्यसेद् धृदि।
तावत्सङ्ख्यं वाजिमेधफलमव्यग्रमश्नुते॥१२२॥

निर्माल्यतुंलसीपत्रं यावद्भक्षयते हरेः। तावज्जन्मसहस्रं तु, विष्णुलोके महीयते॥१२३॥
हरेर्नैवेद्यमन्नं च तुलसीदलमिश्रितम्। प्रतिग्रासं सोमपानं फलं तत्सममश्नुते॥१२४॥

यावज्जीवं तु भुञ्जानो ध्रुवं मोक्षमवाप्नुयात्॥१२५॥
अर्घ्यशेषादिकं विष्णोस्तथाऽऽचाचमनोदकम्।
पादोदकं स्नानवारि प्रत्येकं पापनाशनम्॥१२६॥

सर्वतीर्थभिषेकाणां फलदं ग्रहनाशनम्। अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं भूतवेतालनाशनम्॥१२७॥

इसीलिए गन्धतृण की माला भगवान् के लिये अत्यन्त प्रीतिप्रद है। वह शुष्क तथा बासी होने पर भी कभी दूषित नहीं होती। इसलिये दमनकारी प्रभु की उस गन्धतृण की सुन्दर रूप से ग्रथित माला से भगवान् की महती प्रीतिप्रदा प्रसन्नता उत्पन्न करना सबका कर्त्तव्य है। जो मनुष्य भगवान् के अंग से उतरी माला को भक्तिपूर्वक धारण करता है, उसे निःसंदिग्ध रूप से १००० यज्ञ फल मिलता है। इसी प्रकार विष्णु के अंग से उतरी तुलसी माला कण्ठ अथवा मस्तक पर धारण करने वाला व्यक्ति जब तक भूतल पर निवास करता है, तब तक वह जीवन्मुक्त रहकर असंख्य अश्वमेध यज्ञफल प्राप्त करता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। मानवगण भगवान् हरि के जितने निर्माल्य तुलसी पत्र का भक्षण करते हैं, वे उतने सहस्र जन्म तक विष्णुलोक में पूजित होते हैं। भगवान् हरि के तुलसी पत्रयुक्त नैवेद्यान्न के भोजन के प्रतिग्रास से सोमपान के समान फल मिलता है तथा वह यावज्जीवन ऐसे ही भोजन करके निश्चित रूपेण मोक्ष प्राप्ति करता है। भगवान् के अर्घ्य का बचा जल, आचमन किया जल, चरणोदक, स्नान का उच्छिष्ट जल (जिस जल से स्नान किया था) सर्वतीर्थ स्नान के समान फलदायक है। उससे ग्रह शान्त हो जाते हैं। वह जल अलक्ष्मी, पापनाशक, रक्षाकारक भूत-बेताल नाशक होता है।।११९-१२७।।

शवाद्यमेध्यसंस्पर्शदोषनाशनमुत्तमम्। सवदीक्षाव्रतफलप्रदमैश्वर्यवर्द्धनम्॥१२८॥
अकालमृत्युहरणं व्याधिव्यूहनिबर्हणम्। सुरागोमांसभक्ष्यादिपापसङ्गविनाशनम्॥१२९॥

यह शव आदि अपवित्र वस्तु स्पर्शजनित दोषनाशक है। यह सभी प्रकार के भीषण व्रतों जितना फल प्रदान करता है। यह ऐश्वर्यवर्द्धक, अकालमृत्युनाशक, व्याधिशान्तिकारक तथा सुरा एवं गोमांसादि भोजनजन्य पापों का विनाश करने वाला है।।१२८-१२९।।

एतैराप्लुतदेहस्तु शृणुयाद्यदि सूतकम्। नाशौचंविद्यते तस्य सर्वकर्माऽदिकारिणः॥१३०॥

यावज्जीवं प्रतिज्ञाय यस्त्वेतान्येकमेव वा।
गृह्णीयाद् भूरि वा स्वल्पं मुच्येद्विष्णोः प्रसादतः॥१३१॥

एवं तत्र वसन्देवो लोकानुग्रहकाङ्क्षया। रममाणः श्रिया सार्द्धमनायासविमोचकः॥१३२॥

निर्माल्यपादाम्बुनिवेदनीयदानै स्तदालोकनतत्प्रणामैः।
पूजोपहारैश्च विमुक्तिदाता क्षेत्रोत्तमेस्मिन्पुरुषोत्तमाख्ये॥१३३॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे भगवतःप्रसादनिर्माल्यादिमाहात्म्यकथनंनामाऽष्टत्रिंशोऽध्यायः॥३८॥
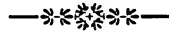
उक्त चतुर्विध जल में आर्द्रदेह स्थित होकर (स्नान करते समय) उस समय यदि सूतकाशौच का समाचार श्रुतिगोचर होता है, तथापि उसे अशौच नहीं होगा। वह पुरुष सभी कर्म कर सकता है। जो व्यक्ति प्रतिज्ञा लेकर समस्त जीवन यह चतुर्विध किंवा एकविध जल, बहुत किंवा अल्प मात्रा में ग्रहण करता है, वह निश्चय ही विष्णु की कृपा से मुक्त होगा। हे मुनिगण! जगन्नाथदेव मनुष्यों के प्रति अनुग्रह प्रकाश करने की इच्छा से पुरुषोत्तम क्षेत्र में कमला के साथ क्रीडारत होकर निरन्तर स्थित रहते हैं। अतः वे सभी को अनायास मुक्ति प्रदान करते हैं। हे तपोधनगण! उक्त पुरुषोत्तम नामक अत्युत्तम पुण्यक्षेत्र में स्वयं भगवान् सतत् विराजित रहते हैं। जो उनका निर्माल्य पादोदक तथा उच्छिष्ट नैवेद्यान्न भोजन करता है अथवा उनका दर्शन करता है तथा प्रणाम करता है, अथवा जो प्रभु को पूजोपहार अर्पित करता है, उसे भगवान् जगन्नाथ दुर्लभ मोक्षपद प्रदान करते हैं॥१३०-१३३॥

॥अष्टत्रिंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवान् का उत्थापन समारोह-उत्थापनविधि वर्णन

मुनय ऊचुः

मुने! त्वत्तः श्रुतं सम्यङ्माहात्म्यं जगदीशितुः। निर्माल्यप्रभृतीनांचयथावदनुपूर्वशः॥१॥
श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्यात्रान्तरफलानि वै। शृण्वतां तत्त्वतो ब्रूहि यथोद्देशःकृतःपुरा॥२॥

मुनिगण कहते हैं—हे मुनिवर! आपसे हमलोगों ने जगदीश्वर जगन्नाथ देव का निर्माल्य माहात्म्य श्रवण किया। हे ब्रह्मन्! अब अन्यान्य यात्रा फल का विषय हम सुनना चाहते हैं। आप इस विषय के सम्बन्ध में तथा पूर्व में जिस उद्देश्य से भगवान् ने यात्रा प्रवर्त्तित किया था, उसका यथार्थरूप से वर्णन करें। हम सब उसे सुनने हेतु इच्छुक हैं॥१-२॥

जैमिनिरुवाच

सर्वथा वर्त्तते लोकहिताय पुरुषोत्तमः। नानागुणविकासैश्च नानारूपविचेष्टितैः॥३॥

नानारूपविलासेन नानात्मा च जगन्मयः। अहङ्कारं विना कर्मफलं नो द्विजसत्तमाः॥४॥
अहङ्कारेण बध्यन्ते कारागारे भवाभिधे। बुद्ध्यहङ्कारयुक्तस्तु यत्कर्माऽऽरभते नरः॥५॥
तस्यसद्गुणमाप्नोति फलं शुभमथाऽपरम्। बुद्धिस्तुत्रिविधातेषांगुणभेदेनभाविता॥६॥
तत्र ये सात्त्विकाः सन्तः फलावाप्तिपराङ्मुखाः। भगवत्प्रीतये कर्मकुर्वतेतेमुमुक्षवः॥७॥
परस्य स्पर्द्धया कीर्त्यै फलमुद्दिश्य वा पुनः। बहुवित्तव्ययायासै राजसं कर्म तन्वते॥८॥
गतानुगतिका ये च दृष्टार्थैकपरायणाः। प्रसङ्गात्फलमिच्छन्तस्तामसं कर्म कुर्वते॥९॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे मुनिगण! भगवान् पुरुषोत्तम सर्वथा अखिल लोक हितकारी नाना लीला करते हैं। तभी भगवान् जगन्मय जगन्नाथ देव नाना गुणविकार, नाना रूप-चेष्टा तथा नाना भाव में विहार करते हैं। हे द्विजवरगण! अहंकार के बिना कर्मफल का जन्म नहीं होता। अहंकार के कारण ही जीवगण इस भवार्णव रूपी कारागृह में बद्ध हो जाते हैं। अहंकार युक्त मानव बुद्धिपूर्वक जो कर्माचरण करते हैं, वही शुभाशुभ षड्गुण फल प्रदान करता है। सत्वादि त्रिगुण भेद के कारण यह बुद्धि भी तीन प्रकार की है। जिनकी बुद्धि सात्विक है, वे साधु लोग केवल मोक्ष फल की ही कामना करते हैं। वे अन्य फल नहीं मांगते। उनका प्रत्येक कार्य भगवत् प्रीत्यर्थ होता है। जिनकी बुद्धि रजोगुण पूर्ण है, वे अन्य के प्रति स्पर्द्धा-कीर्त्ति-तथा अन्य फल हेतु अनेक प्रकार के राजस कर्मों का अनुष्ठान करते रहते हैं। जिनकी बुद्धि केवल दृष्ट फलों में ही आसक्त है, वे पुनः आवागमन के चक्र में पड़े तामसबुद्धि वाले फल कामनार्थ तामस कर्म प्रसक्त होते हैं।।३-९।।

सात्त्विकानां जगन्नाथः सर्वदा सर्वभावनः।
ध्यातो दृष्टः स्मृतो वाऽपि मुक्तिदाता न संशयः॥१०॥

राजसास्तामसा ये वै मूढात्मानः फलैषिणः। उत्सवादिकृतं कर्ममन्यन्तेफलदायिते॥११॥
सम्भूय बहवो विप्रो आरभन्तेऽल्पकं विधिम्। बहुलायासदुःखंयत्कर्मतेषांफलप्रदम्॥१२॥
तेषामुद्धरणार्थाय विश्वासाय दुरात्मनाम्। यात्रा नानाविधा विप्रा वर्षे वर्षे प्रवर्तयेत्॥१३॥

यदि ये सभी सात्विक व्यक्ति सर्वतोभावेन सदैव भगवान् जगन्नाथदेव का ध्यान, दर्शन तथा स्मरण करते हैं, तब निश्चय ही भगवान् द्वारा उनको मुक्ति प्रदान की जाती है। फलाभिलाषी मूढ़मति लोग (राजस तथा तामस पुरुष) फलप्रद उत्सवादि कार्य को अतिशय ग्रहण करते हैं। वे अनेक लोग मिलकर सामान्य फलप्रद उत्सवादि कार्यारम्भ करते हैं। इस कार्य में उनको प्रचुर प्रयास तथा दुःख उठाना पड़ता है। यह विवेचना करके ही सभी आवागमन में फंसे मूढ़ मनुष्यों के उद्धारार्थ योग साधन-विश्वास रहित मूढात्माओं के विश्वास के लिये भगवान् जगन्नाथ ने प्रतिवर्ष मनाई जाने वाली यात्राओं का प्रवर्त्तन किया है।।१०-१३।।

जन्मस्नानं महावेद्या उत्सवश्च प्रकीर्तितः। महायात्राद्वयं पुंसां कीर्तनात्पापनाशनम्॥१४॥
दर्शनं दक्षिणामूर्तेस्तथा च शयनोत्सवः। सर्वपापहरश्चैषामुत्सवो दक्षिणायने॥१५॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि पार्श्वस्य परिवर्तनम्। शयितस्य जगद्भर्तुः परिवर्तयितुर्युगम्॥१६॥
नभस्यविमले पक्षे सम्प्राप्ते हरिवासरे। विष्णोः स्वापगृहद्वारि शनैर्गत्वा प्रविश्य च॥१७॥
नमस्कृत्वा जगन्नाथं पर्यङ्के शयितं मुदा। अवच्छाद्य शनैर्गत्वा पूजयेदुपचारकैः॥१८॥

प्रणम्य भक्त्या तत्पादौ गुह्योपनिषदैः स्तुवन्। मन्त्रं चेमं पठन्देवं स्वापयेदुत्तरामुखम्।।१९।।

हे मुनिगण! मैंने जिस जन्मस्थान तथा महावेदी महोत्सव का विषय कहा था, उक्त महायात्राद्वय के नाम का जप करने से ही मानव का पापनाश होता है। अब दक्षिणामुखीन मूर्त्ति का दर्शन तथा दक्षिणायन को कहता हूं जो सर्वपापहारी उत्सव है। हे महर्षिगण! जगदीश्वर जनार्दन जब शयनरत रहते करवट बदलते हैं, उस पार्श्व परिवर्त्तन उत्सव के सम्बन्ध में सुनिये। भाद्रमासीय शुक्लपक्षीय एकादशी के दिन भगवान् विष्णु के शयनगृह में धीरे से जाये तथा आनन्दित होकर पलंग पर शायित जगन्नाथ देव को प्रणाम करें। तदनन्तर धीरे से शय्या के पर्दे के द्वार को हटाकर यथोक्त उपचार से भगवान् की पूजा करनी चाहिये। भक्तिपूर्वक भगवान् के चरणों में प्रणाम करके गुह्योपनिषद द्वारा यह मन्त्र पाठ करे तथा उत्तर मुख उन देव का स्नान सम्पन्न करें।।१४-१९।।

देवदेव जगन्नाथ कल्पानां परिवर्तक!। परिवृत्तमिदं सर्वं येन स्थावरजङ्गमम्।।२०।।
यदिच्छाचेष्टितैरेव जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिभिः। जगद्धिताय सुप्तोऽसि पार्श्वेन परिवर्त्तय।।२१।।
परिवर्त्तनकालोऽयंजगतः पालनाय ते।
तवाऽऽज्ञयाऽयंशक्रोऽपिध्वजेतिष्ठन्समुत्सुकः।।२२।।
द्रष्टुं त्वत्पादकमलं विमुञ्चञ्जलदैर्जलम्। महीतलं प्लावयति प्रजापालनहेतुकम्।।२३।।

मन्त्र है—"हे देवदेव जगन्नाथ! आप अखिल कल्पों के परिवर्त्तक हैं। आप स्वेच्छाकृत जागरण-निद्रा तथा सुषुप्ति द्वारा स्थावर-जंगमात्मक निखिल विश्व का निरन्तर परिवर्त्तन करते हैं। सम्प्रति आप जगत् हितार्थ शयनरत रहते हैं। अब आपकी करवट बदलने का समय हो गया। अतएव जगत् पालनार्थ आप करवट बदलें। हे देव! देवराज आपके आदेशानुसार आपके ध्वज के ऊर्ध्व में स्थित होकर आपके चरणकमलों का दर्शन करने के लिये समुत्सुक चित्त से जलधारा का वर्षण करते हुये पृथिवी को प्लवित करते हैं।"।।२०-२३।।

इति सम्प्रार्थ्य देवेशं वीप्सया तोषयेत्ततः। व्यजनैश्चामरैश्चैव वीजयेदनुकल्पकृत्।।२४।।
सुगन्धचन्दनैरस्य सर्वाङ्गं परिलेपयेत्। स्वादूनिक्षुविकारांश्च विकृतैः पायसैस्तथा।।२५।।
यावकानि च हृद्यानिफलानिविविधानिवै। स्वादूपदंशानन्यांश्चघृतपूपान्सपायसान्।।२६।।
पक्वताम्बूलपत्राणि सोपस्काराणि च द्विजाः।
शय्यागृहद्वारि विभोः शनैर्भक्त्त्या निवेदयेत्।।२७।।
तस्मिन्दिने हरे रूपं भवेद्यदि महाफलम्। देवमुद्दिश्य यः कुर्यात्सर्वमक्षयतां व्रजेत्।।२८।।
स्नानं दानं जपो होमस्तपो जागरणं तथा। उपवासश्च नियमो व्रतान्तेद्विजतर्पणम्।।२९।।
साङ्गं व्रतमिदं कृत्वा विष्णुलोकमवाप्नुयात्।
यं यं कामयते चित्ते तं तमाप्नोत्यसंशयम्।।३०।।
अयं वः कथितो विप्राःपार्श्वपर्यायणोत्सवः। अनायासेनलोकानामक्षयःसुखदायकः।।३१।।

इस प्रार्थना के पश्चात् देवदेव को अनेक विनय से प्रसन्न करने के उपरान्त भगवान् की कृपा तथा दया प्राप्त करने हेतु उनको चामर झले। हे द्विजगण! तदनन्तर सुगन्धि चन्दन से भगवान् का सर्वाङ्ग लिप्त करके

उनके शय्या-गृह के द्वार पर भक्तिपूर्वक तथा धीर भाव से विशिष्ट रूपेण संस्कृत पायस के साथ सुस्वादु गन्ने से बना पदार्थ, प्रीतिपद यावक, विविध फल, अनेक घृतयुक्त पदार्थ तथा पिष्टकादि और सभी प्रकार के द्रव्यों से युक्त ताम्बूल को अर्पित करें। जो व्यक्ति इस समय परमेश्वर का दर्शन तथा स्तव करता है, उसे जननी के गर्भ में पुनः जाकर संकटापन्न नहीं होना पड़ता। इस दिन भगवान् हरि की मूर्त्ति के दर्शनादि करने से महाफललाभ होता है तथा जगन्नाथ देव की प्रीति के लिये स्नान-दान-जप-होम-पूजा-जागरणादि जो कुछ अनुष्ठित होता है, सभी अक्षयरूप फल प्रदान करता है। साथ ही वह अनुष्ठान करने वाला जन्म लेकर संसार की मनुष्य संख्या वृद्धि नहीं करता। वह व्यक्ति मन में जो-जो कामना करता है, वह निःसंदिग्ध रूप से उसे प्राप्त हो जाती है। इस व्रत के अन्त में भोजनादि से ब्राह्मणों को तृप्त करना चाहिये। वह व्यक्ति मृत्यु के पश्चात् विष्णुलोक की प्राप्ति करता है। मैंने आप लोगों से भगवान् के पार्श्व परिवर्त्तन (करवट बदलने) सम्बन्धित उत्सव का वर्णन कर दिया। यह अखिल लोकों हेतु अक्षय सुखकारक होता है।।२४-३१।।

अतः परं वै श्रृणुत उत्थापनमहोत्सवम्। पूजयित्वा जगन्नाथं कौमुद्याख्येमहोत्सवे॥३२॥

अक्षक्रीडादिभिः पुष्पवस्त्रमाल्यानुलेपनैः।
ततोऽस्मिन्पौर्णमास्यायां रात्रावुत्सवसंयुतम्॥३३॥

नारिकेलादिभिर्द्रव्यैः पिष्टकैरर्चयेद्धरिम्। ततः प्रभाते सङ्कल्प्य कार्त्तिके व्रतमुत्तमम्॥३४॥

व्रतेन तेनैव नयेद्यावदेकादशी सिता। तस्यामुत्थापयेद्देवं सुषुप्तं जगदीश्वरम्॥३५॥

पूर्ववत्पूजयित्वा तु निशामध्ये जगद्गुरुम्। उत्थापयेदिमं मन्त्रमाह्वयञ्छनकैर्मुदा॥३६॥

उत्तिष्ठ देवदेवेश! तेजोराशे जगत्पते। वीक्षस्व सकलं देव प्रसुप्तं तव मायया॥३७॥

प्रफुल्लपुण्डरीकश्रीहारिणा नयनेन वै। त्वया दृष्टं जगदिदं पावित्र्यं परमेष्यति॥३८॥

श्रौतस्भार्त्ताः क्रियाः सर्वाः प्रवर्त्तन्ते ततो ध्रुवम्।
इत्युत्थाप्य जगन्नाथं वेणुवीणादिकस्वनैः॥३९॥

हे मुनिगण! अब आप लोग भगवान् के उत्थापन (जागरण) महोत्सव को सुनिये। कौमुदी महोत्सव में जगन्नाथ देव का पूजन करके आनन्दपूर्वक जलक्रीड़ा, पुष्प, वस्त्र, माला तथा अनुलेपन से उनको प्रसन्न करना चाहिये। तत्पश्चात् उत्सवपूर्ण पौर्णमासी रात्रि के दिन पिष्टक तथा नारियल आदि द्रव्यों द्वारा हरि की अर्चना करें। तत्पश्चात् प्रभात के समय अत्युत्तम कार्त्तिक व्रत का संकल्प लेकर शुक्लपक्षीय एकादशी तिथि तक का समय उक्त व्रतावलम्बन से व्यतीत करें। तत्पश्चात् एकादशी के दिन प्रसुप्त जगदीश्वर देव जनार्दन की पूर्ववत् पूजा करके उत्थापन करें। इस दिन रात्रि में आनन्दचित्त होकर यह मन्त्रोच्चारण करते हुये क्रमशः भगवान् को धीरे-धीरे उठाये। मन्त्र है—"हे देवदेवेश! हे तेजोराशि! आप की माया से समस्त जगत् सुप्त है। हे देव जगत्पति! आप इस प्रसुप्त जगत् पर दृष्टिपात करके उठिये। हे नाथ! आप प्रफुल्ल कमल के समान मनोहर नेत्र से जब जगत् पर दृष्टिपात करते हैं तब यह जगत् परम पवित्रतालाभ करेगा और इस प्रकार श्रुति-स्मृति विहित सभी क्रिया प्रवृत्त होगी। इसमें सन्देह नहीं है।" यह कहकर वेणु-वीणादि वाद्य बजाकर जगन्नाथदेव को उठायें।।३२-३९।।

वन्दिमागधसूतानां स्तुतिभिर्मङ्गलस्वनैः। शङ्खकाहालमुरजवादनैर्नृत्यगीतकैः॥४०॥
जयशब्दैस्तथा स्तोत्रैर्नयेत्तं नृत्यमण्डपम्। सुगन्धतैलेनाऽभ्यज्य स्नापयेत्पुरुषोत्तमम्॥४१॥
पञ्चामृतैर्नारिकेलरसैः फलरसैस्तथा। सुगन्धाऽऽमलकेनाऽथ यवकल्केन लेपयेत्॥४२॥
घर्षयेत्तुलसीचूर्णैर्लेपयेद्गन्धचन्दनैः। पुष्पाधिवासितैस्तोयैस्तथा कर्पूरवासितैः॥४३॥
कुशोदकै रत्नतोयैस्तथागन्धोदकैस्तथा। स्नाप्यमानंतथादेवंयेपश्यन्तिमुदान्विताः॥४४॥
क्षालयन्तिदृढंपङ्कबहुजन्मोपपादितम्। ततः श्रीजगदीशस्य क्रोडेसम्वासयेद्द्विजाः॥४५॥

तब बन्दी, मागध तथा सूतजन मंगल सूचक स्तुति करें। शंख-काहल-मुरज आदि वाद्य ध्वनि, नृत्य-गीत, जय जयकार तथा स्तव पाठ के साथ भगवान् को नृत्यमण्डल ले जाये। तत्पश्चात् भगवान् के सभी अंगों में सुगन्ध तैल मर्दन करके पंचामृत तथा नारियल प्रभृति उत्तम रसों से पुरुषोत्तमदेव को स्नान करायें। तत्पश्चात् उनके सर्वाङ्ग में सुगन्धित आमलक चूर्ण के साथ यवकल्प लिप्त करके तुलसी चूर्ण का घर्षण करने के उपरान्त सद्गन्ध एवं चन्दन समस्त शरीर पर लिप्त करे। तत्पश्चात् क्रमशः पुष्पवासित तथा कर्पूरवासित जल, कुशोदक, रत्नोदक ने एवं गन्धोदक से भगवान् को स्नान कराये। उस समय जों लोग आनन्दित होकर जगन्नाथ देव के इस स्नानोत्सव का दर्शन करते हैं, वे अनेक जन्मसंचित दृढ़ रूप से बद्ध पापों का प्रक्षालन कर लेते हैं। हे द्विजगण! अधिक क्या कहा जाये! तदनन्तर साक्षात् देवी कमला ऐसे पापरहित भक्त को स्वयं जगदीश्वर की गोद में रख देती हैं।।४०-४५।।

आपादान्मूर्धपर्यन्तं सर्वाङ्गं परिलेपयेत्। कुङ्कुमागुरुकस्तूरीकर्पूरैश्चन्दनान्वितैः॥४६॥
पाटलोदकसम्पिष्टैः कालागुरुरसाप्लुतैः। दत्त्वा च मालतीमालां चन्द्रचूर्णेनसंयुताम्॥४७॥
महोपचारैः सम्पूज्य विष्णुं नीराजयेत्ततः। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रार्थयेत्परयामुदा॥४८॥

तत्पश्चात् तीर्थजल से सम्यक्तः पीसे गये काले अगुरु के रस से आप्लुत, चन्दनान्वित कुंकुम, अगुरु, कस्तूरी तथा कर्पूरचूर्ण द्वारा भगवान् को सिर से पैरों तक लेप लगाये तथा कर्पूर चूर्ण से सुवासित मालती माला प्रदान करें। तदनन्तर महान् उपचारों से भगवान् का पूजन करने के अनन्तर उनकी नीराजना करनी चाहिये। इसके पश्चात् कृतांजलि होकर परमानन्दपूर्वक भगवान् से प्रार्थना करना आवश्यक हैं। अतः कृतांजलि होकर यह प्रार्थना करें। प्रार्थना मुदित होकर करना चाहिये।।४६-४८।।

चराचरमिदं सर्व त्वदेकशरणं विभो!। अनुग्रहामृतालोकैः पावयस्व जगद्गुरो!॥४९॥
नृत्यगीतैः प्रेषणकै रात्रिशेषं समापयेत्। शयनादुत्थितं देवं यः पश्यति गदाधरम्॥५०॥

निद्रां मोहमयीं भित्त्वा ज्योतिः शान्तं व्रजन्ति ते।
सर्वान्कामानवाप्नोति यान्यान्कामयते हृदि॥५१॥

अश्वमेधसहस्रस्य फलं साङ्गं लभेत वै। कपिलाऽलङ्कृताधेनुकोटिदानफलं तथा॥५२॥
पुण्यं चाप्नोति,परमंसर्वतीर्थाभिषेकजम्। कार्त्तिक्यांपोरणंकुर्याच्चातुर्मास्यव्रतस्यवै॥५३॥

दामोदरस्य प्रतिमां स्वर्णनिष्केण निर्मिताम्।
यथाशक्तिकृतां वाऽपि शालग्रामशिलास्थिताम्॥५४॥

चक्रमूर्तिं भगवतः पूजयेत्प्रयतात्मवान्। रचयेन्मण्डपं शुभ्रमेकदेशं गृहस्य वा॥५५॥
अलङ्कुर्यात्पुष्पदामचामरैः सवितानकैः। भूमिभित्तीः सुधालेपैःस्तम्भैश्चित्रदुकूलकैः॥५६॥
कालागुरूणां धूपैश्च धूपयेत्तद्गृहं शूभम्। तन्मध्येमण्डलंकुर्यात्स्वस्तिकंवर्णकैःशुभैः॥५७॥

यथा—"हे प्रभो! इस चराचर जगत् के एकमात्र आप ही रक्षक हैं। हे जगद्गुरु! आप अनुग्रहरूपी अमृतपूर्ण दृष्टिपात् से सभी को अपार संसार सागर से पार करें।" तदनन्तर नृत्यगीत द्वारा शेष रात्रि व्यतीत करना चाहिये। जो उस समय शय्या से उत्थितदेव गदाधार का दर्शन करते हैं, वे देहान्त के पश्चात् मोहनिद्रा त्याग कर चिरशान्तिपूर्ण ब्रह्मज्योति की प्राप्ति करते हैं। वे व्यक्ति मन ही मन जिस-जिस विषय की अभिलाषा करते हैं, उनकी वे सभी कामना पूरी हो जाती हैं तथा वे सुसम्पूर्ण १००० अश्वमेध यज्ञ का पूर्णफल लाभ कर लेते हैं। यथाविधि अलंकृता कोटि कपिला गौदान का जो फल कहा है तथा सर्वतीर्थाभिषेक (स्नान) जनित जो परम पुण्य उल्लिखित है, वह सब उस व्यक्ति को प्राप्त होता है। हे मुनिगण! पूर्वोक्त चातुर्मास्य व्रत का कार्त्तिकी पूर्णिमा के दिन पारण विहित है। इस चार मास में संयतात्मा रहकर इस दिन अष्टनिष्क वजन का स्वर्ण अथवा यथाशक्ति स्वर्णदान से भगवान् की प्रतिमा बनाये। उसमें अथवा शालग्राम शिला में भगवान् की चारों मूर्त्ति (जगन्नाथ, सुभद्रा, बलभद्र, सुदर्शन चक्र) की पूजा करें। उक्त पूजा हेतु सुधा के समान उज्वल गृह के एक भाग को पुष्पमाला, चामर, चन्दोवा से सजाये। इस गृह की चारों ओर की फर्श तथा दीवालों को सुधालेपन से उद्भासित करें। सभी स्तम्भ चित्रविचित्र सजावट तथा वर्णवाले हों। सम्पूर्ण गृह को काले अगुरु तथा सुगन्ध द्रव्य मिली धूप से सुवासित करे। उसमें विविध स्फटिकवर्ण से निर्मित शुभमण्डल बनाये।।४९-५७।।

तदन्तः स्थपयेत्खट्वां करिदन्तमयीं शुभाम्। पट्टतूलीं तदुपरिवासयेत्पुरुषोत्तमम्॥५८॥
दामोदराकृतिं शङ्खपद्मपाणिं चतुर्भुजम्।
लक्ष्मीमालिङ्ग्य पद्मस्थां क्रोडस्थां वामपाणिना॥५९॥
भक्तेभ्यो दातुमुद्यन्तं वरं दक्षिणपाणिना। सुनासं सुललाटं च सुनेत्रं सुश्रुतिद्वयम्॥६०॥
विशालवक्षसं देवं सर्वलावण्यसंयुतम्। सर्वालङ्काररुचिरं दिव्यपीतनिचोलिनम्॥६१॥
लक्ष्मीं पद्माकरांवापिताम्बूलंददतींतथा। पञ्चामृतैः स्नापयित्वावासो युग्मेनवेष्टयेत्॥६२॥
पूजवेदुपचारैस्तं यथाविभवविस्तरैः। ताम्रदीपान्मृन्मयान्वाज्वालयेद्गव्यसर्पिषा॥६३॥
तैलेन वा शतं दीपवृक्षांश्चैव प्रदीपयेत्। ब्रह्माणं नारदादींश्च देवर्षीस्तत्र पूजयेत्॥६४॥

उसके ऊपर हाथी दांत की मनोहर खाट स्थापित करके उस पर चादर, गद्दी बिछाये। उस पर शंख चक्र विभूषित चतुर्भुज दामोदर आकृति वाले पुरुषोत्तम को स्थापित करना चाहिये। वे अपने बायें हाथ से गोद में स्थित पद्मासनस्था कमला का आलिंगन कर रहे हैं। दूसरे दाहिने हाथ से वे भक्तों के लिये वरदान देने हेतु उद्यत हैं, ऐसी मूर्त्ति हो। उनकी नासिका, ललाट, नेत्रद्वय, कर्णयुगल सुन्दर रूप से बने हों। वक्ष विशाल हो तथा सर्वाङ्ग लावण्यमय हो। उनके पहनने के वस्त्र सुन्दर पीतवर्ण हों। भगवान् का सर्वांग सर्वालंकार से अलंकृत हो। कमला देवी के एक हाथ में स्वर्ण कमल तथा दाहिने हाथ में मानों वे ताम्बूल लेकर भगवान् को खिलाने के लिये प्रस्तुत हैं, यह मूर्त्तिगठन में हो। पहले पंचामृत से प्रतिमा को स्नान कराकर उन्हें वस्त्रद्वय धारण

कराये। तदनन्तर अपने ऐश्वर्य के अनुरूप उपचार प्रदान करके अर्चना करें। पूजा का समापन हो जाने पर ताम्रमय अथवा मृण्मय दीपावलि तथा शतसंख्यक दीपवृक्षों को गोधृत अथवा तैल द्वारा प्रज्वलित करें। इसे वहां लगाये। वहां ब्रह्मा तथा नारदादि देवर्षिगण की पूजा करें।।५८-६४।।

दामोदरस्वरूपान्वै ब्राह्मणानपि पूजयेत्। वस्त्रयुग्मैर्माल्यगन्धैर्भक्ष्यभोज्यफलैस्तथा।।६५।।
तीर्थराजाभिषेकाङ्गं पूजाकर्म यथोचितम्। दामोदरस्य तेनैव विधिनेहाऽर्चनम्भवेत्।।६६।।
तद्विष्णोरिति मन्त्रेण ब्रह्मादीनपि पूजयेत्। वेणुवीणादिकैर्गीतैः पुराणपठनेन च।।६७।।
महोत्सवं प्रकुर्वीत ततो जागरणेन च। ततः प्रभाते विमलेऽग्निकार्यञ्च समाचरेत्।।६८।।
अष्टाक्षरेणमन्त्रेण समिदाज्यचरूनपि। लाजान्मधुसमिन्मिश्राञ्जुहुयाच्चततः श्रियै।।६९।।
सूक्तेनाऽष्टोत्तरशतं ब्रह्मादीनां तदन्ततः। अष्टाहुतीर्वै जुहुयात्क्रमादेकैकशस्तिलैः।।७०।।
ब्रह्माणं नारदं दक्षं वसिष्ठं गौतमं तथा। सनत्कुमारमत्रिं च भरद्वाजञ्च कश्यपम्।।७१।।
दुर्वाससमगस्त्यञ्च महादेवं ततःपरम्। विख्याता वैष्णवा ह्येते विष्णुरूपानसंशयः।।७२।।

दो वस्त्र, माला, गन्ध, भक्ष्य-भोज्य तथा विविध फलों से दामोदररूप ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिये। हे मुनिगण! पूर्व में तीर्थराज सागर में स्नानोपरान्त जिस प्रकार के पूजाविधान का वर्णन है, इस दिन भी उसी प्रकार से दामोदर की अर्चना करनी चाहिये। "तद्विष्णो" इत्यादि मन्त्र द्वारा ब्रह्मादि की पूजा करें। उस दिन वेणु-वीणा ध्वनि के साथ संगीत, पुराणपाठ तथा रात्रि में जागरणादि द्वारा महोत्सव करें। प्रभात होने पर होम करना विधेय है। भगवान् की प्रसन्नता के लिये अष्टाक्षर मन्त्र का पाठ करते हुये यथाविधि समिध्, घृत तथा चरु की आहुति प्रदान करें। लक्ष्मी के लिये यथोक्त सूक्त (लक्ष्मीसूक्त) पाठ करते हुये १०८ मधु से लिपटे लावा की आहुति प्रदान करें। तत्पश्चात् ब्रह्मा-नारद-दक्ष-वसिष्ठ-गौतम-सनत्कुमार-अत्रि-भरद्वाज-कश्यप-दुर्वासा-अगस्त्य तथा महादेव हेतु एक-एक को क्रमानुसार ८-८ तिलाहुति प्रदान करें। ये विख्यात वैष्णव साक्षात् विष्णुरूप हैं। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये।।६५-७२।।

एतान्सम्पूजयन्विप्रान्विष्णुः प्रीणाति तत्क्षणात्।
होमान्ते प्राशनं कृत्वा दद्यादाचार्यदक्षिणाम्।।७३।।
सुवर्णभूषितां धेनुं वस्त्रं धान्यञ्च भक्तितः। प्रीतये वासुदेवस्यभोजयेद्द्विजपुङ्गवान्।।७४।।
सर्वोपचारसहितं दद्याद्दामोदरं ततः।।७५।।
ॐ दामोदर! जगन्नाथ! त्वन्मयंविश्वमेव हि। त्वदाधारमिदंसर्वंत्वं धर्मःसर्वभावनः।
त्वत्प्रसादात्व्रतञ्चीर्णं सुसम्पूर्णं तदस्तु मे।।७६।।
दामोदरः प्रदाता च ग्रहीता च वृषध्वजः। प्रदीयते जगन्नाथः प्रीयतां मे जगद्गुरुः।।७७।।

इसी कारण भक्ति के साथ इनकी पूजा करने पर भगवान् विष्णु तत्क्षण प्रसन्न हो जाते हैं। इस प्रकार होमान्त में आचार्य को भोज कराकर भक्तिभाव से उनको स्वर्णभूषित गौ, वस्त्र, धान्य, दक्षिणा देनी चाहिये। तदनन्तर भगवान् वासुदेव की प्रसन्नता हेतु द्विजवरगण को भोजन कराने के पश्चात् समस्त उपचार द्वारा वह दामोदर प्रतिमा दान कर देना चाहिये। तब इस मन्त्र का पाठ करते हुये प्रतिमा प्रदान करें। यथा—हे दामोदर!

हे जगन्नाथ! अखिल जगत् आपका स्वरूप है। आप ही अखिल विश्वाधार तथा सर्वभावन धर्म हैं। आपकी कृपा से मेरा समस्त व्रत सम्पन्न हो जाये। हे जगन्नाथ! मैं यह दामोदर मूर्त्ति ब्राह्मणदेव को प्रदान कर रहा हूं। देव दामोदर ही इसके प्रदाता तथा वृषध्वज शंकर इसे ग्रहण करने वाले हैं। हे जनार्दन! आप मुझ पर प्रसन्न हो जाईये। हे जगद्गुरु! आप प्रसन्न हों!।।७३-७७।।

इति मन्त्रं जपन्दद्यादाचार्याय सुरोत्तमम्। समाप्य पूजयेद्भक्त्यास्तूयांत्तंच प्रसादयत्।।७८।।
आचार्ये परितुष्टे तु तुष्टो भवति माधवः। तत्तद्द्रव्याणिच ततो दद्याद्विप्रेभ्य एवहि।।७९।।
ततः स्वयं वै भुञ्जीत इष्टैः शिष्टैः स्वबन्धुभिः। चातुर्मास्यव्रतं चेदं प्रतिष्ठाप्य विधानतः।।८०।।

यह मन्त्र जपकर उक्त देव प्रतिमा ब्राह्मण को प्रदान करें तथा इस प्रकार से व्रत सम्पन्न करके भक्तिपूर्वक आचार्य का यथायोग्य सत्कार करें तथा स्तुति से आचार्य को प्रसन्न करें। आचार्य के प्रसन्न होने से नारायण भी प्रसन्न हो जाते हैं। सभी बची पूजावस्तु भी विप्रगण को प्रदान करें। स्वयं सच्चरित्र प्रिय बन्धु-बान्धवों के साथ भोजन ग्रहण करें। इस प्रकार से चातुर्मास्य व्रत यथाविधान सम्पन्न करें।।७८-८०।।

यथोक्तफलसम्पन्नोविष्णुलोकमवाप्नुयात्। श्रुतिस्मृतिपुराणेषुनाऽतः परतरं व्रतम्।।८१।।
येनाऽनुष्ठितमात्रेण कृतकृत्योभवेन्नरः। विष्णोःप्रीतिकरंयादृङ्नतथान्यद्व्रतं द्विजाः।।८२।।
तिलपात्रसहस्त्रैस्तु गवां चैवायुतायुतैः। कृष्णाजिनशतेनापि कन्यायामयुतेन च।।८३।।
दत्त्वा यत्फलमाप्नोतिकृत्वैतद्व्रतमुत्तमम्। सार्द्धत्रिकोटितीर्थानामभिषेकफलं तथा।।८४।।
प्राप्नोति तत्फलं विप्रा यं यं कामयते नरः।।८५।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णव-
खण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे श्रीपुरुषोत्तक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे
चातुर्मास्यव्रतविधिर्नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।।३९।।

व्रतकारी इस व्रत को सम्पन्न करके यथोक्त फल प्राप्त करता है तथा विष्णुलोकगामी होता है। समस्त श्रुति-स्मृति पुराणादि में इसकी तुलना में श्रेष्ठ व्रत है ही नहीं, जिसके अनुष्ठानमात्र से मनुष्य कृतार्थ हो जाये। हे द्विजगण! उक्त व्रत जिस प्रकार से विष्णु के लिये प्रीतिदायक है, उस प्रकार कोई वस्तु प्रीतिप्रद नहीं है। हजारों-हजार तिलपूर्ण पात्रदान, दसों हजार अश्वदान, सैकड़ों काले हिरण का मृगचर्म दान, दसों हजार कन्यादान का जो फल है, एकमात्र इस व्रत के एक ही अनुष्ठान से वही फल व्रतकर्त्ता मनुष्य प्राप्त करता है। हे विप्रगण! इसके द्वारा सीढ़े तीन कोटि तीर्थ स्नानफल प्राप्त होता है तथा सभी अभीष्ट की सिद्धि भी हो जाती है। किम्बहुना, वह चिदानन्दमय भगवान् को सम्यक्तः जानकर मोक्षलाभ करता है।।८१-८५।।

।।उनचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

चत्वारिंशोऽध्यायः

नृसिंहदेव का प्रावरण उत्सव

जैमिनिरुवाच

मार्गशीर्षेसितेपक्षेषष्ठ्याप्रावरणोत्सवम्। कृत्वादृष्ट्वानरोभक्त्याविष्णवंलोकमाप्नुयात्।।१।।
विधानं तस्य वक्ष्यामि शृणुध्वं मुनयोऽधुना।
वासोऽधिवासं कुर्वीत पञ्चम्यां निशि कर्मवित्।।२।।
देवाग्रे मण्डपे कुर्यात्पद्ममष्टदलान्वितम्। दिक्पालान्पूजयेद्दिक्षु क्षेत्रपालं गणाधिपम्।।३।।
चण्डप्रचण्डौ च बहिश्चतुर्दिक्षु प्रपूजयेत्। मध्ये पात्रं समाधाय प्रोक्षयेद्वस्त्रवारिणा।।४।।
द्विजान्स्वेनेतिमन्त्रेणच्छादयेद्दिव्यवाससा। सुधूपितंवस्त्रजातमेकविंशतिसंख्यकम्।।५।।
तन्मध्ये स्थापयेन्मन्त्रंवैष्णवञ्चसमुच्चरन्। अन्येनवाससातद्धिसमाच्छाद्यप्रयत्नतः।।६।।
स्पृष्ट्वाजपेन्मन्त्रमिमंसंस्मरन्पुरुषोत्तमम्। आच्छादकोयोजगतांतेजसाविष्णुरव्ययः।।७।।
वसनात्तस्य वस्त्र त्वं वस वासे जगत्पतेः। इन्द्रघोषस्त्वेंति रक्षां विदध्यात्तस्य सर्वतः।।८।।

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे मुनिगण! इस प्रकार अग्रहायण मासीय शुक्लपक्षीय षष्ठी के दिन भक्तिभाव के साथ भगवान् का प्रावरणोत्सव मनाने से मनुष्य विष्णुलोक प्राप्त करता है। यहां उसकी विधि कहता हूं। सुनिये! इस कृत्य को जानने वाला व्यक्ति पहले दिन पञ्चमी की रात्रि में प्रावरणार्थ प्रयोजनीय वस्त्रों के साथ अधिवास करे। तदनन्तर भगवान् के समक्ष अष्टदल कमल का मण्डल बनाये। तदनन्तर उक्त मण्डल के दसों दिक् में दसों दिक्पाल तथा बहिर्भाग के चतुर्दिक् क्षेत्रपाल, गणपति, चण्ड तथा प्रचण्ड का पूजन करें। तत्पश्चात् मण्डल मध्य में वस्त्र की रक्षा के लिये एक पात्र स्थापित करके उष्ण जल से उसका प्रोक्षण तथा "द्विजान् स्तेन" इत्यादि मन्त्र द्वारा प्रभूतवस्त्र से उसे ढंक देना चाहिये। तदनन्तर वैष्णवमन्त्रोच्चार द्वारा उसमें गन्धद्रव्य, सुवासित २१ वस्त्र स्थापित करके यत्नपूर्वक अन्य एक वस्त्र से उसे आच्छादित करें तथा स्पर्श करके भगवान् पुरुषोत्तम का चिन्तन करते-करते इस मन्त्र का पाठ करना चाहिये। "जो अव्यय भगवान् विष्णु अपने तेज से अखिल जगत् को आवरित रखते हैं, हे वस्त्र तुम उन सर्वाच्छादक भगवान् के आच्छादक हो जाओ। हे जगत्पति! आप इस वस्त्र में निवास करिये।" तदनन्तर "इन्द्रघोषस्त्वा" इत्यादि मन्त्र से वस्त्रों की सर्वतोभावेन रक्षा करें।।१-८।।

पूजयेद्गन्धपुष्पाभ्यां ततो देवं प्रपूजयेत्। सर्वलेपम्प्रकुर्वीत नृत्यगीतैर्नयेन्निशाम्।।९।।
ततोऽरुणोदयेकाले प्रातःसन्ध्यासमीपतः। पुनःप्रपूजयेद्देवं पूर्ववत्सुसमाहितः।।१०।।

इस रक्षाविधानोपरान्त गन्ध-पुष्प से अर्चना करके भगवान् का पूजन सम्यक्तः सम्पन्न करें। तदनन्तर भगवान् के सर्वाङ्ग में गन्धलेपन करें तथा नृत्यगीत द्वारा रात्रि व्यतीत करें। तदनन्तर अरुणोदय काल होने पर प्रातः सन्ध्या सम्पन्न करके पुनः पूर्ववत् भगवान् की अर्चना करनी चाहिये।।९-१०।।

ततस्तं पूजितंवस्त्रसमूहंबहिरानयेत्। कार्पासपट्टक्षौमाढ्यं तथैवाऽऽच्छादितं द्विजाः॥११॥
छत्रध्वजपताकाभिश्चामरान्दोलनैस्तथा। गीतवादित्रनृत्यैश्च प्रसूनोत्किरणेन च॥१२॥
प्रासादंत्रिःपरिभ्रम्यदेवंत्रिर्भ्रामयेत्ततः। आच्छादितंतदाकृष्यसंस्कुर्याद्वीक्षणादिभिः॥१३॥
सप्तभिः सप्तभिर्देवान्वासोभिः परिवेष्टयेत्। मुखवर्जं तु सर्वाङ्गं शीतप्रावरणैर्द्विजाः॥१४॥
ताम्बूलञ्च निवेद्याऽथकर्पूरलतिकांतथा। दूर्वाऽक्षतैः प्रपूज्याऽथकुर्यान्नीराजनंविभोः॥१५॥
हिमागमे नृसिंहं ये प्रावृण्वन्तिसुचेलकैः। पश्यन्तिप्रावृतिंये वा नतेषांमोहसम्वृतिः॥१६॥

हे द्विजगण! तदनन्तर पुनः वस्त्रों की अर्चना करके इन सब वस्त्र तथा कार्पासपट्ट तथा क्षौम आदि वस्त्र से आच्छादित भगवान् को बाहर लायें। इस समय भगवान् को बहिर्देश में लाये तथा उनके मस्तक पर छत्र धारण करके चतुर्दिक् ध्वजपताका लहराये, उभय पार्श्व में चामर झले तथा सामने की ओर पुष्पवर्षण, नृत्यगीतवाद्य करें। तदनन्तर वह तीन बार देवगृह की परिक्रमा करके भगवान् को भी तीन बार परिभ्रमण करायें। तदनन्तर भगवान् का आवरण वस्त्र हटाकर भगवान् को देखें तथा उनका संस्कार करें (साफ करें)। हे द्विजगण! तदनन्तर जगन्नाथ देव तथा बाकी तीनों मूर्ति (सुभद्रा-बलभद्र तथा सुदर्शन चक्र) के मुख के अतिरिक्त बाकी सभी अंगों पर प्रत्येक मूर्त्ति को ७-७ प्रावरण (चोंगा, ओढ़नी, टुपट्टा) द्वारा लपेटे। तदनन्तर कर्पूर से सुवासित ताम्बूल निवेदित करके दूर्वा तथा अक्षत द्वारा पूजा करके भगवान् का नीराजन करना चाहिये। हे तपोधनगण! हिमागम (शीत में) काल में भगवान् नृसिंहदेव को वस्त्रों से लपेटना चाहिये। जो इस प्रकार नृसिंहदेव को वस्त्रों से लपेटते हैं अथवा जो इस प्रावरणोत्सव का दर्शन करते हैं, उनका मोहावरण दूर हो जाता है।।११-१६।।

ते द्वन्द्ववातशीतोत्थभयंनाप्नुवते क्वचित्। विष्णोर्देवाधिदेवस्य इमंप्रावरणोत्सवम्॥१७॥
भक्त्या येवै प्रपश्यन्तिसर्वान्कामानवाप्नुयुः।
भगवन्तंसमुद्दिश्य ब्राह्मणेभ्यःप्रदापयेत्॥१८॥
गुरुभ्यश्चाऽन्यदेवेभ्यो दीनानाथेभ्य एव च। शीतप्रावरणं दद्यात्सत्कृत्य परया मुदा।
ददाति भगवान्प्रीतस्तस्मै वरमनुत्तमम्॥१९॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे प्रावरणोत्सववर्णनंनाम चत्वारिंशोऽध्यायः।।४०।।

ऐसा पूजक कभी भी शीत-उष्ण आदि द्वन्द्व से क्लेशयुक्त नहीं होता। जो भक्तगण देवदेव विष्णु के इस प्रावरणोत्सव को भक्तिपूर्वक देखते हैं, उनको समस्त अभीष्ट की प्राप्ति होती है। इसलिये भगवान् की प्रीति के लिये ब्राह्मण, गुरु, अन्य देव प्रतिमा तथा दीन-दुःखी लोगों को परम आनन्दपूर्वक शीतकाल हेतु गरमवस्त्र प्रदान करें। इससे भगवान् प्रसन्न होकर उत्तम वर देते हैं।।१७-१९।।

।।चत्वारिंश अध्याय।।

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

पुष्यस्नान महोत्सव

जैमिनिरुवाच

पुष्यस्नानोत्सवं वक्ष्येयथोक्तम्ब्रह्मणापुरा। पुष्यर्क्षेणचसंयुक्ता पौर्णमासीयदाभवेत्॥१॥
पौषेमासितथाकुर्यात्पुष्यस्नानोत्सवंहरेः। एकादश्यांप्रकुर्वीत ऐशान्यामङ्कुरार्पणम्॥२॥
ततः प्रतिदिनं कुर्यात्प्रतिमायां हरेर्गृहे। नृत्यगीतोपहारैश्च प्रतिरात्रम्बलिं हरेत्॥३॥
चतुर्दशीनिशायां तु कुम्भानामधिवासनम्।
एकाशीतिप्रमाणानां तथा स्वर्णमयाञ्छुभान्॥४॥
गव्यसर्पिः प्रपूर्णाञ्च स्थापयेदेकविंशतिम्। कारयेत्सर्वतोभद्रं मण्डलं पुरतो हरेः॥५॥
तन्मध्ये बृहदाधारं स्थापयेद्दर्पणं शुभम्[1]। रात्रौ जागरणंकुर्याद्गीतनृत्यादिविस्तरैः॥६॥
प्रभाते वह्निकार्यं च कुर्यात्तद्दैवतं द्विजाः। पालाशीभिःसमिद्भिस्तुचरुणासर्पिषातथा॥७॥
ब्रह्मविष्णुशिवेभ्यस्तु प्रत्येकं तु सहस्रकम्। स्वलिङ्गमन्त्रैर्जुहुयात्तदन्तेपुरुषोत्तमम्॥८॥
पूजयेदुपचारैस्तैरादर्शप्रतिबिम्बितम्। ततः पुरुषसूक्तेन कुम्भांस्तानभिमन्त्रयेत्॥९॥
तेनैवाऽच्छिद्रधारेण स्नापयेत्पुरुषोत्तमम्। पावमानीयकैर्देवाञ्छ्रीसूक्तेन ततः परम्॥१०॥

हे मुनिगण! पूर्व में ब्रह्मा ने जैसे कहा था, अब उस पुष्य स्नानोत्सव के विषय में कहता हूं। श्रवण करें। जिस वर्ष में पौषमासीय पौर्णमासी के दिन पुष्यनक्षत्र का योग होता है, उस वर्ष में भगवान् हरि का उक्त पुष्यस्नानोत्सव करें। पौषमास की एकादशी के दिन ईशान कोण में उक्त कार्य का अंकुरार्पण करना चाहिये तथा उस दिन से प्रतिदिन हरिगृह में भगवत् प्रतिमा के सन्निधान में यह करना चाहिये। तब प्रत्येक रात्रि में नृत्यगीत के साथ भगवान् की प्रीति हेतु पूजोपहार प्रदान करना चाहिये। चतुर्दशी की रात्रि में ८१ संख्यक कुम्भधिवास करके २१ संख्यक गोघृत पूर्ण शुभ स्वर्ण कुण्ड स्थापन करना चाहिये। भगवान् हरि के सामने सर्वतोभद्र मण्डल रचना करनी होगी। तदनन्तर उस सर्वतोभद्रमण्डल के एक बृहद् आधार में रक्षित मनोहर दर्पण स्थापित करें। पूर्वोक्त गव्य घृत से पूर्ण कुम्भों को मण्डलमध्य में स्थापित करके उनका अधिवासन करना चाहिये। हे द्विजगण! इसके पश्चात् नृत्य गीतादि तथा स्तवपाठ करके शेष रात्रिभाग में जागरण करें तथा प्रभातकाल में उन देवता के लिये होम करें। पहले ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर के उद्देश्य से उनके-उनके मन्त्र का पाठ करते हुये पलाश समिध्-चरु-घृत से प्रत्येक को १००० आहुति देकर वहां स्थापित दर्पण में प्रतिबिम्बित पुरुषोत्तम की यथोक्त उन-उन उपचार से पूजा करे। तत्पश्चात् पुरुषसूक्त के मन्त्र से पूर्वोक्त जल कुम्भों को अभिमंत्रित करके पावमानीय मन्त्रों से अच्छिद्र जलधारा द्वारा पुरुषोत्तम को स्नान करायें तथा श्रीसूक्त का पाठ करते हुये बाकी तीन देवता बलभद्र-सुभद्रा तथा सुदर्शनचक्र को स्नान करायें।।१-१०।।

---

१. बंगभाषा प्रति में यह श्लोक अधिक है—
"गोसर्पियः पूर्णकुम्भान् दत्वा तानधिवासयेत्।"

सर्पिः कुम्भैः स्नापयेच्च गायत्र्याच ततःपरम्। वैष्णव्यागन्धतोयेनश्रीसूक्तेनसमर्चयेत्[1]॥११॥
सहस्त्रधारया देवं ततोनिर्माल्यमुत्सृजेत्। देवाङ्गं लेपयेद्गन्धैश्चन्दनेन च विग्रहे॥१२॥
यथास्थानं यथाशोभमलङ्कारांश्च योजयेत्। सुगन्धसुमनोमाल्यैर्भूषयेत्तदनन्तरम्॥१३॥

हे विप्रगण! तत्पश्चात् घृतकुम्भों को गायत्री से अभिमंत्रित करें। तत्पश्चात् श्रीसूक्त पाठ करते-करते एक-एक कुंभ द्वारा भगवान् के मस्तक को घृत धारा से सिंचित करना चाहिये। तत्पश्चात् पूर्ववत् सूक्त पाठ करते-करते पञ्चामृत द्वारा अखिल जगत् का मंगल करने वाले जगत्मंगल निदान देवदेव वासुदेव को स्नान कराये। इस समय द्विजगण वेदपाठ करें तथा उनके साथ महोत्सव करना चाहिये। तत्पश्चात् वैष्णवी मन्त्र अथवा शक्रसूक्त का पाठ करके गंगाजल द्वारा सहस्त्रधारा से जगन्नाथ देव को स्नान कराये। तत्पश्चात् उनके अंग से निर्माल्य उतार कर उनके सर्वाङ्ग पर सुगन्धित चन्दन का विलेपन करना चाहिये। तत्पश्चात् जैसे अंग शोभित हो, उस प्रकार से भगवान् को यथास्थान अलंकारों को पहनाये। तत्पश्चात् उनको सुगन्धित पुष्पमाला से विभूषित करें।।११-१३।।

अष्टायुधानिदेवस्य चक्रादीनि न्यसेत्पुरः। रत्नच्छत्रं समुच्छ्रित्यपूजयेत्पुरुषोत्तमम्॥१४॥
लक्ष्म्या युक्तं पुनर्विप्रा उपहारैः समृद्धिमत्। शङ्खेषु पूर्यमाणेषु स्निग्धगम्भीरनादिषु॥१५॥
चामरान्दोलब्यग्रासुवेश्यासुरुचिरासुच। माङ्गल्यगीतनृत्याद्यैःस्तुतिपाठेषुवन्दिनाम्॥१६॥
जयशब्दं प्रकुर्वत्सु द्विजातिषु मुहुर्मुहुः। दूर्वाक्षताञ्जलिभिस्त्रिभिः सम्पूज्य केशवम्॥१७॥
गोसर्पिदौपकैः स्वर्णपात्रकैरतिनिर्मलैः। नीराजयेज्जगन्नाथं कर्पूरयुतवर्तिभिः॥१८॥
स्वर्णपात्रस्थितं चारु ताम्बूलंसुपरिष्कृतम्। शनैःशनैर्मुखाभ्याशेप्रत्येकंविनिवेदयेत्[2]॥१९॥
आचार्ये दक्षिणां दद्याद् ब्राह्मणांश्चैव पूजयेत्॥२०॥
पुष्यस्नानोत्सवंपुण्यंयेपश्यन्तिमुदान्विताः। सम्पूर्णसर्वकामास्तेव्रजेयुर्वैष्णवंपदम्॥२१॥
राज्यभ्रष्टो लभेद्राज्यं सार्वभौमं च विन्दति। अपुत्रा मृतवत्सावापुत्रंदीर्घायुषंलभेत्॥२२॥
दारिद्र्यनाशनं धन्यं ब्रह्मवर्चसकारणम्। पुष्यस्नानंकीर्तितंवःशृणुध्वं चोत्तरायणम्॥२३॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशातिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे पुष्यस्नानमहोत्सववर्णनंनामैकचत्वारिंशोऽध्यायः।।४१।।

—※※※—

इसके पश्चात् भगवान् के सामने चक्र आदि आठ आयुध स्थापित करके रत्नजटित छत्र उठाये। (भगवान् को छत्र लगाये)। लक्ष्मी के साथ इन पुरुषोत्तम देव की अर्चना समारोह पूर्वक सम्पन्न करना चाहिये।

१. बंगभाषा प्रति में यह श्लोक अधिक है—
क्रमोदेवस्य शिरसि सेचयेत् सूक्तमुच्चरन्। स्नापयेदेवदेवेशं जगत् मंगलकारकम्।।
महोत्सवं प्रकुर्वीत ब्रह्मघोष द्विजैसह। वैष्णव्यो गन्धतोयेन शक्रसूक्तेन वार्चयेत्।।

२. बंगभाषा प्रति में इतने श्लोक अतिरिक्त हैं—
गुह्योपनिषदा देवं संस्तूय पुरुषोत्तमम्। चतुषप्रदक्षिणीकृत्यदण्डवत् पणमेद् क्षितौ।।
वैष्णवान् पूजयेद्भक्त्या ब्राह्मणान् विष्णुरूपिणः।।

उस समय शंख की स्निग्ध-गंभीर ध्वनि होती रहे। परमरूपलावण्य वाली वारविलासिनी स्त्रियां चामर झलें। तब नर्त्तक एवं गायकगण नृत्य-गीत करें। वन्दीगण द्वारा स्तुति पाठ हो तथा द्विजातिगण पुनः-पुनः जयध्वनि करें। तदनन्तर तीन बार दूर्वा तथा अक्षत की अंजलि प्रदान करें तथा केशव की पूजा करके उनके चतुर्दिक् कर्पूरचूर्णादि सहित उत्तम तण्डुल का विकिरण करें। तत्पश्चात् स्वर्ण निर्मित विमल दीपमाला में कर्पूरचूर्ण मिलाकर बत्ती बनाये तथा उससे एवं गोघृत से आरती करें। तदनन्तर प्रत्येक देव प्रतिमा के मुख के पास स्वर्णपात्र स्थित सुगन्धित ताम्बूल धीरभाव से अर्पित करें। तदनन्तर गुह्योपनिषद् का पाठ एवं देवपुरुषोत्तम का स्तव करके चार बार प्रदक्षिणा करें तथा पृथिवी पर दण्डवत् प्रणाम, विष्णुरूप वैष्णव ब्राह्मणों की भक्ति के साथ पूजा, आचार्य को दक्षिणा एवं भोज्यादि प्रदान करके ब्राह्मणों का सन्तोष साधन करें। हे महर्षिगण! जो इस प्रकार से यहां कहे गये पुष्यस्नानोत्सव को आनन्दपूर्वक देखते हैं, उनकी समस्त मनोकामना पूर्ण होती है। वे अन्त में विष्णुपदलाभ करते हैं। भूपालगण भी उक्त उत्सव दर्शन करके पुनः राज्य तथा सार्वभौमत्व प्राप्त कर लेते हैं। अपुत्रा एवं मृतवत्सा स्त्रियां भी दीर्घायु पुत्र प्राप्त करती हैं। हे मुनिगण! आप लोगों से पुष्य स्नान के सम्बन्ध में कहा। यह दरिद्रतानाशक एवं ब्रह्मवर्चस कारण होने से अतीव प्रशंसनीय है। अब उत्तरायण विषय को सुनो।।१४-२३।।

।।एकचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

मकरसंक्रान्ति विधिवर्णन

जैमिनिरुवाच

मृगराशिंसंक्रमतियदाभास्वान्द्विजोत्तमाः। उत्तराशांजिगमिषुस्तदास्यादुत्तरायणम्।।१।।
तस्य संक्रमणार्द्धं च यावत्स्युर्विंशतिःकलाः। महापुण्यतमःकालःपितृदेवद्विजप्रियः।।२।।
तत्र स्नात्वा विधानेन तीर्थराजजले नरः। नारायणं समभ्यर्च्य कल्पवृक्षं प्रणम्यच।।३।।
प्रविश्य देवतागारं कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम्। मन्त्रराजेनसम्पूज्यदेवंश्रीपुरुषोत्तमम्।।४।।
तथा बलं सुभद्रां च स्वमन्त्रेण प्रपूजयेत्। दृष्टोत्तरायणे देवं मुच्यते देहबन्धनात्।।५।।
विधानं तस्य वक्ष्यामिशृणुध्वंपावनंमहत्। संक्रान्तेपूर्वदिवसेनवांशालिंसुकुट्टिताम्।।६।।
प्रासादपूर्वदेशे च स्थापयित्वाऽधिवासयेत्। नवेन वाससावेष्ट्यदूर्वासर्षपपुष्पकैः।।७।।
पूजयित्वा मन्त्रयेद्वै कृष्णस्त्वामभिरक्षतु। तस्मिन्नेव निशायामे व्यतीते जगदीशितुः।।८।।
प्रत्यर्चां सन्निधौ नीत्वाभावयेद्देवताधिया। उपचारावशिष्टाभ्यां पूजयेद्वै समाहितः।।९।।

ततोनिर्माल्यवसनमालामस्यांनिधापयतेत्। महासमृद्ध्यातामर्चांत्रिर्देवम्भ्रामयेत्ततः॥१०॥
आन्दोलिकायामारोप्य प्रासादद्वारमानयेत्।
त्रिविक्रमं विक्रमेण त्रैलोक्यक्रमणं विभुम्॥११॥
विडम्बयन्तं तां नीलां प्रासादं भ्रामयेच्च तम्। त्रिरन्तेपुनरङ्केचसुसमृद्ध्याशनैःशनैः॥१२॥
दीपिकाशतसंरुद्धतमसोवरणान्तरे। छत्रध्वजपताकाभिर्नृत्यवादित्रगीतकैः॥१३॥

जैमिनि कहते हैं—हे द्विजसत्तमगण! जब सूर्यदेव उत्तर दिशा में गमनेच्छु होकर मकरराशि में गमन करते हैं, तब उत्तरायण होता है। उक्त मकर संक्रमणकाल में परवर्त्ती २० दण्डकाल महापुण्यतम तथा पितर एवं ब्राह्मणों को प्रिय है। इस समय मनुष्य तीर्थराज के जल में यथाविधि अवगाहन करके नारायण की सम्यक् अर्चना तथा कल्पवृक्ष को प्रणाम करके देवगृह में प्रवेश करे। तदनन्तर ३ बार प्रदक्षिणा करके मन्त्रराज द्वारा देव पुरुषोत्तम की पूजा करके बलदेव एवं सुभद्रा की पूजा उनके-उनके मन्त्र द्वारा सम्पन्न करें। उक्त उत्तरायण में जगन्नाथ देव का दर्शन करके मनुष्य समस्त देहबन्धन से मुक्त हो जाता है। अब उक्त उत्तरायण के पवित्र करने वाले महत् कर्त्तव्य का श्रवण करिये। संक्रान्ति के पूर्व दिन देवगृह के पूर्वभाग में सुन्दर रूप से कूटा हुआ नया शालितण्डूल रखकर अधिवासित करना चाहिये। तदनन्तर नूतन वस्त्र द्वारा उसे आवरित करके दूर्वा, सरसों तथा पुष्प द्वारा अर्चना करके "कृष्ण तुम्हारी रक्षा करें" इस रक्षा मन्त्र द्वारा अभिमंत्रित करें।

तदनन्तर प्रभात होने पर जगदीश्वर जगन्नाथ देव के निकट प्रतिमा ले जाकर देवता की (उसमें) भावना करें तथा यथाविधि उपचार प्रदान करके समाहित चित्त से जगन्नाथ की पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् बचे हुये उपचार द्वारा प्रतिमा पूजन करने के उपरान्त इस प्रतिमा को जगन्नाथ देव को प्रदत्त किये गये वस्त्र तथा माला को प्रतिमा को पहनाये। इसके पश्चात् प्रतिमा को महान् समारोह के साथ जगन्नाथ देव के चारों ओर तीन बार प्रदक्षिणा करायें। तदनन्तर ४ झूला स्थापित करके उन प्रतिमाओं को देवगृह के द्वार पर लाये। तत्पश्चात् उन त्रिविक्रम विभु भगवान् की प्रतिमा को देवगृह की प्रदक्षिणा करायें। तब यह भावना करनी चाहिये मानो भगवान् तीन पैरों से त्रैलोक्य को नाप कर अपनी पूर्वकृत वामन लीला का अनुकरण कर रहे हैं। इस प्रकार उनको ३ बार प्रदक्षिणा कराने के पश्चात् पुनः महासमारोह के साथ धीरे-धीरे एक प्रदक्षिणा करायें। अब वहां सैकड़ों दीपमालिकाओं के कारण कुछ भी अन्धकार का आवरण न रहे। उस समय नृत्य-गीत का समारोह तथा वाद्य होता रहे। चारों ओर ध्वजा-पताका फहराती रहें और वहां देवता के ऊपर छत्र भी लगायें।।१-१३।।

तद्दर्शनपरिक्षीणपातकानां महात्मनाम्। न च चिह्नं शरीरेऽस्य नवाङ्के भ्रमणं ततः॥१४॥
अनुयान्ति तदा ये तं महामायं त्रिविक्रमम्। लभन्तेवाजिमेधस्य फलंते वैपदे पदे॥१५॥
प्रथमभ्रमणं दृष्ट्वा मुच्यते पञ्चपातकैः। मलिनीकरणैर्मुच्येद्द्वितीयं भ्रमणं द्विजाः॥१६॥
अपात्रीकरणैर्दृष्ट्वा तृतीयं भ्रमणं ध्रुवम्। उपपातकपापैश्च चतुर्थं मुच्यते ततः॥१७॥
पुनः प्रभाते देवेशं प्रलिम्पेद्गन्धचन्दनैः। वस्त्राऽलङ्कारमाल्यैश्च भूषयित्वायथाविधि॥१८॥
पूजयेदुपचारैस्तं यथाशक्तिसमृद्धिमत्। नीराजयित्वा देवेशं तन्दुलानधिवासितान्॥१९॥
स्थालीषु शातकुम्भासु दधिखण्डाज्यमिश्रितान्। सनारिकेलशकलाञ्छृङ्गबेरदलान्वितान्॥२०॥

प्रासादं त्रिः परिभ्रम्यनयेद्देवसमीपतः। षङ्क्तिशःस्थापयेदग्रेगन्धपुष्पाक्षतान्वितान्॥२१॥

इस समय भगवान् के महासमारोह में भगवान् की यह लीला देखकर जिन महात्मागण के अखिल पाप दूर हो जाते हैं तथा उनके शरीर में नवीन भाग्य चिह्न प्रकाशित हो जाते हैं, क्या यह उक्त परिक्रमा दर्शन का फल मनीषीगण ने नहीं बतलाया है? उन्होंने अवश्य बताया है। उसे सुनें।'' जो उस समय उन मायातीत होने पर भी महामायामयरूप भगवान् मधुसूदन का अनुगमन करते हैं, वे प्रत्येक कदम पर अश्वमेध यज्ञफल प्राप्त करते हैं। हे द्विजगण! भगवान् के प्रथम भ्रमणदर्शन से ५ महापातक, द्वितीय भ्रमण दर्शन द्वारा मलिन करने वाले पाप समूह, तृतीय भ्रमण दर्शन द्वारा अपात्रीकरण पाप समूह, चतुर्थ भ्रमण दर्शन द्वारा विविध उपपातकों से मानव निश्चित रूप से मुक्त हो जाता है। अतः पुनः प्रभातकाल में गन्ध-चन्दन से इन देवदेव का विलेपन करके यथाविधि वस्त्र, अलंकार, माला से भगवान् को विभूषित करना चाहिये। तदनन्तर यथाविधि वस्त्र-अलंकारमाला द्वारा प्रतिमा को सज्जित करके यथाशक्ति उपचार प्रदान करते हुये महान् समारोह से पूजा तथा नीराजन के अन्त में पूर्वाधिवासित तण्डुल को दधि, घृत, खांड़, अदरख तथा नारिकेलखंड के साथ स्वर्ण की थाली में रखकर उसे देव प्रसाद में तीन बार परिभ्रमण करायें। उसे भगवान् के निकट ले जाकर गन्ध-पुष्प तथा अक्षतयुक्त करके भगवान् के समक्ष पंक्ति के रूप में स्थापित करना चाहिये। तब यह प्रार्थना करें।।१४-२१।।

जीवनं सर्वभूतानां जनकस्त्वंजगत्प्रभो!। त्वन्मयाः शालयोह्येतेत्वयैव जनिताःप्रभो॥२२॥

लोकानुग्रहणार्थाय गृहीतोचितविग्रह!। तव प्रीत्यै कृतानेतान्गृहाण परमेश्वर!॥२३॥

त्वयितुष्टे जगत्सर्वमनेन प्रभविष्यति। स्वाहारकारस्वधाकारवषट्कारादिवौकसाम्॥२४॥

आप्यायना भविष्यन्तितैरेवाऽऽप्यायितं जगत्। रक्षसर्वंजगन्नाथत्वन्मयंसचराचरम्॥२५॥

हे जगद्गुरु! आप सर्वभूतसमूह के जीवन तथा जनक हैं। हे प्रभो! यह शालितण्डुल आपका ही स्वरूप हैं। आप ही इन सबके उत्पादक हैं। हे परमेश्वर! अब आप लोकानुग्रहार्थ विचित्र शरीर धारण करें। आपकी प्रसन्नतार्थ मैं शालितण्डुल प्रभृति लाया हूं। हे परमेश्वर! आप इसे ग्रहण करिये। हे नाथ! आपके प्रसन्न होने पर समस्त जगत् अम्लरस से सबल होता है तथा स्वाहा-स्वधा-वषट्कार से स्वर्गवासीगण की तृप्ति हो पाती है। इससे ही उनके द्वारा समस्त जगत् आमोदित होता है। इसमें सन्देह नहीं है। हे जगन्नाथ! आप मेरी प्रार्थना सुनकर उचित मूर्त्ति धारण करें तथा चराचर की रक्षा करें।।२२-२५।।

इति सम्प्रार्थ्य देवेशं शालिस्तम्बान्निवेदयेत्।
तन्मयान्भक्षभोज्यांश्च दधिकुम्भान्सुगन्धिनः॥२६॥

कर्पूरखण्डमरिचचूर्णयुक्तान्निवेदयेत्। ब्राह्मणान्पूजयेद्भक्त्या देवदेवपुरःस्थितान्॥२७॥

तेभ्यःप्रदद्याद्भक्त्या ताञ्छाल्यादीन्भगवद्धिया।
इमंमहोत्सवंविप्राःपुराकल्पेचकश्यपः ॥२८॥

स च सृष्टिं विनिर्माय भगवत्प्रीतयेऽकरोत्। येपश्यन्त्युत्सवंचैनंकश्यपेन विनिर्मितम्॥२९॥

सर्वदा सर्वकामैस्ते पूर्णाः शोचन्ति न द्विजाः।
उषित्वा त्रिदशैः सार्द्धं कल्पान्ते मोक्षमाप्नुयुः॥३०॥

इस प्रकार से प्रार्थना करके देवदेव को यह समस्त शालितण्डुल, कपूर, खांड, मरिच (कालीमिर्च) चूर्णयुक्त विविध भक्ष्य-भोज्य-सुगन्ध-दधिकुंभ निवेदित करें। तदनन्तर देवदेव के निकटवर्त्ती ब्राह्मणों को भक्ति के साथ भोजन करायें। तदनन्तर भक्तिपूर्ण हृदय से इन सब ब्राह्मणों में भगवद्बुद्धि करके पुष्प-चन्दन तथा वस्त्रों से उनकी अर्चना के द्वारा उनको प्रसन्न करना चाहिये। हे द्विजगण! ब्राह्मणगण ही भगवान् के जंगम देहरूप हैं। इस कारण से ब्राह्मणगण की सन्तुष्टि द्वारा भगवान् की सम्यक्‌रूप से अर्चित हो गये, यह जानना चाहिये। मनुष्य के मन में जिन उपचारों से भगवान् की अर्चना करने की इच्छा हो, ब्राह्मणों को भी वही उपचार प्रदान करना चाहिये। इस प्रकार से जगन्नाथ देव तत्क्षण प्रसन्न हो जाते हैं। इस महोत्सव को पूर्वकल्प में भगवान् कश्यप ऋषि ने अपने सृष्टि कार्य के सम्पादन के पश्चात् भगवान् की प्रसन्नतार्थ इस उत्सव को किया था। जो कश्यप द्वारा प्रवर्त्तित इस उत्सव को देखते हैं, उनकी सभी मनोकामना पूर्ण हो जाती हैं। उनको किसी भी कारण से शोक नहीं करना पड़ता। वे देवगण के दास देवलोक में निवास करते हैं। कल्पान्त में उनको निःसंदिग्ध रूप से मुक्ति मिल जाती है।।२६-३०।।

महानसस्यसंस्कारं वह्नेः संस्कारमेवच। अत्रापिकुर्यान्मुनयो वैश्वदेवं दिनेदिने।।३१।।
आधानसंस्कृते वह्नौ भगवद्भुक्तये रमा। प्रत्यहं पाकमाधत्ते दिव्यरूपा तिरोहिता।।३२।।
अस्मिन्महापुण्यतम उत्सवे परात्मनः। तुलापुरुषदानादि कोटिकोटिगुणं भवेत्।।३३।।
स्नानं दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्। सर्वमक्षयतां याति ह्युत्सवे चोत्तरायणे[1]।।३४।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे मकरसङ्क्रमविधिवर्णनंनामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः।।४२।।

---

१. बंगला भाषा संस्करण में इतने श्लोक अतिरिक्त हैं।

मुनय उवाच

मुने वैष्णववन्हेस्तु संस्कारं पुनरुचिवान्। एतस्य विधिमाचक्ष्व येन पाकस्य संक्रिया।।

जैमिनि रुवाच

वैष्णवाग्निविधिं वक्ष्ये येन वैष्णवकर्मसु। सर्वत्र संस्कृता वह्निः सम्भवत् फलसाधनः।।
कुण्डे वा स्थण्डिले वापि सुपलिप्ते गुणान्विते। शुभे देशे प्राङ्मुखः सन् देशिको यतमानसः।।
विष्णुसंस्कार विधिवद् लक्ष्म्या युक्तं शुभोदयम्। तस्य पश्चिमतो वह्निसम्भारसंस्कृतिस्ततः।।
स्थापयित्वा तु कुण्डे तत् प्रणवेनोपलेपयेत्। प्रागग्रा उद्गग्राश्च तिस्रो रेखा विलेखयेत्।।
प्राणवेन चतुर्दिक्षु वेष्ठयेद्रेखिकाक्रमात्। द्वादशाक्षरमन्त्रस्य षडङ्गौ वीक्षणादिभिः।।
संस्कुर्यात् कुण्डरूपं तन्मध्ये चास्त्रेण विस्तरम्। निधाय कुशमूले तु लक्ष्मीमृतुमतीं स्मरेत्।।
तां सम्पूज्य स्वहृदये चिन्तयेन्मदनातुराम्। श्रोत्रियस्य गृहाद्वह्निं दारुण्यं मणिजं तथा।
ताम्रपात्रे समारूह्य विष्णु स्वं परिचिन्तयेत्।।
तद्बीजरूपं तं वह्निं ध्यात्वा कुण्डं प्रदक्षिणम्। तिभ्रामयित्वा तं देव्याः योनौ कुण्डे विनिक्षिपेत्।।
आचम्याचमनं देव्या देवा ताम्बूलमेव च। यज्ञकाष्ठेन प्रज्वाल्य प्रादेशिक समिद्वयम्।।
निक्षिप्य परितो दिक्षु प्रागुदग्रकैः कुशैः। समुस्तृज्य दिशः पात्रमिग्मबर्हिं प्रदेशिकम्।।

सम्प्रक्षाल्यास्त्रमन्त्रेण पात्राणि प्रोक्षयेत्ततः। पवित्रं प्रोक्षणीमध्ये स्थापयित्वा तु तत्र वै।।
पूजयेद्गन्ध पुष्पाभ्यां विष्णुञ्चाक्षम्य संक्रियाम्। कृत्वाधाराज्यभागौ हूत्वा वह्निं विचिन्तयेत्।।
जातं देवं सुवर्णं तत् चतुर्वाहुं जटोज्वलाम्। इष्टं शक्ति स्वस्तिकञ्चाभयञ्च दधतः करैः।।
गर्भाधानादिकाः कार्या विवाहास्ताः क्रिया पृथक्। आज्येन जुहुयात्तासु द्वादश द्वादशाहुतीः।।
कर्मनाम च सङ्कीर्त्य नमोऽस्तु वैष्णवाग्नये। गन्धादीनां समभ्यर्च्य वह्निं प्रज्वलितं ततः।।
चतुर्गृहीतञ्च स्रुचि स्रवपूर्णाज्यकं ततः। पूर्णाहुतिञ्च जुहुयात् कर्मणः सम्पदे ततः।।
भिन्नं न चिन्तयेद्विष्णोर्वह्निं विप्राः कदाचन। अन्तर्यामी च सर्वेषां जगतामव्ययो द्विजाः।।
सर्वत्र कर्मणि विभुबीजभूतः सनातनः। अग्निरूपेण च हविः समिदादि प्रकल्पितम्।।
आदाय कर्म सकलं करोति च ददाति च। शाक्तशाम्भवसौरादिसर्वकर्मस्वयं विधिः।।
तद्रूपविष्णुं तं ध्यायेन्मत्रो वै द्वादशाक्षरः। लक्ष्मीरुपान्तु तच्छक्ति नैतेभ्यो विद्यतेपरम्।।
एते त्रयो जगत्सृष्टि स्थितिनाशनकारणम्। चतुर्वर्ग प्रदातारो द्विजाः सत्यं वदाम्यहम्।।
इत्थं सुसंस्कृते वह्नौ पाकं कुर्याद्विजोत्तमाः। तदन्नं वा हविर्वापि विष्णवे भक्तितो ददेत्।।
तेन प्रीतो हिभगवान् ददाति वरमुत्तमम्। सर्वान् कामान् ददात्येव यो यथा काममिच्छति।।
अयं वः कथितो विप्रा विधिवैष्णव कर्मणि। यत्र यत्र हरेः कर्म तत्र तत्र भवेद् ध्रुवम्।।
पाकाङ्गत्वादयं वह्ने संस्कारः प्रत्यहं भवेत्।
अहोरात्रोदितं कर्म एकमेव हरेर्यतः। अतो न पाकभेदोऽस्ति प्रतिपाकावृतिर्न च।।

मुनिगण कहते हैं—हे मुने! आपने वैष्णवाग्नि संस्कारार्थ पुनः कहा है। अब उसके विधान को कहें। उसी अग्नि से पाक होता है।

ऋषि जैमिनि कहते हैं—विष्णु प्रीतिकर कार्य अग्नि के संस्कृत होने पर ही फलद होता है। अब आप अपने प्रश्न के अनुरूप वैष्णवाग्नि संस्कार विधि सुने। कर्मकर्त्ता संयत होकर तथा पूर्वमुख होकर यथोक्त गुणयुक्त शुभ प्रदेश में सुन्दररूपेण लीपे गये कुण्ड अथवा स्थण्डिल (वेदी) पर अग्नि स्थापित करें। हे मुनिगण! जिस स्थान पर कार्य करने से वह शुभफलप्रद होता है, जो देखने में सुन्दर हो, ऐसे स्थान के पश्चिम में विष्णु संस्कार विधि से अग्नि संस्कार सम्पन्न करें। पहले कुण्ड में बालू आदि रखकर प्रणव से कुण्ड का लेप करें। तदनन्तर बालुका पर कुशाग्र से तीन पूर्वाग्र वाली तथा तीन उत्तराग्र वाली रेखा अंकित करना चाहिये। तत्पश्चात् प्रणव (ॐ) के उच्चार द्वारा पूर्वादिक्रमेण जलधारा द्वारा उन रेखाओं को चतुर्दिक् से घेर दें। तत्पश्चात् द्वादशाक्षर मन्त्रपाठ से वीक्षण आदि षडङ्ग सम्पन्न करने के पश्चात् अस्त्रमन्त्र (फट्) उच्चारण करके कुण्डमध्यवर्त्ती विस्तृत समतल प्रदेश का संस्कार करना चाहिये। तदनन्तर कुण्ड के अन्दर कुश स्थापित करके कुशमूल में लक्ष्मी देवी की भावना गर्भवतीरूपेण करना चाहिये। तत्पश्चात् श्रोत्रिय के गृह से लाई गयी किंवा काष्ठघर्षण से उत्पन्न अथवा मणि से उत्पन्न अग्नि को ताम्रपात्र में लाकर स्वयं की विष्णुरूपेण भावना करनी चाहिये। तदनन्तर उस अग्नि की चिन्तना विष्णु बीज रूप से करे। तदनन्तर उस कुश को तीन बार कुण्ड के चारों ओर घुमाकर उसे कुण्ड में छोड़े। देवी लक्ष्मी देवी को आचमनी का जल ताम्बूल प्रदान करें। उस पर एक बित्ता ऊंचा समिध् रखकर पूर्वाग्र एवं उत्तराग्र कुश द्वारा चारों ओर से कंकड़ों को हटाकर होमीय पात्र, समिध्, काष्ठ तथा एक वित्ता नापवाले एक कुश पौधा को धोये। उसी कुश द्वारा 'फट्' मन्त्र से स्रुवादि सभी पात्र का प्रोक्षण करना चाहिये। तदनन्तर प्रोक्षणीपात्र में पवित्र को स्थापित करके उस पर गन्ध पुष्प से विष्णुपूजन करें। तदनन्तर अक्षय्य संस्कार सम्पन्न करने के पश्चात् अग्नि का इस प्रकार से ध्यान करना होगा कि ये अग्निदेव स्वर्णवर्ण देदीप्यमान हैं। इनके मस्तक पर उज्वल जटाजाल

हे मुनिगण! उक्त उत्सव में नित्य पाकशाला की सफाई एवं संस्कार, अग्नि संस्कार तथा वैश्वदेवादि करें। इस उत्सव में दिव्यरूपा देवी कमला भगवान् के भोजनार्थ सबसे अदृश्य रहते हुये संस्कृताग्नि में नित्य पाक करती है। परमात्मारूप जगन्नाथदेव के इस महापुण्यमय उत्सव में तुलापुरुषादि दान से भी कोटि-कोटि गुणित पुण्य प्राप्त होता है। स्नान-दान-तप-होम-स्वाध्याय तथा पितृतर्पणादि कार्य इस देवोत्सव के प्रभाव से (तथा स्थान प्रभाव से) अक्षय फल देता है।।३१-३४।।

।।द्विचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

शोभित है। ये चार हाथों में इष्ट, शक्ति, स्वास्तिक तथा अभयमुद्राधारी हैं। हे मुनिगण! अग्नि के गर्भाधान से लेकर विवाह तक जिसने संस्कार हैं, उन सबमें प्रत्येक में १२-१२ घृताहुति अलग से दी जाये। विशेष कर्म में अग्नि का अलग से नामकरण करके पहले वह नाम लेकर कहें "वैष्णवाग्नये नम:"। इस मन्त्र द्वारा गन्धादि से उस प्रज्वलित अग्नि की अर्चना करें। तदनन्तर चार बार स्त्रुवपूर्ण घृत लेकर स्त्रक् नामक पात्र में निक्षेप करें। तदनन्तर कर्म के उत्कर्ष हेतु पूर्णाहुति प्रदान करें। हे विप्रगण! अग्नि को कदापि विष्णु से भिन्न न माने। हे द्विजगण! अखिल जगत् के अन्तर्यामी जीवरूप वे अव्यय सनातन सर्वनियामक हरि ही निखिल कार्य को अपने अग्निरूप में प्रदान किये जा रहे घृत-समिध् आदि को ग्रहण करके सभी कर्मों हेतु कर्म करने वाले को वांछित फल प्रदान करते हैं। हे मुनिगण! शाक्त, शैव, सौरादि सभी कार्य में यही करना चाहिये। हे द्विजगण! इस प्रकार लक्ष्मीरूपा उनकी शक्ति का भी सभी सतत् ध्यान करें। विष्णु, लक्ष्मी, द्वादशाक्षर विष्णुमन्त्र इन तीन से उत्तम वस्तु जगत् में कुछ भी नहीं है।

मैं सत्य कहता हूं। ये तीनों ही जगत् की सृष्टि-स्थिति-लय के मूल कारण हैं। यही चतुर्वर्गप्रद हैं। हे द्विजोत्तमगण! इस प्रकार अग्नि को संस्कृत करने के उपरान्त उस पर पाक करें। भक्तिभाव से वह धृताक्त अन्न भगवान् विष्णु को निवेदित करें। इससे भगवान् प्रसन्न होकर उत्तम वर प्रदाता हो जाते हैं। पूजक जैसी इच्छा करते हैं, उनकी वह कामना प्रभु पूर्ण कर देते हैं। हे विप्रगण! यह मैंने आपसे विष्णु प्रीतिकर कार्य विधान का वर्णन किया। जहां-जहां विष्णु प्रीतिकर यह कार्य किया जायेगा, वहां उसे इसी विधि से करना चाहिये। यह अग्निसंस्कार पाक का अंग है। पाक हेतु नित्य यही संस्कार करे। यह कार्य पाक कार्य से पृथक् नहीं है। अत: यही अग्निसंस्कार सम्पन्न करें। अर्थात् एक अहोरात्र में जितने पाक कार्य हों, उनमें एक बार ही अग्नि संस्कार पर्याप्त है।

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

दोलारोहण उत्सव वर्णन, दोलारोहण विधि

जैमिनिरुवाच

फाल्गुने मासि कुर्वीत दोलारोहणमुत्तमम्। यत्र क्रीडतिगोविन्दोलोकानुग्रहणायवै॥१॥
प्रत्यर्चां देवदेवस्य गोविन्दाख्यां तु कारयेत्। प्रासादपुरतः कुर्यात्षोडशस्तम्भमुच्छ्रितम्॥२॥
चतुरस्त्रं चतुर्द्वारं मण्डपं वेदिकान्वितम्। चारुचन्द्रातपं माल्यचामरध्वजशोभितम्॥३॥
भद्रासनं वेदिकायां श्रीपर्णीकाष्ठनिर्मितम्। फाल्गूत्सवंप्रकुर्वीतपञ्चाहानित्र्यहाणिवा॥४॥
फाल्गुन्यां पूर्वतो विप्राश्चतुर्दश्यां निशामुखे। वह्न्युत्सवंप्रकुर्वीतदोलामण्डपपूर्वतः॥५॥
गोविन्दानुगृहीतं तु यात्राङ्गं तत्प्रकीर्तितम्। आचार्यवरणं कृत्वा वह्निंनिर्मथनोद्भवम्॥६॥
भूमिं संस्कृत्यविधिवत्तृणराशिंमहोच्छ्रयम्। सुसमंकारयित्वातुवह्निंतत्रविनिक्षिपेत्॥७॥
पूजयित्वा विधानेन कूष्माण्डविधिना हुनेत्।
गोविन्दं पूजयित्वा तु भ्रामयेत्स ततो विभुम्॥८॥

ऋषि जैमिन कहते हैं—हे मुनिगण! फाल्गुन मास में भगवान् का दोलारोहण रूपी अत्युत्तम उत्सव करना चाहिये। भगवान् गोविन्द जनगण के प्रति अनुग्रह करने के लिये ही दोलारोहण क्रीड़ा करते हैं। उक्त उत्सवार्थ देवदेव की गोविन्द नाम की प्रतिमूर्त्ति बनवाकर जगन्नाथ देव के प्रासाद के सामने षोडश स्तम्भ युक्त, चारों ओर चार द्वार वाले तथा मध्य में वेदिका शोभित, चौकोर तथा समुन्नत एक दोलामण्डप का निर्माण कराये। ऊर्ध्व में चन्दोवा तथा चारों ओर माला, चामर, ध्वजादि से शोभित करें। वेदिका में श्रीपर्णी की लकड़ी से बना भद्रासन बिछाना चाहिये। हे विप्रगण! उक्त उत्सव हेतु पांच दिन अथवा तीन दिन फाल्गुनोत्सव करना चाहिये और फाल्गुनी पूर्णिमा के पूर्व वाले दिन अर्थात् चतुर्दशी को प्रदोषकाल में दोलामण्डप के पूर्व भाग में अग्नि उत्सव करें। दोलयात्रा का अंगरूप यह उत्सव गोविन्द को परमप्रिय हैं। पहले आचार्य का वरण करें। तदनन्तर विविवत् भूमिसंस्कार के पश्चात् उच्च तृणराशि रखकर उसमें मेष (की प्रतिमा) पशु रक्खें। उस तृणपुञ्ज में पूर्वोक्त अग्नि छोड़ें। तदनन्तर यथाविधि अग्नि की पूजा करके कूष्माण्ड विधि के अनुसार आहुति देना होगा। तदनन्तर भगवान् की (गोविन्द की) पूजा के उपरान्त सात बार वहां उस अग्नि को भ्रामित करना चाहिये॥१-८॥

यत्नात्तं रक्षयेद्वह्निं यावद्यात्रा समाप्यते। प्रातर्यामे चतुर्दश्यां गोविन्दप्रतिमां शुभाम्॥९॥
वासयित्वा हरेरग्रे पूजयेत्पुरुषोत्तमम्। उपचारावशिष्टैस्तु प्रत्यर्चामपि पूजयेत्॥१०॥
ततोऽवरोप्यवसनंमालांचद्विजसत्तमाः!। अचायांविन्यसेन्मन्त्रीपरंज्योतिर्विभावयन्॥११॥
ततः सा प्रतिमा साक्षाज्जायतेपुरुषोत्तमः। रत्नान्दोलिकयातांवैनयेत्स्नानस्यमण्डपम्॥१२॥
तत्र नानातूर्यनादैः शङ्खध्वनिपुरःसरम्। जयशब्दैस्तथा स्तोत्रैः पुष्पवृष्टिभिरेव च॥१३॥

छत्रध्वजपताकाभिश्चामरैर्व्यजनैस्तथा। निरन्तरं दीपिकाभिस्तदाकुर्यान्महोत्सवम्।।१४।।
आगच्छन्ति तदा देवाः पितामहपुरोगमाः। द्रष्टुं चर्षिगणैः सार्द्धं गोविन्दस्य महोत्सवम्।।१५।।
भद्रासनेऽधिवास्यैव पूजयेदुपचारकैः। महास्नानस्य विधिना स्नपनं तस्य कारयेत्।।१६।।
पञ्चामृतैश्च सर्वैश्च तेषामन्यतमेन वा। स्नानान्ते गन्धतोयेन श्रीसूक्तेनाऽभिषेचयेत्।।१७।।

हे मुनिगण! भगवान् हरि का दर्शन करने वाला व्यक्ति सर्वपापरहित हो जाता है। जब तक दोलयात्रा समाप्त नहीं हो जाती, तब तक उस अग्नि की यत्नतः रक्षा करनी होगी। हे द्विजोत्तमगण! इसके अनन्तर साधक उक्त चतुर्दशी के अन्तिम प्रहर में भगवान् हरि के समक्ष सुगठित गोविन्द मूर्त्ति स्थापित करने के पश्चात् हरि पूजन करें। जगन्नाथ प्रभु की अवशिष्ट सामग्री से इन गोविन्द की पूजा के पश्चात् भगवान् जगन्नाथ के अंग पर चढ़े वस्त्र तथा माला लेकर परम ज्योतिर्मय भगवान् की भावना करते हुये इस गोविन्द प्रतिमा को धारण करायें। यह करने के पश्चात् यह गोविन्द प्रतिमा साक्षात् पुरुषोत्तमरूपी हो जाती है। तब इस गोविन्द प्रतिमा को रत्नमय दोला पर बैठाकर स्नान मण्डप ले जायें। (दोला=पालकी)। इस समय शंखध्वनि तथा नाना वाद्यवादन, जयध्वनि, स्तोत्रपाठ, पुष्पवर्षा, छत्र लगाना तथा ध्वज पताका फहराना, चामर झलना, पंखा झलना तथा श्रेणीबद्ध दीपमाला महोत्सव करें। उस समय ब्रह्मादि देवता गोविन्ददेव के दर्शनार्थ ऋषियों के साथ अलक्षित (अदृश्य) रूप से वहीं आते हैं। तत्पश्चात् गोविन्द को भद्रासन पर स्थापित करके यथाविधि-उपचारों से उनकी अर्चना करनी चाहिये तथा महास्नानविधान से उनको स्नान कराना चाहिये। अन्यतम पंचामृत से उनको स्नान कराये तथा श्रीसूक्त पाठ द्वारा गन्धजल से भी अभिषेक करायें।।९-१७।।

सम्प्रोक्ष्य भूषयेद्देवंवस्त्राऽलङ्कारमाल्यकैः। नीराजयित्वा सम्पूज्य प्रासादं परिवेष्टयेत्।।१८।।
सप्तकृत्वस्ततो देवं दोलामण्डपमानयेत्। सुसंस्कृतायां रथ्यायांपताकातोरणदिभिः।
अधोदेशे मण्डपं सप्तशो भ्रामयेत्पुनः।।१९।।
ऊर्द्ध्वदेशे पुनः सप्त स्तम्भवेद्यां च सप्त वै। यात्रावसाने च पुनर्भ्रामयेदेकविंशतिम्।।२०।।

इसके पश्चात् उनका अंगमार्जन करके वस्त्रालंकार तथा माला से उनको सज्जित करना चाहिये और उनका नीराजन करने के उपरान्त यथाविधि पूजा करके ७ बार देवगृह की उनको प्रदक्षिणा कराये। इसके पश्चात् उनको दोलामण्डप में ले जाये। वहां का मार्ग अच्छी तरह परिष्कृत तथा पताका आदि से सजा होना चाहिये। उक्त दोलामण्डप की अधोवेदी की सात बार तथा ऊर्ध्व की ७ बार और स्तम्भ वेदी की ७ बार परिक्रमा करायें। यात्रा के अन्त में इसी प्रकार से तीनों स्थान पर ७-७ बार परिक्रमा करायें। इस प्रकार २१ परिक्रमा होगी।।१८-२०।।

इयं लीला भगवतः पितामहमुखेरिता। राजर्षिणेन्द्रद्युम्नेन कारिता पूर्वमेव हि।।२१।।
फलपुष्पोयनम्रैश्च शाखिभिः परिकल्पिते। वृन्दावनान्तरे रम्ये मत्तभ्रमरराविणि।।२२।।
कोकिलारावमधुरे नानापक्षिगणाकुले। नानोपशोभारचितनानागुरुसुधूपिते।।२३।।
प्रफुल्लकेतकीषण्डगन्धामोदिदिगन्तरे। मल्लिकाऽशोकपुन्नागचम्पकैरुपशोभिते।।२४।।
तत्काननान्तर्घटिते मण्डपे चारुतोरणे। भूषिते माल्यवसनचामरैरुपशोभिते।।२५।।

रत्नखट्वान्दोलिकायां तन्मध्ये वासयेत्प्रभुम्। सद्रत्नमुकुटं तारहारशोभितवक्षसम्॥२६॥
अनर्घ्यरत्नघटितकुण्डलोद्भासितश्रुतिम्। यथास्थानं यथाशोभं दिव्यालङ्कारमञ्जुलम्॥२७॥
विकचाम्बुजमध्यस्थं विश्वधात्र्या श्रिया युतम्॥२८॥

भगवान् ब्रह्मा ने अपने मुख से भगवान् की लीला का विषय व्यक्त किया है तथा राजर्षि इन्द्रद्युम्न ने भी पूर्वकाल में इसका अनुष्ठान किया था। भक्तों को फलपुष्प से अवनत नाना तरुओं द्वारा विराजमान, मधु के गन्ध से उन्मत्त भ्रमरों की गुनगुनाहट से युक्त, कोकिल कुल के कर्णसुखकर कुहू-कुहू शब्द तथा नाना प्रकार के पक्षीगण के मनोमुग्धकारी निनाद से परिपूर्ण नाना सुदृश्य द्रव्यों से शोभित काले अगुरु के गन्ध से आमोदित कल्पित वृन्दावन की रचना करनी चाहिये। प्रफुल्ल केतकी पुष्पों के शोभन सौरभ से उसके चारों ओर आमोदित पुष्पित मल्लिका, अशोक, पुन्नाग तथा चम्पा के वृक्ष शोभित हों, ऐसे कल्पित उद्यान में माला, पताका, चामर तथा मनोहर तोरण से सुसज्जित मण्डप में रत्न की खाट से शोभित लाल चौकी रखकर उस पर भगवान् को बैठाये। उनके मस्तक पर रत्नजटित मुकुट, वक्ष पर रत्नहार, कानों में बहुमूल्य रत्नराजियुक्त कुण्डल तथा जिस अंग पर जो अलंकार शोभायमान होता है, उस अंग पर वही अलंकार पहनकर शोभित हैं तथा वे विश्व का पालन करने वाली कमला के साथ पद्मासनासीन हैं, यह भावन करे।।२१-२८।।

शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं वनमालिनम्। सुप्रसन्नं सुनासं तं पीनवक्षःस्थलोज्ज्वलम्॥२९॥
पुरोव्योमस्थितैर्देवैर्ब्रह्माद्यैर्नतमस्तकैः। कृताञ्जलिपुटैर्भक्त्या जयशब्दैरभिष्टुतम्॥३०॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च किन्नरैः सिद्धचारणैः। हाहाहूहूप्रभृतिभिः सत्वरं दिव्यगायनैः॥३१॥
अहम्पूर्विकया नृत्यगीतवादित्रकारिभिः। नेत्राऽम्बुजसहस्रैश्च पूज्यमानं मुदान्वितैः॥३२॥
किरद्भिः सर्वतो दिक्षु गन्धचन्दनजं रजः। उपवेश्याऽथ गोविन्दं पूजयेदुपचारकैः॥३३॥
बल्लवीवृन्दमध्यस्थं कदम्बतरुमूलगम्। हावहास्यविलासैश्च क्रीडमानं वनान्तरे॥३४॥
गोपीभिश्चैवगोपालैर्लीलान्दोलितयानगम्। चिन्तयित्वाजगन्नाथंविकिरेद्गन्धचूर्णकैः॥३५॥
सकर्पूरै रक्तपीतशुक्लैर्दिक्षु समन्ततः। दिव्यर्वस्त्रैर्दिव्यमाल्यैर्दिव्यैर्गन्धैः सुधूपकैः॥३६॥
चामरान्दोलनैर्गीतैः स्तुतिभिश्च समर्चितम्।
आन्दोलयेद्दोलिकास्थं सप्तवाराञ्छनैः शनैः॥३७॥
तदा पश्यन्ति ये कृष्णंमुक्तिस्तेषांनसंशयः। ब्रह्महत्यादिपापानांपञ्चकानांक्षयोभवेत्॥३८॥

उनके ४ हाथों में क्रमशः शंख-चक्र-गदा-पद्म, गले में वनमाला शोभित है। उनकी मूर्त्ति अत्यन्त प्रसन्न हैं। उनकी नासिका, भ्रूयुगल अतीव सुन्दर तथा समुज्वल हैं। उनका वक्षस्थल अत्यन्त प्रशस्त है। ब्रह्मा आदि देवता उनके पुर के द्वार पर खड़े होकर भक्ति के साथ कंधे झुकाये हुये और हाथ जोड़कर जय शब्द से उनकी स्तुति कर रहे हैं। हाहा-हूहू प्रभृति स्वर्ग के गायक गन्धर्व, अप्सरागण, किन्नर, सिद्ध, चारणगण सानन्दचित्त से नृत्य-गीत-वाद्य के साथ उनके चरणकमल को अपने नयनकमल की दृष्टि से देखते हुये उनकी पूजा कर रहे हैं। वे सभी दिशाओं से उनके सर्वाङ्ग पर सुगन्ध-चन्दन के रजः को (चूर्ण को) बिखेर रहे हैं। ऐसी भावना करके गोविन्द प्रतिमा को बैठाकर नाना उपचार द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् मानों गोविन्ददेव वृन्दावन के

कदम्ब के नीचे गोपीगण से घिर कर उनके साथ उच्चस्वर में हास्य-परिहासमय क्रीड़ा कर रहे हैं। अनेक गोपाल तथा गोपियां उनको झूले पर बैठाकर धीमी गति से आन्दोलित कर रहे हैं। ऐसी भावना करके जगन्नाथ प्रभु गोविन्द के सर्वाङ्ग में कर्पूर मिश्रित गन्धद्रव्य के चूर्ण को छिड़कें। चारों ओर लाल-पीले-श्वेत वर्ण की पताकायें फहराकर तथा दिव्य धूपगन्ध प्रदान करें। चामर झले तथा संगीत एवं स्तुति पाठ के द्वारा सम्यक्तः उनकी अर्चना करने के पश्चात् झूले पर आसीन गोविन्ददेव को धीरे-धीरे सात बार झुलायें। उस समय दोलामञ्च पर (झूले पर) आसीन कृष्ण का जो दर्शन करते हैं, ब्रह्महत्यादि पञ्चमहापातक से वे मुक्त हो जाते हैं।।२९-३८।।

त्रिरेवं दोलयेद्देवं सर्वपापापनोदनम्। भक्त्यानुग्राहकं पुंसां भुक्तिमुक्त्येककारणम्।।३९।।
लीलाविचेष्टितं यस्य कृत्रिमं सहजं तथा। अंहःसङ्क्षयकरं मूलाविद्यानिवर्त्तकम्।।४०।।
पश्यन्द्वितीयं हरति गोहत्याद्युपपातकम्। हरत्यशेषपापानि तृतीये नाऽत्र संशयः।।४१।।
दृष्ट्वा दोलायितं देवं सर्वपापैः प्रमुच्यते। आध्यात्मिकैराविभौतैराधिदैवैर्विमुच्यते।।४२।।
इमां यात्रां कारयित्वा चक्रवर्ती भवेन्नृपः। ब्राह्मणस्तु चतुर्वेदी ज्ञानवाञ्जायते ध्रुवम्[1]।।४३।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे दोलारोहणंनामत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः।।४३।।

तदनन्तर जनगण के समस्त पापों का नाश करने वाले, भोग-मोक्ष के एकमात्र कारण तथा भक्त के प्रति अनुग्रहकारी भगवान् हरि को इस प्रकार तीन बार झुलायें। अकृत्रिम रूप से अथवा कृत्रिम रूप से चाहे जैसा भी हो, भगवान् का सभी लीलाकार्य समस्त पापों का क्षय करता है। यह मूल अविद्या विनाशक है। इसमें सन्देह नहीं है। हे मुनिगण! भगवान् के झूलनोत्सव का द्वितीयाङ्ग झूले पर आरोहण करना देखने पर गोहत्यादि समस्त उपपातक नष्ट हो जाते हैं। इसके तृतीयाङ्ग दोलन क्रिया का दर्शन करने से समस्त पाप दूर हो जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं है। दोलाधिरूढ़ गोविन्ददेव के दर्शन से मानव सर्व प्रकार के पाप तथा आध्यात्मिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक आदि सभी क्लेश से विमुक्त हो जाता है। ब्राह्मण यदि दोलोत्सव करता है, तब उसे चारों वेद का ज्ञान हो जायेगा। क्षत्रिय इस उत्सव के करने से चक्रवर्त्ती राजा होगा। वैश्य धनधान्य सम्पन्न होगा। शूद्र समस्त पापों से रहित होगा।।३९-४३।।

।।त्रिचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

१. बंगभाषा वाली प्रति में यह श्लोक अधिक है—
वैश्यस्तु धान्य धनवान् शूद्रः शुध्येत् पातकात्।।

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

द्वादशमूर्त्तिपूजन महोत्सव, साम्वत्सर विधिवर्णन

जैमिनिरुवाच

अत्रवःकथयिष्यामिव्रतंसाम्वत्सरंपरम्। सम्वत्सरस्यादिदिनेपौर्णमास्यांतुफाल्गुने॥१॥
अनादिदेवस्य हरेर्मूर्त्तयो द्वादशैव याः। विष्ण्वादि नामप्रथिताः प्रतिमासं प्रपूजयेत्॥२॥
एकैकां मूर्तिमेतासां मासेषु द्वादशस्वपि। प्रत्यहं पूजयेत्पुष्पैः फलैर्द्वादशभिस्तथा॥३॥
अशोको मल्लिका चैव पाटलञ्च कदम्बकम्। करवीरं जातिपुष्पं मालती शतपत्रकम्॥४॥
उत्पलं चैव वासन्ती कुन्दं पुन्नागकं तथा। एतानि क्रमशो दद्यात्कुसुमानि हरेर्मुदा॥५॥
दाडिमं नारिकेलञ्च आम्रञ्च पनसं तथा। खर्जूरं तृणराजञ्च प्राचीनामलकं तथा॥६॥
श्रीफलं नागरगञ्च क्रमुकं करमर्दकम्। जातीफलञ्च क्रमशः फलान्येतानि वै ददेत्॥७॥
भक्ष्यभोज्यानि चोष्याणि लेह्यानि मधुराणि च।
आसनाद्यपचारांश्च दत्त्वा स्तुत्वा जगद्गुरुम्॥८॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे तपोधनगण! अब आपलोगों से सांवत्सर व्रत के विषय में कहता हूं। संवत्सर के आदि में जो फालगुनी पूर्णिमा है, उस दिन से उक्त व्रत में भगवान् हरि के विष्णु आदि नामों द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिये। फालगुन आदि १२ मास में हरि की द्वादश मूर्त्ति में से एक एक मूर्त्ति की १२ प्रकार के पुष्प तथा १२ प्रकार के फलों से नित्य पूजा की जाये। अशोक, मल्लिका, पाटली, कदम्ब, कनेर, जाती, मालती, शतपत्र, उत्पल, वासन्ती, कुन्द, पुन्नाग, पुष्प से क्रमशः एक-एक पुष्प से एक-एक माह में हरि की प्रसन्नता हेतु पूजा करनी चाहिये। अनार, नारिकेल, आम, कटहल, खजूर, ताल, पक्का आंवला, बेल, नागरंग, गुवाक, कदंब, जायफल के (क्रमशः प्रतिमाह एक-एक फल द्वारा) एक-एक माह में पूजा में अर्पित करें। प्रत्येक दिन मधुर भक्ष्य-भोज्य-लेह्य तथा चोष्य प्रभृति नाना खाद्य वस्तु एवं आसनादि प्रदानोपरान्त जगन्नाथ देव का स्तव करके उपचार प्रदान करें। तदनन्तर जगद्गुरु जगन्नाथ के स्तव द्वारा इस प्रकार से स्तुति करें।।१-८।।

सर्वव्यापिञ्जगन्नाथभूतभव्यभवत्प्रभो!। त्राहिमांपुण्डरीकाक्षविष्णो! संसारसागरत्॥९॥
एकार्णवजले रौद्रे निरालम्बे पुरा मधुम्। अवधीर्विश्वरक्षार्थं मधुसूदन! रक्ष माम्॥१०॥
त्रीन्विक्रमान्क्रमित्वा यो हत्वा दैत्यबलंमहत्।
त्रैलोक्यं पालयामास त्रिविक्रम! नमोऽस्तु ते॥११॥
कृत्वा वामनकं रूपमृग्यजुःसामगर्भकम्। मोहयित्वाऽद्भुतं रूपं तस्मै मायाविने नमः॥१२॥
यः श्रियं धारयेन्नित्यंहृदिभक्तेभ्यएव च। ददात्यपि श्रियंतस्मैश्रीधरायनमोऽस्तुते॥१३॥
इन्द्रियाणामधिष्ठाता यः सर्वेषां सदा प्रभुः। सुखैकहेतुर्भक्तानांहृषीकेश! नमोऽस्तुते॥१४॥

यथा—हे सर्वव्यापी! जगन्नाथ! आप भूत-भविष्य-वर्त्तमान समस्त विषयों के प्रभु हैं। अतः आप यह

सब कर सकने में समर्थ हैं। अतएव हे विभु! विष्णु! पुण्डरीकाक्ष! आप संसार सागर से मेरी रक्षा करिये। पूर्व में जब समस्त विश्व एकार्णव में निमग्न था, जब कुछ भी अवलम्बन नहीं था, उस भीषण काल में विश्वरक्षार्थ आपने मधु दैत्य का वध किया। हे मधुसूदन! मेरी रक्षा करिये। हे प्रभो! जिनके अभ्यन्तर में ऋक्-यजुः-साम रूप तीन वेद विराजमान हैं, ऐसा वामन देह धारण करके आपने अपने मायाबल से अखिल भूतवृन्द को मोहित करके अपने तीन पैर माप द्वारा त्रिलोक को आक्रान्त किया और विपुल दैत्यबल का वध करके त्रैलोक्य की रक्षा का कार्य किया। हे त्रिविक्रम! परम मायावी! आपको पुनः-पुनः प्रणाम! हे नाथ! आप सतत् देवी श्री को अपने हृदय में धारण किये रहते हैं। मैं आप श्रीधर को प्रणाम करता हूं। हे देव! आप भक्तगण के मुक्तिलाभ के एकमात्र स्वामी हैं। आप भक्तों को लक्ष्मी भी प्रदान करते हैं। आप सर्वदा सभी जीवों की इन्द्रियों के अधिष्ठाता होने के कारण भक्तों के सुख के कारण हृषीकेश हैं। हे हृषीकेश! आपको प्रणाम!।९-१४।।

यन्नाभिपद्मसम्भूतं जगदेतच्चराचरम्। विधातुरासनं नित्यं पद्मनाभ! नमोऽस्तुते॥१५॥
यस्यैतत्त्रिगुणैर्बद्धं जगदेतच्चराचरम्। दाम्नाबद्धः स गोप्या तु दामोदर! नमोऽस्तुते॥१६॥
त्रैलोक्यविप्लवकरं हतवान्केशिदानवम्।
ईशिता सर्वसौख्यानां त्राहि केशव माम्प्रभो॥१७॥
स्त्रष्टाससर्जभूतानिजगतामादिकारणम्। अचिन्त्यमहिमन्विष्णोनारायणनमोऽस्तुते॥१८॥
मायया यस्य विश्वं वै मोहितं यदनाद्यया। सर्वधर्मस्वरूपाय माधवाय नमो नमः॥१९॥
ज्ञानिनां ज्ञानगम्यस्त्वमगतीनां गतिप्रदः। सम्पूर्णमस्तुगोविन्दत्वत्प्रसादाद्व्रतंमम्॥२०॥

हे नाथ! आपके नाभिकमल से ही यह चराचर उत्पन्न हैं। हे पद्मनाभ! ऐसे आपको प्रणाम! परिदृश्यमान अखिल जीव शरीर आपके सत्वादि गुणत्रय से आबद्ध हैं। आप ही अपनी लीला के प्रकाशनार्थ स्वयं को गोपी यशोदा के हाथों रज्जुबद्ध कराते हैं। हे दामोदर! आपको प्रणाम! हे प्रभो! आप सर्वसुखनियन्ता हैं। आपने त्रिलोकविप्लवकारी केशी नामक दानव का वध करके केशव नाम धारण किया। हे केशव! सर्वदा मेरी रक्षा करिये। हे नाथ! आप समस्त भूतसमूह का सृजन करते हैं। आप एकमात्र समस्त जगत्कारण हैं। आप ही आदिरूप हैं। हे विष्णु! आपकी महिमा अचिन्त्य है। हे नारायण! आपको प्रणाम! जिनकी अनादि माया से अखिल विश्व विमोहित है, उस सर्वधर्म स्वरूप माधव को पुनः-पुनः प्रणाम! हे प्रभो! मैं आपका तत्व कैसे जान सकता हूं? आपका दर्शन ज्ञानीजन ज्ञानदृष्टि से ही करते हैं। हे नाथ! आप तो गतिरहित व्यक्तिगण को गति देने वाले हैं। हे गोविन्द! आपकी कृपा से मेरा यह व्रत सम्पूर्ण हो जाये।।१५-२०।।

प्रतिमासंपूजनान्ते मन्त्रैरेतैः कृताञ्जलिः। प्रार्थयेत्परयाभक्त्या भजनान्तं जनार्दनम्॥२१॥
एवंसम्वत्सरं नीत्वा व्रतं वैमूर्तिपञ्जरम्। सम्पूर्णफलसिद्ध्यर्थंप्रतिष्ठाविधिमाचरेत्॥२२॥
सुवर्णनिर्मिता विष्णोर्मूर्तयोद्वादशैवतु। यथाशक्तिकृताःस्थाप्याःकुम्भेषुद्वादशस्वपि॥२३॥
आम्रपात्राच्छादितेषु साक्षात्तेषु पृथक्पृथक्। श्वेतवस्त्रावनद्धेषु गन्धपल्लववारिषु॥२४॥
अष्टदिक्षुचतुर्दिक्षु सर्वतोभद्रमण्डले। स्थापनीयाश्च ते कुम्भास्तेषु पूज्याश्च मूर्तयः॥२५॥

प्रत्येक मास पूजा सम्पन्न हो जाने पर कृताञ्जलि होकर परम भक्ति के साथ उक्त मन्त्रों का पाठ करके

भक्तवत्सल जनार्दन से इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये। इस प्रकार से संवत्सर कालपर्यन्त व्यतीत करके सम्पूर्ण फलसिद्धि के लिये मूर्त्तिपञ्जर नामक उक्त व्रत की यथाविधि प्रतिष्ठा करनी चाहिये। उक्त व्रत की प्रतिष्ठा हेतु यथाशक्ति स्वर्णनिर्मित उक्त विष्णु की द्वादश मूर्त्ति को मनोहर पद्मयुक्त जलपूर्ण तथा मुख पर साक्षात् ताम्रपत्र द्वारा आच्छादित तथा श्वेत वस्त्रों से आच्छादित कुंभ के ऊपर पृथक्-पृथक् रूप से स्थापित करें। वहां कुम्भों की प्रथम पंक्ति में आठों दिशाओं में अष्टसंख्यक तथा द्वितीय पंक्ति में चार संख्यक, इस नियम से सर्वतोभद्रमण्डल पर उनको स्थापित करना होगा। ऐसे स्थापित कुम्भों के ऊपर द्वादश विष्णुमूर्त्ति रखकर उनकी पूजा करें।।२१-२५।।

द्वादशाक्षरमन्त्रेण उपचारैः पृथक्पृथक्। पञ्चामृतैश्च स्नपनं सर्वेषामादितो द्विजाः!।।२६।।
गीतवादित्रनृत्याद्यैस्तथा ब्राह्मणपूजनैः। वस्त्रयुग्मैर्द्वादशभिश्छत्रोपानद्युगैस्तथा।।२७।।
व्यजनैरुद्रकुम्भैश्च शयनीयैः सपीठकैः। गन्धैर्माल्यैः सुताम्बूलैर्मुद्रिकाकुण्डलैस्तथा।।२८।।

हे द्विजवर! प्रथम मूर्त्ति से लेकर सभी मूर्त्तियों की पूजा पृथक्-पृथक् द्वादशाक्षर मन्त्र से करनी चाहिये तथा उनको पञ्चामृत द्वारा स्नान कराये। साथ ही सभी मूर्त्तियों के प्रसन्नतार्थ नृत्य-गीत-वाद्य तथा ब्राह्मण भोजन करायें। इन बारहों मूर्त्तियों को वस्त्रद्वय, छत्र, एक जोड़ी पादुका, पंखा, कुंभ, शयनपीठ, गन्ध, ताम्बूल, मुद्रिका तथा कुण्डलादि उपचारों द्वारा पूजा करें।।२६-२८।।

प्रदीपाः सर्पिषा ज्वाल्याद्वादशद्वादशक्रमात्। नीत्वात्रियामामित्थंवैप्रभातेवह्निकर्मच।।२९।।
समिदाज्यचरूणां वै प्रतिदेवं शतत्रयम्। अष्टोत्तरसहस्रं तु तिलैर्व्याहृतिभिस्ततः।।३०।।
होमान्ते प्राशनंकृत्वा दद्यादाचार्यदक्षिणाम्। कपिला धेनवोदेयाःसालङ्काराश्चद्वादश।।३१।।
शतं चतुश्चत्वारिंशद्ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः। तद्देववृन्दं सघटं सवितानं सचामरम्।।३२।।
सर्वोपचारसहितमाचार्याय निवेदयेत्। व्रतराजमिमं कृत्वा सर्वान्कामानवाप्नुयात्।।३३।।
गुण्डिचाद्यास्तु यायात्रा विष्णोर्द्वादश कीर्तिताः।
तासां दर्शनजं पुण्यं व्रतेनाऽनेन लभ्यते।।३४।।
ऐन्द्रं पदं सार्वभौमं चक्रवर्तित्वमेव च। अष्टैश्वर्यमवाप्नोति देवदेवप्रसादतः।।३५।।
एतन्महापुण्यतमं नारदः कृततान्व्रतम्। कृत्वा द्वादश वर्षाणिजीवन्मुक्तोऽभवन्मुनिः।।३६।।
अन्ये च वैष्णवा ये वै चक्रुस्ते बहुशः पुरा। व्रतं नाऽतः परतरं भगवत्प्रीतिकारकम्।।३७।।
धर्म्यंयशस्यमायुष्यंब्राह्मण्यंवंशवर्द्धनम्। भवन्तोऽपियतात्मानः कुर्वन्ति व्रतमुत्तमम्।।३८।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहिताया द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादेसम्वत्सरज्येष्ठपञ्चकव्रतवर्णनंनाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः।।४४।।

—***—
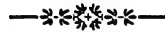
प्रत्येक मूर्त्ति की प्रसन्नता के लिये उस दिन रात में प्रत्येक मूर्त्ति के उद्देश्य से १२-१२ के क्रम से गोघृत का प्रदीप जलायें। इस प्रकार रात्रि व्यतीत करने के पश्चात् प्रभात काल में होम करना चाहिये। उक्त

अग्निकार्य में प्रत्येक देवता के उद्देश्य से ३०० समिध्, घृत तथा चरुहोम और १००८ तिलाहुति देनी चाहिये। होमान्त में आचार्य को भोजन कराने के पश्चात् उनको अलंकारयुक्त १२ कपिला धेनु तथा दक्षिणा देनी चाहिये। तदनन्तर १४४ ब्राह्मणगण को भोजन करायें। कुम्भ, चंदोवा तथा चामर आदि उपचारों के साथ उन द्वादश देव प्रतिमाओं को आचार्य को प्रदान करें। हे मुनिगण! इस व्रत का अनुष्ठान करने से मानव सभी अभीष्टों को प्राप्त कर लेता है। भगवान् विष्णु की जो द्वादश प्रकार की यात्रा कही गयी है, एकमात्र उक्त व्रतानुष्ठान से सभी यात्राओं का दर्शन करके पुण्यफल प्राप्त हो जाता है। किम्बहुना, देवदेव की कृपा से सार्वभौमत्व, चक्रवर्त्तित्व, अष्ट ऐश्वर्य तथा इन्द्रपद भी मिलता है। पूर्वकाल में महामुनि नारद ने द्वादश वर्ष इस महापुण्य व्रत का अनुष्ठान करके जीवन्मुक्ति प्राप्त किया था और पूर्वकाल में अन्य अनेक देवगण ने भी यह व्रताचार सम्पन्न किया था। वास्तव में इसकी तुलना में प्रीतिप्रद उत्तम व्रत है ही नहीं। इसके अनुष्ठान से यश, आयु, ब्रह्मतेज तथा वंशवृद्धि होती है। यह अतीव प्रशंसनीय व्रत है। आप लोग भी संयमित होकर इस अक्षय फलप्रद व्रत को सम्पन्न करें।।२९-३८।।

।।चतुश्चत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

दमनकभंजिक वर्णन

मुनय ऊचुः

मुने! व्रतमिदं पुण्यं श्रुतं वै मूर्तिपञ्जरम्। अन्तःप्रमोदजननं महिम्ना च महत्तरम्।।१।।
यात्रा द्वादश पुण्या या उद्दिष्टा भगवत्प्रियाः। तासांद्वेअवशिष्टेनः कथयस्वमहामुने।।२।।

मुनिगण कहते हैं—हे मुनिवर! आपके मुख से चित्त प्रमोदकर महामहिमापूर्ण पवित्र मूर्त्तिपंजर व्रत का विषय सुना। हे महामुने! जिस भगवत्प्रिय द्वादश यात्रा का उल्लेख किया है, उसमें दो बाकी हैं। इसलिये हमें उन दो यात्रावयव के सम्बन्ध में बतायें।।१-२।।

जैमिनिरुवाच

वासन्तिका समाख्यास्ये यात्रां दमनभञ्जिकाम्।
यस्यां कृतायां दृष्टायां प्रीणाति पुरुषोत्तमः।।३।।
पुरा यत्कथितं विप्रास्तृणं दमनकाह्वयम्। चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामाहरेत्तत्समूलकम्।।४।।
तन्मध्ये मण्डलं कुर्यात्सुशुभं पद्मसञ्ज्ञितम्। तदन्तर्वासयेद्देवप्रत्यर्चांप्रतिपूजिताम्।।५।।
युक्तां श्रीसत्यभामाभ्यां पूजयेद्विधिवच्च ताः। अर्द्धरात्रे तु कर्मेदंदेवदेवस्यकारयेत्।।६।।

पुरानिशीयेऽपि बिभुर्बभञ्ज दमनासुरम्। भङ्क्त्वा लेभेपरांप्रीतिं तदङ्गोत्थंचतत्तृणम्।।७।।
तस्यामेव त्रयोदश्यां तृणं दैत्यं विभावयेत्। कृताञ्जलिपुटोभूत्वावाक्यंचेदमुदाहरेत्।।८।।

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे मुनिगण! अब दमनकभंजिका नामक वसन्त कालीन यात्रा कहता हूं। इसका अनुष्ठान अथवा दर्शन करने से भगवान् पुरुषोत्तम अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं। हे विप्रगण! पूर्व में जिस दमनक (दोना पौधा) पौधे का वृत्तान्त कहा था उसे चैत्रमासीय शुक्लातृतीय को लाये। तदनन्तर भगवान् जगन्नाथदेव के समक्ष बनाये अधिवासित बालुकामय मण्डप के मध्य भाग को छोड़कर उसके चतुर्दिक् इस तृण को रोपित करें तथा मण्डपमध्य में सुन्दर पद्ममण्डल का निर्माण करें। उस पर लक्ष्मी एवं सत्यभामा की प्रतिमा स्थापित करके उनके साथ प्रतिपूजित विष्णुप्रतिमा स्थापित करके पूजा यथाविधान करना चाहिये। देवदेव के लिये प्रीतिकारी यह कार्य अर्द्धरात्रिकाल में करना उचित है। पूर्व में भगवान् विष्णु ने रात्रिकाल में ही दमनक असुर का वध किया था तथा इससे उन्होंने परम प्रीतिलाभ किया था। यह तृण उसी असुरदेह से उद्भूत हुआ था। चैत्रमासीय शुक्ला त्रयोदशी के दिन इस असुर का वध हुआ था; इसीलिये तृण में दैत्यरूप की भावना करके तथा अंजलिवद्ध होकर भगवान् से यह कहना चाहिये।।३-८।।

अवधीर्दमनंदैत्यं पुरा त्रैलोक्यकण्टकम्। स एवेत्थं परिणतः पुरतस्तव तिष्ठति।।९।।
अस्योत्पत्तौ तदा प्रीतिरासीद्यातवमाधव!। अधुनाऽपि तथैवास्तांप्रीतिर्दमनभञ्जने।।१०।।

यथा—हे प्रभो! आपने पूर्वकाल में त्रिलोक कन्टक दमन दैत्य का वध किया था, वह दानव तृणरूपेण परिणत होकर आपके समक्ष स्थित है। हे माधव! उस समय इस तृण की उत्पत्ति से आपको जो प्रसन्नता हुई थी, अब इस दमन तृणभंजन में वैसी ही प्रीति हो।।९-१०।।

इत्युक्त्वा तृणमेके तुकरेदेवस्यदापयेत्। ततोऽवशिष्टां रात्रिंच नृत्यगीतादिभिर्नयेत्।।११।।
ततश्चाऽभ्युदिते सूर्ये देवं तृणपुरः सरम्। नयेच्च जगदीशस्य समीपं द्विजसत्तमाः!।।१२।।
उपचारैर्जगन्नाथं पूजयेत्पर्ववत्ततः। हिरण्यकशिपुं हत्वा ह्यन्त्रमालां तदङ्गजाम्।।१३।।
कृत्वा कण्ठे यथाऽप्रीणास्तथेदं दमनं तृणम्। तव प्रीत्यैतु भगवन्मयादत्तंतवाऽङ्गके।।१४।।
इत्युच्चार्य हरेर्मूर्ध्नि दद्याद्गन्धतृणं शुभम्। तदा दृष्ट्वा हरेर्वक्त्रपद्मंप्रीतिकरं मुदा।
भवदुःखपरिक्षीणः सुखमाप्नोत्यनुत्तमम्।।१५।।

यह कहकर भगवान् के समक्ष एक गुच्छा वह तृण प्रदान करें। तदनन्तर नृत्य-गीतादि से रात्रि के बचे काल को व्यतीत करें। हे द्विजसत्तमगण! इसके पश्चात् सूर्योदय होने पर प्रतिमा को उस तृण के साथ भगवान् जगन्नाथ की मूल वाली प्रतिमा के पास ले जाकर जगन्नाथ देव को पूर्ववत् यथाविधि नाना उपचार से अर्चित करके कहे "हे प्रभु! पूर्व में हिरण्यकशिपु के संहार के पश्चात् उसके शरीर की बनी अक्षमाला को कण्ठ में धारण करने से आपको जिस प्रकार से प्रसन्नता हुई, उस दमनक तृण के प्रति भी वैसी ही प्रसन्नता होगी, तभी यह सोचकर मैं आपकी प्रसन्नता के लिये उसे आपके अंग पर अर्पित कर रहा हूं।" यह कहकर भगवान् के मस्तक पर शुद्ध गन्धतृण प्रदान करें। मानव उस समय आनंदित होकर भगवान् के प्रीतिप्रफुल्ल मुखारविन्द का दर्शन करके संसार दुःख से मुक्त होकर अनुपम सुखलाभ करता है।।११-१५।।

गृहीत्वा मूर्ध्नि तच्छाखां विष्णुमूर्ध्नोऽपकर्षिताम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो वसेद्विष्णुपुरे ध्रुवम्॥१६॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकादशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे दमनकभञ्जिकाविधिवर्णनंनाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः।।४५।।

तत्पश्चात् भगवान् के मस्तक से यह तृणशाखा लेकर अपने मस्तक पर धारण करने से मनुष्य सर्वपापरहित होकर विष्णुलोक में निवास करता है।।१६।।

।।पञ्चचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

दक्ष प्रजापति द्वारा भगवत् प्रार्थना, दक्ष द्वारा वरदान प्राप्ति

जैमिनिरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि यात्रामक्षयमोक्षदाम्। अनायासेन मूढानांवासनाबद्धचेतसाम्॥१॥
वैशाखस्यामले पक्षे द्वितीयारात्रिमध्यतः। मण्डपंचचतुष्कोणंसुधालिप्तंसवेदिकम्॥२॥
सुधौतवाससा कुर्यात्प्रतिसीरासमं ततः। साधुसोपानसंयुक्तंचारुचन्द्रातपान्वितम्॥३॥
तन्मध्ये विन्यसेन्नूनं साधु भद्रासनोत्तमम्। तस्मिन्निचोलसञ्छन्ने विन्यसेत्स्वर्णभाजनम्॥४॥
तस्यपश्चिमभागेवै स्वासीनोब्राह्मणःशुचिः। पात्रान्तरे तुगृह्णीयाच्चन्दनंपञ्चविंशतिम्॥५॥
सुपिष्टंकृष्णस्नेहस्यगृह्णीयाच्चपलाधिकम्। अगुर्वर्द्धंकुङ्कुमं स्यात्कुङ्कुमार्द्धंचसिह्लकम्॥६॥
कस्तूरिकाकर्पूरयोः प्रमाणं सिह्लसंमितम्। सर्वमेकत्र संपिष्यात्पाटलोद्भववारिणा॥७॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—अब उस यात्रा का वर्णन करता हूं, जिससे वासनावद्ध चित्त वाले मूढ़ मानव भी अनायास अक्षय मोक्ष पा जाते हैं, उसे सुनिये। वैशाखमास की शुक्लाद्वितीया के दिन अर्धरात्रि काल में मध्य स्थल पर (पूर्व अध्याय में जिस मध्यस्थल की बात वर्णित है) वेदिका बनायें, ऊपर चन्दोवा लगाकर वहां उत्तम सीढ़ियां रचकर सुशोभित मण्डल को श्वेतवस्त्र से चारों ओर से (कनात की तरह) आवरित करें। तत्पश्चात् उसमें रत्नजटित परम सुन्दर भद्रासन बनाकर उस पर वस्त्र बिछायें। तदनन्तर उसके ऊपर स्वर्णपात्र को स्थापित करना चाहिये। उसके पश्चिम में ब्राह्मण पवित्र होकर सुन्दर आसन पर बैठे तथा कृष्णलौह के बने अन्य पात्र में २० पल चन्दन जो सुन्दर रूप से पीसा गया हो, ६ पल अगुरु, ३ पल कुंकुम, डेढ़ पल सिद्धक तथा उतनी ही कस्तूरी एवं कर्पूरचूर्ण लेकर उसे पंचतीर्थ जल से पीसना चाहिये।।१-७।।

पलद्वयं ततो दद्यादगुरुस्नेहमुत्तमम्। एकत्र लोडितां कृत्वा पूर्वपात्रे निधापयेत्॥८॥
आच्छाद्य केतकीपत्रैर्वेष्टयेच्चीनवाससा। गन्धस्ते सोममन्त्रेण रक्षेद्गरुडमुद्रया॥९॥
एवं तु मण्डपे तस्मिन्साऽधिवासं निधापयेत्।
अरुणोदयकालेऽथ नयेत्कृष्णस्य सन्निधिम्॥१०॥
शङ्खचामरछत्राद्यैर्भ्रामयित्वा सुरालयम्। देवाग्रे स्थापयित्वा च पूजयेत्पुरुषोत्तम्॥११॥

तब उसमें दो पल उत्तम अगुरु स्नेह प्रदान करें। इन सबको अच्छी तरह मिलाकर पूर्व स्थापित स्वर्णपात्र में रखना चाहिये। तदनन्तर केतकी पत्र से ढककर तथा चीन देशीय वस्त्र से लपेट कर गरुड़मुद्रा प्रदर्शित करें। सोममन्त्र पाठ करके उन गन्धद्रव्य को सुरक्षित करें। इस प्रकार से कार्य सम्पन्न करके उसे मण्डल मध्य में रखना चाहिये। अरुणोदय काल में भगवान् जगन्नाथ देव के पास उसे ले जाये। उस समय शंखध्वनि करे, चावर झले तथा छत्रधारण कराये। इस प्रकार इन सबके साथ उस पिसे गन्धद्रव्य को भगवान् के सामने रखें। इससे भगवान् जगन्नाथ की यथोचित पूजा करनी चाहिये।।८-११।।

उद्घाटयेत्ततोवस्त्रंदिव्यदृष्ट्यावलोकयेत्। प्रोक्षितं मन्त्रराजेन सङ्कुर्यात्ताडनादिभिः॥१२॥
गन्धपुष्पाक्षतैःपूज्यः श्रियःसूक्तेन लेपयेत्। श्रीशस्यसर्वगात्रेषु मृदुस्पर्शं शनैः शनैः॥१३॥
वैष्णवा जयशब्दैस्तंवर्द्धयन्तितदा हरिम्। नानासूक्तोपनिषदैर्विद्वांसस्तं स्तुवन्तिवै॥१४॥
वेणुवीणादिकैर्नृत्यगीतवाद्यैरनेकशः। व्यजनैश्चामरैश्छत्रैरन्यैर्नानोपहारकैः॥१५॥
सन्तोषयञ्जगन्नाथंतृतीयादौविलेपयेत्। यस्य चिन्तनमात्रेण तापा नश्यन्तिदेहिनाम्॥१६॥
सोऽसौ सन्दर्शनात्तापान्नृणां हन्ति तदा द्विजाः।
अचिन्त्यो महिमा विष्णोरीदृवतादृक्तया सदा॥१७॥

तदनन्तर अखण्ड वस्त्र थोड़ा उधाड़ कर उनको दिव्यदृष्टि से देखना चाहिये। तदनन्तर मन्त्रराज द्वारा प्रोक्षण, ताड़नादि द्वारा संस्कार तथा गन्धपुष्प से अर्चना करके श्रीयुक्त पाठ करके मृदुभाव से धीरे-धीरे भगवान् के सर्वाङ्ग में लेपन करना चाहिये। इस समय भगवान् हरि का वैष्णवगण जयध्वनि से संवर्द्धना तथा विद्वद् ब्राह्मणगण द्वारा विविध सूक्त तथा उपनिषदों के मन्त्र से स्तुति करनी चाहिये। इस प्रकार से वेणु वीणा आदि के वाद्यों से नाना प्रकार के गीत-नृत्य, व्यजन (पंखा), चामर, छत्र एवं अन्य विविध उपचारों द्वारा जगन्नाथ देव को प्रसन्न करके तृतीय तिथि के प्रथम भाग में उत्तमरूपेण विलेपन करें। हे मर्हिषगण! जिनके स्मरणमात्र से ही देहीगण के आध्यात्मिक आदि तापत्रय तिरोहित हो जाते हैं, उन भगवान् के उस समय के दर्शन द्वारा यह त्रिताप विदूरित होगा। इसमें आश्चर्य की बात क्या? वास्तव में सर्वदा सभी प्रकार से भगवान् विष्णु की महिमा अद्वितीय है।।१२-१७।।

ततः सूक्ष्माम्बरैर्माल्यैर्भक्ष्यभोज्यादिपानकैः। द्रव्यैर्नानाविधैर्हृद्यैर्गव्यैरावर्तितैः शुभैः॥१८॥
ततः सम्पूजयेद्देवं ताम्बूलैश्च सुसंस्कृतैः।
तस्मिन्काले तु ये कृष्णं भक्त्या पश्यन्ति मानवाः॥१९॥

न तेषां पुनरावृत्तिःकल्पकोटिशतैरपि। विष्णोःस्वरूपमासाद्यविष्णुलोकेवसन्तिवै॥२०॥

तदनन्तर नाना सूक्ष्म वस्त्र, माला, भोज्य, भक्ष्य, पेय तथा गव्यद्रव्यसम्भूत नाना प्रकार के सुस्वादु एवं शुभ खाद्य द्रव्य एवं कूर्पर से वासित ताम्बूल से पुनः जगन्नाथ देव की पूजा करनी चाहिये। उस समय जो मनुष्य भक्ति के साथ भगवान् कृष्ण का दर्शन कर पाते हैं, सैकड़ों करोड़ कल्पों में भी उनको पुनः संसार में नहीं आना पड़ता। वे विष्णु का सारूप्य प्राप्त करके विष्णुलोक में निवास करते हैं।।१८-२०।।

पुरा कलियुगे विप्रा! दक्षो नाम प्रजापतिः।
आध्यात्मिकादिसन्तापैः सुदीनान्वीक्ष्य मानवान्॥२१॥

तत्र गत्वा कृपायुक्तो महिमानं चकार वै। यथाविधि मयाप्रोक्तं स एव प्रथमंद्विजाः॥२२॥
प्रलिप्य चन्दनेनाऽङ्गेमाधवामलपक्षके। तृतीयायां जगन्नाथं स्तुतिमेतां मुदा जगौ॥२३॥

हे विप्रवर्ग! पूर्व में दक्ष नामक प्रजापति कलिकाल में अखिल मानवगण को आध्यात्मिकादि तापत्रय से पीड़ित देखकर कृपा परवश होकर श्रीक्षेत्र में गये। वहां उन्होंने जिस महिमा का प्रकाशन किया था मैंने उसे पहले ही कह दिया। हे द्विजगण! मैंने उसे पहले ही यथाविधि व्यक्त किया है। दक्ष प्रजापति ने वैशाख मास की शुक्ला तृतीया के दिन जगन्नाथ देव के शरीर में सानन्द विलेपन करके यह स्तव किया।।२१-२३।।

दक्ष उवाच

देवदेव जगन्नाथ! सहजानन्द! निर्मल!। संसारार्णवसम्मग्नांस्त्राहि नः परमेश्वर!॥२४॥
नानाविधैश्च सन्तापैः सन्तप्तान्मानवानिमान्।
ममानुकोशबुद्ध्या शुभदृष्ट्याऽमृतेन च॥२५॥
सन्तर्पय तृणाञ्छुष्कान्कृष्णमेघ! नमोऽस्तु ते। कलिकल्मषसम्मूढानुद्धर्तुं जगताम्पते!॥२६॥
अवतारोऽयमेतस्मिन्नीलाचलगुहान्तरे। चिरकालप्ररूढानां दुस्त्यजानां महांहसाम्॥२७॥
राशिं दग्धुं त्वमेवेशो दीनानाथ! कृपाकर!। त्वद्दर्शनमहायोगे यमाद्यष्टाङ्गवर्जिते॥२८॥
येषां मतिः समुत्पन्ना चतुर्वर्गैकसाधने। न ते शोचन्ति दुष्पारे भवारण्ये महाभये॥२९॥
कर्मानपेक्षंदेवेश! नाऽऽत्मज्ञानंविमोचकम्। इदं तेदर्शनंनाथ! विनाकर्माऽपि मोचयेत्॥३०॥
जयकृष्ण! जयेशान! जयाक्षर! जयाव्यय!। प्रसीदानुगृहाणेमान्दीनान्मूढान्विचेतसः॥३१॥

दक्ष कहते हैं—हे देवदेव जगन्नाथ! सहजानन्द! निर्मल! आपमें कोई मलिनता ही नहीं है। आप अपनी शुभ दृष्टि से मुझ संसार सागर में डूब रहे व्यक्ति का परित्राण करें। हे कृष्णमेघ! मुझ पर कृपा करने आप नाना प्रकार के सन्ताप से सन्तप्त शुष्क तृणपुञ्जप्राय मानवगण को अमृतवर्षारूपी शुभदृष्टिपात से परितृप्त करिये। आपको प्रणाम! हे अखिल जगत्पति! कलिकल्मषसम्मूढ़ जीवगण के उद्धारार्थ इस नीलाचल गुहा में आप इस प्रकार से अवतीर्ण होते हैं। हे दीनानाथ! कृपामय! अनेक कल्पसम्भूत दुच्छेद्य मेरी पापराशि को दग्ध करने में आप सक्षम हैं। हे प्रभो! महायोग के महाक्लेशसाध्य यमादि अष्टांग से रहित आपका चतुर्वर्गप्रद जो दर्शनरूपी महायोग है, उसमें जो निरत हो जाता है, वह कदापि महाभयपूर्ण दुष्पार भवारण्य में शोकग्रस्त नहीं होता। (यह

नियम है कि) कर्म के बिना संसार विमोचक आत्मज्ञान का जन्म नहीं होता तथापि हे नाथ! बिना कर्म के ही आपका दर्शन सभी को संसार से मुक्त कर देता है। हे कृष्ण, हे ईशान! प्रसन्न हो जायें। हे अक्षय अव्यय! आप दीन, मूढ़, हतज्ञान मानवों पर कृपा करिये।।२४-३१।।

इति स्तुत्वा दण्डपातं पपात चरणाम्बुजे। प्रसीदेश प्रसीदेश प्रसीदेशेति घोषयन्।।३२।।
ततो जगाद भगवान्सुस्वरेण प्रजापतिम्। उत्तिष्ठवत्स ते दत्तं दुर्लभं यद्वरं त्वया।।३३।।
काङ्क्षितंमत्प्रसादेनभविष्यतिनसंशयः। मदनुग्रहोऽल्पपुण्यानांदुर्लभोविदितस्त्वया।।३४।।
मदङ्गजातोऽस्ति भवान्मां त्वं प्रार्थितवानसि। ममोत्सवेन सन्तोष्य ततस्ते प्रददाम्यहम्।।३५।।
इमामक्षययात्रांयेभक्त्यापश्यन्तिहर्षिताः। तस्मिन्कालेयदिच्छन्तिमनसातदवाप्नुयुः।।३६।।
यथा सन्तापहरणं चन्दनेनाऽनुलेपनम्। तथात्सवोऽयं मे दक्ष सन्तापत्रयनाशनः।।३७।।

प्रजापति दक्ष इस प्रकार से स्तव करके "हे ईश, प्रसन्न हों, प्रसन्न हों।" यह पुनः-पुनः कहते-कहते भगवान् के चरणों पर दण्डवत् गिर पड़े। तदनन्तर भगवान् मधुर स्वर से प्रजापति से कहने लगे—"हे वत्स! उठो! मैं तुम्हारा इच्छित वर तुमको प्रदान करता हूं। तुमने जो दुर्लभ-वर मांगा है, वह मेरी कृपा से तुमको निश्चय प्राप्त होगा। हे वत्स! तुम अच्छी तरह जानते हो कि अल्पपुण्य व्यक्ति पर मेरी कृपा अत्यन्त दुर्लभ है। हे प्रजापति! तुमने मेरे ही अंग रूप ब्रह्मा से जन्म पाया है। साथ ही तुमने महोत्सव सम्पन्न करके मुझे प्रसन्न किया तथा मुझसे वर मांगा। तब मैं अवश्यमेव तुमको प्रार्थित वर प्रदान करूंगा। जो आनन्द में भरकर भक्ति के साथ मेरी अक्षय यात्रा का दर्शन करेंगे, वे उस समय जो भी इच्छा करेंगे, उनको वह प्राप्त होगा। जैसे चन्दन लेपन सन्ताप को हर लेता है, हे दक्ष! उसी प्रकार से मेरा यह उत्सव तापत्रय नाशक है।।३२-३७।।

मत्प्रेरितमतिस्त्वंहिउत्सवंकृतवानसि। सङ्कल्पितोऽयंमनसादीनोद्धृत्यैमया ध्रुवम्।।३८।।
त्वयाऽभिकाङ्क्षितं सर्वं दास्याम्येव प्रजापते!।
द्वादशैता महायात्रा गुण्डिचाद्यास्तु पावनाः।।३९।।
एकैका मुक्तिदाः सर्वा धर्मकामार्थवर्द्धनाः।।४०।।
तासामेकतमाम्वाऽपि यो भक्त्या चाऽवलोकयेत्।
एकयाऽपि भवाब्धिं स तीर्त्वा विष्णुपदम्व्रजेत्।।४१।।

हे वत्स! तुमने जो मेरा उत्सव सम्पन्न किया है, उस विषय में मैंने ही तुम्हारी बुद्धि को परिचालित किया था। उसी कारण तुमने दीनों के उद्धारार्थ मन ही मन उसे संकल्पित भी किया। हे प्रजापति! तुम्हारा इच्छित समस्त विषय तुमको प्रदान करता हूं। इसमें सन्देह नहीं है। हे वत्स! मेरी जो गुण्डीचादि द्वादश प्रकार की पवित्रकारी महायात्रा है, उनमें से प्रत्येक मुक्तिप्रद है। वह धर्मकामार्थवर्द्धक भी है। यदि कोई भक्ति के साथ उक्त यात्रा में से एक तरह की भी यात्रा का अवलोकन करता है, वह उस एक ही यात्रा का अवलोकन करके ही भवाब्धि पार करके विष्णुलोक गमन करता है।।३८-४१।।

जैमिनिरुवाच

इत्युदीर्य प्रजानाथं भगवान्स तिरोदधे।।४२।।

दक्षः प्रजापतिः सोऽपि श्रद्दधानस्तदाज्ञया।
सम्वत्सरं गिरौ स्थित्वा सन्ददर्श महोत्सवान्॥४३॥
सर्वज्ञो ब्राह्मणो भूत्वाकौशिकस्यकुलोत्तमः। लोकान्प्रवर्तयामासयथाविधिमहेषुसः॥४४॥
विश्वासायाऽल्पबुद्धीनां यात्रावै परिकीर्तिताः। अयञ्चसाक्षात्परब्रह्मरूपीजगद्गुरुः।
प्रासादितः सुरेशेन लोकानुग्रहणाय वै॥४५॥
यथा तथा दृष्टिपथं यातोमुक्तिप्रदोध्रुवम्। सर्वान्कामान्ददात्येव नारीणांनात्रसंशयः॥४६॥
सत्यप्रतिज्ञोभगवांस्तत्राऽऽस्तेमधुसूदनः। शोकं तरतियं दृष्ट्वा भवपाथोधिसम्भवम्।
किं व्रतैः किं तपोदानैः किं कृच्छ्रैः क्रतुभिस्तथा॥४७॥
किमष्टाङ्गेन योगेन किं साङ्ख्येन परेण च॥४८॥
तीर्थराजजले स्नात्वा क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे। न्यग्रोधमूलवसतौ वसन्तं चर्मचक्षुषा।
दृष्ट्वा दारुमयं ब्रह्म देहबन्धात्प्रमुच्यते॥४९॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये-जैमिनिऋषिसम्वादे भगवत्पूजाविधौदक्षकृतार्चावर्णनंनामषट्चत्वारिंशोऽध्यायः।।४६।।

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे मुनिगण! भगवान् जगन्नाथ देव यह कहकर अन्तर्हित् हो गये। इधर प्रजापति दक्ष ने भगवान् की इच्छानुसार एक वर्ष नीलाचल में रहकर महोत्सवों का दर्शन किया। कालक्रमेण दक्ष ने कौत्सवंशीय कुलभूषणस्वरूप सर्वज्ञ ब्राह्मणरूपेण जन्म ग्रहण किया। उन्होंने इन सब यात्राओं को जिनका यहां वर्णन किया गया है, यथा विधान उक्त यात्राओं को अनुष्ठित करने के लिये अखिल जनगण को प्रवृत्त किया। हे मुनिगण! ये सभी यात्रायें अल्पबुद्धि जनगण में विश्वास उत्पादन के लिये भगवान् द्वारा विहित हैं। साक्षात् परमब्रह्मरूपी जगद्गुरु जगन्नाथदेव ने सुरेश्वर ब्रह्मा पर प्रसन्न होकर लोकसमूह के प्रति अत्यन्त अनुग्रह प्रकाशनार्थ उक्त विधान किया। किसी भी समय उनका दर्शन करने से वे निश्चितरूपेण मुक्तिदान करते हैं। साथ ही वे सत्कार्य निरत मनुष्य की सभी कामना पूरी कर देते हैं। इसमें अणुमात्र भी संदेह नहीं है। हे महर्षिगण! जिनका दर्शन करने से मानव भवसागर सम्भूत समस्त क्लेशों से छुटकारा पा जाता है, जिनका कथन कभी झूठ नहीं होता, वे सर्वदुःखनाशक भगवान् नीलाचल में विराजित हैं। इसलिये बहुविध व्रत-तप-दान-तीर्थसेवन-यज्ञ तथा उत्कृष्टतम अष्टाङ्ग सांख्य-योग का क्या प्रयोजन? मनुष्य पुरुषोत्तम क्षेत्र में तीर्थराज जल में स्नान करके बरगद के वृक्ष के नीचे विराजमान साक्षात् दारुमय ब्रह्म को चर्म-चक्षु से दर्शन करने से वह देहबन्धन से मुक्त हो जाता है।।४२-४९।।

।।षट्चत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवत् मूर्त्ति आराधना से विविध फल प्राप्ति, दारुब्रह्म मूर्त्ति वर्णन

मुनय ऊचुः

भगवन्सर्वशास्त्रज्ञ! श्रुतं परममद्भुतम्। यात्रारूपं भगवतो माहात्म्यं पापनाशनम्॥१॥
यथाऽयं पूजितो देवःकामिभिः सर्वकामदः। भूत्युपासनया भूतिप्रदो ब्रूहितथाहिनः॥२॥

ऋषिगण कहते हैं—हे भगवान् सर्वशास्त्रज्ञ! हमने आपके द्वारा प्रमुख यात्रारूप सर्वपापविनाशक परम अद्भुत भगवत् माहात्म्य श्रवण किया, परन्तु सकाम मनुष्यों के विविध भूतिलाभार्थ सर्वकामफलप्रद देवदेव की जिस प्रकार पूजा करनी चाहिये वह हमलोगों को बतलाने की कृपा करिये। एकमात्र भगवान् विष्णु ही सर्व भूतिप्रद हैं। (भूति=आनंद समृद्धि)।।१-२।।

जैमिनिरुवाच

सर्वा विभूतयोविष्णोर्जगत्यस्मिंश्चराचराः। भूतिप्रदोविभूतिश्च स एकः परमेश्वरः॥३॥
यथायथोपचरति तथा वै जायते नरः। एतावदस्य महिमा परिमातुं न शक्यते॥४॥
यो यथा समुपास्ते तं तथा वै फलमाप्नुयात्। एकः पन्थाश्चतुर्णां वै धर्मादीनां स दारवः॥५॥
धर्मस्य पन्थागहनः सङ्कीर्णो बहुशासनैः।
तत्वावधारणेनाऽस्य क्षमः कोऽपि द्विजोत्तमाः!॥६॥
अर्थकामोहितन्मूलावित्थंस्थूलगतीसदा। तेषां त्रयाणां भगवाननायासेन वृद्धिकृत्॥७॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—चराचरात्मक अखिल विश्व में जो कुछ भी है, वह सब उन विष्णु की ही विभूति है। वे परमेश्वर ही विभूति भी हैं तथा विभूतिप्रद भी हैं। उनके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। मनुष्य जिस प्रकार उनकी आराधना करता है, उसी प्रकार उसे ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। उनकी महिमा की कहीं भी इयत्ता नहीं है। जिस-जिस फल के लाभार्थ उनकी उपासना की जाती है, उससे वह-वह फल प्राप्त होता है। इसमें सन्देह नहीं है। धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप चतुर्वर्ग की प्राप्ति का सर्वदा श्रेष्ठतम यह एक ही मार्ग है, परन्तु नाना प्रकार के अनुशासन-नियम वाला धर्मपथ अत्यन्त गहन एवं संकीर्ण है। हे द्विजोत्तमगण! कोई भी प्रचलित धर्मपथ की अवधारणा कर सकने में समर्थ नहीं हो पाता। धर्म मूलक धर्म, अर्थ एवं काम को (जो धर्मानुरूप हैं) सर्वनियन्ता भगवान् ज्ञानगम्य विष्णुदेव अनायास ही प्रदान करते तथा वर्द्धित करते हैं।।३-७।।

धर्मोहि भगवान्विष्णुर्धर्ममूलमिदं जगत्। धर्मस्य जगतश्चापि प्रभुरेषजनार्दनः॥८॥
पुरुषार्थमयेतस्मिन्भक्तिर्यस्यप्रतिष्ठिता। स सर्वकामतृप्तात्मा न शोचतिनकाङ्क्षति॥९॥
त्रैलोक्यैश्वर्यदाताऽसौ शक्ररूपो ह्युपासितः। भावितोधातृरूपेण वंशवृद्धिकरोहरिः॥१०॥

सनत्कुमाररूपेण दीर्घमायुः प्रयच्छति। वृत्तिसम्पत्प्रदो ह्येष पृथुरूपेण भावितः॥११॥
गङ्गादितीर्थफलदोवाचस्पतिरुपासितः। अन्तस्तमः प्रणुदति भास्वद्रूपेण भावितः॥१२॥
सौभाग्यमतुलं दद्यादमृतांशुरुपासितः। विद्याष्टादशतत्त्वज्ञो वाक्पतित्वेन भावयन्॥१३॥

भगवान् विष्णु ही धर्म हैं। समस्त जगत् धर्ममूलक है। अतएव भगवान् जनार्दन ही धर्म एवं जगत् के एकमात्र स्वामी हैं। इसमें सन्देह क्या? इस कारण धर्मादि पुरुषार्थ धर्मचतुष्टयमय है। उन भगवान् के प्रति जिनकी अचला भक्ति है, उनकी समस्त कामनायें पूर्ण होकर उनकी आत्मा को परितृप्त कर देती हैं। उसे कभी किसी कारण से शोक अथवा किसी वस्तु की आकांक्षा नहीं करनी पड़ती। यदि उनकी उपासना इन्द्र रूप से भी की जाये, तब भी वे त्रैलोक्य का ऐश्वर्य प्रदान कर देते हैं। जो उनकी उपासना विधाता रूप से करता है, उसकी वंशवृद्धि करते हैं। वे सनत्कुमार रूप से उपासित होने पर दीर्घायु, पृथुराज रूप से उपासित होने पर वृत्ति तथा सम्पदा प्रदान करते हैं। जो उनकी उपासना सिन्धुरूपेण करता है, उसे ये प्रभु गंगादि तीर्थों का फल प्रदान करते हैं। जो उनकी उपासना भास्कर रूप से करता है, उसके अन्तः अन्धकार का नाश करते हैं। जो उनकी अमृतांशु मूर्त्ति की उपासना करता है उसे भगवान् विष्णु अतुल सौभाग्य प्रदान करते हैं। जो उनकी उपासना वाक्पतिरूपेण करता है, वह अष्टादश विद्याओं का तत्वज्ञ हो जाता है।।८-१३।।

वाजिमेधादियज्ञानां फलदोऽयं सनातनः। यज्ञेश्वरस्वरूपेण भावितोऽयं जगन्मयः॥१४॥
ध्यातः कुबेररूपेण समृद्धिमतुलां ददेत्॥१५॥
एवं दयाम्बुधिरसौ तस्मिन्नीलाचले वसन्। दीनानाथानुग्रहाय दारुव्याजशरीरवान्॥१६॥
प्रयात तत्र भो विप्रा वसध्वं सुसमाहिताः। श्रीशपादाब्जयुगलं शरणं तत्प्रपद्यत॥१७॥
ऐहिकामुष्मिकान्भोगान्वाञ्छध्वं यदि शाश्वतान्।
अन्ते मुक्तिं च कैवल्यां यथेच्छं तत्र प्राप्नुत॥१८॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहिततायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे भगवतोविविधमूर्त्युपासनया नानाकामप्राप्तिवर्णनंनाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः।।४७।।

—※※※—

जो इन जगन्मय सनातन विष्णु की उपासना यज्ञरूपेण सम्पन्न करता है, वह अश्वमेधादि फल का भागी हो जाता है। इनका ध्यान कुबेर रूप से करने पर वह ध्यानकर्त्ता अतुल समृद्धि भगवान् विष्णु की कृपा से प्राप्त करता है। इस प्रकार से दयार्णव भगवान् दारुमय शरीर धारण करके दीन-अनाथ जनगण के प्रति अनुग्रह करके नीलाचल में विराजमान रहते हैं। हे विप्रगण! आप सब नीलाचल जाकर समाहित चित्त के वहां निवास करिये। आप सब उन भगवान् कमलापति के चरणकमलद्वय की शरण ग्रहण करें। इससे यदि आप लोगों की ऐहिक तथा पारलौकिक जो कुछ भोग-वासना हो, अथवा कैवल्य मोक्ष किंवा अन्य जो कुछ मंगल कामना हो, वह सब प्रार्थना द्वारा यथेच्छ प्राप्त होगी। इसमें सन्देह नहीं है।।९-१८।।

।।सप्तचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

विष्णुपूजा प्रचार वर्णन

मुनय ऊचुः

प्रासादस्यप्रतिष्ठान्त इन्द्रद्युम्नाय यद्वरान्। आज्ञापयामास हरिर्यात्रास्ताद्वादशापि च॥१॥

त्वत्सकाशाच्छ्रुतं सर्व ततः स पृथिवीपतिः।

किं चकार महाबुद्धिर्विष्णुभक्तोऽप्यवस्थितः॥२॥

मुनिगण कहते हैं—हे मुनिवर! प्रासाद की प्रतिष्ठा के पश्चात् इन्द्रद्युम्न को भगवान् ने जो वर दिया था, जिन द्वादश यात्राओं का आदेश प्रदान किया था, आप से वह सब सुना। अब आप यह बतायें कि उन महाबुद्धिमान् विष्णुभक्त पृथिवीपति ने वहां स्थित रहते और क्या किया?॥१-२॥

जैमिनिरुवाच

वराँल्लब्ध्वाजगन्नाथात्साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपिणः। कृतकृत्यंसमेनेवाआत्मानं नरपुङ्गवः॥३॥

यथाज्ञं कारयित्वावैयात्रास्ताः पुण्यमोक्षदाः। बहूपचारैर्बहुदा समभ्यर्च्यजगद्गुरुम्॥४॥

गालराजं समादिश्य देवस्याऽऽज्ञां यथाविधि। इदं प्रोवाचमधुरंधर्मन्यायसमायुतम्॥५॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे मुनिगण! उन नृपश्रेष्ठ ने साक्षात् ब्रह्मरूपी जगन्नाथदेव से अभीष्ट वरलाभ करके स्वयं को कृतार्थ माना। उन्होंने भगवान् की आज्ञानुरूप पुण्यप्रद तथा मोक्षप्रद उन सभी यात्रा को सम्पन्न किया और प्रचुर उपचारों के साथ अनेक बार जगद्गुरु जगन्नाथ की अर्चना किया। इसके पश्चात् महान् यशस्वी महान् धर्मात्मा श्वेतराज से भगवान् की आज्ञा को इस प्रकार मधुर स्वर में राजा इन्द्रद्युम्न ने कहा॥३-५॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

राजन्बहुश्रुतोऽसि त्वं धर्मनिष्ठामुपागतः। भगवत्यपि भक्तिस्ते कर्मणामनसा गिरा॥६॥

न ह्येकस्योपदेशाय भगवाननुशास्तिवै। चराचरगुरुर्ह्येष विश्वं तच्छिष्यतां गतम्॥७॥

ममानुग्रहलक्ष्येण अवतीर्णो जगत्पतिः। उद्धृत्यैदीनमनसामत्रापिस्थास्यतेचिरात्॥८॥

भक्त्या च श्रद्धयायुक्त एतदाज्ञां प्रवर्त्तय। प्रतिमाव्यवहारेण नैनं जानीहि भूमिप!॥९॥

प्रत्यक्षं ते यथा जातंत्रैलोक्यं भूमिमागतम्।

प्रासादान्तःप्रवेशे हि यस्याऽस्य जगदीशितुः॥१०॥

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—"हे राजन्! आप प्रचुर ज्ञानवान हैं। आप धर्मनिष्ठ हैं। साथ ही आपके मन में भगवान् की मनसा-वाचा-कर्मणा भक्ति है। अतः आपको ज्ञात है कि भगवान् कदापि उपदेशार्थ ही अनुशासन नहीं करते, वे तो गुरुरूपेण जो कुछ कहते हैं, अखिल विश्व उस उपदेश को सुनकर उनका शिष्य ही है। भले ही वे जगदीश्वर मेरे प्रति कृपा करके अवतीर्ण हो गये तथापि वे दीनबन्धु दीनों के उद्धारार्थ दीर्घकालपर्यन्त

नीलाचल पर अवस्थित रहेंगे। हे राजन्! आप भक्तियुक्त होकर उनकी आज्ञानुरूप यात्रा आदि को सम्पन्न करिये। आपको तब यह प्रत्यक्ष परिलक्षित होगा कि इन जगदीश्वर द्वारा प्रासाद में प्रवेश करते समय त्रिलोकवासी प्राणी (देवता आदि) भी भूतल पर जाकर इनके साथ ही गमन कर रहे हैं।।६-१०।।

पितामहाद्यास्त्रिदशाः सर्वे युगपदागताः। विश्वमूर्त्या वयं सर्वेजाता वै नष्टचेतनाः॥११॥
चराचरमयो ह्येष साक्षाद्दारुस्वरूपधृक्। कल्पवृक्षमिमं विद्धि भूगतं सर्वकामदम्॥१२॥
उपास्यैनंहि लभते योयथाकामनाफलम्। यतन्तो बहुधा तंहि यतयो न विदन्तिवै।
तमः पारे प्रतिष्ठितं किंस्विज्ज्योतिः स्वरूपिणम्॥१३॥
यतीनां धर्मनिष्ठानां शुद्धानामूर्ध्वरेतसाम्।
अनन्यभक्तियुक्तानामेकः पन्थास्तु योगिनाम्॥१४॥
ग्रीष्मे शीते गभीरे वै निमज्ज्य सलिलाशये।
परां निर्वृतिमाप्नोति तथाऽस्मिन्करुणाम्बुधौ।१५॥
त्रितापदुःखं त्यजति सम्प्राप्ते पुरुषोत्तमे॥१६॥
न माता न पिता मित्रं न पत्नी न सुतस्तथा। शरणागतदीनानां यथायमुपकारकः॥१७॥

आपने अपने नेत्रों से ही देखा है कि उस समय ब्रह्मा आदि सभी देवता एक साथ आये थे और हम सब विश्वमूर्त्ति का दर्शन कर सकने में असमर्थ होकर अपनी चेतना खो बैठे थे। ये दारुरूप भगवान् चराचरात्मक साक्षात् ब्रह्मरूप हैं। आप इनको सर्वभूतों में स्थित सर्वकामप्रद कल्पवृक्ष जानें। इनकी उपासना द्वारा जिसे जो कामना होती है, उसे अपनी कामना का फललाभ हो जाता है। यतिगण अनेक यत्नों द्वारा भी तमः के पार प्रतिष्ठित अनिर्वचनीय, ज्योतिरूप इन भगवान् को सम्यक् रूप से नहीं जान पाते! समस्त ब्रह्मतत्पर यतिगण, ऊर्ध्वरेताः सिद्ध, अचलाभक्ति वाले मानव एवं परम योगीगण के ये भगवान् ही एकमात्र गन्तव्य हैं। प्रखर ग्रीष्मकाल में सुशीतल गंभीर जलाशय में निमग्न होने पर जो परमशान्ति प्राप्त होती है, उसी प्रकार से सभी मनुष्य इन पुरुषोत्तमरूपी करुणासागर में निमग्न होकर आध्यात्मिकादि त्रिताप दुःख से परित्राण पा जाते हैं। जिस प्रकार ये भगवान् शरणागत दीनजन के उपकारी हैं, तदनुरूप उपकारी माता-पिता, मित्र एवं पत्नी-पुत्र भी नहीं हैं।।११-१७।।

तदेनं परिसेवस्व भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्। पौरैः प्रजाभिर्यात्रास्ताः समृद्ध्वं परिवर्तय॥१८॥
साधारणो धर्मपन्था नृपाणां नृपसत्तम!। प्रवर्तितश्च पूर्वेण पाल्यतेऽनन्तरेण सः॥१९॥
नृसिंहं भज राजेन्द्र! उपचारैर्महद्भिर्भिः। पूजयस्व त्रिसन्ध्यं तं परं निर्वाणमाप्नुहि॥२०॥
स्वकृतादुत्तमं प्राहुः परकृत्योपरक्षणम्। पालयेत्परदत्तं यः स्वदत्तादुत्तमं हि तत्॥२१॥

इसलिये आप इन भोग-मोक्षदाता भगवान् की सेवा करिये तथा पुरवासी प्रजाजन के साथ महासमारोह के साथ भगवान् द्वारा वर्णित यात्राओं को सम्पन्न कराने के लिये तत्पर हो जाईये। हे नृपसत्तम! राजाओं का साधारण धर्म पथ भी यह है कि पूर्वतन (पूर्वजों) ने जो नियम स्थापित किया है, पश्चात् काल के राजाओं को भी उस नियम की रक्षा करनी चाहिये। तभी मैं कहता हूं कि हे राजेन्द्र! आप नृसिंहदेव का भजन करिये।

प्रतिदिन त्रिसन्ध्या काल में समृद्धतम उपचारों से उनकी पूजा करने में प्रवृत्त हो जाईये! इसी से आपको परम निर्वाण लाभ होगा। मनीषीगण का कथन है कि स्वयं कार्य का अनुष्ठान करने की अपेक्षा अन्य द्वारा किये कार्य की रक्षा करना अधिक श्रेयस्कर है। जो व्यक्ति दूसरे के वस्तु की रक्षा करता है, उसका वह कार्य स्वयं किये कार्य से अधिक श्रेष्ठ होता है।।१८-२१।।

जैमिनिरुवाच

कृताञ्जलिपुटःसोऽथश्वेतोनृपतिसत्तमः। मूर्ध्निजग्राहतद्वाक्यंमालामिवगुणान्विताम्।।२२।।
इन्द्रद्युम्नोऽपि राजर्षिः प्रसाद्य पुरुषोत्तमम्। नारदेन सह श्रीमान्ब्रह्मलोकं जगाम ह।।२३।।
एतद्वः कथितं पुण्यं क्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम्।
तत्र नित्योषितस्याऽपि माहात्म्यं ब्रह्मदारुणः।।२४।।
यश्चैतच्छृणुयाद्भक्त्या वाच्यमानंद्विजोत्तमाः।
अश्वमेधसहस्त्रस्यफलंसोऽविकलंलभेत् ।।२५।।
अर्द्धोदयस्तु यो योगः स्कन्देन परिकीर्तितः।
तत्कोटिगुणितं पुण्यं विष्णोर्माहात्म्यकीर्त्तनात्।।२६।।

ऋषि जैमिनि कहते हैं—तदनन्तर नृपप्रवर श्वेतराज ने अंजलिबद्ध होकर गुणान्वित माला जिस प्रकार से शिर पर धारण की जाती है, उन्होंने उसी प्रकार से इन्द्रद्युम्न के वाक्य को शिरोधार्य किया। इधर श्रीमान् राजर्षि इन्द्रद्युम्न पुरुषोत्तम को प्रसन्न करके नारद के साथ ब्रह्मलोक चले गये। हे मुनिगण! मैंने इस प्रकार से आप लोगों से पुरुषोत्तम क्षेत्र तथा वहां विद्यमान जगन्नाथ देव की महान् महिमा का वर्णन किया। जो व्यक्ति उत्तम ब्राह्मणों द्वारा इस सम्बन्ध में (जो यहां कहा गया) उनके पाठ को सुनता है, उसे सहस्त्र अश्वमेधफल की प्राप्ति होती है। भगवान् स्कन्द ने इस आश्चर्यमय योग के विषय में वर्णन किया था। उस अर्द्धोदय योग से करोड़ों गुण पुण्य विष्णु माहात्म्य कीर्त्तन द्वारा प्राप्त होता है।।२२-२६।।

प्रातः प्रातर्यः श्रृणुयात्कपिलाशतदो भवेत्। गाङ्गैः पुष्करजैस्तोयैरभिषेकफलंलभेत्।।२७।।
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं सन्तानवर्द्धनम्। स्वर्गप्रतिष्ठागतिदं सर्वपापापनोदनम्।।२८।।
एतद्रहस्यमाख्यातं पुराणेषु सुगोपितम्। वैष्णवेभ्यो विनाऽन्येषु न तु वाच्यं कदाचन।
कुतर्कोपहता येच दुरधीतश्रुतागमाः। नास्तिका दाम्भिका नित्यं परदोषोपदर्शिनः।।२९।।
अवैष्णवा मोघजीवास्तेभ्यो गोप्यं सदैव हि।।३०।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायांद्वितीयेवैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्र माहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे राज्ञेन्द्रद्युम्नेनभगवत्पूजाप्रचारवर्णनंनामाऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः।।४८।।

—***—

इस प्रसङ्ग में प्रातः सुनने से सौ कपिल गोदान का फल मिलता है। उस गंगा तथा पुष्कर जल से अभिषेक का फल भी प्राप्त होता है। उक्त माहात्म्य श्रवण द्वारा यशः, आयु, पुण्य, सन्तानवृद्धि, स्वर्ग में

प्रतिष्ठा तथा गति प्राप्त होती है और वह सर्वपाप रहित हो जाता है। इसलिये यह अत्यन्त प्रशंसित है। हे मुनिगण! आप लोगों से जिस रहस्य का मैंने वर्णन किया है, यह अन्य पुराणों में गुप्त है। जिनका अन्तःकरण सतत् कुतर्क कलुषित है, जो दूषित हृदय से श्रुति तथा आगमादि शास्त्र का अध्ययन करता है, जो नास्तिक, दाम्भिक, अथवा सतत् परदोषदर्शक हैं, जो विष्णुभक्तिरहित होकर वृथा जीवन व्यतीत करते हैं, उन लोगों से यह वृत्तान्त सर्वदा गुप्त रखना चाहिये।।२७-३०।।

।।अष्टचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पुरुषोत्तम क्षेत्रस्थ विष्णु स्वरूप वर्णन, पुरुषोत्तम महिमा वर्णन

स्कन्द उवाच

श्रुत्वेत्थं जैमिनिप्रोक्तं ब्रह्मणोदारुरूपिणः। माहात्म्यं सरहस्यंतन्मुनयः शौनकादयः।।१।।

आनन्दं परमम्प्राप्य विस्मयोत्फुल्ललोचनाः।
रोमाञ्चाञ्चितदेहास्तु कृतकृत्यास्ततोऽभवन्।।२।।

अहोबतमहत्क्षेत्रंमोचकंहिसुगोपितम्। अस्माकंभाग्यसम्पत्त्यासाम्प्रतंविष्णुरुपिणा।
साक्षाज्जैमिनिना स्पष्टीकृतं सर्वस्य गोचरम्।।३।।

तस्मिन्क्षेत्रेस्थितंसाक्षाद्ब्रह्मरूपंप्रकाशते। मरणान्मुक्तिदं मूढाःकथंयान्तियमालयम्।।४।।

अहो माया भगवतः सर्वत्र हि निरङ्कुशा। विष्णुब्रह्मस्वरूपस्य क्षेत्रञ्चापिहितंतथा।।५।।

इदानीं तत्र यास्यामो निश्चयो न पुनर्यथा। वयं न पुनरेष्यामः पिण्डेवैपाञ्चभौतिके।।६।।

ज्ञानैकजन्मसंसिद्धिर्यमाद्यष्टाङ्गयोगिनाम्। क्व गत्वापावनं क्षेत्रंजन्तोर्मुक्तिरसुक्षयात्।।७।।

स्कन्ददेव कहते हैं—शौनकादि मुनियों ने जैमिनि द्वारा कहे गये दारुब्रह्म की महिमा सुना तथा अत्यन्त आनन्दित हो गये। उस समय उनके नेत्र विस्मयविमुग्ध हो गये तथा उनका सर्वाङ्ग रोमांचित हो गया। तदनन्तर वे स्वयं को कृतार्थ मानकर विचार करने लगे—"अहो! पुरुषोत्तम कितना मुक्तिदाता क्षेत्र है। वह अब तक इतना गुप्त था। अब हमारे भाग्य से साक्षात् विष्णुतुल्य भगवान् जैमिनि ने आकर उसको सर्वसुलभ रूप से व्यक्त कर दिया। तब हमें यह ज्ञात नहीं था कि यहां साक्षात् दारुमय ब्रह्म विराजमान रहकर मरणान्त में भी मनुष्यों को मुक्ति प्रदान करते हैं। तब मनुष्य क्यों यमलोक जा रहा है? अहो! भगवान् की माया कितनी अद्भुत है। सर्वत्र वह अनिवार्य रूपेण विद्यमान है। ब्रह्मरूपी भगवान् विष्णु का वह क्षेत्र कितना हितकारी है। अब हमने दृढ़

निश्चय किया है कि हम उसी स्थान में जायेंगे। तब हमें कदापि पंचभूतात्मक देहपिण्ड में पुनः प्रवेश नहीं करना पड़ेगा। जब इस स्थान में प्राणिमात्र को प्राण त्याग के उपरान्त मुक्ति मिल जाती है, तब यह कितना पवित्रतात्मक क्षेत्र है। यमादि अष्टाङ्ग योगसाधक योगीगण को भी ऐसे किसी स्थान पर जाने के कारण ज्ञानबल से एक ही जन्म में सम्यक् सिद्धि मिल जाती है।।१-७।।

इति चिन्तयतां तेषांमध्येजैमिनिर्शिष्यकः। मुनिरुद्दालकोनाम नाऽतितृप्तमनास्ततः॥८॥
किञ्चिद्विवक्षुरगमज्जैमिनेरेवसन्निधिम्। गत्वाप्रणम्यसाष्टाङ्गंकृताञ्जलिपुटोऽभवत्॥९॥

मुनिगण मन ही मन यह विचार कर रहे थे तभी उस समय उनमें से जैमिनि के शिष्य उद्धालक नामक ऋषि जैमिनि के वाक्य को सुनकर तृप्त न होने के कारण किंचित जिज्ञासु होकर जैमिनि के पास गये तथा उनको साष्टाङ्ग प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहने लगे।।८-९।।

भगवन्! प्रष्टुमिच्छामिमयितेऽनुग्रहोमहान्। जानामित्वत्प्रसादेनमीमांसनमनुत्तमम्॥१०॥
अष्टादशसुविद्यासुं वेदे सपरिबृंहणे। साखासहस्त्रमतनोत्कृष्णद्वैपायनो मुनिः॥११॥
ततः प्रकीर्णोवेदानांराशिरल्पकबुद्धिभिः। दुरूहःसहसाचाऽऽसीत्कृत्याकृत्येषुकर्मसु॥१२॥
तद् दृष्ट्वा कर्मशैथिल्यं स्वाध्यायोपप्लवस्तथा। तपोज्ञानगरिष्टेन भवताऽनुग्रहःकृतः॥१३॥
केचिन्मन्त्रात्मका वेदा केचित्कर्मप्रचोदकाः।
केचित्तु स्तुतिनिन्दाभ्यां विहीनास्तावकाः स्थिताः॥१४॥
स्तोत्रशास्त्रादिषुगताः सहायाश्च निबन्धकाः। वेदत्वंगमितास्तेतत्कर्मसाधनहेतवः॥१५॥
एवं मन्त्रात्मकं वेदमुपभाव्याऽथ ये परे। मन्त्रागमामन्त्रमात्रोपासनाःसर्वसिद्धिदाः॥१६॥

उद्दालक कहते हैं—हे भगवान्! मेरे प्रति यह आपकी महान् कृपा है, इसीलिये मैं आपसे कुछ पूछने के लिये उत्सुक हो रहा हूं। हे गुरुदेव! आपकी कृपा से मैं उत्तमरूपेण विषय से अवगत हो गया। हे गुरुदेव! कृष्णद्वैपायन ने अष्टादश विद्या मध्यवर्त्ती सुविस्तृत वेद को विभक्त करके उसकी १००० शाखाओं का विस्तार किया था। तदनन्तर वेदराशि नानाशास्त्रों में फैल जाने के कारण अल्पबुद्धि मनुष्यगण के लिये कर्त्तव्याकर्त्तव्य कार्य के विषय में वह सहसा बोधगम्य होकर कठिन हो जाता है। इसलिये कर्मकाण्ड की शिथिलता तथा वेदाध्ययन में विप्लव देखकर परमतपोज्ञानयुक्त आप कर्मकाण्ड की मीमांसा द्वारा सबके प्रति अनुग्रह करते हैं। आपकी मीमांसा में कोई वेदांश मन्त्रात्मक तथा कोई वेदभाग कर्मप्रवर्त्तक होता है। साथ ही कोई-कोई कर्म प्रवर्त्तक वेदांश स्तुति-निन्दा रहित तथा कोई-कोई अंश स्तोत्रशास्त्रादि में स्तावकरूप से स्थित है। ये सभी ग्रन्थ वेद के सहायक रूप हैं। कर्मसाधनार्थ इन सब ग्रन्थों को वेदान्तर्गत ही मानना चाहिये। उन-उन शास्त्रों में वर्णित मन्त्र मात्र की उपासना सर्वसिद्धिदायक कही गयी है।।१०-१६।।

स्तुत्यर्थवादमूला हि स्तुतयो हि स्वरूपतः। वेदप्रवृत्तिद्वारेण तत्तदिष्टप्रसाधकाः॥१७॥
विध्यनुवादमूलाये अग्निष्टोमेनचोदिताः। पूजाविध्युपहारादि साधनादिषु देशकाः॥१८॥
एवम्महावेदरशिम्विभज्यतु सुबुद्धिना। कर्ममार्गंशुभाचारं व्यवस्थाप्यसमुज्ज्वलम्।
मर्यादा रक्षिता लोके वेदाचारप्रवर्तनात्॥१९॥

तत्र सिद्धार्थवादार्थौ वेदान्ताख्या श्रुतिस्तु या॥२०॥
अनाद्यविद्या संरूढं दृढमूलं सनातनम्। देहेन्द्रियादि विषयं भ्रमोच्छेदनसाधनम्॥२१॥
श्रुत्वा मत्या निदिध्यास्य स्वरूपमात्मनस्तथा।
यत्साक्षात्करणं प्रोक्तं त्वया मुक्तिस्वरूपकम्॥२२॥
तदनेकजन्मसाध्यं दुर्लभंजन्मिनां सदा। शुकोवावामदेवोवा मुक्तइत्यस्ति संशयः॥२३॥
तदेतन्मुक्तिदं क्षेत्रं मरणाद्यत्त्वयोदितम्। अर्थवादस्वरूपम्वेत्येतन्मे संशयो महान्॥२४॥
बहवोह्यर्थवादाहिभूत्युपासनवादकाः। साक्षात्कारम्विनामुक्तिर्नास्तीत्येतन्मतंश्रुतेः॥२५॥
धर्मशास्त्रेष्वपिमुने! निश्चितंभारतादिषु। तत्कथं मरणाल्लभ्यं क्षेत्रेऽस्मिन्पुरुषोत्तमे॥२६॥

स्तवात्मक सभी वेद स्वरूपतः स्तुति तथा अर्थवाद मूलक हैं। वे वेद प्रवृत्तिमार्ग से उन-उन फल के साधक हो जाते हैं। अग्निष्टोम प्रकरणोक्त विधिमूलक जो वेद हैं, उनके द्वारा पूजाविधि तथा उपहार आदि साधन का उपदेश प्राप्त होता है। आप अत्यन्त बुद्धियुक्त हैं अतः प्रभूत वेदराशि के विभाग द्वारा जिस आचरण से जीवगण का शुभ होता है, ऐसे कर्ममार्ग को समुज्वल रूप से व्यवस्थापित करके मनुष्यों को वेदाचार में प्रवृत्त करने के लिये जगत् में वेदमर्यादा की रक्षा आपने किया है। आपने मीमांसाशास्त्र का प्रणयन किया जिससे संसार भ्रम दूर हो जाता है। आपने इसके निमित्त सिद्धार्थ तथा वादार्थ वेदान्तरूप वेद तथा अनादि अविद्या जनित दृढ़मूल चिरप्रचलित देहेन्द्रियादि विषय को सुनकर बुद्धि द्वारा आत्मतत्त्व रूप से अवगत होकर यह बतलाया कि मुक्तिस्वरूप आत्मसाक्षात्कार किस प्रकार से करना चाहिये, लेकिन वह तो अनेक जन्म साध्य है। इसलिये जीवगण के लिये सर्वदा वह अत्यन्त दुर्लभ है। यहां तक कि शुकदेव तथा वामदेव भी सम्पूर्णतः मुक्त हैं अथवा नहीं, इस हेतु हमें संशय है। अतएव आप ने जो मरणमात्र से ही इस पुरुषोत्तम क्षेत्र को मुक्तिप्रद कहा है, क्या आपका उक्त वाक्य अर्थवादरूप है? हमें तो इस सम्बन्ध में अनेक संशय हो रहा है, क्योंकि भगवान् का मृत्युपासनावाद बहुल अर्थवाद ही तो यह है! इसलिये केवल मरने मात्र से मुक्ति कैसे हो सकती है? मुक्ति तो आत्मसाक्षात्कार से ही संभव होती है। यही तो वेद सम्मत मत है। भागवत आदि धर्मग्रन्थ में भी यही निश्चय किया गया है। अतएव हे मुनिवर! पुरुषोत्तम क्षेत्र में मात्र मृत्यु होने से ही कैसे मुक्ति होगी?।।१७-२६।।

जैमिनिरुवाच

गतागतप्रदं कर्म साङ्गं श्रुत्या निवेदितम्। तत्तत्स्वरूपं जानामि एतत्क्षेत्रबहिष्कृतम्॥२७॥
यथासुगोपितं ब्रह्मतथेदंक्षेत्रमुत्तमम्। क्षेत्रं विष्णोस्तुजानीहियथाविष्णुस्तथैवतत्॥२८॥
द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परञ्च यत्। तत्र यच्छब्दरूपं हि तत्तु नानार्थ संयुतम्॥२९॥
यस्मादर्थाज्जगदिदं सम्भूतं सचराचरम्। सोऽर्थो दारुस्वरूपेण क्षेत्रेजीवइवस्थितः॥३०॥
तस्मिन्क्षेत्रे यतात्मानो विलोक्य पापकञ्चुकम्।
निर्मुच्य योगवद्याति त्यक्त्वा देहं हरेः पदम्॥३१॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे वत्स! आप लोग समस्त वेदोक्त साङ्गकर्म को पुनः पुनः संसार में

आवागमन का कारण तथा इस परम क्षेत्र को उससे बहिष्कृत (आवागमन नाशक) मान रहे हैं। ब्रह्म के समान इस अत्युत्तम विष्णुक्षेत्र को भी सुगोपित तथा साक्षात् विष्णुरूप जानें। ब्रह्म की दो मूर्त्ति है। प्रथम शब्दब्रह्म, द्वितीय परब्रह्म। इनमें शब्दरूप ब्रह्म जो नाना अर्थवाला ब्रह्म है, उसी से समस्त जगत् उत्पन्न है। वह नानार्थमय ब्रह्म ही दारुपेण उक्त क्षेत्र में तथा देह में जीवात्म रूपेण स्थित है। यतात्मा मनुष्य उस क्षेत्र का दर्शन करके अखिल पाप कंचुक का त्याग कर देते हैं। यहां तक कि कोई मानव उसके दर्शन से पापों का त्याग करके वहां पर मृत्यु के पश्चात् योगीगण को प्राप्य विष्णुपद की प्राप्ति कर लेता है।।२७-३१।।

नैतद्गुणफलं विप्र! साक्षात्कारस्य चोदितम्।
चाण्डालवेश्मनि मृतः श्वा विड्भुक् मुक्तिमेति यत्।।३२।।
नाऽल्पभाग्यस्य पुंसोहि मरणं तत्र जायते। बहुजन्मसहस्रेषु मुक्त्यर्थं यतते तु यः।।३३।।
स क्षीणाशेषपापौघस्तत्र यातिनसंशयः। सतत्रम्रियमाणोऽपिसंयतात्माविवेकवान्।।३४।।
विज्ञाय क्षेत्रमाहात्म्यं भक्तिं कृत्वा जनार्दने।
यः प्राणांस्त्यजते तस्य आत्मज्ञानम्प्रकाशते।।३५।।

हे विप्र! पुरुषोत्तम दर्शन का यही फल नहीं है। क्योंकि वहां तो चाण्डालगृह का विष्ठाभोगी कुत्ता भी मृत होने पर मुक्त हो जाता है। अतएव अल्पभाग्यशाली व्यक्ति की पुरुषोत्तम क्षेत्र में कभी मृत्यु नहीं होती। जो मुक्तिलाभार्थ अनेक सहस्रजन्म प्रयत्न करता है, वही व्यक्ति पुराने सभी पापों से रहित होकर मुक्त होता है। तदनन्तर वहां रहने जा सकता है। इसमें सन्देह नहीं है। वहां जो संयतात्मा विवेकवान् मनुष्य ही मृत्युलाभ प्राप्त करता है। हे वत्स! जो व्यक्ति पुरुषोत्तम क्षेत्र का माहात्म्य जानता है तथा इस प्रकार से जनार्दन की भक्ति करता है, इस प्रकार वहां प्राण त्याग करता है, उसे मरणकाल में आत्मज्ञान मिल जाता है।।३२-३५।।

दीनार्तिहरणःश्रीशो म्रियमाणस्य तत्र वै। कर्णमूलेब्रह्मविद्यां कथयेन्नाऽत्रसंशयः।।३६।।
तयाविनाशिष्टमोहोऽसौसाक्षात्पश्यतितम्विभुम्। यत्रगत्वानपततिजननीजठरे पुनः।।३७।।
तत्र प्रविष्टो विप्राग्र्य! जलेजलमिवोक्षितम्। साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपेणभासते सचराचरे।।३८।।
नाऽऽत्मज्ञानं विनामुक्तिरेतदेव सुनिश्चितम्। विघ्नाश्चतत्रबहवोज्ञातृज्ञेयगताः द्विजाः।।३९।।
अस्यसाभ्यस्य बहुभिर्जन्मभिर्जितमानसैः। वेदविद्भिर्महद्दुःखैः प्राप्यतेतदुपासने।।४०।।
अव्यक्तोपासनं विप्र! दुर्लभं देहिनां सदा। श्रुत्वा विरमते कश्चिदारभ्याऽपि गुरोर्मुखात्।।४१।।
गुरुशुश्रूषणे यत्नोन येषाम्विप्र! जायते। न तेषां ज्ञानसम्पत्तिर्जायते च कदाचन।।४२।।

वहां दीनों की आर्त्ति का नाश करने वाले स्वयं कमलाकान्त हरि मुमूर्षु जीवों के कान में स्वयं ही ब्रह्मविद्या का उपदेश देते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं। इसी ब्रह्मविद्या के कारण मुमूर्षु व्यक्ति का मोहावरण दूर होता है तथा वह साक्षात् भगवत् दर्शन प्राप्त करता है। हे विप्रप्रवर! जहां एक बार जाने मात्र से पुनः जननी के गर्भ में नहीं जाना पड़ता, हे मुमुर्षु लोग! जैसे महाजल में जल की एक विन्दु प्रविष्ट हो जाती है, वैसे सचराचर विश्वमण्डल में साक्षात् प्रभु ब्रह्मरूपेण विद्यमान रहते हैं। वास्तव में आत्मज्ञान के बिना मुक्ति न मिलना निश्चित तो है, तथापि हे द्विजगण! उक्त आत्मज्ञान के विषय में ज्ञातृ-ज्ञेय-विषयक अनेक विघ्न आते

हैं। वेदज्ञ व्यक्ति आत्मज्ञान लाभार्थ अनेक जन्मों में बारंबार अभ्यास योग करते रहते हैं। इसमें महाक्लेश उठाना पड़ता है। हे विप्र! देहीगण के लिये अव्यक्त की उपासना सदा ही अतीव दुर्घट है। कोई गुरु मुख से यह विषय सुनकर ही इससे विरत हो जाता है, कोई इसे आरंभ करके इससे निवृत्त हो जाता है। हे विप्र! जो गुरुसुश्रूषा रूपी यत्न नहीं करते, उनको ज्ञान सम्पत्ति कभी नहीं मिलती। हे विप्र! गुरु सुश्रूषा में जिनकी विषेय यत्न की प्रवृत्ति नहीं होती, उनको कदापि ज्ञान सम्पदा प्राप्त नहीं होती।।३६-४२।।

अष्टाङ्गयोगसम्पन्ना मनोमत्तगजं तु ये। आत्मवश्यंप्रकुर्वन्ति तेहितत्राऽधिकारिणः॥४३॥
एवम्बहुतिथे जन्मन्यतीते निश्चलम्मनः। आत्माकारं वृत्तिमेत्यभासते निर्मलं यदा।
तदा मोक्षाधिकारोहि नाऽन्यथा विप्र जायते॥४४॥
मोक्षस्वरूपम्वक्ष्यामि श्रृणु विप्र! विधानतः।
मुनयोऽप्यत्र मुह्यन्ति तत्तु वक्ष्यामि निश्चयात्॥४५॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे पुरुषोत्तमक्षेत्रस्य साक्षाद्विष्णुस्वरूपत्वकथनंनामैकोनपञ्चाशोऽध्यायः।।४९।।

मत्त हाथी के समान मन को जो अष्टांग योग द्वारा आत्मा के वश में कर पाते हैं, वे ही ज्ञान प्राप्ति के अधिकारी होते हैं। इस प्रकार से योग साधन द्वारा अनेक जन्म व्यतीत हो जाने पर जब निश्चलमन आत्माकार वृत्तिलाभ से निर्मल हो जाता है, हे विप्र! तभी वह मोक्ष का अधिकारी हो पाता है। हे विप्र उद्दालक! मैं मोक्ष का स्वरूप कहता हूं। यथाविधान सुनो। हे वत्स! जिससे मुनिगण भी भ्रान्त हो जाते हैं, मैं निश्चित रूप से वही कहता हूं।।४३-४५।।

।।एकोनपंचास अध्याय।।

❖❖❖

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मृत का आत्मज्ञान लाभ वर्णन, पुरुषोत्तम क्षेत्र की मुक्ति विशेषता

जैमिनिरुवाचः

शुद्धबोधस्वरूपो हि आत्मा सर्वस्य देहिनः।
कूटस्थो निश्चलो विप्र! सान्द्रानन्दैकभावनः॥१॥

आद्यन्तरहितो नित्यः सर्वोपप्लववर्जितः। विभुःसर्वगतःसूक्ष्मआकाश इवनिष्क्रियः॥२॥
षडूर्मिरहितः साक्षात्पञ्चक्लेशविवर्जितः। अनाद्यविद्यासञ्जातः वासनाऽपप्लुतेन वै॥३॥
अहङ्कारसमुत्थेन चित्तेनाऽऽलिङ्गितोयदा। तदाभ्रान्तस्तदाकारं गृहीत्वा संसरेदयम्॥४॥
सत्त्वेन रजसा चैव तमसा प्राकृतेन वै। त्रिविधेनगुणेनैष दृढ़बद्धस्तदाऽवशः॥५॥
गन्धर्वनगराकारं पश्यन्प्राकृतविस्तरम्। पाञ्चभौतिकपिण्डेषु पञ्चविंशतिकारिषु॥६॥
आत्माऽयमविकारोऽपि विकारीव विचेष्टते।
दुःखार्णवे निमग्नोऽसौ बाध्यमानो य ऊर्मिभिः॥७॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे वत्स! समस्त देहीगण की आत्मा वस्तुतः शुद्ध ज्ञानमय तथा आनन्दमय है। हे विप्र! आत्मा कूटस्थ तथा निश्चल है। इसका न तो आदि है न अन्त। वह नित्य, सर्व आप्लव रहित है। वह सर्वगत सूक्ष्म विभु आकाशवत् तथा निष्क्रिय है। आत्मरूपी महासागर में शोक-मोह-जरा-व्याधि तथा क्षुधा एवं तृष्णा रूप षड्विध उर्मि कभी भी नहीं उमड़ती। वह आत्मा सतत् आधि-व्याधि प्रभृति पंचक्लेश रहित है जब वह अनादि अविद्याजात वासनाजाल से जड़ित रहता है, तब अहंकार संभूत चित्तवृत्ति के साथ मिलित रहता है, तभी वह आत्महारा होकर कोई भी शरीर धारण करके संसार मार्ग में भ्रमण करता है। उस समय आत्मा प्रवृति से सम्भूत सत्व-रजः-तमः रूप त्रिगुण से आवद्ध होकर अवश सा हो जाता है। वह आत्मा अब स्वाधीन नहीं रहता। वास्तव में अधिकारी होने पर भी वह गन्धर्वनगरोपम मायामय अलीक प्राकृतिक जगत्प्रपञ्च दर्शन करके पच्चीस तत्वमय पांचभौतिक देहपिण्ड में विकारी के समान नाना रूप से चेष्टा करता है। वे उस रूप में कामक्रोधादि से पीड़ित होकर दुखार्णव में निमग्न हो जाते हैं। वे उस सागर की लहरों से बाधित होते हैं।।१-७।।

भूताऽविष्टमनायद्वद्भूतचेष्टांविचेष्टते। तथाऽयमात्मासन्त्यज्यसच्चिदानन्दरूपताम्।
चेष्टते मनसो वृत्तीर्बहुधाऽज्ञानमोहितः॥८॥
तस्य मोक्षो विधातव्यो येन सुस्थोऽपि जायते।
अकार्यश्रवणप्राप्यो नित्यमुक्तः स्वभावतः॥९॥
निरावरण रूपस्य निर्मलाऽकाशभागिनः।
भ्रान्त्याऽऽवृते विनाशो हि स्वाकारेऽस्थितिर्भवेत्॥१०॥
भ्रान्तेः सञ्जायतेसूक्ष्मोनिरूपाख्योहिपश्यति। नभस्तलंनभोनीलमितिसर्वैर्विभाव्यते॥११॥
निर्मलेनिर्गुणेसान्द्राऽऽनन्दबोधस्वरूपिणि। परमात्मनिजायेतभ्रान्तिराविद्यिकीदृशी॥१२॥
स्वप्रत्यक्षेऽपि भ्रान्तिः स्यात्स्वकण्ठाभरणोपमा।
तस्मान्मोक्षः कुतः कस्मात्कर्मणा विप्र! जायते॥१३॥
ज्ञानेनाऽवकृते रूपे प्राप्यते तद्धि दुर्लभम्॥१४॥

जैसे भूताविष्टचित्त मानव भूतानुरूप कार्य करता है, तद्रूप आत्मा भी ज्ञानमोहित होकर अपने

सच्चिदानन्दरूपता का त्याग करके बहुधा मनोवृत्ति के अनुसार कार्य करने की चेष्टा करता है। इसलिये सभी को ऐसा मोक्ष विधान करना चाहिये कि आत्मा स्वस्थ हो जाये। स्वयं अनुकूल कार्यानुष्ठान न करने पर केवल कार्य के (साधना के) सम्बन्ध में सुनने से कोई स्वभावतः नित्यमुक्त आत्मतत्व प्राप्त नहीं कर पाता।

आत्मा निर्मल निरावरण रूप आकाशस्वरूप है। वही भ्रान्ति से आवृत होकर स्वाकार में अवस्थित होकर विनाशरूप हो जाता है। जैसे सभी को आकाश नीला परिलक्षित होता है, उसी प्रकार वह निरुपाधि आत्मा भी भ्रान्तिवशात् सूक्ष्म जीवरूप होकर स्थित हो जाता है। परमात्मा स्वभावतः निबिड़ चिदानन्दमय है। निर्मल तथा निर्गुण होने पर भी उसे अविद्या के कारण ऐसी भ्रान्ति हो जाती है। हे विप्र! इस कारण से जैसे साधारण मनुष्य को अपने कण्ठ के आभरण में ही सर्प की भ्रान्ति हो जाती है, उसी प्रकार अपने स्वप्रत्यक्ष विषय में भी आत्मा की भ्रान्ति होने लगती है (अर्थात् व्यक्ति अनात्मा को आत्मा मानने लगता है)। हे विप्र! इस कारण से ज्ञान के अतिरिक्त कैसे आत्मा का मोक्ष साधन हो सकेगा? ज्ञान से आत्मानुसन्धान करने पर ही वह दुर्लभ तत्व प्रत्यक्षीभूत हो पाता है।।८-१४।।

तत्र क्षेत्रे हरेःक्षेत्रे ईश्वराऽनुग्रहेण वै। ज्ञानोदयस्तु सुलभः।प्राणिनां संयमेन वै॥१५॥
प्रसादेसर्वदुःखानांयस्यनाशोऽभिजायते। सदाप्रसन्नःक्षेत्रेऽस्मिन्म्रियमाणस्यसप्रभुः॥१६॥
अन्तिमो विग्रहो ह्येष क्षेत्रेयो न त्यजेदसून्। मुक्तिमुद्दिश्ययत्कर्मनतत्कर्मसमीरितम्॥१७॥

हे वत्स! उस हरिक्षेत्र में अर्थात् पुरुषोत्तम क्षेत्र में मृत्यु होने पर ईश्वर की कृपा से प्राणीगण में ज्ञानोदय सुलभ हो जाता है। जगन्नाथ देव के मंदिर में जिसकी मृत्यु होती है, उसके समस्त दुःख चिरकालार्थ शान्त हो जाते हैं। उक्त क्षेत्र में मुमूर्षु प्राणियों के प्रति भगवान् जगन्नाथ सदा प्रसन्न रहते हैं। परिणामतः भगवान् की यह दारुमयी मूर्त्ति जीवगण का अन्तकाल में उपकार करने हेतु विद्यमान रहती है। जो व्यक्ति मुक्ति हेतु वहां प्राणत्याग नहीं करता, उसके सभी कार्य (पूजनादि कार्य) वास्तविक कार्यरूप नहीं माने जाते।।१५-१७।।

श्रावणादि यथाकर्म मुक्तये मूलसाधनम्। तथाऽत्रमरणंपुंसांसाक्षात्कैवल्यसाधनम्॥१८॥
यथा पर्वतसंरूढःपाषाणंतु दृढाश्रयम्। झटित्याऽऽकृष्यतेलोहमयस्कान्तमणिर्यथा॥१९॥
तत्र प्राणपरित्यागः सर्वकर्माणिदेहिनाम्। अनेकजन्मजातानि निर्बीजानिकरोतिवै॥२०॥
शुभाऽशुभफलासङ्गादात्मस्वरूपतामियात्। तेनैवबद्धोभ्रमतिशृङ्खलाबद्धकाकवत्॥२१॥

जैसे आत्मतत्वादि का श्रवण मुक्ति का मूल साधन है, वैसे ही वहां मृत्यु भी जीवगण हेतु कैवल्यलाभ का मूल कारण हैं। जैसे अयस्कान्त मणि (चुम्बक) पर्वत पर दृढ़तां से बद्ध लौहपिण्ड को भी आकर्षित कर लेती है, वैसे ही वहां प्राणत्याग भी देहीगण के अनेक जन्म जनित सभी कर्म को निर्बीज (प्रभावहीन) कर देता है। शुभ-अशुभ फलों के कारण ही आत्मा अपने स्वरूप में रहते हुये भी बद्धवत् होकर शृंखलाबद्ध काक जैसा प्रतीत होता है।।१८-२१।।

बहित्रकाको हि यथा भ्रमन्नाऽऽकाशमण्डले।
अनवाप्याऽन्यधिष्ण्यम्वै स्वधिष्ण्ये निश्चलो वसेत्॥२२॥
तथाऽयमात्मासर्वत्र वासनावसतोभ्रमन्। पञ्चविंशात्मकेपिण्डे गुणैर्बद्धः सदाभवेत्॥२३॥

तत्तत्क्षेत्रमहिम्नावै भगवत्करुणावशात्। प्राणत्यागात्परिक्षीणःसमस्तदृढवासनः।।२४।।
विष्णुरूपमवाप्याऽसौ याति विष्णोः परम्पदम्।
यत्र गत्वा पुनर्देहबन्धमेष न वाऽऽप्नुयात्।।२५।।

जैसे बहित्र काक आकाश में भ्रमण करते रहकर भी कहीं स्थान न पाने के कारण पुनः अपने स्थान पर आकर निश्चलता पूर्वक बैठ जाता है, उसी प्रकार से आत्मा भी वासना के वशीभूत होकर सर्वत्र भ्रमण करके (विषयभोगों में भ्रमण करके) पच्चीस तत्वात्मक देहरूपी पिण्ड में सत्वादिगुणत्रयमय होकर निवास करता है। उक्त पुरुषोत्तम क्षेत्र में प्राणत्याग होने पर भगवान् की करुणा के कारण क्षेत्र के माहात्म्यवशात् मानव की समस्त दृढ़तर वासना भी सम्यक्रूपेण क्षयीभूत हो जाती है। तब वह विष्णु को प्राप्त कर लेने के कारण पुनः पृथिवी पर जन्म लेकर देहबन्धन से बद्ध नहीं होता।।२२-२५।।

उद्दालकाऽत्र तेशङ्का नाऽर्थवादकृतास्तु वै। य आत्माभगवत्क्षेत्रेदेहबन्धम्परित्यजेत्।।२६।।
कथं स पुनरत्रैव देहबन्धमुपव्रजेत्। आत्मसन्यासयोगोऽयं योगिनामपिदुर्लभः।।२७।।
द्वे एव साधने मुक्तेरात्मवृत्तिस्तुचेतसः। प्राणत्यागश्चेह तथा नाऽन्यथेत्यवधारय।।२८।।
शिवोपदेशात्काश्यां तु प्राणत्यागोऽपि मोचकः।
तेन ज्ञानेन हि पुमान् क्रमादभ्यासयोगतः।।२९।।
क्षीणकर्माविमुच्येत पुरैतद्विमलम्मतम्। अन्तर्हिता हि सा काशीगणेश्वरभयादभूत्।।३०।।
मयावःकथितम्पूर्वम्महादेवो यथाऽत्यजत्। काशिराजप्रसङ्गेन भगवत्परिभावितः।।३१।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे मृतस्यात्मज्ञानलाभादि वर्णनंनाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५०।।

हे उद्दालक! इसे अर्थवाद समझ कर आशंकित न होना। विवेचना करके देखो, कि आत्मा सर्वविमोचन साक्षात् इस भगवत्क्षेत्र में इस लोक में जब देहत्याग करता है, तब वह इहलोक में देह में बद्ध कैसे होगा? इसी कारण उस क्षेत्र में देहत्यागरूपयोग योगीगण को भी दुर्लभ है। हे वत्स! यह निश्चित जानो कि चित्त की आत्माकार वृत्ति तथा उस क्षेत्र में देह त्याग, ये दोनों ही मुक्ति साधन हैं। अन्य प्रकार से मुक्ति नहीं होती। काशीधाम में मुमुर्षु व्यक्ति के प्रति भगवान् शंकर ब्रह्मज्ञान का उपदेश करते हैं। अतः यह सत्य है। वास्तव में जीवगण का अभ्यास योग के कारण तत्जनित ज्ञानबल से क्रमशः शुभाशुभ का क्षय हो जाता है। अतः तब वे मुक्तिलाभ करते हैं। पूर्व में यह मत सभी जानते थे, तथापि दीर्घकाल पहले गणेश के भय से वह काशीतीर्थ अन्तर्हित् हो गया। हे मुनिगण! काशीराज्यप्रसंग में भगवान् से पराभूत होकर महादेव जिस प्रकार से काशीधाम छोड़कर चले गये, पूर्वकाल में तो मैंने आपलोगों से यह वृत्तान्त कहा था।।२६-३१।।

।।पचास अध्याय समाप्त।

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मृत का आत्मज्ञानलाभ वर्णन, पुरुषोत्तम क्षेत्र में मुक्ति का वर्णन

जैमिनिरुवाच

विशेषन्ते प्रवक्ष्यामि शृणु उद्दाल! तत्त्वतः।
अद्याऽपि काश्यां देवोऽपि स्थितवान् वृषभध्वजः॥१॥
युगत्रये तिष्ठतिस न तु घोरेकलौयुगे। अधर्मबहुले तस्मिन्कलौसाऽन्तर्हिताऽभवत्।
अन्यान्यपि च तीर्थानि यथावन्न फलन्ति च॥२॥
चतुर्युगेषु सर्वेषु यथार्थफलदन्तु तत्। अत्र पापप्रवेशोहि कदाचिन्नोऽपजायते॥३॥
धर्मस्त्रष्टा हि भगवांस्तत्रतिष्ठतिसर्वदा। अविद्यादीनवृत्तीनां सुखोद्बोधाययत्नवान्॥४॥
इदमेव परं सेव्यं चतुर्वर्गैकसाधनम्। विशेषान्मोचकं साक्षादनायासेन देहिनाम्॥५॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे उद्दालक! इस विषय में विशेष विवरण कहता हूं। सुनें। प्रकृतरूप से भगवान् वृषभध्वज अभी भी काशीधाम में अवस्थित हैं। सत्य, त्रेता, द्वापर रूपी युगत्रय में वे वहां स्थित रहते हैं। केवल घोर कलियुग में वे वहां नहीं रहते। इस कारण से अधर्ममय कलियुग में काशी भी अन्तर्हिता हो जाती हैं तथा अन्य तीर्थ भी घोर कलि में यथोचित फलप्रद नहीं होते तथापि पुरुषोत्तम क्षेत्र में तो चारों युगों में यथोचित फल की प्राप्ति होती है। वहां पर कभी भी कोई पाप प्रवेश भी नहीं कर सकता। स्वयं धर्मस्त्रष्टा भगवान् यत्नवान होकर अविद्या के कारण कातर हृदय जीवों के तत्वज्ञान साधनार्थ सर्वदा वहां अवस्थित रहते हैं। इसीलिये देहधारी लोगों के लिये अनायास विशेषरूप से साक्षात् मुक्तिप्रद, चतुर्वर्ग का प्रशस्त साधनरूप उक्त पुरुषोत्तमक्षेत्र सभी के लिये सेवनीय है।।१-५।।

पापिष्ठोऽत्यन्तदुश्चेष्टश्चाण्डालो वाऽन्त्यजोऽशुचिः।
विद्वान् वा धार्मिकश्रेष्ठः सर्वे तत्र समा द्विज!॥६॥
देवा मरणमिच्छन्ति यत्र क्षेत्रे मुमुक्षवः। आत्मसाक्षात्कृतौमुक्तिस्तत्क्षेत्रेमरणादथ॥७॥
विध्यर्थवादावेतौ हि नाऽर्थवादो न वा विधिः॥८॥
न विधेयोऽपवर्गोहिकालग्रस्तामृतिस्तथा। अल्पाऽपिशङ्कामाभू त्तेतत्क्षेत्रेमरणम्प्रति॥९॥
विश्वसन्ति न ते मूढाः ये संसारप्रवृत्तिकाः। अनाद्यविद्यासंसारप्रवृत्तौतच्चगोपितम्॥१०॥

हे द्विज! यहां अतीव दुर्गम पापी, अशुचि चाण्डाल अथवा अन्त्यज, विद्वान् अथवा परमधार्मिक यहां समान अधिकारी हैं। वे वत्स! देवगण भी मोक्षाभिलाषी होकर उक्त क्षेत्र में आकर मृत्यु की कामना करते हैं। वास्तव में उक्त क्षेत्र में मरणमात्र से ही आत्म साक्षात्कार प्राप्त होता है। सभी की यहां मुक्ति हो जाती है। यह विधि तथा अर्थवाद युक्त होने से उभयात्मक है। केवल अर्थवाद अथवा केवल विधि नहीं है। इसका कारण

यह है कि प्रभूत निन्दा अथवा प्रशंसायुक्त विधि सम्पन्न करना ही अर्थवाद है। अतः यह जब इस प्रकार से सविधि सम्पन्न नहीं है, तब वहां अर्थवाद नहीं होता। अतः यहां अदृष्ट से प्राप्त मोक्ष अथवा कालाधीन मृत्यु भी विहित नहीं है। इसलिये वस्तुतः यह विधि एवं अर्थवाद—इन दो स्वरूपों से युक्त है। हे वत्स! उक्त पुरुषोत्तम क्षेत्र में इस मरण के विषय में तनिक भी सन्देह न करो। जो संसार में पूर्ण आसक्त हैं, वे मूढ़गण उस पर विश्वास नहीं करते। अनादि अविद्याजनित संसार रूपी प्रवृत्ति रहने पर इसी कारण से दोनों क्षेत्र गुप्त रखा गया है।।६-१०।।

साक्षात्कार आत्मनां यः स प्रसिद्धः श्रुतौ सदा।
तदर्थं यतमानाश्च योगिनोऽपि सदाऽऽसते॥११॥
यवव्रीह्यादिवत्ते द्वे प्रधाने मुक्तिसाधिके॥१२॥
योगात्प्रमुच्यते योगी त्वन्तरायावशाद् द्विजः।
चतुर्मध्ये त्यजन्प्राणान्निर्विघ्नम्मुक्तिभाग्भवेत्॥१३॥
आद्योमत्स्यावतारोहिप्राङ्मुखस्तत्रवर्तते। श्वेताख्योमाधवःप्रत्यक्श्वेतभूपप्रसादितः॥१४॥
वटसागरयोर्मध्यम्मुक्तिद्वारमकल्पयत्। तत्र त्यजन्नसून्मर्त्योनिर्विघ्नम्मुक्तिमाप्नुयात्॥१५॥
अत्र ते कथयिष्यामि पुरावृत्तमनुत्तमम्। चतुर्मुखस्यपुरतो दुर्वासायद्व्यजिज्ञपत्॥१६॥

हे उद्दालक! श्रुतियों में जो आत्मसाक्षात्कार का वर्णन है तथा योगीगण भी जिसके लिये यत्नवान रहते हैं, वह प्रधान मुक्ति साधन है, तथापि हे द्विजप्रवर! पुरुषोत्तम क्षेत्र में मरण से जो मुक्ति मिलती है, उससे इसमें अन्तर यह है कि यदि कोई विघ्न साधन काल में घटित नहीं होता, तभी योगबल से योगी को मुक्ति प्राप्त हो सकती है। इसके विपरीत यहां पर चतुर्मध्य में प्राणत्याग करने वाला बिना किसी विघ्न मोक्षलाभ करता है। उक्त मूर्त्तियों में से मत्स्यावतार प्रतिमा पूर्वमुख है। श्वेतराज द्वारा स्थापित श्वेतमाधव पश्चिम में हैं। वहां अक्षयवट एवं सागर के बीच का जो स्थल है वही चतुर्मध्य है। मानव उक्त चतुर्मध्य में प्राणत्यागोपरान्त निर्विघ्न मुक्तिलाभ करता है। तभी महर्षिगण उक्त स्थल को मुक्तिद्वार कह गये हैं। हे वत्स! पूर्वकाल में मुनिप्रवर दुर्वासा ने भगवान् ब्रह्मा से जो पूछा था, उस सम्बन्ध का पूर्व आख्यान कहता हूं।।११-१६।।

सहि देवस्य रुद्रस्यअवतीर्णोऽशतःपुरा। आशैशवाद्ब्रह्मचारीतत्त्ववित्तपसांनिधिः॥१७॥
यदृच्छाभ्रमणोमर्त्त्यश्चतुर्दशजगत्स्वपि। कदाचित्पृथिवींयातो सत्याचारदिदृक्षया॥१८॥
मध्यदेशेददर्शाऽथब्राह्मणौमुनिसत्तमः। एकस्तयोस्तपोनिष्ठःस्वाध्यायाचारवान्गृही॥१९॥
अपरस्तु सदाचारो देवदेवस्य चक्रिणः। भक्तिञ्चिकीर्षुश्चेष्टासुन तथाऽन्यासुवर्तते॥२०॥
स तु केनाऽपि बौद्धेन नास्तिकेन प्रलोभितः।
उच्छास्त्रवर्त्ती धनवान् विषयेष्वनुसज्जते॥२१॥
अथतौज्योतिषांवेत्ताजगामस्वार्थलिप्सया। परिपृष्टोऽथताभ्यांसआयुषःशेषमादरात्॥२२॥
तयोर्जगादगणकोविचार्यकुशलादिभिः। पक्षत्रिंशद्दिनान्तेवांप्राणत्यागोभविष्यति॥२३॥

दुर्वासा रुद्रांश से अवतीर्ण, बालब्रह्मचारी, तत्वज्ञ तथा महातपस्वी थे। एक बार वे स्वेच्छा से चतुर्दश भुवनों की यात्रा करते-करते मानवाचार को देखने पृथिवीलोक पहुंचे। तदनन्तर मुनिवर ने मध्यदेश में दो ब्राह्मणों को देखा। उनमें से एक तपोनिष्ठ, स्वाध्यायपरायण तथा सदाचारी गृहस्थ थे। दूसरे वाले ब्राह्मण सतत् सदाचारी रहकर केवल देवाधिदेव चक्रपाणि की ही भक्ति करते थे। अन्य कार्य नहीं करते थे। कालक्रमेण ये धनी तथा विष्णुभक्त द्वितीय ब्राह्मण किसी बौद्धमतावलम्बी नास्तिक के प्रलोभन में पड़ गये। वे शास्त्र के विपरीत कार्य में प्रवृत्त होकर विषयभोग में नितान्त आसक्त हो गये। कुछ काल इसी प्रकार व्यतीत हो जाने पर एक ज्योतिर्विद अपने स्वार्थ के कारण इन ब्राह्मण के पास पहुंचे। तदनन्तर उपरोक्त दोनों ब्राह्मणों ने उन गणक ज्योतिषी से यह पूछा कि उनकी आयु कितनी बची हैं। तब गणक ने गणना द्वारा यह बतलाया कि उन दोनों की ही आयु अब मात्र ३५ दिन ही बाकी बची है।।१७-२३।।

तच्छ्रुत्वा चिन्तयाऽऽविष्टौ कथमावाम्भविष्यति।
मुक्तिक्षेत्रेऽन्यक्षेत्रे वा गृहे वा यत्र कुत्रचित्।
सम्वत्सर! विचार्यैतत्कथयस्व यथातथम्।।२४।।
एवमुक्तस्तु ताभ्यां स मुक्तिभावं विचिन्तयन्।
पूर्वस्य प्राह नद्यान्ते प्राणाः यास्यन्ति संक्षयम्।।२५।।
उत्तमां गतिमासाद्य देवभूयं गमिष्यसि।
इतरस्य तु विस्मेरःकैवल्यप्राप्तिमूचिवान्।।२६।।
त्वंविप्र! बहुभाग्योऽसिनिधनेतेबृहस्पतिः। स्वोच्चस्थोवर्ततेतेनब्रह्मनिर्वाणमेष्यसि।।२७।।
पुरुषोत्तमाख्यं भो विप्र! क्षेत्रं परमपावनम्। यत्रप्रविष्टमात्रस्यसर्वार्थौघविनाशनम्।।२८।।
स्थितिं करोति भगवान् दारुरूपो दयानिधिः।
म्रियमाणस्य तस्मिन्स कैवल्यं सम्प्रयच्छति।।२९।।
इत्युक्तस्तेन स विप्रो भाग्योदयवशात्पुनः। पुनर्बभूवशुद्धात्माविष्णुभक्तिचिकीर्षया।।३०।।
तम्पूजयित्वा सत्कारैर्विससर्जमुदान्वितः। केन मार्गेण वा तत्र कथं यास्यत्यचिन्तयत्।।३१।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे भगवद्भक्तयोर्विप्रयोरुपाख्यानवर्णनंनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५१।।

गणक का यह कथन सुनकर दोनों ब्राह्मण चिन्तातुर हो गये। उन्होंने पूछा "हे ज्योतिषी! किस मुक्तिक्षेत्र में अथवा अन्य क्षेत्र में अथवा गृह में किंवा अन्य स्थान में हमारा मरण होगा?" उक्त गणक ने ब्राह्मणद्वय का यह प्रश्न सुनकर प्रथम ब्राह्मण से कहा "आपकी मृत्यु नदी के पास होगी। आप उत्तम गति पाकर देवत्व लाभ करेंगे।" तदनन्तर हंसते हुये गणक ने उस (बौद्ध) ब्राह्मण से कहा—"हे विप्र! आप अतीव भाग्यशाली हैं। आपके मृत्युगृह में (कुण्डली के मृत्युगृह में) अष्टम स्थान पर बृहस्पति हैं। वे उच्चस्थ हैं। तभी आप को

ब्रह्मनिर्वाण मिलेगा। हे विप्र! जहां प्रवेशमात्र से ही समस्त पापराशि तिरोहित हो जाती है, उस परमपावन पुरुषोत्तम क्षेत्र में आपकी मृत्यु होगी। वहां भगवान् दयानिधि जगन्नाथ दारुमूर्त्ति में विराजित होकर निरन्तर क्रियमाण जनगण को कैबल्य प्रदान करते हैं।'' गणक का यह कथन सुनकर वे ब्राह्मण अपने शुभभाग्योदय के कारण विष्णुभक्ति की इच्छा से पुनः पवित्रात्मा हो गये। उन्होंने आनन्दित मन से उन गणक का सत्कार करके उनसे विदा लिया और यह सोचने लगे कि किस प्रकार किस मार्ग से पुरुषोत्तम क्षेत्र जाना है?।।२४-३१।।

।।एक पञ्चाशत्तम अध्याय समाप्त।।

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भगवद्भक्त विप्रद्वारा पत्नी के साथ अकस्मात् सुन्दरी दर्शन वर्णन

जैमिनिरुवाच

इत्थं चिन्तयमानस्य तत्क्षेत्रगमनम्प्रति। प्राप्तवान्रुद्ररूपः सदुर्वासास्तपसांनिधिः॥१॥
तं दृष्ट्वा सहसोत्थायब्राह्मणो हृष्टमानसः। पाद्यादिभिः समभ्यर्च्यसुखासीनं सुविष्टरे।
प्रश्रयावनतो भूत्वा इदं वचनमब्रवीत्॥२॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे मुनिगण! तदनन्तर वे द्विजप्रवर पुरुषोत्तम जाने हेतु विचार करने लगे। इसी समय रुद्रांश से उत्पन्न तपोनिधि मुनिवर दुर्वासा वहां पहुंचे। उन ब्राह्मण ने दुर्वासा को देखते ही उठकर आनन्दित चित्त से पाद्यादि प्रदान करके उनका यथोचित स्वागत किया। मुनिवर दुर्वासा जब अपने आसन पर बैठ गये तब ब्राह्मण ने विनयावनत होकर उनसे कहा।।१-२।।

ब्राह्मण उवाच

भगवन्! भाग्यसम्पत्तेः परिपाकात्समागतः।
सदनम्मे ततो जातः कृतकृत्योऽस्मि निश्चितम्॥३॥
भवादृशो ज्ञानविद्यः साक्षाद्धर्मस्वरूपिणः।
नाऽल्पभाग्वतां पुंसां दृशः स्युरतिथयोध्रुवम्[१]॥४॥
यदप्यहं कृतार्थोऽस्मि भवागमनभाग्यतः। तथाऽपिवाञ्छाम्यमृतंत्वदाज्ञावचनम्प्रति॥५॥
इत्युक्तवन्तं दुर्वासा मुनिराह हसन्निव। विप्रवर्य! नवायोगिवर्य त्वं किन्न भाषसे॥६॥

१. ''दृशोरतिथयो ध्रुवम्'' इति शुद्धपाठः।

मासादूर्ध्वं त्वमस्माकमुपास्यः सम्भविष्यसि।
उपस्थितापवर्गस्त्वं विना श्रुत्यादिसाधनैः॥७॥

ब्राह्मण कहते हैं—"मेरे सौभाग्य के कारण ही आप मेरे गृह में उपस्थित हैं। इससे आज मैं कृतार्थ हो गया। साक्षात् धर्मरूप आप ऐसे ज्ञानी कभी अल्पभाग्यशाली व्यक्ति के अतिथि नहीं होते। हे महात्मन्! यद्यपि मैं आपके आगमन के कारण अपने भाग्य से कृतार्थ हो गया, तथापि आपका आज्ञारूपी अमृतपान करने के लिये मैं उत्सुक हूं।" उन ब्राह्मण का कथन सुनकर मुनिप्रवर दुर्वासा तनिक हंसते हुये कहने लगे—"हे विप्र प्रवर! मैं वास्तव में योगीश्रेष्ठ नहीं हूं। मुझे ऐसा क्यों कह रहे हो? इस मास के अन्त तक तो तुम हम लोगों के उपास्य हो जाओगे। बिना श्रुति वर्णित साधना किये ही तुमको अविलम्ब परम गति प्राप्त होगी।"॥३-७॥

एवमुक्ते द्विजः प्राह मुने! त्वं सत्यवागसि। भवादृशानांरसनानस्वप्नेऽपिमृषाऽप्रिया॥८॥
दासे मयि परीहासः किं वाऽनुग्रहभाषणम्। तत्त्वतोब्रूहि भगवन्न भयं मे ह्यनुग्रहात्॥९॥
यथेच्छाचारदुष्टोऽहं न विवेकोऽल्पको मयि। न वासनाबद्धदृढं कर्मत्यजति मेमनः॥१०॥
इन्द्रियार्थोपभोगेच्छा क्षणंनच्यवतेमम। इहामुत्रफलाकाङ्क्षाप्राणयात्रांविना यदा॥११॥
नोत्पद्यतेविनामुक्तावधिकारंविदुर्बुधाः। मुने! दृढममत्वोऽहंकथंप्राप्स्यामिनिर्वृतिम्॥१२॥
आत्यन्तिकदुःखहानिःकथंमे वाऽऽत्मसम्विदः। अनुग्रहाद्भगवतो विनामेस्यात्कथंवद॥१३॥

ब्राह्मण कहते हैं—हे मुनिवर! आप सत्यवक्ता हैं। आप ऐसे लोग के मुख से तो स्वप्न में भी मिथ्या रूपी प्रियवाक्य भी उच्चरित नहीं होता। हे भगवान्! इस दास से आप परिहास क्यों कर रहे हैं? आप क्या यह यथार्थ अनुग्रहात्मक वाक्य कह रहे हैं? आप अनुग्रह करके यथार्थ कहिये। मुझे अभय प्रदान करिये। मैं अविवेकी, यथेच्छाचारी पापी हूं। मेरा मन दृढ़ वासनावद्ध है। इसीलिये अभी भी मैं संसारबन्धनप्रद कर्मत्याग नहीं कर पाया। मेरे मन से क्षणकाल के लिये भी इन्द्रियभोग की इच्छा भी हट नहीं सकी। बुद्धिमानों का कथन है कि जब मनुष्य के हृदय में जीवनधारण के लिये उपयोगी भावना के अतिरिक्त अन्य कोई ऐहिक तथा पारत्रिक कोई भी फलकामना उदित नहीं होती, उस समय मानव के मन में मुक्तिलाभ का अधिकार (इच्छा) जन्म लेता है। हे मुनिवर! भगवान् की कृपा के अतिरिक्त देहात्माभिमानी मेरी आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति कैसे होगी? हे मुनिवर! मेरा मन पार्थिव (भौतिक) विषयों के प्रति दृढ़ता से आबद्ध है। उनमें मेरी प्रगाढ़ ममता है। तब मुझे चिरशान्ति कैसे मिलेगी? हे मुनिवर! वह कहिये।॥८-१३॥

विप्रावाक्यमिदंश्रुत्वादुर्वासाःपुनरब्रवीत्। यदवोचः स्वरूपं हि स्वस्यतन्नोमृषाध्रुवम्॥१४॥
तथा प्रवृत्तिस्ते येन तत्ते वक्ष्यामि तत्त्वतः॥१५॥
पूर्वजन्मनि त्वं विप्र! महाभागवतोऽभवत्। तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सुहृद्भिर्बन्धुभिः सह॥१६॥
माघेमासिगतस्तत्रक्षेत्रेश्रीपुरुषोत्तमे। तत्रतस्यां विष्णुतिर्थौस्नात्वासिन्धु जलेशुभे॥१७॥
सङ्क्षीणकल्मषस्त्वं हि उपोष्यकृतजागरः। उपचारैर्जगन्नाथंदारुरूपं समर्च्चयन्॥१८॥
कुन्दस्त्रग्भिः सुगन्धाभिः पूजयित्वा जगद्गुरुम्।
प्रभाते च पुनः स्नात्वा समर्च्य जगतां पतिम्॥१९॥

तत्प्रीत्यै द्विजवर्येभ्यः प्रतिपाद्याऽऽसनादिकम्।
ततश्च बन्धुभिः सार्द्धम्पुनरायाः स्वकं गृहम्।
कर्म्मणा तेन मुक्तेस्त्वं भाजनं प्रत्यपद्यथाः॥२०॥

तत्क्षेत्रमुत्कलेदेशेदक्षिणोदधितीरगम्। सुगोप्यंब्राह्मणःशम्भोर्दुष्प्राप्यंस्वल्पभाग्यकैः॥२१॥
यत्कर्मपरिपाकेन त्वमाप हीदृशीं तनुम्। क्षीणपापोऽसि भगवद्दर्शनात्त्वंतदा द्विजः॥२२॥

ब्राह्मण का यह वाक्य सुनकर दुर्वासा पुनः कहने लगे। "हे विप्रप्रवर! तुमने अपने सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, वह यथार्थ है। वह कदापि मिथ्या नहीं है, तथापि वह कैसे घटित होगा, उसे यथार्थतः श्रवण करो। हे विप्र! पूर्वजन्म में तुम अत्यन्त विष्णुभक्त थे। तुम एक बार तीर्थ यात्रा करते हुये सुहृद तथा बन्धुगण के साथ माघमास में सर्वजन प्रसिद्ध पुरुषोत्तम क्षेत्र पहुंचे। तदनन्तर वहां तुम विष्णु प्रीतिकर एकादशी तिथि के दिन सिन्धुजल में स्नान करके निष्पाप हो गये। तदनन्तर तुमने उपवासी रहकर रात्रि जागरण किया। रात्रि में सुगन्धित पुष्पमाला प्रभृति विविध उपचारों से दारुमय जगन्नाथ देव की यथाविधि पूजा करके पुनः प्रभातकाल में स्नानोपरान्त उन जगदीश्वर की यथाविधि पूजा तुमने किया था। पुनः प्रभात काल में स्नानोपरान्त उन जगदीश्वर की सम्यक्-अर्चना करके उनकी प्रसन्नता के लिये द्विजगण को भोजन-आसनादि दान किया। तदनन्तर बन्धुगण के साथ तुम अपने घर लौटे। उस पुण्यकार्य से तुम मुक्तिलाभ के अधिकारी हो गये। उक्त पुरुषोत्तम क्षेत्र उत्कल देश के दक्षिण महासागर के तट पर है। अल्पभाग्य व्यक्तिगण के लिये वह अतीव दुष्प्राप्य है। यहां तक कि ब्रह्मा तथा शंकर भी उसके प्रकृततत्व से अवगत नहीं हैं। हे द्विज! उस समय तुम भगवत् दर्शन से निष्पाप हो गये और जिस कर्मविपाक के कारण तुमने ऐसी देह प्राप्त किया है, उसी कर्मफल से तुम मुक्त हो जाओगे।"।।१४-२२।।

निवर्त्तमानः स्वगृहं सङ्गदोषेण दूषितः। गत्वाऽऽन्नं प्रत्यहं भुक्त्वा तत्कर्मपरिपाकतः।
पाषण्डसङ्गदुर्बुद्धिः स्वेच्छाचारो भवानभूत्॥२३॥
साम्प्रतं गृहजं वस्तुजातं दत्त्वा कुटुम्बके। तूर्णं प्रयाहि भगवत्पादमूलं सुदुर्लभम्॥२४॥

"तुम स्वगृह से प्रतिनिवृत्त होकर संगदोष के कारण दूषित हो गये। तुम पुरुषोत्तम क्षेत्र में जाकर नित्य भगवान् को अन्न प्रसाद भोजन करके भी अपने घर वापस आकर संगदोष से दूषित हो गये। उस कर्मफल के कारण पाषण्डियों के संसर्ग के कारण तुम दुष्ट बुद्धि होकर स्वेच्छाचारी हो गये। सम्प्रति स्वगृहस्थित समस्त द्रव्यादि को कुटुम्बीगण को प्रदान करके तुम दुर्लभ भगवत् चरणारविन्द में जाओ।।"।।२३-२४।।

जैमिनिरुवाच

इत्युक्तस्तेनमुनिनासद्विजो हृष्टमानसः। गृहक्षेत्रकुटुम्बेषु त्यक्तमोहो विवेकवान्॥२५॥
निः ससारगृहात्तूर्णं चिन्तयन्पुरुषोत्तमम्। तेनैव मुनिना सार्द्धं जगाम पुरुषोत्तमम्॥२६॥
दिनद्वयान्तरे मार्गे दूरशून्ये व्रजन्मुनिः। चित्तशुद्धिपरीक्षार्थमन्तर्धानगतोऽभवत्॥२७॥
पदानि कतिचिद् गत्वा स विप्रो दीनमानसः।
दुर्वाससमनालोक्य कान्दिशीकोऽभवत्तदा॥२८॥

असहायो गमिष्यामिक्काऽहं शून्यपथाव्रजन्। कुत्रदेशेमुनिःस्थानंत्यक्त्वामांवाकथंगतः।
अनामन्त्र्य हि साधूनां नैष पन्थाः प्रवर्त्तते॥२९॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं— मुनिप्रवर दुर्वासा का यह कथन सुनकर उन ब्राह्मण का अन्तःकरण अत्यन्त प्रसन्न हो गया। तब उनके मन में विवेक का उदय हो जाने के कारण उन्होंने अपनी निवासभूमि, गृह तथा बन्धु-बान्धव के प्रति ममता-मोह का त्याग किया। वे मन ही मन भगवान् पुरुषोत्तम का चिन्तन करते हुये अपने गृह से बर्हिगत हो गये। उन्होंने मुनिप्रवर दुर्वासा के साथ पुरुषोत्तम क्षेत्र के लिये प्रस्थान किया। तत्पश्चात् दो दिवस के अनन्तर महामुनि दुर्वासा उन ब्राह्मण की चित्तशुद्धि की परीक्षा करने के लिये मार्ग से सहसा अन्तर्हित् हो गये। इधर ब्राह्मण ने कुछ पग आगे बढ़ने पर जब दुर्वासा को नहीं पाया, तब वे अतिशय भयकातर हो गये। उन्होंने भयकातर होकर पलायन के लिये उद्यत होकर सोचा कि "अब मैं एकाकी कहां जाऊं। मुनिवर ने वृक्षादि रहित दूरदेश में जाते-जाते मुझसे कुछ नहीं कहा तथा मुझे छोड़कर पता नहीं कहां चले गये? यह तो साधुगण का आचरण नहीं है। अब मैं असहाय होकर वन में चलते हुये कहां पर जा सकूंगा? उन मुनि का निवास स्थान कहां है? वे मुझसे बिना कुछ कहे मुझे त्यागकर कहां चले गये? साधुगण का ऐसा व्यवहार तो कहीं सुना नहीं गया!"।।२५-२९।।

परित्यज्य कुटुम्बंस्वंवेशमतत्सुपरिच्छदम्। अप्राप्यमोचकंक्षेत्रंशून्येसीदामिहाकथम्॥३०॥
दैवज्ञः स तु भिक्षार्थी जीर्णौ गणनकर्मणा॥३१॥
तापसाश्छद्मरूपा हि वञ्चयन्तो जनान्बहून्।
राक्षसा नाशयन्त्याऽऽशु मनुष्यानपकारिणः॥३२॥
अविचार्य्य मया साङ्गं दृष्ट्वा दृष्ट्वा सुखप्रदम्।
इत्थमाचरितं कर्म्म श्रेयः स्यान्मे कथं पुनः॥३३॥
दैवेन वञ्चितं किम्वा करिष्याम्यात्मनो हितम्।
त्रिशङ्कुवत्स्थितो मध्ये प्रान्तरे ह्यद्य विह्वलः॥३४॥

"हाय! मैंने आत्मीय-स्वजन, गृह तथा मनोहर परिच्छेद आदि त्याग दिया और मुक्तिपथ पर न पहुंचकर आज इस शून्यपथ पर नष्ट हो रहा हूं! वे ज्योतिषीगणक तो गणना करते-करते वृद्ध हो गये। उनकी गणना मिथ्या कैसे हो गयी? यह यथार्थ लगता है कि मनुष्यों का अपकार करने वाले राक्षस मायावी ने छद्म तपस्वी का वेष धारण किया तथा उसने बहुसंख्यक लोगों को ठग कर इसी प्रकार से नष्ट कर दिया। जब मैंने सम्यक् रूप से विवेचना किये बिना केवल सुखप्रदविषय को ही लक्ष्य करके ऐसा अन्यायपूर्ण आचरण किया है, तब मेरा मंगल कैसे होगा? जब दैव ने ही मुझे वंचित किया है, तब मैं कैसे अपना हित कर सकूंगा? अब मैं आत्मीयजन रहित, विह्वल होकर आकाश में त्रिशंकु के समान वन में फंस गया।"।।३०-३४।।

स्वेच्छोपनीताविषयावर्तन्तेस्वगृहेमम। तान्परित्यज्यभीतोऽहंक्कयास्येभीतचौरवत्।
इत्थं चिन्ताकुलः सोऽथ व्रजन् शून्यपथि श्वसन्॥३५॥
भयातुरांस्पर्शदुष्टां बालांकाञ्चिदपश्यत। लावण्याम्बुधिरत्नंसासीमासौन्दर्यभूषणा॥३६॥

सर्वगात्राऽनवद्याङ्गीमोहनास्त्रं मनोभुवः॥३७॥

तां दृष्ट्वा विस्मयाविष्टःसर्वस्त्रीरूपहारिणीम्। चिन्तयामासनैदृक्खेदृष्टपूर्वाहिसुन्दरी॥३८॥

"हाय! मेरे गृह में अपनी इच्छानुसार भोगने योग्य न जाने कितने भोग्य विषय थे, मैंने उन सबका त्याग करके सभीतचित्त चोर के समान कहां जाऊं, कुछ भी निश्चित नहीं कर पा रहा हूं।" इस प्रकार से वे ब्राह्मण चिन्तातुर होकर दीर्घश्वास त्यागकर कातर अवस्था में वन में जाने लगे। तभी पातिव्रत पालन के कारण जिसका स्पर्श अन्य के लिये दूषणीय था, ऐसी अल्प वयस्का भयातुरा रमणी को देखा। उसे देखकर यह प्रतीत हो रहा था कि यह सर्वाङ्ग सुन्दरी लावण्यरूपी रत्नाकार का एक अपूर्व रत्न है तथा कामदेव का सम्मोहनास्त्र है। वास्तव में वह ललना सौन्दर्य की पराकाष्ठा से भूषित है। अखिल नारीगण के सौन्दर्य का हरण करने वाली महिला को निरीक्षण करके अत्यधिक विस्मित होकर वे मन ही मन विचार करने लगे।।३५-३८।।

महानगरमध्येऽहं भ्रमभाणो यदृच्छया। अवरोधेऽपि नृपतेः कान्ता नैदृक्सुशोभना॥३९॥

एकाऽपि लभ्यते येयं देवलोकेऽपि दुर्लभा। एवं शून्याटवीदेशं भूषयन्ती मनोहरा॥४०॥

दृष्टाऽपि या शुचं घोरां झटित्याकृष्यते मम॥४०॥

साऽपि तं निकटे दृष्ट्वा किञ्चित्सुस्थाकृतिस्तदा।

स्थिता त्रपाऽनुरागाभ्यां भूषिता स्वैरतां गता॥४१॥

"प्रतीत होता है कि किसी ने देवलोक में भी ऐसी सुन्दरी को नहीं देखा होगा। मैंने भी महानगरों में स्वेच्छा से न जाने कितना भ्रमण किया है, किन्तु ऐसी रूपवती कभी भी नहीं देखा। किसी राजा के अन्तःपुर में ऐसी शोभन अंगों वाली कमनीय कान्ति एक भी स्त्री नहीं देखी गयी। वस्तुतः यह सुन्दरी जो परिलक्षित हो रही है, ऐसी परम सुन्दरी कामिनी देवलोक में भी दुर्लभ है। इस मनोहारिणी रमणी ने यहां आकर इस शून्य प्रदेश को भूषित किया है। वह मेरे समक्ष उपस्थित होकर मेरे चित्त को आकर्षित कर रही है तथा घोरतर सहवास की उत्कण्ठा को मुझमें जाग्रत कर रही है।" ब्राह्मण इसी प्रकार चिन्तन कर ही रहे थे कि वह स्त्री भी ब्राह्मण को पास देखकर किंचित् स्वस्थतापूर्वक तथा तनिक लज्जा तथा अनुराग चिह्न से भूषिता होकर स्वेच्छापूर्वक ब्राह्मण के पास खड़ी हो गयी।।३९-४१।।

अथेवाच द्विजोऽनङ्गपीड़ितोऽस्थिरमानसः॥४२॥

का त्वं शुभे! कुतो वाऽस्मिन्कान्तारे समुपस्थिता।

असहाया भयत्रस्ता दिव्यरूपा विभाव्यसे॥४३॥

इत्युक्तवन्तं तं दृष्टा वशचित्तं तदाऽब्रवीत्।

कान्त! मा माऽन्यथा मंस्थास्त्वदीयाऽहं पुरा स्थिता॥४४॥

दुद्दवादुष्टचित्तस्तं सवैमां शैशवेऽत्यजः। अवसं जनकस्याऽहंमन्दिरे विप्रवासिता॥४५॥

त्वां ध्यायन्ती दिवारात्रौ यौवनं निष्फलं गतम्।

पितुर्गृहं मे निकटे श्रुत्वा त्वां निर्गतं गृहात्॥४६॥

एकाकिनीभयोद्विग्नात्वत्सन्निधिमुपागता। अद्याप्यनुक्रोशय मांजीवितंरक्षमेप्रभो!।।४७।।
उद्वाहितायायुवतेः परित्यागोऽसुखावहः। नरकाय गतिः पुंसामितिशास्त्रविनिश्चयः।।४८।।
एहि कान्त! व्रजाम्पद्य पितुर्गेहं सुखालयम्। यथाकामं मया सार्द्धंतत्रतिष्ठचिरंप्रभो!।।४९।।

तब वे द्रिजवर कामबाण से पीड़ित होकर तथा व्याकुल होकर कहने लगे—"हे शुभे! तुम कौन हो? क्यों भयाकुल हृदय से एकाकिनी वनमध्य में उपस्थित हो। तुम दिव्यरूपिणी लग रही हो।" ब्राह्मण को इस प्रकार से कामबाण से पीड़ित हो ऐसा कहते देखकर उस कामिनी ने कहा—"हे कान्त! मैं अन्य पुरुष संसर्गिणी नहीं हूं। मैं पूर्व में आपकी ही पत्नी थी। दुर्दैव के कारण बुद्धिदोष से आपने मेरा शैशवकाल में ही त्याग कर दिया। मैं आपके द्वारा त्यागी जाकर अब तक पिता के ही गृह में निवास कर रही थी। हे नाथ! दिन-रात आपका ध्यान करते-करते मेरा यौवन विफल हो रहा है। निकट ही मेरे पिता का गृह है। आप अपना घर छोड़कर यहां आये हैं, यह सुनकर मैं आपके पास आ गयी। हे प्रभो! अब मेरे प्रति दया करके मेरे जीवन की रक्षा करें। हे प्रियतम! विवाहिता युवती का त्याग करना अतीव असुख का कारण है तथा इससे पुरुष की नरकगति होती है, यह तो सभी शास्त्रों में कहा गया है। हे कान्त! आईये! यहां मेरे सुखकारी पिता के गृह में आयें। हे प्रभो! आप मेरे साथ इच्छानुरूप निवास करिये।"।।४२-४९।।

तया प्रबोधितश्चैवंस विप्रो हृष्टमानसः। जगाम तांपुरस्कृत्यअ (ह्य) दूरेश्वशुरालयम्।।५०।।
श्वशुरोऽपिचतं दृष्ट्वा सत्कृत्याऽऽशु प्रपूजयन्।
स्वगृहे वेशयामाससर्वकामसमृद्धिभिः।।५१।।
रममाणस्तया सार्द्धंमासमात्रमुवास ह। एतत्सर्वं मुनेर्मायां न जानातिद्विजस्त्वयम्।।५२।।
व्रजंस्तु केवलं नित्यं क्षेत्रस्य निकटं ययौ।।५३।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादेभगवद्भक्तविप्रस्य प्राक्परित्यक्तपत्न्यासहसङ्गातिर्नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५२।।

स्त्री द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर वे ब्राह्मण प्रसन्न मन से उसे आगे करके निकटवर्त्ती श्वशुर गृह में आये। वहां श्वसुर ने उनको देखकर परम आदर के साथ सभी प्रकार का सत्कार किया तथा समस्त भोग्यवस्तु देकर अपने गृह में ब्राह्मण को ठहराया। तब वे ब्राह्मण अपनी पत्नी के साथ सुखपूर्वक वहां एक मास तक ठहरे। वे यह नहीं समझ सके कि यह सब महर्षि दुर्वासा की माया है। वास्तव में वे चलते-चलते पुरुषोत्तम क्षेत्र तक पहुंच गये थे!।।५०-५३।।

।।द्विपञ्चाश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्राह्मण द्वारा वैष्णव-ज्ञानलाभ

जैमिनिरुवाच

द्वितीयेऽह्निदिवामध्येचतुर्मध्येप्रवेक्ष्यति। पूर्वेऽहनि ज्वरस्तस्यमहानासीत्सुदारुणः॥१॥
तस्मिन् क्षेत्रे हरेश्चक्रंविष्णुपारिषदोगणः। यमस्यच सुघोरास्तेदूताःपाशादिपाणयः।
युगपद्भवनं तस्य प्राप्तास्ते च परस्परम्॥२॥

यमदूता ऊचुः

कथम्भोवैष्णवा एनं पापसञ्चयकारिणम्। नेतुमिच्छथ वैकुण्ठं कथयध्वं भवादृशाः॥३॥
अनेन कानि पापानि कृतानि न दुरात्मना। कथमेनं रक्षितुम्वैं सुदर्शनमुपागतम्।
चक्रमेतद् वैष्णवं दुष्टाचारनिषूदनम्॥४॥
कथम्वाजडबुद्धित्वमुपागम्यसुबुद्धयः। निर्मलाःपार्षदाः विष्णोः पापसन्निधिमागताः॥५॥
पुनः पुनर्वदत्यस्मद्राजा वैवस्वतोहि नः। नयतो वैष्णवान् पुंस ईशितारश्च ते मयि॥६॥
अवलोकयितुं तान् हि नेशे स्वप्नेऽपि भोभटाः!।
तान्विष्णुरूपान् सेवन्ते वैष्णवाः पार्षदाः सदा॥७॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे मुनिगण! तदनन्तर वे ब्राह्मण आगामी द्वितीय दिन, दिन के समय मत्स्यावतारादि चतुःसीमा में गये। उसी समय उनको एक दिन पूर्व से ज्वर हो गया था। उक्त चतुःसीमा के निकटवर्त्ती क्षेत्र में भगवान् हरि का सुदर्शनचक्र था तथा पारिषदगण भी थे। वहां यम के भयानक मूर्त्ति देवगण भी पाशादि हाथ में लेकर वहां स्थित थे। तब विष्णु के पार्षद एवं यमदूतगण भी एक साथ उन ब्राह्मण के गृह में आये। यमदूतगण ने कहा—"हे वैष्णवगण! किस कारण से आप ऐसे लोग इस पापी को वैकुण्ठ ले जाना चाहते हैं? इस दुरात्मा ने कौन सा पाप नहीं किया है? अतएव इसकी रक्षा के लिये सुदर्शन क्यों आये हैं? यह वैष्णवचक्र तो दुष्टों का संहारक है? आप सब विष्णु के पार्षद एवं पवित्रात्मा एवं सुबुद्धिशाली होकर क्यों मूर्खता के कारण इस पापी के पास आये हैं? हमारे राजा हैं यमराज! उन्होंने हमसे बारम्बार कहा है कि "हे दूतों! तुमलोग विष्णुभक्तों को कदापि न बांधना। वे तो मुझ पर भी प्रभुत्व कर सकते हैं। अधिक क्या कहें, हम कभी भी विष्णुभक्तों के विरुद्ध नहीं जा सकते न तो उनकी ओर दृष्टि उठा कर देख सकते हैं।"॥१-७॥

सुदर्शनं चक्रवरं तस्य पार्श्वेऽवतिष्ठते॥८॥
ये तुःपापरता नित्यं विष्णुभक्तिपराङ्मुखाः। तेषामहं नियन्तेति स्थापितः प्रभविष्णुना॥९॥
अहोऽसौ पापिनां श्रेष्ठो यमस्य वशमेष्यति। चित्रगुप्तेनकथितं नरकर्मसुसाक्षिणा॥१०॥
यमदूतवचः श्रुत्वा प्राहुर्वैष्णवपुङ्गवाः। मूढाः यूयं न बुद्ध्यध्वंक्रूरात्मानोविहिंसकाः॥११॥

कः पापी धार्मिको वाऽपि को वा मोक्षाधिकारवान्।
अस्य त्राता धार्मिको वै सदाचारः सुनिर्मलः॥१२॥

"विष्णुभक्त विष्णुस्वरूप होते हैं। विष्णु के पार्षद सर्वदा उनकी सेवा करते हैं। चक्रराज सुदर्शन सर्वदा उनके पार्श्व में स्थित रहते हैं। जो सदा पाप कार्य में रत तथा विष्णु भक्ति से विमुख रहते हैं, भगवान् विष्णु ने ही ऐसे लोगों का हमें नियन्ता नियुक्त किया है। यह व्यक्ति पापीगण में अग्रगामी है। तब यह यमराज के ही अधीन है। मानवगण के शुभाशुभ कर्म के साक्षी चित्रगुप्त ने इनको लाने की आज्ञा दी है।" यमदूतों का यह वाक्य सुनकर प्रधान विष्णुपार्षद कहने लगे "तुम सब परम मूढ़ हो। क्रूर तथा हिंसक हो। इसलिये कौन पापी है, कौन धर्मात्मा है, कौन मोक्ष का अधिकारी है, कौन इनका परित्राता है, वह समझ नहीं पाते।"।।८-१२।।

यज्ज्वादाता सत्यवादीनतथा वैष्णवोऽभवत्।
कर्मण्यःकामनायुक्तःस्वगृहेवर्ततेन च॥१३॥
महाज्वरोपस्पृष्टश्च सोऽपि मोहसमन्वितः। तन्नेतुमागता दूताःकथमत्र समागताः॥१४॥
निष्क्रान्तः स्वगृहादेवक्षेत्रेश्रीपुरुषोतमे। त्यक्ष्ये प्राणांश्चतुर्मध्येसङ्कल्पेन द्विजोत्तमः॥१५॥
तदारभ्यसमाज्ञप्ता वयं वै विश्वसाक्षिणा। दीनोद्धृतौ दयापक्षपातिनाप्रभुणाभटाः॥१६॥
एतस्य सन्निधौस्थानं भवतां न सहामहे। गदाचूर्णितमूर्धानो भविष्यथ न संशयः॥१७॥

"ये पूर्व में जैसे धार्मिक, सदाचारी, सुनिर्मल चित्त यज्ञकर्त्ता, दाता, सत्यवादी तथा कर्मकुशल विष्णुभक्त थे, उस समय वैसा कोई भी वैष्णव नहीं था। ऐसे महान् आशय वाले होकर भी कामनावद्ध होकर अपने गृह में रह रहे हैं। इस समय महाज्वराक्रान्त होकर मोहग्रस्त हो गये हैं। हे समागत यमदूतों! इन ब्राह्मण को ले जाने हेतु क्यों आ गये? इन द्विजवर ने मन ही मन यह संकल्प किया था कि पुरुषोत्तम क्षेत्र में पूर्वोक्त चतुष्टय के मध्य स्थल में प्राणत्याग करूंगा।" मन ही मन यह संकल्प करके जब घर से निकले, तब से ही दीनों के उद्धारक, दयालु विश्वसाक्षी प्रभु नारायण की आज्ञा से हम इनके पास उपस्थित हैं। हे दूतों! इन द्विज के सन्निधान में हम तुम लोगों का रुकना उचित नहीं मानते। इसलिये यदि तुम लोग यहां से प्रस्थान नहीं कर देते, तब निश्चय ही हमारे गदा प्रहार से तुम लोगों का मस्तक चूर्ण हो जायेगा।।१३-१७।।

यावत्ते कलहायन्ते यमदूताश्च वैष्णवाः। ध्वस्तमोहोऽभवद्विप्रो निशाचविररामसा॥१८॥
प्रातः प्राप चतुर्मध्यं दुर्वासाः सोऽपि च द्विजः।
चिन्तयन् किं मया दृष्टं स्वप्ने चाऽत्यन्तकौतुकम्॥१९॥
कान्ताऽवलोकनाद्यन्तंस्वंचमोहमुपागतम्। दृष्ट्वाऽऽलिङ्ग्यभृशंतस्यारोदनंश्वशुरस्यतु॥२०॥
अहो भगवतो माया मामद्याऽपि त्यजेन्न हि॥२१॥
सर्वत्र ममतां त्यक्त्वा मुनिनागृहनिर्गतः। यावद्दुःखाद्यनुभवं स्वप्नेनजनुषाऽपिवा॥२२॥
इदानीमत्र सम्प्राप्तः किं करिष्यामि येन तत्।
यास्यामि विष्णुसायुज्यं मुनिना सम्प्रकीर्तितम्॥२३॥

विचिन्त्येत्थंदिशःप्राप्ते सर्वत्रसमलोकयत्। पश्चात्स्थितंमुनिंस्मेरंददर्शप्रीतिसंयुतम्॥२४॥

यमदूतगण तथा वैष्णवगण जब परस्परतः यह कलह कर रहे थे, उसी समय उन विप्रप्रवर का ज्वरजनित मोह समाप्त हो गया तथा प्रभातकाल भी हो गया। प्रातःकाल महामुनि दुर्वासा तथा वे ब्राह्मण पूर्वोक्त चतुर्मध्य स्थल पर पहुंच गये। उसी समय वे ब्राह्मण यह सोचने लगे कि "अहो! मैंने स्वप्न में वनावलोकनादि, अपनी उस रमणी के प्रति मोहित होना और दृष्टिपात एवं आलिंगन के साथ उस रमणी पत्नी और श्वसुर का रुदन रूपी अनेक कौतूहल देखा। अभी तक भगवान् की माया ने मुझे नहीं छोड़ा है। मैं समस्त ममता को छोड़कर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा के साथ घर से निकला। तदनन्तर स्वप्न में जैसा दुःखानुभव किया, इस जन्म में कभी ऐसा भोग नहीं किया। जो भी हो, अब दूर देश में आकर इस क्षण मुनिवर द्वारा कहा गया विष्णु सायुज्य प्राप्त करने का क्या उपाय किया जाये? यह सोचते हुये जैसे ही ब्राह्मण ने सभी दिशाओं में दृष्टि संचालन किया, उन्होंने पश्चाद्वर्त्ती प्रफुल्ल तथा हास्यपूर्ण मुनिवर दुर्वासा को देखा।।१८-२४।।

दुर्बलः स समुत्थाय प्रणम्यशिरसामहीम्। जगामनोत्थातुमसौपुनःसामर्थ्यमाप्तवान्॥२५॥
विष्णुदूतपरिध्वस्तयमदूस्तैस्तु तैस्तदा। विज्ञापितोधर्मराजःसहसासमुपागतः॥२६॥
कूटमूद्गरपाशादिदण्डपट्टिशपाणिभिः। सन्दष्टौष्ठपुटैः क्रुद्धैः समन्तात्परिवेष्टितः॥२७॥
चण्डारावमहाघण्टाभूषिते महिषे स्थितः। मृत्युकालप्रभृतिभिरुद्दीपितरुषोभृशम्॥२८॥

तदनन्तर वे दुर्बलदेह द्विजगण अत्यन्त क्लेश से उठे तथा शिर झुकाकर मुनिवर को प्रणाम किया और भूतल पर लेट गये। वे पुनः उठ नहीं सके। इसी समय यमदूतगण विष्णु दूतों द्वारा विताड़ित होकर यमराज के पास गये तथा उन धर्मराज से समस्त वृत्तान्त कहा। वे क्रोध से प्रज्वलित होकर भीषण शब्द करने वाले महाघंटाभूषित महिष की पीठ पर आरूढ़ हो गये और हाथों में कूट, मुदगर, पाश, असि, दण्ड तथा पट्टिशादि विविध अस्त्रशस्त्रधारी मृत्यु, काल आदि असुरगणों से घिरकर सहसा वहां आये।।२५-२८।।

गृह्यतां गृह्यतामेष वध्यतां वध्यतामिति। तदग्रतोवचो दूराच्छुश्रुवे घोरदर्शनम्॥२९॥
तच्छ्रुत्वा प्रेतराजस्य मर्यादातिक्रमं वचः। अमर्षणाविष्णुगणा प्राहुरुच्चैर्वचोभृशम्॥३०॥

अरे प्रेतगणाध्यक्षं नाऽऽत्मानं मन्यसे रुषा।
कुत्राऽधिकारो भवतः स्वामिनो नः प्रकल्पितः॥३१॥
ये प्रेताः सन्निधौ यान्तु मुक्तांस्तानवधारय॥३२॥

अदूरदर्शी मूढात्मन्! यदेनं प्रतिधावसि। एष प्रेतत्वनिर्मुक्तः साक्षाद्भगवतःप्रियः॥३३॥
वटसागरयोर्मध्यं माधवाभ्यां सुरक्षितम्। क्षेत्रेमुक्तिप्रदे नूनं चतुर्मध्यम्विशेषतः॥३४॥

उस समय उनके अनुचरगण क्रोध में भरकर दांतों से अपने ओंठ चबा रहे थे। दूर से ही सामने से आते इन यम के अनुचरों का स्वर गूंज रहा था "पकड़ो-पकड़ो, इसे मारो-मारो।" इधर प्रेतराज यम द्वारा इस प्रकार के मर्यादाविरुद्ध वाक्यों को सुनकर विष्णुदूत गण अत्यधिक अमर्ष में भर गये तथा और भी उच्चस्वर में कहने लगे—"अरे! तुम क्रोध में भरकर स्वयं को प्रेतों का राजा कह रहे हो! विचार करो हमारे स्वामी विष्णु ने तुमको किनके ऊपर अधिकार दिया है? जिनको प्रेतत्व प्राप्त है, वे ही तुम्हारे पास जायेंगे। यह निश्चय जानो,

उनका हम त्याग कर देते हैं। हे मूढ़ात्मा! तुम निश्चय ही दूरदर्शी नहीं हो, जो ब्राह्मण को पकड़ने दौड़ पड़े! ये द्विजवर साक्षात् भगवत्प्रिय होने के कारण प्रेतत्व से मुक्त हैं। वटवृक्ष तथा सागर के मध्य का दोनों पार्श्व मत्स्यावतार तथा श्वेतमाधव द्वारा सर्वदा सुरक्षित रहता है। इसलिये मुक्तिप्रद पुरुषोत्तम क्षेत्रान्तर्गत् उक्त चतुर्मध्य स्थल निश्चित रूप से विशेष मुक्तिदायक हैं।।२९-३४।।

कैवल्यम्मनसा यत्र कल्पितं प्रभविष्णुना। क्षीणकिल्विषपुण्यायेतेषामत्रायुषःक्षमाः।।३५।।
अविज्ञायैतन्माहात्म्यंयम्! किं गर्जसेवृथा। अत्रसाक्षाज्जगनाथो दीनानामार्त्तिनाशनः।।३६।।
सुप्रसन्नमुखाम्भोजः करुणालम्बिबाहुधृक्। तस्मिक्षेत्रेरमेशस्यदेहभूते सदाऽव्यये।।३७।।
यत्रतत्रसर्वदा ये प्राणांस्त्यजन्तिवैनराः। तेषाम्मुक्तिप्रदोदेवःसाक्षान्नारायणःस्वयम्।।३८।।

स्वयं सर्वप्रभु भगवान् ने इस स्थान को जीवगण के लिये कैवल्यप्रद निश्चित किया है। जिनका पाप तथा पुण्य दोनों क्षयीभूत हो गया है, उनको ही यहां मरण प्राप्त होता है। हे यम! तुम इस क्षेत्र की महिमा को जाने बिना क्यों गर्जन कर रहे हो? यहां दीनों के सभी क्लेश का हरण करने वाले साक्षात् जगन्नाथदेव करुणा के कारण दोनों बाहु प्रसारित करके प्रसन्न मुखमुद्रा में सतत् विराजमान रहते हैं। साक्षात् भगवान् रमाकान्त का अव्यय देहरूपी यह पुण्यस्थल ऐसा है, जहां मानव चाहे जिस स्थान पर यहां प्राण त्याग क्यों न करें, स्वयं साक्षात् नारायण उसे मुक्ति प्रदान करते हैं।।३५-३८।।

किन्नः स्मरन्ति वृत्तं यत्तवैवाऽत्र पुराऽभवत्।
काकः कैवल्यमुक्तोऽपि त्वरमाणो यदाऽगमत्।।३९।।
यदाह त्वां रमानाथो नीलेन्द्रमणिविग्रहः। स एवाऽयंजगन्नाथो दारुरूपीरमाप्रभुः।।४०।।
महाराजाधिराजेन वैष्णवाग्र्येण धीमता। योगीश्वरेन्द्रद्युम्नेन हयमेधैः प्रसादितः।।४१।।
त्रैलोक्यवासिभिः सिद्धदेवर्षियतिभूमिपैः। सार्धसाक्षादब्जभुवा पूजितः परमेष्ठिना।।४२।।
अनादिसञ्चिताशेषपापतूलौवपावकः। दर्शनान्मुक्तिदो नृणां मरणादपि मुक्तिदः।।४३।।
न पश्यस्यभ्रतश्चक्रं दुष्टचक्रविनाशनम्। अपक्रामस्वाऽधिकारे तिष्ठदेव! चिराद्यम!।।४४।।

पूर्वकाल का वृत्तान्त है कि यहां एक सामान्य कौये ने यहां पर प्राण त्याग द्वारा मुक्तिलाभ किया था। उस समय तुम्हारे साथ जो घटित हुआ था तथा इन्द्रनीलमणि के समान नीलकलेवर, साक्षात् रमानाथ ने उस समय तुमसे जो कहा था, क्या वह इतिहास तुमको याद नहीं है? वे रमानाथ ही वैष्णव चूड़ामणि धीमान् योगीप्रवर महाराजाधिराज इन्द्रद्युम्न द्वारा अनुष्ठित १००० अश्वमेध यज्ञों से प्रसन्न हो गये। तब त्रैलोक्यवासी सिद्ध, देवता, ऋषि, यति तथा राजाओं के साथ ही उनकी पूजा साक्षात् भगवान् कमलयोनि ब्रह्मा ने किया था। वे ही दारुमय जगन्नाथ देवरूप से यहां विराजमान हैं। दारुमय जगन्नाथ देव जीवगण के अनादिकाल से संचित अशेष पापपुंजरूप रुई के ढेर का विनाश करने के लिये अग्नि के समान हैं। इन भगवान् का दर्शन तथा उस क्षेत्र में प्राणत्याग करने से ही वे मनुष्यों को मुक्ति देते रहते हैं। हे यमराज! क्या तुम सामने स्थित भगवान् के दुष्ट संहारक चक्रराज को नहीं देख रहे हो। अब तो यही उचित है कि यहां से पलायन करो तथा अपने अधिकार स्थान (अपने लोक) में जाकर सुखपूर्वक निवास करो।।३९-४४।।

तेषामित्थम्प्रवदतां स निशम्य वचोऽमृतम्।
योद्धुकामः समुत्तस्थौ स्वगणेनोद्यतो यमः।।४५।।
अत्रान्तरे द्विजाग्र्यम्वै शयानन्तमधोमुखम्। चतुर्मध्येशनैःकश्चिन्निन्येवैष्णवपुङ्गवः।।४६।।
यावन्मध्यङ्गतः सोऽथ श्वसन्विप्रोऽथ विह्वलः। उत्सारयन्यमगणान्पाञ्चजन्यभवो ध्वनिः।
शुश्रुवे चाऽपतद् व्योम्नः पुष्पवृष्टिर्द्विजोपरि।।४७।।
ततः पतगराजस्य पृष्ठासनगतो हरिः। शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गपद्मोद्यतभुजोत्तमः।।४८।।
सुप्रसन्नमुखाम्भोजः सजलाम्बुदसन्निभः। पीताम्बरधरः श्रीमान् कौस्तुभोद्भासिविग्रहः।।४९।।
अवरुह्यखगात्तूर्णं कर्णमूले द्विजस्यवै। अनाद्यविद्यातमसः प्रध्वंसनमनुत्तमम्।।५०।।
दिदेश वैष्णवज्ञानं वामदेवः शुकोऽथवा। अवधूय वृथा ज्ञानं येन मोक्षमवापतुः।।५१।।

विष्णुदूतों का यह वचनामृत सुनकर भी यमराज युद्धार्थ अपने अनुचरों के साथ सज्जित होकर आगे बढ़ें। तभी कुछ विष्णुदूतों ने अधोमुख पड़े उन ब्राह्मण को शीघ्रता से उठाया तथा उनको चतुर्मध्य स्थल में रख दिया। जैसे ही वे विप्र विह्वल एवं जीवित स्थिति में चतुर्मध्य स्थल में ले जाये गये, तभी वहां पर भगवान् के पांचजन्य की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। उसे सुनते ही यम के अनुचर दूतगण वहां से भाग गये। आकाश से उस ब्राह्मण के शरीर पर पुष्पवर्षा होने लगी। तभी जिनके हाथों में शंक-चक्र-गदा-पद्म तथा शार्ङ्गधनुष विराजित हैं तथा जिन्होंने कमर में पीतवस्त्र और वक्षःस्थल पर कौतुभमणि धारण किया हैं, जिनकी देहकान्ति सजल जलधरवत् सुनील है, जिनका मुखकमल प्रसन्न है, जो गरुड़ पर विराजित हैं, वे प्रभु श्रीमान् हरि गरुड़ से उतरे तथा ब्राह्मण के कानों में उसे वैष्णव ज्ञान का उपदेश दिया जिसे सुनकर वामदेव तथा शुकदेव ने वृथा घटपटादि ज्ञान (द्वैत ज्ञान) को त्यागकर मोक्ष प्राप्त किया था।।४५-५१।।

ततस्तद्बोधसँल्लीनः दृढवासनतामसः। प्रत्यूषसोयथाभानुरुदियाय महोमहत्।।५२।।
दुर्वासःप्रभृतीनाम्वै पश्यतामेव तत्क्षणात्। तज्ज्योतिर्भगवच्चक्र पद्मान्तरमवाप च।।५३।।
ततस्तिरोदधेदेवोह्यन्तर्यामी जगत्प्रभुः। दुर्वासाविस्मयाविष्टोब्रह्मणश्चान्तिकंययौः।।५४।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डार्न्ततोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे भगवद्भक्तविप्रस्य वैष्णवज्ञानलाभो नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५३।।

उस विष्णुप्रदत्त ज्ञान के प्रभाव से ब्राह्मण श्रेष्ठ का दृढ़ वासनारूप मोहजाल उच्छिन्न हो गया। उनको प्रातःकालीन सूर्य के समान अपूर्व तेज की प्राप्ति हो गयी। तदनन्तर दुर्वासा आदि सबके देखते-देखते उन ब्राह्मण का वह आभ्यन्तरीण तेज भगवान् के चक्र एवं पद्म में प्रविष्ट हो गया। तत्पश्चात् जगत्प्रभु अन्तर्यामी देवदेव श्रीहरि वहां से अन्तर्ध्यान हो गये और मुनिवर दुर्वासा भी विस्मय में भरकर वहां से ब्रह्मलोक चले गये।।५२-५४।।

।।त्रिपञ्चाश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सागर स्नानादि महिमा, मकर स्नान महिमा

जैमिनिरुवाच

तदेतत्कथितं तत्र मोक्षसाधनमुत्तमम्। आत्मासाक्षात्कारमृते शरणं सर्वदेहिनाम्।।१।।
यथाहियुगभेदेन भक्त्या तन्नामकीर्त्तनम्। कलौमुक्तिप्रदं पुंसां तत्क्षेत्रे मरणं तथा।।२।।

विष्णुसूक्ते श्रुतिः प्राह जानन्तस्तम्महेश्वरम्।
विचरन्तोऽपि ते नाम त्वां यास्यामो हतांहसः।।३।।
श्रुतिःस्मृतिर्भगवतो वाक्यं त्वमवधारय।।४।।

आत्मबोधाश्रुतिःप्राहमुक्तिंतन्मीलिकास्मृतिः। मरणात्तत्र चप्राहमविरोधोव्यवस्थया।।५।।
वाजिमेधेऽप्यनुष्ठानंबहुकालाऽऽत्मदुःखदम्। तज्ज्ञानञ्चतुल्यफलंविधानेद्वेव्यवस्थया।।६।।

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे वत्स! आत्मसाक्षात्कार न होने पर भी पुरुषोत्तम क्षेत्र में मृत होना उत्तम मोक्ष साधन है। यह मैंने वर्णन कर दिया। यह निश्चित है कि वहां सभी प्राणीगण के रक्षक हैं भगवान् श्रीहरि। जैसे युग के अनुसार कलिकाल में भक्तिपूर्वक भगवान् का नाम कीर्त्तन मुक्तिदायक है, वहां मरण भी उसी प्रकार मुक्तिप्रद ही है। उनके नाम कीर्त्तन के सम्बन्ध में विष्णुसूक्त में साक्षात् श्रुति ने कहा हैं कि "हे प्रभो! आप महेश्वर हैं। हम आपको जानकर किंवा आपके नाम का कीर्त्तन करके विचरण करते निष्पाप स्थिति प्राप्त करेंगे। तदनन्तर आपका सायुज्य लाभ होगा। हे वत्स! आप श्रुति तथा स्मृति के वाक्यों को भगवान् का वाक्य मानो और इसकी विवेचन करके यह उपलब्धि करो कि आत्मज्ञानजनक श्रुति तथा श्रुतिमूलक स्मृति ने जब वहां पर मरण को मुक्तिप्रद कहा है, तब इसमें शास्त्र व्यवस्था के अनुसार कोई भी पारस्परिक विरोध है ही नहीं! साथ ही इन्द्रद्युम्न ने जहां सहस्र अश्वमेध सम्पन्न किया था, वहां विष्णु क्षेत्र में प्राणत्याग और दूसरी ओर आत्मक्लेश (दृढ़ प्रयत्न तथा दीर्घकालिक नियमादि पालन एवं तपः साध्य) से प्राप्त ब्रह्मज्ञान—दोनों समान रूप से मुक्तिप्रद हैं, तब शास्त्र-व्यवस्था के अनुसार दोनों स्थिति में समान प्राप्ति ही होती है। (एक सहज है, दूसरा आत्मक्लेशप्रद है)।।१-६।।

ये तत्र मृतिमाहात्म्यंनविदन्तिमहांहसः। बहुभिर्जन्मभिस्तेषामात्मज्ञानेन मोक्षणम्।।७।।
अङ्गाङ्गिभावोनाऽप्येष आत्मज्ञानस्यतन्मतेः। येनाङ्गफलभूयस्त्वमनुवादनियामकम्।।८।।
दीर्घायुषां बलवतां योगिनांबहुजन्मभिः। आत्मकारावृत्तिरेषानोद्दालकनतन्नृणाम्।

जन्तूनाम्वा विह्वला तां न तत्क्षेत्रे मृतिस्तु सा।।९।।
यथावानाऽऽत्मज्ञानेन कर्मणो वै समुच्चयः।
तथातत्क्षेत्रमरणेनाऽऽत्मज्ञानसमुच्चयाः ।।१०।।

यएते सृष्टिकर्त्तारः कश्यपाद्यामहर्षयः। सृष्टिप्रवर्त्तनार्थं हि तत्क्षेत्रं गोपयन्ति वै।।११।।

दुष्टात्मनां विनाशाय साधूनां रक्षणाय च। यदा यदाऽवतरतिसाक्षान्नारायणः प्रभुः॥१२॥
कञ्चित्कालं क्षेत्रवरं दीनार्त्तकृपयाविभुः। प्रकाशयति विश्वात्मा पुनरावृणुते हिते॥१३॥

जिन महापापियों को वहां मृत होने का माहात्म्य ज्ञात नहीं है, वे बहुजन्मसाध्य आत्मज्ञान प्राप्त करके मोक्ष लाभ प्राप्त करें। आत्मज्ञान से मोक्ष तथा उस क्षेत्र में मरण से मोक्ष—इसमें एक उपाय प्रधान तथा दूसरा अप्रधान है, ऐसी बात नहीं है। अर्थात् इसमें अङ्गाङ्गी भाव नहीं है। अङ्गफल की बहुलता अनुवाद विधायक ही होती है। (अनुवाद=जो स्वयं विधि अथवा निदेश नहीं है। पूर्वकथित बात का पुनः उल्लेख—देखें (आप्टे शब्दकोष)। हे उद्दालक! यह भी देखो कि एक ओर शारीरिक क्षमतावान् दीर्घायु योगी की बहुजन्मसाध्य आत्माकार वृत्ति से होने वाली मुक्ति, दूसरी ओर वहां अज्ञानीजन को मात्र मरण से मिलने वाली मुक्ति! दोनों ही स्थिति एक दूसरे से पूर्ण पृथक् तथा विसदृश है। इसलिये दोनों में अंगांगीभाव कैसे कह सकते हैं। जैसे आत्मज्ञान रहितावस्था में शुभ-अशुभ कर्मों का संचय हो जाता है, उसी प्रकार उस क्षेत्र में मरण मात्र से आत्मज्ञान संचित (प्राप्त) होता है। जो सब कश्यपादि महर्षि सृष्टिकार्य में लगे रहते हैं, उन्होंने सृष्टिविस्तार के लिये ही इस क्षेत्र को छिपा दिया है (जिससे सभी वहां जाकर मुक्त न हो सकें)। प्रभु नारायण दुष्टों के विनाश हेतु तथा शिष्टों के रक्षण-पालन हेतु जब-जब साक्षात् अवतीर्ण होते हैं, तब वे विश्वात्मा विभु दीनार्त्त व्यक्तियों के लिये कृपा करके कुछ समय हेतु उस उत्तम क्षेत्र को व्यक्त करते हैं। पुनः सृष्टि के हितार्थ उसे गुप्त कर देते हैं।।७-१३।।

संसारस्य स्वभावोऽयं निमग्नोत्तीर्णवद् द्विज!॥१४॥
क्षेत्राणितीर्थभूतानिगङ्गादिसरितस्तथा। सागराःसप्तशैलाश्चविलीयन्तेक्वचिद्द्विज!।
प्रकाशन्ते च वर्द्धन्ते सृष्टिरेषा सनातनी॥१५॥

हे द्विजप्रवर! संसार का स्वभाव ही ऐसा है कि जगत् की समस्त वस्तु कभी जल में डूब जाती है कभी ऊपर तैरती भासित होने लगती है। अर्थात् संसारस्रोत कभी प्रकाशमान (व्यक्त) होता है, कभी अप्रकाशित (अव्यक्त) हो जाता है। वास्तव में सनातनी सृष्टि का यही स्वभाव है कि कभी समस्त तीर्थक्षेत्र, गंगादि पुण्यसलिला नदी, सातो समुद्र, पर्वत कभी तो विलीन हो जाते हैं, कभी प्रकट हो जाते हैं, तो कभी वर्द्धित होते रहते हैं।।१४-१५।।

तथाहि सागरोह्येष ब्रह्मशापात्पुरा द्विज!। दशवर्षसहस्राणि निर्जलोऽभून्महार्णवः।
आकाशगङ्गा सलिलैः पश्चात्पूर्णो बभूव ह॥१६॥
यन्नामकीर्तनंभक्त्या सर्वपापानोदनम्। प्रायश्चित्तान्यशेषाणि यथेदं क्षेत्रमुत्तमम्॥१७॥
वेदादात्मस्वरूपस्यश्रवणंस्मरणंतथा। युक्तिभिश्चस्थिरीकृत्यनिदिध्यासश्चिरंतथा॥१८॥
ततस्तदाकरतया वृत्तिर्या चेत्क्वच स्थिरा।
बहुजन्माभ्यासदुःखैर्विना ताम्मुक्तिमेति कः॥१९॥
क्षेत्रे तस्मिन्परेशस्य क्षेत्रभूते सनातने। चतुर्मध्ये त्यजन्प्राणान्यत्रतत्राऽपिनेच्छया॥२०॥
अत्रतेमाऽस्तु दुर्बुद्धिकृताशङ्का द्विजोत्तम!। अपराधमिमं श्रीशः सर्वथानसहेत वै॥२१॥

हे द्विजप्रवर! इसका एक उदाहरण देखें। पूर्वकाल में महासागर भी एक समय ब्रह्मशाप के कारण १०००० वर्ष पर्यन्त जलरहित था। तत्पश्चात् वह आकाशगंगा के जल द्वारा परिपूर्ण हो गया। उक्त पुरुषोत्तम क्षेत्र की ही तरह जिन प्रभु का नामकीर्तन भी सर्वपापनाशक तथा अखिल प्रायश्चित्त रूप है, वेद वाक्य से उन आत्मस्वरूप भगवान् का नाम स्मरण, श्रवण तथा बहुकालव्यापी निधिध्यासन—इनमें कदाचित् किसी व्यक्ति में जो स्थिरतर आत्माकार वृत्ति उदित होती है, वही वास्तव में मुक्ति है। लेकिन अनेक जन्म पर्यन्त उस साधन के अभ्यास जनित कष्ट को भोगे बिना कौन ऐसी मुक्ति पा सकेगा? और देखें कि भगवान् के सनातन देहरूप इस चतुर्मध्य में अनिच्छा पूर्वक भी यदि कोई मृत हो जाता है, वह अनायास मुक्तिफल प्राप्त कर लेता है। हे द्विजोत्तम! इस क्षेत्र में मृत्यु होने पर मुक्ति पाने का जो उल्लेख कर रहा हूं, इसके प्रति दुर्बुद्धि के कारण कोई संशय नहीं करना चाहिये। आशंका तथा संदेह करने पर कभी-कभी भगवान् कमलाकान्त ऐसे अपराध को सहन नहीं करते।।१६-२१।।

पुरा वः कथितम्विप्र! नैवेद्यस्याऽपमानने।
प्राणान्तिको महामोहो विदुषोऽभून्महागदः॥२२॥
अपरञ्च वदाम्यद्य माहात्म्यंतस्यदुर्लभम्। माघोमासःसुपुण्योवैस्नानात्स्वर्गप्रदायकः॥२३॥
ततोऽपि नर्मदा पुण्या त्रिदिवैरिन्द्रलोकदः।
ततः शतगुणा गोदा रेवा तस्याः शताधिका॥२४॥
सागरो यत्र कुत्राऽपि सहस्रफलदो मतः॥२५॥
यानि तीर्थानि सन्तीह वायुप्रोक्तानि भूतले।
तानि त्रिवेण्यां सन्तीति प्रयागे ब्रह्मभाषितम्॥२६॥
सिताऽसितेतत्रनरःस्नात्वामाघेसुपुण्यके। मकरल्येदिनाधीशोत्रभिर्घस्त्रैर्द्विजोत्तमः!।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दशः॥२७॥
तस्मिन्मासे तु या शुक्ला भवेदेकादशी द्विजः।
तस्यामत्रार्णवे स्नात्वा विधिवद् यतमानसः॥२८॥
देवान्पितॄंस्तर्पयित्वापूजयित्वाजगद्गुरुम्। मण्डलेसिकतामध्येतद्योग्यैरुपचारकैः॥२९॥
माधवप्रीतये दत्त्वा तिलपात्रमनुत्तमम्। एकविंशोत्तरकुलं भविष्यद्भूतमेव च।
अभ्युद्धरति शुद्धात्मा नाऽत्रकार्या विचारणा॥३०॥

हे विप्रप्रवर! भगवान् के नैवेद्य की अवमानना करने पर किसी विद्वान् ब्राह्मण को प्राणान्तकारी महारोग तथा महामोह हो गया था, इस वृत्तान्त को इतिपूर्व कह चुका हूं। अब इनका एक अन्य दुर्लभतम माहात्म्य सुनिये। माघमास अत्यन्त पुण्यप्रद है। इस मास में जलस्नान स्वर्गप्रद होता है। अन्य नदी की तुलना में नर्मदा अधिक पुण्यप्रद हैं। माघ मास में उसमें तीन दिन स्नान कर सकने से इन्द्रलोक प्राप्त होता है। नर्मदा की अपेक्षा गोदावरी १०० गुणित है। उससे रेवानदी और १०० गुणित फलप्रद है। रेवा की अपेक्षा सागर स्नान हजार गुणित फलदायक कहा गया है। यह बात सर्वसम्मत हैं। इस पृथिवी पर वायुदेव द्वारा वर्णित जितने तीर्थ हैं,

वे सभी त्रिवेणी प्रयाग में स्थित हैं। हे द्विजवर! जब दिवाकर मकरराशि में स्थित हों, उस परमपुण्यप्रद सौर माघमासीय दोनों पक्षों में वहां तीन दिन (प्रयाग में) स्नान करने पर मानव चतुर्दश इन्द्र के कालपर्यन्त ब्रह्मलोक में निवास करता है। हे द्विजप्रवर! माघमासीय शुक्ला एकादशी के दिन संयत मन से यथाविधि सागर में स्नानोपरान्त देवता एवं पितरों के उद्देश्य से तर्पण करें। बालुका के ऊपर मण्डल बनाकर उस पर यथायोग्य विहित उपचारों से जगद्गुरु भगवान् की पूजा करें तथा उनकी प्रसन्नता हेतु ब्राह्मण को उत्तम तिल भरा श्रेष्ठ पात्र प्रदान करने से मानव पवित्र होता है तथा उसकी भूतकालीन एवं भविष्यत् कालीन २१-२१ पीढ़ियां तर जाती हैं। इसमें अन्यथा विचार न करें।।२२-३०।।

तत आगत्य वाक्पूतो वटम्पूज्य प्रदक्षिणम्। कृत्वा प्रभोर्जगद्धातुः प्रविशेन्मन्दिरं ततः।।३१।।

शरण्यम्माम्परित्राहि पतितम्भवसागरे।
अव्याजकरुणासिन्धो! दीनबन्धो! नमोऽस्तु ते।।३२।।

मुहुर्मुहुः प्रणम्येत्थं दारुब्रह्मपदान्तिकम्। नत्वा प्रदक्षिणं कृत्वा कुन्दपुष्पैः प्रपूजयेत्।।३३।।

यथाविभवतश्चाऽन्यैरुपचारैः श्रियःपतिम्। वैकुण्ठभवनेस्थित्वाविरिञ्चेरायुषः क्षये।
तेनैव सह तत्रैव लीयते परमात्मनि।।३४।।

तत्पश्चात् वाक्शुद्धि रखकर वहां से आये तथा वटवृक्ष का पूजन करने के अनन्तर उनकी प्रदक्षिणा करके जगदीश्वर प्रभु जगन्नाथदेव के मन्दिर में प्रविष्ट होना चाहिये। इस मन्त्र का उच्चारण करके भगवान् जगन्नाथ को प्रणाम करें एवं प्रदक्षिणा सम्पन्न करें। यथा—"हे दीनबन्धु! आप करुणासिन्धु हैं। आपकी करुणा में कोई कपट नहीं है। हे प्रभो! मैं भवसागर में डूब रहा हूं। मैं शरणागत हूं। आप कृपा करके मेरी रक्षा करिये। आपको प्रणाम!" बारम्बार इस मन्त्र से प्रभु को प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा करने के पश्चात् कुन्दपुष्प आदि विविध उपचारों से उनकी पूजा करनी चाहिये। मानव यह कार्य करके कल्पकाल तक वैकुण्ठधाम में निवास करता है। कल्पावसान होने पर जब ब्रह्मा की आयु समाप्त हो जाती है, तब वह यहीं से ब्रह्मा के साथ परमात्मा में लीन हो जाता है।।३१-३४।।

माघ्यां दत्त्वा माधवाय चन्द्रचूडाऽवचूर्णिताम्।
कुन्दैः प्रग्रथितां मालां विचित्रां गन्धशालिनीम्।।३५।।

नानोपहारसहितां तदग्रे ब्राह्मणाञ्छुचिः। वस्त्रालङ्कारगन्धाद्यैः पूजयित्वा हरेर्धिया।
तत्प्रीतये प्रदेयानि दानानि विविधानि च। कलौ हि सर्वकर्मभ्यो दानमेवप्रशस्यते।।३६।।
विद्वानपि धनैर्हीनो यदि स्याज्जपकीर्तनैः। प्रणमेद्धनवांश्चेत्स्याद्विष्णुर्मे प्रीयतामिति।।३७।।
दद्यादलङ्कृतागावै सुवर्णं तिलपात्रगम्। श्रद्धयादीपमन्नानि वासांसि सुमनःस्त्रजः।।३८।।
कर्पूराऽगुरुकस्तूरी चन्दनंकुङ्कुमंतथा। विष्णोःप्रीतिकरञ्चान्यत्स्वस्य चेष्टंहियद्भवेत्।।३९।।
माघ्यां माधत्क्तोषायब्राह्मणेभ्योनिवेदयेत्। प्रयागे च कुरुक्षेत्रे उपरागे च भास्करे।।४०।।

गोकोटिदानजम्पुण्यं गां दत्त्वाऽलङ्कृतां शुभाम्।
एकां द्विजाऽत्र लभते ततश्चाऽप्यधिकं फलम्।।४१।।

वटसागरयोर्मध्ये क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे॥४२॥
माघ्यां जानीहि यत्किञ्चिद् देयमेतत्समं द्विज!॥४३॥
यः कश्चिद्ब्राह्मणोव्याससमश्चपरिकिर्तितः। अत्राऽपिदुर्लभंयोगंकीर्तयामिनिशामय॥४४॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे सागरस्नानादि माहात्म्यवर्णनंनाम चतु:पञ्चाशोऽध्यायः।।५४।।

—※※※—
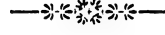
माघीपूर्णिमा के दिन भगवान् माधव को नाना उपहार द्रव्यों के साथ चन्द्रचूड़ नामक विशेष द्रव्य के चूर्ण से मिश्रित सद्गन्धयुक्त मनोहर-कुन्द-पुष्पों से बनी माला अर्पित करके पवित्र हृदय द्वारा भगवान् के सामने ब्राह्मणों में विष्णु भावना के साथ उनको अनेक अलंकार तथा गन्ध आदि दान करें। उनकी इस प्रकार पूजा करके भगवान् की प्रीति हेतु ब्राह्मणों को विविध वस्त्र दान करना भी मनुष्य का कर्त्तव्य है। कलिकाल में समस्त कार्यों की तुलना में दान ही सब कर्म की अपेक्षा सुखप्रद होता है। यदि कोई व्यक्ति एकदम निर्धन हो, तब वह इस दिन जप-नाम कीर्त्तन तथा भगवान् को बारम्बार प्रणाम करे। जो धनवान हो वह ''भगवान् मुझ पर प्रसन्न रहें'' यह भावना रखकर भगवान् के सन्तोष हेतु ब्राह्मण को श्राद्धपूर्वक अलंकृत गौ, स्वर्ण, तिलपात्र, दीप, भोज्य, वस्त्र, पुष्प, माला, कर्पूर, अगुरु, कस्तूरी, चन्दन, कुंकुम एवं विष्णु की प्रसन्नता वाले अन्य द्रव्य, अथवा जो स्वयं को सन्तोषप्रद प्रतीत है, वह वस्तु भगवान् को प्रदान करें। प्रयाग, कुरुक्षेत्र में तथा सूर्यग्रहण के समय करोड़ों गोदान का जो फल मिलता है, वही फल माघीपूर्णिमा के दिन मात्र एक गोदान से प्राप्त हो जाता है। हे द्विजप्रवर! पुरुषोत्तम क्षेत्र में वटवृक्ष तथा सागर के मध्य में एक ही गोदान से भी पूर्ववत् कोटिगोदान फल की प्राप्ति होती है। उक्त क्षेत्र में सभी ब्राह्मण व्यास के ही समान हैं। हे द्विजप्रवर! मैं अब उक्त माघीमूर्णिमा के दुर्लभ योग का वर्णन करता हूं। सुनें।।३५-४४।।

।।चतुःपञ्चाश अध्याय समाप्त।।

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पाषण्डकुलोत्पन्न विष्णुभक्त आख्यान, पिता को तारने वाले पुत्र की प्रशंसा

जैमिनिरुवाच

अस्यामेव गुरोर्वारः शोभनो योग उत्तमः। पितृदेवं यदा ऋक्षं धनिष्ठामूलगोविधुः॥१॥
मीनेधनुषि सिंहेच कुलीरे तिष्ठते गुरुः। महामाघीति नामाऽयंयोगः परमदुर्लभः॥२॥

मुहूर्त्तमात्रं लभते पितृणां मुक्तिदायकः। तत्र श्राद्धं प्रकुर्वीतवाञ्छन्पितृविमोक्षणम्॥३॥
नरकस्थादिवंयान्तिगयाश्राद्धेकृतेसुतैः। स्वर्गस्थाबहुकालं तु प्रीतियुक्तावसन्ति वै॥४॥

महामाघ्यां सुतोगत्वा सिन्धुतीरं समाहितः।
स्नात्वा पितृंस्तर्पयित्वा तिलाम्भोभिर्मुदान्वितः॥५॥
अन्येषाञ्चाऽपि नाम्ना वै दत्त्वा चाऽपि तिलोदकम्।
पितॄन्नयति स्वर्गस्थान्नरकस्थांश्च सर्वशः॥६॥
ब्रह्मणःसदनञ्चान्यान् योगः परमदुर्लभः॥७॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे वत्स! यदि उक्त माघीपूर्णिमा को गुरुवार, शोभनयोग तथा मघा नक्षत्र पड़े तथा चन्द्र धनिष्टा नक्षत्र के मूल में तथा बृहस्पति मीन, धनु, सिंह अथवा कर्क राशि में स्थित हो, तब यह पूर्णिमा ही माघी पूर्णिमा है। यह योग नितान्त दुर्लभ कहा गया है। यदि यह योग एक मुहूर्त्त का भी हो, तब यह पितृगण को मुक्ति देने वाला हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति पितरों की मुक्ति हेतु इस दिन श्राद्ध अवश्य करे। यदि पुत्र इस तिथि पर गया जाकर श्राद्ध करता है, तब नरकस्थ पितरों को स्वर्ग मिलता है, अथवा जो पितर वर्त्तमान में स्वर्ग में ही हैं, वे वहां चिरकाल आनन्दित होकर निवास करते हैं, तथापि यदि माघी पूर्णिमा के दिन पुत्रगण पुरुषोत्तम क्षेत्रस्थ सिन्धुतीर पर जाकर वहां समाहित चित्त से तिलोदक ही अर्पण करते हैं, तब समस्त स्वर्गस्थ किंवा नरकस्थ पितृगण ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं। तभी कहा गया है कि वह योग अत्यन्त दुर्लभ है।।१-७।।

देवेभ्यस्तुवरं लब्ध्वा पवित्रं हि गयाशिरः। तत्क्षेत्रं देवदेवस्य वपुर्भूतं महात्मनः।
यत्र संसर्गमासाद्य क्षेत्रमन्यद्धि पावनम्॥८॥
तत्र श्राद्धं प्रकुर्वाणःशुद्धद्रव्यैस्तुभक्तितः। मोचयेत्पिण्डदानेन देहबन्धात्पितृन्सुतः॥९॥

हे वत्स! देवगण से वर पाकर ही गयाशिर तीर्थ पवित्र हो सका है, तथापि जिस तीर्थ के ससंर्ग के कारण अन्य सभी क्षेत्र मनुष्य को पवित्र कर सकने हेतु सक्षम हो सके हैं, वह है पुरुषोत्तम क्षेत्र। यह तीर्थ महात्मा देवदेव भगवान् का ही देहरूप हैं। इसलिये जो पुत्रगण इस तीर्थ में पितृगण का श्राद्ध विभिन्न द्रव्यों से बने पिण्डदान से करते हैं, उनके पितृगण देहबन्धन से मुक्त हो जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं है।।८-९।।

पितृनुद्दिश्य यो दद्याद्दानानिविविधानिच। दातारंतत्पितृंश्चाऽपिध्रुवंमोचयतेप्रभुः॥१०॥
पितृपाकस्य निष्पत्तिरुक्ता सागरवारिणा। पूजाच पुरुषाख्यस्य भवेच्चकोटिशोगुणः॥११॥
अन्यदा तर्पणं स्नानं पूजनं सागराम्भसा। महामाघ्यान्तुसकलं कर्म्मकुर्यात्तदाम्भसा॥१२॥

गङ्गाम्भःस्नपनं विष्णोः पीत्वा पादोदकञ्च यत्।
लोकोत्तरं लभेत्पुण्यं तत्सिन्धोर्जलपानतः॥१३॥

अश्वमेधावभृथजकोटिस्नानफलन्तु यत्। तस्यां स्नाने कृते सिन्धौ लभतेऽनुग्रहाद्धरेः॥१४॥

स्नात्वा सन्तर्प्य विधिवत् पितृदेवांश्च भक्तितः।
श्राद्धं कृत्वा हविष्यैश्च दत्त्वा दानानि चैव हि॥१५॥

दृष्ट्वा सम्पूज्य विधिवत्साक्षाद् ब्रह्म सनातनम्।
मातुः स्वस्य च भार्यायाः कुलानि च शतं शतम्।
विमोच्य तैरेव समं परे ब्रह्मणि लीयते॥१६॥

जो व्यक्ति पितरों के उद्देश्य से वहां विविध वस्तु का दान करते हैं, प्रभु नारायण वहां उस दाता एवं उसके पितरों को निश्चित रूप से मुक्त कर देते हैं। सागरजल में श्राद्धान्न का पाक करने तथा पूजा करने का फल १०० गुना अधिक होता है। अतएव महामाघी के अतिरिक्त अन्य काल में भी सागरजल से तर्पण, स्नान तथा भगवत् पूजा करें। माघी मूर्णिमा के समय तो समस्त कार्य उससे ही करना चाहिये। गंगाजल पान तथा विष्णु चरणामृत पान से जो अलौकिक सुकृत प्राप्त होता है, सागर जल पान का भी वही फल है। वास्तव में करोड़ों अश्वमेध यज्ञ के अवभृथ स्नान का जो फल है, भगवान् हरि की कृपा से एकमात्र सागर स्नान द्वारा वही पुण्यफल प्राप्त होता है। मानव सिन्धुजल में स्नान करके देवता-पितृगण का यथाविधि तर्पण, हविष्यान्न से पितृगण हेतु विधिवत् श्राद्ध, द्विजगण के कर कमलों में उन दान योग्य द्रव्यों का दान तथा साक्षात् ब्रह्म सनातन जगन्नाथ का दर्शन तथा सविधि पूजन करें। इससे उसके अपने कुल, मातृकुल, श्वशुरकुल की सैकड़ों पीढ़ी संसारसागर से मुक्ति पाकर परब्रह्म में लयीभूत हो जाती है।।१०-१६।।

वंशानां भाग्यसम्पत्त्या तादृशो हि भवेत्सुतः।
श्राद्धं यस्तु महामाघ्यां कुर्यात्श्री (च्छ्री) पुरुषोत्तमे।
श्राद्धं ये कुर्युस्तस्याम्वै यस्तु याति सदा सुतः।
तिर्यग्योनिगतास्तस्य प्रोद्भूताः पादरेणुभिः॥१७॥
नयन्ति गत्वोषित्वाचपितरस्तंमुदान्विताः। पार्श्वतःपृष्ठतश्चाग्रेसमक्षाधः कुलोद्भवाः॥१८॥

जो मनुष्य पुरुषोत्तम क्षेत्र में महामाघी पूर्णिमा काल में श्राद्ध सम्पन्न करता है, ऐसा पुत्र (मनुष्य) तो भाग्यबल से (तीन पीढ़ी के भाग्य से) जन्म लेता है। उक्त तिथि के दिन पुरुषोत्तम क्षेत्र में जो श्राद्ध करते हैं, वे धन्य हैं। यहां तक कि जो पुत्र श्राद्धार्थ उक्त क्षेत्र में चले जाते हैं, उसके तिर्यक योनि को प्राप्त पितर भी उस व्यक्ति की चरण धूलि द्वारा ही आत्मोन्नति लाभ करते हैं तथा जो पितर नीचयोनि में उत्पन्न हो गये हैं, वे आनंदित होकर उसके सामने,. पीछे तथा बगल में स्थित होकर उसे पुरुषोत्तम क्षेत्र ले जाते हैं।।१७-१८।।

आब्रह्मणो ये हि कुलत्रये च प्रयान्ति तस्मिन्पुरुषोतमाख्ये।
सुदुर्लभे वर्षसहस्त्रके च देवर्षिसेव्ये च सुयोग उत्तमे॥१९॥
स कालोदुर्लभेलोकेनाऽल्पपुण्यैरवाप्यते। वित्तशाठ्यं न कुर्वीतप्राप्यतंयोगमुत्तमम्॥२०॥
विनश्वरं शरीरञ्चवित्तञ्चाऽपिशरीरिणाम्। यद्दत्त्वा ब्राह्मणकरेधनंकोटिगुणम्भवेत्॥२१॥
कामादकामतश्चाऽपिमोक्षंतत्रलभेद्ध्रुवम्। ज्ञानादपिभवेन्मुक्तिरितिवेदान्तगीःश्रुतिः॥२२॥
तत्रमन्त्राःप्रजप्तास्तुसुसिद्धास्युर्नृणांध्रुवम्। प्रीणितस्तुजगन्नाथःसर्वकामप्रदस्तदा॥२३॥
किमत्रबहुनोक्तेन कृतकृत्यो भवेन्नरः। दुश्चिकित्स्यमहाव्याधिविमुक्तःस्नानतोभवेत्॥२४॥

तभी कहता हूं कि ब्रह्मा से लेकर त्रिकुल तक जितने पुत्र हैं, वे हजारों वर्ष में प्राप्त इस सुदुर्लभ परम

योग के उपलक्ष्य में देवर्षिगण क्षेत्र में जायें। ऐसे पुत्र ही यथार्थ पुत्र हैं। हे द्विजवर! उक्त महायोगरूपी पुण्यकाल में जगत् अतीव दुर्लभ है। अल्प पुण्य वाले मानव कभी उसे प्राप्त नहीं कर सकते। अतएव यह अत्युत्तम योग प्राप्त होने पर कभी भी कंजूसी नहीं करना चाहिये। क्योंकि देहधारी गण का धन तथा शरीर नश्वर है, तथापि यदि इनको ब्राह्मण के हाथों में अर्पित किया जाये, तब वह धन कोटिगुणित हो जाता है। मनुष्य सकामरूपेण अथवा निष्कामरूपेण उस समय जो कुछ भी दान देता है, उससे उसे निश्चित रूप से मोक्ष लाभ होता है। इसके अतिरिक्त उसे तत्वज्ञानलाभ भी होता है। उसे जो मुक्ति मिलती है, वह तो वेदान्त शास्त्र में भी निश्चित है। वहां उस समय मनुष्य जिस किसी भी मन्त्र का जप करता है, उसी मन्त्र से उसे सम्यक् सिद्धिलाभ होता है। इसमें संशय नहीं है। भगवान् जगन्नाथ स्वयं प्रसन्न होकर उस जपकारी की समस्त कामनाओं को सिद्ध कर देते हैं। इस विषय में अधिक क्या कहा जाये, उस समय मानव वहां किसी भी सदाचरण द्वारा कृतार्थ हो जाता है। यहां तक कि अत्यन्त भयानक तथा चिकित्सा से भी शान्त न होने वाले रोग से मात्र सिन्धुजल में इस तिथि को स्नान करके मुक्त हो जाता है।।१९-२४।।

महापापैर्विमुक्तःस्याद् बुद्धिपूर्वकृते द्विज!। किम्पुनःक्षुद्रपापैस्तुकालःखलुसुदुर्लभः।।२५।।
प्रज्वलन्तंवह्निराशिं यथाप्रात्यातिदह्यते। तुलामाघकमेवं हि पापराशिस्त्रिधौतकः।।२६।।
तस्यांस्नात्वा सिन्धुजले दह्यतेतत्क्षणादपि। महामाघ्यांमहाक्षेत्रे महापुरुपदक्षिणे।।२७।।
महार्णवे नृणां स्नानं महापातकनाशनम्। कथितं श्रुतपूर्वन्ते दृष्टपूर्वं वदामि ते।।२८।।
पाषण्डानां कुलेकश्चिदासीद्धार्मिक उत्तमः। धर्मशास्त्रार्थकुशलो विष्णुभक्तोदृढव्रतः।।२९।।
तत्पूर्वे तस्यकुलजाः पाषण्डानरकौकसः। तिर्यग्योनिगतायेच ते सर्वे वृन्दशोगताः।।३०।।
विज्ञापयामासुरित्थंपुत्रकाऽस्मान्समुद्धर। गयायांपिण्डदानेन वयमत्यन्तदुःखिताः।।३१।।
महामोहवशाद्येन विमुखा वयमीदृशाः। परं पराणां परमं नार्च्चयामस्तमोभयाः।।३२।।
धर्म्ममार्गे प्रवृत्तानां कुर्वाणश्च प्रतिक्रियाम्।
न जानीमो दुःखराशेः केन स्यात्संक्षयो भवेत्।।३३।।

और यदि वह इस अभिज्ञता के साथ स्नान करता है कि "इससे निश्चय ही मेरे सभी पाप नष्ट होंगे" तब सामान्य पाप की तो बात ही क्या, वह महापातकों से भी मुक्त हो जाता है। अतः यह योग अत्यन्त दुर्लभ है। हे वत्स! त्रिविध पातकों की तो बात ही क्या? महामाघी योग में सागर जल में अवगाहन करते ही तत्क्षण सभी पातक ऐसे नष्ट होते हैं, जैसे रुई का ढेर अग्नि में नष्ट हो जाता है। इस महाक्षेत्र में महामाघी योगकाल में महापुरुष से दक्षिणस्थ महासमुद्र में स्नान मनुष्यों के सर्वविध महापातक का संहारक है, यह मैंने पहले भी कहा है। इसे आपने भी सुना है। अब इस विषय में पूर्वकाल में देखी गयी एक घटना सुनें। पूर्व में कतिपय पाषण्डीगण के कुल में धर्मशास्त्रकुशल विष्णुभक्त दृढ़व्रत साधुशील एक धार्मिक का जन्म हुआ। एक बार नरकवासी तथा तिर्यक्योनिगत उसके पूर्व पुरुष दलबद्ध होकर उसके समक्ष आकर कहने लगे—"हे स्नेहास्पद पुत्र! हम अभूतपूर्व दुःख भोग कर रहे हैं। तुम गया में पिण्डदान द्वारा हमारा उद्धार करो। हम महामोह के कारण सदाचार रहित होकर इस प्रकार दुःखद अवस्था में हो गये हैं तथा तमोगुण पूर्ण होकर परात्पर परमेश्वर की

हमने कभी अर्चना नहीं किया। उलटे हमने धर्ममार्ग में प्रवृत्त साधुओं के धर्माचरण में प्रभूत विघ्न उत्पन्न किया था। यह अब हम नहीं जानते कि इस संसार सागर में कैसे हमारी असीम दुःखराशि का क्षय हो सकेगा? हे वत्स! हमने मात्र यही सुना था कि पुत्र गयाधाम में श्राद्ध करके नरकवासी एवं तिर्यक् योनि प्राप्त पूर्व पुरुषों का उद्धार करता है।।२५-३३।।

केवलं शुश्रुवामो वै गयाश्राद्धं कृतं सुतैः। उद्धारयतिवश्यांस्तु तिर्यञ्चोनरकौकसः।।३४।।
तेषां तद्वचनंश्रुत्वा स गत्वाशास्त्रवित्तमः। विधिनाभक्तियुक्तेन गयायांशुचिभिर्धनैः।।३५।।
नानाविधानि श्राद्धानि चकाराऽङ्ग मुदान्वितः।
ततस्ते नास्तिकी वंयास्तथैवाऽतिप्रमोहिताः।।३६।।
निमग्ना दुःखजलधौ प्रेतास्तियर्ग्गतास्तथा। परिवार्यपुनः पुत्रमूचूर्वंशत्रयोद्भवाः।।३७।।
पुत्रक! श्राद्धमस्माकमुद्धारायकृतं मुहुः। सद्वृत्तेन त्वया शास्त्रमार्गतः सत्यमेव तत्।।३८।।
किमेतच्छ्राद्धमस्कामंदर्शनायाऽपिनाभवत्। सुभृशंताड्यमानानां लौहदण्डैःसमन्ततः।।३९।।
दृश्यन्ते पितरोऽन्येषां श्राद्धदानाद् गयाशिरे। विमानवरमारुह्य दिव्यलोकं प्रयान्ति ते।।४०।।
समीपतोऽस्माकमेव दिव्यस्त्रग्गन्धभूषणाः। नाऽस्माकंहीयते पापं कृतैःश्राद्धशतैरपि।।४१।।

पाखण्डकुल-सम्भूत शास्त्रवित्तम वह ब्राह्मण पूर्वपुरुषों का यह वाक्य सुनकर गया क्षेत्र गया तथा वहां सानन्दचित्त भक्ति के साथ न्याय से प्राप्त पवित्र धन द्वारा एक वर्ष तक वह विधिविधान से नाना प्रकार का श्राद्ध तो किया, लेकिन तब भी दुःखार्णव में निमग्न अत्यन्त मोहाविष्ट तथा नास्तिक त्रिकुलोत्पन्न लेकिन अब तिर्यक्योनि प्राप्त उसके पूर्वपुरुषों ने पुनः उस ब्राह्मण को घेर कर कहा—"हे पुत्र! तुम सद्वृत्त हो। तुमने हमारे उद्धारार्थ शास्त्रमार्गानुसार गयाधाम में पुनः-पुनः श्राद्ध तो किया यह सत्य है। किन्तु हम उस समय यमदूतों के लौहदण्ड से ताड़ित हो रहे थे, परन्तु श्राद्ध का दर्शन नहीं कर सके। हम यह सदैव देखते हैं कि गयाशिर में पिण्ड प्राप्त करके अन्य पितृगण कैसे-कैसे उत्तम विमान पर बैठकर दिव्यलोक जाते हैं। वे हमारे सामने ही अत्यद्भुत सौरभान्वित दिव्य माला से भूषित हो गये, लेकिन तुम्हारे पिण्डप्रदान करने से हमारा तनिक भी पापक्षय नहीं हो रहा है। हम धर्मशास्त्र बहिष्कृत होने के कारण यह नहीं जान पाते कि किस प्रकार से हमारे दुःख का अवसान होगा।।३४-४१।।

वयमेतन्न जानीमो धर्मशास्त्रबहिष्कृतान्। कथम्वादुःखविलयोभवियतिचनोध्रुवम्।।४२।।
त्वमस्माकं कुलेजातो वारिधेरिवचन्द्रमाः। त्वां विना गतिरस्माकंदृश्यतेनहिपुत्रक।।४३।।
दुःखार्णवनिमग्नानांपारं नेतुं त्वमेव नः। येन शक्तोविचार्यैतत्कुरुष्वाऽऽशुद्विजोत्तम्।।४४।।
पुत्र एको विक्रियते वंश्यानामुद्धृतौनृणाम्। पुत्रस्यैवाऽपचारेणनरकेऽपिपतन्तिते।।४५।।
तादृशो गुणवान्पुत्रः कुलेयेषां समुद्गतः। ईदृग्दुःखार्णवेतेषांमुत्प्लुतिर्जायतेकथम्।।४६।।

हे पुत्रक! क्षीरसागर से उत्पन्न चन्द्रमा के समान तुम हमारे कुल में उत्पन्न हुये हो। तुम्हारे बिना हमारी कोई भी गति नहीं है। हे द्विजोत्तम! जैसे भी तुम हम दुःखार्णव निमग्न लोगों को इस दुःख सागर से पार कर सको, स्वयं ही उस उपाय का विचार करके तदनुरूप कार्य करो। एकमात्र पुत्र ही अपने वंश के पूर्वपुरुषगण

का उद्धार कर पाता है। साथ ही पुत्र के अन्यायाचार (पाप) के कारण पूर्वपुरुषगण नरक प्राप्त करते हैं। हे पुत्र! जिसके वंश में तुम्हारे समान गुणवान् पुत्र का जन्म होता है, वह क्यों ऐसे दुःखसागर में निमग्न हो रहा है? यह तो सभी जानते हैं कि जिन सब पापों द्वारा विषम नरक यातना का भोग करना पड़ता है, उन सबमें केवल सत्पुत्र ही दिव्यगति दे सकता है। यह निःसंदिग्ध बात है।।४२-४६।।

सर्वे दुष्कृतकर्म्माणो यातना सुस्थिताश्च ये।
सत्पुत्रेण गतिं यान्ति दिव्यां ते नाऽत्र संशयः।।४७।।
इति दीनार्त्तवचनं पुत्र आकर्णयंस्तदा।
न प्रत्युवाच पापिष्ठवंश्यान्वैस द्विजोत्तमः।।४८।।
केवलंचिन्तयामासदोलाचलितचेतसा। शास्त्रंप्रमाणंमर्त्यानां कृत्याकृत्यव्यवस्थितौ।।४९।।
तच्छास्त्रप्रस्थितो नित्यं वैपरीत्यं कथम्व्रजेत्।
भवन्त एव पापिष्ठा वंश्या एते ममाऽधुना।।५०।।
गयाश्राद्धंसर्वपापनोदनं शास्त्रचोदितम्। यथाविधिकृतं श्राद्धं शतं नैतेविमोचिताः।।५१।।

उस समय वह ब्राह्मण पुत्र उन पापी पूर्वजों (पितरों) की करुणापूर्ण कातर उक्ति सुनकर उनको कोई प्रत्युत्तर नहीं दे सका, केवल झूले के समान दोलायमान चित्त से यह चिन्तन करने लगा कि "मानवगण के कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य के सम्बन्ध में तो शास्त्र ही प्रमाण है। अतएव जो व्यक्ति सतत् शास्त्रोक्त कार्य करता है, उसे विपरीत फल क्यों मिल रहा है? भले ही मेरे ये पूर्वज अत्यन्त पापी हों, तथापि शास्त्रों का तो वचन है कि गया श्राद्ध द्वारा सर्वपापनाश होता है। अतएव जब मैंने यथाविधान १०० श्राद्ध गया में किये हैं, तब भी ये लोग मुक्त क्यों नहीं हो गये? कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य के सम्बन्ध में तो शास्त्र ही प्रमाणरूप हैं। यह सब महावाक्य तो साक्षात् भगवान् के ही मुखकमल से निर्गत है।"।।४७-५१।।

शास्त्रं प्रमाणं सर्वेषां कृत्याकृत्यविधौसदा। इतिसाक्षाद्भगवतोमुखपद्माद्विनिर्गतम्।।५२।।
एवं चिन्ताकुलमतेर्वाणीव्योमसमुद्भवा। अशरीरा जगादोच्चैस्तन्वानासंायच्छिदा।।५३।।
ब्रह्मन्! सत्यं गयाश्राद्धं सर्वकल्मषनाशनम्। पितृणां दुर्गतिहरं ब्रह्मलोकगतिप्रदम्।।५४।।
न ते सामान्यपापानांश्रुतिविद्रावकाःसदा। अवजानन्तिसततमन्तर्यामिणमीश्वरम्।।५५।।
गयाश्राद्धैर्नकुशला एते श्रुतिबहिर्गताः। तेषां सन्ततिजातोऽसिनचवेदफलं लभेत्।।५६।।
ब्रह्मण्यमुज्ज्वलप्राप्तमुद्धर्त्तुं वंशजान्स्वकान्।
यदि वाच्छाऽसि भो विप्र! शृणु तत्त्वं रहस्यकम्।।५७।।
पाषण्डानां समुद्धारः अविद्याविलयं तथा।
उभयं सदृशं विद्धि तयोः कारणमुच्यते।।५८।।
आत्मसाक्षात्कृतिर्वास्यात्क्षेत्रेश्रीपुरुषोत्तमे। महामाघ्यांपिण्डदानंलवणोदतटेऽथवा।।५९।।
कदाचिदपि पापानामात्मसाक्षात्कतिर्मवेत्। तद्वंशदीपतत्रैव श्राद्धं कुरुमहामते!।।६०।।

द्रक्ष्यसि स्वदृशा तत्र मुक्तानां परमां गतिम्॥६१॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तग्रतोत्कल-
खण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादे पाखण्डकुलजातस्यकस्यचिद्विष्णु-
भक्तस्यारव्यानवर्णनंनाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५५।।

जब इस प्रकार से उस द्विजप्रवर का मन चिन्ताकुल हो उठा, तभी नाना संशयों का नाश करने वाली अशरीरी दैववाणी ने उच्चस्वर में ब्राह्मण से कहा—"ब्रह्मन्! तुम्हारा विचार उचित तो है कि गया में श्राद्ध करने से पितरों का सभी पाप तथा उनकी दुर्गति दूर हो जाती है तथा वे ब्रह्मलोक गमन करते हैं, तथापि तुम्हारे पूर्वपुरुषगण साधारण व्यक्ति जैसे सामान्य पापी नहीं हैं। वे वेदद्रोही हैं तथा उन्होंने सदा सतत् अन्तर्यामी परमात्मा की अवज्ञा किया है। ये वेद के विरुद्ध आचरण करने वाले थे। इसलिये अनेक गया श्राद्धों से भी इनका मंगल नहीं होगा। तुम भी इनके वंशोत्पन्न होने के कारण वेदोक्त फल प्राप्त नहीं कर सकोगे। जो भी हो, हे विप्र! जब तुमको समुज्वल ब्रह्मतेज मिला है, यदि तुमको अपने पूर्वपुरुषगण का उद्धार करने की कामना है, तब यह गूढ़ तत्व श्रवण करो। इन पाषण्डीगण के उद्धार साधन तथा अविद्या नाशार्थ को समान कार्य ही समझो। मनीषीगण आत्म साक्षात्कार अथवा पुरुषोत्तम क्षेत्र के लवण समुद्रतट पर महामाघी के दिन पिण्डदान को दोनों अर्थात् उद्धार तथा अविद्यानाश का कारण मानते हैं। इनमें से पापीगण के लिये आत्मसाक्षात्कार तो कदाचित् ही संभव है! अतः हे महामति पाषण्डकुल के दीपक! तुम महामाघी के दिन श्रीक्षेत्र जाकर वहां पिण्डदान करो। तब तुम स्वयं देखोगे कि तुम्हारे पूर्वज पापमुक्त होकर परमगति प्राप्त कर गये।।५२-६१।।

।।पञ्चपञ्चाश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शास्त्रविधि से श्राद्धकृत्य वर्णन

जैमिनिरुवाच

श्रुत्वेत्थमाकाशगिरं परमं हर्षमास्थितः। महामाध्यांसमीपायांजगामक्षेत्रमुत्तमम्।।१।।
पर्यन्तभूमौ क्षेत्रस्य प्रविशन्ददृशे स्वकान्। शुद्धसत्त्वान् शुभ्रवर्णान् निर्म्मलाम्बरधारिणः।।२।।
वैदिकज्ञानसांशुद्धवचसः क्षीणकल्मषान्। तमनुव्रजतः साक्षाद्हृष्यतश्च परस्परम्।
रुवतः साधुपुत्र! त्वं ध्रुवं नस्तारयिष्यसि।।३।।
साधुव्यवसितंतात! यदत्राऽऽगच्छसिक्षितेः। पावनंपरमंस्थानंनिष्प्रत्यूहविमुक्तिदम्।।४।।

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे द्विजप्रवर! ऐसी आकाशवाणी सुनकर वह ब्राह्मण अत्यन्त हर्षित हो गया। तदनन्तर महामाघी तिथि आने का समय समीप होने पर सर्वोत्तम पुरुषोत्तम तीर्थ पहुंचने के संकल्प के साथ ब्राह्मण ने यात्रा किया। क्या आश्चर्य का विषय था! जैसे ही ब्राह्मण ने श्रीक्षेत्र की सीमा में प्रवेश किया, तभी देखा कि उसके पूर्वज पापक्षय हो जाने के कारण पवित्र देहप्रभा से सम्पन्न, शुद्ध सत्वगुण से युक्त तथा निर्मल वस्त्रधारी होकर आनन्दचित्त होकर उसके पीछे-पीछे आ रहे हैं। वे वैदिक ज्ञानोदय हो जाने के कारण विशुद्ध वाणी बोल रहे हैं। "हे पुत्र! साधु, साधु! तुम निश्चित रूप से हमारा उद्धार करोगे। हे तात! जो ज्ञान विघ्नरहित रूप से मनुष्यों को मुक्ति प्रदान करता है तथा जो पृथिवी पर परम पवित्र करने वाला है, तुमने उस श्रीक्षेत्र में आगमन किया है। यह तुम्हारा अत्यन्त प्रशंसनीय प्रयास है।"।।१-४।।

सन्निधावागतानां न तमः सङ्क्षीयतेऽधुना। उद्यतो भास्करस्येव महेन्द्रककुभो भृशम्।।५।।
सद्विजस्तागिरःश्रुत्वावंश्यानांविमलात्मनाम्। विस्मयं परमं लेभेक्षेत्रस्यमहिमप्रति।।६।।
स्वगणेयगणाकीर्णा क्षेत्रमार्गमवाप्य तत्। चतुर्म्मुखविनिष्क्रान्तलोकं विधिंविधानवित्।।७।।
सत्यमेवाह यद्वाणी विद्या साऽऽकाशभाषिता।
कथं मिथ्या वदेयुस्ते लोकानुग्राहकाः सुराः। सर्वेषां कर्म्मणां पाकं विदन्तस्तत्त्वदर्शिनः।।८।।
अहोमेजन्मने भाग्यं पाषाण्डकुलसन्ततेः। उद्धारणसमर्थोऽहमेतेषामपि योऽभवम्।।९।।
गयाश्राद्धैर्बहुकृतैः कुयोनिगतयो जनाः। विशुद्धमतयस्ते मां भाषन्ते भास्करत्विषः।।१०।।
दिव्यदेहोऽहमप्यासं यदेते मोचिता मया।।११।।

"जैसे सूर्यदेव के उदय होते ही पूर्वदिकस्थ अन्धकार तिरोहित हो जाता है, उसी प्रकार श्रीक्षेत्र के समीप आते ही हममें व्याप्त निरतिशय अज्ञानान्धकार क्षयीभूत हो गया।" विधि-विज्ञानज्ञ उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने अपने मृत ज्ञातिगण तथा ब्रह्मा द्वारा प्रेरित दूतों से परिपूर्ण श्रीक्षेत्र में उपस्थित होकर अपने पूर्वपुरुषों की ऐसी वचनावली सुना क्योंकि उसके पूर्वपुरुष इस क्षेत्र के प्रभाव से विमलात्मा हो गये थे। तब ब्राह्मण ने विचार किया कि देवताओं की आकाशवाणी ने सत्य ही कहा था। जब देवता मनुष्य के प्रति कृपा करते हैं तथा वे तत्वज्ञ एवं अखिल कर्म के परिणामरूप फल को जानते हैं, तब वे क्यों मिथ्या वचन कहेंगें? जो भी हो, मैं इन अपने नरकगामी पूर्वजों के उद्धार कार्य में समर्थ हो गया। मैंने इस पाखण्ड कुल में भले ही जन्म लिया हो, तथापि आज तो मैं सौभाग्यवान् हो गया! क्या आश्चर्य है! गयाक्षेत्र में अनेक श्राद्ध करने पर भी जो लोग कुत्सित योनि में स्थित थे, आज वे सभी श्रीक्षेत्र के माहात्म्य के कारण विशुद्धमति तथा सूर्यवत् तेजपुंज शरीर पाकर मेरी प्रशंसा कर रहे हैं। अहो! जब मेरे प्रयास से ये मुक्त हो गये तथा मैं भी दिव्यदेह हो गया, तब अन्य संशय के लिये कोई स्थान ही नहीं है।।५-११।।

चिन्तयन्नितितैःसार्द्धंजनसम्बाधवर्त्मनि। शनैःशनैःर्दुःखदुःखांतीर्थराजस्यसन्निधिम्।
गत्वा स्नानम्विधानेन शास्त्रीयेण चकार सः।।१२।।
विधिवत्तर्पयित्वाऽथदेवानपि गणांस्तथा। श्राद्धंचक्रेमहाभक्त्यासमृद्धविधिनाद्विजः।।१३।।
श्राद्धावसाने देवेशं यावद्ध्यायति निश्चलम्। तावद्दिव्यविमानानिज्वलद्रत्नगणानिवै ।।१४।।

चन्द्रसूर्यप्रकाशानि कामगानिनभोऽङ्गणे। विद्याधरैरप्सरोभिःपुष्पकैः वृष्टिप्रकीर्णकैः॥१५॥
समन्ताद्वेष्टितान्यस्यदृष्टिर्विषयामययुः। स्वर्णकिङ्किणिनादैश्चवीणाक्वाणैर्मनोहरैः॥१६॥
सञ्ज्ञातध्यानभङ्गोऽसौ पुनस्तानि ददर्श ह॥१७॥

वह श्रेष्ठ ब्राह्मण एवंविध विचार करते-करते जनसंकुल श्रीक्षेत्र पथ पर पूर्वपुरुषों के साथ धीरभाव तथा अत्यन्त श्रमपूर्ण क्लेश के साथ जाते-जाते क्रमशः तीर्थराज के निकट पहुंचा, जहां उसने शास्त्र विधि से स्नान किया। तत्पश्चात् देवता एवं पितरों के उद्देश्य से तर्पण के पश्चात् महान् समारोह से श्राद्ध किया। श्राद्ध के उपरान्त वह जैसे देवदेव जगन्नाथ का निश्चलरूपेण ध्यान कर रहा था तभी आकाश में समुज्वल रत्नकान्ति विराजित, चन्द्रसूर्यवत्, काम वेगात्मक (इच्छानुरूप चलने वाला) दिव्य विमान माला उसने देखा। अप्सरायें तथा सिद्धगण एवं विद्याधरगण उस विमान माला को चतुर्दिक् घेरकर पुष्प वर्षण कर रहे थे तथा विमान में लगी स्वर्णमय छोटी-छोटी घन्टियां सुमधुर शब्द कर रहीं थी। चतुर्दिक् वीणावादन ध्वनि भी श्रुतिगोचर हो रही थी। अन्तर में यह देखकर उस ब्राह्मणप्रवर का ध्यानभंग हो गया। तब वह आखें खोलकर देखता है कि वही दृश्य वाहर भी है।।१२-१७।।

देवदूताः समागत्य सादरम्प्रणिपत्य च।
संस्तूय वाग्भिर्दिव्याभिस्तान् पितृंस्तस्य पश्यतः॥१८॥
ब्रह्मणोवचनाद्यूयं तस्यलोकं प्रयास्यथ। अहो! हन्तविमानानि ब्रह्मलोकागतानि वै॥१९॥
धन्येनाऽनेनवंश्येन विष्णुभक्तिपरेणच। महारौरवयोग्यानां युष्माकं तारणं कृतम्॥२०॥
पाखण्डानां न निर्म्मोक्षं संसाराध्वप्रवर्त्तिनाम्। प्रवर्त्तितानां मोहेन अविद्यामूलसूनुना॥२१॥

तत्पश्चात् अनेक देवदूत उन ब्राह्मणश्रेष्ठ के पास आये तथा उन पितृगण को सादर प्रणाम करने के पश्चात् दिव्य वचनों से उनकी स्तुति करके कहा—"आप लोगों के सौभाग्य से ब्रह्मदेव के वचनानुसार आप लोग ब्रह्मलोक चलें। इसीलिये ये विमान ब्रह्मलोक से आये हैं। आप महारौरव नरक के योग्य थे, तथापि विष्णुभक्ति परायण सार्थकजन्मा इस वंशधर पुत्र ने आप लोगों को नरक से छुटकारा दिलाया है। अन्यथा अविद्या के प्रधान पुत्र मोह द्वारा परिचालित संसारमार्ग में प्रवृत्त पाषण्डियों का कोई अन्य मार्ग ही नहीं है, जिससे उनको छुटकारा मिल सके—"।।१८-२१।।

यद्यस्मिन् पावके क्षेत्रे न श्राद्धंवंशजैःकृतम्। तदानमोक्षोभवतिपापिष्ठानां हिशौनक!॥२२॥
महामाघीमहायोगो विष्णुना प्रभविष्णुना। प्रवर्त्तितः पापकृतामद्धारायदयालुना॥२३॥
स्वरूपतोहिभगवानिन्द्रद्युम्नेन भावितः। महाक्रतोर्महादीक्षा महादुःखवती तदा॥२४॥
बहुवित्तव्ययायासबहुकालप्रसाधनम्। वाजिमेधसहस्त्रं हि नाल्पभाग्यस्यजायते॥२५॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—हे शौनक! यह निश्चय जानें कि यदि वंशधर लोग इस परमपावन पुरुषोत्तम क्षेत्र में श्राद्ध नहीं करते, तब पापीगण को किसी भी प्रकार से मुक्ति नहीं मिलेगी। सर्वनियन्ता दयालु विष्णु ने पापी लोगों के उद्धार के लिये उक्त महामाघीरूपी महायोग की सृष्टि किया है। पूर्व में नृपप्रवर इन्द्रद्युम्न ने भगवान् जगन्नाथ देव की भावना स्वरूपतः किया था। तब उन्होंने परम क्लेशसाध्य महायज्ञ की दीक्षा ग्रहण

किया। वास्तव में भगवान् के अनुग्रह के अभाव में अनेक वित्त व्यय, अनेक प्रयास तथा दीर्घकालसाध्य सहस्र अश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठान को अल्पभाग्य मानव कदापि सम्पन्न नहीं कर सकते।।२२-२५।।

भगवदनुग्रहमृते इन्द्रद्युम्ननृपस्य च। न दृष्टं नश्रुतंक्वाऽपिशक्रस्याऽपि सुदर्लभम्।।२६।।
ततोऽपिभगवानेषनिरुपाधिकृपाम्बुधिः। दीनानुग्रहकृद्देवो वात्सल्याम्बुधिचन्द्रमाः।।२७।।
सव्वकर्म्मादारणोऽसौदारुरूपी प्रकाशितः। तेनैव रूपेणवरानिन्द्रद्युम्नाय दत्तवान्।।२८।।
तत्क्षेत्रमपितद्देहं नात्रभिन्द्यान्मतिस्तव। रहस्यमेतत्कथितं मुक्तेः साधनमुत्तमम्।।२९।।

श्रवणादि चतुष्कं हि यथा मोक्षस्य साधनम्।
तथा चतुष्कमध्येऽस्मिन्क्षेत्रे प्राणविमोचनम्।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुद्धृत्य भुज्यमुक्ष्यते।।३०।।
तत्त्वसाक्षात्कृतेस्तत्र क्षेत्रे प्राणवियोजनात्।
ऋते न मोक्षो जन्तूनां द्वयमेवाऽपवर्गदम्।।३१।।

महामाध्यां महायोगे श्राद्धं पितृविमुक्तिदम्। तत्र त्रयंदुर्लभं हिसंसारेशौनक! ध्रुवम्।।३२।।
अर्द्धोदयादयो योगा ये पूर्व्वं प्रतिपादिताः। शतांशमपि तेनार्हा माघीयोगस्य शौनक!।।३३।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तग्रतोत्कलखण्डे पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्ये जैमिनिऋषिसम्वादेश्राद्धानुष्ठानस्याऽवश्यर्त्तव्यताकीर्त्तनं नामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५६।।

जिस प्रकार से इन्द्रद्युम्न का अश्वमेधानुष्ठान सुसम्पन्न हो सका, किसी ने कभी ऐसा होते न तो देखा था, न सुना था। यह तो इन्द्र के लिये भी अतीव कठिन था। उक्त यज्ञफल से वात्सल्यरूप सागर के चन्द्रस्वरूप, दीनों के प्रति अनुग्रहकर्त्ता, निरुपाधि कृपामय, सर्वकर्म नियन्ता भगवान् जगन्नाथदेव प्रकाशित हो गये तथा उन्होंने दारुमूर्त्ति ग्रहण करके इन्द्रद्युम्न को नाना वर प्रदान किया था। हे वत्स! भगवान् का यह क्षेत्र भी उनका ही स्वरूप है। इसमें तुम्हारे मन में कोई मतभेद नहीं होना चाहिये। मेरे द्वारा कहा गया जो यह मुक्तिलाभ का सर्वोत्तम उपाय है, यह अतीव रहस्यात्मक है। मैं भुजा उठाकर तीन बार सत्य-सत्य-सत्य कहकर यह कहता हूं कि जैसे आत्मा के सम्बन्ध में श्रवण आदि जो चार मोक्षसाधन हैं, उक्त पुरुषोत्तम क्षेत्र में पुरुषोत्तम क्षेत्रस्थ मत्स्यावतारादि चतुष्टय में प्राण त्याग से भी वही मोक्ष साधन हो जाता है। तत्वसाक्षात्कार तथा पुरुषोत्तम क्षेत्र में प्राण त्याग के अतिरिक्त किसी प्रकार से भी मोक्ष नहीं मिलता। महामाघी के महायोग में वहां सम्पन्न श्राद्ध पितरों के लिये मुक्तिप्रद है। अतः संसार में ये तीन अवसर अत्यन्त दुर्लभ हैं। हे शौनक! किम्बहुना, पूर्व में अर्द्धोदयादि जो सब प्रसंग कहे गये हैं, वे सब यहां उल्लिखित महामाघी योग के $\frac{१}{१००}$ इतने भी नहीं हैं।।२६-३३।

।।षट्पञ्चाश अध्याय समाप्त।।

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अर्द्धोदययोग माहात्म्य

जैमिनिरुवाच

अतः परंप्रवक्ष्यामिरहस्यंपरमाद्भुतम्। एतेहियोगाःकथिताःपापिष्ठाऽऽश्वासकारकाः॥१॥
दुःखेन चिरलब्धं यत्तीर्थम्वा योगएववा। तदेव ते हि मन्यन्ते पापिष्ठाःपापनाशकम्॥२॥
प्रवर्त्तकःसंसृतेस्तेनमोच्यन्तेहिविष्णुना। धार्म्मिकानांहिविश्वासस्तत्क्षेत्रेनित्यमेवहि॥३॥
अष्टौशतानिवर्षाणिकामभोगेषुलालसः। कण्डूर्नाममुनिः पूर्वं मोहितः स्वर्गवेश्यया॥४॥
द्विजकर्म्मणिसन्त्यज्य तयारेमे दिवानिशम्। पश्चात्तापमुपागम्यतदेव क्षेत्रमुत्तमम्॥५॥
गत्वा समाराध्य जगत्पतिं दारुस्वरूपिणम्।
निर्व्विण्णमानसः स्तुत्वा पराङ्गतिमुपागतः॥६॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—तदनन्तर परमाद्भुत् रहस्य कहता हूं, उसे श्रवण करिये। यह जो अर्द्धोदय योग कहा गया है, यह सत्य हैं कि वह पापियों के लिये आश्वासप्रद है, तथापि जो पापी हैं, उनके लिये जो योग अथवा तीर्थ दीर्घकाल में प्राप्त होने वाला अथवा दुःसाध्य है, वही पापनाशक कहा जाता है। उन सब संसारप्रवर्त्तक पापियों को भगवान् विष्णु कभी भी मुक्त नहीं करते, तथापि धार्मिकों के लिये पुरुषोत्तम क्षेत्र में विश्वास चिरस्थायी होता है। पूर्वकाल में कण्डु ऋषि किसी स्वर्ग रमणी के प्रति आसक्त हो गये तथा उन्होंने ८०० वर्ष पर्यन्त उसके साथ भोग किया। वे ऋषि द्विजजन के लिये विहित क्रियाकलाप को त्याग कर रात-दिन उस अप्सरा के साथ रमणरत थे। तदनन्तर एक दिन वे मन ही मन अनुतप्त हो गये तथा आत्मग्लानि के कारण वे सर्वोत्तम क्षेत्र आये तथा वहां पर दारुरूपी जगत्पति जगन्नाथदेव की आराधना तथा स्तुति करके उन्होंने परमगति प्राप्त किया।।१-६।।

स्कन्दःपुरा महादेवं पप्रच्छ विनयान्वितः। पुरुषोत्तमस्यक्षेत्रस्यरहस्यं परमं वद॥७॥
नज्ञातंयेनकेनाऽपिचरेवास्थावरेऽपिवा। त्वमेवभगवन् शम्भो! वेत्सितत्क्षेत्रमुत्तमम्॥८॥
बहुधातत्रगत्वाऽपि साङ्गोपाङ्गनयत्फलम्। लभ्यतेचैकदिवसं सेविता वदमे पितः!॥९॥
सर्वपापक्षयः पुंसांभवेत्कालेकलौ कथम्। प्रायशोदुःखितामर्त्याः प्राकृतैःपापसञ्चयैः।
कथं नु सुखिनस्ते स्युः सकृत्कर्माऽनुसञ्चयात्॥१०॥
एवंब्रूहि महादेव! कर्म्मयत्स्यादनुत्तमम्। येनाऽनुष्ठितमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत्॥११॥
यो हि कश्चिदुपायोऽस्ति तन्मे वद सुनिश्चितम्॥१२॥

पूर्वकाल में एक बार भगवान् कार्त्तिकेय ने सविनय पूर्वक भगवान् महादेव से कहा—हे पिता! आप मुझसे पुरुषोत्तम क्षेत्र का रहस्य कहिये। हे भगवान् शुम्भ! सचराचर में जिस विषय को कोई नहीं जानता, आप उस परमोत्तम रहस्य क्षेत्र के रहस्य को जानते हैं। हे पिता! मानव अनेक बार वहां जाकर भी उस फल को पूर्णतः

प्राप्त नहीं कर पाते। मानव अनेक बार वहां जाकर भी अंगोपांग युक्त जिस फल को नहीं पा सकते, एक दिन मात्र उस क्षेत्र की सेवा से ही जिस प्रकार से पूर्णफल को पाया जा सकता उस विषय को कहिये। कलिकाल में किस प्रकार से जीवों के समस्त पापों का क्षय होगा? इस समय प्रायः अखिल मानवगण प्रकृत पापराशि द्वारा नाना प्रकार से दुःखित हैं, अतएव आप इस विषय में जो उचित हो कहें। मात्र एक बार सत्कर्म का अनुष्ठान करके वे कैसे सुखी हो सकेंगे? हे महादेव! जो समस्त सत्कार्य हेतु उत्तम है, जिसके अनुष्ठान मात्र से सर्वविध पापों का क्षय हो जाता है, इस प्रकार के किसी कर्म को कहिये। सर्वपापक्षयार्थ जो कुछ भी उपाय है, आप उसे निश्चित रूप से व्यक्त करिये।।७-१२।।

श्रीमहादेव उवाच

शृणु वत्स! प्रवक्ष्यामि सर्वपापभयापहम्। स्वर्गापवर्गदंपुण्यं सर्वकामफलप्रदम्।।१३।।
सर्वमाङ्गल्यजननं दुःखदुर्गविनाशनम्। सौख्यसौभाग्यसम्पत्तिधनसम्पत्तिवर्द्धनम्।
आयुर्वृद्धिकरोपायं मया यत्सुविनिश्चितम्।।१४।।
माघे इन्दुक्षये पाते वारेऽर्के श्रवणा यदि। अर्द्धोदयः स विज्ञेयः सहस्रार्कग्रहैः समः।।१५।।
दिवैवयोगः शस्तोऽयंनचरात्रौकदाचन।
नान्यःपुण्यतमःकालोयोऽर्द्धोदयसमो भवेत्।।१६।।
तावद्गर्ज्जन्ति पापानि सुबहूनिमहान्त्यपि। यावदर्दोदयोनैति सर्वपापापनोदनः।।१७।।
अभूत्कालकृतो यो वै प्राकृतः पापसञ्चयः। अर्द्धं हरत्यतःप्राहुर्योगमर्द्धादयम्बुधाः।।१८।।

महादेव कहते हैं—हे वत्स! जो स्वर्ग-अपवर्ग तथा सर्वकामफलप्रद है, जो सभी तरह से कल्याणप्रद है, जो परम पुण्यजनक तथा दुःखदुर्गविनाशक हैं, जिससे सुख सौभाग्य-सम्पत्ति-धनसम्पदा तथा आयुर्वृद्धि होती है तथा जिसके द्वारा सर्व प्रकार के पापभय दूर हो जाते हैं, ऐसा मेरे द्वारा निश्चित एक उपाय है। उसे सुनो। माघमासीय अमावस्या के दिन यदि व्यतिपात योग होता है, तब उसे अर्द्धोदय योग कहते हैं। यह योग सहस्र सूर्यग्रहण के समान है। यह योग दिन में पड़े, तब उत्तम है। कभी भी रात्रिकाल में प्रशस्त नहीं होता। इस योग के समान पुण्यतम काल और नहीं है। जब तक सर्वपापप्रहारक अर्द्धोदय योग न आये तब तक प्रभूत गुरुतर पाप तर्जन-गर्जन करते हैं। कालकृत जो भी पापसमूह हैं, यह योग उसकी आधी पापराशि का हरण कर लेता है। तभी इसे अर्द्धोदय योग कहते हैं।।१३-१८।।

अर्द्धोदये महायोगे मुनिदैवतयाचिते। पापाऽन्धकारान्मुच्येन्तभवेयुर्विमला नराः।।१९।।
अर्द्धोदये महापुण्ये सर्वं गङ्गासमञ्जलम्। यत्किञ्चित्कुरुतेदानं तद्दानं मेरुसम्मितम्।।२०।।
तदा दानानि देयानि भूदानप्रभृतीनिच। पापक्षयार्थिभिर्मर्त्यैःस्वर्गादिफलकाङ्क्षया।।२१।।
तुलापुरुषदस्तत्र सदाशिवपुरम्व्रजेत्। हिरण्यगर्भदोमर्त्यो गर्भवासं न चाप्नुयात्।।२२।।
गोसहस्रप्रदोमर्त्यः सहस्राक्षपदम्व्रजेत्। एवमादीनि दानानि कृत्वासम्यग्विधानतः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः स नरः सुखमेधते।।२३।।

मुनि तथा देवताओं द्वारा भी प्रार्थित उक्त अर्द्धोदय महायोग में मनुष्य पापान्धकार से मुक्त होकर विमल हो जाता है। महापुण्यप्रद अर्द्धोदय योग में सभी जल गंगाजलवत् हो जाते हैं। जो कुछ दान किया जाता है, वह मानो मेरुपर्वत दान इतना महान् हो जाता है। इस योग में पापों को क्षय करने की इच्छा से मनुष्य स्वर्गादिफल कामना मे भूमिदान आदि अनेक दान करें। उक्त अर्द्धोदय योग में जो व्यक्ति तुलादान करता है, वह निश्चित रूप से सदाशिव लोकगामी होता है। हिरण्यगर्भ का दान करने वाले मनुष्य को कभी भी गर्भवास का दुःख नहीं सहना पड़ता। मानव उस योगकाल में सम्यक् विधि के अनुसार १००० गौ दान करने से इन्द्रपद प्राप्त करता है। सम्यक् विधानानुरूप यह सब दान करने वाला सर्वपाप रहित होकर सुखी हो जाता है।।१९-२३।।

स्कन्द उवाच

प्रायशो हि कलौमर्त्या मन्दभाग्या महेश्वर!। अशक्ताभूमिदानादौमुच्यन्ते ते कथंनराः॥२४॥
तुलापुरुषदानेन भूमिदानेन यत्फलम्। हिरण्यगर्भदानेन गोसहस्रेण यत्फलम्॥२५॥
एतेषां पुण्यफलदं सर्वदानञ्च शङ्कर!। अनायासेन यद्यस्ति तद्दानं कथयस्व मे॥२६॥

भगवान् स्कन्द कहते हैं—हे महेश्वर! कलिकाल में मनुष्य प्रायः मन्दभाग्य होता है। इसलिये वह भूमिदानादि में असमर्थ हो जाता है। वह कैसे मुक्त होगा? हे शंकर! तुलापुरुषदान, भूमिदान, हिरण्यगर्भदान, १००० गौदान का जो फल है, वह अनायास मिले, ऐसा कोई अनायास सिद्ध होने वाला दान मुझसे कहिये।।२४-२६।।

ईश्वर उवाच

शृणु वत्स! महागुह्यंदानं तत्राऽतिपुण्यदम्। सर्वेषाञ्चैवदानानां यत्पुण्यफलदायकम्।
वक्ष्याम्यहं महादानं नृणां पापभयापहम्॥२७॥
चतुःषष्टिपलं कांस्यममन्त्रं तत्रकारयेत्। चत्वारिंशत्पलंवाऽपि पलं विंशतिमेव वा॥२८॥
निधाय पायसं तत्र पद्ममष्टदलं लिखेत्। पद्मस्य कर्णिकायान्तु कर्षमात्रं सुवर्णकम्॥२९॥
तदभावेहिअर्द्धम्वातदर्द्धम्वाऽपिप्रक्षिपेत्। स्नात्वातत्र विधानेन यथाविध्युक्तमार्गतः॥३०॥
मन्त्रेणाऽनेन हे वत्स! स्नानंकुर्यादतन्द्रितः। सर्वसाधारणंमन्त्रं गोपनीयं परं मम॥३१॥
ओङ्कारं कामबीजम्वाविकारञ्चततःपरम्। पुरुषन्तु ततः पश्चान्नमसोऽन्तेप्रकल्पयेत्॥३२॥
सर्वसिद्धिकरं पुण्य मोक्षदं पापनाशनम्। शुद्धानां परमं शुद्धं योगिनांयोदंशुभम्॥३३॥

महेश्वर कहते हैं—हे वत्स! तब सुनो। जिसे दान करने से सभी दानों का फल मिलता है तथा जो मनुष्यों के सभी पाप-भय का नाशक है तथा अतीव पुण्यप्रद है ऐसे ही एक परम गोपनीय दान को कहता हूं। ६४ अथवा ४० अथवा २० पल के एक कांस्यपात्र का निर्माण करके उसमें पायस रखे। उसके ऊपर अष्टदल पद्म अंकित करके उस पद्म की कर्णिका में एक कर्ष परिमित अथवा उतना न मिले तब आधा कर्ष अथवा अशक्त होने पर $\frac{1}{4}$ कर्ष स्वर्ण रखें। इन सब कार्य में मन्त्रपाठ की आवश्यकता नहीं है। हे वत्स! उक्त कार्य

के पहले यथाविधान स्नान करके पुनः अतन्द्रित होकर "ॐ" अथवा "क्लीं विकारपुरुषाय नमः" अथवा "ॐ विकारपुरुषाय नमः" का पाठ करके स्नान करना चाहिये। उक्त मन्त्र सभी कार्य में करना चाहिये तथा वह मेरी परम गोपनीय वस्तु समझे। यह सर्वसिद्धिकर क्रिया है, जो पुण्यप्रद, मोक्षप्रद, पापनाशक तथा शुभप्रद है।।२७-३३।।

पितॄंश्चतर्पयेद्धीमान्जलादुत्तीर्ययत्नतः। धौतवासाःशुचिर्भूत्वासूर्यायाऽर्घ्यंनिवेदयेत्।।३४।।
त्रयीमय! नमस्तुभ्यंदेवदेवदिवाकर!। पुराकृतञ्चयत्पुण्यं तत्पुण्यञ्चाऽक्षयं कुरु।।३५।।
कृत्वा तत्तण्डुलैः शुभ्रैः पद्ममष्टदलंशुभम्। अमृतं स्थापयेत्तत्र ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।।३६।।
तेषाम्प्रीतिकरार्थाय श्वेतमाल्येःसुशोभनैः। वस्त्रादिभिरलंकृत्यब्राह्मणायनिवेदयेत्।।३७।।
सद्वृत्ताय सुशान्ताय विधिज्ञाय कुटुम्बिने। पुष्पगन्धैरलंकृत्यदेवमेतत्त्रयीमयम्।।३८।।
सुवर्णपायसंपात्रंयस्प्रादेतत्त्रयीमयम्। आवयोस्तारकयस्माद्गृहाणत्वंद्विजोत्तम्!।।३९।।
दानैस्तीर्थैस्तपोभिश्चयत्कृतंसुकृतं मया। तत्पुण्यफलसंसिद्धिसुसम्पूर्णं तदस्तुमे।।४०।।
इदं दत्त्वा महादानं ततःसम्प्रार्थयेद्द्विजम्। मन्त्रेणाऽनेनागाङ्गेय! सम्यगैकाग्रमानसः।।४१।।
पुष्टिमेधाबलारोग्यसम्पदयुष्यवर्द्धनम्। त्रयीमयोद्विजः साक्षाद् ब्रूहि मेपुण्यवर्द्धनम्।।४२।।

अखिल पवित्र वस्तुओं में से यह परम पवित्र तथा योगीगण के लिये भी योगप्रद है। तदनन्तर धीमान व्यक्ति जल से (स्नानोपरान्त) निकले तथा शीघ्रतापूर्वक पितरों का तर्पण करें। तत्पश्चात् धुले वस्त्र धारण करके पवित्रतापूर्वक कहें—"हे त्रयीमय! आपको प्रणाम! हे देवदेव दिवाकर! मेरा जो पूर्वकृत पुण्य है, वह अक्षय करिये।" यह कहकर सूर्यदेव को अर्घ्य देना चाहिये। तत्पश्चात् पूर्वोक्त कांस्यपात्रों में पायस रखकर तण्डुल द्वारा एक अन्य पात्र में सुन्दर अष्टदलकमल बनाये तथा उसे वहां रखें। तब अमृतस्वरूप पायस से भरे ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूप उन कांस्यपात्र को वहां स्थापित करना चाहिये। इसके अनन्तर भगवान् हरि को गन्धपुष्पादि से सज्जित करके ब्रह्मा-विष्णु शिव को सन्तुष्ट करने के लिये किसी शान्त स्वभाव विधिज्ञ तथा बहुश्रुत ब्राह्मण को सुन्दर श्वेतमाल्य एवं वस्त्रादि द्वारा सज्जित करके इस मन्त्र के साथ उनको महादान प्रदान करें। मन्त्र है—"हे द्विजोत्तम! यह त्रयीमय सुन्दरवर्ण पायस से पूर्ण पात्र तो दाता तथा ग्रहीता दोनों के निस्तारक हैं। अतः आप इन तीनों को ग्रहण करिये। मैंने दान, तीर्थसेवन, तपःश्चरण से जो भी सुकृत अर्जित किया है, वह पुण्यफल मुझे पूर्णतः सिद्ध हो।" हे गाङ्गेय! इसके अनन्तर सम्यक् एकाग्रचित्त होकर उन द्विजश्रेष्ठ से कहे—"हे ब्रह्मन्! ब्राह्मण साक्षात् त्रयीमय है। अतः मैं पुष्टि-मेधा-बल-आरोग्य-सम्पदा-आयु तथा पुण्य का वर्द्धन करूं।" यह प्रार्थना करनी चाहिये।।३४-४२।।

सम्यगित्थं कृतं येन तस्य पुण्यफलं शृणु।।४३।।
सुवर्णमणिरत्नाढ्यां पञ्चाशत्कोटिविस्तृताम्।
ससुद्रमेखलां पृथ्वीं सम्यग्दत्वा च यत्फलम्।
तत्फलं लभते मर्त्यः कृत्वा दानममन्त्रकम्।।४४।।
एवं यः कुरुते दानमर्द्धोदयमहातिथौ। सर्वान्कामानवाप्नोति कार्त्तिकेय! न संशयः।।४५।।

गोचर्ममात्रभूमिम्वादद्यादर्द्धोदये नरः। तदभावेयथाशक्त्या यो ददाति वसुन्धराम्।
च चक्रवर्ती भवति प्रसादान्मम षण्मुख!॥४६॥
आर्द्धोदये गां बहुदुग्धदोग्ध्रीं सवत्सवस्त्राञ्च थयोक्तदक्षिणाम्।
अलंकृताय द्विजपुङ्गवाय दत्त्वेति लोकं मम पापमुक्तः॥४७॥
अधोगतिगतान्यान्वंश्यानुद्दिश्यदुर्द्धरान्। तिलपात्रादिदानाद्यैस्तानुद्धरति सङ्कटात्॥४८॥

हे वत्स! जो व्यक्ति सम्यक्तः ऐसा करता है, उसका पुण्यफल सुनो। ५० कोटियोजन विस्तृता, सुवर्ण-मणिरत्नादिपूर्णा, समुद्रमेखलान्विता पृथिवी के दान का जो फल है, इस प्रकार पायस दान करने का वही फल दानकर्त्ता प्राप्त करता है। हे कार्त्तिकेय! अर्द्धोदय महातिथिकाल में जो दाता इस प्रकार का दान करता है, उसे निःसंदिग्ध रूप से सभी अभीष्ट की प्राप्ति होती है। जो मानव अर्द्धोदय योग में गो चर्मपरिमित (भूमि का एक प्राचीन माप) किंवा उतने में समर्थ न होने पर यथाशक्ति भूमिदान करता है, वह मेरी कृपा से चक्रवर्त्ती सम्राट होता है। हे षण्मुख! अर्द्धोदय काल में किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण की वस्त्र-अलंकार द्वारा अर्चना करके यथोक्त दक्षिणा के साथ प्रचुरदुग्धप्रदात्री सवत्सा एवं सवस्त्रा गौ दान करने वाला अखिल पापरहित होकर मेरे लोक को प्राप्त करता है। इस समय अधोगति प्राप्त, जिनका उद्धार अत्यन्त दुष्कर हैं ऐसे अन्य पूर्वजों के लिये तिलपात्रादि यहां दान करने से, उनका संकटरूपी अधोगति से उद्धार हो जाता है।।४३-४८।।

अर्द्धोदये भूमि-सुवर्ण-वस्त्र-गो-धान्यदाता द्विजपुङ्गवाय।
अजत्वमिन्द्रत्वमनामयत्वं महीपतित्वं लभते मनुष्यः॥४९॥
दानन्यन्यानि सर्वाणिदद्यादर्द्धोदयेनरः। पितॄनुद्दिश्य यद्दतं तदक्षयफलं लभेत्॥५०॥
श्राद्धमर्द्धोदये कुर्यात् पिण्डदानञ्च तर्पणम्। गयायोमेवयत्पुण्यंतत्पुण्यं लभते नरः॥५१॥
ये केचित् सुकृतस्तस्य प्रेतभूताः स्वकर्मभिः।
स्वर्गं ते यान्ति गाङ्गेय! तवोद्दिश्य प्रदानतः॥५२॥
गङ्गासागरयोर्मध्येगङ्गायमुनयोस्तथा। देवनद्याञ्च गङ्गायां प्रभासे पुष्करे तथा॥५३॥
वाराणस्याञ्च यत्पुण्यं पुण्यक्षेत्रे तथैव च। दानमर्द्धोदये दत्त्वा तत्पुण्यं लभते नरः॥५४॥
अर्द्धोदये नरःस्नात्वा सर्वतीर्थफलं लभेत्। पुण्यतीर्थजलेस्नात्वनरोमोक्षपदं व्रजेत्॥५५॥

किम्बहुना, अर्द्धोदय योग में उत्तम ब्राह्मण को भूमि, स्वर्ण, वस्त्र, गौ तथा धान्य प्रदाता व्यक्ति अजत्व (ब्रह्मत्व), इन्द्रत्व, अनामयत्व तथा महीपतित्व लाभ करता है। मानव अर्द्धोदय काल में उक्त भूमि आदि के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं का भी दान करें। इस समय पितरों के उद्देश्य से जो भी दान किया जाता है, वह अक्षय फलप्रद हो जाता है। अर्द्धोदय काल में कहीं भी श्राद्ध, पिण्डदान तथा तर्पण कर सकते हैं। इससे मानव गया क्षेत्र में इन कार्यों को करने वाला फल वहीं प्राप्त कर लेता है। हे गाङ्गेय! इस दिन पितृगण के उद्देश्य से किसी वस्तु का दान करने पर पितृगण में सुकृतिशाली सभी व्यक्ति जो अपने किसी कर्म से प्रेतत्व को प्राप्त हैं, वे निश्चित रूप से स्वर्ग प्राप्त करते हैं। गंगा तथा सागर के संगम के मध्य, गंगा-यमुना के संगमस्थल पर, देवनदी गंगा में, प्रभास अथवा पुष्कर एवं वाराणसी में, किंवा अन्य पुण्यक्षेत्र में दान का जो फल है, अर्द्धोदयकाल

में वही दान करने से मनुष्य जहां है, वहीं वह फल प्राप्त कर लेता है। मनुष्य अर्द्धोदय काल में किसी भी जल में स्नान करे, उसे सर्वतीर्थ स्नानफल मिलता है तथा जो पुण्यतीर्थ में उस योग में स्नान करता है, वह मोक्षफल लाभ करता है।।४९-५५।।

एषसाधारणः प्रोक्तः सर्वत्रयोग उत्तमः। विशेषन्ते प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टोऽहंत्वयाऽनघ।।५६।।
कल्याऽप्येतन्नकथितं पुरायद्वेदगोपितम्। अर्द्धोदयो यदायोगोभवेज्ज्ञात्वानरोत्तमः।।५७।।
आढ्यो वाऽपि दरिद्रो वा वित्तशाठ्यञ्च दीनताम्।
सन्त्यज्य हर्षसंयुक्तो भक्तिं श्रीपुरुषोत्तमे।।५८।।
कृत्वाप्रयत्नतो गच्छेत्क्षेत्रं श्रीपुरुषोत्तमम्। यस्यसङ्कीर्त्तनादेव लीयते पापसञ्चयः।।५९।।
अर्द्धोदयो महायोगस्तत्क्षेत्रं पावनोत्तमम्। दारुव्याजं परंब्रह्म त्रयं तत्रैव संस्थितम्।।६०।।
नाऽतः परतरोयोगो मयाज्ञातोऽस्तिवत्सक!। पुराकल्पेह्ययंयोगोयुगेतुर्येऽभवत्किल।।६१।।

हे निष्पाप! यहां जिस योग के सम्बन्ध में मैंने कहा, यह सर्वत्र समान फलप्रद है। इसमें तुमने जो विशेष पूछा है, अब उसे कहता हूं। पूर्व में मैंने यह विषय किसी से भी नहीं कहा। यह वेद में भी गुप्त भावेन स्थित है। धनवान हो, दरिद्र हो चाहे जैसा हो, इस अर्द्धोदय योग को जानकर कंजूसी तथा दीनता त्याग कर आनन्दित हृदय से भगवान् पुरुषोत्तमदेव के प्रति भक्तिमान् होकर अतिशय यत्न के साथ पुरुषोत्तम क्षेत्र में जाये। उक्त पुरुषोत्तम क्षेत्र के नाम कीर्त्तन से भी पाप तिरोहित हो जाते हैं। वहां अर्द्धोदय योग, परमपावन क्षेत्र तथा दारुमय परमब्रह्म रूप तीन मोक्षसाधन एक साथ प्राप्त हो जाते हैं। हे वत्स! किम्बहुना, मुझे उक्त अर्द्धोदय योग से बढ़कर अन्य श्रेष्ठतर योग कोई भी नहीं दीखता। न तो मैं इससे महान् योग को जानता हूं। पूर्वकाल में कलिकाल में यह योग पड़ा था!।।५६-६१।।

तदापृथ्वीगतालोकादेवाः संसिद्धयस्तथा। पातालस्थाश्चभुजगाः सर्व्वएकत्रसंस्थिताः।
तद्वै क्षेत्रवरं जग्मुर्मुदा भक्त्या च संयुताः।।६२।।
तत्र स्नात्वा जगन्नाथं दारुब्रह्म सनातनम्। दृष्ट्वा सम्पूजयामासुर्ददुर्दानानि शक्तितः।।६३।।
तदेव सत्यः सञ्जातो युगधर्म्मस्वरूपधृक्। आयुषोऽन्तेतुतेसर्वे परंनिर्व्वाणमाप्नुयुः।।६४।।
यान्यान्कामान्प्रार्थयन्तेमर्त्यादेवाश्च तत्रवै। तांस्तान्कामानवाप्नुयुर्दुर्लभानपिवत्सक।।६५।।
एवत्त्रयाणां संयोगो दुर्लभो भुविपापिनाम्। यम्प्राप्यलभतेमुक्तिमात्मज्ञानंविनानरः।।६६।।
एतद्रहस्यं परमं पुत्र! ते कथितम्मया। दशावतारक्षेत्रस्यमाहात्म्यञ्चसुगोपितम्।।६७।।

इति श्रीस्कान्देमहापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डान्तर्गतोत्कलखण्डे जैमिनिऋषिसम्वादेऽर्द्धोदययोगमाहात्म्यकीर्त्तनंनाम सप्तपञ्चाशसत्तमोऽध्यायः।।५७।।

—※※※—

उस समय स्वर्गवासी देवता तथा सिद्धगण और पाताल निवासी सर्पगण सभी पृथिवी पर एक साथ होकर भक्तियुक्त चित्त से सानन्दित स्थिति में इस सर्वोत्तम स्थल पर आये। तदनन्तर सभी ने वहां सिन्धुजल में

स्नान करके सनातन दारुब्रह्म जगन्नाथ देव का दर्शन तथा उनकी पूजा किया और द्विजगण को यथाशक्ति दान दिया। उस समय यह कलियुग भी सत्ययुग की तरह धर्मान्वित लग रहा था। तदनन्तर सभी पूजकों ने आयुशेष होने पर परम निर्वाण प्राप्त किया। हे वत्स! देवता तथा मानव आदि इस क्षेत्र में जो-जो कामना करते हैं, वह सब अत्यन्त दुर्लभ भले ही हो, सभी को प्राप्ति होती है। वास्तव में पृथिवी पर अर्द्धोदय योग, दारुब्रह्म तथा पुरुषोत्तम क्षेत्र रूपी त्रयी का जो सम्मिलन है, वह पापियों हेतु अत्यन्त दुर्लभ है। मानव इन तीनों को पाकर बिना आत्मज्ञान के ही मुक्त हो जाता है। हे पुत्र! मैंने इस क्षेत्र का परम रहस्य वर्णन किया। इस दशावतार क्षेत्र का माहात्म्य सर्वत्र गुप्त है।।६२-६७।।

।।सप्तपञ्चाश अध्याय समाप्त।।

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दशावतार क्षेत्र नाम से पुरुषोत्तम क्षेत्र की प्रसिद्धि का कारण वर्णन

स्कन्द उवाच

पुरुषोत्तमसञ्ज्ञैवक्षेत्रस्यकथिता त्वया। दशावतारसञ्ज्ञाऽस्यकथमेतद्वदाऽञ्जसा।।१।।

भगवान् स्कन्द कहते हैं—हे पिता! आपने इस क्षेत्र का नाम पुरुषोत्तम क्षेत्र कहा था। अब आप उसे किसलिये दशावतार क्षेत्र कह रहे हैं? ।।१।।

श्रीमहादेव उवाच

अव्यक्तरूपिणावत्स! विष्णुनाप्रभविष्णुना। युगेयुगेऽवताराहिक्रियन्तेलोकपालनात्।।२।।
धर्मसंस्थापनावत्स! नित्यं नारायणस्य वै। स्वीकृताऽतःप्रभवतिरक्षायैधर्मशाखिनः।।३।।
संसारचक्रव्यूहस्य अचिन्त्यमहिमस्य वै। कोवेत्तिरूपंतद्विष्णोःपरमंपदमव्ययम्।।४।।
प्रधानपुरुषातीतं गुणसङ्गविवर्जितम्। निर्मलं निष्कलं विष्णोःस्वरूपंकोऽनुबुध्यते।।५।।
एवम्भूतोऽपि भगवान् यदालोकसिसृक्षया। प्रकृतिं स्वामधिष्ठायसम्भवेद्वैयुगेयुगे।।६।।
ब्रह्मादीनवतारान् सकरोतिबहुधाविभुः। आद्योऽवतारोवेधास्यद्वितीयोऽहंतु पुत्रक!।।७।।

महादेव कहते हैं—हे वत्स! अव्यक्तरूपी सर्वनियन्ता भगवान् विष्णु लोक पालनार्थ युग-युग में अवतार ग्रहण करते हैं। हे वत्स! भगवान् नारायण नित्य धर्म की स्थापना करते हैं, यह सर्वज्ञात तथ्य है। इसलिये वे धर्मरूपी महावृक्ष की रक्षा के लिये प्रत्येक युग में नाना मूर्त्तिरूप में अवतार लेते हैं। हे पुत्र! जिनसे यह संसार चक्रव्यूह प्रवर्त्तित होता है, उन महिमा विष्णु के परमपदरूप स्वरूप को कौन जानता है? वस्तुतः कोई

भी उस प्रकृति-पुरुष से अतीत-निर्गुण-निष्कल विष्णुरूप को नहीं जानता। हे वत्स! भगवान् विष्णु इस प्रकार .के होकर भी लोकरक्षा के लिये अपनी प्रकृति का आश्रय लेकर युग-युग में अवतार ग्रहण करते हैं। जब उनकी इच्छा जगत्सृष्टि हेतु होती है, तब वे विष्णु जगत्सृष्टि के लिये नाना प्रकार की अवतार मूर्त्ति का सृजन करते हैं। हे पुत्र! विधाता ब्रह्मा उनका प्रथम अवतार है। मैं महादेव उनका द्वितीय अवतार हूं।।२-७।।

तृतीयस्तु सनन्दाद्या गौतमाद्याश्चतुर्थकः। इन्द्राद्याः पञ्चमस्तस्यत्रयस्त्रिंशच्च देवताः।।८।।
किमत्रबहुनोक्तेन चण्डालान्तं प्रपञ्चकम्। तस्यैवविष्णोरूपाणिनान्यथात्वंविचारय।।९।।
तत्राऽपि लोकरक्षार्थं येऽवताराः कृताः पुरा। मत्स्याद्यादिव्यरूपावैपुरातेकथितामया।।१०।।
अत्रक्षेत्रवरे वत्स! तांस्तान्प्रकुरुते विभुः। एतद्धिपरमंस्थानं दिव्यं भौमञ्च कथ्यते।।११।।
मूलायतनमेतद्धि सृष्टिपालनसंहृतेः। अत्राऽवतीर्य भगवान् प्रयात्यन्यत्र कार्यतः।।१२।।
निष्पाद्य कृत्यं पृथ्व्याहि पुनरत्रैव तिष्ठति। अतोदशावताराणांदर्शनाद्यैस्तुयत्फलम्।।१३।।
तत्फलंलभते मर्त्त्यो दृष्ट्वा श्रीपुरुषोत्तमम्। दशावतारसञ्ज्ञाऽस्यकथितापुत्र! ते मया।।१४।।

सनन्दन आदि तृतीय अवतार हैं। गौतमादि चतुर्थ हैं। इन्द्र आदि ३३ कोटि देवता उनके पंचम अवतार हैं। इस विषय में अधिक क्या कहा जाये? फलस्वरूप चाण्डाल पर्यन्त समस्त जगत्प्रपञ्च इन विश्वव्यापक विष्णु का ही स्वरूप है। इसमें सन्देह नहीं है। इनमें लोक रक्षणार्थ पूर्व के दिव्यरूप मत्स्यादि अवतार मूर्त्ति का जो वर्णन है, वह मैंने पहले ही कहा है। हे वत्स! विभु नारायण सर्वोत्तम पुरुषोत्तम क्षेत्र में उन-उन अवतार मूर्त्तियों को व्यक्त करते हैं, अतः बुद्धिमान लोग उस परम स्थान को भौम तथा दिव्यस्थान कहते हैं। यह स्थान ही सृष्टि-स्थिति-पालन का मूल स्थानरूपी आयतन है। भगवान् यहीं नाना मूर्त्तियों में अवतीर्ण होकर कार्यवशात् अन्यत्र गमन करते हैं। पृथिवी के सम्बन्ध में कर्त्तव्य-कार्य सम्पादन करके पुनः इसी स्थान पर अवस्थित रहते हैं। इस कारण भगवान् यहीं अवस्थित हो जाते हैं। तभी मत्स्यादि दशावतार का दर्शन करने का जो फल होता है, मानव केवल पुरुषोत्तम क्षेत्र के दर्शन से वही फल लाभ करते हैं। हे पुत्र! इसी कारण पुरुषोत्तम क्षेत्र का नाम दशावतार भी क्षेत्र कहा गया।।८-१४।।

अन्यच्च ते वदिष्यामि क्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम्। पुरोदितंन केनाऽपिज्ञातंवायेनकेनचित्।।१५।।
रहस्यं परमं ह्येतल्लोकाऽनुग्रहणं महत्। अनायासेनोद्धरणं पापिनां पाकर्म्मणाम्।।१६।।
अनादावत्रसंसारे लोकानांमर्त्यवासिनाम्। पापानि सुबहून्येवपुण्यस्त्वल्पीय एवच।।१७।।
यावत्कृतं पापमेभिस्त्रिविधं विषयेप्सुभिः। तत्र मध्ये एकमेव निरयायोपकल्पते।।१८।।
अन्यत्सर्वं कूटरूपं तिष्ठत्येव क्रमागतम्। नरकान्ते पुनर्योनिंकुत्सितां याति मानवः।।१९।।
मर्त्योवाऽपि यदा पुत्र! जायतेदुःखितोभवेत्। दरिद्रःकृपणोरोगीभवेद्धर्मपराङ्मुखः।।२०।।
पापानि च पुनः कुर्यादवशः पापकृन्नरः। पापात्माकुरुतेपापं पुण्यात्मा पुण्यमेवं च।।२१।।
पुण्यात्मनोऽपि च भवेत्प्रसङ्गात्कलुषार्ज्जनम्।।२२।।

हे वत्स! अब उक्त क्षेत्र के अन्य माहात्म्य के सम्बन्ध में कहता हूं। श्रवण करो। पूर्व में उसे न तो

कभी कहा गया न कोई उसे जानता ही है। यह परमरहस्य विषय है। यह सतत् पाप का आचरण करने वालों को अनायास पापों से छुटकारा दिलवाने वाला तथा लोगों के लिये अत्यन्त अनुग्रह प्रदाता है। इस अनादि संसार के मर्त्यवासी लोगों के पातक असीम हैं, तथापि पुण्य अत्यल्प होता है। विषय लोलुप मनुष्य कायिक-मनसा-वाचा त्रिविध पाप संचित करते हैं। उनमें से कोई भी एक पाप ही नरकगमन का कारण हो जाता है। मानव अपने पापों का जब नरकभोग पूर्ण कर लेते हैं, तब वे पुनः कुत्सित योनि में जन्मग्रहण करते हैं। हे पुत्र! यदि उनमें से कोई भी पातकी किसी गूढ़ शुभ अदृष्ट के कारण मानवयोनि प्राप्त तो करता है, तथापि वह दरिद्र, कृपण, रोगी तथा धर्मविमुख होकर नाना दुःख भोग करता है। पापी मानव पाप के अधीन होकर पुनः उस मानव जन्म में भी अनेक पाप करते हैं। इस पाप के कारण कोई पाप फल तथा कोई पुण्य के कारण पुण्यफल प्राप्त करता है। अतः पापात्मा केवल पापाचरण तथा पुण्यात्मा पुण्यानुष्ठान तत्पर बना रहता है। यही प्राकृतिक नियम है। पुण्यात्मा भी पाप सङ्ग के कारण क्रमशः पापार्जन करता है।।१५-२२।।

यावतोऽपि निमेषांस्तु पापमेभिर्नृभिःकृतम्। तावद्वर्षसहस्राणि निरये दुःखभागिनः॥२३॥

एवं संसारबन्धेऽस्मिन्प्रायशः पापकारिणः।
क्षमन्ते न च पापानि प्रायश्चित्तेन शोधितम्॥२४॥

दुःखासहोमर्त्त्यलोकोनाऽलं पापस्यशोधने। देहत्यागं विनाशुद्धिर्नमहापातकेऽस्यवै॥२५॥

एवमालोक्य भगवान्कृपालुः पापकारिणः। इदंक्षेत्रंससर्जाऽऽदौस्वमूर्त्तिसदृशंविभुः॥२६॥

युगपत्सर्वपापानां महापातकंसङ्गिनाम्। अपात्रमलिनीकारिपापानांमयि यो नरः॥२७॥

अनायासेन संशुद्धिमीहते पापकृत्तमः॥२८॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तग्रतोत्कलखण्डेजैमिनिऋषिसम्वादे पुरुषोत्तमक्षेत्रस्यदशावतारक्षेत नाम्नाप्रसिद्धिकारणवर्णननामाऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५८।।

—※※※—

यदि व्यक्ति एक निमेष के लिये भी पापाचरण करता है, उसे उतने सहस्रवर्ष पर्यन्त नरकवास करके अशेष दुःख भोग करना पड़ता है। पापी व्यक्तिगण प्रायः एवंविध संसार बन्धन से जड़ित रहते हैं। प्रायश्चित्त द्वारा पाप समूह वस्तुतः शोधित नहीं हो पाते। फलतः मानव (पापजनित) दुःख सहने में असमर्थ हो जाता है। वह कदापि पाप शोधन नहीं कर पाता। यहां देह त्याग बिना महापातकों से छुटकारा नहीं मिलता। हे वत्स! विभु भगवान् श्रीहरि यह प्राकृतिक नियम देखकर पापीगण के प्रति कृपापरवश हो गये। तब उन्होंने अपनी ही मूर्त्ति के समान पुरुषोत्तम क्षेत्र को सृष्ट किया। उन्होंने इस विचार से इस क्षेत्र को सृष्ट किया कि जो मानव मेरे देहरूप इस क्षेत्र में निवास करेगा, भले ही वह पापीगण में प्रधान हो, उसके महापातक, अपात्रीकरण आदि सभी पाप एक साथ शुद्ध हो जाते हैं।।२३-२८।।

।।अष्टपञ्चाश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

ऊनषष्टितमोऽध्यायः

पुरुषोत्तम को प्रिय व्रतविशेषवर्णन

श्रीमहादेव उवाच

श्रद्धया भक्तियोगेन श्रुत्वा शास्त्रार्थनिश्चयम्।
सङ्कल्प्य गच्छेत्तत् क्षेत्रं ध्यायन् श्रीपुरुषोत्तमम्॥१॥
दृष्ट्वाप्रणम्य विधिवत्पूजयित्वा जगद्गुरुम्। इतः प्रभृतिजातानां जन्मिनांसर्वकर्मसु॥२॥
अनन्तेषु सञ्चितानां पापानां गणनायुषाम्। युगपत्क्षयकामोऽहंत्वत्प्रसादाज्जनार्दनम्॥३॥
व्रतेनत्वामच्चयिष्ये तदाज्ञापय मे प्रभो!। सन्तरेयं यथा पापसमुद्रं परमेश्वर!॥४॥
अनुजानीहि मां देव! लोकाऽनुग्रहकारक!। इतिसम्प्रार्थ्य देवेशं सङ्कल्प्य व्रतराजकम्॥५॥
गृह्णीयात्पुण्यमासे तु कार्त्तिके देवसेचिते। सौरभयेपयःशालिभोजनः परमः शुचिः॥६॥

महादेव कहते हैं—हे वत्स! शास्त्र के अर्थ का सिद्धान्त सुनकर श्रद्धाभक्ति के साथ संकल्प करके भगवान् पुरुषोत्तम की मन में चिन्तना करते-करते सभी को पुरुषोत्तम क्षेत्र में जाना उचित है। मानव वहां जाते समय उन जगद्गुरु का अवलोकन करके यथाविधान पूजा तथा प्रणाम करके यह प्रार्थना करें। "हे जनार्दन! अब से हमारे जितने भी जन्म हो गये उन सब जन्मों में मैंने जितने कार्य किये हैं, मैंने उन सब कार्य से अगणित पाप संचित किया है। उन सबके क्षयकामनार्थ व्रतानुष्ठान द्वारा आपकी अर्चना करने का विचार कर रहा हूं। हे प्रभो! मुझे अनुमति प्रदान करें। हे परमेश्वर! आप तो समस्त लोकों पर अनुग्रह करते हैं। हे देव! जिससे मैं पाप सागर से उत्तीर्ण हो सकूं, आप आज्ञा दीजिये।" देवाधिदेव जगन्नाथ से यह प्रार्थना करके देवसेवित पुण्यतम कार्त्तिकमास में संकल्प के साथ यह व्रत लेना चाहिये तथा उस दिन से नित्य गोदुग्ध तथा शालितण्डुल का भोजन करके रहे तथा नित्य पवित्र बना रहे।।१-६।।

कुर्यात् त्रिषवणस्नानमन्वहं सागराम्भसि। वेदत्रयस्य यत्सारं पुरुषप्रतिपादकम्॥७॥
पुरुषार्थैकहेतुर्यत्प्रोक्तं वेदविदाम्वरैः। पुरुषाख्यं हि यत्सूक्तं सर्व्वकल्मषनाशनम्॥८॥
अरोढुमिच्छतो विष्णुलोकं निःश्रेयकारणम्। तज्जपेत्प्रत्यहंपुत्र! पुटितं मुक्तिहेतुना॥९॥
निर्व्वाणकाङ्क्ष्यमन्त्रेण द्विश्चतुर्वर्णकेन च। यद्वर्णरूपेणहरिर्मुखेषु परिवर्तते॥१०॥
श्रुतिस्मृतिपुराणेषु सिद्धमष्टाक्षरात्मकम्। आद्यन्तयोरपिजपेत्सूक्तस्य प्रतिमन्त्रकम्॥११॥
एवमष्टोत्तरशतं प्रत्यहं सूक्तमुत्तमम्। जपेत्तदन्ते च पुनः पुरुषाख्यं समर्च्चयेत्॥१२॥
षोडशैरुपचारैश्च वित्तशाठ्यं न कारयेत्। प्राणपण्येन कुर्व्वीतपापी भगवदर्च्चनम्॥१३॥

हे पुत्र! प्रतिदिन सागर जल में त्रिसन्ध्या स्नान करें तथा जो पुरुष प्रतिपादक तथा तीन वेदों का सारभूत है, वेदज्ञ लोगों में अग्रगण्य लोग जिसे धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का प्रधान कारण कहते हैं तथा विष्णुलोक जाने वाले व्यक्ति के लिये जो परम कल्याणप्रद है, उस सर्वपाप नाशन पुरुषसूक्त को मुक्ति पाने की इच्छा के लिये

अष्टाक्षर मन्त्र से पुटित करके नित्य जप करें। भगवान् हरि उक्त अष्टाक्षर मन्त्र के वर्णरूप से मानवगण के मुख में विराजित रहते हैं। श्रुति-स्मृति तथा पुराणादि शास्त्र में प्रसिद्ध अष्टाक्षरमन्त्र का जप पुरुषसूक्त के प्रत्येक मन्त्र के साथ सम्पुट लगाकर करे (अर्थात् पुरुषसूक्त के प्रत्येकमन्त्र में प्रारंभ तथा अन्त में अष्टाक्षर मन्त्र लगाकर जप करें)। इस प्रकार नित्य १०८ बार मन्त्रोत्तम पुरुषसूक्त का पाठ करके तब षोडशोपचार से उन परमपुरुष जगन्नाथ देव की अर्चना करनी चाहिये। उनकी अर्चना के सम्बन्ध में कदापि कंजूसी न करें। वास्तुतः पापक्षयार्थ पापी व्यक्ति को प्राणयण से भगवान् की अर्चना करनी चाहिये।।७-१३।।

अमृते लोककर्त्तारं कः पापशमने क्षमः। दयालुः सर्वलोकानां सुहृद् बन्धुः स एव हि॥१४॥
कर्त्ता हर्त्ता च गोप्ता च स एव परमेश्वरः। भावशुद्ध्या जगन्नाथंतंवै सम्पूजयेच्च यः॥१५॥
किमन्यकर्मभिस्तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता।
आनुषङ्गफलान्यस्य भौमस्वर्गादिकंसुखम्॥१६॥
तदग्रे वह्निं संस्कृत्य पायसेन यजेद्धरिम्। अष्टाक्षरेण मन्त्रेण अष्टोत्तरसहस्त्रकम्॥१७॥
ततो दिनान्ते च पुनर्नित्यकर्मावसानतः। पुनः सम्पूजयेद्देवं सूक्तेन पुरुषस्य वै॥१८॥
नानोपहारैः पूर्वोक्तैर्नैवेद्यं पायसं ददेत्। व्रतासनन्त्वेतदेव तुलसीदलमिश्रितम्॥१९॥
मौनी च स्थण्डिले सुप्त्वा चिन्तयित्वा जगद्गुरुम्।
भक्तिं कुर्याद् ब्राह्मणेषु वैष्णवेषु विशेषतः॥२०॥

उन लोककर्त्ता हरि के अतिरिक्त पापनाश में कोई भी सक्षम नहीं है। वे दयामय सभी के सुहृद् तथा सबके बन्धु हैं। वे परमेश्वर ही स्रष्टा, रक्षिता तथा संहारक हैं। तभी भावशुद्धि के साथ जो व्यक्ति जगन्नाथ देव की पूजा करता है, उसे अन्य कर्म का क्या प्रयोजन? मुक्ति तो उस व्यक्ति के लिये करतलगत जो रहती है। इस जगत् में तथा स्वर्गलोक में सुख प्राप्ति तो इसके अतिरिक्त फल है। तदनन्तर जगन्नाथ प्रभु के समक्ष होम के साथ भगवान् हरि की प्रसन्नता हेतु अष्टाक्षर मन्त्र से १००८ बार पायस की आहुति प्रदान करें। दिन समाप्त होने पर पुनः नित्यकर्म समापनोपरान्त पुरुषसूक्त मन्त्र द्वारा पुनः पूर्वोक्त नानाविध उपहार द्रव्य से भगवान् की सम्यक्पूजा करके पायस नैवेद्य का दान करें। तुलसीदल मिश्रित उक्त पायस प्रसाद ही व्रतकाल में भोज्य होना चाहिये। तदनन्तर जगद्गुरु जगन्नाथदेव का चिन्तन करके मौनी होकर स्थंडिल पर शयन करके रात्रि व्यतीत करें। वह व्यक्ति ब्राह्मणों के प्रति विशेष करके वैष्णवों के प्रति सदा भक्तिभावयुक्त रहे।।१४-२०।।

जङ्गमामूर्त्तयस्त्वेते विष्णोर्ब्रह्मस्वरूपिणः। न जातु मिथ्यावचनं परद्रोहादिकन्तथा॥२१॥
सर्व्वात्मना जगन्नाथेभक्तिंकुर्यात्सुनिर्म्मलाम्। यथाशक्त्यापूजयेच्चसीरिणाभद्रयासह॥२२॥
भक्तिलभ्यो हि भगवान् स सदा भक्तवत्सलः।
समाराध्यः स देवो हि ममोत्पादयिता हि सः॥२३॥
ब्रह्मणोऽपिपिता वत्स! न ततःपरमस्ति वै। सएवभगवान् लोकेऽनेकःसम्पद्यतेहरिः॥२४॥
निर्गुणोऽपि गुणासक्तः स्वेच्छया सृष्टिकृत्प्रभुः।
ब्रह्मा तत्प्रभवो वत्स! किं कथङ्कारमूढधीः॥२५॥

तमेवशरणं प्राप्य तपस्तेपे चिरं महत्। ब्रह्मरूपी जगन्नाथस्ततः साक्षाद् बभूव ह॥२६॥

ब्राह्मण तथा वैष्णवगण ब्रह्मरूपी विष्णु के जंगम मूर्त्तिरूप हैं। कभी मिथ्यावाक्य न बोले। कभी अन्य का अनिष्ट चिन्तन न करें। सभी प्रयत्न द्वारा जगन्नाथ देव के प्रति विमलाभक्ति करें तथा बलभद्र एवं सुभद्रा के साथ उनकी यथाशक्ति अर्चना करनी चाहिये। सतत् भक्तवत्सल भगवान् को केवल भक्ति से ही पाया जा सकता है। अतः इन देवप्रवर की आराधना सम्यक् रूप से सदा करनी चाहिये। हे वत्स! वे ही हमारे उत्पादक तथा ब्रह्मा के भी पिता हैं। वास्तव में संसार में उनकी अपेक्षा उत्तम और कुछ भी नहीं है। एकमात्र वे भगवान् हरि ही जगत् में नानारूप से विराजमान हैं। हे वत्स! वे प्रभु निर्गुण होने पर भी अपनी इच्छा के अनुसार गुणों का वरण करके जगत् सृष्टि करते हैं। भगवान् ब्रह्मा उनके ही प्रभाव से "मेरा कर्त्तव्य क्या है?" यह सोचकर हतबुद्धि हो गये तथा उन्होंने भगवान् की शरण लेकर चिरकाल पर्यन्त घोर तप किया। तब ब्रह्मरूपी जनार्दन ने ब्रह्मा को साक्षात् दर्शन दिया।।२१-२६।।

तपसोऽन्ते जगादेदं चतुर्म्मुखमुदारधीः। किमर्थं मत्प्रसूतोऽपि मूढत्वं समुपागतः॥२७॥

जगन्नाथ देव ने तपस्या के अन्त में ब्रह्मा को दर्शन देकर कहा—"हे ब्रह्मन्! तुम तो मुझसे उत्पन्न हुये हो, तब तुमको मूढ़त्व कहां से प्राप्त हो गया?"।।२७।।

साष्टाङ्गपातं प्रणमन्निदं वेधाव्यजिज्ञपत्। कुतोजातः किमर्थमवकिंकुर्यामितिमेमहान्।
संशयोऽभूज्जगन्नाथ! तदाज्ञापय मे प्रभो!॥२८॥
ततो निःश्वासजं वेदमुपदिश्य जगत्प्रभुः। अन्तर्दधे च सहसा दृश्यमानोऽपिवेधसा॥२९॥

ब्रह्मा ने जगन्नाथ को प्रणाम करके कहा—"हे प्रभो, जगन्नाथ! मैं कहां पर किसलिये तथा कहां से जन्मा हूं तथा मुझे कौन सा कार्य करना होगा, इस सम्बन्ध में मुझे महान् संदेह हो रहा है। इसलिये आप इस सम्बन्ध में आज्ञा दीजिये।" तत्पश्चात् जगत्प्रभु हरि ने ब्रह्मा को अपने निःश्वास से उत्पन्न वेद का उपदेश किया। तत्पश्चात् ब्रह्मा के सामने ही अन्तर्हित् हो गये।।२८-२९।।

ततश्चतुर्मुखोवेदसारं स मनसोऽसृजत्। मयासृष्टमिदंसर्व्वं भूतग्रामं चतुर्व्विधम्॥३०॥
नान्तं न मध्यं विद्मोनयस्याऽहञ्चपितामहः। आवयोरक्षकोनित्यमैश्वर्याप्यायकश्चसः॥३१॥
तदाज्ञया तस्य भयाज्जगदेतच्चराचरम्। समर्यादं यथाधर्म्मं वर्तते स्वयमेव हि॥३२॥
प्रजापतिस्वरूपेण स हि धर्म्मप्रवर्त्तकः। कर्म्मणः फलदाता हि फलभोक्तासएव हि॥३३॥
तस्मिन्प्रसन्ने सर्वाणि जायन्ते सुखादानि वै।
मदाद्या देवताः सर्वास्तस्यैवाऽऽज्ञावशे स्थिताः॥३४॥
तेनाऽन्तर्यामिणाऽऽज्ञप्ताः फलदा नाऽत्र संशयः॥३५॥

तत्पश्चात् चतुरानन ने वेदसार स्तोत्रादि का सृजन किया। तभी चार प्रकार के भूतग्राम मेरे द्वारा सृष्ट हो गये। भगवान् पितामह तथा मैं भी जिनके आदि-मध्य-अन्त को नहीं जानते, वे भगवान् ही हमदोनों के रक्षक हैं तथा वे ही ऐश्वर्य प्रदान करके हमें आप्यायित करते हैं। उनकी ही आज्ञा तथा भय से यह चराचर जगत् मर्यादा युक्त होकर स्वयं ही धर्मानुसार स्थित है। वे ही प्रजापति स्वरूप धर्मप्रवर्त्तक हैं, वे ही कर्म के फलदाता

एवं फलभोक्ता हैं। उनके प्रसन्न होने से ही सब कुछ सुखप्रद हो जाता है। मैं तथा समस्त देवता उनकी ही आज्ञा के अधीन हैं। हम उन अन्तर्यामी की आज्ञा के अनुसार ही कर्मफल प्रदान करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है।।३०-३५।।

किमत्रबहुनोक्तेन विट्कीटोपि तदाज्ञया। वर्त्तते मलसङ्घाते मुच्यते च तदाज्ञया॥३६॥
एतस्याऽव्यक्तरूपस्यदीनानुग्रहधर्म्मिणः। व्यक्ततापन्नमूर्त्तेस्तु रहस्यं स्थानमुत्तमम्।
क्षेत्रं तत्परमं सर्व्वमुक्तिक्षेत्रोत्तमं ध्रुवम्॥३७॥
आदिष्टं हि मयाऽप्येतत्पुराऽऽराधयितुं प्रभुम्। व्रतमेतत्सर्वपापदावानलसमं महत्॥३८॥
चीर्णं पुरा मयैतद्धि मत्तः स्वायम्भुवो मनुः।
आचचार ततोऽगस्त्यश्चतुर्थोऽद्यापि नाऽस्ति वै॥३९॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तग्रतोत्कलखण्डेजैमिनिऋषिसम्वादे पुरुषोत्तमप्रीतिसाधकव्रतविशेषविधिकथनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः।।५९।।

इस सम्बन्ध में और अधिक क्या कहा जाये? यहां तक कि मल का कीट भी उनकी ही आज्ञा से मल में स्थित होता है। हे वत्स! पुरुषोत्तम क्षेत्र ही व्यक्त-अव्यक्त रूपी दीनों पर अनुग्रह करने वाला भगवान् का अत्युत्तम स्थान है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं करना चाहिये कि यह समस्त मुक्तिक्षेत्रों में श्रेष्ठ तथा अतीव गुप्त है। पूर्वकाल में मैंने उनके ही आदेशानुसार इन प्रभु की आराधना करने के लिये उस महत् व्रत का अनुष्ठान किया था जो पापरूपी महावन को दग्ध करने वाला दावानलरूप है। मेरी आज्ञा पाकर स्वायम्भुव मनु ने तथा तत्पश्चात् अगस्त्य मुनि ने यह व्रताचरण किया था। हे वत्स! हे वत्स! मेरे, स्वायम्भुव मनु तथा अगस्त्य मुनि के अतिरिक्त इसका अनुष्ठान करने वाला कोई चौथा व्यक्ति नहीं है।।३६-३९।।

।।एकोनषष्टितम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षष्टितमोऽध्यायः

जगन्नाथ प्रतिष्ठाविधि, पुराण श्रवण माहात्म्य

श्रीमहादेव उवाच

त्वदनुग्रहायकथितं रहस्यं व्रतमुत्तमम्। प्रतिष्ठां मे कथयतः शृणु वत्साऽवधानतः॥१॥
एवं मासं व्रती नीत्वा निरतो व्रतकर्म्मणि।
कार्त्तिक्यां नित्यजापान्ते पूजयित्वा जगद्गुरुम्॥२॥

आचार्यं वरयेच्छ्रेष्ठं वैष्णवं शास्त्रवित्तमम्। मुदाकुण्डलवासोभिश्चन्दनैः शुभमाल्यकैः॥३॥
पूजयित्वा जगन्नाथरूपं तं हि विचिन्तयेत्। प्रार्थयेत्प्राञ्जलिर्भूत्वा भगवद्भक्तिभावितः॥४॥

महादेव कहते हैं—हे वत्स! तुम्हारे प्रति अनुग्रह प्रकाशार्थ मैंने इस गुप्त एवं उत्तम व्रत को कहा। अब उसकी प्रतिष्ठा विधि कहता हूं। सावधानी के साथ सुनो। व्रतरत व्यक्ति इस प्रकार एक मास काल व्यतीत करके कार्त्तिकी पूर्णिमा को नित्य जप के पश्चात् जगद्गुरु जगन्नाथ देव की पूजा सम्पन्न करके विष्णुभक्त, शास्त्रज्ञ किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण की मुद्रा, कुण्डल, वस्त्राभूषण (२ वस्त्र), चन्दन, सुगन्धित माला आदि से अर्चना करके उसे जगन्नाथदेवरूप मानते हुये कृतांजलि होकर भगवद्भक्ति पूर्ण हृदय से यह प्रार्थना करें।।१-४।।

भूदेव! भगवदद्विष्णोर्जङ्गमात्मन् महामते!। पापार्णवनिमग्नं मां निराश्रयमचेतसम्॥५॥
नानादुःखपरिध्वस्तं त्राहि मां शरणागतम्। प्रतिष्ठाप्य व्रतन्त्वेतद् यथाविधि विदाम्वरः॥६॥
प्रसाद्य देवदेवेशं शङ्खचक्रगदाधरम्।
ज्योतिःस्वरूपञ्चहरिं पवित्रैर्विविधचोदितैः। सर्वपापापहःस्वामीयथामे प्रीयतामिति॥७॥
एवंव्रतप्रार्थितः स ब्राह्मणो ध्यानतत्परः। सुलक्षणे हस्तकुण्डेविधिवत्संस्कृते ततः॥८॥
वैष्णवाग्निं समाधाय प्रतिष्ठाविधिचोदितम्। पूजयित्वा हव्यवाहरूपनारायणं प्रभुम्॥९॥

यथा—"हे महामति भूदेव! आप भगवान् विष्णु के जङ्गमदेहरूपी हैं। हे विदांवर! सर्वपापहारी सर्वस्वामी भगवान् विष्णु मेरे ऊपर प्रसन्न हो जायें। यथाविधान पवित्र उपचारादि दान द्वारा ज्योतिर्मय शंखचक्रगदाधारी देवदेवाधिपति भगवान् हरि को प्रसन्न करके मेरे व्रत की यथाविधि प्रतिष्ठा करके पापार्णव में निमग्न, नाना दुःखपीड़ित निराश्रय अचेतनप्रायः तथा शरणागत मेरी रक्षा करें।" आचार्य ब्राह्मण की इस प्रकार से व्रत प्रतिष्ठार्थ प्रार्थना करके भगवान् का ध्यान करे। तब एक हाथ के सुलक्षणात्मक कुण्ड की यथाविधान संस्कारयुक्त प्रतिष्ठा करनी चाहिये। उस पर प्रतिष्ठाविधान के अनुसार वैष्णवाग्नि की स्थापना करके पुरुषसूक्त के मन्त्रों से षोडशोपचार द्वारा अग्निरूपी भगवान् नारायण का पूजन करें।।५-९।।

उपचारैः षोडशभिः सूक्तेन पुरुषस्य च। पलाशसमिधावह्नौ सौरभेयहविस्तथा॥१०॥
पायसस्य मधुमविर्मिश्रितस्य पृथक् पथक्। पञ्चपञ्चसहस्राणितथाकृष्णातिलानपि॥११॥
जुहुयात्प्रणवाद्यन्तं स्वाहान्तेन समुच्चरन्। अष्टाक्षरेण मन्त्रेण साक्षान्नारायणात्मना॥१२॥
ऋत्विग्भिः सहितो मन्त्री व्रतिभिर्ब्रह्मणा सह। वसोर्धारां पातयन्वै पुरुषाग्नेयवैष्णवैः॥१३॥
सूक्तैः सुचित्रवर्णान्तैर्यजमानः कृताञ्जलिः। स्तुवीत पुरुषाख्येन पुरुषं जातवेदसम्॥१४॥

तदनन्तर आदि-अन्त में प्रणव से पुटित करके तथा अन्त में स्वाहा लगाकर साक्षात् नारायण स्वरूप अष्टाक्षर मन्त्र पाठ करते हुये अग्नि में पलाश समिध्, गोघृत मिश्रित पायस तथा काले तिल में से प्रत्येक की ५००० आहुति प्रदान करें। तत्पश्चात् यजमान, ब्रह्मा तथा व्रती ऋत्विग्गण के साथ सुमधुर एवं स्पष्ट रूप से अक्षरों के उच्चारण के द्वारा पौरुष-आग्नेय तथा वैष्णव सूक्त पाठ करते हुये अग्नि में वसुधारा प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर कृतांजलि होकर पुरुषसूक्त का पाठ करके अग्निरूपी परमपुरुष का स्तव करें।।१०-१४।।

देवेदव! जगन्नाथ! संसारार्णवतारक!। त्राहि मां घोरदुर्वारपापपाथोधिपातितम्॥१५॥

त्वमेव मां समुद्धर्तुमीशिषेदीनतारक!। अप्रमेय कृपारम्भोधे! मां विधेहिवृषात्मकम्।।१६।।

यथा—"हे देवदेव, जगन्नाथ, संसार रूपी समुद्र से पार करने वाले! आप मेरी रक्षा करिये! मैं दुर्वार पापरूपी भीषण जलनिधि में गिर गया हूं। हे दीनतारक! एकमात्र आप ही मेरा उद्धार करने में समर्थ हैं। हे अप्रमेय कृपासिन्धु! आप कृपा करके मुझे धर्मबुद्धि प्रदान करें।"।।१५-१६।।

स्तुत्वेत्थं प्रज्वलन्तञ्च नारायणमनामयम्। सप्त प्रदक्षिणीकृत्य दण्डवत्प्रणमेत् क्षितौ।।१७।।
पुष्पाञ्जलीन् क्षिपेद्वह्नौ षोडशेन तु षोडश। सर्वपापविमुक्तंहि तदात्मानंविचिन्तयेत्।।१८।।
पूर्णाहुतिं ततोदत्त्वा शेषकर्म्मसमापयेत्। पुराणं वैष्णवंविष्णोर्वाचयेदग्रतः शुचिः।।२०।।
बृहत्साम वामदेव्यं सामगाथान्तरं तथा। वैराजं सामगायेत त्रिसुपर्णं मधुत्तमम्।
त्रिणाचिकेतञ्च तथा गायतोदान्तपुष्कलम्।।२१।।

इस प्रकार से प्रार्थनामय स्तुति करके अनामय नारायणरूप प्रज्वलित अग्नि की सात प्रदक्षिणा करके पृथिवी पर दण्डवत् होकर प्रणाम करें। तदनन्तर षोडशाक्षर मन्त्र से अग्नि में षोडश पुष्पांजलि देकर स्वयं को सभी पापों से मुक्त होने की भावना करें। तदनन्तर पूर्णाहुति प्रदान करके बाकी कर्मों को सम्पन्न कर देना चाहिये। इसके अनन्तर पवित्र होकर भगवान् के समक्ष स्थित होकर विष्णु माहात्म्य से युक्त पुराण का पाठ करके बृहद्साम, वामदेव्य, साम-गाथान्तर तथा वैराज नामक सामवेद गान का उदात्तादि स्वरत्रय के साथ मधुर स्वर में गायन करें। उदात्त स्वर में ही त्रिनाचिकेत नामक सामगान भी करें।।१७-२१।।

अन्यैश्च स्तुतिगीताद्यैः श्रुतोपनिषदादिभिः। प्रीणयन् जगतामीशं नयेद्रात्रिं मुदान्वितः।।२२।।
ततः प्रभाते ते सर्व्वे यजमानपुरःसराः। आप्लाव्यत्तीर्थराजाम्भोगत्वाचवटमूलकम्।
तं पूजयित्वा भगवद्रूपं कल्पवटं सुत!।।२३।।
वैनतेयंपूजयित्वा गच्छेद् भगवदन्तिकम्। सर्वपापतमोऽर्केण सूक्तेन पुरुषस्य वै।।२४।।
पूजयित्वा विधिवद्दारुब्रह्मस्वरूपिणम् । प्रार्थये प्राञ्जलिर्भूत्वा यतमानः शुचिव्रतः।।२५।।

इसी तरह से अन्य स्तुति गीतादि एवं श्रुति तथा उपनिषद आदि का पाठ करना चाहिये। इस प्रकार अखिल जगत् के ईश्वर जगन्नाथ देव को प्रसन्न करके सानन्द रात्रि अतिवाहित करें। तत्पश्चात् प्रभातकाल में यजमान तथा सभी व्रतीलोग तीर्थराज सागर में स्नान करें। हे सूत! तदनन्तर पवित्रव्रतावलम्बी यजमान वटमूल में जाकर भगवद्रूपी वटवृक्ष तथा वहां स्थित गरुड़ की पूजा करके तब भगवान् के पास जाकर दारुब्रह्मरूपी भगवान् की पूजा अखिल पापान्धकार के नाशार्थ भास्कररूप पुरुषसूक्त से सविधि करने के उपरान्त अंजलिबद्ध होकर पवित्र मन से यह प्रार्थना करें।।२२-२५।।

देव! त्वदङ्घ्रिनलिने पतितं पाहि मां प्रभो!।
तस्मिन् त्रिपापपाथोधौ निर्मग्नं हतचेतनम्।।२६।।
उद्धरस्व जगन्नाथ! दीनोद्धरणतत्पर!। त्वत्प्रसादाद्व्रतंनाथसुफलं मेऽस्त्वसंशयम्।।२७।।
यथाऽहंनिर्म्मलो देव! त्वदङ्घ्रिनलिनाऽन्तिके!।
विशोको निवसामीश! तत्कुरुष्व जगत्प्रभो!।।२८।।

यथा—हे देव! मैं आपके चरणकमलों पर गिरा हूं। मेरी रक्षा करिये। हे प्रभो! मैं भयंकर त्रितापरूप जलधिजल में डूबता चेतनाहीन होता जा रहा हूं। हे दीनोद्धारतत्पर जगन्नाथ! मेरी इस सागर से रक्षा करें। हे नाथ! आपकी कृपा से मेरा व्रत निःसंशयरूपेण सफल हो जाये। हे देव! जगत्प्रभु! मैं निर्मलात्मा तथा शोकरहित हो सकूं तथा आपके चरणारविन्द का सामीप्य प्राप्त कर सकूं। ऐसा करिये।।२६-२८।।

ततः प्रदक्षिणां कुर्याद्विष्णोर्नामसहस्त्रकम्। जपन्सूक्तं पौरुषञ्च प्रणमेद्देवमग्रतः।।२९।।
हिरण्यगर्भेति जपन्द्वादशाक्षरगर्भितम्। ततो गृहं समागम्य वह्निकुण्डसमीपतः।।३०।।
पुनः प्रज्वाल्यदेवेशं पूजयेज्जातवेदसि। पूर्ववदुपचारैस्तु प्रणम्यच विसर्ज्ज्येत्।।३१।।
आचार्याय ततो दद्याद्दक्षिणा गां पयस्विनीम्।
सवत्सां लक्षणोपेतां दक्षिणां स्वर्णभूषणैः।।३२।।

तदनन्तर प्रदक्षिणा तथा विष्णु के सहस्रनाम का पाठ करके पुरुषसूक्त जपने के पश्चात् देवता को प्रणाम करे। द्वादशाक्षर मन्त्र गर्भित 'हिरण्यगर्भेति' आदि द्वादशाक्षर मन्त्रा का जप करे। तदनन्तर घर आकर अग्निकुण्ड के पास आकर अग्नि प्रज्वलित करके जातवेदा की पूजा करे। पूर्ववत् उपचारों से पूजा करने के पश्चात् प्रणाम एवं विसर्जन करे। वह गौ बछड़े वाली, सुलक्षणी एवं दुधवती हो। आचार्य को अब दक्षिणा तथा गौ प्रादान करे।।२९-३२।।

वासोयुग्मं सहाऽर्घ्यञ्चधान्यं कनकमेवच। मधुपूर्णं कांस्यपात्रंताम्रपात्रंघृतान्वितम्।।३३।।
तैलपात्रंपयः पात्रंदधिपात्रञ्चकांस्यतः। ब्राह्मणेभ्यस्ततोदद्याद्यथाशक्तिसदक्षिणम्।।३४।।
युग्मं दद्यात्षोडशम्वै ब्राह्मणेभ्यश्च भक्तितः। भोजयेत्पायसैर्विप्रान्पूजितान्गन्धमाल्यकः।।३५।।
तेभ्योऽपि दद्याद्विधिवद्यथाशक्त्या च दक्षिणाम्।
पूज्येष्टदेवताः सम्यग्वन्दयेद् भगवद्धिया।।३६।।
दीनानांथविपन्नेभ्यो दद्यदन्नं दयान्वितः। स्वयं दिनान्तेभुञ्जीत इष्टैःशिष्टैश्चबन्धुभिः।।३७।।
एवं व्रतं समाख्यातं पुत्र! विद्ध्यति शोभितम्।
नाऽतः परतरं किञ्चित्सर्व्वपापापनोदनम्।।३८।।
प्रायश्चित्तं व्रतम्वाऽपि सर्वपापापनोदकम्।
न चोदयं (चोदि तं) क्वाऽपि शास्त्रे तदत्र परिनिष्ठितम्।।३९।।
अनादिजन्मसम्भूतं पापार्णवमहातपम्। तर्तुं नान्यत्षणमुखाऽस्ति व्रतानांममकर्म वै।।४०।।
अनेन विधिना कुर्याद् व्रतमेतत्सुदुर्लभम्। यथा यथा शक्तिरत्र सिद्धिस्तस्य तथा तथा।।४१।।

इस प्रार्थना के पश्चात् आचार्यदेव को स्वर्णाभूषण भूषिता, सुलक्षणा, सवत्सा दुग्धवती गौ, महामूल्य वस्त्र की जोड़ी, धान्य, कनक, मधुपूर्ण कांस्यपात्र, घृतपूर्ण ताम्रपात्र, दधिपूर्ण दधिपात्र तथा दक्षिणा प्रदान करना चाहिये। अन्य व्रतीगण भी ब्राह्मणों को यथाशक्ति सदक्षिणा अनेक पात्र आदि एवं १६ हाथ के वस्त्र की जोड़ी भक्तिभाव से दान करें। इस दिन अनेक विप्रगण को गन्धमाल्यादि द्वारा अर्चित करके पायस का भोजन कराना

चाहिये तथा उनको सामर्थ्य के अनुरूप यथाविधि दक्षिणा देनी चाहिये। अभीष्ट देवीगण की भी सम्यक् पूजा करके उनमें भगवान् की ही भावना द्वारा उनकी वन्दना करें तथा दीन-अनाथ विपन्न लोगों को दयापूर्ण चित्त से अन्न प्रदान करें। तत्पश्चात् दिनान्त में प्रिय तथा साधुशील वाले बन्धुगण के साथ स्वयं भोजन करें। हे पुत्र! मेरे द्वारा कहा यह व्रत अतीव कल्याणप्रद है। वास्तव में इसकी अपेक्षा सर्वपापनाशक उत्कृष्टतर व्रत है ही नहीं। किसी भी शास्त्र में ऐसा कोई प्रायश्चित्त अथवा व्रत नहीं कहा गया जिसके द्वारा सर्वविध पाप विलीन हो सकें। अतः मैंने यहां इस व्रत के विषय में कहा। हे षडानन! मुझे ज्ञात सभी व्रतों में से ऐसा कोई व्रत है ही नहीं जिसके द्वारा अनादिजन्म संभूत महासन्तापप्रद पापार्णव पार किया जा सके। हे वत्स! मेरे द्वारा बतलाई विधि के अनुसार सभी को इस दुर्लभ व्रत का पालन करना चाहिये। इस अनुष्ठान में जिसकी जैसी तत्परता रहेगी, वह उसी प्रकार की सिद्धि प्राप्त करेगा।।३३-४१।।

[१]मुनय ऊचुः

भगवञ्जैमिने सर्वं वेदवेदाङ्गपारग!। त्वदनुग्रहतोऽमाभिर्माहात्म्यं जगदीशितुः॥४२॥
क्षेत्रराजस्य तस्यैव यात्राणां चैव सर्वशः। भगवद्भोजनोच्छिष्टप्राशनादिफलं तथा॥४३॥
इन्द्रदुम्नस्य राज्ञो वै वृत्तान्तमतिदुर्लभम्। नीलमाधवरूपं तु दारुब्रह्मप्रकाशनम्॥४४॥
श्रुतं त्वद्वदनाम्भोजाद्गलितंद्यथाविधि। इदानीं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्तोहि वदताम्वर!॥४५॥
सर्वं विस्तरतो ब्रह्मन्वयं सर्वे मुदान्विताः। पुराणश्रवणस्यैव यदुक्तं फलमेव तत्॥४६॥
को वा तस्य विधिश्चैव केन वा स्यात्त साङ्गकम्।
अस्मासु चेदनुक्रोशो यथावद्वक्तुमर्हसि॥४७॥

मुनिगण कहते हैं—हे भगवान् जैमिनि! हे वेदवेदाङ्गपारंगत! हमने आपकी कृपा से आपके मुख से निर्गत जगदीश्वर जगन्नाथ देव का, श्रीक्षेत्र का तथा भगवान् की यात्राओं का माहात्म्य सुना। उनके उच्छिष्ट भोजनादि का फल, राजाओं में श्रेष्ठ इन्द्रद्युम्न का दुर्लभ इतिहास, नीलमाधव एवं दारुब्रह्म के प्रकट होने का विषय भी सविधि श्रवण किया। हे वेदज्ञों में श्रेष्ठ! अब हम सभी सानन्दमन से पुराण श्रवण का श्रवणफल जानने के इच्छुक हैं। आप इसे विस्तृतरूपेण व्यक्त करिये। पुराण सुनने का क्या विधान है? किस प्रकार से वह सवांग सुन्दर रूप से सुना जाये? यदि हमारे प्रति आपकी दया है, तब इन समस्त विषय का वर्णन करिये।।४२-४७।।

जैमिनिरुवाच

साधु साधु मुनिश्रेष्ठा! यत्पृष्टं परया मुदा। तत्रमे प्रीतिरतुलाजाता रोमाञ्चकारिणी॥४८॥
तद्वः सर्वं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं सावधानतः। पुराणश्रवणारम्भे यथाविभवमात्मनः॥४९॥

---

१. इतः पर्यन्तः पाठः बङ्गवासीमुद्रितपुस्तकेऽधिक उपलभ्यते।

मोहमयी (मुम्बई) लक्ष्मणपुर (लखनऊ) मुद्रितपुस्तकयोः मुनयऊचुरित्यारभ्य पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्यसमाप्तिपर्यन्तः पाठोविशिष्टाध्याये सन्निवेशितः वङ्गवासीमुद्रितपुस्तके त्वस्मिन्नेवाध्याये प्रचलति खण्डसमाप्तिपर्यन्तम् ।

आदौ सङ्कल्प्य विधिवद् ब्राह्मणं शुद्धवंशजम्।
अव्यङ्गावयवं शान्तं स्वशाखं स्वपुरोधसम्॥५०॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं भूषणैरतिशोभनैः। वस्त्रचन्दनमाल्याद्यैर्वृणुयात्पाठसंश्रुतौ॥५१॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ततःसम्प्रार्थयेद् द्विजम्।
त्वं विष्णुर्विष्णुरेव त्वं न तु भेदः कदाचन॥५२॥
निर्विघ्नं मे भवत्वेव त्वत्प्रसादात्प्रसीदच। ततो वृतं ब्राह्मणञ्च बहुमूल्यासने शुभे॥५३॥

ऋषि जैमिनि कहते हैं—आपका प्रश्न साधु प्रश्न है। आपने परमानन्द के साथ जिस विषय को पूछा है, उसे व्यक्त करने में मुझे इतनी प्रसन्नता हो रही है कि मेरा शरीर रोमांचित हो गया है। अतएव इस विषय को कहता हूं। एकाग्र मन से सुनें। पुराण श्रवणारंभ में पहले यथाविधि संकल्प करें, जिससे कोई अंग (श्रवण विधि) विकृत न हो। जिसका स्वभाव शान्त है तथा विषय को जानता हो, जो यजमान वाली ही शाखा वाले हों तथा यजमान के पुरोहित हों, ऐसे सद्वंशोत्पन्न ब्राह्मण का अपने वैभव के अनुसार उत्तम वस्त्रालंकार तथा चन्दन माला आदि से अलंकृत करके पुराण कहने के लिये वरण करें। तदनन्तर हाथों को जोड़कर उन ब्राह्मण से यह प्रार्थना करनी चाहिये। यथा—"हे ब्रह्मन्! आप ही विष्णु हैं। विष्णु भी आप ही हैं। आपमें तथा विष्णु में तनिक भी भेद नहीं है। आप मुझ पर प्रसन्न हो जायें। आपकी कृपा से मेरा पुराण श्रवण निर्विघ्न सम्पन्न हो जाये।" तदनन्तर इन वरण किये गये ब्राह्मण को उत्तम शुभ बहुमूल्य आसन पर बैठाना चाहियें।।४८-५३।।

वासयित्वा च तस्यैवगलेमालां विनिक्षिपेत्। मस्तके पुष्पगर्भञ्चचन्दनैरनुलेपयेत्॥५४॥
यस्मात्तस्मिंश्च समये विप्रो व्याससमोमतः। तेनैव ब्राह्मणेनैव पुस्तके विष्णुरूपके॥५५॥
कारयेद्व्यासपूजाञ्च श्रीखण्डागुरुपुष्पकैः। नानोपचारै रुचिरैर्भक्ष्यभोज्यादिकैरपि॥५६॥
भक्त्या चासनदानादिविधिः कार्यो दिने दिने।
साम्प्रतं कथयाम्येवं श्रूयतां श्रोतृलक्षणम्॥५७॥

उनके गले में तथा मस्तक पर माला प्रदान करके उनके सर्वाङ्ग पर चन्दन लेप करें। क्योंकि उस समय उन ब्राह्मण को व्यासदेव के समान जानना चाहिये। तदनन्तर ये वाचक ब्राह्मण साक्षात् विष्णुरूप पुस्तक पर श्रीखण्ड-अगुरु-पुष्प तथा भक्ष्य-भोज्यादि नाना मनोहर उपचार प्रदान करके व्यासदेव का पूजन करायें। यजमान उनको नित्य भक्तिपूर्वक आसन प्रदान करें। हे द्विजगण! अब मैं श्रोता का लक्षण कहता हूं। सुने!।।५४-५७।।

गतानुगतिकानाञ्चनिवासार्थतथाद्विजाः। आसनानि यथायोग्यं रचयित्वास्वयंतथा॥५८॥
शुभासनान्तरस्थो हि भवेदुत्कण्ठमानसः। अथवा संस्कृते देशे सर्वैःसह वसेद्भुवि॥५९॥
व्यासस्याऽग्रे निवसतिरासनेनोच्च एवच।
कृतस्नानो मुदा युक्तो धारयञ्छुक्लवाससी॥६०॥
आचान्तः शङ्खचक्रादितिलकान्वितविग्रहः।
मनसा भावयेद्विष्णुं विश्वासं कारयेद् भृशम्॥६१॥

पुराणे ब्राह्मणे चैव देवे च मन्त्रकर्मणि। तीर्थे वृद्धस्य वचने विश्वासः फलदायकः॥६२॥

आये हुये व्यक्तियों के लिये बैठने हेतु यथायोग्य आसनों की रचना करके स्वयं श्रवण हेतु उत्कण्ठित चित्त से अन्य एके आसन पर बैठे, अथवा व्यास के समान उन वाचक ब्राह्मण के सामने उच्चस्थ बैठना उचित नहीं है, यह सोचकर जो साफ किये गये भूभाग पर बान्धवों के साथ बैठे, वह श्रोता लक्षण सम्पन्न है। वह श्रोता स्नान के उपरान्त आनन्दपूर्वक दो वस्त्र पहनकर आचमन किये हुये हो तथा उसने शंख-चक्रादि चिह्नांकित तिलक धारण किये हुये हो। वह विष्णुदेव के प्रति विश्वास रखकर मन ही मन उनका चिन्तन किये हो। हे मुनिप्रवरगण! पुराण, ब्राह्मण, देवता, मन्त्रकर्म, तीर्थ तथा वृद्धों के वाक्य में विश्वास करना फलप्रद है।।५८-६२।।

अतो मुनिवराःसर्वं पुण्यंविश्वासकारणम्। पाषण्डादिकसम्भाषंवृथालापम्प्रयत्नतः॥६३॥
पुराणश्रवणे काले सर्वचिन्ताञ्च वर्जयेत्। अनेन विधिना विप्राः! प्रत्यहं शृणुयान्मुदा॥६४॥
ततः पाठे समाप्ते च करतालादिकैर्मुहुः। जयकृष्ण! जगन्नाथ! हर इत्यादिनामभिः॥६५॥
विस्तारयेद्यथाकाशे श्रूयते शब्द एव सः। एवञ्च प्रत्यहं कुर्यात्प्रीतये मुरवैरिणः॥६६॥
ततो ग्रन्थसमाप्तौच विष्णुप्रीणनतत्परः। विशेषाद्वस्त्रमाल्यादिचन्दनैर्भूषणैस्तथा।
भूषयेत्परया भक्त्या विप्रं व्याससमं द्विजाः!॥६७॥
आत्मशक्त्याप्रदद्याच्चदक्षिणाम्वैयथाविधि। ये ये प्रदद्युर्यद्यच्च मत्तस्तच्छृणुताऽधुना॥६८॥

विश्वास ही समस्त पुण्यफल का वास्तविक कारण कहा गया है। पुराण सुनते समय सर्वप्रयत्नपूर्वक पाषण्डीगण के साथ वार्त्ता, व्यर्थ आलाप तथा सभी प्रकार की विषय चिन्ता नहीं करनी चाहिये। हे विप्रगण! नित्य इस विधानानुसार सानन्दचित्त पुराण सुनें। पाठ समाप्त होने पर ताली बजाकर जयकृष्ण जगन्नाथ हरि इत्यादि नामोच्चारण को उच्चस्वर से कहना चाहिये, जिससे आकाश में उसकी प्रतिध्वनि सुनाई पड़े। हे द्विजगण! भगवान् मुरारी की प्रसन्नतार्थ नित्य यह करें। तदनन्तर ग्रन्थ समाप्त होने पर विष्णु के प्रीतिसाधन में तत्पर होकर परमभक्ति पूर्वक वस्त्र माला-चन्दन-आभूषण द्वारा व्यास के समान ही वाचक ब्राह्मण को भूषित करें। तत्पश्चात् अपने सामर्थ्यानुरूप दक्षिणा वाचक को प्रदान करना चाहिये। जिन-जिन व्यक्ति द्वारा जो-जो दक्षिणा देनी चाहिये, वह मुझसे सुनें।।६३-६८।।

राजानः करिणो दद्युः साऽलङ्कारान्सुलक्षणान्।
क्षत्रिया एवमेवञ्च ते वै राजसमा मताः॥६९॥
ब्राह्मणाः पुस्तकांश्चैवविष्णोरर्चाकरंडिकाः। कनकंरजतञ्चैव धान्यं वस्त्रंस्वभक्तिः॥७०॥
विशश्च रत्नभूषाढ्यान्सिन्धुदेशोद्भवानपि।
गाश्च लक्षणसंयुक्ताः सवत्साश्च पयस्विनीः॥७१॥
अन्यच्च कनकाद्यञ्च त्येजर्युर्धर्मतत्परा। शूद्राः प्रदद्यः परया मुदा संयुतमानसाः॥७२॥
वासांसि च सुर्वणं च धान्यं रत्नानि गास्तथा।
नानाऽलङ्कारयुक्ताश्च घटोघ्नीर्बालगर्भिणीः॥७३॥

एवं वै दक्षिणां दद्याद्येनसन्तुष्यतेगुरुः। आत्मनःशक्तितोविप्रावित्तशाठ्यं नकारयेत्॥७४॥
शान्तिकं पौष्टिकं चैव व्रतोद्वाहादिकर्मच। मोक्षस्यसाधकं कर्म पुराणश्रवणं तथा॥७५॥
यज्ञादिकञ्च दानञ्च व्रतं नानाविधं तथा। यदिचेद्दक्षिणाहीनं तदा भवतिनिष्फलम्॥७६॥

राजा लोग सुन्दर लक्षणयुक्त तथा अलंकार से सजे हाथी दान करें। साधारण क्षत्रिय भी राजा के समान माने गये हैं। अतएव वे भी यही दान करें। यही शास्त्र का नियम है। ब्राह्मणगण भक्ति के साथ पुस्तक, विष्णुपूजा की पिटारी, कनक, रजत, धान्य तथा वस्त्रदान करें। धार्मिक वैश्य रत्नजटित सिन्धुदेशोत्पन्न घोड़े, सुलक्षणा, सवत्सा, दुग्धवती गौ तथा कनकादि अन्य वस्तु का भी दान करें। शूद्रगण अपार आनन्दपूर्ण मानस से वस्त्र-स्वर्ण-धान्य-रत्न तथा नाना अलंकार भूषित बालगर्भिणी घटौघ्नि गौओं का दान करें। हे विप्रगण! जिससे गुरु प्रसन्न हो जाते हैं, आत्मशक्ति के अनुरूप उस प्रकार की दक्षिणा देनी चाहिये। कभी इस विषय में कंजूसी न करें। वास्तव में शान्ति, पुष्टि, व्रतोपचार, मोक्षप्रद, पुराणश्रवण, दान तथा नानाविध यज्ञादि कर्म यदि दक्षिणारहित होने के कारण निष्फल हो जाते हैं।।६९-७६।।

असुराः कर्मणस्तस्यहरन्तिफलमेवतत्। यथास्त्रीणांचलावण्यंभर्तृस्नेहविवर्जितम्॥७७॥
युद्धात्पलायितानाञ्चपृष्ठंकृत्वाधनुष्मताम्। विनाधावनमश्वानां दुष्टत्वंहियथाद्विजाः॥७८॥
मूकत्वेनेव पाण्डित्यं सर्वशास्त्रविपश्चिताम्।
हीनं दक्षिणया यद्यत्कर्म तद्वच्च निष्फलम्॥७९॥
दानेन क्षीयतेयस्माद्दुरितानांकदम्बकम्। दक्षिणेतितथा विप्रागीयतेशाास्त्रवेदिभिः॥८०॥

असुरगण दक्षिणाविहीन कर्म के फल का हरण कर लेते हैं। भर्तृस्नेह रहित (पति स्नेहंरहित) स्त्रीगण का लावण्य जैसे व्यर्थ है तथा युद्धस्थल से पीठ दिखाकर भागने वाले धनुर्धारी का वीरत्व जैसे वृथा है, दक्षिणारहित कर्त्तव्य भी व्यर्थ है। हे द्विजगण! अश्वगण तब ही प्रशंसित होते हैं, जबकि वे तेजी से दौड़ें। अन्यथा उनकी प्रशंसा नहीं की जाती। इसी प्रकार से जो सर्वशास्त्र पारंगत होकर भी यदि मूक है उसका पाण्डित्य व्यर्थ हो जाता है। वैसे ही दक्षिणाहीन कर्म को भी ऐसा ही समझे।।७७-८०।।

ततो विप्रान्भोजयेद्वै यथाशक्तिप्रकल्पितैः। कर्पूरेण च खण्डेन सर्पिषा पायसैर्युतैः॥८१॥
षड्विधैरन्नपानाद्यैः सुस्वादैरमृतोपमैः।
तेभ्योऽपि स्वर्णवस्त्रादि यथाशक्त्या प्रदापयेत्॥८२॥
एतद्वः कथितं सर्वं पुराणश्रवणस्यच। साङ्गोपाङ्गविधिश्चैव येनस्यात्सफलंत्विदम्।
इदानीं भो मुनिश्रेष्ठाः! किमन्यज्ज्ञातुमिच्छथ॥८३॥

हे विप्रगण! दक्षिणा दान द्वारा जितने दुर्भाग्य हैं, वे क्षयीभूत हो जाते हैं। तभी उसे शास्त्रज्ञ लोग दक्षिणा कहते हैं। हे द्विजगण! तदनन्तर यथाशक्ति खांड़, घृत तथा पायस युक्त अमृतोपम षड्रसपूर्ण अन्नपानादि से ब्राह्मणों को भोजन करायें। अपनी शक्ति के अनुसार उनको स्वर्ण-वस्त्र देना चाहिये। हे मुनिप्रवरगण! जिस प्रकार से पुराण श्रवण द्वारा वह कार्य सफल होता है, मैंने उस विषय का सभी अंगों के साथ वर्णन कर दिया। अब क्या सुनना चाहते हैं?।।८१-८३।।

मुनय ऊचुः

अहोऽस्माकंमहाभाग्यंयत्पापौघविनाशनम्। पुराणश्रवणस्यैव फलमस्माभिरेव च॥८४॥

साङ्गोपाङ्गविधानञ्च श्रुतं त्वन्मुखपङ्कजात्।
धन्याः स्म कृतपुण्याः स्म संसारे विगतज्वराः॥८५॥

इदानामात्मशक्त्या वै दीयतेभवते मुने। दक्षिणाफलसम्प्राप्तौ प्रसन्नस्त्वंगृहाणच॥८६॥

इत्युक्तवन्तो मुनयो ह्यनिञ्चनाः समित्कुशं पुष्पफलाक्षतादिकम्।
क्लृप्त्वा च तस्मै मुनयः सुमुक्ताः क्षेत्रोत्तमं जग्मुरतिप्रहर्षिताः॥८७॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डान्तग्रतोत्कलखण्डेपुरुषोत्तमक्षेत्र-माहात्म्येजैमिनित्रऋषिसम्वादे पुराणश्रवणसत्फलाद्विवर्णनंनामषष्टितमोऽध्यायः।।६०।।

।।समाप्तं श्रीपुरुपोत्तम (जगन्नाथ) क्षेत्रमाहात्म्यम्।।

मुनिगण कहते हैं—हे ब्रह्मन्! अहो! हमारा क्या महाभाग्य है! हमने आपके मुखकमल से पुराण श्रवण सम्बन्धित सर्वपापनाशक साङ्गोपाङ्ग समस्त विधान तथा उसका फल सुना। अब संसार में हम ही धन्य हैं तथा हमी कृतपुण्य भी हैं। वास्तव में आज हमारे सभी दुःख-क्लेश दूर हो गये। वास्तव में आज हम फलप्राप्ति हेतु अपनी शक्ति के अनुसार आपको कुछ दक्षिणा देना चाहते हैं। आप वह प्रसन्नचित्त से ग्रहण करें। धन-रत्न आदि के दान से दरिद्र मुनिगण ने मुनिवर जैमिनि को समिध्, कुश, पुष्प, फल, अक्षतादि प्रदान किया तथा वे सभी मुनिगण आनन्दित होकर पुरुषोत्तम क्षेत्र चले गये। वहां वे सभी मुनिगण यथाकाल मुक्त हो गये।।८४-८७।।

।।षष्टितम अध्याय समाप्त।।

।।पुरुषोत्तमक्षेत्र माहात्म्य समाप्त।।

❖❖❖

।। श्रीबदरीनाथायनमः।।

श्रीबदरिकाश्रममाहात्म्यारम्भः

प्रथमोऽध्यायः

बदरिकाश्रम का सभी तीर्थों में अधिकत्व वर्णन, बदरीश महत्व वर्णन

शौनक उवाच

सूतसूतमहाभाग! सर्वधर्मविदाम्वर!। सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ! पुराणे परिनिष्ठित!।।१।।
व्यासःसत्यवतीपुत्रोभगवान्विष्णुरव्ययः। तस्ययत्प्रियशिष्यस्त्वंत्वत्तोवेत्तानकश्चन।।२।।
प्राप्ते कलियुगे घोरे सर्वधर्मबहिष्कृते। जना वै दुष्टकर्माणः सर्वधर्मविवर्जिताः।।३।।
क्षुद्रायुषः क्षुद्रप्राणबलवीर्यतपः क्रियाः। अधर्मनिरताः सर्वे वेदशास्त्रविवर्जिताः।।४।।
तीर्थाटनतपोदानहरिभक्तिविवर्जिताः। कथमेषामल्पकानामुद्धारोऽल्पप्रयत्नतः।।५।।
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं क्षेत्राणामुत्तमं तथा। मुमुक्षूणां कुतः सिद्धिःकुत्रवात्रृषिसञ्चयः।।६।।
कुत्रवाऽल्पप्रयत्नेन तपोमन्त्राश्च सिद्धिदाः। कुत्र वा वसतिश्रीमाञ्जगतामीश्वरेश्वरः।
भक्तानामनुरक्तानामनुग्रहकृपालयः।।७।।
एतदन्यच्च सर्वं मे परार्थैकप्रयोजनम्। ब्रूहि भद्राय लोकानामनुग्रहविचक्षण!।।८।।

ऋषि शौनक कहते हैं—हे सूत, हे सूत! हे महाभाग! आप धर्मविद्गण में वरेण्य हैं। आपको निखिल शास्त्रों का तत्वार्थ ज्ञात हैं। पुराणशास्त्र में आपका ज्ञान परिनिष्ठित है। सत्यवती पुत्र भगवान् व्यास साक्षात् अव्यय विष्णु हैं। आप उनके प्रिय शिष्य हैं। आपसे अधिक तत्ववेत्ता अन्य कोई नहीं है। घोर कलिकाल उपस्थित होने पर धर्मसिद्धान्तों का बहिष्कार होगा। मनुष्य दुष्टकर्मा तथा सर्वधर्मरहित होंगे। अल्पायु होने से उनका प्राण-बल-वीर्य-तप-क्रियाकलाप क्षीण होगा। तब वे वेदशास्त्ररहित होकर अधर्म तत्पर होंगे और तीर्थाटन, तप, दान एवं हरिभक्ति का त्याग करेंगे। हे मुनिवर! क्या करने से अल्प प्रयत्न से ही सभी अल्पाशय लोगों का उद्धार होगा, तीर्थसमूह में से कौन सा तीर्थ उत्तम है, क्षेत्रों में से कौन क्षेत्र श्रेष्ठ है, मुक्तिकामी लोग किस प्रकार से सिद्धि प्राप्त करेंगे? कहां ऋषिसंघों का सम्मिलन होगा? कहां अल्प प्रयत्न से तपस्या एवं मन्त्रजप सिद्ध होगा? जो अनुरक्त भक्तों के अनुग्रह तथा कृपा के आश्रयस्थल हैं, वे श्रीमान् जगत्पति परमेश्वर कहां निवास करेंगे?। हमारा यह सभी प्रश्न अन्य लोगों के कल्याणार्थ पूछा गया है। हे सूत! आप परानुग्रह के ज्ञाता हैं। अतएव सभी लोकों के मंगल हेतु यह सब तथा अन्य वेदितव्य विषयों को कहिये।।१-८।।

सूत उवाच

साधुसाधुमहाभाग! भवान्परहिते रतः। हरिभक्तिकृतासक्तिप्रक्षालितमनोमलः॥९॥
अथ मे देवकीपुत्रो हृत्पद्ममधिरोहति। प्रसङ्गात्तव विप्रर्षे! दुर्ल्लभः साधुसङ्गमः॥१०॥
हरति दुष्कृतसञ्चयमुत्तमां गतिमलं तनुते तनुमानिनाम्।
अधिकपुण्यवशादवशात्मनां जगति दुर्लभसाधुसमागमः॥११॥
हरति हृदयबन्धं कर्मपाशार्दितानां वितरति पदमुच्चैरल्पजल्पैकभाजाम्।
जननमरणकर्मश्रान्तविश्रान्तिहेतुस्त्रिजगति मनुजानां दुर्ल्लभः सत्प्रसङ्गः॥१२॥

सूत जी ने यह प्रश्न सुनकर साधु-साधु कहकर उत्तर देना आरंभ किया कि—"हे महाभाग! आपलोग पराये हित में तत्पर रहते हैं। हरिभक्ति में आसक्ति के कारण आपका मनोमल धुल गया है। हे विप्रों! आप लोगों द्वारा यह प्रसंग छेड़े जाने के कारण मेरे हृदय में सहसा देवकीनन्दन अधिरूढ़ हो गये! अहो! पृथिवी पर साधुसंग अतीव दुर्लभ हैं। इस जगत् में अवशात्मा देहधारी मानवगण को यदि अत्यन्त पुण्यबल से दुर्लभ साधु-समागम प्राप्त हो जाये, तब वह साधुसंग ही उन मानवों के दुष्कृति पुंज का हरण करके उत्तमगति का विस्तार कर देगा। यह साधुसंग ही कर्मपाश से पीड़ित प्राणीगण के हृदयबन्धन का छेदन करता है। तब वह व्यक्ति क्रमशः धीरे-धीरे उच्चपद प्राप्ति का अधिकारी होने लगता है। त्रैलोक्य दुर्लभ सत्प्रसंग ही मनुष्य के जनन-मरण रूप श्रान्ति के विश्रान्ति का हेतु हो जाता है।।९-१२।।

सूत उवाच

अयंप्रश्नःपुरासाधो! स्कन्देनाऽकारिसर्वतः। कैलाशशिखरेरम्यऋषीणांपरिशृण्वताम्।
पुरतो गिरिजाभर्तुः कर्त्तुं निःश्रेयसं सताम्॥१३॥

सूत जी कहते हैं—हे साधुगण! पूर्वकाल में साधुगण की कल्याण कामना से रम्य कैलास शिखर पर ऋषियों के सामने ही कार्त्तिकेय ने पार्वतीपति से यह पूछा।।१३।।

स्कन्द उवाच

भगवन्सर्वलोकानांकर्त्ता हर्त्ता पिता गुरुः। क्षेमाय सर्वजन्तूनां तपसेकृतनिश्चयः॥१४॥
कलिकाले ह्यनुप्राप्ते वेदशास्त्रविवर्जिते। कुत्र वा वसतिश्रीमान्भगवान्सात्वतांपतिः॥१५॥
क्षेत्राणि कानि पुण्याणि तीर्थानिसरितस्तथा। केनवाप्राप्यतेसाक्षाद्भगवान्मधुसूदनः।
श्रद्दधानाय भगवन्कृपया वद मे पितः!॥१६॥

भगवान् कार्त्तिकेय कहते हैं—"हे भगवान्! आप समस्त लोकों के कर्त्ता-पिता तथा गुरु हैं। आप समस्त प्राणीगण के हितकामनार्थ तपःश्चरण करने का निश्चय करते हैं। हे प्रभो! कालिकाल आने पर सभी वेद-शास्त्र लुप्त होंगे। तब सात्वतपति श्रीमान् भगवान् कहां निवास करेंगे? उस समय कौन क्षेत्र, तीर्थ अथवा नदी पुण्यप्रद कहे जायेंगे तथा किन कर्म के करने से भगवान् मधुसूदन प्रत्यक्ष होंगे? हे भगवान् पिता! मैं यह सब सुनने के लिये श्रद्धावान् हूं। अतः कृपा करके यह सब कहिये।।१४-१६।।

श्रीमहादेव उवाच

बहूनि सन्ति तीर्थाणिक्षेत्राणि च षडानन!। हरिवासनिवासैकपराणि परमार्थिनान्।।१७।।

काम्यानि कानिचित्सन्ति कानिचिन्मुक्तिदान्यपि।
इहाऽमुत्रार्थदान्येव बहुपुण्यप्रदानि वै।।१८।।

गङ्गा गोदावरीरेवातपतीयमुनासरित्। क्षिप्रा सरस्वतीपुण्या गौतमीकौशिकीतथा।
कावेरी ताम्रपर्णी च चन्द्रभागा महेन्द्रजा। चित्रोत्पला वेत्रवती सरयूःपुण्यवाहिनी।।१९।।

चर्मणवती शतद्रूश्च पयस्विन्यत्रिसम्भवा।
गण्डिका बाहुदा सर्वाः पुण्याः सिन्धुः सरस्वती।।२०।।

भुक्तिमुक्तिप्रदाश्चैताः सेव्यमाना मुहुर्मुहुः।
अयोध्याद्वारिका काशी मथुराऽवन्तिका तथा।।२१।।

कुरुक्षेत्रं रामातीर्थं काञ्ची च पुरुषोत्तमम्। पुष्करं दर्दुरं क्षेत्रं वाराहं विधिनिर्मितम्।।२२।।

बदर्य्याख्यं महापुण्यं क्षेत्रं सर्वार्थसाधनम्।।२३।।

महादेव कहते हैं—हे षडानन! जहां हरि सदा निवास करते हैं तथा जो परमार्थकामी मानवों द्वारा सेव्य हैं, ऐसे अनेक क्षेत्र तथा तीर्थ विद्यमान हैं। उनमें कतिपय कामनापूर्ण करने वाले, कतिपय मुक्तिदाता हैं तथा अन्य कई तो इस लोक तथा परलोक हेतु अर्थ एवं पुण्यप्रद हैं। हे वत्स! पुण्यतोया गंगा, गोदावरी, रेवा, तपती, यमुना, क्षिप्रा, सरस्वती, गोमती, कोशिकी, कावेरी, ताम्रपर्णी, महेन्द्रजा, चन्द्रभागा, चित्रोत्पला, वेत्रवती, पूतप्रवाहानदी सरयू, चर्मवती, शतद्रु, अत्रिसुता, पयस्विनी, गण्डकी, बाहुदा, सिन्धु, सरस्वती नदी पुनः-पुनः सेव्यमाना होने से भुक्ति एवं मुक्तिप्रदा हैं। अयोध्या, द्वारका, काशी, मथुरा, अवन्तिका, कुरुक्षेत्र, रामतीर्थ, काञ्ची, पुरुषोत्तम, दुष्कर पुष्कर, विधिनिर्मित वाराहक्षेत्र तथा सर्वार्थ साधन महापुण्य स्थल बदरी, ये सभी पुण्य क्षेत्र कहे गये हैं। ये सभी क्षेत्र सर्वार्थ साधक भी हैं।।१७-२३।।

अयोध्यां विधिवदृष्ट्वा पुरीं मुक्त्येकसाधनीम्।
सर्वपापविनिर्मुक्ताः प्रयान्ति हरिमन्दिरम्।।२४।।

विविधविष्णुनिषेवणपूर्वकाचरितपूजननर्तनकीर्तनाः ।
गृहमपास्य हरेरनुचिन्तनाज्जितगृहार्जितमृत्युपराक्रमाः।।२५।।

स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा रामालयं शुचिः।
न तस्यकृत्यंपश्यामिकृतकृत्योभवेद्यतः।।२६।।

द्वारिकायां हरिःसाक्षात्स्वालयं नैव मुञ्चति। अद्यापिभवनंकैश्चित्पुण्यवद्भिःप्रदृश्यते।।२७।।

गोमत्यां तु नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कृष्ण मुखाम्बुजम्।
मुक्तिःप्रजायते पुंसो विना साङ्ख्यं षडानन!।।२८।।

असीवरुणयोर्मध्ये पञ्चकोश्यां महाफलम्। अमरा मृत्युमिच्छन्तिकाकथाइतरेजनाः।।२९।।

मणिकर्ण्यां ज्ञानवाप्यांविष्णुपादोदकेतथा। ह्रदे पञ्चनदेस्नात्वानमातुः स्तनपोभवेत्॥३०॥
प्रसङ्गेनापि विश्वेशं दृष्ट्वा काश्यांषडानन!। मुक्तिःप्रजायतेपुंसांजन्ममृत्युविवर्जिता॥३१॥
बहुना किमिहोक्तेन नैतत्क्षेत्रसमं क्वचित्। तपोपवासनिरतो मथुरायां षडानन!।
जन्मस्थानं समासाद्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥३२॥

मुक्तिसाधनकारी अयोध्या का यथाविधि दर्शन करने वाला मनुष्य सर्वपापरहित होकर हरिलोक प्राप्त करता है। विष्णु की विविधरूप से सेवा करने हेतु मनुष्य उनकी पूजा तथा चरितकीर्त्तन, उनकी प्रसन्नता हेतु उनके सामने नृत्य आदि करके सतत् उनका चिन्तन करें। गृह का माया-मोह त्याग करके वह व्यक्ति इस प्रकार से यम के पराक्रम को व्यर्थ कर देता है। जो पवित्र भाव वाला मानव गंगाद्वार में स्नान करता है तथा राम मन्दिर में दर्शन करता है, वह कृतकृत्य है। मैं उसका कोई कर्त्तव्य शेष नहीं देखता। साक्षात् हरि द्वारिका से अपना निवास कभी नहीं छोड़ते। कोई-कोई पुण्यकर्मा व्यक्ति उनके भवन का दर्शन पाते हैं। हे षडानन! गोमती में स्नान तथा कृष्णमुखकमल के दर्शन द्वारा तो मनुष्य बिना सांख्ययोग का अनुशीलन किये ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है। अस्सी तथा वरुणा के मध्य में स्थित पञ्चक्रोश क्षेत्र महापुण्यफलदाता है। इतर प्रतीगण की क्या बात, देवता भी यहां मृत्युकामना करते हैं। जो मानव वाराणसी स्थित मणिकर्णिका, ज्ञानवापी, विष्णुपादोदक तथा पञ्चनदह्रद (पंचगंगा घाट) पर स्नान करता है, उसे पुनः मातृस्तनपान नहीं करना पड़ता। हे षडानन! काशी में प्रसंग क्रमेण भी विश्वेश्वर का दर्शन करने पर व्यक्ति जन्ममृत्युरहित होकर मुक्तिलाभ करता है। इस विषय में और क्या कहा जाये? इसके समान क्षेत्र कहीं नहीं है। हे षडानन! तप तथा उपवास करने वाले व्यक्ति मथुरा स्थित कृष्णजन्मस्थान का दर्शन पाकर सभी पापराशि से मुक्त हो जाते हैं।।२४-३२।।

विश्रान्तितीर्थे विधिवत्स्नात्वा कृत्वा तिलोदकम्।
पितॄनुद्धृत्य नरकाद्विष्णुलोकं प्रगच्छति॥३३॥
यदि कुर्यात्प्रमादेनपातकं तत्र मानवः। विश्रान्तेस्नानमासाद्यभस्मीभवतितत्क्षणात्॥३४॥
अवन्त्यां विधिवत्स्नात्वाशिप्रायांमाधवेनरः। पिशाचत्वंनपश्यन्तिजन्मातरशतैरपि॥३५॥
कोटितीर्थे नरःस्नात्वाभोजयित्वाद्विजोत्तमान्। महाकालं हरंदृष्ट्वासर्वपापैःप्रमुच्यते॥३६॥

मनुष्य वहां विश्रामतीर्थ (विश्रामघाट) पर यथाविधि स्नान तथा तिलोदक द्वारा तर्पण करके नरक से पितरों का उद्धार कर देता है तथा विष्णुलोक गमन करता है। यदि प्रमादवशात् किसी व्यक्ति ने वहां पापाचार किया हो, तब विश्रामतीर्थ पर स्नानमात्र से उसके पाप तत्क्षण भस्म हो जाते हैं। वैशाखमास में जो मानव यथाविधि अवन्ती क्षेत्रस्थ क्षिप्रा नदी में स्नान करता है, उसके १०० जन्मों में भी उसे पिशाच शरीर नहीं मिलेगा। वहां कोटितीर्थ में स्नान करके द्विजोत्तमगण को भोजन करायें तथा महाकाल शिव का दर्शन करें। इससे मानव सभी पापों से मुक्त हो जाता है।।३३-३६।।

मुक्तिक्षेत्रमिदं साक्षान्मम लोकैकसाधनम्। दानाद्दरिद्रताहानिरिहलोके परत्र च॥३७॥
कुरुक्षेत्रे रामतीर्थे स्वर्णं दत्त्वा स्वशक्तितः। सूर्योपरागे विधिवत्स नरो मुक्तिभाग्भवेत्॥३८॥
ये तत्र प्रतिगृह्णन्ति नरा लोभवशङ्गताः। पुरुषत्वं न तेषां वैकल्पकोटिशतैरपि॥३९॥

हरिक्षेत्रे हरिदृष्ट्वा स्नात्वा पादोदके जनः। सर्वपापविनिर्मुक्तो हरिणा सह मोदते॥४०॥

खगगणा विविधा निवसन्त्यहो ऋषिगणाः फलमूलदलाशनाः।
पवनसंयमनक्रमनिर्जितेन्द्रियपराक्रमणा मुनयस्त्विह॥४१॥

विष्णुकाञ्च्यां हरिः साक्षाच्छिवकाञ्च्यां शिवः स्वयम्।
अभेदादुभयोर्भक्त्या मुक्तिः करतले स्थिता।
विभेदजननात्पुंसां जायते कुत्सिता गतिः॥४२॥

सकृद्दृष्ट्वा जगन्नाथं मार्कण्डेयह्रदे प्लुतः। विनाज्ञानेन योगेन न मातुः स्तनपोभवेत्॥४३॥

रोहिण्यामुदधौस्नात्वाइन्द्रद्युम्नह्रदेतथा। भुक्त्वानिवेदितंविष्णोर्वैकुण्ठेवसतिंलभेत्॥४४॥

वाराणसी तो मेरा साक्षात् मुक्तिक्षेत्र है तथा एकमात्र मुझे संसार में प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है। यहां स्नान करने से इहलोक तथा परलोक का दारिद्र्य विदूरित हो जाता है। जो मनुष्य रामतीर्थ कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहणकाल में यथाशक्ति स्वर्णदान सविधि करते हैं, वे मुक्तिगामी हो जाते हैं। जो लोभ के वश में होकर वहां दान लेते हैं, वे करोड़ों कल्पपर्यन्त भी पुरुष नहीं हो पाते। जो मानव हरिक्षेत्र में हरिदर्शन तथा पादोदक पान करते हैं तथा स्नान करते हैं, वे सर्वपाप रहित होकर हरि के साथ प्रमुदित होते हैं। अहा! यह तीर्थ कितना मनोरम हैं। नाना प्रजाति के पक्षियों का यहां निवास रहता है। यहां पर फल-मूल तथा पत्ते खाने वाले ऋषिगण प्राणसंयम करके इन्द्रियों को पराजित करने वाले पराक्रम के साथ यहां निवास करते हैं। विष्णुकाञ्ची क्षेत्र में स्वयं हरि तथा शिवकाञ्ची में स्वयं शिव विराजमान हैं। अभेदबुद्धि से तथा भक्ति के साथ इन दोनों देवगण का दर्शन करने से मुक्ति तो करतलगत हो जाती है। जो इन दोनों देवताओं के बीच भेद देखता है, उसे कुत्सित गति मिलती है। जो मानव जगन्नाथदेव का एक बार भी दर्शन करके मार्कण्डेय ह्रद में स्नान करता है, उसे बिना ज्ञानयोग पाये ही मुक्ति मिल जाती है। उसे पुनः जन्म लेकर मातृस्तनपान नहीं करना पड़ता। रोहिणी क्षेत्र में सागर तथा इन्द्रद्युम्नह्रद में स्नान करने, विष्णुनैवेद्य भक्षण करने से वैकुण्ठ लोक की प्राप्ति होती है।।३७-४४।।

दशयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रं शङ्खोपरि स्थितम्। चतुर्भुजत्वमायान्तिकीटाअपिनसंशयः॥४५॥

कार्त्तिक्यां पुष्करे स्नात्वा श्राद्धं कृत्वा सदक्षिणम्।
भोजयित्वा द्विजान्भक्त्या ब्रह्मलोके महीयते॥४६॥

सकृत्स्नात्वाह्रदे तस्मिन्यूपं दृष्ट्वासमाहितः। सर्वपापविनिर्मुक्तोजायते द्विजसत्तमः॥४७॥

षष्टिवर्ष सहस्राणि योगाभ्यासेन यत्फलम्।
सौकरे विधिवत्स्नात्वा पूजयित्वा हरिं शुचिः॥४८॥

सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति। तीर्थराजं महापुण्यं सर्वतीर्थनिषेवितम्॥४९॥

कामिनां सर्वजन्तूनामीप्सितं कर्मभिर्भवेत्।
वेण्यां स्नात्वा शुचिर्भूत्वा कृत्वा माधवदर्शनम्।
भुक्त्वा पुण्यवतां भोगानन्ते माधवतां व्रजेत्॥५०॥

माघे मासि नरः स्नात्वा त्रिवेण्यां भक्तिभावितः।
बदरीकीर्तनात्पुण्यं तत्समाप्नोति मानवः॥५१॥
दशाश्वमेधिकं तीर्थं दशयज्ञफलप्रदम्। संक्षेपात्कथितं पुत्र! किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥५२॥

यह क्षेत्र दशयोजन विस्तीर्ण तथा शंख के ऊपर स्थित है। यहां के कीट भी चतुर्भुज हरि का सारूप्य प्राप्त करते हैं। इसमें संशय नहीं है। मानव पूर्णिमा के दिन भक्तिपूर्वक पुष्कर में स्नान तथा सदक्षिणा पितृश्राद्ध करके ब्राह्मणों को भोजन करायें। इससे ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। वहां पुष्कर ह्रद में स्नान करके सामहित मन से एक बार कूप दर्शन करने वाला सर्वपाप रहित होकर उत्तम द्विजजन्म लाभ करता है। ६०००० वर्ष योगाभ्यास से जो फललाभ होता है, वह मानव पवित्र होकर यथाविधि शौकरक्षेत्र में स्नान तथा पूजन द्वारा वही फल प्राप्त करता है। यह तीर्थराज अतीव पावन है। अन्य तीर्थ भी इसी तीर्थ की सेवा करते हैं। इस तीर्थ के दर्शनमात्र से सप्तजन्मकृत दुरित विदूरित होता है। कामना वाले व्यक्ति भी कर्माचरण करके इस तीर्थ में अभीष्ट फल की प्राप्ति करते हैं। मनुष्य वेणी नदी में स्नान से शुद्ध होकर माधवदर्शन करने पर पुण्य कर्मों का फल भोग करके अन्त में माधवत्व प्राप्त करता है। भक्ति से अनुप्राणित मानव माघमास में त्रिवेणी में स्नान करके बदरीक्षेत्र कीर्त्तन इतना पुण्यलाभ करता है। हे पुत्र! दशाश्वमेध तीर्थ दस यज्ञफल प्रदाता है। यह मैंने संक्षेप में कह दिया। अब क्या सुनना चाहते हो?।।४५-५२।।

स्कन्द उवाच

बदर्य्याख्यं हरेः क्षेत्रे त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्। क्षेत्रस्य स्मरणादेव महापातकिनो नराः।
विमुक्तकिल्बिषाः सद्यो मरणान्मुक्तिभागिनः॥५३॥
अन्यतीर्थे कृतं येन तपः परमदारुणम्। तत्समा बदरीयात्रा मनसाऽपि प्रजायते॥५४॥
बहूनि सन्ति तीर्थानि दिवि भूमौ रसातले। बदरीसदृशं तीर्थं न भूतं नभविष्यति॥५५॥
अश्वमेधसहस्राणिवायुभोज्येचयत्फलम्। क्षेत्रान्तरे विशालायांतत्फलंक्षणमात्रतः॥५६॥
कृते मुक्तिप्रदा प्रोक्ता त्रेतायां योगसिद्धिदा।
विशाला द्वापरे प्रोक्ता कलौ बदरिकाश्रमः॥५७॥
स्थूलसूक्ष्मशरीरंतुजीवस्य वसतिस्थलम्। तद्विनाशयति ज्ञानाद्विशालातेनकथ्यते॥५८॥
अमृतं स्त्रवते या हि बदरीतरुयोगतः। बदरी कथ्यते प्राज्ञैर्ऋषीणां यत्र सञ्चयः॥५९॥
त्यजेत्सर्वाणि तीर्थानि काले काले युगे युगे। बदरीं भगवान्विष्णुर्न मुञ्चति कदाचन॥६०॥

स्कन्द कहते हैं—हरि के क्षेत्रों में से बदरीतीर्थ त्रैलोक्य में दुर्लभ है। इस बदरीक्षेत्र के स्मरण से महापापी मानव भी सद्यः पापरहित होकर मरणभय से रहित होकर मुक्तिलाभ करता है। अन्य तीर्थों में परम दारुण तप द्वारा जो फललाभ होता है, वही फल एकमात्र मन ही मन बदरीयात्रा का चिन्तन करने से भी प्राप्त हो जाता है। स्वर्ग, भूतल, रसातल में अनेक तीर्थ हैं, तथापि बदरी के समान न तो कोई तीर्थ है, न तो होगा। सहस्र अश्वमेध, किंवा अन्य क्षेत्र में वायुभोजी होकर तप द्वारा जो फल मिलता है, वही फल क्षणमात्र में विशाला द्वारा प्राप्त हो जाता है। यह क्षेत्र सत्ययुग में मुक्तिप्रद, त्रेता में योगसिद्धिप्रदा, द्वापर में विशाला तथा

कलिकाल में बदरीनाम से विख्यात हो गया है। जीव स्थूल तथा सूक्ष्म, इन दोनों शरीर में निवास करता है। यह ज्ञान दान में दोनों ही शरीर का नाश करने के कारण विशाला कहा गया है। इस स्थान में ऋषिगण निवास करते हैं। यहां एक बदरीवृक्ष विराजित है। भगवान् विष्णु युग-युग में अन्य तीर्थों का भले ही त्याग कर देते हों, तथापि वे इसे बदरीतीर्थ का कभी त्याग नहीं करते।।५३-६०।।

सर्वतीर्थावगाहेन तपोयोगसमाधितः। तत्फलं प्राप्यते सम्यग्बदरीदर्शनाद् गुह!।।६१।।
षष्टिवर्षसहस्राणि योगाभ्यासेन यत्फलम्। वाराणस्यां दिनैकेन तत्फलंबदरींगतौ।।६२।।
तीर्थानां वसतिर्यत्र देवानां वसतिस्तथा। ऋषीणां वसतिर्यत्र विशालातेनकथ्यते।।६३।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे बदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेय-सम्वादे बदरिकाश्रमस्य सर्वतीर्थाधिकत्वर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः।।१।।

हे गुह! तपस्या, योग, समाधि तथा नाना तीर्थ स्नान द्वारा जो फललाभ होता है, वह सभी फल मनुष्य मात्र एक बार बदरीतीर्थ दर्शन से प्राप्त कर लेता है। ६०००० वर्ष योगाभ्यास तथा एक दिन वाराणसी दर्शन का जो फल है, वही फल बदरी निवास का है। तभी इसे विशाला कहा गया।।६१-६३।।

।।प्रथम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

द्वितीयोऽध्यायः

अग्निकृत् भगवान् का स्तव, अग्नि के प्रश्नों का व्यासदेव द्वारा वर्णन

स्कन्द उवाच

कथमेतत्समुत्पन्नंकैर्वा क्षेत्रं निषेवितम्। कोवातस्याऽप्यधीशःस्यादेतद्विस्तरतोवद।।१।।

भगवान् स्कन्द कहते हैं—हे गुरुदेव! यह क्षेत्र कैसे उत्पन्न हुआ? किसने इसकी सेवा किया? इस क्षेत्र का अधिपति कौन है? विस्तार से कहें।।१।।

शिव उवाच

अनादिसिद्धमेतत्तु यथा वेदा हरेस्तनूः। अधिष्ठाता हरिः साक्षान्नारद्वाद्यैर्निषेवितम्।।२।।
पुराकृतयुगस्याऽऽदौ स्वीयां दुहितरंविधिः। रूपयौवनसम्पन्नांसतांयभितुमुद्यतः।।३।।
तं दृष्ट्वा तादृशं रोषाच्छिरः खड्गेन पञ्चधा। चिच्छेदाऽहं कपालं तद्ब्रह्महत्यासमुद्यते।।४।।

हस्तेकृत्वा जगामाऽऽशुतत्रतीर्थानिसेवितुम्। दिवि भूमौ चपातालेतपश्चरणपूर्वकम्।।५।।
न गता ब्रह्महत्या मे कपालं तादृशं करे। तदा वकुण्ठमगमं द्रष्टुं लक्ष्मीपतिं हरिम्।।६।।
विनयावनतो भूत्वा नमस्कृत्य पुनः पुनः। सर्वमाख्यातवांस्तस्मैव्यसनं करुणात्मने।।७।।

शिव कहते हैं—"हे वत्स! जैसे वेद हरि के देहरूप हैं, यह क्षेत्र भी तदनुरूप अनादिसिद्ध है। इसके अधिष्ठाता हैं साक्षात् हरि तथा नारदादि ऋषिगण इनकी सेवा करते हैं। पूर्वकाल में सत्ययुग में ब्रह्मा ने अपनी रूपयौवनयुता कन्या को देखा तथा उससे मैथुनार्थ उद्यत हो गये। मैंने ब्रह्मा का यह दुर्व्यवहार देखा तब क्रोध के कारण खड्ग से उनका शिर काट दिया। मेरे द्वारा ब्रह्मा का शिरच्छेद करने के कारण कपालरूपा ब्रह्महत्या ने मुझ पर आश्रय लिया तब मैं शीघ्रतापूर्वक उस ब्रह्मकपाल को हाथ में लेकर तीर्थ सेवनार्थ निकला। कभी स्वर्ग, कभी भूतल, कभी पाताल पर तपश्चरण एवं तीर्थ सेवा करने लगा तथापि ब्रह्महत्या ने मुझे नहीं छोड़ा। वह कपाल पूर्ववत् मेरी हथेली में ही संलग्न रह गया! तब मैं रमापति हरि के दर्शनार्थ वैकुण्ठ गया तथा विनयावनत होकर पुनः-पुनः नमस्कार द्वारा उन करुणात्मा से अपना समस्त वृत्तान्त कहा।"।।२-७।।

तस्योपदिष्टमादाय बदरीं समुपागतः। तत्क्षणाद्ब्रह्महत्या मे वेपमाना मुहुर्मुहुः।।८।।
अन्तर्हितं कपालं तत्कराद्विगलितं मम। ततः प्रभृति तत्क्षेत्रं पार्वत्या सह सादरम्।।९।।

उन्होंने मुझे बदरीदर्शनार्थ जाने का उपदेश दिया। मैं उनके उपदेश को मानकर बदरीतीर्थ पहुंचा। तब ब्रह्महत्या ने मुझे तत्क्षण त्याग दिया तथा वह कपाल भी मेरे हाथों से गिर गया। हे पुत्र! तब से मैं पार्वती के साथ आदरपूर्वक इस बदरीतीर्थ में निवास करता हूं।।८-९।।

तिष्ठामि तपआस्थाय ऋषीणां प्रीतिमावहन्।
वाराणस्यां यथा प्रीतिः श्रीशैलशिखरे तथा।।१०।।
कैलाशे शिवया सार्द्धं ततोऽनन्तगुणाधिका।
अन्यत्रम रणान्मुक्तिः स्वधर्मविधिपूर्वकात्।।११।।
बदरीदर्शनादेव मुक्तिः पुंसां करे स्थिता। हरेश्चरणसान्निध्यं यत्र वैश्वानरः स्वयम्।।१२।।
तत्रकेदाररूपेण मम लिङ्गं प्रतिष्ठितम्। केदारदर्शनात्स्पर्शादर्च्चनाद्भक्तिभावतः।।१३।।
कोटिजन्मकृतं पापं भस्मीभवति तत्क्षणात्। कलामात्रेण तिष्ठामितत्रक्षेत्रेविशेषतः।।१४।।
कला पञ्चदशैवाऽत्र मूर्तिमध्ये ह्यवस्थितम्।।१५।।
जितकृतान्तभयाः शिवयोगिनः कृतमृगाजिनकृत्तिसुवाससः।
वरविभूतिजटान्वितभूषणाः स्वयमुपासत एव जटाधरम्।।१६।।

यहां रहकर ऋषियों में प्रीति उत्पन्न करते हुये तपस्या करता हूं। वाराणसी, श्रीशैल तथा कैलास पर पार्वती के साथ निवास करने में मुझे जो प्रसन्नता होती है, बदरीतीर्थ में रहने के कारण मुझे उसकी अपेक्षा अनन्तगुण अधिक प्रसन्नता होती है। अन्य तीर्थों में स्वधर्मतत्पर मनुष्य विधिबोधित मृत्यु होने पर मुक्त होते हैं, लेकिन बदरी के दर्शनमात्र से पुरुषों की मुक्ति करस्थ होती है। इस क्षेत्र में हरि के चरणों में स्वयं वैश्वानर विराजमान हैं। उन वैश्वानर के समीप केदाररूपी मेरा लिंग प्रतिष्ठित रहता है। भक्तिभावित चित्त से इन केदार

का दर्शन, स्पर्शन, अर्चन तत्क्षण कोटिजन्मार्जित पापराशि को नष्ट कर देता है। जिन शिवयोगीगण ने यमभय जीत लिया है, वे मृगचर्म तथा शार्दूल चर्म का उत्तम वस्त्र, वरमुद्रा, विभूति एवं जटा आदि उत्तम भूषण से भूषित होकर स्वयं जटाधारी भगवान् शिव की उपासना करते हैं।।१०-१६।।

फलदलाम्बुसमीरणतोषिताः शिवमनोजितमृत्युपरिश्रमाः।
गिरिवरस्थितनिर्जितमानसाः प्रसरनिर्म्मलबुद्धिमहोदयाः॥१७॥
कमलकोमलकान्तिमुखाम्बुजाः शिवकृपाजितनिर्भरवैरिणः।
करधृताञ्जलिमौलिशिवेक्षणाः शिवमुपासत एव निशामुखे॥१८॥

फल, जल, पत्र तथा समीरण के सेवन (वायुसेवन) से उनको सन्तोष प्राप्त होता है। जो शिव में चित्त लगाकर रहते हैं तथा इससे जिनका मरण क्लेश प्रशमित हो गया है, गिरिराज में निवास करके जिन्होंने मन पर विजय प्राप्त कर लिया है, निर्मल बुद्धि के विकास से जिनको महान् अभ्युदय की प्राप्ति हो गयी है, जिनकी मुखकान्ति कमलवत् कोमल है, जो शिव की कृपा से सम्पूर्णतः वैरभाव छोड़ चुके हैं, वे शिव के समक्ष कृताञ्जलिबद्ध होकर उनका दर्शन करते हुये उनकी उपासना करते रहते हैं।।१७-१८।।

करधृतजपमालाः शान्तिसन्तोषभाजः कृतनतिपरनित्यप्रार्थनाश्चन्द्रमौलौ।
हरचरणसरोजध्यानविज्ञानमूर्तिव्यथितजनमनोजाः सर्वभावान्वितान्तम्॥१९॥

जिनके हाथों में जपमाला लटकती रहती है, जो सतत् शान्ति तथा सन्तोष समन्वित रहते हैं, जो चन्द्रमौलि के चरणों में नित्य नमन तथा प्रार्थना करते रहते हैं जो काम को पराजित करने वाले विज्ञानमूर्ति हैं, उन श्रीहरि के चरणकमल में ऐसे भक्तगण सर्वतोभावेन पूर्ण ध्यानतत्पर होकर रहते हैं।।१९।।

वाराणस्यां मृतानां च तारकं ब्रह्मसञ्ज्ञकम्। जनानां पूजनात्तत्र ममलिङ्गस्य जायते॥२०॥
वह्नितीर्थं परिभ्राजद्भगवच्चरणान्तिके। केदाराख्यं महालिङ्गं दृष्ट्वा नो जन्मभाग्भवेत्॥२१॥

वाराणसी में मृत्यु होने पर मनुष्य को जो मुक्ति मिलती है, वह है ब्रह्ममुक्ति। इस बदरीक्षेत्र में मेरे केदारलिंग पूजन द्वारा मनुष्य उसी प्रकार की मुक्ति की प्राप्ति करते हैं। भगवान् केदारलिंग के चरणों के समीप इन बह्नितीर्थ से समुद्भासित महालिंग का पूजन दर्शन करने वालों का पुनर्जन्म नहीं होता।।२०-२१।।

स्कन्द उवाच

कथं वैश्वानरः श्रीमान्सर्वलोकैककारणम्। बदरीमनुसन्तस्थौ तन्मे वद महामते!॥२२॥

स्कन्द कहते हैं—हे महामति! निखिललोककारण श्रीमान् वैश्वानर किसलिये बदरीवन में रहते हैं, वह मुझसे कहिये।।२२।।

शिव उवाच

पुरा समाजः समभूदृषीणामूर्ध्वरेतसाम्। गङ्गा भगवती यत्र कालिन्द्या सह सङ्गता॥२३॥
दशाश्वमेधिकं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। बभूव तत्र भगवान्हुतभुक्प्रश्रयानतः।
ऋषीणामग्रतः स्थित्वा प्रष्टुं समुपचक्रमे॥२४॥

भगवान् शिव कहते हैं—पूर्वकाल में एक बार भगवान् वैश्वानर ऊर्ध्वरेता ऋषिगण के समाज में आये। वहां भगवती गंगा महानदी कालिन्दी के साथ संगत हैं। वहां त्रैलोक्य विश्रुत दशाश्वमेध तीर्थ स्थित है। वहां पर भगवान् वैश्वानर ऋषियों के पास स्थित होकर विनय से अवनत मुद्रा में उनसे पूछने लगे।।२३-२४।।

वैश्वानर उवाच

दृष्ट्वा दृष्ट्वैकदृग्ज्ञाना भवन्तो ब्रह्मवित्तमाः। दीनार्थे करुणापूर्णा हृदयार्द्रा दयालवः।।२५।।
सर्वदुर्भक्षणोद्भूतपातकालिप्तचेतसः। कथं स्यान्नियान्मुक्तिर्मम ब्रह्मविदुत्तमाः!।।२६।।
सर्वेषामृषिवर्य्याणामाजगाम मुनीश्वरः। गङ्गाऽम्भसि समाप्लुयवाक्यंचेदमुवाच ह।।२७।।

वैश्वानर कहते हैं—"हे ऋषिगण! सर्वदा शास्त्रदर्शन के कारण आप सबकी दृष्टि एकमात्र ज्ञानयोग में तत्पर हो गयी है। आप लोग ब्रह्मवित्तम हैं। दीनों के लिये आप सबका करुणापूर्ण हृदय दया से आर्द्र रहता है। आप दयालु हैं। वे ब्रह्मविद्गण! समस्त पापपुंज से मेरा चित्त लिप्त हो गया है। नरक से मेरी मुक्ति कैसे हो सकेगी?" वैंश्वानरदेव का यह प्रश्न सुनकर सभी प्रधान मुनिगण में से गंगाजल से आप्लुत देह वाले मुनिवर व्यास उनसे कहने लगे।।२५-२७।।

व्यास उवाच

अस्त्येकः परमोपायो भवतः पापनिष्कृतौ। सर्वभक्षाख्यदोषस्य बदरीं शरणं श्रय।।२८।।
यत्राऽऽस्ते भगवान्साक्षाद्देवदेवो जनार्द्दनः। भक्तानामप्यभक्तानामघहा मधुसूदनः।।२९।।
तत्र गङ्गाऽम्भसि स्नात्वाकृत्वा प्रदक्षिणांहरेः। दण्डवत्प्रणिपातेनसर्वपापक्षयो भवेत्।।३०।।

व्यासदेव कहते हैं—हे वैश्वानर! आपके पाप क्षालनार्थ एक परम उत्तम उपाय अवश्य है। आप बदरीक्षेत्र की शरण में जायें। तभी वहां पर आपके सर्वभक्षी होने के दोष का निवारण होगा। जहां साक्षात् भगवान् देवदेव जनार्दन विराजित हैं, जहां पर मधुसूदन देव भक्त-अभक्त, सभी के पापों का नाश करते हैं, आप वहां जाकर जाह्नवी में स्नान, हरि की प्रदक्षिणा तथा उनके चरणकमलों में दण्डवत् प्रणाम करें। यह करने से आपके सभी पापों का क्षय होगा।।२८-३०।।

ततोव्यासमुखाच्छ्रुत्वा ऋषीणामनुवादतः। उत्तराभिमुखो वह्निर्गन्धमादनमाययौ।।३१।।
ततो बदरिकां प्राप्य स्नात्वा गङ्गाम्भसि स्वयम्।
नारायणश्रमं गत्वा नत्वा प्रोवाच भक्तिमान्।।३२।।

तत्पश्चात् वैश्वानर व्यास का यह कथन सुनकर ऋषिगण से अनुमोदन लेकर उत्तराभिमुख होकर गन्धमादन पर्वत गये। वहां से वे क्रमशः बदरिकाश्रम पहुंचे। वहां गंगा में स्नानोपरान्त वे नारायणाश्रम गयें तथा भक्तिपूर्वक उनको प्रणाम करके कहने लगे।।३१-३२।।

अग्निरुवाच

विशुद्धविज्ञानघनं पुराणं सनातनं विश्वसृजां पतिं गुरुम्।
अनेकमेकं जगदेकनाथं नमाम्यनन्ताश्रितशुद्धबुद्धिम्।।३३।।

मायामयीं शक्तिमुपेत्य विश्वकर्त्तारमुद्दिश्य रजोपयुक्तम्।
सत्त्वेन चाऽस्य स्थितिहेतुमुग्रमथो तमोभिर्ग्रसितारमीडे॥३४॥
अविद्यया विश्वविमोहिताऽऽत्मा विद्यैकरूपं विततं त्रिलोक्याम्।
विद्याश्रितत्वात्सकलज्ञमीशं त्वविद्यया जीवमहं प्रपद्ये॥३५॥
भक्तेच्छयाऽऽविष्कृतदेहयोगमाभोगभोगार्पितयोगयोगम् ।
कौशेयपीताम्बरजुष्टशक्तिं विचित्रशक्त्यष्टमयेष्टमीडे॥३६॥

अग्नि कहते हैं—जो विशुद्ध, विज्ञानघन, पुराण, सनातन, प्रजापति, गुरु, अनेक, एक, जगत् के एकमात्र नाथ, अनन्त, आश्रय तथा शुद्धबुद्धि हैं, मैं उन विष्णु को प्रणाम करता हूं। जो विश्व के निर्माणार्थ अपनी मायामयी शक्ति का आश्रय लेकर रजोयुक्त हैं, विश्व पालनार्थ जिनकी सत्वमूर्त्ति का विकास होता है तथा जो विश्व के ग्रसनार्थ पुनः उग्र तमः मूर्त्ति का अवलम्बन लेते हैं, मैं उन विभु का पूजन करता हूं। जो अविद्या से विश्व को विमोहित करते हैं, त्रिलोक में जिनका एकमात्र विद्यारूप विस्तृत है, विद्या का आश्रय लेकर जिनकी सर्वज्ञ ईशमूर्त्ति प्रकटित है तथा अविद्या द्वारा जो जीवरूपेण प्रतिभात होते हैं, मैं उन विभु की शरण लेता हूं। जो भक्त की इच्छा से देह से योग का आविष्कार करते हैं, जो भक्त की ही इच्छा द्वारा जागतिक भोग व्यापार में अत्यन्त आसक्ति का प्रकाशन करते हैं, जो कौषेय पीतवस्त्रधारी तथा शक्ति के साथ युक्त हैं, जो विचित्र अष्टशक्तिमय हैं मैं उन इष्टदेव का स्मरण करता हूं।।३३-३६।।

अथ प्रसन्नो भगवांस्तुतः सर्वैर्हृदिस्थितः। प्रोवाच मधुरं वाक्यं पावकं पावनार्थिनम्॥३७॥

सर्वभूतमय तथा सभी प्राणीगण के देह में विचरण करने वाले प्रसन्नात्मा भगवान् इस प्रकार से स्तुत होकर पावनार्थी, पावक से मधुर वाक्यों में कहने लगे।।३७।।

श्रीनारायण उवाच

वरं वरय भद्रन्ते वरदोऽहमुपागतः। स्तवेनाऽनेन तुष्टोऽस्मि विनयेन तवाऽनघ!॥३८॥

भगवान् नारायण कहते हैं—हे निष्पाप! मैं तुम्हारे इस स्तव से सन्तुष्ट होकर वरप्रद रूप से आया हूं। तुम्हारा मंगल हो, तुम वर मांगो।।३८।।

अग्निरुवाच

ज्ञातं भगवता सर्वं यदर्थमहमागतः। तथाऽपि कथमाम्येतदीश्वराज्ञानुपालनम्॥३९॥
सर्वभक्षो भवाम्येव निष्कृतिस्तु कथम्भवेत्। अत्यन्तभयसम्पत्ति रेतस्माज्जायतेमम॥४०॥

अग्निदेव कहते हैं—हे प्रभो! यद्यपि आप सब कुछ जानते हैं कि मैं क्यों यहां आया हूं, तथापि ईश्वराज्ञा पालन करना उचित है। उस कर्त्तव्यबोध से मैं कहता हूं कि हे विभो! मैं सर्वभक्षी हूं। मेरा उद्धार कैसे होगा? इस कारण मैं अत्यन्त भयभीत हो रहा हूं।।३९-४०।।

श्रीनारायण उवाच

क्षेत्रदर्शनमात्रेण प्राणिनां नास्तिपातकम्। मत्प्रसादात्पातकंतुत्वयिमाऽस्तुकदाचन॥४१॥

ततः प्रभृति भूतात्मा पावकः सर्वतो भृशम्।
कलयाऽवस्थितश्चाऽत्र सर्वदोषविवर्जितः॥४२॥

य एतत्प्रातरुत्थायश्रृणोति श्रावयेच्छुचिः। अग्नितीर्थकृतस्नानंफलम्प्राप्तोत्यसंशयम्॥४३॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीबदरिकाश्रममाहात्म्येऽग्नि-कृतभगवत्स्तुतिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥
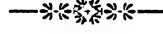
श्री नारायण कहते हैं—"हे अग्नि! इस क्षेत्र के दर्शन मात्र से पापियों के पाप का नाश हो जाता है। मेरी कृपा से तुमको कभी भी पाप का स्पर्श नहीं होगा।" हे स्कन्द! तब से भूतात्मा अग्नि सर्वदोषरहित होकर अपनी पूर्ण कला में सर्वत्र विराजमान रहते हैं। जो पवित्र मानव प्रभात काल में शय्या छोड़कर इस उपाख्यान का श्रवण करता है, उसे निःसन्देह अग्नितीर्थ स्नानजनित फललाभ होता है।॥४१-४३॥

॥द्वितीय अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

तृतीयोऽध्यायः

अग्नितीर्थ, नारदशिला, मार्कण्डेय शिला माहात्म्य

स्कन्द उवाच

भगवन्सर्वभूतेषु सर्वधर्मविशारद!। अग्नितीर्थस्य माहात्म्यं कृपया वद मे पितः!॥१॥

स्कन्ददेव कहते हैं—हे पिता! आप समस्त प्राणीगण के हृदय में विराजमान हैं। आप सर्वधर्मतत्वज्ञ हैं। कृपया अग्नितीर्थ का माहात्म्य कहिये॥१॥

शिव उवाच

अतिगुह्यतमं तीर्थं सर्वतीर्थनिषेवितम्। संक्षेपात्कथयाम्येतत्तवाऽऽदरवशादहम्॥२॥
महापातकिनोयेचअतिपातकिनस्तथा। स्नानमात्रेण शुद्ध्यन्तिविनाऽऽयासेन पुत्रक!॥३॥
प्रायश्चित्तेनयत्पापंनगच्छेन्मरणान्तिकम्। स्नानमात्रेणतीर्थस्यपावकस्यविशुद्ध्यति॥४॥
अत्यन्तमलसम्बद्धं यथाशुद्ध्यति हाटकम्। तथाग्नितीर्थमासाद्यदहीपापैर्विशुद्ध्यति॥५॥

भगवान् शिव कहते हैं—समस्त तीर्थ इस अग्नितीर्थ की सेवा करते हैं। यह अतिगुह्य है। तुम्हारी भक्ति तथा आदर के कारण मैं इसे संक्षेप में कहता हूं। हे पुत्र! पातकी, महापातकी इस अग्नितीर्थ में स्नान करके बिना प्रयास शुद्धि प्राप्त करते हैं। मरणान्त प्रायश्चित्त से भी जो पाप दूरीभूत नहीं होता, अग्नितीर्थ में स्नानमात्र से वह

दूर हो जाता है। जैसे अत्यन्त मलिन स्वर्ण अग्नि में तप कर शुद्धि प्राप्त करता है, उसी प्रकार से अग्नितीर्थ में आकर सभी पाप दूरीभूत हो जाते हैं।।२-५।।

कुशाग्रेणोदबिन्दुं च पीत्वा वर्षत्रयं नरः। अन्यक्षेत्रे तपः कृत्वा तदत्र स्नानमात्रतः।।६।।
ब्राह्मणान्भोजयित्वाऽस्मिन्यथाविभवसम्भवैः। दरिद्रताकुलेतेषांनकदाचित्प्रजायते।।७।।
उपवासेन यः प्राणान्वह्नितीर्थे त्यजेन्नरः। स भित्त्वासूर्यलोकादीन्विष्णुलोकंप्रपद्यते।।८।।
चान्द्रायणसहस्रैस्तु कृच्छ्रैःकोटिभिरेवच। यत्फलंलभतेमर्त्यस्तत्स्नानाद्वह्नितीर्थतः।।९।।

मानव अन्य तीर्थों में कुशाग्र पर पड़े जलविन्दु मात्र का पान करके जो कठोर तप करता है तथा उसका जो फल है, इस अग्नितीर्थ के जल में अवगाहन मात्र से मनुष्य वही फल पाता है। इस तीर्थ में जो अपनी वित्तशक्ति के अनुरूप ब्राह्मण भोजन सम्पन्न कराता है, उसके वंशज कदापि दरिद्र नहीं होते। जो व्यक्ति अग्नितीर्थ में उपवासी रहकर प्राणत्याग करता है, वह सूर्यलोक का भेद करके विष्णुलोक गमन करता है। सहस्र चान्द्रायण तथा करोड़ों कृच्छ्रव्रत द्वारा व्यक्ति जो फललाभ करता है, अग्नि तीर्थ में स्नानमात्र से उसी फल की प्राप्ति होती है।।६-९।।

पञ्चधा ये प्रकुर्वन्ति पापमस्मिन्षडानन!। जपेन पवनायामैर्विशुद्धिरिति मे मतिः।।१०।।
ज्ञानेन मोहवशतः पापं कुर्वन्ति येऽधमाः। पैशाचीं योनिमायान्ति यावदिन्द्राश्चतुर्दश।।११।।
अनाश्रमी चाश्रमी वा यावद्देहस्य धारणम्। न तीर्थे पावकेकुर्यात्पातकंबुद्धिपूर्वकम्।।१२।।
स्नानं दानं जपो होमः सन्ध्या देवार्चनं तथा।
अत्राऽनन्तगुणं प्रोक्तमन्यतीर्थात्षडानन!।।१३।।
बहूनि सन्ति तीर्थानि पावनानि महान्त्यपि। वह्नितीर्थसमं तीर्थं नभूतंनभविष्यति।।१४।।

हे षड़ानन! जिन्होंने पांच प्रकार के पाप किये हैं, मेरा मत है कि वे अग्नितीर्थ में प्रणायाम द्वारा जप करके विशुद्ध हो जाते हैं। जो अधम मानव मोह के कारण जान-बूझ कर यहां पाप करते हैं, वे चतुर्दश इन्द्रों के काल पर्यन्त पिशाचयोनि प्राप्त करते हैं। अनाश्रमी किंवा आश्रमी व्यक्ति जब तक जीवित रहें, वह इस अग्नितीर्थ में जानबूझ कर कोई पातक न करें। हे षड़ानन! अन्य तीर्थ में स्नान-दान-जप-होम-सन्ध्या-देवपूजा का जो फल होता है, वह यदि इस तीर्थ में किया जाये, तब उसे अनन्तगुण फल की प्राप्ति होती है। इस विश्व में अनेक उत्तम पुण्यतीर्थ हैं, तथापि अग्नितीर्थ के समान कोई न तो था न होगा।।१०-१४।।

न ब्रह्मा न शिवःशेषोन देवानचतापसाः। शक्नुवन्ति फलं नाऽलंवक्तुंपावकतीर्थजम्।।१५।।
किं तेषां बहुभिर्यज्ञैःकिं दानैर्नियमैर्यमैः। येषांपावकतीर्थेऽस्मिन्स्नानंदशदिनम्भवेत्।।१६।।
उपवासेन यः प्राणान्वह्नितीर्थे जयेन्नरः। उपवासत्रयं कृत्वा पूजयित्वा जनार्दनम्।
नरः पावकतीर्थेऽस्मिन् स भवेत्पावकोपमः।।१७।।
शिलापञ्चकमध्यस्थं सान्निध्यं नित्यता हरेः। तत्रैव पावकं तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम्।।१८।।

ब्रह्मा, शिव, शेषनाग, देवता तथा ऋषियों में से कोई भी अग्नितीर्थ के फल का वर्णन नहीं कर

सकता। जिन्होंने अग्नितीर्थ में दस दिन स्नान किया है, उनका अनेक यज्ञ, अनेक दान तथा नियमों का क्या प्रयोजन? जो मानव इस तीर्थ में उपवास से प्राण जय करते हैं अथवा तीन उपवास करने के पश्चात् जनार्दन का पूजन करते हैं, वे व्यक्ति अग्नितुल्य हो जाते हैं। यहां शिलापंचक में नित्य हरि सान्निध्य रहता है। तभी यह पावकतीर्थ सर्वपापनाशक है।।१५-१८।।

स्कन्द उवाच

कथंतत्र शिलाःपञ्च केन वा तत्र निर्मिताः। किंपुण्यंकिंफलंतासांवक्तुमर्हस्यशेषतः?॥१९॥

स्कन्द कहते हैं—हे पिता! किसलिये वहां शिलापंचक प्रतिष्ठित है? किसने उसका निर्माण किया है? इस शिलापंचक का क्या फल है? यह सब कहिये।।१९।।

शिव उवाच

नारदी नारसिंही च वाराही गारुडी तथा।
मार्कण्डेयीति विख्याताः शिलाः सर्वार्थसिद्धिदाः॥२०॥
नारदो भगवांस्तेपे तपः परमदारुणम्। दर्शनार्थं महाविष्णोःशिलायांवायुभोजनः॥२१॥
षष्टिवर्षसहस्राणिशिलायांवृक्षवृत्तिमान्। तदाऽसौभगवान्विष्णुस्तत्रब्राह्मणरूपधृक्॥२२॥
जगाम पुरतस्तस्य कृपया मुनिसत्तमम्। उवाच वचनं चारु किमिति क्लिश्यते ह्यृषे।
किं वा तवेप्सितं ब्रूहि तपसा क्षीणकल्मष!॥२३॥

श्री शिव कहते हैं—शिलापंचक का नाम सुनो। यथा—नारदी, नारसिंही, वाराही, गारुड़ी, मार्कण्डेयी। यह विख्यात पंचशिला सर्वसिद्धदा है। भगवान् नारद ने महाविष्णु के दर्शनार्थ दारुण तप इस शिला पर ६०००० वर्ष तक किया था। कभी वायुभोजी तथा कभी फलाहारी रहकर इस शिला पर उन्होंने तप किया था। तब भगवान् विष्णु मुनि पर कृपा करके ब्राह्मण के वेश में वहां आये। उन्होंने मनोहर वाणी में नारद से कहा—"हे ऋषि! तुम क्यों क्लेश सह रहे हो? हे मुनिवर! तपस्या द्वारा तुम्हारा पापक्षय हो गया। अब क्या चाहिये, कहो।।"।।२०-२३।।

नारद उवाच

को भवान्विजनेऽरण्ये ममानुग्रहतत्परः। मनःप्रसन्नतामेति दर्शनात्ते द्विजोत्तम!॥२४॥
इत्युक्तो नारदेनाऽसौ शङ्खचक्रगदाधरः। पीताम्बरलसत्पद्मवनमालाविभूषणः॥२५॥
श्रीवत्सकौस्तुभभ्राजत्कमलाविमलालयः। सुनन्दनप्रमुख्यैः स स्तूयमानो जनार्द्दनः॥२६॥
दर्शयामास रूपं स्वं नारदाय कृपार्दितः। तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय तनुं प्राण इवाऽऽगतः॥२७॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा नमस्कृत्य पुनः पुनः। तुष्टाव प्रणतो भूत्वा जगतामीश्वरेश्वरम्॥२८॥

नारद कहते हैं—"हे द्विजोत्तम! आपके दर्शन से मेरा मन प्रसन्न हो गया। इस जनहीन वन में आप कौन हैं, जो मेरे ऊपर कृपा करके आये हैं?"

नारद के यह कहते ही उन द्विजरूपी हरि ने अपना रूप परिवर्त्तित किया। उन्होंने हाथों में शंख-चक्र-

गदा धारण किया था। वे पीताम्बर तथा उज्वल कमल और वनमाला से भूषित थे। श्रीवत्स एवं कौस्तुभ आदि उनके वक्ष पर सुशोभित हो रहे थे। कमलादेवी उनके विमल देह में विराजमान थीं। सनन्दनादि ऋषिगण उनकी स्तुति कर रहे थे। कृपान्वित नारायण ने ब्राह्मण वेश का त्याग करके नारद को अपने रूप का प्रदर्शन किया। नारद उनको देखकर सहसा उठ पड़े तथा मानो उनके देह में प्राणों का पुनः संचार सा होने लगा। वे कृतांजलि (हाथ जोड़कर) पुनः पुनः जगत् के ईश्वरों के भी ईश्वर इन हरि को प्रणाम करने के पश्चात् उनका स्तव करने लगे।।२४-२८।।

नारद उवाच

यः सर्वसाक्षी जगतामधीश्वरो भक्तेच्छया जातशरीरसम्पदः।
कृपामहाम्भोनिधिराश्रितानां प्रसीदतां पावनदिव्यमूर्तिः॥२९॥
हिताय लोकस्य सतां पुनर्मनः सुतोषणायाऽचिरमुत्कलादिभिः।
प्रसन्नलीलाहसितावलोकनः प्रसीदतां सत्त्वनिकायमूर्तिमान्॥३०॥
कन्दर्प्पलावण्यविलाससुन्दरः प्रसन्नगम्भीरगिरेन्दिरोत्सवः।
स्वमाश्रितानां वरकल्पपादपः प्रसीदतां दीनदयार्द्रमानसः॥३१॥
यदङ्घ्रिपद्मार्चननिर्मलान्तरा ज्ञानासिना शातितबन्धहेतवः।
विन्दन्ति यद्ब्रह्मसुखं गतक्लमाः प्रसीदतां दीनदयार्द्रमानसः॥३२॥

नारद कहते हैं—जो सर्वसाक्षी तथा जगत् के अधीश्वर हैं, भक्त की इच्छा से जिन्होंने शरीर रूपी सम्पत्ति धारण किया है, जो आश्रितों हेतु कृपा समुद्र हैं, वे पवित्र दिव्यमूर्त्ति मुझ पर प्रसन्न हों।

जो त्रिलोक के हितार्थ तथा साधुगण को सन्तोष प्रदानार्थ अपनी कलाओं के साथ प्रादुर्भूत होते हैं तथा हास्यलीला दिखलाकर जो प्रसन्न रहते हैं, वे सत्वमूर्त्ति मुझ पर प्रसन्न हों।

जिनका लावण्य विलास कामदेव जैसा सुन्दर है, जो प्रसन्न एवं गंभीर वाक्य से कमला को सन्तुष्ट करते हैं, जो अपने आश्रितों हेतु कल्पवृक्ष के समान हैं, वे दीनदयालु दयार्द्र हृदय वाले प्रभु मुझ पर प्रसन्न हों। जिनके पादपद्म के पूजन से मानवगण निर्मल हृदय होकर ज्ञानास्त्र द्वारा सभी बन्धनों का उच्छेदन कर देते हैं, जिनको जानने से समस्त अवसाद दूरीभूत होकर ब्रह्मानन्द लाभ होता है, वे दर्यार्द्रहृदय प्रभु मुझ पर प्रसन्न हो जायें।।२९-३२।।

संसारवारान्निधिबद्धसेतुर्यः सृष्टिपालान्तविधानहेतुः।
उपान्तनामा गुणलब्धमूर्तिः प्रसीदतां ब्रह्मसुखानुभूतिः॥३३॥
य इन्द्रियाधिष्ठितसूक्ष्माद्विकासहेतुर्द्युतिमद्वरिष्ठः।
जीवात्मतां गच्छति मायया स्वया स एक ईशो भगवन्प्रसीदताम्॥३४॥

जो संसार सागर को पार करने के सेतु रूप हैं, जो सृष्टि-स्थिति-संहार का विधान करते हैं, जो सत्वादि गुणानुरूप ब्रह्मादि नामों का वरण करके स्थित हैं, जिनसे ब्रह्मसुखानुभूति होती है, वे दयार्द्र मूर्त्ति मुझ पर प्रसन्न हों!

जो इन्द्रियादि में सूक्ष्मभूत रूपेण अवस्थान करते हैं, जो जगत् विकासार्थ श्रेष्ठ तेजोरूप से उदित होते हैं, जो अपनी माया से जीवरूप धारण करते हैं, जो एकमात्र ईश्वर हैं, वे भगवान् ईश मेरे प्रति प्रसन्न हो जायें।।३३-३४।।

स्वदृग्गुणैर्येन विलिप्यते महान्गुणाश्रयं येन च पाञ्चभौतिकम्।
एकोऽपि नानागुणसम्प्रयुक्तः प्रसीदतां दीनदयालुवर्यः॥३५॥
यस्याऽनुवर्तिनो देवा विपदां पदमम्बुधिम्। कृत्वा वत्सपदं स्वर्गे निरातङ्का वसन्ति हि॥३६॥
नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च। प्रद्युम्नायाऽनिरुद्धाय सर्वभूतात्मने नमः॥३७॥
अद्य मे जीवितं धन्यमद्य मे सफलं तपः। अद्य मे सफलं ज्ञानं दर्शनात्ते जनार्दन!॥३८॥

गुणसाम्यावस्था में जिनमें महान् विलीन हो जाता है तथा जो गुणों के द्वारा पाञ्चभौतिक सृष्टि करते हैं, जो एक होकर भी नानारूप में प्रकाशित होते हैं, वे दीनदयाल प्रमुखरूप प्रभु मुझ पर प्रसन्न हो जायें।

जिनकी आज्ञा के अनुवर्त्ती देवगण विपदा समुद्र को उस प्रकार पार करते हैं मानो वह गोवत्स के खुर से बना सामान्य गढ़ा हो तथा समस्त आतंक से मुक्त होकर स्वर्ग में निवास करते हैं, उन सर्वभूतात्मा वासुदेव-संकर्षण-अनिरुद्ध-प्रद्युम्न को मैं प्रणाम करता हूं।

हे जनार्दन! मैंने आपका दर्शन प्राप्त किया है। मेरा जीवन-तप-ज्ञान धन्य हो गया।।३५-३८।।

श्रीभगवानुवाच

तुष्टोऽहं तपसाऽनेन स्तोत्रेणतव नारद!। त्वत्तोभक्तो न मे कश्चित्त्रिषुलोकेषु विद्यते॥३९॥
वरं वरय भद्रं ते वरदोऽहं तवाग्रतः। मद्दर्शनात्ते कामः स्यात्संसिद्धो विद्धि नारद!॥४०॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे नारद! तुम्हारी तपस्या तथा स्तव से मैं प्रसन्न हो गया। त्रिलोक में तुम्हारे समान दूसरा भक्त है ही नहीं। तुम्हारा मंगल हो। तुम वर मांगो। मैं तुमको वर देने आया हूं। हे नारद! मेरे दर्शन से तुम्हारा सभी अभीष्ट सिद्ध होगा।।३९-४०।।

नारद उवाच

वरदो यदिमे देव! वरार्हो यदिवाऽप्यहम्। भक्तिं तवपदाम्भोजेनिश्चलांदेहिमेविभो!॥४१॥
मच्छिलासन्निधानं न नत्याज्यंतेकदाचन। मत्तीर्थदर्शनात्स्पर्शात्स्नानादाचमनात्तथा।
देहैर्न युज्यते देहस्तृतीयस्तु वरो मम॥४२॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे देव! यदि आप मुझे वर प्रदानार्थ आये हैं तथा यदि आपने मुझे वर प्राप्त करने योग्य पात्र समझा है, हे विभो! तब आप अपने चरणों में निश्चला भक्ति प्रदान करिये। यह पहला वर मांगता हूं। द्वितीय वर यह मांगता हूं कि आप मेरी शिला को कभी न त्यागे। मेरे इस तीर्थ का दर्शन स्पर्शन, स्नान तथा आचमन करने से मानवगण पुनः (जन्म लेकर) देह धारण न करें।।४१-४२।।

श्रीभगवानुवाच

एवमस्तु तव स्नेहात्तव तीर्थे वसाम्यहम्। चराचराणां जन्तूनां विदेहाय न संशयः॥४३॥

एवमुक्त्वा हरिः साक्षात्तत्रैवाऽन्तरधीयत। नारदोऽपिमहातेजादिनानि कतिचित्सह।
बदरीमावसन्हृष्टो ययौ मधुपुरीं ततः॥४४॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे नारद! यही हो! तुम्हारे स्नेह के कारण मैं इस तीर्थ में निवास करूंगा। चराचर के सभी प्राणी इस तीर्थ का दर्शन पाकर मुक्त होंगे। इसमें सन्देह नहीं है।

यह कहकर हरि अन्तर्हित् हो गये। महातेजस्वी नारद भी दृष्ट अन्तःकरण से वहां बदरीवन में कुछ दिन निवास करके मथुरापुरी चले गये।।४३-४४।।

स्कन्द उवाच

मार्कण्डेयशिलायास्तुमहिमानंवदस्वमे। किंपुण्यंकिंफलंतस्याः सञ्ज्ञाचतादृशीकथम्॥४५॥

भगवान् स्कन्द कहते हैं—हे पिता! आप मुझसे मार्कण्डेय शिला का माहात्म्य कहिये। इस शिला का क्या फल है, क्या पुण्य है, इसके इस नामकरण का कारण क्या है?।।४५।।

शिव उवाच

पुरा त्रेतायुगस्यान्ते मृकण्डुतनयो महान्। स्वल्पायुषं निजं ज्ञात्वाजजापपरमंजपम्॥४६॥
द्वादशाक्षरमन्त्रेण पूजितो हरिरव्ययः। सप्तकल्पायुषं ज्ञात्वा तत्रैवाऽन्तरतो ययौ॥४७॥
मार्कण्डेयस्ततः श्रुत्वातीर्थाटनपरिश्रमम्। दर्शनं नारदस्याऽऽसीन्मथुरायां षडानन!॥४८॥
पूजितो वन्दितस्तेन नारदो मुनिसत्तमः। कथयामास माहात्म्यं बदर्या यत्र केशवः॥४९॥

भगवान् शिव कहते हैं—पूर्वकाल में त्रेता के अवसान के समय महान् मृकण्डुपुत्र मार्कण्डेय स्वयं को अल्पायु जानकर परम मन्त्र का जप करने लगे। उन्होंने द्वादशाक्षर हरिमन्त्र के जप द्वारा हरि की अर्चना करके सात कल्प की आयु को प्राप्त किया। तदनन्तर उस स्थान से चले गये। हे षडानन! तदनन्तर मार्कण्डेय ने तीर्थ पर्यटन में होने वाले महाश्रम का विचार किया और मथुरा गये। वहां उनको नारद का दर्शन मिला। मार्कण्डेय ने उन मुनिप्रवर का पूजन तथा वन्दन किया। नारद ने मथुरा निवासकाल में मार्कण्डेय से बदरीतीर्थ का माहात्म्य कहा था। यह तीर्थ हरि का गृहरूप है। वे मार्कण्डेय को देखकर कहने लगे।।४६-४९।।

नारद उवाच

किमिति क्लिश्यते साधोतीर्थाटनपरिश्रमैः। बदर्याख्यं महाक्षेत्रंसान्निध्यं नित्यदाहरेः॥५०॥
तत्र याहि यत्र साक्षाद्धरिं पश्यसि चक्षुषा।
तच्छ्रुत्वा विस्मयोपेतो विशालामाययावृषिः॥५१॥
स्नात्वा शिलामुपविशञ्जजापाऽष्टाक्षरं परम्। ततः प्रसन्नोभगवांस्त्रिरात्र्यन्ते जनार्दनः॥५२॥
शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविभूषणम्। तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रेमगद्गदया गिरा।
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा मार्गण्डेयो जनार्दनम्॥५३॥

देवर्षि नारद कहते हैं—"हे साधु! तुम तीर्थाटन का श्रम करके क्यों दुःख पा रहे हो? बदरी नामक महाक्षेत्र में हरि नित्य विराजित रहते हैं। इस बदरीवन में जाकर साक्षात् हरि का दर्शन अपने नेत्रों से करो।"

मुनि मार्कण्डेय देवर्षि के वाक्य से विस्मित हो गये। वे तत्क्षण उस विशाल बदरीक्षेत्र की ओर चल पड़े। वहां पहुंचकर उन्होंने स्नान किया तथा शिला पर बैठकर अष्टाक्षर परममन्त्र का जप करने लगे। तीन रात्रि व्यतीत होने पर जनार्दन देव प्रसन्न होकर मार्कण्डेय के समीप आये। मार्कण्डेय ने शंख-चक्र-गदा-पद्म से शोभित वनमालाधारी रूपराशि प्रभु को देखा। यह देखकर वे तत्काल उठकर खड़े हो गये तथा प्रणत होकर प्रेमगद्‌गद् वाक्य से उनका स्तव करने लगे।।५०-५३।।

मार्कण्डेय उवाच

अशाश्वते च संसारे सारे ते चरणाम्बुजे। समुद्धारः कथं नृणां त्राहि मां परमेश्वर!।।५४।।
तापत्रयपरिश्रान्तमनेकाज्ञानजृम्भितम्। संसारकुहरे भ्रान्तं त्राहि मां कृपयाऽच्युत!।।५५।।
अनेकयोनियन्त्रेषु निःसृतेस्तनुवेदनाम्। गर्भवासकृतां प्राप्तं त्राहि मां करुणाम्बुधे।।५६।।
कृमिभक्षितसर्वाङ्गं क्षुत्पिपासाकुलं च हि। आन्त्रमालाकुले गर्भे त्राहि मां मधुसूदन!।।५७।।
अमेध्यादिभिरालिप्तं निश्चेष्टश्रममाऽऽकुलम्।
स्मरन्तं निजकर्मोत्थं त्राहि मां मधुसूदन!।।५८।।

मार्कण्डेय कहते हैं—हे देव! इस अनित्य संसार में एक मात्र आपके चरणकमल ही सार हैं। संसार में रत लोगों का कैसे उद्धार होगा? हे परमेश्वर! मेरा उद्धार करिये। हे अच्युत! मैं इस संसारकुहर में पड़कर भ्रान्तबुद्धि हो गया। मैं आध्यात्मिकादि तापत्रय से परिश्रान्त तथा नाना अज्ञान से विजृम्भित हो रहा हूं। कृपापूर्वक मेरी रक्षा करें। हे करुणानिधि! मैंने नाना योनियों में जन्म लेकर गर्भवास क्लेश तथा तदनन्तर जन्म लेते समय का कष्ट सहा है। मेरा उद्धार करिये। जब मैं नाड़ीमाला व्याप्त गर्भ में वास करता था, तब मैं क्षुधा-पिपासा से आकुल होता था। कृमिसमूह मेरे सर्वाङ्ग का दंशन करते थे। हे मधुसूदन! मेरी रक्षा करिये। गर्भवास के समय मेरी कोई चेष्टा नहीं रहती तथापि मैं श्रमाकुल हो जाता था। तब अत्यन्त अपवित्र मल मूत्रादि से मेरा शरीर लिप्त रहता था, तब मैं अपने पूर्वकृत कर्म का ही स्मरण करता था। हे मधुसूदन! मेरी रक्षा करिये।।५४-५८।।

वचनादाननिःश्वासाशक्तं भयमुपागतम्। गर्भवासमहादुःखं त्राहि मां मधुसूदन!।।५९।।
जरामरणबाल्यादिदुःखसंसारपीडितम्। दुःखाब्धौ सुखबुद्धिंमांकृपासिन्धोप्रपालय।।६०।।
कदचित्कृमितां प्राप्तं कदाचित्स्वेदजन्मिताम्।
कदाचिदुद्भिज्जत्वं च कदाचिन्नरतां गतम्।।६१।।
सर्वयोनिसमापन्नं विपन्नं विगतप्रभम्। अनाथं त्वां समापन्नं त्राहिमांकृपयाऽच्युत।।६२।।
एवं स्तुतस्ततः कृष्णो मार्कण्डेयेनधीमता। प्रीतस्तमाह विप्रर्षे! वरं मे व्रियतामिति।।६३।।

गर्भवास में परिभाषण, आदान तथा निश्वासत्याग का सामर्थ्य नहीं होता। सर्वदा भयग्रस्त होकर वहां निवास करना पड़ता है। हे मधुसूदन! गर्भवास अत्यन्त दुःखप्रद है, मेरा उद्धार करिये।

जरा-मरण-बाल्यादि अवस्था के दुःखों के कारण संसार अत्यन्त कष्टप्रद है, तथापि इसे मैं सुख मान रहा हूं, यह बुद्धि उत्पन्न हो गयी है। हे कृपासिन्धु! मेरी रक्षा करिये। मैंने कभी कृमियोनि, कभी स्वेदज क्रिमि,

कभी उद्भिद् योनि, कभी नरदेह—इस प्रकार से सर्वविध योनियों में परिभ्रमण किया तथा अब विपन्न हो गया। मेरा समस्त प्रभाव लुप्त हो गया। हे अच्युत! मैं अनाथ होकर आपकी शरण में आ गया हूं। कृपा करके मुझे बचाईये। मेरी रक्षा करिये।'' धीमान मार्कण्डेय द्वारा जब श्रीकृष्ण की इस प्रकार से स्तुति की गई, तब उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक मार्कण्डेय से कहा—''हे विप्रर्षि! मुझसे वर मांगों। मैं तुम पर प्रसन्न हूं।''।।५९-६३।।

श्रीमार्कण्डेय उवाच

यदि तुष्टो भवान्मह्यं भगवन्दीनवत्सल। निश्चलां देहि मे भक्तिं पूजायांदर्शने तव।
शिलायां तव सान्निध्यमेष एव वरो मम।।६४।।

मार्कण्डेय कहते हैं—हे दीनबन्धु! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तब हे प्रभो! मुझे यह भक्ति दीजिये जिससे मैं आपकी पूजा तथा दर्शन कर सकूं। मेरी इस शिला में आपका सान्निध्य हो। यही मेरा वांछित वर है।।६४।।

सूत उवाच

तथेत्युक्त्वामहाविष्णुर्ययावन्तर्हितं द्विज!। मार्कण्डेयस्ततस्तुष्टोजगामपितुराश्रमम्।।६५।।
उपस्थानमिदं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्। शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यो गोविन्देलभतेगतिम्।।६६।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
शिवकार्त्तिकेयसम्वादेअग्नितीर्थनारदशिलामार्कण्डेयशिलामाहात्म्य-
वर्णनंनाम तृतीयोऽध्याय:।।३।।

सूत जी कहते हैं—हे द्विजगण! भगवान् महाविष्णु ''एवमस्तु'' कहकर अन्तर्हित् हो गये। तब मार्कण्डेय भी प्रसन्न होकर अपने पिता के आश्रम चले गये। इस पुण्य उपाख्यान के श्रवण से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। जो इसे सुनता है, अथवा अन्य को सुनाता है, उसे गोविन्द लोक में गति मिलती है।।६५-६६।।

।।तृतीय अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुर्थोऽध्यायः

गरुड़, वाराही, नारसिंही शिलावर्णन, गरुड़ को वर प्रदान, देवताओं को हरि द्वारा वर प्रदान करना

स्कन्द उवाच

वैनतेयशिलायास्तुमाहात्म्यं वद मेपितः!। किंपुण्यंकिंफलंचास्यअनुभावंचकिंभवेत्॥१॥

स्कन्ददेव कहते हैं—हे पिता! कृपया गरुड़शिला (वैनतेय शिला) का माहात्म्य वर्णन करिये। इस शिला का फल, प्रभाव तथा पुण्य क्या है?।।१।।

शिव उवाच

कश्यपाद्विनतागर्भे महाबलपराक्रमौ। गरुडारुणौ प्रजातौ द्वावरुणः सूर्यसारथिः॥२॥
बदर्य्या दक्षिणे भागे गन्धमादनश्रृङ्गके। गरुडस्तप आतेपे हरिवाहनकाम्यया॥३॥
फलमूलजलाहारो निर्द्वन्द्वो जपताम्वरः। पदैकेनोपसङ्क्रम्य भुवि जेपे निरामयः॥४॥
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि हरिदर्शन लालसः। ततस्तु भगवान्साक्षात्पीतवासा निजायुधः॥५॥
आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः। उवाच वचनं सम्यङ् मेघगम्भीरनिस्वनः॥६॥

भगवान् शिव कहते हैं—कश्यप के औरस तथा विनता के गर्भ से महाबली पराक्रमी अरुण तथा गरुड़ नामक दो पुत्र जन्मे। इनमें अरुण भगवान् सूर्य के सारथी बने। गरुड़ ने हरि का वाहन बनने की कामना से बदरी के दक्षिण की ओर गन्धमादन शिखर पर महान् तप किया। फल-मूल-जल का आहार करते निर्द्वन्द्व तपस्वीप्रवर गरुड़ एक पैर पर खड़े होकर जप करने लगे। वे किसी प्रकार से भी थके नहीं। गरुड़ ने हरिदर्शन की लालसा लेकर ३००० वर्ष इस प्रकार से तप किया तथा पूर्व दिशा में उदित पूर्णचन्द्र के समान तथा अपने आयुधों से युक्त भगवान् हरि वहां साक्षात् प्रकट हो गये। वे गरुड़ के निकट अपनी मेघगंभीर ध्वनि द्वारा उनको सम्बोधित करने लगे।।२-६।।

तथापि न बहिर्वृत्तिर्दध्मौ दरवरं ततः। तथापि न बहिर्वृत्तिर्गरुडस्य महात्मनः॥७॥
ततः प्रविश्य भगवानन्तरं पवनक्रमात्। बहिरुन्मुखतां चैव रचयन्बहिराबभौ॥८॥
भगवन्तं हरिं दृष्ट्वा गरुडो गतसाध्वसः। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गस्तुष्टाव विहिताञ्जलिः॥९॥

तथापि इस ध्वनि से गरुड़ का ध्यान भंग नहीं हो सका। उनमें बाह्यस्फूर्ति नहीं हो सकी। यह देखकर भगवान् ने उससे भी गहन ध्वनि में गंभीरतम शब्द किया, तथापि महात्मा गरुड़ में बाह्यज्ञान उदित ही नहीं हो सका। तब भगवान् ने पवन पथ से गरुड़ के अन्तःकरण में प्रवेश किया तथा उनकी बहिर्मुखी वृत्ति को उद्बुद्ध करके पुनः बाहर आविर्भूत हो गये। भगवान् हरि को प्रत्यक्ष देखकर गरुड़ का भय दूर हो गया। वह पुलकित होकर अंजलिबद्ध हो गये तथा भगवान् की स्तुति करने लगे।।७-९।।

गरुड उवाच

जयजयत्रिभुवनजनमनोभवनविदलिताघगुणसकलगीर्वाणवन्दितचरणकमलयुगलपरिमल-बहलरिपुवनविभञ्जन विद्योतमान सकलसुरासुरमुकुटकोटिविलसितनिजपीठकमल निरसितनिजजनहृदयतिमिरपटलबहल हिमकर इवत्रिविधसन्तापसन्दोहहरणचरण जगदुदयस्थितिलयविलासविलसितत्रिविधमूर्तिकीर्तिविस्फूर्जितजगदुदयसन्दोह दिनकर इव निजजनमानससरोजषट्पदविदितसकलवेदविद्योतमानमानस निजजनमुनिजन-वन्दितपदनखनीरपवित्रीकृतगीर्वाणमुनिमानसवन्दितचरण रजः प्रसादसारभूत! जग-तामधीश! नमस्ते नमस्ते॥१०॥

गरुड़ कहते हैं—हे प्रभो! त्रिभुवनस्थ जनगण के मन में आपका निवास है। आपके गुणों से दुरित समूह नष्ट हो जाते हैं। जो देवता आपके चरणयुगल की वन्दना करते हैं, आप उनके शत्रुरूप वन का नाश कर देते हैं। आप सतत् प्रभावान हैं। आपके चरणपीठरूपी कमल पर समस्त सुर तथा असुरगण का करोड़ों मुकुट लोटता रहता है। आप चन्द्रमा के समान हैं, आप अपने भक्तों के हृदयान्धकार को दूर करते हैं। आपके चरणों की शरण ग्रहण करने पर आध्यात्मिकादि त्रिताप का आप हरण कर लेते हैं। जगत् की सृष्टि-स्थिति-प्रलय के लिये आपने ब्रह्मा, विष्णु, महेश रूप अपनी त्रिविध मूर्त्ति को सृष्ट किया है। आप ही सूर्यरूपेण उदित होकर समस्त जगत् को उद्भासित करते हैं। आप अपने भक्तों के मानससरोरुह के भ्रमर रूप हैं। निखिल वेदविद्या आपको ज्ञात हैं। आपका मन निरन्तर विद्योतमान रहता है। मुनिगण आपके निजजनरूप हैं। वे आपके चरण कमल की वन्दना करते हैं। वे आपके अंगुष्ठ के चरणोदक से अपनी आत्मा पावन करते हैं। आपकी चरणधूलि आपके अनुग्रह की सारभूता है। तभी देवता तथा ऋषि मन ही मन उस चरणधूलि की वन्दना करते रहते हैं। आप जगत् के स्वामी हैं। आपकी जय हो। आपको नमस्कार। आपको पुनः-पुनः नमस्कार!।।१०।।

अपि च

अष्टशक्तिसहितो वनमाली पीतचैलकुसुमावलिशोभः।
पङ्कजाकरविराजितपादः पातु मामवहितेन्द्रियवर्गः॥११॥
भक्तहृत्कमलराजितमूर्तिर्दुष्टदैत्यदलनोत्थितकीर्तिः ।
बद्धसेतुरविताश्रितलोकः पातु मामनुदिनं भुवनेशः॥१२॥
स्थिरचलत्रिविधतापहिमांशुर्भासमानतरणिप्रतिभासः ।
एक एव बहुधा कृतवेषो माययाऽवतु महामतिरीशः॥१३॥
भक्तचिन्तनकृते कृतरूपः शैशवेन बहुनासितभूपः।
वेदमार्ग उरुधाहितकारी रीतिरीशितुरियं गुणशाली॥१४॥
यज्ञभृग्वृदयबन्धनधारी विश्वमूर्तिरबलांशुकहारी।
पालनेऽपि महताम्बहुदेहो रास एष तनुमानवतान्नः॥१५॥

जो अष्टशक्तियुक्त हैं, जिनके गले में वनमाला, शरीर पर पीतवस्त्र विराजित है, जो पुष्पों से शोभित हैं, पद्माकर जिनके चरणकमलों में विराजमान हैं, जिनकी इन्द्रियां संयत हैं, वे जगदीश मेरी रक्षा करें।

भक्तों के हृदयकमल में जिनकी मूर्त्ति सदैव विराजित रहती है, दुष्ट दैत्यों का दलन करने के कारण जिनकी कीर्त्ति सर्वत्र व्याप्त है, जिन्होंने सेतुबन्धन किया था, जो शरणागत पालक हैं, वे त्रिभुवनपति मेरी रक्षा करें। जो नियत अथवा अनियत रूप से आध्यात्मिकादि ताप का शमन करने हेतु चन्द्रमा के समान हैं, जो स्वयं अपनी प्रभा द्वारा सूर्य के समान उद्भासित होते हैं, जो महामति प्रभु अपनी माया द्वारा विविध वेष धारण कर लेते हैं, वे ईश्वर मेरी रक्षा करें। जो भक्तों की इच्छा के अनुरूप वेष धारण करते हैं, जिन्होंने शैशव में ही अनेक राजाओं पर शासन किया था, जो वेदपथस्वरूप हैं, जिनके अनेक आकार हैं, जो जगत् हितकारी हैं, जिनमें ईश्वरीय रीति विद्यमान रहती है, जो गुणयुक्त-यज्ञभुक् हैं, जो स्वेच्छा से बद्ध हो जाते हैं, विश्व ही जिनकी मूर्त्ति हैं, जो अबला गोपियों का वस्त्र हरण करते थे, महात्माओं के पालनार्थ जिन्होंने अनेक शरीर धारण किया है, वे रासरसिक तथा शरीरधारी हरि हमारी रक्षा करें।।११-१५।।

प्रेमभक्तिपुरुषैरुपलभ्यः पुरुषः कृतसमस्तनिवासः।
दास्यवृन्दहृषितो निजदासः प्रेक्षणैककरुणोऽवतु विश्वम्॥१६॥

जो प्रेमभक्ति पूर्ण पुरुषगण द्वारा प्राप्त किये जाते हैं, जो पुरुषरूपेण सर्वत्र व्याप्त हैं, जो भक्तों की सेवा से प्रसन्न होते हैं, जो स्वाधीन हैं, वे हरि अपने करुणाकटाक्ष से विश्व की रक्षा करें।।१६।।

कण्ठलम्बिततरक्षुनखाग्रकृष्टगोपरमणीकुचभारः ।
लीलया युवतिभिः कृतवेषः शेष एष भवतादुपशान्त्यै॥१७॥
दण्डपाणिरयमेव जनानां शासितात्मनियमोक्तहितानाम्।
पावनाय महतामनुशाली विश्वदुःखशमनो भवतान्नः॥१८॥

जिनके गले पर गोपरमणीगण का स्तनभार न्यस्त होता है, जो व्याघ्रनख के समान नखाग्र भाग से गोपियों के स्तनों को आकर्षित करते हैं, जो लीला के कारण युवती गोपीगण के साथ नाना वेश रचते हैं, वे अनन्त हमारे संसार ताप का शमन करें। जो स्वेच्छाचारी मनुष्यों पर शासन के लिये दण्ड धारण करते हैं, जो श्रेष्ठ व्यक्ति की पवित्रता के रक्षणार्थ तथा विश्वदुःख हरणार्थ उद्यत रहते हैं, वे ईश्वर मेरा क्लेश नाश करें।।१७-१८।।

एवं स्तुतस्ततः साक्षाद्गरुडेन महात्मना। पूजार्थमाजुहावैनां गङ्गां त्रिपथगामिनीम्॥१९॥
ततः पञ्चमुखी साक्षादाविरासीन्नगोपरि। तेनोदकेन पादार्घं चकार विनतासुतः॥२०॥
व्रियताम्वर इत्युक्तो गरुडो हरिणा ततः। तवैकवाहनः श्रीमान्बलवीर्यपराक्रमः।
अजेयो देवदैत्यानां स्यामहं ते प्रसादतः॥२१॥
इयं मन्नामविख्यातासर्वपापहराशिला। एतस्याःस्मरणात्पुंसांविषव्याधिर्नजायताम्॥२२॥

तदनन्तर महात्मा गरुड़ ने यह स्तव करके हरि की पूजा हेतु त्रिपथगा गंगा का आह्वान किया। उनके आह्वान के कारण गंगा वहां पंचमुखी रूप में शैल शिखर पर आविर्भूत हो गयीं। तब विनतानन्दन गरुड़ ने

जाह्नवीजल से प्रभु को पाद्य एवं अर्घ्य प्रदान किया। तदनन्तर भगवान् श्रीहरि ने कहा—"हे गरुड़! तुम वर ग्रहण करो।" श्री हरि के यह कहने पर गरुड़ ने कहा—"हे प्रभो! आपकी कृपा से मैं श्रीमान्, बलवीर्य-पराक्रम सम्पन्न होकर देवता तथा दैत्यों के लिये अजेय हो जाऊं। मैं एकमात्र आपका वाहन बनने की इच्छा करता हूं। मैंने जिस शिला पर तपस्या किया था, वह मेरे नाम से प्रसिद्ध हो। जो लोग इस शिला की शरण लेंगे, उनको विषव्याधि न हो। यही मेरा अभीष्ट वर है—"।।१९-२२।।

एवमुक्त्वा ततस्तूष्णीं बभूव विनतासुतः।
ओमित्युक्त्वा ततो विष्णुरुवाचेदं वचो हितम्॥२३॥
बदरीं त्वं प्रयाहीति नारदेन निषेविताम्। स्नानं नारदतीर्थादावुपवासत्रयं शुचिः।
कृत्वा मद्दर्शनं तत्र सुलभं ते भविष्यति॥२४॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विष्णुस्तडित्सौदामनी यथा। गरुडस्तु ततः शीघ्रमागत्य बदरीं मुदा॥२५॥
वह्नितीर्थं समासाद्य शिलामाश्रित्यतत्परः। स्नात्वा नारदतीर्थेषु व्रतचर्यामथाकरोत्॥२६॥
ततस्तु नारदे तीर्थे दृष्ट्वा भगवतः स्थितिम्। नमस्कृत्य विधानेन तदाज्ञातः पुरंययौ॥२७॥
ततः प्रभृति त्रैलोक्ये गारुडीति शिलोच्यते॥२८॥

विनतानन्दन गरुड़ यह प्रार्थना करके मौन हो गये। भगवान् ने 'यही हो' कहा तथा एवंविध गरुड़ की प्रार्थना स्वीकार करके गरुड़ से कहा—"हे गरुड़! इस समय नारद बदरीवन में मेरी सेवा कर रहे हैं। तुम वहां जाकर नारदतीर्थ में स्नान करके तीन दिन उपवासी रहो। वहां मेरा दर्शन करना, तब मैं तुमको सुलभ हो जाऊंगा।" श्री हरि गरुड़ से कह कर उसी प्रकार तत्काल अन्तर्हित् हो गये जैसे आकाश में तड़ित् विलीन हो जाती है। गरुड़ भी शीघ्रता पूर्वक प्रसन्न अन्तःकरण से बदरीतीर्थ गये वहां बह्नितीर्थ में उन्होंने तत्परता पूर्वक स्नान करके शिला पर बैठकर व्रताचरण किया। तत्पश्चात् नारद तीर्थस्थ हरि का दर्शन करके उनको यथाविधि प्रणाम किया तथा उनका आदेश पाकर स्वस्थान लौट आये। हे स्कन्द! तब से ही वह शिला त्रैलोक्य में गारुड़ी शिला नाम से प्रसिद्ध है।।२३-२८।।

स्कन्द उवाच

वाराह्यावदमाहात्म्यंकीदृशंहीश्वरेश्वर। किंपुण्यंकिं फलंतस्या अभिधानंतथाकथम्॥२९॥

स्कन्ददेव कहते हैं—हे पिता! आप ईश्वर के भी ईश्वर हैं। अब वाराही शिला का माहात्म्य कहिये। इस शिला का क्या फल तथा पुण्य है? इसका यह नाम पड़ने का कारण क्या है?।।२९।।

शिव उवाच

रसातलात्समुद्धृत्य महीं दैवतवैरिणम्। हिरण्याक्षं रणे हत्वा वदरीं समुपागतः॥३०॥
आकल्पान्तंमहादेवोयोगधारणयास्थितः। बदर्यासौष्ठवादेव विदधे स्थितिमात्मनः॥३१॥
शिलारूपेण भगवान्स्थितिं तत्र चकारह। तत्रगत्वा तु मनुजः स्नात्वागङ्गाजलेऽमले॥३२॥
दानं दत्त्वा स्वशक्त्या वै गङ्गाम्भःशान्तमानसः।
अहोरात्रे स्थितो भूत्वा जपेदेकाग्रमानसः॥३३॥

शिलायान्देवदृष्टिश्च तस्य पुंसः प्रजायते। बहुना किमिहोक्तेन यद्वदिष्यति साधकः॥३४॥
तत्तस्य सिध्यति क्षिप्रं यद्यपि स्यात्सुदुष्करम्॥३५॥

श्री शिव कहते हैं—हे स्कन्द! श्रीहरि ने वराहरूप से देववैरी हिरण्याक्ष का वध रणभूमि में किया था तथा रसातलगता पृथिवी का उद्धार करके बदरीवन आये। बदरीवन के सौष्ठव में वृद्धि की कामना से देवश्रेष्ठ हरि ने कल्पान्तकाल में योगधारणा में स्थित होकर इस क्षेत्र में अपनी आत्मा को प्रतिष्ठित किया। हे स्कन्द! वहां श्रीहरि ने शिलारूपेण स्वयं को स्थापित किया। जो मनुष्य इस बदरीतीर्थ जाकर वहां गंगाजल में स्नान तथा यथाशक्ति दान करता है, वह गंगाजल के प्रभाव से शान्त मन हो जाता है। वहां जो अहोरात्र वास करके एकाग्रता पूर्वक जप करता है, उसे शिला में देवदर्शन हो जाता है। इस विषय में अधिक क्या कहा जाये? इस तीर्थ में साधक जो भी प्रार्थना करता है, वह भले ही सुदुष्कर हो, तथापि उसकी वह कामना पूर्ण हो जाती है।।३०-३५।।

स्कन्द उवाच

नारसिंही शिलायास्तु माहात्म्यंवद मे प्रभो। त्वत्प्रसादान्महादेव दुर्ल्लभंश्रुतवानहम्॥३६॥

स्कन्ददेव कहते हैं—हे प्रभो! आपके अनुग्रह से मैंने विविध दुर्लभ प्रसंग सुने। हे महादेव! कृपया अब नारसिंही शिला का माहात्म्य कहिये।।३६।।

शिव उवाच

हिरण्यकशिपुं हत्वा नखाग्रेणैव लीलया। क्रोधाग्निना प्रदीप्ताङ्गः प्रलयानलसन्निभः॥३७॥
तदा देवैं समागत्यस्थित्वादूरेदयालुभिः। स्तुतोऽसौ भगवान्देवोलीलयाधृतविग्रहः॥३८॥
तदा प्रसन्नो हरिरुग्रविक्रमः स्वतेजसा व्याप्तसुरासुरोत्तमः।
उवाच मत्तो वरमावृणीध्वं गीर्वाणनिर्वाणसुखैकहेतुम्॥३९॥

भगवान् शिव कहते हैं—क्रोधाग्नि में प्रदीप्त अंगों वाले श्रीहरि ने प्रलयाग्निवत् होकर अपने नखाग्र से हिरण्यकशिपु दैत्य का वध किया। उस समय दयालु देवगण पास में ही विद्यमान रहकर लीलादेहधारी श्रीहरि का स्तव कर रहे थे। भगवान् उग्रविक्रम हरि ने अपने तेज से तब सुरों एवं असुरों को व्याप्त करके कहा—हे देवताओं! तुम सभी मुझसे गीर्वाणगण के निर्वाण सुख हेतु एकमात्र कारणभूत अभीष्ट वर मांगो।।३७-३९।।

तदा सुराणामधिपः स्वयंभूरुवाच वाक्यं स्मितशोभिताननः।
रूपं तवाऽत्युग्रमशेषदेहिनां भयावहं संहर नारसिंह!॥४०॥
अनेकधैतद्विधिवद्विधाय निधाय शैलादिषु दिव्यमूर्तिम्।
उवाच किं वः प्रकरोमि कृत्यमहं प्रसन्नस्त्रिदशाः परन्तपाः॥४१॥
ततोऽमरा ऊचुरनेन चैव रूपेण संक्षोभितविश्वमूर्ते!।
प्रशान्तमन्तःसुखहेतुबन्धि चतुर्भुजत्वं वरमीप्सितं नः॥४२॥

तब देवगण के अधीश्वर चतुरानन ब्रह्मा का मुख तनिक हास्ययुक्त शोभायमान हो गया। वे कहने

लगे—"हे नरसिंह! आपका उग्ररूप समस्त प्राणीगण के लिये भयानक है। आप इस रूप को समेट लीजिये। आप अपनी दिव्यमूर्त्ति को यथाविधि अनेकरूपों में विभक्त करके शैलादि में स्थापित करिये तथा हमारा भय दूर करिये।।४०-४२।।

ततो हरिर्वीक्ष्य निरीक्षणेन दिव्येन विश्वं प्रययौ विशालाम्।
गङ्गाजले क्रीडति विष्टचेताः सुरसुरेभ्यो भगवानुवाच॥४३॥
ततोऽमराः शान्तभया अथैनं निरीक्ष्य देवं जलमध्यसंस्थम्।
नत्वा परिक्रम्य तदा समाययुर्निरूढभावाः स्वपुरं ततः क्रमात्॥४४॥
ततः समस्ता ऋषयस्तपोधनाः समाययुर्भक्तिभरावनम्राः।
नृसिंहमत्यद्भुतविक्रमं हरिं समीडिरे बद्धकरा वचोभिः॥४५॥

तब भगवान् हरि विश्व पर दिव्यदृष्टि निःक्षेप करके विशाला गये। वहां उन्होंने एकाग्रतापूर्वक जाह्नवी जल में क्रीड़ा प्रारंभ किया तथा क्रीड़ा करते हुये सुर एवं असुरगण को अभय प्रदान किया। तब देवगण ने उनको जल मध्य स्थित देखा तथा उन देवगण का भय अब प्रशमित हो गया। देवताओं ने उनको प्रणाम किया तथा भगवान् की प्रदक्षिणा सम्पन्न करके सभी देवता अपने-अपने पुर चले गये। तब सभी तपोधन मुनिगण आये तथा अवनत होकर इन अद्भुत् विक्रमी नृसिंह हरि का स्तव नाना वाक्यों से करने लगे।।४३-४५।।

ऋषय ऊचुः

नमो नमस्ते जगतामधीश! विश्वेश! विश्वाभय! विश्वमूर्ते!।
कृपाम्बुराशे भजनीयतीर्थपादाम्बुंज! श्रीश दयाम्विधेहि॥४६॥
एकोऽसि नाना निजमायया स्वया घटे पयो यद्वदुपाधिभिन्नम्।
भक्तेच्छयोपात्तविचित्रविग्रह! प्रसीद विश्वानन! विश्वभावन!॥४७॥
ततः प्रसन्नो भगवान्नृसिंहः सिंहविक्रमः। उवाच वचनञ्चारु वरं मे व्रियतामिति॥४८॥

ऋषिगण कहते हैं—"हे विश्वमूर्त्ति! आप जगत् के अधीश्वर तथा विश्व को अभय देने वाले हैं। आपको प्रणाम, प्रणाम! हे दयासिन्धु! हे श्रीश! आप हमारे ऊपर दया करिये। आपके चरणकमल तीर्थ हैं तथा वे ही सेवनीय हैं। हे विश्वभावन! जैसे एक ही घट तथा एक ही जल उपाधि द्वारा भिन्नवत् प्रतीत होता है, वैसे ही आप एक होकर भी नाना रूप में अपनी माया के कारण प्रतीयमान होते हैं। भक्तों की इच्छा से ही आपने विचित्र-विचित्र शरीर धारण किया है। हे विश्वानन! हम पर प्रसन्न हों।" तब भगवान् सिंह विक्रम नृसिंहदेव ने ऋषिगण के स्तव से प्रसन्न होकर उनसे यह मनोहर वाक्य कहा कि "तुमलोग वर मांगो।"।।४६-४८।।

ऋषय ऊचुः

यदिप्रसन्नोभगवान्कृपयाजगताम्पते। विशालान परित्याज्यावरोऽस्माकमभीप्सितः॥४९॥
एवमस्तु ततः सर्वे स्वाश्रमं ह्यृषयोययुः। नृसिंहोऽपि शिलारूपी जलक्रीडापरोऽभवत्॥५०॥
उपवासत्र्यं कृत्वा जपध्यानपरायण। नृसिंहरूपिणं साक्षात्पश्यत्येव न संशयः॥५१॥

य एतच्छ्रुद्धया मर्त्यः शृणोति श्रावयञ्छचिः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो वैकुण्ठे वसतिं लभेत्॥५२॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डेबदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेय-सम्वादे गरुडशिलावाराहीशिलानारसिंहीशिलामाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

ऋषिगण कहते हैं—"हे प्रभो! यदि आप हमारे प्रति प्रसन्न हैं तब कृपया आप कदापि बदरीतीर्थ का त्याग न करें। हमें यही अभीष्ट वर चाहिये।" श्रीहरि ने कहा "ऐसा ही हो"। ऋषिगण भगवान् का यह वाक्य स्वीकार करके अपने-अपने आश्रम चले गये। प्रभु नृसिंह देव ने शिलारूप धारण किया तथा जलक्रीड़ा करने लगे। जो मानव वहां तीन दिन उपवासी रहकर जप तथा ध्यान परायण रहते हैं, वे साक्षात् नृसिंह रूप का दर्शन प्राप्त करते हैं। इसमें सन्देह नहीं है। जो मनुष्य सश्रद्ध भाव से नारसिंही शिला के माहात्म्य को सुनते हैं अथवा अन्य को सुनाते हैं, वे सर्वपापविनिर्मुक्त होकर वैकुण्ठलोक गमन करते हैं।।४९-५२।।

।।चतुर्थ अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

पञ्चमोऽध्यायः

विष्णुपूजा-दर्शनादि विधि, हरिभक्तिप्रशंसा, बदरीधाम महिमा

स्कन्द उवाच

किमर्थं भगवांस्तत्रवसतिश्रद्धयापुनः। किं पुण्यं किं फलं तस्य दर्शनस्पर्शनादिभिः॥१॥
नैवेद्यभक्षणंचाऽपि महापूजाकृतेस्तथा। प्रदक्षिणस्य च फलं ब्रूहि मे कृपया पितः!॥२॥

स्कन्ददेव कहते हैं—हे पिता! पुनः कहिये। हरि किसलिये वहां श्रद्धापूर्वक रहते हैं? उनके दर्शन-स्पर्शन का क्या फल है? उनकी महती पूजा, नैवेद्य भक्षण तथा प्रदक्षिणा का क्या पुण्य है? यह सब कहिये।।१-२।।

शिव उवाच

पुरा कृतयुगस्यादौ सर्वभूतहिताय च। मूर्तिमान्भगवांस्तत्र तपोयोगसमाश्रितः॥३॥
त्रेतायुगे ह्यृषिगणैर्योगाभ्यासैकतत्परः। द्वापरे समनुप्राप्ते ज्ञाननिष्ठो हि दुर्लभः॥४॥
ऋषीणां देवतानां च दुर्दर्शो भगवानभूत्। ततो ह्यृषिगणा देवा अलभ्यभगवद्गतिम्॥५॥
स्वायम्भुवं पदं याता विस्मयाकुलचेतसः। तत्र गत्वा नमस्कृत्य ऊचुर्लोकेश्वरंमुदा।
बृहस्पतिं पुरस्कृत्य ऋषयश्च तपोधनाः॥६॥

शिव कहते हैं—पूर्वकाल में सत्ययुग में पहले प्राणियों की हितकामना से मूर्त्तिमान् भगवान् तप का अवलम्बन करके, त्रेतायुग में ऋषियों के साथ योगाभ्यास तत्पर होकर, द्वापरयुग के समय दुर्लभ ज्ञाननिष्ठ होकर विशाला में निवास करते हैं। द्वापर में जब भगवान् देवता तथा मुनिगण के लिये दुर्लक्ष्य हो गये, तब देवता एवं ऋषिगण भगवद्गति जान सकने में असमर्थ होकर विस्मयाकुल चित्त से स्वयम्भु ब्रह्मा के पास गये। बृहस्पति को आगे करके देवता तथा तपोधन ऋषिगण ने जगत्स्रष्टा ब्रह्मा को नमस्कार किया तथा प्रसन्न अन्तःकरण से कहने लगे।।३-६।।

देवा ऊचुः

नमस्ते सर्वलोकानामाश्रयः शरणार्तिहा। वृत्तिदः करुणापूर्णः पितामह सुरेश्वर।
निवेदनीया विपदः समुद्धर्ता पिताऽसि नः।।७।।

देवता कहते हैं—हे सुरेश्वर! आप सर्वलोकाश्रय हैं। आप आश्रितों की पीड़ा का हरण करते हैं। आप वृत्तिप्रदाता हैं। आपका हृदय करुणा से भरा है। हे पितामह! आपको प्रणाम! हे ब्रह्मन्! आप हमारा उद्धार करिये। आप पिता हैं। अतः हम आपके पास अपनी विपत्ति वर्णन करने आये हैं।।७।।

ब्रह्मोवाच

किमर्थमागता यूयं विस्मयाकुलमानसाः। मिलिताऋषिभिःसाकंब्रूतागमनकारणम्।।८।।

ब्रह्मा कहते हैं—तुम सब किसलिये आये हो? देखता हूं कि तुम लोगों का मन आकुल है। तुम सब ऋषिगण के साथ यहां क्यों आये हो? अब अपने आने के कारण का वर्णन करो।।८।।

देवा ऊचुः

द्वापरे समनुप्राप्ते विशालायां विशालधीः। भगवान्दृश्यते नैव तत्र किं कारणं वद।।९।।
विशाला किं परित्यक्ता ततो वा क्व गतः स्वयम्।
अपराधादुताऽस्माकं कथं चाऽसौ प्रसीदति।।१०।।

देवगण कहते हैं—हम द्वापरयुग आने पर विशाल बुद्धि भगवान् को विशाला में क्यों नहीं देख पा रहे हैं? इसका कारण क्या है? उन्होंने विशाला का त्याग क्यों कर दिया? वे कहां चले गये? अथच, हमलोगों से क्या अपराध हो गया? क्या करने से प्रभु प्रसन्न होंगे, वह कहिये।।९-१०।।

ब्रह्मोवाच

नाहमेतद्विजानामिश्रुतं चाऽद्य मुखाद्धि वः। को हेतुर्दृक्पथातीतोभगवान्भवतांसुराः।
आगच्छत वयं यामस्तीरं क्षीरपयोनिधेः।।११।।
इत्युक्तास्ते पुरोधाय ब्रह्माणं त्रिदिवौकसः। ययुः क्षीराम्बुधेस्तीरमृषयश्चतपोधनाः।।१२।।
तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम्। गीर्भिश्चित्रपदार्थाभिस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम्।।१३।।

ब्रह्मा कहते हैं—"हे देवताओं! भगवान् सबकी दृष्टि से परे क्यों हो गये, यह तो मैं पहले जानता नहीं था। आज तुमलोगों से यह सुना। चलो! हम सब क्षीरसागर चलें।" इस प्रकार से तपोधन ऋषि तथा देवगण

ब्रह्मा को आगे करके क्षीरसागर तट पर आये। वहां जाकर विविध पद एवं अर्थयुक्त वाक्यों से वृषाकपि देवदेव परमेश्वर जगन्नाथ का पृथक्-पृथक् स्तव करने लगे।।११-१३।

ब्रह्मोवाच

नमस्ते पुरुषाध्यक्ष! सर्वभूतगुहाशय!। वासुदेवाऽखिलाधार! जगद्धेतो! जगन्मय!।।१४।।
त्वमेव सर्वभूतानां हेतुः पतिरुताऽऽश्रयः।
मायाशक्तिमुपाश्रित्य विचरस्येकसुन्दर!।।१५।।
एको नानायते योऽसौ नटवज्जायतेऽव्ययः। व्यापकोऽपिकृपालुत्वाद्भक्तहृत्पद्मषट्पदः।
ददाति विविधानन्दं तं वन्दे जगताम्पतिम्।।१६।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे वासुदेव! आप पुरुष तथा अध्यक्ष हैं। समस्त प्राणीगण की हृदयगुहा में आपका निवास है। आप अखिल ब्रह्माण्ड के आधार, जगत्प्रभु तथा जगन्मय हैं। आपको प्रणाम! हे अद्वितीय सुन्दर! आप तो जीव जगत् के कारण, जगत्पति तथा आश्रय हैं। आप मायाशक्ति का आश्रय लेकर विचरते हैं। आपको प्रणाम! जो एक होकर भी नानात्व रूप आचरण करते हैं, अव्यय होकर भी जिनका नट के समान अभिनय है, व्यापक होकर भी जो कृपा के कारण भक्तों के हृदयकमल में भ्रमरवत् विराजित हैं, जो विविध आनन्ददाता हैं, उन जगत्पति की वन्दना करता हूं।।१४-१६।।

देवा ऊचुः

विपद्वान्ते हुतभुग्जनानां गृहीतसत्त्वस्त्रिदशावनीशः।
चराचरात्मा भगवाननन्ते कृपाकटाक्षैरवलोकतां नः।।१७।।
सकृद्यन्नामपीयूषरसपानपरः पुमान्। निःश्रेयसं तृणमिव मन्यते तं हरिं भजे।।१८।।
अविद्याप्रतिबिम्बत्वाज्जीवभावमुपागतः। विज्ञत्वादुपशान्तात्मा स पुनातु जगत्त्रयम्।।१९।।

देवगण कहते हैं—जो प्राणियों की विपत्ति को उस प्रकार से दग्ध करते हैं, जैसे अग्नि वन को दग्ध करता है, जिनकी सत्ता के कारण सभी जीव प्राण प्राप्त करके प्राणी कहलाते हैं, जो त्रिपदाधीश्वर हैं, वे चराचरात्मा अनन्त भगवान् अपने कृपाकटाक्ष से हम पर दृष्टि निःक्षेप करें। जो व्यक्ति परमपुरुष के पीयूषरसमय नामरस का एक बार भी पान करता है, वह निःश्रेयस को भी तृणवत् मानता है। हम हरि का भजन करते हैं, जो अविद्या के प्रतिबिम्ब के कारण जीवभाव का वरण करते हैं, विज्ञता के कारण जिनकी आत्मा शान्त है, वे प्रभु तीनों लोकों को पवित्र करें।।१७-१९।।

गन्धर्वा ऊचुः

पिबन्ति ये हरेः पदाम्बुसङ्गलेशतः पयः पयो न ते पुनःपुनः पिबन्ति मातुरङ्कतः।
प्रसङ्गतो यदाऽभिधासुधां निपीय मानवा, मृताऽमृतं व्रजन्त्यधो न जातु चान्त्यशङ्किताः।।२०।।

गन्धर्वगण कहते हैं—जो हरि के तनिक भी चरणोदक का पान करते हैं, उनको जननी के गर्भ में पुनः आकर तथा जन्म लेकर उसका स्तनपान नहीं करना पड़ता। यदि प्रसंगक्रमेण भी जो व्यक्ति हरिनाम सुधा का

पान करता है, वह मृत होकर कदापि अधोगति नहीं पाता, अपितु अमृतपद प्राप्त करता है। वह सर्वदा अशंकित (शंकारहित) रहता है।।२०।।

ततःस्तुतोहरिःसाक्षात्सिन्धोरुत्थायचाऽब्रवीत्। अलक्षितोऽपरैर्ब्रह्मापरंतद्वेदनापरः।।२१।।
ब्रह्मा तदुपधार्याऽथ नत्वा तस्मै दिवौकसः। बोधयामाससकलं सुराःशृणुतसादरम्।।२२।।
अन्तर्हितोऽसौ भगवान्दृष्टा लोकान्कुमेधसः। श्रुत्वेत्थंवचनंतस्य सर्वेदेवादिवंययुः।।२३।।
ततोऽहं यतिरूपेण तीर्थान्नारदसञ्ज्ञकात्।
उद्धृत्य स्थापयिष्यामि हरिं लोकहितेच्छया।।२४।।
यस्य दर्शनमात्रेण पातकानि महान्त्यपि। विलीयन्ते क्षणादेव सिंहं दृष्ट्वा मृगा इव।।२५।।
धर्माधर्मान्विजित्याऽथबदरीशंविभुंहरिम्। दृष्ट्वामुक्तिमुपायान्तिविनाऽऽयासंषडानन।।२६।।
त्यक्तप्रायाणि तीर्थानि हरिणा कलिकालतः। बदरींसमनुप्राप्यसाक्षादेवाऽवतिष्ठते।।२७।।

तदनन्तर साक्षात् ईश्वर हरि इस प्रकार से स्तुत होकर समुद्र पर शयन स्थल से उठ गये तथा कहने लगे—"हे देवताओं! यह आदर पूर्वक सुनो! मैं अन्य के लिये लक्षित नहीं हूं। ब्रह्मा मेरे परब्रह्मरूप से अवगत हैं। अन्य कोई नहीं जान सकता।" तब ब्रह्मदेव ने हरि के स्वरूप की अवधारणा करके उनको नमस्कार द्वारा प्रबोधित किया तथा देवगण से कहने लगे "भगवान् हरि ने मनुष्यों को कुमेधा युक्त देखा, तब वे अन्तर्ध्यान हो गयें।" हे षड़ानन! देवताओं ने ब्रह्मा से यह सुना तथा सभी स्वर्गलोक चले गये। तब मैंने संसार के हितार्थ यतिरूप धारण किया तथा हरि को नारदतीर्थ से लाकर विशाला में स्थापित किया। जिनके दर्शन मात्र से समस्त महापाप उसी प्रकार विलीन हो जाते हैं, जैसे सिंह को देखकर मृग क्षणमात्र में भाग जाते हैं। जो निखिल धर्म तथा अधर्म पर विजय पाकर बदरी क्षेत्र में ईशरूपेण विराजित हैं, उन विभु हरि का दर्शन करके मानव बिना प्रयास मुक्त हो जाता है। कलिकाल को आया देखकर जो प्रायः समस्त तीर्थों का त्याग कर देते हैं, वे साक्षात् विष्णु हरि सम्प्रति बदरीक्षेत्र में निवास करते हैं।।२१-२७।।

कलिकालमनुप्राप्य मुक्तिर्येषामभीप्सिता। द्रष्टव्या बदरीतैस्तुहित्वातीर्थान्यशेषतः।।२८।।
विना ज्ञानेन योगेन तीर्थाटनपरिश्रमैः। एकेन जन्मना जन्तुः कैवल्यं पदमश्नुते।।२९।।
जन्मान्तरसहस्रैस्तुयेनचाऽऽराधितो हरिः। स गच्छेद्बदरींद्रष्टुं यत्र जन्तुर्नशोचति।।३०।।
बदरीबदरीत्युक्त्वा प्रसङ्गान्मनुजोत्तमः। संसारतिमिराबाधे दीपमुज्ज्वालयत्यसौ।।३१।।
यथा दीपावलोकेन तमोबाधा न जायते। तथैव बदरीं दृष्ट्वा पुंसो मृत्युभयं कुतः।।३२।।
दर्शनाद्यस्य पापानि रुदन्त्यव्याहतानि च। मुक्तिमार्गमुपालक्ष्य तं वन्दे बदरीपतिम्।।३३।।

कलिकाल में जो लोग मुक्ति की कामना करते हैं, वे अन्य तीर्थों का त्याग करके बदरी क्षेत्र का दर्शन करें। प्राणी योग-ज्ञान-तीर्थाटन क्लेश सहे बिना बदरीतीर्थ दर्शन से ही मुक्त हो जाता है। जिन्होंने हजारों जन्मान्तर में हरि का आराधन किया है वे बदरीतीर्थ दर्शनार्थ जा पाते हैं। इस तीर्थ दर्शन से जीव को कोई शोक ही नहीं रह जाता। जो मनुष्य प्रवर प्रसंगक्रमेण बदरी-बदरी रूपी नामोच्चार करते हैं, वे भीषण बाधायुक्त संसारान्धकार में भी वे उज्वल प्रकाश का दर्शन पाते हैं। जैसे दीपदर्शन से अन्धकार बाधा निवृत्त हो जाती है,

उसी प्रकार जिसने बदरी दर्शन कर लिया, उसकी मृत्यु बाधा कहां? जिनका दर्शन मिलते ही सभी अव्याहत पाप रुदन करने लगते हैं, मैं मुक्तिमार्ग के उपलक्ष्य में उन बदरीश्वर की वन्दना करता हूं।।२८-३३।।

सशैलकानना भमिर्दशधा दक्षिणीकृता। हरेः प्रदक्षिणं तद्वद्बदर्यां तत्पदेपदे।।३४।।
अश्वमेधे तु यत्पुण्यं वाजपेयशतेन च। हरेः प्रदक्षिणातद्वद्बदर्यां तत्पदे पदे।।३५।।
चतुर्मासे तु यत्पुण्यं ब्रह्माण्डदानतस्तथा। हरेः प्रदक्षिणं तद्वद्बदर्यां तत्पदेपदे।।३६।।
अतिकृच्छ्रैर्महाकृच्छ्रैश्छान्दसैः सुकृतं भवेत्। हरेः प्रदिक्षणं तद्वद्बदर्यां तत्पदेपदे।।३७।।

शैल समन्वित कानन युक्त पृथिवी की दस प्रदक्षिणा द्वारा जो पुण्य मिलता है, यहां हरि की प्रदक्षिणा का भी वही फल है तथा एक-एक पैर बदरी प्रदक्षिणा का भी वही फल जानना चाहिये। १०० अश्वमेध तथा १०० बाजपेय यज्ञ का जो फल है, हरि की प्रदक्षिणा मात्र से वही फल आयत्त होता है, तथापि बदरी प्रदक्षिणा में तो पग-पग पर वही फल प्राप्त होता है। चातुर्मास्य व्रत तथा ब्रह्माण्डदान का जो फल है वह हरिप्रदक्षिणा के तुल्य है, तथापि बदरी में तो वह फल पग-पग पर प्राप्त किया जा सकता है।।३४-३७।।

बदर्यां विष्णुनैवेद्यं सिक्थमात्रं षडानन!। अशनाच्छोधयेत्पापंतुषाग्निरिव काञ्चनम्।।३८।।
यदन्नं भगवानत्ति ऋषिभिर्नारदादिभिः। तत्सत्त्वशुद्धये सर्वैर्भोक्तव्यमविचारितम्।।३९।।

अमरा अपि यन्नूनं व्याजेनेच्छन्ति सर्वतः।
भोक्तं बदरिकां विष्णोनवेद्यं यान्ति तत्पराः।।४०।।

भोजनानन्तरंविष्णोः प्रगच्छन्तिस्वमालयम्। प्रह्लादप्रमुखाभक्ताःप्रविशन्तिहरेःपदम्।।४१।।
बाल्ययौवनवार्द्धक्ये यत्पापं ज्ञानतः कृतम्। नैवेद्यभक्षणाद्विष्णोर्बदर्यां तद्विलीयते।।४२।।

प्राणान्तं यस्य पापस्य प्रायश्चित्तं प्रकीर्तितम्।
विष्णोर्निवेदितं भुक्त्वा बदर्य्यां तन्निवर्त्तते।।४३।।

हे षड़ानन! बदरी क्षेत्र में कणमात्र विष्णु का नैवेद्य भक्षण करने से सभी पापों से उसी प्रकार शुद्धि प्राप्त हो जाती है, जैसे अग्नि में स्वर्ण तपाने से शुद्ध हो जाता है। भगवान् भी नारदादि ऋषिगण के साथ जो अन्न भक्षण करते हैं, जीवन शुद्धि के लिये बिना विचार किये सभी उस अन्न का भोजन करें। देवता भी तत्पर होकर गोपनीय छलरूपेण बदरीवन आकर उस विष्णु नैवेद्य की अभिलाषा करते हैं तथा उस विष्णु नैवेद्य के भोजनान्त में अपने-अपने स्थानों में वापस लौट जाते हैं। प्रह्लाद आदि प्रमुख भक्तगण की हरि के स्थान इस बदरीतीर्थ आते हैं। बाल्यावस्था, वार्द्धक्यावस्था तथा यौवनावस्था में जान-बूझकर जो पाप किया जाता है, वह बदरीक्षेत्रस्थ विष्णु के नैवेद्य का भक्षण करने से विलीन हो जाता है। जिस पाप का प्रायश्चित्त प्राणान्त से पूर्ण होता है, बदरीवन में मात्र विष्णु नैवेद्य भक्षण से वह पापनिवृत्त हो जाता है।।३८-४३।।

तीर्थान्तरेषु यत्नेन मुक्तिं गच्छति मानवः। नैवेद्यभक्षणाद्विष्णोःसालोक्यंलभतेनरः।।४४।।
हृदि रूपं मुखे नाम नैवेद्यमुदरे हरेः। पादोदकं सनिर्माल्यं मस्तके यस्य सोऽच्युतः।।४५।।
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयंगुर्वङ्गनागमः। नैवेद्यभक्षणाद्विष्णोर्बदर्यांयान्ति सङ्क्षयम्।।४६।।

यत्नतः अन्य तीर्थों के सेवन से मुक्ति मिलती है, तथापि मानव बदरीतीर्थ में मात्र विष्णु का नैवेद्य भक्षण करके सालोक्य लाभ करता है। जिनके हृदय में हरि का रूप, मुख में हरिनाम, उदर में विष्णु नैवेद्य तथा मस्तक पर सनिर्माल्य विष्णुपादोदक है, वे तो साक्षात् अच्युत विभु हैं। ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरुपत्नीगमन, ये सभी महान् पाप बदरीवन में विष्णु के नैवेद्य भक्षणमात्र से क्षयीभूत हो जाते हैं।।४४-४६।।

बदरीसदृशं क्षेत्रं नैवेद्यसदृशं वसु। नारदीयसमं क्षेत्रं न भूतं न भविष्यति।।४७।।
बदरी यत्नतो गम्या भोक्तव्यं तन्निवेदितम्। द्रष्टव्योभगवान्वह्नितीर्थेस्नानंसुदुर्ल्लभम्।।४८।।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि व्रतानि नियमास्तथा।
पादोदकं विशालायां पावनं पुरतो भवेत्।।४९।।
किं तस्य दानैस्तपसा तीर्थाटनपरिश्रमैः। बदर्यां विष्णुपादोदबिन्दुमात्रं लभेद्यदि।।५०।।
प्रायश्चित्तानि जल्पन्ति तावदेव षडानन!। यावन्नलभ्यते विष्णोर्बदर्यां चरणोदकम्।।५१।।
अनायासेनयेषां वाइच्छामुक्तिपथेनृणाम्। कर्त्तव्यं तैः प्रयत्नेन विष्णोर्नैवेद्यभक्षणम्।।५२।।
ये नराःप्रतिगृह्णन्ति पापाः संसारभागिनः। यात्राकृतं फलं तेषां न कदाचित्प्रजायते।।५३।।
नैवेद्यनिन्दनाद्विष्णोर्निन्द्यन्ते ते तमोगताः। नैवेद्यभक्षणात्सत्त्वशुद्धिरेवन संशयः।।५४।।

बदरी के समान क्षेत्र, विष्णु नैवेद्यवत् धन, नारदीय क्षेत्र के तुल्य क्षेत्र न तो हुआ है, न होगा। यत्नतः बदरीतीर्थ में गमन, विष्णु नैवेद्य भक्षण, वह्नितीर्थ में दुर्लभ स्नान तथा भगवान् विष्णु का दर्शन करें। पृथिवी पर जितने तीर्थ है, व्रत-नियम हैं, उनमें से विष्णु पादोदक ही सर्वोत्तम है। जो बदरीतीर्थ में विन्दुमात्र भी विष्णुपादोदक पा चुके हैं, उनको दान, तप तथा तीर्थपर्यटन का कष्ट क्या सहना! हे षड़ानन! जब तक बदरीक्षेत्रस्थ विष्णु का पादोदक नहीं प्राप्त हो जाता, तब तक ही पापनाशक प्रायश्चित्तादि विधि की जल्पना करनी चाहिये। जो मनुष्य मन को अनायास मुक्तिमार्ग पर परिचालित करना चाहते हैं, वे यत्नतः विष्णु नैवेद्य भक्षण करें। जो मानव संसार का सेवन करने वाले तथा पापमति हैं, वे यदि बदरी क्षेत्र में दान ग्रहण करते हैं, उनको कदापि बदरीयात्रा का फल प्राप्त नहीं होगा। विष्णु नैवेद्य की निन्दा करने वाला मानव निन्दित तथा पापलिप्त हो जाता है। जो विष्णु नैवेद्य का भक्षण करते हैं, उनका जीवन शुद्ध हो जाता है।।४७-५४।।

नैवेद्यं स्वयमानीय ब्राह्मणान्भोजयन्ति ये।
तुलापुरुषदानेन किं फलं ते कृतार्थिनः।।५५।।
कुरुक्षेत्रं समासाद्य राहुग्रस्ते दिवाकरे। महादानेन यत्पुण्यं बदर्यां ग्रासमात्रतः।।५६।।
बदरीक्षेत्रमासाद्य ग्रासमात्रं प्रयत्नतः। उपायोऽयं महांस्तत्र बदर्यां हरितोषणे।
यतिभ्यो भोजनाद्विष्णोरपराध्यपि बल्लभः।।५७।।
न विष्णोः सदृशो देवो न विशालासमापुरी। न भिक्षुसदृशंपात्रमृषितीर्थसमंन हि।।५८।।
चातुर्मास्यंप्रकुर्वन्ति ये नराःपुण्यशालिनः।
तेषां पुण्यफलं वक्तुं ब्रह्मणाऽपिनशक्यते।।५९।।

भिक्षुकाणांफलावाप्तिर्विशेषादिहकीर्त्यते। वेदान्तश्रवणात्पुण्यंदशधायत्प्रकीर्तितम्।।६०।।
बदरीदृष्टिमात्रेण भिक्षुकाणां तदिष्यते। चातुर्मास्ये विशेषेण कैवल्यफलभागिनः।।६१।।
न्यासिनो बदरीस्थाने विनायासेन पुत्रक!। येमूर्खाजाड्यमापन्नादम्भकाषायवाससः।
बदरीदर्शनात्तेषां मुक्तिः करतले स्थिता।।६२।।
ज्ञानिनोऽज्ञानिनोवापिन्यासिनोनियतव्रताः। द्रष्टव्याबदरीतैस्तुफलानिसमभीप्सुभिः।।६३।।
श्रुत्वाऽध्यायमिमं पुण्यं प्रसङ्गेनाऽपिमानवः। सर्वपापविनिर्मुक्तोविष्णुलोकेमहीयते।।६४।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे बदरिकाश्रम-
माहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसम्वादे तद्धाममाहात्म्यवर्णनं-
नाम पञ्चमोऽध्यायः।।५।।
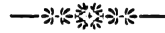
जो व्यक्ति स्वयं नैवेद्य लाकर ब्राह्मण भोजन सम्पन्न कराते हैं, वे कृतार्थ हैं। उनको तुलापुरुष दान करने का क्या प्रयोजन है? सूर्यग्रहण काल में कुरुक्षेत्र जाकर वहां महादान का जो फल मिलता है, उतना फल बदरीतीर्थ में मात्र एक ग्रास विष्णु नैवेद्य भक्षण से प्राप्त हो जाता है। विष्णुनैवेद्य ग्रहण करना हरि की प्रीति सम्पन्न करने का प्रधान उपायस्वरूप है। कोई भले ही विष्णु का अपराधी हो, वह भी यदि इस क्षेत्र में यतीगण को भोजन करा देता है, तब वह विष्णु का अपराधी भी भगवान् का प्रिय हो जाता है। हे षड़ानन! विष्णु के समान कोई देवता नहीं हैं। विशाला के समान कोई पुरी नहीं है। विष्णु के समान उत्कृष्ट कोई दान का पात्र नहीं है। ऋषि तीर्थ बदरी के समान कोई तीर्थ नहीं है। जो पुण्यात्मा व्यक्ति यहां चतुर्मास व्रताचरण करते हैं, उनको जो पुण्यफल मिलता है, उसका वर्णन ब्रह्मा भी नहीं कर सकते। विशेषतः भिक्षुकों को यहां अत्यन्त फल की प्राप्ति होती है। वेदान्त श्रवण का जो दस फल कहा गया है, वह फल बदरी के दर्शन मात्र से ही भिक्षुक प्राप्त कर लेते हैं। हे पुत्र! विशेषतः यहां संन्यासी चातुर्मास्य व्रताचरण द्वारा अनायास मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। जो मूर्ख जड़ हैं तथा दम्भ के कारण काषाय वस्त्र धारण करके स्वयं को साधु बतलाते हैं, ऐसे व्यक्ति भी बदरीतीर्थ के दर्शन मात्र से मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। ज्ञानी-अज्ञानी, संन्यासी तथा व्रताचारी मानव बदरी दर्शन द्वारा वांछित फल लाभ कर लेता है। यदि इस पुण्यप्रद अध्याय को व्यक्ति प्रसंग क्रम से भी सुन लेता है, वह भी सर्वपापरहित होकर विष्णुलोक गमन करता है।।५५-६४।।

।।पञ्चम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षष्ठोऽध्यायः

सरस्वती नदी वर्णन, ब्रह्मकुण्ड तीर्थ-वसुधारा माहात्म्य वर्णन

स्कन्द उवाच

कराद्विगलितं यत्र कपालं ते महेश्वर!। तस्य तीर्थस्यमाहात्म्यं कृपया वदमे पितः!।।१।।

स्कन्ददेव कहते हैं—हे पिता! जहां आप के हाथों से ब्रह्मकपाल गिरा था, हे महेश्वर! कृपा करके उस तीर्थ का माहात्म्य कहिये।।१।।

शिव उवाच

अतिगुह्यमिदं तीर्थं सुरासुरनमस्कृतम्। ब्रह्महाऽपि नरो यत्र स्नानमात्रेण शुद्ध्यति।।२।।
पञ्चतीर्थानि तिष्ठन्ति कपाले पापमोचने। तत्र स्नानं तपोदानं सर्वमक्षयमिष्यते।।३।।
पिण्डंविधायविधिवन्नरकात्तारयेत्पितॄन्। पितृतीर्थमिदम्प्रोक्तंगयातोऽष्टगुणाधिकम्।।४।।
तिलतर्प्पणतो यान्ति पितरः स्वर्गमुत्तमम्।।५।।
अहोरात्रं स्थिरो भूत्वा जपनिष्ठःसमाहितः। तस्येष्टसिद्धिर्महती तत्क्षणादेवजायते।।६।।
पारलौकिककर्माणिसर्वाण्यव्यहतानिच। कपालमोचने तीर्थे नाऽधिकं पितृकर्मणि।।७।।

शिव कहते हैं—हे स्कन्द! वह तीर्थ अत्यन्त गुप्त है। सुर तथा असुरगण उसे प्रणाम करते हैं। मनुष्य वहां स्नान करके ब्रह्महत्या-पातक से मुक्त हो जाते हैं। इस पापमोचन कपालतीर्थ में पांच तीर्थ विद्यमान हैं। वहां की गई तपस्या अक्षय हो जाती है। वहां प्रदत्त दान तथा स्नानादि भी अक्षय हो जाता है। कपालमोचन तीर्थ में पिण्डदान करने से पितरों का उद्धार होता है। यह तीर्थ पितृतीर्थ नाम से प्रख्यात है तथा गया से आठ गुणा अधिक फल देने वाला है। यहां तिल तर्पण द्वारा पितृगण अत्युत्तम स्वर्गलोक जाते हैं। यहां अहोरात्र रहकर समाहित चित्त से जपनिरत होने पर अणिमादि महती आठों सिद्धियां करतलगत हो जाती हैं। पितृकार्य हेतु कपाल मोचन से बढ़कर अन्य तीर्थ नहीं है। यहां की गई समस्त पारलौकिक क्रिया अव्याहत हो जाती है।।२-७।।

स्कन्द उवाच

कुत्र वा ब्रह्मतीर्थम्वै फलं वा कीदृशं भवेत्। के वा तत्र वसन्तीहकृपयावदमे पितः!।।८।।

स्कन्ददेव कहते हैं—हे पिता! ब्रह्मतीर्थ कहां विद्यमान है? ब्रह्मतीर्थ का फल क्या है? वहां कौन निवास करता है? कृपापूर्वक यह सब वर्णन करिये।।८।।

शिव उवाच

एकदाविष्णुनाभ्यम्भोरुहस्थस्यप्रजापतेः। वेदान्मुखाम्बुजादधृत्वाजग्मतुर्मधुकैटभौ।।९।।
ततो ह्युत्थायशयनात्सिसृक्षुरब्जसम्भवः। स्त्रष्टुंविनाऽऽगमंलोकेन शशाकहतस्मृतिः।।१०।।

तदा बदरिकामेत्य हरिणा प्रतिपालिताम्। तुष्टाव प्रणतो भूत्वा भगवन्तसनातनम्॥११॥
ततः कुण्डात्समुद्भूतो हयशीर्षो निजायुधः। पीताम्बरधरः शुक्लश्चतुर्बाहुः सुदृप्तदृक्॥१२॥
अत्यद्भुतः प्रकटकठोरलोचलनश्चलच्छटाविच्छुरितमेघडम्बरः।
स्वतेजसा हतनिखिलप्रभाकुलः कृपान्वितो द्रुहिणपुरःसरोऽभवत्॥१३॥
निरीक्ष्य तं विधिरपि विस्मयाकुलः प्रणम्य च स्तुतिमकरोत्प्रसन्नदृक्॥१४॥

भगवान् शिव कहते हैं—एक बार विष्णु के नाभिकमल से निकले प्रजापति ब्रह्मा के मुखकमल से वेदों को लेकर मधु-कैटभ चले गये। वेदों का हरण हो जाने पर ब्रह्मा सृष्टि करने का प्रयास करने लगे तथापि वेदविहीन ब्रह्मा स्मृतिलोप के कारण प्रजासृजनार्थ समर्थ नहीं हो सके। जब ब्रह्मा विष्णु द्वारा पालित बदरिकाश्रम आये तथा क्षेत्रपति भगवान् सनातन हरि को प्रणाम करके स्तव करने लगे। ब्रह्मा के स्तव द्वारा कुण्ड से एक दिव्य पुरुष प्रादुर्भूत हो गये। इन पुरुष का शिर अश्व के समान था तथा उन्होंने पीतवस्त्र धारण किया था। उनका वर्ण शुक्ल था। उनके चार हाथ आयुध युक्त थे तथा वे प्रसन्नमुद्रा युक्त थे। यह अत्यद्भुत आविर्भाव था। इन दिव्य पुरुष के लोचनद्वय विशाल तथा विस्फारित थे। उनकी गति से आकाश के मेघ छिन्न-भिन्न होते जा रहे थे। यह दयार्द्रहृदय पुरुष जब ब्रह्मा के समक्ष आविर्भूत हो गये, तब प्रसन्न मुद्रा वाले ब्रह्मा उनका दर्शन पाकर विस्मयाकुल हो गये। वे इन विष्णु को प्रणाम करके उनका स्तव करने लगे।।९-१४।।

ब्रह्मोवाच

नमः कमलनाभाय नमस्ते कमलाश्रय!। नमस्ते कमलावास! विशालवनमालिने॥१५॥
नमो विज्ञानमात्राय गुहावासनिवासिने। हृषीकेशाय शान्ताय तुभ्यं भगवते नमः॥१६॥
स्वभक्तरक्षणकृते धृतदेहाय शार्ङ्गिणे। अनन्तक्लेशनाशाय गदिने ब्रह्मणे नमः॥१७॥
संसारविविधासारनिवृत्तिकृतकर्मणे। रक्षित्रे सर्वजन्तूनां विष्णवेजिष्णवे नमः॥१८॥
नमो विश्वम्भराशेषनिवृत्तगुणवृत्तये। सुरासुरवरस्तम्भनिवृत्तिस्थितिकीर्तये॥१९॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—हे कमलनाभ! कमल आपका आश्रय है। आपको नमस्कार! हे कमलालय! आपके कण्ठ में विशाल माला लटक रही है, आपको नमस्कार! जो विज्ञानमय हैं, जिनकी कृपा से गर्भवास नष्ट हो जाता है, जो प्राणियों की हृदयरूपी गुहा में निवास करते हैं, जो विषयेन्द्रिय समूह के ईश्वर हैं, उन शान्तमूर्त्ति विष्णु को नमस्कार! जिन्होंने भक्त पालनार्थ देह धारण करके शार्ङ्गधनुष ग्रहण किया है तथा प्राणीगण के अनन्त क्लेश का नाश करने के लिये जो गदा भूषित हैं, उन ब्रह्म को नमस्कार! जो संसार के विभिन्न असार को दूर करने हेतु स्वयं कर्माचरण करते हैं, जो प्राणियों के रक्षक हैं, जो जयशील हैं, उन विष्णु को नमस्कार! हे विश्वम्भर! आप से निखिल गुणवृत्ति निवृत्त होती है। आप सुर-असुरगण के समस्त बाधा-विघ्न को दूर करके अपनी कीर्त्ति प्रतिष्ठित करते हैं, आपको नमस्कार।"।।१५-१९।।

इतीरितः सुरपतिना महेश्वरो हृदि स्थितोऽखिलविदशेषकर्मभिः।
ततोऽन्तरं सपदि गतो निबध्य तौ सुरद्रुहौ किल निजघान लीलया॥२०॥

ततो निगममासाद्य ब्रह्मणोऽन्तिकमाययौ।
दत्त्वा स्वनिगमं तस्मै स्वस्थोऽभूत्स समीडितः॥२१॥

ततःप्रभृतितत्तीर्थं ब्रह्मणा प्रकटीकृतम्। ब्रह्मकुण्डमितिख्यातंत्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥२२॥
यस्यदर्शनमात्रेणमहापातकिनो जनाः। विमुक्तकिल्बिषा सद्यो ब्रह्मलोकम्व्रजन्तिते॥२३॥
स्नानंकुर्वन्ति ये लोकाव्रतचर्यामथापि वा। ब्रह्मलोकमतिक्रम्यविष्णुलोकंव्रजन्तिते॥२४॥

तदनन्तर सुरपति ब्रह्मा द्वारा सर्वभूत हृदयस्थ परमेश्वर विभु इस प्रकार स्तुत होकर शीघ्रता से आगे गये तथा उन्होंने अनेक प्रयत्न करके लीला में ही मधु-कैटभ का नाश किया। वे अपहृत वेदों का उद्धार करके शीघ्रता से ब्रह्मा के पास आये। भगवान् श्रीहरि ने वेदों को ब्रह्मा को प्रदान किया। तब ब्रह्मा भी स्वस्थ होकर उन देवदेव की स्तुति सम्यक्‌रूपेण करने लगे। हे षड़ानन! तभी से ब्रह्मा द्वारा आविष्कृत यह तीर्थ ब्रह्मकुण्ड नाम से प्रख्यात हो गया। इसके दर्शनमात्र से महापापी लोग भी पापरहित होकर ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं। जो इस तीर्थ में स्नान करके व्रताचार करते हैं, वे ब्रह्मलोक को भी पार करके विष्णुलोक जाते हैं।।२०-२४।।

स्कन्द उवाच

ततः किमकरोद्धाता लब्ध्वावेदाञ्जनार्द्दनात्। एतदन्यच्च सर्वम्मे कृपयावदसाम्प्रतम्॥२५॥

स्कन्ददेव कहते हैं—हे पिता! तब विधाता ब्रह्मा ने जनार्दन से वेद प्राप्त करने के पश्चात् क्या किया? साथ ही अन्य सब कुछ जो घटित हुआ था, कृपा करके वह सब कहिये?।।२५।।

महादेव उवाच

चतुर्णामपि वेदानां दृष्ट्वा बदरिकाश्रमम्। मतिर्न जायते गन्तुं ब्रह्मणा सह पुत्रक॥२६॥
ततस्तुविकलंदृष्ट्वाब्रह्माणंजनवासिनः। सिद्धास्तु विधिवत्स्तुत्वा प्रणिपत्येदमब्रुवन्॥२७॥

महादेव कहते हैं—हे पुत्र! जब वेदों ने बदरिकाश्रम का अवलोकन किया, तब उनका मन ब्रह्मा के साथ जाने का नहीं हो रहा था। इससे वेदविहीन ब्रह्मा विकल हो गये! ब्रह्मा की विकलता देखकर सिद्धगण प्रणाम करके स्तुति करने लगे।।२६-२७।।

सिद्धा ऊचुः

आज्ञा भगवतःकार्या सर्वैः स्थावरजङ्गमैः। भगवान्सर्वजन्तूनां कर्त्ता हर्तापितागुरुः॥२८॥
स्थितिर्ब्रह्मान्तिकेवश्चहरिणैवाऽनुकल्पिता। निवृत्तिर्वर्तते चैषा तथाप्येतन्निरामयम्॥२९॥
एकान्तेद्रवरूपेण मूर्तिर्वोऽत्रावतिष्ठताम्। द्वितीया ब्रह्मणा सार्द्धं ब्रह्मलोकम्व्रजेत्पुनः॥३०॥
ततः सहृदया वेदा द्वैधीकृतात्मरूपकाः। ब्रह्मणा ब्रह्मलोकं ते ययुः सार्द्धं प्रहर्षिताः॥३१॥
ततस्त्रिलोकं विधिवत्ससर्ज चतुराननः। द्रवरूपेषु वेदेषु स्नानदानतपः क्रियाः।
कृता विच्छेदिता न स्युर्यावदाभूतसम्प्लवम्॥३२॥
फलमुद्दिश्य कुर्वन्ति उपवासत्रयं नराः। चतुर्णामपिवेदानां व्याख्यातारोनसंशयः॥३३॥

सिद्धगण कहते हैं—"भगवान् निखिल प्राणिगण के कर्त्ता-हर्त्ता-पिता तथा गुरु हैं। अखिल स्थावर-जंगम उनकी आज्ञा पालन करें। भगवान् हरि ने ही हमें ब्रह्मा के पास रहने का आदेश दिया है। हमारे निवासार्थ यह स्थान निवृत्तिधर्मयुक्त है तथा निरामय हो गया है। अब यह वेद की दो मूर्त्ति हो। द्रवमयी प्रथम मूर्त्ति यहां अवस्थित रहे। द्वितीय मूर्त्ति ब्रह्मा के साथ ब्रह्मलोक जाये।" तदनन्तर सहृदय वेद स्वयं द्विधा विभक्त हो गये तथा प्रसन्न अन्तःकरण से उनका एक भाग (आधा वेद) ब्रह्मा के साथ ब्रह्मलोक चला गया। अब वेदयुक्त होकर ब्रह्मा ने त्रैलोक्य का सृजन किया। मानवगण इसं द्रवरूपी वेद से स्नान, दान, तप प्रभृति जो भी कार्य करते हैं, वह प्रलयपर्यन्त कदापि विच्छिन्न नहीं होता। मनुष्य फल कामना द्वारा इस तीर्थ में उपवास करने पर चारों वेदों के व्याख्याकर्त्ता हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है।।२८-३३।।

अनुक्रमेण तिष्ठन्ति वेदाश्चत्वार एव च। ऋग्यजुः सामाथर्वाख्याभगवत्पार्श्ववर्तिनः॥३४॥
ये पुण्यवन्तोऽकलुषा वेदवेदाङ्गपारगाः। ते वेदघोषं विरलाः शृण्वन्त्यऽपिकलौयुगे॥३५॥
चतुर्णामपि वेदानामुद्गस्ति सरस्वती। जप्ताऽथ सा नृणांहन्तिजडतांजलरूपिणी॥३६॥
सरस्वत्या जले स्थित्वा जपं कृत्वा समाहितः।
मनोस्तस्य न विच्छेदः कदाचिदपि जायते॥३७॥
वेदव्यासोऽपि भगवान्यत्प्रसादादुदारधीः। पुराणसंहितार्थज्ञोऽभवदत्र न संशयः॥३८॥

यहां यथाक्रमेण ऋक्-यजुः-साम तथा अथर्व नामक चारों वेद भगवान् के पार्श्व में स्थित हैं। जो पुण्यात्मा, निष्पाप, वेद-वेदाङ्ग पारंगत हैं, उनका कलिकाल में वेद श्रवण अथवा वेदपाठ अत्यल्प होता है। सरस्वती ही चारों वेदों की जलरूपा मूर्त्ति हैं। इसका जप करने से जलरूपा सरस्वती मनुष्यों की जड़ता का नाश करती है। जो व्यक्ति समाहित होकर सरस्वती के जल में खड़ा होकर जप करता है, उसका मन कभी भी (परमात्म चिन्तन से) विच्छिन्न नहीं होता। उदार बुद्धि भगवान् व्यास भी सरस्वती की ही कृपा से पुराण-इतिहास के अर्थतत्व को ज्ञात कर सके थे। इसमें सन्देह नहीं है।।३४-३८।।

त्रयाणामपि लोकानां हिताय जगताम्पतिः।
स्थापयामास विधिना वाणीं वाग्विभवप्रदाम्॥३९॥
दर्शनस्पर्शनस्नानपूजास्तुत्यभिवन्दनैः। सरस्वत्या न विच्छेदःकुलेतस्य कदाचन॥४०॥
मन्त्रसिद्धिर्विशेषेण सरस्वत्यास्तटे नृणाम्। जपतामचिरेणैवजायतेनाऽत्र संशयः॥४१॥
बहुना किमिहोक्तेन वाणी वाग्विभवप्रदा। द्रवरूपधरा नृणां दर्शनात्पूतिरुज्ज्वला॥४२॥
ततोऽर्वाग्दक्षिणे भागे द्रवधारेति विश्रुतम्। तीर्थमिन्द्रपदं यत्र तपश्चक्रे पुरन्दरः॥४३॥
सुदारुणं तपः कृत्वा परितोष्यजनार्द्दनम्। पदमैन्द्रं समालेभे सुरासुरनमस्कृतम्॥४४॥
तपोदानं जपो होमो व्रतानिनियमायमाः। तत्राऽनन्तगुणं प्रोक्तंवत्तीर्थमतिदुर्लभम्॥४५॥

वाणीरूपा सरस्वती ही वाग्वैभव प्रदान करती है। जगत्पति ने त्रैलोक्य के हितार्थ वाणी को स्थापित किया है। जो व्यक्ति सरस्वती का दर्शन-स्पर्शन-स्नान-पूजन-स्तुति तथा अभिवादन करता है, उसके कुल का कदापि सरस्वती वियोग नहीं होता। अर्थात् कुल में कोई मूर्ख नहीं होता। सभी ज्ञानी होते हैं। विशेषतः सरस्वती-

तट पर जप करने से मनुष्य को शीघ्रता से मन्त्रसिद्धि होती है। किम्बहुना! वाग्‌वैभव प्रदात्री वाणी ने द्रवरूप (नदीरूप) धारण करके मानव की उज्वल पवित्रता का आयोजन किया है। सरस्वती के दक्षिणपूर्वभाग में अन्य एक विख्यात द्रवधारा (नदी) विद्यमान है। यही इन्द्रतीर्थ नाम से प्रसिद्ध है। यहां पर इन्द्र ने तप किया था। देवराज इन्द्र ने यहां दारुण तप करके जनार्दन को प्रसन्न किया था। वे इसी तपः प्रभाव से सुरासुर नमस्कृत इन्द्रपद प्राप्त कर सके थे। इस तीर्थ में तप-दान-जप-होम-व्रत-नियम-यम, सभी अनन्त फलप्रद होते हैं। यह इन्द्रतीर्थ अत्यधिक दुर्लभ है।।३९-४५।।

प्रतिभासे त्रयोदश्यांशुक्लायांहरितोषणे। स्नात्वासुतीर्थेसुत्रामाच्छन्दंचोपेत्यसङ्गतः।।४६।।
उपवासद्वयं कृत्वा पूजयित्वा जनार्द्दनम्। सर्वपापविनिर्मुक्तः शक्रलोके महीयते।।४७।।
तत्रैव मानसोद्भेदः सर्वपापप्रणाशनः। दुर्लभः सर्वजन्तूनां यत्र ते स्युर्महर्षयः।।४८।।

हरि के सन्तोष सम्पादनार्थ इस अत्युत्तमतीर्थ में इन्द्र प्रतिमास की शुक्ल त्रयोदशी के दिन आकर स्नान करते हैं तथा वेदलाभ करते हैं। जो व्यक्ति यहां पर दो दिन उपवासी रहकर जनार्दन का पूजन करता है, वह सर्वपापरहित होकर इन्द्रलोक लाभ करता है। इन्द्रतीर्थ में ही मानसोद्‌भेद नामक एक और सर्वपापनाशक पवित्र तीर्थ है। यह प्राणीगण के लिये दुर्लभ है। यहां महर्षिगण का निवास है।।४६-४८।।

मानसंचिदचिद्ग्रन्थिमुद्ग्रथ्नन्तिचसर्वतः। मानसोद्भेदइत्याख्यात्रृषिभिःपरिगीयते।।४९।।
भिन्दन्ति हृदयग्रन्थींश्छिन्दन्ति बहुसंशयम्।
कर्माणि क्षपयन्त्यस्मान्मानसोद्भेद इत्यभूत्।।५०।।

यह तीर्थ मनुष्य की चित् तथा अचित् रूपा ग्रंथियों का सर्वतोभावेन उन्मोचन करता है। इसी कारण से महर्षिगण ने इस तीर्थ का नाम मानसोद्‌भेद रखा है। यहां हृदयग्रन्थि खुल जाती है, संशयों का उच्छेद हो जाता है। कर्मजाल क्षीण हो जाते हैं। तभी यह मानसोद्‌भेद कहा गया है।।४९-५०।।

यदि भाग्यवशादत्र बिन्दुमात्रंलभेन्नरः। तत्क्षणान्मुक्तिमाप्नोतिकिमतस्त्वधिकंभवेत्।।५१।।
गिरिदरीनिलये निवसन्त्यमी ऋषिगणाः फलमूलजलाशनाः।
जितमनोविषयाः शितबुद्धयः कलिभयादिव पापभयाकुलाः।।५२।।
फलसमीरणगह्वरनिर्झराश्रमभरादुपलब्धपटोत्तमाः ।
त्रिषवणक्रमनिर्जितदुर्जयेन्द्रियपराक्रमणा मुनयस्त्वमी।।५३।।
साधनानि बहून्येव कायक्लेशकराण्यहो। सुलभं साधनं लोके मानसोद्भेददर्शनम्।।५४।।
यस्मिन्दिने जलं चैतल्लभते पुण्यवाञ्जनः। भवति व्याससदृशो यमपितृसमः क्रमात्।।५५।।

यदि मानव भाग्यक्रम से विन्दुमात्र भी इस तीर्थ को प्राप्त करता है, तत्क्षण उसको मुक्ति प्राप्त हो जाती है। अतएव इससे अधिक और क्या हो सकता है? यह जो ऋषियों को देखते हो, ये सभी कलिकाल के भय से गिरिगुहा में निवास कर रहे हैं। ये फल, मूल तथा जल का आहार ग्रहण करके विषयसुख से मन को जीत चुके हैं। इनका ज्ञान कुशलतापूर्ण पथ पर परिचालित हो रहा है। ये फल भोजन, वायुभक्षण करते तथा वस्त्र आदि की अवज्ञा करके नग्न विचरण, गुफा में निवास, निर्झरिणी में स्नान करते समस्त विलास वस्तुओं से

निस्पृह हैं। ये यथाक्रम त्रिषवण स्नान करके इन्द्रियों के आक्रमण को पराभूत कर चुके हैं। हे हुताशन! पुण्यसाधना का मार्ग तथा नियमादि उपकरण अत्यन्त कायक्लेशदायक है, तथापि त्रिलोक में इस मानसोद्भेद स्थान के दर्शन मात्र से अनायास सर्वपुण्यसाधन हो जाता है। जो पुण्यवान् व्यक्ति जैसे ही मानसतीर्थजल की प्राप्ति (मानसोद्भेद के जल) करता है, वह तभी वेदव्यास के समान होकर क्रमशः यम एवं पितृगण के तुल्य हो जाता है।।५१-५५।।

काम्यतीर्थमिदं नृणां कामनावशकृत्पुनः।
अकामतस्तु मुक्तिः स्यादुभयोरेषनिश्चयः।।५६।।

यदिकश्चित्प्रमादेन कामानां कुरुते नरः। फलं भुक्त्वा पुनर्मुक्तिर्भवत्येव न संशयः।।५७।।
महरादिषु लोकेषुभुक्त्वाभोगान्यथेप्सितान्। भोगेभुक्तेपुनर्यातिकामनावशतोजनः।।५८।।
पुरुषार्थसमावाप्त्यै यतनीयं मनीषिभिः। मानसोद्भेदने तीर्थे नापेत्यत्रेति मे मतिः।।५९।।
मानसोद्भेदनात्प्रत्यग्दिशि सर्वमनोहरम्। वसुधारेतिविख्याततंतीर्थंत्रैलोक्यदुर्लभम्।।६०।।

यद्यपि यह काम्यतीर्थ है तथा मनुष्य भी कामना के वश में रहता है, तथापि यहां निष्काम-सकाम सभी की मुक्ति हो जाती है। इसमें संशय नहीं है। यदि मनुष्य प्रमादवशात् कामना करता भी है, तब वह कामना का फल भोग कर पुनः मुक्ति पा लेता है। हे षड़ानन! मेरा विचार है कि मानव महः आदि लोकों में इप्सित भोगों को भोगकर जब भोग समाप्त हो जाता है, (जन्म होने पर) तब वे पुनः कामना के वश में हो जाते हैं। तभी मनीषीगण सम्यक्रूपेण पुरुषार्थ प्राप्ति के लिये यत्न करते हैं, तथापि मानसोद्भव तीर्थ की सेवा करने वाला मानव कामना के वश में नहीं होता।।५६-६०।।

त्रिलोक्यां सर्वतीर्थेभ्यः श्रेष्ठो बदरिकाश्रमः। श्रुत्वातन्नारदात्सर्वेवसवःसमुपागताः।।६१।।
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि तपः परमदारुणम्। दलाम्बुप्राशनाश्चक्रुस्ततः सिद्धिमुपाययुः।।६२।।
भगवद्दर्शनात्प्राप्तानन्दनिर्वृत्तविक्लमाः। हृदयानन्दसन्दोहप्रफुल्लितमुखाम्बुजाः।।६३।।

दृष्ट्वा नारायणं देवं वरं लब्ध्वा मनोरमम्।
हरिभक्तिसुखैश्वर्य्यं परं लब्ध्वामुदं ययुः।।६४।।
अत्र स्नात्वा जलं पीत्वा पूजयित्वा जनार्दनम्।
इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते परमं पदम्।।६५।।

इस मानसोद्भव तीर्थ के पश्चिम की ओर त्रिलोक दुर्लभ विख्यात मनोहर वसुधारा तीर्थ है। वसुगण ने नारद से इस त्रिलोक में तीर्थश्रेष्ठ बदरिकाश्रम की बात सुनकर यहां आकर ३०००० वर्ष परम कठोर तपस्या किया था। उन्होंने इस तीर्थ में केवल पत्तों का आहार तथा जल पीकर सिद्धि प्राप्त कर लिया। तदनन्तर भगवान् वसुगण ने दर्शनपथ देखा (भगवत् दर्शन किया) और उनमें आनन्द प्रवाह प्रवाहित होने लगा। तपःक्लेश से निवृत्त हो जाने पर उनके हृदय में आनन्द उमड़ पड़ा तथा मुखकमल भी प्रफुल्लित हो उठा। तदनन्तर उन्होंने नारायण दर्शन प्राप्त किया। उनसे मनोरम वर एवं हरिभक्तिरूप सुखैश्वर्य पाकर उन्होंने प्रसन्न मन से स्वस्थान

गमन किया। इस वसुधारातीर्थ में स्नान, जलपान तथा जनार्दन की अर्चना करने से इहलोक में सुख तथा परलोक रूप उत्तम पद प्राप्त होता है।।६१-६५।।

अत्रपुण्यवतां ज्योतिर्दृश्यते जलमध्यतः। यद्दृष्ट्वा न पुनर्भूयो गर्भवासं प्रपद्यते।।६६।।
येऽशुद्धपितृजाः पापाः पाषण्डमतिवृत्तयः। न तेषांशिरसिप्रायःपतन्त्यापःकदाचन।।६७।।
दिनत्रयं शुचिर्भूत्वा पूजयित्वा जनार्दनम्।
उपोष्य भगवद्भक्त्यासिद्धान्पश्यन्ति साधवः।।६८।।

इस वसुधारा तीर्थजल द्वारा पुण्यवानों में तेज का उदय होता है। इस तेजोदय द्वारा उनको पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। जो अशुद्ध पिता से उत्पन्न हैं तथा जिनकी बुद्धि पाषण्ड से युक्त है, उसके मस्तक पर कदापि वसुधारा जल पड़ने का सौभाग्य उदित ही नहीं होता। साधु मानवगण इस तीर्थ में पवित्र होकर तथा प्रभु के प्रति भक्तिभाव से भावित होकर तीन दिन जनार्दन की पूजा तथा उपवास करने पर सिद्धगण का दर्शन प्राप्त करते हैं।।६६-६८।।

ये तत्र चपलास्तथ्यं न वदन्ति च लोलुपाः। परिहासपरद्रव्यपरस्त्रीकपटाग्रहाः।।६९।।
मलचैलावृताऽशान्ताऽशुचयस्त्यक्तसत्क्रियाः। तेषांमलिनचित्तानांफलमत्रनजायते।।७०।।
ये तत्र साधकाः शान्ताविरलाविधिवर्त्मगाः। तेषांजपस्तपोहोमोदानव्रतजपक्रियाः।।७१।।
क्रियमाणा यथाशक्त्या ह्यक्षय्यफलदायकाः।।७२।।
यत्किञ्चिच्छुभकर्माणि क्रियमाणानि देहिनाम्। महदादिफलंदद्युर्निःश्रेयसमत्तनुमम्।।७३।।
श्रावणीयमिह किं फलाधिकं यत्र यान्ति विबुधाः फलार्थिनः।
पूजितादनु हरेः प्रियार्थिनः स्वर्गमार्गनिरताः प्रमोदिनः।।७४।।
यत्र सन्ति न च विघ्नकारिणः कर्मणां हरिभयात्सुसिध्यति।
निर्विशन्ति च फलं विवेकिनः कर्ममार्गनिरताः सुदेहिनः।।७५।।
ये पठन्त्यथ च पाठयन्त्यहो पुण्यतीर्थविषयं प्रकाशितम्।
भक्तिभावसमलंकृताश्च ते सम्प्रयान्ति हरिमन्दिरं शुभम्।।७६।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्य संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे बदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेय-सम्वादे वसुधारातीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः।।६।।

—***—

जो चपलमति, लोलुप हैं, तथ्य व्यक्त नहीं करते, परिहास में, परद्रव्य तथा परस्त्रीहरण में जिनकी अभिलाषा है, जिनका आग्रह कपटपूर्ण है, जो दूषित वस्त्रावृत हैं, अशान्त-अशुचि हैं, जिन्होंने सत्क्रिया का त्याग कर दिया है, ऐसे मलिन मन वाले मनुष्यों को वसुधारा तीर्थ में फल नहीं मिलता। जो साधक शान्त, विरलविहारी तथा विधिमार्ग में स्थित रहते हैं, उनको ही यहां अनुष्ठित जप-तप होम-दान-व्रत-जपादि क्रिया अक्षय-फलप्रद होती है। देहधारी लोग वसुधारातीर्थ में जो शुभ कार्य करते हैं, इस कार्य के फलस्वरूप उनको

महः आदि लोकों में निःश्रेयस रूप अत्युत्तम फल मिलता है। हे षड़ानन! फलार्थी होकर देवगण भी यहां आते हैं। वे स्वर्गपथ निरत होकर प्रसन्न अन्तःकरण से हरि की पूजा करके उनकी कृपा की कामना करते हैं। इस तीर्थ का माहात्म्य और क्या कहूं? यहां धर्मकार्य में विघ्न पहुंचाने वाला कोई भी नहीं है, विघ्न हरि के भय से सदा संयत रहते हैं। शोभन देहवाले तथा विवेकवान् व्यक्ति इस तीर्थ के अभीष्ट फल के अधिकारी होते हैं। जिनके समक्ष इस पुण्यतीर्थ का महत्व प्रकाशित है तथा जो हरिमहिमा का पाठ करते हैं, किंवा पाठ कराते हैं, वे भक्तिभाव से समलंकृत होकर शुभप्रद हरिमन्दिर में गमन करते हैं।।६९-७६।।

।।षष्ठ अध्याय समाप्त।।

सप्तमोऽध्यायः

पञ्चधारा तीर्थ माहात्म्य, सत्यपद तीर्थ वर्णन, उर्वशीकुण्ड महत्व

शिव उवाच

ततो नैर्ऋत्यदिग्भागे पञ्चधाराः पतन्त्यधः। प्रभासं पुष्करं चैव गयां नैमिषमेव च।
कुरुक्षेत्रं विजानीहि द्रवरूपं षडानन!॥१॥
पुरा ते ब्रह्मणः स्थानं गता मलिनरूपिणः। पापिनां पापदोषेण विकृताः कृतबुद्धयः॥२॥
तत्र गत्वा नमस्कृत्य ब्रह्माणं लोकभावनम्। ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे निजागमनकारणम्॥३॥
तच्छ्रुत्वा ध्यानमालम्ब्य प्रहस्य जगदीश्वरः। उवाच वचनं चारु स्मृत्वा बदरिकाश्रमम्॥४॥
मा भैष्ट गच्छत क्षिप्रंहरेर्बदरिकाश्रमम्। यस्य निर्वेशमात्रेणसद्यः पुण्यम्भविष्यति॥५॥

शिव कहते हैं—हे षड़ानन! तदनन्तर नैर्ऋत् दिक्भाग में पञ्चधारा तीर्थ है। यहां प्रभास, पुष्कर, गया, नैमिष, कुरुक्षेत्र द्रवभाव में (नदीरूपेण) पञ्चधारारूपेण हैं। पूर्वकाल में पुष्कर आदि पांचो तीर्थ पापीगण की पाप बुद्धि से अवश होकर ब्रह्मा के निकट गये तथा वे मलिनरूप में विकृत होकर ब्रह्मा को प्रणामोपरान्त उनसे प्रार्थना करने लगे। उन सबने अंजलिबद्ध होकर लोकभावन ब्रह्मा से अपने-अपने आगमन कारण का निवेदन किया। तब जगदीश्वर ब्रह्मा ने क्षणकालार्थ ध्यानस्थ होकर बदरिकाश्रम का स्मरण किया तथा सहास्य मुद्रा में मनोहर वाक्य कहने लगे। "तुम लोग भयभीत न हो। शीघ्रतापूर्वक श्रीहरि के बदरिकाश्रम गमन करो। उस आश्रम में प्रवेश करते ही तुमलोगों का पुण्य सद्यः संचित होगा।"।।१-५।।

ततस्ते हर्षवेगेन नमस्कृत्य पितामहम्। जग्मुरुत्फुल्लनयना विशालाममितप्रभाम्॥६॥
यस्य निर्वेशमात्रेणतत्क्षणाद्विगतैनसः। ततोद्विरूपमास्थायस्वस्थानं ययुरुत्सुकाः॥७॥

द्रवरूपेणचान्येनपञ्चतिष्ठन्तिनिर्मलाः। तेषु स्नात्वाविधानेन कृत्वानित्यक्रियांशुचिः॥८॥
तत्तत्तीर्थफलं लब्ध्वा यात्यन्ते परमं पदम्। पञ्चोपवासनिरतः पूजयित्वाजनार्द्दनम्॥९॥
इह भोगान्बहून्भुक्त्वा हरेःसालोक्यमाप्नुयात्॥१०॥
ततस्तु विमलं तीर्थं सोमकुण्डाभिधंपरम्। तपश्चकार भगवान्सोमोयत्रकलानिधिः॥११॥

ब्रह्मा का कथन सुनकर तीर्थों के नेत्र प्रफुल्लित हो उठे। उन्होंने हर्षपूर्वक पितामह को प्रणाम किया तथा अमितप्रभ विशाला क्षेत्र पहुंचे। वहां प्रवेश करते ही वे लोग कल्मष रहित हो गये। तब उन्होंने प्रसन्न अन्तःकरण के साथ अपने-अपने स्थान प्रस्थान किया। हे षड़ानन! पुष्करादि पंचतीर्थ की पांच निर्मल जलधारा बदरिकाश्रम में नित्य प्रतिष्ठित रहती हैं। पवित्र मानव इन पांच धाराओं में यथाविधि स्नान तथा नित्यकर्म सम्पन्न करके पुष्कर, प्रभास, गया, नैमिष एवं कुरुक्षेत्र का पुण्यफल यहीं प्राप्त कर लेते हैं। इससे उनको परमपद प्राप्त होता है। मानव यहां पांच दिन उपवास तथा जनार्दन की पूजा सम्पन्न करके इस लोक में नाना भोगों का उपभोग प्राप्त करता है तथा मृत्यु होने पर हरि का सालोक्य लाभ करता है। तत्पश्चात् विमल सोमकुण्ड तीर्थ है। कलानिधि भगवान् सोम ने यहां तपःश्चरण किया था।।६-११।।

स्कन्द उवाच

सोमकुण्डस्य माहात्म्यंवदमे वदताम्बर!। त्वत्प्रसादादहं श्रोतुमिच्छामि परमेश्वर!॥१२॥

स्कन्ददेव कहते हैं—हे वाग्मीवर! सोमकुण्ड माहात्म्य मुझसे कहिये। हे परमेश्वर! आपके अनुग्रह से मुझे सुनने की इच्छा हो रही है।।१२।।

शिव उवाच

पुरा त्रिनयनः श्रीमान्सोमः सम्प्राप्य यौवनम्।
श्रुत्वा स्वर्वासिनां सौख्यं गन्धर्वेभ्यो मुहुर्मुहुः।
तदा स्वपितरं प्रायात्प्रष्टुं तल्लभते कथम्॥१३॥

शिव कहते हैं—पूर्वकाल में अत्रिपुत्र युवा सोम गन्धर्वगण से स्वर्गवासीगण के सुख के सम्बन्ध में सुनकर पिता के पास गये तथा उनसे इस सुखलाभ के सम्बन्ध में पूछने लगे।।१३।।

सोम उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ! करुणामृतसागर!। कथं वा लभ्यते स्वर्गः सर्वेषामुत्तमोत्तमः॥१४॥
ग्रहनक्षत्रताराणामोषधीनां पतिः प्रभो!। स्यामहं येन तं यत्नं कृपया वद मे पितः!॥१५॥

सोम कहते हैं—हे भगवान्! सर्वधर्मज्ञ! हे करुणामृतसागर! क्या करने से सर्वोत्तम स्वर्गलाभ होता है? हे पिता! हे प्रभो! मैं जिस उपाय से समस्त ग्रह, नक्षत्र, तारा तथा ओषधियों का पतित्व प्राप्त कर सकूं, आप मुझसे कृपापूर्वक वह उपाय कहें।।१४-१५।।

अत्रिरुवाच

तपसाऽऽराध्यं गोविन्दंयमैर्वानियमैः सुत!। किं दुर्ल्लभंतु साधूनामिहलोकेपरत्र च॥१६॥

ततस्तु नारदाच्छ्रुत्वा क्षेत्रं परमनिर्मलम्। जगाम बदरीं नत्वा पितरं दिशमुत्तराम्॥१७॥
तत्र गत्वाफलैर्मेध्यैर्विष्णोः पूजामकल्पयत्। जजाप परमं जाप्यमष्टाक्षरं मनोहरम्॥१८॥

ऋषि अत्रि कहते हैं—"हे पुत्र! त्रैलोक्य में यम तथा नियम का अवलम्बन लेकर गोविन्द की आराधना करने से इहकाल तथा परकाल में क्या दुर्लभ रह जाता है? अर्थात् सब कुछ प्राप्त होता है।" तब सोम ने नारद के मुख से निर्गत बदरीक्षेत्र का प्रसंग पिता से सुना तथा पिता को प्रणाम करके उन्होंने बदरीवन के लिये उत्तर की ओर प्रस्थान किया। तत्पश्चात् सोम ने बदरीवन पहुंचकर वहां के पवित्र जल से विष्णु का पूजन किया। तदनन्तर वे वहां पर विष्णु के अष्टाक्षर परम मनोहर मन्त्र का जप करने लगे।।१६-१८।।

अष्टाशीति सहस्राणि वर्षाणि भगवत्परम्। तपस्तेपेऽतिपरमं सर्वलोकभयावहम्॥१९॥
ततस्तुष्टः समागत्य भगवान्भक्तवत्सलः। उवाच सोमं विधिबद्वरं वरय सुव्रत!॥२०॥
ततः सोमः समुत्थाय नमस्कृत्य पुनः पुनः। ग्रहनक्षत्रताराणामोषधीनामहं पतिः।
द्विजानामपि सर्वेषां भूयासं ते प्रसादतः॥२१॥

सोम ने इस प्रकार भगवत्तत्पर होकर मन्त्रजप करते-करते ८८००० वर्ष पर्यन्त महान् सर्वलोक भयंकर तथा दुष्कर तप किया। तदनन्तर भक्तवत्सल भगवान् भी सोम की तपस्या देखकर प्रसन्न हो गये। उन्होंने सोम को दर्शन देकर कहा—"हे सुव्रत! अभीष्ट वर मांगो।" तब भगवान् का दर्शन करके सोम उठ गये तथा भगवान् को पुनः-पुनः प्रणाम करते कहने लगे—"हे प्रभो! आपकी कृपा से मैं समस्त ग्रह, नक्षत्र, तारा, ओषधि तथा द्विजगण का स्वामी होने की कामना करता हूं।।१९-२१।।

हरिरुवाच

वरमन्यं वृणुष्वाऽतो दुर्ल्लभंत्वं भवादृशाम्। वरान्नोवरयामासतदा तं हिमजात्मज!॥२२॥
ततोऽतिविमनाः सोमः पुनस्तेपे तपो महत्। त्रिंशद्वर्षसहस्राणि देवमानेन पुत्रक!॥२३॥
तदाऽसौ करुणापूर्णहृदयो भगवानगात्। वरं वरय भद्रन्ते वरदोऽहं तवाऽग्रतः।
सोमस्तु तादृशं वव्रे तच्छ्रुत्वाऽन्तर्द्दधे हरिः॥२४॥
ततोऽतिविमनाःसोमःपुनःस्तेपेतपोमहत्। चत्वारिंशत्सहस्राणितपस्तप्तं सुदुष्करम्॥२५॥
ततस्तुष्टो हरिःसाक्षाच्छङ्खचक्रगदाधरः। उवाचवचनञ्चारु सोमं श्रान्तं तपोनिधिम्॥२६॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठभद्रन्ते वरम्वरय सुव्रत। तपसाऽऽराधितो नूनंत्वयाऽहं तपसां निधिः॥२७॥

हरि कहते हैं—"हे सोम! तुमने जो वर मांगा है, वह तुम्हारे ऐसे व्यक्ति के लिये दुर्लभ वर है। अतएव अन्य वर मांगो।" हे स्कन्द! गिरिजापुत्र! हरि ने सोम को यह वर नहीं दिया। तब वर न पाने के कारण अति विमना स्थिति वाले सोम ने पुनः ३०००० वर्ष दुष्कर तप किया। हे पुत्र! सोम को पुनः घोर तप करते देखकर करुणापूर्ण हृदय भगवान् हरि पुनः वहां प्रकट हो गये तथा सोम से कहने लगे। "हे सोम! तुम्हारा मंगल हो। मैं तुम्हारे समक्ष वरप्रदानार्थ आया हूं। वर मांगो।" तब सोम ने भी पूर्ववत् वर मांगा। हरि यह सुनकर वर दिये बिना वहां से चले गये। वर न पाने के कारण विमना होकर सोम ने पुनः ४०००० वर्ष अत्यन्त दुष्कर तप

किया। तब हरि ने तपोनिधान सोम का अत्यन्त तपःक्लेश देखकर शंख-चक्र-गदाधारी रूप में सोम के समक्ष प्रकट होकर कहा—"हे सुव्रत! तुम्हारा मंगल हो। तुम उठो। उठो! तुम मेरी आराधना तप द्वारा कर रहे हो इसमें सन्देह नहीं। हे वत्स! तुम वर मांगो।।२२-२७।।

सोम उवाच

यदि तुष्टो भवान्मह्यं भगवान्वरदर्षभः। ग्रहनक्षत्रताराणामाधिपत्यं प्रयच्छ मे।
तथौषधीनाम्विप्राणां यामिन्याश्च जगत्पते!॥२८॥

सोम कहते हैं—हे जगत्पति! आप भगवान् हैं तथा वरदाताओं में प्रधान हैं। यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तब आप मुझे ग्रह-नक्षत्र-तारक तथा औषधियों और ब्राह्मणों एवं रात्रि का आधिपत्य प्रदान करिये।।२८।।

श्रीभगवानुवाच

दुर्ल्लभम्प्रार्थितंवत्स वितरामितथाप्यहम्। एवमस्तु ततःसर्वे समागत्य दिवौकसः।
अभिषिक्तवन्तो विधिवत्सोमं राजानमादृताः॥२९॥
ततोविमानमारूढो रथेन शुभ्रवाससा। अभिष्टुतः सुरैरभूद्दिवङ्गतो निशाकरः॥३०॥
ततः प्रभृतितीर्थंतत्सोमकुण्डेतिदुर्ल्लभम्। यद्दृष्टिमात्रान्मनुजा गतदोषाभवन्तिहि॥३१॥
यदुस्पर्शनाद्यान्तिसोमलोकंविनिन्दिताः। यत्र स्नात्वाविधानेन सन्तर्प्य पितृदेवताः॥३२॥
सोमलोकंविनिर्भिद्य विष्णुलोकम्प्रपद्यते। उपवासत्रयं कृत्वा पूजयित्वाजनार्द्दनम्॥३३॥
न तेषां पुनरावृत्तिःकल्पकोटिशतैरपि। त्रिरात्रेणस्थितोभूत्वा पूजयित्वाजनार्द्दनम्॥३४॥
जपं कुर्वन्विशेषेण मन्त्रसिद्धिः प्रजायते। कर्मणा मनसावाचा यत्कृतंपातकं नृभिः॥३५॥

श्रीभगवान् कहते हैं—"हे वत्स! तुमने जो वर मांगा है, वह तो मेरे लिये अतीव दुर्लभ है, तथापि मैं तुमको यह वर प्रदान करता हूं।" भगवान् हरि ने इस प्रकार कहा तथा सोम ने भी उस वर को ग्रहण कर लिया। तदनन्तर देवलोकवासी देवगण ने वहां आकर सोम को (चन्द्र को) यथाविधि अभिषिक्त किया और उनको आदरपूर्वक राजा मान लिया। निशाकर सोम तदनन्तर दिव्य विमान पर आसीन होकर श्वेताश्वयुक्त रथ द्वारा स्वर्ग चले गये। देवता उनको चारों ओर से घेर कर उनका स्तव करने लगे। सोमदेव ने जहां तप किया था, सोम द्वारा वर प्राप्ति के पश्चात् वह स्थान दुर्लभ सोमकुण्ड कहलाया। इसके दर्शन मात्र से मनुष्य विगतदोष हो जाते हैं तथा इसका जल स्पर्श करने वाले सोमलोक प्राप्त करने में समर्थ हो जाते हैं। यहां यथाविधि स्नान एवं पितरों एवं देवगण का तर्पण करने वाला मानव सोमलोक का भेदन करके विष्णुलोक लाभ करता है। जो यहां तीन दिन उपवासी रहकर जनार्दनार्चन करते हैं, शतकोटि कल्प में भी उनको पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता। जो तीन दिन तक सोमतीर्थ में स्थित रहकर जनार्दन की पूजा तथा मन्त्रजप करते हैं, उनको मन्त्रसिद्धि हो जाती है। मनुष्य ने मनसा-वाचा-कर्मणा जो भी पाप किया है।।२९-३५।।

तत्सर्वं क्षयमायाति सोमकुण्डेक्षणादिह। ततस्तु द्वादशादित्यतीर्थम्पापहरम्परम्॥३६॥
यत्र तप्त्वापुनकृच्छ्रंकाश्यपःसूर्यतांययौ। दुर्ल्लभंत्रिषु लोकेषुतपःसिद्ध्येककारणम्॥३७॥

रविवारेषुसप्तम्यांसङ्क्रान्त्यांविधिवन्नरः। सप्तजन्मकृतात्पापात्स्नानमात्रेणशुद्ध्यति॥३८॥
पाराकंविधिवत्कृत्वा पूजनीयोजनार्द्दनः। सूर्यलोके सुखम्भुक्त्वा विष्णुलोकेमहीयते॥३९॥

महारोगाभिभूतस्तु स्नात्वा पीत्वा जलं शुचिः।
रोगमुक्तोऽचिरादेव नाऽत्र कार्या विचारणा॥४०॥

चतुःस्त्रोतं परं तीर्थं विलोचनमनोहरम्। धर्मार्थकाममोक्षास्ते तिष्ठन्ति द्रवरूपिणः।
हरेराज्ञाऽनुसारेण क्षेत्रेऽस्मिन्वैष्णवे स्वयम्। पुरुषार्थाद्रवीभूताभूतानां मुक्तिहेतवः॥४१॥

पूर्वादिदिक्षु क्रमसन्निविष्टा धर्मप्रधाना इव रूपभाजः।
भजन्ति ये तान्क्रमसन्निविष्टान्प्रसन्नतैषां सततं भवेद्धि॥४२॥

वह सब पाप सोमकुण्ड दर्शन द्वारा क्षयीभूत हो जाता है। तदनन्तर द्वादशादित्य तीर्थ है। यह पापहारी तीर्थ है। काश्यप ने इसी तीर्थ में तप करके दिवाकरत्व प्राप्त किया था। यह द्वादशादित्य तीर्थ त्रैलोक्य दुर्लभ है तथा सिद्धि का एकमात्र साधन है। जो मनुष्य रविवार तथा संक्रान्ति एवं सप्तमी तिथि के दिन इस तीर्थ में स्नान करता है, वह तत्क्षण सप्तजन्मार्जित पापों से रहित हो जाता है। इस तीर्थ में यथाविधि पराकव्रत करके जनार्दन की पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार करने से वह सूर्यलोक में सुखभोग करने के उपरान्त अन्त में विष्णुलोक गमन करता है। यदि महारोगग्रस्त मनुष्य भी पवित्र होकर द्वादशादित्य तीर्थ में स्नान तथा तीर्थजलपान करता है, तब वह शीघ्रतापूर्वक रोगमुक्त हो जाता है। यहां नयनमनोरम चतुःस्रोत नामक उत्तम तीर्थ विद्यमान है। हरि के आदेशानुसार इस वैष्णवक्षेत्र में धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष जलरूपेण सदा स्थित रहता है। यह द्रवीभूत चतुःस्रोत प्राणीगण हेतु मुक्तिप्रद है।यह धर्म प्रधान चतुःस्रोत तीर्थ पूर्वादि दिक्क्रम से स्थित रहता है। यह अतीव रूपवान् है। जो क्रमानुरूप इस चतुःस्रोत तीर्थ में स्नान करते हैं, उनको सतत् प्रसन्नता प्राप्त होती है।।३६-४२।।

नाऽन्यत्र क्षेत्रे मिलिताः कथञ्चिच्चत्वार एते त्रिदशैरलभ्याः।
तानग्रिमं जन्म जवेन लब्ध्वा पश्यन्ति पूर्वार्जितपुण्यपुञ्जाः॥४३॥

यह तीर्थ देवताओं को भी सुख (आसानी) से प्राप्त नहीं होता। अन्य तीर्थ में कदापि इस चतुःस्रोत का मिलन लक्षित नहीं होता (ऐसा तीर्थ अन्य तीर्थ नहीं हैं)। जो पुण्यात्मा हैं, जिनमें पूर्व जन्मार्जित पुण्य संचित है, वे ही ब्राह्मण जन्म पाकर इस तीर्थ का दर्शन प्राप्त कर पाते हैं।।४३।।

ये दुर्जना दुर्जनसङ्गभाजः क्षमार्जवप्राणजयप्रधानाः।
क्रीडामृगा ग्राम्यवधूजनानां न ते प्रपश्यन्त्यचिरात्पुमर्थान्॥४४॥
तथैव पश्यन्त्यचिरेण तत्त्वज्ञानैकहेतूनपि तान्पुमर्थान्॥४५॥

अत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः। पर्वणि प्रयताः स्नातुं समायान्ति षडानन!॥४६॥
ततः सत्यपदंनाम तीर्थं सर्वमनोहरम्। त्रिकोणाकारमेवैतत्कुण्डं कल्मषनाशनम्॥४७॥

एकादश्यां हरिस्तत्र स्वयमायाति पावने॥४८॥

तत्पश्चादृषयः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः। स्नातुमायान्ति विधिवत्कुण्डे सत्यपदाभिधे॥४९॥
गन्धर्वाप्सरसां यत्र मध्याह्ने हरिवासरे। गानं श्रृण्वन्ति विरलाःसत्यव्रतपरायणाः॥५०॥
दर्शनाद्यस्य तीर्थस्य पातकानि महान्त्यपि। पलायन्ते भयेनैव सिंहं दृष्ट्वा मृगा इव॥५१॥

जो दुर्जन हैं, अथवा दुर्जन का संसर्ग करने वाले हैं, जिनमें क्षमा, सारल्य तथा प्राणजय नहीं है, जो ग्रामवासीगण के साथ क्रीड़ामृगरूप हैं, वे धर्म-अर्थ आदि चतुर्वर्ग साधन तथा तत्वज्ञान के एकमात्र हेतुभूत चतुःस्रोत तीर्थ का दर्शन कर सकने में समर्थ नहीं होते। हे षड़ानन! ब्रह्मा आदि देवता तथा तपोधन ऋषिगण पर्वकाल में प्रयासरस होकर इस तीर्थ में स्नानार्थ आते हैं। तदनन्तर यहां अत्यन्त मनोहर सत्यपद नामक परम तीर्थ है। यह सत्यपद कुण्ड त्रिकोणाकृति एवं समस्त कलुषनाशक है। एकादशी तिथि के दिन हरि इस पुण्यतीर्थ सत्यपद कुण्ड में स्वयं आते हैं तथा उनका अनुगमन करते तपोधन मुनिगण भी आगमन करते हैं। हरिवासर के दिन (एकादशी के दिन) इस सत्यपद तीर्थ में मध्याह्न काल में सत्यव्रत परायण गन्धर्वों तथा अप्सराओं के मधुर गीत श्रुतिगोचर होते हैं। इस तीर्थ के दर्शन मात्र से महामहापातक समूह भी उस प्रकार भयभीत होकर भाग जाते हैं, जैसे सिंह को देखकर मृगों का पलायन होने लगता है।।४४-५१।।

स्वशाखोक्तविधानेन स्नानं कृत्वा विचक्षणः।
सत्यलोकमवाप्नोति ततो नैःश्रेयसम्पदम्॥५२॥
अहोरात्रं शुचिर्भूत्वा उपोष्य च जनार्द्दनम्।
पूजयित्वा यथाशक्त्या स जीवन्मुक्तिभाजनः॥५३॥

विलक्षण मानव अपने वेदोक्त शाखा विधान से इस तीर्थ में स्नान करके सत्यलोक जाता है और तदनन्तर निःश्रेयस पदलाभ करता है। जो व्यक्ति पवित्र होकर इस तीर्थ में अहोरात्र उपवासी रहता है तथा जनार्दन की यथाशक्ति पूजा करता है वह जीवन्मुक्त हो जाता है।।५२-५३।।

ब्रह्माविष्णुश्च रुद्रश्चत्रिकोणस्थाःसमाहिताः। तपः कुर्वन्त्यनुदिनं सर्वलोकादितोषणम्॥५४॥
त्रिकोणमण्डितं तीर्थं नाम्ना सत्यपदप्रदम्। दर्शनीयं प्रयत्नेन सर्वपापमुमुक्षुभिः॥५५॥
जपंतपो हरिस्तोत्रंपूजांस्तुत्यभिवन्दनम्। माहात्म्यंकुर्वतांवक्तुं ब्रह्मणाऽपिनशक्यते॥५६॥
ततोऽतिविमलं नाम नरनारायणाश्रमम्। द्विविधं दृश्यते तत्र पाथः परमनिर्मलम्॥५७॥
उभाभ्यामुभयोःप्रीतिर्भवतीतिविनिश्चितम्। तत्रस्नात्वाप्रयत्नेनपूजयित्वाजनार्द्दनम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तस्तत्क्षणान्नाऽत्र संशयः॥५८॥
ततो नारायणावासशिखरे विमलाकृति। तीर्थं पवित्रमुर्वश्या अभिव्यक्तिकरम्भवेत्॥५९॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इस त्रिकोणाकार सत्यपद तीर्थ के एक-एक कोण में स्थित होकर सतत् समस्त लोकों का सन्तोष साधन करते तपःश्चरण करते हैं। यह त्रिकोणमण्डित सत्यपद देने वाला तीर्थ सर्वपाप से मुक्ति चाहने वाले मनुष्यों द्वारा प्रयत्नतः दर्शनीय है। इस तीर्थ में जप, तप, हरिस्तोत्र, पूजा, स्तुति तथा प्रणाम करने वाले मनुष्यों के माहात्म्य का वर्णन ब्रह्मा भी नहीं कर पाते। तदनन्तर विमल नरनारायण आश्रम है। यहां परम निर्मल जल परिलक्षित होता है। यहां दो प्रकार का जल परिलक्षित होता है। इस दो प्रकार के जल से ही महर्षि नर

तथा नारायण का प्रीतिसाधन होता है। इसमें संदेह नहीं है। मानव इन दोनों जल में स्नानोपरान्त तत्क्षण सर्वपापविमुक्त हो जाता है। इसमें तनिक सन्देह नहीं है। तत्पश्चात् नारायण के निवास वाले शिखर पर विमलाकृति पवित्र उर्वशी तीर्थ है। यह तीर्थ सतत् प्रकाशमान है।।५४-५९।।

स्कन्द उवाच

अभिव्यक्तिः कथं तस्या उर्वश्याः शिखरे पितः!।
किम्पुण्यं किम्फलं तत्र परं कौतूहलम्वद।।६०।।

स्कन्ददेव कहते हैं—हे पिता! नारायण के आवास वाले शिखर पर उर्वशी का प्रकाश किस प्रकार से हुआ? इस तीर्थ का क्या पुण्य है तथा क्या फल है, इसे जानने का मुझे अतीव कुतूहल हो रहा है। कृपया कहिये।।६०।।

शिव उवाच

धर्मस्य पत्नीमूर्त्यासीत्तस्यां जातौ षडानन!। नरनारायणौ साक्षाद्भगवान्नेव केवलम्।।६१।।
पित्रोराज्ञामनुप्राप्यतपोऽर्थं कृतमानसौ। उभयोर्नगयोस्तौ तु तपोमूर्त्तीइव स्थितौ।।६२।।
तौदृष्ट्वाविस्मितःशक्रःप्रेषयामासमन्मथम्। सगणंतपसोध्वंसो यथास्याद्गन्धमादनम्।।६३।।
विक्रम्यविधिवत्ते तु नारायणबलोदयम्। ज्ञात्वा हतमनस्कास्तानुवाच जगतीपतिः।।६४।।

भगवान् शिव कहते हैं—धर्मदेव के औरस से तथा उनकी मूर्त्ति नामक स्त्री के गर्भ से साक्षात् भगवान् नारायण ने नर एवं नारायण रूप से जन्म लिया था तथा पिता के आदेश से उन्होंने तपस्यार्थ गमन किया। उनके तपःप्रभाव से इनकी तपस्या वाला पर्वत भी मानो साक्षात् तपःमूर्त्तिरूप हो गया। नर-नारायण की तपस्या को देखकर विस्मित होकर इन्द्र ने उनके तप का नाश करने के लिये कामदेव को उसके गणों के साथ भेजा। तब मदन गन्धमादन पर्वत पर पहुंचा। वह नर-नारायण पर यथाविधि आक्रमण करके भी उनका परम बल देखकर हतोद्यम हो गया। तब जगत्पति श्रीहरि उससे कहने लगे।।६१-६४।।

हरिरुवाच

किमर्थमागता यूयमातिथ्यं गृह्यतामिति।।६५।।
इत्युक्त्वाफलमूलानितेभ्योदत्त्वोर्वशींतथा। दत्त्वान्तर्धिमगादेवपश्यतांविघ्नकारिणीम्।।६६।।
ते तु गत्वा दिवं भीता शक्रायोचुर्बलं हरेः। शक्रस्तामुर्वशींप्राप्यहर्षणैकयुतोऽभवत्।।६७।।
ततः प्रभृति तत्तीर्थमुर्वशी नामतः पृथक्। प्रसिद्धं यत्र भगवान्स्वयमास्ते तपोमयः।।६८।।

हरि कहते हैं—"तुम लोग यहां क्यों आये हो? मेरा आतिथ्य ग्रहण करो।" हरि ने यह कह कर कामदेव आदि को फल-मूल तथा उर्वशी को प्रदान किया। तदनन्तर नारायण उन विघ्न करने वालों के सामने ही वहां से अन्तर्हित् हो गये। तब वह मदन अपने गणों के साथ भयभीत होकर इन्द्र के पास पहुंचा तथा उसने श्री हरि के बलविक्रम के सम्बन्ध में इन्द्र से सब प्रसंग कहा। इन्द्र तो उर्वशी को पाकर सब कुछ भूल गये। उनका हृदय हर्ष से भर गया। हे षड़ानन! तपोमय भगवान् ने स्वयं उस तीर्थ में तप किया था तथा इसी तीर्थ में ही उर्वशी का आविर्भाव हुआ था। इसीलिये इस तीर्थ को उर्वशी तीर्थ के नाम से प्रसिद्धि मिली थी।।६५-६८।।

तत्र स्नात्वा विधानेन उपोष्यरजनिद्वयम्। पूजयित्वाहरिस्तत्र नरोनारायणोभवेत्।।६९।।
उर्वशीकुण्डमासाद्य कामनावशतो नरः। उर्वशीलोकमाप्नोति स्नानमात्रेण पुत्रक!।।७०।।
सदैव भगवांस्तत्र उर्वशीकुण्डसन्निधौ। भूतानांभावयन्भव्यं तपोमूर्तिर्व्यवस्थितः।।७१।।

आमोदं तदुपरि वै प्रभञ्जनोऽपि श्रीभर्तुर्वहति पदाम्बुजैकलब्धम्।
यत्सङ्गात्कलियुगकल्मषातुराणामुत्सङ्गे न भवति पापभारपाकः।।७२।।
यत्सङ्गाद्धर्षमुपावहत्पदश्रीनिर्विण्णो गिरिविवरेच्युतैकसेवी।
श्रीभर्तुश्चरणयुगं वहन्समन्तादभ्येति प्रशममहस्तपः समीरे।।७३।।
गीर्वाणानुपहसति स्वघेन पूर्णः कीटोऽपि प्रशमितदुर्नयो निरीहः।
यत्रस्थः कुसुमनिवेदमात्मयोगपर्युष्टं जहदुपयास्यते पदं तत्।।७४।।

इस उर्वशी तीर्थ में यथाविधि स्नान करके मानव दो रात्रि उपवासी रहे तथा हरि की पूजा करे। मनुष्य नारायण के समान हो जाता है। हे पुत्र! इस स्थान में उर्वशीकुण्ड विराजमान है। मानव कामना के कारण इस उर्वशीकुण्ड में स्नान करके उर्वशीलोक प्राप्त करते हैं। भगवान् सदा इस कुण्ड (उर्वशीकुण्ड) के निकट स्थित रहते हैं। वे यहां लोकों के हितकामनार्थ तप करते हैं। इस उर्वशीकुण्ड के ऊपरी भाग में एक आमोद भवन विराजमान है। यहां कमलापति के चरण कमलों का सौरभ ग्रहण करके बहने वाला वायु इस आमोदभवन को प्रमुदित करता रहता है। इस वायु के संसर्ग से कलि के कल्मष से आतुर लोगों के क्रोड़ में संचित पापराशि दूर उड़ जाती है। उनको कभी भी पापों का फलभोग नहीं करना पड़ता। भक्तगण इसके संसर्ग के कारण ऐश्वर्य विरक्त होकर वे शुद्ध अन्तःकरण से गिरिगुहा में एकमात्र अच्युत की सेवा समाहित मन से करते हैं। यहां का वायु कमलापति के पादपद्म की दिव्य गन्ध वहन करता प्रवाहित होता रहता है। भक्तगण इस वायु की सेवा द्वारा तपस्या का क्लेश प्रशमित करते हैं। यहां तो पापपूर्ण कीड़े भी कुसुमबोधपूर्वक (चरणकमल को पुष्प समझ कर) विभु के चरणकमल में संगत हो जाते हैं। इस पादपद्म के संसर्ग के कारण उनका दुष्कर्म दूर हो जाता है। वे अतीव निरीह हो जाते हैं। (पापरहित हो जाते हैं)।।६९-७४।।

यत्रेत्वा मुनिमतयो बहिः पदार्थान्नापश्यन्निहितपदाम्बुजैकभाजः।
यत्रस्थः स्वयमपि गोपतिर्जनानामाधत्तेस्वपदमनुक्रमागतानाम्।।७५।।

बहूनि सन्ति तीर्थानि गिरौ नारायणाश्रिते। सर्वपापहराण्याशु तान्यहं वेदनोजनः।
संसारकुहरे घोरे यत्र स्थगितमात्मनः। उर्वशीकुण्डमासाद्य दिनमेकंवसेन्नरः।।७६।।
उर्वशीदक्षिणे भागे आयुधानि जगत्पतेः। विद्यन्ते दर्शनात्तेषां न शस्त्रभयभाग्भवेत्।।७७।।
य इदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः। सर्वपापविनिर्मुक्तः सालोक्यं लभते हरेः।।७८।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे बदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेय-सम्वादे पञ्चधारादितीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः।।७।।

—※※※—

किम्बहुना, देवगण भी उनके आगे हास्यास्पद लगते हैं। मुनिवृत्तिधारी मानव यहां आकर बाह्य वस्तु (बाह्याकर्षण) भूल कर एकमात्र विष्णु के चरणकमलों की सेवा में सन्निहित मन वाले हो जाते हैं। जगत्पतिविष्णु भी अपने चरणकमल सेवक भक्तों को यथाक्रमेण अपने चरणों में स्थान प्रदान करते हैं। कमलापति नारायण द्वारा सेवित यह पर्वत अनेक तीर्थों से युक्त है। ये सभी तीर्थ शीघ्रता से पापहरण करते हैं। हे राजन्! मैं इस रहस्य को जानता हूं। अन्य लोग नहीं जानते। इस संसार कुहर में विचरण करने वाला जो मानव उर्वशीकुण्ड के पास एक दिन भी निवास करता है, उसकी आत्मा स्थिर हो जाती है। इस कुण्ड के दक्षिण में जगत्पति के आयुध विद्यमान हैं। इन सब आयुधों का दर्शन करने वाला शत्रुभय रहित हो जाता है। जो समाहित होकर भक्ति के साथ यह श्रवण करता है अथवा अन्य को सुनाता है, वह सर्वपापरहित होकर हरि का सालोक्य प्राप्त करता है।।७५-७८।।

।।सप्तम अध्याय समाप्त।।

अष्टमोऽध्यायः

मेरुसंस्थापन, धर्मक्षेत्र आदि विविध तीर्थों का महत्व वर्णन, लोकपाल स्थापना, अध्याय फलश्रुति महिमा

शिव उवाच

ब्रह्मकुण्डाद्दक्षिणतो नरावासगिरिर्महान्। यत्र भगवता मेरुः स्थापितो लोकसुन्दरः।।१।।

शिव कहते हैं—ब्रह्मकुण्ड के दक्षिण भाग में नरावास नामक उत्तम शैल विराजमान हैं। भगवान् ने इस नरावास के पास लोकसुन्दर मेरुपर्वत की स्थापना किया है।।१।।

स्कन्द उवाच

कथं भगवता मेरुः स्थापितो नरसन्निधौ। महत्कौतूहलं तात! कथ्यतां यदि रोचते।।२।।

स्कन्द कहते हैं—हे तात! भगवान् ने किसलिये नरावास पर्वत के सन्निधि में मेरु की स्थापना की है? मुझे यह जानने का अत्यन्त कुतूहल हो रहा है। यदि आपकी अभिरुचि हो तब मुझसे कहिये।।२।।

महादेव उवाच

यदा भगवतो वासो विशालायां समागतः। देवा महर्षयः सिद्धाःसविद्याधरचारणाः।।३।।
विहाय मेरुशृङ्गाणि भगवद्दर्शनोत्सुकाः। भगवद्दर्शनाह्लादतिरस्कृतसुरालयाः।।४।।
तदा तु भगवांस्तेषां सुखहेतोः षडानन!। उत्पाट्यमेरुशृङ्गाणि करेणैकेन लीलया।
स्थापयामास सर्वेषां भगवान्प्रीतिवर्द्धनः।।५।।

ततः सर्वे समालोक्यगिरिं काञ्चननिर्मितम्। प्रसन्नास्तुष्टुवुः सर्वेनारायणमनामयम्॥६॥

महादेव कहते हैं—हे वत्स! भगवान् विष्णु जब विशाला गये थे, तब विद्याधर एवं चरणों के साथ देवता, सिद्ध तथा महर्षिगण भी मेरु का त्याग करके भगवान् के दर्शनार्थ उत्सुक हो उठे। वे उस समय भगवान् के दर्शनार्थ इतने आह्लादित हो गये कि उनको तब स्वर्ग भी अतीव तुच्छवत् लग रहा था। हे षड़ानन! तब भगवान् ने उनके सुखकामार्थ लीलापूर्वक मेरु शृङ्गों को उखाड़कर विशाला में स्थापित कर दिया। इससे सभी प्रसन्न हो गये। तदनन्तर सभी लोग विशाला में इस स्वर्णनिर्मित पर्वत को देखकर प्रसन्न हो गये तथा सभी अनामय नारायण की स्तुति करने लगे।।३-६।।

देवा ऊचुः

योऽस्मत्सुखाय भवविश्रमणाय बिभ्रल्लीलातनूःकनकशैलमिहाऽऽनिनाय।
जेता सुरार्दनशतं त्रिदशैकपक्षस्तस्मै विधेम नम उग्रतपःश्रियाय॥७॥
यद्यत्करोति कृपया कृपणार्तितूलशैलाग्निराश्रितकृदेकविदाम्वरिष्ठः।
स्वेनैव तेन करणेन स तुष्यतां नो यस्याऽन्वकारि पुरुषेण न केनचिद्वै॥८॥
अस्माकमुन्नतधियां विदधाति सम्यक्छिक्षां पितेव करुणो निजलाभपूर्णः।
त्रैलोक्य रक्षणविचक्षणदृष्टिपातपूर्णामृताम्बुधिरसो विपदः प्रपायात्॥९॥

देवगण कहते हैं—हे प्रभो! आपने हमें सुख देने के लिये लीलादेह धारण किया है। हमारी संसार निवृत्ति के लिये जिनके द्वारा विशाला में कांचन पर्वत (मेरु) को लाया गया, जो देवगण के एकमात्र आश्रय हैं, जिनके द्वारा सैकड़ों देव शत्रुओं का वध किया गया है, उग्र तप ही जिनका ऐश्वर्य है, उन प्रभु को प्रणाम! आप दीनजन के पीड़ारूप रुई के पर्वत हेतु अग्निरूप हैं, आप शरणागतवत्सल तथा अभेद ज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं, आप अपनी करुणा द्वारा हमें सन्तुष्ट करते हैं। कोई व्यक्ति भी आपका अनुकरण कर सकने में समर्थ नहीं है। हे विभु! आप पिता की तरह हमें सम्यक् शिक्षा देकर समुन्नत ज्ञानवान् बनाते हैं। आप करुणापूर्ण हैं तथा यथालाभ सन्तुष्ट हैं। त्रैलोक्य रक्षणार्थ आपकी विचक्षण दृष्टि सर्वत्र निक्षिप्त होती है। आप पूर्ण अमृतसागर हैं। आप विपत्ति से हमारी रक्षा करिये।।७-९।।

ऋषय ऊचुः

येनाऽध्यस्तं भाति समस्तं जगदेकं क्रीडाभाण्डं सत्यतयाऽजस्यविभूम्नः।
भानां वृन्दं यद्वदनेप्याश्रितमूर्तिस्तस्मै नित्यं शाश्वत! तुभ्यं प्रणमाम॥१०॥

ऋषिगण कहते हैं—जिनकी लीला से समस्त जगत् अस्तामित हो जाता है, जिनके गुण से यह जगत् प्रतिभासित होता रहता है, यह जगत् जिनकी क्रीड़ासामग्री है, जिनकी सर्वव्यापी अजेयसत्ता जगत् रूपेण प्रतीत होती है, नक्षत्रमाला के समान जो अनन्तमूर्त्ति हैं तथा जो सनातन हैं, उन विभु को सदा प्रणाम!।१०।।

सिद्धा ऊचुः

यत्कृपालवत एव महान्तः सिद्धिमीयुरितरे भवभाजः।
तेऽचिरेण भवभीमपयोधिं तीर्णवन्त इति नः सुमनीषा॥११॥

सिद्धगण कहते हैं— जिनकी कृपा कणिका का लाभ करके महत्‌जन सिद्धिलाभ करते हैं, जिनके अतिरिक्त बाकी सभी संसारबद्ध रहते हैं, हमारी यह निश्चित धारणा है कि उनकी कृपा होने पर संसारबद्ध लोग भी शीघ्रतापूर्वक भीषण भवसागर से उत्तीर्ण हो जाते हैं।।११।।

विद्याधरा ऊचुः

विभो! सद्‌गुणग्राम! कल्याणमूर्ते! परमेशान! सम्मानसन्तानहेतो!।
भवत्पादपद्मासवस्वादमत्ताः कृतार्था न चित्रं भवत्यत्र किञ्चित्॥१२॥
ततस्तुष्टोऽथभगवांस्तेषामासीद्दिवौकसाम्। वरंवृणुध्वमित्युक्तास्तेप्रोचुर्वरदर्षभम्॥१३॥
परितुष्टो भवान्साक्षाद्देवदेवो रमापतिः। बदरी न त्वया त्याज्या न च मेरुः कदाचन॥१४॥
मेरुशृङ्गं प्रपश्यन्ति येजनाःपुण्ययभागिनः। तेषांवैत्वत्प्रसादेनमेरौवासःप्रजायताम्॥१५॥
तत्र भुक्त्वा चिराद्भोगान्भूयादन्ते लयस्त्वयि।
एवमस्त्विति चाऽऽभाष्य तत्रैवाऽन्तर्हितो हरिः॥१६॥
ततः प्रभृति ते सर्वे मेरुशृङ्गविहारिणः। नरनारायणस्याऽन्ते पाल्यमाना मुहुर्मुहुः॥१७॥
कदाचिद्दिवि तिष्ठन्ति कदाचिन्मेरुमध्यतः। निर्विशङ्का निरुद्वेगा ऋषयश्चतपोधनाः॥१८॥
भगवानपि तत्रैव नररूपेण तिष्ठति। धनुर्बाणधरः श्रीमांस्तपसा पावकोपमः।
आनन्दमृषिवृन्दस्य जनययंस्तप आस्थितः॥१९॥
ततस्तु परमंतीर्थंलोकपालाभिवन्दितम्। यत्रसंस्थापयामासलोकपालान्हरिःस्वयम्॥२०॥

विद्याधरगण कहते हैं—"हे विभु! आप समस्त उत्तम गुणों से भूषित हैं। आपकी मूर्त्ति मंगलदायक है। आप ही सम्मान वृद्धि के कारण हैं। हे परमेशान! मैं आपके चरणकमल के मधुस्वाद से मत्त होकर कृतार्थ हो गया हूं। आपमें कुछ भी विचित्रता नहीं है। आपके लिये तो सब कुछ स्वाभाविक है।" तदनंतर भगवान् ने सुरगण तथा सिद्धों के स्तव से प्रसन्न होकर कहा "तुम लोग वर मांगो।" तब उन लोगों ने वर प्रदान करने वालों में श्रेष्ठ विष्णु को उत्तर दिया—"आप साक्षात् भगवान् देवदेव रमापति हैं। यदि आप हमारे प्रति प्रसन्न हैं, तब आप सतत् बदरीवन एवं मेरुगिरि में निवास करिये। जो पुण्यात्मा लोग मेरुशृंग का दर्शन करते हैं, वे आपकी कृपा से मेरुवास का फल प्राप्त करें। वे पृथिवी पर विविध भोग्य वस्तुओं को उपभोग करके अन्तकाल में आप में लयीभूत हो जायें।" तदनन्तर हरि "यही हो" कहकर अन्तर्हित् हो गये। तब से देवता सिद्ध-महर्षि आदि मेरु शृङ्ग पर नारायण के पास उनके द्वारा प्रतिपालित होकर विचरण करने लगे। तत्पश्चात् तपोधन ऋषिगण कभी स्वर्ग में तो कभी मेरुमध्य में निरुद्वेग तथा निरामय रूप से निवास करने लगे। भगवान् हरि भी वहां नररूपेण विराजमान हो गये। वे कभी धनुष-बाणधारी होकर कभी तपस्या द्वारा पावकोपम होकर ऋषियों का आनन्दवर्द्धन करके तपःनिरत होकर वहां अवस्थान करने लगे। तब श्रीहरि ने वहां लोकपालों से अभिनन्दित होकर स्वयं उनको प्रतिष्ठित किया।।१२-२०।।

स्कन्द उवाच

कथं भगवता तत्र लोकपालाश्च स्थापिताः। महत्कौतूहलं तात कथयस्व महामते॥२१॥

स्कन्ददेव कहते हैं—हे तात! भगवान् ने वहां पर किसलिये लोकपालगण को स्थापित किया? हे महामति! इस विषय में हमें अत्यन्त कुतूहल हो रहा है।।२१।।

शिव उवाच

एकदा मेरुमध्यस्थाश्रयानिह हरन्हरिः। देवानामृषिमुख्यानां चरितं द्रष्टुमुद्यतः॥२२॥
तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय नमस्कृत्य दिवौकसः। ऊचुस्ते विनयात्सर्वेप्रसीदभगवन्विभो॥२३॥
क्षणं विश्राम्यविधिवद्दृष्ट्वातांविरलांभुवम्।
सान्निध्यमृषिदेवानामयुक्तंभावयन्मिथः॥२४॥
ततः प्रहस्य भगवानुवाच मधुसूदनः। लोकपालान्समाहूय नाऽत्र स्थेयं भवद्विधैः॥२५॥
ऋषयस्तापसाःसिद्धासस्त्रीकानिवसन्ति हि। भवद्विधानामास्थानंपुरैवकल्पितंमया॥२६॥
ततःस त्वरितो गत्वा रम्ये गिरिवरेहरिः। लोकपालान्समाहूयस्थापयामासतान्गुह!॥२७॥

शिव कहते हैं—एक बार हरि देवगण तथा श्रेष्ठ ऋषिगण का चरित ज्ञात करने के लिये मेरुमध्यस्थित अपना आश्रयस्थल त्याग करने हेतु उद्यत हो गये थे। देवगण उनको देखकर सहसा उठ खड़े हो गये तथा विनय से प्रणाम करके कहने लगे—"हे विभु! हमारे ऊपर प्रसन्न हों। हे भगवान्! इस स्थान को शून्य करके नहीं जाईये। क्षणकाल रुकिये। आपके चले जाने पर यह स्थान रहने योग्य नहीं रह जायेगा।" देवगण का यह विनय वाक्य सुनकर भगवान् मधुसूदन सहास्यमुख उत्तर देने लगे—"लोकपालों को यहां लाये बिना तुम लोगों ऐसे व्यक्तियों के साथ निवास कर सकना मेरे लिये युक्तियुक्त नहीं है। क्योंकि यहां तापस-सिद्ध-ऋषिगण सस्त्रीक निवास करते हैं। इसीलिये पूर्व में मैंने उनके निवास योग्य यह स्थान बनाया था। हे गुह! तदनन्तर हरि ने रम्य गिरिवर पर गमन करके वहां लोकपालगण का आह्वान किया तथा उनको स्थापित किया।।२२-२७।।

तत्रैव शैलदण्डेन हत्वाद्रिंजलकाङ्क्षया। क्रीडापुष्करणीं तेषां निर्ममे सुमनोहराम्॥२८॥
सस्त्रीका यत्र गीर्वाणा विचरन्ति निजेच्छया।
गायन्ति स्वनुमोदन्ति गन्धर्वास्त्रिदिवौकसाम्॥२९॥
वनानि कुसुमामोदरम्याणि परिपोषतः। दिनानियत्रगच्छन्ति क्षणप्रायाणिदेहिनाम्॥३०॥
भगवानपि तत्रैव तेषामानन्दमावहन्। द्वादश्यां पौर्णमास्याञ्च स्वयमायातिमज्जने॥३१॥
तत्पश्चादृषयः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः। यत्रस्नात्वा विधानेन गुह! मध्याह्नकालतः।
असङ्गं परमं ज्योतिर्जले पश्यन्ति चक्षुषा॥३२॥

उन्होंने जल की आकांक्षा करके शैलदण्ड से पर्वतभूमि का खनन किया। इस प्रकार से उन्होंने वहां एक पुष्करिणी का निर्माण कराया। हे वत्स! इस सुमनोहर जलाशय को ही उन्होंने अपनी क्रीड़ापुष्करिणी रूपेण परिणत कर लिया। देवगण पत्नियों के साथ इस पुष्करिणी में स्वच्छन्द विहार करते तथा गन्धर्वगण प्रमुदित होकर सुरगण के समीप सतत् गायन करते रहते। यहां नाना वन तथा कुसुम समन्वित उद्यान भी हैं। यहां देहधारी लोग को एक दिन भी प्रसन्नता के कारण एक क्षण जैसा प्रतीत होता है। स्वयं भगवान् उनके

आनन्दवर्द्धनार्थ यहां द्वादशी एवं पूर्णिमा के दिन आकर इस पुष्करिणी में स्नान करते हैं। हे गुह! इस पुष्करिणि में नियमतः सविधि मध्याह्नकाल में स्नान करने से मनुष्य विषयों से निर्लिप्त हो जाता है और परम दर्शन कर सकने में समर्थ हो जाता है।।२८-३२।।

सर्वतीर्थावगाहेन यत्फलम्परिकीर्तितम्। तत्फलंतत्क्षणादेव दण्डपुष्करिणीक्षणात्॥३३॥
यत्र काम्यानिकर्माणिसफलानिमनीषिणाम्। यत्रपिण्डप्रदानेनगयातोऽष्टगुणंफलम्॥३४॥
यज्ञो दानं तपः कर्म सर्वमक्षयमुच्यते। द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य ज्येष्ठे मासि षडानन!॥३५॥
तत्र स्नात्वा विधानेन कृतकृत्यो भवेद्यतः। बदरीतीर्थमध्ये तु गुप्तमेतत्सुरोत्तमैः।
न वाच्यं यत्र कुत्राऽपि तव प्रीत्या मयोदितम्॥३६॥

समस्त तीर्थों में जाकर वहां स्नान का जो फल है, दण्डपुष्करिणी में दर्शनमात्र से भी वही फल मिल जाता है। यहां मनीषीगण का सभी काम्यकर्म सफल हो जाता है। यहां पिण्डदान का जो फल मिलता है, वह गयातीर्थ में पिण्डदान का आठ गुणा होता है। यहां पर यज्ञ-दान-तप आदि कोई भी क्रिया अनुष्ठित होकर अक्षय फलरूप हो जाती है। हे षड़ानन! मानव ज्येष्ठ मासीय शुक्लाद्वादशी के दिन इस पुष्करिणी जल में यथाविधि स्नान करके कृतार्थ हो जाता है। बदरीतीर्थ में यह दण्डपुष्करिणी अतीव गोपनीय है। श्रेष्ठ देवगण भी इस तीर्थ से अवगत नहीं हैं। मैंने तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण यह सब तुमको बतलाया। जहां-तहां इस तीर्थ का वर्णन न करें।।३३-३६।।

वक्तव्यं किमिह बहुप्रभूतपुण्याः पश्यन्ति प्रथितमिदं सुरैकगुप्तम्।
नाऽन्येषां कथमपि चेतसि प्रसङ्गाद्देवैः स्यादनुदिनचिन्तितं गुहैतत्॥३७॥
येषाम्वै भगवति चेत्समग्रकर्मस्वाध्यायाभ्यसनविधिक्रमेण जातम्।
पश्यन्ति त्रिभुवनदुर्ल्लभं सुतीर्थं दण्डोदं न भवति चाऽन्यथा सुदृष्टम्॥३८॥
दण्डोदकात्परं तीर्थं न विष्णोः सदृशोऽमरः। विशालासदृशं क्षेत्रं नभूतंनभविष्यति॥३९॥
सेवनीया प्रयत्नेन विशाला च विचक्षणैः। य इच्छेत्सततं धाम भगवत्पार्श्ववर्ति वै॥४०॥

हे गुह! इस विषय में अधिक क्या कहा जाये! यह तीर्थ सुर समाज से भी गुप्त है। एकमात्र प्रभूत पुण्यात्मा लोग ही इस विख्यात तीर्थ का दर्शन कर पाते हैं। देवगण नित्य इस तीर्थ का ध्यान करते हैं। अन्य व्यक्तिगण अत्यन्त कष्ट से इस तीर्थ प्रसंग को हृदय में नहीं धारण कर पाते। जो विधिवत् स्वाहा-स्वधा इत्यादि द्वारा समस्त क्रिया का अभ्यास करते हैं, अन्य व्यक्तिगण जिनकी मति भगवान् में एकाग्र हो गयी है, वे ही त्रिभुवन दुर्लभ यह दण्डपुष्करिणी दर्शन प्राप्त करते हैं। अन्य इस तीर्थ का साक्षात्कार अनन्य भक्ति बिना नहीं कर सकते। दण्डपुष्करिणी से उत्तम तीर्थ, विष्णु के समान देवता तथा विशाला के समान क्षेत्र तो न है, न होगा।

जो सदैव भगवान् के बगल के स्थान को प्राप्त करने की कामना करते हैं, वैसे विचक्षण मानवगण प्रयत्न के साथ इस तीर्थ की सेवा करें।।३७-४०।।

स्कन्द उवाच

गङ्गामाश्रित्य तीर्थानिकानि सन्तीहसत्पदे। श्रेयस्कराणिभूरीणिसंक्षेपात्तानिमेवद॥४१॥

स्कन्द कहते हैं—इहलोक में जाह्नवी गंगा का आश्रय लेकर कौन-कौन तीर्थ विद्यमान हैं? इन सबमें से कौन अत्यन्त कुशलताप्रद है? कृपया संक्षेप में कहिये।।४१।।

महादेव उवाच

गङ्गायां यत्र संयागो मानसोद्भेदसन्निधौ। तत्तीर्थं विमलं पुण्यं प्रयागादधिकं महत्।।४२।।
त्रिंशद्वर्षसहस्त्राणि वायुभोजनतो भवेत्। तत्फलं स्नानमात्रेण गङ्गायाः सङ्गमेनृणाम्।।४३।।
सङ्गमाद्दक्षिणे भागे धर्मक्षेत्रं प्रकीतितम्। यत्र मूर्त्यां श्रुतौ जातौ नरनारायणावृषी।।४४।।
तत्क्षेत्रं पावनं मर्त्ये सर्वेषामुत्तमोत्तमम्। धर्मस्तत्रैव भगवांश्चतुष्पादवतिष्ठति।।४५।।
यत्रयज्ञास्तपोदानंयत्किञ्चित्क्रियतेनृभिः। तत्पुण्यस्यक्षयोनास्तिकल्पकोटिशतैरपि।।४६।।
ततो दक्षिणदिग्भाग उर्वशीसङ्गमाभिधम्। सर्वपापहरं पुंसां स्नानमात्रेण देहिनाम्।।४७।।
कूर्मोद्धारस्ततः साक्षाद्धरिभक्त्येकसाधनम्।
स्नानमात्रेणभूतानां सत्त्वशुद्धिः प्रजायते।।४८।।

महादेव कहते हैं—मानसोद्भेद के सन्निधान में जो गंगा का संगम है, वही विमल तथा पुण्यप्रद है। इसका फल प्रयाग से भी अधिक है। तीस हजार वर्ष पर्यन्त मनुष्य मात्र वायुभक्षण तथा तपःश्चरण से जो फल प्राप्त करता है, इस संगमस्थान में उसकी अपेक्षा अधिक फल मिलता है। इस मानसोद्भेद संगम के दक्षिण में धर्मक्षेत्र कहा जाता है। ऋषि-नर-नारायण यहीं देहधारी रूप से विराजित हैं। यह क्षेत्र मर्त्यलोक का सर्वोत्तम पवित्र स्थल है। यहां पर चतुष्पाद भगवान् धर्म विराजित रहते हैं। यहां पर मनुष्य जो यज्ञ-दान-तप करता है, उसका पुण्य कोटिकल्पों में भी क्षयीभूत नहीं होता। इस धर्मक्षेत्र के दक्षिण भाग में उर्वशीसंगम तीर्थ है। यहां मात्र स्नान द्वारा ही मनुष्य के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। तत्पश्चात् कूर्मोद्धारतीर्थ है। यह तीर्थ हरिभक्ति का एकमात्र साधन है। यहां कूर्मोद्धार तीर्थ में स्नानमात्र से देही का देह शुद्ध हो जाता है।।४२-४८।।

ब्रह्मावर्त्तस्ततः साक्षाद्ब्रह्मलोकैककारणम्। दर्शनादेव तीर्थस्य सर्वपापक्षयो भवेत्।।४९।।
बहूनि सन्ति तीर्थानिदुर्गम्यानीहदेहिनाम्। संक्षेपात्कथितं वत्स! तवादरवशादिदम्।।५०।।
य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः। सर्वपापविनिर्मुक्तः पदं विष्णोः प्रपद्यते।।५१।।

तदनन्तर ब्रह्मावर्त्ततीर्थ है। इस तीर्थ के सेवन से ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। इसका दर्शन सर्वपापक्षयकारी हैं। हे वत्स! इस धराधाम में अनेक तीर्थ विद्यमान हैं। ये सभी तीर्थ देहधारी के लिये दुर्लभ हैं। इस विषय में तुम्हारा अत्यधिक आदर देखकर संक्षेप में वर्णन किया गया। जो मानव इसे श्रद्धापूर्ण हृदय से सुनते हैं अथवा सुनाते हैं, उनका सभी पाप नष्ट हो जाता है तथा वह विष्णुपद प्राप्त करता है।।४९-५१।।

राजा विजयमाप्नोति सुतार्थी लभते सुतम्।
कन्यार्थी लभते कन्यां कन्या विन्दति सत्यतिम्।।५२।।
धनार्थी धनमाप्नोति सर्वकामैकसाधनम्।।५३।।
मासमात्रं नरोभक्त्याशृणुयाद्यः समाहितः। तस्याऽभीष्टसमावाप्तिर्दुर्लभाऽपि नसंशयः।।५४।।

आधिव्याधिभयं घोरं दारिद्र्यं कलहं तथा।
यस्य गेहेषु माहात्म्यं तत्रैतानि न कर्हिचित्॥५५॥
नाऽपमृत्युर्न सर्पादि दौर्भाग्यञ्चापि वर्तते। दुःस्वप्नग्रहपीडा च परराष्ट्रभयं तथा॥५६॥
युद्धे यात्राप्रयाणे च पठनीयं प्रयत्नतः। विवाहे च विवादे च शुभकर्मणि यत्नतः॥५७॥
पूर्णम्वाऽध्यायमात्रम्वा तदर्धम्वा विचक्षणैः।
सर्वकार्यप्रसिद्धि स्वान्नाऽत्र कार्या विचारणा॥५८॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे बदरिकाश्रममाहात्म्ये शिवकार्त्तिकेयसम्वादे बदरिकाश्रमे मेरुसंस्थापनतीर्थलोकपालतीर्थदण्डपुष्करिणीतीर्थधर्मक्षेत्रादि-विविधतीर्थक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनंनामाऽष्टमोऽध्यायः॥८॥

॥इति श्रीस्कान्दे द्वितीय वैष्णवखण्डे तृतीयं बदरिकाश्रममाहात्म्यं समाप्तम्॥२-३॥

—❋❋❋—
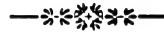
इस तीर्थ माहात्म्य का श्रवण करने से राजा को विजय, पुत्रार्थी को पुत्र, कन्याकामी को कन्या, पतिप्रार्थिनी को उत्तम पति, धनार्थी को धनलाभ होता है। यह सभी कामनाओं की पूर्त्ति करने वाला है। जो मानव समाहित होकर भक्तिभाव से इसे एक मास सुनता है, उसे दुर्लभ कामना होने पर भी अभीष्ट की प्राप्ति होती है। इसमें संशय नहीं है। जिसके गृह में यह तीर्थ माहात्म्य की पुस्तक रखी है, उसे घोर आधि-व्याधि, भय, दरिद्रता, कलह, अकालमृत्यु, सर्पादिभय, दुर्भाग्य, दुःस्वप्न, ग्रहपीड़ा, परराष्ट्रभय कदापि नहीं होता। विद्वान् मानव युद्ध-यात्रा-गमन-विवाह-विवाद-शुभकर्म आदि काल में यत्नतः सम्पूर्ण प्रसंग अध्यायों को किंवा मात्र एक अध्याय, अथवा आधे अध्याय का पाठ करें। इससे सभी कार्य सिद्ध होता है। इसमें सन्देह नहीं है॥५२-५८॥

॥अष्टम अध्याय समाप्त॥

॥बदरिकाश्रम माहात्म्य समाप्त॥

❖❖❖

॥श्रीगणेशायनमः॥

॥ श्रीराधादामोदराभ्यांनमः॥

कार्तिकमासमाहात्म्यारम्भः

प्रथमोऽध्यायः

कार्त्तिक मास व्रत प्रशंसा, कार्त्तिक धर्म वर्णन, कार्त्तिक व्रत प्रशंसा

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥१॥

नारायण, नरोत्तम नर को तथा देवी सरस्वती को प्रणाम करके 'जय' (पुराण) को कहता हूं।।१।।

ऋषय ऊचुः

सूत! नः कथितम्पुण्यं माहात्म्यमाश्विनस्य च।
भूयोऽन्यच्छ्रोतुमिच्छामः कार्त्तिकस्य च वैभवम्॥२॥

कलौ कलुषचित्तानां नराणांपापकर्मणाम्। संसाराब्धौनिमग्नानामनायासेनकागतिः॥३॥
को धर्मः सर्वधर्माणामधिकोमोक्षसाधकः। इहाऽपि मुक्तिदो नृणामेतत्त्वंकथय प्रभो!॥४॥

ऋषिगण कहते हैं—हे सूत! पुण्यमय आश्विन मास का माहात्म्य आप सबसे कह दिया। पुनः हम कार्त्तिक मास की विभूति सुनना चाहते हैं। हे प्रभो! संसार सागर में निमग्न कलिकाल के कलुषित चित्तवाले पापी व्यक्तियों की क्या गति होगी? धर्मों में मोक्ष धर्म क्या है? किस उपाय से इहकाल में अनायास मानवों की मुक्ति होती है? यह सब कहिये?।।२-४।।

सूत उवाच

भवद्भिर्यदहं पृष्टस्तदेतत्पृष्टवान्मुनिः। नारदो ब्रह्मणः पुत्रो ब्रह्माणं तु जगद्गुरुम्॥५॥
तथैवसत्यभामाच श्रीकृष्णंजगदीश्वरम्। अपृच्छत्कार्तिकस्यैव वैभवं श्रवणोत्सुका॥६॥
बालखिल्यैश्च ऋषिभिर्यदुक्तमृषिसंसदि। श्रीसूर्यारुणसंवादरूपेणाऽतिमनोहरम्॥७॥
कैलासे शङ्करेणैवकार्तिकस्यच वैभवम्। वर्णितं षण्मुस्याऽग्रे नानाख्यानसमन्वितम्॥८॥
पृथम्प्रतिनारदेनकथितंचमाहात्म्यकम्। कार्तिकस्य च विप्रेन्द्रा श्रुत्वाब्रह्ममुखात्पुरा॥९॥
एकदा नारदोयोगी सत्यलोकमुपागतः। पप्रच्छ विनयेनैव सर्वलोकपितामहम्॥१०॥

सूत जी कहते हैं—आप सबने मुझसे जो पूछा है पूर्वकाल में ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारद ने अपने पिता जगद्गुरु ब्रह्मा से उसी विषय में पूछा था। कृष्णपत्नी सत्यभामा ने भी जगदीश्वर श्रीकृष्ण से कार्त्तिक मास का

माहात्म्य सुनने हेतु उत्सुक होकर इस सम्बन्ध में जिज्ञासा किया था। ऋषि सभा में बालखिल्य ऋषिगण ने इस विषय में सूर्यदेव तथा अरुणसंवादरूप मनोहर उपाख्यान को कहा था। कैलास शिखरासीन शंकर ने भी षड़ानन स्कन्द से नाना आख्यान समन्वित कार्त्तिक माहात्म्य कहा था। हे विप्रेन्द्रगण! इसके अतिरिक्त देवर्षि नारद ने भी पितामह के मुख से कार्त्तिक मासीय माहात्म्य को सुनकर पृथु को उपदेश प्रदान किया था। एक बार देवर्षि नारद सत्यलोक आये तथा विनयपूर्वक सर्वलोकपितामह ब्रह्मा से पूछा।।५-१०।।

श्रीनारद उवाच

पापेन्धनस्य घोरस्य शुष्कार्द्रस्यच भूरिशः। को वह्निर्दहते ब्रह्मंस्तद्भवान्वक्तुमर्हति॥११॥
नाऽज्ञातं त्रिषु लोकेषु ब्रह्माण्डांतर्गतस्ययत्। विद्यतेतवदेवेशत्रिविधस्यसुनिश्चितम्॥१२॥
मासनाम्प्रवरो मासो देवानामुत्तमोत्तमः। तीर्थानि तद्विशेषेण कथयस्व पितामह!॥१३॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे ब्रह्मन्! घोर पापरूप शुष्क तथा आर्द्र इन्धन को कौन अग्नि जला सकता है? कृपया यह विषय आप कहिये। ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत् तीनों लोक में आप से अज्ञात कुछ भी नहीं है। अतः आप यह बताने में समर्थ हैं। हे देवेश! भूत-भविष्य-वर्त्तमान का सब कुछ आपमें विद्यमान है। हे पितामह! देवगण में से सर्वोत्तम कौन है? मासों में उत्तम मास कौन-सा है तथा विशेषतः सभी तीर्थों में से उत्तम तीर्थ कौन है? कृपया कहिये।।११-१३।।

ब्रह्मोवाच

मासानां कार्तिकः श्रेष्ठो देवानाम्मधुसूदनः। तीर्थंनारायणाख्यं हि त्रितयंदुर्लभंकलौ॥१४॥

ब्रह्मा कहते हैं—सभी मासों में से कार्त्तिक श्रेष्ठ है, देवगण में से मधुसूदन श्रेष्ठ हैं। तीर्थसमूह में से नारायण तीर्थ उत्तम है। कलिकाल में तीन वस्तु दुर्लभ है।।१४।।

नारद उवाच

भगवंस्तव दासोऽस्मि भक्तोऽस्मि हरिवल्लभः।
वैष्णवान्ब्रूहि मे धर्मान्सर्वज्ञोऽसि पितामह!॥१५॥
आदौकार्तिकमाहात्म्यंवक्तुमर्हसिमेप्रभो!। दीपदानस्यमाहात्म्यंव्रतिनांनियमांस्तथा॥१६॥
गोपीचन्दनमाहात्म्यं तुलस्याश्च तथा विभो!।
धात्र्याश्चैव च माहात्म्यं विधिं स्नानादिकस्य च।
व्रतारम्भः कदा कार्य उद्यापनविधिं तथा॥१७॥
यत्किञ्चिद्वैष्णवंधर्मं तत्सर्ववक्तुमर्हसि। येनाऽहं त्वत्प्रसादेन पदं यास्याम्यनामयम्॥१८॥

देवर्षि नारद कहते हैं—मैं आपका भृत्य तथा भक्त हूं। हे हरिवल्लभ! आप सर्वज्ञ हैं। हे पितामह! वैष्णव कौन हैं यह कहिये। हे पितामह! पहले मुझे कार्त्तिक मास का माहात्म्य श्रवण करने की इच्छा है। उसे कहिये। हे विभो! कार्त्तिक मास में दीपदान का माहात्म्य, व्रतीगण का नियम, गोपीचन्दन, तुलसी तथा आमलकी महिमा, स्नानादि का विधान, व्रतारंभ तथा उद्यापन फल, जो कुछ भी वैष्णव धर्म है, सभी कहिये। हे प्रभो! मैं आपकी कृपा से अनामय पद लाभ कर सकूं यह कृपा करें।।१५-१८।।

सूत उवाच

इति पुत्रवचः श्रुत्वा ब्रह्मा हर्षसमन्वितः। राधादामोदरं स्मृत्वा प्रोवाचतनुजम्प्रति॥१९॥

सूतजी कहते हैं—कमलयोनि ब्रह्मा ने अपने पुत्र का यह कथन सुनकर प्रसन्न अन्तःकरण से राधा-दामोदर का नाम स्मरण किया तथा कहने लगे।।१९।।

ब्रह्मोवाच

साधुपृष्टं त्वया पुत्र! लोकोद्धरणहेतवे।
कथयामि न सन्देहः कार्त्तिकस्य च वैभवम्॥२०॥

एकतःसर्वतीर्थानिसर्वेयज्ञाःसदक्षिणाः। कार्त्तिकस्यतुमासस्यकलानार्हन्तिषोडशीम्॥२१॥

एकतःपुष्करेवासः कुरुक्षेत्रे हिमालये। एकतः कार्त्तिकः पुत्र सर्वपुण्याधिको मतः॥२२॥

स्वर्णानि मेरुतुल्यानि सर्वदानानिचैकतः। एकतःकार्त्तिको वत्स! सर्वदाकेशवप्रियः॥२३॥

यत्किञ्चित्क्रियते पुण्यं विष्णुमुद्दिश्य कार्त्तिके।
तस्य क्षयं न पश्यामि मयोक्तं तव नारद!॥२४॥

सोपानभूतं स्वर्गस्य मानुष्यंप्राप्यदुर्लभम्। तथाऽऽत्मानंसमादद्यान्नभ्रश्येतयथापुनः॥२५॥

दुष्प्राप्यं प्राप्य मानुष्यंकार्त्तिकोक्तंचरेन्नयः। धर्मं धर्मभृतांश्रेष्ठ! समातापितृघातकः॥२६॥

कार्त्तिकः खलुवै मासः सर्वमासेषु चोत्तमः।
पुण्यानाम्परमं पुण्यं पावनानाञ्चपावनम्॥२७॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे पुत्र! मनुष्यों के उद्धारार्थ तुमने उत्तम प्रश्न किया है। मैं तुमसे कार्त्तिक माहात्म्य का वर्णन करूंगा, इसमें सन्देह नहीं है। जैसे एक ओर समस्त तीर्थ तथा समस्त दक्षिणात्मक यज्ञ हैं, अन्य ओर उसी प्रकार से कार्त्तिक माहात्म्य है। परन्तु पूर्वोक्त तीर्थ तथा यज्ञादि उसके $\frac{१}{१६}$ वें भाग के भी बराबर नहीं हैं। हे पुत्र! पुण्यक्षेत्र पुष्कर, कुरुक्षेत्र तथा हिमालय में निवास का जो पुण्य है, उसकी अपेक्षा कार्त्तिक मास श्रेष्ठ है। हे वत्स! सुमेरु के तुल्य सर्वविध दान से भी केशवप्रिय कार्त्तिक मास श्रेष्ठ है। हे नारद! इस कार्त्तिक मास में विष्णु के उद्देश्य से जो सब पुण्यानुष्ठान होता है, उसका कभी क्षय नहीं होता, यह निश्चित कहता हूं। हे धार्मिकप्रवर! दुष्प्राप्य मानव देह प्राप्त करके जो मानव कार्त्तिकोक्त धर्माचरण नहीं करता, वह पितृ-मातृघाती है। कार्त्तिक मास समस्त मासों में से श्रेष्ठ है। यह पुण्यकर्त्ताओं के लिये परम पुण्यप्रद तथा पावन से भी पावन है।।२०-२७।।

अस्मिन्मासेत्रयस्त्रिंशद्देवाःसन्निहिता मुने। अत्रस्नानानिदानानिभोजनानिव्रतानिच॥२८॥

तिलधेनुं हिरण्यञ्च रजतं भूमिवाससी। गोप्रदानानि कुर्वन्ति सर्वभावेन नारद!॥२९॥

तानि दानानि दत्तानि गृह्णन्ति विधिवत्सुराः।
यत्किञ्च दत्तं विप्रेन्द्र! तपश्चैव तथा कृतम्॥३०॥

तदक्षय्यफलं प्रोक्तं विष्णुना प्रभविष्णुना। पापानांमोक्षणञ्चैवकार्त्तिकेमासिशस्यते॥३१॥

तस्माद्यत्नेन विप्रेन्द्र! कार्त्तिके मासि दीयते।
यत्किञ्चित्कार्त्तिके दत्तं विष्णुमुद्दिश्य मानवैः॥३२॥
तदक्षयं हि लभते अन्नदानं विशेषतः। यथा नदीनाम्विप्रेन्द्र शैलानाञ्चैव नारद!॥३३॥
उदधीनाञ्च विप्रर्षे! क्षयोनैवोपपद्यते। दानं कार्त्तिकमासेतु यत्किंचिद्दीयते मुने!॥३४॥
न तस्याऽस्तिक्षयोविप्र! पापंयातिसहस्त्रधा। सम्प्राप्तंकार्त्तिकंदृष्ट्वापरान्नंयस्तुवर्जयेत्॥३५॥
दिने दिनेऽतिकृच्छ्रस्य फलम्प्राप्नोत्ययत्नतः।
न कीर्त्तिकसमो मासो न कृतेन समं युगम्॥३६॥

हे मुनिवर! इस कार्त्तिक मास में ३३ देवता एकत्र सन्निहित रहते हैं। हे नारद! मनुष्य मन-वाणी तथा शरीर से इस मास में स्नान, दान, भोजनव्रत तथा तिलधेनु, हिरण्य, चांदी, भूमि, वस्त्र तथा गोदान करे। हे नारद! इस दान को विधिवत् देवता ग्रहण करते हैं। हे विप्रेन्द्र! कार्त्तिक मास में दान प्रदान करना कर्त्तव्य है। मनुष्य विष्णु के उद्देश्य से कार्त्तिकमास में जो दान करते हैं, वह तथा विशेषतः अन्नदान तो अक्षय हो जाता है। हे विप्रेन्द्र! जैसे नदी, पर्वत, समुद्र का क्षय नहीं होता, यह दान भी क्षयीभूत ही नहीं होता। हे विप्र! इस दान से तो हजारों-हजार पापों का क्षय हो जाता है। कार्त्तिक मास में जो व्यक्ति परान्न का त्याग करता है, उसे बिना प्रयास नित्य प्रति अति कृच्छ्रव्रताचरण का फललाभ होता है। कार्त्तिक मास ऐसा कोई मास नहीं है। कृतयुग ऐसा कोई युग नहीं है।।२८-३६।।

न वेदसदृशं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम्। न चाऽन्नसदृशं दानं न सुखंभार्ययासमम्॥३७॥
न्यायेनोपार्जितं द्रव्यं दुर्लभं दानकारिणाम्। दुर्लभं मर्त्यधर्माणां तीर्थे च प्रतिपादनम्॥३८॥
कार्त्तिके मुनिशार्दूल! शालग्रामशिलार्चनम्। स्मरणं वासुदेवस्य कर्तव्यं पापभीरुणा॥३९॥
एतादृशं कार्त्तिकञ्च अकृतेनैव यो नयेत्। पूर्वं कृतस्य पुण्यस्य क्षयमाप्नोत्यसंशयम्॥४०॥

वेद के समान कोई शास्त्र नहीं है, गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं है, अन्न ऐसा कोई दान नहीं है, पत्नी सुख के समान कोई सुख नहीं है। इसी प्रकार कार्त्तिक ऐसा कोई मास नहीं है। मनुष्यों में न्यायोपार्जित धन का दाता तथा तीर्थ में दान करने वाला अतीव दुर्लभ है। हे मुनिशार्दूल! पाप से डरने वाला मानव कार्त्तिक मास में शालग्राम शिलार्चन तथा वासुदेव का स्मरण करें। इस प्रकार पुण्यप्रद कार्त्तिक मास को जो मनुष्य बिना धर्माचरण किये व्यतीत करता है, उसके तो पूर्वकृत पुण्य का क्षय हो जाता है, इसमें संदेह ही नहीं है।।३७-४०।।

नारद उवाच

अशक्तेन कथं कार्यं कार्त्तिकव्रतमुत्तमम्। येन तत्फलमाप्नोति तन्मे वद पितामह!॥४१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे पितामह! कोई अशक्त व्यक्ति किस प्रकार से कार्त्तिक व्रताचरण करके किस प्रकार का फल लाभ करता है, मुझसे कहिये।।४१।।

ब्रह्मोवाच

अशक्तस्तु यदा मर्त्यस्तदैवं व्रतमाचरेत्। अन्यस्मैद्रविणं दत्त्वाकारयेत्कार्त्तिकव्रतम्॥४२॥

तस्मात्पुण्यंप्रगृह्णीत दानसङ्कल्पपूर्वकम्। द्रव्यदानेऽप्यशक्तश्चेद्यदा देवर्षिसत्तम!॥४३॥
तदा तेन प्रकर्तव्यं पानं तीर्थजलस्य च। तत्राऽप्यशक्तो यो मर्त्यस्तेन नित्यं हरेर्मुदा॥४४॥
स्मरणं च प्रकर्तव्यं नाम्ना नियमपूर्वकम्। अखण्डितं तदा तेन कार्त्तिकव्रतजं फलम्॥४५॥

ब्रह्मा कहते हैं—अशक्त व्यक्ति के लिये यह व्रताचरण है—व्रताचरण में अशक्त व्यक्ति संकल्पपूर्वक धन दान से ही कार्त्तिक व्रताचरण करे। हे देवर्षिप्रवर! जो धन दान में भी अशक्त है, वह नित्य तीर्थजलपान करे। इसमें भी जो अशक्त है, वह हर्षपूर्वक नित्य नियमतः हरिनाम स्मरण करे। इस प्रकार वह अखण्डित कार्त्तिक व्रतफल प्राप्त करता है।।४२-४५।।

विष्णोः शिवस्य वा कुर्यादालये हरिजागरम्। शिवविष्ण्वोर्गृहाभावे सर्वदेवालयेष्वपि॥४६॥
दुर्गाटव्यां स्थितो वाऽथ यदि वाऽऽपद्गतो भवेत्।
कुर्यादश्वत्थमूले तु तुलसीनां वनेष्वपि॥४७॥
विष्णुनामप्रबन्धानां गायनंविष्णुसन्निधौ। गोसहस्रप्रदानस्य फलमाप्नोतिमानवः॥४८॥
वाद्यकृत्पुरुषश्चाऽपि वाजपेयफलं लभेत्। सर्वतीर्थावगाहोत्थं नर्तकः फलमाप्नुयात्॥४९॥
सर्वमेतल्लभेत्पुण्यमेतेषां द्रव्यदः पुमान्। श्रवणाद्दर्शनाद्वाऽपि षडंशं फलमाप्नुयात्॥५०॥
आपद्गतो यदाऽप्यम्भो न लभेत्कुत्रचिन्नरः।
व्याधितो वाऽथवा कुर्याद्विष्णोर्नाम्नाऽपि मार्जनम्॥५१॥
उद्यापनविधिं कर्तुमशक्तो यो व्रतस्थितः। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्व्रतसम्पूर्तिहेतवे॥५२॥
अशक्तो दीपदानाय परदीपं प्रबोधयेत्। तस्य वा रक्षणं कुर्याद्वातादिभ्यः प्रयत्नतः॥५३॥
श्रीविष्णोः पूजनाऽभावे तुलसीधात्रिपूजनम्।
सर्वाऽभावे व्रती कुर्याद् ब्राह्मणानां गवामपि।
तस्याऽप्यभावे मनसि विष्णोर्नामाऽनुकीर्तनम्॥५४॥

विष्णु मंदिर किंवा शिवालय में रात्रि जागरण करें। शिव-विष्णु देवालय न मिले तब किसी देवालय में, दुर्गम अरण्य में, यदि दुर्गम अरण्य भी विपत्तिपूर्ण हो तब पीपल के पेड़ के नीचे, किंवा तुलसी अथवा विष्णु के पास विष्णुनाम कीर्त्तन करें। ऐसा करने वाला १००० गोदान फल प्राप्त करता है। विष्णु के निकट जो वाद्यध्वनि करता है, उसे बाजपेय यज्ञफललाभ होता है। जो वहां नृत्य करता है, उसे सर्वतीर्थस्नानफल लाभ होता है। जो मानव इन सब कार्य हेतु धन प्रदान करता है, उसे पूर्वोक्त सभी पुण्यों की प्राप्ति होती है। श्रवण तथा दर्शन से भी $\frac{१}{१६}$ फल की प्राप्ति होती है। व्रतारंभ करने पर मनुष्य यदि आपत्तिग्रस्त हो जाये, अथवा कहीं जल न मिले, व्याधि हो किंवा विघ्नादि हों, तब विष्णु का नाम उच्चारण करके क्षमा प्रार्थना करना चाहिये। जो व्रताचरण करने वाला व्यक्ति व्रत का उद्यापन करने में असमर्थ हो जाये, वह व्रत पूरणार्थ ब्राह्मण भोजन कराये। यदि दीपदान न कर सके, तब अन्य के दीपों को जलाये अथवा अन्य के जलाये दीपों को वायु आदि से बुझने से बचाये। जो विष्णु पूजन में असमर्थ हो, वह आमलकी किंवा तुलसी पूजन करें। उसके भी अभाव में वह व्रती मनुष्य ब्राह्मण तथा गौ की पूजा करे। उसके भी अभाव में मन ही मन विष्णु का नाम कीर्त्तन करना चाहिये।।४६-५४।।

नारद उवाच

ब्रह्मन्! ब्रूहि विशेषेण धर्मान् कार्त्तिकसम्भवान्।।५५।।

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमाससमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे कार्त्तिकव्रतप्रशंसावर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः।।१।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे ब्रह्मन्! कृपया कार्त्तिक मास से सम्भूत सभी धर्मों का विशेषतः वर्णन करिये।।५५।।

।।प्रथम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

द्वितीयोऽध्यायः

कार्त्तिक व्रतधर्म वर्णन

ब्रह्मोवाच

अथ कार्त्तिकमासस्य धर्मान्वक्ष्यामि नारद!। सम्प्राप्तं कार्त्तिकंदृष्ट्वापरान्नंयस्तुवर्जयेत्।।१।।
स तु मोक्षमवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा। सर्वेषामेव धर्माणांगुरुपूजा परा मता।
गुरुशुश्रूषया सर्वं प्राप्नोति ऋषिसत्तम!।।२।।
गुरौ तुष्टे च तुष्टाः स्युर्देवाः सर्वे सवासवाः। गुरौरुष्टेचरुष्टाःस्युर्देवाःसर्वेसवासवाः।।३।।
कार्त्तिके मासि सम्प्राप्ते कृत्वा कर्माणि भूरिशः।।४।।
अकृत्वा गुरुशुश्रूषां नरकानेव विन्दति। यत्किञ्चिद्वा समादिष्टो गुरुणा तत्समाचरेत्।।५।।
आज्ञप्तो गुरुणा विप्र! न तद्वाक्यं तु लङ्घयेत्। यदि दुःखादिकं प्राप्तंगुरुं तुशरणंव्रजेत्।।६।।
मातृत्वे च पितृत्वे च गुरुमेव स्मरेद्बुधः। गुरौन प्राप्यतेयत्तन्नान्यत्राऽपिहिलभ्यते।।७।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! अब कार्त्तिक मास का धर्म कहता हूं। कार्त्तिक मास आने पर जो व्यक्ति दूसरे के अन्न का त्याग करता है, उसे मोक्षलाभ होता है। इसमें कोई तर्क न करे। सभी धर्मों में गुरुपूजा श्रेष्ठ है। हे ऋषिप्रवर! एकमात्र गुरु सुश्रूषा से ही समस्त धर्मों की प्राप्ति हो जाती है। गुरु के प्रसन्न होने पर इन्द्र के साथ ही समस्त देवगण प्रसन्न हो जाते हैं। गुरु के रुष्ट होने पर सभी देवता कुपित हो जाते हैं। कार्त्तिक मास में भूरि-भूरि कर्म करके भी जो गुरु सेवा नहीं करता वह मनुष्य नरकगामी हो जाता है। जो कुछ आदेश गुरु करते हैं वही कर्त्तव्य है। हे विप्र! गुरु के द्वारा दिये गये आदेश का भी लंघन नहीं करना चाहिये। यदि कभी दुःख आदि

उपस्थित हो जाये, तब विद्वान् व्यक्ति गुरु की शरण ग्रहण करें। उनको सदा पिता-माता की तरह मानें। जो गुरु से प्राप्त नहीं होता, वह कहीं नहीं मिलता।।१-७।।

गुरुप्रसादात्सर्वं तु प्राप्नोत्येव न संशयः। मेधावी कपिलश्चैव सुमतिश्च महातपाः।
गौतमस्य गुरोः सम्यक्सेवयाऽमरतां गताः॥८॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्त्तिके विष्णुतत्परः। गुरुसेवां प्रकुर्वीत ततोमोक्षमवाप्नुयात्॥९॥
नरेभ्यो वैष्णवं धर्मं यो ददाति द्विजोत्तमः। ससागरमहीदाने तत्पुण्यं लभते हिसः॥१०॥
तिलधेनुं हिरण्यं च रजतं भूमिवाससी। गोप्रदानानि दास्यन्ति सर्वभावेन सुव्रत!॥११॥

एकमात्र गुरुकृपा से ही सब कुछ मिल जाता है। इसमें संशय नहीं है। मेधावी कपिल तथा महातपा सुमति ने गुरु गौतम की सम्यक् सेवा करके अमरत्व लाभ किया था। हे नारद! कार्त्तिक मास में सर्वप्रयत्न से विष्णु तत्पर होकर गुरु सेवा करें। उससे मोक्षलाभ होता है। जो द्विजोत्तम मानव गण को वैष्णवधर्म प्रदान करते हैं, वे ससागरा पृथिवीदान का फल प्राप्त करते हैं। हे सुव्रत! मानव काया-मन तथा वाक्य से तिल धेनु, स्वर्ण, चांदी, भूमि, वस्त्र तथा गौदान करे।।८-११।।

सर्वेषामेव दानानां कन्यादानं विशिष्यते। सहस्रमेव धेनूनां शतं चाऽनडुहां समम्॥१२॥
दशानडुत्समं यानं दशयानसमो हयः। हयदानसहस्रेभ्यो गजदानं विशिष्यते॥१३॥
गजदानसहस्राणां स्वर्णदानंच तत्समम्। स्वर्णदानसहस्राणांविद्यादानंच तत्समम्॥१४॥
विद्यादानात्कोटिगुणं भूमिदानं विशिष्यते। भूमिदानसहस्रेण गोप्रदानं विशिष्यते॥१५॥
गोप्रदानसहस्रेभ्यो ह्यन्नदानं विशिष्यते। अन्नाधारमिदंप्रोक्तं तस्माद्देयं तु कार्त्तिके॥१६॥
परान्नवर्जनादेव लभेच्चान्द्रायणं फलम्। दिने दिनेऽतिकृच्छ्रस्य फलम्प्राप्नोति मानवः॥१७॥

सभी दानों में से कन्यादान प्रशस्त है। सहस्र धेनु दान के समान १०० वृषों का दान माना गया है। दस वृषदान के समान है एक रथदान। दस रथदान के बराबर है एक अश्वदान। सहस्र अश्वदान के समान है एक (गज) हस्तिदान। सहस्र गजदान के तुल्य हैं स्वर्णदान। सहस्र स्वर्णदान के समान है विद्यादान तथा विद्यादान से भी भूमिदान करोड़ों गुना प्रशस्त है। सहस्रों भूमिदान से गोदान प्रशस्त है सहस्र गोदान की अपेक्षा तो अन्नदान प्रशंसनीय है। अतएव कार्त्तिक मास में सर्वदा प्रशंसनीय अन्नदान करें। कार्त्तिक मास में पराया अन्न वर्जन करने से चान्द्रायण व्रतफल होता है। इस मास में परान्नत्यागी व्यक्ति एक-एक दिन अतिकृच्छ्रव्रत फल की प्राप्ति करता है।।१२-१७।।

कार्त्तिकेवर्जयेन्मासंसन्धानञ्चविशेषतः। राक्षसींयोनिमाप्नोतिसकृन्मांसस्यभक्षणात्॥१८॥
प्रवृत्तानां तु भक्ष्याणांकार्त्तिके नियमेकृते। अवश्यं विष्णुरूपत्वं प्राप्यतेमोक्षदंपदम्॥१९॥
ब्राह्मणेभ्यो महीं दत्त्वा ग्रहणे सूर्यचन्द्रयोः। यत्फलंलभतेवत्स! तत्फलंभूमिशायिनः॥२०॥
भोजनं द्विजदम्पत्योःपूजनं चविलेपनैः। कम्बलानिचरत्नानिवासांसि विविधानिच॥२१॥
तूलिकाश्च प्रदातव्याः प्रच्छादनपटैः सह। उपानहावातपत्रं कार्त्तिके देहि सुव्रत!॥२२॥

कार्त्तिक मास में विशेषतः मद्यादि तथा मांस का त्याग करें। जो इस मास में एक बार भी मांसभक्षण करता है, उसे राक्षस योनि मिलती है। निषिद्ध वस्तुओं की तो बात ही क्या, कार्त्तिक मास में तो जो वस्तु निषिद्ध नहीं है, उसके भक्षणार्थ भी नियमित होने पर मोक्षप्रद विष्णु का सारूप्य अवश्य प्राप्त होता है। सूर्य-चन्द्रग्रहण में ब्राह्मण को भूमिदान देने का जो फल है, कार्त्तिक में भूमिशयन का भी वही फल मिलता है। कार्त्तिक में द्विजपत्नी की चन्दनादि लेपन द्वारा पूजा करें तथा कम्बल, रत्न, नानावस्त्र तथा चादर आदि के साथ शय्या प्रदान करें। हे सुव्रत! जूता तथा छत्र भी द्विजपत्नी को प्रदान करें।।१८-२२।।

कार्त्तिकेक्षितिशायीचहन्यात्पापंयुगार्जितम्। जागरं कार्त्तिकेमासियःकरोत्यरुणोदये।।२३।।
दामोदराग्रे देवर्षे! गोसहस्त्रफलं लभेत्। नदीस्नानं कथा विष्णोर्वैष्णवानाञ्चदर्शनम्।।२४।।
नभवेत्कार्त्तिके यस्यहरेत्पुण्यं दशाब्दिकम्। पुष्करंयःस्मरेत्प्राज्ञःकर्मणा मनसागिरा।।२५।।
कार्त्तिके मुनिशार्दूल! लक्षकोटिगुणं भवेत्। प्रयागोमाघमासे तु पुष्करंकार्त्तिके तथा।।२६।।
अवन्ती माधवेमासिहन्यात्पापंयुगार्जितम्। धन्यास्तेमानवालोकेकलिकालेविशेषतः।।२७।।
ये कुर्वन्ति नरा नित्यं प्रीत्यर्थं हरिपूजनम्। तारितास्तैश्च पितरो नरकाच्च न संशयः।।२८।।

कार्त्तिक मास में भूमि पर शयन करने वाले का युग-युग में अर्जित पाप नष्ट हो जाता है। कार्त्तिक मास में दामोदर के सामने जो नर अरुणोदय तक जागरण करता है, उसे सहस्र गोदान फल की प्राप्ति होती है। कार्त्तिक में जो नदी स्नान, विष्णु कथा श्रवण तथा वैष्णवों का दर्शन नहीं करते, उनका दस वर्ष का पुण्य नष्ट हो जाता है। कार्त्तिक मास में शरीर-मन-वाणी द्वारा जो मनुष्य पुष्कर का स्मरण करता है, उसे लक्षकोटिगुणित फललाभ होता है। हे मुनिशार्दूल! माघ में प्रयाग, कार्त्तिक में पुष्कर, मधुमास में अवन्ती में युगार्जित पापों का नाश हो जाता है। मानव विशेषतः कलिकाल में हरि की प्रसन्नता प्राप्ति हेतु कार्त्तिक में भगवान् का पूजन करता है, वह धन्य है। वह निःसंशय पितरों का नरक से उद्धार कर देता है।।२३-२८।।

क्षीरादिस्नपनंविष्णोःक्रियतेपितृकारणात्। कल्पकोटिं दिवंप्राप्यवसन्तित्रिदिवैःसह।।२९।।
कार्त्तिकेनाऽर्चितोयैस्तुकृष्णस्तुकमलेक्षणः। जन्मकोटिषु विप्रेन्द्र! नतेषांकमलागृहे।।३०।।
अहो मुष्टा विनष्टास्ते पतिताःकलिकन्दरे। यैर्नाऽर्चितोहरिर्भक्त्याकमलैरसितैः सितैः।।३१।।
पद्मेनैकेन देवेशं योऽर्चयेत्कमलापतिम्। वर्षायुतसहस्त्रस्य पापस्य कुरुते क्षयम्।
पुष्कराऽर्चनयोगेन श्वेतो मुक्तिमवाप ह।।३२।।

जो पितरों के उद्देश्य से हरि को क्षीर आदि से स्नान कराता है, वह देवगण के साथ कोटिकल्पकाल तक स्वर्ग में निवास करता है। जो व्यक्ति कार्त्तिक मास में कमलनयन कृष्ण की पूजा नहीं करता, करोड़ों जन्म तक कमला उसके गृह में नहीं आतीं। हे विप्रेन्द्र! जो लोग श्वेत तथा कृष्ण कमल से भगवत् पूजन नहीं करते, वे मूढ़ हैं। अवश्य ही वे कलिकाल में शीघ्रपतित होते हैं। जो मात्र एक कमल से भी देवेश कमलापति की पूजा करते हैं, उनका १०००० वर्ष का भी पाप क्षयीभूत हो जाता है। श्वेतराज ने मात्र एक पद्म से पूजा करके मुक्ति लाभ किया था।।२९-३२।।

अपराधसहस्त्राणि तथा सप्तशतानि च। पद्मेनैकेन देवेशः क्षमते प्रणतोऽर्चितः।।३३।।

तुलसीपत्रलक्षेण कार्त्तिके योऽर्चयेद्धरिम्। पत्रेपत्रे मुनिश्रेष्ठ! मौक्तिकं लभते फलम्॥३४॥
मुखेशिरसि देहेतु कृष्णोत्तीर्णांतुयोवहेत्। तुलसींकृष्णनिर्माल्यैर्योगात्रंपरिमार्जयेत्।
सर्वरोगैस्तथा पापैर्मुक्तो भवति मानवः॥३५॥
शङ्खोदकं हरेर्भक्तिर्निर्माल्यं पादयोर्जलम्। चन्दनं धूपशेषं च ब्रह्महत्यापहारकम्॥३६॥
कार्त्तिकेमासि विप्रेन्द्रप्रातःस्नानपरायणः। विप्रेभ्यश्चाऽन्नदानं तुकुर्याच्छक्त्यनुसारतः॥३७॥
सर्वेषामेव दानानामन्नदानं विशिष्यते। अन्नेन जायते लोकनैह्यन्नेवाऽभिवर्द्धते॥३८॥

एक हजार सात सौ अपराध करने वाला भी यदि एक ही कमल से देवेश विष्णु की अर्चना तथा प्रणाम करता है तब श्रीहरि उसे क्षमा कर देते हैं। हे मुनिवर! कार्त्तिक में एक लाख तुलसी से जो मनुष्य हरि पूजन करता है, उसे प्रत्येक तुलसीपत्र से मुक्तिफल लाभ होता है। जो मनुष्य विष्णु के लिये तुलसी चयन करता है तथा विष्णु को प्रदान करता है तथा उनका निर्माल्य मस्तक, मुख तथा देह पर धारण करता है तथा इस तुलसी से शरीर परिमार्जित करता है, उसके सभी रोग तथा पाप दूर हो जाते हैं। हरि के प्रति भक्ति, शंख जल, हरि निर्माल्य, पादोदक, चन्दन तथा धूपशेष—ये सब ब्रह्महत्या तक का नाश कर देते हैं। हे विप्रेन्द्र! कार्त्तिक मास में उठकर प्रातःस्नान करने वाला व्यक्ति शक्ति के अनुरूप ब्राह्मणों को अन्नदान करे। सभी दान में अन्नदान प्रशस्त है। अन्न से ही लोक उत्पन्न होते हैं तथा अन्न से ही लोक परिवर्द्धित होते हैं।।३३-३८।।

अन्नं हि सर्वभूतानां प्राणभूतं परं विदुः। अन्नदः सर्वदो लोके सर्वयज्ञादिकृद्भवेत्॥३९॥
तीर्थस्नानेनकिंतस्य देवयात्रादिनाऽपि किम्। सर्वं सम्पद्यते ब्रह्मन्नदानान्न संशयः॥४०॥
सत्यकेतुर्द्विजः पूर्वं चाऽन्नदानेन केवलम्। सर्वपुण्यफलम्प्राप्य मोक्षम्प्राप सुदुर्लभम्॥४१॥
कार्त्तिकव्रतनिष्ठस्तु कुर्याद्गोदानमुत्तमम्। व्रतं सम्पूर्णतां याति गोदानेन न संशयः॥४२॥

अन्न ही सर्वभूतसमूह का प्राणभूत है। अन्नदाता तो सर्वप्रदाता तथा याज्ञिकों में अग्रणी है। उसे तीर्थस्नान तथा देवयात्रा से क्या काम! हे ब्रह्मन्! एकमात्र अन्नदान से सब सम्पन्न होता है, इसमें सन्देह नहीं है। सत्यकेतु नामक द्विज ने पूर्वकाल में केवल अन्नदान से ही समस्त पुण्याफल लाभ किया था। साथ ही उनको सुदुर्लभ मोक्ष की भी प्राप्ति हो सकी थी। कार्त्तिक व्रताचरण करने वाला व्रती उत्तम गोदान करे। गोदान से व्रत पूर्ण हो जाता है। इसमें संशय नहीं है।।३९-४२।।

गोदानात्परमंदानं संसारार्णव तारकम्। नास्तिनारदलोकेऽस्मिन्सुशर्माब्राह्मणोयथा॥४३॥
कार्त्तिके मासिविप्रेन्द्र! दत्त्वा दानान्यनेकशः। हरिस्मृतिविहीनश्चेन्न पुनन्तिकदाचन॥४४॥
नामस्मरणमाहात्म्यं मयावक्तुं न शक्यते। पुष्करेण यथा पूर्वं नारकीयाश्च मोचिताः॥४५॥
गोविन्द! गोविन्द! हरे! मुरारे! गोविन्द! गोविन्द! मुकुन्द! कृष्ण!।
गोविन्द! गोविन्द! रथाङ्गपाणे! गोविन्द! दामोदर! माधवेति॥४६॥
श्लोकार्द्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम्।
कार्त्तिकेयः पठेन्मर्त्यः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः॥४७॥

यैर्न श्रुतं भागवतं पुराणं नाऽऽराधितो वै पुरुषः पुराणः।
हुतं मुखे नैव धरामराणां तेषां वृथा जन्म गतं नराणाम्॥४८॥
कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र! यस्तु गीतां पठेन्नरः। तस्यपुण्यफलं वक्तुं ममशक्तिर्नविद्यते॥४९॥
गीतायास्तु समं शास्त्रं न भूतं न भविष्यति। सर्वपापहरानित्यंगीतैकामोक्षदायिनी॥५०॥
एकेनाऽध्यायपाठेन सर्वपापकृतोऽपि च। मुच्यन्ते नरकाद्घोराज्जडोवै ब्राह्मणो यथा॥५१॥
शालिग्राम शिलादानं यः कुर्यात्कार्त्तिके मुने!।
तस्य पुण्यस्य विश्रान्तिर्विष्णुना न निरूपिता॥५२॥
शालिग्रामं समभ्यर्च्य श्रोत्रियाय महामुने!। दानं यः कुरुतेविप्र! तस्यपुण्यफलंश्रृणु॥५३॥
सप्तसागरपर्यन्तं भूदानाद्यत्फलं भवेत्। शालिग्रामशिलादानात्तत्फलं समवाप्नुयात्॥५४॥
शालिग्रामशिलादानात्कार्त्तिके ब्राह्मणी यथा। विधवा सधवाजाताविवाहेपञ्चमेऽहनि॥५५॥
तस्मात्तु कार्त्तिकेमासि स्नानदानपुरःसरम्। शालिग्रामशिलादानंकर्तव्यंनाऽत्रसंशयः॥५६॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्येब्रह्मनारद-सम्वादे कार्त्तिकव्रतधर्मनिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः।

—❋—

हे नारद! गोदान से बढ़कर संसार सागर पार कराने वाला इस लोक में अन्य कोई दान है ही नहीं। सुशर्मा नामक एक विप्र गोदान करके संसार सागर को पार कर गये थे। हे विप्रेन्द्र! मानव कार्त्तिक मास में अनेक दान करके भी हरिस्मरण किये बिना कदापि पवित्र नहीं होता। हरिनाम स्मरण के माहात्म्य वर्णन का सामर्थ्य मुझमें नहीं है। पुष्करक्षेत्र में तो नारकीय भी हरिस्मरण द्वारा मुक्त हो जाते हैं। कार्त्तिक में गोविन्द, गोविन्द, हरि, मुरारी, रथाङ्गपाणि, गोविन्द-गोविन्द, मुकुन्द कृष्ण, गोविन्द, दामोदर, माधव इस श्लोक को अथवा इसके आधे किंवा चौथाई श्लोक का जो मानव भक्ति श्रद्धान्वित होकर नित्य पाठ करता है, इसी से उसका भागवत पारायण भी सम्पन्न हो गया! जो लोग भागवत पुराण श्रवण, पुराणपुरुष की आराधना तथा सुरगण के मुख में हवन नहीं करते, उनका मानव जन्म व्यर्थ है। हे विप्रेन्द्र! जो कार्त्तिक में गीता पाठ करते हैं, उनका पुण्यफल मैं नहीं कह सकता। गीता के समान शास्त्र न तो है न होगा। अतः एकमात्र गीता ही सर्वपापहारिणी तथा मोक्षदा है। महापापी भी गीता के एक अध्याय का पाठ करके जड़ नामक ब्राह्मण की तरह नरक से छुटकारा पाते हैं। हे मुनिवर! जो नर कार्त्तिकमास में शालग्राम शिलादान करता है, उसकी पुण्य सीमा नहीं कही जा सकती। हे महामुनि! शालग्राम की सम्यक् पूजा करके जो श्रोत्रिय को वह दान करता है, उसका पूजा फल सुनें। वह सप्तसागर तक की भूमि को दान करने का फललाभ करता है। कार्त्तिक मास में शालग्राम शिलादान द्वारा एक ब्राह्मण पत्नी विवाह के पंचम दिन ही विधवा हो जाने पर भी पुनः सधवा हो गयी। अतः कार्त्तिक मास में स्नान-दान करके शालग्राम शिलादान करें।।४३-५६।।

।।द्वितीय अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

तृतीयोऽध्यायः

कार्त्तिक वैभववर्णन, अश्वत्थपूजन

ब्रह्मोवाच

भूयः शृणुष्व विप्रेन्द्र! कार्त्तिकस्य चवैभवम्। दशमीदिनमारभ्यदशम्यांतुसमापयेत्॥१॥
पौर्णमासीं समारभ्य पौर्णमास्यां समापयेत्।
आश्विनस्य हरिदिनीं समारभ्य तु भक्तिमान्॥२॥
दामोदरं नमस्कृत्य कुर्यात्सङ्कल्पमादितः। दामोदर! नमस्तेऽस्तु सर्वपापविनाशन!॥३॥
कार्त्तिकस्य व्रतं कर्तुमनुज्ञां दातुमर्हसि। निर्विघ्नं कुरुदेवेश आमासं पुरुषोत्तम!॥४॥
इतिसम्प्रार्थ्य विधिनाकार्त्तिकव्रतमाचरेत्। अनूरुं वदता प्रोक्तं भास्करेण श्रुतं मया।
कलौ च स्वर्गगमनकारणं श्रूयतां हि तत्॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे विप्रेन्द्र! पुनः कार्त्तिक माहात्म्य सुनो। जो व्रत दशमी से आरंभ करते हैं, उसे दशमी के ही दिन समाप्त करें। इसी प्रकार पूर्णिमा से प्रारंभ व्रत का समापन पूर्णिमा को ही करें। भक्तिमान मानव आश्विन मासीय संक्रान्ति के दिन यह प्रार्थना करें "हे दामोदर! सर्वपापनाशक! आपको प्रणाम! मुझे कार्त्तिक मास के व्रत को करने की आज्ञा दीजिये। हे देवेश! पुरुषोत्तम! मेरे व्रत को निर्विघ्न सम्पन्न करिये।" यह पाठ करके तथा प्रणाम करने के पश्चात् संकल्प करें। एवंविध कार्त्तिक व्रतारंभ करें। हे नारद! कलिकाल में यह व्रत स्वर्गप्राप्ति का कारण है। जब सूर्य ने अरुण को यह व्रत करने का आदेश दिया था तब मैंने इसे सुना था। अब तुम इसे सुनो॥१-५॥

सूर्य उवाच

द्वादशानां तु मासानां मार्गशीर्षोऽतिपुण्यदः॥६॥
तस्मात्पुण्यफलः प्रोक्तो वैशाखो नर्मदातटे। ततोलक्षगुणः प्रोक्तः प्रयागेमाघमासकः॥७॥
तस्मान्महाफलःप्रोक्तः कार्त्तिको जलमात्रके। एकतः सर्वदानानिव्रतानिनियमास्तथा॥८॥
एकतः कार्तिकस्नानं ब्रह्मणातुलया धृतम्। सन्ततिश्चैव सम्पत्तिः कलौयेषांप्रजायते॥९॥
अवश्यं तैः कृतं विद्धिकार्त्तिकस्नानमादरात्। स्नानं चदीपदानं च तुलसीवनपालनम्॥१०॥
भूमिशय्या ब्रह्मचर्यं तथाद्विदलवर्जनम्। विष्णुसङ्कीर्तन सत्यं पुराणश्रवणं तथा॥११॥
कार्त्तिकेमासिकुर्वन्तिजीवन्मुक्तास्तएवहि। नकार्त्तिकसमंधर्म्यमर्थ्यंकार्त्तिकात्परम्॥१२॥
न कार्त्तिकसमं काम्यं मोक्षदानं न कार्त्तिकात्। युधिष्ठिरेण धर्मार्थमर्थार्थं चध्रुवेणच॥१३॥
श्रीकृष्णेन तु कामार्थं मोक्षार्थं नारदेन च। कृतमेतद्व्रतंतस्माच्छ्रेष्ठंकृष्णप्रियं च हि॥१४॥

सूर्य कहते हैं—बारह मासों में से मार्गशीर्ष अत्युत्तम है। यह पुण्यप्रद है। इससे पुण्यप्रद है वैशाख।

विशेष करके वैशाख नर्मदा तट पर अधिक पुण्यप्रद होता है। उससे लाखों गुणित फलद है माघ में प्रयाग स्नानादि। उससे किसी भी जल में कार्त्तिक स्नान अधिक पुण्यफलप्रद है। ब्रह्मा ने एक ओर कार्त्तिक स्नान तथा दूसरी ओर समस्त दान, समस्त व्रत तथा नियमों को रखकर तौला था। कलिकाल में जिनके पास सम्पत्ति तथा संगति देखी जाती है, उन्होंने कार्त्तिक मास में सादर स्नान किया था, यह प्रतीत होता है। जो कार्त्तिक में स्नान दीपदान, तुलसीकानन रक्षा-पालन, भूमिशयन, ब्रह्मचर्य, दाल का वर्जन, विष्णु संकीर्त्तन, सत्यभाषण तथा पुराण श्रवण करते हैं, वे निश्चित रूप से जीवन्मुक्त ही हैं। कार्त्तिक के समान धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष साधक अन्य मास नहीं है। युधिष्ठिर ने धर्म तथा ध्रुव अर्थसिद्धि हेतु, श्रीकृष्ण की कामना पूर्त्ति के लिये तथा नारद ने मोक्ष की अभिलाषा से कार्त्तिक व्रत सम्पन्न किया था। तभी कार्त्तिक विष्णुप्रिय है तथा श्रेष्ठ मास है।।६-१४।।

अरुण उवाच

ब्रूहि भास्कर! सर्वात्मन्कदाऽऽरभ्यव्रतंकृतम्। सफलंजायतेसम्यक्काचपूज्याऽत्रदेवता॥१५॥

अरुण कहते हैं—हे भास्कर! उन लोगों ने किस समय इस व्रत का आरंभ किया था? उनका व्रत कैसे सफल हो सका? कौन देवता इस व्रत द्वारा पूजित हुये? हे ब्रह्मन्! यह सब कहिये।।१५।।

भास्कर उवाच

अहं विष्णुश्च शर्वश्चदेवीविघ्नेश्वरस्तथा। एकोऽहं पञ्चधाजातोनाट्येसूत्रधरो यथा॥१६॥
अस्माकं सर्व एवैतेभेदा विद्धिखगेश्वर!। तस्मात्सौरैश्चगाणेशैःशाक्तैःशैवैश्चवैष्णवैः॥१७॥
कर्तव्यं कार्त्तिकस्नानं सर्वपापापनुत्तये। सूर्यस्य प्रीतये कार्यं तुलासंस्थे दिवाकरे॥१८॥
इषपूर्णां समारभ्ययावत्कार्त्तिकपूर्णिमा। तावत्स्नानं विधातव्यं शिवसन्तुष्टये नरैः॥१९॥
देवीपक्षं समारभ्य महारात्रिचतुर्दशी। तावत्स्नानं विधातव्यं देवी सम्प्रीयतामिति॥२०॥
गणपक्षं समारभ्य कृष्णा याकार्त्तिके भवेत्। चतुर्थी तावदेव स्यात्स्नानंगणपतुष्टये॥२१॥
एकादशींसमारभ्यआश्विनस्याऽसितेतराम्। एकादश्यांकार्त्तिकस्यशुक्लायांपरिपूर्यते।
कृतं येन तु तस्य स्यात्परितुष्टो जनार्दनः॥२२॥

भास्कर देव कहते हैं—हे खगेश्वर! मैं, विष्णु, ईशान, देवी तथा गणेश सूत्रधार के नाट्य की तरह एक होकर भी पंचधा विभक्त हो गये हैं। इस सब को मेरा ही पारस्परिक भेद जानो। अतः निखिल पापों के नाश के लिये सौर, गाणपत्य, शाक्त, शैव, वैष्णव सम्प्रदाय के लोग कार्त्तिक स्नान का आचरण करेंगे। सूर्य की प्रसन्नता पाने के लिये आश्विन पूर्णिमा से लगाकर कार्त्तिक पूर्णिमा पर्यन्त कार्त्तिक स्नान करें। इस तरह से शिव सन्तोषार्थ भी मनुष्य पूर्वोक्त रूप से कार्त्तिक स्नान सम्पन्न करे। इसके अतिरिक्त देवीपक्ष से प्रारंभ करके महारात्रि की चतुर्दशी तक देवी की प्रसन्नता के लिये तथा गणपक्ष से प्रारंभ करके कार्त्तिक कृष्ण चतुर्दशी पर्यन्त गणेश की प्रसन्नता हेतु कार्त्तिक स्नान करना चाहिये। आश्विन मास की शुक्ला एकादशी से लगाकर कार्त्तिक शुक्ला एकादशी पर्यन्त विष्णु की प्रसन्नता हेतु जो मानव कार्त्तिक स्नान करता है विष्णुदेव उस पर प्रसन्न हो जाते हैं।।१६-२२।।

न कार्त्तिक समो मासो न काशीसदृशी पुरी। न प्रयागसमं तीर्थं न देवः केशवात्परः॥२३॥
प्रसङ्गाद्वाबलात्कारैर्ज्ञात्वाज्ञात्वाकृतंभवेत्। स्नानंकार्त्तिकमासस्यनपश्येद्यमयातनाम्॥२४॥
स्नानार्थं चेन्न सामर्थ्यं दत्वाऽन्यस्मै धनादिकम्।
स्नातस्य तस्य हस्तस्य ग्रहणात्पुण्यभाग्भवेत्॥२५॥
अथवाकार्त्तिकस्नानं ये कुर्वन्तिद्विजातयः। तेषांप्रावरणंदत्त्वास्नानजंफलमाप्नुयात्॥२६॥
राधादामोदरः पूज्यः कार्त्तिके तु विशेषतः॥२७॥

कार्त्तिक के समान मास नहीं है, काशी के समान पुरी नहीं है, प्रयाग के समान तीर्थ नहीं है, केशव के समान देवता नहीं है। प्रसंगपूर्वक अथवा बलात्, किंवा जानबूझ कर अथवा अनजाने में हो, चाहे जैसे भी हो, कार्त्तिक स्नान करने वाला यमयातना भोग नहीं करता। यदि स्नान का सामर्थ्य न हो, तब अन्य व्यक्ति को धन देकर उसके हाथ से उसका पुण्य ग्रहण करें अथवा जो द्विज कार्त्तिक स्नान करते हैं, उनको शीतवस्त्र (जाड़े का गर्म वस्त्र) प्रदान करें। विशेषतः कार्त्तिक मास में राधा तथा दामोदर का पूजन करने से स्नानफल प्राप्त होता है।।२३-२७।।

स्वर्णस्य वाऽथ रौप्यस्याऽप्यभावे शुल्बजामपि।
मृज्जां वा चित्रजातां वाऽथ वा पिष्टविचित्रिताम्॥२८॥
दामोदरस्यराधायास्तुलस्यधोऽर्चयन्ति ये। मूर्तिं ते तु नराज्ञेयाजीवन्मुक्तानसंशयः॥२९॥
अपि पापसहस्राढ्यःकार्त्तिकस्नानतोनरः।
मुक्तोऽवश्यंसभवतिनाऽत्रकार्याविचारणा॥३०॥
तुलस्यभावे कर्तव्यापूजा धात्रीतले खग!। मुख्यपूजाविधानं तु कर्तव्यं सूर्यमण्डले॥३१॥
अप्रत्यक्षाः सर्वदेवाः प्रत्यक्षो भगवानयम्।
सर्वे देवाःकालवशाःकालकालोदिवाकरः॥३२॥
एतदाराधनेऽशक्तः प्रतिमां पूजयेन्नरः। प्रतिमातोऽधिकं पुण्यं ब्राह्मणस्य तु पूजने॥३३॥

अथवा स्वर्ण, चांदी अथवा ताम्र किंवा मृत्तिका से राधा-दामोदर की चित्र-विचित्रित प्रतिमा बनाकर तुलसी वृक्ष के नीचे उनकी स्थापना करें तथा वहीं पूजा करें। वह पूजक जीवन्मुक्त कहलाता है, इसमें सन्देह नहीं है। भले ही व्यक्ति हजारों पापों से युक्त हो, कार्त्तिक स्नान के फल से वह अवश्य मुक्त होगा। इस विषय में विचार वितर्कादि कुछ भी नहीं करना चाहिये। हे खग! यदि तुलसी प्राप्त न हो, तब आमलकी से भी राधा-दामोदर मूर्त्ति की पूजा की जा सकती है। मुख्य पूजा सूर्यमण्डल में करनी चाहिये। सभी देवता अप्रत्यक्ष हैं, किन्तु भगवान् भास्कर सबको प्रत्यक्ष रहते हैं। सभी देवगण काल के वशीभूत हैं, तथापि प्रभु दिवाकर तो काल के भी काल हैं! जो मनुष्य इनकी आराधना में असमर्थ है, वह प्रतिमा निर्माण द्वारा पूजा करे। ब्राह्मण पूजन करने से प्रतिमा पूजन की अपेक्षा अधिक पुण्य प्राप्त होता है।।२८-३३।।

दरिद्रो दानपात्रं स्याद्विद्यावांस्तुविशेषतः। विप्राभावेपूजनीयागावःकृष्णामनोहराः॥३४॥

विष्णोमूर्तिर्जङ्गमतः स्थावरा तु प्रशस्यते। शूद्रस्थापितमूर्तीनांनमस्कारंकरोतियः।
पितृभिर्निरयं याति दशपूर्वैर्दशापरैः॥३५॥
शूद्रार्चितस्य संस्पर्शाद्दहेदासप्तमं कुलम्॥३६॥

दरिद्र ही दान का पात्र है, तथापि यदि दरिद्र विद्वान् भी है, तब वह दान के लिये उत्तम पात्र है। विप्र का अभाव न हो, तब मनोहर कृष्ण गौ की पूजा करनी चाहिये। जंगम मूर्त्ति की अपेक्षा विष्णु की दारुमयी मूर्त्ति प्रशस्त है। जो व्यक्ति शूद्र द्वारा स्थापित मूर्त्ति को प्रणाम करता है, वह दस पीढ़ी पूर्व वाले पूर्वजों तथा आगामी दस पीढ़ी के वंशजों के साथ नरकगामी होता है। शूद्र द्वारा अर्चित मूर्त्ति के संस्पर्श से वह सात कुल पर्यन्त दग्ध हो जाता है।।३४-३६।।

तस्माद्विचार्य्य विप्रैर्या स्थापिता तां समर्चयेत्।
ततोऽपि या देवताभिः कृता सा भुक्तिमुक्तिदा॥३७॥
मूर्त्यभावे पूजनीयोऽश्वत्थो वाऽथ वटोऽथ वा।
अश्वत्थरूपी विष्णुः स्याद्वटरूपी शिवो यतः॥३८॥
कार्त्तिके तुलसीशाकं ताम्बूलं वा नराधमः।
अज्ञानाज्ज्ञानतो वाऽपि भुञ्जानो निरयं व्रजेत्॥३९॥
शालग्रामशिलाचक्रे नित्यं सन्निहितो हरिः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शालग्रामं प्रपूजयेत्॥४०॥
रुद्रशापवशाद्गावो विष्ठाभक्षणतत्पराः। तथाऽपि ताः पूजनीया लोकद्वयफलप्रदाः॥४१॥
ब्रह्मांऽशकसमुद्भूते पालाशे यस्तु भोजनम्।
कुर्यात्कार्तिकमासेऽसौ विष्णुलोकं प्रयास्यति॥४२॥

इसलिये पूजक को चाहिये कि वह ब्राह्मण द्वारा प्रतिष्ठित मूर्त्ति को जानकर उसकी पूजा करें। देवगण द्वारा स्थापित तथा भुक्ति-मुक्तिप्रद मूर्त्ति पूर्वापेक्षा अधिक उत्तम है। मूर्त्ति का अभाव होने पर पीपल किंवा वट वृक्ष की पूजा करें, क्योंकि विष्णु अश्वत्थरूप से तथा शिव वटवृक्ष रूप से विराजमान हैं। जानबूझ कर अथवा अनजाने में जो नराधम कार्त्तिक में तुलसी शाक अथवा ताम्बूल भक्षण करता है, उसे नरकगामी होना पड़ेगा। शालग्राम शिलाचक्र में हरि सदा अधिष्ठित रहते हैं। अतः सर्वप्रयत्न से शालग्राम की पूजा करनी चाहिये। रुद्रशाप से गौयें विष्ठाभोजी हो गयीं, तथापि इहलोक एवं परलोक साधनार्थ गौयें ही पूज्य हैं। कार्त्तिकमास में जो मानव ब्रह्मा के अंश से उत्पन्न पलाशपत्र पर भोजन करता है, उसे विष्णुलोक की प्राप्ति होती है।।३७-४२।।

अश्वत्थरूपी भगवान्वटरूपी सदाशिवः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकार्त्तिकेऽश्वत्थमर्चयेत्॥४३॥
या नारी कार्त्तिके मासिलक्षंकुर्यात्प्रदक्षिणाः। राधादामोदरं पूज्य मन्दवारे च तत्तले॥४४॥
दम्पती भोजयेद्राधादामोदरस्वरूपिणौ। भोजयित्वा सपत्नीकान्पश्चाद्भुञ्जीतवाग्यता॥४५॥
वन्ध्याऽपि लभतेपुत्रमितरासांतुकाकथा। सदासन्निहितोविष्णुर्द्विपत्सुब्राह्मणेयथा॥४६॥

बोधिद्रुमे पादपेषु शालग्रामे शिलासु च। तस्मादश्वत्थमूलेवै कर्तव्यं विष्णुपूजनम्॥४७॥
अश्वत्थपूजास्पर्शेन कर्त्तव्या शनिवासरे। अन्यवारेऽश्वत्थसङ्गाद्दरिद्रो जायते नरः॥४८॥
स्नानं जागरणं दीपं तुलसीवनपालनम्। कार्त्तिके मासि कुवन्तिते नराविष्णुमूर्तयः॥४९॥
सम्मार्जनंविष्णुगृहेस्वस्तिकादिनिवेदनम्। विष्णोःपूजांचयेकुयुर्जीवन्मुक्तास्तुतेनराः॥५०॥
स्नानकालं प्रवक्ष्यामि तीर्थादिषु च यत्फलम्।
स्नानधर्माश्च ये केचित्तान्सर्वान्मे निबोधत॥५१॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे कार्त्तिकवैभववर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥
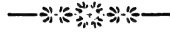
भगवान् विष्णु पीपल रूप तथा भगवान् शिव वटवृक्ष रूप हैं। इसलिये कार्तिक मास में सर्वप्रयत्न पूर्वक पीपल वृक्ष की पूजा करनी चाहिये। जो नारी कार्तिक मास के शनिवार को यत्नतः राधा दामोदर का पूजन करके उनकी एक लाख प्रदक्षिणा तथा राधा-दामोदर की भावना ब्राह्मण दम्पति में करके उनको भोजन कराती है तथा तदनन्तर स्वयं भोजन करती है, वह वन्ध्या, भले ही हो तथापि पुत्रवती हो जाती है। द्विपदद्विज, बोधिवृक्ष, शालग्राम शिला में विष्णु सदैव विराजमान रहते हैं। अतः पीपल वृक्ष के नीचे विष्णुपूजन करना चाहिये। एकमात्र शनिवार को ही पीपल का स्पर्श एवं पूजन करें। अन्य वारों के दिन उसका स्पर्श करने वाला दरिद्र हो जाता है। जो कार्तिक मास में स्नान, जागरण, दीपदान, तुलसी कानन रक्षण-पालन कार्य करते हैं, वे साक्षात् विष्णु ही हैं। जो विष्णु के देवालय का मार्जन, स्वस्तिकादि अर्पण तथा विष्णुपूजा करते हैं, वे जीवन्मुक्त हैं। अब तीर्थों में स्नान काल, स्नान फल तथा स्नानधर्मादि को जानो।।४३-५१।।

।।तृतीय अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुर्थोऽध्यायः

कार्त्तिक स्नानविधि, कार्त्तिकमास का श्रेष्ठत्व, कावेरी महत्व वर्णन

ब्रह्मोवाच

नाडीद्वयावशिष्टायांरात्र्यांगच्छेज्जलाशयम्। तुलसीमृत्तिकायुक्तः सवस्त्रकलशोमुने॥१॥
आगत्य तोयनिकटे तीरे संस्थाप्यपात्रकम्। पादप्रक्षालनंकृत्वादेशकालादिचोच्चरेत्॥२॥

स्मरेद्गङ्गाकादिनद्योविष्णुशर्वादि देवताः। नाभिमात्रेजलेस्थित्वा मन्त्रमेतमुदीरयेत्।।३।।
कार्त्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन!। प्रीत्यर्थं तव देवेश! दामोदर! मया सह।।४।।
नित्ये नैमित्तिके कृत्वाकार्त्तिकेपापनाशन। स्नानं चार्घं प्रदास्यामि निर्विघ्नंकुरुकेशव।।५।।

ब्रह्मा कहते हैं—जब रात्रिकाल नाड़ीद्वय बाकी रहे, तब तुलसी की मिट्टी, वस्त्र तथा कलस लेकर जलाशय नदी आदि तक जाये। तदनन्तर जल के पास आकर तट पर पात्र रखकर देश-काल का उल्लेख करें। तत्पश्चात् गंगादि नदी तथा विष्णु-शिव आदि देवगण का स्मरण करके नाभिमात्र जल में खड़े होकर मन्त्रोच्चार करे—"हे जनार्दन! आपकी प्रसन्नता के लिये मैं प्रातःस्नान करूंगा। हे देवेश दामोदर! नित्य-नैमित्तिक क्रियाओं के अनुष्ठान को सम्पन्न करके सपत्नीक जनार्दन के उद्देश्य से स्नान तथा अर्घ्यदान करूंगा। हे पापनाशन! आप उसे विघ्नरहित करिये—"।।१-५।।

तीर्थादिदेवताभ्यश्चक्रमादर्घ्यादिदापयेत्। गृहाणाऽर्घ्यमया दत्तं राधया सहितोहरे!।।६।।
नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने। नमस्तेऽस्तुहृषीकेश! गृहाणार्घ्यनमोऽस्तुते।।७।।
व्रतिनः कार्त्तिके मासि स्नातस्यविधिवन्मम। गृहाणाऽर्घ्यं मयादत्तंदनुजेन्द्रनिषूदन!।।८।।
किरणा धूतपापा चतुण्यतोया सरस्वती। गङ्गा च यमुना चैव पञ्चनद्यः पुनन्तुमाम्।।९।।
अन्यासाञ्च नदीनाञ्च दद्यादर्घ्यं यथाविधि। जाह्नवीस्मरणं कुर्यात्सर्वतीर्थेषु मानवः।।१०।।
नाऽन्यत्तीर्थं तुजाह्नव्यांस्मरणीयंकदाचन। एतान्मन्त्रासमुच्चार्य मलस्नानंसमाचरेत्।।११।।

तत्पश्चात् तीर्थ देवताओं के उद्देश्य से क्रमशः अर्घ्यादि प्रदान करें। तत्पश्चात् कहें—"हे प्रभु कमलनाभ आपको प्रणाम, हे जलशायी आपको प्रणाम! हे हृषीकेश! मेरे द्वारा प्रदत्त अर्घ्य ग्रहण करिये। आपको नमस्कार करता हूं।" इस मन्त्र से राधा-दामोदर को अर्घ्य देना चाहिये। इसके अनन्तर "विगतपापा, किरणा, पुण्यतोया सरस्वती, गंगा तथा यमुना रूप पंच नदियां मुझे पवित्र करें" यह कहकर पंच नदियों को यथाविधि अर्घ्य प्रदान करें। मनुष्य सभी तीर्थजल में गंगा की भावना कर सकता है, परन्तु गंगाजल में किसी अन्य तीर्थ की भावना कभी नहीं करनी चाहिये। यह मन्त्र सम्यक्तः उच्चारण करके स्नान करे जिससे शरीर का मैल हट जाये।।६-११।।

मृत्स्नानं चपितृस्नानंगुरुस्नानंततः परम्। ततस्तुपावमानीभिरभिषिञ्चेत्स्वमस्तकम्।।१२।।
अघमर्षणकं कृत्वा स्नानाङ्गं तर्पणं तथा। ततः पुरुषसूक्तेन जलं शिरसि सिञ्चयेत्।।१३।।
ततस्तु बहिरागत्य तीर्थं शिरसि निक्षिपेत्। तीर्थं पीत्वा त्रिवारन्तु तुलसीं गृह्य पाणिना।।१४।।
ततो जलाद्विनिष्क्रम्य चाञ्चलं पीडयेद्बहिः। यन्मयादूषितं तोयं शारीरमलसञ्चयैः।।१५।।
तद्दोषपरिहार्थं यक्ष्मणं तर्पयाम्यहम्। वस्त्रनिष्पीडनं कृत्वाकुर्याच्च तिलकादिकम्।।१६।।

तदनन्तर क्रमशः मृत्तिकास्नान, पितृस्नान एवं गुरुस्नान करना चाहिये। पहले पावमानी सूक्त से अपने मस्तक का अभिषेक, तदनन्तर अघमर्षण मन्त्र से स्नानादि तर्पण, तदनन्तर पुरुषसूक्त से मस्तक का जलसिंचन करना चाहिये। तत्पश्चात् कुछ बाहर निकलकर मस्तक पर तीर्थजल प्रदान, तीर्थ जलपान, हाथों से तुलसी ग्रहण करके बाहर आये और पहने वस्त्र का आंचल निचोड़े। वस्त्रांचल निचोड़ते समय मूलोक्त श्लोक पढ़ें।

"यन्मयादूषितं तोयं शारीरमल सञ्चयैः। तद्दोष परिहार्थं यक्ष्मणं तर्पयाम्यहम्।।"

तदनन्तर वस्त्र निचोड़कर तिलक लगाये।।१२-१६।।

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे कार्त्तिकस्नानजम्फलम्। अरुणं प्रतिसूर्येण यदुक्तं च सविस्तरम्॥१७॥

सूत जी कहते हैं—हे ऋषिगण! भगवान् दिवाकर ने अरुण से जिस प्रकार सविस्तार कहा था, वह कार्त्तिक स्नानफल कहता हूं। सुनिये!।।१७।।

अरुण उवाच

कस्मिंस्तीर्थे विशेषेण फलं कार्त्तिकसम्भवम्?।
क्षेत्रे वा एतदाऽऽख्याहि भगवन्स्नानयोगतः॥१८॥

अरुण कहते हैं—हे प्रभो! किस तीर्थ में विशेषतः कार्त्तिक स्नान का क्या फल है वह कहिये।।१८।।

सूर्य उवाच

यत्र कुत्राऽपि कर्तव्यंजलेत्नानंतु कार्तिके। उष्णोदकेन कर्तव्यंस्नानंकुत्राऽपिकार्त्तिके॥१९॥
ततो दशगुणं पुण्यं शीततोयनिमज्जनात्। ततः शतगुणं पुण्यं बहिःकूपोदके कृतम्॥२०॥
कूपात्सहस्त्रगुणितं फलं वापीनिषेकतः। ततोऽयुतगुणं पुण्यं तडागस्नानतो भवेत्॥२१॥
ततो दशगुणं पुण्यं निर्झरेषु निमज्जनात्। ततोऽधिकतरं पुण्यं नदीस्नानस्यकार्त्तिके॥२२॥
नद्या दशगुणं प्रोक्तं तीर्थस्नानं खगोत्तम!। ततो दशगुणं पुण्यं नद्योर्यत्र च सङ्गमः॥२३॥

सूर्यदेव कहते हैं—कार्तिक मास में जिस किसी स्थान में अथवा किसी भी जल में स्नान किया जा सकता है। कार्त्तिक मास में शीतल जल में स्नान की अपेक्षा उष्ण जल स्नान से दशगुणित पुण्य प्राप्त होता है। बहिर्देशस्थ कूप में स्नान करने पर उसकी अपेक्षा भी दस गुना फल मिलता है। वापी स्नान करने से कूप स्नान की अपेक्षा सहस्र गुणित फल मिलता है। तड़ाग स्नान से तो उसकी भी अपेक्षा १०००० गुना फल लाभ होगा। झरने में स्नान द्वारा पूर्वोक्त पुण्य का दस गुना फल मिलेगा। कार्त्तिक में नदी स्नान करने से और भी अधिक पुण्य की प्राप्ति होती है। हे खगोत्तम! नदी स्नान से भी दस गुना पुण्य तीर्थ स्नान से मिलता है। उससे भी दसगुणा पुण्य वहां मिलता है, जहां नदी संगम है।।१९-२३।।

नदीत्रयस्य संयोगे पुण्यस्याऽन्तो न विद्यते।
सिन्धुः कृष्णा च वेणी च यमुना च सरस्वती॥२४॥
गोदावरी विपाशा च नर्मदा तमसा मही। कावेरी सरयूः शिप्रा तथा चर्मण्वतीनदी॥२५॥
वितस्ता वेदिकाशोणोवेत्रवत्यपराजिता। गण्डकीगोमती पूर्णा ब्रह्मपुत्रासरोवरम्॥२६॥
वाग्मती च शतद्रुश्च तथा बदरिकाश्रमः। दुर्लभाः कार्त्तिकेत्वेते तीर्थान्यथनिबोधमे॥२७॥
सर्वेभ्यश्च स्थलेभ्यश्च आर्यावर्तन्तु पुण्यदम्।
कोल्हापुरी ततःश्रेष्ठा ततः काञ्चीद्वयं स्मृतम्॥२८॥

अनन्तसेनवसतिर्वराहक्षेत्रमेव च। चक्रक्षेत्रं ततः पुण्यं मुक्तिक्षेत्रं ततोऽधिकम्॥२९॥
अवन्तिकाततः श्रेष्ठाततोबदरिकाश्रमः। अयोध्या च ततःश्रेष्ठागङ्गाद्वारंततोऽधिकम्॥३०॥
ततः कनखलं तीर्थं ततो मधुपुरी वरा। एकोऽपि कार्त्तिको मासो मथुरायमुनाजले॥३१॥
यैः स्नातस्तेतु वैकुण्ठेबहुकालंवसन्तिहि। राधादामोदरस्तत्रस्वयं स्नातस्तुकार्त्तिके॥३२॥
अतो मधुपुरी श्रेष्ठा यमुना च विशेषतः॥३३॥

तथापि तीन नदी के संगमस्थल पर (त्रिवेणी-प्रयाग) स्नान का जो फल है, वह असीम है। सिन्धु, कृष्णा, वेणा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, विपाशा, नर्मदा, तमसा, मही, कावेरी, सरयु, शिप्रा, चर्मण्वती, वितस्ता, वेदिका, शोण, वेत्रवती, अपराजिता, गण्डकी, गोमती, पूर्णा, ब्रह्मपुत्र, मानस सरोवर, वाग्मती, शतद्रु, बदरिकाश्रम ये सभी तीर्थ कार्तिक मास में दुर्लभ हैं। तदनन्तर अन्य तीर्थों के सम्बन्ध में सुनें। सभी स्थानों की तुलना में आर्यावर्त्त अत्यन्त पुण्यप्रद है। यहां पर भी कोल्हापुर, काञ्चीद्वय (दोनों कांची), अनन्तसेन वसति(?), वराहक्षेत्र, चक्रक्षेत्र, मुक्तिक्षेत्र, अवन्तिका, बदरिकाश्रम, अयोध्या, गंगाद्वार, कनखल, मधुपुरी (मथुरा), ये स्थान क्रमशः श्रेष्ठ हैं। इनमें से जो व्यक्ति कार्तिक मास में मथुरा के यमुनाजल में एक बार भी स्नान करता है, वह दीर्घकाल तक वैकुण्ठ में निवास करता है। कार्तिक मास में स्वयं राधा-दामोदर भी मथुरा में यमुना स्नान करते हैं। अतः मधुपुरी मथुरा तथा विशेष रूप से यमुना श्रेष्ठ है।।२४-३३।।

द्वारावती ततः श्रेष्ठा प्रत्यहं स्नाति केशवः। षोडशस्त्रीसहस्त्रेण सार्द्धं यादवसंयुतः॥३४॥
द्वारकायांमृत्तिकायास्तिलकोयेनमस्तके। धार्यतेऽसौनरो ज्ञेयो जीवन्मुक्तोनसंशयः।
द्वारकास्नानमाहात्म्यं न वक्तुं शक्यते मया॥३५॥
गोविन्दार्पितचित्तानां जायते पुण्यभास्करा।
ततो भागीरथी श्रेष्ठा यत्र विन्ध्येन सङ्गता॥३६॥
तस्माद्दशगुणं पुण्यं तीर्थराजेऽत्र जायते॥३७॥
कलौ दशसहस्त्राऽन्ते विष्णुस्त्यक्ष्यतिमेदिनीम्। तदर्द्धंजाह्नवीतोयंतदर्धंदेवतागणाः॥३८॥
यावत्तिष्ठतिगङ्गाऽत्रतावत्तीर्थानिसन्तिच। स्वस्वस्थाने नृणाम्पापंतावदेवहरन्तिच॥३९॥
यदैवगङ्गानष्टा स्यात्कोवातत्पापमाहरेत्। विचार्यैवं सुतीर्थानिगमिष्यन्ति धरातले॥४०॥

इरावती यमुना से श्रेष्ठ है। १६००० स्त्रियों तथा यादवों के साथ केशव यहीं स्नान करते हैं। जो मानव द्वारका की मिट्टी से मस्तक पर तिलक लगाता है, वह जीवन्मुक्त है, इसमें तनिक सन्देह नहीं है। यहां तक कि मैं भी द्वारिका का माहात्म्य वर्णन नहीं कर सकता। जिनका चित्त गोविन्द को अर्पित है, उनके हृदय में ज्ञानरूपी सूर्य का उदय होता है। द्वारावती से भागीरथी श्रेष्ठ है। यह भागीरथी विन्ध्यपर्वत से संगत है। द्वारावती से भी दसगुणित अधिक पुण्य इस तीर्थराज भागीरथी में विद्यमान है। कलिकाल का १०००० वर्ष व्यतीत हो जाने पर विष्णु पृथिवी त्याग कर देंगे। इसके आधे काल में (५००० वर्ष में) जाह्नवी जल तथा उससे आधे काल में ग्राम्यदेवगण पृथिवी का त्याग कर देंगे। पृथिवी पर जब तक गंगा रहेगी, तब तक ही तीर्थ समूह भी अपने-अपने स्थान पर स्थित रहकर वहां मनुष्यों का पाप दग्ध करते रहेंगे। गंगा जब चली जायेंगी,

तब कौन मनुष्यों का पाप हरण करेगा? धरातल पर उत्तम तीर्थ विद्यमान हैं, यही विचार करके गंगादेवी धरातल पर अवतीर्ण हो गयीं।।३४-४०।।

तस्मान्मुनीश्वराः सर्वे यावत्तिष्ठति जाह्नवी।
तावच्च क्रियतां धर्मस्ततो भूमौ निलीयताम्।।४१।।
समाधिं गृह्य सुदृढांयावत्कृतयुगम्भवेत्। अन्यथा कलिकालेन भ्रंशनीयोभवेत्सुधीः।।४२।।

हे मुनीश्वरगण! जब तक गंगा स्थित हैं, तब तक आप सब धर्मकार्य करिये। तत्पश्चात् गंगादेवी के गमन के पश्चात् आपलोग भी भूमि में विलीन हो जायें। स्थिर बुद्धि व्यक्ति सुदृढ़ता पूर्वक समाधिस्थित होकर सत्ययुग तक विद्यमान रहे। अन्यथा कलिकाल में भ्रष्ट होना अवश्यंभावी है।।४१-४२।।

ततः श्रेष्ठतरा काशी यस्यानाशो न जायते। यदाश्रयेण गङ्गाऽपि सर्वपापंव्यपोहति।।४३।।
काशिकाया नैव नाशो ब्रह्मण्यपि मृते सति। यद्दर्शनार्थङ्गाऽपिजाताचोत्तरवाहिनी।
तस्याम्पञ्चनदं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।।४४।।
आगते कार्त्तिकेमासिरौरवंनरकंगताः। आक्रोशन्तेतुपितरो वंशेऽस्माकम्भविष्यति।।४५।।
कश्चिद्भाग्यवतां श्रेष्ठो गत्वा पञ्चनदे शुभे। अस्माकं तर्पणं कुर्यान्नरकार्णवतारकम्।।४६।।

जिनके साथ मिलकर गंगा सभी पापों को दूर करती हैं तथा जिसका कभी नाश नहीं होता, वह काशीपुरी सर्वापेक्षा श्रेष्ठतम है। जिनका दर्शन करने हेतु गंगा उत्तरवाहिनी होकर (काशी) आगमन करती हैं, ब्रह्मा के विलीन हो जाने पर भी काशी का कभी विनाश नहीं होता। काशी में पंचनद (पचगंगा) नामक तीर्थ विद्यमान है। कार्त्तिक मास का आगमन होने पर रौरव नरक में पड़े पितृगण आक्षेप के साथ कहते हैं—"हमारे वंश में ऐसा पुरुष श्रेष्ठ कौन है, जो कार्त्तिक मास में शुभ पंचनदतीर्थ आकर हमें तृप्त करके हमारी नरक निवृत्ति करेगा?।।४३-४६।।

तीर्थराजादितीर्थानि प्राप्ते कार्त्तिकमासके। स्नानार्थं पञ्चगङ्गं तु समायान्तिनसंशयः।।४७।।
कृत्वातु लक्षपापानिस्नात्वापञ्चनदेशुभे। बिन्दुमाधवमभ्यर्च्यविलयंयान्तितत्क्षणात्।।४८।।
यैः स्नातं कार्त्तिके मासि सकृत्पञ्चनदेशुभे।
सर्वतीर्थकृतास्नानात्फलंकोटिगुणम्भवेत् ।।४९।।

कार्त्तिक मास में समस्त तीर्थराज स्नानार्थ उक्त पंचगंगा में आते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। लाखों पाप करके भी सुशोभन पंचनद में स्नान करने तथा विन्दुमाधव के पूजन द्वारा समस्त पाप विलीन हो जाते हैं। जो कार्त्तिक मास में एक बार भी पंचनदतीर्थ में स्नान करते हैं, सब तीर्थों में स्नान का जो फल है, उससे करोड़ों गुणित फल की उसे प्राप्ति होती है।।४७-४९।।

ब्रह्मोवाच

कार्त्तिके मासि कावेर्य्यां यः स्नानं कर्तुमिच्छति।
तावता वै विमुक्ताऽघो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्।।५०।।

कावेर्य्याश्चैव माहात्म्यं को वदेत्परमुत्तमम्। अत्र ते वर्णयिष्यामिइतिहासंपुरातनम्।।५१।।
कावेर्य्याविषयेब्रह्मन्सावधानमनाःशृणु। गौतम्या उत्तरे तीरे विष्णुपादाब्जसम्भवा।।५२।।
गङ्गा त्रैलोक्यपापघ्नीवर्ततेलोकपूजिता। सा गङ्गा चिन्तयामासकदाचित्पापशङ्किता।।५३।।
सर्वलोकाःसमागत्यमयिपापंत्यजन्ति हि। तत्पापन्तुकथुं गच्छेदितिचिन्तापरातदा।।५४।।
प्रष्टुं जगाम कैलासं गिरिजावल्लभम्भवम्। तत्र दृष्ट्वा महारुद्रं प्रोवाच हरिपादजा।।५५।।

ब्रह्मा कहते हैं—जो मानव कार्तिक मास में कावेरी में स्नान करने की इच्छा करता है, वह उस इच्छा से ही वह पापरहित होकर विष्णु का सायुज्य लाभ करता है। इस सम्बन्ध में एक प्राचीन इतिहास कहता हूं। हे ब्रह्मन्! समाहित होकर सुनो। गौतमीतीर्थ के उत्तरी तट पर त्रिलोकी के पाप का हनन करने वाली लोकपूज्या विष्णु के चरणों से निकली गंगा विराजमान है। उन्होंने एक बार विचार किया कि सभी लोग आकर मुझमें अपना पाप त्याग करते हैं, मेरा पाप कैसे दूर होगा? इस प्रकार चिन्तन करते हुये पापशंकिता गंगा उपाय जानने के लिये कैलास पर्वत पर आईं तथा वहां पार्वती के प्रियतम शिव के समीप गई जहां उन्होंने महारुद्ररूप भगवान् शिव का दर्शन किया। दर्शनोपरांत गंगा कहने लगीं।।५०-५५।।

गङ्गोवाच

महारुद्र! नमस्तेऽस्तु त्वांप्रष्टुमहमागता। सर्वेलोकाःसमागत्यमयिपापंत्यजन्तिहि।।५६।।
तत्पापन्तु मया सोढुं न शक्यं पार्वतीपते!। येनोपायेन तत्पापं नाऽऽगच्छेन्ममतद्वद।
एवं गङ्गावचः श्रुत्वा प्रत्याह परमेश्वरः।।५७।।

गंगा कहती हैं—हे महारुद्र! आपको प्रणाम! मैं आपसे यह पूछती हूं कि सभी लोग आकर मुझमें अपने पापों का त्याग करते हैं। हे पार्वतीपति! मैं इस पाप को सहन कर सकने में असमर्थ हूं। अब वह उपाय कहिये जिससे यह पाप मुझमें स्थित न रहे।।५६-५७।।

रुद्र उवाच

पापनिर्हरणायाऽऽदौ पद्मनाभाङ्घ्रिपङ्कजात्।।५८।।
प्रादुर्भूताऽसित्वंदेविकिमर्थंतप्यतेत्वया। पापप्रहाराऽऽधिपत्यंकल्पितंतवविष्णुना।।५९।।
तथाऽपि पापनिर्हारउपायं ते ब्रवीम्यहम्। कवेश्च तनया देवी कावेरी सरिताम्वरा।।६०।।
सर्वाकृष्टाच सर्वेषां हरेर्बलवशात्तुसा। सर्वपापप्रहरणे सामर्थ्यं तत्र वर्तते।।६१।।
कार्त्तिके मासि कावेर्य्यां यः स्नानं कुरुते नरः।
स तु पापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परम्पदम्।।६२।।
तस्मात्तां गच्छ देवि! त्वं ततः पापाद्विमोक्ष्यसे।
इत्युक्ता सा तदाऽऽगच्छत्कावेरीं पापहारिणीम्।।६३।।
तज्जलस्पर्शमात्रेण कार्त्तिके विष्णुपादजा। निर्धूतपातकागङ्गाजगामस्वनिकेतनम्।।६४।।

कार्त्तिके प्रतिवर्षन्तु गङ्गा त्रैलोक्यपावनीम्।
स्नातुं भक्त्या समायाति कवेरीं पापहारिणीम्॥६५॥
तज्जलस्पर्शमात्रेण कार्त्तिकेविष्णुपादजा। निर्धूतपातका गङ्गा जगामस्वनिकेतनम्॥६६॥

गंगा का यह कथन सुनकर परमेश्वर ने उत्तर दिया—"जगत् के पापनाशार्थ ही तुम्हारा विष्णु के चरणों से प्रादुर्भाव हुआ है। हे देवी! आप क्यों इस प्रकार से परितप्त हो रही हो? क्या आश्चर्य है? विष्णु ने ही तुमको पापों को नष्ट करने का भार सौंपा है। अब तुम्हारे पापनाश का उपाय मैं कहता हूं। हे देवी! सभी नदियों में श्रेष्ठ कवि की पुत्री कावेरी विष्णुविभूति का लाभ करके तीर्थों में सर्वोत्कृष्ट हो गयी हैं। उनमें सर्वपापनाशक सामर्थ्य है। जो मानव कार्त्तिक मास में कावेरी में स्नान करता है, वह पापरहित होकर विष्णु का परमपद लाभ करता है। हे देवी! तुम वहां जाकर पापों से मुक्त हो जाओगी।" भगवान् का यह आदेश सुनकर विष्णु के चरणों से प्रकट हुई गंगा पापनाशिनी कावेरी के निकट गईं तथा कावेरीजल के स्पर्शमात्र से पापरहित होकर अपने स्थान पर वापस आ गईं। इस प्रकार प्रत्येक वर्ष के कार्त्तिक मास में गंगादेवी त्रैलोक्य को पावन करने वाली निखिल पापहारिणी कावेरी में स्नानार्थ भक्तिपूर्ण हृदय से आती हैं तथा उसके जलस्पर्श से विष्णुपदकमलनिर्गता गंगा पापमुक्त होकर अपने स्थान पर लौट आती हैं।।५८-६६।।

तस्माच्छस्तं तुलास्नानंकावेर्य्यांशस्यते बुधैः। यःकावेर्यांतुलास्नानंभक्त्यातुकुरुतेमुने॥६७॥
विमुक्तदुरितःसद्यस्ततो याति परां गतिम्।
तस्मात्स्नानं तु कावेर्यांकार्त्तिके मासि शस्यते॥६८॥

अतएव पण्डितगण कार्त्तिकमासीय कावेरी स्नान को प्रशस्त कहते हैं। हे मुनिवर! जो मानव भक्तिपूर्वक कावेरी में तुलास्नान करता है, उसके दुरित तत्काल दूर हो जाते हैं तथा वह श्रेष्ठगति पाकर आनन्दित होता है। इसलिये कार्त्तिक मास में कावेरी स्नान प्रशंसित है।।६७-६८।।

इतिहासमिमं श्रुत्वा कार्त्तिकव्रततत्परः। स कावेरी स्नानफलं प्राप्नोतिच पराङ्गतिम्॥६९॥
रात्रिशेषे भवेत्स्नानमुत्तमं विष्णुतुष्टिकृत्।
सूर्योदये मध्यमं स्याद्यावान्नाऽऽस्ता तु कृत्तिका॥७०॥
तावदेव भवेत्स्नानमन्यथा तन्न कार्त्तिकम्।
स्नानं स्त्रीभिर्विधातव्यं गृहीत्वाऽऽज्ञां धवस्य च॥७१॥
अपृष्ट्वायत्कृतंधर्म्यं भर्तारंतत्क्षयं नयेत्। स्त्रीणांनास्त्यपरोधर्मो भर्तारं प्रोज्भयकश्चन॥७२॥
कुर्यात्सहस्रपापानि भर्त्राऽऽज्ञां या समाचरेत्।
सैषा धर्मवती लोके न जायेत व्रतादिना॥७३॥
दरिद्रःपतितोमूर्खोदीनोऽपियदि चेत्पतिः। तादृशःशरणंस्त्रीणांतत्त्यागान्निरयंव्रजेत्॥७४॥
कलौ वत्स! मनुष्याणां शैथिल्यं स्नानकर्मणि।
तथाऽपि कथयिष्यामि स्नानं कार्त्तिकमाघयोः॥७५॥

यस्यहस्तौचपादौचवाङ्मनश्चसुसंयतम्। विद्यातपश्चकीर्तिश्च स तीर्थफलभाङ्नरः॥७६॥

यह इतिहास सुनकर जो मानव कार्त्तिक व्रत तत्पर हो जाते हैं, उनको कावेरी स्नानफल तथा परमगति प्राप्त हो जाती है। अब स्नान कालादि कहते हैं। रात्रि शेष होने पर वह काल स्नानार्थ उत्तम तथा विष्णु को सन्तुष्ट करने वाला है। सूर्योदय का स्नान मध्यम है। जब तक सूर्य कृत्तिका नक्षत्र में विद्यमान रहते हैं, तब तक कावेरी में कार्त्तिक स्नानकाल रहता है। इसके अतिरिक्त जो स्नान है, वह कार्त्तिक स्नान कदापि नहीं है। पत्नी स्वामी की अनुमति से स्नान करे। क्योंकि यदि स्त्री स्वामी की अनुमति के बिना स्नान करती हैं अथवा धर्मकार्य करती हैं, वह सब निष्फल हो जाता है। स्वामी का त्याग करके स्त्री को कोई भी धर्म फलप्रद नहीं होता। यदि स्वामी का आज्ञापालन करने वाली स्त्री हजारों पाप भी करें, तथापि वह त्रैलोक्य में धर्मवती है। अन्यथा व्रतादि द्वारा (पति के विपरीत रहकर चाहे कितना भी व्रत करे) उसका पाप दूर नहीं होता। यदि पति दरिद्र, पतित, मूर्ख किंवा दीन है, तथापि स्त्री हेतु ऐसा ही पति शरण्य है। पति त्याग से नारी नरकगमन करती है। हे वत्स! कलिकाल में लोग स्नान में आलस्य करते हैं, तथापि कार्त्तिक तथा माघ मास की स्नान कथा को कहता हूं। जिनका हाथ-पैर, वाणी, मन, विद्या, तप तथा कीर्त्ति सुसंयत है, वे ही तीर्थफल लाभ करते हैं।।६९-७६।।

अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकश्छिन्नमानसः। हेतुवादीचपञ्चैते न तीर्थफलभागिनः॥७७॥
प्रातरुत्थाययो विप्र! तीर्थस्नायीसदाभवेत्। सर्वपापविनिर्मुक्तःपरम्ब्रह्माऽधिगच्छति॥७८॥
स्नानं चतुर्विधम्प्रोक्तं स्नानविद्भिर्मनीषिभिः।
वायव्यं वारुणं दिव्यं ब्राह्मञ्चेति तथा स्मृतम्॥७९॥

जो श्रद्धाहीन, पापी, नास्तिक, छिन्नहृदय तथा हेतुवादी हैं, ऐसे लोग तीर्थफलभागी नहीं होते। जो विप्र प्रातःकाल शय्या त्याग करके नित्य तीर्थजल में स्नान करता है, वह सर्वपापरहित होकर ब्रह्मलोक लाभ करता है। वायव्य, वारुण, दिव्य तथा ब्राह्म, मनीषीगण ने इन चार प्रकार के स्नान का वर्णन किया है।।७७-७९।।

वायव्यंगोरजःस्नानंवारुणंसागरादिषु। ब्राह्मंब्राह्मणमन्त्रोक्तंदिव्यम्मेघाऽम्बुभास्करम्॥८०॥
स्नानानाञ्चैवसर्वेषांविशिष्टं तत्रवारुणम्। ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्योमन्त्रवत्स्नानमाचरेत्॥८१॥
तूष्णीमेवहिशूद्रस्यस्त्रीणाञ्चैव तथास्मृतम्। बाला च तरुणी वृद्धा नरनारीनपुंसकाः॥८२॥
पापैः सर्वैः प्रमुच्यन्ते स्नानात्कार्त्तिकमाघयोः।
स्नाता वै कार्त्तिके लोकाः प्राप्नुवन्तीप्सितम्फलम्॥८३॥
पुष्करे तीर्थवर्ये तु नन्दायाः सङ्गमे पुरा। प्रभञ्जनश्च मुक्तोऽभूत्तदैव व्याघ्रजन्मतः॥८४॥
चन्दायावचनेनैवकार्त्तिकेसापरं ययौ। एवंस्नानविधिःप्रोक्तः किम्भूयःश्रोतुमिच्छसि॥८५॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे कार्त्तिकस्नानविधिनिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

—※※※—

इनमें से गौ के चरण की रज से स्नान को वायव्य कहते हैं। सागर स्नान वारुण स्नान है। ब्राह्मण

के मन्त्रोक्त स्नान को ब्राह्म तथा मेघ जलधारा द्वारा स्नान को तथा भास्कर तापोद्भव स्नान को दिव्य स्नान कहते हैं। इन सब में से वारुण स्नान सर्वोत्तम है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य मन्त्रस्नान का आचरण करें। स्त्री तथा शूद्रगण मौनी होकर मन्त्ररहित स्नान करें। बाला, युवती, वृद्धा, नर, नारी, नपुंसक आदि सभी कार्त्तिक एवं माघ स्नान द्वारा समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं। कार्त्तिक मास में तीर्थ प्रधान पुष्कर तथा नदी संगम पर स्नान द्वारा मानव इच्छित फललाभ करता है। पूर्वकाल में प्रभंजन नामक राजा ने एक हिरणी का वध किया था जो दुग्धवती थी (सवत्सा थी)। इससे मृगी के शाप के कारण राजा को व्याघ्रयोनि मिली। अन्ततः वह व्याघ्र नन्दा के वाक्य को मानकर कार्त्तिक में पुष्कर स्नान करने के कारण शापमुक्त हो गया। इस प्रकार से धर्म के शाप से नदीरूपी हो गई नन्दा ने भी पुष्कर जल स्पर्श द्वारा परम गतिलाभ किया था। मैंने तुमसे कार्त्तिक स्नानविधि कहा। अब तुम क्या सुनना चाहते हो?।।८०-८३।।

।।चतुर्थ अध्याय समाप्त।।

पञ्चमोऽध्यायः

नित्य कर्म वर्णन

नारद उवाच

कदा स्नानं प्रकर्तव्यं कथं स्थेयंदिनावधि। आह्निकं तत्समाचक्ष्वविशेषेणपितामह!।।१।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे पितामह! किस समय स्नान करना चाहिये? उस दिन का कर्त्तव्य क्या है? किस प्रकार के भाव के साथ रहना चाहिये? विशेषतः स्नान का दिन कृत्य कहिये।।१।।

ब्रह्मोवाच

रात्र्यां तुर्यांशशेषायामुत्तिष्ठेत्सर्वदा व्रती। विष्णुं स्तुत्वा बहुस्तोत्रैर्दिनकार्यम्विचारयेत्।।२।।
ग्रामनैर्ऋत्यदिग्भागे मलोत्सर्गंयथाविधि। ब्रह्मसूत्रं दक्षकर्णे स्थाप्य तत्रउदङ्मुखः।।३।।
अन्तर्धायतृणंभूमौ शिरः प्रावृत्यवाससा। वक्त्रं नियम्यचस्त्रेणाऽसङ्गःसोदकभाजनः।।४।।
कुर्यान्मूत्रपुरीषन्तु रात्रौचेद्दक्षिणामुखः। ततउत्थायचाऽऽगच्छेत्समीपं कलशस्यहि।।५।।
गन्धलेपक्षयकरं मृत्तिकाशौचमाचरेत्। एका लिङ्गे करेतिस्त्र उभयोर्मृद्द्वयंस्मृतम्।।६।।
मूत्रशौचे त्विदं ज्ञेयं विष्ठाशौचमतःशृणु। पञ्चापानेऽथवा सप्त दश वामकरे तथा।।७।।
उभयोःसप्त दातव्याःपादयोर्मृत्तिकात्रयम्। एतच्छौचंगृहस्थस्यद्विगुणंब्रह्मचारिणः।।८।।
वानप्रस्थस्य त्रिगुणं यतीनाञ्चचतुगुणम्। एतच्छौचं दिवाप्रोक्तं रात्रावर्द्धंसमाचरेत्।।९।।

मार्गस्थस्य तदर्धं स्यात्स्त्रीशूद्राणां तदर्धकम्।
शौचकर्मविहीनस्य समस्ता निष्फला: क्रिया:॥१०॥
दन्तजिह्वाविशुद्धिञ्च तत: कुर्यादतन्द्रित:। आयुर्बलं यशोवर्च: प्रजा: पशुवसूनि च॥११॥
ब्रह्म प्रज्ञाञ्चमेधाञ्चत्वं नोदेहिवनस्पते!। दन्तकाष्ठन्तु गृह्णीयाद् द्वादशाङ्गुलसम्मितम्॥१२॥
क्षीरवृक्षस्यनग्राह्यं कार्पासस्य तथैव च। कण्टकस्य च वृक्षस्य दग्धवृक्षस्यचैवहि॥१३॥
सद्वासनं मृदुतरं दन्तधावनमादित:। उपवासे नवम्याञ्च षष्ठ्यां श्राद्धदिने रवौ॥१४॥
ग्रहणे प्रतिपद्दर्शे न कुर्याद्दन्तधावनम्। कुर्याद् द्वादश गण्डूषाननुक्ते दन्तधावने॥१५॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—व्रती व्यक्ति रात्रि का चतुर्थांश बाकी रहते ही शय्या त्याग करके अनेक स्तोत्रों से विष्णु का स्तव करें। दिन के कर्त्तव्यों का विचार भी करें। तदनन्तर ग्राम के नैर्ऋत् दिशा में मलत्याग कृत्य करें। मलत्याग काल में यज्ञोपवीत को दाहिने कान पर रखें। मस्तक पर वस्त्र लपेटे। उत्तर मुख करके मलत्यागार्थ बैठे। बैठने के पूर्व उस स्थान पर तृण बिछाये। मलत्याग काल में उत्तर मुख बैठना चाहिये तथा वस्त्र से मुख बन्द करें। जलपात्र भी पास में रखें। रात्रि में मलमूत्र त्याग करते समय दक्षिणाभिमुखीन बैठे। मल-मूत्र त्यागोपरान्त जलपात्र के पास आकर जब तक गन्ध तथा मल लेप दूर न हो जाये तब तक मिट्टी से साफ करना चाहिये। मृत्तिका शौच का नियम है कि लिंग पर एक बार मिट्टी लगाये, हाथों पर तीन बार लगाये। मूत्रशौच में भी यही मृत्तिका शौच करें। अब विष्ठा शौच का विधान सुनें। गुह्य देश में पांच अथवा सात बार, बायें हाथ में दस बार, दोनों हाथों को मिलाकर सात बार तथा दोनों पैरों में तीन-तीन बार मृत्तिका शौच करें। यह गृहस्थ का शौच है। ब्रह्मचारी का शौच इससे द्विगुण होता है। वानप्रस्थों का त्रिगुण तथा यतिगण का चतुर्गुण होता है। यह जो शौच विधान वर्णित है, यही दिव्यशौच है। रात्रि में इसका आधा करना चाहिये। पथिक व्यक्ति इसका आधा शौच करे। स्त्री-शूद्रगण उसका भी आधा शौच करे। शौचकर्म रहित की सभी क्रिया निष्फल होती है। अतएव आलस्य रहित होकर दांत एवं जिह्वा की शुद्धि करें। इस समय इस मन्त्र से अभिमंत्रित करके दन्तकाष्ठ लेना चाहिये। "आयुर्बलं यशोवर्च: प्रजापशुवसूनिच, ब्रह्म प्रज्ञाञ्चमेघाञ्च त्वे नोदेहि वनस्पते" इस मन्त्र से द्वादश अंगुलि का दन्तकाष्ठ लेना चाहिये। दन्तकाष्ठ क्षीरयुक्त वृक्ष का लेना चाहिये। यह दन्तकाष्ठ कार्पास किंवा कन्टक अथवा दग्धवृक्ष का लेना वर्जित है। गन्धयुक्त अथवा अत्यन्त कोमल दन्तकाष्ठ भी न लें। श्राद्ध, ग्रहण, किंवा उपवास के दिन, नवमी, षष्ठी, प्रतिपद्, अमावस्या, पूर्णिमा के दिन दन्तधावन नहीं करें। इन सब दिन द्वादश चुल्लू जल से मुखशोधन करना चाहिये।।२-१५।।

दन्तान्विशोध्य विधिवन्मुखं सम्मार्ज्य वारिणा।
ललाटे चोर्ध्वपुण्ड्रन्तु धृत्वा चाऽऽचम्य वारिणा॥१६॥
देवालये नदीतीरे राजमार्गे विशेषत:। दत्त्वाचाकाशदीप तु तुलसी सन्निधावथ॥१७॥
गृहीत्वाऽर्चनसामग्रीमिष्टदेवगृहं व्रजेत्। ततो गायेतनृत्येत पूजां कृत्वा तु बुद्धिमान्॥१८॥
पठित्वाविष्णुनामानिकुर्य्यान्नीराजनंहरे:। नाडीद्वयावशिष्टांरात्र्यांगच्छेज्जलाशयम्॥१९॥
तन्त्रोक्तविधिनास्नानं कुर्याद्वैकार्त्तिकव्रती। वस्त्रनिष्पीडनंकृत्वाकुर्याच्चतिलकंतथा॥२०॥

ततः सन्ध्यामुपासीतस्वसूत्रोक्तेन वर्त्मना। ततःकार्योजपोदेव्या यावदर्कोदयोभवेत्॥२१॥
एतत्प्रोक्तं रात्रिशेषकृत्यंदैनमथोच्यते। यस्मिन्कृतेकार्त्तिकोऽयंसकलःसफलो भवेत्॥२२॥

विधिपूर्वक दन्तधावन करके तदनन्तर जल से मुख धोये और आचमनोपरान्त ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करें। तदनन्तर नदीतीर-राजपथ अथवा तुलसी के समीप आकाशदीप (लम्बे बांस पर टोकरी में दीपक जलाकर ऊर्ध्व में लटकाना) प्रदान करके पूजोपचार के साथ अभीष्ट देवालय में जाना चाहिये। तदनन्तर बुद्धिमान व्यक्ति पूजा के अनन्तर नृत्यगीत द्वारा विष्णु के नामों का पाठ करके हरि की आरती करें। कार्त्तिकमास में व्रती पुरुष रात्रि के दो घड़ी बाकी रहते जलाशय पर जाकर वहां सविधि स्नान करे। स्नान के उपरान्त वस्त्र निचोड़ना, तिलक धारण, अपने-अपने वेदमार्ग के अनुरूप सन्ध्यावन्दन करें। सूर्योदय होने तक वेदमाता गायत्री का जप करें। यह रात्रि शेष का कार्य कहा गया। अब दिन कृत्य कहता हूं। इस प्रकार के आचरण द्वारा समस्त कार्त्तिक मास सफल हो जाता है।।१६-२२।।

विष्णोःसहस्रनामाऽऽद्यंसन्ध्यान्ते च पठेत्ततः। देवालयेसमागत्यपुनः पूजनमारभेत्॥२३॥
नृत्यगानादिकार्येषुप्रहरंदिवसं नयेत्। ततः पुराणश्रवणंयामार्धंसम्यगाचरेत्॥२४॥
पौराणिकस्यपूजांतुतुलसीपूजनं तथा। कृत्वामाध्याह्निकंकर्मभुञ्जीतद्विदलोज्झितम्॥२५॥
बलिदानं वैश्वदेवतिथीनांसमर्पणम्। कृत्वाभुङ्क्तेतुयोमर्त्यःकेवलंचाऽमृतं हि तत्॥२६॥
यथाशक्तिद्विजाभोज्याःप्रत्यहंवाऽथ पर्वणि। हविष्यभोजनंकुर्यादामिषं परिवर्जयेत्॥२७॥
भक्षयेत्तुलसीं वक्त्रशुद्ध्यर्थं तीर्थवारिणा। संसारव्यवहरेण दिनशेषं समापयेत्॥२८॥
सायंकाले पुनर्गगच्छेद्विष्णोर्देवालयम्प्रति।
सन्ध्यां कृत्वा प्रयुञ्जीत तत्र दीपान्यथाबलम्॥२९॥
विष्णुं प्रणम्य हरये कृत्वानीराजनं शुभम्। स्तोत्रपाठादिकं कुर्वन्नाद्ययामेतुजागरम्॥३०॥
यामे तु प्रथमेऽतीते निद्रां कुर्याद्विचक्षणः। ब्रह्मचर्यव्रतं कुर्याद्भार्यामीयादृतौ तथा॥३१॥
तया कामयमानो वा भार्यां गच्छेन्न दोषभाक्।
एवं प्रतिदिनं कुर्यादामासं तु यथाविधि॥३२॥
एवंतुकार्त्तिकेमासियःकुर्यात्परमंव्रतम्। सर्वपापविनिर्मुक्तोयातिविष्णोःसलोकताम्॥३३॥
रोगापहं पातकनाशकृत्परं सद्बुद्धिदं पुत्रधनादिसाधकम्।
मुक्तेर्निदानं नहि कार्तिकव्रताद्विष्णुप्रियादन्यदिहाऽस्ति भूतले॥३४॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे नित्यकर्मकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः।।५।।

—❋—

मनुष्य विष्णुसहस्रनाम का पाठ सन्ध्यान्त में पढ़े तथा पुनः देवालय में आकर पूजा करे। तदनन्तर विष्णु के नृत्यगीतादि कार्य में एक प्रहर बिताकर सम्यक्रूपेण यामार्द्धकाल तक पुराण पढ़े। तदनन्तर

पुराणवाचक तथा तुलसी की पूजा करके मध्याह्न कर्म समापन करके द्विदल रहित (दालरहित) भोजन करना चाहिये। जो मानव वैश्वदेव तथा अतिथिगण को बलि प्रदान करने के अनन्तर भोजन करता है, उसका भोजन पदार्थ अमृततुल्य हो जाता है। नित्य अथवा पर्वदिन में यथाशक्ति द्विजों को भोजन देना चाहिये। द्विजगण नित्य हविष्यान्न भक्षी होकर भोजन करें। कभी आमिष भोजन न करें। तदनन्तर मुखशुद्धि के लिये तीर्थजल तथा तुलसी ग्रहण करके सांसारिक कार्य करें। तत्पश्चात् पुनः सन्ध्या काल में विष्णुमंदिर जाकर सन्ध्या करें तथा शक्ति के अनुरूप दीपदान, प्रणाम, हरि का उत्तम नीराजन तथा स्तुति पाठादि करके प्रथम याम के समय जागरण करें। तदनन्तर विचक्षण व्यक्ति द्वितीययाम में शयन करें। ब्रह्मचर्य पालन करके केवल ऋतुकाल में ही पत्नी-गमन करना चाहिये तथापि यदि पत्नी स्वयं संगम हेतु प्रार्थना करती है, तब पुरुष संगम करने के कारण दोषयुक्त नहीं होगा। इस प्रकार एक मास सविधि-नित्य नियम पालन करें। वह मानव सर्वपापरहित होकर विष्णु का सारूप्य प्राप्त करता है। हे नारद! पृथिवी पर कार्तिक व्रत ऐसा रोगहारी, पापहारी, सद्वृत्ति प्रदाता, पुत्र-धन आदि प्रदाता अन्य व्रत नहीं है। यह विष्णु का प्रिय व्रत तथा मुक्तिसाधक है।।२३-३४।।

।।पञ्चम अध्याय समाप्त।।

षष्ठोऽध्यायः

कार्त्तिक व्रत निरूपण, वाराणसी में कार्त्तिक व्रत फल

ब्रह्मोवाच

श्रृणुनारदवक्ष्यामिकार्त्तिकस्यव्रतंमहत्। यच्छ्र त्वासर्वपापेभ्योमुक्तोमोक्षमवाप्स्यसि।।१।।
कार्त्तिकेमासिसंप्राप्तेनिषिद्धानि च वर्जयेत्। तैलाभ्यङ्गं परान्नञ्च तथा वै तैलभोजनम्।।२।।
फलानि बहुबीजानि धान्यानि द्विदलान्यपि।
वर्जयेत्कार्त्तिके मासि नाऽत्र कार्या विचारणा।।३।।
अलाबुं गृञ्जनञ्चैववृन्ताकंबृहतीफलम्। अन्नं पर्युषितम्बाऽपि भिस्सटं चमसूरिकम्।।४।।
पुनर्भोजनं माध्वं च परान्नंकांस्यभोजनम्। नखं चर्म च छत्राकंकाञ्जि दुर्गन्धमेव च।।५।।
गणान्नं गणिकान्नञ्च तथा वै ग्रामयाजिनः। शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्कं सूतकान्नं तथैव च।।६।।
श्राद्धान्नमृतुमत्याश्च जातकं नामकं तथा। श्लेष्मातकफलं चैव वर्जयेत्कार्त्तिकव्रती।।७।।
निषिद्धेषु च पत्रेषु भोजनं नैव कारयेत्। मधुपालाशकदलीजम्बूप्लक्षमकूटिकाः।
एतत्पत्रेषु भोक्तव्यं पुष्करे न कदाचन।।८।।
कार्त्तिकेमासिसंप्राप्तेयः कुर्याद्वनभोजनम्। स यातिपरमंलोकं विष्णोर्देवस्य चक्रिणः।।९।।

प्रातःस्नानं तु कर्तव्यं तथैव हरिपूजनम्। कथायाःश्रवणं चैव कार्त्तिके शस्यते मुने॥१०॥
गोपीचन्दनदानंतु गोदानंश्रोत्रियाय च। कर्तव्यं कार्त्तिकेमासितेन मोक्षमवाप्नुयात्॥११॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! अब वह उत्तम कार्तिक व्रत कहता हूं। जिसे सुनकर तुम मोक्षलाभ करोगे। अब उस उत्तम कार्त्तिक मास के व्रत को कहता हूं। सुनो! कार्त्तिक मास में तैल लगाना, परान्न भोजन, तैलभक्षण, अनेक बीज वाले फल (जैसे अमरुद आदि), धान्य तथा दालें (द्विदल) निषिद्ध है। इसमें कोई विचार-वितर्क न करें। अलाबू, (लम्बी लौकी) गृञ्जर (गाजर-शलजम) वार्त्ताकु, बृहतीफल, बासी अन्न, जले अन्न, मसूर, दो बार भोजन, मधु तथा कांस्यपात्र में भोजन न करे, नख गन्धद्रव्य, मसूरि विशेष, छत्राक, काञ्जी, दुर्गन्ध, गणान्न, गणिका का अन्न, ग्रामयाजी का अन्न, शूद्र का अन्न, शूद्र के सम्पर्क में आया अन्न, सूतकान्न, श्राद्धान्न, ऋतु स्नाता का अन्न, जातक का अन्न, नामक का अन्न, श्लेष्मा वाले फल का कार्त्तिक व्रती वर्जन करें। कार्त्तिक व्रती निषिद्ध अन्न भक्षण न करें। मधु (महुआ) पलाश, कदली, जामुन, प्लक्ष, मधुटिका के पत्र में भोजन कर सकते हैं, तथापि पुष्कर पत्र में भोजन निषिद्ध है। कार्त्तिक मास आने पर जो आंवले के वृक्ष की छाया में भोजन करते हैं, वे चक्रधारी देव विष्णु के लोक में जाते हैं। हे मुनिवर! प्रातः स्नान, हरि पूजा तथा हरिकथा श्रवण कार्त्तिक मास में प्रशस्त है। कार्त्तिक मास में जो श्रोत्रिय ब्राह्मणों को गोपीचन्दन तथा गौ अर्पित करता है, उसे मोक्ष प्राप्ति होती है।।१-११।।

कदलीफलदानं तु दानंधात्रीफलस्य च। वस्त्रदानं तथाकुर्याच्छीतार्ताय द्विजन्मने॥१२॥
शाकादिदानंकुर्वीतचाऽन्नदानं विशेषतः। शालग्रामस्यदानं च कर्तव्यं तु द्विजन्मने॥१३॥
पौराणिकाय यो दद्यादामान्नं घृतपायसम्। स चैश्वर्यमवाप्नोतिशतब्राह्मणभोजनात्॥१४॥
कमलैःपूजयेद्यस्तुकार्त्तिकेकमलाप्रियम्। स तु पुण्यमवाप्नोतिनाऽत्रकार्या विचारणा॥१५॥

कार्त्तिके तुलसीपत्रं यो भक्त्या विष्णवेऽर्पयेत्।
संसाराच्च विनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम्॥१६॥

कार्त्तिके केतकीपुष्पैरर्चयेद्गरुडध्वजम्। पूजितो जन्मसाहस्त्रं नाऽत्र कार्या विचारणा॥१७॥

ब्राह्मण को इस मास में केला, आंवला तथा शीतार्त्त ब्राह्मण को वस्त्र दान करें। ब्राह्मण को शाक अन्न तथा शालग्राम दान करना चाहिये। जो व्यक्ति एक भी पुराणवेत्ता ब्राह्मण को अन्न, घृत तथा पायस प्रदान करते हैं, मानो उसने १०० ब्राह्मणों को भोजन कराया। वह व्यक्ति उस पुण्य द्वारा ऐश्वर्यशाली हो जाता है। जो कार्त्तिक में कमल से कमलप्रिया लक्ष्मीपूजन करते हैं, उनको प्रभूत पुण्यलाभ होता है। इस विषय में कोई वितर्क न करें। जो कार्त्तिक मास में भक्तिपूर्वक विष्णु को तुलसी अर्पित करते हैं, वे संसार से मुक्त होकर विष्णु के परमपद की प्राप्ति करते हैं। जो व्यक्ति केतकी पुष्पों से गरुड़ध्वज जनार्दनदेव की अर्चना करता है, उसे मात्र एक बार पूजन द्वारा ही सहस्र जन्मकृत पूजाफल मिलता है। इसमें सन्देह नहीं है।।१२-१७।।

शङ्खदानं तु यःकुर्यात्तथाचक्राङ्कितस्य च। तस्यपापानिनश्यन्ति दानमात्रान्न संशयः॥१८॥
गीतापाठं तु यःकुर्यात्कार्त्तिकेविष्णुवल्लभे। तस्य पुण्यफलम्वक्तुं नाऽलम्वर्षशतैरपि॥१९॥
श्रीमद्भागवतस्याऽपि श्रवणंयः समाचरेत्। सर्वपापविनिर्मुक्तः परं निर्वाणमृच्छति॥२०॥

एकादश्यां निराहारमुपवासं करोति यः। पूर्वजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नाऽत्र संशयः॥२१॥

शालिग्रामस्य नैवेद्यं कोटियज्ञफलं लभेत्।
अन्यदेवस्य नैवेद्यं भक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥२२॥

जो व्यक्ति चक्रांकित शंखदान करते हैं, दानमात्र से ही निःसंदिग्ध रूप से उनके पापों का विनाश हो जाता है। जो इस विष्णुप्रिय मास में गीता का पाठ करते हैं, मैं उनका पुण्यफल सौ वर्षों में भी नहीं कह सकता। जो सम्यक्तः इस मास में श्रीमद्भागवत का पाठ करते हैं, वे समस्त कलुष रहित होकर निर्वाण मोक्ष की प्राप्ति करते हैं। जो एकादशी के दिन निराहारी रहकर उपवास करते हैं, उनका पूर्व जन्मकृत पाप नष्ट हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है। शालग्राम का नैवेद्य भक्षण करने से कोटियज्ञफल लाभ होता है, तथापि अन्य देवता का नैवेद्य भक्षण करने से चान्द्रायण करना होगा।।१८-२२।।

पूजाकाले तु देवस्यघण्टानादंकरोतियः। हरेस्तृप्तिं परां याति मनुजो नाऽत्र संशयः॥२३॥
परान्नं वर्जयेद्यस्तुकार्त्तिकेविष्णुतुष्टये। दामोदरस्यप्रीतिंससम्यक्प्राप्नोति मानवः॥२४॥
अध्वगंतुपरिश्रान्तंकालेच गृहमाऽऽगतम्। योऽतिथिंपूजयेद्भक्त्याजन्मसाहस्त्रनाशनम्॥२५॥
निन्दांकुर्वन्ति ये मूढावैष्णवानांमहात्मनाम्। पतन्तिपितृभिःसार्द्धंमहारौरवसञ्ज्ञके॥२६॥

दृष्ट्वा भागवतान्विप्रान्सम्मुखो न च याति हि।
न गृह्णाति हरिस्तस्य पूजां द्वादशवार्षिकीम्॥२७॥
निन्दां भगवतः श्रृण्वंस्तत्परस्य जनस्य च।
ततो नाऽपैति यः सोऽपि हरेः प्रियतमो नहि॥२८॥

प्रदक्षिणांतु यः कुर्यात्कार्त्तिके केशवस्य हि। पदेपदेऽश्वमेधस्यफलंप्राप्नोत्यसंशयः॥२९॥

जो व्यक्ति हरि के पूजाकाल में घंटा बजाते हैं, उनसे हरि तृप्त हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। जो लोग विष्णु की प्रसन्नता हेतु कार्त्तिक में परान्न त्याग कर देते हैं, उनके प्रति प्रभु दामोदरदेव सम्यक्रूपेण सन्तुष्ट हो जाते हैं। जो परिश्रान्त पथिक के घर आने पर भक्ति पूर्वक उसका अतिथि सत्कार करते हैं, उनका हजारों जन्म का पाप नष्ट हो जाता है। जो मूर्ख व्यक्ति महात्मा वैष्णवगण की निन्दा करते हैं, वे अपने पितरों के साथ महारौरव नरक गमन करते हैं। भगवद्भक्त मनुष्य को देखकर जो उसके समक्ष नहीं आते, श्रीहरि उसकी द्वादश वर्ष तक की पूजा ग्रहण ही नहीं करते। जो मानव प्रभु की निन्दा सुनकर उसमें हामी भरता है तथा निन्दाकारी से दूर नहीं चला जाता, वह कभी भी हरि का प्रिय नहीं होता। जो कार्त्तिक मास में हरि की प्रदक्षिणा करते हैं, उनको पग-पग पर राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञफल प्राप्त होता है। इसमें संशय नहीं है।।२३-२९।।

दंडप्रणामं यः कुर्यात्कार्त्तिके केशवाऽग्रतः।
राजसूयाऽश्वमेधानां फलम्प्राप्नोत्यसंशयः॥३०॥

कुटुम्बभोजनं चैव कार्त्तिके भक्तिसंयुतः। कारयेद्विप्रशार्दूल! तस्य पुण्यमनन्तकम्॥३१॥
परस्त्रीसङ्गमं यस्तुकार्त्तिकेकुरुते नरः। तस्यपापस्य विश्रान्तिर्यावद्वक्तुंन शक्यते॥३२॥

तुलसीमृत्तिकापुण्ड्रं ललाटे यस्य दृश्यते। यमस्तं नेक्षितुंशक्तः किमुदूता भयङ्कराः॥३३॥

जो कार्त्तिक मास में केशव को दण्डवत् प्रणाम निवेदित करते हैं, वे अनेक राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञफल को प्राप्त करते हैं। हे द्विजशार्दूल! जो भक्ति के साथ कार्त्तिक मास में कुटुम्बी ब्राह्मण को भोजन कराता है, उसका पुण्य फल अनन्त है। इस मास में जो पराई स्त्री का संगम करता है, उसके पापों की सीमा का मैं वर्णन नहीं कर सकता। जिनके ललाट पर तुलसी की मिट्टी का तिलक लगा है, यम को उसकी ओर देखने का सामर्थ्य ही नहीं है। भयानक यमदूतों की तो बात ही क्या!।।३०-३३।।

शकम्वा लवणम्वाऽपि यत्किञ्चिद्वा भविष्यति।
तद्देयं कार्त्तिके मासि प्रीत्यर्थं शार्ङ्गधन्वनः॥३४॥

इत्याद्या बहवो धर्माःकार्त्तिके विष्णुवल्लभाः। यथाशक्त्याप्रकुर्वीतधर्मंदेवस्यतुष्टिदम्॥३५॥

हरिसन्तुष्टये कार्यस्त्यागो वा स्वेष्टवस्तुनः। मासान्ते द्विजवर्यायदद्यात्तद्व्रतपूर्तये॥३६॥

सर्वव्रतानि चैकत्र सत्यव्रतमथैकतः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सत्यं भाषेत सर्वदा॥३७॥

अन्यधर्मेष्वधिकृतिः कुलजातिविभागतः।
अधिकारी कार्त्तिके तु सर्व एव जनो भवेत्॥३८॥

शाक किंवा लवण जो कुछ पास में हो शार्ङ्गधनुर्धारी श्रीहरि के लिये कार्त्तिक मास में वही दान करें। हे नारद! मैंने जो कुछ कहा है, वह सब तथा अन्य अनेक विष्णुप्रिय कार्त्तिक मास में अनुष्ठान योग्य धर्म हैं। अतएव यथाशक्ति विष्णु के प्रसन्नतार्थ धर्माचरण करना चाहिये। हरि के प्रसन्नतार्थ इस मास में अपनी-अपनी इष्ट वस्तु का त्याग करें तथा व्रतोद्यापनार्थ कार्त्तिक मास का अवसान होने पर वह वस्तु उत्तम ब्राह्मणों को दान करना चाहिये। जैसे एक ओर सभी व्रत हैं, उसी प्रकार से दूसरी ओर अकेला सत्यव्रत सबके बराबर है। इसलिये सर्वप्रयत्नपूर्वक सत्य ही बोलना चाहिये। अन्यान्य धर्माचरण में जाति तथा कुल के अनुसार अधिकार है, तथापि कार्त्तिक व्रतार्थ जाति कुलगत कोई भेद नहीं है। इसमें तो सभी का समान अधिकार है।।३४-३८।।

गोग्रासः कार्त्तिकेमासि विशेषाद्यैस्तुदीयते। तेषांपुण्यफलंवक्तुं नशक्नोतिपितामहः॥३९॥

विष्णुदेवालयं प्रातः सम्मार्जयति कार्तिके। तस्य वैकुण्ठभवने जायते सुदृढं गृहम्॥४०॥

दद्यात्कार्तिकमासे तु धर्मकाष्ठानि भूरिशः।
न तत्पुण्यस्य नाशोऽस्ति कल्पकोटिशतैरपि॥४१॥

सुधादि लेपयेद्यस्तु कार्त्तिके विष्णुमन्दिरे।
चित्रादिकं लिखेद्वाऽपि मोदते विष्णुसन्निधौ॥४२॥

जो कार्त्तिक मास में विशेष द्रव्य द्वारा गोग्रास देते हैं, चतुरानन ब्रह्मा भी उनके पुण्य का वर्णन चारों मुख से नहीं कर सकते। जो कार्त्तिक मास में प्रातः विष्णुमन्दिर का मार्जन करते हैं, वैकुण्ठ भवन में उनके लिये सुदृढ़गृह निर्मित होता है। जो कार्त्तिक मास में धर्मरक्षार्थ काष्ठदान करते हैं, शतकोटि कल्पों में भी उनका पुण्य नष्ट नहीं होता। जो कार्त्तिक मास में सुधा आदि लेपन से विष्णु मन्दिर को संस्कृत करते हैं, अथवा चित्र आदि से उसे सजाते हैं, वे विष्णु के सन्निधान को पाकर चिरकाल पर्यन्त मुदित होते रहते हैं।।३९-४२।।

देवालये वा तीर्थे वा कृतो दुष्टैर्नृपैः करः। तं मोचयन्ति ये लोकास्तेषांधर्मः सनातनः॥४३॥
कार्त्तिकेमासि यो विप्रोगभस्तीश्वरसन्निधौ। शतरुद्रीजपंकुर्यान्मन्त्रसिद्धिःप्रजायते॥४४॥
वाराणस्यां तु यैः स्थित्वा त्रिवर्षं कार्त्तिकव्रतम्।
सोपाङ्गं साङ्गं यैर्मर्त्यैः कृतं भक्त्येकतत्परैः॥४५॥
इहलोके फलं तेषां प्रत्यक्षं जायते किल। सम्पत्त्या चैवसन्तत्यायशोभिर्धर्मबुद्धिभिः॥४६॥
पलाण्डुं शृङ्गं मांसं च शय्यां सौवीरकं तथा।
राजिकोन्मादिकञ्चाऽपि चिपिटान्नञ्च वर्जयेत्॥४७॥
धात्रीफलं भानुवारे परदेशागमं तथा। तीर्थं विना सदैवेह वर्जयेत्कार्त्तिकव्रती॥४८॥
देववेदद्विजातीनां गुरुगोव्रतिनां तथा। स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेत्कार्त्तिकव्रती॥४९॥
नरकस्यचतुर्दश्यां तैलाभ्यङ्गं च कारयेत्। अन्यत्र कार्त्तिकेमासि तैलस्नानंविवर्जयेत्।
नालिकां मूलकं चैव कूष्माण्डञ्च कपित्थकम्॥५०॥
रजस्वलान्त्यजम्लेच्छपतिताऽव्रतिकैस्तथा। द्विजद्विड्वेदबाह्यैश्च नवदेत्सर्वदाव्रती॥५१॥
एभिर्दृष्टं च काकैश्च सूतिकान्नं च यद्भवेत्। द्विःपाचितं च दग्धान्नं नैवाऽद्याद्वैष्णवव्रती॥५२॥
क्रमात्कूष्माण्डबृहतीतरुणीमूलकं तथा। श्रीफलं च कलिङ्गं चफलंधात्रीभवं तथा॥५३॥
नारिकेलमलाबुञ्च पटोलं बृहतीफलम्। चर्मवृन्ताकचवलीशाकं तुलसिजं तथा॥५४॥
शाकान्येतानि वर्ज्यानि क्रमात्प्रतिपदादिषु। एवमेवहिमाघेऽपिकुर्य्याच्चनियमान्व्रती॥५५॥
कार्त्तिकव्रतिनः पुण्यं यथोक्तव्रतकारिणः। न समर्थो भवेद्वक्तुं ब्रह्मापीहचतुर्मुखः॥५६॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे कार्त्तिकव्रतनिरूपणं नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥

देवालय तथा तीर्थ के प्रति दुष्ट राजा द्वारा लगाये कर से जो मुक्ति दिला देते हैं, उनका धर्म कभी भी क्षयीभूत नहीं होता। जो ब्राह्मण कार्त्तिक मास में काशी में रहकर शतरुद्री जप करता है, उसे मन्त्रसिद्धि हो जाती है। जो धार्मिक व्यक्ति तीन वर्ष वाराणसी में रहकर वत्सद्वादशी प्रभृति के दिन स्नान-दीपदान प्रभृति क्रिया तत्पर होकर भक्तिपूर्वक कार्त्तिक व्रत सम्पन्न करता है, निःसंदिग्ध रूप से उसे फल प्रत्यक्ष होता है। वह मनुष्य सम्पत्ति, सन्तति तथा यशयुक्त ही बना रहता है। कार्त्तिक मास में प्याज, जीवक, मांस, शय्या, बदरीफल, राजिक, उन्मादक द्रव्य, चिउड़ा का त्याग करें। रविवार को आंवला तथा परदेशगमन का सतत् त्याग कार्त्तिक व्रती को करना चाहिये। कार्त्तिक व्रती पुरुष देव, वेद, द्विज, गुरु, गौ, व्रती, श्री, राजा तथा उत्तम व्यक्ति की निन्दा कदापि न करें। उस व्यक्ति को चतुर्दशी के दिन तैल लगाना चाहिये। लेकिन अन्य दिन तैलस्नान का सर्वथा त्याग करें। नलिका, मूली, कोहड़ा तथा कपित्थ भक्षण न करें। रजस्वला, अन्त्यज, म्लेच्छ, पतित, व्रतहीन, द्विजद्वेषी, वेदवाह्यव्रती, व्यक्तियों के साथ बातें भी न करें। इन सबके द्वारा देखा, कौये द्वारा देखा अन्न,

सूतिकान्न, दुबारा पकाया अन्न, जला अन्न, वैष्णव व्रती इनका भोजन न करें। कोहड़ा, कुलथी, तरोई, मूली, बेल, कपित्थ, आंवला, नारियल, लम्बी लौकी, पटोल, वृहतीफल, मसूरिक शाक, कचवली तथा तुलसी का प्रतिपदा से लगाकर क्रमशः एक-एक का वर्जन करें। जैसे प्रतिपदा को कोहड़ा, द्वितीया को कुलथी त्यागें। माघमासीय व्रत का भी यही विधान है। कार्त्तिक व्रत के फल को चार मुख वाले ब्रह्मा भी नहीं कह सकते।।४३-५६।।

।।षष्ठ अध्याय समाप्त।।

सप्तमोऽध्यायः

दीपदान माहात्म्य, दीपदान महिमा, राजा का दीपदान वर्णन

नारद उवाच

भगवन्कृतकृत्योऽस्मि तवपादसमाश्रयात्। श्रोतव्यं नेह भूयो मे विद्यते देवसत्तम!।।१।।
तथाऽपि भगवन्किञ्चित्प्रष्टव्यंमेहृदिस्थितम्। त्वद्वाक्यामृतपीतस्यनमेतृप्तिर्हिजायते।।२।।
दीपदानस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि ते प्रभो। येनचाऽपिपुरादत्तस्तद्वदस्वचतुर्मुख।।३।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे भगवान्! आपके चरण कमलों का आश्रय लेकर मैं कृतार्थ हो गया। यद्यपि पुनः अब मुझे कुछ नहीं सुनना है, हे देव श्रेष्ठ! तथापि मेरे अन्तःकरण में कुछ प्रश्न उदित हो रहे हैं। आपकी वाणी रूप अमृतधारा का पान करने पर भी मेरी पिपासा शान्त नहीं हो रही है। हे प्रभो! मैं दीपदान का माहात्म्य सुनना चाहता हूं। हे चतुरानन! किस मनुष्य ने पूर्वकाल में दीप प्रदान किया था, कृपया कहिये।।१-३।।

ब्रह्मोवाच

प्रातःस्नात्वा शुचिर्भूत्वा दीपंदद्यात्प्रयत्नतः। तेनपापानि नश्येयुस्तमांसीवभगोदये।।४।।
आजन्मयत्कृतं पापं स्त्रिया वा पुरुषेण च। तत्सर्वं नाशमायातिकार्त्तिके दीपदानतः।।५।।
अत्र ते वर्णयिष्यामि इतिहासं पुरातनम्। श्रवणात्सर्वपापघ्नं दीपदानफलप्रदम्।।६।।
पुरा द्रविडदेशे तु ब्राह्मणो बुद्धनामकः। तस्यभार्याऽभवद्दुष्टा अनाचाररता मुने!।।७।।
तस्याः संसर्गदोषेण क्षीणाऽऽयुर्मृतिमाप्तवान्।
पत्यौ मृतेऽपि सा पत्नी अनाचारे विशेषतः।।८।।
रताऽभून्न हि तस्यास्तु लज्जालोकापवादतः। सुतबन्धुविहीनासासदाभिक्षान्नभोजना।।९।।

ब्रह्मा कहते हैं—प्रातःकाल स्नान द्वारा पवित्र होकर प्रयत्नपूर्वक दीपदान करने से तमोराशि दूर हो जाती है, जैसे सूर्योदय द्वारा अन्धकार दूर हो जाता है। स्त्री हो अथवा पुरुष हो, कार्त्तिकमास में दीपदान करने

से आजन्मकृत समस्त पापों का नाश हो जाता है। इस सम्बन्ध में तुमसे एक प्राचीन इतिहास कहता हूं। इसे सुनने वाले का सभी पाप नष्ट होता है तथा वह व्यक्ति दीपदान का फललाभ करता है। हे मुनिवर! पूर्वकाल में द्रविड़ देशवासी बुद्ध नामक ब्राह्मण था। उसकी स्त्री अनाचाररत तथा दुष्टा थी। ब्राह्मण बुद्ध इस पत्नी के संसर्गदोष के कारण क्षीणायु होकर मृत हो गया। पति के निधन के अनन्तर पत्नी और भी विशेषरूप से दुराचरण में लिप्त हो गयी। उसमें लज्जा तथा लोकापवाद का भय भी नहीं रह गया। पुत्र तथा सुहृदरहित वह बुद्ध ब्राह्मण की पत्नी भिक्षान्न भोजन से निर्वाह करने लगी।।४-९।।

न संस्कारान्नमल्पं वा भुक्त्वा पर्युषिताशिनी। परपाकरतानित्यंतीर्थयात्रादिवर्जिता।।१०।।
कथायाः श्रवणं चैव न श्रृतंतु तया द्विज!। एकदा ब्राह्मणः कश्चित्तीर्थयात्रापरायणः।।११।।
तस्या गृहं समागच्छद्विद्वान्वैकुत्सनामकः। अनाचाररतां तां तु दृष्ट्वा ब्रह्मर्षिसत्तमः।
कोपेन रक्तचक्षु; संस्तामुवाचाऽसतीं स्त्रियम्।।१२।।

उसे कभी भी तनिक सुसंस्कृत अन्न नहीं मिलता था। वह केवल बासी भोजन करती थी तथा नित्य परपाक (दूसरे का बनाया) भोजन पाकर तीर्थयात्रा इत्यादि को त्याग चुकी थी। हे द्विज! वह किसी की बात न तो सुनती थी न मानती थी। एक बार तीर्थयात्रा तत्पर विद्वान् कुत्स द्विज उसके गृह आये तथा वे ब्रह्मर्षिश्रेष्ठ कुत्स उस अनाचार तत्पर स्त्री को देखकर क्रोधित होकर कहने लगे।।१०-१२।।

कुत्स उवाच

वक्ष्यामि साम्प्रतं मूढे! मद्वाक्यमवधारय।।१३।।
दुःखहेतुमिमं देहं पूयशोणितपूरितम्। पञ्चभूतात्मकञ्चैव किं च पुष्णासि दूतिके!।।१४।।
जलबुद्बुदवद्देहो नाशमायाति निश्चितम्। अनित्यं देहमाश्रित्यनित्यं त्वंमन्यसेहृदि।।१५।।
तस्मादन्तः स्थितं मोहं त्यज मूढे! विचारतः। स्मरसर्वोत्तमं देवंकुरुश्रवणमादरात्।।१६।।
कार्त्तिके मासि सम्प्राते स्नानदानादिकं कुरु। दामोदरस्यप्रीत्यर्थं दीपदानं तथाकुरु।।१७।।
लक्षवर्त्यादिकं चैव लक्षपद्मादिकं तथा। प्रदक्षिणां तु देवस्य नमस्कारं तथैव च।।१८।।
धारणं पारणं चैव कुरु भक्त्या हि कार्त्तिके। विधवानां व्रतमिदं सधवानां तथैव च।।१९।।
सर्वपापप्रशमनं सर्वोपद्रवनाशनम्। तत्राऽपि कार्त्तिके मासि दीयतां दीप उत्तमः।।२०।।
दीपो हरेः प्रियकरः कार्त्तिके मासिनिश्चितम्। महापातककृद्धापिदीपदानात्प्रमुच्यते।।२१।।

कुत्स कहते हैं—हे मूढ़े! मैं जो कहता हूं उसे सावधानी पूर्वक सुनें। किस कारण से तुम इस मल-मूत्र-रक्त युक्त पञ्चभूतात्मक देह का पालन-पोषण कर रही हो? हे दूतिके! यह देह जल के बुलबुले के समान शीघ्र नाशवान् है। तुम इस अनित्यदेह का आश्रय लेकर मन ही मन इसे नित्य मान रही हो! वास्तव में यह नित्य नहीं है। हे मूढ़े! विचार बुद्धि द्वारा हृदयस्थ मोह का त्याग करो। तुम सर्वोत्तम देवता का स्मरण करो। आदर के साथ सत्कथा को सुनो। कार्त्तिक मास में स्नान-दानादि करो। तुम दामोदर की प्रसन्नता हेतु एक लाख बत्ती युक्त दीप जलाओ तथा एक लाख पद्मदान करके भक्ति के साथ श्रीहरि की प्रदक्षिणा करके उनको प्रणाम करो। कार्त्तिक व्रत का धारण तथा पारण सर्वपापनाशक है। वह सर्व उपद्रव नाशक भी है। इस व्रत का पालन

सधवा तथा विधवा, दोनों कर सकते हैं। कार्त्तिक मास में उत्तम दीपदान करो। कार्त्तिक मास में दीप हरि के लिये प्रियकारी है। महापापी भी दीपदान द्वारा सर्वपाप विनिर्मुक्त हो जाता है।।१३-२१।।

पुराकश्चिद्द्विजवरो नाम्ना हरिकरो ह्यभूत्। अधर्मविषयासक्तः शश्वद्वेश्यारतो द्विजः।।२२।।
पितृवित्तक्षयकरो वंशच्छेदे कुठारकः। कदाचित्तेन विधवे! द्यूते पितृधनं महत्।।२३।।
हारितं दुष्टसंसर्गात्ततो दुःखी स चाऽभवत्। कदाचित्साधुसंसर्गात्तीर्थयात्राप्रसङ्गतः।।२४।।
अयोध्यामागतोवत्से! महापापकरोद्विजः। कार्त्तिकेमासिसम्प्राप्तःश्रीमद्द्विजगृहेसदा।।२५।।
द्यूतव्याजेन तेनाऽऽशु दीपो दत्तो हरेः पुरः। ततःकालान्तरेविप्रोमृतोमोक्षमवाप्तवान्।।२६।।
महापातककृद्वाऽपि गतवानभयं हरिम्। तस्मात्त्वं कार्त्तिके मासि दीपदानं तथा कुरु।।२७।।
तथाऽन्यान्यपि दानानि कुरु भक्तिसमन्विता।
इत्यादिश्याथ तां कुत्सो जगामाऽन्यगृहं द्विजः।।२८।।

पूर्वकाल में सतत् वेश्यागामी, अधर्मासक्त हरिकर नामक ब्राह्मण था। वंश का उच्छेद करने में कुल्हाड़ी के समान वह ब्राह्मण द्यूत में आसक्त हो गया। उसने पिता के समस्त धन का नाश कर दिया। दुष्टों के साथ के कारण समस्त पितृधन का नाश हो जाने पर वह अतीव दुःखमग्न हो गया। हे विधवा! एक बार वह हरिहर महापातकी होकर भी साधुओं के साथ तीर्थयात्रा द्वारा अयोध्या पहुंचा। हे वत्से! तब कार्त्तिक मास था। वह हरिकर एक ब्राह्मण के यहां ठहरा तथा द्यूत द्वारा देवालय के समक्ष दीप जलाया। कुछ समय पश्चात् वह हरिकर मृत हो गया तथापि उस हरिकर ने महापातकी होने पर भी तीर्थयात्रा तथा देवालय में दीप जलाने के कारण सर्वपाप रहित होकर अभयदाता हरि को पाकर मोक्ष प्राप्त किया। इस कारण अब तुम भी भक्तियुक्त चित्त से कार्त्तिक मास में वैसा ही दीपदान तथा अन्य दान करो। द्विजवर कुत्स ब्राह्मणी को यह उपदेश देकर अन्यत्र चले गये।।२२-२८।।

साऽपिकुत्सवचःश्रुत्वापश्चात्तापेनसंयुता। व्रतंतुकार्तिकेमासिकरिष्यामीतिनिश्चिता।।२९।।
पतङ्गोदयवेलायां कार्त्तिकेस्नानमम्भसि। दीपदानं व्रतं चैव मासमेकं चकार सा।।३०।।
ततः कालान्तरे चैव गतायुर्मृतिमागता। दीपदानस्य माहात्म्यान्महापापकृदप्यसौ।।३१।।
स्वर्गमार्गं गतासास्त्रीकालेमोक्षमवापह। तस्मान्नारद! माहात्म्यंदीपदानस्यकोवदेत्।।३२।।
कार्त्तिके दीपदानं तु महापुण्यफलप्रदम्। कार्त्तिकव्रतनिष्ठो यो दीपदानादिकृन्नरः।।३३।।
दीपदानस्येतिहासं शृण्वन्वै मोक्षमाप्नुयात्।।३४।।
दीपदानस्य माहात्म्यं वक्तुं केनेह शक्यते। परदीपप्रबोधस्य माहात्म्यं शृणु नारद!।।३५।।
स्वस्याऽपि शक्तिराहित्ये परस्याऽपि प्रबोधनम्।
यः कुर्याल्लभते सोऽपि नाऽत्र कार्या विचारणा।।३६।।
दीपार्थं वर्तिकां तैलं पात्रं वा यो ददाति हि। सहायं वाऽथ कुरुतेददतांदीपमुत्तमम्।।३७।।
स तुमोक्षमवाप्नोतिनाऽत्रकार्याविचारणा। कार्त्तिकेदीपदानस्यमाहात्म्यंकोनुवर्णयेत्।।३८।।

ब्राह्मणी भी ऋषि कुत्स का यह वचन सुनकर परितृप्त हो गयी। उसने व्रत लिया कि "मैं कार्त्तिक मास में व्रत करूंगी।" उसने यह निश्चय करके कार्त्तिक मास में सूर्योदय स्नान तथा दीपदान हेतु एक मास व्रत किया। तदनन्तर वह ब्राह्मणी आयु क्षीण होने पर मृत हो गयी। वह महापातकी होकर भी दीपदान माहात्म्य के कारण स्वर्ग गयी तथा कालान्तर में उसे मोक्ष प्राप्त हो गया। अतएव कार्त्तिक मास में दीपदान महापुण्यप्रद है। हे नारद! इस दीपदान के फल को कौन कह सकता है? कार्त्तिक मास में निष्ठावान् होकर दीपदान के इतिहास को सुनो। इससे मोक्ष प्राप्त होता है। दीपदान की महिमा कह सकने में कौन सक्षम है? हे नारद! अब पराये दीप को प्रबोध करने का माहात्म्य सुनो। यदि स्वयं दीपदान कर सकने का सामर्थ्य नहीं है, तब जो व्यक्ति दूसरे के दीपक को सतत् बुझाने से बचता है, उसे भी दीपदान का ही फललाभ होता है। इसमें सन्देह नहीं है। जो व्यक्ति दीप हेतु तैल, बत्ती किंवा पात्र प्रदान करता है, अथवा दीपदाता की सहायता करता है, उसे भी मोक्ष मिलता है, इसमें सन्देह नहीं है। कार्त्तिक के दीपदान माहात्म्य को कौन कह सकता है?।।२९-३८।।

स्वस्याऽपि शक्तिराहित्ये परदीपं प्रबोधयेत्।
सोऽपि तत्फलमाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा।।३९।।
वेश्या चेन्दुमतीनाम तस्या गेहेऽथ मूषिका। परदीपप्रबोधेन मोक्षं प्रापसुदुर्लभम्।।४०।।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन परदीपं प्रबोधयेत्। तेन मोक्षमवाप्नोति मूषिकावन्न संशयः।।४१।।
परदीपप्रबोधस्य फलमीदृग्विधं मुने!। साक्षाद्दीपप्रदानस्य माहात्म्यं केन वर्ण्यते।।४२।।

जब स्वयं दीपदान का सामर्थ्य न हो तब परदीप रक्षण भी दीपदानवत् फलप्रद है। इन्दुमती नामक एक वेश्या प्राचीन काल में रहती हैं। एक बार वह धनी पुरुष न मिलने के कारण खिन्न मन से देवगृह में दीपदान करके सो गयी। तभी दीपक तेल को पीने एक मूषक आया। तेल पीते-पीते उसने बत्ती ऊपर उठा दिया, जिससे दीपक तेज हो गया। वह मूषक इस पुण्यफल से मुक्त हो गया। हे मुनिवर! परदीप प्रबोधन का माहात्म्य ऐसा ही है। तब जिसने साक्षात् दीपदान किया है, उसका माहात्म्य कौन कह सकता है?।।३९-४२।।

नारद उवाच

कार्त्तिके दीपदानस्य माहात्म्यञ्च मयाश्रुतम्। परदीपप्रबोधस्यमाहात्म्यमपिवैश्रतम्।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि व्योमदीपस्य वैभवम्।।४३।।

नारद कहते हैं—हे ब्रह्मन्! कार्त्तिक मास में स्वयं दीपदान करने तथा परदीप प्रबोधन का माहात्म्य सुना। अब आकाशदीप प्रदान का माहात्म्य सुनने की इच्छा है।।४३।।

ब्रह्मोवाच

आकाशदीपमाहात्म्यं शृणुपुत्र! समाहितः। यस्य श्रवणमात्रेण दीपदाने मतिर्भवेत्।।४४।।
सम्प्राप्ते कार्त्तिके मासिप्रातःस्नानपरायणः।
आकाशदीपंयोदद्यात्तस्यपुण्यं वदाम्यहम्।।४५।।
सर्वलोकाधिपोभूत्वासर्वसम्पत्समन्वितः। इहलोकेसुखंभुक्त्वाचान्तेमोक्षमवाप्नयात्।।४६।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे पुत्र! समाहित होकर आकाशप्रदीप का माहात्म्य श्रवण करो। यह श्रवण करने से दीपदान की इच्छा उत्पन्न होती है। कार्त्तिक मास में समागत होने पर प्रातःस्नान परायण मानव आकाशप्रदीप प्रदान करके जो पुण्यलाभ करता है, वही कहता हूं। कार्त्तिक मास में आकाशप्रदीप प्रदाता निखिल लोकों का अधिपति होकर सर्व सम्पत्तिवान् हो जाता है तथा इहलोक में विविध सुखलाभ करके अन्त में मृत्यु के उपरान्त मोक्ष लाभ करता है।।४४-४६।।

स्नानदानक्रियापूर्वं हरिमन्दिरमस्तके। आकाशदीपो दातव्यो मासमेकं तु कार्त्तिके।
कार्त्तिके शुद्धपूर्णायां विधिनोत्सर्जयेच्च तम्।।४७।।
यः करोति विधानेनकार्त्तिकेव्योम्निदीपकम्। न तस्यपुनरावृत्तिःकल्पकोटिशतैरपि।।४८।।
अत्र ते वर्णमिष्यामि इतिहासं पुरातनम्। यस्य श्रवणमात्रेण व्योमदीपफलं लभेत्।।४९।।
पुरा तु निष्ठुरोनामलुब्धको लोककण्टकः। यमुनातीरवासी चकालमृत्युरिवाऽपरः।।५०।।
वने चरन्मृगान्सर्वान्हत्वा वृत्तिमकल्पयत्। पथिकान्बाधते नित्यं चोरवृत्त्याधनुर्धरः।।५१।।
कश्चिद् ग्रामं जगामाऽऽशु चौर्यार्थं कार्त्तिके मुने!।
तस्मिन्विदर्भनगरे राजा सुकृतिनामकः।।५२।।
चन्द्रशर्माख्यविप्रस्य वचनात्कार्त्तिकेसुधीः। चकार व्योमदीपन्तुहरिमन्दिरमस्तके।।५३।।
दीपं दत्त्वा महाभक्त्याअशृणोच्चकथांनिशि। एतस्मिन्नेवकालेतुचौर्यार्थंसमुपागतः।।५४।।
राज्ञा दत्तं व्योमदीपं पश्यन्क्षणमतिष्ठत। तदानीं दैवयोगेन गृध्रो जवसमन्वितः।।५५।।

कार्त्तिक मास में पहले स्नानदानादि सम्पन्न करके तदनन्तर विष्णु मन्दिर के शिखर पर एक मास दीपदान करना चाहिये। कार्त्तिक मास में पवित्र स्थान पर यथाविधि दीप उत्सर्ग करके जो मानव आकाश प्रदीप प्रदान (जलता है) करता है, कोटिकल्प पर्यन्त उसका पुनर्जन्म नहीं होता। इस सम्बन्ध में तुमसे एक प्राचीन इतिहास कहता हूं, उसे सुनकर आकाशदीपदान का ही फल लाभ होता है। पूर्वकाल में समस्त लोककण्टक निष्ठुर नामक एक व्याध था। द्वितीय यम के समान लगने वाला यह निष्ठुर यमुनातट पर निवास करता था। धनुर्धारी निष्ठुर वन में विचरण करता तथा पशुओं का वध करके उनसे जीविका चलाता था। वह मार्ग में चौर कृत्य द्वारा भी पथिकों को उत्पीड़ित करता था। यह निष्ठुर व्याध एक समय कार्त्तिक मास में चौर्य कार्य हेतु शीघ्रतापूर्वक एक ग्राम में प्रविष्ट हो गया। हे मुने! उस देश का राजा था सुकृति। सुधी राजा सुकृति ने चन्द्रवर्मा नामक द्विज के उपदेशानुसार कार्त्तिक मास में हरिमन्दिर के मस्तक प्रदेश पर आकाशप्रदीप जलाकर भक्तिपूर्वक रात्रिकाल में हरिकथा सुनी। इस समय निष्ठुर चौर्य कार्य हेतु वहां गया तथा क्षणकाल वहां खड़ा होकर उसने उस आकाश प्रदीप को देखा। तभी वहां पर दैवयोग से वेगगामी एक गृध्र आ गया।।४७-५५।।

शीघ्रमागत्य जग्राह तैलपात्रं सदीपकम्। स्वमुखेनैव संगृह्य वृक्षाग्रं च समाश्रयत्।।५६।।
तत्र पीत्वा तु तैलञ्च दीपं स्थाप्य स पक्षिराट्। वृक्षाग्रं तु समास्थाय क्षणमात्रमतिष्ठत।।५७।।

उस गृध्र ने शीघ्रतापूर्वक तैलपात्र के साथ आकाश प्रदीप उठाया तथा तैलपात्र को मुंह में दबाकर एक वृक्ष पर जा बैठा। तदनन्तर उस पक्षी ने तेल पीकर दीपपात्र को वृक्ष की शाखा के आगे रखा तथा उसी वृक्ष पर विश्राम करने लगा।।५६-५७।।

तदानीं दैवयोगेन ग्रहीतुंपक्षिसत्तमम्। मार्जारोऽप्यारुहद्वृक्षं पक्षिणाऽधिष्ठितंतुतम्।।५८।।
तदग्रे मुखदीपञ्च पश्यन्क्षणमतिष्ठत। आकाशदीपमाहात्म्यं कथितं चन्द्रशर्मणा।।५९।।
राज्ञे सुकृतिनाम्नेचतौ वै शुश्रुवतुःक्षणम्। खगमार्जारकौतत्र स्वस्वचाञ्चल्यदोषतः।।६०।।
मार्जारो जगृहे तत्र शाखान्तरगतं खगम्। दैवेन चोदितौ वृक्षाच्छिलायां पतितौ तदा।।६१।।
भग्नगात्रौ मृतौ तत्र पक्षिमार्जारकौभुवि। दिव्यदेहसमायुक्तौ यानारूढौदिवङ्गतौ।।६२।।

तभी वहां दैवयोग से एक बिलाड आया तथा गृध्र को पकड़ने हेतु वृक्ष शाखा पर चढ़ा। तदनन्तर उस बिलाड़ ने पक्षी के सामने दीप को देखा तथा क्षणकाल वहीं रुक गया। इस समय द्विज चन्द्रशर्मा राजा सुकृति से आकाशदीप का माहात्म्य कह रहे थे। तभी पक्षी एवं बिलाड़, इन दोनों ने चन्द्रशर्मा कथित आकाशदीप की महिमा को सुना। पक्षी तथा मार्जार दोनों ही चंचल होते हैं। अपनी चंचलता के कारण दोनों का मन हरिकथा में नहीं लगा। तब बिलाड़ (मार्जार) ने एक क्षण भी देरी किये बिना गृध्रपक्षी पर आक्रमण कर दिया। तभी दैवात् बिलाड़ एवं गृध्र, दोनों ही वृक्ष के नीचे शिला पर गिरे तथा शरीर भग्न होने के कारण दोनों ही मृत हो गये। हे नारद! मृत्यु के उपरान्त बिलाड़ तथा गृध्र दोनों ने ही दिव्य देह धारण किया तथा स्वर्गलोक विमान से गमन किया।।५८-६२।।

तत्सर्वंलुब्धको दृष्ट्वा चौर्यार्थं समुपागतः। निवृत्तो दुष्टभावेन कथयन्तंकथांमुनिम्।।६३।।
चन्द्रशर्माणमाभाष्य इदं वचनमब्रवीत्। चन्द्रशर्मन्मया दृष्टं चौर्यार्थं ह्यागतेन च।।६४।।
राज्ञा सुकृतिना दत्तं व्योमदीपं मनोहरम्। तदानीं दैवयोगेन खगः पात्रं प्रगृह्य च।।६५।।
तैलं पीत्वा तु तत्पात्रं सदीपं तुमनोहरम्। वृक्षाग्रेस्थापयित्वाच तत्र क्षणमतिष्ठत।।६६।।
मार्जारोऽप्यागतस्तत्रग्रहीतुंपक्षिपुङ्गवम्। दैवेन प्रेरितौ तौ च उभे शाखेसमाश्रितौ।।६७।।

त्वन्मुखात्कथ्यमानां हि कथां शुश्रुवतुः क्षणम्।
पश्चाच्चाञ्चल्यदोषेण मार्जारो ह्यग्रहीत्खगम्।।६८।।
तौ वृक्षात्पतितौ मृत्युम्प्राप्तौ च क्षणमात्रतः।
उभौ तौ दिव्यरूपौ च यानारूढौ दिवं गतौ।।६९।।

तदाश्चर्यमहं दृष्ट्वा त्वां प्रष्टुं समुपागतः। तौ कौ पुराच मार्जारखगौ तद्वदभोद्विज।।७०।।
तिर्यग्योनिसमापन्नौमुक्तौकेनच कर्मणा। इतिलुब्धवचः श्रुत्वा चन्द्रशर्माऽब्रवीत्तदा।।७१।।

चोरी के लिये आये उस व्याध निष्ठुर ने यह सब प्रत्यक्ष देखा था। वह दुष्टभाव से निवृत्त होकर तत्क्षण धर्मवक्ता मुनि चन्द्रशर्मा के पास आकर कहने लगा—"हे चन्द्रशर्मन्! मैंने चौर्य कार्यार्थ यहां आगमन करके देखा कि दैवयोग से एक गृध्र ने आकर राजा सुकृति प्रदत्त मनोहर आकाश प्रदीप को उठाकर वृक्षशाखा पर आरोहण किया। उसने तैलपान करके वहीं वृक्ष शाखा पर वह दीपपात्र रखा तथा क्षणकालार्थ वहीं बैठ गया। तदनन्तर एक बिलाड़ आकर पक्षिराज गृध्र को पकड़ने का प्रयास करने लगा। हे द्विज! इन्होंने दैव प्रेरित होकर वृक्ष शाखा से ही आपके मुख से निःसृत धर्मकथा को सुना। तत्पश्चात् चाञ्चल्य दोष के कारण बिलाड़ ने गृध्र पर आक्रमण किया। इससे वे दोनों ही वृक्षशाखा से गिरकर मृत हो गये। उन्होंने मरणोपरान्त दिव्यदेह धारण

किया तथा यान पर बैठकर स्वर्ग चले गये। मैं यह अद्भुत व्यापार देखकर इसका कारण जानने आपके निकट आया हूं। हे द्विज! ये खग गृध्र तथा मार्जार कौन हैं, पूर्वजन्म में ये क्या थे? इनको तिर्यक् योनि क्यों मिली, अब क्या करने से ये मुक्त हो गये? कृपया मुझे बतायें।।'' व्याध का यह वचन सुनकर चन्द्रशर्मा कहने लगे।।६३-७१।।

शृणु लुब्ध! प्रवक्ष्यामि तयोर्वृत्तान्तमञ्जसा।
मार्जारोऽपि पुरा पापी तथा श्रीवत्सगोत्रजः।।७२।।
देवशर्माइतिप्रोक्तो देवद्रव्याऽपहारकः। अहो बलनृसिंहस्य पूजाकर्तृत्वमाप सः।।७३।।
तस्मिन्देवालये प्राप्तं तैलं द्रव्यादिकं तथा। अपहृत्यच तेनैव कुटुम्बं पोषयत्यसौ।।७४।।
आयुर्नीत्वैवमेवाऽसौ ततः पञ्चत्वमागतः। तस्मात्पापात्कालसूत्रं महारौरवरौरवम्।।७५।।
निरुच्छ्वासं तथा प्राप्य असिपत्रवनंक्रमात्। छिद्यमानो महाकायैर्यमदूतैर्भयङ्करैः।।७६।।
अनुभूय च तान्सर्वान्ब्रह्मराक्षसतांगतः। ततस्तुश्वानयोनौच चण्डालोऽभूत्कुकर्मतः।।७७।।
एवं जन्मशतम्प्राप्य भूमौ मार्जारतांगतः। आकाशदीपमाहात्म्यंश्रुत्वेदानीं तु दैवतः।
निर्मुक्ताऽखिलपापस्तु अगमद्धरिमन्दिरम्।।७८।।

चन्द्रशर्मा कहते हैं—''हे व्याध! खग तथा मार्जार का पूर्व वृत्तान्त सुनो। पूर्वकाल में यह मार्जार श्रीवत्स गोत्र में जन्मा था। उसका नाम था देवशर्मा। पापी देवशर्मा सदैव देवद्रव्य का हरण करता था। दुःख की कथा क्या कहूं। देवशर्मा को नृसिंह श्रीहरि की पूजा का कर्तृत्व प्राप्त था। देवालय में जो कुछ तैल प्राप्त होता था, सब हस्तगत करके वह उससे अपने आत्मीय-स्वजनों का भरण-पोषण करता था। तदनन्तर कालवशात् देवशर्मा क्षीणायु होकर पञ्चत्व को प्राप्त कर गया। इन पापों के कारण क्रमशः वह कालसूत्र, रौरव, महारौरव, निरुच्छ्वास तथा असिपत्रवन नामक नरकों को प्राप्त हो गया। असिपत्रवन में पतित देवशर्मा महाकाय यमदूतों द्वारा भेदा जाता तथा समस्त नरक भोग भोगने के उपरान्त उसने ब्रह्मराक्षस होकर जन्म लिया। तदनन्तर वह कर्मदोष के कारण कुत्ते की योनि में तदनन्तर चाण्डाल योनि में गया। इस प्रकार उसने सैकड़ों जन्मों को भोग कर अन्त में मार्जार योनि को प्राप्त किया। सम्प्रति दैवयोग से वह मार्जार आकाशदीप माहात्म्य सुनने के अनंतर समस्त कलुषरहित होकर हरि के निकट पहुंचा।।७२-७८।।

गृध्रोऽयं तु पुरा विप्रोमिथिलेवेदपारगः। शर्यातिरितिविख्यातोनाम्नालोकेमहाप्रभुः।।७९।।
दासीसङ्गं चकाराऽसौ वेश्यासङ्गं तथैवच। तेन दोषेण महता पञ्चत्वमगमत्तदा।।८०।।
कुम्भीपाके महाघोरे स्थित्वा युगचतुष्टयम्। कर्मशेषेण भूमौच गृध्रत्वमगमत्तदा।।८१।।
दैवेन चोदितो गृध्रस्तैलपानार्थमागतः।।८२।।
दत्त्वा चाऽऽकाशदीपञ्च श्रुत्वा चैव हरेः कथाम्।
विध्वस्ताऽखिलपापस्तु जगाम हरिमन्दिरम्।।८३।।
इत्येतत्सर्वमाख्यातं लुब्ध! गच्छ यथासुखम्।
व्याधोऽप्यस्य वचः श्रुत्वा गत्वा चैव स्वमन्दिरम्।।८४।।

यह गृध्र पूर्वकाल में मिथिला देश में शर्याति नामक प्रख्यात प्रभुशक्तिसम्पन्न ब्राह्मण था। द्विज शर्याति ने वेश्या एवं दासियों का संसर्ग प्राप्त किया तथा दूषित होकर मृत हो गया। इस पाप के कारण उसने महाघोर कुंभीपाक नरक में चार युग दण्डभोग किया। वहां कर्मक्षय हो जाने पर उसने गृध्र योनि में जन्म लिया। हे व्याध! अब वह गृध्र दैव कृत प्रेरणा से यहां तैलपानार्थ आया। वह दीपक मुख में लेकर वृक्षशाखा पर बैठा। तभी आकाश दीपदान की कथा हो रही थी। जिसे उसने वृक्षशाखा पर बैठे हुये सुना। हे व्याध! तदनन्तर गृध्र भी समस्त पापरहित होकर हरिधाम को प्राप्त हो गया। मैंने तुमसे यह सब कथा कह दिया। अब तुम यथासुख जाओ।'' व्याध भी यह सुनकर अपने घर लौट गया।।७९-८४।।

व्रतं चाऽऽकाशदीपस्य चकारविधिवन्मुने!। आयुःशेषंतदानीत्वाजगामहरिमन्दिरम्।।८५।।
सुनन्दोऽपि महाराज आश्चर्य समुपागतः। चकार विधिना मासं चन्द्रशर्मोक्तमार्गतः।।८६।।
प्रातः स्नात्वा शुचिर्भूत्वाकार्त्तिके मासि वै नृपः।
कोमलैस्तुलसीपत्रैः समभ्यर्च्य जनार्दनम्।।८७।।
रात्रौ दद्याद् व्योमदीपं मन्त्रेणाऽनेन वै नृपः।।८८।।
दामोदराय विश्वाय विश्वरूपधरायच। नमस्कृत्वा प्रदास्यामि व्योमदीपं हरिप्रियम्।
निर्विघ्नं कुरु देवेश! यावन्मासः समाप्यते।।८९।।
व्रतेनाऽनेन देवेश! त्वयिभक्तिः प्रवर्द्धताम्। इति मन्त्रेण राजाऽसौ दीपदानञ्चकारह।।९०।।

हे मुनिवर! तब वह व्याध भी उन ब्राह्मण का वाक्य सुनकर अपने घर आया तथा उसने यथाविधि आकाश दीपव्रत धारण किया। तदनन्तर काल आने पर मृत्यु के उपरान्त उसने वैकुण्ठलोक प्राप्त किया। राजा सुकृति ने भी यह विस्मय देखकर चन्द्रशर्मा के उपदेशानुसार विधिवत् एक मास मर्यन्त कार्त्तिकव्रत धारण किया तथा नित्य पवित्र होकर प्रातःस्नान किया तथा पद्म एवं तुलसीपत्र द्वारा जनार्दनार्चन भी किया। वह ''दामोदराय विश्वाय विश्वरूपाधराय च, नमस्कृत्वा प्रदास्यामि व्योमदीपं हरिप्रियम्। निर्विघ्नं कुरुदेवेश! त्वयि भक्ति प्रवर्द्धताम्।'' मन्त्र से दीपदान करता था।।८५-९०।।

ब्राह्मे मुहूर्ते च पुनर्व्योमदीपं ददाति हि। विष्णोः पूजा कृताप्रातःप्रातःस्नानञ्चकारह।।९१।।
उत्सर्गस्य विधिं कृत्वा व्योम्निदीपं समाप्य च।
ब्राह्मणान्भोजयित्वा च व्रतं विष्णोः समापयेत्।।९२।।
तेन पुण्यप्रभावेण स राजा मुनिसत्तम!। शरदां शतसाहस्रमिह भागान्मनोहरान्।।९३।।
सुपुत्रपौत्रस्वजनैबुभुजे सह भार्यया। ततश्चाऽन्ते द्विजवर विमानं सुमनोहरम्।।९४।।
स्त्रीभिः सहः समारुह्य मोखामर्ग गतो मुने!।
चतुर्भुजः पीतवासाः शङ्खचक्रगदाधरः।।९५।।
विष्णुलोके विष्णुरिव प्रोच्यमानः सदाऽमरैः।
क्रीडयामास राजाऽसौ यथाकामं महामनाः।।९६।।

तस्मात्तु कार्तिके मासि मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।
आकाशदीपो दातव्यो विधानेन हरेः प्रियः॥९७॥
दास्यन्ति ये कार्त्तिकमासि मर्त्या व्योम प्रदीपं हरितुष्टयेऽत्र।
पश्यन्ति ते नैव कदाऽपि देवं यमं महाक्रूरमुखं मुनीन्द्र!॥९८॥
अथाऽन्यच्च प्रवक्ष्यामि व्योमदीपस्य वैभवम्।
बालखिल्यैः पुरा प्रोक्तं तच्छृणुष्व द्विजोत्तम!॥९९॥

राजा इस विधान से दीपदान करता। वह ब्राह्ममुहूर्त्त में आकाश दीपदान, प्रातः सन्ध्या तथा विष्णु पूजा करता। दीप उत्सर्ग करके आकाश दीपदान सम्पन्न करता था। दीपोत्सर्ग के उपरान्त आकाश दीपदान करके वह राजा ब्राह्मण भोजन कराता। हे मुनिसत्तमगण! इस पुण्यफल द्वारा राजा पुत्र-पौत्र-स्वजन एवं पत्नी के साथ सौ सहस्त्रवर्ष पर्यन्त विविध मनोरम भोगों का उपभोग करके अन्त में मनोहर विमान पर आरूढ़ होकर स्त्री पुत्रादि के साथ मोक्ष को प्राप्त हो गया। महामना राजा सुकृति वैकुण्ठ पहुंचकर चतुर्भुज, शंखचक्रगदाधारी, पीतवस्त्रधारी होकर विष्णु के समान होकर अमरगण द्वारा पूजित होता हुआ अपनी इच्छा के अनुरूप क्रीड़ारत रहता था। इसलिये दुर्लभ मानव जन्म पाकर यथाविधि कार्त्तिक मास में हरिप्रिय आकाश दीपदान करें।

हे मुनीन्द्र! जो लोग हरि की प्रसन्नता हेतु कार्त्तिक मास में दीपदान करते हैं, महाक्रूर मुखवाले यम का वे कदापि दर्शन नहीं करते। हे द्विजश्रेष्ठ! पूर्वकाल में बालखिल्यगण ने जिन आकाशदीप क़ी महिमा का वर्णन किया था, वह सब सुनो।।९१-९९।।

बालखिल्या ऊचुः

कृष्णादिमासक्रमतःकार्त्तिकस्याऽऽदिमासतः। आकाशदीपदानंतुकुर्वन्तुऋषिसत्तमाः॥१००॥
तुलायां तिलतैलेनसायंसन्ध्यासमागमे। आकाशदीपं यो दद्यान्मासमेकं निरन्तरम्॥१०१॥
सश्रीकाय श्रीपतयेश्रिया न सवियुज्यते। आकाशदीपवंशस्तुविंशद्धस्तोत्तमोभवेत्॥१०२॥

बालखिल्यगण कहते हैं—हे ऋषिप्रवरगण! कार्त्तिक मास के आदि से लेकर अन्त पर्यन्त आकाशदीपदान करिये। जो कार्त्तिक मास की सन्ध्या के समय तिल तैल द्वारा लक्ष्मी के साथ जनार्दन को एक मास पर्यन्त निरन्तर आकाशदीप प्रदान करते हैं, लक्ष्मी कदापि उनका त्याग नहीं करतीं। आकाशदीप का जो बांस हो, वह बीस हाथ का उत्तम कहा गया है।।१००-१०२।।

मध्यमो नवहस्तः स्यात्कनिष्ठः पञ्चहस्तकः।
यथा दूरस्थितैर्लोकैर्दृश्यते तत्तथाऽऽचरेत्॥१०३॥

तथाऽभ्रादिकरण्डेषु दीपदानं विशिष्यते। वंशस्य नवमांशेनलम्बाकार्या पताकिका॥१०४॥
मयूरपिच्छमुष्टिं वा कलशं चोपरिन्यसेत्। विष्णुप्रीतिकरोदीपःपित्रुद्धारस्यकारकः॥१०५॥
एकादश्यास्तुलार्काद्वा दीपदानमतोऽपिवा। दामोदराय नभसि तुलायां लोलयासह॥१०६॥
प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोऽनन्ताय वेधसे। आकाशदीपसदृशं पितुरुद्धारकं नहि॥१०७॥

हेलिकस्य च द्वौ पुत्रौ तत्रैकस्तु पिशाचकः। व्योमदीपपुण्दानान्मोक्षंप्राप्तसुदुर्लभम्॥१०८॥
नमः पितृभ्यः प्रेतेभ्यो नमो धर्माय विष्णवे। नमो यमाय रुद्राय कान्तारपतये नमः॥१०९॥
मन्त्रेणाऽनेनयेमर्त्याःपितृभ्यः खेतुदीपकम्। प्रयच्छन्तिगतायेस्युर्नरकेयान्तितेऽपिवै।
उत्तमां गतिमित्थं ते दीपदानं मयेरितम्॥११०॥

मध्यम बांस नौ हाथ का तथा अधम बांस पांच हाथ ऊंचा होता है, तथापि दूर से ही लोग ऊर्ध्व में दीप को देख सकें ऐसा ऊंचा बांस लगाकर दीपदान करें। इस बांस के नवम भाग में एक पताका लटकायें। इसके शिर पर एक मोरपंख अथवा एक कलसी रखें। दीपपात्र अभ्रककरण्ड का प्रशस्त है। इस प्रकार का दीपदान विष्णु के लिये प्रीतिपद तथा पितरों का उद्धारक होता है आश्विन मास की संक्रान्ति अथवा एकादशी के दिन से इसे मूलोक्त "दामोदराय" से लेकर "नमोऽनन्ताय वेधसे" पर्यन्त के मन्त्र को पढ़कर स्थापित तथा प्रदान करें। आकाशदीप के समान पितृगण का उद्धारक अन्य कुछ भी नहीं है। हेलिक के दो पुत्र थे। उनमें एक पिशाच होकर भी आकाशदीप के पुण्यफल से दुर्लभ मोक्ष पा सका था। जो "नमः पितृभ्यः प्रेतेभ्यो नमो धर्माय विष्णवे। नमो यमाय रुद्राया कान्तारपतये नमः" मन्त्र द्वारा आकाशदीप दान करते हैं, उनके नरकस्थ पितर भी उत्तमगति लाभ करते हैं।।१०३-११०।।

लक्ष्मीसन्ततिसिद्ध्यर्थमारोग्याय प्रदीपयेत्॥१११॥
कार्त्तिकेकृष्णपक्षे तु द्वादश्यादिषु पञ्चसु। तिथीषूक्तः पूर्वरात्रे नृणां नीराजनाविधिः॥११२॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भवनेषु विशेषतः। कूटागारेषु चैत्येषु सभासु च नदीषु च॥११३॥
प्राकारोद्यानवापीषु प्रतोलीनिष्कुटेषु च। मन्दुरासु विविक्तासुहस्तिशालासुचैवहि॥११४॥
प्रदोषसमये दीपान्दद्यादेवं मनोहरान्। कृतंयैः कार्त्तिके मासि दीपदानं विधानतः॥११५॥
दृश्यन्ते ये रत्नभाजस्तेऽत एव प्रकीर्तिताः। दीपदानासमर्थश्चेत्परदीपं तु रक्षयेत्॥११६॥

यह जो दीपदान कहा गया इसके प्रभाव से मनुष्य लक्ष्मी, सन्ताति तथा आरोग्य लाभ करता है। कार्त्तिक कृष्णा द्वादशी से पांच तिथि तक राजा लोग दीपदान तथा पूर्व रात्रि में नीराजन करें। विशेषतः यह ब्रह्मा, विष्णु, महेशादिदेवगण के देवभवन (मन्दिर में), सुरंगद्वार पर, चैत्य, सभा, नदी, प्राकार, उद्यान, वापी, ग्राम के अन्दर वाले पथ पर, गृहाराम, अश्वशाला, निर्जन स्थल तथा गजशाला पर प्रदोष काल में मनोहर आकाशदीप लगाये। सविधि कार्त्तिक मास में दीपदान करके मानव विविध धनरत्न के भागी हो जाते हैं। जो स्वयं दीपदान न कर सके वह अन्य के दीप की रक्षा करें।।१११-११६।।

योवेदाभ्यासिने दद्याद्दापार्थं तैलमादरात्। कोवा तस्य फलंवक्तुंभुवितिष्ठतिमानवः॥११७॥
दीपान्दद्याद्बहुविधान्कार्त्तिके विष्णुसन्निधौ।
कार्त्तिकेमासि सम्प्राप्ते गगने स्वच्छतारके॥११८॥
रात्रौलक्ष्मीःसमायाति द्रष्टुं भुवनकौतुकम्। यत्रयत्रचदीपान्सा पश्यत्यब्धिसमुद्भवा॥११९॥
तत्रतत्र रतिं कुर्यान्नाऽन्धकारे कदाचन। तस्माद्दीपःस्थापनीयःकार्तिकेमासिवैसदा॥१२०॥

लक्ष्मीरूपार्थिनां प्रोक्तं दीपदानंविशेषतः। देवाऽऽलयेनदीतीरे राजमार्गे विशेषतः॥१२१॥
निद्रास्थलेदीपदातातस्यश्रीःसर्वतोमुखी। दुर्बलस्याऽऽलयंवीक्ष्यदीपशून्यंतुयोददेत्॥१२२॥
विप्रस्यवाऽऽन्यवर्णस्यविष्णुलोकेमहीयते। कीटकण्टकसंकीर्णेदुर्गमे विषमस्थले॥१२३॥
कुर्याद्यो दीपदानानि नरकं स न गच्छति। दद्याद्रात्रौ पञ्चनदे दीपं यो विधिपूर्वकम्॥१२४॥

कार्त्तिक मास में जो मनुष्य सादर वेदाभ्यासी को तैल देता है एवं विष्णुमन्दिर में नाना प्रकार से दीपदान करता है, ऐसा कौन मनुष्य इस पृथिवी पर है जो उसके दानफल का वर्णन करने में सक्षम है? कार्त्तिक मास आने पर गगन में स्वच्छ तारा उदित होते हैं। तब लक्ष्मी देवी त्रिभुवन के कौतुक को देखने हेतु रात्रि में आती हैं। उसी समय विष्णुमन्दिर में अनेक दीपदान करें। क्योंकि सागर तनया रमादेवी जहां-जहां दीपक देखती हैं, उन सभी स्थानों में उनको प्रसन्नता होती है। वे अन्धकार वाले स्थान में कदापि नहीं जातीं। अतएव जो लक्ष्मी-श्री की कामना करते हैं, वे कार्त्तिक मास में दीपदान अवश्य करें। देवालय, नदीतीर, विशेषतः राजपथ, निद्रास्थांन में जो दीपदान करते हैं, उनको सर्वतोमुखी लक्ष्मी प्राप्त होती हैं। ब्राह्मण अथवा अन्य जाति के दरिद्रगण को दीपरहित देखकर जो उनको दीपदान करते हैं, वे विष्णुलोक प्राप्त करते हैं। कीट-कंटकयुक्त किंवा दुर्गन्धयुक्त विषम स्थान में जो दीपदान करते हैं, वे कदापि नरक नहीं जाते। पंचनद क्षेत्र में (पञ्चगंगा घाट, वाराणसी) दीपदान रात्रि में करें।।११७-१२४।।

तस्य वंशे प्रजायन्ते बालकाःकुलदीपकाः। पितृपक्षेऽन्नदानेनज्येष्ठाऽऽषाढेचवारिणा॥१२५॥
कार्त्तिके तत्फलं तेषांपरदीपप्रबोधनात्। बोधनात्परदीपस्य वैष्णवानाञ्च सेवनात्॥१२६॥
कार्त्तिके फलमाप्नोति राजसूयाऽश्वमेधयोः। पुराहरिकरोनाम द्विजःपापरतः सदा॥१२७॥

उस व्यक्ति के वंश में उत्पन्न बालक कुलदीपक होते हैं। पितृपक्ष में अन्नदान तथा ज्येष्ठ एवं आषाढ़ में जलदान का जो फल है, वह फल कार्त्तिक में दीपदान अथवा दूसरे के दीप को प्रदीप्त बनाये रखने में मिल जाता है। कार्त्तिक में अन्य का दीप प्रदीपित रखना अथवा वैष्णवगण की सेवा करना, ये दो कार्य व्यक्ति को यथाक्रमेण बाजपेय और अश्वमेध यज्ञफल प्रदान करते हैं। पूर्वकाल में हरिकर नामक पापरत ब्राह्मण था।।१२५-१२७।।

कृतं द्यूतप्रसङ्गेन दीपदानं हि कार्त्तिके। तेनपुण्यप्रभावेण स्वर्गं प्राप द्विजोत्तमः॥१२८॥
आकाशदीपदानेन पुरा वै धर्मनन्दनः। विमानवरमारुह्य विष्णुलोकं ययौ नृपः॥१२९॥

यःकुर्यात्कार्त्तिकेविष्णोःपुरःकर्पूरदीपकम्।
प्रबोधिन्यांविशेषेणतस्यपुण्यंवदाम्यहम्॥१३०॥

कुले तस्य प्रसूता ये पुरुषास्तेहरिप्रियाः। क्रीडित्वासुचिरं कालमन्तेमुक्तिंव्रजन्तिच॥१३१॥
दीपको ज्वलते यस्य दिवा रात्रौ हरेर्गृहे। एकादश्यां विशेषेणसयातिहरिमन्दिरम्॥१३२॥

लुब्धकोऽपि चतुर्दश्यां दीपंदत्त्वाशिवालये।
भक्त्याविनापरेलिङ्गेशिवलोकंजगामसः ॥१३३॥

गोपः कश्चिदमावास्यां दीपं प्रज्वाल्य शार्ङ्गिणः।
मुहुर्जयजयेत्युक्त्वा स च राजेश्वरोऽभवत्॥१३४॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे दीपदानमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः।।७।।

वह ब्राह्मण जूआ खेलने के कारण पापरत हो गया था, तथापि उसने कार्त्तिक में दीपदान करके उस पुण्य के प्रभाव से ब्राह्मणों में श्रेष्ठत्व लाभ किया तथा स्वर्ग गमन किया। पूर्वकाल में आकाशदीप प्रदान करके विदर्भ देशवासी राजा धर्मतनय विमानारूढ़ होकर विष्णुलोक गये। जो कार्त्तिक मास में विष्णु के समीप उज्वल शिखा वाले कपूर दीप का दान करते हैं, उनका पुण्यफल सुनो। उनके वंश में उत्पन्न मनुष्य हरि को प्रिय होते हैं तथा दीर्घकाल तक संसार में सुखपूर्वक क्रीड़ारत रहकर अन्त में मुक्त हो जाते हैं। उनके द्वारा प्रदत्त दीप हरिमन्दिर में विशेषतः एकादशी के समय दिन-रात प्रज्वलित रहता है। वे वैकुण्ठधाम प्राप्त करते हैं। व्याध ने शिवालय में चतुर्दशी के दिन दीपदान किया तथा लिंग के प्रति भक्तिविहीन होने पर भी उसने शिवलोक में स्थान प्राप्त किया। एक गोप ने भी बारम्बार "हरि की जय हो" कहते हुये दीपदान करके राज्यैश्वर्य प्राप्त किया।।१२८-१३४।।

।।सप्तम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अष्टमोऽध्यायः

तुलसी माहात्म्य, हरिमेघ-सुमेघ आख्यान

नारद उवाच

भूयः कथय तृप्तिर्हि नास्ति मे कमलासन!। त्वद्वागमृतपानेन तृषा भूयः प्रवर्धते॥१॥

नारद कहते हैं—हे कमलासन! आपके वाक्यामृत पान से मेरी पिपासा निवृत्त नहीं हो रही है, परन्तु पुनः-पुनः तृष्णा बढ़ती जा रही है। अतएव आप पुनः हरिकथा कहिये।।१।।

ब्रह्मोवाच

प्रातः स्नात्वा शुचिर्भूत्वा कार्त्तिकेविष्णुतत्परः। देवंदामोदरंपूज्यकोमलैस्तुलसीदलैः।
स तु मोक्षमाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा॥२॥
भक्त्या विरहितोयस्तुसुवर्णादिभिरर्चयेत्। तस्यपूजांनगृह्णातिनाऽत्रकार्याविचारणा॥३॥
सर्वेषामपि वर्णानां भक्तिरेषा परा स्तुता। भक्त्याविरहितंकर्मनविष्णोःप्रियकारणम्॥४॥

भक्त्या सम्पूजितो नित्यं तुलस्यास्तु दलार्धतः। स्वयं प्रत्यक्षमायाति भगवान्हरिरीश्वरः॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—विष्णुभक्ति में लगा मनुष्य कार्त्तिक मास में प्रातः स्नान से शुद्ध होकर कमल एवं तुलसीपत्र से देव दामोदर की पूजा करके मोक्ष प्राप्त करता है। इस सम्बन्ध में कोई विचार अथवा विवाद नहीं करना चाहिये। भक्तिरहित मनुष्य सुवर्णादि से भले ही पूजन करें तथापि भगवान् वह पूजन ग्रहण नहीं करते। सभी जातियों में एकमात्र भक्ति ही प्रधानरूप से अवलम्बनीय होती है। भक्तिहीन क्रिया से विष्णु प्रसन्न नहीं होते। भक्तिभाव से आधे तुलसी दल से ही पूजा करके मनुष्य शीघ्र वैकुण्ठ प्राप्त करता है। चोलराजा ने भक्ति से सम्यक् प्रकार से पूजा करके सत्वर रूप से वैकुण्ठ गमन किया था। भक्तिभाव से पूजित श्रीहरि स्वयं प्रत्यक्षरूपेण दर्शन देते हैं।।२-५।।

विष्णुदासः पुराभक्त्या तुलसीपूजनेनच। विष्णुलोकंगतःशीघ्रं चोलोगौणत्वमागतः॥६॥

तुलस्याः शृणु महात्म्यं पापघ्नं पुण्यवर्द्धनम्।
यत्पुरा विष्णुना प्रोक्तं रमायै तद्वदाम्यहम्॥७॥

पूर्वकाल में विष्णुदास ने भक्तिभाव से तुलसीदल से ही नारायण की पूजा करके वैकुण्ठ गमन किया था। चोलराज ने भक्तिपूर्वक तुलसीदल से नारायण का पूजन करके गणत्व लाभ किया था। हे नारद! पापनाशक, पुण्यवर्द्धक तुलसी माहात्म्य को सुनो। हरि ने पूर्वकाल में लक्ष्मी से इस तुलसी माहात्म्य को कहा था। वही मैं तुमसे कह रहा हूं।।६-७।।

सम्प्राप्ते कार्त्तिकेमासि तुलस्याःपूजनं हरेः। येकुर्वन्तिनराभक्त्यातेयान्तिपरमं पदम्॥८॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तुलस्याः कोमलैर्दलैः। पूजनीयो महाभक्त्यासर्वक्लेशविनाशनः॥९॥
रोपिता तुलसी यावत्कुरुते मूलविस्तरम्। तावद्युगसहस्त्राणिब्रह्मलोके महीयते॥१०॥
तुलसीपत्रसंयुक्तजले स्नानं चरेद्यदि। सर्वपापविनिर्मुक्तो मोदते विष्णुमन्दिरे॥११॥
वृन्दावनं च कुरुते रोपणार्थं महामुने!। तावतैव विमुक्ताऽघो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥१२॥
तुलसीकाननं ब्रह्मन्गृहे यस्याऽवतिष्ठते। तद्गृहं तीर्थभूतं तु न यान्ति यमकिङ्कराः॥१३॥
सर्वपापहरं पुण्यं कामदं तुलसीवनम्। रोपयन्तिनराःश्रेष्ठास्तेनपश्यन्तिनभास्करिम्॥१४॥
तुलसीकाष्ठसंयुक्तं गन्धं यो धारयेन्नरः। तद्देहं न स्पृशेत्पापं क्रियमाणं तथैव च॥१५॥
तुलसीविपिनच्छाया यत्र चैव भवेद्द्विज। तत्र श्राद्धं प्रकर्तव्यंपितृणां तृप्तिहेतवे॥१६॥

यन्मुखे तुलसीपत्रं कर्णे शिरसि दृश्यते।
यमस्तं नेक्षितुं शक्तः किमु दूता भयङ्कराः॥१७॥

कार्त्तिक मास समागत होने पर जो भक्तिपूर्वक तुलसी तथा विष्णु की पूजा करते हैं, उनको परमपद मिल जाता है। अतएव सर्वप्रयत्न से कमलदल से अत्यन्त भक्तिपूर्वक विष्णुपूजन करें। इससे समस्त क्लेशसमूह नष्ट होते हैं। लगाये गये तुलसी पादप की जड़ जहां तक फैलती है, तुलसी लगाने वाला उतने सहस्त्रयुग पर्यन्त ब्रह्मलोक में निवास करता है। मनुष्य तुलसीपत्र युक्त जल में स्नान करके सर्वपापरहित होकर विष्णुलोक गमन

करता है। हे महामुनि! जो विपुल तुलसी कानन का निर्माण करते हैं, वे उस पुण्य के कारण ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं। हे ब्रह्मन्! जिसके गृह में तुलसीकानन विराजित है, उसका गृह तीर्थ है तथा वहां यमदूतगण का आगमन नहीं होता। जो सर्वपापहारी कामद पुण्यप्रद तुलसी कानन का रोपण तथा निर्माण करते हैं, वे श्रेष्ठ मनुष्य यम के मुख का दर्शन नहीं करते। जो गन्धयुक्त तुलसी काष्ठ धारण करते हैं, यदि वे पाप भी करते हैं, तथापि पाप उनका स्पर्श नहीं करता।

हे द्विज! जहां तुलसी पादप की छाया विद्यमान रहती है, वहीं पितरों की तृप्ति हेतु श्राद्ध करें। जिसका मुख-मस्तक तथा कर्ण तुलसीदल से युक्त है, यम भी उसकी ओर नहीं देख सकते। यमदूतगण की तो बात ही क्या?।।८-१७।।

तुलस्या महिमां यस्तु शृणुयान्नित्यमादृतः।
सर्वपापविमुक्तात्मा ब्रह्मलोकं स गच्छति॥१८॥

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। तुलस्या विषये ब्रह्मञ्छवणात्पापनाशनम्॥१९॥

जो सदैव आदरपूर्वक तुलसी माहात्म्य का श्रवण करते हैं, वे सर्वकलुषरहित होकर ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं। हे ब्रह्मन्! तुलसी का माहात्म्य तो ऐसा है, जिसके लिये एक पुरातन इतिहास उदाहरणार्थ कहा गया है। इसको सुनने से पापों का ढेर भी नष्टप्रायः हो जाता है।।१८-१९।।

पुरा काश्मीरदेशे तु ब्राह्मणौ सम्बभूवतुः। हरिमेधसुमेधाख्यौविष्णुभक्तिपरायणौ॥२०॥
सर्वभूतदयायुक्तौ सर्वतत्त्वार्थवेदिनौ। कदाचित्तौ द्विजवरौ तीर्थयात्रापरायणौ॥२१॥
गच्छन्तावेकतो विप्रौ कान्तारे श्रमविह्वलौ। तुलसीकाननं तत्र ददर्शतुररिन्दमौ॥२२॥

तयोः समेधास्तद्दृष्ट्वा तुलसीकाननं महत्।
प्रदक्षिणीकृत्यतदा ववन्दे भक्तिसंयुतः॥२३॥

दृष्ट्वैतद्धरिमेधास्तु उवाच परया मुदा। ज्ञातुं तुलस्या माहात्म्यं तत्फलञ्चपुनः पुनः॥२४॥

पूर्वकाल में काश्मीर देश में विष्णुभक्ति तत्पर सर्वतत्वार्थविद् सर्वभूतसमूह के प्रति दयार्द्र चित्त वाले हरिमेधा तथा सुमेधा नामक दो ब्राह्मण रहते थे। एक बार वे दोनों ब्राह्मणप्रवर तीर्थयात्रापरायण होकर एक मार्ग पर चले जा रहे थे। वे मार्गश्रम से विह्वल हो गये। तभी इन ब्राह्मणद्वय ने मार्ग में एक तुलसी कानन देखा। सुमेधा ने इस तुलसी कानन को देखकर सश्रद्ध होकर भक्ति के साथ उसे प्रणाम किया तथा प्रदक्षिणा किया। यह देखकर हर्षित होकर हरिमेधा कहने लगे कि मुझे तुलसी माहात्म्य तथा फल जानने की इच्छा हो रही है।।२०-२४।।

हरिमेधा उवाच

किमर्थं विप्रः! देवेषु तीर्थेषु च व्रतेषु च। स्थितेषु विप्रमुख्येषु प्रणामं कृतवानसि॥२५॥

हरिमेधा कहते हैं—हे विप्र! श्रेष्ठ देवता, तीर्थ तथा व्रतावस्थित ब्राह्मणों के रहते तुम तुलसी कानन को क्यों प्रणाम कर रहे हो?।।२५।।

सुमेधा उवाच

श्रृणु विप्र महाभाग! साधु वाक्यमुदीरितम्। आतपोबाधतेह्यावांगत्वैतद्वटसन्निधौ॥२६॥
तस्यच्छायां समाश्रित्य वक्ष्यामि ते यथार्थतः। एवमुक्तः सुमेधास्तु हरिमेधेन संयुतः॥२७॥
वटं जगाम धर्मज्ञो महत्कोटरसंयुतम्। तत्र विश्राम्य विप्रोऽसौ हरिमेधमुवाच ह॥२८॥
श्रूयतां विप्रशार्दूल! तुलस्यास्तूत्तमां कथाम्। परमेशप्रसादेन सञ्जाताया पयोनिधौ॥२९॥
पुरा दुर्वाससः शापाद्गतैश्वर्ये पुरन्दरे। ममन्थुः क्षीरजलधिं ब्रह्माद्याः ससुराऽसुराः॥३०॥
ऐरावतः कल्पतरुश्चन्द्रमाः कमला तथा। उच्चैःश्रवा कौस्तुभश्चतथाधन्वन्तरिर्हरिः॥३१॥
हरीतक्यादयश्चाऽपि दिव्या ओषधयस्तथा।
अजायन्त द्विजश्रेष्ठ! लोकश्रेयोविधायकाः॥३२॥
ततः पीयूषकलशमजरामरदायकम्। कराभ्यां कलशं विष्णुर्धारयन्सुतलं परम्।
अवेक्ष्य मनसा सद्यः परां निर्वृतिमाप ह॥३३॥
तस्मिन्पीयूषकलश आनन्दास्त्रोदबिन्दवः। व्यपतंस्तुलसी सद्यः समजायतमण्डला॥३४॥
सर्वलक्षणसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता॥३५॥
तत्रोत्पन्नां तथा लक्ष्मीं तुलसीं च ददुर्हरेः। देवा ब्रह्मादयस्ते हि जगृहे भगवान्हरिः॥३६॥
ततोऽतीव प्रियकरा तुलसी जगताम्पतेः॥३७॥

सुमेधा कहते हैं—"हे द्विज! सुनो! तुमने अत्युत्तम प्रश्न किया है। हम दोनों ही इस समय धूप से क्लेश पा रहे हैं। अतः चलो! हम दोनों समीपस्थ वट की छाया में बैठें, जहां मैं तुमसे तुलसी महिमा का यथायथ वर्णन करूंगा।" यह कहने के पश्चात् सुमेधा तथा हरिमेधा महाकोटरयुक्त वटवृक्ष के पास गये। वहां विश्राम करके सुमेधा ने हरिमेधा से कहा—"हे द्विजप्रवर! जो परमेश्वर की कृपा से सागरतट पर उत्पन्न होकर स्थित है, उस तुलसी की उत्तम कथा को सुनो। पूर्वकाल में दुर्वासा के कोप के कारण इन्द्र ने श्री रहित होकर ब्रह्मा आदि समस्त देवगण के साथ तथा दानवगण के साथ क्षीरसागर का मन्थन किया। हे द्विजप्रवर! तब मथित सागर से समस्त लोकों के लिये मंगलप्रद ऐरावत, कल्पवृक्ष, चन्द्र, कमला, उच्चैश्रवा, अश्व, कौस्तुभमणि, विष्णुरूपी धन्वन्तरी तथा हरीतकी आदि दिव्य औषधि उत्पन्न हो गयी। तदनन्तर अजरत्व-अमरत्व दायक अमृत कलस उत्थित हो गया। विष्णु ने उसे अपने करद्वय में उठाया तथा उसे देखकर परम निर्वृति पाया। हे द्विज! विष्णु के प्रसन्न होने पर उस गंभीर पीयूष कलस में उनके आनन्दाश्रु के गिरने के कारण तत्क्षण मण्डलाकार तुलसी उत्पन्न हो गयी। तब ब्रह्मा आदि देवता तथा असुरगण ने उस सर्वलक्षण युक्त सर्वाभरणभूषित तुलसी तथा कमला देवी को विष्णु के हाथों में अर्पित किया। भगवान् हरि ने भी उनको ग्रहण कर लिया।।२६-३७।।

सा तु देवगणैः सर्वैर्विष्णुवत्पूज्यते प्रिया। नारायणो जगत्त्रातातुलसीतस्यवल्लभा॥३८॥
तस्मात्तस्यानमस्कारो मया विप्र! कृतस्ततः। इत्येवं वदतस्तस्यसुमेधस्यमहात्मनः॥३९॥
आराददृश्यत महद्विमानं सूर्यवर्चसम्। तदानीं वटवृक्षस्तु पपात पुरतो मुने!॥४०॥

तथैव तस्माद्वृक्षाच्चपुरुषौद्वौविनिर्गतौ। द्योतयन्तौदिशःसर्वास्तेजसासूर्यसन्निभौ॥४१॥
प्रणामं चक्रतुस्तौ हि हरिमेधसुमेधयोः। हरिमेधसुमेधौ तौतौ दृष्ट्वा भयविह्वलौ॥४२॥
ऊचतुर्विस्मयाविष्टौ तावुभौ देवसन्निभौ॥४३॥

तब से देवगण ने तुलसी को विष्णुवत् पूजन किया। वह जगत्पति को अत्यन्त प्रिय हो गयीं। हे विप्र! नारायण समस्त जगत् के त्राणकर्त्ता हैं। तुलसी उनकी प्रिया है। इसीलिये मैं तुलसी को प्रणाम करता हूं। महात्मा सुमेधा के यह कहने पर पास में ही एक सूर्यवत् कान्तिवाला विमान दिखलाई पड़ा तथा वह वटवृक्ष तत्काल गिर गया। हे मुनिवर! तत्पश्चात् उस वटवृक्ष से सूर्य के समान दो दिव्य पुरुष अपने-अपने तेज से समस्त दिशाओं को समुद्भासित करके ब्राह्मण सुमेधा तथा हरिमेधा के पास आये तथा उनको प्रणाम किया। उनको देखकर सुमेधा तथा हरिमेधा भय से विह्वल होकर विस्मयपूर्वक उन दिव्य पुरुषद्वय से कहने लगे।।३८-४३।।

हरिमेधसुमेधसावूचतुः

युवांकौ देवसङ्काशौ भवन्तौ सर्वमङ्गलौ। मन्दारमालां तरुणांधारयन्तौतथाऽमरौ।
नमस्कार्यौ तथाऽऽवाभ्यां पूज्यौ च सुररूपिणौ॥४४॥
इत्युक्तौ ब्राह्मणाभ्यां तावूचतुर्वृक्षनिर्गतौ। युवामेव पिता माताआवयोश्चतथागुरुः।
बन्ध्वादयस्तथा चैव युवामेव न संशयः॥४५॥

हरिमेधा-सुमेधा कहते हैं—"आप दोनों देवकान्तियुक्त कौन हैं? आपको देखकर लगता है कि आप देवता हैं। आप देवरूप हैं। अतः आपको प्रणाम!" द्विजद्वय के यह कहने पर वटवृक्ष से निर्गत वे पुरुषद्वय कहने लगे—"आप लोग हमारे माता-पिता-गुरु तथा बान्धव आदि सब कुछ हैं। इसमें संशय नहीं है।" तदनन्तर उनमें से ज्येष्ठ पुरुष कहने लगा।।४४-४५।।

ज्येष्ठ उवाच

अहं तु देवलोकस्य आस्तीकोनाम नामतः॥४६॥
अप्सरोगणसम्वीतः कदाचिन्नन्दनं वनम्। क्रीडार्थमगमं चाऽद्रौ विषयासक्तचेतनः॥४७॥
रेभिरे देववनिता यथाकामं मया सह। मुक्तामल्लिकमाल्यानिनिपेतुस्तानियोषिताम्॥४८॥
तपतो रोमशस्यैव तद्दृष्ट्वा कुपितोमुनिः। योषितानांऽपराधोऽयंयासां वैपरतन्त्रता॥४९॥
अयमेव दुराचारः शापार्ह इति चाऽब्रवीत्। तवं ब्रह्मराक्षसो भूत्वा वटवृक्षेचरेतिमाम्॥५०॥
प्रसादितो मया सोऽथ विशापमपि दत्तवान्।
तुलसीपत्रमाहात्म्यं विष्णोर्नाम तथा द्विजात्॥५१॥
यदाश्रृणोषिसद्यस्त्वंविमुक्तिंयास्यसेपराम्। इतिशप्तस्तुमुनिनाचिरकालंसुदुःखितः॥५२॥
वसाम्यत्र वटे दैवाद्भवद्दर्शनतोध्रुवम्। मुक्तिर्जाता विप्रशापाद्द्वितीयस्य कथां श्रृणु॥५३॥
अयं मुनिवरः पूर्वं गुरुशुश्रूषणे रतः। गुरोराज्ञामनादृत्य ब्रह्मराक्षसतां गतः॥५४॥

युष्मत्प्रसादादधुना ब्रह्मशापाद्विमोचितः। तीर्थयात्राफलंचैवयुवाभ्यामिहसाधितम्।।५५।।
उत्तरोत्तरपुण्यानि वर्धन्ते च दिनेदिने। इत्युक्त्वा तौ मुनिवरौ प्रणम्यच पुनः पुनः।।५६।।
तावनुज्ञाप्य तौ धाम जग्मतुः परया मुदा। ततस्तौ तीर्थयात्रार्थं परमौ मुनिपुङ्गवौ।।५७।।
शंसन्तौ तुलसीं पुण्यां जग्मतुर्मुनिपुङ्गव!। एवंनारदमाहात्म्यंतुलस्याःकोऽनुवर्णयेत्।।५८।।
तस्मान्नारदमासेऽस्मिन्कार्त्तिकेहरितुष्टिदे। कर्तव्यातुलसीपूजानाऽत्रकार्याविचारणा।।५९।।
एवमङ्गव्रतान्येव प्रोक्तानि मुनिसत्तम!। उपाङ्गानि प्रवक्ष्यामिबालखिल्योदितानिच।।६०।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे कार्त्तिकमाससमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे तुलसीमाहात्म्यवर्णनं नामाऽष्टमोऽध्यायः।।८।।

—❀—

ज्येष्ठ पुरुष कहता है—"हम देवलोक वासी हैं। मेरा नाम आस्तीक है। मैं एक बार विषयासक्त होकर अप्सराओं से घिरकर पर्वतस्थ नन्दनकानन में क्रीड़ार्थ आया। तव देवस्त्रीगण ने मुझ पर मुक्ता एवं मल्लिका माला फेंक-फेंक कर मेरा अनेक बार आलिंगन भी किया। ऋषि लोमश वहां तपःश्चरण तत्पर थे। वे हमारा व्यवहार देखकर कुपित हो गये। उन्होंने कहा—"यह नारियों का अपराध नहीं है, क्योंकि वे तो सदा पराधीन रहती हैं। यह आस्तीक ही दुराचारी तथा शापयोग्य है।" लोमश ऋषि ने यह कहकर मुझे शाप दिया—"तुम ब्रह्मराक्षस होकर वटतरु में निवास करो।" तदनन्तर मैंने विविध प्रकार से विनय द्वारा ऋषि को प्रसन्न किया, तब उन्होंने शापमोक्षणकारी यह वचन कहा कि "जब तुम ब्राह्मण से तुलसी का माहात्म्य तथा विष्णुनाम श्रवण करोगे, तब तुम शापमुक्त होकर परमगति लाभ करोगे। मैं इस प्रकार से अभिशप्त होकर दीर्घकाल से यहां निवास कर रहा हूं। आज दैवयोग से आप लोगों का दर्शन लाभ करने से मैं मुक्त हो गया। यह तो मेरा प्रसंग है अब मेरे साथी इस द्वितीय पुरुष का वृत्तान्त सुनें। यह पूर्वकाल में एक श्रेष्ठ मुनि थे। ये सदा गुरुसेवा परायण थे। एक बार दैवात् गुरु का आदेश पालन न करने के कारण ब्रह्मराक्षस हो गये। इनको भी आपकी कृपा से ब्रह्मशाप से मुक्ति मिल गयी। आपको तो तीर्थयात्रा का फल यहीं मिल गया तथापि आपका पुण्य नित्य उत्तरोत्तर बढ़े।" तदनन्तर वे दोनों दिव्य पुरुष इन ब्राह्मणों को बारम्बार प्रणामोपरान्त प्रसन्न चित्त से स्वधाम चले गये। हे नारद! तुलसी के माहात्म्य को कौन कह सकता है? हे वत्स नारद! हरि को प्रसन्नता प्रदाता इस कार्तिक मास में बिना अन्य विचार किये तुलसी पूजन कर्त्तव्य रूप है। हे मुनिप्रवर! इस प्रकार विष्णु के अंगरूप सभी व्रतों को कहा। अब बालखिल्य मुनिगण कथित उपाङ्गरूप व्रतों को कहता हूं।।४६-६०।।

।।अष्टम अध्याय समाप्त।।

नवमोऽध्यायः

वत्सद्वादशी, यम त्रयोदशी, नरकचतुर्दशी, दीपावली कृत्य वर्णन, कौमोदिनी माहात्म्य वर्णन

बालखिल्या ऊचुः

कृष्णः प्रोवाचधर्मायद्वादशींवत्ससञ्ज्ञिताम्। गोधूलिकालसंयुक्ताद्वादशीवत्सपूजने॥१॥
वत्सपूजावटे चैव कर्तव्याप्रथमेऽहनि। सवत्सांतुल्यवर्णांचशालिनींगांपयस्विनीम्।
चन्दनादिभिरालिप्य पुष्पमालाभिर्चयेत्॥२॥
तद्दिने तैलपक्वं च स्थालिपक्वं युधिष्ठिर। गोक्षीरं गोघृतं चैवदधिक्षीरं चवर्जयेत्॥३॥
दिनान्ते सूर्यबिम्बार्धादुभयत्र घटीदलम्। ततो नीराजनंकार्व्यंनिरीक्षेच्चशुभाऽशुभम्॥४॥

बालखिल्यगण कहते हैं—कृष्ण ने धर्म से वत्सद्वादशी का वर्णन किया था। गोधूलि काल में जब द्वादशीयुक्त हो तब वत्सपूजन करें। प्रथम दिन वट तरु की वत्सरपूजा करनी चाहिये। तदनन्तर जिस गौ का शान्त स्वभाव हो तथा बछड़ा तथा गौ एक ही वर्ण के हों, उस गौ का पूजन चन्दनादि लिप्त करके तथा पुष्पमाला से करें। हे युधिष्ठिर! इस वत्सद्वादशी व्रत के दिन तेल में पका तथा हांडी में पका द्रव्य, गोदुग्ध, गोघृत, गोदधि तथा खीर का त्याग करना चाहिये। तत्पश्चात् दिन का अवसान होने पर अर्द्धस्तिमित सूर्यमण्डल के दो घटी पूर्व अथवा पश्चात् नीराजन करके शुभाशुभ वक्ष्यमाण क्रमानुसार निरीक्षण करना चाहिये।।१-४।।

नानादीपान्प्रकल्प्याऽऽदौ स्वर्णपात्रदिसंस्थितान्।
नीराजयेद्दीपपूर्वं निरीक्षेत शुभाऽशुभम्॥५॥
लापयित्वा सर्वदीपानुत्तराभिमुखान्न्यसेत्।
मुख्या दीपा नव प्रोक्ता अन्यानपि च कल्पयेत्॥६॥
ज्वाला चेद्दक्षिणासंस्था सतेजस्का शिखान्विता।
स्थिरा चेत्सौख्यदा प्रोक्ता विपरीता तु दुःखदा॥७॥
कार्त्तिके कृष्णपक्षे तु द्वादश्यादिषुपञ्चसु। तिथिषूक्तःपूर्वरात्रे नृणां नीराजनाविधिः॥८॥
पक्षं संसूचयत्यादिर्द्वितीयोमासमेव च। तृतीय ऋतुमेवेह चतुर्थस्त्वयनं तथा।
वर्षं तु पञ्चमो दीपः शुभाऽशुभं विनिर्णयेत्॥९॥
सूर्यांशसम्भवा दीपा अन्धकारविनाशकाः।
त्रिकाले मां दीपयन्तु दिशन्तु च शुभाऽशुभम्॥१०॥
अभिमन्त्र्य च मन्त्रेण ततो नीराजयेत्क्रमात्॥११॥
आदौ देवांस्ततो विप्रान्हस्तिनश्च तुरङ्गमान्।
ज्येष्ठाञ्छेष्ठाघञ्जन्यांश्च मातृमुख्याश्च योषितः॥१२॥

ततो नीराजितान्दीपान्स्वस्वस्थानेषु विन्यसेत्।
रूक्षैर्लक्ष्मीविनाशः स्याच्छ्वेतैरन्नक्षयो भवेत्।
अतिरक्तेषु युद्धानि मृत्यु कृष्णशिखेषु च॥१३॥

वक्ष्यमाण क्रम यह है—पहले स्वर्णपात्र में नाना दीप जलाकर तथा उन दीपों को उत्तराभिमुखीन करके दान करें तथा नीराजन करते-करते शुभाशुभ निरीक्षण करना चाहिये। इस दीपमाला में अनेक दीप रहते हैं किन्तु उनमें नौ को प्रधान कहा गया है। इन सब दीपों की ज्वाला यदि दक्षिण की ओर जाये तथा तेज युक्तस्थिर शिखाकार लक्षित होने लगे, तब उसे सुखद जाने। जब यह विपरीत जाने लगे तब यह दुःखद है। कार्त्तिकमासीय कृष्णा एकादशी से पांच दिन तक रात्रि के पूर्वार्द्ध में नीराजन करना चाहिये। पहले दीप द्वारा सूचित शुभाशुभ काल एक पक्ष में प्रकट होता है। द्वितीय दीप द्वारा सूचित शुभाशुभ एक मास में, तृतीय दीप का दो मास में, चतुर्थ दीप द्वारा सूचित शुभाशुभ छः मास में, पंचम दीप द्वारा सूचित शुभाशुभ एक वर्षकाल में विदित होता है। नीराजनार्थ—

"सूर्यांशसम्भवा दीपो अन्धकार विनाशकाः। त्रिकाले मां दीपयन्तु दिशन्तु च शुभाशुभम्।।"

इस मन्त्र से दीप को अभिमंत्रित करके यथाक्रमेण देवता, विप्र, हाथी तथा अश्वगण की तथा ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, कनिष्ठ तथा मातृस्थानीय स्त्रीगण का नीराजन करके तदनन्तर अपने-अपने स्थानों पर नीराजित दीपों को स्थापित करना चाहिये। दीप की रुक्ष शिखा हो तब सम्पत्ति क्षय, श्वेत शिखा हो तब अन्नविनाश, अतिरुक्ष होने पर युद्ध तथा कृष्णशिखा होने पर मृत्यु होती है।।५-१३।।

एकाङ्गीनामगोपाला तयैतच्चव्रतं कृतम्। धनधान्यसमायुक्ता जाता वर्षत्रयेण सा॥१४॥
तस्माद्गोपूजनंकार्यं द्वादश्यां कार्त्तिकस्यतु। एतद्गोव्रतमाहात्म्यंश्रुत्वा कुर्वन्तियेनराः॥१५॥
तेगोव्रतप्रभावेणनगोभिर्विच्युताभुवि। गोऽपराधःकृतोयःस्यात्सव्रताद्विलयम्व्रजेत्॥१६॥

पूर्व में एकांगी नामक गोपाङ्गना इस व्रत द्वारा तीन वर्ष में विपुल धन्यधान्य सम्पन्ना हो गयी थी। इस हेतु कार्त्तिक मासीय कृष्णाद्वादशी को गोपूजा अवश्य करनी चाहिये। जो लोग गोव्रत माहात्म्य का श्रवण करते हैं तथा इस व्रत का आचरण करते हैं, इस व्रत के प्रभाव से पृथिवी पर वे कदापि गौरहित नहीं रहते। यदि उन्होंने गौ के प्रति कोई अपराध किया हो वह अपराध भी तत्क्षण विलीन हो जाता है।।१४-१६।।

बालखिल्या ऊचुः

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यांमासिचाऽऽश्वयुजे तथा। दीपोत्सवसमीपे तु व्रतमेतत्समाचरेत्॥१७॥
प्रातः स्नात्वात्रयोदश्यांकृत्वावैदन्तधावनम्। त्रिरात्रनियमं कृत्वागोविन्देभक्तितत्परः॥१८॥
कार्यएतद्व्रतस्यान्ते तथागोवर्द्धनोत्सवः। त्रिमुहूर्ताऽधिकाग्राह्यापरवेधोनदोषभाक्॥१९॥
आश्विनस्याऽसितेपक्षे त्रयोदश्यांनिशामुखे। यमदीपं बलिंदद्यादपमृत्युर्विनश्यति॥२०॥
पुराहेमनकस्यैव बालकश्चाऽपमृत्युतः। मुक्तोऽभूदाश्विनेकृष्णात्रयोदश्यां दयावशात्॥२१॥

बालखिल्यगण कहते हैं—आश्विन कृष्ण चतुर्दशी के दिन जो दीपोत्सव किया जाता है, यह गोव्रत

वहीं करना चाहिये। पूर्वदिन त्रयोदशी के समय दन्तधावन तथा प्रातःस्नानोपरान्त गोविन्द के प्रति एकान्त भक्ति सम्पन्न होकर त्रिरात्र विधानानुसार यह व्रत करके अन्त में गोवर्द्धन उत्सव करें। अगले दिन यदि तीन मुहूर्त्तपर्यन्त त्रयोदशी हो, तब अगले दिन यह करे क्योंकि यहां पर परवेध दोषावह नहीं होता। अकालमृत्यु विनाशार्थ आश्विन कृष्णा त्रयोदशी के दिन सन्ध्याकाल में यम के उद्देश्य से दीप प्रदान करें। पूर्वकाल में एक बार हेमनक नामक व्यक्ति का पुत्र अश्विनीकृष्ण त्रयोदशी के दिन दीपदान द्वारा यम के अनुग्रह से अपमृत्यु का निवारण हो जाने से जीवनयुक्त हो गया था।।१७-२१।।

दूता ऊचुः

यथानजीवितादुभ्रश्येदीदृशेतु महोत्सवे। तथोपायं ब्रूहि यम! कृपां कृत्वाऽस्मदग्रतः॥२२॥

यमदूतगण कहते हैं—हे यमदेव! जो करने से व्यक्ति जीवन से रहित नहीं होता, कृपया अनुग्रहपूर्वक ऐसे महोत्सव का उपाय कहिये।।२२।।

यम उवाच

आश्विनस्याऽसितेपक्षेत्रयोदश्यांनिशामुखे। प्रतिवर्षंतु यो दद्याद्गृहद्वारेसुदीपकम्॥२३॥
मन्त्रेणाऽनेन भो दूताः समानेयःसनोत्सवे। प्राप्तेऽपमृत्यावपिचशासनं क्रियतां मम॥२४॥
मृत्युनापाशदण्डाभ्यांकालेनच मया सह। त्रयोदश्यां दीपदानात्सूर्यजःप्रीयतांमिति॥२५॥
मन्त्रेणाऽनेनयोदीपं द्वारदेशे प्रयच्छति। उत्सवे चाऽपमृत्योश्च भयन्तस्य न जायते॥२६॥

यम कहते हैं—हे यमदूतों! आश्विन मास की कृष्णपक्षीय त्रयोदशी के दिन एक दीपदानोत्सव कहा गया है। जो मानव प्रत्येक वर्ष इस उत्सव सन्ध्या के समय—

"मृत्युना पाशदण्डाभ्यां कालेन च मया सह। त्रयोदश्यां दीपदानात् सूर्यजः प्रियतामिति।।"

जो इस मन्त्र से गृहद्वार पर उत्तम दीप प्रदान करता है, उसे यमभय नहीं होता। उस व्यक्ति की अपमृत्यु आने पर भी तुम लोग कदापि उसे न लाना। तुम सब मेरे इस आदेश का पालन करना।।२३-२६।।

बालखिल्या ऊचुः

पूर्वविद्धचतुर्दश्यामाश्विनस्य सितेतरे। पक्षे प्रत्यूषसमये स्नानं कुर्यात्प्रयत्नतः॥२७॥
अरुणोदयतोऽन्यत्ररिक्तायांस्नातियोनरः। तस्याऽब्दिकभवोधर्मोनश्यत्येवनसंशयः॥२८॥
तथाकृष्णचतुर्दश्यामाश्विनेऽर्कोदयेसुराः। यामिन्याःपश्चिमेयामेतैलाभ्यंङ्गोविशिष्यते॥२९॥
यदा चतुर्दशीनस्याद्द्विदिने चेद्विधूदये। दिनद्वये भवेच्चाऽपि तदा पूर्वैव गृह्यते॥३०॥
बलात्काराद्धठाद्वाऽपिशिष्टत्वान्नकरोतिचेत्। तैलाभ्यङ्गं चतुर्दश्यांरौरवं नरकं व्रजेत्॥३१॥
तैलेलक्ष्मीमीर्जलेगङ्गादीपावल्याश्चतुर्दशीम्।
प्रातःस्नानंहि यः कुर्याद्यमलोकंनपश्यति॥३२॥

बालखिल्यगण कहते हैं—आश्विन मासीय कृष्णपक्षीय पूर्वविद्धा चतुर्दशी काल में प्रत्यूष के समय यत्नपूर्वक स्नान करें। जो मानव एकमात्र अरुणोदय के अतिरिक्त अन्यकाल में चतुर्दशी के समय स्नान करता

उसके एक वर्ष में किये पापों का नाश हो जाता है। इसमें संशय नहीं है। हे सुरगण! आश्विन कृष्णा चतुर्दशी सूर्योदय तथा रात्रि के शेष याम में (अंतिम चारदण्ड में) तैल आदि लगाना निषिद्ध हैं। जब चतुर्दशी में दो दिनों तक चन्द्रोदय काल न मिले, तब दो दिन यह होने पर पूर्व की ही तिथि ग्राह्य है। बलपूर्वक हो अथवा शिष्टता से हो, अथवा हठ से हो, चतुर्दशी के दिन तेल माशिल करने वाला रौरव नरगामी होता है। चतुर्दशी के दिन तैल लगाकर स्नान करने वाले का लक्ष्मी त्याग कर देती हैं। वे दीपान्विता चतुर्दशी के दिन गंगा जल में निवास करती हैं। अतः इस दिन प्रातः स्नान करने वाला मानव कदापि यमलोक नहीं देखता।।२७-३२।।

अपामार्गमधोतुम्वीं प्रपुन्नाडमथाऽपरम्। भ्रामयेत्स्नानमध्ये तु नरकस्य क्षयाय वै॥३३॥
वारत्रयं त्रिवारञ्च पठित्वा मन्त्रमुत्तमम्॥३४॥
शीतलोष्ण समायुक्त सकण्टकदलान्वित!। हर पापमपामार्ग! भ्राम्यमाणः पुनः पुनः।
अपामार्गं प्रमुन्नाडं भ्रामयेच्छिरसोपरि॥३५॥

मनुष्य नरकभय निवारणार्थ चतुर्दशी के दिन स्नान काल में पहले अपमार्ग, तदनन्तर लौकी तदनन्तर प्रपुन्नाड़ को मस्तक पर घुमाये तब स्नान करें। घुमाते समय नौ बार "शीतलोष्ण समायुक्त" इत्यादि पढ़ें। जो मन्त्र मूल में अंकित है।।३३-३५।।

स्नात्वाऽऽर्द्रवाससादद्याद्दीपकंमृत्युपुत्रयोः। शुनकौ श्यामशवलौ भ्रातरौयमसेवका।
तुष्टौ स्यातां चतुर्दश्यां दीपदानेन मृत्युजौ॥३६॥
इष्टबन्धुजनैः सार्द्धमेतत्स्नानं समाचरेत्। स्नानाङ्गतर्पणं कृत्वा यमं सन्तर्पयेत्ततः॥३७॥
यमाय धर्मराजाय मृत्यवेचाऽन्तकायच। वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च॥३८॥
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने। वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय ते नमः॥३९॥
चतुर्दशैतेमन्त्राःस्युःप्रत्येकञ्चनमोऽन्वितः। एकैकेनतिलैर्मिश्रान्दद्यात्त्रीनुदकाञ्जलीन्॥४०॥
यज्ञोपवीतिना कार्यं प्राचीनावीतिनाऽथवा।
देवत्वञ्च पितृत्वञ्च यमस्याऽस्ति द्विरूपता॥४१॥

स्नान के अनन्तर आर्द्र वस्त्र से ही मृत्युपुत्र श्याम-शबल को दीप प्रदान करें। उस समय का मन्त्र है—
"शुनकौ श्यामशबलौ भ्रातरौ यमसेवका। तुष्टौ स्यातां चतुर्दश्यां दीपदानेन मृत्युजौ।।"

यह स्नान इष्ट-बन्धु-बान्धवों के साथ करना चाहिये। तत्पश्चात् स्नानाङ्ग तर्पण करके यमाय इत्यादि चतुर्दश नाम मन्त्रों द्वारा यमतर्पण करें। यह चतुर्दशनाम श्लोक ३८ तथा ३९ मूल में अंकित हैं। वे नाम हैं— यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, परमेष्टि, वृकोदर, चित्र तथा चित्रगुप्त। इन प्रत्येक नाम के साथ नमः लगाये। एक-एक नाम से जलांजलि को तिल मिश्रित करके तीन-तीन जलांजलि देनी चाहिये। यमतर्पण में यज्ञोपवीती अथवा प्राचीनावीती, दोनों ही विहित हैं। इसका कारण है कि यम में देवत्व तथा पितृत्व दोनों ही हैं।।३६-४१।।

जीवत्पिताऽपि कुर्वीत तर्पणंयमभीष्मयोः। नरकायप्रदातव्योदीपः सम्पूज्यदेवताः॥४२॥
अत्रैव लक्ष्मीकामस्य विधिः स्नाने मयोच्यते। इषे भूतेच दर्शेचकार्त्तिके प्रथमे दिने॥४३॥

यदा स्नाति तदाऽभ्यङ्गस्नानं कुर्याद्विधूदये।
ऊर्ज्जशुक्लद्वितीयायां तिथौ च स्वातियुग्मगे॥४४॥
मानवो मङ्गलस्नायीनैवलक्ष्याावियुज्यते। दीपैर्नीराजनादत्र सैषा दीपावलिः स्मृता॥४५॥
इन्दुक्षयेऽपिसङ्क्रान्तौरवौपातेदिनक्षये। अत्राऽभ्यङ्गेन दोषाय प्रातःपापाऽपनुत्तये॥४६॥

जिसके पिता जीवित हैं, वह व्यक्ति यम तथा भीष्म तर्पण तथा देवताओं की पूजा करके नरकासुर के लिये दीप प्रदान करें। अब लक्ष्मीकामी व्यक्ति की स्नानविधि कहता हूं। लक्ष्मीकामी मानव आश्विन शुक्ला चतुर्दशी, अमावस्या तथा कार्तिक के प्रथम दिन तिल तैल लगाकर स्नान करें। स्वातीनक्षत्रयुता कार्तिक शुक्ल द्वितीया को स्नान करना मनुष्यों के लिये मंगलप्रद है। इस दिन स्नान करने वाला मानव कभी भी लक्ष्मीरहित नहीं होता। इस दिन दीपनीराजन तथा दीपावली प्रदान करें। कार्त्तिक मास की अमावस्या, संक्रान्ति, रविवार तथा व्यतिपात योग में प्रातः स्नान में तैलाभ्यङ्ग दोषावह नहीं है, परन्तु इससे पाप नष्ट हो जाता है।।४२-४६।।

माषपत्रस्य शाकम्वै भुक्त्वा तस्मिन्दिनेनरः। प्रेताख्यायांचतुर्दश्यांसर्वपापैःप्रमुच्यते॥४७॥
इषासितचतुर्दश्यामिन्दुक्षयतिथावपि। दर्शादौ स्वातिसंयुक्ते तदा दीपावलिर्भवेत्॥४८॥
कुर्यात्सँल्लग्नमेतच्च दीपोत्सवदिनत्रयम्। महाराजोबलिः प्रोक्तस्तुष्टेन हरिणा तथा॥४९॥
वरं याचस्व भद्रन्ते यद्यन्मनसि वर्तते। इति विष्णुवचः श्रुत्वा बलिर्वचनमब्रवीत्॥५०॥
आत्मार्थं किं याचनीयं सर्वं दत्तंमयातथा। लोकार्थं याचयिष्यामि शक्तश्चेद्देहितच्चमे॥५१॥
मयाऽद्य ते धरा दत्ता वामनच्छद्मरूपिणे।
त्रिभिः पदैस्त्रिदिवसैःसा चाऽऽक्रान्ता यतस्त्वया॥५२॥
तस्माद्भूमितले राज्यमस्तु घस्त्रत्रये हरेः॥५३॥
मद्राज्ये ये दीपदानं भुवि कुर्वन्ति मानवाः। तेषांगृहे तवस्त्रीयं सदातिष्ठतुसुस्थिरा॥५४॥
मम राज्ये गृहे येषामन्धकारः पतिष्यति। लक्ष्मीसन्तानान्धकारः सदापततुतद्गृहे॥५५॥
चतुर्दश्याश्च ये दीपान्नरकाय ददन्ति च। तेषां पितृगणाः सर्वे नरके न वसन्ति च॥५६॥
बलिराज्यं समासाद्ययैर्नदीपावलिः कृता। तेषां गृहे कथं दीपाः प्रज्वलिष्यन्तिकेशव॥५७॥
बलिराज्येतुयेलोकाः शोकाऽनुत्साहकारिणः। तेषां गृहेसदाशोकःपतेदितिनसंशयः॥५८॥
चतुर्दशीत्रये राज्यं बलेरस्त्विवति याचयेत्। पुरावामनरूपेण प्रार्थयित्वा धरामिमाम्॥५९॥
ददावतिथयेन्द्राय बलिं पातालवासिनम्। दत्तं दैत्यपतेरित्थं हरिणा तद्दिनत्रयम्।
तस्मान्महोत्सवं चाऽत्र सर्वथैव हि कारयेत्॥६०॥

प्रेतचतुर्दशी के दिन मानव माषपत्र शाक का भोजन करके सर्वपाप विनिर्मुक्त हो जाता है। आश्विनमासीय कृष्ण चतुर्दशी, अमावस्या, विशेषतः स्वाती नक्षत्र युत अमावस्या के दिन दीपमाला दान करना कर्त्तव्य है। इन तीन दिन दीपोत्सव करना चाहिये। वामनरूपी श्रीहरि ने बलि से प्रसन्न होकर उससे कहा था—"हे बलि! तुम्हारा मंगल हो। इच्छित वर मांगो।" विष्णु का वाक्य सुनकर बलि ने कहा—"मैं अपने लिये क्या कामना करूं?

मैंने तो अपना सब कुछ आपको प्रदान कर दिया। अब मैं त्रैलोक्य की हितकामनार्थ वर मांगता हूं। हे हरि! आप छद्मवामनरूपी होकर मेरे पास आये। मैंने आपको सम्पूर्ण पृथिवी अर्पित कर दिया। आपने भी तीन दिन में अपने तीन पग द्वारा त्रिलोक माप लिया। हे हरे! अब मुझे यह वर दीजिये कि पृथिवी पर मानव इन तीन दिन मेरा शासन माने। हे केशव! इन तीन दिन जो सब लोग पृथिवी पर दीपदान करेंगे उनके गृह में आप अपनी पत्नी लक्ष्मीदेवी के साथ स्थिर होकर निवास करिये। मेरे राज्य में (३ दिन) जिनके घर में अन्धकार रहेगा, अलक्ष्मी रूपी अन्धकार से उनका गृह विकृत हो जाये। चतुर्दशी के दिन जो नरकासुर के उद्देश्य से दीप प्रदान करता है, उसके पितृगण नरक में नहीं जायें। बलिराज्य में रहकर जो दीपश्रेणी दान नहीं करता, हे केशव! उनके गृह में कैसे प्रकाश रहेगा। बलिराज्यवासी लोगों में शोक तथा अनुत्साह करने वाले मनुष्य के गृह में सतत् शोक रहेगा। इसमें संशय नहीं है। हे भगवान्! भूतादि (प्राणीगण) पर इन चतुर्दशीत्रय के दिन मेरा अधिकार रहे। यही मेरा प्रार्थित वर है।'' पूर्वकाल में वामन की प्रार्थना पर बलि ने उनको त्रैलोक्य प्रदान किया था। तब वामन ने इन्द्र को त्रैलोक्य प्रदान करके बलि को पाताल में भेजा तथा बलि की प्रार्थना के अनुसार पुनः बलि को इन तीन दिन पृथिवी पर राज्याधिकार दिया। इसलिये इन तीन दिन दीपमहोत्सव अवश्य करना चाहिये।।४७-६०।।

महारात्रिः समुत्पन्ना चतुर्दश्यांमुनीश्वराः। अतस्तदुत्सवः कार्यःशक्तिपूजापरायणैः॥६१॥
बलिराज्यंसमासाद्ययक्षगन्धर्वकिन्नराः। औषध्यश्च पिशाचाश्चमन्त्राश्च मणयस्तथा॥६२॥
सर्व एव प्रहृष्यन्ति नृत्यन्तिचनिशामुखे। तत्तन्मंत्राश्चसिद्ध्यन्तिबलिराज्येनसंशयः॥६३॥

हे मुनीश्वरों! इस चतुर्दशी के समय महारात्रि में देवी प्रादुर्भूत हुई हैं। अतः शक्तिपूजापरायण लोग इस दिन दीपोत्सव अवश्य करें। बलिराज्यस्थित यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, औषधि समूह, पिशाचगण, मन्त्र, मणियां आदि सभी चतुर्दशी की सन्ध्या के समय प्रसन्न अन्तःकरण से नृत्य करते हैं। बलिराज्य के इस दिन सभी मन्त्रसिद्धि प्राप्त होती है। यह निःसंशय है।।६१-६३।।

बलिराज्यं समासाद्य यथा लोकाः सुहर्षिताः। तद्दिनमध्ये तु लोकाःस्युर्हर्षिता भृशम्॥६४॥
तुलासंस्थे सहस्रांशौ प्रदोषे भूतदर्शयोः। उल्काहस्तानराःकुर्युःपितॄणांमार्गदर्शनम्॥६५॥
नरकस्थास्तुये प्रेतास्ते मार्गं तु व्रतात्सदा। पश्यन्त्येवनसन्देहःकार्योऽत्रमुनिपुङ्गवैः॥६६॥
आश्विनेमासिभूतादितिथयःकीर्तितास्त्रयः। दीपदानादिकार्येषुग्राह्यामध्याह्नकालिकाः॥६७॥
यदि स्युः सङ्गवादर्वागेताश्च तिथयस्त्रयः। दीपदानादिकार्येषु कर्तव्याः पूर्वसंयुताः॥६८॥

जैसे बलिराज्य में निवास करने वाले सभी सुखी होते हैं, पूर्वोक्त तीन दिन में सभी तद्रूप सुखी रहते हैं। कार्त्तिक चतुर्दशी तथा अमावस्या के प्रदोषकाल में उल्काहस्त (हाथों में दीपक लिये) मनुष्य पितृगण को मार्ग प्रदर्शित करते हैं। हे मुनिप्रवरगण! नरकस्थ पितृगण इस उल्कादान व्रत द्वारा पथ देखते हैं। इसमें संदेह नहीं है। आश्विन मास में जो तीन तिथियां कही गयी हैं, दीपदानादि कार्य उसके मध्याह्न काल तक ग्राह्य है। यदि संगव काल के पूर्व ही इन तिथित्रय की स्थिति हो तब दीपदानादि कार्य पूर्व संयुक्त तिथि पर ही करें।।६४-६८।।

ऋषय ऊचुः

कौमोदिन्यास्तु माहात्म्यं प्रष्टुमिच्छामहे द्विजाः।
तस्मिन्दिने तु किं भोज्यं कस्य पूजां तु कारयेत्॥६९॥
किमर्थं क्रियते सा तु तस्या का देवता भवेत्। किं चतत्रभवेद्देयंकिंनदेयं विशेषतः॥७०॥
प्रहर्षःकोऽत्रनिर्दिष्टः क्रीडातत्रप्रकीर्तिता। दीपावल्याःफलं सर्वं वदन्तु ऋषिसत्तमाः॥७१॥

ऋषिगण कहते हैं—हे द्विजगण! लक्ष्मी की महिमा जानने की हमारी अभिलाषा हो रही है। इन लक्ष्मीवास में क्या भोजन करें तथा किसकी पूजा करनी चाहिये? किसलिये इस क्रिया को अनुष्ठित करते हैं? इसका देवता कौन है? क्या दान देना चाहिये? किस दान का विशेष फल है? इसमें कौन सी क्रीड़ा करनी चाहिये? दीपावली का क्या फल है, यह सब कहिये।।६९-७१।।

बालखिल्या ऊचुः

ततःप्रभातसमयेत्वमायांतुमुनीश्वराः। स्नात्वादेवान्पितॄन्भक्त्यासम्पूज्याऽथप्रणम्यच॥७२॥
कृत्वा तु पार्वणश्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः। दिवातत्र न भोक्तव्यमृतेबालातुराज्जनात्॥७३॥
ततःप्रदोषसमयेपूजयेदिन्दिरांशुभाम्। कुर्यान्नानाविधैर्वस्त्रैःस्वच्छंलक्ष्म्याश्चमण्डपम्॥७४॥
नानापुण्यैःपल्लवैश्चचित्रैश्चाऽपिविचित्रितम्। तत्रसम्पूजयेल्लक्ष्मींदेवांश्चाऽपिप्रपूजयेत्॥७५॥
सम्पूज्यादेवनार्योऽपिबहुभिश्चोपचारकैः। पादसम्वाहनंकुर्याल्लक्ष्म्यादीनान्तुभक्तितः॥७६॥

बालखिल्यगण कहते हैं—हे मुनीश्वरगण! अमावस्या के दिन प्रभात स्नान, भक्तियुक्त होकर देव-पितृगण की पूजा, प्रणाम तथा दधिक्षीरादि द्वारा पार्वणश्राद्ध करें। दिन में भोजन न करें तथापि बालक तथा आतुर व्यक्ति भोजन कर सकते हैं। प्रदोषकाल में विविध शोभन पुष्प तथा पल्लव द्वारा अतीव विचित्र रूप से लक्ष्मी की पूजा करनी चाहिये तथा नाना वस्त्र एवं अलंकार द्वारा निर्मल रूप से उनकी वेशभूषा सज्जित करें। इस पूजा में देवता तथा देवनारीसमूह की भी नाना उपचारों द्वारा अर्चना करनी चाहिये। तदनन्तर भक्तिपूर्वक लक्ष्मी आदि पूजित देवदेवीगण का चरण संवाहन करना चाहिये।।७२-७६।।

अस्मिन्नहनि सर्वेऽपि विष्णुना मोचिताः पुरा।
बलिकारागृहाद्देवा लक्ष्मीश्चाऽपि विमोचिता॥७७॥
लक्ष्म्यासार्द्धंततोदेवाजग्मुःक्षीरोदधौपुनः। प्रसुप्ता बहुकालं ते सुखंतस्मान्मुनीश्वराः॥७८॥
रचनीयाः सूत्रगर्भाः पर्यङ्काश्च सुतूलिकाः दुग्धफेनोपमैर्वस्त्रैरास्तृताश्च यथादिशम्॥७९॥
स्थापयेत्तान्सुराँल्लक्ष्मींवेदघोषसमन्वितः। लक्ष्मीदैत्यभयान्मुक्तासुखंसुप्ताऽम्बुजोदरे॥८०॥
अतोऽत्रविधिवत्कार्यातुष्ट्यै तु सुखसुप्तिका। तदह्निपद्मशय्यांयःपद्मासौख्यविवृद्धये॥८१॥

पूर्वकाल में एक बार सभी देवी-देवता बलि के कारागृह में अवरुद्ध थे। विष्णु ने लक्ष्मी के साथ इस दिन उन सबको मुक्त किया था। देवता मुक्त होकर लक्ष्मी के साथ क्षीरसागर के निकट पहुंचे। तदनन्तर लक्ष्मी देवी ने दीर्घकाल के पश्चात् इस दिन सुखपूर्वक शयन किया। अतएव हे मुनीश्वरगण! इस दिन उपाधान के

साथ दुग्धफेन की तरह वस्त्रों से आवृत अनेक पर्यंक बनाये तथा उन पर वेदध्वनि के साथ देवताओं तथा लक्ष्मी को स्थापित करें। उस समय लक्ष्मी भी दैत्यभय से मुक्त होकर पद्मगर्भ में सुखपूर्वक शयन करने लगीं। अतएव इस दिन यथाविधि-लक्ष्मी के हितार्थ तथा उनकी प्रसन्नता हेतु सुखशयन के योग्य शय्यादान करना चाहिये। इस दिन व्यक्ति लक्ष्मी की प्रसन्नता हेतु पद्मशय्या बनायें।।७७-८१।।

कुर्यात्तस्य गृहं मुक्त्वा तत्पद्मा क्वाऽपि न व्रजेत्।
न कुर्वन्ति नरा इत्थं लक्ष्म्या ये सुखसुप्तिकाम्।।८२।।
धनचिन्ताविहीनास्ते कथंरात्रौस्वपन्तिहि। तस्मात्सर्वप्रयत्नेनलक्ष्मींसम्पूजयेन्नरः।।८३।।
सतुदारिद्र्यनिर्मुक्तःस्वजातौस्यात्प्रतिष्ठतः। जातिपत्रलवङ्गैलात्वक्कर्पूरसमन्वितम्।।८४।।
पाचयित्वा गव्यदुग्धं सितां दत्त्वा यथोचिताम्।
लड्डुकांस्तस्य कुर्वीत तांश्च लक्ष्म्यै समर्पयेत्।।८५।।
अन्यच्चतुर्विधंभक्ष्यं दद्याच्छ्रीःप्रीयतामिति।
अप्रबुद्धेहरौपूर्वं स्त्रीभिर्लक्ष्मींप्रबोधयेत्।।८६।।
प्रबोधसमये लक्ष्मींबोधयित्वाभुनक्तिया। पुमान्वा वत्सरं यावल्लक्ष्मीस्तंनैवमुञ्चति।।८७।।
अभयं प्राप्य विप्रेभ्यो विष्णुभीताः सुरद्विषः।
क्षीराब्धौ तुष्टुवुर्ज्ञात्वा सुप्तां पद्माश्रितां श्रियम्।।८८।।
त्वं ज्योतिः श्रीरवीन्द्वग्निविद्युत्सौवर्णतारकाः।
सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिर्दीपज्योतिः स्थिते नमः।।८९।।
यालक्ष्मीर्दिवसेपुण्येदीपावल्याञ्चभूतले। गवांगोष्ठे तु कार्त्तिक्यांसालक्ष्मीर्वरदामम।।९०।।

यह शय्या देवी को प्रसन्न करती है तथा देवी उसके गृह का कदापि त्याग नहीं करती। जो मनुष्य लक्ष्मी के लिये इस प्रकार की सुखशयनशय्या नहीं बनाता, वह धनरत्नहीन हो जाता है। ऐसा व्यक्ति कैसे सुखपूर्वक शयन कर सकेगा? अतएव मानव सर्वप्रयत्न से लक्ष्मीपूजन करे तथा यह करने से वह मनुष्य अपने समाज में सुप्रतिष्ठ हो जाता है। जावित्री का फल तथा पत्र, लौंग, इलायची का छिलका तथा कर्पूर मिलाये। उसमें यथोचित रूप से शर्करा मिलाकर गोदुग्ध में पाक करके उसका लड्डू बनाना चाहिये। यह लक्ष्मी को प्रदान करें तथा "लक्ष्मीदेवी प्रसन्न हों" इस प्रार्थना के साथ अन्य चतुर्विध भक्ष्य भी प्रदान करना चाहिये। विष्णु प्रबोधन एकादशी के पहले ही स्त्रियां लक्ष्मी को जगायें। यदि स्त्री किंवा पुरुष विष्णुप्रबोधन के पूर्व ही लक्ष्मी को प्रबोधित करके भोजन करते हैं, तब एक वर्ष तक लक्ष्मी उस व्यक्ति का गृह त्याग नहीं करतीं। विष्णु से भयभीत असुरगण भी विप्रों से अभयदान पाकर जब यह जान गये कि कमलादेवी क्षीरोद सागर के तीर पर कमलशय्या पर शयन कर रही हैं, तब वे वहां जाकर लक्ष्मी का स्तव करने लगे। हे द्विजगण! पूजा में मूलोक्त श्लोक ८९, तथा ९० पढ़ें जो "या लक्ष्मी" से "वरदामम" पर्यन्त है।।८२-९०।।

दीपदानंततःकुर्यात्प्रदोषेचतथोल्मुकम्। भ्रामयेत्स्वस्यशिरसिसर्वाऽरिष्टनिवारणम्।।९१।।

तदनन्तर प्रदोषकाल में दीपदानोपरान्त एक ज्वलन्त काष्ठ मस्तक पर घुमाकर समस्त अरिष्टों का शमन करें।।९१।।

दीपवृक्षास्तथा कार्याः शक्त्या देवगृहादिषु। चतुष्पथे श्मशानेव नदीपर्वतवेश्मसु।।९२।।
वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु चत्वरेषु गृहेषुच। वस्त्रैः पुष्पैः शोभितव्याराजमार्गस्य भूमयः।।९३।।
सर्वं पुर मलङ्कृत्य प्रदोषे तदनन्तरम्।
ब्राह्मणान्भोजयित्वाऽऽदौ सम्भोज्यचबुभूक्षितान्।।९४।।
अलङ्कृतेन भोक्तव्यं नववस्त्रोपशोभिना। ततोऽपराह्णसमये घोषयेन्नगरं नृपः।।९५।।
अथराज्यंबलेर्लोकायथेच्छंक्रीड्यतामिति। यथेच्छं क्रीड्यतांबालाइत्याज्ञाप्यनृपेणतु।।९६।।
तेभ्यो दद्यात्क्रीडनकं ततः पश्येच्छुभाशुभम्। बलिराज्ये प्रकर्तव्यंद्यन्मनसि वर्तते।।९७।।
जीवहिंसा सुरापानमगम्यागमनं तथा। चौर्यं विश्वासघातश्च पञ्चैतानि मुनीश्वराः!।
बलिराज्ये तु नरकद्वाराण्युक्तानि सन्त्यजेत्।।९८।।
ततोऽर्द्धरात्रसमये स्वयं राजा व्रजेत्पुरम्। अवलोकयितुं रम्यं पद्भ्यामेव शनैः शनैः।
बलिराज्यप्रमोदश्च दृष्ट्वा स्वगृहमाव्रजेत्।।९९।।

तत्पश्चात् शक्ति के अनुसार देवगृहद्वार, चतुष्पथ, श्मशान, नदी, गृह, पर्वतालय, वृक्षमूल, गोष्ठ, चत्वर तथा गृह स्थान में आधारयुक्त दीपदान करें। राजपथस्थ स्थानों को वस्त्र तथा पुष्प द्वारा सजाये तथा समस्त पुर को अलंकृत करके तदनन्तर पहले ब्राह्मण भोजन कराकर क्षुधार्त्त लोगों को भोजन करायें। तदनन्तर दिव्य वस्त्र तथा अलंकार से भूषित होकर स्वयं भोजन करें। तत्पश्चात् अपराह्न के समय नृपति यह घोषणा करें कि "अब बलिराज्यवासी स्त्री तथा पुरुषगण यथेच्छ क्रीड़ा करें।" तत्पश्चात् राजा उनको यथोचित क्रीड़ासामग्री प्रदान करके शुभाशुभ संदर्शन करें। हे मुनीश्वरगण! नृपति यह भी आदेश प्रदान करें कि "बलिराज्यवासी मानवगण जीवहिंसा, सुरापान, अगम्यागमन, चौर्य, विश्वासघातकता रूप नरकद्वाररूप कार्यों को त्याग दें। क्रीड़ा आदि यथेच्छ रूप से करें।" तदनन्तर अर्द्धरात्रि के समय राजा स्वयं सभी रम्य क्रीड़ाओं का अवलोकन करने हेतु पैदल धीरे-धीरे पुर में भ्रमण करें। वह बलिराज्य का यह सब आनन्द देखकर पुनः अपने प्रासाद में लौट आये।।९२-९९।।

एवं गते निशीथे च जने निद्रार्द्धलोचने। एवं नगरनारीभिः शूर्पडिण्डिमवादनैः।
निष्कास्यते प्रहृष्टाभिरलक्ष्मीः स्वगृहाऽङ्गणात्।।१००।।
दण्डैकरजनीयोगे दर्शःस्यात्तु परेऽहनि। तदा विहाय पूर्वेद्युः परेऽह्नि सुखरात्रिका।।१०१।।
ये वैष्णवाऽवैष्णवाश्चबलिराज्योत्सवंनराः। नकुर्वन्तिवृथातेषांधर्माःस्युर्नात्रसंशयः।।१०२।।
रात्रौजागणं कुर्यात्पुराणपठनादिभिः। द्यूतेन वा हरेरग्रे गीतया वा तथैव च।।१०३।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादेवत्सद्वादशीयमत्रयोदशीनरकचतुर्दशी दीपावलीकृत्यवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः।।९।।
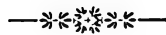
इस प्रकार से कीड़ासक्त पुरुषगण रात्रिकाल में जब निद्रा से ऊंघने लगें तब नरनारीगण शूर्प (सूप)

पीटें तथा डिंडिमवाद्य करके अलक्ष्मी को गृह तथा आंगन से निकाल बाहर करें। अगले दिन जब रात्रि के साथ एकदण्ड अमावस्या का योग हो, तब पूर्वदिन के बाद अगले दिन यह सुखरात्रि होती है। वैष्णव-अवैष्णव चाहे जो हो, यदि बलिराज्य में उत्सव नहीं मनाता, उसका धर्म वृथा है। इसमें संशय नहीं है। हरि के समक्ष पुराण पाठ, द्यूतक्रीड़ा तथा गायन द्वारा रात्रि जागरण करें।।१००-१०३।।

।।नवम अध्याय समाप्त।।

दशमोऽध्यायः

कार्त्तिक दीपावली, शुक्लप्रतिपदा माहात्म्य, मार्गपालीपूजन, कार्त्तिक शुक्ल प्रतिपदा माहात्म्य

ब्रह्मोवाच

प्रतिपद्यथ चाऽभ्यङ्गं कृत्वानीराजनं ततः। सुवेषः सत्कथागीतैर्दानैश्च दिवसंनयेत्।।१।।
शङ्करस्तु पुरा द्यूतं ससर्ज सुमनोहरम्। कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु प्रथमेऽहनि सत्यवत्।।२।।
बलिराज्यदिनस्याऽपि माहात्म्यं शृणुतत्त्वतः। स्नातव्यंतिलतैले न नरैर्नारीभिरेवच।।३।।
यदि मोहान्न कुर्वीत स यातियमसादनम्। पुरा कृतयुगस्यादौ दानवेन्द्रोबलिर्महान्।।४।।
तेन दत्तावामनायाभूमिःस्वमस्तकान्विता। तदानीं भगवान्साक्षात्तुष्टोबलिमुवाचह।।५।।
कार्त्तिकेमासिशुक्लायांप्रतिपद्यांयतोभवान्। भूमिंमेदत्तवान्भक्त्यातेनतुष्टोऽस्मितेऽनघ।।६।।
वरंददामि ते राजन्नित्युक्त्वाऽदाद्वरं तदा। त्वन्नाम्नैवभवेद्राजन्कार्त्तिकीप्रतिपत्तिथिः।।७।।
एतस्यां ये करिष्यन्ति तैलस्नानादिकार्चनम्। तदक्षयं भवेद्राजन्नात्रकार्याविचारणा।।८।।
तदाप्रभृतिलोकेऽस्मिन्प्रसिद्धा प्रतिपत्तिथिः। प्रतिपत्पूर्वविद्धानो कर्तव्यातुकथञ्चन।।९।।
तत्राभ्यङ्गं न कुर्वीत अन्यथामृतिमाप्नुयात्। प्रतिपद्यां यदा दर्शो मुहूर्तप्रमितोभवेत्।।१०।।
माङ्गल्यंतद्दिनेचेत्स्याद्वित्तादितस्यनश्यति। बलेश्चप्रतिपद्दर्शाद्यदिविद्धं भविष्यति।।११।।
तस्यां यद्यथ चाऽऽर्त्तिक्यं नारी मोहात्करिष्यति।
नारीणां तत्र वैधव्यं प्रजानां मरणं ध्रुवम्।।१२।।

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर प्रतिपदा के दिन अभ्यङ्ग तथा नीराजन करके सुन्दर वेश धारण करें। सत्कथा, गीत तथा दानादि द्वारा दिन को व्यतीत करना चाहिये। पूर्वकाल में शंकर ने कार्त्तिक प्रतिपद के दिन मनोहर सत्ययुक्त द्यूतक्रीड़ा का सृजन किया था। अब बलिराज्य के इस द्यूतक्रीड़ा दिवस के माहात्म्य को यथायथ

श्रवण करो। उस दिन नरनारीगण तिल तैल लगाकर स्नान करें। यदि मोहवश कोई यह नहीं करता, तब उसे यमालय जाना पड़ता है। पूर्वकाल में सत्ययुग के प्रारंभ में बलवान बलि का प्रादुर्भाव हुआ था। बलि ने भूमि तथा अपना मस्तक वामनरूपी हरि को प्रदान किया था। तब साक्षात् भगवान् वामन ने बलि के प्रति तुष्ट होकर यह वर दिया—"हे अनघ! तुमने कार्त्तिक मास की शुक्ल प्रतिपदा के दिन भक्ति के साथ मुझे भूमिदान किया है। इसलिये मैं तुम्हारे प्रति सन्तुष्ट हो गया। हे राजन्! मैं तुमको वर प्रदान करूंगा।" हरि का वचन सुनकर बलि ने वर मांगा तब हरि ने वर देते हुये बलि से कहा—हे राजन्! तुम्हारे नाम से कार्त्तिक शुक्ल प्रतिपदा के दिन जो तैल स्नान तथा अर्चना आदि करते हैं, वह अक्षय हो जायेगा। इसमें किसी विचार की आवश्यकता नहीं है।" हे नारद! तभी से त्रैलोक्य में यह प्रतिपदा प्रसिद्ध हो गई। इस प्रतिपदा तिथि को कभी की पूर्वविद्धाग्रहण न करें। अथवा पूर्वविद्धा प्रतिपदा के दिन तैलाभ्यङ्गादि न करें। जो इसके विपरीत कार्य करता है, वह मृत्युमुख में पतित हो जाता है। प्रतिपदा के दिन जब मुहूर्त्तमात्र अमावस्या का योग रहता है, तब इस प्रतिपदा में माङ्गल्य कार्य हेतु अनुष्ठान करने से वित्त नष्ट हो जाता है। अमावस्या विद्ध बलि प्रतिपदा तिथि में मोहवशात् यदि नारी आर्त्तव (ऋतुकाल) में कामक्रीड़ा करती है, तब उसे पुत्रनाश एवं वैधव्य मिलेगा, इसमें संशय नहीं है।।१-१२।।

अविद्धा प्रतिपच्चेत्स्यान्मुहूर्तमपरेऽहनि। उत्सवादिककृत्येषुसैव प्रोक्ता मनीषिभिः।।१३।।
प्रतिपत्स्वल्पमात्राऽपियदिनस्यात्परेऽहनि। पूर्वविद्धातदाकार्याकृतानोदोषभाग्भवेत्।।१४।।
तद्दिने गृहमध्ये तु कुर्यान्मूर्तिं तदाङ्गणे। गोमयेन च तत्राऽपि दधितत्पुरतः क्षिपेत्।।१५।।
आर्तिक्यं तत्र संस्थाप्यएवंकुर्याद्विधानतः। अभ्यङ्गं ये न कुर्वन्तितस्यांतुमुनिपुङ्गव!।।१६।।
न माङ्गल्यं भवेत्तेषां यावत्स्याद्वत्सरं ध्रुवम्। योयादृशेनरूपेणतस्यांतिष्ठेच्छुभेदिने।।१७।।
आवर्षं तद्भवेत्तस्य तस्मान्मङ्गलमाचरेत्।
यदीच्छेत्स्वशुभान्भोगान्भोक्तुं दिव्यान्मनोहरान्।।१८।।
कुरुदीपोत्सवं रम्यं त्रयोदश्यादिकेषु च। शङ्करश्च भवानी च क्रीडयाद्यूतमास्थिते।।१९।।

मनीषीगण का मत है कि यदि अविद्धा प्रतिपदा का अगले दिन मुहूर्त्त मात्र भी स्पर्श होता है, तब उपवासादि कार्य हेतु वह प्रशस्त है। यदि पर दिन (अगले दिन) अल्पमात्र भी प्रतिपदा न हो तब पूर्वविद्धा प्रतिपदा में कार्य करने से दोष नहीं होता। परन्तु इस दिन ही गृह में मूर्त्ति रखकर आंगन को गोबर से लिप्त करके उसके समक्ष दधि निक्षेप करें तथा वहां आर्त्तिक्य स्थापित करके यथाविधि पूजा आदि करें। हे मुनिपुङ्गव! इस प्रतिपदा के दिन जो अभ्यङ्ग नहीं लगाते पुनः प्रतिपदातिथि आने तक एक वर्ष यावत् उनका अमंगल होता है। इसमें सन्देह नहीं है। इस शुभ प्रतिपदा के दिन शुभ किंवा अशुभ जिस किसी कार्य में व्यक्ति लगा रहेगा, एक वत्सर पर्यन्त उसका शुभ-अशुभ फल उस कार्य के ही अनुरूप होगा। अतः इस दिन शुभ कार्य ही करना चाहिये। हे द्विज! यदि मनुष्य अपने लिये सुशोभन दिव्य मनोहर भोगों की कामना करता है तब त्रयोदशी आदि तिथियों को दीपोत्सव करें। पूर्वकाल में शंकर तथा पार्वती ने भी प्रतिपदा के दिन द्यूतक्रीड़ा किया था।।१३-१९।।

गौर्या जित्वा पुरा शम्भुर्नग्नो द्यूते विसर्जितः।
अतोऽर्थं शङ्करो दुःखी गौरी नित्यं सुखस्थिता।।२०।।

द्यूतं निषिद्धं सर्वत्र हित्वाप्रतिपदंबुधाः। प्रथमं विजयोयस्यतस्यसम्वत्सरं सुखम्॥२१॥
भवान्याऽभ्यर्थितालक्ष्मीर्धेनुरूपेणसंस्थिता। प्रातर्गोवर्द्धनःपूज्योद्यूतंरात्रौसमाचरेत्॥२२॥
भूषणीयास्तदा गावो वर्ज्या वहनदोहनात्॥२३॥

उस द्यूतक्रीड़ा में गौरी ने जय प्राप्त किया था तथा शंकर पराजित एवं विवस्त्र होकर वहां से चले गये। केवल यही नहीं, इस प्रतिपदा की जय-पराजय में गौरी ने सुख प्राप्त किया तथा शंकर विविध दुःखभागी हो गये। पण्डितों ने सर्वत्र द्यूतक्रीड़ा का निषेध किया है, तथापि प्रतिपदा के दिन वह निषिद्ध नहीं है। इस दिन जो व्यक्ति पहले विजयलाभ करता है, पूर्ण एक वर्ष तक वह सुखी रहता है। भवानी के आवाहन से रमा (लक्ष्मी) धेनुरूपेण अविर्भूता हो गयीं। अतः प्रातः गोपूजा के उपरान्त रात्रि में द्यूतक्रीड़ा करें। इस दिन गौओं को नाना भूषण से भूषित करें तथा वाहन का कार्य बैल आदि से लेना तथा गोदोहन करना वर्जित है।।२०-२३।।

गोवर्द्धन! धराऽऽधार! गोकुलत्राणकारक!।
विष्णुबाहुकृतोच्छ्राय! गवां कोटिप्रदो भव॥२४॥
यालक्ष्मीर्लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता। घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु॥२५॥
अग्रतः सन्तु मे गावोगावो मे सन्तु पृष्ठतः। गावोमेहृदयेसन्तुगवांमध्ये वसाम्यहम्॥२६॥

तदनन्तर गोवर्द्धन पर्वत का पूजन मूलोक्त श्लोक २४ से २६ तक के श्लोक से करें। इति श्री गोवर्द्धन पूजा।।२४-२६।।

इति गोवर्द्धनपूजा

सद्भावेनैव सन्तोष्य देवान्सत्पुरुषान्नरान्। इतरेषामन्नपानैर्वाक्यदानेन पण्डितान्॥२७॥
वस्त्रैस्ताम्बूलधूपैश्च पुष्पकर्पूरकङ्कुमैः। भक्ष्यैरुच्चावचैर्भोज्यैरन्तः पुनरिवासिनः॥२८॥
ग्राम्यान्वृषभदानैश्च सामन्तान्नृपतिर्धनैः। पदातिजनसङ्घांश्च ग्रवेयैः कटकैः शुभैः।
स्वनामाङ्कैश्च तान्राजा तोषयेत्सज्जनान्पृथक्॥२९॥
यथार्थं तोषयित्वा तु ततो मल्लान्नरांस्तथा। वृषभान्महिषांश्चैव युध्यमानान्परैः सह॥३०॥
राज्ञस्तथैवयोधांश्चपदातीन्समलङ्कृतान्। मञ्चाऽऽरूढः स्वयंपश्येन्नटनर्तकचारणान्॥३१॥

गोवर्द्धनपूजा के उपरान्त यह समापन करके देवता तथा साधु पुरुषों के प्रति सद्भाव प्रदर्शन करें। अन्य लोगों को अन्न प्रदान करें। पण्डित का अच्छे वाक्यों से सम्मान करें। अन्तःपुर वासीगण को वस्त्र, ताम्बूल, धूप, पुष्प, कुंकुम, कर्पूर तथा अन्य भक्ष्य भोज्य प्रदान करें। ग्राम्यसामन्तगण को वृषभ प्रदान करें। राजाओं को धनदान, पदातिसंघ को अपना नाम अंकित ग्रीवाभूषण तथा शोभित कटक प्रदान करें तथा सन्तुष्ट करें। राजा इस प्रकार से सज्जनों को अलग-अलग यथायथ रूप से सन्तुष्ट करे। तत्पश्चात् परस्परतः कुश्ती लड़ रहे मल्ल, वृषभ, महिष तथा अन्यान्य योद्धाओं, राजाओं को तथा उनके पदातिगण को सन्तुष्ट करें। स्वयं मंच पर बैठकर नट-नर्त्तक तथा चारणों का अवलोकन करें।।२७-३१।।

युद्धापयेद्वासयेच्च गोमहिष्यादिकञ्च यत्। वत्सानाकर्षयेद्गोभिरुक्तिप्रत्युक्तिवादनात्॥३२॥

ततोऽपराह्नसमयेपूर्वस्यां दिशि सुव्रत!। मार्गपालीं प्रबध्नाति दुर्गस्तम्भेऽथ पादपे॥३३॥
कुशकाशमयींदिव्यांलम्बकैर्बहुभिःप्रिये। वाक्षयित्वागजानश्वान्मार्गपाल्यास्तलेनयेत्।
गावो वृषांश्च महिषान्महिषीर्घण्टकोत्कटान्।
कृतहोमैर्द्विजेन्द्रैस्तु बध्नीयान्मार्गपालिकाम्॥३४॥
नमस्कारं ततः कुर्यान्मन्त्रेणानेनसुव्रत!। मार्गपालि! नमस्तुभ्यं सर्वलोकसुखप्रदे!॥३५॥
तले तव सुखेनाश्वा गजा गावश्च सन्तु मे॥३६॥
मार्गपालीतले पुत्र! यान्ति गावो महावृषाः।
राजानो राजपुत्राश्च ब्राहमणाश्च विशेषतः॥३७॥
मार्गपालीं समुल्लङ्घ्य नीरुजः सुखिनो हि ते। कृत्वैतत्सर्वमेवेह रात्रौदैत्यपतेर्बलेः॥३८॥
पूजां कुर्यात्ततः साक्षाद्भूमौ मण्डलके कृते। बलिमालिख्यदैत्येन्द्रंवर्णकैःपञ्चरङ्गकैः॥३९॥
संर्वाभरणसम्पूर्णं विन्ध्यावलिसमन्वितम्। कूष्माण्डमयजम्भोरुमधुदानवसम्वृतम्॥४०॥
सम्पूर्णं कृष्टवदनं किरीटोत्कटकुण्डलम्। द्विभुजं दैत्यराजानं कारयित्वा स्वकेपुनः॥४१॥
गृहस्यमध्येशालायांविशालायांततोऽर्चयेत्। मातृभ्रातृजनैःसार्द्धंसन्तुष्टोबन्धुभिःसह॥४२॥

तदनन्तर गौ-महिषगण को लाकर युद्धभूमि में खड़ा करें। पशुनायकगण उनके बछड़ों को दल से बाहर करके इन सब गौ-महिषों का युद्ध करायें। तदनन्तर अपराह्नकाल में पूर्वदिक् स्थित दुर्गस्तम्भ में तथा मनोहर महीरुह में कुशकाशमयी दिव्य सुदीर्घ मार्गपाली बांधे। हे सुव्रत! होम करने वाले द्विजगण ही मार्गपाली बांधे। हे सुव्रत! तदनन्तर गज-अश्व-गौ-वृष-महिष तथा बृहत् कुंभों को इस मार्गपाली के नीचे लायें तथा "मार्गपालि नमस्तुभ्यं सर्वलोक सुखप्रदे। तले तव सुखेनाश्वा गजा गावश्च सन्तु मे" इस मन्त्र से मार्ग पाली को प्रणाम करें। हे पुत्र! गो, महावृष, राजा, राजकुमार, ब्राह्मणगण मार्गपाली के नीचे जाये। वे मार्गपाली का लंघन करके निरोग तथा सुखी रहते हैं। यह सब कार्य सम्पन्न करके रात्रि में दैत्यपति बलि की पूजा करें। द्विजप्रवरगण पञ्चवर्ण से भूमि पर मण्डलांकन करके उसमें साक्षात् बलि की मूर्त्ति का अंकन करें। यह मूर्त्ति अलंकारों से भूषित हो तथा साथ में बलिपत्नी विन्ध्यावलि का भी अंकन रहे। कूष्माण्ड, भय, जम्भ, उरु तथा मधु नामक दानव बलि की मूर्त्ति को घेरे हों। मूर्त्ति प्रसन्नवदन, कुण्डलयुक्त कर्णवाली किरीट भूषित मस्तक युक्त हों। यह बलि की मूर्त्ति दो बाहुवाली रहे। इस बलिराज की प्रतिमा को गृहशाला में अथवा बाहर स्थापित करके माता, भ्राता, बन्धुओं के साथ प्रसन्न मन से पूजा करनी चाहिये।।३२-४२।।

कमलैः कुमुदैः पुष्पैः कह्लारैरक्तकोत्पलैः। गन्धपुष्पान्ननैवेद्यैःसक्षीरैगुडपायसैः॥४३॥
मद्यमांससुरालेह्यचोष्यभक्ष्योपहारकैः। मन्त्रेणाऽनेन राजेन्द्रः समन्त्री सपुरोहितः।
पूजां करिष्यते यो वै सौख्यं स्यात्तस्य वत्सरम्॥४४॥
बलिराज! नमस्तुभ्यं विरोचनसुत! प्रभो!। भविष्येन्द्र! सुराराते! पूजेयंप्रतिगृह्यताम्॥४५॥
एवम्पूजाविधानेन रात्रौ जागरणं ततः। कारयेद्वै क्षणं रात्रौ नटनृत्यकथानकैः॥४६॥

लोकश्चाऽपि गृहस्याऽन्ते सपर्यां शुक्लतन्दुलैः।
संस्थाप्य बलिराजानं फलैः पुष्पैः प्रपूजयेत्।।४७।।

जो राजागण मन्त्री तथा पुरोहित के साथ चन्दन, कमल, कुमुद, कल्हार तथा रक्तोत्पल पुष्प से, अन्न-नैवेद्य, क्षीरयुक्त गुड़-पायस द्वारा मद्य, मांस प्रभृति लेह्य द्रव्यों से तथा चोष्य एवं भक्ष्य उपहार से बलिराज की पूजा करते हैं, उनको एकवर्ष पर्यन्त विपुल सुख मिलता है। पूजा मन्त्र मूलोक्त श्लोक ४५ पढ़कर पूजा करें। तदनन्तर राजा द्वारा इस विधानानुसार पूजा में समाहित होने पर अन्य लोग रात्रि जागरण करें। तदनन्तर इस विधान के अनुसार पूजा सम्पन्न करें। अन्यान्य लोग रात्रि जागरण करें। रात्रि में कुछ समय तक नट, नृत्य तथा अन्य विविध विषयों के कथनोपकथन सुनकर रात्रि व्यतीत करें। तब गृह में शय्या के ऊपर श्वेत तण्डुल से बलि मूर्त्ति बनाकर फल-पुष्प द्वारा पुनः पूजा करनी चाहिये।।४३-४७।।

बलिमुद्दिश्य वै तत्रकार्यं सर्वञ्च सुव्रत!। यानि यान्यक्षयाण्याहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः।।४८।।
यदत्र दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा बहु। तदक्षयं भवेत्सर्वविष्णोःप्रीतिकरंशुभम्।।४९।।
रात्रौ ये नकरिष्यन्ति तव पूजां बले नराः। तेषांचश्रोत्रियोधर्मःसर्वस्त्वामुपतिष्ठतु।।५०।।
विष्णुना च स्वयं वत्स! तुष्टेन बलये पुनः। उपकारकरं दत्तमसुराणां महोत्सवम्।।५१।।
एकमेवमहोरात्रं वर्षेवर्षे च कार्त्तिके। दत्तं दानवराजस्य आदर्शमिव भूतले।।५२।।

हे सुव्रत! तत्वदर्शी मुनिगण कहते हैं—बलि के उद्देश्य से इस दिन जो सब कार्य अनुष्ठित किया जाता है, वह सब अक्षय हो जाता है। इस दिन अल्प अथवा अधिक, जो कुछ दान दिया जाता है, वह सब अक्षय, विष्णु को प्रीति देने वाला तथा शुभ होता है। हे वत्स! पूर्वकाल में भगवान् विष्णु ने स्वयं बलि के प्रति प्रसन्न होकर कहा था—"हे वत्स! जो विप्रगण कार्त्तिक शुक्ल प्रतिपदा के दिन रात्रि में तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे, उनका समस्त श्रोत्रियधर्म तुम्हारा आश्रय ग्रहण करेगा।" विष्णु ने बलि के प्रति प्रसन्न होकर दैत्यों के लिये महा उपकार करने वाला यह महोत्सव निश्चित किया था। प्रतिवर्ष कार्त्तिक प्रतिपदा के दिन अहोरात्र इस व्रतानुष्ठान को करना चाहिये। बलि के प्रति भगवान् द्वारा जो यह वर रूपी कृपा की गयी है, यह भूतल पर आदर्श रूप है। इसमें संदेह नहीं है।।४८-५२।।

यः करोति नृपो राज्येतस्यव्याधिभयंकुतः। सुभिक्षं क्षेममारोग्यंतस्यसम्पदनुत्तमा।।५३।।
नीरुजश्च जनाः सर्वे सर्वोपद्रववर्जिताः।।५४।।
कौमुदी क्रियते यस्माद्भावं कर्तुं महीतले। यो यादृशेनभावेनतिष्ठत्यस्यां च सुव्रत!।
हर्षदुःखादिभावेन तस्य वर्षं प्रयाति हि।।५५।।
रुदिते रोदितं वर्षं प्रहृष्टे तु प्रहर्षितम्। भुक्तौभोग्यंभवेद्वर्षंस्वस्थे स्वस्थं भविष्यति।।५६।।
वैष्णवी दानवी चेयं तिथिः प्रोक्ता च कार्त्तिके।।५७।।
दीपोत्सवं जनितसर्वजनप्रमोदं कुर्वन्ति ये शुभतया बलिराजपूजाम्।
दानोपभोगसुखबुद्धिमतां कुलानां हर्षं प्रयाति सकलं प्रमुदा च वर्षम्।।५८।।

जो राजा अपने राज्य में दीपोत्सव करके पृथिवी को ज्योत्स्नामय करता है, उस राज्य में व्याधिभय कैसे

होगा? वहां सदा सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्य, अत्युत्तम सम्पत्ति विद्यमान रहती है तथा वहां प्रजाजन निरोग एवं सर्वव्याधि रहित हो जाते हैं। हे सुव्रत नारद! जो मानव इस प्रतिपदा के दिन हर्ष-दुःख आदि जिस किसी भाव में रहते हैं, उनको उस वर्ष पर्यन्त उसी भाव में व्यतीत करना पड़ता है। जो इस दिन रुदन करता है, वह समग्र वर्ष पर्यन्त रोदन करेगा। जो हर्षित अवस्था में रहेगा, वह प्रसन्न रहेगा। जो भोजन करके तृप्त तथा स्वस्थ रहेगा, वह वर्ष पर्यन्त स्वस्थ रहेगा। कार्त्तिक मास की इस तिथि को वैष्णवी दानवी तिथि कहा गया है। इस दिन दीपोत्सव द्वारा सर्वविध आनन्द लाभ होता है। जो शुभ चाहने वाले व्यक्ति इस उत्सव का अनुष्ठान करते हैं, वे बुद्धिमान लोग नाना भोगों से मुदित रहते हैं। उनका समस्त कुल उस वर्ष प्रमुदित रहता है।।५३-५८।।

बलिपूजां विधायैवं पश्चाद्गोक्रीडनं चरेत्।।५९।।
गवां क्रीडादिनेयत्ररात्रौदृश्येतचन्द्रमाः। सोमोराजापशून्हन्तिसुरभीपूज्यकांस्तथा।।६०।।
प्रतिपद्दर्शसंयोगे क्रीडनं तु गवाम्मतम्। परविद्धासु यः कुर्यात्पुत्रदारधनक्षयः।।६१।।

इस प्रकार से राजा बलि के पूजनोपरान्त गो क्रीड़ा को करना चाहिये। गो क्रीडा के दिन रात में चन्द्रदर्शन होने पर सोमराजा पशु तथा गौ पूजक का नाश करते हैं। (उस दिन चन्द्रमा न देखें)। इसलिये जब अमावस्या युक्त प्रतिपदा हो, तभी गो क्रीडा का आयोजन करें। जो मानव परविद्धा प्रतिपदा काल में गो क्रीड़ा का आचरण करता है उसके पुत्र-पत्नी का तथा धन का क्षय होता है।।५९-६१।।

अलङ्कार्यास्तदागावो गोग्रासादिभिरर्चिताः। गीतवादित्रनिर्घोषैर्नयेन्नगरबाह्यतः।
आनीय च ततः पश्चात्कुर्यान्नीराजनाविधिम्।।६२।।
अथ चेत्प्रतिपत्स्वल्पा नारी नीराजनं चरेत्।
द्वितीयायां ततः कुर्यात्सायं मङ्गलमालिकाः।।६३।।
एवं नीराजनं कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते। प्रतिपत्पूर्वविद्धैव यष्टिकाकर्षणे भवेत्।।६४।।
कुशकाशमयीं कुर्याद्यष्टिकां सुदृढां नवाम्। देवद्वारे नृपद्वारेऽथवाऽनेया चतुष्पथे।।६५।।
तामेकतो राजपुत्रा हीनवर्णास्तथैकतः। गृहीत्वा कर्षयेयुस्ते यथासारंमुहुर्मुहुः।।६६।।
समसङ्ख्याद्वयोःकार्यासर्वेऽपिबलवत्तराः। जयोऽत्रहीनजातीनांजयोराज्ञस्तुवत्सरम्।।६७।।
उभयोः पृष्ठतः कार्या रेखातत्कर्षकोपरि। रेखान्ते यो नयेत्तस्यजयोभवतिनाऽन्यथा।।६८।।
जयचिह्नमिदं राजा निदधीत प्रयत्नतः।।६९।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे कार्त्तिकशुक्लप्रतिपन्माहात्म्य वर्णनं नाम दशमोऽध्यायः।।१०।।

—※※※—

गो क्रीड़ार्थ गोगण को अलंकृत करे तथा गोग्रास आदि से उनकी पूजा करके विविध गीत तथा वाद्यघोष के साथ उनको नगर से बाहर लाकर नीराजना करनी चाहिये। यदि इस दिन प्रतिपदा अत्यल्प काल तक रहे, तब उस दिन मात्र नीराजन करके द्वितीया में सायंकाल के समय मंगलमालिकादि क्रिया सम्पन्न करनी चाहिये।

इस विधान से की गई नीराजन क्रिया से सभी पापों से मुक्ति मिलती है। यष्टिकार्षण में पूर्वविद्धा प्रतिपदा तिथि ही ग्राह्य है। यह यष्टिका नव कुश-काश द्वारा मजबूती से बनाकर देवद्वार, नृपद्वार किंवा नृपद्वार अथवा चतुष्पथ पर रखें। उसके एक ओर राजकुमार तथा दूसरी ओर हीन जाति के लोग पकड़ें। यष्टिका की सारवत्ता को देखकर एक ओर राजकुमारों तथा दूसरी ओर हीन जाति वालों की संख्या समान हो। सभी तुल्यबल हों। वे दोनों प्रकार के लोग उसे अपनी-अपनी ओर खींचें। दोनों दल के पीछे एक रेखा खींचनी चाहिये। जो यष्टिका खींचते हुये यह रेखा पार कर जाये, इस यष्टिकाकर्षण में वही विजयी माना जायेगा। राजा स्वयं पर्यवेक्षण करें। यष्टिकाकर्षण में राजकुमार वाले दल अथवा हीनजाति दल की जय-पराजय द्वारा ही एक वर्ष पर्यन्त के जय-पराजय की सूचना मिलेगी।।६२-६९।।

।।दशम अध्याय समाप्त।।

एकादशोऽध्यायः

यमद्वितीया माहात्म्य, भगिनीगृह भोजन महत्व वर्णन

नारद उवाच

भगवन्प्रष्टुमिच्छामि त्वामहं विनयान्वितः। तद्व्रतं ब्रूहिमेमर्त्योमृत्युंयेननपश्यति।।१।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे भगवान्! मैं विनयावनत होकर जिज्ञासा करता हूं कि किस व्रत का आचरण करने पर मानव यम का दर्शन नहीं करता, वह कहिये।।१।।

ब्रह्मोवाच

यदि पृच्छसिविप्रेन्द्र! व्रतनामुत्तमं व्रतम्। व्रतं यमद्वितीयाख्यंशृणुत्वंमृत्युनाशनम्।।२।।
कार्त्तिके मासि शुक्लायांद्वितीयायां मुनीश्वर!। कर्तव्यंतद्विधानेनसर्वमृत्युनिवारणम्।।३।।
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय द्वितीयायांमुनीश्वर!। मनसाचिन्तयेदात्महितंनैवाऽहितंस्मरेत्।।४।।
प्रातः स्नानं ततः कुर्याद्दन्तधावनपूर्वकम्। ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः।।५।।
कृतनित्यक्रियो हृष्टः कुण्डलाङ्गदभूषितः। औदुम्बरतरुं गत्वाकृत्वामण्डलमुत्तमम्।।६।।
पद्ममष्टदलं कृत्वा तस्मिनौदुम्बरे शुभे। विधिं विष्णुं च रुद्रं चवरदाञ्चसरस्वतीम्।।७।।
वीणापुस्तकसंयुक्तां पूजयेत्स्वस्थमानसः। चन्दनागरुकस्तूरीकुङ्कुमैर्द्विजसत्तम!।।८।।
पुष्पैर्धूपैश्चनैवेद्यैर्नारिकेलफलादिभिः। ततोमृत्युविनाशार्थं सालङ्कारां पयस्विनीम्।।९।।
विप्राय वेदविदुषे गां दद्याच्च सवत्सकाम्। अपमृत्युविनाशार्थं संसारार्णवतारकाम्।।१०।।
हेविप्र! तेत्विमांसौम्यां धेनुं सम्प्रददाम्यहम्। इतिमन्त्रेणगांदद्याद्विप्रायब्रह्मवादिने।।११।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे विप्रेन्द्र! यदि तुम्हारी इस प्रकार की व्रतकथा सुनने की इच्छा है, तब तुम व्रत प्रवर मृत्युनाशक यमद्वितीया नामक व्रत के सम्बन्ध में श्रवण करो। हे मुनीश्वर! कार्त्तिकमास की शुक्ल द्वितीया के दिन सर्वमृत्युनाशक इस व्रतविधान को करना चाहिये। हे मुनिप्रवर! द्वितीया के दिन ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर मन ही मन आत्महित की चिन्ता करें। कदापि अहित चिन्तन न करें। हे द्विजप्रवर! तदनन्तर प्रातः दन्तधावन, स्नान, शुक्लवस्त्र धारण, शुक्लमाला धारण, सन्ध्यादि क्रिया, कर्ण में कुण्डल धारण तथा हाथों में अंगद धारण करके गूलर के वृक्ष के पास जाये। प्रसन्नतापूर्वक उस वृक्ष के नीचे अष्टदल कमल समन्वित एक मण्डल का निर्माण करें। स्थिर मन से उस वृक्ष में चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम, पुष्प, धूप, नैवेद्य तथा नारिकेल आदि नाना उपचारों से विधि-विष्णु-रुद्र तथा वीणापुस्तकहस्ता, वरदा सरस्वती की पूजा करनी चाहिये। तब मृत्यु विनाशार्थ सालङ्कारा दुग्धवती सवत्सा धेनु वेदज्ञ ब्राह्मण को इस मन्त्र से प्रदान करें। "हे विप्र! मैं अपमृत्यु निवारणार्थ संसारार्णव से पार करने वाली सौम्या धेनु आपको प्रदान करता हूं।।२-११।।

तदलाभे तु विप्राय भक्त्या दद्यादुपानहौ। ततःपूजांसमाप्याऽथभक्तिमान् पुरुषोत्तमे।।१२।।

ज्ञातिश्रेष्ठान्वयोवृद्धान्सम्यग्भक्त्याऽभिवादयेत्।
नानाविधैः फलै रम्यैस्तर्प्ययेत्स्वजनानपि।।१३।।

व्यक्ति यदि गोदान न कर सके, तब ब्राह्मण को पादुका दान करना चाहिये। तदनन्तर एवंविध पूजा समापन करके पुरुषोत्तम प्रभु के प्रति भक्तिमान होकर वयोवृद्ध श्रेष्ठज्ञातिजन का तथा आत्मीयजन का भक्तिपूर्वक अभिवादन करके नाना रम्य फल से उनकी तृप्ति करनी चाहिये।।१२-१३।।

ततःसोदरसम्पन्ना भगिनीयाभवेन्मुने!। तस्यागृहंसमागत्यसम्यग्भक्त्याऽभिवादयेत्।।१४।।

भगिनि! सुभगे! भद्रे त्वदङ्घ्रिसरसीरुहम्।
श्रेयसेऽथ नमस्कर्तुमागतोऽस्मि तवाऽऽलयम्।।१५।।
इत्युक्त्वा भगिनीं तां तु विष्णुबुद्ध्याऽभिवादयेत्।
तदा तु भगिनी श्रुत्वा भ्रातुवर्चनमुत्तमम्।।१६।।

भगिन्या भ्रातरं वाक्यंवक्तव्यंप्रतिनारद!। अद्यभ्रातरहंजातात्वत्तोधन्याऽस्मिमङ्गला।।१७।।
भोक्तव्यं तेऽद्य मद्गेहेस्वायुषेकुलदीपक!। कार्त्तिके शुक्लयक्षस्य द्वितीयायां सहोदर।।१८।।
यमोयमुनयापूर्वं भोजितःस्वगृहेऽर्चितः। अस्मिन्दिनेयमेनाऽपिनारकीयाश्चमोचिताः।
अपि बद्धाः कर्मपाशैः स्वेच्छया पर्यटन्ति ते।।१९।।

स्वसुर्नरो वेश्मनि यो न भुङ्क्ते यमद्वितीयादिनमत्र लब्ध्वा।
तम्पापिनं प्राप्य वयं सुहृष्टाः प्रभक्षयामोऽद्य च भक्ष्यहीनाः।।२०।।

हे मुनिवर! तत्पश्चात् जिसकी बहन है, वह भगिनी के घर जाकर कहे—"हे भगिनी सुभगे! भद्रे! मैं श्रेयप्राप्ति हेतु तुम्हारे चरण कमलों में प्रणाम करता हूं। मैं इसीलिये आया हूं।" इस प्रार्थना के साथ भक्तिपूर्वक उसमें विष्णु बुद्धि रखते हुये प्रणाम करें। तब बहन भी अपने भाई का यह वाक्य सुनकर कहे—"हे भ्राता! आज मैं तुम्हारे द्वारा धन्य तथा मंगलयुक्त हो गयी। हे कुलोज्वल! आयु वृद्धि हेतु तुम मेरे गृह में भोजन करो। हे

सहोदर! पूर्वकाल में कार्त्तिक शुक्ल द्वितीया के दिन यम की बहन यमुना ने भ्राता यम का पूजन करके उनको भोजन कराया था।'' यम भी इस दिन नारकीय लोगों को मुक्ति देते हैं तथा जो कर्मपाश में बंधे हैं तथा यमलोक में हैं, वे भी इच्छानुरूप विचरण करते हैं। यम द्वितीया के दिन जो मनुष्य बहन के घर जाकर भोजन नहीं करते, भक्ष्यहीन पाप उस पापी को लक्ष्य करके कहते हैं—।।१४-२०।।

इति पापा रटन्तीह ब्रह्महत्यादयस्तथा। तस्माद्भ्रातर्मद्गृहेतु भोजनं कुरु कार्त्तिके।।२१।।
शुक्लायां तु द्वितीयायां विश्रुतायांजगत्त्रये। अस्यांनिजगृहेपुत्र! भुज्यते न बुधैरपि।।२२।।
इत्युक्तः स तथेत्युक्त्वा भगिनीं पूजयेद्व्रती। प्रहर्षात्सुमहाभाग! वस्त्रालंकारभूषणैः।।२३।।

अग्रजामभिवन्द्याऽथ आशिषञ्च प्रगृह्यच।
सर्वा भगिन्यःसन्तोष्या वस्त्रालङ्कारदानतः।।२४।।
अभावे स्वस्य तु स्वसुः पितृव्या स्वपितुः स्वसा।
तस्या गृहं समागत्य कुर्याद्भोजनमादरात्।।२५।।

एवं यः कुरुतेपुत्र! द्वितीयां यमनामिकाम्। अपमृत्युविनिर्मुक्तः पुत्रपौत्रौदिभिर्वृतः।।२६।।

इह भुक्त्वा तु विपुलान्भोगानन्यान्यथेप्सितान्।
अन्ते मोक्षमवाप्नोति नान्यथा मद्वचो भवेत्।।२७।।
व्रतान्येतानि सर्वाणि दानानि विविधानि च।
गृहस्थस्यैव युज्यन्ते तस्याद्गार्हस्थ्यमाश्रयेत्।।२८।।

कथांयमद्वितीयाया व्रतस्थःश्रृणुयान्नरः। तस्यसर्वाणिपापानिनश्यन्तीत्याहमाधवः।।२९।।

पाप कहते हैं—''हम इसका प्रसन्नचित्त होकर भोजन करेंगे।'' हे भ्राता! ब्रह्महत्यादि पाप यह कहते घूमते हैं। अतएव अब कार्त्तिक प्रतिपदा के दिन मेरे घर भोजन करो। विशेषतः त्रैलोक्य प्रसिद्ध कार्त्तिक शुक्ला प्रतिपदा काल में ज्ञानीजन कदापि अपने गृह भोजन नहीं करते।'' हे पुत्र नारद! बहन के यह कहने पर व्रतधारी भ्राता ''यही हो'' कहकर प्रसन्न अन्तःकरण से वस्त्र एवं अलंकारादि द्वारा बहन को प्रसन्न करें। यदि सहोदरा भगिनी का अभाव हो तब पितृव्यजा अथवा पितृष्वसा के कन्या गृह जाकर आदर के साथ भोजन करना चाहिये। हे पुत्र! जो मानव इस द्वितीया व्रत का निर्वहन करता है, वह तथा उसके पुत्र-पौत्रादि अपमृत्यु ग्रसित नहीं होते। वह मानव इहकाल में विविध इच्छित भोग पाकर अन्त में मोक्षलाभ करता है। तुम निश्चित जान लो कि मेरा वचन कदापि अन्यथा नहीं होगा। यह सब व्रत एवं विविध दानादि गृहस्थों को ही फलप्रद होता है। अतएव गृहस्थाश्रम का ही अवलम्बन लेना चाहिये। ''यमद्वितीया की व्रतकथा को सुनने वाला सर्वपापरहित हो जाता है।'' यह माधव का कथन है।।२१-२९।।

सूत उवाच

कार्त्तिके च द्वितीयायां पूर्वाह्णे यममर्चयेत्। भानुजायां नरः स्नात्वायमलोकंनपश्यति।।३०।।
कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु द्वितीयायांतु शौनक!। यमो यमुनयापूर्वंभोजितःस्वगृहेऽर्चितः।।३१।।

द्वितीयायां महोत्सर्गो नारकीयाश्च तर्पिताः।
पापेभ्यो विप्रयुक्तास्ते मुक्ताः सर्वे निबन्धनात्।।३२।।
अत्राऽऽशिताश्च सन्तुष्टाः स्थिताः सर्वे यदृच्छया।
तेषां महोत्सवो वृत्तो यमराष्ट्रसुखावहः।।३३।।
अतो यमद्वितीयेयं त्रिषुलोकेषु विश्रुता। तस्मान्निजगृहे विप्र! न भोक्तव्यंततोबुधैः।।३४।।
स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं बलवर्द्धनम्। ऊर्जे शुक्लद्वितीयायांपूजितस्तर्पितो यः।।३५।।
महिषासनमारूढो दण्डमुद्गरभृत्प्रभुः। वेष्टितः किङ्करैर्हृष्टैस्तस्मै याम्यात्मने नमः।।३६।।
यैर्भगिन्यःसुवासिन्योवस्त्रदानादितोषिताः। न तेषां वत्सरंयावत्कलहोनरिपोर्भयम्।।३७।।

सूत जी कहते हैं—कार्त्तिक शुक्ला द्वितीया के दिन यमुना में स्नान करके पूर्वाह्न में यम की पूजा करने वाला कदापि यमलोक का दर्शन नहीं करता। हे शौनक! कार्त्तिक शुक्ला प्रतिपदा के दिन यमुना अपने गृह में यम का पूजन तथा यम को भोजन प्रदान करती है। इस द्वितीया के दिन नरक के नारकीय लोग भी तृप्त हो जाते हैं। वे इस दिन निष्पाप होकर बन्धनरहित हो जाते हैं। वे निष्पाप भी हो जाते हैं। यथेच्छ आहार-विहार करके मनुष्य सन्तुष्ट होता है। उसके उत्सव में यमराज सुखावह हो जाते हैं। हे विप्र! इसीलिये यह यमद्वितीया त्रैलोक्य विख्यात है। इसलिये इस दिन बुद्धिमान व्यक्ति अपने घर में भोजन नहीं करें। वे स्नेहपूर्वक बहन के हाथों से बने बलवर्द्धनकारी अन्न का भोजन करें। कार्त्तिक शुक्ला द्वितीया के दिन महिषासन दण्ड-मुद्गरधारी प्रभु यम हृष्ट किन्नरों से घिरे हुये भगिनी यमुना से पूजित होते हैं। उन याम्यात्मा को प्रणाम! जो व्यक्ति सुवासिनी भगिनीगण को वस्त्रदान द्वारा सन्तुष्ट करता है, उसे एक वर्ष पर्यन्त कलह तथा शत्रु का भय नहीं रहता।।३०-३७।।

धन्यं यशस्यमायुष्यं धर्मकामार्थसाधनम्। व्याख्यातं सकलं पुत्र! सरहस्यंमयाऽनघ।।३८।।
यस्यां तिथौ यमुनया यमराजदेवः सम्भोजितः प्रतितिथौ स्वसृसौहृदेन।।३९।।
तस्मात्स्वसुः करतलादिह यो भुनक्ति प्राप्नोति वित्तशुभसम्पदमुत्तमां सः।।४०।।

हे निष्पाप! यह व्रत धन्य है। यह यशप्रद, आयुवर्द्धक तथा धर्म-काम-अर्थ साधनरूप है। हे पुत्र! मैंने यह सब रहस्य के साथ तुमसे कह दिया। इस तिथि के दिन यमुना ने भगिनी स्नेहपूर्वक यमराज को भोजन कराया था। जो प्रतिवर्ष कार्त्तिक द्वितीया तिथि पर बहन के हाथ का भोजन करते हैं, उनको शुभ उत्तम वित्त सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।।३८-४०।।

सूत उवाच

विशेषश्चाऽत्रसम्प्रोक्तोबालखिल्यैर्महर्षिभिः। तदहंसम्प्रवक्ष्यामिशृणुध्वंमुनिसत्तमाः।।४१।।

सूत कहते हैं— हे मुनिप्रवरगण! बालखिल्य महर्षिगण ने यह विषय विशेषरूप से कहा था। अब मैं उसे विशेष रूप से कहता हूं। आपलोग सुनें।।४१।।

बालखिल्या ऊचुः

कार्त्तिकस्यु सिते पक्षे द्वितीयायमसञ्ज्ञिता। तत्राऽपराह्णे कर्तव्यंसर्वथैवयमार्चनम्।।४२।।

प्रत्यहं यमुनाऽऽगत्य यमं सम्प्रार्थयत्पुरा। भ्रातर्मम गृहे याहि भोजनार्थं गणावृतः॥४३॥
अद्य श्वो वा परश्वो वा प्रत्यहं वदते यमः। कार्यव्याकुलचित्तानामवकाशो न जायते।
तदैकदा यमुनया बलात्कारान्निमन्त्रितः।
स गतः कार्त्तिके मासि द्वितीयायां मुनीश्वराः!॥४४॥
नारकीयजनान्मुक्त्वा गणैःसहरवेःसुतः।
कृताऽऽतिथ्योयमुनयानानापाकाःकृताःखग! ॥४५॥
कृताभ्यङ्गो यमुनया तैलैर्गन्धमनोहरैः। उद्वर्तनं लापयित्वा स्नापितः सूर्यनन्दनः॥४६॥
ततोऽलङ्कारकं दत्तं नाना वस्त्राणि चन्दनम्।
माल्यानि च प्रदत्तानि मञ्चोपरि उपाविशत्॥४७॥

बालखिल्य ऋषिगण कहते हैं—कार्त्तिक शुक्लाद्वितीया को यमद्वितीया कहा गया है। इस दिन अपराह्न में यमपूजन अवश्य करना चाहिये। पूर्वकाल में यमुना प्रतिवर्ष यम के पास आकर प्रार्थना करती थीं—"हे भ्राता! अपने गणों से आवृत होकर भोजनार्थ मेरे गृह आइये।" कार्य व्याकुलता के कारण अवकाश न मिल सकने के कारण यम को यमुना के यहां जाने का समय नहीं मिलता था। इसलिये वे कल अथवा परसों आने के लिये कहते रहते। हे मुनीश्वरगण! एक बार यमुना ने यम को बलपूर्वक निमन्त्रित किया। तब यमराज कार्त्तिक शुक्ला द्वितीया के दिन बहन के घर आये तथा भोजन किया। सूर्यपुत्र यम नारकीय (नरकवासी) लोगों को मुक्त करके किन्नरों के साथ बहन के घर आये तथा यमुना का आतिथ्य ग्रहण किया। यमुना ने उनको विविध पक्वान्न भोजन कराया था। यमुना ने सूर्यपुत्र यम को अपने गृह आये देखकर उनको अभ्यङ्ग, उबटन लगवाकर स्नान कराया तथा विविध वस्त्र, अलंकार, चन्दन तथा माला प्रदान किया। तब यम विविध आभूषणों से भूषित होकर मंच पर आसीन हो गये।।४२-४७।।

पक्वान्नानि विचित्राणि कृत्वासास्वर्णभाजने। यमायाऽभोजयद्देवीयमुनाप्रीतमानसा॥४८॥
भुक्त्वा यमोऽपि भगिनीमलङ्कारैःसमर्चयत्। नानावस्त्रैस्ततःप्राह वरम्वरय भामिनि।
इति तद्वचनं श्रुत्वा यमुना वाक्यमब्रवीत्॥४९॥

यमुना ने स्वर्ण पात्रों में विविध विचित्र पक्वान्न लाकर प्रसन्न मन से यम को प्रेमपूर्वक भोजन कराया। यम ने भी भोजनोपरान्त विविध वस्त्र अलंकारों द्वारा भगिनी यमुना की अर्चना करके कहा—"हे भगिनी! वर मांगो!" यमुना के यम का यह वाक्य सुनकर कहा।।४८-४९।।

यमुनोवाच

प्रतिवर्षं समागच्छ भोजनार्थं तु मद्गृहे॥५०॥
अद्यसर्वे मोचनीयाःपापिनोनरकाद्यम!। येऽद्यैवभगिनीहस्तात्करिष्यन्तिचभोजनम्।
तेषां सौख्यं प्रदेहि त्वमेतदेव वृणोम्यहम्॥५१॥

यमुना कहती हैं—हे यम! प्रतिवर्ष कार्त्तिक शुक्ला द्वितीया के दिन भोजनार्थ मेरे गृह आकर उस दिन

नारकीय लोगों को नरक से मुक्त करो तथा उस दिन जो लोग बहन के हाथों का भोजन करें उनको सुख प्रदान करना, यही वर मांगती हूं।।५०-५१।।

यम उवाच

यमुनायां तु यः स्नात्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः।।५२।।
भुङ्क्ते च भगिनीगेहे भगिनीं पूजयेदपि। कदाचिदपि मद्द्वारंन स पश्यतिभानुजे!।।५३।।
वीरेशैशानदिग्भागेयमतीर्थम्प्रकीर्तितम्। तत्रस्नात्वाच विधिवत्सन्तर्प्यपितृदेवताः।।५४।।
पठेदेतानि नामानिआमध्याह्नंनरोत्तमः। सूर्यस्याऽभिमुखोमौनीहृतचित्तःस्थिरासनः।।५५।।
यमो निहन्ता पितृधर्मराजो वैवस्वतो दण्डधरश्च कालः।
भूताधिपो दत्तकृतानुसारी कृतान्तमेतद्दशभिर्जपन्ति।।५६।।
ततो यमेश्वरम्पूज्य भगिनीगृहमाव्रजेत्। मन्त्रेणाऽनेनच तया भोजितः पूर्वमादरात्।।५७।।
भ्रातस्तवानुजाताऽहं भुङ्क्ष्व भक्तमिदंशुभम्।
प्रीतयेयमराजस्य यश्मुनाया विशेशतः।।५८।।
ततः सन्तोष्य भगिनीं वस्त्रालङ्करणादिभिः।
स्वप्नेऽपि यमलोकस्य भविष्यति न दर्शनम्।।५९।।

यमराज कहते हैं—"हे सूर्यपुत्री! जो मानव इस दिन यमुना में स्नान तथा पितरों एवं देवगण का तर्पण करके भगिनी के गृह में भोजन तथा भगिनी की पूजा करेंगे, उनको कभी भी यमद्वार दर्शन नहीं करना होगा।" वाराणसी के ईशानकोण में यमतीर्थ विद्यमान है। बुद्धिमान मनुष्य इस तीर्थ में यथाविधि स्नान, पितृतर्पण करके पूर्वमुख, मौनी, स्थिरासन तथा दृष्टचित्त होकर मध्याह्न कालपर्यन्त मूलोक्त श्लोक ५६ का पाठ करें। ये दस यम के नाम हैं। यथा—यम, निहन्ता, पितृ, धर्मराज, वैवस्वत, दण्डधर, काल, भूताधिप, दत्तकृतानुसारी, कृतान्त। इनका पाठ मध्याह्न तक करें। तत्पश्चात् यमेश्वर की पूजा करके बहन के घर जायें। तब बहन आदर सत्कार पूर्वक श्लोक ५८ को पढ़ें, जो मूल में लिखा है। तदनन्तर बहन अपने भ्राता को भोजन कराये। तब भ्राता अपनी बहन को वस्त्र-अलंकार द्वारा सन्तुष्ट करायें। यह कहने से स्वप्न में भी यमदर्शन नहीं होगा।।५२-५९।।

नृपैः कारागृहे ये च स्थापितामम वासरे। अवश्यं ते प्रेषणीया भोजनार्थं स्वसुर्गृहे।।६०।।
विमोक्तव्या मया पापानरकेभ्योऽद्यवासरे। येऽद्यबन्दींकरिष्यन्तितेताड्याममसर्वथा।।६१।।
कनीयसी स्वसा नास्तितदाज्येष्ठागृहम्व्रजेत्। तदभावेसपत्यायाःपितृव्यजागृहेततः।।६२।।
तदभावेमातृस्वसुर्मातुलस्याऽऽत्मजा तथा। सापत्नगोत्रसम्बन्धैः कल्पयेदथवाक्रमम्।।६३।।
सर्वाऽभावे माननीया भगिनीकाचिदेवहि। गोनद्याद्यथवातस्या अभावेसतिकारयेत्।।६४।।
तदभावेऽप्यरण्यानींकल्पयित्वासहोदराम्। अस्यांनिजगृहे देवि! नभोक्तव्यंकदाचन।।६५।।

"राजा भी कारागृह में बन्द अपराधियों को यमद्वितीया के दिन उनकी बहनों के यहां भोजनार्थ भेजें। इस दिन मैं भी पापीगण को नरक से मुक्त करूंगा। जो राजा इस दिन बन्दी को नहीं भेजता वह सर्वदा मेरे

द्वारा ताड़ित होगा। जिसकी छोटी बहन नहीं, वह बड़ी बहन के घर जाये। उसके अभाव में पतियुक्त पितृव्यजा के गृह में, उसका भी अभाव होने पर मातृष्वसा अथवा मामा की कन्या के यहां जायें। उसका भी अभाव होने पर ज्ञाति, गौण ज्ञाति, किंवा अन्य सम्पर्कित बहन के गृह जायें। इसका भी अभाव होने पर किसी को भी बहन मानकर उससे सम्पर्क करें। यह भी संभव न हो तब गौ अथवा नदी की बहनरूपेण भावना करें। उसका भी अभाव होने पर गहन अरण्य में भगिनी की भावना करके वहां जाना चाहिये तथापि हे देवी यमुना! कभी भी यमद्वितीया के दिन अपने गृह में भोजन न करें।''।।६०-६५।।

ये भुञ्जते दुराचारा नरके ते पतन्ति च। एवमुक्त्वा धर्मराजो ययौ संयमिनीं ततः।।६६।।
तस्मादृषिवराः सर्वे कार्त्तिकव्रतकारिणः। भुञ्जते भगिनीहस्तात्सत्यंसत्यंनसंशयः।।६७।।
यमद्वितीयां यः प्राप्य भगिनीगृहभोजनम्। न कुर्याद्वर्षजंपुण्यंनश्यतीतिरवेः श्रुतिः।।६८।।
यातुभोजयतेनारी भ्रातरं भ्रातृके तिथौ। अर्च्चयेच्चाऽपिताम्बूलैर्नसावैधव्यमाप्नुयात्।।६९।।
भ्रातुरायुःक्षयोनूनं न भवेत्तत्र कर्हिचित्। अपराह्णव्यापिनी सा द्वितीया भ्रातृभोजने।।७०।।
अज्ञानाद्यदि वा मोहान्नभुक्तंभगिनीगृहे। प्रवासिना ह्यभावाद्वा ज्वरितेनाऽथ बन्दिना।।७१।।
एतदाख्यानकंश्रुत्वाभोजनस्यफलम्भवेत्। कार्त्तिकेतुविशेषेण धात्रीछायांसमाश्रितः।।७२।।
भोजनं कुरुते यस्तु स वैकुण्ठमवाप्नुयात्।।७३।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे यमद्वितीयामाहात्म्यवर्णनं-
नामैकादशोऽध्यायः।।११।।

"जो दुराचारी इस दिन स्वगृह में भोजन करते हैं, वे नरक गमन करते हैं।'' धर्मराज यम यह कहकर अपनी पुरी चले गये। हे ऋषिवर! मैं सत्य कहता हूं, सत्य कहता हूं, सत्य कहता हूं कि इसीलिये कार्त्तिक व्रताचारी लोग यमद्वितीया के दिन बहन के हाथ का भोजन करते हैं। इसमें संशय नहीं है। जो यमद्वितीया के दिन बहन के घर भोजन नहीं करते उनका वर्षपर्यन्त का पुण्य नष्ट हो जाता है। यह रवि की श्रुति है। जो नारी भातृतिथि यमद्वितीया के दिन भाई को भोजन तथा ताम्बूल द्वारा भाई का सत्कार करती है, वह विधवा नहीं होती। उसका भाई भी अक्षय आयु लाभ करता है। भातृभोजनार्थ द्वितीया तिथि को अपराह्न व्यापिनी ग्रहण करना चाहिये। जो मनुष्य अज्ञान अथवा मोह के करण विदेश वास अथवा अभाव के कारण किंवा जराग्रस्त अथवा बंदी होकर बहन के गृह में भोजन नहीं कर पाता, वह यदि इस यमद्वितीया उपाख्यान को सुनता है, तब उसे भोजन फल ही मिलेगा। कार्त्तिक मास में जो आंवले की छाया में भोजन करता है, उसे वैकुण्ठलोक की प्राप्ति होती है।।६६-७३।।

।।एकादश अध्याय समाप्त।।

द्वादशोऽध्यायः

धात्री (आंवला) माहात्म्य, धात्रीवृक्षपूजा माहात्म्य

शौनक उवाच

कार्त्तिकस्य च माहात्म्यं महत्पुण्यफलप्रदम्।
कदाः धात्री समुत्पन्ना कथं सा ख्यातिमागता॥१॥
कस्मादियंपवित्राचकस्मात्पापप्रणाशिनी। आमर्दकीकृताकेनकथयस्वाऽत्रविस्तरात्॥२॥

शौनक कहते हैं—कार्त्तिक का माहात्म्य तो महापुण्य फलप्रद है। हे सूत! किस समय आमलकी (आंवला) वृक्ष उत्पन्न हुआ, उसे क्यों प्रसिद्धि मिली तथा क्यों यह वृक्ष पवित्र माना गया? यह वृक्ष पापनाशक क्यों है तथा किसने इसे संगदोष जनित पापों का मर्दनकारी बनाया। सम्प्रति विस्तृत रूप से यह सब वर्णन करिये।।१-२।।

सूत उवाच

कथयामि द्विजश्रेष्ठ! यथावेयं हि पुण्यदा। ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यांधात्रीपूजांसमाचरेत्॥३॥
आमर्दकीमहावृक्षः सर्वपापप्रणाशनः। वैकुण्ठाख्यतर्दश्यां धात्रीछायां गतो नरः॥४॥
पूजयेत्तत्र देवेशं राधया सहितं हरिम्। प्रदक्षिणां ततः कुर्याच्छतमष्टोत्तरं तथा॥५॥
सुवर्णरजतैर्वापि फलैरामलकैस्तथा। शतमष्टोत्तरं कुर्यादेकैकेन प्रदक्षिणाम्॥६॥
साष्टाङ्गंप्रणतोभूत्वाप्रार्थयेत्परमेश्वरम्। धात्रीछायां समाश्रित्यश्रृणुयाच्चकथामिमाम्॥७॥
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्यथाशक्त्याचदक्षिणाम्। ब्राह्मणेषुच तुष्टेषु तुष्टोमोक्षप्रदोहरिः॥८॥

सूत जी कहते हैं—हे द्विजप्रवर! यह पुण्यदाता क्यों हो गया वह प्रसंग कहता हूं। कार्त्तिक मासीय शुक्लाचतुर्दशी को धात्री वृक्ष की पूजा करें। यह महान् वृक्ष संगदोषजनित पापों का मर्दन तथा अन्य पापों को नष्ट करता है। वैकुण्ठ चतुर्दशी के दिन मानव आवलें की छाया में जाकर वहां राधा के साथ विष्णु की पूजा करे तथा १०८ प्रदक्षिणा करे। स्वर्ण या रजत का आंवला एक-एक बार कर १०८ प्रदक्षिणा करे। तदनन्तर साष्टांग प्रणाम करके परमेश्वर हरि की प्रार्थना करके धात्री छाया में बैठकर कथा सुनने के पश्चात् यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराये तथा व्रत की दक्षिणा प्रदान करें। ब्राह्मण के सन्तुष्ट होने पर हरि भी सन्तुष्ट हो जाते हैं तथा मोक्ष प्रदान करते हैं।।३-८।।

अत्रतेकथयिष्यामिकथांपुण्यफलप्रदाम्। आमर्दकीफलं वक्तुं ब्रह्मा चाऽपि नपार्यते॥९॥
एकार्णवे पुरा जाते नष्टे स्थावरजङ्गमे। नष्टे देवासुरगणे प्रणष्टोरगराक्षसे॥१०॥
तत्र देवाधिदेवेशः परमात्मा सनातनः। जजाप ब्रह्म परममात्मनः परमाव्ययम्॥११॥
ततोऽस्य ब्रह्म जपतो निरगाच्छ्वसितम्पुरः। तद्दर्शनाऽनुरागेण नेत्राभ्यामगमज्जलम्॥१२॥

प्रेमाश्रुभरनिर्भिन्नो भूमौ बिन्दुः पपात सः।
तस्माद् बिन्दोः समुत्पन्नः स्वयं धात्रीनगो महान्॥१३॥
शाखाप्रशाखाबहुलः फलभारेण पीडितः। सर्वेषामेव वृक्षाणामादिरोहः प्रकीर्तितः॥१४॥
ब्रह्मा तमसृजत्पूर्वं तत्पश्चाच्चाऽसृजत्प्रजाः। देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसपन्नगान्॥१५॥
असृजद्भगवान्देवो मानुषांश्च तथाऽमलान्। आजग्मुस्तत्र देवास्तेयत्रधात्रीहरिप्रिया॥१६॥
तां दृष्ट्वा ते महाभागाः परमं विस्मयंगताः। न जानीम इमं वृक्षं चिन्तयन्तो मुहुर्मुहुः॥१७॥

सम्प्रति यह पुण्यफलदायिनी कथा कहता हूं। ब्रह्मा भी आमलकी का वर्णन कर सकने में समर्थ नहीं हैं। पूर्वकाल में भूमण्डल में एकार्णव होने पर स्थावर, जंगम, देवता, असुर, उरग, राक्षसादि नष्ट हो गये। तब देवाधिदेवेश सनातन परमात्मा ब्रह्मा परम अव्यय ब्रह्म का मन्त्र जप कर रहे थे। वेदमन्त्र जप करते-करते सहसा परमात्मा महाविष्णु के निकट उनकी एक श्वास निर्गत हो गयी। यह देखकर महाविष्णु में अनुराग का जन्म हो गया। उनके नेत्रद्वय से प्रेमपूरित एक जलविन्दु भूपतित हो गया तथा उस विन्दु से महावृक्ष धात्री उत्पन्न हो गया। उसकी शाखा-प्रशाखायें फलभार से झुक गयीं। यह धात्री वृक्ष ही सर्वप्रथम आविर्भूत होने के कारण वृक्षों में सर्वोपरि है। भगवान् ब्रह्मा ने पूर्व में इसका सृजन किया था। तत्पश्चात् देव-दानव-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-पन्नग तथा अन्य निर्मल मानव आदि प्रजावर्ग को सृजित किया था। महाभाग देवगण ने हरिप्रिय धात्री वृक्ष के समीप जाकर उसका दर्शन किया तथा वे परम विस्मयापन्न हो गये कि हमने इसको कभी भी नहीं देखा था। देवगण बारम्बार यही विचार करने लगे।।९-१७।।

एवं चिन्तयतां तेषांवागुवाचाऽशरीरिणी। आमर्दकी नगोह्येष प्रवरो वैष्णवो यतः॥१८॥
अस्यवै स्मरणादेव लभेद्गोदानजम्फलम्। दर्शनाद्द्विगुणं पुण्यं त्रिगुणं भक्षणात्तथा॥१९॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सेव्या आमर्दकी सदा। सर्वपापहराप्रोक्ता वैष्णवीपापनाशिनी॥२०॥
तस्या मूलेस्थितोविष्णुस्तदूर्ध्वंचपितामहः। स्कन्धेचभगवान्रुद्रःसंस्थितःपरमेश्वरः॥२१॥
शाखासु सवितारश्च प्रशाखासुच देवताः। पर्णेषु देवताः सन्ति पुष्पेषु मरुतस्तथा॥२२॥
प्रजानां पतयः सर्वे फलेष्वेवं व्यवस्थिताः। सर्वदेवमयी ह्येषा धात्रीवै कथितामया॥२३॥
अतः सा पूजनीयाच सर्वकामार्थसिद्धये। एकदा नारदोयोगी ब्रह्मणः पुरतः स्थितः।
नमस्कृत्वा जगन्नाथं पप्रच्छाऽतीवविस्मितः॥२४॥

देवगण इसी प्रकार विचार कर ही रहे थे कि तभी एक आकाशवाणी सुनाई पड़ी "यह आमलकी वृक्ष है। यह वैष्णव वृक्ष है। अतः तरु समूह में सर्वश्रेष्ठ है। इसके स्मरण मात्र से गोदान जनित फल लाभ होता है। दर्शन से द्विगुणित तथा भक्षण से त्रिगुणित फल मिलता है। यह धात्री वैष्णवी, सर्वपापहारिणी है। अतः तुम लोग सर्वप्रयत्नपूर्वक इस धात्री वृक्ष की सतत् सेवा करो। इसके भूत में विष्णु, उससे ऊर्ध्व में पितामह ब्रह्मा तथा स्कन्ध में परमेश्वर रुद्रदेव संस्थित हैं। इसकी शाखाओं में द्वादश सूर्य, प्रशाखाओं तथा पत्तों में अन्य देवता, पुष्प में मरुद्गण और फलों में दक्ष आदि प्रजापति स्थित हैं। मैं कहता हूं कि यह धात्री सर्वदेवमयी है। अतः समस्त अर्थकाम सिद्धि हेतु यह सदा सेवनीय है। एक बार देवर्षि नारद ने जगन्नाथ ब्रह्मा के पास स्थित होकर प्रणाम किया तथा विस्मय के साथ यह प्रश्न पूछा।।१८-२४।।

श्रीनारद उवाच

यथा प्रियं सुतुलसीकाननं सर्वदा हरेः। तथा धात्रीवनंमासे कार्त्तिके श्रीहरिप्रियम्॥२५॥

नारद कहते हैं—जैसे तुलसी कानन सतत् विष्णुप्रिय है, उसी प्रकार से कार्त्तिक मास में क्या धात्री भी विष्णुप्रिय है? इस विषय के प्रति मेरे मन में तर्क उपस्थित हो रहा है!।।२५।।

ब्रह्मोवाच

धात्रीवनेहरेःपूजाधात्रीछायासुभोजनम्। कार्त्तिकेमासि यःकुर्यात्तस्यपापंविनश्यति॥२६॥

तीर्थानि मुनयो देवाः यज्ञाः सर्वेऽपि कार्त्तिके।
नित्यं धात्रीं समाश्रित्य तिष्ठन्त्यर्के तुलास्थिते॥२७॥
यत्किञ्चित्कुरुते पुण्यं धात्रीछायासु मानवः।
तत्कोटिगुणितं भूयान्नाऽत्रकार्या विचारणा॥२८॥
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्॥२९॥

अयोध्यानगरेकश्चिद्वैश्यश्चाऽऽसीद्द्विजोत्तम!। पुत्रदारविहीनश्चदैवाद्दारिद्र्यपीडितः॥३०॥
भिक्षया चोदराग्निं स शमयामास नारद!। कदाचिद्वणिजोवैश्योययाचेक्षुत्प्रपीडितः॥३१॥
भिक्षाप्तचणकान्गृह्य धात्रीछायामगात्किल। तत्रतान्भक्षयामास कार्त्तिकेमासि नारद॥३२॥
केचिदुर्वरितास्तेषु चणकास्तत्र नारद!। वैश्येन तेन दत्ताहि क्षुत्क्षामाय द्विजातये॥३३॥
तेन पुण्यप्रभावेणराजाऽऽसीद्धनिकःक्षितौ। तस्माद्दानंप्रकर्तव्यं कार्त्तिकेमासिसर्वदा॥३४॥
धात्रीवने मुनिश्रेष्ठ! सर्वकामार्थसिद्धये। धात्रीछायांसमाश्रित्यकार्त्तिकेचहरेःकथाम्।
यः श्रृणोति स पापेभ्यो मुच्यते द्विजसूनुवत्॥३५॥

ब्रह्मा कहते हैं—जो कार्त्तिक मास में धात्री कानन में हरिपूजन करते हैं तथा धात्री की छाया में भोजन करते हैं, उनका पापनाश हो जाता है। कार्त्तिक मास में सूर्य तुलाराशिस्थ होते हैं। तब समस्त तीर्थ, मुनिगण, देवता तथा सभी यज्ञ नित्य धात्री का आश्रय लेकर अवस्थान करते हैं। अतएव धात्री छाया में स्थित होकर मनुष्य जो कुछ पुण्य कार्य करता है, वह कोटिगुणित होता है। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। हे द्विजोत्तम! इस विषय में विद्वान् लोग एक प्राचीन इतिहास का वर्णन उदाहरण के लिये देते हैं कि अयोध्या में एक वैश्य निवास करता था। यह वैश्य एक समय दैववशात् पुत्र-पुत्री विहीन होकर दरिद्रता के कारण अत्यन्त पीड़ित था। हे नारद! वह वैश्य भिक्षान्न द्वारा उदर की अग्नि को शान्त करने लगा। तदनन्तर एक बार वह क्षुधा से कातर वैश्य एक व्यक्ति से जो वणिक था, कुछ चना प्राप्त करके धात्री वृक्ष की छाया में बैठकर खाने के विचार से गया। हे नारद! उस समय कार्त्तिक मास था। तभी जब वैश्य कुछ चना निकाल कर उसे खाने के लिये प्रवृत्त हुआ, तभी दैवात् वहां एक भूखा ब्राह्मण आ पहुंचा! वैश्य ने उस क्षुधित ब्राह्मण को अपने द्वारा रखा गया समस्त चना दे दिया। हे नारद! उस चना दान के पुण्य प्रभाव से वह वैश्य पृथिवी का राजा हो गया। हे मुनिश्रेष्ठ! समस्त अर्थ तथा कामसिद्धि हेतु कार्त्तिक मास में धात्रीवृक्ष के नीच सतत् दान करना चाहिये। जो

मानव कार्त्तिक मास में धात्री की छाया में बैठकर हरिकथा सुनता है, वह द्विजपुत्र के समान समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।।२६-३५।।

नारद उवाच

कोऽभूद्द्विजसुतो ब्रह्मन्किम्पापं कृतवान्पुरा। तस्य जाताकथंमुक्तिरेतद्विस्तरतोवद।।३६।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे ब्रह्मन्! आपने द्विजपुत्र का उल्लेख किया है। यह कौन है? इसने पूर्वकाल में क्या पाप किया था, कैसे उसकी मुक्ति हो सकी? विस्तृत रूप से कहिये।।३६।।

ब्रह्मोवाच

पुरा द्विजवरश्चासीत्कावेर्या उत्तरे तटे।।३७।।
देवशर्मेति विख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः। तस्य पुत्रो दुराचारस्तमाह च पिता हितम्।।३८।।
इदानीं कार्त्तिको मासो वर्तते हरिवल्लभः। तत्र स्नानञ्च दानञ्च व्रतानि नियमान्कुरु।।३९।।
तुलसीपुष्पसहितां कुरु पूजां हरेःसुत!। दीपदानञ्च विविधं नमस्कारं प्रदक्षिणाम्।।४०।।
एवं पितुर्वचःश्रुत्वापुत्रःक्रोधसमन्वितः। पितरं प्राह दुष्टात्माचलदोष्ठो विनिन्दयन्।।४१।।

ब्रह्मा कहते हैं—पूर्वकाल में कावेरी नदी के उत्तर तट पर देवशर्मा नामक प्रख्यात वेद-वेदाङ्ग परायण द्विजप्रवर निवास करते थे। एक बार द्विजश्रेष्ठ देवशर्मा ने अपने दुराचारी पुत्र से यह हितवाक्य क़हा—"हे पुत्र! सम्प्रति हरिप्रिय कार्त्तिक मास आया है। इस समय स्नान-दान-व्रताचरण करो। हे पुत्र! इस पुण्य से कार्त्तिक मास में तुलसी तथा पुष्प से हरि पूजा, नाना दीपदान, नमस्कार तथा हरि की प्रदक्षिणा करो।" पिता का वाक्य सुनकर दुराचारी पुत्र के अधरोष्ठ क्रोध से कांपने लगे। दुष्टात्मा पुत्र ने पिता की निन्दा करके कहा।।३७-४१।।

पुत्र उवाच

नकरिष्याम्यहंतात! कार्त्तिके पुण्यसङ्ग्रहम्।
इति पुत्रवचः श्रुत्वासक्रोधः प्राहतंसुतम्।।४२।।
मूषको भवदुर्बुद्धे! वने वृक्षस्य कोटरे। इति शापभयाद्भीतो नत्वा पितरमब्रवीत्।।४३।।
दुर्योनेर्ममुक्तिः स्यात्कथंतद्वदमेगुरो!। इतिप्रसादितोविप्रः प्राहनिष्कृतिकारणम्।।४४।।
यदोर्ज्जव्रतजं पुण्यं शृणोषि हरिवल्लभम्। तदातेभवितामुक्तिस्तत्कथाश्रवणात्सुत!।।४५।।

पुत्र कहता है—हे तात! मैं कार्त्तिक मास में पुण्य संचय नहीं करूंगा।" पुत्र का कथन सुनकर पिता ने क्रोध में भरकर उससे कहा—"हे दुर्बुद्धि! मूषक बनकर तुम वनस्थ वृक्ष के कोटर में निवास करो।" जब पुत्र ने पिता का यह शाप सुना, तब वह भयभीत होकर उनको प्रणाम करके कहने लगा—"हे गुरो! इस निन्दित योनि से मेरा परित्राण किस प्रकार से होगा, वह कहिये।" पुत्र की प्रार्थना सुनकर पिता प्रसन्न हो गये तथा उसे मोक्ष के कारण का निर्देश देते हुये कहा—"हे पुत्र! जब तुम कार्त्तिक मास से सम्बन्धित पुण्य तथा हरिप्रिय व्रतकथा को सुनोगे, उस कथा श्रवण प्रभाव से तुम्हें मुक्ति प्राप्त होगी।।४२-४५।।

स पित्रा चैवमुक्तस्तु तत्क्षणान्मूषकोऽभवत्। बहुवर्षसहस्राणि गह्वरे विपिनेवसन्।।४६।।

एकदा कार्त्तिके मासि विश्वामित्रः सशिष्यकः।
स्नात्वा नद्यां हरिञ्चाऽर्च्य धात्रीछायां समाश्रितः॥४७॥
कथयामास माहात्म्यं शिष्येभ्योश्चोर्ज्जसम्भवम्।
तदा कश्चिद्दुराचारो व्याधोऽगान्मृगयां चरन्॥४८॥
दृष्ट्वा ऋषिगणान्हन्तुं कृतेच्छः प्राणिघातकः। तेषां दर्शनमात्रेण सुबुद्धिरभवत्तदा॥४९॥
अथोवाचद्विजान्नत्वाभ्रमद्भिःक्रियतेऽत्रकिम्।
तेनैवमुक्तोविप्रेन्द्रोविश्वामित्रस्तमब्रवीत्॥५०॥

पिता की बात समाप्त होते-होते वह पुत्र तत्क्षण मूषक हो गया तथा वह हजारों वर्ष पर्यन्त वनस्थ वृक्ष के कोटर में निवास करने लगा। तदनन्तर एक बार कार्त्तिक मास में शिष्यों के साथ महर्षि विश्वामित्र कावेरी नदी में स्नान तथा हरिपूजन के पश्चात् धात्री वृक्ष की छाया में बैठ कर शिष्यों से कार्त्तिक मास माहात्म्य कथा कहने लगे। तभी वहां एक प्राणीघातक व्याध मृगयार्थ आया तथा ऋषिगण को देखकर उनका वध करने हेतु विचार करने लगा। लेकिन उनको देखते ही व्याध में सुबुद्धि उत्पन्न हो गयी। वह ऋषिगण के समीप आया तथा उनको प्रणाम करके पूछने लगा—"आप लोग यहां क्या कर रहे हैं?" व्याध के द्वारा यह पूछे जाने पर विप्रेन्द्र विश्वामित्र उससे कहने लगे।।४६-५०।।

विश्वामित्र उवाच

सर्वेषामेव मासानां कार्त्तिकः श्रेष्ठ उच्यते। तस्मिन्यत्क्रियतेकर्म वर्धते वटबीजवत्॥५१॥
कार्त्तिके मासि यः कुयात्स्नानंदानञ्चपूजनम्।
विप्राणाम्भोजनञ्चैवतदक्षय्यफलंभवेत्॥५२॥
व्याधप्रयुक्तमाकर्ण्य धर्मञ्च ऋषिणा द्विजः। मौषकंदेहमुत्सृज्यदिव्यदेहोऽभवत्तदा॥५३॥

विश्वामित्र कहते हैं—"द्वादश मास समूह में कार्त्तिक मास श्रेष्ठ है। इस मास में जो कुछ भी किया जाता है, वह सब वटवृक्षवत् वर्द्धित होने लगता है। कार्त्तिक मास में जो मानव स्नान-दान-पूजा-ब्राह्मण भोजन आदि पुण्य करता है, वह उसके लिये अक्षयफल प्रदाता हो जाता है।" व्याध के द्वारा पूछे जाने पर विश्वामित्र ने जो सब धर्मकथा कही थी मूषिक देहधारी ब्राह्मणपुत्र ने वह सब वृक्ष कोटर में बैठे हुये सुना। यह सुनते ही उसने मूषक देह त्याग दिया तथा दिव्य देहधारी हो गया।।५१-५३।।

विश्वामित्रंप्रणम्याऽथस्ववृत्तान्तंनिवेद्यच। अनुज्ञातोऽथऋषिणाविमानस्थोदिवंययौ॥५४॥
विस्मितो गाधिपुत्रस्तु व्याधश्चैव विशेषतः।
व्याधोऽप्यूर्जव्रतं कृत्वा जगाम हरिमन्दिरम्॥५५॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्त्तिकेकेशवाऽग्रतः। धात्रीछायांसमाश्रित्यकथाश्रवणमाचरेत्॥५६॥
मूषकोऽपि च दुर्योनेर्मुक्तऊर्जकथाश्रुतेः। शृणुयाच्छ्रावयेद्यो वामुक्तिभागीन संशयः।
धात्रीछायां समाश्रित्य वनभोजनमाचरेत्॥५७॥

आदौकृत्वातथास्नानमुदके वनसंस्थिते। कृत्वाकर्माणि नित्यानि माधवं पूजयेत्ततः॥५८॥
धात्रीछायां समाश्रित्य हरी भक्तिसमन्वितः।
शृणुयाच्च कथां दिव्यां मासमाहात्म्यशंसनीम्॥५९॥
ततस्तु ब्राह्मणान्भक्त्याभोजयेद्ब्रह्मवित्तमान्। ततोभुञ्जीतविप्रेन्द्रस्वयंहरिमनुस्मरन्॥६०॥

उस ब्राह्मणपुत्र ने ऋषि विश्वामित्र को प्रणाम करके उनसे अपना वृत्तान्त कहा। ऋषि से आज्ञा लेकर वह विमानारूढ़ होकर स्वर्ग चला गया। गाधिनन्दन विश्वामित्र यह घटना देखकर विस्मित हो गये। विशेष रूप से व्याध तो अत्यन्त विस्मयापन्न हो गया। तदनन्तर व्याध भी कार्त्तिक व्रत सम्पन्न करके विष्णुलोक चला गया। हे नारद! सर्वप्रयत्न से कार्त्तिक मास में आंवला वृक्ष की छाया में आश्रय लेकर केशव के समक्ष वन भोजन करें। हे विप्रेन्द्र! पहले वन के पास जल से स्नान तथा नित्यकर्मादि सम्पन्न करके धातृवृक्ष के निकट जाये तथा हरिभक्तियुक्त होकर माधव पूजन करें। तत्पश्चात् कार्त्तिक मास माहात्म्य सूचक दिव्य व्रतकथा सुनें। तदनन्तर भक्ति के साथ ब्रह्मवित्तम ब्राह्मणों को भोजन कराकर हरि-स्मरण करते-करते स्वयं भी भोजन ग्रहण करना चाहिये।।५४-६०।।

एवं कृतं व्रते विप्र कार्त्तिके हरिवल्लभे। यत्पापं नश्यतं पुत्र! सावधानमनाः शृणु॥६१॥
हरेर्नार्पितभोगाच्च भोजने सूर्यदर्शनात्। रजस्वलावाक्छ्रवणात्पापाद्भोजनके तथा॥६२॥
भोजनावसरे चान्यस्पर्शदोषस्तु यद्भवेत्। निषिद्धभोजनात्तस्माद्भोजनेचाऽन्नदूषणात्॥६३॥
शुद्धस्यापि तथा त्यागात्पुण्यकालेहरिप्रिये। एतैर्यत्साधितंपापंतत्सर्वंनश्यतिध्रुवम्॥६४॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धात्र्यां भोजनमाचरेत्॥६५॥
कार्त्तिके मासि वै विप्रो धात्रीमालां तु यो बहेत्।
तथैव तुलसीमालां तस्य पुण्यमनन्तकम्॥६६॥

हे विप्र! इस प्रकार हरिप्रिय कार्त्तिक व्रत सम्पन्न करने वाले व्यक्ति के पाप दूरीभूत हो जाते हैं। हे पुत्र! तुम सावधानी से सुनो! हरि को निवेदित किये बिना भोजन, सूर्योदय काल में भक्षण, रजस्वला से वार्त्ता, रजस्वला का अन्न भोजन, निषिद्ध अन्न भक्षण, दूषित अन्न भक्षण तथा हरप्रिय पुण्य शुद्धकाल का त्याग—यह सब करने से जो पाप संचित होता है, एकमात्र कार्त्तिक व्रताचरण से वह समस्त पाप दूर हो जाता है। अतः कार्त्तिक मास में सर्वप्रयत्न से आंवला के वृक्ष के नीचे भोजन करें। कार्त्तिक में जो द्विज तुलसीमाला अथवा धात्रीमाला पहनता है, उसका पुण्य अनन्त है।।६१-६६।।

धात्रीछायां समाश्रित्यदीपमालार्पणं नरः। करिष्यति विशेषेणतस्यपुण्यमनन्तकम्॥६७॥
राधादामोदरौ पूज्यौ तुलस्यधो विशेषतः। तुलस्यभावे कर्तव्यापूजाधात्रीतलेशुभा॥६८॥
धात्रीछायातले येन सकृद्भुक्तं तु कार्त्तिके। दम्पत्योर्भोजनं दत्तमनदोषात्प्रमुच्यते॥६९॥
सम्पूर्णेकार्त्तिकेयस्तुसम्पूज्यामलकींशुभाम्। राधादामोदरप्रीत्यैभोजयित्वाच दम्पती॥७०॥
पश्चात्स्वयं तु भुञ्जीत न श्रीस्तस्य क्षयं व्रजेत्॥७०॥

यः कश्चिद्वैष्णवो लोकेधत्तेधात्रीफलं मुने!। प्रियोभवतिदेवानांमनुष्यणांचकाकथा।।७१।।
धात्रीफलविलिप्ताङ्गो धात्रीफलसमन्वितः। धात्रीफलकृताहारो नरोनारायणोभवेत्।।७२।।
धात्रीफलानि यो नित्यं वहते करसम्पुटे। तस्यनारायणो देवो वरमिष्टं प्रयच्छति।।७३।।

जो मानव धात्री की छाया में आश्रय लेता है, विशेषतः वहां दीपमाला अर्पित करता है, उसके पुण्य की सीमा नहीं है। कार्त्तिक मास में तुलसी के नीचे विशेषतः राधा-दामोदर का पूजन करें। तुलसी का अभाव होने पर धात्री वृक्ष के नीचे ही पूजा करें। कार्त्तिक मास में जो कोई धात्री वृक्षतल में मात्र एक बार भी भोजन करते हैं, उसे ब्राह्मणदम्पत्ति को भोजन कराने का फललाभ होता है। जो सम्पूर्ण कार्त्तिक मास में सुशोभन आमलकी वृक्ष की पूजा करके राधा-दामोदर की प्रीति हेतु ब्राह्मण दम्पत्ति को भोजन कराने के उपरान्त स्वयं भोजन करते हैं, उनका कदापि लक्ष्मीक्षय नहीं होता। हे मुनिवर! (पृथ्वी) भूमितल में जो कोई वैष्णव आमलकी फल धारण करते हैं, वे देवगण को भी प्रिय हो जाते हैं। मनुष्यों को प्रिय होने की तो बात ही क्या? धात्रीफल का अंग में लेपन, अंगों पर धारण, धात्रीफल का आहार करने वाला व्यक्ति नारायण के अनुरूप हो जाता है। जो कोई धात्रीफल को करपुट में धारण करते हैं, नारायण उसे इच्छित वर प्रदान करते हैं।।६७-७३।।

श्रीकामः सर्वदा स्नानं कुर्यादामलकैर्नरः। तुष्यत्यामलकैर्विष्णुरेकादश्यां विशेषतः।।७४।।
नवम्यां दर्शेसप्तम्यांसङ्क्रान्तौ रविवासरे। चन्द्रसूर्योपरागे चस्नानमामलकैस्त्यजेत्।।७५।।
धात्रीछायां समाश्रित्य कुर्व्यात्पिण्डं तु यो नरः।
प्रयान्ति पितरो मुक्तिं प्रसादान्माधवस्य तु।।७६।।
मूर्ध्निपाणौमुखेचैववाह्वोःकण्ठेतुयोनरः। धत्ते धात्रीफलं वत्स धात्रीफलविभूषितः।।७७।।
यावल्लुठति कण्ठस्था धात्रीमालानरस्य हि। तावत्तस्यशरीरेतुप्रीत्यालुठतिकेशवः।।७८।।

सम्पत्ति की कामना करने वाला व्यक्ति हरि का संतोष साधन करे तथा नवमी, अमावस्या, सप्तमी, संक्रान्ति, रविवार तथा चन्द्रसूर्य के उपराग काल में आंवले का वर्जन करना चाहिये। जो धात्रीवृक्ष के नीचे पिण्डदान करते हैं, माधव की कृपा से उसके पितर मुक्त हो जाते हैं। हे वत्स! जो मस्तक, करद्वय, मुख, बाहु-युगल तथा कण्ठ में आमलकी धारण करते हैं, उस मालाधारी व्यक्ति के कण्ठ की आमलकी माला शरीर में जहां-जहां लुण्ठित होती है, केशव उस व्यक्ति के प्रति प्रसन्न होकर उसके शरीर में वहीं-वहीं लोटते हैं।।७४-७८।।

धात्रीफलंचतुलसीमृत्तिकाद्वारकोद्भवा। सफलं जीवितं तस्य त्रितयं यस्यवेश्मनि।।७९।।
यावद्दिनानि वहते धात्रीमालां कलौ नरः। तावद्युगसहस्राणि वैकुण्ठे वसतिर्भवेत्।।८०।।
मालायुग्मं वहेद्यस्तु धात्रीतुलसिसम्भवम्। यो नरःकण्ठदेशेतुकल्पकोटिंदिवंवसेत्।।८१।।
धात्रीछायां गतोयस्तु द्वादश्यांपूजयेद्धरिम्। तत्रैवभोजनंयस्तुब्राह्मणानांचकारयेत्।।८२।।
स्वयं च तत्र भुङ्क्ते यः सूपभक्षादिकं तथा। न तस्य पुनरावृत्तिःकल्पकोटिशतैरपि।।८३।।
तुलस्याश्चैव धात्र्याश्च फलैः पत्रैर्हरिं यजेत्।।८४।।
तुलसी धात्रीयुक्ताहिसिक्तेसतिचकार्त्तिके। विलयंयान्तिपापानिब्रह्महत्यादिकानिच।।८५।।

धर्मदत्तो द्विजः पूर्वं यथा मुक्तिमवाप ह॥८६॥

धात्रीफल, तुलसी, द्वारका की मिट्टी—ये तीनों मुक्तिप्रदा हैं। ये तीनों जिसके घर में विद्यमान हैं, उसी मानव का जीवन सफल है। कलिकाल में मनुष्य जितने दिनों तक आमलकी माला धारण किये रहते हैं, उतने सहस्रयुग पर्यन्त उनको वैकुण्ठ में निवास मिलता है। जो व्यक्ति कण्ठ में धात्री तथा तुलसी की माला (ये दोनों) धारण करता है, वह करोड़ों कल्पपर्यन्त स्वर्ग में निवास करता है। जो द्वादशी के दिन आंवले के वृक्ष के नीचे हरिपूजन करते हैं, सूप आदि भक्ष्य द्रव्यों से ब्राह्मणों को भोजन कराकर तब स्वयं भोजन ग्रहण करते हैं, उनका पुनर्जन्म शतकोटि कल्पपर्यन्त भी नहीं होता। जो कार्त्तिक मास में तुलसी तथा आंवले द्वारा हरिपूजन तथा तुलसी एवं आमलकी (आंवला) के वृक्ष का अभिषेक करते हैं, पूर्वकाल में धर्मदत्त ब्राह्मण की ही तरह उनका ब्रह्महत्या प्रभृति पाप नष्ट हो जाता है।।७९-८६।।

नारद उवाच

कार्त्तिके मासि सा सेव्या पूजनाया सदा नरैः।
चातुर्मास्ये न सेव्या सा इत्युक्तं भवता पुरा।
तत्स्मात्सर्वमशेषेण कथयस्व ममाऽग्रतः॥८७॥

देवर्षि नारद कहते हैं—आपने पहले कहा था कि कार्त्तिक में धात्री सदा सेव्य है तथा पूज्य है। चातुर्मास्य में सेव्या अथवा पूज्या नहीं है। इसलिये यह सब पूर्णता कहने की कृपा करिये।।८७।।

ब्रह्मोवाच

कार्त्तिकेमासिविप्रर्षे! शुक्लायादशमीशुभा। तद्दिनाऽऽरभ्यसासेव्यादैवेपित्र्येचकर्मणि।
दशम्यारभ्य तत्पत्रैः फलकैर्मधुसूदनम्॥८८॥
पूजयन्तिनरा ये वै ते वै वैकुण्ठगामिनः। समाप्ते कार्त्तिकव्रते वनभोजनमाचरेत्॥८९॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे विप्रर्षि! कार्तिकमासीय शुभ शुक्ला दशमी से प्रारम्भ करके दैव तथा पितृकार्य में इस दशमी तिथि से ही धात्री के पत्ते तथा फल से मधुसूदन की पूजा करें। जो मानव एवंविध पूजन करते हैं, उनको वैकुण्ठवास मिलता है।

कार्त्तिक व्रत सम्पन्न हो जाने पर वन भोजन करें।।८८-८९।।

दशम्यांवाऽथद्वाद्श्यांपौर्णमास्यामथाऽपिवा। पञ्चम्यांवामहाभागवनभोजनमाचरेत्॥९०॥
सर्वोपस्करसंयुक्तो वृद्धबालैश्च संयुतः। वनं प्रवेशयेद्धीमान्धात्रीवृक्षैः सुशोभितम्॥९१॥
चूतैर्बकैस्तथाऽश्वत्थैः पिचुमन्दैः कदम्बकैः।
न्यग्रोधतिन्तिणीवृक्षैः समन्तात्परिशोभितम्॥९२॥
तत्रगतमहाप्राज्ञ पुण्याहं कारयेत्पुरा। वास्तुपीठं तथा पूज्यं धात्रीमूलेतुकारयेत्॥९३॥
वेदिकां चतुरस्राञ्च हस्तमात्रायतां शुभाम्। तथोपवेदिकां कृत्वा वेदिकाग्रेमहामते॥९४॥
उपवेशाय देवस्यह्यलं कार्यन्तु धातुभिः। वेदिकापश्चिमे भागे कारयेत्कुण्डमण्डपम्॥९५॥

मेखलात्रयसंयुक्तं पिप्पलच्छदसंयुतम्। हस्तमात्रायतं सौम्य एवं कुण्डंतु कारयेत्॥९६॥
पश्चात्स्नात्वाततोजप्त्वादेवपूजांसमाचरेत्। पश्चादग्निंसमाधायहोमंकुर्याद्यथाविधि॥९७॥
पायसाऽऽज्यगुडसूपपालाशसमिधा तथा। ग्रहाणाम्वास्तुदेवेभ्यश्चरुं कृत्वाप्रयत्नतः॥९८॥

हे महाभाग! यह वनभोजन भी दशमी, द्वादशी, पौर्णमासी अथवा पंचमी को करें। बुद्धिमान व्यक्ति बालकों तथा वृद्धों के साथ सम्मिलित होकर विविध उपचार द्वारा आम्र, बक, अश्वत्थ, पिचुमंद, कदम्ब, न्यग्रोध तथा तिन्तिडी वृक्ष से घिरे शोभायमान आमलकी वन में प्रवेश करें। हे महाप्रज्ञ! आमलकी वन में प्रवेश करके पहले पुण्याह वाचन करें। तदनन्तर धात्रीमूल में वास्तु पीठ की पूजा करें। हे महामति! तदनन्तर एक हाथ की चौकोर उत्तम वेदी बनाकर उसके समक्ष उपवेदी बनायें। देवता के उपवेशनार्थ उसे नाना विचित्र धातु से विभूषित करें। तदनन्तर वेदी के पश्चिम भाग में तीन मेखलाओं से युक्त पीपल के पत्ते से युक्त कुण्डमण्डप बनायें। हे सौम्य! कुण्ड एक हाथ का आयताकार हो। तदनन्तर स्नान एवं जप सम्पन्न करके के पश्चात् देवपूजा करनी चाहिये। तदनन्तर अग्नि लाकर पायस, घृत, गुड़, मालपूआ तथा पलाश समिध् से यथाविधान होम करें। तब प्रयत्नपूर्वक वास्तु तथा नवग्रहों को चरु प्रदान करें।।९०-९८।।

धात्रीशान्तिस्तथाकान्तिर्मायाप्रकृतिरेवच। विष्णुपत्नीमहालक्ष्मीरमामाकमलातथा॥९९॥
इन्दिरालोकमाताचकल्याणी कमलातथा। सावित्रीचजगद्धात्रीगायत्रीसुधृतिस्तथा॥१००॥
अन्तज्ञा विश्वरूपाच सुकृपा ह्यब्धिसम्भवा। प्रधानदेवताभिस्तु रक्षाहोमं समारभेत्॥१०१॥
संसृष्टेति च मन्त्रेण ऋषभं मेति मन्त्रतः। अपूपं गुडसूपाभ्यां संयुतं जुहुयाद्धविः॥१०२॥
अष्टोत्तरशतं हुत्वामूलमन्त्रेणपायसम्। ततो ग्रहादिदेवांस्तु यथासङ्ख्येन होमयेत्॥१०३॥
धात्रीहोमे महाप्राज्ञ रक्षाहोमेतु पायसम्। ततःस्विष्टकृतं हुत्वा बलिदानं समाचरेत्॥१०४॥
इन्द्रादिलोकपालांश्च रक्षा पूज्याप्रयत्नतः। धात्रीवृक्षस्य सर्वत्र वेदिका संयुतस्यच॥१०५॥
सूपेन गुडमिश्रेणबलिं पश्चान्निवेदयेत्। देवि धात्रि! नमस्तुभ्यं गृहाण बलिमुत्तमम्॥१०६॥
मिश्रितं गुडसूपाभ्यां सर्वमङ्गलदायिनि!। पुत्रान्देहि महाप्राज्ञान्यशोदेहि शुभप्रदम्॥१०७॥

प्रज्ञां मेधाञ्च सौभाग्यं विष्णुभक्तिञ्च देहि मे।
नीरोगं कुरु मे नित्यं निष्पापं कुरु सर्वदा॥१०८॥

वर्चस्कंकुरु मां देवि! धनवन्तंतथकुरु। इतिताम्प्रार्थयेद्देवींप्रादक्षिण्याद्बलिन्यसेत्॥१०९॥

बलिप्रदानकालेतुयेकुर्वन्तिप्रदक्षिणिम्।
ते यान्तिविष्णुसालोक्यं पितृभिःसार्द्धमेवच॥११०॥
ततः पूर्णाहुतिं कृत्वा होमशेषं समापयेत्॥१११॥

तदनन्तर धात्री, शान्ति, कान्ति, माया, प्रकृति, विष्णुपत्नी महालक्ष्मी, रमा, मा, इन्दिरा, लोकमाता, कल्याणी, कमला, सावित्री, जगद्धात्री, गायत्री, सुधृति, अन्तज्ञा, विश्वरूपा, सुकृपा, अद्धिसंभवा, इन प्रधान देवताओं को आहुति देनी चाहिये। तदनन्तर रक्षाहोम करें। तदनन्तर "संसृष्टा" इत्यादि मन्त्र एवं 'ऋषभं' इत्यादि

मन्त्र से गुड़ तथा सूपयुक्त अपूप से होम करें। तदनन्तर १०८ घृताहुति देकर मूलमन्त्र से पायस होम करें। तत्पश्चात् पायस द्वारा यथासंख्य नवग्रह एवं देवतागण का होम करना होगा। अर्थात् धात्रीहोम में नवग्रह हेतु तथा रक्षा होम में देवगण हेतु होम करें।

तदनन्तर स्विष्टिकृत होम करके बलि देनी चाहिये। धात्री वृक्ष के वेदिकायुक्त स्थान में सर्वत्र इन्द्रादि लोकपालों का पूजन करके प्रयत्नतः रक्षा पूजन करें। तदनन्तर गुड़मिश्रित सूप की बलि करके ''देवी धात्री आपको प्रणाम है। उत्तम बलि ग्रहण करें। जो गुड़-सूप मिश्रित है। हे सर्वमंगलप्रदात्री! महाप्राज्ञ, पुत्र, यश तथा शुभ प्रदान करें। आप प्रज्ञा, मेधा, सौभाग्य, विष्णुभक्ति प्रदान करें। हे देवी! मुझे सदा निरोग तथा निष्पाप करें। मुझे वर्चस्वयुक्त तथा धनी बनायें।'' यह प्रार्थना करके प्रदक्षिणा क्रम से बलि वस्तु प्रदान करना चाहिये। जो बलि प्रदान काल में देवी की प्रदक्षिणा करते हैं, वे अपने पितरों के साथ विष्णु सालोक्य लाभ करते हैं। तदनन्तर पूर्णाहुति प्रदान करके होम समाप्त करें।।९९-१११।।

धात्रीवृक्षस्य मूलस्थं मन्दस्मितरमापतिम्।
ये यान्ति विष्णुसायुज्यं ये पश्यन्तीह चक्षुषा।।११२।।
वैश्वदेवं ततः कृत्वा पूजयेद्वनदेवताः। गन्धाक्षतांस्ततो दत्त्वा विप्रेभ्यः पद्मसम्भव।।११३।।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्स्वयंभुञ्जीतबन्धुभिः ।
गृहम्प्रवेशयेत्पश्चाद्वृद्धान्बालादिकैः सह।।११४।।
ब्रह्मचारी भवेद्रात्रौ क्षितिशायी भवेत्ततः।
ग्रामस्थैश्च मिलित्वा च स्वयं वा कारयेद्बुधः।।११५।।
सर्वपापविमुक्त्यर्थं वनभोजनमुत्तमम्। कृत्वैवं सकलं कर्म कृष्णाय च समर्पयेत्।।११६।।
अश्वमेधसहस्रस्य राजसूयशंतस्य च। यत्फलं समवाप्नोति तत्फलम्वनभोजने।।११७।।

जो धात्रीवृक्ष के मूलस्थ तनिक हास्ययुक्त मुख वाले देव रमापति का अवलोकन करते हैं, उनको विष्णु का सायुज्य लाभ होता है। तदनन्तर वैश्वदेव क्रियानुष्ठान, वनदेवता पूजा करें तथा विप्रगण को चन्दन प्रदान करें। तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजन करायें और तब बन्धुओं के साथ स्वयं भोजन करके बालकों के साथ वृद्धजन को घर भेजे तथा स्वयं ब्रह्मचर्य पालन करके रात्रि में पृथिवी पर शयन करें। तत्पश्चात् पण्डित व्यक्ति ग्रामवासियों के साथ अथवा एकाकी ही पापनाशार्थ वन भोजन करे। यह समस्त कर्माचरण करने के अनन्तर श्रीकृष्ण को फल अर्पित कर देना चाहिये। वनभोजन से मानव सहस्र अश्वमेध तथा शत बाजपेय यज्ञफल लाभ करता है।।११२-११७।।

अतोधात्रीमहाभागपवित्रापापनाशनी। धात्रीचैवनृणां धात्री धात्रीवत्कुरुतेक्रियाम्।।११८।।
ददात्यायुः पयःपानात्स्नानाद्वैधर्मसञ्चयम्। अलक्ष्मीनाशनंस्नानमात्रैर्निर्वाणमाप्नुयात्।
विघ्नानि नैव जायन्ते धात्रीस्नानेन वै नृणाम्।।११९।।
तस्मात्त्वं कुरु विप्रेन्द्र! धात्रीस्नानं हि यत्नतः। प्रयास्यसिहरेर्द्धामदेवत्वम्प्राप्यनारद।।१२०।।
यत्रयत्र मुनिश्रेष्ठ धात्रीस्नानंसमाचरेत्। तीर्थेवाऽपि गृहेवाऽपि तत्रतत्र हरिःस्थितः।।१२१।।

धात्रीस्नानेन विप्रर्षे! यस्यास्थीनिकलेवरे। प्रक्षाल्यन्ते मुनिश्रेष्ठनसगर्भगृहम्वसेत्॥१२२॥

धात्रीजलेन विप्रेन्द्र! येषां केशाश्चरञ्जिताः।
ते नराःकेशवंयान्तिनाशयित्वाकलेर्मलम्॥१२३॥

धात्रीफलं महापुण्यं स्नानं पुण्यतमंस्मृतम्। पुण्यात्पुण्यतरंवत्सभक्षणे मुनिसत्तम॥१२४॥

न गङ्गा न गया काशी न वेणी न च पुष्करम्।
एकैव हि यथा पुण्या धात्री माधववासरे॥१२५॥
धात्रीस्नानं हरेर्नाम तथैवैकादशी सुत!।
गयाश्राद्धं तथा वत्स समानि मुनयोविदुः॥१२६॥

हे महाभाग! इसीलिये धात्री को अत्यन्त पवित्र कहा गया। धात्रीवृक्ष मनुष्यों के लिये धात्री स्वरूप है। धात्री ही मानव की धात्री का ही कार्य करता है। (धात्री-पालन करने वाली दाई)। धात्री के जल से स्नान करने से धर्मसंचय तथा धात्रीजल पीने से आयु लाभ होता है। धात्रीदान अलक्ष्मी नाशक है। धात्री जल के स्नानमात्र से मानव के विघ्न दूरीभूत हो जाते हैं तथा निर्वाणमुक्ति लाभ होता है। हे विप्रेन्द्र! अब तुम यत्नतः धात्रीदान करो। हे नारद! ऐसा करने से तुम देवत्व लाभ करोगे तथा वैकुण्ठ प्राप्त करोगे। हे मुनिवर! चाहे तीर्थ में अथवा गृह में, जहां कहीं भी धात्री स्नान का आचरण किया जायेगा, वहीं श्रीहरि का अधिष्ठान होता है।हे विप्रर्षि! धात्री स्थान से जिसके कलेवर की अस्थियां प्रक्षालित हो गयी हैं, उसे आगे गर्भवास नहीं करना होगा। हे मुनिवर, विप्रेन्द्र! धात्रीजल से जिसके केश रंजित हैं, वे कलि का कल्मष नष्ट करके केशव की प्राप्ति करते हैं। एकमात्र धात्री फल ही महापवित्र है। तदनन्तर धात्रीस्नान और भी पवित्र है। हे वत्स! धात्री भक्षण पवित्र से भी पवित्र है। गंगा, गया, काशी, वेणी, पुष्कर इन सबके समान हरिवासर योग्य एक मात्र धात्री ही है। हे पुत्र! धात्री स्नान, हरिनाम, एकादशी तथा गयाश्राद्ध को मुनिगण ने समान माना है।।११८-१२६।।

संस्पृशन्यस्तु वै धात्रीमहन्यहनि मानवः।
मुच्यते पातकैः सर्वैर्मनोवाक्कायसम्भवैः॥१२७॥

धात्रीफलैरमावास्यासप्तमीनवमीषुच। रविवारे च सङ्क्रान्तौ न स्नायान्मुनिसत्तम्॥१२८॥

यस्मिन्गृहेमुनिवरधात्रीतिष्ठति सर्वदा। तस्मिन्गृहेनगच्छन्ति प्रेतकूष्माण्डराक्षसाः॥१२९॥

धात्रीफलकृतां मालां कण्ठस्थां यो वहेन्नहि।
स वैष्णवो न विज्ञेयो विष्णोर्भक्तिपरो यदि॥१३०॥
न त्याज्या तुलसीमाला धात्रीमाला विशेषतः।
तथा पद्माक्षमालाऽपि धर्मकामार्थमीप्सुभिः॥१३१॥

यावद्दिनानि वहते धात्रीमालां कलौनरः। तावद्युगसहस्राणि वैकुण्ठे वसतिर्भवेत्॥१३२॥

सर्वदेवमयी धात्री वासुदेवमनःप्रियाः। आरोपणीया सेव्या च पूजनीया सदानरैः॥१३३॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं धात्रीमाहात्म्यमुत्तमम्। श्रोतव्यञ्च सदा भक्तैश्चतुर्वर्गफलप्रदम्॥१३४॥

धात्रीछायां समाश्रित्य कार्त्तिकेऽन्नं भुनक्ति यः।
अन्नसंसर्गजम्पापमावर्षं तस्य नश्यति॥१३५॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादेधात्रीमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥
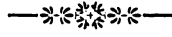
जो मानव नित्य धात्री स्पर्श करता है, वह कार्य, मन, वाक्य द्वारा कृत पापों से मुक्त हो जाता है। हे मुनिप्रवर! अमावस्या, सप्तमी, नवमी, रविवार तथा संक्रान्ति के दिन धात्री स्नान न करें। हे मुनिवर! जिसके गृह में सतत् धात्री को रखा जाता है, प्रेत-कूष्माण्ड-राक्षस वहां प्रवेश नहीं करते। जो मानव धात्रीफल की माला धारण नहीं करता वह विष्णुभक्त होकर भी वैष्णव नहीं है। तुलसी माला कभी न त्यागे। धात्रीमाला का भी त्याग न करें। धर्म-काम-अर्थ चाहने वाला कमल माला कभी न त्यागे। कलिकाल में लोग जब तक धात्रीमाला धारण करते हैं, उतने सहस्रयुग पर्यन्त वे वैकुण्ठ में वास करते हैं। यह सर्वदेवमयी, वासुदेव प्रिय है। अतः सतत् धात्री पूजा तथा सेवा करें। इसे धारण करें। मैंने तुमसे समस्त उत्तम रूप धात्री महिमा कहा। भक्तगण इसे सतत् सुनें। यह चतुर्वर्गफलप्रद है। जो मानव कार्तिक में धात्री छाया का आश्रय लेकर भोजन करता है, उसके एक वर्ष में किये अन्न संसर्गज दोषों का नाश हो जाता है।।१२७-१३५।।

।।द्वादश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

त्रयोदशोऽध्यायः

सत्यभामा का पूर्वजन्म प्रसंग, प्रयाग प्रशंसा, शंखासुर वृत्तान्त

सूत उवाच

श्रियः पतिमथामन्त्र्य गते देवर्षिसत्तमे। हर्षोफुल्लाऽऽनना सत्यावासुदेवमथाऽब्रवीत्॥१॥

सूत जी कहते हैं—तदनन्तर देवर्षि प्रवर नारद रमापति से वार्त्ता करके चले गये। तब हर्षोत्फुल्ल मुख वाली सत्यभामा वासुदेव से कहने लगीं।।१।।

सत्यभामोवाच

धन्याऽस्मिकृतकृत्याऽस्मिसफलंजीवितं मम। दानंव्रतंतपोवाऽपि किंनुपूर्वंकृतंमया॥२॥
येनाऽहं मर्त्यजादेवतवाङ्गार्द्धहराऽभवम्। भवान्तरे च किंशीलाकाचऽहंकस्यकन्यका।
तवाऽहं वल्लभा जाता तद्वदस्य ममाऽखिलम्॥३॥

सत्यभामा कहती हैं—मैं धन्य हूं। मैं कृतार्थ हूं। आज मेरा जीवन सफल हो गया। हे देव! मैंने ऐसा कौन-सा दान-व्रत-तप किया था जो मैं मानवी होकर भी आपकी अर्द्धाङ्गिनी हो गयी। जन्मान्तर में मैं किसकी कन्या थी तथा मेरा ऐसा कौन सा उत्तम चरित्र था जो मैं आपकी पत्नी हो गयी? यह सब कृपया कहिये।।२-३।।

श्रीकृष्ण उवाच

शृणुष्वैकमनाः कान्ते! यथा त्वं पूर्वजन्मनि॥४॥
पूण्यव्रतं कृतवतीतत्सर्वं कथयामि ते। आसीत्कृतयुगस्यान्ते मायापुर्यांद्विजोत्तमः॥५॥
आत्रेयो देवशर्मेति वेदवेदाङ्गपारगः। तस्यातिवयसश्चाऽऽसीन्नाम्ना गुणवतीसुता॥६॥
अपुत्रः स स्वशिष्याय चन्दनाम्ने ददौ सुताम्। तमेवपुत्रवन्मेने स च तंपितृवद्वशी॥७॥
तौ कदाचिद्वनं यातौ कुशेध्माहरणार्थिनौ। निहतौरक्षसातौ च कृतान्तसमरूपिणा॥८॥
स्वस्वपुण्यप्रभावेण विष्णुलोकंगताबुभौ। ततोगुणवतीश्रुत्वा रक्षसा निहतावुभौ॥९॥
पितृभर्तृजदुःखार्ता कारुण्यंपर्यदेवयत्। सा गृहोपस्करान्सर्वान्विक्रीयाशुचकर्मतत्॥१०॥
तयोश्चक्रेयथाशक्ति पारलौकींततःक्रियाम्। तस्मिन्नेव पुरे चक्रे वासंसामृतजीवनी॥११॥
व्रतद्वयंतया सम्यगाजन्ममरणात्कृतम्। एकादशीव्रतं सम्यक्सेवनं कार्त्तिकस्यच॥१२॥
इत्थं गुणवती सम्यक्प्रत्यब्दं व्रतिनी ह्यभूत्।
कदाचित्सरुजा साऽथ कृशाङ्गी ज्वरपीडिता॥१३॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे दयिते! तुमने पूर्वजन्म में जो पुण्यव्रत किया था, वह सब तुमसे कहता हूं। एकाग्र होकर सुनो। सत्ययुग के अवसान काल में मायापुरी में एक श्रेष्ठ द्विज निवास करते थे। उनका नाम था देवशर्मा। ये अत्रिगोत्रोत्पन्न थे। वृद्धदेव शर्मा को पुत्र सन्तान नहीं था। उसे गुणवती नामक एक कन्या मात्र थी। देवशर्मा ने अपने शिष्य चन्द्र को अपनी कन्या गुणवती अर्पित किया। वे चन्द्र को पुत्र के समान मानते थे। चन्द्र भी देवशर्मा को पितृवत् मानता था। एक बार चन्द्र तथा देवशर्मा कुश तथा काष्ठ लाने वन में गये। वहां वे दोनों यमरूपी राक्षस द्वारा मारे जाकर अपने-अपने पुण्य प्रभाव से विष्णुलोक चले गये। तब राक्षस के हाथों पिता तथा पति के निधन का समाचार सुनकर गुणवती अत्यन्त विलाप करने लगी। उसने घर के उपकरण आदि का विक्रय कर दिया। उस धन से गुणवती ने पिता तथा पति की श्राद्धादि पारलौकिक क्रिया का समापन करके जीवन्मुक्त के समान उसी पुर में ही निवास करने लगी। वह गुणवती जन्म से मरण पर्यन्त कार्त्तिक व्रत तथा एकदशी व्रत का सम्यक् आचरण करती रही थी। हे कान्ते! इस प्रकार प्रतिवर्ष सम्यक्तः व्रत करते रहते एक बार व्रतकाल में गुणवती ज्वर तथा रोग से आक्रान्त हो गयी। वह ज्वर पीड़ा से अत्यन्त कृश हो गयी।।४-१३।।

स्नातुं गङ्गां गताकान्तेकथंचिच्छनकैस्तदा। यावज्जलान्तरगताकम्पिताशीतपीडिता॥१४॥
तावत्साविह्वलाऽपश्यद्विमानं यतिमम्बरात्। अथसातद्विमानस्था वैकुण्ठभुवनंययौ॥१५॥
कार्त्तिकव्रतपुण्येन मत्सान्निध्यङ्गताभवत्। अथ ब्रह्मादिदेवानां यदा प्रार्थनया भुवम्॥१६॥

आगतोऽहंगणाः सर्वे यातास्तेऽपिमयासह। एते हि यादवाःसर्वे मद्गणाएवभामिनि॥१७॥

पिता ते देवशर्माऽभूत्सत्राजिदभिधो ह्ययम्।
यश्चन्द्रनामा सोऽक्रूरस्त्वं सा गुणवती शुभा॥१८॥

वह गंगा स्नानार्थ अतिकष्ट पूर्वक धीरे-धीरे जा रही थी। शीतपीड़िता गुणवती जब जल के निकट पहुंची तब वह कांपते-कांपते विह्वल हो गयी। तब उसने आकाश से आते दिव्य विमान को देखा। तदनन्तर गुणवती (मृत होकर) कार्तिक व्रत के पुण्य प्रभाव से उस विमान पर आरोहण करके वैकुण्ठ लोक चली गयी। तदनन्तर ब्रह्मादि देवगण की प्रार्थना से जब मैं पृथिवी पर (आविर्भूत) आया, तब मेरे सभी गण भी मेरे साथ आ गये थे। हे भामिनी! ये यादव ही मेरे गण हैं। तुम्हारे पिता देवशर्मा इस समय सत्राजित् रूप से आविर्भूत हुये। यह जो अक्रूर है, यही तुम्हारा पूर्वस्वामी चन्द्र है। तुम ही गुणवती हो।।१४-१८।।

कार्त्तिकव्रतपुण्येन बहुमत्प्रीतिदायिनी। मद्द्वारि यत्त्वयापूर्वं तुलसीवाटिका कृता॥१९॥
तस्मादयं कल्पवृक्षस्तवाङ्गणगतः शुभे!। आजन्ममरणात्पूर्वं यत्कृतंकार्त्तिकव्रतम्।
कदाचिदपि तेन त्वं मद्वियोगं न यास्यसि॥२०॥

तुमने पूर्वजन्म में महापुण्यप्रद कार्त्तिक व्रत करके मेरी अत्यन्त प्रसन्नता वर्द्धित किया था। तुमने मेरे मन्दिर के समक्ष तुलसीकानन स्थापित किया था। इसीलिये तुम अपने आंगन में कल्पवृक्ष देख रही हो। हे प्रिये! तुमने जन्म से मरण तक कार्त्तिक व्रत किया था। इसलिये तुम कदापि मुझसे अलग नहीं रहोगी।।१९-२०।।

सत्योवाच

मासानां तु कथं नाम स मासः कार्त्तिको वरः।
प्रियस्ते देवदेवेश! कारणं तत्र कथ्यताम्॥२१॥

सत्या कहती हैं—हे देवदेवेश! सभी मास में से यह कार्त्तिक क्यों श्रेष्ठ है, किसलिये कार्त्तिक मास आपको प्रिय है? इसका कारण कहिये।।२१।।

श्रीकृष्ण उवाच

साधु पृष्टं त्वया कान्ते शृणुष्वैकाग्रमानसा॥२२॥
पृथोर्वैन्यस्य! सम्वादं महर्षेर्नारदस्य च। एवमेव पुरापृष्टो नारदः पृथुनाऽब्रवीत्॥२३॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे दयिते! तुमने उत्तम प्रश्न किया है। अब एकाग्र होकर सुनो। देवर्षि नारद ने यह सब वेणनन्दन पृथुराज से कहा था। तुमने जैसा प्रश्न किया है, वही प्रश्न पूर्वकाल में देवर्षि नारद से पृथुराज ने किया था। पृथु का प्रश्न सुनकर नारद कहने लगे।।२२-२३।।

नारद उवाच

शङ्खनामाऽभवत्पूर्वमसुरः सागरात्मजः। इन्द्रादिलोकपालानाधिकाराञ्जहार ह॥२४॥
सुवर्णाद्रिगुहादुर्गसंस्थितास्त्रिदशादयः। तद्वीक्षयाम्बभूवुस्ते तदादैत्यो व्यचारयत्॥२५॥

हृताधिकारास्त्रिदशा मया यद्यपि निर्जिताः।
लक्ष्यन्ते बलयुक्तास्ते करणीयं मयाऽत्र किम्॥२६॥
ज्ञातं तत्तु मया देवा वेदमन्त्रबलान्विताः। तान्हरिष्ये ततः सर्वे वलहीना भवन्तिवैं॥२७॥
इति मत्वा ततो दैत्यो विष्णुमालक्ष्य निद्रितम्।
सत्यलोकाज्जहाराऽऽशु वेदानादिस्वयम्भुवः॥२८॥
नीतास्तु तेन ते वेदोस्तद्भयात्तेनिराक्रमन्। तोयानि विविशूर्यज्ञमन्त्रबीजसमन्विताः॥२९॥
तान्मार्गमाणःशङ्खोऽपिसमुद्रान्तर्गतोभ्रमन्। नददर्श तदादैत्यः क्वचिदेकत्रसंस्थितान्।
अथ देवैः स्तुतो विष्णुर्बोधितस्तानुवाचह॥३०॥

देवर्षि नारद कहते हैं—पूर्वकाल में सागर पुत्र शंखासुर ने इन्द्रादि लोकपालों के अधिकार का हरण किया था, तब देवगण ने स्वर्गपर्वत की दुर्गम गुहाओं में शरण लिया। दैत्य शंखासुर ने मन ही मन विचार किया कि यद्यपि मैंने देवगण का राज्य अधिकृत कर लिया है तथा सम्प्रति देवता मेरे द्वारा जीत लिये गये हैं, तथापि देवता तो बली जैसे परिलक्षित हो रहे हैं! अतः अब मेरा क्या कर्त्तव्य है? मैं सोचता हूं कि वेदमन्त्रों से देवगण बली हो रहे हैं। इसलिये वेदों का अपहरण करने से वे बलहीन हो जायेंगे। शंख दैत्य ने यह विचार करके देखा कि विष्णु निद्रित हैं। वेदहरण का यह उत्तम योग है। तब शंखदैत्य सत्यलोक गया तथा उसने ब्रह्मा के पास से वेद का हरण कर लिया। तब से यज्ञ, मन्त्र तथा बीज सम्पन्न वेद दैत्य के हाथों से निकलकर भीतावस्था में सागर जल में प्रविष्ट हो गये। असुर शंख भी वेदों के अन्वेषणार्थ सागर जल में प्रविष्ट हो गया तथा वे वेद नाना स्थानों में विक्षित हो गये थे। असुर शंख ने अनेक प्रकार से प्रयास करके भी वेदों का सन्धान नहीं पाया। उधर देवताओं द्वारा जगाये जाकर तथा स्तुत होकर विष्णु देवगण से कहने लगे।।२४-३०।।

विष्णुरुवाच

वरदोऽहं सुरगणा! गीतवाद्यादिमङ्गलैः॥३१॥
ऊर्जस्य शुक्लैकादश्यां भवद्भिः प्रतिबोधितः।
अतश्चैषा तिथिर्मान्या साऽतीव प्रीतिदा मम॥३२॥
वेदा शङ्खहृताःसर्वेतिष्ठन्त्युदकसंस्थिताः। तानानयाम्यहं देवा हत्वा सागरनन्दनम्॥३३॥

विष्णु कहते हैं—"हे देवताओं! तुम सबने कार्तिक मासीय शुक्ला एकादशी के दिन मंगलप्रद गीत वाद्यादि द्वारा मुझे प्रबोधित किया है। इसलिये यह तिथि मुझे अतीव प्रीतिप्रद तथा मान्य है। तुम सब वर मांगो। शंखासुर ने वेदों का हरण किया है। वे सब वेद अब सागर में स्थित हैं। हे देवगण! मैं अभी सागरपुत्र शंखासुर का वध करके सभी वेदों को ले आता हूं।।"।।३१-३३।।

अद्यप्रभृति वेदास्तु मन्त्रबीजसमन्विताः। प्रत्यब्दंकार्त्तिकेमासिविश्रमन्त्वप्सुसर्वदा॥३४॥
कालेऽस्मिन्येप्रकुर्वन्तिप्रातःस्नानंनरोत्तमाः। तेसर्वेयज्ञाऽवभृथैःसुस्नाताःस्युर्नसंशयः॥३५॥
अद्यप्रभृत्यहमपि भवामि जलमध्यगः। भवन्तोऽपि मया सार्द्धमायान्तु समुनीश्वराः॥३६॥

कार्त्तिकव्रतिनां चेन्द्र! रक्षा कार्या त्वया सदा।
इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः शफरीतुल्यरूपधृक्।
खात्पपात जले विन्ध्यवासिनः कस्य पश्यतः॥३७॥
हत्वा शङ्खासुरं विष्णुर्बदरीवनमागमत्। तत्राऽहूय ऋषीन्सर्वानिदमाज्ञापयत्प्रभुः॥३८॥

"आज से मन्त्रबीज युक्त वेद प्रतिवर्ष कार्त्तिक मास में जल में विश्राम करें। जो श्रेष्ठ मानव इस कार्त्तिक मास में यथाकाल जल में स्नान करेंगे, उनको यज्ञ के अवभृथ स्नान का फल प्राप्त होगा। इसमें संशय नहीं है। आज से मैं भी इस दिन जल में निवास करूंगा। तुम सब लोग मुनियों के साथ होकर मेरा अनुगमन करो। हे चन्द्रमा! तुम सतत् कार्त्तिक मास के व्रताचारी लोगों की रक्षा करो।" यह कहकर भगवान् विष्णु ने विन्ध्यवासी ब्रह्मा के सामने ही शफरी मत्स्य का रूप धारण किया तथा उन्होंने आकाश से जल में जाकर शंखासुर का वध किया। तदनन्तर वे शीघ्र बदरीवन आ गये। वहां आकर प्रभु विष्णु ऋषियों से कहने लगे।।३४-३८।।

विष्णुरुवाच

जलान्तरविशीर्णांस्तान्यूयंवेदान्प्रमार्गथ। आनयध्वंचत्वरिताः सागरस्यजलान्तरात्।
तावत्प्रयागं तिष्ठामि देवतागणसंयुतः॥३९॥

विष्णु कहते हैं—हे ऋषिगण! सभी वेद जल में रहने के कारण अत्यन्त विशीर्ण हो गये। आप सभी शीघ्रता से जल में प्रवेश करिये तथा वेदों का अन्वेषण करके ले आईये। जब तक आप वापस नहीं आते, तब तक मैं देवगण के साथ प्रयाग में रहूंगा।।३९।।

नारद उवाच

ततस्तैस्सर्वमुनिभिस्तपोबलसमन्वितैः॥४०॥
उद्धृताश्च सबीजास्ते वेदायज्ञसमन्विताः। तेषु यावन्मितंयेनलब्धंतावद्धितस्यतत्॥४१॥
स स एव ऋषिर्जातस्तत्तत्प्रभृतिपार्थिव!। अथ सर्वेऽपि सङ्गम्य प्रयागं मुनयोययुः॥४२॥
विष्णवे सविधात्रे ते लब्धान्वेदान्व्यवेदयन्।
लब्ध्वा वेदान्समग्रांस्तु ब्रह्मा हर्षसमन्वितः॥४३॥
अजयद्वाजिमेधेन देवर्षिगणसंयुतः। यज्ञान्ते देवताः सर्वे विज्ञप्तिं चक्रुरञ्जसा॥४४॥

देवर्षि नारद कहते हैं—तत्पश्चात् विष्णु के आदेश से तपःबल समन्वित मुनिगण ने यज्ञ तथा मन्त्रबीज सम्पन्न वेदों का सागर से उद्धार किया। उस समय इतःस्ततः विक्षिप्त वेदों को जिस ऋषि ने जितना पाया, वही उसका अपना हो गया। तब से ही वेदसम्पत्ति के अधिकारानुसार ऋषिगण भी प्रथित हो गये। तदनन्तर ऋषिगण एक साथ होकर प्रयाग गये। वहां विष्णु के पास जाकर उनसे प्राप्त वेद का विवरण कहा। तब समग्र वेदों का लाभ करके प्रसन्नमना ब्रह्मा ने देवर्षिगण के साथ अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया। यज्ञ समाप्त होने पर देवगण पुनः शीघ्रता से विष्णु के पास आकर कहने लगे।।४०-४४।।

देवा ऊचुः

देवदेवजगन्नाथ! विज्ञप्तिं शृणुनः प्रभो। हर्षकालोऽयमस्माकं तस्मात्त्वं वरदो भव॥४५॥

स्थानेऽस्मिन्द्रुहिणो वेदान्नष्टान्प्राप पुनस्त्वयम्।
यज्ञभागान्वयं प्राप्तास्त्वत्प्रसादाद्रमापते!।।४६।।
स्थानमेतद्धि न श्रेष्ठंपृथिव्यांपुण्यवर्धनम्। भुक्तिमुक्तिप्रदंचाऽस्तुप्रसादाद्भवतः सदा।।४७।।
कालोऽप्ययं महापुण्यो ब्रह्मघ्नाऽऽदिविशुद्धिकृत्।
दत्ताऽक्षयकरश्चास्तु वरमेवं ददस्व नः।।४८।।

देवता कहते हैं—हे देवदेव! आप समस्त जगत् के नाथ हैं। हे प्रभो! हमारा निवेदन सुनें। हमारे आनन्द का दिन आ गया है। अब आप वर प्रदान करिये। हे रमापति! आपकी कृपा से ब्रह्मा को समस्त वेदों की प्राप्ति हो गयी है। हम सबने भी अपने-अपने यज्ञभाग प्राप्त कर लिया। हमने जो अपना-अपना यज्ञभाग प्राप्त किया है, वह युक्तियुक्त है। हे प्रभो! आपकी कृपा से हमारा यह स्थान पुण्यवर्द्धन है। यह पृथिवी में श्रेष्ठ है। यह भुक्ति-मुक्तिप्रद, ब्रह्महत्यादि पाप से विशुद्धि देने वाला, दान के अक्षय फल का जनक तथा महापुण्यप्रद हो जाये। आप हमें यही वर प्रदान करें।।४५-४८।।

विष्णुरुवाच

ममाप्येतद्व्रतं देवा यद्भवद्भिरुदाहृतम्। तथास्तु सुलभं त्वेतद्ब्रह्मक्षेत्रमितिप्रथम्।।४९।।
सूर्यवंशोद्भवो राजा गङ्गामत्रानयिष्यति। सासूर्यकन्ययाचाऽत्रकालिन्द्यायोगमेष्यति।।५०।।
यूयं च सर्वे ब्रह्माद्यानिवसन्तु मयासह। तीर्थराजेति विख्यातं तीर्थमेतद्भविष्यति।।५१।।
सर्वपापानि नश्यन्ति तीर्थराजस्य दर्शनात्। सूर्ये मकरगे प्राप्ते स्नायिनां पापनाशनः।।५२।।
कालोऽप्येषमहापुण्यफलदोऽस्तुसदानृणाम्। सालोक्यादिफलंस्नानैर्माघेमकरगेरवौ।।५३।।

श्रीविष्णु कहते हैं—हे देवताओं! आप जो प्रार्थना कर रहे हैं, यह मैं अवश्य प्रदान करूंगा। यह स्थान ब्रह्मक्षेत्र के नाम से जाना जायेगा। सूर्यवंश में जन्मे राजा भगीरथ यहां गंगा को लायेंगे। सूर्यपुत्री यमुना यहीं गंगा से संगम करेंगी। आप लोग ब्रह्मा के साथ मेरे साथ इसी स्थान में निवास करिये। यह सभी तीर्थों में से प्रमुख रहेगा। इस तीर्थराज के दर्शन से प्राणियों के पापपुंजरूप का ध्वंस होगा। माघमास में इस तीर्थ में स्नान करने वाले के पाप विनष्ट होंगे।

यह तीर्थ कालान्तर में मानवगण के लिये महापुण्य फलप्रद होगा। माघमास में मनुष्य यहां तीर्थस्नान करके मेरा सालोक्यादि फल लाभ करेगा।।४९-५३।।

नारद उवाच

एवं देवान्देवदेवस्तदुक्त्वा तत्रैवाऽन्तर्धानमागात्सवेधाः।
देवः सर्वेऽप्यंशकैस्तेऽप्यतिष्ठंश्चान्तर्धानं प्रापुरिन्द्रादयस्ते।।५४।।
कार्त्तिकेतुलसीमूलेयोऽर्चयेद्धरिमीश्वरम्। भुक्त्वेहनिखिलान्भोगानन्तेविष्णुपुरंव्रजेत्।।५५।।

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे सत्यभामापूर्वजन्मवृत्तान्तकथनपूर्वकप्रयागतीर्थ प्रशंसाप्रसङ्गवर्णनंनाम त्रयोदशोऽध्यायः।।१३।।

देवर्षि नारद कहते हैं—भगवान् विष्णु इस प्रकार देवगण से कह कर ब्रह्मा के साथ अन्तर्हित् हो गये। तब इन्द्रादि देवगण भी वहां अपने-अपने अंश रक्षित करके अन्तर्हित् हो गये। जो मनुष्य कार्त्तिक मास में तुलसी मूल में भक्ति के साथ श्रीहरि की पूजा करते हैं, वे पृथिवी पर समस्त भोगों को भोगकर अंत में विष्णुलोक गमन करते हैं।।५४।।

।।त्रयोदश अध्याय समाप्त।।

चतुर्दशोऽध्यायः

जलंधर की उत्पत्ति का वर्णन

पृथुरुवाच

यत्त्वया कथितंब्रह्मन्व्रतमूर्जस्यविस्तरात्। तत्रयातुलसीमूलेविष्णोःपूजात्वयोदिता॥१॥
तेनाऽहं प्रष्टुमिच्छामि माहात्म्यं तुलसीभवम्।
कथं साऽतिप्रिया तस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः॥२॥
कथमेषासमुत्पन्ना कस्मिन्स्थाने च नारदः। एवं ब्रूहिसमासेन सर्वज्ञोऽसि मतो मम॥३॥

राजा पृथु कहते हैं—हे ब्रह्मन्! आपने कार्त्तिक व्रत तथा तुलसी मूल में विष्णु पूजा का वर्णन विस्तारपूर्वक कहा। अब तुलसी माहात्म्य के सम्बन्ध में मेरी जिज्ञासा है कि तुलसी देवदेव शार्ङ्गधर विष्णु को कैसे इतनी प्रिय हैं? हे नारद! किस स्थान पर कैसे तुलसी का जन्म हुआ? आप सर्वज्ञ हैं। अतः संक्षेप में इन सब विषय का वर्णन करिये।।१-३।।

नारद उवाच

शृणुराजन्नवहितो माहात्म्यं तुलसीभवम्। सेतिहासंपुरावृत्तंतत्सर्वं कथयामि ते॥४॥
पुरा शक्रः शिवंद्रष्टुमगात्कैलासपर्वतम्। सर्वदेवैः परिवृतो ह्यप्सरोगणसेवितः॥५॥
यावद्गतः शिवगृहं तावत्तत्र स दृष्टवान्। पुरुषंभीमकर्माणं दंष्ट्रांऽऽननविभीषणम्॥६॥
स पृष्टस्तेन कस्त्वं भोः क्व गतो जगदीश्वरः। एवंपुनःपुनः पृष्टःसतदानोक्तवान्नृप!॥७॥
ततः क्रुद्धो वज्रपाणिस्तं निर्भर्त्स्य वचोऽब्रवीत्।
रे मया पृच्छ्यमनोऽपि नोत्तरं दत्तवानसि॥८॥
अतस्त्वांहन्मिवज्रेणकस्तेत्राताऽस्तिदुर्मते। इत्युदीर्यततोवज्रीवज्रेणाऽभ्यहनद्दृढम्॥९॥
तेनाऽस्यकण्ठो नीलत्वमगाद्वज्रं चभस्मताम्। ततो रुद्रः प्रजज्वाल तेजसाप्रदहन्निव॥१०॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे राजन्! अवहित चित्त से तुलसी का माहात्म्य सुनिये। इस विषय में एक प्राचीन इतिहास आपसे कहता हूं। पूर्वकाल में सभी देवगण के साथ अप्सराओं से सेवित इन्द्र शंकर के दर्शनार्थ कैलास आये। वे शिवगृह तक पहुंचे थे कि तभी वहां भीषण दाढ़ वाले वीभत्सवदन एक पुरुष को देखकर उससे पूछा "तुम कौन हो? जगदीश्वर कहां गये हैं? हे राजन्! इन्द्र के बारम्बार पूछने पर भी उस पुरुष ने कोई उत्तर नहीं दिया। तब इन्द्र क्रोधित हो गये तथा उन्होंने वज्र उठाकर उस पुरुष की भर्त्सना करते हुये कहा—"हे दुर्मुख! मैं बारम्बार तुमसे पूछ रहा हूं, तथापि तुम कोई उत्तर नहीं दे रहे हो। इसलिये मैं वज्र से तुम्हारा वध करूंगा। देखता हूं कि कौन तुम्हारी रक्षा करेगा।" इन्द्र ने यह गर्वपूर्ण वाक्य कहा तथा वज्र का दृढ़ प्रहार उस पुरुष पर किया, तथापि इस वज्र प्रहार से उसकी कोई हानि नहीं हो सकी, केवल उसका कण्ठ नीलवर्ण हो गया था। लेकिन इन्द्र का वज्र तत्क्षण भस्म हो गया। इसी के अनन्तर रुद्र अपने तेज द्वारा मानो सब कुछ दग्ध करते प्रत्यक्ष हो गये।।४-१०।।

दृष्ट्वा बृहस्पतिस्तूर्णं कृताञ्जलिपुटोऽभवत्। इन्द्रं च दण्डवद्भूमौकृत्वास्तोतुंप्रचक्रमे॥११॥

यह देखकर देवगुरु बृहस्पति ने शीघ्रतापूर्वक इन्द्र को भूमि पर दण्डवत् मुद्रा में गिरने का आदेश दिया। बृहस्पति स्वयं बद्धाञ्जलि होकर (हाथ जोड़कर) स्तव करने लगे।।११।।

बृहस्पतिरुवाच

नमोदेवाधिपतये त्र्यम्बकाय कपर्दिने। त्रिपुरघ्नाय शर्वाय नमोऽन्धकनिषूदिने॥१२॥
विरूपायाऽतिरूपाय बहुरूपाय शम्भवे। यज्ञविध्वंसकर्त्रे च यज्ञानां फलदायिने॥१३॥
कालान्तकाय कालाय कालभोगिधराय च। नमो बह्मशिरोहन्त्रे ब्राह्मणायनमोनमः॥१४॥

बृहस्पति कहते हैं—हे कपर्दिन्! आप देवों के अधिपति हैं। हे त्रिनयन! आपने त्रिपुर का ध्वंस किया था। अन्धकासुर आप द्वारा विमर्दित हुआ था। हे शर्व! आपको प्रणाम! आप विरूप, अतिरूप, बहुरूप हैं। हे शम्भु! आपने दक्षयज्ञ विध्वंस किया था। आप यज्ञों का फल प्रदान करते हैं। आप काल के भी अन्तक रूप हैं। कालसर्प आपका आभूषण है। हे काल! आपको प्रणाम! आपने ब्रह्मा के शिर को नष्ट किया था। हे ब्राह्मण! आपको प्रणाम!।१२-१४।।

नारद उवाच

एवं स्तुतस्तदा शम्भूर्धिषणेन जगाद तम्। संहरन्नयनज्वालां त्रिलोकीदहनक्षमाम्॥१५॥
वरं वरय भो ब्रह्मन्प्रीतः स्तुत्याऽनया तव। इन्द्रस्यजीवदानेनजीवेति त्वं प्रथांव्रज॥१६॥

नारद कहते हैं—बृहस्पति द्वारा स्तुत होकर भगवान् शंकर ने त्रैलोक्य का दहन कर सकने में सक्षम अपनी नयनाग्नि को शान्त करके कहा—"हे ब्रह्मन्! मैं आपके इस प्रकार के स्तुति वाक्य से प्रसन्न हो गया। सम्प्रति वर मांगिये। इन्द्र को जीवन दान दिलाकर आप 'जीव' नाम से प्रख्यात हो जायें।।१५-१६।।

बृहस्पतिरुवाच

यदि तुष्टोऽसि देव! तु पाहीन्द्रं शरणागतम्। अग्निरेष शमं यातु भालनेत्रसमुद्भवः॥१७॥

बृहस्पति कहते हैं—हे देव! यदि आप प्रसन्न हैं, तब शरणागत इन्द्र की रक्षा करिये। आप अपने भालस्थ नेत्र से समुद्भूत अग्नि को शान्त करिये।।१७।।

ईश्वर उवाच

पुनः प्रवेशमायाति भालनेत्रे कथं शिखी। एनं त्यक्ष्याम्यहंदूरे यथेन्द्रं नैव पीडयेत्॥१८॥

ईश्वर शिव कहते हैं—यदि मैं इस नयनाग्नि को एकबारगी शान्त करता हूं, तब यह अग्नि मेरे तृतीय नेत्र में पुनः कैसे आयेगी? अतएव मैं इसे एक बारगी प्रशमित न करके इस प्रकार से इसका दूर से त्याग करूंगा, जिससे इन्द्र को कोई पीड़ा न हो।।१८।।

नारद उवाच

इत्युक्त्वा तं करेधृत्वाप्राक्षिपल्लवणार्णवे। सोऽपतत्सिन्धुगङ्गायाः सागरस्यचसङ्गमे॥१९॥
तावत्स बालरूपत्वमगात्तत्र रुरोद च। रुदतस्तस्य शब्देन प्राकम्पद्धरणी मुहुः॥२०॥
स्वर्गाद्याः सत्यलोकान्तास्तत्स्वनाद् बधिरीकृताः।
श्रुत्वा ब्रह्मा ययौ तत्र किमेतदिति विस्मितः॥२१॥
तावत्समुद्रस्योत्सङ्गे तं बालं स ददर्श ह।
दृष्ट्वाब्रह्माणमायान्तं समुद्रोऽपिकृताञ्जलिः॥२२॥
प्रणम्यशिरसा बालंतस्योत्सङ्गेन्यवेशयत्। भोब्रह्मन्सिन्धुगङ्गायांजातोऽयंममपुत्रक।
जातकर्माऽऽदिसंस्कारान्कुरुष्वाऽद्य जगद्गुरो!॥२३॥

देवर्षि नारद कहते हैं—शंकर ने यह कहकर हथेली में उस नेत्राग्नि को धारण किया तथा उसे लवण समुद्र में छोड़ दिया। तब यह नयनाग्नि सिन्धु-गंगा नदी में जा पड़ी तथा उसने वहां पड़ते ही बालरूप से रुदन प्रारंभ कर दिया। बालक की रुदन ध्वनि से धरती पुनः-पुनः कम्पित होने लगीं। स्वर्गादि से लेकर सत्यलोक पर्यन्त सभी लोक मानो इस शब्द से वधिर होने लगे। ब्रह्मा उस भीषण रुदन ध्वनि को सुनकर यह चिन्ता करने लगे कि यह कैसा भीषण घटनाक्रम घटित हो रहा है? वे यह विचार करते हुये विस्मित हो उठे। उन्होंने सागर पर जाकर समुद्र के क्रोड़ में स्थित उस बालक को देखा। तब समुद्र ने भी वहां समागत ब्रह्मा का दर्शन पाकर अंजलिबद्ध मुद्रा में ब्रह्मा को प्रणाम करके बालक को ब्रह्मा की गोद में देकर कहा—"हे ब्रह्मन्! यह शिशु सिन्धु-गंगा से समुद्भुत है। यह मेरा पुत्र है। हे जगद्गुरु! आप अब इसका जातकर्मादि समस्त संस्कार सम्पन्न करिये।।१९-२३।।

नारद उवाच

इत्थं वदति पाथोधौ स बालः सागरात्मजः॥२४॥
ब्रह्माणमग्रहीत्कूर्चे विधुन्वंस्तं मुहुर्मुहुः। धुन्वतस्तस्य कूर्चे तु नेत्राभ्यामगमज्जलम्।
कथञ्चिन्मुक्तकूर्चोऽथ ब्रह्मा प्रोवाच सागरम्॥२५॥

नारद कहते हैं—सागर के द्वारा यह कहे जाने पर उस शिशु ने ब्रह्मा को अपने भ्रूमध्य में धारण कर

लिया। तब वह पुनः-पुनः कम्पित होने लगा। कम्पित हो रहे ब्रह्मा के नयनद्वय से जल गिर गया। ब्रह्मा ने अत्यन्त कष्ट से स्वयं को शिशु के भ्रूमध्य से मुक्त किया तथा सागर से कहने लगे।।२४-२५।।

ब्रह्मोवाच

नेत्राभ्यां विधृतं यस्मादनेनैतज्जलं मम। तस्माज्जलन्धर इतिख्यातो नाम्नाभविष्यति॥२६॥
अनेनैवैष तरुणः सर्वशस्त्रास्त्रपारगः। अवध्यः सर्वभूतानां विनारुद्रं भविष्यति।
यत एष समुद्भूतस्तत्रैवाऽन्तं गमिष्यति॥२७॥

ब्रह्मा कहते हैं—इस बालक ने मुझे नेत्रद्वय में धारण किया था। अतएव यह जलंधर नाम से प्रसिद्ध होगा। इस कारण यह शिशु समस्त अस्त्र-शस्त्र में पारंगत होगा। यह रुद्र को छोड़कर सब प्राणीगण से अवध्य रहेगा। यह जहां से उद्भूत हुआ है, वहीं विलय को प्राप्त होगा।।२६-२७।।

नारद उवाच

इत्युक्त्वा शुक्रमाहूयराज्येतंचाभ्यपेचयेत्। आमन्त्र्यसरितांनांथंब्रह्मान्तर्धानमागतम्॥२८॥
अथ तद्दर्शनोत्फुल्लनयनः सागरस्तदा। कालनेमिसुतां वृन्दां मद्भार्यार्थमयाचत॥२९॥
ते कालनेमिप्रमुखास्ततोऽसुरास्तस्मै सुतां तां प्रददुःप्रहर्षिताः।
स चापि ताम्प्राप्य सुहृद्वरां वशां शशास गां शुक्रसहायवान्बली॥३०॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे जलन्धरोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः।।४।।

नारद कहते हैं—तदनन्तर ब्रह्मा ने शुक्र को बुलाकर उनके द्वारा बालक को असुरराज के पद पर प्रतिष्ठित क ्या। तदनन्तर सरित्पति से विदा लेकर वहीं अन्तर्हित् हो गये। ऐसा पुत्र पाकर उत्फुल्ल नेत्र सागर ने समय आने पर कालनेमि की कन्या वृन्दा को जलन्धर की पत्नीरूप में कालनेमि से मांगा। कालनेमि आदि प्रमुख असुरगण ने प्रसन्नचित्त से जलंधर को अपनी कन्या वृन्दा अर्पित किया। बलवान् जलन्धर भी वृन्दा को प्राप्त कर शुक्राचार्य की सहायता से पृथिवी पालन करने लगा।।२८-३०।।

।।चतुर्दश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

पञ्चदशोऽध्यायः

जलन्धर द्वारा विजय प्राप्ति

नारद उवाच

ये देवैर्निर्जिताः पूर्वं दैत्याः पातालसंस्थिताः।
तेऽपि भमण्डलं याता निर्भयास्तमुपाश्रिताः॥१॥
कदाचिच्छिन्नशिरसं राहुं दृष्ट्वा स दैत्यराट्। पप्रच्छभार्गवंतत्र तच्छिरश्छेदकारणम्॥२॥
स शशंस समुद्रस्य मथनं देवकारितम्। रत्नापहरणंचैव दैत्यानाञ्च पराभवम्॥३॥
स श्रुत्वा क्रोधरक्ताक्षः स्वपितुर्मथनं तदा। दूतं सम्प्रेषयामास घस्मरं शक्रसन्निधौ॥४॥
दूतस्त्रिविष्टपं गत्वा सुधर्मां प्राविशद्वराम्। जगादाखर्वमौलिस्तुदेवेन्द्रं वाक्यमद्भुतम्॥५॥

देवर्षि नारद कहते हैं—पूर्वकाल में देवताओं द्वारा जीते गये जिन सब दैत्यों ने पाताल का आश्रय लिया था, वे जलन्धर का आश्रय लेकर भूमण्डल पर आ गये। दैत्यराज जलन्धर ने एक बार राहु को छिन्न शिर वाला देखकर गुरु से राहु के शिरच्छेद का कारण पूछा। तब शुक्र ने जलन्धर से देवगण कृत समुद्रमन्थन, रत्नापहरण, दैत्यों के पराभव का वर्णन किया। अपने पिता सागर के मंथन का वृत्तान्त सुनकर जलन्धर के नेत्रद्वय क्रोध से आरक्त हो गये। तब जलन्धर ने इन्द्र के पास घस्मर नाम दूत को भेजा। घस्मर ने देवलोक जाकर मनोरम देवसभा में प्रवेश किया तथा उन्नत मस्तक होकर देवेन्द्र से इस प्रकार का अद्‌भुद् वाक्य कहने लगा।।१-५।।

घस्मर उवाच

जलन्धरोऽब्धितनयः सर्वदैत्यजनेश्वरः। दूतोऽहं प्रेषितस्तेन स यदाह शृणुष्वतत्॥६॥
कस्मात्त्वया ममपिता मथितःसागरोऽद्रिणा। नीतानिसर्वरत्नानितानिशीघ्रंप्रयच्छमे॥७॥
इति दूतवचः श्रुत्वाविस्मितस्त्रिदशाधिपः। उवाच घस्मरं रौद्रं भयरोषसमन्वितः॥८॥

घस्मर कहता है—सिन्धु पुत्र जलन्धर दैत्यों के ईश्वर हैं। मैं उनका दूत हूं। मैं यहां उनके द्वारा भेजा गया हूं। अब उन्होंने जो कुछ कहा है उसे सुनो। "तुमने पर्वत द्वारा मेरे पिता का मंथन क्यों किया था? तुम सबने जितने रत्न समुद्र में से निकाले थे, वे सब रत्न शीघ्र मुझे प्रदान करो।" देवराज इन्द्र दूत का वाक्य सुनकर विस्मित हो गये। उन्होंने भय तथा क्रोध समन्वित होकर उस दूत से यह भीषण वाक्य कहा।।६-८।।

इन्द्र उवाच

शृणुदूतमयापूर्वंमथितःसागरोयथा। अद्रयोमद्‌भयात्त्रस्ताःस्वकुक्षिस्थाःकृतास्तथा॥९॥
अन्येऽपिमद्द्विषस्तेन रक्षिता दितिजाः पुरा। तस्माद्यत्तत्प्रजातंतुमयाप्यपहृतं किल॥१०॥
शङ्खोऽप्येवं पुरादेवानद्विषत्सागरात्मजः। ममाऽनुजेन निहतः प्रविष्टःसागरोदरम्।
तद्गच्छ कथयस्वाऽस्य सर्वं मथनकारणम्॥११॥

इन्द्र कहते हैं—हे दूत! मैंने पूर्वकाल में सागर मन्थन क्यों किया था, वह कारण सुनो। पूर्वकाल में जब पर्वतगण मेरे भय त्रस्त हो गये थे, तब सागर ने ही इन पर्वतों को अपने कोख में छिपाया था। सागर ने मेरे अत्यन्त शत्रु अन्य असुरों को भी अपने अन्दर छिपा कर रक्षा किया था। इसी कारण से मैंने सागर से उत्पन्न रत्नादि का अपहरण किया। सागरपुत्र शंख भी पूर्वकाल में देवगण से शत्रुता रखता है। तब मेरे अनुज विष्णु ने सागर में प्रवेश किया था तथा उसका वध किया था। अतः तुम जलन्धर के पास जाकर सागर मन्थन के इन कारणों को उससे कहो।।९-११।।

नारद उवाच

इत्थं विसर्जितो दूतस्तदेन्द्रेणाऽगमद्भुवम्॥१२॥
तदिदं वचनं सर्वं दैत्यायाऽकथयत्तदा। तन्निशम्य तदा दैत्योरोषात्प्रस्फुरिताऽधरः॥१३॥
दैत्यसेना समायुक्तो ययौयोद्धुं त्रिविष्टपम्। ततोयुद्धे महाञ्जातो देवदानवसंक्षयः॥१४॥
तत्र युद्धे मृतान्दैत्यान्भार्गवस्तूदतिष्ठपत्।
विद्यया मृतजीविन्या मन्त्रितैस्तोयबिन्दुभिः॥१५॥
देवानपि तथायुद्धे तत्राऽजीवयदङ्गिराः। दिव्यौषधीः समानीय द्रोणाद्रेःसपुनःपुनः॥१६॥
दृष्ट्वा देवांस्तथा युद्धे पुनरेव समुत्थितान्। जलन्धरःक्रोधवशोभार्गवंवाक्यमब्रवीत्॥१७॥

देवर्षि नारद कहते हैं—इन्द्र ने यह कहकर दूत को विदा किया। तब दूत पृथिवी पर आया तथा दैत्यराज जलंधर से इन्द्र द्वारा कहे वक्तव्य को दैत्यराज को बतलाया। दूत का वाक्य सुनकर जलन्धर के अधरोष्ठ क्रोध से फड़कने लगे। दैत्यराज तभी असुर सैन्य के साथ युद्धार्थ स्वर्ग पहुंचा। इस युद्ध में अनेक देवता तथा दैत्य सेना वाले निहत होने लगे। जैसे एक ओर शुक्राचार्य मृत संजीवनी विद्या द्वारा अभिमंत्रित जलविन्दु से मृत दैत्यों को पुनर्जीवित कर रहे थे, तदनुरूप बृहस्पति भी द्रोण पर्वत की दिव्यौषधियों द्वारा पुनः-पुनः मृत सुरसैन्य को संजीवित करते जा रहे थे। इस प्रकार पुनः-पुनः मृत सुरसैन्य के देवताओं को जीवित होता देखकर जलन्धर क्रोधित होकर शुक्र से कहने लगा।।१२-१७।।

जलन्धर उवाच

मयायुद्धे हता देवा उत्तिष्ठन्ति कथं पुनः। तव सञ्जीवनीविद्यानवाऽन्यत्रेतिविश्रुतम्॥१८॥

जलन्धर कहता है—मैं पुनः-पुनः देवगण को युद्ध में निहत कर रहा हूं, तथापि ये किस प्रकार से उठ जा रहे हैं? संजीवनी विद्या तो एकमात्र आपको ही प्राप्त है। यह अन्य कोई जानता हो, ऐसा मुझे नहीं लगता!।।१८।।

शुक्र उवाच

दिव्यौषधीः समानीय द्रोणाद्रेरङ्गिराःसुरान्। जीवयत्येवतच्छीघ्रंद्रोणाद्रिंत्वमपाहर॥१९॥

शुक्र कहते हैं—हे असुरराज! बृहस्पति द्रोण पर्वत से दिव्यौषधियां लाकर देवगण को जीवित कर देते हैं। अतः शीघ्र द्रोण पर्वत का हरण करो।।१९।।

नारद उवाच

इत्युक्तः स तु दैत्येन्द्रो नीत्वाद्रोणाचलं तदा। प्राक्षिपत्सागरेतूर्णंपुनरागान्महाहवम्॥२०॥
अथ देवान्हतान्दृष्ट्वा द्रोणाद्रिमगमद्गुरुः। तावत्तत्रगिरीन्द्रं तु न ददर्श सुरार्चितः॥२१॥
ज्ञात्वा दैत्यहृतंद्रोणंधिषणोभयविह्वलः। आगत्यदूराद्व्याजह्रेश्वासाऽऽकुलितविग्रहः॥२२॥
पलायध्वं हवाद्देवा नाऽयं जेतुं क्षमोयतः। रुद्रांशसम्भवोह्येष स्मरध्वंशक्रचेष्टितम्॥२३॥
श्रुत्वा तद्वचनं देवा भयविह्वलितास्तदा। दैत्येन वध्यमानास्ते पलायन्ते दिशोदश॥२४॥

देवर्षि नारद कहते हैं—तब जलन्धर ने शुक्राचार्य का आदेश पाकर द्रोण पर्वत को समुद्र में छोड़ा, तदनन्तर वह पुनः युद्ध करने लगा। तत्पश्चात् देवताओं को समरभूमि में मृत होते देखकर देवपूजित बृहस्पति द्रोणाचल की ओर गये। लेकिन पहले जहां वह पर्वत था, वहां उनको द्रोणपर्वत दिखलाई नहीं पड़ा। तब बृहस्पति को यह ज्ञात हो सका कि इस पर्वत का हरण जलंधर ने किया है। यह जानकर बृहस्पति भयविह्वल हो गये और दीर्घ श्वास छोड़ते व्याकुल चित्त होकर समरभूमि से दूर खड़े होकर कहने लगे। "हे देवगण! भाग जाओ। तुम जलंधर पर विजयी नहीं हो सकते। यह असुर रुद्रांश से उत्पन्न है। हे देवताओं! तुम सब याद करो कि जब इन्द्र ने कैलास पर वज्र प्रहार किया था, तभी यह बालकरूप असुर उत्पन्न हुआ था।" देवगण बृहस्पति का कथन सुनकर भयकातर हो गये। वे दैत्यों के द्वारा मारे जाने के भय से दशों दिशाओं में पलायन कर गये।।२०-२४।।

देवान्विद्रावितान्दृष्ट्वा दैत्यैः सागरनन्दनः। शङ्खभेरीजयरवैः प्रविवेशाऽमरावतीम्॥२५॥
प्रविष्टेनगरीं दैत्ये देवाःशक्रपुरोगमाः। सुवर्णाद्रिगुहांप्राप्ता न्यवसन्दैत्यतापिताः॥२६॥
ततश्च सर्वेष्वसुरोऽधिकारेष्विन्द्रादिकानां विनिवेशयत्तदा।
शुम्भादिकान्दैत्यवरान्पृथक्पृथक्स्वयं सुवर्णाद्रिगुहामगात्पुनः॥२७॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमास-माहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे जलन्धरविजयप्राप्तिर्नाम पञ्चदशोऽध्यायः।।१५।।

—❋❋❋—

जब जलन्धर ने देवताओं को अपने सैन्य द्वारा विमर्दित तथा पलायित होते देखा, तब उसने सैन्य के साथ शंख-भेरी तथा जयजयकार के साथ अमरावती में प्रवेश किया। जब जलंधर ने स्वर्ग में प्रवेश कर लिया, तब दैत्यों से त्रसित इन्द्रादि देवता स्वर्णपर्वत की कन्दराओं में जाकर रहने लगे। इधर जलन्धर ने शुंभ आदि असुरों को इन्द्रादि के स्थान पर पृथक्-पृथक् स्थापित किया तथा स्वयं स्वर्णपर्वत की गुफाओं के पास पहुंचा।।२५-२७।।

।।पञ्चदश अध्याय समाप्त।।

षोडशोऽध्यायः

विष्णु जलन्धर संग्राम, विष्णु का सागर निवास, जलन्धर की सभा में नारद का आना

नारद उवाच

पुनदत्यं समायान्तं दृष्ट्वा देवाः सवासवाः। भयप्रकम्पिताः सर्वे विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रमुः।।१।।

नमो मत्स्यकूर्मादिनानास्वरूपैः सदा भक्तकार्योद्यतायाऽऽर्तिहन्त्रे।
विधात्रादिसर्गस्थितिध्वंसकर्त्रे गदाशङ्खपद्मारिहस्ताय तेऽस्तु।।२।।
रमावल्लभायाऽसुराणां निहन्त्रे भुजङ्गारियानाय पीताम्बराय।
मखादिक्रियापाककर्त्रे विकर्त्रे शरण्याय तस्मै नताः स्मो नताः स्मः।।३।।
नमो दैत्यसन्तापितामर्त्यदुःखाचलध्वंसदम्भोलये विष्णवे ते।
भुजङ्गेशतल्पेशयायाऽर्कचन्द्रद्विनेत्राय तस्मै नताः स्मो नताः स्मः।।४।।

देवर्षि नारद कहते हैं—जब इन्द्र तथा देवगण ने असुरपति जलन्धर को पुनः आते देखा, तब वे भयकम्पित होकर विष्णु स्तव करने लगे। देवगण कहते हैं—जो मत्स्य-कूर्म आदि अनेक रूप से आविर्भूत होकर सतत् भक्तों का कार्य साधन करने के लिये उद्यत होते हैं। जो विधातारूपेण सृष्टि-स्थिति तथा प्रलयकारी हैं, जो गदा, शंख, पद्म तथा चक्रों को हाथों में धारण करते हैं, हम उन आर्त्ति का हरण करने वाले हरि को प्रणाम करते हैं।

जो कमलावल्लभ, असुरहन्ता, गरुड़वाहन, पीतवस्त्रधारी, यज्ञादि के फलदाता, विकर्त्ता तथा शरण्य हैं, उनको हम पुनः-पुनः प्रणाम करते हैं।

जो दैत्यों से सन्तापित देवगण के दुःखरूपी पर्वत का ध्वंस करने के लिये वज्ररूप हैं,. जो शेषशय्याशायी हैं, चन्द्र तथा सूर्य जिनके नेत्रद्वय हैं, हम उन विष्णु को प्रणाम करते हैं।।१-४।।

नारद उवाच

संकष्टनाशनं नाम स्तोत्रप्रेतत्परेन्नरः। सकदाचिन्न सङ्कष्टैः पीठ्यते कृपया हरेः।।५।।
इति देवाः स्तुतिं याद्वत्प्रकुर्वन्ति दनुजद्विषः। तावत्सुराणामापत्तिर्विज्ञाताः विष्णुना तदा।।६।।
सहसोत्थाय दैत्यारिः सक्रोधः खिन्नमानसः। आरूढोगरुडंवेगाल्लक्ष्मींवचनमब्रवीत्।।७।।

देवर्षि नारद कहते हैं—जो मनुष्य संकटनाशन नामक इस विष्णु स्तव का पाठ करते हैं हरि कृपा से वे कदापि संकटों से पीड़ित नहीं होते। जब दनुजों के शत्रु देवताओं ने विष्णु की आराधना इस प्रकार स्तुति वाक्यों से किया, तब विष्णु सुरगण की विपत्ति को जानकर उठ गये तथा रोष में भरकर दैत्य निहन्ता हरि खिन्न मन से शीघ्रता से गरुड़ पर बैठकर लक्ष्मीदेवी से कहने लगे।।५-७।।

श्रीभगवानुवाच

जलन्धरेण ते भ्रात्रा देवानां कदनं कृतम्। तैराहूतो गमिष्यामियुद्धायाद्यत्वरान्वितः॥८॥

श्री भगवान् कहते हैं—तुम्हारा भाई जलंधर देवगण को पीड़ित कर रहा है। मैं देवगण द्वारा बुलाया जाकर युद्धार्थ शीघ्रतापूर्वक जा रहा हूं।।८।।

श्रीरुवाच

अहं ते वल्लभा नाथ भक्त्या च यदि सर्वदा। तत्कथं ते ममभ्रातायुद्धवध्यः कृपानिधे॥९॥

भगवती लक्ष्मी कहती हैं—हे नाथ! मैं तो भक्तिपूर्वक सदैव आपके प्रिय कार्य को करती रहती हूं। आप द्वारा मेरा भाई जलन्धर युद्ध में कैसे वध्य हो गया?।।९।।

श्रीभगवानुवाच

रुद्रांशसम्भवत्वाच्च ब्रह्मणो वचनादपि। प्रीत्या च तवनैवाऽयं मम वध्यो जलन्धरः॥१०॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे देवी! यह जलंधर रुद्रांश से उत्पन्न हुआ है। ब्रह्मा ने भी इसे रुद्र के अतिरिक्त अन्य सबसे अवध्य किया है। विशेषतः तुम्हारी प्रिय कामना के लिये मैं इसका वध नहीं करूंगा।।१०।।

नारद उवाच

इत्युक्त्वा गरुडारूढः शङ्खचक्रगदासिभृत्। विष्णुर्वेगाद्ययौयोद्धुंयत्रदेवाःस्तुवन्तिते॥११॥

अथाऽरुणानुजात्युग्रपक्षवातप्रपीडिताः ।
वात्याविमर्दिता दैत्या बभ्रमुः खे यथा घनाः॥१२॥
ततो जलन्धरो दृष्ट्वा दैत्यान्वात्याप्रपीडितान्।
उद्वृत्तनयनः क्रोधात्ततो विष्णुं समभ्ययात्॥१३॥

ततः समभवद्युद्धं विष्णुदैत्येन्द्रयोर्महत्। आकाशं कुर्वतोर्बाणैस्तदा निरवकाशवत्॥१४॥

विष्णुर्दैत्यस्यबाणौघैर्ध्वजं छत्रं धनुर्हयान्। चिच्छेद तं चहृदये बाणेनैकेन ताडयत्॥१५॥

नारद कहते हैं—तदनन्तर शंख-चक्र-गदा-खड्गधारी गरुड़ासीन विष्णु अतिवेगूपर्वक युद्धार्थ वहां पहुंचे, जहां देवता उनका स्तव कर रहे थे। अरुण के अनुज गरुड़ के पंखों के कारण उड़ रहे तीव्र वायु की भी चपेट से असुरगण वैसे चतुर्दिक् फेके जाने लगे जैसे आकाश में वायु के प्रहार से मेघगण विच्छिन्न हो जाते हैं। तब जलन्धर दैत्यों को वायु से पीड़ित होता देखकर क्रोधपूर्वक नेत्रों को घुमाता विष्णु के सामने आ पहुंचा। विष्णु तथा उस दैत्यराज के बीच भयानक युद्ध छिड़ गया। दैत्यराज ने बाण वर्षा द्वारा आकाश को ढक सा दिया। उधर विष्णु ने भी बाणों की वर्षा से दैत्यराज का ध्वज-छत्र-धनुष तथा घोड़ों का छेदन कर दिया। विष्णु ने एक बाण से दैत्यराज के हृदय को विद्ध कर दिया।।११-१५।।

ततो दैत्यः समुत्पत्य गदापाणिस्त्वरान्वितः। आहत्यगरुडंमूर्ध्निपातयामासभूतले॥१६॥

विष्णुर्गदां स्वखड्गेन चिच्छेद प्रहसन्निव। तावत्सहृदये विष्णुं जघानदृढमुष्टिना॥१७॥

ततस्तौ बाहुयुद्धेन युयुधाते महाबलौ। बाहुभिर्मुष्टिभिश्चैव जानुभिर्नादयन्महीम्॥१८॥
एवं तौ सुचिरं युद्धं कृत्वा विष्णुः प्रतापवान्। उवाच दैत्यराजानं मेघगम्भीरनिःस्वनः॥१९॥

तत्पश्चात् दैत्य शीघ्रतापूर्वक गदा उठाकर विष्णु के समक्ष आया। उसने वहां आते ही गरुड़ के मस्तक पर गदा प्रहार किया जिससे गरुड़ भूतल पर गिर पड़े। विष्णु ने हंसते हुये अपनी तलवार से उसकी गदा को काट दिया। तब दैत्य ने विष्णु के हृदय पर अपनी कठोर मुष्टि से प्रहार कर दिया। तदनन्तर महाबली असुर और विष्णु के बीच बाहुयुद्ध प्रारंभ हो गया। कभी वे एक दूसरे की बाहु को अपनी बाहु से खींचते, मुष्ठिका द्वारा निवारित करते, कभी अपने जानु का प्रहार विपक्षी की जानु पर करते। इस प्रकार वे पृथिवी को निनादित करते युद्ध में प्रवृत्त हो जाते। विष्णु तथा दैत्य के बीच इस प्रकार का युद्ध दीर्घकाल तक चल रहा था। तब प्रतापी विष्णु मेघगंभीर स्वर में दैत्यराज से कहने लगे।।१६-१९।।

विष्णुरुवाच

वरम्वरयदैत्येन्द्र प्रीतोऽस्मि तव विक्रमात्। अदेयमपि ते दद्मिं यत्ते मनसि वर्तते॥२०॥

विष्णु कहते हैं—हे दैत्येन्द्र! तुम्हारा विक्रम देखकर मैं प्रसन्न हो गया। अब तुम वर मांगो। यदि तुम अदेय वर भी मांगोगे, तब भी मैं वह प्रदान करूंगा।।२०।।

जलन्धर उवाच

यदि भावुक! तुष्टोऽसि वरमेनं ददस्व मे। मद्भगिन्या सहाऽद्यत्वं मद्गृहेसगणोवस॥२१॥

जलंधर कहता है—हे भावुक! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तब मुझे यह वर दीजिये कि मेरी बहन तथा अपने गणों के साथ आप मेरे गृह में निवास करिये।।२१।।

नारद उवाच

तथेत्युक्त्वा स भगवान्सर्वदेवगणैः सह। तदा जलन्धरपुरमगमद्रमया सह॥२२॥
जलन्धरस्तु देवानामधिकारेषु दानवान्। स्थापयित्वा महाबाहुः पुनरागान्महीतलम्॥२३॥
देवगन्धर्वसिद्धेषु यत्किञ्चिद्रत्नसंयुतम्। तदात्मवशगं कृत्वाऽतिष्ठत्सागरनन्दनः॥२४॥
पातालभुवने दैत्यं निशुम्भं स महाबलम्। स्थापयित्वा सशेषादीनानयद्भूतलंबली॥२५॥
देवगन्धर्वसिद्धाद्यान्सर्पराक्षसमानुषान्। स्वपुरे नागरान्कृत्वा शशास भुवनत्रयम्॥२६॥

नारद कहते हैं—भगवान् विष्णु ने कहा "यही हो" और वे देवगण के साथ लक्ष्मी के साथ जलन्धर की नगरी में आ गये। महाबाहु सागर पुत्र जलन्धर ने देवताओं का अधिकार जहां था वहां दानवों को प्रतिष्ठित किया तथा पुनः भूतल पर आ गया। देवता-गन्धर्व तथा सिद्धगण के पास जो कुछ रत्नादि था, वह सब उसने अपने वश में कर लिया तथा इस भांति निवास करने लगा। जलंधर ने पातालपुरी में महाबली निशुंभ को स्थापित किया तथा संकर्षण आदि को भूतल पर ले आया। उसने देवता-गन्धर्व-सिद्ध-सर्प-राक्षस तथा मनुष्यों को अपने नगर में नागरिक रूप से प्रतिष्ठित किया। इस प्रकार जलन्धर त्रिभुवन का शासन करने लगा।।२२-२६।।

एवं जलन्धरः कृत्वा देवान्स्ववशवर्तिनः। धर्मेणपालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान्॥२७॥

न कश्चिद्व्याधितो नैव दुःखी नैव कृशस्तथा।
न दीनो दृश्यते तस्मिन्धर्माद्राज्यं प्रशासति॥२८॥
एवं महीं शासति दानवेन्द्रे धर्मेण सम्यक्च दिदृक्षयाऽहम्।
कदाचिदागामथ तस्य लक्ष्मीं विलोकितुं श्रीरमणञ्च सेवितुम्॥२९॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे जलन्धरसभायां नारदाऽऽगमनवर्णनंनाम षोडशोऽध्यायः।।१६।।
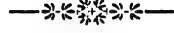
जलन्धर धर्मपथ पर चलने वाला था। उसने इस प्रकार से देवगण को अपने वश में किया तथा प्रजावर्ग का पालन अपने पुत्र की तरह करने लगा। दैत्यराज जलन्धर धर्मतः राज्य शासन करता था, अतः उसके राज्य में प्रजा व्याधियुक्त, दुःखी, कृश अथवा दीन नहीं रहती थी। दानवेन्द्र इस प्रकार से धर्म द्वारा सम्यक्तः पृथिवी का पालन कर रहा था, यह सुनकर मुझे भी उसका राज्य दर्शन करने की इच्छा होने लगी। तब मैं एक बार जलन्धर की राज्यलक्ष्मी का दर्शन करने तथा श्रीपति के सेवा करने के लिये वहां गया।।२७-२९।।

।।षोडश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

सप्तदशोऽध्यायः

नारद दैत्य संवाद, शिव से राहु की प्रार्थना

नारद उवाच

स मां प्रोवाच विधिवत्सम्पूज्याऽतीव भक्तिमान्।
सम्प्रहस्य तदा वाक्यं स्नेहपूर्वं च वै नृप!॥१॥
कुतआगम्यतेब्रह्मन्किञ्चिद्दृष्टंत्वया प्रभो!। यदर्थमिहचाऽऽयातस्तदाऽऽज्ञापयमां मुने॥२॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे नृप! भक्तिमान जलन्धर ने मुझे देखकर विधिपूर्वक मेरा पूजन किया तथा हंसते हुये स्नेहपूर्ण वाक्य से मुझसे कहने लगा—"हे ब्रह्मन्! आप कहां से आ रहे हैं? आपको देखकर यह प्रतीत हो रहा है कि आप किसी विस्मयकारी घटना को देखकर आ रहे हैं। हे मुनिवर! आपका यहां किस निमित्त से आगमन हुआ है, वह कहिये।।१-२।।

नारद उवाच

गतः कैलाशसिखरं दैत्येन्द्राहं यदृच्छया। तत्रोमया समासीनं दृष्टवानस्मि शङ्करम्॥३॥

योजनायुतविस्तीर्णे कल्पवृक्षमहावने। कामधेनुशताकीर्णे चिन्तामणिसुदीपिते॥४॥
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं विस्मयो मेऽभवत्तदा। क्वाऽपीदृशी भवेद्वृद्धिस्त्रैलोक्येवानवेतिच॥५॥

तदा तवाऽपि दैत्येन्द्र! समृद्धिः संस्मृता मया।
तद्विलोकनकामोऽस्मि त्वत्सान्निध्यमिहाऽऽगतः॥६॥
त्वत्समृद्धिमिमां पश्यन्स्त्रीरत्नरहितां ध्रुवम्।
तर्कयामि शिवादन्यस्त्रिलोक्यां न समृद्धिमान्॥७॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे दैत्यराज! मैं स्वेच्छापूर्वक कैलास गया था। वहां मैंने उमा के साथ आसीन भगवान् शंकर का दर्शन किया। वह स्थान १०००० योजन विस्तृत है। सर्वत्र कल्पतरु का महावन वहां विद्यमान है। सैकड़ों कामधेनु से वह वन भरा हुआ है। वह वन चिन्तामणि के प्रकाश से प्रदीप्त है। मैंने उस महाविस्मयपूर्ण कानन को देखा। तदनन्तर मैं सोचने लगा—त्रिलोक में ऐसी समृद्धि और कहां है? तभी तुम्हारी समृद्धि की बातें मेरे स्मृतिपथ में उदित होने लगीं। इसीलिये मैं उन सम्पत्तियों के दर्शनार्थ तुम्हारे यहां आया हूं। अब तुम्हारी समृद्धि को देखकर यह प्रतीत हो रहा है कि शिव के अतिरिक्त समृद्धिशाली कोई नहीं है। क्योंकि तुम्हारी समृद्धि तो स्त्रीरूपी रत्न से रहित जो है।।३-७।।

अप्सरोनागकन्याद्यायद्यपित्वद्वशेस्थिताः। तथाऽपितात पार्वत्या रूपेणसदृशाध्रुवम्॥८॥
यस्या लावण्यजलधौ निमग्नश्चतुराननः। स्वधैर्यममुचत्पूर्वं तया काऽन्योपमीयते॥९॥
वीतरागोऽपि हि यथा मदनारिःस्वलीलया। सौन्दर्यगहनेऽभ्रामि शफरीरूपया पुरा॥१०॥

यस्या पुनः पुनः पश्यन्रूपं धाताऽपि सर्जने।
ससर्जाऽप्सरसस्तासां तत्समैकाऽपि नाभवत्॥११॥

अतःस्त्रीरत्नसम्भोक्तुःसमृद्धिस्तस्यसावरा। तथा नतव दैत्येन्द्रसर्वरत्नाऽधिपस्यच॥१२॥
एवमुक्त्वा तमामन्त्र्य गते सति स दैत्यराट्। तद्रूपश्रवणादासीदनङ्गज्वरपीडितः॥१३॥

यद्यपि अप्सरा-नागकन्या आदि तो तुम्हारे वश में हैं, तथापि वे निःसंदिग्ध रूप से पार्वती जैसी सुन्दरी नहीं हैं। पूर्वकाल में जिनके लावण्य समुद्र में निमग्न होकर चतुरानन ब्रह्मा भी धैर्य से च्युत हो गये थे, उन रूपवती पार्वती के साथ किस रमणी की उपमा दी जाये? पूर्वकाल में काम शत्रु हर ने भी मानों शफरी मछली का रूप धारण करके लीलावशात् गिरिजारूपी सौन्दर्य जल में विचरण किया था। विधाता ब्रह्मा ने भी सृष्टिकाल में उनका रूप बारम्बार देखकर अप्सरागण का सृजन किया था, तथापि उन ब्रह्मा की इस रूप सृष्टि की बात क्या करूं? एक भी अप्सरा गौरी के समान रूपवती नहीं है। हे दैत्येन्द्र! यद्यपि तुम समस्त रत्नों के अधिपति हो, तथापि सम्भोग विषय में तो शिव की ही समृद्धि श्रेष्ठतर है। तुम्हारी सम्भोग सम्पत्ति श्रेष्ठ नहीं है।" दैत्यपति जलन्धर से यह सम्भाषण करने के अनन्तर नारद वहां से चले गये तथापि वह दानवराज जलन्धर उस रूप श्रवण के कारण काम ज्वर से पीड़ित हो गया।।८-१३।।

अथ समप्रेषयामास सदूतं सिंहिकासुतम्।
त्र्यम्बकायाऽपि च तदा विष्णुमायाविमोहितः॥१४॥

कैलासमगमद्राहुः कुर्वञ्छुक्लेन्दुवर्चसम्। कार्ष्ण्येन कृष्णपक्षेन्दुवर्चसंस्वाङ्गजेनतम्॥१५॥
निवेदितस्तदेशाय नन्दिना प्रविवेश सः। त्र्यम्बकभ्रूलतासञ्ज्ञाप्रेरितोवाक्यमब्रवीत्॥१६॥

तदनन्तर विष्णु माया से मोहित दैत्यपति जलन्धर ने त्रिलोचन महादेव के पास दूतरूप में राहु दैत्य को भेजा। राहु शीघ्रता से कैलास पहुंचा। उसके गमन काल में उसके अंग के कृष्णवर्ण से शुक्लपक्षीय चन्द्रमा के समान कान्तिवाला कैलास पर्वत भी कृष्णपक्ष के चन्द्रमा के समान मलिन लगने लगा। जब राहु वहां द्वार पर पहुंचा तब नन्दी ने राहु के आगमन का संवाद शिव को प्रदान किया। भगवान् का आदेश पाकर नन्दी राहु को शिव के पास लाये। शिव ने जब राहु को देखा तब उन्होंने अपनी भ्रूमंगी के इशारे से उसे वक्तव्य विषय कहने का संकेत दिया, तब राहु कहने लगा।।१४-१६।।

राहुरुवाच

देवपन्नगसेव्यस्य त्रैलोक्याधिपतेः प्रभोः। सर्वरत्नेश्वरस्य त्वमाज्ञां शृणु वृषध्वज!॥१७॥
श्मशानवासिनो नित्यमस्थिभारवहस्य च। दिगम्बरस्यते भार्याकथं हैमवतीशुभा॥१८॥
अहं रत्नाधिनाथोऽस्मि सा च स्त्रीरत्नसञ्ज्ञिका।
तस्मान्ममैव सा योग्या नैव भिक्षाशिनस्तव॥१९॥

राहु कहता है—हे वृषध्वज! त्रैलोक्यपति मेरे स्वामी दैत्यराज जलन्धर की सेवा देवता तथा पन्नगादि सदा करते रहते हैं। वे समस्त रत्नों के अधीश्वर हैं। अब उनका आदेश सुने। "आप सतत् श्मशान में रहते हैं तथा अस्थिभार वहन करते रहते हैं। साथ ही आप दिगम्बर हैं। अतः शोभना हैमवती गिरिजा किस प्रकार से आपकी पत्नी हो सकती हैं? मैं ही एक मात्र समस्त रत्नों का अधीश्वर हूं। हिमालय पुत्री भी रमणीरत्न हैं। अतएव हैमवती गिरिजा मेरे ही योग्य हैं। वे भिक्षाभोगी आपके लिये वे कदापि योग्य नहीं हैं—"।।१७-१९।।

नारद उवाच

वदत्येवं तदाराहौ भ्रूमध्याच्छूलपाणिनः। अभवत्पुरुषो रौद्रस्तीव्राशनिसमस्वनः॥२०॥
सिंहास्यः प्रललज्जिह्वःस ज्वलन्नययोमहान्। ऊर्ध्वकेशः शुष्कतनुर्नृसिंहइवचाऽपरः॥२१॥
स तं खादितुमायान्तं दृष्ट्वाराहुर्भयातुरः। अधावत स वेगेन बहिः स च दधार तम्॥२२॥
स च राहुर्महाबाहो मेघगम्भीरयागिरा। उवाच देवदेवत्वं पाहि मां शरणागतम्॥२३॥
ब्राह्मणं मां महादेव! खादितुं समुपागतः। महादेवोवचःश्रुत्वाब्राह्मणस्यतदाऽब्रवीत्॥२४॥
नैवाऽसौ वध्यतामेतिदूतोऽयंपरवान्यतः। मुञ्चेति पुरुषः श्रुत्वा राहुंतत्याजसोऽम्बरे।
राहुं त्यक्त्वाऽथ पुरुषस्तदा रुद्रं व्यजिज्ञपयत्॥२५॥

देवर्षि नारद कहते हैं—जब राहु यह कह रहा था तभी शूलपाणि प्रभु के भ्रूमध्य से वज्र के समान एक रौद्र पुरुष उत्पन्न हो गया। उसका मुख सिंह के समान था। उसकी जिह्वा लपलपा रही थी। नयन अग्निवत् उज्वल थे। उसके केश ऊर्ध्व में उठे हुये थे, शरीर कृशकाय था। अधिक क्या कहूं। वह व्यक्ति मानो द्वितीय नृसिंहरूप प्रादुर्भूत लग रहा था। यह पुरुष राहु के भक्षणार्थ उद्यत हो गया। उसे अपनी ओर आते देखकर

भयातुर राहु वहां से बाहर भाग गया। उस भीषण पुरुष ने वेग पूर्वक राहु का पीछा किया तथा कुछ आगे जाकर राहु को पकड़ लिया। महाबाहु राहु उस पुरुष से आक्रान्त होकर मेघगंभीर स्वर में कहने लगा "हे देवदेव! मैं आपका शरणागत हूं। आप मेरी रक्षा करिये। हे महादेव! मैं कश्यप का पुत्र ब्राह्मण हूं। यह पुरुष मेरा ग्रास करना चाह रहा है।" तब महादेव ने ब्राह्मण राहु का कातर वाक्य सुनकर उस भीषण से कहा कि "यह व्यक्ति दूत होने के कारण पराधीन है। इसलिये अवध्य है। तुम इसे छोड़ दो।" उस पुरुष ने महादेव का आदेश सुनकर आकाशपथ में राहु को त्याग दिया तथा रुद्रदेव से कहने लगा।।२०-२५।।

पुरुष उवाच

क्षुधा मां बाधतेऽत्यन्तंक्षुत्क्षामश्चास्मिसर्वथा। किं भक्षयामिदेवेशतदाज्ञापयमांप्रभो॥२६॥

पुरुष कहता है—" हे देवेश! क्षुधा मुझे अत्यन्त पीड़ा दे रही है। मैं सर्वदा भूखा हूं। हे प्रभो! मैं क्या खाऊं, कृपया आज्ञा दीजिये।।२६।।

ईश्वर उवाच

भक्षयस्वाऽऽत्मनः शीघ्रं मांसं त्वं हस्तपादयोः॥२७॥

ईश्वर कहते हैं—तुम शीघ्र अपने हाथ तथा पैर के मांस का भक्षण करो।।२७।।

नारद उवाच

स शिवेनैवमाज्ञप्तश्चखाद पुरुषः स्वकम्। हस्तपादोद्भवंमांसं शिरःशेषोयथाऽभवत्॥२८॥
दृष्ट्वा शिरोऽवशेषं तं सुप्रसन्नस्तदा शिवः। उवाच भीमकर्माणं पुरुषञ्जातविस्मयः॥२९॥

नारद कहते हैं—उस पुरुष ने शिव आदेशानुरूप अपने हाथ तथा पैर को इस प्रकार खाया जिससे उसका शिर मात्र बच गया। जब शिव ने उसका मस्तक मात्र बचा देखा, तब वे अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उन्होंने विस्मयान्वित होकर उस पुरुष को आदेश दिया।।२८-२९।।

ईश्वर उवाच

त्वं कीर्तिमुखसञ्ज्ञोहिभवमद्द्वारिगःसदा। त्वदर्चां ये न कुर्नन्ति नैवतेमेप्रियङ्कराः॥३०॥

ईश्वर कहते हैं—"तुम कीर्त्तिमुख नाम से विदित होंगे। तुम सतत् मेरे द्वार पर स्थित रहो। जो तुम्हारी पूजा नहीं करेगा, वह कदापि मेरी कृपा प्राप्त नहीं कर सकेगा।।३०।।

नारद उवाच

तदाप्रभृति देवस्य द्वारिकीर्त्तिमुखः स्थितः। नार्चयन्तीह ये पूर्वं तेषामर्चावृथाभवेत्॥३१॥
राहुर्विमुक्तो यस्तेन सोऽपि तद्बर्बरेस्थले। अतः स बर्बरोद्भूतइति भूमौप्रथांगतः॥३२॥
ततः स राहुः पुनरेव जातमात्मानमस्मिन्निति मन्यमानः।
समेत्य सर्वं कथयाम्बभूव जलन्धरायैव विचेष्टितं तत्॥३३॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे जलन्धरोपाख्याने दूतवाक्यकथनंनाम सप्तदशोऽध्यायः।।१७।।

—※※※—
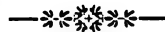
नारद कहते हैं—तब से देवदेव द्वार पर कीर्त्तिमुख स्थित रहते हैं। जो व्यक्ति देवदेव की अर्चना के पहले इन कीर्त्तिमुख की पूजा नहीं करता, उसकी पूजा व्यर्थ है। राहु बर्बक नामक स्थान में इस पुरुष के आक्रमण से मुक्त हुये थे। तभी राहु का पृथिवी पर बर्बरोद्भूत नाम प्रसिद्ध है। तदनन्तर राहु ने स्वयं को नवजीवन प्राप्त मान लिया। जलंधर के समीप आकर उन्होंने कैलास पर्वतस्थ समस्त घटित समाचार कहा।।३१-३३।।

।।सप्तदश अध्याय समाप्त।।

अष्टादशोऽध्यायः

रुद्रसेना पराभव

नारद उवाच

जलन्धरस्तुतच्छ्रुत्वाकोपाकुलितविग्रहः। निर्जगामाऽऽशुदैत्यानांकोटिभिःपरिवारितः।।१।।

गच्छतोऽस्याऽग्रतः शुक्रो राहुर्दृष्टिपथेऽभवत्।
मुकुटश्चाऽपतद्भूमौ वेगात्प्रस्खलितस्तदा।।२।।

दैत्यसैन्याऽऽवृतैस्तस्य विमानानां शतैस्तदा। व्यराजत नभःपूर्णं प्रावृषीवयथाघनैः।।३।।

तस्योद्योगं तदा दृष्ट्वादेवाःशक्रपुरोगमाः। अलक्षितास्तदाजग्मुःशूलिनं तं व्यजिज्ञपुः।।४।।

नारद कहते हैं—दूत का वाक्य सुनकर दैत्यराज जलन्धर समस्त शरीर रोषपूर्वक आकुल हो उठा। वह करोड़ों दानवगण से घिरकर असुरराज जलन्धर शीघ्र ही युद्धार्थ चला गया। दैत्यराज के आगे-आगे शुक्र चल रहे थे। राहु उनका पथ प्रदर्शित कर रहा था। जलन्धर अतीव वेगपूर्वक चल रहा था। इस वेग से उसके शिर से मुकुट स्खलित हो गया तथा भूमि पर गिर पड़ा। अगणित दैत्य सेना से घिरे हुये शत-शत विमान वर्षाकालीन जलधर के समान नभोमण्डल को पूर्ण करके शोभा पाने लगे। तब इन्द्रादि प्रमुख देवता उसके इस उद्योग को देखकर अलक्षित भाव से शूलपाणि शंकर की शरण में गये तथा उनसे निवेदन करने लगे।।१-४।।

देवा ऊचुः

न जानासि कथंस्वामिन्देवापत्तिमिमांविभो। तदस्मद्रक्षणार्थायजहिसागरनन्दनम्।।५।।

देवगण कहते हैं—हे स्वामी! पता नहीं देवगण के लिए कैसी विपत्ति उपस्थित हो गई है? हे प्रभो! हमारी रक्षा के लिये जलन्धर का वध करिये।।५।।

नारद उवाच

इति देववचः श्रुत्वा प्रहस्य वृषभध्वज!। महाविष्णुं समाहूय वचनं चेदमब्रवीत्।।६।।

नारद कहते हैं—वृषध्वज ने देवगण का निवेदन सुनकर हास्य के साथ महाविष्णु को बुलाकर कहा।।६।।

ईश्वर उवाच

जलन्धरः कथं विष्णो! न हतः सङ्गरे त्वया।
तद् गृहं चाऽपि यातोऽसि त्यक्त्वा वैकुण्ठमात्मनः।।७।।

ईश्वर कहते हैं—हे विष्णु! आपने जलन्धर का वध युद्धकाल में क्यों नहीं किया? आप वैकुण्ठ का त्याग करके उसके घर में क्यों रहते हैं?।।७।।

विष्णुरुवाच

तवांशसम्भवत्वाच्चभ्रातृत्वाच्चतथा श्रियः। न मया निहतःसङ्ख्येत्वमेनंजहिदानवम्।।८।।

विष्णु कहते हैं—जलन्धर आपके अंश से उत्पन्न है। यह पहला कारण है। दूसरा कारण यह है कि वे मेरी प्रिय पत्नी लक्ष्मी का बड़ा भाई है। अतः मैंने उस असुर का वध नहीं किया।।८।।

ईश्वर उवाच

नायमेभिर्महातेजाः शस्त्रास्त्रैर्वध्यते मया। देवैः सहस्वतेजोंशं शस्त्रार्थं दीयतां मम।।९।।

ईश्वर कहते हैं—मैं भी इन सब अस्त्र-शस्त्र से महातेजस्वी जलन्धर का वध नहीं कर सकता। हे विष्णु! शस्त्र निर्माणार्थ आप अन्य देवगण के साथ अपना भी तेज मुझे अर्पित करिये।।९।।

नारद उवाच

अथविष्णुमुखादेवाःस्वतेजांसिददुस्तदा। तान्यैक्यमागतानीशोदृष्ट्वा स्वंचामुचन्महः।।१०।।
तेनाऽकरोन्महादेवो सहसा शस्त्रमुत्तमम्। चक्रं सुदर्शनंनाम ज्वालामालातिभीषणम्।।११।।
ततः शेषेण च तदा वज्रंच कृतवान्हरिः। तावज्जलन्धरो दृष्टः कैलासतलभूमिषु।।१२।।
हस्त्यश्वरथपत्नीनां कोटिभिः परिवारितः। तं दृष्ट्वा लक्षिताजग्मुर्देवाःसर्वेयथागताः।।१३।।
गणाश्च समसज्जन्त युद्धायाऽतित्वरान्विताः।
नन्दीभवक्त्रसेनानीमुखाः सर्वे शिवाज्ञया।।१४।।
अवतेरुर्गणा वेगात्कैलासाद्युद्धदुर्मदाः। ततः समभवद्युद्धं कैलासोपत्यका भुवि।।१५।।
प्रमथाधिपदैत्यानां घोरशस्त्रास्त्रसङ्कुलम्। भेरीमृदङ्गशंखौघनिःस्वनैर्वीरहर्षणैः।।१६।।
गजाश्वरथशब्दैश्च नादिता भूर्व्यकम्पत। शक्तितोमरबाणौघमुसलप्रासपट्टिशैः।।१७।।
व्यराजतः नभः पूर्णमुल्काभिरिवसम्वृतम्। निहतरथनागाश्वपत्तिभिर्भूर्व्यराजत।।१८।।

नारद कहते हैं—तदनन्तर इस तेज समूह के एकत्र हो जाने पर शिव ने वहां अपना भी तेज छोड़ा। शिव ने इस प्रकार उस तेजराशि के द्वारा तत्क्षण ज्वालामालायुक्त सुदर्शन नामक उत्तम शस्त्र वह चक्र निर्मित किया। तदनन्तर जैसे जलन्धर कोटि-कोटि हस्ती, अश्व, रथ तथा पैदल सेना से घिर कर कैलास पर्वत की

घाटी में आया, उसी प्रकार त्वरान्वित देवगण भी यह देखकर अपने-अपने गण के अन्तर्गत युद्धार्थ सज्जित होकर उसके सामने पहुंचे। शिव का आदेश पाकर नन्दी आदि प्रमुख युद्ध दुर्मद सेनापतिगण अपने-अपने गणों के साथ कैलास शिखर से प्रचण्ड वेग से उतरे। तब कैलास शैल की उपत्यका भूमि पर घोर देवासुर संग्राम छिड़ गया। उस समरभूमि में दैत्य तथा प्रमथपतिगण घोरतर अस्त्र-शस्त्र से समाकुल हो गये। वीरगण के हर्षोत्पादक भेरी, मृदङ्ग, शंख, गज, अश्व तथा रथ शब्द से निनादित होकर भूमितल कम्पित होने लगा। वीरगण के द्वारा छोड़ी गयी शक्ति, तोमर, बाण, मूषल, प्रास तथा पट्टिशयुक्त आकाश परिपूर्ण हो गया। मानो आकाश उल्का से भर गया हो। भूमि तल पर भी उसी प्रकार से मारे गये गज, अश्व, सेना तथा रथ समूह भीषण रूप धारण कर रहे थे।।१०-१८।।

वज्राहताचलशिरःशकलैरिवसम्वृता। प्रमथाहतदैत्यौघैर्दैत्याहतगणैस्तथा।।१९।।
वसासृङ्मांसपङ्काढ्या भूरगम्याऽभवत्तदा। प्रमथाहतदैत्यौघान्भार्गवः समजीवयत्।।२०।।
युद्धे पुनः पुनस्तत्र मृतसञ्जीविनीबलात्। तंदृष्ट्वा व्याकुलीभूतागणाःसर्वेभयान्विताः।
शशंसुर्देवदेवाय तत्सर्वं शुक्रचेष्टितम्।।२१।।
अथ रुद्रमुखात्कृत्या बभूवाऽतीवभीषणा। तालजङ्घा दरीवक्त्रा स्तनापीडितभूरुहा।।२२।।
सा युद्धभूमिमासाद्यभक्षयन्तीमहासुरान्। भार्गवं स्वभगे धृत्वा जगामान्तर्हितानभः।।२३।।

प्रमथगण द्वारा मारे गये दैत्य तथा दैत्यों द्वारा मारे गये प्रमथगण भूमि पर पड़े थे। मानो वज्र से आहत शैलखण्ड समूह पड़े हों। इनसे समरभूमि आच्छादित हो उठी थी। उस समय समर में पतित सेनागण की वसा, शोणित तथा मांस के कीचड़ से युद्धभूमि अगम्य हो गयी थी। उस समय प्रमथगण द्वारा पुनः-पुनः जो सब असुर सेना मर रही थी, मृत संजीवनी मन्त्रबल से भार्गवशुक्र उनको सम्यक् रूप से जीवित कर देते थे। देवगण शुक्र का यह कार्य देखकर भय से आकुलित हृदय होकर देवाधिदेव शिव के पास गये। उन्होंने शिव से शुक्र द्वारा आचरित सभी कार्यों का वर्णन किया। तब रुद्रदेव के (शिव के) मुख से एक अतीव भीषणाकृति कृत्या आविर्भूत हो गयी। इस कृत्या का जघन प्रदेश ताल वृक्ष जैसा था। गाल गिरिगुहा के समान थे। उसके स्तनद्वय इतने विशाल थे जिसके कारण जब वह चलती थी तब वृक्ष टकराने लगते। कृत्या वहां समरभूमि में पहुंची और वह वहां महासुरगण का भक्षण करने लगी, तदनन्तर भार्गव शुक्र को अपने भग प्रदेश में दबाकर आकाश में अन्तर्हित् हो गयी।।१९-२३।।

विधृतं भार्गवं दृष्ट्वा दैत्यसैन्यं गणास्तदा। अम्लानवदना हर्षान्निजघ्नुर्युद्धदुर्मदाः।।२४।।
अथाऽभज्यत दैत्यानां सेना गणभयार्दिता। वायुवेगेनाहतेवप्रकीर्णा तृणसन्ततिः।।२५।।
भग्नाङ्गणभयात्सेनां दृष्ट्वाऽमर्षयुता ययुः।
निशुम्भशुम्भौ सेनान्यौ कालनेमिश्च वीर्यवान्।।२६।।
त्रयस्ते वारयामासुर्गणसेनां महाबलाः। मञ्चन्तः शरवर्षाणि प्रावृषीव बलाहकाः।।२७।।

युद्धदुर्मद देवसेनागण कृत्या द्वारा भार्गव का हरण होते देखकर अम्लान मुख हो गये तथा प्रसन्न अन्तःकरण द्वारा असुर सैन्य का वध करने लगे। तदनन्तर देवतागण के भय से अत्यन्त पीड़ित दानव सैन्यगण

वायु से आहत हो रहे तृण समूह की तरह भग्न होने लगे। तब प्रमथगण के भय से भग्न अपनी सेना को देखकर दानव सेनानायकगण अमर्ष में भर गये तथा शुम्भ, निशुम्भ प्रभृति वीर्यवान् कालनेमि के तीनों सेनापति वहां पहुंचे और वर्षाकालीन मेघ जैसे जलवर्षा करते हैं, तदनुरूप अगणित शर वर्षा करने लगे। इस प्रकार उन्होंने प्रमथगण की सेना को रोक दिया।।२४-२७।।

ततो दैत्यशरौघास्ते शलभानामिव व्रजाः। रुरुधुः खं दिशःसर्वा गणसेनामकम्पयन्॥२८॥
गणाः शरशतैर्भिन्ना रुधिरासारवर्षिणः। वसन्ते किंशुकाभासा न प्राज्ञायत किञ्चन॥२९॥

पतिताः पात्यमानाश्च भिन्नाश्छिन्नास्तदा गणाः।
त्यक्त्वा सङ्ग्रामभूमिं ते सर्वेऽपि विमुखाऽभवन्॥३०॥
ततः प्रभग्नं स्वबलं विलोक्य शैलादिलम्बोदरकार्त्तिकेयाः।
त्वरान्विता दैत्यवरान्प्रसह्य निवारयामासुरमर्षिणस्ते॥३१॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे जलन्धरोपाख्याने रुद्रसेनापराभवोनामाऽष्टादशोऽध्यायः।।१८।।

—❀—

तदनन्तर इन तीन दैत्यों ने शरवृष्टि द्वारा प्रमथगणों की सेना को कम्पित कर दिया तथा बाणों से आकाश तथा सभी दिशाओं को आच्छन्न कर दिया। असुरगण के सैकड़ों बाणों से विद्ध प्रमथगणों के देह से रुधिर की धारा प्रवाहित होने लगी। वे पलाशपुष्पवत् रक्ताभ होकर स्थित थे। उस समय उनमें तनिक भी चेतनास्फूर्त्ति नहीं बची थी। गणसेनाओं के भूपतित होने के कारण तथा देह के छिन्न-भिन्न होते रहने के कारण सभी देवपक्षीय लोग समरभूमि त्यागकर युद्धविमुख होने लगे। नन्दी, गणपति, कार्त्तिकेय अपनी सेना को भग्न होते देखकर शीघ्रतापूर्वक असुर सैन्य के सम्मुख आकर उनका वध करने लगे।।२८-३१।।

।।अष्टादश अध्याय समाप्त।।

एकोनविंशोऽध्यायः

वीरभद्र पतन वर्णन

नारद उवाच

ते गणाधिपतीन्दृष्ट्वा नन्दीभमुखषणमुखान्। अमर्षादभ्यधावन्त द्वन्द्वयुद्धाय दानवाः॥१॥
नन्दिनं कालनेमिश्च शुम्भो लम्बोदरं तथा। निशुम्भः षणमुखंवेगादभ्यधावतदंशितः॥२॥
निशुम्भःकार्त्तिकेयस्य मयूरं पञ्चभिः शरैः। हृदि विव्याध वेगेन मूर्च्छितःसपपातच॥३॥

ततः शक्तिधरः शक्तिं यावज्जग्राहरोषितः। तावन्निशुम्भोवेगेन स्वशक्त्यातमपातयत्।।४।।
नन्दीश्वरः शरव्रातैः कालनेमिमवध्यत। सप्तभिश्चहयान्केतुं त्रिभिः सारथिमच्छिनत्।।५।।

देवर्षि नारद कहते हैं—गणाधिपति नन्दी, गणपति तथा कार्त्तिकेय के समरभूमि में आने पर दुर्मद दानवगण अमर्ष में भर गये तथा द्वन्द्व युद्ध करने दौड़ पड़े। तब युद्ध सज्जा से सज्जित होकर कालनेमि नन्दी से, शुम्भ लम्बोदर गणेश से तथा निशुम्भ षडानन कार्त्तिकेय से युद्ध करने लगे। निशुम्भ ने वेगगामी पञ्चबाण से षडानन वाहन मयूर का हृदय विद्ध किया, जिससे वह पृथिवी पर गिर पड़ा। तदनन्तर रोषपूर्ण होकर शक्तिधारी कार्त्तिकेय के शक्ति उठाते-उठाते निशुम्भ ने प्रचण्ड वेग द्वारा अपनी शक्ति से उसे गिरा दिया। नन्दीश्वर बाणों से कालनेमि पर प्रहार करने लगे। उन्होंने सात बाण द्वारा कालनेमि के रथ के अश्व तथा पताका को और तीन बाण से उसके सारथी का शिरच्छेद कर दिया।।१-५।।

कालनेमिस्तु संक्रुद्धो धनुश्चिच्छेद नन्दिनः। तदपास्य स शूलेनतं वक्षस्यहनद्बली।।६।।
स शूलभिन्नहृदयो हताश्वो हतसारथिः। अद्रेःशिखरमामुच्यशैलादिं सोऽप्यपातयत्।।७।।
अथ शुम्भो गणेशश्च रथमूषकवाहनौ। युध्यमानौ शरव्रातैः परस्परमविध्यताम्।।८।।
गणेशस्तु तदा शुम्भं हृदि विव्याध पत्रिणा। सारथिं च त्रिभिर्बाणैः पातयामास भूतले।।९।।

कालनेमि ने भी क्रोधित होकर नन्दी का धनुष भग्न कर दिया। तब बली नन्दी ने धनुष त्याग कर शूल से उनका हृदय भेदन कर दिया। विदग्ध हृदय, अश्व तथा सारथी रहित निशुम्भ ने तब एक शैल शिखर फेंककर नन्दी को नीचे गिरा दिया। तदनन्तर रथ वाहन शुम्भ तथा मूषिक वाहन गणेश आपस में बाणों की वर्षा द्वारा युद्ध प्रवृत्त हो गये और एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। तब गणेश ने बाण से शुंभ का हृदय बिद्ध करके तीन बाणों से उसके सारथी को भूतल पर गिरा दिया।।६-९।।

ततोऽतिक्रुद्धः शुम्भोऽपि वाणषष्ट्या गणाधिपम्।
मूषकञ्च त्रिभिर्विद्ध्वा ननाद जलदस्वनः।।१०।।

मूषकः शरभिन्नाङ्गश्चचाल दृढवेदनः। लम्बोदरश्च पतितः पदातिरभवन्नृप।।११।।
ततो लम्बोदरः शुम्भं हत्वा परशुना हृदि। अपातयत्तदा भूमौ मूषकञ्चारुहत्पुनः।।१२।।
कालनेमिर्निशुम्भश्चाऽप्युभौलम्बोदरंशरैः। युगपज्जघ्नतुः क्रोधात्तोत्रैरिव महाद्विपम्।।१३।।
तम्पीड्यमानमालोक्य वीरभद्रो महाबलः। अभ्यधावत वेगेन भूतकोटियुतस्तदा।।१४।।

तदनन्तर महाक्रोधित शुम्भ भी साठ बाणों से गणेश को तथा तीन बाणों से उनके वाहन मूषिक को आहत करके मेघ के समान गर्जन करने लगा। शरविद्ध मूषिक अत्यन्त वेदना के कारण विचलित हो गया। गणपति भूतल पर गिर गये। वे वाहनरहित हो गये। तब गणपति ने अपने परशु से शुम्भ का हृदय विद्ध कर दिया। जब शुम्भ परशु के आघात से भूपतित हो गया, तब गणपति पुनः मूषिक पर बैठ गये। इसके अनन्तर कालनेमि और निशुम्भ गणपति को बाणों से विद्ध करने लगे। कालनेमि तथा निशुम्भ नामक दानवद्वय अंकुश से एक साथ ही गणपति पर उस तरह प्रहार करने लगे, जैसे महागज पर प्रहार किया जाता है। उस समय गणपति को इस प्रकार पीड़ित देखकर महाबली वीरभद्र करोड़ों भूतगण के साथ प्रचण्ड वेग से असुरों की ओर दौड़ पड़े।।१०-१४।।

कूष्माण्डभैरवाश्चाऽपि वेताला योगिनीगणाः।
पिशाचयोगिनीसङ्घा गणाश्चाऽपि तमन्वयुः॥१५॥
ततः किलकिलाशब्दैः सिंहनादैः सुघर्घरैः। भेरीतालमृदङ्गैश्च पृथिवी समकम्पत॥१६॥
ततो भूतान्यधावन्तभक्षयन्तिस्मदानवान्। उत्पतन्त्यापतन्तिस्म ननृतुश्चरणाङ्गणे॥१७॥
नन्दी च कार्त्तिकेयश्च समाश्वस्य त्वरान्वितौ। निजघ्नतू रणे दैत्यान्निरन्तरशरव्रजैः॥१८॥
छिन्नभिन्ना हतैर्दैत्यैःपतितैर्भक्षितैस्तदा। व्याकुलासाऽभवत्सेना विषण्णवदनातदा॥१९॥
प्रविध्वस्तां तदा सेनां दृष्ट्वा सागरनन्दनः। रथेनाऽतिपताकेन गणानभिययौ बली॥२०॥
हस्त्यश्वरथसंह्लादाः शंखभेरीस्वनास्तथा। अभवन्सिंहनादाश्च सेनयोरुभयोस्तदा॥२१॥

कूष्माण्ड, भैरव, बेताल, योगिनी तथा पिशाचगण दलबद्ध होकर वीरभद्र के साथ आये थे। वे लोग भीषण किलकिलाहट, सिंहनाद, गंभीर घर्घरध्वनि तथा भेरी-ताल-मृदङ्ग के शब्द के साथ पृथिवी को कम्पित कर रहे थे। तत्पश्चात् दानवों को खाते-खाते ये सभी भूतगण असुरों पर चढ़ दौड़े। कोई ऊर्ध्व से, कोई अधः से उतरते हुये रणभूमि में नृत्य कर रहे थे। इधर नन्दी तथा षडानन भी गणेश को आश्वस्त करके बाणों से निरन्तर दानवों पर प्रहार कर रहे थे। कार्त्तिकेय तथा नन्दी के बाणों से पीड़ित दावनगण में से कोई मृत, कोई भूपतित, कोई भक्षित भी हो रहा था। इस प्रकार दैत्य सैन्य छिन्न-भिन्न हो गयी। विषण्ण मुख किये हुये असुर सैन्य के योद्धा अत्यन्त व्याकुल हो गये। तब जलधिपुत्र बलवान जलन्धर अपने सैन्य को ध्वस्त होते देखकर अतीव दीर्घ पताका वाले रथ पर वैठकर प्रमथगण की सेना के सामने आ पहुंचा। दोनों सेना के हाथी, अश्व तथा रथ का भीषण शब्द, शंख भेरी एवं सिंहनाद उत्थित होने लगा।।१५-२१।।

जलन्धरशरव्रातैर्नीहारपटलैरिव। द्यावापृथिव्योराच्छिन्नमन्तरं समपद्यत॥२२॥
गणेशं पञ्चभिर्विद्ध्वा शैलादिं नवभिः शरैः। वीरभद्रञ्चविंशत्या ननाद जलदस्वनः॥२३॥
कार्त्तिकेयस्तदा दैत्यं शक्त्या विव्याध सत्वरः।
युयुधे शक्तिनिर्भिन्नः किञ्चिद्व्याकुलमानसः॥२४॥
ततः क्रोधपरीताक्षः कार्त्तिकेयंजलन्धरः। गदयाताडयामास स च भूमितलेऽपतत्॥२५॥
तथैव नन्दिनं वेगादपातयत भूतले। ततो गणेश्वरः क्रुद्धो गदां परशुनाऽहनत्॥२६॥
वीरभद्रस्त्रिभिर्बाणैर्हृदि विव्याध दानवम्। सप्तभिश्चहयान्केतुं धनुश्छत्रंचचिच्छिदे॥२७॥
ततेऽतिक्रुद्धो दैत्येन्द्रः शक्तिमुद्यम्यदारुणाम्।
गणेशं पातयामास रथञ्चाढन्यमथाऽऽरुहत्॥२८॥

युद्ध में जलन्धर के बाणों से आकाश तथा पृथिवी के बीच का स्थान ऐसे भर गया मानो कुहरा छा गया हो! जलन्धर ने गणपति को पांच बाणों से, नन्दी को नौ बाण से तथा वीरभद्र को बीस बाणों से विद्ध किया। जब वह बादल जैसा गर्जन करने लगा, तब षडानन कार्त्तिकेय ने शीघ्रतापूर्वक शक्ति से जलन्धर का भेदन कर दिया। शक्ति प्रहार से जलन्धर अत्यल्प ही व्यथित हुआ था। वह रोष में आपा खोकर गदा द्वारा

कार्त्तिकेय तथा नन्दी पर प्रहार करने लगा तथा उन दोनों को पृथिवी पर गिरा दिया। तब गणपति ने क्रोधित होकर अपने परशु से उसकी गदा को छिन्न-भिन्न कर दिया। वीरभद्र ने तीन बाणों से उस दानव के हृदय को विद्ध किया था। सात बाणों से उसके अश्व, रथ, पताका, धनु तथा छत्र का भी छेदन कर दिया। तदनन्तर दैत्येन्द्र जलन्धर अत्यन्त क्रोधित हो गया। वह एक अन्य रथ पर बैठा तथा एक दारुण शक्ति उठाकर गणेश पर प्रहार किया जिससे वे भूपतित हो गये।।२२-२८।।

अभ्ययादथ वेगेन वीरभद्रं रुषान्वितः। ततस्तौसूर्यसङ्काशौ युयुधाते परस्परम्॥२९॥
वीरभद्रः पुनस्तस्य हयान्बाणैरपातयत्। धनुश्चिच्छेद दैत्येन्द्रः पुप्लुवे परिघायुधः॥३०॥
स वीरभद्रं त्वरयाऽभिगम्य जघान दैत्यः परिघेण मूर्ध्नि।
स चाऽपि वीरः प्रविभिन्नमूर्द्धा पपात भूमौ रुधिरं समुद्गिरन्॥३१॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे जलन्धरोपाख्याने वीरभद्रपतनं नामैकोनविंशोऽध्यायः।।१९।।

तदनन्तर रोष में भर कर जलन्धर अतीव प्रचण्डवेग से वीरभद्र के पीछे दौड़ पड़ा। वीरभद्र ने पुनः बाणवर्षा द्वारा उसके घोड़ों का वध कर दिया। तब दानव ने बाणों से उनका धनुष भंग कर दिया और परिध लेकर बीरभद्र पर उछल पड़ा। उस दानव ने सामने आकर परिध का प्रचण्ड प्रहार वीरभद्र पर किया। इससे वीरभद्र की मूर्द्धा छिन्न हो गयी। वे भूपतित हो गये। उनके मुख से रक्त प्रवाह होने लगा।।२९-३१।।

।।उनविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

विंशोऽध्यायः

शिव-जलन्धर युद्ध

नारद उवाच

पतितं वीरभद्रन्तु दृष्ट्वा रुद्रगणा भयात्। अगमंस्ते रणं हित्वा क्रोशमाना महेश्वरम्॥१॥
अथ कोलाहलं श्रुत्वा गणानां चन्द्रशेखरः। अभ्ययाद्वृषभारूढः संग्रामम्प्रहसन्निव॥२॥
रुद्रमायान्तमालोक्यसिंहनादैर्गणाः पुनः। निवृत्ताः सङ्गरे दैत्यान्निर्जघ्नुः शरवृष्टिभिः॥३॥
दैत्याश्च भीषणं दृष्ट्वा सर्वे चैव विदुद्रुवुः। कार्त्तिकव्रतिनं दृष्ट्वा पातकानीव तद्भयात्॥४॥
जलन्धरोऽथ तान्दैत्यान्निवृत्तान्प्रेक्ष्यसङ्गरे। रोषादधावच्चण्डीशंमुञ्चन्बाणान्सहस्रशः॥५॥

देवर्षि नारद कहते हैं—रुद्रगण ने जब वीरभद्र को भूपतित देखा तब वे भयभीत होकर रणभूमि छोड़

गये। वे चीत्कार करते-करते महेश्वर के पास आये। चन्द्रशेखर ने जब गणसेना का कोलाहल सुना तब वे हंसते हुये रणभूमि में आ गये। रुद्रदेव का आगमन देखकर गणसेना के योद्धा पुनः सिंहनाद करने लगे और वे लौटकर बाणवर्षा द्वारा दैत्यों का वध करने लगे। दैत्यों ने यह भीषण व्यापार देखकर उसी प्रकार वहां से भागना प्रारंभ कर दिया, जैसे कार्त्तिक व्रत देखकर पातक पलायन करने लगते हैं। तदनन्तर दानवेन्द्र जलन्धर ने असुरगण को समरभूमि से पलायित होते देखकर हजारों बाणों की वर्षा आरंभ कर दिया और भवानीपति की ओर दौड़ पड़ा।।१-५।।

शुम्भोनिशुम्भोऽश्वमुखः कालनेमिर्बलाहकः।
खड्गरोमा प्रचण्डश्च घस्मराद्याः शिवं ययुः॥६॥
बाणान्धकारसंछन्नं दृष्ट्वा गणबलं शिवः। बाणजालमवाच्छिद्यस्वबाणैरावृणोन्नभः॥७॥
दैत्याश्च बाणवात्याभिः पीडितानकरोत्तदा। प्रचण्डबाणजालौघैरपातयत भूतले॥८॥
खड्गरोम्णः शिरः कायात्तदा परशुनाऽच्छिनत्।
बलाहकस्य च शिरः खट्वाङ्गेनाऽकरोद् द्विधा॥९॥
बद्ध्वा च घस्मरं दैत्यं पाशेनाऽभ्यहनद्भुवि।
वृषभेण हताः केचित्केचिद् बाणै निपातिताः॥१०॥
न शेकुरसुराःस्थातुं गजाःसिंहार्दिता इव। ततः क्रोधपरीतात्मा वेगाद्रुद्रं जलन्धरः।
आह्वयामास समरे तीव्राशनिसमस्वनः॥११॥

शुम्भ, निशुम्भ, अश्वमुख, कालनेमि, बलाहक, खड्गरोमा, प्रचण्ड, घस्मर, प्रभृति दानवगण शिव के सम्मुखीन हो गये। तदनन्तर शिव ने गणों को उन लोगों के बाणों से समाच्छन्न देखकर अपनी बाण वर्षा द्वारा असुरों के बाणों को छिन्न-भिन्न कर दिया। तदनन्तर महेश्वर की बाण वर्षा से आकाशमण्डल समाच्छादित हो उठा। तब शिव द्वारा छोड़े गये प्रचण्ड बाणजाल से दानव चण्डगण पीड़ित होकर युद्धभूमि पर पतित होने लगे। तब शिव ने परशु से खड्गरोमा का शिर उसके शरीर से अलग कर दिया। खट्वाङ्ग द्वारा भगवान् शिव ने बलाहक दैत्य का मस्तक दो टुकड़े कर दिया। उन्होंने दानव घस्मर को पाश द्वारा बांध कर भूतल पर गिरा दिया। भगवान् के वृषभ ने कोण दानव का वध कर दियों। दैत्यगण भगवान् की बाणवर्षा द्वारा निहत होने लगे। इस प्रकार असुरगण सिंहों द्वारा विमर्दित हाथियों की तरह रणभूमि में टिक नहीं सके। यह देखकर रुष्ट जलन्धर दैत्य ने वेगपूर्वक तीव्र अशनि जैसा भयानक घोष करते हुये शंकर को चुनौती देने लगा।।६-११।।

जलन्धर उवाच

युध्यस्व च मया सार्द्धं किमेभिर्निहतैस्तव॥१२॥
यच्च किञ्चिद्बलं तेऽस्तितद्दर्शयजटाधर!।

जलन्धर कहता है—"हे जटाधारी! मेरे दैत्यों का वध करके क्या होगा? मेरे साथ युद्ध करो। तुम्हारा जितना बल-वीर्य है, उसका प्रदर्शन करो।"।।१२।।

इत्युक्त्वाबाणसप्तत्या जघानवृषभध्वजम्॥१३॥

तान्प्राप्तान्निशितैर्बाणैश्छिच्छेदप्रहसन्निव। ततोहयान्ध्वजंछत्रं धनुश्छिच्छेदशक्तिभिः॥१४॥
स च्छिन्नधन्वा विरथो गदामुद्यम्य वेगवान्।
अभ्यधावच्छिवस्तावद्गदां बाणैर्द्विधाऽच्छिनत्॥१५॥
तथाऽपि मुष्टिमुद्यम्य ययौ रुद्रंजिघांसया। तावच्छिवेन बाणौघैःक्रोशमात्रमपाकृतः॥१६॥
ततो जलन्धरो दैत्यो मत्वा रुद्रं बलाधिकम्।
ससर्ज मायां गान्धर्वीमद्भुतां रुद्रमोहिनीम्॥१७॥
ततो जगुश्च ननृतुर्गन्धर्वाप्सरसाङ्गणाः। तालवेणुमृदङ्गाद्यान्वादयन्ति स्म चाऽपरे॥१८॥
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यंरुद्रोनादविमोहितः। पतितान्यपि शस्त्राणि करेभ्यो न विवेद सः॥१९॥

जलन्धर ने यह कहने के पश्चात् अपने ७ बाणों द्वारा वृषारूढ़ शंकर को विद्ध कर दिया। शिव ने भी हंसते-हंसते सामने से आ रहे उन सभी बाणों को छिन्न कर दिया। साथ ही जलन्धर के रथ के अश्वों, ध्वज तथा धनुष को शक्ति प्रहार से नष्ट कर दिया। जलन्धर विरथ तथा धनुषभंग हो जाने के कारण गदा लेकर शंकर पर दौड़ पड़ा तथापि भगवान् ने अपने बाणों से उसकी गदा को दो खण्ड कर दिया तथापि जलन्धर इतने पर भी शान्त नहीं हुआ। वह मुक्का बांधकर रुद्र को हत करने के लिये उनके समक्ष पहुंचा तथापि शंकर ने उसे बाण के प्रहार से वहां से एक कोस दूर फेंक दिया! तब दैत्य जलन्धर ने रुद्र को अपने से बली जानकर रुद्र को मोहित करने वाली एक अपूर्व गान्धर्वी माया का सृजन किया। उससे वहां अप्सरायें तथा गन्धर्वगण नृत्यगीत तत्पर परिलक्षित होने लगे। अन्य कोई-कोई ताल, वेणु, मृदङ्ग वादन करने लगे। रुद्रदेव इन सब महाश्चर्यपूर्ण मधुर नाद का श्रवण करके विमोहित हो उठे। इस मोह के कारण उनके हाथों से कब धनुष-बाण गिर गया, यह वे नहीं जान सके!।।१३-१९।।

एकाग्रीभूतमालोक्यरुद्रंदैत्योजलन्धरः। कामार्तः सजगामाऽऽशुयत्रगौरीस्थिताऽभवत्॥२०॥
युद्धे शुम्भनिशुम्भाख्यौ स्थापयित्वा महाबलौ।
दशदोर्दण्डपञ्चास्यस्त्रिनेत्रश्च जटाधरः॥२१॥

तदनन्तर दैत्य जलन्धर ने रुद्रदेव को (मायाविमोहित) एकाग्रमन देखकर युद्ध में शुंभ एवं निशुंभ को नियुक्त किया तथा जहां देवी पार्वती स्थित थीं, कामार्त्त होकर शीघ्रता से वहां पहुंचा। मायावी जलन्धर ने अपनी माया से अपना रूप शिव जैसा जटाधारी बना लिया जिसके १० हाथ, ५ मुख, तीन नेत्र थे।।२०-२१।।

महावृषभमारूढः स बभूव जलन्धरः। अथो रुद्रं समायान्तमालोक्य भववल्लभा॥२२॥
अभ्याययौ सखीमध्यात्तद्दर्शनपथेऽभवत्। यावद्ददर्श चार्वङ्गीं पार्वतीं दनुजेश्वरः॥२३॥
तावत्स्ववीर्यं मुमुचे जडाङ्गश्चाऽभवत्तदा। अथज्ञात्वा तदा गौरी दानवं भयविह्वला॥२४॥
जगामाऽन्तर्हिता वेगात्सा तदोत्तरमानसे। तामदृष्ट्वा ततो दैत्यः क्षणाद्विद्युल्लतामिव॥२५॥
जवेनाऽऽगात्पुनर्युद्धं यत्र देवो वृषध्वजः। पार्वत्यपि भयाद्विष्णुं सस्मारमनसातदा।
तावद्ददर्श तं देवं सूपविष्टं समीपगम्॥२६॥

वह महावृषारुढ़ होकर पार्वती के पास पहुंचा। तदनन्तर भववल्लभा भवानी भूतपति को समागत देखकर सतीगण के बीच से उठीं तथा उनका दर्शन करने आगे बढ़ीं। तभी उन पर जलन्धर की दृष्टि पड़ी। उस कपटवेषधारी दनुजराज जलन्धर ने जैसे ही मनोहर अंगों वाली पार्वती को देखा, उसका वीर्य स्खलित हो गया, वह इस कारण वह जड़ सा हो गया। तभी पार्वती को ज्ञात हो गया कि यह तो दानव है। वे भयविह्वल होकर शीघ्रतापूर्वक वहां से उत्तर मानस क्षेत्र में चली गयीं। जब दैत्य ने भी पार्वती को वहां से विद्युत् रेखा की तरह विलीन होते देखा तब वह पुनः वेगपूर्वक वहां आया जहां वृषध्वज शिव थे। तभी पार्वती ने भी भयपूर्वक मन ही मन विष्णु का स्मरण किया। पार्वती ने विष्णु का स्मरण करते ही देखा कि भगवान् विष्णु सामने ही उपस्थित हैं।।२२-२६।।

पार्वत्युवाच

विष्णो! जलन्धरो दैत्यः कृतवान्परमाद्भुतम्।
तत्किं न विदितं तेऽतिचेष्टितं तस्य दुर्मतेः॥२७॥

पार्वती कहती हैं—हे विष्णु! दैत्य जलन्धर ने आज एक विचित्र कर्म किया है। क्या आप उस दुर्मति दैत्य के व्यवहार को नहीं जानते?।।२७।।

विष्णुरुवाच

तेनैव दर्शितः पन्था वयमप्यन्वयामहे। नाऽन्यथा स भवेद्वध्यः पातिव्रत्यसुरक्षितः॥२८॥

भगवान् विष्णु कहते हैं—हे देवि! जलन्धर ने जो मार्ग प्रदर्शित किया है, मैं भी उसी पथ का अनुसरण करूंगा। उस पथ पर चले बिना जलन्धर का वध नहीं होगा तथा आपका पातिव्रत भी रक्षित नहीं हो सकेगा।।२८।।

नारद उवाच

जगाम विष्णुरित्युक्त्वा पुनर्जालन्धरं पुरम्॥२९॥
अथ रुद्रश्च गंधर्वाऽनुगतः सङ्गरे स्थितः। अन्तधानं गतां मायां दृष्ट्वा स बुबुधे तदा॥३०॥
ततो भवो विस्मित मानसः पुनर्जगाम युद्धाय जलन्धरं रुषा।
स चाऽपि दैत्यः पुनरागतं शिवं दृष्ट्वा शरौघैः समवाकिरद्रणे॥३१॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे जलन्धरोपाख्याने शिवजलन्धरयुद्धवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥२०॥

—❋❋❋—

नारद कहते हैं—विष्णु यह कहकर जलन्धरपुर गये। तभी समरभूमि में अवस्थित गन्धर्व भी शिव के अनुगत हो गये और शिव भी माया के अन्तर्हित् हो जाने से प्रबुद्ध हो गये। उस समय विस्मित भगवान् भव (शिव) रोषयुक्त हो गये। उन्होंने पुनः जलन्धर के साथ युद्ध प्रारंभ कर दिया। दैत्य जलन्धर ने भी भगवान् शिव को पुनः समरभूमि में समागत देखकर अपने बाणों से वहां का वायुमण्डल परिव्याप्त कर दिया।।२९-३१।।

।।विंश अध्याय समाप्त।।

एकविंशोऽध्यायः

वृन्दा द्वारा दुःस्वप्न दर्शन, वृन्दा का पतिव्रतधर्मभंग, वृन्दा का अग्निप्रवेश उपक्रम

नारद उवाच

विष्णुर्जलन्धरंगत्वा तद्दैत्यपुटभेदनम्। पातिव्रत्यस्यभङ्गायवृन्दायाश्चाऽकरोन्मतिम्॥१॥
अथ वृन्दारका देवी स्वप्नमध्ये ददर्श ह। भर्तारंमहिषाऽऽरूढंतैलाभ्यक्तं दिगम्बरम्॥२॥
कृष्णप्रसूनभूषाढ्यं क्रव्यादगणसेवितम्। दक्षिणाशागतंमुण्डं तमसाप्याऽऽवृतंतदा॥३॥
स्वपुरं सागरे मग्नं सहसैवाऽऽत्मनासह। ततः प्रवृद्धासाबालातत्स्वप्नंप्रविचिन्वती॥४॥
ददर्शोदितमादिंत्यं सच्छिद्रं निष्प्रभं मुहुः। तदनिष्टमिति ज्ञात्वा रुदती भयविह्वला॥५॥

देवर्षि नारद कहते हैं—विष्णु ने दानवराजपत्नी वृन्दा के पातिव्रत को भंग करने का निश्चय किया और इस कारण वे जलन्धर का रूप धारण करके वहां पहुंचे जहां वृन्दा अवस्थित थी। भगवान् ने उस पुर में प्रवेश किया। देवी वृन्दा ने स्वप्न देखा था कि उसके स्वामी महिषारूढ हैं। उनकी देह में तैल लगा है। वे दिगम्बर हैं। उनकी सज्जा काले पुष्पों से की गयी है। वे राक्षसों से सेवित होकर दक्षिण दिशा जा रहे हैं। उनका मस्तक अन्धकार में डूबा होने के कारण दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। वृन्दा ने और भी देखा कि उनका अन्तःपुर जैसे सागर जल में डूब गया है। वे भी उस जलधिजल में डूब रही हैं! स्वप्न का अवसान होने पर जब वृन्दा प्रबुद्ध हो गयीं तब स्वप्न के कारण पर विचार करते-करते उन्होंने देखा कि मानों सूर्य छिद्रपूर्ण होकर उदित हैं। वे पुनः-पुनः निष्प्रभ होते जा रहे हैं। वृन्दा इस समस्त दृश्य को अनिष्ट का कारण जानकर रुदन करने लगीं। वे भयविह्वला होकर त्रस्त हो गयीं। उनको अट्टालिका में किंवा धरती पर कहीं भी शान्तिलाभ नहीं हो रहा था!।।१-५।।

कुत्रचिन्नाऽलभच्छर्म गोपुराट्टालभूमिषु। ततःसखीद्वययुता नगरोद्यानमागमत्॥६॥
तत्राऽपिसाऽभ्रभद्बालानाऽलभत्कुत्रचित्सुखम्। वनाद्वनान्तरंयातानैववेदात्मनस्तदा॥७॥
ततः सा भ्रमतीबाला ददर्शाऽतीवभीषणौ। राक्षसौसिंहवदनौदंष्ट्राऽऽननविभीषणौ॥८॥
तौ दृष्ट्वा विह्वलाऽतीव पलायनपराऽभवत्। ददर्श तापसं शान्तं सशिष्यं मौनमास्थितम्॥९॥
ततस्तत्कण्ठमावृत्यनिजांबाहुलतां भयात्। मुने! मां रक्षशरणमागताऽस्मीत्यभाषत॥१०॥
मुनिस्तां विह्वलां दृष्ट्वा राक्षसाऽनुगतां तदा। हुङ्कारेणैवतौघोरौचकार विमुखौरुषा॥११॥
तौ हुंकारभयत्रस्तौ दृष्ट्वा च विमुखौ गतौ। प्रणम्य दण्डवद्भूमौवृन्दावचनमब्रवीत्॥१२॥

वृन्दा अपनी दो सखियों के साथ नगर के उद्यान में गयीं। वहां भ्रमण करने पर भी उनको तनिक भी सुख नहीं मिल रहा था। तदनन्तर वे एक वन से अन्य वन में जाने लगीं, तथापि इससे भी शान्ति नहीं मिली। तभी भ्रमण करते करते वृन्दा ने वहां अत्यन्त भयानक दो राक्षसों को देखा जिनका मुख सिंह जैसा था। दाढ़ों

से उनका रूप अत्यन्त भीषण लग रहा था। वृन्दा ने इस भीषणाकृति राक्षसद्वय को देखकर वहां से पलायन कर दिया। वे कुछ दूर गयीं थीं, तभी देखती हैं कि एक मौनी शान्त तपस्वी शिष्यों के साथ वहां बैठे हैं। तभी देवी वृन्दा ने भयवशात् अपनी बाहु द्वारा अपने कण्ठ को ढांक कर विह्वल होकर कहा—"हे मुनिवर! मैं यहां आपकी शरण में आई हूं। मेरी रक्षा करिये।" मुनि ने उनको अत्यन्त विह्वल देखकर तथा उनके पीछे आते दो राक्षसों को देखा। मुनि ने यह देखकर रोषपूर्वक हुंकार द्वारा इन राक्षसों को रोक दिया। जब वृन्दा ने राक्षस-द्वय को मुनि की हुंकार मात्र से त्रस्त तथा भागते देखा, तब वे मुनि को दण्डवत् प्रणाम करके कहने लगीं।।६-१२।।

वृन्दोवाच

रक्षिताऽहंत्वयाघोराद्भयादस्मात्कृपानिधे!। किञ्चिद्विज्ञप्तुमिच्छामिकृपयातन्निशामय।।१३।।
जलन्धरोहि मद्भर्ता रुद्रं योद्धुं गतःप्रभो। स तत्राऽऽस्तेकथं युद्धेतन्मे कथयसुव्रत!।।१४।।

वृन्दा कहती हैं—"हे कृपानिधि! आपने इस घोर भय से मेरी रक्षा की है। अब मैं आपसे कुछ कहना चाहती हूं। कृपापूर्वक सुनिये। हे प्रभो! मेरे पति दानवराज जलन्धर हैं। वे रुद्र के साथ युद्ध के लिये गये हैं। हे सुव्रत! वे रणभूमि में किस अवस्था में हैं, कृपया कहिये!।।१३-१४।।

नारद उवाच

मुनिस्तद्वाक्यमाकर्ण्य कृपयोर्ध्वमवैक्षत्। तावत्कपी समायातौप्रणम्यचाग्रतःस्थितौ।।१५।।
ततस्तद्भ्रूलतासञ्ज्ञानियुक्तौगगनं गतौ। गत्वाक्षणार्द्धादागत्यप्रणतावग्रतःस्थितौ।
शिरःकबन्धे हस्तौ च गृहीत्वा समुपस्थितौ।।१६।।
शिरःकबन्धेहस्तौचदृष्ट्वाऽब्धितनयस्यसा। पपात मूर्च्छिताभूमौभर्तृव्यसनदुःखिता।।१७।।
कमण्डलूदकैः सिक्त्वा मुनिनाऽऽश्वासिता तदा।
स्वभर्तृभाले सा भालं कृत्वा दीना रुरोद ह।।१८।।

देवर्षि नारद कहते हैं—वृन्दा का यह वाक्य सुनकर जैसे ही उन मुनि ने ऊर्ध्व में दृष्टि निःक्षेप किया, तभी दो वानर उनके समीप आये तथा प्रणाम करके मुनि के समक्ष खड़े हो गये। उस समय मुनि ने अपनी भ्रूभंगी से उनको संकेत दिया। इससे वे आकाश में उड़ गये तथा कुछ क्षण के पश्चात् (आधे मुहूर्त में) एक शिर तथा धड़ लेकर वापस लौटे। पुनः वे ऋषि को प्रणाम करके उनके आगे खड़े हो गये। जब वृन्दा ने उन वानरद्वय के हाथ में अपने स्वामी जलन्धर का शिर तथा धड़ देखा, तब वे दुःख से व्यथित होकर पृथिवी पर गिर पड़ीं। उस स्थिति में मुनि ने वृन्दा का अभिषेक अपने कमण्डलु के जल से किया। इस प्रकार मुनि ने वृन्दा को आश्वस्त कर दिया। वृन्दा अपने स्वामी के मस्तक पर अपना ललाट रखकर रुदन करने लगीं।।१५-१८।।

वृन्दोवाच

यः पुरा सुखसम्वादेविनोदयसि मां प्रभो!। सकथं न वदस्यद्यवल्लभां मामनागसम्।

येन देवाःसगन्धर्वानिर्जिताविष्णुनासह। स कथं तापसेनाऽद्य त्रैलोक्यविजयीहतः॥१९॥

वृन्दा कहती हैं—हे प्रभो! आपने इससे पूर्व (राक्षसों से रक्षा द्वारा) सुखप्रद संवाद से मेरा विनोद वर्द्धन किया था, वही आप आज निरुपाय स्त्री को देखकर कुछ नहीं कह रहे हैं! जिन जलन्धर ने विष्णु सहित सभी गन्धर्व तथा देवगण को जीता था, वे मेरे त्रैलोक्य विजयी स्वामी हैं। उनको किसने कैसे मृत कर दिया।।१९।।

नारद उवाच

रुदित्वेति तदा वृन्दा तं मुनिं वाक्यमब्रवीत्॥२०॥

नारद कहते हैं—रुदन करती वृन्दा ने तव मुनि से कहा।।२०।।

वृन्दोवाच

कृपानिधे! मुनिश्रेष्ठ! जीवयैनं मम प्रियम्।
त्वमेवाऽस्य मुने! शक्तो जीवनाय मतौ मम॥२१॥

वृन्दा कहती है—हे कृपानिधि! आप मुनियों में श्रेष्ठ हैं। आप मेरे पति को जीवित करिये। मेरी यह निश्चित धारणा है कि आप इनको जीवित कर सकने में समर्थ हैं।।२१।।

नारद उवाच

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रहसन्मुनिरब्रवीत्॥२२॥

देवर्षि नारद कहते हैं—वृन्दा का वाक्य सुनकर मुनि हंसते हुये कहने लगे।।२२।।

मुनिरुवाच

नाऽयं जीवयितुं शक्तोरुद्रेणनिहतोयुधि। तथाऽपि त्वत्कृपाविष्टएनंसञ्जीवयाम्यहम्॥२३॥

मुनि कहते हैं—इसे जीवन दान दे सकने का सामर्थ्य किसी में नहीं है, क्योंकि स्वयं रुद्र ने इसे मारा है, तथापि तुम्हारे प्रति कृपा के कारण मैं इसे जीवित करता हूं।।२३।।

नारद उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधेविप्रस्तावत्सागरनन्दनः। वृन्दामालिङ्ग्य तद्वक्त्रंचुचुम्बप्रीतमानसः॥२४॥
अथ वृन्दाऽपि भर्तारं दृष्ट्वा हर्षितमानसा। रेमे तद्वनमध्यस्था तद्युक्ता बहुवासरम्॥२५॥
कदाचित्सुरतस्यान्ते दृष्ट्वाविष्णुं तमेव च। निर्भर्त्स्य क्रोधसंयुक्तावृन्दावचनमब्रवीत्॥२६॥

देवर्षि नारद कहते हैं—ऋषि यह कह कर जैसे ही वहां से अन्तर्हित् हुये, वैसे ही सागर तनय जलन्धर भी जीवित हो गया। उसने प्रेमपूर्वक वृन्दा का आलिंगन किया तथा उसके गले पर चुम्बन किया। वृन्दा ने स्वामी को जीवित देखकर प्रसन्न मन से उस कानन में स्थित होकर उसके साथ दीर्घकाल पर्यन्त विहार किया। तदनन्तर एक दिन सुरतक्रीड़ा के अन्त में वृन्दा ने विष्णु को पहचान लिया तथा उनकी भर्त्सना करके क्रोध पूर्वक कहने लगीं।।२४-२६।।

वृन्दोवाच

धिक्त्वदीयं हरे! शीलं परदाराभिगामिनः।
ज्ञातोऽसि त्वं मया सम्यङ् मायाप्रच्छन्नतापसः॥२७॥
यौत्वयामाययाद्वाःस्थौस्वकीयौदर्शितौमम्। तावेवराक्षसौभूत्वाभार्यातवहरिष्यतः॥२८॥
त्वं चाऽपिभार्यादुःखार्तोवनेकपिसहायवान्। भ्रमसर्पेश्वरेणाऽयंयस्तेशिष्यत्वमागतः॥२९॥
इत्युक्त्वा सा तदा वृन्दा प्राविशद्धव्यवाहनम्।
विष्णुना वार्यमाणाऽपि तस्यामासक्तचेतसा॥३०॥
ततो हरिस्तामनु संस्मरन्मुहुर्वृन्दान्वितो भस्मरजोवगुण्ठितः।
तत्रैव तस्थौ सुरसिद्धसङ्घैः प्रबोध्यमानोऽपि ययौ न शान्तिम्॥३१॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे जलन्धरोपाख्याने वृन्दाग्निप्रवेशवर्णनंनामैकविंशोऽध्यायः॥२१॥

वृन्दा कहती हैं—"हे हरि! तुम परदारागामी हो। तुम्हारे चरित्र को धिक्कार है। प्रतीत होता है तुम ही माया द्वारा वह मुनि (तापस) बने थे। यहां के द्वार पर जो दो पहरेदार हैं, ये ही राक्षस रूप धारण (माया द्वारा) करके तुम्हारी पत्नी का हरण करेंगे। तुम भी पत्नी के दुःख से पीड़ित हो जाओगे। इस अनन्त ने (शेषनाग ने) जो तुम्हारे मुनिवेश में तुम्हारे शिष्य का रूप ग्रहण किया था यह भी (लक्ष्मण रूप में) तुम्हारे साथ तथा वानरों की सहायता लेकर वन-वन भटकेगा।" वृन्दा ने यह कह कर अग्नि में प्रवेश किया। वृन्दा से आसक्त मन वाले विष्णु ने उसे बहुत रोका तथापि उसने उनकी कोई बात न सुनकर स्वयं को दग्ध कर लिये। हरि भी वृन्दा को बारम्बार याद करते हुये उसकी दग्धदेह की भस्म को अपने शरीर में लपेटकर वहां स्थित हो गये। सुरगण तथा सिद्धगण उनको सान्त्वना दे रहे थे तथापि उनको शान्ति नहीं मिली॥२७-३१॥

॥एकविंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

द्वाविंशोऽध्यायः

देवताओं के प्रति शक्ति का वचन, जलन्धर मुक्ति

नारद उवाच

ततो जलन्धरो दृष्ट्वा रुद्रमद्भुतविक्रमम्। चकार मायया गौरीं त्र्यम्बकं मोहयन्निव॥१॥
रथोपरि च तां बद्धां रुदन्तीं पार्वतींशिवः। निशुम्भप्रमुखाद्यैश्चवध्यमानांददर्श सः॥२॥

गौरीं तथाविधां दृष्ट्वा शिवोऽप्युद्विग्नमानसः।
अवाङ्मुखः स्थितस्तूष्णीं विस्मृत्य स्वपराक्रमम्॥३॥
ततोजलन्धरो वेगात्त्रिभिर्विव्याध सायकैः। आपुङ्खमग्नैस्तंरुद्रं शिरस्युरसि चोदरे॥४॥
ततो जज्ञे स तां मायां विष्णुना च प्रबोधितः।
रौद्ररूपधरो जातो ज्वालामालाऽतिभीषणः॥५॥

देवर्षि नारद कहते हैं—इधर जलन्धर ने अमित विक्रमी रुद्र को देखकर उनको मोहित करने के लिये माया से एक गौरी को निर्मित किया। उन मायाकल्पित गौरी को रथ पर बांध दिया। भगवान् शिव देखते हैं कि पार्वती रुदन कर रही हैं, निशुम्भ आदि प्रधान दानव उन पर प्रहार रत हैं। शिव गौरी की यह अवस्था देखकर मन ही मन उद्विग्न हो गये तथा अपने पराक्रम को भूलकर मौन हो गये। इस स्थिति में उनको देखकर जलन्धर ने उनको तीन बाणों से विद्ध कर दिया। अतिवेग से छोड़े गये ये तीन बाण अपने पिछले भाग पर्यन्त शंकर के उदर तथा मस्तक में प्रविष्ट हो गये। तदनंतर शिव को भगवान् विष्णु ने प्रबुद्ध किया। तत्पश्चात् इसे जलंधर की माया समझकर भगवान् शिव क्रोधरूप ज्वालामाला के कारण अतीव भीषणरूप प्रतीत होने लगे।।१-५।।

तस्याऽतीव महारौद्रंरूपं दृष्ट्वा महासुराः। नशेकुःसम्मुखेस्थातुंभेजिरेतेदिशोदश॥६॥
ततः शापं ददौ रुद्रस्तयोःशुम्भनिशुम्भयोः। ममयुद्धादपक्रान्तौगौर्याबध्योभविष्यथ॥७॥

इस स्थिति में महासुरगण उनका यह महान् भयंकर रूप देखकर उसे सह्य न कर सके। वे असुर शंकर के समक्ष खड़े होने का भी साहस नहीं कर पा रहे थे। इस कारण वे भयग्रस्त होकर दसों दिशाओं में भाग खड़े हुये। तत्पश्चात् शंकर ने शुम्भ तथा निशुम्भ को अभिशाप दिया। शंकर ने कहा—"हे शुंभ-निशुंभ! तुम मेरे द्वारा युद्ध में पराजित होकर देवी द्वारा मृत्यु को प्राप्त होगे।"।।६-७।।

पुनर्जलन्धरो वेगाद्वर्ष निशितैः शरैः। बाणान्धकारैः संछन्नं तदा भूमितलं महत्॥८॥
यावद्रुद्रश्च चिच्छेद तस्यबाणगणं जवात्। तावत्स परिघेणाऽऽशुजघानवृषभं बली॥९॥
वृषस्तेन प्रहारेण परावृत्तोरणाङ्गणात्। रुद्रेणाऽऽकृष्यमाणोऽपिनतस्थौ रणभूमिषु॥१०॥
ततः परमसङ्क्रुद्धो रुद्रोरौद्रवपुर्धरः। चक्रंसुदर्शनंवेगाच्चिक्षेपाऽऽदित्यवर्चसम्॥११॥
प्रदहद्रोदसीवेगात्पपातवसुधातले। जहारतच्छिरःकायान्महदायतलोचनम्॥१२॥
रथात्कायः पपाताऽस्य नादयन्वसुधातलम्। तेजश्च निर्गतं देहात्तद्रुदेलयमागमत्॥१३॥
वृन्दादेहोद्भवं तेजस्तद्गौर्यां विलयं गतम्। अथब्रह्मादयो देवा हर्षादुत्फुल्ललोचनाः।
प्रणम्य शिरसा रुद्रं शशंसुर्विष्णुचेष्टितम्॥१४॥

इधर जलन्धर पुनः तीक्ष्ण बाणों की वर्षा रुद्रदेव पर करने लगा। उस समय समस्त पृथिवीतल बाणों के समाच्छन्न होने के कारण अन्धकार से भर उठा। रुद्रदेव उस समय वेगपूर्वक उन बाणों को काटने लगे। बलवान् जलन्धर भी उस समय परिध नामक अस्त्र द्वारा शंकर के वृषभ पर प्रहार करने लगा। इस प्रहार के कारण वृषभ ने रणभूमि का त्याग कर दिया। वह रुद्र द्वारा बुलाये तथा रोके जाने पर भी समरभूमि में नहीं रुका। तदनन्तर रुद्र ने अतिशय क्रोधित होकर रौद्र देह धारण किया तथा अतिशय वेग के साथ आदित्य कान्ति

सुदर्शन चक्र को जलन्धर पर छोड़ा। यह चक्र आकाश को अपने तेज से प्रज्वलित करता हुआ भूमितल पर गिरा तथा उसने आयतनेत्र जलन्धर के शिर को उसके देह से पृथक् कर दिया। जलन्धर के देह से एक तेजपुंज निकल कर रुद्र में विलीन हो गया। जलन्धर का शरीर जब निर्जीव होकर रथ से गिरा, तब समस्त पृथिवी कम्पित हो उठी। उधर वृन्दा के देह का तेज भगवती गौरी के शरीर में मिलित हो गया। यह दृश्य देखकर ब्रह्मा आदि देवगण का मन उत्फुल्ल हो उठा। उन सबने मस्तक अवनत करके रुद्रदेव को प्रणाम किया। सभी लोक विष्णु के कार्य की प्रशंसा करके रुद्र की स्तुति करने लगे।।८-१४।।

देवा ऊचुः

महादेव! त्वया देवा रक्षिताः शत्रुजाद्भयात्।।१५।।
किञ्चिदन्यत्समुद्भूतं तत्र किं करवामहे।
वृन्दालावण्यसम्भ्रान्तो विष्णुस्तिष्ठति मोहितः।।१६।।

देवगण कहते हैं—हे महादेव! आपने त्रिपुरासुर के भय से हम देवगण को रक्षित किया था, तथापि आज एक अद्वितीय घटना घटित हो गयी। इस सम्बन्ध में हम क्या कहें? विष्णु तो वृन्दा के लावण्य से भ्रमित तथा मोहित होकर स्थित हो गये हैं!।।१५-१६।।

ईश्वर उवाच

गच्छध्वं शरणं देवाविष्णोर्मोहापनुत्तये। शरण्यांमोहिनींमायांसावःकार्यंकरिष्यति।।१७।।

ईश्वर कहते हैं—हे देवगण! विष्णु का मोह दूर करने के लिये तुम मोहिनी माया की शरण ग्रहण करो। वह माया ही तुम सब का उद्देश्य सिद्ध करेगी।।१७।।

नारद उवाच

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवः सर्वभूतगणैस्तदा। देवाश्च तुष्टुवुर्मूलप्रकृतिं भक्तवत्सलाम्।।१८।।

नारद कहते हैं—तब देवाधिदेव शंकर यह कहकर समस्त भूत-प्रमथगण से घिरे हुये वहां से अन्तर्हित् हो गये। देवगण भी भक्तवत्सला मूल प्रकृति का स्तव करने लगे।।१८।।

देवा ऊचुः

यदुद्भवाः सत्त्वरजस्तमोगुणाः सर्गस्थितिध्वंसनिदानकारिणः।
यदिच्छया विश्वमिदं भवाऽभवौ तनोति मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम्।।१९।।
या हि त्रयोविंशतिभेदशब्दिता जगत्यशेषे समधिष्ठिता परा।
यद्रूपकर्माणि जडास्त्रयोऽपि देवा न विद्युः प्रकृतिं नताः स्म ताम्।।२०।।
यद्भक्तियुक्ताः पुरुषास्तु नित्यं दारिद्र्यभीमोहपराभवादीन्।
न प्राप्नुवन्त्येव हि भक्तवत्सलां सदैव मूलप्रकृतिं नताः स्म ताम्।।२१।।

देवगण कहते हैं—जिनसे सृष्टि-स्थिति-लय का कारणभूत सत्व-रजः-तमः समुद्भूत हो रहा है, जिनकी

इच्छा से विश्व अवस्थित है तथा जो इस विश्व के जनन-भरण का विस्तार कर रहे हैं, हम उन मूल प्रकृति को प्रणाम करते हैं। जो तेईस भेदों से शब्दित होती रहती हैं, जो समग्र जगत् में प्रतिष्ठिता हैं, जिनसे श्रेष्ठ कोई भी नहीं है, देवगण भी जिनको जान सकने में समर्थ नहीं हैं, हम उन मूल प्रकृति को प्रणाम करते हैं। जिनके प्रति नित्य भक्ति तत्पर होकर मनुष्य दारिद्र्यभीति, मोह तथा पराभव को प्राप्त नहीं होते, उन भक्तवत्सला मूल प्रकृति को हम सतत् प्रणाम करते हैं।।१९-२१।।

नारद उवाच

स्तोत्रमेतत्त्रिसंध्यं यः पठेदेकाग्रमानसः।
दारिद्र्यमोहदुःखानि न कदाचित्स्पृशन्ति तम्।।२२।।
इत्थं स्तुवन्तस्तेदेवास्तेजोमण्डलमास्थितम्। ददृशुर्गगनंतत्रज्वालाव्याप्तदिगन्तरम्।
तन्मध्याद्भारतीं सर्वे शुश्रुवुर्व्योमचारिणीम्।।२३।।

नारद कहते हैं—जो मानव एकाग्रतापूर्वक तीनों सन्ध्याकाल में यह स्तोत्र पाठ करता है, उसे दरिद्रता मोह तथा दुःख आदि का कदापि स्पर्श नहीं होता। देवताओं ने इस प्रकार से स्तव करते-करते आकाश में एक तेजोमण्डल का दर्शन किया। देखते-देखते उस तेज से दिग्-दिगन्त व्याप्त हो गया। देवताओं ने उस तेज में से एक आकाशवाणी को सुना। वह वाणी अन्य की न होकर उन शक्ति की ही थी।।२२-२३।।

शक्तिरुवाच

अहमेव त्रिधा भिन्ना तिष्ठामि त्रिविधैर्गुणैः।।२४।।
गौरीःलक्ष्मी स्वरा चेति रजः सत्त्वतमोगुणैः।
तत्र गच्छत ताः कार्यं विधास्यन्ति च वः सुराः।।२५।।

शक्ति देवी कहती हैं—मैं ही सत्व-रजः-तमः रूप गुणत्रय में त्रिधा विभक्त होकर अवस्थान करती हूं। क्रमशः गौरी-लक्ष्मी तथा सरस्वती ही इन त्रिगुण रूप से अवस्थित हैं। इसलिये तुम सब गौरी-लक्ष्मी-सरस्वती के पास जाओ। वे ही तुम्हारा कार्य सम्पन्न करेंगीं।।२४-२५।।

नारद उवाच

शृण्वतामिति तां वाचमन्तर्धानमगान्महः। देवानांविस्मयोत्फुल्लनेत्राणांतत्तदा नृप।।२६।।
ततः सर्वेऽपिते देवागत्वातद्वाक्यनोदिताः। गौरींलक्ष्मींस्वरांचैवप्रणेमुर्भक्तितत्पराः।।२७।।
ततस्तास्तान्सुरान्दृष्ट्वा प्रणतान्भक्तवत्सलाः।
बीजानि प्रददुस्तेभ्यो वाक्यान्यूचुश्च भूमिप!।।२८।।

नारद कहते हैं—हे राजन्! तब देवगण शक्ति की आकाशवाणी सुनकर विस्मयाभिभूत होकर प्रसन्न हो गये। तभी उनके सामने से वह तेजोमयी शक्ति तत्काल अन्तर्ध्यान हो गयीं। हे राजन्! तदनन्तर भक्तितत्पर देवताओं ने शक्ति के आदेशानुसार सरस्वती, लक्ष्मी तथा गौरी को प्रणाम किया। उन भक्तवत्सला देवीत्रय ने भी उन प्रणत देवताओं को देखकर उनको अनेक बीज बोने के लिये प्रदान करके कहा—।।२६-२८।।

देव्य ऊचुः

इमानि तत्र बीजानि विष्णुर्यत्राऽवतिष्ठते। निर्वपध्वं ततःकार्यं भवतांसिद्धमेष्यति॥२९॥

देवी कहती हैं—हे सुरगण! जहां विष्णु अवस्थान कर रहे हैं, वहां इन बीजों को लेकर जाओ तथा वहां इनको बो देना। इस प्रकार तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा।।२९।।

नारद उवाच

ततस्तु हृष्टाः सुरसिद्धसङ्घाः प्रगृह्य बीजानि विचिक्षिपुस्ते।
वृन्दान्वितो भूमितले स यत्र विष्णुः सदा तिष्ठति सौख्यहीनः॥३०॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे जलन्धरमुक्तिकथनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः।।२२।।

नारद कहते हैं—तदनन्तर सुरगण एवं सिद्धगण प्रसन्न मन से उन बीजों को लेकर वहां गये जहां विष्णु अवस्थित थे। उन्होंने वृन्दान्वित (जहां वृन्दा के दग्ध देह की राख गिरी थी) भूमि पर उन बीजों को बो दिया।।३०।।

।।द्वाविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

त्रयोविंशोऽध्यायः

धात्री वृक्ष तथा तुलसी पादप का उद्भव, दोनों का माहात्म्य

नारद उवाच

क्षिप्तेभ्यस्तत्र बीजेभ्योवनस्पत्यस्त्रयोऽभवन्। धात्रीचमालतीचैवतुलसीचनृपोत्तम्!॥१॥
धात्र्युद्भवा स्मृताधात्रीमाभवामालतीस्मृता। गौरीभवाचतुलसीतमःसत्त्वरजोगुणाः॥२॥
स्त्रीरूपिण्यौ वनस्पत्यौ दृष्ट्वा विष्णुस्तदा नृप!।
उत्तस्थौ सम्भ्रमाद् वृन्दारूपातिशयविभ्रमः॥३॥
दृष्ट्वा च याचतेमोहात्कामासक्तेनचेतसा। तंचाऽपितुलसीधात्र्यौरागेणैवव्यलोकताम्॥४॥
यच्चलक्ष्म्यापुराबीजमीर्ष्ययैवसमर्पितम्। तस्मात्तदुद्भवानारीतस्मिन्नीर्ष्यापराऽभवत्॥५॥
अतः सा बर्बरीत्याख्यामवापाऽथ विगर्हिताम्। धात्रीतुलस्यौ तद्रागात्तस्यप्रीतिप्रदे सदा॥६॥
ततोविस्मृतदुःखोऽसौविष्णुस्ताभ्यांसहैव तु। वैकुण्ठमगमद्धृष्टःसर्वदेवनमस्कृतः॥७॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे नृपोत्तम! देवगण ने जिन बीजों को बोया था, उनसे धात्री, मालती तथा तुलसी नामक तीन वनस्पतियां उग गयीं। इनमें से सरस्वती देवी से धात्री वृक्ष (आंवला वृक्ष रूप), गौरी से तुलसी पादप तथा लक्ष्मी से मालती लता उद्भूत हो गयीं। ये वनस्पतियां यथाक्रम तमः, रजः तथा सत्वमयी हैं। हे नृप! विष्णु ने इन स्त्रीरूपा वनस्पतियों को देखा, तब वे सम्भ्रम पूर्वक उठे तथा इन सबको वृन्दा से भी अत्यन्त सुरूपा देखकर मोहवशात् उनसे प्रार्थना करने लगे। धात्री तथा तुलसी ने अनुराग पूर्वक विष्णु का अवलोकन किया। किन्तु लक्ष्मी ने पूर्व में ही ईर्ष्यापूर्वक मालती बीज उत्पन्न किया था इस कारण लक्ष्मीप्रदत्त बीज से उद्भूत मालती ने भी विष्णु के प्रति ईर्ष्या प्रकट किया। तदनन्तर विष्णु समस्त दुःख भूल गये। वे धात्री तथा तुलसी के साथ सर्वदेव नमस्कृत होकर प्रसन्न मन से वैकुण्ठ चले गये। उन्होंने ईर्ष्या परायण मालती को साथ में नहीं लिया। इसी कारण से मालती को विगर्हित बर्बरी कहा गया तथा धात्री एवं तुलसी विष्णु के शरीर हेतु प्रीतिप्रद हैं।।१-७।।

कार्त्तिकोद्यापने विष्णोस्तस्मात्पूजा विधीयते।
तुलसीमूलदेशेऽस्य प्रीतिदा सा यतः स्मृता॥८॥
तुलसीकाननं राजन्गृहे यस्याऽवतिष्ठते। तद्गृहं तीर्थरूपं तुनाऽऽयान्ति यमकिङ्कराः॥९॥
सर्वपापहरं नित्यं कामदं तुलसीवनम्। रोपयन्तिनराःश्रेष्ठास्तेनपश्यन्तिभास्करिम्॥१०॥
दर्शनं नर्मदायास्तु गङ्गास्नानं तथैव च।
तुलसीवनसंसर्गः सममेव त्रयं स्मृतम्॥११॥
रोपणात्पालनात्सेकाद्दर्शनात्स्पर्शनान्नृणाम्। तुलसीदहते पापं वाङ्मनःकायसञ्चितम्॥१२॥
तुलसीमञ्जरीभिर्यः कुर्याद्धरिहराऽर्चनम्। न स गर्भगृहंयाति मुक्तिभागी न संशयः॥१३॥
पुष्कराद्यानि तीर्थानिगङ्गाद्याःसरितस्तथा। वासुदेवादयोदेवास्तिष्ठन्तितुलसीदले॥१४॥
तुलसीमञ्जरीयुक्तो यस्तु प्राणान्विमुञ्चति। यमोऽपि नेक्षितुं शक्तो युक्तंपापशतैरपि॥१५॥
विष्णोः सायुज्यमाप्नोति सत्यं सत्यंनृपोत्तम!। तुलसी काष्ठजं यस्तु चन्दनं धारयेन्नरः॥१६॥
तद्देहं न स्पृशेत्पापं क्रियमाणमपीह यत्। तुलसीविपिनच्छाया यत्रयत्र भवेन्नृप!॥१७॥

तुलसी विष्णु को प्रिय हैं। इसलिये कार्त्तिक व्रत के उद्यापनार्थ तुलसी मूल में विष्णु की पूजा करनी चाहिये। हे राजन्! जिसके गृह में तुलसी कानन विद्यमान है, उनका गृह तीर्थ रूप है। यमदूत वहां कभी नहीं जाते। तुलसीवन नित्य सर्वपापहर तथा कामद है। जो तुलसी कानन का रोपण करते हैं, वे ही श्रेष्ठ हैं। वे यमदर्शन कदापि नहीं करते। नर्मदा का दर्शन, गंगास्नान तथा तुलसी वन संसर्ग का फल समान है। तुलसी का रोपण, पालन, जलसेक, दर्शन तथा स्पर्शन करने से मानवगण का वाक्-मन तथा कायाकृत पाप दग्ध हो जाता है। जो मानव तुलसी मंजरी से हरिहर की अर्चना करते हैं, वे कभी मातृगर्भ में प्रवेश नहीं करते तथा वे मुक्तिभागी हो जाते हैं। इसमें संशय नहीं है। पुष्कर आदि तीर्थ, गंगा आदि पुण्यनदी तथा वासुदेव आदि देवता तुलसीदल में विद्यमान रहते हैं। जो मानव तुलसी मंजरीयुक्त होकर प्राणत्याग करते हैं, वे शत-शत पापयुक्त होकर भी यम का दर्शन नहीं करते (यमलोक नहीं जाते)। यह सत्य है-सत्य है-सत्य है। इस प्रकार दृढ़तापूर्वक

कहता हूं कि वे मानव विष्णु का सायुज्य प्राप्त कर लेते हैं। जो तुलसी काष्ठ को घिस कर उसका चन्दन लगाते हैं, वे पाप करके भी पापयुक्त नहीं होते।।८-१७।।

तत्र श्राद्धं प्रकर्तव्यं पितॄणां दत्तमक्षयम्। धात्रीफलविमिश्रैश्च तुलसीपत्रमिश्रितैः।।१८।।
जलैः स्नाति नरस्तस्य गङ्गास्नानफलं स्मृतम्। देवार्चनंनरःकुर्याद्धात्रीपत्रैःफलैस्तथा।।१९।।
सुवर्णमणिमुक्तौघैरर्चनस्याऽऽप्नुयात्फलम् ।
तीर्थानि मुनयो देवा यज्ञा सर्वेऽपि कार्त्तिके।।२०।।
नित्यं धात्रीं समाश्रित्य तिष्ठन्त्यर्के तुलास्थिते।
द्वादश्यां तुलसीपत्रं धात्रीपत्रं तु कार्त्तिके।।२१।।
लुनाति स नरो गच्छेन्निरयानतिगर्हितान्। धात्रीतुलस्योर्माहात्म्यमपिदेवश्चतुर्मुखः।
न समर्थो भवेद्वक्तुं यथा देवस्य शार्ङ्गिणः।।२२।।
धात्रीतुलस्युद्भवकारणं यः शृणोति यः श्रावयते च भक्त्या।
विधूतपाप्मा सह पूर्वजैः स्वैः स्वर्गं व्रजत्यग्र्यविमानसंस्थैः।।२३।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादेधात्रीतुलस्युत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः।।२३।।
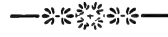
हे राजन्! जहां-जहां तुलसी छाया विद्यमान रहती है, वहां-वहां पितरों का श्राद्ध करना चाहिये। उन सभी श्राद्ध से पितरों की अक्षय तृप्ति होती है। मनुष्य धात्री फल तथा तुलसी पत्र एक में मिलाकर उसे जल में छोड़ कर स्नान करे। उसे गंगास्नान फल मिलेगा। मानव धात्रीफल तथा फल द्वारा देवार्चन करके स्वर्ण-मणि-मुक्ता द्वारा पूजन करके इतना फललाभ करता है। समस्त तीर्थ, मुनि, देवता तथा यज्ञ उस समय धात्री वृक्ष में निवास करते हैं। जब सूर्य तुला राशि में निवास करता है। जो मानव द्वादशी के दिन तुलसीपत्र तथा कार्त्तिक मास में धात्रीपत्र तोड़ते हैं, उनको अत्यन्त गर्हित नरक प्राप्त होता है। जैसे चतुरानन ब्रह्मा भी विष्णु की महिमा का वर्णन पूर्णतः नहीं कर सकते, उसी प्रकार से तुलसी तथा धात्री की महिमा असीम है। जो भक्तिभाव से धात्री एवं तुलसी का उद्भवकारण सुनते हैं, वे पापों से रहित होकर पूर्वजों के साथ श्रेष्ठ विमान पर आरोहण करने में समर्थ होते हैं।।१८-२३।।

।।त्रयोविंश अध्याय समाप्त।।

चतुर्विंशोऽध्यायः

धर्मदत्त विप्र का इतिहास, कलहा का दुष्कर्म वर्णन

पृथुरुवाच

यदूर्जव्रतिनः पुंस फलं महदुदाहृतम्। तत्पुनर्ब्रूहिमाहात्म्यं केन चीर्णमिदं शुभम्॥१॥

पृथु कहते हैं—हे मुनिवर! कार्त्तिक व्रती पुरुष का महाफल आपने कहा। अब पुनः कार्त्तिक व्रत माहात्म्य तथा इस व्रताचरण में क्या करना चाहिये, वह कहिये।।१।।

नारद उवाच

आसीत्सह्याद्रिविषये करवीरपुरे पुरा। ब्राह्मणो धर्मवित्कश्चिद्धर्मदत्तेति विश्रुतः॥२॥
विष्णुव्रतकरः सम्यग्विष्णुपूजारतः सदा। कदाचित्कार्त्तिकेमासिहरिजागरणायसः॥३॥
रात्र्यां तुर्यावशेषायां जगाम हरिमन्दिरम्। हरिपूजोपकरणान्गृह्य व्रजता सदा॥४॥
तेन दृष्टा समायाता राक्षसी भीमदर्शना। तां दृष्ट्वा भयवित्रस्तः कम्पितावयवस्तदा॥५॥
पूजोपकरणैः सर्वपयोभिश्चाहनद्भयात्। संस्मृत्य तद्धरेर्नामतुलसीयुक्तवारिणा।
तेन वै हतमात्रे तु पापं तस्या ह्यगाल्लयम्॥६॥
अथ संस्मृत्य सा पूर्वजन्मकर्मविपाकजाम्। स्वां दशामब्रवीद्विप्रंदण्डवच्चप्रणम्यवै॥७॥

नारद कहते हैं—सह्याद्रि प्रदेश में करवीर पुरी है। पूर्वकाल में वहां पर धर्मविद् धर्मदत्त नामक प्रसिद्ध एक विप्र का निवास था। विप्र धर्मदत्त सतत् विष्णुव्रत करते थे। वे सम्यक्तः हरिपूजा तत्पर थे। द्विज धर्मदत्त एक बार कार्त्तिक मास में जागरण व्रत तत्पर रहते हुये रात्रि का चतुर्थांश बाकी रहते हरि मन्दिर जाने लगे। वे हरि का पूजोपकरण लेकर जा ही रहे थे, तभी मार्ग में भीमवदना एक राक्षसी को उन्होंने देखा। वे उसे देखकर भयकातर हो गये। उनका शरीर कंपित होने लगा। उन्होंने भयवश समस्त पूजोपकरण से उस राक्षसी पर प्रहार किया तथा तुलसी जल लेकर हरिनाम लेने लगे। हे नृप! क्या कहा जाये! पूजा-द्रव्य के प्रहारमात्र से राक्षसी का कलुष ध्वन्स हो गया। उसे अपने पूर्वजन्म के दुष्कर्म याद आ गये। वह दण्डवत् प्रणत होकर द्विज धर्मदत्त से कहने लगी।।२-७।।

कलहोवाच

पूर्वकर्मविपाकेन दशामेतां गताऽस्म्यहम्। तत्कथंनुपुनर्विप्रप्रयास्याम्युत्तमां गतिम्॥८॥

कलहा राक्षसी कहती है—पूर्वजन्म के पापकर्म रूप कर्मविपाक के कारण मुझे यह दशा मिली है। हे विप्र! अब क्या करने से मुझे उत्तम गति मिलेगी?।।८।।

नारद उवाच

तां दृष्ट्वा प्रणतां सम्यग्वदमानां स्वकर्म तत्। अतीवविस्मितोविप्रस्तदावचनब्रवीत्॥९॥

देवर्षि नारद कहते हैं—विप्र धर्मदत्त ने इस राक्षसी को प्रणत तथा सम्यक्तः उसे अपने कर्मों को कहते देखकर अत्यन्त विस्मयपूर्वक कहना प्रारंभ किया।।९।।

धर्मदत्त उवाच

केन कर्मविपाकेन त्वंदशामीदृशीं गता। कुत्रत्याका च किंशीला तत्सर्वं कथयस्वमे।।१०।।

धर्मदत्त कहते हैं—किस कर्म विपाक से तुम्हारी यह विपरीत गति हो गयी? तुम्हारा निवास तथा चरित्र तब क्या था? वह सब कहो।।१०।।

कलहोवाच

सौराष्ट्रनगरे ब्रह्मन्! भिक्षुर्नामाऽभवद् द्विजः।
तस्याऽहं गृहिणीपूर्वं कलहाख्याऽतिनिष्ठुरा।।११।।
न कदाचिन्मयाभर्तुर्वचसाऽपिशुभंकृतम्। नाऽर्पितं तस्य मिष्टान्नं भतुर्वचनशीलया।।१२।।
कलहप्रियया नित्यं मयोद्विग्नमना यदा। परिणेतुं यदाऽन्यां स मतिं चक्रे पतिर्मम।।१३।।
ततो गरं समादाय प्राणास्त्यक्ता मया द्विज!।
अथ बद्ध्वा वध्यमानां मां निन्युर्यमकिङ्कराः।।१४।।
यमश्च मां तदा दृष्ट्वा चित्रगुप्तमपृच्छत।।१५।।

कलहा कहती है—हे ब्रह्मन्! सौराष्ट्र नामक नगर में भिक्षु नामक एक ब्राह्मण थे। मैं पूर्वकाल में उसकी पत्नी थी। मैं अतिनिष्ठुरा थी तथा मेरा नाम कलहा था। मैंने वाक्य से कभी भी स्वामी को प्रिय नहीं किया। मैंने कभी उसे मिष्ठान्न नहीं खिलाया न तो स्वामी का प्रिय ही किया, तथापि मैं नित्य उससे कलह करती रहती थी। मेरे पति ने मेरे चरित्र से उद्विग्न होकर अन्य पत्नी से विवाह कर लिया। तब मैंने विष खाकर प्राण त्याग कर दिया। तदनन्तर कृतान्त (यम किंकर) गण मुझ आत्महत्यारी को बांधकर ले गये। तब यम ने मुझे देखकर चित्रगुप्त से पूछा।।११-१५।।

यम उवाच

अनया किं कृतं कर्म चित्रगुप्त! विलोकय।
प्राप्नोत्वेषा च तत्कर्मशुभंवायदिवाऽशुभम्।।

कलहोवाच

चित्रगुप्तस्तदा वाक्यं भर्त्सयन्मामुवाच सः।।१६।।

यम कहते हैं—हे चित्रगुप्त! इस स्त्री ने क्या कर्म किया है? इसे देखो कि इसके कर्म शुभ हैं किंवा अशुभ हैं।

कलहा कहती है, तब चित्रगुप्त ने मेरी भर्त्सना करते हुये यह कहा।।१६।।

चित्रगुप्त उवाच

अनया तु कृतं कर्म शुभं किञ्चिन्न विद्यते।।१७।।

मिष्टान्नं भुञ्जमानेयं न भर्तरि तदर्पितम्। अतश्च वल्गुलीयोन्यांस्वविष्ठादाऽवतिष्ठतु॥१८॥
भर्तुर्द्वेषात्तदाप्येषा नित्यं कलहकारिणी। विष्ठादां सूकरीं योनिंतस्मात्तिष्ठत्वियं हरे॥१९॥
पाकभाण्डे सदा भुङ्क्ते भुङ्क्ते चैकायतस्ततः।
तस्मादेषा बिडाल्यस्तु स्वजाताऽपत्यभक्षिणी॥२०॥
भर्तारमपि चोद्दिश्य ह्यात्मघातः कृतोऽनया।
तस्मात्प्रेतशरीरेऽपि तिष्ठत्वेकाऽतिनिन्दिता॥२१॥
अतश्चैषा मरुदेशं प्रापितव्या भटैरियम्। तत्र प्रेतशरीरस्था चिरं तिष्ठत्वियं ततः॥२२॥
ऊर्ध्वं योनित्रयं चैषा भुनक्त्वशुभाकारिणी॥२३॥

चित्रगुप्त कहते हैं—इस स्त्री ने जितने कर्म किये हैं, उनमें से कोई शुभकर्म नहीं है। यह स्वामी को दिये बिना स्वयं ही मिष्ठान्न भक्षण करती थी। अतएव पक्षी योनि में जन्म लेकर अपना ही मल भक्षण करे। हे यम! यह नारी नित्य स्वामी से द्वेष तथा कलह करती थी। इसलिये द्वितीय जन्म में विष्ठाभक्षी शूकरी बने। यह रमणी पाक करके स्वयं अकेले भोजन करती थी। अतः स्वजाति के पुत्रों का वध करने वाली मार्जारी (बिल्ली) हो। स्वामी के विरुद्ध हो इसने आत्महत्या किया, अतः अति निन्दित प्रेतयोनि में निवास करे। अब यमकिंकरगण इसे मरुस्थल ले जायें। तत्पश्चात् यह नारी प्रेत शरीर से वहां चिरकाल निवास करे तथा यह अशुभकारिणी स्त्री उन तीन योनियों का भोग करे।।१७-२३।।

कलहोवाच

साऽहं पञ्चशताब्दानि प्रेतदेहे स्थिता किल।
क्षुत्तृष्णाभ्यां पीडिताऽऽविश्य शरीरं वणिजस्य च।
आयाता दक्षिणं देशं कृष्णावेण्योश्च सङ्गमम्॥२४॥
तत्तारं संश्रिता यावत्तावत्तस्य शरीरतः। शिवविष्णुगणैर्दूरमपकृष्टाबलादहम्॥२५॥
ततःक्षुत्क्षामयादृष्टो मया हि त्वं द्विजोत्तम!। त्वद्धस्ततुलसीवारिसंसर्गगतपापया॥२६॥
तत्कृत्यं कुरु विप्रेन्द्र कथं मुक्तिमियाम्यहम्। योनित्रयादग्रभवादस्माच्च प्रेतदेहतः॥२७॥
इत्थं विञ्चित्य कलहावचनं द्विजाग्र्यस्तत्कर्मपाकभयविस्मयदुःखयुक्तः।
तद्ग्लानिदर्शनकृपाचलचित्तवृतिर्ध्यात्वा चिरं स वचनं निजगाद दुःखात्॥२८॥

इति श्रीस्काप्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे धर्मदत्तेतिहासकथनंनाम चतुर्विंशोऽध्यायः।।२४।।

—※※※—

कलहा कहती है—मैं पांच सौ वर्ष पर्यन्त क्षुधा तृष्णा से पीड़ित होकर प्रेतवश में रहकर अन्त में वणिज् योनि में जन्मी। मैं कृष्णा तथा वेणी के संगम पर आई। मैं उन नदियों के संगम पर रह रही थी, तभी

शिव तथा विष्णु के अनुचरगण ने बुझे बलात् वहां से भगा दिया। हे द्विजोत्तम! मैं अत्यन्त क्षुधापीड़ित होकर आपके समीप आई हूं। अब आपके हाथों के तुलसी जल से मैं निष्पाप हो गई। हे विप्रेन्द्र! अब क्या करने से मैं भविष्य में मिलने वाली उपरोक्त तीनों योनियों से मुक्त हो सकूं, वह उपाय कहिये।'' तदनन्तर कलहा का यह कथन सुनकर द्विजप्रवर धर्मदत्त उसके कर्मविपाक भय से विस्मित हो गये। साथ ही उनको कलहा की दशा के प्रति दुःख भी हो गया। कलहा की आत्मग्लानि को देखकर कृपापरवश धर्मदत्त की चित्तवृत्ति निश्चल हो गयी और परदुःखकातर धर्मदत्त क्षण पर्यन्त विचार करके उससे कहने लगे।।७।।

।।चतुर्विंश अध्याय समाप्त।।

पञ्चविंशोऽध्यायः

कलहा मोक्ष वर्णन

धर्मदत्त उवाच

विलयं यान्तिपापानितीर्थे दानव्रतादिभिः। प्रेतदेहस्थितायास्तेतेषुनैवाऽधिकारिता।।१।।
तद्ग्लानिदर्शनादस्मात्खिन्नं च मम मानसम्।
न वै निर्वृतिमायाति त्वामनुद्धृत्य दुःखिताम्।।२।।
तस्मादाजन्मचरितंयन्मयाकार्त्तिकव्रतम्। तत्पुण्यस्याऽर्द्धभागेन सद्गतिंत्वमवाप्नुहि।।३।।

धर्मदत्त कहते हैं—हे भद्रे! तीर्थसेवा तथा दान एवं व्रतद्वारा कलुष विलीन हो जाते हैं। तुम प्रेतदेह हो अतः इन सबका तुमको कदापि अधिकार नहीं है। तुम्हारी आत्मग्लानि देखकर मेरा मन खिन्न हो रहा है। तुम दुःखिता का उद्धार किये बिना मुझे निवृत्ति नहीं हो रही है। अतः मेरे द्वारा आचरित कार्त्तिक व्रत के पुण्यार्द्धभाग को लेकर उस पुण्य प्रभाव से सद्गति प्राप्त करो।।१-३।।

नारद उवाच

इत्युक्त्वा धर्मदत्तोऽसौ यावत्तामभ्यषेचयत्। तुलसीमिश्रतोयेनश्रावयन्द्वादशाक्षरम्।।४।।
तावत्प्रेतत्वनिर्मुक्ता ज्वलदग्निशिखोपमा। दिव्यरूपधरा जाता लावण्येनयथेन्दिरा।।५।।
ततः सादण्डवद् भूमौ प्रणनामाऽथतंद्विजम्। उवाच सातदावाक्यैर्हर्षगद्गदभाषिणी।।६।।

नारद कहते हैं—द्विजप्रवर धर्मदत्त ने यह कहकर जैसे ही तुलसी जल से कलहा का अभिषेक किया तथा ''ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'' विष्णुमन्त्र का उच्चारण किया, तभी कलहा की प्रेतत्व से मुक्ति हो गयी। उसने प्रज्वलित अग्नि शिखा की तरह देह धारण किया। अब वह लक्ष्मी की तरह सौन्दर्यशालिनी लग रही थी।।४-६।।

कलहोवाच

त्वत्प्रसादाद् द्विजश्रेष्ठ! विमुक्ता निरयादहम्।
पापाब्धौ मज्जमानाया त्वं नौभूतोऽसि मे ध्रुवम्॥७॥

कलहा कहती है—हे द्विजप्रवर! आपकी कृपा से मैं नरक से मुक्त हो गयी। मैं पाप के सागर में डूब रही थी। आज आपने पाप सागर से मेरा नौकारूपेण उद्धार किया। इसमें सन्देह नहीं है।।७।।

नारद उवाच

इत्थं वदन्तीसा विप्रं ददर्शाऽऽयातमम्बरात्। विमानंभास्वरं युक्तंविष्णुरूपधरैर्गणैः॥८॥
अथ सा तद्विमानाऽग्र्यं द्वाःस्थाभ्यामवरोपिता ।
पुण्यशीलसुशीलाभ्यामप्सरोगणसेविता ॥९॥
तद्विमानं तदाऽपश्यद्धर्मदत्तः सविस्मयः। पपातदण्डवद्भूमौदृष्ट्वातौविष्णुरूपिणौ॥१०॥
पुण्यशीलसुशीलौचतमुत्थाप्याऽऽनतंद्विजम्। अभिनन्द्यततोवाक्यमूचतुर्धर्मसंयुतम्॥११॥

नारद कहते हैं—कलहा जब ब्राह्मण धर्मदत्ता से यह कह ही रही थी, तभी आकाश से विमान पर विष्णुरूपधारी विष्णु के गण वहां आ गये तथा उनमें से धर्मशील तथा सुशील नामक दो विष्णुगणों ने विमान से द्वार पर आकर अप्सराओं से सेवित उस विमान पर कलहा को बैठाया। धर्मदत्त इस विमान को देखकर विस्मित हो गये और उन विष्णुरूपी पुरुषद्वय का दर्शन करके उनके समक्ष दण्डवत् होकर उनको प्रणाम किया। तब धर्मशील एवं सुशील नामक विष्णुगण ने उन भूपतित ब्राह्मण को उठाया तथा उनका अभिनन्दन करके यह वाक्य कहने लगे।।८-११।।

गणावूचतुः

साधुसाधुद्विजश्रेष्ठ! यस्त्वं विष्णुरतःसदा। दीनाऽनुकम्पीसर्वज्ञोविष्णुव्रतपरायणः॥१२॥
आबालत्वाच्छुभंत्वेतद्यत्त्वयाकार्त्तिकव्रतम्। कृतं तस्याऽर्द्धदानेनपुण्यंद्वैगुण्यमागमत्॥१३॥
जन्मान्तरशतोद्भूतं पापंतद्विलयं गतम्। स्नानैरेव गतं पापं यदस्याः पूर्वकर्मजम्॥१४॥
हरिजागरणाद्यैश्च विमानमिदमास्थिता। वैकुण्ठं नीयतेसाधोनानाभोगयुतात्वियम्॥१५॥
दीपदानभवैः पुण्यैस्तेजःसारूप्यमास्थिता। तुलसीपूजनाद्यैश्च कार्त्तिव्रतकैः शुभैः।
विष्णुसान्निध्यगा जाता त्वया दत्तैः कृपानिधे!॥१६॥
त्वमप्यस्य भवस्यान्ते भार्याभ्यां सह यास्यसि।
वैकुण्ठभुवनं विष्णोः सान्निध्यं च सरूपताम्॥१७॥

गण कहते हैं—हे द्विजप्रवर साधु-साधु! आपने अत्युत्तम कार्य किया है। आप विष्णुरत, दीनों पर दया करने वाले, सर्वज्ञ, विष्णुव्रतपरायण हैं। आपने बाल्यकाल से ही शुभ कार्त्तिक व्रत का पालन किया है। आपने जो कलहा को आधा पुण्य दिया इस पुण्य प्रभाव के कारण आपका पुण्य दूना संचित हो गया। आपके संचित सैकड़ों जन्म के पाप भी विलीन हो गये। हे साधु! आपके कार्त्तिक मासीय व्रत के पुण्य प्रभाव से कलहा का

भी पूर्वजन्म का पाप नष्ट हो गया। हरि जागरण के कारण यह कलहा विमान पर आसीन होकर वैकुण्ठ जा रही है। यह नाना भाग्य-भोग की अधिकारिणी हो गयी है। आपके कार्तिक मास के दीपदान के प्रभाव से कलहा को विष्णु सारूप्य लाभ हुआ है। कार्त्तिक में शुभ तुलसी के पूजनादि से कलहा को विष्णु सान्निध्य मिल रहा है। हे कृपानिधि! आप द्वारा प्रदत्त पुण्य से कलहा को यह उत्तम गति प्राप्त हो सकी है। हे धर्मदत्त! जो आपके समान भक्तिभाव से हरि की आराधना करता है, उसी का जन्म सार्थक है। हे द्विज! आप भी इस सुकृति द्वारा देहावसान होने पर भार्या के साथ वैकुण्ठधाम में गमन करके विष्णु सान्निध्य लाभ करके उनका सारूप्य प्राप्त करेंगे।।१२-१७।।

तेधन्याःकृतकृत्यास्तेतेषांचसफलोभवः। यैर्भक्त्याऽऽराधितोविष्णुर्धर्मदत्तयथात्वया॥१८॥
सम्यगाराधितोविष्णुःकिंनयच्छतिदेहिनाम्। औत्तानचरणिर्येनध्रुवत्वेस्थापितःपुरा॥१९॥
यन्नामस्मरणादेव देहिनो यान्ति सद्गतिम्॥२०॥
ग्राहग्रस्तोहिनागेन्द्रोयन्नामस्मरणात्पुरा। विमुक्तःसन्निधिंप्राप्तोजातोऽयंजयसञ्ज्ञकः॥२१॥
यतस्त्वयाऽर्चितो विष्णुस्तत्सान्निध्यं प्रयास्यसि।
बहून्यब्दसहस्राणि भार्याद्वययुतः किल॥२२॥
ततः पुण्यक्षयेजातेयदायास्यसिभूतलम्। सूर्यवंशोद्भवोराजाविख्यातस्त्वंभविष्यसि॥२३॥
नाम्ना दशरथस्तत्र भार्याद्वययुतः पुनः।
तृतीययाऽनया चाऽपि या ते पुण्यार्द्धभागिनी॥२४॥
तत्राऽपितवसान्निध्यंविष्णुर्यास्यतिभूतले। आत्मानंतवपुत्रत्वेप्रकल्प्याऽमरकार्यकृत्॥२५॥
तव जन्मव्रतादस्माद्विष्णुसन्तुष्टिकारकात्।
न यज्ञा न च दानानि न तीर्थान्यधिकानिः वै॥२६॥
धन्योऽसि विप्राग्र्य! यतस्त्वयैतद् व्रतं कृतं तुष्टिकरं जगद्गुरोः।
यदर्धभागात्सफला मुरारेः प्रणीयतेऽस्माभिरियं सलोकताम्॥२७॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे धर्मदत्तोपाख्याने कलहामोक्षकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥२५॥

—***—

जो विष्णु को प्रणाम करके उनकी सम्यक् आराधना करते हैं, उन शरीरधारीगण को वे प्रभु सब कुछ प्रदान करते हैं। हे द्विज! उत्तरायण में हरि की आराधना करने से पूर्वकाल में ध्रुव ने ध्रुवत्व लाभ किया था। उनका नाम स्मरण करने वाला ऐसी उत्तम गति का लाभ करता है। जिनका नाम स्मरण करके मनुष्य उत्तम गति का लाभ करता है, उनके सम्बन्ध में अधिक क्या कहूं? पूर्वकाल में ग्राह द्वारा पकड़ा गया गजराज विष्णु का नाम लेकर मुक्त हो गया। उसने विष्णुलोक जाकर जय नाम से प्रसिद्धि पाई। हे द्विज! आपने कमलापति का पूजन किया है। आप इस पूजा प्रभाव से १०००० वर्ष पत्नी के साथ विष्णु के पास रहेंगे। पुण्यक्षय होने पर

पुनः जब पृथिवी पर जन्म होगा, तब आप सूर्यवंश में उत्पन्न राजा दशरथ के रूप में अवतीर्ण होंगे। प्रथमतः आपकी दो पत्नियां होंगी, तब आप तृतीया अर्द्धांगिनी पत्नी से विवाह करेंगे। हरि आपके पुत्र रूप में उत्पन्न होंगे। वे आपकी पत्नी के गर्भ से जन्म लेकर देवताओं का प्रिय कार्य करेंगे। आप द्वारा अनुष्ठित इस हरिव्रत से बढ़कर विष्णु को प्रसन्न करने वाला कोई भी कार्य नहीं है। हे द्विजप्रवर! आपने जगद्‌गुरु हरि को सन्तोष देने वाला व्रत किया। अतएव आप धन्य हैं। आप के इस हरिव्रत का आधा भाग पाकर यह कलहा तो सफला हो गयी। आप के पुण्य प्रभाव से हम इसे विष्णुलोक ले जा रहे हैं।।१८-२७।।

।।पञ्चविंश अध्याय समाप्त।।

षड्विंशोऽध्यायः

चोलराज तथा विष्णुदास ब्राह्मण का उपाख्यान

विष्णुदास तथा चोलराज का संवाद

नारद उवाच

इत्थं तद्वचनं श्रुत्वा धर्मदत्तः सविस्मयः। प्रणम्य दण्डवद्भूमौ वाक्यमेतदुवाच ह।।१।।

देवर्षि नारद कहते हैं—द्विज धर्मदत्त विष्णुरूपी पुरुषद्वय के इस वाक्य को सुनकर विस्मित हो गये। वे उनको पृथिवी पर दण्डवत् होकर प्रणाम करने लगे।।१।।

धर्मदत्त उवाच

आराधयन्ति सर्वेऽपि विष्णुं भक्ताऽर्तिनाशनम्। यज्ञैर्दानैर्व्रतैस्तीर्थैस्तपोभिश्च यथाविधि।।२।।
विष्णुप्रीतिकरं तेषां किञ्चित्सान्निध्यकारकम्।
यत्कृत्वा तानि चीर्णानि सर्वाण्यपि भवन्ति हि।।३।।

धर्मदत्त कहते हैं—हे विष्णुद्वय! सभी ने यथाविधि यज्ञ, दान, व्रत तथा तप द्वारा भक्तों के दुःख का नाश करने वाले हरि की आराधना करके उनको सन्तोष प्रदान किया, तथापि आपने मुझे ऐसे एक कार्य का उपदेश दिया जिसे करने से यज्ञ दानादि अनुष्ठान बिना भी मनुष्य विष्णुसान्निध्य लाभ कर सकते हैं।।२-३।।

गणावूचतुः

साधु पृष्टं त्वयाविप्रशृणुष्वैकाग्रमानसः। सेतिहासकथांपुण्यांकथ्यमानांपुराभवाम्।।४।।
काञ्चिपुर्यां पुराचोलश्चक्रवर्तीनृपोऽभवत्। यस्याख्ययैव तेदेशाश्चोलाइतिप्रथांगताः।।५।।
यस्मिञ्छासतिभूचक्रं दरिद्रोवाऽपितुःखितः। पापबुद्धिःसरुग्वाऽपिनैवकश्चिदभून्नरः।।६।।

यस्याप्युन्नतयज्ञस्य ताम्रपर्ण्यास्तटावुभौ। सुवर्णयूपैःशोभाढ्यावास्तांचैत्ररथोपमौ॥७॥
स कदाचिदगाद्राजा ह्यनन्तशयनं द्विज!। यत्राऽसौजगतांनाथोयोगनिद्रामुपाश्रितः॥८॥
तत्र श्रीरमणं देवं सम्पूज्य विधिवन्नृपः। मणिमुक्ताफलैर्दिव्यैः स्वर्णपुष्पैश्च शोभनैः॥९॥
प्रणम्य दण्डवद्भूमावुपविष्टः स तत्र वै। तावद् ब्राह्मणमायातमपश्यद्देवसन्निधौ॥१०॥
देवार्चनार्थं पाणौ तुतुलस्युदकधारिणम्। स्वपुरीवासिनंतत्रविष्णुदासाह्वयं द्विजम्॥११॥
स तत्राभ्येत्यविप्रर्षिर्देवदेवमपूजयत्। विष्णुसूक्तेन संस्नाप्य तुलसीमञ्जरीदलैः॥१२॥
तुलसीपूजया तस्य रत्नपूजां पुरा कृताम्।
आच्छादितां समालोक्य राजा क्रुद्धोऽब्रवीदिदम्॥१३॥

हरि गणद्वय कहते हैं—हे विप्र! आपने उत्तम प्रश्न किया है। इस विषय में प्राचीन काल में संघटित एक पवित्र इतिहास कथा कहता हूं। एकाग्रतापूर्वक श्रवण करो। पूर्वकाल में काञ्चीपुर में चोल नामक चक्रवर्त्ती राजा थे। इनके ही नाम से उनके द्वारा शासित देश चोलराज्य कहलाया। राजा चोल जब भूचक्र में शासन कर रहे थे, तब उनके राज्य में कोई भी गरीब, दुःखी, पापी तथा रोगार्त्त नहीं था। उनके द्वारा यज्ञ के उन्नत स्वर्ण स्तूप समस्त तामपर्णी नदी के दोनों तटों पर गाड़े गये थे। वे सभी दो चैत्ररथ के समान शोभायुक्त थे। हे द्विज! जहां जगत्पति योगनिद्रा में शयन करते हैं, एक बार चोलराजा वहां आये तथा वहां दिव्यमणि, मुक्ता एवं स्वर्णकुसुम द्वारा राजा ने श्रीपति देव विष्णु की सम्यक् पूजा किया तथा उनको दण्डवत् प्रणिपात करके भूतल पर बैठ गये। राजा को बैठा देखकर वहां पर विष्णुदास नामक एक ब्राह्मण आये। उन्होंने विष्णु पूजार्थ तुलसी तथा जल हाथों में लिया था। ये विष्णुदास ब्राह्मण उन चोलराज के ही नगरवासी थे। विप्रर्षि विष्णुदास वहां आये तथा उन्होंने भगवान् को स्नान कराकर तुलसी मंजरी से आच्छादित कर दिया। इस प्रकार उन्होंने सम्यक् रूप से भगवत् पूजा को सुसम्पन्न किया। भक्त विष्णुदास की यह तुलसी मंजरी द्वारा पूजा रत्नादि पूजनवत् हो गयी। तदनन्तर चोलराज ने तुलसीदल द्वारा अपनी पूजा को आच्छादित देखकर क्रोधपूर्वक कहा।।४-१३।।

चोल उवाच

माणिक्यस्वर्णपूजाऽत्र शोभाढ्या या कृता मया।
विष्णुदास! कथं सेयमाच्छन्ना तुलसीदलैः॥१४॥
विष्णुभक्तिं न जानासि वराकोऽसि मतो मम।
यस्त्विमामतिशोभाढ्यां पूजामाच्छादयस्यहो॥१५॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा सक्रोधः स द्विजोत्तमः। राज्ञो गौरवमुल्लङ्घ्य जगाद वचनं तदा॥१६॥

राजा कहते हैं—हे विष्णुदास! मैंने माणिक्य तथा स्वर्णादि द्वारा जो सुशोभन अर्चना किया है, तुमने उसे तुलसीदल से क्यों आच्छादित किया? मुझे प्रतीत होता है कि तुम मूढ़ हो। मेरी विष्णु-भक्ति तुमको ज्ञात नहीं है। अहो! इसी कारण से तुमने मेरी पूजा को आच्छादित कर दिया। राजा की यह बात सुनकर द्विजोत्तम विष्णुदास तब क्रोधित हो गये तथा राजा की मर्यादा का उल्लंघन करके कहने लगे।।१४-१६।।

विष्णुदास उवाच

राजन्भक्तिं न जानासि गर्वितोऽसि नृपश्रिया।
कियद्विष्णुव्रतं पूर्वं त्वया चीर्णं वदस्व तत्॥१७॥

विष्णुदास कहते हैं—हे राजन्! आप राज्य समृद्धि से गर्वित हो गये हैं। आप विष्णुभक्ति नहीं जानते। आपने पूर्वकाल में किस प्रकार के विष्णुव्रत का पालन किया था, वह कहिये।।१७।।

गणावूचतुः

तद्ब्राह्मणवचः श्रुत्वा प्रहस्य स नृपोत्तमः। विष्णुदासं तदागर्वादुवाचवचनंद्विजम्॥१८॥

हरि गणद्वय कहते हैं—तब राजाओं में श्रेष्ठ चोलराजा विष्णुदास का यह वाक्य सुनकर हंस पड़े तथा गर्वपूर्वक उनसे यह वाक्य कहा।।१८।।

राजोवाच

इत्थं चेद्वदसे विप्र! विष्णुभक्त्याऽतिगर्वितः।
भक्तिस्ते कियती विष्णोर्दरिद्रस्याऽधनस्य च॥१९॥
यज्ञदानादिकं नैव विष्णोस्तुष्टिकरं कृतम्। नाऽपि देवालयंपूर्वंकृतंविप्रत्वयाक्वचित्॥२०॥
ईदृशस्याऽपि ते गर्व एषतिष्ठतिभक्तितः। तच्छृण्वन्तुवचोमेऽद्यसर्वेऽप्येतेद्विजातयः॥२१॥
साक्षात्कारमहं विष्णोरेष वाऽऽदौ गमिष्यति।
पश्यन्तु सर्वेऽपि ततो भक्तिं ज्ञास्यन्ति चावयोः॥२२॥

राजा कहते हैं—हे विप्र! विष्णु भक्ति से अत्यन्त गर्वित होकर तुम इस प्रकार बोल तो रहे हो, तथापि तुम दरिद्र हो। तुम्हारे पास धन नहीं है अतः तुम्हारी ही भक्ति कैसी? हे विप्र! तुमने विष्णु को प्रसन्नता प्रदान करने वाला यज्ञदानादि तो किया ही नहीं, कहीं पर एक भी देवालय की तुमने प्रतिष्ठा नहीं किया। इसलिये तुम्हारे जैसे धनहीन की विष्णु भक्ति की कथा गर्वित वाक्य लग रही है। अब सभी द्विजगण मेरी विष्णुभक्ति की बातों को सुनें। आप यह सब देखें कि हमदोनों में से कौन पहले विष्णुदर्शन प्राप्त करता है। इससे आप लोगों को हम दोनों में तुलनात्मक रूप से विष्णुभक्ति की अधिकता अथवा न्यूनता का ज्ञान होगा।।१९-२२।।

गणावूचतुः

इत्युक्त्वा सनृपोऽगच्छन्निजराजगृहं तदा। आरभद्वैष्णवंसत्रंकृत्वाऽचार्यंतुमुद्गलम्॥२३॥

गणद्वय कहते हैं—राजा चोल ने इस प्रकार से कहा तथा अपने महल चले गये। मुनि मुद्गल का आचार्यरूप से वरण करके राजा ने यज्ञ को प्रारंभ किया। यह विष्णुयज्ञ था।।२३।।

ऋषिसङ्घसमाजुष्टं बह्वन्नं बहुदक्षिणम्। यच्च ब्रह्मकृतं पूर्वं गयाक्षेत्रे समृद्धिमत्॥२४॥
विष्णुदासोऽपि तत्रैव तस्थौ देवालये व्रती।
यथोक्तनियमान्कुर्वन्विष्णोस्तुष्टिकरान्सदा। ।२५॥

माघोर्जयोर्व्रतं सम्यक्तुलसीवनपालनम्। एकादश्यां हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया॥२६॥
उपचारैः षोडशभिर्नृत्यगीतादिमङ्गलैः।
नित्यं विष्णोस्तथा पूजां व्रजान्येतानि सोऽकरोत्॥२७॥
नित्यंसंस्मरणंविष्णोर्गच्छन्भुविस्वपन्नपि। सर्वभूतस्थितंविष्णुमपश्यत्समदर्शनः॥२८॥
माघकार्त्तिकयोर्नित्यं विशेषनियमानपि। अकरोद्विष्णुतुष्ट्यर्थंसोद्यापनविधिं तथा॥२९॥
एवं समाराधयतोः श्रियःपतिं तयोश्च चोलेश्वरविष्णुदासयोः।
अगाद्बिकालः सुमहान्व्रतस्थयोस्तन्निष्ठसर्वेन्द्रियकर्मणोस्तदा॥३०॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे चोलराजविष्णुदासब्राह्मणविवादकथनंनाम षड्विंशोऽध्यायः॥२६॥

—❊❊❊—

इस यज्ञ में अनेक ऋषि, तपस्वी आये थे। पूर्व में अनेक यज्ञ तथा दक्षिणा द्वारा ब्रह्मा ने गयाक्षेत्र में जैसा समृद्ध यज्ञ किया था, उन चोल राजा ने भी वैसा यज्ञ सम्पादित किया। इधर विष्णुदास ब्राह्मण भी व्रताचरण पूर्वक वहां एक विष्णुमन्दिर में यथाविधि नियम पालन करते हुये विष्णु को प्रसन्न करने लगे। वे सम्यक्रूप से कार्त्तिक तथा माघव्रत का आचरण, तुलसी वनपालन, एकादशी के दिन विष्णु मन्त्र "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" का जप तथा षोडशोपचार से नृत्यगीतादि मंगलप्रद अनुष्ठान करते हुये नित्य पूजा करते थे। इसके अतिरिक्त भी व अन्य अनेक व्रत करते थे। विष्णुदास चलते-फिरते, निद्रित रहते, बैठे-खड़े होते, हरेक अवस्था में विष्णुनाम स्मरण करते रहते। उन्होंने सर्वभूतस्थ विष्णु का सर्वत्र समानभाव से दर्शन लाभ किया। तदनन्तर इस प्रकार नित्यव्रताचरण द्वारा विष्णु के सन्तोषार्थ विशेष नियमपालन करते हुये विधिपूर्वक माघ तथा कार्त्तिक व्रत का उन्होंने उद्यापन किया। विष्णुदास तथा राजा चोल ने इस प्रकार हरि की आराधना करते हुये दीर्घकाल व्यतीत कर दिया। ये दोनों ही व्रताचरण तत्पर थे। उनकी सभी इन्द्रियां अपने-अपने कार्यों से जगत्गुरु श्रीहरि में निष्ठित थीं।।२४-३०।।

।।षड्विंश अध्याय समाप्त।।

सप्तविंशोऽध्यायः

चोलराज तथा विष्णुदास को मुक्ति लाभ

नारद उवाच

कदाचिद्विष्णुदासोऽथ कृत्वा नित्यविधिं द्विज। सपाकमकरोत्तावदहरत्कोऽप्यलक्षितः॥१॥
तमदृष्ट्वाऽप्यसौ पाकं पुनर्नैवाऽकरोत्तदा। सायंकालार्चनस्याऽसौव्रतभङ्गभयाद्द्विजः॥२॥

द्वितीयेऽह्नि पुनःपाकं कृत्वा यावत्सविष्णवे। उपहारार्पणंकर्तुं गतःकोऽप्यहरत्पुनः॥३॥
एवं सप्तदिनं तस्य पाकं कोऽप्यहरन्नृप!। ततः सविस्मयश्चाथ मनस्येवमधारयत्॥४॥

देवर्षि नारद कहते हैं—तदनन्तर एक बार ब्राह्मण विष्णुदास नित्यकार्य सम्पन्न करके भोजन बना रहे थे। जैसे ही उनका भोजन बनाने का कार्य सम्पन्न हुआ, मानो तभी किसी ने समस्त बने भोजन का अपहरण कर लिया, तथापि सायंकालीन पूजा न करने से व्रतभंग न हो, इसलिये उन्होंने पुनः भोजन नहीं बनाया। क्योंकि पुनः भोजन बनाने में समय नष्ट होने पर पूजा न हो पाती तथा पूजाक्रम भंग हो जाता। इसलिये वे उस दिन उपवासी ही रह गये। दूसरे दिन वे जैसे ही भोजन पाक करके उसे विष्णु को निवेदित करने जाने लगे, तभी वह भोजन द्रव्य पुनः गायब हो गया। मानो किसी ने उसका अपहरण कर लिया। हे राजन्! इस प्रकार सात दिनों तक यही क्रम चलता रहा। उनकी बनाई भोजन सामग्री भगवान् को अर्पित करने के पूर्व ही अपहृत सी हो जाती! इस घटनाक्रम से विस्मित होकर विष्णुदास विचार करने लगे।।१-४।।

अहोनित्यं समभ्येत्य कः पाकं हरते मम। क्षेत्रसंन्यासिनःस्थानंनत्याज्यंममसर्वथा॥५॥
पुनःपाकंविधायाऽत्रभुज्यतेयदिचेन्मया। सायंकालाऽर्चनं चैव परित्याज्यंकथंभवेत्॥६॥
यदिपाकंविधायैव भोक्तव्यं तु मया न तत्। अनिवेद्यहरौसर्वं वैष्णवैर्नैव भुज्यते॥७॥

उपाषितोऽहं सप्ताऽहं तिष्ठाम्यत्र व्रतस्थितः।
अद्य संरक्षणं सम्यक्पाकस्याऽत्र करोम्यहम्॥८॥
इति पाकं विधायाऽसौ तत्रैवाऽलक्षितः स्थितः।
तावद्ददर्श चण्डालं पाकान्नहरणे स्थितम्॥९॥

"यह तो महान् आश्चर्य है। कौन प्रतिदिन भोजन सामग्री अपहृत कर रहा है? यह स्थान चोरों से युक्त रहने पर भी संन्यासी क्षेत्र है। यह किसी प्रकार भी त्याग करने योग्य नहीं है। यदि पुनः भोजन पाक करने लगूंगा तब तो सायंकाल का समय हो जायेगा, तब क्या सायं पूजा का त्याग करना होगा? यदि मैं पुनः पाक करता हूं तब हरि को बिना निवेदित किये भोजन करना कदापि वैष्णव के लिये उचित नहीं होगा। मैं तो व्रतस्थ होकर सात दिनों से उपवास कर रहा हूं। अतः आज मैं भोजन बनाकर अन्यत्र कहीं नहीं जाऊंगा तथा उसकी पहरेदारी करूंगा।" विष्णुदास ने यह निश्चय किया तथा वहीं पर छिप कर बैठ गये। तभी वह देखते हैं कि एक चाण्डाल वह खाद्यसामग्री ग्रहण करने वहां आ पहुंचा।।५-९।।

क्षुत्क्षामं दीनवदनमस्थिचर्माऽवशेषितम्।
तमालोक्य द्विजाग्र्योऽभूत्कृपयाऽन्वितमानसः॥१०॥
विलोक्याऽन्नहरं विप्रस्तिष्ठतिष्ठेत्यभाषत। कथमश्नासि तद्रूक्षं घृतमेतद्गृहाणभोः॥११॥

वह चाण्डाल अत्यन्त क्षुधार्त्त, दीनवदन तथा अस्थिचर्मावशिष्ट था। जब उन द्विजप्रवर विष्णुदास ने चाण्डाल की यह अवस्था देखा तब उनका हृदय दयार्द्र हो उठा। उन्होंने उस अन्न अपहरणकर्त्ता को देखकर कहा "रुको रुको! यह रूखा अन्य क्यों खा रहे हो? यह घृत देता हूं। इसके साथ अन्न ग्रहण करो।"।।१०-११।।

इत्थं वदन्तं विप्राग्र्यमायान्तंस विलोक्य च। वेगादधावत्तद्भीत्यामूर्च्छितश्चपपातह॥१२।

भीतंसंमूर्च्छितंदृष्ट्वाचण्डालंसद्विजाग्रणीः। वेगादभ्येत्यकृपयास्ववस्त्रान्तन्तैरवीजयत्॥१३॥
अथोत्थितंतमेवासौविष्णुदासोव्यलोकयत्। साक्षान्नारायणंदेवंशङ्खचक्रगदाधरम्॥१४॥

द्विजप्रवर विष्णुदास के यह कहने पर वह चाण्डाल भय के कारण वहां से शीघ्रता से भागने लगा, लेकिन वह अधिक दूर न जाकर पास में ही अशक्तता के कारण मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। द्विजोत्तम विष्णुदास उस चाण्डाल को भयभीत तथा मूर्च्छित देखकर शीघ्रतापूर्वक उसके निकट आये तथा अपने उत्तरीय से उसे पंखा करने लगे। जब वह चाण्डाल उठा तब विष्णुदास देखते हैं कि वह तो साक्षात् शंख-चक्र-गदाधारी साक्षात् नारायणस्वरूप हैं।।१२-१४।।

तं दृष्ट्वा सात्त्विकैर्भावैरावृतो द्विजसत्तमः। स्तोतुंचैवनमस्कर्तुतदानाऽलम्बभूव सः॥१५॥
अथशक्रादयोदेवास्तत्रैवाभ्याययुस्तदा। गन्धर्वाप्सरसश्चाऽपिजगुश्चननृतुर्मुदा॥१६॥
विमानशतसङ्कीर्णं देवर्षिशतसङ्कुलम्। गीतवादित्रनिर्घोषं स्थानंतदभवत्तदा॥१७॥
ततो विष्णुः समालिङ्ग्य स्वभक्तं सात्विकव्रतम्।
सारूप्यमात्मनो दत्त्वाऽनयद्वैकुण्ठमन्दिरम्॥१८॥
विमानवरसंस्थंतं गच्छन्तं विष्णुसन्निधिम्। दीक्षितश्चोलनृपतिर्विष्णुदासंददर्शसः॥१९॥
वैकुण्ठभुवनं यान्तं विष्णुदासंविलोक्यसः। स्वगुरुंमुद्गलंवेगादाहूयेत्थं वचोऽब्रवीत्॥२०॥

द्विजप्रवर विष्णुदास भगवान् को वहां प्रकट देखकर सात्विक भाव से विभोर हो गये। वे स्तव करें अथवा प्रणाम करें, कुछ भी निश्चय नहीं कर पा रहे थे। तदनन्तर वहां इन्द्रादि देवगण आये। गन्धर्व तथा अप्सरायें आदि नृत्य-गीत रत हो गये। सैकड़ों विमानों से वह स्थान समाकीर्ण हो गया। वहां सैकड़ों देवर्षिगण भी आ गये। वह स्थान गीत-वाद्य के घोष से पूर्ण हो गया। तदनन्तर श्रीहरि ने सात्विक व्रतशील अपने भक्त विष्णुदास का आलिंगन किया तथा उनको अपना सारूप्य प्रदान करने वैकुण्ठ ले गये। जब विष्णुदास अत्युत्तम विमान पर आरूढ़ होकर विष्णुलोक जाने लगे, तब यज्ञदीक्षित राजा चोल ने उनको देखा। राजा शीघ्रतापूर्वक अपने गुरु मुद्गल के पास आकर कहने लगे।।१५-२०।।

चोल उवाच

यत्स्पर्द्धया मयाचैवयज्ञादानादिकंकृतम्। सविष्णुरूपधृग्विप्रोयातिवैकुण्ठमन्दिरम्॥२१॥
दीक्षितेन मया सम्यक्सत्रेऽस्मिन्वैष्णवे त्वया।
हुतमग्नौ कृता विप्रा दानाद्यैः पूर्णमानसाः॥२२॥
नैवाऽद्यापि सप्तमेदेवःप्रसन्नोजायतेध्रुवम्। विष्णुदासस्यभक्त्यैवसाक्षात्कारंददौहरिः॥२३॥
तस्माद्दानैश्च यज्ञैश्च नैव विष्णुः प्रसीदति। भक्तिरेव परं तस्य निदानं दर्शने विभोः॥२४॥

राजा चोल कहते हैं—हे गुरुदेव! मैं जिसकी स्पर्द्धा के कारण यज्ञ-दानादि में प्रवृत्त था, यह देखिये, वह विष्णुदास विष्णुरूपधारी होकर वैकुण्ठलोक जा रहा है। मैं आप द्वारा सम्यक्तः विष्णुयज्ञ में दीक्षित होकर अग्नि में आहुति दे रहा हूं तथा दान-मान से ब्राह्मणों का पूर्णकाम कर रहा हूं, तथापि देव विष्णु मुझ पर प्रसन्न

नहीं हैं। विष्णुदास की भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् ने उसको साक्षात् दर्शन दे दिया! इसलिये दान एवं यज्ञ से श्रीहरि प्रसन्न नहीं होते। एकमात्र भक्ति ही उनके साक्षात्कार के लिये श्रेष्ठ निदान है।।२१-२४।।

गणावूचतुः

इत्युक्त्वाभागिनेयंस्वमभ्यषिञ्चन्नृपासने। आबाल्याद्दीक्षितो यज्ञे ह्यपुत्रत्वमगाद्यतः॥२५॥
तस्मादद्याऽपि तद्देशेसदाराज्यांशभागिनः। स्वस्त्रेयाएवजायन्ते तत्कृतावधिवर्तिनः॥२६॥

यज्ञवाटं ततोऽभ्येत्य यज्ञकुण्डाग्रतः स्थितः।
त्रिरुच्चैर्व्याजहाराऽऽशुविष्णुं संबोधयंस्तदा॥२७॥
विष्णो! भक्तिं स्थिरां देहि मनोवाक्कायकर्मभिः।
इत्युक्त्वा सोऽपतद्वह्नौ सर्वेषामेव पश्यताम्॥२८॥
मुद्गलस्तु तदा क्रोधाच्छिखामुत्पाटयत्स्वकाम्।
ततस्त्वद्याऽपि तद्गोत्रे मुद्गला विशिखा बभुः॥२९॥
तावदाविरभूद्विष्णुः कुण्डाग्नौ भक्तवत्सलः।
तमालिङ्ग्य विमानाग्र्यं समारोहयदच्युतः॥३०॥

तमालिङ्ग्याऽऽत्मसारूप्यंदत्त्वावैकुण्ठमन्दिरम्। तेनैवसहदेवेशोजगामत्रिदशैर्वृतः॥३१॥

हरिगण कहते हैं—राजा चोल पुत्ररहित थे। उन्होंने गुरु से यह कहकर अपनी बहन के पुत्र को सिंहासन पर अभिषिक्त किया। राजा बाल्यकाल से ही यज्ञ दीक्षित थे। अतः पुत्ररहित थे। तभी से चोलराज्य वंश में यह परम्परा हो गई, वहां के राजा अपने उत्तराधिकारी के रूप में भांजे को ही नियुक्त करने लगे। तदनन्तर राजा चोल शीघ्रता से यज्ञभूमि में आये तथा विष्णु को सम्बोधित करते हुये उच्च स्वर से कहने लगे—"हे विष्णु! मन-वाणी-कर्म से जो भक्ति सुस्थिर है, वही मुझे प्रदान करिये।" राजा ने यह कहकर दण्डवत् स्थिति में स्वयं को उस यज्ञाग्नि में गिरा दिया! ऋषि मुद्गल ने यह देखकर क्रोधपूर्वक अपनी शिखा को उखाड़ लिया। हे द्विज! तभी से आज भी मुद्गल गोत्रीय ब्राह्मण शिखाहीन रहते हैं। यह सब घटना घटित होने पर भक्तवत्सल देवेश अच्युत विष्णु उस यज्ञकुण्डाग्नि में प्रादुर्भूत हो गये। उन्होंने राजा का आलिंगन करके उनको विमान पर बैठाया। भगवान् ने उनको सारूप्य प्रदान किया। भगवान् देवगणों से घिरे हुये राजा को लेकर स्वधाम चले गये।।२५-३१।।

नारद उवाच

यो विष्णुदासः स तु पुण्यशीलो यश्चोलभूपः स सुशीलनामा।
एतावुभौ तत्समरूपभाजौ द्वाःस्थौ कृतौ तेन रमाप्रियेण॥३२॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे चोलविष्णुदासमुक्तिकथनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः।।२७।।

—***—

नारद कहते हैं—हे राजन्! वे विष्णुदास ही उन दोनों हरिगण में से पुण्यशील नामक हरिगण हुये तथा राजा चोल सुशील नामक हरिगण कहलाये। कमलापति भगवान् विष्णु द्वारा इन दोनों को सारूप्य प्राप्त हुआ। ये लोग वैकुण्ठ के द्वारपाल के रूप में प्रतिष्ठित हैं।।३२।।

।।सप्तविंश अध्याय समाप्त।।

अष्टाविंशोऽध्यायः

धर्मदत्त को मोक्षलाभ

धर्मदत्त उवाच

जयश्च विजयश्चैव विष्णोर्द्वाःस्थौ श्रुतौ मया।
किं नु ताभ्यां पुरा चीर्णं तस्मात्तद्रूपधारिणौ॥१॥

धर्मदत्त कहते हैं—मैंने सुना है कि जय तथा विजय ही विष्णु के द्वार पर स्थित रहते हैं। उन्होंने क्या कर्म किया था जिसके कारण उन्होंने जय, विजय रूप से वहां द्वाररक्षक का पद प्राप्त किया?।।१।।

गणावूचतुः

तृणबिन्दोस्तु कन्यायां देवहूत्यांपुराद्विज!। कर्दमस्यतु दृष्ट्यैवपुत्रौद्वौसम्बभूवतुः॥२॥
ज्येष्ठो जयः कनिष्ठोऽभूद्विजयश्चैव नामतः।
तस्यामेवाऽभवत्पश्चात्कपिलो योगधर्मवित्॥३॥
जयश्च विजयश्चैब विष्णुभक्तिरतौ सदा। तौ तन्निष्ठेन्द्रियग्रामौ धर्मशीलौबभूवतुः॥४॥
नित्यमष्टाक्षरीजाप्यौ विष्णुव्रतकरावुभौ। साक्षात्कारं ददौ विष्णुस्तयोर्नित्यार्चने सदा॥५॥
मरुत्तेन कदाचित्तावाहूतौ यज्ञकर्मणि। जग्मतुर्यज्ञकुशलौ देवर्षिगणपूजितौ॥६॥
जयस्तत्राऽभवद्ब्रह्मा याजकोविजयोऽभवत्। ततोयज्ञविधिंकृत्स्नंपरिपूर्णञ्चचक्रतुः॥७॥

दोनों ही गण कहते हैं—हे द्विज! पूर्वकाल में तृणविन्दु की कन्या देवहूति के गर्भ से कर्दम ऋषि को प्रसन्नता प्रदाता दो पुत्रों का जन्म हुआ। इनका नाम जय तथा विजय था। तदनन्तर देवहूति को एक और पुत्र जन्मा। उनका नाम था कपिल। कपिल योगधर्म ज्ञाता थे। विष्णुव्रततत्पर जय तथा विजय सतत् विष्णुभक्तिरत जितेन्द्रिय तथा धर्मात्मा थे। वे नित्य विष्णु के अष्टाक्षर मन्त्र का जप करते थे। जय तथा विजय की सतत् पूजा से प्रसन्न होकर उनको श्रीहरि ने प्रत्यक्ष दर्शन प्रदान किया। एक बार मरुत् के आह्वान पर यज्ञकुशल देवर्षिगण पूजित जय-विजय उनके यज्ञ में गये। इस यज्ञ में जय ने ब्रह्मा का कार्य तथा विजय ने होता कार्यभार ग्रहण किया। उन दोनों ने समस्त यज्ञकार्य सम्पन्न कर दिया।।२-७।।

मरुत्तोऽवभृथस्नातस्ताभ्यां वित्तं ददौ बहु। तत्समादाय तौ वित्तं जग्मतुः स्वाश्रमं प्रति॥८॥
यजनाय पृथग्विष्णोस्तुष्ट्यर्थं तौततोमुनी। तद्धनंविभजन्तौहिपस्पर्धातेपरस्परम्॥९॥
जयोऽब्रवीत्समो भागः क्रियतामितितत्रसः। विजयश्चाब्रवीन्नैतद्यल्लब्धंयेनतस्यतत्॥१०॥
ततोऽशपज्जयःक्रोधाद्विजयंलुब्धमानसम्। गृहीत्वानददास्येतत्तस्माद्ग्राहोभवेतितम्॥११॥
विजयस्तस्य तं शापं श्रुत्वा सोऽप्यशपच्च तम्।
मद्भ्रान्तोऽशपस्त्वं मां तस्मान्मातङ्गतां व्रज॥१२॥
तत्तदाचख्यतुर्विष्णुं दृष्ट्वा नित्यार्चनेविभुम्। शापयोश्चनिवृत्तिंतौययाचातेरमापतिम्॥१३॥

तत्पश्चात् राजा मरुत् ने अवभृथ स्नानोपरान्त इन जय-विजय को प्रभूत धन प्रदान किया। जय-विजय यह समस्त धनसम्पत्ति लेकर अपने आश्रम लौटे। इसके पश्चात् इन दोनों ने विष्णु की प्रसन्नता हेतु पृथक् रूप से यज्ञानुष्ठान करना चाहा, जिसके लिये यह धनसम्पत्ति विभाजित करते समय उनमें स्पर्द्धा हो गयी। तब जय ने कहा "यह सम्पत्ति समान रूप से हम दोनों में विभाजित हो।" तथापि विजय ने कहा—"नहीं ऐसा नहीं होगा। यज्ञ में जिसे जो मिला है, वही उसकी सम्पत्ति मानी जायेगी।" लोभी विजय का कथन सुनकर क्रोधातुर जय ने विजय को शाप दिया "तुम राजा से मेरे हिस्से का धन पाकर भी मेरा धन मुझे नहीं दे रहे हो। अतः तुम ग्राह हो जाहो।" विजय ने भी जय का शाप सुनकर उसे शाप दिया "तुमने मदमत्त होकर मुझे शापित किया है, अतः तुम हाथी हो जाओ।" तदनन्तर परस्परतः अभिशप्त जय-विजय ने पूजाकाल में रमापति हरि का दर्शन करके उनसे अपनी शाप निवृत्ति हेतु प्रार्थना किया।।८-१३।।

जयविजयावूचतुः

भक्तावावांकथंदेवग्राहमातङ्गयोनिगौ। भविष्यावःकृपासिन्धोतच्छापोविनिवर्त्यताम्॥१४॥

जय-विजय कहते हैं—हे देव! हम आपके भक्त हैं। परस्परतः शाप के कारण हम हाथी तथा ग्राह योनि पाने जा रहे हैं। हे कृपासिन्धु! अब हम क्या उपाय करें कि हमारी शापनिवृत्ति हो जाये?।।१४।।

श्रीभगवानुवाच

मद्भक्तयोर्वचोऽसत्यं न कदाचिद्भविष्यति।
मयाऽपि नान्यथाकर्तुं शक्यते तत्कदाचन॥१५॥
प्रह्लादवचसास्तम्भेऽप्याविर्भूतो ह्यहं पुरा। तथाऽम्बरीषवाक्येनजातोगर्भे स्वयंकिल॥१६॥
तस्माद्युवामिमौ शापावनुभूय स्वयंकृतौ। लभेथांमत्पदंनित्यमित्युक्त्वाऽन्तर्दधेहरिः॥१७॥

श्री भगवान् कहते हैं—"मेरे भक्तों का वाक्य कदापि निष्फल नहीं होता। मैं स्वयं भी अपने भक्तों के वाक्य को अन्यथा नहीं कर सकता। देखो! मैं अपने भक्त प्रह्लाद के वाक्य को सत्य करने हेतु पूर्वकाल में स्तम्भ से आविर्भूत हो गया। भक्त अम्बरीष की प्रार्थना पर मैंने गर्भ में आना स्वीकार किया। इसलिये भक्त का वाक्य व्यर्थ नहीं जाता। इस कारण तुम लोग अपने द्वारा दिये गये शाप का फल भोग करके मेरे सनातन पद को प्राप्त करो।" श्री हरि यह कहकर अन्तर्हित् हो गये।।१५-१७।।

गणावूचतुः

ततस्तौ ग्राहमातङ्गावभूतो गण्डकीतटे। जातिस्मरौ तु तद्योन्यामपि विष्णुव्रते स्थितौ॥१८॥

कदाचित्स गजःस्नातुंकार्त्तिकेगण्डकींगतः।
तावज्जग्राहतंग्राहःसंस्मरञ्छापकारणम्॥१९॥

ग्राहग्रस्तो ह्यसौ नागः सस्मार श्रीपतिं तदा। तावदाविरभूद्विष्णुश्चक्रशङ्खगदाधरः॥२०॥

ततस्तौ ग्राहमातङ्गौ चक्रं क्षिप्त्वासमुद्धृतौ। दत्त्वैवनिजसारूप्यंवैकुण्ठमनयद्विभुः॥२१॥

ततः प्रभृति तत्स्थानं हरिक्षेत्रमितिस्मृतम्।
चक्रसङ्घर्षणाद्यस्मिन्ग्रावाणोऽपि हि लाञ्छिताः॥२२॥

हरिगण कहते हैं—तदनन्तर जय-विजय गण्डकी नदी के तट पर ग्राह तथा हाथी के रूप में अवतीर्ण हुये। तब भी वे विष्णुव्रताचरण करते रहने के पूर्वजन्म की स्मृति के साथ जन्मे। तदनन्तर एक बार कार्त्तिक मास में वह हाथी स्नानार्थ गण्डकी तट पर गया। शाप के कारण उसे उस ग्राह ने पकड़ लिया। ग्राह के पकड़े जाकर गज ने रमापति हरि का स्मरण किया, जिसके कारण शंख-चक्र-गदाधारी विभु विष्णु वहां तत्क्षण प्रादुर्भूत हो गये और उन्होंने चक्र से ग्राह का वध करके हाथी का उद्धार किया और गज एवं ग्राह को अपना सारूप्य प्रदान किया। तदनन्तर भगवान् ने उनको वैकुण्ठ में स्थान प्रदान किया। हे द्विज! तब से वह गण्डकी तट विष्णुक्षेत्र कहलाता है। चक्र के छोड़ने के घर्षणस्वरूप समस्त गण्डकी शिलायें चक्रचिह्नित हो गयी हैं।।१८-२२।।

तावुभौ विश्रुतौ लोके जयश्च विजयस्तथा।
नित्यं विष्णुप्रियौ द्वाःस्थौ पृष्टौ यौ हि त्वया द्विज!॥२३॥

अतस्त्वमपि धर्मज्ञ! नित्यं विष्णुव्रते स्थितः।
त्यक्तमात्सर्यदम्भोऽपि भवस्व समदर्शनः॥२४॥

तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नायी सदा भव। एकादशीव्रते तिष्ठ तुलसीवनपालकः॥२५॥

ब्राह्मणानथ गाश्चाऽपि वैष्णवांश्चसदा भज। मसूरिकामारनालंवृन्ताकान्यपिखादमा॥२६॥

एवं त्वमपि देहान्ते तद्विष्णोः परमं पदम्। प्राप्नोषि धर्मदत्त! त्वं तद्वत्त्यैवयथावयम्॥२७॥

तावज्जन्म व्रतादस्माद्विष्णुसन्तुष्टिकारकात्।
न यज्ञा न च दानानि न तीर्थान्यधिकानि वै॥२८॥

धन्योऽसि विप्राग्र्य! यतस्त्वयैतद् व्रतं कृतं तुष्टिकरं जगद्गुरोः।
यदर्धभागाऽऽप्तफला मुरारेः प्रणीयतेऽस्माभिरियं सलोकताम्॥२९॥

हे द्विज! तुमने जो जय-विजय का प्रसंग पूछा था, वे हरिप्रिय जय तथा विजय हरि के धाम के द्वार रक्षक रूप से संसार में प्रसिद्ध हैं। हे धर्मज्ञ! तुम नित्य विष्णुव्रतस्थ हो। अतएव दम्भ एवं मात्सर्य को त्यागकर सर्वभूत समूह के प्रति समदर्शी हो जाओ। कार्त्तिक-माघ तथा वैशाख में सदा प्रातः स्नान करो। नित्य तुलसी वनपालन करते हुये एकादशी व्रत तत्पर हो जाओ। गौ, ब्राह्मण, वैष्णवों का नित्य भजन करो। कभी भी

कार्त्तिक में मसूर तथा वार्त्ताकु भक्षण न करो। हे द्विज! इस प्रकार से तुम भी देवलोक में विष्णु का परमपद लाभ करोगे। हे धर्मज्ञ! तुम नित्य विष्णुव्रतस्थ हो अतः जैसे हमने भक्ति से विष्णुपद लाभ किया है, तदनुरूप तुमको भी हरि की प्राप्ति होगी। आजन्म इस विष्णुप्रीतिकर व्रत की तुलना में समस्त यज्ञ, दान, तीर्थ, भी श्रेष्ठ नहीं है। हे विप्रप्रवर! तुमने जगद्गुरु को सन्तोष प्रदान करने वाला हरिव्रत किया है। अतः तुम धन्य हो। आज यह कलहा स्त्री भी तुम्हारे द्वारा आचरित हरिव्रत का आधा भाग पाकर विष्णु सालोक्य को पा सकी है। तुम्हारे द्वारा प्राप्त पुण्यफल के कारण ही हम इसे वैकुण्ठ ले जा रहे हैं।।२३-२९।।

नारद उवाच

इत्थं तौ धर्मदत्तं तमुपदिश्य विमानगौ। तया कलहया सार्द्धं वैकुण्ठभवनंगतौ॥३०॥

धर्मदत्तो ह्यसौ जातप्रत्ययस्तद्व्रते स्थितः।
देहाऽन्ते तद्विभोः स्थानं भार्याभ्यां संयुतोऽभ्ययात्॥३१॥
इतिहासमिमं पुराभवं शृणुते श्रावयते च यः पुमान्।
हरिसन्निधिकारणीं मतिं लभतेऽसौ कृपया जगद्गुरोः॥३२॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे धर्मदत्तमोक्षप्राप्तिकथनंनामाऽष्टाविंशोऽध्यायः।।२८।।

नारद कहते हैं—हरि के दोनों गणों ने यह उपदेश देकर विमान पर आरोहण किया तथा वे कलहा के साथ शीघ्र वैकुण्ठलोक चले गये। ब्राह्मण धर्मदत्त यह सब प्रत्यक्ष देखकर हरिव्रत में आस्थावान् हो गये तथा निरन्तर हरिव्रताचरण करते हुये विभु विष्णु के परमपद पर स्थित हो गये। जो यह प्राचीन इतिहास सुनते हैं तथा अन्य को सुनाते हैं, जगद्गुरु श्रीहरि की कृपा से वे विष्णु सान्निध्यप्रद ज्ञान को प्राप्त करते हैं।।३०-३२।।

।।अष्टाविंश अध्याय समाप्त।।

ऊनत्रिंशोऽध्यायः

धनेश्वर को यक्षयोनिप्राप्ति, कार्त्तिक प्रभाव

श्रीकृष्ण उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा पृथुर्विस्मितमानसः। सम्पूज्यनारदं सम्यग्विससर्ज तदा प्रिये!॥१॥
पुराऽवन्तीपुरे कश्चिद्विप्र आसीद्धनेश्वरः। ब्रह्मकर्मपरिभ्रष्टः पापकर्मा सुदुर्मतिः॥२॥
देशाद्देशान्तरं गच्छन्क्रयविक्रयकारणात्। माहिष्मतींपुरीमागात्कदांचित्स धनेश्वरः॥३॥

महिषेण कृता पूर्वं तस्मान्माहिष्मतीतिसा। यस्या वप्रगता भातिनर्मदापापनाशिनी॥४॥
कार्त्तिकव्रतिनस्तत्र नानादेशाऽऽगतान्नरान्। स दृष्ट्वा विक्रयन्कुर्वन्मासमेकमुवास सः॥५॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे प्रिये! पृथु देवर्षि नारद से यह सब सुनकर विस्मित हो गये तथा उनकी सम्यक् पूजा के उपरान्त राजा ने देवर्षि को विदा किया। पूर्वकाल में अवन्तिपुर में धनेश्वर नामक एक द्विज का निवास था। धनेश्वर ब्रह्मकर्म से भ्रष्ट, पापी तथा दुर्मति था। एक बार धनेश्वर व्यापार करता हुआ देश-विदेश का भ्रमण करते-करते माहिष्मतीपुरी जा पहुंचा। हे प्रिये! इस पुरी को महिषासुर ने प्रतिष्ठित किया था। तभी इसका नाम माहिष्मती पड़ा। पापनाशिनी नर्मदा के तट पर माहिष्मतीपुरी विराजमान है। ब्राह्मण धनेश्वर व्यापार की वस्तु के विक्रयार्थ नर्मदा तट पहुंचे। वहां उस समय अनेक देशों से कार्त्तिक व्रतीगण स्नानार्थ आये थे। धनेश्वर ने अपने सामान के विक्रयार्थ कार्त्तिक व्रतियों को देखते हुये वहां एक मास निवास किया।।१-५।।

स नित्यं नर्मदातीरे भ्रमन्विक्रयकारणात्। ददर्शब्राह्मणान्स्नानजपदेवार्चनेस्थितान्॥६॥
कांश्चित्पुराणं पठतः कांश्चिच्चश्रवणे रतान्। नृत्यगायनवादित्रविष्णुश्रवणतत्परान्॥७॥
उद्यापनविधौ सक्तान्कांश्चिज्जागरणे रतान्। विप्रागोपूजनरतान्दीपदानरतांस्तथा॥८॥
ददर्श कौतुकाविष्टस्तत्र तत्र धनेश्वरः। नित्यं परिभ्रमंस्तत्र दर्शनस्पर्शभाषणात्॥९॥
वैष्णवानां तथाविष्णोर्नामिश्रावादि सोऽलभत्।
एवं मासं स्थितस्तस्या नर्मदायास्तटे द्विजः॥१०॥
तावत्कृष्णाऽहिना दष्टो विह्वलःस पपातह। अथ देहपरित्यक्तं तम्बद्ध्वायमकिङ्कराः॥११॥
यमाज्ञया कुम्भिपाके चिक्षिपुस्तं धनेश्वरम्।
यावत्क्षिप्तश्च तत्राऽसौ तावच्छीतलतां ययौ॥१२॥
कुम्भीपाको यथावह्निः प्रह्लादक्षेपणात्पुरा। यमस्तु कौतुकं दृष्ट्वा पप्रच्छानीय तं ततः।
तावदभ्यागतस्तत्र नारदः प्राह सत्वरम्॥१३॥

धनेश्वर नित्य नर्मदा तट पर जाकर क्रय-विक्रय के लिये वहां घूमा करता था। वहां पर वह जप, स्नान तथा देवार्चनतत्पर कार्त्तिकव्रती विप्रगण को देखता रहता था। धनञ्जय देखता कि वहां कोई पुण्यमयी पुराणों का पाठ कर रहा था। कोई-कोई वहां पर विष्णु सम्बन्धित नृत्य-गीत-वाद्य परायण होकर तत्पर रहता था। कोई-कोई कार्त्तिक व्रत के उद्यापन में लगा था। कोई व्यक्ति हरि को प्रसन्न करने के लिये हरि जागरण व्रत कर रहा था। कोई विप्र गोपूजन में रत था। कोई दीपदान कर रहा था। द्विज धनेश्वर नर्मदा तीर पर यह सब देखता हुआ विस्मित हो गया। वह नित्य वहां जाकर घूमते हुये वैष्णवों का दर्शन-स्पर्शन करते हुये विष्णु का नाम श्रवण करता रहता था। इस प्रकार से ब्राह्मण धनेश्वर ने वहां एक मास पर्यन्त नर्मता तट पर निवास किया। तभी उसे वहां एक काले सर्प ने डंस लिया। धनेश्वर सर्पदंश से विह्वल हो गया तथा वह पृथिवी पर गिर कर मृत हो गया। तब यमदूतगण वहां आये तथा उसे बांधकर यम के आदेशानुसार कुंभीपाक नरक में फेंक दिये। धनेश्वर कुंभीपाक में फेंका तो गया, लेकिन जैसे पूर्वकाल में प्रह्लाद को दैत्यों ने अग्नि में फेंका था और जिस प्रकार अग्नि शीतल हो गयी थी, तद्रूप अग्नि के शीतल होने के कारण धनेश्वर ने भी शान्तिलाभ किया। यह कौतुक सुनकर यमराज ने धनेश्वर को अपने पास बुलाकर कारण पूछा। तभी दैवात् वहां देवर्षि नारद पहुंचे और कहने लगे।।६-१३।।

नारद उवाच

नैवाऽयं निरयान्भोक्तुमर्हो ह्यरुणनन्दन!॥१४॥
यस्मादन्तेऽस्य सञ्जातंकर्मयन्निरयापहम्। यःपुण्यकर्मिणांकुर्याद्दर्शनस्पर्शभाषणम्॥१५॥
ततः षडंशमाप्नोति पुण्यस्य नियतं नरः। संख्यं तु तैस्तु संसर्गं कृतवान्वै धनेश्वरः॥१६॥
कार्त्तिकव्रतिभिर्मासं तेषां पुण्यांशभागयम्॥१७॥
तस्मादकामपुण्यो हि यक्षयोनिस्थितो ह्ययम्।
विलोक्य निरयान्सर्वान्पापभोगप्रदर्शकान्॥१८॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे सूर्यनन्दन! यह धनेश्वर नरक यातना भोगने लायक नहीं है। भले ही पहले इनसे चाहे जो किया हो, इसने अन्तकाल में नरकनाशक कर्म किया है। जो मानव पुण्यकर्मीगण का दर्शन अथवा स्पर्शन करता है, उसे उनेक पुण्य का $\frac{१}{६}$ भाग प्राप्त हो जाता है। धनेश्वर ने पुण्यकर्माओं के साथ सौख्य (मित्रता) तथा उनका संसर्ग किया था। उसने कार्त्तिकव्रती लोगों के साथ एक मास व्यतीत किया था, अतः इसे उनका $\frac{१}{६}$ पुण्यलाभ हो गया। धनेश्वर अकाम पुण्य प्राप्त होने पर भी पापभोग जनक नरकों को देखकर तब यक्ष बने।।१४-१८।।

श्रीकृष्ण उवाच

इत्युक्त्वा गतवति नारदे स सौरिस्तद्वाक्यश्रवणाविबुद्धतत्सुकर्मा।
तं विप्रम्पुनरयत्स्वकिङ्करेण तान्सर्वान्निरयगणान्प्रदर्शयिष्यन्॥१९॥
ततोधनेश्वरंनीत्वानिरयान्प्रेतपोऽब्रवीत्। दर्शयिष्यंस्तुतान्सर्वान्यमानुज्ञाकरस्तदा॥२०॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—देवर्षि नारद यह कहकर वहां से चले गये। उनके कथन का विचार करते हुये सुकर्मा यम को ज्ञान प्राप्त हुआ और उन्होंने अपने किंकरों द्वारा पुनः ब्राह्मण धनेश्वर को समस्त नरकों का दर्शन करवाया। तदनन्तर प्रेतराज यम उस धनेश्वर को नरकों के पास ले गये तथा नरकों को दिखलाते हुये कहने लगे।।१९-२०।।

प्रेतप उवाच

पश्येमान्निरयान्घोरान्धनेश्वर! महाभयान्। एषु पापकरा नित्यं पश्यन्ते यमकिङ्करैः॥२१॥
अकामात्पातकं शुष्कं कामादार्द्रमुदाहृतम्।
आर्द्रशुष्कादिभिः पापैर्द्विप्रकारानवस्थितान्॥२२॥
चतुराशीतिसंख्याकैःपृथग्भेदैरवस्थितान्। यत्प्रकीर्णमपाङ्क्तेयं मलिनीकरणं तथा॥२३॥
जातिभ्रंशकरं तद्वदुपपातक सञ्ज्ञकम्। अतिपापं महापापं सप्तधा पातकं स्मृतम्॥२४॥
एभिः सप्तसु पच्यन्ते निरयेषु यथाक्रमम्। कार्त्तिकव्रतिभिर्यस्मात्संसर्गोह्यभवत्तव।
तत्पुण्योपचयादेते निर्हता निरयाः खलु॥२५॥

यम कहते हैं—हे धनेश्वर! तुमने जो इन सब महाभयानक नरकों को देखा है, पापियों को मेरे

किंकरगण द्वारा लाया जाकर इन नरकों में फेंका जाता है। हे द्विज! अनिच्छा के साथ जो पाप करना पड़ जाता है, वह शुष्क पाप। जो पाप जानबूझ कर किया जाये, वह है आर्द्र पाप। शुष्क-किंवा आर्द्रपाप करने वाले पापियों का अवस्थान इन चौरासी प्रकार के नरकों में होता है। सभी एक नरक में जाते हैं, ऐसा नहीं है। पाप के परिमाण के अनुरूप नारकीय लोगों के अवस्थानार्थ यह चौरासी संख्यक नरकों में अलग-अलग स्थानों की व्यवस्था की गई है। (१) छोटे-छोटे पाप, (२) अपांक्तेयकरण, (३) मलिनीकरण, (४) जातिभ्रंशकर, (५) उपपातक, (६) अतिपाप तथा (७) महापाप—ये पातकों के सात भेद हैं। इन सात पापों में से यथाक्रमेण जो जैसे पाप का आचरण करता है, तदनुरूप वह नरक भोग करता है। हे द्विज! कार्त्तिक व्रती लोगों से तुम्हारा सम्पर्क हो गया था। अतः उस पुण्य प्रभाव से नरक तुम्हारे लिये निरस्त हो गये। इसमें संदेह नहीं है।।२१-२५।।

श्रीकृष्ण उवाच

दर्शयित्वेति निरयान्प्रेतपस्तमथाऽहरत्।।२६।।
धनेश्वरं यक्षलोकं यक्षश्चाऽभूत्स तत्र हि। धनदस्याऽनुगःसोऽयं धनयक्षेतिविश्रुतः।।२७।।

श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रेतपति ने धनेश्वर को एवंविध नरकों का दर्शन कराया तथा उसे यक्षलोक में भेज दिया जहां धनेश्वर कुबेर का अनुगत यक्ष होकर यक्षलोक में धनयक्ष नाम से प्रसिद्ध हो गया।।२६-२७।।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा वासुदेवोऽसौ सत्यभामामतिप्रियम्।
सायं सन्ध्याविधिं कर्तुं जगाम जननीगृहम्।।२८।।

सूत जी कहते हैं—वासुदेव ने अतिप्रिय सत्यभामा से यह कहा तथा सायं सन्ध्या करने के लिये माता के गृह में चले गये।।२८।।

ब्रह्मोवाच

एवं प्रभावः खलु कार्त्तिकोऽयं मुक्तिप्रदो भुक्तिकरश्च यस्मात्।
प्रयान्त्यनेकार्जितपातकानि व्रतस्य सन्दर्शनतोऽपि मुक्तिम्।।२९।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे धनेश्वरयक्षजन्मप्राप्तिवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः।।२९।।

ब्रह्मदेव कहते हैं—पुण्यप्रद कार्त्तिक मास का ऐसा प्रभाव है। कार्त्तिक मास मुक्तिप्रद तथा भुक्तिप्रद है। यह व्रत करने पर अनेक जन्मों का पातक नष्ट हो जाता है। यह व्रतविधि देखने वाला भी मुक्त हो जाता है।।२९।।

।।उनत्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

त्रिंशोऽध्यायः

दत्त पुण्यपापफलवर्णन, मासोपवास, व्रतविधि

नारद उवाच

अद्भुतोऽयंत्वयाप्रोक्तोहिमाकार्त्तिकस्यतु। स्वस्यकर्तुमसामर्थ्यंकथमेतत्कृतम्भवेत्॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—आपने कार्त्तिक मास के अद्भुद् माहात्म्य को कहा, तथापि यदि व्यक्ति यह व्रताचरण न कर सके तब यह कैसे अनुष्ठित हो सकेगा?॥१॥

ब्रह्मोवाच

नास्ति कर्तुं स्वसामर्थ्यमुपायाप्प्रात्यते फलम्।
द्रव्यं दत्त्वा ब्राह्मणाय गृह्णीयात्फलमुत्तमम्॥२॥
शिष्याद्वा भृत्यवर्गाद्वा स्त्रीभ्यो वाऽऽप्ताच्च कारयेत्।
तस्मादपि फलं गृह्णन्फलभाग्जायते नरः॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—यदि कार्त्तिक व्रत स्वयं करने की शक्ति न हो तब किसी व्रतकारी के व्रतोपाय की व्यवस्था करने से भी व्रतफल लाभ होता है। ब्राह्मण को व्रत के लिये उपयुक्त एवं उपयोगी द्रव्य प्रदान करने से उससे व्रतफल ग्रहण किया जा सकता है। मनुष्य अपने शिष्य, भृत्यवर्ग स्त्री अथवा किसी योग्य व्यक्ति से यह व्रत कराये तथा उससे व्रतफल ग्रहण करे। इससे वह व्यक्ति सम्पूर्ण व्रतफल का भागी हो जाता है॥२-३॥

नारद उवाच

अदत्तान्यपि पुण्यानिप्राप्यन्तेकेनचित्क्वचित्। एतदिच्छाम्यहं श्रोतुंकौतुकंममवर्तते॥४॥

देवर्षि नारद कहते हैं—अदत्त पुण्य क्या किसी ने प्राप्त किया है? हमें यह जानने हेतु अतीव कुतूहल हो रहा है॥४॥

ब्रह्मोवाच

अदत्तान्यपि पुण्यानि लभन्ते पातकान्यपि। येनोपायेन तद्वच्मिशृणुष्वैकमनाद्विज!॥५॥
सुकृतं वा दुष्कृतं वा कृतमेकेन यत्कृते। जायतेतस्य तद्राष्ट्रे त्रेतायां तु पुरो भवेत्॥६॥
द्वापरे वंशमध्ये तु कलौ कर्तैवकेवलम्। अज्ञानाद्यत्कृतं कर्म बाल्येस्वप्नेतुतत्फलम्॥७॥
अज्ञानाद्यच्चतारुण्येबाल्ये तस्य फलम्भवेत्। ज्ञानपूर्वंकृतं कर्म आजन्मान्तञ्चतत्फलम्॥८॥
षण्मासं पापिसङ्गेननरःपापीप्रजायते। पापिनां वा धर्मिणां वा संसर्गाद्दशमासिकम्॥९॥
भोजनादेकपङ्क्तौचविंशांशःपुण्यपापयोः। एकासने द्वयोर्वासात्सहस्रांशेन लिप्यते॥१०॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे द्विज! अदत्त पाप तथा पुण्य जिस उपाय से प्राप्त होता है, उसे सुनों। सत्ययुग में जो कोई जो भी सुकृति अथवा दुष्कृति करता है, वह समस्त राजा का ही आश्रय ले लेता है (अर्थात् सुकृति-

दुष्कृति राजा के पास चले जाते हैं)। त्रेता में किसी के द्वारा पाप अथवा पुण्य करने पर उसका फल सम्पूर्ण नगर को भोगना पड़ता है। द्वापर की यह व्यवस्था नहीं है। द्वापर में वंश का कोई भी पाप अथवा पुण्य करेगा, उसके पूरे वंश को उसका फल प्राप्त होगा। लेकिन कलिकाल में केवल कर्त्ता को ही पाप करने अथवा पुण्य करने का फलभोग होता हैं। पूर्वजन्म की बाल्यावस्था में अज्ञानतः जो कुछ भी कर्म किया गया है, उसका फलाफल स्वप्न में मिलेगा। लेकिन जानबूझ कर किये गये कर्म का फल तो मिलकर रहेगा। तारुण्यकाल में पूर्वजन्म के कृतकर्म का फलभोग इस जन्म में बाल्यावस्था में मिलेगा। मनुष्य छ महीना तक पापी के साथ रहकर पापी हो जाता है। धार्मिक अथवा पापी के संग का यह नियम है कि उसके साथ दस मास का संसर्ग तथा एक पंक्ति में भोजन करने पर उस व्यक्ति के पाप अथवा पुण्य के $\frac{१}{२०}$ का फल भोगना ही होगा। जो व्यक्ति किसी पापी अथवा पुण्यवान् के साथ एक मास साथ बैठता है, वह उस पापी किंवा पुण्यवान् के पाप-पुण्य के $\frac{१}{१०००}$ भाग का भागी हो जाता है।।५-१०।।

यो वै यस्यान्नमश्नाति स भुङ्क्ते तस्य किल्बिषम्।
जपादौ पापिसंसर्गात्षोडशांऽशो विनश्यति॥११॥

परस्य स्तंवनाद्यानादेकपात्रस्थभोजनात्। एकशय्याप्रावरणात्षष्ठांशःपुण्यपापयोः॥१२॥

जो जिस व्यक्ति के अन्न का भोजन करता है, वह उसके पापों का भोजन कर रहा है। जपकाल में पापी का संसर्ग जप के $\frac{१}{१६}$ फल का नाश करता है। पापी अथवा पुण्यात्मा अन्य की स्तुति, अन्य के वाहन पर गमन, अन्य के साथ एकपात्र में भोजन, एक शय्या पर शयन करते हैं, तब उनके पुण्य अथवा पाप का १/६ नष्ट हो जायेगा।।११-१२।।

पुरुषो हरते सर्वं भार्याया औरसस्य च। अर्द्धं शिष्याच्चतुर्थांशं पापम्पुण्यं तथैव च॥१३॥
भर्तुराज्ञाकरी नारी भर्तुरर्द्धं वृषं हरेत्। यद्धस्तपक्वं भुञ्जीयाद्दशांशं तदधं हरेत्॥१४॥
वर्षाऽशनं तु यो दत्ते तदर्धाघस्यभागयम्। वर्षाशनार्द्धपुण्यं तु भुङ्क्ते वर्षाशनीनरः॥१५॥
पुरोहितस्य षष्ठांशं पापं वा पुण्यमेव वा। यजमानो भुनक्त्येव तद्दशांशं पुरोहितः॥१६॥
उद्योगी चाऽनुमन्ता च यश्चोपकरणप्रदः। षष्ठांशं पुण्यपापापानामुपद्रष्टा दशांशकम्॥१७॥

व्यक्ति अपनी भार्य तथा अपने औरस पुत्र के पुण्य-पाप का $\frac{१}{२}$ भाग ग्रहण करता है। गुरु शिष्यकृत पाप-पुण्य का $\frac{१}{४}$ भाग ग्रहण करता है। जो नारी पति की आज्ञा का पालन करती है, वह स्वामी का $\frac{१}{२}$ भाग पुण्य हर लेती है। जिसके बनाये पके अन्न का भोजन किया जाता है, भोजनकारी उसके पापों का $\frac{१}{१०}$ भोग करता है। जिसके बनाये भोजन को १ वर्ष खाया जाये भोजन करने वाला उसके आधे पापों का भागी हो जाता है। भोजन के लिये अन्न देने वाला भोजन करने वाले का $\frac{१}{२}$ पुण्य प्राप्त कर लेता है। यदि पुरोहित पापा किंवा पुण्यात्मा है, तब यजमान उसके पाप अथवा पुण्य के $\frac{१}{६}$ का भोग करेगा। इसी प्रकार यदि यजमान पापी किंवा पुण्यात्मा है, तब पुरोहित उसके पाप-पुण्य के $\frac{१}{१०}$ भाग का भागी होगा।।१३-१७।।

यद्धस्तात्कार्यते कर्म नान्नमस्मै प्रयच्छति।
विना भृतकशिष्याभ्यां षष्ठांशम्पुण्यमाहरेत्॥१८॥

व्यवहारात्तथाप्रीत्यानित्यंसम्भाषणादिभिः। दशांशम्पुण्यपापानां लभतेनात्रसंशयः॥१९॥
संसर्गपुण्ययोगेन एकदन्तो द्विजाधमः। नरकान्विविधान्दृष्ट्वा स्वर्गम्प्रापतदैव हि॥२०॥

किसी अनुष्ठान कार्य का जो उद्योक्ता, अनुमन्ता अथवा उपकरण-सामग्री देने वाला है, उसे उस कार्य का $\frac{१}{६}$ पाप-पुण्य प्राप्त होगा। जो व्यवहार तथा संभाषण से यह कार्य करने वाला है, उसे $\frac{१}{१०}$ अंश पाप-पुण्य की प्राप्ति होती है। (अर्थात् जो वाणी से तथा कुछ व्यवहार से इस कार्य में योगदान देता है वह $\frac{१}{१०}$ पाप अथवा पुण्य लाभ करेगा)। बिना अन्न-वेतन लिये जो दो शिष्यों को विद्यादान करता है, वह दोनों शिष्यों के $\frac{१}{६}$ पुण्य का हरण कर लेता है। प्रेमपूर्वक व्यवहार करने से तथा नित्य वार्त्ता करने से वह व्यक्ति उस अन्य के पुण्य-पाप का $\frac{१}{६}$ भाग का हरण कर लेता है। इसमें संशय नहीं है। हे नारद! संसर्गजनित पुण्य के कारण एक अधम ब्राह्मण ने एकदण्ड पर्यन्त नाना नरकदर्शन करके स्वर्ग गमन किया।।१८-२०।।

नारद उवाच

ईदृशं कार्त्तिकव्रतमल्पायासं महत्फलम्। न कुर्वन्तिजनाःकेचित्किमर्थम्वै पितामह!॥२१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे पितामह! यदि कार्त्तिक व्रत इस प्रकार से अल्प प्रयास मात्र से महाफल प्रदान कर देता है, तब मनुष्य यह व्रत क्यों नहीं करता?।।२१।।

ब्रह्मोवाच

स्वसृष्टिवृद्धये वेधाधर्माऽधर्मौससर्ज ह। धर्ममेवाऽनुतिष्ठन्तः प्राप्नुवन्तिशुभाङ्गतिम्॥२२॥
अधर्ममनुतिष्ठन्तो यान्ति तेऽधोगतिंनराः। पुण्यकर्मफलंनाको नरकस्तद्विपर्ययः॥२३॥

ब्रह्मा उत्तर देते हैं—अपनी सृष्टि की वृद्धि हेतु विधाता ने धर्म-अधर्म—इन दोनों की सृष्टि किया है। जो धर्म का अनुष्ठान करते हैं, उनको शुभगति मिल जाती है। पापाचारी नरक में अधोगति का लाभ करते हैं। हे वत्स! पुण्य कार्य का फल स्वर्ग है। उसके विपरीत पापाचरण का फल नरक है।।२२-२३।।

तयोः पालनकर्तारौ द्वावेव विधिनाकृतौ। शतक्रतुयमौ तौ च पुण्यपापानुसारिणौ॥२४॥
गुरुतल्पादयःपुत्राः कामस्यप्रथिताभुवि। क्रोधस्यपितृघाताद्यालोभस्य तनयाञ्छृणु॥२५॥
ब्रह्मस्वहरणाद्याश्च एते नरकनायकाः। कृता यमेन तैर्व्याप्ता मनुजा नहि कुर्वते॥२६॥
व्रतादिधर्मकृत्यं यैस्तैर्मुक्तास्ते हि कुर्वते॥२७॥
श्रद्धा मेधा विघातिन्यौ वर्तते भुवि सर्वदा।
ताभ्यां व्याप्तस्तु मनुजः श्रीविष्णोः श्रवणादिकम्॥२८॥
न करोति सुदुर्मेधा येनाऽन्धं याति वै तमः। कृष्णेन सत्यभामायैयदुक्तं तद्वदामि ते॥२९॥

विधाता ने इन्द्र को पुण्यात्मा पालनार्थ तथा यम को पापियों के शासनार्थ नियुक्त किया है। पृथिवी पर काम के गुरुपत्नी गमनादि तथा क्रोध के पितृहत्यादि द्वादश पुत्र हैं। नरक देने वाले ब्रह्मस्वहरणादि लोभ के पुत्र हैं। यमराज ने मनुष्यगण को इन सबसे परिव्याप्त किया है। जो मानव काम-क्रोध तथा लोभाभिभूत नहीं होते, व्रतादि धर्म कार्य करते रहते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं। हे नारद! काम-क्रोधादि की विघातक श्रद्धा तथा मेधा नामक

दो वस्तु भुवनों में स्थित है। भूतलस्थ समस्त लोकत्रय में श्रद्धा तथा मेधा है, तथापि जो मानव विष्णु का नाम श्रवणादि नहीं करते, उनको सुदुर्मेधा कहते हैं। ऐसे अन्ध बुद्धि मानव ही पापों में प्रवेश करते हैं। हे वत्स! कृष्ण ने सत्यभामा से जो कुछ कहा था, उसी का वर्णन तुमसे कर रहा हूं।।२४-२९।।

अध्यापनाद्याजनाद्वाऽप्येकपङ्क्त्यशनादपि। तुर्यांशं पुण्यपापानां परोक्षं लभते नरः॥३०॥
एकासनादेकयानान्निश्वासस्याङ्गसङ्गतः। षडंशं फलभागीस्यान्नियतम्पुण्यपापयोः॥३१॥
स्पर्शनाद्भाषणाद्वाऽपिपरस्यस्तवनादपि। दशांशम्पुण्यपापानांनित्यम्प्राप्नोतिमानवः॥३२॥
दर्शनश्रवणाभ्याञ्च मनोध्यानात्तथैव च। परस्य पुण्यपापानां शतांशं प्राप्नुयान्नरः॥३३॥
परस्य निन्दां पैशुन्यंधिक्कारञ्चकरोतियः। तत्कृतम्पातकम्प्राप्य स्वपुण्यंप्रददातिसः॥३४॥
कुर्वतःपुण्यकर्माणिसेवां यः कुरुते नरः। पत्नीभृतकशिष्येभ्योयदन्यःकोऽपिमानवः॥३५॥
तस्य सेवाऽनुरूपञ्च द्रव्यंकिञ्चिन्नदीयते। सोऽपि सेवानुरूपेणतत्पुण्यफलभाग्भवेत्॥३६॥
एकपङ्क्तिस्थितं यस्तु लङ्घयेत्परिवेषणम्। तत्पुण्यस्यषडंशञ्च लभेद्यस्तुविलङ्घितः॥३७॥

पापी अथवा पुण्यात्मा को पढ़ाना, याजन अथवा उनके साथ भोजन, मानव यह सब करके परोक्ष भाव से उनके पुण्य अथवा पाप के चतुर्थांश का भागी हो जाता है। एक आसन पर सदैव बैठना, एक वाहन में गमन, निश्वास का स्पर्श तथा अंग स्पर्श इसके द्वारा व्यक्ति उस व्यक्ति के पुण्य-पाप का $\frac{१}{६}$ का भागी हो जाता है। निरन्तर अन्य का स्पर्शन, स्तव, उनके साथ संभाषण, इन सब कार्य में उस व्यक्ति के पुण्य-पाप के $\frac{१}{१०}$ का भागी होता है। पापी अथवा पुण्यकारी के प्रति मन लगाने से उसके पाप तथा पुण्य के १/१०० भाग का भागी होना पड़ता है। जो मानव अन्य की निन्दा, अन्य को धिक्कारने का कार्य तथा अन्य के प्रति खलत्व का प्रदर्शन करता है, वह उस व्यक्ति के पापों को ग्रहण करता है तथा उसको अपने पुण्य प्रदान कर देता है।

मनुष्य पत्नी, वेतनभोगी भृत्य, शिष्य के अतिरिक्त अन्य किसी से सेवा लेकर यदि सेवानुरूप द्रव्य नहीं दे सकता, तब वह सेवक सेवा द्वारा ही उनके पुण्यफल को प्राप्त कर सकता है। एक पंक्ति में बैठते समय किसी बैठे व्यक्ति को लांघने वाले व्यक्ति का $\frac{१}{६}$ पुण्य बैठे व्यक्ति को प्राप्त हो जाता है।।३०-३७।।

स्नानसन्ध्यादिकं कुर्वन्यः स्पृशेद्वाऽथभाषते।
स कर्मपुण्यषष्ठांशं दद्यात्तस्मै विनिश्चितम्॥३८॥

धर्मोद्देशेन यो द्रव्यमपरं याचते नरः। तत्पुण्यकर्मजं तस्य धनदस्त्वाप्नुयत्फलम्॥३९॥
अपहृत्य परद्रव्यं पुण्यकर्म करोति यः। कर्मकृत्पापभाक्तत्र धनिनस्तद्भवं फलम्॥४०॥
नाऽपकृत्य ऋणं यस्तु परस्य म्रियते नरः। धनी तत्पुण्यमादत्ते तद्धनस्याऽनुरूपतः॥४१॥
बुद्धिदाताऽनुमन्ताच यश्चोपकरणप्रदः। बलकृच्चाऽपि षष्ठांशं प्राप्नुयात्पुण्यपापयोः॥४२॥

प्रजाभ्यः पुण्यपापानां राजा षष्ठांशमुद्धरेत्।
शिष्याद् गुरुः स्त्रियोभर्ता पिता पुत्रात्तथैव च॥४३॥

मानव स्नान तथा संन्ध्याकाल में जिसे छूता है अथवा जिससे बातें करता है, वह अपने पुण्य का

$\frac{1}{6}$ भाग उस व्यक्ति को प्रदान कर देता है। इसमें संशय नहीं है। जो मनुष्य धर्म के लिये अन्य से धन मांगता है, धन देने वाला उस व्यक्ति के धर्मकृत्य के पुण्य को ग्रहण कर लेता है। जो पराया धन अपहरण करके पुण्यकर्म करता है, उसे मात्र अपहरणजनित पाप का ही फल मिलेगा, तथापि जिसका धन अपहृत किया गया, उसे उस पुण्य का पूर्ण फल प्राप्त होगा। अन्य के यहां से ऋण लेकर जो ऋणशोध के पूर्व ही मर जाता है, अपने बाकी धन के अनुरूप ऋणदाता को उस मृत व्यक्ति के पुण्य का फल मिलता है। कार्य की बुद्धि देने वाला, अनुमन्ता, उपकरण आदि देने वाला, बलप्रदाता, ये सभी तत्कर्मजनित पुण्य अथवा पाप के फल का $\frac{1}{6}$ प्राप्त करते हैं। राजा भी अपनी प्रजा के द्वारा किये पुण्य तथा पाप का $\frac{1}{6}$ भाग फल प्राप्त करता है। गुरु अपने शिष्य के, स्वामी पत्नी के तथा पिता पुत्र के पुण्य का आधा भाग प्राप्त करता है। इसी प्रकार से स्वामी के प्रति पूर्ण समर्पित, सतत् स्वामी का प्रिय करने वाली पत्नी भी स्वामी के पुण्य-पाप का आधा भाग प्राप्त करती है।।३८-४३।।

स्वपतेरपि पुण्यस्ययोषिदर्धमवाप्नुयात्। चित्तस्याऽनुव्रताशश्वद्वर्तते तुष्टिकारिणी।।४४।।

फरहस्तेन दानादि कुर्वन्तः पुण्यकर्मणः।
विना भृतकपुत्राभ्यां कर्ता षष्ठांशमुद्धरेत्।।४५।।

वृत्तिदोवृत्तिसम्भोक्तुः पुण्यं षष्ठांशमुद्धरेत्। आत्मनोवापरस्याऽपियदिसेवांनकारयेत्।।४६।।

इत्थं ह्यदत्तान्यपि पुण्यपापान्यायान्ति नित्यम्पारसञ्चितानि।
कलौ त्वयम्वै नियमो न कार्यः कर्तैव भोक्ता खलु पुण्यपापयोः।।४७।।

कलौ ज्ञानं दृढं नाऽस्ति कलौ गर्वेण सत्क्रिया।
कलौ दम्भाऽन्वितो योगो नश्यत्येव न संशयः।।४८।।

तपोनिष्ठः पुरा दम्भी सतीशुद्धप्रभावतः। पित्रोः पूजादर्शनेन चोर्जसेवी परंगतः।।४९।।

वेतनभोगी भृत्य तथा पुत्र को छोड़कर अन्य को पुण्यकर्म लेने हेतु दान देकर उनके पुण्य का $\frac{1}{6}$ ग्रहण कर सकते हैं। वृत्तिप्रदाता व्यक्ति यदि वृत्तिभोगी से अपनी किंवा अन्य की सेवा नहीं करता, तब उसे उस वृत्तिभोगी को पुण्य का $\frac{1}{6}$ प्राप्त हो जाता है। हे नारद! इस प्रकार अदत्त पुण्य तथा पाप नित्य संचित होते रहते हैं, तथापि कलिकाल में ऐसा नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह है कि कलि में केवल कर्त्ता को ही पाप-पुण्य का भोग प्राप्त होता है। कलि में ज्ञान की दृढ़ता नहीं होती। लोग गर्व तथा प्रदर्शनार्थ सत्क्रिया सम्पादित करते हैं। कलिकाल में दम्भान्वित योग नष्ट हो जाता है। हे वत्स नारद! पूर्वकाल में एक दंभी तपस्वी ने पतिव्रता पत्नी की शुद्धि के कारण तथा पिता-माता की पूजा को देखकर कार्त्तिकव्रत का व्रताचरण किया तथा परमस्थान लाभ किया।।४४-४९।।

नारद उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामिव्रतानामुत्तमंव्रतम्। विधिंमासोपवासस्यफलञ्चास्ययथोचितम्।।५०।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे भगवान्! व्रतों में जो उत्तम है तथा मासपर्यन्त उपवास की जो विधि है, वह सुनने की इच्छा है।।५०।।

ब्रह्मोवाच

साधु नारद! सर्वं ते यत्पृष्टं प्रब्रूवेऽनघ। भक्त्त्या मतिमतांश्रेष्ठ! शृणुष्व गदतो मम॥५१॥
सुराणां च यथा विष्णुस्तपताञ्चयथारविः। मेरुः शिखरिणांयद्वद्वैनतेयश्चपक्षिणाम्॥५२॥
श्रेष्ठं सर्वव्रतानांतुतद्वन्मासोपवासनम्। सर्वव्रतेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु चैव हि॥५३॥
सर्वदानोद्भवं चैव यज्ञैश्च भूरिदक्षिणैः। न तत्पुण्यमवाप्नोति यन्मासपरिलङ्घनात्॥५४॥
गुरोराज्ञांततोलब्ध्वाकुर्यान्मासोपवासनम्। अतिकृच्छ्रञ्चपाराकंकृत्वाचान्द्रायणंततः॥५५॥
मासोपवासंकुर्वीत ज्ञात्वादेहबलाबलम्। वानप्रस्थोयतिर्वाऽपि नारीवाविधवामुने!॥५६॥
मासोपवासं कुर्वीतगुरोर्विप्राज्ञया ततः। आश्विनस्याऽमले पक्षं एकादश्यामुपोषितः॥५७॥
व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद्यावत्त्रिंशद्दिनानि तु। अच्युतस्याऽऽलयेभक्त्त्यात्रिकालंपूजयेद्धरिम्॥५८॥
नैवेद्यधूपदीपाद्यैः पुष्पैर्नानाविधैरपि। मनसा कर्मणावाचा पूजयेद् गरुडध्वजम्॥५९॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! हे निष्पाप! तुम्हारा प्रश्न उत्तम प्रश्न है। हे भक्तप्रवर! मैं इसे कहता हूं, तुम भक्तिपूर्वक श्रवण करो। जैसे देवताओं में विष्णु, जैसे ताप प्रदाताओं में आदित्य श्रेष्ठ हैं, जैसे पर्वतों में मेरु, पक्षियों में गरुड़ श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार व्रतों में मास पर्यन्त उपवास व्रत श्रेष्ठ है। एकमात्र मासोपवास व्रत समस्त व्रतों, समस्त तीर्थाटनों, सर्व प्रकार के दान तथा प्रचुर दक्षिणायुक्त यज्ञों से प्रधान है। इन सबको करके भी मासोपवास के बराबर फललाभ नहीं होता। इसलिये गुरु आज्ञा लेकर मासोपवास व्रताचरण करना चाहिये। व्रत प्रारंभ करने के पहले (अपना) बलाबल जान लें। यथाक्रमेण अतिकृच्छ्र, पराक् तथा चान्द्रायण व्रताचरण करें। तदनन्तर मासोपवास करना चाहिये। हे मुनिवर! वानप्रस्थ, यति, सधवा, किंवा विधवा नारी चाहे जो हो, गुरु आज्ञा लेकर अथवा ब्राह्मण की आज्ञा लेकर व्रत करें। आश्विनमासीय शुक्ला एकादशी से व्रतारंभ करके जब तक तीस दिन पूर्ण न हो जाये, तब तक उपवास करे। हरिमन्दिर में जाकर नैवद्य, धूप, दीप तथा विविध पुष्पों द्वारा काया-मन-वाणी के द्वारा गरुड़ध्वज जनार्दन की त्रिकाल पूजा करनी चाहिये।।५१-५९।।

नरः स्वधर्मनिरतः सधवा च जितेन्द्रिया। नारी वाविधवासाध्वीवासुदेवंसमर्चयेत्॥६०॥
वस्त्वालोकनगन्धादिस्वादितं परिकीर्तितम्।
अन्यस्य वर्जयेद् ग्रासं ग्रासानां सम्प्रमोक्षणम्॥६१॥

स्वधर्मपरायण, जितेन्द्रिय मनुष्य, सधवा किंवा विधवा स्त्री मासोपवास व्रताचरण के साथ वासुदेव की सम्यक् पूजा करें। शास्त्रज्ञ कहते हैं कि वस्तु के देखने से भी उसकी गन्ध आदि का आस्वाद व्यक्ति ग्रहण कर लेता है। इसलिये व्रतकाल में कदापि पराया अन्न ग्रहण न करके अन्य को अन्न दान करना चाहिये।।६०-६१।।

गात्राभ्यङ्गंशिरोभ्यङ्गंताम्बूलंसविलोपनम्। व्रतस्थोवर्जयेत्सर्वंयच्चाऽन्यच्चनिराकृतम्॥६२॥
नव्रतस्थःस्पृशेत्कञ्चिद्विकर्मस्थंनचालपेत्। देवतायतनेतिष्ठन्गृहस्थश्चाऽऽचरेद्व्रतम्॥६३॥
कृत्वा मासोपवासं तु यथोक्तविधिना नरः। अन्यूनाधिकमेवं तुव्रतं त्रिंशद्दिनैरिति॥६४॥

ततोऽर्चयदेवपुण्यंद्वादश्यांगरुडध्वजम्। वस्त्रदानादिभिश्चैवभोजयित्वाद्विजोत्तमान्।।६५।।

दद्याच्च दक्षिणां तेभ्यः प्रणिपत्य क्षमापयेत्।

विप्रान्क्षमापयित्वा तु विसृज्याऽभ्यर्च्य पूज्य च।।६६।।

इस व्रतकाल में देह में उबटन आदि लगाना, मस्तक में तैलादि लगाना, ताम्बूल सेवन, शरीर पर गन्ध लेपादि लगाना वर्जित है। शास्त्र में और भी जो कुछ वर्जित कहा गया है, उसका त्याग करें। मासोपवास व्रत में स्थित होकर विकर्मी व्यक्ति को छूना तथा उससे वार्त्ता करना वर्जित है। केवल गृह में किंवा मन्दिर में रहकर व्रताचरण करना चाहिये। मानद यथोक्त विधानानुसार मासोपवास व्रत का संकल्प ग्रहण करके तीस दिन से कम अथवा अधिक दिन उपवास न करें। तदनन्तर द्वादशीतिथि के दिन पवित्रतापूर्वक गरुड़ध्वज जनार्दन की पूजा करके वस्त्र आदि का दान ब्राह्मण को देकर उनको भोजन कराये। उनको दक्षिणादान देकर क्षमा प्रार्थना भी करें। विप्रगण को दक्षिणा देकर तथा क्षमाप्रार्थना करने के उपरान्त उनको विदा करना चाहिये।।६२-६६।।

एवं मासोपवासान्ते वृत्वा विप्रांस्त्रयोदश। कारयेद्वैष्णवं यज्ञमेकादश्यामुपोषितः।।६७।।

ततोऽनुभोजयेद्विप्रान्नमसस्कारपुरःसरम्।

ताम्बूलवस्त्रयुग्मानि भोजनाऽऽच्छादनानि च।।६८।।

योगपट्टानि सूत्राणि शय्यां सोपस्करां तथा।

दत्त्वा चैव द्विजाग्रेभ्यः पूजयित्वा विसर्जयेत्।।६९।।

विधिर्मासोपवासस्ययथावत्परिकीर्तितः। अतःपरं प्रवक्ष्यामिनवम्यादितिथौविधिम्।।७०।।

ऋषिभ्यो बालखिल्यैश्च प्रोक्तं तं शृणु! नारद!।।७१।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे दत्तपुण्यपापफलप्राप्तिवर्णनपूर्वकंमासोपवासव्रतविधिकथनंनाम त्रिंशोऽध्यायः।।३०।।

एवंविध तीस दिन उपवास करके अंतिम एकादशी को उपवासी रहकर त्रयोदश ब्राह्मणों का वरण करके वैष्णव याग कराये। तत्पश्चात् प्रणामोपरान्त ब्राह्मणों को भोजन, ताम्बूल प्रदान, प्रत्येक को दो वस्त्र, आच्छादन, योगपट्ट, सूत्र, सभी सज्जा के साथ शय्या प्रदान करके उनको विदा करना चाहिये। हे वत्स नारद! मैंने तुमसे मासोपवास विधान कह दिया। अब मैं नवमी आदि तिथियों का वर्णन कर रहा हूं। हे नारद! बालखिल्य ऋषियों ने इसका वर्णन किया था। अब इसे सुनो।।६७-७१।।

।।त्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

एकत्रिंशोऽध्यायः

कूष्माण्ड नवमी, तुलसी विवाहविधि

बालखिल्या ऊचुः

कार्त्तिके शुक्लनवमी तत्राऽभूद्द्वापरं युगम्। पूर्वाऽपराह्णगाग्राह्याक्रमाद्दानोपवासयोः॥१॥

अत्र कूष्माण्डको नाम हतो दैत्यस्तु विष्णुना।
तद्रोमभिः समुद्भूता वल्ल्यः कूष्माण्डसम्भवाः॥२॥

तस्मात्कूष्माण्डदानेन फलमाप्नोति निश्चितम्।
अस्यामेव नवम्यां तु कुर्यात्कृष्णोत्सवं नरः॥३॥

स्वशाखोक्तेन विधिना तुलस्याः करपीडनम्। कन्यादानफलं तस्यजायतेनात्रसंशयः॥४॥

कार्त्तिके शुक्लनवमीमवाप्य विजितेन्द्रियः। हरिं विधायसौवर्णं तुलस्यासहितंशुभम्॥५॥

पूजयेद्विधिवद्भक्त्या व्रती तत्र दिनत्रयम्। एवंयथोक्तविधिना कुर्याद्वैवाहिकंविधिम्॥६॥

ग्राह्यं त्रिरात्रमत्रैवनवम्याद्यनुरोधतः। मयाह्नव्यापिनी ग्राह्या नवमी पूर्ववेधिता॥७॥

बालखिल्य ऋषिगण कहते हैं—कार्त्तिक मासीय शुक्लानवमी को द्वापर युग की उत्पत्ति हुई। यथाक्रमेण इस दिन पूर्वाह्न में दान तथा अपराह्न में उपवास होता है। विष्णु ने इस नवमी के दिन कूष्माण्ड नामक दैत्य का वध किया। इस दैत्य के रोमों ने ही लतारूपेण उद्भूत होकर कूष्माण्ड को जन्म दिया। अतएव इस नवमी के दिन कूष्माण्ड दान अतुलित फल प्रदाता है। श्रीकृष्ण ने इस नवमी के दिन स्ववेदोक्त विधान से तुलसी का पाणिग्रहण किया था। अतः जो मानव इस नवमी के दिन श्रीकृष्ण का उत्सव सम्पन्न करता है, उसे कन्यादानफल की प्राप्ति होती है। इसमें संशय नहीं है। इन्द्रियजित् मानव कार्त्तिकमासीय शुक्लानवमी के दिन स्वर्ण द्वारा तुलसी के साथ विष्णु की सुशोभन मूर्त्ति बनाकर विधिवत् पूजा करे तथा तीन दिन व्रतस्थ होकर यथाविधि विष्णु तथा तुलसी की विवाहविधि सम्पन्न करे। इस प्रकार त्रिरात्र व्रतस्थ होकर यथाविधि विष्णु तथा तुलसी की वैवाहिक विधि सम्पन्न करें। इस त्रिरात्र वैवाहिक विधि द्वारा नवम्यादि पूर्वविद्धा मध्याह्न व्यापिनी नवमी को ही ग्रहण करना चाहिये।।१-७।।

धात्र्यश्वत्थौ य एकत्र पालयित्वा समुद्वहेत्। ननश्यते तस्यपुण्यंकल्पकोटिशतैरपि॥८॥

कनकस्यसुता पूर्वमेकादश्यां किशोरिका। चकारभक्तितःसायंतुलस्युद्वाहजंविधिम्॥९॥

तेन वैधव्यदोषेण निर्मुक्ताऽऽसीत्सुलोचना।
तस्मात्सायं प्रकर्तव्यस्तुलस्युद्वाहजो विधिः॥१०॥

अवश्यमेव कर्तव्यः प्रतिवर्षं तुवैष्णवैः। विधिंतस्यप्रवक्ष्यामियथासाङ्गाक्रियाभवेत्॥११॥

विष्णोस्तु प्रतिमां कुर्यात्पलस्य स्वर्णजां शुभाम्।
तदर्द्धार्द्धं तदर्द्धार्द्धं यथाशक्त्या प्रकल्पयेत्॥१२॥

प्राणप्रतिष्ठां कृत्यैव तुलसीविष्णुरूपयोः। ततउत्थापयेद्देवंपूर्वोक्तैश्च स्तवादिभिः॥१३॥
उपचारैः षोडशभिः पूजयेत्पुरुषोक्तिभिः। देशकालौ ततःस्मृत्वागणेशं तत्र पूजयेत्॥१४॥
पुण्याहंवाचयित्वाऽथनान्दीश्राद्धंसमाचरेत्। वेदवाद्यादिनिर्घोषैर्विष्णुमूर्तिसमानयेत्॥१५॥

जो मानव धात्री तथा अश्वत्थ का एक साथ विवाह करता है, उसके पुण्यों का विनाश सैकड़ों करोड़ों कल्पों में भी नहीं होता। कनक की किशोरी कन्या ने पूर्वकाल में एकादशी के दिन तुलसी विवाह किया था, अतएव वह कन्या सुलोचना वैधव्य दोष से मुक्त हो गयी। तभी वैष्णवगण सायंकाल में यथाविधि प्रतिवर्ष तुलसी विवाह क्रिया सम्पन्न करें। अब वह तुलसी विवाह विधि अंगों के साथ कहता हूं, जिनके करने से तुलसी विवाहविधि साङ्गरूप से सम्पन्न हो जाती है। एक पल स्वर्ण से तुलसी की शोभन प्रतिमा बनाये। शक्ति अनुसार आधा पल किंवा $\frac{1}{4}$ पल द्वारा भी प्रतिमा बनाई जा सकती है। तत्पश्चात् विष्णुमूर्त्ति तथा तुलसी की प्राण प्रतिष्ठा करके पूर्वोक्त स्तव द्वारा विष्णुमूर्त्ति को उत्थापित करना चाहिये तथा पुरुषसूक्त मन्त्रों द्वारा षोडशोपचार पूजा करें। पूजा के पहले देश-काल आदि का उच्चारण करके (किस देश में किस तिथि में पूजा की जा रही है) गणपति पूजन, पुण्याहवाचन तथा नान्दीश्राद्ध कर्त्तव्य है। दैवी वाद्यों (उत्तम वाद्यों) की ध्वनि करते-करते विष्णुमूर्त्ति लानी चाहिये।।८-१५।।

तुलसीनिकटे सा तु स्थाप्या चाऽन्तर्हिता पटैः।
आगच्छ भगवन्देव! अर्चयिष्यामि केशव!॥१६॥

तुभ्यं दास्यामि तुलसीं सर्वकामप्रदोभव। दद्यात्त्रिवारमर्घ्यञ्च पाद्यंविष्टरमेव च॥१७॥
तत आचमनीयञ्च त्रिरुक्त्वा च प्रदापयेत्। ततो दधिघृतं क्षीरंकांस्यपात्रपुटीकृतम्॥१८॥
मधुपर्कं गृहाणत्वं वासुदेव! नमोऽस्तुते। हरिद्रालेपनाभ्यङ्गकार्यं सर्वं विधाय च॥१९॥
गोधूलिसमये पूज्यौ तुलसीकेशवौ पुनः। पृथक्पृथक्तथाकार्यौसम्मुखौमङ्गलंपठेत्॥२०॥

तत्पश्चात् मूर्त्ति की स्थापना तुलसी के पास करके एक वस्त्रखण्ड द्वारा तुलसी एवं विष्णुमूर्त्ति को युक्त करके यह मन्त्र कहे—"हे भगवान्! देवदेव! आप आगमन करिये। मैं आपकी अर्चना करके आपको तुलसी प्रदान करता हूं। आप मेरे लिये सर्वकामप्रद हो जायें।।" तदनन्तर तीन बार अर्घ्य, पाद्य तथा विष्ठर प्रदान करके आचमनीय देना चाहिये। तब कांस्यपात्र में मिलित दधि, घृत तथा क्षीर कांस्यपात्र रखकर एक अन्य कांस्यपात्र से उसे ढाक देना चाहिये। तब साधक यह कहे—"हे वासुदेव! मधुपर्क ग्रहण करिये। आपको प्रणाम!" तदनन्तर हरिद्रा आदि की उबटन श्री विष्णु को लगाकर गोधूलि काल में तुलसी एवं केशव का पृथक्तः पूजन करके उनके समक्ष मंगलप्रद स्तुतिपाठ करे। इस प्रकार उनको प्रसन्न करे।।१६-२०।।

ईषद्दृश्ये भास्करे तु सङ्कल्पं तुसमुच्चरेत्। स्वगोत्रप्रवरानुक्त्वातथात्रिपुरुषादिकम्॥२१॥
अनादिमध्यनिधन! त्रैलोक्यप्रतिपालक!। इमां गृहाण तुलसीं विवाहविधिनेश्वर!॥२२॥

पार्वतीबीजसम्भूतां वृन्दाभस्मनि संस्थिताम्।
अनादिमध्यनिधनां वल्लभां ते ददाम्यहम्॥२३॥

पयोघटैश्च सेवाभिःकन्यावद्वर्धितामया। त्वत्प्रियांतुलसींतुभ्यंददामित्वंगृहाणभोः॥२४॥

एवं दत्त्वा च तुलसीं पश्चात्तौ पूजयेत्ततः। रात्रौजागरणंकुर्याद्विवाहोत्सवपूर्वकम्॥२५॥
ततः प्रभातसमये तुलसीं विष्णुमर्चयेत्। वह्निसंस्थापनं कृत्वा द्वादशाक्षरविद्यया॥२६॥
पायसाऽऽज्यक्षौद्रतिलैर्जुहुयादष्टोत्तरंशतम्। ततःस्विष्टकृतंहुत्वादद्यात्पर्णाहुतिं ततः।
आचार्यञ्च समभ्यर्च्य होमशेषं समापयेत्॥२७॥
चतुरो वार्षिकान्मासान्नियमो येन यः कृतः।
कथयित्वा द्विजेभ्यस्तत्तथाऽन्यत्परिपूरयेत्॥२८॥

तदनन्तर जब आकाश में किंचित् सूर्योदय परिलक्षित हो, तब संकल्प में अपना गोत्र, प्रवर तथा तीन पीढ़ी के पूर्वजों का नाम लेकर कहे "हे अनादिमध्य निधन, हे ईश्वर! हे त्रैलोक्य प्रतिपालक! आप विवाह विधि के साथ तुलसी को ग्रहण करिये।" इस प्रकार विष्णु को तुलसी प्रदान करने के अनन्तर उनका पूजन करना चाहिये। उस रात्रि में विवाहोत्सव के साथ रात्रि जागरण भी करें। इसके पश्चात् प्रभातकाल में विष्णु-तुलसी पूजनोपरान्त द्वादशाक्षर मन्त्र द्वारा अग्निस्थापना करने के अनन्तर पायस-घृत-मधु-तिल द्वारा १०८ आहुति देनी चाहिये। तदनन्तर स्विष्टिकृत् होम करके पूर्णाहुति देकर कार्य समापन करे। इस प्रकार एक वर्ष तक प्रतिमास संयमित रूप से यह व्रताचरण करें तथा अन्त में ब्राह्मणों की प्रार्थना करके उनसे यह वचन लेना चाहिये कि जो अंग अपूर्ण रह गया, उसे आप पूर्ण कर दीजिये।।२१-२८।।

इदं व्रतं मया देव! कृतं प्रीत्यै तव प्रभो!। न्यूनं सम्पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन॥२९॥
रेवतीतुर्यचरणे द्वादशीसंयुते नरः। नकुर्यात्पारणं कुर्वन्व्रतं निष्फलतां नयेत्॥३०॥
ततो येषां पदार्थनांवर्जनं तु कृतं भवेत्। चातुर्मास्येऽथवाचोर्जेब्राह्मणेभ्यःसमर्पयेत्॥३१॥
ततः सर्वं समश्नीयाद्यद्यत्त्यक्तं व्रते स्थितम्॥३१॥
दम्पतिभ्यां सहैवाऽत्र भोक्तव्यञ्च द्विजैः सह॥३२॥
ततो भुक्त्युत्तरं यानि गलितानि दलानि च।
तानि भुक्त्वा तुलस्याश्च स्वयं पापैः प्रमुच्यते॥३३॥

तदनन्तर इस वाक्य से प्रार्थना करके व्रत की न्यूनता अथवा व्रताधिक्य दोष को शान्त कराने हेतु कहे—"हे जनार्दन! आपकी प्रसन्नता हेतु मैं यह व्रत कर रहा हूं। यदि कोई अंग अपूर्ण रह गया हो, तब आपकी कृपा से पूर्ण जाये।" रेवती के चतुर्थपादयुक्त द्वादशी के दिन पारण करना होगा। इस समय जो पारण नहीं करता उसका व्रत निष्फल हो जाता है। तदनन्तर चातुर्मास्य किंवा कार्तिक व्रत में जिन द्रव्यों का व्रती ने त्याग किया हो, वह सब सामग्री ब्राह्मणगण को अर्पित कर देनी चाहिये। तदनन्तर जिनका चातुर्मास्य विधानकाल में त्याग किया था, वही सब द्रव्य ब्राह्मणों के साथ सपत्नीक भक्षण करे। तदनन्तर तुलसी के गलित दलों को खाने वाला व्रती स्वयं सर्वपापमुक्त हो जाता है।।२९-३३।।

इक्षुदण्डं तथा धात्रीफलं कोलिफलं तथा।
भुक्त्वा तु भोजनस्याऽन्ते तस्योच्छिष्टं विनश्यति॥३४॥
एषु त्रिषु न भुक्तं चेदेकैकमपियेन तु। ज्ञेय उच्छिष्टआवर्षं नरोऽसौ नाऽत्र संशयः॥३५॥

भोजन के अन्त में व्रती व्यक्ति आंवला, ईंख तथा कोलिफल भक्षण करे। इससे मुख का जूठन दूर करे। इन तीनों के भक्षण से मुख का उच्छिष्टभाव समाप्त हो जाता है। यदि ये तीनों न मिलें, तब इनमें से एक के ही भक्षण द्वारा कार्य होगा। यदि एक का भी भक्षण नहीं किया जाये, तब व्रती का मुख एक वर्ष तक उच्छिष्ट ही रह जायेगा। इसमें सन्देह ही नहीं है।।३४-३५।।

ततः सायं पुनः पूज्याविक्षुदडैश्च शोभितैः।
तुलसीवासुदेवौ च कृतकृत्यो भवेत्ततः॥३६॥
ततोविसर्जनं कृत्वा दत्त्वा दायादिकं हरेः। वैकुण्ठं गच्छभगवँस्तुलसीसहितःप्रभो।
मत्कृतं पूजनं गृह्य सन्तुष्टो भव सर्वदा॥३७॥
गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वर!। यत्र ब्रह्मादयोदेवास्तत्रगच्छ जनार्दन!॥३८॥

तत्पश्चात् तुलसी तथा वासुदेव की पूजा उत्तम इक्षु (गन्ना) के दण्ड से करनी चाहिये। यह पूजा सायंकाल करने वाला मानव कृतार्थ हो जाता है। तदनन्तर धनादि दान करके हरि का विसर्जन करे। विसर्जन काल में हरि से यह प्रार्थना करनी चाहिये—"हे प्रभो! भगवान्! आप तुलसी के साथ वैकुण्ठ गमन करिये। आप मेरे द्वारा की गयी पूजा को ग्रहण करिये। मुझ पर सन्तुष्ट हो जाइये। हे परमेश्वर! आप अपने स्थान जायें। अपने लोक जायें। हे देवप्रवर जनार्दन! जहां ब्रह्मा आदि देवता स्थित हैं, आप वहां जाईये।"।।३६-३८।।

एवं विसृज्य देवेशमाचार्याय प्रदापयेत्। मूर्त्यादिकंसर्वमेवकृतकृत्यो भवेन्नरः॥३९॥
प्रतिवर्षं तु यः कुर्यात्तुलसीकरपीडनम्। भक्तिमान्धनधान्यैःसयुक्तोभवतिनिश्चितम्।
इहलोके परत्राऽपि विपुलञ्च यशोलभेत्॥४०॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे कूष्माण्डनवमीतुलसीविवाहविधि वर्णनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः।।३१।।

इस प्रकार देवेश विष्णु का विसर्जन करके मूर्त्ति आदि समस्त द्रव्य आचार्य को अर्पित कर देना चाहिये। इस कार्य से मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। जो भक्तिमान् मानव तीन वर्ष तुलसी विवाह का अनुष्ठान सम्पन्न करता है, वह धनधान्य समन्वित होकर इहलोक तथा परलोक में विपुल यशभागी हो ज़ाता है।।३९-४०।।

।।एकत्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

द्वात्रिंशोऽध्यायः

भीष्मपञ्चक व्रतमहिमा

बालखिल्या ऊचुः

कार्त्तिकस्याऽमले पक्षे स्नात्वा सम्यग्यतव्रतः।
एकादश्यां तु गृह्णीयाद् व्रतं पञ्चदिनात्कम्॥१॥
शरपञ्जरसुप्तेन भीष्मेण तु महात्मना। राजधर्मा मोक्षधर्मा दानधर्मास्ततः परम्।
कथिताः पाण्डुदायादैः कृष्णेनाऽपि श्रुतास्तदा॥२॥
ततः प्रीतेन मनसा वासुदेवेन भाषितम्।
धन्यधन्योऽसि भीष्म त्वं धर्माः संश्राविताास्त्वया॥३॥
एकादश्यां कार्त्तिकस्य याचितं च जलंत्वया। अर्जुनेनसमानीतंगाङ्गंबाणस्यवेगतः॥४॥
तुष्टानितवगात्राणि तस्मादद्यदिनावधि। पूर्णान्तंसर्वलोकास्त्वांतपंयन्त्वर्घ्यदानतः॥५॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मम सन्तुष्टिकारकम्। एतद्व्रतं प्रकुर्वन्तुभीष्मपञ्चकसञ्ज्ञितम्॥६॥
कार्त्तिकस्य व्रतं कृत्वा नकुर्याद्भीष्मपञ्चकम्। समग्रंकार्त्तिकव्रतंवृथातस्यभविष्यति॥७॥

बालखिल्यगण कहते हैं—व्रतरत मानव कार्तिक मास की शुक्ला एकादशी के दिन स्नानोपरान्त पञ्चदिनात्मक व्रत ग्रहण करे। महात्मा भीष्म जब शरशय्या पर शयन कर रहे थे, तब उन्होंने क्रमशः राजधर्म, मोक्षधर्म, दानधर्म का वर्णन किया था। पाण्डुपुत्रगण ने उस भीष्मकथित धर्मों को सुना था। भीष्म द्वारा कहे गये धर्म को सुनकर मन ही मन प्रसन्नतापूर्वक कृष्ण ने कहा—"हे भीष्म! आप धन्य हैं। आप धन्य हैं। आपने हमें श्रेष्ठ धर्म सुनाया है। आपने कार्तिक मास की एकादशी तिथि के दिन जल मांगा था। अर्जुन ने बाण के द्वारा जाह्नवी जल लाकर आपका शरीर शीतल किया। तब से सभी लोग एकादशी से पूर्णिमा पर्यन्त (पञ्चदिवस) अर्घ्य देकर आपको सन्तुष्ट करें। इसलिये सभी लोग सर्वप्रयत्न द्वारा मुझे प्रसन्नता प्रदाता इस भीष्मपञ्चक नामक व्रत का पालन करें। जो इस भीष्मपञ्चक व्रत को नहीं करेगा, उसका कार्तिक मासव्यापी समस्त व्रत निष्फल होगा।।१-७।।

अशक्तश्चेन्नरो भूयादसमर्थश्च कार्त्तिके। भीष्मस्य पञ्चकं कृत्वा कार्त्तिकस्य फलं लभेत्॥८॥
सत्यव्रताय शुचये गाङ्गेयाय महात्मने। भीष्मायैतद्ददाम्यर्घ्यमाजन्मब्रह्मचारिणे॥९॥
सव्येनाऽनेन मन्त्रेण तर्पणं सार्ववर्णिकम्॥१०॥

जो व्यक्ति कार्तिक व्रताचरण में असमर्थ हो, वह केवल भीष्मपञ्चक व्रत मात्र से समग्र कार्तिक व्रतफल प्राप्त कर सकता है। इस व्रत में पितृरीति से ही भीष्मतर्पण करना चाहिये। मन्त्र है। "पवित्र, गांगेय, सत्यव्रत, महात्मा, आजन्म ब्रह्मचारी, भीष्म को मैं यह अर्घ्य प्रदान करता हूं।" इस तर्पण का सभी वर्ण वालों को समान अधिकार है।।८-१०।।

व्रताङ्गत्वात्पूर्णिमायां प्रदेयः पापपूरुषः। अपुत्रेण प्रकर्तव्यं सर्वथा भीष्मपञ्चकम्॥११॥
यः पुत्रार्थं व्रतं कुर्यात्सस्त्रीको भीष्मपञ्चकम्। प्रदत्वा पापपुरुषंवर्षमध्ये सुतं लभेत्॥१२॥
अवश्यमेवकर्तव्यंतस्माद्भीष्मस्यपञ्चकम्। विष्णुप्रीतिकरंप्रोक्तंमयाभीष्मस्यपञ्चकम्॥१३॥

पूर्णिमा के दिन एक पापपुरुष प्रदान करें। यह व्रत का विशेष अंग है। इस व्रत के प्रभाव से व्रती को एक वर्ष में पुत्रलाभ होगा। मैंने इस भीष्मपञ्चक व्रत का एवंविध वर्णन किया। यह व्रत मुझे अत्यन्त प्रिय है। इसलिये मानव इसे अवश्य सम्पन्न करे।।११-१३।।

सूत उवाच

शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे विशेषो भीष्मपञ्चके। कार्त्तिकेयायरुद्रेणपुराप्रोक्तःसविस्तरात्॥१४॥

सूत जी कहते हैं—हे ऋषिगण! आप इसे विशेषरूपेण सुनें! रुद्रदेव ने प्राचीनकाल में कार्त्तिकेय से इस व्रत का वर्णन विशेषतया किया था।।१४।।

ईश्वर उवाच

प्रवक्ष्यामि महापुण्यं व्रतं व्रतवताम्बर!। भीष्मेणैतद्यतः प्राप्तं व्रतं पञ्चदिनात्मकम्॥१५॥
सकाशाद्वासुदेवस्यतेनोक्तंभीष्मपञ्चकम्। व्रतस्याऽस्यगुणान्वक्तुंकःशक्तः केशवादृते॥१६॥
कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु शृणेधर्मं पुरातनम्। वसिष्ठभृगुगर्गाद्यैश्चीर्णंकृतयुगादिषु॥१७॥
अम्बरीषेण भोगाद्यैश्चीर्णं त्रेतायुगादिषु। ब्राह्मणैर्ब्रह्मचर्येण जपहोमक्रियादिभिः॥१८॥
क्षत्रियैश्च तथा वैश्यैः सत्यशौचपरायणैः। दुष्करंसत्यहीनानामशक्यंबालचेतसाम्॥१९॥

ईश्वर कहते हैं—हे व्रताग्रणी! पांच दिनों वाले इस महापुण्यात्मक व्रत को भीष्म ने जैसे प्राप्त किया था, वह कहता हूं। भीष्म ने वासुदेव से यह व्रत प्राप्त किया था। स्वयं विष्णु ने उनसे इसका वर्णन किया था। इसलिये केशव के सिवाय इस व्रत के गुण को कौन कह सकेगा? तथापि इस पुरातन धर्म को सुनो। सत्ययुग के प्रारंभकाल में भृगु, गर्ग तथा वसिष्ठ आदि ऋषिगण ने तथा त्रेतायुग के प्रथमकाल में अम्बरीष, भोग आदि राजाओं ने कार्तिक शुक्लपक्ष में इस व्रत को किया था। इनके अतिरिक्त अनेक व्रताचारी ब्रह्मचारी ब्राह्मणों ने, सत्य एवं शौचयुक्त क्षत्रियों ने तथा वैश्यों ने जपहोमादि द्वारा इस व्रत को सम्पन्न किया। विद्वानों का कथन है कि यह भीष्मव्रत उनके लिये दुर्लभ है, जो सत्यच्युत हैं। यह बाल स्वभाव मनुष्यों के लिये असाध्य है।।१५-१९।।

दुष्करं भीष्ममित्याहुर्नशक्यं प्राकृतैर्नरैः। यस्मात्करोतिविप्रेन्द्र! तेनसर्वकृतं भवेत्॥२०॥
व्रतं चैतन्महापुण्यं महापातकनाशनम्। अतो नरैः प्रयत्नेन कर्तव्यं भीष्मपञ्चकम्॥२१॥

कार्त्तिकस्याऽमले पक्षे स्नात्वा सम्यग्विधानतः।
एकादश्यां तु गृह्णीयाद् व्रतं पञ्चदिनात्मकम्॥२२॥

प्रातः स्नात्वा विशेषेण मध्याह्नेच तथा व्रती। नद्यांनिर्झरतोयेवासमालभ्यचगोमयम्॥२३॥
यवव्रीहितिलै सम्यक्पितृसन्सन्तर्पयेत्क्रमात्। स्नात्वामौनंनरःकृत्वाधौतवासादृढव्रतः॥२४॥

भीष्मायोदकदानञ्च अर्घ्यञ्चैवप्रयत्नतः। पूजा भीष्मस्य कर्तव्या दानं दद्यात्प्रयत्नतः॥२५॥
पञ्चरत्नं विशेषेण दत्वा विप्राययत्नतः। वासुदेवोऽपिसम्पूज्योलक्ष्मीयुक्तःसदाप्रभुः॥२६॥
पञ्चके पूजयित्वा तु कोटिजन्मानि तुष्यति॥२७॥

सामान्य लोग इसे कदापि नहीं कर पाते। हे विप्रप्रवर! जो यह भीष्म व्रत करते हैं, उन्होंने मानो सब कुछ कर लिया। यह महापुण्यप्रद व्रत है। यह महापाप नाशक भी है। मनुष्यगण को सभी प्रयत्नों द्वारा यह भीष्मपंचक व्रत करना चाहिये। कार्त्तिक शुक्ला एकादशी के दिन यथाविधि स्नानोपरान्त पञ्चदिनात्मक भीष्म व्रत करें। व्रतग्रहण वाले दिन व्रती मानव देह में गोमय लिप्त करके नदी अथवा निर्झर जल में स्नान करके जल में ही यव, व्रीहि तथा तिल से क्रमशः पितरों का तर्पण सविधि-सम्पन्न करे। व्रती दृढ़बुद्धि मनुष्य स्नानान्त में मौन होकर श्वेत वस्त्र धारण करके यत्नतः भीष्म को जल तथा अर्घ्यदान करे। तदनन्तर यत्नतः भीष्म की पूजा करे तथा नाना प्रकार का दान करे। विशेषतः आदरपूर्वक भीष्मपूजा तथा विविध दान करना चाहिये। इस व्रत के दिन ब्राह्मण को पञ्चरत्न का दान देना चाहिये। इस व्रतकाल में लक्ष्मी के साथ प्रभु वासुदेव की अर्चना करनी चाहिये। इस व्रत में मानव की पूजा से लक्ष्मी-जनार्दन उस व्रती के प्रति कोटि-जन्मपर्यन्त प्रसन्न रहते हैं।।२०-२७।।

यत्किञ्चिद्ददते मर्त्यः पञ्चधातुप्रकल्पितम्।
सम्वत्सरव्रतानां स लभते सकलंफलम्॥२८॥
कृत्वातुदकदानं तु तथाऽर्घ्यस्यचदापनम्। मन्त्रेणाऽनेन यःकुर्यान्मुक्तिभागीभवेन्नरः॥२९॥
वैयाघ्रपादगोत्राय साङ्कृत्यप्रवराय च। अनपत्याय भीष्माय उदकं भीष्मवर्मणे॥३०॥
वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च। अर्घ्यं ददामि भीष्माय आजन्मब्रह्मचारिणे॥३१॥

मानवगण भीष्मपंचक व्रत में पञ्चधातु युक्त जो भी पंचरत्न दान करते हैं, उस दान फल से उनको एक वर्ष के कार्त्तिक व्रताचरण का पूर्ण फललाभ होता है।

"वैयाघ्रपाद गोत्राय साङ्कृत्य प्रवराय च। अनपत्याय भीष्माय उदकं भीष्मवर्मणे।

वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च। अर्घ्यं ददामि भीष्माय आजन्म ब्रह्माचरिणे।। —यह अर्घ्य मन्त्र है। इससे अर्घ्य देना चाहिये।।२८-३१।।

इत्यर्घ्यमन्त्रः

अनेन विधिना यस्तु पञ्चकं तु समापयेत्। अश्वमेधसमं पुण्यं प्राप्नोत्यत्र न संशयः॥३२॥
पञ्चाऽहमपि कर्तव्यं नियमञ्च प्रयत्नतः। नियमेन विना यत्र न भाव्यं वरवर्णिना॥३३॥
उत्तरायणहीनाय भीष्माय प्रददौ हरिः। उत्तरायणहीनेऽपि शुद्धलग्नं सुतोषितः॥३४॥
ततः सम्पूजयेद्देवं सर्वपापहरं हरिम्। अनन्तरं प्रयत्नेन कर्तव्यं भीष्मपञ्चकम्॥३५॥
स्नापयेतजलैर्भक्त्या मधुक्षीरघृतेन च। तथैव पञ्चगव्येन गन्धचन्दनवारिणा॥३६॥
चन्दनेन सुगन्धेन कुङ्कुमेनाऽथ केशवम्। कर्पूरोशीरमिश्रेण लेपयेद्गरुडध्वजम्॥३७॥

जो मानव यहां कही गयी विधि के अनुसार सम्यक् रूप से भीष्मपञ्चक व्रताचरण करता है, वह अश्वमेध

के समान फललाभ करता है। इसमें संशय नहीं है। एकादशी से पूर्णिमा पर्यन्त पांच दिन यत्नपूर्वक नियम बद्ध रहे। क्योंकि नियम त्याग करने से व्यक्ति कदापि श्रेष्ठ नहीं होता। जब हरि ने भीष्म पर प्रसन्न होकर उनको यह व्रत बतलाया था, तब उत्तरायण नहीं था। अतः इस व्रत का आचरण दक्षिणायन में उपदिष्ट होने पर भी विष्णुदेव का आदेश होने के कारण यह नित्य शुद्ध लग्न माना जाता है। तदनन्तर व्रतारंभ करते ही सर्वपापहारी हरि की पूजा करके तदनन्तर यत्नतः भीष्मपञ्चक व्रत में निरत होना चाहिये। व्रत के दिन गरुड़ वाहन विष्णु को भक्ति के साथ जल-मधु-क्षीर-घृत-गोमूत्रादि पञ्चगव्य तथा गन्धचन्दनयुक्त जल द्वारा स्नान कराये। तत्पश्चात् सुगन्धित द्रव्य, चन्दनादि, कुंकुम, उशीर, कर्पूर को मिलाकर भगवान् के शरीर में लेप करें।।३२-३७।।

अर्चयेद्रुचिरैः पुष्पैर्गन्धधूपसमन्वितैः। गुग्गुलुंसुतसंयुक्तं ददेत्कृष्णाय भक्तिमान्।।३८।।
दीपकं तु दिवा रात्रौ दद्यात्पञ्चदिनानि तु। नैवे देवदेवस्य परमान्नं निवेदयेत्।।३९।।
एवमभ्यर्चयेद्देवं संस्मृत्य चप्रणम्य च। ॐ नमो वासुदेवायेति जपेदष्टोत्तरं शतम्।।४०।।

इसके पश्चात् भक्तियुक्त मनुष्य मनोहर सुगन्धित पुष्प तथा धूप-दीप से हरि की पूजा करके घृतयुक्त गुग्गुल उनको प्रदान करे। इन पांचो दिन, दिन-रात दीप-दान करना होगा। साथ ही घृताक्त गुग्गुल भगवान् को अर्पित करें। भगवान् को पायसान्न भी निवेदित किया जाये। इस प्रकार से हरि की पूजा करके उनका नाम स्मरण तथा प्रणाम करके "ॐ नमो वासुदेवाय" मन्त्र का १०८ जप करें।।३८-४०।।

जुहुयाच्चघृताऽभ्यक्तैस्तिलव्रीहियवादिभिः। षडक्षरेणमन्त्रेण स्वाहाकाराऽन्वितेनच।।४१।।
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां प्रणम्य गरुडध्वजम्।
जपित्वा पूर्ववन्मत्रं क्षितिशायी भवेत्सदा।।४२।।
सर्वमेतद्विधानं तु कार्यं पञ्च दिनानि तु। विशेषोऽत्रव्रतेह्यस्मिन्यदन्यूनं श्रृणुष्वतत्।।४३।।
प्रथमेऽह्नि हरेः पादौ पूजयेत्कमलैर्व्रती। द्वितीये बिल्वपत्रेण जानुदेशं समर्चयेत्।।४४।।
ततोऽनुपूजयेच्छीर्षं मालत्या चक्रपाणिनः। कार्त्तिक्यांदेवदेवस्यभक्त्त्यातद्गतमानसः।।४५।।
अर्चित्वा तं हृषीकेशमेकादश्यां समासतः। निःप्राश्यगोमयंवम्यगेकादश्यामुपावसेत्।।४६।।
गोमूत्रं मन्त्रवद्भूमौ द्वादश्यां प्राशयेद्व्रती। क्षीरंचैवत्रयोदश्यांचतुर्दश्यांतथादधि।।४७।।
सम्प्राश्यकायशुद्ध्यर्थंलङ्घयित्वाचतुर्दिनम्। पञ्चमेदिवसेस्नात्वाविधिवत्पूज्यकेशवम्।
भोजयेद् ब्राह्मणान्भक्त्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम्।।४८।।
पापबुद्धिं परित्यज्य ब्रह्मचर्येण धीमता।
मद्यं मांसं परित्याज्यं मैथुनं पापकारणम्।।४९।।

तदनन्तर षडक्षर मन्त्र को स्वाहा युक्त करके घृतयुक्त तिल-ब्रीहि तथा यव के द्वारा विष्णु के लिये होम करें। तत्पश्चात् व्रतकारी व्यक्ति सन्ध्याकाल में सायं सन्ध्या की उपासना करके गरुड़ध्वज को पूर्ववत् प्रणामोपरान्त पूर्ववत् जप करें तथा रात्रि में भूमि पर शयन करें। पांचवें दिन इसी प्रकार व्रतपालन करना चाहिये। इनमें से जिस कार्य में पुण्य की अधिकता है, उसे सुनो। व्रती मनुष्य पहले दिन कमल से चक्रपाणी वासुदेव के पादपद्म

की, द्वितीय दिन विशेष बिल्वपत्र से उनके जानुप्रदेश की, तृतीय-चतुर्थ-पञ्चम दिन में मालती के पुष्प से हरि के शीर्ष (शिर) की पूजा करें। तत्पश्चात् हरिपरायण व्रतकर्त्ता भक्तिभाव से कार्त्तिकशुक्ला एकादशी के दिन हृषीकेश का पूजन सम्यक्तः संक्षेप में करके कायशुद्धि हेतु केवलमात्र मन्त्रपूत गोमय का प्राशन करके उपवासी रहे। इसी प्रकार द्वितीय दिन द्वादशी के दिन गोमूत्र, तृतीय दिन त्रयोदशी के दिन दुग्ध का तथा चतुर्थ दिन चतुर्दशी के दिन दधि का प्राशन करके चार दिन अतिवाहित करना चाहिये। इस प्रकार चार दिन व्यतीत करें। इस प्रकार से अपनी शुद्धि हेतु चार दिन व्यतीत करना चाहिये। पांचवें दिन स्नानोपरान्त विधिवत् केशव की पूजा करें तथा विधिवत् भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराकर उनको दक्षिणा प्रदान करें। धीमान् व्रती व्यक्ति व्रतकाल में पापबुद्धि छोड़कर सतत् ब्रह्मचर्य का आचरण करे। मद्य-मांस-मैथुन ही पाप का कारण है। अतएव मानव उसे पूर्णतः त्यागे।।४१-४९।।

शाकाहारेण मुन्यन्नैः कृष्णार्चनपरो नरः। ततो नक्तं समश्नीयात्पञ्चगव्यपुरःसरम्।।५०।।
एवं सम्यक्समाप्यं स्याद्यथोक्तं फलमाप्नुयात्।।५१।।
मद्यपो यः पिबेन्मद्यं जन्मनो मरणाऽन्तिकम्।
एतद्भीष्मव्रतं कृत्वा प्राप्नोति परमम्पदम्।।५२।।
स्त्रीभिर्वाभर्तृ वाक्येनकर्तव्यंधर्मवर्धनम्। विधवाभिश्चकर्तव्यंमोक्षसौख्याऽतिवृद्धये।।५३।।
अयोध्यायाम्पुरा कश्चिदतिथिर्नाम वै नृपः। वसिष्ठवचनात्कृत्वा व्रतमेतत्सुदुर्लभम्।
भुक्त्वेह निखिलान्भोगानन्ते विष्णुपुरं ययौ।।५४।।
इत्थं कुर्याद्व्रतं नित्यं पञ्चकंभीष्मसञ्ज्ञितम्। नियमेनोपवासेन पञ्चगव्येन वा पुनः।।५५।।
पयोमूलफलाऽऽहारैर्हविष्यैर्व्रततत्परः। पौर्णमासीदिने प्राप्ते पूजां कृत्वा तु पूर्ववत्।
ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या गाञ्च दद्यात्सवत्सकाम्।।५६।।
यद्भीष्मपञ्चकमिति प्रथितम्पृथिव्यामेकादशीप्रभृति पञ्चदशीनिरुद्धम्।
उक्तं न भोजनपरस्य तदा निषेधस्तस्मिन्व्रते शुभफलं प्रददाति विष्णुः।।५७।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डेकार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे भीष्मपञ्चकव्रतमाहात्म्यवर्णनंनाम द्वात्रिंशोऽध्यायः।।३२।।

—※※※—

व्रती व्यक्ति हरिपूजा तत्पर होकर शाकाहार परायण होकर कृष्णार्चन करे। व्रती व्यक्ति पहले रात्रि में पञ्चगव्य पान करके तब आहार करे। इस प्रकार से भीष्मपञ्चक व्रत करने पर यथोक्त फललाभ होता है। जो मद्यप व्यक्ति जन्म से मृत्यु पर्यन्त मद्यपान करता है, ऐसा मनुष्य भी भीष्मपञ्चक व्रताचरण द्वारा परमपद लाभ करता है। रमणीगण स्वामी का आदेश लेकर यह धर्मवर्द्धन व्रत करें। विधवा भी मोक्ष एवं सुखवृद्धि हेतु यह व्रत करें। पूर्वकाल में अयोध्या राज्य में अतिथि नामक एक नृप थे। वे वसिष्ठ वाक्य से यह सुदुर्लभ भीष्मपञ्चक व्रत किया करते थे। इसके प्रभाव से उन्होंने वैकुण्ठ लाभ किया। यथाविधि नियम से रहना, उपवास, पञ्चगव्यपान, जल, फल, मूल तथा हविष्यान्न भोजन प्रभृति यथोक्त नियम से व्रत तत्पर होकर, तथा पूर्णिमा काल में यथोक्त नियम

से व्रत करते हुये विष्णु पूजा द्वारा भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराकर उनको सवत्सा गौ प्रदान करें। यह भीष्मपञ्चक व्रत पृथिवी में विख्यात है। एकादशी से पूर्णिमा पर्यन्त इसे करना चाहिये। यह सतत् भोजन में लगे मानव हेतु नहीं कहा गया, यह तो भोजन से निषिद्धव्रत है। यदि उपवास से अधिक कष्ट हो, तब मात्र शाक-मूलादि का ही भक्षण करें। सामान्यतः पञ्चगव्य पान का ही नियम है। इन पांच दिन जो उपवासी रहते हैं, विष्णु उनको शुभफल देते हैं।।५०-५७।।

।।द्वात्रिंश अध्याय समाप्त।।

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

प्रबोधिनी एकादशी माहात्म्य, प्रबोध मनुद्वादशी कृत्य वर्णन

ईश्वर उवाच

प्रबोधिन्याश्च माहात्म्यं पापघ्नंपुण्यवर्धनम्। मुक्तिदंतत्त्वबुद्धीनां श्रृणुष्वसुरसत्तम॥१॥
तावद्गर्जतिसेनानीर्गङ्गाभागीरथीक्षितौ यावत्प्रयाति पापघ्नी कार्त्तिकेहरिबोधिनी॥२॥
तावद्गर्जन्ति तीर्थानि आसमुद्रसरांसि वै।
यावत्प्रबोधिनी विष्णोस्तिथिर्नाऽऽयाति कार्त्तिके॥३॥
अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च। एकेनैवोपवासेन प्रबोधिन्या यथाऽभवत्॥४॥
दुर्लभञ्चैव दुष्प्राप्यं त्रैलोक्ये सचराचरे। तदपि प्रार्थितग्विप्र! ददाति प्रतिबोधिनी॥५॥
ऐश्वर्यं सन्ततिं ज्ञानं राज्यञ्च सुखसम्पदः। ददात्युपोषिता विप्र हेलया हरिबोधिनी॥६॥
मेरुमन्दरतुल्यानि पापान्युपार्जितानि च। एकेनैवोपवासेन दहते हरिबोधिनी॥७॥

ईश्वर कहते हैं—हे सुरश्रेष्ठ! प्रबोधिनी का माहात्म्य सुनों। इसका माहात्म्य पाप हरने वाला, पुण्यप्रद तथा तत्वज्ञानियों को मुक्ति देने वाला है। हे सेनानी! जब तक कार्त्तिक की पापहारिणी एकादशी नहीं आती तब तक पृथिवी पर भागीरथी गंगा अपनी प्रधानता के कारण गर्व करती है। जब तक विष्णु की हरिबोधिनी कार्त्तिकी एकादशी का आगमन नहीं होता, तब तक समुद्र से लगाकर सरोवर पर्यन्त के तीर्थ गर्जन करते हुये अपनी प्रधानता का ज्ञापन करते रहते हैं। किम्बहुना, एकमात्र हरिप्रबोधिनी को उपवासी रहने का जो फल है, हजारों अश्वमेध तथा सैकड़ों राजसूय यज्ञ करने पर भी वैसा फल नहीं मिलता। हे विप्र! हरिप्रबोधिनी वांछित फल प्रदातृ है। मानव के इस दिन उपवासी रहने पर यह हरिबोधिनी उसे ऐश्वर्य, संगति, ज्ञान, राज्य तथा नाना सुख सम्पत्ति प्रदान करती है। यहां तक कि एकमात्र हरिबोधिनी के दिन जो उपवासी रहता है, मेरु-मन्दर गिरि के समान राशि-राशि अर्जित उसके पाप भी दग्ध हो जाते हैं।।१-७।।

उपवासम्प्रवोधिन्यां यः करोति स्वभावतः। विधिना नरशार्दूल! यथोक्तं लभते फलम्॥८॥
पूर्वजन्मसहस्त्रेषु पापं यत्समुपार्जितम्। जागरेण प्रबोधिन्यां दह्यते तुलराशिवत्॥९॥
शृणु षण्मुख! वक्ष्यामि जागरस्य च लक्षणम्। तस्य विज्ञानमात्रेणदुर्लभोनजनार्दनः॥१०॥
गीतम्वाद्यञ्च नृत्यञ्च पुराणपठनं तथा। धूपं दीपञ्च नैवेद्यं पुष्पगन्धाऽनुलेपनम्॥११॥
फलमर्घ्यं च श्रद्धा च दानमिन्द्रियसंयमम्।
सत्यान्वितं विनिन्दं च मुदायुक्तं क्रियन्वितम्॥१२॥
साश्चर्यञ्चैव प्रोत्साहमालस्यादिविवर्जितम्। प्रदक्षिणादिसंयुक्तं नमस्कारपुरःसरम्॥१३॥
नीराजनसमायुक्तमनिर्विण्णेन चेतसा। यामेयामे महाभाग! कुर्वन्नीराजनं हरेः॥१४॥

हे नरशार्दूल! जो मानव प्रबोधिनी एकादशी के दिन यथाविधि स्वभावतः उपवासी रहता है, उसे यथोक्त फल की प्राप्ति होती है। हरिप्रबोधिनी के दिन जो जागरण करता है, उसके सहस्त्रों पूर्वजन्म में अर्जित पाप भी मुहूर्त्त मात्र में जल जाते हैं, जैसे मकड़ी का जाला अग्नि से क्षणमात्र में दग्ध हो जाता है। हे षडानन! अब जागरण लक्षण सुनो। इस जागरण की विधि ज्ञात होने पर उस व्यक्ति हेतु जनार्दन भी दुर्लभ नहीं हैं। हे महाभाग! जागरण के दिन श्रद्धायुक्त होकर तथा जितेन्द्रिय होकर गीत-वाद्य-नृत्य तथा पुराणपाठ करे। धूप-दीप-नैवेद्य-पुष्प-चन्दन-अनुलेपन-फल तथा अर्घ्य प्रदान करे। सतत् सत्ययुक्त होकर मुदित रहे तथा अनिन्दित कार्य ही करे। सदा उत्साह समन्वित तथा आलस्य रहित होकर आश्चर्य के साथ नमस्कार एवं प्रदक्षिणा आदि सम्पन्न करना चाहिये। अनिर्विण्ण मन से भगवान् का नीराजन करें। प्रत्येक याम में हरि का नीराजन करना ही चाहिये।।८-१४।।

एतैर्गुणैः समायुक्तं कुर्याज्जागरणम्विभोः। एकाग्रमनसायस्तु न पुनर्जायते भुवि॥१५॥
य एवं कुरुते भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः। जागरम्वासरे विष्णोर्लीयते परमात्मनि॥१६॥
पुरुषसूक्तेन यो नित्यंकार्त्तिकेऽथार्चयेद्धरिम्। वर्षकोटिसहस्त्राणि पूजितस्तेनकेशवः॥१७॥
यथोक्तेन विधानेन पञ्चरात्रोदितेन वै। कार्त्तिके त्वर्चयेन्नित्यं मुक्तिभागी भवेन्नरः॥१८॥
नमोनारायणायेति कार्त्तिकेयोऽर्चयेद्धरिम्।
स मुक्तोनारकैर्दुःखैः पदंगच्छत्यनामयम्॥१९॥

जो मनुष्य इन गुणों से युक्त होकर हरि के लिये एकाग्र होकर नीराजन करता है, वह गुणान्वित व्यक्ति पुनः पृथिवी पर जन्म नहीं लेता। इसमें वित्तशाठ्य (कंजूसी) नहीं करनी चाहिये। जो इस प्रकार भक्तिपूर्वक रात्रि जागरण करता है, वह उस दिन से ही विष्णु में लीन हो जाता है। कार्त्तिकमास में जो मनुष्य पुरुषसूक्त द्वारा सतत् हरिपूजा करता है, इसे सहस्त्रकोटिवर्ष जनित ही पूजा लाभ होता है। जो यथोक्त भीष्मपञ्चक विधान से पांच दिन पर्यन्त हरिपूजनरत रहता है, उसे मुक्ति प्राप्त होती है। जो मानव कार्त्तिक में "नमो नारायण" मन्त्र से विष्णु की अर्चना करता है, वह नरक पीड़ा से मुक्त होकर अनामय पद की प्राप्ति करता है।।१५-१९।।

हरेर्नामसहस्त्रञ्च गजराजस्य मोक्षणम्। कार्त्तिके पठते यस्तु पुनर्जन्म न विन्दति॥२०॥
युगकोटिसहस्त्राणि मन्वन्तरशतानि च। द्वादश्यांकार्त्तिकेमासि जागरी वसतेदिवि॥२१॥

कुले तस्य च ये जाताः शतशोऽथ सहस्रशः।
प्राप्नुवन्ति पदम्विष्णोस्तस्मात्कुर्वीत जागरम्।।२२।।
कार्त्तिके पश्चिमे यामे स्तवं गानंकरोति यः। श्वेतद्वीपे तु वसते पितृभिःसहसुव्रत।।२३।।

कार्त्तिक मास में जो लोग हरिसहस्रनाम तथा गजेन्द्रमोक्ष का पाठ करते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। कार्त्तिक द्वादशी के दिन जागरण परायण व्यक्ति सहस्रकोटियुग तथा सौ मन्वन्तर पर्यन्त स्वर्ग में निवास करता है। उसके वंश में जो सैकड़ों हजारों लोग जन्म लेते हैं, वे भी विष्णुपदलाभ करते हैं। अतः कार्त्तिक में हरिजागरण अवश्य करें। हे सुव्रत! कार्त्तिक के पश्चिम याम में जो मानव स्तव तथा भक्तिगायन करता है, वह अपने पितरों के साथ श्वेतद्वीपवासी हो जाता है।।२०-२३।।

नैवेद्यदानं हरये कार्त्तिके दिनसङ्क्षये। युगानि वसते स्वर्गे तावन्ति मुनिसत्तमाः।।२४।।
अक्षयं मुनिशार्दूल! मालतीकमलार्चनम्। अर्चयेद्देवदेवेशं स याति परमम्पदम्।।२५।।
कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु कृत्वाह्येकादशींनरः।
प्रातर्दत्त्वाशुभान्कुम्भान्सयातिमममन्दिरम् ।।२६।।

भगवान् विष्णु बालखिल्यों से कहते हैं—हे मुनिप्रवरगण! कार्त्तिक मास के सन्ध्याकाल में हरि को नैवेद्य दान करने से जितना नैवेद्य है, उतने युगों तक स्वर्ग लाभ होता है। हे मुनिप्रवरगण! मालती पुष्पों से हरि की अर्चना अक्षय हो जाती है। जो देवदेव का पूजन मालती पुष्पों द्वारा करता है, वह परमपदलाभ करता है। मानव कार्त्तिक शुक्ला एकादशी के दिन उपवासी रहकर अगले दिन प्रातः शोभन कुंभदान करके मेरे लोक की प्राप्ति करता है।।२४-२६।।

अत्रैव तु प्रकर्तव्यः प्रबोधस्तु हरेः खग!। हतः शङ्खासुरो दैत्यो नभसः शुक्लपक्षके।।२७।।
एकादश्यां ततो विष्णुश्चातुर्मास्ये प्रसुप्तवान्।
क्षीराम्भोधौ जागृतोऽसावेकादश्यां तु कार्त्तिके।।२८।।
अतः प्रबोधनंकार्यमेकादश्यां तु वैष्णवैः। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द! उत्तिष्ठगरुडध्वज।
उत्तिष्ठ कमलाकान्त! त्रैलोक्यं मङ्गलं कुरु।।२९।।

श्रीहरि गरुड़ से कहते हैं—हे खग! कार्त्तिक शुक्ला एकादशी के दिन शंखासुर का वध हुआ था। रमापति चार मास तक क्षीरसागर में शयनरत रहकर कार्त्तिकी शुक्ला एकादशी को जागते हैं। अतः इसी दिन हरि का प्रबोधन करना चाहिये। वैष्णवगण भी इस प्रार्थना मन्त्र से इसी दिन हरि का प्रबोधन कार्य करते हैं। मन्त्र है—हे गोविन्द! जागिये! हे गरुड़ध्वज! उठिये! हे कमलाकान्त! आप उठकर त्रैलोक्य मंगल करिये।।२७-२९।।

इत्युक्त्वा शङ्खभेर्यादि प्रातःकालेतुवादयेत्। वीणावेणुमृदङ्गादिनृत्यगीतादिकारयेत्।।३०।।
उत्थापयित्वा देवशं पूजांतस्यविधायच। सायंकालेप्रकर्तव्यस्तुलस्युद्वाहजोविधिः।।३१।।
सर्वदैकादशी पुण्या विशेषात्कार्त्तिकी स्मृता।
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।।३२।।

अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति सम्प्राप्ते हरिवासरे। स केवलमघंभुङ्क्तेयोभुङ्क्तेहरिवासरे।।३३।।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्यादेकादशीव्रतम्। न कुर्याद्यदि मोहेन उपवासं नराधमः।।३४।।
नरके नियतं वासः पितृभिः सह तस्य वै। सूतके मृतकेवाऽपि नोपवासंत्यजेद्‌बुधः।।३५।।
दशमीवेधसंयुक्ता त्यात्या चैकादशीव्रते। गान्धार्याऽपिपुरातस्यामुपवासःकृतोगुह।।३६।।
तस्याः पुत्रशतं नष्टं तस्मात्तां वेधजां त्यजेत्। एकादशीमुपवसेत्स्नानदानपुरःसरम्।।३७।।

प्रभातकाल में एवंविध प्रार्थना करके शंख-भेरी-वीणा-वेणु तथा मृदङ्ग आदि का वादन तथा नृत्य-गीतादि द्वारा देवदेव का उत्थापन एवं पूजन करके सायंकाल में तुलसी की वैवाहिक विधि का अनुष्ठान करें। एकादशी सर्वदा पुण्या है। विशेषरूप से कार्तिक एकादशी पुण्यमयी है। ब्रह्महत्यादि सर्वपाप हरिवासरी एकादशी के दिन अन्न में समा जाते हैं। जो मानव एकादशी के दिन अन्न भोजन करता है, वह केवल पाप ही खाता है। इसलिये सर्वप्रयत्नपूर्वक एकादशी व्रत करना चाहिए। जो नराधम मोह के कारण एकादशी के दिन उपवासी नहीं रहता, अपने पितृगण के साथ वह नरकगामी हो जाता है। ज्ञानी मानव जनन तथा मरणाशौच में भी एकादशी के उपवास का त्याग न करें। एकादशी व्रत में दशमीवेधयुता तिथि ग्राह्य नहीं है। हे गुह! पूर्वकाल में गान्धारी ने दशमीयुक्ता एकादशी के दिन व्रत किया था। तभी उसके १०० पुत्र मृत हो गये। अतः दशमी वेधा एकादशी त्याज्य है। एकादशी के दिन स्नान-दान के साथ उपवास करना चाहिये।।३०-३७।।

रुक्माङ्गदोऽपि राजर्षिर्मोहिन्याःसङ्गमेनच। इहलोकेसुखंभुक्त्वाचाऽन्तेविष्णुपुरंययौ।।३८।।
द्वादशी पुण्यदा प्रोक्ता सर्वाऽघौघविनाशिनी।
किं दानैः किं तपोभिश्च किमु पोष्यैर्व्रतैश्च किम्।।३९।।
किमिष्टैश्चैव पुत्रैश्च द्वादशी येन सेविता। गङ्गायां चैव दुर्भिक्षे प्रत्यहंकोटिभोजनात्।।४०।।
यत्फलं तदवाप्नोति द्वादश्यामेकभोजनात्। यद्दत्तं चार्हते दानं द्वादश्यां तुसितेशुभे।।४१।।
सिक्थेसिक्थे च वैकस्य कतिब्राह्मणभोजनम्। तदहंनैवजानामिमहिमानं हिसुव्रत।।४२।।
शालग्रामशिलादानं यः कुर्याद्‌द्वादशीदिने। सप्तद्वीपवतीं भूमिं गङ्गायाञ्च रविग्रहे।
दत्त्वा यत्फलमाप्नोति तत्फलं लभते नरः।।४३।।

राजर्षि रुक्मांगद ने एकादशी का उपवास करके इस लोक में मोहिनी के साथ विविध भोगों का उपभोग किया तथा अन्त में वे विष्णुलोक चले गये। यह प्रबोधोत्सव मैंने कहा। अब द्वादशी माहात्म्य कहता हूं। द्वादशी पुण्यप्रदा तथा सर्वपापनाशिनी है। जो द्वादशी व्रत करते हैं, उनको दान-तप-उपवास-व्रत एवं वांछित पुत्र का क्या प्रयोजन! उसे तो द्वादशी व्रत से ही इनकी सर्वसिद्ध स्थिति प्राप्त हो जाती है। द्वादशी के दिन मात्र एक ब्राह्मण भोजन से ही पुण्यतीर्थ गंगा स्नान का फल तथा दुर्भिक्ष काल में करोड़ों मानवों को भोजन कराने के समान पुण्यफल प्राप्त होता है। हे सुव्रत! शुक्ला द्वादशी के दिन दान के उपयुक्त पात्र को जो दान करते हैं, उस दान के एक-एक पके दाने से ही अनेक ब्राह्मण भोजन का फल मिलता है। मुझे भी इसकी पूर्ण महिमा ज्ञात नहीं है। जो द्वादशी के दिन शालग्राम शिला दान करता है, वह मनुष्य सूर्यग्रहण काल में सप्तद्वीपयुक्त धरती दान इतना फल लाभ करता है।।३८-४३।।

पञ्चामृतैस्स्युयोविष्णुंभक्त्यासंस्नापयेद्द्विज!। ससर्वकुलमुद्धृत्यविष्णुलोकेमहीयते।।४४।।
शुक्ले कार्त्तिकमासस्य द्वादश्यांपरमोत्सवे। प्रातरारभ्ययःकुर्यात्स्नानदानादिकंतथा।
स तु मोक्षमवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा।।४५।।
द्वादश्यां कार्त्तिके मासि स्नानसन्ध्यादिकर्म च।
कृत्वा दामोदरं पूज्य भक्तिश्रद्धासमन्वितः।।४६।।
यस्तस्यां सूपनैवेद्यं न ददाति नराधमः। नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रम।।४७।।
तस्मात्सूपस्य नैवेद्यं द्वादश्यांकार्त्तिके शुभे। दद्याद्भक्तियुतोब्रह्मंश्चान्यथानरकं व्रजेत्।।४८।।
यस्तस्यां दम्पतीनां तु भोजनं कुरुते नरः। न तस्यफलविश्रान्तिमेयावक्तुंतुशक्यते।।४९।।

जो मानव द्वादशी के दिन भक्ति के साथ पंचामृत से विष्णु को स्नान कराते हैं, वे समस्त कुल का उद्धार करके विष्णुलोक प्राप्त करते हैं। कार्त्तिक शुक्लाद्वादशी का उत्सव श्रेष्ठ उत्सव है। जो इस उत्सव के दिन प्रभात से आरंभ करके स्नान, दान आदि प्रदान करता है, उसे अवश्य मोक्ष लाभ होता है। इसमें क्या सन्देह! कार्त्तिक मासीय द्वादशी को स्नान-सन्ध्या आदि नित्यकर्म करके भक्ति श्रद्धा के साथ दामोदर की पूजा करनी चाहिये। जो नराधम द्वादशी के दिन दामोदर को सूप नैवेद्य प्रदान नहीं करता, हमने सुना है कि वह दीर्घकालपर्यन्त नरकवास करता है। हे ब्रह्मन्! मैंने सुना है कि इस दिन जो मनुष्य दम्पत्ति को भोजन प्रदान करता है, उसे फल की सीमा नहीं है। अतः मैं भी उस फल को नहीं कह सकता।।४४-४९।।

धात्रीच्छायां गतो यस्तु द्वादश्यां पूजयेद्धरिम्।
तत्रैव भेजनं यस्तु ब्राह्मणानां तु कारयेत्।।५०।।
स्वयञ्च तत्र भुङ्क्तेयः सूपभक्ष्यादिकं तथा। न तस्य पुनरावृत्तिःकल्पकोटिशतैरपि।।५१।।
एवं प्रातर्विधायाऽथ पूजां दामोदरस्य हि। रात्रौ पुनः प्रकर्तव्यं पूजाकर्म हरेर्द्विज।।५२।।
तुलसीसन्निधौ कृत्वा पताकाध्वजशोभितम्।
पुष्पमालासमाकीर्णं नानारत्नोपशोभितम्।।५३।।
मुक्तादामभिराच्छन्नं कृत्वा मण्डपमुत्तमम्। पूजयेद्विष्णुमव्यग्रस्तद्गतैकाग्रमानसः।।५४।।
पञ्चरात्रोक्तमार्गेण गन्धपुष्पाक्षतादिभिः। नवनीतं दधिक्षीरं तथैव च घनं घृतम्।।५५।।
विविधैः खाद्यनैवेद्यैर्जलेन च सुगन्धिना। युक्तं निवेदयेद्विष्णोस्ताम्बूलंसलवङ्गकम्।।५६।।
पुष्पाणि चविवित्राणिसुगन्धीनिबहूनिच। प्रोक्षयित्वाचविधिपदर्पयित्वादलैःशुभैः।।५७।।
तुलस्याश्चापि धात्र्याश्चफलैश्चाऽपिप्रपूजयेत्। नीराजनंततःकृत्वामन्त्रपुष्पंसमर्पयेत्।।५८।।

जो मनुष्य आंवले की छाया में जाकर श्री हरिपूजन करता है तथा वहां ब्राह्मण भोजन कराकर स्वयं सूप आदि भक्ष्य का भोजन करता है, वह शत कल्पकोटि काल पर्यन्त जन्म नहीं लेता। हे द्विज! प्रातःकाल इस प्रकार से दामोदर की पूजा समाप्त करके पुनः रात्रि में उनकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् तुलसी से युक्त स्थान में ध्वजा-पताकादि से शोभित, पुष्पमाला तथा रत्नों से युक्त, मुक्तादाम से समाच्छन्न एक उत्तम मण्डल निर्माण

करके व्यग्रता छोड़कर एकाग्र मन से उस मण्डप में दामोदर विष्णु की पूजा करें। यह पूजा पञ्चरात्रोक्त विधान से गन्धपुष्प तथा अक्षतादि से करनी चाहिये। तदनन्तर विष्णु के उद्देश्य से विविध खाद्यद्रव्य तथा सुगन्धित जल के साथ नवनीत, दधि, क्षीर, धन, घृत प्रस्तुत करके लवंगयुक्त ताम्बूल का निवेदन करना चाहिये। इसके पश्चात् अनेक सुगन्धि, विभिन्न पुष्प अर्पित करें। प्रोक्षण, तुलसीदल तथा धात्री फल से हरिपूजन करके नीराजन करें। तदनन्तर मन्त्रपुष्प प्रदान करें।।५०-५८।।

अभिषेकं विना सर्वपूजां कृत्वा विधानतः।
विष्णोः पूजां समाप्याऽथ ब्राह्मणानां प्रपूजनम्।।५९।।
कुर्याद्भक्तियुतो विप्र! दद्याच्चैव फलादिकम्।
ताम्बूलं च ततो दत्त्वा दक्षिणां शक्तितोऽर्पयेत्।।६०।।

हे विप्र! तत्पश्चात् विष्णु के अभिषेक की क्रिया को छोड़कर बाकी पूजा यथाविधि सम्पन्न करके भक्तिभाव के साथ ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिये। उनको फल-ताम्बूल तथा शक्ति के अनुसार दक्षिणा प्रदान करें।।५९-६०।।

ततो वृद्धान्पितृन्मातृःपूजयित्वाविधानतः। ततःस्वयं स्वभार्याभिर्नैवेद्यभक्षयेत्सुधीः।।६१।।
इत्येवं तुविधानेनयःकुर्याद्द्वादशीव्रतम्। नतस्यलोकाः क्षीयन्ते कल्पकोटिशतैरपि।।६२।।
पुत्रपौत्रैः परिवृतो भुक्त्वा भोगान्मनोहरान्। भोगान्ते च व्रजेन्मोक्षमतीतकुलसप्तके।।६३।।
तस्मान्नारद! माहात्म्यं द्वादश्याः कार्त्तिकस्य च।
न मया शक्यते वक्तुं किमन्यैर्मनुजैरपि।।६४।।
द्वादश्या ह्युत्तमं पुण्यं माहात्म्यंयःपठेन्नरः। श्रृणुयाद्वामुनिश्रेष्ठ! सयातिपरमांगतिम्।।६५।।
राजर्षिरम्बरीषोऽपि चकारैतद्व्रतंशुभम्। यथाविधि तपोनिष्ठस्तेन मोक्षमवाप्तवान्।।६६।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे प्रबोधनोत्सवद्वादशीतिथिकृत्यवर्णननामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः।।३३।।

तत्पश्चात् सुधीव्रती यथाविधि वृद्ध माता-पिता की पूजा करके पत्नी सहित स्वयं विष्णुदेव के प्रसाद का भोजन करें। जो मानव इस प्रकार विधिवत् द्वादशी व्रत करता है, शतकोटि कल्प में भी वह स्वर्गादिलोक से च्युत नहीं होता। वह मनुष्य पुत्र तथा पौत्रगण से परिवृत होकर मनोहर भोग्य का उपभोग करके भोगान्त में अपनी पूर्व सात पीढ़ी के साथ मोक्षलाभ करता है। हे नारद! अतः अन्य लोगों की तो बात ही क्या? कार्त्तिक शुक्लाद्वादशी के माहात्म्य को मैं नहीं कह सकता। हे मुनिप्रवर! जो मनुष्य द्वादशी के उत्तम माहात्म्य का पाठ करता है, अथवा इसे सुनता है, उसे परमगति प्राप्त होती है। राजर्षि अम्बरीष ने तपोनिष्ठ होकर यथाविधि शुभ द्वादशीव्रत को किया था। वे इस व्रतपुण्य के प्रभाव से मोक्षगामी हो गये।।६१-६६।।

।।त्रयस्त्रिंश अध्याय समाप्त।।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

व्रत की उद्यापनविधि

नारद उवाच

व्रतानामपि सर्वषांब्रह्मन्नुद्यापनंश्रुतम्। अभावेतूद्यापनस्यफलंनैवऽऽप्नुयात्क्वचित्।।१।।
कृतव्रतफलाप्त्यर्थं कुर्यादुद्यापनम्बुधः। अन्यथा निष्फलं याति कृतं व्रतमनुत्तमम्।।२।।
कार्त्तिकेऽपि कृतंदेवव्रतानामुत्तमंव्रतम्। न तस्योद्यापनाऽभावेव्रतोक्तफलमाप्नुयात्।।३।।
तस्मात्कार्त्तिकमासस्यचोद्यापनविधिं प्रभो!। वदमे शिष्यवर्याय प्रपन्नायाऽनुवर्तिने।।४।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे ब्रह्मन्! व्रत समूह के उद्यापन की विधि सुना। हे तात! व्रत का उद्यापन किये बिना वह कदापि सफल नहीं होता। यही आपने कहा था। इसलिये बुद्धिमान व्रती मानव आचरित व्रत की फलप्राप्ति हेतु उसका उद्यापन अवश्य करें। उद्यापन के अभाव में अत्युत्तम व्रत भी निष्फल हो जाता है। हे देव! अत्युत्तम कार्त्तिक व्रत करके भी उद्यापन किये बिना उसका फललाभ नहीं होता। हे प्रभो! मैं आपके शिष्यों में प्रधान हूं। आपका पूर्ण अनुवर्त्ती तथा शरणापन्न हूं।।१-४।।

ब्रह्मोवाच

अथोर्जोद्यापनं वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम्। तच्छृणुष्व महाभक्त्या सविधानं समासतः।।५।।
ऊर्जे शुक्लचतुर्दश्यां कुर्यादुद्यापनं व्रती। व्रतसम्पूरणार्थाय विष्णुप्रीत्यर्थहेतवे।।६।।
तुलस्या उपरिष्टात्तु कुर्यान्मण्डपिकां शुभाम्।
कदलीस्तम्भसंयुक्तां नानाधातुविचित्रिताम्।।७।।
दीपमाला चतुर्दिक्षु कार्या तत्र सुशोभना। सुतोरणाश्चतुर्द्वारः पुष्पचामरशोभिताः।।८।।
द्वारेषु द्वारपालांश्च पूजयेन्मृण्मयान्पृथक्। जयश्च विजयश्चैव चण्डश्चैव प्रचण्डकः।।९।।
नन्दश्चैव सुनन्दश्च कुमुदः कुमुदाक्षकः। एतांश्चतुर्षु द्वारेषु पूजयेद्भक्तिसंयुतः।।१०।।

ब्रह्मा कहते हैं—वत्स नारद! तत्पश्चात् कार्तिकव्रत की सर्वपापनाशक, उद्यापनविधि संक्षेप में कहता हूं। तुम अत्यन्त भक्ति के साथ उसे सुनो। कार्त्तिकव्रती हरि की प्रसन्नतार्थ तथा व्रत के सम्पन्न होने के लिये कार्त्तिक शुक्ला चतुर्दशी के दिन उद्यापन करें। इस हेतु एक मनोरम छोटा मण्डप बनाये। यह मण्डप नाना धातु चित्रित हो तथा उसके द्वार को कदली स्तम्भ से सज्जित करें। उसके मध्य में तुलसी वृक्ष रखें। मण्डप के चतुर्दिक् शोभित दीपमाला जलाये। मण्डप के चतुर्दिक् चार मनोरम तोरणद्वारों को बनाये। प्रत्येक द्वार पुष्प तथा चामर द्वारा उपशोभित करना चाहिये। तोरणद्वार चतुष्टय पर मिट्टी के बने अनेक द्वाररक्षक हों। उनका नाम होगा जय, विजय, चण्ड, प्रचण्ड, नन्द, सुनन्द, कुमुद तथा कुमदाक्षत। भक्तिभाव के साथ चारों द्वार पर स्थित इन मृण्मय द्वारपालों की अलग-अलग पूजा करें।।५-१०।।

तुलसीमूलदेशेतुसर्वतोभद्रसञ्ज्ञितम्। चतुर्भिर्वर्णकैःसम्यक्छोभाढ्यं समलङ्कृतम्।।११।।

तस्योपरिष्टात्कलशं पूर्णरत्नसमन्वितम्। तत्रसम्पूजयेद्देवं शङ्खचक्रगदाधरम्॥१२॥
कौशेयपीतवसनं लक्ष्म्या युक्तं प्रपूजयेत्। इन्द्रादिलोकपालांश्च मण्डपे पूजयेद्व्रती॥१३॥
तस्यामुपवसेद्भक्त्या शान्तः प्रणतमानसः। रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवाद्यादिमङ्गलैः॥१४॥
गीतं कुर्वन्ति ये भक्त्याजागरेचक्रपाणिनः। जन्मान्तरशतोद्भूतैस्तेमुक्ताःपापसञ्चयैः॥१५॥
ततस्तु पूर्णिमायां तु सपत्नीकान्द्विजोत्तमान्।
त्रिंशन्मितानथैकम्वा ब्राह्मणांश्च निमन्त्रयेत्॥१६॥
प्रातःस्नानं ततः कृत्वादेवपूजांतथैवच। स्थण्डिलञ्चततःकृत्वासमाधायाऽग्निमत्रहि॥१७॥
अतो देवीति मन्त्रेण जुहुयात्तिलपायसम्। प्रीत्यर्थं देवदेवस्य देवानाञ्च पृथक्पृथक्॥१८॥

तुलसी के मूल में वर्ण चतुष्ठय से सर्वतोभद्र नामक मण्डल निर्माण करें। यह मण्डप सम्यक् शोभा युक्त तथा अलंकृत हो तत्पश्चात् मण्डप के ऊपर पंचरत्न समन्वित एक कलस स्थापित करके उस कलस पर कौषेयं पीतवासा (पीतवस्त्रधारी) शंख-चक्र-गदाधारी हरि की पूजा लक्ष्मी के साथ करें। तत्पश्चात् व्रती होकर मण्डप में इन्द्रादि लोकपालों की पूजा करके सभक्ति युक्त होकर उस दिन उपवासी रहे तथा शान्त एवं प्रणतमानस होकर मंगल गीत-वाद्य करते हुये रात्रि जागरण करें। जो व्यक्ति चक्रपाणि के जागरण दिन (कार्त्तिक शुक्ल एकादशी के दिन) भक्तिपूर्वक गायन करता है, वह १०० जन्मों के संचित पाप से मुक्त हो जाता है। तदनन्तर पूर्णिमा के दिन ३० किंवा १५ श्रेष्ठ ब्राह्मण दम्पत्तियों को बुलाये। (निमन्त्रित करें)। प्रातःस्नान तथा देवपूजनोपरान्त एक स्थण्डिल बनाकर उस पर अग्नि स्थापित करें। तत्पश्चात् "अतो देवी" इत्यादि मन्त्रों द्वारा—देवदेव की प्रसन्नतार्थ तिल एवं पायस से देवगण के लिये आहुति प्रदान करें। देवताओं की आहुति पृथक्तः देनी चाहिये।।११-१८।।

होमशेषंसमाप्याऽथब्राह्मणान्पूज्यभक्तितः। ब्राह्मणेभ्योयथाशक्त्याप्रदद्याद्दक्षिणांनरः॥१९॥
ततो गां कपिलां तत्र पूजयेद्विधिवद्व्रती। सवत्सांगांतथादद्याद्विप्रायचकुटुम्बिने॥२०॥
गुरुं व्रतोपदेष्टारं वस्त्रालङ्कारभूषणैः। सपत्नीकं समभ्यर्च्यतांश्च विप्रान्क्षमापयेत्॥२१॥
युष्मत्प्रसादाद्देवेशः प्रसन्नोऽस्तु सदा मम। व्रतादस्माच्च यत्पापं सप्तजन्मकृतं मया॥२२॥
तत्सर्वं नाशमायातु स्थिरा मे चाऽस्तु सन्ततिः।
मनोरथास्तु सफलाः सन्तु भक्तिर्हरौ भवेत्॥२३॥
सतां समागमो भूयान्ममजन्मनिजन्मनि। इतिक्षमाप्यतान्विप्रान्प्रसाद्यचविसर्जयेत्॥२४॥

इस प्रकार से व्रती व्यक्ति होम सम्पन्न करने के पश्चात् भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों की पूजा करके उनको यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करे। इसके पश्चात् व्रत करने वाला बछड़े के साथ दुग्धवती गौ को लाकर उसकी यथोचित पूजा करके यह धेनु किसी आत्मीय द्विज को प्रदान करें। तदनन्तर व्रतोपदेष्टा व्यक्ति सपत्नीक गुरु की पूजा वस्त्रालंकार से करके विप्रगण से इस वाक्य द्वारा क्षमा मांगे। प्रार्थना यह है—"हे विप्रगण! आपकी कृपा से मेरे ऊपर देवेश विष्णु सदा प्रसन्न रहें। इस व्रत के प्रभाव से मेरे सभी पाप नष्ट हो जायें। मेरी सन्तति परम्परा अटूट बनी रहे। हरि के प्रति मेरी अचला भक्ति हो। मेरे सभी मनोरथ सफल हों। मुझे प्रत्येक जन्मों से साधु-

संग मिलता रहे।" भक्तिमान् व्रती व्यक्ति ब्राह्मणगण से क्षमा प्रार्थना करे तथा उनको सन्तुष्ट करके विदा करे।।१९-२४।।

प्रतिमां तां गुरोर्दद्यात्सवस्त्रां मुनिपुङ्गव। ततःसुहृद्गुरुयुतःस्वयंभुञ्जीतभक्तिमान्।।२५।।

द्वादश्यां प्रतिबुद्धोऽसौ त्रयोदश्यां युतैः सुरैः।
दृष्टोऽर्च्चितश्चतुर्दश्यां तस्मात्पूज्यस्तिथाविह।।२६।।

पूजयेद्देवदेवेशं सौवर्णं गुर्वनुज्ञया। पराऽत्र पौर्णमास्यां तु यात्रा स्यात्पुष्करस्य तु।।२७।।

वरान्दत्त्वा यतो विष्णुर्मत्स्वरूपोऽभवत्ततः। तस्यां दत्तं हुतंजप्तंतदक्षय्यफलंभवेत्।।२८।।

पूजा की गयी प्रतिमा को वस्त्र के साथ गुरुदेव को अर्पित करने के उपरान्त सुहृद् तथा गुरु के साथ स्वयं भोजन करना चाहिये। श्री हरि द्वादशी के दिन प्रबुद्ध होते हैं तथा त्रयोदशी के दिन देवगण को दर्शन प्रदान करते हैं। तदनन्तर देवगण द्वारा भगवान् चतुर्दशी को पूजित होते हैं। अतः गुरु की आज्ञा लेकर इन तिथियों पर हरि की स्वर्ण प्रतिमा की पूजा करनी चाहिये। पूर्णिमा के दिन हरि की परम उत्तम पुष्कर यात्रा होती है। श्री हरि ने देवगण को वर देकर इसी पूर्णिमा के दिन मत्स्यरूप धारण किया था। इसलिये पूर्णिमा तिथि पर जो कुछ दान, होम तथा जप आदि किया जाता है, वह अक्षय फलप्रद होता है।।२५-२८।।

कार्त्तिके मासि कर्तव्यो विधिरेषु हिनारद!। एवं यः कुरुतेसम्याक्कार्त्तिकस्यव्रतंनरः।।२९।।

यत्फलं तदवाप्नोति व्रतंकृत्वातुकार्त्तिके। तेधन्यास्तेसदापूज्यास्तेषांवैसफलोदयः।।३०।।

विष्णुभक्तिरता ये स्युः कार्त्तिके व्रतचारिणः।
देहस्थितानि पापानि विलयं यान्ति तत्क्षणात्।।३१।।

क्व यामोऽद्य भवत्येष यदूर्जव्रतकृन्नरः। इतिसर्वाणि पापानि रटन्तीह पुनःपुनः।।३२।।

तस्मात्कार्त्तिकमासस्य सदृशं नहि विद्यते। सर्वपापस्य दहने अग्नेः सदृशउच्यते।।३३।।

ऊर्जोद्यापनमाहात्म्यं शृणुयाच्छ्रद्धयाऽन्वितः।
श्रावयेद्वा पुमान्यस्तु विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्।।३४।।

हे वत्स नारद! कार्त्तिक मास में इन सब अनुष्ठान को करना चाहिये। जो मनुष्य भक्तिभाव के साथ इस प्रकार से सम्यक्तः कार्त्तिक व्रत करता है, उसे यथार्थ कार्त्तिक व्रत फल लाभ होता है। जो सब विष्णु भक्त मानव कार्त्तिकव्रत आचरण करते हैं, वे धन्य हैं। उनकी पूजा, उनकी समस्त क्रिया से फल का उदय होता है। उनके देह का पाप सद्यः विलीन हो जाता है। पाप समूह कार्त्तिक व्रती मानव को देखकर कहते हैं—"यह जो कार्त्तिक व्रती मेरे सामने आया है, अब हम कहां जायें?" तब पापसमूह पुनः-पुनः यही रटते हैं। इसलिये कार्त्तिक मास के समान पुण्यप्रद कुछ भी नहीं है। कार्त्तिक कलुषराशि को भस्म कर देने में समर्थ है। अतः कार्त्तिकमास को इस कार्य के लिये अग्निस्वरूप कहा गया। जो मानव श्रद्धापूर्वक कार्त्तिक व्रत का उद्यापन माहात्म्य सुनता है अथवा सुनाता है, उसे विष्णु सायुज्य की प्राप्ति होती है।।२९-३४।।

नारद उवाच

ऊर्जे व्रतोद्यापनादावशक्तः सिद्धिभाक्कथम्। कथंविमुच्यतेजन्तुर्दुःखसंसारसागरात्।।३५।।

देवर्षि नारद कहते हैं—जो व्यक्ति कार्तिक व्रत के उद्यापन में समर्थ नहीं है, उसे कैसे सिद्धिलाभ होगा? तथा प्राणीगण किस प्रकार से दुःखपूर्ण संसार को पार करेंगे।।३५।।

ब्रह्मोवाच

श्रृणुयादूर्जमाहात्म्यं नियमेन शुचिः पुमान्। उद्यापनफलम्प्राप्यविष्णुलोके सेच्चसः।।३६।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे व्रतोद्यापनविधिकथनंनाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः।।३४।।

ब्रह्मा कहते हैं—पवित्र मानव नियमपूर्वक कार्तिक व्रत का वर्णन सुने तथा इस व्रत का उद्यापन माहात्म्य सुने। उसे इसी श्रवण फल से विष्णुलोक की प्राप्ति होगी।।३६।।

।।चतुस्त्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

वैकुण्ठ चतुर्दशी, त्रिपुरी पूर्णिमा विधान

ब्रह्मोवाच

वैकुण्ठाख्यचतुर्दश्यामाहात्म्यंतेवदाम्यहम्। बालखिल्यैपुराःप्रोक्तंसंक्षेपेणश्रृणुष्वतत्।।१।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! अब मैं वैकुण्ठ-चतुर्दशी महिमा वर्णन करता हूं। पूर्वकाल में बालखिल्य ऋषियों ने इसे कहा था। तुम उसे सुनो।।१।।

बालखिल्या ऊचुः

कार्त्तिकस्य सिते पक्षेचतुर्दश्यांसमागमत्। वैकुण्ठेशस्तु वैकुण्ठाद्वाराणस्यांकृतेयुगे।।२।।
रात्र्यां तुर्यांशशेषायां स्नात्वाऽसौ मणिकर्णिके।
गृहीत्वा हेमपद्मानां सहस्रम्वै ततोऽव्रजत्।।३।।
अतिभक्त्या पूजयितुं शिवया सहितंशिवम्। विधाय पूजां वैश्वेशींततःपद्मैरपूजयत्।।४।।
सहस्रसङ्ख्यां कृत्वादावेकनाम्ना ततः परम्। आरब्धं पूजनं तेन शिवस्तद्भक्तिमैक्षत।।५।।
एकं पद्मं पद्ममध्यान्निलीयाऽऽत्तं हरेण तु। ततः पूजितवान्विष्णुरेकोनंकमलंत्वभूत्।।६।।
इतस्ततस्तेन दृष्टं पद्मं तिष्ठति न क्वचित्। कमलेबुभ्रमो जातोऽथवा नामसु मे भ्रमः।।७।।

बालखिल्यगण कहते हैं—सत्ययुग के कार्तिकमास में शुक्ला चतुर्दशी के दिन वैकुण्ठेश प्रभु अपने

धाम से वाराणसी आये तथा रात्रि के अन्तिम चतुर्थ भाग में उन्होंने मणिकर्णिका में स्नान किया तथा १००० स्वर्ण कमलों से शिव एवं शिवा का पूजन करने गये। वैकुण्ठेश ने भक्तिपूर्वक पहले विश्वेश्वरी का पूजन किया तदनन्तर सहस्रपद्मार्पण का संकल्प लेकर शिव के सहस्र नाम में से एक-एक नाम का उच्चारण करके उन्होंने क्रमशः एक-एक कमल अर्पित करना प्रारंभ कर दिया। शिव ने उनकी भक्ति की परीक्षा के लिये उन पद्मों में से एक का हरण कर लिया। हरि ने पूजा करते यह पाया कि एक कमल कम हो गया। उन्होंने चतुर्दिक् दृष्टि दौड़ाया लेकिन उनको कहीं भी वह लुप्त पद्म नहीं मिला। वे सोचने लगे कि हो सकता है कि मुझे नामों को कहने में त्रुटि हो गई हो!।।२-७।।

क्षणं विचार्य स हरिर्न मैनामभ्रमोऽभवत्।
पद्मे चैव भ्रमो जातो विचार्यैवं पुनः पुनः॥८॥
सहस्रपद्मसङ्कल्पः पूजार्थन्तु कृतो मया। अर्च्यः कथं महादेव एकोनकमलैर्मया॥९॥
यद्यानेतुंगमिष्यामि भङ्गःस्यादासनस्य तु। अतःपरंकिंविधेयंचिन्तोद्विग्नोहरिस्तदा॥१०॥
एकः प्रकार उत्पन्नोहृदयेऽस्यमुनीश्वराः!। पुण्डरीकाक्षइत्येवं मां वदन्ति मुनीश्वराः॥११॥
नेत्रं मे पद्मसदृशं पद्मार्थे त्वर्पयाम्यहम्। इति निश्चित्य मनसा दत्त्वा तर्जनिकां सतु॥१२॥
नेत्रमध्यात्तदुत्पाट्य महादेवस्तु पूजितः। ततो महेश्वरस्तुष्टो वाक्यमेतदुवाच ह॥१३॥

हरि ने क्षणकाल चिन्तन करके यह उपलब्ध किया कि नाम में उनसे भ्रम नहीं हुआ है। पद्म में ही संख्या कम है। उन्होंने विचार से निश्चय किया कि उनको पद्म में ही भ्रम हो गया। उन्होंने स्थिर होकर यह निर्णय लिया कि मैं निश्चित रूपेण १००० पद्मों से शिवपूजा करूंगा, मैंने यह निश्चय किया था। अब मैं ९९९ पद्म से कैसे उनकी पूजा करूंगा? यदि मैं अब एक कमल जुटाने जाता हूं, तब आसनच्युत होना पड़ेगा। अब क्या करूं?" श्री हरि यह चिन्तन करते उद्विग्न हो गये। हे मुनीश्वरगण! तब उनके हृदय में एक बुद्धि उत्थित हो उठीं। उन्होंने निश्चय किया कि "मुनिगण मुझे कमलनयन कहते हैं। मेरे नेत्र कमल ऐसे हैं। अतएव मैं पद्म की जगह अपने नेत्र ही प्रदान करूंगा।" हरि ने यह निश्चय किया तथा अपने नेत्र में तर्जनी उंगली धंसाकर एक नेत्र उखाड़ा और उससे महेश्वर का पूजन सम्पन्न किया। इससे महादेव सन्तुष्ट होकर श्री हरि से कहने लगे।।८-१३।।

महादेव उवाच

त्वत्समो नास्ति मद्भक्तस्त्रैलोक्ये सचराचरे।
राज्यं दत्तं त्रिलोक्यास्ते भव त्वं लोकपालकः॥१४॥
अन्यं वरय भद्रं ते वरं यन्मनसेप्सितम्। अवश्यमेव दास्यामिनात्रकार्या विचारणा॥१५॥
मद्भक्तिं तु समालम्ब्य ये द्विषन्ति जनार्दनम्।
मे मद् द्वेष्या नरा विष्णो व्रजेयुर्नरकं ध्रुवम्॥१६॥

महादेव कहते हैं—हे हरि! समस्त त्रैलोक्य में आपके समान मेरा भक्त अन्य नहीं है। मैं आपको

त्रैलोक्यराज्य प्रदान करूंगा। आप अब लोकपालक हो जायें। हे भद्र! आपको यदि अन्य वर चाहिये तब आप प्रार्थना करिये। मैं उसे अवश्य प्रदान करूंगा। इसमें सन्देह नहीं है। जो केवल मेरे प्रति भक्ति करके विष्णु के प्रति विद्वेष करते हैं, वे मेरे शत्रु हैं। उनका नरकगमन निश्चित जानें।।१४-१६।।

विष्णुरुवाच

त्रैलोक्यरक्षाकरणं ममादिष्टं महेश्वर। दुर्मदाश्च महासत्त्वा दैत्याः मार्याः कथं मया॥१७॥

विष्णु कहते हैं—हे महेश्वर! आपने मुझे त्रैलोक्य के कार्यार्थ नियुक्त किया है, लेकिन मैं उन महापराक्रमी दुर्मद दैत्यों का नाश कैसे करूंगा?।।१७।।

शिव उवाच

एतत्सुदर्शनं चक्रं महादैत्यनिकृन्तनम्। गृहाणभगवन्विष्णो मयातुभ्यं निवेदितम्॥१८॥
अनेन सर्वदैत्यानां भगवन्कदनं कुरु। एवं चक्रं हरेर्दत्त्वा ततो वचनमब्रवीत्॥१९॥

शिव कहते हैं—"हे भगवान् विष्णु! मैं आपको यह सुदर्शन प्रदान करता हूं। यह चक्र महादैत्यों का उच्छेद करने में समर्थ है। आप इस चक्र से महादैत्यों को पराजित करिये।" इस प्रकार शिव ने यह चक्र देकर पुनः कहा।।१८-१९।।

शिव उवाच

वर्षे च हेमलम्बाख्ये मासे श्रीमति कार्त्तिके। शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामरुणाभ्युदयम्प्रति॥२०॥
महादेवतिथै ब्राह्मे मुहूर्ते मणिकर्णिके। स्नात्वा वैश्वेश्वरं लिङ्गं वैकुण्ठादेत्यपूजितम्॥२१॥
सहस्त्रकमलैस्तस्माद्भविष्यतिममप्रिया। विख्याता सर्वलोकेषुवैकुण्ठाख्याचतुर्दशी॥२२॥
अन्यं वरं प्रयच्छामि शृणुविष्णोवचोमम। पूर्वरात्रेषु ते पूजा कर्तव्यासर्वजातिभिः॥२३॥
उपवासं दिवाकुर्यात्सायंकाले तवार्चनम्। पश्चान्ममार्चनंकार्यमन्यथानिष्फलम्भवेत्॥२४॥
ग्राह्या तु हरिपूजायां रात्रिव्याप्ता चतुर्दशी। अरुणोदयवेलायां शिवपूजां समाचरेत्॥२५॥
सहस्त्रकमलैर्विष्णुरादौ यैः पूजितोनरैः। पश्चाच्छिवः पूजितश्चेज्जीवन्मुक्तास्तएवहि॥२६॥

शिव कहते हैं—हे विष्णु! आपने वैकुण्ठ से आकर हेमलम्ब नामक वर्ष के श्रीमान् कार्त्तिक मास में महादेव की तिथि शुक्ला चतुर्दशी के दिन अरुणोदय के समय ब्राह्म मुहूर्त में मणिकर्णिका में स्नान किया तथा १००० कमल से मेरे विश्वेश्वर लिंग की पूजा किया। यह तिथि मेरी प्रिय वैकुण्ठ चतुर्दशी के नाम से लोक विख्यात होगी। हे विष्णु! आप मेरा वचन सुनें। मैं एक और वर देता हूं। सभी जाति वाले इस पूजा को करें। सभी पहले आपकी पूजा करके तब मेरी पूजा करें। पूजकगण दिन में उपवासी रहकर पूर्वरात्रि के सायं ही आपकी पूजा करें। तब मेरी पूजा हो। इसके विपरीत जो पूजा करेगा, उसका पूजन निष्फल कहा जायेगा। हरिपूजा के सम्बन्ध में रात्रिव्यापिनी चतुर्दशी ही ग्राह्य मानें। अरुणोदय काल में शिवपूजा करनी चाहिये। जो मानव वैकुण्ठचतुर्दशी के समय दिन में १००० कमलों से हरि की पूजा करने के उपरान्त मेरी पूजा करते हैं, वे जीवन्मुक्त हैं। इसमें सन्देह नहीं।।२०-२६।।

सायं स्नात्वा पञ्चनदे बिन्दुमाधवमर्चयेत्।
स्नात्वा यो विष्णुकाञ्च्याम्वाऽनन्तसेनं समर्चयेत्॥२७॥
रुद्रकाञ्च्यां ततः स्नात्वाप्रणवेशंसमर्चयेत्। आदौस्नात्वा वह्नितीर्थेजयेन्नारायणंततः॥२८॥
रेतोदके ततः स्नात्वा केदारेशंसमर्चयेत्। आदौ स्नात्वासूर्यपुत्र्यांवेणीमाधवमर्चयेत्॥२९॥
जाह्नव्याञ्च ततः स्नात्वा सङ्गमेशं प्रपूजयेत्।
सर्वाः श्रियस्तस्य वश्याः सत्यम्विष्णो! मयोदितम्॥३०॥

मनुष्य सायंकाल में पञ्चनद में स्नानोपरान्त विष्णु पूजन करें (पंचनद-वाराणसी का पंचगंगा घाट) तथा वहां विन्दुमाधव की पूजा करें अथवा विष्णुकाञ्ची में स्नानोपरान्त अनन्तसेन की सम्यक् पूजा करें, तदनन्तर रुद्रकाञ्ची में स्नान करके प्रणवेश की पूजा करें। तदनन्तर वह्नितीर्थ में स्नान करके केदारेश्वर की सम्यक् पूजा करें। तदनन्तर सूर्यपुत्री यमुना में स्नान करके वेणीमाधव की अर्चना करें। तत्पश्चात् जाह्नवी में स्नान करके संगमेश की पूजा करनी चाहिये। समस्त समृद्धि उस व्यक्ति के वश में हो जाती है। हे विष्णु! यह मेरा वाक्य होने के कारण सत्य है।।२७-३०।।

एवं तस्मै वरान्दत्त्वा ह्यन्तर्धानं ययौ शिवः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूज्यौहरिहरावुभौ॥३१॥
कलौदशसहस्त्राणि विष्णुस्त्यजतिमेदिनीम्। तदर्द्धं जाह्नवीतोयं तदर्द्धं ग्रामदेवताः॥३२॥
कार्त्तिक्यां पूर्णिमायांतुकुर्यात्त्रैपुरमुत्सवम्। दीपोदेयोऽवश्यमेवसायंकालेशिवालये॥३३॥
त्रिपुरोनामदैत्येन्द्रः प्रयागे तप आस्थितः। तपसा तस्य सन्तुष्टो ददौ ब्रह्मावरंपरम्॥३४॥

भगवान् शिव विष्णु को यह वर देकर अन्तर्हित् हो गये। तत्पश्चात् सर्वप्रयत्न से हरि एवं शिव, दोनों ही पूज्य हैं। विष्णुदेव कलिकाल के १०००० वर्ष व्यतीत हो जाने पर पृथिवी का त्याग करेंगे। जाह्नवी जल उसके पांच हजार वर्ष पश्चात् पृथिवी का त्याग करेगा। ग्राम्य देवता कलि के १७ $\frac{१}{२}$ हजार वर्ष व्यतीत होने पर पृथिवी का त्याग कर देंगे। कार्तिक मासीय पूर्णिमा के दिन त्रिपुरोत्सव मनाये। इस दिन सायंकाल शिवालय में अवश्यमेव दीपदान करें। दैत्येन्द्र त्रिपुर ने प्रयाग में तप किया था। ब्रह्मा उसके तप से प्रसन्न होकर आये तथा त्रिपुरासुर को वर दिया।।३१-३४।।

देवासुरमनुष्येभ्यो न ते मृत्युर्भविष्यति।
इति लब्धवरो दैत्यो विश्वकर्मविनिर्मितम्॥३५॥
त्रिपुराख्यं विमानं तमारुह्य भुवनत्रयम्। यदा वै पीडयामास तदा देवैः स्तुतो हरः॥३६॥
त्रिपुरं घातयामास बाणेनैकेन शत्रुहा। कार्त्तिक्यां पूर्णिमायां तु सर्वेदेवाःप्रतुष्टुवुः॥३७॥
तस्मिन्दिने सर्वदेवैर्दीपा दत्ता हराय च। सर्वथैव प्रदेयाश्च दीपास्तु हरतुष्टये॥३८॥

ब्रह्मा ने त्रिपुर से कहा—"तुम्हें सुर-असुर नहीं मार सकेंगे।" असुर ने यह वर पाकर विश्वकर्मा से एक पुरी बनवाया। यह पुरी थी त्रिपुर! यह पुर विमान ऐसा गतिमान् था। असुर त्रिपुर इस विमानरूपी पुर पर बैठकर त्रिभुवन को पीड़ित करने लगा। तब देवगण के स्तव से सन्तुष्ट होकर शत्रुसंहारक हरि ने उस असुर का एक बाण से वध कर दिया। कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन यह कार्य हुआ था। देवगण ने इस दिन शिव के उद्देश्य से दीपदान तथा उनकी स्तुति का गान किया था। इसलिये आशुतोष देव के सन्तोषार्थ इस दिन दीप जलायें।।३५-३८।।

विंशतिः सप्तशतकाः सहिता दीपवर्तयः। ददेद्दीपं पूर्णिमायां सर्वपापैः प्रमुच्यते॥३९॥
पौर्णमास्यां तु सन्ध्यायां कर्तव्यस्त्रिपुरोत्सवः। दद्यादनेनमन्त्रेणप्रदीपांश्चसुरालये॥४०॥
कीटाः पतङ्गा मशकाश्च वृक्षा जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः।
दृष्ट्वा प्रदीपं न च जन्मभागिनो भवन्तु नित्यं श्वपचा हि विप्राः॥४१॥
कार्यस्तस्मात्पौर्णमास्थां त्रिपुराय महोत्सवः।
कार्त्तिक्यां कृत्तिकायोगे यः कुर्यात्स्वामिदर्शनम्॥४२॥
सप्तजन्म भवेद्विप्रोधनाढ्यो वेदपारगः। अत्र कृत्वा वृषोत्सर्गं नक्ताच्छैवपुरं व्रजेत्॥४३॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमहात्म्ये ब्रह्मनारद-सम्वादे वैकुण्ठचतुर्दशीत्रिपुरीपूर्णिमाःव्रतविधानकथनंनाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥

अब दीपदान विधि कहता हूं। ७२० दीपबत्ती जलाकर दीप प्रदान करें। पूर्णिमा के दिन एवंविध दीपदान द्वारा समस्त दुरित दूर हो जाते हैं। यही है त्रिपुरोत्सव। कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन इस मन्त्र से देवालय में उत्सव करें। मन्त्र है—"कीट, पतंग, मशक तथा वृक्ष पर और जल-स्थल में जितने प्राणी निवास करते हैं, वे दीपदर्शन करके जन्म ग्रहण न करें (आवागमन मुक्त हों) तथा चाण्डाल भी इस दीपदान को प्रदान करके ब्राह्मण जन्म प्राप्त करें।"

जो मानव कार्त्तिक में कृत्तिकायुक्त पौर्णमासी के दिन त्रिपुरदेव के उद्देश्य से दीपदानोत्सव करके उनका दर्शन करते हैं, वे सात जन्म तक धनी तथा वेदज्ञ ब्राह्मण होते हैं। इस पूर्णिमा के दिन जो रात्रि में वृषोत्सर्ग अथवा रात्रिव्रत (नक्तव्रत) करता है, वह शिवलोक प्राप्त करता है॥३९-४३॥

॥पञ्चत्रिंश अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

षट्त्रिंशोऽध्यायः

तिथित्रय माहात्म्य, पुराण श्रवण महिमा

ब्रह्मोवाच

यास्तिस्त्रस्तिथयः पुण्या अन्तिके शुक्लपक्षके। कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र! पूर्णिमान्ताः शुभावहाः॥१॥
अतिपुष्करिणीसञ्ज्ञासर्वपापक्षयावहा। कार्त्तिके मासि सम्पूर्णंयोवैस्नानं करोतिह॥२॥
तिथिष्वेतासुसःस्नानात्पूर्णमेवफलं लभेत्। सर्वेवेदास्त्रयोदश्यांगत्वाजन्तून्पुनन्तिहि॥३॥
चतुर्दश्यां सयज्ञाश्च देवा जन्तून्पुनन्ति हि।
पूर्णिमायां सुतीर्थानि विष्णुना संस्थितानि हि॥४॥

ब्रह्मघ्नान्वासुरापान्वासर्वाञ्जन्तून्पुनन्तिहि। उष्णोदकेनयःस्नायात्कार्त्तिक्यादिदिनत्रये॥५॥
रौरवं नरकं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश। आमासनियमाशक्तः कुर्यादेतद्दिनत्रये॥६॥
तेन पूर्णफलं प्राप्यमोदते विष्णुमन्दिरे। यो वै देवान्पितृन्विष्णुंगुरुमुद्दिश्यमानवः॥७॥
न स्नानादि करोत्यद्धा स याति नरकं ध्रुवम्। कुटुम्बभोजनंयस्तुगृहस्थस्तुदिनत्रये॥८॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे विप्रेन्द्र! कार्त्तिक शुक्ला त्रयोदशी से पूर्णिमा तक तीन तिथियों के विषय में मैंने कहा। ये सभी तिथियां शुभप्रदा हैं। इसी तरह से अन्तिक पुष्करिणी नामक पुष्प पुष्करिणी भी समस्त कलुषों की नाशक है। मानव सम्पूर्ण कार्त्तिक मास में स्नान करके जो फललाभ करता है, पूर्वोक्त तिथित्रय में भी उसमें स्नान करके उतना ही पुण्य प्राप्त कर लेता है। त्रयोदशी के दिन इस पुष्करिणी में सर्ववेद, चतुर्दशी के दिन समस्त यज्ञ तथा देवता, पूर्णिमा के दिन समस्त तीर्थ तथा श्री हरि इस अन्तिकपुष्करिणी में स्थित रहकर ब्रह्मघ्न तथा सुरापायी को भी पवित्र कर देते हैं। जो मानव कार्त्तिक की इस तिथियों (इन तीन तिथि के दिन) गर्म जल से स्नान करते हैं, वे तब तक नरक में रहते हैं, जब तक चतुर्दश इन्द्रों का काल समाप्त नहीं हो जाता। वैसे तो समस्त कार्त्तिक मास में उष्णजल से स्नान वर्जित है, तथापि अशक्त व्यक्ति इन तीन तिथियों पर उष्ण जल स्नान न करे। जो अशक्त व्यक्ति इन तीन दिन उष्ण जल स्नान का वर्जन करता है, वह समस्त फललाभ करके विष्णुमन्दिर (विष्णुलोक) लाभ करके मुदित होता है। जो मानव देव-पितृ-विष्णु के उद्देश्य से स्नानादि नहीं करता, वह निश्चित रूप से नरक जाता है। इन तीन तिथियों पर आत्मीयजन को भोजन कराना चाहिये।।१-८।।

सर्वान्पितृन्समुद्धृत्य स याति परमम्पदम्। गीतापाठं तु यः कुर्यादन्तिमेचदिनत्रये॥९॥
दिनेदिनेऽश्वमेधानां फलमेति न संशयः। सहस्रनामपठनं यः कुर्यात्तु दिनत्रये॥१०॥
न पापैर्लिप्यते क्वाऽपिपद्मपत्रमिवाऽम्भसा। देवत्वंमनुजैःकैश्चित्कैश्चित्सिद्धत्वमेवच॥११॥
तस्यपुण्यफलं वक्तुं कः शक्तोदिविवाभुवि। योवैभागवतंशास्त्रंशृणोतिचदिनत्रयम्॥१२॥
कश्चित्प्राप्तो ब्रह्मभावो दिनत्रयनिषेवणात्। ब्रह्मज्ञानेन वा मुक्तिः प्रयागमरणेन वा॥१३॥
अथ वा कार्त्तिके मासि दिनत्रयनिषेवणात्। कार्त्तिके हरिपूजांतु यःकरोतिदिनत्रये॥१४॥
न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि। कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र! सर्वमन्त्यदिनत्रये॥१५॥

वह व्यक्ति पितृगण का उद्धार करके परमपद प्राप्त करता है। जो मानव पूर्वोक्त तीन दिन गीता पाठ करता है, उसे नित्यप्रति अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। इसमें सन्देह नहीं है। जो मानव इन तीन दिन सहस्रनाम का पाठ करता है, वह उस प्रकार कभी पापलिप्त नहीं होता, जैसे कमलपत्र पर जल का कोई प्रभाव नहीं होता। अधिक क्या कहूं? न जाने कितने लोगों ने यह व्रत करके देवत्व पाया तथा न जाने कितने लोगों ने इस व्रत के प्रभाव से सिद्धत्व लाभ किया! इन तीन दिन जो मानव भागवत ग्रंथ को सुनता है, उसके फल को इस पृथिवी तथा स्वर्ग में कौन कह सकेगा? अनेक लोगों ने इन दिनत्रय का सेवन करके ब्रह्मभाव लाभ किया। ब्रह्म ज्ञान से किंवा प्रयाग मरण से जो मुक्तिलाभ होता है, कार्त्तिक के इन दिनत्रय सेवन से उसी लाभ को व्यक्ति प्राप्त कर सकता है। जो कार्त्तिक के इस दिनत्रय में हरिपूजन करता है सैकड़ों कोटिकल्पों में भी उसका पुनर्जन्म नहीं होता। हे विप्रेन्द्र! कार्त्तिक मास में त्रयोदशी आदि अन्त के तीन दिन अतीव पवित्र हैं।।९-१५।।

पुण्यं तत्राऽपि वैशेष्यंराकायांवर्ततेऽनघ। प्रातःकालेसमुत्थायशौचंस्नानादिकंचरेत्॥१६॥
समाप्य सर्वकर्माणि विष्णुपूजां समाचरेत्।
उद्याने वा गृहे वाऽपि कार्त्तिक्यां विष्णुतत्परः॥१७॥
मण्डपं तत्र कुर्वीतकदलीस्तम्भमण्डितम्। चूतपल्लवसम्वीतमिक्षुदण्डैःसुमण्डितम्॥१८॥
चित्रवस्त्रैःस्वलङ्कृत्य तत्र देवं प्रपूजयेत्। चूतपल्लवपुष्पाढ्यैः फलाद्यैः पूजयेद्धरिम्॥१९॥

इनमें भी पूर्णिमा अत्यन्त पवित्र है। इस दिन प्रभात के समय उठकर शौच तथा स्नानादि करना चाहिये। तत्पश्चात् समस्त नित्यक्रिया करके सम्यक्तः विष्णुपूजन करें। उद्यान अथवा गृह में विष्णु तत्पर मनुष्य कार्त्तिक मास में एक मण्डप निर्माण करे तथा कदली स्तम्भ से उस मण्डल को विमण्डित करना चाहिये। तदनन्तर इसे आम्रपल्लव तथा ईख से सजाये और विचित्र वस्त्रों से अलंकृत करके उस मण्डप में मुकुलयुक्त आम्रपल्लव तथा फल आदि से श्री हरि की पूजा करें।।१६-१९।।

शृणुयादूर्जमाहात्म्यं नियमेनशुचिःपुमान्। सम्पूर्णमथवाऽध्यायमेकश्लोकमथाऽपिवा॥२०॥
मुहूर्तं वाऽपि शृणुयात्कथांपुण्यांदिनेदिने। यदिप्रतिदिनंश्रोतुमशक्तःस्यात्तुमानवः॥२१॥
पुण्यमासेऽथवा पुण्यतिथौ संश्रृणुयादपि। तेनपुण्यप्रभावेन पापान्मुक्तो भवेन्नरः॥२२॥
पुराणज्ञः शुचिर्दक्षः शान्तो विगतमत्सरः।
साधुः कारुणिको वाग्मी वदेत्पुण्यां कथां सुधीः॥२३॥
व्यासासनं समारूढो यदा पौराणिको भवेत्।
आसमाप्तेः प्रसङ्गस्य नमस्कुर्यान्न कस्यचित्॥२४॥
न दुर्जनसमाकीर्णे न शूद्रश्वापदावृते। देशे न द्यूतसदने वदेत्पुण्यकथां सुधीः॥२५॥

तत्पश्चात् मनुष्य पवित्र होकर नियमपूर्वक कार्त्तिक माहात्म्य श्रवण करे। सम्पूर्ण हो, किंवा एक अध्याय अथवा एक श्लोक ही हो, अथवा मुहूर्तमात्र हो, मनुष्य नित्य प्रति कार्त्तिक माहात्म्य की पुण्यकथा अवश्य श्रवण करे। यदि कोई मानव नित्य प्रति कार्त्तिक मास माहात्म्य अशक्तता के कारण न सुन सके, तब वह इस पुण्य मास में अथवा पुण्यतिथियों पर इसका श्रवण करने मात्र से वह पापरहित हो जाता है। इस पुण्य कार्त्तिक माहात्म्य-कथा को कहने वाला व्यक्ति पुराणवेत्ता, शुद्ध, दक्ष, शान्त, मत्सररहित, कारुणीक, वाग्मी, साधु, सुधी व्यक्ति हो। पुराणज्ञ व्यासासन पर बैठकर जब तक एक प्रसंग प्रारंभ से अन्त तक न कह दिया जाये, तब तक बीच में उसे न छोड़े। तब वह पुराणज्ञ किसी को भी नमस्कार न करें। वह पुराणवेत्ता दुर्जनयुक्त, शूद्र किंवा श्वापदावृत्त देश में अथवा द्यूत गृह में (जहां जूआ हो) पुण्यपुराण कथा कभी न कहे।।२०-२५।।

श्रद्धाभक्तिसमायुक्तानाऽन्यकार्येषुलालसाः। वाग्यताःशुचयोदक्षाःश्रोतारःपुण्यभागिनः॥२६॥
अभक्ता ये कथां पुण्यां शृण्वन्ति मनुजाऽधमाः।
तेषां पुण्यफलं नाऽस्ति दुःखं स्याज्जन्मजन्मनि॥२७॥
पौराणिकञ्च मासान्ते पूजयेद्भक्तितत्परः। गन्धमाल्यैस्तथा वस्त्रैरलङ्कारैर्धनेन च॥२८॥

जहां वाक्यत् (मौनी), श्रद्धा-भक्ति समन्वित, अन्य कार्य के प्रति इच्छा न रखने वाले, पवित्र, दक्ष, पुण्यशील श्रोता हों, वहां पौराणिक पुराणवाणी कहनी चाहिये। जो भक्तिरहित मानवाधम पुण्यप्रद पुराणकथा सुनते हैं, उनको पुण्यफल होता ही नहीं, परन्तु उनका जन्म क्लेश में ही व्यतीत होता है। पुराणपाठ के मासान्त दिन (जब वह समाप्त हो रहा हो) पर भक्ति-भाव के साथ गन्ध-माला-वस्त्र-अलंकार-धन से पौराणिक की पूजा करें।।२६-२८।।

श्रृण्वन्ति च कथां भक्त्या न दरिद्रा न पापिनः॥२९॥

कथायांकीर्त्यमानायांयेगच्छन्त्यन्यतोनराः। भोगान्तरेप्रणश्यन्तितेषांदाराश्चसम्पदः॥३०॥

उच्चासनसमारूढो न नरः प्रणतो भवेत्। विषवृक्षस्तथा स्वापे वनेचाऽजगरोभवेत्॥३१॥

कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये नराः।
कोट्यब्दनरकान्भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः॥३२॥

ये श्रावयन्ति मनुजाःकथांपौराणिकींशुभाम्। कल्पकोटिशतंसाग्रंतिष्ठन्तिब्रह्मणःपदे॥३३॥

आसनार्थे प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः। कम्बलाजिनवासांसि मञ्चं फालकमेव वा॥३४॥

परिधानीयवस्त्राणि प्रयच्छन्ति च ये नराः। भूषणादि प्रयच्छन्ति वसेयुर्ब्रह्मसद्मनि॥३५॥

इस प्रकार से पौराणिक कथा को भक्तिपूर्वक सुनने वाले कभी दरिद्र अथवा पातकी नहीं होते। पुराण कथाकाल में जो लोग लोकभोग की कामना से अन्यत्र जाते हैं, उनकी पत्नी तथा सम्पदा का नाश हो जाता है। कथाकाल में उच्चासन समारूढ़ व्यास यदि किसी को प्रणाम करते हैं, किंवा व्यास गद्दी पर शयन करते हैं, तब वे विषवृक्ष किंवा अजगर की योनि में जन्म लेते हैं। पुराणवर्णन के समय जो कोई भी विघ्न करता है, वह करोड़ों वर्ष नरकभोग करके अन्त में ग्राम्य शूकर होकर जन्म लेता है। जो मानव पुण्यमयी पुराण कथा सुनता है, वह शतकोटि कल्पपर्यन्त ब्रह्मपद में स्थित हो जाता है। जो पुराणज्ञ (व्यास) हेतु आसन के लिये कम्बल, कृष्णमृगचर्म, वस्त्र, मञ्च अथवा फलक प्रदान करते हैं तथा जो पुराणज्ञ को परिधानार्थ वस्त्र एवं भूषण दान करते हैं, वे ब्रह्मसदन में निवास करते हैं।।२९-३५।।

वाचकेपरितुष्टे तु तुष्टाः स्युःसर्वदेवताः। अतःसन्तोषयेद्भक्त्याभक्तिश्रद्धान्वितःपुमान्।
तस्य पुण्यफलं पूर्णं भवत्येव न संशयः॥३६॥

यत्फलं सर्वयज्ञेषु सर्वदानेषु यत्फलम्। सकृत्पुराणश्रवणात्तत्फलं विन्दते नरः॥३७॥

पुराणवाचक की सन्तुष्टि से सभी देवता सन्तुष्ट हो जाते हैं। इसलिये पुरुष भक्ति तथा श्रद्धा से समन्वित होकर पुराणवाचक का सन्तोष साधन करें। ऐसा करने से उसे सम्पूर्ण फललाभ होता है। इसमें संशय नहीं है। समस्त यज्ञ तथा दान का जो पुण्यफल कहा गया है, मानव मात्र एक बार पुराण सुनकर वह समस्त फललाभ कर लेता है। विशेषतः कलिकाल में पुराणश्रवण के अतिरिक्त मानव हेतु श्रेष्ठ धर्म अथवा उत्तम मुक्तिपथ अन्य है ही नहीं।।३६-३७।।

कलौ युगे विशेषेण पुराणश्रवणादृते। नास्ति धर्मःपरः पुंसांनास्ति मुक्तिपथःपरः।
पुराणश्रवणाद्विष्णोर्नास्ति सङ्कीर्तनात्परम्॥३८॥

य एतदूर्जमाहात्म्यं श्रृणुयाच्छ्रावयेदपि। स तीर्थराजबदरीगमनस्य फलं लभेत्।
सर्वरोगापहं सर्वपापनाशकरं शुभम्॥३९॥

श्रुत्वा चैकपदे यो वै अगम्यागमने रतः। कन्यास्वस्त्रोर्विक्रयिणमुभयंतुविमोचयेत्।।४०।।
माहात्म्यमेतदाकर्ण्य पूजयेद्यस्तु पाठकम्।
गोभूहिरण्यवस्त्रैश्च विष्णुतुल्यो यतो हि सः।।४१।।
धर्मशास्त्रं पुराणञ्च वेदविद्यादिकञ्च यत्। पुस्तकं वाचकायैव दातव्यंधर्ममिच्छता।।४२।।
पुराणविद्यादातारो ह्यनन्तफलभोगिनः।।४३।।
इदंयःपठतेभक्त्याश्रुत्वाचैवाऽवधारयेत्। मुच्यतेसर्वपापेभ्योविष्णुलोकं स गच्छति।।४४।।
न कस्याऽपीदमाख्येयं श्रद्धाहीनाय दुर्मतेः।।४५।।

विशेष रूप से कलिकाल में पुराण श्रवण से श्रेष्ठ धर्म अथवा उत्तम मुक्तिमार्ग अन्य है ही नहीं। पुराण श्रवण तथा विष्णु नाम कीर्त्तन से उत्तम धर्म कुछ नहीं होता। अतएव जो कार्त्तिक माहात्म्य को सुनते हैं अथवा सुनाते हैं, वे तीर्थराज बदरीगमन का फललाभ करते हैं। शुभपुण्यप्रद कार्त्तिक माहात्म्य सभी रोगों का हरण करने वाला तथा सभी पापों का नाशक है। अगम्यागमनरत किंवा कन्या-भगिनी को बेचने वाला मनुष्य भी एकमात्र यह माहात्म्य कथा को सुनकर पापरहित हो जाता है। जो मानव इस पुण्य माहात्म्य को सुनता है तथा गौ, भूमि, स्वर्ण द्वारा पुराणवाचक की पूजा करता है, वह विष्णु तुल्य है। इसमें सन्देह नहीं है। धर्मेच्छु मानव धर्मशास्त्र-पुराण-वेदविद्यादि की पुस्तक पुराणवाचक को प्रदान करे। पुराणविद्या ज्ञाता अनन्त फल का भागी होता है। जो भक्ति के साथ इसका श्रवण करता है, सुनकर इसकी अवधारणा करता है, वह सर्वपापरहित होकर विष्णुलोक प्राप्त करता है। किसी श्रद्धाहीन, दुर्मति मानव से यह माहात्म्य कभी न कहें।।३८-४५।।

अपूजयित्वा गुरुमग्रबुद्ध्या धर्मप्रवक्तारमनन्यबुद्धिः।
भुक्त्वा तु भोगान्नरकेषु चैव ततो हि जन्मान्तरदुःखभोगी।।४६।।
तस्मात्सम्पूजयेद्भक्त्या गुरुं तत्त्वावबोधकम्।
माहात्म्यस्य च लेशोऽयं तव चोक्तो मयाऽनघ!।।४७।।
न शक्यते हि सम्पूर्णं वक्तुं वर्षशतैरपि। पुरा कैलासशिखरे पार्वत्यैप्रोक्तवाञ्छिवः।।४८।।
कार्त्तिकस्य तु माहात्म्यं यावद्वर्षशतं वदन्। तथापि नान्तमगमदशक्तो विरराम ह।।४९।।
पुत्रार्थीचधनार्थीचराज्यार्थीस्वफलंलभेत्। किमत्रबहुनोक्तेनमोक्षार्थीमोक्षमाप्नुयात्।।५०।।

अपने को श्रेष्ठ मानकर जो मनुष्य गुरु की पूजा नहीं करता तथा साधारण मानव मानकर जो धर्मवक्ता की पूजा नहीं करता, वह नरकगामी होता है तथा अनेक दुःखभोग करके जन्मान्तर में दुःख प्राप्त करता है। अतएव तत्वज्ञान बोधक गुरु की पूजा भक्तिपूर्वक करनी चाहिये। हे अनघ! मैंने तुमसे कार्त्तिक माहात्म्य का लेशमात्र ही वर्णन किया है। सम्पूर्ण माहात्म्य का वर्णन मैं सैकड़ों वर्ष में भी नहीं कर सकता! पूर्वकाल में पार्वती से शिव ने यह कहा था। शिव इस कार्त्तिक माहात्म्य का वर्णन १०० वर्ष पर्यन्त कहकर भी समाप्त नहीं कर सके। तब वे अशक्त होकर इसे कहने से विरत हो गये। इस माहात्म्य को सुनने वाला पुत्रार्थी पुत्र, धनार्थी एवं राज्यार्थी अपना-अपना अभीष्ट प्राप्त करते हैं। अधिक क्या कहूं, जो मोक्षार्थी होकर इसे सुनते हैं, उनको मोक्षलाभ हो जाता है।।४६-५०।।

सूत उवाच

इत्युक्तो ब्रह्मणाचैव नारदः प्रेमनिर्भरः। भूयोभूयो नमस्कृत्य ययौ यादृच्छिकोमुनिः॥५१॥
कथितं शङ्करेणाऽपि पुत्राय हितकाम्यया। पितुस्तद्वाक्यमाकर्ण्यषण्मुखोहर्षनिर्भरः॥५२॥
कृष्णेन सत्यभामायैकार्त्तिकस्यचवैभवः। कथितस्तेनसन्तुष्टासत्याव्रतमथाऽकरोत्॥५३॥
ऋषयो बालखिल्येभ्यः श्रुत्वा माहात्म्यमुत्तमम्।
ऊर्जव्रतपरा जातास्तस्मादूर्जोऽतिवल्लभः॥५४॥
अधीत्यसर्वशास्त्रणिपयःसारमिवोद्धृतम्। नाऽनेनसदृशंशास्त्रं विष्णुप्रीतिकरंशुभम्॥५५॥

सूत जी कहते हैं—देवर्षि नारद ने ब्रह्मा से यह सब सुना। सुनकर वे प्रेमपूरित हो गये तथा बारम्बार उनको प्रणाम करके अपने गन्तव्य की ओर चले गये। निखिल लोक की हित कामना से शंकर ने अपने पुत्र कार्त्तिकेय से यह माहात्म्य कहा था। सुनकर कार्त्तिकेय हर्ष में भर गये। कृष्ण ने सत्यभामा से कार्त्तिक माहात्म्य कहा था। सत्यभामा तब कृष्ण के वर्णन से सन्तुष्ट होकर कार्त्तिक व्रताचरण करने लगीं। ऋषगण भी बालखिल्यों से इस उत्तम माहात्म्य को सुनकर कार्त्तिक व्रताचरण में तत्पर हो गये। तभी से कार्त्तिक व्रत को श्रेष्ठता की प्राप्ति हो गयी। व्यास ने भी सभी शास्त्रों को सुनकर तथा अध्ययन करके उसके साररूपेण विष्णु के इस माहात्म्य का उसी प्रकार से उद्धार किया जैसे दुग्ध के साररूप नवनीत को निकालते हैं। अतएव विष्णु को प्रसन्न करने वाला ऐसा शुभ शास्त्र है ही नहीं।।५१-५५।।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वातानृषीनर्वान्सूतोवैधर्मवित्तमः। विररामततस्तेतुपूजाञ्चचक्रुस्तदाऽस्यच॥५६॥
ते पुनः स्वाश्रमङ्गत्वा हृष्टास्ते परमर्षयः। यथा सूतेनोपदिष्टं तथा चक्रुर्व्रतं शुभम्॥५७॥
अनेनविधिनायेवैकुर्वन्तिकार्त्तिकव्रतम्। ते सर्वपापनिर्मुक्तागच्छन्तिविष्णुमन्दिरम्॥५८॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे कार्त्तिकमासमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे पुष्करिणीसञ्ज्ञिकान्तिमतिथित्रयमाहात्म्यकथनपूर्वकंपुराणश्रवणमहिवर्णनंनाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥३६॥

॥समाप्तमिदंश्रीकार्त्तिकमासमाहात्म्यम्॥

—✻✻✻—

व्यासदेव कहते हैं—तदनन्तर धर्मज्ञ सूत यह कहकर विरत हो गये। तब उन महान् ऋषियों ने उनके पास आकर उनकी पूजा किया तथा वे सभी प्रसन्न मन से अपने आश्रम लौट गये। वे सूत के कथनानुरूप कार्त्तिक व्रताचरण करने लगे। जो मानव पूर्वोक्त विधान से कार्त्तिकव्रत का आचरण करता है, वह समस्त कलुष से रहित होकर विष्णुलोक जाता है।।५६-५८।।

।।षट्त्रिंश अध्याय समाप्त।।

।।कार्त्तिक माहात्म्य समाप्त।।

।।श्रीगणेशायनमः।।

अथमार्गशीर्षमाहात्म्यारम्भः

प्रथमोऽध्यायः

गोपी द्वारा मार्गशीर्ष माहात्म्य कथन

सूत उवाच

देवकीनन्दनं कृष्णं जगदानन्दकारकम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं वन्दे माधवं भक्तवत्सलम्।।१।।
श्वेतद्वीपे सुखासीनं देवदेवं रमापतिम्। चतुर्वक्त्रो नमस्कृत्य पप्रच्छ पितरन्तदा।।२।।

सूत जी कहते हैं—जगदानन्दकारक भुक्ति-मुक्तिप्रद भक्तवत्सल देवकीनन्दन कृष्ण माधव की वन्दना करता हूं। एक बार देवदेव रमापति श्वेतद्वीप में सुख से समासीन थे। चतुरानन ब्रह्मा ने वहां जगत्पिता हरि की प्रणामपूर्वक जिज्ञासा किया। चतुरानन ब्रह्मा ने वहां जगत्पिता श्रीहरि को प्रणाम करके पूछा।।१-२।।

ब्रह्मोवाच

हृषीकेश! जगद्धातः! पुण्यश्रवणकीर्तन!। पृष्टं यद्ब्रूहि देवेश! सर्वज्ञ सकलेश्वर!।।३।।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमित्युक्तं भवता पुरा।
तस्य मासस्य माहात्म्यं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः।।४।।
को देवस्तस्यकिंदानंकथं स्नानं विधिश्च कः। पुरुषैस्तत्रकिंकार्यंभोक्तव्यंकिंरमापते!।।५।।
वक्तव्यंकिंतथापूजाध्यानमन्त्रादिकञ्चयत्। तत्र यत्क्रियते कर्म तत्सर्वम्ब्रूहिमेऽच्युत।।६।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे हृषीकेश! आप जगत् के धाता हैं। आपका नाम श्रवण तथा कीर्त्तन करने से पुण्य संचय होता है। आप सर्वलोकेश्वर हैं। हे सर्वज्ञ! मेरे हृदय में एक प्रश्न उदित हो रहा है। मैं इस समय मार्गशीर्ष मास का माहात्म्य यथायथ रूपेण जानने की इच्छा कर रहा हूं। रे रमापति! मार्गशीर्षमास का देवता कौन है? दान तथा स्नानविधि इस मास हेतु क्या है? पुरुषगण मार्गशीर्ष में क्या कर्म करें तथा क्या भक्षण करें? इस मास में क्या कहे तथा किस प्रकार पूजन करे? इस पूजा के मन्त्र आदि क्या हैं? इसमें कब क्या कार्य करना चाहिये? हे अच्युत! उस सब का वर्णन करिये।।३-६।।

श्रीभगवानुवाच

साधुपृष्टं त्वया ब्रह्मन्सर्वलोकोपकारिणा। यस्मिन्कृतेकृतं सर्वमिष्टापूर्तादिकम्भवेत्।।७।।
सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम्। तत्फलं समवाप्नो मार्गशीर्षे कृते सुत!।।८।।
तुलापुरुषदानाद्यैर्यत्फलं लभते नरः। तत्फलम्प्राप्यते पुत्र! माहात्म्यश्रवणात्किल।।९।।

यज्ञाध्ययनदानाद्यैः सर्वतीर्थावगाहनैः। सन्न्यासेन च योगेननाऽहंवश्योऽभवंनृणाम्॥१०॥

स्नानेन दानेन च पूजनेन ध्यानेन मौनेन जपादिभिश्च।
वश्यो यथा मार्गशिरे च मासि तथा न चान्येषु च गुह्यमुक्तम्॥११॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे ब्रह्मन्! आपने सभी लोकों के हित के लिये साधु प्रश्न किया है। इस मार्गशीर्ष में व्रत करने से सभी इष्ट एवं अपूर्त कर्मफल तथा समस्त यज्ञ एवं तीर्थयात्रा फल की प्राप्ति होती है। हे पुत्र! आपने इस मार्गशीर्ष का माहात्म्य की जिज्ञासा करके अच्छा कार्य किया है। हे सुत! मानव को तुलापुरुषादि दान से जो फललाभ होता है, उतना ही पुण्यफल मार्गशीर्ष मास माहात्म्य को सुनने से प्राप्त हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है। हे ब्रह्मन्! यज्ञ-अध्ययन-दान-समस्त तीर्थ सेवा-संन्यास योग से भी मैं मनुष्यों के वश में नहीं होता तथापि मार्गशीर्ष मास में दान, स्नान, पूजा, ध्यान मौनावलम्बन तथा जपादि से मैं जितना मनुष्यों के वश में हो जाता हूं, अन्य किसी भी कर्म से उतना वशीभूत नहीं होता। यह अत्यन्त गुप्त बात आपसे कह रहा हूं।।७-११।।

अन्यैर्धर्मादिभिः कृत्वा गोपितं मार्गशीर्षकम्।
मत्प्राप्तेः कारणं मत्वा देवैः स्वर्गनिवासिभिः॥१२॥

ये केचित्पुण्यकर्माणो मम भक्तिपरायणाः। तेषामवश्यं कर्तव्यो मार्गशीर्षोमदापनः॥१३॥

मार्गशीर्षं न कुर्वन्ति ये नराभारताऽजिरे। पापरूपाश्च ते ज्ञेयाःकलिकालविमोहिताः॥१४॥

अष्टस्वपि च मासेषु यत्फलं लभते नरः। तत्फलं प्राप्यते वत्स माघेमकरगे रवौ॥१५॥

माघाच्छतगुणं पुण्यं वैशाखेमासिलभ्यते। तस्मात्सहस्त्रगुणितं तुलासंस्थेदिवाकरे॥१६॥

तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं वृश्चिकस्थे दिवाकरे।
मार्गशीर्षोऽधिकस्तस्मात्सर्वदा च मम प्रियः॥१७॥

उषस्युत्थाय यो मर्त्यः स्नानं विधिवदाचरेत्।
तुष्टोऽहं तस्य यच्छामि स्वात्मानमपि पुत्रक!॥१८॥

स्वर्ग के निवासी देवगण ने मार्गशीर्षव्रत को मेरी प्राप्ति का कारण जानकर ही अन्य धर्मों का उपदेश करके इस धर्म को गुप्त रख लिया। जो सब लोग मेरे प्रति भक्तिपरायण हैं तथा पुण्यकर्म करने वाले हैं, उनके लिये यह मार्गशीर्ष व्रत अवश्य कर्त्तव्य है। क्योंकि इसी व्रत से वे मुझे प्राप्त होते हैं। भारतभूमि में जो मनुष्य यह व्रत नहीं करते, वे कलिकाल मोहित पापरूप ही हैं। हे वत्स! मानव आठ मास व्रत करने पर जो फललाभ करता है, दिवाकर के मकर राशीस्थ होने पर वह माघमास में वही फल लाभ कर लेता है। माघ मास का जो फल है, एक मात्र वैशाख मास में उसका शतगुणित फल लाभ होता है। इससे भी हजारगुणितफल सूर्य के तुलाराशि गमनकाल में कार्त्तिकमासीय व्रत से प्राप्त होता है। इसलिये मार्गशीर्ष ही सबसे श्रेष्ठ है तथा मुझे सतत् प्रिय है। हे पुत्रक! जो व्यक्ति ऊषाकाल में शय्या त्याग करके यथाविधि स्नान करता है, मैं उस पर प्रसन्न होकर उसे अपनी आत्मा तक प्रदान करता हूं।।१२-१८।।

अत्राप्युदाहरन्तीदं शृणुपुत्र! कथानकम्। नन्दगोपोमहात्मावैख्यातोयोभूतलेऽभवत्॥१९॥

तस्य वै गोकुले रम्ये गोपकन्या सहस्त्रशः। तासांचित्तञ्चमद्रूपे लग्नमासीत्पुराऽनघ॥२०॥
तासां बुद्धिर्मयादत्ता मार्गशीर्षाऽवगाहने। ततस्ताभिःकृतंस्नानं प्रातःकालेयथाविधि॥२१॥
पूजां कृता हविष्यान्नं भुक्तं ताभिः कृता नतिः।
एवं कृतेन विधिना प्रसन्नोऽहं ततोऽनघ!॥२२॥
दत्तोमयाऽऽत्माहितासांतुष्टेनवैवरोकिल। तस्मान्नैस्तुकर्तव्योमार्गशीर्षोयथाविधि॥२३॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णु-सम्वादे गोपीकृतमार्गशीर्षस्नानफलकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः।।१।।

हे पुत्र! इस सम्बन्ध में एक प्राचीन कथा उदाहरणार्थ कहता हूं। उसे श्रवण करो। भूतल में जो महात्मा नन्दगोप नामक प्रसिद्ध थे, उनका रम्य आवास गोकुल हजारों गोपकन्याओं से भरा था। हे अनघ! पूर्वकाल में ये सभी गोपकुमारीगण मेरे रूप पर आसक्त थीं। मैंने इनको मार्गशीर्ष में जल में अवगाहन का उपदेश दिया था। तदनन्तर वे प्रातःकाल में यथाविधि स्नान-पूजा-हविष्यान्न भोजन करके मुझे प्रणाम करती थीं। हे निष्पाप! उनके विधिपूर्वक यह करने से मैं उन पर अत्यन्त प्रसन्न हो गया तथा उनकी सन्तुष्टि के लिये उनको अपने को ही प्रदान कर दिया। अतएव मानव यथाविधि यह व्रत अवश्य करें।।१९-२३।।

।।प्रथम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

द्वितीयोऽध्यायः

त्रिपुण्ड्र धारणविधि

ब्रह्मोवाच

त्वयोक्तो विधिसंयुक्तोमार्गशीर्षोमदापनः। को विधिस्तस्य देवेश सर्वमेब्रूहिकेशव॥१॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे देवेश! आपने जो मार्गशीर्ष को अपनी प्राप्ति का कारण कहा है, यह विधि संयुक्त वाक्य है। हे केशव! अब मार्गशीर्ष व्रत की विधि का क्या रूप है, यह मुझे बताने की कृपा करिये।।१।।

श्रीभगवानुवाच

रात्रावन्तेसमुत्थायउपस्पृश्ययथाविधि। नमस्कृत्यगुरुंस्वीयंसंस्मरेन्मामतन्द्रितः॥२॥
सहस्त्रनामभिर्भक्त्याकीर्तयेद्वाग्यतःशुचिः। बहिर्ग्रामात्समुत्सृज्यमलमूत्रं यथाविधि॥३॥
शौचं कृत्वा यथान्यायमाचम्य प्रयतःशुचिः। दन्तधावनपूर्वञ्च स्नानंकृत्वायथाविधि॥४॥

आदाय तुलसीमूलमृदं तत्पत्रसंयुताम्। मूलमन्त्रेणाऽभिमन्त्र्ययगायत्र्या वा महामते॥५॥
मन्त्रेणैवाऽनुलिप्ताङ्गः स्नायादप्स्वघमर्षणम्। अनुद्धृतैरुद्धृतैर्वाजलैःस्नानंविधायते॥६॥
तीर्थंप्रकल्पयेद्विद्वान्मन्त्रेणाऽनेन मन्त्रवित्। ॐ नमोनारायणायेतिमूलमन्त्रउदाहृतः॥७॥

श्री भगवान् कहते हैं—निशा का अवसान होने पर शय्या त्याग करके यथाविधान आचमन सम्पन्न करके आलस्यरहित होकर अपने गुरु को प्रणाम करें तथा मेरा स्मरण करके पवित्र एवं वाग्यत स्थिति में मेरे सहस्रनामों का कीर्तन करें। तदनन्तर ग्राम के बाहर यथाविधि मलमूत्रादि त्याग करने के पश्चात् शौच से शुद्ध तथा पवित्र होकर आचमन करें तथा दांत धोकर यथाविधि स्नान करना चाहिये। हे महामति! तत्पश्चात् तुलसी के नीचे से मृत्तिका लेकर उसमें तुलसीदल संयुक्त करें। तत्पश्चात् मूलमन्त्र तथा गायत्री द्वारा उसे अभिमन्त्रित करके पुनः मूलमन्त्र का पाठ करते हुये उस मृत्तिका को शरीर पर लिप्त करें। तदनन्तर पापनाशक स्नान करें। मन्त्रज्ञ विद्वान् मानव कहीं से लाये हुये जल से अथवा तड़ाग, नदी, सरोवर आदि के जल से भले ही स्नान करे, तथापि उस समय "ॐ नमो नारायणाय" मन्त्र से स्नानीय जल से तीर्थजल होने की कल्पना की जाये।।२-७।।

दर्भपाणिस्तु विधिना आचान्तः पुरतः शुचिः। चतुर्हस्तसमायुक्तंचतुरस्त्रं समन्ततः।
प्रकल्प्याऽऽवाहयेद्गङ्गामेभिर्मन्त्रैर्विचक्षणः॥८॥

इसके पश्चात् विद्वान् व्यक्ति पवित्र होकर तथा हाथ में कुश लेकर आचमन करे तथा जल में चार हाथ का एक चतुर्भुज मण्डल बनाये (उंगली से जल पर बनाये) तदनन्तर यहां कहे जा रहे मन्त्र से उसमें गंगा का आवाहन करना चाहिये।।८।।

विष्णुपादप्रसूताऽसि वैष्णवी विष्णुदेवता। त्राहि नस्त्वमघादस्मादाजन्ममरणान्तिकात्॥९॥
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत्।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि!॥१०॥
नन्दिनीत्येव ते नामदेवेषु नलिनीति च। दक्षपुत्री च विहगा विश्वगायोगिनां मता॥११॥
विद्याधरी सुप्रसन्ना तथालोकप्रसादिनी। क्षेमा चजाह्नवीचैवशान्ताशान्तिप्रदायिनी॥१२॥
एतानि पुण्यनामानि स्नानकाले सदापठेत्।
सदा सन्निहितातत्र गङ्गात्रिपथगामिनी॥१३॥
सप्तवाराभिजप्तेन करसम्पुटयोजितम्। मूर्ध्नाकृताञ्जलिर्भूयस्त्रिचतुः पञ्च सप्त वा।
स्नानं कुर्यान्मृदा तद्वदामन्त्र्याऽनुविधानतः॥१४॥

मन्त्र यह है—आपके देवता विष्णु हैं, विष्णु के चरण से आपकी उत्पत्ति हुई है। आप वैष्णवी हैं। मैंने जन्म से मरण पर्यन्त जो पाप किया है, उस पाप से मुझे बचायें। आकाश, अन्तरिक्ष तथा भूमि पर जितने साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं, वे सब आपमें स्थित हैं। नन्दिन, नलिनी, दक्षपुत्री, विहगा, विश्वगा, योगिसम्मता, विद्याधारी, सुप्रसन्ना, लोकप्रसादिनी, क्षेमा, जाह्नवी, शान्ता, शान्तिप्रदा, गंगा, त्रिपथगा—ये सब आपके नाम देवलोक में कहे गये हैं। स्नानकाल में आपके इन पुण्य नामों को पढ़ने से आप वहां सदा सन्निहित रहती हैं।

१०० बार यह जप करने के पश्चात् अंजलि को मस्तक पर रखकर ३-४-५ अथवा सात बार मृत्तिका से स्नान करते हुये इस विधि से मृत्तिका का आमन्त्रण करना चाहिये।।९-१४।।

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे। मृत्तिके! हर मे पापंयन्मयादुष्कृतंकृतम्।।१५।।
उद्धृताऽसि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना। नमस्ते सर्वभूतानांप्रभवाऽरणि! सुव्रते!।।१६।।

"हे मृत्तिके! तुम अश्वक्रान्ता, विष्णुक्रान्ता तथा रथक्रान्ता हो। हे वसुन्धरे! मेरे सभी दुष्कृत का हरण करो। कृष्ण ने वराहरूपी होकर अपनी १०० बाहुओं से तुम्हारा उद्धार किया था। तुम प्राणीगण के प्रभव की अरणिरूप हो। हे सुव्रते! तुमको प्रणाम!"।।१५-१६।।

एवं स्नात्वा ततः पश्चादाचम्य च विधानतः। उत्थायवाससीशुक्ले कूलेवैपरिधायच।।१७।।
आचम्य तर्पयेद्देवान्पितृंश्चैवऋषींस्तथा। निष्पीड्यवस्त्रमाचम्यधौतवस्त्रेणवेष्टितः।।१८।।
विमलां मृत्तिकां रम्यामादाय द्विजसत्तम!।
मन्त्रेणैवाऽभिमन्त्र्याऽथ ललाटादिषु वैष्णवः।
धारयेदूर्ध्वपुण्ड्राणि यथासङ्ख्यमतन्द्रितः।।१९।।

तदनन्तर स्नान करके यथाविधि आचमन करें। तब जल से बाहर तट पर आकर शुक्लवर्णवस्त्र तथा उत्तरीय धारण करना चाहिये। इसके बाद पुनः आचमन करके देव-ऋषि-तथा पितृगण का तर्पण करे। तदनन्तर वस्त्र निचोड़ कर पुनः आचमन करे। धुले वस्त्र लपेटे। हे द्विजप्रवर! तदनन्तर रम्य विमल मृत्तिका लेकर मन्त्र से उसे अभिमन्त्रित करने के उपरान्त ललाट आदि पर तिलक लगाये। आलस्य रहित होकर ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये।।१७-१९।।

ब्रह्मन्द्वादशपुण्ड्राणिब्राह्मणःसततंवहेत्। चत्वारिभूभृतांपुत्र! पुण्ड्राणिद्वेविशांस्मृते।
एकं पुण्ड्रं च नारीणां शूद्राणां च विधीयते।।२०।।
ललाट उदरेकैव वक्षो वै कण्ठकूबरे। कुक्ष्योर्बाह्वोः कर्णयोश्चपृष्टे त्रिके च वै शिरः।
तिलका द्वादश प्रोक्ता ब्राह्मणस्यसदाऽनघ!।।२१।।
ललाटे हृदि बाह्वोश्च क्षात्रः पुण्ड्राणिधारयेत्। ललाटेहृदयेवैश्योभालेवैशूद्रयोषिताम्।।२२।।
ललाटे केशवं ध्यानेन्नारायणमाथोदरे। वक्षःस्थले माधवञ्च गोविन्दं कण्ठकूबरे।।२३।।
विष्णुञ्च दक्षिणे कुक्षौ बाहौ च मधुसूदनम्। त्रिविक्रमं कर्णमूलेवामनंवामपार्श्वके।।२४।।
श्रीधरं वामबाहौ च हृषीकेशञ्च कर्णके। पृष्ठे तु पद्मनाभः स्यात्त्रिकेदामोदरंन्यसेत्।।२५।।

हे ब्रह्मन्! ब्राह्मणगण ११ पुण्ड्र धारण करें। क्षत्रिय ४, वैश्य २, शूद्र तथा नारीगण १ पुण्ड्र धारण करें। हे अनघ! ललाट, उदर, वक्ष, कण्ठकूबर, उभय कुक्षि, बाहुद्वय, कर्णद्वय, पृष्ठ, पृष्ठवंश तथा मस्तक पर ब्राह्मण तिलक लगाये। क्षत्रिय ललाट, हृदय तथा बाहुद्वय पर तिलक करे। वैश्य ललाट तथा हृदय पर तथा शूद्र एवं नारीगण केवल भाल पर तिलक धारण करें। अब तिलक मन्त्र कहा गया है। ललाट पर केशव, उदर पर नारायण, वक्ष पर माधव, कण्ठ कूबर पर गोविन्द, दक्षिण कुक्षि में विष्णु, दक्षिण बाहु पर मधुसूदन, दक्षिण

कर्णमूल पर त्रिविक्रम, वामपार्श्व पर वामन, वाम बाहु पर श्रीधर, वाम कर्ण पर हृषीकेशी, पृष्ठ पर पद्मनाभ, पृष्ठवंश पर दामोदर का चिन्तन करते हुये तिलक विन्यस्त करना चाहिये।।२०-२५।।

तत्प्रक्षालनतोयेन वासुदेवं तु मूर्धनि। एवं कार्यं ब्राह्मणस्यक्षत्रियस्योपधारयेत्॥२६॥
ललाटे केशवं ध्यायेद्धृदये माधवं तथा। बाह्वोश्च उभयोर्वत्स! स्मरैद्वै मधुसूदनम्॥२७॥
क्षत्रियस्य विधिः प्रोक्तो वैश्यकृत्यंनिशामय। ललाटेकेशवंध्यायेद्धृदयेमाधवंतथा॥२८॥
योषिच्छूद्रौ स्मरेताञ्च केशवं भालदेशके। अनेन विधिना कुर्यात्पुण्ड्राणि ममतुष्टये॥२९॥

तत्पश्चात् वासुदेव का चिन्तन करते-करते तिलकद्रव्य लगे हाथ को धोकर वह जल मस्तक पर लगाये। यह ब्राह्मण तिलक विधि है। अब क्षत्रिय की तिलकविधि सुनें। हे ब्रह्मन्! क्षत्रिय ललाट पर केशव, हृदय पर माधव, दोनों बाहु पर मधुसूदन का चिन्तन करके तिलक लगाये। अब वैश्यादि की विधि सुनो। वैश्य ललाट पर केशव तथा हृदय पर माधव का चिन्तन करके तिलक लगाये। स्त्री तथा शूद्र केवल मस्तक पर केशव का स्मरण करके तिलक धारण करें। हे ब्रह्मन्! मेरी तुष्टि हेतु इस प्रकार पुण्ड्र लगाये।।२६-२९।।

श्यामं शान्तिकरं प्रोक्तं रक्तं वश्यकरंतथा। श्रीकरंपीतमित्याहुःश्वेतंमोक्षकरं शुभम्॥३०॥
एकान्तिनोमहाभागाः सर्वलोकहितेरताः। साऽन्तरालंप्रकुर्वन्तिपुण्ड्रंहरिपदाकृतिम्॥३१॥
मध्ये छिद्रेणसंयुक्तप्रेतद्धिहरिमन्दिरम्। ऊद्र्ध्वसौम्यमृजुं सूक्ष्मंसुपार्श्वंसुमनोहरम्॥३२॥
निरन्तरालं यः कुर्यादूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजाधमः।
स हि तत्र स्थितं लक्ष्म्या सह माञ्च व्यपोहति॥३३॥
अच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं तु ये कुर्वन्ति द्विजाधमाः। तैर्ललाटे शुनः पादंनिक्षिप्तंवैन संशयः॥३४॥
तस्माच्छिद्रान्वितं पुण्ड्रं महच्छिद्रं शुभान्वितम्।
धारयेद् ब्राह्मणो नित्यं हरिसालोक्यसिद्धये॥३५॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णु-सम्वादे त्रिपुण्ड्रधारणविधिकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

—❀—

यह तिलक धारण अनेक भेदयुक्त हैं। श्यामवर्ण तिलक शान्तिप्रिय, रक्तवर्ण वश्यकर, पीतवर्ण श्रीप्रद, श्वेत तिलक मोक्षप्रद होता है। जो एकमात्र विष्णुनिष्ठ हैं, महाभाग, सर्वलोक हितैषी हैं, वे अन्तराल युक्त हरिचरणाकृति पुण्ड्र धारण करें। यह हरिमन्दिर तिलक है। यह मध्य में छिद्रयुक्त, ऊर्ध्व में सौम्य, सूक्ष्म तथा सीधा हो। पार्श्वद्वय सुन्दर हों। जो द्विजाधम अन्तराल रहित ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करता है, वह लक्ष्मी के साथ मेरा त्याग कर देता है। जो अधम द्विज छिद्ररहित ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करता है, कुत्ते उसके मस्तक पर पैर से प्रहार करते हैं। अतएव हरिसालोक्यार्थ महाछिद्रयुक्त तिलक लगाये।।३०-३५।।

।।द्वितीय अध्याय समाप्त।।

तृतीयोऽध्यायः

गोपीचन्दनादि, शंख-चक्रादि आयुध धारण, मुद्राविधि-शंखादिपूजन

ब्रह्मोवाच

पुण्ड्रं कतिविधं कार्यं प्रब्रूहि मम केशव!। पुण्ड्राणां श्रवणेऽतीव कौतुकंममजायते॥१॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे केशव! पुण्ड्र विधि सुनकर मुझे अत्यन्त कौतुक हो रहा है, अतः कितने प्रकार के पुण्ड्र को धारण करना होता है, वह कहें।।१।।

श्रीभगवानुवाच

शृणु पुत्रप्रवक्ष्यामिपुण्ड्रञ्चत्रिविधंस्मृतम्। तुलसीलमृत्स्नयासार्धश्रीगोपीचन्दनेनच॥२॥
हरिचन्दनतः कार्यं पुण्ड्रं तत्र विचक्षणैः। श्रीकृष्णतुलसीमूलमृदमादाय भक्तिमान्।
धारयेदूर्ध्वपुण्ड्राणि हरिस्तत्र प्रसीदति॥३॥
गोपीचन्दनमाहात्म्यं निबोध गदतो मम॥४॥
यो मृत्तिकां द्वारवतीसमुद्भवां करे समादाय ललाटपट्टके।
करोति नित्यं नर ऊर्ध्वपुण्ड्रं क्रियाफलं कोटिगुणं तदा भवेत्॥५॥
क्रियाविहीनं यदि मन्त्रहीनं श्रद्धाविहीनं यदि कालवर्जितम्।
कृत्वा ललाटे यदि गोपिचन्दनं प्राप्नोति तत्कर्मफलं सदाऽव्ययम्॥६॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे पुत्र! इस विषय को सुनें। पुण्ड्र त्रिविध कहा गया। विद्वान् मानव तुलसीयुक्त मिट्टी, हरिचन्दन किंवा गोपीचन्दन से तिलक धारण करें। भक्तिमान् मानव काली तुलसी की जड़ की मिट्टी लेकर ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाये। यह तिलक श्री हरि को प्रसन्न करता है। अब गोपीचन्दन माहात्म्य सुने। जो मानव द्वारिका की मिट्टी धारण करता है, उससे सतत् ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करता है, उसे करोड़ों गुणित फललाभ होता है। प्रातःकाल समाहित होकर सतत् ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करने से समस्त दुरित दूर हो जाते हैं।

मानव भले ही क्रियाहीन-मन्त्रहीन-श्रद्धाहीन तथा कालवर्जित (अविहित काल में भी) गोपी चन्दन तिलक सदा ललाट में लगाता है, तथापि उसे अव्यय कर्मफललाभ होगा।।२-६।।

गोपीचन्दनसम्भवं सुरुचिरं पुण्ड्रं ललाटे द्विजो,
नित्यं धारयते यदि प्रतिदिनं रात्रौ दिवा सर्वदा।
यत्पुण्यं कुरुजाङ्गले रविग्रहे माघे प्रयागे तथा,
तत्प्राप्नोति ततोऽधिकं मम गृहे सन्तिष्ठते देववत्॥७॥
यस्मिन्गृहे तिष्ठति गोपिचन्दनं भक्त्या ललाटे मनुजो बिभर्ति चेत्।
तस्मिन्गृहेऽहं निवसामि सर्वदा श्रियान्वितः कंसनिहा चतुर्मुख!॥८॥

यो धारयेद्द्वारवतीसमुद्भवां मृत्स्नां पवित्रां कलिकल्मषापहाम्।
नित्यं ललाटे मम मन्त्रसंयुतां यमं न पश्येदपि पापसंयुतः॥९॥
यस्याऽन्तकाले सुत! गोपिचन्दनं बाह्वोर्ललाटे हृदि मस्तके च।
प्रयाति लोके कमलापतेर्मम गोबालघाती यदि ब्रह्महा स्यात्॥१०॥
ग्रहा न पीड्यन्ति न रक्षसां गणा यक्षःपिशाचोरगभूतनायकाः।
ललाटपट्टे सुत! गोपिचन्दनं सन्तिष्ठते यस्य मम प्रभावात्॥११॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रमृजुं सौम्यंललाटेयस्यदृश्यते। सचण्डालोऽपिशुद्धात्मा पूज्यएवनसंशयः॥१२॥

जो द्विज नित्यप्रति दिवा-रात्रि में गोपीचन्दन का मनोहर तिलक ललाट पर लगाता है, उसे कुरुजांगल में सूर्यग्रहण स्नानफल तथा माघ मास में प्रयाग स्नानफल प्राप्त होता है। वह देवतुल्य होकर मेरे लोक में विचरण करता हैं। हे चतुरानन! जिसके गृह में गोपीचन्दन है तथा जो भक्तिभाव से उसे ललाट पर धारण करते हैं, मैं उसके गृह में सतत् निवास करता हूं। जो मानव कलिकलुषनाशिनी द्वारिका से उद्भूत मृत्तिका ललाट पर धारण करते हैं तथा इस मृत्तिका को मेरे मन्त्र से अभिमन्त्रित करते हैं, वे पापयुक्त होकर भी यम का कदापि दर्शन नहीं पाते। हे पुत्र! मृत्युकाल में जिस मानव के बाहुद्वय, ललाट, मस्तक पर हरिचन्दन लगा रहता है, वह भले ही गौघाती, बालहत्यारा तथा ब्रह्मघाती हो, वह मुझे प्राप्त होता है। हे पुत्र! जिसके ललाट पर गोपी चन्दन लगा है, वह मेरे प्रभाव के कारण ग्रह-राक्षस-यक्ष-पिशाच-सर्प-भूत तथा नायकों द्वारा पीड़ित नहीं होता। जिसके ललाट पर ॠजु एवं सौम्य ऊर्ध्वपुण्ड्र लगा है, वह भले ही चाण्डाल हो, वह शुद्धात्मा एवं पूज्य है। इसमें संशय नहीं करे।।७-१२।।

अस्नातो यः क्रियाः कुर्यादशुचिः पापसंयुतः।
गोपीचन्दनसम्पर्कात्पूतो भवति तत्क्षणात्॥१३॥
अशुचिर्वाप्यनाचारो महापापं समाचरेत्। शुचिरेव भवेन्नित्यमूर्ध्वपुण्ड्राऽङ्कितोनरः॥१४॥

बिना स्नान किये हुये, अशुद्ध तथा पाप क्रियाकारी मानव गोपीचन्दन स्पर्श से तत्क्षण पवित्र हो जाता है। मानव अशुद्ध किंवा अनाचारी क्यों न हो, भले वह महापापी हो एकमात्र ऊर्ध्वपुण्ड्रधारी होने से वह नित्य शुद्ध हो जाता है।।१३-१४।।

मत्प्रियार्थं शुभार्थं वा रक्षार्थं चतुरानन!। मत्पूजाहोमके चैव सायं प्रातः समाहितः।
मद्भक्तो धारयेन्नित्यमूर्ध्वपुण्ड्रं भवापहम्॥१५॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो मर्त्याम्रियतेयदिकुत्रचित्। श्वपाकोऽपिविमानस्थोममलोकेमहीयते॥१६॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो मर्त्या यदायस्याऽन्नमश्नुते। तदाविंशत्कुलंतस्यनरकादुद्धाराम्यहम्॥१७॥

हे चतुर्मुख! मेरा भक्त मेरे प्रिय हेतु अथवा अपने शुभ तथा रक्षा की इच्छा से मेरी पूजा तथा होमकाल में सायं तथा प्रातः समाहित चित्त होकर सतत् ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे। इससे उसके समस्त दुरित दूर हो जाते हैं। ऊर्ध्वपुण्ड्रधारी मानव जहां कहीं क्यों न मरा हो, वह चाण्डाल होने पर भी विमान पर बैठकर अमरलोक जाता है। मानव जब ऊर्ध्वपुण्ड्रधारी का अन्न भोजन करता है, उस अन्नप्रदाता के बीस पूर्वपुरुषों का मैं नरक से तत्काल उद्धार कर देता हूं।।१५-१७।।

वीक्ष्याऽऽदर्शे जले वाऽपि यो विदध्यात्प्रयत्नतः।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं महाभाग! स याति परमां गतिम्॥१८॥
अनामिका शान्तिदोक्ता मध्यमाऽऽयुष्करी भवेत्।
अङ्गुष्ठः पुष्टिदःप्रोक्तस्तर्जनी मोक्षदायनी॥१९॥
गोपीचन्दनखण्डं तु यो ददाति च वैष्णवे। कुलमष्टोत्तरं तेन तारितं वै भवेच्छतम्॥२०॥
यज्ञो दानंतपोहोमःस्वाध्यायःपितृतर्पणम्। व्यर्थंभवतितत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रविनाकृतम्॥२१॥
यच्छरीरं मनुष्याणामूर्ध्वपुण्ड्रविनाकृतम्। तन्मुखं नैव पश्यामिश्मशानसदृशंहितम्॥२२॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रं प्रकुर्वीत मत्स्यकूर्मादिधारणम्। कुर्याद्विष्णुप्रसादार्थं महाविष्णोरतिप्रियम्॥२३॥
यत्पुनः कलिकाले तुमत्पुरीसम्भवांमृदम्। मत्स्यकूर्माऽङ्कितंचिह्नंगृहीत्वाकुरुतेनरः॥२४॥
देहे तस्य प्रविष्टंमांजानीहित्रिदशोत्तम!। तस्यमेनान्तरं किञ्चित्कर्तव्यंश्रेयइच्छता॥२५॥

हे महाभाग! जो मानव दर्पण किंवा जल में अपने मुख का निरीक्षण करते हुये प्रयत्नतः ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करता है, उसे मेरी उत्तम गति प्राप्त होती है। ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाने में अनामिका का प्रयोग शान्तिप्रद, मध्यमा का आयुप्रद, अंगुष्ठ का पुष्टिप्रद तथा तर्जनी का प्रयोग मोक्षप्रद होता है। जो मानव को एकखण्ड गोपीचन्दन प्रदान करते हैं, वे दाता अपने १०८ पूर्व कुलजन का उद्धार कर देते हैं। ऊर्ध्वपुण्ड्र रहित यज्ञ-दान-तप-होम-स्वाध्याय पितृतर्पण व्यर्थ हो जाता है। जो लोग शरीर पर ऊर्ध्वपुण्ड्र नहीं लगाते, उनका चेहरा श्मशान है। मैं कदापि उनके मुख का दर्शन नहीं करता। विष्णु के सन्तोष साधनार्थ मत्स्य-कूर्म चिह्न तथा ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाये। यह पुण्ड्र महाविष्णु को अतीव प्रिय है। हे त्रिदशोत्तम! द्वारिकापुरी की मृत्तिका से मत्स्य कूर्मादि चिह्न अंकित करके ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करने पर मुझे वह व्यक्ति अपनी देह में स्थित समझे। उसमें तथा मुझमें कोई भेद नहीं है। इसलिये कल्याणकामी मानव ऐसा तिलक लगाये।।१८-२५।।

ममावतारचिह्नानि दृश्यन्ते यस्य विग्रहे। मर्त्यो मर्त्यो न विज्ञेयः सनूनंमामकीतनुः॥२६॥
पापं सुकृतरूपं तु जायते तस्य देहिनः। ममाऽऽयुधानिदृश्यन्तेलिखितानिकलौयुगे॥२७॥
उभाभ्यामपि चिह्नाभ्यां योऽङ्कितो मत्स्यमुद्रया।
कूर्मया मामकं तेजो विक्षिप्तं तस्य विग्रहे॥२८॥
शङ्खञ्च पद्मञ्च गदां रथाङ्गं मत्स्यञ्च कूर्मं रचितं स्वदेहे।
करोति नित्यं सुकृतस्य वृद्धिं पापक्षयं जन्मशतार्जितस्य॥२९॥

जिसके शरीर पर मत्स्य कूर्मादि अवतार चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं, वे मर्त्य होने पर भी मर्त्य नहीं हैं। उनको मेरा ही शरीर समझें। उनके जो दुरित हैं, वे सभी सुकृतरूप हो जाते हैं। कलिकाल में तिलक धारण के सम्बन्ध में मेरा मात्र आयुधचिह्न ही अंकित किया जाता है, तथापि जो मेरा आयुधचिह्न और मत्स्य-कूर्मादि चिह्न—इन दोनों को अंकित करते हैं, उनके शरीर में कूर्ममुद्राङ्कन करने के कारण मेरा तेज ही परिलक्षित होता है। जो अपने शरीर में शंख-चक्र-गदा-रथाङ्ग-मत्स्य-कूर्म का सतत् अंकन किये रहते हैं, उनके नित्य सुकृत की वृद्धि होती है तथा उनका शत जन्मार्जित पाप क्षयीभूत हो जाता है।।२६-२९।।

नारायणायुधैर्नित्यं चिह्नितो यस्यविग्रहः। पापकोटिप्रयुक्तस्य किं तस्यकुरुते यमः॥३०॥
शङ्खोद्धारे च यत्प्रोक्तं वसता कोटिजन्मभिः। तत्फलं लभते शङ्खेप्रत्यहंदक्षिणेभुजे॥३१॥
यत्फलं पुष्करे प्रोक्तं पुण्डरीकाक्षदर्शनात्। शङ्खोपरि कृते पद्मेतत्फलंकोटिसम्मितम्॥३२॥

जिनके देह में नारायण का आयुधचिह्न सदैव अंकित रहता है, करोड़ों पापयुक्त होने पर भी वे यम द्वारा कभी पीड़ित नहीं किये जाते। कलि में करोड़ों बार जन्म लेकर यदि शंखद्वार तीर्थ सेवन करता रहे, उसका जो फल कहा गया है वह मात्र नित्य प्रति दक्षिण बाहु में शंख आदि चिह्न धारण करने से ही प्राप्त हो जाता है। पुष्करतीर्थ में पुण्डरीकाक्ष के दर्शन का जो फल है, शंखचिह्न पर पद्मचिह्न अंकित करने से उससे भी करोड़ों गुणित फललाभ होता है।।३०-३२।।

वामे भुजे गदा यस्य लिखिता दृश्यतेकलौ। गदाधरो गयापुण्यंप्रत्यहंतस्ययच्छति॥३३॥
यच्चानन्दपुरे प्रोक्तं चक्रस्वामिसमीपतः। गदाचक्रेच लिखितेतत्फलं लिङ्गदर्शने॥३४॥
ममायुधाऽङ्कितं देहं गोपीचन्दनमृत्स्नया। प्रयागादिषुतीर्थेषु स गत्वाकिंकरिष्यति॥३५॥
यदा यदा प्रपश्येत देहं शङ्खादिचिह्नितम्। तदातदा प्रसन्नोऽहं पापं तस्य दहामि वै॥३६॥
तिष्ठते यस्य देहे तु अहोरात्रं दिने दिने। शङ्खचक्रदापद्मलिखितं स मदात्मकः॥३७॥
नारायणायुधैर्युक्तं कृत्वाऽऽत्मानं कलौयुगे। यत्पुण्यं कर्म कुरुते मेरुतुल्यं न संशयः॥३८॥

शङ्खायुधाऽङ्कितो भक्त्या यः श्राद्धं कुरुते सुत!।
विधिहीनं तु सम्पूर्णं पितॄणां दत्तमक्षयम्॥३९॥
यथाऽग्निर्दहते काष्ठं वायुना प्रेषितोभृशम्।
तथादह्यन्तिपापानि दृष्ट्वा म आयुधानिवै॥४०॥

कलिकाल में जिसके बाहु पर गदाचिह्न अंकित रहता है, गदाधर प्रभु नित्य उसे गया जाने का फल प्रदान करते हैं। आनन्दपुर में चक्रस्वामी के पास जो लिंग विराजमान है, मानव वाम बाहु पर गदा-चक्र चिह्नांकन करके उस लिंगदर्शन का फल अनायास प्राप्त कर लेते हैं। जिसके शरीर पर गोपीचन्दन मृत्तिका द्वारा मेरे आयुध अंकित किये गये हैं, उसे अब प्रयागादि तीर्थाटन की क्या आवश्यकता! जब भी मैं शंख आदि से चिह्नित देह को देखता हूं, मैं प्रसन्न होकर तभी उस मानव के पापों का नाश कर देता हूं। जिसके शरीर पर अहोरात्र शंख-चक्र-गदा-पद्म अंकित रहता है, वह तो मेरी आत्मा है। जो कलिकाल में नारायण के आयुध चिह्नों को देह पर अंकित करते हैं, उनके द्वारा किया पुण्य मेरुपर्वत् जैसा महान् हो जाता है। हे पुत्र! जो मनुष्य भक्तिपूर्वक शंख चिह्न तथा आयुध चिह्नांकित होकर श्राद्ध करता है, वह श्राद्ध यदि विधिरहित भी हो, तथापि पूर्ण एवं सम्यक्रूपेण अक्षय श्राद्ध होता है। जैसे वायु बहती रहने पर अग्नि काष्ठ को शीघ्रता से दग्ध कर देता है, उसी प्रकार से आयुध चिह्नांकित शरीर का पाप भी भस्मीभूत हो जाता है।।३३-४०।।

ममनामाङ्कितांमुद्रामष्टाक्षरसमन्विताम्। शङ्खादिस्वायुधैर्युक्तांस्वर्णरौप्यमयीमपि॥४१॥
धत्ते भगवतो यस्तु कलिकाले विशेषतः। प्रह्लादस्य समो ज्ञेयो नान्यथामम वल्लभः॥४२॥
यस्य नारायणीमुद्रा देहं शङ्खादिचिह्नितम्। धात्रीफलैःकृतामालातुलसीकाष्ठसम्भवा॥४३॥

द्वादशाक्षरमन्त्रस्तु नियुक्तानि कलेवरे। आयुधानि च विप्रस्य मत्समःसचवैष्णवः॥४४॥
शङ्खाङ्कितनुर्विप्रो भुङ्क्ते वै यस्य वेश्मनि। तदन्नं स्वयमश्नामिपितृभिःसहपुत्रक॥४५॥
कृष्णायुधाऽङ्कितं दृष्ट्वा सन्मानं न करोति यः।
द्वादशाब्दार्जितम्पुण्यं बाष्कलेयाय गच्छति॥४६॥

विशेषतः कलिकाल में जो लोग मेरे अष्टाक्षर मन्त्र से समन्वित शंखादि आयुध समन्वित स्वर्ण किंवा रौप्यमयी मेरे नामों से अंकित मुद्रा धारण करते हैं, वे प्रह्लाद जैसे (मेरे प्रिय) हैं। अन्यथा कोई भी मेरा प्रिय नहीं होता। जिसका कलेवर धात्री फल से निर्मित तथा तुलसी काष्ठयुक्त माला से युक्त है तथा जो द्विज द्वादश अक्षर मन्त्रयुक्त शंख आदि आयुध चिह्नित नारायणी मुद्रा अथवा मेरे आयुधों को धारण करते हैं, वे ही वैष्णव हैं तथा मेरे समान हैं। हे पुत्र! शंखांकित चिह्नयुक्त द्विज जिसके गृह में भोजन करता है, मैं अपने पितृगण के साथ उसका अन्न भक्षण करता हूं। जो मानव कृष्णायुधयुक्त व्यक्ति का दर्शन करता है, तब भी उसका सम्मान नहीं करता वाष्कल नामक असुर उसके द्वादश वर्ष अर्जित पुण्य का हरण कर लेते हैं।।४१-४६।।

कृष्णायुधाऽङ्कितोयस्तुश्मशानेम्रियतेयदि। प्रयागेयागतिःप्रोक्तासागतिस्तस्यमानद॥४७॥
ममाऽऽयुधैः कलौ नित्यं मण्डितो यस्य विग्रहः।
तत्राऽऽश्रमं प्रकुर्वन्ति विवुधा वासवादयः॥४८॥
बः करोति च मे पूजां मम शस्त्राङ्कितो नरः। अपराधसहस्राणिनित्यंतस्यहराम्यहम्॥४९॥

हे मानद! कृष्णायुध से अंकित मानव यदि श्मशान में भी मृत हो जाये, प्रयाग में मृत्युजनित जो गति कही गयी है, वही गति उसे प्राप्त होती है। कलिकाल में जिसका शरीर मेरे आयुधों से सतत् विभूषित रहता है (इन्द्र) वासवादि विवुध लॉग उसका आश्रय लेकर रहते हैं। शंखाङ्कित होकर जो मानव नित्य इनकी पूजा करता है मैं उसके हजारों अपराधों का हरण कर लेता हूं।।४७-४९।।

कृत्वाकाष्ठमयंबिम्बंममशस्त्रैः सुचिह्नितम्। योवाअङ्कयते देह तत्समोनास्तिवैष्णवः॥५०॥
अष्टाक्षराऽङ्किता मुद्रा यस्य धातुमयीकरे। शङ्खपद्मादिभिर्युक्तापूज्यतेऽसौसुरासुरैः॥५१॥
धृता नारायणी मुद्रा प्रह्लादेन पुरा करे। विभीषणेन बलिना ध्रुवेण च शुकेन च।
मान्धात्रा ह्यम्बरीषेण मार्कण्डेयमुखैर्द्विजैः॥५२॥
शङ्गादिचिह्नितैः शस्त्रैर्देहं कृत्वा च मानद!। एवमाराध्य मां प्राप्तं समीहितफलंमहत्॥५३॥

जो मेरी काष्ठमूर्त्ति बनाकर उसे सुन्दर रूप से मेरे आयुधों का अंकन करके शोभित करते हैं, अथवा जो अपनी देह को मेरे आयुधों से भूषित करते हैं, उनके समान वैष्णव अन्य कोई भी नहीं है। जिसके हाथ में अष्टाक्षर से अंकित शंख-पद्मयुता मेरी धातु की मुद्रा विराजित है, वे देव-असुर सबके पूज्य हैं।

हे मानद! पुराकाल में प्रह्लाद, विभीषण, बलि, ध्रुव, शुक्र, मान्धाता, अम्बरीष तथा मार्कण्डेयादि द्विजगण नारायण मुद्रा धारण करते थे तथा अपनी पूरी देह को शंख-चक्र-गदा-पद्मादि से चिह्नित करके मेरी आराधना करते थे। इस प्रकार से उन्होंने मुझे पाकर अपना मनोरथ सिद्ध किया था। इस प्रकार से महाफल प्राप्त किया।।५०-५३।।

गोपीचन्दनमृत्स्नयालिखितोयस्यविग्रहः। शङ्खचक्रादिपद्माऽङ्कोदेहे तस्यवसाम्यहम्।।५४।।
सौवर्णं राजतं ताम्रं कांस्यमायसमेव च। चक्रं कृत्वा तु मेधावी धारयीतविचक्षणः।
द्वादशारं तु षट्कोणं बलित्रयविभूषितम्।।५५।।
एवं सुदर्शनं चक्रं कारयीत विचक्षणः। उपवीतादिवद्धार्याः शङ्खचक्रगदाः सदा।।५६।।
ब्राह्मणैश्च विशेषेण वैष्णवैश्च विशेषतः। उपवीतं शिखा यद्वच्चक्रं लाञ्छनसंयुतम्।।५७।।
चक्रलाञ्छनहीनस्य विप्रस्यविफलम्भवेत्। मम चक्राऽङ्कितोदेहःपवित्र इतिवैश्रुतिः।।५८।।

जिसका शरीर गोपीचन्दन से अंकित शंख-चक्र तथा पद्मादि से अंकित है, मैं उसकी देह में निवास करता हूं। मेधावी विद्वान् मानव स्वर्ण, रौप्य, ताम्र, कांस्य, लौह से मेरे चक्र को बनाकर देह पर धारण करे। यह चक्र द्वादश अर वाला, षट्कोण तथा तीन वलय युक्त होना चाहिये। वह विचक्षण मनुष्य इस प्रकार सुदर्शन चक्र बनाये। विशेष रूप से वैष्णव व्यक्ति शंख-चक्र तथा गदा को यज्ञोपवीत की तरह धारण करे। जैसे उपवीत तथा शिखा नित्य धारणीय है, तद्रूप नित्य चक्रचिह्नांकित भी रहना चाहिये। चक्रचिह्नरहित मानव का सब कुछ निष्फल है। मेरे चक्र से अंकित देह पावन है, यह श्रुति वचन है।।५४-५८।।

चक्राऽङ्किताय दातव्यं हव्यंकव्यं विचक्षणैः। मम चक्राऽङ्ककवचमभेद्यं देवदानवैः।
अजेयं सर्वभूतानां शत्रूणां रक्षसामपि।।५९।।
मम चक्राऽङ्ककवचं शरीरे यस्य तिष्ठति। नाऽशुभं विद्यते तस्य गृहपुत्रादिकस्य हि।।६०।।
दक्षिणे च भुजे विप्रोबिभृयाद्वैसुदर्शनम्। सव्ये च शङ्खम्बिभृयादिति वेदविदोविदुः।।६१।।
तत्तन्मन्त्रेण मन्त्रज्ञः प्रतिष्ठाप्य पृथक्पृथक्।।६२।।
ललाटे च गदा धार्या मूर्ध्नि चापं शरस्तथा। नन्दकञ्चैव हृन्मध्ये शङ्खचक्रे भुजद्वये।।६३।।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चक्रादीन्धारयेत्सदा। धारणानन्तरम्ब्रूयात्तत्र चैवं द्विजोत्तमः।।६४।।

चक्रांकित मानव को ही विद्वान् व्यक्ति हव्य-कव्य प्रदान करे। मेरा चक्रचिह्न देव-दानव के लिये अभेद्य कवच है (अर्थात् देव-दानव उस व्यक्ति पर प्रभाव नहीं डाल सकते।) जिसके शरीर पर चक्रचिह्न अंकित है, राक्षसादि शत्रु तथा प्राणी उसे जीत ही नहीं सकते। जिसके शरीर पर चक्रचिह्नरूप मेरा कवच स्थित है, उसके गृह-पुत्र आदि पर कोई विघ्न नहीं होता। वेदज्ञ विप्रों का कथन है कि द्विज दक्षिण भुजा में सुदर्शन तथा बायीं भुजा में शंख धारण करे। इनके पृथक्-पृथक् मन्त्र हैं। मन्त्रज्ञ इन मन्त्र से ही इनकी प्रतिष्ठा करें। ललाट पर सदा गदा धारण करें। मस्तक पर बाण एवं धनुष, हृदय पर नन्दक (भगवान् की तलवार) भुजद्वय पर शंख तथा चक्र धारण करना कर्त्तव्य है। तदनन्तर द्विजोत्तम सर्वप्रयत्न से चक्रादि आयुध धारण करके यह वाक्य कहे।।५९-६४।।

पुत्रमित्रकलत्रादिर्यः कश्चिन्मत्परिग्रहः। सह देहेनसर्वोऽसौ विष्णुप्रीत्यैमयाऽर्पितः।।६५।।
पश्चात्स्वधर्ममास्थाय तिष्ठेदाजीवनं मम।
भक्त्या चाऽव्यभिचारिण्या सर्वदाऽऽप्तमनोरथः।।६६।।

शङ्खचक्राङ्कितं दृष्ट्वा ये निन्दन्ति नराधमाः।
अवलोक्य मुखन्तेषामादित्यमवलोकयेत्।
श्रीकृष्णनाम चोच्चार्य शुद्धो भवति नान्यथा।।६७।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसम्वादे गोपीचन्दनादिशङ्खचक्राद्यायुधधारणतत्तन्मुद्राधारणप्रकारकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः।।३।।

यथा—"पुत्र, कलत्रादि मेरा जो कुछ परिग्रह है, मैं अपने देह के साथ वह सब विष्णु की प्रसन्नता के लिये, उनको अर्पित करता हूं।" तदनन्तर मेरे प्रति अव्यभिचारिणी भक्ति द्वारा स्वधर्म का अवलम्बन करके जीवन व्यतीत करे। इस प्रकार उसका मनोरथ सिद्ध हो जाता है। जो नराधम शंख-चक्रांकित देह देखकर उसकी आलोचना करते हैं, ऐसे लोगों का मुख देखने से उत्पन्न पाप आदित्यदर्शन तथा मेरे नामोच्चार से शुद्ध होता है। अन्यथा शुद्धि नहीं होती।।६५-६७।।

।।तृतीय अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुर्थोऽध्यायः

शंख पूजा विधि

ब्रह्मोवाच

तप्तचक्राङ्कितं कृत्वा ह्यात्मानमथ दीक्षितम्। पद्माक्षतुलसीमालं किं फलं ब्रूहिकेशव।।१।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे केशव! अपनी देह पर लौह के तप्तचक्र से चक्रचिह्न अंकित करके दीक्षा लेनी चाहिये। पद्माक्ष (कमलगट्टे की) माला तथा तुलसी माला धारण करने पर जो फललाभ होता है, वह आप मुझे बतायें।।१।।

श्रीभगवानुवाच

तुलसीकाष्ठसम्भूतांयोमालांवहतेद्विजः। अप्यऽशौचोऽप्यनाचारोमामेवैतिनसंशयः।।२।।
धात्रीफलकृता माला तुलसीकाष्ठसम्भवा। दृश्यते यस्य देहे तु स वै भागवतो नरः।।३।।
तुलसीदलजांमालांकण्ठस्थांवहतेतुयः। ममोत्तीर्णांविशेषेणसनमस्योदिवौकसाम्।।४।।
तुलसीदलजां मालां धात्रीफलकृतामपि। ददातिपापिनांमुक्तिंकिम्पुनर्मम सेविनाम्।।५।।

श्री भगवान् कहते हैं—जो व्यक्ति (द्विज) तुलसी दल की माला को धारण करता है, वह भले ही

अशुद्ध हो किंवा असदाचरण करने वाला हो, वह मुझे प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है। जिसके देह पर धात्रीफल निर्मित अथवा तुलसी काष्ठ निर्मित माला रहती है, वह भागवत है। जो तुलसीदल की माला मुझ पर चढ़ाकर पुनः उसे धारण करते हैं, वे देवताओं द्वारा भी नमस्य हैं। जो धात्रीफल तथा तुलसी—इन दोनों की माला धारण करते हैं, उनकी बात और क्या कहूं! पापी होने पर भी वे मुक्त हो जाते हैं।।२-५।।

तुलसीदलजां मालां ममोत्तीर्णां वहेत्तु यः। पत्रेपत्रेऽश्वमेधानां दशानांलभतेफलम्॥६॥
तुलसीकाष्ठसम्भूतां यो मालां वहतेनरः। फलं यच्छाम्यहंवत्स प्रत्यहं द्वारकोद्भवम्॥७॥

जो मानव तुलसीपत्र की माला मुझे अर्पित करके पुनः वह माला लेकर धारण करता है, तुलसी के प्रत्येक पत्र से उसे १०-१० अश्वमेध यज्ञफल लाभ होता है। हे वत्स! जो मानव तुलसी काष्ठ की माला धारण करता है, मैं नित्य उसे द्वारिका निवास का फल देता हूं।।६-७।।

निवेद्य भक्त्या मां मालां तुलसीकाष्ठसम्भवाम्।
वहते यो नरो भक्त्या तस्य वै नास्ति पातकम्॥८॥
सदा प्रीतमनास्तस्य अहं प्राणवरोहि सः। तुलसीकाष्ठसम्भूतां यो मालांवहतेनरः।
प्रायश्चित्तं न तस्याऽस्ति नाऽशौचं तस्य विग्रहे॥९॥
तुलसीकाष्ठसम्भूतं शिरसः काष्ठभूषणम्। बाहौ करे च मर्त्यस्यदेहेयस्य समेप्रियः॥१०॥
तुलसीकाष्ठमालभिर्भूषितः पुण्यमाचरेत्। पितृणां देवतानाञ्चपुण्यं कोटिगुणम्भवेत्॥११॥

जो मनुष्य भक्ति के साथ मुझे तुलसीकाष्ठ माला प्रदान करता है तथा भक्तिपूर्वक उसे लेता है, उस पर कोई पातक शेष नहीं रह जाता। मैं उस पर सतत् प्रसन्न रहता हूं। वह व्यक्ति मेरे प्राण के समान है। जो तुलसीकाष्ठ की माला धारण करते हैं, उनको किसी प्रायश्चित्त की आवश्यकता नहीं है। उनका शरीर कलुषरहित हो जाता है। जिसका मस्तक तुलसीकाष्ठयुक्त माला से भूषित है तथा जिसके बाहु, हाथ तथा शरीर के अन्य स्थल तुलसीकाष्ठजनित माला से युक्त हैं, वह मुझे प्रिय है। जो तुलसी काष्ठ की माला पहन कर पितृगण तथा देवगण की पूजा आदि पुण्य कार्य करता है, उसे करोड़ों गुणित पुण्य की प्राप्ति होती है।।८-११।।

तुलसीकाष्ठमालां तु प्रेतराजस्य दूतकाः। दृष्ट्वा नश्यनित दूरेण वातोद्धूतंयथा दलम्॥१२॥
यद्गृहे तुलसीकाष्ठं पत्रं शुष्कमथाऽऽर्द्रकम्।
भवन्ति तद्गृहे नैव पापं सङ्क्रमते कलौ॥१३॥
तुलसीकाष्ठमालाभिर्भूषितो भ्रमतेभुवि। दुःस्वप्नंदुर्निमित्तञ्च न भयंशात्रवंक्वचित्॥१४॥
धारयन्ति न ये मालां हैतुकाः पापबुद्धयः। नरकान्न निवर्तन्ते दग्धाकोपाग्निनामम॥१५॥

यमदूतगण जब तुलसी काष्ठ की माला किसी के गले में देख लेते हैं, तब वे वैसे ही भाग जाते हैं जैसे वायु में उड़ता पत्ता! जिसकी देह पर सूखा अथवा ताजा, चाहे जैसा भी तुलसीदल किंवा तुलसीकाष्ठ इस कलिकाल में रहता है, पाप उसके गृह में नहीं आते। जो तुलसी की माला से भूषित होकर वसुधा में विचरण करते हैं, उनको दुःस्वप्न, दुनिर्मित्त, शत्रु आदि का भय नहीं होता। जो सब हेतुवादी पापबुद्धि वाले तुलसीमाला धारण नहीं करते, वे कोपाग्नि से दग्ध होकर कभी भी नरक से नहीं लौट पाते।।१२-१५।।

तस्माद्धार्या प्रयत्नेन माला तुलसिसम्भवा।
पद्माक्षनिर्मिता भक्त्या फलैर्धात्र्या सुपुण्यदा॥१६॥
तदूर्ध्वपुण्ड्रशङ्खाद्यैर्युक्तस्तुलसिमूलके। सन्ध्योपास्त्यादिकं कुर्यात्कुशपाणिर्हि मां स्मरन्॥१७॥
कृतसन्ध्यादिको भक्तस्ततः सम्पूजयेच्च माम्। गुरुश्चेत्तत्रवर्तेतआदौगत्वानमेद्गुरुम्॥१८॥
किञ्चिद्दत्त्वोपायनं च दण्डवत्प्रणमेन्मुदा। आचम्यैकाग्रमनसा पूजामण्डपमाविशेत्॥१९॥
उपविश्याऽऽसने रम्येकृष्णाजिनकुशोत्तरे। सम्यक्पद्मासनासीनोभूतशुद्धिंसमाचरेत्॥२०॥

अतएव सर्वप्रयत्न एवं भक्ति के साथ तुलसी सम्भूत, पद्माक्ष (कमलागट्टा) निर्मित तथा आंवला की माला धारण करे। ये सभी माला उत्तम एवं पुण्यप्रद हैं। तदनन्तर तुलसीमूल में बैठकर मेरा स्मरण करते-करते शंखादियुक्त ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करके कुशहस्त होकर सन्ध्यादि उपासना करें। तदनन्तर सन्ध्यादि नित्यकर्म सम्पन्न करके भक्तिपूर्वक मेरी उपासना करें। यदि वहां गुरु विद्यमान रहें, तब सबसे पहले उनको प्रणाम करें। यह प्रणाम खाली हाथों न करें। कुछ भेंट को प्रदान करके हर्षपूर्वक उनको प्रणाम करना चाहिये। तदनन्तर एकाग्रता पूर्वक आचमन करके पूजामण्डप में प्रवेश करके रम्य आसन पर बैठना चाहिये। आसन ऐसा गठित करे कि पहले कुशासन पर काला मृगचर्म बिछाये। उस पर सम्यक् रूप से पद्मासनासीन होकर भूतशुद्धि करनी चाहिये।।१६-२०।।

प्राणायामत्रयं कृत्वामन्त्रेण च जितेन्द्रियः। उदङ्मुखस्ततः कृत्वाहृत्पङ्कजमनुत्तमम्।
विकासं तस्य कुर्वीत विज्ञानरविणा हृदि॥२१॥
कर्णिकायां न्यसेच्चाऽर्कं शशिनंचाग्निमेव च। त्रयंत्रयात्मकेतस्मिंश्चिन्तयेद्वैष्णवोनरः।
नानारत्नमयं पीठं तेषामुपरि विन्यसेत्॥२२॥
तस्मिन्मृदुश्लक्ष्णतरं बालार्कसदृशद्युति। अष्टैश्वर्यदलंपद्मं मन्त्राक्षरमयं न्यसेत्॥२३॥
तस्मिन्देवं समासीनं कोटिशीतांशुसन्निभम्। चतुर्भुजंमहापद्मशङ्खचक्रगदाधरम्॥२४॥
पद्मपत्रविशालाक्षंसर्वलक्षणलक्षितम्। श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कंपीतवस्त्रान्वितंचमाम्॥२५॥
विचित्राभरणैर्युक्तं दिव्यमण्डनमण्डितम्।
दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गं दिव्यपुष्पोपशोभितम्॥२६॥
तुलसीकोमलदलवनमालाविभूषितम्। कोटिबालार्कसदृशं कान्तंदिव्यश्रिया सह॥२७॥
सर्वलक्षणक्षिण्यासमाश्लिष्टतनुं शिवम्। एवंध्यात्वाजपेन्मन्त्रंसमाहितमनाःशुचिः॥२८॥
सहस्त्रं शतवारम्वा यथाशक्तिजपेन्मनुम्। मनसैवाऽर्चनं कृत्वा ततो विधिवदाचरेत्॥२९॥

उदङ्ग मुख बैठकर जितेन्द्रिय मानव विष्णुमन्त्र से तीन बार प्राणायाम करे। विज्ञानरूप सूर्य द्वारा विष्णुमन्त्र से तीन प्राणायाम करके हृत्कमल को विकसित करे। तदनन्तर वैष्णव मानव इस कमल की कर्णिका में सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि को विन्यस्त करके इस त्रयात्मक पद्म में पूर्वोक्त देवतात्रय का चिन्तन करें। तदनन्तर पद्म के ऊपर एक नानारत्नमयी (मानसिक रूप से कल्पित) नानारत्नमण्डित पीठ की स्थापना करनी चाहिये।

उसके ऊपर बालारुणकान्ति एक पद्म स्थापित करके उस पद्म पर समासीन कोटिचन्द्रवत् देवता की चिन्तना करनी चाहिये। यह पद्म मृदु तथा कोमल, अष्टैश्वर्यरूप आठदलयुक्त मन्त्राक्षरमय हो। ये देवता चतुर्भुज हैं। इनकी चारों बाहु में महापद्म-शंख-चक्र-गदा स्थित है। नयन पद्मपत्र के समान विशाल तथा सर्वलक्षण लक्षित है। वक्ष में श्रीवत्स तथा कौस्तुभ है। परिधान पीतवस्त्र का है। देह दिव्य विचित्र भूषण से भूषित है। दिव्य चन्दन से लिप्त देह है। वे दिव्य पुष्पों से शोभित हैं। वे तुलसी के कोमलदल तथा वनमाला भूषित हैं। ये देव करोड़ों सूर्य के समान कान्तिसम्पन्न हैं। दिव्य लक्षण से लक्षिता लक्ष्मीदेवी इनके अंग का आलिङ्गन करके विराजित हैं। समाहित मन वाला व्यक्ति इस प्रकार पवित्र मन से मन्त्रजप करे। इस मन्त्र का शक्ति के अनुसार १०० अथवा १००० जप करना चाहिये। इनकी अर्चना मानसिक पूजा द्वारा करें।।२१-२९।।

सम्प्रदायाऽनुरोधेन शङ्खस्थाप्य ममाऽग्रतः। दूर्वाङ्कुरैश्चपुष्पैश्चगन्धोदेनच पूरितम्॥३०॥

दक्षिणे गन्धपुष्पाणां पात्रं स्थाप्यं च देशिकैः।
वामभागे न्यसेत्कुम्भं वस्त्रपूतं सुवासितम्॥३१॥

पुरतो ममघण्टां च दिक्षुदीपान्नियोजयेत्। अन्यत्सर्वंसाधनंचयथास्थानेषुविन्यसेत्॥३२॥

विधान ज्ञाता व्यक्ति अपने सम्प्रदायानुसार यथाविधि—शंख स्थापित करके दूर्वाङ्कुर, पुष्प, गंधोदक से शंखपूजन करके अपने दक्षिण की ओर गन्ध-पुष्प पात्र स्थापित करे। तदनन्तर वामभाग में वस्त्र से छाना तथा सुवासित जलकुंभ स्थापित करें। सामने की ओर मेरे आयुध, घण्टा तथा सभी दिशाओं में दीपमाला विन्यस्त करके अन्य स्थान में पूजा प्रयोजन के अनुरूप अन्य वस्तु यथास्थान में विन्यस्त करे।।३०-३२।।

अर्घ्यपाद्याऽऽचमनीयमधुपर्कस्यकारणात्। विन्यसेत्पुरतो मह्यं चत्वार्यमत्रकाणिवै॥३३॥

सिद्धार्थाऽक्षतपुष्पाणि कुशाग्रं तिलचन्दनम्।
फलं यवाश्चतुर्वक्त्र! अर्घ्यपात्रे विनिःक्षिपेत्॥३४॥

दूर्वाविष्णुपदी श्यामा पद्मञ्चैव चतुर्थकम्। पाद्यपात्रे न्यसेत्पुत्र! देशिको मम तुष्टये॥३५॥

कङ्कोलञ्च लवङ्गञ्च फलंमालतिसम्भवम्। कुर्याद्वै श्रद्धया पुत्र! पात्रआचमनीयके॥३६॥

गव्यं पयो दधि मधु घृतं खण्डसमन्वितम्। मधुपर्कस्य पात्रे वै दद्याद्वै श्रद्धयाऽर्चकः।

उक्तानां द्रव्यजातीनामलाभे पत्रपुष्पयोः। तत्तद्भावनया कुर्यात्सर्वदा विधिकोविदः॥३७॥

हे चतुरानन! मेरे समक्ष पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क—इन चार वस्तुओं को बिना मन्त्र के रखे वहां सिद्धार्थ, अक्षत, पुष्प, कुशाग्र, तिल, चन्दन, फल तथा जौ का अर्घ्यपात्र में क्षेपण करें। हे पुत्र! विज्ञानज्ञ व्रती मानव मेरी प्रसन्नतार्थ श्रद्धायुक्त होकर श्यामा, दूर्वा, विष्णुपदी, पद्म—इन चार वस्तु से पाद्यपात्र विन्यस्त करे। कंकोल, लवंग, मालतीफल को आचमनीय पात्र में, गो दुग्ध, दधि, मधु, घृत तथा गुड़ को मधुपात्र में रखे। हे पुत्र! इन द्रव्यों का संग्रह न होने पर विधिज्ञाता पूजक पत्र तथा पुष्प में ही इन वस्तुओं की भावना करके पूजा करें।।३३-३७।।

करन्यासं ततः कुर्यादङ्गन्यासं तथैव च। पञ्चाङ्गं वा षडङ्गं वा विन्यसेत्सम्प्रदायतः॥३८॥

ममाऽनुस्मरणं कार्यमात्मानं मत्समं स्मरेत्। पूजारम्भे चतुर्वक्त्र! मङ्गलं तु पठेन्नरः॥३९॥

अथसम्पूजयेच्छङ्खं पाञ्चजन्यं ममप्रियम्। यस्य सम्पूजनाद्वत्स आनन्दःपरमोमम॥४०॥
शङ्खस्य पूजने वत्स! मन्त्रानेतानुदीरयेत्॥४१॥
त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुनाविधृतः करे। निर्मितःसर्वदेवैश्चपाञ्चजन्यनमोऽस्तुते॥४२॥
तवनादेन जीमूतावित्रसन्ति सुराऽसुराः। शशाङ्काऽयुतदीप्ताभ! पाञ्चजन्यनमोऽस्तुते॥४३॥
गर्भादेवानिनारीणां विलीयन्ते सहस्त्रधा। तव नादेन पातालेपाञ्चजन्य! नमोऽस्तुते॥४४॥

अब करन्यास एवं अंगन्यास करें। अपने सम्प्रदायानुसार पञ्चाङ्ग अथवा षडङ्गन्यास करें। हे चतुरानन! मेरा स्मरण करके अपनी आत्मा से मेरी अभेद भावना करनी चाहिये। हे वत्स! मानव पूजा के प्रारंभ में मन्त्रपाठ करके मेरे पाञ्चजन्य शंख का पूजन करे। इस शंख की पूजा करने से मुझे अपार आनन्द मिलता है। हे वत्स! शंखपूजा का यह मन्त्र है—"हे पाञ्चजन्य! आप पूर्वकाल में सागर से उत्पन्न हैं। विष्णु ने आपको धारण किया था। देवगण आपके निर्माता हैं। आपको प्रणाम! हे पाञ्चजन्य! आपका निनाद मेघ असुर तथा सुरगण को त्रस्त कर देता है। आपकी कान्ति १०००० चन्द्रमा के समान है। आपको प्रणाम! हे पाञ्चजन्य! आपका निनाद पाताल स्थित दानवनारीगण के गर्भ को हजारों टुकड़े में विलीन कर देता है। आपको प्रणाम!"।३८-४४।।

दर्शनेनैव शङ्खस्य किं पुनः स्पर्शने कृते। विलयं यान्ति पापानि हिमवद्भास्करोदये॥४५॥
नत्वा शङ्खं करे धृत्वा मन्त्रैरेभिस्तु वैष्णवः।
यः स्नापयति मां भक्त्या तस्य पुण्यमनन्तकम्॥४६॥
सुवासितेन तैलेन कुर्यादभ्यञ्जनं ततः। कस्तूर्या चन्दनेनैव कुर्यादुद्वर्तनादिकम्॥४७॥
सुगन्धवासितैस्तोयैः स्नाप्य मन्त्रयुतै शुभैः।
अर्घ्यं दत्त्वा ततो वत्स! पाद्यमाचमनीयकम्।
मधुपर्कं ततो दद्यादथ सर्वोपचारकान्॥४८॥
वस्त्रैराभरणैर्दिव्यैरलङ्कृत्य यथाविधि। पुष्पैः सम्पूजयेत्पीठं तत्र देवं निधाय च॥४९॥
वस्त्राऽलङ्कारगन्धादीनर्पयेच्छ्रद्धया मम। नैवेद्यं विविधं दद्यात्पायसाऽपूपमिश्रितम्।
सकर्पूरञ्च ताम्बूलं भक्त्या चैव निवेदयेत्॥५०॥

हे वत्स! इस शंख के दर्शन मात्र से कलुषराशि वैसे ही विलीन हो जाती है, जैसे सूर्योदय से तिमिर का नाश हो जाता है। यह तो दर्शन का फल है, तथापि स्पर्श की तो बात ही क्या? जो वैष्णव इन सब मन्त्र को पढ़ते हाथों में शंख धारण करके शंख को प्रणाम करते हैं तथा भक्तिपूर्वक मुझे स्नान कराते हैं, उनका पुण्य अनन्त हो जाता है। तदनन्तर सुवासित तैल से मुझे अभ्यङ्ग लगाये। कस्तूरी तथा चन्दनादि से उपटन लगाये। शुभ मन्त्रों का पाठ करके सुगन्धित जल से स्नान कराये। हे वत्स! तदनन्तर अर्घ्य देकर पाद्य, आचमनीय, मधुपर्क तथा अन्य उपचारों को प्रदान करना चाहिये। तत्पश्चात् यथाविधि दिव्यवस्त्र, अलंकार आदि से मुझे सजाकर पीठासन पर स्थापित करके पुष्पों से उस पीठासन पर मेरी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर मेरे लिये श्रद्धापूर्वक वस्त्र, अलंकार तथा गन्धादि प्रदान करके पायस-अपूप आदि नाना प्रकार के नैवेद्य तथा कर्पूर युक्त ताम्बूल भक्तिभाव से प्रदान करें।।४५-५०।।

सुरभीणि चपुष्पाणिभक्त्त्यासम्यङ्निवेदयेत्। धूपं दशाङ्गमष्टाङ्गं दीपञ्चसुमनोहरम्।।५१।।
परिणीय प्रणम्याऽथ स्तुत्वा स्तुतिभिरादरात्।
शाययित्वा तु पर्यङ्के मङ्गलार्घ्यं निवेदयेत्।।५२।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांद्वितीये वैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णु-सम्वादे शङ्खपूजाविधिकथनंनाम चतर्थोऽध्यायः।।४।।

तत्पश्चात् भक्तिपूर्वक सुरभित पुष्प प्रदान करके दशाङ्ग किंवा अष्टाङ्ग धूप एवं मनोहर दीप देना चाहिये। आदरपूर्वक नाना स्तुतियों द्वारा मुझे प्रसन्न करें तथा पलंग पर मुझे शायित करके मांगलिक अर्घ्य प्रदान करें।।५१-५२।।

।।चतुर्थ अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

पञ्चमोऽध्यायः

पञ्चामृत स्नान माहात्म्य, शंखपूजन माहात्म्य

ब्रह्मोवाच

पञ्चामृतस्य स्नपनाद्यत्फलं लभते हरेः। शङ्खोदकेन यत्किञ्चित्तन्मे ब्रूह्यजिताऽच्युत।।१।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे अजित, अच्युत! पञ्चामृत तथा शंखोदक से स्नान कराने का जो फल है, वह मुझसे कहिये।।१।।

श्रीभगवानुवाच

क्षीरस्नानम्प्रकुर्वन्ति ये नराममूर्द्धनि। शताश्वमेधजम्पुण्यं बिन्दुना बिन्दुनास्मृतम्।।२।।
क्षीराद्दशगुणं दध्ना घृतेनैव दशोत्तरम्। मधुनातद्दशगुणं सितया तु ततोऽधिकम्।
गन्धपुष्पोदके मन्त्रं सर्वोत्कृष्टं प्रशस्यते।।३।।

श्रीभगवान् कहते हैं—जो मानव मेरे मस्तक पर दुग्ध प्रदान करता है तथा मुझे स्नान कराता है, उसके प्रत्येक विन्दु में शत अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। दुग्धस्नान की अपेक्षा दधि स्नान कराने से दशगुणित फल लाभ होता है। घृतस्नान द्वारा दधि स्नान से भी दसगुणे फल की प्राप्ति होती है। मधुस्नान से और भी दसगुणित फललाभ होता है। शर्करा स्नान कराने से उससे भी दसगुना फल लाभ होता है। लेकिन गन्ध-पुष्पोदक द्वारा जो मुझे मन्त्र स्नान कराता है, वह तो सर्वापेक्षा प्रशंसनीय है।।२-३।।

द्वादश्यां पञ्चदश्यां वा गव्येन पयसा मम। स्नापनं देवशार्दूल! महापातकनाशनम्।।४।।
दध्यादीनां विकाराणांक्षीरतः सम्भवो यथा। तथैव शेषकामानां क्षीरस्नपनतोमम।।५।।
क्षीरस्नानेन सौभाग्यं दध्ना मिष्टान्नभोजनम्। घृतेन स्नापयेद्यो मां नरो मम पुरम्व्रजेत्।।६।।

हे देवशार्दूल! द्वादशी तथा पूर्णिमा के दिन गो दुग्ध से मुझे स्नान कराने से महापापों का विनाश होता है। दधि आदि वैकारिक वस्तु दुग्ध से ही उत्पन्न होती है, अतः एकमात्र दुग्ध स्नान द्वारा ही सर्वकामना सफल हो जाती है। क्षीरस्नान से मानव का सौभाग्य बढ़ता है। दधि स्नान कराने से मिष्ठान्न भोजन की प्राप्ति होती है। जो घृत से मुझे स्नान कराता है वह मेरे लोक जाता है।।४-६।।

मधुना सितया यस्तु कारयेन्मार्गशीर्षके। स राजा जायतेलोके पुनः स्वर्गादिहागतः।।७।।
गजाश्वरथसम्पूर्णं स राज्यं लभते भुवि। कारयेन्मार्गशीर्षे वै यः क्षीरस्नापनं मम।।८।।
स्वर्गे लोके व जयति चन्द्रेन्द्ररुद्रमारुतान्। क्षीरस्नानं परं श्रेष्ठं मार्गशीर्षे च पुत्रक!।।९।।

जो व्यक्ति मेरे मस्तक पर मधु तथा शर्करा चढ़ाता है तथा मुझे तदनन्तर स्नान कराता है, उसकी स्वर्गच्युति कभी नहीं होती, तथापि स्वर्गच्युति हो भी जाये, तब वह पृथिवी पर जन्म लेकर राजा होता है। वह गज-अश्व-रथादि से पूर्ण होकर पृथिवी पर राजा होता है। जो व्यक्ति मार्गशीर्ष मास में मुझे स्नान कराता है, वह स्वर्गलोक में चन्द्र, इन्द्र, रुद्र, मरुद्गण पर विजय पाकर स्थित रहता है। हे पुत्र! मार्गशीर्ष में क्षीर स्नान परम उत्तम है।।७-९।।

क्षीरस्नपनमाहात्म्यं वर्चस्कं पुष्टिवर्धनम्। दौर्भाग्यं विलयंयाति क्षीरस्नानेनमे सुत।।१०।।
स्नापयेन्मार्गशीर्षे मांयोवैपञ्चाऽमृतेन तु। स नशोच्यो भवेज्जन्तुर्बन्धुना भुविमानद!।।११।।
कपिलाक्षीरमादाय यः स्नापयति मां सुत। कपिलाशतदानस्यफलम्प्राप्नोतिमानवः।।१२।।

शङ्खे तीर्थोदकं कृत्वा यः स्नापयति देशिकः।
बिन्दुनाऽपि सहोमासे स्वकुलं तारयेद्धि सः।।१३।।

मुझे क्षीर स्नान कराने का महत्व यह है कि इससे व्यक्ति का तेज एवं पुष्टिवर्द्धन होता है। हे तनय! मार्गशीर्ष में मुझे क्षीरस्नान कराने से दुर्भाग्य दूर हो जाता है। हे मानव! मार्गशीर्ष में जो मानव पंचामृत से मुझे स्नान कराता है, उसे बन्धुशोक कभी नहीं होता। हे पुत्र! कपिलादुग्ध से जो मुझे स्नान करता है, उसे १०० कपिला गोदान का फललाभ होता है। जो विधानविद् मानव मार्गशीर्ष मास में तीर्थजल शंख में रखकर मुझे स्नान कराता है, उसके एक विन्दु जल प्रदान करने मात्र से उसका कुल मुक्त हो जाता है।।१०-१३।।

कापिलं क्षीरमादाय शङ्खे कृत्वा च मानवः।
यः स्नापयति मां भक्त्या सर्वतीर्थफलं लभेत्।।१४।।

शङ्खे कृत्वा तु पानीयं साक्षतं कुशसंयुतम्। यः स्नापयेत्सहोमासे सर्वतीर्थफलं लभेत्।।१५।
शङ्खाष्टकेन यः स्नानं कारयेन्मार्गशीर्षके। भक्त्या भगवतः श्रेष्ठो मम लोके महीयते।।१६।।
शङ्खषोडशकेनाऽथ यः स्नापयति मे सुत!। स पापमुक्तः सुचिरं स्वर्गलोके महीयते।।१७।।

चतुर्विंशतिसङ्ख्याकैः शङ्खैर्यः स्नापयेच्च माम्।
इन्द्रलोके चिरं स्थित्वा स राजा भुवि जायते॥१८॥

जो व्यक्ति कपिलादुग्ध लाकर शंख में रखता है तथा उससे भक्तिपूर्वक मुझे स्नान कराता है, वह समस्त तीर्थफल की प्राप्ति करता है। जो मार्गशीर्ष मास में शंख में अक्षत तथा कुशयुक्त जल लेकर मुझे स्नान कराता है, वह भी समस्त तीर्थों का फल प्राप्त करता है। जो श्रेष्ठ मानव मार्गशीर्ष में आठ शंख जल से भक्तिपूर्वक भगवान् को स्नान कराता है, वह मेरे लोक में गमन करता है। हे सुत! जो षोडश शंखजल द्वारा मुझे स्नान कराता है, वह दीर्घकाल पर्यन्त इन्द्रलोक में निवास करके भोगक्षय होने पर भूतल पर राजा होकर जन्म लेता है।।१४-१८।।

शङ्खाऽष्टोत्तरशतेनैव स्नापयेन्मार्गशीर्षके। शङ्खेशङ्खेसुवर्णस्यफलंप्राप्नोति मानवः॥१९॥
मार्गशीर्षे भक्तिमान्यः कृत्वा शङ्खध्वनिं हि माम्।
स्नापयेत्पितरस्तस्य स्वर्गतावत्प्रतिष्ठिताः॥२०॥
अष्टोत्तरसहस्त्रन्तु शङ्खस्नानं तु यश्चरेत्। सगणोमुक्तिमाप्नोतियावदाभूतसम्प्लवम्॥२१॥
नित्यं संस्नापयेद्योमांशङ्खेनसुरसत्तम!। गङ्गास्नानफलम्प्राप्य नित्यं नन्दति देववत्॥२२॥
शङ्खे तोयं समादाययःस्नापयतिमांसुत। नमोनारायणेत्युक्त्वामुच्यतेसर्वकिल्विषैः॥२३॥
कृत्वा पादोदकं शङ्खे वैष्णवानां महात्मनाम्।
यो ददाति तिलोन्मिश्रं चान्द्रायणफलं लभेत्॥२४॥
नाद्यं तडागजम्वाऽपि वापीमूपादिकञ्च यत्। गाङ्गेयं जायतेसर्वंजलंशङ्खकृतञ्चयत्॥२५॥
गृहीत्वामम पादाम्बुशङ्खेकृत्वातुवैष्णवः। योवहेच्छिरसानित्यंसमुनिस्तपताम्वरः॥२६॥

जो अग्रहायण मास में १०८ शंख जल से मुझे स्नान कराता है, वह मानव प्रत्येक शंख द्वारा स्वर्णदान फललाभ करता है। जो भक्तिमान् मानव शंखध्वनि के साथ मार्गशीर्ष में मुझे स्नान कराता है, उसके पितृगण तत्क्षण स्वर्ग में प्रतिष्ठित होते हैं। जो १००८ शंख जल से मुझे स्नान कराता है, वह मुक्तिलाभ करता है तथा पुनः प्रलयकाल पर्यन्त गणों में गण्य होकर रहता है। हे सुरसत्तम! जो शंख जल से मुझे नित्य स्नान कराता है, वह गंगा स्नान फल लाभ करता है। वह देवता की तरह आनन्दित होता है। हे पुत्र! जो शंख जल लेकर "नमो नारायणाय" कहकर नित्य मुझे स्नान कराता है, वह समस्त कलुष से मुक्त हो जाता है। जो तिल मिश्रित मेरा पादोदक लेकर वैष्णवों को अर्पित करता है, उसे चान्द्रायण व्रत का फल लाभ होता है। नदी-तड़ाग-वापी-कूप का जल भी यदि शंख में रखा हो, वह भी जाह्नवी जल के समान है। जो वैष्णव मानव मेरा पादोदक शंख में लेकर मस्तक पर धारण करता है, वही मुनि तथा तपस्वी श्रेष्ठ है।।१९-२६।।

त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि मम वैवाऽऽज्ञया सुत!।
शङ्खे तानि वसन्तीह तस्माच्छङ्खो वरः स्मृतः॥२७॥
साम्बुं शङ्खेकरेधृत्वामन्त्रैरेतैस्तुवैष्णवः। यःस्नापयेन्मार्गशीर्षेतुष्टस्तस्यभवाम्यहम्॥२८॥

शङ्खादौ चन्द्रदैवत्यं कुक्षौ वरुण देवता। पृष्ठे प्रजापतिश्चैव अग्रे गङ्गा सरस्वती॥२९॥
तेषामुच्चारपूर्वन्तु स्नापयेन्मामतन्द्रितः। तस्यपुण्यस्यसङ्ख्यांवैकर्तुं नैवसुराःक्षमाः॥३०॥

त्रैलोक्य में जितने तीर्थ हैं, मेरे आदेश से वे सभी शंख में प्रतिष्ठित हैं। तभी शंख को श्रेष्ठ कहा गया है। जो वैष्णव जलयुक्त शंख हाथ में लेकर यह मन्त्र पढ़ते मार्गशीर्ष में मुझे स्नान कराता है, देवता भी उसके पुण्य का आकलन नहीं कर सकते। मन्त्र है—"शंखाग्र भाग में चन्द्रमा, उदर में वरुण, पृष्ठ में प्रजापति तथा गंगा एवं सरस्वती स्थित हैं।" इन देवगण का नामोच्चार आलस्यरहित करते हुये जो मुझे स्नान कराते हैं, उनका पुण्य देवगण द्वारा भी अकथनीय है।।२७-३०।।

पुरतो ममदेवेश सपुष्पः सजलाक्षतः। शङ्खस्त्वभ्यर्चितस्तिष्ठेत्तस्यश्रीःसर्वतोमुखी॥३१॥
विलेपनेन सम्पूर्णं शङ्खं कृत्वा तु मां भजेत्। तदा मे परमा प्रीतिर्भवेद्वैशतवार्षिकी॥३२॥
शङ्खे कृत्वा तु पानीयं सपुष्पं सजलाक्षतम्। अर्घ्यं ददाति यो मां वै तस्य पुण्यमनन्तकम्॥३३॥

हे देवेश! मेरे समक्ष जल, तण्डुल, पुष्प द्वारा अर्चित शंख रखने से उस व्यक्ति को सर्वतोमुखी लक्ष्मीलाभ होता है। शंख को विलेपन युक्त करके उसके द्वारा मेरी पूजा करने पर मेरी १०० वर्ष व्यापिनी प्रसन्नता होती है। जो शंख-पुष्प-तण्डुल-जल से मेरे उद्देश्य से अर्घ्यदान देते हैं, उनका पुण्यफल अनन्त है।।३१-३३।।

अर्घ्यं कृत्वा स्वयं शङ्खे यः करोति प्रदक्षिणाम्।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥३४॥

भ्रामयित्वा च मे मूर्ध्निमन्दिरंशङ्खवारिणा। प्रोक्षयेद्वैष्णवोयस्तुनाशुभंतद्गृहेभवेत्॥३५॥
नाऽऽधयो न क्लमस्तस्यनारकंनभयंक्वचित्। यस्यपादोदकं शङ्खेकृतं मूर्धानमालभेत्॥३६॥
ग्रहा रक्षांसिकूष्माण्डपिशाचोरगदानवाः। दृष्ट्वाशङ्खोदकं मूर्ध्नि विद्रवन्तिदिशोदश॥३७॥
वादित्रनिनदैरुच्चैर्गीतमङ्गलनिःस्वनैः। यःस्नापयतिमांभक्त्या जीवन्मुक्तोभवेद्द्विसः॥३८॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णु-सम्वादे शङ्खपूजनफलकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः।।५।।

जो स्वयं शंख से मुझे अर्घ्य प्रदानोपरान्त मेरी प्रदक्षिणा करते हैं, उनको सप्तद्वीपा पृथिवी प्रदक्षिणा का फल मिलता है। जो वैष्णव मस्तक पर शंख घुमाकर उस शंखजल से मेरे मन्दिर को शुद्ध करने हेतु छिड़कते हैं, उनके गृह में कोई अशुभ नहीं होता। शंख में स्थित मेरा चरणामृत जिनके शिर पर विराजित रहता है, उनको आधि एवं नरक भय नहीं होता। ग्रह, राक्षस, कूष्माण्ड, पिशाच, सर्प, दानव उसके मस्तकस्थ शंखजल को देखकर दसों दिशाओं में भाग जाते हैं। जो उच्च गीत-वाद्य आदि मंगलनाद से भक्तिपूर्वक मुझे स्नान कराते हैं, वे जीवन्मुक्त हो जाते हैं।।३४-३८।।

।।पञ्चम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षष्ठोऽध्यायः

घंटानाद-तुलसीकाष्ठ, चन्दन अर्पण फल

ब्रह्मोवाच

घण्टानादस्य माहात्म्यं चन्दनस्य तथाऽच्युत। यत्फलं लभते स्वामिंस्तत्सर्वम्ब्रूहि तत्त्वतः॥१॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे अच्युत! घण्टानाद तथा चन्दन प्रदान का क्या फल मिलता है? हे स्वामी! यथायथ रूप से कहिये।।१।।

श्रीभगवानुवाच

स्नानार्चनक्रियाकाले घण्टानादं करोति यः। पुरतो मम देवेश तस्य पुण्यफलं श्रृणु॥२॥
वर्षकोटिसहस्त्राणि वर्षकोटिशतानि च। वसते मामके लोके अप्सरोगणसेवितः॥३॥
सर्ववाद्यमयी घण्टा सर्वदेवमयी यतः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन घण्टानादं तु कारयेत्॥४॥
सर्ववाद्यमयी घण्टा सर्वदा मम वल्लभा। वादनाल्लभते पुण्यं यज्ञकोटिशतोद्भवम्॥५॥
घण्टानादः सदा कार्यः पूजाकाले विशेषतः। मन्वन्तरसहस्त्राणि मन्वन्तरशतानिच॥६॥
प्रीतो भवामि सततं घण्टानादेन पुत्रक!। भेरीशङ्खनिनादेन घण्टानादान्वितेन च॥७॥
मृदङ्गशङ्खेन युतं प्रणवेन समन्वितम्। अर्चनं मम देवेश! सततं मोक्षदं नृणाम्॥८॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे देवेश! स्नान तथा अर्चना के समय जो मनुष्य मेरे समक्ष घंटानाद करता है, उसका पुण्यफल सुनें। मेरे आगे घंटानाद करने वाला मानव शतकोटि वर्ष पर्यन्त अप्सरागण से सेवित होकर मेरे लोक में वास करता है। सभी वाद्य-घंटा प्रभृति एवं सभी देवता शंख में अवस्थित रहते हैं। इसलिये सर्वप्रयत्न से घंटानाद करना चाहिये। सर्ववाद्यमय घंटा मुझे सतत् प्रिय है। इसके वादन से कोटियज्ञ समुद्भूत सुकृति का लाभ होता है। इसलिये सर्वदा तथा विशेष करके पूजा काल में घंटानाद करना चाहिये। हे पुत्र! पूजाकाल में घंटानाद करने से शतसहस्र मन्वन्तरों तक मैं प्रसन्न रहता हूं। हे देवेश! प्रणव समन्वित भेरी, शंख तथा मृदङ्गनाद युक्त घंटाध्वनि द्वारा सतत् मेरी अर्चना करना मनुष्य के लिये मोक्ष प्रदाता है।।२-८।।

यत्र तिष्ठेत पुरतो घण्टानादान्विता मम। अर्चिता वैष्णवैर्यत्र तत्र मां विद्धि पुत्रक!॥९॥
वैनतेयाऽङ्किता घण्टा सुदर्शनयुताऽथवा। ममाग्रे स्थापयेद्यस्तु तस्यपापं हराम्यहम्॥१०॥

जहां पर नादान्वित शंख मेरे समक्ष स्थित रहता है, वैष्णवगण जहां मेरी पूजा करते हैं, वहां मुझे नित्य स्थित जानें। जो मानव गरुड़ अथवा सुदर्शन चिह्नाङ्कित घंटा मेरे समक्ष रखता है मैं उसका पापनाश कर देता हूं।।९-१०।।

मदीयार्चनवेलायां घण्टानादंकरोति यः। नश्यनिततस्यपापानिशतजन्मार्जितान्यपि॥११॥

स्वापकाले प्रकुर्वीतघण्टानादं स्वभक्तितः।
ममैवाऽर्चनवेलायां फलंकोटिगुणाद्भवम्॥१२॥

ये मामर्चन्ति देवेशं सुपर्णोपरिसंस्थितम्। शङ्खपद्मगदायुक्तं सचक्रं च श्रियायुतम्।।१३।।
किं करिष्यन्ति ते तीर्थैर्देवतानां च दर्शनैः। किं यज्ञैर्व्रतैवापिकिंदानैःकिमुपोषणैः।।१४।।
मूर्तिर्नारायणी यैश्च मामकी गरुडोपरि। स्थापितातेकलौयान्तिकल्पकोटिंपदंमम।।१५।।

जो मानव पूजा काल में मेरे समक्ष घंटा (तथा घंटी) बजाता है, उसके शत जन्मार्जित पापों का नाश हो जाता है। जो मनुष्य मेरे शयनकाल में भक्तिमान् होकर घंटानाद करता है, उसे पूजाकालीन घंटी-घंटा बजाने से भी करोड़ों गुने फल की प्राप्ति होती है। हे ब्रह्मन्! मैं देवगण में श्रेष्ठ हूं। जो लोग कमला के साथ मुझे गरुड़ पर स्थित करके तथा शंख-पद्म-गदा-चक्र से युक्त करके पूजा करते हैं, उनको देवदर्शन, तीर्थसेवा, समस्त यज्ञ, व्रत, दान, उपवास की क्या आवश्यकता? जो कलिकाल में मेरी नारायणी मूर्त्ति बनाकर मेरे सामने गरुड़ पर प्रतिष्ठित करते हैं, उनको कोटिकल्पपर्यन्त हेतु मेरा पदलाभ होता है।।११-१५।।

ममाऽग्रे स्थापयेद्यस्तु प्रासादेऽथगृहेऽथवा। तीर्थकोटिसहस्राणितत्रतिष्ठन्तिदेवताः।।१६।।
यस्तु पूजयते धन्यो गरुडोपरि संस्थितम्। एकादश्यांतथारात्रौवासनासंयुतोमम।।१७।।
कृत्वा गीतञ्च नृत्यञ्च तारयेन्नरकात्पितृन्। पुनश्च कथयिष्यामि शृणु घण्टामहं सुत!।।१८।।
मम नामाङ्किता घण्टा पुरतो या च तिष्ठति। अर्चितावैष्णवीयत्रतत्रमांविद्धिपुत्रक।।१९।।
यस्तु वादयते घण्टां वैनतेयविचिह्निताम्। धूपे नीराजने स्नाने पूजाकाले विलेपने।।२०।।
ममाऽग्रे प्रत्यहं वत्स! प्रत्येकं लभतेफलम्। मखायुतंगोऽयुतं चचान्द्रायणशतोद्भवम्।।२१।।
विधिबाह्यकृता पूजा सफलाजायतेनृणाम्। घण्टानादेनतुष्टोऽहंप्रयच्छामिस्वकंपदम्।।२२।।
नागाऽरिचिह्निता घण्टा रथाङ्गेन समन्विता। वादनात्कुरुतेनाशंजन्मकोटिभयस्यवै।।२३।।

गृह हो अथवा प्रासाद हो, जहां मेरी नारायणी मूर्त्ति की प्रतिष्ठा होती है, वहां सहस्त्र कोटितीर्थ तथा देवता अवस्थित रहते हैं। जो व्यक्ति गरुड़ पर स्थित इस मूर्त्ति का पूजन करते हैं, वे मानव धन्य हैं। कामना रखने वाला मनुष्य भी एकादशी की रात्रि में नृत्य-गीतादि के साथ (जागरण) उत्सव करके अपने पितृगण का नरक से उद्धार कर देता है। हे पुत्र! पुनः घंटानाद माहात्म्य कहता हूं। सुनो! हे पुत्र! जहां मेरा नाम अंकित किया गया घंटा स्थित है तथा पूजित है, वहां मुझे सदा स्थित जानो। जो मानव मेरे समक्ष मुझे धूप प्रदान काल में, नीराजन तथा स्नान काल में और विलेपनादि के समय गरुड़ चिह्नाङ्कित घंटा बजाता है, उसे इन प्रत्येक कार्य के लिये अयुत (१००००) यज्ञ, इतने ही गोदान का और १०० चान्द्रायण व्रत का फल लाभ होता है। घंटानाद से प्रत्येक मनुष्य का अविधिपूर्वक किया कार्य भी सफल होता है। मैं घंटानाद से प्रसन्न होकर मनुष्य को स्वपद प्रदान करता हूं। गरुड़ चिह्नित अथवा रथाङ्गयुक्त घंटानाद से कोटिजन्म का पाप भय नष्ट हो जाता है।।१६-२३।।

गरुडेनाऽङ्किंतां घण्टांदृष्ट्वाऽहं प्रत्यहं मुदा। प्रीतिं करोमिदेवेशलक्ष्मींप्राप्ययथाऽधनः।।२४।।
घण्टादण्डस्यशिरसिसुचक्रं स्थापयेत्तु यः। मत्प्रियंवैनतेयम्वा स्थापितं भुवनत्रयम्।।२५।।

घण्टानादं स चक्रञ्च अन्तकाले शृणोति यः।
पापकोटियुतस्याऽपि नश्यन्ति यमकिङ्कराः।।२६।।

सर्वदोषाःप्रणश्यन्तिघण्टानादेन वै सुत। देवतानां स रुद्राणां पितॄणामुत्सवोभवेत्॥२७॥

हे देवेश! मैं गरुड़ चिह्न से युक्त घंटा देखकर नित्य प्रमुदित हो जाता हूं। धनहीन मानव जैसे धन पाकर हर्षित होता है, वैसा ही हर्ष मैं घंटा बजाने वाले को प्रदान करता हूं। जो मानव घंटा दण्ड पर मेरे प्रिय सुशोभन चक्र अथवा गरुड़ की स्थापना करता है, उसे त्रैलोक्य स्थापना का फललाभ होता है। मृत्युकाल में जो मानव चक्रयुक्त घंटानाद को सुनता है, कोटिपापयुक्त होने पर भी उसे देखकर यमदूत वहां से भाग जाते हैं। हे पुत्र! घंटानाद से दोष के ढेर भी निवृत्त हो जाते हैं। एकमात्र घंटानाद से ही मानव को समस्त देवता-रुद्र तथा पितृगण हेतु कृत उत्सव जैसा फललाभ होता है।।२४-२७।।

अभावे वैनतेयस्यचक्रस्याऽपि न संशयः।
घण्टानादेन भक्तानां प्रसादं प्रकरोम्यहम्॥२८॥

गृहे यस्मिन्भवेन्नित्यंघण्टानागारिसंयुता। सर्पाणां न भयं तत्रनाग्निविद्युत्समुद्भवम्॥२९॥

यस्य घण्टा गृहे नास्ति शङ्खो न पुरतो मम। कथं भागवतो ज्ञेयः कथंभवतिवल्लभः॥३०॥

यदि गरुड़ नहीं बने हैं, तब भी चक्र-चिह्नांकित घंटानाद से ही मैं भक्त के प्रति प्रीतियुक्त हो जाता हूं, इसमें सन्देह नहीं है। जिनके गृह में नागशत्रु गरुड़चिह्नित घंटा (घंटी) विद्यमान है, उसके गृह में सर्प-अग्नि तथा विद्युत् का भय नहीं रहता। जिसके गृह में घंटा अथवा मेरे समक्ष शंख नहीं रहता, मैं उसे कैसे भागवत अथवा अपना भक्त समझूं?।।२८-३०।।

चन्दनस्य प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं तवपुत्रक!। यस्मिन्कृतेभवेत्प्रीतिर्ममात्यन्तंनसंशयः॥३१॥

सचन्दनं सकुसुमं कर्पूरागुरुमिश्रितम्। मृगनाभिसमायुक्तं जातीफलसमन्वितम्॥३२॥

तुलसीचन्दनोपेतंममात्यन्तसुखावहम्। यो ददातिहिमांनित्यं तुलसीकाष्ठसम्भवम्॥३३॥

युगानि वसते स्वर्गे ह्यनन्तानि नरोत्तमः।
महाविष्णोःकलौ भक्त्या दत्त्वा तुलसिचन्दनम्॥३४॥

अर्चयेन्मालतीपुष्पैर्नभूयः स्तनपो भवेत्। तुलसी काष्ठसम्भूतं चन्दन यच्छते मम॥३५॥

दहामि पातकं सर्वं पूर्वजन्मशतैः कृतम्। सर्वेषामेव देवानां तुलसीकाष्ठचन्दनम्॥३६॥

पितॄणाञ्च विशेषेण सदऽभीष्टं यथा मम॥३७॥

हे पुत्र! जिससे मैं अत्यन्त प्रसन्न होता हूं, मैं अब वह चन्दन माहात्म्य कहता हूं। हे ब्रह्मन्! पुष्प, कर्पूर, अगुरु, कस्तूरी, जातीफल तथा तुलसीदल युक्त चन्दन मुझे अत्यन्त सुख देने वाला है। जो मानव मुझे सतत् तुलसी काष्ठ को घिसकर उसका चन्दन लगाता है, वह श्रेष्ठ मनुष्य अनन्त युगों तक स्वर्ग में निवास करता है। जो व्यक्ति कलियुग में भक्तियुक्त होकर तुलसी चन्दन मुझे प्रदान करता है तथा मालती पुष्पों से मुझ महाविष्णु का पूजन करता है, उसे जन्म लेकर मातृस्तनपान नहीं करना पड़ता। जो व्यक्ति मुझे तुलसीकाष्ठयुक्त चन्दन प्रदान करता है, उसके सैकड़ों पूर्वजन्म की कलुष राशि का नाश हो जाता है। जैसे चन्दन मेरा अभीष्ट है, समस्त देवता विशेषतः पितृगण उस प्रकार से सतत् चन्दन की अभिलाषा करते रहते हैं।।३१-३७।।

श्रीखण्डं चन्दनं तावच्छ्रेष्ठं कृष्णागुरुं तथा। यावन्नदीयते मह्यं तुलसीकाष्ठचन्दनम्॥३८॥

तावत्कस्तूरिकामोदः कर्पूरस्य सुगन्धिता। यावन्नदीयते मह्यं तुलसीकाष्ठचन्दनम्।।३९।।
कलौ यच्छन्ति ये मह्यं तुलसीकाष्ठचन्दनम्।
मार्गशीर्षशुभे मासे ते कृतार्था न संशयः।।४०।।
यो हि भागवतो भूत्वाकलौतुलसिचन्दनम्। नार्पयेद्वैसहोमासे नाऽसौभागवतोनरः।।४१।।
कुङ्कुमागुरुश्रीखण्डकर्दमैर्मम विग्रहम्। आलिम्पेद्वैसहोमासे कल्पकोटिं वसोद्दिवि।।४२।।
कर्पूरागुरुमिश्रेण चन्दनेनाऽनुलिम्पयेत्। मृगदर्पं विशेषेण अभीष्टं च सदा मम।।४३।।
विलेपयति यो मां वै शङ्खे कृत्वा तु चन्दनम्।
मार्गशीर्षे तदा प्रीतिं करोमि शतवार्षिकीम्।।४४।।
सेवते तुलसीपत्रैर्नित्यमामलकैश्च यः। मार्गशीर्षे सदाभक्त्या स लभेद्वाञ्छितंफलम्।।४५।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णु-सम्वादे भगवते तुलसीकाष्ठचन्दनार्पणफलकथनंनाम षष्ठोऽध्यायः।।६।।

जब तक मुझे तुलसी काष्ठ का चन्दन भक्त नहीं देता तब तक श्रीखण्डचन्दन, कृष्णागुरु, कस्तूरिका, कर्पूरयुक्त चन्दन ही मेरे लिये श्रेष्ठ रहता है। (तथापि जब तुलसीकाष्ठ का चन्दन भक्त देता है, तब ये सब द्रव्य भगवान् को श्रेष्ठ नहीं लगते।) जो व्यक्ति मार्गशीर्ष मास में मुझे तुलसीकाष्ठ चन्दन प्रदान करता है, कलि में वही कृतार्थ है। इसमें सन्देह नहीं है। कलिकाल में जो लोग मार्गशीर्ष मास में मुझे तुलसीकाष्ठ का चन्दन प्रदान नहीं करते हैं, वह भागवत कहलाने पर भी भागवत नहीं है। मार्गशीर्ष में जो मानव कुंकुम, अगुरु तथा श्रीखण्ड चन्दन पीसकर मुझे विलेपित करते हैं, उनको करोड़ों कल्पपर्यन्त स्वर्ग में निवास प्राप्त होता है। कपूर तथा अगुरुयुक्त चन्दन का मुझ पर लेप करना चाहिये। इसमें भी कस्तूरीयुक्त चन्दन मुझे सतत् अभीष्ट है। मार्गशीर्ष मास में जो मानव शंख में चन्दन लेकर विशेषतया मेरे शरीर में लिप्त करता है, मैं उसे शतवार्षिकी प्रसन्नता प्रदान करता हूं। जो मानव मार्गशीर्ष में विपुल तुलसीदल तथा आमलकी फल द्वारा मेरी सेवा करता है, उसे अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है।।३८-४५।।

।।षष्ठ अध्याय समाप्त।।

सप्तमोऽध्यायः

जातीपुष्प का श्रेष्ठत्व, विष्णु की ग्रीवा में इसके सहस्त्र पुष्पों की माला प्रदान करने का वर्णन, नाना पुष्पार्पण फल कथन

ब्रह्मोवाच

माहात्म्यं वद देवेश! पुष्पजातिसमुद्भवम्। येनयेन चपुष्पेण यत्फलं लभते नरः॥१॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे देवेश! मानव जिन-जिन पुष्पों को अर्पित करने पर जो-जो फललाभ करता है, वह पुष्पजनित माहात्म्य कहिये।।१।।

श्रीभगवानुवाच

शृणुपुत्रप्रवक्ष्यामिमाहात्म्यंपुष्पसम्भवम्। येन पुष्पेण मे प्रीतिर्भवेत्सम्यङ्नसंशयः॥२॥
मल्लिका मालतीचैव यूथिकाचातिमुक्तका। पाटलाकरवीरञ्च जयन्ती विजयातथा॥३॥
कुब्जकस्तबकश्चैव कर्णिकारं कुरण्टकः। चम्पकश्चातकः कुन्दो बाणःकर्चूरमल्लिका॥४॥
अशोकस्तिलकश्चैव तथैवाऽपरयूथिकः। अमी पुष्पप्रकारास्तु शस्ता मे पूजने सुत!॥५॥
केतकीपत्रपुष्पञ्च भृङ्गराजस्तथैव च। तुलसीपत्रपुष्पञ्च सद्यः प्रीतिकरं मम॥६॥
पद्मान्यम्बुसमुत्थानि रक्तनीलोत्पले तथा। सितोत्पलं सहोमासे ममाऽत्यन्तं हि वल्लभम्॥७॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे पुत्र! जिस पुष्प द्वारा मुझे सम्यक् प्रीति होती है, अब उस पुष्प माहात्म्य का वर्णन कर रहा हूं। इसमें तनिक भी सन्देह का काम नहीं है। हे पुत्र! मल्लिका, मालती, यूथिका, अतिमुक्तका, पाटला, करवीर, जयन्ती, विजया, कुठजकरंभक, कर्णिकार, कुरंटक, चम्पा, चातक, कुन्द, बाण, कर्चूर, मल्लिका, अशोक, तिलक तथा अपरयूथिका आदि जो पुष्पों को कहा गया है, मेरी पूजा में वे सभी प्रशस्त हैं। हे पुत्र! केतकीपत्र, भृङ्गराज, तुलसीपत्र मुझे सद्यः प्रसन्न करते हैं। जल से ताजा निकला कमल, रक्त-नील-श्वेत उत्पल, ये सभी पुष्प मार्गशीर्ष मास में मुझे प्रिय हैं।।२-७।।

तान्येवच प्रशस्तानि कुसुमानि च मे सुत!। यानिस्युर्वर्णयुक्तानि रसगन्धयुतानिच॥८॥
निर्गन्धान्यपि शस्तानि कुसुमानि मतानि मे।
सुरभीणि तथाऽन्यानिवर्जयित्वा तु केतकीम्॥९॥
बाणञ्च चम्पकाऽशोकं करवीरञ्चयूथिका। पारिभद्रं पाटला च बकुलं गिरिशालिनी॥१०॥
बिल्वपत्रं शमीपत्रं पत्रं भृङ्गिरजस्यच। तमालामलकीपत्रं शस्तं मे पूजने सुत!॥११॥

हे पुत्र! इनके अतिरिक्त जो सब पुष्प वर्ण, रस तथा सुगन्धयुक्त हैं, वे भी मुझे प्रीतिपद हैं। गन्धहीन तथा वर्णयुक्त पुष्पों में से केतकी को छोड़कर सभी पुष्प पूजा हेतु प्रशस्त हैं। हे पुत्र! बाण, चम्पक, अशोक,

कनेर, यूथिका, पारिभद्र, पाटला, बकुल, गिरिशालिनी, बिल्वपत्र, शमीपत्र, भृंगराजपत्र, तमाल, आमलकीपत्र, मेरी पूजार्थ प्रशस्त हैं।।८-११।।

पुष्पैररण्यसम्भूतैः पत्रैर्वा गिरिसम्भवैः। अपर्युषितनिश्छद्रैःप्रोक्षितैर्जन्तुवर्जितैः॥१२॥
अथारामोद्भवैर्वापि पुष्पैः सम्पूजयेच्च माम्। पुष्पजातिविशेषेण भवेत्पुण्यं विशेषतः॥१३॥
तपःशीलगुणोपेते पात्रे वेदस्य पारगे। दश दत्त्वा सुवर्णानि यत्फलं लभते नरः।
तत्फलं लभते मर्त्यः सहे कुसुमदानतः॥१४॥
द्रोणपुष्पे तथैकस्मिन्मह्यं च विनिवेदिते। दश दत्त्वा सुवर्णानिफलं तदधिकं सुत!॥१५॥
पुष्पात्पुष्पान्तरे भेदो यथाऽऽसीत्तन्निबोध मे॥१६॥

हे ब्रह्मन्! वनोत्पन्न पुष्प, पर्वतोत्पन्न पत्तों, ताजे छिद्ररहित धुले हुये जन्तुरहित पुष्पों से तथा अपने यहां उगे पुष्पों की उत्कृष्टता से ही उनसे प्राप्त होने वाले पुण्य का आकलन करना चाहिये। तपस्वी, वेदज्ञ, सत्पात्र को दस स्वर्णदान से मानव को जो फल मिलता है, पुष्प प्रदाता को भी वही फल की प्राप्ति होती है। हे पुत्र! मेरे लिये एक द्रोणपुष्प ही मुझे अर्पित करने वाले को दस स्वर्णदान से भी अधिक फल प्राप्त होता है। अब एक पुष्प से अन्य पुष्प में जो भेद है, वह मुझसे सुनो।।१२-१६।।

द्रोणपुष्पसहस्त्रेभ्यःखादिरन्तुविशिष्यते। खादिरात्पुष्पसाहस्त्राच्छमीपुष्पंविशिष्यते॥१७॥
शमीपुष्पसहस्त्रेभ्यो बिल्वपुष्पंविशिष्यते। बिल्वपुष्पसहस्त्रेभ्योबकपुष्पंविशिष्यते॥१८॥
बकपुष्पसहस्त्रेभ्यो नन्द्यावर्तम्विशिष्यते। नन्द्यावर्तसहस्त्राद्धि करवीरं विशिष्यते॥१९॥
करवीरसहस्त्रस्य कुसुमं श्वेतमुत्तमम्। करवीरश्वेतपुष्पात्पालाशं पुष्पमुत्तमम्॥२०॥
पालाशपुष्पसाहस्त्रात्कुशपुष्पं विशिष्यते। कुशपुष्पसहस्त्राद्धि वनमाला विशिष्यते॥२१॥
वनमाला सहस्त्राद्धि चम्पकञ्च विशिष्यते। चम्पकस्य पुष्पशतादशोकं पुष्पमुत्तमम्॥२२॥
अशोकपुष्पसाहस्त्रात्सेवन्ती पुष्पमुत्तमम्। सेवन्तीपुष्पसाहस्त्रात्कुजकंपुष्पमुत्तमम्॥२३॥
कुजपुष्पसहस्त्राद्धि मालतीपुष्पमुत्तमम्। मालतीपुष्पसाहस्त्रात्सन्ध्यापुष्पंविशिष्यते॥२४॥
सन्ध्यापुष्पसहस्त्राद्धि त्रिसन्ध्यापुष्पमुत्तमम्॥२५॥
त्रिसन्ध्यारक्तसाहस्त्रात्त्रिसन्ध्याश्वेतमुत्तमम्।
त्रिसन्ध्याश्वेत्रसाहस्त्रात्कुन्दपुष्पं विशिष्यते॥२६॥
कुन्दपुष्पसहस्त्राद्धि जातीपुष्पं विशिष्यते। सर्वासां पुष्पजातीनां जातीपुष्पमिहोत्तमम्॥२७॥

सहस्त्र द्रोणपुष्पों से एक खदिरपुष्प श्रेष्ठ है। सहस्त्र शमी पुष्पों से एक बिल्वपुष्प, सहस्त्रों बिल्वपुष्पों से एक बक पुष्प, सहस्त्रों बक पुष्प से एक नन्द्यावर्त्त, सहस्त्र नन्द्यावर्त्त से एक श्वेत कनेर, सहस्त्रों श्वेत कनेर से एक पलाश पुष्प, हजारों पलाश पुष्प से एक कुश पुष्प, हजारों कुश पुष्पों से एक वनमाला, हजारों वनमाला से एक चम्पा, सौ चम्पा से एक अशोक, हजारों अशोक से एक सेवन्ती, हजारों सेवन्ती से एक कुब्ज, हजारों कुब्ज से एक मालती, हजारों मालती से एक सन्ध्या पुष्प, हजारों सन्ध्या पुष्पों से एक रक्त त्रिसन्ध्या, हजारों

रक्त त्रिसन्ध्या से एक श्वेत त्रिसन्ध्या, हजारों श्वेत त्रिसन्ध्या से एक कुन्द, हजारों कुन्द पुष्पों से एक जाती पुष्प श्रेष्ठ है।।१७-२७।।

जातीपुष्पसहस्त्रेण यच्छेन्मालां सुशोभनाम्।
मह्यं यो विधिवद्दद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु॥२८॥
कल्पकोटिसहस्त्राणि कल्पकोटिशतानिच। मत्पुरे वसते नित्यं मम तुल्यपराक्रमः॥२९॥
येषां सन्ति चपुष्पाणिप्रशस्तानिममाऽर्चने। तेषांपत्राणिशस्तानितदभावेफलानिच॥३०॥
एतैः पत्रैश्च पुष्पैश्च फलैश्चाऽपि तथा हि माम्।
अर्चन् दशसुवर्णस्य प्रत्येकं फलमाप्नुयात्॥३१॥

हजारों जाती पुष्पों से एक सुशोभन माला प्रदान करना सर्वोत्तम है। जो मानव मुझे एक सुशोभन माला प्रदान करते हैं, उसका पुण्यफल सुनो। जो मानव मुझे माला प्रदान करता है, वह मेरे तुल्य पराक्रमी होकर सहस्त्रों कोटि कल्पपर्यन्त मेरे पुर में निवास करता है। मेरी पूजार्थ जो सब पुष्प प्रशस्त कहे गये, उन सब पुष्पों के न मिलने पर उनके पत्तों से मेरी पूजा करें। यदि पत्ते न मिलें, तब उनके फल से ही पूजा करना प्रशस्त कही गयी है। जो मानव पूर्वोक्त पुष्प, उनके पत्तों अथवा फल से मेरी पूजा करता है, उसे प्रत्येक पुष्प, पत्र, अथवा फल प्रदान करने हेतु दस-दस स्वर्ग प्रदान करने के बराबर फल की प्राप्ति होती है।।२८-३१।।

एताभिःपुष्पजातीभिःसहोमासेऽर्चयन्तिये। भक्तिंददामि तेषाम्वै तुष्टःसन्नात्रसंशयः॥३२॥
धनम्पुत्रांस्तथादारान्यत्किञ्चिद्वाञ्छतेहि सः। तत्तद्दामिदेवेश पुष्पैरेभिःप्रतोषितः॥३३॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसम्वादे जातीपुष्पश्रैष्ठ्यकथनपूर्वकं विष्णुकण्ठे तत्सहस्र-पुष्पाङ्कितमालास्थापनफलवर्णनं सप्तमोऽध्यायः।।७।।

जो मार्गशीर्ष मास में इन पुष्पों से मेरी पूजा करता है, मैं उस पर प्रसन्न होकर उसे अपनी भक्ति प्रदान करता हूं। इसमें सन्देह नहीं है। इसके अतिरिक्त ऐसे पूजक इहलोक में धन-पुत्र आदि जो कुछ भी कामना करते हैं, मैं इन पुष्पों से प्रसन्न होकर उनको वह सब देता हूं।।३२-३३।।

।।सप्तम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अष्टमोऽध्याय:

तुलसीपत्र, धूप-दीपदान माहात्म्य

ब्रह्मोवाच

श्रीमत्तुलसिमाहात्म्यंयथावद्वर्णयप्रभो!। यस्याःसन्निधिमात्रेणप्रीतिर्भवतितेऽधिका॥१॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे प्रभो! जिनके सन्निधान मात्र से आपको अधिक प्रीति हो रही है, इस समय श्रीमती तुलसी के माहात्म्य का यथावत् वर्णन करिये।।१।।

श्रीभगवानुवाच

मणिकाञ्चनपुष्पाणि तथामुक्तामयानिच। तुलसीपत्रदानस्यकलांनार्हन्तिषोडशीम्॥२॥
तुलसीमञ्जरीभिर्यः कुर्याद्वै मम पूजनम्। न स गर्भगृहं यायान्मुक्तिभागी भवेन्नरः॥३॥
आरोप्य तुलसीं वत्स! पूजयेत्तद्दलैश्च माम्। दिवि सम्मोदमानः सश्वेतद्वीपेचमेगृहे॥४॥
श्रीमत्तुलस्यार्चयते सकृद्धि मां पत्रैः सुगन्धैविमलैरखण्डितैः।
यस्तस्य पापं पटसंस्थितं तदा निरीक्षयित्वा परिमार्जयेद्यमः॥५॥

भगवान् कहते हैं—मुक्तामय, मणिमय अथवा स्वर्णमय पुष्प प्रदान करने का फल तुलसीपत्र प्रदान करने का $\frac{१}{१६}$ भाग भी नहीं है। जो मनुष्य तुलसी मंजरी द्वारा मेरी पूजा करते हैं, उनको गर्भ में जन्म नहीं लेना पड़ता। वह मानव मुक्ति प्राप्त करता है। हे वत्स! तुलसी लगाकर उसे जो मुझ पर अर्पित करके पूजा करता है, वह स्वर्ग में प्रमुदित होता है तथा श्वेतद्वीपस्थ मेरे गृह में निवास करता है। श्रीमती तुलसी के सुगन्धित विमल अखण्ड पत्रों से जो मेरी पूजा करता है, यमराज विशेष सावधानी पूर्वक देखकर अपने यहां लिखित पाप विवरणी से उसका नाम काट देते हैं।।२-५।।

तुलसी न येषां मम पूजनार्थं सम्पादितैकादशिपण्यवासरे।
धिग्यौवनंजीवितमर्थसन्ततिस्तेषां सुखं नेह च दृश्यते परे॥६॥
लिङ्गमभ्यर्चितं दृष्ट्वा सहोमासे च मामकम्। तुलसीपत्रनिकरैर्मुच्यते ब्रह्महत्यया॥७॥
नित्यमभ्यचैयेद्यो वै तुलस्यामां रमेश्वरम्। महापापानिनश्यन्तिकिंपुनश्चोपपातकम्॥८॥
वर्ज्यं पर्युषितं पुष्पं वर्ज्यं पर्युषितं जलम्। न वर्ज्यंतुलसीपत्रंनवज्यजाह्नवीजलम्॥९॥

जो एकादशी के दिन मेरी पूजा के लिये तुलसी नहीं लाते, उनका यौवन, जीवन, धन, सम्पदा सभी धीक्कृत् है। इहकाल तथा परकाल में भी उनको कोई सुख नहीं मिलता। सम्यक् पूजित शिवलिंग देखकर मार्गशीर्ष में मानव तुलसीपत्रों से मेरी पूजा करके ब्रह्महत्यादि से मुक्त हो जाता है। जो मानव तुलसीदल से नित्य रमा के साथ मेरी पूजा करता है, उसकी महापातकराशि का नाश हो जाता है। उपपातकों की तो बात ही क्या? बासी पुष्प तथा जल वर्जित है, लेकिन बासी जाह्नवीजल किंवा तुलसीपत्र त्याज्य नहीं है।।६-९।।

तावद्गर्जन्ति पुष्पाणि मालत्यादीनिभोः सुत!। यावन्नप्राप्यतेपुण्यातुलसीममवल्लभा॥१०॥

सकृदभ्यर्चयेद्यो मां बिल्वपत्रेण मानवः। मुक्तिभागी निरातङ्कोममपार्श्वगतोभवेत्॥११॥
बिल्वपत्राच्छमीपत्राज्जातीपत्रात्सरोरुहात्। वल्लभं तुलसीपत्रं कौस्तुभादधिकंमम॥१२॥
अभिन्नपत्रा तुलसी हृद्या मञ्जरिसंयुता। क्षीरोदार्णवसम्भूता पद्मेवेयं सदा मम॥१३॥
अकृष्णाऽप्यथवाकृष्णातुलसीममवल्लभा।
सितावाऽप्यसितावापिद्वादशीवल्लभायथा॥१४॥

हे पुत्र! मेरी प्रिया पवित्र तुलसी जब तक मेरे पास अर्पित नहीं की जाती, तभी तक मालती आदि पुष्प गर्वपूर्वक गर्जन करते अपनी प्रधानता का ज्ञापन करते रहते हैं। जो मानव भक्तिपूर्वक बिल्वपत्र से एक बार भी मेरी पूजा करता है, वह मुक्तिभागी मनुष्य निरातङ्क होकर मेरा पार्षद हो जाता है। बिल्वपत्र, शमीपत्र, जातीपत्र, कमल से भी अधिक तुलसी मुझे प्रिय है। यहां तक कि तुलसी तो कौस्तुभमणि से भी अधिक मुझे प्रिय है। मंजरीयुक्त हृद्या, अखण्डित पत्रों वाली (पत्ते टूटे फटे न हों) तुलसी क्षीराब्धितनया लक्ष्मी की ही तरह मुझे प्रिय है। जैसे शुक्ल तथा कृष्णपक्षों की द्वादशी मुझे प्रिय है, तुलसी चाहे कृष्णा हो अथवा हरितवर्णा हो—दोनों मुझे वैसी ही प्रिय हैं।।१०-१४।।

गृहीत्वा तुलसीपत्रं भक्त्यायो मां समर्चयेत्। अर्चितं तेन सकलं सदेवासुरमानुषम्॥१५॥
तावद्गर्जन्ति रत्नानि कौस्तुभागीन्यनन्तशः। यावन्न प्राप्यते कृष्णतुलसीकृष्णमञ्जरी॥१६॥
कृष्णं कृष्णतुलस्या हियोभक्त्यापूजयेन्नरः। सयातिभुवनंशुभ्रंयत्रविष्णुः श्रिया सह॥१७॥
ममाऽर्चनार्थं भिक्षणां यच्छन्ति तुलसीदलम्।
अन्येषामपि भक्तानां यान्ति ते पदमव्ययम्॥१८॥
तुलसी कृष्णगौरा या तथा यो भां समर्चयेत्।
तरो याति तनुं त्यक्त्वा वैष्णवीं शाश्वतीं गतिम्॥१९॥

जो मानव भक्तिभाव से तुलसीपत्र चयन करके सम्यक्तः मेरी पूजा करता है, उसकी पूजा के प्रभाव से उस मानव की देव-असुरगण भी पूजा करते हैं। जब तक तुलसी की कृष्णमंजरी प्राप्त नहीं होती, तब तक कौस्तुभ आदि अनन्तरत्न अपनी प्रधानता से गर्वित होकर गर्जन करते रहते हैं। जो मानव कृष्ण तुलसी से भक्तिपूर्वक कृष्ण की पूजा करते हैं, वहां लक्ष्मी के साथ हरि निवास करते हैं। पूजक मनुष्य भी उस हरि के शुभभवन में निवास करते हैं। मेरी पूजार्थ प्रार्थी अथवा अन्य मेरे भक्त मानवगण जो मुझे तुलसी प्रदान करते हैं, वे अव्यय पद प्राप्त करते हैं। हे ब्रह्मन्! और भी एक प्रकार की तुलसी है, उसका नाम है कृष्णगौरा। जो इस तुलसी से मेरी सम्यक् पूजा करता है, उसे वैष्णवी गति मिलती है।।१५-१९।।

ब्रह्मोवाच

धूपदानस्य माहात्म्यं दीपस्याऽपि च केशव। यत्फलंलभतेमर्त्यस्तन्मेब्रूहियथार्थतः॥२०॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे केशव! धूप तथा दीपदान करके मानव जो फललाभ करता है, आप उसे यथायथ रूप से कहिये।।२०।।

श्रीभगवानुवाच

शृणु पुत्र! प्रवक्ष्यामि धूपदानस्य यत्फलम्। दीपदास्य माहात्म्यं ममप्रीतिकरंपरम्॥२१॥
अगुरुञ्च सकर्पूरं दिव्यचन्दनसौरभम्। दत्त्वा मां वै सहोमासे कुलानांतारयेच्छतम्॥२२॥
कृष्णागुरुसमुत्थेन धूपेन च ममाऽलयम्। धूपयेद्वैष्णवो यस्तु समुक्तोनरकाऽर्णवात्॥२३॥
माहिषं गुग्गुलंयस्तुआज्ययुक्तंसशर्करम्। धूपं ददाति योवैमांतस्येच्छांप्रददाम्यहम्॥२४॥
गुग्गुलोहन्त्यशेषाणि अरिष्टानिचधूपितः। कामान् नानाविधांश्चैवअगुरुःसम्प्रयच्छति॥२५॥
देहं गेहं पुनात्येव धूपस्त्वगुरुसम्भवः। नाशयेद्यक्षरक्षांसि धूपः सर्जरसोद्भवः॥२६॥

भगवान् कहते हैं—हे पुत्र! यह धूपदान तथा दीपदान मेरे लिये अत्यन्त प्रीतिप्रद है। अब धूपदान एवं दीपदान की महिमा सुनो। मुझे मार्गशीर्ष में दिव्य चन्दन तथा सौरभयुक्त कर्पूर एवं अगुरु प्रदान करने से सैकड़ों पीढ़ी का उद्धार हो जाता है। जो वैष्णव मेरे गृह में कृष्णागुरु समुत्थित धूप प्रज्वलित करते हैं, वे नरक से मुक्त हो जाते हैं। जो मानव हमें माहिष घृतयुक्त तथा शर्करासमन्वित धूपदान करते हैं, मैं उनको अभीष्ट प्रदान करता हूं। गुग्गुलु धूप से धूपित होने पर अशेष रूप से अरिष्ट का हरण होता है। यह अगुरु से उत्पन्न धूप नाना अभिलषित प्रदान करती है तथा धूपदाता के गृह एवं देह को पवित्र कर देती है। यक्ष तथा राक्षसों को सर्जरस की धूप नष्ट कर देती है।।२१-२६।।

जातिपुष्पमथैलाचं गुग्गुलश्च हरीतकी। कूटः सर्जरसश्चैव गुडः सैलाच्छडस्तथा।
नखयुक्तानि चैतानि दशाङ्गो धूप उच्यते॥२७॥
धूपं दशाङ्गं यदि चेत्करोति मासे सहे मे अतिवल्लभे च।
ददामि कामानतिदुर्लभानपि बलञ्च पुष्टिं सुतदारभक्तिम्॥२८॥
मुस्ताधूपे मानुषाणां प्रियत्वं माङ्गल्यकं वश्यकरं गुडस्य।
कुर्यात्सहोमासि ममाऽग्रतो यो विहाय पापानि स मां समाप्नुयात्॥२९॥
न भयं विद्यते तस्यदिव्यभौमान्तरिक्षजम्। ममधूपावशेषेणयस्याऽङ्गंपरिमार्जितम्॥३०॥
न चापद्विद्यते तस्य भवन्तिसम्पदोऽखिलाः। धूपेकृतेसहोमासेममाग्रेश्रद्धयाऽनिशम्॥३१॥
धूपः सुरूपतां धत्ते धूपः पावनमुत्तमम्। वनस्पतिरसो दिव्यः परमः पावनः शुचिः॥३२॥

अब दशाङ्ग धूप के अंगों को कहता हूं। यथा—जातीपुष्प, इलायची, गुग्गुलु, हरीतकी, कूठ, सर्जरस, गुड़, शैल, अच्छड़ एवं वज्रनखी। दशांग धूप के ये दस अंग हैं। मेरे प्रिय मार्गशीर्ष में इस दशांग की धूप देने से मैं अत्यन्त दुर्लभ समस्त अभिलषित बल, पुष्टि, पुत्र, पत्नी तथा भक्ति प्रदान करता हूं। मुस्ता की धूप से मानव को प्रियत्व तथा गुड़ धूप से उसे मंगलमयी वंश श्रेष्ठता की प्राप्ति होती है। जो मानव मार्गशीर्ष मास में मेरे समक्ष इस प्रकार का धूपदान करता है, वह समस्त पापों से रहित होकर मुझे प्राप्त करता है। मेरे उद्देश्य से प्रदत्त धूप के बचे अवशेष से जो व्यक्ति अपने अंग को मार्जित करता है, उसे दिव्य, भौम तथा आन्तरिक्ष भय नहीं रह जाता। जो मानव मार्गशीर्ष मास में सश्रद्ध भाव से मेरे समक्ष निरन्तर धूपदान करता है, उसे कोई आपत्ति त्रस्त नहीं करती तथापि उसे अखिल सम्पत्ति का लाभ होता है। वनस्पति के रस से दिव्य परम पावन धूप निर्मित होती है। यह धूप यथायथ रूप से भगवान् के समक्ष प्रदान करने से वह उत्तम पावनरूप हो जाती है।।२७-३२।।

अतः परं प्रवक्ष्यामि दीपमाहात्म्यमुत्तमम्। यस्मिन्कृते नरोयातिवैकुण्ठंनात्रसंशयः॥३३॥
बहुवर्तिसमायुक्तं घृतपूरसम्वितम्। कुर्यादारार्तिकं यो वै कल्पकोटिं दिवं वसेत्॥३४॥
नीराजनं तु यः पश्येत्सहोमासे ममाऽग्रतः। सप्तजन्म भवेद्विप्रो ह्यन्ते च परमम्पदम्॥३५॥
कर्पूरेण तु यः कुर्याद्भक्त्या चैव ममाग्रतः। आरार्तिकंद्विजश्रेष्ठ! प्रविशेन्मामनन्तकम्॥३६॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं यत्कृतं पूजनं मम। सर्वं सम्पूर्णतामेति कृते नीराजने सुत!॥३७॥
यः करोति सहोमासे कर्पूरेण च दीपकम्। अश्वमेधमवाप्नोति कुलञ्चैव समुद्धरेत्॥३८॥

हे ब्रह्मन्! वह व्यक्ति दीपदान द्वारा वैकुण्ठभवन में जाता है। तत्पश्चात् वह दीपदान माहात्म्य कहता हूं, इस विषय में सन्देह न करें। जो मानव घृतपूरित तथा अनेक वर्त्तियुक्त दीप द्वारा आरती करता है, वह कोटिकल्पकाल पर्यन्त स्वर्ग में स्थित रहता है। मार्गशीर्ष मास में मेरे समक्ष नीराजन दर्शन करने से सात जन्म वह विप्ररूपेण जन्म लेकर अन्त में परमपद लाभ करता है। हे द्विजप्रवर! जो मानव मेरे समक्ष भक्ति के साथ कर्पूर से आरती करता है, वह मेरे अनन्त देह में प्रवेशाधिकार लाभ करता है। हे पुत्र! मेरा नीराजन करने से मन्त्र तथा क्रियाहीन पूजा भी सम्पूर्ण फलप्रद होती है। जो मानव मार्गशीर्षमास में मेरे लिये कर्पूर का दीपदान करता है, उसे अश्वमेध यज्ञफल लाभ होता है। वह सम्यक्तः अपने कुल का उद्धारक हो जाता है।।३३-३८।।

ममाऽग्रे चै द्विजानाञ्च दीपं दद्याच्चतुष्पथे। मेधावी ज्ञानसम्पन्नश्चक्षुष्माञ्जायते नरः॥३९॥
घृतेन वाऽथ तैलेन दीपं प्रज्वालयेन्नरः। सहोमासे ममाऽग्रे च तस्य पुण्यफलं शृणु॥४०॥

जो मनुष्य मेरे तथा द्विजगण के समक्ष किंवा चतुष्पथ पर दीपदान करते हैं, वह मायावी, ज्ञानी तथा चक्षुमान् हो जाता है। जो मानव मार्गशीर्ष पर मेरे समक्ष घृत अथवा तेल द्वारा दीप प्रदान करता है अर्थात् उसे प्रज्वलित करता है, उसका पुण्यफल सुनो।।३९-४०।।

विहाय सकलं पापं सहस्रादित्यसन्निभः। ज्योतिष्मता विमानेन मम लोकेमहीयते॥४१॥
तस्मात्सर्वप्रत्यनेनं दीपं दद्याद्विचक्षणः। तञ्च दत्त्वा विहिंसेद्यः स पतेन्नरके ध्रुवम्॥४२॥
दीपंयोवैहरेत्पापीलोभाद्द्वेषाद्द्विजोत्तम। तद्दीपहरणात्सोऽपिमूकोऽन्धश्चप्रजायते॥४३॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णु-सम्वादे दीपमाहात्म्यवर्णनं नामऽष्टमोऽध्यायः।।८।।

—❖❖❖—
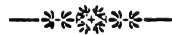
वह व्यक्ति सभी पापों से मुक्त होकर सहस्र आदित्य की कान्ति धारण करता है तथा ज्योतिष्मान् विमान पर आरोहण करके मेरे लोक को प्राप्त करता है। अतः बुद्धिमान् व्यक्ति सर्वप्रयत्नपूर्वक दीपदान करे। किसी के दीपदान करने पर जो व्यक्ति उसके दीप को बुझाता है, वह निश्चित रूप से नरक में पतित हो जाता है। हे द्विजोत्तम! लोभ के कारण जो पापी व्यक्ति दीप का हरण करता है, वह दीपहरण पाप के प्रभाव से मूक तथा अन्धा होकर जन्म लेता है।।४१-४३।।

।।अष्टम अध्याय समाप्त।।

नवमोऽध्यायः

नैवेद्यविधि

ब्रह्मोवाच

नैवेद्यस्य विधिं ब्रूहि देव! मे तत्त्वतः प्रभो!। अन्नं कतिविधञ्चेष्टंव्यञ्जनादीन्यशेषतः॥१॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे प्रभो! कृपया मुझसे यथायथ नैवेद्य विधि का वर्णन करिये। हे देव! अभीष्ट अन्न तथा व्यञ्जन कितने प्रकार का है, यह मैं सुनने की इच्छा करता हूं।।१।।

श्रीभगवानुवाच

साधु पृष्टं त्वया वत्स! ममप्रीतिकरम्परम्। वक्ष्यामितेऽन्नपानादिव्यञ्जनादीन्यशेषतः॥२॥
आदौ हिरण्मयं पात्रंतदभावे च राजतम्। तदभावेच पालाशं विस्तीर्णम्बहुसुन्दरम्॥३॥
कचोलाः शतशः कार्याः पात्रे वैपरितोऽनघ!।
तन्मध्येव्यञ्जनादेयानानाफलमयाःशुभाः ॥४॥
पायसञ्चन्द्रसङ्काशं पात्रे वैशर्करायुतम्। भक्तं कुमुदसङ्काशं मुद्गान्काचप्रभान् ञ्छुभान्॥५॥
नानाव्यञ्जनसंरुद्धंत्रिभिः पङ्क्तिभिरेव च। निम्बूरसेन चन्द्रेण फलमूलयुतेन च॥६॥
वैकृताश्च तदा कार्याः शतशो भोजने मम। द्राक्षास्तु मिश्रिताश्चूतकरमर्दकृताः शुभाः॥७॥
मरीचपिप्पलीसार्द्रकैलाचन्द्रकसंयुताः। क्वथिताः कथिकाःकार्याःशतशोभोजनेमम॥८॥

भगवान् कहते हैं—हे वत्स! तुमने उत्तम प्रश्न किया है। यह मुझे अत्यन्त प्रीतिकर प्रसंग है। अब अन्न, पान, व्यञ्जनादि के सम्बन्ध में विस्तार से श्रवण करो। इसमें पहले नैवेद्य पात्र का वर्णन करता हूं। पहले स्वर्ण, उसके अभाव में चांदी, उसके भी अभाव में अन्य विस्तृत सुन्दर पलाश के पत्ते को ग्रहण करें। हे अनघ! पात्र के चतुर्दिक् शत-शत कटोरी को रखें। इनमें किसी पात्र में नानाविध कलसयुक्त उत्तम व्यञ्जन तथा किसी पात्र में चन्द्रमा के समान शुभ्रवर्ण शर्करायुक्त पायस को रखे। किसी पात्र में कुमुदकान्ति अन्न, किसी पात्र में काञ्चनपूर्ण मूंग, इस प्रकार से पंक्तित्रय में नीबू का रस, कर्पूर तथा फलमूलयुक्त नाना प्रकार के व्यञ्जन रखें। तदनन्तर मेरे भोजनार्थ द्राक्षा-आम्र-करमर्द मिश्रित सैकड़ों वैकृतरस, मरीच, पिप्पली, अदरख, इलायची, कर्पूर, सैकड़ों क्वाथ एवं क्वथिता प्रदान करें।।२-८।।

प्रलेहनास्तथा कार्याःकचोलशतसङ्कुलाः। नानाकुसुमसम्मोदयुक्ताः सहसि मे प्रिया॥९॥
मण्डला वर्तुला रम्याः समाः सर्वत्रबिन्दुवत्। सितयासहितेनाऽथदुग्धेनक्वथितेनच॥१०॥
मधुवर्णेन गव्येन युक्तेतस्मिन्सुभोजने। कचोले सुप्रभे वत्स! स्थितंकाञ्चनसुप्रभम्॥११॥

तदनन्तर सैकड़ों पात्रों में कुसुम से आमोदित प्रलेहन सामग्री रक्षित करें। हे ब्रह्मन्! मार्गशीर्ष मास में इन सब वस्तु को मैं अत्यन्त प्रिय मानता हूं। तदनन्तर शर्करायुक्त दुग्ध अथवा क्वाथ द्वारा वर्तुलाकार मण्डका प्रस्तुत करें। यह मण्डका सर्वत्र समान रम्य तथा विन्दुवत् हो। हे वत्स! यह सामग्री गव्य-घृत से मिलित होने

पर उसका वर्ण मधुर होता है। यह सुभोजन में गण्य होता है तथा कटोरी में रखे जाने पर यह स्वर्ण के समान मनोरम प्रभायुक्त हो जाता है।।९-११।।

घृतं सुवासितं प्रीत्या देयंहि मम भोजने। तत्र गोधूमपात्रेणचन्द्रकेणहिचोज्ज्वलम्॥१२॥
सौबाह्लिकाः पूरिकास्तु शतच्छिद्राः सवेष्टिकाः।
अपूपाश्च तथा क्षीरप्रकारांस्तु प्रकारयेत्॥१३॥

मेरे भोजन में प्रीतिपूर्वक सुवासित घृत प्रदान करें तथा वह भोजन पात्र में गेहूं तथा कर्पूर से समुज्वल हो। उसमें सौवाह्लिक तथा पूरी रहे और उसके बहिर्भाग में शतछिद्र रूप हो। उसमें शर्करा रस अनायास प्रवेश करे। अपूप क्षीर से प्राकारित हो।।१२-१३।।

मणयः सूत्रसञ्ज्ञाश्च मालतीकुसुमादयः। पर्पटा वर्पटारम्या माषकूष्माण्डसम्भवाः॥१४॥
वटकान्नवधा रम्यान्कुर्यान्मासे सहेमम। द्विधा जातामरीचैश्च पूरिता द्रोणकेशुभाः॥१५॥
युक्तेन लवणेनाऽतिशुद्धतैलेन पूरिताः। कुङ्कुमाभाः स्नेहहीनाः सक्षता इव दुर्जनाः॥१६॥
दधिदुग्धयुताः केचिच्चिञ्चिणीचूतसम्भवाः। द्राक्षारसयुताः केचित्तथैवेक्षुरसैर्युताः॥१७॥
राजिका जलमध्यस्थास्तथाऽन्ये सितयासह। रसैश्चतुर्विधैश्चान्यैर्वटकानवधामताः॥१८॥

मालती कुसुम को तथा मणियों को सूत्र में गूंथकर मेरी प्रीति हेतु प्रदान करें। मार्गशीर्ष में मेरे भोजनार्थ माष तथा कूष्माण्ड निर्मित नौ प्रकार के रम्य पर्पट, वर्पट तथा वटकान्न प्रदान करें। तदनन्तर जाती-मरीच पूरित विविध मनोरम दोने तथा लवण युक्त विशुद्ध तैलपूरित स्नेहहीन कुसुमकान्ति अन्यविध द्रोणक प्रदान करें। दुर्जन व्यक्ति जैसे क्षताङ्ग होता है, उसी प्रकार ये द्रोणक भी अनेक छिद्रयुक्त हो। तदनन्तर कतिपय दधि-दुग्धयुक्त, कुछ चिक्किणी तथा आम्र से बनी, अन्य द्राक्षारस से बने अन्य कई ईंख के रस से युक्त द्रोणक प्रदान करें। तदनन्तर राजिका बनाकर उसे कुछ जल में रखें। अन्य कई को शर्करा मिश्रित कर देना चाहिये। तदनन्तर नौ प्रकार के वटक प्रदान करें।।१४-१८।।

वज्रप्रभाऽनुकणिकाचारबीजसुखारिकैः। शकलैर्नारिकेलस्य लवङ्गशतसंयुताः॥१९॥
घृतक्षीरसिताद्यास्ताः कटाहे सुप्रलोडिताः। लब्धासितादिकृसररम्यास्निग्धाश्चफेणिकाः॥२०॥

ये सभी वटक (पात्र-कटोरी) चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय, रूप चतुर्विध रसयुक्त हों। यहां तदनन्तर हीरक खण्ड के समान प्रभायुक्त कण परिमाण करके नारिकेल खण्डों को शत लवंगयुत करके उसे कड़ाही में छोड़कर घृत-क्षीर-शर्करादि मिलाकर जब शर्करादि सब मिश्रित हो जाये, तब उसकी कणिका बनाये।।१९-२०।।

पराकिकासु वै पक्काः कृताश्चन्द्रेणपोलिकाः। मोदकास्तत्रवैकार्याश्चारबीजभवाःपरे॥२१॥
सितयासहिताःकार्याअन्येदुग्धेननिर्मिताः। नारिकेलफलैश्चाऽन्येवृक्षनिर्यासनिर्मिताः॥२२॥
बदामैश्चशुभाश्चाऽन्येतिलैश्चकणबीजकैः। ईदृशान्मोदकांश्चान्यांस्तुष्ट्यर्थंममकारयेत्॥२३॥
अर्शोघ्नं मोचनीकन्दं तथाऽऽर्दंकरमर्दकम्। नारिङ्गं चिञ्चिणीकञ्चकङ्कोलफलमेवच॥२४॥
दशारं त्रिपुरीजातं शुभं निम्बूफलं बिसम्। तिन्दूफलं लवङ्गञ्च श्रीफलं तिलकंलुति॥२५॥

वल्कलं वंशकारीरं यथा कायफलं बलम्। द्राक्षाफलंचूतफलंरम्यंकण्टकिनीफलम्॥२६॥
धात्रीफलं शुक्तिभवं फलमम्बाभवं तथा। रम्भाफलं पिप्पली च मरीचाश्च मनोहराः॥२७॥
शुद्धसर्षपतैलेन लवणेन सुवेधितम्। तथा राजिकया विद्धं त्रिभिर्वर्षैर्घटे स्थितम्॥२८॥

इस नारिकेल खण्डों को पक्व करके उसके सहित कर्पूर मिलाकर पोलिका बनाये। मेरी भोज्य वस्तु में कुछ मोदक भी देना चाहिये। इन मोदकों में कोई "चार बीज" (?) युक्त हों, कुछ शर्करा (मिश्री) युक्त हों, कुछ दुग्ध निर्मित हों, कुछ नारियल तथा वृक्ष के गोंदों से निर्मित हों। अन्त उत्तम बादाम, तिल तथा कणबीज से बनायें। हे ब्रह्मन्! मेरे लिये ऐसे मोदक प्रदान करें। हे मानद! अब अन्य कुछ व्यञ्जनों को कहता हूं। अर्शोघ्नफल, मोचनीकन्द, अदरख, करमर्द, चिञ्चिणी, कंकोल, दशार, त्रिपुटी जात शुभ-निम्बूफल, नारंगी, विस, तिन्दुक, लवंग, श्रीफल, तिलक, लूति, वल्कल, वंशकरीर, कायफल, बल, द्राक्षा, आम्र, रम्य, कण्टकिनी, धात्री, शुक्तिभव, अम्बाभव, रम्भा, पिप्पली, मनोहर मरीच को शुद्ध तैल तथा लवण किंवा राजिका से उत्तम रूप से वेधित करके एक घट में तीन वर्ष स्थापित करें।।२१-२८।।

एवम्विधानि जातानि व्यञ्जनानि च मानद!। कर्तव्यानिसहोमासेममप्रीतिकराणिवै॥२९॥
एतादृशे भोजने चेदसामर्थ्यं भवेद्यदि। एवं कार्यं तदा तेन सङ्क्षेपेण शृणुष्व मे॥३०॥

लड्डूकमेकं घृतपूरमेकं फेनद्वयं कोकरसत्रयञ्च।
घृतप्लुतं मण्डकषोडशानां वटाष्टदायी नरकं न पश्येत्॥३१॥
अर्द्धाढकं सुचिरपर्युषितञ्च दुग्धं खण्डस्य षोडशपलानि शशिप्रभस्य।
सर्पिष्पलं मधुफलं मरिचं द्विकर्षं शुण्ठ्याःपलार्धमथवाऽर्धपलं चतुर्णाम्॥३२॥
श्लक्ष्णे पटे ललनया मृदुपाणिवृष्टां कर्पूरधूलिधवलीकृतभाण्डसंस्थाम्।
एतां शुभां रसतीं प्रकरोति यो वै कामान्ददामि सकलान्मनुजस्य तस्य॥३३॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसम्वादे नैवेद्यविधिकथनंनाम नवमोऽध्यायः।।९।।

तदनन्तर तीन वर्ष बीत जाने पर वह मुझे प्रदान करें। हे ब्रह्मन्! इस प्रकार का व्यञ्जन बनाकर मुझे मार्गशीर्ष मास में दान करना मेरे लिये प्रीतिपद होता है। हे ब्रह्मन्! यदि कोई मेरे इस भोजन दान को न कर सके तब संक्षेप में उसका कर्त्तव्य कहता हूं। जो मानव पूर्वोक्त रूप से मुझे भोजन प्रदान करने में असमर्थ होकर मुझे एक लड्डू, एक घृतपूरक, दो फेन, तीन कोकरस, षोडश घृत से आप्लुत मण्डक तथा आठ वटक प्रदान करता है, वह नरक नहीं जाता। पवित्र मनुष्य अर्द्ध आढ़क मात्रा में ताजा दुग्ध, चन्द्रमा के समान निर्मल षोडश पलगुड़, एकपल घृत, एकपल मधु, दो कर्ष मरिच, आधा पल सौंठ अथवा चतुर्जातक आधा-आधा पल लेकर रमणी के कोमल हाथों से पिसवा कर तथा मनोहर वस्त्र से कर्पूर के समान निर्मल भाण्ड में रखकर प्रदान करें। हे ब्रह्मन्! जो मानव मेरे लिये ऐसी रसपूर्ण भोज्य वस्तु प्रस्तुत करता हूं, मैं उसकी सभी कामना पूरी करता हूं।।२९-३३।।

।।नवम अध्याय समाप्त।।

दशमोऽध्यायः

पूजाविधि समापन, उद्यापन, उसके फलों का वर्णन

ब्रह्मोवाच

नैवेद्यानन्तरं तात! किंकर्तव्यं नृभिः प्रभो!। यत्कर्तव्यं सहोमासेतत्सर्वं ब्रूहितत्त्वतः॥१॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे तात! नैवेद्य प्रदानोपरान्त मनुष्य क्या करे? हे प्रभो! मार्गशीर्ष में मानव के इसके पश्चात् के कर्म को कहिये।।१।।

श्रीभगवानुवाच

अथ भुक्तवते दत्त्वा जलैः कर्पूरवासितैः। आचमनञ्च ताम्बूलं चन्दनं करमार्जनम्॥२॥
पुष्पाञ्जलिं ततः कुर्याद्भक्त्याऽऽदर्शं प्रदर्शयेत्। नीराजनंततः कार्यं कार्पूरंविभवे सति॥३॥
समर्प्य मुकुटादीनि भूषणानि विचक्षणः। ततः पश्चान्महाभाग! प्रकल्प्यच्छत्रचामरे॥४॥
प्रसादसुमुखं ध्यात्वा श्यामसुन्दरविग्रहम्। जपेदष्टोत्तरशतं स्तुवीतस्तुतिभिःप्रभुम्॥५॥
शङ्खरौप्यमयी माला काञ्चनी च विशेषतः। पद्माक्षैश्चैव सुभगैर्विद्रुमैर्मणिमौक्तिकैः॥६॥
रचितेन्द्राक्षकैर्माला तथैवाङ्गुलिपर्वभिः। पुत्रजीवमयी माला शस्ता वै जपकर्मणि॥७॥

श्रीभगवान् कहते हैं—तदनन्तर मेरा भोजन सम्पन्न होने पर आचमनार्थ कर्पूरजल, मुखशुद्धि के लिये ताम्बूल तथा करमर्दनार्थ चन्दन प्रदान करें। तत्पश्चात् भक्ति के साथ पुष्पाञ्जलिदान, दर्पण प्रदर्शन तथा नीराजन करें। हे पुत्र! यदि धन हो तब मनुष्य यह नीराजन कर्पूर से करे। हे महाभाग! तदनन्तर विचक्षण मनुष्य मुकुट आदि भूषण, छत्र, चामर अर्पित करके प्रीति-प्रसन्नमुख होकर श्यामसुन्दर शरीरधारी प्रभु का ध्यान, १०८ जप तथा विविध स्तुति से भगवान् का स्तव करें। शंख, चांदी की, कांचनमयी अथवा सुन्दर कमलगट्टे, वैदूर्य, मणि, मुक्ता अथवा इन्द्राक्ष की माला से जप कार्य करना चाहिये। यह जप अंगुलिपर्व से भी करते हैं। जपकर्मार्थ पुत्रजीव की माला प्रशस्त मानी गयी है।।२-७।।

न च क्रमन्न च हसन्न पार्श्वमवलोकयन्। न पदा पदमाक्राम्य करप्राप्तशिरास्तथा॥८॥
नोत्तिष्ठन्मन्मनुं विद्वान्नं जपेद्व्यग्रमानसः। जपकाले न भाषेत व्रतहोमार्चनादिषु॥९॥

विद्वान् मनुष्य को जपकाल में हंसना, अगल-बगल देखना, एक पैर से दूसरे पैर को दबाना, मस्तक पर हाथ रखना, उठना अथवा झुकना नहीं चाहिये। एकाग्रता पूर्वक जप करना चाहिये। जप, व्रत, होम, अर्चना के समय किसी के साथ वार्त्ता न करे।।८-९।।

गृहेष्वेकगुणं जाप्यं गोष्ठे दशगुणं भवेत्। नदीतीरे शतं विद्यादग्न्यगारेदशाऽधिकम्॥१०॥
तीर्थादिषु सहस्रं स्यादनन्तं ममसन्निधौ। एवंकृत्वासहोमासेयःकुर्याच्चप्रदक्षिणाम्॥११॥
सप्तद्वीपवतीपुण्यं लभते स पदेपदे। पठन्नामसहस्रं तु अथवा नाम केवलम्॥१२॥
एका प्रदक्षिणा भक्त्या दहेत्पापंसदाऽऽह्निकम्। प्रदक्षिणीकृतातेनसप्तद्वीपावसुन्धरा॥१३॥

दिनसप्तोद्भवं पापं मम तिस्रः प्रदक्षिणाः। तत्क्षणान्नाशयन्त्येव पापंदेहेदशाऽऽह्निकम्॥१४॥
कृताःप्रदक्षिणायेनएकविंशति भक्तितः। भ्रूणहत्यादिपापानिनाशमायान्तितत्क्षणात्॥१५॥
अष्टोत्तरशतं येन कृता भक्त्या प्रदक्षिणाः। तेनेष्टं क्रतुभिः सर्वैः समाप्तवरदक्षिणैः॥१६॥
प्रदक्षिणीकृता तेन तावद्वारं वसुन्धरा। मातुः प्रदक्षिणास्तद्वद्भूतधात्रीप्रदक्षिणाः॥१७॥
शालग्रामशिलायाश्च सममेतत्त्रयं स्मृतम्। एको दण्डप्रपातश्च सहे सप्तप्रदक्षिणाः॥१८॥

यहां स्थान भेदानुसार जपसंख्या का निरूपण करता हूं। गृह में जप करने से एक गुना, गोष्ठ में जप का फल दस गुना, नदी तीर पर जप करने का फल सौ गुना, यज्ञगृह में उससे दश गुना फल मिलता है। तीर्थादि में जप का फल सहस्रगुणा होता है, लेकिन मेरे सान्निध्य में जपसंख्या का परिमाण नहीं है (फल का अन्त नहीं है)। मार्गशीर्ष मास में जो मनुष्य इस प्रकार से मेरी प्रदक्षिणा करता है, उसे कदम-कदम पर पृथिवी दान का फल प्राप्त होता है। मेरे सहस्रनाम किंवा एक नाम का उच्चारण करके एक बार ही प्रदक्षिणा करने पर उसके दिनगत पाप क्षयीभूत हो जाते हैं तथा सप्तद्वीपा पृथिवी प्रदक्षिणा का फल उसे प्राप्त होता है। मेरी तीन बार प्रदक्षिणा करने पर सात दिन के संचित पाप तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं। जो मानव भक्तिपूर्वक इक्कीस प्रदक्षिणा करता है, मुहूर्त्तमात्र में उसके दस दिनों के संचित पाप, भ्रूणहत्यादि समस्त संचित पाप भस्मीभूत हो जाते हैं। जो व्यक्ति भक्तियुक्त होकर १०८ परिक्रमा करता है, वह मानो प्रचुर दक्षिणा सम्पन्न यज्ञों द्वारा मेरी ही पूजा कर रहा है। उसे सर्वयज्ञफललाभ होता है। उसे १०८ बार पृथिवी प्रदक्षिणा का फल मिलना निश्चित है। माता-पृथिवी तथा शालग्राम, इनकी प्रदक्षिणा का समान फल है। जो मानव मार्गशीर्ष में शालग्राम के समक्ष दण्डवत् प्रणाम करता है, उसे माता-पृथिवी तथा शालिग्राम की सात प्रदक्षिणा का फललाभ होता है।।१०-१८।।

सममेतद्द्वयं नोवा दण्डपातो विशिष्यते। प्रदक्षिणे दण्डपातं यः करोति सदामम॥१९॥
सहोमासे विशेषेण आकल्पं स वसेद्दिवि। कल्पादनन्तरं तात चक्रवर्ती प्रजायते॥२०॥

हे तात! दण्डपात (दण्डवत्) तथा प्रदक्षिणा का तुल्य (समान) फल न होने पर भी दण्डवत् की एक विशेषता है। जो मानव प्रदक्षिणा करते-करते बारम्बार दण्डवत् प्रणत होता है, विशेषतः मार्गशीर्ष में दण्डवत् होता है, वह कल्पान्त तक स्वर्ग में निवास करता है। कल्पावसान होने पर वह चक्रवर्त्ती राजा होकर जन्म लेता है।।१९-२०।।

चिरायुर्धनवान्भोगी दानवान्धर्मवत्सलः। सहस्रनामपठनात्पापं नश्येत्त्रिधा कृतम्॥२१॥
अथ किं बहुनोक्तेन शृणु गुह्यञ्च मे सुत!। दामोदरेति नाम्नावै भवेत्प्रीतिर्ममाऽतुला॥२२॥
गुणसम्बन्धि मन्नाम कृतंमात्रा यशोदया। यदामेदधिभाण्डस्यस्फोटनंगोकुलेकृतम्॥२३॥
तदा यशोदया गाढसम्बद्धो दाम्ना ह्युलूखले। ततः प्राभृति मे नाम ख्यातं दामोदरेतिच॥२४॥

प्रदक्षिणाकाल में मेरा सहस्रनाम पाठ करने से शरीर-मन तथा वाक्कृत त्रिविध तापों का नाश होता है। वह मानव चिरायु, धनी, भोगी, दाता, धर्मवत्सल होता है। हे पुत्र! अब अधिक क्या कहूं? मेरी एक गुप्त बात सुनों। मेरे दामोदर नाम का जो उच्चारण करता है, उस पर मैं अतुल्य रूप से सन्तुष्ट होता हूं। जननी यशोदा

मेरी यही गुणयुक्त नाम लेती थीं। हे पुत्र! जब मैं गोकुल में दधि पात्र को तोड़ देता था, तब जननी यशोदा दाम (रज्जु) से मुझे बांध देती थीं। तभी से मेरा नाम दामोदर पड़ा।।२१-२४।।

नमो दामोदरायेति जपेद्यः सुसमाहितः। सूर्योदये शुचिभूत्वा त्रिसहस्त्रं दिनेदिने।।२५।।
सार्द्धलक्षत्रयं यावत्तत उद्यापयेद्बुधः। तर्पणं हवनं चैव ब्रह्मभोज्यं दशांशतः।।२६।।
एवं यः कुरुते भक्त्या तस्य यच्छामि वाञ्छितम्।
धनं धान्यं तथा दारान्पुत्रांश्चाऽन्यच्च वाञ्छितम्।।२७।।
त्रिसत्येन मया चोक्तं श्रद्धत्स्व त्वं महामते!। मन्त्रराजमिमम्पुत्रकृपयामेप्रकाशितम्।।२८।।
दामोदरायेति पठन्नित्यं कुर्यात्प्रदक्षिणम्। दण्डपातं तथा पुत्र! अष्टाङ्गेनसमन्वितम्।।२९।।

जो बुद्धिमान भक्तियुक्त समाहित मन से सूर्योदय काल में पवित्र होकर ''नमो दामोदराय'' मन्त्र का नित्य तीन हजार जप करता है तथा साढ़े तीन लाख जप पूर्ण हो जाने पर दशांश क्रम से हवन, तर्पण, अभिषेक, ब्राह्मण भोजन कराता है, मैं उसे वांछित फल प्रदान करता हूं। वह धन, धान्य, पुत्र, पत्नी तथा अन्य जो कुछ कामना करता है, मैं उसे वह सब कुछ प्रदान करता हूं। हे महामति! मैं सत्य कहता हूं, सत्य कहता हूं, सत्य कहता हूं कि यह अन्यथा नहीं है। इसलिये मेरे वाक्य के प्रति सश्रद्ध हों। हे पुत्र! मैंने कृपा करके ही ''दामोदराय'' मन्त्र को प्रकाशित किया है। यह मन्त्र पढ़ते हुये सतत् मेरी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। हे पुत्र! अष्टाङ्ग समन्वित दण्डवत् (साष्टांग दण्डवत्) करे।।२५-२९।।

पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसा तथा।
मनसा वचसा दृष्ट्या प्रणामोऽष्टाङ्ग उच्यते।।३०।।
शिरोमत्पादयोःकृत्वाबाहुभ्याञ्चपरस्परम्। प्रपन्नं पाहिमामीशभीतंमृत्युग्रहाऽर्णवात्।।३१।।
पश्चाच्छेषां मया दत्तां शिरस्याधाय सादरम्। एवं ब्रूयात्ततो वत्स! ममपूजाप्रपूर्त्तये।।३२।।
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन!। यत्पूजितंमयादेव! परिपूर्णं यदस्तु मे।।३३।।
मृदङ्गवाद्येन समं प्रणवेन सुसंयुतम्। एवं कार्यं सहोमासे नृत्यं पुण्यप्रदं नृणाम्।।३४।।

यहां दण्डवत् का विधान कहता हूं। पदद्वय, करद्वय, जानुद्वय, वक्ष, मस्तक, मन, वाक्य, दृष्टि से जो प्रणाम है, वही साष्टाङ्ग प्रणाम है। प्रणाम काल में मेरे चरणकमल मस्तक पर विन्यस्त करना चाहिये। तब हाथ जोड़कर यह मन्त्र कहें—''हे ईश्वर! मुझ पर प्रसन्न हों। मैं मृत्युरूपी ग्राह से भरे समुद्र में भयभीत हो रहा हूं। मेरी रक्षा करें।'' हे वत्स! तदनन्तर पूजा में बचे उच्छिष्ट को ग्रहण करके मस्तक पर लगाये तथा पूजा की पूर्णतार्थ यह प्रार्थना करे—''हे जनार्दन! मन्त्र-क्रिया तथा भक्तिरहित भाव से मैं पूजा कर रहा हूं। हे देव! मेरी यह पूजा पूर्ण हो।'' तदनन्तर मृदङ्ग वाद्य के साथ प्रणव उच्चारण के साथ नृत्य भी करना चाहिये। मार्गशीर्ष मास में इस प्रकार का नृत्य मानव के लिये पुण्यदायक है।।३०-३४।।

गीतं वाद्यञ्च नृत्यञ्च तथापुस्तकवाचनम्। पूजाकाले चतुर्वक्त्र! सर्वदा ममच प्रियम्।।३५।।
गीतवाद्याद्यभावे च ममनामसहस्त्रकम्। स्तवराजं तथा पुत्र! गजेन्द्रस्यच मोक्षणम्।।३६।।
अनुस्मृतिश्च गीता च स्तवनं पञ्चधा मतम्। पञ्चस्तवं महाभाग! ममप्रीतिकरंपरम्।।३७।।

पादोदकम्पिबेद्योवै शालग्रामसमुद्भवम्। पञ्चगव्यसहस्त्रैस्तुप्राशितैः किम्प्रयोजनम्।।३८।।

शालग्रामशिलातोयंयः पिबेद्बिन्दुनासमम्।
मातुःस्तन्यं पुनर्नैवसपिबेन्मुक्तिभाङ्नरः।।३९।।

अशौचंनैव विद्येत सूतके मृतकेऽपि च। येषां पादोदकं मूर्ध्नि प्राशनं ये प्रकुर्वते।।४०।।

हे चतुरानन! पूजाकाल में गीत, वाद्य, नृत्य तथा पुस्तक पाठ मुझे प्रिय है। हे पुत्र! यह सब गीतवाद्य न हों, तब मेरे सहस्त्रनाम का कीर्त्तन किंवा स्तवराज गजेन्द्रमोक्षण का विवरण पढ़े। हे महाभाग! स्मरण-कीर्त्तनादि भेद से स्तव पंचविध होता है। यह पंचविध स्तव मुझे परम प्रसन्न करता है। जो मानव शालग्राम शिला का पादोदक पान करते हैं, उनको अब पञ्चगव्य पान की क्या आवश्यकता? जो मनुष्य एक बूंद भी शालग्राम शिला का जल पीता है, वह मनुष्य मुक्तिभागी होता है। उसे कदापि मातृस्तनपान नहीं करना पड़ता। जो विष्णु का पादोदक पीते हैं, किंवा मस्तक पर धारण करते हैं, उसे जननाशौच, मरणाशौच आदि कोई अशौच नहीं होता।।३५-४०।।

अन्तकालेऽपि यस्येदं दीयते पादयोर्जलम्।
सोऽपि सद्गतिमाप्नोति सदाचारबहिष्कृतः।।४१।।

अपेयं पिबते यस्तु भुङ्क्ते यद्याप्यभोजनम्। अगम्यागमनो योवैपापाचारश्च यो नरः।।४२।।

सोऽपि पूतो भवत्याशु सद्यः पादाम्बुधारणात्।
चान्द्रायणात्पादकृच्छ्रादधिकम्पादयोर्जलम् ।।४३।।

अगुरुं कुङ्कुमं वाऽपि कर्पूरञ्चाऽनुलेपनम्। ममपादाम्बुसंस्पृष्टं तद्वै पावनपावनम्।।४४।।

दृष्टिपूतन्तु यत्तोयम्भवेद्वै विप्रसत्तम!। तद्वैपापहरं नृणां किम्पुनः पादयोर्जलम्।।४५।।

प्रियस्त्वं मेऽग्रजः पुत्रोविशेषेण च मत्प्रियः। तदर्थंकथितंसर्वंरहस्यंयच्चमेस्थितम्।।४६।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसम्वादे पूजाविधिसमापनन्तदुद्यापनन्तत्फलकथनयोगो नाम दशमोऽध्यायः।।१०।।

—❊❊❊—

यदि किसी असदाचारी को भी मरणकाल में विष्णु पादोदक प्रदान किया जाये, तब उसकी सद्गति हो जाती है। जो व्यक्ति अपेयपान, अभोज्य भोजन, अगम्यागमन करता है, ऐसा पापाचारी व्यक्ति भी पादोदक पान करके सद्यः पवित्र हो जाता है। हे वत्स! चान्द्रायण तथा पापकृच्छ्र व्रत से भी पादोदक श्रेष्ठ है। मेरे पादोदक के स्पर्श वाले अगुरु, कुंकुम, कर्पूर तथा अनुलेपन पवित्र से भी पवित्रतम हैं। हे विप्रप्रवर! मेरी दृष्टि से पवित्र हुआ जल भी सबके लिये सर्वपापहारी है। पादोदक का और क्या वर्णन करूं? हे वत्स! आप मेरे बड़े पुत्र हैं। विशेषतः प्रिय हैं। मेरा जो रहस्य था, वह मैंने आपकी प्रार्थना से कह दिया।।४१-४६।।

।।दशम अध्याय समाप्त।।

एकादशोऽध्यायः

एकादशी माहात्म्य, भरद्वाज-राजा संवाद, राजा का पूर्वजन्म वर्णन

ब्रह्मोवाच

एकादश्याश्च माहात्म्यं मूर्तीनाञ्च विधानकम्। सर्वंब्रूहिममस्वामिन्कृपयाभूतभावन॥१॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे भूतभावन! हे स्वामी! एकादशी की महिमा, मूर्त्तियों का विधान कहिये।।१।।

श्रीभगवानुवाच

श्रृणुष्वद्विजशार्दूल! कथांपापप्रणाशिनीम्। यांश्रुत्वायातिविलयंपापंब्रह्मवधादिकम्॥२॥
काम्पिल्ये नगरे राजा वीरबाहुरिति स्मृतः। सत्यवादी जितक्रोधोब्रह्मज्ञोममतत्परः॥३॥
भाववान्स दयाशीलो रूपवान्बलवान्नरः। भक्तो भागवतानाञ्च सदा मम कथारुचिः॥४॥
सदा मम कथाऽऽसक्तः सदा जागरणप्रियः।
दाता विद्वान्क्षमाशीलो विक्रमी विजितेन्द्रियः॥५॥
विजयी रणशीलश्च श्रद्धया च धनदोपमः। पुत्रवान्पशुमांश्चैव स्वदारनिरतस्तथा॥६॥
तस्य भार्या कान्तिमतीरूपेणाऽप्रतिमाभुवि। पतिव्रतामहासाध्वीममभक्तिरतासदा॥७॥
तया सह विशालाक्षो बुभुजे मेदिनींयुवा। मुक्तवैकंमांमहाबाहो नान्यज्जानातिदैवतम्॥८॥
एकस्मिन्दिवसे पुत्र! भारद्वाजो महामुनिः। समागतो गृहे तस्य वीरबाहोर्महात्मनः॥९॥
दृष्ट्वा समागतं दूराद्भारद्वाजं महामुनिम्। स्वागतं कारयामास दत्त्वार्घ्यं विधिवत्तदा॥१०॥
आसनं कल्पयामास स्वयमेव महीपतिः। प्रणम्य परमा भक्त्या तस्थौ मुनिवराग्रतः॥११॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे द्विजशार्दूल! यह पापनाशिनी कथा श्रवण करो। इसे सुनने मात्र से मानव के ब्रह्महत्यादि पाप विलीन हो जाते हैं। काम्पिल्य देश में एक राजा थे। उनका नाम था वीरबाहु। वे सत्यवादी, अक्रोधी, ब्रह्मज्ञ, मेरे भक्त, भाववान्, दयाशील, रूपवान् तथा बली थे। वे भागवतगण के भक्त तथा मेरे प्रति तत्पर रहते थे। वे नित्य जागरण प्रिय थे। वे दाता, विद्वान्, क्षमाशील, विक्रमी, जितेन्द्रिय, विजयी, रूपवान्, धन में कुबेर के तुल्य, पशुओं के स्वामी, पुत्रवान् तथा अपनी पत्नी में ही निरत रहने वाले थे। उनकी पत्नी कान्तिमती अत्यन्त रूपवती थी। पृथिवी पर उस समय उसका रूप अतुलनीय था। वीरबाहु पतिव्रता पत्नी के साथ पृथिवी का राज्यभोग करता था। हे महाबाहु! वीरबाहु मेरे अतिरिक्त किसी भी देवता को नहीं जानता था। हे पुत्र! एक समय महामुनि भारद्वाज महात्मा वीरबाहु के गृह में आये थे। राजा ने दूर से आये महर्षि भारद्वाज को आया देखकर उनको यथाविधि अर्घ्य प्रदान किया तथा राजा ने स्वंयं अतीव भक्तिपूर्वक बैठने के लिये आसन दिया तथा उनको प्रणाम करके उनके समक्ष बैठ गये।।२-११।।

राजोवाच

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं दिनम्। अद्यमे सफलं राज्यमद्य मे सफलं गृहम्॥१२॥
प्रसन्नोममविप्रर्षे परमात्मा जनार्दनः। यत्त्वं समागतो ह्यद्यगृहे योगिवरस्तथा॥१३॥
मुक्तोऽहं पापकोट्याऽद्य यत्त्वयाऽहं निरीक्षितः।
राज्यं लक्ष्मीर्गजाऽश्वाश्च मया तुभ्यं निवेदिताः॥१४॥
वैष्णवोऽसि मुनिश्रेष्ठ! नास्त्यदेयं मया तव। मेरुतुल्यंभवेत्सर्वंवैष्णवस्यवाराटिका॥१५॥

तब राजा ने महर्षि से कहा—"हे विप्रर्षि! आपके आगमन के कारण मेरा जन्म, दिन, राज्य, गृह आदि सभी सफल हो गया। परमात्मा जनार्दन मुझ पर प्रसन्न हे गये। योगीप्रवर! आपने मेरे गृह में आकर मुझे दर्शन दिया तथा मुझे देखा अतः मैं आज करोड़ों पातकों से मुक्त हो गया। हे मुनिप्रवर! आप वैष्णव हैं। अतः आपके लिये कुछ भी अदेय नहीं है। मैंने यह राज्य, लक्ष्मी, गज, अश्व, सभी आपको निवेदित कर दिया। वैष्णव को प्रदान किया गया अत्यल्प दान भी मेरुतुल्य कहा जाता है।"।।१२-१५।।

नाऽऽयाति हि गृहेयस्यवैष्णवो वैद्विजोत्तमः। तद्दिनंविफलं तस्यकथतंब्राह्मणैर्मम॥१६॥
विष्णुभक्ताश्च ये केचित्सर्वे वर्णाद्विजातयः। कथितं ममगार्ग्येणगौतमेनसुमन्तुना॥१७॥
ये त्वभक्ता हृषीकेशे पिशाचास्ते हि मानवाः। महापातकलिप्तास्तेयेभुञ्जन्तिरहरेर्दिने॥१८॥
शिवव्रतसहस्त्रैस्तु सौरैर्ब्राह्मैश्च कोटिभिः। यत्फलं कविभिः प्रोक्तंवासरैकेनतद्धरेः॥१९॥
गर्वमुद्वहतेतावत्तिथिर्ब्राह्मीच शाङ्करी। यावन्नायाति विप्रेन्द्र द्वादशी च मम प्रिया॥२०॥
तावत्प्रभावस्ताराणां यावन्नोदयते शशी। तिथिस्तथाचविप्रेन्द्र यावन्नायातिद्वादशी॥२१॥
नारदेन पुराप्रोक्तं वसिष्ठेन ममाऽग्रतः। त्वं वेत्ता सर्वधर्माणां वैष्णवानांमहामुने!॥२२॥

"ब्राह्मणों ने मुझसे कहा है कि द्विजोत्तम वैष्णव जिस दिन घर नहीं आते, वह दिन विफल है। विष्णुभक्त मानव चाहे जिस जाति के हों, वे द्विज हैं। यह बात गार्ग्य, गौतम तथा सुमन्तु ने मुझसे कहा है। जो हृषिकेश के प्रति भक्तिरहित हैं, वे सभी मानव पिशाच ही हैं। जो हरिवासर (एकादशी) के दिन भोजन करते हैं, वे महान् पातकी कहे गये हैं। ऋषियों का कथन है कि सहस्त्र शिवव्रत तथा कोटि ब्राह्म एवं सौरव्रत का जो फल है, वह एक दिन एकमात्र हरिवासर व्रत से प्राप्त हो जाता है। हे विप्रेन्द्र! जब तक मेरी द्वादशी तिथि नहीं आती, तब तक शांकरी एवं ब्राह्मी तिथियां गर्व करती हैं। हे विप्रेन्द्र! जैसे चन्द्रमा का उदय न होने तक ताराओं का प्रभाव रहता है, वैसे ही जब तक द्वादशी का आगमन नहीं होता, तभी तक अन्य तिथियों का प्रभाव रहता है। यह बात सर्वप्रथम नारद द्वारा वसिष्ठ से कही गयी थी। मुझे यह वसिष्ठ से ज्ञात हुआ। हे महर्षिप्रवर! आपको तो समस्त वैष्णव धर्म ज्ञात है!।।१६-२२।।

भारद्वाज उवाच

साधुपृष्टं महाभाग! यत्त्वंभक्तोऽसि वैष्णवः। सासुप्रजामहीधन्यायत्त्वंरक्षसिभूमिप!॥२३॥
तस्मिन्राष्ट्रे न वस्तव्यं यत्र राजा न वैष्णवः। वरं वासो वनेतीर्थेनतुराष्ट्रेत्ववैष्णवे॥२४॥

यत्रभागवतोराजासम्प्रशास्तिचमेदिनीम्। वैकुण्ठमितिमन्तव्यंतद्राष्ट्रम्पापवर्जितम्॥२५॥

भारद्वाज कहते हैं—हे महाभाग! तुम भक्त वैष्णव हो। अतः तुमने यह साधु वाक्य कहा है। हे राजन्! तुम जिस पृथिवी की रक्षा कर रहे हो, वह धरा भी धन्य तथा सुप्रजायुक्त है। देखो! जिस राज्य के राजा वैष्णव नहीं है, उस राज्य में निवास करना विहित नहीं है। जहां भागवत राजा पृथिवी का शासन करते हैं, वहां का राज्य पाप वर्जित होता है। मैं उसे वैकुण्ठ ही मानता हूं।।२३-२५।।

चक्षुर्हीनं यथा देहं पतिहीना यथा स्त्रियः। द्वादशी दशमीयुक्तातथा राष्ट्रमवैष्णवम्॥२६॥
यथा पुत्रो महीपाल मातापित्रोरपोषकः। द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम्॥२७॥
दानहीनो यथा राजा ब्राह्मणो रसविक्रयी। द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम्॥२८॥
दन्तहीनो यथा हस्ती पक्षहीनो यथा खगः। द्वादशी दशमीयुक्तातथाराष्ट्रमवैष्णवम्॥२९॥

जैसे नेत्ररहित पद, पतिहीना रमणी तथा दशमीयुक्त द्वादशी व्यर्थ है, उसी प्रकार अवैष्णव राष्ट्र भी है। हे राजन्! जैसे पिता-माता के पालन से विमुख पुत्र तथा दशमीयुक्त द्वादशी होती है, वैसे ही वैष्णवरहित राष्ट्र होता है। जैसे दानहीन राजा, रस बेचने वाला विप्र तथा दशमीयुक्त द्वादशी सम्मत नहीं है, तद्रूप अवैष्णवराष्ट्र भी लोकसम्मत नहीं होता। जैसे बिना दांत का हाथी, पंखरहित पक्षी, दशमीयुक्त द्वादशी होती है, उसी प्रकार से वैष्णव रहित राष्ट्र भी है।।२६-२९।।

प्रतिग्रहार्थं वेदादि द्रव्यार्थं सुकृतं यथा। द्वादशी दशमी युक्तातथाराष्ट्रमवैष्णवम्॥३०॥
दर्भहीना यथा सन्ध्या यथा श्राद्धमदक्षिणम्। द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम्॥३१॥

जैसे प्रतिग्रह पाने हेतु वेदाध्ययन, द्रव्यसंग्रहार्थ सुकृतसंचय तथा दशमीयुक्त द्वादशी—यह सब मानव समाज में निन्दनीय है, तदनुरूप अवैष्णव राष्ट्र भी निन्दित है। जैसे कुशरहित सन्ध्या, बिना दक्षिणा श्राद्ध तथा दशमीयुक्त द्वादशी होती है, वैष्णवरहित राष्ट्र भी तद्रूप है।।३०-३१।।

सशिखश्च यथा शूद्रः कपिलाक्षीरपायकः। द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम्॥३२॥
शूद्रश्च ब्राह्मणीगामी हेमघ्नो धर्मदूषकः। द्वादशा दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम्॥३३॥
हरिसूर्यादि वृक्षाणां यथा छेदो नरोत्तम!। द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम्॥३४॥
यथऽऽहुतिर्मन्त्रहीना मृतवत्सापयो यथा। द्वादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम्॥३५॥
सकेशा विधवा यद्वद्व्रतं स्नःनविवर्जितम्। द्वादशीदशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम्॥३६॥
स राजा प्रोच्यते सद्भिर्योभक्तोमधुसूदने। तद्राष्ट्रं वर्धते नित्यं सुखी भवति सप्रजः॥३७॥
दृष्टिर्मेसफलाराजन्यन्मयात्वं निरीक्षितः। अद्य मे सफला वाणी जल्पतेयात्वयासह॥३८॥

जैसे शूद्र का शिखाधारण तथा कपिलादुग्धपान शूद्र द्वारा व्यर्थ है तथा जैसे दशमीयुक्त द्वादशी होती है उसी प्रकार अवैष्णव राष्ट्र है। ब्राह्मणी से गमन करने वाला शूद्र, स्वर्णचौर, धर्मदूषक, अवैष्णव राष्ट्र तथा दशमी युक्त द्वादशी यह सब समान है। हे नरोत्तम! जैसे हरीतकी तथा मदार के वृक्ष का छेदन व्यर्थ है, दशमीयुक्त द्वादशी—व्यर्थ है, अवैष्णव राष्ट्र भी तद्रूप है। मन्त्रहीन आहुति, मृतवत्सा का स्तन तथा दशमीयुता द्वादशी व्यर्थ है, अवैष्णव राष्ट्र भी तद्रूप है। जैसे केशयुक्त विधवा, स्नानहीन व्रत तथा दशमी युक्त द्वादशी

कार्यकारी नहीं होती, अवैष्णव राष्ट्र भी तद्रूप विफल हो जाता है। जिस राजा के प्रति मधुसूदन की भक्ति होती है, साधुगण उसे ही राजा मानते हैं। उनका राज्य नित्य वर्द्धित होता है, वे राजा ही अनेक प्रजायुक्त तथा सुखी होते हैं। हे राजन्! तुम्हें देखकर मेरे नेत्र आज सफल हो गये। तुम्हारे साथ वार्त्ता करके मेरी भारती (विद्या) ने भी सफलता लाभ किया।।३२-३८।।

दूरमेव हि गन्तव्यं श्रूयते यत्र वैष्णवः। दर्शनात्तु भवेत्पुण्यं तीर्थस्नानसमुद्भवम्।।३९।।

स त्वं राजन्मया दृष्टो विष्णुभक्तिरतः शुचिः।

स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि सुखी भव नराधिप!।।४०।।

जहां वैष्णव रहते हैं, वहां उनके होने का संवाद पाकर तत्काल जाना चाहिये। वैष्णव दर्शन से तीर्थ स्नान का पुण्यलाभ होता है। हे राजन् ! तुम पवित्र तथा विष्णुभक्तिरत हो। अतः आज तुम्हारे ऐसे वैष्णव का दर्शन किया। हे राजन्! तुम्हारा मंगल हो। मैं जा रहा हूं। तुम सुखी हो जाओ।।३९-४०।।

एतस्मिन्नन्तरे राज्ञ्या कान्तिमत्यानमस्कृतः। भारद्वाजोमुनिश्रेष्ठःप्रवरःसर्वयोगिनाम्।।४१।।

अवैधव्यं वरारोहे! भक्ताभव स्वभर्त्तरि। निश्चला केशवे भक्तिः सदा भवतु ते शुभे।।४२।।

एतस्मिन्नन्तरे राजा भरद्वाजं महामुनिम्। उवाच प्रीणयन्वाचा मेघनादगभीरया।।४३।।

ऋषि भारद्वाज यह कह ही रहे थे, तभी वीरबाहु की स्त्री रानी कान्तिमती वहां आयीं। योगी प्रवर मुनिवर भारद्वाज को उन्होंने प्रणाम किया। तब भारद्वाज ने कान्तिमती को आशीर्वाद दिया। ऋषिप्रवर भारद्वाज ने कहा—"हे वरारोहे! तुम सतत् स्वामी के प्रति भक्तियुक्त रहो। कभी वैधव्य न हो। हे शुभे! केशव के प्रति तुम्हारी सदैव अचला भक्ति रहे।" तब राजा ने विविध वाक्यों से मुनिवर भारद्वाज को प्रसन्न करके मेघगंभीर वाणी में उनसे पूछा।।४१-४३।।

राजोवाच

विपुला मे कथं लक्ष्मीः किं कृतंपूर्वजन्मनि। सर्वम्ब्रूहि मुनिश्रेष्ठ! कृपायदिममोपरि।।४४।।

एतन्मया कथं प्राप्तं राज्यं निहतकण्टकम्। पुत्रो वै गुणवाञ्छ्रेष्ठः प्रियाचसुमनोहरा।।४५।।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा चिन्तयन्ती जनार्दनम्।

कोऽहं मुने! कथञ्चैषा कश्च धर्मो मया कृतः।।४६।।

किञ्चाऽनयाऽपिचार्वङ्ग्यामम पत्न्याकृतम्मुने। केनपुण्येन मेलक्ष्मीर्मृत्युलोकेसुदुर्लभा।।४७।।

अशेषा भूमिपालावै वर्तन्ते यस्य मे वशे। विक्रमञ्चाऽप्रतिहतं शरीरारोग्यता तथा।।४८।।

ममाऽपि विपुलंतेजो नकश्चित्सहतेमुने!। इच्छाम्यद्य प्रतिज्ञातुं यथ चेयमनिन्दिता।।४९।।

मयाऽपि सुकृतं विप्र! किं कृतं पूर्वजन्मनि। इति पृष्टो नरेन्द्रेण पूर्वजन्मविचेष्टितम्।।५०।।

स्वपत्न्याश्चेष्टितञ्चैव सम्पदाञ्चैवकारणम्। योगोत्थं सुचिरंकालं तथाविन्दतमानसे।।५१।।

विज्ञातमेतन्नृपते! पूर्वजन्मविचेष्टितम्। तव पत्न्याश्च राजर्षे! श्रृणुष्व कथयाम्यहम्।।५२।।

राजा कहते हैं—हे मुनिवर! यदि मेरे प्रति आपकी कृपा है, तब यह बतायें कि मैंने पूर्वजन्म में क्या

कार्य किया था, जिसके कारण मुझे विपुल धन-लक्ष्मी प्राप्त है? हे ऋषिवर! यह निष्कण्टक राज्य, गुणवान् श्रेष्ठ पुत्र तथा मनोहरा सहधर्मिणी किस क्रिया से प्राप्त है? मेरी पत्नी सदैव मेरा ही चिन्तन करती है। मुझमें ही अपने प्राण अर्पित करती है तथा सदैव जनार्दन का चिन्तन करती है। हे मुनिप्रवर! मैं कौन हूं? यह मेरी पत्नी कौन है? मैंने क्या धर्मकार्य किया है? मेरी इस उत्तम अंगों वाली पत्नी ने क्या किया है? मैंने मानव दुर्लभ लक्ष्मी लाभ किया है, सभी राजा सतत् मेरे वश में रहते हैं, मेरा शरीर रोगहीन तथा अप्रतिहत शूर-वीरता सम्पन्न है। हे मुनिवर! मैंने इसे किस पुण्य से पाया है? हे विप्र! मैं यह जानना चाहता हूं। मेरी इस अनिन्दिता पत्नी ने मेरे साथ ऐसा क्या पुण्य किया था? इस प्रकार से राजा ने महर्षि भारद्वाज से अपनी पत्नी के पूर्वजन्म के कर्म तथा अपने सन्देह को कहा। तब यह सुनकर महर्षि भारद्वाज ने क्षणकाल ध्यानमग्न होकर मन ही मन समस्त कारण जाना तथा तब ध्यान को त्यागकर राजा से कहने लगे, हे राजर्षि! सुनो।।४४-५२।।

भारद्वाज उवाच

शृणु भूपाल सकलंयस्येदं कर्मणःफलम्। त्वमासीः शूद्रजातीयोजीवहिंसापरायणः।।५३।।
नास्तिको दुष्टचारित्रः परदारप्रधर्षकः। कृतघ्नो दुर्विनीतश्च सुष्ठाचारविवर्जितः।।५४।।
इयं वा भवतो भार्यापूर्वमप्यायतेक्षणा। कर्मणामनसा वाचानान्यदस्यास्त्वयाविना।।५५।।
पविव्रता महाभागा भजमाना निरन्तरम्। भावं न कुरुते दुष्टं तवोपरि तथा सति!।।५६।।

सखिभिस्त्वं परित्यक्तो बन्धुभिः पापकर्मकृत्।
क्षयं जगाम चाऽर्थो यः सञ्चितस्तव पूर्वजैः।।५७।।
नष्टे द्रव्ये फलाऽऽकाङ्क्षी त्वमासीर्जगृतीपते!।
पूर्वकर्मविपाकेन कृषिश्च विफला गता।।५८।।
ततो वित्ते परिक्षीणे परित्यक्तश्च बान्धवैः।
क्षीयमाणाऽपि साध्वीयमत्यजत्त्वां न भामिना।।५९।।

मुनि भारद्वाज कहते हैं—हे राजन्! मैं तुम्हारे तथा तुम्हारी पत्नी के पूर्वजन्म के समस्त विवरण को जान गया हूं। हे राजर्षि सुनो। हे राजन्! तुम पूर्वजन्म में शूद्र जातीय जीवहिंसक-नास्तिक-परस्त्रीगामी-कृतघ्न-दुर्विनीत-दुष्टचरित्र तथा शिष्टाचार वर्जित थे। तुम्हारी यह आयतलोचन पत्नी कान्तिमती ही तुम्हारे पूर्वजन्म में तुम्हारी पत्नी थी। यद्यपि तुम निंदित चरित्र थे, तथापि तुम्हारी पत्नी मनसा-वाचा-कर्मणा तुम्हारे अतिरिक्त कुछ नहीं जानती थी। यह महाभागा पतिव्रता पत्नी निरन्तर तुम्हारी ही सेवा करती थी। कभी भी इसने तुम्हारे प्रति दुष्टभावना प्रदर्शित नहीं किया। तुम्हें पाप कर्मा जानकर तुम्हारे बन्धु तथा मित्रों ने तो तुम्हारा त्याग कर दिया। तुम्हारे पूर्वकर्म के कारण तुम्हारी समस्त धन-सम्पत्ति जो कुछ संचित थी, वह सब नष्ट हो गयी। हे महीपति! तब तुमने लाभ की आकांक्षा से कृषिकार्य किया। तुम्हारे पूर्व कर्म के विपाक से वह प्रयास भी विफल हो गया। तदनन्तर तुम्हारा धन क्षीण हो गया, तब तुम्हारे बन्धवों ने तुम्हारा त्याग कर दिया, तथापि क्षीयमाण स्थिति में भी उसकी साध्वी भामिनी ने तुम्हारा त्याग नहीं किया।।५३-५९।।

त्वं भगःसर्वकामेभ्योगतवान्निर्जनेवने। हत्वाजीवाननेकांश्चवकाराऽऽत्मविपोषणम्।।६०।।

एवं प्रवृत्तस्य तव सह पत्न्या तदा नृप। गतानि बहुवर्षाणि पापवृत्त्या महीतले॥६१॥

तब तुम समस्त कामना से भग्न मनोरथ हो जाने के कारण जनहीन वन में चले गये। अनेक प्राणि-हिंसा करके अपने जीवन का तुम पालन-पोषण करने लगे। हे राजन्! तुम इस प्रकार के कुत्सित कार्य में प्रवृत्त हो गये। तुम्हारी पत्नी भी तुम्हारे पास आ गयी। इस प्रकार से पापवृत्ति रहते हुये अनेक वर्ष व्यतीत हो गये।।६०-६१।।

अन्यस्मिन्वासरेराजन्मार्गभ्रष्टोमहामुनिः। न दिशंविदिशम्वेत्ति देवशर्माद्विजोत्तमः॥६२॥
क्षुत्तृषापीडितोऽत्यर्थं मध्याह्नगदिवाकरे। पतितो वनमध्ये तु मार्गभ्रष्टो महीपते!॥६३॥
दया जाता च ते भूप दृष्ट्वा दुःखेन पीडितम्। ब्राह्मणं वृद्धमज्ञातं गृहीत्वातु करेण वै॥६४॥
उत्थाप्य पतितम्भूमौ त्वयोक्तंहितदानृप। प्रसादंकुरुविप्रर्षआगच्छत्वंममाऽश्रऽमम्॥६५॥
जलपूर्णं तडागञ्च पद्मिनीखण्डमण्डितम्। वृक्षैर्मनोहरैर्युक्तं फलैः पुष्पैर्मनोरमैः॥६६॥
स्नात्वा सुशीतलेतोयेकृत्वाकर्मचनैत्थकम्। कुरुविप्र फलाहारं पिबवारिसुशीतलम्॥६७॥

हे राजन्! इस समय देवशर्मा नामक एक महामुनि मार्ग से पथभ्रष्ट हो गये। वे दिक्-विदिक् के ज्ञान से रहित हो गये थे। वे मार्ग भूले देवशर्मा क्षुधा-तृष्णा से अत्यन्त पीड़ित होकर वन में गिर पड़े। हे महीपति! तब उनको देखकर तुम्हारे हृदय में दया का उद्रेक हो गया। हे नृप! तुमने उस दुःखार्त्त भूपतित अज्ञात वृद्ध ब्राह्मण को हाथ पकड़कर उठाया तथा कहा—"हे विप्रर्षि! आप मुझ पर प्रसन्न हों। आप मेरे निवास पर चलिये। मेरे स्थान पर कमलों से शोभित जलपूर्ण तड़ाग तथा मनोहर फल-पुष्प वाले वृक्ष विराजित हैं। आप वहां जाकर सुशीतल जल से स्नान करिये। नित्यकर्म सम्पन्न करके फलाहार तथा सुशीतल जल का पान करिये। हे विप्रेन्द्र! मैं स्वयं आपकी रक्षा करूंगा। आप उठिये! ये द्विजवर! मेरे ऊपर प्रसन्न होकर मेरे आश्रम चलें। जब तक आप तृप्त नहीं हो जाते तब तक आप मेरे आश्रम निवास करिये। तब द्विज देवशर्मा ने शूद्र का वाक्य सुनकर संज्ञा-लाभ किया।।६२-६७।।

सुखेन कुरु विश्राममंमयासंरक्षितः स्वयम्। विप्रेन्द्र! तृप्तिपर्यन्तंवस त्वं च ममाश्रमे॥६८॥
उत्तिष्ठ त्वंद्विजश्रेष्ठप्रसादंकर्तुमर्हसि। लब्धसञ्ज्ञस्तदा विप्रः श्रुत्वाशूद्रस्यभाषितम्॥६९॥
करे जग्राह तं शूद्रं गतो यत्र जलाशयः। उपविष्टो महाबाहो छायामाश्रित्य तत्तटे॥७०॥
स्नानञ्चकार विधिवत्पूजयामास केशवम्। तर्पयित्वापितृन्देवान्पपौनीरंसुशीतलम्॥७१॥
विश्रान्तो वृक्षमूलेऽभूद्देवशर्माद्विजोत्तमः। साष्टाङ्गं मुनये कृत्वा नमस्कारंसहस्त्रिया॥७२॥
शूद्रस्तु परयाभक्त्याप्रोवाचमुनिसन्निधौ। आवयोस्तरणार्थायअतिथिस्त्वंसमागतः॥७३॥
दर्शनात्तव विप्रर्षे! जातःपापस्यसंक्षयः। प्रिय फलानिस्वादूनिप्रयच्छाऽस्मैद्विजातये।
मृदूनि रसयुक्तानि सुपक्वानि प्रियाणि च॥७४॥

शूद्र ने उन ब्राह्मण का हाथ पकड़कर उठाया तथा वहां ले गया जहां जलाशय था। हे महाबाहो! देवशर्मा उस सरोवर की वृक्ष छाया में बैठे। तदनन्तर सविधि स्नान, केशव पूजन तथा देव एवं ऋषिगण का तर्पण करके सुशीतल जल पिया। तत्पश्चात् द्विजोत्तम देवशर्मा ने तरुतल में बैठकर विश्राम किया तथा शूद्रक

भी पत्नी के साथ परमभक्ति पूर्वक ब्राह्मण के पास पहुंचा। पत्नी एवं शूद्रक ने ब्राह्मण को प्रणाम किया। शूद्रक कहने लगा—"हे विप्रर्षि! हमारा उद्धार करने के लिये आप अतिथिवेश में यहां आये हैं। अब आपका दर्शन पाकर पापक्षय हो गया। तदनन्तर शूद्रक ने पत्नी को सम्बोधित करके कहा—"हे प्रिये! इन ब्राह्मण को स्वादिष्ट फल लाकर प्रदान करो। देखो! ये सभी फल मृदु, रसयुक्त, सुपक्व तथा मनोज्ञ हों।"।।६८-७४।।

ब्राह्मण उवाच

त्वामहंनैवजानामि स्वज्ञातिंकथयस्वमे। नाज्ञातस्यहिभोक्तव्यं ब्राह्मणस्याऽपिपुत्रक॥७५॥

शूद्रक की बात सुनकर ब्राह्मण ने कहा—हे पुत्रक! मैं तुमको नहीं जानता। जाति के साथ अपना परिचय मुझे प्रदान करें। क्योंकि अज्ञात ब्राह्मण से भी कोई वस्तु लेकर भोजन नहीं करना चाहिये।।७५।।

शूद्र उवाच

शूद्रोऽहंद्विजशार्दूल! नकार्यःसंशयस्त्वया। आत्मजैर्दुर्जनैर्विप्र! परित्यक्तःस्वबन्धुभिः॥७६॥
तयोः सम्वदतोरेवं शूद्रपत्न्या फलानि च। दत्तानितस्मैविप्राय तेन भुक्तानितानिवै॥७७॥
अभूत्प्रीतमना विप्रः पीत्वा नीरं सुशीतलम्। सुखं सम्प्राप्य स मुनिर्विश्रान्तस्तरुमूलके॥७८॥

शूद्र ने उत्तर दिया—"हे द्विजप्रवर! मैं शूद्र हूं। आप इस विषय में कोई संशय न करें। हे विप्र! मैं दुर्जन हूं। मैं आत्मज तथा अपने बान्धवों के साथ परित्यक्त हो गया हूं।" शूद्र तथा शूद्रपत्नी के यह वाक्य कहने के कारण ब्राह्मण देवशर्मा ने उनके द्वारा प्रदत्त फल ग्रहण किया तथा सरोवर के शीतल जल का पान करके वृक्ष छाया में विश्राम लाभ करके अत्यन्त सुखी हो गये।।७६-७८।।

सचशूद्रःसपत्नीकोभुक्त्वाचपुनरागतः। स्वागतं ते मुनिश्रेष्ठ! कुतस्त्वमिहचाऽऽगतः॥७९॥
शून्याटवीं द्विजश्रेष्ठ! दुष्टसत्त्वभयाकुलाम्।
निर्मनुष्यां दुःखयुक्तां दिवारात्रम्भयानकाम्॥८०॥

तदनन्तर सपत्नीक शूद्रक अपने आश्रम में आया। वहां आहारादि सम्पन्न करके पुनः वहां गया जहां देवशर्मा थे। उसने मुनिवर से स्वागत प्रश्न किया। "हे मुनिप्रवर! आप कहां से आये हैं? हे द्विजोत्तम! यह जो घोर अन्धकार देख रहे हैं, वह अरण्य है तथा दुष्ट जन्तुगण से भरा है। वहां मनुष्य नहीं हैं। यह अरण्यवास दुःखप्रद है। दिन-रात भय से भरा है।।"।।७९-८०।।

ब्राह्मण उवाच

ब्राह्मणोऽहं महाभाग! प्रयागगमनम्प्रति। अहमज्ञायमार्गेण प्रविष्टो दारुणे वने॥८१॥
मम पुण्यप्रभावेण जातोऽसिवरबान्धवः। जीवितं मे त्वया दत्तं ब्रूहिकिंकरवाणिते॥८२॥
भवानपि कुतः प्राप्तो निर्मनुष्येवनेखलु। कोभवान्कारणंकिंस्वित्कथयस्वममाऽग्रतः॥८३॥

ब्राह्मण कहते हैं—"हे महाभाग! मैं प्रयाग जा रहा था। मार्ग न जान सकने के कारण इस दारुण वन में प्रविष्ट हो गया। मेरे पुण्य प्रभाव से तुम दिखलाई दे गये। तुम लोगों ने मेरे परम बांधव का कार्य किया है। तुमने मुझे जीवन प्रदान किया है। अब कहो कि मैं तुम्हारा क्या कार्य करूं? हे साधु! तुम भी कहां से इस निर्जन वन में आ गये। तुम कौन हो? तुम्हारे वनागमन का क्या कारण है। वह सब मुझसे कहो।।८१-८३।।

शूद्र उवाच

विदर्भनगरी राज्ञा भीसेनेन रक्षिता। वासो मम महाराष्ट्रे शूद्रोऽहं पापलम्पटः॥८४॥
स्वकर्मविहितो धर्मो मया त्यक्तोद्विजोत्तम!। त्यक्तोऽहंबन्धुवर्गेणततोऽहंवनमागतः॥८५॥
कृत्वा जीववधं नित्यं जीवेऽहं भार्यया सह।
साम्प्रतं पातकात्सम्यङ् निर्विण्णोऽस्मि महामुने!॥८६॥
कुरुष्वाऽनुग्रहं किञ्चित्पापयुक्तस्य मे प्रभो!। मम पुण्यप्रभावेणआगतस्त्वंद्विजोत्तम॥८७॥
न पश्यामि यथा सौरिं पत्न्या सह महामुने!। उपदेशप्रभावेण प्रसादं कर्तुमर्हसि॥८८॥
नन्यदिच्छम्यहं किञ्चिन्मुत्त्वा देवं जनार्दनम्। कुरुष्वाऽनुग्रहं मेऽद्यप्रसादमृषिसत्तम॥८९॥

शूद्रक कहता है—हे द्विजोत्तम! राजा भीमसेन विदर्भ के राजा हैं। उस महाराष्ट्र विदर्भ में मेरा निवास है। मैं शूद्र, पापी तथा लम्पट हूं। अपने धर्मविहित कार्य का मैंने परित्याग किया। इसी कारण बन्धुजन ने मेरा त्याग कर दिया। तभी मुझे वन में आना पड़ गया। हे महामुनि! मैं प्राणीवध करके भार्या के साथ जीवन यापन करता हूं। उस पाप से सम्प्रति अत्यन्त निर्विण्ण हो गया। हे प्रभो! मैं पापी हूं। आप मुझ पर किंचित् कृपा करिये। हे द्विजोत्तम! मेरे पुण्य प्रभाव से आज आप यहां आ गये। हे महामुनि! पत्नी के साथ मुझे यमदर्शन न हो, आप ऐसा उपदेश देकर हमें कृतार्थ करिये। हे ऋषिप्रवर! एकमात्र जनार्दन के बिना मैं कुछ भी नहीं चाहता। अतएव अब मुझ पर कृपा करें।।८४-८९।।

भारद्वाज उवाच

इति तेन समापृष्टो देवशर्मा द्विजाग्रणीः। शूद्रेण परया भक्त्या प्रहसन्वाक्यमब्रवीत्॥९०॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णु-सम्वाद एकादश्याख्याने राज्ञःपूर्वजन्मवृत्तकथनंनामैकादशोऽध्यायः॥११॥

भारद्वाज कहते हैं—द्विजों में अग्रणी देवशर्मा ने शूद्रक का यह भक्तिपूर्ण कथन सुनकर तथा यह प्रार्थना किये जाने के कारण हास्यपूर्ण मुद्रा में उसे उत्तर प्रदान किया।।९०।।

।।एकादश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

द्वादशोऽध्यायः

अखण्ड एकादशीविधि, अखण्ड एकादशी उद्यापन विधि, अखण्ड एकादशी व्रत वर्णन

देवशर्मोवाच

तवेदृशी मतिर्जाता सहसा केशवोपरि। एतस्मान्मे गतं पापं पूर्वजन्मशतोद्भवम्॥१॥
विनाव्रतैर्विनातीर्थैर्मुक्तस्त्वंपापकोटिभिः। ममाऽऽतिथ्येनभक्त्या चजातंतवहरेःपदम्॥२॥
तेन पुण्यप्रभावेण मतिर्जाता तवेदृशी। ध्यात्वा सञ्चिन्त्यमनसाज्ञातंपूर्वविचेष्टितम्॥३॥
पूर्वजन्मनि विप्रस्त्वमवन्त्यां धर्मतत्परः। सदाऽध्यायनशीलश्चसुशीलश्च सदाव्रती॥४॥
एका तु द्वादशी विष्णोः कृताच दशमीयुता। तत्पापस्यप्रभावेणसमस्तंसुकृतंगतम्॥५॥

देवशर्मा कहते हैं—केशव के प्रति सहसा तुम्हारी ऐसी बुद्धि जन्मी है, यह देखकर मेरे सैकड़ों जन्म के पाप दूर हो गये। तुमने सभक्ति मेरा आतिथ्य ग्रहण किया है, जिसके पुण्य प्रभाव से आज मैं शतकोटि पापों से मुक्त हो गया तथा हरि के चरणकमल में ऐसी मति हो गयी। हे साधु! मैंने ध्यान द्वारा तुम्हारा प्रयत्न जान लिया। तुम पूर्वजन्म में अवन्तीनगर के धार्मिक ब्राह्मण थे। तुम सदा अध्ययन करते रहते थे। सुशील तथा व्रतस्थ होकर एक बार हरि का दशमीयुक्त द्वादशी व्रत किया था। इसी पाप के कारण तुम्हारा सभी सुकृत नष्ट हो गया। तुम्हारा सभी पुण्य विफल हो गया।।१-५।।

सर्वं तद्विफलं जतं तथा शूद्रापतिर्द्विजः। बहुवर्षसहस्राणि प्राप्ता नरकयातनाः॥६॥
तस्मादेवं त्वयापूर्वं कृतं दुष्टं चिरं बहु। कृता तु दशमीमिश्रा तिथिर्विष्णोर्महात्मनः॥७॥
तेन शूद्रो भवाञ्जातः पापे तव मतिस्तथा। धर्मे न रमते चित्तं दशमीवेधदूषितम्॥८॥
विदर्भनगरे वत्स! अस्ति ते पुत्रिकासुतः। कृतं तेन विधानोक्तं हरेरेकादशीव्रतम्॥९॥
प्रदत्तं तेन तत्पुण्यमखण्डैकादशीव्रतम्। धर्मोपरि मतिर्जाता जातः पापस्य सङ्क्षयः॥१०॥

तब तुमने शूद्रा का पति होकर जन्मग्रहण किया। तुमने पूर्व जन्म में दीर्घकालपर्यन्त अनेक दुष्कृत किया था। तभी तुमने हजारों वर्ष नरक यातना भोग किया। हे मतिमान्! तुमने महात्मा विष्णु का दशमीयुक्त द्वादशी व्रत किया था। इसी के पाप स्वरूप तुम शूद्र हो गये तथा तुम्हारी ऐसी पापकार्ययुक्त मति हुई। दशमी वेध दोष के कारण तुम्हारा चित्त दूषित हो गया। तुम्हारी मति धर्मरहित हो गई। हे वत्स! विदर्भनगर में तुम्हारी पुत्री का पुत्र निवास करता था। वह एकादशी व्रत यथाविधि करता था। एक बार उसने तुमको एकादशी व्रत का समस्त पुण्य तुमको अर्पित किया था। उसी के कारण तुम्हारा पापक्षय हुआ तथा धर्म हेतु आस्था का जन्म तुम्हारे चित्त में हो गया।।६-१०।।

तेन पुण्यप्रभावेण एकादश्या व्रतेन च। दशमीवेधजं पापं यमेन परिमार्जितम्॥११॥
इह जन्मनि यत्पापं जन्मायुतकृतानि च। मार्जितानि यमेनैव पापानि तव साम्प्रतम्॥१२॥

हे शूद्रक! इस एकादशी के पुण्य प्रभाव से सम्प्रति तुम्हारा दशमीवेधज द्वादशी का पाप यम ने परिमार्जित कर दिया। केवल यही नहीं, यम ने तुम्हारे १०००० जन्मार्जित पापों को भी दूर कर दिया।।११-१२।।

तयोर्विवदतोरेवं विष्वक्सेनः समागतः। वर्णावर स्वागतं ते तुष्टास्तेऽहं जनार्दनः।।१३।।
विप्रस्याऽऽतिथ्यहेतुत्वाज्जातः पापस्यसङ्क्षयः। परदत्तेन पुण्येन एकादश्या व्रतेनच।।१४।।
दशमीवेधजं पापं तव शूद्र लयं गतम्। व्रतं कृत्वा ददौ पुण्यं दौहित्रस्तेनतारितः।।१५।।
पत्न्या सह महाभाग! वैनतेयं समारुह। इत्युक्त्वा देवदवेन विमाने स्थापितस्तदा।।१६।।
स्वर्गं ततः सपत्नीकः शूद्रत्वेन नृपोत्तम!। देवशर्मा तु विप्रो वै तीर्थराजं ययौपुनः।।१७।।
एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्त्वया परिपृच्छितम्।
अखण्डैकादशीपुण्यात्यात्प्राप्तस्याऽऽतिथ्यकारणात्।
विष्णुभक्तिमती भार्या राज्यं निहतकण्टकम्।।१८।।

द्विजप्रवर देवशर्मा तथा शूद्रक जब परस्परतः यह कथनोपकथन कर रहे थे, तभी विष्वक्सेन जनार्दन वहां आये तथा उस शूद्रक से कहने लगे—"हे शूद्रक! मैं तुम पर प्रसन्न होकर यहां आ गया। तुमने ब्राह्मण का आतिथ्य किया, इस कारण तुम्हारे सब कलुष नष्ट हो गये। हे शूद्रक! दूसरे के द्वारा प्रदत्त एकादशी के पुण्य प्रभाव से तुम्हारा दशमीवेधज द्वितीया जनित पाप विलीन हो गया। हे महाभाग! तुम्हारे दौहित्र ने जो एकादशी व्रत का अपना पुण्य तुमको प्रदान किया था, इससे तुम्हारा उद्धार हो गया। अब तुम पत्नी सहित गरुड़ पर बैठो।" यह कहकर देवदेव ने शूद्र दम्पति को गरुड़ पर बैठाया। तब शूद्रक शूद्रत्व से निवृत्त होकर पत्नी के साथ स्वर्ग चला गया। वे ब्राह्मण देवशर्मा भी तीर्थराज प्रयाग की ओर प्रस्थान कर गये। हे राज़न्! तुमने जो मुझसे पूछा था, वह सब मैंने वर्णन कर दिया। पूर्वकृत एकादशी व्रत के अखण्ड पुण्य प्रभाव से तथा अभ्यागत ब्राह्मण का अतिथि सत्कार करने के पुण्य द्वारा तुमने विष्णुभक्ति पत्नी तथा निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया।।१३-१८।।

राजोवाच

ब्रह्मन्नखण्डैकादश्या विधिंसम्यक्समादिश। विष्णोःसम्प्रीणनार्थायप्रसादंकर्तुमर्हसि।।१९।।

राजा कहते हैं—हे ब्राह्मण! विष्णु की प्रसन्नता के लिये जिस एकादशी व्रत का उपदेश आपने दिया है, मुझ पर कृपा करके उस अखण्ड एकादशी की सम्यक् विधि कहें।।१९।।

ऋषिरुवाच

शृणुष्वनृपशार्दूलएकादश्याविधिंशुभम्। पुराऽऽसीद्भगवान्विष्णुर्नारदाययदुक्तवान्।।२०।।
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि उद्यापनविधिं शुभम्। मार्गशीर्षादिमासेषु द्वादशीषु नरोत्तम।।२१।।
व्रतं शुभमिदं कार्यमखण्डैकादशीव्रतम्। दशम्याञ्चैव नक्तञ्च एकादश्यामुपोषणम्।।२२।।
द्वादश्यामेकभुक्तञ्च अखण्डा इति कथ्यते!। दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभूते दिवाकरे।।२३।।
तद्धि नक्तं विजानीयान्न नक्तं निशि भोजनम्।
कांस्यं मांसं मसूरांश्च चणकान्कोद्रवांस्तथा।।२४।।

शाकं मधु परान्नञ्च पुनर्भोजनमैथुने। विष्णुभक्तो नरो वाऽपि दशम्यां दशवर्जयेत्॥२५॥

ऋषि कहते हैं—हे नरशार्दूल! एकादशी की शुभविधि सुनें। पूर्वकाल में भगवान् विष्णु ने देवर्षि नारद से यह विधान कहा था। आज मैं तुमसे वह उत्तम व्रतोद्यापन विधि कहता हूं। हे नरोत्तम! अग्रहायण आदि मास की द्वादशी के दिन उत्तम अखण्ड एकादशी व्रत कर्त्तव्य है। अब अखण्ड के लक्षण सुनो। दशमी के दिन रात में भोजन एकादशी के दिन उपवास तथा द्वादशी के दिन एक समय नक्त भोजन करना इसे ही अखण्ड कहते हैं। दिन के अष्टम भाग में जब सूर्य मन्दीभूत होते हैं, तभी उसे नक्त (रात्रि) कहते हैं। इस समय का जो भोजन है, वही नक्त भोजन है। इससे अन्यथा रात्रि में जो भोजन है, वह नक्त भोजन नहीं है। विष्णुभक्त मानव दशमी के दिन कांस्यपात्र में भोजन करें। मांस, मसूर, चना, कोदो, शाक, मधु, परान्न, पुनर्भोजन तथा मैथुन, इन दस का त्याग करें।।२०-२५।।

दशम्या विधिरुक्तोऽयमेकादश्यास्तथाशृणु। असकृज्जलपानञ्च हिंसा शौचमसत्यता॥२६॥
ताम्बूलं दन्तकाष्ठञ्च दिवा शयनमैथुने। द्यूतं क्रीडा निशि स्वापःपतितैः सहभाषणम्।
एकादश्यां दशैतानि विष्णुभक्तस्तु वर्जयेत्॥२७॥
अद्यमेस्त्रीसुखंनास्तिभोजनंनास्तिकेशव। प्रीत्यर्थं देवेश नियमस्तु दिवानिशि॥२८॥
सुप्तेन्द्रियैस्तु वैक्लव्यं भोजनं यच्च मैथुनम्। दन्तान्तरविलग्नान्नं क्षमस्वपुरुषोत्तम्॥२९॥
उपावृत्तस्तु पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह। उपवासःसविज्ञेयोनशरीरस्यशोषणम्॥३०॥
पूर्वोक्तानि दशैतानि परान्नं चतथामधु। द्वादश्यांविष्णुभक्तोवैवर्जयेन्मर्दनादिकम्॥३१॥
अद्य मे द्वादशी पुण्या पवित्रा पापनाशिनी। पारणञ्च करिष्यामि प्रसीदगरुडध्वज॥३२॥
विष्णोः सन्तोषणार्थाय यो मया नियमः कृतः।
अद्याऽहं भोजनयिष्यामि त्वत्प्रसादाद् द्विजोत्तमम्॥३३॥

यह दशमी की विधि कही गयी। अब एकादशी विधान सुनो। विष्णुभक्त मनुष्य एकादशी के दिन बारम्बार जलपान, हिंसा, अशौच असत्यभाषण, ताम्बूल भक्षण, दातौन, दिवानिद्रा, मैथुन, द्यूतक्रीड़ा, निशानिद्रा, पतित के साथ सम्भाषण—इन दस का वर्जन करे। इस दिन व्रती मानव केशव के समक्ष प्रार्थना करे। यथा—"हे केशव! आज स्त्री सुख तथा भोजन नहीं करूंगा। हे देवेश! आपकी प्रीति हेतु अहोरात्र नियम अवलम्बन करूंगा। हे पुरुषोत्तम! मैं यथासाध्य इन्द्रिय संयम करूंगा, तथापि यदि इससे वैंकल्य हो अथवा मुझसे भोजन अथवा मैथुन हो जाये तथा मेरे दांतों में अन्न लग जाये तब आप क्षमा करें।।" पापवृत्ति से मुक्त होना तथा गुणों से युक्त होना ही उपवास है। लेकिन केवल शरीर शोषण ही उपवास नहीं है। द्वादशी के दिन मानव पूर्वोक्त दस कर्म का त्याग करे तथा पराया अन्न, मधु तथा तैल मर्दनादि का त्याग करे। इस दिन की प्रार्थना यह है—"अब पापनाशिनी पुण्या द्वादशी उपस्थित है। आज मैं पारण करूंगा। हे गरुड़ध्वज! मुझ पर प्रसन्न हो जायें। हे विष्णु! आपकी सन्तुष्टि हेतु मैंने नियम अवलम्बन किया है। आज आपकी प्रसन्नता हेतु द्विजश्रेष्ठ को भोजन कराऊंगा।"।।२६-३३।।

अनेन विधिना कुर्याद्यावद्वर्षं समाप्यते। सम्पूर्णे तु ततो वर्षे कुर्यादुद्यापनं बुधः॥३४॥

आदौ मध्येतथाचान्तेव्रतस्योद्यापनंस्मृतम्। उद्यापनंनकुर्याद्यःकुष्ठीचान्धश्चजायते॥३५॥
तस्मादुद्यापनं कुर्याद्यथाविभवसारतः। क्रियते शुक्लपक्षे च मासे मार्गशिरे शुभे॥३६॥

आमन्त्र्य द्वादशमितान्ब्राह्मणान्विधिकोविदान्।
त्रयोदशं सपत्नीकमाचार्यं विधिकोविदम्॥३७॥
यजमानः शुचिः स्नात्वा श्रद्धायुक्तो जितेन्द्रियः।
पादशौचार्घवस्त्राद्यैराचार्यादींस्ततोऽर्चयेत् ॥३८॥

आचार्यस्तु ततः कृत्वा मण्डलम्वर्णकैः शुभैः। चक्राब्जंसर्वतोभद्रंश्वेतवस्त्रेणवेष्टितम्॥३९॥

हे राजन्! विद्वान् व्यक्ति इस प्रकार के विधानानुसार एक वर्ष पर्यन्त एकादशी के व्रत को करने के पश्चात् सम्पूर्ण व्रत का उद्यापन करे। इस उद्यापन का आदि-मध्य-अन्त रूप विधान अभिहित है, तथापि जो मानव उद्यापन नहीं करता वह कुष्ठ रोगी तथा अन्धा होता है। अतः अपनी वित्तशक्ति के अनुरूप उद्यापन अवश्य करें। अब उद्यापन विधि सुनो। अग्रहायण मास के शुभ शुक्लपक्ष में विधिवेत्ता व्रती द्वादश ब्राह्मणों को निमन्त्रित करके सपत्नीक विधिवत् आचार्य को लायें। इस प्रकार सब त्रयोदश ब्राह्मण की संख्या होगी। तदनन्तर श्रद्धालु पवित्र जितेन्द्रिय यजमान स्नानोपरान्त पाद्य-अर्घ्य, वस्त्र के द्वारा आचार्य तथा पूर्वोक्त ब्राह्मणों की पूजा करें। तदनन्तर आचार्य पूजित होकर उत्तम वर्णों के रंग से चक्र एवं कमलयुक्त एक सर्वतोभद्र मण्डल रचे। श्वेत वस्त्र से इस मण्डल को वेष्ठित करना चाहिये।।३४-३९।।

जलपूर्णंच कुम्भं तु पञ्चरत्नसमन्वितम्। पञ्चपल्लवसंयुक्तं कर्पूरागुरुवासितम्॥४०॥
वेष्टितं रक्तवस्त्रेण ताम्रपात्रेण संयुतम्। वेष्टितं पुष्पमालाभिर्मण्डलोपरि विन्यसेत्॥४१॥
तस्योपरि न्यसेद्देवं लक्ष्मीनारायणं नृप!। सौवर्णी प्रतिमाकार्या एककर्षप्रमाणतः॥४२॥

वाहनाऽऽयुधसंयुक्ताप्रमाणञ्चतुरङ्गुलम् ।
किम्वाशक्त्त्याप्रकुर्वीतवित्तशाठ्यम्विवर्जयेत्॥४३॥

ततः संस्थापयेन्मूर्तिं मण्डले द्वादशैव हि। मासानामधिपः पूज्यश्चाखण्डव्रतहेतवे॥४४॥
मण्डलात्पूर्वदिग्भागे शङ्खं संस्थापयेच्छुभम्। त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे।
निर्मितः सर्वदेवैस्त्वं पाञ्चजन्य! नमोऽस्तु ते॥४५॥

तत्पश्चात् आचार्य पञ्चरत्न एवं पञ्चपल्लव युक्त तथा कपूर और अगुरु से सुवासित एक जलपूर्ण कुम्भ पर एक ताम्रपात्र रखें। रक्तवस्त्र एवं पुष्पमाला से उसे वेष्ठित करके मण्डल पर रखना चाहिये। हे नृप! उस कुम्भ के ऊपर लक्ष्मी-नारायण की मूर्त्ति प्रतिष्ठित करनी चाहिये। यह मूर्त्ति एक कर्ष स्वर्ण से निर्मित हो। मूर्त्ति वाहन तथा आयुधयुक्त हो। इसकी ऊचाई चार अंगुल की हो। अथवा अपनी शक्ति के अनुरूप इस मूर्त्ति का निर्माण करें तथा जानबूझकर धन रहते कंजूसी न करें। तत्पश्चात् मण्डल के ऊपर मूर्त्ति विन्यस्त करके अखण्डव्रत सम्पादनार्थ बारह मासों के अधिपतियों की पूजा करके मण्डल के ऊपर एक सुशोभन शंख की स्थापना करनी चाहिये। शंख स्थापनार्थ यह मन्त्र पढ़ें—"हे पाञ्चजन्य! आप पूर्वकाल में सागर से उत्पन्न हुये थे। विष्णु ने आपको हाथों में धारण किया था। देवता आपके निर्माता हैं। आपको प्रणाम!"।।४०-४५।।

ततस्तुस्थण्डिलंकार्यं मण्डलादुत्तरां दिशम्। सङ्कल्प्यहवनंकार्यमन्त्रैर्वेदोक्तवैष्णवैः॥४६॥
स्वस्थानेस्थापयेद्विष्णुंस्थापयेच्चहरिंप्रति। पूजयेत्पुरुषसूक्तेनमन्त्रैःपौराणिकैःशुभैः॥४७॥
नेवेद्यार्थञ्च वै कार्या मोदका बहवोऽपि च। धूपदीपोपहाराणि कृत्वा नीराजनं ततः॥४८॥
यक्षकर्दमेन सम्पूज्य ततः कुर्यात्प्रदक्षिणाम्। स्वस्तिवाचनकैर्विप्रैर्नमस्कारं ततोनृप॥४९॥

तत्पश्चात् मण्डल के उत्तर की ओर स्थण्डिल का निर्माण करके संकल्प करें तथा वेदोक्त विष्णुमन्त्र से आहुति देनी चाहिये। होम की समाप्ति होते ही मूर्त्ति को पूर्वोक्त स्थान पर स्थापित करके पुरुषसूक्त तथा पौराणिक मन्त्रों से उसकी पूजा करनी चाहिये। इस पूजा के नैवेद्यार्थ अनेक मोदक, धूपदीपादि उपहार प्रदान करके नीराजन करें। तदनन्तर यज्ञकर्म से पूजा सम्पन्न करके प्रदक्षिणा करे। विप्रगण वहां स्वस्तिवाचन करें। तदनन्तर यजमान भगवान् को प्रणाम करें।।४६-४९।।

ततस्तु ब्राह्मणैः कार्यआचार्यक्रमशो जपः। जपश्च पावमानीयो मण्डलब्राह्मणं मधु॥५०॥
तेजोऽसि शुक्रजं वाचंब्रह्मसामादनन्तरम्। पवित्रवन्तंसूर्यस्यविष्णोर्महसिसंहिताम्॥५१॥
जपान्ते कलशे विष्णुं सोपाङ्गमुपरि न्यसेत्। दिवसस्योदये चैवहोमंकुर्यादनुक्रमम्॥५२॥
संस्थाप्य प्रथमं पात्रम्पूजयित्वा विधानतः। स्तवनञ्च ततो होमः कर्तव्यश्चरुपूर्वकः॥५३॥
स्वगृह्योक्तविधानेन यजनाग्निक्रियापरः। चरुद्वयञ्च कुर्वीत पायसं वैष्णवं चरुम्॥५४॥
जुहुयात्पुरुषसूक्तेन चरोः षोडश चाऽऽहुतीः। तथा चतुर्गृहीतेन घृतयुक्तांवराहुतिम्॥५५॥
प्रादेशमात्राः पालाशसमिधश्चघृतप्लुताः। इदं विष्णिवतिमन्त्रेणहोतव्याःकर्मसिद्धये॥५६॥
शतमेकं तु जुहुयाद्द्विगुणाश्च तिलाऽऽहुतीः। कृते च वैष्णवे होमेग्रहयज्ञंसमारभेत्॥५७॥
समिद्भिश्चरुहोमञ्च तिलहोमं क्रमेण तु। उभयोः स्वस्तिकं वाच्यं ततः पूजां समाचरेत्॥५८॥

तदनन्तर यथाक्रम से आचार्य तथा अन्य ब्राह्मणों को जप करना चाहिये। हे नृप! यह जप "पावमानीय, मण्डल ब्राह्मण, मधु, तेजोऽसि, शुक्रज, वाचंब्रह्म, साम, पवित्रवन्तं सूर्यस्य, विष्णो महसि" इत्यादि वैदिक संहिता मन्त्रों का विहित माना गया है। तत्पश्चात् जप समाप्त होने पर उपाङ्ग के साथ विष्णु को कलस के ऊपर ताम्रपात्र में विन्यस्त करके प्रभातकाल में इस अनुक्रम द्वारा होम करें। यजन एवं अग्निक्रिया तत्पर ब्राह्मण आचार्य प्रथमतः एक पात्र स्थापित करके यथाविधि पूजा करें तथा स्तव एवं अपनी वेदशाखा के अनुसार चरु से होम करें। इस होम में दो प्रकार की चरु हो। यथा पायस एवं वैष्णव चरु। तत्पश्चात् पुरुषसूक्त से चरु द्वारा षोडश आहुति तथा घृतयुक्त चरु से चार आहुति देकर कर्मसिद्धि हेतु एक वित्ते की पलाश समिध् को घृतसिक्त करके "इदं विष्णु" इत्यादि मन्त्र से अग्नि में छोड़ें। तत्पश्चात् १०१ घृताहुति तथा २०२ तिलाहुति देनी चाहिये। यह वैष्णव याग करने के पश्चात् ग्रहयाग करे। सभी याग में वैष्णव याग में स्वस्तिवाचन तथा पूजा करें।।५०-५८।।

ऋत्विजां चततोदद्याद्धेन्वादिग्रहदक्षिणाः। देवस्यतृप्त्यैदद्याच्चब्राह्मणाययथाविधि॥५९॥
गां वै पयस्विनीं दद्याद्वृषभञ्च सुशोभनम्। ब्राह्मणानां ततोदद्यात्त्रयोदशपदानिच॥६०॥

आचार्यं तु सपत्नीकं वस्त्रैश्च परितोषयेत्। तोषयित्वा महादानैस्तं सार्थञ्चसमर्पयेत्।।६१।।

तत्पश्चात् पुरोहितगण को ग्रहयाग की दक्षिणा में धेनु प्रदान करना चाहिये। विष्णु की प्रसन्नता हेतु अन्य ब्राह्मणों को भी दुग्धवती गौ तथा शोभन स्वरूप वृषदान करें। तत्पश्चात् आचार्य सहित सभी त्रयोदश ब्राह्मणों को गौ आदि देकर आचार्य को सपत्नीक वस्त्र प्रदान करके उनको प्रसन्न करें। तदनन्तर महादान देकर इनको सन्तुष्ट करना चाहिये।।५९-६१।।

पञ्चविंशतिकुम्भांश्च सोदकान्वस्त्रवेष्टितान्। ब्राह्मणांश्चततो दद्यात्कृतेपारणके निशि।।६२।।
भूरिदानञ्चदातव्यं बन्धूनामिष्टभोजनम्। पूर्णपात्रं ततो दद्यादाचार्याय सदक्षिणम्।।६३।।
पूर्णपात्रप्रदानेन कार्यं समपूरितं भवेत्। उपवासव्रतञ्चैव स्नानं तीर्थफलं भवेत्।।६४।।
विप्रैःसम्भाषितं तस्यसम्पूर्णतद्भवेत्फलम्। वित्तशक्तिर्गृहेनास्तिकृतञ्चैकादशीव्रतम्।।६५।।
स्वशक्त्या चैव कर्तव्यं तथा चोद्यापनादिकम्।
एतत्ते सर्वमाख्यातमखण्डैकादशीव्रतम्।।६६।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमासमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसम्वादेऽखण्डैकादशीव्रतकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः।।१२।।

इन ब्राह्मणों को धनरत्नादि दान करके विदा करें। अगले दिन जलपूर्ण-वस्त्रयुक्त २५ कुम्भ २५ विप्रों को दान करें। इस दिन भूमिदान तथा बन्धुगण को अभीष्ट भोज्य देकर आचार्य को दक्षिणा के साथ पूर्णपात्र देना चाहिये। तब रात्रि में यजमान पारण करे। पूर्णपात्र दान से कार्य सम्यक्तः पूर्ण हो जाता है। उपवास-व्रत-स्नान तथा तीर्थों का फल ब्राह्मणों के वाक्य से ही फलप्रद होता है। जिनमें धन सामर्थ्य नहीं है, ऐसा व्यक्ति एकादशी व्रत करके स्वशक्ति के अनुरूप उद्यापनादि कार्य करें। यह तुमसे अखण्ड एकादशीव्रत का सभी विधि विधान कह दिया।।६२-६६।।

।।द्वादश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

त्रयोदशोऽध्यायः

षड्विंशतिगुणयुक्त जागरण, एकादशी माहात्म्य

श्रीभगवानुवाच

शृणुपुत्र! प्रवक्ष्यामि जागरस्य च लक्षणम्। येनविज्ञातमात्रेणसुलभोऽहंसदा कलौ।।१।।
गीतं वाद्यञ्च नृत्यञ्च पुराणपठनं तथा। धूपं दीपञ्च नैवेद्यं पुष्पं गन्धानुलेपनम्।।२।।

फलार्पणञ्च श्रद्धां चदानमिन्द्रियसंयमम्। सत्यान्वितंविनिद्रञ्चमुदामद्यजनान्वितम्॥३॥
साश्चर्य चैवसोत्साहं पापालस्यादिवर्जनम्। प्रदक्षिणासमायुक्तं नमस्कारपुरःसरम्॥४॥
नीराजनसमायुक्तमतिहृष्टेन चेतसा। यामेयामे महाभाग! कुर्यादारार्तिकं मम॥५॥
षड्विंशद्गुणसंयुक्तमेकादश्यां च जागरम्। यः करोति नरोभक्त्यानपुनर्जायते भुवि॥६॥
य एवं कुरुते भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः। जागरं परया भक्त्यासलीनोजायते मयि॥७॥
दष्टाः कलिभुजङ्गेन स्वपन्तेये दिने मम। कुर्वन्ति जागरं नैव मायापासविमोहिताः॥८॥
प्राप्ताप्येकादशीयेषां कलौ जागरणं विना। ते विनष्टानसन्देहोयस्माज्जीवितमध्रुवम्॥९॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे पुत्र! जागरण का लक्षण सुनो। इस जागरण के पुण्य प्रभाव को सुनकर मैं कलि के लोगों को सतत् सुलभ हो जाता हूं। हे महाभाग! गीत, वाद्य, नृत्य, पुराण, पठन, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, गन्ध, माला, अनुलेपन, फलार्पण, श्रद्धायुक्त दान एवं इन्द्रिय संयम, जागरण के दिन का यह कर्त्तव्य है। मेरे जागरण के दिन सत्ययुक्त, निद्रारहित, हर्षयुक्त, मेरी पूजा में तत्पर, आचार्ययुक्त, उत्साहान्वित, पाप तथा आलस्यरहित, नमस्कार के साथ प्रदक्षिणायुक्त, अतिशय दृष्टचिन्ता तथा मेरी आरती में रत होकर प्रतिप्रहर मेरी आरती करें। जो मानव एकादशी दिवस के दिन उक्त छब्बीस गुण सम्पन्न होकर परम भक्ति के साथ जागरण करता है, वह मेरे पद में लीन हो जाता है। जो सब मनुष्य कंजूसी से रहित होकर परम भक्ति के साथ जागरण करते हैं, उनका जन्म नहीं होता। जो लोग कलिकाल रूपी सर्प से डंसे जाकर मेरे दिन में (मेरी तिथि अर्थात् जगारण तिथि) निद्रित रहते हैं, वे मायापाश से मोहित होकर जागरण नहीं करते। जो एकादशी के दिन आने पर जागरण बिना वह तिथि व्यतीत कर देते हैं, वे नष्ट होते हैं। उनका जीवन अनिश्चित है।।१-९।।

उद्धृतं नेत्रयुग्मञ्च दत्त्वा वै हृदये पदम्। कृतं ये नैव पश्यन्ति पापिनो ममजागरम्॥१०॥
अभावे वाचकस्याऽथ गीतं नृतयञ्च कारयेत्।
वाचके सति देवेश पुराणंप्रथमं पठेत्॥११॥
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेय शतस्य च। पुण्यं कोटिगुणं पुत्र मम जागरणे कृते॥१२॥
पितृपक्षे मातृपक्षे भार्यापक्षे च मानद!। कुलान्युद्धरते चैतन्मम जागरणे कृते॥१३॥
उपोषणदिने विघ्ने प्रारब्धे जागरे सति। विहाय स्थानं तत्राऽहं शापं दत्त्वा व्रजाम्यहम्॥१४॥
अविद्धवासरे ये मे प्रकुर्वन्ति हि जागरम्। तेषां मध्येप्रहृष्टः सन्नृत्यंवैप्रकरोम्यहम्॥१५॥
यावद्दिनानि कुरुते जागरं मम सन्निधौ। युगाऽयुतानि तावन्ति वसते ममवेश्मनि॥१६॥

जो पापी मेरा जागरण नहीं देखते, यमदूत उस व्यक्ति के हृदय पर पैर रखकर उसके नेत्रों को उखाड़ लेते हैं। यदि पुराणवाचक न मिले, तब नृत्यगीत करते हुये रात्रि जागरण करना चाहिये। हे देवेश! यदि वाचक मिले, तब पुराणपाठ ही कर्त्तव्य है। हे पुत्र! मेरा जागरण करने पर सहस्र अश्वमेध तथा १०० बाजपेय यज्ञफल से भी करोड़ों गुना फललाभ होता है। हे मानद! मेरे जागरण से पिता-माता-पत्नी पक्ष के सभी कुल का इस जागरण से मंगल होता है। इस जागरण से सभी कुलों का उद्धार हो जाता है। उपवास के दिन जागरण आरंभ होने पर यदि कोई विघ्न हो, तब मैं वह स्थान त्याग कर अभिशाप देकर वहां चला जाता हूं, जहां लोग अविद्ध

तिथि में जागरण कर रहे होते हैं। मैं वहां प्रसन्न चित्त से उनके साथ नृत्य करता हूं। मानव जितने दिन मेरे सन्निधान में जागरण करता है, वह उतने अयुत युगों पर्यन्त मेरे लोक में निवास करता है।।१०-१६।।

न गयापिण्डदानेन न तीर्थर्बहुभिर्मखैः। पूर्वजा मुक्तिमायान्ति विनैकादशिजागरात्॥१७॥
यः कुर्याज्जागरे पूजां कुसुमैर्मम वासरे। पुष्पेपुष्पेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति मानवः॥१८॥
यः कुर्याद्दीपदानञ्च रात्रौ जागरणे मम। निमिषे निमिषे पुत्र! लभते गोऽयुतं फलम्॥१९॥
यो दद्याज्जागरे पुत्र! हविष्यान्नसमुद्भवम्। नैवेद्यं लभते पुण्यं शालिशैलसमुद्भवम्॥२०॥
पक्वान्नानि च यो दद्यात्फलानि विविधानि च। जागरेमेचतुर्वक्त्रलभतेगोशतंफलम्॥२१॥
कर्पूरेण च ताम्बूलं ददाति मम जागरे। मद्भक्तो मत्प्रसादेन सप्तद्वीपाऽधिपो भवेत्॥२२॥
जागरे मम देवेश यः कुर्यात्पुष्पमण्डपम्। स पुष्पकविमानेन क्रीडते म सद्मनि॥२३॥

द्विजगण गया में पिण्डदान, अनेक तीर्थ सेवन तथा अनेक यज्ञ सम्पन्न करके भी यदि एकादशी के दिन जागरण नहीं करते, तब वे मुक्त नहीं होते। जो मानव मेरे जागरण के दिन पुष्प से मेरी पूजा करता है, प्रत्येक पुष्पदान से उसे एक-एक अश्वमेध फल की प्राप्ति होती है। उसे प्रतिक्षण १०००० गोदन का फल प्राप्त होता है। हे पुत्र! जो मानव मेरे जागरण दिवस पर हविष्यान्न का नैवेद्य प्रदान करता है, उसे शालिधान्य के ढेर के दान का फ़ल तथा पुण्य मिलता है। हे चतुरानन! जो मानव जागरण के दिन मुझे पक्वान्न तथा विविध फल प्रदान करता है, उसे १०० गोदान का पुण्यलाभ होता है। मेरे जागरण के दिन जो मुझे ताम्बूल में कर्पूर मिलाकर प्रदान करता है, वह मेरा भक्त मेरी कृपा से सप्तद्वीपाधीश्वर होता है। हे देवेश! मेरे जागरणार्थ जो मानव पुण्यप्रद मण्डप निर्माण करता है, वह पुष्पक विमान पर बैठकर मेरे पुर आकर क्रीड़ा करता रहता है।।१७-२३।।

जागरे मे तु यो धूपं सकर्पूरं सगुग्गुलम्। ददाति दहते पापं जन्मलक्षसमुद्भवम्॥२४॥
स्नापयेज्जागरे यो मां दधिक्षीरघृताम्बुभिः। भोगानिह लभेद्वैस ह्यन्तेच परमांगतिम्॥२५॥
दिव्याऽम्बराणि यो दद्यात्फलानि विविधानि च।
स चिरम्वसते स्वर्गे तन्तुसंख्यासमानि वै॥२६॥
दद्यादाभरणं यो मे हेमजं रत्नसम्भवम्। सप्तकल्पान्निवसते मदुत्सङ्गे प्रियो मम॥२७॥
घृतेन दीपकं यो मे गव्येन च विशेषतः। ज्वालयेज्जागरेरात्रौ निमिषे गोयुतम्फलम्॥२८॥

मेरे जागरण के दिन जो मनुष्य कर्पूर-गुग्गुलु प्रदान करता है, उसके एक लाख जन्मों की पापराशि भस्मीभूत हो जाती है। जो मनुष्य जागरण के दिन दधि, क्षीर, घृत तथा जल से मुझे स्नान कराता है, वह इहलोक में विविध भोगों का उपभोग करके अन्तकाल में परमगति प्राप्त करता है। जो मानव दिव्य वस्त्र तथा विविध फल प्रदान करता है, प्रदत्त वस्त्र तथा फल के परिमाण के अनुरूप चिरकाल कालपर्यन्त स्वर्ग में निवास करता है। जो मनुष्य रत्न समन्वित स्वर्णाभूषण प्रदान करता है, वह मुझे प्रिय रहता है। वह सप्तकल्प पर्यन्त मेरे साथ निवास करता है। जो मनुष्य जागरण की रात्रि में मेरे लिये दीप प्रज्वलित करते हैं, प्रत्येक निमेष में उनको अयुत गोदान फललाभ होता है।।२४-२८।।

जागरे मे चतुर्वक्त्र! कर्पूरेण च दीपकम्। योज्वालयेतनीराजंकपिलादानम्फलम्॥२९॥
यः पुनः कुरुते दीपं गीतं नृत्यञ्च पूजनम्। शतक्रतुसमं पुण्यं व्रतैर्दानशतैरपि॥३०॥
स्वयं यः कुरुते गीतं विलज्जोनृत्यतेयदि। स लभेन्निमिषार्धेन कोटियज्ञकृतम्फलम्॥३१॥
निवारयति यो गीतं नृत्यं जागरणे मम। षष्टियुगसहस्राणि पच्यते रौरवादिषु॥३२॥
नृत्यमानस्य मर्त्यस्य ये केचिन्निकटेगताः। विमुक्ताधर्मराजेन मुक्तायान्तिचमत्पदम्॥३३॥

हे चतुरानन! जो मनुष्य कर्पूर दीप प्रज्वलित करके मेरा नीराजन करते हैं, उन्हें कपिला गोदान का फललाभ होता है। जो मानव मेरे लिये नृत्य-गीत, दीपदान तथा पूजा करते हैं, उनको सैंकड़ों व्रत-दान-यज्ञ के समान फललाभ होता है। जो लोग लज्जा त्यागकर स्वयं गीत-नृत्य करते हैं, उनको आधे निमेष मात्र से कोटियज्ञफललाभ होता है। जो मनुष्य मेरे जागरण के दिन गीत-नृत्य करने से लोगों को रोकते हैं, वे रौरवादि नरकों में गिराये जाते हैं। जो राजा नृत्यमान मनुष्य के पास जाता है, धर्मराज उसे छोड़ देते हैं। वह मुक्त होकर मेरा पदलाभ करता है।।२९-३३।।

नृत्यमानस्य मर्त्यस्य उपहासं करोति यः। जागरे याति निरयं यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥३४॥
जागरेममयः कुर्याद्भक्त्यापुस्तकवाचनम्।
श्लोकसंख्यायुगान्येव स वसेन्ममसन्निधौ॥३५॥
प्रदक्षिणाप्रदानेन यत्फलं कथितम्बुधैः। न तत्कोटिमखैः पुण्यं युगसङ्ख्यैरवाप्यते॥३६॥
दीपमालां ममाग्रे वै यः कुर्याज्जागरे सुत!। विमानकोटिसंयुक्त आकल्पम्वसतेदिवि॥३७॥
मम बालचरित्राणि जागरे पठते हि यः। युगकोटिसहस्राणि श्वेतद्वीपे वसेन्नरः॥३८॥

मेरे जागरण दिवस पर नृत्यरत मानव का जो उपहास उड़ाते हैं, वे चतुर्दश इन्द्रों के राजत्वकाल पर्यन्त नरक भोग प्राप्त करते हैं। जो मानव जागरण के दिन भक्ति के साथ मेरे माहात्म्य का वर्णन करने वाली पुस्तक पढ़ते हैं अथवा पाठ कराते हैं, वे मनुष्य जितने श्लोक उस ग्रन्थ में हैं, उतने युग तक मेरे पास निवास करते हैं। विद्वानों ने प्रदक्षिणा का जो पुण्य कहा है, उतना पुण्य चार कोटि यज्ञ द्वारा भी प्राप्त नहीं हो सकता। हे पुत्र! मेरे जागरण के समय जो मनुष्य दीपमाला प्रदान करता है, वह करोड़ों विमानों से समन्वित होकर कल्पपर्यन्त स्वर्ग में निवास करता है। जो जागरण काल में मेरे बालचरित का पाठ करता है, उस सहस्र कोटियुग पर्यन्त श्वेतद्वीप में निवास-स्थल प्राप्त होता है।।३४-३८।।

तस्माज्जागरणं कार्यं पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः॥३९॥
योगीताम्पठतेरात्रौ ममनामसहस्रकम्। वेदोक्तानांपुराणानां जागरात्पुण्यमाप्नुयात्॥४०॥
धेनुदानं तु यः कुर्याज्जागरे मम पुत्रक!। लभते नात्र सन्देहः सप्तद्वीपवतीफलम्॥४१॥
सर्वेषामेव पुण्यानां महत्पुण्यं महीतले। द्वादशीजागरम्पुत्र प्रसिद्धं भुवनत्रये॥४२॥
जागरं ये च कुर्वन्ति कर्मणा मनसा गिरा। न तेषां पुनरावृत्तिर्मम लाकात्कथञ्चन॥४३॥

इसलिये शुक्ल तथा कृष्णपक्ष में मेरा जागरण करें। जो मानव रात्रि में मेरा सहस्रनाम तथा गीतापाठ

करता है, उसे वेद-पुराणोक्त जागरण जनित पुण्यलाभ हो जाता है। हे पुत्र! मेरे जागरण के दिन गोदान करें। वह व्यक्ति सप्त द्वीपा वसुन्धरा दान का फललाभ करता है। इसमें संशय नहीं है। हे पुत्र! पृथिवी में जो पुण्य से भी पुण्यतम है, एकमात्र त्रिलोक प्रसिद्ध मेरी द्वादशी में जागरण से ही वह प्राप्त होता है। जो मनसा-वाचा-कर्मणा द्वादशी जागरण करते हैं, मेरे लोक से कभी वे वापस नहीं लौटते।।३९-४३।।

प्रोत्साहयित्वा लोकान्यः कुरुते जागरं निशि।
प्राप्नोति चक्रवर्तित्वं सत्यं मे व्याहृतं सुत!।।४४।।
संमानिताःककुत्स्थेन रात्रौजागरकारिणः। स्वशक्त्या चैवदानेन प्राप्तंराज्यं सुदुर्लभम्।।४५।।
ये केचिद्गायका विप्रा वादका नर्तकाश्च ये। नर्तकीसहिता यान्ति ममलोके सनातने।।४६।।
दुर्योनिषु गतैः सर्वैः कृत्वा जागरणं मम। सम्प्राप्तं पृथिवीशत्वं कामुकैर्मुनिसत्तम!।।४७।।
निष्कामा मुक्तिमापन्नाः श्वपचाद्याश्च जागरात्।
विवेको नास्ति वर्णानां मम जागरकारिणाम्।।४८।।
न कलौ पावनं ध्यानं न कलौ जाह्नवीजलम्।
न कलौ पावनं जाप्यं मुक्त्वैकं जागरणं मम।।४९।।
द्वादशीदिवसेप्राप्ते ये कुर्वन्तिहिजागरम्। ये धन्यास्ते कृतार्था वैकलिकालेनसंशयः।।५०।।

हे पुत्र! अन्य मानवों को जो उत्साहित करके स्वयं भी जागरण करता है, उसे चक्रवर्त्तित्व का लाभ होता है। हे पुत्र! यह मेरा वाक्य है। यह मिथ्या नहीं है। राजा ककुत्स्थ पूर्वकाल में जागरण परायण मनुष्यों को सम्मानित करके यथाशक्ति दान देते थे। तभी उनको दुर्लभ चक्रवर्त्तित्व मिला। जो विप्रगण मेरे जागरण के दिन गीत-नृत्य-वाद्यवादन करते हैं, वे नर्त्तकीगण के साथ मेरे सनातन स्थान का लाभ करते हैं। हे मुनिप्रवर! कुत्सित योनिगत कामुक मानवगण भी मेरा जागरण करके पृथिवीपतित्व का लाभ करते हैं। यदि चाण्डालादि जाति वाले भी निष्कामावस्था में जागरण करते हैं, तब वे भी मुक्तिभागी होते हैं। हे पुत्र! जो मेरा जागरण करते हैं, उनके वर्ण का विचार न करें। कलि में ध्यान, जाह्नवीजल तथा जप भी मेरे जागरण का त्याग कर देने पर पवित्र नहीं रहते। जो लोग द्वादशी तिथि के दिन जागरण करते हैं, वे ही कलिकाल में धन्य हैं तथा वे ही कृतार्थ भी हैं। इसमें सन्देह न करें।।४४-५०।।

न भूयान्मानुषे लोके द्वादशी विमुखोनरः। अतीतानागतान्वाऽपि पातयेन्नरके हि सः।।५१।।
वरमेको गुणैयुक्तः किं जातैर्बहुभिः सुतैः। द्वादशीजागरात्सर्वांस्तारयेद्योहिपूर्वजान्।।५२।।

इस मनुष्यलोक में मानव कदापि द्वादशी विमुख न हो। द्वादशी विमुख मानव अतीत-अनागतादि सर्वकाल में नरकगामी होता है। जैसे गुणवान पुत्र एक ही हो वही आदरयोग्य है, जबकि गुणरहित अनेक पुत्रों से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। इसी प्रकार से एकमात्र द्वादशी जागरण सभी पूर्वज लोगों का उद्धार कर देता है।।५१-५२।।

माहात्म्यंपठतेभक्त्वामयोक्तंजागरोद्भवम्। द्वादशीसम्भवःपुत्रःकुलानांतारयेच्छतम्।।५३।।
अगम्यागमने पापमभक्ष्यस्यापि भक्षणे। पापम्विलयमायाति कृते जागरणे सुत!।।५४।।

अज्ञानाद्यत्कृतम्पापं ज्ञात्वायत्पातकंकृतम्। पूर्वजन्मार्जितं पापमिह जन्मनि यत्कृतम्।।५५।।
सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि मनसाचिन्तितान्यपि। द्वादश्यां वै चतुर्वक्त्र रात्रौ जागरणे कृते।।५६।।
द्वादशीजागरेणैव मुक्तिं गच्छन्ति मानवाः।।५७।।
न तत्पुण्यं कुरुक्षेत्रे प्रयागे वसतांकलौ। माहात्म्यं वसतां पुंसां यत्फलंद्वादशीषुच।।५८।।
नाऽश्वमेधसहस्त्रैस्तु तीर्थकाट्यवगाहनात्। तत्फलं प्राप्यते पुत्र द्वादशीजागरे कृते।।५९।।
पठेद्वा श्रृणुयाद्वाऽपि माहात्म्यं द्वादशीभवम्। सर्वपापविशुद्धात्मा स लभेच्छाश्वतीं गतिम्।।६०।।
सर्व दुष्टाः समस्ताश्च सौम्यास्तस्य सदा ग्रहाः। सन्ततेर्न वियोगस्तु द्वादशी यस्य कारणम्।।६१।।

मैंने जिस जागरण माहात्म्य का वर्णन किया है, पुत्रगण इसका भक्ति के साथ पाठ करके द्वादशी संभव पुण्य प्रभाव से १०० पीढ़ी का उद्धार कर देते हैं। हे पुत्र! मेरे जागरण से अगम्यागमन तथा अभक्ष्यभक्षण का जो पाप है, वह सब विलीन हो जाता है। यहां तक कि ज्ञानकृत एवं अज्ञानकृत, पूर्व एवं इहजन्मार्जित पाप भी जागरण से नष्ट हो जाते हैं। हे चतुरानन! द्वादशी की रात्रि में जागरण के पश्चात् मन में चिन्तन करने से ही सभी वांछित की प्राप्ति हो जाती है। मानव द्वादशी जागरण से मुक्तिलाभ करता है। कलियुग में द्वादशी जागरण का जो पुण्य कहा गया है, पुरुष प्रयाग तथा कुरुक्षेत्र में निवास करके भी उसे नहीं पा सकते। हे पुत्र! द्वादशी जागरण द्वारा जो फल प्राप्त होता है, सहस्र अश्वमेध तथा करोड़ों तीर्थों में स्नान करने से भी वैसा फल नहीं मिलता। जो मानव द्वादशी जागरण का माहात्म्य पाठ करता है, किंवा इसे सुनता है, वह पापरहित विशुद्धात्मा होकर सनातनी गति का लाभ करता है। जो द्वादशी जागरण करते हैं, उसके दुष्टग्रह भी सौम्यता धारण कर लेते हैं। उसे कभी सन्तान वियोग नहीं सहना पड़ता।।५३-६१।।

मम कीर्तिरुचिर्नित्यं न विपद्येत कर्हिचित्। रणेराजकुले चैव सर्वदा विजयी भवेत्।।६२।।
धर्मोपरि मतिर्नित्यं भक्तिर्मयि सुनिर्मला। पातकं नैव लिप्येतद्वादशीभक्तितोनरम्।।६३।।
प्रेतत्वं नैव तस्याऽस्ति कृते जागरणे मम। एकादश्या विहीनस्य परलोकगतिर्नहि।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कलौ कार्यं हि तद्दिनम्।।६४।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमासमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णु-सम्वाद एकादशीव्रतजागरणफलकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः।।१३।।

जो मेरी कीर्त्ति कथन में सदा रुचि रखता है, उस पर कदापि विपदा नहीं आती। द्वादशी जागरण से मानव की नित्य रण में विजय होती है। उसे राजकुल में भी वह सम्मानित होता है। उसकी धर्म में मति बनी रहती है तथा वह मुझमें निर्मला भक्तिलाभ करता है। द्वादशी के प्रति भक्तिसम्पन्न मानव कभी पापलिप्त नहीं होता। हे पुत्र! एकादशी विमुख मानव को परलोक में उत्तम गति नहीं मिलती। हे पुत्र! इसलिये कलिकाल में सर्वप्रयत्नपूर्वक द्वादशी जागरण अवश्य करना उचित है।।६२-६४।।

।।त्रयोदश अध्याय समाप्त।।

चतुर्दशोऽध्यायः

मत्स्योत्सव माहात्म्य वर्णन

श्रीभगवानुवाच

ततः प्रभाते द्वादश्यांकार्योमत्स्योत्सवोबुधैः। मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे यथाविध्युपचारतः॥१॥
अथ मार्गशिरे मासेदशम्यांनियतात्मवान्। कृत्वादेवार्चनं धीमानग्निकार्यंयथाविधि॥२॥
शुचिवासाः प्रसनात्मा हव्यमन्नं सुसंस्कृतम्।
पक्त्वा पञ्चपदे गत्वा पुनः शौचन्तु पादयोः॥३॥
कृत्वाऽष्टाङ्गुलमानं तु क्षीरवृक्षसमुद्भवम्। भक्षयेद्दन्तकाष्ठं तु ततश्चाचम्य यत्नतः॥४॥
दृष्ट्वाऽऽकाशानि सर्वाणि ध्यत्वा वै मां गदाधरम्।
शङ्खचक्रगदापाणिं किरीटं पीतवाससम्॥५॥
प्रसन्नवदनाऽम्भोजं सर्वलक्षणलक्षितम्। ध्यात्वापुनर्जलं हस्तेगृहीत्वा भानुमध्यगम्॥६॥
ध्यात्वाऽर्ध्यं दापयेत्तत्र करतोयेन मानवः। एवमुच्चारयेद्वाचं तस्मिन्काले चतुर्मुख!॥७॥
एकादश्यां निराहारः स्थित्वाऽहनि परे ह्यहम्।
भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष! शरणं मे भवाऽच्युत!॥८॥

श्री भगवान् कहते हैं—तत्पश्चात् सुखी मानव मार्गशीर्ष मास की शुक्लाद्वादशी के दिन यथाविधि उपचार द्वारा प्रातः मत्स्योत्सव सम्पन्न करे। अब उसकी विधि कहता हूं। नियतात्मा बुद्धिमान व्यक्ति दशमी के दिन यथाविधि देवार्चन तथा अग्निकार्य (होम) सम्पन्न करने के पश्चात् पवित्र वस्त्र धारण करके प्रसन्न मन से सुसंस्कृत हव्य पाक करे। अगले दिन पञ्चनद जाकर पुनः दोनों पैरों को धोकर आठ अंगुल के दुग्धयुक्त स्राव वाले वृक्ष की लकड़ी से दातौन तथा मुख प्रक्षालन आदि कार्य समाप्त करने के अनन्तर आचमन करें। तत्पश्चात् समस्त आकाश का दर्शन करते-करते मेरे गदाधर रूप का ध्यान करें। ध्यान है—आप हाथों में शंख, चक्र तथा गदाधारी, मस्तक पर किरीटधारी, पीतवस्त्रधारी, प्रसन्न मुखकमल वाले सर्वलक्षण सम्पन्न हैं।'' हे चतुर्मुख! इस ध्यान के पश्चात् जब सूर्यदेव मध्य आकाश में पहुंचे, तब (मध्याह्न में) जल लेकर पुनः मेरा ध्यान करना चाहिये। ध्यानोपरान्त हाथों में जल लेकर मेरे उद्देश्य से अर्घ्य देना चाहिये। हे चतुरानन! तब इस वाक्य से वह व्यक्ति मेरी प्रार्थना करें। यथा—हे पुण्डरीकाक्ष! मैं एकादशी के दिन उपवासी रहकर अगले दिन द्वादशी को भोजन करूंगा। हे अच्युत! आप मेरे सहाय्य हो जायें!।।१-८।।

एवमुक्त्वा ततो रात्रौ मम मूर्तेश्चसन्निधौ। जपेन्नारायणायेति स्वयं तत्र विधानतः॥९॥
ततः प्रभाते विमलां नदींगत्वासमुद्रगाम्। इतराम्वातडागम्वा गृहेवानियतात्मवान्॥१०॥
आनीय मृत्तिकां शुद्धां मन्त्रेणाऽनेनमानवः। वन्दयेद्देवदेवेशं तदा शुद्धो भवेन्नरः॥११॥
धारणं पोषणं त्वत्तो भूतानां देवि! सर्वदा। तेन सत्येन मे पापं यावन्मोचय सुव्रते!॥१२॥

ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि दैवतैः।
तेनेमां मृत्तिकां स्पृष्टामाऽऽलभामि त्वयोद्धृताम्॥१३॥
त्वयि नित्यं रसाः सर्वे स्थिता वरुण! सर्वदा।
तेनेमां मृत्तिकां प्लाव्य पूतां कुरूष्व मा चिरम्॥१४॥

तदनन्तर इस प्रकार रात्रि में स्वयं मेरी प्रतिमा के पास जाकर सविधि "ॐ नमो नारायणाय" मन्त्र का जप करना चाहिये। तत्पश्चात् नियतात्मा व्रती मनुष्य प्रभात होने पर विमला समुद्रगामिनी नदी अथवा किसी तालाब में जाकर इस मन्त्र से मृत्तिका लेकर घर लौटे। मन्त्र है—"हे देवी मृत्तिके! मानव जब भी देवदेवेश हरि की वन्दना करता है, वह तभी पवित्र हो जाता है। हे सुव्रते! तुम जिस सत्य से प्राणीगण को धारण करती हो तथा उनका पोषण करती हो, उस सत्य से मेरे पापों का नाश करो। हे वरुण! ब्रह्माण के उदर में जितने भी तीर्थ विद्यमान हैं तथा उनका देवगण हाथों से स्पर्श करते हैं, मैं उन देवगण से स्पर्श की गयी मृत्तिका ग्रहण करता हूं। आप में समस्त रस नित्य प्रतिष्ठित रहते हैं। मैं आप द्वारा उद्धृत यह मृत्तिका अपने शरीर में लिप्त करता हूं। आप मुझे शीघ्र पवित्र करिये।"॥९-१४॥

एवं मृदं तथा तोयं प्रसाद्याऽऽत्मानमालभेत्।
त्रिःकृत्वाऽशेषमृदया पिण्डमालिप्य वै जले॥१५॥
तस्मिन्नरः सदासम्यङ्नक्रकच्छपदूरतः। स्नात्वाचावश्यकं कृत्वा पुनर्मम गृहम्व्रजेत्॥१६॥
तत्राऽऽराध्य महायोगिन्देवं नारायणंहरिम्। केशवायनमःपादौकटिं दामोदराय च॥१७॥
जानुयुग्मं नृसिंहाय उरः श्रीवत्सधारिणे। कण्ठेकौस्तुभनाभाय वक्षः श्रीपतये तथा॥१८॥
त्रैलोक्यविजयायेति बाहुं सर्वात्मने शिरः। रथाङ्गधारिणेवक्त्रं श्रीकरायेतिवारिजम्॥१९॥
गम्भीरायेति च गदामम्भोजं शान्तमूर्तये। एवमभ्यर्च्य देवेशं देवं नारायणम्प्रभुम्॥२०॥
पुनस्तस्याऽग्रतः कुम्भांश्चतुरः स्थापयेद् बुधः।
जलपूर्णान्समाल्यांश्च सितचन्दनलेपितान्॥२१॥
चूतपल्लवसंयुक्तान्सितवस्त्रावगुण्ठितान्। छादितांस्ताम्रपात्रैश्च तिलपूर्णैश्च काञ्चनैः॥२२॥

इस प्रकार मृत्तिका को किंचित् जल से आर्द्र करके शरीर में उसका लेपन करें। मानव तीन बार अपने देह में मृत्तिका का लेप करके कच्छप तथा मगर आदि से बचते हुये जल में स्नान करें। स्नान करने के पश्चात् आवश्यक नित्यकर्म सम्पन्न करके मेरे मन्दिर में आये। हे महायोगी! मंदिर में देवदेव नारायण श्रीहरि की आराधना करते-करते यह मन्त्र पढ़ना चाहिये। यथा—"हे केशव! आपके चरणों में प्रणाम! हे दामोदर! आपकी कटि को प्रणाम! हे नृसिंह! आपके जानुयुग्म को प्रणाम! हे श्रीवत्सधारी! आपके उरुद्वय को प्रणाम! हे कौस्तुभनाभ! आपके कण्ठ को प्रणाम! हे श्रीपति आपके वक्ष को प्रणाम! हे त्रैलोक्य विजय! आपकी बाहु को प्रणाम! हे सर्वात्मन्! आपके शिर को प्रणाम! हे रथाङ्गपाणि! आपके वक्त्र को प्रणाम! हे गम्भीर! आपकी गदा को प्रणाम! हे शान्तमूर्त्ति! आपके पद्म को प्रणाम!" इस प्रकार देवदेव नारायण प्रभु की अर्चना करनी चाहिये। इसके पश्चात् बुद्धिमान मनुष्य देवेश के समक्ष चार घट स्थापित करे। ये चारों जलपूर्ण हों, माला से सजे हों,

चन्दन से लिप्त हों, आम्रपल्लव युक्त हों तथा श्वेतवस्त्र से आच्छादित हों। एक ताम्रपात्र में तिल एवं काञ्चन रखकर उसे कुंभ पर स्थापित करें।।१५-२२।।

चत्वारस्तु समुद्राश्चकलशाःसम्प्रकीर्तिताः। तेषांमध्येशुभम्पीठंस्थापयेद्वस्त्रगर्भितम्॥२३॥
तस्मिन्सुवर्णं रौप्यं वा ताम्रंवा दारवंतथा। अलाभेसर्वपात्राणांपालाशंपात्रमिष्यते॥२४॥
तोयपूर्णञ्च तत्कृत्वा तस्मिन्पात्रे ततो न्यसेत्।
सौवर्णं मत्स्यरूपञ्च कृत्वा देवं जनार्दनम्॥२५॥
देवदेवाङ्गसंयुक्तं श्रुतिस्मृतिविभूषितम्। तत्राऽनेकविधैर्भक्ष्यैःफलैःपुष्पैश्चशोभितम्॥२६॥
गन्धैर्धूपैश्च वस्त्रैश्च अर्चयित्वा यथाविधि। रसातलगता वेदायथादेव त्वयोद्धृताः॥२७॥

इन चार कलस को चार समुद्र कहते हैं। इन चारों कलस (घट) पर रत्नगर्भ सुन्दर पीठासन तथा उसके ऊपर एक ताम्रपात्र स्थापित करें। यह स्वर्ण-चांदी किंवा काष्ठ निर्मित पात्र हो। जब ये तीनों प्रकार के पात्र न मिले तब पलाशपत्र का पात्र ही उचित है। तदनन्तर जनार्दन की मत्स्यमूर्त्ति बनाकर इस पात्र में जल भरने के पश्चात् उसमें रखना चाहिये। यह मत्स्य वेद-वेदाङ्गयुक्त तथा श्रुति-स्मृति द्वारा भूषित हो। तदनन्तर सुशोभन नाना भक्ष्य, फल, पुष्प, गन्ध, धूप, वस्त्र से इस पात्र पर यथाविधि मेरी पूजा इस मन्त्र से करनी चाहिये।।२३-२७।।

मत्स्यरूपेण तद्वन्मां भवादुद्धर केशव!।
एवमुच्चार्य तस्याऽग्रे जागरं तत्र कारयेत्॥२८॥
यथाविभवसारेण प्रभाते विमले तथा। चतुर्णां ब्राह्मणानाञ्च चतुरो दापयेद्धटान्॥२९॥
पूर्वञ्च बह्वृचे दद्याच्छान्दोग्ये दक्षिणं तथा। यजुःशाखान्वितेदद्यात्पश्चिमंघटमुत्तमम्॥३०॥
उत्तरं कामतो दद्यादेष एव विधिः स्मृतः। ऋग्वेदः प्रीयतां पूर्वे सामवेदस्तु दक्षिणे॥३१॥
यजुर्वेदः पश्चिमतो ह्यथर्वश्चोत्तरेण तु। अनेन क्रमयोगेन प्रीयतामिति वाचयेत्॥३२॥

यथा—"हे देव! सभी वेद रसातलगामी हो गये थे। आपने मत्स्य रूप से उनका उद्धार किया। हे केशव! अब अपने उस मत्स्यरूप से मेरा भी उद्धार करिये।" नारायण के पास यह प्रार्थना करने के साथ ही वहां बैठे तथा रात्रिजागरण करें। तत्पश्चात् विमल प्रभात के समय अपनी वित्तशक्ति के अनुरूप चार ब्राह्मणों को इन चार कलसों को देना चाहिये। इस दान का फल सुनें। पूर्व दिशा स्थित घट को दक्षिणा के साथ वह्वृच को, दक्षिणस्थ घट को छान्दोगा को, पश्चिमस्थ घट को यजुःशाखावाले द्विज को तथा उत्तरदिक् स्थित घट को जिसे इच्छा हो उस ब्राह्मण को दक्षिणायुक्त प्रदान करें। यही दानविधि कही गयी है। तत्पश्चात् "पूर्वदिक् में ऋग्वेद प्रसन्न हों, दक्षिण में सामवेद प्रसन्न हों, पश्चिम में यजुर्वेद प्रसन्न हों, उत्तर में अथर्ववेद प्रसन्न हो।" इस प्रकार के वाक्यों से प्रीतिवाचन करें।।२८-३२।।

मत्स्यरूपं तुसौवर्णमाचार्यायनिवेदयेत्। गन्धधूपादिवस्त्रैस्तुसम्पूज्यविधिवत्क्रमात्॥३३॥
यस्त्विमं सरहस्यञ्चमन्त्रेणैवोपपादयेत्। विधानंविधिवद्दत्त्वादाताकोटिगुणोत्तरम्॥३४॥

इसके पश्चात् गन्ध-पुष्प-वस्त्रादि से सविधि अर्चना करनी चाहिये तथा वह स्वर्ण की मत्स्यमूर्त्ति आचार्य को निवेदित करना आवश्यक है। जो व्यक्ति मन्त्रादि से सरहस्य इस मत्स्योत्सव को करता है, उसका फल यथाविधि दानों से कोटिगुण उत्तम फल प्रदान करता है।।३३-३४।।

प्रतिपाद्यगुरुं यस्तु मोहाद्विप्रतिपद्यते। स जन्मकोटिंनरके पच्यते पुरुषाधमः॥३५॥
विधानस्य प्रदाता यो गुरुरित्युच्यते बुधैः। एवंदत्वाविधानेनद्वादश्यांमांसमर्चयेत्॥३६॥
विप्राणां भोजनं दद्याद्यथाशक्त्या च दक्षिणाम्।
भूरिणा परमान्नेन ततः पश्चात्स्वयं नरः॥३७॥
भुञ्जीतसहितो विप्रैर्वाग्यतःसंयतेन्द्रियः। अनेनविधिनायस्तुकुर्यान्मत्स्योत्सवंनरः॥३८॥
तस्यपुण्यफलंचाऽग्रेश्रृणुसत्यवताम्वर। यदि वक्त्रसहस्राणां सहस्राणिभवन्ति हि॥३९॥
आयुश्च ब्रह्मणा तुल्यं लभेद्यदि महाव्रत!। तदा वै ह्यस्य धर्मस्य फलं कथयितुंभवेत्॥४०॥
य इमं श्रावयेद्भक्त्या द्वादशीकल्पमुत्तमम्। श्रृणोति वा स पापैस्तुसर्वैरिव विमुच्यते॥४१॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांद्वितीये वैष्णवखण्डेमार्गशीर्षमासमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णु-सम्वादे मत्स्योत्सवकथनंनाम चतुर्दशोऽध्यायः।।१४।।

जो गुरु से सम्यक्तः विधि जानकर भी उसमें व्यतिक्रम करता है, उस नराधम को करोड़ों जन्म तक नरकगामी होना पड़ेगा। जो इस उत्सव के विधान को बतलाते हैं, पण्डितगण उसे ही गुरु कहते हैं। मानव द्वादशी के दिन इस प्रकार की अर्चना तथा दान करने के पश्चात् सविधि मेरा पूजन करे। तत्पश्चात् यथाशक्ति दक्षिणा के साथ ब्राह्मणों को भोज्य तथा प्रचुर परमान्न प्रदान करके विप्रगण के पश्चात् स्वयं भोजन करे। वह मौनी रहे। साथ ही संयमित रहे। इस विधि के द्वारा जो मानव मत्स्योत्सव करता है, उसके पुण्यफल को सुनो। यदि शेषनाग के समान कोई एक हजार मुख तथा ब्रह्मा के समान आयु पाकर इसका फल कहने लगे, तथापि वह इसका पूर्णफल नहीं कह सकेगा। जो इस उत्तम द्वादशी माहात्म्य को भक्ति के साथ सुनते हैं अथवा सुनाते हैं, वे समस्त कलुष-पाप से मुक्त हो जाते हैं।।३५-४१।।

।।चतुर्दश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

पञ्चदशोऽध्यायः

विष्णु की प्रसन्नता के लिये भोजनादि महत्व वर्णन, श्रीनाम माहात्म्य, ब्राह्मण तृप्ति महत्व, श्रीकृष्ण नाम माहात्म्य

श्रीभगवानुवाच

ये त्वया वै कृताःप्रश्नाःपूर्वंप्रश्नविदांवर। तान्वर्णयिष्येक्रमशोनिशामयसुनिश्चितम्॥१॥
सहोमासे च देवो वै कीर्त्रियुक्तो हि केशवः। तस्य पूजाप्रकर्तव्यायथापूर्वंप्रभाषितम्॥२॥
ब्राह्मणं केशवं स्मृत्वा तत्पत्नींकीर्तिमेवच। दम्पतीविधिवत्पूज्यौवस्त्राभरणधेनुभिः॥३॥
दम्पती पूजितो वत्स पूजितोऽहंनसंशयः। तस्मादवश्यं सम्पूज्यौदम्पतीममतुष्टिदौ॥४॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे प्रश्नकर्त्तागण में अग्रणी! आपने पूर्व में मुझसे जो सब प्रश्न किये थे, क्रमशः उनका वर्णन सुनिये। मार्गशीर्ष मास में केशव कीर्त्तियुक्त होते हैं। मैंने जैसे पूर्व में कहा है, उसी विधान से इस मास में केशव पूजा करें। ब्राह्मण ही केशव हैं तथा ब्राह्मण पत्नी ही कीर्त्तिमती हैं, यह भावना करनी चाहिये। वस्त्राभरणादि से यथा विधान द्विजदम्पति की पूजा करनी चाहिये। हे वत्स! द्विज दम्पति के पूजन से मैं ही पूजित होता हूं। इसमें सन्देह नहीं है। अतः मेरी प्रसन्नतार्थ द्विजदम्पति पूजन आवश्यक है।।१-४।।

दानञ्चविविधं कार्यंमम तुष्टिकरं परम्। गोदानं भूमिदानञ्च स्वर्णदानं विशेषतः॥५॥
वस्त्रदानं तथां शय्या तथाऽलङ्करणानि च। सद्मदानं प्रकर्तव्यं मम सन्तोषकारकम्॥६॥
सर्वेषामेवदानानां विशेषञ्च त्रिकं स्मृतम्। वसुन्धरा तथा धेनुर्विद्यादानं तथैव च॥७॥
दत्ते दानत्रिके वत्स भवेत्प्रीतिर्ममाऽतुला। तस्मान्नरैस्तुकर्तव्यंसहोमासेत्रिकंशुभम्॥८॥
स्नानस्य च विधिः सम्यक्पुरैवोकतोमयाऽनघ। पूजास्नानञ्चदानञ्चविधिरेषनसंशयः॥९॥

मार्गशीर्षं समग्रं तु एकभक्तेन यः क्षिपेत्।
भोजयेद्यो द्विजान्भक्त्या स मुच्येद्व्याधिकिल्बिषैः॥१०॥

कृषिभागी बहुधनो बहुधान्यश्च जायते। किमत्र बहुनोक्तेन शृणु गुह्यं परं मम॥११॥

अब दान का वर्णन करता हूं। गौ, भूमि, स्वर्ण, वस्त्र, शय्या, अलंकार एवं गृह का दान करें। दोनों में से तीन दान सर्वोत्कृष्ट हैं। ये मुझे सन्तुष्ट करने वाले कहे गये हैं। वे वत्स! पृथिवी-भूमि तथा विद्यारूप दानत्रय से मुझे अतुलनीय प्रसन्नता होती है। इसलिये मानव मार्गशीर्ष मास में इन दानत्रय को अवश्य सम्पन्न करे। हे निष्पाप! स्नानविधि को सम्यक्‌तः पहले ही कहा है। पूजा, स्नान तथा दान की यही विधि ही है। जो मानव एक समय आहार करके समग्र अग्रहायण मास व्यतीत करता है, साथ ही भक्तिभाव से ब्राह्मणों को भोजन कराता है, उसको पाप एवं व्याधि का भय नहीं होता। वह कृषिभागी, बहुत धन वाला तथा अनेक धान्य सम्पन्न होता है। इस विषय में अधिक क्या कहा जाये! अब मेरा परम गुह्य कथन सुनें।।५-११।।

हुतभुग्ब्राह्मणश्चैव वदनं मम मानद। ब्राह्मणाख्यं मुखं श्रेष्ठं न तथा हव्यवाहनः॥१२॥
ब्राह्मणाख्ये मुखे पुत्र! हुतं कोटिगुणं भवेत्।
अग्न्याख्यं ब्राह्मणाधीनं स्वतन्त्रा ब्राह्मणाः किल॥१३॥

हे मानद! हुताशन (अग्नि) तथा ब्राह्मण, ये दोनों मेरे मुखस्वरूप हैं। इनमें ब्राह्मण मेरा उत्तम भाव है। ब्राह्मण के मुख के समान अग्नि का मुख नहीं है। हे मुनिवर! मेरे ब्राह्मण नामक मुख में आहुति देने से कोटिगुणित फललाभ होता है। मेरा हुताशन मुख ब्राह्मण के अधीन होने के कारण ब्राह्मण सर्वतोभावेन स्वाधीन हैं॥१२-१३॥

सशर्करं घृतयुतं पायसं शशिसन्निभम्। होतव्यं ब्राह्मणमुखे मम तुष्टिकरं सुत॥१४॥
शुमण्डलमोदककोकरसं सुत! फेनिकया घृतपूरयुतम्।
यज विप्रमुखे मम तुष्टिकरं यदि चेच्छसि दारसुतादिसुखम्॥१५॥
कुमुदेन समप्रभसौरभदं शुभभक्तयुतं त्वथ मुद्गयुतम्।
सुरभीकृतपुष्कलसर्पिसभं कुरु विप्रमुखे हवनं हि सहे॥१६॥
वयसा सह सर्पिषि स क्वथितं बहुखारिकचारफलैः सितया।
सह कर्पूरनारिफलेन समं युतसीकरकं सुत! शुभ्रकरम्॥१७॥

व्यञ्जनानि च शुभ्राणि मनोज्ञानिप्रियाणिच। कर्त्तव्यानिसहोमासेब्राह्मणार्थेचतुर्मुख!॥१८॥
प्रियाशिखरिणीकार्या चान्यत्तेषां प्रियञ्चयत्! कृत्वैवंभोजयेद्विप्राञ्छ्रद्धयापरयासुत॥१९॥
रसास्वादनपूर्वं हि भुञ्जते वै यथायथा। तथातथा मम प्रीतिर्जायते भुवि दुर्लभा॥२०॥

हे पुत्र! शशधर के समान शुभकान्तियुक्त शर्करा तथा घृतयुक्त पायस से ब्राह्मण के मुख में आहुति प्रदान करने से हमें अत्यधिक सन्तोष लाभ होता है। हे पुत्र! यदि पत्नी तथा पुत्रादि की कामना हो, तब मुझे सन्तोषप्रद मनोहर मण्डल, मोदक तथा काकरस, फेनी तथा घृतपूर युक्त (एक प्रकार का व्यंजन) करके उस भोज्य से ब्राह्मण के मुख में मेरी पूजा करें। हे पुत्र! पुष्प के समान प्रभा तथा सौरभयुक्त उत्तम अन्न को मूंग से युक्त करके तथा विपुल घृत से सुगन्धयुक्त करके ब्राह्मण को प्रदान करें। इस प्रकार मेरी मुख पूजा करें। हे पुत्र! अनेक खारिक (एक व्यंजन) तथा चारफल नामक फल को शर्करा तथा दुग्धयुक्त करके घृत में छोड़े। इसमें कर्पूर तथा नारिकेल के लच्छे के साथ ब्राह्मण के मुख में प्रदान कराने (ब्राह्मण को भोजन कराने से) से मुझे संतुष्टि होती है। हे चतुरानन! मार्गशीर्ष मास में देवगण की प्रसन्नता हेतु मनोज्ञ विप्र को व्यञ्जन, प्रिया शिखरिणी तथा उनको प्रिय अन्य वस्तु प्रदान करना कर्त्तव्य है। हे पुत्र! इस प्रकार के भोज्यद्रव्य प्रस्तुत करके अतीव श्रद्धा के साथ ब्राह्मणों को भोजन करायें। जिस भोजन से उनकी तृप्ति हो, वैसा ही भोजन उनको देना चाहिये। क्योंकि जैसे वे प्रसन्न हों, उसी प्रकार से मुझे भी संसार दुर्लभ प्रसन्नता होती है॥१४-२०॥

तस्मात्तत्तत्तथा कार्यं यथातुष्यन्तिब्राह्मणाः। तुष्टैस्तैश्चाऽप्यहंतुष्टोभवामीहनसंशयः॥२१॥
श्रद्धत्स्व त्वं चतुवक्त्र! न ते मिथ्या ब्रवीम्यहम्।
एतद्गुह्यं मया प्रोक्तं श्रेयोऽर्थं तव मानद!॥२२॥

आक्रोशयन्ति यदि ते अथवा प्रहरन्ति चेत्। तथापि तेनमस्यावैमप्रीत्याहिमानद॥२३॥
एवं कार्यं सदा पुत्र मार्गशीर्षे विशेषतः।
यदुक्तं भवता ब्रह्मन्भोक्तव्यं किंशृणुष्वतत्॥२४॥

इस कारण से जैसे ब्राह्मण तृप्त हों, वही करें। ब्राह्मणों के सन्तुष्ट होने पर मुझे भी प्रसन्नता होती है, इसमें सन्देह नहीं है। हे चतुर्मुख! मेरे वाक्य के प्रति श्रद्धावान् होना चाहिये। मैंने यह सब सत्य वाक्य कहा है। हे मानद! आपकी कुशल कामना के कारण मैंने यह गुह्य कथा कही है। हे मानद! यदि ब्राह्मण तिरस्कार किंवा प्रहार भी कर दे, तथापि मेरे कृपापात्र होने के कारण ब्राह्मण नमस्कार योग्य ही रहते हैं। हे पुत्र! मार्गशीर्ष मास में यह कार्य करें। हे ब्रह्मन्! आपने जो पूछा था वह मैंने कह दिया। अब क्या भोजन हो, इसे मैं कहता हूं।।२१-२४।।

भोक्तव्यं मम मम चोच्छिष्टंममभक्तिपरायणैः। पवित्रकरणंपुत्रपापिनामपिमुक्तिदम्॥२५॥
ममाशनस्य शेषञ्च योभुनक्तिदिनेदिने। सिक्थेसिक्थेभवेत्पुण्यंचान्द्रायणशतोद्भवम्॥२६॥
अवशिष्टं ततोच्छिष्टं भक्तानां भोजनद्वयम्।
नाऽन्यद्वै भोजनं तेषां भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥२७॥
अनर्षयित्वा यो भुङ्क्ते अन्नपाकञ्च यत्। श्वानविष्ठासमं चान्नं पानञ्च मदिरासमम्॥२८॥
तस्मान्मामर्पयेत्पुत्र अन्नपानादि चौषधम्। भक्षयेत्परयाभक्त्याअशुचेःशुचिकारकम्॥२९॥

मेरे प्रति भक्तिपरायण मनुष्य मेरा उच्छिष्ट (प्रसाद) भक्षण करे। हे पुत्र! मेरा उच्छिष्ट पापीगण को पवित्र करने वाला तथा मुक्तिप्रद है। जो मानव नित्यप्रति मेरे भोजन से बचे अन्न का भोजन करता है, प्रत्येक प्रसाद ग्रास द्वारा उसे शतचान्द्रायण व्रत का लाभ होता है। अवशिष्ट तथा उच्छिष्ट, यह दो प्रकार का अन्न भक्तगण ग्रहण करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य अन्न भोजन करने पर भक्तगण को चान्द्रायण व्रत करना चाहिये। मेरा तर्पण किये बिना अन्न-पान न करे। वह अन्न कुत्ते की विष्ठा के तुल्य है, जल मदिरा तुल्य है। हे पुत्र! इसलिये अन्न-पान ही नहीं औषधि तक को मुझे अर्पित करके ग्रहण करे। मेरे उद्देश्य से निवेदित वस्तु का भोजन भक्तिभाव से करने वाले की अपवित्रता भी पवित्रता में परिवर्त्तित हो जाती है।।२५-२९।।

तीर्थयज्ञादिकफलं कलिदोषविनाशनम्। ममोच्छिष्टं सुगतिदमपि दुष्कृतकर्मणाम्॥३०॥
अन्येषां दैवतानाञ्च न गृह्णीयाच्च भक्षितम्।
अभक्तानाञ्च पक्वान्नं भुक्त्वाचनरनकंव्रजेत्॥३१॥

जैसे तीर्थ तथा यज्ञादि कलिदोष समूह का नाश कर देते हैं, उसी प्रकार मेरा उच्छिष्ट भी दुष्कृतिरूप कर्म समूह को विशुद्ध कर देता है। हे पुत्र! अन्य देवताओं का भी प्रसाद ग्रहण करे, लेकिन यदि उसे अभक्त ने पकाया हो तब उसे ग्रहण करना वर्जित है। वैसा अन्न ग्रहण करने से नरक में पतन होता है।।३०-३१।।

वक्तव्यमेव यत्प्रोक्तं तच्छृणुष्व समाहितः। कथयिष्ये तव प्रीत्या अपि गुह्यतरंमम॥३२॥
मम नाम प्रवक्तव्यं सहे चैव विशेषतः। कृष्णकृष्णेति वक्तव्यं मम प्रीतिकरं परम्॥३३॥

हे पुत्र! इस विषय में आपकी जो जिज्ञासा थी, वह कहता हूं। समाहित होकर सुनें। यह अतीव गुह्य

है। केवल आपके प्रति प्रेम के कारण उसे प्रकट करता हूं। विशेषतः मार्गशीर्ष मास में मेरा नाम कीर्त्तन कर्त्तव्य है। कृष्ण-कृष्ण नाम का कीर्तन करें। यह मेरे लिये अत्यन्त प्रीतिकर है।।३२-३३।।

प्रतिज्ञैषा च मे पुत्र न जानन्ति सुरासुराः।
मनसा कर्मणा वाचा यो मे शरणमागतः।।३४।।
स हि सर्वमवाप्नातिकामनामिहलौकिकीम्। सर्वोत्कृष्टञ्चवैकुण्ठंमत्प्रियांकमलामपि।।३५।।
कृष्णकृष्णोति कृष्णोति यो मां स्मरति नित्यशः।
जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम्।।३६।।
विनोदेनाऽपि दम्भेन मौढ्याल्लोभाच्छलादपि।
यो मां भजत्यसौ वत्स! मद्भक्तोनाऽवसीदति।।३७।।
ये वै पठन्ति कृष्णोति मरणे पर्युपस्थिते। यदि पापयुताः पुत्रनपश्यन्तियमंक्वचित्।।३८।।

हे पुत्र! सुर-असुरगण को मेरी प्रतिज्ञा अज्ञात है। जो मानव मनसा-वाचा-कर्मण मेरे शरणागत हैं, वे ही लौकिक कामनाओं की प्राप्ति कर लेते हैं। सर्वोत्तम वैकुण्ठ तथा मेरी प्रिया लक्ष्मी उसे सुलभ है। जो मानव कृष्ण-कृष्ण का सम्बोधन करके सतत् मेरा स्मरण करता है, मैं उसका उसी प्रकार से उद्धार करता हूं, जैसे कमल जल का भेदन करके बहिर्गत हो जाता है। जो व्यक्ति विनोद, दम्भ, मूढ़ता, लोभ, किंवा छल से भी मेरा भजन करता है, वह मेरा ही भक्त है। वह कभी भी अवसादग्रस्त नहीं होता। मृत्युकाल आने पर जो कृष्ण-कृष्ण का पाठ करता है, हे पुत्र! वह पापरत होने पर भी कभी यम का मुख नहीं देखता।।३४-३८।।

पूर्वे वयसिपापानिकृतान्यपिचकृत्स्नशः। अन्तकालेचकृष्णोतिस्मृत्वामामेत्यसंशयम्।।३९।।
नमः कृष्णाय महते विवशोऽपि वदेद्यति। ध्रुवं पदमवाप्नोति मरणे पर्युपस्थिते।।४०।।
श्रीकृष्णोति कृतोच्चारैः प्राणैर्यदि वियुज्यते। दूरस्थः पश्यति चतंस्वर्गतंप्रेतनायकः।।४१।।
श्मशाने यदि रथ्यायां कृष्णकृष्णोति जल्पति। म्रियतेयदिचेत्पुत्रमामेवैतिनसंशयः।।४२।।
दर्शनान्मम भक्तानां मृत्युमाप्नोतियःक्वचित्। विनामत्स्मरणात्पुत्रमुक्तिमेतिसमानवः।।४३।।
पापानलस्य दीपस्य भयंमा कुरुपुत्रक। श्रीकृष्णनाममेधोत्थैःसिच्यतेनीरबिन्दुभिः।।४४।।
कलिकालभुजङ्गस्य तीक्ष्णदंष्ट्रस्य किं भयम्।
श्रीकृष्णनामदारूत्थवह्निदग्धः स नश्यति।।४५।।

जिन्होंने अपनी आयु के प्रारंभिक भाग में (यौवन-प्रौढ़ावस्था आदि में) सभी प्रकार का पाप किया हो, ऐसे मानव भी मृत्युकाल में कृष्ण नाम का उच्चारण करके मुझे निःसंदिग्ध रूप में प्राप्त करते हैं। जो मृत्युकाल में "महान् कृष्ण को नमस्कार" यह कहते हैं, वे निश्चय ही मेरा पद प्राप्त करते हैं। जो 'श्रीकृष्ण' उच्चारण करके प्राण त्याग करते हैं, उनकी गति स्वर्ग में होती है। उसे तो प्रेतनायकगण दूर से ही देखते हैं। निकट नहीं आ पाते। हे पुत्र! कृष्ण-कृष्ण उच्चारण करने वाला मार्ग में अथवा श्मशान में कहीं भी मृत हो, वह निःसंदिग्ध रूपेण मुझे प्राप्त करता है। हे पुत्र! यदि कोई मेरे भक्त का दर्शन करता मृत हो जाता है, वह व्यक्ति मेरे स्मरण

बिना भी मुक्तिलाभ करता है। हे वत्स! प्रदीप्त पापाग्नि से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। कृष्णनामरूपी मेघ का जल विन्दु अभिषिक्त करेगा। तीक्ष्ण दाढ़ों वाले कलिकाल रूप सर्प से तुमको भय कैसा? श्रीकृष्णनामरूपी काष्ठ से निकली अग्नि से इस सर्प का वध हो जाता है। वह इससे दग्ध हो जाता है।।३९-४५।।

पापपावकदग्धानां कर्मचेष्टावियोगिनाम्। भेषजंनास्तिमर्त्यानांश्रीकृष्णस्मरणंविना॥४६॥
प्रयागे वै यथा गङ्गा शुक्लतीर्थे च नर्मदा। सरस्वती कुरुक्षेत्रे तद्वच्छ्रीकृष्णकीर्तनम्॥४७॥
भवाम्भपोधिंनिमग्नानांमहापापोर्मिपातिनाम्। नगतिर्मानवानाञ्चश्रीकृष्णस्मरणंविना॥४८॥

श्रीकृष्ण स्मरणरूपी औषधि के बिना ऐसे पापाग्नि से दग्ध मानव के लिये अन्य औषधि नहीं है। प्रयाग में जैसे गंगा हैं, शुक्लपक्ष में जैसे नर्मदा तथा पुष्कर में जैसे सरस्वती पापहारिणी है, तदनुरूप कृष्णनाम कीर्त्तन पापहारी है। जो भवसागर में निमग्न होकर महापातक रूपी उर्मिमाला में गिरे हैं, श्रीकृष्ण के स्मरण के बिना ऐसे मानव की कहीं गति नहीं है।।४६-४८।।

मृत्युकालेऽपि मर्त्यानां पापिनां तदनिच्छताम्।
गच्छतां नाऽस्ति पाथेयं श्रीकृष्णस्मरणं विना॥४९॥
तत्र पुत्र! गया काशी पुष्करंकुरुजाङ्गलम्। प्रत्यहंमन्दिरेयस्यकृष्णकृष्णेतिकीर्तनम्॥५०॥
जीवितं जन्मसाफल्यंमुखं तस्यैव सार्थकम्। सततंरसनायस्यकृष्णकृष्णेतिजल्पति॥५१॥
सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्। बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥५२॥
नाम्नोऽस्य यावती शक्तिः पापनिर्दहने मम। तवत्कर्तुं न शक्नोतिपातकंपातकीजनः॥५३॥
नाऽपविद्धं भवेत्तस्य शरीरं नैव मानसम्। न पापंनचवैक्लव्यंकृष्णकृष्णंतिकीर्तनात्॥५४॥
श्रीकृष्णेति वचः पथ्यं न त्यजेद्यःकलौ नरः। पापामयोवैन भेवत्कलौतस्वैवमानसे॥५५॥
श्रीकृष्णेति प्रजल्पन्तंदक्षिणाशापतिर्नरम्। श्रुत्वामार्जयतेपापंतस्यजन्मशतार्जितम्॥५६॥
चान्द्रायणशतैः पापंपराकाणांसहस्त्रकैः। यन्नापयातितद्यातिकृष्णकृष्णेतिकीर्तनात्॥५७॥
नान्याभिर्नामकोटीभिस्तोषो मम भवेत् क्वचित्।
श्रीकृष्णेति कृतोच्चारे प्रीतिरेवाऽधिकाधिका॥५८॥
चन्द्रसूर्योपरागैस्तु कोटीभिर्यत्फलं स्मृतम्।
तत्फलं समवाप्नोति कृष्णकृष्णेति कीर्तनात्॥५९॥

पापी मनुष्य मृत्युकाल में श्रीकृष्ण नाम का उच्चारण करने में अनिच्छा प्रकट करता है, लेकिन यमपुरीगमन करते समय श्रीकृष्ण नाम स्मरण के अतिरिक्त कोई पाथेय नहीं है। हे पुत्र! जिस स्थान पर (गृह में) कृष्ण-कृष्ण शब्द उच्चरित होता है, वहां गया, काशी, पुष्कर तथा कुरुजांगल सदा विद्यमान है। जिसकी रसना सतत् ''कृष्ण'' ''कृष्ण'' जल्पना करती है, उसका जीवन जन्म तथा सुख सार्थक है। मेरा नाम पापदहन में जहां तक प्रभावी है, पातकी नर उतना पाप कर ही नहीं सकते। जो मानव मेरे ''कृष्ण-कृष्ण'' नाम का उच्चारण करता है, उसका शरीर तथा मन कदापि विद्ध नहीं होता। पाप तथा विकलता कभी उसका स्पर्श नहीं

कर पाते। कलि में जो मानव श्रीकृष्णरूप पाथेय का त्याग नहीं करते उनके अन्तःकरण में पापव्याधि का प्रवेश नहीं होता, दक्षिण दिशापति यम कृष्ण का नाम उच्चारण करने वाले लोगों को देखकर उसके सौ जन्मों के पापों का परिमार्जन कर देते हैं। एक सौ चान्द्रायण एवं सहस्र पराकव्रत से भी जो पाप नष्ट नहीं होता, एकमात्र कृष्णनाम कीर्त्तन मात्र से वह पाप नष्ट हो जाता है। अन्य करोड़ों नामों से शायद ही कभी मैं प्रसन्न होता हूं, तथापि श्रीकृष्ण नाम के एक बार उच्चारण मात्र से मैं प्रसन्न हो जाता हूं। करोड़ों सूर्य ग्रहण में धर्माचरण द्वारा व्यक्ति जो फल प्राप्त करता है, श्रीकृष्ण नाम कीर्त्तन से उससे भी अधिक फललाभ होता है।।४९-५९।।

गुरुदाराभिगमनं हेमस्तेयादिपातकम्। श्रीकृष्णकीर्तनाद्याति धर्मतप्तं हिमंयथा।।६०।।

युक्तो यदि महापापैरगम्यागमनादिभिः। मुच्यते चान्तकालेऽपि सकृच्छ्रीकृष्णकीर्तनात्।।६१।।

अविशुद्धमना यस्तु विनाप्याचारवर्तनात्।
प्रेतत्वं सोऽपि नाप्नोति अन्ते श्रीकृष्णकीर्तनात्।।६२।।

मुखे भवतु माजिह्वाऽसतीयातुरसातलम्। नसाचेत्कलिकालेयाश्रीकृष्णगुणवादिनी।।६३।।

स्ववक्त्रे परवक्त्रे च वन्द्या जिह्वाप्रयत्नतः। कुरुतेयाकलौपुत्र श्रीकृष्णगुणकीर्तनम्।।६४।।

पापवल्लीमुखेतस्य जिह्वरूपेण कीर्त्त्यते। या नवक्तिदिवारात्रौश्रीकृष्णगुणकीर्तनम्।।६५।।

पततां शतखण्डा तु सा जिह्वा रोगरुपिणी।
श्रीकृष्णकृष्णकृष्णोति श्रीकृष्णोति न जल्पति।।६६।।

गुरुपत्नी गमन तथा स्वर्ण चौर कार्य का पाप कृष्ण नाम स्मरण से उसी प्रकार से दूर हो जाता है, जैसे बर्फ सूर्य के ताप से गल जाता है। यदि अगम्यागमनादि महापापों से व्यक्ति भले ही युक्त हो, तथापि मानव अन्तकाल (मृत्युकाल में) में मेरे एक बार नाम लेने से मुक्त हो जाता है। अनाचार परायणता के कारण अशुद्ध मन युक्त व्यक्ति भी अन्तकाल में श्रीकृष्ण नाम कीर्त्तन करने से प्रेतत्व प्राप्त नहीं करता। कलिकाल में जो जिह्वा तथा असती नारी श्रीकृष्ण का गुणगान नहीं करती, मानो वह जिह्वा मुख में है नहीं तथा वह असती स्त्री रसातल में चली जाती है। हे पुत्र! कलिकाल में जो जिह्वा श्रीकृष्ण का गुण कीर्त्तन करती है, भले ही वह अपनी जिह्वा हो किंवा अन्य की जिह्वा हो, वह सर्वप्रयत्न से वन्दनीय है। जिसके मुख में दिनरात श्रीकृष्ण का गुणानुकीर्त्तन नहीं होता, उसकी जिह्वा पाप की लता के समान है। जो जिह्वा श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण का जप नहीं करती ऐसी रोगरूपिणी जिह्वा शतखण्ड होकर पतित हो जाये।।६०-६६।।

श्रीकृष्णनाममाहात्म्यं प्रातरुत्थाययः पठेत्। तस्याऽहंश्रेयसांदाताभवाम्येवनसंशयः।।६७।।

श्रीकृष्णनाममाहात्म्यं त्रिसन्ध्यं हि पठेत्तु यः।
सर्वान्कामानवाप्नोति स मृतः परमां गतिम्।।६८।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णु-सम्वादे श्रीकृष्णनाममाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः।।१५।।

—❋❋❋—

जो मानव प्रातः शय्या त्याग के उपरान्त श्रीकृष्ण की नाम महिमा का पाठ करता है, मैं उसको श्रेय प्रदान करने वाला हो जाता हूं। इसमें संशय नहीं है। जो मनुष्य सन्ध्यात्रय काल में श्रीकृष्ण का नाममाहात्म्य पढ़ता है, वह सर्वाभीष्ट प्राप्त करता है तथा मृत्यु के अनन्तर उत्तम गति प्राप्त करता है।।६७-६८।।

।।पञ्चदश अध्याय समाप्त।।

षोडशोऽध्यायः

गुरुलक्षण तथा महत्व, भागवत् श्रेष्ठत्व माहात्म्य

श्रीभगवानुवाच

श्रृणु ध्यानं चतुर्वक्त्र! वक्ष्यामि प्रीतिमानसः। श्रुतेनैवचसौभाग्यंलभतेमानवोभुवि॥१॥

अथ श्रीमदुद्यानसम्वीतहैमस्थलोद्भासिरत्नस्फुरन्मण्डपान्तः।
लसत्कल्पवृक्षोदितोद्दीप्तरत्नस्थलाधिष्ठिताम्भोजपीठाऽधिरूढम् ॥२॥
महानीलनीलाभमत्यन्तबालं गुडस्निग्धवक्त्रान्तविस्त्रस्तकेशम्।
अलिव्रातपर्याकुलोत्फुल्लपद्मप्रमुग्धाननं श्रीमदिन्दीवराक्षम्॥३॥
चलत्कुण्डलोल्लासितोत्फुल्लगल्लं सुघोणं सुशोणाधरं सुसिमतास्यम्।
अनेकोल्लसत्कण्ठभषलसन्तं वहन्तं नखं पौण्डरीकं सुनेत्रम्॥४॥
समुद्धूसरोरःस्थलं धेनुधूल्या सुपुष्टाङ्गमष्टापदाकल्पदीप्तम्।
कटीरस्थले चारुचङ्गोरुयुग्मे पिनद्धं क्वणत्किङ्कणीजालदाम्ना॥५॥
हसन्तं लसद्बन्धुजीवप्रसूनप्रभापाणिपादाम्बुजोदारकान्त्या।
करे दक्षिणे पायसं वामहस्ते दधानं नवं शुद्धहैयङ्गवीनम्॥६॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे चतुरानन! अब ध्यान कहता हूं। प्रेमपूर्वक सुनें। मानव यह ध्यानविधि सुनकर सौभाग्य प्राप्त करता है। ध्यान यह है—जो श्रीसम्पन्न उद्यान-मण्डित हैमस्थल में उद्भासित होकर रत्नप्रभा से क्षुरित हो रहे हैं, वहां मण्डल के मध्यभाग में कल्पतरु से शोभित प्रकट दीप्त रत्नस्थल में अधिष्ठित कमलपीठ पर जो अधिरूढ़ हैं, जिनकी प्रभा अतीव नीलवर्ण है, जो पूर्ण बालकावस्था वाले हैं, जिनके मुख का मध्य भाग गुड़रस से स्निग्ध है, जिनका केशकलाप विस्त्रस्त है, जो उत्फुल्ल कमलवत हैं, जिनका मुग्ध मुखकमल भ्रमरों के गुंजार से शोभायमान है, जो इन्दीवर के समान हैं, जिनका उत्फुल्ल गण्डस्थल रक्तवर्ण कुण्डलयुगल से उल्लसित है, जो सुन्दर नासावाले, रक्तिम ओष्ठ वाले तथा सुस्मित मुख मुद्रावाले हैं, जो नाना कण्ठभूषणों से अलंकृत हैं, जिनके नख पुण्डरीक की आभा वाले हैं, जो सुनेत्र युक्त हैं,, जिनका वक्षस्थल गौओं

के खुर से उत्थित धूल से धूसरित है, जो सुपुष्ट अंगों वाले, अष्टापद्वत् सुदीप्त हैं, जिनका सुन्दर जंघा तथा उरुयुग्म क्वणित किंकिणी जाल माला से सज्जित है, जो हास्ययुक्त हैं तथा जो बन्धुजीव पुष्पों की प्रभा से सम्पन्न पाणि तथा पादाम्बुज की उदार कान्तिच्छटा से दीप्तिमान हो रहे हैं, जिनके दक्षिण हस्त में पायस, वाम हस्त में नवजात शुद्ध हैयङ्गवीण है।।१-६।।

महीभारभूताऽमरारातियूथाऽनलं पूतनादीन्निहन्तुं प्रवृत्तम्।
प्रभुं गोपिकागोपवृन्देन वीतं सुरेन्द्रादिभिर्वन्दितं देवदेवम्।।७।।
प्रगे पूजयित्वा त्वनुस्मृत्य कृष्णं भुजङ्गेन्द्रवज्रादिभिर्भक्तिनम्रः।
सिताम्भोजहैयङ्गवीनैश्च दध्ना विमिश्रेण दुग्धेन सम्प्रीणयेत्तम्।।८।।
इति प्रातरेवाऽर्चयेदच्युतं यो नरः प्रत्यहं शश्वदास्तिक्ययुक्तः।
लभेत्सोऽचिरेणैव लक्ष्मीं समग्रामिह प्रेत्य शुद्धं परं धाम भूयात्।।९।।

जो महीमण्डल (पृथिवी) के भारभूत सुर शत्रुगण के लिये अग्नि स्वरूप हैं तथा जो पूतना आदि के वधार्थ उद्यत हैं, वे गोपिका-गोपालवृन्द से घिरे सुरेन्द्र आदि से वन्दित देवदेव श्रीकृष्ण की प्रातः पूजा तथा ध्यान करके भक्तिविनम्रभाव से श्वेतपद्म, हैयङ्गवीण उन भगवान् श्रीकृष्ण की प्रातः पूजा तथा ध्यान करके दधि-दुग्ध से उनको प्रसन्न करें। जो मनुष्य आस्तिक्य बुद्धियुक्त होकर नित्य प्रभातकाल में अच्युत श्रीहरि का पूजन करता है, वह शीघ्र लक्ष्मी लाभ करता है। वह इहकाल में समस्त सम्पदा प्राप्त करके मेरे शुद्ध सनातन स्थान का लाभ करता है।।७-९।।

मन्त्रश्चोक्तःपुरापुत्रआदौलोकमनोहरः। श्रीमद्दामोदराख्योहि शृणुतस्याधिकारिणः।।१०।।
अयोग्याय न दातव्यो मन्त्रराजस्त्वयासुत!। यत्नेनगोपनीयश्चरहस्यंशीघ्रसिद्धिदम्।।११।।

हे पुत्र! पूर्व में मैंने दामोदर मन्त्र कहा है। यह मन्त्र लोकमनोहर है, यह भी पहले कहा जा चुका है। अब उस मन्त्र के अधिकारी कहता हूं। सुनो! हे पुत्र! यह सभी मन्त्रों में श्रेष्ठ है। अयोग्य व्यक्ति को यह मन्त्र कदापि नहीं देना चाहिये। इसे यत्नतः गोपनीय रखें। यह रहस्यपूर्ण तथा आत्मशुद्धिदायक है।।१०-११।।

अलसंमलिनंक्लिष्टंदम्भमोहसमन्वितम्। दरिद्रं रोगिणं क्रुद्धं रागिणम्भोगलालसम्।।१२।।
असूयामत्सरग्रस्तं शठं परुषवादिनम्। अन्यायेनाऽर्जितधनं परदाररतं सदा।।१३।।
विदुषां वैरिणं नित्यमज्ञं पण्डितमानिनम्। भ्रष्टव्रतं क्लिष्टवृत्तिं पिशुनं दुष्टमानसम्।।१४।।
बह्वाशिनं क्रूरचेष्टमग्रगण्यं दुरात्मनाम्। कृपणं पापिनं रौद्रमाश्रितानां भयङ्करम्।।१५।।
एवमादिगुणैर्युक्तं शिष्यं नैव परिग्रहेत्। गृह्णीयाद्यदि तद्दोषः प्रायो गुरुमुपस्पृशेत्।।१६।।
अमात्यदोषो राजानंजायादोषःपतिंयथा। तथा शिष्यकृतोदोषोगुरुं प्राप्नोत्यसंशयम्।।१७।।
तस्माच्छिष्यं गुरुर्नित्यं परीक्ष्यैव परिग्रहेत्। कायेन मनसा वाचा गुरुशुश्रूषणेरतम्।।१८।।
अस्तेयवृत्तिमास्तिक्ययुक्तं मोक्षकृतोद्यमम्। ब्रह्मचर्यरतं नित्यं दृढव्रतमकल्मषम्।।१९।।
प्रसन्नहृदयं शुद्धमशठं विमलाशयम्। परोपकारनिरतं स्वार्थे च विगतस्पृहम्।।२०।।

स्वचित्तवित्तदेहैस्तु परितोषकरं गुरोः। आश्रितानांतथा पुत्र! परितोषकरंशुचिम्॥२१॥
ईदृग्विधाय शिष्याय मन्त्रं दद्यात्तु नाऽन्यथा।
यद्यन्यथा वदेत्तस्मिन्देवताशाप आपतेत्॥२२॥

आलसी, मलिन, क्लिष्ट, दम्भी, मोहयुक्त, दरिद्र, रोगी, क्रोधी, रजोगुणी, मोहयुक्त, भोग लालसा वाले, असूयायुक्त, मत्सरयुक्त, शठ, परुषवचन वक्ता, अन्यायपूर्वक अर्थोपार्जन करने वाले, समस्त परस्त्री गामी, विद्वेषी, पाण्डित्यमानी, अज्ञ, व्रतभ्रष्ट, क्लिष्टवृत्ति, चुगलखोर, दुष्टचेता, बह्वाशी (अधिक खाने वाला), क्रूरचेष्टावाले, दुरात्माओं में अग्रणी, कृपण, पापी, आश्रितों के प्रति रौद्र व्यवहार वाले, भयंकर—ऐसे व्यक्ति को शिष्य न बनाये। यदि ऐसे दोष गुरु में हों, तब ऐसे गुरु को भी गुरु बनाना उचित नहीं है। जैसे अमात्य दोष से राजा को तथा पत्नी दोष से पति को दोष होता है, उसी प्रकार शिष्यकृत दोष भी गुरु को होता है। इसमें सन्देह नहीं है। इसलिये गुरु शिष्य की सम्यक् परीक्षा लेकर तब उसे शिष्यरूपेण ग्रहण करें। जो मनुष्य मनसा-वाचा-कर्मणा गुरु की सुश्रूषारत हैं, चोरी की प्रवृत्ति नहीं है, जो ज्ञान, आस्तिक्य युक्त हैं तथा मोक्ष उद्यमरत हैं, जो ब्रह्मचर्यरत तथा दृढ़व्रती एवं कल्मष रहित हैं, जो प्रसन्न हृदय तथा शुद्ध हैं, जो शठ नहीं हैं, विमलबुद्धि हैं, परोपकारी, स्वार्थ की स्पृहा से विरत हैं, जो अपने चित्त-वित्त तथा देह से गुरु का शरणागत हैं, जो शरणागत को सन्तोष प्रदान करते हैं, हे पुत्र! ऐसे गुणी शिष्य को ही मन्त्र देना चाहिये। इस नियम के विपरीत न चले, अन्यथा उसके ऊपर देवता का अभिशाप होता है।।१२-२२।।

श्रृणु पुत्र! प्रवक्ष्यामिगुरोरपि च लक्षणम्। एभिस्तु लक्षणैर्युक्तोगुरुरेवभवेन्नृणाम्॥२३॥
समचेताः प्रशान्तात्मा विमन्युश्च सुहृन्नृणाम्।
साधुर्महान्समो लोके स गुरुः परकीर्तितः॥२४॥
मम व्रतधरो नित्यं वैष्णवानां सुसम्मतः। मदाश्रयकथसक्तो ममोत्सवरतःसदा॥२५॥
कृपासिन्धुः सुपूर्णार्थः सर्वसत्त्वोपकारकः।
निःस्पृहः सर्वतः सिद्धःसर्वविद्याविशारदः॥२६॥
सर्वसंशयसंछेत्ताऽनलसो गुरुरादृतः। ब्राह्मणः सर्वकलज्ञः कुर्यात्सर्वेष्वनुग्रहम्॥२७॥
पूर्वोक्तलक्षणैर्युक्तः शिष्यईदृग्विधाद्गुरोः। गृह्णीयात्पुत्र! तन्मन्त्रं मार्गशीर्षे मदायने॥२८॥

हे पुत्र! अब गुरुलक्षण सुनें। हे वत्स! इन सब लक्षण से सम्पन्न व्यक्ति ही गुरु होता है। जो सभी प्राणीगण के प्रति समान चित्त, प्रशान्तात्मा, अक्रोधी, सौहार्द्रयुक्त, साधु, श्रेष्ठ तथा सम है, लोग उसे ही गुरु कहते हैं। जो सतत् मेरा व्रतधारी, वैष्णवगण सम्मत, मेरी कल्याणप्रदा कथा में आसक्त चित्त, मेरा शरणागत, मेरे उत्सव के लिये सदा तत्पर, कृपालु, पूर्णकाम, सर्वभूत समूह का उपकारक, सभी वस्तुओं के प्रति निःस्पृह, सिद्ध, सर्वविद्याविशारद तथा सर्वसंशयच्छेत्ता, आलस्यरहित है, वही गुरु आदरणीय है। हे पुत्र! ब्रह्मन्! सर्वकालज्ञ, सर्वभूत के प्रति अनुग्रहकर्त्ता पूर्वोक्तलक्षणान्वित, गुरु के पास शिष्य जाकर मार्गशीर्ष मास में मन्त्र ग्रहण करे।।२३-२८।।

वैष्णवानाम्व्रतानाञ्चकुर्यात्स्वीकरणम्बुधः। मत्प्रियश्रृणुयाच्छश्वच्छ्रीमद्भगवतंपरम्॥२९॥

श्रीमद्भागवतंनाम पुराणंलोकविश्रुतम्। शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो मम सन्तोषकारणम्॥३०॥
नित्यं भागवतं यस्तु पुराणम्पठते नरः। प्रत्क्षरम्भवेत्तस्य कपिलादानजम्फलम्॥३१॥
श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम्। पठते शृणुयाद्यस्तुगोसहस्त्रफलंलभेत्॥३२॥
यः पठेत्प्रयतो नित्यं शेकं भागवतं सुत!। अष्टादशपुराणानां फलमाप्नोति मानवः॥३३॥
नित्यं मम कथा यत्र तत्र तिष्ठन्तिवैष्णवाः। कलिबाह्यानरास्ते वैयेऽर्चयन्तिसदाममा॥३४॥

विचक्षण मानव वैष्णव व्रतों को स्वीकार करके मेरे परम प्रिय श्रीमद्‌भागवत ग्रन्थ को सदा सुनें। यह ग्रन्थ त्रैलोक्य प्रसिद्ध पुराण है। श्रद्धासमन्वित होकर इस पुराण श्रवण से मैं प्रसन्न होता हूं। जो मानव नित्य भागवत पुराण पाठ करता है, किंवा सुनता है, उसे उस ग्रन्थ के प्रत्येक अक्षर से कपिला गौदान फल प्राप्त हो जाता है। हे पुत्र! जो व्यक्ति भागवत के आधे श्लोक किंवा उसके एक पाद का ही पाठ करता है अथवा सुनता है, वह धन्य है। हे पुत्र! जो मानव संयत होकर नित्यप्रति भागवत का एक श्लोक पढ़ता है, उसे १८ पुराण पाठ का फललाभ होता है। जहां नित्य मेरी कथा (अर्थात् कथा व्याख्या की जाती है) वहां पर सदा वैष्णवगण स्थित रहते हैं। जिन गृहों में सर्वदा वहां के लोग मेरी अर्चना करते हैं, कलि उनका स्पर्श भी नहीं कर सकता।।२९-३४।।

वैष्णवानां तु शास्त्राणियेऽर्चयन्तिगृहेनराः। सर्वपापविनिर्मुक्ताभवन्ति सुरवन्दिताः॥३५॥
येऽर्चयन्ति गृहे नित्यं शास्त्रं भागवतं कलौ।
आस्फोटयन्ति वल्गन्ति तेषाम्प्रीतो भवाम्यहम्॥३६॥

जो मनुष्य गृह में वैष्णव ग्रन्थार्चन करता है, वह सर्वपापरहित तथा देववन्दित होता है। यदि कलि-काल में लोग गृह में भागवतार्चन, भागवत शास्त्र पर विचार किंवा वक्तृता देते हैं, मैं उनके प्रति प्रसन्न रहता हूं।।३५-३६।।

यावद्दिनानि हे पुत्र! शास्त्रं भागवतं गृहे। तावत्पिबन्तिपितरःक्षीरंसर्पिर्मधुदकम्॥३७॥
यच्छन्ति वैष्णवे भक्त्या शास्त्रं भागवतं हि ये।
कल्पकोटिसहस्त्राणि मम लोके वसन्ति ते॥३८॥
येऽर्चयन्ति सदा गेहेशास्त्रंभागवतं नराः। प्रीणितास्तैश्चविबुधायावदाऽऽभूतम्प्लवम्॥३९॥
श्लोकार्धंश्लोकपादम्वा वरं भागवतं गृहे। शतशोऽथसहस्त्रैश्चकिमन्यैःशास्त्रसङ्ग्रहैः॥४०॥
न यस्य तिष्ठते शास्त्रं गृहे भागवतं कलौ। न तस्य पुनरावृत्तिर्याम्यपाशात्कदाचन॥४१॥
कथं स वैष्णवो ज्ञेयः शास्त्रं भागवतं कलौ। गृहेनतिष्ठतेयस्यश्वपचाधिकोहिसः॥४२॥

हे पुत्र! जब तक भागवत शास्त्र ग्रन्थ घर में रहता है, तब तक पितृगण उस गृह में क्षीर, घृत, मधु तथा जल का पान करते हैं। जो भक्तिपूर्वक वैष्णव को भागवत ग्रन्थ प्रदान करते हैं, वे सहस्त्रकोटि कल्पपर्यन्त मेरे लोक में निवास करते हैं। यदि मनुष्य अपने घर में भागवत की पूजा करता है, तब उस पूजा से देवता प्रलयकाल पर्यन्त प्रसन्न रहते हैं। जिसके गृह में सम्पूर्ण भागवत किंवा श्लोक अथवा श्लोकार्द्ध भी रहता है, उसे अन्य सैकड़ों-हजारों शास्त्र ग्रन्थ का क्या प्रयोजन? कलियुग में जिसके घर में भागवत ग्रन्थ नहीं है,

यमपाश से उसका कभी छुटकारा नहीं होता। वह सर्वकाल पर्यन्त नरक में निवास करता है। कलिकाल में जिसके गृह में भागवत नहीं है, उसे किस प्रकार से वैष्णव कहा जा सकता है? वह तो कुत्ते के मांस का भक्षण करने वाले चाण्डाल से भी अधम है!।।३६-४२।।

सर्वस्वेनाऽपि लोकेश! कर्तव्यः शास्त्रसंग्रहः। वैष्णवस्तुसदाभक्त्यातुष्ट्यर्थममपुत्रक।।४३।।
यत्रयत्र भवेत्पुण्यं शास्त्रं भागवतं कलौ। तत्रतत्रसदैवाऽहं भवामि त्रिदशैः सह।।४४।।
तत्र सर्वाणि तीर्थानि नदीनदसरांसि च।
यज्ञाः सप्तपुरी नित्यं पुण्याः सर्वे शिलोच्चयाः।।४५।।
श्रोतव्यं मम शास्त्रं हि यशोधर्मजयार्थिना। पापक्षयार्थं लोकेश! मोक्षार्थं धर्मवुद्धिना।।४६।।

हे लोकेश! अतः मेरी प्रसन्नता के लिये सर्वस्व प्रदान करके भी वैष्णव व्यक्ति सदा इस शास्त्र का संग्रह करे। हे पुत्र! कलिकाल में जहां-जहां पर पुण्यमय भागवत ग्रन्थ रहता है, देवगण के साथ मैं सदा वहां निवास करता हूं। वहां पर समस्त नद-नदी-तीर्थ-सरोवर-यज्ञ-अयोध्या, मथुरा आदि सप्तपुरी-पवित्रशिला नित्य विद्यमान रहती हैं। यश, धर्म, जय चाहने वाला मानव नित्य मेरे भागवत शास्त्र का श्रवण करे। हे लोकेश! धर्म बुद्धि द्वारा इसे सुनने पर पापक्षय तथा मोक्षलाभ होता है।।४३-४६।।

श्रीमद्भागवतं पुण्यमायुरारोग्यपुष्टिदम्। पठनाच्छ्रवणाद्वाऽपिसर्वपापैः प्रमुच्यते।।४७।।
न शृण्वन्ति न हृष्यन्ति श्रीमद्भागवतं परम्।
सत्यं सत्यं हि लोकेश तेषां स्वामी सदा यमः।।४८।।

पुण्यप्रद भागवत आयु, आरोग्य एवं पुष्टिदाता है। इसके पठन-श्रवण से मानव सर्वपापरहित हो जाता है। जो परम भागवत का श्रवण नहीं करते तथा सुनकर भी प्रसन्न नहीं होते, हे लोकेश! मैं सत्य तथा शपथ पूर्वक कहता हूं कि यम ही उन पर अपना प्रभुत्व रखते हैं (अर्थात् यमलोक में ही वे पतित होते हैं।)।।४७-४८।।

न गच्छति यदा मर्त्यःश्रोतुंभागवतंसुत!। एकादश्यांविशेषेणनाऽस्तिपापरतस्ततः।।४९।।
श्लोकंभागवतञ्चाऽपिश्लोकार्धपादमेववा। लिखितन्तिष्ठतेयस्यगृहेतस्यवसाम्यहम्।।५०।।
सर्वाऽऽश्रमाऽभिगमनं सर्वतीर्थाऽवगाहनम्। नतथा पावनं नृणां श्रीमद्भागवतं यथा।।५१।।
यत्रयत्र चतुर्वक्त्र! श्रीमद्भागवतं भवेत्। गच्छामि तत्रतत्राऽहं गौर्यथा सुतवत्सला।।५२।।
मत्कथावाचकं नित्यं मत्कथाश्रवणे रतम्। मत्कथाप्रीतमनसंनाऽहंत्यक्ष्यामितंनरम्।।५३।।

हे पुत्र! विशेषतः जो मानव एकादशी के दिन भागवत नहीं सुनते, उनसे बढ़कर पातकी अन्य कोई भी नहीं है। जिसके गृह में भागवत का श्लोकार्द्ध अथवा चौथाई श्लोक भी लिखा रहता है, मैं उसके गृह में निवास करता हूं। मनुष्य के लिये भागवत जिस प्रकार से पवित्रता प्रदायक है, समस्त आश्रमों के लिये आश्रय रूपी है, उसी प्रकार वह समस्त तीर्थों में स्नान करने से भी बढ़कर पुण्य देने वाला ग्रन्थ है। हे चतुरानन! जहां-जहां भागवत ग्रंथ है, मैं वहां-वहां उसी तरह जाता हूं, जैसे अपने बछड़े के प्रति वात्सल्य के कारण गौ उसके पास जाती है। जो मेरी कथा करवाते हैं, मेरी कथा को सुनने में तत्पर रहते हैं तथा जिनका मन मेरी कथा सुनकर प्रसन्न होता है, मैं ऐसे मनुष्यों का कभी भी त्याग नहीं करता।।४९-५३।।

श्रीमद्भागवतं पुण्यं दृष्ट्वानोत्तिष्ठते हि यः। साम्वत्सरंतस्यपुण्यं विलयंयातिपुत्रक॥५४॥
श्रीमद्भागवतंदृष्ट्वा प्रत्युत्थानाभिवादनैः। सम्मानयेत तं दृष्ट्वा भवेत्प्रीतिर्ममाऽतुला॥५५॥
दृष्ट्वाभागवतं दूरात्प्रक्रमेत्सम्मुखं हि यः। पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम्॥५६॥

हे पुत्र! श्री मद्भागवत ग्रन्थ देखकर जो उठ खड़ा नहीं होता, उसके वर्षपर्यन्त के सुकृतों का नाश हो जाता है। श्रीमद्भागवत देखकर जो नर उठते हैं तथा अभिवादन आदि से उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हैं, उनको देखकर मुझे अत्यन्त प्रीति होती है। सामने रखे भागवत ग्रन्थ को देखकर जो दूर से ही उसकी प्रदक्षिणा करते हैं, उनको उस प्रदक्षिणा के प्रत्येक कदम पर अश्वमेध यज्ञ फल की प्राप्ति होती है। इसमें सन्देह नहीं है।।५४-५६।।

उत्थायप्रणमेद्यो वै श्रीमद्भागवतं नरः। धनं पुत्रांस्तथा दारान्भक्तिञ्च प्रददाम्यहम्॥५७॥
महाराजोपचारैस्तु श्रीमद्भागवतंसुत!। शृण्वन्ति ये नराभक्त्यातेषांवश्योभवाम्यहम्॥५८॥
ममोत्सवेषु सर्वेषु श्रीमद्भागवतम्परम्। शृण्वन्ति ये नरा भक्त्या मम प्रीत्यैचसुव्रत॥५९॥
वस्त्रालङ्करणैः पुष्पैर्धूपदीपोपहारकैः। वशीकृतोह्यहं तैश्च सत्स्त्रिया सत्पतिर्यथा॥६०॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमासमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णु-सम्वादे भागवतश्रैष्ठ्यमाहात्म्यवर्णनंनाम षोडशोऽध्यायः।।१६।।

जो मनुष्य श्रीमद्भागवत ग्रन्थ को देखकर खड़े हो जाते हैं तथा उसे प्रणाम करते हैं, मैं उनको धन, पुत्र, पत्नी तथा भक्ति देता हूं। श्रेष्ठ उपचार के साथ भक्तिपूर्वक जो श्रीमद्भागवत का श्रवण करते हैं, मैं उनके वशीभूत हो जाता हूं। हे सुव्रत! वस्त्र-अलंकार, पुष्प-धूप तथा दीपादि उपचारों द्वारा जो मानव मेरी प्रसन्नता हेतु मेरा उत्सव करते हैं और साथ ही मेरे परम ग्रन्थ श्रीमद्भागवत का श्रवण करते हैं, जैसे पतिव्रता पत्नी पति को वश में कर लेती है, उसी प्रकार मैं उनके वश में हो जाता हूं।।५७-६०।।

।।षोडश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

सप्तदशोऽध्यायः

मथुरा माहात्म्य

ब्रह्मोवाच

कस्मिन्क्षेत्रे हिदेवेशमार्गशीर्षोऽधिकःस्मृतः। किं फलञ्चभवेत्तस्मिन्नेतत्सर्वंवदप्रभो॥१॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे देवेश! मार्गशीर्ष में कौन क्षेत्र अधिक पुण्यप्रद है तथा वहां क्या फल मिलता है? हे प्रभो! वह सब कहिये।।१।।

श्रीभगवानुवाच

मथुरेतिसुविख्यातमस्ति क्षेत्रम्परं मम। सुरम्याच प्रशस्ता चजन्मभूमिः प्रियामम॥२॥
पदेपदे तीर्थफलं मथुरायाञ्चतुर्मुख!। यत्रयत्र नरः स्नातो मुच्यते घोरकिल्बिषात्॥३॥
सर्वधर्मविहीनानां पुरुषाणां दुरात्मनाम्। नरकार्तिहरा पुत्र! मथुरा पापनाशिनी॥४॥
कृतघ्नश्च सुरापश्च चौरोभग्नव्रतस्तथा। मथुरां प्राप्य मनुजोमुच्यते घोरपातकात्॥५॥

भगवान् कहते हैं—हे ब्रह्मन्! मथुरा नामक मेरी एक प्रसिद्ध पुरी है जो अतीव उत्तम है। यह सुरम्या तथा सुप्रशस्ता एवं जन्मभूमि कहलाती है। यह मुझे अतीव प्रिय है। हे चतुरानन! मथुरा में जहां कहीं भी भ्रमण किया जाये, वहां प्रत्येक पग-पग पर तीर्थफल लाभ होता है। वहां स्नान करने वाले व्यक्ति भयानक पापों से मुक्त हो जाते हैं। हे पुत्र! यह मथुरा सर्वधर्म विवर्जित दुरात्मा पुरुषों के लिये भी सर्वपापनाशिनी तथा नरकभय का हरण करने वाली है। कृतघ्न, मद्यप, चोर, भयग्रस्त मनुष्य भी मथुरा आकर घोर पापों से मुक्त हो जाते हैं।।२-५।।

सूर्योदये तमो नश्येद्यथा वज्रभयान्नगाः। तार्क्ष्यंदृष्ट्वा यथा सर्पा मेघा वातहता यथा॥६॥
तत्त्वज्ञानाद्यथा दुःखं हरिं दृष्ट्वा यथा गजाः। तथा पापानिनश्यन्तिमथुरादर्शनात्सुत॥७॥

जैसे सूर्योदय के साथ घोर अन्धकार लुप्त हो जाता है, जैसे वज्रप्रहार से पर्वत नष्ट हो जाते हैं, तदनुरूप जैसे गरुड़ को देखते ही सर्प भयभीत हो जाते हैं, जैसे वायु से आहत होकर मेघ न जाने कहां चले जाते हैं, जैसे तत्वज्ञानोदय के साथ ही दुःख दूरीभूत हो जाता है तथा जिस प्रकार सिंह को देखते ही हाथी उद्वेलित हो उठते हैं, उसी प्रकार से मथुरा दर्शन मात्र से पापसमूह का नाश हो जाता है।।६-७।।

श्रद्धया भक्तियुक्तस्तु दृष्ट्वा मधुपुरीं नरः। ब्रह्महाऽपि विशुध्येतकिंपुनस्त्वन्यपातकी॥८॥
मथुरांस्नातुकामस्य गच्छतस्तु पदेपदे। निराशानि व्रजन्त्येव पापानि च शरीरतः॥९॥
अनुषङ्गेण गच्छन्ति वाणिज्येनाऽपिसेवया। मथुरास्नानमात्रेणदिवंयान्तिगतांहसः॥१०॥

भक्ति श्रद्धायुक्त होकर मधुपुरी मथुरा का दर्शन करने से ब्रह्महत्यारा भी पवित्रता प्राप्त करता है। मानव भक्ति एवं श्रद्धावान् होकर मधुपुरी मथुरा में स्नान करने के लिये जब चलता है, तब कदम-कदम पर उसके पापपुंज उसका त्याग करके पलायन कर जाते हैं। जो वाणिज्य करने अथवा सेवावृत्ति प्रभृति किसी भी कार्य से मथुरा जाता है, वह वहां स्नान करके पापरहित होकर स्वर्गगमन करता है।।८-१०।।

नामाऽपि गृह्णतामस्याः सदा मुक्तिर्न संशयः। सदाकृतयुगं तत्र सदाचैवोत्तरायणम्॥११॥
यः शृणोति चतुर्वक्त्र! माथुरं मम मन्दिरम्।
अन्येनोच्चारिते सद्यः सोऽपि पापात्प्रमुच्यते॥१२॥
त्रिरात्रमपि ये तत्र वसन्ति मनुषाः सुत!। तेषां पुनन्तिसंदृष्टाः स्पृष्टाश्चरणरेणवः॥१३॥

हे ब्रह्मन्! किम्बहुना सतत् इस पुरी का नाम लेने से भी मुक्तिलाभ होता है। इसमें सन्देह नहीं है। वहां नित्य सत्ययुग एवं नित्य उत्तरायण की स्थिति रहती है। हे चतुरानन! अन्य द्वारा उच्चारित "मथुरा हरिमन्दिर"

यह सुनते ही मानव तत्क्षण पापरहित हो जाता है। हे पुत्र! जो वहां तीन रात स्नान तथा निवास करता है, उसके दर्शन-स्पर्शन तथा चरणरेणु से मनुष्य पवित्र हो जाते हैं।।११-१३।।

यथा तृणसमूहं तु ज्वलयन्ति स्फुलिङ्गकाः। तथामहान्ति पापानिदहते मथुरा पुरी॥१४॥
स्नानेन सर्वतीर्थानां यः स्यात्सुकृतसञ्चये। ततोऽधिकतरं प्रोक्तामथुरासर्वमण्डले॥१५॥
चतुर्णामपि वेदानां पुण्यमध्ययनाच्चयत्। तत्पुण्यं जायतेतत्रमथुरांस्मरतां नृणाम्॥१६॥

जैसे अग्नि का एक कण भी तृण के ढेर को भस्म बना देता है, उसी प्रकार से मथुरापुरी भी महापातक समूह को जलाकर भस्म कर देती है। समस्त तीर्थ स्नान से जो सुकृत साधित होता है, समग्र मथुरामण्डल में उससे अधिक पुण्य कहा गया है। ऋक्-यजुः-साम-अथर्वरूप चार वेद के अध्ययन का जो पुण्य है, मथुरा के स्मरणमात्र से मनुष्य वही पुण्यलाभ कर लेता है।।१४-१६।।

अन्यत्र हि कृतं पापं तीर्थमासाद्य नश्यति। तीर्थेषु यत्कृतंपापं वज्रलेपो भविष्यति॥१७॥
मथुरायां कृतं पापं मथुरायां प्रणश्यति। धर्मार्थकाममोक्षाख्यंस्थित्वा तत्र लभेन्नरः॥१८॥
अन्यत्र दशभिर्वर्षैः प्रारब्धं भुज्यते हि यत्। किल्बिषं चचतुर्वक्त्रमाथुरेदशभिर्दिनैः॥१९॥
दिविनैव न पाताले नान्तरिक्षे न मानुषे। समं तु मथुरायां हि प्रियं मम सदैव हि॥२०॥
सर्वेषामेव तीर्थानां माथुरं परमं महत्। बालक्रीडनरूपाणि कृतानि सह गोपकैः॥२१॥

अन्यत्र किया गया पाप तीर्थों में नष्ट हो जाता है, परन्तु तीर्थों में किया पाप वज्रलेप जैसा दृढ़ हो जाता है। मथुरा में कियां गया पाप मथुरा में ही नष्ट होता है। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूप जो चार वर्ग निश्चित हैं, मथुरा स्थित मनुष्य उसे भी प्राप्त कर लेता है। मानव अन्यत्र दस वर्षों में जो प्रारब्ध पातकफल भोग करता है, हे चतुरानन! मथुरापुरी में दस दिनों में ही वह कलुष सम्भोग समाप्तप्रायः हो जाता है। स्वर्ग-पाताल-अन्तरिक्ष एवं मनुष्य लोक में मुझे मथुरा के समान सतत् प्रिय अन्य पुरी नहीं है। मथुरा नगरी सभी तीर्थों में श्रेष्ठ हैं। मैंने गोपगण के साथ इस मथुरापुरी में शिशु क्रीड़ा के लिये उपयोगी अनेक रूप धारण किया था।।१७-२१।।

त्रिंशद्वर्षसहस्राणि त्रिंशद्वर्षशतानि च। यत्फलं भारतेवर्षे तत्फलं मथुरां स्मरन्॥२२॥
सन्निहत्यां तु यत्पुण्यं राहुग्रस्ते दिवाकरे। ततोऽधिकंलभेत्पुत्र! मथुरायांदिनेदिने॥२३॥
पूर्णेवर्षसहस्रे तु तीर्थराजे तु यत्फलम्। तत्फलं लभते पुत्र सहोमासे मधोः पुरे॥२४॥
पूर्णेवर्षसहस्रे तु वाराणस्याञ्च यत्फलम्। तत्फलं लभते पुत्र मथुरायां सहोदिने॥२५॥

गोदावरीद्वारकयोर्नरो यः क्षेत्रे कुरूणां क्षितिदायको यः।
षणमासकात्साधयते गयायां समं भवेन्नो दिनमेकमाथुरम्॥२६॥
न द्वारका काशिकाञ्ची न माया गदाधरो यस्य समं न तीर्थम्।
सन्तर्पिता यद्यमुनजलेन वाञ्छन्ति नो वै पितरः पिण्डदानम्॥२७॥

भारतवर्ष में ३३०० वर्ष तक भ्रमण का जो फल है, एकमात्र मथुरापुरी का स्मरण करने पर वही फल प्राप्त हो जाता है। हे पुत्र! सन्निहती नामक तीर्थ में सूर्यग्रहण स्नान का जो फल लाभ होता है, एकमात्र मथुरा

में प्रतिदिन उससे अधिक फल की प्राप्ति होती है। हे पुत्र! तीर्थराज प्रयाग का १००० वर्ष तक सेवन करने का जो फल है, मार्गशीर्ष मास में मधुपुरी मथुरा में वही फल प्राप्त हो जाता है। मानव गोदावरी-द्वारिका तथा कुरुक्षेत्र में भूमिदान से और गया में छ मास निवास करने से जिस फल की प्राप्ति करता है, मेरी पुरी मथुरा में वही पुण्य फल मात्र एक ही दिन में ही साधित होना निश्चित है। द्वारिका, काशी, काञ्चि, माया तथा गदाधर तीर्थ भी इसके समान नहीं है। इसीलिये पितृगण यमुना जल में तर्पित होकर इसी स्थान में पिण्डप्राप्ति की कामना करते हैं।।२२-२७।।

मथुरायां प्रकुर्वन्तिपुरीसाधारणीदृशम्। येनरास्तेऽपिविज्ञेयाःपापराशिभिरन्विताः।।२८।।
न दृष्टा मथुरा येन दिदृक्षा यस्य जायते। यत्र तत्र मृतस्याऽपि माथुरेजन्म जायते।।२९।।

भूमे रजांसि गणयेत्कालेनाऽपि चतुर्मुख!।
माथुरे यानि तीर्थानि तेषां सङ्ख्या न विद्यते।।३०।।

कुरु भोः कुरु भो वासंमथुराख्यांपुरींप्रति। वसामिसततंतस्यांगोपकन्याभिरावृतः।।३१।।
रेरेसंसारमग्नाश्च शिष्यामे श्रृणुताऽपरे। यदीच्छथसुखंसान्द्रं वासं कुरुत मत्पुरीम्।।३२।।
अहोलोको महानन्धो नेत्रयुक्तो न पश्यति। माथुरेविद्यमानेऽपिसंसृतिं भजते सदा।।३३।।
मानुषीं योनिमतुलां लब्ध्वा भाग्यस्य योगतः। वृथैवायुर्गतंतेषांन दृष्टा मथुरापुरी।।३४।।

जो मथुरापुरी का साधारण दृष्टि से भी दर्शन करते हैं, अर्थात् उसे साधारण समझते हैं, वे पापपुंज से जड़ित हैं। जो मथुरा दर्शन नहीं कर पाते तथापि जिनकी मथुरा दर्शन लालसा बलवती रहती है, ऐसे मनुष्य जहां कहीं भी मृत होते हैं, उनका जन्म मथुरा में ही होगा। हे चतुरानन! भूमि पर स्थित बालुका अथवा रजःकणों की तो गणना की जा सकती है, लेकिन मथुरा में कितने तीर्थ हैं, यह गिना नहीं जा सकता। मथुरापुरी में निवास करो-निवास करो। क्योंकि गोप कन्याओं से परिवृत होकर मैं वहां स्थित रहता हूं। हे संसारमग्न मेरे शिष्य तथा अन्य व्यक्तिगण! यदि धन-सुख की कामना है, तब मेरी पुरी मथुरा में निवास करो। लोक में सब आनन्द भोग में मग्न हैं, नेत्र रहते भी अन्धे हैं। मथुरापुरी के रहते भी ये सब संसार के आवागमन में वद्ध हैं। यदि भाग्य से मनुष्य जन्म मिला है, तब भी वह वृथा व्यतीत होता जा रहा है! ये लोग मथुरानगरी दर्शन करने क्यों नहीं जाते?।।२८-३४।।

अहो मतेः सुदौर्बल्यमहोभाग्यस्य दुर्विधिः। अहोमोहस्य महिमा मथुरानैवसेव्यते।।३५।।
मथुरां तु परित्यज्य योऽन्यत्र कुरुतेमतिम्। मूढोभ्रमतिसंसारेमोहितोममायया।।३६।।

मथुरामपि सम्प्राप्य योऽन्यत्र कुरुते स्पृहाम्।
दुर्बुद्धेस्तस्यकिंज्ञानंसोऽज्ञानेन विजृम्भितः।।३७।।
मात्रा पित्रा परित्यक्ता ये त्यक्ता निजबन्धुभिः।
येषां क्वाऽपि गतिर्नास्ति तेषां मम पुरी गतिः।।३८।।

पापराशिभिराक्रान्ता ये दारिद्यपराजिताः। येषां क्वाऽपि गतिर्नास्ति तेषां मम पुरी गतिः।।३९।।

अहो! इनका क्या बुद्धि दौर्बल्य है कि भाग्य का ही दुर्विधान है! अहो! मोह की क्या महिमा है जो

ये मथुरा की सेवा में नहीं रहते! मथुरा का त्याग करके जो लोग अन्यत्र आनन्द लेते हैं, मेरी माया से मोहित वे मूढ़ जन संसार चक्र में ही घूमते रह जाते हैं। मथुरा प्राप्त करके भी जो अन्यत्र जाने की इच्छा करते हैं, मेरी माया से मोहित वे लोग संसार में ही घूमते रह जाते हैं (जन्म-मरण चक्र में घूमते रह जाते हैं)। मथुरा प्राप्त करके भी जो अन्यत्र की स्पृहा करते हैं, उन दुर्बुद्धिवालों का यह कैसा विचार है! वह निश्चय ही अज्ञान विजृम्भित हैं। जो मानव माता-पिता-आत्मीयजन से परित्यक्त हो गया है, उसकी अन्य कहीं गति नहीं है, तथापि वह मथुरा आकर गति प्राप्त कर लेता है। मथुरा ही उसका आश्रय स्थल है। जो मानव नाना पापभार से आक्रान्त हैं, जो दरिद्रता से पराभूत हैं, जिनकी कहीं अन्यत्र गति नहीं है, मेरी मथुरापुरी ही उनकी गति है।।३५-३९।।

सारात्सारतरं स्थानं गुह्याद्गुह्यतरम्परम्। गतिमन्वेषमाणानां मथुरा परमा गतिः॥४०॥
न तत्पुण्यैर्नतद्दानैर्नतपोभिर्न तु स्तवैः। न लभ्यं विविधैर्योगैर्लभ्यं मदनुभावतः॥४१॥
मयि येषां स्थिराभक्तिर्भूयसी येषुमत्कृपा। तेषामेव हि धन्यानांमथुरायांभवेद्गतिः॥४२॥

मथुरा भूमि के सार का भी सार है। गुह्य से भी अधिकतम गुप्त है! जो गति का अन्वेषण करते हैं, मथुरा ही उनकी परमगति है। मानव मुझमें अनुप्राणित होकर जो गतिलाभ करता है, अनन्त पुण्य, दान, तप, स्तव तथा विविध योगों से वह पुण्य नहीं मिलता। मुझमें जिनकी स्थिरा भक्ति है तथा इस कारण जिन पर मेरी अत्यन्त कृपा है, वे ही धन्य हैं तथा उनकी ही मथुरा में गति होती है।।४०-४२।।

या गतिर्योगयुक्तस्य ब्रह्मज्ञस्य मनीषिणः। सागतिस्त्यजतःप्राणान्मथुरायांनरस्यच॥४३॥
काश्यादिपुर्यो यदि सन्ति लोके तासां तु मध्ये मथुरैव धन्या।
या जन्ममौञ्जीव्रतमुक्तिदानैर्नृणां चतुर्धा विदधाति मुक्तिम्॥४४॥
न योगैर्या गतिर्लभ्या मन्वन्तरशतैरपि। अन्यत्र हेलया साऽत्र लभ्यतेमहत्प्रसादतः॥४५॥
न पापेभ्यो भयं यत्र न भयं यत्र वै यमात्। न गर्भवासभीर्यत्र तत्क्षेत्रंकोनसंश्रयेत्॥४६॥
मथुरायाञ्च यत्पुण्यं तत्पुण्यस्य फलं श्रृणु। मथुरायां समासाद्य मथुरायांमृताहिये॥४७॥
अपि कीटपतङ्गाद्या जायन्ते ते चतुर्भुजाः।
कूलात्पतन्ति येवृक्षास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥४८॥

योगयुक्त ब्रह्मज्ञ मनीषीगण की जो गति होती है, मथुरा में देहत्याग करने वाले व्यक्ति को वही गति प्राप्त होती है। त्रैलोक्य में काशी आदि जो पुण्यतम पुरियां हैं, उनमें से एकमात्र मथुरा ही धन्या है। आजन्म मौञ्जी व्रतधारी मनुष्य की जो चतुर्द्धा मुक्ति कही गयी है, यह मथुरा वैसी ही मुक्ति का विधान करती है। अन्यत्र विविध योग द्वारा १०० मन्वन्तरों में भी जो गति नहीं मिलती, मेरी कृपा से मथुरा में वह आसानी से प्राप्त हो जाती है। जहां पापसमूह का भय नहीं है, यम भी जहां भय देने में असमर्थ हो जाते हैं, जहां गर्भवास का चक्र समाप्त हो जाता है, कौन मानव उस मथुरा की शरण नहीं लेगा? हे वत्स! अब मथुरा का पुण्यफल श्रवण करो। जिनको मथुरा की प्राप्ति होती है तथा जो वहां मृत होते हैं, ऐसे कीट-पतंग आदि भी वहां मृत्यु के पश्चात् चतुर्भुज हो जाते हैं (विष्णुगण हो जाते हैं।) जो वृक्ष यमुनातट के जल में गिर जाते हैं, उनको भी उत्तम गति मिलती है।।४३-४८।।

मूका जडान्धबधिरास्तपोनियमवर्जिताः। कालेनैव मृता ये च ममलोकंव्रजन्तिते॥४९॥

सर्पदष्टाः पशुहताः पावकाम्बुविनाशिताः। लब्धाऽपमृत्यबोये च माथुरेममलोकगाः॥५०॥
सत्यं सत्यं मुनिश्रेष्ठ! ब्रुवे शपथ पूर्वकम्। सर्वाभीष्टप्रदं नान्यन्मथुरायाः समंक्वचित्॥५१॥
त्रिवर्गदा कामिनां या मुमुक्षूणां च मुक्तिदा।
भक्तीच्छोर्भक्तिदा कस्तां मथुरां नाऽऽश्रयेद् बुधः॥५२॥

मूक-जड़-वधिर तथा तपःहीन मानव भी वहां देहत्याग करने के उपरान्त मेरे लोक को प्राप्त करते हैं। मथुरा नगरी में सर्प से डंसा, पशु से मारा गया, अग्नि अथवा जल में मृत, अवैध भाव से मृत प्राणीगण भी देह त्याग के उपरान्त मेरे लोक को प्राप्त करते हैं। हे मुनिप्रवर! मैं दोनों भुजा उठाकर सत्यशपथ लेकर कहता हूं कि मथुराक्षेत्र समस्त अभीष्ट देने वाला है। मथुरा के समान क्षेत्र कहीं नहीं है। जो कामादि की कामना करते हैं, मथुरा में उनको धर्म-अर्थ-काम रूप वर्गत्रय प्राप्त होता है। जो मुमुक्षु हैं, वे वहां मोक्ष प्राप्त करते हैं। जिनको भक्ति की इच्छा है, उनको यहां भक्ति प्राप्त होती है। अतः कौन बुद्धिमान व्यक्ति मथुरा नगरी की शरण नहीं लेगा?॥४९-५२॥

एतादृशी मधुपुरी कर्त्तव्या मार्गशीर्षके। तदभावे पुष्करं हि कर्तव्यं विधिपूर्वकम्॥५३॥
ज्येष्ठं हि ब्रह्मणः कुण्डं मध्यं कुण्डञ्च वैष्णवम्।
कनिष्ठं रुद्रदैवत्यमिति जानीहि बुद्धिमन्!॥५४॥
एषुस्नानञ्च दानञ्च श्राद्धञ्च विधिपूर्वकम्। पूजा च महती कार्याममप्रीतिकरासुत!॥५५॥
पूर्णा या तु भवेत्पुत्र सहोमासे मम प्रिया। तस्यांयत्क्रियतेपुण्यंममप्रीतिकरं भवेत्॥५६॥
गोदानमन्नदानञ्च हेमदानञ्च पुत्रक!। धरादानञ्च कर्तव्यं पूर्णायां विधिपूर्वकम्॥५७॥
सहोमासे हि पूर्णायां सद्मदानञ्चकारयेत्। यत्किञ्चित्क्रियतेपूर्णंतदक्षय्यफलंभवेत्॥५८॥
ब्रह्मभोज्यं हि कर्तव्यं यथाविभवसारतः। पूर्णायामेव कर्तव्य उत्सवो व्रतपूर्त्तये॥५९॥

मार्गशीर्ष मास में मधुपुरी मथुरा की अवश्य सेवा करें। यदि मथुरागमन असंभव हो, तब विधिपूर्वक पुष्करक्षेत्र की सेवा करें। हे मतिमान्! अब कुण्ड का वर्णन सुनें। ब्रह्मा का कुण्ड श्रेष्ठ है। विष्णुकुण्ठ मध्यम तथा रुद्रकुण्ड कनिष्ठ कहा गया है। हे पुत्र! इन कुण्डों में मेरी प्रसन्नतार्थ स्नान-दान-श्राद्ध तथा महती पूजा यथाविधान करें। हे पुत्र! मार्गशीर्ष मास में पूर्णिमा मुझे सर्वप्रिय है। इस पूर्णिमा के दिन जो पुण्य किया जाता है, वह मुझे प्रसन्न करता है। हे पुत्र! इस पूर्णा तिथि के दिन यथाविधि गौ, अन्न, स्वर्ण तथा भूमिदान करें। मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा के दिन जो मनुष्य गृहदान करता है, उसके किये समस्त कार्य पूर्ण तथा अक्षय फलप्रद होते हैं। अपनी वित्तशक्ति के अनुरूप पूर्णिमा के दिन ब्राह्मण भोजन कराये तथा व्रतपूर्त्ति हेतु उत्सवादि अनुष्ठित करे।॥५३-५९॥

यादृशी मथुरापुत्र! सहोमासे ममप्रिया। न तथा तीर्थराजाद्यास्तदभावे च पुष्करम्॥६०॥
पुष्करे मथुरायां वै पूर्णा कार्याविचक्षणैः। यत्रकुत्रापिवाकार्याविधियुक्ताचपूर्णिमा॥६१॥
स्नानं दानं तथा पूजां पूर्णायां न करोति यः। षष्टिवर्षसहस्राणि पच्यतेरौरवादिषु॥६२॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मान्या पूर्णा विचक्षणैः। मार्गशीर्षेणसंयुक्ताअनन्तफलायिनी॥६३॥

हे पुत्र! मार्गशीर्ष में मथुरा जैसी मुझे प्रिय है, प्रधान-प्रधान तीर्थ भी उतने प्रिय नहीं हैं। लेकिन मथुरा के अनन्तर ही पुष्कर में स्नान करना चाहिये। पुष्कर तथा मथुरा में ही बुद्धिमान मानव व्रतपूर्णोत्सव सम्पन्न करे,

तथापि जहां कहीं भी व्रत पूर्ण क्यों न हो, विधिवत् व्रतपूर्णोत्सव करना ही चाहिये। जो मानव पूर्णिमा स्नान-दान-पूजा नहीं करता, रौरवादि नरकों में उसे ६०००० वर्ष निवास करना होगा। इस कारण बुद्धिमान् व्यक्ति सर्वप्रयत्न पूर्वक पूर्णिमा विधान को सम्पन्न करें। जब पूर्णिमा मार्गशीर्ष मास में होती है, वह अनंत फलप्रदा हो जाती है।।६०-६३।।

यथा मे कथितं वत्स! मार्गशीर्षं मम प्रियम्।
करोति यो नरोभक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु।।६४।।

तीर्थायुतेषुयत्पुण्यंयत्पुण्यंव्रतकोटिभिः। सर्वयज्ञेषुयत्पुण्यं तत्पुण्यं समवाप्नुयात्।।६५।।

अपुत्रो लभतेपुत्रं निर्धनो धनमेव च। विद्यार्थी च तथा विद्यांरूपार्थीरूपमाप्नुयात्।।६६।।

ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी क्षत्त्रियो विजयी भवेत्।
वैश्यो निधिपतित्वञ्च शूद्रः शुद्ध्येत पातकात्।।६७।।

यद्दुर्लभञ्च दुष्प्राप्यं त्रिषुलोकेषु मानद!। तत्सर्वंप्राप्नुयान्मर्त्यः सहोमासेनसंशयः।।६८।।

यद्यप्येतेषु कामेषु सक्ता ये मानवाः सुत!। तुष्टाह्यन्ते चतुर्वक्त्र! नकामार्हा महाभुज।।६९।।

सुदुर्लभा हिसद्भक्तिर्मम वश्यकरीशुभा। सा वै सम्प्राप्यते पुत्र सहोमासे श्रुते तथा।।७०।।

ममप्रीतिकरं मासं सर्वदामम वल्लभम्। सर्वं सम्प्राप्यतेऽमुष्मान्मत्प्रसादाच्चतुर्मुख!।।७१।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमासमाहात्म्ये ब्रह्मविष्णुसम्वादे मथुरामाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः।।१७।।

।।समाप्तमिदंमार्गशीर्षमासमाहात्म्यम्।।

हे वत्स! मैंने जो मार्गशीर्ष का वर्णन किया है, वह भी मुझे प्रिय है। जो मानव यह व्रत करता है, उसका पुण्यफल सुनो। अयुत तीर्थ सेवन, कोटिसंख्यक व्रत तथा समस्त यज्ञों का जो फल कहा गया है, मार्गशीर्ष व्रतकारी पुरुष वह सब फल प्राप्त कर लेता है। इससे पुत्रहीन को पुत्रलाभ, विद्यार्थी को विद्यालाभ, रूपार्थी को रूपलाभ हो जाता है। मार्गशीर्षव्रती ब्राह्मण ब्रह्मतेज, क्षत्रिय, विजय, वैश्य, निधिशाली तथा शूद्र पापमुक्त हो जाते हैं। हे मानद! त्रैलोक्य में जो भी दुर्लभ तथा दुष्प्राप्य है, मार्गशीर्ष व्रत से मानव वह सब निःसन्देह पा जाता है। हे पुत्र! यद्यपि यह सब तो काम्यकर्ममात्र ही हैं, तथापि मानव इनमें आसक्त होकर सन्तुष्ट तो होता है! हे महाभुज! अन्त में वे मुक्त भी हो जाते हैं। जिस भक्ति से मैं वशीभूत होता हूं वह उत्तम शुभा भक्ति मनुष्य हेतु दुर्लभा है। हे मुनिवर! मार्गशीर्ष व्रत द्वारा मानव भक्ति भी पा लेता है। यह मास मुझे प्रसन्न करने वाला तथा सर्वदा प्रिय है। मेरी कृपा द्वारा व्रती मनुष्य मार्गशीर्ष व्रत द्वारा सब कुछ पा लेता है।।६४-७१।।

।।सप्तदश अध्याय समाप्त।।

।।मार्गशीर्षमास माहात्म्य समाप्त।।

॥ श्रीगणेशायनमः॥

अथभागवतमाहात्म्यारम्भः

प्रथमोऽध्यायः

शाण्डिल्य ऋषि द्वारा भागवत माहात्म्य वर्णन, वज्र भूमि माहात्म्य

व्यास उवाच

श्रीसच्चिदानन्दघनस्वरूपिणे कृष्णाय चानन्तसुखाभिवर्षिणे।
विश्वोद्भवस्थाननिरोधहेतवे नुमो वयं भक्तिरसाप्तयेऽनिशम्॥१॥

नैमिषे सूतमासीनमभिवाद्य महामतिम्। कथामृतरसास्वादकुशला ऋषयोऽब्रुवन्॥२॥

व्यासदेव कहते हैं—जो श्रीमान् हैं, जिनका रूप सत्-चित्-आनन्दघन है, जो अनन्त सुख की वर्षा करते हैं, जो विश्व की सृष्टि-स्थिति तथा लय करने वाले हैं, एकमात्र रसप्राप्ति हेतु इन कृष्ण को मैं नित्य प्रणाम करता हूं। वाक्यामृत के रसास्वादन में निष्णात ऋषिगण ने नैमिषारण्य में समासीन महामति सूत का अभिवादन करके उनसे पूछा।।१-२।।

ऋषय ऊचुः

वज्रं श्रीमाथुरे देशे स्वपौत्रंहस्तिनापुरे। अभिषिच्यगतेराज्ञि तौ कथं किञ्चचक्रतुः॥३॥

ऋषिगण कहते हैं—राजा युधिष्ठिर ने वज्र को समृद्ध मथुरा देश पर तथा अपने पौत्र को हस्तीनापुर के राज्य पर अभिषिक्त करके जब प्रस्थान किया, तब उन्होंने क्या किया?।।३।।

सूत उवाच

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥४॥
महापथं गते राज्ञि परीक्षित्पृथिवीपतिः। जगाम मथुरां विप्रा वज्रनाभदिदृक्षया॥५॥
पितृव्यमागतं ज्ञात्वा वज्रः प्रेमपरिप्लुतः। अभिगम्याभिवाद्याथनिनायनिजमन्दिरम्॥६॥
परिष्वज्य स तं वीरः कृष्णैकगतमानसः। रोहिण्याद्या हरेः पत्नीर्ववन्दायतनागतः॥७॥
ताभिः सम्मानितोऽत्यर्थं परीक्षित्पृथिवीपतिः।
विश्रान्तः सुखमासीनो वज्रनाभमुवाच ह॥८॥

सूत जी कहते हैं—नारायण, नर, देवी सरस्वती तथा व्यास को प्रणाम करके मैं जय (पुराण) का

उच्चारण करता हूं। हे विप्रगण! जब राजा युधिष्ठिर ने महाप्रस्थान कर दिया तब पृथिवीपति परीक्षित कृष्ण के पौत्र वज्र के दर्शनार्थ मथुरा आये। तब वज्रनाभ पितृव्य को आया देखकर प्रेम से आप्लुत होकर उनके पास आये तथा उनका अभिवादन करके उनको अपने प्रासाद में ले आये। तदनन्तर कृष्ण के प्रति मनोवृत्ति रखने वाले वीर परीक्षित वज्रनाभ के साथ उनके महल में आये तथा वहां पर रोहिणी आदि कृष्ण पत्नीगण की वन्दना किया। तत्पश्चात् वे अन्य रमणीगण से अत्यन्त सम्मानित होकर सुखासीन तथा विश्रान्त होने के पश्चात् वज्रनाभ से कहने लगे।।४-८।।

श्रीपरीक्षिदुवाच

तात! त्वत्पितृभिर्नूनमस्मत्पितृपितामहः। उद्धृता भूरिदुःखौघादहञ्च परिरक्षितः।।९।।
न पारयाम्यहं तात साधु कृत्वोपकारतः। त्वामतः प्रार्थयाम्यङ्गसुखंराज्येऽनुज्यताम्।।१०।।
कोशसैन्यादिजा चिन्ता तथारिदमनादिजा।
मनागपि न कार्या ते सुसेव्याः किन्तु मातरः।।११।।
निवेद्य मयि कर्तव्यं सर्वाधिपरिवर्ज्जनम्। श्रुत्वैतत्परमप्रीतो वज्रस्तं प्रत्युवाच ह।।१२।।

परीक्षित कहते हैं—"हे तात! आपके पितृगण ने मेरे पिता-पितामहगण को क्लेशजाल से मुक्त किया था तथा मैं भी उनके द्वारा रक्षित हुआ, इसमें सन्देह नहीं है। हे तात! मैं किसी भी प्रकार के उत्तम कार्य से उनका प्रत्युपकार नहीं कर सका। हे वज्रनाभ! मैं प्रार्थना करता हूं कि आप अनायास पृथिवी पालन करें। आप उत्तम रूप से माताओं की सेवा करिये तथा आधिरहित होकर समस्त करणीय कार्य मुझसे कहिये। कोष, सेना, शत्रु दमनार्थ आपको लेशमात्र भी चिन्ता नहीं करनी है। राजा परीक्षित का वाक्य सुनकर वज्रनाभ ने कहा।।९-१२।।

श्रीवज्रनाभ उवाच

राजन्नुचितमेतत्ते यदस्मासु प्रभाषते। तवत्पित्रोपकृतश्चाहं धनुर्विद्याप्रदानतः।।१३।।
तस्मान्नाल्पाऽपि मे चिन्ता क्षात्त्रं दृढमुपेयुषः।
किन्त्वेका परमा चिन्ता तत्र किञ्चिद्विचार्य्यताम्।।१४।।
माथुरेत्वभिषिक्तोऽपिस्थितोऽहंनिर्ज्जनेवने। क्वगतावैप्रजाऽत्रत्यायत्रराज्यम्प्ररोचते।।१५।।
इत्युक्तोविष्णुरातस्तुनन्दादीनांपुरोहितम्। शाण्डिल्यमाजुहावाशु वज्रसन्देहनुत्तये।।१६।।
अथोटजंविहायाऽऽशुशाण्डिल्यःसमुपागतः। पूजितोवज्रनाभेननिषसादाऽऽसनोत्तमे।।१७।।
उपोद्धातं विष्णुरातश्चकाराशु ततस्त्वसौ। उवाचपरमप्रीतस्तावुभौ परिसान्त्वयन्।।१८।।

वज्रनाभ कहते हैं—हे राजन्! आपने मेरे प्रति जिस वाक्य को कहा है, यह आप जैसे व्यक्ति के लिये उचित ही है। हे राजन्! आपके पितृगण ने भी मुझे धनुर्विद्या सिखलाकर मुझे उपकृत किया है तथा मैं भी उनकी शिक्षा से दृढ़ क्षात्रतेज पा सका हूं। अतएव राज्य पालनार्थ मुझे तनिक भी चिन्ता नहीं है, तथापि एक प्रधान चिन्ता मुझे अवश्य है। आप इस सम्वन्ध में विचार करें। मैं इतने समृद्ध नगर मथुरा पर राजा रूप से अभिषिक्त होकर भी मानो निर्जन वन में रह रहा हूं! हे तात! यहां की प्रजा कहां चली गयी? मुझे लगता है किसी रुचिकर

राज्य में चले गये।" राजा विष्णुरात् (परीक्षित) ने यह सुनकर वज्रनाभ का संदेह दूर करने हेतु नन्दगोप आदि के पुरोहित शाण्डिल्य ऋषि का आह्वान किया। राजा के आह्वान से ऋषि शाण्डिल्य पर्णकुटी त्याग कर शीघ्रता पूर्वक वहां पहुंचे। तदनन्तर वज्रनाभ ने उनका सत्कार आदि करके उनको बैठने के लिये उत्तम आसन प्रदान किया। तब विष्णुरात् ने उनसे संक्षेप में कहने के लिये इंगित किया। ऋषि शाण्डिल्य अत्यन्त प्रसन्नता के साथ परीक्षित एवं वज्रनाभ का संदेह दूर करने हेतु कहने लगे।।१३-१८।।

श्रीशाण्डिल्य उवाच

श्रृणुतं दत्तचित्तौ मेरहस्यंव्रजभूमिजम्। व्रजनंव्याप्तिरित्युक्त्याव्यापनाद्व्रजउच्यते॥१९॥

गुणातीतं परम्ब्रह्म व्यापकं ब्रज उच्यते। सदानन्दम्परं ज्योतिर्मुक्तानां पदमव्ययम्॥२०॥

तस्मिन्नन्दात्मजः कृष्णः सदानन्दाङ्गविग्रहः।
आत्मारामश्चाऽऽप्तकामः प्रेमाक्तैरनुभूयते॥२१॥

महर्षि शाण्डिल्य कहते हैं—हे नृपद्वय! मनोयोग के साथ मुझसे व्रजभूमि का रहस्य सुनो। "व्रजन" का तात्पर्य है व्याप्ति। जो व्यापन करे, वह है व्रज। यह गुणातीत, परब्रह्म, व्यापक, सदानन्द, उत्तम ज्योतिरूप तथा मुक्तगण का अव्यय पद रूप है। इस व्रज में आत्माराम, आप्तकाम, नन्दात्मज, सदानन्द विग्रह कृष्ण प्रेमिकगण की अनुभूति में दृष्टिगोचर होते हैं।।१९-२१।।

आत्मा तु राधिकातस्यतयैवरमरणादसौ। आत्मारामतयाप्राज्ञैः प्रोच्यते गूढवेदिभिः॥२२॥

कामास्तु वाञ्छितास्तस्य गावो गोपाश्च गोपिकाः।
नित्याः सर्वे विहाराद्या आप्तकामस्ततस्त्वयम्॥२३॥

रहस्यं त्विदमेतस्य प्रकृतेः परमुच्यते। प्रकृत्या खेलतस्तस्य लीलाऽन्यैरनुभूयते॥२४॥

सर्गस्थित्यप्ययायत्ररजःसत्त्वतमोगुणैः। लीलैवंद्विविधातस्यवास्तवीव्यावहारिकी॥२५॥

वास्तवी तत्स्वसम्वेद्या जीवानां व्यावहारिकी।
आद्यां विना द्वितीया न द्वितीया नाद्यगा क्वचित्॥२६॥

आवयोर्गोचरेयन्तु तल्लीला व्यावहारिकी। यत्र भरादयोलोकाभुवि माथरमण्डलम्॥२७॥

राधा इन कृष्ण की आत्मा हैं। कृष्ण राधा के साथ रमण करते हैं। तभी गूढ़तत्ववेत्ता प्राज्ञगण इनको आत्माराम कहते हैं। ये इच्छामात्र से गौ, गोप तथा गोपिका प्रभृति की प्राप्ति कर लेते हैं। उनको यह सब गौ, गोप, गोपिकारूप विहारवस्तु सदा प्राप्त होती है। तभी ये आप्तकाम कहे गये हैं। इनका यह रहस्य प्रकृति के भी परे है। ये प्रकृति के साथ जो क्रीड़ा करते हैं, वह इनकी अन्य लीला द्वारा अनुमानित होता है। ये सत्व-रजः तथा तमः का आश्रय लेकर सृष्टि-स्थिति तथा प्रलय संघटित करते हैं। इनकी लीला द्विविध है वास्तवी एवं व्यावहारिकी। इन लीलाद्वय में तत्वज्ञान से वास्तवी लीला का ज्ञान होता है। इनकी व्यावहारिकी लीला साधारण जीवमात्र भी जान लेते हैं। इन लीलाद्वय में भी ओतप्रोतभाव दृष्टिगत होता है। आद्या अर्थात् वास्तविक लीला से अलग व्यावहारिकी लीला की कदाचित् अनुभूति हो नहीं सकती। जो लीला लोगों को गोचरीभूत है, यही है उनकी व्यवहारिकी लीला। भू भुवः प्रभृति जो लोक हैं, भूतल पर यहां मथुरा मण्डल में वे सभी विद्यमान हैं।।२२-२७।।

अत्रैव व्रजभूमिः सा यत्र तत्त्वं सुगोपितम्। भासते प्रेमपूर्णानांकदाचिदपिसर्वतः॥२८॥
कदाजिदद्वापरस्याऽन्तेरहोलीलाधिकारिणः। समवेतायदाऽत्रस्युर्यथेदानींतदाहरिः॥२९॥
स्वैःसहावतरेत्स्वेषुसमावेशार्थमीप्सिताः। तदा देवादयोऽप्यन्येऽवतरन्तिसमन्ततः॥३०॥
सर्वेषां वाञ्छितं कृत्वा हरिरन्तर्हितोऽभवत्।
तेनाऽत्र त्रिविधा लोकाः स्थिताः पूर्वं न संशयः॥३१॥

यह जो वज्रभूमि परिलक्षित हो रही है, यहीं तत्व गोपनीय रूप से छिपा है। प्रेमपूर्ण मानवगण के हृदय में यह तत्व कदाचित् प्रतिभासित होता है। द्वापर के अन्तिम भाग में एक समय रहोलीलाधिकारी देवगण यहां एकत्र हुये थे। तब उन सबकी कामना के कारण हरि भी वहां अवतीर्ण हो गये। तदनन्तर अन्य देवगण के अवतरित होने पर हरि उनका सभी अभीष्ट सिद्ध करके अन्तर्हित् हो गये। यहां पूर्व में सदैव तीनों लोक स्थित था, इसमें सन्देह नहीं है।।२८-३१।।

नित्यास्तल्लिप्सवश्चैवदेवाद्याश्चेतिभेदतः। देवाद्यास्तेषुकृष्णेन द्वारिकाम्प्रापिताःपुरा॥३२॥
पुनर्मौषलमार्गेण स्वाधिकारेषु चापिताः। तल्लिप्सूंश्च सदाकृष्णप्रेमानन्दैकरूपिणः॥३३॥
विधायस्वीयनित्येषुसमावेशितवांस्तदा। नित्याःसर्वेऽप्ययोग्येषुदर्शनाभावताङ्गताः॥३४॥
व्यावहारिकलीलास्तत्र यन्नाधिकारिणः। पश्यन्त्यत्रागतास्तस्मान्निर्ज्जनत्वं समन्ततः॥३५॥
तस्माच्चिन्तानतेकार्यावज्रनाभ! मदाज्ञया।
वासयात्रबहून्ग्रामान्संसिद्धिस्तेभविष्यति॥३६॥
कृष्णलीलानुसारेणकृत्वानामानिसर्वतः। त्वया वासयताग्रामान्संसेव्याभूरियम्परा॥३७॥
गोवर्द्धने दीर्घपुरे मथुरायां महावने। नन्दिग्रामे बृहत्सानौकार्या राजस्थितिस्त्वया॥३८॥
नद्यद्रिद्रोणकुण्डादिकुञ्जान्ससेवतस्तव ।
राज्ये प्रजाः सुसम्पन्नास्त्वञ्च प्रीतो भविष्यसि॥३९॥

यहां हरिपद की लालसा से तत्पर देवगण थे। इनमें से हरि देवगण को द्वारिका ले गये। वहां पर मौषल को सूत्र बनाकर उन्होंने सबको अपने-अपने कार्यधिकार में नियुक्त किया तथा जो केवल कृष्ण प्रेमी तथा उनके चरणलिप्सु थे, उन प्रेमानन्दरूपी व्यक्तियों को उन्होंने अपने धाम में स्थापित किया। इस प्रकार उनका समावेश सम्पन्न किया। जो व्यवहारलीला बुद्धि तथा अयोग्य मानवगण थे, उनको अपने दर्शन का अनाधिकारी माना। हे वज्रनाभ! इसी कारण यह स्थान सभी ओर से जनशून्य जैसा अनुमित हो रहा है। सम्प्रति मेरा आदेश है कि तुम इस सम्बन्ध में चिन्ता न करो। तुम यहां अनेक ग्राम-नगर स्थापित करो। तुमको इस कार्य में सफलता मिलेगी। तुम कृष्णलीला के अनुसार ग्राम-नगर प्रतिष्ठित करके इस उत्तम भूमि का उपभोग करो। हे राजन्! तुम मथुरा महावन में गोवर्द्धन की घाटी में बृहत् नन्दीग्राम प्रतिष्ठित करके राज्य स्थापित करो। वहां की नदी, द्रोणी, अद्रि, कुण्डादि एवं कुंज आदि युक्त इस मथुरामण्डल का उपभोग करो। तुम्हारा राज्य प्रजा से सम्पन्न होगा तथा तुम भी प्रसन्न रहोगे।।३२-३९।।

सच्चिदानन्दभूरेषा त्वया सेव्या प्रयत्नतः। तवकृष्णस्थलान्यत्र स्फुरन्तुमदनुग्रहात्॥४०॥

वज्र! संसेवनादस्या उद्धवस्त्वां मिलिष्यति।
ततो रहस्यमेतस्मात्प्राप्स्यसि त्वं समातृकः॥४१॥

हे राजन्! तुम यह जान लो कि व्रजभूमि सदा आनन्दमयी है। तुम प्रयत्न पूर्वक इसकी सेवा करो। मेरी कृपा से कृष्ण की समस्त लीलाभूमि तुम्हारे समक्ष प्रस्फुरित हो जाये। हे वज्रनाभ! तुम्हारे राज्यपालन के समय उद्धव तुमसे मिलेंगे। तब तुमको तथा माताओं को कृष्ण की इस लीलाभूमि का रहस्य ज्ञात होगा।।४०-४१।।

एवमुक्त्वा तु शाण्डिल्यो गतः कृष्णमनुस्मरन्।
विष्णुरातोऽथ वज्रश्च परां प्रीतिमवापतुः॥४२॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये शाण्डिल्योपदिष्टव्रजभूमिमाहात्म्यवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः।।१।।

ऋषि शाण्डिल्य यह कहकर कृष्ण स्मरण करते-करते वहां से चले गये तथा राजा विष्णुराट् परीक्षित तथा वज्रनाभ कृष्ण की लीला से अवगत होकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये।।४२।।

।।प्रथम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

द्वितीयोऽध्यायः

गोवर्द्धन के निकट परीक्षित आदि को उद्धव का दर्शन

श्रीऋषय ऊचुः

शाण्डिल्ये तौ समादिश्य परावृत्ते स्वमाश्रमम्। किं कथं चक्रतुस्तौ तु राजानौ सूत तद्वद॥१॥

ऋषिगण कहते हैं—हे सूत! ऋषि शाण्डिल्य जब यह सब वर्णन करने के उपरान्त अपने आश्रम चले गये, तब राजा विष्णुराट् परीक्षित तथा वज्रनाभ ने क्या किया? कृपया कहिये।।१।।

श्रीसूत उवाच

ततस्तुविष्णुरातेनश्रेणीमुख्याःसहस्त्रशः। इन्द्रप्रस्थात्समानाय्यमथुरास्थानमापिताः॥२॥
माथुरान्ब्राह्मणांस्तत्रवानरांश्चपुरातनान्। विज्ञायमाननीयत्वंतेषुस्थापितवान्स्वराट्॥३॥
वज्रस्तु तत्सहायेन शाण्डिल्यस्याऽप्यनुग्रहात्। गोविन्दगोपगोपीनां लीलास्थानान्यनुक्रमात्॥४॥
विज्ञायाऽभिधयाऽऽस्थाप्य ग्रामानावासयद्बहून्। कुण्डकूपादिपूर्तेन शिवादिस्थापनेन च॥५॥
गोविन्दहरिदेवादिस्वरूपाऽऽरोपणेन च। कृष्णैकभक्तिंस्वे राज्ये ततान च मुमोदह॥६॥

प्रजास्तुमुदितास्तस्य कृष्णकीर्तनतत्पराः। परमानन्दसम्पन्नाराज्यं तस्यैव तुष्टुवुः॥७॥
एकादाकृष्णपत्न्यस्तुश्रीकृष्णविरहातुराः। कालिन्दींमुदितांवीक्ष्यपप्रच्छुर्गतमत्सराः॥८॥

सूत जी कहते हैं—तत्पश्चात् सम्राट परीक्षित ने इन्द्रप्रस्थ से झुण्ड की झुण्ड प्रजा को लाकर इस जनशून्य मथुरानगर में स्थापित किया तथा वहां माथुर ब्राह्मण एवं पुरातन वानरों को माननीय जानकर इस मथुराराज्य में बसाया। इधर राजा वज्रनाभ ने भी इस प्रकार से परीक्षित की सहायता प्राप्त किया और महर्षि शाण्डिल्य की कृपा से गोविन्द, गोप तथा गोपीगण की लीलाभूमि का सन्धान पाकर कृष्णलीला के नाम के अनुसार एक-एक नाम रखकर अनेक ग्राम नगरों को प्रतिष्ठित किया। उन्होंने जहां-तहां कुण्ड, कूप, पूर्त्त बनावाये। कहीं शिवलिङ्ग आदि स्थापित किया। कहीं गोविन्द, हरि तथा अन्य भगवत् नामों के अनुसार देवता प्रतिष्ठा सम्पन्न करने के साथ श्रीकृष्ण के प्रति एकनिष्ठ भक्ति का विस्तार करने लगे तथा प्रसन्नता पूर्वक रहने लगे। उनके प्रजागण कृष्णनाम कीर्त्तन में तत्पर होकर अत्यन्त मुदित रहते थे। वे सभी प्रजावर्ग इस प्रकार परमानन्दमय चित्तस्थिति को पाकर इन राजा के राज्य की प्रशंसा करने लगे। एकबार कृष्णविरह कातर कृष्णपत्नीगण ने जब अन्यकृष्णपत्नी कालिन्दी को प्रसन्न देखा, तब वे अमर्ष में भरकर कालिन्दी से कहने लगीं॥२-८॥

श्रीकृष्णपत्न्य ऊचुः

यथा वयं कृष्णपत्न्यस्तथा त्वमपि शोभने। वयंविरहदुःखार्तास्त्वंनकालिन्दितद्वद॥९॥
तच्छ्रुत्वा स्मयमाना सा कालिन्दी वाक्यमब्रवीत्।
सापत्न्यं वीक्ष्य तत्तासां करुणापरमानसा॥१०॥

कृष्णपत्नीगण कहती हैं—"हे शोभने! जैसे हम सब कृष्ण-पत्नियां हैं, ऐसे ही तुम भी हो, तथापि हे कालिन्दी! हम सभी उनके विरह में अतीव कातर हैं, लेकिन हम सभी तुम्हारे अन्दर कोई भी विरह चिह्न नहीं देख पा रहीं हैं! इसका कारण बतलाओ।" करुणार्द्रहृदया नदी कालिन्दी कृष्णपत्नीगण का यह कथन सुनकर उन सपत्नियों (सौतों) की ईर्ष्या को जान गयीं। तदनन्तर कालिन्दी किंचित् हंसते हुये उनसे कहने लगीं॥९-१०॥

श्रीकालिन्द्युवाच

आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्माऽस्ति राधिका।
तस्या दास्यप्रभावेण विरहोऽस्मान्न संस्पृशेत्॥११॥
तस्या एवांऽशविस्ताराः सर्वाः श्रीकृष्णनायिका।
नित्यसम्भोग एवास्ति तस्याः सामुख्ययोगतः॥१२॥

कालिन्दी कहती हैं—आत्माराम कृष्ण की आत्मा राधा हैं। मैं उनकी दासी हूं। उनके दासत्व के ही प्रभाव से कातरता मेरा स्पर्श नहीं कर सकती, यह निःसंदिग्ध बात है। कृष्ण की सभी नायिकायें राधा के ही अंश का विस्तार है। राधिका के साथ कृष्ण का नित्य संयोग-योग विद्यमान रहता है। इसलिये राधिका से योग होने के कारण अन्य नायिकागण कृष्ण से सम्बन्धित हो जाती हैं॥११-१२॥

सएवसाससैवास्तिवंशीतप्रेमरूपिका। श्रीकृष्णनखचन्द्रालिसङ्गाच्चन्द्रावलीस्मृता॥१३॥

रूपान्तरंचगृह्णानांतयोःसेवातिलालसा। रुक्मिण्यादिसमावेशोमयाऽत्रैवविलोकितः॥१४॥
युष्माकमपिकृष्णेनविरहोनैवसर्वतः। किन्तुएवं न जानीथ तस्माद्व्याकुलतामिताः॥१५॥
एवमेवात्र गोपीनाक्रूरावसरे पुरा। विरहाभास एवासीदुद्धवेन समाहितः॥१६॥
तेनैव भवतीनां चेद्धवेदत्र समागमः। तर्हि नित्यं स्वकान्तेन विहारमपिलप्स्यथ॥१७॥

यह जो मैं देखती हूं कि जो कृष्ण हैं वही राधिका हैं। वही प्रेमरूपा वंशी हैं, जो कृष्ण के नखरूपी चन्द्रमा के संयोग से चन्द्रावली कहलाती हैं, वे चन्द्रावली भी वही हैं। राधा तथा कृष्ण की सेवा में पूर्ण अनुरक्ति के कारण इनमें से किसी ने भी रूपान्तर ग्रहण नहीं किया। मैं रुक्मिणी आदि में भी इनका ही समावेश देख रही हूं। अर्थात् रुक्मिणी आदि, चन्द्रावली आदि सभी राधा का अंश हैं, उनसे पृथक् नहीं हैं। मैं तो तुम लोगों को भी कृष्ण से अलग वियुक्त-विच्छिन्न नहीं देख रही हूं (तुम सब राधा का अंश होने के कारण कृष्ण से कदापि पृथक् नहीं हो, जबकि उनसे पृथक् मानकर वियोग दुःख से पीड़ित होना मात्र भ्रम है), तथापि तुम लोग इस बात का अनुभव नहीं कर पा रही हो। तभी व्याकुल चित्त हो। पूर्वकाल में जब अक्रूर कृष्ण को मथुरा ले जा रहे थे, तब भी तुम सबमें एक बार ऐसे ही विरहाभास को देखा गया था। तब उद्धव ने नाना प्रकार से सान्त्वना देकर तुम्हारे इस विरह को दूर किया था। तुम सब यहां आई हो, यह उत्तम बात है। यहां वृन्दावन में तुम सभी पति श्रीकृष्ण के साथ सुख का उपभोग करो।।१३-१७।।

श्रीसूत उवाच

एवमुक्तास्तु ताः पत्न्यः प्रसन्नां पुनरब्रुवन्। उद्धवालोकनेनात्मप्रेष्ठसङ्गमलालसाः॥१८॥

श्रीकृष्णपत्न्य ऊचुः

धन्याऽसि सखि! कान्तेन यस्या नैवाऽस्ति विच्युतिः।
यतस्ते स्वार्थसंसिद्धिस्तस्या दास्यो बभूविम॥१९॥
परन्तूद्धवलाभे स्यादस्मत्सर्वार्थसाधनम्। तथा वदस्व कालिन्दि! तल्लाभोऽपि तथा भवेत्॥२०॥

सूत जी कहते हैं—जब कृष्णपत्नी कालिन्दी ने इस प्रकार कहा तब कृष्ण पत्नियां पुनः सुप्रसन्ना कालिन्दी से कहने लगीं—"हे सती! उद्धव को देखकर हममें उपभोग (कृष्ण के) लालसा अत्यन्त वर्द्धित हो रही है। हे सखी! तुम धन्य हो। क्योंकि पति के साथ कभी भी तुम्हारी विच्युति नहीं हुई है। राधिका की कृपा से तुमको अभीष्ट सिद्ध है। हम सब उनका दासत्व ग्रहण करेंगी। हे कालिन्दी! हमारी इच्छा है कि उद्धव का दर्शन लाभ होने से ही हमारा अभीष्ट सिद्ध होगा। अब बताओ कि हम किस उपाय से उद्धव का दर्शन प्राप्त कर सकेंगी?"।।१८-२०।।

श्रीसूत उवाच

एवमुक्तातुकालिन्दीप्रत्युवाचाथतास्तथा। स्मरन्तीकृष्णचन्द्रस्यकलाषोडशरूपिणी॥२१॥
साधनभूमिर्वदरी व्रजता कृष्णेन मन्त्रिणे प्रोक्ता।
तत्रास्ते स तु साक्षात्तद्वयुनं ग्राहयंल्लोकान्॥२२॥

फलभूमिर्व्रजभमिर्दत्ता तस्मै पुरैव सरहस्यम्।
फलमिह तिरोहितं सत्तदिहेदानीं स उद्धवोऽलक्ष्यः॥२३॥
गोवर्द्धनगिरिनिकटे सखीस्थले तद्रजःकामः।
तत्रत्याङ्कुरवल्लीरूपेणाऽऽस्ते स उद्धवो नूनम्॥२४॥
आत्मोत्सवरूपत्वं हरिणा तस्मै समर्पितं नियतम्।
तस्मात्तत्र स्थित्वा कुसुमसरःपरिसरे सव्रजाभिः॥२५॥
वीणावेणुमृदङ्गैः कीर्तनकाव्यादिसरससङ्गीतैः।
उत्सव आरब्धव्यो हरिरतलोकान्समानाय्य॥२६॥
तत्रोद्धवावलोको भविता नियतं महोत्सवे वितते।
यौष्माकीणामभिमतसिद्धिं सविता स एव सवितानाम्॥२७॥

सूत जी कहते हैं—जब कृष्णपत्नियों ने कालिन्दी यमुना से यह कहा, तब कृष्ण की पूर्ण षोडश कला का स्मरण करते-करते कालिन्दी ने कहा—"उद्धव कृष्ण के मन्त्री हैं। कृष्ण ने मन्त्री उद्धव को रहस्योपदेश देकर सर्वसाधनभूमि बदरीवन प्रस्थान किया था। सम्प्रति उद्धव वज्रभूमि में रहकर लोगों को श्रेयप्रद साधु उपदेश प्रदान कर रहे हैं। कृष्ण ने पूर्वकाल में सरहस्य फलभूमि, वज्रभूमि का कार्यभार अर्पण उद्धव को कर दिया था, तथापि व्रज का जो महाफल है, उसे तिरोहित होते देखकर उद्धव वहां से अन्तर्ध्यान हो गये। अर्थात् किसी को दिखलाई नहीं पड़ते। वे कृष्ण की चरणधूलि की कामना करते हुये गोवर्द्धनपर्वत से सन्निहित सखीस्थल में अंकुरवल्ली के रूप में अवस्थित हैं। कृष्ण नित्यप्रति उनको अपने उत्सवरूप का दर्शन देते हैं। उनका वह स्थान पुष्प, सरोवर तथा वज्रादि (हीरकादि) से शोभित है। यह स्थान अत्यन्त विस्तृत भी है। वेणु, वीणा, मृदंगवादन तथा कीर्त्तनरूप रस काव्यादि संगीत के द्वारा भक्त उद्धव वहां हरिभक्ति से सराबोर भक्तों के साथ कृष्णोत्सव कर रहे हैं। वहां नित्य उत्सव चलता रहता है। तुम सब उद्धव द्वारा किये जा रहे उस उत्सव में जाओ। इसी से तुम उद्धव का दर्शन प्राप्त कर सकोगी। उद्धव मानो सवितागण में प्रधान सूर्यरूप हैं। उनसे ही तुम सबको अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होगी।।२१-२७।।

श्रीसूत उवाच

इति श्रुत्वा प्रसन्नास्ताः कालिन्दीमभिवन्द्य तत्।
कथयामासुरागत्य वज्रम्प्रति परीक्षितम्॥२८॥
विष्णुरातस्तु तच्छुक्त्वा प्रसन्नस्तद्युतस्तदा। तत्रैवागत्य तत्सर्वं कारयामासत्वरम्॥२९॥
गोवर्धनाददूरेण बृन्दारण्ये सखीस्थले। प्रवृत्तः कुसुमाम्भोधौ कृष्णसङ्कीर्तनोत्सवः॥३०॥
वृषभानुसुताकान्तविहारे कीर्तनश्रिया। साक्षादिव समावृत्ते सर्वेऽनन्यदृशोऽभवन्॥३१॥
ततः पश्यत्सु सर्वेषु तृणगुल्मलताचयात्।
आजगामोद्धवः स्त्रग्वी श्यामः पीताम्बरावृतः॥३२॥

गुञ्जामालाधरो गावन्वल्लवीवल्लभं मुहुः। तदागनमतो रेजे भृशं सङ्कीर्तनोत्सवः॥३३॥
चन्द्रिकामगतोयद्वत्स्फाटिकाट्टालभूमणिः। अथसर्वेसुखाम्भोधौमग्नाःसर्वंविसस्मरुः॥३४॥
क्षणेनागतविज्ञानादृष्ट्वा श्रीकृष्णरूपिणम्। उद्धवं पूजयाञ्चक्रुः प्रतिलब्धमनोरथाः॥३५॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये गोवर्द्धन-पर्वतसमीपे परीक्षिदादीनामुद्धवदर्शनवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

सूत जी कहते हैं—कृष्णपत्नीगण ने कालिन्दी यमुना से यह सब रहस्य सुना। उन्होंने प्रसन्न होकर कालिन्दी का अभिनन्दन किया तथा वे राजा परीक्षित और वज्रनाभ के पास गयीं और उनसे इस वृत्तान्त को कहा। विष्णुराट् राजा परीक्षित ने कृष्णपत्नियों से यह सब सुना तथा प्रसन्न होकर वे सभी लोग सखी स्थल पर गये तथा वहां कृष्णोत्सव का आयोजन सम्पन्न किया। वे लोग गोवर्द्धनपर्वत के निकट वृन्दावन के पुष्पबहुल सखी स्थल पर पहुंचे और वहां कृष्ण संकीर्तन में प्रवृत्त हो गये। वृषभानुसुता के (राधा के) पति साक्षात् श्रीकृष्ण की विहारभूमि कीर्त्तन की समृद्धि से परिपूर्ण होने लगी। सभी अनन्यनेत्र से उस उत्सव को देखने भी लगे। तभी दर्शकगण के सामने तृण-गुल्म एवं लताजाल में से उद्धव बहिर्गत हुये। उनके गले में माला विराजित थी। उन्होंने पीतवस्त्र धारण किया था। उनका देहवर्ण श्यामल था। वे गुञ्जामाला धारण किये हुये कमलावल्लभ की गुणावलि का गायन करते बाहर आये।

जैसे स्फटिक की अट्टालिकाओं पर चन्द्रकिरण पड़ने से शोभा वृद्धि होती है, उसी प्रकार उनके आगमन से यह संकीर्त्तनोत्सव अधिकतर शोभायमान हो उठा। तदनन्तर यह देखकर सभी लोग सुखसागर में मग्न हो गये। सभी अपना-अपना कार्य भूलकर उन हठात् प्रकट हुये कृष्णवेश वाले उद्धव को देखकर उनका पूजन करने लगे। इस प्रकार सभी की उद्धव के दर्शन की लालसा पूर्ण हो गयी।।२८-३५।।

।।द्वितीय अध्याय समाप्त।।

तृतीयोऽध्यायः

परीक्षित-उद्धव संवाद, विष्णु द्वारा सृष्टिसंरक्षणार्थ भागवत सहाय्य का वर्णन, श्रीमद्भागवत प्रशंसा

श्रीसूत उवाच

अथोद्धवस्तु तान्दृष्ट्वा कृष्णकीर्तनतत्परान्। सत्कृत्याथ परिष्वज्यपरीक्षितमुवाचह॥१॥

सूत जी कहते हैं—तत्पश्चात् उद्धव ने उस कृष्णसंकीर्त्तनोत्सव को देखकर परीक्षित का आलिंगन किया और उनका सत्कार करके कहने लगे।।१।।

उद्धव उवाच

धन्योऽसि राजन्कृष्णैकभक्त्या पूर्णोऽसि नित्यदा।
यस्त्वं निमग्नचित्तोऽसि कृष्णसङ्कीर्तनोत्सवे॥२॥
कृष्णपत्नीषु वज्रे च दिष्ट्या प्रीतिः प्रवर्तिता। तवोचितमिदंतातकृष्णदत्ताङ्गवैभव॥३॥
द्वारकास्थेषु सर्वेषु धन्या एते न संशयः। येषां व्रजनिवासाय पार्थमादिष्टवान्प्रभुः॥४॥
श्रीकृष्णस्य मनश्चन्द्रो राधास्यभयान्वितः। तद्विहारवनं गोभिर्मण्डयन्रोचतेसदा॥५॥
कृष्णचन्द्रः सदा पूर्णस्तस्य षोडश याः कलाः।
चित्सहस्त्रप्रभाभिन्ना अत्रास्ते अत्स्वरूपता॥६॥

उद्धव कहते हैं—हे राजन्! तुम्हारी कृष्ण के प्रति एकनिष्ठ भक्ति है तथा कृष्णसंकीर्तन में तुम्हारा चित्त निमग्न रहता है। तुम धन्य हो तथा नित्य पूर्णकाम हो। हे तात! कृष्ण ने तुम्हारे जीवन की रक्षा किया था। कृष्ण-पत्नी तथा राजा वज्रनाभ के प्रति सौभाग्यवशात् तुम्हारा जो प्रेम प्रवर्त्तित हो रहा है, यह तुम्हारे जैसे भक्त व्यक्ति के अनुरूप ही है। प्रभु कृष्ण ने जिन सब लोगों को व्रज में निवास कराने का पार्थ अर्जुन को आदेश दिया था, द्वारिका वासियों से तो ये व्रजवासी अधिक धन्य हैं। इसमें संशय नहीं है। श्रीकृष्ण का मनरूपी चन्द्रमा राधिका की मुखच्छवि से अन्वित है। उधर यह कृष्ण की विहारभूमि गोपगण से मण्डित है और उसमें भी श्रीकृष्णचन्द्र अपनी षोडशकला को सहस्त्र चित्त्शक्ति की प्रभा में समाविष्ट करके उस स्वरूप द्वारा इस विहारभूमि में सतत् विद्यमान रहते हैं।।२-६।।

एवं वज्रस्तु राजेन्द्र! प्रपन्नभभयञ्जकः। श्रीष्णदक्षिणे पादे स्थानमेतस्य वर्तते॥७॥
अवतारेऽकृष्णेनयोगमायाऽतिभाविता। तद्बलेनात्मविस्मृत्यासीदन्त्येतेनसंशयः॥८॥
ऋते कृष्णप्रकाशं तु स्वात्मबोधोन कस्यचित्।
तत्प्रकाशस्तु जीवानां मायया पिहितः सदा॥९॥
अष्टाविंशे द्वापरान्ते स्वयमेव यदा हरिः। उत्सारयेन्निजां मायां तत्प्रकाशोभवेत्तदा॥१०॥
सतुकालो ध्यतिक्रान्तस्तेनेदमपरं श्रृणु। अन्यदातत्प्रकाशस्तुश्रीमद्भागवताद्भवेत्॥११॥

हे राजन्! इस वज्रभूमि की महिमा क्या कहूं? यह स्थान शरणागत के भय का हरण करता है। श्रीकृष्ण के दाहिने पग में यह व्रजभूमि प्रतिष्ठित है। योगमाया से अनुप्राणित होकर वे इस ब्रजभूमि में अवतरित हुये थे। यहां उनके विरह के कारण आत्मविस्मृत हो ब्रजवासीगण नितान्त पीड़ित हो रहे हैं। हृदय में कृष्ण के प्रकाश के अभाव में किसी को भी आत्मप्रबोध नहीं होता। इसका कारण यह है कि उनकी माया द्वारा सब कुछ आवरित रहता है। २८वें द्वापर का अवसान होने पर जब हरि ने अवतरित होकर अपनी माया को हटाया, तभी उनका प्रकाश हो सका। हे राजन्! वह काल व्यतीत हो चुका है। अब जिस प्रकार से उनका प्रकाशन होगा, उसे श्रवण करो। हे नृप! उनके अवतरण काल से अतिरिक्त जो, अन्य काल है, उसमें श्रीमद्भागवत से उनका सुप्रकाश होता है।।७-११।।

श्रीमद्भागवतं शास्त्रं यत्रभागवतैर्यदा। कीर्त्यतेश्रूयतेचापिश्रीकृष्णस्तत्रनिश्चितम्।।१२।।
श्रीमद्भागतं यत्र श्लोकं श्लोकार्द्धमेव च। तत्रापि भगवान्कृष्णो वल्लवीभिर्विराजते।।१३।।
भारतेमानवं जन्म प्राप्य भागवतं न यैः। श्रुतं पापपराधीनैरात्मघातस्तु तैः कृतः।।१४।।
श्रीमद्भागवतंशास्त्रंनित्यंयैपरिसेवितम्। पितुर्मातुश्चभार्यायाःकुलपङ्क्तिःसुतारिता।।१५।।
विद्याप्रकाशो विप्राणां राज्ञां शत्रुजयो विशाम्।
धनं स्वास्थ्यञ्च शूद्राणां श्रीमद्भागवताद्भवेत्।।१६।।
योषितामपरेषाञ्च सर्ववाञ्छितपूरणम्। अतोभागवतं नित्यं कोन सेवेत भाग्यवान्।।१७।।
अनेकजन्मसंसिद्धः श्रीमद्भागवतं लभेत्। प्रकाशो भगवद्भक्तेरुद्धवस्तत्र जायते।।१८।।
साङ्ख्यायनप्रसादाप्तं श्रीमद्भागवतं पुरा। बृहस्पतिर्दत्तवान्मे तेनाऽहं कृष्णवल्लभः।।१९।।
आख्यायिकाञ्चतेनोक्तांविष्णुरात! निबोधताम्। ज्ञायतेसम्प्रदायोऽपियत्रभागवतश्रुतेः ।।२०।।

जहां विष्णु भक्तगण श्रीमद्भागवत का पाठ करते हैं अथवा सुनते हैं, वहां श्रीकृष्ण प्रादुर्भूत होते हैं। यह निश्चित है। जहां श्रीमद्भागवत के एक ही श्लोक अथवा आधे श्लोक का पाठ होता है, वहां श्रीकृष्ण स्वयं पत्नीगण के साथ विराजित रहते हैं। यह पुण्यमयी भारतभूमि ऐसी है। यहां मानव जन्म लेकर भी पाप के वशीभूत होकर भागवत नहीं सुनते, वे आत्मघाती हैं। जो सतत् भागवत शास्त्र की सेवा करते हैं, वे पिता-माता तथा पत्नी के कुलवालों (पितरों) का उद्धार करने में समर्थ होते हैं। भागवत श्रवण द्वारा विप्रगण की विद्या का विकास होता है। राजागण शत्रु पर विजय प्राप्त करते हैं। वैश्यगण धनलाभ तथा पुत्रलाभ करते हैं। शूद्रगण भी भागवत श्रवण द्वारा रोगमुक्त हो जाते हैं। भागवत श्रवण द्वारा नारीगण का सभी अभीष्ट सिद्ध हो जाता है। इसलिये ऐसा कौन भाग्यवान् है जो भागवत की नित्य सेवा नहीं करेगा? अनेक जन्म की सिद्धि द्वारा ही भागवत श्रवण का योग उपस्थित होता है और भगवद्भक्तों का दर्शन मिलता है तथा भगवद्भक्ति विकसित होती है। हे राजन्! पूर्वकाल में सांख्यायन ने भागवत शास्त्र का प्रणयन करके प्रेम के कारण बृहस्पति को उपदेश दिया था। तदनन्तर मैंने बृहस्पति से इस शास्त्रज्ञान को पाया था। भागवत ज्ञान का लाभ करके ही मैं कृष्ण का प्रिय बन पाया। हे विष्णुराट् परीक्षित! बृहस्पति ने इस आख्यायिका का वर्णन किया था। उसे सुनकर भागवत श्रवण का ज्ञान निर्णीत होता है। (अर्थात् फल विदित होता है।) अब उस आख्यायिका को सुनो।।१२-२०।।

श्रीबृहस्पतिरुवाच

ईक्षाञ्चक्रे यदा कृष्णो माया पुरुषरूपधृक्। ब्रह्माविष्णुःशिवश्चापिरजःसत्त्वतमोगुणैः।।२१।।
पुरुषास्त्रय उत्तस्थुरधिकारांस्तदादिशत्। उत्पत्तौ पालने चैव संहारे प्रक्रमेण तान्।
ब्रह्मा तु नाभिकमलादुत्पन्नस्तं व्यजिज्ञपत्।।२२।।

बृहस्पति कहते हैं—मायापुरुषरूपी श्रीकृष्ण ने जब दृष्टि निःक्षेप किया, तब ब्रह्मा, विष्णु, महेश उद्भूत हो गये। तदनन्तर कृष्ण ने उन पुरुषत्रय को यथाक्रमेण रजः-सत्व तथा तमोगुणाश्रित देखकर उनको उनका-उनका अधिकार (तथा कार्य) बतलाया। उन्होंने ब्रह्मा को सृष्टिकार्य, विष्णु को स्थिति कार्य तथा शिव को संहार कार्य में नियुक्त किया। ब्रह्मा उनके नाभिकमल से निर्गत हुये थे। उन्होंने कृष्ण से यह कहा।।२१-२२।।

श्रीब्रह्मोवाच

नारायणादिपुरुष! परमात्मन्नमोऽस्तु ते॥२३॥
त्वया सर्गे नियुक्तोऽस्मि पापीयान्मां रजोगुणः।
त्वत्स्मृतौ नैव बाधेत तथैव कृपया प्रभो!॥२४॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारायण! आप आदिपुरुष तथा सर्वात्मा हैं। आपको प्रणाम! आपने मुझे रजोगुणयुक्त तथा पापीयान जानकर सृष्टिकार्यार्थ नियुक्त किया है। आप कृपापूर्वक ऐसा करिये जिससे मेरा हृदय कदापि आपकी स्मृति से रहित न हो।।२३-२४।।

श्रीबृहस्पतिरुवाच

यदातु भगवांस्तस्मैश्रीमद्भागवतं पुरा। उपदिश्याऽब्रवीद्ब्रह्मन्सेवस्वैनत्स्वसिद्धये॥२५॥
ब्रह्मातु परमप्रीतस्तेन कृष्णाप्तयेऽनिशम्। सप्तावरणभङ्गाय सप्ताहं समवर्तयत्॥२६॥
श्रीभागवतसप्ताहसेवनाप्तमनोरथः। सृष्टिं वितनुते नित्यं ससप्ताहः पुनःपुनः॥२७॥
विष्णुरप्यर्थयामास पुमांसं स्वार्थसिद्धये। प्रजानां पालनेपुंसा यदनेनापिकल्पितः॥२८॥

बृहस्पति कहते हैं—भगवान् कृष्ण ने पूर्वकाल में ब्रह्मा की ऐसी भक्ति देखा, तब प्रसन्न होकर भगवान् ने ब्रह्मा को श्रीमद्भागवत का उपदेश प्रदान किया। भगवान् ने ब्रह्मा से कहा था— "हे ब्रह्मा! आप भागवत की सेवा करिये। इसके फलस्वरूप आपको आत्मसिद्धि प्राप्त होगी।" तब भगवद् वाक्य सुनकर परम प्रसन्न हो गये। तब से ब्रह्मा कृष्णप्राप्ति की कामना से अहर्निश भागवत सेवा करने लगे। हे राजन्! तदनन्तर ब्रह्मा ने सप्तावरण भेदनार्थ १ सप्ताह एकासनासीन होकर भागवत सेवा किया (पाठ किया) तथा उससे उनका मनोरथ सिद्ध हो गया। उन्होंने पुनः-पुनः सृष्टि करते हुये सप्ताह मात्र में इस विश्वब्रह्माण की रचना कर दिया। तत्पश्चात् प्रजापालनार्थ नियुक्त विष्णु ने अपने कार्य की सफलता हेतु कृष्ण के पास जाकर प्रार्थना किया।।२५-२८।।

श्रीविष्णुरुवाच

प्रजानां पालनं देव! करिष्यामियथोचितम्। प्रवृत्त्याचनिवृत्त्याचकर्मज्ञानप्रयोजनात्॥२९॥
यदायदैव कालेन धर्मग्लानिर्भविष्यति। धर्मं संस्थापयिष्यामि ह्यवतारैस्तदा तदा॥३०॥
भोगार्थिभ्यस्तु यज्ञादिफलं दास्यामि निश्चितम्।
मोक्षार्थिभ्यो विरक्तेभ्यो मुक्तिं पञ्चविधां तथा॥३१॥
येऽपि मोक्षं न वाञ्छन्ति तान्कथं पालयाम्यहम्।
आत्मानञ्च श्रियञ्चाऽपि पालयामि कथं वद॥३२॥
तस्माअपि पुमानाद्यः श्रीभागवतमादिशत्। उवाच च पठस्वैनत्तव सर्वार्थसिद्धये॥३३॥
ततो विष्णुःप्रसन्नात्मापरमार्थकपालने। समर्थोऽभूच्छ्रियामासिमासिभागवतंस्मरन्॥३४॥
यदा विष्णुः स्वयं वक्ता लक्ष्मीश्च श्रवणे रता। तदा भागवतश्रावोमासेनैवपुनःपुनः॥३५॥

यदा लक्ष्मीः स्वयंवक्त्रींविष्णुश्चश्रवणेरतः। मासद्वयंरसास्वादस्तदातीवसुशोभते॥३६॥

श्री विष्णु कहते हैं—"हे देव! मैं प्रवृत्ति तथा निवृत्ति द्वारा कर्मज्ञान को प्रयुक्त करके यथोचित प्रजापालन करूंगा। जब-जब धर्मग्लानि उपस्थित होगी, तब-तब मैं अवतार लेकर धर्म की स्थापना करूंगा! जो भोग चाहते हैं, उनको यज्ञफल दूंगा। जो मुक्ति चाहते हैं ऐसे विरक्त प्राणीगण को पञ्चविध मुक्ति प्रदान करूंगा। हे परमपुरुष! जिनको मुक्ति की इच्छा नहीं है, उनका पालन कैसे करूंगा तथा मेरा और कमला का प्रतिपालन किस प्रकार से होगा? यह कृपया कहिये।" हे राजन्! यह सुनकर आदिपुरुष कृष्ण ने तब विष्णु को श्रीमद्भागवत का आदेश दिया। श्रीकृष्ण ने विष्णु से कहा—"हे विष्णु! सर्वार्थसिद्धि हेतु तुम भागवत सेवन करो।" परमपुरुष से यह सुनकर विष्णु प्रसन्न हो गये तथा प्रजाजन साधन में समर्थ होकर मेरे साथ मास-मास में पुनः-पुनः भागवत का स्मरण करने लगे। जब विष्णु स्वयं वक्ता थे तथा रमा श्रोता थीं, तब भागवत एक मास में पूर्ण हो सकी। पुनः जब लक्ष्मी (रमा) वक्ता थी विष्णु श्रोता थे तब दो मास में भागवत श्रवण पूर्ण हो सका।।२९-३६।।

अधिकारे स्थितो विष्णुर्लक्ष्मीर्निश्चिन्तमानसा।
तेन भागवतास्वादस्तस्या भूरि प्रकाशते॥३७॥

अथ रुद्रोऽपि तं देवं संहाराधिकृतः पुरा। पुमांसं प्रार्थयामासस्वसामर्थ्यविवृद्धये॥३८॥

हे राजन्! यह दो मास वाला पाठ ही अधिकतम रसास्वादयुक्त था। क्योंकि जो वास्तविक श्रवणाधिकारी हैं, वे विष्णु अपने श्रवणरूपी अधिकार में उपस्थित हो गये तथा लक्ष्मी भी निश्चिन्त मन से पाठ करने लगीं। इसी कारण लक्ष्मी का किया जो पाठ था उसमें अधिकतम भागवत रसास्वाद प्रकट हो सका।।३७-३८।।

श्रीरुद्र उवाच

नित्यै नैमित्तिके चैव संहारे प्राकृते तथा। शक्तयो मम विद्यन्ते देवदेव मम प्रभो॥३९॥
आत्यन्तिके तु संहारे मम शक्तिर्न विद्यते। महद्दुःखंममैतत्तु तेनत्वाम्प्रार्थयाम्यहम्॥४०॥

श्री रुद्र कहते हैं—हे प्रभो! नित्य-नैमित्त-प्राकृत रूप त्रिविध संहार कार्य में मेरी प्रभूतशक्ति रहती है, तथापि देवाधिदेव! आत्यन्तिक संहारार्थ मुझमें शक्ति नहीं है। यही मेरा एक महादुःख है। अतः मैं आपसे प्रार्थना करता हूं।।३९-४०।।

श्रीबृहस्पतिरुवाच

श्रीमद्भागवतं तस्मा अपि नारायणो ददौ। स तुसंसेवनादस्यजिग्येचापितमोगुणम्॥४१॥
कथा भागवती तेन सेविता वर्षमात्रतः। लये त्वात्यन्तिकेतेनाऽवापशक्तिंसदाशिवः॥४२॥

बृहस्पति कहते हैं—तब उनको भी नारायण ने श्रीमद्भागवत का उपदेश प्रदान किया। तदनन्तर रुद्र ने भी कृष्ण द्वारा कथित भागवत की सेवा करके तमोगुण पर विजय प्राप्त कर लिया। उन सदाशिव ने एक वर्ष भागवत की सेवा करके आत्यन्तिक लय की शक्ति का लाभ किया।।४१-४२।।

उद्धव उवाच

श्रीभागवतमहात्म्य इमामाख्यादिकांगुरोः। श्रुत्वाभागवतंलब्ध्वामुमुदेऽहंप्रणम्यतम्॥४३॥

ततस्तुवैष्णवींरीतिंग्रहीत्वामासामात्रतः। श्रीमद्भागवतास्वादोमयासम्यङ्निषेवितः॥४४॥
तावतैव बभूवाऽहं कृष्णस्यदयितःसखा। कृष्णेनाथ नियुक्तोऽहं व्रजे स्वप्रेयसीगणे॥४५॥
विरहार्त्तासु गोपीषु स्वयं नित्यविहारिणा। श्रीभागवतसन्देशोमन्मुखेनप्रयोजितः॥४६॥
तं यथामति लब्ध्वाताआसन्विरहवर्ज्जिताः। नाज्ञासिषंरहस्यंतच्चमत्कारस्तुलोकितः॥४७॥

उद्धव कहते हैं—तदनन्तर मैंने गुरु बृहस्पति से श्रीमद्भागवत के माहात्म्य से पूर्ण इस आख्यायिका को सुना तथा मैं प्रसन्न हो गया। मैंने उनको प्रणाम करके वैष्णवी रीति के अनुसार एक मास भागवत रस का आस्वादन करते हुये सम्यक्रूपेण भागवत की सेवा किया था। मैं इसी भागवत सेवा के प्रभाव से कृष्ण का प्रियसखा हुआ तथा नित्य विहारी हरि द्वारा उनकी विरहकातरा प्रेयसी गोपीगण की विरहव्यथा को दूर करने के लिये श्रीहरि के द्वारा उनके संवाद को स्वयं अपने मुख से सुनाने हेतु व्रज में नियुक्त किया गया। (जिस गोपी का जैसा ज्ञान था), मेरे मुख से संवाद पाकर गोपियों ने उसे अपने-अपने ज्ञान के अनुसार समझा तथा उसी तारतम्य से अपनी व्यथा को दूर किया। यद्यपि मैं उसका रहस्य सम्यक्तः जान नहीं सका तथापि उसके चमत्कार को देख रहा था।।४३-४७।।

स्ववार्सं प्रार्थ्य कृष्णञ्च ब्रह्माद्येषु गतेषु मे। श्रीमद्भागवते कृष्णस्तद्रहस्यं स्वयंददौ॥४८॥
पुरतोऽश्वत्थमूलस्य चकार मयि तद्दृढम्। तेनाऽत्र व्रजवल्लीषु वसामि बदरींगतः॥४९॥
तस्मान्नारदकुण्डेऽत्रतिष्ठामिस्वेच्छयासदा। कृष्णप्रकाशोभक्तानांश्रीमद्भागवताद्भवेत्॥५०॥
तदेषामपिकार्य्यार्थंश्रीमद्भागवतंत्वहम्। प्रवक्ष्यामिसहायोऽत्रत्वयैवानुष्ठितोभवेत्॥५१॥

तत्पश्चात् ब्रह्मा आदि देवताओं ने कृष्ण से स्वर्गगमन की प्रार्थना किया और चले गये। तब उन्होंने मुझे श्रीमद्भागवत रहस्य प्रदान किया। जैसे पीपल की जड़ भूमि में दृढ़ता से प्रतिष्ठित रहती हैं, उसी प्रकार से श्रीकृष्ण ने मुझे दृढ़तापूर्वक ब्रज में प्रतिष्ठित किया तथा स्वयं बदरीवन चले गये। मैं व्रजवल्ली में तभी से रहता हूं। मैं सतत् नारदकुण्ड में स्वेच्छा से अवस्थान करता हूं। श्रीमद्भागवत से जीवगण में कृष्ण प्रकाशित होते हैं। इसलिये जीवगण की हितकामना से मैं सतत् श्रीमद्भागवत की व्याख्या करता रहता हूं। मैंने आज आपको सहायक रूप पाकर यह कहना है कि आप भी यह कार्य करें।।४८-५१।।

श्रीसूत उवाच

विष्णुरातस्तु श्रुत्वा तदुद्धवं प्रणतोऽब्रवीत्॥५२॥

श्री सूत कहते हैं—विष्णुगत परीक्षित ने उद्धव का यह वाक्य सुनकर उनको प्रणाम किया तथा कहने लगे।।५२।।

श्रीपरीक्षिदुवाच

हरिदास! त्वया कार्यं श्रीभागवतकीर्तनम्।
आज्ञाप्योऽहं यथा कार्य्यं सहायोऽत्र मया तथा॥५३॥

परीक्षित कहते हैं—हे हरिदास उद्धव! आप भागवत् का कीर्त्तन करें। तदनन्तर मुझे आदेश करिये कि मैं आपका सहायक किस प्रकार से हो सकता हूं? मैं वही करूंगा।।५३।।

श्रीसूत उवाच

श्रुत्वैतदुद्धवो वाक्यमुवाच प्रीतमानसः॥५४॥

श्री सूत कहते हैं—परीक्षित का कथन सुनकर प्रसन्न चित्त होकर उद्धव कहने लगे।।५४।।

उद्धव उवाच

श्रीकृष्णेन परित्यक्ते भूतले बलवान्कलिः। करिष्यति परंविघ्नंसत्कार्येसमुपस्थिते।
तस्माद्दिग्विजयं याहि कलिनिग्रहमाचर। अहंतुमासमात्रेणवैष्णवींरीतिमास्थितः॥५५॥
श्रीमद्भागवतास्वादं प्रचार्य त्वत्साहायतः।
एतान्सम्प्रापयिष्यामि नित्यधाम्नि मधुद्विषः॥५६॥

उद्धव कहते हैं—कृष्ण द्वारा भूतल का त्याग कर देने पर बली कलिकाल धर्मकार्य में अत्यन्त विघ्नोत्पादन करने लगा। अतएव तुम दिग्विजय करने जाओ तथा कलि का निग्रह करो। मैं भी इस अवसर पर वैष्णवी रीति का अवलम्बन लेकर एक मास भागवत का रसास्वादन करके तुम्हारी सहायता से मधुरिपु कृष्ण को नित्यधाम धरामण्डल में उस भागवत धर्म का प्रचार करूंगा।।५५-५६।।

श्रीसूत उवाच

श्रुत्वैवं तद्वचो राजा मुदितश्चिन्तयातुरः। तदाविज्ञापयामास स्वाभिप्रायं तमुद्धवम्॥५७॥

सूत जी कहते हैं—राजा परीक्षित ने उद्धव का वाक्य सुना तथा उससे प्रसन्न हो गये। उन्होंने चिन्तातुर हृदय से अपनी अभिलाषा को उद्धव के समक्ष व्यक्त किया।।५७।।

श्रीपरीक्षिदुवाच

कलिं तुलिग्रहीष्यामिताात! तेवचसिस्थितः। श्रीभागवतसम्प्राप्तिकथंममभविष्यति।
अहं तु समनुग्राह्यस्तव पादतले श्रितः॥५८॥

परीक्षित कहते हैं—हे तात! आपके आदेशानुरूप मैं कलि का निग्रह करूंगा, तथापि मुझे किस प्रकार से भागवत की प्राप्ति हो सकेगी? मैं आपकी सम्पूर्ण कृपा का अधिकारी हूं। अब आपके चरणकमल की शरण ले रहा हूं।।५८।।

श्रीसूत उवाच

श्रुत्वैतद्वचनं भयोऽप्युद्धवस्तमुवाच ह॥५९॥

सूत जी कहते हैं—परीक्षित का वाक्य सुनकर उद्धव पुनः कहने लगे।।५९।।

उद्धव उवाच

राजश्चिन्ता तुतेकाऽपिनैवकार्य्याकथञ्चन। तवैवभगवच्छास्त्रेयतोमुख्याधिकारिता॥६०॥
एतावत्कालपर्य्यन्तं प्रायो भागवतश्रुतेः। वार्तामपि न जानन्तिमनुष्याःकर्मतत्पराः॥६१॥
त्वत्प्रसादेनबहवोमनुष्याभारताजिरे। श्रीमद्भागवतप्राप्तौसुखम्प्राप्स्यन्तिशाश्वतम्॥६२॥

नन्दनन्दनरूपस्तु श्रीशुको भगवानृषिः। श्रीमद्भागवतं तुभ्यं श्रावयिष्यत्यसंशयः॥६३॥
तेनप्राप्स्यसिराजंस्त्वंनित्यंधामव्रजेशितुः। श्रीभागवतसञ्चारस्ततोभुविभविष्यति।
तस्मात्त्वं गच्छ राजेन्द्र! कलिनिग्रहमाचर॥६४॥

उद्धव कहते हैं—हे राजन्! इस सम्बन्ध में तुम कोई चिन्ता न करो। तुम्हारे कारण भारतभूमि में अनेक व्यक्ति श्रीमद्भागवत की प्राप्ति करके सुखलाभ करेंगे। नन्दनन्दन कृष्ण के स्वरूप ऋषि भगवान् शुकदेव तुमको श्रीमद्भागवत का श्रवण करायेंगे। इसमें सन्देह नहीं है। हे राजन्! उस भागवत को सुनकर तुम ब्रजपति कृष्ण के नित्यधाम को प्राप्त करोगे। तुम्हारा यही आदर्श भूतल पर भागवत् शास्त्र का प्रचार करेगा। हे राजन्! तुम अब कलि का निग्रह करने के लिये जाओ।।६०-६४।।

श्रीसूत उवाच

इत्युक्तस्तं परिक्रम्य गतो राजा दिशां जये॥६५॥
वज्रस्तु निजराज्येशं प्रतिबाहुं विधाय च। तत्रैव मातृभिः साकंतस्थौभागवताशया॥६६॥
अथ वृन्दावने मासं गोवर्द्धनसमीपतः। श्रीमद्भागवतास्वादस्तूद्धवेन प्रवर्तितः॥६७॥
तस्मिन्नास्वाद्यमाने तु सच्चिदानन्दरूपिणी। प्रचकाशे हरेर्लीला सर्वतः कृष्णएवच॥६८॥

सूत जी कहते हैं—उद्धव का आदेश पाकर राजा परीक्षित ने उनकी परिक्रम किया तथा दिग्विजय हेतु चल पड़े। इधर राजा वज्रनाभ ने भी प्रतिबाहु को राज्य की रक्षा का भार दिया तथा भागवत सुनने की इच्छा से माताओं के साथ वहीं निवास करने लगे। तदनन्तर उद्धव वृन्दावन के गोवर्द्धन पर्वत के समीप मासव्यापी श्रीमद्भागवत रसास्वादन में प्रवृत्त हो गये। उद्धव इस प्रकार से भागवत रसास्वाद कर रहे थे। तभी सच्चिदानन्द रूपा कृष्णलीला उनके मानस में प्रकाशित हो गयी।।६५-६८।।

आत्मानञ्च तदन्तःस्थं सर्वेऽपि ददृशुस्तदा। वज्रस्तु दक्षिणे दृष्ट्वा कृष्णपादसरोरुहे॥६९॥
स्वात्मानं कृष्णवैधुर्य्यान्मुक्तस्तद्भुव्यशोभत।
ताश्चतन्मातरः कृष्णे रासरात्रिप्रकाशिनि॥७०॥
चन्द्रेकलाप्रभारूपमात्मानंवीक्ष्यविस्मिताः। स्वप्रेष्ठविरहव्याधिविमुक्ताःस्वपदंययुः॥७१॥
येऽन्ये च तत्रतेसर्वेनित्यलीलान्तरंगताः। स्चावहारिकलोकेभ्यःसद्योऽदर्शनमागताः॥७२॥
गोवर्द्धननिकुञ्जेषु गोषु वृन्दावनादिषु। नित्यं कृष्णेन मोदन्ते दृश्यन्ते प्रेमतत्परैः॥७३॥

उन्होंने सर्वत्र वासुदेव का ही दर्शन किया। उन्होंने देखा—उनकी आत्मा तथा सब कुछ हरि में ही अवस्थित है। वज्रनाभ हरि के दक्षिण चरणकमल में विराजमान थे। मानो उन्होंने कृष्ण विरह से अपनी आत्मा को मुक्त किया तथा भूतल पर शोभायमान हो गये। जिन्होंने रास रजनी को विकसित किया है, मातृगण (कृष्णपत्नीगण) उन कृष्णचन्द्र की कला के प्रभाव से अपनी-अपनी स्वात्मा को (कृष्ण को) देखकर विस्मित हो गयीं। अन्य सब जो नित्य लीलारत थे, वे सभी मानो व्यावहारिक लीलाभिज्ञ व्यक्तियों में से तत्काल अदृश्य हो गये। कृष्णप्रेम तत्पर मनुष्य गोवर्द्धनादि कुञ्ज, गौ तथा वृन्दावन आदि में नित्य ही कृष्ण के साथ विहार करते हैं। यह केवल उन कृष्ण प्रेमीगण को ही परिलक्षित होता है।।६९-७३।।

श्रीसूत उवाच

य एतां भगवत्प्राप्तिं शृणुयाच्चाऽपि कीर्तयेत्।
तस्यवैभगवत्प्राप्तिर्दुःखहानिश्चजायते ॥७४॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीभागवतमाहात्म्ये परीक्षिदुद्धवसम्वादे तृतीयोऽध्यायः॥३॥

सूत जी कहते हैं—जो मनुष्य इस भगवत् प्राप्ति की कथा सुनना है किंवा कहता है, उसे भगवत् प्राप्ति होती है तथा उसका दुःख नष्ट हो जाता है॥७४॥

॥तृतीय अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

चतुर्थोऽध्यायः

भागवत के वक्ता-श्रोता की श्रद्धा का वर्णन

श्रीऋषय ऊचुः

साधुसूत! चिरञ्जीवचिरमेवं प्रशाधि नः। श्रीभागवतमाहात्म्यमपूर्वं त्वन्मुखाच्छुतम्॥१॥
तत्स्वरूपप्रमाणञ्च विधिञ्च श्रवणे वद। तद्वक्तुर्लक्षणं सूतश्रोतुश्चापि वदाऽधुना॥२॥

ऋषिगण कहते हैं—हे सूत! आप दीर्घजीवन पाकर दीर्घकाल तक हम पर इसी प्रकार से कृपा शासन करिये। आज हमने आपके मुख से भागवत माहात्म्य श्रवण किया। हे सूत! सम्प्रति हमें भागवत का स्वरूप, लक्षण, प्रमाण, विधि, वक्ता का लक्षण सुनने की इच्छा है। अतः इसका वर्णन करिये॥१-२॥

श्रीसूत उवाच

श्रीमद्भागवतस्याऽथश्रीमद्भगवतः सदा। स्वरपमेकमेवास्तिसच्चिदानन्दलक्षणम्॥३॥
श्रीकृष्णासक्तभक्तानां तन्माधुर्य्यप्रकाशकम्।
समुज्जृम्भति यद्वाक्यं विद्धि भागवतं हि तत्॥४॥
ज्ञानविज्ञानभक्त्यङ्गचतुष्टयपरं वचः। मायामर्दनदक्षञ्च विद्धिभागवतं च तत्॥५॥
प्रमाणं तस्य को वेदह्यनन्तस्याक्षरात्मनः। ब्रह्मणेहरिणातद्दिक्चतुःश्लोक्याप्रदर्शिता॥६॥
तदानन्त्यावगाहेन स्वेप्सितावहनक्षमाः। स एव सन्तिभोविप्राब्रह्मविष्णुशिवादयः॥७॥

सूत जी कहते हैं—श्रीमद्भागवत तथा श्रीमान् भगवान् का सर्वदा एक ही स्वरूप लक्षण है। जो कृष्ण

के भक्त हैं, उनका मन जिसमें आसक्त है, ऐसे व्यक्ति से ही भागवत माधुर्य का विकास होता है। आज उनके मुख से कृष्ण माहात्म्ययुक्त जो वाक्य निर्गत होता है, वही है भागवती कथा। जो वाक्य ज्ञान, विज्ञान, भक्ति तथा भंगी—इन चार में एवं माया विमर्दन में दक्ष है, वही भागवत वाक्य है। हे ऋषिगण! उन अनन्त अक्षरात्मा कृष्ण का प्रमाण कौन मानव जान सकता है! हरि ने ब्रह्मा को चार श्लोक द्वारा इसका प्रदर्शन किया है। हे विप्रगण! जो उसके अपने अभीष्ट का वहन कर सकने में समर्थ हैं, वे ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवादि उनकी अनन्तता का अवगाहन करके भी उसके अन्त को नहीं जान पाते।।३-७।।

मितबुद्ध्या वृत्तीनां मनुष्याणां हिताय च।
परीक्षिच्छुकसम्वादा योऽसौ व्यासेन कीर्तितः॥८॥
ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्त्रो योऽसौ भागवताभिधः। कलिग्राहगृहीतानां सएवपरमाश्रयः॥९॥

परिमित ज्ञानवृत्ति मानव के हितार्थ व्यास ने जो परीक्षित-शुकसंवादात्मक भागवत का कीर्त्तन किया था, वह ग्रन्थ अठारह हजार श्लोकों से युक्त है तथा उसे ही भागवत कहा गया है। जो कलिकाल रूप ग्राह से पकड़े गये हैं, यंह भागवत ही उनका परमाश्रय है।।८-९।।

श्रोतारोऽथनिरूप्यन्तेश्रीमद्विष्णुकथाश्रयाः। प्रवराअवराश्चेतिश्रोतारोद्विविधामताः॥१०॥
प्रवराश्चातकोहंसःशुकोमीनादयस्तथा। अवरावृकभूरुण्डवृषोष्ट्राद्याः प्रकीर्तिताः॥११॥
अखिलोपेक्षया यस्तुकृष्णशास्त्रश्रुतौव्रती। सचातकोयथाऽम्भोदमुक्तेपाथसिचातकः॥१२॥
हंसः स्यात्सारमादत्ते यः श्रोता विविधाच्छ्रुतात्।
दुग्धेनैक्यङ्गतात्तोयाद्यथा हंसोऽमलं पयः॥१३॥
शुकःसुष्ठुमितंव्यक्तिव्यासंश्रोतृंश्चहर्षयन्। सुपाठितःशुकोयद्वच्छिक्षकंपार्श्वगानपि॥१४॥
शब्दं नानिमिषो जातु करोत्यास्वादयन्रसम्।
श्रोता स्निग्धो भवेन्मनो मीनः क्षीरनिधौ यथा॥१५॥

अब विष्णुपरायण श्रोता का निरूपण करता हूं। श्रोता श्रेष्ठ तथा निकृष्ट भेद से द्विविध हैं। इनमें चातक, शुक तथा मीनादि जातीय श्रोता श्रेष्ठ हैं। वृक-भूरुण्ड-वृष तथा उष्ट्रादि जातीय श्रोता निकृष्ट कहे गये हैं। चातक जैसे समस्त जल का त्याग करके आकाशीय जल की प्रतीक्षा करता है, वैसे ही जो समस्त विषय वासना की उपेक्षा करके एकमात्र भागवत शास्त्र के श्रवण के व्रती हैं, वे ही **चातक श्रोता** हैं। जैसे हंस जलमिश्रित दुग्ध से सारांश रूप दुग्ध निकाल कर उसका पान करता है, वैसे ही जो विविध कथा सुनकर उसमें से सारमात्र ग्रहण करते हैं, वे हैं **हंसजातीय श्रोता**। जो शुकपक्षी जैसे उत्तम वाक्य कहने वाले तथा मितभाषी हैं, जिसे देखने मात्र से श्रोतागण सुखी हो जाते हैं, जो सुपठित विषयों की अविकल शिक्षा देते हैं तथा पार्श्वस्थ श्रोतागण को जो सत् शिक्षा प्रदान करते हैं, वे ही **शुक जातीय श्रोता** हैं। क्षीरसागरस्थ मीन (मछली) जैसे स्निग्ध होती है, कभी भी शब्द नहीं करती, जो अनिमेष नेत्र से रस को ग्रहण करती है, तद्रूप भागवत सुनते समय जो कोई वाक्य नहीं बोलते, अनिमेष दृष्टि से कथा का रसास्वादन करते हैं तथा जो स्निग्ध मन वाले हैं, वे ही **मीनजातीय श्रोता** होते हैं।।१०-१५।।

यस्तुदन्रसिकाञ्छ्रोतृन्विरौत्यज्ञज्ञो वृको हि सः।
वेणुस्वनरसामसक्तान्वृकोऽरण्ये मृगान्यथा॥१६॥

भूरुण्डःशिक्षयेदन्याञ्छ्रुत्वानस्वयमाचरेत्। यथाहिमवतःशृङ्गेभूरुण्डाख्योविहङ्गमः॥१७॥

सर्वं श्रुतमुपादत्ते सारासारान्धधीर्वृषः। स्वादुद्राक्षां खलिञ्चापि निर्विशेषंयथावृषः॥१८॥

स उष्ट्रो मधुरं मुञ्चन्विपरीते रमेत यः। यथानिम्बंचरत्युष्ट्रोहित्वाऽऽम्रमपितद्युतम्॥१९॥

वेणुस्वर में रसासक्त मृगों को भेड़िया जैसे पीड़ित करता है, उसी प्रकार से जो अज्ञ श्रोता रोदन द्वारा रसिक श्रोताओं को व्यथित करता है, उसे **वृक (भेड़िया) जातीय श्रोता** कहते हैं (कथा में भावुक होकर रुदन करके अन्य श्रोताओं को व्यथित करने वाला ही वृक जातीय है।) जो हिमालय शृङ्गस्थ भूरुण्ड नामक पक्षियों के समान उलटे मुझे ही शिक्षा देने लगते हैं तथा स्वयं कोई साधु आचरण नहीं करते, वे **भूरुण्ड जाति के श्रोता** हैं। जैसे वृष के लिये स्वादिष्ट द्राक्षा में तथा सरसों की खली में कोई पार्थक्य नहीं है, उसी प्रकार से जो अन्धबुद्धि श्रोता सार-असार रूप सुने विषय को धारण कर रहे होते हैं, वे **वृष जातीय श्रोता** कहे जाते हैं। जैस ऊंट आम को छोड़कर नीम के पत्ते खाता है, उसी प्रकार से श्रोता जो मधुर का त्याग करके विपरीत वाक्यों में रुचि लेता है, वही **उष्ट्र जातीय श्रोता** कहा गया है।।१६-१९।।

अन्येऽपिबहवो भेदा द्वयोर्भृङ्गखरादयः। विज्ञेयास्तत्तदाचारैस्तत्तत्प्रकृतिसम्भवैः॥२०॥

यः स्थित्वाऽभिमुखम्प्रणम्य विधिवत्त्यक्तान्यवादो
हरेर्लीलाः श्रोतुमभीप्सतेऽतिनिपुणो नम्रोऽथ क्लृप्ताञ्जलिः।
शिष्यो विश्वसितोऽनुचिन्तनपरः प्रश्नेऽनुरक्तः शुचिर्नित्यं
कृष्णजनप्रियो निगदितः श्रोता स वै वक्तृभिः॥२१॥

भगवन्मतिरनपेक्षः सुहृदो दीनेषु सानुकम्पो यः।
बहुधा बोधनचतुरो वक्ता सम्मानितो मुनिभिः॥२२॥

अथ भारतभूस्थाने श्रीभागवतसेवने। विधिं शृणुत भोविप्रा येनस्यात्सुखसन्ततिः॥२३॥

इसके अलावा भी अन्यान्य मृग, गर्दभ आदि प्रकार से श्रोता भेद अनेक पार्थक्य के साथ दृष्टिगोचर होता है। उसका लक्षण भेद नहीं किया जा रहा है। उनके प्रकृतिगत आचार को देखकर लक्षण जान लेना चाहिये। जो श्रोता श्रवणकाल में कृतांजलि तथा नम्र होकर सामने बैठता है, विधिवत् प्रणाम करके, अन्य बातचीत का त्याग करके हरिलीला चिन्तनरत है, अभीष्ट विषय को सुनने में निपुणतायुक्त है, जो शिष्ट, विश्वासी, चिन्तनपरायण, प्रश्न में अनुरक्त (जिज्ञासु), नित्यपवित्र, कृष्णजनप्रिय है, शास्त्र वक्तागण उसे उत्तम श्रोता कहते हैं। जो भगवान् में रत, अनपेक्ष तथा दीनों के सुहृद तथा कृपालु हैं, अनेक ज्ञान प्रदान करने में पारंगत वक्ता हैं, मुनिगण उनको सम्मानित करते हैं। हे विप्रगण! तदनन्तर भारत भूमि में भागवत सेवा का विधान सुनो। यह सुनने से सुख एवं सन्तति लाभ होता है।।२०-२३।।

राजसं सात्त्विकं चापि तामसं निर्गुणं तथा। चतुर्विधं तु विज्ञेयं श्रीभागवतसेवनम्॥२४॥

सप्ताहं यज्ञवद्यत्तु सश्रमं सत्वरं मुदा। सेवितं राजसंतत्तु बहुपजादिशोभनम्॥२५॥

मासेन ऋतुना वापि श्रवणं स्वादसंयुतम्। सात्त्विकं यदनायासंसमस्तानन्दवर्द्धनम्॥२६॥
तामसं यत्तुवर्षेणसालसंश्रद्धयायुतम्। विस्मृतिस्मृतिसंयुक्तंसेवनंतच्चसौख्यदम्॥२७॥
वर्षमसदिनानां तु विमुच्य नियमाग्रहम्। सर्वदा प्रेमभक्त्यैव सेवनं निर्गुणं मतम्॥२८॥
पारीक्षितेऽपि सम्वादेनिर्गुणंतत्प्रकीर्तितम्। तत्रसप्तदिनाख्यानंतदायुर्दिनसङ्ख्यया॥२९॥

भागवत सेवा सात्विक, राजसिक, तामसिक तथा निर्गुण रूप से चतुर्विध भेदयुक्त होती है। जो यज्ञ के समान जो श्रम-हर्ष तथा शीघ्रतापूर्वक भागवत सप्ताह का अनुष्ठान करते हैं, जो अनेक पूजा से शोभित हैं। ऐसी भागवत सेवा वाले **राजसिक** हैं। जो एक मास अथवा एक पक्ष रसास्वादन के साथ भागवत सेवा करते हैं, जिसमें कोई थकता नहीं, अपितु सबका आनन्दवर्द्धन होता है, वह **सात्त्विक सेवा** है। जो भागवत सेवा आलस्य संवलित, श्रद्धारहित है तथा एक वर्ष में सम्पन्न होती है, जिसमें स्मृति-विस्मृति दोनों ही है, ऐसी भागवत सेवा **तामसिक** कही गयी है। यह सौख्यपद है। जिस सेवा में वर्ष-मासादि का नियम नहीं है, जो सर्वदा प्रेम-भक्ति से सेवित है, वह **निर्गुण** है। राजा परीक्षित ने जो सप्ताह सेवा किया था, वह निर्गुण है; क्योंकि उनकी आयु मात्र एक सप्ताह शेष थी।।२४-२९।।

अन्यत्र त्रिगुणं चापि निर्गुणं च यथेच्छया।
यथा कथञ्चित्कर्तव्यंसेवनंभगवच्छुतेः॥३०॥
येश्रीकृष्णविहारैकभजनास्वादलोलुपाः। मुक्तावपिनिराकाङ्क्षास्तेषांभागवतंधनम्॥३१॥
येऽपि संसारसन्तापनिर्विण्णा मोखकाङ्क्षिणः। तेषां भवौषधंचैत्कलौसेव्यंप्रयत्नतः॥३२॥
ये चाऽपि विषयारामाः संसारिकसुखस्पृहाः।
तेषां तु कर्ममार्गेण या सिद्धिः साऽधुनाकलौ॥३३॥
सामर्थ्यधनविज्ञानाभावाइत्यन्तदुर्ल्लभा। तस्मात्तैरपिसं सेव्या श्रीमद्भागवती कथा॥३४॥

त्रिगुण हो अथवा निर्गुण, अथवा यथेच्छा क्रमेण भागवत सेवा हो, चाहे जिस रूप से हो, भागवत सेवा करें। जो श्रीकृष्णलीला के सेवास्वाद के परम लोलुप हैं, वे मोक्ष की इच्छा से रहित होकर भी भागवत को अपनी एकमात्र सम्पत्ति मानते हैं वह उनके लिये परमधन है। जो कलिकाल में संसार सन्ताप के कारण निर्वेदावस्था को प्राप्त हैं तथा उनमें मोक्ष की आकांक्षा का जन्म हो गया है, वे यत्न के साथ भागवतस्वरूप परमौषधि की सेवा करें। जो विषयरत होकर संसार सुख से स्पृहान्वित हैं, कलिकाल में कर्म द्वारा उनकी जो सिद्धि बतलाई गयी है, वे उस सिद्धि सामर्थ्य, धन, विज्ञान एवं भाव आदि के अभाव के कारण अत्यन्त दुर्लभ हैं, अतः वे भी भागवती कथा की सेवा करें।।३०-३४।।

धनं पुत्रांस्तथादारान्वाहनादियशेगृहान्। असापत्यञ्च राज्यञ्च दद्याद्भागवती कथा॥३५॥
इह लोके वरान्भुक्त्वा भोगान्वैमनसेप्सितान्। श्रीभागवतसङ्गेनयात्यन्तेश्रीहरेःपदम्॥३६॥
यत्र भागवती वार्ता ये च तच्छ्रवणे रताः।
तेषां संसेवनं कुर्याद्देहेन च धनेन च॥३७॥
तदनुग्रहतोऽस्यापि श्रीभागवतसेवनम्। श्रीकृष्णव्यतिरिक्तंयत्तत्सर्वंधनसञ्ज्ञितम्॥३८॥

कृष्णार्थीति धनार्थीति श्रोता वक्ता द्विधा मतः।
यथा वक्ता तथा श्रोता तत्र सौख्यं विवर्द्धते॥३९॥
उभयोर्वैपरीत्येतु रसाभासेफलच्युतिः। किन्तुकृष्णार्थिनांसिद्धिर्विलम्बेनापिजायते॥४०॥
धनार्थिनस्तु संसिद्धिर्विधिसम्पूर्णतवशात्।
कृष्णार्थिनोऽगुणस्यापि प्रेमैव विधिरुत्तमः॥४१॥
आसमाप्ति सकामेन कर्तव्यो हि विधिः स्वयम्।
स्नातो नित्य क्रियां कृत्वा प्राश्य पादोदकं हरेः॥४२॥

यह भागवती कथा को सुनकर मानव धन-पुत्र-पत्नी-वाहन आदि-यश-गृह तथा शत्रुरहित राज्य लाभ करता है। वह इहलोक में अभीष्ट श्रेष्ठ भोग्य वस्तुओं का उपभोग करके भगवान् के भक्तों के साथ हरिपद को प्राप्त करता है। जहां भागवती कथा होती है, जो उस कथा का श्रवण करते हैं, जो सभी लोग शरीर तथा धनादि से श्रोतागण तथा वक्ता की सेवा करते हैं, भगवान् की कृपा से वे भी भागवत सेवा की प्राप्ति करते हैं। श्रीकृष्ण के अतिरिक्त जगत् में जो कुछ परिलक्षित होता है, वही धन कहा गया है। पुराणवक्ता तथा श्रोता में से कोई धनार्थी तो कोई कृष्णार्थी होकर पुराण कहता है तथा कोई श्रोता होकर कथा सुनता है। वक्ता एवं श्रोता का यही द्विविध भेद है। जहां पर वक्ता के अनुरूप श्रोता होते हैं, वहीं सुख की वृद्धि होती है। इससे विपरीत होने पर अर्थात् वक्ता तथा श्रोता में अनुरूपता न होने के कारण रसाभास होता है, जिससे फल च्युत हो जाता है। (कोई फल नहीं मिलता)। जो कृष्ण को चाहते हैं, उनको फल विलम्ब से मिलता है। जो धनार्थी हैं, वे यदि विधिवत् भगवत् सेवा सम्पन्न कर देते हैं तब उनको शीघ्र फललाभ होता है। जो कृष्णार्थी हैं, वे निर्गुण सेवा करते हैं। प्रेम ही उनकी उत्तम विधि है। जो सकाम होकर भागवत सेवा करते हैं, उनके लिये आवश्यक है कि आदि से अन्त तक समस्त विधि-नियम पालन करें। ऐसा व्रती स्नान करके नित्यक्रिया सम्पन्न करे। तदनन्तर श्रीहरि के पादोदक का पान करें।।३५-४२।।

पुस्तकञ्च गुरुञ्चैव पूजयित्वोपचारतः। ब्रूयाद्वा शृणुयाद्वापि श्रीमद्भागवतं मुदा॥४३॥
पयसा वा हविष्येण मौनम्भोजनमाचरेत्। ब्रह्मचर्यमधःसुप्तिंक्रोधलोभादिवर्ज्जनम्॥४४॥
कथान्ते कीर्तनं नित्यं समाप्तौ जागरं चरेत्।
ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु दक्षिणाभिः प्रतोषयेत्॥४५॥
गुरवे वस्त्रभूषादि दत्त्वा गाञ्च समर्पयेत्। एवं कृते विधाने तु लभतेवाञ्छितं फलम्॥४६॥

तत्पश्चात् वह पुस्तक तथा गुरु की उपचारों से यथाविधान पूजा करें। चाहे वक्ता हो अथवा श्रोता, दोनों ही आनन्द के साथ भागवत की सेवा करें। भोजन काल में मौनी होकर दुग्ध अथवा घृत से भोजन करना चाहिये। मृत्तिका शय्या (भूमि पर) शयन, क्रोध, लोभ का त्याग आदि ब्रह्मचर्य के लिये उपयोगी समस्त आचार का अवलम्बन करना चाहिये। तदनन्तर नित्य कथा के अन्त में हरिनाम कीर्त्तन एवं सम्पूर्ण दिन जागरण करें। ब्राह्मण भोजन करायें, दक्षिणादि प्रदान करके उनका सन्तोष साधन करें। तदनन्तर गुरु को वस्त्र, भूषण तथा गौ प्रदान करके उनकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार विधान करने से वांछित फल प्राप्त होता है।।४३-४६।।

दारागारसुताव्राज्यं धनादि च यदीप्सितम्। परन्तुशोभतेनात्रसकामत्वंविडम्बनम्॥४७॥
कृष्णप्राप्तिकरं शश्वत्प्रेमानन्दफलप्रदम्। श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम्॥४८॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये वक्तृश्रोतृश्रद्धा निरूपणंनामचतुर्थोऽध्यायः।।४।।

।।समाप्तमिदं श्रीमद्भागवतमाहात्म्यम्।।
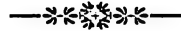
मानव पत्नी, गृह पुत्र तथा धनादि अभीष्ट सब कुछ प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार से प्राप्त तो सब होता है, तथापि सकाम होने के कारण यह उस प्रकार शोभित नहीं होता। यह शुकभाषित श्रीमद्भागवत कृष्ण प्राप्तिकर तथा नित्य प्रेमानन्दरूपी फलप्रद है।।४७-४८।।

।।चतुर्थ अध्याय समाप्त।।

।।भागवत माहात्म्य समाप्त।।

❖❖❖

।। श्रीगणेशायनमः।।

अथवैशाखमासमाहात्म्यारम्भः

प्रथमोऽध्यायः

वैशाखमास माहात्म्य, इस माह के स्नान माहात्म्य वर्णन

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्।।१।।

नारायण को नमस्कार, नर तथा नरोत्तम, देव सरस्वती, व्यास को प्रणाम करके जय (पुराण) कहता हूं।।१।।

सूत उवाच

भूयोऽप्यङ्गभुवं राजा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। पुण्यं माधवमाहात्म्यं नारदं पर्यपृच्छत।।२।।

सूत जी कहते हैं—राजा ने पुनः परमेष्ठी ब्रह्मा के आत्मज नारद से पुण्य वैशाखमास माहात्म्य के सम्बन्ध में पूछा।।२।।

अम्बरीष उवाच

सर्वेषामपि मासानांत्वत्तो माहात्म्यमञ्जसा। श्रुतं मया पुरा ब्रह्मन्यदाचोक्तंतदात्वया।
वैशाखः प्रवरो मासो मासेष्वेतेषु निश्चितम्। इति तस्माद्विस्तरेण माहात्म्यं माधवस्य च।।३।।
श्रोतुं कौतूहलं ब्रह्मन्कथं विष्णुप्रियाह्यसौ। के च विष्णुप्रियाधर्मामासेमाधववल्लभे।।४।।
तत्राऽप्यस्य तु कर्तव्याः के धर्मा विष्णुवल्लभाः।
किं दानं किं फलं तस्य कमुद्दिश्याऽऽचरेदिमान्।।५।।
कैर्द्रव्यैः पूजनीयोऽसौ माधवो माधवागमे। एतन्नारद! विस्तार्थं मह्यंश्रद्धावतेवद।।६।।

राजा अम्बरीष कहते हैं—हे ब्रह्मन्! जब मैंने आपसे विशेषरूप से मास समूह के माहात्म्य को पूछा था, तब आपने वह पूर्ण रूप से वह सब कहा था। हे ब्रह्मन्! मास समूह में वैशाखमास श्रेष्ठ है, यह निश्चित है। इसलिये विस्तार क्रम से वैशाखमास का माहात्म्य सुनने की इच्छा तथा इसके प्रति कुतूहल हो रहा है। यह वैशाखमास किस प्रकार से विष्णुप्रिय हो गया? इस मास में विष्णु का प्रिय धर्म क्या है? विष्णुभक्तगण वैशाखमास में किस धर्म का आचरण करें? वैशाख में क्या दान देना चाहिये। उस दान का क्या फल है? किसके लिये व्रत का आचरण करना होता है? वैशाखमास आने पर कौन-कौन सा द्रव्य लेकर माधव की पूजा करनी चाहिये? हे नारद! मैं यह सब जानने के लिये श्रद्धायुक्त हो गया हूं। अतः कृपापूर्वक कहिये।।३-६।।

श्रीनारद उवाच

मया पृष्टः पुरा ब्रह्मामासधर्मान्पुरातनान्। व्याजहारपुराप्रोक्तं यच्छ्रियै परमात्मना।।७।।

ततो मासा विशिष्योक्ताः कार्त्तिको माघ एव च।
माघवस्तेषु वैशाखं मासानामुत्तमं व्यधात्॥८॥
मातेव सर्वजीवानां सदैवेष्ट प्रदायकः। दानयज्ञव्रतस्नानैः सर्वपापविनाशनः॥९॥
धर्मयज्ञक्रियासारस्तपःसारःसुरार्चितः। विद्यानां वेदविद्येव मन्त्राणां प्रणवोयथा॥१०॥
भूरुहाणां सुरतरुर्धेनूनां कामधेनुवत्। शेषवत्सर्वनागानां पक्षिणां गरुडो यथा॥११॥
देवानां तु यथाविष्णुर्वर्णानांब्राह्मणो यथा। प्राणवत्प्रियवस्तूनां भार्येवसुहृदांयथा॥१२॥
आपगानां यथा गङ्गा तेजसांतुरविर्यथा। आयुधानां यथा चक्रं धतूनांकाञ्चनंयथा॥१३॥
वैष्णवानांयथारुद्रोरत्नानांकौस्तुभोयथा। मासानां धर्म्महेतूनां वैशाखश्चोत्तमस्तथा॥१४॥

देवर्षि नारद कहते हैं—मैंने पूर्वकाल में पिता ब्रह्मा से पुरातन मासधर्म को पूछा था। भगवान् नारायण ने लक्ष्मी को इस सम्बन्ध में जो उपदेश दिया था, वही उपदेश उन्होंने उस समय मुझे दिया। उन्होंने मास समूह की विशेष व्याख्या विश्लेषण प्रारंभ करके कहा कि कार्त्तिक-माघ तथा वैशाख ही मास समूह में श्रेष्ठ हैं, तथापि इन तीनों मास में से भी वैशाखमास प्रधान है। प्राणियों की माता जिस प्रकार अपनी-अपनी सन्तान को इष्ट प्रदान करती है, उसी प्रकार से यह वैशाखमास भी समस्त प्राणीगण के लिये शुभप्रद है। इस मास में दान, यज्ञ, व्रत तथा स्नान करने से सभी पापों का नाश हो जाता है। धर्म-यज्ञ तथा क्रिया आदि के लिये वैशाख ही सभी मासों का सार है। इस सुरपूजित वैशाखमास में तपस्या करने से भी उसका साररूप प्राप्त हो जाता है। जैसे सभी विद्याओं में वेदविद्या सार है, मन्त्रों में प्रणव, वृक्ष समूह में जैसे देववृक्ष कल्पतरुसार हैं, धेनुओं में कामधेनु, नागों में शेषनाग, पक्षियों में गरुड़, मन्त्रों में प्रणव, देवगण में विष्णु, वर्णों में ब्राह्मण, प्रिय वस्तुओं में प्राण, सुहृदों में भार्या, नदियों में गंगा, तैजस वस्तुओं में सूर्य, आयुधों में चक्र, धातुओं में से काञ्चन, वैष्णवों में रुद्र, रत्नों में कौस्तुभ मणि श्रेष्ठ है, उसी प्रकार से धर्म बीजरूप माससमूह में से वैशाखमास ही उत्तम है। इसके समान विष्णुप्रीतिकारी अन्य मास है ही नहीं।।७-१४।।

नाऽनेन सदृशो लोके विष्णुप्रीतिविधायकः। वैशाखस्नाननिरते मेषे प्रागर्यमोदयात्॥१५॥
लक्ष्मीसहायो भगवान्प्रीतिं तस्मिन्करोत्यलम्। जन्तूनांप्रीणनंयद्वदन्नेनैवहिजायते॥१६॥
तद्वद्वैशाखस्नानेन विष्णुः प्रीणात्यसंशयम्। वैशाखस्नाननिरताञ्जनान्दृष्ट्वाऽनुमोदते॥१७॥
तावतापिविमुक्तोऽघैर्विष्णुलोकेमहीयते। सकृत्स्नात्वामेषसंस्थेसूर्येप्रातःकृताह्निकः॥१८॥
महापापैर्विमुक्तोऽसौ विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात्।
स्नानार्थं मासि वैशाखे पादमेकं चरेद्यदि॥१९॥
सोऽश्वमेधायुतानाञ्चफलमाप्नोत्यसंशयम्। अथवाकूटचित्तस्तुकुर्यात्सङ्कल्पमात्रकम्॥२०॥
सोऽपिक्रतुशतंपुण्यं लभेदेव न संशयः। यो गच्छेद्धनुरायामं स्नातुं मेषगते रवौ॥२१॥
सर्वबन्धविनिर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात्।
त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि ब्रह्माण्डान्तर्गतानि च।

तानि सर्वाणि राजेन्द्र! सन्ति बाह्येऽल्पके जले॥२२॥
तावल्लिखितपापानि गर्जन्ति यमशासने॥२३॥

जब सूर्यदेव मेषराशि में स्थित होते हैं, तभी वैशाखमास होता है। जो मनुष्य वैशाख में सूर्योदय के पूर्व स्नान करता है, लक्ष्मी के साथ ही लक्ष्मीपति भगवान् हरि उसके प्रति प्रसन्न हो जाते हैं। अन्न भोजन से जिस प्रकार प्राणीगण को सन्तुष्टि मिलती है, वैशाख स्नान से उसी प्रकार विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं। इसमें संशय नहीं है। जो वैशाख स्नानरत मनुष्य को देखकर हर्षित होते हैं, वे पापमुक्त होकर विष्णुलोक को प्राप्त करते हैं। जो मेषराशीस्थ दिवाकर के रहते (वैशाखमास में) प्रतिदिन प्रातःस्नान तथा पूजा आदि करते हैं, वे महापातकों से मुक्त होकर विष्णुसायुज्य की प्राप्ति करते हैं। जो मानव वैशाखमास में स्नान के लिये एक पग भी चलते हैं, उनको १०००० अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त हो जाता है। यदि कुटिल बुद्धि मनुष्य भी मन ही मन वैशाख में प्रातःस्नान का संकल्प करता है, उसे भी १०० यज्ञों का फललाभ होता है। इसमें सन्देह नहीं है। जब मेष राशि में सूर्य स्थित हों, (वैशाखमास) तब जो मनुष्य प्रातः स्नानार्थ धनुष परिमाण दीर्घ पथ पर चल कर जाता है (धनुष परिमाण=मार्ग का माप है), वह अनेक बन्धनों से मुक्त होकर विष्णु सायुज्य प्राप्त करता है। ब्रह्माण पर्यन्त में त्रैलोक्य में जितने भी तीर्थ हैं, वे सभी वैशाखमास में ब्राह्ममुहूर्त्त के समय स्वल्प मात्र जल का भी आश्रय लेकर उसमें स्थित रहते हैं। हे भूपति! जब तक मनुष्य वैशाखमास में ब्राह्ममुहूर्त्त के समय स्नान नहीं करता, तभी तक यमपुर में लिखित उसके पापों को गर्जन करने का अवसर प्राप्त हो पाता है।।१५-२३।।

यावन्न कुरुते जन्तुर्वैशाखे स्नानमम्भसि। तीर्थादिदेवताःसर्वा वैशाखेमासिभूमिप!॥२४॥
बहिर्जलं समाश्रित्यसदासन्निहितानृप। सूर्योदयं समारभ्य यावत्षड्घटिकावधि॥२५॥
तिष्ठन्ति चाऽऽज्ञया विष्णोर्नराणां हितकाम्यया।
तावन्नागच्छतां पुंसां शापं दत्त्वा सुदारुणम्।
स्वस्थानं यान्ति राजेन्द्र! तस्मात्स्नानं समाचरेत्॥२६॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
वैशाखमाससमाहात्म्ये नारदाम्वरीषसम्वादे वैशाखमासप्रशंसापूर्वक-
वैशाखस्नानमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः।।१।।

—❊❊❊—

हे मुनिवर! मानवगण के हितार्थ भगवान् विष्णु की आज्ञा से वैशाखमास में तीर्थादि, देवता, तीर्थ के अतिरिक्त भी जितने जल हैं, सन्निहित रहते हैं। हे राजेन्द्र! उस काल तक (ब्राह्म मुहूर्त्त तक) जो स्नानार्थ नहीं जाता, तीर्थादि देवता ऐसे लोगों को दारुण अभिशाप प्रदान करके स्वस्थान गमन करते हैं। इसलिये वैशाख में प्रातः स्नान सदा कर्त्तव्य है।।२४-२६।।

।।प्रथम अध्याय समाप्त।।

द्वितीयोऽध्यायः

वैशाखमास में नाना प्रकार का दान फल

नारद उवाच

न माधवसमोमासो न कृतेन युगं समम्। न च वेदसमं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गयासमम्॥१॥
न जलेन समं दानं नसुखंभार्यययासमम्। न कृषेस्तु समं वित्तं न लाभोजीवितात्परः॥२॥
न तपोऽन्नशनात्तुल्यंनदानात्परमंसुखम्। न धर्मस्तु दयातुल्यो न ज्योतिश्चक्षुषासम्॥३॥
न तृप्तिरशनात्तुल्या न वाणिज्यं कृषेः समम्। न धर्मेणसमं मित्रं न सत्येन समंयशः॥४॥
नारोग्यसममुत्थानं न त्राता केशवात्परः। न माधवसमं लोके पवित्रं कवयोविदुः॥५॥
माधवः परमो मासः शेषशायिप्रियःसदा। अव्रतेन क्षिपेद्यस्तु मासं माधववल्लभम्॥६॥
तिर्यग्योनिं स यात्याशुसर्वधर्मवहिष्कृतः। अव्रतेनगतो येषां माधवोमर्त्यधर्मिणाम्॥७॥
इष्टापूर्ते वृथा तेषां धर्मो धर्मभृताम्वरः। प्रवृत्तानांतुभक्ष्याणां माधवेऽनियमेकृते॥८॥

देवर्षि नारद कहते हैं—वैशाख के समान कोई मास ही नहीं है। कविगण कहते हैं कि जैसे सत्ययुग के समान युग, वेद के समान शास्त्र, गंगा के समान तीर्थ, जल के समान दान, भार्यासुख के समान सुख; कृषि के समान सम्पत्ति, जीवनलाभवत् लाभ, अनशन के समान व्रत, दान के समान श्रेष्ठ सुख, दाता, दया के समान धर्म, चक्षु के समान ज्योति, रसना के समान तृप्ति, कृषि के समान वाणिज्य, धर्म के समान मित्र, सत्य के समान यश, आरोग्य के समान उन्नति, केशव के समान त्राता नहीं है, उसी प्रकार त्रैलोक्य के मासों में से वैशाख के समान मास भी नहीं है। मासों में वैशाख ही प्रधान तथा शेषशायी श्रीहरि को सदा प्रिय है। जो मानव माधव को प्रिय वैशाखमास में स्नान व्रत नहीं सम्पन्न करता, वह सर्वधर्म बहिष्कृत होकर शीघ्र तिर्यक्योनि प्राप्त करता है। हे धार्मिकश्रेष्ठ! जो मानव बिना व्रत सम्पन्न किये वैशाखमास व्यतीत कर देते हैं, उनका इष्ट-आपूर्त धर्म व्यर्थ हो जाता है। मनुष्य स्वभावतः जो भोजन करता है, वैशाखमास में वह सब भक्ष्य नियमित होना चाहिये।।१-८।।

अवश्यंविष्णुसायुज्यंप्राप्नोत्येवनसंशयः। सन्तीहबहुवित्तानि व्रतानिविविधानिच॥९॥
देहाऽऽयासकराण्येव पुनर्जन्मप्रदानि च। वैशाखस्नानमात्रेण न पुनर्जायते भुवि॥१०॥

इस मास में नियमित रूप से भक्ष्य पदार्थों का सेवन करने से मनुष्य अवश्यमेव विष्णु सायुज्य प्राप्त करता है। यह निःसंशय है। इस संसार में अधिक व्ययसाध्य अनेक व्रत निश्चित हैं, लेकिन वैशाखमास में मात्र प्रातःस्नान करने से मनुष्य पृथिवी पर जन्म नहीं लेता।।९-१०।।

सर्वदानेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम्। तत्फलं समवाप्नोति माधवे जलदानतः॥११॥
जलदानासमर्थेन परस्याऽपि प्रबोधनम्। कर्तव्यं भूतिकामेन सर्वदानाधिकं हितम्॥१२॥
एकतः सर्वदानानि जलदानं हि चैकतः। तुलामारोपितं पूर्वं जलदानं विशिष्यते॥१३॥

मार्गेऽध्वगानां यो मर्त्यः प्रपादानंकरोतिहि। सकोटिकुलमुद्धृत्यविष्णुलोकेमहीते॥१४॥
देवानां च पितॄणाञ्च ऋषीणां राजसत्तम!। अत्यन्तप्रीतिदं सत्यं प्रपादानंन संशयः॥१५॥
प्रपादानेन सन्तुष्टा येनाऽध्वश्रमकर्षिताः। तोषितास्तेनदेवाश्चब्रह्मविष्णुशिवादयः॥१६॥

समस्त दानों तथा तीर्थसेवन से जो फल मिलता है, एकमात्र वैशाख में जलदान करने से उसके समान फल की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति स्वयं जलप्रदान नहीं कर पाता, वैसा भुक्ति (ऐश्वर्य) चाहने वाला व्यक्ति अन्य को जलदानार्थ उद्बुद्ध करे। यह जलदान सभी दानों में प्रधान तथा हितकारी कहा गया है। शास्त्रज्ञ लोग एक ओर सर्वविधदान को दूसरी ओर एकमात्र जलदान को जब तौलते हैं, तब दोनों में से जलदान ही श्रेष्ठ होता है। जो मानव पथिकों को मार्ग में यह प्रपादान (प्रपा=जलकुंड) करता है, वह अपने करोड़ों कुल का उद्धार करके अन्त में विष्णुलोक में निवास करता है। हे नृपश्रेष्ठ! प्रपा जल (जलकुंड) दान से ही ऋषि, देवता, पितृगण अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। यह बात मैं सत्य की शपथ लेकर कह रहा हूं। इसमें संशय नहीं है। जो इस लोक में भुक्तिकामी हैं, उनके लिये यह जलकुण्ड दान सभी दानों से अधिक हितप्रद है। जो जल दान से पथिकों को सन्तुष्ट करते हैं, ब्रह्मा-विष्णु-शिवादि देवता उसके प्रति सन्तुष्ट हो जाते हैं।।११-१६।।

सलिलं सलिलेच्छूनां छत्रं छायामपीच्छताम्।
व्यजनं व्यजनेच्छूनां वैशाखे मासि भूमिप!॥१७॥
जलं छत्रं च व्यजनं दानं येषां विशिष्यते। माधवे मासि सम्प्राप्तेब्राह्मणायकुटुम्बिने॥१८॥
अदत्त्वोदककुम्भञ्च चातको जायते भुवि॥१९॥

हे भूमिपाल! वैशाख मास में जलेच्छु मनुष्यों को जल, छाया चाहने वालों को छाया तथा पंखे की हवा चाहने वाले को पंखा देना चाहिये। सभी दानों में से जल, छड़ तथा पंखा दान ही प्रशस्त है। अतएव जो मानव वैशाख में कुटुम्बी ब्राह्मणों को जलकुंभ प्रदान नहीं करता, वह पृथिवी पर चातक पक्षी की योनि में जन्म लेता है।।१७-१९।।

योदद्याच्छीतलं तोयं तृषार्ताय महात्मने। तावन्मात्रेण राजेन्द्र! राजसूयायुतं लभेत्॥२०॥
धर्मश्रमार्तविप्राय वीजयेद्व्यजनेन यः। तावन्मात्रेण निष्पापो विहगाधिपतिर्भवेत्॥२१॥
अदत्त्वा व्यञ्जनं भूप! वैशाखे तु द्विजातये। वातरोगशताकीर्णा नरकानेव विन्दति॥२२॥
यो बीजयेत्पटेनाऽपि पथि श्रान्तं द्विजोत्तमम्।
तावताऽथ विमुक्तोऽसौ विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्॥२३॥

हे राजेन्द्र! जो मनुष्य तृषार्त्त महात्मा मानव को जल प्रदान करता है, उसे १०००० राजसूय यज्ञ फल प्राप्त होता है। जो विप्र धर्मकर्म करके परिश्रान्त हो गया है, ऐसे विप्र को जो पंखे की हवा करता है, वह तत्क्षण निष्पाप होकर इन्द्रत्व लाभ करता है। हे राजन्! जो मानव वैशाख में द्विजों को पंखा दान नहीं करता, वह सैकड़ों वातजनित रोग से आक्रान्त होकर नरकगामी हो जाता है। जो मानव पथश्रान्त द्विजों को वस्त्र से पंखा झलता है, वह इस कार्य के फलस्वरूप मुक्त होकर विष्णु सायुज्य लाभ करता है।।२०-२३।।

यस्तालव्यजनं वाऽपि दत्त्वा शुद्धेन चेतसा। विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोकंसगच्छति॥२४॥

सद्यः श्रमहरं पुण्यं न दद्याद्व्यजनं नरः। नारकीं यातनां भुक्त्वाकश्मलोजायतेभुवि॥२५॥
अध्यात्मिकादिदुःखानांशान्तयेमनुजेश्वर। छत्रं दद्यात्प्रयत्नेवैशाखेमासिवासकृत्॥२६॥
अच्छत्रदो नरो यस्तु वैशाखे माधवप्रिये। छायाहीनो महाक्रूरः पिशाचोभुविजायते॥२७॥
यो यद्यात्पादुके दिव्ये माधवेमाधवप्रिये। यमदूतौतिरस्कृत्यविष्णुलोकंसगच्छति॥२८॥

जो मनुष्य शुद्धचित्त होकर ताड़ का पंखा प्रदान करता है, वह अपने समस्त पापों को धोकर ब्रह्मलोक गमन करता है। जो मनुष्य सद्यः श्रम का हरण करने वाला पंखा दान नहीं करता, वह नरक यन्त्रणा भोग कर अन्त में पृथिवी पर कुष्ठरोगी होकर जन्म लेता है। हे मनुजेश्वर! आध्यात्मिकादि त्रिविध ताप की शान्ति हेतु वैशाख मास में यत्नतः छत्रदान करे। जो मानव माधव प्रिय वैशाखमास में एक बार भी छत्रदान नहीं करता, वह धरती पर निराश्रय महाक्रूर पिशाच होकर जन्म लेता है। जो मानव माधव को प्रिय वैशाखमास में एक जोड़ी पादुका दान करता है, वह यमदूतों को तिरस्कार करता हुआ विष्णुलोक प्राप्त करता है।।२४-२८।।

पादत्राणं तु यो दद्याद्वैशाखे माधवागमे। न तस्यनारको लोको नक्लेशाऐहिकाश्चये॥२९॥
पादुके याचमानाययोदद्याद्ब्राह्मणाय च। सभूपालोभवेद्भूमौकोटिजन्मस्वसंशयम्॥३०॥
अनाथमण्डपं मार्गे श्रमहारि करोति यः। तस्य पुण्यफलं वक्तुं ब्रह्मणाऽपिन शक्यते॥३१॥
मध्याह्ने ब्राह्मणं प्राप्ततिथिंभोजयेद्यदि। न तस्यफलविश्रान्तिर्ब्रह्मणाऽपिनिरूपिताः॥३२॥
सद्यः स्वाप्यायनं नृणामन्नदानं नराधिप!। तस्मान्नान्नेन सदृशं दानं लोकेषु विद्यते॥३३॥
मार्गश्रान्ताय विप्राय प्रश्रयं प्रददाति यः। तस्यपुण्यफलं वक्तुं ब्रह्मणाऽपि नशक्यते॥३४॥
दारापत्यगृहादीनि वासोऽलङ्कारभूषणम्। असह्यं नाऽश्नतः पुंसःसह्यंभुक्तवतोध्रुवम्॥३५॥
तस्मादन्नसमं दानं न भूतं न भविष्यति। वैशाखे येन चादत्तं मार्गश्रान्ते च भूसुरे॥३६॥
सपिशाचोभवेद्भूमौस्वमांसान्येव खादति। यथाविभूतिदातव्यंतस्मादन्नंद्विजातये॥३७॥

वैशाखमास में जो मनुष्य पादत्राण पादुका दान करता है, उसके आध्यात्मिक आदि ऐहिक क्लेश तथा पारत्रिक नरक भोग शान्त हो जाते हैं। जो मानव पादुका प्रार्थी ब्राह्मण को पादुका प्रदान करता है, वह भूतल पर कोटिजन्म पर्यन्त राजा होता है, इसमें सन्देह नहीं है। जो मानव छायाहीन पथ पर अनाथ पक्षीगण के श्रम को हरण करने वाले छायामण्डप निर्मित करता है, ब्रह्मा भी उसके पुण्यफल का वर्णन नहीं कर सकते। मध्याह्न काल में अतिथि ब्राह्मण को जो भोजन कराता है, ब्रह्मा भी उसके फल की सीमा का निर्धारण नहीं कर सकते। हे राजन्! अन्न देने से (भूखा) व्यक्ति सद्यः तृप्त हो जाता है। त्रिभुवन में अन्नदान ऐसा कोई दान नहीं है। जो मानव पथश्रान्त-पथश्रान्त विप्र को आश्रय प्रदान करता है, ब्रह्मा भी उसका पुण्यफल वर्णन नहीं कर सकते। त्रैलोक्य में सभी पत्नी, पुत्र, गृहादि, वस्त्र तथा अलंकार आभूषण का भोग नहीं कर पाते लेकिन अन्न भोजन सभी करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। इसलिये अन्न के समान दान न तो है, न होगा। जो मनुष्य वैशाख में पथश्रान्त विप्र को अन्न प्रदान नहीं करता, वह भूतल पर पिशाच होकर अपना ही मांस खाता है। इसलिये द्विजों को यथाशक्ति अन्नदान करें।।२९-३७।।

अन्नदो मातृपित्रादीन्विस्मारयतिभूमिप। तस्मादन्नंप्रशंसन्तिलोकास्त्रैलोक्यवर्तिनः॥३८॥

मातरः पितरश्चापि केवलं जन्महेतवः। आनन्दं पितरं लोके वदन्ति च मनीषिणः।।३९।।
अन्नदेवसर्वतीर्थानि अन्नदे सर्वदेवताः। अन्नदे सर्वधर्माश्चतिष्ठन्त्यरिधराजय।।४०।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमाससमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे दाननिरूपणंनाम द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

हे राजन्! अन्नदाता व्यक्ति अन्नदान (जनित पुण्य से) से माता-पिता आदि पितृगण को विस्मित कर देता है। अतएव त्रिलोकवासी लोग अन्न की प्रशंसा करते हैं। मनीषीगण का कथन है कि संसार में पिता-माता केवल जन्म देते हैं। अन्नदान ही यथार्थ पिता है। हे शत्रुपुरघाती! समस्त तीर्थ, समस्त देवता, समस्त धर्म अन्नदाता पर ही प्रतिष्ठित है।।३८-४०।।

।।द्वितीय अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

तृतीयोऽध्यायः

नाना दान माहात्म्य वर्णन, कटकम्बल दान वर्णन

नारद उवाच

योमर्त्या द्विजवर्यायपर्यङ्कंतु ददाति हि। यत्रस्वस्थःसुखंशेतेशीतानिलनिषेवितः।।१।।
धर्मसाधनभूते हि देहे नैरुज्यमाप्नुते। तं दत्त्वा सकलं तापं निरस्य गतकल्मषः।।२।।
अखण्डपदवीं याति योगिनामपिदुर्लभाम्। वैशाखेधर्मतप्तानांश्रान्तानांतुद्विजन्मनाम्।।३।।
दत्त्वा श्रमापहं दिव्यं पर्यङ्कं मनुजेश्वर। न जातु सीदते लोकेजन्ममृत्युजनादिभिः।।४।।
गृहीत्वा ब्राह्मणोयत्रशेतेचाजीवमास्थितः। असीनेसकलंपापं ज्ञानतोऽज्ञानतःकृतम्।।५।।
विलयं याति राजेन्द्र! कर्पूर इव चाऽग्निना। शयने ब्रह्मनिर्वाणंसनरोयातिनिश्चतम्।।६।।

देवर्षि नारद कहते हैं—मनुष्य जिस पलंग पर शीतल वायु का सेवन करता है, सुखपूर्वक शयन करता है, जिस पर शयन करके निखिल धर्म के निदानभूत आरोग्य को प्राप्त करता है, उत्तम द्विज को ऐसा पलंग दान करने वाला व्यक्ति अपने समस्त तापों से रहित, विगतपाप हो जाता है। उसे योगीगण के लिये भी दुर्लभ अखण्ड पदवी की प्राप्ति होती है। हे मनुजेश्वर! वैशाख में धूप से तप्त थके द्विजों को जो मानव दिव्य पलंग प्रदान करता है, वह जन्म-मृत्यु-जरादि से इस लोक में पीड़ित नहीं होता। यदि द्विज पलंग पाकर आजीवन उस पर स्थित रहता है (उसका आजीवन उपभोग करता है) तब जैसे अग्नि से कर्पूर तत्काल दग्ध होता है, उसी प्रकार ब्राह्मण द्वारा उस पलंग का बैठने हेतु उपयोग करने के कारण दाता द्वारा जाने-अनजाने किये गये सभी

पाप समूह नष्ट हो जाते हैं। यदि ब्राह्मण उस पलंग का उपयोग शयनार्थ करता है, तब दाता को निःसंदिग्ध रूप से ब्रह्मनिर्वाण लाभ होता है।।१-६।।

यो दद्यात्कशिपुंमासे वैशाखे स्नानवल्लभे। सर्वभोगसमायुक्तस्तस्मिन्नेव हि जन्मनि॥७॥
सान्वयो वर्तते नूनं रोगादिभिरनाहतः। आयुष्यं परमारोग्यं यशोधैर्यञ्च विन्दति॥८॥
नाऽधार्मिकः कुले तस्य जायते शतपौरुषम्।
भुक्त्वा तु सकलन्भोगांस्ततः पञ्चत्त्वमेष्यति॥९॥
निर्धूताखिलपापस्तु ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति। श्रोत्रियाय द्विजेन्द्राय यो दद्यादुपबर्हणम्॥१०॥
सुखं निद्रा विनायेनन नृणांजायतेक्वचित्। सर्वेषामाश्रयोभूत्वाभुविसाम्राज्यमश्नुते॥११॥

जो मनुष्य स्नानयोग्य मनोज्ञ वैशाखमास में शय्या दान करता है, वह उसी जन्म में सर्वपापरहित होकर अपने वंशसहित आरोग्य, यश, धैर्य प्राप्त करता है। इसमें संदेह नहीं है। उसके कुल में भावी १०० पीढ़ी तक अधार्मिक जन्म नहीं लेते। वह नाना प्रकार के भोगों को भोग कर मृत होता है। वह व्यक्ति मृत होने के साथ ही सर्वपापरहित होकर ब्रह्मनिर्वाण लाभ करता है। जिस तकिया के बिना कभी भी मनुष्य को सुखपूर्ण निद्रा नहीं मिलती, ऐसी तकिया जो व्यक्ति वेदज्ञ ब्राह्मण को प्रदान करता है, वह भूतल पर साम्राज्य लाभ करता है तथा सबको शरण देने वाला होता है। उसे भूतल पर साम्राज्य की प्राप्ति होती है।।७-११।।

पुनः सुखी पुनर्भोगी पुनर्धर्मपरायणः। आसप्तजन्म राजेन्द्र! जायते सर्वतो जयी॥१२॥
पश्चात्सप्तकुलैर्युक्तो ब्रह्मभूयाय कल्पयते। तार्णं कटं तु यो दद्यात्कटमन्यदथापि वा॥१३॥
तत्र शेते स्वयं विष्णुर्यत्रस्थः परमेश्वरः। यथा जलगताचोर्णा लजलैर्भितेक्कचित्॥१४॥
तथा संसारगो जन्तुः संसारे न च बध्यते। आसने शयने सक्तः कटदः सर्वतःसुखी॥१५॥
प्रश्रये शयनार्थाय योदद्यात्कटकम्बलम्। तावन्मात्रेणमुक्तःस्यान्नात्रकार्याविचारणा॥१६॥
निद्रया हीयते दुःखं निद्रया हीयते श्रमः। सा निद्राकटसंस्थस्यसुखंसञ्जायतेध्रुवम्॥१७॥

हे राजेन्द्र! केवल यही नहीं, वह सात जन्मपर्यन्त एक बार सुखी होकर, एक बार उत्तम भोगों का भोगी होकर, एक बार धर्मपरायण होकर सर्वत्र जयी होता है। अन्त में वह अपनी सात पीढ़ी के साथ स्वर्ग में निवास करता है। परमेश्वर विष्णु सर्वत्र विद्यमान हैं। वे तृण अथवा खजूर के पत्ते की चटाई पर भी शयन कर लेते हैं। जो व्यक्ति तृण किंवा खजूरपत्र निर्मित अन्य प्रकार की चटाई प्रदान करता है, ऐसा व्यक्ति उसी तरह संसार में रहते हुये भी व्यथित नहीं होता, जैसे जलगत कमलपत्र पर जलस्पर्श नहीं होता। उस चटाई पर ब्राह्मण चाहे बैठा रहे अथवा चाहे शयन करे, दानदाता व्यथित नहीं होता। वह सर्वत्र सुखी रहता है। आश्रित व्यक्ति को जो मानव शयनार्थ चटाई तथा कम्बल प्रदान करता है, वह इसी दान के प्रभाव से मुक्ति प्राप्त करता है। इसमें तनिक सन्देह नहीं है। चटाई पर सोये मानव को वह सुख प्रदान करता है। इसमें संशय नहीं है।।१२-१७।।

योदद्यात्कम्बलंराजन्वैशाखेमाधवाऽऽगमे। अपमृत्योःकालमृत्योर्मुक्तोजीवतिवैशतम्॥१८॥

हे राजन्! वैशाख मास के माधवागम में जो मानव कम्बल दान देता है, वह कालमृत्यु-अपमृत्यु आदि सभी प्रकार की मृत्यु से छुटकारा पाकर शतायु हो जाता है।।१८।।

दद्याद्वस्त्रं सूक्ष्मतरं द्विजेन्द्रे घर्मकर्शिते। पूर्णमायुः समाप्नोति परत्र च परां गतिम्॥१९॥
अन्तस्तापहरं दिव्यंकर्पूरं तु द्विजातये। दत्त्वा मोक्षमवाप्नोतिदुःखशान्तिञ्चविन्दति॥२०॥
कुसुमानि च यो दद्यात्कुङ्कुमञ्च द्विजातये। सार्वभौमौ भवेद्राजा सर्वलोकवशङ्करः॥२१॥
पुत्रपौत्रादिभोगांश्चभुक्त्वामोक्षमवाप्नुयात्। त्वगस्थिगतसन्तापंसद्योहरतिचन्दनम्॥२२॥
तापत्रयविनिर्मुक्तस्तद्दत्त्वा मोक्षमाप्नुयात्। औशीरंचाषकंकौशंयोदद्याज्जजलवासितम्॥२३॥
सर्वभोगेषु राजेन्द्र! स तुदेवसहायवान्। पापहानिं दुःखहानिंप्राप्यनिर्वृतिमाप्नुयात्॥२४॥

पसीने से त्रस्त देह वाले ब्राह्मण प्रवर को महीन वस्त्र प्रदान करने वाला जीवन में पूर्णायु होता है तथा अन्त में परमगति का लाभ करता है। हे राजेन्द्र! द्विजगण को जो तापहारी दिव्य कर्पूर प्रदान करता है, उसके दुःख की शान्ति होती है तथा उसे मोक्षलाभ होता है। जो राजा ब्राह्मणों को पुष्प, कुंकुम तथा चन्दन प्रदान करता है, वह सार्वभौम होकर सभी लोकों का ईश्वर हो जाता है। वह जीवन में पुत्र-पौत्रादि नाना भोगों का लाभ करके अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है। चन्दन दान देने वाले का त्वचा जनित एवं अस्थिगत सन्ताप तत्काल दूर होता है। चन्दन दान करने वाला आध्यात्मिकादि तापत्रय रहित होकर मोक्षलाभ करता है। हे राजेन्द्र! जो मानव उशीर (खस) चाषक तथा कुश से संस्कृत किंवा इनसे वासित (जल को सुगन्धित करके) जल प्रदान करता है, वह देवगण की सहायता से सभी भोगों का उपभोग करता है। उसके दुःखों का नाश, पापों का नाश तथा मोक्षलाभ हो जाता है।।१९-२४।।

गोरोचं मृगनाभिञ्च दद्याद्वैशाखधर्मवित्। तापत्रयविनिर्मुक्तः परंनिर्वाणमृच्छति॥२५॥
ताम्बूलञ्च सकर्पूरं यो दद्यान्मेषगे रवौ। सार्वभौमसुखं भुक्त्वा परं निर्वाणमृच्छति॥२६॥

वैशाख मास में पसीना युक्त मानव ब्राह्मण को जो गोरोचन तथा कस्तूरी प्रदान करता है, वह आध्यात्मिकादि (आधिभौतिक-आधिदैविक तथा आध्यात्मिक) तापत्रय से मुक्ति पाकर परम निर्वाण का लाभ करता है। जो मानव मेषराशिस्थ सूर्य के समय (वैशाख मास में) कर्पूरयुक्त चन्दन प्रदान करता है, उसे सार्वभौमत्व की प्राप्ति होती है। वह इस सार्वभौमत्व का सम्यक् भोग करने के उपरान्त परम निर्वाण लाभ करता है।।२५-२६।।

शतपत्रीञ्च यूथीञ्च मेषमासे ददन्नरः। स सार्वभौमो भवति पश्चान्मोक्षञ्च विन्दति॥२७॥
केतकीं मल्लिकां वाऽपि यो दद्यान्माधवाऽऽगमे।
सतु मोक्षमवाप्नोति मधुशासनशासनात्॥२८॥
पूगीफलं तु यो दद्यात्सुगन्धन्तु द्विजायते। नारिकेलफलं राजंस्तस्य पुण्यफलंश्रृणु॥२९॥
सप्त जन्म भवेद्विप्रोधनाढ्योवेदपारगः। पश्चात्सप्तकुलैर्युक्तो विष्णुलोकंसगच्छति॥३०॥
विश्राममण्डपं यस्तु कृत्वा दद्याद् द्विजन्मने।
तस्य पुण्यं फलं वक्तुं नाऽहं शक्नोमि भूपते!॥३१॥
सुच्छायामण्डपंयस्तुसिकताऽऽकीर्णमञ्जसा। सप्रपंकारयेद्यस्तुसतुलोकाधिपोभवेत्॥३२॥

जो मानव वैशाखमास में शतपदी तथा यूथी (जूही) दान करता है, उसे पहले इहलोक में सार्वभौमत्व तथा मरणोपरान्त मुक्ति की प्राप्ति होती है। जो मानव वैशाख मास में केतकी पुष्प अथवा मल्लिका पुष्प दान करता है, उसे मोक्ष प्राप्ति होती है। हे राजन्! जो मानव द्विज को सुगन्धित सुपारी तथा नारियल जल प्रदान करता है, उसका पुण्यफल सुनो। सुपारी तथा नारियल दानदाता सात जन्म पर्यन्त वेदज्ञ, धनी ब्राह्मण होता है। वह अपनी सात पीढ़ी के साथ अन्त में विष्णुलोक गमन करता है। हे राजन्! जो व्यक्ति विश्रामार्थ मण्डप निर्माण कराता है तथा उसे ब्राह्मण को प्रदान कर देता है, मैं भी उसके पुण्यफल का वर्णन नहीं कर सकूंगा। जो मानव उत्तम छाया युक्त तथा बालूयुक्त जलकुण्ड बनाता है, वह लोगों का अधीश्वर होता है।।२७-३२।।

मार्गोद्यानं तडागं वाकूपंमण्डपमेव च। यः करोति सधर्मात्मातस्यपुत्रैस्तुकिंफलम्।।३३।।
कूपस्तडाग मुद्यानं मण्डपञ्च प्रपा तथा। सद्धर्मकरणं पुत्रः सन्तानं सप्तधोच्यते।।३४।।
एतेष्वन्यतमाभावे नोर्ध्वं गच्छन्तिमानवाः। सच्छास्त्रश्रवणंतीर्थयात्रासज्जनसङ्गतिः।।३५।।
जलदानं चान्नदानमश्वत्थ रोपणं तथा। पुत्रश्चेति च सन्तानं सप्तेमेऽतिविदो विदुः।।३६।।
नासन्ततिर्लभेल्लोकान्कृत्वा धर्मशतान्यपि।
तस्मात्सन्तानमन्विच्छेत्सन्तानेष्वेकतो व्रजेत्।।३७।।

जो मानव मार्ग में उद्यान, तड़ाग, कूप तथा मण्डप का निर्माण करता है, उस धर्मात्मा को अनेक पुत्रों की क्या आवश्यकता? कूप-तड़ाग-उद्यान-मण्डप-जलकुण्ड- उत्तमधर्म-करुणा तथा पुत्र इन ७ को ही सप्तविध सन्तान कहा गया है। इन सात पुत्रों में से एक का भी अभाव होने पर मनुष्य की उत्तम गति नहीं होती। वेदज्ञ विद्वानों ने और भी सात वस्तु को सन्तान कहा है। यथा--उत्तम शास्त्रश्रवण, तीर्थयात्रा, साधुसंसर्ग; जलदान, अन्नदान, अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष लगाना, पुत्र। इन सब सन्तानों से रहित मानव १०० वर्षों के प्रयत्न से भी उत्तम लोक में गति नहीं बना पाता। अतः इनमें से यदि एक भी सन्तान का लाभ हो सके, ऐसा प्रयत्न प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिये।।३३-३७।।

पशूनां पक्षिणाञ्चैव मृगाणाञ्चैव भूरुहाम्।
नोर्ध्वलोकं सुखं याति मनुष्याणां तु का कथा।।३८।।
पूगीफलसमायुक्तं नागवल्लीदलैर्युतम्। कर्पूरागुरुसंयुक्तं दद्त्ताम्बूलमुत्तमम्।।३९।।
शारीरैः सकलैः पापैर्मुच्यते नाऽत्र संशयः।
ताम्बूलदो यशो धैर्यं श्रियमाप्नोति निश्चितम्।।४०।।
रोगी दत्त्वा विरोगः स्यादरोगी मोक्षमाप्नुयात्।
वैशाखे मासि दद्यात्तक्रं तापविनाशनम्।।४१।।
विद्यावान्धनवान्भूमौ जायते नात्र संशयः। न तक्रसदृशंदानं धर्मकालेषु विद्यते।।४२।।
तस्मात्तक्रं प्रदातव्यमध्वश्रान्तद्विजातये। जम्बीरसुरसोपेतं लसल्लवणमिश्रितम्।।४३।।
यस्तक्रमरुचिघ्नन्तुदत्त्वामोक्षमवाप्नुयात्। यो दद्याद्दधिखण्डं तु वैशाखेधर्मशान्तये।।४४।।

तस्य पुण्याफलंवक्तुंनाऽहंशक्नोमिभूमिप। यो छ्यात्तंण्डुलान्दिव्यान्मधुसूदनवल्लभे।।४५।।
स लभेत्पूर्णमायुष्यं सर्वयज्ञफलं लभेत्। यो घृतं तेजसो रूपं गव्यंदद्याद्द्विजातये।
सोऽश्वमेधफलम्प्राप्य मोदते विष्णुमन्दिरे।।४६।।

पशु-पक्षी-मृग-वृक्ष, क्या ये भी ऊर्ध्व लोकों में सुखपूर्वक नहीं जाते, मनुष्यों की तो बात ही क्या? जो व्यक्ति नागवल्लीदल, सुपारी, कर्पूर तथा अगुरु मिश्रित पान दान करते हैं, उनके शरीर का समस्त पाप नष्ट हो जाता है। इसमें संशय न करें। ताम्बूलदाता यश, धैर्य, सम्पदा प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है। रोगी व्यक्ति ताम्बूल दान करने से रोगमुक्त होता है। जो सभी सुखी लोग हैं, वे ताम्बूल दान द्वारा संसार से मुक्तिलाभ करते हैं। वैशाख में जो व्यक्ति ताप नष्ट करने वाला मट्ठा दान करता है, वह पृथिवी पर विद्यावान् तथा धनाढ्य होकर जन्म लेता है। ग्रीष्मकाल में मट्ठा दान से उत्तम दान ही नहीं है। अतएव मार्ग चलने से श्रान्त ब्राह्मण को मट्ठा प्रदान करें। जम्बीर के रस तथा लवणयुक्त तक्र (मट्ठा) मिलाने से वह रुचिकर तथा उत्तम स्वरूप वाला पेय हो जाता है। ऐसे मट्ठा को दान करना मोक्ष प्रदान करता है। जो वैशाख मास में ब्राह्मण को ताप शान्ति हेतु दधि प्रदान करता हैं, (वह उत्तम फललाभ करता है)।

वह विद्या, बन्धु तथा भूमियुक्त होकर जन्म लेता है। ग्रीष्मकाल हेतु मट्ठा ऐसा कोई दान नहीं है। मैं दधिदाता के पुण्य का स्वयं वर्णन नहीं कर सकता। मधुसूदन के प्रिय वैशाख मास में जो व्यक्ति तण्डुलदान करता है, वह पूर्णायु तथा सर्वयज्ञफल प्राप्त करता है। जो ब्राह्मण को तेजरूप गोघृत दान करता हैं, वह अश्वमेध फल लाभ करके विष्णुलोक में स्थान पाकर मुदित होता है।।३८-४६।।

उर्वारुगुडसंमिश्रं वैशाखे मेषगे रवौ। सर्वपापविनिर्मुक्तः श्वेतद्वीपे वसेद्ध्रुवम्।।४७।।
यश्चेक्षुदण्डं सायाह्ने दिवा तापोपशान्तये। ब्राह्मणाय च यो दद्यात्तस्य पुण्यमनन्तकम्।।४८।।
वैशाखेपानकंदत्त्वासायाह्नेश्रमशान्तये। सर्वपापविनिर्मुक्तोविष्णोःसायुज्यमाप्नुयात्।।४९।।
सफलं पानकं मेषमासे सायंद्विजातये। दद्यात्तेन पितॄणां तु सुधापानं न संशयः।।५०।।
वैशाखेपानकंचूतसुपक्वफलसंयुतम्। तस्य सर्वाणि पापानि विनाशंयान्तिनिश्चितम्।।५१।।
यो दद्याच्चैत्रदर्शे तु कुम्भं पूर्णन्तु पानकैः। गयाश्राद्धशतं तेन कृतमेव न संशयः।।५२।।
कस्तूरीकर्पुरोपेतं मल्लिकोशिरसंयुतम्। कलशं पानकैः पूर्णं चैत्रदर्शे तुमानवः।
दद्यात्पितॄन्समुद्दिश्य स षण्णवतिदो भवेत्।।५३।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमास-माहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे दाननिरूपणंनाम तृतीयोऽध्यायः।।३।।

जब दिवाकर मेषराशिस्थ रहते हैं, उस वैशाख मास में मानव गुड़युक्त उर्वारूक (ककड़ी) दान करें। उसके सभी पाप दूर हो जाते हैं तथा (देहान्तोपरान्त) उसे श्वेतद्वीप में स्थान प्राप्त होता है। जो मानव दिन भर की तापशान्ति के लिये सायंकाल के समय द्विजों को ईख प्रदान करता है, उसका पुण्य अनन्त होगा। परिश्रम

की शान्ति हेतु सायंकाल पानीय (शर्बत) दान करने से व्यक्ति सर्वपापरहित होकर विष्णु सायुज्य लाभ करता है। इस पेय के साथ यदि फल भी प्रदान किया जा सके, उस स्थिति में उस व्यक्ति के (दाता के) पितर अमृत पान ऐसा सुखलाभ करते हैं। इसमें संदेह नहीं है। वैशाख में शर्बत के साथ सुपक्व आम्रफल दान करने से उस व्यक्ति (दाता) के सभी पापों का नाश हो जाता है। जो मानव चैत्र मासीय अमावस्या के दिन जलपूर्ण घट दान करता है, उसे १०० गयाश्राद्ध का फल मिलता है। पितरों के उद्देश्य से जो मनुष्य चैत्री अमावस्या के दिन कस्तूरी, कपूर, मल्लिका तथा खसयुक्त जलघट का दान करता है, उसे ९६ दानों का फललाभ हो जाता है।।४७-५३।।

।।तृतीय अध्याय समाप्त।।

चतुर्थोऽध्यायः

वैशाखधर्मप्रशंसा

नारद उवाच

तैलाभ्यङ्गं दिवा स्वापं तथा वै कांस्यभोजनम्।
खट्वानिद्रां गृहे स्नानं निषिद्धस्य च भक्षणम्।।१।।
वैशाखे वर्जयेदष्टौ द्विभुक्तं नक्तभोजनम्। पद्मपत्रे तु यो भुङ्क्ते वैशाखे व्रतसंस्थितः।।२।।
स तु पापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकञ्च गच्छति।
वैशाखे मासि मध्याह्ने श्रान्तानां तु द्विजन्मनाम्।।३।।
पादावनेजनं कुर्यात्तद्व्रतं वुव्रतोत्तमम्।।४।।
अध्वश्रान्तंद्विजं यस्तुमध्याह्नेस्वगृहागतम्। उपवेश्याऽऽसनेरम्येकृत्वापादावनेजनम्।।५।।
धृत्वा शिरसि ताश्चापो विध्वस्ताखिलबन्धनः।
गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति निश्चितम्।।६।।

देवर्षि नारद कहते हैं—तैल लगाना, दिन में सोना, कांसे के पात्र में भोजन, खाट पर शयन, गृह में लाये जल से स्नान, निषिद्ध खाद्य का भक्षण, दो समय भोजन ग्रहण, रात्रि भोजन—इन सबका वैशाखमास में त्याग करें। जो मनुष्य वैशाख मास में व्रताचारी होकर कमल के पत्ते पर भोजन करता है, वह पापरहित होकर विष्णुलोक गमन करता है। जो मध्याह्न काल में पथ चलने के परिश्रम से थके ब्राह्मणों का चरण धोकर चरणामृत पान करता है, उसका वैशाखमासीय व्रत अत्यधिक उत्कर्ष का लाभ करता है। मध्याह्न काल में चलने से थका ब्राह्मण यदि व्रती के घर आ जाये, तब व्रती उनको यथायोग्य आसन पर बैठाये। उनका चरण धोये

तथा उस चरणजल को अपने मस्तक पर धारण करे। इस प्रक्रिया से उसके समस्त बन्धन विध्वस्त हो जाते हैं। उस व्यक्ति को गंगातीर्थ में स्नान का फललाभ होता है।।१-६।।

अस्नायी वाऽप्यपत्राशी वैशाखंतु नयेद्यदि। रासभीं योनिमासाद्य पश्चादश्वतरो भवेत्।।७।।

दृढाङ्गो रोगहीनश्च तथा स्वस्थोऽपि मानवः।
वैशाखे तु गृहे स्नात्वा चाण्डालीं योनिमाप्नुयात्।।८।।

वैशाख स्नान न करने वाला, कुत्सित पत्तों में भोजन करने वाला मनुष्य गर्दभ योनि प्राप्त करता है। तदनन्तर मृत होने पर खच्चर होकर जन्म लेता है। दृढ़ अंगों वाला, रोगरहित, स्वस्थ मानव यदि गृह में लाये जल द्वारा बैठकर स्नान करता है, तब वह चाण्डाली योनिलाभ करता है।।७-८।।

वैशाखेमासिराजेन्द्रेषसंस्थे दिवाकरे। न करोति बहिःस्नानं श्वानयोनिशतम्व्रजेत्।।९।।
अस्नात्वा वाऽप्यदत्त्वा च वैशाखोयेननीयते। सपिशाचोभवेन्नूनमवैशाखोदधोव्रजेत्।।१०।।

यो न दद्याज्जलं च्चान्नं वैशाखे लोभमानसः।
पापहानिं दुःखहानिं नैवाप्नोतिन संशयः।।११।।
नदीस्नानं तु यः कुर्याद्वैशाखे विष्णुतत्परः।
जन्मत्रयार्जितात्पापान्मुच्यते नाऽत्र संशयः।।१२।।

समुद्रगनदीस्नानं कुर्यात्प्रातर्भगोदये। सप्तजनमार्जितैः पापैस्तक्षणादेव मुच्यते।।१३।।
कुर्यादुषसि यः स्नानं सप्तगङ्गासुमानवः। कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यतेनात्रसंशयः।।१४।।

जाह्नवी वृद्धगङ्गा च कालिन्दी च सरस्वती।
कावेरी नर्मदा वेणी सप्तगङ्गाः प्रकीर्तिताः।।१५।।

हे राजेन्द्र! मेषस्थ सूर्य के रहते वैशाखमास में जो मानव गृह के बाहर स्नान नहीं करता, वह कुक्कुर योनि प्राप्त करता है। बिना स्नान तथा दान किये जो व्यक्ति वैशाख मास व्यतीत कर देता है, वह इस नियमलंघन के कारण पिशाच होता है। इसमें सन्देह नहीं है। जो लोभ से दूषित चित्त वाला मनुष्य वैशाख मास में जलदान तथा अन्नदान नहीं करता, उसके पाप तथा दुःख कदापि दूर नहीं होते। जो विष्णु भक्त नर वैशाख में नदी स्नान करता है, वह तीन जन्म के पापों से निःसंदिग्ध रूप से मुक्त हो जाता है। वैशाख मास में सूर्योदय काल में सागर में मिल जाने वाली नदी में स्नान करना चाहिये। ऐसे स्नान द्वारा सद्यः सप्तजन्मार्जित पापों से मुक्ति मिल जाती है। जो मानव ऊषाकाल में सप्त गंगाओं में (से किसी एक में) स्नान करता है, वह करोड़ों जन्मों के पापनाश से मुक्त हो जाता है। गंगा, वृद्धगंगा, कालिन्दी, सरस्वती, कावेरी, नर्मदा तथा वेणी को सप्तगंगा कहते हैं।।९-१५।।

देवखातेषु यः कुर्यात्प्रातर्वैशाखमज्जनम्। जन्मारभ्य कृतात्पापान्मुच्यते नात्रसंशयः।।१६।।
वैशाखे मासिसम्प्राप्ते योवापीष्ववगाहनम्। प्रातःकुर्यान्महाराज! महापातकनाशनम्।।१७।।
अपिगोष्पदमात्रेषु बहिःस्थेषु जलेषु च। तिष्ठन्ति सरितः सर्वा गङ्गाद्याइतिनिश्चयः।

इति जानन्समाप्नोति सर्वतीर्थाधिकं फलम्।।१८।।

वैशाखमास में जो मानव प्रभात में देवखात में स्नान करता है, उसके जन्मपर्यन्त के सभी पाप विध्वस्त हो जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं है। हे महाराज! वैशाख मास में प्रातःकाल जो व्यक्ति वापी में स्नान करता है, उसके तो महापापों का भी नाश हो जाता है। वैशाख में बहिस्थित गाय के खुर इतने स्थान के भी जल में गंगा आदि पुण्यमयी नदियां स्थित रहती हैं। जिसे ऐसा निश्चित ज्ञान है, उसे समस्त तीर्थों से भी अधिक तीर्थस्नान फल लाभ होता है।।१६-१८।।

क्षीरं रसाधिकंक्षीरादधिकंदधिभूमिप!। दध्नोऽधिकंघृतंयद्वद्दूर्जो मासोऽधिकस्तथा॥१९॥
कार्त्तिकादधिकोमाघो माघाद्वैशाख उत्तमः।
तस्मिन्मासे कृतो धर्मो वर्द्धते वटबीजवत्॥२०॥
आढ्यो वाऽतिदरिद्रोवा परतन्त्रोऽथ वा नरः। यद्वस्तुलभतेतेन तद्दातव्यं द्विजातये॥२१॥
कन्दमूलफलं शाकं लवणं गुडमेव च। कोलं पत्रं जलं तक्रमानन्त्यायोपकल्पते॥२२॥
नाऽदत्तं लभते क्काऽपि ब्रह्माद्यैस्त्रिदशैरपि॥२३॥
दानेन हीनो हि भवेदकिञ्चनो निष्किञ्चनत्वाच्च करोति पापम्।
पापादवश्यं नरकम्प्रयाति दातव्यमस्मात्सुखमिच्छता तदा॥२४॥
यथां गृहं सर्वगुणोपपन्नं परिच्छदैर्हीनमशोभनं तथा।
मासेषु धर्मः सकलेष्वनुष्टितो वैशाखहीनस्तु वृथैव याति॥२५॥

हे राजन्! जैसे दुग्ध से दधि में अधिक रस है, दधि से भी अधिक रस घृत में है, उसी प्रकार माससमूह में से कार्त्तिक श्रेष्ठ है। कार्त्तिक से माघ अधिक उत्तम है। माघ से वैशाख अत्यधिक उत्तम कहा गया है। इसलिये वैशाख मास में किया गया धर्मकार्य वटबीज के समान बढ़ता है। इस वैशाखमास में आड्य, दरिद्र तथा पराधीन मानव को भी जैसी भी वस्तु मिले, उसे वे द्विजों को दान करें। इस वैशाख में कन्द-मूल-फल-शाक-लवण-गुड़-बदरीफल-पत्र तथा जल के दान का भी अनन्त फल मिलता है। ब्रह्मादि देवलोकवासी देवताओं ने भी बिना दान किये अनन्त ऐश्वर्य नहीं पाया है। दान दिये बिना मनुष्य अकिंचन होता है, वह अकिंचनता के कारण पाप करता है। इस पाप के कारण उसे नरकगमन करना पड़ जाता है। इसलिये सुखकामी मानव सतत् दान करे। जैसे सर्वगुणयुक्त गृह भी परिच्छदरहित (आवरणरहित) होने पर शोभाहीन सा लगता है, उसी प्रकार भले ही अन्य महीनों में पुण्य किया जाये, तथापि वैशाखमास में पुण्य न किये जाने पर अन्य पूर्व मासों में कृत पुण्य भी निष्फल हो जाते हैं।।१९-२५।।

यथैव कन्या सकलैश्च लक्षणैर्युक्ताऽपि जीवत्पतिलक्षणा न हि।
क्रियाऽपि साङ्गा सकलाऽपि राजन्वैशाखहीना तु वृथैव तां विदुः॥२६॥

हे राजन्! कन्या यदि सर्वलक्षण सम्पन्न भी है, तथापि जैसे पतिहीन होने पर उसकी शोभा नहीं रह जाती, उसी प्रकार मासोत्तम वैशाख पुण्य क्रियाओं के अनुष्ठान से विहीन हो जाने पर अन्य मासों में की गई साङ्ग पुण्य क्रियाओं को भी विद्वान् लोग वृथा कहते हैं।।२६।।

दयाविहीनास्तु यथा गुणा वृथा वैशाखधर्मेण विना तथा क्रियाः।
शाकं तु यद्वल्लवणेन हीनं न रोचते सर्वगुणोपपन्नम्॥२७॥

वैशाखहीनं तु तथैव पुण्यं न साधुसेव्यं न फलाप्तिहेतुः।
यद्वन्न भूषासहिताऽपि शोभते वस्त्रेण हीना ललना सुरूपा।
क्रियाकलापः सुकृतोऽपि पुम्भिर्न भासते तन्मधुमासहीनम्॥२८॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन येन केनाऽपि जन्तुना। धर्मो वैशाखमासे तु कर्तव्य इति निश्चयः॥२९॥

व्यक्ति यदि दयारहित है, तब उसके सभी गुण वैसे ही व्यर्थ कहे गये हैं, जैसे लवण रहित शाक रुचिकर नहीं होता। तदनुरूप वैशाख में पुण्यकार्य अनुष्ठित न होने पर अन्य समय सम्पन्न की गई पुण्य क्रिया साधुसेव्य नहीं होती तथा उनसे फलाप्ति भी (फललाभ) नहीं होता। यदि सुरुपा विविध भूषण भूषिता रमणी वस्त्रहीना हो, वह शोभायमान नहीं होती। उसी प्रकार मनुष्यों द्वारा अनुष्ठित समस्त कार्य वैशाख में पुण्यकार्य न किये जाने के कारण शोभित नहीं होते। इसलिये सर्वप्रयत्न पूर्वक वैशाख मास में पुण्यमय क्रियाकलाप का अनुष्ठान सुकृती लोग करें। वैशाख मास में धर्मरूपी कर्त्तव्य का निश्चित रूप से पालन करना चाहिये।।२७-२९।।

मधुसदनमुद्दिश्य मेघसंस्थे दिवाकरे। प्रातःस्नात्वाऽर्चयेद्विष्णुमन्यथा नरकम्व्रजेत्॥३०॥
कश्चिन्महीरथोराजाकामासक्तोजितेन्द्रियः। वैशाखस्नानयोगेनवैकुण्ठंगतवान्स्वयम्॥३१॥
वैशाखः सफलो मासो मधुसूदनदैवतः। तीर्थयात्रातपोयज्ञदानहोमफलाधिकः॥३२॥

जब सूर्य मेषराशीस्थ रहे, उस वैशाख मास में व्यक्ति मधुसूदन देव के उद्देश्य से प्रातःस्नान करके विष्णुपूजा करे। जो यह नहीं करता, वह नरकगामी होता है। पूर्वकाल में महीधर नामक जितेन्द्रिय राजा थे। वे स्वयं वैशाख मास में कामनायुक्त होकर प्रातः स्नान करते थे। इस वैशाख स्नान के फलस्वरूप उनको वैकुण्ठलोक प्राप्त हो सका था। वैशाख फलप्रद मास है। इसके देवता हैं मधुसूदन। इस मास में तीर्थयात्रा, तप, यज्ञ, दान, होम से फललाभ होता है। तदनन्तर प्रातः स्नान की विधि कहते हैं। पहले इस मन्त्र से प्रार्थना करें।।३०-३२।।

प्रार्थनामन्त्रः

मधुसूदन देवेश! वैशाखे मेषगे रवौ। प्रातः स्नानं करिष्यामि निर्विघ्नं कुरुमाधव!॥३३॥

अर्घ्यमन्त्रः

वैशाखे मेषगे भानौ प्रातः स्नानपरायणः। अर्घ्यं तेऽहं प्रदास्यामिगृहाण मधुसूदन!॥३४॥
गङ्गाद्याः सरितः सर्वास्तीर्थानि च ह्रदाश्च ये। प्रगृह्णीतमयादत्तमर्घ्यंसम्यक्प्रसीदथ॥३५॥
ऋषभः पापिनां शास्ता त्वं यमः समदर्शनः। गृहाणाऽर्घ्यंमयादत्तंयथोक्तफलदोभव॥३६॥

प्रार्थना मन्त्र है—"हे मधुसूदन! आप देवगण के भी ईश्वर हैं। वैशाख के मेषस्थ सूर्य में मैं प्रातः स्नान कर रहा हूं। हे माधव! मेरे इस स्नान को विघ्नरहित करिये।"

तत्पश्चात् इस मन्त्र से अर्घ्य देना चाहिये—"हे मधुसूदन! वैशाख मास में मेषराशिगत सूर्य की स्थिति में मैं स्नानपरायण होकर आपको अर्घ्य प्रदान करता हूं। कृपया ग्रहण करिये। गंगा आदि पुण्य नदी तथा समस्त तीर्थ एवं ह्रद इस अर्घ्य में सम्यक् रूप से समन्वित करके आप मुझ पर प्रसन्न हो जाये।"

"हे यम! आप समदर्शी हैं। आप पापियों पर शासन करते हैं। आप सर्वोत्तम हैं। आप मेरे द्वारा प्रदत्त इस अर्घ्य को ग्रहण करके यथोक्त फल प्रदान करिये। एवंविध आप अर्घ्य स्वीकार करके यथोक्त फल दीजिये।"।।३३-३६।।

इतिचार्घ्यंसमर्प्याथपश्चात्स्नानंसमाचरेत्। वाससीपरिधायाऽथकृत्वाकर्माणिसर्वशः॥३७॥
मधुसूदनमभ्यर्च्य प्रसूनैर्माधवोद्भवैः। श्रुत्वाविष्णुकथां दिव्यामेतन्मासप्रशंसिनीम्॥३८॥
कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुक्तो मोक्षमवाप्नुयात्॥३९॥
न जातु खिद्यते भमौ न स्वर्गे न रसातले। न गर्भे जायते क्वापिनभूयःस्तनपोभवेत्॥४०॥
वैशाखेकांस्यभोजीयस्तथाचाश्रुतसत्कथः। नस्नातो नापि दाताचनरकानेवगच्छति॥४१॥
ब्रह्महत्यासहस्त्रस्य पापं शाम्येत्कथञ्चन। वैशाखे येन न स्नातं तत्पापं नैव गच्छति॥४२॥
स्वाधीनेन स्वकायेनजलेस्वातन्त्र्यवर्तिनि। स्वाधीनजिह्वयोच्चार्यंहरिरित्यक्षरद्वयम्॥४३॥
नकुर्याद्यदिवैंशाखे प्रातःस्नानं नराधमः। जीवन्नैव स पञ्चत्वमागतो नाऽत्र संशयः॥४४॥

इस विधि द्वारा अर्घ्य देकर स्नान करें। उत्तरीययुक्त वस्त्रद्वय पहन कर नित्य कार्य को सम्पन्न करके वैशाख में उत्पन्न पुष्पों द्वारा विष्णु पूजन करके वैशाखमास माहात्म्य की प्रशंसा करने वाली विष्णु की दिव्य कथा का श्रवण करना चाहिये। हे राजन्! इस प्रकार करने से मानव कोटिजन्मार्जित पापों से रहित हो जाता है। वह मनुष्य भूतल, स्वर्ग, रसातलादि में कहीं भी खिन्न नहीं होता। उसे पुनः गर्भगत होकर जन्म नहीं लेना पड़ता। जो मानव वैशाख में कांसा के पात्र में भोजन करता है तथा स्नान-दान-सत्कथा श्रवण नहीं करता, उसे अनेक नरकों की प्राप्ति होती है। भले ही सहस्त्रों ब्राह्मणों की हत्या का पाप प्रशमित हो जाये, तथापि जो मानव वैशाख में प्रातःस्नान नहीं करता, उसके पापों का नाश नहीं होता। जो मानवाधम स्वाधीन शरीर, स्वाधीन जल, स्वाधीन जिह्वा पाकर भी 'हरि' रूप दो अक्षर का उच्चारण नहीं करता तथा वैशाखमास में प्रातःस्नान नहीं करता, वह निःसंदिग्ध रूप से जीवित रहते भी मृतक के समान ही है!।।३७-४४।।

येन केनाप्युपायेन माधवे मधुसूदनम्। नार्चयेद्यदि मूढात्मा शौकरीं योनिमाप्नुयात्॥४५॥
योऽर्चयेत्तुलसीपत्रैवैशाखे मधुसूदनम्। नृपो भूत्वा सार्वभौमःकोटिजन्मसुभोगवान्।
पश्चात्कोटिकुलैर्युक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात्॥४६॥
विविधैर्भक्तिमार्गैर्विष्णुं सेवेतयोव्रतैः। सगुणंनिर्गुणंवाऽपिनित्यंध्यायेदनन्यधाः॥४७॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैषाखमासमाहात्म्ये-नारदाम्बरीषसम्वादे वैखाखधर्मप्रशंसानाम चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

—❊❊❊—

वैशाख मास में जो मानव मधुसूदन की अर्चना नहीं करता, वह मूढ़ व्यक्ति शूकर योनि में जन्म लेता है। इस मास में अनन्यचित्त होकर मानव सगुण किंवा निर्गुण भक्तिमार्ग द्वारा विविध व्रताचरण से विष्णु की सतत् सेवा करे। जो मानव तुलसीदल से इस मास में भगवान् विष्णु का पूजन करते हैं, वे करोड़ों जन्मपर्यन्त सार्वभौम राजा होकर नाना भोगों का उपभोग करते हैं तथा भोगावसान के उपरान्त अपने कुल के साथ विष्णु का सायुज्य लाभ करते हैं।।४५-४७।।

।।चतुर्थ अध्याय समाप्त।।

पञ्चमोऽध्यायः

वैशाख का श्रेष्ठत्व

अम्बरीष उवाच

वैशाखःसर्वधर्मेभ्यस्तपोधर्मेभ्यएवच। सकथंसर्वमासेभ्योदानेभ्योऽप्यधिकोऽभवत्।।१।।

अम्बरीष कहते हैं—समस्त तपस्या आदि धर्म से दानधर्म श्रेष्ठ है, तथापि समस्त दानधर्म तथा माससमूह में से वैशाख किसलिये श्रेष्ठ है?।।१।।

नारद उवाच

तद्वक्ष्यामि महाप्राज्ञ! श्रृणु चैकमना भव। कल्पान्तेदेवराड्विष्णुःशेषशायीमहाप्रभुः।।२।।
कुक्षिस्थलोकसङ्घोऽयं स शेते प्रलयार्णवे। अनेको ह्येकतांप्राप्यभूतिभिर्योगमायया।।३।।
निमेषस्यावसानेतु श्रुतिभिर्वोधितस्ततः। कुक्षिस्थजीवसङ्घानांरक्षांचक्रेदयानिधिः।।४।।
तत्तत्कर्मफलप्राप्त्यै सृष्टिं स्त्रष्टुं मनो दधे। तस्य नाभेरभूत्पद्मं सौवर्णं भुवनाश्रयम्।।५।।
ब्रह्माणं जनयामास वैराजं पुरुषाह्वयम्। तस्मिन्ससर्ज भगवान्भुवनानि चतुर्दश।।६।।
भिन्नकर्माशयान्प्राणिसङ्घांश्च विविधन्बहून्।
त्रिगुणान्प्रकृतिं लोके मर्यादाश्चाधिपांस्तथा।।७।।
वर्णाश्रमविभागांश्च धर्मक्लृप्तिञ्च सोऽकरोत्। वेदैश्चतुर्भिस्तन्त्रैसहितान्स्मृतिभिस्तथा।।८।।
पुराणोरितिहासैश्च स्वाज्ञारूपैर्महेश्वरः। ऋषीन्प्रवर्तकांश्चक्रे धर्मगुप्त्यै महाप्रभुः।।९।।
तैःप्रवर्तितधर्मास्तुवर्णाश्रमविभागजाः। व्रजाःश्रद्दधिरेसर्वाःस्वोचितान्विष्णुतोषदान्।।१०।।

देवर्षि नारद कहते हैं—हे महाप्राज्ञ! वह सब कहता हूं। एकाग्र होकर सुनें। महाप्रलयकाल में महाप्रभु देवराज विष्णु शेषशय्या पर शयन करते हैं। तब समस्त लोक उनके कुक्षिगत होते हैं। वे अपनी विभूति के कारण योगमाया द्वारा अनेक होकर भी वस्तुतः एक ही हैं। तदनन्तर दयानिधि विष्णु ने निमेष मात्र में श्रुतियों द्वारा प्रबुद्ध होकर नेत्र खोला। वे कुक्षिगत लोकों का पालन करने में प्रवृत्त हो गये। यह समस्त कार्य सम्पन्न करने के लिये उन्होंने सृष्टि हेतु मनोनिवेश किया। उनकी नाभि से त्रिभुवन का आश्रयरूप एक स्वर्ण कमल निकला। तदनन्तर भगवान् ने उस पद्म से विराटपुरुष ब्रह्मा की सृष्टि की उन विराट विग्रह ब्रह्मा ने चतुर्दश भुवन सृजित किया। तदनन्तर महाप्रभु विष्णु ने विभिन्न कर्म तथा विभिन्न आशययुक्त अनेक प्राणीसंघ, सत्व-रजः तथा तमोगुण, त्रिगुणात्मक पुरुषों की प्रकृति, विभिन्न मर्यादा, मर्यादापालक, वर्णाश्रम विभाग एवं धर्मकार्य का सृजन किया। तदनन्तर महाप्रभु महेश्वर विष्णु ने धर्मरक्षार्थ अपनी आज्ञारूप चारों वेद, नानातन्त्र, अनेक ऋषि, पुराण, इतिहास के साथ धर्मप्रवर्त्तक ऋषियों का सृजन किया। उन ऋषिगण ने वेदादिशास्त्रों द्वारा वर्णाश्रम विभाग क्रमेण धर्म प्रवर्त्तन किया था। तब प्रजागण ने श्रद्धायुक्त होकर अपने-अपने कर्त्तव्य में निरत होकर विष्णु को सन्तुष्ट करना प्रारंभ कर दिया।।२-१०।।

तांस्तु प्रवर्तमानांस्तु स्वाश्रमान्द्रष्टुमीश्वरः।
हृदिस्थोऽप्यव्ययः साक्षाद्विभीषार्थं परीक्षया॥११॥
अनूनान्कुशलान्यत्रधर्मान्कुर्वन्तिवैप्रजाः। सकालःकोभवेद्विद्वानितिसञ्चिन्तयत्प्रभुः॥१२॥
वर्षाकालोमयासृष्टःसीदन्त्यस्ताइमाः प्रजाः। तत्रानूनान्नकुर्वन्तिर्धान्पङ्काद्युप्रद्रुताः॥१३॥
तान्दृष्ट्वा कोप एव स्यात्तेषु तुष्टिर्नमे भवेत्। मयेक्षिता न सीदन्तुतस्मात्तानवलोकये॥१४॥

तदनन्तर प्रजावर्ग जब अपने-अपने वर्णाश्रमधर्म में प्रतिष्ठित हो गये, उनकी परीक्षा लेने के लिये अव्यय ईश्वर विष्णु ने उनके हृदय का आश्रय लिया। "हृदिस्थ विष्णु ऐसा करने से प्रसन्न होते हैं तथा ऐसा करने से विष्णु क्रुद्ध हो जाते हैं" यह कहकर वे भय प्रदर्शित करने लगे। तदनन्तर विद्वान् प्रभु ने चिन्तन किया—"किस काल में धर्म का कार्य प्रशस्त होता है, किस काल में धर्मकार्य प्रशस्त है तथा किस समय प्रजागण धर्मकार्य करके कुशलता को प्राप्त करेंगे? मैंने जिस वर्षाकाल का सृजन किया था, उसमें प्रजागण को पंक (कीचड़) आदि से धर्म कार्य में अत्यन्त दुःख प्राप्त होता है। अतः इस काल में वे किस प्रकार से अपने धर्मकार्य को सम्पन्न करेंगे? यदि वे पंक आदि से अशान्त धर्मकार्य नहीं कर पाते, तब ऐसे प्रजावर्ग को देखकर मुझे तो कोप ही होगा। मुझे कदापि सन्तोष नहीं होगा। इसलिये मैं उनको इस प्रकार से देखूंगा जिससे उनको कोई विघ्न न हो।"॥११-१४॥

शरद्यपि तथा पूर्तिः कर्षणान्नैव जायते। केचित्पक्वफलासक्ताः केचिद्वृष्टिभिरर्दिताः॥१५॥
केचिच्छीतार्दिताश्चैव तान्दृष्ट्वा रोष एव मे। वैगुण्यं पश्यतश्चैव न मेतोषोऽभिजायते॥१६॥
उत्थापनं तुनेच्छन्ति प्रातर्हेमन्त आगते। कोपो केऽनुत्थितान्दृष्ट्वाप्रातः सूर्योदयेसति॥१७॥
शिशिरेऽपि तथैवार्ताः प्रातःकालइमाःप्रजाः। तथापक्वफलादानांशक्तह्यनिशमञ्जसा॥१८॥
पुनःशीतार्दिताःप्रातःस्नानार्थमितिचिन्तिताः। तेषांतुकर्मलोपःस्यान्नैवपूर्तिःकथञ्चन॥१९॥
प्रेक्षायाः समयो नाऽयमिति चिन्ताऽऽकुलो विभुः।
वसन्तसमयं मेने सर्वापत्तिनिवारकम्॥२०॥
स्नाने दाने तथा यागे क्रियायां भोगएव च। नानाधर्मविधाने चह्यनुकूलस्त्वयंह्यृतुः॥२१॥

"शरत्काल में ऐसी धर्ममूर्त्ति असंभव है। तब प्रजागण में से कोई भूमि पर हल चलाने आदि कृषि कार्य में लिप्त होगा, कोई पकी फसल के कार्य में आसक्त होगा, कोई वृष्टि द्वारा तो कोई शीत-वात आदि से पीड़ित होगा। इसलिये तब धर्मकार्य में उनका मन धर्मकार्य में आसक्त नहीं होगा। इसलिये इस धर्मवैगुण्य के कारण प्रजागण को देखकर मेरा रोष ही बढ़ेगा, तथापि सन्तोष कदापि नहीं होगा। शिशिर में देखता हूं कि प्रजागण प्रातःकाल में शीत पीड़ित हो जायेंगे। उस समय कोई भूमि से पक्व फसल गृह में लाने हेतु निरन्तर व्यग्र रहेगा। शीतकाल भी शरत् की ही तरह है। तब प्रजागण प्रातःकाल शीत से अत्यन्त पीड़ाग्रस्त होंगे। इन बाधा-विघ्न से प्रजागण का कर्मलोप होता है परन्तु कर्मपूर्त्ति की आशा नहीं रह जाती। दर्शनादि के लिये भी यह काल प्रशस्त नहीं है। तब भगवान् ने दीर्घचिन्तन से यह तय किया कि वसन्त काल में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं रहती। स्नान-दान-याग प्रभृति तीनों धर्म क्रिया तथा भोग हेतु बसन्त ऋतु ही उत्तम है।"॥१५-२१॥

अप्रयासेनलभ्यानिद्रव्याण्यसुभृतां ध्रुवम्। येन केनापि द्रव्येणतुष्टिस्तनुभृतां भवेत्॥२२॥
विष्णोराधारभूतानां तद्द्रव्यं धर्मसाधनम्। वसन्तेसकलंद्रव्यंप्राणिनांतुसुखावहम्॥२३॥
दानयोग्यं धर्मयोग्यंभोगयोग्यंतुसर्वशः। निर्धनानांतुपङ्ग्वादिविकलानांमहात्मनाम्॥२४॥
द्रव्याणिच सुलभ्यानिजलादीनिनसंशयः। द्रव्यैरेतैःस्वात्महितंधर्मंकुर्वन्तिमत्प्रियाः॥२५॥
पत्रैः पुष्पैः फलैरन्यैः शाकैश्चापि प्रियोक्तिभिः।
स्त्रक्ताम्बूलैश्चन्दनाद्यैःपादप्रक्षालनादिभिः ॥२६॥
प्रश्रयाद्यैरहो तेषां वरदोऽहमितीरयन्। सञ्चिन्त्य भगवान्विष्णुः प्रतस्थे रमयासह॥२७॥

"प्राणीगण बिना प्रयास के इस ऋतु में सामग्री का संग्रह कर सकेंगे। इस अनुकूल काल में जिस किसी वस्तु से उनकी सन्तुष्टि हो जाती है। विष्णु की पूजा का आधारभूत द्रव्य जिससे धर्मसाधनरूप अर्चना हो सके, वह इस ऋतु में आसानी से मिल जाता है। वसन्त काल में दानयोग्य, धर्मयोग्य तथा भोगयोग्य सभी वस्तु प्रजाजन को सुखपूर्वक प्राप्त होने वाली जल आदि द्रव्योत्पन्न सभी सामाग्री यहां सभी निर्धन, पंगु तथा महात्मा को अनायास प्राप्त हो जाती है। इसमें संशय नहीं है। मेरे प्रिय प्रजाजन वसन्त ऋतु में इनः सुखपूर्वक प्राप्त हो जाने वाली सामग्री से अपने लिये हितप्रद सभी धर्म-कर्म को सम्पन्न करें। मैं भी भक्तों द्वारा अर्पित पत्र, पुष्प, फल, शाक, प्रियवाक्य, माला, ताम्बूल, चन्दन, पादप्रक्षालनार्थ जल तथा विनय-व्यवहार आदि से प्रसन्न होकर उनको वर देता हूं।" भगवान् विष्णु ने इस प्रकार विविध विचार करके यह निश्चित किया तथा रमा के साथ वहां से प्रस्थान किया।।२२-२७।।

वनानि सर्वतः पश्यन्विकसत्कुसुमानि च। हृष्टपुष्टजनाकीर्णमत्तालिद्विजसेवतम्॥२८॥
आश्रमाणां महार्हाणां व्रनग्रामनिवासिनाम्।
प्राङ्गणादीनि रम्याणि ह्युद्यानानि स्थलानि च॥२९॥

श्री हरि देवी रमा के साथ जाकर विविध वसन्त वैभव का अवलोकन करने लगे। भगवान् ने देखा कि वन में चतुर्दिक् पुष्प विकसित हो रहे हैं। कहीं हृष्ट-पुष्ट लोगों से स्थान भरा है। कोई वन मत्त भ्रमर तथा पक्षियों से सेवित है। कहीं वनवासी लोगों का तो कहीं ग्रामीणों का महान् निवास समूह विराजित है। वहां के प्रांगणादि तथा उद्यान एवं सभी स्थान अतीव रमणीय हैं।।२८-२९।।

रमायै दर्शयन्विष्णुः सह देवैर्मुनीश्वरैः। सिद्धचारणगन्धर्वकिन्नरोरगराक्षसैः॥३०॥
स्तूयमानोऽभ्यगद्देहान्वर्णाश्रमनिवासिनाम्। मीनादिकर्कटान्तं वै सतिष्ठन्नमया सुरैः॥३१॥
सार्द्धं प्रतीक्ष्यपुरुषान्कृताकृतसपर्यया। तत्र धर्मवतां पुंसां ददातीष्टान्मनोरथान्॥३२॥

श्रीहरि देवी लक्ष्मी को यह सब दिखलाते हुये देवता एवं ऋषियों के साथ चल रहे थे। उस समय सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किन्नर, सर्प, राक्षस उनका स्तव करते हुये उनके साथ चल रहे थे। वनभूमि में स्थित वर्णाश्रमवासी ऋषिगण अपने-अपने आवास से बाहर आकर भगवान् को अनुगमन करने लगे। उन्होंने चैत्र संक्रान्ति से लेकर श्रावण संक्रान्ति पर्यन्त कमला के साथ वहीं अवस्थान किया। महापुरुषगण देवताओं के साथ उनकी सेवा की सामग्री लेकर भगवान् की प्रतीक्षा करने लगे। भगवान् ने भी उन धर्मात्मा पुरुषों से सेवित होकर उनको उनका इष्ट मनोरथ प्रदान किया।।३०-३२।।

मत्तान्न सहते पुंसो हरत्यायुर्धनादिकम्। यदि कुर्वन्ति वैशाखे सपर्या म्परमात्मपनः॥३३॥
तत्रापि चलमूर्तीनां साधूनांयत्र वै विभुः। मासेष्वन्येषु यज्जातं कर्मलोपंसहिष्यति॥३४॥
यथा देशागतं भूपं दृष्ट्वा जानपदाःप्रजाः। यदि तं चोपतिष्ठन्ति प्रश्रयाद्यैर्महार्हणैः॥३५॥
तदा करादिकं न्यूनं पूर्णंजानाति पार्थिवः। पुनरप्यधिकं चेष्टंतुष्टोदास्यतिनिश्चितम्॥३६॥
तदा त्वकृतपूजानां दण्डं तेषां करोतिच। तथाविष्णुःस्वकीयानांवैशाखेमाधवागमे॥३७॥
सपर्यां कुर्वतां पुंसां ददातीष्टान्मनोरथान्। अकुर्वतां तथा पुंसां धनादीनिहरत्यलम्॥३८॥
धर्मगोप्तुर्महाविष्णोर्देवदेवस्यशार्ङ्गिणः। परीक्षाकालएवाऽयंतस्मान्मासोत्तमोह्ययम्॥३९॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे वैशाखश्रेष्ठत्वनिरूपणंनाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

जिन व्यक्तियों ने मत्त होने के कारण विष्णु के उत्सव में योगदान नहीं करते, हरि उनकी आयु एवं धनादि का हरण कर लेते हैं। यदि वैसाख मास में मानव परमात्मा हरि की परिचर्या करता है, विशेषतः विष्णु की चलमूर्त्ति एवं साधुगण की सेवा करता है, अन्य मासों में उससे जो धर्मलोप कदाचित हो भी गया हो, वह सब धर्म भी पूर्ण हो जाता है। जैसे अपने देश में आये राजा को देखकर जनपद निवासी प्रजाजन विनय एवं उपहारों द्वारा उनका सत्कार करते हैं, तब वह राजा यह सम्यक् रूप से जान लेता है कि प्रजा ने राजकर पूर्णरूपेण प्रदान किया है। उस समय राजा उन प्रजाजन को अभीष्ट प्रदान करते हैं, तथापि पूर्वोक्त पूजा व्यवहार यदि प्रजाजन नहीं करते, तब राजा उनको दण्ड देते हैं। उनका धनादि हर लेते हैं। धर्मगोप्ता महाविष्णु देवदेव शार्ङ्गधारी विष्णु इस वैशाख मास में अपने भक्तों की परीक्षा लेते हैं। अर्थात् कौन भक्त उनकी पूजा में रत है, कौन नराधम उनको स्मरण भी नहीं कर रहा है, यह परीक्षा प्रभु लेते हैं। इसी कारण मनुष्यों के लिये वैशाख मास उत्तमरूपेण सेवनीय है।।३३-३९।।

।।पञ्चम अध्याय समाप्त।।

षष्ठोऽध्यायः

जलदान सम्बन्ध में गृहगोधिका का उपाख्यान

नारद उवाच

वैशाखेऽध्वगतप्तानां तृषार्तानां महीपते!। जलदानमकुर्वाणस्तिर्यग्योनिमवाप्नुयात्॥१॥
अत्रैवोदाहरन्तीमितिहासं पुरातनम्। विप्रस्य गृहगोधायाः सम्वादं परमाद्भुतम्॥२॥

पुरा चेक्ष्वाकुवंशेऽभूद्धेमाङ्ग इति भूमिपः। ब्रह्मण्यश्चवदान्यश्चजितामित्रोजितेन्द्रियः॥३॥
यावत्यो भूमिकणिका यावन्तोजलबिन्दवः। यावन्त्युडूनिगगनेतावतीरददात्सगाः॥४॥
येनेष्टेयज्ञदर्भैश्च भूमिर्बर्हिष्मती शुभा। गोभूतिलहिरण्याद्यैस्तोषिता बहवो द्विजाः॥५॥
तेनादत्तानि दानानि न विद्यन्त इति श्रुतम्। तेनादत्तं जलं चैकं सुखलभ्यधियानृप॥६॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे महीपति! वैशाख मास में तपःक्लिष्ट तृष्णार्त्त व्यक्ति को जल प्रदान न करने वाला तिर्यक् योनि में जन्म लेता है। पौराणिक लोग इस विषय में उदाहरणार्थ एक पुरातन इतिहास का वर्णन करते हैं। यह परम अद्भुद् संवाद है। पूर्वकाल में इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न हेमांग नामक एक राजा थे। वे ब्रह्मण्यसम्पन्न, वदान्य, शत्रुजित्, जितेन्द्रिय थे। ब्रह्माण्ड में जितनी बालू है, जितने जलविन्दु हैं तथा आकाश में जितने तारे हैं, उन्होंने उतना गोदान किया था। उनके द्वारा अनुष्ठित यज्ञों में जितनी कुशराशि का उपयोग हुआ था, उससे शोभिता यह भूमि बर्हिष्मती नाम से प्रसिद्ध हो गयी। उन्होंने ब्राह्मणों को गौ, भूमि, स्वर्ण तथा तिल आदि दान देकर प्रसन्न किया था। उस समय ऐसा कुछ नहीं था, जो उन्होंने न दिया हो। हे राजन्! उन्होंने केवल जल को सर्वजन सुलभ जानकर उसका दान नहीं किया था!।।१-६।।

बोधितोब्रह्मपुत्रेण वसिष्ठेन महात्मना। अमौल्यं सर्वतो लभ्यं तद्दाताकिंफलं लभेत्॥७॥

दुर्बुद्ध्या हेतुवादैश्च न जलं दत्तवान्द्विजे।
अलभ्यदाने पुण्यं स्यादिति वाक्यं सुयुक्तिमत्॥८॥

ब्रह्मपुत्र महर्षि वसिष्ठ ने उनको जलदान करने हेतु कहा भी था, लेकिन राजा ने सोचा कि जल का तो कोई मूल्य ही नहीं है, वह सर्वत्र मिलता है। अतएव जलदान का क्या फल मिलेगा? अपनी दुर्बुद्धि के इस हेतुवाद के कारण राजा ने ब्राह्मणों को जल प्रदान नहीं किया। उन्होंने सोचा "जो वस्तु आसानी से नहीं मिलती, उसे दान करने का पुण्य है। यह उत्तम बुद्धि है।"।।७-८।।

स आनर्च द्विजान्व्यङ्गान्दरिद्रान्वृत्तिकर्शितान्।
नार्चयच्छ्रोत्रियान्विप्रांस्तत्त्वज्ञान्ब्रह्मवादिनः ॥९॥
प्रख्यातान्पूजयिष्यन्ति सर्वे लोका महार्हणाः।
अनाथानामविद्यानां व्यङ्गानां च द्विजन्मनाम्॥१०॥

दरिद्राणां गतिः का वा तस्मात्ते मे दयास्पदम्। इति दुर्धीरपात्रेषु दत्तवान्किमपि स्वयम्॥११॥

उन्होंने दरिद्र तथा वृत्तिहीन वृत्तिक्लिष्ट (जो वृत्ति के बिना दुर्बल हो गये) विप्रगण का पूजन किया। श्रोत्रिय तत्वज्ञ ब्रह्मवादी ब्राह्मणों की अर्चना नहीं किया। उन्होंने इस विषय में यह मत मन हीं मन बनाया—"जो विख्यात प्रसिद्ध व्यक्तियों की पूजा करते हैं, मैं भी यदि उन विख्यात लोगों की ही पूजा करूं, तब विकलांग अनाथ-मूर्ख-दरिद्र द्विजों की गति क्या होगी? इसलिए अनाथ दरिद्र आदि लोग ही मेरी दया के पात्र हैं।" दुर्बुद्धि राजा ने स्वयं यह विचार करके अनाथ, विकलांग प्रभृति अपात्र लोगों को ही दानीय वस्तुओं का अर्पण करने का मत बनाया।।९-११।।

तेन दोषेण महता चातकत्वं त्रिजन्मसु। एकजन्मनि गृध्रत्वं श्वाऽभवत्सप्तजन्मसु॥१२॥

पश्चान्नृपगृहे जातो भूपोऽयंगृहगोधिका। श्रुतकीर्त्याख्यभूपस्यमिथिलाधिपतेर्नृप॥१३॥
गृहद्वारप्रतोल्याञ्च वर्तकेकीटकाशनता। सप्ताशीतिषु वर्षेषु स्थितं तेन दुरात्मना॥१४॥
विदेहाधिपतेर्गेहे दाचिदृषिसत्तमः। श्रुतदेव इति ख्यातः श्रौतो मध्याह्न आगतः॥१५॥
तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय जातहर्षो नराधिपः। मधुपर्कादिभिःपूज्यतस्यपादावनेजनीः॥१६॥
अपो मूर्ध्ना वहन्क्षिप्रंतदोत्सिक्तैश्चबिन्दुभिः। दैवोपदिष्टकालेनप्रोक्षितागृहगोधिका॥१७॥
सद्यो जातस्मृतिभूत्स्मृतकर्मादिदुःखिता। त्राहित्राहीतिचुक्रोशब्राह्मणंगृहमागतम्॥१८॥

तिर्यग्जन्तुरवं श्रुत्वा ब्राह्मणो विस्मितोऽवदत्।
कुतः क्रोशसि गोधे! त्वं दशेयं केन कर्मणा॥१९॥
त्वं देवः पुरुषः कश्चिन्नृपो वाऽथ द्विजोऽथ वा।
कस्त्वं ब्रूहि महाभाग! त्वामद्याऽहं समुद्धरे॥२०॥

हे नृप! राजा इस गुरुतर दोष के कारण तीन जन्म तक चातक एक जन्म में गृध्र तथा सात जन्म तक कुत्ता होकर अन्त में मिथिलाधिपति श्रुतकीर्त्ति के महल में छिपकिली होकर जन्मा। यह प्राणी घर के द्वार के चौखट में रहकर कीड़ों का आहार करता था। दुरात्मा राजा ने इस जन्म में छिपकिली की योनि में ८७ वर्ष पर्यन्त व्यतीत किया। तदनन्तर वहां एक बार ऋषिप्रवर श्रोत्रिय श्रुतदेव मध्याह्नकाल में विदेहपति राजा श्रुतकीर्त्ति के घर आये। उनको देखकर राजा हर्षित हो गया। वह सहसा उठा तथा ऋषि का चरण धोकर मधुपर्क आदि से उनका पूजन किया। तदनन्तर राजा ने उन ऋषि का चरणामृत अपने मस्तक पर छिड़का। तब दैवात् ऊर्ध्व में छिड़कने के कारण उस चरण जल के कुछ छींटे उस छिपकिली पर पड़ गये। उस प्राणी को ब्राह्मण के पादोदक विन्दु के पड़ने के कारण तत्क्षण अपने पूर्वजन्म के वृन्तान्त का स्मरण हो गया। वह उसका स्मरण हो जाने के कारण अत्यन्त दुःख भरे स्वर में गृहागत ऋषि श्रुतकीर्त्ति से कहने लगा "मेरा उद्धार करिये, मेरा उद्धार करिये।" वे ब्राह्मण तिर्यक् योनि के जन्तु का शब्द सुनकर विस्मित हो गये। उन्होंने कहा—"हे गृहगोधे! तुम्हारी यह दशा किस कर्म से हुई है? तुम कहां से यह आर्त्तस्वर बोल रहे हो? हे महाभाग! तुम देवता, राजा अथवा द्विज हो? मुझसे बतलाओ कि तुम कौन हो? मैं तुम्हारा उद्धार साधन करूंगा।।१२-२०।।

इत्युक्तः स नृपः प्राह श्रुतदेवं महामतिम्। अहमिक्ष्वाकुकुलजो वेदशास्त्रविशारदः॥२१॥
यावत्यो भूमिकणिका यावन्तस्तोयबिन्दवः। यावन्त्युडूनिगगनेतावतीरददंस्मगाः॥२२॥
सर्वे यज्ञा मयाचेष्टाःपूर्तान्याचरितानि मे। दानान्यपिचदत्तानिधर्मराजस्त्वनुष्ठितः॥२३॥
तथापि दुर्गतिर्जाता मम चोर्ध्वगतिं विना। त्रिवारंचातकत्वंमेगृध्रत्वंचैकजन्मनि॥२४॥
सप्तजन्मस्वलर्कत्वं प्राप्तं पूर्वं मया द्विज!। सिञ्चताऽनेन भूपेन त्वपः पादावनेजनीः॥२५॥
बिन्दवो दूरमुत्क्षिप्तास्तैः सिक्तोऽहंऽकथञ्चन। तेनजन्मस्मृतिरभूत्सर्वपाप्माहतमश्चमे॥२६॥

गोधाजन्मानि भाव्यानि ह्यष्टाविंशतिकानि मे।
दृश्यन्ते दैवसृष्टानि बिभ्ये तैर्जन्मभिर्भृशम्॥२७॥

न कारणं प्रपश्यामि तन्मे विस्तरतोवद। इत्युक्तःसऋषिःप्राहज्ञात्वाविज्ञानचक्षुषा॥२८॥

तब उस गृहगोधिका योनि में जन्मे राजा ने महामति श्रुतदेव का यह आदेश पाकर उनसे कहना प्रारंभ किया—"हे द्विज! मेरा जन्म इक्ष्वाकु वंश में हुआ था। मैं वेदशास्त्र विशारद था। पृथिवी पर जितने बालू के कण तथा जलविन्दु हैं, आकाश में जितने तारे हैं, मैंने उतने संख्यक गोदान किये थे। मैंने पूर्व जन्म में प्रचुर यज्ञानुष्ठान भी सम्पन्न किया था। भूरि-भूरि उत्कृष्ट दानों से श्रेष्ठ धर्माचरण किया था, तथापि मेरी ऊर्ध्वगति न होकर ऐसी दुर्गति हो रही है। मैं तीन जन्म तक चातक, एक जन्म गृध्र तथा सात जन्म पर्यन्त श्वान का जन्म लेकर इस गृहगोधिका योनि में जन्मा। जब इन राजा श्रुतकीर्त्ति ने आपके पादोदक से अपना मस्तक सिंचित किया, तब कुछ बूंदें ऊर्ध्व में पड़ी जिनसे मेरा शरीर सिंचित हो गया। आपके उस पादोदक विन्दु के प्रभाव से मेरे स्मृतिपट पर पूर्वजन्म की स्मृति उत्थित हो गयी। इससे मैं पापरहित हो गया। अभी भी मुझे २८ बार इसी योनि में जन्म लेना होगा! मैं देखता हूं कि प्राणीगण को दैव की व्यवस्था का भोग अवश्य करना होगा। हे द्विज! मैं अपने ऐसे दुर्दशा भोग का कोई कारण नहीं देखता, तथापि कोई कारण अवश्य है, जिसे मैं याद नहीं कर पा रहा हूं। इसलिये आप मेरी इस दुर्गति के कारण को विस्तृत रूप से बतलाने की कृपा करिये।" उस प्राणी के यह कहने पर ऋषि ने उसके सम्बन्ध में अपने विज्ञान नेत्रों द्वारा समस्त वृत्तान्त को जाना।।२१-२८।।

श्रृणु भूप! प्रवक्ष्यामि तव दुर्योनिकारणम्। न जलं तु त्वयादत्तंवैशाखेमाधवप्रिये॥२९॥

तज्जलं सुलभं मत्वा ह्यमूल्यमिति निश्चितम्।
नाध्वगानां द्विजातीनां धर्मकालेऽप्यजानता॥३०॥

तथा पात्रं समुत्सृज्य ह्यपात्रेप्रतिदत्तवान्। ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्यनहिभस्मनिहूयते॥३१॥

बहुधा वर्णितस्याऽपि सौगन्ध्यादियुतस्य च।
कण्टकान्वितवृक्षस्य न कुर्वन्ति समर्चनम्॥३२॥

महर्षि श्रुतकीर्त्ति कहते हैं—हे राजन्! तुम्हारे इस कुत्सित योनि में जन्म लेने का कारण कहता हूं। सुनो! हे राजन्! "जल का कोई मूल्य नहीं होता, वह सर्वत्र आसानी से प्राप्त होता है।" यह विचार कर तुमने माधव को प्रिय वैशाख मास में जलदान नहीं किया। ग्रीष्मकाल में मार्ग चलने से थके द्विजगण के लिये तो जल परम उत्तम वस्तु हैं, यह ज्ञान तुमको नहीं था। यही नहीं, तुमने दान के योग्य पात्रों को छोड़कर अपात्रों को दान दिया है। देखो! प्रज्वलित अग्नि छोड़कर कौन ऐसा मूर्ख है जो भस्म में आहुति देता हो! विख्यात ब्राह्मण सदैव पूज्य होते हैं। वे दुःस्थ (निर्धन, दुःखी) नहीं होते। अतः तुमने मात्र यही एक अयोग्यता देखकर ऐसे योग्य ब्राह्मणों को दान नहीं दिया। जो उचित नहीं था। देखो! अनेक उत्तम कहे जाने वाले, सुगन्धियुक्त ऐसे वृक्ष की क्या कोई पूजा नहीं करता, भले ही वह कंटकाकीर्ण हो?।।२९-३२।।

विशिष्टानां पादपानामश्वत्थःसेव्यतांगतः। तुलसींतुसमुत्सृज्यबृहंतीपूज्यतेनुकिम्॥३३॥

अनाथत्वं पूज्यतायां न प्रयोजकतामियात्।
पङ्ग्वाद्या येऽप्यनाथा हि दयापात्रं हि केवलम्॥३४॥

तपोनिष्ठा ज्ञाननिष्ठाः श्रुतिशास्त्रविशारदाः। विष्णुरूपाः सदा पूज्या नेतरेतुकदाचन॥३५॥

तत्रापि ज्ञानितोऽत्यर्थं विप्रा विष्णोः सदैव हि।
ज्ञानिनामपि भूपाल! विष्णुरेव सदा प्रियः।
तस्माज्ज्ञानी सदा पूज्यः पूज्यात्पूज्यतरः स्मृतः॥३६॥

और भी देखो! फल तथा पुष्पयुक्त न होने पर भी उत्तमगुणयुक्त वृक्षों में पीपल सेवनीय कहा गया है। इसलिये दानादि कार्य में पात्र-अपात्र की विवेचना करना तुम्हारा अनुचित तथा हेतुवाद पूर्ण कृत्य था। अथवा देखो, तुलसी का त्याग करके क्या कोई बृहती पादप की पूजा करेगा? इसलिये अनाथ होना पूजा की योग्यता नहीं है। जो पंगु, विकलांग, दरिद्र तथा अनाथ हैं, वे दया के पात्र हैं। जो तपःश्चरण करने वाले, ज्ञानी, वेदविद्याविशारद हैं, वे ही विष्णुरूप हैं। वे ही पूजा के योग्य हैं। अन्य व्यक्ति की पूजा कदापि नहीं हो सकती। हे भूपाल! पूर्व में जो कतिपय दान योग्य व्यक्तियों का वर्णन किया गया है, उनमें से ज्ञानी ही सदैव विष्णु को प्रिय होता है। विष्णु ही उस ज्ञानी के सदैव वल्लभ रहते हैं। इस कारण पूज्य से भी पूज्यतर ज्ञानी की ही सदा पूजा करनी चाहिये।।३३-३६।।

अवज्ञा साधुवृत्तानामिहाऽमुत्र चदुःखदा। सेवावै महतां पुंसां पुमर्थानांहिकारणम्॥३७॥
कोटयोऽप्यन्धजातीनां न पश्यन्ति यथाऽयथम्।
एवं मन्दायुतानां तु सङ्गतिर्नार्थदा भवेत्॥३८॥
नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः। ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेवसाधवः॥३९॥
न साधुसेवनात्क्वाऽपि सीदन्ते तैः सुशिक्षिताः।
जन्ममृत्युजराद्यैर्वा सुधयाऽऽप्यायिता यथा॥४०॥
न जलं तु त्वया दत्तं साधवो वा न सेविताः। तेनतेदुर्गतिश्चयम्प्राप्ताचेक्ष्वाकुनन्दन!॥४१॥
वैशाखे मत्कृतं पुण्यं तुभ्यं दास्यामिशान्तये। भूतम्भव्यंभवद्येनकर्मजातं विजेष्यसि॥४२॥

साधुचरित्र व्यक्ति की अवज्ञा से इहलोक तथा परलोक, इहकाल तथा परकाल दुःखपूर्ण हो जाता है। महाजनगण की पूजा द्वारा ही पुरुषों का प्रयोजन साधित होता है। तुमने जल का दान नहीं किया तथा साधुसेवा नहीं किया। तुम्हारी दुर्गति का यही कारण है। हे राजन्! अब तुम्हारी शान्ति के लिये मैं वैशाखमास में अपने द्वारा प्राप्त पुण्य को तुम्हें अर्पित करता हूं। तुम इस पुण्य प्रभाव द्वारा भूत, वर्त्तमान तथा भविष्य जनित कर्मों पर विजय प्राप्त कर सकोगे।।३७-४२।।

इत्युक्त्वाऽप उपस्पृश्य ददौ पुण्यमनुत्तमम्॥४३॥
यदा दत्तम्ब्राह्मणेन स्नानञ्चैकदिने कृतम्।
तेनध्वस्ताऽखिलाघस्तु त्त्यक्त्वातां गृहगोधिकाम्॥४४॥
दिव्यं विमानप्रारुह्य दिव्यस्त्रग्वस्त्रभूषणः। पश्यतामेव भूतानां मैथिलस्य गृहान्तरे॥४५॥
बद्धाञ्जलिपुटोभूत्वा परिक्रम्यप्रणम्यच। अनुज्ञातो ययौराजा स्तूयमानोऽमरैर्दिवम्॥४६॥

तत्पश्चात् ऋषि श्रुतदेव ने यह कहकर आचमन किया तथा छिपकिली की योनि में पड़े राजा को अपने

एक दिन के वैशाख स्नान जनित अत्युत्तम पुण्य को उसे अर्पित कर दिया। वह प्राणी भी ऋषि द्वारा प्रदत्त पुण्य को प्राप्त करके समस्त कलुषों से मुक्त हो गया तथा अपनी यह तिर्यक् योनि की देह को त्यागकर वह विदेहराज श्रुतकीर्ति के विदेहनगर निवासी पुरजनों तथा राजाओं के समक्ष दिव्य विमान पर आरूढ़ हो गया। उसका शरीर स्वर्गीय आभूषण तथा माला से भूषित था। उसने करवद्ध होकर ऋषि श्रुतदेव को प्रणाम किया। तदनन्तर ऋषि की प्रदक्षिणा करने के उपरान्त राजा ने उन ऋषि की आज्ञा लेकर देवगण से स्तूयमान होकर स्वर्ग प्रस्थान किया।।४३-४६।।

तत्र भूक्त्वामहाभोगान्वर्षायुतमतन्द्रितः। सएवचेक्ष्वाकुकुलेकाकुत्स्थोऽभून्हाप्रभुः॥४७॥
सप्तद्वीपवतीपालो ब्रह्मण्यःसाधुसम्मतः। देवेन्द्रस्य सखा विष्णोरंश एव महाप्रभुः॥४८॥
बोधितस्तु वसिष्ठेन वैशाखोक्तान्मनोरमान्।
अनुष्ठायाऽखिलान्धर्मांस्तेन ध्वस्ताखिलाऽशुभः॥४९॥

राजा ने स्वर्ग में १०००० वर्ष पर्यन्त महाभोग्य वस्तुओं का उपभोग किया। वह पुनः इक्ष्वाकु कुल में महाप्रभु काकुस्त्थ के नाम से जन्मा। सप्तद्वीपाधिपति वह महाप्रभु काकुस्त्थ ब्रह्मण्य सम्पन्न तथा साधु सम्मत था। वह विष्णु का अंश कहे जाने के कारण इन्द्र का सखा भी था। तदनन्तर उस महाप्रभु ने वैशाख मास आने पर वसिष्ठ के उपदेशानुरूप वैशाख मासोचित मनोहर समस्त धर्मों का अनुष्ठान किया। इसके पुण्यप्रभाव से राजा का समस्त अशुभ दूर हो गया।।४७-४९।।

दिव्यं ज्ञानं समासाद्य विष्णोः सायुज्यमाप्तवान्।
वैशाखः शुभदस्तस्मात्पुम्भिः सर्वैरनुष्ठितः॥५०॥
आयुर्यशः पुष्टिदोऽयं महापापौघनाशनः। पुमर्थानां निदानञ्च विष्णुः प्रीणात्यनेनतु॥५१॥
चातुर्वर्ण्यनरैः सर्वैश्चतुराश्रमवर्तिभिः। अनुष्ठेयो महाधर्मो वैशाखे माधवागमे॥५२॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमास-
माहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे गृहगोधिकाख्यानं नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥

—***—

हे राजन्! तदनन्तर काकुस्त्थ को दिव्य ज्ञान की प्राप्ति होने के कारण विष्णु सायुज्य प्राप्त हुआ। इसलिये वैशाख मास अत्यन्त शुभप्रद है। मानव इस वैशाख व्रत का अनुष्ठान करके पापरहित हो जाते हैं। उनको आयु-यश तथा पुष्टि प्राप्त होती है। वैशाख व्रत से विष्णु प्रसन्न होते हैं। यह व्रत धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूपी चतुर्वर्ग प्रदायक हैं। ब्राह्मणादि चारों वर्ण के मनुष्य ब्रह्मचर्यादि चारों आश्रम में अवस्थित होकर माधव प्रिय वैशाखमास के महाधर्म का अनुष्ठान करें।।५०-५२।।

।।षष्ठ अध्याय समाप्त।।

सप्तमोऽध्यायः

भागवतधर्म निरूपण, पिशाचमोक्ष, वैशाख में अन्न-जलादि दान माहात्म्य

नारद उवाच

राजा तदद्भुतंदृष्ट्वामैथिलोधर्मवित्तमः। कृताञ्जलिः सुखासीनंविस्मितोवाक्यमब्रवीत्॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—धार्मिक राजा मैथिलपति इस आश्चर्यप्रद घटना को देखकर विस्मित हो गये। उन्होंने अंजलिबद्ध करके वहां सुखपूर्वक बैठे महर्षि श्रुतदेव से कहा।।१।।

मैथिल उवाच

दृष्टमेतन्महाश्चर्यं साधूनां चरितंतथा। येन धर्मेण मुक्तोऽभूद्राजा चेक्ष्वाकुनन्दनः॥२॥
तं धर्मं विस्तरेणैव श्रोतुं कौतूहलं हि मे। मह्यं श्रद्धावते विद्वन्कृपया विस्तराद्वद॥३॥
इतिराज्ञासुसम्पृष्टःश्रुतदेवो महामनाः। साधुसाध्वितिसम्भाष्य व्याजहारनृपोत्तमम्॥४॥

राजा मिथिलापति कहते हैं—हे विद्वान्! मैंने इस महान् आश्चर्यप्रद कार्य को देखा तथा साधुगण का पवित्र चरित सुना। राजा इक्ष्वाकु कुलनन्दन ने जिस धर्माचरण का पालन करके मुक्ति प्राप्त किया, उस धर्म का श्रवण करने के लिये मुझे कुतूहल हो रहा है। मैं भी इस विषय के प्रति श्रद्धावान् हूं। इसलिये कृपा करके विस्तृत रूप से मुझसे इस धर्म का वर्णन करिये।।२-४।।

श्रुतदेव उवाच

सम्यग्व्यवसिताबुद्धिस्तवराजर्षिसत्तम। वासुदेवप्रियान्धर्मांञ्छ्रोतुंयस्मान्मतिस्तव॥६॥
बहुजन्मार्जितं पुण्यं विना कस्यापि देहिनः। वासुदेवकथालापे मतिर्नैवोपजायते॥७॥
यूने राजाधिराजाय जातेयं मतिरीदृशी। शुद्धं भागवतं मन्ये तेनत्वां साधुसत्तमम्॥
तस्मात्तुभ्यं ब्रुवे सौम्य! धर्मान्भागवताञ्छुभान्।
याञ्ज्ञात्वा मुच्यतेजन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात्॥८॥

श्रुतदेव कहते हैं—"हे राजर्षिप्रवर! तुम्हारा मन वासुदेव कथाकलाप में सम्यक्रूप से संलग्न हो गया है। क्योंकि तुम वासुदेव के प्रिय धर्म को सुनने के लिये कुतूहल से भरे हो। हे राजन्! अनेक जन्मों का अर्जित पुण्य यदि संचित न रहे, तब तो कोई भी देहधारी मानव वासुदेव कथा श्रवणार्थ तत्पर नहीं होगा। उसकी वासुदेव कथा के प्रति रुचि नहीं रहती। तुम युवा तथा राजर्षि हो, तथापि तुम्हारे मन में जो यह जानने की जिज्ञासा है तथा तुममें ऐसा ज्ञान उदित है, तभी मैं तुमको साधुश्रेष्ठ एवं विशुद्ध भगवद्भक्त मानता हूं। हे सौम्य! तुम साधुजनों में भी श्रेष्ठ हो। इसलिये मैं तुम्हारे समक्ष शुभ भागवत धर्म का वर्णन करता हूं।।५-८।।

यथा शौचं यथा स्नानं यथा सन्ध्या च तर्पणम्।
अग्निहोत्रं यथा श्राद्धं तथा वैशाखसत्क्रिया॥९॥

वैशाखे माधवे धर्मानकृत्वा नोर्ध्वगो भवेत्।
न वैशाखसमोधर्मो धर्मजातेषु विद्यते॥१०॥

जैसे धर्मसमूह में शौच, स्नान, सन्ध्या, तर्पण, अग्निहोत्र तथा श्राद्ध है, इस वैशाख का भी उत्तम क्रियासमूह तदनुरूप ही है। माधवप्रिय वैशाख मास में बिना धर्मकार्य सम्पन्न किये कोई भी स्वर्ग की प्राप्ति नहीं कर सकता। धर्मों में भी वैशाख ऐसा धर्म कोई नहीं है।।९-१०।।

सन्त्येव बहवो धर्माः प्रजाश्चाराजका इव। उपद्रवैश्च लुप्यन्ति नात्रकार्याविचारणा॥११॥
सुलभाः सकलाधर्माःकर्तुंवैशाखचोदिताः। उदकुम्भंप्रपादानंपथिच्छायादिनिर्मितिः॥१२॥
उपानत्पादुकादानं छत्रव्यजनयोस्तथा। तिलयुक्तमधोर्दानं गोरसानां श्रमापहम्॥१३॥
वापीकूपतडागादिकरणं पथिकाश्रयम्। नारिकेलेक्षुकर्पूरकस्तूरीदानमेव च॥१४॥
गन्धानुलेपनं शय्याखट्वादानं तथैव च। तथा चूतफलं रम्यमुर्वारुकरसायनम्॥१५॥
दानं दमनपुष्पाणां तथा सायं गुडोदकम्। चित्राण्यन्नानिपूर्णायांदध्यन्नंप्रत्यहंतथा॥१६॥
ताम्बूलस्य सदा दानं चैत्रदर्शे करीरकम्। रवावनुदिते सूर्ये प्रातः स्नानं दिनेदिने॥१७॥
मधुसूदनपूजा च कथायाः श्रवणं तथा। अभ्यङ्गवर्जने चैव तथा वै पत्रभोजनम्॥१८॥
मध्येमध्ये श्रमार्तानां वीजनं व्यजनेन च। सुगन्धैः कोमलैः पुष्पैःप्रत्यहं पूजनं हरेः॥१९॥
फलं दध्यननैवेद्यं धूपदीपौ दिनेदिने। गो ग्रासं वृषपत्नीनां द्विजपादावनेजनम्॥२०॥

अराजक प्रजा की तरह अनेक अन्य धर्म भी हैं, तथापि ये सभी धर्म उपद्रव जन्य ही हैं (अर्थात् अनेक प्रकार के धार्मिक अन्य कार्य हैं, तथापि इनसे शाश्वती शान्ति नहीं प्राप्त होती।) वैशाख मास हेतु जो भी धर्म कहे गये हैं, वे सभी सुलभ हैं तथा आसानी से सम्पन्न किये जा सकते हैं। हे राजन्! जलपूर्ण घट, एक जोड़ी पादुका-छाता-पंखा-तिलयुक्त मधु-श्रमहारी दुग्ध-नारियल-ईख-कपूर-कस्तूरी-गन्ध-लेपन-शस्य-खाट-आम्रफल-रम्य उर्वारुक-रसायन तथा दमनक (दोना) पुष्प प्रदान करना, मार्ग में छायाप्रद स्थान निर्माण, पथिकों के लिये आश्रयरूप वापी-कूप-तड़ागादि खुदवाना, यह सब कार्य वैशाख हेतु प्रशस्त कहे गये हैं। वैशाख में सायंकाल शरबत प्रदान करें। पूर्णिमा के दिन अन्न, नित्य दधियुक्त अन्न तथा ताम्बूल दान करें। चैत्रीय अमावस्या के दिन जलपूर्ण कलस दान, वैशाख में नित्यप्रति सूर्योदय के पहले प्रातःस्नान, मधुसूदन की पूजा, उनकी पुण्य कथा सुनना, यह सब कर्त्तव्य है। वैशाख-मास में अभ्यंग न लगाये। पत्ते में भोजन करे, बीच-बीच में मार्ग में थके लोगों को पंखा झलना, नित्य सुगन्धित कोमल पुष्पों से हरि की अर्चना करना, हरि के उद्देश्य से गौओं को प्रतिदिन गौग्रास प्रदान करना, फल-दधि युक्त अन्न, नित्य धूप-दीप निवेदन, वनस्पति तथा द्विजगण के पादप्रक्षालनार्थ जल देना, यह सब वैशाख में करे।।११-२०।।

गुडनागरदानं च धात्रीपिष्टप्रदापनम्। पथिकानां प्रश्रयं च दानं तन्दुलशाकयोः।
एते धर्माः प्रशस्ता हि वैशाखे माधवप्रिये॥२१॥

गुड़युक्त सोंठ, आंवलाचूर्ण, तण्डुल, शाक, प्रदान करना, पथिकों को आश्रय देना, यह सब कार्य माधवप्रिय वैशाख मास में प्रशस्त है।।२१।।

तथा च विष्णोः कुसुमार्पणं हरेः पूजाचकालोचितपल्लवाद्यैः।
दध्यन्ननैववेद्यनिवेदनञ्च समस्तपापौघविनाशहेतुः॥२२॥
नारी पुष्पैर्माधवं नाऽर्चयेद्या कालोत्पन्नैर्मन्दिरे वा गृहे वा।
पुत्रं सौख्यं क्वाऽपि नाऽऽप्नोति हन्ति चायुर्भर्तुः स्वात्मनो वा महात्मन्॥२३॥
रमासहाये माधवे मासि विष्णौ परीक्षायै धर्मसेतोः प्रजानाम्।
गृहं याते मुनिभिर्दैवतैश्च काले पुष्पैर्नार्चयेद्यस्तु मूढः॥२४॥
समूढात्मा रौरवम्प्राप्य पश्चाद्यायाद्योनिं राक्षसीं पञ्चवारम्।
जलं चान्नं सर्वदा देयमस्मिन्क्षुधार्तानां प्राणिनां प्राणहेतुः॥२५॥
तिर्यग्जन्तुर्जायते वार्यदानादन्नादानाज्जायते वै पिशाचः।
अन्नादाने चाऽनुभूतां कथान्ते ह्यहं वक्ष्ये चाद्भुताम्भूमिपाल!॥२६॥

वैशाख में विष्णु को पुष्पार्पण, उस ऋतु में उत्पन्न पल्लवों से उनकी पूजा, दधियुक्त अन्न का नैवेद्यार्पण करने से सभी पापों का नाश होता है। हे महात्मन्! वैशाख मास में जो स्त्री गृह अथवा मन्दिर में उस काल में उगे पुष्पों तथा पल्लवों से हरिपूजन नहीं करती, उसे कदापि पुत्र एवं सुख नहीं मिलता। उसके स्वामी की तथा स्वयं उसकी आयु का क्षय होता है। धर्मसेतु रूप हरि देवी रमा एवं देवता और मुनिगण के साथ वैशाख मास में प्रजा की परीक्षा लेने घर-घर में आते हैं। जो मूर्ख मानव कालोचित पुष्पादि द्वारा उनका पूजन नहीं करता, वह मूढ़ रौरव नरक में पतित होता है। नरकभोग समाप्त करके वह पांच बार राक्षस होकर जन्म लेता है। इस मास में भूखे प्राणीगण के लिये प्राणस्वरूप जल तथा अन्न का सतत् दान करना चाहिये। जो मनुष्य वैशाख में जलदान नहीं करता, वह तिर्यक् योनि में जन्म लेता है। जो वैशाख में अन्नदान नहीं करता, वह पिशाच होकर जन्म लेता है। हे भूमिपाल! मैं स्वयं वैशाख मास के अन्न दान के अद्भुद् फल का अनुभव करता हूं। मैं तुमसे वही अद्भुद् वृत्तान्त का वर्णन करता हूं।।२२-२६।।

रेवातीरे मत्पिताऽभूत्पिशाचः स्वमांसाशा क्षुत्तृषाश्रान्तगात्रः।
छायाहीने शाल्मलीवृक्षमूले ह्यन्नाभावान्नष्टचैतन्य एषः॥२७॥
क्षुधा तृषा कर्मणा यस्य बह्वी सूक्ष्मं छिद्रं कण्ठनालस्य चाऽऽसीत्।
मांसं चान्तः कण्ठमध्ये निषण्णं कुर्यात्पीडां प्राणपर्यन्तमेव॥२८॥
जलं दृष्ट्वा कालकूटप्रकल्पं कौप्यं शीतं वाऽपि कासारसंस्थम्।
तस्यास्तीरे चागतं दैवयोगाद्गङ्गायात्राकारणान्मार्गमध्ये॥२९॥

रेवा नदी के तट पर मेरे पिता पिशाच योनि में निवास करते थे। जब क्षुधा-तृष्णा से उनका शरीर क्लान्त होता, तब वे स्वयं अपना ही मांस खाते। रेवा तट पर एक शाल्मली वृक्ष था। वे उसी वृक्ष के नीचे निवास करते थे। दैवयोग से वे एक दिन अन्न के अभाव से चेतनाहीन हो गये। जब उनकी भूख-प्यास अत्यन्त बढ़ गयी, तब उन्होंने कण्ठ में एक टुकड़ा मांस छोड़ा। मेरे पिशाचरूप पिता अत्यन्त प्यासे थे, इसी कारण

वह मांस का टुकड़ा उनके सूक्ष्म कण्ठ छिद्र में फंस गया, जिसके कारण उनको प्राणान्तकारी यन्त्रणा होने लगी। तब वे जल खोजते हुये कूप तथा सरस्वती के निकट आये। उनकी दृष्टि पड़ते ही वहां का शीतल जल कालकूट के समान हो गया! हे राजन्! मैं उस समय अपने घर से गंगा स्नानार्थ निकला और मार्ग भटक जाने के कारण उसी सरस्वती तट पर पहुंच गया।।२७-२९।।

दृष्ट्वाऽद्भुतं शाल्मलीवृक्षमूले त्रुट्वा त्रुट्वा भक्षयन्तं स्वमांसम्।
क्रोशन्तं तं बहुधा शोचमानं क्षुधातृषाव्याधितं कर्मभिः स्वैः।।३०।।
स मां हन्तुं प्राद्रवत्पापकर्मा मत्तेजसा निहतो दुद्रुवे च।
तं चाऽब्रवं कृपया क्लिन्नचित्तो मा भैष्टं त्वं ह्यभयं मे हि दत्तम्।।३१।।

उस शाल्मली वृक्ष के नीचे मैंने एक विस्मय जनक घटना देखी! मेरे पिशाचरूपी पिता अपने ही मांस को काटकर खाते जा रहे थे। वे कभी-कभी अपने कर्मों से प्राप्त क्षुधा-तृष्णा रूपी व्याधि से पीड़ित होकर अत्यन्त चीत्कार किये जा रहे थे। तदनन्तर मेरे वे पिता मेरा वध करने के लिये दौड़ पड़े, लेकिन मेरे तेज से पराभूत होकर भाग गये। उनकी दुर्दशा देखकर मेरा हृदय दया से भर उठा। पहले तो मुझे यह ज्ञान ही नहीं था कि ये मेरे पिता ही हैं। मैंने उनसे कहा—"हे तात! मुझसे भय न करो। मैं अभयदान देता हूं।"।।३०-३१।।

कस्त्वं तात! ब्रूहि सद्योऽत्र हेतुं कृच्छ्रादस्मान्मोचये मा विषीद।
इत्युक्तो मां प्राह पुत्रं त्वजानन्पुरानर्ते भूवराख्ये पुरे च।।३२।।
नाम्ना मैत्रः साङ्कृतेर्गोत्रजोऽहं तपोविद्यादानयज्ञादिनिष्ठः।
मयाऽधीताध्यापिताः सर्वविद्याः कृतो मया सर्वतीर्थऽवगाहः।।३३।।
दत्तं नाऽन्नं मासि वैशाखसञ्ज्ञे लोभाद्भिक्षामात्रमप्येव काले।
शोचे चाऽहं प्राप्य पैशाचयोनिं नाऽन्यो हेतुः सत्यमेवोक्तमङ्ग!।।३४।।
पुत्रोऽधुना वर्तते मद्गृहे च भूरिख्यातिः श्रुतदेवाऽभिधानः।
वाच्या तस्मै मद्दशा चाऽऽत्मजाय वैशाखान्नादानतोऽभत्पिशाचः।।३५।।

"आप अपना परिचय दीजिये। मैं आपके पिशाच होने का कारण जानकर भले ही कितना कठिन हो, आपको शीघ्र मुक्त कर दूंगा।" मेरे यह कहने पर वह पिशाचरूपी पिता मुझसे कहने लगे—"मैं पूर्वकाल में आनर्त्तदेशीय 'भुवर' नामक नगर में निवास करता था। तब मेरा नाम मैत्र था मेरी उत्पत्ति साङ्कृति गोत्र में हुई थी। मैं सतत् जप-तप-दान-विद्या-यज्ञादि में रहता तथा सभी विद्याओं का अध्ययन, अध्यापन तथा तीर्थस्नान करता रहता था, तथापि मैंने लोभ के कारण वैशाख मास में अन्नदान तो दिया ही नहीं, एक मुट्ठी भिक्षा भी किसी को प्रदान नहीं किया। हे द्विज! इसी कारण मुझे शोचनीय पिशाच योनि मिली है। मैं इसी में दुःख भोग रहा हूं। मैं सत्य कह रहा हूं। मुझे पिशाच शरीर प्राप्त होने का इसके अतिरिक्त अन्य कारण नहीं है। सम्प्रति मेरे गृह में मेरा पुत्र श्रुतदेव विद्यमान है। उसकी ख्याति भी यथेष्ठ है। तुम उसके पास जाकर यह कहो कि वैशाख में अन्न दान न करने के कारण मेरी यह पिशाचदेह प्राप्ति हो गयी है।"।।३२-३५।।

दृष्टस्तीरे ते पिता नर्मदाया नोर्ध्वं गतो वर्तते वृक्षमूले।
खादन्मांसं स्वीयमेवाऽन्वखिद्यत्पितुर्मुक्त्यै मासि वैशाखसञ्ज्ञे।।३६।।

प्रातः स्नात्वा पूजयित्वा च विष्णुं निर्व्याजान्मां तर्पयित्वा जलैश्च।
देयं चान्नं द्विजवर्ये गुणाढ्ये मुक्तो यो वै याति विष्णोः पदञ्च॥३७॥

"तुम जाकर श्रुतदेव से कहो—मैं तुम्हारे पिता को नर्मदा तट पर देखकर आ रहा हूं। उनको ऊर्ध्वगति नहीं मिली है। तुम अपने पिता की मुक्ति हेतु वैशाख में प्रातःस्नान करके विष्णुपूजन करो तथा अकपटपूर्ण चित्त से जल द्वारा उनका तर्पण करो। तदनन्तर श्रेष्ठ ब्राह्मणों को अन्नदान करो। इससे तुम्हारे पिता मुक्त होकर विष्णुलोक प्राप्त करेंगे।"।।३६-३७।।

इत्थं चोक्तं त्वत्पुरस्ताद्वदेति दया चैषा मत्कृते नाऽत्र शङ्का।
भद्रं भूयात्सर्वतो मङ्गलं ते श्रुत्वा चाऽहं भाषितं मे पितुश्च॥३८॥
दुःखात्कायं दण्डवत्पातयित्वा भृशार्तोऽहं पादयोर्भूरिकालम्।
निन्दन्निन्दन्भूर्यहं बाष्पनेत्रः पुत्रोऽहं ते तात! दैवागतोऽहम्॥३९॥
कर्मभ्रष्टो भूसुराणां विनिन्द्यो नाऽभूद्यस्मात्क्लेशमोक्षः पितॄणाम्।
आख्याहि त्वं कर्मणा केन मुक्तोभविता वै तत्करोमि द्विजेन्द्र!॥४०॥

"हे विप्र! तुम कोई शंका न करो। मेरी उपकार कामना हेतु मेरे द्वारा कथित संवाद मेरे पुत्र श्रुतदेव से कहना। इससे मेरा अत्यधिक उपकार तुम्हारे द्वारा सम्पन्न होगा। तुम्हारा सर्वप्रकार से मंगल हो।" हे राजन्! पिता का वाक्य सुनकर मैं दुःख से अत्यधिक सन्तप्त हो उठा। मैं कातर होकर उनके चरणों में दण्डवत् कुछ देर तक पड़ा रहा। तब मैंने अपनी निन्दा मन ही मन करते हुये अश्रुपूर्ण नेत्रों से उनसे कहा—"हे तात! मैं ही आपका पुत्र श्रुतदेव हूं। मैं अपने पितरों के दुःख को दूर नहीं कर पाया! इसी कारण मैं ब्राह्मणों में अतीव निन्दित तथा कर्मभ्रष्ट हूं। हे द्विजेन्द्र! अब बतायें कि किस कर्म से आपकी मुक्ति संभव होगी? मैं वही सम्पन्न करूंगा।"।।३८-४०।।

ततः प्राह प्रीतसर्वान्तरात्मा यात्रां कृत्वा शीघ्रमागत्य गेहम्।
प्राप्ते मासे मेषसंस्थे च भानौ निवेद्याऽन्नं विष्णवे त्वं गुणाढ्यम्॥४१॥
दानं देहि द्विजवर्ये महात्मंस्तस्मान्मोक्षो भविता सान्वयस्य।
पित्राऽऽदिष्टः कृतयात्रः स्वगेहे प्राप्याऽकरं माधवे चाऽन्नदानम्॥४२॥
तस्मान्मुक्तो मत्पिता मां समेत्य यानारूढो ह्यभिनन्द्याऽऽशिषा च।
गतो लोकं श्रीपतेर्दुर्विभाव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः॥४३॥

यह सुनकर मेरा पिता का अन्तःकरण प्रसन्न हो गया। उन्होंने कहा—"हे महात्मन्! तुम शीघ्र यात्रा करके अपने घर जाओ तथा वैशाख मास आने पर नाना गुणयुक्त अन्न विष्णु के उद्देश्य से निवेदित करके श्रेष्ठ ब्राह्मणगण को प्रदान करो। हे पुत्र! यह करने से मेरी मुक्ति होगी।" जब पिता ने यह आदेश दिया, तब मैं अपने गृह वापस लौट आया। तदनन्तर वैशाख मास आने पर उनके आदेशानुसार मैंने अन्नदान किया। इससे मेरे पिता मुक्त होकर दिव्यविमानारूढ़ हो मेरे पास आये। उन्होंने आशीर्वचन से मेरा अभिनन्दन किया। तदनन्तर मुझे आशीर्वाद देते हुये वे वहां चले गये, जहां चले जाने पर पुनरागमन नहीं होता।।४१-४३।।

तस्माद्दानं सर्वशास्त्रेषु चोक्तं तुल्यं प्रोक्तं धर्मसारं सुधर्म्यम्।
किमन्यत्ते श्रोतुमिच्छा वदस्व श्रुत्वा सर्वं ते वदामीति सत्यम्।।४४।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमास-माहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे पिशाचमोक्षप्राप्तिर्नाम सप्तमोऽध्यायः।।७।।

हे राजन्! इसी कारण सभी शास्त्रों में अन्नदान को उत्तम दान कहा गया है। मैंने तुमसे शोभन धर्मयुक्त धर्म के सारतत्व अन्नदान का वर्णन किया। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो? तुम्हारा प्रश्न सुनकर मैं वह सब कहूंगा।।४४।।

।।सप्तम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अष्टमोऽध्यायः

दक्षयज्ञ विध्वंस, सती शिव संवाद, कामदाह तारकासुर वध का उद्योग, पार्वती जन्म

मैथिल उवाच

ब्रह्मन्निक्ष्वाकुतनयो जलादानाच्चचातकः। त्रिवारमभवत्पश्चान्मद्गृहेगोधिका तथा।।१।।
कर्मानुगुणमेतद्धियुक्तं तस्याऽकृतात्मनः। सतामसेवनात्तस्य गृध्रत्वं सारमेयता।।२।।
सप्तवारमिति प्रोक्तं तन्मे भाति च नोचितम्। सन्तोनदूषितास्तेननतथाकृपणाअपि।।३।।
तस्मादसेविनस्तस्य फलाऽभावोभवेद्ध्रुवम्। नानर्थकरणाभावादिदं हिपरपीडनम्।।४।।
अनिमित्तमिदं कस्मात्कुयोनित्वमवाप्तवान्।
तदेतं संशयं छिन्धि शिष्यस्याऽऽत्मप्रियस्य च।।५।।
इति राज्ञा सुसम्पृष्टःश्रुतदेवो महायशाः। साधुसाध्वितिसम्भाष्यवचोव्याहर्तुमादधे।।६।।

मिथिलाराज कहते हैं—हे ब्रह्मन्! इक्ष्वाकुपुत्र काकुस्थ ने जलदान न करके तीन जन्म चातक का व्यतीत किया। तदनन्तर मेरे गृह में गृहगोधिका होकर जन्म लिया, यह अकृतात्मा के कर्मानुरूप ही हुआ। उन्होंने जो गृध्र एवं श्वान योनि प्राप्त किया था, वह भी साधुजन की सेवा न करने के कारण था। यह भी मुझे उनका अनुचित कार्य नहीं लगा। उन्होंने जो साधुगण को धनदान नहीं किया, यह भी उनके दूषित अथवा कृपण होने का परिचायक नहीं है। उन्होंने साधुगण की सेवा नहीं किया इससे तो उनको केवल फल नहीं मिला, तथापि

उन्होंने जो पंगु, विकलांग तथा दरिद्रों को दान नहीं दिया, भले ही वह अनर्थक हो, तथापि वह सब पर पीड़न की परिभाषा में नहीं आता। अतः यह सब कार्य अनिष्टकारी कैसे हो गया तथा वे कुयोनि में क्यों पड़ गये? मैं आपका प्रिय शिष्य हूं। मेरे इन सब संशयों का छेदन करें।'' राजा द्वारा यह प्रश्न पूछे जाने पर महायशस्वी द्विज श्रुतदेव ने 'साधु-साधु' शब्दद्वय का उच्चारण करके कहना प्रारंभ किया।।१-६।।

श्रुतदेव उवाच

श्रृणुराजन्प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टं तु त्वयाऽनघ!। शिवायै चशिवेनोक्तंकैलासशिखरेऽमले।।७।।
सृष्ट्वेमान्सकलाँल्लोकान्पश्चात्तेषामवस्थितिम्।
आमुष्मिकीमैहिकीञ्च द्विविधां पर्यकल्पयत्।।८।।
हेतुत्रयञ्च प्रत्येकं हेतुस्थित्यै महाप्रभुः। जलसेवा चान्नसेवा सेवा चैवौषधस्य च।।९।।
यत्र चैते महाभाग! ह्यैहिकस्थितिहेतवः। एवमामुष्मिके राजंस्त्रयएवेरिताः श्रुतौ।।१०।।
साधुसेवा विष्णुसेवा सेवाधर्मपथस्य च। पुरा सम्पादिता ह्येते परलोकस्य हेतवः।।११।।

श्रुतदेव कहते हैं—हे निष्पाप! तुमने जो प्रश्न किया है, उसका उत्तर कहता हूं सुनो! हे राजन्! पूर्वकाल में विमल कैलासशिखर पर शिव ने पार्वती से इस विषय का इस प्रकार से वर्णन किया था। विधाता ने लोकों का सृजन करके उसमें ऐहिक तथा पारत्रिक द्विविध स्थिति की कल्पना किया। हे महाभाग! महाविभु भगवान् विष्णु ने जलसेवा, अन्नसेवा तथा औषधिसेवा रूपी त्रिविध सेवा की ऐहिक एवं पारत्रिक स्थिति के हेतुरूप का निदर्शन किया। हे साधो! श्रुति का कहना है कि जैसे जलसेवा आदि ऐहिक रूप से यहां के लोगों तथा प्राणियों की सेवा का कारण है, वैसे ही साधु सेवा, विष्णु सेवा तथा धर्मपथ की सेवा पारत्रिक स्थिति की सेवा रूप है। ये तीनों पारत्रिक स्थिति के हेतुरूप हैं। पारलौकिक स्थिति के लिये ये हेतुत्रय पूर्वकाल में निर्दिष्ट हैं।।७-११।।

गृहे सम्पादितं यद्वत्पाथेयं पद्धतौ यथा। ऐहिका हेतवो राजन्सद्यः सम्पादितार्थदाः।।१२।।
किं चेष्टमपिसाधूनांमनसोयदिदृस्सहम्। कुतश्चित्कारणाद्राजंस्तच्चानर्थायकल्पते।।१३।।
अप्रियं किमु वक्तव्यं दुःखहेतुरिति स्फुटम्। अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासंपुरातनम्।।१४।।

हे राजन्! जैसे मार्ग में पाथेय का प्रयोजन है, गृह में भी तद्रूप ऐहिक स्थिति हेतु जलसेवा आदि सेवा का प्रयोजन है। गृह में ऐहिक स्थिति को दृढ़ करने हेतु उक्त जल सेवा-अन्न सेवा तथा औषधि सेवा अनुष्ठित होने पर सद्यः समस्त अभीष्ट सिद्धि हो जाती है। हे राजन्! साधु तथा उत्तम चेष्टा करने पर भी यदि किसी कारण से वह साधुजन को असह्य हो जाती है तब उससे साधुजन में क्रोध उत्पन्न होने के कारण वह अप्रिय कार्य दुःख को उत्पन्न करने वाला हो जाता है। इस विषय में विस्तार से और क्या कहूं? इसलिये एक पुरातन इतिहास का उदाहरण सुनो।।१२-१४।।

पापघ्नं महदाश्चर्यं श्रृण्वतां रोमहर्षणम्। यज्ञदीक्षामुपगतः पुरा दक्षः प्रजापतिः।।१५।।
आह्वानार्थं भूतपतेरगमद्रजताचलम्। तं दृष्ट्वा नोत्थितः शम्भुस्तस्यैव हितकाम्यया।।१६।।
सर्वामरगुरुश्चाऽहं छन्दोगम्यः सनातनः। भृत्या ह्येतेबलिहराश्चन्द्रेन्द्राद्याः सुरेश्वराः।।१७।।

स्वामी भृत्याय नोत्तिष्ठेत्स्वभार्यायै पतिस्तथा।
गुरुः शिष्याय नोत्तिष्ठेदिति शास्त्रविदां मतम्॥१८॥
नसम्बन्धो गुरुत्वेचकारणंत्वितिवैश्रुतिः। बलंज्ञानंतपःशान्तिर्यत्रचैवाऽधिकम्भवेत्॥१९॥

यह इतिहास पापनाशक, महाश्चर्यमय तथा सुनने में रोमहर्षण है। प्राचीन काल में प्रजापति दक्ष यज्ञदीक्षित होकर शम्भु का निमन्त्रण करने पर्वतराज कैलास गये। शंभु ने उनको देखा तथा वे उनकी हितकामना के कारण उन दक्ष को देखकर भी खड़े नहीं हुये। उन्होंने विचार किया कि "यद्यपि दक्ष मेरे श्वसुर हैं, तथापि ये मेरे शिष्य हैं। क्योंकि मैं आगमसमूह का गुरु हूं। मैं वेदगम्य तथा सनातन हूं। चन्द्र-इन्द्रादि देवता मेरे भृत्य हैं तथा मुझे बलि प्रदान करते हैं। शास्त्रकारों का कथन है कि प्रभु कदापि भृत्य को देखकर उठकर उसका सम्मान न करें तथा गुरु भी शिष्य को देखकर उठकर सम्मान न करे। श्रुति का कथन है कि केवल सम्वन्ध ही गुरुत्व (ज्येष्ठता) का कारण नहीं है। जिसमें बल, ज्ञान, तप, शान्ति विद्यमान है, वह लौकिक सम्बन्ध में लघु होकर भी वास्तव में लघु न होकर ज्येष्ठ ही है। अन्य प्राणी भी ऐसे ज्ञानशक्ति सम्पन्न पुरुष का दासत्व ग्रहण करते हैं। स्वामी भृत्य को देखकर न उठे, पति भार्या को देखकर तथा गुरु शिष्य को देखकर उसके आदर हेतु न उठे। यह शास्त्रज्ञ कहते हैं।।१५-१९।।

स गुरुश्चेतरेषां च नीचा ईयुश्च प्रेष्यताम्।
उत्तिष्ठन्ति च स्वाम्याद्या भृत्यादीन्यदि चाऽऽग्रहात्॥२०॥
आयुर्वित्तं यशस्तेषां सद्योनश्यतिसन्ततिः। तस्मादहंतुनोत्तिष्ठेप्रियोऽयंश्वशुरोमम्॥२१॥

जो प्रभु हैं यदि वे आग्रह के साथ भृत्य एवं शिष्य को देखकर स्वागतार्थ उठते हैं, तब उनकी अर्थात् भृत्य शिष्यादि की आयु-वित्त तथा यश तत्काल नष्ट होता है। यह दक्ष मेरे श्वशुर तो हैं अतः प्रिय हैं। मेरा कर्त्तव्य है इनका प्रिय करना।।२०-२१।।

इति तस्य हितान्वेषी नोच्चचालाऽऽसनाद्विभुः।
नोत्थितं तु मृडं दृष्ट्वा कुपितोऽभूत्प्रजापतिः॥२२॥
अनिन्ददबहुधा तस्मै पुरतो गिरिजापतेः। अहो दर्पमहो दर्पं दरिद्रस्याऽकृतात्मनः॥२३॥
यस्यवित्तं बहुवया वृषश्चर्मावशेषितः। अत एव कपालास्थिधरः पाखण्डगोचरः॥२४॥
वृथाऽहङ्कारिणोदैवंकुतोदास्यतिमङ्गलम्। लोकेकृत्येनकर्माणिशुचीनीतिविदोविदुः॥२५॥

विभु शम्भु ने इस प्रकार चिन्तन किया तथा दक्ष का हित सोचकर अपने आसन से नहीं उठे; क्योंकि शंभु दक्ष से वरिष्ठ हैं अतः उनके उठकर स्वागत करने से दक्ष का आयु-वित्त तथा यश का नाश होता। लेकिन प्रजापति दक्ष ने यह सोचा कि "यह मूढ़ जामाता मुझे देखकर नहीं उठा।" इस विचार के साथ दक्ष कुपित हो गये तथा उन्होंने उन पार्वती पति के समक्ष ही उनकी निन्दा करना प्रारंभ किया। दक्ष कहते हैं—अहो! इसका कितना घमण्ड है, इस अकृतात्मा दरिद्र को कितना गर्व है? इसकी सम्पत्ति मात्र इसका बूढ़ा बैल मात्र है। वह वृष भी अस्थिचर्मावशिष्ठ कंकाल मात्र है। इसका आभूषण है मरे आदमियों का कपाल। यह अस्थि कपालधारी पाखण्डी देखने योग्य भी नहीं है। यह व्यर्थ अहंकार करने वाला है। अतएव इसे दैवमंगल प्रदान

करने का सामर्थ्य कहां है? नीतिविद कहते हैं कि त्रैलाक्य में जो उत्तम कर्म करें उनका पवित्र रहना कर्त्तव्य है।।२२-२५।।

धत्ते दरिद्रः शीतार्तःपवित्रंचगजाजिनम्।श्वेशमश्मशानंयस्यस्याद्भुजङ्गःकिलभूषण्।।२६।।
न धीरताऽपिच ज्ञानंवृकात्तस्मात्पलायिते। भूतप्रेतपिशाचादिदुर्जनैःसङ्गतोऽनिशम्।।२७।।
न कुलं श्रूयते क्वाऽपि नाऽसौ वैसाधुसम्मतः। वृथाविश्रम्भितः पूर्वंनारदेनदुरात्मना।।२८।।

जो दरिद्र है, वस्त्र न होने के कारण शीतार्त्त हैं वह पवित्र गजचर्म धारण करें। लेकिन इसे देखा जा रहा है कि इसका निवास श्मशान में है, भूषण सर्प है, यह धैर्य एवं ज्ञानरहित है। वृक से भयभीत मृग जैसे भाग जाता है, उसी प्रकार धैर्य एवं ज्ञान इसके पास से पलायित हो गये हैं। भूत-प्रेत-पिशाचादि दुर्जनों के साथ इसका दिनरात निवास है। इसकी किसी वंश मर्यादा (वंश-परम्परा) को नहीं सुना गया है। यह साधु सम्मत भी नहीं है। पूर्व में दुरात्मा नारद ने झूठे वाक्य से मुझे ठग लिया।।२६-२८।।

येनाऽहं बोधितः प्रादां कन्यां चैतांसतीं मम। पृथग्धर्मगता चैषा सुखंवसतुतद्गृहे।।२९।।
नास्माभिःश्लघनीयोऽसौमत्सुताऽपिकथञ्चन।
यथाकुलालकलशश्चण्डालस्यवशंगतः।।३०।।

"मैंने उस दुरात्मा नारद के वाक्यों पर विश्वास करके अपनी पुत्री सती को इसके हाथों अर्पित कर दिया। अहा! मेरी पुत्री सती विधवा की तरह पतिविहीन होकर धर्म-कर्म का आचरण करके सुखपूर्वक गृह में रहे। यह शिव हमारे लिये कदापि आदरयोग्य नहीं है। विशेषतः इसी कारण से पुत्री सती भी उसी प्रकार से सम्मान के अयोग्य हो गयी। कुंभकार कुलाचक्र पर जितने भी कलसों का निर्माण करता है, वह पवित्र है, तथापि दैवात् किसी एक कलस को उसे ढेर में से यदि चाण्डाल स्पर्श कर लेता है, तब सभी कलस अपवित्र हो जाते हैं। यद्यपि कन्या सती का कोई दोष नहीं है, तथापि वह शिव संस्पर्श से दूषित हो गई।"।।२९-३०।।

इति दक्षो विमूढात्मा ह्युमांनाहूय तंमृडम्। बहुधा तंविनिर्भर्त्स्यतूष्णीमेवगृहंययौ।।३१।।
यज्ञवाटं ततो गत्वा ऋत्विग्भिर्मुनिभिः सह। ईजे यज्ञविधानेन निन्दन्नेव महाप्रभुम्।।३२।।
ब्रह्मविष्णू विहायैव सर्वे देवाः समागताः। सिद्धचारणगन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः।।३३।।
तदा देवी सती पुण्या स्त्रीचाञ्चल्यात्प्रलोभिता।
उत्सुका चोत्सवं द्रष्टुं बन्धूंस्तत्र समागतान्।।३४।।
निवार्यमाणारुद्रेणतरलास्त्रीस्वभावतः। प्रत्युक्ताऽपिपुनश्चैवगन्तव्यमितिनिश्चितम्।।३५।।

विमूढ़ात्मा दक्ष इस प्रकार से मोहित हो गया तथा उसने उमा एवं महेश्वर को निमन्त्रित नहीं किया, तथापि उलटे उसने शिव की निन्दा के उपरान्त मौनी होकर अपने गृह गमन किया। तत्पश्चात् दक्ष महाप्रभु महेश्वर की निन्दा करते हुये यज्ञक्षेत्र पहुंचे। मुनिगण ने वहां ऋत्विकों के साथ यज्ञीय विधान से यज्ञ का आरंभ किया। उनके यज्ञ में ब्रह्मा-विष्णु-शिव को छोड़कर सभी देवता, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा किन्नर पहुंचे। उस समय स्त्री सुलभ चंचलता से प्रलोभित पवित्र चरित्र वाली सती पिता के यज्ञोत्सव के दर्शन के लिये उत्सुक हो गयीं। उनके भाई प्रभृति बन्धु भी इस यज्ञ में आये थे। भाइयों के साथ उनकी भी भेंट होगी, यह सब सोचते

हुये देवी सती इतनी चंचल हो गयीं कि वे शिव द्वारा बारम्बार रोके जाने पर भी शिव से यह कहने लगीं कि "मैं अवश्य जाऊंगी।"।।३१-३५।।

स निन्दति संभामध्येसदामांवरवर्णिनि!। तच्चासह्यञ्चत्वंश्रुत्वाकायंसत्यंप्रहास्यसि।।३६।।
असह्यमपि सोढव्यं मयाऽपि गृहमिच्छता। मयायथा कृतंदेवि तथा त्वं नैववर्तसे।।३७।।
तस्मान्मा गच्छशालांवैनशुभं तु भवेद्ध्रुवम्। इत्येवं बोधितादेवीचापल्यंपुनरागमत्।।३८।।
निश्चक्रामसती गेहादेकाकी पादचारिणी। तां दृष्ट्वा वृषभस्तूष्णीं पृष्ठेदेवीमुवाहसः।।३९।।
कोटिशो भूतसङ्घाश्चह्यनुजग्मुः सतीं तदा। यज्ञवाटं तु सागत्वापत्नीशालां ययौपुरा।।४०।।
तूष्णीमास सतीं दृष्ट्वा खेदात्तस्माद्विनिर्गता।
पतिवाक्यं तु संस्मृत्य जगामोत्तरवेदिकाम्।।४१।।

शिव कहते हैं—"हे वरवर्णिनी! दक्ष ने सभा में मेरी प्रचुर निन्दा किया था। वह निन्दा तुम्हारे लिये असह्य है। तुम उस असहनीय निन्दा को श्रवण करके प्राणत्याग करोगी। मैं गृहधर्म पालनार्थ अनेक असहनीय को भी सहन कर सकता हूं। हे देवी! वह तुम नहीं कर सकती। इसलिये तुम यज्ञशाला में कदापि नहीं जाना। क्योंकि तुम्हारा यज्ञशाला में जाना शुभ नहीं है। यह ध्रुव है कि वहां जाना अशुभ होगा।" शिव जितना ही सती को समझाते थे, उनका चापल्य उतना ही बढ़ता जाता। वे पैंदल तथा एकाकी घर से बाहर निकल आईं। तब सती को पैंदल जाते देखकर वृष ने उनको अपनी पीठ पर बैठाया। तब करोड़ों-कराड़ों भूतगण उनके पीछे-पीछे जाने लगे। जब सती यज्ञशाला पहुंच कर वहां गयीं जहां उनकी बहनों के साथ अन्य रमणियां भी थीं। लेकिन सती को देखकर उन सबने मौन भाव का अवलम्बन ले लिया। बहनों ने सती के साथ बातचीत नहीं किया। तब सती खेदपूर्वक वहां से बाहर आईं। सती को अपने पति का वचन याद हो आया। सती वहां से निकल कर उत्तर वेदिका आईं।।३६-४१।।

पिता सभ्याश्च तां दृष्ट्वा स्थितास्तूष्णीं हताशिषः। सारुद्राहुतिपर्यन्तंपश्यन्तीपितृचेष्टितम्।
त्यक्त्वा रुद्रञ्च जुह्वन्तमुवाचाऽश्रुकुलेक्षणा।।४२।।

वहां सती के पिता दक्ष तथा अन्य सभ्यगण विद्यमान थे। वे भी निर्वाक् थे। किसी ने भी सती के साथ बात भी नहीं किया। देवी सती रुद्राहुति तक उसे देखती वहां स्थित थीं। उन्होंने देखा कि "पिता रुद्र का त्याग करके आहुति दे रहे हैं। यह देखकर देवी का नेत्र अश्रुपूर्ण हो गया। वे पिता से कहने लगीं।"।।४२।।

देव्युवाच

महदुल्लङ्घनं पुंसां नप्रायः श्रेयसे भवेत्। लोककर्ता लोकभर्ता सर्वेषां प्रभुरव्ययः।।४३।।
एवम्भूतस्य रुद्रस्य कथं नो दीयतेहविः। जातांनकिन्तेदुर्बुद्धिंहरन्त्यन्येसमागताः।।४४।।
न चेदृशा महात्मानः किमेषां विमुखोविधिः।।४५।।
इत्येवं भाषमाणां तां पूषा देवो जहास ह। श्मश्रूणां चालनं चक्रे भृगुर्हतशुभस्तथा।।४६।।
भुजपादोरुकक्षाणां स्फालनं चक्रिरे परे। बहुधा निन्दनं चक्रे तत्पिताहतभाग्यवान्।।४७।।

तच्छुक्त्वा रुद्रभार्या सा कोपाकुलितमानसा। प्रायश्चित्तंश्रुतेःकर्तुं देहंतत्याजसासती।
होमाग्नौ वैदिकामध्ये सर्वेषामेव पश्यताम्॥४८॥

देवी कहती हैं—"महद् व्यक्ति का उल्लंघन किसी के लिये भी प्रायः श्रेयप्रद नहीं होता। रुद्रदेव लोककर्त्ता, लोकभर्त्ता, अव्यय तथा सबके प्रभु हैं। इसलिये प्रभाव सम्पन्न रुद्र को क्यों आहुति नहीं दे रहे हैं? लगता है आपमें दुर्बुद्धि का जन्म हो गया है। अथवा अन्य किसी ने आपको ऐसी कुबुद्धि देकर आपकी सद्बुद्धि का हरण कर लिया है! जिस किसी ने भी ऐसा किया है, वह कदापि महात्मा नहीं हो सकता। क्या उसके प्रति विधि विमुख तो नहीं हो गयी?" जब देवी यह कह रहीं थीं, तब पूषा ने उनका उपहास किया। भृगु ने मूछों पर ताव दिया। कोई भुजा तो कोई पैर तो कोई कांख थपथपाने लगा। सती के पिता ने भी सती की अनेक प्रकार से भर्त्सना किया। तदनन्तर रूपवती सती यह सब उपहास वाक्य सुनकर कुपिता हो गयीं। उन्होंने पति निन्दा सुनने के पाप का प्रायश्चित्त करने के लिये सबके देखते-देखते उसी होमाग्नि में प्राण त्याग कर दिया।।४३-४८।।

हाहाकारो महानासीद्दुद्रुवुः प्रमथा द्रुतम्। आचख्युर्देवदेवाय वृत्तान्तमखिलं तदा॥४९॥
तच्छुत्वा सहसोत्थाय रुद्रःकालान्तकोपमः। जटामुत्पाट्यहस्तेनभूतलेतामताडयत्॥५०॥
ततोऽभवन्महाकायो वीरभद्रो महाबलः। सहस्त्रबाहुरभवत्कलान्तकसमप्रभः॥५१॥

सती को होमाग्नि में गिरा देखते ही दर्शकों में हाहाकर होने लगा। प्रमथगण वहां से पलायित हो गये। किसी-किसी प्रमथ ने वहां से शीघ्रतापूर्वक भाग कर यह वृत्तान्त भगवान् शिव को सुनाया। कालान्तक के समान रुद्रदेव यह सुनकर सहसा उठे और अपने हाथ से अपने मस्तक की एक जटा उखाड़ा और धरती पर जोरों से फेंका। उस जटा से महाकाय कालाग्नि के समान प्रभायुक्त महाबली सहस्त्रबाहु वीरभद्र का प्रादुर्भाव हुआ।।४९-५१।।

बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा व्याजहारहरं तदा। मत्सृष्टिस्तु यदर्थंते तदर्थंमां नियोजय॥५२॥
इत्युक्तः प्राह तं क्रुद्धो धूर्जटिश्च पुरःस्थितम्॥५३॥
हन त्वं निन्दकं दक्षं यदर्थे मत्प्रिया हता। भूतसङ्घास्तु गच्छन्तु सहैतेन महाबलाः॥५४॥
इत्यादिष्टा भगवता ययुर्यज्ञसभां तदा। जघ्नुः सर्वान्महावीरान्देवासुरनरादिकान्॥५५॥
पूष्णश्च हसतो दन्ताञ्जटाभूश्च बभञ्ज ह। श्मश्रूण्युत्पाटयाञ्चक्रे भृगोतस्यस्दुरात्मनः॥५६॥
यद्यदास्फालितं पूर्वं तत्तच्चिच्छेद वीर्यवान्। ततो दक्षशिरो हर्तुं बहूद्योगं चकार ह॥५७॥

वीरभद्र अंजलिवद्ध (हाथ जोड़कर) होकर शिव से कहने लगे—"आपने मेरी सृष्टि जिस प्रयोजन से किया है, आप उस कार्य में मुझे नियुक्त करिये।" तब क्रोधित धूर्जटि शम्भु ने सामने खड़े वीरभद्र की प्रार्थना सुनकर कहा—"मेरी प्रिया सती ने जिसके कारण अपने जीवन का विसर्जन किया है, तुम उस निन्दक दक्ष का वध करो। महावली भूतगण भी तुम्हारे साथ ही चलें।" भगवान् भूतपति का यह आदेश सुनकर भूतगण के साथ वीरभद्र दक्ष प्रजापति के यहां पहुंचे। वहां पहुंच कर ये सभी वीर वहां उपस्थित देवताओं, असुरों तथा मनुष्यों का वध करने लगे। जिस पूषा ने सती का उपहास किया था, धूर्जटि शिव की जटा से उत्पन्न वीरभद्र ने उस पूषा के दांतों को उखाड़ लिया। दुरात्मा भृगु ने मूंछों पर ताव देकर मुंह चिढ़ाया था। वीरभद्र ने उसकी मूछों

को उखाड़ लिया। अन्य जिस जिसने अपने जिस अंग पर थपकी देकर सती का उपहास किया था, वीर्यवान् वीरभद्र द्वारा उसका वही अंग तोड़ दिया गया। तब वीरभद्र ने दुरात्मा दक्ष का शिर काटने का अनेक उपक्रम किया, तथापि मुनिगण के मन्त्रों से रक्षित दक्षमस्तक को वे नहीं काट सके।।५२-५७।।

मुनिमन्त्रप्रगुप्तं तु नैवं कृन्तति तद्बलात्। हरो ज्ञात्वातुचिच्छेदस्वयमेत्यदुरात्मनः।।५८।।
एवं मखगतान्हत्वा साऽनुगः स्वालयं यथौ। हतावशिष्टाः केचित्तुब्रह्माणं शरणंययुः।।५९।।

जब शिव को विदित हुआ कि मुनिगण के मन्त्रों के प्रभाव के कारण वीरभद्र अनेक प्रयत्न करके भी दक्ष के मस्तक को नहीं काट सक रहे हैं, तब वे स्वयं वहां आये। उन्होंने आकर दक्ष का मस्तक काटा तथा वहां उपस्थित यज्ञमण्डपस्थ सभ्यगण का वध करके अपने गणों के साथ अपने स्थान पर वापस आ गये। दक्ष यज्ञ में जो मरने से बचे थे, वे भयभीत होकर ब्रह्मा की शरण में पहुंचे।।५८-५९।

तैरन्वितो ययौ ब्रह्माकैलासंतुशिवालयम्। ततोरुद्रंसान्त्वयित्वावचोभिर्विविधैरपि।।६०।।
तेनैव सहितः प्रागाद्यज्ञवाटं महाप्रभुः। तेनैवोज्जीवयामास सर्वान्यज्ञसमागतान्।।६१।।
ख्यात्यै प्रादादजमुखं दक्षस्य तुतदा शिवः। अजश्मश्रूण्यदाच्छम्भुर्भृगवेतुमहात्मने।।६२।।
पूष्णश्च तन्तान्न प्रादात्पिष्टादञ्च चकार ह।
तदगङ्गानां व्यतिकरं केषाञ्चिदपि वै शिरः।।६३।।
शिवमापुश्च ते सर्वे ब्रह्मणा च शिवेन च। पुनः प्रवर्तितो यज्ञो यथापूर्वं महात्मनः।।६४।।

तब ब्रह्मा इन शरणागत लोगों को लेकर शिवालय कैलास धाम आये। ब्रह्मा ने नाना स्तुति वाक्यों से महेश्वर को सान्त्वना प्रदान किया। तब शान्तमूर्त्ति महेश्वर ने ब्रह्मा के साथ दक्षयज्ञस्थल में आकर वहां यज्ञ में आये उन सब को पुनः जीवित किया जो यज्ञविध्वंस में मारे गये थे। शिव ने अपनी प्रसिद्धि के लिये दक्ष को बकरे का शिर लगाकर जीवन दिया तथा भृगु की उखाड़ी गयी मूछों के स्थान पर उनको घोड़े की मूछों से युक्त कर दिया। उन्होंने दन्तविहीन किये गये पूषा को पुनः दांत प्रदान न करके उनको पिष्टक प्रदान करने का विधान किया। जिन अन्य लोगों के अंगों को वीरभद्रादि द्वारा तोड़ दिया गया था, उनके लिये भी अंगों का इसी प्रकार से भगवान् ने समीकरण किया। इस प्रकार ब्रह्मा एवं विष्णु के द्वारा सभी को जीवन मिला तथा उनका कल्याणसाधन हो गया। तदनन्तर पूर्ववत् महात्मा दक्ष का यज्ञ प्रारंभ हो गया।।६०-६४।।

यज्ञान्तेसर्वदेवाश्च जग्मुस्ते स्वयंस्वमालयम्। नैष्ठिकं ब्रह्मचर्यं तु कृत्वा रुद्रोमहातपाः।।६५।।
तेपे गङ्गातटे रुद्रः पुन्नागतरुमूलगः। दक्षात्मजासती देवी त्यक्तदेहा पतिव्रता।।६६।।
जज्ञे हिमाद्रेर्मेनक्यां ववृधे तस्य वेश्मनि। एतस्मिन्नेव माले तु तारकाख्योमहासुरः।।६७।।
स तीव्रतपसाऽऽराध्य ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्। अवध्यत्वं वरं वव्रे देवासुरनरोरगैः।।६८।।
आयुधैरस्त्रसङ्घैश्च सर्वैरेव महाबलैः। रुद्रपुत्रं विना दैत्यो ह्यवध्यः सकलैरपि।।६९।।

इस प्रकार देवगण ने यज्ञभाग ग्रहण किया तथा यज्ञ सम्पन्न होने पर सभी प्रसन्न चित्त से अपने-अपने स्थान पर लौट गये। इधर महातपस्वी शिव ने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया तथा गंगातट पर पुन्नाग वृक्ष के नीचे आसनासीन होकर महातप करने लगे। उधर पतिव्रता दक्षपुत्री ने दक्षयक्ष में अपना देहत्याग करने के

अनन्तर हिमालय की पत्नी मेनका के गर्भ से जन्म ग्रहण किया। इसी बीच तारक नामक एक महासुर ने तीव्र तप से परमेष्ठि ब्रह्मा से वर मांगा। तारक ने कहा—"देव, मनुष्य, असुर, सर्प तथा अन्य महाबली एवं विविध अस्त्र-शस्त्र से मैं अवध्य रहूं। यह कामना करता हूं।" तब ब्रह्मा ने उत्तर दिया—"हे दैत्य! आज से एकमात्र रुद्रपुत्र कार्त्तिकेय के अतिरिक्त तुम सबके लिये अवध्य रहोगे।"।।६५-६९।।

इति तस्मैवरंप्रादाद्ब्रह्मालोकपितामहः। अस्त्रीकत्वादपुत्रत्वाद्रुद्रस्येतितथास्त्विति।।७०।।

वरं गृहीत्वा स्वगृहं प्राप्य लोकान्वबाध ह।
दासा देवा मार्जनादौ दास्यो देव्यश्च तद्गृहे।।७१।।

ततस्तत्पीडिता देवा ब्रह्माणं शरणंययुः। तैःपीडांवर्णितांश्रुत्वावेधाःप्राहसुरानिदम्।।७२।।

वरप्रदानकालेऽहं रुद्रपुत्रं विना सुराः। नान्यैर्वध्य इति प्रादां वरं तस्मै दुरात्मने।।७३।।

पुरा सती रुद्रपत्नी सत्रे त्यक्तकलेवरा। जाता हिमवतः पुत्री पार्वतीति चयांविदुः।।७४।।

रुद्रो हिमवतः पृष्ठे तपश्चरति दुश्चरम्। योजयध्वं च पार्वत्या रुद्रं लोकेश्वरं प्रभुम्।।७५।।

जब लोकपितामह ने तारक को यह वर दिया, तब असुर मन ही मन सोचने लगा—"रुद्र की स्त्री भी नहीं है। पुत्र भी नहीं है। अतएव यह वर मेरे उपयुक्त है।" वर पाकर असुर ने "यही हो" कहकर ब्रह्मा द्वारा प्रदत्त वर को ग्रहण किया तथा अपने घर लौट आया। वहां वह विविध बाधा उत्पादन करके समस्त लोकों को पीड़ित करने लगा। महाअसुर तारक ने देवगण को दास रूप से तथा देवपत्नियों को दासी रूप में अपने महल की सफाई में नियुक्त किया। तदनन्तर देवगण इस प्रकार से अत्यन्त पीड़ित होकर ब्रह्मा की शरण में गये तथा सबने अपनी-अपनी दुर्दशा का वर्णन ब्रह्मा से किया। देवगण की दुर्गति को सुनकर ब्रह्मा देवताओं से कहने लगे कि "हे सुरगण! मैंने जब दुरात्मा तारकासुर को वर दिया था तब उसे यह वर प्रदान किया था कि रुद्रपुत्र के अतिरिक्त कोई भी तुम्हारा वध नहीं कर सकेगा। दक्षपुत्री सती ने पूर्वकाल में दक्षयज्ञ में जीवन त्याग कर दिया था। वे अब हिमालय की पुत्री रूपेण जन्मी हैं। सभी उनको पार्वती कहते हैं। रुद्रदेव भी हिमालय पर महान् तप कर रहे हैं। अब प्रभु लोकेश महेश्वर का पार्वती के साथ मिलन हो, तुम लोग वह उपाय करो।।७०-७५।।

पुनर्देवेन्द्रसदने सङ्गतैरमरेश्वरैः। धिषणेनाऽपि सम्मन्त्र्य देवेन्द्रः पाकशासनः।।७६।।

सस्मार च स कार्यार्थं नारदं स्मरमेवच। तत्राऽऽगतौततस्तौतुबलभिद्वाक्यमब्रवीत्।।७७।।

हिमवन्तं भगवान्गत्वा वचसा तं निबोधय। पुत्री तव प्राग्दक्षस्य हरपत्नी सुतासती।।७८।।

तपश्चरति ते शृङ्गे वियुक्ता दशकन्यया। मृडस्तस्य सपर्यायैविनियोजयतत्प्रियाम्।।७९।।

तस्यैव पत्नी भविता स एव भविता पतिः।
इत्याऽऽदिष्टो मघोना च नारदोपेत्य तं गिरिम्।।८०।।

तथैव कारयामास देवेन्द्रणोदितं यथा। पश्चात्कामं समाहूय मघवानिदमाह च।।८१।।

तदनन्तर ब्रह्मा के आदेशानुसार देवगण देवेन्द्रभवन पर आये तथा पाकशासन देवेन्द्र ने बृहस्पति के साथ मन्त्रणा करके देवर्षि नारद और कामदेव का स्मरण किया। स्मरण मात्र से नारद वहां आये तथा देवराज ने पहले नारद से कहा—"हे देवर्षि! आप हिमालय के गृह में जाकर दक्षयज्ञ वृत्तान्त उनसे कहिये। आप उनको

यह समझायें कि आपकी कन्या गिरिजा पूर्वकाल में दक्षकन्या सती नाम से शंकर की पत्नी थीं। अब वे सती देह का त्याग करके आपकी कन्या के रूप में अवतीर्ण हुई हैं। शिव भी आपके ही शिखर पर तपस्या कर रहे हैं। हे गिरिराज! आपकी और जो दस कन्यायें हैं, आप उनके साथ अपनी प्रिय कन्या पार्वती को शंकर की सुश्रूषा में नियुक्त करिये। इस प्रकार पार्वती शिव को स्वामीरूपेण प्राप्त करेंगी तथा भूतपति शिव भी उनका पाणिग्रहण करेंगे।'' नारद ने इस प्रकार देवेन्द्र के आदेशानुसार हिमालय के पास गये। उन्होंने यही बातें हिमालय से कहा। तदनन्तर देवेन्द्र मदन से कहने लगे।।७६-८१।।

देवानां च हितार्थाय तथा मृडहिताय च। वसन्तेन समायुक्तो गत्वा रुद्रतपोवनम्।।८२।।

गुणान्विजृम्भयित्वा तु वासं तान्हृच्छयावहान्।

यदा सन्निहिता देवी पार्वती तु मृडस्य च।।८३।।

तदा प्रयुज्यत्वंबाणान्मोहयस्वमहाप्रभुम्। तयोस्तुसङ्गमेजातेकार्यंनोऽद्धाभविष्यति।।८४।।

इन्द्र कहते हैं—हे मदन! तुम अपने सहचर वसन्त को लेकर त्रिलोचन के तपोवन जाओ। वहां मदनोद्दीपक वसन्त का विकास कराओ। जब पार्वती भूतपति शंकर के पास आयें, तब तुम अपने पंचबाणों का प्रयोग करके महेश्वर में मोह का उत्पादन करो। तुम्हारे पंचबाणों के प्रभाव से वे परस्परतः मिलन करके हमारा कार्योद्धार (पुत्रोत्पत्ति द्वारा) करेंगे। हे कामदेव! इस प्रकार से जैसे हमारा उपकार सम्पन्न होगा, उसी प्रकार से महेश्वर भी उपकृत होंगे।।८२-८४।।

इत्यादिष्टः स्मरस्तूर्णं प्रतस्थे बाढमित्यथ। सवसन्तः सरतिकः सानुगस्तद्वनंययौ।।८५।।

अकाले तु वसन्तर्तुं जृम्भयित्वा स्वशक्तितः। तद्वने सर्वतोरम्येमन्दाऽनिलनिषेविते।।८६।।

कदाचिद्देवदेवोऽपि पार्वत्याश्च सपर्यया।

प्रीतः स्वाङ्कं समारोप्य किञ्चिद्व्याहर्तुमारभत्।।८७।।

देवेन्द्र का यह आदेश पाकर मदन ने कहा कि ''यथाशक्ति यत्न करूंगा''। इस प्रकार मदन हिमालय गये, वहां अपने सहचर वसन्त, पत्नी रति तथा ब्रह्मा आदि अन्य असुरों के साथ तपोवन गये। तपोवन में प्रवेश करके कामदेव ने अकाल में ही अपनी शक्ति द्वारा वसन्त का विकास किया तथा इस प्रकार वनभूमि में सर्वत्र मन्द-मन्द वायु प्रवाहित होने लगी। इस समय देवदेव शंकर भी पार्वती की सुश्रूषा से प्रसन्न हो गये। वे पार्वती को अपनी गोद में लेकर कुछ कहने के लिये उद्यत हो गये।।८५-८७।।

प्राणप्रियासङ्गमस्य कालोऽमिति निश्चितः। पेशलं धनुरादाय स तस्थौहरपृष्ठतः।।८८।।

कृत्वा जवनिकां वृक्षं बाणमेकं मुमोच ह। द्वितीयमपि संधाय चक्रे मोक्तुं महोद्यमम्।।८९।।

अथ क्षुब्धमना भूत्वामृडश्चिन्तामवाप ह। न मे मनश्चलेत्क्वापि केनवाकश्मलीकृतम्।।९०।।

इतिचिन्ताकुलोवामेपार्श्वेकामंददर्श ह। क्रुद्धोन्मील्य ललाटाक्षंस्वाङ्काद्देवीमपास्यच।।९१।।

तस्याक्ष्णः समभूदग्निस्तीक्ष्णो लोकविभीषणः।

तेनदग्धोऽभवत्सद्यो मन्मथः सशरासनः।।९२।।

तब मदन ने प्राणप्रिया के संगम का उत्तम समय निश्चित जानकर (शिव प्रिया पार्वती के शिव से

मिलन का समय जानकर) एक अत्यन्त चंचल बाण उठाया तथा उनके पीछे स्थित एक वृक्ष की आड़ लेकर वह एक बाण शंकर पर छोड़ा। तदनन्तर द्वितीय बाण छोड़ने हेतु जैसे ही कामदेव उद्यत थे, तभी महेश्वर का मन क्षुब्ध हो गया। वे चिन्तित हो गये। उन्होंने विचार किया कि "मेरा मन तो कभी चंचल नहीं होता, यह किस कारण से चंचल हो गया?" यह विचार करके उन्होंने अपनी बायीं ओर देखा। वे देखते हैं कि कामदेव उनके वामपार्श में स्थित हैं। इससे शंभुदेव अत्यन्त क्रोधित हो गये। उन्होंने ललाटस्थ नेत्र खोलकर अपनी गोद से देवी पार्वती को हटाकर कामदेव की ओर देखा। उनके इस तृतीय नेत्र से लोकभीषण तीव्र अग्नि निकली तथा उसने धनुष के साथ मदन को भस्म कर दिया।।८८-९२।।

कार्यसिद्धिञ्च पश्यन्तो दुद्रुवुश्चामरादिवम्। शङ्कमानाः स्वदण्डञ्चवसन्तोरतिरेवच।।९३।।
निमील्य लोचने भीता देवी दूरं प्रदुद्रुवे। सन्निधानं स्त्रियोहर्तुं मृडोऽप्यन्तरधीयत।।९४।।
रुद्रस्येष्टं प्रकुर्वाणो देवश्च मनसो हितम्। लेभेऽनर्थमनिर्वृत्तं विप्रियंकुर्वतस्तुकिम्।।९५।।
तस्मादिक्ष्वाकुतनयः साधूनामप्रियः सदा।
तस्मादात्महितां सेवां नाकरोन्मन्दधीः सताम्।।९६।।
अनुभूतंमहद्दुखंतस्माद्दुर्योनिरेव च। तस्मात्कुर्यात्तुसाधूनांसेवांसर्वार्थसाधिनीम्।।९७।।
रुद्रस्याऽप्रियकारित्वात्स्मरोभाविनिजन्मनि। दुःखंतुबहुलं लेभेजन्मकालेमहाप्रभुः।।९८।।
इतिहासमिमंपुण्यंयेशृण्वन्तिदिवानिशम्। जन्ममृत्युजरादिभ्योमुच्यन्तेनाऽत्रसंशयः।।९९।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहिताया द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीष-सम्वादे दाक्षायण्यपमाने दक्षयज्ञविध्वंसपूर्वकपार्वतीजन्मादिकामदहनवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः।।८।।

अब देवगण ने अनुमान किया कि उनका कार्य सिद्ध हो गया। लेकिन वहां रुकने से शंकर से दण्ड मिलता, इस भय से देवता, रति तथा वसन्त वहां से भाग गये। देवी पार्वती भी भयभीत होकर वहां से पलायित हो गयीं। शंकर भी रमणी के साथ से बचने की कामना के कारण वहां से अन्तर्हित् हो गये। हे राजन्! विचार करो! इन्द्र तो रुद्र का प्रिय करने गये थे तथापि अत्यन्त अनर्थ ही प्राप्त हुआ। जब प्रिय करने के लिए उद्यत होने पर अनर्थ हो गया, तब उनका जो अप्रिय करना चाहेगा, उसका जो अमंगल होगा, उसे क्या कहा जाये? इक्ष्वाकु पुत्र ने दान आदि दिया था। वह पुण्यकार्य तो था, लेकिन दान उचित पात्र को न दिये जाने के कारण वह साधुजनार्थ अप्रिय ही था। जो मन्दबुद्धि होते हैं, वे कभी भी अपने हित को सम्पन्न करने वाले कार्य अर्थात् साधुसंग नहीं करते इसलिये उचित पात्र को दान न देने के कारण महादुःख मिला। उन्होंने साधु सेवा त्याग दिया। अतः उनको दुःख मिला तथा उन्होंने निकृष्ट योनि में जन्म लिया। अतः साधु सेवा अवश्य करें। कामदेव ने रुद्र के प्रति अप्रिय कार्य किया था। इसलिये अगले जन्म में उसे क्लेशों को भोगना पड़ा। जो मानव इस पुण्यमय इतिहास को पढ़ता है, वह जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि रहित हो जाता है।।९३-९९।।

।।अष्टम अध्याय समाप्त।।

नवमोऽध्यायः

रति विलाप, शंकर प्राप्ति हेतु पार्वती का तप, सरकण्डा के समीप कृत्तिकाओं का जाना, कुमारोत्पत्ति प्रंसग

मैथिल उवाच

तस्य दग्धस्य कामस्य कस्माज्जन्माऽभवद्विभो!।
किं दुःखमभवत्तस्मिन्कर्मणः सह लङ्घनात्।
एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मञ्छ्रुतुं कौतूहलं हि मे॥१॥

मिथिलापति कहते हैं—हे विभो! भस्मीभूत कामदेव ने किसका पुत्र होकर जन्म लिया तथा रुद्रदेव का तपलंघन करने से क्या दुःख कामदेव को मिला? हे ब्रह्मन्! इन सब विषयों को सुनने हेतु मुझे कुतूहल हो रहा है।।१।।

श्रुतदेव उवाच

कुमारजन्म वक्ष्यामि श्रवणात्पापनाशनम्॥२॥
यशस्यं पुत्रदं धर्म्यं सर्वरोगविनाशनम्। शम्भुनातु हते कामे तत्पत्नी रतिसञ्ज्ञिका॥३॥
मुमोह पुरतो दृष्ट्वापतिं भस्मावशेषितम्। जातसञ्ज्ञा मुहूर्तेन विललापच चित्रधा॥४॥
यद्विलापाद्वनं चापि समदुःखमभूत्तदा। तच्चिताग्नौ स्वकायंतुत्यक्तुकामाचमाधवम्॥५॥
पत्युः सखायं सस्मार कर्तुं तात्कालिकीं क्रियाम्।
स आगतश्चितिं कत्तुं वीरपत्न्या महाप्रभुः॥६॥
स तुत्रस्तःसखींदृष्ट्वाक्षणंमूर्च्छापरोऽभवत्। रतिंतुसान्त्वयामाससान्त्वैर्बहुविधैरपि॥७॥

श्रुतदेव कहते हैं—अब कुमार जन्म कहता हूं। इसे सुनने वालों के सभी रोग तथा पाप का नाश हो जाता है। उसे धर्म, पुत्र तथा यश का लाभ होता है। जब शंभु द्वारा कामदेव का वध हो गया, तब उसकी पत्नी रति अपने सामने कामदेव का भस्मावशेष देखकर मूर्च्छित हो गयी। तदनन्तर कुछ काल पश्चात् चैतन्य होते ही विलाप करने लगीं। उसके विलाप का क्या वर्णन करूं? वहां के वन की सुषभा भी उस क्रन्दन को सुनकर दुःखी हो गयी! तदनन्तर रति ने स्वामी की चिता पर ही अपना जीवन विसर्जित करने की इच्छा से तात्कालिक चिता बनाने आदि कार्य हेतु अपने पति के प्रिय सहचर वसन्त का स्मरण किया। स्मरण करते ही वसन्त उसके निकट आ गया। वह कामदेव की पत्नी रति की दुर्दशा देखकर खिन्न हो उठा तथा क्षण में ही स्तंब्ध सा होकर मूर्च्छित हो गया। तदनन्तर जब उसे चैतन्य की प्राप्ति हुई तब उसने अनेक सान्त्वना भरे वाक्यों द्वारा रति को समझाना प्रारंभ किया।।२-७।।

पुत्रतुल्योऽस्मितेभद्रेस्थितेमयिचनाऽर्हसि। कायंत्यक्तुंधर्महेतुमित्याद्यैर्बहुधाऽपिसा॥८॥

नैव स्थातुंमनश्चक्रेतेनसंस्तम्भितारतिः। दृष्ट्वादार्ढ्यंवसन्तोऽपिचितिञ्चक्रेसरित्तटे॥९॥
साऽवगाह्यद्युनद्यांच कृत्वाकार्याणिसर्वशः। सन्नियम्येन्द्रियग्रामंनिवेश्यात्मनिवैमनः॥१०॥
चितिमारोढुमारेभे ततो जाताऽशरीरवाक्। मा प्रवेशय कल्याणि! वह्निंपतिपरायणा॥११॥
भविष्यति च ते पत्युर्हराद्विष्णोश्च यादवात्। जन्मद्वयं क्रमेणैव तत्र चोत्तरजन्मनि॥१२॥

भैष्म्यां कृष्णान्महाविष्णोः प्रद्युम्नाख्यो भविष्यति।
वसिष्यसि त्वञ्च शापाद् ब्रह्मणः शम्बरालये॥१३॥
प्रद्युम्नाख्येन ते पत्या सङ्गतिश्च भविष्यति।
इत्युक्त्वा विरराामाऽथ वाणी चाऽऽकाशगोचरा॥१४॥

वसन्त कहता है—"हे भद्रे! मैं तो तुम्हारे पुत्र के समान हूं। मेरे रहते तुमको शरीर त्याग करना उचित नहीं है, यह शरीर ही धर्म का हेतु है।" वसन्त ने अनेक प्रकार से रति को समझाया, तथापि वह रति को आत्मदाह से नहीं रोक पा रहा था। रति ने कहा कि स्वामीविहीन होकर मैं क्षणकाल भी जीवित नहीं रहना चाहती। वसन्त ने भी उसके जीवनविसर्जन को निश्चित जानकर उसके लिये गंगातट पर चिता निर्माण प्रारंभ कर दिया। चिता निर्मित हो जाने पर रति ने जाह्नवी के निकट जाकर स्नान किया तथा शवपिण्ड प्रदान आदि कार्य को सम्पन्न करके उसने अपनी इन्द्रियों का संयमन किया। उसने आत्मा में मन को समाहित करके जैसे ही चिता पर आरोहण करना चाहा, तभी आकाश से एक दैववाणी ने कहा—"हे कल्याणी! तुम अग्नि प्रवेश न करो। तुम पतिपरायण हो। अतः तुम्हारे पति श्रीहरि यदुपति के पुत्र होकर जन्म लेंगे। वे क्रमशः जन्म लेकर उत्तर जन्म में, अर्थात् वे प्रभु कृष्ण के पुत्र रूप में रुक्मिणी के गर्भ से जन्म लेकर प्रद्युम्न के नाम से प्रसिद्ध होंगे। उस समय तुम ब्रह्मशाप के कारण शम्बरासुर के गृह में निवास करती रहोगी। वहीं प्रद्युम्न के साथ तुम्हारा मिलन होगा।" यह कहकर आकाशवाणी मौन हो गयी।"।।८-१४।।

श्रुत्वा तां तु निवृत्ताऽभून्मरणे कृतनिश्चया।
ततो देवाः समाजग्मुः स्वार्थे कामे हते हरात्॥१५॥

रत्या कृतं प्रपश्यन्तोगुर्विन्द्राग्निपुरागमाः। तां ते निवर्तयामासुर्वरेण महतासतीम्॥१६॥

मरण के लिये पूर्णरूपेण उद्यत रति ने जब पुनः पतिप्राप्ति की आकाशवाणी को सुना, तब वह अपने मरण संकल्प से निवृत्त हो गयी। तत्पश्चात् बृहस्पति, अग्नि तथा इन्द्रादि प्रमुख देवता वहां आये, क्योंकि कामदेव ने उनके ही कार्य को करते हुये मृत्यु का वरण किया था। उन देवगण ने सती की प्रशंसा किया। साथ ही उन सबने महासती रति को परम वर प्रदान किया।।१५-१६।।

अनङ्गोऽपिभवेत्साऽङ्गोमृतएवाऽक्षिगोभवेत्। इतितां तुविनिर्वर्त्यधर्मंचोपदिदेशिरे॥१७॥

सुरगण कहते हैं "हे सती! तुम्हारे पति अंनग (काम) अब मृत हैं। हमारे वर के कारण ये अनंग पुनः अंगयुक्त होकर तुम्हें प्रत्यक्ष होंगे।" देवगण ने रति को यह वर दिया, तदनन्तर उसे धर्मोपदेश भी प्रदान किया।।१७।।

पूर्वकल्पे त्वंय राजा सुन्दराख्यो महाप्रभुः। त्वमेव पत्नीतत्राऽपिरजःसङ्करकारिणी॥१८॥

तेनेयञ्च दशाऽभूत्ते कुर्विदानींचनिष्कृतिम्। मन्दाकिन्यांतुवैशाखेप्रातःस्नानंतदाकुरु!॥१९॥
मधुसूदनमभ्यर्च्यकथां दिव्यां तथा शृणु। अशून्यशयनंनाम व्रतमारभ भमिनि!॥२०॥
धर्मेणाऽनेन ते भद्रे व्रतेनाऽपि च माधवे। नूनं ते भवितापत्युरुपलब्धिर्न संशयः॥२१॥
इति तस्यै वरं दत्त्वा देवा जग्मुर्यथाऽऽगताः।
तथाकृच्छ्रान्निवृत्ता सा देवी कामसती तथा॥२२॥
गङ्गाऽवगाहनं चक्रेमेष संस्थेदिवाकरे। अशून्यशयनंनामव्रतञ्चाऽपि महामनाः॥२३॥

देवगण कहते हैं "पूर्वकाल में तुम्हारे पति कामदेव सुन्दर नामक प्रभुत्वसम्पन्न राजा थे। तुम उनकी पत्नी थी। हे कल्याणी! तब तुम रजः संकर कारिणी थी। तभी तुम्हारी यह दुर्दशा हो रही है। इस पाप की निष्कृति के लिये तुम वैशाखमास में जाह्नवी जल में नित्य प्रातः स्नान, मधुसूदन का पूजन तथा उनकी दिव्य पवित्र कथा का श्रवण करो। हे भामिनी! तुम अशून्यशयन व्रतानुष्ठान करो। हे भद्रे! वैशाख व्रत में प्रातः स्नान, अशून्यशयन व्रत के प्रभाव से तुमको पुनः पति की प्राप्ति होगी। यह निश्चित है। इसमें सन्देह नहीं है। यह मैं निश्चित रूप से कहता हूं।" देवगण ने रति को यह वर प्रदान करके यथागत स्थान पर प्रस्थान किया। इधर ज्ञानशालिनी कामदेव की पत्नी रति ने भी उनके आदेशानुसार क्लेश पूर्ण मरण संकल्प छोड़ दिया तथा जब सूर्य मेष राशि में स्थित रहते हैं, तब महासती रति ने उस वैशाखमास में गंगा स्नान करके अशून्यशयनव्रत आरंभ किया।।१८-२३।।

तेनपुण्यप्रभावेन सद्यः कामोऽक्षिगोचरः। अभूत्तस्यै महाराज लोकेचावार्यवीर्यवान्॥२४॥
पूर्वकल्पेऽप्ययमपि राजा धर्मपरायणः। वैशाखोक्तान्महाधर्मान्नाकरोत्तेन वै स्मरः॥२५॥
देहहानिं प्रपेदेऽसौ पुत्रोऽपि परमात्मनः। वृथानीते तु वैशाखेमेषसंस्थे दिवाकरे॥२६॥
अवस्थेयं च देवानां मनुष्याणां तु का कथा।
त्र्यम्बकेऽन्तर्हिते पश्चान्निराशा गिरिकन्यका॥२७॥
तूष्णीं स्थितां तदाभ्रान्ता तां दृष्ट्वा हिमवान्गिरिः।
चकितः स्वगृहं निन्ये दोर्भ्यां तां परिरभ्य च॥२८॥
रूपौदार्यगुणान्दृष्ट्वा हरस्यैव महात्मनः। स एव मे पतिर्भूयादितितन्निष्ठमानसा॥२९॥
गङ्गोपकूलमापेदेतपस्तप्तुंधृतव्रता। निवारिताऽपि सा देवी पित्रा मात्रा स्वकैर्जनैः॥३०॥

हे महाराज! रति ने अशून्यशयन व्रत के पुण्य प्रभाव से अप्रतिहत वीर्य काम को साक्षात् देखा। पूर्वकल्प में रतिपति सुन्दर भी धर्मपरायण थे। उन्होंने वैशाखमासीय धर्म (व्रत) का आचरण नहीं किया। इस पाप के कारण वे परमात्मा के कुमार (कामदेव) होकर भी देहरहित हो गये। जब दिवाकर मेषराशि में रहते हैं, तब वैशाख मास को व्यर्थ व्यतीत करने पर देवगण भी अवश्य दुःखी होते हैं। मानवों की तो बात ही क्या? उधर शंकर के अन्तर्ध्यान हो जाने पर पार्वती निराश होकर मौनी हो गयीं। तब हिमालय ने कन्या को विभ्रान्त देखकर शीघ्रता से उनको गोद में लिया तथा अपने गृह आ गये। गिरिजा ने महात्मा शिव के रूप, उदारता तथा गुणों की पर्यालोचना करके यह स्थिर संकल्प किया कि यही मेरे पति होंगे। पार्वती ने उनमें मन को लगाकर

यह व्रत धारण किया। तत्पश्चात् पार्वती गंगा के तट पर जाकर तप करने लगीं। उस समय पार्वती के माता-पिता तथा स्वजनगण ने उनको तपस्यार्थ निषेध किया।।२४-३०।।

अर्चयन्ती महालिङ्गं निराहारा जटाधरा। दिव्यवर्षसहस्रान्ते प्रत्यक्षोऽभून्महेश्वरः।।३१।।
भूत्वावर्ण्यपिसायाह्नेपर्णशालामुखेविभुः। स्वनिष्ठमनसोदार्ढ्यं वाक्यैर्नानाविधैरपि।।३२।।
ज्ञात्वा वरादरं भद्रे वरयेति महाप्रभुः। सा वव्रेऽथ पतिं रुद्रं त्वं भवेति वरानना।।३३।।

लेकिन गौरी निराहारा तथा जटाधारिणी होकर महालिंगार्चन करने लगीं। तदनन्तर तप करते देवी को १००० दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये। विभु महेश्वर सायं समय ब्रह्मचारी के वेश में पार्वती की पर्णशाला में आये। उन्होंने अपना प्रत्यक्ष दर्शन पार्वती को दिया। शंकर ने उनकी परीक्षा के लिये नाना वाक्यों का प्रयोग किया। इससे शिव को ज्ञात हो गया कि उमा का मन उनके प्रति ही आबद्ध हैं। तब भूतपति ने पार्वती को व्रत पाने का अधिकारी समझकर कहा कि "हे पार्वती! भद्रे! वर मांगो।" गौरी ने रुद्रदेव से प्रार्थना किया—"आप मेरे पति हों।"।।३१-३३।।

स तथैव वरंदत्त्वाऋषीन्सस्मारसप्तच। आजगमुस्तेऽपिमुनयःस्थिताःप्राञ्जलयःपुरः।।३४।।
ऋषीणां ज्ञापयामास कन्या प्रष्टुं हिमालयम्।
तथाऽदिष्टा भगवता कन्यार्थं हिमवद्गृहम्।।३५।।
प्रापुर्विहायसा सर्वे द्योतयन्तो दिशोदश। प्रत्युज्जगामसगिरिःसप्तैतान्ब्रह्मवित्तमान्।।३६।।
सम्पूज्य विधिवत्सर्वान्सुखासीनानपृच्छत।
धन्योऽस्मि तकृत्योऽस्मि यद्भवन्तो गृहाऽऽगताः।।३७।।
भवदागमनं मन्येममजन्मफलंत्विति। नकृत्यंविद्यतेऽस्माभिःपूर्णार्थानांमहात्मनाम्।।३८।।
तथाऽपि ब्रूतकार्यंवोयत्कर्तव्यंमयाऽधुना। इत्युक्तास्तेतथाप्रोचुर्हिमवन्तंमहागिरिम्।।३९।।

रुद्रदेव ने कहा—"यही हो।" तदनन्तर उन्होंने सप्तर्षिगण का स्मरण किया। तत्पश्चात् सप्तर्षिगण अंजलि बांधकर शिव के समीप खड़े हो गये। भगवान् ने उनको आया देखकर कहा—"आप लोग हिमालय के यहां जाकर उनसे पूछें कि वे किस पात्र को अपनी कन्या अर्पित करना चाहते हैं?" देवदेव शिव का आदेश पाकर कन्या प्रार्थी होकर सप्तर्षिगण दशों दिशाओं को उद्भासित करते हुये आकाशपथ से विचरण करते हुये हिमालय के गृह आये। हिमालय ब्रह्मविदों में श्रेष्ठ सप्तर्षिगण को गृहागत देखकर उठे तथा उनकी यथाविधि पूजा किया। तदनन्तर उनके सुखपूर्व आसीन हो जाने पर हिमालय ने कहा—"मैं धन्य तथा कृतकृत्य हो गया, जो आप लोग मेरे गृह आये हैं। आप लोगों के आगमन के कारण मेरा जीवन धन्य तथा कृतकृत्य हो गया। मेरा जन्म भी सार्थक हो गया। आप सब महात्मा हैं। आप लोगों का समस्त प्रयोजन पूर्ण है। आप लोगों के आगमन के कारण मेरी समस्त क्रिया पूर्णता को प्राप्त हो गयी है। यद्यपि आप लोग पूर्णकाम हैं, तथापि मुझे आदेश दीजिये। मैं आपका क्या प्रिय कार्य कर सकता हूं।" तदनन्तर गिरिराज द्वारा प्रार्थित होकर सप्तर्षिगण उनसे कहने लगे।।३४-३९।।

त्वयास्वसदृशं वाक्यमुक्तं गिरिपते! दृढम्। अस्मदागमने हेतुं वक्ष्यामस्ते महोदये।।४०।।

कन्याते पार्वतीनाम पूर्वं दक्षात्मजा सती। जाता तव कुमारी या यज्ञे त्यक्तकलेवरा॥४१॥
अस्याः पाणिग्रहे दक्षः शम्भुर्नाऽन्यो जगत्त्रये।
देयासाशम्भवे देवी भवताऽऽनन्त्यमिच्छता॥४२॥
पूर्वजन्मसहस्त्रेषु भवता सुकृतं कृतम्। इदानीं तव दिष्ट्या तु परिपाकमुपागतम्॥४३॥

सप्तर्षिगण कहते हैं—"हे गिरिराज! आपने जो कहा, वह आप जैसे व्यक्ति को ही शोभा देता है—इसमें सन्देह नहीं है। अब हमलोगों के आगमन का कारण सुनें। हम लोगों की बात आपके लिये अवश्य मंगलप्रद है। आपकी कन्या पार्वती पूर्व में दक्षपुत्री सती थी। उन्होंने दक्षयज्ञ में देहत्याग करके आपकी कुमारीरूप में जन्म लिया। उनके पाणिग्रहणार्थ एकमात्र शूलपाणि शंकर ही उपयुक्त पात्र हैं। तीनों लोकों में उनके समान वर अन्य कोई नहीं है। यदि अनन्त पुण्य की कामना हो, तब आप देवी गौरी को भगवान् हर के हाथों अर्पित करें। हे पर्वतराज! आप ने अपने हजारों-हजार पूर्वजन्मों में जो सुकृत संचित किया था, आपके भाग्य बल से उस पुण्य का परिणाम आज मिला।"।।४०-४३।।

तेषां तद्वचनं श्रुत्वासंहृष्टाऽऽत्मामहागिरिः। व्याजहारपुनर्वाक्यंपुत्रीवल्कलधारिणी॥४४॥
गङ्गातीरे निराहारा तपस्तपति दुश्चरम्। काङ्क्षमाणा पतिंशम्भुं तस्याइष्टमिदंत्विति॥४५॥
दत्ता कन्या मया तस्मै त्र्यम्बकायमहात्मने। शीघ्रंनत्वाभवन्तस्तुयत्रशम्भुर्महाप्रभुः॥४६॥
प्रीत्या हिमवता दत्ता गृहाणेति निवेद्य च। भवन्त एवकुर्वन्तुचैतद्वैवाहिकींक्रियाम्॥४७॥

महागिरि हिमाचल ने सप्तर्षिगण द्वारा कहे गये अभीष्ट वाक्य को सुना तथा अत्यन्त प्रसन्न होकर कहने लगे—"मेरी कन्या वल्कल पहन कर तथा निराहार रहकर गंगातट पर दुष्कर तपःश्चरण कर रही है। उसकी तपस्या का लक्ष्य है पशुपति शिव को पतिरूप में प्राप्त करना। इसलिये आप लोगों का कथन केवल मेरी ही इच्छा नहीं है, अपितु उसे भी यही वांछित है। मैं अपनी पुत्री महात्मा त्रिलोचन को प्रदान करूंगा। जहां भगवान् स्थाणु (शिव) विराजित हैं, आप सब शीघ्रतापूर्वक वहां जाकर उनसे निवेदन करिये कि "हिमालय प्रसन्नता पूर्वक अपनी कन्या आपको प्रदान करेंगे। आप उसे ग्रहण करिये।" उनसे यह निवेदन करके आपलोग स्वयं ही वैवाहिक क्रिया कलाप सम्पन्न करिये।।४४-४७।।

इत्युक्तास्ते हिमवता तमामन्त्र्य शिवं ययुः।
लक्ष्म्याद्या योषितः सर्वा विष्ण्वाद्या देवता अपि॥४८॥
षण्मातरोऽथ मुनयोद्रष्टुंजग्मुर्महोत्सवम्। शिवःसर्वामरगणैर्मुनिभिर्मातृभिस्तथा॥४९॥
अन्वितो वृषभारूढः प्रमथानां गणैर्वृतः। भेरीशङ्खमृदङ्गाद्यैः काहलीपटहादिकैः॥५०॥
ब्रह्मघोषैर्बन्दिभिश्च प्राविशद्धिमवत्पुरीम्। सुमुहूर्ते शुभे लग्ने शुभग्रहनिरीक्षिते॥५१॥
विवाहमकरोच्चैलः प्रहृष्टेनान्तरात्मना।
महोत्सवस्तदा चाऽऽसीत्रिलोक्यां प्राणिनां नृप!॥५२॥
महोत्सवे निवृत्ते तु शङ्करो लोकशङ्करः। रेमे स्वच्छन्दया देव्या लोकधर्माननुव्रतः॥५३॥

जब पर्वतराज हिमाचल ने सप्तर्षिगण से यह प्रार्थना किया, तब वे ऋषिगण हिमाचल से विदा लेकर शिव के पास गये। इधर शिवविवाह का उपक्रम होता जानकर लक्ष्मी आदि देवस्त्रीगण, विष्णु आदि प्रमुख देवगण, अरुन्धती को छोड़कर सप्तर्षिगण की पत्नियां, मुनिगण आदि सभी इस उत्सव के दर्शनार्थ वहां पहुंच गये। वहां भेरी-शंख-मृदङ्ग-काहल-पटह आदि वाद्य बजने लगे। चतुर्दिक् वेदध्वनि उद्यत हो उठी। वन्दीगण स्तुतिगाथा कहने लगे। इस प्रकार त्रिपुरारी शिव ने गिरिराज के पुर में प्रवेश किया। तत्पश्चात् शुभग्रहों द्वारा निरीक्षित शुभमुहूर्त्त में कैलासपति ने प्रसन्न अन्तःकरण से पार्वती का पाणिग्रहण किया। हे राजन्! यह शिवविवाह त्रैलोक्यवासी प्राणीगण हेतु एक महोत्सव जैसा हो गया था। तत्पश्चात् विवाहोत्सव सम्पन्न होने पर लोक शंकर लोकधर्मानुरूप उद्यान क्रीड़ा आदि में अनुरक्त होकर देवी के साथ स्वच्छन्दतापूर्वक विहाररत हो गये।।४८-५३।।

ऋद्धिमद्धिमवद्गेहे देवेन्द्रभवनोपमे। शर्वर्यानन्दिनीतीरे वनराजिषु शङ्करः॥५४॥
मत्तालिद्विजसन्नादमयूररवमण्डिते। दिव्यवर्षसहस्राणि रेमे स्वच्दन्दया विभुः॥५५॥

नन्दिनी तट पर वन की शोभा से सम्पन्न इन्द्र के समान अनुपम हिमालय का गृह है। यह मत्त भ्रमरसमूह, मधुरवाणी वाले कोकिल आदि पक्षिवृन्द उच्च निनाद करने वाले मयूरों से भरा वन है। यहां विभु शंकर ने गिरिजा के साथ दिव्यमान वाले १००० दैववर्ष पर्यन्त विहार किया।।५४-५५।।

स्त्रीणामिन्द्रवराभावात्तसिमन्काले नृपोत्तम!।
पुंसः सङ्गात्पुनर्गर्भो नारीणां स्त्रवति ध्रुवम्॥५६॥
प्रत्यहं रमणाद्देव्यां नाभूद्गर्भो हराद्बत। देवानामभवच्चिन्ता पुत्रलाभाद्वाराद्विभो॥५७॥
सर्वे सङ्गत्यसम्मन्त्र्यमिथाएवंबभाषिरे। कामीवाऽभूद्रतौनित्यंसक्तोदेव्याहरःस्वराट्॥५८॥
नाऽस्माकं सिद्ध्यते कार्यं नित्यं गर्भस्य संस्त्रवात्।
पुना रतिर्यथा नाऽभूत्तथाऽस्माभिर्विधीयताम्॥५९॥

हे नृपश्रेष्ठ! नारीगण के गर्भ धारण विषय में शचीपति की एक अभिशाप वाणी प्रचलित है। उन्होंने (इन्द्र) अभिशाप दिया था कि यदि स्त्रियां गर्भधारण के उपरान्त पुनः पुरुष संसर्ग करती हैं, तब उनका गर्भस्राव होगा। इस कारण शिव के सम्बन्ध में भी यही घटित हो गया। वे नित्य-प्रति रमण करते थे। इससे पहले दिन का टिका गर्भ अगले दिन नष्ट हो जाया करता था। अतः गर्भ स्थिति नहीं हो रही थी। भगवान् हर के रमण काल में भी यही हो रहा था। इसलिये देवी की गर्भवृद्धि नहीं हो पाती थी। यह देखकर देवगण चिन्तित हो गये कि देवी के गर्भ से भूतपति शम्भु के पुत्र का जन्म नहीं हो रहा है! तब समस्त देवता एकत्र होकर परस्पर यह मन्त्रणा करने लगे कि "स्वराट् शंकर अत्यन्त कामुक की तरह कामक्रीड़ा में देवी के प्रति सतत् आसक्त हो रहे हैं, अतः नित्य गर्भस्राव के कारण हमारा कार्य सम्पन्न नहीं हो पा रहा है। अब हमकों यह करना चाहिये, जिससे भूतपति को पुनः रमण क्रिया की रुचि न हो।।५६-५९।।

मिथ एवं तु सम्भाष्यव्यचिन्वन्क्षणमत्रते। अग्निकृत्येविनिश्चित्यह्यूचुर्मानपुरःसरम्॥६०॥

वे देवता इस प्रकार परस्परतः विचार करने के अनन्तर यह सोचने लगे कि कौन देवता इस कार्य में दक्ष हो सकता है। तब उन्होंने अग्नि को यह कार्य सौंपने का विचार करके उनसे सम्मान के साथ कहा।।६०।।

अग्ने मुखं त्वं देवानां त्वं बन्धुर्गतिरेव च। इदानीमपि गच्छ त्वं रमते यत्र वै हरः॥६१॥
रत्यन्तेदर्शयाऽऽत्मानंपुनाररतिर्यथानवै। त्वां दृष्ट्वा व्रीडिता देवी तपश्चापसरेद्ध्रुवम्॥६२॥
शिष्यो भूत्वा तु रत्यन्ते पृच्छ तत्त्वं स्मरान्तकम्।
तत्त्वसम्प्रश्नव्यजेन कालम्बहु नय प्रभो!॥६३॥
बहुकाले गते देवी कुमारं प्रसविष्यति। देवैरेवं प्रार्थितोऽग्निरोमित्युक्त्वा हरंययौ॥६४॥

देवता कहते हैं—"हे अग्नि! आप देवगण के मुख हैं। देवता आपके ही मुख से आहुति भक्षण करते हैं। आप देवताओं के सुहृद तथा गति हैं। जहां भगवान् हर गौरी के साथ कामक्रीड़ा में रत हैं, वहां आप जाइये। आप वहां जाकर भगवान् की सुरतक्रीड़ा जब कुछ रुक जाये, तब उनके समक्ष प्रकट होईये। ऐसा किये जाने पर शिव में पुनः रति भावोदय नहीं होगा। देवी भी आपको देखकर लज्जा के कारण वहां से अन्यत्र जायेंगी। केवल यही नहीं, रति का अवसान होने पर आप शिव से उनके शिष्य रूप में उन कामान्तक भगवान् से तत्व जिज्ञासा करियेगा। हे प्रभो! तत्वजिज्ञासा के बहाने आप उनका समय व्यतीत करायें। जब इस तरह दीर्घकाल बीत जाने पर पार्वती देवी कुमार को जन्म देंगीं।" देवगण की यह प्रार्थना सुनकर अग्नि ने 'ओम्' शब्द का उच्चारण किया तथा देवगण की प्रार्थना स्वीकार करके शिव के समीप पहुंचे।।६१-६४।।

वीर्योत्सर्गात्पूर्वमेव गतो वह्नी रतान्तरे। तं दृष्ट्वाव्रीडिता देवी विवस्त्रा विमनाययौ॥६५॥
रतिं विहाय त्वरया ततो रुद्रोऽतिकोपितः। वह्निं प्राह गृहाणेदमभिसृष्टन्तु दुर्मते॥६६॥
मद्वीर्यं दुःसहं पाप रतौविघ्नस्त्वयाऽभवत्। उत्सृजामि मद्वीर्यं त्वन्मुखेहव्यवाहन!॥६७॥
इत्युक्त्वोत्सृष्टवान्वीर्यंहव्यवाहमुखेहरः। तद्धृत्वादह्यमानःसन्स्वोदरेवीर्यमुल्बणम्॥६८॥

अग्निदेव शिव की रति (कामक्रीड़ा) का अवसान होते ही उनके वीर्यपात के पहले ही वहां आ गये। अग्नि को देखते ही विवस्त्रा देवी विमना होकर वहां से चली गयीं। तदनन्तर रति भंग हो जाने के कारण रुद्रदेव ने क्रोधित होकर अग्नि से कहा—"हे दुर्मति! मैं जो यह वीर्यपात कर रहा हूं, इसे तुम धारण करो। हे पापी! तुमने मेरे सुरत कार्य में विघ्न उत्पादित किया है! हे हव्यवाहन! मैं यह दुःसह वीर्य तुम्हारे मुख में छोड़ता हूं।" तदनन्तर शंकर ने यह कहकर हव्यवाहन के मुख में वीर्य त्याग कर दिया।।६५-६८।।

चिन्तयानो ययौधामदेवानांयज्ञपूरुषः। कथंचित्प्राणतो मुक्तो देवेभ्यस्तन्न्यवेदयत्॥६९॥
देवा वह्नीरितं श्रुत्वाहर्षशोकौसमाययुः। स्थितं वीर्यमितिह्लादं कथं तुप्रसवोभवेत्॥७०॥
इति दुःखं तदा चाऽऽसीद्वह्नेः कुक्षौ तु शाम्भवम्।
ववृधे तेज आक्षिप्तं दश मासा गतास्तदा॥७१॥
नाऽपश्यत्प्रसवोपायं बहुदुःखपरायणः। देवान्वै शरणम्प्राप गर्भमोचनहेतवे॥७२॥
तेदेवावह्निनासाकंप्रापुर्गङ्गांयशस्विनीम्। गङ्गास्तोत्रेणते स्तुत्याप्रार्थयामासुरञ्जसा॥७३॥

तदनन्तर यज्ञपुरुष अग्नि इस तेजोमय शिववीर्य को उदर में धारण करने के कारण जलने का अनुभव करने लगे। वे चिन्तित होकर देवलोक पहुंचे। अधमरे से अग्नि ने अत्यन्त कष्टपूर्वक देवगण से अपनी इस दशा को कहा। अग्नि का कष्ट सुनकर देवताओं को एक साथ ही हर्ष एवं विषाद, दोनों का अनुभव होने लगा।

देवगण शिववीर्य के रक्षित हो जाने के कारण एक ओर तो आह्लादित थे, परन्तु दूसरी ओर यह सोचने लगे कि पुरुष के उदर में रक्षित गर्भ का जन्म कैसे संभव होगा! यह सोचकर वे दुःखी भी थे। उधर अग्नि के पेट में शंकर का छोड़ा तेज वर्द्धित होने लगा। क्रमशः इसी हालत में दस महीने बीत गये। इस समय देवगण जब प्रसव का कोई उपाय ही नहीं देख पाये, तब सभी देवता यशस्विनी जाह्नवी गंगा के पास आये। वे नाना स्तुति वाक्यों से गंगा देवी का स्तव करने लगे।।६९-७३।।

त्वं माता सर्वदेवानां त्वमेवजगताम्पतिः। देवातीर्थन्तुत्वंभद्रेधत्स्वतेजस्तुशाम्भवम्।।७४।।
तद्वह्नेर्वर्द्धते गर्भो नास्त्रीत्वात्प्रसवोऽस्य च। तस्मादेनञ्च नः सर्वान्समुद्धर दयांकुरु।।७५।।

देवगण कहते हैं—आप देवताओं की माता हैं। तीनों लोकों की रक्षा का भार आप पर ही है। हे माता, भद्रे! देवगण के हितार्थ आप ही शंभु का तेज धारण करिये। सम्प्रति अग्नि के गर्भ में यह गर्भ बढ़ रहा है, तथापि अग्नि पुरुष होने के कारण उसका प्रसव नहीं कर पा रहे हैं। आप कृपा करके यह गर्भ धारण करिये। इस प्रकार हमारी और अग्निदेव की रक्षा करिये।।७४-७५।।

इत्येवं प्रार्थिता देवी तथास्त्विति वचोऽब्रवीत्।
देवास्तु वह्नये प्राहुर्मन्त्रं गर्भविमोचनम्।।७६।।
तन्मन्त्राद्गर्भमाकृष्य व्यसृजद्धव्यवाहनः। गङ्गायांशाम्भवंतेजोभास्वल्लोकसुदुःसहम्।।७७।।
सा चोद्वा कतिचिन्मासान्न शशाक ततः परम्।
निर्जला तत्प्रभावेण स्फुटद्रक्तकलेवरा।।७८।।
बहुदुःखाऽऽकुला देवी पातिव्रत्यप्रभावतः। उज्जहार स्वोदरस्थं गर्भं लौकैकपावनी।।७९।।
शरकाण्डे तु चिक्षेप दह्यमानं समन्ततः। शरकाण्डैस्तु सम्भिन्नः षोडाभिन्नोबभूवह।।८०।।
षट्कृत्तिकाः समाजग्मुर्ब्रह्मणा चोदितास्तदा।
शरकाण्डे विनिर्भिन्नं षोडा सन्धाय शाम्भवम्।।८१।।
षणमुखं पुरुषं कृत्वा त्वेकदेहमिति स्फुटम्।
कृत्तिका विधिनाऽऽज्ञप्तास्तं तथा चक्रिरे दृढम्।।८२।।

इस प्रकार से देवताओं द्वारा प्रार्थना किये जाने पर गंगा ने कहा कि "यही हो।" देवगण में भी तब हव्यवाहन अग्नि को गर्भविमोचन मन्त्र प्रदान किया। हुताशन अग्नि ने मन्त्रलाभ करने के अनन्तर उसी मन्त्र द्वारा तेजस्वीगण के लिये भी दुःसह उस सुरदुःसह शिवतेज का आकर्षण करते हुये उसे जाह्नवी जल में विसर्जित कर दिया। जाह्नवी ने भी इस तेज को कई मास तक धारण किया, तथापि वे उस वीर्यतेज को सहन नहीं कर पा रही थीं। उनका जल इस वीर्य के प्रभाव से शुष्क हो चला और उनका शरीर भी गाढ़े लोहित वर्ण का हो गया! लोकपावनी गंगा पातिव्रत के कारण अत्यन्त दुःखमग्न हो गयीं। उन लोक पावनी ने अपने उदारस्थ गर्भ को बाहर सरपत में फेंक दिया। वह गर्भ तेज मानों दसों दिशाओं का दहन करता छः भाग में विभक्त हो गया। उस समय ब्रह्मा द्वारा भेजी गयीं छः कृत्तिकायें आईं तथा सरपत (झाड़ी) में विभक्त छः भाग शिव तेज को एकत्र किया, जिससे वह षड् मुखवाले देह के एक सुन्दर पुरुष के रूप में परिणत हो गया!।।७६-८२।।

तद्देहं पुरुषाकारं षण्मुखं शरकाण्डगम्। अरक्ष्यमाणमेवासीच्छरकाण्डेषु वै चिरम्॥८३॥

तब कृत्तिकाओं ने उस षट् मुख वाले सरपत में स्थित उस पुरुष की रक्षा के लिये क्या उपाय किया जाये, यह सोचते हुये ब्रह्मा के आदेश के पालनार्थ उस पुरुष के अंगों को दृढ़ कर दिया। इस प्रकार षडानन ने रक्षित होकर उस सरपत की झाड़ी में दीर्घकाल तक निवास किया।।८३।।

एकदा वृषभाऽरूढौ पार्वतीपरमेश्वरौ। श्रीशैलं गन्तुमनसौ तत्स्थलं परिजग्मतुः॥८४॥
तदासीत्पार्वती देवीः सद्यः स्नुतपयोधरा। विस्मिता चावदद्रुद्रं स्नुतौ कस्मात्पयोधरौ॥८५॥
कारणम्ब्रूहिविश्वात्मन्नित्युक्तस्तुहरोऽब्रवीत्। शृणुदेविप्रवक्ष्यामिपुत्रोऽधोवर्ततेतव॥८६॥
त्वयि वीर्यमनुत्सृष्टंप्रागेवाऽऽगाद्धविर्वहः। तंदृष्ट्वाब्रीडितात्वंवैप्रविष्टाचस्थलान्तरम्॥८७॥
मया कोपाद्वह्निमुखे विसृष्टं वीर्यमुल्बणम्। देवानाञ्च प्रसादेन गङ्गायां व्यसृजद्विभुः॥८८॥

तत्पश्चात् एक समय शिव-पार्वती वृषभारूढ़ होकर कैलास जाते समय उसी सरपत वन में पहुंचे। तब पार्वती के स्तनों से दुग्ध क्षरण होने लगा। इस घटना से देवी विस्मित हो गयी और उन्होंने भगवान् महेश से पूछा कि—"मेरे स्तनों से यह दुग्ध क्षरण क्यों हो रहा है? हे विश्वात्मन्! इसका कारण कहिये।" पार्वती के प्रश्न को सुनकर भगवान् ने उत्तर दिया—"हे देवी! मैं इस सम्बन्ध में जो कह रहा हूं, उसे सुनो। इस सरपत वन में तुम्हारा एक निष्कलङ्क पुत्र है। जब मैं तुम्हारे साथ रीतिक्रीड़ा कर रहा था, तब मेरे वीर्यत्याग के पूर्व ही अग्नि वहां पहुंच गये! तुम उनको देखकर लज्जा के कारण अन्यत्र चली गयी। तब मैंने क्रुद्ध होकर अग्नि के मुख में अपना तेजपूर्ण वीर्य निःक्षिप्त कर दिया। हव्यवाहन अग्नि ने देवगण की कृपा पाकर उस दह्यमान तेज से मुक्त होने के लिये उसे जाह्नवी में छोड़ दिया।"।।८४-८८।।

गङ्गाच दह्यमाना सा व्यक्षिपच्च शरान्तरम्। तत्र षोडाप्रभिन्नन्तुमातृभिश्चदृढीकृतम्॥८९॥
पुरुषाकृतिमापेदे तं दृष्ट्वा ते स्तनौ स्नुतौ। पालनीयं मावीर्यंविष्णुनासमविक्रमम्॥९०॥

अयमेवौरसः पुत्रस्तव भाति विनिश्चितम्।
तस्माद्गृहाण शीघ्रं त्वं तेनाऽऽख्यातिरतीव ते॥९१॥

"परन्तु इस तेज से जाह्नवी भी दग्ध सी होने लगीं। उन्होंने अन्त में इस वीर्य को शरवण में (सरकण्डों में) विसर्जित कर दिया। तदनन्तर वहां वह तेज छः भागों में विभक्त हो गया। तभी वहां छः कृत्तिकाओं ने आकर उस छः भागों में विभक्त तेज को एकीकृत करके दृढ़ किया। अब वह तेज पुरुषाकृति हो गया। हे प्रिय! अब उस पुरुषाकृति को देखकर तुम्हारे स्तनों से दुग्ध क्षरित होने लगा। इस विष्णु के समान विक्रमी पुत्र का तुम पालन करो। यही उचित है। मेरे औरस से उत्पन्न यह पुत्र तो तुम्हारा ही पुत्र है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। अतएव तुम शीघ्र उसे ग्रहण करो। इस पुत्र से तुमको अत्यन्त प्रसिद्धि की प्राप्ति होगी—"।।८९-९१।।

इत्याऽऽज्ञप्ता शम्भुना सा तमादायाऽर्भकं द्रुतम्।
अङ्कमारोप्य तं देवीं पाययामास सा स्तनौ॥९२॥

देवेन मोहिता देवी पुत्रस्नेहपराऽभवत्। पुनः कैलासमगमत्प्रभुणा सह शाङ्करी॥९३॥

लालयन्ती सुतं देवी सन्तोषं परमं ययौ। एवं कुमरजननं वर्णितं ते मयाऽद्भुतम्॥९४॥
यः इदं शृणुयान्नित्यं कुमारजननं शुभम्। पुत्रपौत्राभिवृद्धिं तु लभते नाऽत्र संशयः॥९५॥

तदनन्तर देवी पार्वती ने शम्भु के आदेशानुसार उस पुत्र को ग्रहण किया। देवी उस पुत्र को गोद में लेकर दुग्धपान कराने लगीं। अपने स्वामी के मुख से इस पुत्र के जन्म का वृत्तान्त सुनकर देवी विस्मिता हो गयीं। पुत्र स्नेहपरायणा देवी शिवा तब भगवान् शिव के साथ कैलास गयीं तथा उस पुत्र का लालन-पालन करके परम हर्षित हो गयीं। हे राजन्! मैंने तुमसे उन अद्भुत कुमार के जन्म का वर्णन किया। इन कुमार की उत्पत्ति में भगवान् को अत्यधिक क्लेश हुआ था। इसलिये जो कोई मनुष्य कुमार के जन्म का यह शुभ वृत्तान्त सतत् श्रवण करता है, उसके पुत्र पौत्रादि की वृद्धि होती है। इसमें सन्देह नहीं है।।९२-९५।।

महद्दुःखंतु जननेहरस्याऽपियतोऽभवत्। प्रीत्यानुश्रुतवैशाखधर्मोऽप्यप्रतिमोभवेत्॥९६॥
तस्माद्वैशाखधर्मो हि सर्वाघौघविनाशनः। अवैधव्यप्रदः पुण्यः सर्वसम्पद्विधायकः॥९७॥
अनङ्गोऽपिहिसाङ्गत्वंयत्प्रभावात्समाप्तवान्। अस्नात्वाचाप्यदत्त्वाचवैशाखोयस्यवैयतः॥९८॥
अपि धर्मकृतो वाऽपिभवेद्दुःखपरम्परा। सर्वधर्म हितःस्याच्चयद्येकोऽयमनुष्ठितः॥९९॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे कुमारोत्पत्तिकथनं नाम
नवमोऽध्यायः।।९।।

यह वैशाखधर्म सर्वपापनाशक है। जो मनुष्य प्रेमपूर्वक बारम्बार इस वैशाखधर्म को सुनता है, वह इस लोक में अप्रतिम हो जाता है। यह वैष्णवधर्म वैधव्य हरण करता है। यह सर्वसम्पत्ति प्रदाता है। यह वैशाखधर्म के प्रभाव से अनंग (कामदेव) भी अंगयुक्त हो गये। जो मानव बिना दान तथा बिना स्नान वैशाखमास व्यतीत करता है, वह धार्मिक होने पर भी दुःखपरम्परा युक्त रहता है। जो मानव एकमात्र वैशाख व्रत का अनुष्ठान करता है, उसके सभी धर्म साधित हो जाते हैं।।९६-९९।।

।।नवम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

दशमोऽध्यायः

अशून्य शयनव्रत वर्णन, छत्र दान प्रशंसा, हेमकान्त से त्रित मुनि के आगमन का वर्णन

मैथिल उवाच

यत्कामपत्नीचरितमशून्यशयनव्रतम्। देवोपदिष्टं तस्याऽस्य विधानम्ब्रूहिभूसुर!।।१।।
किंदानं को विधिस्तस्यपूजनं किं फलं तथा। एतदाचक्ष्वभदेव! श्रोतुं कौतुहलंहिमे।।२।।

मिथिलापति कहते हैं—हे विप्र! देवगण से आदेश पाकर कामदेव की पत्नी रति ने जिस अशून्यशयन व्रत का आचरण किया था, अब उस व्रत का वर्णन करें। हे भूदेव! इस व्रत का क्या दान है, विधि क्या है, इसमें किस देवता की पूजा की जाये, इस व्रत का क्या लाभ है? कृपया यह सब मुझसे कहिये। यह सब सुनने हेतु मुझे अत्यन्त कुतूहल हो रहा है।।१-२।।

श्रुतदेव उवाच

शृणु भूयः प्रवक्ष्यामि व्रतं पापप्रणाशनम्। अशून्यशयनं नाम रमायै हरिणोदितम्।।३।।
येन चीर्णेनदेवेशोजीमूताऽऽभःप्रसीदति। लक्ष्मीभर्त्ताजगन्नाथःसमस्ताऽघौघनाशनः।।४।।
अकृत्वायरित्वदंराजन्व्रतं पातकनाशनम्। गार्हस्थ्यमनुवर्तेततस्येदं निष्फलम्भवेत्।।५।।
श्रावणे शुक्लपक्षे तु द्वितीयायां महीपते!। अशून्यशयनाख्यं तद्ग्राह्यं व्रतमनुत्तमम्।।६।।
चातुर्मास्येतुसम्प्राप्तेहविष्याशीभवेन्नरः। चतुर्भिःपारणं मासैःसम्यङ्निष्पाद्यतेप्रभो।।७।।
लक्ष्मीयुक्तो जगनाथः पूजनीयो जनार्दनः। पारणे दिवसे प्राप्ते भक्ष्यञ्चैवतुर्विधम्।।८।।

श्रुतदेव कहते हैं—हे राजन्! पुनः सुनो। यह अशून्यशयन व्रत पापनाशक है। इसका वर्णन श्रीहरि ने लक्ष्मी से किया था। हे राजन्! इस व्रताचरण से देवेश नीरदश्याम लक्ष्मीकान्त जगतपति प्रसन्न होकर पापों का नाश करते हैं। जो मानव इस पापनाशक अशून्यशयन व्रत का अनुष्ठान नहीं करता तथा गार्हस्थ्य धर्म में लगा रहता है, उसकी समस्त क्रियायें निष्फल हो जाती हैं। अब मैं व्रतविधान कहता हूं। हे राजन्! श्रावण मास की शुक्ला द्वितीया के दिन अत्युत्तम अशून्यशयन व्रत को प्रारंभ करें। तत्पश्चात् चातुर्मास्य व्रतकाल आने पर मानव हविष्याशी होकर इस समय को अतिवाहित करे तथा चार मास के चातुर्मास्य की समाप्ति काल में सम्यक् पारण करे। इस व्रत में पत्नी के साथ (लक्ष्मी के साथ) जनार्दन की पूजा करनी चाहिये। पारण के दिन चर्व्य-चोष्यादि चतुर्विध भोजन सामग्री भक्षण करें।।३-८।।

उपायनं च दातव्यंब्राह्मणायकुटुम्बिने। सौवर्णीं राजतींचापिमूर्तिंकुर्यान्मनोरमाम्।।९।।
पीताम्बरधरांदिव्यां वनमालाविभूषिताम्। शुक्लपुष्पैः सुगन्धैश्च पूजयेत्पुरुषोत्तमम्।।१०।।
शय्यादानैर्वस्त्रदानैर्विप्राणाम्भोजनैस्तथा। दम्पत्योर्भाजनैश्चैव दक्षिणाभिःप्रपूजयेत्।।११।।

एवं तु चतुरो मासान्पूजयित्वा जनार्दनम्। मार्गशीर्षादिमासेषु पूजयेत्पूर्वबद्धरिम्॥१२॥
रक्तवर्णं हरिंध्यायेद्रुक्मिणीसहितं तथा। चैत्रादींश्चतुरो मासानेवं सम्पूजयेत्ततः॥१३॥
भूम्या सह स्थितं देवमर्चयेद्भक्तिपूर्वकम्। सनन्दनाद्यैर्मुनिभिः स्तूयमानमकल्मषम्॥१४॥
आषाढस्य च मासस्य द्वितीयायां समापयेत्। अष्टाक्षरेण मन्त्रेण जुहुयादनले शुभे॥१५॥

पारण के दिन कुटुम्बी ब्राह्मण को उपायन प्रदान करना चाहिये। मनोरम रजत वाली किंवा स्वर्णमयी मूर्त्ति का निर्माण करें। इस मूर्त्ति का परिधान दिव्य पीतवस्त्र हो तथा गले में वनमाला लटकती हो। सुगन्धित श्वेत पुष्पों से पुरुषोत्तम देव की पूजा करनी चाहिये। शय्या, भोज्य तथा वस्त्र द्वारा ब्राह्मणों का सन्तोष साधन करें। तत्पश्चात् ब्राह्मण दम्पति को भोजन कराकर दक्षिणा द्वारा उनका सत्कार करना चाहिये। कार्त्तिक आदि चार मास पर्यन्त ऐसे ही विष्णु पूजन करें। मार्गशीर्ष आदि मास में पूर्ववत पूजा सम्पन्न करें। मार्गशीर्ष मासीय हरिध्यान में पार्थक्य है। मार्गशीर्ष में हरि का ध्यान रक्तवर्ण रूप में तथा रुक्मिणी के साथ करना चाहिये। चैत्रादि चार मास में पूजा का क्रम मार्गशीर्षवत् ही है। चैत्रादि चार मास में हरि का ध्यान धरणी देवी के साथ करें तथा वे सनन्दन आदि मुनियों द्वारा स्तुत हो रहे हैं, यह ध्यान भक्तिपूर्वक करना चाहिये। चैत्र में जो व्रतारम्भ किया जाता है, उसका उद्यापन आषाढ़ मास की द्वितीया में करना चाहिये। इस व्रत के उद्यापनार्थ "ॐ नमो नारायणाय" अष्टाक्षर मन्त्र से प्रदीप्त अग्नि में आहुति प्रदान करें।।९-१५।।

मार्गशीर्षादिमासानां पारणेभूमिपालक!। जुहुयाद्विष्णुगायत्र्या चैत्रादीनांनिबोधय॥१६॥
पौरुषेण च मन्त्रेण जुहुयादनले शुभे। पञ्चामृतं पायसञ्च ह्यपूपं धृतपाचितम्॥१७॥
एवं क्रमेणद्रव्याणि प्रतिमासुनिबोधय। सौवर्णीं प्रतिमांदद्यालक्ष्मीनारायणस्यच॥१८॥
सौवर्णीम्मध्यमे दद्यात्कृष्णस्य परमात्मनः। राजतीं त्वन्तिमे दद्याद्वराहस्य महात्मनः॥१९॥
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चान्नामभिः केशवादिभिः। वस्त्रयुग्मैरलङ्कारैर्यथावित्तानुसारतः॥२०॥
अर्चयित्वा ततो दद्यादपूपान्घृतपाचितान्। उपायनार्थे विप्रेभ्योद्वादशभ्योनिवेदयेत्॥२१॥
आचार्याय ततो दद्यात्प्रतिमां पूर्वकल्पिताम्।
शय्यांसङ्कल्पितां पूर्णां सर्वालङ्कारभूषिताम्॥२२॥
तस्यामभ्यर्च्य विधिवल्लक्ष्मीनारायणम्परम्। कांस्यपात्रेण सहितामपूपैर्बहुभिस्तथा॥२३॥
वस्त्रालङ्कारसहितां दक्षिणाभिस्तथैवच। ब्राह्मणाय विशिष्टाय वैष्णवाय कुटुम्बिने।
दातव्या विधिवत्पूज्य ब्राह्मणांश्चाऽपि भोजयेत्॥२४॥

हे राजन्! मार्गशीर्षादि मास में जिस व्रत का पारण कहा गया है, उसके उद्यापनार्थ "ॐ नमो नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्" इत्यादि विष्णु गायत्री से आहुति देनी चाहिये। चैत्रादि मास में जिस व्रत का पारण है, उसकी आहुति का क्रम सुनो। चैत्रादि मास के पारणयोग्य व्रत में आहुति क्रम सुनो। चैत्रादि मासीय पारणयोग्य व्रत में पुरुषसूक्त मन्त्र से प्रदीप्त अग्नि में आहुति देनी चाहिये। इसके पश्चात् पञ्चामृत, पायस तथा घृत में पके मालपूआ को प्रदान करें। अब प्रतिमा विधान सुनो। श्रावणादि चार मास के व्रत में लक्ष्मी तथा नारायण की स्वर्णमयी प्रतिमा दान करें। इसमें व्रतारंभ काल में परमात्मा हरि की

स्वर्णप्रतिमा तथा व्रतान्त में चांदी की प्रतिमा वराहदेव की देनी चाहिये। तत्पश्चात् केशव-विष्णु आदि नाम वाले ब्राह्मणों को भोजन कराये। (अर्थात् ब्राह्मणों में केशव-विष्णु आदि हरिनाम की भावना करके भोजन कराये)। उनको अपनी वित्तशक्ति के अनुरूप वस्त्र तथा अलंकारादि प्रदान करके घृत में पके मालपूआ का दान करना चाहिये। तदनन्तर द्वादश विप्रगण को उपायन प्रदान करके आचार्य को पहले रची गयी वह प्रतिमा दान करें। इसके पश्चात् सभी सामग्रियों से पूर्ण तथा उत्तम अलंकार भूषित शय्या बनाकर उस पर सविधि लक्ष्मी-नारायण की पूजा करें तथा अनेक अपूपयुक्त कांस्यपात्र-वस्त्र-अलंकार को प्रचुर दक्षिणायुक्त करके उत्तम कुटुम्बी ब्राह्मण को प्रदान करें। उनकी यथाविधि पूजा करके यह शय्या दान करनी चाहिये।।१६-२४।।

दानमन्त्रः

लक्ष्म्या अशून्यं शयनं यथा तव जनार्दन!॥२५॥
शय्याममाप्य शून्या स्याद्दानेनाऽनेनकेशव। एवंसम्प्रार्थ्यदेवेशंस्वयम्भोजनमाचरेत्॥२६॥

अब दानमन्त्र कहते हैं—"हे जनार्दन! जैसे लक्ष्मी द्वारा आपकी शयनीय शय्या कभी खाली नहीं रहती, हे केशव! इस शय्यादान के प्रभाव से मेरी शय्या कभी भी शून्य न रहे।" इस प्रकार से प्रार्थना करके अन्त में स्वयं भोजन करे।।२५-२६।।

पुरुषो वा सती वाऽपि विधवा वा समाचरेत्।
अशसून्यशयनार्थञ्च कर्त्तव्यं व्रतमुत्तमम्॥२७॥
एवं तव मया ख्यातं विस्तरान्नृपसत्तम्!। सुप्रसन्ने जगन्नाथे भवेयुर्विविधाः प्रजाः॥२८॥
तस्मिंस्तुष्टे तु देवेशे देवानामपिदुर्लभाः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन व्रतमेतत्समाचरेत्॥२९॥
अवश्यं गन्तुकामेनतद्विष्णोःपरमंपदम्। एवमुक्तं मया सर्वं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥३०॥

पुरुष, सती नारी तथा विधवा अशून्यशयन कामना से इस अति उत्तम अशून्यशयन व्रताचरण को सम्पन्न करे। हे नृपप्रवर! मैंने तुमसे विस्तारपूर्वक अशून्यशयन व्रत का वर्णन कर दिया। देवेश प्रभु जगत्पति प्रसन्न होकर देवदुर्लभ सन्तान प्रदान करते हैं। इसलिये विष्णुपद चाहने वाले मनुष्य सर्वप्रयत्नपूर्वक इस उत्तम व्रत का आचरण करें। हे राजन्! इस प्रकार मैंने क्रमिक रूप से भी तथ्यों का वर्णन प्रस्तुत कर दिया। अब और क्या सुनने की इच्छा है?।।२७-३०।।

इत्युक्तस्तेन राजर्षिः पुनरप्याह तंमुनिम्। वैशाखे छत्रदानस्य माहात्म्यं विस्तराद्वद॥३१॥
श्रृण्वतोऽपि न तृप्तिर्मे वैशाखोक्ताञ्छुभावहान्॥३२॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा यशस्यं पुण्यवर्द्धनम्। प्रत्युवाच महाभागं श्रुतदेवो महायशाः॥३३॥

राजर्षि श्रुतकीर्त्ति ऋषि श्रुतदेव के इस प्रश्न को सुनकर उनसे पुनः पूछने लगे—"हे मुनिप्रवर! वैशाख मास में छत्रदान माहात्म्य विस्तार से कहिये। हे ऋषि! वैशाख के शुभरूप प्रभाव को सुनने से मुझे तृप्ति नहीं हो रही है।" तदनन्तर महाभाग श्रुतदेव ने श्रुतकीर्त्ति का यह यशस्य तथा पुण्यवर्द्धक कथन सुनकर प्रत्युत्तर देते हुये कहा।।३१-३३।।

श्रुतदेव उवाच

वैशाखे घर्मतप्तानां मानवानां महात्मनाम्। ये कुर्वन्त्यातपत्राणंतेषांपुण्यमनन्तकम्॥३४॥
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। वैशाखधर्ममुद्दिश्य पुरा कृतयुगे कृतम्॥३५॥

श्रुतदेव कहते हैं—जो वैशाख में आतपतप्त महात्मा मनुष्यों का परित्राण करते हैं, उनका पुण्य अनन्त है। इस विषय में इतिहासज्ञों ने एक पुरातन इतिहास कहा है। यह इतिहास पूर्वकालीन सत्ययुग में वैशाखधर्म वर्णनार्थ कहा गया था।।३४-३५।।

वङ्गदेशे पुरा कश्चिद्धेमकान्त इति श्रुतः। कुशकेतोः सुतो धीमान्राजाशस्त्रभृतांवरः।
एकदा मृगयाऽसक्तो गहनं वनमाविशत्॥३६॥
तत्र नानाविधान्हत्वा मृगान्क्रोडादिकान्बहून्।
श्रान्तौ मध्याह्नवेलायां मुनीनामाश्रमं ययौ॥३७॥

पूर्वकाल में बंगदेश में हेमकान्त नामक एक प्रसिद्ध राजा थे। इन शस्त्रधारी लोगों में अग्रणी बुद्धिमान राजा के पिता थे कुशकेतु। ये हेमकान्त एक बार शिकार के लिये गहन वन में गये। वहां उन्होंने नाना प्रकार के मृगों तथा वाराहों का वध करते हुये श्रान्त हो जाने पर मुनिगण के आश्रम में प्रवेश किया। मध्याह्न का समय था।।३६-३७।।

तदा शतर्चिनोनाम ऋषयः शंसितव्रताः। समाधिस्था नजानन्तिबाह्यकृत्यञ्चकिञ्चन॥३८॥
तान्दृष्ट्वा निश्चलान्विप्रान्क्रुद्धो हन्तुं मनो दधे। भूपंनिवारयामासशिष्याणामयुतंतदा॥३९॥

उस समय शतार्चि नामक व्रतशील ऋषिगण उस आश्रम में समाधिस्थ थे। उनको बाह्य व्यापार का कोई भी भान नहीं था। इधर थके हुये राजा ने उनको निःश्चेष्ठ देखा तब क्रोध से भरकर वे उन ऋषियों का नाश करने के लिये उद्यत हो गये। उन ऋषियों के दसों हजार शिष्य थे, जिन्होंने राजा को ऐसा करने से रोका।।३८-३९।।

दुर्बुद्धे शृणु नो वाक्यं गुरुवस्तु समाधिगाः।
नो जानन्ति बहिः! कृत्यं तस्मात्क्रोधं न चाऽर्हसि॥४०॥
ततः शिष्यानुवाचेदं वचनंक्रोधविह्वलः। यूयंकुरुध्वमातिथ्यमध्वश्रान्तस्यमेद्विजाः॥४१॥
एवमुक्ताश्च भूपेन शिष्या ऊचुस्तदा नृपम्। नाऽज्ञप्तागुरुभिर्भूपवयं भिक्षाशिनःपुनः॥४२॥
गुरुतन्त्राः कथंकर्तुमातिथ्यन्तेवयंक्षमाः। प्रत्याख्यातोनृपःशिष्यैस्तान्हन्तुंधनुराददे॥४३॥
मृगदस्युभयादिभ्यो बहुधा रक्षितामया। ते मामेवोपशिक्षन्ति मया दत्तप्रतिग्रहाः॥४४॥
एतेमांन विजानन्ति कृतघ्ना भूरिमानिनः। घ्नतोपिमेनदोषःस्यादेतान्वैह्याततायिनः॥४५॥
एवं विक्रुद्धमानः सञ्छरान्मुञ्चञ्छरासनात्। तान्विद्रुताननुद्रुत्यजघ्नेशिष्यशतत्रयम्॥४६॥

शिष्यगण ने कहा—"हे दुर्बुद्धि! हमारा कथन सुनो। हमारे गुरुजन समाधिस्थ हैं। ये बाह्यविषय के सम्बन्ध में इस अवस्था में कुछ भी नहीं जानते। अतएव तुम्हारा क्रोध अनुचित है।" यह सुनकर क्रोधविह्वल

राजा ने कहा—"हे द्विजगण! मैं पथभ्रान्त हूं। आप सब मेरा आतिथ्य करिये।" शिष्यों ने राजा का कथन सुनकर उत्तर दिया—"हम भिक्षार्थी तथा गुरु के अधीन हैं। हे राजन्! गुरु की आज्ञा के बिना कैसे तुम्हारा आतिथ्य हम कर सकते हैं?" राजा ने शिष्यों का यह कथन सुनकर उनका वध करने हेतु धनुष उठाया। राजा ने मन ही मन सोचा "मैं इन ऋषिगण की रक्षा पशुओं तथा दस्युओं से करता रहता हूं। ये ऋषिगण मुझसे ही दान लेकर जीवनयापन करते हैं, ये मुझे आज कैसे शिक्षा दे रहे हैं? इन कृतघ्न बहुमानी ऋषियों ने आज मुझे ही नहीं पहचाना! ये आततायी हैं। इसलिये इनके वध से मुझे पाप नहीं होगा।" राजा ने मन ही मन यह विचार करके अत्यन्त क्रोधपूर्वक धनुष से बाण छोड़ा। यह देखकर शिष्यगण भागने लगे, लेकिन बाणों ने उनका पीछा करते हुये ३०० शिष्यों का वध कर दिया।।४०-४६।।

दुद्रुवुर्भयतः सर्वेविहायाऽऽश्रममञ्जसा। विद्रावितेषुशिष्येषुबलादाश्रमसंस्थितान्।।४७।।
सम्भाराञ्जगृहुः शीघ्रं सैनिकाः पापबुद्धयः। यथेष्टं भोजनं चक्रुर्नृपेणैवानुमोदिताः।।४८।।
ततः सेनाऽऽवृतो राजापुरीभागाद्दिनात्यये। कुशकेतुस्ततःश्रुत्वातनयस्यविचेष्टितम्।।४९।।
पुरान्निर्यातयामास गर्हयन्गार्हयन्सुतम्। राज्यानर्हं क्षमाहीनं स्वदेशादपि भूपिपः।।५०।।
पित्रा त्यक्तस्ततो राजाहेमकान्तोऽतिविह्वलः। वनंविवेशगहनंहत्याभिश्चसुपीडितः।।५१।।
बहुकालमवासीच्च गह्वरे निर्जने वने। आहारं कल्पयामास व्याधधर्ममुपाश्रितः।।५२।।
न क्वाऽपि स्थितिमापेदे हत्यायाऽभिद्रुतो भृशम्।
अष्टाविंशतिवर्षाणि गतान्यस्य दुरात्मनः।।५३।।

उन शिष्यों को मृत देखकर अन्य आश्रमवासी ऋषिगण भी तत्क्षण भय के कारण आश्रम त्याग कर भागने लगे। आश्रमस्थ शिष्यों के भयभीत होकर भाग जाने पर पापबुद्धि राजा के सेनानियों ने बलपूर्वक उनका भोजनद्रव्य संग्रह ग्रहण कर लिया तथा राजा का आदेश पाकर उन सब द्रव्य (भोजनद्रव्य) को अपनी-अपनी इच्छा के अनुरूप खा लिया। यह करते-करते दिन ढल गया। राजा सेना के साथ अपने घर लौटा। हे राजा श्रुतकीर्त्ति! तत्पश्चात् जब हेमकान्त ने नगर में प्रवेश किया तब पिता कुशकेतु ने अपने पुत्र का यह कुकार्य सुनकर उसकी प्रचुर निन्दा करके उसे अपने नगर से बाहर कर दिया। केवल इतने से ही कुशकेतु शान्त नहीं हुये। उन्होंने ऐसे पुत्र को राज्य करने से अयोग्य जानकर उसे देश से ही निकाल दिया। हेमकान्त भी पिता से त्यागा जानकर विह्वल हो गया। उसने गहन वन में प्रवेश किया। उसने वहां जाकर एक गहन गुफा में निवास किया। वह जीवन निर्वाहार्थ व्याधधर्म अपना कर हिंसक वृत्ति द्वारा जीवन व्यतीत करने लगा। तब वहां ब्रह्महत्या ने उसका पीछा किया। इस प्रकार उसने वन में दीर्घकाल व्यतीत किया। वह वहां कहीं भी स्थिर होकर नहीं रह पा रहा था। वह इधर उधर भागता फिर रहा था। इस प्रकार उस दुरात्मा को २८ वर्ष व्यतीत हो गये।।४७-५३।।

तीर्थयात्राप्रसङ्गेन त्रितोनाम महामुनिः। तस्मिन्नरण्ये वैशाखे रवौ मध्यन्दिने गते।।५४।।
गच्छन्नातपविक्लान्तस्तृषया चाऽपि पीडितः।
क्वचिद्वृक्षविहीने तु प्रदेशे मूर्च्छितोऽभवत्।।५५।।

दैववशात् महामुनि त्रित तीर्थयात्रा करते हुये वैशाखमास के एक दिन मध्याह्नकाल में उस वन में पहुंचे। ऋषि त्रित मार्ग भूल गये थे तथा पिपासा से अत्यन्त पीड़ित थे। वे वृक्ष छायारहित उस स्थान पर संज्ञाशून्य होकर गिर पड़े।।५४-५५।।

दैवाद्दृष्ट्वा हेमकान्तस्त्रितं नाममहामुनिम्। तृषार्तं मूर्छितं श्रातं कृपां चक्रेनृपाधमः।।५६।।
ब्रह्मपत्रैस्तदा छत्रं कृत्वा चाऽऽतपवारणम्। मुनेर्जग्राह शिरसि ह्यलाबुस्थं जलंददौ।।५७।।
लब्धसञ्ज्ञोऽभवत्तेन ह्युपचारेण वै मुनिः। पत्रच्छत्रं छत्रदत्तं गृहीत्वा गतविक्लमः।।५८।।
ग्रामं क्वचिच्छनैःप्राप्यकिञ्चिदाप्यायितेन्द्रियः। तेनपुण्यप्रभावेणब्रह्महत्याशतत्रयम्।।५९।।
विनष्टमभवत्तस्य क्षणादेव महात्मनः। ततो विस्मयामापन्नो हेमकान्तो महारथः।।६०।।

दैवात् हेमकान्त भी वहां पहुंच गया था तथा उसने त्रित मुनि को वहां पड़े देखा, तथापि नृपाधम होकर भी उसने तृषार्त्त ऋषि के प्रति दया का व्यवहार किया। उसने पलाश के पत्तों का छाता बनाकर त्रित का धूप से बचाव किया। उसने एक हाथ पर ऋषि का मस्तक रखकर दूसरे हाथ से ऋषि के मुख में जल की बूंदें छोड़ीं। राजा के इस उपचार द्वारा ऋषि को होश आ गया। वे क्षत्रिय द्वारा प्रदत्त छाते की छाया से श्रमरहित हो गये। ऋषि ने धीरे-धीरे एक ग्राम में आश्रय ग्रहण किया। उनकी इन्द्रियां भी कुछ चैतन्य हो गयीं। इधर इस पुण्य के कारण ३०० ब्रह्महत्या ने राजा हेमकान्त का तत्क्षण त्याग कर दिया। तब महारथी हेमकान्त ने विस्मयपूर्वक विचार किया।।५६-६०।।

बहुधा पीड्यमानस्य ब्रह्महत्याःकथङ्गताः। केनाऽपि निष्कृताह्येताःक्वगताःकेनहेतुना।।६१।।
इत्येवंचिन्तयामासब्रह्महत्याविमोचनम्। एवंचाऽज्ञस्थितेराज्ञियमदूताअथाऽऽगमन्।।६२।।
नेतुमेनं महात्मानं हेमकान्तं वने स्थितम्। ग्रहणीं जनयामासुः प्राणान्हर्तुंमहात्मनः।।६३।।
तदा प्राणवियोगार्तः पुरुषांस्त्रीन्ददर्श ह। यमदूतान्महाघोरानूर्ध्वकेशान्भयङ्करान्।।६४।।

हेमकान्त सोचने लगा—"ब्रह्महत्या मुझे अत्यन्त पीड़ित कर रही थी। मैं किस कर्म के प्रभाव से ब्रह्महत्या से बच गया? ब्रह्महत्या कहां चली गयी? इसका क्या कारण है?" ब्रह्महत्या से मुक्ति का कारण सोचते हुये भी वह इसके कारण का पता नहीं पा सका। अन्ततः वह एक स्थान पर बैठ गया। तभी वहां यमदूतगण महात्मा राजा का प्राण हरण करने आ पहुंचे। उन्होंने महात्मा राजा के प्राणों को हरने के लिये ग्रहणी पीड़ा का प्रयोग राजा पर किया। प्राणवियोग की पीड़ा के साथ राजा ने ३ पुरुषों को देखा। वे ऊर्ध्वकेश तीनों पुरुष यम दूत थे, जो भयानक थे।।६१-६४।।

चिन्तयानःस्वमर्माणितूष्णीमासीत्तदानृपः। छत्रदानप्रभावेणजाताविष्णुस्मृतिर्नृप।।६५।।
तेनस्मृतो महाविष्णुर्विष्वक्सेनंस्वमन्त्रिणम्। उवाचतूर्णंत्वंगच्छयमदूतान्निवारय।।६६।।
वैशाखधर्मनिरतं हेमकान्तन्तु पालय। निष्पापमेनं मद्भक्तं पित्रे देहि पुरं गतः।।६७।।
मदीरितेन वाक्येन कुशकेतुञ्च बोधय। सर्वधर्म्मोज्झितो वाऽपिब्रह्मचर्यादिवर्जितः।।६८।।
वैशाखधर्मनिरतो मत्प्रियः स्यान्न संशयः। कृतागाश्चाऽपित्वत्पुत्रोमुनित्राणपरायणः।।६९।।
वैशाखे छत्रदानेन निष्पापो नाऽत्र संशयः। तेन पुण्यप्रभावेण शान्तोदान्तश्चिरायुषः।।७०।।

शौर्यौदार्यगुणोपेतस्त्वत्समोऽयं गुणैरपि। तस्मादेनं राज्यभारेसंस्थापयमहाबलम्॥७१॥

विष्णुनैवं समाज्ञप्तमित्यादिश्य नृपोत्तमम्।
पितुर्वंशे हेमकान्तं स्थाप्याऽऽयाहि च मां पुनः॥७२॥

राजा ने उनको देखकर अपने कर्मों को याद किया तदनन्तर वे मौन हो गये। हे नृप! छत्रदान पुण्य प्रभाव से उस राजा को विष्णु का स्मरण हो आया। राजा ने तब महाविष्णु का स्मरण किया। विष्णु ने अपनी मन्त्री विष्वक्सेन को आदेश दिया—"हे मन्त्री! शीघ्रतापूर्वक हेमकान्त के पास जाओ तथा यमदूतों को रोको। यह हेमकान्त वैशाखधर्म तत्पर है। अतएव उसकी रक्षा करो। तुम सब राजा कुशकेतु से जाकर कहो कि तुम्हारा पुत्र निष्पाप विष्णुभक्त है। मेरे द्वारा कहे वाक्यों को कुशकेतु से कहकर समझाओ कि जो मानव सभी धर्म तथा ब्रह्मचर्य से रहित होकर भी वैशाखधर्म तत्पर है, वह मेरा प्रिय है। इसमें सन्देह नहीं है। तुम्हारा पुत्र मुनि की रक्षा करने वाला होने के कारण अपराधी होकर भी निरपराध है। हेमकान्त वैशाख मास में छत्रदान करने के कारण निष्पाप हो गया। इस छत्रदान के प्रभाव से तुम्हारा पुत्र (उस पुण्य के कारण) शान्त, दान्त, चिरायु एवं शौर्य तथा उदारता गुण समन्वित हो गया। अतः उस महाबली पुत्र को ही राजा रूप में नियुक्त करो। तुम कुशकेतु से कहना कि यह विष्णु का आदेश है। इस प्रकार कुशकेतु से कहकर हेमकान्त को उसके वंश में स्थापित करना। तदनन्तर मेरे लोक में तुम वापस आ जाना—"।।६५-७२।।

इत्यादिष्टो भगवता विष्वक्सेनो महाबलः। हेमकान्तं समासाद्य यमदूतान्निवार्यच॥७३॥
पाणिना शन्तमेनैव पस्पर्शाङ्गेषु भूमिपम्। भगवद्भक्तसंस्पर्शद्धतव्याधिःक्षणादभूत्॥७४॥

भगवान् विष्णु द्वारा यह आदेश पाकर महाबली विष्वक्सेन राजा हेमकांत के पास गये तथा यमदूतगण को रोका। तदनन्तर विष्वक्सेन ने अपने मंगलमय कर का स्पर्श हेमकान्त के शरीर पर कराया। भगवद्भक्त के करस्पर्श से राजा हेमकान्त की सभी व्याधि दूर हो गयी।।७३-७४।।

विष्वक्सेनस्ततस्तेन सह तस्य पुरीं ययौ। तं दृष्ट्वाविस्मितोभूत्वाकुशकेतुर्महाप्रभुः॥७५॥
ननामशिरसा भक्त्या दण्डवत्पतितो भुवि। गृहं प्रवेशयामास पार्षदं परमात्मनः॥७६॥
स्तुत्वाचविविधैःस्तोत्रैःपूजयामासवैभवैः। तस्मैप्रीतमनाःप्राहविष्वक्सेनोमहाबलः॥७७॥
हेमकान्तं समुद्दिश्ययदुक्तं विष्णुना पुरा। तच्छ्रुत्वा कुशकेतुश्चपुत्रंराज्ये निवेश्यच॥७८॥

विष्वक्सेनाभ्यनुज्ञातः सभायां वनमाविशत्।
विश्वक्सेनो हेमकान्तमनुमन्त्र्याऽभिपूज्य च॥७९॥
श्वेतद्वीपं ययौ धीमान्विष्णुपार्श्वे महामनाः।
हेमकान्तस्ततो राजा वैशाखोक्ताञ्छुभावहान्॥८०॥
विष्णुप्रीतिकरान्धर्मान्प्रतिवर्षं चकार ह।
ब्रह्मण्यो धर्ममार्गस्थः शान्तो दान्तो जितेन्द्रियः॥८१॥

दयालुः सर्वभूतेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। प्रवृद्धः सर्वसम्पद्भिः पुत्रपौत्रादिभिर्वृतः॥८२॥

भुक्त्वा भोगान्समस्तांश्च विष्णुलोकमवाप्तवान्।।८३।।

तदनन्तर विष्वक्सेन हेमकान्त के साथ उसके नगर गये। राजा कुशकेतु विष्वक्सेन के दर्शन से विस्मित हो गये। उन्होंने पृथिवी पर दण्डवत् होकर भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम किया। राजा कुशकेतु विष्णुपार्षद परमात्मा विष्वक्सेन को अपने नगर में ले गये तथा नाना स्तुति वाक्यों से उनका स्तव करके अपने विभव के अनुसार उनका पूजन किया। महाबली विष्वक्सेन ने प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु ने जो कुछ कहा था, वह सब राजा कुशकेतु से कहा। कुशकेतु ने भगवान् के आदेशानुरूप पुत्र को राज्य पर अभिषिक्त किया तथा विष्वक्सेन से आदेश लेकर पत्नी के साथ वनगमन किया। महामना धीमान् विष्वक्सेन भी विष्णुभक्त हेमकान्त की पूजा करके श्वेतद्वीप में विष्णु के पार्श्व में स्थित हो गये। तब से ही राजा हेमकान्त प्रतिवर्ष वैशाखोक्त शुभप्रद विष्णु को प्रसन्न करने वाले धर्म का आचरण करने लगे। वे ब्रह्मण्य सम्पन्न, शान्त, दान्त, जितेन्द्रिय, सभी प्राणियों के प्रति दयालु, सर्वयज्ञ दीक्षित तथा सतत् प्रबुद्ध थे। उन्होंने विविध सम्पत्तियुक्त, पुत्र-पौत्रादि से युक्त होकर समस्त भोगों का उपभोग करने के अनन्तर विष्णुलोक प्राप्त किया।।७५-८३।।

नेक्षे तु वैशाखसमांश्च धर्मान्सुखप्रयत्नान्बहुपुण्यहेतून्।
पापेन्धनाद्यग्निनिभान्सुलभ्यान्धर्मादिमोक्षान्तमुपर्थहेतून्।।८४।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीष-सम्वादे छत्रदानप्रशंसने हेमकान्तस्य ब्रह्महत्यादि पापशमनवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः।।१०।।
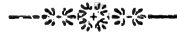
हे राजन्! वैशाख के समान धर्म मुझे नयनगोचर नहीं होता। यह अनायास नाना पुण्यप्रद है। वैशाख मास में सुखपूर्वक प्राप्त होने वाला धर्म अतुलनीय है। ऐसा धर्म मैं कहीं नहीं देखता! यह पापरूप काष्ठ हेतु अग्नितुल्य है। यह धर्म-अर्थ काम-मोक्ष रूप चतुर्वर्ग साधक है।।८४।।

।।दशम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

एकादशोऽध्यायः

वसिष्ठ का कीर्त्तिमन्त से वैशाखधर्म वर्णन, यमदुःख वर्णन

मैथिल उवाच

वैशाखधर्माः सुलभाः पुण्यराशिविधायकाः। विष्णुप्रीतिकराःसद्यःपुमर्थानांतुहेतवः।।१।।

न प्रख्याताः कथं लोके शश्वताः श्रुतिचोदिताः।
प्रख्याताराजसाधर्मास्तामसाअपि भूरिशः।।२।।

दुर्घटा बहुयत्नाश्च बहुद्रव्यव्ययावहाः। केचिन्माघं प्रशंसन्तिचातुर्मास्यापरे जगुः।।३।।

व्यतीपातादिधर्मांश्च वर्णयन्तीह भूरिशः। एतद्विवेकं विस्तार्य श्रोतुकामाय मे वद॥४॥

मिथिलापति कहते हैं—वैशाख में धर्म अनायास प्राप्त होता हैं। वह पुण्यों का जनक है। यह धर्म विष्णु को प्रसन्न करने वाला तथा धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्टय को सद्यः प्रदान करने वाला है। हे ऋषिवर! वेदादि में कहा गया यह नित्य धर्म रूप वैशाखव्रत अब तक त्रैलोक्य में क्यों प्रसिद्ध नहीं हो सका? हे मुनिवर! त्रिलोक में जितने राजस तथा तामस धर्म हैं, उन सब का भूरि-भूरि प्रचलन देखा गया है, तथापि वे सभी धर्म दुर्घट हैं। उनका साधन अत्यन्त प्रयास साध्य है तथा उनके लिये अनेक वस्तुओं का प्रयोजन होता है। कोई तो माघमास की प्रभूत प्रशंसा करता है, अन्य किसी का कथन है कि चातुर्मास व्रत ही श्रेष्ठ है। कोई व्यतीपातादि धर्म की प्रभूत प्रशंसा करता है। इन सबको सुनने हेतु अत्यन्त कुतूहल हो रहा है। अतएव विस्तार के साथ इन सब विषयों का वर्णन करिये।।१-४।।

श्रुतदेव उवाच

शृणु भूप! प्रवक्ष्यामि न प्रख्याताइमे कथम्।
इतरेषां च धर्माणांकथंख्यातिश्चभूतले॥५॥
राजसास्तामसाःभमौबहवःकामुकाजनाः। इच्छन्त्यैहिकभोगांस्तेपुत्रपौत्रादिसम्पदः॥६॥
क्वचित्कथञ्चन क्वाऽपि जनेष्वेकोऽतिकृच्छ्रतः।
स्वर्गाय यतते लोके तस्माद्यज्ञादिसत्क्रियाः॥७॥

श्रुतदेव कहते हैं—हे राजन्! इस वैशाख व्रत की प्रसिद्धि क्यों नहीं हो सकी, साथ ही अन्य धर्म पृथिवी पर प्रख्यात क्यों है, यह सब कहता हूं। सुनो। राजस तथा तामस प्रकृति भेद से पृथिवी पर अनेक कामुक लोग विद्यमान हैं। वे पुत्र-पौत्र-सम्प्रदा आदि ऐहिक भोगों की ही कामना करते रहते हैं। इन सभी त्रैलोक्य निवासी लोगों में से कदाचित् कोई एक व्यक्ति अत्यन्त कष्टसाध्य स्वर्ग के लिये प्रयत्न करता है। ऐसे व्यक्ति के लिये लोक में यज्ञादि सत्क्रिया कही गयी है।।५-७।।

कुरुतेऽतिप्रयत्नेन मोक्षं नोपासते नरः। क्षुद्राशाभूरिकर्माणोजनाः काम्यानुपासते॥८॥
प्रख्याता राजसा धर्मास्तामसाअपितेनवै। नख्याताःसात्त्विकाधर्माहरिप्रीतिकराइमे॥९॥
निष्कामिकाइमे धर्माह्यैहिकाऽऽमुष्मिकप्रदाः। नजानन्तिजनामूढामोहितादेवमायया॥१०॥
यथाऽऽधिपत्ये सम्प्राप्ते सर्वसिद्धोमनोरथः। मोहनार्थं स्थलं प्राप्तमाधिपत्येनहीयते॥११॥

इन सभी याज्ञिक लोगों को क्षुद्र आशयवाला ही जानना चाहिये। ये अत्यन्त प्रयत्न पूर्वक अनेक क्रियाओं का अनुष्ठान करते हैं। ये मोक्ष कामना नहीं करते तथा कामनाओं के दासत्व में ही रह जाते हैं। यहां जिस राजस-तामस धर्म की चर्चा की जा रही है, अनेक लोग उस धर्म का आचरण करते हैं। अतएव यह राजस-तामस धर्म ही विश्व में प्रसिद्ध है। सात्विक धर्म कामना रहित होता है। सात्विक धर्म श्रीहरि को प्रसन्न करते हैं। ऐसे सात्विक धर्मों की प्रसिद्धि न होने का कारण सुनो। यद्यपि यह धर्म निष्काम है, तथापि इसके द्वारा मनुष्य की ऐहिक तथा पारत्रिक सिद्धि होती है। मूढ़ मानवगण दैवी माया से मोहित होने के कारण यह जान नहीं पाते। जिस प्रकार से लोग आधिपत्य लाभ द्वारा समस्त विषयों के प्रति अपने मनोरथों को सिद्ध कर लेते

हैं, वे पुनः मोहकारी वस्तु को पाकर उस आधिपत्य से च्युत हो जाते हैं। लेकिन सात्विक धर्माचरण करने से जो फललाभ होता है, उससे व्यक्ति में माया के प्रति मोह वर्द्धित नहीं होता।।८-११।।

कारणञ्च प्रवक्ष्यामि गोपनेभूतलेऽञ्जसा। यद्वैशाखोक्तधर्माणांसात्त्विकानांनृणामिह॥१२॥
सार्वभौमःपुराकाश्यामिक्ष्वाकुकुलभूषणः। कीर्तिमानितिविख्यातोनृगपुत्रोमहायशाः॥१३॥
जितेन्द्रियो जितक्रोधोब्रह्मण्यो राजसत्तमः। एकदा मृगयासक्तोवसिष्ठाश्रममाययौ॥१४॥
गच्छन्मार्गे ददर्शाऽसौ वैशाखे धर्मनिष्ठुरे।
भूयोभयः कार्यमाणाञ्छिष्यांस्तस्यमहात्मनः॥१५॥
क्वचित्प्रपां प्रकुर्वन्ति छायामण्डपमेव च। तटप्रपातं निस्तीर्यवापींकुर्वनितनिर्मलाम्॥१६॥
सूपविष्टान्क्वचिद्वृक्षे व्यजनैर्वीजयन्ति च।
क्वचिद्दद्युर्हीक्षुदण्डान्क्वचिद्गन्धान्क्वचित्फलम्॥१७॥
मध्याह्ने छत्रदानञ्च सायाह्ने पानकस्य च। क्वचिद्यच्छन्ति ताम्बूलं नेत्रेकर्पूरलेपनम्॥१८॥
सुच्छाये चवनेकेचित्सुसंमृष्टाऽङ्गणेषुच। केचिदास्तरयन्त्यद्धावालुकानिहितानिच॥१९॥
कुर्वन्त्यान्दोलिकां राजन्वृक्षशाखावलम्बिनीम्।
के यूयमिति पप्रच्छ वासिष्ठा इति तेऽब्रुवन्॥२०॥

सात्विक धर्माचरणशील वैशाखव्रताचरणकारी मानवगण के सम्बन्ध में एक प्रमाण का वर्णन करता हूं। यह भूतल पर संघटित तो हो गया है, तथापि इसका तत्व अभी तक प्रकाशित नहीं है। पूर्वकाल में इक्ष्वाकुकुलभूषण नृगपुत्र महायशस्वी राजा कीर्त्तिमान काशी में रहते थे। वे जितेन्द्रिय, क्रोधजित्, ब्राह्मण्य सम्पन्न तथा राजाओं में श्रेष्ठ थे। एक बार वे कीर्त्तिमान नामक राजा मृगयासक्त (शिकार हेतु) होकर घूमते हुये महर्षि वसिष्ठ के आश्रम पहुंच गये। हे राजन्! उन्होंने मार्ग में जाते-जाते देखा कि महात्मा वसिष्ठ के शिष्यगण वैशाख में सूर्य ताप में भी निरन्तर कार्य कर रहे हैं। वे कहीं पर बावली खोद रहे हैं। कहीं वे छायामण्डप निर्माण कर रहे हैं। कहीं विशाल तटभूमि समन्वित निर्मल वापी बना रहे थे। कोई शिष्य वृक्ष के नीचे थके-हारे पथिकजन को पंखे से हवा कर रहे थे। कोई उनको गन्ने का दण्ड, चन्दन दे रहा था। कोई उनको फल प्रदान कर रहा था। कोई शिष्य पथिकों को मध्याह्न में छत्र दे रहा था। कोई सायाह्न में उनको पानी दे रहा था। कोई ताम्बूल दे रहा था, कोई पथिकों के नेत्र में कर्पूर लगा रहा था। कोई शिष्य उत्तम छाया में, कोई वन में, कोई सुशोभन गृह के आंगन में उनके लिये चादर बिछा रहा था। कोई शिष्य उत्तम बालुका आदि द्वारा उत्तम मार्ग बना रहा था। कोई पथिकों के लिये वृक्ष शाखा में झूला बांध रहा था। तब राजा ने ऋषि शिष्यों से पूछा "आप कौन हैं?" शिष्यगण ने उत्तर दिया—"हम वसिष्ठ के शिष्य हैं"।।१२-२०।।

किमेतदिति पप्रच्छ धर्मा वैशाखचोदिताः। पुमर्थहेतव इमे क्रियन्तेऽस्माभिरञ्जसा॥२१॥
वसिष्ठस्याऽऽज्ञया चेति तेऽब्रुवन्नृपसत्तमम्। एतदाचरणेपुंसांकिंफलंकस्तुतुष्यति॥२२॥
एतद्विस्तार्य मे ब्रूत यूयं सम्यग्यथाश्रतम्। इतिराज्ञातुसम्पृष्टाःप्रत्यूचूस्तेमहीपतिम्॥२३॥
गुरोराज्ञाक्रमेणैव कुर्वतां पथिसत्क्रियाः। नास्माकमवकाशोऽत्रगुरुंपृच्छयथोचितम्॥२४॥

स वेत्ति तत्त्वतो नूनं धर्मानेतान्महायशाः। इतिशिष्यैर्वसिष्ठस्यप्रयुक्तस्तुद्रुतंययौ॥२५॥

तदनन्तर राजा ने कहा—"आप यह सब क्या कर रहे हैं?" शिष्यगण ने उत्तर दिया—"यही सब वैशाख मास का धर्म कहा गया है। हम वही धर्माचरण कर रहे हैं, जिसे करने से मनुष्य तत्काल पुरुषार्थ सिद्ध कर लेते हैं। हे नृपश्रेष्ठ! हम ऋषि वसिष्ठ के आदेश से वैशाखव्रत कर रहे हैं।" राजा ने पूछा—"इस धर्माचरण से मनुष्य को किस प्रकार का फललाभ होता है? इस व्रताचरण से कौन देवता प्रसन्न होते हैं? आपने जिस प्रकार से यह सब सुना है, विस्तापूर्वक वह सब कहिये।"

राजा का प्रश्न सुनकर शिष्यगण ने कहा—"हम गुरु की आज्ञा से यह सब कर रहे हैं। हमें समय नहीं है। आप हमारे गुरु वसिष्ठ से यह सब प्रश्न करें। वे महायशस्वी वसिष्ठ ही इस धर्म से यथार्थतः अवगत हैं।"

राजा वसिष्ठ शिष्यों से यह सुनकर शीघ्रतापूर्वक वसिष्ठाश्रम गये।।२१-२५।।

वसिष्ठस्याऽश्रमं पुण्यंविद्यायोगोपबृंहितम्। समायान्तंनृपंवीक्ष्यवशिष्ठःप्रीतमानसः॥२६॥

आतिथ्यं विधिवच्चक्रे सानुगस्यमहात्मनः।
सूपविष्टःकृताऽऽतिथ्यःप्रीतःपप्रच्छ तं गुरुम्॥२७॥

राजा ने वसिष्ठाश्रम पहुंचकर योगविद्या से संवर्द्धित उस पुण्य आश्रम को देखा। वसिष्ठ राजा को समागत देखकर प्रसन्न हो गये तथा उन्होंने वहां आये राजा कीर्त्तिमान का सत्कार यथाविधि सम्पन्न किया। तत्पश्चात् राजा आतिथ्य ग्रहण से प्रसन्न हो गये। उन्होंने आसनासीन होने के अनन्तर महर्षि से पूछा।।२६-२७।।

राजोवाच

मार्गे दृष्टं महाश्चर्यं त्वच्छिष्यैश्च कृतं शुभम्। मया पृष्टश्चतैर्नोक्तंक्रियमाणंशुभावहम्॥२८॥
नास्माकमवकाशोऽत्र ह्येतद्धर्मप्रशंसने। कर्तव्या चक्रियाऽस्माभिर्गुरुणायाचचोदिता॥२९॥

गुरुं गच्छेति तैरुक्तआगतोऽहं तवाऽन्तिकम्।
मृगयाऽऽसक्तचित्तेन श्रान्तेनाऽऽतिथ्यमिच्छता।३०॥
दृष्टं मार्गे त्विदं पुण्यं तव शिष्यैश्चकारितम्।
जिज्ञासाऽऽसीत्ततःश्रोतुं धर्मानेतान्मुनीश्वर!॥३१॥

त्वमादिरादिमान्धर्मान्समाचरसिवैयतः। तान्धर्माञ्छ्रोतुकामाय शिष्यायप्रणतायच॥३२॥
श्रद्दधानाय मे ब्रूहि विस्तरान्मुनिपुङ्गव। इतीक्ष्वाकुकुलीनेनराज्ञा पृष्टो महायशाः॥३३॥

राजा कहते हैं—मैंने मार्ग में अत्यन्त आश्चर्यजनक व्यापार देखा। (व्यापार=घटना)। आपके शिष्यगण यह सब शुभ कार्य कर रहे हैं। मैंने उनसे उन शुभ कार्यों को करने का उद्देश्य पूछा। लेकिन उन लोगों ने मुझे कुछ भी नहीं बतलाया तथा कहा—"इन सब धर्मों की प्रशंसा करने का हमें अवसर नहीं है। हम गुरु के आदेश से यह सब कार्य कर रहे हैं। आप गुरु के पास जाईये।" उनके आदेशानुरूप मैं आपके पास आया हूं। हे गुरुदेव! मेरा चित्त मृगया में आसक्त है। मैं अत्यन्त थका हूं। मैं आपके आतिथ्य का इच्छुक होकर यहां आया हूं। हे मुनिवर! मैंने आपके आश्रम की ओर आते हुये मार्ग में जो पुण्यानुष्ठान देखा है, जो आपके शिष्यगण

कर रहे थे, उस विषय में मेरे मन में प्रश्न उठ रहा है। मैं उन सब धर्मों को सुनने की कामना से यहां आया हूं। आप मुनिगण में अग्रणी हैं। आप पुरातन धर्म का अनुष्ठान करने वाले हैं। मैं आपका प्रणत शिष्य हूं। सम्प्रति आप इस आदिभूत धर्म का वर्णन करिये जो यहां सम्पन्न किया जा रहा है। हे मुनिप्रवर! मैं श्रद्धावनत होकर जिज्ञासा कर रहा हूं। कृपाया विस्तृत रूप से कहिये।'' जब इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न राजा कीर्त्तिमान के द्वारा यह प्रश्न किया गया, तब महायशस्वी वसिष्ठ ने मन ही मन विचार किया।।२८-३३।।

मनसा तोषमापेदे सम्यक्पृष्टोऽधुनाऽमुना।
अहो व्यवतिताबुद्धी राजंस्तेऽद्य सुशिक्षिता।।३४।।
यस्माद्विष्णुकथायाञ्चतद्धर्माचरणेऽपि च। मतिरात्यन्तिकीजातासुकृतंफलितंतव।।३५।।
इति सम्भाष्यराजानंजातहर्षस्तब्रमवीत्। शृणुभूप प्रवक्ष्यामियत्पृष्टोऽहंत्वयाऽधुना।।३६।।
यस्यश्रवणमात्रेण मुच्यते सर्वकिल्विषैः। सर्वधर्मान्परित्यज्यवर्ततेविषयात्मकः।।३७।।
वैशाखस्नाननिरतः स प्रियो मधुविद्विषः। साङ्गान्धर्माननुष्ठाय वैशाखो येन नादृतः।।३८।।
स्नानदानार्चनैःपुण्यैस्तस्यदूरतरोहरिः। अस्नाप्य चाऽप्यदत्त्वा च वैशाखो येननीयते।।३९।।
कर्मणा स तु चाण्डालो नाऽत्र कार्या विचारणा।
वैशाखोक्तैर्महाधर्मैर्येन चाऽऽराधितो हरिः।।४०।।
तैश्च तोषं समायातिप्रददातिसमीहितम्। लक्ष्मीभर्त्ता जगन्नाथो ह्यशेषाघौघनाशनः।।४१।।
धर्मैःसूक्ष्मैश्चप्रीणातिनप्रयासैर्धनैरपि। भक्त्यासम्पूजितोविष्णुः प्रददातिसमीहितम्।।४२।।

मुनि वसिष्ठ ने यह विचार किया कि इस राजा ने यथार्थ जिज्ञासा किया है। तब मुनि वसिष्ठ कहने लगे। ''हे राजन्! सम्प्रति तुमने जो पूछा है, वह कहता हूं। सुनो! इस धर्म के श्रवण मात्र से समस्त कलुष दूरीभूत होते हैं। जो मनुष्य सभी उत्तम कार्यरूप धर्म को त्यागकर विषयासक्त हो गये हैं, यदि वे वैशाख में स्नान करते हैं, तब वे भी विष्णुप्रिय हो जाते हैं। तुम्हारी बुद्धि सम्यक्तः सुशिक्षित है; क्योंकि तुम्हारी बुद्धि विष्णुकथाश्रवण तथा विष्णुधर्माचरण में तत्पर है। तुम्हारे अन्दर आत्यन्तिकी मति का जन्म हुआ है तथा तुम्हारे समस्त सुकृत आज फलित हो रहे हैं।।''

यह कहकर महर्षि प्रसन्न अन्तःकरण से कहने लगे—''हे नृप! अब तुमने जो पूछा था, उसे समाहित चित्त से सुनो! इस धर्म के श्रवणमात्र से समस्त कलुषों का नाश हो जाता है। जो मानव सभी धर्मों का त्याग करके विषयासक्त हो गये हैं, ऐसे मानव भी यदि वैशाखा स्नान करने लगते हैं, तब वे भी विष्णुप्रिय हो जाते हैं। जो पुण्य स्नान-दान तथा अर्चनादि द्वारा इन अंग पूर्ण धर्मों का आचरण करते हैं, तथापि वैशाखधर्म का आदर नहीं करते, ऐसे मनुष्यों से श्री हरि दूर हो जाते हैं। बिना वैशाख स्नान तथा दान किये जो कोई वैशाखमास व्यतीत कर देता है, वह मनुष्य निःसंदिग्ध रूप से कर्मचाण्डाल ही है।

जो मानव वैशाखोक्त महान् धर्म द्वारा श्रीहरि की आराधना करता है, हरि उसके धर्माचरण से प्रसन्न होकर अभीष्ट प्रदान करते हैं। रमापति जगत्पति अन्तहीन कलुषराशि का नाश कर देते हैं। वे अनेक प्रयास से तथा अनेक धनसाधन से किये धर्म द्वारा उतने प्रसन्न नहीं होते। वे सूक्ष्म वैशाखधर्म से इन सबकी अपेक्षा

अधिक सन्तुष्ट हो जाते हैं। "जब इस प्रकार की भक्ति से विष्णु सुपूजित होते हैं, तब वे भक्त को अभीष्ट प्रदान करते हैं।।३४-४२।।

तस्माद्राजन्सदा भक्तिः कर्तव्या मधुविद्विषः।
जलेनाऽपि जगन्नाथः पूजितः क्लेशहा हरिः॥४३॥
परितोषं व्रजत्याशु तृषार्त्तः सलिलैर्यथा। महदप्यल्पदं कर्म तथा ह्यल्पञ्च भूरिदम्॥४४॥
कर्मणाऽल्पत्वभूरित्वे न हेतू महदल्पके। किन्तु कर्मस्वरूपञ्च गहना कर्मणो गतिः॥४५॥
वैशाखोक्ता इमे धर्माः स्वल्पाऽऽयासकृता अपि।
बहुव्ययविनाशाश्च विष्णोः प्रीतिकराः शुभाः॥४६॥

अतः मधुरिपु हरि के प्रति भक्ति सतत् करनी चाहिये। यदि भक्ति के साथ केवल जल से ही श्रीहरि की पूजा की जाये, तब भी वे कष्टहरण कर लेते हैं और जिस प्रकार प्यास से पीड़ित व्यक्ति को जल देने से उसकी तृप्ति होती है, उसी प्रकार श्रीहरि उस व्यक्ति को कष्टरहित करते हुये तृप्त कर देते हैं। (धर्म की गति विचित्र है।) कभी तो महान् धर्म भी अल्पफलप्रद होता है, कभी अल्प धर्म क्रिया से भी प्रभूत फल की प्राप्ति होती है। इसी कारण कर्म की अल्पता अथवा अधिकता ही महाफल तथा अल्पफल प्रदाता नहीं होती। कर्म के स्वरूप तथा गति को कठिनता से ही जाना जा सकता है। वैशाखोक्त ये सब धर्मकृत्य स्वल्प प्रयत्न से साध्य होने पर भी अनेक धन व्ययपूर्वक किये गये धर्म की भी तुलना से अत्यधिक श्रेष्ठ हैं। इसका कारण यह है कि ये सभी सुशोभन वैशाखधर्म विष्णु को परमप्रीति देते हैं।"।।४३-४६।।

तस्मात्त्वमपि भूपालवैशाखोक्तान्समाचर। त्वद्राष्ट्रीयैर्जनैःसर्वैःकारयेमाञ्छुभावहान्॥४७॥
न करोतिचयोधर्मान्वैशाखोक्तान्नराधमः। बहुधाशिष्यमाणोऽपिसदण्ड्यस्तवभूपते॥४८॥
इत्यावश्यकतां सम्यक्छास्त्रैर्व्युत्पाद्य तस्य च।
पश्चाद्वैशाखनिर्दिष्टान्धर्मान्प्रोवाच सर्वशः॥४९॥
श्रुत्वा तान्सकलान्धर्मान्गुरुं सम्पूज्य भक्तितः। स राजागृहमागत्य सर्वान्धर्मांश्चकार ह॥५०॥

"हे राजन्! यह वैशाखव्रत शुभ प्रदाता है। अतः तुम स्वयं इसका आचरण करो। अपने राष्ट्र की जनता से भी इस व्रत का अनुष्ठान कराओ। हे राजन्! तुम्हारे राष्ट्र में जो नराधम इस व्रत का आचरण न करे, भले ही वह शिष्ट हो, तथापि तुम उसे दण्डित करो।" हे भूपाल! ऋषि वसिष्ठ ने इस प्रकार राजा के मन में शास्त्रयुक्तियुक्त इन सब आवश्यक विषयों का आरोपण किया। तदनन्तर उन्होंने अन्य वैशाखधर्म का वर्णन किया। तदनन्तर राजा ने उन महर्षि गुरु वसिष्ठ से सभी धर्म को सुनकर उनको प्रणाम किया तथा भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करके अपनी नगरी में वापस आकर उन सब धर्म नियम का पालन करने लगे।।४७-५०।।

भक्तिमान्केशवे राजन्देवदेवे निरञ्जने। नाऽन्यं पश्यति देवेशात्पद्मनाभान्महीपतिः॥५१॥
भेरीमुद्वाह्य मातङ्गं स्वराष्ट्रेऽघोषयद्भटैः। अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिर्न हिपूर्यते॥५२॥
प्रातर्नस्नातिमेषस्थेसूर्येसर्वोऽपियोजनः। सभेदण्ड्यश्चवध्यश्चनिर्यास्याविषयाद्ध्रुवम्॥५३॥
पितावा यदिवा पुत्रो भर्यावाऽथसुहृज्जनः। वैशाखधर्महीनश्चनिग्राह्योदस्युवन्मया॥५४॥

दातव्यंविप्रमुख्येभ्यःस्नात्वाप्रातर्जलेशुभे। प्रपादानादिधर्माश्चकुरुध्वं शक्तितोऽनघाः॥५५॥

हे राजन्! राजा भी देवदेव निरंजन केशव के प्रति भक्तिमान् हो गये। वे देवेश पद्मनाभ के अतिरिक्त अन्य किसी देवता का दर्शन नहीं करते थे। उनके आदेश से हाथी पर बैठे भाटगण भेरी बजाते हुये यह घोषणा करते थे कि "जो आठ वर्ष से अधिक आयु से लेकर ८० वर्ष के बीच की आयु का है, वह जो मेषस्थ सूर्य वाले वैशाखमास में प्रातः स्नान नहीं करेगा, दण्डनीय होगा। राजा ऐसे व्यक्ति का वध करा देंगे, किंवा राज्य से निष्कासित कर देंगे। इसमें सन्देह नहीं है।" राजा ने यह भी आदेश दिया था कि मेरे पिता, पुत्र, पत्नी किंवा सुहृद् भी यदि वैशाख धर्म से रहित हैं, मैं उनसे वही व्यवहार करूंगा जो दस्यु से किया जाता है। हे निष्पाप प्रजाजन! तुम श्रेष्ठ विप्रों को दान दो, प्रातःकाल विमल जल में स्नान करो तथा अपनी धनशक्ति के अनुसार दानधर्मादि करो। "अपनी वित्तशक्ति के अनुसार बाबली आदि बनाने का धर्म करो।"।।५१-५५।।

विप्रञ्च धर्मवक्तारं ग्रामेग्रामे न्यवेश्यत्। पञ्चानामपि ग्रामाणामकरोदधिकारिणम्॥५६॥
दण्डार्थं तयक्तधर्माणांदशवाजिनिषेवितम्। एवं प्रवृत्तः सर्वत्रसार्वभौमस्यशासनात्॥५७॥
प्रवृद्धो धर्मवृक्षोऽयं सर्वदेशेषु विस्तरात्। ये केचिन्निधनं यान्ति भूपालविषये नराः॥५८॥
प्रमादाच्च नृपश्रेष्ठ! ते यान्ति हरिमन्दिरम्। अवश्यंवैष्णवोलोकःप्राप्यतेमानवैर्द्रुतम्॥५९॥

राजा प्रजागण को यह आदेश देकर ग्राम-ग्राम में धर्मवक्ता विप्रों की नियुक्ति करें। एक-एक धर्मवक्ता को ५-५ ग्राम का अधिकारी बनाना होगा। जो धर्मरहित लोग हैं, ऐसे प्रजावर्ग का दमन करने के लिये तथा आने-जाने के लिये उनको दस (अश्वारोही सैनिक) अश्व प्रदान करें। सार्वभौम राजा के शासन में सर्वत्र इसी विधान का प्रवर्त्तन हो गया। हे नृपोत्तम! सार्वभौम राजा का राज्य जब इस प्रकार पुण्यमय हो गया, तब प्रमाद के कारण भी जो लोग इस राज्य में मृत हो जाते वे सभी विष्णुलोक प्राप्त करने लगे। वहां के सभी मनुष्य वैशाखमासीय व्रतपुण्य के कारण अत्यन्त द्रुतवेगपूर्वक वैकुण्ठ गमन करने लगे।।५६-५९।।

व्याजेनाऽपि सकृत्स्नातःप्रातर्मेषगतेरवौ। सर्वपापविनिर्मुक्तोयातिविष्णोःपरंपदम्॥६०॥
न प्राप्नोति यमं धर्मं सकृद्वैशाखस्नानतः। वैलेख्यमगमद्राजा रविसूनुस्तदा नृप!॥६१॥
लेख्यकर्मणि विश्रान्तश्चित्रगुप्तोऽभवत्तदा।
मार्जितानि च लेख्यानि पुरा पापोद्भवानि च॥६२॥
गच्छद्भिर्वैष्णवं लोकं स्वकर्मस्थैर्जनैः क्षणात्।
शून्यास्तु नरकाः सर्वे पापिप्राणिविवर्जिताः॥६३॥
भप्रयानोऽभवन्मार्गोवैशाखस्यप्रभावतः। सर्वऽपिविमलाकाराजनायान्तिहरेःपदम्॥६४॥

जिन लोगों ने भले ही छलपूर्वक वैशाख में एक बार भी प्रातः स्नान किया, वे भी सर्वपापरहित होकर विष्णुपद में प्राप्त होकर मुक्त हो गये। वैशाख में मात्र एक बार प्रातःस्नान द्वारा लोग भय के शासन का भी अतिक्रमण कर रहे थे। हे राजन्! सूर्यपुत्र यम तब मानवगण के पाप-पुण्य लिखने के कार्य से ही मानो मुक्त हो गये। उनके अनुगत चित्रगुप्त पापीगण का पाप वृत्तान्त लिखने में नियुक्त थे। उनको भी छुट्टी मिल गयी। उन्होंने इससे पूर्व में जो पापवृत्तान्त लिखा था, अब वह सब लिखना व्यर्थ होने लगा। मानव अपने कर्म से

अर्जित पुण्य के कारण मृत होने के पश्चात् क्षणकाल में विष्णुलोक जाने लगे। यहां तक कि नरक में पापी प्राणी ही नहीं बचे। सभी नरक शून्य हो गये। वैशाख के प्रभाव से यह हालत हो गई कि आकाश के मार्ग में (पितृयानमार्ग में) यम के विमान ही नहीं दिखलाई पड़ते थे। सभी प्राणी मृत्यु के अनन्तर विमलवेश धारण करके हरि के चरणकमलों को प्राप्त करने लगे।।६०-६४।।

दिवौकसान्तु ये लोकाः शून्याः सर्वे तथाऽभवन्।
शून्ये त्रिविष्टपे जाते शून्येषु नरकेषु च॥६५॥
नारदो धर्मराजानं गत्वा चेदमुवाच ह। नाऽऽक्रन्दः श्रूयते राजन्प्राक्छ्रुतोनरकेयथा॥६६॥
तथा न क्रियते लेख्यं किञ्चिद्दुष्कृतकर्मणाम्।
चित्रगुप्तो मुनिरिव स्थितोऽयं मौनसंस्थितः॥६७॥
कारणं ब्रूहि राजेन्द्र! न यान्ति तव मन्दिरम्।
मनुष्याः पापकर्माणो मायादम्भविवर्धिताः॥६८॥

केवल यमपुरी ही नहीं, स्वर्गलोक भी शून्य होने लगा; क्योंकि स्वर्ग के निवासी भी वैशाखधर्म के प्रभाव से वैकुण्ठलोक प्राप्त करने लगे। तदनन्तर अमरावती तथा सभी नरक समूह जब प्राणी हीन होने लगे तब देवर्षि नारद धर्मराज के पास गये। उन्होंने धर्मराज से कहा—"हे राजन्! पूर्व में नरक में जैसी (पापियों की) चीत्कार सुनाई पड़ती थी।, आज वैसा शब्द यहां श्रुतिगोचर नहीं हो रहा है। आप पापियों की पापलिपि लिखते थे। अब आपको कुछ लिखते नहीं देखा जा रहा है। आपके चित्रगुप्त भी मुनि के समान मौनी होकर खाली बैठे हैं। हे राजन्! इसका कारण कहिये। माया एवं दम्भ से भरे मानव आपके यहां क्यों नहीं आ रहे हैं?—"।।६५-६८।।

एवमुक्ते तु वचने नारदेन महात्मना। प्राह वैवस्वतो राजा किञ्चिद्दैन्यसमन्वितः॥६९॥
योऽयं नारद! भूपालःपृथिव्यांसाम्प्रतंस्थितः। सोऽतिभक्तोहृषीकेशेपुराणपुरुषोत्तमे॥७०॥
प्रबोधयति वैशाखधर्मे भेरीस्वनेन च। अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिर्न हि पूर्यते॥७१॥
यौ वै ह्यकृतवैशाखः स मे दण्ड्यो न संशयः।
तद्भयाद्धि जनाः सर्वे नोल्लङ्घन्ति कदाचन॥७२॥

महात्मा नारद का कथन सुनकर दीनतापूर्वक यमराज कहने लगे—हे नारद! सम्प्रति जो पृथिवी के स्वामी हैं, वे हृषीकेश पुराणपुरुष पुरुषोत्तम के प्रिय भक्त हैं। उन्होंने भेरी बजवाकर प्रजागण में यह आदेशात्मक घोषणा का प्रचार किया है कि "जो लोग आठ वर्ष से लेकर ८० वर्ष के बीच की आयु वाले हैं, ऐसे प्रजाजन यदि वैशाखधर्म रहित होंगे, तब वे मेरे दण्ड के पात्र होंगे। इसमें संशय नहीं है।।" इस भय के कारण कोई प्रजाजन इस आदेश का उल्लंघन नहीं करते।।६९-७२।।

गच्छन्ति वैष्णवं धामकर्मणातेननारद!। वैशाखसेवनाल्लोकायास्यान्तिहरिमन्दिरम्॥७३॥

हे नारद! सभी लोग वैष्णवधर्माचरण करके अपने-अपने कर्म के फलस्वरूप विष्णुलोक गमन कर रहे हैं। हे मुनिप्रवर! वैशाख की सेवा के फलस्वरूप मनुष्यों को वैकुण्ठलोक प्राप्त हो रहा है।।७३।।

तेन राज्ञा मुनिश्रेष्ठ! मागो लुप्तो ममाऽधुना।
कृता हि नरकाः शून्या लोकाश्चापि दिवौकसाम्॥७४॥
विश्रान्तो लेखको लेखे लिखितं मार्जितं जनैः।
वैशाखमासधर्मस्य माहात्म्यं त्वदृशं मुने!॥७५॥
ब्रह्महत्यादिपापानि विमुक्तानि जनैर्द्विज!।
कृत्वा वैशाखकृत्यानि यान्ति विष्णोः परंपदम्॥७६॥
सोऽहं काष्ठसमो जातो नरकश्चिन्ममगोचरः। युद्धंकृत्वातुतंहन्मिसर्वथाऽद्यमहाबलम्॥७७॥
अकृत्वा स्वामिकार्यं तु निर्व्यापारो यदि स्थितः।
तस्य वित्तं समश्नाति स याति नरकं ध्रुवम्॥७८॥

"इन राजा के कारण मेरा मार्ग लुप्त हो चला है। उन्होंने ही मेरे नरक को नारकियों से रहित तथा देवगण के देवलोक को शून्य कर दिया है। मेरे लिपिक चित्रगुप्त भी इन राजा के इस धर्म प्रभाव के कारण कर्मरहित हो गये। यहां तक कि पूर्वकाल में जिन लोगों का नाम तथा कर्म लिखा गया था, उसे भी उनको अब काटना पड़ रहा है। हे मुनिवर! वैशाख मास की धर्ममहिमा ऐसी ही है। हे द्विज! मानवगण वैशाख व्रत करके ब्रह्महत्या पातक से भी मुक्त हो जा रहे हैं। वे वैशाखकृत्य करके विष्णु के परमपद का लाभ कर रहे हैं। मैं तो कठपुतली के समान हो गया हूं। लगता है कि मुझमें अब निग्रह तथा अनुग्रह का कोई सामर्थ्य ही नहीं है। हे मुनीश्वर! मैं अब युद्ध करके इस महाबली राजा का वध करूंगा। जो अपने स्वामी का कार्य न करके उदासीन हो जाता है, स्वामी उसका वित्तहरण लेते हैं तथा निश्चित रूप से वह सेवक नरकगामी होता है।"।।७४-७८।।

यदिदैवादवध्योऽयंतदाब्रह्माणमेत्यच। निवेद्यतस्मैतत्सर्वंपश्चात्स्वस्यस्थितिर्भवम्॥७९॥
इत्युक्त्वाद्विजमामन्त्र्य सानुगः प्रययौ भुवम्।
स कालो महिषारूढो दण्डमुद्यम्य भीषणम्॥८०॥
मृत्युरोगजराद्यैश्च पार्षदैश्च महोत्कटैः। पञ्चाशत्कोटिसङ्ख्याकैर्यमदूतैर्वृतस्ततः॥८१॥

"इसलिये मुझे युद्धार्थ जाना ही पड़ेगा। यह राजा तो देवगण के लिये भी अवध्य है। यदि मैं स्वयं इसका वध नहीं कर सकूंगा, तब ब्रह्मा के पास जाकर उनसे समस्त निवेदित करके छुटकारा पाऊंगा।" यम ने यह कह कर द्विज नारद को आमन्त्रित किया तथा युद्धार्थ भीषणदण्ड उठाते हुये महिष पर बैठकर पृथिवीतल जाने लगे। उनके अनुग किंकरगण भी उनके ही साथ चल पड़े। मृत्यु, रोग, जरा आदि उत्कट यमपार्षदगण भी सतत् उन यम के बगल में स्थित होकर चल रहे थे। वे यमराज अपने ५० कोटि यमदूतों से घिरे थे।।७९-८१।।

स तूर्णं तस्य राजर्षे रुरोध सकलांपुरीम्। सङ्क्रुदध्मौहाघोरं सर्वलोकभयङ्करम्॥८२॥
तच्छ्रुत्वा स तु राजर्षिर्ज्ञात्वावैवस्वतंयमम्। ससज्जीकृतसर्वस्वःपत्तनान्निर्ययौरुषा॥८३॥
तयोर्युद्धमभूत्तत्र भीषणं रोमहर्षणम्। मृत्युं कालं तथा रोगं यमं दूतपतिं तथा॥८४॥
जित्वा क्षणेन राजर्षिर्द्रावयामास रोषतः। ततः क्रुद्धो यमो राजास्वयमभ्येत्यतंरुषा॥८५॥

इस प्रकार से सूर्यपुत्र यमराज ने क्षणकाल में राजर्षि के पुर को घेर लिया। यम ने तब सभी लोकसमूह को भयंकर प्रतीत होने वाली शंखध्वनि किया। राजर्षि ने भी इस शंख घोष को सुना तथा उनको जब यह ज्ञात हुआ कि सूर्यपुत्र यहां युद्धार्थ आये हैं, तब वे क्रोधित हो गये। उन्होंने सेना को सज्जित कराया तथा स्वयं सज्जित होकर अन्तःपुर से बाहर निकले। अब दोनों पक्षों में भीषण रोमहर्षक युद्ध छिड़ गया। रोष के कारण राजा ने अपने बाणों द्वारा मृत्यु, काल, रोग आदि यमकिंकरों तथा यम सैन्य को उनके सेनापति यम को क्षणमात्र में जीतकर उनमें भीषण भय का उत्पादन कर दिया। तब यमराज क्रोधित होकर स्वयं राजा के सामने आये।।८२-८५।।

युयोध बहुभिर्बाणैः सिंहनादंचकार ह। चकर्तराजातस्याऽपिकार्मुकंविशिखैस्त्रिभिः॥८६॥

पुनश्चर्मासिमादाय यमोहन्तुमथाऽऽगमत्।

तं दृष्ट्वातुनृपःक्रुद्धःपुनश्छित्वाऽसिचर्मणी॥८७॥

निचखान ललाटे च शरं कालोरगप्रभवम्। यमस्तेनाऽऽहतः क्रुद्धस्ततोदण्डमुपाददे।

ब्रह्मास्त्रेण च सम्मन्त्र्य दण्डं तस्मै मुमोच ह॥८८॥

हाहाकारोमहानासीज्जनानांपश्यतांतदा। तदाविष्णुःस्वभक्तस्य रक्षायै प्राहिणोदरि॥८९॥

यमराज ने सिंहनाद करते हुये अनेक बाणों द्वारा युद्ध प्रारंभ कर दिया। राजा ने भी तीन बाणों से यमराज के धनुष को खण्डित कर दिया। धनुष को खण्डित देखकर यम तलवार तथा ढाल उठाकर राजा को मारने के लिये उद्यत हो गये। राजा ने तलवार-ढाल उठाये सूर्यपुत्र यम को आते देखकर क्रोधपूर्वक पुनः उनकी ढाल तथा तलवार को भी अपने बाणों से छिन्न कर दिया। इसके पश्चात् कालसर्प जैसे बाण से यम का ललाट बिद्ध कर दिया। यमराज भी अपना ललाट बिद्ध होने से क्रोधित हो गये। उन्होंने अपना यमदण्ड उठाकर उसे ब्रह्मास्त्र मन्त्र से अभिमन्त्रित करके राजा पर उस ब्रह्मास्त्र को छोड़ दिया। यम द्वारा राजा पर ब्रह्मास्त्र छोड़े जाने के कारण चतुर्दिक् मानव दर्शकों में हाहाकार होने लगा। विष्णुदेव भक्त रक्षार्थ उद्यत हो गये।।८६-८९।।

विष्णुमुक्तं तदा चक्रं शीघ्रमागत्य तद्रणे। यमदण्डेन संयुध्य तद्ब्रह्मास्त्रं निवार्य च॥९०॥

यमं हन्तुमथाऽऽरेभे सहस्त्रारंमहाद्भुतम्। देवभक्तस्ततो भीतस्तदाऽस्तौच्चक्रमञ्जसा॥९१॥

श्रीहरि ने उस समय अपना चक्र छोड़ा। विष्णु का वह अत्यन्त अद्‌भुद् चक्र रणभूमि में पहुंचा। उसने यमदण्ड से युद्ध करके ब्रह्मास्त्र का निवारण कर दिया। इसके पश्चात् वह सुदर्शन चक्र यमराज के वधार्थ उद्यत हो गया। यह सब घटनाचक्र देखकर देवभक्त राजा भयभीत हो गये। वे महाचक्र सुदर्शन का स्तव करने लगे।।९०-९१।।

सहस्त्रार नमस्तेऽस्तु विष्णुपाणिविभूषण। त्वं सर्वलोकरक्षायै हरिणा च धृतं पुरा॥९२॥

त्वां याचेऽद्य यमं त्रातुं विष्णुभक्तं महाबलम्॥९३॥

नृणां देवद्रुहां कालस्त्वमेव हिन चाऽपरः। तस्मादेनं यमं रक्ष कृपां कुरु जगत्पते॥९४॥

नृपेणैवं स्तुतं चक्रं यमं हित्वा नृपान्तिकम्। पुनर्ययौमहाराज! देवानांपश्यतांदिवि॥९५॥

राजा कहते हैं—"हे सुदर्शन! आप विष्णु के करभूषण हैं। आपको प्रणाम! पूर्वकाल में समस्त लोकों

की रक्षा के लिये श्रीहरि ने आपको धारण किया था। महाबली यम विष्णुभक्त हैं। आप आज उनकी रक्षा करिये। यही मेरी प्रार्थना है। हे जगत्पति! यम देवद्रोही मनुष्यों के काल हैं। देवद्रोही लोगों का अन्य कोई शासक है ही नहीं। अतएव आप यम के प्रति कृपा करके उनकी रक्षा करें।'' हे महाराज! सुदर्शन चक्र ने राजा द्वारा स्तुति किये जाने पर यम को छोड़ दिया तथा वे राजा के पास गये। उन्होंने राजा को दर्शन दिया तदनन्तर सबके देखते-देखते आकाश-पथ से चले गये।।९२-९५।।

ततो यमोऽतिनिर्विण्णो ब्रह्मणः सदनं ययौ। स ददर्शसमासीनं मूर्तामूर्तजनैर्वृतम्।।९६।।
ध्रुवाश्रयं जगदबीजं सर्वलोकपितामहम्। उपास्यमानं विबुधैर्लोकपालैर्द्रिगीश्वरैः।।९७।।
इतिहासपुराणाद्यैर्देवैर्विग्रहसंस्थितैः। मूर्तिमद्भिः समुद्रैश्च नदीभिश्च सरावरैः।।९८।।
देहवद्भिस्तथा वृक्षैरश्वत्थाद्यैरशेषितैः। वापीकूपतडागैश्च मूर्तिमद्भिश्च पर्वतैः।।९९।।
अहोरात्रैस्तथाप क्षैर्मासैःसम्वत्सरैस्तथा। कलाकाष्ठानिमेषैश्चऋतुभिश्चाऽयनैर्युगैः।।१००।।
संकल्पैश्चविकल्पैश्च निमिषोन्मेषणैस्तथा। ऋक्षैर्योगैश्च करणैःपूर्णिमाभिःसुसंक्षयैः।।१०१।।
सुखैर्दुःखैर्भयैश्चैव लाभाऽलाभैर्जयाजयैः।
सत्त्वेन रजसा चैव तमसा च समन्वितम्।।१०२।।

तत्पश्चात् यमराज अत्यन्त निर्विण्ण होकर ब्रह्मा के पास गये। वे वहां जाकर देखते हैं कि ध्रुवलोक के भी आश्रयदाता जगत्बीज सर्वलोक पितामह ब्रह्मा वहां आसीन हैं। ब्रह्मा के उपासक जीवन्मुक्तों ने उनको चतुर्दिक् घेर रक्खा है। दिक्पाल, लोकपाल तथा अन्य बुद्धिमान लोग उनकी उपासना कर रहे हैं। पुराण इतिहास प्रभृति तथा वेद समूह भी देहधारण द्वारा मूर्त्तिमन्त होकर उनके समीप विद्यमान हैं। वहां पर मूर्त्तिमान समुद्र, नदी, सरोवर, अश्वत्थवृक्ष, वापी, कूप, तड़ाग, पर्वत, अहोरात्र, पक्ष-मास-संवत्सर-कला-कष्ठा-निमेष-ऋतु-अयन-युग, संकल्प-विकल्प, निमेष-उन्मेष, ऋक्ष-योग-करण-पूर्णिमा, संक्षय-सुख-दुःख, भय, लाभ-अलाभ, जय-अजय भी पितामह के समीप आसीन थे। वहां सत्व-रजः-तमः भी समन्वित थे।।९६-१०२।।

शान्तमूढाऽतिप्रौढैश्च विकारैः प्राकृतैरपि। वायुना देवदेवेनश्लेष्मपित्तादिभिर्वृतम्।।१०३।।
तेषां मध्येऽविशत्सौरिःसव्रीडाचवधूर्यथा। विलोकयन्धरापृष्ठंम्लानवक्त्रंव्यदर्शयत्।।१०४।।
सम्प्रविष्टं यमं दृष्ट्वा सकाशस्थं सहानुगम्।
विस्मितास्ते मिथः प्रोचुः किमर्थं भास्करिस्त्विह।।१०५।।
सम्प्राप्तोलोककर्तारंद्रष्टुंदेवंपितामहम्। निर्व्यापारःक्षणमपियोऽयंनास्तिरवेःसुतः।।१०६।।
सोऽयमभ्यागतः कस्मात्कच्चित्क्षेमं दिवौकसाम्।
आश्चर्याऽतियोऽयञ्च सम्पार्जितपटस्त्वयम्।।१०७।।
लेखकस्तमनुप्राप्तो दैन्येन महताऽन्वितः। न कदाचित्पटो ह्यस्यमार्जितोधर्मभीरुणा।।१०८।।
यन्न दृष्टं श्रुतं वाऽपि तदिहाऽद्य प्रपद्यते। एवमुच्चरतां तेषां भूतानां भूतशासनः।
निष्पापाताऽग्रतो भूमौ ब्रह्मणो रविनन्दनः।।१०९।।

कृत्तमुलोयथा शाखी त्राहित्राहीतिवै रुदन्। परिभूतौऽस्मिदेवेशसम्मार्जितपटःकृतः॥११०॥
त्वयि नाथे न विफलं पश्यामि कमलासन!॥१११॥

ये तीनों गुण शान्त, मूढ़, अतिप्रौढ़, विकारयुक्त व्यक्तिगण में युक्त रहते हैं। श्लेष्मा तथा पित्तादि से समन्वित देवदेव वायु भी भगवान् ब्रह्मा के निकट विद्यमान रहते हैं। म्लानमुख सूर्यपुत्र लज्जिता नववधु की तरह अधोमुखीन होकर उस सभा में आये। अपने अनुचरों के साथ सूर्यपुत्र ने वहां प्रवेश किया तथा सभासदों के निकट आये। तब वे सभासदगण विस्मित होकर परस्परतः वार्त्ता करने लगे कि "ये रविपुत्र लोकपितामह ब्रह्मदेव के दर्शनार्थ आये हैं। वे बिना कार्य कहीं भी क्षणमात्र भी नहीं रुकते। तब ये क्यों आये हैं? देवता कुशल तो हैं? और एक विस्मयकारी घटना देखी जा रही है। इनका बहीखाता तो मार्जित (धुल सा गया है) सा लग रहा है। इनके लेखक चित्रगुप्त महान् दैन्यभाव युक्त होकर इनका अनुगमन कर रहे हैं। ऐसा कोई धर्मभीरु नहीं है जो इनके बहीखाता का मार्जन कर सके। अहा! जो कभी देखा, न सुना, वह आज सामने आ रहा है।" ब्रह्मा की सभा के लोग आपस में यही बातचीत कर रहे थे। तभी निष्पाप सूर्यनन्दन यम ब्रह्मा के सामने "रक्षा करिये, रक्षा करिये" कहते हुये जड़ से काटे गये वृक्ष की तरह उनके चरणों में गिर पड़े।

यम कहते हैं—हे देवेश! मैं पराजित हो गया। मेरा बहीखाता मार्जित हो गया! हे कमलासन! आप जिसके नाथ विद्यमान हैं, उसे यह विकलता क्यों हो रही है?॥१०३-१११॥

एवमुक्त्वा हि निश्चेष्टो बभूवनृपसत्तम!। ततः कोलाहलःशब्दः सभायां समजायत॥११२॥
यो हि खेदयतेमर्त्यान्सर्वांस्थावरजङ्गमान्। सवैरुदतिदुःखार्तःकस्माद्वैवस्वतोयमः॥११३॥
जनसन्तापकर्त्ता यःसोचिराद्यात्यशोभनम्। नहिदुष्कृतकर्त्ता हिनरःप्राप्तोतिशोभनम्॥११४॥
ततोनिवारयामास वायुस्तेषां वचस्तदा। लोकानां समवेतानां मतंज्ञात्वासवेधसः॥११५॥
निवार्य लोकान्मार्तण्डि शनैरुत्थापपयन्मरुत्।
भुजाभ्यां शालपीनाभ्यां लोकसूत्र उदारधीः॥११६॥
विह्वलं तं परायत्तमासने सन्यवेशयत्। आसनस्थमुवाचेदं व्योमसूनू रवेः सुतम्॥११७॥
केन त्वमभिभूतोऽसि केनस्थानान्निवारितः।
केनाऽयं मार्जितोदेव! पटोलेखपटस्तव॥११८॥
ब्रूहि सर्वमशेषेण कुतोहेतोस्त्वमागतः। यः प्रभुस्तात! सर्वेषां सतेकर्तामामाऽपिच।
अपि कस्माच्च मार्तण्डे! दुःखं हृदयसंस्थितम्॥११९॥

यम यह कहकर निःश्चेष्ठ हो गये। सभा में आपस में बातचीत करने का स्वर गूंजने लगा। सभी आपस में कह रहे थे—"जो समस्त मनुष्य स्थावर तथा जंगम समूह में दुःख उत्पादित कर देते हैं, वे सूर्यपुत्र खिन्न होकर क्यों रो रहे हैं? अहा! जो व्यक्ति समस्त प्राणियों में सन्ताप उत्पादित करता है, उसे अब श्री भ्रष्ट होना पड़ा! दुष्कृत करने वाला व्यक्ति कभी भी श्रीमान् नहीं होता।" वायु ने सभी लोगों का विचार जानकर उनको बोलने से रोका तथा उनके वाक्यालाप में बाधा देकर अपनी शालवृक्ष के समान दीर्घ बाहु से सूर्यपुत्र यम को तत्काल उठाया। उन आकाशदूत वायुदेव ने उन विह्वल सूर्यपुत्र को आसन पर बैठाकर कहा—"हे देव!

हे पटो! किस व्यक्ति द्वारा आप पराजित किये गये? किसने आपको आपके अधिकार से च्युत किया? किस मानव ने आपका बहीखाता मार्जित कर दिया? आपके यहां आने का कारण क्या है? हे तात! जो सर्वभूत समूह के प्रभु हैं, वे ही हमारे-आपके कर्त्ता हैं। अतएव हे सूर्यपुत्र! किस कारण से आपका हृदय दुःख से विह्वल है? वह कारण मुझसे कहना उचित होगा।"।।११२-११९।।

स एवमुक्तः श्वसनेन सत्यमादित्यसूनुर्वचनं बभाषे।
विलोक्य वक्त्रं कुशकेतुसूनोः सगद्गदं चेदमहोऽतिदीनम्।।१२०।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैरूणवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे कीर्तमद्विजयवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः।।११।।

वायु द्वारा यह पूछे जाने पर आदित्य तनय यम ने दीर्घ निःश्वास छोड़ा तथा सत्य वाक्य कहने लगे। यम ने कुशकेतु पुत्र उन राजा का स्मरण करके दीन वाणी में ब्रह्मदेव से कहा।।१२०।।

।।एकादश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

द्वादशोऽध्यायः

यम दुःखनिरूपण, यम का ब्रह्मा से अपना दुःख कहना

यम उवाच

शृणु मे वचनं नाथ! लोपितोऽहं पितामह। मरणादधिकं मन्येमत्पदस्यचखण्डनम्।।१।।
नियोगी न नियोगं हि करोति कमलासन!। प्रभोर्वित्तंसमश्नातिसभवेत्काष्ठकीटकः।।२।।
योऽश्नाति लोभाद्वित्तानिप्रज्ञावांश्चमहीपते!। सतिर्यग्योनिनरकेयातिकल्पशतत्रयम्।।३।।
निःस्पृहो नाऽऽचरेद्यस्तु नियोगं पद्मसम्भव!।
भूक्त्वा तु नरकान्घोरान्स पुमान्वायसो भवेत्।।४।।
आत्मकार्यपरोयस्तुस्वामिकार्यंविलुम्पति। भवेद्वेशमनिपापात्माआरवुःकल्पशतत्रयम्।।५।।

यम कहते हैं—हे नाथ! मेरा वाक्य सुनिये। मेरा प्रभाव लुप्त हो गया है। हे पितामह! मेरा अधिकार खण्डित हो गया है, जो मेरे लिये मृत्यु से भी कष्टप्रद है। हे कमलासन! यदि दण्डाधिकारी व्यक्ति दोषियों को दण्ड न दे सके, तब वह तो अपने स्वामी का धन नाश करता है। हे जगत्पति! जो प्रज्ञावान् होकर भी लोभ के कारण स्वामी के वित्त का उपभोग करता है, वह ३०० कल्पपर्यन्त तिर्यक्योनि में गमन करता है। हे पद्मयोनि! जो व्यक्ति निःस्पृह होकर प्रभु की आज्ञापालन नहीं करता, वह व्यक्ति काक होकर जन्म लेता है। जो

व्यक्ति आत्मकार्य तत्पर होकर प्रभु कार्य का नाश करता है, वह ३०० कल्प पर्यन्त पापात्मा के गृह में चूहे की योनि में जन्म लेता है।।१-५।।

नियोगीयश्च भूत्वा वै तिष्ठन्नित्यंस्ववेश्मनि। शक्तस्तु कार्यकरणेमार्जारोजायतेनरः॥६॥
सोऽहं देव! तवादेशात्प्रजाधर्मेण साधये। पुण्येन पुण्यकर्तारं पापं पापेन कर्मणा॥७॥
सम्यग्विचार्य मुनिभिर्धर्मशास्त्रान्वितैः प्रभो। कल्पादौ वर्तमानस्ययातनादापयन्मम्॥८॥
कर्तुं नियोगमेवं हित्वदीयोनैवशक्नुयाम्। राज्ञाकीर्तिमताभग्नोनियोगस्तवचक्षितौ॥९॥
भयादस्य जगन्नाथ पृथिवीं सागराम्बराम्। वैशाखधर्मसहितां पालयन्वर्तते क्वचित्॥१०॥
विहाय सर्वधर्मांश्चविहाय पितृपूजनम्। विहायाऽग्निसपर्यातुतीर्थयात्रादिसत्क्रियाः॥११॥
योगसाङ्ख्यावुभौ त्यक्त्वा त्यक्त्वा प्राणनिरोधनम्।
त्यक्त्वा होमञ्च स्वाध्यायं कृत्वा पापानि भूरिशः॥१२॥
प्रयान्तिवैष्णवं लोकंकृत्वावैशाखसत्क्रियाः। मनुजाःपितृभिःसार्द्धंतथैवचपितामहैः॥१३॥

यदि दण्डाधिकार प्राप्त व्यक्ति समर्थ रहते भी सतत् अपने घर में पड़ा रहे, तब उसे मार्जार (बिल्ली) की योनि में जन्म लेना पड़ेगा। हे देव! मैं आप द्वारा ही नियुक्त किया गया हूं। मैं आपकी प्रजा के धर्म का आश्रय लेकर आपके आदेशानुसार पुण्यकर्मा व्यक्तियों के साथ पवित्र भाव से तथा पापाचारियों के साथ कठोर कर्म द्वारा शासन करता हूं। हे प्रभो! आदिकल्प में आपके द्वारा यह अधिकार मिला है। मैं मुनिगण द्वारा प्रणीत धर्मशास्त्रों का विचार करके ही दण्ड के भागी लोगों को दण्ड देता हूं। हे प्रभो! मैं कभी भी आपकी आज्ञा के विरुद्ध चलने में समर्थ नहीं हूं। सम्प्रति पृथिवी के राजा कीर्त्तिमान ने आपके इस नियोगरूपी कार्य को भंग किया है। हे जगत्पति! राजा कीर्त्तिमान ने सागराम्बरा धरती में सर्वत्र वैशाखधर्म की घोषणा किया है। उसके भय से प्रजावर्ग पितृपूजा, अग्निसेवा (होम), तीर्थयात्रादि सत्कर्म, सांख्य-योग, प्राणायाम, होम, स्वाध्याय आदि समस्त धर्मकर्म का त्याग करके भूरि-भूरि पापाचरण करने पर भी वैशाखधर्मपालन के कारण विष्णुलोक जा रहे हैं। हे पितामह! क्या कहूं? वैशाख की सत्क्रिया करने वाले मनुष्य पितृ-पितामहादि सहित विष्णुलोकगामी हो रहे हैं।।६-१३।।

तेषामतीतपितरः पितॄणां पितरस्तथा। तथामातामहा यान्ति तेषां वै जनकादयः॥१४॥
तेषामपि च नेतारो जनित्रीणाञ्च पूर्वजाः। एतद्दुःखं पुनर्देव मम मस्तकभेदनम्॥१५॥
प्रियायाः पितरो यान्ति मार्जयित्वा लिपिं मम।
पितॄणां बीजजो यस्तु धात्र्या कुक्षौ धृतो विभो!॥१६॥

उनके पितामह के भी ऊर्ध्वतन पितृगण, उनके भी पितृगण, मातामह, मातामह के भी पिता आदि, उनके भी पितृगण तथा उनकी माता, माता के भी पूर्वजगण विष्णुलोक जा रहे हैं। हे देव! यही मेरा महादुःख है। यह मेरी शिरभेदी पीड़ा है। हे विभु! जो वैशाखव्रत करते हैं, उनके श्वशुरगण भी मेरे लिखे को व्यर्थ करके विष्णुलोक गमन करते हैं। जो गोद में खेलने वाले शिशु हैं, वे भी उसी अवस्था में विष्णुलोकगामी हो जाते हैं।।१४-१६।।

यदङ्केन कृतं कर्म तदङ्केनैव भुज्यते। तन्निरस्य कृतं सर्वं जानंस्त्वेकः कुलेतु यः॥१७॥

तारयेत्तावुभौपक्षौषड्विंशोपर्यलंविभो। प्रियायाऽश्चापिवैतातसर्वेवैकुक्षिसम्भवाः॥१८॥
तेऽपि सर्वे जगन्नाथ! यान्तिविष्णोः परं पदम्। न मे प्रयोजनं देवनियोगेनेदृशेनवै॥१९॥
वैशाखधर्मनिरतःसमांत्यक्त्वाव्रजेद्धरिम्। त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्यत्यक्तपापोऽतिशोभनः॥२०॥
स त्यक्त्वा मम मार्गं हिप्रयातिहरिमन्दिरम्। न यज्ञैस्तादृशैर्देवगतिंप्राप्नोतिमानवः॥२१॥
सर्वतीर्थैर्न दानाद्यैर्न तपोभिश्च न व्रतैः। अपि वा सकलैर्धर्मैर्युक्तो नाऽऽप्नोति तां गतिम्॥२२॥

प्रयागपाताद्रणमध्यपाताद् भृगोश्च पातान्मरणाच्च काश्याम्।
न तां गतिं यान्ति जनाश्च सर्वे वैशाखनिष्ठेन च या प्रपद्यते॥२३॥
प्रातः स्नात्वा देवपूजाञ्च कृत्वा श्रुत्वा कथां मासमाहात्म्यसञ्ज्ञाम्।
धर्मान्कृत्वा चोचितान्वैष्णवांश्च स वै भवेद्विष्णुलोकैकनाथः॥२४॥

ऐसे पितरों की अन्य शाखा वाले ज्ञातिजन, जो धरती की गोद में क्रीड़ारत हैं, वे भी विष्णुलोक गमन करते हैं। जो कुल का एकमात्र आश्रय है, वह भी ज्ञानबल से सर्वविषय त्याग करके विष्णुलोक जाता है। हे तात! हे विभु! वैशाखव्रतीगणों की स्त्री से उत्पन्न सन्तान भी अपने पिता-माता, उभयकुल की छब्बीस पीढ़ी तक का उद्धार कर दे रहे हैं! हे जगत्पति! सभी परमपुरुष विष्णु के परमपद को प्राप्त हो रहे हैं। हे देव! वैशाखधर्म तत्पर व्यक्ति मेरा अतिक्रम करके परमपद चले जा रहे हैं, अतः अब मेरा कोई प्रयोजन कहां रह गया? जिसने पाप किया है, वह भी इक्कीस पीढ़ी का उद्धार करके तथा स्वयं पापरहित होकर सुशोभन वेश में मेरे अंधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण करके हरि के धाम चले जा रहे हैं। हे देव! मानव नाना यज्ञ, तप, सर्वतीर्थ सेवा, अनेक दान, व्रत, सर्वविध धर्माचरण से भी जो गतिलाभ नहीं करते, एकमात्र वैशाख व्रताचरण करके उसी गति को पा लेते हैं। मानवगण वैशाखव्रताचरण द्वारा जिस मुक्ति को अनायास पा लेते हैं, प्रयाग, रणभूमि, पर्वत शिखर तथा वाराणसी में प्राणत्याग से जो गति प्राप्त होती है, वह भी इस मुक्ति के बराबर नहीं है। जो मानव वैशाख में प्रातःस्नान देवपूजा, वैशाखामास माहात्म्य श्रवण तथा यथोचित वैष्णवधर्म का पालन करते हैं, वे एकमात्र विष्णुलोक के नाथरूप में (सारूप्य) परिणत होते हैं।।१७-२४।।

अप्रमाणमहं मन्ये लोकं विष्णोर्जगत्पतेः। यो न पूर्येतकोट्योघैःसर्वतःकमलासन्!॥२५॥
माधवावसथेनेह समस्तेन पितामहम्। विकर्मस्थाऽविकर्मस्थाःशुचयोऽशुचयस्तथा॥२६॥

कृत्वा वैशाखकृत्यानि लोका यान्ति नृपाऽऽज्ञया।
योऽस्माकंहि महच्छत्रुर्भवताञ्च विशेषतः॥२७॥

निग्राह्योजगतांनाथभवताऽसौमहीपतिः। हित्वाहिसकलान्धर्मान्सकृद्वैशाखस्नानतः॥२८॥
असंस्कृतजनायान्तिवैकुण्ठंहरिमन्दिरम्। अस्माभिस्तुकृतोपेक्षोविष्णुपादैकसंश्रयः॥२९॥
समस्तं नेष्यते लोकं पार्थिवो नाऽत्रसंशयः। एषदण्डपटोह्यद्यतवपद्भ्यांनिवेदितः॥३०॥
लोकपालत्वमतुलमर्जितं तेन भूभुजा। किमपत्येन जातेन मातुः क्लेशकरेण वै॥३१॥
योनपातयते शत्रुं ज्येष्ठमासीव भास्करः। वृथासुता हि युवतिर्जाताचेद्धिकुपुत्रिणी॥३२॥

हे कमलासन! यह मुझे उचित नहीं लगता, अप्रमाण लगता है। क्योंकि जो पापी वहां (वैकुण्ठ में) जाते हैं, वे क्या जगदीश्वर विष्णु के लोक में सर्वत्र भर तो नहीं जा रहे हैं? हे पितामह! निषिद्ध कार्यकर्त्ता, विधिवत् धर्म करने वाले, पवित्र-अपवित्र, सभी राजा की आज्ञा से वैशाख व्रत के सभी धर्म का पालन करते हुये विष्णुलोक गमन कर रहे हैं! इसलिये यह राजा आपका तथा मेरा, दोनों का शत्रु है। हे जगदीश्वर! विशेषतः आप इस राजा का निग्रह करें। सभी धर्मकृत्य छोड़कर मात्र एक बार वैशाख स्नान करने से भी सभी असंस्कृत व्यक्ति भी हरिधाम वैकुण्ठ चले जा रहे हैं। यह राजा एकमात्र विष्णु के चरणों का आश्रय ले चुका है। मृत्युलोकाधिपति यह राजा समस्त लोगों को वैकुण्ठ भेजेगा, इसमें सन्देह नहीं है। हे दण्डनिपुण! यह राजा अतुललोकपालत्व अर्जित कर चुका है। यही आपके चरणों में मेरा निवेदन है। जो पुत्र माता को दुःख देता है, जो पुत्र ज्येष्ठ मास के सूर्य जैसा ताप शत्रुगण में उत्पन्न नहीं करता, उसके जन्म का क्या लाभ! जो माता ऐसे सन्तान को जन्म देती है, उसे कुपुत्रिणी कहा गया है।।२५-३२।।

न तस्याः स्फुरते कीर्तिर्घनस्येव शतह्लदा। यत्पितुर्नोद्धरेत्यापाद्विद्यया वा बलेन वा।।३३।।
मातुर्जठरजो रोगः स प्रसूतो धरातले। धर्मे चाऽर्थे च कामे चयत्प्रतीपोभवेत्सुतः।।३४।।
मातृहाह्युच्यते सद्भिः स पुत्रः पुरुषाधमः। तन्माता नृपपत्नीचलोकविख्यातसत्क्रिया।।३५।।
एकैव वीरसूर्लोके वीरः स नात्र संशयः। यथा वै कीर्तिमाञ्जातो मल्लिपेर्मार्जनायवै।।३६।।
नेदं व्यवसितं देव! केनचित्क्षत्रियेण हि। पुराणेषु जगन्नाथ न श्रुतं पटमार्जनम्।।३७।।
सोऽहं न जानामि जगत्पीतश ऋते क्षितीशं! हरितत्परं तम्।
प्रयोदयन्तं पटहं सुघोषाद्विलोपयानं मम वेश्ममार्गम्।।३८।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीष-सम्वादे यमदुःखनिरूपणंनाम द्वादशोऽध्यायः।।१२।।
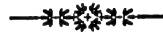
जैसे मेघमाला की विद्युत् चमक कर अदृश्य हो जाती है, उसी प्रकार ऐसी माता की कीर्त्ति का लोप हो जाता है। जो पुत्र विद्या अथवा वीर्य से पिता को पाप से मुक्त नहीं करता, वह पृथिवी पर जन्म लेकर भी माता के उदर को पीड़ा देने वाला ही है। जो पुत्र धर्म-अर्थ-काम से विमुख है, पण्डितगण ऐसे पुत्र को मातृहन्ता कहते हैं। वह पुरुषों में अधम है। राजा कीर्त्तिमान् ने जिसके उदर से जन्म लिया है, वे माता राज पत्नी हैं। वे सत्क्रिया द्वारा लोक में विख्यात हैं तथा वीर प्रसु हैं। यह राजा वीरपुत्र है। इसमें सन्देह नहीं है। इस कीर्त्तिमान ने मेरे लेख (कर्मलेख) को धो डाला है। हे देव! कोई क्षत्रिय यह नहीं कर सकता। हे जगत्पति! पुराणों में भी यह कहीं नहीं सुना कि किसी ने मेरी लिपि का खण्डन किया हो! हे जगत्पति! हे स्वामिन्! यह हरिपरायण पृथिवीपति कीर्त्तिमान् ही ऐसा व्यक्ति है, जिसने भेरीनाद से वह घोषणा कराई है, जिससे मेरा अधिकार ही लुप्त हो गया! ऐसे किसी अन्य को मैं नहीं जानता।।३३-३८।।

।।द्वादश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

त्रयोदशोऽध्यायः

यम को सान्त्वना

ब्रह्मोवाच

किमाश्चर्यं त्वया दृष्टं किमर्थंखिद्यते भवान्। सद्गणेषुकृस्तापःसतापोमरणान्तिकः॥१॥
तस्योच्चारणमात्रेण प्राप्यते परमं पदम्। नगच्छन्ति हरेर्लोकं कथं भूपस्यशासनात्॥२॥

एकोऽपि गोविन्दकृतः प्रणामः शताश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
यज्ञस्य कर्त्ता पुनरेति जन्म हरेः प्रणामो न पुनर्भवाय॥३॥

कुरुक्षेत्रेण किं तस्य सरस्वत्या च किं तथा। जिह्वाग्रे वर्ततेयस्यहरिरित्यक्षरद्वयम्॥४॥
ब्राह्मणाः श्वपचींभुञ्जन्विशेषेणरजस्वलाम्। यदिविष्णुंसमरणेस्मरेन्नाप्नोतितत्पदम्॥५॥

अभक्ष्यभक्षणाज्जातं विहायाऽघस्य सञ्चयम्।
प्रयाति विष्णुसायज्यं यतो विष्णुप्रिया स्मृतिः॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—तुमने यह क्या आश्चर्य देखा? तुम दुःख क्यों करते हो? वास्तव में साधुजन को जो ताप देता है, वह ताप दाता हेतु मरणान्तक हो जाता है। राजा कीर्त्तिमान साधु हैं। उसके नामोच्चारण मात्र से परमपद की प्राप्ति होती है। अतएव इन राजा के शासन में प्रजागण हरि के धाम क्यों नहीं जायेंगे? जो मानव एक बार भी गोविन्द के चरणकमल में प्रणत होता है, वह तो १०० अश्वमेध करने वाले अवभृत स्नानयुक्त व्यक्ति के समान हो जाता है। यज्ञकर्त्ता पुनः जन्म लेता है, लेकिन श्रीहरि को प्रणाम करने वाले का जन्म नहीं होता। जिसके जिह्वा से "हरि" यह दो अक्षर उच्चरित होते हैं, कुरुक्षेत्र तथा सरस्वती तीर्थ की सेवा करने से उसे क्या लाभ? देखो! ब्राह्मण रजस्वला चाण्डाली का उपभोग करके यदि मरणकाल में विष्णु स्मरण करता है, तब क्या उसे हरि का परम पद नहीं मिलेगा? (अवश्य मिलेगा)। जिसे हरि की स्तुति प्रिय है, मानव उस हरिनाम का स्मरण करके अभक्ष्य-भक्षण जनित पुंजीकृत पाप दूर भगाकर विष्णु सायुज्य का लाभ करता है।।१-६।।

एवं विष्णुप्रियो मासोवैशाखोनामवैयम!। यद्धर्मश्रवणादेवमुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥७॥
यातीति किमुवक्तव्यं तस्यानुष्ठानतत्परः। यस्मिन्सङ्गीयते यो हिप्रीयतेपुरुषोत्तमः॥८॥
कथं न याति च गतिं तस्याऽनुष्ठानतत्परः। अस्माकं जगतांनाथोजनितापुरुषोत्तमः॥९॥

तस्येष्टान्माधवे मासि धर्मानेतान्करोत्ययम्।
तस्य विष्णुः प्रसन्नात्मा सहाये सर्वदा स्थितः॥१०॥

न तस्य भूपतेः सौरे समर्थस्त्वं च शिक्षणे। न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यतेक्वचित्।
जन्ममृत्युजराव्याधिभयं नैवोपजायते॥११॥

नियोगी स्वामिकार्येषुयावच्छक्तिसमीहते। तावतासकृतार्थःस्यान्नरकान्नैवगच्छति॥१२॥

कार्ये शक्तिविनिष्क्रान्ते स्वामिने च निवेदयेत्।
अनृणस्तावता भृत्यो नियोगी सुखमश्नुते॥१३॥

हे यम! यह वैशाख मास विष्णु को प्रिय है। इस वैशाखमास के धर्म का श्रवण करके मानव सभी पापों से मुक्त हो जाता है। मानव वैशाखमासीय व्रत में निरत होकर विष्णुलोक गमन करेगा ही, इसमें और क्या कहा जाये! जिस वैशाख मास में नामकीर्त्तन करने से विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं, उस वैशाख का अनुष्ठान करने पर मानव को उत्तम गति क्यों नहीं मिलेगी? पुरुषोत्तम विष्णु जगत् के नाथ हैं तथा हमारे जन्मदाता हैं। राजा कीर्त्तिमान इस विष्णुप्रिय वैशाख धर्म का आचरण करते हैं। अतएव प्रसन्नात्मा विष्णु उनके सहायक हैं। हे सूर्यपुत्र! तुम उसको शिक्षा प्रदान कर सकने में असमर्थ हो। देखो! वासुदेव के भक्तों का कभी अशुभ नहीं होता। उनके लिये जन्म-मृत्यु-जरा-तथा व्याधिभय नहीं है। हे जगत्पति! नियोगी व्यक्ति स्वामीकार्य को यथाशक्ति करके कृतार्थ होता है। यथासाध्य स्वामी के कार्य का अनुष्ठान करने वाला नियोगी कभी नरकगमन नहीं करता। यदि प्रभु की सेवा भृत्य नहीं कर पाता तब वह प्रभु से ही निवेदन करे। यह होने से नियोगी भृत्य ऋणरहित तथा सुखी हो जाता है।।७-१३।।

तस्मान्निवेदितार्थस्यन ऋणं न च पातकम्। यत्नेकृतेस्वकर्तव्येनापराधोस्तिदेहिनः॥१४॥
तस्मादशक्यकार्येऽस्मिन्न विशोचितुर्महसि॥१५॥

जो भृत्य साध्यातीत कार्य न कर सकने का निवेदन स्वामी से करता है, वह अऋणी तथा पातक रहित ही है। जैसे भृत्य अपना कार्य करता है, उसी प्रकार वह प्रभु के आदेश पालनार्थ यत्नवान् हो जाये। यदि वह कार्य यत्न करने पर भी सफल न हो सके, तब उससे उस व्यक्ति का कोई दोष नहीं है। यह राजा कीर्त्तिमान विष्णुभक्त है। इसे तुम शिक्षा नहीं दे सकते। इसलिये इस सम्बन्ध में शोक करना व्यर्थ है।।१४-१५।।

इत्युक्तोब्रह्मणासौरिःपुनरत्यन्तखिन्नधीः। उवाचदीनयावाचागलद्बाष्पाऽऽकुलेक्षणः॥१६॥
प्राप्तं तात मया सर्वं त्वदङ्घ्रिभजनेन वै। नाऽहंयास्ये पुनः कर्तुं नियोगं पद्मसम्भव!॥१७॥
प्रशासति महावीर्येभूपेऽस्मिन्भूमिमण्डले। चालयित्वास्वधर्मांश्चतमेकंभूपतिंविभो॥१८॥
कृतकृत्योऽस्मितनयोगयायांपिण्डदोयथा। कृपालोतदिदंकार्यंसाधयस्वममाव्ययम्॥१९॥
विज्वरस्तु ततो भूयः शासनंतेकरोम्यहम्। श्रुत्वाब्रह्मा यमेनोक्तं पुनश्चिन्तापरायणः।
तमुवाच पुनर्ब्रह्मा सान्त्वयन्बहुधाऽप्यमुम्॥२०॥

ब्रह्मा द्वारा यह कहे जाने पर सूर्यपुत्र यम और भी खिन्न हो गये। वे अश्रुपूर्ण नेत्रों से दीनवाक्य कहने लगे—"हे पद्मसंभव! आपके चरणों की सेवा करके ही मैंने सभी अधिकारों को प्राप्त किया है। हे विभु! महाबली भूपाल कीर्त्तिमान स्वधर्म का प्रचार करते हुये पृथिवी पर शासन करेगा, तब तक मैं आपके कार्य को नहीं कर सकूंगा। जैसे गया में पिण्ड प्रदान करके जिस प्रकार से पुत्र अपने जन्मदाता के प्रति कृतकृत्य हो जाता है, अब मैं भी उतना कृतकृत्य हो गया हूं। हे कृपालु! आप कृपापूर्वक मेरा यह कार्य साधन करिये। इससे मैं विगत ज्वर होकर आपके आदेश का संरक्षण कर सकूं।" यम का वाक्य सुनकर ब्रह्मा चिन्तित हो गये तथा वे यमराज को अनेक प्रकार से सान्त्वना देकर कहने लगे।।१६-२०।।

ब्रह्मोवाच

न निग्रीह्यस्त्वया राजा विष्णुधर्मपरायणः॥२१॥
यदि च्छलयसे कोषाद्गच्छामोह्यान्तिकंहरेः। निवेद्य सकलंतस्मै कर्मपश्चात्तदीरितम्॥२२॥
स एवकर्त्तालोकस्यधर्मस्यपरिपालकः। सचदण्डधरोऽस्माकंशास्ताकर्त्तानियामकः॥२३॥
नतदुक्तेऽस्तिप्रत्युक्तिरस्माकंविहितावृष!। नराजोक्तेस्तुप्रत्युक्तिर्दृश्यतेक्वाऽपिभूतले॥२४॥
इत्याश्वास्य यमं तेन साकं क्षीराम्बुधिं ययौ। ब्रह्मातुष्टाव चिन्मात्रं निर्गुणंपरमेश्वरः॥२५॥
साङ्ख्ययोगैरद्वितीयमेकं तं पुरुषोत्तमम्। आविरासीत्तदाविष्णुर्ब्रह्मणासंस्तुतोहरिः॥२६॥
प्रणामं चक्रतुस्तस्मै यमो ब्रह्मा च सत्वरम्। तवुवाचमहाविष्णुर्मेघगम्भीरयागिरा॥२७॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—"हे यम! राजा कीर्त्तिमान तो विष्णुधर्म परायण हैं। वे तुम्हारे द्वारा निग्रह योग्य नहीं हैं। यदि क्रोध के कारण तुम उनको वंचित करना चाहो, तब मैं हरि के पास जाकर तुम्हारे द्वारा आचरित कर्मों का वर्णन उनसे करूंगा। हे यम! तदनन्तर उनके आदेशानुरूप आचरण करूंगा। वे तो त्रैलोक्य के कर्त्ता तथा धर्मपालक हैं। वे हमें दण्ड देने वाले प्रभु हैं। वे हमारे शासक, कर्त्ता तथा नियामक भी हैं। हे धर्म! उनकी उक्ति की प्रत्युक्ति करना हमारे द्वारा विहित नहीं है। राजा की उक्ति की प्रत्युक्ति करते कहीं भी प्रजाजन को नहीं देखा है।" ब्रह्मा ने यम को इस प्रकार से आश्वस्त किया तथा उसके साथ क्षीरसागर के तट पर गये तथा सांख्य-योग द्वारा एक अद्वितीय चिन्मात्र निर्गुण पुरुषोत्तम का स्तव करने लगे। तत्पश्चात् ब्रह्मा द्वारा स्तुत होकर श्रीहरि वहां आविर्भूत हो गये। यम तथा ब्रह्मा ने उनको तत्काल प्रणाम किया। महाविष्णु मेघगंभीर स्वर में कहने लगे।।२१-२७।।

कस्माद्युवामिहाऽऽयातौ किं दुःखंदनुजैरभूत्। म्लानंयममुखंकस्मात्केनवानतकन्धरः॥२८॥
एतद्वदस्व मे ब्रह्मन्नित्युक्तश्चाहकञ्जजः। त्वद्दासवर्ये भूपाले भूमिं शासति वै नराः॥२९॥
वैशाखधर्मनिरता यान्ति ते परमव्ययम्। ततो यमपुरी शून्यातेन चाऽतीवदुःखितः॥३०॥

महाविष्णु कहते हैं—"आप यहां किस प्रयोजन से आये हैं? क्या किसी दानव ने आप लोगों पर दुःख उत्पादन किया है? मैं यम का मुख क्यों म्लान देख रहा हूं। इनका मस्तक क्यों नत है? हे ब्रह्मन्! यह सब कहिये।" तदनन्तर विष्णुनाभि कमल से उत्पन्न ब्रह्मा कहने लगे—"आपके भक्तप्रवर भूपति कीर्त्तिमान वसुधा का शासन कर रहे हैं। उनके प्रजागण वैशाखधर्म तत्पर होकर आपके अव्यय पद में प्रविष्ट होते जा रहे हैं। इससे यमपुरी शून्य होती जा रही है। अतः यम अत्यन्त दुःख पा रहे हैं।"।।२८-३०।।

तेन युद्धं चकाराऽऽसौहन्तुंदण्डमथाऽऽददे। त्वच्चक्रेणपराभतोययावद्यममान्तिकम्॥३१॥
न च शक्ता वयं दण्डं त्वद्भक्तानांमहात्मनाम्। तस्मात्त्वामेवशरणंवयंप्राप्तामहाविभो॥३२॥
तस्माद्भूपं दण्डयित्वा पालयैनं यमं स्वकम्। इत्युक्तः प्रहसन्प्राह ब्रह्माणंयममेवच॥३३॥

"यम ने उन राजा कीर्त्तिमान से युद्ध किया था। उनका वध करने हेतु यमदण्ड का भी प्रहार किया था, तथापि आपके चक्र से पराभूत यम मेरे पास आ गये। हे महाविभो! आपके महात्मा भक्तों के प्रति दण्ड प्रदान करने में मैं असमर्थ हूं। अतएव हम आपकी शरण ग्रहण करते हैं। यमराज भी आपके ही हैं। अतः आप

राजा को दण्डित करके यम का पालन करिये।" ब्रह्मा द्वारा यह प्रार्थना किये जाने पर विष्णु हंसते हुये यम तथा ब्रह्मा से कहने लगे।।३१-३३।।

लक्ष्मीं वाऽपि परित्यक्ष्ये प्राणान्देहमथाऽपि वा।
श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां वैजयन्तीमथाऽपि वा।।३४।।

श्वेतद्वीपञ्च वैकुण्ठं क्षीरसागरमेव च। शेषं च गरुडं चैव न भक्तं त्यक्तुमुत्सहे।।३५।।

विसृज्य सकलान्भोगान्मदर्थे त्यक्तजीवितान्।
मदात्मकान्महाभागान्कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे।।३६।।

तस्मात्त्वद् दुःखशमने ह्युपायं कल्पयाम्यहम्। तस्य चायुर्मया दत्तमयुतं भूपतेर्भुवि।।३७।।
गतान्यष्टौ सहस्राणि तत्रेदानीं नरान्तक!। आयुः शेषेतेन नीतेमत्सायुज्यंगतेऽपिच।।३८।।

भविष्यति ततो राजा वेनो नाम दुरात्मवान्।
स लुम्पतिमहाधर्मान्सर्वानेताञ्छ्रुतीरितान्।।३९।।

तदा वैशाखधर्माश्चविच्छिन्नाःस्युर्नसंशयः। स्वकृतेनैव पापेन वेनो दग्धोभविष्यति।।४०।।
पश्चादहं पृथुर्भूत्वापुनर्धर्मान्प्रवर्तये। तदाजनेषुप्रख्यातान्वैशाखोक्तान्करोम्यहम्।।४१।।
मद्भक्तोमद्गतप्राणो यस्तु विन्यस्तसंग्रहः। एकःसहस्रेभवितातस्य प्रख्यापयेद्धितान्।।४२।।

विष्णु कहते हैं—मैं लक्ष्मी का त्याग कर सकता हूं, अथवा प्राण-देह-श्रीवत्स-कौस्तुभ-वैजयन्ती माला-श्वेत द्वीप-वैकुण्ठ-क्षीरसागर-शेष-गरुड़ तथा सबका त्याग कर सकता हूं, तथापि कदापि भक्तों का त्याग नहीं कर सकता। जिन्होंने विविध विलास-भोगों का त्याग करके मेरे लिये जीवन का उत्सर्ग कर दिया, जो महाभाग महात्मा नित्य मुझमें निरत हैं, उनको किस प्रकार से त्याग सकता हूं? हे नरान्तक यम! तुम्हारे दुःखों को शान्त करने के लिये मैं एक उपाय करता हूं। मैंने पृथिवी पर इन राजा की आयु १०००० वर्ष निश्चित किया है। इन १०००० वर्षों में से ८००० वर्ष व्यतीत हो गये हैं। इनकी जब आयु समाप्त हो जायेगी, तब ये राजा मेरा सायुज्य प्राप्त करेंगे। जब दुरात्मा राजा वेन जन्म लेकर वेदादि धर्म का लोप करेगा, तब वैशाख धर्म समूह विच्छिन्न होगा। इसमें सन्देह नहीं है। उस समय वेन स्वकृत पापों से दग्ध हो जायेगा। तदनन्तर मैं पृथु रूपेण अवतीर्ण होकर पुनः धर्मों को प्रवर्त्तित करूंगा। तदनन्तर मेरे द्वारा जनसमाज में वैशाखधर्म प्रचारित होगा। हजारों में से कोई एक व्यक्ति विषयों से निःस्पृह होकर मेरा भक्त तथा मद्गत् प्राण होगा।।३४-४२।।

कश्चिदेव हि जानातु धर्मानेतान्क्षितौ मम। ततस्तेभविता कार्यं माविषीदनरान्तक।।४३।।
दापयिष्यामिते भागंमासेऽस्मिन्माधवेऽपिच। नरैःसर्वैश्चवैशाखधर्मनिष्ठैर्महात्मभिः।।४४।।
भूपेनाऽपि च कालेन खेदं शमय तेन च। वीर्यशुल्कंतुतेभागंशत्रोर्भुङ्क्तेबलाधिकात्।।४५।।
गृह्णन्गृह्णन्स्वकं भागं न भागी दुःखमर्हति। त्वामुद्दिश्य न कुर्वन्ति प्रत्यहंयेनराभुवि।।४६।।

स्नानं चाऽर्घ्यं सोदकुम्भं दध्यन्नं चाऽन्तिने दिने।
वैशाखे सकलं कर्म तेषां च विफलं भवेत्।।४७।।

पृथिवी पर कदाचित किसी एक को वैशाखधर्म ज्ञात होगा। हे नरात्तक! तब तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा। हे नरान्तक! तुम दुःख न करो। वैशाखमास में मैं तुम्हारा एक भाग निर्दिष्ट कर दूंगा। स्वयं राजा यथाकाल तुमको प्राप्य वह भाग प्रदान करेंगे। अतः अपना दुःख दूर करो। देखो! शत्रु द्वारा अधीकृत अपना अधिकार बलवीर्य द्वारा प्राप्त होने पर उस अधिकार भोग करके और दुःखी होना उचित नहीं है। भूतल पर जो लोग नित्य प्रातः स्नान तुम्हारे उद्देश्य से करके अर्घ्य, जलपूर्ण कुम्भ तथा दही के साथ अन्नदान नहीं करेंगे, उनका समस्त वैशाखमास में किया धर्म विफल होगा।।४३-४७।।

तस्मात्क्रोधं त्यजनृपे भागदे मत्परायणे। ये के चाऽपिचकुर्वन्तिलोकेतेभागदानराः।।४८।।
वैशाखोक्ते महाधर्मे तेषां विघ्नंचमाकुरु। मामेवयेयजन्त्यद्धात्वांहित्वाधर्मपालकम्।।४९।।
मदाज्ञया महाभाग! तदा दण्डञ्च त्वं कुरु। नृपाद्भागं दापयितुं सुनन्दं प्रेषयामि च।।५०।।
मच्छासनात्स वै गत्वा भागं ते दापयिष्यति। तिष्ठत्येवं यमे स्वस्य सन्निधौ गरुडासनः।।५१।।
सुनन्दं प्रेषयामास नृपं बोधयितुं विभुः। सोऽपिगत्वाबोधयित्वापार्श्वञ्चपुनरागमत्।।५२।।

"हे यम! राजा कीर्त्तिमान धार्मिक हैं। वे तुम्हारा भाग तुमको प्रदान करेंगे। अतः उनके प्रति क्रोध नहीं करो। केवल राजा ही क्यों? पृथिवी पर जो भी तुम्हारा भाग प्रदान करेंगे, तुम कदापि उनके वैशाख धर्म में विघ्न नहीं करना। हे महाभाग धर्मपाल! जो मेरी आज्ञा का उल्लंघन करके तुम्हारा परित्याग करके केवल मेरी पूजा करेंगे, तुम उनको दण्डित करना। मैं तुम्हारा भाग देने की आज्ञा बतलाने के लिये सुनन्द को राजा कीर्त्तिमान के पास तत्काल भेज रहा हूं। वे राजा से तत्काल तुम्हारा भाग प्रदान करायेंगे।" तदनन्तर गरुड़वाहन विभु विष्णु ने यम के रहते ही उनके सामने राजा को आज्ञा सुनाने के लिये सुनन्द को भेजा। सुनन्द ने राजा के पास जाकर उनको भगवान् के आदेश को सुनाया। तदनन्तर सुनन्द पुनः विष्णु के पास वापस आकर उनके पार्श्व में स्थित हो गये।।४८-५२।।

इत्याश्वास्ययमंविष्णुस्तत्रैवाऽन्तरधीयत। यमंस्वयंसान्त्वयित्वासमनुज्ञाप्यवेगतः।।५३।।
अतिविस्मयमापन्नो ययौधामसहागुनैः। यमोऽपिस्वपुरींप्रायात्किञ्चित्संहृष्टमानसः।।५४।।
पश्चाद्विष्णोर्निदेशेन सुनन्दपरिबोधितः। भागदाः सकला लोका येवैशाखपरायणाः।।५५।।
धर्मराजं पुरस्कृत्य येनकुर्वन्ति मानवाः। तेषांहि स्वयमादत्ते पुण्यं वैशाखसम्भवम्।।५६।।
कुर्याच्च प्रत्यहं स्नानं दद्यादर्घ्यं यमाय वै।
वैशाखे सकलं पुण्यमन्यथा विफलं भवेत्।।५७।।

इस प्रकार देवदेव विष्णु ने यम को सान्त्वना प्रदान किया तथा वहां से अन्तर्हित् हो गये। यम भी भगवान् से आज्ञा लेकर तत्काल वहां से अपने अनुचरों के साथ अपनी पुरी में लौट आये। विष्णु के आदेशानुसार सुनन्द द्वारा प्रबोधित राजा कीर्त्तिमान की प्रजा वैशाखधर्म परायण होकर यमभाग देने लगे। जो लोग-उस समय पहले यमभाग प्रदान किये विना वैशाख व्रत करते थे, राजा स्वयं उनका व्रतपुण्य ग्रहण कर लेते थे। नित्य प्रातः स्नान तथा यम के उद्देश्य से अर्घ्य दान करें। अन्यथा वैशाख व्रत का समस्त धर्म विफल हो जाता है।।५३-५७।।

सोदकुम्भञ्च दध्यन्नं पौर्णमासस्याञ्च माधवे। धर्मराजं समुद्दिश्य दातव्यं प्रथमे जनैः।।५८।।
पश्चात्पितृन्समुद्दिश्य गुरुमुद्दिश्य वै नरः। मधुसूदनमुद्दिश्य पश्चाद्देवं जनार्दनम्।।५९।।
शीतलोदकदध्यन्नं ताम्बूलञ्च सदक्षिणम्। सफलं कांस्यपात्रस्थं ब्राह्मणाय निवेदयेत्।।६०।।
दद्याच्च प्रतिमां दिव्यां मधुसूदनदेवताम्। मासधर्मप्रवक्त्रे च दद्याद्विप्राय सीदते।।६१।।
तमेव धर्मवक्तारं पूजयेद्विभवैः स्वकैः। इत्यादिष्टः सुनन्देन तथा राजा चकार ह।।६२।।

वैशाखमास की पूर्णिमा के दिन यम के उद्देश्य से पहले जलपूर्ण कुम्भ तथा दधियुक्त अन्नदान करना चाहिये। तदनन्तर पितृगण, गुरु तथा मधुसूदन जनार्दन के उद्देश्य से शीतल जल का कुंभ, दधियुक्त अन्न, ताम्बूल, कांस्यपात्र में रखे फल ब्राह्मणों को दक्षिणा के साथ देना चाहिये। मधुसूदन की दिव्य प्रतिमा का निर्माण करके वृत्तिहीन वैशाखधर्मवक्ता द्विज को प्रदान करे तथा यथाशक्ति उन धर्मवक्ता की पूजा करनी चाहिये। राजा ने सुनन्द द्वारा जो आदेश पाया था, उन्होंने उसी प्रकार से वैशाख व्रताचरण किया।।५८-६२।।

स नीत्वा चाऽऽयुषः शेषं भुक्त्वा भेगान्यथेप्सितान्।
पुत्रपौत्रादिभिर्युक्तो जगाम हरिमन्दिरम्।।६३।।
वैकुण्ठस्थे नृपेतस्मिन्वेनोराजाऽधमोऽभवत्। सर्वेधर्माश्चवैशखधर्माअपिविशेषतः।।६४।।
दुरात्मना च तेनैव लुप्ता एव बभूविरे। न प्रख्याताः पुनर्भूमौ भूरिशो मोक्षहेतवः।।६५।।
यःकश्चिन्नैव जानाति वैशाखोक्तानिमाञ्छुभान्। बहुजन्मार्जितेपुण्यपरिपाकउपागते।
वैशाखोक्तेषु धर्मेषु मतिरात्यन्तिकी भवेत्।।६६।।

राजा की आयु इस प्रकार इच्छित भोगों का उपभोग करते हुये समाप्त हो गयी। वे पुत्र-पौत्रादि के साथ हरिलोक चले गये। उनके वैकुण्ठ जाते ही नृपाधम वेन का अभ्युदय हुआ। उस दुरात्मा के शासन में विशेषरूप से वैशाखधर्म प्रधानतापूर्वक लुप्त हो गया। भूतल से जितने मोक्षोपाय थे, वे सभी लुप्त हो गये। जनमानस में जो साधारण सामान्य लोग थे, किसी को भी वह शुभप्रद वैशाखधर्म ज्ञात ही नहीं था। जिनमें अनन्त जन्मों का संचित पुण्य अवस्थित था, उनमें ही वैशाखधर्म के प्रति मति का उदय हुआ था। तब मिथिलापति ने पूछा।।६३-६६।।

मैथिल उवाच

पूर्वमन्वन्तरस्थो हि वेनो राजा दुरात्मवान्।।६७।।
अयं वैवस्वतस्थो हि राजा चेक्ष्वाकुनन्दनः। इति श्रुतं मया पूर्वमिदानीञ्चोच्यतेत्वया।।६८।।
अयं वैकुण्ठगः पश्चाद्वेनो राजा भविष्यति। इत्येतं संशयं छिन्धि श्रुतदेवमहामते।।६९।।

मिथिलापति कहते हैं—आपने इक्ष्वाकुकुलभूषण राजा कीर्त्तिमान की कथा से युक्त जिस समय का वर्णन किया है, तब वैवस्वत मनु का काल था। राजा दुरात्मा वेन तो इसके पूर्व मन्वन्तर में उत्पन्न हुये थे। अथच यहां आपने यह कहा है राजा कीर्त्तिमान के वैकुण्ठगमन के पश्चात् वेन का जन्म हुआ, मैंने पूर्वकाल में यही सुना था। हे महामति श्रुतदेव! मेरे इस महासंशय का छेदन करिये।।६७-६९।।

श्रुतदेव उवाच

पुराणेषु च वैषम्यं युगकल्पव्यवस्थया। न चाप्रामाण्यशङ्का तेकथायाव्यत्ययेक्कचित्।।७०।।
गते दैनन्दिने कल्पे यथैषा शाश्वती शुभा। मार्कण्डेयेन मे प्रोक्ता सा चोक्तातवभूपते।।७१।।
तस्मान्न ख्यातिमायान्ति धर्मा वैशाखसम्भवाः।
कश्चिदेव हि जानाति विरक्तो विष्णुतत्परः।।७२।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीष-सम्वादे यमदुःखसान्त्वनंनाम त्रयोदशोऽध्यायः।।१३।।
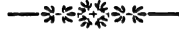
श्रुतदेव कहते हैं—युग-कल्प व्यवस्था के अनुसार ही पुराण में वैषम्य लक्षित होता है, तथापि जो सब प्रामाण्य अंश है, उसमें व्यत्यय परिलक्षित नहीं होता। जिस प्रकार से नित्य दैनन्दिन कल्प की गतागति चलती है, उसी प्रकार से इन सभी शुभ इतिहास की नित्यता रहती है। हे राजन्! मुनि मार्कण्डेय ने मुझसे इसी प्रकार से कहा था। मैंने तुमसे वह सब यथावत कह दिया। हे राजन्! उस वेन के ही कारण वैशाख धर्म की ख्याति रुक सी ग़यी थी। कभी कोई विषयों से विरक्त मनुष्य ही इस विष्णुधर्म को जान पाता था।।७०-७२।।

।।त्रयोदश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुर्दशोऽध्यायः

सत्यनिष्ठ-तपोनिष्ठ का आख्यान पिशाचत्व मुक्ति

श्रुतदेव उवाच

यः प्रायः स्नाति वैशाखे मेषसंस्थे दिवाकरे। मधुसूदनमभ्यर्च्यकथांश्रुत्वाहरेरिमाम्।।१।।
स तु पापविनिर्मुक्तो यदि विष्णोः परंपदम्।
वाच्यमानां कथां हित्वा योऽन्यां सेवेत मूढधीः।।२।।
रौरवं नरकं प्राप्त पैशाचीं योनिमाप्नुयात्। अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।।३।।
पापघ्नं पावनं धर्म्यं सद्यो वन्द्यं पुरातनम्। पुरा गोदावरीतीरे क्षेत्रे ब्रह्मेश्वरे शुभे।।४।।
दुर्वासशिष्यौ परमहंसौ ब्रह्मैकनिष्ठितौ। सदैवोपनिषद्विद्यानिष्ठितौ निरपेक्षितौ।।५।।
भिक्षामात्राशिनौ पुण्यौ तौ गुहावासिनावुभौ। सत्यनिष्ठतपोनिष्ठावितिख्यातौ जगत्त्रये।।६।।

श्रुतदेव कहते हैं—जो मनुष्य वैशाख में (जब सूर्य मेष राशीस्थ रहते हैं) प्रातःस्नान, मधुसूदन की

अर्चना तथा हरि की पुण्यप्रदा कथा का श्रवण करता है, वह पापरहित होकर विष्णु के परमपद की प्राप्ति करता है। हरि के इस कीर्त्तित माहात्म्य के रहते जो मूढ़ मानव उसका त्याग करके अन्य कथा में आसक्त हो जाता है, वह रौरव नरक भोग के उपरान्त पिशाचयोनि प्राप्त करता है। इस सम्बन्ध में एक पुरातन इतिहास का वर्णन उदाहरण स्वरूप विद्वानों ने किया है। यह पुरातन इतिहास सद्यः पापों का नाशक, पावन, धर्म्य तथा वन्दनीय है। पूर्वकाल में गोदावरी के तट पर के सुशोभन ब्रह्मक्षेत्र में महर्षि दुर्वासा के परमहंस रूपी शिष्यद्वय निवास करते थे। वे पूर्णतः ब्रह्मनिष्ठ थे। वे सतत् उपनिषद् विद्यापरायण थे। वे दोनों विषयों के प्रति उदासीन रहते थे। ये पवित्र शिष्यद्वय पर्वत कन्दरा में निवास करते तथा भिक्षान्न भोजन द्वारा जीवन व्यतीत किया करते थे। उनकी प्रसिद्धि क्रमशः सत्यनिष्ठ एवं तपोनिष्ठ नाम से हो गयी।।१-६।।

तयोर्मध्ये सत्यनिष्ठःसदाविष्णुकथापरः। श्रोतृणामप्यभावेचव्याख्यातृणांतथानृप।।७।।
तदा कर्मकला नित्याः करोत्यद्धा मुनीश्वरः।
श्रोता चेदस्ति यः कश्चित्तस्मै व्याख्यात्यहर्निशम्।।८।।
यदि व्याख्याति कश्चिद्वा पुण्यां विष्णुकथां शुभाम्।
तदा सङ्कुच्य कर्माणि शृणोति श्रवणे रतः।।९।।
अतिदूरस्थतीर्थानि देवतायतनानि च। हित्वा कथाविरोधीनितथाकर्माणिभूरिशः।।१०।।
शृणोति च कथां दिव्यां श्रोतृभ्यो वक्ति वै स्वयम्।
विना कथां न जानाति सेव्यमन्यन्नरेश्वर।।११।।

हे राजन्! इन दोनों में से सत्यनिष्ठ सदैव विष्णुपरायण रहते थे। भले ही श्रोता-वक्ता न मिले, तथापि वे विष्णुकथा से विरत नहीं रहते थे। जब कभी उनको श्रोता मिल जाते, तब वे उनसे सदैव मधुसूदन का माहात्म्य कहते, कभी यथातत्व श्रीहरि के क्रियाकलाप का चिन्तन करते। यदि इनको कभी वक्ता मिल जाते, तव ये श्रवण तत्पर होकर अन्य सभी कार्यों का त्याग करते और शुभप्रद विष्णुकथा सुनते रहते। अतिदूरस्थ तीर्थों में जाना तथा दूरस्थ देवालय आदि में जाना विष्णु कथा श्रवण में व्याघात करता है। अतः सत्यनिष्ठ इन सबका त्याग करते तथा वक्ता मिलने पर विष्णु कथा सुनते और जब कभी श्रोता मिल जाते, तब स्वयं कथा कहते। हे नरेश्वर! सत्यनिष्ठ विष्णुकथा श्रवण के अतिरिक्त अन्य किसी भी धर्मकार्य को सेवनीय नहीं मानते थे।।७-११।।

व्याख्याति चगृहेस्वस्यवक्तारोगाद्युपद्रुतः। कूपस्नानपरोभूत्वाशृणोत्येवकथांमुनिः।।१२।।
कथायाश्च विरामेतुस्वकृत्यंसाधयत्यलम्। कथांवैशृण्वतः पुंसोजन्मबन्धोनविद्यते।।१३।।
सत्त्वशुद्धिस्ततो विष्णावरतिश्चैव गच्छति। रतिश्च जायते विष्णोः सौहृदं चैव साधुषु।।१४।।
नीरजं निर्गुणं ब्रह्म सद्यो हृद्यवरुध्यते। ज्ञानहीनस्य वै पुंसः कर्म वै निष्फलं भवेत्।।१५।।

जब कभी उनके यहां धर्मवक्तृता (कथा) होती, तब वे भले ही रोगग्रस्त रहते हों, तथापि कूप जल से स्नान करके उस पुण्यमयी हरिकथा का ही श्रवण करते। तदनन्तर कथा की समाप्ति हो जाने पर वे अन्यत्र अपने स्वकृत्यों को सम्पन्न किया करते। (उनका मत था कि) कथा श्रवण से ही पुरुष का जन्मवन्धन दूर हो जाता है। कथा सुनने से मानव की सत्वशुद्धि होती है तथा उसका जन्म-मरण रूप बन्धन छूटता है। इससे मनुष्य की

सत्वशुद्धि के साथ-साथ विष्णु के प्रति अनुरक्ति होती है तथा इस अनुरक्ति के कारण उसमें साधुगण के प्रति सौहृद्य का जन्म होता है। तदनन्तर वह रोगरहित होकर अपने हृदय में निर्गुण ब्रह्मधारणा का अधिकारी हो जाता है। ज्ञानहीन व्यक्ति के सभी कर्म विफल हो जाते हैं।।१२-१५।।

बहुधाचरितंचाऽपियथैवान्धकदर्पणम्। कर्माणिक्रियमाणानिबहुधाशोचितात्मभिः।।१६।।
सत्त्वशुद्ध्यै भवन्त्येव सत्त्वशुद्ध्या श्रुतिं व्रजेत्।
श्रुतेस्तु ज्ञानमासाद्य ज्ञात्वा ध्यानाय कल्पते।।१७।।
बहुधाश्रवणं ध्यानं मननं श्रुतिचोदितम्। यत्रविष्णुकथानास्तियत्रसाधुजनानहि।।१८।।
साक्षाद्गङ्गातटं वाऽपित्याज्यमेवनसंशयः। यद्देशेतुलसीनास्तिवैष्णवंधामवाशुभम्।।१९।।
यत्र विष्णुकथा नास्ति मृतस्तत्र तमो वज्रेत्।
यद् ग्रामे वैष्णवं धाम नास्ति कृष्णमृगोऽपि वा।।२०।।

जैसे अन्धकार रहने पर दर्पण में कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता, उसी प्रकार अज्ञानीकृत सभी धर्माचरण निष्फल हो जाते हैं। ज्ञानी के अनेक कृत कर्म आत्मा की शुद्धि सम्पादित करते हैं। आत्मा की शुद्धि हो जाने पर उसे वेदज्ञान की प्राप्ति होती है। वेदज्ञान लाभ द्वारा व्यक्ति ज्ञानी तथा ध्यान निपुण हो जाता है। इस कारण सतत् वेदोक्त श्रवण-ध्यान-मनन करें। जहां विष्णुकथा अथवा साधुगण नहीं हैं, वह स्थान साक्षात् जाह्नवी तट पर भले ही हो, तथापि वर्जित है। इसमें संशय नहीं है। जहां तुलसी अथवा शुभ वैष्णव देवालय नहीं है, जहां विष्णुकथा की आलोचना नहीं की जाती, वहां मनुष्य मृत होकर नरकगमन करता है। जहां विष्णु मन्दिर, कृष्णसार मृग तथा विष्णुकथा की स्थिति नहीं है, वहां का मानव मृत्यु के अनन्तर नरक गमन करता है।।१६-२०।।

यत्र विष्णुकथानास्तिसाधवोवातदाश्रयाः। मृतस्तत्रपुमान्क्षिप्रंश्वानयोनिशतंव्रजेत्।।२१।।
विचार्योपनिषद्विद्यामिति निश्चित्य वै मुनिः।
सदा विष्णुकथाऽऽसक्तो विष्णुस्मृतिपरायणः।।२२।।
न किञ्चिदधिकं जातु मन्यते श्रवणात्परम्। इतरस्तु तपोनिष्ठः कर्मनिष्ठोदुराग्रही।।२३।।
न व्याख्याति स्वयम्वाऽपि न शृणोति च सत्कथाम्।
वाच्यमानां कथां हित्वा तीर्थस्नानाय गच्छति।।२४।।
तीर्थेऽपि च प्रवृत्तायांकथायांभूमिपालक!। कर्मलोपभयाद्दूरंयातिचाञ्चल्यशक्तितः।।२५।।
व्रजन्ति गृहकृत्यार्थं सङ्गमात्परतो जनाः। न श्रोतारोन वक्तारस्तस्यपार्श्वेतुकर्मिणः।।२६।।
दुरात्मनस्तु दुर्बुद्धेः काल एवंक्षयंगते। जिह्वांश्रुतिञ्चनक्वापिसम्प्राप्ताहिकथाविभोः।।२७।।

जहां विष्णुमन्दिर, कृष्णसारमृग अथवा विष्णुकथा नहीं है, साधुगण उस स्थान पर नहीं रहते। इसका कारण यह है कि वहां मानव मृत्यु के उपरान्त श्वान योनि में जन्म लेता है! ऋषि सत्यनिष्ठ ने विविध उपनिषद् विद्या का विचार करके इन सब विषयों के प्रति स्थिर चित्त होकर विष्णुकथा एवं विष्णुस्मृति में अपने चित्त को लगाया। वे कभी भी विष्णुकथा श्रवण से बढ़कर कुछ भी धर्माचरण करना श्रेष्ठ नहीं मानते थे। उधर दुर्वासा

के दूसरे शिष्य ऋषि तपोनिष्ठ कर्मनिष्ठ तथा दुराग्रही थे। वे कभी भी न तो स्वयं हरिकथा कहते न सुनते। कहीं भी यदि हरिकथा होती रहती, वे उसे न सुनकर तीर्थाटन ही करते! हे राजन्! यदि उस तीर्थ में हरिकथा होती भी रहती, वे उसे छोड़कर तीर्थस्थान में ही चले ज़ाते थे। हे भूमिपाल! यदि उस तीर्थ में भी हरिकथा होती रहती, तब नित्यकर्मलोप के भय के कारण वे वहां से दूर जाकर अपने नित्यकर्म रूप धर्म का अनुष्ठान करते। जब कथा समाप्त होने पर वक्ता-श्रोता चले जाते, तब भी तपोनिष्ठ किसी श्रोता से अथवा वक्ता से कोई चर्चा ही नहीं करते थे। दुर्बुद्धि दुरात्मा तपोनिष्ठ का समय इसी प्रकार से व्यतीत होता जा रहा था। वह न तो अपनी जिह्वा से विष्णु माहात्म्य कहते, न सुनते थे।।२१-२७।।

अश्रोतृत्वादवक्तृत्वाद्दुर्बुद्धित्वाद्दुराग्रहात्। पश्चात्पञ्चत्वमासाद्य सद्यो धर्मेण वै मुनिः।।२८।।
पिशाचोऽभूच्छमीवृक्षे च्छिन्नकर्णाह्वयोऽबलः। निराश्रयो निराहारः शुष्कण्ठौष्ठतालुकः।।२९।।
एवं वै खिद्यमानस्य समा दिव्यायुतागताः।
नापश्यत्स्वस्य त्रातारं निराहारोऽतिदुःखितः।।३०।।
स्वकृतं चिन्तयानश्च मत्तोन्मत्त इवाभ्रमत्। क्षुधयापर्यटन्वाऽपिनिर्वृतिंनापमूढधीः।।३१।।

अपने इस दुराग्रह के कारण वह कुछ समय के पश्चात् मृत होकर तत्क्षण छिन्नकर्ण नामक बलरहित पिशाच होकर घूमने लगा। वह निराश्रय एवं निराहार होकर समय व्यतीत कर रहा था। पिपासा के कारण उसके तालु, कण्ठ तथा ओठ सूख गये। इस प्रकार से दुःखी वह पिशाच दिव्यवर्ष परिमाणानुसार १०००० वर्ष पर्यन्त जीवन व्यतीत करता रहा। निराहार पिशाच अपना कोई रक्षक न देखकर अत्यन्त दुःखित था। वह अपने कर्मों को याद करके कभी मत्त तो कभी उन्मत्त के समान भटकता रहता था। वह मूढ़-बुद्धि अत्यन्त आकुल हो समस्त पृथिवी पर्यन्त पर्यटन करने पर भी कहीं इस क्षुधा-पिपासाजनित दुर्दशा से छुटकारा नहीं पा सका।।२८-३१।।

कृशानुसदृशो वायुरङ्गं स्पृष्ट्वा कृतात्मनः।
कालाग्नितुल्या आपश्चफलपुष्पादिकंविषम्।।३२।।
न क्वापि सुखमापेदे कर्मठो दीनधीरयम्। एवं व्यवसिते तस्मिन्नरण्ये जनवर्जिते।।३३।।
कथया रहिते क्षेत्रे स्वाश्रयेसाधुवर्जिते। दैवादायात्सत्यनिष्ठस्तदा पैठिनसीम्पुरीम्।।३४।।
गच्छन्मार्गे ददर्शाऽसौ छिन्नकर्णं बहुव्यथम्।
दृष्ट्वाऽऽत्मानं द्रावयन्तं रुदन्तं क्षुधयाऽऽतुरम्।।३५।।

उस अकृतात्मा पिशाच को वायु का स्पर्श भी अग्नि के स्पर्श जैसा लगता था। जल कालानल के समान तथा फल-पुष्प भी विषवत् लगते थे। वह दीनचित्त तपोनिष्ठ जो अब पिशाच हो गया था, कहीं भी शान्ति लाभ नहीं कर पा रहा था। वह एवंविध निर्जन अरण्य में निवास कर रहा था। उसके विष्णुकथा रहित निवास क्षेत्र में ऋषिगण का अथवा साधुजन का आगमन ही नहीं होता था। छिन्नकर्ण नामक वह पिशाच घूमते-घूमते दैवात् एक बार पैठीनसी नगरी पहुंचा जहां ऋषि सत्यनिष्ठ निवास करते थे। वे ऋषि एक बार मार्ग में कहीं जा रहे थे, तभी उन्होंने देखा कि दुःखी छिन्नकर्ण अत्यन्त क्षुधा के कारण व्याकुल होकर अत्यन्त कातररूप से रुदन करते-करते भाग-दौड़ कर रहा है। मुनीश्वर ने उसकी यह कातर दशा देखकर उससे कहा।।३२-३५।।

माभैषीरितिचाऽऽभाष्यकोऽसीत्याहमुनीश्वरः। दशेदृशीचकस्मात्तेनतेदुःखमतःपरम्।।३६।।

इत्याश्वस्तोऽमुना च्छिन्नकर्णः प्राहाऽतिविह्वलः।
तपोनिष्ठो यतिरहं शिष्यो दुर्वाससः परम्।।३७।।

ब्रह्मेश्वरक्षेत्रवासी कर्मनिष्ठो दुराग्रही। कर्मलोपभयान्मौढ्यान्मयादुर्बुद्धिना मुने!।।३८।।

साधुभिर्वाच्यमानाऽपि नाऽऽदृताविष्णुसत्कथा।
न व्याख्याता च श्रोतृभ्यः कथा कर्मनिकृन्तनी।।३९।।

तेन कर्मविपाकेन महताऽहं मृतिंगतः। छिन्नगर्णोऽभवं नाम्ना पिशाचोदुःखविह्वलः।।४०।।

मुनि सत्यनिष्ठ कहते हैं—"तुम भयरहित हो जाओ! बतलाओ तुम कौन हो, तुम्हारी यह दशा क्यों है? आज से तुमको कोई क्लेश नहीं होगा।" अति विह्वल उस छिन्नकर्ण ने सत्यनिष्ठ ऋषि से कहा—"मेरा नाम तपोनिष्ठ है। मैं ऋषि दुर्वासा का शिष्य था। मेरी निवासभूमि थी ब्रह्मक्षेत्र। मैं अपने दुराग्रह के कारण कर्मासक्त था। हे मुनिवर! मैं मूढ़ता के कारण कर्मलोप के भय से कुत्सित बुद्धि हो गया। जब कभी साधुजन विष्णु की पवित्र कथा कहते, मैं उसके प्रति कभी भी आदर प्रदर्शन नहीं करता था। जो विष्णु कथा कर्मबन्धन का उच्छेद करते हैं, मैंने कभी भी श्रोतागण के समक्ष उस कथा की व्याख्या नहीं किया। मैं उस महाकर्म विपाक के कारण मृत्यु के पश्चात् यह छिन्नकर्ण नामक पिशाच योनि में आ गया। मैं अपने इस दुःख से छुटकारा दिलाने वाले किसी को न पाकर दुःख के कारण अत्यन्त विह्वल हो रहा हूं—"।।३६-४०।।

न पश्यामि च त्रातारंदुःखादस्मात्कथञ्चन। तवदृष्टिपथंयातो दिष्ट्याऽहंगतकल्मषः।।४१।।

अद्य मे देवतस्तुष्टा गुरवः साधवश्च ये। हरिश्चमे प्रसन्नोऽभूद्यतस्ते दर्शनं मम।।४२।।

पपात पादयोर्भूमौत्राहित्राहीतिवैरुदन्। ततस्तुकृपयाऽऽविष्टःसत्यनिष्ठोमहायशाः।।४३।।

दोर्भ्यामुत्थापयामास शन्तमाभ्यांमुनीश्वरः। ततस्त्वपउपसपृश्यददौपुण्यमनुत्तमम्।।४४।।

वैशाखमासमाहात्म्यश्रवणस्य मुहूर्तजम्। तेन पुण्यप्रभावेणसद्योध्यस्ताखिलाशुभः।।४५।।

पिशाचदेहनिर्मुक्तो दिव्यदेहधरोऽभवत्। दिव्यं विमानमारुह्य तं प्रणम्य महामुनिम्।।४६।।

आमन्त्र्य च परिक्रम्य ययौ विष्णोःपरम्पदम्।
सत्यनिष्ठस्ततो धीमान्ययौ पैठिनसीम्पुरीम्।
माहात्म्यश्रवणस्यैवं चिन्तयानः पुनः पुनः।।४७।।

"हे मुनिवर! भाग्यवशात् आज मैं आपकी दृष्टि में आकर निष्पाप हो गया। आपका दर्शन मिलने के कारण मेरे प्रति देवता, गुरु तथा साधुजन सन्तुष्ट हो गये तथा भगवान् हरि भी मुझ पर प्रसन्न हो गये हैं, यह प्रतीत हो रहा है।" वह पिशाच यह कहते-कहते महर्षि सत्यनिष्ठ के चरणों पर गिरकर कहने लगा—रक्षा करिये—रक्षा करिये। वह रुदन भी कर रहा था। यह देखकर महायशस्वी मुनीश्वर सत्यनिष्ठ ने कृपापरवश होकर अपने कोमल हाथों से उसे उठाया। उन्होंने हथेली में जल लेकर अपने मुहूर्तपर्यन्त के वैशाखमास माहात्म्य के श्रवण फल को तपोनिष्ठ को प्रदान किया। इस पुण्य प्रभाव के कारण तपोनिष्ठ का समस्त कलुष

विध्वस्त हो गया। उसने पिशाच देह त्याग कर दिव्यदेह धारण कर लिया। वहां देखते-दखते दिव्य विमान आया। उसने मुनि को प्रणाम किया तथा मुनि की प्रदक्षिणा करके उस विमान पर बैंठकर विष्णुलोक चला गया। तदनन्तर विद्वान् सत्यनिष्ठ अपनी नगरी पहुंचे। वे वहां वैशाखमास माहात्म्य के श्रवण से उत्पन्न पुण्य पर विचार करने लगे।।४१-४७।।

श्रुतदेव उवाच

यत्र विष्णुकथा पुण्यां शुभा लोकमलाऽपहा॥४८॥
तत्र सर्वाणि तीर्थानि क्षेत्राणि विविधानि च।
यत्र प्रवहते पुण्या शुभा विष्णुकथाऽऽपरा॥४९॥
तद्देशवासिनां मुक्तिः करसंस्था न संशयः॥५०॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे नारदाम्बरीषसम्वादे कथाप्रशंसायां पिशाचमुक्तिप्राप्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः।।१४।।

श्रुतदेव कहते हैं—जहां संसार के कलुष को हरने वाली शुभप्रदा पवित्र विष्णुकथा कही जाती है, वह स्थान समस्त तीर्थों तथा क्षेत्रों में ही गण्य होता है। जहां विष्णु कथा रूपा शुभावहा पुण्यप्रदा नदी प्रवाहित रहती हैं, वहां के निवासियों को लिये मुक्ति मानों हाथों पर रक्खी है। इसमें सन्देह नहीं है।।४८-५०।।

।।चतुर्दश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

पञ्चदशोऽध्यायः

पाञ्चालराज को विजय प्राप्ति, दारिद्र्यनाश, राजा का पूर्वजन्म वृत्तान्त, वैशाख-धर्म निरूपण

श्रुतदेव उवाच

भूयः शृणुष्व भूपाल माहात्म्यंपापनाशनम्। वैशाखस्यचमासस्यवल्लभस्यमधुद्विषः॥१॥
पुरापाञ्चालदेशे तु राजा पुरुयशोऽभवत्। तनयो भूरियशसः पुण्यशीलस्य धीमतः॥२॥
पितर्युपरते भूप राज्यस्थो धर्मलालसः। शौर्यौदार्यगुणोपेतो धनुर्विद्याविशारदः॥३॥
शशास पृथिवीं सर्वां स्वधर्मेण महामतिः। पूर्वजन्मजलादानाद्दोषेण महता वृतः॥४॥
सम्पद्धानिमवापाऽसौ कालेनकियताऽनघ!। हयागजामृतिं याता महद्रोगेणपीडिताः॥५॥

दुर्भिक्षमतुलं चासीन्निर्मानुष्यविधायकम्।
राज्यं कोशं तदा चाऽऽसीद्गजभुक्तकपित्थवत्॥६॥

श्रुतदेव कहते हैं—हे राजन्! अब पुनः पापनाशक मधुरिपु विष्णु के प्रियमास वैशाख का माहात्म्य सुनो। पूर्वकाल में पाञ्चाल देश का राजा पुरुयशा था, जो विद्वान् राजा तथा पुण्यशील भूरियशा का पुत्र था। हे राजन्! यह राजा पुरुयशा शौर्य, उदारता युक्त तथा धनुर्विद्या विशारद था। जब भूरियशा का निधन हो गया तब पुरुयशा राज्य पद पर प्रतिष्ठित हुआ। वह धर्म तत्पर था। उसने राजधर्मानुरूप समस्त पृथिवी का शासन किया। हे निष्पाप! इस राजा ने पूर्वजन्म में जलदान नहीं किया था। इस महादोष के कारण अत्यल्प काल में ही उसकी सम्पदा का नाश हो गया। उसके हाथी तथा घोड़े दुःसाध्य रोगों से आक्रान्त होकर मरने लगे। उसके राज्य में भीषण दुर्भिक्ष का आक्रमण हुआ। इस कारण उसका राज्य जनता से शून्य हो गया। उसका राज्य तथा कोष वैसे ही शून्य हो गया जैसे हाथी द्वारा भक्षित कैंथा का फल अन्दर से गूदारहित होकर उसके मल के साथ यथावत् बाहर आ जाता है।।१-६।।

बलहीनं नृपं ज्ञात्वा कोशराष्ट्रविवर्जितम्। तं जेतुमेष समय इति निश्चितमानसः॥७॥
आजग्मुः शतशोभूपा निपवस्तस्य भूपतेः। जिग्युर्युद्धेनतंभूपं पाञ्चालविषयाधिपम्॥८॥

यह देखकर उसके शत्रु सैकड़ों राजाओं ने यह निश्चय किया कि यह राजा बलहीन तथा खाली खजाने वाला हो गया है। यह इस पर विजय पाने का उचित अवसर है। यह निश्चय करके उन्होंने राजा पुरुयशा पर आक्रमण किया तथा उसे पराजित करके उसके राज्य पर अधिकार कर लिया।।७-८।।

पराजितस्ततो राजा विवेश गिरिगह्वरे। शिखिन्या भार्यया साकं धात्र्यादिगणसंयुतः॥९॥
अज्ञातपद्धतिश्चान्यैर्बहुदुःखसमाकुलः। त्रिपञ्चाशत्समाश्चैव नीतास्तेन विलीयता॥१०॥
चिन्तयामास भूपालः किमेतदिति भूरिशः। कर्मणा जन्मशुद्धोऽहंमातृपितृहितेरतः॥११॥
गुरुभक्तः सदाक्षिण्यो ब्रह्मण्यो धर्मतत्परः। दयावान्सर्वभूतेषु देवभक्तो जितेन्द्रियः॥१२॥
न भ्राता मे न पुत्रो मेनचमेसुहृदोहिताः। दयापौरुषविख्याताःकुलीनस्ताऽपिमेकुतः॥१३॥
केनवा कर्मणा चाप्तं दारिद्र्यं भूरि दुःखदम्।
केन वाऽपजयोमेऽद्यकेनवावनवासिता॥१४॥

वह पाञ्चाल नरेश पराजित होकर अपनी पत्नी शिखिनी तथा कतिपय परिचारिकाओं के साथ गिरिकन्दरा की ओर चला गया। इन सबको कोई भी पर्वतीय पथ ज्ञात नहीं था। अज्ञात पथ पर भटकता यह राजा अत्यन्त कातर हो गया। दीनचित्त इस राज के ५३ वर्ष इसी प्रकार भटकते व्यतीत हो गये। एक दिन राजा विचार करने लगा। "यह कैसा महान् दुःख मुझ पर आ पड़ा! मैं कर्म से तो शुद्धजन्मा हूं। सदा माता-पिता के हित में रत रहा हूं। मैं गुरुभक्त, दाक्षिण्ययुक्त, ब्रह्मण्य सम्पन्न तथा धर्मतत्परतापूर्वक रहता आया हूं। मैंने प्राणीगण के प्रति सदा दयाभावना का व्यवहार किया है। देवता के प्रति मेरी भक्ति है। इन्द्रियां मेरे वशीभूत हैं। मैं सर्वगुणयुक्त तथा कुलीन होकर भी यह दुःख क्यों भोग रहा हूं? मेरे भाई तथा पुत्र क्यों नहीं हैं? दया तथा पौरुष में विख्यात लोग मेरे हितार्थ क्यों नहीं आते? मेरी इस भीषण दरिद्रता का क्या कारण है? जो भी हो!

मैं किस प्रकार से इस भीषण दुःख पर विजय प्राप्त करूं? क्या करने से मुझे वनवास से छुटकारा मिलेगा?।।९-१४।।

इति चिन्ताकुलोराजागुरुंसस्मारखिन्नधीः। याजोपयाजकौनामसर्वज्ञौमुनिसत्तमौ॥१५॥
आजग्मतुर्मुनीन्द्रौ तौ राजाहूतौ महामती। तौ दृष्ट्वा सहसोत्थायराजापाञ्चालवल्लभः॥१६॥
ननाम शिरसा भक्त्या प्रवासेनाऽतिपीडतः। राजचिह्नविहीनश्च केनाप्यज्ञातपद्धतिः॥१७॥
तूष्णीं तस्थौ मुहूर्तं हि पतित्वा भुवि पादयोः।
दोर्भ्यामुत्थापि तस्ताभ्यां परिमृष्टाऽश्रुलोचनः॥१८॥
विधिवत्पूजयामास वन्यैरेवाऽर्हणैःशुभैः। सूपविष्टौतुतौविप्रौपप्रच्छाऽऽनतकन्धरैः॥१९॥
ब्राह्मणौ वदतं दुःखकारणञ्च क्षितीशितुः। कर्मणा जन्मशुद्धस्य पितृदेवप्रियस्यच॥२०॥
पापभीरोः कृपालोश्च गुरुभक्तस्य मे कुतः। दारिद्र्यं कोशहानिश्चरिपुभिश्चपराभवः॥२१॥
कस्मादरण्यवासश्च कुत एकाकिता मम। नपुत्रोन च मे भ्राता न हिताः सुहृदश्च मे॥२२॥
दुर्भिक्षं वाकुतश्चासीद्देशे मत्पालितेऽनघे। एतद्विस्तार्य मे ब्रूतं कारणं मुनिपुङ्गवौ॥२३॥

इस प्रकार चिन्ता से आकुल चित्तवाले राजा ने खिन्न होकर अपने गुरुदेव का स्मरण किया। राजा के स्मरण मत्र से याज एवं उपयाजक नामक सर्वज्ञ, महामति, मुनिश्रेष्ठ गुरुद्वय वहां उपस्थित हो गये। देश से बहिष्कृत पाञ्चालपति उनको देखकर तत्काल उठ गये तथा भक्तिभाव से उनके चरणों में प्रणाम किया। वे राजचिह्नविहीन राजा मुहूर्त्त पर्यन्त मौनी रहकर पुनः उन ऋषिद्वय के चरणों पर गिर पड़े। तब ऋषिगण ने अपनी बाहु से पकड़ कर राजा को उठाया। राजा न उठने के पश्चात् अपने आसुओं को पोंछकर सुशोभन वन्य कन्द-मूल-फल आदि को लाकर उन दोनों ऋषियों का यथावत् पूजन किया। जब वे दोनों महर्षि यथाविधि पूजित होकर सुखासीन हो गये तब राजा ने शिर झुकाकर उनसे पूछा—"हे विप्रगण! मैं वसुधापति था। मैं शुद्धजन्मा था तथा मेरा अनुराग पितरों एवं द्विजों के प्रति सदैव था। अतः यह महान् दुःख मुझ पर क्यों आया है, इसका कारण कहिये। मैं सदा पापों से डरने वाला, सब पर दया करने वाला तथा गुरुभक्त था। तब भी इस दरिद्रता से मेरी कोषहानि का तथा शत्रुओं से हार का क्या कारण है? किसलिये मेरा एकाकी वनवास घटित हो रहा है? मेरा कोई भाई अथवा पुत्र क्यों नहीं है? मेरे सुहृद भी मेरा हित साधन क्यों नहीं कर रहे हैं? मेरे द्वारा शासित पापरहित राज्य पर दुर्भिक्ष क्यों छा गया? हे मुनिगण! इस सबका उत्तर विस्तारपूर्वक कहने की कृपा करिये।।१५-२३।।

इत्युक्तौ तौ मुनिश्रेष्ठौ भूतेनाऽत्यन्तदुःखिना।
प्रत्यूचतुर्महात्मानौ किं सिद्ध्या न परायणौ॥२४॥

अत्यन्त दुःखी राजा द्वारा यह पूछे जाने पर महात्मा मुनिसत्तमद्वय ने क्षणकाल ध्यानावस्थित होकर राजा को उत्तर देते हुये कहा।।२४।।

याजोपयाजकावूचतुः

ऋणु भूप प्रवक्ष्यावस्तव दुःखस्यकारणम्। पुरा भूप महापापीव्याधस्त्वंदशजन्मसु॥२५॥

निष्ठुरः सर्वलोकानां सदा हिंसापरायणः। धर्मलेखाकरः क्वापि न दमो नच वैशमः॥२६॥
न जिह्वा वक्तिनामानि विष्णोर्वापिकथञ्चन। चेतः स्मतिगोविन्दरणाम्बुरुहद्वयम्॥२७॥
न प्रणामः कृतः क्वापि शिरसा परमात्मने। नव जन्मानि ते भूप गतान्येवंदुरात्मनः॥२८॥
दशमे जन्मनि प्राप्ते व्याधस्त्वं सह्यभूधरे। निष्ठुरःसर्वलोकानां नराणां त्वंनरान्तकः॥२९॥
दयाहीनः शस्त्रजीवी सदा हिंसापरायणः। निर्गुणःसकलत्रस्त्वं मार्गपीडाकरः शठः॥३०॥
प्रजानां गौडदेश्यानां राक्षसो मानुषाशनः। एवं चाऽब्दान्यतीतानिनैजंहितमजानतः॥३१॥
बालापत्यमृगाणाञ्च पक्षिणाञ्च वधात्तव। दयाहीनस्य दुर्बुद्धेर्जन्मन्यस्मिन्नपुत्रता॥३२॥
विश्वासघातकत्वेन भ्रातरो नेव सोदराः। मार्गपीडाकरत्वेन सुहृज्जनविवर्जितः॥३३॥
साधूनाञ्च तिरस्काराच्छत्रुभिस्ते पराजयः। कदाप्यदत्तदोषेण दारिद्र्यम्पतितं गृहे॥३४॥

मुनिद्वय कहते हैं—हे राजन्! हम तुम्हारे दुःखों का कारण कहते हैं। सुनो! हे नृप! पूर्वकाल में तुम दस जन्मों तक महापापी व्याध होकर जन्म लेते रहे थे। तुम निर्भयता पूर्वक प्राणी हिंसा कार्य करते रहते थे। धर्म का लेशमात्र भी तुममें नहीं था। तुम्हारी जिह्वा ने कदापि हरिनाम नहीं जपा था। तुम्हारा चित्त भी कदापि गोविन्द की चरणसेवा में निरत नहीं रहता था। कदापि तुम्हारा मस्तक भी परमात्मा के प्रणाम से नहीं झुका था। इस प्रकार तुम्हारे नौ जन्म व्यतीत हो गये। इस नौ जन्मों में तुम अतीव दुरात्मा थे। दसवें जन्म में तुम सह्याद्रि पर्वत पर व्याध होकर जन्मे। इस जन्म में भी तुम सभी प्राणीगण के प्रति निष्ठुर व्यवहार कर रहे थे। तुम यमराज की तरह ही सभी प्राणियों को पीड़ित किया करते थे। तुम दयाहीन, शस्त्रजीवी, सदैव हिंसक तथा गुणरहित थे, अतः शठता के कारण पत्नी सहित मिलकर मार्ग चलते पथिकों को पीड़ित करते रहते थे। तुम मनुष्यभक्षी की तरह गौड़ देश की प्रजा का भक्षण करते थे। तुम अपना (पारलौकिक) हित भी नहीं जानते थे। इस प्रकार से तुम्हारे अनेक वर्ष व्यतीत हो गये। हे भूपाल! तुमने दुर्बुद्धि के कारण दया को त्याग दिया था। तुम सदा मृगपशु तथा पक्षीगण के शिशुगण का भक्षण करते थे तभी तुमको इस जन्म में सन्तान नहीं है। तुम विश्वासघाती थे, अतः तुम्हारा भाई भी इस जन्म में नहीं है। तुम पक्षियों को पीड़ा पहुंचाते थे, इसी कारण से इस जन्म में सुहृदों ने तुम्हारा त्याग कर दिया। तुम पूर्वजन्म में साधुजन का तिरस्कार करने के कारण इस जन्म में शत्रुओं से पराजित हो गये। तुमने पूर्वजन्म में कभी दान नहीं दिया। अतः अब तुम दरिद्र हो गये हो।।२५-३४।।

सदैवोद्वेगकारित्वात्प्रवासस्ते दुरासदः। सर्वेषामप्रियत्वाच्च दुःखमत्यन्तदुःसहम्॥३५॥
निराहारोऽप्यतः पूर्वंसदाक्रूरेण कर्मणा। तस्माद्राज्यापहारस्तेजन्मन्यस्मिन्महामते॥३६॥

तुमने पूर्वजन्म में सभी नगरवासियों को उद्विग्न करने वाला काम किया था, इसी कारण तुमको दुःखप्रद प्रवास रूप निष्कासन मिला। पूर्वजन्म में सबका अप्रिय करने के कारण तुम इस जन्म में असह्य दुःखभाजन हुये हो। हे महामति! तुमने पूर्वजन्म में अत्यन्त क्रूरकर्म किया था। तभी इस जन्म में तुम राज्य खोकर अत्यन्त क्षुधा पीड़ित हो गये।।३५-३६।।

अथ ते सत्कुलीनत्वे हेतूंश्चाऽपि ब्रवीम्यहम्।
गदाऽभूगौंडदेशीयो ह्यन्तिमे व्याधजन्मनि॥३७॥

स्वकर्मनिरते क्रूरे विपिने कण्टकाविले। तिष्ठत्येवं दयाहीने सर्वभूतान्तके पथि॥३८॥
वैश्यावाजग्मतुर्दिव्यौ धनाढ्यौ धर्मपीडितौ। मुनिश्चकर्षणोनाम वेदवेदाङ्गपारगः॥३९॥
जटाचीरधरः पुण्य कमण्डलुपरिग्रहः। तान्दृष्ट्वा धनुरादाय मार्गं रुद्ध्वा व्यवस्थितः॥४०॥

अनुद्रुत्य शरी वैश्यौ कृत्वा छिन्नशरीरकौ।
तयोरेकञ्च त्वं हत्वा गृहीत्वाऽखिलतत्पणम्॥४१॥

अपरं हन्तुमुद्यक्ते स दुद्रावभयादद्रुतम्। पणं गुल्मे विनिक्षिप्यभीतःप्राणपरीप्सकः॥४२॥

कर्षणोऽपि मुनिः शीघ्रं व्याधान्मृतिविशङ्कया।
आतपे धावमानः संस्तृषाघर्मप्रपीडितः॥४३॥

मूर्च्छामाप गलत्स्वेदः संज्ञामात्रावशेशितः। विहायैनं दुद्रुवे च वैश्यो जीवनतत्परः॥४४॥

हे राजन्! अब यह सुनो कि किस कारण से तुमको साधुकर्मा तथा कुलीन जन्म मिला है। जब तुम दसवें जन्म में गौड़ देशीय व्याध थे, तब तुम व्याधोचित क्रूर कार्य से निवृत्त (थककर) होकर कन्टक वन में थे। उस समय धूप से पीड़ित दो वैश्य तथा वेद-वेदांग पारंगत जटा-चीरधारी कमण्डलु लिये कर्षण नामक पुण्यात्मा ऋषि उस वनपथ पर विचरण कर रहे थे। तुम तब पथिकों का वध करके उनके धनरत्न की लूट करने हेतु मार्ग में ही रहते थे। तुम्हारे हृदय में दया का तनिक भी भाव नहीं था। तुमने इन लोगों को देखकर धनुष उठाया तथा मार्ग रोककर खड़े हो गये। तदनन्तर तुमने उनके सामने आने पर वैश्यद्वय के शरीर को छिन्न-भिन्न कर दिया तथा उनमें से एक को मारकर उसका धनरत्न हर लिया। जब तुम दूसरे वैश्य को मारने के लिये बढ़े, तब वह बचा हुआ वैश्य प्राण भय से भाग खड़ा हुआ तथा अपना धनरत्न एक झाड़ी में फेंक दिया। यह सब देखकर ऋषि कर्षण भी प्राण जाने की आशंका से वहां से भागे तथा उस धूप में भागते हुये प्यास से अतीव पीड़ित हो गये। उनके देह से पसीना टपक रहा था। वे मूर्च्छाग्रस्त हो गये। उनमें तनिक संज्ञा ही बची थी। अपनी जान बचाने के लिये वह वैश्य मुनि की यह स्थिति देखकर भी नहीं रुका तथा शीघ्रगति से वहां से भाग गया।।३७-४४।।

त्वं तावनुद्रुतौ दृष्ट्वा मूर्च्छितंपथिभूसुरम्। पणं कुत्रविनिक्षिप्तंकियद्दूरंगतोवणिक्॥४५॥
इति पृष्टं द्विजं श्रान्तमुज्जीवयितुमुद्यतः। फूत्कृत्वा कर्णयोस्तस्य नागरं स्मृतिकारणम्॥४६॥
फल्वलस्थोदकेनैव कृमिकर्दमसंयुजा। नेत्रे संमृज्य श्रान्तस्य पर्णैः सम्वीज्यतन्मुखे॥४७॥

ससंज्ञञ्च मुनिं कृत्वा त्वमात्थ स्वसमानसः।
मा शङ्का ते मुने कार्या मत्तः शस्त्रभृतो वने॥४८॥
निष्किञ्चनः सुखी लोके कुतस्ते भयमुल्बणम्।
भिनपात्रेण जीणेन न मे किञ्चिद्भविष्यति॥४९॥

एतावद्वद मे विद्वन्वणिक्कुत्र पलायितः। कुत्र गुल्मे धनं क्षिप्तं तेन शीघ्रंपलायता।
अन्यथा त्वां हनिष्यामि यदि मिथ्या वदिष्यसि॥५०॥

तुम भी उसी धनी वैश्य तथा मुनि का पीछा करते वहां पहुंचे। तत्पश्चात् तुमने मार्ग में ऋषि को मूर्च्छित देखा। तुम ऋषि से यह जानने हेतु कि वह वैश्य कहां भाग गया तथा उसने अपना धनरत्न कहां छोड़ा, उन ऋषि को चैतन्य करने का प्रयास करने लगे। तुमने उनमें चेतना संचारार्थ उनके कानों में शुण्ठीचूर्ण रखकर फूंका, वहां के कृमि तथा कीचड़ से युक्त जल से उनके नेत्रों को सिंचित किया तथा पत्तों से पंखा बनाकर उनको झला। इस प्रकार मुनिवर कर्षण चैतन्य हो गये। तदनन्तर जब मुनि को चेतना प्राप्त हो गयी, तब तुमने स्थिर चित्त होकर उनसे प्रश्न किया—"हे मुनिवर! यद्यपि मैं शस्त्र लेकर वन में घूमता हूं, तथापि मुझसे आप कोई आशंका न करें। जिसके पास त्रैलोक्य में कुछ नहीं है वही सुखी है। अतः आप भयभीत न हों। आपका जीर्ण पात्र हरण करने का कोई फल नहीं है। हे विद्वान्! आप केवल मात्र यह बतलायें कि वह वैश्य कहां भाग गया तथा किस झाड़ी में उसने अपना धनरत्न फेंका है। यदि आप उत्तर नहीं देते, अथवा झूठ बोलते हैं, तब मैं अवश्य आपका वध करूंगा"।।४५-५०।।

कर्षण उवाच

धनं गुल्मे विनिक्षिप्तं मार्गदस्मात्पलायितः।।५१।।

इतिप्राहभयात्सोऽपि पृष्टःप्राणपरीप्सया। गच्छ विप्र सुखं मार्गमत्तोभीतिंविहायच।।५२।।

इतो विदूरे सलिलं तडागे वर्तते शुभम्। तत्पीत्वा सलिलं पुण्यं गच्छग्रामंगतश्रमः।।५३।।

अधुनैऽऽवागमिष्यन्ति राजकीयाः पथा जनाः।

मत्पदान्वेषणे सक्ताः श्रुत्वा रावं वणिक्पतेः।।५४।।

तृषार्तमनुगन्तुं मे न शक्यं त्वां ततो द्विज!। वीजमानेन पर्णेनधर्मःकिञ्चिद्गमिष्यति।।५५।।

ऋषि कर्षण कहते हैं—"वह वैश्य इस झाड़ी में धन फेंककर इस पथ से भाग गया।" ऋषि ने इस प्रकार से गुल्म का तथा वैश्य के भागने का मार्ग संकेत कर दिया। तब तुमने ऋषि से कहा—"हे विप्र! आप मुझसे भय न करके इस पथ से जायें। वहां एक तालाब है। उसका जल अतीव निर्मल है। आप उस जल को पीकर पिपासा रहित हो जायें तथा अपने स्थान पर लौट जायें। मैं भी और विलम्ब नहीं करूंगा। अभी इधर पथरक्षक राजकर्मचारी आने वाले हैं, वे वैश्य का चीत्कार सुनकर मेरा पीछा करेंगे। इसलिये हे द्विज! आपकी पिपासा दूर करने आपके साथ मैं नहीं जा सकता। यह पत्ता लीजिये। इसके झलने से आपकी श्रान्ति दूरीभूत होगी।"।।५१-५५।।

तस्मै दत्त्वा पलाशं च त्वमागा विपिनं पुनः। तेन पुण्यप्रभावेण वैशाखे धर्मघर्घरे।।५६।।

स्वकार्यार्थं कृतेनापि मुनेस्त्राणाय पद्धतौ। जन्मासीत्तेमहापुण्येराजवंशेऽतिविस्तृते।।५७।।

यदीच्छसि सुखंराज्यंधनधान्यादिसम्पदः। स्वर्गापवर्गौयदिवासायुज्यंवाहरेःपदम्।।५८।।

कुरु वैशाखधर्मांस्त्वं सर्वसौख्यमवाप्स्यसि।

मासोऽयं माधवोनाम तृतीयाचाऽक्षयाह्वया।।५९।।

तुमने ऋषि को पलाश के पत्तों द्वारा बना पंखा दिया तथा पुनः वन में प्रविष्ट हो गये। हे राजन्! तब वैशाख का महीना था। तुमने वैशाख में दारुण धूप के ताप से मुनि की रक्षा का कार्य किया था। यद्यपि तुमने

अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये यह कर्म किया था, तथापि इसी पुण्य के कारण तुमने अत्यन्त विस्तृत पुण्यमय राजकुल में जन्म लिया। हे राजन्! यदि राज्य सुख की कामना है, यदि धन-सम्पत्ति समृद्धि की अभिलाषा है, यदि स्वर्ग अथवा अपवर्गलाभ का मन है, अथवा हरिचरण सेवा किंवा सायुज्य मुक्ति चाहते हो, तब तुम वैशाख-धर्माचरण करो। इससे सर्वविध सुखलाभ होगा। इस मास का अन्य नाम हैं माधवमास। इसकी तृतीय ही अक्षय तृतीया कही जाती है।।५६-५९।।

गांचसकृत्प्रसूताख्यांदेहिविप्रायसीदते। तेनतेकोशपूर्तिःस्याच्छय्यांदेहिसुखंभवेत्।।६०।।
कुरु च्छत्रप्रदानं च साम्राज्यं ते भविष्यति। स्नानंकुरुयथान्यायंतथैवाऽर्चयमाधवम्।।६१।।
देहि त्वं प्रतिमांदिव्यांकृत्वातेनजयोभवेत्। आत्मतुल्यगुणान्पुत्रान्यदिकामयसेनृप।।६२।।
सर्वभूतहितार्थाय प्रपादानं च त्वं कुरु। वैशाखोक्तानिमान्धर्मान्सम्यगाचर भूमिप।।६३।।
तेन ते सकला लोका वशं यान्तिनसंशयः। निष्कामकेनचित्तेनयदिधर्मान्करिष्यसि।।६४।।
वैशाखे पुण्यमासेऽस्मिन्प्रीतयेमधुघातिनः। प्रत्यक्षोभविताविष्णुस्तवनिर्मलचेतसः।।६५।।

इस अक्षय तृतीया के दिन निर्धन ब्राह्मण को ताजी बछड़े वाली गौ प्रदान करो। ऐसा करने से तुम्हारा खजाना भर जायेगा। तुम शय्यादान करो। इससे सुखलाभ होगा। तुम छत्रदान करो। इससे साम्राज्य लाभ होगा। हे राजन्! यथाविधि स्नान, माधवपूजा तथा द्रिजों को दिव्य विष्णु प्रतिमा बनवाकर दान करो। तुम्हें विजय मिलेगी। हे राजन्! यदि तुम अपने जैसा पुत्र पाना चाहो तब सर्वभूतहितार्थ बावली दान करो। हे राजन्! तुम वैशाखोक्त इन धर्मों का आचरण करो। वैशाख के इस पुण्य प्रभाव से सभी लोक तुम्हारे वशीभूत होंगे। इसमें संशय नहीं है। यदि तुम मधुरिपु विष्णु के परम प्रिय वैशाखमास का धर्माचरण निष्काम भाव से करना चाहो, तब तुम्हारा मानस निर्मल होगा। इससे हरि प्रसन्न होकर तुम्हें प्रत्यक्ष दर्शन प्रदान करेंगे।।६०-६५।।

येन चाचरिताः पुंसा धर्मा ह्येते शुभावहाः। तेषाञ्चह्यक्षयालोकाः पुराणेकवयोविदुः।।६६।।
एतत्सर्वं तव प्रोक्तं यथादृष्टं यथाश्रुतम्। इति राजानमामन्त्र्य ब्राह्मणौ च पुरोधसौ।।६७।।
याजोपयाजकौनाम जग्मतुस्तौ यथागतौ।
ततो राजामहावीर्यः पुरोधोभ्याञ्च बोधितः।।६८।।
वैशाखधर्मान्सकलांश्चकार श्रद्धयाऽन्वितः। यथोपदिष्टं च तथा मधुसूदनमर्चयत्।।६९।।
ततो लब्धप्रभावः सन्बन्धुभिः सकलैर्वृतः। पाञ्चालनगरीम्प्राप हतशेषबलान्वितः।।७०।।

"जो सब लोग इस शुभप्रद वैशाखमास का आचरण करते हैं, पुराण में ऋषियों ने उनके लिये अक्षयलोकों की प्राप्ति का वर्णन किया है। हमने जैसा देखा किंवा सुना है, वह सब तुमसे कह दिया।" याज तथा उपयाजक गुरुद्वय ने राजा से यह कहा तथा उनसे विदा-लेकर अपने स्थान पर चले गये। महावीर राजा ने भी अपने गुरुद्वय से प्रबुद्ध होकर श्रद्धापूर्वक वैशाखधर्म का अनुष्ठान करना प्रारंभ कर दिया। जैसे उन गुरुद्वय ने आदेश दिया था, तदनुरूप अर्चना सम्पन्न करके राजा ने अपना पूर्व प्रभाव प्राप्त किया। उन्होंने पाञ्चाल नगरी का राज्य तथा विनष्ट लक्ष्मी पुनः प्राप्त किया।।६६-७०।।

ततस्तु शत्रवो भूपा उपश्रुत्य च भूपतेः। प्रवेशं च पुरस्याऽथ पुनराजग्मुरुद्धताः।।७१।।

तदा पाञ्चालभूपेन नृपाणामभवद्रणम्। जिग्ये सर्वान्महाबाहूनेक एव महारथः॥७२॥
पलायितेषु भूतेषु नानादेशपथिष्वपि। राज्ञां कोशगजानश्वान्स्वयं जग्राह वीर्यवान्॥७३॥
अश्वानां निर्बुदं चैव गजानां च त्रिकोटिकम्। रथानामर्बुदञ्चैव दीर्घग्रीवायुतंतथा॥७४॥
रासभाणां त्रिलक्षाणि प्रापयामास तां पुरीम्।
वैशाखधर्ममाहात्म्यात्क्षणात्सर्वे च भूभृतः॥७५॥
करदा भग्नसङ्कल्पाः पादाक्रान्ता बभूविरे। सुभिक्षमतुलं चासीत्पाञ्चालविषयेषु च।
एकच्छत्रमभूद्राज्यं प्रसादान्मधुघातिनः॥७६॥
पुत्राः पञ्चाऽपि तस्यासञ्छौर्य्यौदार्यगुणान्विताः॥७७॥
धृष्टकीर्तिर्धृष्टकेतुर्धृष्टद्युम्नस्तथाऽपरे। विजयश्चित्रकेतुश्च मयूरध्वजसन्निभाः॥७८॥
अनुरक्ताः प्रजाश्चासन्धर्मेणप्रतिपालिताः। वैशाखस्य प्रतापेनप्रत्ययस्तत्क्षणादभूत्॥७९॥
पुनश्चकार तान्धर्मान्पाञ्चालनगरीश्वरः। अकामुकेन चित्तेन प्रीयते मधुघातिनः॥८०॥
धर्मेणानेन सन्तुष्टो भगवान्मधुसूदनः। अक्षयायां तृतीयायां प्रत्यक्षः समजायत॥८१॥
तं दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा परमात्मानमच्युतम्। नारायणं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम्॥८२॥
पीताम्बरधरं देवं वनमालाविभूषितम्। सलक्ष्मीकं सानुगञ्च गरुडोपरि संस्थितम्॥८३॥
निरीक्ष्य दुःसहं तेजः सद्योमीलितलोचनः। उत्पतन्सम्पतन्हर्षान्मत्तोन्मत्तइव भ्रमन्॥८४॥
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो गलद्बाष्पाकुलेक्षणः। तुष्टाव परया भक्त्याप्राञ्जलिःप्रणतोभुवि॥८५॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीष-सम्वादे पाञ्चालदेशाधिपतेर्जयप्राप्तिदरिद्रनाशवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥१५॥

—※—

राजा के शत्रु जो अन्य राजा थे, वे राजा को पुनः पुर में प्रवेश करते देखकर उद्धतरूप से सामने युद्धार्थ पहुंचे। उनके साथ राजा पाञ्चालपति का युद्ध प्रारंभ हो गया। वीर्यवान् महारथी राजा ने अकेले ही उन सब राजाओं को युद्ध में परास्त कर दिया। वे सब राजा नाना देश में भाग गये। तदनन्तर पाञ्चालपति ने उनका कोष, गज, अश्व सभी स्वयं ग्रहण कर लिया। इस युद्ध में राजा को निर्वुद्य संख्य घोड़े, ३ करोड़ हाथी, एक अरब रथ, १०००० ऊंट तथा ३ लाख गर्दभ मिले तथा वे पुनः पाञ्चालपुरी के अधिष्ठाता हो गये। वैशाख में कृत धर्म के प्रभाव द्वारा उनके शत्रु समस्त राजा मात्र मुहूर्त्त काल में निराश हो गये तथा उन सबने कर देकर पाञ्चालराज के चरणों का आश्रय ग्रहण किया। अब उस पाञ्चालपुरी में दुर्भिक्ष की जगह अतुलित सुभिक्ष की स्थिति हो गयी। वे विष्णु की कृपा से एकच्छत्र सम्राट पद पर आसीन हो गये। उनको शूरता-उदारता गुणयुक्त धृष्टकीर्ति, धृष्टकेतु, धृष्टद्युम्न, विजय तथा चित्रकेतु नामक मयूरध्वज जैसे पांच पुत्र हुये। प्रजागण राजा के प्रति अनुरक्त थे। राजा धर्मानुरूप शासन करने लगे। इन्होंने सकाम रूप से वैशाख धर्माचरण द्वारा इस धर्म के प्रभाव को स्वयं देख लिया। वे पुनः विष्णु की प्रसन्नतार्थ निष्काम भाव से वैशाख धर्म पालन करने लगे। इससे

भगवान् ने प्रसन्न होकर अक्षय तृतीया के दिन राजा को दर्शन दिया। राजा ने चतुर्बाहु, शंख-चक्र-गदाधारी, वनमालाभूषित, सानुग, लक्ष्मीयुक्त, गरुड़ारूढ़ परमात्मा अच्युत नारायण का दर्शन किया तथा विस्मित हो गये। भगवान् के दुःसह तेज को न सह सकने के कारण राजा के नेत्र बन्द हो गये थे। वे हर्ष से कभी गिरते, कभी उछलते, कभी मत्त होते, कभी उन्मत्तवत् घूमते! उनका शरीर पुलकित था, नयनों में अश्रु भरे थे। वे हाथ जोड़कर भूतल पर प्रणत होकर भक्ति के साथ उनका स्तव करने लगे।।७१-८५।।

।।पञ्चदश अध्याय समाप्त।।

षोडशोऽध्यायः

पाञ्चालदेशाधिपति को सायुज्यलाभ, विष्णु से वर लाभ

श्रुतदेव उवाच

तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुताशयः सद्यः समुत्थाय ननाम मूर्ध्ना।
चिरं निरीक्ष्याऽऽकुललोचनो ह्यमुं विश्वात्मदेवं जगतामधीशम्।।१।।
दधार पादाववनिज्य तज्जलं यत्पादजाऽऽब्रह्म जगत्पुनाति।
समर्चयामास महाविभूतिभिर्महार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः।।२।।
स्रग्धूपदीपामृतभक्षणादिभिस्त्वग्गात्रवित्तात्मसमर्पणेन ।
तुष्टाव विष्णुं पुरुषं नारायणं निर्गुणमद्वितीयम्।।३।।

श्रुतदेव कहते हैं—मधुसूदन के दर्शन से प्रसन्न होकर राजा का शरीर आप्लुत हो गया। उन्होंने उठकर मस्तक झुकाकर मधुसूदन को प्रणाम किया। जगत्पति विश्वात्मा हरि का दर्शन करके राजा पुरुयशा के नेत्रद्वय भर गये। जिनके चरणकमल से निकली जाह्नवी ब्रह्मा से तृण पर्यन्त जगत् को पवित्र करती है, उन चरणों को राजा ने धोकर पादोदक मस्तक पर धारण किया तथा महाविभूति एवं महार्ध वस्त्र, आभरण एवं माला से उनकी अर्चना करने लगे। उन्होंने माला, धूप-दीप-मधुर भक्ष्य-भोज्यादि द्वारा तथा अपना त्वक्, अंग, वित्त एवं स्वयं के समर्पण द्वारा उन पुराणपुरुष की अर्चना किया, वे निर्गुण नारायण अद्वितीय विष्णु की स्तुति करने लगे।।१-३।।

निरञ्जनं विश्वसृजामधीशं वन्दे परं पद्मभवादिवन्दितम्।
यन्मायया तत्त्वविदुत्तमा जना विमोहिता विश्वसृजामधीश्वरम्।।४।।
मुह्यन्ति मायाचरितेषु मूढा गुणेषु चित्रं भगवद्विचेष्टितम्।
अनीह एतद् बहुधैक आत्मना सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽप्यथ।।५।।

समस्तदेवासुरसौख्यदुःखप्राप्त्यै भवान्पूर्णमनोरथोऽपि।
तत्राऽपि काले स्वजनाभिगुप्त्यै बिभर्षि सत्त्वं खलनिग्रहाय॥६॥
तमोगुणं राक्षसबन्धनाय रजोगुणं निर्गुण! विश्वमूर्ते!।
दिष्ट्या त्वदङ्घ्रिः प्रणताघनाशनस्तीर्थास्पदं हृदिधृतःसुविपक्वयोगैः॥७॥
उत्सिक्तभक्त्युपहृताशयजीवभावाः प्रापुर्गतिं तव पदस्मृतिमात्रतो ये।
भवाख्यकालोरगपाशबन्धः पुनःपुनर्जन्मजरादिदुःखैः॥८॥
भ्रमामि योनिष्वहमाखुभक्ष्यवत्प्रवृद्धतर्षस्तव पादविस्मृतेः।
नूनं न दत्तं न च ते कथा श्रुता न साधवो जातु मयाऽपि सेविताः॥९॥

राजा कहते हैं—जिनकी माया द्वारा तत्ववेत्ता भी मोहित हो जाते हैं, जो प्रजापतियों के भी अधिपति हैं, पद्मयोनि ब्रह्मा भी जिनकी वन्दना करते हैं, मैं उन निरंजन प्रजापति रमापति की वन्दना करता हूं। मूढ़ लोग जिन भगवान् के मायाचरित से मोहित हो जाते हैं तथा गुणों की विचित्रता को देखने लग जाते हैं, जिनकी कोई चेष्टा ही नहीं है, जो एक होकर भी बहुरूपी होकर सृजन-पालन करते हैं, जो संगहीन हैं, पूर्णमनोरथ हैं, समस्त सुर-असुर भी जिनसे सुख-दुःख प्राप्त करते हैं, जो खलगण का निग्रह करने हेतु तथा स्वजनों के रक्षार्थ यथाकाल मूर्त्ति धारण करते हैं, जो निर्गुण विश्वमूर्त्ति होकर भी राक्षसों के बन्धनार्थ रजः तथा तमः गुणधारी हो जाते हैं, मैं भाग्यवशात् उनके चरणकमलों में प्रणत होने में समर्थ हो सका हूं। अब मेरे योग की परिणति निकट है। क्योंकि तीर्थवत् पाप विनाशक चरण को हृदय में धारण करने का मुझे आज अधिकार मिल सका है। जिन्होंने प्रबल भक्ति द्वारा अहंज्ञान त्यागकर आपके चरण कमलों का स्मरण करना प्रारंभ कर दिया है, वे अयुत्तम गतिलाभ करते हैं। आपका चरणकमल विस्मृत होने के कारण मैं संसार नामक कालवत् नागपाश में बद्ध हो गया हूं। बारम्बार जन्म-जरा आदि दुःख से दुःखी तथा मार्जारवत् लोलुप होकर अनेक योनियों में भ्रमण करता रहा हूं। पूर्व जन्म में मैंने दान नहीं दिया तथा हरिकथा श्रवण और साधु सेवा नहीं किया।।४-९।।

तेनारिभिर्ध्वस्तपरार्ध्यलक्ष्मीर्वनं प्रविष्टः स्वगुरुह्यघं स्मरन्।
स्मृतौ च तौ मां समुपेत्य दुःखात्सम्बोधयाञ्चक्रतुरार्तबन्धू॥१०॥
वैशाखधर्मैः श्रुतिचोदितैः शुभैः स्वर्गापवर्गादि पुमर्थहेतुभिः।
तद्बोधतोऽहं कृतवान्समस्ताञ्छुभावहान्माधवमासधर्मान्॥११॥

इसी पाप के कारण मैं शत्रुओं द्वारा विध्वस्त एवं लक्ष्मीरहित होकर वनभ्रमण कर रहा हूं। मेरा कैसा (उत्तम) भाग्य है? मैंने गुरु का स्मरण किया था। स्मरणमात्र से मेरे जैसे आर्त्त के बन्धु-गुरुद्वय मेरे पास आये तथा मुझे दुःख से मुक्त कराने के लिये उन्होंने उपदेश द्वारा मुझे प्रबोधित किया। उन्होंने मुझे वेदोक्त स्वर्ग-अपवर्ग साधक सुशोभन वैशाखधर्म में दीक्षित किया। मैंने उनके उपदेश द्वारा ही इन सभी शुभप्रद वैशाखधर्म का आचरण किया।।१०-११।।

तस्मादभून्मे परमः प्रसादस्तेनाऽखिलाः सम्पद ऊर्जिताइमा।
नाऽग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः॥१२॥

उपासितास्तेऽपि हरन्त्यघं चिराद्विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया।
यान्मन्यसे त्वं भविनोऽपि भरिशस्त्यक्तेषणांस्त्वत्पदन्यस्तचित्तान्॥१३॥

तत्पश्चात् इस वैशाखधर्म सेवन के ही प्रभाव द्वारा मुझे अतीव प्रसन्नता तथा समस्त उर्जित सम्पत्ति का लाभ हुआ। अग्नि-चन्द्र-सूर्य-तारक-भूमि-जल-आकाश-वायु-वाक्-मन भी यथाविधि उपासित होकर दीर्घकाल में ज्ञानीजन तक के भी (पूर्वकृत) पापों का हरण नहीं कर पाते, वैशाखधर्म के प्रभाव से वह सभी विध्वस्त हो जाते हैं। हे विभु! जिन्होंने कामना का विसर्जन कर दिया है, जिनका चित्त आपके चरणों में न्यस्त है, वे बारम्बार जन्म लेकर भी आपके चरणों में ही अनुरत रहते हैं।।१२-१३।।

नमः स्वतन्त्राय विचित्रकर्मणे नमः परस्मै सदनुग्रहाय।
त्वन्मायया मोहितोऽहं गुणेषु दारार्थरूपेषु भ्रमाम्यनर्थदृक्॥१४॥
त्वत्पादपद्मे सति मूलनाशने समस्तपापापहरे सुनिर्मले।
सुखेच्छयाऽनर्थनिदानभूतैः सुतात्मदारैर्ममताभियुक्तः॥१५॥
न क्वापि निद्रां लभते न शर्म प्रवृद्धतर्षः पुनरेव तस्मिन्।
लब्ध्वा दुरापं नरदेवजन्म त्वं यत्नतः सर्वपुमर्थहेतुः॥१६॥
पदारविन्दं न भजामि देव! सम्मूढचेता विषयेषु लालसः।
करोमि कर्माणि सुनिष्ठितः सन्प्रवृद्धतर्षस्तदपेक्षया ददत्॥१७॥
पुनश्च भूयामहमद्य भूयामित्येव चिन्ताशतलोलमानसः।
तदैव जीवस्य भवेत्कृपा विभो! दुरन्तशक्तेस्तव विश्वमूर्ते!॥१८॥
समागमः स्यान्महतां हि पुंसां भवाम्बुधिर्येन हि गोष्पदायते।
सत्सङ्गमो देव यदैव भूयात्तर्हीश देवे त्वयि जायते मतिः॥१९॥
समस्तराज्यापगमं हि मन्ये ह्यनुग्रहं ते मयि जातमञ्जसा।
यथार्य ते ब्रह्मसुरासुराद्यैर्निवृतत्तर्षैरपि हंसयथैः॥२०॥
इतः स्मराम्यच्युतमेव सादरं भवापहं पादसरोरुहं विभो!।
अकिञ्चनप्रार्थ्यममन्दभाग्यदं न कामयेऽन्यत्तव पादपद्मात्॥२१॥

हे विभु! आप स्वतन्त्र, विचित्रकर्मा, श्रेष्ठ, साधुगण के प्रति दयापूर्ण हैं। मैं आपकी ही माया से मुग्ध होकर स्त्री, अर्थ (धन) तथा रूपादि गुणवस्तु में मेरी अनर्थ दृष्टि (लिप्तता) हो गयी है। आपको प्रणाम! आपके चरणकमल के स्मरण द्वारा संसारकारण अविद्या का नाश हो जाता है। समस्त पापों का विनाश हो जाने के कारण अन्तःकरण निर्मल हो जाता है। मैं अनर्थ के निदानभूत सुख की अभिलाषा का हृदय में पोषण करके सुत (पुत्र), देह तथा पत्नी की ममता से मोहित हो रहा हूं। पुत्र-स्त्री आदि में पुनः-पुनः मेरी कामना बलवती हो रही है। मैं कहीं भी निद्रा अथवा शान्ति नहीं पा रहा हूं। आप समस्त पुरुषार्थसिद्धि के हेतुभूत हैं! तथापि मैं दुष्प्राप्य जन्म लाभ करके भी आपकी सेवा के लिये यत्न नहीं कर रहा हूं। हे देव! विषय हेतु मेरा हृदय

लालायित है। मैं मूढ़बुद्धि हूं। मैं आपके चरण की सेवा नहीं कर रहा हूं। मैं जितना ही सुसमाहित होकर कर्माचरण करना चाहता हूं, मेरी विषय लालसा उतनी ही वर्द्धित होती जा रही है। मैं सोचता हूं कि मैं आज भी हूं। आगे भी रहूंगा, ऐसी सैकड़ों चिन्ता द्वारा सैकड़ों चिन्ता से मेरा चित्त आकुल हो रहा है। हे विश्वमूर्त्ति! आपकी शक्ति दुरतिक्रम्य है। प्राणीगण के प्रति आपकी जितनी करुणा है, उसके कारण आप अवतार लेकर प्राणीगण के लिये संसार सागर को गाय के खुर से बने गढ़े को जैसे पार किया जाता है, उसी प्रकार पार करा देते हैं। हे देव! जब साधुसंसर्ग मिलता है, तब आपके प्रति मति का जन्म होता है। हे ईश्वर! मेरा जो समस्त राज्यैश्वर्य अपहृत हुआ था, मैं सोचता हूं कि यह मेरे प्रति आपका विशेष अनुग्रह था। हे आर्य! हंस श्रेणी के समान ब्रह्मा आदि सुर-असुरगण आपके जिस चरण की वन्दना करके निवृत्ति के अभिलाषी हो गये हैं, आज से मैं आपके भवभयनिवारक अच्युत के चरणकमल की सादर शरण ग्रहण करता हूं। मैं आपके चरण कमलों के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की कामना नहीं करता।।१४-२१।।

अतो न राज्यं न सुतादिकोशं देहेन शश्वत्पतता रजोभुवा।
भजामि नित्यं तदुपासितव्यं पादारविन्दं मुनिर्विचिन्त्यम्।।२२।।
प्रसीद दवेश! जगन्निवास! स्मृतिर्यथा स्यात्तव पादपद्मे।
सक्तिः सदा गच्छतु दारकोशपुत्रात्मचिह्नेषु गणेषु मे प्रभो!।।२३।।
भूयान्मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि ते दिव्यकथानुवर्णने।
नेत्रे ममेमे तव विग्रहेक्षणे श्रोत्रे कथायां रसना त्वदर्पिते।।२४।।

आपके पादपङ्कज अकिंचन लोगों द्वारा प्रार्थनीय हैं तथा सौभाग्यप्रद हैं। पुत्र, कोष, देह, राज्य आदि (जो गुणयुक्त हैं तथा नित्य विनाशशील हैं। अतएव यह सब मैं नहीं चाहता। मुनिगण आपके जिन चरणारविन्द की वन्दना करते हैं, अब वही मेरा चिन्तनीय तथा उपास्य है। हे देवेश! आप प्रसन्न हो जायें। हे जगन्निवास! आपके चरणकमलों की स्मृति मुझे बनी रहे, मेरे प्रति प्रसन्न होकर मुझे वही मति प्रदान करें। हे प्रभो! स्त्री-पुत्र-कोष-देह-तथा स्वजनों के प्रति मेरी तनिक भी आसक्ति न रहे। कृष्णपादारविन्द में मेरा मन अनुरक्त रहे तथा उनकी दिव्य कथा कीर्त्तन में मेरा मन सदैव आसक्त रहे। हे विभु! मेरे नयनद्वय आपके विग्रहदर्शन में अनुरक्त रहें। कर्णद्वय आपकी कथा श्रवण में तथा रसना सदैव आपकी कथा के रसपान में निरत रहे।''।।२२-२४।।

घ्राणञ्च त्वत्पादसरोजसौरभेत्वद्भक्तगन्धादिविलेपनेसकृत्।
स्यातां च हस्तौ तव मन्दिरे विभो सम्मार्ज्जनादौ मम नित्यदैव।।२५।।
पादौ विभोः क्षेत्रकथाऽनुसर्पणे मूर्धा च मे स्यात्तव वन्दनेऽनिशम्।
कामश्च मे स्यात्तव सत्कथायां बुद्धिश्च मे स्यात्तव चिन्तनेऽनिशम्।।२६।।
दिनानि मे स्युस्तव सत्कथोदयोरुद्गीयमानैर्मुनिभिर्गृहागतैः।
हीनः प्रसङ्गस्तव मे न भूयात्क्षणं निमेषार्द्धमथाऽपि विष्णोः!।।२७।।
न पारमेष्ठ्यं न च सार्वभौमं न चाऽपवर्गं स्पृहयामि विष्णो!।
त्वत्पादसेवाञ्च सदैव कामये प्रार्थ्यां श्रिया ब्रह्मभवादिभिः सुरैः।।२८।।

"हे देव! मेरी नासिका आपके चरणकमल के सौरभ का आघ्रान करे तथा दोनों हाथ आपके उच्छिष्ट गन्ध-चन्दनादि विलेपन में तथा आपके मंदिर के सम्मार्जन में सतत् तत्पर रहे। हे विभु! मेरे पादद्वय आपके क्षेत्र की परिक्रमा में, मस्तक सदा आपकी वन्दना में, कान सतत् आपकी सत्कथा सुनने में तथा बुद्धि सतत् आपके चिन्तन में लगी रहे। हे विष्णु! मुनिगण मेरे गृह में आकर जो सब सत्कथा का कीर्त्तन करें, मेरा दिन उन कुशलताप्रद सत्कथा श्रवण में व्यतीत होता रहे। मेरा मन क्षणकाल के लिए भी नीच संसर्ग में न पड़े। मेरा आधा क्षण भी आपके चिन्तन से रहित व्यर्थ व्यतीत न हो। हे विष्णु! मैं ब्रह्मपद की कामना नहीं करता। मुझे सार्वभौमत्व प्राप्त न हो। मैं अपवर्ग की इच्छा नहीं करता। आप के जिन चरणों की ब्रह्मा तथा रुद्र आदि देवगण वन्दना करने की कामना करते हैं, मैं सदा उन चरणों की सेवा की कामना करता हूं।।२५-२८।।

इति राज्ञा स्तुतो विष्णुः प्रसन्नः कमलेक्षणः।
मेघगम्भीरया वाचा तमुवाच क्षितीश्वरम्।।२९।।

राजा द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने से कमललोचन विष्णु प्रसन्न हो गये तथा वे मेघगंभीरवाणी से कहने लगे।।२९।।

श्रीभगवानुवाच

जाने त्वां दसवर्यं मे निष्कामुकमकल्मषम्। अथाऽपि ते प्रदास्यामि वरं दैवतदुर्लभम्।।३०।।
आयुष्यं चायुतं दिव्यं सम्पदश्च नरेश्वर!। भक्तिर्मयि दृढा भूयादन्ते सायुज्यमेव च।।३१।।
त्वया कृतेन स्तोत्रेणमांस्तुवन्तिचयेभुवि। तेषांतुष्टःप्रदास्यामिभुक्तिंमुक्तिंनसंशयः।।३२।।
तृतीयैषाऽक्षयानाम भुविख्याताभविष्यति। यस्यांतवप्रसन्नोऽहंभुक्तिमुक्तिफलप्रदः।।३३।।

भगवान् कहते हैं—"हे राजन्! मैं जानता हूं कि तुम मेरे एक उत्तम सेवक हो। तुम्हारी कोई कामना नहीं है। तुम निष्पाप हो, तथापि मैं तुमको देवदुर्लभ वरदान देता हूं। हे नरेश्वर! तुम दिव्य वर्ष परिमाणानुसार १०००० वर्ष आयु तथा उत्तम पद प्राप्त करोगे। मुझमें तुम्हारी भक्ति दृढ़ होती रहे। अन्तकाल में तुमको मेरा सायुज्य लाभ होगा। भूतल में जो लोग तुम्हारे द्वारा कहे इस स्तोत्र से मेरा स्तव करेंगे, मैं उन सबके प्रति प्रसन्न होकर भुक्ति-मुक्ति प्रदान करूंगा। इसमें संशय नहीं है। जिस वैशाख तृतीया के दिन मैंने तुम पर प्रसन्न होकर तुमको भुक्ति-मुक्ति प्रदान किया था भूतल पर, यह तृतीया, अक्षय तृतीया कही जायेगी।"।।३०-३३।।

ये कुर्वन्ति नरा मूढाः स्नानदानादिकाः क्रियाः।
व्याजेनाऽपि स्वभावाद्वा यान्ति मत्पदमव्ययम्।।३४।।
ये चाऽक्षयतृतीयायां पितृनुद्दिश्य मानवाः। श्राद्धं कुर्वन्तितेषांवैतदानन्त्यायकल्पते।।३५।।
न चाऽनयातिथिर्लोकेसमावानाधिकाभुवि। अस्यांकृतंस्वल्पमपितदक्षय्यफलंभवेत्।।३६।।

"छलपूर्वक अथवा स्वभावतः जो मूढ़ मानव भी इस तृतीया को स्नानादि कार्य करेंगे, उनको मेरा अव्यय पदलाभ होगा। जो सब लोग अक्षय तृतीया के दिन पितृगण का श्राद्ध करेंगे, उनका प्रदत्त श्राद्ध अनन्त फलप्रद होगा। इस लोक में तृतीया के समान कोई तिथि नहीं है। इस दिन स्वल्प धर्म का भी अनन्त फल प्राप्त होता है।"।।३४-३६।।

योगां दद्यान्नृपश्रेष्ठब्राह्मणायकुटुम्बिने। सर्वसम्पत्प्रवर्षाख्याभुक्तिर्मुक्तिःकरेस्थिता॥३७॥
यो हिदद्यादनड्वाहंसर्वपापविनाशनम्। कालमृत्युविमुक्तःसन्दीर्घायुष्यमवाप्नुयात्॥३८॥
वैशाखमासे यो धर्मान्कुरुते मत्प्रियावहान्। तेषां मृत्युजराजन्मभयं पापं हराम्यहम्॥३९॥
यथा वैशाखधर्मैस्तु तुष्टः स्यांसकलैरपि। मासधर्मैस्तुतुष्टःस्यांमासोमेमाधवप्रियः॥४०॥
सर्वधर्मोज्झिता वापि ब्रह्मचर्यविवर्जिताः। वैशाखमासनिरता यान्ति मत्पदमव्ययम्॥४१॥
यद्दुरापं तपोभिश्च सांख्ययोगैर्मखैरपि। तद्धाम परमं यान्ति वैशाखनिरता नराः॥४२॥

"हे नृपप्रवर! जो मानव इस अक्षय तृतीया के दिन कुटुम्बी द्विजगण को गोदान प्रदान करता है, उसकी सम्पत्ति वृष्टि के समान अजस्र रूप से बढ़ती है। जो मानव इस दिन सर्वपापनाशक वृषदान करता है, वह अकालमृत्यु रहित होकर दीर्घायु लाभ करता है। जो मानव वैशाख मास में मेरा यह शुभप्रद व्रत करता है मैं उसकी मृत्यु, जरा तथा जन्मभय एवं पापों का हरण कर लेता हूं। वैशाख मास मुझे अत्यन्त प्रिय है। अन्य सभी धर्माचरण से मुझे जैसी प्रसन्नता होती है, अकेले वैशाख व्रताचार से मुझे उससे अधिक प्रसन्नता मिलती है। यदि सर्वधर्मपरित्यक्त तथा ब्रह्मचर्यादि वर्जित मनुष्य भी वैशाखमासीय व्रताचरण सम्पन्न करता है, तब वह भी अव्ययपद की प्राप्ति करता है। जो नाना तप से दुष्प्राप्य है, अनेक यज्ञ तथा सांख्य योग द्वारा भी जो नहीं मिलता, वैशाख व्रत में निरत उस पद को प्राप्त कर लेते हैं। वे मेरे परमधाम में जाते हैं।"।।३७-४२।।

अपि पापसहस्रं वा मासोऽयं हरतेऽनघ। प्रायश्चित्तविहीनं वा मत्पादस्मरणं यथा॥४३॥
गुरूपदिष्टः कान्तारे वैशाखे रिरतो भवान्। समाराध्य जगन्नाथं तेनाप्तमखिलं नृप॥४४॥
धर्मेणानेन सम्प्रीतः प्रत्यक्षोऽहं भवामिते।
भुक्त्वा भोगान्यथाकामान्देवैरपि सुदुर्लभान्॥४५॥
इति तस्मै वरं दत्त्वा देवदेवो जनार्दनः। पश्यतामेव सर्वेषां तत्रैवाऽन्तरधीयत॥४६॥
ततो भूपालवर्योऽसौ बभूवात्यन्तविस्मितः। हृष्टपुष्टतनुर्भूप! लब्धनष्टधनो यथा॥४७॥
ततः शशास पृथिवीं तच्चित्तस्तत्परायणः। महद्भिर्बोधितोनित्यंगुरुभिश्चनिरन्तरम्॥४८॥
नान्यं प्रियतमं मेने वासुदेवमृते नृपः। यत्सम्पर्कात्प्रिया आसन्दारामात्यसुतादयः॥४९॥
सर्वान्धर्मांश्चकाराऽसौ वैशाखोक्तान्पुनः पुनः। तेनपुण्यप्रभावेणपुत्रपौत्रादिभिर्वृतः॥५०॥
भुक्त्वा मनोरथान्सर्वान्देवानामपि दुर्लभान्।
अन्ते जगाम सायुज्यं विष्णोर्देवस्य चक्रिणः॥५१॥
य इदं परमाख्यानं श्रृण्वन्तिश्रावयन्तिच। तेसर्वेपापनिर्मुक्तायान्तिविष्णोःपरंपदम्॥५२॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादे पाञ्चालदेशाधिपतेः
सायुज्यप्राप्तिर्नाम षोडशोऽध्यायः।।१६।।

—****—

"हे निष्पाप! जैसे मेरे नाम स्मरण तथा चरणों के स्मरण से बिना प्रायश्चित्त ही पापों का क्षय हो जाता है, वैसे ही हजारों-हजार संचित पापों का वैशाखमास के व्रताचार से हरण हो जाता है। हे नृप! तुमने गुरु के उपदेश को शिरोधार्य करके वैशाख व्रत तत्पर होकर मुझ जगत्पति की आराधना किया था, उस सुकृति के कारण तुमने समस्त अभीष्ट को प्राप्त किया है। तुम्हारे उस वैशाखधर्म से प्रसन्न होकर मैंने तुमको यह प्रत्यक्ष दर्शन प्रदान किया है। अब तुम देवगण को भी दुर्लभ विविध भोगों का यथेच्छ उपभोग करके अन्त में मेरा सायुज्य लाभ करोगे।" देवदेव जनार्दन ने राजा को यह वर प्रदान किया तथा दर्शकों के सामने ही वहां से अन्तर्हित् हो गये। हे राजन्! राजा भी यह देखकर अतीव विस्मित हो गये तथा जैसे नष्ट हो गया धन पाकर व्यक्ति लोक में हृष्ट-पुष्ट हो जाता है, वे भी उसी प्रकार से हृष्ट-पुष्ट हो गये। तदनन्तर राजा भी हरि के प्रति तद्गत् चित्त तथा हरिपरायण होकर सतत् गुरु एवं श्रेष्ठ लोगों के उपदेशानुसार धरती का पालन करने लगे। पहले जो पुत्र-पत्नी तथा आमात्य आदि सभी से प्रेम करते थे, आज उनको वासुदेव के अतिरिक्त कोई भी प्रिय नहीं लगता था। वे पुनः-पुनः वैशाखोक्त धर्माचरण करते थे तथा उस पुण्य प्रभाव से पुत्र-पौत्रादि के साथ युक्त होकर देवगण के लिये भी दुर्लभ मनोरथ का लाभ करके अन्त में विष्णु सायुज्य उन्होंने प्राप्त किया। जो इस उत्तम उपाख्यान को सुनते हैं अथवा अन्य को श्रवण कराते हैं, वे पापरहित होकर विष्णु के परमपद का लाभ करते हैं।।४३-५२।।

।।षोडश अध्याय समाप्त।।

सप्तदशोऽध्यायः

दन्तिल-कोहल को मुक्ति प्राप्ति

श्रुतकीर्तिरुवाच

वैशाखधर्मानखिलानिहाऽमुत्रफलप्रदान्। भयोऽपिशृण्वतश्चासीत्तृप्तिर्नाऽद्यापिमानद।।१।।
यत्र चाऽकैतवोधर्मोयत्रविष्णुकथाःशुभाः। तच्छास्त्रंशृण्वतोनैवतृप्तिःकर्णरसायनम्।।२।।
पूर्वजन्मकृतं पुण्यं दिष्ट्या पारमुपागतम्। आतिथ्यव्यपदेशेन यद्भवान्गृहमागतः।।३।।
वचोऽमृतं मुखाम्भोजनिःसृतं परमाद्भुतम्। पीत्वा तृप्तः पारमेष्ठ्यं मोक्षंवाचनकामये।।४।।
तस्मात्तानेव धर्मान्मे भुक्तिमुक्तिप्रदायकान्।
विष्णुप्रीतिकरान्दिव्यान्भूयो विस्तरतो वद।।५।।
इत्युक्तस्तु पुरा राज्ञा श्रुतदेवोमहायशाः। संहृष्टाऽऽत्माशुभान्धर्मान्पुनर्व्याहर्तुमारभत्।।६।।

राजा श्रुतकीर्त्ति कहते हैं—हे मानद! तदनन्तर उभयकाल में अखिलफलप्रद वैशाखधर्म का पुनः-पुनः

श्रवण करके भी मेरी तृप्ति नहीं हो रही है। यह वैशाखधर्म अकपट है। यह सुशोभित विष्णु प्रसंग से पूर्ण है तथा कानों के लिये रसायन जैसा है। इस वैशाखशास्त्र को सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हो रही है। अहा! मैंने पूर्वजन्म में न जाने कितने पुण्य किये हैं जो मेरे भाग्य से आपका अतिथि वेश में मेरे भवन में शुभागमन हुआ है। आपके मुखकमल से निःसृत परम अद्भुद् वाक्यामृत के रसास्वाद से मुझे ऐसी तृप्ति हो रही है कि ब्रह्मपद तथा मोक्ष भी मुझे अभीष्ट नहीं लग रहा है। इसलिये भुक्ति-मुक्तिप्रद विष्णु प्रीतिकर इस दिव्य वैशाखधर्म का वर्णन मुझसे विस्तारपूर्वक पुनः कहिये। पूर्वकाल में राजा द्वारा यह कहे जाने पर महायशस्वी श्रुतदेव ने प्रसन्न अन्तःकरण से पुनः वैशाखधर्म वर्णन प्रारंभ किया।।१-६।।

श्रुतदेव उवाच

श्रृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम्। वैशाखधर्मविषयां भावितां मुनिभिर्मुहुः।।७।।
पम्पातीरे द्विजः कश्चिच्छङ्खोनाममहायशाः। गुरौसिंहगतेचागान्नदींगोदावरींशुभाम्।।८।।
तीर्त्वा भीमरथीं पुण्यां कान्तारे कण्टकाचले। निर्जले निर्जनेघोरेवैशाखेतपकर्षितः।।९।।
वृक्षे चोपविवेशाऽसौ मध्याह्नसमये द्विजः। तदाकश्चिद्दुराचारोव्याधश्चापधरःशठः।।१०।।
निर्घृणः सर्वभूतेषु कालान्तक इवाऽपरः। तं कुण्डलधरं विप्रंदीक्षितंभास्करोपमम्।।११।।
दृष्ट्वा बद्ध्वा स जग्राह कुण्डलादिकमुग्रधीः। उपानहौचक्षत्रंचअक्षमालांकमण्डलुम्।।१२।।
पश्चाद्विसृज्य तं विप्रं गच्छेत्याह विमूढधीः।।१३।।
ततः स गच्छन्पथि शर्कराऽऽविले सूर्यांशुतप्ते जलवर्जिते खरे।
सन्तप्तपादस्तृणछादिते स्थले क्वचिच्चचारोपवसन्नूर्ध्वरेताः।।१४।।
स वै द्रुतं सम्पतन्क्वाऽपि तुष्यन्हाहेति वादी स जगाम तूर्णम्।
दृष्ट्वामुनिं खिद्यमानं पृथिव्यां मध्यं गते पूष्णि दया बभूव।।१५।।

श्रुतदेव कहते हैं—हे राजन्! पापनाशक वैशाख धर्मकथा कहता हूं। श्रवण करो। मुनिगण ने इस धर्म विषय में पुनः-पुनः इस कथा की अवतारणा किया है। पम्पा नदी के तट पर शंख नामक महायशसम्पन्न एक द्विज निवास करते थे। वे बृहस्पति के सिंहराशि पर अवस्थान काल में गोदावरी तट पर गये। तदनन्तर ब्राह्मण शंख वैशाख मास में पुण्या भीमरथी नदी को पार करके कंटकाचल के वनप्रान्तर में जाते-जाते क्रमशः घोरतर निर्जन जलहीन देश में पहुंचे। शंख मध्याह्नकाल में सूर्य ताप से अत्यन्त तप्त होकर थक गये तथा एक वृक्ष के कोटर में आश्रय ग्रहण किया। उस समय वहां अनेक धनुर्धर व्याध आ गये। शठ, दुराचारी, घृणाहीन, सभी प्राणीगण के लिए द्वितीय काल के समान उग्रकर्मा व्याधों ने कुण्डलधारी सूर्य के समान दीक्षित ब्राह्मण को देखा तथा उनको बांधकर उनके कुण्डल, पादुका, छत्र, माला तथा कमण्डलु का हरण कर लिया। मूढ़ व्याधगण ने उनका कुण्डलादि सब कुछ हरण करके उनको छोड़ते हुये कहा—"हे द्विज! यहां से चले जाओ।" तब सब कुछ का हरण हो जाने के कारण ऊर्ध्वरेता द्विज शंख वहां से आगे बढ़े। सूर्यतापतप्त बालुका वाले जलरहित खरतर पथ पर चलते-चलते वे अतीव सन्तप्त हो उठे। उनके तलवे जलने लगे। वे तृणाच्छादित पथ पर चलते-चलते पैरों के जलने लगने पर कहीं बैठते तब पुनः चलने लगते! वे कभी सन्तप्त होकर तेजी से चलते, कभी

हाहाकार करने लगते, कभी कुछ राहत के लिये बैठ जाते। इस प्रकार तेजी से चलने का प्रयत्न करते तथा मध्याह्न सूर्य से उनको उत्तप्त होते देखकर उस धर्मविमुख व्याध के हृदय में दया का उद्रेक हुआ।।७-१५।।

व्याधस्य धर्मविमुखस्य च पापबुद्धेस्तस्मै ददामि सुखदां खलु पादरक्षाम्।।१६।।
चौर्येणैव स्वधर्मेण या गृहीता वनान्तरे।
तदीयमेव तत्सर्वं व्याधानां धर्मनिर्णयः। तस्मादुपानहौ दास्ये मुहुर्दुःखापनुत्तये।।१७।।
तेन श्रेयो भवेद्यच्च तद्भवेन्मम पापिनः। जीर्णे चोपानहौ द्व च वर्तेते पादयोर्मम।
न ताभ्यापस्ति मे कृत्यं तस्मात्ते वै ददाम्यहम्।।१८।।

उस पापबुद्धि को विचार आया—मैं इनको अवश्य ही सुखप्रद पादत्राण (पादुका) प्रदान करूंगा। मैंने अपने धर्म चौर्यवृत्ति द्वारा वन में इनसे जो कुछ पाया था, उस पर मेरा ही अधिकार है। यही व्याधधर्म है। अब मैं इनको पादुका प्रदान करूंगा। क्योंकि इस पादुका द्वारा इनके पैरों के दुःख की शान्ति होगी। मैं पापी हूं। इस दान के प्रभाव से मुझे भी श्रेयलाभ होगा। मेरे पैरों में जो पादुका है, वह जीर्ण-शीर्ण है। इससे अधिक दिनों तक मेरा कार्य नहीं हो सकेगा। इसलिये यही पादुका इन ब्राह्मण को प्रदान करूंगा।।१६-१८।।

इति निश्चित्य मनसि तूर्णं गत्वा ददौ च ते। शर्करातप्तपादाय द्विजवर्याय सीदते।।१९।।
उपानहौ गृहीत्वा ते निवृतिञ्च परां ययौ। सुखीभवेतितंव्याधमाशीर्भिरभिनन्द्यच।।२०।।
नूनं सुपक्वपुण्योऽयं वैशाखेदत्तवानम्।
व्याधस्यापिचदुर्बुद्धेः प्रायोविष्णुःप्रसीदति।।२१।।
सर्वस्याऽऽप्त्या च भूयोऽपि यत्सुखंतदभून्मम।
ततोऽभिश्रुत्य तद्वाक्यं किमेतदिति विस्मितः।।२२।।

उस व्याध ने मन ही मन यह निर्णय किया तथा उसने उन द्विज के समीप जाकर वह पादुका उनको दे दिया। द्विजश्रेष्ठ शंख के पादद्वय (तलवे) सूर्यताप से तप्त बालुका में अत्यन्त कष्ट पा रहे थे। उन्होंने पादुका पहना तथा परम शान्ति का अनुभव करते हुये व्याध को सुखी होने का आशीर्वाद प्रदान किया। तदनन्तर उस दुर्बुद्धि व्याध का अभिनन्दन करते हुये पुनः कहा—"वैशाख मास में तुम्हारा यह पादुका दान देखकर यह प्रतीत होता है कि तुम्हारे-पुण्यपरिपाक का समय निकट है। इससे विष्णु भी तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हो गये। हे व्याध! सर्वस्व लाभ का जो सुख है, वही सुख इस समय मुझे पादुका प्राप्त होने से हो रहा है।" व्याध ने ऋषिशंख का वाक्य सुनकर उनसे कहा कि—"आप यह क्या कह रहे हैं?"।।१९-२२।।

व्याजहार पुनर्विप्रं ब्रह्मिष्ठं ब्रह्मवादिनम्। त्वदीयं तु मया दत्तं कथं पुण्यं भवेन्मम।।२३।।
प्रशंससि च वैशाखं हरिस्तुष्टोभवेदिति। एतदाचक्ष्वमेब्रह्मन्को वैशाखस्तु को हरिः।।२४।।
को धर्मः किं फलं तस्यशुश्रूषोर्मेदयानिधे। इतिव्याधवचःश्रुत्वाशङ्खस्तुष्टमनाअभूत्।।२५।।

उसने पुनः इन ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मवादी द्विज से कहा—"मैंने तो आपकी ही वस्तु आपको दे दिया। इसमें मेरा क्या पुण्यार्जन हुआ? आपने किसलिये वैशाख की प्रशंसा किया है तथा यह क्यों कहा कि मेरे ऊपर हरि प्रसन्न हो गये? हे ब्रह्मन्! अब यह कहिये कि हरि तथा वैशाख क्या है? यह सब विस्तारपूर्वक कहिये। हे

दयानिधि! धर्म क्या है? धर्म का फल क्या है? यह सब सुनने की इच्छा हो रही है। अतः यह सब कहिये।'' व्याध का वचन सुनकर ऋषिशंख विस्मित हो गये। साथ ही वे सन्तुष्ट भी हो गये।।२३-२५।।

प्रशंसन्स च वैशाखं पुनर्विस्मितमानसः। इदानीं दत्तवान्पादत्राणे मे लुब्धकः शठः।।२६।।
यद्दुर्बुद्धेश्च वैषम्यं जातं चित्रमहो बत। सर्वेषामेव धर्माणां फलं जन्मान्तरेषु वै।।२७।।
वैशाखमासधर्माणां फलं सद्यः क्षणेनृणाम्।
पापाचारस्य दुर्बुद्धेर्व्याधस्याऽपि दुरात्मनः।।२८।।
दैवादुपानहोर्दानात्सत्त्वशुद्धिरभूदहो। यच्च विष्णोः प्रियंकर्मयत्तत्सन्तोषनिर्मलम्।।२९।।
तदेव धर्ममित्याहुर्मन्वाद्या धर्मवित्तमाः। धर्मामाधवमासीयाःप्रिया विष्णोरतीवते।।३०।।
धर्मैर्माधवमासीयैर्यथा तुष्यति केशवः। न तथा सर्वदानैश्च तपोभिश्च महामखैः।।३१।।
नानेन सदृशो धर्मः सर्वेधर्मेषु विद्यते। मा गयां यान्तु मा गङ्गामाप्रयागंतु पुष्करम्।।३२।।
मा केदारं कुरुक्षेत्रंमाप्रभासंस्यमन्तकम्। मागोदांमाचकृष्णाञ्चमासेतुंमामरुद्वृधम्।।३३।।
वैशाखधर्ममाहात्म्यं शंसन्तीच कथाऽऽपगा। तत्रस्नातस्यवैविष्णुःसद्योहृद्यवरुध्यते।।३४।।

तदनन्तर ऋषि शंख वैशाख की प्रशंसा करते हुये प्रसन्न अन्तःकरण से कहने लगे—''तुमने लुब्धक तथा शठ होकर भी मुझे एक जोड़ी पादुका प्रदान किया है तथा तुममें जो यह दुर्बुद्धि के विपरीत मति का उदय हुआ है, यह अत्यन्त विचित्र बात है। अनेक जन्मों के पुण्यफल स्वरूप निखिल धर्म फलित होता है। अहो! मनुष्यों में वैशाख धर्मफल अल्पकाल में ही फलित होने लगता है। यह कैसा आश्चर्य है! पापाचारी दुर्बुद्धि व्याध ने दैववश आज पादुकादान किया, इससे उसकी कैसी देहशुद्धि हो गयी! मनु आदि धर्मवेत्ता कहते हैं कि जिससे विष्णु प्रसन्न हो जायें, जो कार्य उनको सन्तोषप्रद लगे, वही धर्म है। हे साधु! वैशाखधर्म विष्णु को अत्यन्त प्रिय है। वैशाखधर्म द्वारा केशव जिस प्रकार से सन्तुष्ट होते हैं, उस प्रकार से सर्वविध दान, उग्रतप, महायज्ञ से वैसे प्रसन्न नहीं होते। धर्मों में इस वैशाखधर्म के समान श्रेष्ठ धर्म अन्य कोई है ही नहीं! इसलिये मानव गया, गंगा, प्रयाग, पुष्कर, केदार, कुरुक्षेत्र, प्रभास, स्यमन्तक, गोदावरी, कृष्णा, रामेश्वर, सेतुबन्ध अथवा मरुद्वृद्ध प्रभृति स्थानों पर न जाकर केवल वैशाखधर्म सेवन करें। वैशाख माहात्म्यरूपी कथा की नदी अतीव प्रशंसित है। जो मानव इस वैशाख माहात्म्य कथा रूपी नदी में स्नान करता है, भगवान् विष्णु सदैव उसके हृदय में स्थित रहते हैं।।२६-३४।।

मासे माधवसञ्ज्ञेऽस्मिन्यस्त्वल्पेनैव साध्यते। नतद्बहुव्ययैर्दानैर्नधर्मैर्वाऽपिवैमखैः।।३५।।
मासोऽयं माधवोनाम व्याध! पुण्यविवर्द्धनः। तस्मिन्मह्यं त्वया दत्तेपादुकेतपनाशने।।३६।।
तेन ते पूर्वकालीनं पुण्यं पाकमुपागतम्। तुष्टस्तुभगवान्प्रायःश्रेयोव्याधविधास्यति।।३७।।
अन्यथा ते कथं भूयादबुद्धिरेतादृशीशुभा। मुनावेवं ब्रुवाणे च मृत्युना प्रेरितो बली।।३८।।
सिंहो व्याघ्रवधार्थाय प्राद्रवत्क्रोधविह्वलः। मध्ये दृष्ट्वाचमातङ्गं दैवाद्देवेनकल्पितम्।।३९।।
तं हन्तुमुद्यतोऽगच्छत्पदाक्रान्तं व्यवस्थितम्। तयोर्युद्धमभूद्राजसिंन्सहमातङ्गयोर्वने।।४०।।

श्रान्तौ युद्धाच्च विरतौ निरीक्षन्तौ च तस्थतुः।
व्याधमुद्दिश्य यच्चोक्तं मुनिना च महात्मना॥४१॥

"इस वैशाख मास में अल्प व्यय द्वारा ही जो धर्म साधित होता है, अनेक दान-धर्म तथा यज्ञ से भी वैसा धर्म साधित नहीं होता। हे व्याध! यह माधवनामक वैशाखमास पुण्यवर्द्धक है। तुमने इस पुण्यप्रद वैशाखमास में मुझे तापनाशक पादुका दान किया है, अतएव तुम्हारे पूर्वजन्मार्जित पुण्य का परिपाक काल आ गया। हे व्याध! भगवान् विष्णु तुम पर प्रसन्न होकर तुम्हारे लिये श्रेय का विधान करेंगे, अन्यथा तुममें इस प्रकार की साधुबुद्धि का कदापि उदय नहीं होता।" मुनि शंख यह कह रहे थे, तभी मृत्यु द्वारा प्रेरित होकर एक क्रोधविह्वल बली सिंह तथा एक व्याघ्र वहां पर दौड़े आये। दैवी विधान से तभी वहां एक सिंह तथा व्याघ्र के बीच एक हाथी भी आ गया। सिंह तथा शार्दूल अपना लक्ष्य छोड़कर उस हाथी का वध करने के लिये बढ़े। तब उस वन में सिंह एवं हाथी के बीच युद्ध छिड़ गया। क्षणकाल में युद्ध में दोनों श्रान्त हो गये। हे नृप! तभी महात्मा शंख व्याध से जो उपदेश वाक्य कह रहे थे, उसे विश्रान्त सिंह तथा हाथी ये दोनों सुनते हुये वहीं बैठ गये।।३५-४१।।

समस्तपातकध्वंसि दैवाच्छुश्रुवतुश्च तौ। तेनैव मासमाहात्म्यश्रवणेनाऽमलाशयौ॥४२॥
शापान्मुक्तौचतौदेहात्सद्योमुक्तौ दिवंगतौ। दिव्यरूपधरौदिव्यौदिव्यगन्धानुलेपनौ॥४३॥
दिव्यंविमानमारूढौ दिव्यनारीनिषेवितौ। सद्योऽवनतमूर्द्धानौप्राञ्जलीचोपतस्थतुः॥४४॥

दैववशात् कलुषविध्वंसी वैशाख माहात्म्य सुनकर उनका हृदय निर्मल हो गया। वे दोनों शापमुक्त हो गये तथा पशुदेह त्यागकर दिव्यदेहधारी होकर स्वर्ग चले गये। उन्होंने दिव्यदेह धारण किया था। उनका शरीर गन्धचन्दन लिप्त था। वहां दिव्य विमान आया। देव रमणियों ने उनकी सेवा करना प्रारंभ किया। वे दोनों अवनत मस्तक तथा अंजलिवद्ध होकर मुनि की स्तुति करते हुये विमान पर आरूढ़ हो गये।।४२-४४।।

मुनीन्द्रोधर्मवक्ताचव्याधमुद्दिश्यवैपथि। तौदृष्ट्वासिस्मितःप्राहकौयुवामितिनिश्चलः॥४५॥
दुर्यानौ तु कुतो जन्मयुवयोर्वाकथंमृतिः। अहेतौर्विपिनेचाऽस्मिन्परस्परवधोद्यतौ॥४६॥
एतत्सर्वं सुविंस्तार्यसम्यग्वदत मेऽनघौ!। इत्यक्तौ मुनिना तेन वचः प्रत्यूचतुः पुनः॥४७॥
मतङ्गस्य मुनेः पुत्रौदन्तिलःकोहलोऽपरः। शापदोषेणतौजातौनाम्नादन्तिलकोहलौ॥४८॥

उस समय वे धर्मवक्ता मुनिवर शंख मार्ग में बैठे व्याध से वैशाख माहात्म्य का वर्णन कर रहे थे, तभी यह घटना घटित हुई थी। जब सिंह एवं हाथी पशुयोनि से मुक्त हो गये, तब मुनि ने विस्मित होकर उनसे पूछा "तुम कौन हो, तुम किस कारण से इस पशुयोनि में जन्मे तथा तुमने यहां अकारण युद्धरत होकर तथा एक दूसरे के वध की इच्छा करते हुये यहीं पर देह त्यागा? हे निष्पाप पुरुषद्वय! यह सब वृत्तान्त विस्तृत रूप से मुझसे कहो।" तदनन्तर मुनि द्वारा पूछे जाने पर उन शापरहित हो गये दोनों पुरुषों ने उत्तर दिया कि "हम दोनों मतङ्ग ऋषि के पुत्र हैं। एक का नाम है दम्भिल तथा दूसरे का नाम है कोहल। शापदोष के कारण हमारी यह दशा हुई थी।"।।४५-४८।।

रूपयौवनसम्पन्नौ सर्वविद्याविशारदौ। आवामुद्दिश्य प्रोवाच पिताधर्मार्थकोविदः॥४९॥

मतङ्गो नाम ब्रह्मर्षिः सर्वधर्मविदुत्तमः। वैशाखे मासि तनयौ मधुसूदनवल्लभे।।५०।।
प्रपां कुरुत मार्गेचजनान्वीजयतं क्षणम्। मार्गे छायां विधत्ताञ्चभूर्यन्नं शीतलाम्बुच।।५१।।
कुरुतं स्नानमुषसि तथैवार्चयतं विभुम्। कथाञ्च शृणुतं नित्यंयया बन्धो निवर्तते।।५२।।
एवं च बहुभिर्वाक्यैर्बोधितावपि दुर्मती। क्रुद्धोऽभवंदन्तिलोऽहं मत्तोऽहंकोहलाह्वयः।।५३।।
क्रुद्धः शशाप तौ सद्यः पिता धर्मेषु लालसः।।५४।।

"हम रूप-यौवन सम्पन्न तथा सर्वविद्याविशारद थे। एक समय हमारे धर्मार्थकोविद पिता सर्वधर्मज्ञ महर्षि मतङ्ग ने माधवप्रिय इस वैशाखमास में हमें सम्बोधित करते हुये कहा—"हे पुत्रद्वय! मार्ग में जलाशय-बाबली आदि का निर्माण, पथिकों को पंखा झलना, पथ में छाया निर्माण, अन्न तथा शीतल जल की व्यवस्था तथा दान, प्रभात में स्नान, विष्णुदेव की पूजा, नित्य हरिकथा श्रवण करो। इससे तुम लोगों का संसार बन्धन निवृत्त होगा। हे द्विज! हम दुर्मति थे। पिता द्वारा नाना प्रकार से प्रबोधित होने पर भी हमने उनकी आज्ञा का पालन नहीं किया। हममें से काहल उन्मत्त तथा मैं दन्तिल क्रोधी था। तब धर्मज्ञ पिता ने क्रोधित होकर हमें शाप प्रदान किया।।४९-५४।।

पुत्रञ्चधर्मविमुखंभार्याञ्चाऽप्रियावादिनीम्। अब्रह्मण्यंचराजानं त्यजेत्सद्योनचेत्पतेत्।।५५।।
दाक्षिण्यादर्थलोभाद्वा संसर्गं ये प्रकुर्वते। ते सर्वे नरकं यान्ति यावदिन्द्राश्चतुर्दश।
इति ज्ञात्वा शशापाऽऽवां मदक्रोधपरिप्लुतौ।।५६।।
क्रुद्धोऽयंदन्तिलोभयात्सिंहःक्रोधपरिप्लुतः। मत्तस्तुकोहलोभूयान्मत्तोमातङ्गयूथपः।।५७।।
कृतानुतापौपश्चात्तुप्रार्थयावोविमोचनम्। आवाभ्यांप्रार्थितोभूयोविशापञ्चददौपिता।।५८।।
युवां प्राप्य च दुर्योनिंकियत्कालान्तरेऽपि च। सङ्गमोभवितातत्रपरस्परवधैषिणोः।।५९।।
तस्मिन्नेवहि समये सम्वादो व्याधसङ्घयोः। वैशाखधर्मविषयो दैवाद्वांश्रवणेऽपिच।।६०।।
गमिष्यति क्षणादेव तस्मान्मुक्तिर्भविष्यति। शापान्मुक्तौपूर्वमेवरूपमास्थायपुत्रकौ।।६१।।
मामेव प्राप्य वसतं नान्यथा मे वचो भवेत्। इति शप्तौ च गुरुणादुर्योनिंप्राप्यदुर्मती।।६२।।
प्राप्य दैवात्सङ्गतिञ्च परस्परवधैषिणौ। सम्वादं युवयोर्दिव्यं शुभं तं शुश्रुवावहे।।६३।।
तेनसद्योविमुक्तिश्चक्षणादेवाऽऽवयोरभूत्। इति सर्वं समाख्यायप्रणम्यचमुनीश्वरम्।।६४।।
समामन्त्र्याभ्यनुज्ञातौ जग्मतुः पितुरन्तिकम्। तदेवंसम्प्रदृश्याहमुनिर्व्याधंदयानिधिः।।६५।।
पश्य वैशाखमाहात्म्यश्रवणस्य फलं महत्। मुहूर्तश्रवणादेव तयोर्मुक्तिः करेस्थिता।।६६।।
इति ब्रुवाणं मुनिपुङ्गवं तं दयानिधिं निःस्पृहमग्र्यबुद्धिम्।
विशुद्धसत्त्वं सुकृतैकपात्रं स न्यस्तशस्त्रःपुनराह व्याधः।।६७।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीष-सम्वादे दन्तिलकोहलमुक्तिप्राप्तिवृत्तान्तवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः।।१७।।

हमारे पिता महर्षि मतंग जानते थे कि धर्मविमुख पुत्र, अप्रियवादिनी पत्नी तथा ब्रह्मण्यरहित राजा का सदैव के लिये त्याग ही उचित है। इनका संसर्ग कदापि श्रेयप्रद नहीं है। जो दाक्षिण्य किंवा अर्थलोभ के कारण ऐसे पुत्र का, ऐसी पत्नी तथा इस प्रकार के राजा से संसर्ग रखते हैं, वे चतुर्दश इन्द्रों के स्थितिकाल पर्यन्त नरकवास करते हैं। पिता ने यह विचार कर मद तथा क्रोध से क्रमशः युक्त हमको शाप दिया। हमारे क्रोधित पिता का शाप सुनिये। उन्होंने कहा कि "क्रुद्ध दंभिल सिंह हो जाये। यह मत्त कोहल मत्त मातंगों का यूथप होकर वन में वास करे।" पिता द्वारा शाप दिये जाने पर हम दोनों दुःखी हो गये तथा पिता से शाप मोचनार्थ प्रार्थना किया। उन्होंने भी हमारी प्रार्थना सुनकर हमें शाप मुक्ति हेतु बतलाया। पिता ने कहा—"मेरा वाक्य अन्यथा नहीं होगा। तुम दोनों कुत्सित योनि होकर वन में निवास करो। कुछ समय पश्चात् तुम लोग परस्परतः एक दूसरे का वध करने के लिये उद्यत हो जाओगे। उस वन में ऋषि शंख व्याध से वैशाख धर्म का वर्णन करेंगे। तुम उसे सुनकर तत्काल शापमुक्त हो जाओगे। हे पुरुषद्वय! शाप मुक्त होने के पश्चात् तुम पूर्वरूप पाकर मेरे पास निवास करोगे।" हे साधु! हम दुर्बुद्धि थे। पिता के शाप से ही हमारा पशुयोनि में जन्म हो गया था। दैववश आज वैशाख माहात्म्य सुनने के कारण हम दोनों भाई मिल गये। हम परस्परतः एक दूसरे का वध करने जा रहे थे। आप द्वारा कही शुभ कथा सुनकर हम पापरहित हो गये।" हे राजन्! वे पुरुषद्वय यह कहकर मुनीश्वर शंख को प्रणाम करके तथा उनकी आज्ञा लेकर पिता के पास चले गये। दयानिधि शंख ने यह घटना देखकर व्याध से कहा—"हे व्याध! वैशाखमास माहात्म्य श्रवण का महाफल देखो। मुहूर्त्तमात्र माहात्म्य श्रवण से पशु योनि प्राप्त प्राणीगण के लिये भी मुक्ति करतलगत हो गयी। ऋषि प्रवर शंख के यह कहने पर व्याध ने अस्त्र त्याग कर दिया। तदनन्तर यह व्याध दयानिधि, निस्पृह, सूक्ष्मबुद्धि शुद्धदेह पुण्यभाजन मुनि से पुनः कहने लगा।।५५-६७।।

।।सप्तदश अध्याय समाप्त।।

अष्टादशोऽध्यायः

व्याध के पूर्व जन्म का वृत्तान्त वर्णन

व्याध उवाच

भवताऽनुगृहीतोऽस्मि मुने! पापोऽतिदुष्टधीः।
दयालवो महान्तो हि स्वभावादेव साधवः॥१॥
क्व व्याधश्चाऽकुलीनोऽहं क्व च वा मतिरीदृशी। केवलं भवतामेवमन्येऽनुग्रहमुत्तमम्॥२॥
अथ साधो! च शिष्योऽस्मि कृपात्रोऽस्मि मानद!।
अनुग्राह्योऽस्मि पुत्रोऽस्मि कृपां कुरु दयानिधे!॥३॥

यथा मे न पुनर्भूर्यादसन्मतिरनर्थदा। सद्भिस्तु सङ्गतेः क्वापि न भूयो दुःखमश्नुते।।४।।
तस्माद्बोधय मां विप्रसूक्तैस्तैर्वृजिनापहैः। येनचाद्धातरिष्यन्तिसंसाराब्धिंमुमुक्षवः।।५।।

व्याध कहता है—हे मुनिवर! मैं दुर्मति तथा पापी हूं। आज मुझे आपकी कृपा मिली है। अहो! साधु महात्मा की दयालुता उनका स्वाभाविक गुण है। अन्यथा कहां तो मैं अकुलीन व्याध तथा कहां ऐसी मेरी मति! मुझे प्रतीत होता है कि यह सब महात्मा की उत्तम कृपा के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। हे द्विज! जो व्यक्ति साधु संगति प्राप्त करता है, उसे कदापि दुःखभोग नहीं करना पड़ता। अतएव जिसके द्वारा मुमुक्षु लोग सद्यः संसारसागर से पार होते हैं, आप अपने उस पापनाशक उत्तम वचनों द्वारा मुझमें ज्ञानोत्पत्ति करिये। हे साधु! मैं आपका कृपापात्र तथा शिष्य हूं। हे मानद! मैं आपका पुत्ररूप हूं। हे दयानिधि! मुझ पर कृपा करिये।।१-५।।

साधूनां समचित्तानांतथाभूतदयावताम्। न च हीनोत्तमःक्वापिनात्मीयोहिपरस्तथा।।६।।
ऐकाग्र्येणविचिन्त्याथचित्तशुद्धिंचपृच्छति। सर्वदोषयुतोवापिसर्वधर्मोज्झितोपिवा।।७।।
कृतानुतापश्चयदा यदा पृच्छति वै गुरून्। तदैवोपदिशन्त्यद्धा ज्ञानं संसारमोचकम्।।८।।
यथागङ्गामनुष्याणांपापनाशस्यभाविनी। तथामन्दसमुद्धारस्वभावाःसाधवःस्मृताः।।९।।
मा विचारय मां बोद्धुं दयालो भक्तवत्सल!। शुश्रूषत्वान्नतत्वाच्चशुद्धत्वात्तवसङ्गतेः।।१०।।

जो साधु तथा समचित्त हैं, जिनमें सभी प्राणीगण के प्रति दया भाव है, उनमें किसी के प्रति हीन अथवा उत्तम, आत्मीय अथवा पराया, ऐसी धारणा नहीं रहती। मनुष्य जब अपने किये पापों द्वारा अनुतप्त होता रहता है, तभी वह गुरुजनों के निकट जाकर पापनिवृत्ति का उपाय पूछता है। यदि जिज्ञासु समस्त दोषरहित तथा सर्वधर्म विवर्जित होकर एकान्तिक मनःस्थिति में आत्मशुद्धि के उपाय को जानने की कामना करता है, तब गुरुजन ऐसे जिज्ञासु को तत्काल संसार से छुटकारा दिलाने वाला ज्ञानोपदेश प्रदान कर देते हैं। जैसे जाह्नवी मनुष्य के पापों का नाश करती है, उसी प्रकार पापीगण का उद्धार करना भी साधुगण का स्वभावसिद्ध गुण है। हे दयालु! आप भक्तवत्सल हैं। आप मुझे नीच जाति जानकर मुझे ज्ञान देने में विचार-वितर्क न करें। मैं अब आपके संसर्ग से शुद्ध-सुश्रूता तत्पर तथा विनीत हो गया।''।।६-१०।।

इति व्याधवचः श्रुत्वा पुनर्विस्मितमानसः।
साधुसाध्विति सम्भाष्य धर्मानेतानुवाच ह।।११।।

व्याध का इस प्रकार का वचन सुनकर ऋषि पुनः विस्मित हो गये तथा उसे साधुवाद देकर इस प्रकार से धर्म का उपदेश देने लगे।।११।।

शङ्ख उवाच

व्यविष्णुप्रीतिकरान्दिव्यान्संसाराब्धिविमोचकान्।
कुरु धर्मांश्च वैशाखे यदि व्याध! शमिच्छसि।।१२।।
आतपो बाधते घोरो न च्छाया नाऽम्बु चाऽत्र च।
तस्मात्स्थलान्तरं यावो यत्र च्छाया तु वर्तते।।१३।।

तत्र गत्वा जलं पीत्वा सुच्छायां च समाश्रितः।
तत्र ते वर्णयिष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम्॥१४॥
विष्णोर्माधवमासस्य यथादृष्टंयथाश्रुतम्। इत्युक्तोमुनिनातेनव्याधःप्राहकृताञ्जलिः॥१५॥

ऋषि शंख कहते हैं—हे व्याध! यदि तुम अपना कुशल चाहते हो, तब विष्णु को प्रिय, संसार सागर से पार उतारने में सक्षम दिव्य वैशाखधर्म का अनुष्ठान करो। यह स्थान घोर आतप ताप पहुंचाने वाला है। इस स्थान में छाया तथा जल नहीं है। इसलिये हम ऐसे स्थान में चलें जहां छाया तथा जल हो। तदनन्तर जल पीकर तथा छाया में आसीन होकर वहीं पर तुमसे पापनाशक वैष्णवमास वैशाख का माहात्म्य कहूंगा, जिसे मैंने जिस प्रकार से जाना तथा प्रत्यक्ष किया है। मुनि के यह कहने पर वह व्याध कृतांजलि (हाथ जोड़कर) पूर्वक कहने लगा।।१२-१५।।

इतो विदूरे सलिलं वर्तते च सरोवरे। कपित्थास्तत्र वैसन्ति फलभारेण पीडिताः॥१६॥
गच्छावस्तत्र सन्तुष्टिर्भविता नाऽत्रसंशयः। व्याधेनैवंसमादिष्टस्तेनसाकंययौमुनिः॥१७॥
कियद्दूरं ततो गत्वा ददर्शाऽग्रेसरोवरम्। बककारण्डवाकीर्णचक्रवाकोपशोभितम्॥१८॥
हंससारसक्रौञ्चाद्यैः समन्तात्परिशोभितम्। कीचकैश्च सुघोषैश्च कूजितंभ्रमरैरपि॥१९॥
नक्रकच्छपमीनाद्यैर्वगाह्यं सुमनोहरम्। कुमुदोत्पलकह्लारपुण्डरीकादिभिर्महत्॥२०॥
शतपत्रैः कोकनदैः समन्तात्परिशोभितम्। पक्षिणाञ्च कलारावैर्मुखरं नयनोत्सवम्॥२१॥

व्याध कहता है—"इस वन के निकट ही एक सरोवर है। इस सरोवर के तट पर अनेक कपित्थ (कैंथा) के वृक्ष विराजमान हैं। ये सभी वृक्ष फल के भार से झुके हुये हैं। चलिये, हम वहां जायें। वहां जाने से हमारा चित्त प्रसन्न हो जायेगा। इसमें संशय नहीं है।" व्याध द्वारा यह प्रार्थना करने पर शंख ऋषि उस व्याध के साथ वहां गये। वह सरोवर कुछ ही दूर पर स्थित था। यह सरोवर बक तथा कारण्डव पक्षियों से भरा था। उसके तट पर सारस, हंस तथा क्रौञ्च आदि पक्षीगण उसकी शोभा को और बढ़ा रहे थे। वह सरोवर चक्रवाक तथा अन्य पक्षियों से शोभित था। तट के पास कहीं कीचक का सुन्दर शब्द हो रहा था। कहीं भौंरें गुनगुनाते उड़ रहे थे। उस सरोवर के निर्मल जल में कुंभीर, कच्छप तथा मीन आदि जलजन्तु विचरण कर रहे थे। उस सरोवर में कुमुद, उत्पल, कह्लार, पुण्डरीक, शतपत्र तथा कोकनद आदि नाना जातीय कमल खिल रहे थे। वे चतुर्दिक् उस सरोवर की शोभा वृद्धि कर रहे थे। पक्षियों के कलरव आदि से तथा इस दृश्य से मानों वहां आंखों के लिये एक उत्सव सा हो रहा था।।१६-२१।।

तटे कीचकगुल्मैश्च तथा वृक्षैश्चशोभितम्। वटैःकरञ्जैर्नीपैश्चचिञ्चिणीभिस्तथैवच॥२२॥
निम्बप्लक्षप्रियालैश्च चम्पकैर्वकुलैः शुभैः। पुन्नागैस्तुरम्बैश्चैव कपित्थामलकैरपि॥२३॥
निष्पेषणैश्च जम्बूभिः समन्तात्परिशोभितम्। वन्यमातङ्गसारङ्गवराहमहिषादिभिः॥२४॥
शशैश्च शल्लकैश्चैव गवयैरुपशोभितम्। खड्गनाभिमृगाद्यैश्च व्याघ्रैः सिंहैर्वृकैरपि॥२५॥
खरान्तकैश्च शरभैश्चमरीभिः सुमण्डितम्।
शाखाशाखान्तरं शीघ्रं प्लवमानैः प्लवङ्गमैः॥२६॥

मार्जारैश्चैव भल्लूकैर्भीषणं रुरुभिस्तथा। झिल्लीशब्दैश्चक्रेङ्कारैः कीचकानांरवैस्तथा॥२७॥
घोरवायुविनिर्घातदारुभारैः समन्वितम्। एतादृशं सरो दिव्यंव्याधेनैव प्रदर्शितम्॥२८॥
ददर्श मुनिशार्दूलस्तृषया बाधितो भृशम्। स्नात्वा मध्याह्नवेलायां सरस्यस्मिन्मनोरमे॥२९॥
वाससी परिधायाऽथ कृत्वा माध्याह्निकीः क्रियाः।
देवपूजां ततः कृत्वा भुक्त्वा फलमतन्द्रितः॥३०॥

सरोवर की तटभूमि पर बांस की झाड़ी, वट-करञ्ज-कदम्ब-चिञ्चिणी-नीम-पाकड़-प्रियाल-चम्पक-बकुल-सुशोभन-पुन्नाग-तुम्बद-कपित्थ-आमलकी-निष्पेषण तथा जामुन आदि वृक्ष चतुर्दिक् की शोभा वृद्धि कर रहे थे। वन्य वानर, सारङ्ग, वराह, महिष, शश, शल्लक, गवय, गैंडा, कस्तूरी मृग, व्याघ्र, सिंह, भेड़िये, खरान्तक, शरभ, चमरी तथा शाखा से शाखा पर शीघ्रता से उच्छल-कूद मचाते वानरगण सर्वत्र विचरण करते हुये वनभूमि की शोभावृद्धि कर रहे थे। वनभूमि कहीं-कहीं पर मार्जार, भालू तथा रुरुमृगों के कारण भीषण लग रही थी। कहीं बांसों में झिल्ली तथा झींगुरों का शब्द हो रहा था। कहीं-कहीं तीव्रवायु वेग से हिल रहे वृक्षों के टकराने के कारण जो घोर शब्द हो रहा था, उससे वातावरण और भी भीषण लग रहा था। वह व्याध मध्याह्न समय ऋषिप्रवर शंख के साथ पहुंचा तथा उसने मुनि को वह सरोवर दिखलाया। महर्षि शंख उस समय अत्यन्त पिपासा पीड़ित थे। उन्होंने इस मनोहर सरोवर में स्नान किया तथा उत्तरीय के साथ वस्त्र पहन कर मध्याह्नकालीन उपासना कृत्य को सम्पन्न करके देवपूजन किया। तदनन्तर उन्होंने आलस्यरहित होकर फलों का आहार किया।।२२-३०।।

व्याधोपनीतं सुस्वादु कपित्थं श्रमहारि च। सुखोपविष्टःपप्रच्छव्याधंधर्मरतं पुनः॥३१॥
किं वक्तव्यं मयाह्यद्यतवाऽऽदौधर्मतत्पर!। धर्माश्चबहवःसन्तिनानामार्गाःपृथग्विधाः॥३२॥
तत्रवैशाखमासोक्ताः सूक्ष्मा अपिमहार्थदाः। सर्वेषामेवजन्तूनाममिहाऽमुत्रफलप्रदाः॥३३॥
यत्प्रष्टव्यं मनसि ते यच्चादौतच्चपृच्छताम्। इत्युक्तोमुनिनातेनव्याधःप्राञ्जलिरब्रवीत्॥३४॥

व्याध ने ही उनके लिये श्रमहारी सुस्वादु कपित्थ आदि फल एकत्र करके उनको प्रदान किया। तदनन्तर आहार ग्रहण करने के उपरान्त ऋषि शंख आसन पर सुखासीन हो गये। उन्होंने तब धर्म के प्रति रुचि रखने वाले व्याध से पुनः पूछा—"हे धर्मतत्पर! अब कहो, मैं तुमसे किस धर्म की व्याख्या करूं? धर्म अनेक हैं। उनके पृथक् मार्ग भी अनन्त हैं। इनमें से वैशाख धर्म ही प्राणीगण के लिये इहलोक तथा परलोक हेतु फलद है। अब तुम्हारे मन में जैसी अभिलाषा हो, पहले वही प्रश्न करो।" यह सुनकर अंजलिबद्ध होकर व्याध ने कहा।३१-३४।।

व्याध उवाच

केनवाकर्मणाचाऽऽसीद्व्याधजन्मतमोमय्। केनवाचेदृशीबुद्धिःसङ्गतिर्वामहात्मनः॥३५॥
एतच्चान्यत्समाचक्ष्व यदि मां मन्यसे प्रभो!। इत्युक्तः पुनरप्याह शङ्खोनाममहामुनिः।
मेघगम्भीरया वाचा स्मयमानमुखाम्बुजः॥३६॥

ऋषि शंख कहते हैं—"हे प्रभो! यदि आप मुझे धर्मश्रवण के योग्य समझें, तब यह कहने की कृपा

करिये कि किस कारण से मुझे यह तमोमय व्याधजन्म मिला? मेरी ऐसी बुद्धि क्यों हो गयी? साथ ही क्यों आप ऐसे महात्मा के साथ मेरी भेंट हुई? इन सबका वर्णन करें साथ ही अन्यान्य विषय भी बतलाने की कृपा करें।'' व्याध का यह वचन सुनकर महामुनि शंख प्रसन्न हो गये तथा वे प्रसन्न होकर किंचित् मुस्कान के साथ अपनी मेघगंभीर वाणी में व्याध से कहने लगे।।३४-३६।।

शङ्ख उवाच

शाकले नगरे पूर्वं द्विजस्त्वं वेदपारगः।।३७।।
स्तम्बोनाममहातेजास्तथाश्रीवत्सगोत्रजः। तवेष्टागणिकाकाचिदासीत्तत्सङ्गदोषतः।।३८।।
त्यक्त्वा नित्यक्रिया नित्यं शद्रवद्गृहमागतः।
शून्याचारस्य दुष्टस्य परित्यक्तक्रियस्य च।।३९।।
ब्राह्मणी च तदा चाऽसीद्भार्या कान्तिमती तव।
सा त्वां पर्यचरत्सुभ्रूः सवेश्यं ब्राह्मणाधमम्।।४०।।
उभयोः क्षालयन्ती व पादांस्त्वत्प्रियकारिणी। उभयोरप्यधः शेते उभयोर्वचने रता।।४१।।

महर्षि शंख कहते हैं—''हे व्याध! पूर्वकाल में शाकल नगर में तुम तेजस्वी वेदज्ञ द्विज थे। तुम्हारा गोत्र श्रीवत्स गोत्र था। तुम्हारा नाम स्तम्ब था। तुम्हें एक वेश्या से प्रेम हो गया तथा तुम उसके ही गृह में निवास करने लगे। वेश्या संसर्ग से तुम्हारा चित्त कलुषित हो गया तथा तुमने अपने नित्य क्रियाकलाप को त्याग दिया और शूद्रवत् हो गये। तुम तब आचारहीन-दुष्ट-एवं नित्यक्रिया रहित होकर ब्राह्मणों में अधम हो गये। तुम्हारी पत्नी कान्तिमती धर्मपरायण थी। तुम्हारे इस प्रकार दोषी हो जाने पर भी वह तुम्हारी सेवा में त्रुटि नहीं करती थी। जब तुम वेश्या के साथ घर वापस लौटते थे, तब कान्तिमती तुम दोनों के पैरों को धोती। जब तुम वेश्या के साथ ही एक शय्या पर शयन करते थे, तब कान्तिमती तुम दोनों के चरणों की ओर शयन करती तथा तुम दोनों की आज्ञा का पालन करती थी।''।।३७-४१।।

वेश्यया वार्यमाणाऽपि पातिव्रत्यव्रतस्थिता। एवंशुश्रूषयन्त्या हिभर्तारंवेश्ययासह।।४२।।
जगाम सुमहान्कालो दुःखितायामहीतले। अपरस्मिन्दिनेभर्तामाषञ्चमूलकान्वितम्।।४३।।
अभक्षयच्छूद्रधर्मान्निष्पावांस्तिलमिश्रितान्। तदपथ्यमशित्वा तु वमंश्चैव विरेचयन्।।४४।।
अपथ्याद्दारुणो रोगो व्यजायत भगन्दरः। स दह्यमानो रोगेण दिवारात्रं तु भूरिशः।।४५।।
यावदास्तेगृहेवित्तंतावद्वेश्याचसंस्थिता। गृहीत्वातस्यसावित्तंपश्चान्नोवासमन्दिरे।।४६।।
अन्यस्य पार्श्वमासाद्यगताघोरासुनिर्घृणा। ततःसदीनवचनोव्याधिबाधासुपीडितः।।४७।।

''यद्यपि वेश्या उसे अपना पैर धोने तथा अपने पैरों की ओर शयन करने से रोकती थी, तथापि पति की प्रसन्नता हेतु कान्तिमती ने यह सब करना नहीं छोड़ा। इस प्रकार वेश्या तथा तुम्हारी सेवा करते हुये दीना कान्तिमती का दीर्घकाल व्यतीत हो गया। तदनन्तर एक बार तुमने शूद्रधर्मरत होकर मूली युक्त उर्द तथा तिल युक्त निष्पाव का भोजन किया। इस अपथ्य भोजन से तुमको वमन तथा विरेचन होने लगा। इस कुपथ्य भोजन

के कारण तुमको दारुण भगन्दर रोग हो गया। तुम इस रोग के कारण दिन-रात पीड़ित रहते थे। वेश्यासेवी व्यक्ति के घर में जब तक धन-सम्पत्ति रहती है, तभी तक वेश्या उसका साथ देती हैं। जब धन-रत्न समाप्त हो जाते हैं, तब वह उस व्यक्ति को छोड़कर अपने घर चली जाती है। उस भयंकारी वेश्या ने भी जब तुमको सत्वहीन देखा तब वह तुम्हारा त्याग करके एक अन्य व्यक्ति के यहां चली गयी। तुम रुदन करते हुये अपनी व्याधि पीड़ित अवस्था में दीनवचन पूर्ण वाक्य अपनी पत्नी से कहने लगे।।४२-४७।।

उक्तवान्स रुदन्भार्यां रुजाव्याकुलमानसः। परिपालयमांदेविवेश्याऽऽसक्तंसुनिष्ठुरम्।।४८।।
न मयोपकृतं किञ्चित्त्वयि सुन्दरि पावनि!। यो भार्यां प्रणतांपापोनानुमन्येतगर्हितः।।४९।।
स षण्ढो भविता भद्रे दश जन्मसु पञ्चसु। दिवारात्रंमहाभागेनिन्दितःसाधुभिर्जनैः।।५०।।
पापयोनिमवाप्स्यामि त्वां साध्वीमवमन्य वै।
अहं क्रोधेन दग्धोऽस्मि तवाऽपमानजेन(तवाऽनारदजेन)वै।।५१।।

तुमने पत्नी से कहा—"हे देवी! मैं वेश्यासक्त होकर तुम्हारे प्रति अत्यन्त निष्ठुर हो गया। रोग से मेरा हृदय अत्यन्त आकुल है। मेरी रक्षा करो। हे पवित्र चरितवाली! मैंने तुम्हारा कभी कोई उपकार नहीं किया। हे सुन्दरी! कौन पापी तथा निन्दित कर्म वाला व्यक्ति भी प्रणता पत्नी का सम्मान नहीं करेगा? हे भद्रे! मेरे जैसा कुकर्मी दस जन्म तक नपुंसक होता है। हे महाभागे! मेरा कुत्सित कृत्य देखकर साधुजन अहर्निश मेरी निन्दा करते रहते हैं। तुम मेरी साध्वी पत्नी हो। तुम्हारा अपमान करने के कारण मेरा जन्म अवश्य कुयोनि में होगा। हे साध्वी! मैंने तुम्हारा सदा अपमान किया है। अब इस अपमान के कारण जो क्रोधानल तुम्हारे चित्त में उत्पन्न हुआ है, मैं उससे दग्ध हो रहा हूं।।४८-५१।।

एवं ब्रुवाणं भर्तारं कृताञ्जलिपुटाऽब्रवीत्। नदैन्यं भवता कार्यं नव्रीडाकान्तमाम्प्रति।।५२।।
न चाऽपि त्वयि मे क्रोधोयेनदग्धोवदस्यथ। पुराकृतानिपापानिदुःखानीहभवन्तिहि।।५३।।
तानि या क्षमते साध्वी पुरुषो वा स उत्तमः। यन्मया पापयापापंकृतं वैपूर्वजन्मनि।।५४।।
तद्धुञ्जत्या न मे दुःखं न विषादःकथञ्चन। इत्येवमुक्त्वाभर्तारंसासुभ्रूस्तमपालयत्।।५५।।
आनीय जनकाद्वित्तं बन्धुभ्यो वरवर्णिनी। क्षीरोदवासिनं देवंभर्त्तारंसात्वचिन्तयत्।।५६।।

हे व्याध! तुमको ऐसे कहते देखकर कान्तिमती लज्जित सी हो गयीं। उसने हाथ जोड़कर तुमसे कहा—"हे कान्त! आपने मुझे कभी कोई दुःख नहीं दिया है। आपने जो यह कहा कि आप मेरे क्रोध से दग्ध हो रहे हैं, मैंने तो कभी आप पर क्रोध नहीं किया है। मैंने अवश्य पूर्वजन्म में कोई पाप किया है, जिसके कारण मेरी यह दुःखपूर्ण हालत हो रही है। जिस पुरुष अथवा नारी में यह ज्ञान विद्यमान है, वह उत्तम पुरुष है। साथ ही ऐसी नारी ही साध्वी है। मैं पापी हूं। मैंने पूर्वजन्म में अनेक पाप किये हैं। इसलिये उस पाप के फल को भोगने में मुझे कोई दुःख नहीं हो रहा है। मैं इस हालत में खिन्न भी नहीं हूं।" यह कहकर वरवर्णिनी कान्तिमती अपने पिता तथा बन्धुजन से धन लाई तथा उससे स्वामी की सेवा करने लगी। रमणीगण में शिरोमणी कान्तिमती के नेत्रों में दिन-रात निद्रा नहीं रहती थी। वह स्वामी को क्षीरसागर में निवास करने वाले विष्णु के समान मानती थी।।५२-५६।।

शोधयन्ती दिवारात्रौ पुरीषं मूत्रमेव च। नखेन कर्षती भर्तुः कृमीन्कष्टाच्छनैः शनैः।।५७।।
न सा स्वपिति रात्रौ तु न दिवा वरवर्णिनी। भर्तुर्दुःखेन सन्तप्तादुःखितेदमवोचत।।५८।।

शयनरहित होकर वह दिन-रात स्वामी का मल-मूत्र साफ करती। अपने नखों से स्वामी के भगन्दर ग्रस्त स्थान से कीड़ों को धीरे-धीरे अतीव कष्ट के साथ निकालती। उस क्षत को समय-समय पर धोती रहती। वह स्वामी का क्लेश देखकर दुःखी मन से इन वाक्यों से देवों की स्तुति करती रहती थी।।५७-५८।।

देवाश्च पान्तु भर्तारं पितरो ये च विश्रुताः। कुर्वन्तु रोगहीनं मे भर्तारं गतकल्मषम्।।५९।।
चण्डिकायै प्रदास्यामि रक्तमांससमुद्भवम्। सुष्ठ्वन्नं माहिषेपेतं भर्त्तुरारोग्यहेतवे।।६०।।
मोदकान्कारयिष्यामि विघ्नेशाय महात्मने। मन्दवारे करिष्यामि चोपवासान्दर्शैवं तु।।६१।।
नोपभुञ्जामि मधुरं नोपभुञ्जामिवै घृतम्। तैलाभ्यङ्गविहीनाऽहं स्थास्येनैवात्रसंशयः।।६२।।
जीवताद्रोगहीनोऽयं भर्त्ता मे शरदां शतम्। एवं साऽव्याहरद्देवी वासरे वासरे गते।।६३।।

कान्तिमती कहती हैं—"देवताओं! मेरे पति की रक्षा करिये। विश्रुत पितृगण पति को रोगरहित तथा पापरहित करिये। मैं स्वामी की आरोग्य कामना हेतु देवी चण्डिका को रक्त-मांस युक्त, महिष (मांस) तथा सुशोभन अन्न प्रदान करूंगीं। मैं महात्मा विघ्नेश्वर के लिये मोदक समूह प्रदान करूंगी। मैं १० शनिवार को उपवासी रहूंगी। शानिवार को उपवासी रहकर मधुर द्रव्य तथा घृतभोजन का त्याग करूंगी। इसमें संशय नहीं है। मेरे स्वामी शतायु हो जायें। वे रोगहीन रहें।" साध्वी कान्तिमती नित्यप्रति देवता तथा पितृगण के समक्ष यही प्रार्थना करती रहती।।५९-६३।।

तदा चाऽऽगान्मुनिः कश्चिन्महात्मा देवलाह्वयः।
वैशाखे मासि धर्मार्तः सायाह्ने तस्यवै गृहम्।।६४।।
तदा वै भार्यया चोक्तं भिषग्वै गृहमागतः।
तेन वै रोगहानिः स्यात्तस्याऽऽतिथ्यं करोम्यहम्।।६५।।

ज्ञात्वा त्वं धर्मविमुखं भिषव्याजेनवञ्चितः। पादावनेजनंकृत्वातज्जलंमूर्ध्निसाक्षिपत्।।६६।।
पानकञ्च ददौ तस्मै घर्मार्ताय महात्मने। त्वयाऽनुमोदिता सायं घर्मतापनिवारकम्।।६७।।

हे व्याध! तुमको धर्मविमुख जानकर चिकित्सक भी तुम्हारी चिकित्सा नहीं कर रहे थे। एक बार देवल नामक महात्मा ऋषि वैशाख की धूप से पीड़ित होकर सायंकाल तुम्हारे घर पहुंचे। तब कान्तिमती ने ऋषि देवल को देखकर मन ही मन कहा—"ये भिषग्वर (चिकित्सकों में श्रेष्ठ) मेरे गृह में आये हैं। मैं इनका आतिथ्य सत्कार करूंगी। इसे मेरे पति का रोग दूर होगा।" कान्तिमती ने यह सोचकर उनका चरण धोया तथा उनका चरणोदक तुम्हारे मस्तक पर छिड़का। कान्तिमती ने उन महात्मा को पसीने से कष्ट में देखकर उनकी अनुमति लेकर ताप निवारक जल प्रदान किया।।६४-६७।।

स प्रातरुदिते सूर्ये मुनिः प्रायाद्यथाऽऽगतः। अथ चाऽल्पेनकालेनसन्निपातोऽभवत्तव।।६८।।
त्रिकट्व्यां नीयमानायांभर्त्ताङ्गुलिमखण्डयत्। उभयोर्दन्तयोःश्लेषःसहसासमपद्यत।।६९।।

तत्खण्डमङ्गुलेर्वक्त्रेस्थितंभर्तुःसुकोमलम्। खण्डयित्वाङ्गुलिं भर्तापञ्चत्वमगमत्तदा॥७०॥
शय्यायांसुमनोज्ञायांस्मरंस्तांपुंश्चलींशुभाम्। मृतंविज्ञायभर्त्तारंभार्याकान्तिमतीतव॥७१॥
विक्रीय चाऽपि वलयं गृहीत्वा चेन्धनं बहु।
चक्रे चितिं तेन साध्वी मध्ये कृत्वा पतिं तदा॥७२॥
अवगुह्यभुजाभ्याञ्चपादौचाश्लिष्यपादयोः। मुखेमुखंविनिक्षिप्य हृदयं हृदये तथा॥७३॥
जघने जघनं देवी ह्यात्मानं सन्निवेश्य च। दाहयामासकल्याणीभर्तृदेहंरुजान्वितम्।
आत्मना सह कल्याणी ज्वलिते जातवेदसि॥७४॥
विमुच्य देहं सहसा जगाम पतिं समालिङ्ग्य मुरारिलोकम्।
पानीयदानेन च माधवेऽस्मिन्पादावनेजादपि योगिगम्यम्॥७५॥

"तुम्हारे ही गृह में ऋषि देवल ने रात्रि व्यतीत किया। जब प्रभातकाल में सूर्योदय का समय आया, तब वे अपने गन्तव्य पर चले गये। तदनंतर अल्पकाल में ही तुम्हारे ऊपर सन्निपात रोग का आक्रमण हुआ। तुम अचेतन हो गये। तुम्हारी पत्नी ने त्रिकटु औषधि तुम्हारे मुख में अपनी उंगली से चटाया। तभी तुम्हारे दांत से दांत लग गये। तुम्हारे दांतों से कान्तिमती की वह उंगली जो तुम्हारे मुख में थी, कट गयी। तुम अपने मुख में कान्तिमती की कोमल उंगली को (अचेतनावस्था में) खण्डित कर दिया तथा मन में उस वेश्या का अपने अन्तकाल में स्मरण करते-करते मृत हो गये। तत्पश्चात् साध्वी कान्तिमती ने तुमको मृत देखकर अपनी करधनी को बेच दिया तथा ढेरों लकड़ी लाकर एक चिता का निर्माण किया। उस चिता पर कान्तिमती ने तुम्हारे शव को लिटाया तथा तुम्हारी भुजाओं से अपनी भुजा, तुम्हारे पैरों से अपने पैर, तुम्हारे मुख से अपना मुख, हृदय से हृदय, तुम्हारे जघन से जघन मिलकर तुम्हारा आलिंगन किया जिससे तुम्हारा शव आच्छादित हो गया। इस प्रकार उसने अपने देह के साथ तुम्हारे रोगग्रस्त शव को दग्ध कर दिया। कान्तिमती ने स्वामी का आलिंगन करते देहत्याग किया था, अतः वह शीघ्रता से मृत्यु के उपरान्त विष्णुलोक चली गयीं। वैशाख में द्विजसेवा का क्या अपूर्व माहात्म्य है! कान्तिमती ने वैशाख की धूप से तप्त महात्मा देवल का चरण धोकर उस चरणोदक को शिर पर छिड़का था तथा उन ब्राह्मण को जल प्रदान किया था। उसने इस पुण्य के प्रभाव से विष्णुलोक प्राप्त किया। यह योगिगण के लिये भी अगम्य लोक है।।६८-७५।।

त्वमन्तकाले गणिकाविचिन्तया देहं त्यक्त्वा मुक्तसमस्तकिल्विषः।
जन्मव्याध्यं प्राप्यसे घोररूपं हिंसासक्तः सर्वदोद्वेगकारी॥७६॥
दत्ता त्वया पानकस्याऽपि दाने मासेऽनुज्ञा माधवे साधुजाने!।
व्याधोजातस्तेन जाता सुबुद्धिधर्मान्प्रष्टुं सर्वसौख्यैकहेतून्॥७७॥

हे व्याध! तुमने अन्तकाल में वेश्या का चिन्तन किया था। इसलिये अपनी पत्नी के प्रभाव से सर्वपाप रहित होकर भी तुमको इस चिन्तन के कारण जन्म लेना पड़ा। तभी तुम घोर हिंसक, प्राणियों को पीड़ा देने वाले होकर जन्मे। हे साध्वीपत्नीवाले! इस व्याधजन्म में भी तुमने वैशाख मास में पादुका दान किया। इस दान के प्रभाव से तुममें सर्वलोक हितकारी धर्मजिज्ञासा का जागरण हो गया। पूर्वजन्म में तुम्हारी रुग्णावस्था में

कान्तिमती ने देवल ऋषि का चरणोदक तुम्हारे मस्तक पर छिड़का था। इसी कारण तुमको मेरा सत्संग मिला तथा तुमको सुबुद्धि की प्राप्ति हो सकी है जो सभी सुख की हेतु रूप है।।७६-७७।।

धृतं मूर्ध्ना पादशौचावशिष्टं जलं मुनेः सर्वपापापहारि।
तेनेयं ते सङ्गतिर्मे वनेऽस्मिन्यया भूयः सम्पदः सन्ततिश्च॥७८॥
इत्येतत्सर्वमाख्यातं पूर्वजन्मनि यत्कृतम्। कर्म पुण्यं पापकञ्च दृष्टं दिव्येन चक्षुषा।
गोप्यं वा ते प्रवक्ष्यामि यद्भवाञ्छ्रोतुमिच्छति॥७९॥
जाता ते चित्तशुद्धिर्वै स्वस्ति भूयान्महामते!॥८०॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीष-सम्वादे व्याधोपाख्याने व्याधस्य पूर्वजन्मकथनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः।।१८।।

हे व्याध! मैंने दिव्यदृष्टि द्वारा देखकर तुम्हारे पूर्वजन्म कृत पापों तथा पुण्यकर्म का वर्णन कर दिया। अब यदि तुम और कुछ जानना चाहते हो, उसे कहो। यदि वह गोपनीय होगा, तब भी मैं उन सबका वर्णन तुमसे करूंगा। हे महामति! तुम्हारा चित्त शुद्ध हो गया। तुम्हारा मंगल हो।।७८-८०।।

।।अष्टादश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

एकोनविंशोऽध्यायः

परब्रह्म निरूपण, वायुशाप वर्णन, देवताओं के श्रेष्ठत्व सम्बन्धित विवाद का वर्णन, प्राण के श्रेष्ठत्व का वर्णन

व्याध उवाच

विष्णुमुद्दिश्य कर्तव्या धर्माभागवताःशुभाः। तत्राऽपिमाधवीयाश्चइत्युक्तंतुत्वयापुरा॥१॥
स विष्णुः कीदृशो ब्रह्मन्किं वा तस्य हि लक्षणम्।
किं मानं तस्य सद्भावैः कैर्ज्ञेयो भगवान्विभुः॥२॥
कीदृशावैष्णवा धर्माः केनाऽसौ प्रीयते हरिः। एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन्! किङ्कराय महामते!॥३॥
इति पृष्टस्तु व्याधेन पुनः प्राह स वै द्विजः। प्रणम्य जगतामीशंनारायणमनामयम्॥४॥

व्याध कहता है—"हे ऋषि! आपने पूर्व में कहा था कि व्यक्ति वैशाखमास में विष्णु के उद्देश्य से सुशोभन भागवत धर्म समूह का आचरण करे। हे ब्रह्मन्! वे विष्णु कैसे हैं? उनका लक्षण क्या है? साधु

भावापन्न व्यक्तिगण उनकी अवधारणा किस प्रकार से करते हैं? उन विष्णु भगवान् को कौन जान पाया है? वैष्णवधर्म कैसा है? क्या करने से हरि प्रसन्न होते हैं? हे महामति ब्रह्मन्! आप मुझ अपने किंकर से सब कहिये।'' व्याध द्वारा यह पूछे जाने पर ऋषि शंख अनामय जगदीश नारायण को प्रणाम करके पुनः उस व्याध से कहने लगे।।१-४।।

शङ्ख उवाच

श्रृणु व्याध! प्रवक्ष्यामि विष्णुरूपमकल्मषम्।
यदचिन्त्यं विरिञ्च्याद्यैर्मुनिर्भिवितात्मभिः।।५।।
पूर्णशक्तिःपूर्णगुणो निर्दिष्टःसकलेश्वरः। निर्गुणोनिष्कलोऽनन्तःसच्चिदानन्दविग्रहः।।६।।
यदेतदखिलं विश्वं चराचरमनीदृशम्। साधिशंसाऽऽश्रयं यच्च यद्वशेनियतंस्थितम्।।७।।
अथ ते लक्षणं वच्मिब्रह्मणःपरमात्मनः। उत्पत्तिस्थितिसंहाराह्यावृत्तिर्नियमस्तथा।।८।।
प्रकाशोबन्धमोक्षौ च वृत्तिर्यस्माद्भवन्त्यमी।
स विष्णुर्ब्रह्मसञ्ज्ञोऽसौ कवीनां सम्मतो विभुः।।९।।
साक्षाद्ब्रह्मेति तं प्राहुः पश्चाद्ब्रह्मादिकानपि। ब्रह्मशब्दं सोपपदंब्रह्मादिषुविदोविदुः।।१०।।

शंख कहते हैं—हे व्याध! जो ब्रह्मादि देवता तथा भावितात्मा तपस्वीगण से अचिन्त्य हैं, उन कलुषरहित विष्णु का रूप वर्णन करता हूं। श्रवण करो। विष्णु पूर्णशक्ति हैं। वे पूर्णगुणयुक्त, ईश्वर, निर्गुण, निष्काम, अनन्त तथा सच्चिदानन्द विग्रह हैं। यह जो अनिश्चिततत्व, आधियुक्त, अतुलनीय अखिल सचराचर विश्व परिलक्षित हो रहा है, यह विश्व सदा उन विष्णु के वश में रहता है। अब उन परमात्मा ब्रह्म का लक्षण तुमसे कहता हूं। जो सृष्टि-स्थिति तथा पालन करते हैं, जिनसे प्राणीगण पुनः-पुनः जन्म लेते हैं, जो लोकशिक्षार्थ दण्डधारण करते हैं, जिनमें ज्ञान-अज्ञान, बन्धन-मोक्ष विद्यमान है, जिनसे प्राणीसमूह का जीवन पुष्ट होता है, कविगण उन विभु विष्णु को ही ब्रह्म कहते हैं। पण्डितगण विष्णु को ही साक्षात् ब्रह्म कहते हैं। इसके अतिरिक्त वे और भी कई ब्रह्म का वर्णन करते हैं। यह ब्रह्मपद उपपदयुक्त है। अर्थात् ब्रह्मा-शिव प्रभृति संज्ञायुक्त है।।५-१०।।

नान्येषां ब्रह्मता क्काऽपि तच्छक्त्येकांशभागिनाम्।
तदेतच्छास्त्रगम्यं हि जन्माद्यस्य महाविभोः।।११।।
शास्त्रं चवेदाः स्मृतयः पुराणं वै तदात्मकम्। इतिहासः पञ्चरात्रं भारतं चमहामते!।।१२।।
एतैरेवमहाविष्णुर्ज्ञेयो नान्यैः कथञ्चन। नावेदविदमु विष्णुं मनुतेच नरः क्कचित्।।१३।।
नेन्द्रियैर्नानुमानैश्च न तर्कैः शक्यते विभुम्। ज्ञातुं नारायणं देवं वेदवेद्यं सनातनम्।।१४।।
अस्यैव जन्मकर्माणि गुणाञ्ज्ञात्वायथामति। मुच्यन्ते जीवसंघाश्चसदातद्वशवर्तिनः।।१५।।
क्रमाद्विष्णोश्च माहात्म्यं यथा सातिशयं भवेत्।
एकैकस्मिन्स्थिता शक्तिर्देवर्षिपितृमातृके।।१६।।

प्रत्यक्षेणाऽऽगमेनापि तथैवाऽनुमयाऽपि च। आदौनरोत्तमंविद्याद्बलेज्ञानेसुखेतथा॥१७॥

लेकिन जो उनके एक अंश मात्र हैं, उनकी ब्रह्मता कदापि नहीं कही गयी है (उनको ब्रह्म नहीं कहा गया)! हे महामति! आदिजन्मा महाविभु का यह सब विषय शास्त्रगम्य है। शास्त्र, वेद, स्मृतियां, वेदात्मक पुराण, इतिहास, पांचरात्र तथा महाभारत द्वारा महाविभु विष्णु को (किंचित्) जाना जाता है। अन्य किसी रूप से उनको नहीं जाना जा सकता। जो मनुष्य वेद नहीं जानते, वे कदापि इन विष्णु को नहीं जान सकते। विविध अनुमान किंवा तर्क द्वारा कोई वेदवेद्य सनातन नारायण विभुदेव विष्णु को जान नहीं सकता। जीवगण सतत् इनके जन्म-कर्म-गुणों का यथाज्ञान अनुभव करके इनकी शरण लेकर मुक्त हो जाते हैं। पिता-माता-देवर्षि आदि सभी में इनकी शक्ति की सत्ता रहती है, तथापि जैसे ब्रह्मा से शिव तथा शिव से विष्णु अधिक शक्तिमान् हैं, उसी प्रकार जीवभेद से शक्ति का तारतम्य रहता है। ये सभी शक्ति कहीं प्रत्यक्ष है, तो कहीं उसे अनुमान द्वारा जाना जाता है। सर्वप्रथम किसी नरश्रेष्ठ के सम्बन्ध में जानने हेतु उसके बल ज्ञान तथा सुख का अनुमान करते हैं।।११-१७।।

तस्माद्भूतं शतगुणं विद्याज्ज्ञानादिभिर्वृतम्।
भूतान्मनुष्यगन्धर्वान्विद्याच्छतगुणाधिकान्॥१८॥
तत्त्वाभिमानिनो देवांस्तेभ्यो विद्याच्छताधिकान्।
तत्त्वाभिमानिदेवेभ्यः सप्तैव ऋषयो वराः॥१९॥

सप्तर्षिभ्यो वरो ह्यग्निरग्नेःसुर्यादयस्तथा। सूर्याद्गुरुर्गुरोःप्राणःप्राणादिन्द्रोमहाबलः॥२०॥
इन्द्राच्च गिरिजादेवीदेव्याःशम्भुर्जगद्गुरुः। शम्भोबुद्धिर्महादेवीबुद्धेःप्राणोबलाधिकः॥२१॥
नप्राणात्परमंकिञ्चित्प्राणेसर्वंप्रतिष्ठितम्। प्राणाज्जातमिदंविश्वंप्राणात्मकमिदंजगत्॥२२॥
प्राणे प्रोतमिदं सर्वं प्राणादेव हि चेष्टते। सर्वाधारमिमं प्राहुः सूत्रंनीलाम्बुदप्रभम्॥२३॥

लक्ष्मीकटाक्षमात्रेण प्राणस्याऽस्य स्थितिर्भवेत्।
सा लक्ष्मीर्देवदेवस्य कृपा लेशैकभाजिनी।
न विष्णोः परमं किञ्चिन्न समो वा कथञ्चन॥२४॥

तदनन्तर जिसमें ज्ञानादि अनेक गुण विद्यमान रहते हैं, उनको पूर्वोक्त नरोत्तम से सौगुना अधिक शक्तिमान् मानना होगा। साधारण प्राणी की तुलना में मनुष्य की तथा मनुष्य से गन्धर्व की शक्ति १०० गुना अधिक है। इनसे १०० गुणित शक्ति देवगण की है वे तत्वाभिमानी होते हैं। तत्वाभिमानी देवगण से सप्तर्षिगण १०० गुना श्रेष्ठ हैं। इसी प्रकार सप्तर्षियों से अग्नि, अग्नि से सूर्यादि, सूर्य से बृहस्पति, उससे जगत्प्राण वायु, उससे महाबली इन्द्र, उससे देवी गिरिजा, उनसे जगद्गुरु शंकर, उनसे महादेवी बुद्धि, बुद्धि से भी १०० गुणा प्राण बली है। प्राण से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। क्योंकि प्राण ही सर्वत्र प्रतिष्ठित है। प्राण से ही यह प्राणात्मक विश्व उत्पन्न है। प्राण ही सबमें ग्रथित है। प्राण से ही सबमें चेष्टा होती है। साधारण प्राणी से लगाकर जो प्राणपर्यन्त का वर्णन किया गया है, उस सम्बन्ध में विद्वानों का कथन है कि नीलमेघकान्ति विष्णु ही सबके आधार एवं सूत्र हैं। जिन लक्ष्मी के कटाक्ष मात्र से इस प्राण की स्थिति होती है, वे लक्ष्मी भी विष्णु की कृपा विन्दु की कामना करती हैं। अतः विष्णु से श्रेष्ठ तथा उनके समान कुछ नहीं है।।१८-२४।।

व्याध उवाच

कथं जीवेष्वयं प्राणः सूत्रनामाऽधिकोऽभवत्॥२५॥

निर्णयो वा कथंह्यस्यप्राणाधिक्यंकथंविभो!। एतदाचक्ष्वमेब्रह्मन्कथंप्राणाद्विभुःपरः॥२६॥

व्याध कहता है—हे विभो! आपने भूतादि सबमें प्राण को सर्वश्रेष्ठ कहा है। यह प्राण जीवगण का सूत्र कैसे हो गया तथा इसका बलाधिक्य किस प्रकार से निर्णीत हो सका? इन सबके विभु विष्णु भी प्राण से कैसे श्रेष्ठ हो गये। यह कहिये।।२५-२६।।

शङ्ख उवाच

शृणुव्याधप्रवक्ष्यामियत्पृष्टोनिर्णयस्त्वया। प्राणधिक्यंसमुद्दिश्य जीवैश्चसकलैरपि॥२७॥

पुरा नारायणो देवः पद्मसृष्टौ सनातनः। सृष्ट्वाब्रह्मादिकान्देवानिदं प्राह जनार्दनः॥२८॥

साम्राज्येऽहं स्थापयेयं ब्रह्माणं वः पतिं प्रभुम्।
यो युष्मास्वधिको देवो यौवराज्ये सुरेश्वराः!॥२९॥

महर्षि शंख कहते हैं—हे व्याध! तुमने जो प्रश्न किया उसका प्राणिगण में जो एकमात्र समुद्दिष्ट हैं, उन प्राण से भी महान् विष्णु का वर्णन सुनो। पूर्वकालीन पाद्मकल्प में सनातन देव नारायण जनार्दन ने सृष्टि का विस्तार करके ब्रह्मादि देवताओं को आदेश दिया "देवताओं! तुम्हारे रक्षणार्थ प्रभु ब्रह्मा को इस (सृष्टि) साम्राज्य का आधिपत्य प्रदान किया। तुममें से जो देवता अधिक शक्तिशाली तथा शीलवान् होगा, जिसमें शूरता तथा उदारता आदि गुण विद्यमान होंगे, तुम उसे युवराज नियुक्त करो।।२७-२९।।

तंस्थापयतशीलाढ्यंशौर्यौदार्यगुणान्वितम्। इत्युक्त्वाविभुनादेवाःसर्वेशक्रपुरोगमाः॥३०॥

एवं विवदिरेऽन्योन्यमहं भूयामहं त्विति। सर्वेविवदमानाश्च सूर्यं केचित्परं विदुः॥३१॥

शक्रं केचित्परं कामं केचित्तूष्णींतु तस्थिरे। ते निर्णयमपश्यन्तःप्रष्टुंनारायणंययुः॥३२॥

तब यह आदेश सुनकर सभी इन्द्रादि देवगण में विवाद छिड़ गया। सभी कहने लगे—"मैं ही युवराज पद पर अधिष्ठित होने योग्य हूं।" तदनन्तर परस्पर विवाद करते देवगण में से ही किसी ने कहा—"सूर्य ही इस पद के योग्य हैं।" कोई कहने लगा इन्द्र योग्य हैं, कोई कहता था कि कामदेव इस योग्य हैं। कोई मौनी रह गया तथा कोई मत नहीं दिया। तदनन्तर देवगण इस सम्बन्ध में कोई निर्णय न होता देखकर नारायण के पास उनसे पूछने गये।।३०-३२।।

नमस्कृत्य पुनः प्राहुःसर्वेप्राञ्जलयोमराः। विचारितंमहाविष्णो! सर्वैरस्माभिरञ्जसा॥३३॥

अस्मासु देवमधिकं नैव विद्मः कथञ्चन। त्वमेव निर्णयं ब्रूहि देवाः संशयिनः खलु॥३४॥

इति पृष्टोऽमरैः सर्वैःप्रहसन्निदमब्रवीत्। देहादस्माच्चवैराजाद्यस्मिन्निष्क्रामतिह्ययम्॥३५॥

पतिष्यति प्रविष्टेतु यस्मिन्वै ह्युत्थितो भवेत्। सदेवोह्यधिकोनूनंनापरस्तुकथञ्चन॥३६॥

इत्युक्तास्तेततःसर्वेतथास्त्वितिवचोऽब्रुवन्। निश्चक्रामजयन्ताह्वःपादात्पूर्वंसुरेश्वरः॥३७॥

तदापङ्गुममुं प्राहुर्नदेहः पतितस्तदा। शृण्वन्पिबन्वदञ्जिघ्रन्पश्यन्नास्तेऽचलन्नपि॥३८॥

पश्चाद्गुह्याद्विनिष्क्रान्तो दक्षोनाम प्रजापतिः। तदा षण्ढममुं प्राहुर्नदेहः पतितस्तदा॥३९॥
शृण्वन्पिबन्वदञ्जिघ्रन्पश्यन्नास्तेऽचलन्नपि। पश्चाद्धस्ताद्विनिष्क्रान्तइन्द्रःसर्वामरेश्वरः॥४०॥

देवगण ने नारायण को प्रणाम करके उनसे पुनः पूछा—"हे महाविष्णु! हमने युवराज पद के सम्बन्ध में यथार्थतः विचार करके देखा लेकिन हम यह निर्णय नहीं कर सके कि हममें से कौन श्रेष्ठ है? इस विषय में हम निर्णय नहीं कर पाये। इसलिये आप ही इसका निर्णय करिये।" विभु विष्णु ने देवगण द्वारा यह प्रार्थना किये जाने पर हास्यपूर्ण मुद्रा में कहा—"हे देवगण! जिस देवता के देह से निकलने पर मेरा देह गिर जायेगा तथा जिसके प्रवेश पर यह देह उठ जायेगा, वही देवता श्रेष्ठ है। अन्य को कनिष्ठ जानिये।" विष्णु के द्वारा यह कहने पर देवगण ने उनकी बात पर सहमति दिया। तब जयन्त नामक श्रेष्ठ देवता ने पहले प्रभु के चरण से निष्क्रमण किया। लेकिन देवगण ने देखा कि वे देवता पंगु हो गये थे, यद्यपि उनके द्वारा श्रवण, पान, भाषण, घ्राण तथा दर्शन तो किया जा सकता था, लेकिन पंगु होने के कारण वे चल नहीं सकते थे। उनकी देह पतित नहीं हो सकी, वे वही निश्चल बैठे रह गये।" "तदनन्तर भगवान् के गुह्यदेश से दक्ष प्रजापति निकले। देवगण ने उनको षण्ड के समान देखा। वे श्रवण, पान, भाषण, घ्राण, दर्शनादि सबमें समर्थ थे तथापि उनकी देह पतित नहीं हो सकी वे एक स्थान पर बैठे रह गये। तब उन प्रभु के हाथों से देवेश्वर इन्द्र निकले।"।।३३-४०।।

हस्तहीनममुंप्राहुर्न देहः पतितस्तदा। शृण्वन्पिबन्वदञ्जिघ्रन्पश्यन्नास्तेऽचलन्नपि॥४१॥
लोचनाभ्यां विनिष्क्रान्तः सूर्यस्तेजस्विनां वरः। तदा काणममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा॥४२॥

"जब इन्द्र निकले तब वे हाथों से रहित हो गये। श्रवण, पान, भाषण, घ्राण, दर्शनादि समस्त कार्य का सामर्थ्य उनमें था, तथापि वे करहीन होने पर भी नहीं गिरे। वे एक स्थान पर बैठे रह गये। तदनन्तर प्रभु के नेत्र युगल से तेजस्वियों में श्रेष्ठ सूर्य निकले। देवगण ने सूर्य के बाहर निकलने पर उनको अन्धा देखा। तब उनमें पूर्वोक्त श्रवणादि समस्त शक्ति की स्फूर्त्ति थी, तथापि नयनद्वय से रहित होने के कारण उनकी देह पतित नहीं हो सकी। वे एक ही स्थान पर बैठे थे।"।।४१-४२।।

शृण्वन्पिबन्वदञ्जिघ्रन्पश्यन्नास्तेऽचलन्नपि। घ्राणात्पश्चाद्विनिष्क्रान्तौ नासत्यौ विश्वभेषजौ।
अजिघ्राणममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा॥४३॥
शृण्वन्पिबन्वदन्नैवाजिघ्रन्नास्तेऽचलन्नपि। श्रोत्राद्दिशोविनिष्क्रान्तानदेहःपतितस्तदा।
तदाऽमुं बधिरं प्राहुर्मृतं नैव कथञ्चन॥४४॥
पिबन्वदन्नपि तदा ह्यशृण्वन्नचलन्नपि। वरुणो रसनायास्तु विनिष्क्रान्तस्ततःपरम्।
तदाऽरसज्ञमेवाऽऽहुर्नदेहः पतितस्तदा॥४५॥
जीवंश्चलन्नदन्नास्ते तथा जानञ्छ्वसन्नपि।
ततो वाचो विनिष्क्रान्तो वह्निर्वागीश्वरो विभुः॥४६॥
तदा मूकममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा। जीवंश्चलन्नदन्नास्ते तथा जानञ्छ्वसन्नपि॥४७॥
पश्चाद्रुद्रो विनिष्क्रान्तो मनसोबोधनात्मकः। तदाजडममुंप्राहुर्न देहः पतितस्तदा॥४८॥

जीवंश्चलन्नदन्नास्ते तथा जानञ्छ्वसन्नपि। पश्चात्प्राणो विनिष्क्रान्तो मृतमेनं तदा विदुः।
पुनरेवं तदा प्राहुर्देवा सिस्मितमानसाः॥४९॥

"तदनन्तर नासिका से विश्वभेषजज्ञ अश्विनीकुमार निकले। देवताओं ने (प्रभु को) उनको गन्धग्रहण शक्तिरहित देखा। तब वे तो श्रवणादि सभी पूर्वोक्त शक्तियों से सम्पन्न थे, लेकिन गन्धग्रहण शक्ति न होने के कारण उनकी देह पतित नहीं हो सकी। अतएव वे एक स्थान पर बैठे रह गये। विष्णु के कानों से सभी दिशायें निकलीं, तब अमरगण ने उनको वधिर देखा। वे गमन तथा श्रवण कर सकते थे तथापि विभु की देह पतित नहीं हो सकी। इसके पश्चात् विष्णु की रसना से वरुण बाहर निकले। तब विष्णु रसहीन (रस को चखने से रहित) हो गये। उनको जीवनधारण तथा भोजनादि का सामर्थ्य तो था, तथापि उनकी देह नहीं पतित हो सकी। वे श्वास त्याग करते-करते एक ही स्थान पर बैठ गये। वागीश्वर अग्नि भगवान् विष्णु के वाक्य (वाणी) से बाहर निकले, तब सबने भगवान् को मूक कहा। तब उनके सभी गुण स्फूर्त्त (व्यक्त) थे, तथापि वे भाषण नहीं कर सकते थे, तथापि उनकी देह पतित नहीं हो सकी। तदनन्तर बोधनात्मक रुद्र उनके मन से निकले। सुरगण ने उनको जड़वत् तो देखा, लेकिन ज्ञान को छोड़कर उनकी पूर्वोक्त शक्तियां वर्त्तमान थीं, तथापि देह पतित नहीं हो सकी। तब उनके देह से प्राण बाहर निकला। प्राण बाहर आते ही उनकी देह पतित हो गयी। सभी ने एक साथ उनको मृत कहा। सभी देवता विस्मित होकर आपस में कहने लगे।"॥४३-४९॥

देहमुत्थापयेद्यस्तु पुनरेवं व्यवस्थितः। स एव ह्यधिकोऽस्मासुयुवराजाभ्वविष्यति॥५०॥
इत्येवंतुप्रतिश्रुत्यविविशुश्चयथाक्रमम्। जयन्तःप्राविशत्पादौनोत्तस्थौतत्कलेवरम्॥५१॥
गुह्यञ्च प्राविशद्दक्षो नोत्तस्थौ तत्कलेवरम्।
इन्द्रो हस्तौ विवेशाऽथ नोत्तस्थौ तत्कलेवरम्॥५२॥
चक्षुः सूर्यः प्रविष्टोऽभून्नोत्तस्थौ तत्कलेवरम्।
दिशः श्रोत्रे प्रविविशुर्नोत्तस्थौ तत्कलेवरम्॥५३॥
वरुणः प्राविशज्जिह्वां नोत्तस्थौ तत्कलेवरम्।
नासां विविशतुर्दस्रौ नोत्तस्थौ तत्कलेवरम्॥५४॥
वह्निश्चप्राविशद्वाचं नोत्तस्थौ तत्कलेवरम्। मनश्च प्राविशद्रुद्रोनोत्तस्थौतत्कलेवरम्॥५५॥
पश्चात्प्राणो विवेशाऽसौ तदोत्तस्थौ कलेवरम्।
तदा देवा विनिश्रित्य प्राणं देवाधिकं विभुम्॥५६॥

देवताओं ने कहा कि जिसके बाहर निकलने पर विराट देह का पतन हो जाता है तथा जिसे पुनः प्रवेश करने पर यह विराट शरीर उठ जाता है, वह प्राण ही हममें सर्वश्रेष्ठ है। प्राण ही युवराज पद के योग्य है। सुरगण ने इसे परस्पर स्वीकार करके यथाक्रमेण उस विराट देह में प्रवेश प्रारंभ किया। लेकिन वह शरीर उठा ही नहीं! दक्ष ने गुह्य में प्रवेश किया, लेकिन विराट शरीर नहीं उठा। इन्द्र ने दोनों हाथों में प्रवेश किया, सूर्य ने नेत्रों में प्रवेश किया, सभी दिशाओं ने कर्णद्वय में प्रवेश किया, वरुण ने रसना में प्रवेश किया, अश्विनी कुमार द्वय ने नासिका में प्रवेश किया, अग्नि ने वाक् में प्रवेश किया, रुद्र ने हृदय में प्रवेश किया, तथापि

शरीर नहीं उठा। तदनन्तर प्राण के प्रवेश करते ही शरीर उठ गया। तब देवगण ने प्राण को ही निश्चित रूप से सभी देवगण में से श्रेष्ठ मान लिया।।५०-५६।।

बले ज्ञाने च धैर्ये च वैराग्ये प्राणनेऽपि च। ततोऽभिषेचयाञ्चक्रुर्यौवराज्येमहाप्रभुम्।।५७।।
उत्कृष्टस्थितिहेतुत्वादुक्थमेकंतदाजगुः। तस्मात्प्राणात्मकंविश्वंसर्वंस्थावरजङ्गमम्।।५८।।
अंशैः पूर्णैर्बलाढ्यैश्च पूर्णोऽयं जगताम्पतिः।।५९।।
न प्राणहीनं जगदस्ति किञ्चित्प्राणेन हीनं न च वै समेधते।
न प्राणहीनं स्थितमत्र किञ्चित्प्राणेन हीनं न च किञ्चिदस्ति।
तस्मात्प्राणः सर्वजीवाधिकोऽभूद् बलाधिकः सर्वजीवान्तरात्मा।।६०।।
प्राणात्कोऽपि ह्यधिको वा समो वा शास्त्रे दृष्टः श्रुतपूर्वो न चाऽऽस्ते।
तत्तत्कार्यानुगः प्राणो ह्येको देवोह्यनेकधा। तस्मात्प्राणं वरंप्राहुः प्राणोपासानतत्परः।।६१।।
लीलयैव जगत्स्रष्टुं हन्तुं पालयितुं प्रभुः।।६२।।
शेषाऽहिशिवशक्राद्याश्चेतनाश्च जडा अपि। वासुदेवादृतेकोऽपि नैनम्परिभविष्यति।।६३।।

तदनन्तर देवगण ने बल-ज्ञान-धैर्य-वैराग्य तथा प्रसन्नता सम्पादन आदि सभी विषय में प्राण को ही श्रेष्ठ मानकर उन महाप्रभु प्राण को युवराज पद पर अभिषिक्त किया। हे व्याध! प्राण ही जीवन धारण का श्रेष्ठ कारण है। अतः सभी लोग प्राण की ऐसी ही नाम महिमा कहते हैं। इस कारण स्थावर-जङ्गमात्मक अखिल विश्व को प्राणात्मक कहते हैं। जगत्पति प्राण बलाड्य अंश से पूर्ण हैं। जगत् में कुछ भी प्राणरहित नहीं है। कोई वस्तु स्थितिशील नहीं है। प्राणहीन कुछ भी नहीं रह पाता। कोई भी प्राणहीन वस्तु वर्द्धित नहीं होती। इस जगत् में प्राणहीन कुछ भी स्थितिशील नहीं होता। प्राणहीन वस्तु रह भी नहीं सकती। प्राण जीवों की अन्तरात्मा है। यह समस्त प्राणीगण में श्रेष्ठ है तथा इसका बल भी अत्यधिक है। इसलिये इस जगत् में प्राण से श्रेष्ठ अथवा प्राण के समान कोई भी वस्तु शास्त्र में सुनी नहीं जाती। एकमात्र अकेले प्राणदेव ही नाना भाग में विभक्त होकर समयोचित कार्य का अनुगमन करते हैं। प्रभु ने अनायास ही जगत् की सृष्टि-स्थिति-प्रलय के लिये प्राण की सृष्टि किया है। इसलिये प्राण की उपासना में तत्पर व्यक्तिगण प्राण को ही श्रेष्ठ कहते हैं। एकमात्र वासुदेव के बिना शिव, इन्द्रादि देवगण तथा चेतन-अचेतन-जड़ कोई भी प्राण को पराभूत नहीं कर सकते।।५७-६३।।

सर्वदेवात्मकः प्राणः सर्वदेवमयोविभुः। वासुदेवाऽनुगोनित्यंतथाविष्णुवशस्थितः।।६४।।
वासुदेवप्रतीपं तु न शृणोति न पश्यति। देवाः प्रतीपं कुर्वन्ति रुद्रेन्द्राद्याः सुरेश्वराः।।६५।।
प्रतीपं क्काऽपि कुरुते नप्राणःसर्वगोचरः। तस्मात्प्राणोमहाविष्णोर्बलमाहुर्मनीषिणः।।६६।।
एवं ज्ञात्वा महाविष्णोर्माहात्म्यंलक्षणंतथा। पूर्वबन्धानुगंलिङ्गंजीर्णांत्वचमिवोरगः।।६७।।
विसृज्य परमं याति नारायणमनामयम्। श्रुत्वा शङ्खोदितंवाक्यंपुनर्व्याधःप्रसन्नधीः।।६८।।
प्रश्रयाऽवनतोभूत्वापुनःपपच्छतंमुनिम्। ब्रह्मन्महानुभावस्यप्राणस्याऽस्यजगद्गुरोः।।६९।।
न ख्यातो महिमा लोकेकथं सर्वेश्वरस्य वै। देवानाञ्चमुनीनाञ्च भूपानाञ्चमहात्मनाम्।।७०।।

महिमा श्रूयते लोके पुराणेषु सहस्रशः। एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मञ्छ्रोतुं कौतूहलं हि मे।।७१।।

"विभु प्राण सर्वदेवमय है तथा सभी देवगण की आत्मा है। देवगण इसके ही नित्य अनुगत हैं। प्राण सतत् वासुदेव के अधीन रहता है। प्राण ही वासुदेवरूपी है। यदि कोई प्राणरूपी वासुदेव के प्रति प्रतिकूल आचरण करता है, तब उसकी श्रवण एवं दर्शनशक्ति का नाश हो जाती है। रुद्र तथा इन्द्र आदि सुरेश्वर भी परस्पर विरोध कर सकते हैं, तथापि सर्वगोचर प्राण कदापि किसी से प्रतिकूल आचरण नहीं करता। अतः मनीषीगण प्राण को ही वासुदेव का बल कहते हैं। हे व्याध! इस प्रकार से वासुदेव का माहात्म्य तथा लक्षण ज्ञात करके जीव अपने पूर्वकर्म के अनुसार उसी प्रकार लिंगदेह का त्याग करता है जैसे सर्प अपनी केचुल छोड़ देता है। तदनन्तर नारायण के धाम में (परमपद में) चला जाता है।" ऋषि शंख का यह उपदेश सुनकर व्याध का हृदय प्रफुल्लित हो उठा। उसने विनय से अवनत होकर मुनि से यह प्रश्न किया कि—"हे ब्रह्मन्! प्राण महानुभाव, जगद्‌गुरु तथा सबका ईश्वर है। पुराणों में अनेक महात्मागण, देवता, मुनिगण तथा राजाओं की हजारों-हजार माहात्म्य कथा सुनी गई है, तथापि लोक में प्राण का प्रभाव उतना प्रख्यात क्यों नहीं है? हे ब्रह्मन्! मुझे यह श्रवण करने का अनेक कुतूहल हो रहा है। अतएव मुझसे वर्णन करें"।।६४-७१।।

शङ्ख उवाच

पुरा प्राणो हरिं देवं नारायमनामयम्। अश्वमेधैर्यष्टुकामो गङ्गातीरं ययौ मुदा।।७२।।
हलैश्चकार भूशुद्धिं नानामुनिगणैर्युतः। अन्तर्वल्मीकलीनस्तु कण्वो नामसमाधिगः।।७३।।
हलोत्कृष्टो विनिष्क्रान्तक्रोधादिदमुवाच ह। दृष्ट्वा पुरःस्थितंप्राणंशशापहमहाविभुम्।।७४।।
अद्यप्रभृति न ख्यातिं महिमा भुवनत्रये। तव प्राप्नोति देवेश! भूलोके तु विशेषतः।।७५।।
प्रख्यातास्ते भविष्यन्तिह्यवताराजगत्त्रये। इत्युक्तोमुनिनातेनवायुःक्रोधात्तमब्रवीत्।।७६।।
विनाऽपराधं शप्तोऽस्मि तितिक्षुं मां निरागसम्।
तस्मात्कण्व! महाबाहो गुरुद्रोही भवाऽऽशु च।।७७।।
लोकेनिन्दितवृत्तिश्चभवेत्याहसदागतिःततःप्रभृतिलोकेऽस्मिन्प्राणस्याऽस्यमहाप्रभो!।।७८।।
नख्यातोहिमालोकेभूलोकेतुविशेषतः। शापात्कण्वोगुरुंजग्ध्वासूर्यशिष्योऽभवत्तदा।।७९।।
इत्येतत्कथितं सर्वं यत्पृष्टं तुत्वयाऽधुना। यच्छ्रोतव्यमितोव्याधपृच्छमांमाविचारय।।८०।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीष-सम्वादे वायुशापकथनंनामैकोनविंशोऽध्यायः।।१९।।

—※—

ऋषि शंख कहते हैं—पूर्वकाल में प्राण अश्वमेध यज्ञ हेतु हर्षपूर्वक नारायण हरि के पूजनार्थ गंगातीर पर गया। वहां मुनिगण से परिवृत होकर भूमि की शुद्धि हेतु हल द्वारा भूमि को जोता। ऋषि कण्व वहां पर दीमक की बांबी की मिट्टी में समाधिस्थ थे। हल जोते जाने पर हल के अग्रभाग में वह बांबी टूटने पर वे बहिर्गत हो गये। इससे वे अत्यन्त क्रोधित हो गये। उन्होंने महाप्रभु प्राण को जब सामने देखा तब उसे शाप

प्रदान किया। "हे देवेश! आज से त्रिभुवन में तथा विशेषतः इस पृथिवी पर तुम्हारी प्रसिद्धि नष्ट हो जाये। जो अवतार हैं, वे ही त्रैलोक्य में प्रसिद्ध होंगे।" तब मुनि द्वारा शापित प्राण रोष से युक्त हो गये। उन्होंने भी उन मुनि को अनेक शाप दिया। सदागतिशील प्राण ने कहा—"हे महाबाहु कण्व! मैं निष्पाप तथा तपस्वी हूं। तुमने बिना अपराध मुझे शापित कर दिया। अतः मेरे शाप से तुम शीघ्र गुरु से द्रोह करोगे। जनमानस में तुम्हारा चरित्र निन्दनीय होगा। "हे साधु! तब से त्रैलोक्य में, विशेषतः पृथिवी पर लोग प्राण की महिमा भूल गये। उधर मुनि कण्व अपने गुरु का त्याग करके सूर्यशिष्य हो गये। हे व्याध! तुम्हारे प्रश्नों का मैंने सम्यक् उत्तर दे दिया। अब क्या जानना चाहते हो, प्रश्न करो। तुम मन में कोई वितर्क नहीं करो।।७२-८०।।

।।एकोनविंश अध्याय समाप्त।।

विंशोऽध्यायः

भागवत धर्म वर्णन, सृष्टिक्रम वर्णन, माधवमास में वर्जित शाक

व्याध उवाच

किं जीवा विभुना सृष्टाः कोटिशोऽथ सहस्त्रशः।
दृश्यन्ते भिन्नकर्माणो नानामार्गा सनातनाः।।१।।
नैकस्वभावा एतेहि कुत एव महामते!। सर्वं तत्पृच्छते मह्यं विस्तरात्तत्त्वतो वद।।२।।

व्याध कहता है—हे महामति! विभु विष्णु ने किसलिये सहस्रों कोटि जीवगण की सृष्टि किया था? यह सनातन जीव प्रवाह क्यों विभिन्न कर्मा तथा विभिन्न पथगामी लग रहा है। यह एक प्रकार का क्यों नहीं है? इसका कारण क्या है? मैंने यह सब जिज्ञासा किया है। आप विस्तृत रूप से यथायथ मुझसे कहिये।।१-२।।

शङ्ख उवाच

त्रिविधाजीवसङ्घा हि रजःसत्त्वतमोगुणाः। राजसा राजसंकर्मतामसास्तामसंतथा।।३।।
सात्त्विकाः सात्त्विकंकर्मकुर्वन्त्येतेयथाक्रमम्। क्वचिच्चगुणवैषम्यात्प्राप्नुवन्तिनराइमे।।४।।
तेनैवोच्चावचं कर्म कुर्वन्तः फलभागिनः।
क्वचित्सुखं क्वचिद्दुःखंक्व चिच्चोभयमेवच।।५।।
गुणानामेव वैषम्यात्प्राप्नुवन्ति नराइमे। प्रकृतिस्था इमे जीवाबद्धाएतैर्गुणैस्त्रिभिः।।६।।
गुणकर्माऽनुरूपेण कर्मणां व्यत्ययःफलम्। गुणानुगुण्यंभूयस्तेप्रकृतिंयान्त्यमीजनाः।।७।।

शंख कहते हैं—हे व्याध! जगत् में यह जो प्राणियों का संघट्ट दृष्टिगोचर होता है इनमें रजः-सत्व तथा तमः गुण भेद है। इनमें से जो यथाक्रम रजःगुण प्रधान हैं, वे राजस हैं। तमःप्रधान तामस तथा सत्व प्रधान सात्विक कहे जाते हैं। इनकी क्रिया भी इनके गुणानुरूप होती है। तामस की तामसिक, राजस की राजसिक तथा सात्विक की सात्विकी क्रिया होती है। यह जो त्रिविध गुणभेद हैं, कभी इनका वैषम्य भी परिलक्षित होता है। इस गुण विषमता के कारण ही लोग फल की आशा के कारण उच्च-निम्न कर्म करते हैं। इस गुणवैषम्य के ही कारण फल चाहने वाले मनुष्य कभी दुःख तो कभी सुख-दुःख मिश्रित (कर्मफल) फल प्राप्त करते हैं। प्राणीगण इन त्रिगुण से ही बद्ध रहते हुये प्रकृति राज्य में अवस्थित रहते हैं। इन गुणों के पूर्वकृत् कर्मानुरूप उनके कर्म का व्यत्यय होता है तथा वे इन गुणों के ही अनुरूप फल लाभ करते हैं। उनको पुनः-पुनः प्रकृति का ही आश्रय लेना पड़ता है।।३-७।।

प्रकृतिस्थाःप्राकृतिकागुणकर्माऽभिमूर्च्छिताःगतिंप्राकृतिकींयान्तिव्यत्ययःप्रकृतेर्नहि।।८।।
तामसा दुःखबहुलाः सदा तामसवृत्तयः। निर्दया निष्ठुरा लोके सदाद्वेषैकजीविनः।।९।।
राक्षसाद्याः पिशाचान्तास्तामसीं यान्ति वै गतिम्।
राजसा मिश्रमतयः कर्तारः पुण्यपापयोः।।१०।।
पुण्यात्स्वर्गं प्राप्नुवन्ति क्वचित्पापाच्च यातनाम्।
अत एते मन्दभाग्या आवर्तन्ते पुनः पुनः।।११।।
धर्मशीला दयावन्तः श्रद्धावन्तोऽनसूयकाः।
सात्त्विकाः सात्त्विकीं वृत्तिमनुतिष्ठन्त आसते।।१२।।
तेचोर्ध्वंयान्तिविमलागुणापायेमहौजसः ।
विभिन्नकर्मणाश्चाऽतःपृथग्भावाःपृथग्विधाः।।१३।।
गुणकर्मानुरूपेण तेषां विष्णुर्महाप्रभुः। कर्माणि कारयत्यद्धास्वस्वरूपाप्तये विभुः।।१४।।
विष्णोर्वैषम्यनैर्घृण्ये पूर्णकामस्य वै नहि। सृष्टिंस्थितिंहृतिञ्चैवसमामेवकरोत्ययम्।।१५।।
स्वगुणादेव ते सर्वेकर्मणः फलभागिनः। आरामोप्तान्यथा सर्वान्समं वर्षयतिद्रुमान्।।१६।।
एककुल्याजलाह्यङ्ग द्रुमाश्च प्रकृतिं गताः। नारामोप्तरि वैषम्यं नैर्घृण्यं वा कथञ्चन।।१७।।

ये प्रकृति के राज्य में बद्ध लोग ही गुण-कर्म से मोहित होकर प्राकृतिकी गति प्राप्त करते हैं, तथापि इस प्रकृति में कदापि विकृति नहीं होती। जो तामसिक हैं, उनकी वृत्ति सदा नानादुःखपूर्ण तमोमयी होती है। वे संसार में निर्दयी-निष्ठुर तथा सदा प्राणीगण के द्वेषी हो जाते हैं। ये सभी तमोमय जीवगण राक्षस से लेकर पिशाच पर्यन्त की तामसी गति को प्राप्त होते हैं। जो राजस हैं, उनकी मति मिश्रित होती है। वे कभी पुण्य का तो कभी पाप का आचरण करते हैं। इस मिश्रकर्म के कारण उनको कभी स्वर्ग तो कभी पापों के कारण नरकगमन करना पड़ जाता है। इसलिये इनको मन्दभाग्य कहा गया। क्योंकि ये पुनः-पुनः जन्म-मरण चक्र में घूमते रहते हैं। सात्विक मति वाला धार्मिक, दयालु, श्रद्धालु, ओजस्वी, असूया से रहित होता है। इन सभी विमल लोगों की तेजमयी ऊर्ध्वगति होती है। जो विभिन्न कर्मा तथा पृथक् भाव वाले तथा पृथक् आचार सम्पन्न

होते हैं, उनको महाविभु भगवान् विष्णु स्वरूपबद्ध फल देने के लिये उनसे उनके गुणकर्मानुरूप कर्म कराते हैं। हे साधु! पूर्णकाम विष्णु में वैषम्यादि भाव नहीं है। जैसे वर्षा उद्यान में स्थित सभी वृक्षों के ऊपर समान रूप से जल बरसाती है, वे भी तद्रूप समान रूप से सृष्टि-स्थिति-संहार का कार्य करते हैं। जिस प्रकार उद्यानस्थ क्यारी में विद्यमान वृक्षों की जड़ समान रूप से जल से सिंचित होती रहती हैं, उसी प्रकार सृष्ट प्राणीगण भी उन देवदेव द्वारा समान रूप से पालित होते हैं, तथापि अपने-अपने कर्मानुसार प्राणीगण फल पाते हैं। जैसे माली अपने उद्यान के वृक्षों से कोई भेदभाव नहीं करता, तदनुरूप ही भगवान् विष्णु समान रूप से सबके प्रति दृष्टि रखते हैं।।८-१७।।

व्याध उवाच

जनानां पूर्णभोगानां कदामुक्तिर्भवेन्मुने!। सृष्टिकालेऽथवाह्यन्तकालेवास्थापनस्यच॥१८॥
क्वचिच्चसृष्टिकालस्य संहारस्याऽपि वै स्थिते। एतद्विस्तार्यमेब्रह्मन्भगवच्चेष्टितंवद॥१९॥

व्याध कहता है—हे मुनिवर! जिनका भोग पूर्ण हो गया, सृष्टिकाल किंवा अन्तकाल अथवा मध्यावस्था में कब इनकी मुक्ति होगी? हे ब्रह्मन्! भगवान् द्वारा आचरित इन सब कार्यों को कृपापूर्वक कहिये।।१८-१९।।

शङ्ख उवाच

चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते। रात्रिश्च तावती तस्य हाहोरात्रं दिनं भवेत्॥२०॥
दशपञ्चदिनान्याहुः पक्षं मासो द्व्यात्मकः। मासद्वयमृतुं प्राहुरयनं च ऋतुत्रयम्॥२१॥
अयने द्वेवत्सरःस्यात्तादृक्च्छतसमायदि। गच्छन्तिब्रह्मणोह्यस्यब्रह्मकल्पं तदाविदुः॥२२॥
तावान्हि प्रलयः काल इति वेदविदांमतम्। प्रलयस्त्रिविधःप्रोक्तोमानवोमानवात्यये॥२३॥
दैनन्दिनोद्वितीयोहि ब्रह्मणो दिवसात्यये। ब्रह्मणोऽथ लये पश्चाद्ब्राह्मञ्चप्रलयंविदुः॥२४॥

ऋषि शंख कहते हैं—१००० चतुर्युग ब्रह्मा का १ दिन होता है। इसी प्रकार १००० चतुर्युग की उनकी एक रात्रि होती है। इस दिन तथा रात को मिलाकर ब्रह्मा का एक अहोरात्र कथित है। हे व्याध! १५ दिन का (ब्रह्मा के मान से) १ पक्ष (इसमें शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्ष रूप २ पक्ष हैं), २ पक्ष का एक मास, २ मास का एक ऋतु, ३ ऋतु का १ अयन, २ अयन का १ वर्ष कहा गया है। इस प्रकार के मान का १०० वर्ष व्यतीत होने पर ब्रह्मा का एक कल्पकाल होता है। वेदज्ञ लोग इसे ही प्रलय कहते हैं। प्रलय त्रिविध है मानव, दैनन्दिन तथा ब्राह्म! जब मानव का व्यत्यय हो (एक मनु का काल समाप्त होना) तब मानव प्रलय, ब्रह्मा का एक दिन व्यतीत होने पर दैनन्दिन प्रलय तथा एक ब्रह्मा की आयु पूर्ण होने जब उनका लय होता है, तब वही ब्राह्मलय (प्रलय) है।।२०-२४।।

ब्रह्मणस्तु मुहूर्ते तु तु मनोस्तु प्रलयं विदुः। प्रलयेषु व्यतीतेषु चतुर्दशसु वै क्रमात्॥२५॥
दैनन्दिनलयं प्राहुः प्रलयानां स्थितिम्पुनः। त्रयाणामेव लोकानांलयोमन्वन्तरेभवेत्॥२६॥
चेतनानाःतदा नाशोन लोकानां क्षयो भवेत्। उदकैरेव पूर्तिश्च यथा पूर्वं तथा पुनः॥२७॥

मन्वन्तरान्ते भूयात्तु चेतनानां पुनर्भवः। दैनन्दिनलये व्याध सर्वस्यापि क्षयोभवेत्॥२८॥

सत्यलोकं विना सर्वे लोका नश्यन्ति साधिपाः।
सचेतनाः साधिभूताः प्रसुप्ते चतुराननेे॥२९॥

तत्त्वाभिमानिनो देवाः केचिच्च मुनयस्तथा।
शिष्यन्ति सुप्ताः सर्वेऽपि सत्यलोकव्यवस्थिताः॥३०॥

ब्रह्मा के एक मुहूर्त्त में एक मनु का प्रलय (लय) होता है। यही मानव प्रलय है। जब चौदहों मनु का कार्यकाल समाप्त हो, तब दैनन्दिन प्रलय कहा गया है। अब स्थिति का वर्णन सुनो। (चौदहों) मन्वन्तर काल की समाप्ति होने पर त्रैलोक्य का लय होता है, तथापि इस लय में मात्र चेतनायुक्त (प्राणी) ही नष्ट होते हैं। अचेतन रूप त्रिभुवन का नाश नहीं होता। जैसे कहीं बांधकर रखे गये जल को छोड़ देने पर वह जलप्रवाह खाली स्थानों को आपूरित कर देता है, उसी प्रकार मन्वन्तरों के अवसानोपरान्त प्राणीगण (चैतन्यों) से त्रिभुवन भी पूर्ण हो जाता है। हे व्याध! दैनन्दिन प्रलय में सत्यलोक को छोड़कर समस्त प्राणी-त्रिभुवन उसके अधिष्ठातागण के साथ सब कुछ विनष्ट हो जाता है। सब चेतनवर्ग सत्यलोक में स्थित होकर निद्रित हो जाते हैं। तब कतिपय देवता एवं मुनि ही शासनरत रह जाते हैं।।२५-३०।।

तिष्ठन्ति सुप्तिमापन्ना यावत्कल्पमतीन्द्रियाः। पुनर्निशात्यये ब्रह्मायथापूर्वमकल्पयत्॥३१॥

ऋषीन्देवान्पितॄंल्लोकान्धर्मान्वर्णान्पृथक्पृथक्। पुनर्दशावतारा हि विष्णोर्देवस्यचक्रिणः॥३२॥

नियमेन भवन्त्येते तथान्येऽपि च भूरिशः। देवता ऋषयश्चैव आकल्पञ्च गिराम्पतेः॥३३॥

पुनरेवाऽभिवर्तन्ते ब्रह्मणा सह मुक्तिगाः। भूपाश्च साधवो ये चसिद्धिंप्राप्ताःपरंगताः॥३४॥

तेनैव चाभिवर्तन्ते सत्यलोकव्यवस्थिताः।
तद्राशिगाः पुनर्यान्ति तनाम्नाश्रुतिसंस्थिताः॥३५॥

तत्तद्गोत्रेषु जायन्ते तत्तत्कर्मरताः सदा। दैत्यानामपि सर्वेषां यदा कलियुगात्ययः॥३६॥

कलिनासहगच्छन्तिस्वांगतिंनिरयालयाः। तेषाञ्चराशिसंस्थायेतन्नामानोऽपरेऽपिच॥३७॥

जायन्ते कर्मणा स्वेन तत्तत्कर्मविधायकाः। सृष्टिकालं प्रवक्ष्यामिमुक्तिकालंतथैवच॥३८॥

ब्रह्मादीनाञ्च देवानां समाहितमना भव। निमेषो देवदेवस्य ब्रह्मकल्पसमो मतः॥३९॥

उस स्थिति में उन सब सुप्त प्राणीगण की इन्द्रियां कार्य नहीं करतीं। हे व्याध! पुनः रात्रि व्यतीत हो जाने पर ब्रह्मा पूर्ववत् सृष्टि करते हैं। तब वे ऋषि, देवता, पितृलोक, धर्म, वर्ण आदि की पृथक्-पृथक् सृष्टि रचना करते हैं। तब चक्रधारी विष्णु के दस अवतारों का प्रादुर्भाव होता है। कल्पपर्यन्त ऋषि देवता आदि सभी उन वाक्पति द्वारा प्रवर्त्तित नियमों से नियन्त्रित होते रहते हैं। ये सभी ब्रह्मा की आयु समाप्त होने पर ब्रह्मा के ही साथ मुक्तिलाभ करते हैं। तब ब्रह्मा के ही साथ सत्यलोकस्थ राजा तथा साधुगण सिद्धियुक्त होकर परमपद गमन करते हैं। पहले जिनका श्रुतिसम्मत जो गोत्र-राशि-नाम तथा कर्म था, पुनः आविर्भूत होने पर उनको पहले की तरह उसे गोत्र आदि की प्राप्ति होती है। जो दैत्य-दानवकुल इसी प्रकार से (प्रलय काल में) अपनी गति के अनुसार निरयलोक चले गये थे, वे भी अपने-अपने कर्मानुरूप उस-उस राशि-नाम-गोत्रादि की प्राप्ति करते

हैं। हे व्याध! अब ब्रह्मादि देवगण की सृष्टि तथा मुक्तिकाल का वर्णन समाहित चित्त से सुनो। जितना ब्रह्मा का एक कल्प होता है, उतना समय देवदेव विष्णु का एक निमेष है।।३१-३९।।

तस्याऽवसाने चोन्मेषो देवदेवशिखामणेः।
निमेषाऽन्ते भवेदिच्छा स्रष्टुं लोकांश्च कुक्षिगान्।।४०।।
सोऽपश्यत्स्वोदरे सर्वाञ्जीवसङ्घाननेकशः। सृज्यान्मुक्तानमून्सर्वांलिङ्गभङ्गमुपागतान् ।।४१।।
सुप्ताः सृतिस्थाः सर्वेऽपितमोगाअपिसर्वशः। पूर्वकलपेलिङ्गभङ्गमापन्नाविधिपूर्वकाः।।४२।।
मानवान्ताजीवकोशाजीवन्मुक्ताश्चमुक्तिगाः। पूर्वकल्पेविमुक्ताश्चब्रह्माद्यामानवान्तकाः।।४३।।
ध्यानसंस्था हि तिष्ठन्ति विष्णुकुक्षिगताअपि।
उन्मेषस्याऽऽदिमे भागे चतुर्व्यूहात्मको विभुः।।४४।।
भूत्वा तु पूर्वसाद्गुण्याद्वासुदेवाच्च व्यूहगात्।
दत्त्वा तु ब्रह्मणो मुक्तिं सायुज्याख्यां महाविभुः।।४५।।

इस एक निमेष की समाप्ति होने पर इन देवदेव की शिखामणि (इच्छा) का उन्मेष होता है। अब तक जो सब लोकसमूह उनकी कुक्षि में थे, अब उस एक निमेष का अवसान होने पर भगवान् को उन सब लोकों के सृजन की इच्छा होती है। वे अपनी कोख में स्थित उन अनेक जीवसंघ के प्रति दृष्टिनिःक्षेप करते हैं। इस जीवप्रवाह ने कितनी बार मातृगर्भ में प्रवेश पाकर जन्म लिया, कितनी बार मुक्ति प्राप्त किया, तमोमय गर्भ में सुप्त रहने पर भी उनकी स्मृति लुप्त नहीं होती। पूर्वपूर्व कल्पों में जो विधिबोधित स्वकर्म के अनुसार मातृगर्भ में प्रविष्ट हो गये थे, ऐसा मानवरूप जो प्राणिसमूह है, वह जीवन्मुक्त तथा मुक्तिभाजन होता है तथा ब्रह्मा से लेकर मानव पर्यन्त जो जीवप्रवाह पूर्वकल्प में मुक्त हो गया था, वह विष्णु के उदर में रहता हुआ भी ध्यानावस्थित रहता है। उन्मेष के आदिकाल में अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, संकर्षण तथा वासुदेव रूपी चतुर्व्यूहात्मक महाविभु ही सद्गुण समवेत व्यूह चतुष्टय के वासुदेव व्यूह में से ब्रह्मा को पहले सायुज्य मुक्ति देते हैं।।४०-४५।।

दत्त्वा तदनु सायुज्यं तत्त्वज्ञानं महात्मनाम्।
सारूप्यं चैव केषाञ्चित्सामीप्यञ्च तथा विभुः।।४६।।
सालोक्यञ्च तथाऽन्येषां दत्त्वा देवो जनार्दनः।
अनिरुद्धवशे सर्वान्स्थिताँल्लोकानलोकयत्।।४७।।
प्रद्युम्नस्य वशे दत्वा सृष्टिं कर्तुं मनो दधे। मायां जायांकृतिंशान्तिमुपयेमेस्वयंहरिः।।४८।।
चतुर्व्यूहैः पूर्णगुणैर्वासुदेवादिकैः क्रमात्। ताभिर्युक्तो महाविष्णुश्चतुर्व्यूहात्मको विभुः।।४९।।
भिन्नकर्माशयं लोकंपूर्णकामोव्यजीजनत्। उन्मेषान्तेपुनर्विष्णुर्योगमायांसमाश्रितः।।५०।।
सङ्कर्षणाद्व्यूहगाच्च हरत्येतच्चराचरम्। तदेतत्सर्वमाख्यातं कार्यं चिन्त्यं महात्मनः।
यदचिन्त्यं दुर्विभाव्यं ब्रह्माद्यैरपि योगिभिः।।५१।।

वे इसके पश्चात् क्रमानुसार महात्मागण को सायुज्य एवं तत्वज्ञान देते हैं। अन्य किसी को सारूप्य, किसी

को सामीप्य तथा किसी को सालोक्य मुक्ति प्रदान करते हैं। तदनन्तर विभु जनार्दन अनिरुद्ध व्यूह के शेष लोकों को अवशिष्ट देखकर प्रद्युम्नव्यूह का आश्रय लेते हैं और तब वे सृष्टि रचनार्थ मन प्रयुक्त करते हैं। इसके पश्चात् स्वयं महाविष्णु विभु हरि पूर्णगुणयुक्त होकर वासुदेवादि चतुर्व्यूह में व्यवस्थित होकर यथाक्रमेण माया-जया-कृति-शान्ति से विवाह करते हैं। इस प्रकार वे माया आदि से व्यूहित होकर अब भिन्न कर्माशय लोकों का सृजन करके पूर्णकाम हो जाते हैं। तदनन्तर श्रीहरि उन्मेष का अवसान हो जाने पर योगमाया का आश्रय लेकर संकर्षण व्यूह में इस चराचर जगत् का हरण कर लेते हैं। हे व्याध! मैंने तुमसे ब्रह्मादि योगिगण के लिये भी अचिन्त्य तथा व्यक्त कर सकने में अत्यन्त कठिन महातमा विष्णु का कार्य कहा। तुम इसका चिन्तन करो।।४६-५१।।

व्याध उवाच

के वा भागवता धर्माः कैर्विष्णुश्च प्रसीदति। तानहं श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतं वद नो मुने!॥५२॥

व्याध कहता है—हे मुनिवर! वह भागवत धर्म क्या है, जिससे विष्णुदेव प्रसन्न हो जाते हैं? इसे सुनने की अभिलाषा है। कृपया कहिये।।५२।।

शङ्ख उवाच

येन चित्तविशुद्धिः स्याद्यः सतामुपकारकः॥५३॥
तं विद्धि सात्त्विकं धर्मं यश्च केनाऽप्यनिन्दितः।
श्रुतिस्मृत्युदितो यस्तु यदि निष्कामिको भवेत्॥५४॥

ऋषि शंख कहते हैं—जिससे चित्तशुद्धि होती है, जो साधुजन का उपकारक है, जिस धर्म की कोई निन्दा नहीं करता, वही सात्विक धर्म कहा गया है। वह श्रुति-स्मृति सम्मत है। जिस कार्य में कामना नहीं है, वही सात्विक धर्म है।।५३-५४।।

यस्तुलोकाऽविरुद्धोऽपितंधर्मसात्त्विकंविदुः। चतुर्विधाहितेधर्मावर्णाश्रमविभागतः॥५५॥
नित्यनैमित्तिकाः काम्या इति ते च त्रिधामताः।
ते सर्वे स्वस्वधर्माश्च यदा विष्णोः समर्पिताः॥५६॥
तदा वै सात्त्विकाज्ञेया धर्माभागवताःशुभाः। देवातान्तरदैवत्याःसकामाराजसामताः॥५७॥

यह धर्म ब्राह्मणादि वर्णाश्रम विभाजन क्रम के कारण चतुर्विध है। इसमें नित्य-नैमित्तिक-काम्य रूप भेदत्रय भी है। यह स्वधर्मानुरूप नित्य-नैमित्तिक-काम्य कर्म जब विष्णु को अर्पित कर देते हैं, तब यही सुशोभन भागवत धर्म हो जाता है। राजसिक लोग सकाम होते हैं, वे कामना के कारण एक देवता का त्याग करके (कामनानुरूप) अन्य देवता की आराधना में तत्पर रहते हैं।।५५-५७।।

यक्षरक्षःपिशाचादिदैवत्या लोकनिष्ठुराः।
हिंसात्मका निन्दिताश्च धर्मास्ते तामसाः स्मृताः॥५८॥
सत्त्वस्थाः सात्त्विकान्धर्मान्विष्णुप्रीतिकराञ्छुभान्।
कुर्वन्त्यनीहया नित्यं ते वै भागवताः स्मृताः॥५९॥

येषांचित्तंसदाविष्णौजिह्वायांनामवैविभोः। पादौचहृदयेयेषांते वैभागवताः स्मृताः॥६०॥
सदाचाररता ये च सर्वेषामुपकारकाः। सदैव ममताहीनास्ते वै भागवताः स्मृताः॥६१॥
येषाञ्च शास्त्रेविश्वासो गुरौसाधुषुकर्मसु। येविष्णुभक्ताःसततन्तेवैभागवताःस्मृताः॥६२॥
येषां हि सम्मता धर्माः शाश्वता विष्णुवल्लभाः।
श्रुतिस्मृत्युदिता ये च ते धर्माः शाश्वता मताः॥६३॥
अटनंसर्वदेशेषु वीक्षणं सर्वकर्मणाम्। श्रवणं सर्वधर्माणां विषयाऽऽसक्तचेतसाम्॥६४॥
अकिञ्चित्करमेतेषां षण्डस्येव वरस्त्रियः। साधूनां दर्शनेनैव मनोद्रवति वै सताम्॥६५॥
चन्द्रस्य कौमुदीसङ्गाच्चन्द्रकान्तशिलायथा। क्वचित्सच्छास्त्रश्रवणाद्विषयैरहितंमनः॥६६॥

जिनके द्वारा यक्ष-राक्षस-पिशाचादि की उपासना की जाती है, वे तामस प्रवृत्ति होते हैं। वे निष्ठुर, हिंसात्मक तथा निन्दित धर्म की सेवा करते हैं। जो लोग सात्विक प्रकृति हैं तथा उद्देश्यरहित (कामना) होकर सदा विष्णु प्रीतिकारी शुभ धर्मों का अनुष्ठान करते हैं, वे भागवत हैं। जो सदाचारी हैं, सभी का उपकार करते हैं तथा सतत् ममतारहित हैं, वे हैं उत्तम भागवत। शास्त्र-गुरु तथा सत्क्रिया में जिनका विश्वास है, ज़ो श्रुति तथा स्मृति अनुमोदित नित्य, विष्णुप्रिय तथा सनातन धर्म का सम्मान करते हैं, वे हैं भागवत। ये लोग समस्त देश का पर्यटन, सर्व सत्कर्म दर्शन, धर्म श्रवण करते हैं, जिनका चित्त विषयों में आसक्त नहीं होता, जैसे नपुंसक व्यक्ति सुन्दर रमणी को देखकर विचलित नहीं होता ऐसे ही जो विषयों को व्यर्थ मानते हैं, वे भागवत हैं। इनका मन सदैव साधुदर्शन से उसी प्रकार द्रवीभूत हो जाता है जैसे चन्द्रकिरणों से चन्द्रकान्त मणि द्रवित हो जाती है। सत्शास्त्र श्रवण द्वारा विषयासक्त मनुष्य का मन कभी-कभी ही विषयों से विमुख होता है।।५८-६६।।

तिष्ठत्येव सतां पुंसांतेजोरूपह्यकल्मषम्। पद्मबन्धोःप्रभासङ्गात्सूर्यकान्तशिलायथा॥६७॥
निष्कामैर्हि जनैर्येस्तु श्रद्धया समुपाश्रितः। योविष्णुवल्लभोनित्यंधर्मोभागवतोमतः॥६८॥
तैर्दृष्टा बहवो धर्माइहाऽमुत्रफलप्रदाः। विष्णुप्रीतिकराःसूक्ष्माःसर्वदुःखविमोचकाः॥६९॥
दध्नःसारमिवोद्धृत्य धर्मंवैशाखसम्भवम्। रमायैभगवानाहक्षीराब्धौहितकाम्यया॥७०॥

लेकिन साधुगण को हृदय अकल्मष होने के कारण उस तेजोरूप प्रभु को सतत् अपने में उसी प्रकार से विराजित किये रहता है जैसे सूर्य किरण संसर्ग से सूर्यकान्त मणि अकल्मष रहती है। जो निष्काम मानव श्रद्धा के साथ विष्णुप्रिय भागवत धर्माश्रय ग्रहण करते हैं, वे ही इहकाल तथा परकाल में फलप्रद धर्म का दर्शन करते हैं। विष्णु को प्रसन्न करने वाले धर्मसूमह अत्यन्त सूक्ष्म तथा दुःखहारी हैं। क्षीरशायी भगवान् ने लोकहितार्थ जैसे दधि का सार ग्रहण किया जाता है, उसी प्रकार यहां कहे जा रहे वैशाखधर्म रूपी सार को समस्त धर्मों में से निकाल कर इस धर्म के उद्धारार्थ भगवती लक्ष्मी से इसका वर्णन किया था।।६७-७०।।

मार्गच्छायाविनिर्माणं प्रपदानञ्च वै तथा। व्यजनैर्व्यजनञ्चैव प्रश्रयाणां समर्पणम्॥७१॥
छत्रस्योपानदोर्हानं दानं कर्पूरगन्धयोः। वापीकूपतडागानां निर्माणं विभवे सति॥७२॥
सायाह्ने पानकस्यापि दानं तु कुसुमस्य च। ताम्बूलदानं पापघ्नंगोरसानांविशेषतः॥७३॥
लवणान्विततक्रस्य दानं श्रान्ताय वै पथि। अभ्यङ्गकरणं चैव द्विजपादावनेजनम्॥७४॥

कटकम्बलपर्यङ्कदानं गोदानमेव च। मधुयुक्ततिलानां च दानं पापविनाशनम्॥७५॥
सायाह्ने चेक्षुदण्डानां दानमुर्वारुकस्य च। रसायनप्रदानञ्च पितृनिर्वापणं तथा॥७६॥
एते धर्मा विशिष्योक्ता मासेऽस्मिन्माधवप्रिये।
प्रातः सूर्योदये स्नात्वा शृण्वन्द्विजकुलेरितम्॥७७॥
नित्यकर्माणि कृत्वैवंमधुसूदनमर्चयेत्। कथां माधवमासीयां शृणुयाच्च समाहितः॥७८॥

भगवान् ने कहा था—हे प्रिये! पथ में छायास्थल बनाना, बाबली आदि जलाशय दान, पथिकों को पंखा झलना, आश्रयकामी को आश्रयदान, छत्र-पादुका-कर्पूरादि गन्ध प्रदान करना, यथाशक्ति वापी-कूप-तड़ाग निर्माण, पथ श्रम से थके पथिक को दुग्ध अथवा नमकयुक्त मट्ठा देना, द्विजों की चरणसेवा, अभ्यंग लगाना, उनके चटाई-कम्बल-पलंग-गौ देना, पापनाशक मधुयुक्त तिलदान, सायंकाल गन्ना, ऊर्वारुक तथा रसायन दान, पितृतर्पण आदि मेरे प्रिय वैशाखमास के धर्म कहे गये हैं। द्विजों के आदेशानुसार प्रातः स्नान करके नित्य क्रिया को सम्पन्न करें। तदनन्तर मधुसूदन की अर्चना करने के उपरान्त समाहित होकर वैशाखमास सम्बन्धित विष्णु कथा श्रवण करें।।७१-७८।।

तैलाभ्यङ्गंवर्ज्जयेच्चकांस्यपात्रे तुभोजनम्। निषिद्धभक्षणञ्चैववृथाऽऽलापन्तुवजयेत्॥७९॥
अलाम्बुं गृञ्जनञ्चैव लशुनन्तिलपिष्टकम्। आरनालं भिस्सटञ्चवृतकोशातकीं तथा॥८०॥
उपोदकीं कलिङ्गञ्च शिग्रुशाकञ्च वर्जयेत्। निष्पावानिकुलित्थानिमसूराणि वर्जयेत्॥८१॥
वृन्ताकानि कलिङ्गानिकोद्रवाणिच वर्जयेत्। तन्दुलीयकशाकञ्चकौसुम्भंमूलकंतथा॥८२॥
औदुम्बरं बिल्वफलं तथा श्लेष्मातकीफलम्।
सर्वथा वर्जयेद्विद्वान्मासेऽस्मिन्माधवप्रिये॥८३॥
एतेष्वन्यतमंभुक्त्वासचण्डालोभवेद्ध्रुवम्। तिर्यग्योनियशतंयातिनात्रकार्याविचारणा॥८४॥
एवं मासव्रतं कुर्यात्प्रीतये मधुघातिनः। एवं व्रते समाप्ते तु प्रतिमां कारयेद्विभोः॥८५॥
मधुसूदनदैवत्यां सवस्त्राञ्च सदक्षिणाम्। स्वर्चितां विभवैःसर्वैर्ब्राह्मणायनिवेदयेत्॥८६॥
वैशाखसितद्वादश्यां दद्याद्दध्यन्नमञ्जसा। सोदकुम्भं सताम्बूलं सफलञ्च सदक्षिणम्॥८७॥

तैलमर्दन, कांस्यपात्र में भोजन, निषिद्ध भक्ष्य, वृथालाप, अलावू, गृञ्जन, लहसुन, तिल-पिष्टक, काञ्जी, भूजा अन्न, घृत कोशातकी, उपोदकी, सर्षप, शिग्रुशाक, निष्पाव, कुलत्थ, मसूर, वृन्ताक, कौसुम्भफल, कोद्रव, तन्दुलीयशाक, मूली, गूलर, विष श्लेष्मातकी फल को विचक्षण मानव इस हरिप्रिय वैशाख मास में सर्वथा वर्जित करे। इनमें से वैशाख में एक का भी भक्षण करने वाला निःसंदिग्ध रूप से चाण्डालयोनि लाभ करता है। जो इन सभी का भक्षण करता है, उसे तिर्यक योनि की प्राप्ति होती है। यह निश्चित है। मधुहन्ता विष्णु की प्रीति हेतु इस प्रकार से वैशाखव्रत का आचरण करके मासान्त में व्रत समाप्त होने पर विभु विष्णु की प्रतिमा बनाकर उसमें मधुसूदन की प्राणप्रतिष्ठा करके उसे वस्त्रद्वय से आवरित करें। तदनन्तर अपनी वित्तशक्ति के अनुरूप इनकी पूजा करने के उपरान्त उसे दक्षिणा के साथ ब्राह्मण को दान कर देना चाहिये। वैशाख शुक्ला द्वादशी के दिन यम को उपयुक्त दध्यन्न, जलपूर्ण कुम्भ, ताम्बूल फल तथा दक्षिणा इस मन्त्र से प्रदान करें।।७५-८७।।

दद‌ामि धर्मराजाय तेन प्रीणातु वै यमः। अपसव्यात्समुच्चार्य नामगोत्रे पितुस्ततः॥८८॥
दद्याद्दध्यन्नमक्षय्यं पितृणां तृप्तिहेतवे। गुरुभ्यश्च तथा दद्यात्पश्चाद्दद्याच्च विष्णवे॥८९॥
शीतलोदकदध्यन्नं कांस्यपात्रस्थमुत्तमम्। सदक्षिणं सताम्बूलं सभक्ष्यञ्च फलान्वितम्॥९०॥
ददामि विष्णवे तुभ्यं विष्णुलोकजिगिषया।
इति दत्त्वा यथाशक्त्यशा गाञ्च दद्यात्कुटुम्बिने॥९१॥

यथा—"मैं धर्मराज को यह सब प्रदान कर रहा हूं। इसलिये भगवान् यम मुझ पर प्रसन्न हों।" तदनन्तर जनेऊ अपसव्य करके (विपरीत करके) पितरों का नाम, गोत्र, कहते हुये उनकी प्रसन्नतार्थ दधियुक्त अन्न प्रदान करें। इस प्रकार गुरुगण को दध्यन्न दान करके इस मन्त्र से विष्णु को भी दध्यन्न प्रदान करें। मन्त्र है—मैं विष्णुलोक प्राप्ति हेतु विष्णु को शीतल जल, कांस्यपात्र में उत्तमदधियुक्त अन्न, दक्षिणा, ताम्बूल, फल, नाना भक्ष्य द्रव्य देता हूं।" इस प्रकार से विष्णु को अर्पित करके कुटुम्बी लोगों के साथ यथाशक्ति गौ दान करें।।८८-९१।।

एवं मासव्रतं कुर्याद्यो दम्भेन विवर्जितः। ससर्वैः पातकैर्हीनः कुलमुद्धृत्य वैशतम्॥९२॥
पश्यतामेवभूतानांभित्त्वावैसूर्यमण्डलम्। यातिविष्णोःपरंधामयोगिनामपिदुर्लभम्॥९३॥
व्याख्यात्येवं द्विजकुलवरे माधवीयांश्च धर्मा,
न्विष्णवादीष्टानतिमहितरान्व्याधपृष्टान्समस्तान्॥९४॥
वटः सद्यः पश्यतामेव भूमौ पपाताऽहो पञ्चशाखी द्रुमोऽयम्।
वृक्षात्तस्मात्कोटरे संस्थितो हि व्यालः कश्चिद्दीर्घदेही करालः।
हित्वा देहं पाययोनिं च सद्यः स वै तस्थौ प्राञ्जलिर्नम्रमूर्धा॥९५॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीष सम्वादे भागवतधर्मकथनं नाम विंशोऽध्यायः।।२०।।

"जो दम्भरहित मानव इस प्रकार से वैशाख व्रत करता है, वह सर्वपापरहित होकर सैकड़ों कुल का उद्धार करके देवों के सामने ही सूर्यमण्डल भेद करता हुआ योगीगण दुर्लभ विष्णुलोक प्राप्त करता है।" अहो! व्याध द्वारा पूछे जाने पर द्विजप्रवर शंख ने इस प्रकार से विष्णुप्रिय विष्णुमहिमामय समस्त वैशाखधर्म का वर्णन किया। उस समय वहां पञ्चशाखायुक्त एक वटवृक्ष स्वयं गिर पड़ा। इस वटतरु के कोटर में एक दीर्घदेहधारी कराल सर्प रहता था। वह सर्प उस कोटर से बाहर निकला तथा उसने क्षणकाल में उस सर्परूपी पापदेह का त्याग किया तथा वह अंजलिबद्ध तथा अवनत शिर होकर ऋषि शंख के समक्ष खड़ा हो गया।।९२-९५।।

।।विंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

एकविंशोऽध्यायः

वाल्मीकि जन्म वर्णन, वैशाख महत्व वर्णन

श्रुतदेव उवाच

ततस्तु विस्मितोभूत्वाशङ्खोव्याधसमन्वितः। कोभवानितितंप्राहदशैषाच कुतस्तव॥१॥
केन वाकर्मणासौम्य! मतिस्तवशुभावहा। अकस्मात्तेकथंमुक्तिरेतदाचक्ष्वविस्तरात्॥२॥

श्रुतदेव कहते हैं—तदनन्तर ऋषि शंख तथा व्याध यह देखकर विस्मित हो गये। शंख ने उस सर्प से पूछा—"तुम कौन हो? तुम्हारी यह दशा कैसे हो गयी? हे सौम्य! तुमने ऐसा कौन-सा कर्म किया था जिससे तुमको यह शुभ मुक्ति मिल गयी? हे साधु! तुम्हारी यह सर्पदेह मुक्ति कैसे हो सकी? विस्तार से यह कहो।"।।१-२।।

शङ्खेनैव तदापृष्टो दण्डवत्पतितोभुवि। प्रश्रयाऽवनतो भूत्वाप्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥३॥
अहंपुरा द्विजः कश्चित्प्रयागे बहुभाषणः। रूपयौवनसम्पन्नो विद्यामदसुगर्वितः॥४॥
धनाढ्यो बहुपुत्राढ्यः सदाऽहङ्कारदूषितः। कुसीदस्य मुनेः पुत्रोनाम्नारोचनइत्यहम्॥५॥

ऋषि शंख का यह वचन सुनकर उस दिव्य पुरुष ने दण्डवत् भूपतित होकर तथा विनायावनत होकर अंजलिबद्ध स्थिति में उत्तर दिया—"हे साधु! मैं पूर्वकाल में प्रयाग का निवासी था। मैं तब बहुभाषी ब्राह्मण था। मैं रूप, यौवन, विद्या, धन तथा अनेक पुत्र सम्पन्न था। मैं अहंकार दोष से युक्त था। मेरा नाम था रोचन"।।३-५।।

आसनं शयनं निद्रा व्यवायोऽक्षपरिक्रियाः।
लोकवार्ता कुसीदं वा व्यापारास्ते ममाऽभवन्॥६॥
तन्तुमात्राणि कर्माणि लोकनिन्दाविशङ्कितः। सदम्भश्च सदा कुर्वेनश्रद्धामेकदाचन॥७॥
दुर्बुद्धेर्ममदुष्टस्यकियत्कालोगतोऽभवत्। तदावैशाखमासेऽस्मिञ्जयन्तोनामवैद्विजः॥८॥
श्रावयामासतन्मासधर्मान्भागवतप्रियान्। तत्क्षेत्रेवासिनांपुण्यकर्मणाञ्चद्विजन्मनाम्॥९॥
नारीनराः क्षत्रियाश्चवैश्याः शूद्राःसहस्रशः। प्रातःस्नात्वासमभ्यर्च्यमधुसूदनमव्ययम्॥१०॥
कथां शृण्वन्तिसततं जयन्तेनसमीरिताम्। शुचिर्भूत्वामौनधरावासुदेवकथारताः॥११॥
वैशाखधर्मनिरता दम्भालस्यविवर्जिताः। तांसभाञ्चप्रविष्टोऽहं कौतुकाच्चदिदृक्षया॥१२॥
सोष्णीषेण मया मूर्ध्ना नमस्कारोऽपि न कृतः।
ताम्बूलञ्च मुखे कृत्वा कञ्चुकञ्च मया धृतम्॥१३॥

"आसन, शयन, निद्रा, द्यूतक्रीड़ा, स्त्रीसंसर्ग, लोकवार्त्ता तथा कुशीद ग्रहण (व्याज लेना) मेरा कार्य था। मुझे लोक निन्दा का कोई भय नहीं था। मैं दम्भयुक्त होकर मैं समस्त सूक्ष्म कर्म अवश्य करता था, तथापि उन सब कार्य के प्रति मुझमें लेशमात्र श्रद्धा नहीं थी। क्रमशः मेरी बुद्धि अत्यन्त कलुषित हो गयी। अनेक

कुत्सित कर्मों का आचरण करते-करते मेरा कुछ समय कट गया। वहां तदनन्तर वैशाखमास में एक द्विज आये। उनका नाम जयन्त था। उन्होंने भागवतप्रिय वैशाखधर्म का वर्णन किया। वे जहां बैठकर धर्मचर्चा कर रहे थे, वहां उस क्षेत्र में निवास करने वाले पुण्यात्मा ब्राह्मणों का आश्रम था। क्षत्रिय-वैश्य तथा शूद्रजातीय मनुष्य वहां आकर उन जयन्त विप्र द्वारा कहे जा रहे वैशाख माहात्म्य को नित्य सुनते थे। सभी पवित्र, समाहित, चित्त तथा मौनी होकर वासुदेव कथा में रत थे। उनमें दम्भ नहीं था। वे सभी वैशाख धर्म तत्पर थे। यह सब घटना देखकर मुझे कुतूहल हो गया। मैंने उस सभा को देखने हेतु वहां प्रवेश किया। मेरे मस्तक पर पगड़ी बंधी थी। अतः मैंने प्रणाम नहीं किया। मेरी रुचि तो लौकिक बातों में अधिक थी। मैंने शरीर पर वस्त्र धारण किया था। मेरे मुख में ताम्बूल भरा था।।६-१३।।

कथाविक्षेपमचरं लोकवार्ताभिरञ्जनात्। सर्वेषां चित्तचाञ्चल्यभभूद्वैलोकवार्तया।।१४।।
क्वचिद्वासःप्रसार्याहंक्वचिन्निन्दन्क्वचिद्धसन्। एवंकालोमयानीतःकथायावत्समाप्यते।।१५।।
पश्चात्तेनैव दोषेण सद्योऽल्पायुर्विनंषधीः। सन्निपातेन पञ्चत्वं प्राप्तोऽहञ्चपरे दिने।।१६।।

मैं जब ताम्बूल चबाते वहां पहुंचा, इससे उस पुण्यकथा में विघ्न पड़ गया। मैं उस सभा में बैठकर लौकिक बातें करने लगा। इस प्रकार से श्रोताओं में चांचल्य आया। तदनन्तर कथा जब समाप्त हो गई तब तक कभी मैं वस्त्र हिलाता तो कभी मैं धर्मकथा की निन्दा करता, कभी अट्टहास करता। इस प्रकार समय व्यतीत होता गया तथा अपने इस दुष्कर्म के कारण मेरी आयु तथा बुद्धि का नाश हो गया। सन्निपात के आक्रमण के कारण मैं अगले ही दिन मृत हो गया।।१४-१६।।

तप्तसीसजलैः पूर्णं निरयञ्च हलाहलम्। प्राप्यभुक्त्वा यातनाञ्च मन्वन्तानि चतुर्दश।।१७।।
युक्तेष्वथचक्षेषु तां चतुरशीतिभिः। क्रमाद्योनिषु जातोऽहमिदानीञ्चावसन्द्रुमे।।१८।।

मैंने चतुर्दश मन्वन्तर काल पर्यन्त तप्त शीशे की तरह उत्तप्त जलपूर्ण नरक में तथा हलाहल पूर्ण नरक में वास करके नाना यातना भोग किया। तदनन्तर मैं एक-एक करके ८४ लाख योनियों में घूमता अन्त में सर्पयोनि में जन्म लेकर इस वटवृक्ष के कोटर में रहने लगा।।१७-१८।।

दशयोजनविस्तीर्णे शतयोजनमुन्नते। व्यालोऽहं तामसः क्रूरः सप्तयोजनकोटरे।।१९।।
भूत्वा वसामि विप्रर्षे! कर्मणा बाधितः पुरा। अयुतञ्च समायातानिराहारस्यकोटरे।।२०।।
दैवात्तव मुखाम्भोजसमीरितकथामृतम्। श्रुत्वा चक्षुर्द्वयेनाहंसद्योध्वस्ताशुभोमुने।।२१।।
व्यालयोनिं विसृज्याऽहं दिव्यरूपधरः पुमान्।
प्राञ्जलिःमप्रणतो भूत्वा पादौ ते शरणं गतः।।२२।।
कस्मिञ्जन्मनि त्वंबन्धुर्नजानेमुनिसत्तम्। नमयोपकृतंक्वाऽपिसानुकम्पःकुतःसताम्।।२३।।
साधूनां समचित्तानांसदा भूतदयावताम्। परोपकारप्रकृतिर्न चैषामन्यथामतिः।।२४।।

यह वटवृक्ष दस योजन विस्तीर्ण तथा १०० योजन उन्नत था। हे विप्र! मेरा निवास करने वाला कोटर ही सात योजन का था। मैंने पूर्वकाल में जैसा कर्म किया था, उस कर्म से बाध्य होकर मैं तापस क्रूर सर्प होकर उस कोटर में वास कर रहा था। मैं निराहार होकर १०००० वर्ष तथा निवास कर रहा था। हे मुनिवर! आपके

मुखकमल से जो कथा रूपी अमृत बहिर्गत हो रहा था, अब भाग्यवशात् उसे सुनकर तथा आपका प्रत्यक्ष दर्शन पाकर मैं कलुष रहित हो गया। समप्रति मैं सर्पयोनि का त्याग करके दिव्यरूपी हो गया हूं। मैं हाथ जोड़कर प्रणत होकर आप की चरण की शरण ले रहा हूं। हे मुनिप्रवर! मैं नहीं जानता कि आप मेरे किस जन्म के बन्धु हैं। मैंने कभी किसी का उपकार नहीं किया तथा कभी साधुगण के प्रति भी अनुकम्पा नहीं किया। आपके जैसे समचित्त साधुव्यक्ति सतत् सर्वभूतों के प्रति अपनी दया का वितरण करते हैं, वे कभी भी अपनी परोपकारी प्रवृत्ति को नहीं छोड़ते। अतः विचार आता है कि आपकी ही कृपा से मेरा यह ज्ञानोदय हुआ है।।१९-२४।।

ममाद्याऽनुगृहाण त्वं यथा धर्मे मतिर्भवेत्।
न भूयाद्विस्मृतिः क्काऽपि विष्णोर्देवस्य चक्रिणः॥२५॥
महतां साधुवृत्तानां सङ्गतिश्च सदा भवेत्!। दारिद्र्यमेकमेव स्यान्मदान्धपरमाञ्जनम्॥२६॥
इति तं बहुधा स्तुत्वा प्रणम्य च पुनः पुनः। प्राञ्जलिःप्रणतस्तरथौतूष्णीमेवतदग्रतः॥२७॥
शङ्खो दोर्भ्यां समुत्थाप्यपूर्णप्रेमपरिप्लुतः। पस्पर्श पाणिना चाङ्गंशन्तमेनगताध्वसः॥२८॥
चक्रे चोऽनुग्रहं तस्मिन्दिव्यरूपधरे द्विजे। प्राहतंकृपयाऽऽविष्टोभाविवृत्तान्तमञ्जसा॥२९॥
द्विज! त्वं मासमाहात्म्यश्रवणाच्च हरेरपि।
माहात्म्यश्रवणात्सद्योविध्वस्ताऽखिलबन्धनः॥३०॥
अतिहायकलङ्कञ्च क्रमाद्गत्वापुनर्भुवि। दशार्णे विषमे पुण्ये भविता त्वं द्विजोत्तमः॥३१॥

"हे साधु! अब आप मुझ पर प्रसन्न हो जाईये। मेरी धर्म में मति बनी रहे। चक्रधारी भगवान् विष्णु का कभी भी मेरे हृदय का त्याग न करें। मैं सतत् पवित्र चरित्र महात्मा साधुओं का साथ प्राप्त करूं। दारिद्र ही मदान्ध लोगों के नेत्र का उत्तम अंजन है। मैं सदा दरिद्रता युक्त ही रहूं।" उसने इस प्रकार महर्षि शंख का स्तव करके उनको पुनः-पुनः प्रणाम किया तथा उनके समक्ष मौन होकर बैठ गया। उसका स्तव सुनकर प्रेमाप्लुत ऋषि ने उसे निर्भीक दिव्य पुरुष को उठाया तथा स्निग्धस्पर्श से उसके शरीर का स्पर्श किया। मुनि ने उसके प्रति कृपाप्रदर्शन करके उसके भावी वृत्तान्त को कहकर उस दिव्यरूपधारी व्यक्ति के प्रति विशेष अनुग्रह प्रदर्शित किया। तदनन्तर शंख ने कहा—"हे द्विज! यहां हरि के प्रिय वैशाखमास माहात्म्य के श्रवण से तत्काल तुम्हारा कर्मबन्धन छिन्न हो गया। तुम निष्कलङ्क हो गये। अब तुम पृथिवी पर जन्म लेकर पुण्यमय दशार्ण देश में द्विजोत्तम रूपेण निवास करोगे।"।।२५-३१।।

वेदशर्मेति विख्यातः सर्ववेदविशारदः। तत्रतेभविताजातिस्मृतिरात्यन्तिकीशुभा॥३२॥
तथा स्मृतानुबन्धस्त्वं त्यक्तसर्वेषणः शुभः।
करोषि सकलान्धर्मान्वैशाखोक्तान्हरिप्रियान्॥३३॥
निर्द्वन्द्वोनिःस्पृहोऽसङ्गोगुरुभक्तोजितेन्द्रियः। सदाविष्णुकथालापोभवितातत्रजन्मनि॥३४॥
ततःसिद्धिंसमाप्याऽथविध्वस्ताऽखिलबन्धनः। प्राप्नोषिपरमंधामयोगैरपिदुरासदम्॥३५॥
माभैषीःपुत्र! भद्रंतेभवितामत्प्रसादतः। हास्याद्भयात्तथाक्रोधाद्द्वेषात्कामादथाऽपिवा॥३६॥

स्नेहाद्वा सकृदुच्चार्य विष्णोर्नामाऽघहारि च।
पापिष्ठा अपि गच्छन्ति विष्णोर्धाम निरामयम्॥३७॥

तुम्हारा नाम वेदशर्मा प्रसिद्ध होगा। तुम सर्ववेदविशारद होगे। इस जन्म में तुम्हारी पूर्वजन्मस्मृति जाग्रत रहेगी। इस स्मृति के प्रभाव से तुम्हारे मन में किसी प्रकार की कामना को स्थान नहीं मिलेगा। तुम मधुसूदन को प्रिय वैशाख मास में शास्त्रोक्त समस्त धर्म का आचरण करोगे। तुम गुरुभक्त तथा जितेन्द्रिय रहोगे। तुम्हारे मन में द्वन्द्व, स्पृहा तथा (विषय) सङ्ग नहीं होगा। इस जन्म में तुम विष्णुकथा का आलाप करोगे। इसी जन्म में तुम्हारे समस्त कर्मबन्धन छिन्न होंगे तथा तुमको सिद्धि प्राप्त होगी। हे पुत्र! भयरहित हो जाओ। जो योगिगण के लिये भी दुर्लभ परमपद है, उसे तुम प्राप्त करोगे। मेरी कृपा से तुम्हारा मंगल हो। हे वत्स! हास्य में, भय-क्रोध-द्वेष-काम किंवा स्नेह प्रयुक्त हो, पापीगण भी एक बार हरि के पापहारी नाम का श्रवण करने से विष्णु के निरामय धाम में जाने में समर्थ हो जाते हैं।।३२-३७।।

किमु तच्छ्रद्धया युक्ता जितक्रोधा जितेन्द्रियाः।
दयावन्तः कथां श्रुत्वा गच्छन्तीति द्विजोत्तम!॥३८॥

हे द्विजोत्तम! श्रद्धायुक्त, जितेन्द्रिय, दयावान् तथा क्रोधरहित मानवगण हरिनाम श्रवण करके विष्णु के परमपद की प्राप्ति कर लेते हैं। इस विषय में अधिक क्या कहूं।।३८।।

केचित्केवलया भक्त्या कथालापैकतत्पराः।
सर्वधर्म्मोज्झिता वाऽपि यान्ति विष्णोःपरम्पदम्॥३९॥
द्वेषादिना न भक्त्या वा केचिद्विष्णुमुपासते। तेऽपियान्तिपरंधामपूतनेवासुहारिणी॥४०॥
महद्भिःसङ्गतोनित्यंवाग्विसर्गस्तदाश्रयः। मुमुक्षणाञ्चकर्तव्यःसःविधिःश्रुतिचोदितः॥४१॥
स वाग्विसर्गो जनताऽघविप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्तिसाधवः॥४२॥
यः कष्टसेवां न च काङ्क्षते विभुर्न वा समं भूरि न रूपयौवने।
स्मृतः सकृद्गच्छति धाम भास्वरं कम्वा दयालुं शरणं व्रजेत॥४३॥

इसी प्रकार से यदि कोई भक्ति के साथ केवल कथा में ही रत है अथवा कोई अन्य सब धर्मक्रिया का त्याग करके केवल विष्णुमहिमा को सुनता है, ये सभी विष्णु के परमपद का लाभ करते हैं। कोई-कोई मानव अन्याय देवगण से द्वेष करके केवल भक्ति के साथ विष्णु की ही उपासना करता है, ऐसा मानव भी पूतना की ही तरह जीवन त्याग करके विष्णु के परमपद का लाभ करता है। वेद कहते हैं कि मुमुक्षुगण महात्मागण से सतत् संसर्ग, विष्णु के वाक्यों का वर्णन, उनका आश्रय, यह सब ग्रहण करते हैं। जिनके वाक्य जनसाधारण के पापों का हरण करते हैं, जिनके माहात्म्य की प्रकाशक श्लोकावली अर्थहीन वाक्यवाली होकर भी पापीगण का पाप दूर करती है, जिनके अनन्त नाम यशपूर्ण हैं, साधुजन सतत् उसी कृष्णनाम का कीर्त्तन, श्रवण तथा ग्रहण करते हैं। जो भक्तगण की कष्टमय सेवा की आकांक्षा नहीं करते, प्रचुर आसन तथा रूपयौवन जिनको अभीष्ट नहीं है, जिनका एक बार स्मरण करने से भक्तगण भास्वर विष्णुधाम में गमन करते हैं, ऐसे दयालु विष्णु की शरण कौन ग्रहण नहीं करेगा?।।३९-४३।।

तमेव शरणं याहि नारायणमनामयम्। भक्तवत्सलमव्यक्तं चेतोगम्यं दयानिधिम्।।४४।।
कुरु सर्वानिमान्धर्मान्वैशाखोक्तान्महामते!। तेन तुष्टाजगन्नाथःशर्म तेच विधास्यति।।४५।।
इत्युक्त्वा विररामाऽथव्याधं दृष्ट्वा सुविस्मितः। सदिव्यःपुरुषःप्राहपुनस्तंमुनिपुङ्गवम्।।४६।।

"हे साधु! वे विष्णु भक्तवत्सल हैं। वे अव्यक्त, चित्त से गम्य तथा दयानिधि हैं। तुम उन अनामय नारायण की शरण ग्रहण करो। हे महामति! तुम वैशाखोक्त इस धर्म का आचरण करो। वैशाखधर्म के प्रभाव से वे जगत्पति तुम्हारा श्रेयविधान करेंगे।'' ऋषि शंख ने यह कहा तथा मौन हो गये। तब उस दिव्य पुरुष ने वहां व्याध को देखकर विस्मित होकर ऋषि प्रवर शंख से कहने लगे।।४४-४६।।

दिव्यपुरुष उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि त्वया शङ्ख! दयालुना।
दिष्ट्या गता मे दुर्योनिर्यामि चैव पराङ्गतिम्।।४७।।
इति तञ्च परिक्रम्य ह्यनुज्ञातो दिवं ययौ। ततःसायमभूद्राजञ्छङ्खोव्याधेनतोषितः।।४८।।
सन्ध्यांसायन्तनींकृत्वारात्रिशेषंनिनायच। नानाख्यानैश्चभूषानांदेवानाञ्चमहात्मनाम्।।४९।।

दिव्य पुरुष कहता है—''हे शंख! आप दयावान हैं। आपका दर्शन पाकर मैं धन्य तथा अनुगृहीत हो गया। भाग्यवशात् ही मुझे आपका दर्शन मिला है। इसी कारण मेरी दुष्टयोनि दूर हो गयी। मैंने परमगति भी पा लिया।'' दिव्यपुरुष ने यह कहकर ऋषि की प्रदक्षिणा किया। वह ऋषि की अनुमति लेकर स्वर्ग चला गया। हे राजन्! तदनन्तर सायंकाल में ऋषि शंख ने व्याध द्वारा विशेष रूप से आप्यायित होकर सायं-सन्ध्या की उपासना किया। महात्मा शंख ने राजाओं, देवगण तथा अवतारों की लीला का वंशवर्णन प्रभृति विविध उपाख्यान वर्णन करते हुये वह रात्रि व्यतीत किया।।४७-४९।।

लीलाभिरवताराणां दृष्टगोष्ठिभिरेव च। ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय पादौप्रक्षाल्यवाग्यतः।।५०।।
ध्यायंश्च तारकम्ब्रह्म कृत्वा शौचादिसत्क्रियाम्।
वैशाखे मेषगे सूर्ये स्नात्वा प्राक्च भगोदयात्।।५१।।
कृत्वा सन्ध्यादिकं कर्म तथा सन्तर्प्य चाऽखिलान्।
व्याधमाहूय हृष्टात्मा मूर्ध्नि प्रोक्ष्य निरीक्ष्य च।।५२।।
रामेति द्व्यक्षरं नामददौवेदाधिकं शुभम्। विष्णोरेकैकनामाऽपिसर्ववेदाधिकंमतम्।।५३।।
तेभ्यश्चाऽनन्तनामभ्योऽधिकं नाम्नांसहस्रकम्। तादृङ्नामसहस्रेणरामनामसमंमतम्।।५४।।
तस्माद्रामेति तन्नामजपव्याध! निरन्तरम्। धर्मानेतान्कुरुव्याध! यावदामरणान्तिकम्।।५५।।
ततस्ते भविता जन्म वल्मीकस्य ऋषेःकुले।
वाल्मीकिरिति नाम्ना च भूमौ ख्यातिमवाप्स्यसि।।५६।।
इति व्याधं समादिश्य प्रतस्थे दक्षिणां दिशम्।
व्याधोऽपि तं परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः।।५७।।

किञ्चिद्दरानुगो भूत्वा सरुदन्विरहातुरः। यावद्दृष्टिपथं यावत्पश्यंस्तस्यगतिंपुनः॥५८॥
पुनर्निववृते कृच्छ्रात्तमेव हृदि चिन्तयन्। वनं निर्माय तन्मार्गेप्रपांकृत्वासुनिर्मलाम्॥५९॥

ऋषि शंख ने ब्राह्ममुहूर्त में उठकर मौनी रहकर पादप्रक्षालन किया तथा शौचादि क्रिया का सम्पादन करके तारकब्रह्म का ध्यान करने लगे। तदनन्तर उन्होंने मेष राशीस्थ सूर्ययुत वैशाख में सूर्योदय के पूर्व स्नान, सन्ध्या-वन्दनादि, देव-ऋषि-पितर तथा अखिल लोकों का तर्पण किया। तत्पश्चात् उन्होंने व्याध को बुलाकर प्रसन्न अन्तःकरण से उसका मस्तक जलधारा से प्रक्षालित किया। तदनन्तर वेदसार शुभप्रद 'राम' यह दो अक्षर का मन्त्र उसे अर्पित किया। तत्पश्चात् महर्षि शंख कहने लगे—"हे व्याध! विष्णु के एक-एक नाम देवताओं के समस्त नामों की तुलना में श्रेष्ठ हैं। उनका सहस्रनाम देवों के अनन्त नामों से श्रेष्ठ है। ऐसे सहस्रनाम के समान एक राम का नाम है। अतएव तुम निरन्तर राम नाम का जप करो। हे व्याध! जब तक तुम्हारी मृत्यु न हो जाये, तब तक इन सब धर्म का अनुष्ठान करो। इसके पश्चात् इस धर्म के प्रभाव से तुम वल्मीक ऋषि के कुल में जन्म लोगे। तुम वाल्मीकि नाम से भूतल पर प्रसिद्ध हो जाओगे।" ऋषि शंख व्याध को यह आदेश देकर दक्षिण देश चले गये। व्याध ने भी उनकी प्रदक्षिणा करके पुनः-पुनः प्रणाम किया था तथा कुछ दूर गुरु के पीछे चलते हुये उनको विदा करते समय विरहाकुल होकर रोदन करने लगा। जब वे जाने लगे तब जहां तक वे दिखलाई पड़े, वह उनको ही सश्रद्ध भाव से देखता रहा। जब ऋषि शंख उसकी नेत्रों से ओझल हो गये, तब व्याध उनका हृदय से चिन्तन करते हुये अति कष्टपूर्वक वापस लौटा। तदनन्तर उसने वैशाखधर्म पालन करते हुये मार्ग में सुन्दर जल वाली बावली बनवायी।।५०-५९।।

अतियोग्यानिमान्धर्मान्वैशास्त्रोक्तांश्चकार ह।
वन्यैः कपित्थपनसैर्जम्बूचूतादिभिः फलैः॥६०॥
मार्गगानां श्रमार्तानामाहारं परिकल्पयन्। उपानद्भिश्चन्दनैश्च छत्रैश्च व्यजनैरपि॥६१॥
वालुकास्तरणोपेतच्छायाभिश्च क्वचित्क्वचित्।
आजहाराथ पान्थानां श्रमं स्वेदोद्भवं तथा॥६२॥
प्रातः स्नात्वा दिवारात्रं जपन्नामेति वै मनुम्।
व्याधजन्मनि नामाऽसौ वल्मीकस्य सुतोऽभवत्॥६३॥

वह वन में निवास करते हुये वैशाख योग्य धर्मों का आचरण करने लगा। वह वनोत्पन्न कपित्थ, पनस, खजूर, जम्बू तथा आम्रादि फल द्वारा श्रम से थके लोगों को आहार प्रदान करता था। मार्ग में कहीं श्रमार्त्त पथिकों को पादुका, चन्दन, छत्र तथा पंखा प्रदान करता था। कहीं उत्तप्त बालुका भूमि पर छाया का निर्माण करता जहां पथिकों का मार्ग श्रम से उत्पन्न स्वेद समाप्त होता था। यह व्याध प्रातःस्नान करके अहोरात्र 'राम' नाम का जप करता रहता था। वह व्याध अगले जन्म में वल्मीक का पुत्र हुआ।।६०-६३।।

कृणुर्नाम मुनिः कश्चित्तस्मिन्नेव सरोवरे। तपो वै दुस्तरं तेपे वाह्यव्यापारवर्जितः॥६४॥
वल्मीकमभवद्देहे तस्य कालेन भूयसा। वल्मीक इति तं प्राहुरतो वै मुनिपुङ्गवम्॥६५॥
पश्चात्तपोविरामान्तेकृणौस्मृतिपथंगते। स्त्रियोऽनुस्मरतोराजन्स्खलितंचेन्द्रियंमुने:॥६६॥

जग्राह शैलुषी काचित्तस्यां जज्ञे वनेचरः। वाल्मीकिरिविख्यातोभुवनेषुमहायशाः।।६७।।
यो वै रामकथांदिव्यांस्वैःप्रबन्धैर्मनोहरैः। लोकेप्रख्यापयामासकर्मबन्धनिकृन्तनीम्।।६८।।

हे राजन्! कृणु नामक एक मुनि वाह्य व्यापार से रहित होकर वहां एक सरोवर तट पर दुश्चर तपःश्चरण कर रहे थे। उन्होंने अनन्त काल तक तप किया था। क्रमशः दीमकों ने उनकी देह पर बांबी बना लिया। तभी उस मुनिश्रेष्ठ को सभी वल्मीक कहने लगे। हे राजन्! जब उन्होंने तपस्या से विराम पाया, तब उन्होंने रमणी का स्मरण किया जिससे उसका वीर्य स्खलित हो गया। एक शैलूषी ने उसे ग्रहण किया (शैलूषी का अर्थ आप्टे शब्दकोष में है संगीत से व्यवसाय चलाने वाली)। उस शैलूषी के उदर से एक वनेचर व्याध ने जन्म लिये। यही वनेचर पृथिवी पर वाल्मीकि कहलाया। इन्होंने अपने रचित प्रबन्ध द्वारा दिव्य कथायुक्त कर्मबन्ध काटने में समर्थ त्रैलोक्य प्रसिद्ध 'रामायण' का प्रणयन किया।।६४-६८।।

श्रुतदेव उवाच

पश्य वैशाखमाहात्म्यं भूपालाद्याऽपि भूतिदम्।
व्याधोऽप्युपानहौ दत्त्वा ऋषित्वं प्राप दुर्लभम्।।६९।।
य इदं परमाख्यानं पापघ्नं रोमहर्षणम्। शृणुयाच्छ्रावयेद्वाऽपि न भूयःस्तनपोभवेत्।।७०।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीष-सम्वादे व्याधोपाख्याने वाल्मीकेर्जन्मकथनंनामैकविंशोऽध्यायः।।२१।।

श्रुतदेव कहते हैं—हे राजन्! वैशाख का प्रभाव देखो! यह वैशाखमास अभी भी भूतल पर सम्पत्प्रद है। व्याध ने पादुका की जोड़ी दान करके दुर्लभ ऋषित्व लाभ किया। जो मानव पापघ्न तथा रोमांचित करने वाले इस परम उपाख्यान को सुनाते अथवा श्रवण करते हैं, उनको पुनः संसार में जन्म लेकर मातृस्तनपान नहीं करना पड़ता।।६९-७०।।

।।एकविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

द्वाविंशोऽध्यायः

कलिधर्म निरूपण, पितृमुक्ति, वैशाखदर्शन माहात्म्य

मैथिलेय उवाच

का ह्यस्मिंस्तिथयः पुण्या मासे वैशाखसञ्ज्ञके।
कानि दानानि शस्तानि तासु तासु विशेषतः॥
काः प्रख्याताश्च वै लोक एतदाचक्ष्व विस्तरात्॥१॥

मिथिलाधिपति पूछते हैं—वैशाखमासीय कौन-कौन तिथियां पुण्यजनक हैं? विशेषतः उस सब तिथि पर कौन-कौन दान प्रशस्त है? त्रैलोक्य में कौन-कौन सी तिथियां प्रशस्त हैं? कृपया विस्तारपूर्वक कहिये।।१।।

श्रुतदेव उवाच

त्रिंशच्च तिथयः पुण्या वैशाखे मेषगे रवौ॥२॥
एकादश्यां कृतं पुण्यं कोटिकोटिगुणं भवेत्। सर्वदानेषुयत्पुण्यंसर्वतीर्थेषुयत्फलम्॥३॥
समवाप्नोति वैशाख एकादश्यां जलाप्लुतः। स्नानंदानंतपोहोमोदेवतार्चनसत्क्रियाः॥४॥
कथायाः श्रवणञ्चैव सद्यो मुक्तिविधायकम्।
रोगाद्युपहतो यस्तु दारिद्र्येणाऽपि पीडितः॥५॥
श्रुत्वाकथामिमंपुण्यांकृतकृत्योभवेन्नरः। अस्नात्वा चाऽप्यदत्त्वाचयेननीताइमाःशुभाः॥६॥
स गोघ्नश्च कृतघ्नश्च पितृघ्नश्च महान्स्मृतः।
जलाशयाश्च स्वाधीनाः स्वाधीनञ्च कलेवरम्॥७॥
माधवोमनसा सेव्यः कालश्च सुगुणोत्तमः। साधुवश्च दयावन्तः कोनसेवेतसाधवम्॥८॥

श्रुतदेव कहते हैं—मेष राशीस्थ सूर्य में वैशाख मास की तीसों तिथियां पुण्यप्रद हैं। इनमें एकादशी कृत पुण्य अन्य तिथियों की अपेक्षा करोड़ों गुणित अधिक है। समस्त दान तथा तीर्थसेवा का जो पुण्य है, वैशाखमास की एकादशी में स्नान करने का वही फल है। इस एकादशी के दिन स्नान-दान-तप-होम-देवार्चन-विष्णुकथा श्रवण आदि सभी क्रियायें मुक्तिप्रद हैं। रोगाभिभूत तथा दरिद्रता से पीड़ित मानव भी इस वैशाखी एकादशी के दिन विष्णु की पवित्र कथा का श्रवण करके कृतार्थ हो जाते हैं। जो मनुष्य स्नान तथा दान न करके इन सभी शुभावह पुण्यदिवस को व्यर्थ जाने देता है, उसे भीषण गोहत्या तथा पितृवध का फल प्राप्त होता है। जलाशय समूह पर सबका समान अधिकार होता है। प्राणीगण का कलेवर अपने-अपने अधीन है। यह काल भी उत्तमगुणयुक्त है। साधुगण दयाशील हैं। वे सभी को धर्मोपदेश देते हैं। ऐसा सुयोग पाकर कौन माधव की सेवा नहीं करेगा।।२-८।।

दरिद्रैश्च धनाढ्यैश्चपङ्गुभिश्चाऽन्धकैस्तथा। षण्ढैश्चविधवाभिश्चनारीभिश्चनरैस्तथा॥९॥
कुमारयुवधृद्धैश्च रोगार्तैरपिभूमिप। अतीवसुखसाध्यो हि धर्मो वैशाखगोचरः॥१०॥

मासमेनमनुप्राप्य धर्मान्कुरु इमाञ्छुमान्। कोन यत्नञ्चकुरुतेतसत्कोन्वपरःशुभः।।११।।
योऽतीवसुलभान्धर्मान्न करोति नराऽधमः। तस्यैव सुलभा लोकानारकानात्रसंशयः।।१२।।
अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि तस्मिन्मासे च कोत्तमा।
तां तिथिं सर्वपापघ्नीं दध्नः सारमिवोद्धृताम्।।१३।।
चैत्रेमासि महापुण्ये मेषसंस्थे दिवाकरे। पापघ्नी पितृदैवत्या गयाकोटिफलप्रदा।।१४।।
अत्रैव श्रूयते पुण्या पितृगाथा पुरातनी।
श्रुणु तां सत्कथां राजन्सावर्णौ शासति क्षितिम्।।१५।।
त्रिंशत्कलियुगस्याऽन्ते सर्वधर्मविवर्जिते। आनर्ते तुद्विजः कश्चिद्धर्मवर्णइति श्रुतः।।१६।।

हे भूपाल! दरिद्र, धनाढ्य, पंगु, अन्धे, क्लीव, विधवा, नारी, नर, कुमार, युवा, वृद्ध तथा रोग से अभिभूत वैशाख सम्बन्धित धर्म सबके लिये अत्यन्त सुखसाध्य है। इसलिये तुम भी इस वैशाख मास आने पर वैशाखोक्त धर्मों का अनुष्ठान करो। जो वैशाखधर्म साधनार्थ यत्नतत्पर होते हैं, उनसे उत्तम और कौन है? जो नराधम वैशाख के इस अतीव सुखपूर्वक प्राप्त धर्म का अनुष्ठान नहीं करते, नरक उनके लिये ही सुलभ है, इसमें संशय नहीं है। तदनन्तर जैसे दही मथ कर उसका सार रूप नवनीत निकाला जाता है तथा वह उसका साररूप होता है, तदनुरूप मैं (धर्मसमूह का मंथन करके) साररूप वैशाखमास की पापनाशन उत्तम तिथि का वर्णन करता हूं। चान्द्र चैत्रमास में जब सूर्य मेषराशि में रहते हैं, तब पितृदैवत्या अमावस्या तिथि अत्यन्त पुण्यमयी है। यह करोड़ों गया गमन (श्राद्धादि) के समान फलप्रद हैं। इस तिथि के सम्बन्ध में जो पुण्यमयी पितृगाथा कही गयी है, उसे सुनो। हे राजन्! तीसवें कलि के अवसान काल में जब सावर्णि मनु का शासन था तब पृथिवी से सभी धर्म तिरोहित हो गये। उस समय आनर्त्त देश में धर्मवर्ण नामक प्रसिद्ध ब्राह्मण रहते थे।।९-१६।।

दृष्ट्वाकलियुगे राजञ्जनान्पापरतान्मुनिः। तस्यैव प्रथमे पादे वर्णधर्मविवर्जिते।।१७।।
सकदाचित्सत्रयागंमुनीनांतुमहात्मनाम्। अगमत्पुष्करेक्षेत्रेकुर्वतां मौनधारिणाम्।।१८।।
तत्र चासन्पुण्यकथा ऋषीणां शास्त्रगोचराः। तत्रकेचित्कलियुगं प्रशशंसुर्धृतव्रताः।।१९।।
कृतेयद्वत्सरात्साध्यं पुण्यं माधवतोषणम्। त्रेतायां मसतःसाध्यं द्वापरे पतो नृपे!।।२०।।

हे राजन्! द्विज धर्मवर्ण ने कलि के प्रथमपाद में मानवगण को पापकर्मा तथा वर्णाश्रमधर्म रहित देखकर पुष्कर की यात्रा किया। उस समय पुष्करक्षेत्र में महात्मा मौनी मुनिगण का यज्ञ प्रवर्त्तित हो रहा था। उस यागभूमि में शास्त्रज्ञ ऋषिगण एकत्र होकर विविध शास्त्रीय कथाओं की अवतारणा कर रहे थे। इनमें से कुछ व्रतशील ऋषिगण द्वारा कलिकाल की प्रशंसा की गयी। हे राजन्! उनका कथन था कि सत्ययुग में एक वर्ष पर्यन्त किये गये जिस कार्य से विष्णु प्रसन्न होते हैं, त्रेता में एक मास में वही कार्य करने से तथा द्वापर में एक पक्ष वही कार्य करने से विष्णु सन्तुष्ट होते हैं।।१७-२०।।

तस्माद्दशगुणंपुण्यंकलौविष्णुस्मृतैर्भवेत्। अत्यल्पमपिवैपुण्यंकलौकोटिगुणंभवेत्।।२१।।
दयापुण्यविहीने तु दानधर्मविवर्जिते। दयादानञ्च कुरुते सकृदुच्चार्य वै हरिम्।।२२।।

स एवचोर्ध्वगो नूनं दुर्भिक्षे चान्नदस्तथा। एतत्प्रसङ्गावसरे नारदोऽभ्येत्यवै मुनिः॥२३॥
करेणैकेन शिश्नञ्च जिह्वां चकेन वै हसन्। प्रगृह्योन्मत्तवत्तत्र ननर्त मुनिसत्तमः॥२४॥
सभ्यास्तदातमित्यूचुःकिमेतदितिनारद!। प्रत्युवाचसतान्सर्वान्नृत्यंकुर्वन्हसन्सुधीः॥२५॥

लेकिन कलिकाल में मात्र विष्णु स्मरण से उन सबसे भी दस गुना फललाभ होता है। कलिकाल में किया गया अत्यल्प पुण्य भी तब (पूर्व युगों की तुलना में) करोड़ों गुना फलप्रसु होता है। इस कलिकाल में दया, पुण्य तथा दानधर्म अत्यन्त विरल परिलक्षित होता है। जो व्यक्ति मात्र एक बार भी हरि नामोच्चारण करके दया करता है, दान देता है तथा दुर्भिक्ष में अन्नदान करता है, उसकी ऊर्ध्वगति निश्चित रूपेण होती है। मुनिगण के बीच तब यही कथनोपकथन चल रहा था, तभी वहां पर देवर्षि नारद उपस्थित हो गये। वे ऋषिप्रवर नारद उस समय एक हाथ में अपना लिंग तथा अन्य हाथ से अपनी जिह्वा पकड़े उन्मत्तवत् नृत्य कर रहे थे। सभी सभासदों ने नारद की यह विचित्र दशा देखकर उनसे कहा—"हे नारद! आपकी यह क्या दशा है?" लेकिन देवर्षि ने नृत्य करना नहीं छोड़ा तथा उत्तर दिया।।२१-२५।।

सन्तोषाद्यदिहप्रोक्तंनृत्यद्भिर्भावितात्मभिः। सिद्धावयंनसन्देहःपुण्योऽयंकलिरागतः॥२६॥
तत्सत्यञ्चनसन्देहो बहु स्वल्पेन साध्यते। स्मरणात्तोषमायाति केशवःक्लेशनाशनः॥२७॥
तथापि वः प्रवक्ष्यामि दुर्घटञ्च द्वयं ध्रुवम्।
शिश्नस्य निग्रहः पुत्रा! जिह्वाया अपि नित्यशः॥२८॥

देवर्षि कहते हैं—आप सब तपस्वी तथा आत्मज्ञानी हैं। आपने इस नृत्य के सम्बन्ध में पूछा है, उस सम्बन्ध में आपका यह कहना है कि मधुसूदन की प्रसन्नता होने पर ही सर्वसिद्धि लाभ होता है। आपने यह भी कहा कि आपलोगों को हरिकृपा से ही सिद्धि मिल सकी है। इस सम्बन्ध में मुझे संदेह नहीं है। क्लेशनाशन केशव शरण लेने मात्र से ही सन्तुष्ट हो जाते हैं, तथापि आप लोगों से दो बातें कहनी हैं। कलिकाल में ये दोनों बातें दुर्घट रूप हैं। हे पुत्रगण! शिश्न (लिंग) तथा रसना पर वश करना अत्यन्त कठिन है!।।२६-२८।।

द्वयं यद्धि भवेद्यस्य स एव स्याज्जनार्दनः। भवद्भिर्नात्रस्थातव्यंतस्मात्कलियुगागमे॥२९॥
पाखण्डं भारतंहित्वा सञ्चरध्वंयथासुखम्। यत्र कुत्रापि देशेषु मनो यत्र प्रसीदति॥३०॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा मुनयः शंसितव्रताः। सत्रं समाप्य सहसा ययुस्तेचयथासुखम्॥३१॥
धर्मवर्णोऽपितच्छ्रुत्वात्यक्तुंभूमिं मनोदधे। सव्रतञ्चोर्ध्वतेजस्कंधृत्वादण्डकमण्डलू॥३२॥
जटावल्कलधारीच भूत्वाचैवं ययौपुनः। कलौयुगेत्वनाचारान्द्रष्टुंविस्मितमानसः॥३३॥
तत्राऽपश्यज्जनान्घोरान्पापाचाररतान्खलान्।
पाखण्डिनो द्विजाः सर्वे शूद्राः प्रव्राजिनस्तथा॥३४॥
भर्तारं द्वेष्टिं भार्या च शिष्यो द्वेष्टि गुरुं तथा। भृत्यश्च स्वामिहन्ता च पुत्रः पितृवधे रतः॥३५॥
शूद्रप्राया द्विजाः सर्वे बस्तप्रायाश्च धेनवः।
गाथाप्रायास्तथा वेदाः क्रियासाम्याः शुभाः क्रिया:॥३६॥

भूतप्रेतपिशाचाद्याः फलास्तत्र देवताः। ता एव श्रद्धयाऽर्चन्तिजनाःपापरताःशिताः॥३७॥

"यह कलि में अत्यधिक दुर्घट है। जिन्होंने इन दोनों को वशीभूत कर लिया है, वह तो कलिकाल में स्वयं जनार्दन ही है। हे ऋषिगण! यह कलिकाल है। आप यहां न रहें। आप सब इस पाषण्डपूर्ण भारतभूमि को छोड़कर यथेच्छ विचरण करिये। जहां जाने पर आपका मन प्रसन्न हो जाये वहां रहिये" ऋषियों ने देवर्षि नारद का वाक्य सुना तथा शीघ्रता से वह यज्ञ समाप्त करके वे लोग अपने-अपने अभिलषित स्थानों पर चले गये। तब धर्मवर्ण ने भी यह विवरण सुनकर भारतभूमि त्यागने के लिये विचार किया। उन्होंने कलिकाल के लोगों का अनाचार देखा, जिससे वे विस्मित हो गये। उन्होंने तब ऊर्ध्व तेजस्क व्रत का अवलम्बन लेकर दण्ड-कमण्डलु-जटा-वल्कलधारी होकर भारतभूमि का त्याग कर दिया। सभी ऋषिगण अपनी-अपनी अभिलषित जगहों पर चले गये, तब धर्मवर्ण ने देखा कि लोग दुष्टस्वभाव होकर भीषण पापाचारी हो गये। द्विजगण पाखण्डी हो गये। शूद्र समूह ने प्रवज्या ग्रहण कर लिया। पत्नी भी स्वामी से द्वेष करने लगीं। शिष्यगण गुरुद्वेषी हो गये। भृत्यगण प्रभु के विनाश में लग गये तथा पुत्र पिता का वध करने लगे। उन्होंने और भी देखा कि द्विजगण तो शूद्रवत् हो गये हैं। गौयें दुग्धहीन हैं। वेद तो गाथा के समान हो गया, शुभ क्रिया कलाप लौकिक क्रियावत् हो गये हैं। भूत-प्रेत-पिशाच तथा अपदेवगण फलप्रद हो रहे हैं। पापी क्रूर मनुष्यगण श्रद्धा के साथ ऐसे अपदेवताओं का पूजन कर रहे हैं!।।२९-३७।।

सर्वे व्यवायनिरतास्तदर्थे त्यक्तजीविताः। कूटसाक्ष्यप्रवक्तारः सदा कैतवमानसाः॥३८॥
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं सदा कलौ। सर्वेषां हैतुकीविद्यासापूज्या नृपमन्दिरे॥३९॥
गीताद्याश्च कला विद्या नृपाणाञ्च प्रियावहाः।
हीनाश्च पूज्यतां यान्ति नोत्तमाश्च कलौ युगे॥४०॥
श्रोत्रियाश्च द्विजाः सर्वे दरिद्राःस्युःकलौयुगे। विष्णुभक्तिर्नराणांतुप्रायशोनैववर्तते॥४१॥

सभी मनुष्य स्त्री संभोगरत हैं। वे तो नारी के लिये जीवन त्याग तक करने के लिये उद्यत हैं! वे झूठी गवाही देने वाले, धूर्त्त, मन में कुछ वाणी में कुछ तथा कार्य में कुछ, इस प्रकार से जिनके मन-वाणी-कर्म में भेद है, हेतुशास्त्रवादी हैं। राजदरबार में भी हेतुविद्या का ही सम्मान है। गीत-वाद्य-तथा कलाविद्या ही कलि में राजाओं को प्रियरूप है। कलिकाल में हीन व्यक्ति ही पूजित होते हैं। उत्तम की पूजा नहीं होती। कलि में वेदज्ञ ब्राह्मण दरिद्र हो जाते हैं। मनुष्यों में प्रायः विष्णुभक्ति दिखलाई ही नहीं पड़ती।।३८-४१।।

प्रायः पाखण्डभूयिष्ठं पुण्यक्षेत्रं भविष्यति। शूद्रा धर्मप्रवक्तारोजटिलास्तापसाःकलौ॥४२॥
सर्वे चाल्पायुषो मर्त्या दयाहीनाः शठा जनाः। सर्वे धर्मप्रवक्तारः सर्वेचक्रहणोत्सवाः॥४३॥
स्वार्चनं चाऽपि हीच्छन्ति वृथा निन्दापरायणाः।
असूयानिरताः सर्वे प्रभोः स्वगृहमागते॥४४॥
भ्राता च भगिनींगन्ता पिता पुत्रीञ्चवैकलौ। सर्वेऽपिशूद्रीनिरताःसर्वेवाराङ्गनारताः॥४५॥

कलि में तीर्थादि पुण्यक्षेत्रों में भी पाखण्ड भरपूर होगा। शूद्रगण धर्मवक्ता तथा जटा रखने वाले तपस्वी कहे जायेंगे। मनुष्य दयाहीन-शठ तथा अल्पायु होगा। सभी लोग धर्मवक्ता तथा परद्रव्य हरण परायण होंगे।

मनुष्य सबसे पूजित होने की इच्छा करेंगे। वे सभी व्यर्थ निन्दारत हो जायेंगे। भृत्यगण स्वामी से असूया करेंगे तथा वहां से आकर उनकी निन्दा में लगे रहेंगे। भ्राता बहन से तथा पिता कन्या से व्यभिचार करेगा। कलि के लोग प्रायः शूद्रा में निरत तथा वेश्यासक्त रहेंगे।।४२-४५।।

साधून्नैव विज्ञानन्ति बहूपापांश्च मन्यते। व्यक्तीकुर्वन्ति साधूनांदोषमेकंदुराग्रहाः।।४६।।
पापानां दोषजातानि गुणत्वेन वदन्ति हि। दोषमेव प्रगृह्णन्ति कलौ तु विगुणा जनाः।।४७।।
जलौका धर्मसंयुक्ता रक्तंपिबतिनोपयः। औषध्यःसत्त्वहीनाहिऋतूनांव्यत्ययास्तथा।।४८।।
दुर्भिक्षं सर्वराष्ट्रेषु कन्या काले न सूयते। नटनर्तकविद्यासु प्रीतिमन्तो नराः कलौ।।४९।।
वेदवेदान्तविद्यासु निरता ये गुणाधिकाः।
भृतयान्पश्यन्ति तान्मूढास्ते भ्रष्टाश्चाखिला नृप!।।५०।।
त्यक्तश्राद्धक्रियाः सर्वे त्यक्तवेदोदितक्रियाः। जिह्वायांविष्णुनामानिनवर्तन्तेकदाचन।
शृङ्गाररसनिर्वाणास्तद्गीतान्येव ते जगुः।।५१।।
न विष्णुसेवा न च शास्त्रवार्ता न य यागदीक्षा न विचारलेशः।
न तीर्थयात्रा न च दानधर्माः कलौ जने क्वाऽपि बभूव चित्रम्।।५२।।
तां दृष्ट्वा धर्मवर्णोऽपि सुभीतोऽत्यन्तविस्मितः।
वंशं पापात्क्षयं यान्तं दृष्ट्वा द्वीपान्तरं ययौ।।५३।।

साधुगण को कोई भी जान सकने में समर्थ नहीं होगा। साधुगण को लोग पापी मानेंगे। दुराग्रही व्यक्ति साधुगण में कोई-न-कोई दोष कल्पित करेंगे। वे पापी मानवों के दोषों को भी गुणरूपेण विवेचित करते रहेंगे। कलिकाल के गुणरहित मनुष्यों द्वारा सभी में दोष दर्शन किया जायेगा। जैसे जोंक दुग्धपान न करके रक्तपान करती है, कलि के लोग भी इसी प्रकार से रक्तपान में रत रहेंगे। कलि में औषधियां वीर्यरहित हो जायेंगे। ऋतु का विपर्यय घटित होगा। सभी राज्य में दुर्भिक्षराक्षस प्रादुर्भूत हो जायेगा। कन्या यथाकाल प्रसव नहीं करेंगीं। कलि के सभी लोग सतत् नाट्य-नृत्यादि में ही प्रसन्न होंगे। हे राजन्! जो वेदविद्यानिरत तथा अधिक गुणीं हैं, भ्रष्टाचारी कलिकाल के लोग उसे भृत्य की तरह देखेंगे। कभी भी किसी की जिह्वा से जनार्दन का नाम नहीं सुनाई देगा। मनुष्य शृङ्गार रस को ही परमनिर्वाण कहेंगे। सर्वत्र शृंगार सम्बन्धित कथा कही जायेगी। विष्णुसेवा, शास्त्रवार्त्ता, यागदीक्षा, विचारबुद्धि, तीर्थयात्रा, दानधर्म को कलि के लोग अत्यन्त विचित्र कहेंगे। यह सब देखकर ब्राह्मण धर्मवर्ण अतीव भयभीत हो गये। वे पापाचरण से वंशक्षय होना अवश्यम्भावी मानकर अन्य एक द्वीप में चले गये।।४६-५३।।

स चरन्सर्वद्वीपेषु लोकेष्वेवतुसर्वशः। पितृलोकंययौधीमान्कदाचित्कौतुकान्वितः।।५४।।
तत्राऽपश्यन्महाघोराञ्छाम्यमाणांश्च कर्मभिः।।५५।।
धावतो रुदमानांश्च पततः पतितानपि। तत्राऽपश्यच्चान्धकूपे पतितान्स्वान्पितॄनधः।।५६।।
दूर्वाग्रलम्बिनो दीनान्दूर्वाच्छेदे हि शङ्कितान्।
तदा प्राप्तः कोऽपि चाखुर्दूर्वामूलं तदाश्रयम्।।५७।।

तेन भागत्रयं चात्तमेको भागोऽवशेषितः। तं दृष्ट्वा तेक्षीयमाणं मूलं दुःखेन कर्षिणः॥५८॥
अधो दृष्ट्वाचाऽन्धकूपं तटपातादिभीषणम्। दुरुत्तारं महाघोरं कर्मणाप्तं सुदुःखिताः॥५९॥

वे एक द्वीप से अन्य द्वीप में आते-जाते सभी द्वीपों में विचरण करने लगे। धीमान् धर्मवर्ण एक बार कौतूहल में भरकर पितृलोक गये। वहां उन्होंने देखा कि उनके पितृगण विविध कर्म द्वारा भीषणतया भ्रान्त हो रहे हैं। कोई रो रहा था, कोई गिरा, कोई पतनोन्मुख हो गया। उन्होंने और भी देखा कि कतिपय पितृगण अन्धकूप में लटके हैं। वे उसके अत्यन्त सूक्ष्मभाग को पकड़कर अत्यन्त शंकित हैं कि जिस दूर्वा की जड़ को हमने पकड़ा है, वह पता नहीं कब गिर जाये! तभी एक चूहा आकर उस दूर्वा के तीन हिस्सों को काट गया। मात्र एक भाग बचा था। वे एक बार तो उस कटी दूर्वा को देख रहे थे। दूसरी ओर जब अत्यन्त दुःख से उन्होंने अधोदिक् के अन्ध कूप को देखा, भीषण रूप से वहां गिरने के भय से वे व्याकुल हो गये थे। तब एक ओर तो उन्होंने अपने स्वकर्मजनित दुष्पार भीषण अन्धकूप को देखा, दूसरी ओर वे भीषणरूपेण अपनी आश्रयरहित स्थिति को देखकर खिन्न हो रहे थे।।५४-५९।।

अग्रेचाऽपिदुरुत्तारमवलम्बविवर्जितम्। तांदृष्ट्वा विस्मितोभूत्वादयालुर्वाक्यमब्रवीत्॥६०॥
केयूयं पतिताह्यस्मिन्केन दुस्तरकर्मणा। कस्यगोत्रेसमुत्पन्नाःकथं वो मुक्तिरूर्जिता॥६१॥
एतद्यूयं वदध्वं मे शर्म वोऽथभविष्यति। इत्येवमुदितास्तेन पितरोऽथसुदुःखिताः।
तमूचुः करुणां वाचं धर्मश्रुतिपुरःसराः॥६२॥

दयालु धर्मवर्ण द्विज ने अपने पितृगण की यह दुर्दशा देखकर विस्मित होते हुये पूछा—"आप कौन हैं? आपने कौन-सा दुस्तर कृत्य किया था, जो आप इस अन्धकूप में लटके हैं? आपका गोत्र क्या है? किस-उपाय से आपकी मुक्ति संभव है? आप यह सब मुझसे कहिये। आपका मंगल हो!"।

धर्मवर्ण द्वारा पूछे जाने पर पितृगण ने आर्त्त स्वर में धर्मवर्ण से वेदधर्मानुसार करुणवाक्य में कहा।।६०-६२।।

पितर ऊचुः

वयं श्रीवत्सगोत्रीया भुवि सन्तानवर्जिताः॥६३॥
पिण्डश्राद्धविहीनाश्चतेनपच्यामहेवयम्। निःसन्तानोऽपिनोवंशोजातःपापैःकलौयुगे॥६४॥
नाऽस्माकं पिण्डदश्चाऽस्ति वंशे पापात्क्षयं गते।
तेनाऽन्धकूपे पतनं निस्तन्तूनां दुरात्मनाम्॥६५॥
एको हि वर्तते वंशे धर्मवर्णो महायशाः। स विरक्तश्चरन्नेकोनगार्हस्थ्यमुपेयिवान्॥६६॥
तन्तुनातेनविभ्रामोदूर्वानालावलम्बिताः। निस्तन्तुत्वाच्चतन्मूलमाखुःखादतिप्रत्यहम्॥६७॥
एकस्यैवाऽवशिष्टत्वात्किंञ्चिन्नालोऽवशेषितः। आखुना खाद्यमानश्च वर्तते सौम्य! पश्यताम्॥६८॥
तस्य चाऽऽयुःक्षये तात शेषमाखुर्हरिष्यति। पश्चात्कूपे पतिष्यामोदुरुत्तारेऽन्धतामसे॥६९॥

पितृगण कहते हैं—"मैं श्रीवत्स गोत्र का हूं। भूतल पर हम सन्तानहीन हो गये। हम श्राद्ध-पिण्ड रहित

होकर पीड़ित हो रहे हैं। कलिकाल आने पर अनेक पापाचरण द्वारा हमारे सन्तान वंशहीन हो गये। पाप के कारण वंश क्षीण हो जाने पर हमारे श्राद्धपिण्डदाता विलुप्त हो गये। हम दुरात्मा हैं। तभी निःसन्तान हो गये। इसी कारण आज हम अन्धकूप में पतनोन्मुख हैं। हमारे वंश में मात्र एक सन्तान है। उसका नाम है महामना धर्मवर्ण। वह संसार से विरक्त हो गया तथा उसने गृहस्थधर्म ग्रहण नहीं किया। वह अब एकाकी सर्वत्र विचरण कर रहा है। हमारा वह भ्रमणशील सन्तान पृथिवी पर जीवित है तभी हम दूर्वा का तना पकड़े बचे हैं। हमारे अन्य सन्तान नहीं हैं। तभी यह चूहा आकर नित्य दूर्वा की जड़ कुतरता जा रहा है, हमें एक सन्तान अभी भी प्राप्त है, इसलिये अत्यल्प दूर्वा की जड़ बची है। हे सौम्य! तुम सामने आकर देखो। चूहा दूर्वामूल कुतरता जा रहा है। हे तात! जैसे ही हमारे पुत्ररूप धर्मवर्ण की मृत्यु हो जायेगी, तब वह चूहा बाकी दूर्वामूल भी काट देगा। हम अन्धकूप में तब गिर जायेंगे। अतएव तुम भूतल पर जाकर धर्मवर्ण को प्रबोधित करो। हम सदैव दया के पात्र हैं। तुम जाओ तथा गार्हस्थ्य रहित मुनि धर्मवर्ण को सचेत करना। हम सदैव दया के पात्र हैं। तुम गार्हस्थ्य रहित मुनि धर्मवर्ण से हमारा यह सन्देश देना।।६३-६९।।

तस्मात्त्वञ्चभुवंगत्वाधर्मवर्णंप्रबोधय। अस्मद्वाक्यैर्दयापात्रैर्गार्हस्थ्येविमुखंमुनिम्।।७०।।
पितरस्ते भृशाऽर्ता हि नरके पतितामया। अन्धमूपेदुरुत्तारे दृष्टा दूवावलम्बिताः।।७१।।
सा दूर्वा वंशरूपा हि तन्मूलं सततंमुने। कालाख्योमूषकस्तस्यमूलंखादतिप्रत्यहम्।।७२।।
वंशनाशोऽनुक्रमत एकस्त्वं त्ववशेषितः। तेन मूलस्य दूर्वाया नष्टं भागत्रयं मुने!।।७३।।
एको भागोऽवशिष्टोऽत्र यतस्त्वं वर्तसे भुवि।
किञ्चित्खादति वै त्वाऽऽखुस्तव चाऽऽयुः क्षयक्रमात्।।७४।।
परेते त्वयि चाऽस्माकंतवापिपतनम्भवेत्। कूप एवान्धतामिस्त्रेसन्तानेऽपिक्षयंगते।।७५।।

तुम जाकर उससे कहना "मैंने देखा है कि तुम्हारे पिता दुस्तर अन्धकूप में एक दूर्वा की जड़ पकड़े लटके हैं। हे मुनिवर! वह दूर्वा है उनका वंश। कालरूपी चूहा नित्य दूर्वामूल को कुतर रहा है। हे मुनिवर! क्रमशः दूर्वा की जड़ कुतरी जा रही है। तुम बचे हो तभी क्षीण हो गयी एक अंश दूर्वा बची है। जब तक तुम पृथिवी पर जीवित रहोगे तभी तक यह एक अंश बचा रहेगा। तुम्हारी आयु क्षय होते ही चूहा उसे पूर्णतः कुतर देगा। तुम तब प्रेतलोक जाओगे। सन्तानहीन होकर तुम्हारे पिता भी अन्धतामिस्त्रकूप रूपी नरक में गमन करेंगे।"।।७०-७५।।

तस्माद्गार्हस्थ्यमासाद्य कुरु सन्ततिवर्धनम्।
तेनाऽस्माकं तवाऽपि स्याद्गतिरूर्ध्वा न संशयः।।७६।।
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयाम्व्रजेत्। यजेतवाऽश्वमेधञ्चनीलम्वावृषमुत्सृजेत्।।७७।।
यद्येकोऽपि च वैशाखे माघे वा कार्त्तिकेऽपि च।
अस्मानुद्दिश्य वै स्नानं श्राद्धं दानं करिष्यति।।७८।।
तेन चोर्ध्वगतिर्भूयान्नरकादुद्धृतिश्च नः। एकोवाविष्णुभक्तःस्यादेकोवाहरिवासरी।।७९।।
एको वा शृणुयाद्विष्णोः कथां पापविनाशिनीम्।
तस्याऽतीतं कुलशतं भावि चाऽपि कुलं शतम्।।८०।।

अपि पापवृतं क्वाऽपि नरकं नैव पश्यति। किमन्यैर्बहुभिः पुत्रैर्दयाधर्मविवर्जितैः॥८१॥

"इसलिये तुम गार्हस्थ्य धर्म का अवलम्बन करके सन्तान उत्पन्न करो। ऐसा करने से तुम्हारी तथा मेरी ऊर्ध्वगति होगी। इसमें सन्देह नहीं है। कोई पुत्र अश्वमेध यज्ञ से पितृगण का पूजन करता है। कोई नीलवृषोत्सर्ग करता है। कोई न कोई पुत्र अवश्य गया गमन करेगा। कोई वैशाख माघ अथवा कार्त्तिक में स्नान करके पितरों का श्राद्ध करेगा। पुत्रों की इन क्रियाओं द्वारा हमारा नरक से उद्धार होगा तथा ऊर्ध्वगति प्राप्त होगी। एक विष्णुभक्त हो, एक हरि सेवा तत्पर हो, अन्य कोई विष्णु की पापनाशक कथा सुनें। इसीलिये पितृगण अनेक पुत्रों की कामना करते हैं। हे सौम्य! तुम जाकर धर्मवर्ण से कहना कि इस प्रकार के पुत्र की पहले की तथा पश्चात् काल की १०० पीढ़ी का उद्धार होता है। यदि उसके पितृगण में कोई पापवृद्धिपरायण भी होता है, तथापि उसे नरक दर्शन नहीं होता। इन सभी क्रियाकुशल पुत्रों के अतिरिक्त जो पुत्र उत्पन्न होते हैं तथा विष्णु की सम्यक् पूजा नहीं करते, ऐसे दया-धर्मरहित अन्य अनेक पुत्रों का क्या लाभ?"।।७६-८१।।

ये जातानार्चयंत्यद्धाविष्णुंनारायणंकुले। नाऽपुत्रस्यहिलोकोऽस्तिसर्वमेतज्जनाविदुः॥८२॥
तत्राऽपि च दयायुक्तं तत्सन्तानञ्च दुर्लभम्। इतितंबोधयित्वातुवाक्यैरेतैश्च सूनृतैः॥८३॥
विरक्तस्योर्ध्वरेतस्य गार्हस्थ्ये त्वं मतिं कुरु।
पितॄणां वचनं श्रुत्वा धर्मवर्णोऽतिविस्मियः॥८४॥

"जो पुत्रहीन है, उसे किसी लोक की प्राप्ति नहीं होती। यह सभी जानते हैं। केवल पुत्रोत्पत्ति से ही काम नहीं होता। पुत्रों में भी दयालु दुर्लभ है। हे सौम्य! तुम यह सब उत्तम वाक्य द्वारा ऊर्ध्वरिता संसारविरक्त धर्मवर्ण को प्रबोधित करना। तब कहना कि तुम गार्हस्थ धर्म का पलान करो।" पितृगण का वाक्य सुनकर धर्मवर्ण अत्यन्त विस्मित हो गये।।८२-८४।।

प्रणम्य प्राञ्जलिः प्राहः रुदन्वै जातवेपथुः। नाम्नाऽहं धर्मवर्णश्च युष्मद्वंश्यो दुराग्रही॥८५॥
सत्रेश्रत्वातुवचनंनारदस्यमहात्मनः। जिह्वादार्ढ्यंगुह्यदार्ढ्यं न कस्याऽपिकलौयुगे॥८६॥
दृष्ट्वा भुवि च पापिष्ठांस्ताञ्जनानपि शङ्कितः।
भीतो दुर्जनसङ्गत्या चरन्द्वीपान्तरे वसन्॥८७॥
पादास्त्रयो गताह्यस्यकलेःपादैऽन्त्यकेऽपि च। गताःसार्द्धत्रयोभागाइदानींजनका इमे॥८८॥
नाऽहं वेद्मि भवद्दुःखंवृथाजन्मगतं मम। यस्मिन्कुले त्वहं जातऋणंपित्रोर्नवैहृतम्॥८९॥
किं तेनजातमात्रेणभूभारेणाऽत्र शत्रुणा। यो जातोनार्चयेद्विष्णुंपितॄन्देवानृषींस्तथा॥९०॥

पितृगण का वाक्य सुनकर विस्मित हो गये धर्मवर्ण रुदन करने लगे तथा हाथ जोड़कर कहने लगे। उस समय उनका शरीर कांप रहा था। धर्मवर्ण कहते हैं—"आप लोगों का वंशधर दुराग्रही धर्मवर्ण मैं ही हूं। पुष्कर क्षेत्र की यज्ञभूमि में देवर्षि नारद से सुना था कि कलिकाल में किसी का भी लिंग तथा जिह्वा पर वश नहीं रहेगा। तत्पश्चात् मैंने क्रमशः भूतल पर मानवगण की पापपरायणता को देखा तथा मैं भयभीत हो गया। मैंने तत्काल दुर्जनों का संग त्याग दिया तथा ऊर्ध्वरेता होकर एक द्वीप से दूसरे द्वीप में विचरण करता रहता हूं। हे जनकगण! कलिकाल का पादत्रय व्यतीत हो चुका है। अब अन्तिम पाद चल रहा है। उसका भी साढ़े तीन पाद

व्यतीत हो गया। अब अत्यल्प ही बचा है। मुझे यह नहीं पता था कि आप सब दीर्घकाल से कष्ट भोग रहे हैं। अतः मेरा जन्म व्यर्थ बीत गया। मैं आपलोगों के कुल में जन्म लेकर भी आप लोगों का ऋण शोधन नहीं कर सका। मैं पृथिवी पर अपना भार रखकर व्यर्थ पृथिवी को कष्ट दे रहा हूं। मैं तो पृथिवी का शत्रु हूं। जो जन्म पाकर विष्णु-पितृगण तथा ऋषिगण की अर्चना नहीं करता, उसका जन्म व्यर्थ है"।।८५-९०।।

युष्मदाज्ञां करिष्यामि मामाऽऽज्ञापयत क्षितौ।
यथा न कलिबाधा स्यात्तत्र संसारतोऽपि वा।।९१।।

कर्तव्यान्यपि कृत्यानि मया पुत्रेण भूतले!। इत्युक्तास्तेन वंश्येन धर्मवर्णेन धीमता।।९२।।

"हे पितृगण! मुझे आज्ञा दीजिये। मैं पृथिवी पर जाकर आपके आदेश का पालन करूंगा। मैं तुरन्त पृथिवी पर आकर ऐसा करूंगा जिसमें कलि बाधा न हो तथा आप लोगों के लिये वह क्रियाकलाप अनुष्ठित करूंगा जिसे एक पुत्र को करना चाहिये।" हे राजन्! जब पितरों के वंशज धीमान् धर्मवर्ण ने इस प्रकार कहा, तब पितृगण उससे कहने लगे।।९१-९२।।

किञ्चिदाश्वस्तमनस इदमूचुर्महीपते। पुत्र पश्य दशामेतां पितृणान्ते महात्मनाम्।।९३।।
सन्तत्यभावात्पततां दूर्वामात्रावलम्बिनाम्।
त्वं गार्हस्थ्यमुपालभ्य सन्तत्यास्मान्समुद्धर।।९४।।

ये च विष्णुकथारक्ता ये स्मरन्त्यनिशं हरिम्। येसदाचारनिरतानतान्वैबाधतेकलिः।।९५।।
शालिग्रामशिलायस्यगृहे तिष्ठति मानद। अथवा भारतं गेहे न तं वै बाधते कलिः।।९६।।
यश्च वैशाखनिरतो माघस्नानपरश्च यः। कार्त्तिके दीपदाता यो न तं वै बाधते कलिः।।९७।।
प्रत्यहं शृणुयाद्यस्तु कथां विष्णोर्महात्मनः।
पापघ्नीं मोक्षदां दिव्यां न तं वै बाधते कलिः।।९८।।
यद्गृहे वैश्वदेवश्च यद्गृहे तुलसी शुभा। यदङ्गणे शुभा गौश्च न तं वै बाधते कलिः।।९९।।

पितृगण आश्वस्त होकर कहते हैं—"हे पुत्र! तुम्हारे हम महात्मा पितृगण सन्तान न होने के कारण जो दुर्दशा सहन कर रहे हैं तथा हम दूर्वा के तने को पकड़े अन्धकूप में लटके हैं, यह तो तुमने प्रत्यक्ष देख लिया। अब शीघ्र संसार में जाकर गार्हस्थ्य धर्म पालन करके सन्तानोत्पत्ति करो तथा हमारा उद्धार करो। जो हरिकथारत हैं जो सदा विष्णु का स्मरण करते हैं, वे ही सदाचारी हैं। कलि कदापि ऐसे मानवों को पीड़ित नहीं कर सकता। हे मानद! जिसके गृह में शालग्राम शिला है, अथवा जिसका गृह भारत में है, उसे कलि कदापि बाधा नहीं पहुंचा सकता। जो मनुष्य वैशाख स्नान में निरत है, जो माघ में स्नान परायण है, जो कार्तिक में दीपदान करता है, कलि उसे पीड़ित नहीं कर सकता। जो मनुष्य नित्य महात्मा विष्णु की गायत्री तथा मोक्ष देने वाली दिव्य कथा सुनता है, कलि उसे पीड़ा नहीं दे सकता। जिसके गृह में वैश्वदेव पूजित होते हैं, जिस गृह में शुभ तुलसी है तथा जिसके आंगन में सुलक्षणा गौ विद्यमान है, वह कभी कलि से बाधित नहीं होता।"।।९३-९९।।

तस्मान्नो भीतिरस्तीह युगे पापाऽत्मकेऽपि च।
शीघ्रं गच्छ भुवं पुत्र! मासोऽयं माधवाह्वयः।।१००।।

सर्वेषामुपकाराय मेषसंस्थे दिवाकरे। त्रिंशच्च तिथयः पुण्या मेघसंस्थे दिवाकरे॥१०१॥
एकैकस्यां कृतं पुण्यं कोटिकोटिगुणंभवेत्। तत्राऽपिचैत्रबहुलोदर्शोनृणांचमुक्तिदः॥१०२॥
प्रियश्च पितृदेवानां सद्यो मुक्तिविधायकः। ये वै पितृन्समुद्दिश्यश्राद्धंकुर्वन्तितद्दिने॥१०३॥
सोदकुभं पिण्डदानं तदक्षय्यफलं लभेत्।
ये च कुर्वन्ति वै श्राद्धममायां च मधौ सुत!॥१०४॥
तैः कृतं तु गयाक्षेत्रे श्राद्धं कोटिगुणं भवेत्। यदिश्राद्धंमघौदर्शेशाकेनाऽपिकरोतिच॥१०५॥
कोटिश्राद्धं गयायां तु कृतं तेन न संशयः। कुम्भं च पानकैः पूर्णंकर्पूरागुरुवासितम्॥१०६॥
यो न दद्यान्मधौ दर्शे स पितृघ्नो न संशयः।
यो दद्याच्च मधौ दर्शे सपानीयं करीरकम्॥१०७॥
श्राद्धं च भक्तिसंयुक्तः कुरुते च कुलोद्धृतिम्।
पितृणां च तथा लोके नदीचाऽमृतवर्षिणी॥१०८॥

"यद्यपि कलिकाल पापात्मक है, तथापि तुम भय न करो। हे पुत्र! सत्वर पृथिवी पर गमन करो। समस्त लोकों की हितकामना से सम्प्रति माधव प्रिय वैशाखमास उपस्थित है। इस समय सूर्य मेषराशि में हैं। सम्पूर्ण वैशाख मास में वे मेषराशीस्थ रहते हैं। वैशाख की तीसों तिथियां पुण्यप्रद हैं। प्रत्येक तिथि में किया गया पुण्य कोटिशत गुणित हो जाता है। इन सबमें भी चैत्र अमावस्या उत्तम है। यह अमावस्या मनुष्यों हेतु उत्तम है। यह पितरों को अतीव प्रिय तथा सदा मुक्तिप्रदा है। इस दिन जो पितरों के लिये श्राद्ध तथा जलपूर्ण कुंभदान अथवा पिण्ड प्रदान करते हैं, उनको उस सब कार्यों से अक्षय फललाभ होता है। हे पुत्र! जो चैत्री अमावस्या के दिन पितरों का श्राद्ध करता है, उसके द्वारा किया श्राद्ध गया के किये श्राद्ध की तुलना में करोड़ों गुना फल प्रदान करता है। चैत्री अमावस्या के दिन केवल शाक से ही श्राद्ध करने से गयाकृत करोड़ों श्राद्धों का फल होता है। इसमें सन्देह नहीं है। जो मानव चैत्री अमावस्या के दिन कर्पूर तथा अगुरुवासित जलपूर्ण कुंभदान नहीं करता वह पितृघाती ही है। जो मानव भक्तियुक्त होकर चैत्री अमावस्या के दिन जलपूर्ण घटदान तथा पितरों का श्राद्ध करता है, उसके कुल का उद्धार हो जाता है। जलपूर्ण कुंभदान के प्रभाव द्वारा ही पितृलोक में अमृतवाहिनी नदी प्रवाहित होती है।"॥१००-१०८॥

कुम्भदानात्प्रसरति श्राद्धदानादिदायिनाम्। अन्नसूपघृतापूपलेह्य पायसकर्दमान्॥१०९॥
तस्माज्झटिति त्वं गच्छ यदा वाऽमा भविष्यति।
कुरु श्राद्धं पिण्डदानं सोदकुम्भं महामते!॥११०॥
सर्वेषामुपकाराय गार्हस्थ्यं च समाश्रय। धर्मार्थकामैः सन्तुष्टः प्राप्यसन्तानमुत्तमम्॥१११॥
पुनश्च मुनिवृत्तिस्त्वं सुखं द्वीपे सुसञ्चर। इत्यादिष्टःपितृभिश्चतूर्णं भूमिं ययौमुनिः॥११२॥

"श्राद्धादि प्रदाता पितर अन्न-सूप-घृत-मालपूआ-लेह्य तथा पायसकर्म का लाभ करते हैं। अतः तुम शीघ्रतापूर्वक जाओ। हे महामति! जब चैत्री अमावस्या हो, तब तुम श्राद्धदान, पिण्डदान तथा जलपूर्ण कुंभदान करो। तुम अब अखिल लोकों की हित कामना हेतु गार्हस्थ्य धर्मावलम्बन करके उसके पश्चात् (उस धर्म का

पालन करके) तुम पुनः एक द्वीप से अन्य द्वीप में विचरण करते रहना। पितृगण का आदेश सुनकर धर्मवर्ण पृथिवी लोक आये।।१०९-११२।।

चैत्रे मासे मेषसंस्थेपुण्येमासिदिवाकरे। प्रातःस्नात्वाचसन्तर्प्यपितृन्देवानृषींस्तथा।।११३।।

सोदकुम्भं तथा श्राद्धं कृत्वा पापविनाशनम्।

तेन दत्त्वा पितृणाञ्च मुक्तिमावृत्तिवर्जिताम्।।११४।।

स्वयं विवाहमकरोत्सन्ततिं प्राप्य वैसतीम्।

लोके प्रख्यापयामास तां तिथिंपापनाशनीम्।।११५।।

स्वयं पुनर्मुदा भक्त्या गन्धमादनमाययौ।।११६।।

तस्मात्पुण्यतमाचैषामधोर्दर्शाह्वयातिथिः। नानयासदृशीलोकेतिथिर्दृष्टाश्रुताऽपिवा।।११७।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीष-सम्वादे कलिधर्मनिरूपणेपितृमुक्तिर्नाम द्वाविंशोऽध्यायः।।२२।।

तत्पश्चात् जब सूर्य मेषराशि में स्थित थे, उस समय चैत्र मासीय संक्रान्ति काल में ब्राह्मण धर्मवर्ण ने पापनाशक प्रातःस्नान, देव-ऋषि तथा पितृगण का तर्पण करके जलपूर्ण कुंभदान किया तथा पितरों का श्राद्ध किया। उनके इस प्रकार के धर्म कार्य द्वारा उनके पितृगण की मुक्ति हो गई। अब उनको जन्म नहीं लेना होगा। तत्पश्चात् उन्होंने विवाह किया। उनकी सती पत्नी को पितृगण की कृपा से सन्तान की प्राप्ति हो गयी। द्विज धर्मवर्ण के इस कार्य से त्रैलोक्य में पापनाशिनी चैत्री अमावस्या विख्यात हो गई। तदनन्तर उन्होंने भक्ति तत्पर होकर प्रसन्न अन्तःकरण से गन्धमादन गमन किया। हे राजन्! तब से चैत्री अमावस्या तिथि पुण्यतमा कही जा रही है। मैंने त्रैलोक्य में चैत्री अमावस्या ऐसी किसी तिथि को नहीं देखा।।११३-११७।।

।।द्वाविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

त्रयोविंशोऽध्यायः

अक्षय तृतीया माहात्म्य वर्णन, देवगण का उद्यम वर्णन

श्रुतदेव उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम्।

अक्षय्यायास्तृतीयायाः सिते पक्षे च माधवे।।१।।

ये कुर्वन्ति चतस्यांवैप्रातःस्नानंभगोदये। तेसर्वेपापनिर्मुक्तायान्तिविष्णोः परंपदम्।।२।।

देवान्पितृन्मुनीन्यस्तु कुर्यादुद्दिश्य तर्पणम्। तेनाऽधीतं च तेनेष्टंतेनश्राद्धशतंकृतम्॥३॥
मधुसूदनमभ्यर्च्य कथां शृण्वन्तियेनराः। अक्षय्यायांतृतीयायांतेनरामुक्तिभागिनः॥४॥
ये दानं यत्र कुर्वन्ति मधुद्विट्प्रीतये शुभम्। तदक्षव्यं फलत्येव मधुशासनशासनात्॥५॥
देवर्षिपितृदैवत्या तिथिरेषा महाशुभा। त्रयाणां तृप्तिदात्रीच कृते धर्मे सनातने॥६॥

प्रख्यातिश्च तिथेरस्याः केन नाऽस्ति तदप्यहम्।
वक्ष्यामि नृपशार्दूल! सावधानमनाः शृणु॥७॥

श्रुतदेव कहते हैं—तदनन्तर वैशाखमासीय शुक्लपक्षीय अक्षय तृतीया का माहात्म्य कहता हूं। जो इस अक्षय तृतीया के दिन सूर्योदय काल में प्रातः स्नान करता है, उसे विष्णु का परमपद लाभ होता है। जो मानव इस पुण्यतिथि के दिन देव-पितृगण-मुनिगण के उद्देश्य से तर्पण करता है, उसने समस्त अध्ययन-समस्त यज्ञ तथा समस्त श्राद्ध सम्पन्न कर लिया। जो अक्षय तृतीया के दिन मधुसूदन की पूजा करके उनकी पुण्यकथा श्रवण करता है, वह मुक्तिलाभ करता है। जो मानव इस दिन मधुशत्रु की प्रसन्नता हेतु उत्तम दान करता है, उसका दान मधुमास के समय अक्षय फल प्रदान करता है। इस शुभप्रद पुण्यतिथि में देवता-देव-ऋषि-पितृगण के लिये धर्मकर्म का अक्षय फललाभ होता है। इस तृतीया के दिन देव-ऋषि-पितर त्रैलोक्य को तृप्त करते हैं। हे नृपशार्दूल! यह अक्षय तृतीया कैसे विख्यात है, यह कहता हूं। समाहित होकर सुनो।।१-७।।

पुरा पुरन्दरस्याऽऽसीद्युद्धञ्च बलिना सह। देवानाञ्चैव दैत्यानां द्वन्द्वयुद्धमभूत्ततः॥८॥
सनिर्जित्यबलिंदैत्यंपातालतलवासिनम्। पुनर्भुवंसमासाद्यचोतथ्यस्याऽऽश्रमंययौ॥९॥

तत्राऽपश्यच्च तत्पत्नीं गुर्विणींमन्दगामिनीम्।
चलच्छ्रोणितटावद्धकाञ्चीदाम्ना सुमण्डिताम्॥१०॥
क्वणत्कङ्कणनिर्घाषजितमत्तालिकोकिलाम्।
वल्गुचित्राम्बरां रामां मञ्जुवाचं शुचिस्मिताम्॥११॥
लसत्कुम्भस्थलाभ्यां च कुचाभ्यामुपशोभिताम्।
हसत्पद्ममुखां दिव्यां नीलोत्पलसुलोचनाम्॥१२॥
केतक्युदरपाण्डुभ्यां गण्डाभ्याञ्च मनोरमाम्।
श्रमोच्छ्रसन्तीं दीनाक्षीं पर्णशालामुखे स्थिताम्॥१३॥
स्वपतीं शयने क्वाऽपि तां दृष्ट्वा मोहमागतः।
बलात्कारेण बुभुजे गुर्विणीं पाकशासनः॥१४॥

गर्भस्थस्तु तदापिण्डः स्वस्यपातविशङ्कया। छादयामासवैयोनिं द्वारेपादेनदुःखितः॥१५॥

पूर्वकाल में बलि के साथ देवताओं का युद्ध हुआ। तब बलिराज एवं देवराज के बीच परस्पर द्वन्द्व युद्ध हुआ। देवराज पातालवासी बलि को परास्त करके पुनः पृथिवी पर उतथ्य ऋषि के आश्रम आये। इन्द्र ने देखा कि उतथ्य की पत्नी गर्भवती थीं। वे धीरे-धीरे चल रही थीं। उनके नितम्ब पर बंधी करधनी अत्यन्त

शोभित हो रही थी। उनके कंकणों की ध्वनि से मत्त कोकिल अथवा भ्रमरों का शब्द भी मानों पराजित हो रहा था। वे मनोहर चित्र-विचित्र वस्त्र पहनें थीं। यह रमणी शिरोमणि शुचिस्मिता उतथ्यपत्नी अत्यन्त मधुर वाग्विलास कर रही थीं। उनके कुचद्वय का मध्यभाग अत्यन्त उज्वल था। अत्युच्च स्तनद्वय से उनकी शोभा अपूर्व सी प्रतीत हो रही थी। उनका हास्यपूर्ण मुखमण्डल विकसित कमल के समान था। नेत्रद्वय नीलकमल के समान मनोज्ञ थे। केतकी पुष्प के उदर के समान उनके पाण्डुवर्ण वाले कपोल उनकी शोभा को अत्यन्त मनोहर बना रहे थे। उस समय उतथ्य ऋषि की वे पत्नी श्रम से थककर दीर्घश्वास छोड़ रही थीं। उनके नेत्रों से दीनता टपक रही थी। वे उस समय कभी पर्णशाला के समाने बैठतीं तो कभी शय्या पर लेट जातीं। पाकशासन इन्द्र उनको देखकर मोहग्रस्त हो गये। उन्होंने उनका बलपूर्वक उपभोग किया। तब गर्भस्थ शिशु ने अपने गिर जाने की आशंका के कारण अपने पैरों से माता का योनिद्वार अच्छादित कर दिया!।।८-१५।।

ततश्चस्कन्दवीर्यं तद्भूमावेव बलिद्विषः। गर्भस्थायचुकोपासौभगवान्पाकशासनः।।१६।।
तं शशाप चगर्भस्थंरुषाताम्रान्तलोचनः। जात्यन्धोभव दुर्बुद्धे माऽवमंस्थायतःपदा।।१७।।

बलिशत्रु शचीपति इन्द्र का वीर्य भूमि पर गिर गया। पाकशासन इन्द्र गर्भस्थ संतान के प्रति क्रोधित हो गये। क्रोध से उनके नेत्र लाल हो गये। उन्होंने गर्भस्थ शिशु पिण्ड को शाप दे दिया। इन्द्र ने कहा—"हे दुर्बुद्धि! तुमने मुझे पैरों से अपमानित किया है। तुम जन्म लेते ही अन्धे हो जाओगे।"।।१६-१७।।

प्रच्छाद्य योनिद्वारञ्च ततो दीर्घतपाह्वयः। पदा प्रस्कन्दिताद्वीर्याज्जालतः समजायत।।१८।।
पश्चादिन्द्रो ययौशीघ्रमृषेःशापविशङ्कितः। पलायन्तंहरिं दृष्ट्वा जहसुर्बटवोऽखिलाः।।१९।।
ततस्तु व्रीडितो भूत्वा ययौ मेरोर्गुहां शुभाम्। तत्र लीनश्चचाराऽसौ दुस्तरम्वै तपो महत्।।२०।।
मेरौ विलीय वसति देवेन्द्रे लज्जयाऽन्विते। गूढैर्विज्ञायतांवार्ता दैतेया बलिपूर्वकाः।।२१।।
सुरानाक्रम्य वुभुजुर्बलीन्द्रश्चामरावतीम्। दिक्पालानांविभूतीश्चशम्बराद्यावलीयसः।।२२।।

गर्भस्थ शिशुपिण्ड द्वारा पैरों से योनिद्वार ढक देने के कारण इन्द्र के द्वारा छोड़ा वीर्य गर्भ में स्खलित नहीं हुआ। वह भूपतित हो गया। इस भूपतित वीर्य से ही दीर्घतपा ऋषि ने जन्म लिया। तदनन्तर ऋषि उतथ्य के शापभय के कारण इन्द्र तत्काल वहां से भाग गये। सहस्रनेत्र इन्द्र को भागते देखकर वहां ब्राह्मणों में उच्च स्वर से हास्य किया। इन्द्रदेव ब्राह्मणगण के हास्य से लज्जित होकर मेरुपर्वत की मनोहर कन्दरा में चले गये। वे वहां अन्य से अदृश्य रहकर कठोर तपस्या करने लगे। देवराज जब लज्जा के कारण मेरुपर्वत की कन्दरा में तप कर रहे थे, तब बलि आदि प्रमुख दितिपुत्रों को दूत द्वारा यह बात ज्ञात हुई थी। उन्होंने अमरावती स्थित देवताओं पर आक्रमण करके उनको वहां से भगा दिया तथा स्वयं अमरावती का उपभोग करने लगे। उस समय बलि ने ही इन्द्र पद को अधिकृत कर लिया था। बलवान शम्बरादि दैत्यगण उस समय दिक्पालों के ऐश्वर्य का उपभोग करने लगे।।१८-२२।।

बलद्बुभुजिरे हीननाथे राष्ट्रे दिवौकसाम्। रक्षितारमजानन्तोदेवाश्चाग्निपुरोगमाः।।२३।।
पप्रच्छुर्धिषणं देवं देवाचार्यमकल्मषम्। पप्रच्छुरिन्द्रवृत्तान्तं क्वस्वित्तिष्ठतिनः प्रभुः।।२४।।

दैत्याक्रान्तमिदं राष्ट्रं हीननाथं दिवौकसाम्।
कुतो नाऽऽयाति देवोऽसौ भूयान्कालो गतो विभो!।।२५।।

तं यामो यत्र धिषण! प्रार्थयामश्च तं विभुम्। इति पृष्टस्तदा देवैर्धिषणस्तानुवाचह॥२६॥

रसातले बलिं जित्वा चोतथ्यस्याऽऽश्रमं ययौ।

भुक्त्वा पत्नीं च दार्ढ्येन तच्छिष्यैरेव निन्दितः॥२७॥

व्रीडितस्तु दिवंयातुंगुहांमेरोर्विवेशह। तत्रैवाऽऽस्तेशचीयुक्तःस्वकृतंचिन्तयविभु॥२८॥

स्वर्गराज्य अपने वास्तविक स्वामी देवगण तथा इन्द्र से रहित हो गया था। स्वर्ग के देवताओं ने अपने रक्षक अलक्ष्यरूपी अग्नि को आगे किया तथा देवगुरु पापरहित बृहस्पति के पास जाकर उनसे उन्होंने इन्द्र का समस्त वृत्तान्त सुनाकर पूछा—"हमारे स्वामी देवराज इन्द्र कहां हैं? हे विभो! स्वर्ग का राज्य असुरों ने अधीकृत कर लिया है। देवगण स्वामीरहित हो गये हैं। दीर्घकाल व्यतीत हो गया। देवराज क्यों नहीं आ रहे हैं? हे देवगुरु! हम प्रार्थना करते हैं कि देवराज जहां भी हों, हम वहीं चलें।" देवगण द्वारा यह प्रार्थना किये जाने पर बृहस्पति ने उनसे कहा—"शचीपति ने बलि पर जब विजय पा लिया था, तब वे उतथ्य ऋषि के आश्रम गये थे और उन्होंने बलपूर्वक उतथ्य ऋषि की पत्नी का उपभोग किया। इस कारण उनके भागने पर उतथ्य के शिष्यों ने अट्टहास्य किया। इससे वे लज्जित हो गये। वे इस लज्जा के कारण स्वर्ग न आकर मेरुपर्वत की गुफा में निवास कर रहे हैं। शचीदेवी भी वहीं पर हैं। इन्द्र वहां अपने कर्म से चिन्तित होकर शची के साथ उसी गुफा में निवास कर रहे हैं"।।२३-२८।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा देवा अग्निपुरोगमाः। गुहां मेरोर्ययुःशीघ्रंदृष्ट्वाप्रार्थयितुंविभुम्॥२९॥

तत्र दृष्ट्वा गुहालीनं देवेन्द्रं पाकशासनम्। तुष्टुवुर्विविधैःस्तोत्रैस्तद्वीर्यैर्लोकविश्रुतैः॥३०॥

इन्द्र! तुभ्यं नमस्तेऽस्तु सर्वदेवाऽधिपाय ते। वयं दैत्यैरर्दिताश्चत्वयाहीनाभृशार्दिताः॥३१॥

स्थानभ्रष्टाश्चरामोऽङ्ग नानादेशेषु दुःखिताः। तस्मादागत्य देवेन्द्रजहिशत्रूनरिन्दम्!॥३२॥

इति स्तुतस्तदा देवैर्निश्चक्राम गुहामुखात्। लज्जयाऽवनतोभूत्वापश्यन्भूमिञ्चचक्षुषा॥३३॥

न किञ्चिदपि चोवाच दुःखाद्गद्गदभाषणः। तऽज्ज्ञात्वा धिषणःप्राहतंसुरेन्द्रंभयानकम्॥३४॥

अग्नि आदि प्रमुख देवगण बृहस्पति के बतलाने पर सभी देवराज इन्द्र के दर्शनार्थ शीघ्रता के साथ मेरु पर्वतस्थ उस गुहा में गये। वहां उन्होंने पाकशासन इन्द्र को गुहा में देख कर लोकविश्रुत विविध वाक्यों से उनकी स्तुति प्रारंभ कर दिया। देवगण कहते हैं—"हे इन्द्र! आप देवताओं के अधीश्वर हैं। आपको नमस्कार! आपने हम लोगों को जब से छोड़ दिया, तभी से हम दैत्यों द्वारा अत्यधिक पीड़ित किये जा रहे हैं। हे देवराज! हम सभी स्थान च्युत होकर दुःखित अन्तःकरण द्वारा नाना स्थानों में भटक रहे हैं। हे अरिन्दम! आप स्वर्गलोक में आकर असुरगण का वध करिये।" तत्पश्चात् इन्द्र देवगण द्वारा इस प्रकार से स्तुत होकर गुहा से बाहर निकले। उनका मस्तक लज्जा से झुका था। उनकी दृष्टि पृथिवी ओर थी। दुःख से उनकी वाणी रुंध गयी थी। वे कुछ भी बोल नहीं पा रहे थे। तब देवगुरु बृहस्पति देवराज की यह अवस्था देखकर उनसे कहने लगे।।२९-३४।।

मा शङ्का ते सुरपते! कर्माधीनमिदं जगत्। मानामानौसुखंदुःखंलाभालाभौजयाजयौ॥३५॥

पूर्वकर्मानुरोधेन भवन्त्येते न संशयः।

जीवःकर्मानुगो दुःखं दिष्टं दैवेन कालतः॥३६॥

प्राज्ञाः प्रायो न शोचन्ति न प्रहृष्यन्ति वै सुखात।
तस्मात्प्रारब्धतः प्राप्तं दुःखं चेदं तव प्रभो!॥३७॥
तत्प्राप्य मघवन्दुदुःखं नैव शोचितुमर्हसि। इत्युक्तो गुरुणाचाऽऽहमघवानमराधिपान्॥३८॥

बृहस्पति कहते हैं—"हे देवराज! आप भयभीत न हों। यह जगत् कर्म के अधीन है। मान-अपमान, सुख-दुःख, हानि-लाभ, जय-पराजय, यह सब पूर्वकर्मानुरूप ही घटित होती है। इसमें सन्देह नहीं है। जीव कर्म के वशीभूत होकर दुःख पाता है। कर्मानुसार ही उसका भाग्यचक्र यथासमय परिवर्त्तित होकर सुखप्रदाता हो जाता है। प्राज्ञव्यक्ति प्रायः इस कर्मजनित सुख-दुःख से कभी भी प्रसन्न अथवा मोहित (दुःखित) नहीं होते। हे देवराज! आप भी अपने कर्मफल का भोग कर रहे हैं। इसलिये दुःखी होना उचित नहीं है। हे मघ्वन्! कर्म का जब ऐसा प्रभाव है, तब दुःखी होकर ऐसा शोक करना कथमपि उचित नहीं है।" गुरु के वाक्य से प्रवुद्ध होकर देवराज आचार्य बृहस्पति से कहने लगे।।३५-३८।।

इन्द्र उवाच

परस्त्रीसङ्गदोषेण बलं वीर्यं यशोऽमलम्। मन्त्रशक्तिःशास्त्रशक्तिर्विद्याशक्तिश्चमानद॥३९॥
अभवन्नष्टवीर्यं मे तूष्णीं तेन वसाम्यहम्।
पाकशासनवाक्यं तुश्रुत्वास्वाचार्यसंयुताः॥४०॥
मन्त्रयामारसुरेकान्ते पुनस्तस्य बलाप्तये। तदा गुरुश्च तान्प्राह करुणञ्च विदुत्तमः॥४१॥

इन्द्र कहते हैं—"परस्त्री संसर्ग जनित दोष के कारण मेरा बल-वीर्य नष्ट हो गया। मेरा यश, मन्त्रशक्ति, शास्त्रशक्ति तथा विद्याशक्ति विलुप्त हो गयी। हे मानद! मेरा वीर्य जब नष्ट हो गया, तबसे मैं मौन धारण करके गिरिकन्दरा में निवास कर रहा हूं।" आचार्य तथा देवगण ने इन्द्र का जब यह कथन सुना, तब वे वहां एकान्त में बैठकर इन्द्र को कैसे बल लाभ हो, इस पर परामर्श करने लगे। उस समय देवगुरु बृहस्पति ने देवगण से यह करुणापूर्ण वाक्य कहा।।३९-४१।।

बृहस्पतिरुवाच

मासो वैशाखनामाऽयं प्रियो वै मधुघातिनः।
सर्वाश्च तिथियः पुण्या मासेऽस्मिन्माधवप्रिये॥४२॥
तत्राऽपि च सितेपक्षेमासेऽस्मिन्नक्षयाह्वया। यास्तस्यांस्नानदादिश्रद्धयाचकरोतिवै॥४३॥
तस्यपापसहस्त्राणि नश्यन्त्येव न संशयः। अनवद्यं तथैश्वर्यं बलं धैर्यं भवन्ति च॥४४॥
तस्मात्तस्यांतृतीयायांहरिणाबलविद्विषा। स्नानदानादिसद्धर्मान्कारयामोहिताऽऽप्तये॥४५॥
भविष्यति चसा शक्तिर्विद्याया मन्त्रशास्त्रयोः। बलं धैर्यं यशश्चैवयथापूर्वंभविष्यति॥४६॥
इत्येवन्तु विचार्याऽथ गुरुर्देवैः समाहितः। इनद्रेणकारयामासधर्मानेतान्हरिप्रियान्॥४७॥
अक्षय्ययांतृतीयायांभुक्तिमुक्तिफलप्रदान्। तेनपूर्ववदेवाऽऽसीद्बलंधैर्यादिकंविभोः॥४८॥
परस्त्रीसङ्गदोषोऽपि सद्य एव व्यलीयत। पश्चाद्धताशुभः शक्रोराहोर्मुक्त इवोडुपः॥४९॥

देवतानां तथा मध्ये शुशुभे च हरिर्यथा। पश्चाद्देःवैसमायुक्तोविनिर्जित्यतथाऽसुरान्॥५०॥
तृतीयायाश्च माहात्म्याद्भाग्ययुक्तोऽमरावतीम्।
विवेश विभवैः सार्द्धं शङ्खतूर्यादिनिःस्वनैः॥५१॥

बृहस्पति कहते हैं—"सम्प्रति मधुसूदन को प्रिय वैशाखमास आ रहा है। माधवप्रिय इस वैशाख में समस्त तिथियां अत्यन्त पवित्र हैं। वैशाखीय पुण्य तिथियों में भी शुक्लपक्षीय पुण्या अक्षय तृतीया नामक तिथि परम पवित्र है। जो मानव श्रद्धा के साथ इस दिन स्नान-दानादि करते हैं, उनके हजारों-हजारों पापों का नाश हो जाता है। उसे अनिन्दित ऐश्वर्य, बल तथा धैर्यलाभ निःसंदिग्ध रूप से होता है। इसलिये मैं देवराज को उनके हितार्थ अक्षय तृतीया के दिन स्नान-दानादि सभी उत्तम कृत्य कराऊंगा। मेरी मन्त्रशक्ति तथा शास्त्रज्ञान द्वारा देवराज को पूर्ववत् बल-धैर्य-यशलाभ होगा।" समाहित देवगुरु ने यह विचार करके सुरराज से वैशाखीय अक्षय तृतीया के दिन भुक्ति-मुक्तिफलप्रद हरि के प्रिय धर्मकार्य को कराया। इस पुण्य के प्रभाव से सुरराज को पूर्ववत् बल-वीर्य तथा धैर्य आदि गुणों की प्राप्ति हो गयी। उनका परस्त्रीसंसर्ग जनित दोष भी सद्यः विलीन हो गया। देवराज ऐसे निष्कलुष हो गये जैसे राहु से मुक्त चन्द्रमा हो जाते हैं। वे देवगण के बीच वासुदेव ऐसे शोभित होने लगे। अक्षय तृतीया के प्रभाव से उनको पुनः सौभाग्यलाभ तथा अपना खोया ऐश्वर्य प्राप्त हो गया। उन्होंने देवगण के साथ होकर दैत्यों को पराजित कर दिया। वे पुनः अमरावती में प्रविष्ट हो गये। तब चतुर्दिक् शंख-तूर्य आदि वाद्यों की प्रतिध्वनि गूंजने लगी।।४२-५१।।

अनुज्ञाताऽश्च शक्रेण स्वधामानि ययुः सुराः। ततस्ते यज्ञभागांश्चलेभिरेचयथापुरा॥५२॥
पिण्डभागांश्च पितरोयथापर्वं प्रपेदिरे। स्वाध्याये मुनयस्तुष्टा दैत्यानाञ्च पराजयः॥५३॥
तदाप्रभृति लोकेऽस्मिंस्तृतीया चाऽक्षयाऽऽह्वया। प्रख्याता सर्वलोकेषु देवर्षिपितृतुष्टिदा॥५४॥
तस्मात्पुण्यतमावैषासर्वकर्मनिकृन्तनी। भुक्तिमुक्तिप्रदानृणांतृतीयाचाऽक्षयाऽऽह्वया॥५५॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डे
वैशाखमाससमाहात्म्ये नारदाम्बीषसम्वादेऽक्षय्यतृतीयायाः श्रेष्ठत्वकथनं-
नाम त्रयोविंशोऽध्यायः।।२३।।

अन्य देवगण भी इन्द्र की आज्ञा लेकर अपने-अपने गृह में निवास करने लगे। तदनन्तर असुरों की पराजय के कारण देवगण को पूर्ववत् यज्ञभाग प्राप्त हो गया। पितृगण को पिण्डभोग प्राप्त होने लगा। तब से यह वैशाख शुक्ल तृतीया त्रैलोक्य में अक्षया कही गयी। त्रैलोक्य प्रसिद्ध अक्षया देव-पितृगण-ऋषिगण को प्रसन्नता देती है। अतः इस पुण्यतमा तृतीया के दिन मनुष्यगण के निखिल कर्मों का शोधन करने वाली भुक्ति-मुक्ति प्रदा है।।५२-५५।।

।।त्रयोविंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

चतुर्विंशोऽध्यायः

शुनी की मोक्षप्राप्ति, मालिन्या चरित्र वर्णन

श्रुतदेव उवाच

तिथिष्वेतासु पुण्यासुद्वादशीसितपक्षिणी। वैशाखमासेराजेन्द्रसर्वाघौघविनाशिनी॥१॥
किं दानैः किंःतपोभिश्च किमुपोष्यैर्व्रतैश्च किम्। किमिष्टैश्चैव पूतैश्च द्वादशी यैर्न सेविता॥२॥
गङ्गायामुपरागे यु तो दद्याद्गोसहस्त्रकम्। तत्फलं सवाप्नोतिप्रातःस्नात्वाहरेर्दिने॥३॥
यद्दत्तंचार्हतेचाऽन्नंद्वादश्याञ्चसितेशुभे। सिक्थेसिक्थेभवेत्तस्यकोटिब्राह्मणभोजनम्॥४॥
यो दद्यात्तिलपात्रन्तुद्वादश्यांमधुसंयुतम्। निर्धूताऽखिलबन्धस्तुविष्णुलोकेमहीयते॥५॥

श्रुतदेव कहते हैं—हे राजेन्द्र! वैशाख की पवित्र तिथियों में समस्त कलुष विनाशिनी शुक्लपक्ष की द्वादशी का अन्यतम स्थान है। जो इस द्वादशी के दिन व्रताचरणादि नहीं करते, उनका दान, तप, उपवास, व्रत, इष्ट-पूर्त्तादि सर्व कर्म विफल ही है। मानव सूर्य-चन्द्रग्रहणकाल में गंगा के निकट सहस्त्रगोदान से जो फललाभ करता है, हरि को प्रिय इस द्वादशी के दिन प्रातःस्नान द्वारा उसे वही फल प्राप्त हो जाता है। वैशाख की शुभ तिथि के दिन योग्य व्यक्ति को अन्नदान करने से प्रत्येक अन्न कण से उस व्यक्ति को कोटि ब्राह्मण भोजन का फल मिलता है। जो मनुष्य इस द्वादशी के दिन मधुयुक्त तिल भरा पात्र दान करता है, उसकी समस्त पापराशि ध्वस्त हो जाती है। उसे विष्णुलोक की प्राप्ति होती है।।१-५।।

एकादश्यां सिते पक्षे कुर्य्याज्जारणंहरेः। स जीवन्नेव मुक्तःस्यात्तुष्टास्तुःरार्वदेवताः॥६॥

कोटीन्दुसूर्यग्रहणे तीर्थान्युत्प्लाव्य यत्फलम्।
तत्फलं समवाप्नोति प्रातः स्नात्वा हरेर्दिने॥७॥
तुलस्याः कोमलैः पत्रैर्द्वादश्यां विष्णुमर्चयेत्।
समस्तकुलमुद्धृत्यविष्णुलोकाऽधिपो भवेत्॥८॥
(क्षेपकः—तुलसीपत्रपुष्पैश्च वैशाखेऽश्वत्थपूजनम्।
पुष्पाद्यभावे धान्यैर्वा पूजयेन्मधुसूदनम्।)

यमंपितॄन्गुरून्देवान्विष्णुमुद्दिश्यमानवः। माधवे शुक्लद्वादश्यांसोदकुम्भंसदक्षिणम्॥९॥
दध्यन्नञ्चैव यो दद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु। प्रयागे प्रत्यहञ्चैव कुर्याद्यःकोटिभोजनम्॥१०॥
यावत्सम्वत्सरंपुण्यं षड्रसान्नैर्मनोरमेः। तत्फलं समवाप्नोति मधुशासनशासनात्॥११॥

जो मानव वैशाख शुक्ला एकादशी के दिन जागरण करता है, वह जीवन्मुक्त होता है। देवता उस पर प्रसन्न हो जाते हैं। समस्त तीर्थों में कोटि-कोटि सूर्यचन्द्र ग्रहण स्नान करने का जो फल है, एकमात्र केवल इस एकादशी के दिन प्रातःस्नान से प्राप्त हो जाता है। मानव इस द्वादशी के दिन तुलसी के कोमलदल से विष्णुपूजन करके समस्त कुल का उद्धारक हो जाता है। वह स्वयं विष्णुलोकाधिपतिवत् हो जाता है। वैशाख में तुलसीपत्र

तथा पुष्प से पीपल तथा मधुसूदन की पूजा करनी चाहिये। यदि पुष्पादि न मिले, तब मात्र धान्य से ही उनका पूजन करे। मानव वैशाख शुक्ला द्वादशी के दिन विष्णु के उद्देश्य से यम-पितृगण-गुरु-देवगण की पूजा करके जलपूर्ण कुंभ ब्राह्मण को दक्षिणा के साथ प्रदान करे। अब इस पुण्य दिवस के दिन दधियुक्त अन्न दान का पुण्यफल श्रवण करो। अन्नदानी को प्रयाग में नित्य षड्रसयुक्त मनोहर अन्न से वर्ष पर्यन्त एक करोड़ ब्राह्मणों को भोजन कराने का जो फल होता है, वैशाख में दधियुक्त अन्नदान का भी वही फल है।।६-११।।

शालिग्रामशिलादानं यः कुर्याद्द्वादशी दिने।
वैशाखे शुक्लपक्षे तु सर्वपापैःप्रमुच्यते॥१२॥
द्वादश्यां पयसा यस्तु स्नापयेन्मधुसूदनम्। राजसूयाऽश्वमेधाभ्यां यत्फलं परिजायते॥१३॥
त्रयोदश्यां यजेद्विष्णुं पयोदधिविमिश्रितैः। शर्करामधुभिर्द्रव्यैर्मधुसूदनप्रीतये॥१४॥
तत्फलंसमवाप्नोतिगङ्गायांनाऽत्रसंशयः। पञ्चामृतैश्चयोविष्णुंभक्त्यासंस्नापयेद्विभुम्॥१५॥
स सर्वकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते। यो दद्यात्पानकंह्यस्यां सायाह्नेप्रीतयेहरेः॥१६॥
जीर्णपापं जहात्याशुजीर्णां त्वचमिवोरगः। सायाह्नेचैव यो दद्यादुर्वारुकरसायनम्॥१७॥
भवेन्मुक्तः कर्मबन्धादुर्वारुकरसायनात्। इक्षुदण्डं चूतफलं दद्याद्द्राक्षाफलानि च॥१८॥
न विच्छित्तिः सन्ततेः स्यात्तस्य वै शतपूरुषम्।
यो दद्याद्गन्धलेपं तु सायाह्ने द्वादशीदिने॥१९॥
बाह्योपघातैः सकलैर्मुच्यते नाऽत्र संशयः। यत्किञ्चित्कुरुतेपुण्यं द्वादश्यांराजसत्तम॥२०॥

वैशाख की शुक्लाद्वादशी के दिन शालग्रामशिला का दान करने वाला समस्त कलुष से रहित हो जाता है। जो मानव द्वादशी के दिन दुग्ध से मधुसूदन को स्नान कराता है, उसे राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञफल लाभ होता है। त्रयोदशी के दिन मधुसूदन की प्रसन्नता के लिये दधि दुग्ध मिश्रित शर्करा एवं मधु द्वारा विष्णु को स्नान कराये। इससे निःसंदिग्ध रूपेण गंगा स्नान फललाभ होता है। जो मानव भक्ति के साथ पंचामृत से श्रीहरि को स्नान कराता है वह समस्त कुल का उद्धारक होकर विष्णुलोक में निवास करता है। जो मानव त्रयोदशी के दिन श्रीहरि की प्रसन्नता के लिये सायंकाल पानीय प्रदान करता है उसके समस्त पाप जीर्ण होकर उसका उसी प्रकार त्याग कर देते हैं, जैसे सर्प अपनी जीर्ण केंचुल का त्याग करता है। जो व्यक्ति सायंकाल उर्वारुक रसायन दान करता है, वह इस रसायन के प्रभाव से कर्मबन्धनरहित हो जाता है। जो मानव गन्ना, आम, द्राक्षाफल दान करता है, उसकी १०० पीढ़ी तक को सन्तान का वियोग नहीं होता। जो दशमी (वैशाख शुक्लादशमी) के दिन सायंकाल गन्धानुलेपन दान करता है, वह निःसंदिग्ध रूप से बाह्य उपघात से रहित हो जाता है। हे राजन्! वैशाखशुक्ला द्वादशी के दिन जो भी पुण्य किया जाता है।।१२-२०।।

माधवे तु सिते पक्षे तदक्षय्यफलंलभेत्। प्रख्यातिमस्या वक्ष्यामियेनजातेतिभूमिप॥२१॥
सर्वेषां सर्वपापघ्नीं सर्वमङ्गलदायिनीम्। पुराकाश्मीरदेशे तु द्विजोदेवव्रताह्वयः॥२२॥
तस्याऽऽसीन्मालिनीनामतनयाचारुरूपिणी। ददौतांसत्यशीलायविप्रवर्यायधीमते॥२३॥
तामुद्वाह्य यौ धीमान्स्वदेशं यवनाऽऽह्वयम्। रूपयौवनसम्पन्ना तस्य नैव प्रियाऽभवत्॥२४॥

सदा विद्वेषसंयुक्तस्तस्यां तिष्ठति निष्ठुरः।
नाऽन्यस्य कस्यचिद्द्वेष्टि तां विना नृपते! पतिः॥२५॥

वह अक्षय फलदायक होता है। हे भूमिपाल! अब वह प्रसंग कहता हूं जिसके कारण वैशाख शुक्ला द्वादशी की ख्याति हुई है। यह तिथि सभी लोकों के कलुष का नाश करने वाली है तथा समस्त मंगलप्रदा है। पूर्वकाल में देवव्रत नामक एक द्विज काश्मीर में रहते थे। उनकी एक सुन्दरी कन्या मालिनी नामक थी। देवव्रत ने द्विजश्रेष्ठ बुद्धिमान सत्यशील को यह कन्या प्रदान किया था। उनके देश का नाम था यवन। सत्यशील मालिनी का पाणिग्रहण करके अपने देश चले गये। यद्यपि मालिनी रूपयौवनसम्पन्ना थी, तथापि वह सत्यशील की प्रिय नहीं हो सकी। सत्यशील मालिनी से द्वेष करता हुआ नित्य उससे निष्ठुर व्यवहार करता था। हे राजन्! सत्यशील सबके प्रति निष्ठुर नहीं था। वह केवल मालिनी से ही द्वेषयुक्त था। अन्य के प्रति वह द्वेषयुक्त नहीं रहता था।।२१-२५।।

तस्मिन्सा क्रोधसंयुक्ता वशीकरणलम्पटा।
अपृच्छत्प्रमदा राजन्यास्त्यक्ताः पतिभिः पुरा॥२६॥
ताभिरुक्ता तु सा भूप! वश्यो भर्त्ता भविष्यति।
अस्माकं प्रत्ययो जातो भर्तृत्यागावमानिनाम्॥२७॥
प्रयुज्यभेषजंवश्यंनीताहि पतयः पुराः। योगिनींत्वं तु गच्छाऽद्यदास्यतेभेषजंशुभम्॥२८॥
नविकल्पस्त्वयाकार्योभवितादासवत्पतिः। योगिनीमन्दिरेगत्वातासांवाक्येनभूपते॥२९॥
प्रसादमतुलंतस्या लेभेदुश्चारिणी सती। शतस्तम्भसमायुक्तांकुटीं भेजेत्वरान्विता॥३०॥

तब मालिनी भी पति से कुपित हो गयी। वह पति पर वशीकरण करने का विचार करने लगी। हे राजन्! एक दिन मालिनी ने ऐसी स्त्रियों से बात किया जो सब पति द्वारा त्यक्त थीं। उन सबने मालिनी से कहा—"शीघ्र ही तुम्हारा पति वश में होगा। पूर्व में हमारे पतियों ने भी हमारा त्याग कर दिया था। हम सब पति से त्यक्ता होकर अपमानित हो रहीं थीं। इस औषधि का प्रत्यक्ष फल देखने में आया। हमारे अपने-अपने पति हमारे वश में हो गये। तुम अभी उस योगिनी के पास जाओ। वह तुमको शुभप्रद औषधि प्रदान करेंगी। तुम हृदय में दुविधा न करो। उस औषधि द्वारा तुम्हारा स्वामी दासवत् वशीभूत हो जायेगा।" हे राजन्! तब सती मालिनी की बुद्धि कलुषित हो गयी। वह उन स्त्रियों के कथनानुसार शीघ्रतापूर्वक उस योगिनी के स्थान पर पहुंची। उसने योगिनी की अपूर्व कृपा को प्राप्त भी किया। उस यागिनी का गृह १०० स्तम्भ वाला था।।२६-३०।।

सुविस्तृतां सुवर्चस्कां तथैवाऽयातयामिकाम्।
प्रावृता दीर्घवस्त्रेण सन्निधिं तेन योगिनी॥३१॥
दीर्घाभिश्च सटाभिस्तु प्रावृतादीप्तिसंयुता। परिचारसमोपेता वीक्षमाणा शनैःशनैः॥३२॥
अक्षसूत्रकरा सा तु जपन्ती प्रार्थिता तया। ददौवश्यकरमंत्रं क्षोभकं प्रत्ययात्मकम्॥३३॥
ततः सा प्रणता भूत्वा दद्याद् द्रव्याङ्गुलीयकम्। वज्रमाणिक्यसंयुक्तमतिरक्तप्रभान्वितम्॥३४॥
मृदुकाञ्चनसंयुक्तं भानुरश्मिसमद्युति। ततो दृष्ट्वा त सन्तुष्टा पादस्थंचाङ्गुलीयकम्॥३५॥

वह कुटीगृह विस्तृत, अत्युज्वल था। उसका निर्माण कौशल ऐसा था, मानो उसका निर्माण हाल ही में हुआ है! यह योगिनी दीर्घ वस्त्रों से आवरित थी। उसके मस्तक पर विशाल जटा थी। वह अत्यन्त दीप्तिमती भी थी। परिचारकगण उसके समीप रहते हुये उसकी सेवा कर रहे थे। उनके हाथों में माला थी, जिससे वे सभी जप कर रहे थे। योगिनी ने मालिनी की प्रार्थना सुनकर उसे वशीकरण के द्वारा मन में क्षोभ उत्पन्न करने वाला मन्त्र प्रदान किया। मालिनी ने भी योगिनी को प्रणाम किया तथा मन्त्र की दक्षिणा के रूप में उसे अपनी मुद्रिका दे दिया। यह अंगूठी हीरा तथा माणिक जड़ी होने के कारण अत्यन्त लोहित प्रभा से दीप्तिमान थी। यह कमनीय स्वर्ण की बनी होने के कारण सूर्य किरण की तरह शोभायमान हो रही थी। हे राजन्! योगिनी भी अपने चरणों पर पड़ी इस अंगूठी को देखकर प्रसन्न हो गयी।।३१-३५।।

हृदयञ्च तथा ज्ञातं तत्पतेरवमानजम्। तदोक्ता हि तया भूप! तापस्या हितयुक्तया॥३६॥
चूर्णो रक्षान्वितोह्येष सर्वभूतवशङ्करः। चूर्णं भर्तरि संयुज्य रक्षां ग्रीवाश्रयां कुरु॥३७॥
भविष्यति पतिर्वश्यो नाऽन्यां यास्यति सुन्दरीम्।
नाऽप्रियं वदति क्वापि दुश्चारिण्यास्तवाऽपि च॥३८॥

तापसी योगिनी ने विचार किया कि पति से अपमानित होकर मालिनी का हृदय ऐसा हो गया है। यह विचार करके योगिनी ने उसके पति का अहित करने की इच्छा से मालिनी से कहा—"यह रक्षायुक्त चूर्ण लो। यह समस्त प्राणियों को वशीभूत करने वाला है। तुम यह चूर्ण स्वामी को खिलाओ तथा यह रक्षा सूत्र उसके गले में पहना दो। इससे तुम्हारा स्वामी वशीभूत होगा तथा अन्य किसी स्त्री से आसक्त नहीं होगा। किम्बहुना, भले ही तुम दुराचारिणी भी हो जाओ, तब भी तुमसे कदापि अप्रिय वाक्य नहीं कहेगा।"।।३६-३८।।

चूर्णरक्षां गृहीत्वा सा प्राप भर्तृगृहं पुनः। प्रदोषे पयसायुक्तश्चूर्णाभर्तरियोजितः॥३९॥
ग्रीवायां हि कृता रक्षा न विचारः कृतस्तया। तदा सपीतचूर्णस्तुभर्त्तानृपवरोत्तम॥४०॥
तच्चूर्णात्क्षयरोगोऽभूत्पतिः क्षीणोदिनेदिने। गुह्येतुकृमयोजाताघोरादुष्टवणोद्भवाः॥४१॥
दिनैःकतिपयैराजन्पत्युर्नैवव्यवस्थितिः। उवासस्वेच्छयासाऽपिपुंश्चलीदुष्टचारिणी॥४२॥
हततेजास्ततो भर्ता तामुवाचाऽऽकुलेन्द्रियः।
क्रन्दमानो दिवारात्रौ दासोऽस्मि तव शोभने!॥४३॥

मालिनी रक्षासूत्र तथा चूर्ण लेकर पतिगृह पहुंची। उसने प्रदोषकाल में दुग्ध में वह चूर्ण मिला कर पति को खिला दिया। मालिनी के मन में कोई दुविधा नहीं थी। उसने अपने पति के कण्ठ में वह रक्षासूत्र भी बांध दिया। हे नृपोत्तम! मालिनी के पति ने दूध के साथ उस चूर्ण का पान किया था, जिससे उसे क्षय रोग हो गया। वह दिन प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा था। साथ ही उसके गुह्य प्रदेश में व्रण भी हो गया। उस व्रण में भयानक कीड़े पड़ गये। हे राजन्! कुछ दिन व्यतीत हो जाने पर अब मालिनी पति के पास नहीं रहती थी। वह दुष्टचरित्र होकर स्वेच्छाचारिणी हो गयी तथा वेश्यावृत्ति करने लगी। कान्तिरहित सत्यशील दिन-रात रुदन करते-करते आकुल होकर एक दिन मालिनी से कहने लगा—"हे शोभने! मैं दिन-रात रुदन करता रहता हूं। मैं तुम्हारा दास हूं।"।।३९-४३।।

त्राहि मां शरणं प्राप्तंनेच्छेऽहमपरांस्त्रियम्। तत्तस्यविदितंज्ञात्वाभीतासामेदिनीपते।।४४।।
अलङ्कारकृते पत्युर्जीविनेच्छुर्न वै हिता। योगिनीं च ययौ शीघ्रं तस्यैसर्वंन्यवेदयत्।।४५।।

"मैं तुम्हारी शरण में हूं। मेरी रक्षा करो। मैं कदापि किसी स्त्री के पास नहीं जाऊंगा।" हे पृथिवीनाथ राजन्! मालिनी स्वामी का वाक्य सुनकर भयभीत हो गयी। तब वह अपने आभूषण पहन रही थी। उसने पति के कथन पर भी उसकी जीवनरक्षा का कोई उपक्रम नहीं किया। वह शीघ्रता से उस योगिनी के यहां गयी तथा उससे समस्त वृत्तान्त कहा।।४४-४५।।

तया च भेषजं दत्तं द्वितीयंदाहशान्तये। दत्तेचभेषजेतस्मिन्स्वस्थोभूत्तत्क्षणात्पतिः।।४६।।
तिष्ठत्युपपतिर्गेहे गृहकृत्याऽपदेशतः। सर्व वर्णसमुद्भूता जारास्तिष्ठन्ति वै गृहे।।४७।।
न किञ्चिद्वचने शक्तिर्भर्तुर्जाता कथञ्चन। ततस्तेनैव दोषेण सर्वाङ्गेषु च जज्ञिरे।।४८।।
कृमयश्चास्थिभेत्तारः कालान्तकयमोपमाः।
तैर्नासाजिह्वयोश्चाऽऽसीच्छेदः कर्णद्वयस्य च।।४९।।
स्तनयोश्चाङ्गुलीनाञ्च पङ्गुत्वंचाऽपि चाऽऽगतम्। तेनपञ्चत्वमापन्नागतानरकयातनाः।।५०।।
ताम्रभाण्डे च सा दग्धाऽयुतानिदश पञ्च च। श्वानयोनिषुसञ्जाता शतवारं पुनःपुनः।।५१।।
छिन्ननासा छिन्नकर्णा कृमिमूर्द्धा निरन्तरम्। छिन्नपुच्छाभग्नपादा ताडिताचगृहेगृहे।।५२।।
पश्चात्सौवीरदेशेषु पद्मबन्धोर्द्विजस्य च। दास्या गृहेशुनी जाता बहुदुःखसमाकुला।।५३।।
छिन्नकर्णा छिन्ननासा छिन्नपुच्छाऽङ्घ्रिरातुरा।
कृमिपूर्णशिरा नित्यं कृमियोनिश्च तिष्ठति।।५४।।

योगिनी ने सत्यशील की दाहशान्ति हेतु अन्य एक औषधि प्रदान किया। मालिनी ने वह उत्तम औषधि पति को खिला दिया। औषधि खाते ही सत्यशील क्षणकाल में ही स्वस्थ हो गया। तब मालिनी अपने उपपति के घर गयी। उसने अपना गृहकार्य नहीं किया तथा उपपति के यहां चली गयी। उसके यहां सभी वर्ण के उपपति आने लगे, परन्तु सत्यशील यह सब देखकर भी कुछ नहीं कह पा रहा था। तदनन्तर इस पाप से मालिनी की समस्त देह में यम के समान कीड़े पड़ गये। इन कीटों ने उसकी अस्थि तक में छिद्र कर दिया। क्रमशः उसकी नासिका, जिह्वा, दोनों कान, स्तन, उंगलियां छिन्न हो गयीं। मालिनी पंगु हो गयी। तदनन्तर वह मृत होकर नाना नरकयातना भोगने लगी। उसे पन्द्रह जन्मों तक उत्तप्तताम्रभाण्ड नामक नरक में दग्ध किया गया। सौ बार उसने कुत्ते की योनि में कुतिया होकर जन्म लिया। इस कुतिया योनि में भी वह छिन्न नासा, छिन्न कर्णा, छिन्न पुच्छ तथा छिन्न पद रहती थी। कीड़े सर्वदा उसके मस्तक में काटते रहते तथा जहां भी वह जाती गृहस्थ लोग उसे दुरदुरा देते! तदनन्तर मालिनी सौवीरदेशस्थ पद्मबन्धु ब्राह्मण के दासीगृह में श्वान योनि में जन्म लेकर नाना दुःख भोग करने लगी। इस जन्म में भी वह यथापूर्व छिन्नकर्णा-छिन्ननासा-छिन्नपुच्छा-छिन्नपदा थी तथा दुःखातुरा रहती थी। उसके मस्तक तथा योनि में कृमि सदा काटते रहते!।।४६-५४।।

एवं त्रिंशद्गतावर्षा अस्मिञ्जन्मनि भूमिप। दैवात्कर्मविपाकेन वैशाखे मेषगे रवौ।।५५।।
शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां पद्मबन्धोस्तनूद्भवः। नद्यांस्नात्वा शुचिर्भूत्वा सार्द्रवस्त्रोगृहंययौ।।५६।।

तुलसीवेदिकाम्प्राप्य पादाववनिजे निजौ। वेदिकायामधोदेशे साशुनीस्वापमागता॥५७॥

प्राक्सूर्योदयवेलायां पादोदकपरिप्लुता।

सद्यो ध्वस्ताऽशुभा जाता जातिस्मृतिरभूत्क्षणात्॥५८॥

हे भूमिपति! एवंविध उसके तीस वर्ष व्यतीत हो गये। तभी वह समय आया जब सूर्यदेव मेषराशीस्थ हो गये। ब्राह्मण पद्मबन्धु का पुत्र वैशाख शुक्लाद्वादशी के दिन नदी स्नान करके पावन होकर गीले कपड़े से गृह वापस लौट रहा था। उसने तुलसी वाटिका पहुंचने पर जल से अपने चरण धोये। कर्मविपाक के कारण दैवयोग से यह कुक्कुरी जो पूर्वजन्म में मालिनी थी, उस तुलसी वाटिका के पास सोई थी। तब सूर्योदय नहीं हुआ था। वह कुक्कुरी उस ब्राह्मण के चरण जल से भींग गई। इस चरणोदक के प्रभाव से उसकी अशुभराशि का ध्वंस हो गया तथा क्षणकाल में ही उसे पूर्वजन्मों की स्मृति जाग्रत हो उठी।।५५-५८।।

स्मृत्वा कर्म कृतं पूर्वं सा शुनी तापसंतदा। चुक्रोशकरुणादीनामुने त्राहीतिवै पुनः॥५९॥

स्वकर्मच मुनीन्द्राय स्मृत्वाचख्यौभयाऽऽकुला।

भर्तुर्विषप्रयोगं तु स्वस्य दुश्चरितं तथा॥६०॥

याऽन्यापियुवती ब्रह्मन् भर्तुर्वश्यंसमाचरेत्। वृथाधर्मा दुराचारा पच्यते ताम्रभाजने॥६१॥

भर्तानाथोगुरुर्भर्ताभर्तादैवतमुत्तमम्। विक्रियांकृत्यसाध्वीसा कथंसुखमवाप्नुयात्॥६२॥

तिर्यग्योनिशतं याति कृमिकोटिशतानिव। तस्माद्भूसुरकर्तव्यंस्त्रीभिर्भर्तुर्वचःसदा॥६३॥

साऽहं पश्ये पुनर्योनिं कुत्सितां यातनान्विताम्।

यदि नोद्धरसे ब्रह्मन्नद्यत्वद्दृष्टिसम्मुखाम्॥६४॥

तस्मादुद्धर मां ब्रह्मन्दुष्कृतां पापचारिणीम्। सुकृतस्य प्रदानेन वैशाखे शुक्लपक्षके॥६५॥

या कृता तु त्वया ब्रह्मन्द्वादशी पुण्यवर्द्धिनी।

तस्यां त्वया कृतं पुण्यं स्नानदानान्नभोजनैः॥६६॥

दुश्चारिण्याअपि ब्रह्मस्तेनमुक्तिर्भविष्यति। यस्यांतुभूसुरःस्नातःस्वगृहेमनुजःकिल॥६७॥

सर्वतीर्थफलावाप्तिं लभते ताऽत्र संशयः। तप्तं दत्तं हुतं यत्र कृतं देवार्चनादि यत्॥६८।

तदक्षय्यफलं ज्ञेयं यत्कृतं द्वादशीदिने। एवं विधफलं यत्स्यात्तद्देहि सकलं मम्॥६९॥

द्वादश्यामुपवासेन त्रयोदश्यां तु पारणात्। यत्फलं स्यात्तदप्यद्धा तेन मुक्तिंर्भविष्यति॥७०॥

दीना कुक्कुरी अपने पूर्वकृत कर्म का स्मरण करके अत्यन्त उच्च स्वर में मुनिपुत्र को सम्बोधित करके पुनः पुनः कहने लगी "हे मुनिवर! मेरी रक्षा करिये।" उसने अपने पूर्व कर्म स्मरण से भयाकुला होकर उन सब कर्मों का वर्णन उन मुनिपुत्र से किया। उसने अपने स्वामी पर विषप्रयोग, अपनी दुष्चरित्रता, आदि का वर्णन करते हुये कहा—"हे ब्रह्मन्! मेरे समान अन्य कोई भी युवती पति पर वशीकरण प्रयोग करने पर ताम्रभाजन नरक गमन करेगी। वह दुर्वृत्ता होती है। उसका समस्त धर्म व्यर्थ है। वास्तव में पति ही नाथ, गुरु तथा उत्तम देवता है। साध्वी स्त्री अपना चरित्र विकृत करके कैसे सुख लाभ कर सकती है? ऐसी दुश्चरित्र रमणी सैकड़ों

तिर्यक् योनि तथा शतकोटि कृमियोनि में जन्म लेती है। हे द्विज! नारीगण सतत् पति की आज्ञा का पालन करें। मैंने वह नहीं किया। हे ब्राह्मण! अब मैं आपके समक्ष हूं। यदि आप मेरा उद्धार नहीं करते तब अवश्य ही मुझे पुनः यातना से पूर्ण कुयोनियों में जन्म लेना पड़ेगा। मैं दुष्कृत कार्य करने वाली हूं। मैं पापिनी हूं। हे ब्रह्मन्! आप सुकृति हैं। आपने वैशाख में पुण्यप्रदा शुक्लाद्वादशी के दिन स्नान-दान-ब्राह्मणभोजनादि द्वारा अनेक पुण्य संचय किया है। मैं आपके आश्रय में आई हूं। अतः मैं दुश्चारिणी होकर भी आपकी कृपा से मुक्ति लाभ करूंगी। द्वादशी के दिन द्विज जिस मनुष्य के गृह में स्नान करते हैं, वह व्यक्ति घर बैठे समस्त तीर्थों का फललाभ करता है। इसमें सन्देह नहीं है। द्वादशी के दिन तप, दान, होम तथा देवपूजा आदि जो कुछ किया जाता है, वह सब अक्षय फलप्रद हो जाता है। हे महाभाग! आप अपने द्वादशी तिथि के फल को मुझे प्रदान करिये। आपने द्वादशी के दिन उपवास करने के अनन्तर त्रयोदशी के दिन पारण द्वारा जो पुण्य अर्जित किया है, वह पुण्य मिलने से मेरी मुक्ति होगी।।५९-७०।।

दयां कुरु महाभाग! दीनायां दीनवत्सल। दीननाथो जगन्नाथो युष्मन्नाथोजनार्दनः।।७१।।
तदीयास्तादृशाएवयथाराजातथाप्रजाः। वैवस्वतपदध्वं सिन्परित्राहिसुदुः खिताम्।।७२।।
त्वद्द्वारवासिनीं दीनांशुनींमांदीनवत्सल। ब्रह्महत्यासहस्त्रम्वागोहत्यानांसहस्त्रकम्।।७३।।
अगम्यानाञ्च कोटीश्च दहत्येव शुभातिथिः। तस्यां कृतं महापुण्यं मह्यंदत्त्वामहामुने।।७४।।
मामुद्धर समद्विग्नां दीनां नाथ समुद्धर। अन्तेतुभ्यं द्विजेन्द्राय नमउक्तिं वदाम्यहम्।।७५।।

हे दीन वत्सल! मैं दीना हूं। मेरे प्रति दया करिये। आप दीनानाथ, जगन्नाथ हैं। आपके नाथ भी नारायण हैं। आपके लिये राजा तथा प्रजा समान हैं। हे यमजयी! मैं अतीव दुःखी, दीना, कुतिया हूं। मैं आपके द्वार पर पड़ी रहने वाली हूं। मेरी रक्षा करें। हे दीन वत्सल! इस द्वादशी नामक शुभतिथि द्वारा सहस्रों ब्रह्महत्या पाप, सहस्रों गोहत्या तथा कोटि अगम्यागमनजनित पापों का नाश हो जाता है। हे महामुनि! आपने इस द्वादशीतिथि के दिन जो महापुण्य अर्जित किया है, वह मुझे प्रदान करके मेरी रक्षा करिये। हे नाथ! मैं दीना तथा उद्विग्ना हूं। आप मेरा उद्धार करें। हे द्विजेन्द्र! मैं और क्या कहूं। मैंने आपको प्रणाम करके अपना वक्तव्य समाप्त किया।।७१-७५।।

इतितस्यावचःश्रुत्वाशुनीमाहमुनेःसुतः। स्वकृतंजन्तवोऽश्नन्तिसुखदुःखात्मकंशुनि।।७६।।
तस्मात्किमु त्वया कार्यं क्षुद्रया पापशीलया।
यया भर्ता वशं नीतो रक्षाचूर्णादिभिर्द्विजः।।७७।।
साधुभ्यो यत्कृतं पापं स्वस्य दुःखकरम्भवेत्।
साधुभ्यो यत्कृतं पुण्यं स्वस्य दुःखहरम्भवेत्।।७८।।
उभयं भ्रंशतामेति पापेभ्यो यत्कृतम्भवेत्। शर्करामिश्रितं क्षीरं काद्रवेयनिवेदितम्।।७९।।
विषवृद्धिकरं दृष्टमेवं पापकरं भवेत्। वदत्येवं मुनिसुते शुनी दुःखैकरूपिणी।।८०।।
पुनचुक्रोशोर्ध्वस्वरं तत्पित्रे बहुभाषिणी। पद्मबन्धो! परित्राहि शुनींत्वद्द्वारवासिनीम्।।८१।।
त्वदुच्छिष्टाशिनीं नित्यं त्वं पाहीति पुनः पुनः।
स्वपोष्या ये हि वर्तन्ते गृहस्थस्य महात्मनः।।८२।।

तेषामुद्धरणंकार्यमिति वेदविदां मतम्। चण्डाला वायसाश्चैव सारमेयाश्च नित्यशः॥८३॥

कुक्कुरी की कथा सुनकर मुनिपुत्र ने उसे उत्तर दिया—"हे शुनि (कुक्कुरी) प्राणीगण को अपने पुण्य-पाप रूप कर्म का सुख-दुःखात्मक फल अवश्य भोगना पड़ता है। तुमने अपने पति को रक्षासूत्र तथा चूर्णादि द्वारा वश में करते हुये जो पाप किया है, उससे तुम पापचारिणी हो गयी। इससे तुम्हारा हीनचित्तभाव प्रकाशित हुआ। इस सम्बन्ध में मैं और क्या करूं? साधुगण के प्रति पाप का आचरण करना अपने लिये दुःखप्रद हो जाता है। पुण्यकार्य करने पर दुःखनाश हो जाता है। पापी के प्रति पापाचरण तथा पुण्यकार्य, यह दोनों ही निष्फल हो जाता है। सर्प को शर्करा मिला दूध पिलाना शुभ नहीं होता। इससे तो उसकी विषवृद्धि ही होती है। ऐसा कर्म भी पाप ही है।" मुनिपुत्र के यह कहने पर दुःख की प्रतिमूर्त्ति बनी वह कुक्कुरी पुनः विकटस्वर में चीत्कार करके उन मुनिपुत्र के पिता से कहने लगी कि—"हे पद्मबन्धु! मैं कुतिया हूं। आपके यहां की आश्रिता हूं। अतएव रक्षा करिये। मैं नित्य आपका जूठन खाती हूं। मेरा उद्धार करें। वेदवादीगण कहते हैं कि "जो महात्मा गृहस्थ का पोष्य (पाला गया) है, उसका उद्धार करना उस गृहस्थ का कर्त्तव्य है। चाण्डाल, काक, कुत्ते जिसके यहां का दिया भोजन करते हैं"।।७६-८३।।

गृहस्थानां दयापात्रं पत्यहम्बलिभोजिनः। अशक्तं नोद्धरेत्पोष्यं रोगाद्युपहतं यदि॥८४॥
सोऽधः पतेन्नः सन्देह इतिवेदविदांमतम्॥८५॥
कर्तारमेकं जगतां हिकर्ता कृत्वात्मना पाति समस्तजन्तून्।
दारादिरूपव्यपदेशतो हरिस्तस्मात्तदाज्ञा खलु पोष्यरक्षा॥८६॥
स्वपोष्यरक्षां परिहृत्यजन्तुर्दैवेन क्लृप्त्या यदि वर्ततेऽन्यधीः।
स देवद्रोग्धा सकलस्य हन्ता कीनाशलोकाननु सम्प्रयाति॥८७॥
कर्तव्यत्वाद्दयालुत्वादेतामुद्धर दुर्मतिम्। इति तस्या वचःश्रुत्वादुःखार्तायागृहेसुतः।
निश्चक्रामगृहात्तूर्णं पद्मबन्धुर्दयानिधिः॥८८॥
किमेतदिति तां प्राह पुत्रं सर्वं न्यवेदयत्। स तुपुत्रवचः श्रुत्वातमेवं प्राहविस्मितः॥८९॥

"वे उसी गृहस्थ की ही दया के पात्र हैं। जो गृहस्थ अशक्त तथा रोगाभिभूत पोष्य व्यक्ति का उद्धार नहीं करता, उसकी अधोगति होती है। यह वेदज्ञजन का मत है। जगत्पति हरि भी पत्नी आदि रूपेण कुटुम्ब के पोषक होकर समस्त प्राणीगण की रक्षा करते हैं। अतएव पोष्यरक्षा भगवान् द्वारा अनुमोदित है। दैव से विमुख गृहस्थ यदि पोष्य की रक्षा से उपेक्षा करते हैं तथा अन्य प्रकार की बुद्धि करते हैं, तब वे देवद्रोही तथा समस्त प्राणीगण के हत्या करने वाले माने गये हैं। वे देहान्त के उपरान्त नरक-यात्रा करते हैं। मैं दुर्मति हूं। आप दयालु हैं। अतः आप अपना कर्त्तव्य मानकर मुझे मुक्त करें।" उस दुःखी तथा द्वार पर रहने वाली कुक्कुरी का वाक्य सुनकर दयालु पद्मबन्धुगृह से बहिर्गत हुये तथा उसका विवरण अपने पुत्र से सुना। वे पुत्र से सभी प्रसंग सुनकर विस्मित हो गये तथा पुत्र से कहने लगे।।८४-८९।।

पद्मबन्धुरुवाच

ममात्मजकथं वाक्यमीदृशं व्याहृतं त्वया। न साधूनामिदं वाक्यं भवतीह वरानन॥९०॥

आत्मसौख्यकराः पापा भवन्ति परिभाविताः। पश्यपुत्र जनाः सर्वेपरोपकरणायवै॥९१॥
शशीसूर्योऽथ पवनो रजनी हुतभुग्जलम्। चन्दनं पादपाः सन्तःपरोपकरणेस्थिताः॥९२॥

पद्मबन्धु कहते हैं—"हे सौम्यवदन! तुम मेरे पुत्र होकर यह कैसी बात कह रहे हो? तुम्हारा कथन कदापि साधुसम्मत नहीं है। तुम्हारे मुख से ऐसी बातें शोभित नहीं लगतीं! जो व्यक्ति केवल अपने सुख हेतु कार्य करता है, वह पापाचार से ही परिभावित कहलाता है। हे पुत्र! प्राणियों के परोपकार व्रत को देखो। चन्द्र, सूर्य, वायु, रात्रि, अग्नि, जल, चन्दन वृक्ष साधुरूपी ये सभी सतत् परोपकार में लगे रहते हैं।"।।९०-९२।।

अस्थिदानंकृतं पुत्र कृपयाहिदधीचिना। देवानामुपकाराय ज्ञात्वा दैत्यान्महाबलान्॥९३॥
कपोताऽर्थे स्वमांसानि शिविनाभूभुजा पुरा। प्रदत्तानि महाभागश्येनायक्षुधितानिवै॥९४॥
जीमूतवाहनोराजा पुराऽऽसीत्क्षितिमण्डले। तेनाऽपि जीवितंदत्तंगरुडायमहात्मने॥९५॥

"हे पुत्र! महर्षि दधीचि ने महाबली देवगण की दीन दशा को देखकर उनके उपकारार्थ कृपापूर्वक अपनी अस्थि प्रदान कर दिया था। हे महाभाग! पूर्वकाल में कपोत के प्राण के बदले राजा शिवि ने भूखे बाज पक्षी को अपने देह का मांस अर्पित कर दिया था।"।।९३-९५।।

तस्माद्दयालुना भाव्यं भूसुरेण विपश्चिता। शुद्धे वर्षति देवस्तु किमशुद्धे न वर्षति॥९६॥
किन्न दीपयते चन्द्रश्चण्डालानां गृहे सदा। तस्मादहं शुनीमेतां याचन्तीञ्चपुनःपुनः॥९७॥
उद्धरिष्ये निजैः पुण्यैः पङ्कमग्नाञ्च गां यथा। इति पुत्रं निराकृत्य प्रतिजज्ञे महामतिः॥९८॥

"पृथिवी पर जीमूतवाहन नामक राजा थे। उन्होंने (सर्पों की रक्षा हेतु) गरुड़ को अपना जीवन प्रदान किया था। इसलिये विद्वान् द्विज सदा दयापूर्ण रहे। क्या इन्द्र केवल शुद्ध देश में ही जल बरसाते हैं? क्या वे अशुद्ध स्थान पर जलवर्षा नहीं करते? क्या चाण्डल के गृह में शीतरश्मि सतत् वितरण नहीं करती? अतएव मैं पुनः-पुनः उद्धार मांगने वाली इस कुक्कुरी को अपना पुण्य देकर इसका वैसे उद्धार करूंगा, जैसे कीचड़ में फंसी गौ का लोग उद्धार करते हैं।" तदनन्तर महामति पद्मबन्धु ने अपने पुत्र की उपेक्षा करते हुये यह प्रतिज्ञा किया।।९६-९८।।

दत्तं दत्तं महापुण्यं द्वादशीदिनसम्भवम्। शुनि! गच्छ हरेर्धाम निर्धूताऽखिलकल्मषा॥९९॥
तद्वाक्यात्सहसा भूप! दिव्याऽऽभरणभूषिता। विमुच्य देहंजीर्णंतुदिव्यरूपधराशुभा॥१००॥

शताऽऽदित्यप्रभा जाता सावित्रीप्रतिमा यथा।
जगामाऽऽमन्त्र्य तं विप्रं द्योयन्ती दिशो दश॥१०१॥

भुक्त्वा दिवि महाभोगान्पश्चाज्जातामहीतले। नरनारायणादेवादुर्चशीनाम नामतः॥१०२॥
वैशाखशुद्धद्वादश्याः प्रभावेण वराङ्गना। देवानाञ्चप्रियाजाता अप्सरस्त्वंचसाययौ॥१०३॥

यद्योगिगम्यं हुतभुक्प्रकाशं वरं वरेण्यं परमार्थरूपम्।
यत्प्राप्य सन्तोऽपि हि यान्ति मोहं तत्प्राप रूपञ्चशुनी हि देवी॥१०४।

पश्चात्स पद्मबन्धुर्हि तां तिथिं पुण्यवर्द्धिनीम्।
लोवेटीं ख्यापयामास मधुद्विट्प्राणवल्लभाम्॥१०५॥

कोटीन्दुसूर्यग्रहणाधिका सा समस्तरूपाधिकपुण्यरूपा।
यज्ञैः समस्तैरतिरिच्यमाना द्विजेन ख्याता भुवनत्रये च॥१०६॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये नारदाम्बरीष-सम्वादे शुनीमोक्षप्राप्तिर्नाम चतुर्विंशोऽध्यायः।।२४।।
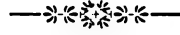
पद्मबन्धु कहते हैं—"हे शुनि (कुतिया)! मैंने अपना द्वादशी व्रत से अर्जित पुण्यं निश्चितरूपेण तुमको प्रदान किया। तुम अब सभी कलुष से मुक्त होकर वैकुण्ठ गमन करो।" हे राजन्! पद्मबन्धु के मुख से जैसे ही यह वाक्य निकला, तभी कुक्कुरी ने अपना जीर्ण देह त्याग दिया तथा दिव्याभरण भूषित होकर अतीव मनोहर वेश में व्यक्त हो गयी। उसका शरीर सैकड़ों सूर्यप्रभा के समान हो गया। वह सावित्री के समान प्रतीत होने लगी। वह दसों दिशाओं को उद्भासित करती मुनि से अनुमति लेकर स्वर्गधाम में चली गयी। वहां उसने दीर्घकाल सभी भोगों का भोग किया तथा पुनः पृथिवी पर जन्म लिया। इस जन्म में उसकी उत्पत्ति नर-नारायण के देह से सम्पन्न हुई। उसका नाम पड़ा उर्वशी। वह वैशाख शुक्ला एकादशी का अप्रतिम फल है। इस रमणी ने अप्सरा पद लाभ किया। जो योगीजनगम्य हैं, जिनसे अग्नि प्रकाशित हैं, जो वरेण्य, वर तथा परमार्थ रूप हैं, जिसे पाकर साधुगण मुग्ध हो जाते हैं, उन द्वादशी के प्रभाव से कुतिया देवी हो गयी। तब द्विज पद्मबन्धु ने मधुसूदन की यह पुण्यप्रदा द्वादशी के प्रभाव को देखकर पृथिवी पर इस तिथि को प्रचारित किया। उन्होंने त्रैलोक्य में प्रचार किया कि यह द्वादशी कोटिचन्द्र-सूर्य तुल्य है। जितने भी प्रकार के पुण्य हैं, उन सबसे द्वादशी श्रेष्ठ है। यह सर्वयज्ञसमूह से भी उत्तम है।।९९-१०६।।

।।चतुर्विंश अध्याय समाप्त।।

पञ्चविंशोऽध्यायः

वैशाख मास माहात्म्य वर्णन, उपसंहार

श्रुतदेव उवाच

यास्तिस्त्रस्तिथयः पुण्या अन्तिमाः शुल्कपक्षके। वैशाखमासि राजेन्द्र! पूर्णिमान्ताः शुभावहाः॥१॥
अन्त्याः पुष्करिणीसञ्ज्ञाः सर्वपापक्षयावहाः। माधवेमासियत्पूर्णस्नानंकर्त्तुंनचक्षमः॥२॥
तिथिष्वेतासु स स्नायात्पूर्णमेव फलं लभेत्। सर्वे देवास्त्रयोदश्यां स्थित्वा जन्तून्पुनन्ति हि॥३॥
पूर्णायाः सर्वतीर्थैश्चविष्णुनासहसंस्थिताः। चतुर्दश्यांसयज्ञाश्चदेवाएतान्पुनन्तिहि॥४॥
ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा सर्वानेतान्पुनन्ति हि। एकादश्यां पुराजज्ञेवैशाख्याममृतंशुभम्॥५॥

द्वादश्यां पालितं तच्चविष्णुनाप्रभविष्णुना। त्रयोदश्यांसुधांदेवान्पाययामासवैहरिः॥६॥
जघान च चतुर्दश्यां दैत्यान्देवविरोधिनः। पूर्णायांसर्वदेवानांसाम्राज्याऽऽप्तिर्बभूवह॥७॥

श्रुतदेव कहते हैं—हे राजेन्द्र! यह द्वादशी का वर्णन किया था। तत्पश्चात् शुक्लपक्ष में जो तीन पुण्य तिथियां हैं, वे हैं। त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा पूर्णिमा। ये तीन तिथियां वैशाख मास में अत्यन्त शुभप्रद हैं। इन तीन तिथियों को पुष्करिणी कहते हैं। ये सर्वपापनाशक हैं। जो मानव सम्पूर्ण वैशाख मास पर्यन्त स्नान नहीं कर सकता, वह इन तीन तिथियों में ही स्नान करके सम्पूर्ण मास स्नान का फल लाभ करता है। देवता त्रयोदशी में निवास करके समस्त प्राणीगण का पावन कर देते हैं। पूर्णिमा में ही समस्त तीर्थ तथा विष्णु भी स्थित हो जाते हैं। चतुर्दशी में देवगण समस्त यज्ञ के साथ निवास करते हैं। ये समस्त भूतसमूह को पवित्र कर देते हैं। व्यक्ति भले ब्रह्मघाती हो, किंवा सुरापान करने वाला हो, ये पुण्य तिथियां सभी को विमल कर देती हैं। पूर्वकाल में वैशाख मास की एकादशी के दिन हरि ने देवों को अमृत पान कराया था। चतुर्दशी के दिन हरि ने देवशत्रु असुरों का वध किया था तथा पूर्णिमा के दिन स्वर्ग के निवासी देवताओं को साम्राज्य लाभ हुआ था।।१-७।।

ततो देवाः सुसन्तुष्टाएतासांचवरंददुः। तिसृणाञ्चतिथीनांवैप्रीत्योत्फुल्लविलोचनाः॥८॥
एता वैशाखमासस्य तिस्त्रश्च तिथयःशुभाः। पुत्रपौत्रादिफलदानराणां पापहानिदाः॥९॥
योऽस्मिन्मासे च सम्पूर्णेनस्नातो मनुजाधमः। तिथित्रयेतुसस्नात्वापूर्णमेवफलंलभेत्॥१०॥

तदनन्तर देवगण सन्तुष्ट हो गये तथा उन्होंने इन तीनों तिथियों को वर प्रदान किया। तभी से वैशाख मास की इन तीन तिथियों को मानवगण के लिये शुभद माना गया। ये तिथियां पुत्र-पौत्रादि फलप्रद तथा पापों का नाश करने वाली हैं। जो मनुष्याधम सम्पूर्ण वैशाखमास पर्यन्त स्नान न करके भी इन तीन तिथियों को मन्त्रयुक्त स्नान करते हैं, उनको सम्पूर्ण मास पर्यन्त का स्नानफल लाभ होता हैं।।८-१०।।

तिथित्रयेप्यकुर्वाणः स्नानदानादिकं नरः। चाण्डालीं योनिमासाद्यपश्चाद्रौरवमश्नुते॥११॥
उष्णोदकेन यः स्नाति माधवे च तिथित्रये। रौरवं नरकं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥१२॥
पितृन्देवान्समुद्दिश्यदध्यन्नंन ददाति यः। पैशाचींयोनिमासाद्यतिष्ठत्याभूतसम्प्लवम्॥१३॥
प्रवृत्तानाञ्चकामानां माधवे नियमे कृते।
अपश्यं विष्णुसायुज्यं युज्यतेनाऽत्र संशयः॥१४॥
आमासं नियमासक्तः कुर्याद्यदि दिनत्रये। तेन पूर्णफलम्प्राप्य मोदते विष्णुमन्दिरे॥१५॥

जो मानव इन तीन तिथियों के दिन भी (वैशाखमास में) स्नान नहीं करता, उसे चाण्डाल जन्म मिलता है, तत्पश्चात् उसे रौरव नरक की प्राप्ति होती है। जो मानव माधवप्रिय वैशाख मास में इन तीन तिथियों के दिन उष्ण जल से स्नान करता है, वह चतुर्दश इन्द्रों के राजत्व काल पर्यन्त रौरव नरक भोगता है। जो मनुष्य इन तीनों तिथि के समय जो माधवप्रिय वैशाख मास की तिथियां हैं, पितरों तथा देवताओं के उद्देश्य से दधियुक्त अन्नदान नहीं करता, वह पुनः प्रलयकाल तक पिशाच योनि में निवास करता है। माधवप्रिय वैशाखमास में मानव नियमपूर्वक रहकर अवश्य-मेव विष्णु सायुज्य लाभ करते हैं, भले ही वे सकाम क्यों न हों! यदि सम्पूर्ण मास पर्यन्त नियम पालन में अशक्त व्यक्ति इन तीन दिन पर्यन्त नियम पालन करता है, वह प्रसन्नतापूर्वक विष्णुलोक गमन करते हैं।।११-१५।।

यो वै देवान्पितॄन्विष्णुं गुरुमुद्दिश्य मानवः। न स्नानादि करोत्यद्धाऽमुष्य शापप्रदा वयम्॥१६॥
निःसन्तानोनिरायुश्चनिःश्रेयस्कोभवेदिति। इति देवावरंदत्त्वा स्वधामानिययुःपुरा॥१७॥
तस्मात्तिथित्रयंपुण्यंसर्वघौघविनाशनम्। अन्त्यं पुष्करिणीसञ्ज्ञंपुत्रपौत्रविवर्द्धनम्॥१८॥

देवगण कहते हैं—"जो मानव देव, पितृगण तथा गुरु के उद्देश्य से इन तीन दिन तक स्नान-दान नहीं करता है, हम उसे शाप देंगे। वह मनुष्य निःसन्तान, आयुहीन तथा अमंगलभाजन होगा।" पूर्वकाल में देवगण ने त्रयोदशी आदि तिथित्रय को यही वरदान दिया। तदनन्तर वे स्वधाम चले गये थे। तभी से ये तीनों तिथियां पुण्यप्रदा तथा सर्वपाप नाशक हो गयीं। इन तीनों तिथियों में से अन्तिम अर्थात् पूर्णिमा नामक तिथि पुत्र-पौत्रादि वर्द्धक कही गयी है"।।१६-१८।।

या नारीसुभगाऽऽपूपपायसं पूर्णिमादिने। ब्राह्मणायसकृद्दद्यात्कीर्तिमन्तंसुतं लभेत्॥१९॥
गीतापाठन्तु यः कुर्यादन्तिमे च दिनत्रये। दिनेदिनेऽश्वमेधानां फलमेति न संशयः॥२०॥
सहस्रनामपठनं यः कुर्य्याच्च दिनत्रये। तस्यपुण्यफलं वक्तुं कः शक्तोदिविवाभुवि॥२१॥
सहस्रनामभिर्देवं पूर्णायां मधुसूदनम्। पयसास्नाप्य वै यातिविष्णुलोकमकल्मषम्॥२२॥
समस्तविभवैर्यस्तु पूजयेन्मधुसूदनम्। न तस्यलोकाः क्षीयन्ते युगकल्पादिव्यत्यये॥२३॥
अस्नात्वा चाऽप्यदत्त्वा च वैशाखश्च गतो यदि।
स ब्रह्महा गुरुघ्नश्च पितॄणां घातकस्तथा॥२४॥
श्लोकार्द्धं श्लोकपादम्वा नित्यं भागवतोद्भवम्। वैशाखे च पठन्मर्त्यो ब्रह्मत्वं चोपपद्यते॥२५॥

जो सौभाग्यशालिनी स्त्री पूर्णिमा के दिन ब्राह्मणों को एक बार भी अपूप तथा पायस दान करती हैं, उसे जो पुत्र प्राप्त होता है, वह कीर्त्तिमान होता है। जो मानव इन शेष (अंतिम) तीन तिथियों में गीता पाठ करता हैं, उसे प्रतिदिन अश्वमेध यज्ञफल की प्राप्ति होती है। इसमें सन्देह नहीं है। जो मनुष्य इन तीनों तिथियों के दिन सहस्रनाम का पाठ करता है, उसके प्राप्त पुण्यफल का वर्णन स्वर्ग अथवा नरक में कौन कर सकता है? जो मानव पूर्णिमा के दिन सहस्रनाम का पाठ करता हुआ मधुसूदन को स्नान कराता है, उसे अकल्मष विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। जो मानव समस्त वैभव युक्त माधव की पूजा करता है, युग-कल्पादि रूपी परिवर्त्तन होने पर भी उसकी लोक स्थिति क्षीण नहीं होती। जो व्यक्ति बिना स्नान तथा दान किये वैशाख मास व्यतीत कर देता है, वह ब्रह्मघाती, गुरुघाती तथा पितृहन्ता है। वैशाखमास में जो यह तिथि-माहात्म्य युक्त एक श्लोक किंवा आधा श्लोक भी पढ़ता है, उसे ब्रह्मत्व की प्राप्ति होती है।।१९-२५।।

यो वै भागवतं शास्त्रं शृणोत्येतद्दिनत्रये। न पापैर्लिप्यत्तेक्काऽपि पद्मपत्रमिवाम्भसा॥२६॥
देवत्वं मनुजैः प्राप्तंकैश्चित्सिद्धत्वमेवच। कैश्चित्प्राप्तो ब्रह्मभावो दिनत्रयनिषेवणात्॥२७॥
ब्रह्मज्ञानेन वै मुक्तिः प्रयागमरणेन वा। अथवा मासि वैशाखे नियमेन जलाप्लुतेः॥२८॥

जो मानव इन तीन दिन इस भागवती कथा को सुनता है, क्या वह कभी पापलिप्त हो सकता है? जैसे पद्मपत्र जल से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार वह मनुष्य भी पापलिप्त नहीं होता। इन तीन तिथियों का सेवन करने वाला मनुष्य देवत्व, सिद्धत्व तथा कदाचित् ब्रह्मत्व भी प्राप्त कर लेता है। जैसी मुक्ति मनुष्य प्रयागगमन तथा ब्रह्मज्ञान से प्राप्त करता है, उसी प्रकार नियमपूर्वक वैशाख मास में स्नान से ही प्राप्त हो जाती है।।२६-२८।।

नीलं वृषं समुत्सृज्य वैशाख्याञ्च जलाप्लुतेः।
समस्तबन्धनिर्मुक्तः पुमान्याति परं पदम्।।२९।।
गां सवत्सां द्विजेन्द्राय सीदते च कुटुम्बिने। इहापमृत्युनिर्मुक्तःपरत्र च परम्व्रजेत्।।३०।।
स्नानदानविहीनस्तुवैशाखीञ्चैवयो नयेत्। श्वानयोतिशतंप्राप्य विष्ठायांजायतेकृमिः।।३१।।
तिस्त्रःकोट्योऽर्धकोटिश्चतीर्थानिभुवसत्रये। सम्भूयमन्त्रयाञ्चक्रुःपापसङ्घातशङ्किताः।।३२।।
जना अस्मासु पापिष्ठा विसृजन्ति स्वकं मलम्।
तदस्माकं कथं गच्छेदितिचिन्तासमन्विताः।।३३।।
तीर्थपादंहरिंजग्मुःशरण्यंशरण्यंविभुम्। स्तुत्वा च बहुभिःस्तोत्रैःप्रार्थयामासुरञ्जसा।।३४।।

जो व्यक्ति वैशाख स्नान के पश्चात् नीलवृष छोड़ता है, वह समस्त कर्मबन्धन उच्छिन्न करके परमपद लाभ करता है। जो मानव दरिद्रता से पीड़ित कुटुम्बी द्विज को पुत्रवती गौ दान करता है, उसे इस जीवन में अपमृत्यु प्राप्त नहीं होती तथा परकाल में (मृत्यु के अनन्तर) परमपद लाभ होता है। जो मानव स्नानदानरहित स्थिति में वैशाखमास व्यतीत कर देता है, वह पहले श्वानयोनि पाकर तदनन्तर विष्ठा के कृमिरूप में जन्म लेता है। त्रिभुवन में साढ़े तीन करोड़ तीर्थों की स्थिति है। एक बार वे सभी तीर्थ पापवृद्धि से भयभीत होकर आपस में विचार करने लगे कि "पापी मानव हमारे जल में स्नांन करके समस्त पापरूपी मल उसी में त्याग देते हैं, तब हमारी पवित्रता कैसे बच सकेगी?" वे इस प्रकार चिन्तातुर होकर तीर्थपाद प्रभु विष्णु के पास गये। वे लोग श्रीहरि की शरण लेकर विविध स्तुति वाक्य से उन भगवान् की प्रार्थना करने लगे।।२९-३४।।

देवदेव जगन्नाथ सर्वाघौघविनाशन!। जना अस्मासुपापिष्ठाःस्नात्वा पापानिसर्वशः।।३५।।
विसृज्य त्वत्पदं यान्ति त्वदाज्ञाधारिणो भुवि।
अस्माकञ्चैव तत्पापंकथं गच्छेज्जनार्दन!।।३६।।
तदुपायं वदास्माकंत्वत्पादशरणैषिणाम्। इति तीर्थैः प्रार्थितस्तु भगवान्भूतभावनः।
प्रहसन्प्राह तीर्थानि मेघगम्भीरया गिरा।।३७।।

तीर्थगण कहते हैं—"हे देवदेव! आप जगत्पति तथा सभी कलुष का नाश करने वाले हैं। समस्त पृथिवीवासी लोग आपके आदेशानुसार हमारे जल में स्नान करते हुये अपने समस्त पाप हमारे जल में त्याग करके आपके धाम में प्रवेश पा जाते हैं। हे जनार्दन! इस प्रकार से कैसे हमारी यह मलिनता दूर हो सकेगी? हम आपके चरणकमल की शरण ग्रहण करते हैं, हमारे इस दुरित के क्षयार्थ विधान करिये।" भगवान् भूतभावन ने तीर्थों द्वारा प्रार्थित होकर अपनी मेघगंभीर वाणी में उनसे कहा।।३५-३७।।

श्रीभगवानुवाच

सिते पक्षे मेषसूर्ये वैशाखान्ते दिनत्रये।।३८।।
सर्वतीर्थमये पुण्ये ममाऽपि प्राणवल्लभे। यूयं भगोदयात्पूर्वं बहिःसंस्थजलाप्लुताः।।३९।।
विमुक्ताघाः पुण्यरूपा भवन्त्वाशु सुनिर्मलाः। भवद्भिश्च विमुक्ताघैर्येनस्नातादिनत्रये।।४०।।

तेषु तिष्ठन्तु तत्पापं जनैर्युष्मद्विरेचितम्। इतितीर्थपदोविष्णुस्तीर्थानाञ्चवरं ददौ॥४१॥

श्री भगवान् कहते हैं—"वैशाख मास में सूर्य मेष राशि में गमन करते हैं। शुक्लपक्षीय वैशाख के अन्तिम तीन दिन (त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा) पुण्यमय, सर्वतीर्थमय तथा मेरे प्राणप्रिय हैं। इन तिथित्रय के दिन सूर्योदय के पूर्व में तुम लोग बाहरीजल में आप्लुत होकर पापहीन, पुण्यात्मा तथा निर्मल हो जाओगे। जो लोग इन तीन तिथियों पर तुम्हारे जल में स्नान नहीं करेंगे, तुम लोगों में मनुष्यों द्वारा स्नानजनित जो पाप छोड़ा जायेगा, वह उनके शरीर में प्रविष्ट होगा।" इस प्रकार विष्णु ने तीर्थों को वर प्रदान किया।।३८-४१।।

अनुज्ञाप्यच तान्योगात्तत्रैवान्तरधीयत। स्वधामानिपुनः प्राप्यतानितीर्थानिनित्यशः॥४२॥
प्रतिवर्षन्तु वैशाखे तथैवान्त्यदिनत्रये। तेनाघौघं विमुच्यैव यान्ति निर्मलतामहो॥४३॥
ये तु स्नानं कुर्वन्तिवैशाखान्तदिनत्रये। तेभवन्तु समस्तानांजनानांपातकाऽऽश्रयाः॥४४॥
इति शापञ्च तीर्थानि ह्यस्नातानां वदन्ति च।
न तेन सदृशः पापो यो न स्नातो दिनत्रये॥४५॥
विचारितेषुशास्त्रेषु न दृष्टो न च वै श्रुतः। तस्माद्दिनत्रयेकार्यंस्नानदानार्चनादिकम्॥४६॥
अन्यथा नरकं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश। इत्येतत्सर्वमाख्यातं श्रुतकीर्ते! महामते!॥४७॥

विष्णु के आदेशानुसार सभी तीर्थगण वहां से अपने योगशरीर के साथ अन्तर्हित् हो गये। तत्पश्चात् सभी तीर्थ अपने-अपने धाम में जाकर प्रतिवर्ष वैशाखमास की इन तीन अन्तिम तिथियों के समय विष्णु द्वारा आदेश दिये गये मार्ग का अनुसरण करने के कारण पापुमक्त हो जाते हैं तथा निर्मलता का लाभ करते हैं। तभी से शास्त्रज्ञ लोगों का कथन है कि "जो वैशाख की शुक्ला त्रयोदशी से लेकर पूर्णिमा पर्यन्त स्नानादि नहीं करते, वे निखिल पापयुक्त होकर श्रीहीन हों।" विद्वान् लोगों ने इस प्रकार से श्रीहरि की शापवाणी का वर्णन किया है। उनका और भी कथन है कि जो इन तीन दिन स्नानविहीन रहते हैं, उसके समान पाप न तो शास्त्रों में कहा गया है, न सुना गया है। इस कारण से इन तीन तिथियों पर स्नान तथा दान एवं अर्चना करना कर्त्तव्य होना चाहिये। अन्यथा चतुर्दश इन्द्रों के राजत्व काल पर्यन्त ऐसा मनुष्य नरक गमन करता है। हे श्रुतिकीर्त्ति, महामति! इस प्रकार मैंने वैशाख माहात्म्य कहा।"।।४२-४७।।

पृष्टं वैशाखमाहात्म्यंयथादृष्टंयथाश्रुतम्। माहात्म्यस्यचलेशोऽयंमाधवस्यचवर्णितः॥४८॥
कात्स्न्यार्द्वक्तुं न ब्रह्माऽपि नाऽलं वर्षशतैरपि।
पुरा कैलासशिखरे पार्वत्यै शङ्करः स्वयम्॥४९॥
आह माधवमाहात्म्यं पृच्छन्त्यै शतवत्सरम्। तथापि नान्तमगमदशक्तो विरराम ह॥५०॥
को नु वर्णयितुं शक्तः कात्स्न्यान्माहात्म्यमुत्तमम्।
विना विष्णुं जगन्नाथं नारायणमनामयम्॥५१॥

"तुमने जो प्रश्न किया था, उस सम्बन्ध में मैंने जैसा देखा अथवा सुना था, वह वैशाख माहात्म्य तुमसे कह दिया। हे महामति! यह तो मधुसूदनप्रिय वैशाख मास के माहात्म्य का मात्र रेखा पर्यन्त ही (संक्षिप्त) वर्णन मैंने किया है। इसके समस्त माहात्म्य का वर्णन कर सकने में १०० वर्ष में भी ब्रह्मा समर्थ नहीं हैं।

पूर्वकाल में कैलास पर आसीना उमा ने शंकर से वैशाखमास माहात्म्य सम्बन्धित प्रश्न पूछा था। शंकर ने १०० वर्ष तक इसके माहात्म्य का वर्णन किया, तथापि इसका अन्त न पाकर वे माहात्म्य वर्णन से विरत हो गये। अनामय नरनारायण जगत्पति विष्णु के अतिरिक्त कौन ऐसा है जो इस वैशाख के उत्तम माहात्म्य का पूर्णतः वर्णन कर सके।''।।४८-५१।।

पुरा सर्वेऽपिऋषयोमाहात्म्यंपापनाशनम्। लेशस्यलेशंव्याचख्युर्जनानांहितकाम्यया।।५२।।
नाऽन्तः केनापि व्याख्यातो ह्यशक्तत्वान्महीपते!।
त्वञ्च मासे तु वैशाखे कुरु दानादिसत्क्रियाः।।५३।।
तेन भुक्तिञ्चमुक्तिञ्चसम्प्राप्नोषि न संशयः। इति तं बोधयित्वाच मैथिलंजनकाह्वयम्।।५४।।
श्रुतदेवस्तमामन्त्र्य गन्तुंचक्रे मनस्ततः। जाताह्लादः स राजर्षिर्गलद्बाष्पाकुलेक्षणः।।५५।।

"पूर्वकाल में मनुष्यों के हितार्थ ऋषियों ने इसके लेशमात्र माहात्म्य को प्रकट किया था, तथापि अशक्त होकर वे इसके अन्त तक की व्याख्या नहीं कर सके! हे राजन्! तुम भी वैशाख मास के दानादि की सत्क्रिया का अनुष्ठान करो। इसके द्वारा तुम भुक्ति तथा मुक्तिलाभ कर सकोगे।'' ऋषि श्रुतदेव ने मिथिला नरेश जनक को इस प्रकार से प्रबोधित किया तथा वहां से जाने की इच्छा किया। इससे राजर्षिजनक प्रसन्न हो गये। उनके नेत्र अश्रुजनित वाष्प से भर गये।।५२-५५।।

उत्सवं कारयामास स्वाभिवृद्ध्यै मनोरमम्। ग्रामं प्रदक्षिणीकृत्य शिविकामधिरोप्य तम्।।५६।।
चतुरङ्गबलैर्युक्तः स्वयं पृष्ठमथाऽन्वगात्। पुनश्चान्तः पुरम्प्राप्य सकलैर्विभवैरपि।।५७।।
वस्त्रैराभरणैश्चैव गोभूतिलहिरण्यकैः। प्रणम्य च परिक्रम्य तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः।।५८।।

उनके नयनद्वय आकुल हो उठे। तब राजा ने अपने अभ्युदयार्थ मनोरम उत्सव का अनुष्ठान किया। उन्होंने ऋषि को पालकी पर बैठाकर ग्राम प्रदक्षिणा कराया तथा अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ उनके पीछे-पीछे चलने लगे। तदनन्तर ऋषि के साथ अन्तःपुर में प्रवेश किया तथा वस्त्र, आभूषण, तिल, गौ, स्वर्ण प्रभृति द्वारा उनका सत्कार किया। तत्पश्चात् उनको प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा किया तथा अंजलि बांधकर (हाथ जोड़कर) उनके समक्ष स्थित हो गये।।५६-५८।।

ततः स तु महातेजाः श्रुतदेवो महायशाः। सन्तुष्टः परमप्रीतोययौ धामस्वकंमुनिः।।५९।।
त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां च माधवे। स्नानं दानं पूजनञ्च कथाश्रवणमेवच।।६०।।
वैशाखधर्मनिरतः स वै मोक्षमवाप्नुयात्। धनशर्मा ब्राह्मणश्च प्रेताश्चैव यथा पुरा।।६१।।

राजा की इस पूजा से महातेजस्वी, यशस्वी ऋषि श्रुतदेव भी परम प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थान को चले गये। त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा पूर्णिमा श्रीहरि माधव को प्रिय है। वैशाख की इन तीन तिथियों पर जो मनुष्य स्नान-दान-पूजा-कथा श्रवण प्रभृति वैशाख धर्म में लगा रहता है, उसे मोक्षलाभ होता है। पूर्वकाल में ब्राह्मण धनशर्मा तथा प्रेतगण ने इसी प्रकार के धर्माचरण द्वारा मोक्षलाभ किया था।।५९-६१।।

नारद उवाच

इत्येतत्परमाख्यानमम्बरीष! तवोदितम्। श्रवणात्सर्वपापघ्नं सर्वसम्पद्विधायकम्।।६२।।

तेन भुक्तिञ्च मुक्तिञ्च ज्ञानंमोक्षञ्चविन्दति। इतितस्यवचःश्रुत्वा अम्बरीषोमहायशाः॥६३॥
प्रहृष्टान्तरवृत्तिश्च बाह्यव्यापारवर्जितः। प्रणनाम तथा मूर्ध्ना दण्डवत्पतितो भुवि॥६४॥
विभ्रभैरखिलैश्चाऽपिपूजयामासतम्पुनः। सम्पजितस्तमामन्त्र्यनारदो भगवान्मुनिः॥६५॥
लोकान्तरं ययौ धीमाञ्छापान्नैकत्र संस्थितिः।
अम्बरीषोऽपि राजर्षिर्नारदोक्तानिमाञ्छुभान्। धर्मान्कृत्वा विलीनोऽभूत्परे ब्रह्मणि निर्गुणे॥६६॥

देवर्षि नारद कहते हैं—"हे अम्बरीष! मैंने तुमसे इस परम उपाख्यान का वर्णन कर दिया। इसे सुनने से सभी पापों का नाश हो जाता है। समस्त समृद्धि का लाभ होता है। इसके श्रवण द्वारा भुक्ति-मुक्ति-ज्ञान-मोक्ष की प्राप्ति होती है।" नारद का यह वचन सुनकर महायशस्वी अम्बरीष की आन्तरिक वृत्ति प्रसन्न हो गयी। उनमें वाह्य व्यापार की स्फूर्त्ति नहीं रह गयी। उन्होंने उस समय तत्काल भूपतित होकर मस्तक द्वारा नारद को प्रणाम किया। तदनन्तर राजा ने समस्त वैभव के द्वारा नारद का पूजन किया। देवर्षि नारद शाप के कारण एक स्थान पर अधिक नहीं रुक सकते हैं। धीमान् देवर्षि राजा द्वारा सम्पूजित होकर तत्क्षण अन्य लोक चले गये। इधर राजर्षि अम्बरीष ने नारद द्वारा उपदिष्ट शुभ-धर्म का आचरण करके देहान्त के उपरान्त ब्रह्मलीन स्थिति को प्राप्त किया।।६२-६६।।

सूत उवाच

य इदं परमाख्यानं पापघ्नं पुण्यवर्धनम्॥६७॥
शृणयाद्वा पठेद्वाऽपि स यातिपरमाङ्गतिम्। लिखितं पुस्तकंयेषां गृहेतिष्ठतिमानदाः॥६८॥
तेषां मुक्तिः करस्था हि किमु तच्छ्रवणात्मनाम्॥६९॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे वैशाखमाससमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसम्वादेफलश्रुतिकथनंनाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥२५॥

।।समाप्तमिदं वैशाखमाससमाहात्म्यम्।।

—❀❀❀—

सूत जी कहते हैं—जो मानव पापघ्न तथा पुण्यवर्द्धनरूप इस परम उपाख्यान को सुनता है अथवा पाठ करता है, उसे परमगति प्राप्त होती है। हे मानवगण! जो इस उपाख्यानमयी पुस्तक को लिखकर गृह में रखता है, मुक्ति उसके हाथों में है। इसलिये जो उसे सुनता है, उसकी मुक्ति के विषय का तो कहना ही क्या।।६७-६९।।

।।पञ्चविंश अध्याय समाप्त।।

।।वैशाखामास माहात्म्य समाप्त।।

।। श्रीगणेशाय नमः।।

अथाऽयोध्यामाहात्म्यारम्भः

प्रथमोऽध्यायः

अयोध्या माहात्म्य, व्यास-अगस्त्य संवाद, विष्णुशर्मा को भगवान् द्वारा वर देना

जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः।
यस्याऽऽस्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत्पिबति।।१।।
नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैवनरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत्।।२।।

जगत् जिनके मुखकमल से विगलित वाङ्मय अमृत का पान करता है, उन सरस्वती नन्दन पराशर तनय व्यास की जय हो। नारायण, नरोत्तम नर, देवी तथा सरस्वती को प्रणाम करके तदनन्तर जय (पुराण) का उच्चारण करता हूं।।१-२।।

व्यास उवाच

हिमवद्वासिनःसर्वे मुनयो वेदपारगाः। त्रिकालज्ञा महात्मानो नैमिषारण्यवासिनः।।३।।
येऽर्बुदारण्यनिरता दण्डकारण्यवासिनः। महेन्द्राद्रिरतायै वै ये चविन्ध्यनिवासिनः।।४।।
जम्बूवनरता ये च ये गोदावरिवासिनः। वाराणसीश्रिता येच मथुरावासिनस्तथा।।५।।
उज्जयिन्यां रता ये च प्रथमाश्रमवासिनः। द्वारावतीश्रिता येच वदर्य्याश्रयिणस्तथा।।६।।
मायापुरीश्रिता ये चयेचकान्तीनिवासिनः। एतेचान्येचमुनयःसशिष्याबह्वोऽमलाः।।७।।
कुरुक्षेत्रे महाक्षेत्रे सत्रे द्वादशवार्षिके। वर्तमाने च रामस्य क्षितीशस्य महात्मनः।
समागताः समाहूताः सर्वे ते मुनयोऽमलाः।।८।।

व्यास जी कहते हैं—महाक्षेत्र, कुरुक्षेत्र में पृथिवीपति राम का द्वादश वार्षिक सत्र प्रवर्त्तित होने पर हिमालय निवासी वेदनिष्णात मुनिगण, नैमिष निवासी त्रिकालज्ञ महात्मा मुनिगण तथा अर्बुदारण्य, दण्डकारण्य, महेन्द्रपर्वत एवं विन्ध्यवासी, जम्बूवनसेवी, गोदावरी तटवासी, वाराणसी निवासी, मथुरा-उज्जयिनी-द्वारिका निवासी, बदरीवनवासी-मायापुरीवासी, कान्ती निवासी ब्रह्मचर्यरत ऋषि, तपस्वी अनेक शिष्य समन्वित अमलाशय अन्यान्य मुनिगण भी वहां आये थे। ये सभी शुद्ध हृदय, वेद-वेदाङ्ग पारंगत, मुनिवृत्तिपरायण थे। ये लोग उस यज्ञसत्र में सम्मिलित हुये।।३-८।।

सर्वे ते शुद्धमनसो वेदवेदाङ्गपारगाः। तत्रस्नात्वा यथान्यायं कृत्वा कर्म जपादिकम्।।९।।

भारद्वाजं पुरस्कृत्य वेदवेदाङ्गपारगम्। आसनेषु विचित्रेषु बृष्यादिषु ह्यनुक्रमात्॥१०॥
उपविष्टाः कथाश्चक्रुर्नानातीर्थाश्रितास्तदा। कर्मान्तरेषुसत्रस्यसुखासीनाःपरस्परम्॥११॥
कथान्तेषु ततस्तेषां मुनीनांभावितात्मनाम्। आजगाममहातेजास्तत्रसूतोमहामतिः॥१२॥
व्यासशिष्यः पुराणज्ञो रोमहर्षणसञ्ज्ञकः। तान्प्रणम्य यथान्यायं मुनीनांवचनेनसः।
उपविष्टो यथान्यायं मुनीनां वचनेन सः॥१३॥
व्यासशिष्यं मुनिवरं सूतं वै रोमहर्षणम्। तं पप्रच्छुर्मुनिवरा भारद्वाजादयोऽमलाः॥१४॥

इन सब ऋषियों ने यज्ञसत्र क्षेत्र में आकर स्नान तथा यथाविधि जपादि कर्म सम्पन्न करके वेद-वेदांग पारंगत भरद्वाज को आगे किया तथा सभी विचित्र कृष्णसार मृगचर्म पर बैठ गये। तदनन्तर यज्ञक्रिया समापित होने पर वे सब सुखासीन ऋषिगण परस्परतः तीर्थों के सम्बन्ध में अनेक कथनोपकथन करने लगे। जब उन भावितात्मा मुनिगण में परस्पर वार्त्ता, सम्भाषण चल ही रहा था, तभी पुराणज्ञ महामति महातेजस्वी रोमहर्षणनन्दन व्यासशिष्य सूत वहां पहुंचे। उन्होंने आकर मुनिगण को प्रणाम किया तथा उनकी आज्ञा मिलने पर यथायोग्य आसन पर आसीन हो गये। तदनन्तर भारद्वाज आदि निष्कलुष मुनिगण ने व्यासशिष्य मुनिसत्तम रोमहर्षण सूत से पूछा।।९-१४।।

ऋषय ऊचुः

त्वत्तः श्रुता महाभागनानातीर्थाश्रिताःकथाः। सरहस्यानिसर्वाणिपुराणानिमहामते॥१५॥
साम्प्रतंश्रोतुमिच्छामःसरहस्यंसनातनम्। अयोध्यायामहापुर्यामहिमानंगुणोज्ज्वलम्॥१६॥

कीदृशीसा सदा मेध्याऽयोध्या विष्णुप्रिया पुरी।
आद्या सा गीयते वेदे पुरीणां मुक्तिदायिका॥१७॥
संस्थानं कीदृशं तस्यास्तस्यां के च महीभुजः।
कानि तीर्थानि पुण्यानि महात्म्यं तेषुकीदृशम्॥१८॥
अयोध्यासेवनान्नृणां फलं स्यात् सूत! कीदृशम्।
किं चरित्रं सूत! तस्याः का नद्यः के च सङ्गमाः॥१९॥
तत्र स्नानेन किं पुण्यं दानेन च महामते!।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्तः सूत! गुणाधिक!॥२०॥

एतत्सर्वं क्रमेणैव तथ्यं त्वं वेत्थ साम्प्रतम्। अयोध्याया महापुर्या माहात्म्यं वक्तुमर्हसि॥२१॥

ऋषिगण कहते हैं—हे महाभाग सूत! हमने आपसे तीर्थ सम्बन्धित अनेक उपाख्यान सुना है। आपने रहस्य के साथ पुराणों का भी हमें श्रवण कराया है। सम्प्रति हम सब महापुरी अयोध्या की उत्तमगुणमयी रहस्ययुक्त सनातन महिमा सुनना चाहते हैं। वेदों का मत है कि पुरियों में मुक्तिप्रदा अयोध्या ही आद्या है। आप कृपया कहिये कि यह विष्णुप्रिया, सतत् पवित्ररूप अयोध्यापुरी क्या है? किस-किस राजा ने अयोध्या का उपभोग किया है? वहां पर कौन-कौन से पुण्यतीर्थ स्थित हैं? अयोध्या के सेवन से मनुष्यों को क्या प्राप्त होता

है? हे सूत! अयोध्या की प्राकृतिक स्थिति क्या है? वहां कौन-कौन नदी है? वहां किस-किस नदी का संगम है? हे महामति! मानवगण स्नान-दान द्वारा वहां क्या-क्या पुण्यलाभ करते हैं? हे गुणाधिक सूत! हम आपके मुख से यह सब सुनने की इच्छायुक्त हैं। आपको यह सब तथ्य विदित है। सम्प्रति आप यथाक्रमेण इस महापुरी अयोध्या का माहात्म्य हमें बतायें।"।।१५-२१।।

सूत उवाच

व्यासप्रसादाज्जानामिपुराणानितपोधनाः। सेतिहासानिसर्वाणिसरहस्यानितत्त्वतः॥२२॥
तं प्रणम्य प्रवक्ष्यामि माहात्म्यंभवदग्रतः। अयोध्यायामहापुर्यायथावत्सरहस्यकम्॥२३॥

सूत जी कहते हैं—"हे तपोधनगण! मैंने जिनकी कृपा से इतिहास-रहस्य समन्वित पुराणों को तत्वतः जाना है, उनको प्रणाम करके महापुरी अयोध्या की सरहस्यमयी माहात्म्य कथा का आप लोगों से यथायथ वर्णन करता हूं।"।।२२-२३।।

विद्यावन्तं विपुलमतिदं वेदवेदाङ्गवेद्यं श्रेष्ठं शान्तं शमितविषयं शुद्धतेजोविशालम्।
वेदव्यासं सततविनतं विश्ववेद्यैकयोनिं पाराशर्य्यं परमपुरुषं सर्वदाऽहं नमामि॥२४॥
ॐनमोभगवतेतस्मैव्यासायामिततेजसे। यस्यप्रसादाज्जानामिह्ययोध्यामहिमामहम्॥२५॥
शृण्वन्तु मुनयः सर्वे सावधानाः सशिष्यकाः।
माहात्म्यं कथयिष्यामि अयोध्याया महोदयम्॥२६॥

"जो सब कुछ जानते हैं, जिनकी कृपा से विपुल ज्ञान लाभ होता है, वेद-वेदाङ्ग से जिनके स्वरूप की अभिज्ञता होती है, जो श्रेष्ठ तथा शान्त हैं। जिनका चित्त रूपादि विषयों से रहित हो चुका है, जो अपने विशुद्ध तेज से ही परिव्याप्त हो रहे हैं, जो सदा विनत हैं तथा विश्ववृत्तान्त के ज्ञाता हैं, मैं उन पराशरपुत्र परमपुरुष वेदव्यास को सतत् प्रणाम करता हूं। मैंने जिनकी कृपा से अयोध्या की महिमा को जाना है, उन अमित तेजस्वी व्यास को "ॐ नमो भगवते व्यासाय" मन्त्र से प्रणाम करता हूं। हे मुनिगण! मैं अतुलित अभ्युदय शालिनी अयोध्या की महिमा का वर्णन करता हूं। आप सब समाहित मन से अपने शिष्यों के साथ सुनें।।२४-२६।।

उदीरितमगस्त्याय स्कन्देनाऽश्रावि नारदात्।
अगस्त्येन पुरा प्रोक्तं कृष्णद्वैपायनाय तत्॥२७॥
कृष्णद्वैपायनाच्चैतन्मयाप्राप्तं तपोधनाः। तदहं वच्मि युष्मभ्यंश्रोतुकामेभ्यआदरात्॥२८॥
नमामि परमात्मानं रामं राजीवलोचनम्। अतसीकुसुमश्यामं रावणान्तकमव्ययम्॥२९॥

हे तपोधनगण! इस अयोध्या माहात्म्य को पूर्वकाल में नारद से स्कन्द ने सुना था। उन्होंने इसे अगस्त्य से कहा। अगस्त्य से इसे कृष्णद्वैपायन ने सुना। भगवान् कृष्ण द्वैपायन से मैंने इसे प्राप्त किया था। आप सबने इस अयोध्या माहात्म्य को श्रद्धापूर्वक सुनना चाहा है, अतः मैं इसे आपसे कहता हूं। जिन्होंने रावण का वध किया था जिनका वर्ण अतसी पुष्प के समान श्यामवर्ण है, मैं उन अव्यय कमलनयन परमात्मा राम को नमस्कार करता हूं।।२७-२९।।

अयोध्या सा परा मेध्या पुरी दुष्कृतिदुर्ल्लभा।
कस्य सेव्या च नाऽयोध्या यस्यां साक्षाद्धरिः स्वयम्॥३०॥

सरयूतीरमासाद्य दिव्यापरमशोभना। अमरावती निभा प्रायः श्रिता बहुतपोधनैः॥३१॥

हस्त्यश्वरथपत्त्याढ्या सम्पदुच्चा च संस्थिता।
प्राकाराढ्यप्रतोलीभिस्तोरणैः काञ्चनप्रभैः॥३२॥

सानूपवेषैः सर्वत्र सुविभक्तचतुष्टया। अनेकभूमिप्रासादाबहुभित्तिसुविक्रिया॥३३॥

पद्मोत्फुल्लशुभोदाभिर्वापीभिरुपशोभिता। देवतायतनैर्दिव्यैर्वेदघोषैश्च मण्डिता॥३४॥

वीणावेणुमृदङ्गादिशब्दैरुत्कृष्टताङ्गता। शालैस्तालैर्नालिकेरैःपनसामलकैस्तथा॥३५॥

तथैवाम्रकपित्थाद्यैरशोकैरुपशोभिता। आरामैर्विविधैर्युक्ता सर्वर्तुफलपादपैः॥३६॥

जो पुरी अतीव पावन है, जो स्थान दुष्कृति कर्मा लोगों को प्राप्त नहीं होता, जहां स्वयं हरि मूर्त्त होकर विराजमान हैं उस अयोध्या की सेवा कौन नहीं करता? अमरपुरी जैसी परम शोभाशालिनी दिव्यपुरी अयोध्या सरयूतट पर विराजित है। इस पुरी में सर्वत्र तपोधनगण विराजित रहते हैं। हाथी-अश्व-रथ तथा पैदल आदि अन्य समृद्धि द्वारा यह पुरी अतीव उन्नत मस्तक होकर स्थित है। इस पुरी की चाहारदिवाली, मुख्य सड़क, तोरण आदि सभी स्वर्ण सदृश है। यह सर्वत्र सड़क द्वारा विभक्त तथा चतुः अवयव युक्त पुरी है। इसके भूमिभाग पर अनेक प्रासाद विद्यमान हैं। इन प्रासाद श्रेणी की दीवार अत्यन्त गंभीर है। यहां प्रफुल्ल कमलों से भरी निर्मल जलयुक्त अनेक वापी नगर की शोभावृद्धि कर रही हैं। यहां चारों ओर, सर्वत्र देवगृह (मंदिर) विद्यमान हैं। चतुर्दिक् वेदध्वनि तथा वेणु-वीणा और मृदंग आदि वाद्यों की ध्वनि मुखरित हो रही है। साथ ही देवगृहों से भूषित होकर यह पुरी अतीव मनोहारी प्रतीत हो रही है। यह शाल, तमाल, नारियल, कटहल, आमलक, आम, कैंथा, अशोक वृक्षों से व्याप्त है। यहां विविध आराम (वाग) तथा उद्यान इस पुरी की शोभा वृद्धि कर रहे हैं। यहां के पादप सभी ऋतुओं में पुष्प-फलप्रद होते हैं।।३०-३६।।

मालतीजातिबकुलपाटलीनागचम्पकैः। करवीरैः कर्णिकारैः केतकीभिरलङ्कृता॥३७॥

निम्बजम्बीरकदलीमातुलिङ्गमहाफलैः। लसच्चन्दनगन्धाढ्यैर्नागरैरुपशोभिता॥३८॥

देवतुल्याप्रभायुक्तैर्नृपपुत्रैश्च संयुता। सुरूपाभिर्वरस्त्रीभिर्देवस्त्रीभिरिवावृता॥३९॥

श्रेष्ठैः सत्कविभिर्युक्ताबृहस्पतिसमैर्द्विजैः। वणिग्जनैस्तथा पौरैःकल्पवृक्षैरिवावृता॥४०॥

अश्वैरुच्चैः श्रवस्तुल्यैर्दन्तिभिर्दिग्गजैरिव। इति नानाविधैर्भावैरुपेतेन्द्रपुरीसमा॥४१॥

यहां मालती, जाती, बकुल, पाटली, नागचम्पा, कनेर, कर्णिकार तथा केतकीपुष्प तथा प्रचुर फलयुक्त नीम, जम्बीर, कदली, मातुलुङ्ग वृक्षश्रेणी से सभी बाग शोभित हो रहे हैं। समृद्ध चन्दनगंधयुक्त नागरिकगण तथा देवताओं के समान राजकुमार नगर में घूमते रहते हैं। यहां अप्सराओं की तरह सुरूपा रमणीगण भी नगरी में विचरती रहती हैं। कहीं पर श्रेष्ठ ब्राह्मण बृहस्पति के समान सत्कवियों के साथ सम्भाषण करते हुये जा रहे हैं। कहीं पुरवासी कल्पतरु के समान वणिकों के साथ व्यापार चर्चा में (खरीद-बिक्री) में लगे हैं। कहीं उच्चैश्रवा (देवताओं के अश्व) के समान घोड़े घूम रहे हैं। कहीं दिग्गजों के समान बृहद् हाथी जिनके बड़े-बड़े दांत हैं विचर रहे हैं। इस प्रकार नाना समृद्धियों से समृद्ध अयोध्या देवपुरी से समानता करती हुई विराजित है।।३७-४१।।

यस्यांजातामहीपालाः सूर्यवंशसमुद्भवाः। इक्ष्वाकुप्रमुखाः सर्वे प्रजापालनतत्पराः॥४२॥

यस्यास्तीरे पुण्यतोया कूजद्भृङ्गविहङ्गमा। सरयूर्नाम तटिनी मानसप्रभवोल्लसा॥४३॥
धर्मद्रवपरीता सा घर्घरोत्तमसङ्गमा। मुनीश्वराश्रिततटा जागर्ति जगदुच्छ्रिता॥४४॥

इक्ष्वाकु वंशोत्पन्न प्रजापालनरत सूर्यवंश समुद्भूत राजा इस अयोध्या में जन्मे थे। जो सरयू नदी मानस सरोवर से उत्पन्न है, जिसका जल पुण्यमय है, जिसके तट पर लगे वृक्षों पर भृंग समूह एवं पक्षीगण कूजन-गुंजन करते रहते हैं, जहां साक्षात् धर्म द्रवीभूत (जलरूप) होकर उसके कलेवर को पूर्ण करता रहता है, जो उत्तम घर्घर (घाघरा) नद के साथ मिल जाती हैं, जिसके तट पर मुनिजन का निवास है, जो अपने स्फीत प्रवाह से जगत् को प्लावित कर रही हैं, उस सरयू तट पर महापुरी अयोध्या विराजमान है।।४२-४४।।

दक्षिणाच्चरणाङ्गुष्ठान्निःसृता जाह्नवी हरेः। वामाङ्गुष्ठान्मुनिवराः सरयूर्निर्गता शुभा॥४५॥
तस्मादिमे पुण्यतमे नद्यौ देवनमस्कृते। एतयोः स्नानमात्रेण ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥४६॥

तामयोध्यामथ प्राप्तोऽगस्त्यः कुम्भोद्भवो मुनिः।
यात्रार्थं तीर्थमाहात्म्यं ज्ञात्वा स्कन्दप्रसादतः॥४७॥

हे मुनीश्वरों! जैसे जाह्नवी नदी विष्णु के चरण के दाहिने अंगूठे से निकली है, उसी प्रकार सरयू भी विष्णु के चरणकमल के वामाङ्गुष्ठ से निःसृत हैं। यह शुभा सरिता हैं। अतः ये दोनों नदियां पुण्यतमा हैं। देवगण इन दोनों नदियों को प्रणाम करते हैं। इन दोनों नदियों में स्नान करने मात्र से मानव ब्रह्महत्या जनित पाप को नष्ट कर देता है। कुंभ से उत्पन्न अगस्त्य ने प्रभु स्कन्द की कृपा द्वारा इस तीर्थ माहात्म्य को जाना था। वे तीर्थयात्रा करते अयोध्या आये थे।।४५-४७।।

आगत्यतुपुनःसोऽपिकृत्वायात्रांक्रमेणच। यथोक्तेनविधानेनस्नात्वासन्तर्प्यतान्पितृन्॥४८॥
पूजयित्वायथान्यायंदेवताःसकलाअपि। सर्वाण्यपिचतीर्थानिनमस्कृत्ययथाविधि॥४९॥
कृतकृत्योर्ज्जितानन्दस्तीर्थमाहात्म्यदर्शनात्। अभूदगस्त्योरूपेण पुलकाञ्चितविग्रहः॥५०॥

स त्रिरात्रं स्थितस्तत्र यात्रां कृत्वा यथाविधि।
स्तुवन्नयोध्यामाहात्म्यं प्रतस्थे मुनिसत्तमः॥५१॥
तमायान्तं विलोक्याऽऽशु बहुलानन्दसुन्दरम्।
कृष्णद्वैपायनो व्यासः पप्रच्छाऽऽनन्दकारणम्॥५२॥

वे अयोध्या आये तथा तीर्थयात्रा विधानानुसार उन्होंने सरयूजल में स्नान, पितृतर्पण, देवपूजन तथा तीर्थों को नमस्कार किया। इससे वे कृतकृत्य एवं आनन्दित हो गये। तदनन्तर तीर्थ माहात्म्य को देखकर वे पुलकित तथा रोमांचित भी हो गये। मुनिवर अगस्त्य ने तीर्थयात्रा विधानानुसार यहां तीन रात्रि पर्यन्त निवास करके यथाविधान अयोध्या माहात्म्य का कीर्त्तन करते-करते यहां से प्रस्थान किया था। तदनन्तर कृष्णद्वैपायन व्यास ने जब आनन्द की बहुलता से पुलकित शरीर ऋषि को आते देखा, तब उनसे उनके आनन्द का कारण पूछा।।४८-५२।।

व्यास उवाच

कुतः समागतो ब्रह्मन्साम्प्रतं मुनिसत्तमः। परमानन्दसन्दोहः समभूत्साम्प्रतं तव॥५३॥

कस्मादानन्दपोषोऽभूत्तव ब्रह्मन्वदस्व मे। ममापि भवदानन्दात्प्रमोदोहृदि जायते।।५४।।

महर्षि व्यास कहते हैं—"हे ऋषिप्रवर! आप कहां से आ रहे हैं? हे ब्रह्मन्! मैं देख रहा हूं कि आप में परम आनन्द उच्छलित हो रहा है। हे ब्रह्मन्! आपको यह हर्ष क्यों हो रहा है, मुझे बतायें। आपको आनन्दित देखकर मैं भी प्रमुदित हो रहा हूं।।५३-५४।।

अगस्त्य उवाच

अहो महदथाश्चर्य्यं विस्मयो मुनिसत्तम्!। दृष्ट्वाप्रभावं मेऽद्याभूदयोध्यायास्तपोधन।।५५।।

तस्मादानन्दसन्दोहः समभून्मम साम्प्रतम्।

तच्छ्रुत्वागस्त्यवचनं व्यासः प्रोवाच तं मुनिम्।।५६।।

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—"हे मुनिश्रेष्ठ! यह अत्यन्त आश्चर्य का विषय है, हे तपोधन! आज अयोध्या का प्रभाव देखकर मुझे अत्यन्त विस्मय हो रहा है। मैं अयोध्या गया था। उस अयोध्या के कारण मेरी यह आनन्दित अवस्था हो सकी है।" ऋषि अगस्त्य का यह वाक्य सुनकर महर्षि व्यास उनसे कहने लगे।।५५-५६।।

व्यास उवाच

भगवन्ब्रूहितत्त्वेनविस्तरात्सरहस्यकम्। अयोध्यायामहापुर्या महिमानंगुणाधिकम्।।५७।।

कः क्रमस्तीर्थयात्रायाः कानि तीर्थानि को विधिः।

किं फलं स्नानतस्तत्र दानस्य च महामुने!।

एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तराद्वदताम्वर।।५८।।

महर्षि व्यास कहते हैं—हे भगवान्! यदि अयोध्या का इतना गुणबहुल प्रभाव है, तब रहस्य के साथ आप मुझसे इस महापुरी की महिमा का वर्णन करिये। हे महामुनि! अयोध्या यात्रा का क्रम क्या है? वहां कौन-कौन तीर्थ हैं? उन तीर्थ सेवन की क्या विधि है? उनमें स्नान-दान का पृथक्-पृथक् फल क्या मिलता है? हे वाग्मीप्रवर! यह सब मुझे बतलायें।।५७-५८।।

अगस्त्य उवाच

अहो धन्यतमाबुद्धिस्तवजातातपोधन!। दृश्यते येन पृच्छा ते ह्ययोध्यामहिमाश्रिता।।५९।।

अकारो ब्रह्म च प्रोक्तं यकारो विष्णुरुच्यते। धकारो रुद्ररूपश्च अयोध्यानाम राजते।।६०।।

सर्वोपपातकैर्युक्तैर्ब्रह्महत्यादिपातकैः। नायोध्या शक्यतेयस्मात्तामयोध्यांततोविदुः।।६१।।

विष्णोराद्या पुरी येयं क्षितिं न स्पृशति द्विज!।

विष्णोः सुदर्शने चक्रे स्थिता पुण्यकरी क्षितौ।।६२।।

केन वर्णयितुं शक्यो महिमाऽस्यास्तपोधन!।

यत्र साक्षात्स्वयं देवो विष्णुर्वसति सादरः।।६३।।

सहस्रधारामारभ्य योजनं पूर्वतोदिशि। तथैवदिक्प्रतीच्यां वै योजनं समतोऽवधिः।।६४।।

दक्षिणोत्तरभागे तु सरयूतमसावधिः। एतत्क्षेत्रस्य संस्थानं हरेरन्तर्गृहंस्थितम्॥६५॥
मत्स्याकृतिरियंविप्रपुरीविष्णोरुदीरिता। पश्चिमेतस्यमूर्द्धातुमोप्रतारासिताद्द्विज॥६६॥
पूर्वतः पृष्ठभागो हि दक्षिणोत्तमरमध्यमः।
तस्यां पुर्य्यां महाभाग! नाम्ना विष्णुर्हरिः स्वयम्।
पूर्वं दृष्टप्रभावोऽसौ प्राधान्येन वसत्यपि॥६७॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—हे तपोधन! तुम्हारी बुद्धि धन्य है। देखता हूं कि अयोध्या माहात्म्य सुनने की तुम्हारी तीव्र इच्छा हो रही है। शास्त्र वचन है कि 'अ' कार ब्रह्मा है, 'य'कार विष्णु है। 'ध' रुद्ररूपी हैं। अयोध्या इस प्रकार के वर्णत्रय से सम्पन्न होकर विराजमान है। अर्थात् यहां ये त्रिदेव सदा निवास करते हैं। अतः इस क्षेत्र का नाम है अयोध्या। समस्त उपपातकों सहित ब्रह्महत्यादि पाप भी इस क्षेत्र को आक्रान्त करने में समर्थ नहीं हैं। अतः पण्डितगण इसे अयोध्या नाम से जानते हैं। यह विष्णु की आद्यपुरी है। यह पुरी मृत्तिका (भूमि) का स्पर्श नहीं करती। यह विष्णु के चक्र पर विराजित रहकर पुण्यप्रदा हो गयी है। हे तपोधन! इस स्थान पर श्रीहरि शरीरधारी होकर आदर के साथ विराजमान रहते हैं। इस क्षेत्र की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है। यह पूर्व में सहस्रधारा से लेकर एक योजन पर्यन्त है। पश्चिम दिशा में यह सम (?) से लेकर योजन पर्यन्त विस्तृत है। दक्षिण में यह सरयू से एक योजन पर्यन्त है। उत्तर में यह तमसा से एक योजन पर्यन्त है। यही अयोध्या क्षेत्र का संस्थान है। इस स्थान के मध्य में हरि का अन्तर्गृह स्थित है। हे विप्र! यह विष्णुपुरी मत्स्याकृति हैं। हे द्विज! इसका मस्तक पश्चिम की ओर गोप्रतार तथा असिता पर्यन्त है। इसका पुच्छभाग पूर्व दिशा की ओर है तथा मध्यभाग उत्तर एवं दक्षिण की ओर है। हे महाभाग! हरि इस पुरी में विष्णुविग्रह रूपेण विराजमान रहते हैं। मैंने वहां निवास करके उसके उत्तम प्रभाव को देखा है।।५९-६७।।

व्यास उवाच

भगवन्किम्प्रभावोऽसौ योऽयं विष्णुहरिस्त्वया।
कीर्तितो मुनिशार्दूल प्रसिद्धिं गतवान्कथम्।
एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण ममाऽग्रतः॥६८॥

महर्षि व्यास कहते हैं—हे भगवान्! आपने जो यह कहा कि अयोध्या में श्रीहरि विष्णुरूपी होकर पुरीमध्य में विराजमान हैं, हे मुनिशार्दूल! अब यह बतलायें कि इन विष्णु का प्रभाव क्या है? तथा उनकी प्रसिद्धि कैसे हो सकी? यह सब विस्तारपूर्वक कहिये।।६८।।

अगस्त्य उवाच

विष्णुशर्मेति विख्यातः पुराऽभूद्ब्राह्मणोत्तमः। वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञोधर्मकर्मसमाश्रितः॥६९॥
योगध्यानरतो नित्यंविष्णुभक्तिपरायणः। सकदाचित्तीर्थयात्रांकुर्वन्वैष्णवसत्तमः।
अयोध्यामागतो विष्णुर्विष्णुः साक्षाद्वसेदिति॥७०॥
चिन्तयन्मनसा वीरस्तपः कर्तुंसमुद्यतः। स वै तत्र तपस्तेपे शाकमूलफलाशनः॥७१॥

अगस्त्य कहते हैं—पूर्वकाल में विष्णुशर्मा नामक एक विख्यात तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण थे। वे वेदवेदाङ्ग निष्णात तथा अनेक तत्व के ज्ञाता थे। विष्णुशर्मा निरन्तर धर्म कार्य करते रहते थे। वे योगध्यान तत्पर विष्णुभक्त वैष्णव प्रवर विष्णुशर्मा एक बार तीर्थयात्रा प्रसंग में अयोध्या आये। उन्होंने विचार किया कि साक्षात् विष्णु का यहां निवास है। अतः मैं यहां तप करूंगा। वीर विष्णुशर्मा इस विचार को स्थिर करके फल मूल आहार अपनाकर वहां तप करने लगे।।६९-७१।।

ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्यस्थो ह्यतपत्स महातपाः। वार्षिकेच निरालम्बोहेमन्ते च सरोवरे।।७२।।

स्नात्वा यथोक्तविधिना कृत्वा विष्णोस्तथाऽर्चनम्।
वशीकृत्येन्द्रियग्रामं विशुद्धेनाऽन्तरात्मना।।७३।।

मनोविष्णौसमावेश्यविधायप्राणसंयमम्। ॐकारोच्चारणाद्धीमान्हृदिपद्मंविकाशयन्।।७४।।

तन्मध्येरविसोमाग्निमण्डलानियथाविधि। कल्पयित्वाहरिंमूर्तंयस्मिन्देशेसनातनम्।।७५।।

पीताम्वरधरं विष्णुं शङ्खचक्रगदाधरम्। तञ्चपुष्पैःसमभ्यर्च्य मनस्तस्मिन्निवेश्यच।।७६।।

ब्रह्मरूपं हरिंध्यायञ्जपन्वैद्वादशाक्षरम्। वायुभक्षःस्थितस्तत्र विप्रस्त्रीन्वत्सरान्वसन्।।७७।।

ततो द्विजवरो ध्यात्वा स्तुतिञ्चक्रे हरेरिमाम्। प्रणिपत्यजगन्नाथं चराचरगुरुंहरिम्।
विष्णुशर्माऽथ तुष्टाव नारायणमतन्द्रितः।।७८।।

महात्मा विष्णुशर्मा ग्रीष्मकाल में पञ्चाग्नि के बीच, वर्षाकाल में छायारहित स्थान में तथा हेमन्तकाल में जलपूर्ण सरोवर में खड़े होकर तप कर रहे थे। उनकी इन्द्रियां वशीभूत थीं। उनका अन्तःकरण विशुद्ध था। वे यथाविधान स्नान तथा विष्णु की अर्चना करने लगे। धीमान् विष्णुशर्मा ने प्राणवायु का संयम करके विष्णु में मनोनिवेश किया। ॐकार उच्चारण के फलस्वरूप उनका हृदयकमल प्रकाशित हो उठा। उन्होंने उस विकसित हृत्कमल में सूर्यचन्द्र तथा अग्निमण्डल की यथाविधि भावना करके पीताम्बरधारी, शंख-चक्र-गदाधारी हरि की सनातन मूर्त्ति की (भावनात्मक) पुष्पों से पूजा किया तथा उसी में मनोनिवेश कर लिया। अब वे मात्र वायु भक्षण करते जीवनयापन कर रहे थे तथा सतत् द्वादशाक्षर मन्त्र जप के साथ हरि के ब्रह्मरूप का ध्यान करते रहते थे। इस प्रकार तप करते हुये तीन वर्ष व्यतीत हो गये। तत्पश्चात् ध्यानावसान होने पर आलस्यरहित विष्णुशर्मा चराचरगुरु नारायण श्रीहरि को प्रणाम करके इस स्तुति वाक्य द्वारा उनका स्तव करने लगे।।७२-७८।।

विष्णुशर्मोवाच

प्रसाद भगवन्विष्णो! प्रसीद पुरुषोत्तम!। प्रसीद देवदेवेश! प्रसीद कमलेक्षण!।।७९।।

जयकृष्ण! जयाचिन्त्य! जयविष्णो! जयाव्यय!।
जययज्ञपते! नाथ! जयविष्णोपतेविभो।।८०।।

जय पापहरानन्त जय जन्मज्वरापह। नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने।।८१।।

विष्णुशर्मा कहते हैं—हे भगवान्! प्रसन्न हों। हे विष्णु! पुरुषोत्तम! प्रसन्न हों! हे कमलनयन, देवदेवेश प्रसन्न हो जायें। हे कृष्ण! आप चिन्तन से अतीत हैं। हे विष्णु, अव्यय! आपकी जय हो। हे विभु! आपकी जय

हो, आप यज्ञपति तथा त्रैलोक्यपति हैं। हे नाथ, विष्णु! आपकी जय हो! आप पाप, जन्म तथा जरा का हरण करते हैं। आपकी जय हो! हे कमलनाभ, हे कमलमालाधारी! आपको प्रणाम!।७९-८१।।

नमः सर्वेश भूतेश तमः कैटभसूदन!। नमस्त्रैलोक्यनाथाय जगन्मूल! जगत्पते।।८२।।
नमो देवाधिदेवाय नमो नारायणाय वै। नमः कृष्णाय रामाय नमश्चक्रायुधाय च।।८३।।
त्वं माता सर्वलोकानां त्वमेव जगतःपिता।
भयार्त्तानां सुहृन्मित्रं त्वं पिता त्वं पितामहः।।८४।।
त्वं हविस्त्वं वषट्कारस्त्वं प्रभुस्त्वं हुताशनः। करणं कारणं कर्त्ता त्वमेव परमेश्वरः।।८५।
शङ्खचक्रगदापाणे! मां समुद्धर माधव!।।८६।।
प्रसीद मन्दरधर! प्रसीद मधुसूदन!। प्रसीद कमलाकान्त प्रसीद भुवनाधिप!।।८७।।

हे भूतपति! हे सर्वेश! आपने कैटभासुर का वध किया था। आपको प्रणाम! हे जगत्पति! आप त्रैलोक्यपति तथा जगत् के मूलकारणरूप हैं। आपको प्रणाम! हे नारायण! आप देवाधिदेव, कृष्ण एवं बलराम हैं। आप चक्रायुध हैं। आपको प्रणाम! आप सर्वलोकसमूह के माता-पिता हैं। आप जगत्पिता तथा भयभीत लोगों के (भयनाशक) सुहृद भी हैं। आप ही पिता-पितामह-हरि-वषट्कार-प्रभु तथा हुताशन अग्नि हैं। आप ही करण-कारण-कर्त्ता तथा परमेश्वर भी हैं। आपके हाथों में शंख-चक्र-गदा विद्यमान है। हे माधव! मेरा उद्धार करिये। आपने मन्दराचल को धारण किया था। हे मधुसूदन! मुझ पर प्रसन्न हों! हे कमलाकान्त! मुझ पर प्रसन्न हो जाईये, मुझ पर प्रसन्न हो जाईये।।८२-८७।।

अगस्त्य उवाच

इत्येवं स्तुवतस्तस्यमनोभक्त्यामहात्मनः। आविर्बभूव विश्वात्मा विष्णुर्गरुडवाहनः।।८८।।
शङ्खचक्रपदापाणिः पीताम्बरधरोऽच्युतः। उवाचस प्रसन्नात्माविष्णुशर्माणमव्ययः।।८९।।

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—महात्मा विष्णुशर्मा ने जब इस प्रकार भक्तिपूर्वक विष्णु का स्तव किया, तब पीताम्बरधारी शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी अव्यय, अच्युत, गरुड़ारूढ़ विश्वात्मा विष्णु वहां आविर्भूत हो गये। भगवान् उन ब्राह्मण विश्वशर्मा के प्रति अतीव प्रसन्न होकर कहने लगे।।८८-८९।।

श्रीभगवानुवाच

तुष्टोऽस्मि भवतो वत्स महता तपसाऽधुना।
स्तोत्रेणानेन सुमते! नष्टपापोऽसिसाम्प्रतम्।।९०।।
वरम्वरयविप्रेन्द्र! वरदोऽहं तवाऽग्रतः। नाऽतप्तपसा द्रष्टुं शक्यः केनाऽप्यहं द्विज!।।९१।।

श्री भगवान् कहते हैं—हे वत्स! सम्प्रति तुम्हारी तीव्र तपस्या को देखकर मैं तुम पर प्रसन्न हो गया। तुमने मेरा जो स्तव किया है, उसके द्वारा तुम निष्पाप हो गये। हे विप्रेन्द्र! मैं वर देने के लिये आया हूं। तुम वर मांगो। हे द्विज! कोई भी तपस्या रहित होकर मेरा दर्शन नहीं पा सकता।।९०-९१।।

विष्णुशर्म्मोवाच

कृतकृत्योऽस्मि देवेश साम्प्रतं तवदर्शनात्। त्वद्भक्तिमचलामेकां मम देहि जगत्पते।।९२।।

विष्णुशर्मा कहते हैं—हे देवेश! आपका दर्शन लाभ करके मैं आज कृतार्थ हो गया। हे जगत्पति! आपके प्रति मेरी सदैव अचलाभक्ति बनी रहे। मुझे यही वर दीजिये।।९२।।

श्रीभगवानुवाच

भक्तिरस्त्वचलामेवैवैष्णवीमुक्तिदायिनी। अत्रैवास्त्वचलामेवै जाह्नवीमुक्ति दायिनी।।९३।।
इदं स्थानं महाभाग! त्वन्नाम्ना ख्यातिमेष्यति।।९४।।

भगवान् कहते हैं—हे महाभाग! तुम्हारी मुक्तिप्रदा वैष्णवी भक्ति अचला हो जाये। मेरे आदेशानुसार मुक्तिजननी जाह्नवी देवी यहां अचलरूप से विराजित रहें। मेरा यह स्थान तुम्हारे नाम से प्रसिद्ध हो जाये।।९३-९४।।

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वादेवदेवेशश्चक्रेणोत्खायतत्स्थलम्। जलं प्रकटयामास गाङ्गंपातालमण्डलात्।।९५।।
जलेन तेन भगवान्पवित्रेण दयाम्बुधिः। नीरजस्कं भूमितलं क्षणाच्चक्रे कृपावशात्।।९६।।
चक्रतीर्थमिति ख्यातं ततः प्रभृति तद् द्विज!।
जातं त्रैलोक्यविख्यातमघौघध्वंसकृच्छुभम्।।९७।।
तत्र स्नानेन दानेन विष्णुलोकम्व्रजेन्नरः।।९८।।
ततः स भगवान्भूयोविष्णुशर्माणमच्युतः। कृपया परया युक्त उवाच द्विजवत्सलः।।९९।।

अगस्त्य कहते हैं—कृपासिन्धु, दयासिन्धु, कृपापरवश भगवान् विष्णु ने यह कहकर चक्र द्वारा वह स्थान भेदन करके पातालमण्डल से जाह्नवी जल को प्रकट किया। उस विमल जल ने तत्काल वहां की भूमि को धूलिरहित कर दिया। हे द्विज! तभी से यह स्थान चक्रतीर्थ कहा जाने लगा। हे द्विज! यह शुभ चक्रतीर्थ त्रैलोक्य की पापराशि को ध्वस्त करने में समर्थ है। मानव यहां पर स्नान-दान करके विष्णुलोक गमन करता है। तदनन्तर द्विजों पर कृपालु भगवान् अच्युत कृपापरवश होकर पुनः विष्णुशर्मा से कहने लगे।।९५-९९।।

श्रीभगवानुवाच

त्वन्नामपूर्विकाविप्रमन्मूर्त्तिरिहतिष्ठतु। विष्णुहरीतिविख्याता मुक्तानांमुक्तिदायिनी।।१००।।

श्रीभगवान् कहते हैं—हे विप्र! मेरे नाम के पहले तुम्हारा नाम युक्त की गई मेरी मूर्त्ति यहां स्थापित हो। वह मूर्त्ति विष्णु हरि नाम से विख्यात होकर भक्तों को मुक्ति प्रदान करे।।१००।।

अगस्त्य उवाच

इतिश्रुत्वावचोविप्रोवासुदेवस्यबुद्धिमान्। स्वनामपूर्विकांमूर्तिंस्थापयामासचक्रिणः।।१०१।।
ततः प्रभृति विप्रेश! शङ्खचक्रगदाधरः। पीतवासाश्चतुर्बाहुर्नाम्नाविष्णुहरिः स्थितः।।१०२।।
कार्त्तिकेशुक्लपक्षस्यप्रारभ्यदशमीतिथिम्। पूर्णिमामवधिंकृत्वायात्रासाम्वत्सरीभवेत्।।१०३।।
चक्रतीर्थेनरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते। बहुवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते।।१०४।।
पितृनुद्दिश्य यस्तत्र पिण्डान्निर्वापयिष्यति। तृप्तास्तु पितरो यान्ति विष्णुलोकं न संशयः।।१०५।।

चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा विष्णुहरिं विभुम्।
सर्वपापक्षयंप्राप्य नाकपृष्ठे महीयते॥१०६॥
स्वशक्त्या तत्र दानानि दत्त्वा निष्कल्मषो नरः।
विष्णुलोके वसेद्धीमान्यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥१०७॥
अन्यदाऽपि नरस्तत्र चक्रतीर्थे जितेन्द्रियः। दृष्ट्वा सकृद्धरिंदेवं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥१०८॥
इति सकलगुणाब्धिर्ध्येयमूर्तिश्चिदात्मा हरिरिह परमूर्त्या तस्थिवान्मुक्तिहेतोः।
तमिह बहुलभक्त्या चक्रतीर्थाभिषेकी वसति सुकृतिमूर्त्तिर्योऽर्चयेद्विष्णुलोके॥१०९॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये
विष्णुहरिमाहात्म्यवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—धीमान् विष्णुशर्मा ने वासुदेव का यह वचन सुनकर अपना नाम पूर्व में रखकर वहां चक्रधर श्रीहरि की प्रतिमा स्थापित किया। हे विप्रेन्द्र! तब से पीतवस्त्रधारी शंख-चक्र-गदाधारी चतुर्बाहु श्रीहरि वहां विष्णुहरि नामक होकर चक्रतीर्थ में स्थित हो गये। अब इस तीर्थ का यात्रा प्रकरण सुनो। कार्त्तिकमास की शुक्लादशमी तिथि के दिन से लेकर पूर्णिमा तक के बीच यात्रा करें। यह सांवत्सरी यात्रा कही गयी है। मानव चक्रतीर्थ में स्नान करके सर्वपाप रहित हो जाता है। वह अनेक सहस्र संवत्सर स्वर्गलोक में निवास करता है। जो मनुष्य पितरों के उद्देश्य से उस तीर्थ में पिण्डादि दान करता है, उसके पितृगण तृप्त होकर विष्णुलोक में गमन करते हैं। इसमें सन्देह नहीं है। मानव चक्रतीर्थ में स्नान तथा विष्णुहरि मूर्त्ति का दर्शन करके कलुषयुक्त होकर स्वर्गपुर में गमन करता है। धीमान् मानव इस तीर्थ में यथाशक्ति दान करके निष्पाप होकर चतुर्दश इन्द्रों के अधिकार काल तक विष्णुलोक में निवास करता है। इसके अतिरिक्त पूर्वोक्त यात्राकाल के बिना भी जितेन्द्रिय मानव चक्रतीर्थ में श्रीहरि का एक बार दर्शन करने मात्र से सभी पाप से मुक्त हो जाते हैं। निखिलगुण के सारस्वरूप ध्येय मूर्त्ति चिदात्मा हरि मानवगण की मुक्ति के लिये इस प्रकार की अत्युत्तम मूर्त्ति में यहां स्थित हैं। जो सुकृति मानव चक्रतीर्थ में अभिषेक करके अत्यन्त भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करते हैं, वे विष्णुलोक में निवास करता है।।१०१-१०९।।

।।प्रथम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

द्वितीयोऽध्यायः

ब्रह्मकुण्ड-सहस्त्रधारा तीर्थवर्णन, पापमोचनतीर्थ माहात्म्य नागपूजन महत्ववर्णन

सूत उवाच

अगस्त्यमुनिरित्युक्त्वा चक्रतीर्थाश्रयां कथाम्। विभोर्विष्णुहरेऽश्चापि पुनराह द्विजोत्तमाः॥१॥

सूत जी कहते हैं—हे द्विजश्रेष्ठगण! ऋषि अगस्त्य ने यह कहा तथा पुनः विभु विष्णुहरि की चक्रतीर्थ विषयक कथा कहने लगे।।१।।

अगस्त्य उवाच

पुरा ब्रह्माजगत्स्त्रष्टाविज्ञायहरिमच्युतम्। अयोध्यावासिनंदेवंतत्रचक्रेस्थितिंस्वयम्॥२॥
आगत्यकृतवांस्तत्र यात्रां ब्रह्मायथाविधि। यज्ञञ्चविधिवच्चक्रेनानासम्भारसंयुतम्॥३॥
ततः स कृतवां स्तत्र ब्रह्मालोकपितामहः। कुण्डं स्वनाम्ना विपुलं नानादेवसमन्वितम्॥४॥
विस्तीर्णजलकल्लोलकलितं कलुषापहम्। कुमुदोत्पलकह्लारपुण्डरीककुलाकुलम्॥५॥
हंससारसचक्राह्वविहङ्गमनोहरम्। तटान्तविटपोल्लासिपतत्त्रिगणसङ्कुलम्॥६॥
तत्र कुण्डेसुराः सर्वेस्नाताःशुद्धिसमन्विताः। बभूवुरद्धा विगतरजस्काविमलत्विषः॥७॥
तदाश्चर्य्यं महद्दृष्ट्वा ते सर्वे सहसासुराः। ब्रह्माणम्प्रणिपत्योचुर्भक्त्या प्राञ्जलयस्तदा॥८॥

अगस्त्य कहते हैं—पूर्वकाल में जगत्स्त्रष्टा ब्रह्मा अच्युत हरि को अयोध्या में स्थित जानकर स्वयं उस चक्रतीर्थ में निवास कर रहे थे। वे यथाविधि यात्रा करके अयोध्या स्थित चक्रतीर्थ में आये तथा उन्होंने सविधि यज्ञ किया। उनके यज्ञ में नाना सामग्री लाई गयी। लोकपितामह ब्रह्मा ने अपने नाम के अनुसार नाना देव समन्वित एक बृहद् कुण्ड निर्मित करके यज्ञ किया। यह ब्रह्मकुण्ड कलुष का हरण करने वाला, विस्तीर्ण जलकल्लोल से आकुलित, कुमुद, उत्पल, कह्लार तथा पुण्डरीक समाकीर्ण था। यह कुण्ड हंस, सारस, चक्रवाक आदि अनेक पक्षीगण के विचरण के कारण अत्यन्त शोभा सम्पादित कर रहा था। कुण्ड के किनारे के वृक्ष नयन मनोहर पक्षियों से समाकुल होने के कारण अत्यन्त विचित्र शोभा धारण कर रहे थे। एक बार देवगण इस ब्रह्मकुण्ड में स्नात होकर सद्यः शुद्धियुक्त, विमल कान्तियुक्त तथा रजोहीन हो गये। उन्होंन सहसा यह महान् आश्चर्य वाली घटना को देखकर ब्रह्मा को प्रणाम किया तथा भक्तिपूर्वक करवद्ध होकर उनसे पूछा।।२-८।।

देवा ऊचुः

भगवन्ब्रूहि तत्त्वेन माहात्म्यंकमलासन। अस्य कुण्डस्यसकलंखातस्यविमलत्विषः॥९॥
अत्रस्नानेनसर्वेषामस्माकंविगतं रजः। महदाश्चर्यमेतस्य दृष्ट्वा कुण्डस्यविस्मिताः।
सर्वे वयं सुरश्रेष्ठ! कृपया त्वमतो वद॥१०॥

देवगण कहते हैं—हे भगवान्! कृपया आप इस विमल कान्तिवाले गंभीर जलयुक्त ब्रह्मकुण्ड का माहात्म्य यथार्थ से कहिये। हे कमलासन! इस कुण्ड में स्नानोपरान्त हमारा रजोगुण वाला भाव नष्ट हो गया! हम इस कुण्ड के प्रभाव का अवलोकन करके विस्मित हो रहे हैं। हे देवप्रवर! आप कृपया कृष्ण माहात्म्य का वर्णन करिये।।९-१०।।

ब्रह्मोवाच

श्रृण्वन्तु सर्वे त्रिदशाः! सावधानाः सविस्मयाः।
कुण्डस्यैतस्य माहात्म्यं नानाफलसमन्वितम्।।११।।
अत्रस्नानेनविधिवत्पापात्मानोऽपिजन्तवः। विमानंहंससंयुक्तमास्थायरुचिराम्बराः।
(अध्यासते) निवसन्ति ब्रह्मलोकं यावदाभूतसम्प्लवम्।।१२।।
अत्र दानेन होमेन यथाशक्त्या सुरोत्तमाः। तुलाश्वमेधयोःपुण्योप्राप्नुयुर्मुनिसत्तमाः।।१३।।
ममास्मिन्सरसिश्रीमाञ्जायतेस्नानतोनरः। तस्मादत्र विधानेनस्नानंदानंजपादिकम्।।१४।।
सर्वयज्ञसमंस्याद्वैमहापातकनाशनम्। ब्रह्मकुण्डमिति ख्यातिमितोयास्यत्यनुत्तमाम्।।१५।।
अस्मिन्कुण्डेचसान्निध्यंभविष्यतिसदामम्। कार्त्तिकेशुक्लपक्षस्यचतुर्दश्यांसुरोत्तमाः।।१६।।
यात्रा भविष्यति सदा सुराः! साम्वत्सरीमम्। शुभप्रदा महापापराशिनाशकरीतदा।।१७।।
स्वर्णञ्चैवसदादेयंवासांसिविविधानिच। निजशक्त्याप्रकर्तव्यासुरास्तृप्तिर्द्विजन्मनाम्।।१८।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे सविस्मय देवगण! नानाफलयुक्त इस ब्रह्मकुण्ड का माहात्म्य सुनो। यदि पापात्मा प्राणीगण इस कुण्ड में सविधि स्नान करेंगे, तब वे सुन्दर वस्त्रधारी होकर हंसयुक्त विमानारूढ़ होकर ब्रह्मलोक गमन करेंगे तथा पुनः वहां प्रलयकाल तक निवास करेंगे। हे सुरोत्तमगण! ऋषिप्रवर लोग यहां पर यथासाध्य दान तथा होम करके अश्वमेध यज्ञफल लाभ करेंगे। मेरे इस सरोवर में स्नान करने वाला श्रीमान् हो जाता है। यहां मानव यथाविधि स्नान-दान-जपादि करके समस्त यज्ञ के तुल्य फल को तथा महापातकों के नाशरूपी स्थिति को प्राप्त करता है। आज से मेरा यह कुण्ड ब्रह्मकुण्ड नाम द्वारा अत्युत्तम प्रसिद्धि प्राप्त करेगा। मैं सतत् इस कुण्ड के साथ निवास करूंगा। हे सुरश्रेष्ठगण! कार्त्तिक शुक्लचतुर्दशी के दिन मेरी सांवत्सरी यात्रा होगी। हे देवगण! यह यात्रा शुभप्रद तथा महापापों का नाश करने वाली है। हे देवगण! इस यात्रा में देवगण की तृप्ति के लिये यथाशक्ति स्वर्ण तथा वस्त्र दान करना चाहिये।।११-१८।।

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वा देवदेवोऽयं ब्रह्मा लोकपितामहः। अन्तर्दधे सुरैः सार्द्धं तीर्थं दृष्ट्वा तपोधन!।।१९।।
तदाप्रभृति तत्कुण्डंविख्यातंपरमम्भुवि। चक्रतीर्थाञ्चपूर्वस्यांदिशिकुण्डंस्थितंमहत्।।२०।।

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—तदनन्तर देवदेव लोकपितामह ब्रह्मा ने चक्रतीर्थ का दर्शन किया तथा देवगण के साथ वहां से अन्तर्हित् हो गये। हे तपोधन! तब से यह ब्रह्मकुण्ड पृथिवी पर विपुल रूप से प्रख्यात हो गया। यह कुण्ड चक्रतीर्थ के पूर्व की ओर स्थित है।।१९-२०।।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स तपोराशिरगस्त्यः कुम्भसम्भवः।
पुनः पृष्टो मुनिवरो व्यासायाऽवीवदत्कथाम्॥२१॥

सूत जी कहते हैं—कुंभ से उत्पन्न तपःराशि ऋषि अगस्त्य ने जव यह कहा, तब व्यासदेव के पूछे जाने पर उनसे इस प्रकार उत्तम कथा का वर्णन करने लगे।।२१।।

अगस्त्य उवाच

अन्यच्छृणु महाभाग! तीर्थंदुष्कृतिदुर्ल्लभम्। ऋणमोचनसञ्ज्ञन्तु सरयूतीरसङ्गतम्॥२२॥
ब्रह्मकुण्डान्मुनिवर! धनुःसप्तशतेन च। पूर्वोत्तरदिशाभागे संस्थितं सरयूजले॥२३॥
तत्र पूर्वं मुनिवरो लोमशोनाम नामतः। तीर्थयात्राप्रसङ्गेन स्नानञ्चक्रे विधानतः॥२४॥
ततः स ऋणनिर्मुक्तो बभूव गतकल्मषः। तदाश्चर्य्यं महद्दृष्ट्वा मुनीन्सानन्दमब्रवीत्॥२५॥
पश्यन्त्वेतस्यमहतोगुणांस्तीर्थवरस्य वै। भुजावूर्ध्वतथाकृत्वाहर्षेणाऽऽहाश्रुलोचनः॥२६॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—हे महाभाग! अब पापनाशन अन्य तीर्थ माहात्म्य को सुनें। हे मुनिप्रवर! सरयू तट पर ऋणमोचन नामक एक तीर्थ है। यह तीर्थ सरयू जल के ही एक अंश से युक्त है। यह सरयूनदी के पूर्वत्तर की ओर ब्रह्मकुण्ड से ७०० धनुष दूरी पर विद्यमान है। ऋषिश्रेष्ठ लोमश तीर्थयात्रा करते हुये यहां आये तथा यहां स्नानोपरान्त पापरहित एवं ऋणत्रय से मुक्त हो गये। ऋषिप्रवर लोमश ने इस तीर्थ का महाविस्मयप्रद माहात्म्य देखकर आनन्द अश्रुपूरित हो मुनिगण से कहा था—"हे मुनिगण! आप सभी तीर्थप्रवर ऋणमोचन की महान् महिमा को देखिये।" तब लोमश ने हर्षपूर्वक ऋषियों के समक्ष ऊर्ध्वबाहु तथा अश्रुपूर्ण नेत्र से कहा।।२२-२६।।

लोमश उवाच

ऋणमोचनसञ्ज्ञन्तु तीर्थमेतदनुत्तमम्। यत्र स्नानेन जन्तूनामृणनिर्यातनम्भवेत्॥२७॥
ऐहिकं पारलौकिक्यं यदृणत्रितयं नृणाम्।
तत्सर्वं स्नानमात्रेण तीर्थेऽस्मिन्नश्यति क्षणात्॥२८॥
सर्वतीर्थोत्तमं चैतत्सद्यः प्रत्ययकारकम्। मया चाऽस्य फलं सम्यगनुभूतमृणादिह॥२९॥
तस्मादत्र विधानेनस्नानंदानञ्चशक्तितः। कर्त्तव्यंश्रद्धयायुक्तैःसर्वदाफलकाङ्क्षिभिः॥३०॥
स्नातव्यञ्च सुवर्णञ्च देयं वस्त्रादि शक्तिः॥३१॥

ऋषि लोमश कहते हैं—ऋणमोचन अत्युत्तम तीर्थ है। यहां स्नान करने से मनुष्य क्षणकाल में ही ऐहिक तथा पारलौकिक आदि त्रिविध ऋणों से और अन्य सभी ऋणों से मुक्त हो जाता है। ऋणमोचन सर्वतीर्थसमूह से उत्तम तथा प्रत्यक्ष फलप्रद है। मैं इस तीर्थ में स्नान द्वारा ऋणमुक्त हो गया। अतः फलेच्छु मनुष्य इस तीर्थ में शक्ति के अनुसार सदा यथाविधि श्रद्धा के अनुरूप स्नान तथा दानादि सम्पन्न करे। मानव इस तीर्थ में स्नान करके यथाशक्ति स्वर्ण तथा वस्त्र दान करे।।२७-३१।।

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वा तीर्थमाहात्म्यं लोमशो मुनिसत्तमः। अन्तर्दधे मुनिश्रेष्ठः स्तुवंस्तीर्थगुणान्मुदा॥३२॥
इत्येतत्कथितं विप्र! ऋष्णमोचनसञ्ज्ञकम्। यत्रस्नानेनजन्तूनामृणंनश्यतितत्क्षणात्।
ऋणमोचनतीर्थन्तु पूर्वतः सरयूजले॥३३॥
धनुर्द्विशत्या तीर्थञ्च पापमोचनसञ्ज्ञकम्। सर्वपापविशुद्धात्मा तत्र स्नानेन मानवः।
जायते तत्क्षणादेव नाऽत्र कार्या विचारणा॥३४॥
मया तत्र मुनिश्रेष्ठ! दृष्टं माहात्म्यमुत्तमम्॥३५॥
पाञ्चालदेशसम्भूतो नाम्ना नरहरिर्द्विजः। असत्सङ्गप्रभावेण पापात्मा समजायत॥३६॥
नानाविधानि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। कृतवान्पापिसङ्गेनत्रयीमार्गविनिन्दकः॥३७॥
स कदाचित्साधुसङ्गात्तीर्थयात्राप्रसङ्गतः। अयोध्यामागतोविप्र! महापातककृद्द्विजः॥३८॥
पापमोचनतीर्थेतुस्नातःसत्सङ्गतोद्विजः। पापराशिर्विनष्टोऽस्यनिष्पापःसमभूत्क्षणात्॥३९॥
दिवः पपात तन्मूर्ध्नि पुष्पवृष्टिर्मुनीश्वर। दिव्यं विमानमारुह्यविष्णुलोकेगतोद्विजः॥४०॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—ऋषिसत्तम लोमश हर्षपूर्वक यह तीर्थमहिमा कहकर स्तव करते-करते अन्तर्ध्यान हो गये। हे विप्र! मैंने तुमसे ऋणमोचन तीर्थ का प्रसंग कहा। मानवगण यहां स्नान करके सदैव ऋणरहित हो जाते हैं। ऋणमोचन तीर्थ से पूर्व की ओर २०० धनुष की दूरी पर सरयूजल में ही पापमोचन तीर्थ स्थित है। मानव यहां स्नान करके तत्काल पापरहित एवं विशुद्धात्मा हो जाते हैं। इसमें संशय नहीं है। हे मुनिप्रवर! मैं इस पापमोचन तीर्थ का एक अत्युत्तम माहात्म्य कहता हूं। पाञ्चालदेश में नरहरि नामक द्विज का निवास था। वे दुष्टसंग के कारण पापी हो गये। कुसंसर्ग प्राप्त होने के कारण वेदों में विगर्हित कहे गये ब्रह्महत्यादि नाना पापाचरण उन्होंने किया। हे विप्र! तदनन्तर साधुगण जब तीर्थयात्रा के लिये वहां से चले, तब यह महापापी ब्राह्मण भी उनके साथ अयोध्या पहुंचा। उसने उन सबके साथ में ही पापमोचन में स्नान भी किया। हे मुनिप्रवर! वह ब्राह्मण पापमोचन तीर्थ में स्नान करने से ही निष्पाप हो गया। उसकी पापराशि का नाश हो गया। उसके मस्तक पर आकाश से पुष्पवर्षा होने लगी। वह दिव्य विमानारूढ़ होकर श्रीहरि के लोक चला गया।।३२-४०।।

तद्दृष्ट्वामहदाश्चर्यं मया च द्विजपुङ्गव!। श्रद्धया परयातत्र कृतं स्नानं विशेषतः॥४१॥
माघकृष्णचतुर्दश्यां तत्र स्नानं विशेषतः। दानञ्च मनुजैः कार्य्यं सर्वपापविशुद्धये॥४२॥
अन्यदा तु कृते स्नाने सर्वपापक्षयो भवेत्॥४३॥
पापमोचनतीर्थे तुपूर्वन्तु सरयूजले। धनुः शतप्रमाणेन वर्त्तते तीर्थमुत्तमम्॥४४॥
सहस्त्रधारासञ्ज्ञन्तु सर्वकिल्बिषनाशनम्। यस्मिन्रामाज्ञया वीरो लक्ष्मणः परवीरहा।
प्राणानुत्सृज्य योगेन ययौ शेषात्मतां पुरा॥४५॥
सार्द्धहस्तत्रयेणैव प्रमाणं धनुषो विदुः। चतुर्भिर्हस्तकैः संख्यादण्डइत्यभिधीयते॥४६॥

हे द्विजश्रेष्ठ! मैंने भी यह महान् विस्मयप्रद घटना देखकर अतिशय श्रद्धापूर्वक पापविमोचन में स्नान किया। मनुष्य पापमुक्ति हेतु माघमास में कृष्णचतुर्दशी के दिन इस तीर्थ में स्नान तथा विशेष दान अवश्य करे। इस चतुर्दशी के अतिरिक्त अन्य समय में भी पापमोचन में स्नान करने वाले का सभी पाप क्षयीभूत हो जाता है। पापमोचन के पूर्व की ओर १०० धनुष की दूरी पर सरयू जल में एक उत्तम तीर्थ है। इसका नाम है सहस्त्रधारा! यह सहस्त्रधारा सर्वपापनाशक है। पूर्वकाल में परवीर नाशक लक्ष्मण ने श्रीराम के आदेश से योगबल द्वारा इस सहस्त्रधारा में प्राण त्याग करके परलोक गमन किया। हे साधु! एक धनुष साढ़ी तीन हाथ का होता है। चार हाथ का एक दण्ड कहा गया है।।४१-४६।।

सूत उवाच

इत्थंतदासमाकर्ण्यकुम्भयोनिमुनेस्तदा। कृष्णद्वैपायनोव्यासःपुनःपप्रच्छकौतुकात्॥४७॥

सूत जी कहते हैं—कृष्ण द्वैपायन व्यास ने कुंभ से उत्पन्न ऋषि अगस्त्य से यह सुनकर कौतुक पूर्वक पुनः प्रश्न किया।।४७।।

व्यास उवाच

सहस्त्रधारामाहात्म्यंविस्तराद्वद सुव्रत!। शृण्वंस्तीर्थस्य माहात्म्यंनतृप्यतिमनोमम॥४८॥

महर्षि व्यासदेव कहते हैं—हे सुव्रत! सहस्त्रधार का माहात्म्य विस्तृत रूप से कहिये। सहस्त्रधार का माहात्म्य सुनने से मुझे तृप्ति नहीं हो रही है।।४८।।

अगस्त्य उवाच

सावधानः शृणु मुने! कथां कथयतो मम। सहस्त्रधारातीर्थस्य समुत्पत्तिंमहोदयात्॥४९॥
पुरा रामो रघुपतिर्देवकार्यं विधायवै। कालेन सह सङ्गम्य मन्त्रं चक्रे नरेश्वरः॥५०॥
आवां मन्त्रयमाणौ हि यः पश्येदन्तिकागतः।
मया त्याज्यो भवेत्क्षिप्रमित्थं चक्रे स सम्विदम्॥५१॥
तस्मिन्मन्त्रयमाणेहिद्वारेतिष्ठतिलक्ष्मणे। आगतःसतपोराशिर्दुवासास्तेजसांनिधिः॥५२॥
आगत्य लक्ष्मणं शीघ्रं प्रीत्योवाच क्षुधाऽऽकुलः॥५३॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—हे मुनिवर! मैं पुनः इस तीर्थ की उत्पत्ति का वर्णन करता हूं। इसका माहात्म्य अतीव प्रभावपूर्ण है। अतएव सावधानीपूर्वक श्रवण करें। पूर्वकाल में रघुपति नरेश्वर श्रीराम देवकार्य का उद्धार करके काल के साथ मन्त्रणा कर रहे थे। इस मन्त्रणा के पूर्व श्रीराम ने प्रतिज्ञा किया था कि "जो मन्त्रणा काल में यहां आकर इस मन्त्रणा को देख लेगा, मैं तत्काल उसका त्याग करूंगा।" श्रीराम यह प्रतिज्ञा करने के पश्चात् मन्त्रणागृह गये तथा वहां मन्त्रणा में प्रवृत्त हो गये। तब लक्ष्मण द्वार रक्षण कार्य कर रहे थे। उसी समय तेजपुञ्ज तपोराशि महर्षि दुर्वासा वहां आये। वे क्षुधार्त्त थे। वे द्वार पर आकर प्रेम के कारण तत्क्षण लक्ष्मण से कहने लगे।।४९-५३।।

दुर्वासा उवाच

सौमित्रे! गच्छ शीघ्रं त्वं रामाग्रे मां निवेदय।
कार्यार्थिनमिदं वाक्यं नाऽन्यथा कर्तुमर्हसि॥५४॥

महर्षि दुर्वासा कहते हैं—"हे सुमित्रानन्दन! तुम शीघ्र राम के पास जाकर मेरे आगमन वृत्तान्त को उनसे कहो। हे लक्ष्मण! मेरे आगमन का विशेष प्रयोजन है। इसलिये इसके विपरीत करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है।"।।५४।।

अगस्त्य उवाच

शापाद्भीतः स सौमित्रिर्द्रुतं गत्वातयोः पुरः। मुनिंनिवेदयामासरामाग्रेदर्शनार्थिनम्।
दुर्वाससं तपोराशिमत्रिनन्दनमागतम्।।५५।।
रामोऽपि कालमामन्त्र्यप्रस्थाप्यचबहिर्ययौ। दृष्ट्वा मुनिंतंप्रणतःसम्भोज्यप्रभुरादरात्।।५६।।
दुर्वाससं मुनिवरं प्रस्थाप्य स्वयमादरात्। सत्यभङ्गभयाद्वीरो लक्ष्मणं त्यक्तवांस्तदा।।५७।।
लक्ष्मणोऽपि तदा वीरः कुर्वन्नवितथं वचः। भ्रातुर्ज्येष्ठस्य सुमतिः सरयूतीरमाययौ।।५८।।
तत्र गत्वाऽथ च स्नात्वा ध्यानमास्थाय सत्वरम्।
चिदात्मनि मनः शान्तं सङ्गम्याऽवस्थितस्तदा।।५९।।
ततः प्रादुरभूत्तत्र सहस्रफणमण्डितः। शेषश्चक्षुःश्रवाः श्रेष्ठः क्षितिं भित्त्वासहस्रधा।
सुरलोकात्सुरेन्द्रोऽपि समागादमरैः सह।।६०।।
ततः शेषात्मतां यातं लक्ष्मणं सत्यसङ्गरम्। उवाचमधुरं शक्रःसुराणांतत्रपश्यताम्।।६१।।

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—लक्ष्मण दुर्वासा के शापभय से शंकित होकर शीघ्र वहां से जाकर रामचन्द्र के समक्ष खड़े हो गये तथा उनसे कहा कि "अत्रिपुत्र तपोराशि ऋषि दुर्वासा आपके दर्शनार्थ आये हैं।" प्रभु राम ने भी लक्ष्मण का कथन सुनकर काल को विदा किया तथा बाहर आकर महर्षि दुर्वासा का दर्शन किया और उनके चरणों में प्रणत हो गये। श्रीराम ने नाना वस्तुओं द्वारा उनको भोजन कराया तथा विदा किया। तदनन्तर वीर राम ने वचन भंग के भय से लक्ष्मण का वर्जन किया। वीर लक्ष्मण ने भी ज्येष्ठ भ्राता के वाक्य का उल्लंघन किया था, अतः वे शीघ्रतापूर्वक सरयू तट पहुंचे। उन्होंने वहां स्नान किया तथा ध्यानस्थ हो गये। उन्होंने चिदात्मा में मन को समाहित करके वहां अवस्थान किया। तदनन्तर वहां सहस्रफणयुक्त चक्षुःस्रवा सर्पराज अनंत पृथिवी का भेदन करके प्रकट हो गये। तभी देवलोक से इन्द्र भी देवगण के साथ वहां आये। तदनन्तर इन्द्र ने सभी देवगण के समक्ष शेषरूप प्राप्त सत्यसंगर लक्ष्मण से मधुर वाणी में कहा।।५५-६१।।

इन्द्र उवाच

लक्ष्मणोत्तिष्ठ शीघ्रंत्वमारोह स्वपदं स्वकम्। देवकार्यं कृतं वीर! त्वया रिपुनिषूदन।।६२।।
वैष्णवंपरमंस्थानंप्राप्नुहित्वंसनातनम्। भवन्मूर्तिःसमायातः शेषोऽपिविलसत्फणः।।६३।।
सहस्रधाक्षितिंभित्त्वासहस्रफणमण्डलैः। क्षितेःसहस्रच्छिद्रेषुयस्माद्भित्त्वासमुद्गताः।।६४।।
फणसाहस्रमणिभिर्दग्धाः शेषस्य सुव्रत!। तस्मादेतन्महातीर्थं सरयूतीरगं शुभम्।
ख्यातं सहस्रधारेति भविष्यति न संशयः।।६५।।
एतत्क्षेत्रप्रमाणं तु धनुषां पञ्चविंशतिः। अत्र स्नानेन दानेन श्राद्धेन श्रद्धयान्वितः।
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकं व्रजेन्नरः।।६६।।

अत्र स्नातो नरो धीमाञ्छेषं सम्पूज्य चाऽव्ययम्।
तीर्थं सम्पूज्य विधिवद्विष्णुलोकमवाप्नुयात्॥६७॥
तस्मादत्र प्रकर्तव्यंस्नानं विधिपुरःसरम्। शेषरूपाहिवद्धयेयाःपूज्याविप्राविशेषतः॥६८॥
स्वर्णं चान्नंचवासांसिदेयानिश्रद्धयान्वितैः। स्नानं दानं हरेः पूजासर्वमक्षयतां व्रजेत्॥६९॥

इन्द्र कहते हैं—हे वीर! आप ने शत्रु समूह का वध करके देवकार्य सम्पन्न किया। हे लक्ष्मण! अब आप उठकर अपने पद में प्रवेश करिये। आपको अत्युत्तम सनातन वैष्णव स्थान लाभ हो। हे सुव्रत! आपकी मूर्त्ति अनन्त सहस्रफण फैलाकर यहां आये हैं। वे सहस्रफणमण्डल द्वारा पृथिवी का भेद करके आये हैं। उनकी फण की मणि से यह सहस्र छिद्रपथ (सहस्रफण द्वारा भूमिभेदन से बना) दग्ध हो रहा है। इसलिये आज से सरयूतीरस्थ यह सुशोभन महातीर्थ सहस्रधार नाम से प्रसिद्ध होगा। इस क्षेत्र का माप है पच्चीस धनुष। यहां पर श्रद्धापूर्वक स्नान, दान तथा पितृश्राद्ध करने से मानव समस्त कलुष रहित होकर हरिधाम में जाता है। जो बुद्धिमान मानव सहस्रधार में स्नान करके यथाविधि शेषनाग अनन्त की तथा तीर्थपूजा करता है, उसे विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। अतः सभी इस तीर्थ में सविधि स्नानादि करें। श्रद्धालु मानव इस तीर्थ में ब्राह्मणों में शेषनाग की भावना करके उनका पूजन करें। उनको स्वर्ण-अन्न तथा वस्त्र दान करें। यहां स्नान, दान तथा हरिपूजन करने से वह सब अक्षय हो जाता है।।६२-६९।

तस्मादेतन्महातीर्थं सर्वकामफलप्रदम्। क्षितौ भविष्यति सदामात्रकार्याविचारणा॥७०॥
श्रावणे शुक्लपक्षस्य या तिथिः पञ्चमीभवेत्। तस्मादत्रप्रकर्त्तव्योनागानुद्दिश्ययत्नतः॥७१॥
उत्सवो विपुलः सद्भिः शेषपूजापुरःसरम्। उत्सवे तु कृते तत्र तीर्थेमहति मानवैः॥७२॥
सन्तोष्य च द्विजान्भक्त्या नागपूजापुरस्सरम्।
सन्तुष्टाः फणिनः सर्वे पीडयन्ति न मानुषान्॥७३॥
वैशाखमासे ये स्नानं कुर्वन्त्यत्र समाहिताः। न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥७४॥
तस्मादत्र प्रकर्तव्यं माधवे यत्नतो नरैः। स्नानं दानं हरिःपूज्यो ब्राह्मणाश्च विशेषतः।
तीर्थे कृतेऽत्र मनुजैः सर्वकामफलप्रदः॥७५॥

पृथिवी पर सहस्रधार महातीर्थ सर्वकाम फल प्रदायक गण्य होगा। इसमें सन्देह नहीं है। श्रावण शुक्ला पञ्चमी के दिन साधुगण शेषनाग की पूजा करके नागगण के लिये यहां यत्नपूर्वक उत्सव करें। तब मानवगण द्वारा यहां नागोत्सव करने से तथा भक्तिपूर्वक नागपूजन एवं ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करने से फणधारी नाग प्रसन्न होते हैं। वे उस मनुष्य को पीड़ित नहीं करते। जो समाहित होकर वैशाखमास में यहां स्नान करता है, कोटिकल्पपर्यन्त उसका पुनर्जन्म नहीं होता। पुण्य समाप्त नहीं होता। अतः वैशाखमास में मनुष्य इस तीर्थ में यत्नतः स्नान-दान तथा हरि एवं द्विजगण का पूजन करें। जो मानव ऐसा अनुष्ठान करता है, उसकी सर्वकामना सम्पन्न हो जाती है।।७०-७५।।

विष्णुमुद्दिश्ययोदद्यात्सालङ्कारांपयस्विनीम्। सवत्सामत्रसत्तीर्थेसत्पात्रायद्विजन्मने॥७६॥
तस्य वासो भवेन्नित्यं विष्णुलोके सनातने। अक्षयंस्वर्गमाप्नोतितीर्थस्नानेनमानवः॥७७॥

अत्र पूज्यौ विशेषेण नरैः श्रद्धासमन्वितैः। वैशाखे मास्यलङ्कारैर्वस्त्रैश्चद्विजदम्पती॥७८॥
लक्ष्मीनारायणप्रीत्यै लक्ष्मीप्राप्त्यै विशेषतः। वैशाखेमासि तीर्थानि पृथिवीसंस्थितानि वै॥७९॥
सर्वाण्यपि चसङ्गत्यस्थास्यन्त्यत्रनसंशयः। तस्मादत्रविशेषेणवैशाखेस्नानतोनृणाम्।
सर्वतीर्थावगाहस्य भविष्यति फलं महत्॥८०॥

जो मानव इस अत्युत्तम तीर्थ में विष्णु के उद्देश्य से योग्य पात्र ब्राह्मण को अलंकृत, दुग्धवती, सवत्सा धेनु प्रदान करता है, उसका निवास सदा सनातन विष्णुलोक में ही होगा। मनुष्य इस तीर्थ में स्नान द्वारा अक्षय स्वर्गलाभ करते हैं। विशेषतः इस तीर्थ में वैशाखमास में सश्रद्ध भाव से लक्ष्मी-नारायण की प्रसन्नतार्थ माला एवं अलंकार से द्विज दम्पति की पूजा करनी चाहिये। इस कार्य से व्यक्ति लक्ष्मीलाभ करता है। वैशाखमास में पृथिवी के सभी तीर्थ सहस्रधार में आ जाते हैं। यहीं वे मासपर्यन्त रहते हैं। इसमें सन्देह नहीं है। इसलिये यहां वैशाखस्नान मानव के लिये प्रशस्त है। इस तीर्थ में वैशाख स्नान द्वारा ही फललाभ होता है।।७६-८०।।

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वा मुनिराजेन्द्रो लक्ष्मणं सुरसङ्गतम्। शेषं संस्थाप्यतत्तीर्थे भूभारहरणक्षमम्।
लक्ष्मणं यानमारोप्य प्रतस्थे दिवमादरात्॥८१॥
तदाप्रभृति तत्तीर्थंविख्यातिंपरमां ययौ। वैशाखेमासितीर्थस्यमाहात्म्यंपरमंस्मृतम्॥८२॥
पञ्चम्यामपि शुक्लायां श्रावणस्य विशेषतः। अन्यदापर्वणि श्रेष्ठंविशेषंस्नानमाचरेत्।
सहस्रधारातीर्थे च नरः स्वर्गमवाप्नुयात्॥८३॥
विधिवदिह हि धीमान्स्नानदानानितीर्थेनरवर! इह शक्त्या यः करोत्यादरेण॥८४॥
स इह विपुलभोगान्निर्मलात्मा च भक्त्या भजति भुजगशायिश्रीपतेरात्मनैक्यम्॥८५॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये ब्रह्मकुण्डस-हस्रधारातीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—हे मुनिप्रवर! देवराज इन्द्र ने लक्ष्मण से यह देवोचित वाक्य कहा तथा भूभार का हरण करने में सक्षम शेषनाग को इस तीर्थ में प्रतिष्ठित किया तथा लक्ष्मण को विमान में आरूढ़ कराया तथा देवलोक चले गये। तब से यह तीर्थ अत्यन्त प्रसिद्ध हो गया। वैशाखमास में इस तीर्थ का माहात्म्य सर्वाधिक होता है। विशेषतः श्रावण मास की पञ्चमी के दिन इसकी महिमा अत्यधिक रहती है। इसके अतिरिक्त अन्य समय में भी पर्वों के समय यहां स्नान करने वाला देवलोक प्राप्त करता है। जो धीमान् नरश्रेष्ठ आदरपूर्वक इस तीर्थ में श्रद्धा-भक्ति के साथ यथाविधान स्नान तथा दान देते हैं, वे निर्मलात्मा होकर इस लोक में नाना भोगों का उपभोग करते हैं। तदनन्तर देहान्त होने पर शेषशायी रमापति का सायुज्य लाभ करते हैं।।८१-८५।।

।।द्वितीय अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

तृतीयोऽध्यायः

चन्द्रसहस्त्रव्रतोद्यापन वर्णन, चन्द्र-हरिवृत्त वर्णन

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचो धीमानादरात्कुम्भजन्मनः। प्रोवाचमधुरंवाक्यंकृष्णद्वैपायनोमुनिः॥१॥

सूत जी कहते हैं—कृष्ण द्वैपायन धीमान् ऋषि व्यास कुरुक्षेत्र में अगस्त्य से यह सुनकर उनसे मधुर वाक्य में कहने लगे।।१।।

व्यास उवाच

भगवन्नद्भुतमिदं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्। श्रुत्वा त्वत्तो मम मनः परमानन्दमाययौ॥२॥
अन्यत्तीर्थवरं ब्रूहि तत्त्वेन मम शृण्वतः। न तृप्तिरस्ति मनसः शृण्वतो मम सुव्रत!॥३॥

महर्षि व्यास कहते हैं—हे भगवान्! यह तीर्थ माहात्म्य अत्यन्त अद्‌भुद् तथा उत्तम है। आपके मुख से यह सब सुनकर मेरा मन परम आनन्दित हो रहा है। हे सुव्रत! तीर्थ माहात्म्य और सुनने को मेरी इच्छा हो रही है। मैं इसे जितना ही सुनता हूं, मेरी श्रवणेच्छा उतनी ही बढ़ती जा रही है। इसलिये अब मुझसे अन्य तीर्थों का वर्णन करे।।२-३।।

अगस्त्य उवाच

शृणु विप्र! प्रवक्ष्यामि तीर्थमन्यदनुत्तमम्। स्वर्गद्वारमिति ख्यातं सर्वपापहरं सदा॥४॥
स्वर्गद्वारस्य माहात्म्यं विस्ताराद्वक्तुमीश्वरः। नहि कश्चिदतो वत्स! सङ्क्षेपाच्छृणु सुव्रत!॥५॥
सहस्त्रधारामारभ्य पूर्वतः सरयूजले। षट्त्रिंशदधिका प्रोक्ता धनुषां षट्शती मितिः॥६॥
स्वर्गद्वारस्य विस्तारः पुराणज्ञैर्विशारदैः। स्वर्गद्वारसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति॥७॥
सत्यंसत्यंपुनः सत्यं नासत्यं ममभाषितम्। स्वर्गद्वारसमंतीर्थंनास्तिब्रह्माण्डगोलके॥८॥
हित्वा दिव्यानि भौमानि तीर्थानि सकलान्यपि।
प्रातरागत्य तिष्ठन्ति तत्र संश्रित्य सुव्रत!॥९॥
तस्मादत्र प्रकर्तव्यं प्रातःस्नानं विशेषतः। सर्वतीर्थावगाहस्य फलमात्मनः ईप्सता॥१०॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—हे विप्र! सतत् सर्वपापहारी स्वर्गद्वार नामक एक अन्य अत्युत्तम तीर्थ का वर्णन सुनें। हे वत्स सुव्रत! स्वर्गद्वार का माहात्म्य कोई भी विस्तृत रूप से नहीं कह सकता! इसलिये मैं संक्षिप्त वर्णन करता हूं। यह स्वर्गद्वार सहस्त्रधार से पूर्व की ओर ६३६ धनुष की दूरी पर स्थित है। यह सरयू जल में विराजमान है। पुराणवेत्ता विद्वानों के अनुसार इसका विस्तार इसी प्रकार से निरूपित कर गये हैं। स्वर्गद्वार जैसा तीर्थ न तो कोई होगा, न तो है! यह मैं तीन बार कहता हूं। मेरा वाक्य कभी मिथ्या नहीं होता। हे सुव्रत! ब्रह्माण्ड गोलक में स्वर्गद्वार जैसा अन्य तीर्थ है ही नहीं। पृथिवी के तथा दिव्यलोक के सभी तीर्थ अपना-अपना

स्थान छोड़कर प्रातःकाल स्वर्गद्वार आते हैं। जो सर्वतीर्थफल (एक ही स्थान पर) चाहते हैं, वे स्वर्गद्वार तीर्थ में प्रातः स्नान करें।।४-१०।।

त्यजन्ति प्राणिनः प्राणान्स्वर्गद्वारान्तरेद्विज!।
प्रयान्ति परमं स्थानं विष्णोस्तेनाऽत्र संशयः॥११॥
मुक्तिद्वारमिदं पश्यस्वर्गप्राप्तिकरंनृणाम्। स्वर्गद्वारमितिख्यातंतस्मात्तीर्थमनुत्तमम्॥१२॥
स्वर्गद्वारंसुदुष्प्राप्यं देवैरपि न संशयः। यद्यत्कामयतें तत्र तत्तदाप्नोति मानवः॥१३॥
स्वर्गद्वारे परा सिद्धिः स्वर्गद्वारे परागतिः। जप्तं दत्तं हुतं दृष्टं तप्तस्तप्तंकृतञ्चयत्।
ध्यानमध्ययनं सर्वं दानं भवतिचाऽक्षयम्॥१४॥
जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं पूर्वसञ्चितम्। स्वर्गद्वारप्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम्॥१५॥
ब्राह्मणाः क्षत्त्रिया वैश्याः शूद्रा वै वर्णसङ्कराः।
कृमिम्लेच्छाश्च ये चाऽन्ये सङ्कीर्णाः पापयोनयः॥१६॥
कीटाः पिपीलिकाश्चैवयेचान्येमृगपक्षिणः। कालेन निधनं प्राप्ताःस्वर्गद्वारेशृणुद्विज॥१७॥
कौमोदकीकराः सर्वे पक्षिणो गरुडध्वजाः। शुभेविष्णुपुरेविष्णुर्जायन्तेतत्रमानवाः॥१८॥
अकामो वा सकामो वा अपि तीर्थगतोऽपि वा।
स्वर्गद्वारे त्यजन्प्राणान्विष्णुलोके महीयते॥१९॥

हे द्विज! जो प्राणी स्वर्गद्वार में प्राण त्याग करते हैं, वे हरि के परमस्थान में गमन करते हैं। यह स्वर्गद्वार ही मानवगण की मुक्ति का द्वार है। तभी यह स्वर्गद्वार संज्ञा से कहा जाता है तथा तीर्थों में यह प्रसिद्ध है। यह देवताओं के लिये भी दुष्प्राप्य है। मनुष्य यहां पर जो भी कामना करता है, वह सब उसे प्राप्त हो जाती है। स्वर्गद्वार में उत्तम सिद्धि तथा परमगति लाभ होता है। यहां जप, दान, दर्शन, तपःश्चरण, ध्यान तथा अध्ययन प्रभृति जो कुछ किया जाता है, वह सब अक्षय हो जाता है। हजारों जन्मों से भी जो पाप संचित होते जा रहे हैं, स्वर्गद्वार में प्रवेश करते ही सब क्षयीभूत हो जाते हैं। हे द्विज! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य वर्णसंकर, संकीर्णमना पापयोनि वाले म्लेच्छ, कृमि, कीट, चींटी, अन्य मृग तथा पक्षी भी स्वर्गद्वार में यथाकाल प्राणत्याग करके जो फल लाभ करते हैं, उसे सुनें। वे गदाधारी तथा गरुड़ारूढ़ होकर सुशोभन विष्णुपुर में विष्णुरूपेण विराजित हो जाते हैं। निष्काम, सकाम, तीर्थयात्री चाहे जो हो, वह सब स्वर्गद्वार में प्राण त्याग करके विष्णुलोक गमन करते हैं।।११-१९।।

मुनयो देवताः सिद्धाः साध्या यक्षा मरुद्गणाः। यज्ञोपवीतमात्रेणविभागञ्चक्रिरेतुये॥२०॥
मध्याह्नेऽत्र प्रकुर्वन्तिसान्निध्यंदेवतागणाः। तस्मात्तत्रप्रकुर्वन्तिमध्याह्नेस्नानमादरात्॥२१॥
कुर्वन्त्यनशनं ये तु स्वर्गद्वारे जितेन्द्रियाः। प्रयान्ति परमंस्थानंयेचमासोपवासिनः॥२२॥
अन्नदानरता ये च रत्नदा भूमिदा नराः। गोवस्त्रदाश्च विप्रेभ्यो यान्ति ते भवनं हरेः॥२३॥

देवता, मुनि, सिद्ध, साध्य, यक्ष, मरुद्गण स्वर्गद्वार में आते हैं तथा यहां के यज्ञोपवीत के माप के

स्थान को आपस में प्रत्येक बांटकर उसे अपने-अपने तीर्थरूपेण स्थापित करते हैं। देवता यहां मध्याह्न में आते हैं, इसलिये यहां आदरपूर्वक आकर स्नान करना चाहिये। जो इन्द्रियजित् मानव स्वर्गद्वार में अनशन व्रत किंवा मासोपवास् करता है, उसे उत्तम स्थान में गतिलाभ हो जाता है। अन्नदानरत, रत्नप्रद, भूमिदाता तथा जो विप्रगण को सहस्र गोदान करता है, वह हरिपुर गमन करता है।।२०-२३।।

यत्र सिद्धा महात्मानोमुनयः पितरस्तथा। स्वर्गंप्रयान्तितेसर्वेस्वर्गद्वारंततःस्मृतम्॥२४॥
चतुर्द्धाच तनुं कृत्वादेवदेवो हरिःस्वयम्। अत्र वै रमते नित्यं भ्रातृभिः सह राघवः॥२५॥
ब्रह्मलोकं परित्यज्य चतुर्वक्त्रः सनातनः। अत्रैवरमते नित्यं देवैः सह पितामहः॥२६॥
कैलासनिलयावासी शिवस्तत्रैव संस्थितः॥२७॥

वहां से सिद्ध-मुनि-महात्मा-पितृगण स्वर्ग जाते हैं, तभी उस स्थान का नाम स्वर्गद्वार हो गया। स्वयं राघवरूपी देवाधिदेव श्रीहरि अपने शरीर को चार भाग में विभक्त करके (राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न) अपने भ्रातागण के साथ निवास करते हैं। पितामह सनातन ब्रह्मदेव भी ब्रह्मलोक से आकर देवगण के साथ यहां पर सदा अवस्थित रहते हैं। यहां कैलाशवासी शिव भी सतत् विराजित करते हैं।।२४-२७।।

मेरुमन्दरमात्रोऽपि राशिः पापस्य कर्मणः। स्वर्गद्वारंसमासाद्यससर्वोव्रजतिक्षयम्॥२८॥
या गतिर्ज्ञानतपसां या गतिर्यज्ञयाजिनाम्। स्वर्गद्वारे मृतानांतु सागतिर्विहिताशुभा॥२९॥
ऋषिदेवासुरगणैर्जपहोमपरायणैः। यतिभिर्मोक्षकामैश्च स्वर्गद्वारो निषेव्यते॥३०॥
षष्टिवर्षसहस्राणि काशीवासेषु यत्फलम्। तत्फलं निमिषार्द्धेन कलौदाशरथींपुरीम्॥३१॥
यागतिर्योगयुक्तानांवाराणास्यांतनुत्यजाम्। सा गतिःस्नानमात्रेणसरय्वांहरिवासरे॥३२॥
स्वर्गद्वारे मृतः कश्चिन्नरकं नैव पश्यति। केशवानुगृहीता हि सर्वे यान्ति परांगतिम्॥३३॥
भूलोके चाऽन्तरिक्षे च दिवि तीर्थानि यानि वै।
अतीत्य वर्तते तानि तीर्थान्येतद् द्विजोत्तम!॥३४॥

इस स्वर्गद्वार में आकर मानवगण की मेरु पर्वत तथा मन्दर पर्वत जैसी पापराशि का भी नाश हो जाता है। समस्त ज्ञान, तप तथा यज्ञ से जो गतिलाभ होता है, स्वर्गद्वार में मृत होने पर मानव वैसी ही शुभावहा गति का लाभ करता है। ऋषि, देवता, असुर, यति तथा मोक्षकामी लोग जपहोमपरायण होकर इस स्वर्गद्वार की सेवा करते हैं। ६०००० वर्ष काशीवास का जो फल मिलता है, कलि में लोग दाशरथीपुरी अयोध्या में स्थित स्वर्गद्वार में आधे क्षण में प्राप्त कर लेते हैं। वाराणसी में देहत्याग करने वाले योगीगण की जो गति होती है, वह एकादशी के दिन सरयूजल में स्नान करने वालों को मिल जाती है। स्वर्गद्वार में प्राणत्याग करके कोई भी नरक गमन नहीं करता। सभी केशव की कृपा पाकर उत्तम गति लाभ करते हैं। हे द्विजोत्तम! भूलोक, अन्तरिक्ष, स्वर्ग में जो सब तीर्थ है, उन सबका अतिक्रमण करके यह स्वर्गद्वार (उन सबसे श्रेष्ठ होकर) स्थित है।।२८-३४।।

विष्णुभक्तिं समासाद्य रमन्ते तु सुनिश्चिताः।
संहृत्य शक्तितः कामं विषयेषु हि संस्थितम्॥३५॥

शक्तितःसर्वतोयुक्त्वाशक्तिस्तपसिसंस्थिता। नतेषांपुनरावृत्तिःकल्पकोटिशतैरपि॥३६॥
हन्यमानोऽपियोविद्वान्वसेच्छस्त्रशतैरपि। सयातिपरमं स्थानं यत्र गत्वा नशोचति॥३७॥
स्वर्गद्वारे वियुज्येत सयाति परमाङ्गतिम्। उत्तरं दक्षिणंवाऽपिअयनंनविकल्पयेत्॥३८॥
सर्वस्तेषां शुभःकालःस्वर्गद्वारंश्रयन्तिये। स्नानमात्रेणपापानिविलयंयान्तिदेहिनाम्॥३९॥
यावत्पापानि देहेनयेकुर्वन्ति जनाः क्षितौ। अयोध्या परमं स्थानंतेषामीरितमादरात्॥४०॥

जिन्होंने विष्णुभक्ति प्राप्त कर लिया है, विष्णु के प्रति जिनकी बुद्धि दृढ़ हो गयी है, जिन्होंने विषयों के प्रति अपनी कामनाओं का त्याग कर दिया है तथा जो सभी युक्तियों के द्वारा अपनी शक्तियों को तपस्या में लगा चुके हैं, करोड़ों कल्प काल में भी उनका पुनर्जन्म नहीं होता। सैकड़ों-सैकड़ों शस्त्रों का प्रहार होने पर भी विद्वान् व्यक्ति उस स्वर्गद्वार में ही रहता है, जहां जाने पर शोकरहित गति का लाभ होता है। इस तीर्थ में दक्षिणायन किंवा उत्तरायण का कालभेद नहीं होता। स्वर्गद्वार में शरण लेने पर मानव हेतु सभी काल शुद्ध हो जाते हैं। पृथिवी पर रहकर उस व्यक्ति ने कितने ही पाप क्यों न किये हों, इस तीर्थ में स्नान मात्र से उसके सभी दुरितों का क्षय हो जाता है। शास्त्र भी सादर यह कहते हैं कि ऐसे लोगों के लिये अयोध्या परमस्थान है।।३५-४०।।

ज्येष्ठे मासि सितेपक्षेपञ्चदश्यांविशेषतः। तस्यसाम्वत्सरीयात्रादेवैश्चन्द्रहरेःस्मृता॥४१॥
तस्मिन्नुद्यापनं चन्द्रसहस्त्रं व्रतयोगिभिः। कार्यं प्रयत्नतो विप्र! सर्वयज्ञफलाधिकम्॥४२॥
तस्मिन्कृते महापापक्षयात्स्वर्गो भवेन्नृणाम्॥४३॥

ज्येष्ठ मास के शुक्लपक्ष में विशेषतः पूर्णिमा के दिन देवता चन्द्र हरि की सांवत्सरी यात्रा करते हैं। योगीगण इसी पूर्णिमा के दिन चन्द्रसहस्त्रव्रत का उद्यापन करते हैं। हे विप्र! यह व्रत समस्त यज्ञफलों से श्रेष्ठ है। इसलिये यत्नतः चन्द्र सहस्त्रव्रताचरण करना चाहिये। इस व्रताचरण द्वारा सर्वपापक्षय होकर मानव को स्वर्गप्राप्ति हो जाती है।।४१-४३।।

श्रीव्यास उवाच

भगवन्ब्रूहि तत्त्वेनतस्यचन्द्रहरेः शुभाम्। उत्पत्तिञ्च तथाचन्द्रव्रतस्योद्यापनेविधिम्॥४४॥

महर्षि व्यास पूछते हैं—हे भगवान्! चन्द्रहरि की मनोहर उत्पत्ति तथा चन्द्रव्रतोद्यापन विधि को यथार्थ रूप से कहिये।।४४।।

अगस्त्य उवाच

अयोध्यानिलयं विष्णुंनत्वा शीतांशुरुत्सुकः।
आगच्छत्तीर्थमाहात्म्यं साक्षात्कर्तुं सुधानिधिः।
अत्राऽऽगत्य च चन्द्रोऽथ तीर्थयात्रां चकार सः॥४५॥

क्रमेण विधिपूर्वञ्च नानाश्चर्यसमन्वितः। समाराध्य ततो विष्णुं तपसा दुश्चरेण वै॥४६॥
तत्प्रसादं समासाद्य स्वाभिधानपुरस्सरम्। हरिं संस्थापयामासतेनचन्द्रहरिःस्मृतः॥४७॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—सुधानिधि शीतांशु (चन्द्र) उत्सुकता के कारण अयोध्या आये। वे तीर्थ माहात्म्य दर्शनार्थ आये थे। उन्होंने अयोध्यापति विष्णु को प्रणाम किया। उन चन्द्रमा ने यहां आकर सविधि तीर्थाटन किया और यहां का अनेक माहात्म्य देखकर विस्मित हो गये। उन्होंने यहां पर दुष्कर तपःश्चरण से श्रीहरि की आराधना भी किया। तदनन्तर अयोध्यापति विष्णु की कृपा प्राप्त करके उन्होंने अपना नाम आगे लगाकर (चन्द्र हरि) हरिमूर्त्ति की प्रतिष्ठा किया। इसी कारण इस मूर्त्ति को चन्द्रहरि मूर्त्ति कहते हैं।।४५-४७।।

वासुदेवप्रसादेन तत्स्थानं जातमद्भुतम्। तद्धि गुह्यतमं स्थानं वासुदेवस्य सुव्रत।।४८।।

सर्वेषामेव भूतानां भर्तुर्मोक्षस्य सर्वदा।
अस्मिन्सिद्धाः सदा विप्र! गोविन्दव्रतमास्थिताः।।४९।।
नानालिङ्गधरानित्यं विष्णुलोकाभिकाङ्क्षिणः।
अभ्यस्यन्ति परं योगं मुक्तात्मानो जितेन्द्रियाः।।५०।।

यथाधर्ममवाप्नोति अन्यत्र न तथा क्वचित्। दानं व्रतं तथा होमःसर्वमक्षयतां व्रजेत्।।५१।।
सर्वकामफलप्राप्तिर्जायते प्राणिनां सदा। तस्मादत्र विधातव्यंप्राणिभिर्यत्नतःक्रमात्।
दानादिकं विप्रपूजा दम्पत्योश्च विशेषतः।।५२।।
सर्वयज्ञाधिकफलं सर्वतीर्थावगाहनम्। सर्वदेवावलोकस्य यत्पुण्यं जायते नृणाम्।।५३।।
तत्सर्वं जायते पुण्यं प्राणिनामस्य दर्शनात्। तस्मादेतन्महाक्षेत्रं पुराणादिषुगीयते।।५४।।
उद्यापनविधिश्चात्र नृभिर्द्विजपुरस्सरम्। अग्रे चन्द्रहरेश्चन्द्रसहस्त्रव्रतसञ्ज्ञकः।।५५।।

हे सुव्रत! वासुदेव की कृपा के कारण यह स्थान अत्यन्त अद्भुद आकार वाला हो गया है। इसे वासुदेव का अत्यन्त गुप्त स्थान जानिये। हे विप्र! समस्त प्राणीगण को मुक्त करने वाले विष्णु का यह एक परम स्थान है। गोविन्द व्रतधारी विष्णुलोक प्राप्ति की कामना करने वाले मुक्तात्मा सिद्ध लोग नाना रूप धारण करके यहां सदा रहते हैं। यहां जिस फल की प्राप्ति होती है, अन्यत्र वैसा फललाभ नहीं होता। यहां दान-व्रत-होमादि सब अक्षय हो जाता है। इस तीर्थ में प्राणीगण की समस्त कामनायें पूरी हो जाती हैं। इसलिये यहां सतत् यत्नपूर्वक धर्म-कर्म का अनुष्ठान करें। दान-विष्णुपूजन विशेषतः द्विज दम्पति की अर्चना यहां अधिक फलदायक होती है। समस्त यज्ञ, समस्त तीर्थस्नान तथा सर्वविध देवदर्शन का जो फल है, केवल मात्र इस तीर्थ दर्शन द्वारा प्राणीगण को पूर्वोक्त सभी फल प्राप्त हो जाता है। इसलिये पुराणादि शास्त्रों में इसे महाक्षेत्र कहते हैं। मानवगण पहले सहस्त्रचन्द्र व्रत को सम्पन्न करें। तत्पश्चात् ब्राह्मण के साथ इसका उद्यापन सम्पन्न करें।।४८-५५।।

गतेवर्षद्वये सार्द्धे पञ्चपक्षे दिनद्वये। दिवसस्याऽष्टमे भागे पतत्येकोऽधिमासकः।।५६।।
त्र्यधिके वा अशीत्यब्दे चतुर्मासयुते ततः। भवेश्चन्द्रसहस्त्रं तु तावज्जीवति योनरः।
उद्यापनं प्रकर्त्तव्यं तेन यात्रा प्रयत्नतः।।५७।।

अब व्रत का उद्यापन काल कहता हूं। व्रताचरण के दो वर्ष आठ मास सत्रह दिन व्यतीत हो जाने पर दिन के अष्टम भाग में एक मलमास होता है। तिरासी वर्ष चार मास में सहस्त्रचन्द्र पूर्ण होता है। सौरक्रमानुसार यह मास गणना करनी चाहिये। क्योंकि चान्द्रक्रम से गणित करने पर मलमास के कारण तिरासी वर्ष चार मास

के पूर्व में ही सहस्रचन्द्रपूर्ण हो जाता है। इस कारण से तिरासी वर्ष चार मास के पहले ही सहस्रचन्द्र पूर्ण हो जाता है तथा व्रतोद्यापन भी समय से पहले होता है। (अतः चन्द्रमास से गणना करनी चाहिये)। जो मानव व्रत आरंभ करके इस सहस्रचन्द्रव्रत के अन्त तक अर्थात् तिरासी वर्ष चार मास जीवित रह जाता है, वही यत्नतः इस यात्रा का उद्यापन करे।।५६-५७।।

यत्पुण्यं परमं प्रोक्तं सततं यज्ञयाजिनाम्। सत्यवादिषु यत्पुण्यं यत्पुण्यंहेमदायिनि।
तत्पुण्यं लभते विप्र! सहस्राब्दस्य जीविभिः।।५८।।
सर्वसौख्यप्रदं तादृक्पुण्यव्रतमिहोच्यते।।५९।।
चतुर्दश्यां शुचिः स्नात्वा दन्तधावनपूर्वकम्। चरितब्रह्मचर्य्यश्च जितवाक्कायमानसः।
पौर्णमास्यां तथा कृत्वा चन्द्रपूजां च कारयेत्।।६०।।
पूर्वञ्च मातरः पूज्या गौर्यादिकक्रमेण च। ऋत्विजः पूजयेद्भक्त्यावृद्धिश्राद्धपुरस्सरम्।।६१।।
प्रयतैः प्रतिमा कार्या चन्द्रमण्डलसन्निभा। सहस्रसङ्ख्या ह्यथवातदर्द्धं वातदर्द्धकम्।
निजवित्तानुमानेन तदर्द्धेन तदर्द्धिकम्।।६२।।
ततः श्रद्धानुमानाद्वा कार्या वित्तानुमानतः।
अथवा षोडश शुभा विधातव्याःप्रयत्नतः।।६३।।
चन्द्रपूजां ततः कुर्यादागमोक्तविधानतः। माषैः षोडशभिः कार्याप्रत्येकंप्रतिमाशुभा।।६४।।

यज्ञ का यजन करने वालों के लिये जो परमपुण्य है, सत्यवादी लोगों हेतु जो परम सुकृत है, स्वर्णदान करने वाले तथा सहस्रवर्षजीवी लोग जिस पुण्य को प्राप्त करते हैं, वही सर्वसुखप्रद सहस्रचन्द्रव्रत से भी प्राप्त होता है। पवित्र मानव चतुर्दशी के दिन दांतों को साफ करके स्नान करे। मन-वाणी तथा कर्म संयम तथा ब्रह्मचर्य पालन करें। तदनन्तर पूर्णिमा के दिन पूर्वोक्त नियम द्वारा चन्द्रपूजा करके पहले गौरी-पद्माद्विक्रम से षोडश मातृकापूजन सम्पन्न करें। तत्पश्चात् भक्तिपूर्वक वृद्धिश्राद्धोपरान्त ऋत्विकों की पूजा तथा प्रयत्नपूर्वक चन्द्रमण्डल के समान एक हजार चन्द्रप्रतिमा बनाये। इस प्रतिमा का निर्माण करके अपनी अर्थशक्ति के अनुसार १०००, अथवा ५००, किंवा २५० अथवा जितनी शक्ति हो उतनी संख्या में श्रद्धापूर्वक चन्द्रप्रतिमा बनाये। अथवा सोलह संख्यक ही प्रतिमा बनाये। इन सब प्रतिमाओं को सुन्दर बनाना चाहिये। तदनन्तर आगमोक्त विधान से इनकी पूजा करें। हे द्विज! पूर्वकाल में जो प्रतिमानिर्माण क्रम कहा गया है, उसके अनुसार प्रत्येक प्रतिमा सुशोभना बने तथा प्रत्येक प्रतिमा सोलह मासा वजन की ही हो।।५८-६४।।

सोममन्त्रेण होमस्तु कार्योवित्तानुमानतः। प्रतिमास्थापनंकुर्यात्सोममन्त्रमुदीरयेत्।।६५।।
सोमोत्पत्तिं सोमसूक्तं पाठयेच्च प्रयत्नतः। चन्द्रपूजांततः कुर्यादागमोक्तविधानतः।।६६।।
चन्द्रन्यासं कलान्यासं कारयेन्मण्डलेजलम्। एकादशेन्द्रिय न्यासंतथैवविधिपूर्वकम्।।६७।।
चन्द्रबिम्बनिभं कार्य्यंमण्डलंशुभतण्डुलैः। मध्येचकलशःस्थाप्योगव्येनपयसाप्लुतः।।६८।।
चतुरस्त्रेषुसम्पूर्णान्कलशान्स्थापयेद्बहिः। मण्डले चन्द्रपूजाचकर्तव्यानामभिःक्रमात्।।६९।।

तत्पश्चात् अपनी धनशक्ति के अनुसार सोममन्त्र से हवन करना चाहिये। सोममन्त्रोच्चार करते हुये प्रतिमा स्थापना करके प्रयत्नपूर्वक सोमोत्पात्त एवं सोमसूक्तपाठ करे। तदनन्तर आगमोक्त विधानानुसार पुनः चन्द्र की पूजा करके चन्द्रमण्डल में यथाविधि चन्द्रन्यास, कलान्यास तथा एकादश इन्द्रियन्यास करे। इस चन्द्रविम्ब के समान चन्द्रमण्डल को श्वेत तण्डुल द्वारा बनाकर मण्डल के मध्य में गो दुग्ध भरा कलश स्थापित करे। मण्डल के चतुष्कोण के बाहर चार कलस की स्थापना करनी चाहिये। तत्पश्चात् "हिमांशवे नमः, सोमचन्द्राय नमः, चन्द्राय नमः" आदि मूल श्लोक में लिखे 'नमः' युक्तमन्त्र से चन्द्रपूजन सम्पन्न करें। तत्पश्चात् स्तव करना चाहिये।।६५-६९।।

हिमांशवे नमश्चैव सोमचन्द्राय वै नमः। चन्द्राय विधवे नित्यं नमः कुमुदबन्धवे।।७०।।
सुधांशवे च सोमाय औषधीशाय वै नमः। नमोऽब्जायमृगाङ्कायकलानांनिधयेनमः।।७१।।
नमो नक्षत्रनाथाय शर्वरीपतये नमः। जैवावृकाय सततं द्विजराजाय वै नमः।।७२।।

यथा—हिमांशु को, सोमचन्द्र को, चन्द्र-विधु एवं कुमुदबन्धु को नमस्कार! सुधांशु, सोम, औषधीश, अज, मृगांक, कलानिधि, नक्षत्रनाथ, शर्वरीनाथ, जैवातृक तथा द्विजराज को सतत् नमस्कार!।।७०-७२।।

एवं षोडशभिश्चन्द्रः स्तोतव्यो नामभिः क्रमात्।।७३।।
ततो वै प्रयतो दद्याद्विधिवन्मन्त्रपूर्वकम्। शङ्खतोयं समादाय सपुष्पफलचन्दनम्।।७४।।
नमस्तेमासमासान्ते जायमानःपुनः पुनः। गृहाणार्घ्यंशशाङ्क! त्वं रोहिण्यासहितोमम।।७५।।
एवं सम्पूज्य विधिवच्छशिनं प्रणतोभवेत्। षोडशान्येचकलशादुग्धपूर्णाःसरत्नकाः।।७६।।
सवस्त्राच्छादनाः शान्त्यै दातव्यास्ते द्विजन्मने।
अभिषेकं ततः कुर्यात्पायसेन जलेन तु।।७७।।
ऋत्विजां मनसस्तुष्टिः कार्या वित्तानुमानतः। ब्राह्मणंभोजयेतत्र सकुटुम्बंविशेषतः।।७८।।

इस प्रकार चन्द्र के इन सोलह नामों का उच्चारण करके यथाक्रमेण स्तव करे। तदनन्तर इस मन्त्र से जो आगे कहा जा रहा है, प्रयत्नपूर्वक यथाविधि पुष्प एवं चन्दनयुक्त जल शंख द्वारा चन्द्रमा को अर्पित करे। मन्त्र है "हे शशाङ्क! आप प्रत्येक मास के अवसान से पुनः-पुनः पूर्णतः उदित होते हैं। आप रोहिणी के साथ मेरे द्वारा प्रदत्त अर्घ्य को ग्रहण करिये।" इस प्रकार से यथाविधि चन्द्रपूजनोपरान्त प्रणत होकर अपनी शान्तिकामनार्थ दुग्ध तथा रत्नयुक्त वस्त्राच्छादित अन्य षोडश कलस द्विजों को प्रदान करें। तदनन्तर दुग्धयुक्त जल से अभिषेक सम्पन्न करके अपनी धन शक्ति के अनुसार ऋत्विक्गण को सन्तुष्ट करें। इसके पश्चात् कुटुम्बयुक्त ब्राह्मणों को भोजन कराये।।७३-७८।।

पूजनीयौप्रयत्नेन वस्त्रैश्च द्विजदम्पती। कर्तव्यञ्च ततो भूरिदक्षिणादानमुत्तमम्।।७९।।
प्रतिमाश्च प्रदातव्या द्विजेभ्यो धेनुपूर्विकाः। सुवर्णं रजतं वस्त्रं तथान्नं च विशेषतः।
दातव्यं चन्द्रसुप्रीत्यै हर्षादेवं द्विजन्मने।।८०।।
उपवासविधानेन दिनशेषं नयेत्सुधीः। अनन्तरे च दिवसे कुर्याद्भगवदर्चनम्।
बान्धवैः सह भुञ्जीत नियमञ्च विसर्ज्जयेत्।।८१।।

एवञ्च कुरुते चन्द्रसहस्रं व्रतमुत्तम्। ब्रह्मघ्नोऽपि सुरापोऽपि स्तेयी च गुरुतल्पगः।
व्रतेनाऽनेन शुद्धात्मा चन्द्रलोकं ब्रजेन्नरः॥८२॥
यादृशश्च भवेद्विप्र! प्रियो नारायणस्य च। एवं करोति नियतं कृतकृत्यो भवेन्नरः॥८३॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांद्वितीये वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये चन्द्रसहस्रव्रतोद्यापनविधिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥

इसके पश्चात् नाना वस्त्रों द्वारा प्रयत्नतः द्विजदम्पति की पूजा तथा उनको उत्तम प्रचुर दक्षिणा दान करके द्विजगण को धेनुयुक्त प्रतिमा देनी चाहिये। तत्पश्चात् चन्द्र के उत्तम प्रसन्नतार्थ स्वर्ण-रजत-वस्त्र तथा विशेष रूप से अन्नदान करें। तत्पश्चात् व्रती सुधी व्यक्ति वह दिन अनशन में ही व्यतीत करके अगले दिन भगवान् की अर्चना करे तथा पूजावसान के समय बान्धवगण के साथ भोजन करके व्रतनियम का समापन करे। इस प्रकार से अत्युत्तम चन्द्रसहस्र व्रताचरण द्वारा ब्रह्महत्या, सुरापान, चौर्य, गुरुपत्नीगमन करने वाले मानव भी इस व्रतप्रभाव से विशुद्धात्मा होकर चन्द्रलोक लाभ करते हैं। हे विप्र! जो यह व्रत करता है, वह नारायण का प्रिय है। मानव नित्य यह व्रत करके कृतकृत्य हो जाता है॥७९-८३॥

॥तृतीय अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

चतुर्थोऽध्यायः

धर्महरि-स्वर्णखनि माहात्म्य, कौत्स-रघुसंवाद

अगस्त्य उवाच

तस्माच्चन्द्रहरिस्थानादाग्नेय्यां दिशि संस्थितः। देवो धर्महरिर्न्नाम कलिकल्मषनाशकः॥१॥
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः स्वकर्मपरिनिष्ठतः। पुरा समागतो धर्मस्तीर्थयात्राचिकीर्षया॥२॥
आगत्य चचकारोच्चैर्यात्रांतत्रादरेणसः। दृष्ट्वामाहात्म्यमतुलमयोध्यायाःसविस्मयः॥३॥

विधाय स्वभुजावूर्ध्वौ विप्रोऽवोचन्मुदान्वितः।
अहो रम्यमिदं तीर्थमहो माहात्म्यमुत्तमम्॥४॥
अयोध्यासदृशी कापि दृश्यते नाऽपरा पुरी।
या न स्पृशति वसुधां विष्णुचक्रस्थिताऽनिशम्॥५॥
यस्यां स्थितो हरिः साक्षा सेयं केनोपमीयते।
अहो तीर्थानि सर्वाणि विष्णुलोकप्रदानि वै॥६॥

अहो विष्णुरहोतीर्थमयोध्याऽहो महापुरी।
अहो माहात्म्यमतुलं किं न श्लाघ्यमिहास्थितम्॥७॥
इत्युक्त्वा तत्र बहुशो ननर्तप्रमदाकुलः। धर्मोमाहात्म्यमालोक्यअयोध्यायाविशेषतः॥८॥
तं तथा नर्तमानंवै धर्मं दृष्ट्वा कृपान्वितः। आविर्बभूव भगवान्पीतवासाहरिः स्वयम्॥
तं प्रणम्य च धर्मोऽथ तुष्टाव हरिमादरात्॥९॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—इस चन्द्रहरिक्षेत्र के अग्निकोण दिशा में कलिकलुषनाशक देव धर्महरि की स्थिति है। पूर्वकाल में वेद-वेदाङ्ग तत्वार्थज्ञ स्वकर्मतत्पर धर्मदेव तीर्थयात्रार्थ यहां आये। उन्होंने यहां आकर एक महान् तीर्थयात्रा का अनुष्ठान किया था। वे अयोध्या का अतुलनीय माहात्म्य देखकर विस्मित हो गये। उन्होंने हर्षपूर्वक अपनी भुजाओं को उठाकर कहा—"अहा! क्या रमणीक तीर्थ है! यह अत्युत्तम माहात्म्य वाला है। मैंने अयोध्या ऐसी अन्य पुरी नहीं देखी है। यह पुरी पृथिवी का स्पर्श नहीं करती। यह विष्णुचक्र पर स्थित है। यहां स्वयं हरि विराजमान हैं। इस पुरी के साथ अन्य पुरी की उपमा ही नहीं है। यहां के सभी तीर्थ विष्णुलोक प्रदाता हैं। यह अत्युत्तम तीर्थ है। अयोध्या महापुरी हैं। यहां की तीर्थ महिमा कितनी महान् है। यहां का क्या पूजनीय नहीं है!" धर्म यह कहकर अनेक प्रकार से नृत्य करने लगे तथा अयोध्या के माहात्म्य को देखकर उनका हृदय प्रेमाभिभूत हो गया। धर्म को इस प्रकार से भावविभोर होकर नृत्यरत देखकर वहां स्वयं हरि का आविर्भाव हो गया। वे उनका दर्शन पाकर प्रणामपूर्वक उनसे आदर पूर्वक कहने लगे (स्तव करने लगे)।।१-९।।

धर्म उवाच

नमः क्षीराब्धिवासाय नमः पर्यङ्कशायिने। नमो शङ्करसंस्पृष्टदिव्यपादाय विष्णवे॥१०॥

धर्म कहते हैं—आप क्षीराब्धि निवासी को नमस्कार! शेषपर्यङ्क पर शयन करने वाले आप को नमस्कार! हे विष्णु! शंकर अपने मस्तक पर आपके चरणद्वय को धारण करते हैं। आपको प्रणाम!।१०।।

भक्त्याऽर्च्चितसुपादाय नमोऽजादिप्रियाय ते।
शुभाङ्गाय सुनेत्राय माधवाय नमोनमः॥११॥
नमोऽरविन्दपादाय पद्मनाभाय वै नमः। नमः क्षीराब्धिकल्लोलस्पृष्टगात्राय शार्ङ्गिणे॥१२॥
ॐनमो योगनिद्राय योगर्क्षैर्भावितात्मने। तार्क्ष्यासनाय देवाय गोविन्दायनमोनमः॥१३॥
सुकेशाय सुनासाय सुललाटाय चक्रिणे। सुवस्त्राय सुवर्णाय श्रीधराय नमोनमः॥१४॥

भक्तगण भक्तिभाव से जिनके चरणकमल की अर्चना करते हैं, ब्रह्मादि देवता जिनके प्रिय हैं, जिनके अंग शोभायुक्त तथा नयनद्वय मनोहारी हैं, उन माधव को प्रणाम! हे शर्ङ्गधारी! आपके चरणद्वय तथा आपकी नाभि तो कमल के समान है। क्षीरसागर की जलकल्लोल आपके चरणों का स्पर्श करती हैं, आपको प्रणाम! जिनकी निद्रा ही योग है, नक्षत्रादि से जिनका शिशुमारादि शरीर गठित है, जो गरुड़ासनासीन हैं, उन देव गोविन्द को प्रणाम! हे चक्रिण! आपके ललाट, नासिका तथा केश सुशोभन हैं। आप उत्तम वस्त्र तथा वर्ण द्वारा श्रीधारी हैं। आपको प्रणाम, पुनः प्रणाम!।।११-१४।।

सुबाहवे नमस्तुभ्यं चारुजङ्घाय ते नमः। सुवासाय सुदिव्याय सुविद्याय गदाभृते॥१५॥

केशवाय च शान्ताय वामनाय नमोनमः। धर्मप्रियाय देवाय नमस्ते पीतवाससे॥१६॥

आप सुबाहु, उत्तम जंघा वाले, उत्तम वस्त्रधारी, दिव्य, सुविद्यावान् एवं गदाधारी हैं। आप केशव, शान्त, वामन हैं, आपको पुनः-पुनः प्रणाम! हे धर्मप्रिय! पीतवस्त्रधारी! आप देवदेव को प्रणाम!।।१५-१६।।

अगस्त्य उवाच

इति स्तुतो जगन्नाथो धर्मेण श्रीपतिर्मुदा। उवाच स हृषीकेशः प्रीतो धर्ममुदारधीः॥१७॥

अगस्त्य कहते हैं—धर्म द्वारा एवंविध स्तुत होकर जगत्पत्ति, रमापति, हृषीकेश, उदारबुद्धि श्रीहरि प्रेमपूर्वक कहने लगे।।१७।।

श्रीभगवानुवाच

तुष्टोऽहं भवतो धर्म! स्तोत्रेणानेन सुव्रत!। वरम्वरय धर्मज्ञ! यस्तेस्यान्मनसः प्रियः॥१८॥

स्तोत्रेणानेन यः स्तौति मानवो मामतन्द्रितः।
सर्वान्कामान्वाप्नोति पूजितः श्रीयुतःसदा॥१९॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे धर्म! तुम्हारे इस स्तुति वाक्य द्वारा मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हो गया। हे धर्मज्ञ! तुम अभीष्ट वर याचना करो। हे धर्मज्ञ! जो आलस्यरहित मानव इस स्तुति द्वारा मेरा स्तव करेगा, वह अपनी समस्त कामना की प्राप्ति करके सतत् पूजित तथा श्रीमान् कहा जायेगा।।१८-१९।।

धर्म उवाच

यदि तुष्टोऽसि भगवन्देवदेव! जगत्पते!। त्वामहंस्थापयाम्यत्र निजनाम्नाजगद्गुरो॥२०॥

धर्म कहते हैं—हे जगत्पति! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तब मेरी इच्छा है कि मैं अपने नाम के अनुसार आपकी यहां स्थापना करूं।।२०।।

अगस्त्य उवाच

एवमस्त्विति सम्प्रोच्याऽभवद्धर्महरिर्विभुः। स्मरणादेव मुच्येत नरो धर्महरेर्विभोः॥२१॥

सरयूसलिले स्नात्वा सुचिन्ताकुलमानसः। देवं धर्महरिं पश्येत्सर्वपापैः प्रमुच्यते॥२२॥

अत्र दानं तथा होमं जपोब्राह्मणभोजनम्। सर्वमक्षयतांयातिविष्णुलोकेनिवासकृत्॥२३॥

अज्ञानाज्ज्ञानतो वाऽपि यत्किञ्चिद्दुष्कृतम्भवेत्।
प्रायश्चित्तं विधातव्यं तन्नाशाय प्रयत्नतः॥२४॥

प्रायश्चित्तेन विधिना पापं तस्य प्रणश्यति। तस्मादत्र प्रकर्त्तव्यंप्रायश्चित्तंविधानतः॥२५॥

अज्ञानाज्ज्ञानतोवापिराजादेर्निग्रहात्तथा। नित्यकर्मनिवृत्तिःस्याद्यस्यपुंसोऽवशात्मनः।
तेनाऽप्यत्र विधातव्यं प्रायश्चित्तं प्रयत्नतः॥२६॥

अत्र साक्षात्स्वयं देवो विष्णुर्वसति सादरः। तस्माद्वर्णयितुं शक्यो महिमा न हि मानवैः॥२७॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—भगवान् ने कहा 'ऐसा ही हो।' तदनन्तर धर्म ने धर्महरिमूर्त्ति स्थापित किया।

इस धर्महरि मूर्त्ति के स्मरण मात्र से मानव मुक्त हो जाता है। जो मानव सरयू जल में स्नान करके उत्तम चिन्तन करते हुये देव धर्महरि का दर्शन करता है, इससे वह समस्त कलुषरहित हो जाता है। यहां अन्नदान, होम, जप, ब्राह्मण भोजन अक्षयफलप्रद हो जाता है। इन सब कर्म के प्रभाव द्वारा मानव विष्णुलोक में वास करता है। जानबूझ कर अथवा बिना जाने मनुष्य में जो भी दुष्कर्म संचित हो जाते हैं, उन सब दुरित के नाशार्थ प्रयत्नतः प्रायश्चित्त करना विहित होता है। यथाविधि प्रायश्चित्त द्वारा ही दुष्कृति दूर होती है। इसलिये इस तीर्थ में मनुष्य प्रयत्नपूर्वक पापनाश की कामना से प्रायश्चित्त करे। यहां स्वयं विष्णु का सादर निवास है। अतएव मानवगण तीर्थ की महिमा का वर्णन नहीं कर सकता। इसमें सन्देह नहीं है।।२१-२७।।

आषाढे शुक्लपक्षस्यएकादश्यांद्विजोत्तम!। तस्यसाम्वत्सरीयात्राकर्तव्यातुविधानतः।।२८।।
स्वर्गद्वारे नरःस्नात्वा दृष्ट्वा धर्महरिंविभुम्। सर्वपापविशुद्धात्माविष्णुलोकेवसेत्सदा।।२९।।
तस्माद्दक्षिणदिग्भागे स्वर्णस्य खनिरुत्तमा। यत्रचक्रेस्वर्णवृष्टिं कुबेरो रघुजाद्भयात्।।३०।।

हे द्विजोत्तम! आषाढ़ की शुक्ला एकादशी के दिन यत्नतः इस स्वर्गद्वार तीर्थ की सांवत्सरी यात्रा करना कर्त्तव्य है। मनुष्य स्वर्गद्वार में स्नान तथा विभु धर्महरि का दर्शन करके सर्वपापरहित हो जाता है। वह विशुद्धात्मा होकर विष्णुलोक में निवास करता है। इस स्वर्गद्वार के दक्षिण की ओर स्वर्णखान है। यह अत्युत्तम है। रघु के भय से यहां पर कुबेर द्वारा स्वर्णवृष्टि की गयी थी।।२८-३०।।

व्यास उवाच

भगवन्ब्रूहि तत्त्वज्ञ! स्वर्णवृष्टिरभूत्कथम्। कुबेरस्य कथं भीतिरुत्पन्ना रघुभूपतेः।।३१।।
एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरान्मम सुव्रत!। श्रुत्वा कथारहस्यानिनतृप्यतिमनो मम।।३२।।

महर्षि व्यास कहते हैं—हे भगवान्! यहां स्वर्णवृष्टि क्यों की गयी थी। हे तत्वज्ञ! रघु से कुबेर को क्यों भय हो गया? यह सब विस्तार पूर्वक मुझसे कहिये। हे सुव्रत! यह सब रहस्य कथा सुन कर मेरा मन तृप्त नहीं हो रहा है।।३१-३२।।

अगस्त्य उवाच

श्रृणु विप्र! प्रवक्ष्यामि स्वर्णस्योत्पत्तिमुत्तमाम्।
यस्य श्रवणतो नृणां जायते विस्मयो महान्।।३३।।
आसीत्पुरा रघुपतिरिक्ष्वाकुकुलवर्द्धनः। रघुर्निजभुजोदारवीर्यशासितभूतलः।।३४।।
प्रतापतापितारातिवर्गव्याख्यातसद्यशाः। प्रजाः पालयता सम्यक्तेन नीतिमता सता।।३५।।
यशःपूरेण संलिप्ता दिशोदश सितत्विषा। स चक्रे प्रौढविभवसाधनांविजयक्रमात्।।३६।।
नानादेशान्समाक्रम्य चतुरङ्गबलान्वितः। भूतानि वशमानीय वसु जग्राह दण्डतः।।३७।।

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—हे विप्र! अब स्वर्ण की उत्तम उत्पत्तिकथा कह रहा हूं। सुनिये। मानवगण की स्वर्णोत्पत्ति की यह कथा सुनकर महाविस्मय हो रहा है। पूर्वकाल में ईक्ष्वाकुकुल का वर्द्धन करने वाले रघुपति रघु ने अपने उदार भुजवीर्य से समस्त पृथिवीमण्डल पर शासन किया। उनके शत्रु यद्यपि उनके प्रताप

से भले ही तापित रहे हों, तथापि वे भी उन रघु के शासन गुणों के कारण उनका यशगान करते थे। उन राजारघु ने उत्तम नीति का आश्रय लेकर प्रजा का शासन तथा संरक्षण किया था। उनकी यशःकिरणे उस समय दसों दिशाओं को समाच्छन्न कर रही थी। उस समय राजारघु ने दिग्विजय से अर्जित धन द्वारा विभवसाधन का विचार करके नाना देशों पर आक्रमण करके चतुरंगिणी सेना लेकर दण्ड द्वारा राजाओं को वश में किया तथा उनसे धन लिया।।३३-३७।।

उत्कृष्टान्नृपतीन्वीरो दण्डयित्वा बलाधिकान्।
रत्नानि विविधान्याशु जग्राहाऽतिबलस्तदा॥३८॥
स विजित्य दिशः सर्वा गृहीत्वा रत्नसञ्चयम्।
अयोध्यामागतो राजा राजधानीञ्च तां शुभाम्॥३९॥
तत्रागत्यचकाकुत्स्थोयज्ञायोत्सुकमानसः। चकारनिर्मलांबुद्धिंनिजवंशोचितक्रियाम्॥४०॥

अतिबली वीर रघु ने अल्पकाल में ही अनेक श्रेष्ठ राजागण को वश में करके उनसे प्रचुर धन-रत्न लिया। राजा ने इस प्रकार से सभी दिशाओं पर विजय पाकर प्रभूत धन एकत्र किया। वे अपनी सुशोभित राजधानी अयोध्या वापस आये। जब वे काकुस्थ्य वंशी अयोध्या लौटे, तब वे अयोध्या में यज्ञार्थ उत्सुक हो गये। यज्ञादिक्रिया उनके कुल के लिये उचित थी, तभी उन्होंने उस कुलोचित क्रिया करने के लिये अपने निर्मल मन को तत्पर किया।।३८-४०।।

वसिष्ठं मुनिमाज्ञाय वामदेवं च कश्यपम्॥४१॥
अन्यानपि मुनिश्रेष्ठान्नानातीर्थसमाश्रितान्। समानयद्विनीतेन द्विजवर्येण भूपतिः॥४२॥
दृष्ट्वास्थितान्सतान्सर्वान्प्रदीप्तानिवपावकान्। तानागतान्विदित्वाऽथरघुःपरपुरञ्जयः।
निश्चक्राम यथान्यायं स्वयमेव महायशाः॥४३॥
ततो विनीतवत्सर्वान्काकुत्स्थो द्विजसत्तमान्। उवाच धर्मयुक्तं च वचनं यज्ञसिद्धये॥४४॥

इसके पश्चात् रघु ने महर्षि वसिष्ठ को बुलवाया। उस विनीत राजा ने वसिष्ठ के माध्यम से वामदेव, काश्यप तथा अन्य तीर्थवासी उत्तम मुनिगण को आमन्त्रित किया। महायशस्वी पररिपुजयी काकुस्थ रघु ने इन पवित्र मुनिगण को आया देखकर महल से बाहर आकर विनीत भाव से यज्ञ सिद्धि के लिये इस प्रकार धर्मयुक्त वाक्य उन ऋषिसत्तमगण से कहा।।४१-४४।।

रघुरुवाच

मुनयः सर्व एवैते यूयं शृणुत मद्वचः। यज्ञं विधातुमिच्छामि तत्राज्ञां दातुमर्हथ॥४५॥
साम्प्रतं मामको यज्ञोयुक्तःस्यान्मुनिसत्तमाः। एतद्विचार्यतत्त्वेन ब्रूत यूयंमुनीश्वराः॥४६॥

रघुराज कहते हैं—हे मुनिगण! आप सब आये हैं। अब मेरा वाक्य सुनिये। हे मुनिसत्तमगण! सम्प्रति मैंने यह भी इच्छा किया है। अतः मेरे द्वारा यज्ञ करना उचित है। आप आदेश दीजिये। हे मुनीश्वगण! आप यथायथ विचार करके मुझे आदेश दीजिये।।४५-४६।।

मुनय ऊचुः

राजन्विश्वजिदाख्यातायज्ञानांयज्ञउत्तमः। साम्प्रतंकुरु तं यत्नान्माविलम्बंवृथाकृथाः।।४७।।

मुनिगण कहते हैं—हे राजन्! विश्वजित् नामक एक यज्ञ है। यह सर्वश्रेष्ठ यज्ञ है। विलम्ब नहीं करिये।।४७।।

अगस्त्य उवाच

नृपश्चक्रे ततो राज्ञं विश्वदिग्जयसञ्ज्ञितम्। नानासम्भारमधुरं कृतसर्वस्वदक्षिणम्।।४८।।
नानाविधेन दानेन मुनिसन्तोषहर्षकृत्। सर्वस्वमेव प्रददौ द्विजेभ्यो बहुमानतः।।४९।।
तेषु विश्वेषु यातेषु पूजितेषु गृहान्स्वकान्। बन्धुष्वपि च तुष्टेषु मुनिषु प्रणतेषु च।।५०।।
तेन यज्ञेन विधिवद्विहितेन नरेश्वरः। शुशुभे शोभनाचारः स्वर्गे देवेन्द्रवत्क्षणात्।।५१।।
तत्रान्तरे समभ्यायान्मुनिर्यमवताम्बरः। विश्वामित्रमुनेरन्तेवासीकौत्सइतिस्मृतः।।५२।।
दक्षिणार्थं गुरोर्द्धीमान्पावितुं तं नरेश्वरम्। चतुर्दशसुवर्णानां कोटीराहर सत्वरम्।।
मद् दक्षिणेति गुरुणा निर्बन्धाद्याचिनो रुषा। आगतः स मुनिः कौत्सस्ततो याचितुमादरात्।।५३।।
रघुं भूपालतिलकं दत्तसर्वस्वदक्षिणम्।।५४।।
तमागतमभिप्रेत्य रघुरादरतस्तदा। उत्थाय पूजयामास विधिवत्स परन्तपः।
सपर्य्यासीत्तस्य सर्वा मृत्पात्रविहितक्रिया।।५५।।
पूजा सम्भारमालोक्य तादृशं तं मुनीश्वरः।
विस्मितोऽभून्निरानन्दो दक्षिणाऽऽशां परित्यजन्।
उवाच मधुरं वाक्यं वाक्यज्ञानविशारदः।।५६।।

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—तदनन्तर राजा ने विविध मधुर द्रव्य के ढेर को मंगवाकर अपना सर्वस्व दक्षिणा के रूप में देकर विश्वजित् यज्ञाचरण किया। उनके यज्ञ में मुनियों ने अनेक प्रकार का दान ग्रहण किया तथा अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये। तदनन्तर सभी हर्षित होकर राजा द्वारा पूजित होकर स्वगृह चले गये। उसी समय विश्वामित्र के अन्तेवासी धीमान् मुनि कौत्स राजा रघु को पवित्र करने वहां आ गये। उन्होंने अपने गुरु को गुरुदक्षिणा प्रदान करने हेतु राजा से धन मांगा। कौत्स ऋषि ने कहा—"हे राजन्! शीघ्र चतुर्दश कोटि स्वर्ण मुद्रा लाईये। जब मैंने गुरु से दक्षिणा प्रदान करने हेतु प्रार्थना किया, तब उन्होंने क्रोधित होकर मुझे यह आदेश प्रदान किया।" हे द्विज! गुरुदक्षिणा के लिये धन हेतु जब ऋषि कौत्स ने राजा रघु के समीप आगमन किया था तब राजाओं में श्रेष्ठ रघु ने विश्वजित् यज्ञ में सर्वस्वदान कर दिया था, तथापि वे आसन से उठे और उन समागत ऋषि कौत्स का यथाविधि पूजन किया। उस समय रघु के पास मात्र एक मिट्टी का पात्र बचा था। राजा ने उस मिट्टी के पात्र से ही ऋषि कौत्स का चरणप्रक्षालनादि सम्पन्न किया था। मुनिवर कौत्स राजा के हाथ में ऐसा पूजापात्र देखकर विस्मित हो गये। उनका आनन्द लुप्त हो गया। उन्होंने दक्षिणा पाने की आशा त्याग दिया था। तब वाक्यज्ञान विशारद ऋषि कौत्स राजा से यह मधुर वाक्य कहने लगे।।४८-५६।।

कौत्स उवाच

राजन्नभ्युदयस्तेऽतु गच्छाम्यन्यत्र साम्प्रतम्।।५७।।
गुर्वर्थाहरणायैवदत्तसर्वस्वदक्षिणम्। त्वां न याचे धनाभावादतोऽन्यत्रव्रजाम्यहम्।।५८।।

ऋषि कौत्स कहते हैं—हे राजन्! तुम्हारा मंगल हो। अब मैं गुरु दक्षिणार्थ धन एकत्र करने अन्यत्र जा रहा हूं। तुमने विश्वजित् यज्ञ में सर्वस्वदान कर दिया था। तुमको तो स्वयं धनाभाव है। अतः मैं अन्यत्र जा रहा हूं।।५७-५८।।

अगस्त्य उवाच

इत्युक्तस्तेन मुनिना रघुः परपुरञ्जयः। क्षणं ध्यात्वाऽब्रवीदेनंविनयाद्विहिताञ्जलिः।।५९।।

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—मुनि कौत्स के यह कहने पर परशत्रुजयी रघु ने क्षणकाल विचार करके यथाविधि हाथ जोड़ा तथा विनय के साथ उनसे कहने लगे।।५९।।

रघुरुवाच

भगवंस्तिष्ठ मे हर्म्ये दिनमेकं मुनिव्रत!। यावद्यतिष्ये भगवन्भवदर्थार्थमुच्चकैः।।६०।।

राजा रघु कहते हैं—हे भगवान्, मुनिव्रत! आप एक दिन मेरे महल में निवास करिये। मैं इस बीच आपके द्वारा मांगा गया धन लाने का प्रयत्न करूंगा।।६०।।

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वापरमोदारवचो मुनिमुदारधीः। प्रतस्थे च रघुस्तत्र कुबेरविजिगीषया।।६१।।
तमायान्तं कुबेरोऽथ विज्ञाप्य वचनोदितैः। प्रसन्नमनसंचक्रेवृष्टिं स्वर्णस्य चाक्षयाम्।।६२।।
स्वर्णवृष्टिरभूद्यत्र सास्वर्णखनिरुत्तमा। स मुनिं दर्शयामास खनिंतेन निवेदिताम्।।६३।।
तस्मै समर्पयामास तांरघुःखनिमुत्तमाम्। मुनीन्द्रोऽपिगृहीत्वाशुततोगुर्वर्थमादरात्।।६४।।
राज्ञेनिवेदयामाससर्वमन्यद्गुणाधिकः। वरानथ ददौ तुष्टः कौत्सो मतिमताम्वरः।।६५।।

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—उदारबुद्धि रघु ने कौत्स से यह परम उत्तम वाक्य कहा तथा कुबेर पर विजय करने के लिये वहां चल पड़े। जब रघु कुबेर पुरी में पहुंचे तब उनके आगमन का संवाद सुनकर कुबेर ने उनके यहां अक्षय स्वर्णवृष्टि करके रघु को प्रसन्न किया। हे द्विज! कुबेर ने जहां स्वर्णवर्षा किया था, वहीं स्वर्ण की उत्तम खान हो गयी। तदनन्तर रघु ने ऋषि को वह उत्तम स्वर्ण खान दिखला कर वह समस्त कौत्स को ही अर्पित किया। तदनन्तर गुणी ज्ञानीप्रवर मुनिवर कौत्स ने शीघ्र उस खान से आदरपूर्वक गुरु के सत्कारार्थ स्वर्ण लिया तथा राजा के पास जाकर बचा स्वर्ण उनको लौटाया और राजा को अनेक वर प्रदान किया।।६१-६५।।

कौत्स उवाच

राजल्लंभस्वसत्पुत्रं निजवंशगुणान्वितम्। इयंस्वर्ण खनिस्तूर्णं मनोऽभीष्टफलप्रदा।।६६।।
भूयादत्र परं तीर्थं सर्वपापहरं सदा। अत्र स्नानेन दानेन दानेन नृणांलक्ष्मीःप्रजायत्ते।।६७।।

वैशाखेशुक्लद्वादश्यांयात्रासाम्वत्सस्मृता। नानाभीष्टफलप्राप्तिभूर्यायान्मद्वचसानृणाम्।।६८।।

ऋषि कौत्स कहते हैं—हे राजन्! शीघ्र तुमको तुम्हारे वंश के गुणानुरूप उत्तम सन्तान का लाभ होगा। यह स्वर्णखान तुम्हारे लिये अभीष्ट फलप्रद हो जाये। यहां सर्वपापहरी उत्कृष्ट तीर्थ होगा। जो मानव इस तीर्थ में दान करेगा, मेरे वर के अनुसार वह श्रीमान् होगा। वैशाख शुक्ला द्वादशी के दिन यहां तीर्थ सांवत्सरी यात्रा होगी। मेरे आदेशानुसार मानवगण यह यात्रा करके नानारूप में अभीष्ट प्राप्त करे।।६६-६८।।

अगस्त्य उवाच

इति दत्त्वा वरान्राज्ञेकौत्सः सन्तुष्टमानसः। प्रतस्थे निजकार्यार्थे गुरोराश्रममुत्सुकः।।६९।।
राजाः सकृतकृत्योऽथशेषंसङ्गृह्यतद्धनम्। द्विजेभ्योविधिवद्दत्त्वापालयामासवैप्रजाः।।७०।।
एवं स्वर्णखनेर्जातं माहात्म्यञ्च मुनीश्वरात्।।७१।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डेऽयोध्या-माहात्म्ये धर्महरिस्वर्णखनिमाहात्म्यवर्णनंनाम चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—तदनन्तर अपनी कामना पूर्ण हो जाने पर सन्तुष्ट मन वाले कौत्स समुत्सुक होकर राजा को यह वरदान देकर अपने प्रयोजन के अनुसार गुरु के आश्रम में चले गये। राजा भी कौत्स को सन्तुष्ट होते देखकर कृतकृत्य हो गये। राजा ने कौत्स द्वारा छोड़े गये शेष धन को लेकर यथाविधि द्विजगण को प्रदान किया। हे व्यास! ऋषि कौत्स द्वारा इस प्रकार से स्वर्ण खान का माहात्म्य उत्पन्न हो गया।।६९-७१।।

।।चतुर्थ अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

पञ्चमोऽध्यायः

कौत्स वृत्तान्त वर्णन, तिलोदकी माहात्म्य

व्यास उवाच

भगवन्ब्रूहितत्त्वेनकथंनिर्बन्धतोमुनिः। विश्वामित्रोनिजंशिष्यंकौत्संक्रोधेनतादृशम्।।१।।
दुष्प्राप्यमर्थं यत्नेन बहु प्रार्थितवांस्तदा। एतत्सर्वञ्च कथय मयि यद्यस्ति ते कृपा।।२।।

महर्षि व्यास कहते हैं—हे भगवान्! क्रोधपरवश ऋषि विश्वामित्र ने क्यों अपने शिष्य कौत्स से इस प्रकार अनेक यत्न से भी न मिलने वाली धनराशि की दक्षिणा का आदेश क्यों दिया? यदि मेरे प्रति आपकी कृपा है, तब यथायथ रूप से मुझसे कहिये।।१-२।।

अगस्त्य उवाच

श्रृणुद्विजकथामेतांसावधानेन्द्रियःस्वयम्। विश्वामित्रोमुनिश्रेष्ठःसदिव्यज्ञानलोचनः॥३॥
निजाश्रमे तपो दुर्गञ्चकार प्रयतो व्रती। एकदा तमथो द्रष्टुं दुर्वासा मुनिरागतः॥४॥
आगत्य च क्षुधाक्रान्त उच्चैः प्रोवाच स द्विजः। भोजनं दीयतां मह्यं क्षुधापीडितचेतसे।
पायसं शुचि चोष्णञ्च शीघ्रं क्षुधार्त्तिने द्विज!॥५॥
इतिश्रुत्वावचःक्षिप्रंविश्वामित्रःप्रयत्नतः। स्थाल्यांपायसमादायतंसमर्प्यततःस्वयम्॥६॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—"हे द्विज! समाहित इन्द्रिय होकर यह कथा सुनिये। दिव्यज्ञाननेत्र मुनीश्वर विश्वामित्र व्रत धारण करके अपने आश्रम में दुश्चर तप कर रहे थे। एक बार महर्षि दुर्वासा विश्वामित्र का दर्शन करने हेतु उनके आश्रम पहुंचे। द्विज दुर्वासा क्षुधार्त्त थे। उन्होंने आश्रम में आते ही उच्च स्वर से विश्वामित्र से कहने लगे—"हे द्विज! मैं क्षुधातुर हूं। क्षुधा से मेरा चित्त व्याकुल है। इसलिये मुझे शीघ्र तनिक उष्ण पायस प्रदान करो।" विश्वामित्र दुर्वासा का यह वाक्य सुनकर उठे तथा उन्होंने प्रयत्नपूर्वक थाली में पायस लेकर दुर्वासा को स्वयं अर्पित किया।।३-६।।

तदादायोत्थितं दृष्ट्वा दुर्वासास्तं विलोकयन्। उवाच मधुरं वाक्यंमुनिंलक्षणतत्परः॥७॥
क्षणं सहस्व विप्रेन्द्र! यावत्स्नात्वा व्रजाम्यहम्।
तिष्ठ तिष्ठक्षणं तिष्ठ आगच्छाम्येष साम्प्रतम्॥८॥
इत्युक्त्वा स जगामैव दुर्वासाः स्वाश्रमं तदा॥९॥
विश्वामित्रस्तपोनिष्ठस्तदा सानुरिवाऽचलः। दिव्यं वर्षसहस्रं स तस्थौ स्थिरमतिस्तदा॥१०॥

तदनन्तर लक्षण तत्पर महर्षि दुर्वासा ने विश्वामित्र को हाथ में पायस लेकर खड़े देखकर उनसे मधुर वाक्य में कहा—"हे विप्रेन्द्र! आप क्षणकाल रुकें। मैं स्नानार्थ जा रहा हूं। जब तक मैं वापस नहीं लौटता, तब तक आप प्रतीक्षा करिये।" महर्षि दुर्वासा ने यह कहकर अपने आश्रम प्रस्थान कर दिया। तपःपरायण विश्वमित्र अचल खड़े रहकर दुर्वासा की प्रतीक्षा करने लगे। इस प्रकार विश्वामित्र दिव्यमान से १००० दिव्यवर्ष पर्यन्त दुर्वासा के लिये प्रतीक्षारत रह गये।"।।७-१०।।

तस्य शुश्रूषणपरो मुनिः कौत्सो यतव्रतः। बभूव परमोदारमतिर्विगतमत्सरः॥११॥
पुनरागत्यस मुनिर्दुर्वासा गतकल्मषः। भुक्त्वा च पायसं सद्यःसजगामनिजाश्रमम्॥१२॥
तस्मिन्गतेमुनिवरेविश्वामित्रस्तपोनिधिः। कौत्संविद्यावतांश्रेष्ठंविससर्जगृहान्प्रति॥१३॥
स विसृष्टो गुरुं प्राह दक्षिणा प्रार्थ्यतामिति।
विश्वामित्रस्तु तं प्राह त्वं किं दास्यसि दक्षिणाम्
दक्षिणा तव शुश्रूषा गृहं व्रज यतव्रतः॥१४॥
पुनः पुनर्गुरुं प्राहशिष्यो निर्बन्धवान्यदा। तदा गुरुर्गुरुक्रुद्धः शिष्यंप्राह चनिष्ठुरम्॥१५॥
सुवर्णस्य सुवर्णस्य चतुर्दश समाहर। कोटीर्मे दक्षिणाविप्र पश्चाद्गच्छ गृहम्प्रति॥१६॥

इसी समय परम उदार बुद्धिवाले, मत्सरशून्य व्रतशील विश्वामित्र की सुश्रूषा में ऋषि कौत्स निरत हो गये। तदनन्तर विगतकल्मष दुर्वासा आये तथा तत्क्षण पायस भक्षण करके अपने आश्रम चले गये। ऋषिप्रवर दुर्वासा के जाने के पश्चात् तपोनिधि विश्वामित्र ने ज्ञानियों में अग्रणी कौत्स को स्वगृह जाने का आदेश दिया। गुरु विश्वामित्र का आदेश सुनकर कौत्स ने विश्वामित्र से कहा "आप मुझसे दक्षिणा मांगिये" विश्वामित्र ने कहा "हे यतव्रत कौत्स! तुमने जो मेरी सेवा की है, उसके द्वारा ही मुझे प्रचुर दक्षिणा प्राप्त हो गयी। अब तुम क्या दक्षिणा दोगे! अब अपने घर चले जाओ।" तथापि कौत्स ने जब बारम्बार दक्षिणा मांगने के लिये कहा, जिससे गुरु विश्वामित्र क्रोधित हो उठे। उन्होंने शिष्य कौत्स से यह निष्ठुर वाक्य कहा—"हे द्विज! तुम चतुर्दश करोड़ स्वर्ण लाकर मुझे गुरुदक्षिणा प्रदान करो। तत्पश्चात् घर जाओ।"।।११-१६।।

इत्युक्तो गुरुणा कौत्सो विचार्य समुपागतम्।
काकुत्स्थं दिग्विजेतारं ययाचे गुरुदक्षिणाम्।।१७।।
इत्युक्तं ते मुनिवर त्वया पृष्टं हि यत्पुनः। अतोऽन्यच्छृणुतेवच्मितीर्थकारणमुत्तमम्।।१८।।
तस्माद्दक्षिणदिग्भागे सम्भेदःसिद्धसेवितः।
तिलोदकीसरय्वोश्चसङ्गत्या भुवि संश्रुतः।।१९।।
तत्र स्नात्वामहाभागभवन्तिविरजानराः। दशानामश्वमेधानांकृतानांयत्फलंफलंलभेत्।
तदाप्नोति स धर्मात्मा तत्र स्नात्वा यतव्रतः।।२०।।

तदनन्तर कौत्स ऋषि ने गुरु का आदेश सुना तथा मन में विचार करने के पश्चात् वे दिग्‌विजयी काकुस्थ राजा रघु के यहां गये। हे मुनिवर! आपने पुनः जो प्रश्न किया था, यह उसका उत्तर है। अब अन्य तीर्थकथा कहता हूं। सुनिये। स्वर्णखनि तीर्थ के दक्षिण की ओर सिद्धगणसेवित सम्भेद तीर्थ स्थित है। यहीं तिलोदकी तथा सरयू का संगम भी है। यह त्रिलोकविश्रुत स्थल है। हे महाभाग! यहां स्नान करने वाला मनुष्य विरज हो जाता है। जो व्रतशील व्यक्ति यहां स्नान करता है, उसे दस अश्वमेध यज्ञ इतनी फल प्राप्ति होती है।।१७-२०।।

स्वर्णादिकञ्च यो दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे।
शुभांगतिमवाप्नोति अग्निवच्चैव दीप्यते।।२१।।
तिलोदकी सरय्वोश्च सङ्गमे लोकविश्रुते।
दत्त्वान्नश्च विधानेन न स भूयोऽभिजायते।।२२।।
उपवासत्र्यः कृत्वा विप्रान्सन्तर्पयेन्नरः। सौत्रामणेश्च यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः।।२३।।
एकाहारस्तु यस्तिष्ठेन्मासं तत्र यतव्रतः। यावज्जीवकृतं पापं सहसा तस्य नश्यति।।२४।।
नभस्यकृष्णामावस्यांयात्रासाम्वत्सरीभवेत्। रामेणनिर्मितापूर्वंनदीसिन्धुरिवापरा।।२५।।
सिन्धुजानांतुरङ्गांणाजलपानायसुव्रत!। तिलवच्छ्यामुदकं यतस्तस्यां सदाबभौ।।२६।।
तिलोदकीति विख्याता पुण्यतोया सदा नदी।

सङ्गमादन्यतो यस्यां तिलोदक्यां शुचिव्रतः।
स्नातो विमुच्यते पापैः सप्तजन्मार्जितैरपि॥२७॥

जो व्यक्ति यहां वेदज्ञ ब्राह्मणों को स्वर्ण आदि दान देता है, उसे उत्तमगति का लाभ होता है तथा वह अग्निवत् दीप्त हो जाता है। जो मानव त्रैलोक्य विश्रुत सरयू तथा तिलोदकी के संगम पर सविधि अन्नदान करता है, उसका पुनः पृथिवी पर जन्म नहीं होता। जो व्यक्ति उपवासी रहकर अन्नादि दान द्वारा द्विजगण को तृप्त करता है, उसे इन्द्रयाग के समान फल की प्राप्ति होती है। (इन्द्रयाग = सौत्रामणि यज्ञ)। जो व्रती मानव एकाहारी रहकर इस संगमस्थल पर एक महीने निवास करता है, उसके जन्मान्तर कृत पापों का नाश हो जाता है। भाद्रमासीय अमावस्या के दिन इस सम्भेद तीर्थ की सम्वत्सरी यात्रा की जाती है। हे सुव्रत! पूर्वकाल में श्रीराम ने सिन्धु देशोत्पन्न घोड़ों के जल पीने के लिये द्वितीय सिन्धु नदी के समान एक नदी का निर्माण किया। इस नदी का जल तिल के समान श्यामवर्ण होने के कारण इस पुण्यतोया नदी को तिलोदकी कहा गया। पवित्र व्रती मानव इस तिलोदकी में स्नान करके सप्त जन्मों के पापों से मुक्त हो जाते हैं।।२१-२७।।

तस्मात्तिलोदकीस्नानं सर्वपापहरं मुने!। कर्त्तव्यं सुप्रयत्नेन प्राणिभिधर्मकाङ्क्षिभिः।
स्नानं दानं व्रतं होमं सर्वमक्षयतां व्रजेत्॥२८॥
इति विविधविधानैस्तीर्थयात्रां क्रमेण प्रथितगुणविकासः प्राप्तपुण्यो विधाय।
हरिमुपहृतभावःपूजयन्सर्वतीर्थं व्रजति परमधाम न्यस्तपापः कथञ्चित्॥२९॥

इति स्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डेऽ-
योध्यामाहात्म्ये तिलोदकीप्रभाववर्णनंनाम पञ्चमोऽध्यायः।।५।।
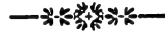
हे मुनिवर! जो धर्माभिलाषी मानव प्रयत्नपूर्वक इस तिलोदकी में स्नान करते हैं, उनका व्रत-होम-दान-स्नानादि सभी अक्षयफल प्रदान करता है। जो मानव इस प्रकार के नाना विधान पालन करता हुआ तीर्थयात्रादि द्वारा तीर्थसेवन एवं हरिपूजा करता है, उसके सभी गुण विकसित तथा प्रथित हो जाते हैं। उसे पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। उसके पाप दूर हो जाते हैं। वह अनायास हरि के परमधाम को प्राप्त कर लेता है।।२८-२९।।

।।पञ्चम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

षष्ठोऽध्यायः

स्वर्गद्वार, गोप्रतारतीर्थ माहात्म्य, भगवान् के आविर्भाव के कारण, चक्रहरितीर्थ फल वर्णन, सरयू-घर्घरा नदी संगम महत्व वर्णन, राम का अन्तर्ध्यान वर्णन

अगस्त्य उवाच

तस्मात्सङ्गमतोविप्रपश्चिमेदिक्तटेस्थितम्। सीताकुण्डमितिख्यातंसर्वकामफलप्रदम्।।१।।
यत्रस्नात्वानरो विप्र सर्वपापैःप्रमुच्यते। सीतया किलतत्कुण्डंस्वयमेवविनिर्मितम्।।
रामेण वरदानाच्च महाफलनिधिकृतम्।।२।।

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—हे विप्र! तिलोदकी संगम के पश्चिम में सरयूतीर पर सर्वकामफलप्रद विख्यात सीताकुण्ड है। हे विप्र! मानव इस सीताकुण्ड में स्नानोपरान्त समस्त कलुषरहित हो जाता है। स्वयं सीता ने इस कुण्ड का निर्माण किया था। राम का वरदान पाकर यह सीताकुण्ड महाफलनिधिरूप हो गया।।१-२।।

श्रीराम उवाच

श्रृणु सीते! प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं भुवि यादृशम्।
त्वत्कुण्डस्याऽस्य सुभगे त्वत्प्रीत्या कथयाम्यहम्।।३।।
अत्र स्नानञ्च दानञ्च जपो होमस्तपोऽथवा। सर्वमक्षयतां याति विधानेनशुचिस्मते।।४।।
मार्गकृष्णचतुर्दश्यां तत्र स्नानंविशेषतः। सर्वपापहरं देवि! सर्वदास्नायिनांनृणाम्।।५।।
इति रामो वैरं प्रादात्सीतायै च प्रजाप्रियः। तदाप्रभृति सर्वत्र तत्तीर्थे भुविवर्त्तते।।६।।
सीताकुण्डमिति ख्यातं जनानां परमाद्भुतम्।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा नूनं राममवाप्नुयात्।।७।।
तत्र स्नानेन दानेन तपसा च विशेषतः। गन्धैर्माल्यैर्धूपदापैर्न्नानाविभवविस्तरैः।।
रामं सम्पूज्य सीताञ्च मुक्तः स्यान्नात्र संशयः।।८।।
मार्गे मासि च स्नातव्यं गर्भवासो न जायते।
अन्यदाऽपि नरः स्नात्वा विष्णुलोकं सगच्छति।।९।।

श्रीराम कहते हैं—"हे सीते! भूतल पर तुम्हारे सीताकुण्ड का क्या अपूर्व माहात्म्य है! हे सुभगे! तुम्हारी प्रसन्नता के लिये मैं जो कहता हूं, श्रवण करो। हे शुचिस्मिते! यहां सीताकुण्ड में विधिवत् स्नान, दान, जप तथा होम करना अक्षय फलप्रद है। हे देवी! मनुष्य इस तीर्थ में स्नान द्वारा समस्त बन्धनरहित हो जाते हैं, तथापि अग्रहायण कृष्णा चतुर्दशी के दिन सीताकुण्ड में स्नान प्रशस्त है।" प्रजाप्रिय राम ने सीता को यही वर प्रदान किया था। तबसे पृथिवी में यह सीताकुण्ड सर्वत्र प्रसिद्ध है तथा मनुष्यों में विस्मय उत्पन्न करने वाला है।

इस तीर्थ में स्नान करने पर मनुष्य निश्चितरूपेण राम को प्राप्त करते हैं। मानव यहां स्नान-दान-तप द्वारा तथा विशेषतः गन्ध, माला, धूप, दीप आदि प्रचुर विभव द्वारा राम एवं सीता की सम्यक् पूजा द्वारा मुक्त हो जाते हैं। अग्रहायण मास में सीताकुण्ड में स्नान करने से गर्भवास नष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य काल में भी यहां स्नान द्वारा मनुष्य हरिलोक गमन करता है।।३-९।।

विभोर्विष्णुहरेर्विप्र! रम्ये पश्चिमदिक्तटे। देवश्चक्रहरिर्नाम सर्वाभीष्टफलप्रदः॥१०॥
तस्य चक्रहरेर्विप्र महिमा न हि मानवैः। शक्यो वर्णयितुंधीरैरपि बुद्धिमताम्वरैः॥११॥
ततः पश्चिमदिग्भागे नाम्ना पुण्यं हरिस्मृति। विष्णोरायतनंख्यातंपरमार्थफलप्रदम्॥
यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥१२॥
तयोर्दर्शनतो यान्ति तेषां पापानिदेहिनाम्। तानिपापानियावन्ति कुर्वतेभुवियेनराः॥१३॥
पुरा देवासुरे जाते सङ्ग्रामे भृशदारुणे। दैत्यैर्वरमदोत्सिक्तैर्देवायुधि पराजिताः॥१४॥
तेषां पलायमानानां देवानामग्रणीर्हरः। संस्तभ्यचैवतान्सर्वान्पुरस्कृत्याम्बुजासनम्॥१५॥

हे विप्र! सीताकुण्ड के पश्चिम की ओर सरयू तट पर विभु विष्णु हरि का सर्व अभीष्ट फलदायक चक्रहरितीर्थ अवस्थित है। हे द्विज! ज्ञानी तथा धीर मनुष्य भी इस चक्रहरि की महिमा का वर्णन नहीं कर सकते। उसके पश्चिम में हरिस्मृति तीर्थ है। यहां विष्णु का एक प्रसिद्ध आयतन (पवित्र स्थल) है। यह तीर्थ परमार्थ फलप्रद है। चक्रहरि तथा हरिस्मृति—हे दोनों तीर्थ ऐसे हैं, जिनके दर्शनमात्र से व्यक्ति के देहस्थ पाप दग्ध हो जाते हैं तथा पृथिवी पर उसने जो भी पाप किया है, वे सभी विलीन हो जाते हैं। पूर्वकाल में सुरों-असुरों के बीच अतीव दारुण संग्राम हुआ था। वर पाकर मदोन्मत्त हो गये असुरों से देवगण परास्त होकर यहां से पलायन कर गये थे। देवगण को भागते देखकर देवगण में प्रमुख प्रभु त्रिलोचन ने उनको पलायन से रोका तथा उनको साथ लेकर क्षीरसागर के किनारे शेषशायी विष्णु के समीप पहुंचे।।१०-१५।।

क्षीरोदशायिनं विष्णुं शेषपर्य्यङ्कशायिनम्। लक्ष्योपविष्टं पार्श्वे च चरणाम्बुजहस्तया॥१६॥
नारदाद्यैर्मुनिवरैरुद्गीतगुणगौरवम्। गरुडेन पुरःस्थेनानिशमञ्जलिना स्तुतम्॥१७॥
क्षीराब्धिजलकल्लोलमदबिन्द्वङ्कितात्म्बरम्। तारकोत्करविस्फारतारहारविराजितम्॥१८॥
पीताम्बरमतिस्मेरविकाशद्भावभावितम् ।
विभ्रतं कुण्डलं स्थूलं कर्णाभ्यां मौक्तिकोज्ज्वलम्॥१९॥
रत्नवल्लीमिव स्वच्छां श्वेतद्वीपनिवासिनीम्। किरीटं पद्मरागाणां वलयं दधतं परम्॥२०॥
मित्रस्य राहुवित्रासनिवर्त्तनमिवाऽपरम्। सकौस्तुभप्रभाचक्रं विभ्राणम्प्रवलारुणम्॥२१॥
पराञ्चतुर्मुखोत्पत्तिकल्पसंकल्पनामिव। शरणंस जगामाऽऽशुविनीतात्मास्तुवन्निति॥२२॥
तस्मिन्नवसरेशम्भुःदेवगणैःसह। तुष्टाव प्रयतोभूत्वा विष्णुं जिष्णुंसुरद्विषाम्॥२३॥

वहां देवताओं ने देखा कि भगवान् के चरणकमलों को हाथ में लिये लक्ष्मी उनके पार्श्व में उपस्थित हैं। नारदादि मुनिगण उनके गुणगौरव का गायन कर रहे हैं। गरुड़ उनके पुरोभाग में बैठे हाथ जोड़े उनका स्तव

कर रहे हैं। क्षीरसागर के जल की लहरों के छींटों से उनके वस्त्र आर्द्र हो रहे हैं। तारों के चमन चमकीले बालू के कण उनके शरीर पर पड़कर ताराहार की शोभा धारण कर रहे हैं। उनका परिधान पीतवर्ण है। मुख ईषत् हास्ययुक्त हैं तथा उस पर एक मनोहर भाव का विकास होता है। उन्होंने कर्णद्वय में मुक्ता के समान उज्वल कुण्डल धारण किया है। उनके मस्तक पर किरीट विराजित है। हाथों में उत्तम पद्मराग का वलय विराजमान है। वक्ष पर प्रभायुक्त कौस्तुभ विराजमान है। उन्होंने हाथों में चक्र धारण कर रक्खा है। यह देखकर सूर्य मानो राहुग्रास से छूट गये, यह प्रतीत होता है। उस समय विनीतात्मा प्रभु शंकर स्तव करते हुये शीघ्र उनके शरणापन्न हो गये। वे सुरगण के साथ उन प्रभु विष्णु की स्तुति करने लगे।।१६-२३।।

ईश्वर उवाच

संसारार्णवसंतारसुपर्णमुखदायिने। मोहतीव्रतमोहारिचन्द्राय हरये नमः॥२४॥
स्फुरत्सम्विन्मणिशिखां चित्तसङ्गतिचन्द्रिकाम्। प्रपद्ये भगवद्भक्तिमानसोद्यानवाहिनीम्॥२५॥
हेलोल्लसत्समुत्साहशक्तिंव्याप्तजगत्त्रयम्। यापूर्वकोटिर्भावानांसत्वानांवैष्णवीतिवा॥२६॥
पवनान्दोलिताम्भोजदलपर्वान्तवर्त्तिनाम्। पततामिवजन्तूनांस्थैर्यमेका हरिस्मृतिः॥२७॥
नमः सूर्य्यात्मने तुभ्यं साम्वित्किरणमालिने। हृत्कुशेशयकोषश्रीसमुन्मेषविधायिने॥२८॥
नमस्तस्मै यमवते योगिनांगतये सदा। परमेशाय वै पारे सहसां तमसां तथा॥२९॥
यज्ञाय भुक्तहविष ऋग्यजुःसामरूपिणे। नमः सरस्वतीगीतदिव्यसद्गुणशालिने॥३०॥

ईश्वर कहते हैं—जो संसार सागर से उद्धार करते हैं, गरुड़ जिनकी कृपा से सुखलाभ करते हैं, उन श्रीहरि को प्रणाम! हे भगवान्! मैं ज्ञानमणि, शिखायुक्त चित्तसंगतिरूपा, चन्द्रिकाशालिनी, मानसोद्यान में विचरण करने वाली भगवद्भक्ति का आश्रय लेता हूं। उनकी कल्पना श्वेतद्वीपवासिनी स्वच्छ रत्नवेदी के समान विपुला है। चतुरानन का सृजन उनका एक उत्तम संकल्प मात्र है! जिनकी उल्लासशक्ति त्रिजगत् को व्याप्त करती है, जिनकी वैष्णवी शक्ति के बल से पूर्व में कोटि-कोटि प्राणिगण सृष्ट हुये हैं, जिन हरि की स्मृति हृदय में धारण करके पवनान्दोलित पद्मदल (हवा के झोकों से) के पर्वों के समान क्षीण होते रहने वाले (वायु के थपेड़ों से टूटते रहने वाले) प्राणीगण को भी स्थिरता का लाभ हो जाता है, उन श्री हरि को प्रणाम! हे भगवान्! आप सूर्यात्मा हैं। समस्त ज्ञान आपकी किरणें हैं। आपकी ज्ञानरूप किरण द्वारा ही हृदय के पद्मकोष की शोभा विकसित होती है। आपको प्रणाम! हे परमेश! आप योगीगण में अग्रणी हैं। आप ही सदैव योगीगण की गति हैं। महान्तम रूप सत्ता के उस पार आपकी सत्ता विद्यमान है। हे भगवान्! आप सूर्यात्मा हैं। समस्त ज्ञान समूह आपकी किरणें हैं। इन किरणों से हृदयस्थ पद्मकोष की शोभा का विकास होता है। आपको प्रणाम! हे परमेश! आप योगीगण के अग्रणी तथा योगियों की गति हैं। महान् तमस के भी परपार आपकी सत्ता विद्यमान रहती है। आपको प्रणाम! हे प्रभु! आप ही यज्ञभुक्, यज्ञ तथा ऋक्-यजुः एवं सामरूपी हैं। देवी सरस्वती गीतों द्वारा आप के गौरव का गायन करती रहती हैं। आपको प्रणाम!।२४-३०।।

शान्ताय धर्मनिधये क्षेत्रायाऽमृतात्मने। शिष्ययोगप्रतिष्ठाय नमो जीवैकहेतवे।
घोराय मायाविधये सहस्त्रशिरसे नमः॥३१॥

योगनिद्रात्मनेनाभिपद्मोद्भूतजगत्सृजे। नमः सलिलरूपाय कारणाय जगत्स्थितेः॥३२॥
कार्यमेयाय बलिने जीवाय परमात्मने। गोप्त्रे प्राणाय भूतानां समो विश्वायवेधसे॥३३॥
दृप्ताय सिंहवपुषे दैत्यसंहारकारिणे। वीर्यायाऽनन्तमनसे जगद्धावभृते नमः॥३४॥

हे शान्त! आप धर्मनिधि हैं। आप क्षेत्रज्ञ, अमृतात्मा हैं। आप से ही जीवसमूह समुद्भूत हैं तथा आपके ही शिष्यरूपेण होकर आपके ही उपदेश द्वारा शिक्षा ग्रहण करते हैं। अर्थात् आप ही गुरुरूप भी हैं। जो माया का विधान करके मनुष्य के समक्ष घोररूपी हैं, जिनके सहस्र मस्तक हैं तथा जो योगनिद्रा में सो रहे हैं, जिनके नाभिकमल से लोक पितामह ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है, जो जगत् का सृजन करते हैं, जो जगत्कारण हैं, उन जलरूपी श्रीहरि को प्रणाम! कार्य द्वारा जिनका परिमाण होता है (अनुभव होता है), जो जीव तथा परमात्मा—इन दोनों में विराजमान हैं, जो जीवगण के जीवन तथा गोप्ता हैं, मैं उन विश्वात्मा भगवान् वेधा को प्रणाम करता हूं! जो प्रदीप्त सिंह शरीर धारण करके असुरों के प्राण का संहार करते हैं, मन जिनके बल-विक्रम की सीमा को नहीं जाना जा सकता, जो जगत् को धारण करते हैं, उन हरि को प्रणाम!।।३१-३४।।

संसारकारणाज्ञानमहासन्तमसच्छिदे। अचिन्त्यधाम्ने गुह्याय रुद्रायात्युद्विजेनमः॥३५॥
शान्ताय शान्तकल्लोलकैवल्यपददायिने। सर्वभावातिरिक्ताय नमः सर्वमयात्मने॥३६॥
इन्दीवरदलश्यामं स्फूर्जत्किञ्जल्कविभ्रमम्।
बिभ्राणं कौस्तुभं विष्णुं नौमि नेत्ररसायनम्॥३७॥

हे प्रभो! अज्ञान ही संसार का कारण है। आप ही उस घोर अज्ञानान्धकार का निराकरण करते हैं। आपका निवास स्थान गुह्य है तथा चिन्तन से अतीत है। आप रुद्र हैं। कोई भी आपमें उद्वेग को जन्म नहीं दे सकता। आपको प्रणाम! हे शान्त! आप की शान्त कल्लोल ही कैवल्य प्रदाता है। आप सर्वमय होकर भी सबसे परे हैं। आपको प्रणाम! जो नीलकमलवत् श्याम हैं, मनोरम केश द्वारा जिनका शरीर अत्यधिक शोभित है, जो कौस्तुभधारी हैं, मैं उन नेत्रों के लिये रसायनरूप विष्णु को प्रणाम करता हूं।।३५-३७।।

अगस्त्य उवाच

इति स्तुतः प्रसन्नात्मा वरदो गरुडध्वजः। ववर्ष दृष्टिसुधया सर्वान्देवान्कृपान्वितः।
उवाच मधुरं वाक्यं प्रश्रयावनतान्सुरान्॥३८॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—वर देने वाले गरुड़ध्वज हरि शंकर द्वारा इस प्रकार से स्तुत होकर प्रसन्न हो गये। उन्होंने देवगण की ओर अपनी दृष्टि रूपी सुधा का वर्षण किया। तत्पश्चात् श्रीहरि ने देवगण से यह मधुर वाक्य कहा।।३८।।

श्रीभगवानुवाच

जानामि विबुधाः सर्वमभिप्रायं समाधितः। दैतेयैर्विक्रमाक्रान्तं पदं समरदर्पितैः॥३९॥
सबलैर्बलहीनानां प्रतापो विजितःपरैः। साम्प्रतं तु विधास्यामितपोयुष्मद्बलायवै॥४०॥
अयोध्यानगरेगत्वा करिष्येतपउत्तमम्। गुप्तो भूत्वा भवत्तेजोविवृद्ध्यैदैत्यशान्तये॥४१॥

भवन्तोऽपि तपस्तीव्रं कुर्वन्त्वमलमानसाः।
अयोध्यां प्राप्यतांदेवादैत्यनाशाय सत्वरम्॥४२॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे देवगण! मैंने पूर्व में ही तुम लोगों का हृदयगत् प्रयोजन जान लिया था। युद्ध दर्पित दैत्यों ने अपने पराक्रम से तुम लोगों का पद छीन लिया है। सबल शत्रु ही निर्बलों को अपने प्रभाव से परास्त कर देते हैं। यह स्वाभाविक है। जो भी हो, मैं तुम लोगों की बलवृद्धि के लिये तपस्या अयोध्या में गुप्त रूप से करूंगा। हे देवगण! तुम लोग भी वहां शीघ्र जाकर असुरों के नाश के लिये निर्मल मन होकर तीव्र तप करो।।३९-४२।।

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवान्देवो गरुडवाहनः। अयोध्यामागतः क्षिप्रश्चकार तप उत्तमम्॥४३॥
गुप्तो भूत्वा यदा विद्वन्सुरतेजोऽभिवृद्धये।
तेन गुप्तहरिर्नाम देवो विख्यातिमागतः॥४४॥
आगतस्य हरेः पूर्वं यत्र हस्ततलाच्च्युतम्। सुदर्शनाख्यं तच्चक्रं तेन चक्ररिः स्मृतः॥४५॥
तयोर्दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते। हरेस्तेन प्रभावेण देवाः प्रबलतेजसा॥४६॥
जित्वा दैत्याव्रणैः सर्वान्सम्प्राप्य स्वपदान्यथ। रेजिरेविपुलानन्दैरसुरानार्दयंस्ततः॥४७॥
ततः सर्वे समेत्याशुबृहस्पतिपुरस्सराः। देवाः सर्वेऽनमन्मौलिमालाच्चिर्चतपदाम्बुजम्।
हरिं द्रष्टुमथागच्छन्नयोध्यायां समुत्सुकाः॥४८॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—गरुड़वाहन श्रीहरि देवगण से यह कहकर अन्तर्ध्यान हो गये तथा शीघ्र अयोध्या आकर उत्तम तप करने लगे। उस समय वे गुप्त रहने के कारण गुप्तहरि कहलाये। उनके अयोध्या आगमन काल में जिस स्थान पर उनके हाथों से चक्र सुदर्शन छूटा था, वह चक्रहरि कहलाया। इन चक्रहरि एवं गुप्तहरि स्थानों के दर्शनमात्र से मानव सर्वपापरहित हो जाता है। तदनन्तर देवगण भी विष्णु के इस तपः प्रभाव से प्रबल हो उठे तथा उन्होंने युद्ध में असुरगण को परास्त करके अपना-अपना पद प्राप्त किया। वे विपुल आनन्दपूर्वक दैत्यों को मर्दित करने के उपरान्त शीघ्रतापूर्वक दैत्यगुरु बृहस्पति देव के निकट आये तथा बृहस्पति आदि प्रमुख देवगण ने अपना-अपना शिर अवनत करके श्रीहरि के चरणों का पूजन किया।।४३-४८।।

आगत्य चततःश्रुत्वानानाविधगुणादरम्। भावैः पुण्यैः समभ्यर्च्यनत्वाप्राञ्जलयस्तदा॥
हरिमेकाग्रमनसा ध्यायन्तो ध्याननिष्ठिताः॥४९॥
तानागतान्समालोक्यपदभक्त्त्याकृतानतीन्। प्रसन्नः प्राहविश्वात्मापीतवासाजनार्दनः॥५०॥

इसके पश्चात् हरि के प्रति एकाग्रचित्त होकर सभी देवता हरि दर्शनार्थ अयोध्या आये। वहां उन्होंने आदरपूर्वक भगवान् के गुण-गौरव का श्रवण किया तथा अंजलिबद्ध स्थिति में प्रभु के ध्यान में निमग्न हो गये। समागत देवताओं को अपने चरणों में भक्तिपूर्वक नतमस्तक देखकर विश्वात्मा पीताम्बरधारी जनार्दन प्रेमपूर्वक तथा प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे।।४९-५०।।

श्रीभगवानुवाच

भोभोदेवाभवन्तश्चचिराद्दिष्ट्याद्यसंगताः। अधुनाभवतामिच्छांकांकरोभिसुराअहम्॥
तद्ब्रूत त्वरिता मह्यं किं विलम्बेन निर्भयाः॥५१॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे देवगण! आज भाग्य से दीर्घकाल के उपरान्त तुमलोगों से मिलन हुआ है। सम्प्रति मैं तुम लोगों का क्या इच्छित कार्य पूर्ण करूं? तुम लोग निर्भय होकर अपना कार्य मुझसे कहो। विलम्ब का प्रयोजन नहीं है।।५१।।

देवा ऊचुः

भगवन्देवदेवेश! त्वया सम्प्रति सर्वशः। सर्वं समभवत्कार्यं निष्पन्नं वै जगत्पते!॥५२॥
तथापिसर्वदाभाव्यं नित्यंदेवत्वयाविभो!। अस्मद्रक्षार्थमत्रैव विजितेन्द्रियवर्त्मना॥५३॥
एवमेव सदा कार्यं शत्रुपक्षविनाशनम्॥५४॥

देवगण कहते हैं—हे भगवान्! आप के दर्शन से ही हमारा सभी कार्य सम्पन्न हो गया। हे देवदेव, जगत्पति! तथापि आप हमारी रक्षा के लिये यहां स्थित हो जायें। हे देवदेव! हमारी यह प्रार्थना है कि आप सभी इन्द्रियों को निरुद्ध करते हुये सदा यहां रहकर हमारे शत्रुगण का विनाश करें।।५२-५४।।

श्रीभगवानुवाच

एवमेतकरिष्यामि भवतामरिसञ्जयम्। श्रीमतां तेजसो वृद्धिं करिष्यामिसदासुराः।
कथेयञ्च सदा ख्यातिं लोके यास्यति चोत्तमाम्॥५५॥
अयं नाम्ना गुप्तहरिर्देवो भुवनविश्रुतः। मदीयं परमं गुह्यं स्थानं ख्यातिं समेष्यति॥५६॥
अत्र यः प्राणिनां श्रेष्ठःपुजायज्ञजपादिकम्। करोतिपरयाभक्त्यासयातिपरमांगतिम्॥५७॥
अत्र यः कुरुतेदानं यथाशक्त्या जितेन्द्रियः।
स स्वर्गमतुलंप्राप्यनशोचति कदाचन॥५८॥
अत्र मत्प्रीतये देवाः प्राणिभिर्धर्मकाङ्क्षिभिः।
दातव्या गौः प्रयत्नेन सवत्सा विधिपूर्वकम्॥५९॥
स्वर्णश्रृङ्गी रौप्यखुरी वस्त्रद्वयसमावृता। कांस्योपदोहना ताम्रपृष्ठीबहुगुणान्विता॥६०॥
रत्नपुच्छा दुग्धवती घण्टाभरणभूषिता। अर्चिता गन्धपुष्पाद्यैः सुप्रसन्नाऽमृतप्रजा॥६१॥

श्री भगवान् कहते हैं—हे देवताओं! मैं यही करूंगा। मैं यहां अवस्थित रहकर तुम्हारे शत्रुओं पर विजय तथा श्रीमान् लोगों की तेजोवृद्धि करूंगा। त्रैलोक्य में यह कथा उत्तम प्रसिद्धि लाभ करेगी। मेरा गुप्तहरि नाम त्रैलोक्य प्रसिद्ध होगा। यहां पर जो श्रेष्ठ जीवगण भक्तिपूर्वक पूजा-यज्ञ-जप आदि करेंगे, उनको उत्तम गति का लाभ होगा। जो इन्द्रियजित् मानव यहां यथाशक्ति दान करता है, वह अुतलनीय स्वर्गलोक प्राप्त करता है। उसे कदापि शोक नहीं होता। हे देवगण! धर्माभिलाषी लोग मेरी प्रसन्नता हेतु यहां यथाविधि वत्सयुता गौ दान करें। इस गोदान की एक विशेषता है। गौ को स्वर्णश्रृङ्ग, चांदी का खुर लगाये। दो वस्त्रों से ढाकें। कांस्य का क्रोड़

(बगल का स्थान), ताम्र की पीठ से अनेक सुन्दर सज्जा करे। उसकी पूंछ पर रत्न बांधकर लगाये। वह गौ दूध देने वाली, घंटाधारिणी, गन्धपुष्पादिमाला से अर्चिता हो। वह प्रसन्ना तथा जीवितवत्सा हो।।५५-६१।।

द्विजाय वेदविज्ञाय गुणिने निर्मलात्मने। विष्णुभक्तायविदुषे आनृशंस्यरताय च।।६२।।
ब्राह्मणायच गौर्देया सर्वत्र सुखमश्नुते। न देया द्विजमात्राय दातारं सोऽवपातयेत्।।६३।।
मत्प्रीतयेऽत्र दातव्या निर्मलेनान्तरात्मना। स्नातं यैश्च विशुद्ध्यर्थमत्र मद्भक्तितत्परैः।।६४।।
तेषां स्वर्गतयो नित्यं मुक्तिः करतलेस्थिता।।६५।।
तथा चक्रहरेः पीठे मत्प्रीत्यै दानमुत्तमम्। जपहोमादिकञ्चापि कर्त्तव्यं यत्नतोनरैः।।६६।।
भवन्तोऽपि विधानेनयात्रांकुर्वन्तुसत्तमाः। अस्माद्गुप्तहरेः स्थानान्निकटेसङ्गमेशुभे।।६७।।
प्रत्यग्भागे गोप्रताराद्योजनत्रयसंमिते। घर्घराम्वुतरङ्गिण्या सरयूः सङ्गता यतः।।६८।।
अत्र स्नात्वा विधानेन द्रष्टव्योऽत्र प्रयत्नतः देवो गुप्तहरिर्नाम सर्वकामार्थसिद्धिदः।।६९।।

यह गौ कैसे सुपात्र को दान करना चाहिये, वह कहता हूं। जो ब्राह्मण वेदज्ञ, गुणी, निर्मलात्मा, विष्णुभक्त, विद्वान्, आनृशंस्यरत हों, ऐसे लक्षण वाले द्विज को गौ प्रदान करें। इससे दान देने वाले तथा दान लेने वाले, दोनों को सुख होता है। हरेक ब्राह्मण को यह दान नहीं दे देना चाहिये। क्योंकि अयोग्य को दान देने से दाता का पतन होता है। दाता भी मेरी प्रसन्नतार्थ अमलात्मा होकर दान दें। जो इस स्थान पर मेरी भक्ति के साथ आत्मशुद्धि हेतु स्नान करता है, उसे स्वर्ग की प्राप्ति हो जाती है। मुक्ति तो उसके करतलगत जैसी हैं! इस प्रकार से मेरा चक्रहरितीर्थ भी जाने। वहां मेरी प्रसन्नतार्थ मानव यत्नतः उत्तमदान, जप, होम करे। हे सत्तमगण! तुम लोग भी यथाविधि इन स्थान पर तीर्थयात्रा करके मेरे गुप्त हरि तीर्थ के मनोरम स्थान पर निवास करो। इस गुप्तहरि के पश्चिम की ओर गोप्रतरतीर्थ से योजन परिमित स्थान में घर्घरा नामक जलनदी का सरयू नदी के साथ संगम होता है। इस संगम पर यथाविधान स्नान करके यत्नतः गुप्तहरि का दर्शन करो। इस गुप्तहरि का दर्शन करने से सर्वकामना सिद्धि होती है।।६२-६९।।

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधेदेवः पीताम्बरधरोऽच्युतः। देवाअपिविधानेन कृत्वा यात्रांप्रयत्नतः।
अयोध्यायां स्थिता नित्यं हरेर्गुणविमोहिताः।।७०।।

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—पीताम्बरधारी अच्युत हरि यह कहकर अन्तर्हित् हो गये। देवगण भी यथाविधि यात्रा सम्पन्न करने के पश्चात् हरि के गुणों में अनुरक्त सतत् अयोध्या में निवास करने लगे।।७०।।

तदाप्रभृति विप्रेन्द्र! तत्स्थानम्भुवि पप्रथे।
कार्त्तिक्यां तु विशेषेण यात्रा साम्वत्सरी भवेत्।।७१।।
विभार्गुप्तहरेस्तत्र सङ्गमस्नानपूर्विका। गोप्रतारेच तीर्थेऽस्मिन्सरयूघर्घराश्रिते।
स्नात्वा देवोऽर्चनीयोऽयं सर्वकामफलप्रदः।।७२।।
तथा चक्रहरेर्यात्रा कर्त्तव्या सुप्रयत्नतः। मार्गशीर्षस्य विशदे पक्षे हरितिथौ नरैः।।७३।।

एवं यः कुरुते यात्रां विष्णुलोके स मोदते॥७४॥

हे विप्रेन्द्र! तब से यह तीर्थ पृथिवी में प्रसिद्ध हो गया। कार्त्तिकी पूर्णिमा के दिन इन गुप्तहरि की सांवत्सरकी यात्रा होती है। विभुदेव गुप्तहरि तथा ग्रोप्रतार एवं संगम स्थल (घर्घरा तथा सरयू संगम) पर स्नानोपरान्त देवदेव हरि की पूजा करने से सभी कामनायें पूरी हो जाती हैं। मनुष्य यत्न के साथ मार्गशीर्ष मास में हरि की तिथि शुक्ला एकादशी के दिन चक्रतीर्थ जायें। (चक्रहरितीर्थ जायें) जो मनुष्य यह यात्रा करता है, उसे विष्णुलोक की प्राप्ति होती है।।७१-७४।।

श्रीसूत उवाच

एवमुक्त्वा तु विरते मुनौ कलशजन्मनि। कृष्णद्वैपायनो व्यासःपुनराह सविस्मयः॥७५॥

श्री सूत जी कहते हैं—कुम्भजन्मा ऋषि अगस्त्य यह कहकर मौन हो गये। तब कृष्णद्वैपायन व्यास पुनः विस्मयपूर्वक कहने लगे।।७५।।

व्यास उवाच

अत्याश्चर्य्यमयीं ब्रह्मन्कथामेतां तपोधन!। उक्तवानसि येनैतत्साश्चर्य्यं मममानसम्॥७६॥
विस्तरेण मम ब्रूहि माहात्म्यं परमाद्भुतम्। शृणुसङ्गममाहात्म्यंविप्रेन्द्र! परमाद्भुतम्॥७७॥
स्कन्ददेवाच्छ्रुतं सम्यक्कथयामि तथा तव॥७८॥
दशकोटिसहस्राणि दशकोटिशतानिच। तीर्थानि सरयूनद्या घर्घरोदकसङ्गमे।
निवसन्ति सदा विप्र! स्कन्दादवगतं मया॥७९॥
देवतानां सुराणाञ्च सिद्धानां योगिनां तथा।
ब्रह्मविष्णुशिवानाञ्च सान्निध्यं सर्वदा स्थितम्॥८०॥
तस्मिन्सङ्गमसलिलेनरःस्नात्वासमाहितः। सन्तर्प्यपितृदेवांश्चदत्त्वादानंस्वशक्तितः॥८१॥
हुत्वा वैष्णवमन्त्रेण शुचिर्यत्फलमाप्नुयात्। तदिहैकमना विप्र! शृणु यत्कथयामि ते॥८२॥
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च। कुरुक्षेत्रे महाक्षेत्रे राहुग्रस्ते दिवाकरे॥८३॥
सुवर्णदाने यत्पुण्यमहन्यहनि तद्भवेत्॥८४॥
अमावास्यांपौर्णमास्यांद्वादश्योरुभयोरपि। अयनेचव्यतीपातेस्नानंवैष्णवलोकदम्॥८५॥
तिष्ठेद्युगसहस्रन्तु पादेनैकेन यः पुमान्। विधिवत्सङ्गमेस्नायात्पौष्यांतदविशेषतः॥८६॥
लम्वतेऽवाक्छिरा यस्तु युगानामयुतं पुमान्।
स्नातानां शुचिभिस्तोयैः सङ्गमे प्रयतात्मनाम्॥८७॥
व्युष्टिर्भवति या पुंसां न सा क्रतुशतैरपि॥८८॥
पौषे मासि विशेषेण स्नानं बहुफलप्रदम्॥८९॥

महर्षि व्यास कहते हैं—हे ब्रह्मन्! आपने अत्युत्तम कथा का वर्णन किया है। हे तपोधन! आपके द्वारा

यह महान् विस्मयप्रद कथा सुनकर मेरा मन विस्मयापन्न हो रहा है। आप कृपया यह परम अद्भुत माहात्म्य विस्तारपूर्वक कहिये।

(यह सुनकर अगस्तय ऋषि कहते हैं—) हे विप्रेन्द्र! अब परम विस्मयजनक संगम माहात्म्य सुनें। मैंने यह स्कन्ददेव से सुना था। वही आपसे कहता हूं। हे विप्र! मैंने भगवान् स्कन्द से सुना था कि इस सरयूसंगम में एकादश-सहस्रकोटितीर्थ सदा विद्यमान रहते हैं। सभी देवता, देवी, सिद्ध, योगी तथा ब्रह्मा-विष्णु-शिव यहां स्थित हैं। हे विप्र! पवित्रसमाहित मन वाले मानव इस संगम जल में स्नान, देव-पितृतर्पण, यथाशक्ति दान एवं वैष्णवमन्त्र से होम करके जिस फल की प्राप्ति करते हैं, वह आपसे कहता हूं। एकाग्र होकर उसे सुनिये। सहस्र अश्वमेध, सैकड़ों बाजपेय तथा महाक्षेत्र कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहणकालीन स्वर्णदान द्वारा जो फल मिलता है। पूर्वोक्त क्रियाकुशल मानव भी प्रतिदिन उतना ही फललाभ करता है। अमावस्या, पूर्णिमा, शुक्ला तथा कृष्णा द्वादशी, अयन एवं व्यतीपात योगों में इस संगमजल में स्नान विष्णुलोकप्रद है। व्यक्ति सहस्रयुग एक पाद में अवस्थित रहकर तप द्वारा जो पुण्यलाभ करता है, पौष पूर्णिमा के दिन मात्र एक बार इस संगम जल में यथाविधि स्नान करके मनुष्य उसके समान फललाभ करता है। मानव अवाक् शिरा तथा लम्बमान होकर दस हजार युग तप करने से जो फललाभ करता है, इस पवित्रजलयुक्त संगम में स्नान करने वाला उसी के समान फललाभ करता है। विशेषतः पौष मास में संगम स्नान अत्यन्त प्रशस्त तथा अनेक फलप्रद हैं। पुरुष १००० यज्ञों द्वारा भी उसके समान पुण्य अर्जित नहीं कर सकता।।७६-८९।।

पौषे मासि विशेषेण यः कुर्यात्स्नानमादृतः।
ब्राह्मणः क्षत्रियोवैश्यः शूद्रो वा वर्णसङ्करः।
स याति ब्रह्मणः स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितम्।।९०।।
पौषे मासि तु यो दद्याद् घृताढ्यं दीपमुत्तमम्।
विधिवच्छ्रद्धया विप्र! शृणु तस्याऽपि यत्फलम्।।९१।।
नानाजन्मार्जितं पापं स्वल्पंबह्वपिवाभवेत्। तत्सर्वंनश्यति क्षिप्रं तोयस्थंलवणंयथा।।९२।।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं सन्ततीःसौख्यमुत्तमम्। प्राप्नोतिफलदंनित्यंदीपदःपुण्यभाङ्नरः।।९३।।
यस्तु शुक्लत्रयोदश्यां पौषेऽत्र प्रयतो व्रती। जागरं कुरुतेधीरः स गच्छेद्भवनंहरेः।।९४।।

पौष मास में जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदरपूर्वक स्नान करते हैं, यहां तक कि वर्णसंकर भी स्नान करता है, उन सबको ब्रह्मपद की प्राप्ति होती है। उनका पुनः जन्म नहीं होता। हे विप्र! जो मानव सविधि श्रद्धा के साथ इस संगम में पौषमास में घृत से भरे उत्तम दीपों का दान करता है, उसका पुण्यफल सुनें। अल्प हो, बहुल हो, उसके नाना जन्मार्जित कलुषयुक्त पाप प्रक्रिया विशेष जलस्थित लवण के समान विनष्ट हो जाते हैं। इस तीर्थ में नित्य दीपदान करने वाला व्यक्ति पुण्यभाजन होकर आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, सन्तति, उत्तम सुख प्राप्त करता है। उसके क्रियाकलाप फलप्रद हो जाते हैं। पौष शुक्ल त्रयोदशी के दिन जो व्यक्ति व्रतयुक्त होकर जागरण (रात्रि जागरण) करता है, वह वैकुण्ठ लोक जाता है।।९०-९४।।

जागरं विदधद्रात्रौ दीपं दत्त्वा तु सर्वशः। होमञ्च कारयेद्विप्रो नियतात्माशुचिव्रतः।।९५।।

वैष्णवो विष्णुपूजाञ्च कुर्वञ्छृण्वन्हरेःकथाम्। गीतवादित्रनृत्यैश्च विष्णुतोषणकारकैः॥
कथाभिः पुण्ययुक्ताभिर्जागृयाच्छर्वरीं नरः॥९६॥
ततः प्रभाते विमले स्नात्वा विधिवदादरात्।
विष्णुं सम्पूज्य विप्रांश्च देयं स्वर्णादि शक्तितः॥९७॥
स्वर्णं चाऽन्नञ्च वासांसि योदद्याच्छ्रद्धयाऽन्वितः।
सङ्गमे विधिवद्विद्वान्स याति परमां गतिम्॥९८॥
वर्षे वर्षे तु कर्त्तव्यो जागरः पुण्यतत्परैः॥९९॥
हरिः पूज्यो द्विजाः सम्यक्सन्तोष्याः शक्तितो नरैः।
तेन विष्णोः परातुष्टिः पापानि विफलानि च।
भवन्ति निर्विषाः सर्पा यथा ताक्ष्यस्य दर्शनात्॥१००॥
तत्र स्नातो दिवं याति अत्र स्नातः सुखी भवेत्॥१०१॥
त्रिषु लोकेषु ये केचित्प्राणिनः सर्व एव ते।
तर्प्यमाणाः परां तृतिं यान्ति सङ्गमजैर्जलैः॥१०२॥

अब जागरण का नियम कहते हैं। रात्रि में सर्वत्र दीपदान करके जागरण करना चाहिये। नियतात्मा पवित्र वैष्णव ब्राह्मण द्वारा होम कराये। वे विष्णु पूजा करें। तदनन्तर विष्णु की कथा सुनें। गीत-वाद्य तथा नृत्य आदि से विष्णु को सन्तुष्ट करना चाहिये। मनुष्य को पुण्यमयी विष्णुकथा सुनकर समस्त रात्रि व्यतीत करके विमल प्रभातकाल में यथाविधि स्नान करके विष्णु तथा विप्रगण की पूजा करके यथाशक्ति स्वर्ण आदि दान करना चाहिये। जो मानव संगम में श्रद्धापूर्वक विधिवत् स्वर्ण-अन्न तथा वस्त्रदान करता है, वह परमगति लाभ करता है। इस पुण्योत्सव को समयानुसार मनुष्य प्रतिवर्ष करे। जागरण-हरिपूजन तथा यथाशक्ति द्विजों का सन्तोषसाधन करना चाहिये। यह करने से विष्णु को परम सन्तुष्टि होती है। जैसे गरुड़ को देखकर सर्प का विषनाश होता है, उसी प्रकार इस जागरणादि व्रताचरण द्वारा मानव का कलुषनाश हो जाता है। इस संगम के एक ओर स्नान करने से स्वर्गलाभ होता है। संगम में अन्य ओर स्नान करने का फल है सुख लाभ। लेकिन साक्षात् संगम में स्नान करने पर तीनों लोक में प्राणीगण परम तृप्त होते हैं।।९५-१०२।।

भूतानामिहसर्वेषां दुःखोपहतवेतसाम्। गतिमन्वेषमाणानां न सङ्गमसमा गतिः॥१०३॥
सप्तावरान्सप्त.परान्पुरुषश्चाऽऽत्मना सह। पुंसस्तारयते सर्वान्सङ्गमे स्नानमाचरन्॥१०४॥
जात्यन्धैरिह ते तुल्यास्तथा पङ्गुभिरेव च। समेत्याऽत्रचर्नस्नान्ति सरयूघर्घरसङ्गमे॥१०५॥
वर्णानां ब्राह्मणो यद्वत्तथा तीर्थेषु सङ्गमः। सरयूघर्घरायोगे वैष्णवस्थो नरः सदा।१०६॥
अत्र स्नानेन दानेन यथाशक्त्याजितेन्द्रियः। होमेनविधियुक्तेननरःस्वर्गमवाप्नुयात्॥१०७॥
नरो वा यदि वा नारी विधिवत्स्नानमाचरेत्।
स्वर्गलोकनिवासो हि भवेत्तस्य न संशयः॥१०८॥

यथा वह्निर्दहेत्सर्वं शुष्कमार्द्रमथाऽपिवा। भस्मीभवन्तिपापानितत्समागममज्जनात्॥१०९॥

जो दुःखग्रस्त व्यक्ति मानवगण उत्तम गति का अन्वेषण करते हैं, उनके लिये संगम के समान उत्तम गति नहीं है। इस संगम स्नान को करने पर सात पूर्व पीढ़ी तथा सात आगे की पीढ़ी की आत्मा का त्राण हो जाता है। जो सरयू-घाघरा संगम में आते हैं, तथापि स्नान नहीं करते, वे इस पाप प्रभाव से पंगु हो जाते हैं। वर्ण में जैसे ब्राह्मण श्रेष्ठ है, उसी प्रकार तीर्थों में यह सरयू-घाघरा संगम श्रेष्ठ है। मानव सरयू-घर्घरा संगम का संगलाभ करके सतत् वैकुण्ठ लोक में निवास करते हैं। जितेन्द्रिय मानव इस संगम तीर्थ में यथाशक्ति सविधि स्नान-दान तथा होम करके स्वर्गलाभ करते हैं। मनुष्य अथवा नारी इस संगम में सविधि स्नान करके स्वर्गलोक में स्थिति प्राप्त करते हैं। इसमें सन्देह नहीं है। जैसे अग्नि शुष्क तथा आर्द्र, सभी प्रकार के काष्ठ को दग्ध कर देता है, उसी प्रकार सरयू-घाघरा संगम स्थल में स्नान करके समस्त पापों को भस्म कर देते हैं।।१०-३-१०९।।

एकतः सर्वतीर्थानि नानाविधिफलानि वै। सरयूघर्घरोत्पन्नसङ्गमस्त्वधिको भवेत्॥११०॥

सर्वतीर्थावगाहस्यफलंयादृक्स्मृतं श्रुतौ। तादृक्फलंनृणांसम्यग्भवेत्सङ्गममज्जनात्॥१११॥

एक ओर समस्त तीर्थों की फलराशि को एकत्र किया जाये, तथापि इस संगमस्नान का फल उससे अधिक होता है। वेद में समस्त तीर्थों में स्नान का जो फल कहा गया है, इस संगम स्नान द्वारा मानव उसी के समान फल लाभ कर लेता है।।११०-१११।।

गोप्रताराभिधं तीर्थमपरं वर्त्ततेऽनघ!। सन्निधौ सङ्गमस्यैव महापातकनाशनम्॥११२॥

यत्रस्नानेन दानेन न शोचति नरः क्वचित्। गोप्रतारसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति॥११३॥

वाराणस्यां यथा विद्वन्वर्त्तते मणिकर्णिका।
उज्जयिन्यां यथा विप्र! महाकालनिकेतनम्॥११४॥

नैमिषे चक्रवापी तु यथा तीर्थतमास्मृता। अयोध्यायांतथाविप्रगोप्रताराभिधंमहत्॥११५॥

यत्र रामाज्ञया विद्वन्साकेतनगरीजनाः। अवापुः स्वर्गमतुलं निमज्ज्य परमाम्भसि॥११६॥

हे अनघ! गोप्रतर नामक जो अन्य एक तीर्थ इस संगम के पास विद्यमान हैं, यह गोप्रतर भी उसी संगमतीर्थ ऐसा महापातक नाशक है। मानव यहां स्नान तथा दान द्वारा कभी भी शोकग्रस्त नहीं होता। गोप्रतर के समान पुण्यतीर्थ अन्यत्र कहीं भी नहीं है। होगा भी नहीं! हे विद्वान्! जैसे वाराणसी में मणिकर्णिका का तीर्थ है, हे विप्र! उज्जयिनी में जिस प्रकार से महाकाल मन्दिर है, उसी प्रकार से जैसे नैमिषारण्य में चक्रवापी है, उसी प्रकार से अयोध्या में महातीर्थ गोप्रतर तीर्थ है। हे विद्वान्! राम की आज्ञा से साकेतनगरवासी (अयोध्यावासी) मनुष्यों ने गोप्रतर में स्नान करके अतुल स्वर्गलाभ किया था।।११२-११६।।

व्यास उवाच

अवापुस्ते कथं स्वर्गं साकेतनगरीजनाः। कथञ्च राघवो विद्वन्नेतत्कथय सुव्रत!॥११७॥

महर्षि व्यास कहते हैं—हे सुव्रत! साकेत के नागरिक लोगों ने किस प्रकार से स्वर्ग गमन किया तथा राम ने किस प्रकार से उन सबको स्वर्ग जाने का आदेश दिया? यह सब कृपया कहिये।।११७।।

अगस्त्य उवाच

सावधानः शृणु मुने! कथामेतांसुविस्तरात्। यथाजगामरामोऽसौस्वर्गंसचपुरीजनः॥११८॥
पुरा रामो विधायैव देवकार्य्यमतन्द्रितः। स्वर्गं गन्तुं मनश्चक्रे भ्रातृभ्यांसहवीरधीः॥११९॥
ततो निशम्य चारेण वानराः कामरूपिणः। ऋक्षगोपुच्छरक्षांसि समुत्पेतुरनेकशः॥१२०॥
देवगन्धर्वपुत्राश्च ऋषिपुत्राश्च वानराः। रामक्षयं विदित्वा तु सर्व एव समागताः॥१२१॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—हे मुनिवर! सावधान होकर श्रवण करिये। राम जिस प्रकार से अपने नगरवासीगण के साथ स्वर्ग गये थे, मैं वह सब विस्तारपूर्वक कहता हूं। पूर्वकाल में वीर आलस्यरहित भगवान् राम ने देवकार्य सम्पन्न करने के अनन्तर भाई भरत एवं शत्रुघ्न के साथ स्वर्ग (स्वधाम) गमन किया। तदनन्तर कामरूपी वानरगण कुछ लोगों से इसका समाचार पाकर वहां आये। क्रमशः अनेक ऋक्ष एवं गोपुच्छ राक्षसगण, देवता तथा गन्धर्वपुत्र, ऋषिकुमार तथा अन्य वानरगण भी यह संवाद पाकर सभी राम के पास आये। तदनन्तर वानरयूथपतियों ने राम का स्वधाम गमन का अभिप्राय जानकर उनसे कहा।।११८-१२१।।

ते राममनुगत्योचुः सर्वे वानरयूथपाः। तवाऽनुगमने राजन्सम्प्राप्ताःस्मइहानघ!॥१२२॥
यदि राम विनास्माभिर्गच्छेस्त्वं पुरुषर्षभ!। सर्वे खलुहताः स्याम दण्डेन महतानृप॥१२३॥

वानरयूथपतिगण कहते हैं—"हे निष्पाप! हम सभी आपका अनुगमन करेंगे। यदि हमारा परित्याग करके आप अपने धाम में जाते हैं, तब हे पुरुषर्षभ राम! आपके इस परलोकगमन रूप महादण्डपात से तो निश्चय ही हम सब मृत हो जायेंगे।।१२२-१२३।।

श्रुत्वा तु वचनं तेषामृक्षवानररक्षसाम्। विभीषणमुवाचाऽथ राघवस्तत्क्षणं गिरा॥१२४॥
यावत्प्रजाधरिष्यन्ति तावदेव विभीषण!। कारयस्बमहद्राज्यंलङ्कांत्वंपालयिष्यसि॥१२५॥

शाधि राज्यञ्च खल्वेतन्नान्यथा मे वचः कुरु।
प्रजास्त्वं रक्ष धर्मेण नोत्तरं वक्तुमर्हसि॥१२६॥

एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थोहनुमन्तमथाब्रवीत्। वायुपुत्रचिरञ्जीवमाप्रतिज्ञांवृथाकृथाः॥१२७॥

यावल्लोका वदिष्यन्ति मत्कथां वानरर्षभ!।
तावत्त्वंधारयप्राणान्प्रतिज्ञांप्रतिपालयन् ॥१२८॥

मैन्दश्च द्विविदश्चैव अमृतप्राशनावुभौ। यावल्लोका धरिष्यन्ति तावदेतौ धरिष्यतः॥१२९॥

पुत्रपौत्राश्च येऽस्माकं तान्रक्षन्त्विह वानराः।
एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थः सर्वानथ च वानरान्।
मया सार्धं प्रयातेति तदा तान्राघवोऽब्रवीत्॥१३०॥

राघव राम ने ऋक्ष, वानर तथा राक्षसों का यह दुःखपूर्ण कथन सुनकर तत्क्षण विभीषण से कहा—"हे विभीषण! जब तक सभी लोक विद्यमान हैं, तब तक तुम इस लंका महाराज्य का शासन तथा पालन करो। तुम धर्म का अवलम्बन लेकर प्रजाजन का शासन-पालन करो। मेरे वाक्य को अन्यथा नहीं करना। इस विषय

में तुम्हारा कोई उत्तर देना भी उचित नहीं है।" तदनन्तर काकुस्थ राम ने विभीषण को यह आदेश देकर हनुमान से कहा।

भगवान् कहते हैं—"हे वायुतनय! तुम चिरंजीवी हो जाओ। तुम प्रतिज्ञा वृथा नहीं करना। हे वानरर्षभ! जब तक लोकों में मेरी कथा होती रहे, तुम अपनी प्रतिज्ञा का पालन करके तब तक जीवन धारण करो। ये मैन्द तथा द्विविद अमृतप्राशी वानर अमर होकर जब तक त्रैलोक्य का अस्तित्व हो, तब तक जीवन धारण करो। अन्यान्य वानरगण यहीं विद्यमान रहकर मेरे पुत्र-पौत्रों की रक्षा करें। रघुवर काकुस्थ राम ने यह कहकर अन्य वानरगण से पुनः कहा—"तुम लोग मेरे साथ चलो।"।।१२४-१३०।।

प्रभातायां तु शर्वर्य्यां पृथुवक्षा महाभुजः।
रामः कमलपत्राक्षः पुरोधसमथाऽब्रवीत्।।१३१।।
अग्निहोत्राणि यान्त्वग्रेदीप्यमानानिसर्वशः। वाजपेयातिरात्राणिनिर्यान्तुचममाग्रतः।।१३२।।
ततो वसिष्ठस्तेजस्वी सर्वं निश्चित्य चेतसा।
चकार विधित्कर्म महाप्रास्थानिकम्विधिम्।।१३३।।
ततः क्षौमाम्बरधरो ब्रह्मचर्यसमन्वितः। कुशानादाय पाणिभ्यां महाप्रस्थानमुद्यतः।।१३४।।
न व्याहरच्छुभं किञ्चिदशुभं वा नरेश्वरः। निष्क्रम्यनगरात्तस्मात्सागरादिवचन्द्रमाः।।१३५।।

रजनी व्यतीत होने पर प्रभात काल में विशालवक्षस्थल वाले महाभुज राजीवलोचन राम ने अपने पुरोहित महर्षि वसिष्ठ से कहा—"मैं महाप्रस्थान करूंगा। बाजपेय, अतिरात्र आदि दीप्यमान अग्निहोत्र मेरे आगे-आगे चले।" राम का वाक्य सुनकर तेजस्वी महर्षि वसिष्ठ ने तब मन ही मन तात्कालिक अनुष्ठेय क्रिया-कलाप का निश्चय करके यथाविधि महाप्रस्थानकालिक विविध अनुष्ठान सम्पन्न किया। तदनन्तर महाप्रस्थानोद्यत राम ने क्षौम वस्त्र धारण किया तथा ब्रह्मचर्य युक्त होकर दोनों हाथों में कुश धारण किया। नरनाथ राम मौनी हो गये। उस काल में उनके मुख से शुभ-अशुभ आदि कोई भी वाक्य उच्चरित नहीं हो रहा था। तब जैसे चन्द्रमा सागर से उदित होते हैं, उसी प्रकार वे अयोध्या नगरी से बहिर्गत हो गये।।१३१-१३५।।

रामस्य सव्यपार्श्वे तु सपद्मा श्रीः समाश्रिता।
दक्षिणे ह्रीर्विशालाक्षी व्यवसायस्तथाऽग्रतः।।१३६।।
नानाविधायुधान्यत्र धनुर्ज्याप्रभृतीनि च। अनुव्रजन्ति काकुत्स्थं सर्वेपुरुषविग्रहाः।।१३७।।

उस समय राम के वामपार्श्व में कमलालया कमला, दाहिने पार्श्व में विशालाक्षी लज्जा चल रहीं थी। उनके सामने अविचलित अध्यवसाय, नाना आयुध, धनुष, गुण आदि (गुण=धर्म) पुरुष विग्रह धारण करके चल रहे थे। इन सबने महापुरुष राम का अनुगमन किया।।१३६-१३७।।

वेदो ब्राह्मणरूपेणसावित्रीसव्यदक्षिणे। ॐकारोऽथवषट्कारःसर्वेरामं तदाऽव्रजन्।।१३८।।
ऋषयश्चमाहात्मानःसर्वे चैवमहीधराः। अनुगच्छन्तिकाकुत्स्थंस्वर्गद्वारमुपसिथतम्।।१३९।।
तथानुयान्ति काकुत्स्थमन्तःपुरगताःस्त्रियः। सवृद्धाबालदासीकाःसपर्षद्द्वाररक्षकाः।।१४०।।
सान्तःपुरश्च भरतः शत्रुघ्नसहितो ययौ। रामं व्रजन्तमागम्य रघुवंशमनुव्रताः।।१४१।।

ततोविप्रामहात्मानःसाग्निहोत्राःसमन्ततः। सपुत्रदाराःकाकुत्स्थमनुगच्छन्तिसर्वशः॥१४२॥

मन्त्रिणो भृत्ययुक्ताश्च सपुत्राः सहबान्धवाः।
सर्वे ते सानुगाश्चैव ह्यनुगच्छन्ति राघवम्॥१४३॥

ततः सर्वाः प्रकृतयो हृष्टपुष्टजनावृताः। गच्छन्तमनुगच्छन्ति राघवं गुणरञ्जिताः॥१४४॥

तथा प्रजाश्च सकलाः सुपुत्राश्चसबान्धवाः। राघवस्यानुगाश्चासन्दृष्ट्वाविगतकल्मषम्॥१४५॥

ब्राह्मण विग्रह धारण करके वेद उन प्रभु के बायीं ओर तथा सावित्री दक्षिण ओर चल रही थीं। ॐकार, वषट्कार आदि सभी राम का अनुगमन कर रहे थे। महात्मा ऋषि तथा महीधर आदि भी उनके साथ चल रहे थे। वे सभी स्वर्गद्वार तीर्थ तक आये। इसके अतिरिक्त समस्त अन्तःपुरवासिनी स्त्री, बाल-वृद्ध, दास-दासी, पार्षद तथा द्वार रक्षक भी प्रभु राम के पीछे चल रहे थे। तब शत्रुघ्न भी भरत के साथ नगर द्वार से बाहर निकले। अन्तःपुरवासीगण ने भी उनका अनुगमन किया था। वे सभी क्रमशः आकर राम के साथ चलने लगे। तदनन्तर चतुर्दिक् से पुत्र-स्त्री सहित अग्निहोत्री महात्मा विप्र अपने-अपने भृत्य, बन्धुगण, पुत्र, पत्नी, बन्धु-बान्धव युक्त होकर साथ चलने लगे। प्रजाजन राम के पीछे-पीछे पापरहित होकर चलते जा रहे थे।।१३८-१४५।।

स्नाताः शुक्लाम्बरधराः सर्वेप्रयतमानसाः।
कृत्वा किलकिलाशब्दमनुयाताश्च राघवम्॥१४६॥

न कश्चित्तत्र दीनोऽभून्न भीतोनाऽतिदुःखितः। प्रहृष्टामुदिताः सर्वेबभूवुःपरमाद्भुताः॥१४७॥

द्रष्टुकामाश्चनिर्वाणं राज्ञो जनपदास्तथा।
सम्प्राप्तास्तेऽपिदृष्ट्वैव नभोमार्गेणचक्रिणा॥१४८॥

ऋक्षवानररक्षांसि जनाश्च पुरवासिनः। आगत्य परया भक्त्या पृष्ठतः समुपाययुः॥१४९॥

तानिभूतानि नगरेह्यन्तर्धानगतान्यपि। राघवं तेऽप्यनुययुः स्वर्गद्वारमुपस्थितम्॥१५०॥

यानि पश्यन्ति काकुत्स्थं स्थावराणि चराणि च।
सत्त्वानि स्वर्गगमने मतिं कुर्वन्ति तान्यपि॥१५१॥
नाऽऽसीत्सत्त्वमयोध्यायां सुसूक्ष्ममपि किञ्चन।
यद्राघवं नाऽनुयाति स्वर्गद्वारमुपस्थितम्॥१५२॥

सभी ने स्नान करके श्वेत वस्त्र धारण किया था तथा सर्वत्र किलकिलाहट गूंजने लगी। वहां कोई भी दीन, भयभीत, किंवा दुःखित नहीं था। सभी हर्षित, मुदित तथा महाविस्मित थे। उन निर्वाणोन्मुख महापुरुष का दर्शन करने की लालसा के साथ नाना जनपद के राजा आये। सभी उनका दर्शन कर रहे थे। ऋक्ष, वानर, राक्षस तथा पुरवासीगण परम भक्ति के साथ उन महापुरुष के पीछे-पीछे चलते जा रहे थे। इस प्रकार अयोध्यापुरी जनहीन हो गयी। सभी राम का अनुगमन करते स्वर्गद्वार तक आये। सभी स्थावर तथा चर प्राणीगण काकुत्स्थ राम का दर्शन करने लगे। सभी के प्राणों में एक अपूर्व स्वर्ग में जाने की कामना जाग्रत हो गयी। राघव का अनुगमन करके स्वर्गद्वार तीर्थ तक न जाने वाला ऐसा कोई सूक्ष्म प्राणी तक अयोध्या में नहीं बचा।।१४६-१५२।।

अथार्द्धयोजनंगत्वा नदीं पश्चान्मुखो ययौ।
सरयूं पुण्यसलिलां ददर्श रघुनन्दनः॥१५३॥
अथ तस्मिन्मुहूर्ते तु ब्रह्मालोकपितामहः। सर्वैः परिवृतोदेवैर्ऋषिभिश्च महात्मभिः।
आययौ तत्र काकुत्स्थं स्वर्गद्वारमुपस्थितम्॥१५४॥
विमानशतकोटिभिर्दिव्याभिःसर्वतोवृतः। दीपयन्सर्वतोव्योमज्योतिर्भूतमनुत्तमम्॥१५५॥
स्वयंप्रभैश्च तेजोभिर्महद्भिःपुण्यकर्मभिः।
पुण्या वाता ववुस्तत्रगन्धवन्तः सुखप्रदाः॥१५६॥
सपुण्यपुष्पवर्षञ्च वायुयुक्तं महाजवम्। गन्धर्वैरप्सरोभिश्च तस्मिन्सूर्यउपस्थितः॥१५७॥
सरयूसलिलं रामः पद्भ्यां स समुपास्पृशत्।
ततो ब्रह्मा सुरैर्युक्तं स्तोतुं समुपचक्रमे॥१५८॥

तदनन्तर रघुनन्दन राम पीछे की ओर आधा योजन तक गये तथा वहां स्थित पुण्यजलवाली सरयू नदी का दर्शन किया। लोकपितामह ब्रह्मा भी वहां देवगण तथा ऋषिगण के साथ स्वर्गद्वार तीर्थ तक आये। वे सभी लोग भगवान् काकुस्थ राम के पास पहुंचे। उनके सैकड़ों करोड़ दिव्य विमानों से सभी दिशायें ढकी थी। तब स्वयम्प्रभ महात्मा पुण्यकर्मागण के अत्युत्तम प्रदीप्त तेज से आकाशमण्डल ज्योतिर्मय हो गया। सुगन्धयुक्त पुष्प एवं सुखभरी वायु प्रवाहित हो रही थी। पवित्र पुष्प वायु के कारण आकाश से तेजी से गिरने लगे। उस समय गन्धर्वों तथा अप्सराओं ने वहां सूर्य की उपासना किया। तदनन्तर भगवान् राम ने अपने चरणद्वय से सरयू के जल का स्पर्श किया। उस समय ब्रह्मदेव भी देवगण के साथ भगवान् राम की स्तुति करने लगे।।१५३-१५८।।

त्वं हि लोकपतिर्देव न त्वां जानाति कश्चन। अहं ते वै विशालाक्ष! भूतपूर्वपरिग्रहः॥१५९॥
त्वमचिन्त्यं महद्भूतमक्षयंलोकसंग्रहे। यामिच्छसिमहावीर्यतांतनुं प्रविशस्वकाम्॥१६०॥
पितामहस्य वचनादिदमेवाविशत्स्वयम्। सुदिव्यं वैष्णवं तेजः संसारंससहानुजः।
ततो विष्णुतनुं देवाः पूजयन्तः सुरोत्तमम्॥१६१॥
साध्यामरुद्गणाश्चैवसेन्द्राःसाग्निपुरोगमाः। येचदिव्याऋषिगणान्धर्वाप्सरसस्तथा।
सुवर्णा नागयज्ञाश्च दैत्यदानवराक्षसाः॥१६२॥
देवाः प्रहृष्टा मुदिताः सर्वे पूर्णमनोरथाः। साधुसाध्वितितेसर्वेत्रिदिवस्थाबभाषिरे॥१६३॥

ब्रह्मा कहते हैं—"हे देव! आप समस्त लोकों के नाथ हैं। कोई भी आपको जान सकने में समर्थ ही नहीं है। हे विशाललोचन! मुझे भी पूर्वकाल में आप से ही प्राण की प्राप्ति हो सकी है। हे महावीर्य! आपने लोकों के नियमनार्थ अपनी इच्छा के अनुरूप अचिन्त्य अक्षय महा अद्भुद् अपने देह में प्रवेश किया। मैं लोकपितामह ब्रह्मा हूं। आपने मेरी ही प्रार्थना से दिव्य वैष्णव तेज का अवलम्बन लेकर स्वयं अपने अनुज के साथ संसार में प्रवेश किया था। आप सुरश्रेष्ठ हैं। देवता आपकी पूजा आपको विष्णुतनु जानकर ही करते हैं।

साध्यगण, मरुद्गण, अग्नि आदि प्रमुख देवता, दिव्यऋषि, अप्सरा, गन्धर्व, सुपर्ण, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस तथा देवता आपकी पूजा करके प्रमुदित तथा पूर्ण मनोरथ हो जाते हैं तथा देवलोक वासीगण स्वर्ग से आपको साधुवाद देते हैं।।१५९-१६३।।

अथ विष्णुर्महातेजाः पितामहमुवाच ह। एषां लोकं जनौघानां दातुमर्हसि सुव्रत।।१६४।।

इमे तु सर्वेमत्स्नेहादायाताःसर्वमानवाः।
भक्ताश्चभक्तिमन्तश्चत्यक्तात्मानोऽपिसर्वशः।।१६५।।

तच्छ्रुत्वा विष्णुकथितं सर्वलाकेश्वरोऽब्रवीत्।
लोकं सन्तानिकं नाम संस्थास्यन्ति हि मानवाः।।१६६।।

स्वर्गद्वारेऽत्रवैतीर्थेराममेवानुचिन्तयन्। प्राणांस्त्यजतिभक्त्यावैससन्तानम्परंलभेत्।।१६७।।

सर्वे सन्तानिकं नाम ब्रह्मलोकादनन्तरम्।
वानराश्च स्वकां योनिं राक्षसाश्चाऽपि राक्षसीम्।।१६८।।

यस्या विनिःसृता ये वै सुरासुरतनूद्भवाः। आदित्यतनयश्चैव सुग्रीवः सूर्यमण्डलम्।।१६९।।

ऋषयो नागयक्षाश्च प्रयास्यन्ति स्वकारणम्। तथाब्रुवतिदेवेशेगोप्रतारमुपस्थितम्।।१७०।।

तज्जलं सरयूं भेजे परिपूर्णं ततोजलम्।
अवगाह्य जलं सर्वे प्राणांस्त्यक्त्वाप्रहृष्टवत्।।१७१।।

मानुषं देहमुत्सृज्य तेविमानान्यथाऽऽरुहन्। तिर्यग्योनिगतायेच प्रविश्य सरयूंतदा।।१७२।।

देहत्यागञ्चतेतत्रकृत्वादिव्यवपुर्द्धराः। तथान्यान्यपिं सत्त्वानि स्थावराणिचराणिच।।१७३।।

प्राप्य चोत्तमदेहं वै देवलोकमुपागमन्। तस्मिंस्तत्र समापन्ने वानरा ऋक्षराक्षसाः।
तेऽपि प्रविविशुः सर्वे देहान्निक्षिप्य वै तदा।।१७४।।

तदा स्वर्गंगताःसर्वेस्मृत्वालोकगुरुंविभुम्। जगामत्रिदशै सार्द्धं रामोहृष्टोमहामतिः।।१७५।।

तदनन्तर महातेजस्वी विष्णु ने पितामह से कहा—"हे सुव्रत! इस जनसमूह के लिये उत्तम लोकों की व्यवस्था करिये। ये मानव स्नेह के कारण मेरे साथ आये हैं। ये सभी भक्त, भक्तिमान् हैं तथा सभी प्रकार से सब कुछ त्याग कर आये हुये हैं।" विष्णु का यह वाक्य सुनकर निखिल लोकों के नाथ ब्रह्मा ने कहा—"मानवगण सन्तानिक लोकों में स्थापित होंगे। जो इस स्वर्गद्वार तीर्थ में भक्तिपूर्वक राम का चिन्तन करते हुये प्राणत्याग करेंगे, उनको अविच्छिन्न लोकों की प्राप्ति होंगी। सभी ब्रह्मलोक के परवर्त्ती सन्तानिक नामक लोक जायेंगे। वानरगण अपनी योनि, राक्षसगण राक्षसी योनि तथा सुर एवं असुरों ने जिस-जिस योनि से जन्म लिया था वे सभी सन्तानिक लोक की प्राप्ति करेंगे। सूर्यपुत्र सुग्रीव सूर्यमण्डल में जायेंगे। ऋषि, नागगण, यक्षगण अपने-अपने कारण शरीर की प्राप्ति करेंगे। देवेश ब्रह्मा यह कहकर क्रमशः गोप्रतार तीर्थ पहुंचे। यह तीर्थ सरयू का ही एक अंश है तथा यह गंभीर जलयुक्त है। राम के अनुगामी उन सबने इस जल में प्रवेश करके प्राण त्याग किया। उन सबने मानव देह त्यागकर विमानों पर आरोहण किया। तिर्यक् योनि वाले प्राणी भी सरयूजल

में प्रवेश कर गये। उन्होंने प्राणत्याग करके दिव्य देह धारण किया। अन्य स्थावर तथा चर प्राणीगण ने भी उत्तम देह लाभ करके सुरलोक गमन किया। वहां यह घटना घटित हो गयी कि वानर, भालू तथा राक्षसों ने भी संघटित होकर राम का चिन्तन करते-करते प्राण त्याग (सरयू जल में) किया तथा स्वर्ग चले गये। तब देवगण के साथ प्रसन्न हृदय श्रीराम ने भी स्वर्ग गमन किया।।१६४-१७५।।

अतस्तद्गोप्रताराख्यं तीर्थंविख्यातिमागतम्। गोप्रतारे परोमोक्षोनान्यतीर्थेषुविद्यते।।१७६।।

जन्मान्तरशतैर्विप्र योगोऽयं यदि लभ्यते।
मुक्तिर्भवतितत्त्वेकजन्मनालभ्यते न वा।।१७७।।

गोप्रतारेण सन्देहोहरिर्भक्त्यासुनिष्ठितः। एकेनजन्मनान्योऽपियोगमोक्षञ्चविन्दति।।१७८।।

गोप्रतारे नरो विद्वान्योऽपि स्नाति सुनिश्चितः।
विशत्यसौ परं स्थानं योगिनामपि दुर्लभम्।।१७९।।

हे विप्र! तब से यह गोप्रतार तीर्थ लोकों में विख्यात हो गया। तीर्थों में इसके समान अन्य कोई तीर्थ नहीं है। इस तीर्थ में परम मोक्ष की प्राप्ति होती है। सैकड़ों जन्मों के पुण्य के फलस्वरूप यदि मानव गोप्रतरयोग (तीर्थगमन) करता है, तब एक ही जन्म में उसकी मुक्ति हो जाती है। हरि यहां स्थित हैं, इसमें सन्देह नहीं है। इस तीर्थ में व्यक्ति एक ही जन्म में मोक्ष लाभ करता है। जो ज्ञानी मनुष्य विश्वास के साथ इस तीर्थ में स्नान करता है, वह योगियों के लिये दुर्लभ परम स्थान को प्राप्त करता है।।१७६-१७९।।

कार्त्तिक्याञ्च विशेषेण स्नातव्यं विजितेन्द्रियैः।
कार्त्तिके मासि विप्रर्षे सर्वे देवाः सवासवाः।
स्नातुमायान्त्ययोध्यायां गोप्रतारे विशेषतः।।१८०।।

गोप्रतारसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति। यत्र प्रयागराजोऽपि स्नातुमयातिकार्त्तिके।।१८१।।

निष्पापःकलुषं त्यक्त्वा शुक्लाङ्गः सितकञ्चुकः।
शुद्ध्यर्थं साधु कमोऽसौ प्रयागे मुनिसत्तम!।।१८२।।
यानि कानि च तीर्थानि भूमौ दिव्यानि सुव्रत!।
कार्त्तिक्यां तानि सर्वाणि गोप्रतारे वसन्ति वै।।१८३।।
गोप्रतारे जपो होमः स्नानं दानञ्च शक्तितः।
सर्वमक्षयतां याति श्रद्धयानियमव्रतम्।।१८४।।
कार्त्तिके प्राप्य तद्यान्ति तीर्थानि सकलान्यपि।
गोप्रतारं गमिष्यामः पापं त्यक्तमितीच्छया।।१८५।।

विशेष रूप से कार्त्तिक मास में पूर्णिमा के दिन जितेन्द्रिय मानव इस गोप्रतार तीर्थ में अवश्य स्नान करे। हे विप्रर्षे! कार्त्तिक मास में इन्द्र के साथ देवगण अयोध्या के गोप्रतार तीर्थ में स्नानार्थ आते हैं। हे मुनिप्रवर! इसके समान न तो कोई तीर्थ है, न होगा! जिस प्रयाग तीर्थ में पुण्यकामना करने वाले व्यक्ति

शुक्लाङ्ग (पवित्र) तथा शुभ्रदेह हो जाते हैं, कार्त्तिक मास में वे प्रयागराजतीर्थ स्वयं यहां तीर्थस्नान हेतु आगमन करते हैं। हे सुव्रत! इस पृथिवीमण्डल में जितने दिव्यतीर्थों की स्थिति है, कार्त्तिक पूर्णिमाकाल में वे सभी गोप्रतार में आते हैं। इस गोप्रतार तीर्थ में जप, होम, स्नान, दान आदि को सश्रद्ध भाव से अनुष्ठित करने पर वे सब अक्षय हो जाते हैं। कार्त्तिक मास में सभी तीर्थ यह कहते हैं कि हम पापों से मुक्त होने के लिये ग्रोप्रतार तीर्थ चलें!।।१८०-१८५।।

गोप्रतारे कृतं स्नानं सर्वपापप्रणाशनम्। गोप्रतारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा गुप्तहरिंविभुम्।
सर्वपापैः प्रमुच्येत नाऽत्र कार्या विचारणा॥१८६॥
विष्णुमुद्दिश्य विप्राणां पूजनञ्च विशेषतः। कर्त्तव्यं श्रद्धया युक्तैः स्नानपूर्वं यतव्रतैः॥१८७॥
पयस्विनी च गौर्देया सालङ्कारा च शक्तितः।
विप्राय वेदविदुषे नियमव्रतशालिने।
ब्राह्मणायाऽतिशुचये विष्णुप्रीत्यै यतात्मना॥१८८॥
अन्नं बहुविधं हेमवासांसिविविधानिच। दातव्यानि हरेः प्राप्त्यैभक्त्यापरमयायुतैः॥१८९॥
सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे नर्मदायां शशिग्रहे। तुलादानस्य यत्पुण्यं तदत्र दीपदानतः॥१९०॥
घृतेन दीपको यस्य तिलतैलेन वा पुनः।
ज्वलते मुनिशार्दूल! हयमेधेन तस्य किम्॥१९१॥

गोप्रतार तीर्थ में स्नान करने से समस्त कलुष का नाश हो जाता है। मानव यहां स्नान करने के पश्चात् विभु गुप्तहरि के दर्शन द्वारा सर्वपाप विनिर्मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। विशेषतः यहां विष्णु के उद्देश्य से ब्राह्मणों की अर्चना करनी चाहिये। व्रतशील मानवगण यहां स्नान करने के उपरान्त श्रद्धापूर्वक अपनी वित्तशक्ति के अनुरूप नियम पालन करने वाले व्रतशील वेदज्ञ द्विजों को अलंकार युक्त दुग्धवती गौ का दान करें। यतात्मा मनुष्य विष्णु की प्रसन्नता के लिये परमभक्ति के साथ इस तीर्थ में अत्यन्त पवित्र विप्र को अनेक अन्न-वस्त्र दान करें। ऐसा करने पर श्रीहरि प्राप्त हो जाते हैं। सूर्यग्रहण काल में कुरुक्षेत्र में तथा चन्द्रग्रहण काल में नर्मदा में तुलापुरुष दान का जो पुण्य है, इस तीर्थ में दीपदान करने पर वही पुण्यलाभ होता है। हे ऋषिशार्दूल! जो मानव इस गोप्रतारतीर्थ में घृत किंवा तिलतैल युक्त दीप जलाता ही नहीं, वह भले ही अश्वमेध करे, उससे क्या लाभ?।।१८६-१९१।।

तेनेष्टं क्रतुभिः सर्वैः कृतं तीर्थावगाहनम्। दीपदानं कृतं येन कार्त्तिके केशवाग्रतः॥१९२॥
नानाविधानि तीर्थानि भुक्तिमुक्तिप्रदानि च।
गोप्रतारस्य तान्यत्र कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥१९३॥
स्वर्णमल्पञ्च यो दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे। शुभाङ्गतिमवाप्नोति ह्यग्निवच्चैव दीप्यते॥१९४॥
गोप्रताराभिधे तीर्थे त्रिलोकी विश्रुते द्विज!।
दत्त्वाऽन्नञ्च विधानेन न स भयोऽभिजायते॥१९५॥

तत्र स्नानंतु यः कुर्याद्विप्रान्संतर्पयेन्नरः। सौत्रामणेश्च यज्ञस्य फलम्प्राप्नोतिमानवः॥१९६॥

कार्त्तिक इस तीर्थ में जो मनुष्य स्नानोपरान्त केशव के सामने दीपदान करता है, उसने तो सभी यज्ञों को सम्पन्न कर लिया। भुक्ति-मुक्तिप्रद अन्य नानाविध जितने तीर्थ हैं, वे गोप्रतार तीर्थ १/१६ भाग भी नहीं है। जो मानव इस तीर्थ में अल्पमात्र भी स्वर्ण वेदज्ञ-ब्राह्मण को देता है, उसे उत्तम गति की प्राप्ति होती है। वह अग्निवत् तेजयुक्त हो जाता है। हे द्विज! गोप्रतार नामक तीर्थ त्रैलोक्य विख्यात है। जो मानव विधिविधान पूर्वक यहां अन्नदान करता है, उसे पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। जो मानव इस गोप्रतार में स्नान तथा द्विजगण को तृप्त करता है, उसे इन्द्रयोग का फल मिलता है।।१९२-१९६।।

एकाहारस्तु यस्तिष्ठेन्मासं तत्र यतव्रतः। यावज्जीवकृतं पापं सहसा तस्य नश्यति॥१९७॥

अग्निप्रवेशं ये कुर्युर्गोप्रतारे विधानतः। तेविशन्ति पदं विष्णोर्निःसन्दग्धं तपोधन॥१९८॥

कुर्वन्त्यनशनं येऽत्र विष्णुत्त्क्या सुनिश्चिताः।
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥१९९॥

अर्चयेद्यस्तु गोविन्दं गोप्रतारे हि मानवः। दशसौवर्णिकं पुण्यं गोप्रतारे प्रकथ्यते॥२००॥

अग्निहोत्रफलो धूपो गोविन्दस्य समर्पितः। भूमिदानेन सदृशं गन्धदानफलं स्मृतम्॥२०१॥

अत्यद्भुतमिदं विद्वन्स्थानमेतत्प्रकीर्तितम्।
कार्त्तिक्यां तु विशेषेण अत्र स्नात्वा शुचिव्रतः॥२०२॥

स्वर्गद्वारेनरःस्नात्वादशस्वर्णफलंलभेत्। स्वर्णदःस्वर्गवासीचयोदद्याच्छ्रद्धयान्वितः॥२०३॥

सुतीर्थे पर्वणि श्रेष्ठे दशस्वर्णफलप्रदे। ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां रात्रौ जागरणं चरेत्॥२०४॥

उपोषितः शुचिः स्नातो विष्णुपूजनतत्परः। दीपंदद्यात्प्रयत्नेननानाफलविधायिनम्॥२०५॥

जो यतव्रत मानव एकाहारी रहकर गोप्रतारतीर्थ में एकमास निवास करता है, उसकी जीवनपर्यन्त की संचित पापराशि सहसा विनष्ट हो जाती है। हे तपोधन! जो मानव इस तीर्थ में विधिपूर्वक अग्नि में प्रविष्ट होता है, वह मानो विष्णुपद में प्रविष्ट हो गया। इसमें सन्देह नहीं है। जो मुनिवृत्ति का आश्रय लेकर विष्णु के प्रति भक्ति तत्पर रहते अनशन व्रत करते हैं, शतकोटि कल्पकाल में भी उनका पुनर्जन्म नहीं होता। जो मानव गोप्रतार में गोविन्द का पूजन करते हैं, उनको दस स्वर्णदान जनित पुण्यलाभ होता है। गोविन्द के लिये किये धूपदान से अग्निहोत्र फल होता है। गन्धदान से भूमिदान का फललाभ होता है। हे विद्वान्! यह स्थान अत्यन्त अद्भुत् कहा गया है। विशेष करके कार्त्तिक मास में मानव इस तीर्थ में स्नानोपरान्त दस स्वर्णदान जनित फललाभ करता है। वह यहां स्नान करने से अत्यन्त पवित्र हो जाता है। जो व्यक्ति सश्रद्ध भाव से स्वर्गद्वार में स्वर्णदान करते हैं, उनको स्वर्ण की प्राप्ति होती है। यह अत्युत्तम तीर्थ है। श्रेष्ठ पर्व ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशी के दिन यहां दस स्वर्ण दान देना चाहिये। रात्रि में जागरण करके पवित्रतापूर्वक विष्णुपूजा तत्पर हो जाये तथा यत्नत; विविध फल देने वाला दीपदान करें।।१९७-२०५।।

तावद्गर्जन्ति पुण्यानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले। यावद्दद्याज्जले दीपं कार्त्तिके केशवाग्रतः॥२०६॥

पौर्णमास्यांप्रभातेतुस्नात्वानिर्मलमानसः। हरिंसम्पूज्यविधिवद्विधायश्राद्धमादरात्॥२०७॥
दत्त्वाऽन्नंचयथाशक्त्यासन्तोष्यब्राह्मणांस्ततः। वस्त्रादिभिरलङ्कारैःसम्पूज्यद्विजदम्पती॥२०८॥

विभुंगुप्तहरिं दृष्ट्वा सम्पूज्य तु विशेषतः।
नमस्कृत्याऽनु तत्तीर्थं शुचिस्तद्गतमानसः॥२०९॥
स्वर्गद्वारे च विधिवन्मध्याह्ने स्नानमाचरेत्।
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोके महीयते॥२१०॥

कार्त्तिकमास में जब तक जल के ऊपर केशव के समक्ष दीपदान नहीं किया जाता, तभी तक स्वर्ग-मर्त्य-रसातल के पुण्य समूह गर्व से गर्जन करते हैं। दीपदान करते ही उनका घमण्ड चूर हो जाता है; क्योंकि दीपदान का पुण्य उन सबसे कहीं अधिक है। दीपदान के पश्चात् प्रभात होने पर पूर्णिमा के दिन स्नान करके निर्मल मानस होना चाहिये। हरि की पूजा करके यथाविधि आदरपूर्वक श्राद्ध करें। तत्पश्चात् शक्ति के अनुसार अन्नदान करके ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करना चाहिये। वस्त्र-अलंकारादि से उनकी पत्नियों की पूजा करें। तदनन्तर विष्णु गुप्तहरि का दर्शन, विशेष रूप से उनकी पूजा तथा उसे प्रणाम करके पवित्र तथा तद्गत् चित्त होकर मध्याह्न काल में सविधि-स्वर्गद्वार में स्नान करना चाहिये। इससे व्यक्ति सभी पापों से शुद्ध होकर विष्णुलोक गमन करता है।।२०६-२१०।।

इति परमविधानैर्गोप्रतारे विधाय प्रथितसुकृतमूर्त्तिः स्नानमुच्चैः प्रयत्नात्।
कलितनिखिलपापः पूजयित्वाऽऽदरेणाऽच्युतममलविकाशोविष्णुसायुज्यमेति॥२११॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये स्वर्गद्वारगोप्रतारतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः।।६।।

जो पुण्यात्मा विख्यात व्यक्ति इन सब उत्तम विधि का अवलम्बन लेकर यत्नतः गोप्रतारतीर्थ में स्नान करके सादर हरिपूजन करता है, उसके समस्त पाप दूर हो जाते हैं। वह अच्युत तथा अमल होकर विष्णु की सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है।।२११।।

।।षष्ठ अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

सप्तमोऽध्यायः

क्षीरोद, घोषार्क कुण्ड माहात्म्य रुक्मिणीकुण्ड धनक्षयतीर्थ वर्णन, रैभ्य-उर्वशी संवाद, सूर्य द्वारा राज्ञेश्वर को वर देना

अगस्त्य उवाच

तीर्थमन्यत्प्रवक्ष्यामि क्षीरोदकमिति स्मृतम्। सीताकुण्डाच्च वायव्ये वर्त्तते गुणसुन्दरम्।
पुण्यैकनिचयस्थानं सर्वदुःखविनाशनम्॥१॥
पुरा दशरथो राजा पुत्रेष्टिं नाम नामतः। चकार विधिवद्यज्ञं पुत्रार्थं यत्र चाऽऽदरात्॥२॥
क्रतुं समापयामास सानन्दो भूरिदक्षिणम्। यज्ञान्ते क्रतुभुक्तत्र मूर्तिमान्समदृश्यत॥३॥
हस्ते कृत्वा हेमपात्रंहविःपूर्णमनुत्तमम्। तस्मिन्हविषिसङ्कीर्णं वैष्णवं तेजउत्तमम्।
चतुर्विधंविभज्यैवपत्नीभ्योदत्तवान्नृपः ॥४॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—क्षीरोदक नामक एक अन्य तीर्थ की बात कहता हूं। यह क्षीरोदक सीताकुण्ड के वायव्य कोण पर अवस्थित है। विविध गुणयुक्त होने के कारण यह तीर्थ अतीव मनोरम है। यह क्षीरोदक पुण्यसमूह का प्रधान स्थान है तथा अखिल दुःखनाशक भी है। पूर्वकाल में राजा दशरथ ने आदरपूर्वक पुत्रकामनार्थ यहां पुत्रेष्ठि यज्ञ किया था। आनन्दित मन वाले राजा दशरथ ने जब प्रचुर दक्षिणा वाला पुत्रेष्ठि यज्ञ सम्पन्न किया था, उस समय यज्ञावसानकाल में हुताशन ने मूर्त्तिमान् होकर उनको दर्शन दिया था। अग्नि ने उनको हाथ में स्वर्णपात्र के साथ दर्शन दिया था। यह पात्र उत्तम हविष्य से भरा हुआ था। इसमें उत्तम वैष्णवतेज निहित था। राजा ने उस हवि को चार भागों में विभक्त किया तथा अपनी तीनों पत्नियों को विभाजित करके दे दिया (एक पत्नी को दो भाग तथा दो को एक-एक भाग दिया)।।१-४।।

यत्र तत्क्षीरसम्प्राप्तिर्जाता परमदुर्लभा। क्षीरोदकमितिख्यातंतत्स्थानंपापनाशनम्।
उदकेनाभिव्यक्तं च उत्तमञ्च फलप्रदम्॥५॥
तत्र स्नात्वा नरो धीमान्विजितेन्द्रिय आदरात्।
सर्वान्कामानवाप्नोति पुत्रांश्च सुबहुश्रुतान्॥६॥
आश्विनेशुक्लपक्षस्यएकादश्यांजितव्रतः। तत्रस्नात्वा विधानेनदत्त्वाशक्त्याद्विजन्मने॥७॥
विष्णुं सम्पूज्य विधिवत्सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
पुत्रानवाप्नुयाद्विद्धि धर्मांश्च विधिवन्नरः॥८॥
तस्मात्क्षीरोदकस्थानान्नैर्ऋते दिग्दले श्रितम्।
ख्यातं बृहस्पतेः कुण्डमुद्दण्डाचण्डमण्डितम्॥९॥

हे द्विज! यहां परम दुर्लभ उस क्षीर की प्राप्ति होने के कारण यह तीर्थ क्षीरोदक कहलाया। यह जल से घिरा परम उत्तम फल देने वाला स्थान है। जो इन्द्रियजित् विद्वान् मनुष्य इस क्षीरोदक में श्रद्धापूर्वक स्नान करता है, उसकी सभी कामना सफल होती है। उसे ज्ञानी पुत्र की प्राप्ति होती है। जितेन्द्रिय मानव यथाविधान आश्विन शुक्ला एकादशी के दिन यहां स्नानोपरान्त यथाशक्ति ब्राह्मणगण को दान करके सविधि विष्णुपूजन प्रभृति विविध धर्मानुष्ठान द्वारा समस्त कामना पूर्ण करता है। उसे अनेक पुत्र भी प्राप्त होते हैं। इस क्षीरोदक तीर्थ के नैर्ऋत कोण की ओर विख्यात बृहस्पति-कुण्ड विद्यमान है। यह कुण्ड उदण्ड-चण्ड द्वारा युक्त है।।५-९।।

सर्वपापप्रशमनं पुण्यामृततरङ्गितम्। यत्र साक्षात्सुरगुरुर्निवासं किल निर्ममे।।१०।।
यज्ञञ्च विधिवच्चक्रे बृहस्पंतिरुदारधीः। नानामुनिगणैर्युक्तं रम्यं बहुफलप्रदम्।
सुपर्णच्छायसम्पन्नं कुण्डं तत्पापिदुर्ल्लभम्।।११।।
इन्द्रादयोऽपि विबुधा यत्र स्नात्त्वा प्रयत्नतः।
मनोऽभीष्टफलं प्राप्ताः सौन्दर्यौदार्यतुन्दिलाः।।१२।।
यत्र स्नानेन दानेन नरो मुच्येत किल्बिषात्।।१३।।
भाद्रे शुक्ले तु पञ्चम्यां यात्रा तत्र फलप्रदा। अन्यदाऽपिगुरोर्वारिस्नानं बहुफलप्रदम्।।१४।।
बृहस्पतेस्तथा विष्णोः पूजां तत्र च आचरेत्। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके स मोदते।।१५।।
भवेद्बृहस्पतेः पीडा यस्यगोचरवेधतः। तेनाऽत्रविधिवत्स्नानंकार्यं सङ्कल्पपूर्वकम्।।१६।।

यह कुण्ड सर्वपापनाशक तथा पवित्र अमृत से तरंगायित है। साक्षात् सुरगुरु बृहस्पति यहां रहते हैं। उदारमति बृहस्पति ने यहां यथाविधि यज्ञ किया था। यह रम्य कुण्ड नाना मुनिगण द्वारा समाकीर्ण, अनेक फलप्रद तथा उत्तम पादप द्वारा छायायुक्त है। पापीगण के लिये इस कुण्ड का दर्शन दुर्लभ है। इन्द्रादि देवगण भी यत्नतः इस कुण्ड में स्नान करके अभीष्ट फल प्राप्त करके सौन्दर्य तथा औदार्यगुण से स्फीत हो जाता है। इस तीर्थ में स्नान तथा दान करने वाला मनुष्य पापरहित हो जाता है। भाद्रमासीय शुक्ला अष्टमी के दिन बृहस्पतिकुण्ड अत्यधिक फलप्रद होता है। व्यक्ति इस कुण्ड में बृहस्पति तथा विष्णु की पूजा करके सर्वपापविनिर्मुक्त होते हैं। वे विष्णुलोक गमन करने से अतीव हर्षित भी होते हैं। गोचर में जिसे बृहस्पति पीड़ाप्रद होते हैं, वे इस कुण्ड में सविधि स्नान करें।।१०-१६।।

होमंकृत्वा गुरोर्मूर्तिःसुवर्णेनविनिर्मिता। स्थित्वाजले प्रदेयावै पीताम्बरसमन्विता।।१७।।
वेदज्ञायाऽतिशुचये स्नात्वा पीडापनुत्तये। होमञ्च कारयेत्तत्र ग्रहजाप्यविधानतः।।१८।।
एवं कृते न सन्देहो ग्रहपीडा प्रणश्यति।।१९।।
तद्दक्षिणे मुनिश्रेष्ठरुक्मिणीकुण्डमुत्तमम्। चकारयत्स्वयंदेवीरुक्मिणीकृष्णवल्लभा।।२०।।
तत्र विष्णुः स्वयं चक्रे निवासंसलिलेतदा। वरप्रदानात्स्नेहेनभार्यायाःप्रगुणीकृतम्।।२१।।

बृहस्पतिग्रह द्वारा पीड़ित व्यक्ति पीड़ा निवारणार्थ होम करके स्वर्ण की बृहस्पति मूर्त्ति बनवायें। यह मूर्त्ति पीताम्बर से लपेटी जाये। इसे जल में खड़े होकर वेदज्ञ पवित्र ब्राह्मण को प्रदान करे। तदनन्तर ग्रह जप विधि से होम कराये। इस प्रयोग से बृहस्पति ग्रहजनित पीड़ा निवृत्त हो जाती है। हे मुनिप्रवर! बृहस्पति कुण्ड

के दक्षिण में रुक्मिणी कुण्ड स्थित है। यह उत्तम कुण्ड कृष्णवल्लभा देवी रुक्मिणी द्वारा निर्मित है। इस कुण्ड के जल में स्वयं विष्णु का ही निवास है। उन विष्णु ने प्रेम के कारण रुक्मिणी को वर देकर इस स्थान का गौरव बढ़ाया।।१७-२१।।

तत्र स्नानं तथा दानं होमं वैष्णवमन्त्रकम्। द्विजपूजां विष्णुपूजांकुर्वीतप्रयतोनरः।।२२।।
तत्र साम्वत्सरी यात्रा कर्त्तव्या सुप्रयत्नतः। ऊर्ज्जकृष्णनवम्याञ्च सर्वपापापनुत्तये।।२३।।

पुत्रवाञ्जायते वन्ध्यो यात्रां कृत्वा न संशयः।
नारीभिर्वा नरैर्वापि कर्त्तव्यं स्नानमादरात्।।२४।।
भुक्त्वा भोगान्समग्रांश्च विष्णुलोके स मोदते।
लक्ष्मीकामनयातत्र स्नातव्यञ्च विशेषतः।।२५।।

सर्वकाममवाप्नोतितत्रस्नानेनमानवः। रुक्मिणीश्रीपतिप्रीत्यैदातव्यञ्चस्वशक्तितः।।२६।।
कर्त्तव्या विधिवत्पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः। ध्येयोलक्ष्मीपतिस्तत्रशङ्खचक्रगदाधरः।।२७।।
पीताम्बरधरः स्रग्वी नारदादिभिरीडितः। ताक्ष्यासनोमुकुटवान्महेन्द्रादिविभूषितः।।२८।।
सर्वकामफलावाप्त्यै वक्षोलक्षितकौतुभः। अतसीकुसुमश्यामः कमलामललोचनः।।२९।।

नित्य इस कुण्ड में स्नान, दान, वैष्णवमन्त्र से होम, द्विजपूजा, विष्णुपूजा करे। पापनाश की कामना से कार्त्तिक कृष्णा नवमी तिथि के दिन यत्न के साथ इस कुण्ड की संवत्सरी यात्रा करनी चाहिये। इससे मानव तथा वन्ध्या भी पुत्रवान होते हैं। इसमें संशय नहीं है। पुरुष हो, किंवा स्त्री ही क्यों न हो, सभी सादर इस कुण्ड में स्नान करें। ऐसा करने वाले समस्त भोगों का उपभोग करने के पश्चात् विष्णुलोक प्राप्त करते हैं। लक्ष्मीलाभार्थ इस कुण्ड में स्नान करें। जो मानव यहां स्नान करता है, उसकी सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। यहां रुक्मिणी तथा श्रीपति विष्णु की प्रसन्नतार्थ शक्ति के अनुसार दान तथा यथाविधि ब्राह्मण पूजा करना कर्त्तव्य है। यहां इस प्रकार की विधि के अनुसार विष्णु ध्यान करें। यथा—रमापति विष्णु शंख-चक्र-गदाधारी, पीताम्बर तथा माला से युक्त हैं। नारद आदि महर्षिगण उनकी स्तुति कर रहे हैं। वे गरुड़ासीन हैं। उनके मस्तक पर मुकुट शोभित है। उनका वक्ष कौस्तुभयुक्त है। कौस्तुभ से समस्त कामना प्राप्ति का संकेत मिल रहा है। उनका वर्ण अलसी के पुष्प जैसा श्याम तथा लोचन कलम की तरह निर्मल है।।२२-२९।।

एवं कृते न सन्देहः सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
इह लोके सुखम्भुक्त्वा हरिलोके स मोदते।।३०।।

अतः परम्प्रवक्ष्यामि तीर्थमन्यदघापहम्। कलिकिल्विषसंहारकारकं प्रत्ययात्मकम्।।३१।।

साधक इस प्रकार से ध्यान करके सर्वकामयुक्त हो जाता है। वह इस लोक में सुख भोग के पश्चात् विष्णुलोक में परम हर्षित होता है। इसमें संशय नहीं है। अब पापनाशक एक अन्य तीर्थ का वर्णन करता हूं। यह परम पवित्र, सर्वकामसिद्धप्रद, कलिकल्मष का नाशक तथा प्रत्ययात्मक है।।३०-३१।।

परम्पवित्रमतुलं सर्वकामार्थसिद्धिदम्। धनयक्षइतिख्यातं परं प्रत्ययकारकम्।।३२।।
रुक्मिणीकुण्डवायव्यदिग्दले संस्मृतं शुभम्। हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेरासीत्तत्र धनं महत्।।३३।।

तस्य रक्षार्थमत्यर्थं रक्षितो यक्षउच्चकैः। विश्वामित्रो मुनिः पूर्वं यदाचैव पराजयत्॥३४॥
हरिश्चन्द्रं नरपतिं राजसूयकरम्परम्। राज्यं जग्राह सकलं चतुरङ्गबलान्वितम्॥३५॥
तद्वशेऽदाच्च स मुनिर्धनं सकलमुत्तमम्। तद्रक्षायै प्रयत्नेन यक्षं स्थापितवानसौ॥३६॥
प्रमन्थुरइतिख्यातं प्रमोदानन्दमन्दिरम्। रक्षां विदधतस्तस्य बहुयत्नेन सर्वशः॥३७॥
तुतोष स मुनिर्धीमान्कन्दाचिद्विजितेन्द्रियः। उवाचमधुरं वाक्यंप्रीत्यापरमयायुतः॥३८॥

इस परम प्रत्ययकारक (श्रद्धाकारक, विश्वास उत्पन्न करने वाला) विख्यात तीर्थ का नाम है धनयक्ष तीर्थ। यह शुभावह तीर्थ रुक्मिणी कुण्ड के वायव्यकोण पर अवस्थित है। राजर्षि हरिश्चन्द्र की विपुल धन-सम्पदा यहीं रक्षित थी। रक्षार्थ एक यक्ष सदा के लिये नियुक्त था। जब पूर्वकाल में ऋषि विश्वामित्र ने राजसूय यज्ञ करने वाले राजाओं में श्रेष्ठ हरिश्चन्द्र को पराजित करके राजा की चतुरंगिणी सेना के साथ उनका समस्त राज्य ग्रहण कर लिया, तब मुनि ने इस अतुल उत्तम धनसम्पदा के रक्षार्थ इस यक्ष को नियुक्त किया था। यह यक्ष तब से उस धन-सम्पदा की रक्षा करता आ रहा है। यहां पर प्रमन्थुर नामक विख्यात मन्दिर भी है। यह मन्दिर निरन्तर प्रमोद तथा आनन्द से भरपूर रहता है। वह यक्ष इसी मन्दिर में ऋषि विश्वामित्र की सभी सम्पत्ति की रक्षा करता रहता है। एक बार इस मन्दिर में धीमान् महर्षि विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर यक्ष से प्रेमपूर्वक मधुरता से यह कहा।।३२-३८।।

विश्वामित्र उवाच

वरं वरय धर्मज्ञ! क्षिप्रमेवविमत्सरः। भक्त्या परमया धीर! सन्तुष्टोऽस्मिविशेषतः॥३९॥

ऋषि विश्वामित्र कहते हैं—हे धर्मज्ञ! तुम मत्सरता से रहित होकर वर मांगों। हे धीर! तुम्हारी परमभक्ति देखकर मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूं।।३९।।

यक्ष उवाच

वरं प्रयच्छसि यदि विप्रवर्य! मदीप्सितम्। ममाङ्गमतिदुर्गन्धि शापाच्च नृपतेरभूत्।
सुगन्धयितुं ब्रह्मर्षे! तत्प्रसीदमुनीश्वर!॥४०॥

यक्ष कहता है—हे वीरवर! राजा के शाप के कारण मेरी देह दुर्गन्धित हो गई है। हे महर्षि! यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं, तब हे मुनीश्वर! मुझ पर प्रसन्न होकर मुझे सुगन्धित करिये।।४०।।

अगस्त्य उवाच

एवमुक्ते तु यक्षेण मुनिर्ध्यानस्थलोचनः। तंविविच्यानयाभक्त्याअभिषेकंचकारसः॥४१।
तीर्थोदकेन विधिवत्कृत्वासङ्कल्पमादरात्। ततः सोऽभूत्क्षणेनैवसुगन्धोत्तरविग्रहः॥४२।
तथाभूतः स मधुरं प्रोवाचप्राञ्जलिस्ततः। पुनः पुरः स्थितोधीमान्विनयावनतस्तदा॥४३॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—यक्ष का वचन सुनकर तब मुनि ने ध्यानस्तिमित नेत्रों से यक्ष की भक्ति का स्मरण किया तथा तीर्थजल से संकल्प करते हुये आदर के साथ यक्ष का तीर्थजल से अभिषेक किया। ऋषि के अभिषेक के कारण यक्ष के शरीर का ऊपरी अर्द्धभाग सुगन्धित हो उठा। विनयावनत धीमान् यक्ष ने इस प्रकार सौरभ विभूति से सम्पन्न होकर अंजलिबद्ध होकर पुनः-पुनः मुनि से मधुर वचन कहा।।४१-४३।।

यक्ष उवाच

त्वत्कृपाभिरहंधीर जातः सुरभिविग्रहः। एतत्स्थानं यथाख्यातिंयातिसर्वज्ञतत्कुरु॥४४॥
त्वत्प्रसादेन विप्रर्षे! तथा यत्नं विधेहि वै॥४५॥

यक्ष कहता है—हे वीर! आपकी कृपा से मेरा शरीर सुगन्धित हो गया। हे विप्रर्षि! आपकी कृपा से यह स्थान प्रसिद्ध हो जाये, आप ऐसा करिये।।४४-४५।।

अगस्त्य उवाच

एवमुक्तः क्षणं ध्यात्वा मुनिस्तिमितलोचनः।
यक्षं प्रति प्रसन्नात्मा ह्यवाच श्लक्ष्णया गिरा॥४६॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—स्तिमित नेत्र ऋषि विश्वामित्र ने यक्ष की प्रार्थना सुनकर क्षणकाल ध्यान किया। तत्पश्चात् वे यक्ष पर प्रसन्न होकर कोमल वाक्य द्वारा उससे कहने लगे।।४६।।

विश्वामित्र उवाच

प्रसिद्धिमतुलां यक्ष एतत्स्थानं गमिष्यति। धनयक्ष इतिख्यातिमेतत्तीर्थंगमिष्यति॥४७॥
सौन्दर्य्यदं शरीरस्यपरंप्रत्ययकारकम्। यत्रस्नात्वाविधानेनदौर्गन्ध्यंत्यजतिंक्षणात्।
तत्र स्नानं प्रयत्नेन कर्त्तव्यं पुण्यकाङ्क्षिभिः॥४८॥
दानंश्रद्धास्वशक्तिभ्यांलक्ष्मीपूजाविशेषतः। तत्रस्नानेनदानेन लक्ष्मीप्रीत्यैविशेषतः॥४९॥
पूजया तु निधीनाञ्च नवानामपि सुव्रत!। इहलोके सुखं भुक्त्वा परलोके स मोदते॥५०॥
महापद्मस्तथा पद्मः शङ्खो मकरकच्छपौ। मुकुन्दकुन्दनीलाश्च सर्वाश्च निधयो नव॥५१॥
एतेषामपि कुण्डेऽत्र सन्निधिर्भविताऽनघ!। एतेषां तु विशेषेण पूजाबहुफलप्रदा॥५२॥

विश्वामित्र कहते हैं—हे यक्ष! यह स्थान अतुल प्रसिद्धि प्राप्त करेगा। तुम्हारे नाम के अनुसार यह धनयक्ष तीर्थ कहा जायेगा। यह परमतीर्थ शरीर सौन्दर्यप्रद होगा। यहां यत्नतः स्नान करने पर देह की दुर्गन्ध तत्काल नष्ट हो जायेगी। पुण्यकामी व्यक्ति यहां यत्नपूर्वक स्नान करें। यहां श्रद्धापूर्वक यथाशक्ति दान देना चाहिये। यहां लक्ष्मी पूजन करना आवश्यक है। हे सुव्रत! लक्ष्मी की प्रसन्नता के लिये इस तीर्थ में स्नान-दान तथा लक्ष्मी एवं नौ निधियों की पूजा करने से इहलोक में विविध सुखभोग करके परलोक की प्राप्ति होती है। महापद्म, पद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, लीला तथा खर्व ये नौ निधियां हैं। हे निष्पाप! इन निधियों के साथ कुण्ड में लक्ष्मी देवी सदा सन्निहित रहती हैं। विशेषतः इन सबकी पूजा अतीव फलप्रद है।।४७-५२।।

जलमध्ये प्रकर्त्तव्यं निधिलक्ष्मीप्रपूजनम्॥५३॥
अन्नं बहुविधं देयं वासांसि विविधानि च॥५४॥
सुवर्णादि यथा शक्त्या वित्तशाठ्यं विवर्जयेत्। गुप्तंदानं प्रयत्नेनकर्त्तव्यंसुप्रयत्नतः॥५५॥
फलानि च सुवर्णानि देयानि च विशेषतः॥५६॥

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां स्नानं बहुफलप्रदम्। श्रद्धयापरयायुक्तैः कर्त्तव्यंश्रद्धयाऽधिकम्।।५७।।

माघे कृष्णचतुर्दश्यां यात्रा साम्वत्सरी भवेत्।
तत्र स्नानं पितृणान्तु तर्पणञ्च विशेषतः।।५८।।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत्तृप्यत्विति ब्रुवन्। अपसव्येन विधिवत्तर्प्पयेदञ्जलित्रयम्।।५९।।

एवंकुर्वन्नरोयक्ष! न मुह्यतिकदाचन। अत्र स्नातो दिवं याति अत्रस्नातःसुखीभवेत्।।६०।।

अत्र स्नातेन ते यक्ष कर्त्तव्यं पूजनम्पुरः। त्वत्पूजनेन विधिवन्नृणां पापक्षयोभवेत्।।६१।।

नमः प्रमथराजेति पूजामन्त्र उदाहृतः। तीर्थमध्ये प्रकर्त्तव्यं पूजनं श्रवणादिकम्।।६२।।

जल में लक्ष्मीपति की पूजा अवश्य करें। इसमें कंजूसी रहित होकर इस कुण्ड के निकट नाना अन्न, विविधवस्त्र तथा यथाशक्ति स्वर्णदान करना चाहिये। यहां प्रयत्नपूर्वक गुप्तदान करें। विशेषतः फल एवं स्वर्णदान करें। कृष्णपक्षीय चतुर्दशी के दिन यहां स्नान अनेक फल देने वाला है। परम श्रद्धापूर्वक यहां स्नान तथा दान करना कर्त्तव्य है। माघीकृष्णाचतुर्दशी को इस निधि तीर्थ की सांवत्सरी यात्रा करें। इन सभी वर्णित तीर्थों में स्नान के साथ विशेषरूप से पितृतर्पण करना चाहिये। यह मन्त्र कहकर कि "ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त समस्त जगत् तृप्त हो" तीन अंजलि जल (जनेऊ को अपसव्य करके) से यथाविधि तर्पण करना चाहिये। हे यक्ष! यह करने वाला मानव कभी मोहग्रस्त नहीं होता। हे यक्ष! यहां स्नान करने वाला स्वर्गगमन करता हैं। इस तीर्थ में स्नान से मनुष्य सुखी हो जाता है। यहां जो स्नान करते हैं, वे पहले तुम्हारी पूजा अवश्य करें। इससे उनका पापक्षयीभूत होगा। तुम्हारा पूजामन्त्र होगा "नमः प्रमथराजाय"। इस तीर्थ में तुम्हारी पूजा तथा तुम्हारा नाम श्रवण आवश्यक है।।५३-६२।।

निधिलक्ष्म्योस्तथायक्ष! तवपूजा विशेषतः। एवंयःकुरुतेधीरसर्वान्कामानवाप्नुयात्।।६३।।

धनार्थी धनमाप्नोति पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात्।
मोक्षार्थी मोक्षमाप्नोति तत्किं न यदिहाऽऽप्यते।।६४।।

यस्तु मोहान्नरोयक्ष स्नानं नकुरुतेकिल। तस्यसाम्वत्सरंपुण्यंत्वंग्रहीष्यसिसर्वशः।।६५।।

इस तीर्थ में निधि, लक्ष्मी तथा तुम्हारी पूजा विशेष कर्त्तव्य है। जो धीर व्यक्ति इस विधि-विधान से पूजा करते हैं, उनको समस्त कामनाओं की प्राप्ति होती है। धनार्थी धन, पुत्रार्थी पुत्र, मोक्षार्थी मोक्षलाभ करने में समर्थ हो जाता है। अधिक क्या कहा जाये! जगत्\में ऐसी कोई वस्तु ही नहीं है, जिसे इस तीर्थ सेवन द्वारा मनुष्य न पा सके! हे यक्ष! जो मानव मोह के कारण इस निधितीर्थ आकर भी यहां स्नान नहीं करता, तुम उसके वर्ष पर्यन्त का सुकृत ले लोगे। इसमें सन्देह नहीं है।।६३-६५।।

इति दत्त्वा वरांस्तस्मै विश्वामित्रोमुनीश्वरः। अन्तर्दधेमुनिवरस्तदासचतपोनिधः।।६६।।

तदाप्रभृतितत्स्थानंपरमांख्यातिमाययौ। तस्यतीर्थस्यसकलाभूमिःस्वर्णविनिर्मिता।।६७।।

दिव्यरत्नौघखचिता समन्तादुपशोभिता। एवं यः कुरुते विद्वान्सयातिपरमांगतिम्।।६८।।

धनयक्षादुत्तरस्मिन्दिग्भागेसंस्थितं द्विज!। वसिष्ठकुण्डंविख्यातंसर्वपापापहं सदा।।६९।।

वसिष्ठस्य सदा तत्र निवासः सुतपोनिधेः। अरुन्धती सदा यस्य वर्तते निर्मलव्रता।।७०।।

अत्र स्नानंविशेषेणश्राद्धपूर्वमतन्द्रितः। यः कुर्यात्प्रयतोधीमांस्तस्यपुण्यमनुत्तमम्।।७१।।
वामदेवस्य यत्रैव सन्निधिर्वर्ततेऽनघ!। वसिष्ठवामदेवौतु पूजनीयौ प्रयत्नतः।।७२।।
पतिव्रतापूजनीयाऽरुन्धतीचविशेषतः। स्नातव्यंविधिनासम्यग्दातव्यञ्चस्वशक्तितः।।७३।।
सर्वकामफलप्राप्तिर्जायते नात्र संशयः। अत्र यः कुरुते स्नानं स वसिष्ठसमो भवेत्।।७४।।

तदनन्तर मुनिप्रवर मुनीश्वर तपोनिधि विश्वामित्र यक्ष को इस प्रकार अनेक दान देकर वहां से अन्तर्हित् हो गये। हे द्विज! तब से यह स्थान परम प्रसिद्ध हो गया। इस तीर्थ की भूमि स्वर्ण से निर्मित है। दिव्यरत्न जड़ित है तथा सभी ओर से सम्यक्रूपेण सुशोभित है। हे विद्वान्! जो मानव पूर्वोक्त विधि से इस तीर्थ की सेवा करता है; उसे परमगति का लाभ हो जाता है। हे द्विज! धनयक्ष के उत्तरदिक्भाग में वसिष्ठ कुण्ड विराजमान है। यह कुण्ड विख्यात है तथा सर्वपापहारी है। उत्तम तपोनिधि ऋषि वसिष्ठ सतत् इस कुण्ड में निवास करते हैं। निर्मल व्रतवाली अरुन्धती भी यहां स्वामी के सन्निधान में रहती हैं। जो धीमान् आलस्यरहित व्यक्ति श्राद्ध करके इस तीर्थ में स्नान करता है उसका पुण्य अत्युत्तम है। हे निष्पाप! वामदेव भी इस तीर्थ में सदा निवास करते हैं। अतः यत्नतः इस तीर्थ में वसिष्ठ एवं वामदेव की पूजा करें। इस तीर्थ में सविधि स्नान एवं यथाशक्ति दान करना चाहिये। यह करने से समस्त कामना पूर्ण होती है। इसमें संशय नहीं है। जो मानव यहां स्नान करता है, वह वसिष्ठ के समान हो जाता है।।६६-७४।।

भाद्रेमासिसितेपक्षेपञ्चम्यांनियतव्रतः। तस्यसाम्वत्सरीयात्राकर्त्तव्याविधिपूर्विका।।७५।।
विष्णुपूजा प्रयत्नेन कर्तव्या श्रद्धयाऽत्र वै। सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोके महीयते।।७६।।

वसिष्ठकुण्डाद् विप्रेन्द्र! प्रत्यदिग्दलमाश्रितम्।
विख्यातं सागरंकुण्डं सर्वकामार्थसिद्धिदम्।
यत्र स्नानेन दानेन सर्वकामानवाप्नुयात्।।७७।।
पौर्णमास्यां समुद्रस्य स्नानाद्यत्पुण्यमाप्नुयात्।
तत्पुण्यं पर्वणि स्नातो नरश्चाऽक्षयमाप्नुयात्।।७८।।

तस्मादत्रविधानेनस्नातव्यंपुत्रकाङ्क्षया। आश्विनेपौर्णमास्यांतुविशेषात्स्नानमाचरेत्।।७९।।

व्रत तत्पर मनुष्य भाद्रमास की शुक्लापञ्चमी के दिन वसिष्ठ कुण्ड में यथाविधि सांवत्सरी यात्रा करें। जो मानव श्रद्धा के साथ तथा यत्नतः इस तीर्थ में विष्णुपूजा करता है, वह सर्वपाप रहित होकर विष्णुलोक में पूजित होता है। हे विप्रेन्द्र! वसिष्ठ कुण्ड के पश्चिम में विख्यात सागर कुण्ड है। यह सर्वकर्मार्थ सिद्धिप्रद है। यहां स्नान-दान करने से समस्त कामनाओं की प्राप्ति होती है। पर्वस्नान में भी मनुष्य अक्षय पुण्यलाभ करता है। अतएव पुत्र कामना से इस सागर कुण्ड में यथाविधि स्नान करना चाहिये। विशेषतः आश्विन पौर्णमासी के दिन इस तीर्थ में स्नान करें।।७५-७९।।

एवं कुर्वन्नरोविद्वान्सर्वपापैः प्रमुच्यते। अत्रस्नात्वा नरोदत्त्वा यथाशक्त्यादिवम्व्रजेत्।।८०।।

सागरान्नैर्ऋतेभागे योगिनीकुऽण्ढमुत्तमम्।
यत्राऽऽसते चतुःषष्टियोगिन्यो जलसंस्थिताः।।८१।।

सर्वार्थसिद्धिदाः पुंसांस्त्रीणाञ्चैवविशेषतः। परसिद्धिप्रदाःसर्वाः सर्वकामफलप्रदाः॥८२॥
आश्विने शुक्लपक्षस्य अष्टम्याञ्च विशेषतः।
स्नातव्यञ्च प्रयत्नेन योगिनीप्रीतयेनृभिः॥८३॥
अत्रस्नानंतथादानंसर्वंसफलताम्व्रजेत्। यक्षिणीप्रभृतयः सिद्धा भवन्त्यत्र नसंशयः॥८४॥
योगिनीकुण्डतः पूर्वमुर्वशीकुण्डमुत्तमम्। यत्र स्नातोनरोविद्वन्नुर्वशींदिविसंश्रयेत्॥८५॥
पुराकिल मुनिर्धीरो रैभ्योनामतपोधनः। चचारहिमवत्पार्श्वे निराहारोजितेन्द्रियः॥८६॥

विद्वान् मानव यह करके समस्त कलुष से मुक्त हो जाता है तथा यथाशक्ति स्नान-दान के प्रभाव से स्वर्ग गमन करता है। सागरकुण्ड के नैर्ऋत् कोण में उत्तम योगिनी कुण्ड है। इस योगिनी कुण्ड के जल में चौसठ योगिनी विद्यमान हैं। योगिनीगण मनुष्यों को तथा विशेषतः स्त्रियों को सर्वार्थसिद्धि प्रदान करती हैं। ये परमसिद्धिप्रद तथा सर्वकामफलप्रदा हैं। इन सब योगिनीगण की प्रसन्नता हेतु मानवगण आश्विन शुक्लाष्टमी के दिन योगिनी तीर्थ में अवश्य स्नान करें। हे विद्वान्! योगिनीकुण्ड में स्नान करके मानव स्वर्गस्थ उर्वशी को प्राप्त कर लेता है। पूर्वकाल में तपोधन जितेन्द्रिय धीमान् मुनि रैभ्य ने अनाहार (उपवासी) रहकर हिमालय के पार्श्व में तप किया था।।८०-८६।।

तत्तपो विपुलं दृष्ट्वा भीतः सुरपतिस्ततः। उर्वशीं प्रेषयामास तपोविघ्नाय चादरात्॥८७॥
ततः सा प्रेषिता तेनाजगाम गजगामिनी। उवास हिमवत्पार्श्वे रैभ्याश्रममनुत्तमम्॥८८॥
नवफुल्ललताकुञ्जे मञ्जुकूजद्विहङ्गमे। किन्नरीकेलिसङ्गीतस्तिमिताङ्गकुरङ्गके॥८९॥
पुन्नागकेशराशोकच्छिन्नकिञ्जल्कपिञ्जरे। कल्पिते काञ्चनगिरौ द्वितीय इव वेधसा॥९०॥
सा बभौ कान्तिसर्वस्वकोशःकुसुमधन्वनः। उर्वश्यनल्पसामान्यलावण्यामृतवाहिनी॥९१॥
अङ्गप्रभासुवर्णेन सितमौक्तिकशोभिता। तारुण्यरुचिरत्वेन तारुण्येन विभूषिता॥९२॥
विलोललोचनापाङ्गतरङ्गधवलत्विषा। नवपल्लवसच्छायं कल्पयन्ती निजाधरम्॥९३॥
कर्णोपलम्बिसङ्घुष्यद्भृङ्गाढ्यचूतमञ्जरी। सुधागर्भसमुद्भूता पारिजातलता यथा॥९४॥
तनुमध्या पृथुश्रोणिर्वर्णोद्भिन्नपयोधरा। निःशाणितशरस्येव शक्तिः कुसुमधन्वनः॥९५॥

महर्षि रैभ्य की विपुल तपस्या देखकर सुरराज इन्द्र ने भयभीत होकर उनके तप के नाशार्थ वहां उर्वशी को आदरपूर्वक भेजा। गजगामिनी उर्वशी देवराज द्वारा प्रेरित होकर वहां आकर हिमवान् के पार्श्व में अत्युत्तम रैभ्याश्रम में निवास करने लगीं। पक्षीगण उस कुञ्ज में मञ्जुल कूजन करते थे। वहां किन्नरीगण का केलि संगीत कुरंगकुल के अंगों में स्तिमित हो रहा था। पुन्नाग, केशर तथा अशोक पुष्पों का किंजल्क छिन्न होकर उस लताकुंज में चित्रित हो रहा था। उसे देखकर प्रतीत होता था कि कांचन शैल का यह लता कुंज विधाता का और एक मनोरम निर्माण था। सामान्य जन के लिये अलभ्य लावण्यामृतवाहिनी उर्वशी स्वर्ण के समान अपने शरीर की शोभा द्वारा श्वेत मौक्तिकभूषण से भूषित होकर ऐसी मनोरम कान्ति धारण कर रही थी, जिसे देखकर यह अनुमान हो रहा था कि मानो (पुष्प) कुसुम के बाणों से शोभासम्पत्ति समूह यहां एकत्र होकर पुंजीभूत हो रही है। उर्वशी यौवनोचित तारुण्य मनोहर गुणों से विभूषिता थी। उसकी निम्न दिक्‌गामिनी ईषत् वक्र दृष्टि स्वभाव से आरक्त

अधरोष्ठ पर पतित हो रही थी। विमल नेत्र की धवल कान्ति से अधरोष्ठ नवपल्लव की ईषत् ताम्र आभा धारण कर रहे थे। उसके कानों में आम्रमंजरी विराजमान थी। उस मंजरी के मधुपान लोभ के कारण मधुकरगण उस पर मड़राते गुनगुना रहे थे। उसके मनोहर कान आम्रमंजरी से भी सुकोमल थे। मानो उसके कानों पर लगी आम्रमंजरी सुधागर्भमय पारिजात ऐसी शोभित हो रही थी। उर्वशी का मध्यदेश क्षीण था, नितम्ब स्थूल थे। स्तनद्वय प्रशस्तपीवरवत् थे। उसे देखकर लग रहा था मानो ये कामदेव के तीक्ष्ण बाण हों।।८७-९५।।

अपश्यदाश्रमे तस्मिन्मुनिरायतलोचनाम्। नयनानलदाहेन विदग्धेन मनो भुवा।।९६।।
त्रिनेत्रवञ्चनायेव कल्पितां ललनातनुम्। तामाश्रमलतापुष्पकाञ्चीरचितकुण्डलाम्।।९७।।
विलोक्य तां विशालाक्षीं मुनिर्व्याकुलितेन्द्रियः।
बभूव रोषसन्तप्तः शशाप च बहु ज्वलन्।।९८।।

ऋषि रैभ्य ने अपने आश्रम के पास आयतलोचना उर्वशी को देखा। रैभ्य ने विचार किया—"अहो! मनोभव काम की यह क्या अूपर्व विज्ञता है। इन्होंने मदनदहनकारी की (शिव की) नेत्राग्नि से दग्ध होकर भी त्रिलोचन से वञ्चना करके ललनागण के देह की कल्पना की है।" रैभ्य ने यह भी देखा कि उर्वशी उनके ही आश्रम में लगे लता-पुष्प द्वारा काञ्ची तथा कर्णकुण्डल बना रही है। उस विशालाक्षी को देखकर रैभ्य की इन्द्रियां व्याकुल हो गयीं। उन्होंने अग्नि के समान क्रोधित होकर उर्वशी को अभिशप्त किया।।९६-९८।।

रैभ्य उवाच

कुरूपतां व्रजक्षिप्रं या त्वं सौन्दर्यगर्विता। समागता तपोविघ्नहेतवे मम सन्निधौ।।९९।।

रैभ्य कहते हैं—हे ललने! तुम सौन्दर्य से गर्वित होकर मेरा तप नष्ट करने के लिये मेरे आश्रम में आई हो। इसलिये तुम तत्काल कुरूप हो जाओ।।९९।।

अगस्त्य उवाच

इति शप्तारुषा तेन मुनिना सा शुभेक्षणा।
उवाच वनिता भूत्वा प्राञ्जलिर्मुनिमादरात्।।१००।।

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—रोषपरवश ऋषि रैभ्य ने जब शुभदर्शना उर्वशी को इस प्रकार से शापित किया तब उर्वशी अंजलिबद्ध होकर आदरपूर्वक मुनि से कहने लगी।।१००।।

उर्वश्युवाच

भगवन्मे प्रसीद त्वं पराधीनायतस्त्वहम्। त्वच्छापस्य कथं मुक्तिर्भवितानियतव्रत।।१०१।।

उर्वशी कहती है—हे भगवान्! मैं पराधीन नारी हूं। मेरे प्रति प्रसन्न हो जायें। हे व्रतशील! अब मुझे अपने शाप से मुक्त करिये।।१०१।।

रैभ्य उवाच

अयोध्यायामस्ति तीर्थं पावनंपरमं महत्। तत्रस्नानंकुरुष्वाऽद्यसौन्दर्यम्परमाप्नुहि।।१०२।।
त्वन्नाम्नैव च विख्यातिं तोयं यास्यति तद्ध्रुवम्।।१०३।।

रैभ्य कहते हैं—अयोध्या एक परमपावन तीर्थ है। तुम तत्काल वहां जाकर स्नान करो। इससे तुमको पुनः सुरूपता का लाभ होगा। आज से वह जल तुम्हारे नाम से प्रख्यात होगा। यह निश्चित है।।१०२-१०३।।

अगस्त्य उवाच

एवंसाविप्रवचसाविदधेसर्वमादरात्। सुन्दरी साऽभवत्क्षिप्रंतत्स्थानंख्यातिमाययौ॥१०४॥
अत्र स्नानंमुनिश्रेष्ठ यः कुर्याद्विधिवज्जनः। सौन्दर्यं परमं तस्य भवेत्तत्र न संशयः॥१०५॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—तदनन्तर उर्वशी ब्राह्मण के वाक्य का आदर करके अयोध्या गयी तथा उनके कहे सभी अनुष्ठान को सम्पन्न करके वह तत्काल पुनः सौन्दर्य युक्त हो गयी। जहां उसने स्नान किया था, उस स्थान का नाम उर्वशीकुण्ड कहा गया। हे मुनिप्रवर! जो मानव इस महातीर्थ में सविधि स्नान करता है, उसे परम सौन्दर्य की प्राप्ति हो जाती है। इसमें संशय नहीं है।।१०४-१०५।।

भाद्रे शुक्लतृतीयायां यात्राप साम्वत्सरी भवेत्।
विष्णुरत्र जनैः पूज्यः सर्वकामार्थसिद्धये॥१०६॥
एवंकुर्वन्नरोविद्वान्विष्णुलोकेवसेत्सदा। नरोवा यदिवानारीसर्वान्कामानवाप्नुयात्॥१०७।
घोषार्ककुण्डं परममुर्वशीकुण्डदक्षिणे। वर्तते मुनिशार्दूल! सर्वपापापहं सदा॥१०८॥
यत्र स्नानेन दानेन सूर्य्यलोके महीयते। एतत्तीर्थस्य सदृशं नापरं विद्यते क्वचित्॥१०९॥
व्रणी कुष्ठी दरिद्री वा दुःखाक्रान्तोऽपि यो नरः।
करोति विधिवत्स्नानं सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥११०॥
रविवारे विशेषण कर्त्तव्यं स्नानमादरात्।
भाद्रे मासि तथा माघे शुक्लषष्ठ्यां प्रयत्नतः॥१११॥
कर्त्तव्यंविधिवत्स्नानंसूर्यलोकाभिकाङ्क्षया। पौषेमासि तथा स्नाने सूर्यवारेविशेषतः॥११२॥
सप्तम्यां रवियुक्तायां स्नानं बहुफलप्रदम्। घोषाभिधोऽभवत्पूर्वं सूर्यवंशे नरेश्वरः॥११३॥

भाद्रमासीय शुक्ला तृतीया के दिन उर्वशीकुण्ड की संवत्सरी यात्रा होती है। मानवगण सर्वकामसिद्धि हेतु यहां विष्णुपूजा करते हैं। जो विद्वान् व्यक्ति ऐसा करते हैं, वे विष्णुलोक में निवास करते हैं। मनुष्य हो अथवा नारी ही हो, इस तीर्थ में सबकी सभी कामनायें पूरी हो जाती हैं। हे मुनिशार्दूल! उर्वशी कुण्ड के दक्षिण में परम घोषार्क कुण्ड विद्यमान है। इस कुण्ड में स्नान करने से सर्वपाप समूह नष्ट हो जाता है। यहां स्नान-दान करने से मानव सूर्यलोक में पूजित होता है। इस घोषार्क कुण्ड के समान अन्य तीर्थ कहीं नहीं हैं। व्रणी-कुष्ठी-दरिद्र तथा दुःखाक्रान्त मानव इस तीर्थ में यथाविधि स्नान करके सर्वकामना लाभ करते हैं। विशेषतः रविवार के दिन आदरपूर्वक इस कुण्ड में स्नान करना चाहिये। सूर्यलोककामी मानव भाद्र तथा माघ मासीय शुक्लपक्ष की षष्ठी के दिन प्रयत्नपूर्वक इस तीर्थ में यथाविधि स्नान करें। पौषमासीय रविवार को भी घोषार्क कुण्ड में स्नान करना प्रशस्त है। यदि यह रविवारी तिथि को पड़ती है, तब यह अधिक फलप्रदः होगी। पूर्वकाल में घोष नामक एक राजा सूर्यवंश में उत्पन्न हुये थे।।१०६-११३।।

समुद्रमेखलामेकः पृथिवीं समपालयत्। यस्यकीर्त्याप्रकाशन्तेत्रिलोकीमण्डलानिवै॥११४॥
यः प्रतापात्स्फुरन्भाति प्रभाकर इवाऽपरः। प्रचण्डतरदोर्दण्डखण्डितारातिमण्डलः॥११५॥
स कदाचित्प्रजापालो मन्त्रिविन्यस्तभूतलः। बभ्राम मृगयासक्तो वनेऽतिगहनद्रुमे॥११६॥

ये अद्वितीय राजा घोष समुद्र से परिवृता पृथिवी का सम्यक् शासन करते थे। उनकी कीर्त्ति से त्रैलोक्य मण्डल प्रकाशित था। वे अपने प्रताप से प्रदीप्त द्वितीय सूर्य की तरह प्रतिभात हो रहे थे। इनके प्रचण्ड प्रताप से दुर्दान्त शत्रुगण खण्डित हो जाते थे। ये प्रजापालक घोष एक बार अपने मन्त्रियों पर राज्य भार छोड़कर शिकार करने के विचार से पेड़ों से घिरे अरण्य में घूमने लगे।।११४-११६।।

स राजा पूर्वजन्मोत्थपापैरशुभसूचकैः।
कृमिव्याप्तकराम्भोजः सुन्दरोऽपि गतस्मयः॥११७॥
मृगयायामभूदेकः कदाचित्पर्यटन्वने। वराहसिंहहरिणान्निघ्नन्गच्छन्नितस्ततः॥११८॥
तृषाक्रान्तोम्लानतनुःसरोपश्यत्पुरो नृपः। ददर्शतत्रच मुनीन्स्नानसन्ध्यादितत्परान्॥११९॥
ततोविधिवदाचम्य स्नानञ्चक्रेनरेश्वरः। ततो दिव्यशरीरोऽभूदानन्दामलमानसः॥१२०॥
मुनिभिस्तीर्थमाज्ञाय चक्रेसूर्य्यस्तुतिं प्रियाम्॥१२१॥

राजा घोष परम सुन्दर थे। उनमें अहंकार नहीं था, तथापि उनके करकमल कृमियुक्त थे। पूर्वजन्म में उन्होंने जो पाप किया था, वह कृमियुक्त हाथ उसी का सूचक था। राजा घोष एकाकी ही मृगयार्थ वन में घूम रहे थे। उन्होंने वहां सिंह, वराह तथा हरिणों का वध किया तथा इतःस्ततः थककर प्यास से पीड़ित हो गये। वे म्लानमुख भी हो गये थे। तभी उन्होंने सामने एक सरोवर देखा। उन्होंने देखा कि मुनिगण वहां स्नान कर रहे हैं तथा सन्ध्यावन्दनादि में तत्पर हैं। तदनन्तर नरेश्वर घोष ने यथाविधि आचमन करके वहां स्नान किया। देखते-देखते उनका शरीर मनोहर हो गया। इस आनन्द के कारण उनका मन भी निर्मल हो गया। राजा को उन मुनिगण से यह ज्ञात हुआ कि यह एक तीर्थ है। वहां वे सूर्य को प्रिय लगने वाली स्तुति करने लगे।।११७-१२१।।

राजोवाच

भगवन्देवदेवेश नमस्तुभ्यं चिदात्मने। नमः सवित्रे सूर्याय जगदानन्ददायिने॥१२२॥
प्रभागेहाय देवाय त्रयीभूताय ते नमः। विवस्वते नमस्तुभ्यं योगज्ञाय सदात्मने॥१२३॥
पराय परमेशाय त्रिलोकीतिमिरच्छिदे। अचिन्त्याय सदातुभ्यं नमो भास्करतेजसे॥१२४॥
योगप्रियाय योगाय योगज्ञाय सदा नमः। ॐकाराय वषट्काररूपिणे ज्ञानरूपिणे॥१२५॥
यज्ञाय यजमानाय हविषे ऋत्विजे नमः। रोगघ्नाय स्वरूपाय कमलानन्ददायिने॥१२६॥
अतिसौम्यातितीक्ष्णाय सुराणाम्पतये नमः।
सत्रासायनमस्तुभ्यंभक्तत्राय प्रियात्मने॥१२७॥
प्रकाशकाय सततं लोकानांहितकारिणे। प्रसीद प्रणतायाऽद्य मह्यं भक्तिकृतेस्वयम्॥१२८॥

राजा कहते हैं—हे भगवान्! आप चिदात्मा हैं। हे देवदेवेश! आपको प्रणाम! मैं ज्ञानानन्द दाता सविता

सूर्य को नमस्कार करता हूं। योगप्रिय, योगरूप तथा योगज्ञ को प्रणाम! जो यज्ञ, यजमान, हरि तथा ऋत्विक् हैं, मैं उन सूर्य को प्रणाम करता हूं। जो पद्म को आनन्द देने वाले (अर्थात् सूर्योदय होने पर पद्म खिलता है) हैं, जिनका स्वरूप अतीव सौम्य है, जो अतितीक्ष्ण हैं, उन रोगघ्न हरिरूप को प्रणाम! हे प्रियात्मा! आप यज्ञमुक् हैं तथा भक्त के त्राता हैं। आपको प्रणाम! आप सतत् प्रकाशमान तथा लोकहितकारी हैं। मैं आपके प्रति भक्ति करता हूं। मैं प्रणत हूं। अब मुझ पर आप प्रसन्न हों।।१२२-१२८।।

अगस्त्य उवाच

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य स प्रसन्नोरविःस्वयम्। आविर्बभूवसहसा भक्तस्यप्रियकाम्यया।
उवाच मधुरं वाक्यं प्रश्रयानतमूर्द्धजम्।।१२९।।

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—राजा घोष द्वारा इस प्रकार से स्तुति करने से सूर्यदेव उन पर प्रसन्न हो गये। वे भक्त का प्रिय करने के लिये सहसा आविर्भूत होकर मधुर वाणी द्वारा राजा से कहने लगे।।१२९।।

रविरुवाच

वरम्वरय राजेन्द्र! प्रसन्नोऽस्मि तवाग्रतः। ददामि तद्वरं तेऽद्ययत्त्वयामनसेप्सितम्।।१३०।।

सूर्यदेव कहते हैं—हे राजेन्द्र! मैं प्रसन्न होकर तुम्हारे समक्ष आया हूं। वर मांगों। तुम जो भी वर मांगोगे, वह मैं प्रदान करूंगा।।१३०।।

राजोवाच

भगवन्भास्कराऽनन्त! प्रयच्छसिवरं यदि। मन्नाम्ना कृतमूर्त्तिस्तेतिष्ठत्वत्रसदाविभो।।१३१।।

राजा कहते हैं—हे प्रभु भगवान् भास्कर! हे अनन्त! यदि आप वरदान देना चाहते हैं, तब आप मेरे नाम से यहां मूर्त्ति रूप से सदा निवास करिये।।१३१।।

रविरुवाच

एवमस्तु मनुष्येन्द्रतववाञ्छामनोहरा। एतत्स्तोत्रंत्वयोक्तं मे ये पठिष्यन्तिमानवाः।।१३२।।
तेभ्यस्तुष्टः प्रदास्यामि सर्वान्कामान्नरेश्वरः।
तत्तत्स्थानं परांख्यातिं त्वन्नाम्ना यास्यति क्षितौ।।१३३।।
सर्वान्कामानवाप्नोति योऽत्र स्नानं समाचरेत्। मद्भक्तेनसदाराजन्कर्त्तव्यंस्नानमत्र वै।।१३४।।
यं यं काममिहेच्छेत तं तं काममवाप्नुयात्।।१३५।।

सूर्यदेव कहते हैं —हे मनुजेन्द्र! यही हो। तुम्हारी अभिलाषा अत्यन्त मनोरम है। हे नरेश्वर! जो सब लोग तुम्हारे द्वारा पठित मेरा यह स्तव पाठ करेंगे, मैं उनके प्रति प्रसन्न होकर समस्त अभिलाषा प्रदान करूंगा। यह स्थान पृथिवी पर तुम्हारे नाम से प्रसिद्ध होगा। जो मानव यहां स्नान करेगा, उसकी सब इच्छा पूर्ण होगी। हे राजन्! मेरा भक्त यहां सतत् स्नान करे। वह यहां जो कामना करेगा, उसे वह सब लाभ होगा।।१३२-१३५।।

इति दत्त्वा वरंदेवः कृपया परया युतः। भास्वान्सहस्त्रकिरणस्तदाऽन्तर्द्धानमाययौ।।१३६।।
राजा भास्करदेहोत्थां रविमूर्त्तिमनुत्तमाम्। तत्रसंस्थापयामासपूजयामासचस्वयम्।।१३७।।

घोषार्ककुण्डं तन्नाम्ना तत्र ख्यातिंजगामह।
यत्र स्नानान्नरो राजन्सूर्य्यलोकेवसेत्सदा॥१३८॥
इति रुचिरविधानैस्तूर्णमादित्यमूर्त्तिं विमलपरम भक्त्या पूजयित्वाऽऽदरेण।
तदमृतमयकुण्डे स्नानमादौ विधाय प्रचुरविमलकीतिः सूर्यलोकेवसेत्सः॥१३९॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये बृहस्पतिकुण्डरुक्मिणीकुण्डधनयक्षतीर्थवसिष्ठकुण्डसागरकुण्डयोगिनीकुण्डोर्वशीकुण्डघोषार्क-कुण्डमाहात्म्य वर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः।।७।।

अगस्त्य कहते हैं—सहस्रकिरण देव सूर्य परम कृपा परायण होकर यह वरदान देने के उपरान्त वहां से अन्तर्हित् हो गये। मेदिनी पति घोष भी सूर्यदेव के देह से उत्थित अत्युत्तम प्रतिमूर्त्ति को वहां संस्थापित करके उनकी पूजा करने लगे। तब से यह तीर्थ राजा घोष के नाम के अनुसार घोषार्क कुण्ड नाम से प्रसिद्ध हो गया। राजा घोष ने इसी प्रकार् मनोज्ञ विधान से विमल मन तथा परम भक्ति के आनन्दपूर्वक आदित्य मूर्त्ति का पूजन किया तथा उस अमृतमय कुण्ड में स्नान करके प्रचुर विमल कीर्त्तियुक्त होकर सूर्यलोक में गमन किया।।१३६-१३९।।

।।सप्तम अध्याय समाप्त।

❖❖❖

अष्टमोऽध्यायः

रतिकुण्ड, महारत्नतीर्थ, दुर्भर महामरतीर्थ, महाविद्यातीर्थ, सिद्धपीठक्षीरेश्वर-सीताकुण्ड-सुग्रीवतीर्थ, हनुमत् कुण्ड, विभीषण सरतीर्थ-अयोध्या यात्रा विधिक्रम वर्णन-देव गौ आविर्भाव वर्णन, शीतलातीर्थ वर्णन महाक्षेत्र महिमा

अगस्त्य उवाच

घोषार्कतीर्थाद्विप्रर्षे पश्चिमे दिक्तटे स्थितम्। रतिकुण्डमिति ख्यातं सर्यपापहरंसदा॥१॥
यत्र स्नानेन दानेन परां कान्तिमवाप्नुयात्। तत्पश्चिमदिशाभागे कुसुमायुधनामकम्॥२॥
कुण्डं प्रसिद्धमतुलं सर्वकामार्थसिद्धये। यत्र स्नानेन दानेन कन्दर्पसदृशाकृतिम्।
लभते ना विधानेन मुने! नास्त्यत्र संशयः॥३॥
रतिकुण्डे तथां विप्र! कुसुमायुधकुण्डके। श्रद्धया कुरुते स्नानं ससौख्यपरमोभवेत्॥४॥

कुण्डद्वयेत्र मिथुनं यत्स्नानं कुरुते किल। रतिकामाविवख्यातौसदातौसुन्दरौतदा॥५॥
तस्मादत्र विधानेन स्नातव्यं धर्मकाङ्क्षिभिः। दानं देयंयथाशक्त्या रतिकन्दर्पतुष्टये॥६॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—हे विप्रर्षि! घोषार्क तीर्थ के पश्चिमोत्तर दिक्भाग में सतत् विख्यात सर्वपापहारी रतिकुण्ड विद्यमान है। इसमें स्नान करके मनुष्य परमकान्तिमान् हो जाता है। रति कुण्ड के पश्चिम में कुसुमायुध नामक प्रख्यात कुण्ड है। यह कुसुमायुध कुण्ड सर्वसिद्धिप्रद है। इसकी कहीं तुलना नहीं है। हे मुनिवर! मनुष्य इस कुण्ड में स्नान-दान करके सर्वत्र सुखलाभ करता है। इसमें सन्देह नहीं है। हे विप्र! जो मानव रति तथा कुसुमायुध (कामदेव) इन दोनों कुण्ड में स्नान करता है, उसे कामदेव के समान परम सौन्दर्य का लाभ होता है। अतएव इन कुण्डद्वय में यथाविधि स्नान करें। विशेषतः धर्म चाहने वाला मानव रति-कामदेव की प्रसन्नतार्थ इस तीर्थ में यथाशक्ति दान भी प्रदान करें।।१-६।।

भवेतां नियतं तस्य सन्तुष्टौ रतिमन्मथौ। माघे विशदपञ्चम्यांयत्र स्नानंशुभप्रदम्॥७॥
रतिकुण्डे पुरः स्नात्वा पश्चात्कन्दर्प्पकुण्डके। स्नातव्यं तद्दिनेविप्रमिथुनेनप्रयत्नतः॥८॥
रतिकन्दर्प्पयोः पूजा विधातव्या विशेषतः। वस्त्रादिभिरलङ्कारैः सम्पूज्यौ द्विजदम्पती॥९॥
सर्वान्कामानवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा॥१०॥
चन्द नागुरुकर्पूरकस्तुरीकुङ्कुमादिभिः। वासोभिर्विविधैः पुष्पैः पूजयेद्द्विजदम्पती॥११॥
एवं कृते न सन्देहो रतिकन्दर्पतुष्टये। तद्व्रजेन्मिथुनं विप्र! रतिकन्दर्प्पतुल्यताम्॥१२॥
कुसुमायुधकुण्डात्तु प्रतीच्यां दिशि सस्थितम्।
मन्त्रेश्वर इति ख्यातं तत्स्थानं भुवि दुर्लभम्॥१३॥
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा मन्त्रेश्वरं विभुम्। न तेषांपुनरावृत्तिःकल्पकोटिशतैरपि॥१४॥

इस प्रकार से करने वाले मनुष्य दम्पति के प्रति कामदेव तथा रति सतत् प्रसन्न होते हैं। हे विप्र! माघमासीय शुक्ला पञ्चमी तिथि के दिन कुण्डद्वय में स्नान शुभप्रद है। पति-पत्नी मिलकर प्रथमतः रविकुण्ड में तत्पश्चात् कामकुण्ड में प्रयत्नतः स्नान करें। तदनन्तर यत्नतः रति तथा कामदेव की पूजा करके वस्त्रालंकारादि द्वारा द्विजदम्पति की अर्चना करें। इस प्रकार से सर्वाभीष्ट लाभ होता है। इसमें संशय नहीं है। तदनन्तर चन्दन-अगुरु-कर्पूर-कस्तूरी-कुंकुम तथा विविध वस्त्र तथा पुष्पों से द्विज दम्पति की पूजा करें। हे द्विज! जो मनुष्य ऐसा करता है, वह रति कामदेव जैसा होकर दाम्पत्य सुख का अनुभव करता है। हे विप्र! कुसुमाधव कुण्ड में पश्चिम की ओर विख्यात महेश्वर कुण्ड स्थित है। यह महेश्वर कुण्ड भूमण्डल में दुर्लभ है। जो मानव इस तीर्थ में स्नान करता है तथा विभु महेश्वर का दर्शन करता है, शतकोटि कल्पों में भी उसका पुनर्जन्म नहीं होता।।७-१४।।

पुरा रामो देवकार्यं विधायामलकर्मकृत्। कालेन सह सङ्गम्य मन्त्रं चक्रे नरेश्वरः॥१५॥
स्वर्गं प्रति प्रयाणाय यत्रस्नातोजितेन्द्रियः। तत्रैवस्थापितं लिङ्गंमन्त्रेश्वरइतिश्रुतम्॥१६॥
तदुत्तरे सरो रम्यं कुमुदोत्पलमण्डितम्। तत्र स्नानं तथा दानं नानाफलमुत्तमम्॥१७॥

पूर्वकाल में अमल कर्म वाले नरेश्वर रामचन्द्र देवकार्य को सम्पन्न करके काल के साथ यहीं मन्त्रणा कर रहे थे। जितेन्द्रिय राम ने स्वर्ग जाने की कामना से इस महेश्वर तीर्थ में स्नान किया। यहां महेश्वर नामक

विश्रुत लिङ्ग विराजित है। महेश्वर के उत्तर में एक रम्य सरोवर है। वह कुमुद तथा कमल माला से अलंकृत है। इस सरोवर में स्नान-दानादि से अत्युत्तम फल मिलता है।।१५-१७।।

चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां यात्रा साम्वत्सरी स्मृता। तत्र स्नानेनदानेनब्राह्मणानांचपूजनात्।
अक्षयं स्वर्गमाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा॥१८॥
मन्त्रेश्वरस्य महिमा नहि केनापि शक्यते। सम्यग्वर्णयितुं विप्र! य उत्तमफलप्रदः।
मन्त्रेश्वरसमं लिङ्गं न भूतं न भविष्यति॥१९॥
सुगन्धिपुष्पधूपादिकुसुमाद्यनुलेपनैः। पूजनीयः प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धिदः॥२०॥
एवं कृते न सन्देहो मुक्तिस्तस्य करे स्थिता। तत्रैवोत्तरभागे तु शीतला वर्त्ततेऽनघ॥२१॥
तां सम्पूज्य नरो विद्वान्सर्वपापैः प्रमुच्यते। सर्वदा पूजनं तस्यां सोमवारेविशेषतः।
कर्त्तव्यं सुप्रयत्नेन नृभिः सर्वार्थसिद्धये॥२२॥
विस्फोटकादिकभये नरैश्च समुपस्थिते। कर्तव्यं पूजनं सम्यग्रोगादिभयनाशनम्॥२३॥
तदुत्तरे तु तत्रैव देवी बन्दीति विश्रुता। यस्याः स्मरणमात्रेण निगडादिभयं नहि॥२४॥
राज्ञा क्रुद्धेन वे बद्धाः शृङ्खलानिगडादिभिः।
बन्दीं संस्मृत्य देवीं तु मुक्ताः स्युस्तत्क्षणाद्धि ते॥२५॥

चैत्र शुक्ला चतुर्दशी को इस तीर्थ की संवत्सरी यात्रा होती है। इस तीर्थ में स्नान, दान करें तथा ब्राह्मण भोजन आदि से ब्राह्मण की अर्चना करें। इससे अक्षय स्वर्गलाभ होता है। हे विप्र! कोई इस उत्तम फलप्रद मन्त्रेश्वर की महिमा का सम्यक् वर्णन करने में समर्थ नहीं है। मन्त्रेश्वर के समान लिंग ही नहीं है। होगा भी नहीं। परम प्रयत्नपूर्वक सुगन्धि धूप, दीप, पुष्प तथा अनुलेपनादि से सर्वकामार्थ सिद्धिप्रद लिङ्गेश्वर की पूजा करें। ऐसा करने से मुक्ति मानवों के लिये करतलगत हो जाती है। इसमें सन्देह नहीं है। हे अनघ! मन्त्रेश्वर के उत्तर दिक्भाग में शीतला देवी विद्यमान हैं। विद्वान् मानव शीतला की सम्यक् पूजा द्वारा समस्त कलुष से दूर हो जाता है। सभी काल में शीतला की पूजा हो सकती है। विशेषतः सोमवार को सर्वार्थसिद्धि कामना वाला व्यक्ति यत्नतः शीतला की पूजा करे। विस्फोटक आदि भीति होने पर मानवगण शीतला पूजा करे। शीतला की सम्यक् पूजा होने पर रोग आदि भय नष्ट हो जाते हैं। शीतला के उत्तर में शीतला के पास में ही विश्रुता बन्दीदेवी विद्यमान हैं। बन्दीदेवी के स्मरण से ही निगड़ादि बन्धभय दूर हो जाता है। जो राजकोप के कारण निगड़ शृङ्खलादि से बद्ध हो जाते हैं, बन्दी देवी के स्मरण से वे मुक्त होते हैं। इसमें सन्देह ही नहीं है।।१८-२५।।

यात्रा तस्याः प्रयत्नेन कर्तव्या यत्नतोनरैः। मङ्गलेहिविशेषेणसर्वकामार्थासिद्धिदा॥२६॥
गन्धैःपुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैरति च सुव्रत!। नैवेद्यैर्विविधैर्वाऽपि पूजनीया प्रयत्नतः॥२७॥
वन्दीप्रीत्यैमुनिश्रेष्ठ! देयं ब्राह्मणभोजनम्। एवं कृते नसन्देहः सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥२८॥
तदुत्तरस्मिंस्तत्रैव चुडकी भुविकीर्त्तिता। वर्ततेपरमासिद्धिरूपिणीस्मरणान्नृणाम्॥२९॥

सुसंदिग्धेषु कार्येषुभयेचसमुपस्थिते। यस्याः स्मरणतो नृणांसर्व सिद्धिःप्रजायते॥३०॥
अग्रे तस्याः सदाकार्यानृभिरङ्गुष्ठतोध्वनिः। दीपदानं प्रयत्नेन कर्त्तव्यंनियतात्मभिः॥३१॥
सर्वाभीष्टप्रदं नृणां दीपदानं प्रशस्यते। चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां तस्या यात्रा विनिर्मिता॥३२॥

हे सुव्रत! मनुष्य यत्नतः बन्दी देवी की यात्रा करे। विशेषतः मानव मंगलवार को सर्वकार्य सिद्धिप्रदा बन्दी देवी की गन्ध-पुष्प-धूप-दीप तथा विविध नैवेद्य से प्रयत्नपूर्वक पूजा करें। हे मुनिप्रवर! बन्दी देवी को प्रसन्न करने हेतु ब्राह्मणों को भोजन दान करना चाहिये। यह करने से मनुष्य की कामना निःसंदेह पूर्ण हो जाती है। इसमें संदेह नहीं है। बन्दी देवी के उत्तर में उनके समीप चूडूकी स्थित हैं। ये परमा सिद्धिरूपा हैं। मनुष्य को इनके स्मरण से ही प्रसिद्ध विषयों की सिद्धि प्राप्त हो जाती है। किसी प्रकार का भय उपस्थित होने पर तथा संदिग्ध कार्यों में इनके स्मरण से सर्वसिद्धि लाभ होता है। नियतात्मा मनुष्यगण को चूडूकी देवी के पास जाकर पहले अंगुष्ठध्वनि करके यत्नतः दीपदान करना चाहिये। चुडूकी के समीप दीपदान द्वारा मानवगण को सर्वाभीष्ट फल मिलता है। प्रत्येक चतुर्दशी के ही दिन चुडूकी की यात्रा निर्दिष्ट की गयी है।।२६-३२।।

ततः पूर्वदिशाभागे वर्त्तते तीर्थमुत्तमम्। महारत्नइतिख्यातं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्॥३३॥
यत्र स्नानेनदानेनपूजयाचद्विजन्मनाम्। सर्वकामार्थसिद्धिःस्यान्नात्रकार्याविचारणा॥३४॥
भाद्रे कृष्णचतुर्दश्यां यात्रा साम्वत्सरी स्मृता।
यात्राऽऽस्ते किल मुख्याऽस्य महारत्ना इति श्रुता॥३५॥
महारत्नइति ख्यातं तस्मात्तीर्थमनुत्तमम्। तत्र दानं प्रकर्त्तव्यं द्विजसन्तोषकारकम्॥३६॥
नारीभिरपि विप्रर्षे कर्त्तव्यो जागरोत्सवः। वीर्यसौभाग्यसम्पन्नसर्वसौख्यायसर्वदा।
तत्र स्नानं प्रयत्नेन कर्त्तव्यं श्रद्धया नरैः॥३७॥
ततो नैर्ऋत्यदिग्भागे दुर्भराख्यं सरःशुभम्। वर्तते सुकृतोदारं महाभरसरस्तथा॥३८॥

चुडूकी के पूर्व दिक्भाग में सर्वतीर्थोत्तम उत्तमतीर्थ विख्यात महारत्न विद्यमान है। इस महारत्न तीर्थ में स्नान-दान-द्विजगण की पूजा करने से सर्वकार्य सिद्ध हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है। भाद्रकृष्ण चतुर्दशी के दिन महारत्न तीर्थ की सांवत्सरी यात्रा सुसमाहित होती है। इस मुख्य यात्रा का नाम है विश्रुता महारत्ना। इसीलिये इस अत्युत्तम तीर्थ का नाम है महारत्न! इस तीर्थ में द्विजगण के सन्तोष साधनार्थ दान करना चाहिये। हे विप्रर्षि! नारीगण भी यहां जागरणोत्सव सुसमाहित करें। मनुष्यगण यहां वीर्य, सौभाग्य, सम्पत्ति तथा सुखप्राप्ति हेतु श्रद्धा तथा यत्न के साथ सतत् इस तीर्थ में स्नान करें। महारत्नतीर्थ के नैर्ऋत् दिक् भाग में दुर्भर नामक शुभ सरोवर विद्यमान है। यहां सुकृतोदर महाभर नामक एक और सरोवर भी है।।३३-३८।।

तत्र स्नानादवाप्नोति सदा स्वर्गपदं नरः। धनं बहुविधं देयंवासांसि विविधानि च॥३९॥
शिवपूजाप्रकर्त्तव्या स्नात्वा कुण्डद्वये नरः। नानाविधेन भावेन भक्त्यापरमयायुतैः॥४०॥
गन्धादिभिः शुभैः पुष्पैरर्च्चनीयो महेश्वरः।
नीलकण्ठोऽन्धकारातिराराध्यो योगिनामपि॥४१॥
इति ध्यात्वा शिवंसार्द्धंनिष्पापंप्रयतोनरः। सर्वकामानवाप्याशुशिवलोकेमेवसेत्सदा॥४२॥

एवं कृत्वा नरो विप्र सर्वपापैः प्रमुच्यते। महाभरे वरे तीर्थे तथा दुर्भरसञ्ज्ञके॥४३॥

भाद्रकृष्णाचतुर्दश्यां यः कुर्य्याच्छ्रद्धयाऽन्वितः।

शिवपूजाञ्च विधिवद्द्विजपूजां विशेषतः॥४४॥

यः करोति नरोभक्त्या शिवलोके स सम्वसेत्। एवंकुर्वन्नरोविद्वान्नमुह्यतिकदाचन॥४५॥

विष्णुरुद्रौ चतस्यातिसुप्रसन्नौ सनातनौ। तयोः स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥४६॥

मानव इस सरोवरद्वय में स्नान करके बहुविध धन तथा विविध वस्त्र दान करके विविध प्रकार से परम भक्तिपूर्वक गन्धादि तथा सुशोभन पुष्पों द्वारा महेश्वर शिव का पूजन करें। शिव का ध्यान इस प्रकार से है। यथा—अन्धक शत्रु नीलकण्ठ योगीगण के आराध्य हैं। मानव निष्कलुष शिव का ध्यान इस प्रकार करे। इससे उसकी कामनायें शीघ्र प्राप्त हो जाती हैं तथा वह सतत् शिवलोक में निवास करता है। हे विप्र! मनुष्य इस प्रकार से सर्वपापरहित हो जाता है। तीर्थप्रवर महाभर तथा दुर्भर सरोवरद्वय में जो मनुष्य श्रद्धाभक्ति के साथ भाद्रकृष्ण चतुर्दशी के दिन यथाविधि शिवपूजा तथा विशेषत भक्ति के साथ द्विजपूजा करता है, वह सतत् शिवलोक में निवास करता है। जो विद्वान् मानव ऐसा करता है, वह कदापि मोहित नहीं होता। सनातन विष्णु तथा रुद्र सदा उन पर प्रसन्न हो जाते हैं। उनके स्मरण मात्र से व्यक्ति सर्वपाप रहित हो जाता है।।३९-४६।।

अतः किं बहुनोक्तेन विप्र! तीर्थमनुत्तमम्। सर्वपापौघशमनं सर्वाभीष्टकरं सदा॥४७॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि तीर्थमन्यच्छुभावहम्।

यत्र यात्रा तथा दानं विना भाग्यं न सम्भवेत्॥४८॥

ईशानेदुर्भरस्थानान्महाविद्याभिधंमहत्। तस्यदर्शनतोनृणांसिद्धयःस्युःकरेस्थिताः॥४९॥

तदग्रे सरसि स्नात्वा महाविद्यां तु यो नरः।

पश्यति श्रद्धया भक्त्या स याति परमां गतिम्॥५०॥

सिद्धपीठंतथाख्यातंसम्यक्प्रत्ययकारकम्। तत्र पूजाविधातव्याभक्त्यापरमयाद्विज!॥५१॥

मन्त्रं यः श्रद्धया विप्र शैवंशाक्तमथापिवा।

गाणपत्यं वैष्णवं वा तत्र यः प्रयतोनरः॥५२॥

एकाग्रमानसोविद्वन्नाराध्यावर्तयेत्सदा। तस्यसिद्धिर्भवेन्नित्यं चमत्कारोभवेद्द्विज॥५३॥

हे द्विज! अधिक क्या कहूं? ये तीर्थ अत्युत्तम, सर्वपापहारी तथा सभी अभीष्ट को प्रदान करने वाले हैं। अब मैं अन्य ऐसे तीर्थों का वर्णन करता हूं जो शुभप्रद हैं, तथापि वहां की यात्रा तथा वहां दान कर सकना बिना उत्तमभाग्य के संभव ही नहीं है। यह तीर्थरूप उत्तम सरोवर अत्यन्त दुर्लभ है तथा दुर्भर से ईशानकोण में विद्यमान है। इस महातीर्थ का नाम है महाविद्या। इस महाविद्या तीर्थ के दर्शन मात्र से मनुष्यों को सिद्धियां करतलगत हो जाती हैं। महाविद्या के पुरोभाग में एक सरोवर विद्यमान है, जो मनुष्य पहले इस सरोवर में स्नान करके श्रद्धा भक्तियुक्त होकर इस महाविद्या तीर्थ का दर्शन करता है, उसे परमगति की प्राप्ति होती है। इस महाविद्यातीर्थ में एक विख्यात सिद्धपीठ है। यह सिद्धपीठ सम्यक् प्रत्ययकारक है। (प्रत्यय कारक = श्रद्धाकारक) अर्थात् यह सम्यक् श्रद्धा को जन्म देने वाला सिद्धपीठ है। इसकी श्रद्धाभक्ति के साथ पूजा करनी चाहिये। हे

द्विज! जो मानव परम श्रद्धा के साथ शैव-शाक्त-गाणपत्य किंवा वैष्णवमन्त्र द्वारा एकाग्र मन से आराधना करके सिद्धपीठ के समीप सतत् निवास करता है, हे विद्वान्! उसे अपूर्व सिद्धिलाभ होता है।।४७-५३।।

तस्मादत्रप्रकर्तव्यं जपादिकमतन्द्रितैः। अष्टम्याञ्चनवम्याञ्चयात्रास्यात्प्रतिमासिकी।।५४।।
देयान्यन्नानि बहुशो नानाविधफलानिच। क्षीरेण स्नपनं कार्यं पूजनीया प्रयत्नतः।।५५।।
उच्चाटनादीन्यपि च मोहनादिविशेषतः। अत्रस्थानेविशेषेणदुष्टमन्त्रोऽपिसिध्यति।।५६।।
सिद्धस्थाने परं मोक्षं वशीकरणमुत्तमम्। जपो होमस्तथा दानं सर्वपक्षयतां व्रजेत्।।५७।।
आश्विने शुक्लपक्षस्य नवरात्रिषु सुव्रत!। यत्र गत्वा नरो विप्र! सर्वपापैः प्रमुच्यते।।५८।।
यदा पूर्वं विनिर्ज्जित्य रावणं लोकरावणम्। समागतोरघुपतिः सीतालक्ष्मणसंयुतः।।५९।।
यत्र गत्वा पदा वीरो भरतोरामकाङ्क्षया। स्थितः सानुचरःश्रीमाञ्छ्रियापरमयायुतः।।६०।।
तत्रागमत्सुरगवी प्रादुर्भूता स्रवत्स्तनी। तत्स्तनेभ्यःप्रसुस्राव दुग्धं बहुणाधिकम्।।६१।।

अतएव अतन्द्रित मानव इस सिद्धपीठ में जप आदि करे। प्रत्येक मास की अष्टमी तथा नवमी तिथि के दिन इस सिद्धपीठ की मासिक यात्रा की जाती है। इसमें यहां अनेक अन्नदान तथा फलदान करना चाहिये। तब प्रयत्न पूर्वक क्षीर द्वारा पीठ को स्नान कराकर पूजा करें। इस पीठ में उच्चटनादि तथा मोहनादि की सिद्धि होती है। यहां परम मोक्षलाभ होता है तथा वशीकरण के लिये भी यह पीठ उपाय रूप है। यहां जप, होम, दानादि सभी अक्षय फलजनक हो जाता है। हे सुव्रत द्विज! आश्विन शुक्ला नवरात्रि के समय मनुष्य इस तीर्थ में आकर सर्वपापरहित हो जाता है। पूर्वकाल में सीता तथा लक्ष्मण के साथ रघुपति ने लोकों को रुलाने वाले रावण का वध किया तथा वे यहां आये। तभी अपने अनुचरगण के साथ श्रीमान् भरत भी राम की दर्शनाभिलाषा लेकर यहां आये तथा अत्यन्त प्रसन्न हो गये। तत्पश्चात् दोनों राजाओं (राम तथा भरत) के आगमन के पश्चात् देवलोक से प्रशस्त स्तनधारिणी देवसुरभि गौ भी उस समय उनके स्तन से नानागुणयुक्त दूध पृथिवी पर गिर रहा था।।५४-६१।।

तद्भूमिपतितं दुग्धं दृष्ट्वा वानरराक्षसाः। विस्मयं परमं जग्मुः पप्रच्छुस्ते चराचरम्।।६२।।
किमेतदिति राजेन्द्र! तानुवाच रघूद्वहः। वसिष्ठो वेत्तितत्सर्वं पृच्छामस्तंमुनिंवयम्।।६३।।
इत्युक्तास्तु ततःसर्वेवसिष्ठप्रमुखेस्थिताः। ते पप्रच्छुः प्राञ्जलयः कृत्वाचाग्रेसरंनृपम्।।६४।।
वसिष्ठोऽपि क्षणं ध्वात्वा तमुवाच निराकुलम्।
राघवम्प्रति सम्बोध्य सर्वेषामग्रतो मुनिः।।६५।।

प्रचुर मात्रा में पृथिवी पर गिर रहे दुग्ध को देखकर वानर तथा राक्षसगण अत्यन्त विस्मित हो गये। तब उन्होंने प्रभु राम के पास जाकर पूछा—"हे राजेन्द्र! यह क्या है?" राम ने उनसे कहा—"इस विषय से महर्षि वसिष्ठ सम्यक् रूपेण अवगत हैं। अब हम सब उन मुनि से पूछें।" यह निश्चित करके सभी राम को आगे करते हुए वसिष्ठ के पास आये। सभी हाथ जोड़कर उनके समक्ष बैठ गये। उन लोगों ने महर्षि से सुरभि के सम्बन्ध में प्रश्न किया। उस प्रश्न को सुनकर मुनिगण में अग्रणी महर्षि वसिष्ठ क्षण पर्यन्त ध्यान करके निराकुल राघव से कहने लगे। जो समस्त प्रश्नकर्त्ताओं में अग्रणी थे।।६२-६५।।

वसिष्ठ उवाच

श्रृणुराम महाबाहो कामधेनुरियं शुभा। समागता तव स्नेहात्प्रस्त्रवन्ती स्तनात्पयः॥६६॥
दुग्धमध्येसमुद्भूतोरुद्रस्त्वांद्रष्टुमागतः। निष्पन्नकार्य्यंदेवानांनिर्जितारातिमुत्तमम्॥६७॥
इमं सम्पूजय क्षिप्रमेतत्कुण्डस्य सन्निधौ। शीघ्रं तवमपि यत्नेन पूजयेमंशिवंशुभम्।
दुग्धेश्वरमितिख्यातं क्षीरकुण्डे पवित्रकम्॥६८॥

वसिष्ठ कहते हैं—हे महाबाहु राम! सुनिये। ये ही कल्याणप्रदा कामधेनु हैं। तुम्हारे प्रति स्नेह के कारण कामधेनु अपने स्तनों से दुग्ध क्षरण करते-करते देवलोक से यहां आई हैं। यह देखिये! आपके दर्शनों की कामना के ही कारण इनके दुग्ध क्षरित स्तनों से रुद्रदेव उद्भूत हो गये हैं। आपने शत्रुकुल का ध्वंस करके देवगण का उत्तम कार्य किया है। अब इस कुण्ड में शीघ्रता पूर्वक इन शुभप्रदायक शिव की पूजा करिये। इस परम पवित्र क्षीरकुण्ड से समुद्भूत रुद्र अब दुग्धेश्वर नाम द्वारा विख्यात होंगे।।६६-६८।।

अगस्त्य उवाच

ततो रघुपतिः श्रीमान्वसिष्ठोक्तविधानतः। पूजयामासतल्लिङ्गंदुग्धेश्वरमिति स्मृतम्॥६९॥
सीतयासत्कृतंयस्मात्तत्कुण्डंक्षीरसङ्गमम्। सीताकुण्डमितिख्यातिंजगामानुपमांततः॥७०॥
सीताकुण्डेनराः स्नात्वादृष्ट्वादुग्धेश्वरंप्रभुम्। सर्वपापैःप्रमुच्यन्तेनात्रकार्याविचारणा॥७१॥
अत्रस्नानंजपोहोमोदानञ्चाक्षयताम्व्रजेत्। सीताकुण्डेतुसम्पूज्यसीतारामौसलक्ष्मणौ॥७२॥
दुग्धेश्वरञ्च सन्पूज्य सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
जेष्ठेमासि चतुर्दश्यां यात्रा साम्वत्सरी स्मृता॥७३॥
एवं यो विधिवत्कुर्याद्दयाधर्मविशारदः। स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा नशोचति॥७४॥

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—तत्पश्चात् श्रीमान् रघुपति राम ने वसिष्ठदेव द्वारा उपदिष्ट विधान द्वारा दुग्धेश्वर नामक उन शिव की सम्यक् पूजा किया। देवी सीता ने भी उस क्षीरकुण्ड का आदर किया। मनुष्यगण इस सीताकुण्ड में स्नान करने के उपरान्त दुग्धेश्वर रुद्रदेव का दर्शन करके अपने समस्त कलुष से निःसंदिग्ध रूपेण मुक्त हो जाते हैं। इस कुण्ड में स्नान-दान-जप तथा होम अक्षय फलप्रद हो जाता है। मानव सीताकुण्ड में लक्ष्मण-राम-सीता की पूजा करके दुग्धेश्वर की भी सम्यक् अर्चना करे। इससे उसे सभी कामनायें प्राप्त हो जाती हैं। ज्येष्ठा चतुर्दशी के दिन सीताकुण्ड की सांवत्सरी यात्रा होती है। जो दया-धर्मयुक्त मनुष्य इस विधि से सीताकुण्ड की सेवा करता है, वह उस परम लोक की प्राप्ति करता है, जहां जाने से मनुष्य को शोक होना समाप्त हो जाता है।।६९-७४।।

तत्र पूर्वादिशाभागे सुग्रीवरचितं महत्। तीर्थं तपोनिधेस्तत्र वर्तते सन्निधौ शुभम्॥७५॥
यत्रस्नात्वाचदत्त्वाचरामंसम्पूज्ययत्नतः। तस्मिन्नेवदिनेतत्रसर्वान्कामानवाप्नुयात्॥७६॥
तत्प्रत्यग्दिशि वै स्थानं हनुमत्कुण्डमित्यपि।
तस्य पश्चिमतो विप्र! विभीषणसरः शुभम्॥७७॥

तयोः स्नानेन दानेन रामसम्पूजनेन च। सर्वान्कामानवाप्नोति तस्मिन्नेवविधानतः।
इयं सा परमा मेध्याऽयोध्या धर्मनिधिः स्मृता।।७८।।

इस सीताकुण्ड के पूर्व में तपोनिधि सुग्रीव का सुग्रीव चरित नामक महातीर्थ स्थित है। तपोनिधि सुग्रीव इस शुभावह तीर्थ में निवास करते हैं। जो यहां स्नान तथा दान करके यत्नतः श्रीराम की पूजा करता है, उसी दिन उसकी सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। इस सुग्रीवतीर्थ के पश्चिम की ओर हनुमत्कुण्ड स्थित है। हे विप्र! हनुमत् कुण्ड के पश्चिम की ओर शुभप्रद विभीषण कुण्ड है। इन दोनों कुण्डों पर यथाविधि स्नान-दान-रामपूजन करने वाला मानव उसी दिन समस्त कामना लाभ कर लेता है। हे राम! यह जो अयोध्या को आप देख रहे हैं, इसे आप समस्त धर्म की निधि स्वरूप जानिये।।७५-७८।।

इत्युक्तास्तुततः सर्वे वसिष्ठमुनिमादरात्। पप्रच्छुर्विनयात्क्षिप्रं विभीषणपुरःसराः।
कथयस्व तपोराशे! कथामेतांसुदुर्ल्लभाम्।।७९।।
अयोध्यायाः परम्विप्र माहात्म्यं कथयन्ति यत्।
तत्सर्वं कथय क्षिप्रं श्रुत्वा माहात्म्यमुत्तमम्।।८०।।
यथा यात्रांविधास्यामःक्रमेणचविधानतः। तदस्मासुकृपां कृत्वा कथयस्वतपोनिधे।।८१।।

महर्षि वसिष्ठ का वाक्य सुनकर विभीषण आदि सभी श्रीराम के अनुचरगण ने विनय तथा आदर के साथ महर्षि से प्रश्न किया—''हे तपोराशि! इस लोक में अयोध्या का जो उत्तम माहात्म्य है, वह सब कृपया कहिये। हे विप्र! यह अयोध्या माहात्म्य अतीव दुर्लभ है। अतः आप इसे शीघ्र कहिये और हम सभी उसे सुनें। हे तपोनिधान! हम लोग इस माहात्म्य को सुनकर किस विधि द्वारा अयोध्या यात्रा सम्पन्न करें, आप हमलोगों पर कृपा करके उसे कहिये।'' राम के अनुचरों का यह कथन सुनकर महर्षि वसिष्ठ कहने लगे।।७९-८१।।

वसिष्ठ उवाच

शृण्वन्तुमुनयःसर्वे अयोध्यामहिमाद्भुतम्। यच्छ्रुत्वासर्वपापेभ्योमुच्यतेनात्र संशयः।।८२।।
इदं गुह्यतरं क्षेत्रमयोध्याभिधमुत्तमम्। सर्वेषामेव भूतानां हेतुर्मोक्षस्य सर्वदा।।८३।।
अस्मिन्सिद्धाः सदा देवा वैष्णवं व्रतमास्थिताः।
नानालिङ्गधरा नित्यं विष्णुलोकाभिकाङ्क्षिणः।।८४।।
अभ्यस्यन्तिपरंयोगंयुक्तप्राणाजितेन्द्रियाः। नानावृक्षसमाकीर्णेनानाविहगवासिनि।।८५।।
कमलोत्पलशोभाढ्ये सरोभिः समलङ्कृते। अप्सरोगणसङ्कीर्णे सर्वदा सेवितेशुभेः।।८६।।
रोचतेहिसदावासःक्षेत्रेनित्यंहरेरिह। मन्यमानाविष्णुभक्ताविष्णौ सर्वेऽर्पितक्रियाः।।५७।।
यथामोक्षमिहायान्तिनान्यत्र हि तथा क्वचित्। अथ श्रेष्ठतमं क्षेत्रंयस्माच्चवसतिर्हरेः।
महाक्षेत्रमिदं यस्मादयोध्याभिधमुत्तमम्।।८८।।

ऋषि वसिष्ठ कहते हैं—जिस अयोध्या माहात्म्य को सुनकर मनुष्य निःसंदिग्ध रूपेण सर्वपापविनिर्मुक्त हो जाता है, उस अद्भुद् महिमा को सुनो। यह उत्तम अयोध्याक्षेत्र अतीय गोपनीय है। यह सभी प्राणीगण की

मुक्ति का हेतु है। इस क्षेत्र में विष्णुलोक के अभिलाषी युक्तप्राण जितेन्द्रिय देवता तथा सिद्धगण नानारूप धारण करके सतत् वैष्णवव्रत पालन तथा योगाभ्यास करते रहते हैं। यहां विविध वृक्ष समाकीर्ण हैं। इस वृक्षों पर पक्षी निवास करते हैं। अनेक सरोवरों से यह क्षेत्र भरा हुआ है। उत्पल तथा कमल की बहुलता वाले ये सरोवर अपूर्व शोभायुक्त हो रहे हैं। अप्सरायें भी सतत् इस क्षेत्र की सेवा करती रहती हैं। किम्बहुना, स्वयं हरि भी सदा इस क्षेत्र की अभिलाषा करते रहते हैं। ज्ञानी विष्णुभक्तगण विष्णु को समस्त क्रियार्पण करके इस क्षेत्र में जिस प्रकार से मोक्षलाभ प्राप्त करते हैं, ऐसा अन्य क्षेत्र में संभव ही नहीं है! अयोध्या एक महाक्षेत्र है। स्वयं हरि यहां निवास करते हैं। यह क्षेत्र सर्वोत्तम है। इस महाक्षेत्र अयोध्या की सेवा द्वारा जैसा मोक्ष प्राप्त होता है।।८२-८८।।

नैमिषे च कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे। स्नानात्संसेवनाद्वाऽपि न मोक्षः प्राप्यतेतथा॥८९॥
इह सम्प्राप्ते यद्वत्तत एव विशिष्यते। प्रयागे वा भवेन्मोक्ष इह वा हरिसंश्रयात्।
सर्वस्मादपि तीर्थाग्र्यादिदमेव महत्स्मृतम्॥९०॥
अव्यक्तलिङ्गैर्मुनिभिःसर्वैःसिद्धैर्महर्षिभिः। इहसम्प्राप्यतेमोक्षोदुर्ल्लभोऽन्यत्रयोयतः॥९१॥
तेभ्यःप्रयच्छतिहरिर्योगमैश्वर्य्यमुत्तमम्। आत्मनश्चैवसायुज्यमीप्सितंस्थानमुत्तमम्॥९२॥

वह मोक्ष नैमिष, कुरुक्षेत्र, गंगाद्वार, पुष्करक्षेत्र किंवा वैसे सभी क्षेत्रों का सेवन करने से प्राप्त नहीं होता। इस स्थान के सेवन से जिस मोक्ष की प्राप्ति होती है, वही मोक्ष प्रशंसित है। समस्त तीर्थों में से अयोध्या ही श्रेष्ठ है। क्योंकि प्रयाग क्षेत्र में (नाना धर्माचरण से) जो मोक्ष मिलता है, वह यहां मात्र श्रीहरि की शरण लेने से ही प्राप्त हो जाता है। इसलिये इस क्षेत्र को एक महातीर्थ ही जाने। अव्यक्त देही मुनिगण, सिद्ध तथा महर्षि इस अयोध्या क्षेत्र में जिस प्रकार का मोक्षलाभ करते हैं, मेरे विचार से वैसा मोक्ष कहीं प्राप्त ही नहीं होता। जो व्यक्ति इस अभीष्ट उत्तम अयोध्या की सेवा करता है, श्रीहरि उस व्यक्ति को अत्युत्तम योगैश्वर्य तथा अपनी सायुज्य मुक्ति प्रदान करते हैं।।८९-९२।।

ब्रह्मादेवर्षिभिःसार्द्धंश्रीश्चवायुर्दिवाकरः। देवराजस्तथाशक्रो ये चान्येऽपिदिवौकसः॥९३॥
उपासते महात्मनः सर्वत्र हरिमादरात्। अन्येऽपियोगिनः सिद्धा क्षेत्ररूपामहाव्रताः॥९४॥
अनन्यमनसो भूत्वा सर्वदोपासतेहरिम्। विषयासक्तचित्तोऽसि त्यक्तधर्म रतिर्नरः।
इह क्षेत्रे मृतः सोपि संसारी न पुनर्भवेत्॥९५॥
ये पुनर्निगमाधीनाःसत्रस्थाविजितेन्द्रियाः। व्रतिनश्चनिरारम्भाःसर्वे तेहरिभाविताः॥९६॥
देहभगं समापद्य धीमन्तः सङ्गवर्जिताः। गतास्ते च परं मोक्षं प्रसादात्सर्वदा हरेः॥९७॥
जन्मान्तरसहस्त्रेषु युञ्जन्योगी न चाऽऽप्नुयात्। तमिहैव परंमोक्षंमरणादपिगच्छति॥९८॥

देवर्षिगण के साथ कमलयोनि ब्रह्मा, लक्ष्मी, वायु, दिवाकर, देवराज इन्द्र तथा अन्य महात्मा स्वर्ग निवासी आत्मायें भी आदर के साथ इस पावन तीर्थ में श्रीहरि की आराधना करते हैं। अन्यान्य क्षेत्रवासी महाव्रती सिद्ध लोग भी (योगीगण) अनन्य चित्ततापूर्वक यहां सतत् श्रीहरि की उपासना करते हैं। यदि धर्मत्यागी, विषयासक्त संसारी लोग भी इस क्षेत्र में प्राण त्याग करते हैं, तब उनको पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। यहां जो सभी इन्द्रियजित् निगमसेवी ऋषि आडम्बर रहित तथा व्रतशील होकर यज्ञ करते हैं, उनको हरि के साथ

एकात्मलाभ होता है। इसी प्रकार से सभी सङ्ग के त्यागी धीमान् मुनिगण भी जन्म लेकर हरिकृष्ण से इस क्षेत्र के अनुपम प्रभाव द्वारा परम मोक्षलाभ करते हैं। युक्तयोगीगण भी हजारों जन्मों के प्रयास द्वारा जिस मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर पाते, यहां देहत्याग मात्र से वह मोक्ष प्राप्त हो जाता है!।।९३-९८।।

एतत्सङ्क्षेपतो वच्मि क्षेत्रस्य महिमाद्भुतम्। एतदेव परं स्थानमेतदेव परम्परदम्।
एतादृङ्नापरं स्थानं पुनरन्यत्र दृश्यते॥९९॥
यत्रगत्वाप्रयत्नेनयात्रापुण्याभिकाङ्क्षिभिः। कर्तव्याविधिवद्धीराः क्रमेणश्रद्धयान्वितैः॥१००॥
प्रथमेऽहनि कर्त्तव्य उपवासो यतात्मभिः। नियमेन ततः स्नानं दानञ्चैव स्वशक्तितः॥१०१॥
उपाबृत्तस्तु पापेभ्योयस्य वासोगुणैः सह। उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः॥१०२॥

हे द्विज! मैंने संक्षेप में इस अद्‌भुद् अयोध्या क्षेत्र का माहात्म्य वर्णन किया है। यही उत्तम क्षेत्र तथा परमपद भी है। अयोध्या के समान उत्तम क्षेत्र मैंने अन्य कहीं नहीं पाया! पुण्यकामी धीर व्यक्ति यहां आकर श्रद्धापूर्वक यथाविधि यात्रा करें। अब यात्राक्रम सुनो। यहां यतात्मा मनुष्य आकर पहले दिन नियमतः उपवासी रहे तथा स्नानोपरान्त यथाशक्ति दान करे। एवंविध पापों से निवृत्त होकर समस्त भोगों को त्यागे। गुणों को अपनाकर जो निवास किया जाता है, वही उपवास कहा गया है।।९९-१०२।।

उपवासं विधायाऽसौ चक्रतीर्थे नरः कृती।
उपवासदिनेस्नायाद्दद्याच्चैवस्वशक्तितः ॥१०३॥
विप्रं सम्पूज्य विधिवत्पश्येद्विष्णुहरिं विभुम्।
स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा विष्णुं सम्पूज्य यत्नतः॥१०४॥
क्षौरञ्च कारयेत्तत्र व्रतीधर्माभिधे ततः। पापमोचनके स्नानमृणमोचनके ततः॥१०५॥
स्नात्वा सहस्रधारायां शेषंसम्पूज्य यत्नतः। दृष्ट्वा चन्द्रहरिं देवं ततोर्धहरिंविभुम्॥१०६॥
ततश्चक्रहरिं दृष्ट्वा दद्याच्चैव स्वशक्तितः। ब्रह्मकुण्डे नरः स्नात्वा सर्वकामार्थसिद्धये।
महाविद्यासमीपे तु रात्रौ जागरणं चरेत्॥१०७॥
ततः प्रभाते विमले पुनरुत्थाय सद्व्रती। स्वर्द्वारे प्रयत्नेन विधिवत्स्नानमाचरेत्॥१०८॥
श्राद्धञ्च विधिवत्कृत्वा दत्त्वा चैव स्वशक्तितः।
विष्णुं सम्पूज्य विधिवद्विप्रानपि पुनः पुनः॥१०९॥
दम्पती च प्रयत्नेनपूज्यौवस्त्रादिभिस्तथा। श्रद्धया परया युक्तैर्दातव्याभूरिदक्षिणा॥११०॥
विप्रान्सम्पूज्य विधिवद्भुञ्जीत प्रयतोनरः॥१११॥

व्रती मानव उपवास करके उस दिन चक्रतीर्थ में स्नान तथा यथाविधान दान करे। तत्पश्चात् सविधि विप्र को भोजन कराने के उपरान्त प्रभु विष्णु का दर्शन करें। तदनन्तर व्रती मानव स्वर्गद्वार में स्नान तथा यत्नतः विष्णुपूजन करके धर्मनायक तीर्थ में क्षौरकर्म समापन करें। तदनन्तर पापमोचन, ऋणमोचन, सहस्रधारा तीर्थ में स्नान करके यत्नतः भगवान् शेष अनन्तदेव की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर क्रमशः चन्द्रहरि, धर्महरि तथा

चक्रहरि देव का दर्शन करके यथाशक्ति दान करें। तत्पश्चात् मानव सर्वाभीष्ट सिद्धि हेतु ब्रह्मकुण्ड में स्नानोपरान्त महाविद्या के निकट जागरण करे। तत्पश्चात् वह साधुव्रतशील व्यक्ति विमल प्रातःकाल में स्वर्गद्वार में स्नान, सविधि पितृश्राद्ध तथा शक्ति के अनुसार दान करके विष्णु की सम्यक् पूजा सम्पन्न करके पुनः द्विजगण की पूजा करें। तदनन्तर यज्ञादि से श्रद्धापूर्वक एवं प्रयत्नपूर्वक द्विज दम्पति की पूजा करके उनको प्रचुर दक्षिणा देनी चाहिये। तत्पश्चात् अन्य द्विजों की भी सम्यक् पूजा सम्पन्न करने के अनन्तर वह व्रती भी स्वयं भोजन करे।।१०३-१११।।

अन्येद्युरपि चोत्थाय श्रद्धयापरयायुतः।
रुक्मिणीप्रभृतीन्यत्रपश्येत्तीर्थानिचक्रमात्।।११२।।
तत्र तत्र नरः स्नात्वा दत्त्वा चैव स्वशक्तितः।
विष्णुं सम्पूज्य यत्नेन मनोवाक्कायनिर्मलः।।११३।।
यात्रा समापयेत्सम्यङ्नियतात्माशुचिव्रतः। यत्रक्वापिमृतोधीरःपरंमोक्षमवाप्नुयात्।।११४।।

तदनन्तर अगले दिन शय्या से उठकर परम श्रद्धा के साथ ही रुक्मिणी प्रभृति देवी के क्रम से अन्य सभी तीर्थों का दर्शन, इन सब तीर्थों में स्नान, यथाशक्ति दान तथा यत्नतः विष्णु का पूजन करें। तदनन्तर मन-वाणी-काया को निर्मल करके शुचिव्रत मानव सम्यक्तः यात्रा समाहित करें। धीर मनुष्य इस तीर्थ में जहां कहीं भी मृत होकर अत्युत्तम गतिलाभ करता है।।११२-११४।।

अगस्त्य उवाच

वसिषोक्तमिति श्रुत्वाकृत्वाचैवयथाविधि। विभीषणपुरोगास्ते बभूवुर्निर्मलास्तदा।।११५।।
इति बहुलविधानैस्तीर्थयात्रां विधाय प्रचुरसुकृतपूर्णास्ते च सुग्रीवमुख्याः।।११६।।
गतमलिनसुदेहाः स्वर्गचर्याप्रयत्नादुपगुणितगुणौघास्ते बभूवुः समस्ताः।।११७।।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयेवैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये रतिकुण्ड-महारत्नतीर्थदुर्भरमहाभरतीर्थमहाविद्यातीर्थ सिद्धपीठक्षीरेश्वरसीताकुण्डसुग्रीवतीर्थहनुमत्कुण्ड-विभीषणसरस्तीर्थायोध्यायात्राविधिक्रमवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः।।८।।

—※※※—

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—विभीषण आदि समस्त श्रीरामचन्द्र के अनुचरगण वसिष्ठ ऋषि से इस तीर्थ माहात्म्य को सुनने के अनन्तर इन सभी तीर्थों की यथाविधि सेवा करने के पश्चात् निर्मल अन्तःकरण हो गये। तब विभीषण आदि राक्षस एवं सुग्रीव आदि वानरगण ने विविध-विधान द्वारा तीर्थयात्रा सम्पन्न किया। वे दिव्यदेही होकर बहुगुणगुणित बिना यत्न से प्राप्त स्वर्गसुख के अधिकारी हो गये।।११५-११७।।

।।अष्टम अध्याय समाप्त।।

नवमोऽध्यायः

भैरवक्षेत्रवर्णन, गयाकूप, पिशाचमोचन, मानसतीर्थ, तमसा-नदी, माण्डव्य आश्रम, सीताकुण्ड, जयकुण्ड माहात्म्य

अगस्त्य उवाच

जटाकुण्डत आग्नेयदिग्दले संश्रितं महत्। गयाकूपमिति ख्यातं सर्वाभीष्टफलप्रदम्॥१॥
यत्रस्नात्वाचदत्त्वाचयथाशक्त्याजितेन्द्रियः। सर्वकाममवाप्नोतिश्राद्धंकृत्वाद्विजोत्तमः॥२॥
नरकस्थाश्च ये केचित्पितरश्च पितामहाः। विष्णुलोकेतु गच्छन्ति तस्मिञ्छ्राद्धे कृते तु वै॥३॥
तस्मिञ्छ्राद्धेकृते विप्रपितृणामनृणाभवेत्। शक्तिभिः पिण्डदानन्तुसयवैःपायसेनच॥४॥
कर्त्तव्यमृषिनिर्दिष्टं पिण्याकेनगुणेनवा। श्राद्धं तत्तीर्थके प्रोक्तं पितृणां तुष्टिकारकम्॥५॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—जटाकुण्ड की आग्नेय दिशा में गयाकुण्ड है। यह महातीर्थ प्रसिद्ध है तथा सभी अभीष्ट फल देने वाला है। जितेन्द्रिय द्विजगण इस गयाकुण्ड में स्नान, यथाशक्ति दान तथा पितरों के श्राद्ध द्वारा समस्त काम्यवस्तु की प्राप्ति करते हैं। इस तीर्थ में स्नान करने से नरकस्थ पितृ-पितामहगण इस श्राद्ध के प्रभाव से वे सभी विष्णुलोक गमन करते हैं। हे विप्र! गयाकुण्ड में श्राद्ध करने से मानव पितृऋण से मुक्त हो जाता है। यहां सत्तू से ही पिण्ड प्रदान करना चाहिये अथवा ऋषिनिर्दिष्ट पिण्याक तथा गुड़ से पितृगण का श्राद्ध करना चाहिये। मुनियों का कथन है कि इस तीर्थ में पितृगण को ऐसा ही श्राद्ध प्रसन्नतादायक है।।१-५।।

तत्रश्राद्धं प्रकर्त्तव्यं नरैः श्रद्धासमन्वितैः। तुष्यन्ति पितरस्तेषांतुष्टाःस्युःसर्वदेवताः॥६॥
तुष्टेषु पितृषु श्रीमाञ्जायते पुत्रवांस्तथा। श्राद्धेन पितरस्तुष्टाःप्रयच्छन्तिसुतान्बहून्॥७॥
श्रियञ्च विपुलान्भोगाञ्छ्राद्धकृद्भ्यो न संशयः।
तस्मादत्र विधानेन विधातव्यं प्रयत्नतः॥८॥
श्राद्धं श्रद्धायुतैः सम्यगभीष्टफलकाङ्क्षिभिः। गयाकूपे विशेषेण पितॄणां दत्तमक्षयम्॥९॥
सोमवारेण संयुक्ता अमावास्या यदाभवेत्। तत्रानन्तफलं श्राद्धं पितृणांदत्तमक्षयम्॥१०॥

सभी लोग श्रद्धासमन्वित होकर इस तीर्थ में श्राद्ध करें। इससे उनके पितृगण तथा सुरगण प्रसन्न हो जाते हैं। पितृगण तथा देवगण की प्रसन्नता होने पर श्राद्धकारी को अनेक पुत्र, श्री तथा विपुल भोग प्रदान करते हैं। इसमें सन्देह नहीं है। अतएव अभीष्ट चाहने वाले श्रद्धावान् मनुष्य यत्नपूर्वक इस तीर्थ में सविधि श्राद्ध करें। विशेषतया गयाकुण्ड में श्राद्ध द्वारा जैसा फललाभ होता है, उसी प्रकार सोमवती अमावस्या के दिन यहां श्राद्ध द्वारा पितृगण के लिये-अनन्त फल प्राप्त होता है।।६-१०।।

अन्यदा सोमवारेण तत्र श्राद्धं विधानतः। पितृसन्तोषदं नित्यं तत्रदत्ताक्षयोभवेत्॥११॥
तत्र पूर्वदिशाभागे तीर्थं सर्वोत्तमोत्तमम्। पिशाचमोचनंनाम विद्यते च फलप्रदम्॥१२॥

तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च पिशाचोनैवजायते। तत्रस्नानंतथादानंश्राद्धञ्चैवविशेषतः।
कर्त्तव्यञ्च प्रयत्नेन नरैः श्रद्धासमन्वितैः॥१३॥
मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां विशेषतः। स्नानं तत्र प्रकर्तव्यं पिशाचत्वविमुक्तये॥१४॥
तत्सन्निधौपूर्वभागे मानसंनाम नामतः। तीर्थं पुण्यनिवासाग्र्यंस्नातव्यञ्चविशेषतः॥१५॥
तत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात्। नानाविधानि पापानि मेरुतुल्यानि वै पुनः।
तत्रस्नानात्क्षयं यान्ति नाऽत्र कार्या विचारणा॥१६॥

अन्य समय मात्र सोमवार के दिन यथाविधान श्राद्ध करने से वह पितरों के लिये अनन्त फलप्रद हो जाता है। इस गयाकुण्ड के पूर्व दिक्भाग में अनेक फलप्रद सर्वोत्तम पिशाचतीर्थ हैं। यहां स्नान, दान द्वारा मानव कदापि पिशाच नहीं होता। श्रद्धावान् मानव इस पिशाचमोचन पर यत्नतः स्नान, दान, श्राद्ध करे। विशेषतः पिशाचमुक्ति के लिये मानव को यहां मार्गशीर्षमास की शुक्लाचतुर्दशी तिथि के दिन अवश्य ही स्नान करना चाहिये। पिशाचमोचन के सन्निधान में पूर्वदिक् में मानस नामक तीर्थ है। यह मानस तीर्थ पुण्य स्थलों में श्रेष्ठ है। यहां विशेषतः स्नान करना चाहिये। इस मानस तीर्थ में स्नान तथा दान करने से निखिल काम्य का लाभ होता है। मेरु के समान नाना प्रकार के पापी मानव भी इस तीर्थ में स्नान करने से पापमुक्त होते हैं। इसमें संशय नहीं है।।११-१६।।

यत्किञ्चिद्विद्यतेपापंमानसंकायिकं तथा। वाचिकञ्चतथापापंस्नानतोविलयम्व्रजेत्॥१७॥
प्रौष्ठपद्यांसदाकार्व्यापौर्णमास्यांविशेषतः यात्रातस्यनृभिर्विप्रपुण्यवद्भिःक्रियापरैः॥१८॥
तस्माद्दक्षिणदिग्भागे वर्त्तते सुकृतैकभूः। तमसानाम तटिनी महापातकनाशिनी॥१९॥
यत्र स्नानं तथा दानं सर्वपापहरं सदा। यस्यास्तटेतथा रम्ये सर्वदा फलदायके॥२०॥

किम्बहुना, कायिक, वाचिक तथा मानसिक जो कोई पाप क्यों न हों, मानसतीर्थ स्नान द्वारा वह समस्त विलीन होता है। हे विप्र! पुण्यात्मा क्रियाकुशल व्यक्ति भाद्री पूर्णिमा के दिन सतत् मानसतीर्थ की यात्रा करे। मानस के दक्षिण की ओर सुकृती लोगों की एकमात्र क्रीड़ा भूमि है। वहां तमसा नामक महा पापनाशक नदी भी है। यहां स्नान तथा दान सर्वपापहरण करने वाला है। इसका तट सदैव रम्य एवं सर्वफलप्रद है।।१७-२०।।

नानाविधानि स्थानानि मुनीनां भावितात्मनाम्।
माण्डव्यस्य मुने! स्थानं वर्त्तते पापनाशनम्॥२१॥
यस्यास्तीरे मुनिश्रेष्ठ! सर्वत्र सुमनोहरम्। तस्याऽऽश्रमपदं रम्यं नानावृक्षमनोहरम्॥२२॥

भावितात्मा मुनिगण इसके विस्तृत तट देश पर सदा निवास करते रहते हैं। हे ऋषि! इस नदी के तट पर मुनि माण्डव्य का पापनाशक परम आश्रम स्थित है। इस नदी की तटभूमि का सभी स्थान मनोहारी है। वहां नाना प्रकार के मनोरम वृक्ष स्थित हैं।।२१-२२।।

यस्मात्स्थानात्समुद्भूता तमसा सुतरङ्गिणी। तद्वनं पुण्यमधिकं पावनं पदमुत्तमम्॥२३॥
यस्य दर्शनतो नृणां सर्वपापक्षयो भवेत्॥२४॥

प्रफुल्लनानाविधगुल्मशोभितं लताप्रतानावनतं मनोहरम्।
विरूढपुष्पैः परितः प्रियङ्गुभिः सुपुष्पितैः कण्टकितैश्च केतकैः॥२५॥
तमालगुल्मैर्निचितं सुगन्धिभिः सकर्णिकारैर्बकुलैश्च सर्वतः।
अशोकपुन्नागवरैः सुपुष्पितैर्द्विरेफमालाकुलपुष्पसञ्चयैः॥२६॥
क्वचित्प्रफुल्लाम्बुजरेणुरूषितैर्विहङ्गमैश्चारुफलप्रचारिभिः ।
विनादितं सारसमुत्कुलादिभिः प्रमत्तदात्यूहकुलैश्चवल्गुभिः॥२७॥

यह सुन्दर तरंगों वाली तमसा नदी माण्डव्य ऋषि के इसी आश्रमपद से निकली है। उत्तम माण्डव्यवन अत्यन्त पवित्र हैं। मनुष्य इस माण्डव्यवन का दर्शन पाकर सभी कलुषरहित हो जाते हैं। अहो! मुनिप्रवर माण्डव्य के आश्रम की क्या अपूर्व शोभा है! आश्रम की वनभूमि नाना प्रकार के प्रफुल्लित गुल्मों द्वारा (झाड़ियों द्वारा) शोभित हैं। लताप्रतान फल-पुष्प भार से अवनत होने के कारण मनोहररूप धारण करते हैं। इस वनभूमि के चतुर्दिक् कण्टकाकीर्ण केतकी तथा प्रियङ्गु पुष्पतरुओं में पुष्प उग रहे हैं। सर्वत्र सुगन्धि गुल्म से वेष्टित तमाल-कर्णिका से समाकीर्ण वकुल तरुमूल, सुपुष्पित पुन्नाग तथा अशोक समूह शोभित है। सभी पुष्प भ्रमर समूह से समाकुल होकर स्थित हैं। ये भ्रमर वहां पुष्पों के मधु का पान कर रहे हैं। यह स्थान कहीं पर पद्मरेणु द्वारा भूषित है, कहीं पक्षीगण रम्य फलों पर विचरणशील हैं। कहीं पर सारस, मुत्कुल तथा प्रमत्त दात्यूहगण का मनोरम निनाद श्रुतिगोचर हो रहा है।।२३-२७।।

क्वचिच्च चक्राह्वरवोपनादितं क्वचिच्च कादम्बकदम्बकैर्युतम्।
क्वचिच्च कारण्डवनादनादितं क्वचिच्च मत्तालिकुलाकुलीकृतम्॥२८॥
मदाकुलाभिर्भ्रमरीभरारान्निषेवितं चारुसुगन्धिपुष्पवत्।
क्वचिच्च पुष्पैः सहकारवृक्षैर्लतोपगूढैस्तिलकद्रुमैश्च॥२९॥
प्रहृष्टनानाविधपक्षिसेवितं प्रमत्तहारीतकुलोपनादितम्।
समन्ततः सुन्दरदर्शनीयतां समुद्वहत्तद्वनमुल्लसन्महत्॥३०॥
निबिडनिवुलनीलं नीलकण्ठाभिरामं मदमुदितविहङ्गीवृन्दनादाभिरामम्।
कुसुमिततरुशाखालीनमत्तद्विरेफं नवकिसलयशोभाशोभितंसत्फलाढ्यम्॥३१॥
इत्यादिबहुशोभाढ्यं सर्वदिक्षु मनोहरम्। यत्र माण्डव्यमुनिनातपस्तप्तं महत्किल।
यत्प्रभावादभूत्तीर्थं पावनं तत्सदा महत्॥३२॥

कहीं पर चक्रवाकों का झुण्ड निनाद कर रहा है, कहीं कादम्बक् कदम्ब पर शोभा पा रहे हैं। कहीं का स्थान कारण्डकगण के नाद से निनादित है। कहीं मत्त भ्रमरों से स्थान आकुलित है। कहीं मनोज्ञ गन्धयुक्त पुष्प समन्वित आश्रम का सभी स्थान-मद से आकुल भ्रमरों के निनाद से निनादित हैं। कहीं कुसुमित लता जाल रूपी तिलक से सजी तरु पंक्ति विराजित है। वहां प्रमत्त-हारीत आदि नाना पक्षी इन सभी वृक्षशाखा पर बैठकर निनाद कर रहे हैं। कहीं नील वेतस वन पर नीलकण्ठ आदि पक्षीगण बैठकर मनोभिराम रव कर रहे हैं। मद से मुदित नयना मादा पक्षीगण इस विहंग नाद की प्रतिध्वनि कर रहे हैं। नयी-नयी किसलयों से कुसुमित तरुशाखा में

सभी भ्रमरसमूह लीन होकर वृक्षों की मनोरम शोभा का वर्द्धन कर रहे हैं। किम्बहुना, आश्रमपद के सभी स्थान मानो एक अनिर्वचनीय सौन्दर्य की लीलाभूमि हो गयी है। मुनि माण्डव्य इस प्रकार से अनेक शोभा से समृद्ध सर्वत्र मनोरम आश्रम में रहकर सुमहान् तपस्या करते हैं। उनके तपः प्रभाव से यह तीर्थ मनोरम हो उठा है। उनके ही तप के कारण यह तीर्थ परमपावन भी है।।२८-३२।।

तत्पूर्वं गौतमस्यर्षेराश्रमं पावनं महत्। तत्पूर्वं च्यवनस्यर्षेः पराशरमुनेरिदम्!।
प्रथमं ते मुनिश्रेष्ठ! पितुः किल तपोनिधेः।।३३।।
नानाविधानि तीर्थानि चाश्रमाश्चैवसर्वशः। वर्तन्तेतापसानाञ्चयस्यास्यीरेसमन्ततः।।३४।।
तमसानाम सा ज्ञेया वर्तते तटिनी शुभा। यज्ञयूपान्समुत्खाय शोभिताबहुशोऽभितः।।३५।।
तत्र स्नानेन दानेनश्राद्धेनचविशेषतः। सर्वकामार्थसिद्धिःस्यान्नाऽत्रकार्याविचारणा।।३६।।
मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे पञ्चदश्यां विशेषतः। स्नानं तस्य फलप्राप्तिदायकं सर्वदा नृणाम्।।३७।।
तस्मादत्र प्रकर्तव्यं स्नानं निर्मलमानसैः। प्रयत्नतो मुनिश्रेष्ठ! सर्वकामार्थसिद्धिदम्।।३८।।

इस माण्डव्य तीर्थ के पूर्व की ओर महर्षि गौतम का महापवित्र आश्रम तथा उसके पूर्व में ऋषि च्यवन का आश्रम विद्यमान है। हे मुनिसत्तम! आपके पिता तपोधन में पहले इसी आश्रम की प्रतिष्ठा किया था। इस तमसातट के सभी ओर नानाविध तीर्थ तथा अनेक तापसगण का आश्रय विद्यमान है। शुभावह विख्याता तमसातटिनी के तट पर सर्वत्र ही अनेक यज्ञयूप खुदे होने के कारण उसकी अपूर्व शोभा हो रही है। इस तमसातट पर स्नान-दान-विशेषतः श्राद्ध करने से निःसंदिग्ध रूप से सर्वार्थसिद्ध करते हैं, इसमें संदेह नहीं है। विशेषतः मार्गशीर्षमास में पूर्णिमा तिथि के दिन तमसा में स्नान करना मनुष्यों के लिये अत्यधिक फलदायक है। हे मुनिप्रवर! सर्वाभीष्ट सिद्धि के लिये निर्मल मन वाले मनुष्य यत्नतः मार्गशीर्ष पूर्णिमा तिथि में यहां स्नान करें।।३३-३८।।

अतः परं प्रवक्ष्यामि तमसापरमंशुभम्। सीताकुण्डमितिख्यातंश्रीदुग्धेश्वरसन्निधौ।।३९।।
भाद्रेशुक्लचतुर्थ्यांतुतस्ययात्राशुभावहा। सर्वकामार्थसिद्ध्यर्थं पूज्योविघ्नेश्वरस्तथा।
तस्य स्मरणमात्रेण सर्वविघ्नविनाशनम्।।४०।।
तस्माद्दक्षिणदिग्भागे भैरवो नाम नामतः। यं दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यतेनात्रसंशयः।।४१।।
रक्षितो वासुदेवेन क्षेत्ररक्षार्थमादरात्। तस्यपूजा विधातव्या प्रयत्नेन यथाविधि।।
मनोऽभीष्टफलप्राप्तिर्भैरवस्य सदाऽऽदरात्।।४२।।
मार्गशीर्षस्यकृष्णायामष्टम्यांतस्यनिर्मिता। यात्रासाम्वत्सरीतत्रसर्वकामार्थसिद्धये।।४३।।

अब मैं दुग्धेश्वर के सन्निधान में तमसा के एक अन्य शुभप्रद परम तीर्थ का वर्णन करता हूं। इसका नाम है विख्यात सीताकुण्ड। भाद्रमासीय शुक्लचतुर्दशी के दिन इस सीताकुण्ड की यात्रा शुभप्रदा है। इस तीर्थ में सर्वकामनासिद्धि हेतु विघ्नेश्वर पूजा करनी चाहिये। इन विष्णुदेव के स्मरण मात्र से सभी पापों का नाश हो जाता है। इस सीताकुण्ड के दक्षिण की ओर भैरव नामक स्वनाम धन्य तीर्थ है। इसके दर्शन से व्यक्ति सर्वकलुष रहित हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है। वासुदेव ही क्षेत्र की सादर यत्नपूर्वक रक्षा करते हैं; इसलिये सदा इनकी

सविधि पूजा करनी चाहिये। इन भैरव की सादर सतत् पूजा द्वारा सभी अभीष्ट सिद्ध हो जाता है। मार्गशीर्ष मास की कृष्णाष्टमी के दिन भैरवतीर्थ की सावंत्सरी यात्रा निर्दिष्ट है। यह सर्वकाम सिद्धिप्रदा है।।३९-४३।।

पशुपहारसम्भृति कर्त्तव्यं पूजनं जनैः।। सर्वकामफलप्राप्तिर्जायते नाऽत्र संशयः।।४४।।
निर्विघ्नं तीर्थवसतिर्भैरवस्य प्रसादतः। जायते तेन कर्तव्या पूजा तस्य प्रयत्नतः।।४५।।
एतस्मिन्नुत्तरे भागे रम्यं भरतकुण्डकम्। यत्र स्नात्वा नरः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः।।४६।।
तत्र स्नानं तथादानं सर्वमक्षयतां व्रजेत्। अन्नं बहुविधं देयंवासांसिविविधान्यपि।।४७।।
यत्नतो देवताः पूज्या वस्त्रादिभिरलङ्कृतैः। नन्दिग्रामे वसन्पूर्वं भरतोरघुवंशजः।।४८।।
रामचन्द्रं हृदि ध्यायन्निर्मलात्मा जितेन्द्रियः।
ततः स्थित्वा प्रजाः सर्वा ररक्ष क्षितिवल्लभः।।४९।।
तत्र चक्रे महत्कुण्डं भरतोनाम भूपतिः। राममूर्तिं च संस्थाप्यचचारविजितेन्द्रियः।।५०।।

मनुष्य को पशुपहार समन्वित द्रव्यों द्वारा भैरव की पूजा करनी चाहिये। ऐसा करने से भैरव की कृपा से सर्व कामनायें फललाभ करती हैं। वह व्यक्ति विघ्नरहित होकर भैरवतीर्थ में निवास करने में सामर्थ्यवान् हो जाता है। इसलिये प्रयत्नतः भैरवपूजन करें। भैरवतीर्थ के उत्तरभाग में भरतकुण्ड है। मनुष्य निःसंदिग्धरूपेण यहां स्नान द्वारा पापरहित होता है। यहां किया स्नान-दानादि अक्षय हो जाता है। यहां अनेक अन्न तथा विविध वस्त्रदान तथा वस्त्रालंकार द्वारा देवगण की अर्चना करनी चाहिये। पूर्वकाल में निर्मलात्मा जितेन्द्रिय रघुवंशोत्पन्न भरत ने राम का हृदय में ध्यान करते हुये नन्दीग्राम में निवास किया था। वे वहां रहकर समस्त प्रजा की रक्षा करके पृथिवीमण्डल में प्रिय हो गये थे। उस समय उन जितेन्द्रिय राजा भूपति ने इस महाकुण्ड का निर्माण करके वहां राममूर्त्ति स्थापित किया था। वे सदा इस कुण्ड के पास विचरण करते रहते थे।।४४-५०।।

तत्कुण्डे सुमहत्पुण्यं नानापुण्यसमन्वितम्। कुमुदोत्पलकह्लारपुण्डरीकसमन्वितम्।।५१।।
हंससारसचक्राह्वविहङ्गमविराजितम्। उद्यानपादपच्छायासच्छायमयलं सदा।।५२।।
तत्र स्नानं महापुण्यं प्रमोदानन्दनिर्मलम्। तत्र स्नानं तथा श्राद्धं पितृनुद्दिश्य कुर्वतः।
पितरस्तस्य तुष्यन्ति तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः।।५३।।
स्वर्णं चाऽन्नं विधानेन दातव्यं च द्विजन्मने। श्रद्धापूर्वकमेतत्तु कर्तव्यं प्रयतैर्नरैः।
तत्पश्चिमदिशाभागे जटाकुण्डमनुत्तमम्। यत्र रामादिभिः सर्वैर्जटाःपरिहृता निजाः।।५४।।

यह भरतकुण्ड महापवित्र तथा पुष्पयुक्त है। कुमुद-उत्पल-कल्हार तथा पुण्डरीक पुष्प से यह कुण्ड सुशोभित होता रहता है। हंस, सारस, चक्रवाक आदि पक्षी कुण्ड के पास विचरते रहते हैं तथा इस निर्मल कुण्ड की शोभावृद्धि उद्यानस्थ वृक्षों द्वारा होती है, जो अनुपम छाया प्रदान करते हैं। भरतकुण्ड में स्नान द्वारा व्यक्ति निर्मल हो जाता है। इस स्नान द्वारा प्रमोद तथा आनन्दवृद्धि होती है। जो मानव भरतकुण्ड में स्नान करके पितरों के लिये श्राद्ध करता है, उसके प्रति पितृगण तथा देवगण सन्तुष्ट हो जाते हैं। मनुष्यों को चाहिये कि वे भरततीर्थ में यत्न तथा श्रद्धा के साथ द्विजगण को सविधि स्वर्ण तथा अन्नदान देना चाहिये।।५१-५४।।

जटाकुण्डमिति ख्यातं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्।
यत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥५५॥
पूर्वकुण्डेषु सम्पूज्योभरतःश्रीसमन्वितः। जटाकुण्डेषुसम्पूज्यौससीतौरामलक्ष्मणौ॥५६॥
चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां यात्रा साम्वत्सरी भवेत्॥५७॥

उसके पश्चिम भाग में अत्युत्तम जटाकुण्ड है। यहां राम आदि ने अपनी-अपनी जटाओं का त्याग किया था। इसीलिये यह सर्वतीर्थोत्तम तीर्थ जटाकुण्ड कहा जाता है। यहां जटाकुण्ड में स्नान तथा दान करने से समस्त कामनाओं का लाभ होता है। भरत कुण्ड में स्नान करके जटाकुण्ड में सीता-राम-लक्ष्मण की पूजा करनी चाहिये। चैत्र कृष्णाचतुर्दशी के दिन इन कुण्डद्वय की सांवत्सरी यात्रा होता है।।५५-५७।।

इति परमविधानैः पूजयेद्रामसीते तदनु भरतकुण्डे लक्ष्मणं च प्रपूज्य॥५८॥
विधिवदमृतकुण्डे द्वन्द्वसम्मज्जनेन वसति सुकृतिमूर्तिर्वैष्णवे तत्रलोके॥५९॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये गयाकूप-पिशाचमोचनमानसतीर्थतमसानदीमाण्डव्याद्याश्रमसीताकुण्डदुग्धेश्वरभैरवभरतकुण्ड-जटाकुण्डमाहात्म्यवर्णनंनामनवमोऽध्यायः।।९।।

हे द्विज! सुकृति सम्पन्न पुरुष इन परम विधान द्वारा पहले राम तथा सीता की पूजा करने के अनन्तर भरतकुण्ड में लक्ष्मण की पूजा करें। तदनन्तर यथाविधि सस्त्रीक स्नान करके वह पुण्यमूर्त्ति मानव विष्णुलोक में निवास करता है।।५८।।

।।नवम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

दशमोऽध्यायः

अयोध्या यात्रा विधिक्रम वर्णन, यात्राफलश्रुति

अगस्त्य उवाच

निराहारो नरो भूत्वा क्षीराहारोऽपि वा पुनः। अजितं पूजयेद्विप्र! तस्य सिद्धिः करे स्थिता।
महोत्सवस्तु कर्तव्योगीतवादित्रसंयुतः। एवं यःकुरुतेधीमान्सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥१॥
एतस्मादुत्तरे विद्वन्वीरस्य शुभसूचकम्। स्थानं मत्तगजेन्द्रस्य वर्तते नियतव्रत!॥२॥
तदग्रे सरसिस्नात्वावसेत्तत्रसुनिश्चितम्। पूर्णांसिद्धिमवाप्नोतियामवाप्यनशोचति॥३॥

अयोध्यारक्षको वीरःसर्वकामार्थसिद्धिदः। नवरात्रिषुपञ्चम्यांयात्रासाम्वत्सरीभवेत्॥४॥
गन्धपुष्पधूपादिनैवेद्यादिविधानतः। पूजनीयः प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धिदः॥५॥
यंयं काममिहेच्छेत तं तं काममवाप्नुयात्॥६॥

ऋषि अगस्त्य कहते हैं—हे द्विज! जो मनुष्य निराहारी अथवा दुग्धाहारी रहकर अजित की पूजा करते हैं, सिद्धि उनके करस्थ है। हे विद्वान्! धीमान् मानव वहां गीत-वाद्य संयुक्त महोत्सव का आयोजन करें। ऐसा करने से उसकी समस्त कामना सफल हो जाती है। हे नियतव्रत! जटाकुण्ड भरत कुण्ड के उत्तर में मत्त गजेन्द्र वीर का शुभसूचक स्थान विद्यमान है। इस स्थान के समक्ष एक सरोवर है। इस सरोवर में स्थिरचित्त से स्नान करके वहां रहे। इस स्थान में निवास करके मानव को पूर्णसिद्धि का लाभ हो जाता है। इस प्रकार पूर्णसिद्धि का लाभ होने पर उसे शोक नहीं होता। यह अयोध्या रक्षक वीर सर्वकामार्थसिद्धिप्रद हैं। नवरात्र की पञ्चमी तिथि के दिन इस तीर्थ की सांवत्सरी यात्रा की जाती है। गंध-पुष्प-धूप तथा नैवेद्यादि से यथाविधि यत्नतः सर्वार्थसिद्धिप्रद इन वीर की पूजा करनी चाहिये। मानव इन वीर की पूजा करके जो-जो कामना करता है, उसे वह सब प्राप्त होता है।।१-६।।

एतस्माद्दक्षिणे भागे सुरसानाम राक्षसी। विष्णुभक्ता सदाविप्रवर्ततेसिद्धिदायिका॥७॥
तां सम्पूज्य नरो भक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥८॥
लङ्कास्थानादिहानीतारामेणोत्कृष्टकर्मणा। अयोध्यायांस्थापितासारक्षार्थंनियतव्रतैः॥९॥
सम्पूज्यविधिवत्तस्यादर्शनंकार्यमादरात्। सर्वकामार्थसिद्ध्यर्थमुत्सवोऽपिशुभप्रदः।
कर्त्तव्यः सुप्रयत्नेन गीतवादित्रसंयुतैः॥१०॥
नवरात्रे तृतीयायां यात्रा साम्वत्सरीभवेत्। सर्वदा सुखसन्तानसिद्धये परमार्थदा।
नानासङ्गीतवादित्रनृत्योत्सवमनोहरा ॥११॥
एवं कृते न सन्देहः सर्वदा रक्षितो भवेत्॥१२॥
एतत्पश्चिमदिग्भागे वर्तते परमो मुने!। पिण्डारक इति ख्यातो वीरःपरमपौरुषः।
पूजनीयः प्रयत्नेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः॥१३॥

हे विप्र! इस अयोध्या रक्षक वीर के दक्षिण भाग में सिद्धिप्रदा विष्णुभक्ता सुरसानाम्नी राक्षसी सतत् विराजिता है। मानव इस सुरसा राक्षसी की भक्तियुक्त पूजा करके समस्त कामना प्राप्त करते हैं। अक्लिष्ट कर्मा राम ने लंका से सुरसा को लाकर अयोध्या रक्षार्थ स्थापित किया। नियतव्रत मानव सुरसा की यथाविधि पूजा करके सादर उसका दर्शन करते हैं। सर्वकामना सिद्धि हेतु सुरसा का शुभद उत्सव करें। इस उत्सव में यत्नतः गीत-वाद्यादि का अनुष्ठान करना चाहिये। नवरात्र में तृतीया के दिन इस तीर्थ की सांवत्सरी यात्रा की जाये। सतत् सुख तथा सन्तान की सिद्धि हेतु सुरसा के स्थान की यात्रा करें। इस सुरसा यात्रा में नाना संगीत, वाद्य तथा नृत्योत्सव करना चाहिये। इस नृत्योत्सवादि द्वारा मनोहरा सुरसा परमार्थप्रदा हो जाती हैं। मानव इस प्रकार से सर्वदा रक्षित हो जाता है। इसमें संशय नहीं है। हे मुनिवर! सुरसा के पश्चिमदिक् भाग में उत्तम पौरुषयुक्त परमवीर विख्यात पिण्डारक स्थित हैं। इनकी पूजा गन्ध-पुष्प-अक्षतादि से करें।।७-१३।।

यस्य पूजावशान्नृणां सिद्धयः करसंश्रिताः। तस्य पूजाविधानेन कर्तव्यं पूजनंनरैः॥१४॥
सरयूसलिले स्नात्वा पिण्डारकञ्चपूजयेत्। पापिनांमोहकर्त्तारंमतिदं कृतिनांसदा॥१५॥
तस्य यात्राविधातव्यासपुष्यानवरात्रिषु। तत्पश्चिमदिशाभागे विघ्नेशंकिलपूजयेत्॥१६॥
यस्य दर्शनतो नृणां विघ्नलेशोन विद्यते। तस्माद्विघ्नेश्वरः पूज्यः सर्वकामफलप्रदः॥१७॥
तस्मात्स्थानत ऐशाने रामजन्मप्रवर्त्तते। जन्मस्थानमिदम्प्रोक्तंमोक्षादिफलसाधनम्॥१८॥
विघ्नेश्वरात्पूर्वभागेवासिष्ठादुत्तरेतथा। लोमशात्पश्चिमेभागेजन्मस्थानंततःस्मृतम्॥१९॥
यद्दृष्ट्वा च मनुष्यस्य गर्ववासंजयोभवेत्। विना दानेन तपसा विरा तीर्थैर्विना मखैः॥२०॥
नवमीदिवसे प्राप्ते व्रतधारी हि मानवः। स्नानदानप्रभावेण मुच्यते जन्मबन्धनात्॥२१॥
कपिलागोसहस्राणि यो ददातिदिनेदिने। तत्फलं समवाप्नोति जन्मभूमेःप्रदर्शनात्॥२२॥
आश्रमे वसतां पुंसां तापसानाञ्च यत्फलम्। राजसूयसहस्राणि प्रतिवर्षाग्निहोत्रतः॥२३॥
नियमस्थं नरं दृष्ट्वा जन्मस्थाने विशेषतः। मातापित्रोगुरूणाञ्चभक्तिमुद्वहतांसताम्॥२४॥
तत्फलं समवाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात्॥२५॥

पिण्डारक की पूजा द्वारा सिद्धियां करस्थ होती हैं। इसलिये मानव यत्नतः पिण्डारक की यथाविधि पूजा करे। पहले सरयूजल में यथाविधि पूजा करनी चाहिये। सर्वप्रथम सरयूजल में स्नान करके पापीगण को मोहप्रदान करने वाले तथा सुकृति जन को मतिप्रद पिण्डारक की पूजा करे। नवरात्र में पुष्ययुक्त दिवस के दिन पुण्डरीक की यात्रा करनी चाहिये। उसके पश्चिम भाग में विघ्नेश की पूजा करनी चाहिये। उनके दर्शन से मनुष्य को विघ्न का लेश भी नहीं रह जाता। इसलिये सर्वकामफलप्रद विघ्नेश की पूजा करें। उनके ईशानकोण में रामजन्म हुआ था। इसे जन्मस्थान कहते हैं, जो मोक्ष आदि फल देता है। विघ्नेश के पूर्वभाग में तथा वासिष्ठ के उत्तर में तथा लोमश के पश्चिम में जन्मस्थान है। यहां दर्शन करने से मनुष्य पुनः गर्भ में नहीं आता। व्रतधारी मानव नवमी के दिन इस तीर्थ में स्नान तथा दान करके उस पुण्य प्रभाव से बिना दान, तप, तीर्थसेवा तथा यज्ञ किये ही जन्मबन्धन से रहित हो जाता है। जन्मभूमि के दर्शनमात्र से नित्यप्रति हजारों हजार कपिला गोदान का फललाभ होता है। आश्रम में रहकर तप करने वाले ऋषिगण का जो पुण्य है, हजारों राजसूय यज्ञ अनुष्ठान का जो फल है, प्रतिवर्ष अग्निहोत्र करने का जो फल है, वह मनुष्य नियमस्थ होकर इस जन्मभूमि के दर्शन से प्राप्त कर लेता है। साधु चरित्र व्यक्ति माता-पिता-गुरुगण के प्रति भक्ति दिखलाने से जो फललाभ करता है, जन्मभूमि के दर्शन मात्र से वही फल मिल जाता है।।१४-२५।।

अथ सरयूवर्णनम्

पितॄणामक्षया तृप्तिर्गयाश्राद्धाधिकं फलम्॥२६॥
मन्वन्तरसहस्रैस्तु काशीवासेषुयत्फलम्। तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते॥२७॥
गयाश्राद्धञ्च ये कृत्वा पुरुषोत्तमदर्शनम्। कुर्वन्ति तत्फलं प्रोक्तं कलौदाशरथींपुरीम्॥२८॥
मथुरायां कल्पमेकं वसते मानवो यदि। तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते॥२९॥

पुष्करेषु प्रयागेषु माघे वा कार्त्तिके तथा। तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते॥३०॥
कल्पकोटिसहस्त्राणि ह्यवन्तीवासतो हि यत्। तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते॥३१॥
षष्टिवर्षसहस्त्राणि भागीरथ्यवगाहजम्। तत्फलं निमिषार्द्धेन कलौ दाशरथीं पुरीम्॥३२॥

अब सरयू वर्णन करते हैं। सरयू दर्शन से पितरों को अक्षय तृप्ति होती है। गया श्राद्ध से भी सरयू दर्शन का अधिक फल है। सहस्त्रों मन्वन्तर में काशी निवास का जो फल है, सरयू दर्शन से वही फल लाभ होता है। जो कलिकाल में दशरथतनय राम की अयोध्यापुरी का दर्शन करते हैं, उनको गयाश्राद्ध तथा पुरुषोत्तम दर्शन इतना फल लाभ होता है। जो मनुष्य सरयू दर्शन करते हैं, उनको एक कल्पपर्यन्त मथुरा निवास का फल मिलता है। कार्त्तिक मास में पुष्कर अथवा प्रयाग वास का जो पुण्य है मानव को एकमात्र सरयू दर्शन से वही फल लाभ होता है। सरयू दर्शन द्वारा सहस्त्रकोटि कल्पपर्यन्त अवन्ती नगरी में रहने के समान फल होता है। ६० हजार वर्ष तक जाह्नवी जल में स्नान का जो फल है, वही फल दाशरथी पुरी अयोध्या का दर्शन करने वाले को आधे क्षण में मिल जाता है।।२६-३२।।

निमिषं निमिषार्द्धं वा प्राणिनां रामचिन्तनम्। संसारकारणाज्ञाननाशकंजायतेध्रुवम्॥३३॥
यत्र कुत्र स्थितो ह्यस्तु ह्ययोध्यां मनसा स्मरेत्।
न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पान्तरशतैरपि॥३४॥
जलरूपेण ब्रह्मैव सरयूर्मोक्षदा सदा। नैवाऽत्र कर्मणोभोगो रामरूपो भवेन्नरः॥३५॥
पशुपक्षिमृगाश्चैव ये चान्ये पापयोनयः। तेऽपि मुक्ता दिवं यान्ति श्रीरामवचनंयथा॥३६॥
इत्युक्त्वा विरते तस्मिन्मुनौ कलशजन्मनि। कृष्णद्वैपायनव्यासःपुनरूचे तपोधनः॥३७॥
दुर्लभा सर्वजन्तूनां कथा विस्तरतः क्रमात्।
यात्राक्रमोऽपिच मया श्रुत आगच्छतां नृणाम्॥३८॥
इदानींश्रोतुमिच्छामिक्षेत्रस्थानंयथाविधि। यात्राक्रमंमुनिश्रेष्ठसम्यक्त्वत्तस्तपोधन॥३९॥
फलम्ब्रूहि क्रमेणैवविस्तरात्पृच्छतो मम। यद्यस्तिमयिते विद्वन्कृपाकारुणिकोत्तम॥४०॥
यथा श्रुत्वा क्रमेणैव यात्रां विश्वविदाम्वर!। कंरोमि त्वत्प्रसादेन तथाकुरुयतव्रत!॥४१॥

प्राणीगण एक निमेष अथवा आधा निमेष राम चिन्तन करके संसार के कारण अज्ञान का नाश कर लेते हैं। इसमें संशय नहीं है। मानव जहां भी रहे, यदि वह मन ही मन अयोध्या का स्मरण करता है—उस स्थिति में सैकड़ों कल्प में भी उसका पुनर्जन्म नहीं होता। ब्रह्मा सरयूतट पर विराजित रहकर जीवगण को सतत् मुक्ति देते हैं। यहां कर्म का भोग नहीं है। यहां जीवन समाप्त होने पर रामरूप प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त पशु, पक्षी, मृग तथा अन्य पापीगण भी मुक्त होकर स्वर्गगमन करते हैं। यह राम की आज्ञा है। तत्पश्चात् कुम्भज मुनि अगस्त्य यह सब कहकर विरत हो गये। तब कृष्णद्वैपायन व्यास ने पुनः कहा—"हे तपोधन! मैंने आपसे समस्त प्राणीगण के लिये जो दुर्लभ है, ऐसी कथा विस्तार से सुनी। क्रमशः अयोध्यायात्राक्रम भी आपने कहा। हे मुनिप्रवर! सम्प्रति आपसे यथाविधि यात्राक्रम के अनुसार क्षेत्रस्थान सुनना चाहता हूं। हे विद्वान्! सम्प्रति यह जानना है। यदि मेरे ऊपर आपकी कृपा है, तब हे कारुणिकों में श्रेष्ठ! आप क्षेत्र के फल का भी वर्णन करिये।

हे यतव्रत, विश्वविदों में श्रेष्ठ! आपके मुख से यह सब सुनकर आपकी कृपा से मैं अयोध्यायात्रा सम्पन्न कर सकूं, ऐसा बतायें।।३३-४१।।

अगस्त्य उवाच

श्रृणु वक्ष्यामितत्त्वेनयात्राक्रममथादितः। अयोध्यां सप्ततीर्थानां यथावदनुर्पूशः।।४२।।
मनोवाक्कायशुद्धेन निर्दोषेणान्तररात्मना। मानसेषु सुतीर्थेषु स्नात्वाकिल जितेन्द्रियः।
यः करोति विधिं सम्यक्स तीर्थफलमश्नुते।।४३।।

व्यास उवाच

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—अब मैं अयोध्या के सप्ततीर्थ के प्रारंभ से अन्त तक का यात्राक्रम कहता हूं। सुनें! मन-वाणी-काया से शुद्ध निर्दोष आत्मा जितेन्द्रिय मानव मानस आदि (अयोध्यास्थित मानसतीर्थ) में स्नान करके सम्यक् विधि का अनुष्ठान करे। उसे ही तीर्थफल लाभ होता है।।४२-४३।।

मानसान्येव तीर्थानि कथयस्वतपोधन!। येषुस्नातवतां नृणां विशुद्धिर्मनसोभवेत्।।४४।।

महर्षि व्यासदेव कहते हैं—हे तपोधन! जिन तीर्थों में स्नान द्वारा मनुष्य शुद्ध मन वाला हो जाता है, उन तीर्थों का माहात्म्य कहिये।।४४।।

अगस्त्य उवाच

श्रृणोतीर्थानिगदतोमानसानिममानघ!। येषु सम्यङ्नरः स्नात्वाप्रयातिपरमांगतिम्।।४५।।
सत्यतीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः। सर्वभूतदयातीर्थं तीर्थानां सत्यवादिता।।४६।।
ज्ञानतीर्थं तपस्तीर्थं कथितं तीर्थसप्तकम्। सर्वभूतदयातीर्थे विशुद्धिर्मनसो भवेत्।।४७।।
नतोयपूतदेहस्यस्नानमित्यभिधीयते। स स्नातो यस्य वै पुंसः सुविशुद्धंमनोगतम्।
भौमानामपि तीर्थानां पुण्यत्वे कारणं श्रृणु।।४८।।

महर्षि अगस्त्य कहते हैं—हे निष्पाप! मानसादितीर्थ का वर्णन सुनें। इनमें सम्यक्तः स्नान करके मानवगण को परमागति का लाभ होता है। सत्यतीर्थ, क्षमातीर्थ, इन्द्रियनिग्रहतीर्थ, सर्वभूतदयातीर्थ, सत्यवादितातीर्थ, ज्ञानतीर्थ, तपतीर्थ कहे गये हैं। (ये ७ तीर्थ हैं)। सर्वभूतदयातीर्थ में मन शुद्ध होता है। केवल जल से शरीर शुद्ध होना स्नान नहीं है। इस स्नान से मनुष्य का मन शुद्ध होने से ही स्नान सम्पन्न हो जाता है। पृथिवी के तीर्थ कैसे शुद्ध हो गये, इसका कारण सुनें।।४५-४८।।

यथा शरीरस्योद्देशाः केचिन्मध्योत्तमाः स्मृताः।
तथा पृथिव्यामुद्देशाः केचित्पुण्यतमाः स्मृताः।।४९।।
तस्माद्भौभेषु तीर्थेषु मानसेषु च सम्वसेत्। उभयेषुचयःस्नाति स यातिपरमांगतिम्।।५०।।
तस्मात्त्वमपिविप्रेन्द्र विशुद्धेनान्तरात्माना। यात्रांकुरुप्रयत्नेन यात्रा वै नादितामया।
तं तु वक्ष्यामि विप्रेन्द्र! तीर्थयात्राविधिं क्रमात्।।५१।।

जायन्ते च जलेष्वेवम्रियन्तेचजलौकसः। न च गच्छन्तिते स्वर्गमशुद्धमनसोमलाः॥५२॥
विषयेष्वनिशं रागो मनसो मल उच्यते। तेष्वेव हि न सङ्गम्य नैर्मल्यं समुदाहृतम्॥५३॥

जैसे शरीर का कोई भाग उत्तम तथा कोई भाग मध्यम होता है, उसी प्रकार से पृथिवी का भी कोई-कोई भाग पुण्यतम माना गया है। अतः पृथिवी के तीर्थों में मानसादि तीर्थ स्थित रहते हैं और जो व्यक्ति उत्तम-मध्यम रूपी सभी तीर्थों में स्नान करता है, उसे परमगति प्राप्त होती है। हे विप्रेन्द्र! आप भी विशुद्ध मन के साथ प्रयत्नतः तीर्थयात्रा करिये। यह यात्राक्रम मैंने पहले नहीं कहा था। अब उसे क्रमरूप से कहता हूं। जलाशय निवासी जल में ही जन्म लेते तथा जल में ही मृत होते हैं, तथापि वे स्वर्ग नहीं जा पाते। उनका मन मलिन रहता है। निर्मल नहीं होता। सर्वदा विषयानुराग ही मनोमल है। जिसका विषयों के प्रति मनोयोग नहीं है, उसका ही मन निर्मल होता है।।४९-५३।।

चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानं न शुष्यति। शतशोऽपि जलैर्धौते सुराभाण्डमपावनम्॥५४॥

दानमिज्या तपः शौचं तीर्थसेवा श्रुतिस्तथा।
सर्वाण्येतानि तीर्थानि यदि भावेन निर्मलः॥५५॥

निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव वसते नरः। तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्करं तथा॥५६॥

एतत्ते कथितं विप्र! मानसं तीर्थलक्षणम्।
स्नाते यस्मिन्क्रियाः सर्वाः सफलाः स्युः क्रियावताम्॥५७॥

जैसे जल में सुरापात्र को भले ही सौ बार धोया जाये, तथापि उसे शुद्ध नहीं कहा जाता, उसी प्रकार जब तक मन बहिर्विषयों से मुक्त नहीं होता और अन्तःप्रविष्ट नहीं हो जाता, तब तक यह दुष्ट मन शुद्ध नहीं हो सकता। दान-यज्ञ-तप-शौच-तीर्थसेवा तथा श्रवण से निर्मल मानव के ही लिये ये सब तीर्थ हैं। जिसकी इन्द्रिया वश में हैं, वह चाहे जहां रहता हो, वही उसके लिये नैमिष, कुरुक्षेत्र तथा पुष्कर क्षेत्र है। हे विप्र! मैंने इस प्रकार मानसतीर्थ लक्षण कह दिया। सर्वभूतदया तीर्थ में प्रवेशरूपी स्नान से ही क्रियावान लोगों की समस्त क्रिया सफलीभूत हो जाती है।।५४-५७।।

प्रातरुत्थाय मतिमान्सङ्गमे स्नानमाचरेत्। विभुं विष्णुहरिं दृष्ट्वा स्नायाद्वै ब्रह्मकुण्डके॥५८॥
चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा चक्रहरिं विभुम्। ततो धर्महरिंदृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥५९॥
एकादश्यामेकादश्यामियं यात्रा शुभावहा। प्रातरुत्थाय मतिमान्स्वर्गद्वारजलाप्लुतः॥६०॥
विधाय नित्यजं कर्म अयोध्यां च विलोकयेत्। सरयूं तु ततोदृष्ट्वापश्येन्मत्तगजंततः॥६१॥
बन्दीञ्च शीतलांञ्चैवबटुकञ्चविलोकयेत्। तदग्रसरसिस्नात्वामहाविद्यांविलोकयेत्॥६२॥
पिण्डारकं ततो दृष्ट्वा ततो भैरवदर्शनम्। अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यामेषा यात्रा फलप्रदा॥६३॥
अङ्गारकचतुर्थ्यां तु पूर्वोक्ता देवता अपि। विघ्नेशञ्च ततः पश्येत्सर्वकामार्थसिद्धये॥६४॥

प्रातरुत्थाय मतिमान्ब्रह्मकुण्डजले प्लुतः।
विष्णुंविष्णुहरिदृष्ट्वामनोवाक्कायशुद्धिमान् ॥६५॥

मतिमान मानव प्रातः उठकर घाघरा-सरयू संगम में स्नानोपरान्त विभु विष्णु हरि का दर्शन करके ब्रह्मकुण्ड में स्नान करें। तदनन्तर वह चक्रतीर्थ में स्नानोपरान्त प्रभुचक्रहरि तथा धर्महरि का दर्शन करके समस्त कलुष समूह से मुक्त हो जाये। प्रत्येक एकादशी के दिन यह यात्रा शुभ होती है। मतिमान मानव प्रभात काल में शय्यात्याग के अनन्तर स्वर्गद्वार में स्नान तथा नित्यकर्म सम्पन्न करके अयोध्या का दर्शन करके सरयू एवं मत्तगज स्थान का दर्शन करे, तत्पश्चात् बन्दी, शीतला तथा बटुक का अवलोकन करे। इन बटुक के समक्ष एक सरोवर है। इसमें स्नान के उपरान्त महाविद्या, पिण्डारक तथा भैरव का दर्शन करना चाहिये। अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथि को यह यात्रा प्रशस्त होती है। अंगारक चतुर्थी के दिन पुनः पूर्वोक्त देवगण का दर्शन तथा तदनन्तर सर्वाभीष्टसिद्धि के लिये विश्वेश्वर का दर्शन करे। मतिमान् मानव प्रातः उठकर ब्रह्मकुण्ड के जल में स्नानोपरान्त विभु विष्णुहरि का दर्शन करके मन-वाणी तथा शरीर की शुद्धि सम्पन्न करें।।५८-६५।।

मन्त्रेश्वरं ततोदृष्ट्वा महाविद्यां विलोकयेत्।
अयोध्यां च ततो दृष्ट्वा सर्वकामार्थसिद्धये॥६६॥
स्वर्गद्वारेनरःस्नात्वासचैलोविजितेन्द्रियः। नानाविधानिपापानिबहुजन्मकृतानि च।
सचैलस्नानतो यान्ति तस्मात्सचैलमाचरेत्॥६७॥
एषा वै गदिता यात्रा सर्वपापहरा शुभ॥६८॥

इसके पश्चात् मन्त्रेश्वर तथा महाविद्या के दर्शनोपरान्त सर्वकामना सिद्धि हेतु अयोध्या जाकर स्वर्गद्वार में वस्त्रसहित स्नान करके वह अनेक जन्मार्जित पापों से मुक्त हो जाये। यही सर्वपापहारिणी शुभ अयोध्या-यात्रा है।।६६-६८।।

य एवं कुरुते यात्रा नित्यं शुभफलप्रदाम्। न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥६९॥
तस्मात्त्वमपि विप्रेन्द्र! अयोध्यां व्रज माचिरम्।
तत्र गत्वा क्रमेणैव यात्रां कुरु यतेन्द्रियय:॥७०॥
अयोध्या परमं स्थानं अयोध्या परमं महत्।
अयोध्यायाः समा काचित्पुरी नैव प्रदृश्यते॥७१॥
अयोध्या परमं स्थानं विष्णुचक्रे प्रतिष्ठितम्॥७२॥
इत्येतत्कथितं विप्र मया पृष्टं हि यत्त्वया। समाश्रय मुने! तां त्वमनुजानीहिमामतः॥७३॥

जो मानव इस प्रकार से शुभफलप्रदायात्रा नित्य करता है, उसे कोटिकल्पों में भी संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता। हे विप्रेन्द्र! आप भी शीघ्र अयोध्या जाकर संयतेन्द्रिय स्थिति में इस क्रम से यात्रानुष्ठान करें। अयोध्या उत्तम स्थान है। यह सर्वतीर्थोत्तम है। अयोध्या के समान कहीं भी कोई पुरी नहीं है। परमस्थान अयोध्या विष्णुचक्र पर स्थित है। हे विप्र! मैंने जैसे देखा, उसी प्रकार से आपसे वर्णन किया है। हे मुनिवर! आप अभी से अयोध्या का आश्रय ग्रहण करिये। अब आप मुझे विदा दीजिये।।६९-७३।।

सूत उवाच

इत्येतदुक्त्वा विरते मुनौ कलशजन्मनि। उवाचमधुर वाक्यंव्यासःसतपसांनिधिः॥७४॥

सूत जी कहते हैं—कुंभज अगस्त्य यह कहकर मौन हो गये। तब तपोनिधि व्यास मधुर वाणी में यह कहने लगे।।७४।।

व्यास उवाच

धन्योऽस्म्यनृगृहीतोऽस्मि कृतकृत्योऽस्म्यहं मुने!।
सत्यं शौचं श्रुतं विप्रं सुशीलं च क्षमाऽऽर्जवम्।
सर्वञ्च निष्फलं तस्य अयोध्यां नाऽऽगतो यदि।।७५।।
यस्मिन्मयिप्रसन्नेनत्वयोक्तोधर्मनिर्णयः। इदानीमपिगच्छामिह्ययोध्यांनिर्मलांपुरीम्।
त्वमपि व्रज विप्रेन्द्र! स्वमाश्रमपदं निजम्।७६।।

ऋषि व्यास कहते हैं—हे मुनिवर! मैं स्वयं को धन्य तथा कृतार्थ अनुभव कर रहा हूं। मैंने समझ लिया कि जो मनुष्य अयोध्यागमन नहीं करता, उसका शौच, श्रवण, विप्रत्व, सुशीलत्व, क्षमा तथा आर्जव गुण विफल है। आपने यत्नतः अयोध्या का जो धर्म कहा है, मैं तदनुसार अभी निर्मलपुरी अयोध्या जा रहा हूं। हे द्विजोत्तम! अब आप भी अपने आश्रम जाईये।।७५-७६।।

सूत उवाच

इत्येवमुक्त्वाक्रमशोभायात्राविधिमनुत्तमम्। जगाम तपसांराशिरगस्त्यःकुम्भसम्भवः।।७७।।
स्वमाश्रमपदं धीरो विस्मयोत्फुल्ललोचनः। व्यासोऽपि महसां राशिर्जगाम विजितेंद्रियः।।७८।।
अयोध्यामागतो विप्रःसर्वकामार्थसिद्धिये। आगत्यैतद्विधानेनकृत्वायात्रांयथाक्रमम्।।७९।।
दृष्ट्वा महाश्चर्यकरं कारणं तीर्थमुत्तमम्। आनन्दतुन्दिलस्तत्रसम्यगाचम्य बुद्धिमान्।।८०।।
ततो जगाम विप्रेन्द्रः स्वमाश्रमपदं मुनिः। व्यासेन कथितं मह्यं माहात्म्यं क्रमशस्तदा।।८१।।
मया श्रुत्वा च माहात्म्यंयात्रां कृत्वाविधानतः। कुरुक्षेत्रेसमागत्यभवदग्रेनिरूपितम्।।८२।।
इदं माहात्म्यतुलंयः पठेत्प्रयतो नरः। श्रद्धया यच्च शृणुयात्सयाति परमां गतिम्।।८३।।

सूत जी कहते हैं—तपोराशि कुंभज अगस्त्य ऋषि व्यास जी से इस प्रकार क्रमशः अत्युत्तम अयोध्या-यात्राविधि का वर्णन करके वहां से अपने आश्रम चले गये। उस समय विस्मय से व्यास जी के नेत्रद्वय उत्फुल्ल हो उठे। तेजपुंज इन्द्रिय विजयी द्विजप्रवर व्यास भी सर्वाभीष्ट प्राप्ति हेतु अयोध्या पहुंचे। बुद्धिमान व्यास ने अयोध्या में सम्यक्तः आचमन करके सविधि अयोध्या यात्रा किया। महाविस्मयकर तीर्थोत्तम अयोध्या दर्शन द्वारा वे प्रसन्न हो उठे। यात्रा सम्पन्न करने के अनन्तर महर्षि व्यास अपने आश्रम आये तथा उन्होंने क्रमशः इस अयोध्या माहात्म्य का वर्णन किया। मैंने भी उनसे यह प्रसंग सुनकर यथाविधि-अयोध्या यात्रा किया। अब कुरुक्षेत्र आकर आपसे वह कह रहा हूं। जो मानव इस अतुल अयोध्या माहात्म्य का पाठ करता है अथवा सश्रद्धभाव से इसे सुनता है, उसे परमगति प्राप्त होती है।।७७-८३।।

तस्मादेतत्प्रयत्नेन श्रोतव्यञ्च जनैः सदा। द्विजपूजा विष्णुपूजाविधातव्या प्रयत्नतः।।८४।।
दातव्यञ्च सुवर्णादि यथाशक्त्या द्विजन्मने। पुत्रार्थीलभतेपुत्रान्धर्मार्थीधर्ममाप्नुयात्।।८५।।

अतिविपुलविधानैर्वर्णितं धर्म्यमाद्यं कलयति परभक्त्या क्षेत्रमाहात्म्यमेतत्।
य इह मनुजवर्यः श्रीसनाथः स सम्यग्व्रजति हरिनिवासं सर्वभोगांश्च भुक्त्वा॥८६॥
यः पाठकस्यापि कदाचिदेव ददाति वित्तं च यथाऽऽत्मशक्त्या
पात्राणि वस्त्राणि मनोहराणि रौप्यं सुवर्णञ्च गवीः स मुच्येत्॥८७॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डेऽयोध्या-
माहात्म्येऽगस्त्यव्याससम्वादेऽयोध्यायात्राविधिक्रम-
वर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

॥समाप्तमिदमयोध्यामाहात्म्यम्॥

—※—

॥इति श्रीस्कान्दे महापुराणे द्वितीयं वैष्णवखण्डं सम्पूर्णम्॥२॥

इस कारण से मनुष्य यत्नतः इस अयोध्या माहात्म्य का श्रवण करें। तदनन्तर यत्नपूर्वक द्विज तथा विष्णुपूजा तथा यथाशक्ति ब्राह्मण को स्वर्णप्रदान करें। यह माहात्म्य सुनने से पुत्रार्थी को अनेक पुत्र तथा धर्मकामी को धर्मलाभ होता है। मैंने अत्यन्त विस्तार से अयोध्याधर्म का वर्णन किया। जो मानव भक्ति के साथ इस क्षेत्र माहात्म्य को सुनता है, वह वरेण्य मनुष्य समस्त सम्पत्तियों का अधिपति होता है। वह जीवन में नाना भोगों का उपभोग करके अन्त में हरिलोक गमन करता है। जो वाचक को यथाशक्ति धन, सम्पत्ति, मनोहर पात्र-वस्त्र-चांदी-स्वर्ण तथा गोदान करता है, उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है॥८४-८७॥

॥दशम अध्याय समाप्त॥

॥अयोध्या माहात्म्य समाप्त॥

॥वैष्णवखण्ड समाप्त॥

❋❋❋
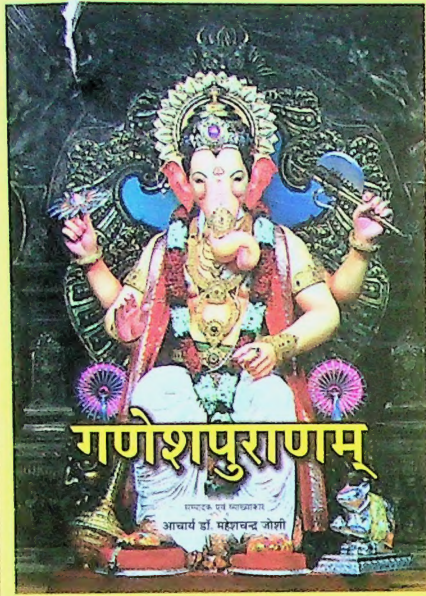
₹ 1800.00 (Set in 2 Vols.)

गणेशपुराणम्

समीक्षात्मक पाठ एवं अनुवाद और परिशिष्ट सहित।

सम्पादक एवं अनुवादक - **डॉ. महेशचन्द्र जोशी**

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस के गौरवपूर्ण प्रकाशनों में चिर प्रतीक्षित श्रीगणेशपुराण का प्रकाशन अद्वितीय गौरव और हर्ष का विषय है । इसका प्रकाशन दो जिल्दों में किया गया है । प्रथम जिल्द में गणेशपुराण के खण्डित, त्रुटित और विसंगत पाठ को संशोधित समीचीन और सुपाठ्य स्वरूप प्रदान करने के साथ ही इसके सटीक अनुवाद और प्रसंगानुकूल अपेक्षित संस्कृत वाङ्मय की सभी विधाओं से प्रमाणों का उद्धरण देने के साथ ही टिप्पणियों में पाठान्तर को भी स्थान दिया गया है और इसकी विस्तृत भूमिका में पुराणों की विषय-वस्तु की चर्चा सहित गणेशपुराण की प्राचीनता, इस पुराण में गणेशोपासना की पृष्ठभूमि में वर्णित भौगोलिक परिवेश, पंचदेवोपासना में गणेश पूजा का महत्त्व, विघ्न-विनायक गणेश जी की अग्रपूज्यता, वेदों, पुराणों, आगमों और तन्त्रग्रन्थों में गणपति उपासना के सप्रमाण गम्भीर विवेचन के साथ ही इस पुराण की कथा के जिज्ञासुओं और कथावाचकों की सुविधा हेतु हिन्दी भाषा में और संस्कृत भाषा में भी गणेशपुराण के सभी अध्यायों की कथा का सारांश देने के साथ ही अन्य अनेक सूचनाऐं उपलब्ध करायी गयी हैं । इस पुराण के अन्त में संशोधित पाठानुसार गणेश-सहस्त्रनामावली और शब्दानुक्रमणियों और श्लोकानुक्रमणी को द्वितीय जिल्द में निबद्ध किया गया है । **प्राचीन भारत में दाम्पत्यमर्यादा** जैसे पुरस्कृत ग्रन्थ के लेखक डॉ. महेशचन्द्र जोशी ने सर्वदेव प्रतिष्ठा विषयक **प्रतिष्ठामयूख** को जिस प्रकार उपयोगी और लोकप्रिय स्वरूप प्रदान किया था उससे भी अधिक वैदुष्यपूर्ण निष्ठा-भाव से इस गणेशपुराण को सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रथम बार इतने उत्कृष्ट रूप में सम्पादित करने के उनके प्रशंसनीय प्रयास से यह पुराण चौखम्बा संस्कृत सीरीज के प्रकाशनों में अद्वितीय मणिरत्न के समान समादरणीय और संग्रह योग्य बन गया है ।

इस गणेशपुराण की भूमिका में विद्वान् लेखक ने यह विवेचन किया है कि सम्पूर्ण भारतवर्ष में एकमात्र गणेशजी ही ऐसे देवता हैं जो अनादिकाल से सर्वत्र सर्वपूज्य रहे हैं और विदेशों में भी बौद्ध धर्मानुयायी उनकी पूजा करते हैं । गणेशपुराण के उपासनाखण्ड में गणेश जी के आविर्भाव, उनके स्वरूप, उनके नाना अवतारों और उनकी उपासना से देवों, ऋषि-मुनियों और अन्य भक्तों की मनोरथ सिद्धि के वर्णन और उनकी उपसना-पद्धति आदि विषयों का वर्णन है । इस पुराण के क्रीडाखण्ड में भी गणेशजी के नाना अवतारों, उनकी बाल-लीलाओं तथा आसुरी शक्तियों के दमन और नाना चमत्कारों का वर्णन है। गणेश जी जैसी लीलाऐं कर चुके थे प्राय: वैसी ही लीलाऐं उनके हजारों वर्ष पश्चात् अवतार लेने वाले भगवान् कृष्ण ने भी की थी । गणेशपुराण से ही यह विदित होता है कि गणेश जी विकलांगों को सुन्दर काया देते हैं, रोगी को नीरोग बनाते हैं, निर्धन को धनी, अपुत्री को पुत्रवान्, वन्ध्या को पुत्रवती बनाते हैं तथा कन्या को सुन्दर पति प्रदान करते हैं । गणेशपुराण की फलश्रुति है कि जिस घर में यह पुराण रहता है वहाँ भूत-प्रेत आदि और ग्रहों आदि की पीड़ा नहीं होती है ।

designed by Shreyash GRAPHICS, mo. 9839814784

ISBN : 978-81-7080-440-6 (Vol. II) ₹ 1675.00